THE HINDI VISHVAKOSHA

(ENCYCLOPÆDIA INDICA.)

(Mahatma Gandhi's appreciation of the work and its author)

'Reference has already been made to Srijut. Vasu's Hindi Cyclopædia in my notice of Hindi Prachar Conference. I knew of this great work two years ago. I knew too that the author was ailing and bed-ridden. I was so struck with Srijut Vasu's labours that I had a mind to see the author personally and know all about his work. I had, therefore, promised myself this pilgrimage during my visit to Calcutta for the Congress. It was only on my way to the Khadi Pratishthan at Sodepur that I was able to carry out my promise. I was amply rewarded. I took the author by surprise for I had made no appointment. I found him seated on his bed in a practically unfurnished and quite unpretentious room. There were no chairs. There was just by his bedside a cupboard full of books and behind a small desk. He offered me a seat on his bed, and I sat instead on a stool near it. He is a martyr to Asthma of which he showed ample signs during my brief stay with him. "I feel better when I talk to visitors and forget my disease for the moment. When you leave me, I shall suffer more" said Srijut Vasu. This is a summary description he gave me of his enterprise: "I was 19 when I began my Bengali Cyclopaedia. I finished the last volume when I was 45. It was a great success. There was a demand for a Hindi edition. The late Justice Sarada Charan Mitra suggested that I should myself publish it. I began my labours when I was 47, and am now 63. It will take three years more to finish this work. If I do not get more subscribers or other help, I stand to lose Rs. 25,000 at the present moment. But I do not mind. I have faith that when I come to the end of my resources God will send me help. These labours of mine are my Sadhana. I worship God through them. I live for my work." There was no despondency about Srijut Vasu, but a robust faith in his mission. I was thankful for this pilgrimage, which I should never have missed. As I was talking to him I could not but recall Doctor Murray's labours on his great work. I am not sure who is the greater of the two. I do not know enough of either. But why any comparison between giants ? Enough for us to know that nations are made from such giants. The address of the printing works behind which the author lives is 9, Vishvakosh Lane, Bagh Bazar, Calcutta.'

M. K. GANDHI,

("Young India", dated 10th January, 1929)

श्रीयुत् वसु और उनके हिन्दी-विश्वकोष पर महात्मा गांधीका अभिमत।

(यंग इण्डिया १०वीं जनवरी १९२९)

श्रीयुत् वसुके हिन्दी विश्वकोषके सम्बन्धमें कलकत्ता-राष्ट्रभाषा सम्मेलनमें बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस वृहत् ग्रन्थका हाल मुझे गत दो वर्षोंसे मालूम था। मुझे यह भी मालूम था, कि सम्पादक महाशय बहुत दिनोंसे पीड़ित और शय्याशायी हैं। उनके परिश्रमसे मैं इतना आकृष्ट था, कि स्वयं उनसे मिलने और इस ग्रन्थके विषयमें कुल बातें जाननेकी मेरी प्रबल इच्छा हो गई थी। इस कारण कलकत्ता-कांग्रेसके समय मैंने उनसे मिलनेका सङ्कल्प किया। सोदपुर-खादीप्रतिष्ठान जाते समय मैं बिना कोई पूर्व सूचना दिये वसुजीके भवनमें आया। ......जब तक मैं उनके पास रहा, तब तक बड़े कष्टसे उन्हें श्वास लेते देखा। वसुजीने कहा, "जब मैं किसी अभ्यागतसे बातचीत करता, तब अपनी सारी पीड़ा भूल जाता हूं, बादमें पूर्ववत् अनुभव करता हूं।"

वसुजीने अपने कार्यका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया,—"जब मेरी उमर १६ वर्षकी थी, तभी मैंने बङ्गला विश्वकोषमें हाथ लगाया। ४५ वर्षकी उमरमें उसे शेष किया। मुझे इस कार्यमें पूरी सफलता मिली। पीछे हिन्दी-संस्करणकी मांग हुई। स्वर्गीय जस्टिस शारदामित्रने मुझे ही इसे प्रकाशित करनेकी सलाह दी। अतः ४७ वर्षकी अवस्थामें मैंने यह वृहत् कार्य आरम्भ कर दिया। अभी मेरी उमर ६३ वर्षकी है। यह ग्रन्थ सम्पूर्ण होनेमें और भी तीन वर्ष लगेंगे। यदि मुझे इसके अधिक ग्राहक या और किसी प्रकारकी सहायता न मिली, तो फिलहाल मुझे २५०००) रु०का नुकसान होगा। फिर भी, मैं इसकी परवाह नहीं करता। मुझे पूरा विश्वास है, कि अन्तमें ईश्वर मेरी अवश्य सहायता करेंगे। मेरा यह कार्य ही साधना है।"

वसु महाशय जरा भी निराश नहीं हुए हैं। अपने कार्यमें इन्हें अटल विश्वास है। इस बारकी यात्रामें मैंने अपनेको कृतार्थ समझा। यह सुयोग खोना मेरे लिये अच्छा नहीं होता। उनसे बातचीत करते समय मुझे डा० मरे और उनके वृहत् कार्यकी याद आ गई। मैं निश्चय नहीं कर सकता, कि उन दोनोंमेंसे कौन बड़े हैं। मैं उन दोनोंमेंसे किसीका हाल अच्छी तरह नहीं जानता। दोनों महान् पुरुषोंकी तुलना करनेका प्रयोजन ही क्या? पर हां, इतना मैं जरूर कहूंगा, कि ऐसे महान् पुरुषोंसे ही जातिसंगठन होता है।

हिन्दी

विश्वकोष

अष्टादश भाग

मुण्डा—छोटानागपुर अञ्चलमें रहनेवाली द्राविड़-असभ्य जातिविशेष। इनके आचार-व्यवहार सन्थालोंकी हो वा कोलजातिसे मिलते जुलते हैं। मुण्डा शब्दका अर्थ ग्रामका मण्डल है। सन्थाल लोग इसके अनुरूप मांझी शब्दका व्यवहार करते हैं।

मानवजातिके उत्पत्ति-सम्बन्धमें मुण्डा लोगोंमें एक प्रवाद इस प्रकार है—ओटबोरम और शिवोङ्गा नामक स्वयम्भू तथा जगतके आदिपुरुषने पहले एक बालक और बालिकाकी सृष्टि की। पीछे सन्तानवृद्धिके लिये उन्हें एक निर्जनगिरि गुहामें भेज दिया। किन्तु यौवनसीमामें पदार्पण कर वे दोनों भाई वहनके जैसे प्रेममें दिन विताने लगे। सृष्टिका विस्तार न हुआ देख स्वयम्भूने धानकी शराब प्रस्तुत की। उस शराबको पी कर वे दोनों मतवाले हो गये। पीछे उन्हींसे १२ पुत्रकन्या उत्पन्न हुईं। भाई वहनसे एक एक दम्पतीकी सृष्टि हुई। तब सृष्टिकर्त्ता शिवोङ्गाने उन लोगोंके खानेके लिये तरह तरहके खाद्यपदार्थ सामने रख दिये और जो जिसकी रुचि हो वह लेनेको कहा। तदनुसार प्रथम और द्वितीय दम्पतीने गाय और भैंसका मांस पसन्द किया। पीछे उसीसे हो, कोल और भूमिज-जातिकी उत्पत्ति हुई। दूसरे दम्पतीने उद्भिज्ज खाद्य पसन्द किया—उस वंशसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण और क्षत्रिय कहलाये। पीछे जिसने मछली और बकरा लिया उसके लड़के शूद्र; जिसने सीप और घोंघेका मांस लिया उसके वंशधर भुंइया और जिसने सूअर लिया वे संथाल हुए। जो थोड़े दम्पती बच रहे उन्हें कुछ भी नहीं मिला। इस पर प्रथम और द्वितीय दम्पतीने अपने अपने हिस्सेसे उन्हें थोड़ा थोड़ा दिया। वे लोग घासिया कहलाये। घासिया लोग परिश्रम नहीं करते केवल शिकार करके अपना गुजारा चलाते हैं।

मुण्डागण प्रधानतः १४ श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इनमें खरियामुण्डा, महिलीमुण्डा, ओरांवमुण्डा, भूमिहारमुण्डा और मानकीमुण्डा ही प्रधान हैं। महिलीमुण्डा सूअरको पवित्र समझ कर उसकी पूजा करते हैं, इसीसे सूअरका मांस वे लोग नहीं खाते। किन्तु ये लोग इतने मांस-लोलुप हैं, कि सूअरका सिर वाद दे कर वाकी अंगका मांस खानेसे वाज नहीं आते।

मुण्डा लोग केवल पितृकुलमें विवाह नहीं करते, मातृकुलमें कोई छान बीन नहीं है। निम्न श्रेणीके लोगोंमें यौवन-विवाह प्रचलित है। सिन्दूरदान ही विवाहका

प्रधान संस्कार है। वर कन्याकी मांगमें और कन्या वरके कपालमें सिन्दूर लगाती है।

इन लोगोंमें गन्धर्व-विवाह भी प्रचलित है। किन्तु जो कन्या इस प्रकार अपने इच्छानुसार पति चुन कर विवाह करती है, उसके पुत्र सम्पत्तिके उत्तराधिकारी नहीं हो सकते। केवल भोजन वस्त्र उन्हें मिलता है। विधवा सगाई प्रथा वा पुनर्विवाह कर सकती है। इस विवाहमें वाएं हाथसे सिन्दूर दिया जाता है।

स्वामी और स्त्रीके इच्छा होने पर विवाह-सम्बन्ध टूट सकता है। छोड़ी हुई स्त्री फिरसे विवाह कर सकती है। स्त्री यदि उपपति ग्रहण करे, तो उपपतिको उसके स्वामीके विवाहका पण देना होगा।

मुण्डा लोगोंके धर्ममें शिंवोङ्गा सूर्यस्वरुप हैं। ये सृष्टिकार्य्यका भार भिन्न भिन्न देवता पर सौंपते हैं। शिंवोङ्गा स्वयं कुछ भी नहीं करते। किन्तु विपदके समय मुर्गेकी वलि दे कर शिंवोङ्गाकी पूजा करते हैं। शिंवोङ्गाके वाद 'वुरुवङ्गा' और 'मरङ्ग-वुरु' वा पाटसरना हो प्रधान देवता हैं। ये सव पर्वतवासी देवता हैं। छोटानागपुरके उच्च पर्वत पर इनका वास स्थान है। छोटानागपुरके निकट लोधमग्राममें 'महावुरु' वा 'मरङ्ग-वुरु' का प्रसिद्ध स्थान है। यहां हिन्दू मुसलमान सभी जातिके लोग इस देवताकी पूजामें शामिल होते हैं। एक पर्वतके ऊपर सिर्फ वलिदान दिया जाता है। पशुवलि देनेके वाद उसका सिर देवताके सामने रखा जाता है। पीछे पाहन वा ग्राम्य-पुरोहित उस मुण्डको अपने घर ले जाते हैं। मरङ्गवुरुको सभी वरुण वा जलदेवता समझ कर पूजते हैं। खास कर अनावृष्टिके समय इनकी पूजाकी जाती है।

इकिरवङ्गा कूप, पुष्करिणी आदि जलाशयोंके अधिष्ठात्री देवता, गढ़ापेरा नदी और प्रस्रवणादिकी अधिष्ठात्री देवी, नाग वा 'नापेरा' स्वच्छन्दविहारी उपदेवताके नाम-मात्र हैं। ये सव खेतोंमें रहते हैं। मुण्डा लोगोंका विश्वास है, कि ये सव देवता लोगोंको कष्ट देते हैं, अतएव उनकी पूजा नहीं करनेसे कष्ट दूर नहीं होते। इकिरवङ्गाकी पूजामें सफेद वकरे और काले मुर्गेको वलि और नागदेवताको अंडा चढ़ाया जाता है। देशवाली और कारासरना इनके वास्तुदेवता हैं। सरनाका अर्थ कुञ्जवन है। प्रत्येक ग्रामके भिन्न भिन्न देवता है। कृषक कभी कभी इनकी भी पूजा करतें हैं। इस पुरुषकी पूजामें भैंसेकी वलि और स्त्री-पूजामें मुर्गेकी वलि दी जाती है। कहीं कहीं गाय और सूअरकी भी वलि देते हैं। शिंवोङ्गा या सूर्यकी स्त्री चन्द्र, चनला वा चन्द्रा स्त्रियोंसे पूजी जाती हैं। नक्षत्रोंकी उत्पत्ति उन्हींसे हुई है। प्रवाद है, कि शिंवोङ्गाकी स्त्री चनला किसी दूसरे पुरुषके प्रेममें फंस गई थी। इस पर शिंवोङ्गाने गुस्सेमें आ कर उसे दो टुकड़े कर दिया। एक दिन स्त्री पर उन्हें तरस आया और सोलह कलाओं वा पूर्णसौन्दर्यसे उसे विभूषित किया। इसकी पूजामें वकरेकी वलि दी जाती है।

हापरोमको ये लोग अपने पितरोंके प्रतिनिधि मानते हैं। इसलिये खानेसे पहले वे 'हापरोम' के लिये कुछ कुछ खाद्य पदार्थ अलग कर देते हैं। कभी कभी मुर्गेकी वलिसे भी उन्हें संतुष्ट किया जाता है। हापरोम इन लोगोंके वंशधरोंकी मङ्गल-कामना करते हैं।

मुण्डा लोगोंमें नाना प्रकारके उत्सव प्रचलित हैं। जैसे—१ला 'सरहुल' वा 'सर्जुम वावा' वा वसन्तोत्सव; यह उत्सव सन्थाल और हो लोगोंके जैसा है। चैत्रमास-में जव सखुएके पेड़में फूल लगते हैं, तव ग्रामवासी आनन्दपूर्वक मुर्गेकी वलि और सखुएके फूलकी माला-से 'सर्जुम वावा' की पूजा करके वसन्त उत्सव मनाते हैं।

२रा, वर्षाऋतुमें जव आकाश घनघटासे घिर आता है, तव ये लोग वतौली उत्सव करते हैं। प्रत्येक गृहस्थ एक एक मुर्गा वलि चढ़ाता है। इनका विश्वास है, कि जव तक यह उत्सव मनाया नहीं जाता, तव तक धान नहीं पकता।

३रा, आश्विन मासमें जव धान पक जाता है, तव ये लोग नना वा जोमनना उत्सव करते हैं। इस समय शिंवोङ्गाके उद्देशसे एक सफेद मुर्गेकी वलि दी जाती है।

४था, माघमासमे 'खरिया' पूजा वा 'कलमसिंह' उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव शीतकालमें

अनाज संग्रह करनेके समय किया जाता है। इस समय ५ मुर्गेकी बलि और विविध पुष्पफूल द्वारा ग्रामदेवताकी पूजाकी जाती है। सिंहभूमके हो-लोग इस उत्सवके समय मद्यपान तथा नाना प्रकारके व्यभिचार करते हैं।

इन लोगोंके मृत-व्यक्तिका संस्कार बिलकुल हो-जातिके जैसा है। हो शब्द देखो।

मुण्डाख्या (सं० स्त्री०) मुण्ड इत्याख्या यस्याः। महाश्रावणिका, गोरखमुंडी।

मुण्डायस (सं० क्ली०) मुण्डञ्च तत् अयश्चेति मुण्ड-अयस अनोश्मायः सरसां जातिसंज्ञयोः। पा ५।४।९४) इति टच्। लौह, लोहा।

मुण्डार (सं० क्ली) एक नगरका नाम। यहां सूर्यकी उपासना प्रचलित थी।

मुण्डालग्राम—आसाम प्रदेशका एक गांव। यह राजा कान्तिचन्द्र द्वारा स्थापित हुआ है।

मुण्डाली—यशोर जिलेमें चाँचडेके पासका एक गण्डग्राम। यह मुड़ाली नामसे विख्यात है।

मुण्डासन (सं० क्ली०) योगके अनुसार एक प्रकारका आसन।

मुण्डावर—मान्द्राज-प्रदेशके अमलय शैलवासी आदिम असभ्य जातिविशेष। ये लोग जनसाधारणमें अपना मुख दिखाना नहीं चाहते। निरन्तर पर्वतके वनान्तराल प्रदेशमें ये एक जगहसे दूसरी जगह जा कर छिपे रूपमें रहते हैं। इनके कोई निर्दिष्ट घर नहीं हैं। ये पेड़के पत्तेकी झोंपडी बना कर एक वर्ष तक उसमें रहते हैं। बाद उसके अपनी अपनी गौओंको ले कर वहांसे चल देते हैं।

मुण्डाहीर (मुण्डाहार) उत्तर-पश्चिम भारतवासी एक जाति।

मुण्डित (सं० क्ली०) मुण्ड्यते खण्ड्यते इति मुडि खण्डने कर्मणि क्त। १ लौह, लोहा। (त्रि०) २ वापित-तुण्ड, मुड़ा हुआ।

मुण्डितिका (सं० स्त्री०) मुण्डित स्वार्थे कन्, स्त्रियां टाप् अत इत्वं। वृक्षविशेष, गोरखमुंडी। पर्याय—अलम्बुषा, श्रावणी, पलङ्कषा, कदम्बपुष्पा, श्रवणा, भूतघ्नी, कुन्तला, अरुणा। इसका गुण—कटु, उष्णवीर्य, मधुर, लघु, मेध्य श्लीपद, अरुचि, अपस्मार और प्लीहादिरोगनाशक।

मुण्डिन् (सं० पु०) मुण्डयति केशान् वपति इति मुण्ड-णिनि। १ नापित, हज्जाम। २ योगाचार्यविशेष।

"महाकालश्च शूली च दण्डी मुण्डी स एव च।
अष्टाविंशतिसंख्याता योगाचार्या युगक्रमात्॥"
(शिवपु० वायु० १०।५)

(त्रि०) ३ मुण्डित, जिसका सिर मुड़ा हुआ हो।

"दिनेऽष्टमे तु विप्रेण दीक्षितोऽहं यथाविधि।
दन्ती मुण्डी कुशी चीरी घृताक्तो मेखलीकृतः॥"
(भारत १३।१४।३१४)

मुण्डिनी (सं० स्त्री०) कस्तूरी मृग।

मुण्डिभ (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि जो वाजसनेय-संहिताके कई मंत्रोंके द्रष्टा या कर्त्ता कहे जाते हैं।
(शतपथब्रा० १३।३।५)

मुण्डिया—सिवनीवासी स्वर्णाहरणकारी एक पहाड़ी जाति।

मुण्डी (सं० स्त्री०) मुण्डितिका, गोरखमुंडी।

मुण्डीरिका (सं० स्त्री०) मुण्डि बाहुलकात् ईरच्, स्त्रियां ङीप् स्वार्थे कन् स्त्रियां टाप् (केऽणः। पा ७।४।१३) इति पूर्वस्य ह्रस्वः। मुण्डितिका, गोरखमुंडी।

मुण्डीवृक्षानुकारक (सं० पु०) मुचुकुन्द वृक्ष, मुचकुंदका पेड़।

मुण्डेश्वर तीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, दण्डिमुण्डीश्वर तीर्थ।

मुत् (सं० स्त्री०) वृद्धौषधि।

मुत्फल (सं० पु०) राजतरंगिणीके अनुसार एक सामंतका नाम।

मुत्कलिन् (सं० पु०) देवपुत्रभेद।

मुतअल्लिक (अ० वि०) १ सम्बन्ध रखनेवाला, लगाव रखनेवाला। २ सम्मिलित, मिला हुआ। (क्रि० वि०) ३ सम्बन्धसे, विषयमें।

मुतका (हिं० पु०) १ कोठेके छज्जे या चौकके ऊपर पाटनके किनारे खड़ी की हुई पटिया या नीची दीवार जो गिरनेसे रोकनेके लिये हो। २ खंभा। ३ मीनार, लाट।

मुतदायरा (अ० वि०) जो दायर किया गया हो।

मुतफन्नी (अ० वि०) बहुत बड़ा धूर्त्त, धोखेबाज

मुतफ़रिक़ (अ० वि०) १ भिन्न भिन्न, अलग अलग। २ विविध, कई प्रकारका।

मुतवन्ना (अ० पु०) दत्तक पुत्र, गोद लिया हुआ लड़का।

मुतमौवल (अ० वि०) धनवान्, सम्पत्तिशाली।

मुतरज्जिम (अ० पु०) अनुवादक, तरजुमा करनेवाला।

मुतलक़ (अ० क्रि० वि०) १ ज़रा भी, तनिक भी। (वि०) २ बिलकुल, निरा।

मुतवफ्फा (अ० वि०) परलोकवासी, स्वर्गीय।

मुतवल्ली (अ० पु०) किसी नाबालिग़ और उसकी संपत्ति का रक्षक, किसी बड़ी सम्पत्ति और उसके अल्पवयस्क अधिकारीका कानूनी संरक्षक।

मुतवातिर (अ० क्रि० वि०) लगातार, निरन्तर।

मुतसद्दी (अ० पु०) १ लेखक, मुंशी। २ जिम्मेवार, उत्तरदायी। ३ पेशकार, दीवान। ४ मुनीम, गुमाश्ता। ५ इन्तज़ाम करनेवाला, प्रवन्धकर्त्ता। ६ हिसाब लिखनेवाला, जमा-खर्च लिखनेवाला।

मुतसिरी (हिं० स्त्री०) कंठमें पहनेकी मोतियोंकी कंठी।

मुतहम्मिल (अ० वि०) बरदाश्त करनेवाला, सहिष्णु।

मुताबिक़ (अ० क्रि० वि०) १ अनुसार, बमूजिब। (वि०) २ अनुकूल।

मुतालबा (अ० पु०) उतना धन जितना पाना वाजिब हो, प्राप्य धन।

मुताह (हिं० पु०) मुसलमानोंमें एक प्रकारका अस्थायी विवाह जो निकाहसे निकृष्ट समझा जाता है। इस प्रकारका विवाह प्रायः शिया लोगोंमें होता है।

मुताही (हिं० वि०) १ वह जिसके साथ मुताह किया गया हो। २ रखेली।

मुतेहरा (हिं० पु०) कंकणकी आकृतिका एक प्रकारका आभूषण। इसे स्त्रियां कलाई पर पहनती हैं।

मुत्तफ़िक़ (अ० वि०) रायसे इत्तफ़ाक करनेवाला, सहमत।

मुत्तसिल (अ० वि०) १ निकट, पास। (क्रि० वि०) २ लगातार, निरन्तर।

मुत्य (सं० क्ली०) मुक्ता रत्न।

मुथशिल—फलित ज्योतिषोक्त तृतीय योगका नाम।

मुद् (सं० स्त्री०) मोदनमिति मुद्-भावे क्विप्। हर्ष, आनन्द।

"उवाच धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलम्ब्य चांगुलिम्।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽर्भकः॥"
(रघुवंश ३।२५)

मुदकडोर—मैसूर राज्यके तलकाड़के पास कावेरी नदी-तीरवर्त्ती एक पर्वत। यहां हर साल माघके महीनेमें मल्लिकार्जुन देवताके उद्देश्यसे महासमारोहके साथ १५ दिन तक मेला लगता है। मेलेमें दश हजारसे अधिक मनुष्य समागम होते हैं।

मुदकर (सं० पु०) १ जनपदभेद। २ उस जनपदका रहनेवाला।

मुदगर (हिं० पु०) १ मुद्गर देखो। २ मुगदर देखो।

मुदरा (हिं० पु०) एक प्रकारका मादक पेय पदार्थ। यह अफीम, भाँग, शराब और धतूरेके योगसे बनता है। इसका व्यवहार पश्चिमी पंजाब और बलूचिस्तानमें होता है।

मुदर्रिस (अ० पु०) पाठशालाका शिक्षक, अध्यापक।

मुदा (सं० स्त्री०) मुद्-वजर्थे कः ततष्टाप्। हर्ष, आनन्द।

"तं मन्त्रं क्रियामायां तु मन्त्रिभिस्तन भूभृता।
तत्पार्श्ववर्त्तिनी कन्या शुश्रावाथ मुदावती॥"
(मार्क०पु० ११६।३०)

मुदा (अ० अव्य०) १ तात्पर्य यह कि। २ मगर, लेकिन।

मुदाम (फा० क्रि० वि०) १ सदा, हमेशा। २ निरन्तर, लगातार। ३ ठीक ठीक, हूबहू।

मुदामी (फा० वि०) जो सदा होता रहे, सार्वकालिक।

मुदावत् (सं० त्रि०) मुदा हर्षः विद्यतेऽस्य अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। हर्षयुक्त, आनन्दित।

मुदावसु (सं० पु०) पुराणानुसार प्रजापतिके एक पुत्रका नाम।

मुदित (सं० त्रि०) मुद्-क्त, यद्वा मुदा अस्य जाता इतच्। १ आनन्दित, प्रसन्न, खुश।

"आर्त्तार्त्ते मुदिता हृष्टे प्रोषिते मलिना कृशा।
मृते म्रियेत या पत्यौ साध्वी ज्ञेया पतिव्रता॥"
(शुद्धित०)

(पु०) २ आलिङ्गनविशेष। कामशास्त्रमें इसका

लक्षण इस प्रकार लिखा है,—नायिका नायककी बाईं ओर लेट कर उसकी दोनों जांघोंके बीचमें जो अपना बायां पैर रखती है उसीको मुदित कहते हैं।

मुदिता (सं० स्त्री०) मोदते इति मुद्-सर्वधातुभ्य इन् संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद्गुणाभावः। मुदिः तस्य भावः तल्-टाप्। १ हर्ष, आनन्द। २ परकीयाके अन्तर्गत एक प्रकारकी नायिका जो पर-पुरुष प्रीति सम्बन्धी कामनाकी आकस्मिक प्राप्तिसे प्रसन्न होती है। ३ योगशास्त्रमें समाधि-योग्य संस्कार उत्पन्न करनेवाला एक परिकर्म। इसका अभिप्राय है, पुण्यात्माओंको देख कर हर्ष उत्पन्न करना। ये परिकर्म चार कहे गये हैं—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा।

मुदिवेदु—मान्द्राजप्रदेशके कड़प जिलान्तर्गत मदनपल्ली तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° १′ ३०″ उ० तथा देशा० ७६° ४४′ १०″ पू०के मध्य अवस्थित है।

मुदिर (सं० पु०) मोदन्ते अनेन प्रजा इति मुद्-(इषिमदिमुदीति। उण् १।५२) इति किरच्। १ मेघ, बादल। २ कामुक, वह जिसे कामवासना बहुत अधिक हो। ३ भेक, मेढ़क।

मुदिरफल (सं० पु०) विकङ्कतवृक्ष, गोखरू।

मुंदी (सं० स्त्री०) १ चन्द्र-किरण, कौमुदी। २ ह्रस्व गम्भारी वृक्ष, छोटी गंभारीका पेड़।

मुदकी—पञ्जाबके फिरोजपुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३०° ४७′ उ० तथा देशा० ७४° ५५′ १५″ पू० फिरोजपुरसे कर्णाल जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां शतद्रु नदीसे १३ कोस दूर सन् १८३५ ई०की १८वीं दिसम्बरको प्रसिद्ध प्रथम सिख-युद्ध हुआ था। वह युद्ध अङ्गरेज और सिख सेनाके बीच हुआ था। इसमें अंगरेजोंकी बहुत-सी सेना मारी गई थी। सिखोंने अपने असाधारण युद्धनैपुण्य और विक्रमका परिचय दिया था। अन्तमें सिख पराजित हुए और उनके १७ कमान अंगरेजोंके हाथ लगे। अङ्गरेज सेनामेंसे जिनकी मृत्यु लड़ाईमें हुई थी उनके स्मरणार्थ एक एक स्मृतिस्तम्भ बनाया गया है। यहां सराय और सुन्दर प्रस्तर वेष्टित पुष्करिणी है। सिखयुद्ध देखो।

मुद्ग (सं० पु०) मोदते अनेन इति मुद् (मुदिग्रोर्ग ग्गौ। उण् १।१२७) १ पक्षिविशेष। पर्याय—जलवायस। (हेम) २ शमी धान्यभेद, मूंग। संस्कृत पर्याय—सूपश्रेष्ठ, वर्णार्ह, रसोत्तम, भुक्तिप्रद, हयानन्द, सुफल, वाजिभोजन।

यह अन्न भादोंमें प्रायः साँवा आदि और अन्नोंके साथ बोई जाती है और अगहनमें कटती है। इसके पौधेकी टहनियां लताके रूपमें इधर उधर फैली होती हैं। एक एक सींकेमें सेमकी तरह तीन तीन पत्तियां होती हैं। फूल नीले और बैंगनी होते हैं। फलियां ढाई तीन अंगुलकी पतली होती हैं और गुच्छोंमें लगती हैं। फलियोंके भीतर ५-६ लंबे गोल दाने होते हैं। मुद्गके लिये बलुई मट्टी और थोड़ी वर्षाकी जरूरत है। इसके कई भेद हैं, हरा, काला, पीला। हरा या पीला मुद्ग अच्छा होता और सोनामूंग कहलाता है। इसका गुण रूक्ष, लघु, धारक, कफघ्न, पित्तनाशक, शीतवीर्य, कुछ वायुवर्द्धक, चक्षुका हितकर और ज्वरनाशक माना गया है। वनमूंगके भी प्रायः यही गुण हैं। अत्रिसंहिताके मतसे इसका गुण—शीतल, कषाय, मधुर, लघु, पित्तनाशक, रक्तशोधक और अतिशय रमणीय।

"प्रधाना हरितास्तत्र वन्य मुद्रास्तु मुद्गवत्।
कृष्णामुद्गा महामुद्गा गौरा हरितपीतकाः।
श्वेता रक्ताश्च निर्दिष्टा लघवः पूर्वपूर्ववत्॥" (राजव०)

मुद्गगिरि (सं० पु०) मुङ्गेर और उसके आसपासके प्रान्तका प्राचीन नाम। मुङ्गेर देखो।

मुद्गदला (सं० स्त्री०) मुद्गपर्णी, वनमूंग।

मुद्गपर्णी (सं० स्त्री०) मुद्गस्येव पर्णान्यस्याः मुद्गपर्ण जातौ ङीष्। वनमुद्ग, वनमूंग। पर्याय—काकमुद्गा, सहा, क्षुद्रसहा, शिम्बी, मार्जारगन्धिका, वनजा, रिङ्गिणी, ह्रस्वा, सूर्पपर्णी, कुरङ्गिका, कोशिला, वनोद्भवा, वनमुद्गा, आरण्यमुद्गा, वन्था। गुण—शीतल, कास, वातरक्त, क्षय, पित्तदाह-ज्वरनाशक, चक्षुका हितकर, शुक्रवृद्धिकारक। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे गुण—तिक्त, स्वादु, शुक्रवर्द्धक, क्षय, शोथनाशक; लघु, ग्रहणी, अर्श और अतिसार रोगमें हितकर। मार्जारगन्ध भी इसका एक पर्याय है।

मुद्गभुंज् (सं० पु०) मुद्गं भुङ्क्ते इति भुज्-क्विप्। घोटक, घोड़ा।

मुद्गभोजिन् (सं० पु०) मुद्गं भुङ्क्ते भुज-णिनि। अश्व, घोड़ा।

मुद्गमोदक (सं० पु०) मुद्गेन साधितो मोदकः। मोदक-विशेष, मोतीचूर। इसके बनानेका तरीका भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है,—मूंगकी धूमसी (मूंगको जलमें भिगो कर उसकी भूसी निकाल लो। पीछे उसे धूपमें सुखा कर जांतेमें पीसो, इसीका नाम धूमसी है) को साफ जलमें घोलो, पीछे एक कड़ाहमें घी डाल कर आंच पर चढ़ावो। घी जब खौलने लगे, तब एक झंझरी हो कर उस घोले हुए मूंगके आटेको थोड़ा थोड़ा करके कड़ाहमें गिराते जाओ। अच्छी तरह भुन जाने पर उसे चीनीकी चाशनीमें डाल कर लड्डू बनाओ। इसी लड्डूका नाम मोतीचूर वा मुद्गमोदक है। इसका गुण—लघु, धारक, त्रिदोषनाशक, मधुररस, शीतवीर्य रुचिजनक, चक्षुका हितकर, ज्वरनाशक, बलकारक और तृप्तिकर माना गया है। (भावप्र०)

मुद्गर (सं० क्ली०) मुदं आनन्दं गिरति विकिरतीति ग अच्। १ मल्लिकाभेद, बेला। (पु०) २ कर्म्मार, एक प्रकारका बाँस। पर्याय—गन्धसार, सप्तपत्र, अतिगन्ध, गन्धराज, वटप्रिय, जनेष्ट, भृगेष्ट। इसका गुण—मधुर, शीतल, सुरभि, सौख्यदायक, मधुपानन्दकारक, कामवर्द्धक, पित्तनाशक। (राजनि०)

३ काठका बना हुआ एक प्रकारका गावदुमा दंड। यह मूठकी ओर बहुत भारी होता है। इसे हाथमें ले कर हिलाते हुए पहलवान् लोग कई तरहकी कसरतें करते हैं। इससे कलाइयों और बाहोंमें बल आता है। इसकी प्रायः जोड़ी होती है जो दोनों हाथोंमें ले कर बारी बारीसे पीठके पीछेसे घुमाते हुए सामने ला कर तानी जाती है। इसे मुगदर भी कहते हैं। ४ लोष्ट्रादिभेद, प्राचीनकालका एक अस्त्र जो दंडके आकारका होता था और जिसके सिरे पर बड़ा भारी गोल पत्थर लगा होता था। पर्याय—द्रुघन, घन, प्रघण।

"गदापट्टिशधारिण्या शूलमुद्गरहस्तया।
प्रस्थितो सहधर्मिण्या महत्या दैत्यसेनया॥"
(भारत १।२११।३)

५ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

मुद्गरक (सं० पु०) मुद्गरमिवेति प्रतिकृतौ कन्। कर्म्मार, एक प्रकारका बाँस।

मुद्गरपर्णक (सं० पु०) नागभेद।

मुद्गरपिण्डक (सं० पु०) नागभेद।

मुद्गल (सं० क्ली०) मुद्गं लातीति ला-क। १ रोहिष नामक तृण। (पु०) २ हर्य्यश्व राजपुत्र। (विष्णुपु० ४। १९ अ०) ३ गोत्रकारक मुनिका नाम। इनकी स्त्रीका नाम इन्द्रसेना था। ४ उपनिषद्भेद।

मुद्गल—निजाम-राज्यका एक नगर और दुर्ग। यह अक्षा० १६° ०' ३४" उ० तथा देशा० ७६° ३१' ४७" पू०के मध्य अवस्थित है। दुर्गके उत्तर समतल भूमि पर नगर और दक्षिणमें पर्वतके ऊपर दुर्ग बसा हुआ है। दुर्गमें १२४६ ५० ई०में यादव वंशीय एक शासनकर्त्ता रहते थे। पीछे वह ओरङ्गलके राजाके अधिकारभुक्त हुआ। १४वीं सदीमें मुसलमानोंने उस पर दखल जमाया। जिस समय दिल्लीके बादशाह महम्मद तुगलकके अधीनस्थ दाक्षिणात्यके शासन कर्त्ताओंने विद्रोही हो कर कुलबर्जमें बाह्मनी राज्यकी प्रतिष्ठा की, उस समय मुद्गल नये राज्यका प्रधान प्रान्तदुर्ग था। बाह्मनीवंशके शासनकालमें उक्त दुर्गकी ख्याति सर्वत्र फैल गई थी। राज्यके ध्वंसप्राप्त होनेसे वह दुर्ग विजापुर-राजाओंके हाथ लगा। अनन्तर विजापुर राज्यके अवसान पर औरङ्गजेबने उसे दखल किया।

पहले गोआ नगरीसे सेण्ट फ्रान्सिस जेभियर नामक एक ईसाई-याजकने मुद्गलमें आ कर एक रोमक कैथलिक उपनिवेश बसाया। विजापुरके राजाओंने ईसाइयोंको उक्त स्थान निष्कर दे दिया था। आज भी वह उपनिवेश मौजूद है।

मुद्गलानी (सं० स्त्री) सेनापतिविशेष।

मुद्गवटक (सं० पु०) मुद्गेन कृतः वटकः। मूंगका बटक या बड़ा। इसके बनानेका तरीका इस प्रकार है,—मूंगकी दालको कुछ समयके लिये पानीमें छोड़ दे। बाद उसके उसे पानीसे निकाल अच्छी तरह पीसे। अनन्तर बड़ेको तेलमें धीमी आंचसे पका कर उतार ले। इसका गुण—हितकर, रुचिकारक, लघु तथा मूंगकी दालकी तरह गुणकारक माना गया है। (भावप्र०)

मुद्गवत् (सं० त्रि०) मुद्गविशिष्ट।

मुद्गष्ट (सं० पु०) वनमुद्ग, वनमूंग।

मुद्गष्टक (सं० पु०) मुद्गष्ट स्वार्थे कन्। वनमुद्ग, वनमूंग।

मुद्गाद्रवट (सं० पु०) मुद्गेनाढ्यः। वटकविशेष, वड़ा। प्रस्तुत प्रणाली—मूंगकी दालको अच्छी तरह पीस कर उसका वड़ा वनावे। पीछे उसे तेलमें भून कर चूर्ण करे। उस चूर्णमें हींग, अदरक, छोटी इलायची, मरिच और भूना हुआ जीरा तथा नीबूका रस और अजवायन डाल दे। इसके वाद फिरसे मूंगकी दालको पीस कर एक हांडीके ऊपर किसी दूसरे वरतनमें उसे रख कर सिद्ध करे। जव अच्छी तरह सिद्ध हो जाय तव उसे गोल वना कर पूर्वोक्त हींग मिले हुए पदार्थमें मिलावे और तव तेलमें भूने। इसके वाद उसे कथिता नामक द्रव्यमें उतार रखे (हलदी और हींगको घी या तेलमें भून ले पीछे उसमें मट्ठा डाल कर मरिचके साथ पाक करे। इसीको कथिता कहते हैं।)

इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है। उसीका नाम मुद्गाद्रवटक है। इसका गुण रुचिकारक, लघु, बलकर, अग्निप्रदीपक, तृप्तिजनक, पथ्य और त्रिदोषनाशक माना गया है। (भावप्र० पूर्वख०)

मुद्दआ (अ० पु०) अभिप्राय, तात्पर्य।

मुद्दइया (अ० स्त्री०) मुद्दई देखो।

मुद्दई (अ० पु०) १ दावा करनेवाला, वादी। २ दुश्मन, वैरी।

मुद्दत (अ० स्त्री०) १ अवधि। २ वहुत दिन, अरसा।

मुद्दती (अ० वि०) वह जिसके साथ कोई मुद्दत लगी हो, वह जिसमें कोई अवधि हो।

मुद्दाअलेह (अ० पु०) वह जिसके ऊपर कोई दावा किया जाय, वह जिस पर कोई मुकदमा चलाया गया हो।

मुद्दालेह (अ० पु०) मुद्दाअलेह देखो।

मुद्दे विहाल—वम्बईप्रदेशके विजापुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १६° १०' से १६° ३७' उ० तथा देशा० ७५° ५८' से ७६° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६१ वर्गमील और जनसंख्या ७० हजारके करीव है। इसमें एक शहर और १५० ग्राम लगते हैं। १८७६ ७७ ई०में जो दुर्भिक्ष पड़ा था उससे यहांके अधिवासियोंकी अवस्था वड़ी शोचनीय हो गई थी, आज भी सुधरने नहीं पाई है। तालुकका उत्तरी भाग जहां कृष्णानदी वहती है, वहुत उपजाऊ है। प्रति ग्राममें सुन्दर सुन्दर कुए देखे जाते हैं। यहां तरह तरहका अनाज उपजता है। एक दीवानी और २ फौजदारी अदालत भी है।

उक्त तालुकके अन्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० १६° २०' उ० तथा देशा० ७६° ८' दक्षिण मरहट्टा रेलवेके अलिमट्टी ष्टेशनसे १८ मील दूरमें अवस्थित है। १६७० ई०में वसरकोटके वर्त्तमान नादगुण्डाके पूर्वपुरुष परमप्पाने इस स्थानको वसाया। उनके पुत्र हुचप्पाने यहां एक दुर्ग वनवाया। १७६४ ई०में यह पेशवाके हाथ लगा। पीछे १८१८ ई०में वृटिश सरकारने इसे अपने साम्राज्यमें मिला लिया। यहां सव-जजकी अदालत, अस्पताल और तीन स्कूल हैं।

मुद्र (सं० क्ली०) मुद्रा।

मुद्रण (सं० पु०) १ किसी चीज पर अक्षर आदि अङ्कित करना, छपाई। २ नियमन, ठीक तरहसे काम चलानेके लिये नियम आदि वनाना और लगाना। ३ मुद्राङ्कण, ठप्पे आदिकी सहायतासे अङ्कित करके मुद्रा तैयार करना। ४ अक्षर निवद्धकरण (Typography)

मुद्रणा (सं० स्त्री०) १ मुद्रण देखो। २ अंगुलीमुद्रा, अंगूठी।

मुद्रणालय (सं० पु०) १ वह स्थान जहां किसी प्रकारका मुद्रण होता हो। २ छापाखाना, प्रेस।

मुद्रा (सं० स्त्री०) मोदतेऽनयेति मुद्-रक (स्फायितञ्चीत्यादि उण् २।१३) ततष्टाप्। १ प्रत्ययकारिणी, किसीके नामकी छाप, मोहर। २ अंगुलि-मुद्रा, अंगूठी।

"अथैनां मुद्रामंगुल्यां निवेशयता मया प्रत्यभिहिता।"
(शकुन्तला ६ अङ्क)

३ स्वर्णरौप्यादि-मुद्रिका, रुपया, अशरफी आदि। ४ चिह्न, निशान। ५ पांच प्रकारकी लिपियोंमेंसे एक, टाइपसे छपे हुए अक्षर।

"मुद्रालिपिः शिल्पलिपिलिपिर्लेखनीसम्भवा।
गुण्डिकाघूणसम्भूता लिपयः पञ्चधा स्मृताः॥"
(वाराहीतन्त्र)

विप्रगण जो कलमसे लिखते वा मुद्रासे जो अङ्कित करते तथा शिल्पगण जो निर्माण करते उसका सर्वदा पाठ और धारण करना चाहिये।

"लेखन्या लिखितं विप्रैर्मुद्राभिरङ्कितञ्च यत्।
शिल्पादिनिर्मितं यच्च पाठ्यं धार्यञ्च सर्वदा॥"
(मुण्डमालातन्त्र)

६ पञ्चमकारके अन्तर्गत भृष्ट द्रव्यभेद, तान्त्रिकोंके अनुसार कोई चूना हुआ अन्न। तन्त्रमें भूने हुए चिउड़े, चावल, गेहूं और चनेको मुद्रा कहा है। यह मुद्रा मुक्ति देनेवाली है।

"पृथुकास्तण्डुला भृष्टा गोधूमचणकादयः।
तस्य नाम भवेद् देवि! मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी॥"
(निर्वाणतन्त्र ११ पटल)

उक्त मुद्राको निम्नोक्त दोनों मन्त्रोंसे शोधन कर लेना होता है। मन्त्र इस प्रकार हैं,—

"ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः
दिवीव चक्षुराततम्।
ओं तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते
विष्णोर्यत् परमं पदम्॥"

७ गोरखपंथी साधुओंके पहननेका एक कर्णभूषण। यह प्रायः कांच वा स्फटिकका होता है। कानकी लौके बीचमें एक बड़ा छेद करके यह पहना जाता है। ८ मुखकी आकृति, चेहरेका ढंग। ९ अगस्त्य ऋषिकी स्त्री, लोपामुद्रा। १० वह अलङ्कार जिसमें प्रकृत या प्रस्तुत अर्थके अतिरिक्त पद्यमें कुछ और भी साभिप्राय नाम निकलते हैं। ११ विष्णुके आयुधोंके चिह्न जो प्रायः भक्त लोग अपने शरीर पर तिलक आदिके रूपमें अङ्कित करते या गरम लोहेसे दगाते हैं। भगवान्‌को प्रसन्न करने के लिये उक्त नारायणी मुद्रा या चिह्न धारण करना होता है। मत्स्य कूर्म आदि चिह्न तथा चक्रादि आयुध चिह्न धारण करके हरिकी आराधना करना उचित है।

मुद्रा वा चिह्न-धारणकी नित्यता।

हरिकी अर्चना करनेसे पहले दोनों बाहुमें शङ्ख और चक्रका चिह्न लगाना चाहिये, नहीं तो वह पूजा फलदायक नहीं होती।

"अङ्कितः शङ्खचक्राभ्यामुभयोर्बाहुमूलयोः।
समर्च्चयेद्धरिं नित्यं नान्यथा पूजनं भवेत्॥" (स्मृति)

गरुड़पुराणमें लिखा है—शुचि व्यक्तिको ही सभी कामोंमें अधिकार है। किन्तु यह शुचित्व हरिके आयुधादि धारण किये विना प्राप्त नहीं होता।*

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है—शङ्खचक्रादि चिह्न हरिका प्रियतम है। इन सब चिह्नोंसे जो व्यक्ति अपने अङ्गको भूषित नहीं करता, वह सब धर्मोंसे भ्रष्ट हो कर नरकगामी होता है।†

केवल पुराणादि शास्त्र में ही नहीं, स्मृति आदिमें भी विष्णुकी अर्चनाके समय शङ्खचक्रादि चिह्न धारण करनेकी विधि है। जैसे,—

"धृतोर्द्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा।
स्मरेण मन्त्रेण सदा हृदि स्थितं परात्परं यन्महतो महान्तम्॥"
(यजुर्वेद कठशाखा)

"एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिन्हैरङ्किता लोके सुभगा भवेम।
तद्विष्णोः परमं पदं ये गच्छन्ति लाञ्छिता इत्यादि॥"
(अथर्व्ववेद)

मुद्राधारणका माहात्म्य।

पुराणादि धर्मशास्त्रोंमें मुद्राधारणकी बहुत-सी माहात्म्य-कथाएं लिखी हैं। बाहुल्य-भयसे उसमेंसे थोड़ासा यहां लिखा जाता है। स्कन्दपुराणमें सनत्कुमार और मार्कण्डेय-संवादमें लिखा है,—जो विष्णुभक्त व्यक्ति शङ्खचक्रादि चिह्नसे चिह्नित होते हैं, उनका विष्णुलोकमें वास होता है और कोई आधि व्याधि उन्हें नहीं छू सकती। जिनका शरीर नारायणके आयुध चिह्नसे भूषित है, कोटि पाप करने पर भी उनका यम कुछ नहीं कर सकता। इसी प्रकार शङ्ख, चक्र, गदा आदि चिह्नधारण करनेसे भी अनन्त फलोंकी प्राप्तिकी बात लिखी हुई है। भगवान् कहते हैं,—इस कलिकालमें जो

---

* "सर्वकर्माधिकारश्च शुचीनामेव चोदितः।
शुचित्वञ्च विजानीयान्मदीयायुधधारणात्॥"
(गरुड़पु॰)

† "शङ्खचक्रादिभिश्चिह्नै विप्रः प्रियतमैर्हरेः।
रहितः सर्वधर्मेभ्यः प्रच्युतो नरकं व्रजेत्॥"
(पद्मपु॰ उत्तरख॰)

मनुष्य मेरी पुरीसे मट्टी ला कर उससे अपने अङ्गों पर मेरे मत्स्य-कूर्मादि अवतार-चिह्न अङ्कित करता है मैं उसके शरीरमें अवस्थान करता हूं, उसमें और मुझमें कोई भेद नहीं रहता। वह जो भी कुछ पाप करता है, पुण्य-रूपमें परिणत हो जाता है।

शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मत्स्य और कूर्म आदि चिह्न शरीर पर अङ्कित होनेसे दिनों-दिन पुण्यकी वृद्धि होती है और शत जन्मार्जित पाप क्षय होते हैं।

(स्कन्दपुराण)

स्कन्दपुराणके ब्रह्मा और नारद-संवादमें लिखा है,—भक्त मनुष्य शङ्ख-चिह्न धारण करे तो लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और सावित्री ; पद्मचिह्न धारण करे तो गङ्गा, गया, कुरुक्षेत्र, प्रयाग और पुष्करादि ; गदाचिह्न धारण करे तो गङ्गासागरसंगम तथा गदाके नीचे चक्रचिह्न धारण करे तो कृष्ण-सहित चराचर त्रैलोक्य, त्रिविध अग्नि, समस्त देवता और विष्णुके पादत्रय उसके शरीरमें वास करते हैं।

उक्त मुद्राओंको धारण करके दैव, पैत्र, नित्य, नैमित्तिक और काम्यकर्मादि करनेसे वे सब अक्षय हो जाते हैं तथा अष्टाक्षराङ्कित धातुमयी मुद्रा हाथमें धारण करनेसे ग्रह, नक्षत्र और राशि आदिकी कोई पीड़ा नहीं हो सकती।

इसके सिवा स्कन्द और वराहपुराण आदिमें कृष्ण-मुद्रा वा चिह्न धारण करनेके और भी बहुतसे माहात्म्य लिखे हैं।

मुद्रा धारण करनेकी विधि।

गौतमीय तन्त्रमें लिखा है,—ललाट पर गदा, मस्तक पर चाप और शर, हृदयमें नन्दक, भुजाओंमें शङ्ख और चक्रचिह्न धारण करना चाहिए। वैष्णवोंको दक्षिण बाहुमें चक्र, वाम और दक्षिण बाहुमें शङ्ख, वाममें गदा, उसके नीचे फिर चक्र, शङ्खके ऊपर पद्म, वक्षस्थलमें खड्ग तथा मस्तकमें चाप और शर धारण करना उचित है। ब्राह्मणों-को चाहिए कि दक्षिण भुजामें सुदर्शन, मत्स्य और पद्म तथा बाईं भुजामें शङ्ख, कूर्म और गदाका चिह्न धारण करें। कोई कोई सिर्फ शङ्ख और चक्र इन्हीं दो मुद्राओं-को धारण करते हैं। (गौतमीय)

केवल शङ्खचिह्न धारण करना निषिद्ध है। इसलिये वैष्णवोंको चक्र-मिश्रित शङ्खचिह्न धारण करना चाहिये। उक्त चक्रादि मुद्राएं केवल गोपीचन्दन द्वारा ही प्रतिदिन अपने अपने अङ्गों पर अङ्कित की जाती हैं। शयन आदि करते समय इन चिन्होंको गरम कर लेना चाहिये।

(ब्रह्मवै०पु०)

हरिभक्तिविलासमें लिखा है,—द्वादशाक्षर षट्कोण और तीन वलययुक्त चक्र, दक्षिणावर्त्त शङ्ख और लोक-प्रसिद्ध गदापद्म आदि चिह्न धारणीय हैं।

विष्णुभक्तिपरायण वैष्णव और वेदपारग ब्राह्मणको गोपीचन्दन द्वारा सतिल मुद्रा धारण करना चाहिये।

(नारदपञ्चरात्र)

पद्मपुराणमें लिखा है,—चन्दनादि द्वारा कृष्णनामाक्षर शरीर पर लगानेसे विष्णुलोकको गति प्राप्त होती है, तथा यदि अग्नितप्त चक्रचिह्न दोनों बाहुमूलोंमें अङ्कित करके अपने इष्टमन्त्रका जप करें, तो वे संसारबन्धनसे मुक्त हो जायें। (पद्मपु०)

हारीतके मतसे वसन-भाजन आदि सभी वस्तुओं पर कृष्ण नाम अङ्कित करना उचित है।

"तन्नाम्ना चाङ्कितं सर्वं वसनं भाजनादिकम्" ॥

(हारीतस्मृति)

६ देवता-विशेषकी प्रीतिजनक अंगुल्यादि रचना मुद्रा शब्दकी व्युत्पत्तिके सम्बन्धमें तन्त्रसारके मुद्राप्रकरणमें लिखा है,—मुद्राएं देवताओंका आनन्द बढ़ा कर सर्वप्रकार पापोंका निवारण करती हैं, इसीलिए तन्त्रज्ञ मुनियोंने इसका मुद्रा नाम निर्देश किया है।

(तन्त्रसा० मु० प्र०)

सभी तन्त्रोंने मुद्रा-बन्धनके विषयमें अनेक गुप्त और व्यक्त उपदेश दिये हैं। परन्तु गुरुगम्य न होनेसे केवल पुस्तकोंकी सहायतासे ये मुद्रा-बन्धन प्रकृतिरूपसे नहीं होते। मुद्रा-रचनाके विषयमें गुरुजनोंका उपदेश ग्रहण करना आवश्यक है। मुद्राबन्धन-पुरःसर अर्चनादि करनेसे देवता प्रसन्न हो कर अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। इसलिए भक्त साधक पूजकोंके लिए मुद्रा-रचना जानना तथा पूजा-कालीन मुद्रा-विशेष प्रदर्शन करना अवश्य कर्त्तव्य है। मुद्रा किस किस समयमें आवश्यक है, इस विषयमें तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है ;—

अर्चना, जपकाल, ध्यान, काम्यकर्म, स्नान, आवाहन, शङ्खस्थापन, प्राणप्रतिष्ठा, रक्षण, नैवेद्य तथा अन्यान्य कल्पोक्त कार्य, इन्हीं स्थलों पर अपना अपना लक्षण-युक्त मुद्राओंका प्रदर्शन करना आवश्यक है। मुद्रा-समष्टिमें आवाहनी आदि नौ मुद्राएं हैं, उक्त नौ मुद्रा और षड़ङ्ग मुद्रा सर्वसाधारणके नामसे कही गई हैं। अर्थात् उक्त पन्द्रह मुद्राएं सर्वत्र ही आवश्यक हैं।

(तन्त्रसार)

अब कौन-कौनसी मुद्रा किन किन देवताके लिए प्रीतिकर और किस किस विषयमें आवश्यक हैं तथा किस प्रकार मुद्रा बनाई जाती है इत्यादि विषयों पर लिखा जाता है।

देवतादिके भेदसे मुद्राभेद।

शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वेणु, वत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञान, विप, गरुड़, नारसिंह, वाराह, हयग्रीव, धनुः, वाण, परशु, जगन्मोहन और काम, ये उन्नीस मुद्रायें विष्णुके लिए सन्तोषकर हैं। लिङ्ग, योनि, त्रिशूल, माला, वर, अभय, मृग, खट्वाङ्ग, कपाल और डमरू ये दश मुद्राएं शिवके लिए प्रीतिकर हैं। सूर्यकी एक मात्र पद्ममुद्रा है और गणेशकी पूजामें दन्त, पाश, अंकुश, विघ्न, परशु, लड्डूक और वीजपुर ये सात मुद्राएं प्रशस्त हैं; पाश, अंकुश, वर, अभय, खड्ग, चर्म, धनुः, शर और मूषल ये नौ मुद्राएं दुर्गाकी पूजामें प्रशस्त हैं। विशेषतः ये मुद्राएं शक्ति-देवताओंको अति प्रिय हैं। लक्ष्मीकी पूजामें लक्ष्मीमुद्रा तथा सरस्वतीकी पूजामें अक्षमाला, वीणा, व्याख्या और पुस्तकमुद्रा आवश्यक हैं। अग्निकी अर्चनामें सप्तजिह्वा मुद्रा प्रशस्त है।

मत्स्य, कूर्म, लेलिहान, मुण्ड और महायोनि ये मुद्राएं सर्वसमृद्धिप्रद हैं। इनमेंसे शक्ति देवताकी पूजामें महायोनि, श्यामा देवताकी पूजामें मुण्ड तथा सर्वसाधारण विषयमें मत्स्य, कूर्म और लेलिहान प्रशस्त है। तारा विद्याकी अर्चनामें योनि, भूतिनी, वीज, दैत्यधूमिनी और लेलिहान ये पञ्च मुद्राएं प्रसिद्ध हैं। त्रिपुरासुन्दरीकी अर्चनामें क्षोभिनी, द्राविणी, आकर्षिणी, वश्या, उन्मादिनी, महांकुशा, खेचरी, वीज, योनि और त्रिखण्ड इन दश मुद्राओंकी आवश्यकता है। अभिषेक कार्यमें कुम्भ-मुद्रा, आसनमें पद्म-मुद्रा, विघ्न प्रशमनकार्यमें कालकर्णी, तथा जलशोधनमें गालिनी-मुद्रा विधेय है। गोपालकी वेणुमुद्रासे, नृसिंहकी नारसिंही मुद्रासे, वराहदेवकी वाराहीसे, हयग्रीवकी हायग्रीवसे, रामकी धनु और वाण-मुद्रासे तथा परशुरामकी सम्मोहन मुद्रासे पूजा करनी चाहिए। आवाहनमें वासुदेव, रक्षाविषयमें कुम्भ तथा प्रार्थनाके समय सर्वत्र प्रार्थना मुद्राका प्रयोग करना उचित है। (तन्त्रसा०)

इसके अलावा और भी अनेक प्रकारकी मुद्राओंका उल्लेख है। उनका वर्णन लक्षण सहित क्रमशः किया जायगा। पहले उल्लिखित मुद्राओंकी रचनाप्रणाली लिखी जाती है।

मुद्राके लक्षण वा रचनाप्रणाली।

पहले जो आवाहनी आदि नौ साधारण मुद्रायें कहीं गई हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापनी, संबोधनी, सकलीकृति वा सकलीकरण, सम्मुखीकरणी, अवगुण्ठन, धेनु और महा-मुद्रा। ये नौ मुद्राएं देवताके आवाहन-कार्यमें प्रयोग की जाती हैं।

दोनों हाथोंकी अञ्जलि मिला कर दोनों हाथोंकी अनामिकाकी जड़को अंगूठोंसे आवद्ध करनेसे आवाहनी मुद्रा होती है। इस प्रकार उक्त आवाहनी मुद्राकृत दोनों हस्तकी अञ्जलिको अधोमुख कर देनेसे ही स्थापनी मुद्रा वनती है; दोनों हाथोंकी मुट्ठी बांध कर अंगूठोंको भीतर रख कर अधोमुख करनेसे सम्बोधनी हुई। सम्बोधनी मुष्टिओंको उत्तान करनेसे सम्मुखी-करणी हुई, देवताके अङ्ग पर षड़ङ्ग-न्यासको सकली-करण कहते हैं; वायें हाथमें मुट्ठी वांध कर तर्जनीको लम्बी फैला कर अधोमुख भ्रामित करनेसे अवगुण्ठन मुद्रा हुई। दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको परस्परकी सन्धिओंमें डाल कर एक हाथकी कनिष्ठाके अग्रभागके साथ दूसरे हाथकी अनामिकाका अग्रभाग मिला देनेसे तथा उसी तरह तर्जनीके अग्रभागके साथ मध्यमाको मिला देनेसे धेनुमुद्रा वनती है। इस मुद्रा द्वारा पूजा करते समय पूजाके नैवेद्यादि उपकरणोंसे अमृतीकरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त दोनों हाथोंके अंगूठोंको

परस्पर ग्रोथित करके अन्य अंगुलियोंको प्रसारित करनेसे महामुद्रा होती है। इस मुद्राका द्रव्यशुद्धिकरण और देवताके आवाहनमें प्रयोग किया जाता है। षड्ङ्ग-मुद्रा षड्ङ्गन्यास है, इसे सब कोई जानते हैं।

दक्षिण हस्तकी मुष्टि द्वारा वाम हस्तका अंगुष्ठ ग्रहण करके उस मुष्टिको उत्तान भावसे रखो, फिर दक्षिण हस्तके अंगुष्ठको उन्नत करके वाम हस्तकी अन्यान्य अंगुलियोंको पसार कर दक्षिण हस्तके अंगुष्ठमें मिला दो, यह शङ्खमुद्रा है। दोनों हाथोंको परस्पर सामने रख कर अंगूठा और कनिष्ठांगुलिओंको फैला कर वक्रभावसे दोनों अंगूठोंको मिला देनेसे चक्र; दोनों हाथोंको परस्पर सामने रख कर अन्यान्य अंगुलियोंको ग्रोथित एवं अगूंठोंको फैला देनेसे गदा; दोनों हाथोंको आमने-सामने रख कर अंगुलियोंको उन्नतभावसे ग्रोथित करके दोनों अंगूठोंको हाथोंके नीचे मिला देनेसे पद्म; वाम हस्तके अंगूठेसे लगा कर कनिष्ठा अंगुलिको दाहने हाथके अंगूठेसे लगाओ, फिर दक्षिण हस्तकी कनिष्ठाको फैला कर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका इन तीनों अंगुलीयों-को कुछ संकुचित करके चलानेसे वेणुमुद्रा होती है। दोनों हस्तोंके पृष्ठदेशको विपर्य्यस्त भावसे मिला कर दक्षिण हस्तके अंगूठेसे उसी हाथकी मध्यमा और अना-मिका तथा बायें हाथके अंगूठेसे दायें हाथकी मध्यमा और अनामिकाको आवद्ध रख कर फिर दायें हाथकी तर्जनी वायें हाथकी कनिष्ठाके मूलमें, वायें हाथकी तर्जनी दायें हाथकी कनिष्ठाके मूलमें लगाने श्रीवत्स मुद्रा होती है। दायें हाथकी कनिष्ठांगुलिको उसी हाथकी अनामिकाके ऊपर लगाओ, वायें हाथकी कनिष्ठा द्वारा दायें हाथकी तर्जनीको आवद्ध करो, वायें हाथकी अनामिकाको दायें हाथके अंगूठेकी जड़से लगाओ तथा वायें हाथके अंगूठा और मध्यमांगुलिको सीधी तरहसे संयोजित करके अन्य चार अंगुलियोंको परस्पर अग्रभागमें संयुक्त करनेसे कौस्तुभ तथा दोनों हाथोंके अंगूठे और तर्जनी-को अलग अलग मिला कर उससे कण्ठसे ले कर पैरों तक स्पर्श करके उसके वाद दोनों हाथोंको मालाके समान कर देनेसे वनमाला मुद्रा होती है। दायें हाथ-के अंगूठे और तर्जनीके अग्रभागको मिला कर हृदयमें न्यास-पूवक वायें हाथको पद्मवत् फैला कर वाम जानु पर स्थापन करनेसे ज्ञान मुद्रा होती है। यह मुद्रा राम-चन्द्रको अत्यन्त प्रिय है। दायें हाथके अंगूठेसे वायें हाथके अंगूठेको आवद्ध करके उस दायें हाथकी अन्यान्य अंगुलियोंको आवद्ध कर कामवीज उच्चारण-पूर्वक दोनों हाथोंको हृदय पर स्थापन करनेसे विल्व-मुद्रा होती है। एक हाथकी पीठ पर दूसरा हाथ उल्टा रख कर कनिष्ठाके साथ कनिष्ठा, तर्जनीके साथ तर्जनी और अंगुष्ठाके साथ अंगुष्ठा ग्रथित करके मध्यमा और अनामिकाओंकी तरह परिचालित करनेसे गरुड़मुद्रा बनती है। ये समस्त मुद्रायें विष्णुके लिये सन्तोषजनक है।

नारसिंही मुद्रा—जानुओंके बीचमें दोनों हाथोंको रख कर ठोड़ी और ओठोंको समभावसे स्थापन कर हाथोंको भूमिसे लगाना, काँपना और फिर मुख विवृत और जिह्वा अन्तर्गत करके वारम्वार उसे चलाना चाहिए। प्रकारान्तर—दोनों हाथोंके अंगूठोंसे दोनों कनिष्ठांगुलिओं पर आक्रमण करके समस्त अंगुलिओंको अधोमुख स्थापन करनेसे भी नारसिंही मुद्रा होती है।

वाराही मुद्रा—देवताके ऊपर वामहस्त उत्तान भाव-से स्थापन करके अधोभागमें नत करना चाहिए। प्रका-रान्तर—दक्षिण हस्तको ऊद्ध्र्वमुख और वामहस्तको अधोमुख स्थापन करके हस्तोंकी अंगुलिओंके अग्रभाग-को परस्पर मिलाना चाहिए।

हयग्रीव मुद्रा—वाम हस्तके नीचे दक्षिण हस्तको अंगुलियोंको अधोमुख स्थापित करके दक्षिणहस्तकी मध्यमा उन्नमन-पूर्वक अधोमुख आकुञ्चित करना चाहिए। धनुमुद्रा—वायें हाथके अग्रभागको तर्जनीके अग्रभाग द्वारा संयोजित करके उस हाथकी अंगुलिसे अनामिका और कनिष्ठाको पीड़नपूर्वक वाम स्कन्ध पर स्पर्श करना, धनुमुद्रा है। ज्ञानार्णवमें लिखा है, हाथमें धनुः होनेसे जैसा होता है, वायें हाथको उस तरह करनेसे भी धनुः वा चापमुद्रा होती है।

वाणमुद्रा—दक्षिण हस्तमें मुष्टि वन्धनपूर्वक तर्जनी-को लम्बी फैला दो। यह मुद्रा रिपु-विनाशक है।

परशुमुद्रा—हथेलीसे हथेली मिला कर दोनों हाथों-की अंगुलियां जहां तक अलग अलग रखो जा सकें अलग रख कर मिलाओ और फैलाओ। त्रैलोक्य मोहिनीमुद्रा—दोनों हाथोंको परस्पर सामने रख कर दोनों अंगूठोंको पसार कर तथा तर्जनियोंको मध्यमाकी पीठसे लगा कर दोनों अंगूठोंको मध्यमासे मिला दो। यह मुद्रा सब देवताओंको प्रिय है।

लिङ्गमुद्रा—दायें हाथके अंगूठेको ऊंचा करके वायें अंगूठेसे वांधो और फिर वायें हाथकी अंगुलियों-को दायें हाथकी समस्त अंगुलियों द्वारा आवद्ध करो। योनिमुद्रा—दोनों हाथोंकी कनिष्ठांगुलियों द्वारा परस्पर-को सम्बद्ध करके दायें हाथकी तर्जनी द्वारा वाईं अना-मिका और वाईं तर्जनी द्वारा दाईं अनामिका वांधो, फिर दोनों अनामिकाओंके अग्रभागमें लगा कर दोनों मध्यमाओंको फैलाओ और उन मध्यमांगुलियोंके मूलमें दोनों अंगूठे रखो। त्रिशूल मुद्रा—दायें हाथके अंगूठेसे कनिष्ठाको वांध कर शेष तीनों अंगुलियोंको फैला दो। अक्षमाला मुद्रा—दायें हाथके अंगुष्ठसे तर्जनीको ग्रथित कर अवशिष्ट तीनों अंगुलियोंको फैला दो। वरमुद्रा—दायें हाथकी अंगुलियोंको फैला कर हाथको अधोमुख रखो। अभयमुद्रा—वायें हाथकी अंगुलियों-को फैला कर अधोमुख करो।

मृगमुद्रा—अनामिका और अंगुष्ठको मिला कर मध्यमा आगे रखो और शेष अंगुलियोंको नीचेकी ओर कर दो। खट्वाङ्गमुद्रा— दायें हाथकी पांचों अंगुलियों-को उर्ध्वमुख फैला कर परस्पर मिला दो। कापालिका-मुद्रा—वायें हाथको पात्रके समान करके वामाङ्गमें विन्यस्त कर उत्तान भावसे स्थापन करो। डमरूमुद्रा—दायें हाथमें शिथिल मुष्टि वांध कर मध्यमांगुलिको कुछ नीची करके कानोंके पास चलाओ। उपर्युक्त मुद्रायें शिवको सन्तोषवर्द्धक हैं।

दन्तमुद्रा—दाहने हाथकी मुट्ठी वांध कर उस मुट्ठीको उत्तान रूपसे रख कर मध्यमाको सीधी तरहसे ऊपरकी ओर फैलाओ। पाशमुद्रा—वाम मुष्टिकी तर्जनीको दक्षिण मुष्टिकी तर्जनीसे मिला कर दोनों अंगूठोंको अपनी-अपनी तर्जनीके अग्रभागमें संयोजित करो।

अंकुशमुद्रा—मध्यमांगुलिको सीधी तरहसे फैला कर कुछ संकोचन-पूर्वक तर्जनीके मध्य पर्वमें लगाओ। विघ्नमुद्रा—तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा और अंगूष्ठ इन अंगुलियोंको मुट्ठी वांध कर मध्यमांगुलिको अधोमुख दीर्घाकारमें फैला दो। परशु-मुद्रा पहले ही कही जा चुकी है। लड्डूक और वीजपुरमुद्रा प्रसिद्ध हैं, इस-लिए उनके लक्षण नहीं कहे गये। उपर्युक्त मुद्रायें गणेश-पूजामें प्रयोग की जाती हैं।

पाश, अंकुश, वर, अभय, धनु और वाणमुद्रा पहले ही कही जा चुकी हैं। अब शक्तिविषयक अन्यान्य मुद्राओंका वर्णन किया जाता है। खड्गमुद्रा—दाहने हाथके अंगूठेसे उसी हाथको कनिष्ठा और अनामिका वांध कर अवशिष्ट तर्जनी और मध्यमाको मिला कर फैला दो। चर्ममुद्रा—वायां हाथ टेढ़ा करके फैला दो और अंगुलियोंको किंचित् आकुञ्चित कर लो। मूषल-मुद्रा—दोनों हाथोंकी मुट्ठी वांध कर वाईं मुट्ठीके ऊपर दाईं मुट्ठी रखो। दुर्गामुद्रा—दोनों हाथोंकी मुट्ठी वांध कर वाईं मुट्ठी पर दाईं मुट्ठी रख कर मस्तक पर रखो। चक्रमुद्रा—पूर्वोक्त प्रकारसे मुद्रा वांध कर दोनों मध्यमांगुलियोंको फैलाओ और फिर उन्हें कनिष्ठाके पास ला कर उनके अग्रभाग पर रखो। यह मुद्रा लक्ष्मी-को प्रिय और साधकको सर्वसम्पदको देनेवाली है। वीणामुद्रा—वीणा वजाते समय दोनों हाथोंको जैसे किया जाता है, वैसे हाथ चला कर मस्तक संचालन करनेसे वीणामुद्रा होती है। यह मुद्रा सरस्वतीको अति प्रिय है। पुस्तकमुद्रा—वायें हाथको मुट्ठी वांध कर अपनी तरफ रखना। व्याख्यानमुद्रा—दायें हाथके अंगुष्ठ और तर्जनीके अग्रभागको परस्पर मिला कर अवशिष्ट अंगुलियोंको उत्तान भावसे मिला कर फैला दो। यह मुद्रा श्रीराम और सरस्वतीको अति प्रिय है। सप्तजिह्वाख्य मुद्रा—दोनों हाथोंके पौंहचोंको मिला कर सम्पूर्ण अंगुलियोंको फैलाओ और दोनों अंगूठों-से कनिष्ठांगुलियोंमें मिला दो। यह मुद्रा अग्निको अत्यन्त प्रिय है। गालिनी मुद्रा—दाहने हाथकी कनिष्ठाको वायें हाथके अंगूठासे और वायें हाथकी कनिष्ठाको दायें हाथके अंगूठेसे मिला कर तर्जनी,

मध्यमा और अनामिका, इन अंगुलियोंको सीधी तरहसे मिला दो। यह मुद्रा शङ्खस्थापनके समय शङ्खके ऊपर चालित की जाती है। कुम्भमुद्रा—दाहने हाथके अंगूठेको बायें हाथके अंगूठेसे बांध कर दोनों हाथोंकी मुट्ठी बांध लो। इस मुट्ठीके भीतर कुछ पोल रखनी चाहिए। इसका प्रकारान्तर—दोनों हाथोंकी मुट्ठियां बाँध कर दोनों अंगूठोंको ऊद्‌र्ध्वमुख तर्जनियोंके अग्रभागमें रखनेसे भी कुम्भमुद्रा होती है। प्रार्थनामुद्रा—दोनों हाथोंको सामने रख कर समस्त अंगुलियोंको परस्पर मिला कर अपने हृदय पर रखो। अञ्जलिमुद्रा—हाथोंसे बनाना। इस मुद्राको किसी-किसीने वासुदेवाख्यमुद्रा भी कहा है। कालकर्णीमुद्रा—दोनों हाथोंको मुट्ठी बांध कर सामने रखो और दोनों अंगूठों को ऊंचा उठा कर संलग्न करो।

विस्मयमुद्रा—दाहने हाथसे दृढ़रूपसे मुद्राबन्धन पूर्वक उसी हाथकी तर्जनी नासिकाके आगे रखो। नादमुद्रा—दाहने हाथके अंगूठेको ऊंचा उठा कर मुद्रा बांधो। बिन्दुमुद्रा—दाहने हाथसे मुद्राबन्धन करके अंगूठे और तर्जनीका परस्पर संयोजन करो। संहारमुद्रा—बायें हाथको अधोमुख और दायेंको ऊद्‌र्ध्वमुख रख कर दोनों हाथोंकी अंगुलियोंको परस्पर ग्रथित करके हाथ बदलो। यह मुद्रा विसर्जन-कार्यमें प्रयुक्त होती है। मत्स्यमुद्रा—दाहिने हाथको अधोमुख रख कर उसकी पीठ पर बाईं हथेली रखो और दोनों अंगूठोंको परिचालित करो। कूर्ममुद्रा—बायें हाथकी तर्जनीमें दायें हाथकी कनिष्ठा और दायें हाथकी तर्जनीमें बायें हाथका अंगूठा मिला कर दाहने हाथके अंगूठेको ऊंचा करके रखना तथा बायें हाथकी अनामिका और मध्यमाको दायें हाथकी पीठ पर रखो। फिर बायें हाथके पितृतीर्थ पर अर्थात् तर्जनी और अंगूठेके मध्य भागमें दायें हाथकी मध्यमा और अनामिकाको अधोमुख मिला कर दायें हाथको पीठ पर कूर्मपृष्ठकी तरह उन्नमन करो। यह देवताके ध्यानमें प्रयुक्त होती है। मुण्डमुद्रा—बायें हाथकी मुट्ठी बांध कर उसके भीतर वामागुंष्ठ घुसा दो, पीछे दायें हाथकी मध्यमाके आधार पर तर्जनी आदि अंगुलियोंको परस्पर मिलानके बाद वाम मुद्रामें संयुक्त करके दक्षिण भागोंमें प्रदर्शन कराओ।

योनि, भूतिनी और बीजमुद्राका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अब तारादेवीकी अन्यान्य मुद्रायें बतलाई जाती हैं। धूमनीमुद्रा—दोनों हाथोंको स्पष्टरूपसे परिवर्तन करके दोनों कनिष्ठाओंके द्वारा दोनों मध्यमाओंको आकर्षण और बादमें दोनों अनामिकाओंको पृथक् पृथक् अधोमुख रख कर परस्परको निविड़ भावसे बांध कर अंगूठाके अग्रभागमें अनामिकाको मिला दो। यह मुद्रा साधकको भव-बन्धनसे मुक्त करती है। लेलिहानमुद्रा—मुख विकृत करके अधोमुख जिह्वाको परिचालन करना और दोनों हाथोंकी मुद्रा दोनों ओर स्थापन करना। यह मुद्रा तारादेवीकी आराधनाके लिए प्रशस्त है। "यं ह्रीं यं स्त्रीं हूं" इन पंच बीजोंको उच्चारण करके तारादेवीकी पञ्च मुद्राएँ बांधनी चाहिए। प्रकारान्तरसे तर्जनी, मध्यमा और अनामिकाको समान भावसे अधोमुख रख कर अनामिकामें अंगूठेको रखना और कनिष्ठाको सीधी रखना। इस मुद्राका प्रयोग जीवन्यासमें होता है। महायोनिमुद्रा—दायें हाथकी तर्जनीके साथ बायें हाथकी तर्जनी, इसी तरह मध्यमासे मध्यमा, अनामिकासे अनामिका और कनिष्ठासे कनिष्ठा मिला कर दोनों कनिष्ठाओंके मूलमें अंगूठा मिलाना।

इसके सिवा वामकेश्वरतन्त्रमें भी मुद्राएँ और उनके लक्षण दिये गये हैं। इन सब मुद्रा-रचनाओंसे त्रिपुरादेवीका सान्निध्य होता है। तन्त्रसारोक्त मुद्राप्रकरण कह चुके। अब देखना चाहिए कि अन्यत्र मुद्रा सम्बन्धमें क्या लिखा है।

घेरण्डसंहिताके तृतीय उपदेशमें पच्चीस सिद्धिदायिनी मुद्रा, उनके लक्षण और फलोंका वर्णन किया गया है। उक्त मुद्राएं योगाभ्यासरत व्यक्तियोंके लिए बहुत ही शुभकर हैं। योगपरायण साधु पुरुष इन मुद्राओंका यथायथ भावसे अनुष्ठान करें तो सर्वप्रकार आधिव्याधिहाथसे उन्हें छुटकारा मिल सकता है और वे सुदुर्लभ सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। नीचे उन मुद्राओंका वर्णन दिया जाता है।

मुद्राओंके नाम—महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जलन्धर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरी, योनि, वज्रिणी, शक्तिचालिनी, ताड़ागी, माण्डवी,

शाम्भवी, पञ्चधारणा अर्थात् पार्थिवी, आम्भसी, आग्नेयी, वायवी, आकाशी, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गी, और भुजङ्गिनी। (घेरण्डस० ३ अ०)

उक्त मुद्राओंके लक्षण और फलाफल इस प्रकार हैं। महामुद्रा—प्रगाढ़ यत्नके साथ वाम गुल्फ द्वारा वायुमूल निपीड़ित करके फिर दक्षिण पद पसार कर हाथोंसे पदाङ्गुलि धारण तथा कण्ठ संकुचित करके भ्रूओंका मध्यस्थल देखना। इस मुद्राके अभ्याससे योगिपुरुष, क्षयकास, गुदावर्त, प्लीहा, अजीर्ण, ज्वर, यहां तक कि सर्वव्याधियोंसे मुक्त हो जाते हैं।

नभोमुद्रा—योगिपुरुष चाहे किसी भी स्थानमें क्यों न हों, उन्हें सब समय ऊद्ध्र्व जिह्व हो कर स्थिरतासे प्रतिनियत पवनधारण करना चाहिए। इसीका नाम नभोमुद्रा है। यह रोगनाशक है।

उड्डीयानबन्ध—उदरके पश्चिम और नाभिके ऊद्ध्र्व भागको उत्तान करके वृहत् विहङ्गमके समान अविश्रान्त उड्डीयान करना। इस मुद्राके अभ्याससे मृत्युको जीता जा सकता है और सर्व मुद्राओंमें श्रेष्ठ होनेके कारण इससे सहज ही मुक्ति प्राप्त होती है।

जलन्धरबन्ध—कण्ठका संकोचन करके क्रमसे ठोड़ीको हृदयसे लगाना। यह मुद्रा भी योगियोंके लिए मृत्युजयी है और छः मास यथायथ भावसे अभ्यास करनेसे सिद्ध होती है।

मूलबन्ध—दाहने पैरसे बायें पैरके गुल्फको यत्नसे दबा कर बायें पैरके गुल्फके पायुमूलका निरोध न करना और फिर धीरे धीरे पार्ष्णिदेशको चालन और योनिदेशको आकुञ्चन करना। इसके प्रसादसे जरामरणको जीता और सर्ववाञ्छित प्राप्त किया जा सकता है।

खेचरी—जिह्वाके नीचेकी नाड़ी छेद कर सर्वदा रसना चलाना और उसे नवनीत द्वारा दोहन करके लौहयन्त्रकी सहायतासे खींचो। प्रतिदिन ऐसा अभ्यास करनेसे जिह्वा लम्बी होती है। जिह्वा लम्बी होने पर क्रमशः उसे तालूके मध्य प्रवेश कराना चाहिये। जब जिह्वा विपरीत भावसे गमन करके कपाल-कुहरमें प्रविष्ट हो जाय, तब दोनों भौहोंके बीच स्थिर दृष्टि रख कर अवस्थान करना चाहिये। इस मुद्राके अभ्याससे मूर्च्छा, क्षुधा, तृष्णा, आलस्य, रोग, जरा, मृत्यु, अवसाद कुछ भी नहीं रहता। अग्नि, वायु और जलसे किसी भी तरह शरीरका अनिष्ट नहीं होता, सर्प नहीं काट सकता। शरीरमें एक अपूर्व लावण्य प्रकट होता और उत्तम समाधिका अभ्यास होता है। कपाल और वक्त्रके संयोगसे रसना एक अपूर्व रसास्वादन करती है। रसनाका रस प्रथमतः लवण और क्षार, फिर तिक्त और कषाय तथा उसके बाद नवनीत, घृत, क्षीर, दधि, तक्र, मधु, द्राक्षारस और अमृतके समान हो जाता है।

विपरीतकरणी—सूर्य नाभिमें और चन्द्रमा तालूमें अवस्थान करते हैं। सूर्य उक्त स्थानमें रह कर अमृत ग्रास करते हैं, इसीलिये मानव मृत्युके ग्रास बनते हैं। अतएव सूर्यको नीचेसे ऊपर और चन्द्रको ऊंचेसे नीचेको लाना चाहिये। इसमें दोनों हाथोंको समाहित करके अपना सिर भूमि पर रख कर ऊद्ध्र्वपाद हो कर अवस्थान किया जाता है। इसका नाम विपरीतकरी मुद्रा है। यह सर्व तन्त्रोंमें गुप्त रखी गई है। प्रतिदिन इसका अभ्यास करनेसे योगिपुरुष जरा और मृत्युसे छुटकारा पा कर सर्वसिद्धि लाभ करते हैं तथा प्रलयकालमें भी उन्हें किसी प्रकारका अवसाद नहीं होता।

योनि—सिद्धासन अवलम्बन कर अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका आदि द्वारा कर्ण, चक्षुनासा और मुख आच्छादन करके काकीमुद्रासे प्राण आकर्षण पूर्वक अपानमें योजना करनी चाहिये। क्रमशः षट्चक्रका ध्यान करके फिर 'हूं हंस' इस मन्त्रसे निद्रिता भुजङ्गिनीकी चेतना सम्पादन कर जीव सहित शक्तिको जगा कर स्वयं शक्तिमय हो परम शिवके साथ मिल जाओ। पश्चात् शिवशक्तिकी नानारूप आनन्दचिन्ता और 'अहं ब्रह्म' ऐसी भावना करनी चाहिये। यह मुद्रा अत्यन्त गोपनीय और देवोंके लिये भी दुर्लभ है। योनिमुद्राके अभ्याससे ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान और गुरुतल्प गमन-जन्य पापसे मुक्ति मिल जाती है। बहुत क्या कहें, सब प्रकारके उत्कट पाप और उपपाप इससे नष्ट हो जाते हैं। इसलिए मुमुक्षु व्यक्तिके लिये यह बहुत ही लाभकर है।

वज्रिणी—दोनों हथेलियोंसे भूमितल अवलम्बन करके दोनों पैर ऊपरको और मस्तक शून्य रखो। अपनी शक्तिका उपचय और दीर्घ जीवन प्राप्त करनेके लिए मुनियों ने इस मुद्राके अभ्यास करनेका उपदेश दिया है। इसके अभ्याससे योगियोंकी सर्वविध हितसिद्धि और मुक्ति तक होती है।

शक्तिचालिनी—आत्मशक्ति परमदेवी कुण्डली भुजङ्गिनीके मूलाधार पर शयन करती हैं। जब तक ये शरीरके भीतर निद्रावस्थानमें हैं तब तक जीव पशुके समान है। हजार योग करने पर भी उसके ज्ञानोदय नहीं होता। सहसा कवाट खोलनेके समान कुण्डलिनी-प्रबोधन द्वारा ब्रह्मद्वार उद्घाटन किया जाता है। इस कार्यमें शक्तिशालिनी मुद्राकी आवश्यकता है। सबसे छिप कर किसी एक गुप्त गृहमें अनग्न अवस्थामें रह कर एक वस्त्रखण्ड द्वारा नाभिदेश संवेष्टित करना चाहिये। उक्त वस्त्रखण्ड एक वितस्त लम्बा, चार अंगुल चौड़ा तथा मृदुल, धवल और सूक्ष्म होना चाहिये। इसके बाद कटिसूत्र-वेष्टन और भस्म द्वारा शरीर लिप्त करके सिद्धासन पर बैठ कर नासा द्वारा वायु आकर्षण करके जोरसे अपानमें योजन करना चाहिये। जब तक सुषुम्णामें जा कर वायु प्रकट न हो तब तक वक्ष्यमाण अश्विनी मुद्रा द्वारा धीरे धीरे गुह्यदेश आकुञ्चन करना उचित है। इसके बाद वायुरोध-पूर्वक कुम्भक तथा कुम्भकके फलसे उसी समय भुजङ्गिनी रुद्धश्वास हो कर ऊर्द्ध्वपथ अवलम्बन करेगी, इसीका नाम शक्तिचालनी मुद्रा है। इसके विना योनिमुद्रा सिद्ध नहीं होती। योनिमुद्रा अभ्याससे जन्म-मरण आदि पर विजय प्राप्त कर अनायास सिद्धि प्राप्त होती है। ताड़ागी—उदरको पश्चिमोत्तान करके तड़ागाकृति करना। इससे जरामृत्यु दूर होती है।

माण्डूकी—मुंह मूंद कर जिह्वा चलाना और धीरे धीरे सहस्रार-निःसृत अमृत ग्रहण करना। इसके अभ्यास से स्थिरयौवन प्राप्त होता और वलीपलित तथा केशपक्वता आदि दैहिक विकृति नहीं होती।

शाम्भवी—नेत्राञ्जनसमालोकनपूर्वक आत्मारामका निरीक्षण करना। यह मुद्रा कुलवधूके समान गोपनीय है। जो इस मुद्राको जानते हैं वे ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय हुआ करते हैं।

पूर्वोक्त पांच धारणामुद्रा यथा—पार्थिवी, आम्भसी, आग्नेयी,वायवी और आकाशी। पार्थिवी—हरिताल-रञ्जित भौम लकारान्वित चतुष्कोण तत्त्वपदार्थको ब्रह्मा सहित हृदयमें स्थिर करके, उसमें पांच घंटे तक प्राणोंको विनयन पूर्वक धारणा करना चाहिए। इससे क्षितिजय और मृत्युञ्जय हो कर सिद्धि प्राप्त होती है।

आम्भसी—शङ्ख, इन्दु और कुन्दके समान धवल पीयूषमय वकारबीजके साथ सर्वदा विष्णु-अधिष्ठित शुभ जलतत्त्वमें पांच घण्टे तक प्राणोंका विनयन पूर्वक धारण करो। इससे दुःसह ताप दूर होता और घोर गभीर जलमें भी कभी मृत्यु नहीं होती। यह गोपनीय है, प्रकट करनेसे सिद्धिमें हानि होती है।

आग्नेयी—जो इन्द्रगोपके समान त्रिकोणान्वित तेजोमय प्रदीप-तत्त्व रुद्रके साथ नाभिदेशमें अवस्थित है, उसमें पांच घण्टे तक प्राणोंका विनयन पूर्वक धारण करनी चाहिए। इसके अभ्याससे भीषण कालभय दूर होता और प्रज्वलित अग्निमें भी साधककी मृत्यु नहीं होती।

वायवी—भिन्नाञ्जननिभ और साथ ही धूम्राभ यकार सहित ईश्वराधिष्ठित सत्वमय जो तत्त्व है, उसमें पांच घण्टे तक प्राणोंका धारण करना, वायवी मुद्रा है। इससे योगी आकाश-गमनमें समर्थ होता और उसकी मृत्यु नष्ट हो जाती है। भक्तिहीन, शठ और कपटी व्यक्तिके सामने इसे प्रकट न करना चाहिए।

आकाशी—हकार-बीजमें अन्वित सदाशिव द्वारा अधिष्ठित और सुनिर्मल सागरके जलके समान जो परम व्योमतत्त्व है, उसमें पांच घंटे तक प्राणोंकी विनयन पूर्वक धारणा करो। इसके अभ्याससे मृत्युका नाश और प्रलयकालमें भी उसके शरीरमें अवसाद नहीं होता।

अश्विनीमुद्रा—गुह्यद्वारका पुनः पुनः आकुञ्चन और प्रसारण। इसके अभ्याससे गुह्यरोग और अकालमरणका नाश होता है।

पाशिनी—कण्ठपृष्ठ पर पाद निक्षेप-पूर्वक पाशके समान दृढ़ रूपसे बन्धन करना, पाशिनी मुद्रा है। इसके अभ्याससे शक्ति उपचित होती है।

काकी—काक-चञ्चु-पुटकी तरह मुंहसे धीरे धीरे वायु पान। इससे काकके समान नीरोग देह प्राप्त होती हैं, कोई भी रोग उसे आक्रमण नहीं कर सकता।

मातङ्गिनी—कण्ठ तक जलमें अवस्थान करके नासारन्ध्र द्वारा जल आहरण करो, फिर उसे मुंहसे निकाल कर फिर उसे मुंहसे ग्रहण करो, पीछे नासारन्ध्रसे निकाल लो। इसी तरह वार वार आहरण और निःसारण करनेका नाम मातङ्गिनी मुद्रा है। इसके अभ्याससे जरा मृत्यु नष्ट होती है। इसे कहीं एकान्त स्थानमें जा कर साधना चाहिए। जो योगिपुरुष इसमें वास्तविक रूपसे अभ्यस्त होंगे, वे मातङ्गके समान शक्तिशाली होते तथा जहां कहीं भी रहें उनके अन्तरमें एक अपार अनिर्वचनीय सुख विराजमान रहेगा।

भुजङ्गिनी—मुखविवरको किञ्चित् प्रसारित करके कण्ठसे अनिल पान करना, भुजङ्गिनी मुद्रा है। इसके अभ्याससे उदरस्थ अजीर्णादि विविध रोग शान्त होते है।

ऊपर कही हुई मुद्राओंका यथाविधि अभ्यास होनेसे साधकोंको समस्त सिद्धियां प्राप्त होती है। रोग, शोक, बाधा, विघ्न, दैन्य, दुःख और अकालमरण आदि किसी भी प्रकारका उपद्रव उन्हें नहीं सता सकता। वे बड़े आनन्दसे अपनी सुसाधनाके सुफलोंका आस्वादन करते हुए अविनश्वर प्रगाढ़ सुखमय परमात्माके परमपदमें विलीन हो जाते हैं।

मुद्राकर (सं० पु०) १ राज्यका वह प्रधान अधिकारी जिसके अधिकारमें राजाकी मोहर रहती है। (Lord of the *Privy* seal)। २ वह जो किसी प्रकारकी मुद्रा तैयार करता हो। ३ वह जो किसी प्रकारके मुद्रणका काम करता हो। (*Printer, Pressman*)

मुद्राकान्हाड़ा (सं० पु०) एक प्रकारका राग। इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

मुद्राक्षर (सं० क्ली०) १ मुद्रणोपयोगी अक्षर, वह अक्षर जिसका उपयोग किसी प्रकारके मुद्रणके लिये होता हो। २ सीसेके ढले हुए अक्षर जो छापनेके काममें आते हैं, टाइप।

मुद्राङ्क (सं० क्ली०) मुद्रा परकाचिह्न।

मुद्राङ्कण (सं० क्ली०) १ मुद्रितकरण, किसी प्रकारकी मुद्राकी सहायतासे अंकित करनेका काम। २ छपानेका काम, छपाई।

मुद्राङ्कित (सं० त्रि०) १ मुद्राचिह्नित, मोहर किया हुआ। २ जिसके शरीर पर विष्णुके आयुधके चिह्न गरम लोहेसे दाग कर बनाए गए हों।

मुद्राटोरी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी रागिनी। इसके गानेमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

मुद्रातत्त्व वा मुद्राविज्ञान—(*Numismatics*) वह शास्त्र जिसके अनुसार किसी देशके पुराने सिक्कों आदिकी सहायतासे उस देशकी ऐतिहासिक बातें जानी जाती हैं। राजकीय चिह्नित जितने धातुखण्ड हैं उन्हें मुद्रा कहते हैं। प्रत्येक देशकी मुद्रामें उस देशके राजचिह्न और जातीय धर्मचिह्न, देशाधिष्ठात्री देवता वा प्रसिद्ध नगरादिकी प्रतिकृति उत्कीर्ण रहती हैं तथा प्रचलित वर्णमाला वा साङ्केतिक लिपिमालामें राजवंश और मुद्राकालका परिचय रहता है। उन्हें पढ़नेसे अतीत कालकी बहुत सी बातें जानी जाती हैं। सोने, चांदी, तांबे, पीतल, कांसे आदिकी धातुओंकी मुद्रा (सिक्का) बनती है। अरब देशमें कांचकी भी मुद्रा प्रचलित है। फिर दो तीन धातु मिली हुई मुद्राका भी प्रचार देखा जाता है।

यूरोपीय या पाश्चात्य मुद्रा।

पाश्चात्य प्रत्नतत्त्वविदोंने प्राचीनकालके विभिन्न देशोंमें प्रचलित मुद्राखण्डका संग्रह किया है। उन सब मुद्राओंकी परीक्षा कर वे मुद्रातत्त्व प्रकाशित कर गये हैं। मुद्रातत्त्वके सम्बन्धमें हजारसे ऊपर पुस्तक लिखी जा चुकी हैं। उन्हें पढ़नेसे प्राचीन कालका इतिहास जाना जा सकता है। मुद्राखण्ड, ताम्रशासन और शिलालिपिकी तरह धातुमय अक्षरमाला और शिल्पनिपुणता विभिन्न भावाके अतीत कीर्त्तिकलाप और विलुप्त साम्राज्यका साक्ष्य देती है।

मुद्रा भूतकालका चित्त और भास्कर विद्याका उज्ज्वल निदर्शन है। वाह्लिक (*Bactria*) साम्राज्यकी मुद्रा द्वारा वहांका इतिहास, जो अन्धकारसे ढंका था, कुछ

कुछ जाना गया है। उनसे बहुतसे राजों और सेनापतियोंका भी हाल मालूम हुआ है। मुद्राकी तरह पदक आदि (*Medals*)-में भी प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी जीवनी प्रकट हुई है।

मुद्राशालाकी सुसज्जित कोठरीमें प्रवेश करनेसे प्राचीन कालके बादशाहोंके चरित्र भी दर्शकके मनमें चित्रित हो जाते हैं। वहां दिग्विजयी अलेकसन्दरकी जिगीषा और अदम्य विक्रम, मिथ्रदातकी दुर्द्धर्षता, आण्टोनियसकी प्रशान्तता, निरो-की निष्ठुरता और काराकेलकी पाशविकता साफ साफ दिखाई देती है।

ऐतिहासिक रहस्यपूर्ण हजारों तालपत्र, भोजपत्र और पेपाइरसके ग्रन्थोंको कुछ तो कीड़े चट गये और कुछ कालके उदरमें जीर्ण हो गये हैं। उन्हें फिरसे प्रकाशित करनेकी कोई सम्भावना नहीं। किन्तु राजोंके नाम अथवा राजधानीके वर्णनसे अंकित मुद्रा कई शताब्दी वसुन्धराकी कुक्षिमें रहने पर भी साफ अक्षरोंमें पूर्व तत्त्वकी घोषणा करती है। कुम्भीरके पेटसे बहुत-सी मुद्रा निकाली गई हैं। उसकी तीव्र जीर्णशक्ति भी उसे पचा नहीं सकी।

मुद्रा द्वारा भूत कालका शिल्पोत्कर्ष और चित्रनैपुण्य तथा प्रचलित धर्म-विश्वास आदि जाना जा सकता है। ७वीं सदीसे ले कर अलेकसन्दरके राज्यकाल तक ग्रीक मुद्राओंमें केवल देवदेवीकी प्रतिमूर्त्ति ही अङ्कित देखी जाती है। उनसे ग्रीक धर्मशास्त्रका बहुत कुछ रहस्य मालूम हुआ है। ग्रीक सभ्यताके उस प्राथमिक युगमें धार्मिक सम्प्रदाय राजा और रानी अथवा सौधमालिनी राजधानीकी अपेक्षा जातीय देवताकी पवित्र प्रतिमूर्त्ति को मुद्रातलमें अङ्कित करते थे। उस समय व्यक्तित्वकी अपेक्षा सामाजिकता अथवा जातीयताकी प्रधानता अच्छी तरह दिखाई देती थी। मुद्राङ्कित देवदेवीकी प्रतिमूर्त्तिमें जैसा शिल्प-नैपुण्य दिखाई देता है उससे अनुमान किया जाता है, कि ईसाजन्मसे ७वीं सदी पहले ग्रीसमें शिल्प नैपुण्य उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था।

इटली देशकी प्राचीन मुद्रासे तरह तरहके भौगोलिक तत्त्व जाने जा सकते हैं। प्राचीन रोम-साम्राज्यके नगरादि जिस स्थान, जिस भावमें विद्यमान थे वह अविकृतभावमें आश्चर्य शिल्पनैपुण्यके साथ मुद्रातलमें अङ्कित हैं। इन सब प्राचीन मुद्राओंमें शस्यश्यामला भूमि, कान्तारकुन्तला वसुधा, फेनायमान समुद्र, गगनचुम्बि शैलमाला, सौधालंकृता नगरी, जनाकीर्णा राजधानी पुष्पस्तवकित पादप आदि अङ्कित रहनेसे इटलीके विविध प्रत्नतत्त्व निरूपित हुए हैं। इन सब मुद्राओंमें भास्कर विद्याकी अद्भुत निपुणता दिखाई देती है।

मुद्रातत्त्वके प्रणेता रैजिनल और स्टुवार्टका कहना है, कि ७वीं सदीके पहले यूरोप आदि देशोंमें मुद्राका प्रचार बिलकुल नहीं था। किन्तु हम उसे स्वीकार नहीं करते। जिस मिस्री सभ्यताके बीजसे ग्रीसकी सभ्यता अंकुरित और पल्लवित हुई थी,—उस प्राचीन मिस्रमें ईसा-जन्मसे ४००० वर्ष पहले मुद्राका उल्लेख देखनेमें आता है। पीछे बाबिलन, फिनिसिया और मिदिया आदि देशोंमें मुद्राका प्रचार हुआ था।

एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका (९म संस्करण) के लेखकका कहना है, कि ४थी सदीमें सारे सभ्य-जगत्में धातुमुद्राका प्रचार हुआ था। अभी तो पृथ्वीके प्रायः सभी देशोंमें धातुमुद्राका व्यवहार होता है।

मुद्रातत्त्व पढ़नेसे प्राचीन अनेक शिल्पोंकी बातें जानी जाती हैं। इस विषयमें ग्रीकमुद्राको पृथ्वीके मध्य श्रेष्ठ आसन दिया गया है। रोमक सम्राट् अगस्तसके समयसे ले कर कमोदसके राज्यकाल तककी जो मुद्राएं पाई गई हैं उनमें ग्रीक-शिल्पका प्रभाव दिखाई देता है। अण्टोनियसपायस और जष्टिनसकी स्वर्णमुद्राओंके शिल्पोत्कर्ष देखनेसे विस्मित होना पड़ता है। मुद्रातत्त्व और प्राचीन मूर्त्तिशिल्पमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तुशिल्पका भी आश्चर्य निदर्शन मुद्रातत्त्वमें दिखाई देता है। मुद्रा पर जो सुरम्य हर्म्यकी प्रतिकृति देखी जाती है, वह प्राचीन कालके वैहारिकशिल्पका उज्ज्वल निदर्शन है। फिर रोमक साम्राज्यकी मुद्राओं पर भी चित्रशिल्पका यथेष्ट उत्कर्ष दिखाई देता है। आण्टोनाइनके शासनकालकी मुद्रा पर भी चित्रशिल्पकी निपुणताका अभाव नहीं है।

मुद्रासे समसामयिक साहित्यका इतिहास मालूम होता है। कवि, दार्शनिक और ऐतिहासिक लोग मुद्रा-

तत्त्वसे ज्ञान-भाण्डारके अनेक रत्न सङ्कलन कर सकते हैं। जब मध्ययुगके अवसान पर १५वीं सदीमें यूरोप के साहित्याकाशने विद्या-रविकी उज्ज्वल किरणोंसे आलोकित हो नवयुगकी अवतारणा की थी उस समय मुद्रातत्त्वने विशेष सहायता पहुंचाई थी। उस प्राचीन साहित्यग्रन्थादिके संस्करणमें मुद्राकी प्रतिकृति दी गई है।

मुद्रातत्त्वशास्त्र प्राचीन कालका नहीं है। वह आधुनिक विज्ञान है, पूर्वकालमें मुद्रासंग्रहका कोई प्रमाण नहीं मिलता, पर हां किसी किसी व्यक्तिने निर्दिष्ट मुद्राकी सुन्दरताके लिये दो चार विभिन्न मुद्राका संग्रह भले हो किया था। पित्रार्क (*Petrarch*)ने ही यूरोप आदि देशोंमें सबसे पहले नाना प्रकारकी मुद्रा संग्रह करनेकी चेष्टा की थी। मुद्रातत्त्व समसामयिक इतिहासकी अपेक्षा विभिन्न युगके पृथक् पृथक् परवर्त्ती आदर्शको प्रकट करता है। कौन शिल्प परवर्त्ती है और कौन अग्रवर्त्ती, मुद्रासे ही इसका पता लगता है। कोई कोई शिल्पादर्श पृथिवीसे विलुप्त हो गया है। मुद्रातत्त्वविद्गण उसका पुनरुद्धार कर प्राचीन आदर्शको प्रचलित करनेको कोशिश करते हैं।

वर्त्तमान कालकी मुद्रामें कोई शिल्पनैपुण्य नहीं देखा जाता। इस विषयमें प्राचीन मुद्रा ही श्रेष्ठ है। क्योंकि, वह अनेक प्रकारके ऐतिहासिक तत्वोंसे पूर्ण है।

मुद्राशालामें साधारणतः मुद्राओंका निम्नलिखित श्रेणीविभाग देखा जाता है। ग्रीक, रोमक, मध्ययुगीय, आधुनिक और प्राच्यमुद्रा। इनके भी फिर कई भेद हो गये हैं। ग्रीसदेशकी मुद्राएं पहले देशके विभागानुसार सज्जित हो पीछे ऐतिहासिक सिलसिलेवार श्रेणीबद्ध हुई है। किन्तु रोमक मुद्राओंके भौगोलिक-संस्थानके मतानुसार सजानेकी सुविधा न रहनेके कारण वे केवल कालानुक्रमिक भावमें सजाई गई हैं। मध्ययुग और अधुनातन प्रतीच्य मुद्रायें ग्रीकके ढंग पर सज्जित हैं। प्राच्य मुद्रा भी ग्रीक-आदर्श पर विभक्त हुई है। फिर कोई कोई मुद्रातत्त्वविद् धातुके श्रेणीविभागके अनुसार मुद्राओंको सजाते हैं।

ग्रीक मुद्राविभागमें प्रथम श्रेणीकी मुद्राएं रोमक अधिकारके पहलेकी हैं। उन सब मुद्राओंमें किसी राजा वा रानीकी प्रतिमूर्त्ति नहीं है। पूर्वसे ले कर पश्चिम प्रदेशकी मुद्राएं बाईं ओर सजी हुई हैं। जिन मुद्राओंमें राजाकी मूर्त्ति अङ्कित है उनसे ग्रीक-मुद्रामें अधिक ऐतिहासिकतत्त्व दिखाई देता है। इन सब मुद्राओंमें साधारणतः सोने, चांदी और तांबेकी-मुद्रा ही देखी जाती है। उसके बाद रोमक-साम्राज्यकी मुद्रा है। रोममें साधारण तन्त्र मुद्राकी संख्या ही अधिक है। नागरिक और प्रादेशिक दोनों प्रकारकी मुद्रामें साधारण तन्त्रके चिह्न अङ्कित हैं।

यूरोपके अन्यान्य देशोंकी प्राचीन और आधुनिक मुद्राएं भौगोलिक और ऐतिहासिक विभागानुसार सज्जित हैं। केवल बाइजेण्टाइन प्रदेशकी मुद्राएं स्वतन्त्र प्रणालीमें विभक्त हैं। मध्ययुगके मुद्रा-तत्त्वमें बाइजेण्टाइनकी मुद्राका ही विशेष आदर था। मध्य युगकी मुद्रामें राज-चिह्नित मुद्रा ही अधिक प्रयोजनीय है। राजकीय पदक मुद्राकी बगलमें रखे हुए हैं। प्राच्य मुद्रामें यहूदी, फिनिकीय और कार्थेजीय मुद्रायें ग्रीक आदर्श पर विभक्त हैं। उसके बाद प्राचीन पारस्य, अरब, आधुनिक पारस्य, भारतीय और चीन देशीय मुद्राका परस्पर श्रेणी विभाग देखा जाता है। फिर अनेक प्रकारके कृत्रिम विभाग भी कल्पित हुए हैं।

ग्रीक-शिल्पकी छाया ले कर जो सब मुद्रा अंकित हुई थीं वा रोमक-आधिपत्यकालमें भिन्न भिन्न देशमें जिन सब मुद्राओंका प्रचार हुआ वे सब इच्छानुसार भिन्न भिन्न श्रेणीके अन्तर्निविष्ट हो सकती हैं। रोमक बादशाहोंकी मुद्रा और साधारण तन्त्रकी मुद्रा अथवा अष्ट्रोगथ और बाइजेण्टाइन तथा मध्ययुग और आधुनिक मुद्राका क्रमविकाश देखा जाता है। राजा और शासनपरिवर्त्तनसे मुद्राङ्कणमें भी कैसा परिवर्त्तन हुआ वह बाइजेण्टाइनकी ताम्रमुद्रासे साफ साफ मालूम होता है। रोमक-साम्राज्यकी अवनतिका इतिहास उज्ज्वल अक्षरोंमें उन सब मुद्रा पट पर खोदित देखा जाता है।

एक हजार वर्षकी ग्रीक-मुद्रायें मुद्राशालामें रखी हुई हैं। केवल लण्डन नगरकी प्राचीन और आधुनिक मुद्रासे दो हजार वर्षका इतिहास मालूम हुआ है। रोमक-सम्राट् दियोक्लिशियनके अधिकार-कालमें लण्डनकी-

प्रथम मुद्रा, पीछे कारसियस और आलेकृसके शासन-कालकी मुद्रा है। इसके बाद साकसन जातिकी मुद्रा और अलफ्रेडकी मुद्रा रखी हुई है। इस प्रकार परवर्त्ति-कालकी मुद्राएं ऐतिहासिक क्रमानुसार सज्जित हैं।

इसके अतिरिक्त धातुके गुणागुण, मान, आपेक्षिक-गुरुत्व आदि भी मुद्रातत्त्वशास्त्रके अन्तर्गत हैं। ईसा-जन्मके पहले ७वीं सदीसे ले कर २६८ ई०में गालिएनस-के मृत्युकाल तक ग्रीकमुद्राका प्रचलन देखा जाता है। वे सब मुद्रायें तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं, पौराणिक-ग्रीक, लौकिकग्रीक और रोमक-साम्राज्याधीन ग्रीकमुद्रा। प्रथम श्रेणीकी अधिकांश मुद्रा चांदी और इलेक्ट्रम (Electrum) की बनी हुई है। इस युगमें स्वर्ण-मुद्राकी संख्या बहुत थोड़ी है। उनका आकार गोल है। एक ओर शासन-संक्रान्त खोदित लिपि और दूसरी ओर वृत्त अथवा चतुर्भुजकी तरह एक निर्दिष्ट चिह्न है। तृतीय श्रेणीकी मुद्रायें सोने, इलेक्ट्रम, चांदी और पीतल की बनी हैं। ये सब वजनमें कम हैं। ऊपरी भाग कछुएके और निचला भाग कड़ाहके जैसा है। तृतीय श्रेणीकी अधिकांश मुद्रा पीतलकी बनी हैं। इन सब मुद्राओंमें रोमक-सम्राटोंकी प्रतिमूर्त्ति खोदी हुई हैं।

इन सब ग्रीकमुद्राओंका परिमाण भी परस्पर विभिन्न है। डाकूर ब्राण्डिसने बहुत खोज कर यह स्थिर किया है, कि ग्रीक देशीय मुद्राओंका वजन और परिमाण बाबिलनीयका अनुकरणमात्र है। किसी किसी विभागमें मिस्रदेशका प्रभाव दिखाई देता है। भारी मुद्रा आसिरीय मुद्राका अनुकरण है। इसका आधा बाबिलन-देशीय मुद्राके समान है। बाबिलनके निनेभ नगरके खण्डहर से निमरुडकी जो सब मुद्रायें आविष्कृत हुई हैं, वही परवर्त्ती कालकी ग्रीकमुद्राका आदर्श है।

बाबिलनीय भारी मुद्रायें वाणिज्यप्रधान फिनिकीय जातिसे समुद्रपथ द्वारा ग्रीस देशमें लाई गई थी। अन्यान्य मुद्राओंका स्थलपथ द्वारा लिदीय (Lydia) देशसे ग्रीस देशमें प्रचार हुआ। ग्रीक लोगोंने थोड़ा अदल-बदल करके ही उन सब मुद्राओंका प्रचार किया था। बाबिलनकी मुद्रा मीनाकी मुद्राका साठवां भाग है। किन्तु ग्रीसकी मुद्रा मीनाकी मुद्राका पचासवां भाग है। ग्रीसकी मुद्राएं प्रतिमूर्त्तिकी विभिन्नताके अनुसार ६ श्रेणियोंमें विभक्त हैं,—

१, जातीय देवता अथवा देशाधिष्ठात्री तथा नगरा-धिष्ठात्रीकी प्रतिमूर्त्तियुक्त मुद्रा। किसी मुद्रामें केवल मस्तक ही अङ्कित है। फिर किसीमें नखसे सिख तक चित्रित देखा जाता है। जैसे, आथेन्सकी मुद्रामें पल्लास (Pallas)का तथा ब्युसियर और थिबकी मुद्रामें हेरा-क्लिसकी प्रतिमूर्त्ति अङ्कित है।

२, उक्त देवदेवीके वाहनस्वरूप जो सब पदार्थ वा प्राणी पवित्र समझे जाते थे उनकी प्रतिमूर्त्ति। जैसे, आथेन्सकी मुद्रामें पेचक (लक्ष्मीका वाहन), इजाइन-की मुद्रामें कच्छप, साइरिनमें आलिभ वृक्षपत्र, हेरा-क्लिसमें इराइथ्रा (अस्त्र) और वलकानमें इमार्णिया (अस्त्र)। उपरोक्त मुद्राविवरणसे उस समयके ग्रीक-समाजका बहुत कुछ ऐतिहासिक तत्त्व मालूम होता है। उस प्राथमिक समाजमें भक्तिप्रवण मनुष्य-हृदय मानवीय स्वाधीनताकी अपेक्षा दैवसम्पद्के प्रति विशेष झुका हुआ था। जातीय एकताके मूलमन्त्रस्वरूप उपास्य देवता मुद्रातलमें अङ्कित होते थे जिससे समाज-बन्धन बहुत कुछ दृढ़ हो गया था।

३, इस युगकी मुद्रामें नदीदेवता गेला (Gela), ह्रददेवता कमरिना (Camarina) और साइराक्युस-का निर्झर देवता आरिखुसा (Arikhusa)-की प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है।

४, इसके बादकी मुद्रामें नृसिंहावतारकी तरह अर्द्ध-नराकृति माकिदनके गर्गन (Gorgon) और मिनाट वा नाससकी प्रतिमूर्त्ति खोदी हुई है।

५, परवर्त्ती मुद्रामें नाना प्रकारके कल्पित जन्तुओं-की प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है। इनमें करिन्थका पेगासस (Pegasus), पान्तिकेपियमका ग्रिफिन (Griffin) और साइफनका चाइमिरा अच्छी तरह उल्लेखनीय है।

६, प्रसिद्ध वीरोंकी मूर्त्ति और कार्यविवरण। इनमें इथकाका युलेसिस और पाटीका आजाकस और टरा-एटमका टारस प्रधान है।

७, वीरोंके संश्लिष्ट अन्य पदार्थादि। इनमें इटोलियामें कालिदोनीय सूअरके चिबुककी हड्डी और त्रिविध अस्त्र खोदित है।

८, सुप्रसिद्ध नगरादि और कल्पित गन्धर्व-नगरादि-का चित्र। जैसे—नासस (Cnossus)-का गोलकधंधा।

९, साधारण जातीय-उत्सव अथवा धर्मोत्सवकी प्रतिकृति, 'ओलिम्पिक गेम' वा साइराक्युजकी व्यायाम-क्रीड़ा।

मुद्राके ऊपर और नीचे दोनों ओर दो प्रकारके चित्र रहते हैं। इनमें कमरिनकी सुन्दर रौप्यमुद्राके ऊपर नदीदेवता हिपारिस (Hepparis) और नीचे ह्रदकी अधिष्ठात्री हंसवाहिनी देवी हैं। साइफनकी मुद्राके ऊपर चीमिरा (Chimaera) और नीचे कबूतरकी मूर्त्ति है। कहीं कहीं ऊपरी भाग पर देवमूर्त्ति अङ्कित देखी जाती है। जैसे, आथेन्सकी मुद्राके एक पृष्ठ पर पल्लास (Pallas) और दूसरे पृष्ठ पर उसका वाहन पेचक एक आलिभकी डालीमें सुशोभित है।

माकिदनके अन्तर्गत कालकिदियोंकी मुद्रामें कदम्ब-मूल पर बैठी हुई हाथमें वीणा लिये आपलो वा श्रीकृष्ण-मूर्त्ति शोभती है।

इटाइथिकी मुद्रामें हराक्लिसका मस्तक और उस-के अस्त्रादि हैं। इटोलियाकी मुद्रामें एक ओर आटलण्टा (Atlanta)-की मूर्त्ति और दूसरी ओर कालिदोनीय वराहमूर्त्ति अथवा उसके चिबुककी हड्डी तथा शूलका अगला भाग है। नाससकी मुद्राकी एक पीठ पर गोलक-धंधाका आदर्श है।

समुद्रतीरवर्त्ती राजधानियोंकी मुद्रा पर डलफिन वा तिमि नामकी मछली अङ्कित है।

द्वितीय विभागकी मुद्रामें राजा अथवा राजसम्पर्कीय छत्र, चामर वा ध्वजदण्ड अङ्कित हैं। ग्रीसकी सभ्यता-की प्राथमिक मुद्रा पर देवमूर्त्तिके अलावा अन्यमूर्त्ति अङ्कित करना शास्त्रविरुद्ध समझा जाता था। केवल अलेकसन्दरके समयसे ही मनुष्यकी प्रतिमूर्त्ति मुद्रा पर अङ्कित होने लगी। आमनकी मृत्युके बाद वे देवता सरीखे समझे जाते थे। इस कारण मुद्रा पर उनकी मूर्त्ति भी अङ्कित हुई थी। किन्तु अलेकसन्दरकी मृत्यु-के बाद उनकी प्रतिमूर्त्ति मुद्रा पर क्यों अङ्कित होने लगी, भारतीय सभ्यताके प्रभावको ही इस आकस्मिक परि-वर्त्तनका कारण बतलाया जाता है। भारतीय मुद्राकी तरह ग्रीक लोग देवताकी जगह मनुष्यको आसन देने लगे। अलेकसन्दर भारतवर्षकी शिक्षा, सभ्यता और शौर्यवीर्य देख कर मुग्ध हुए थे। उन्होंने भारतमें आ कर देखा था, कि धर्मपरायण भगवद्भक्त हिन्दूके निकट सिंहा-सनारूढ़ राजा नररूपमें देवताके समान पूजनीय है। वे इन्द्रादि अष्ट दिक्पालके प्रतिनिधि हैं। इसीसे हिन्दू-राज्यमें मुद्राखण्ड पर नरदेवता राजाकी मूर्त्ति अङ्कित रहती है। स्वर्णप्रसू भारत-भूमिकी अनायासमें मिलने-वाली राशि राशि स्वर्णमुद्रा पर छत्रदण्डचामरचिह्नित राजाकी मूर्त्ति देख कर अलेकसन्दर जब देशको लौटे, तब वहां उन्होंने ग्रीक मुद्रा पर अपनी मूर्त्ति खोदवाई थी। इस प्रकार भारतीय आदर्श यूरोप आदि देशोंमें फैल गया। पहले पहल इस प्रकारका मुद्राङ्कण लोगोंको रुचिकर नहीं हुआ। पीछे वह प्रथा सर्ववादिसम्मत समझी जाने लगी। यहां तक, कि अन्तमें मिस्र और सिरियाके राजगण देवताकी उपाधि ग्रहण कर मुद्रा पर अपनी प्रतिमूर्त्ति अंकित करने लगे थे। अभी भी मुद्रातलमें राजा और रानीकी मूर्त्ति अङ्कित होती है।

भारतीय सभ्यताका प्रभाव भी अलेकसन्दरके शासन-कालमें समस्त ग्रीकदेशमें फैल गया। इसके पहले भिन्न भिन्न प्रदेशकी भिन्न भिन्न मुद्राका आदर्श रहता था। अलेकसन्दरने भारतकी मुद्रा-प्रणालीका ग्रीकदेश-में प्रचार किया। भारतमें जो राजचक्रवर्त्ती थे, सम्राट्के आसन पर बैठे थे, उनके शासनाधीन सभी प्रदेशोंमें उनके नामका सिक्का चलता था। पीछे अलेकसन्दरने अपने देशमें भी इसका अनुकरण किया। इसके बाद प्रादेशिक स्वतन्त्रता लुप्त हो गई थी। तब आथेन्स और थिब, साइराक्युज और विपशिया आदिमें भी आलेकसन्दरके नामका सिक्का चलने लगा। स्थल विशेषमें मुद्राकी एक पीठ पर जातीय देवता और दूसरी पीठ पर राजाकी प्रतिमूर्त्ति अङ्कित हुई थी।

इसके बाद ग्रीस रोमके अधीन हुआ तथा रोमकी पीतलकी मुद्रा रोमक-साम्राज्यके शासनाधीन प्रदेशोंमें चलने लगी। यह रोमक मुद्रातत्त्व कुछ जटिल था। वीरपूजाकी प्रधानता दिखाई देने लगी। बड़े बड़े वीर, कवि, दार्शनिक, चित्रकर आदि व्यक्तियोंकी प्रतिमूर्त्ति भी मुद्रामें अङ्कित होने लगी। मुद्रामें प्रतिमूर्त्तिका प्रचार राजसम्मान और कीर्त्तिकलापकी पराकाष्ठा समझा

जाने लगा। इस समयकी मुद्रामें फिर कितने काल्पनिक व्यक्तियोंकी मूर्त्ति आदि भी अङ्कित देखी जाती हैं।

इनमेंसे स्मर्णाके होमर (सुप्रसिद्ध कवि), हेलिकार्नसके हिरोदोतस, करिन्थके लेहस (Lais) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। किसी मुद्रामें (पेचक-वाहिनी) पल्लास (लक्ष्मीदेवी) वंशीध्वनि करते करते सलिलमय मुकुरमें मुख देखती हैं और मारसियस (*Marsyas*) एक पर्वत परसे टक लगाये उन्हें देख रहे हैं।

मिस्रके अन्तर्गत अलेकसन्द्रिया नगरीको मुद्रामें आशादेवी (Hope)-की प्रतिमूर्त्ति विराजित है। वे क्षण क्षणमें नये नये दर्पणमें मुख देखती हैं।

कुछ दिनोंके बाद जब ग्रीसकी शिल्पविद्या उन्नतिकी चरम सीमा पर पहुंच गई थी, उस समय नाना कारुकार्यखचित सुरम्य अट्टालिकासे पूर्ण सुन्दर नगरकी प्रतिमूर्त्ति मुद्राखण्ड पर अंकित हुई थी।

जिस समय रोम-साम्राज्य देश देशान्तरमें फैलने लगा, उस समय रोमके उपनिवेशोंमें लाटिन अक्षरवाली मुद्रा प्रचलित हुई। विस्तीर्ण विशाल रोमसाम्राज्यमें सभी जगह रोमकी आदर्श स्वरूप मुद्राका व्यवहार होने लगा। स्पेनमें इमेरिटा वा मेरिमासे ले कर आसियाकी निनेभ नगरी तक रोमक मुद्राका व्यवहार हुआ था।

मुद्रोत्कीर्ण लिपिमाला।

ग्रीकमुद्राकी लिपिमालामें प्रधानतः जिन राजसरकार द्वारा उसका प्रचार हुआ उन्हींके नाम देखनेमें आते हैं। 'आथेन्सी' वा 'साइराक्युज वासियों'की ऐसी लिपिमाला ही अधिकांश मुद्रामें उत्कीण हैं। किसी किसी मुद्रालिपिका अर्थ है—"आथेन्सवासीका आथेनिया"—"साइराक्यूजका परिथुनसा"

मुद्राशिल्प।

पाश्चात्य सभी पण्डितोंने एक स्वरसे कहा है, कि ग्रीकमुद्रा ग्रीकशिल्पका व्याकरण स्वरूप है। इसकी भौगोलिक और ऐतिहासिक उपयोगिता केवल ग्रीसदेशके लिये ही थी। किन्तु शिल्पनैपुण्यमें ये सब मुद्राएं पृथिवीकी साधारण सम्पत्ति हैं। यह मुद्राशिल्प उस समयके शिल्पकी छोटी सीमाको लांघ कर शिल्पशास्त्रके एक विशाल राज्यको अधिकार किये हुए हैं। उस समयके शिल्पनैपुण्यसे अलङ्कृत विशाल कीर्त्तिस्तम्भ जमीन पर गिर कर धूलमें मिल गये हैं। किन्तु छोटे छोटे धातुखण्ड पर खोदी हुई उनकी छोटी अनुकृति आज भी वर्त्तमान रह कर यथार्थ चित्रका सत्य साक्ष्य प्रदान करती है। ग्रीसके नाना स्थानोंमें जो सब शिल्पकुसुम विकसित हो उठे थे वे अम्लान सौन्दर्यसे आज भी दर्शकके मनको मोहते हैं।

मुद्राशिल्प भास्करविद्या और चित्रशिल्पके बीचका सोपानमात्र है। इसे 'रिलीफ' (Relief) शिल्प कहते हैं। मध्ययुगके पहले तक केवल भास्करताकी प्रधानता और पीछे चित्रकी प्रधानता देखी जाती है। भास्करविद्या आकृतिको (Character) तथा चित्रविद्या भावको (Expression) प्रकाशित करती है। आकृति एक विशेषणसे प्रकट की जा सकती है, पर भाव हृदयकी अनुभूतिके विना हृदयङ्गम नहीं किया जा सकता। जो सब भास्कर मूर्त्तिशिल्पमें भी हृदय-वृत्तिका विकाश दिखानेमें समर्थ हैं वे ही लोग अद्वितीय शिल्पी हैं। ग्रीक मुद्रामें इस शिल्पका चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। जो पृथ्वीके वैहारिक शिल्प-इतिहास जानना चाहते हैं उन्हें ग्रीक-मुद्राकी कहानी अवश्य पढ़नी चाहिये। क्योंकि, पृथ्वीके सभी आदर्श उसमें चित्रित हैं।

ग्रीकमुद्राशिल्प प्रधानतः तीन भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें मध्य, उत्तर और दक्षिण ग्रीस है। उत्तरग्रीसके मध्य फिर थ्रेस और माकिदनीया, दक्षिण ग्रीसके मध्य पिलोपनिसस, क्रीट और साइरिन आदि हैं। द्वितीय भागमें आइओनिय विभाग है। यह उत्तर और ग्रीसके अन्तर्गत है। इसके मध्य माइसिया, युलिया और दक्षिणमें रोड्स तथा केरिया है। अलावा इसके तृतीय भागमें एशिया-माइनर, पारस्य, फिनिसिया और साइप्रस आदिकी मुद्रा विशेष प्रसिद्ध है। पश्चिम प्रदेशके मध्य इटली और सिसलीकी मुद्रा ही प्रधान है।

मुद्राशिल्पका प्रथम युग अलेकसन्दरके शासनकाल और पारसिकोंके पराभवके पूर्ववर्त्ती अर्थात् ईसा-जन्मसे ३३२ वर्षतक माना जाता है। इस समयके बाद जब भारतवर्षके अनुकरण पर

सार्वभौमिक मुद्राशिल्प ग्रीसमें प्रचलित हुआ, तब स्थानीय शिल्पकी स्वतन्त्रता और विचित्रता लुप्त हो कर एकाकार हो गई। अलेक्सन्दरके कुछ पहले तक स्थानीय ग्रीकशिल्प परस्पर प्रतिद्वन्द्विताMें उन्नति-पथसे बढ़ रहा था। इसी समय भारतीय आदर्शने उनकी जड़ काट डाली।

पूर्वोक्त ग्रीक मुद्राशिल्पकी पर्यालोचना द्वारा ऐसा अनुमान किया जाता है, कि प्रसिद्ध चित्रकारों अथवा भास्करोंका आदर्श पहले सर्वत्र ग्रहण नहीं किया जाता था। मुद्राशिल्पके साथ साथ लोग उसका अनुकरण करने लगे थे। आरिष्टटलके मतसे सबसे पहले प्रसिद्ध ग्रीक चित्रकार पालिगनोटस केवल आकृतिके मुद्रणमें पारदर्शी थे। पीछे पालिक्लिटसकी शिल्प-आदर्शमें प्रसिद्धि हुई। पूर्वोक्त दोनों चित्रकारोंने उस समय मुद्राशिल्पमें ऐसी प्रसिद्धि पाई थी कि भुवनविख्यात चित्रकार फिडियस अथवा माइरनको भी वैसी प्रसिद्धि नहीं मिली थी।

मध्यग्रीसके शिल्प-आदर्शमें आटिका ही प्रधान केन्द्र था। यही आदर्श धीरे धीरे माकिदनीय, आम्फिवोलिस और कालसाइडिसमें फैल गया। ये सब शिल्प-आदर्श फिडियसकी अतुल कीर्त्तिका मुकाबला करते थे। पालिक्लिटस आटिकाके शिल्पविद्यालयके प्रतिष्ठाता थे। परवर्त्तीकालमें प्राक्सिटेलिस और स्कोपसने अच्छा नाम कमाया था। इस युगका मुद्राशिल्प बड़ा ही विचित्र था। किन्तु फिडियसके समयका मुद्राशिल्प हर हालतमें प्रकृतिका अनुकरण करता था। निसर्गकी इस प्रकारकी अविकल अनुकृति पृथ्वीमें और कहीं भी नहीं थी। यहां तक कि जीवजन्तु आदिकी प्रतिमूर्त्ति सजीव-सी मालूम होती है।

प्राक्सिटेलिस और स्कोपसके समयमें भास्कर-विद्याकी अपेक्षा चित्रशिल्पकी प्रधानता दिखाई देने लगी। इस समय चित्र-कलाने शारीर-सौन्दर्यके आकृतिसौष्ठवका परित्याग कर हृदयकी वृत्तियोंकी असंख्य विचित्रता दिखलाना आरम्भ किया। उस समयकी मुद्राएं इसका जाज्वल्यमान प्रमाण हैं। इस मुद्राशिल्पका उच्चतम विकाश सिसली और साइराक्युज के मुद्राङ्कित पार्सिफोनका मस्तक देख कर अनुमान किया जाता है। लोकियन और मेसेनियन लोगोंने आगे चल कर इसीका अनुसरण किया था।

आइयोनियाके शिल्पविद्यालयमें पहले पारस्यशिल्प-का प्रभाव दिखाई देता था। पीछे प्राक्सिटेलिसका अनुकरण करके उसने ऊंचा स्थान प्राप्त किया। आइयोनिया और हेलस (*Hellas*)-की मुद्राङ्कित पार्सिफोन-मूर्त्ति देखनेसे आइयोनियाकी श्रेष्ठताको अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। हेलसकी मुद्रामें भी मनोमोहनेवाले शिल्पोंका अभाव नहीं है। कहनेका तात्पर्य यह कि ग्रीक-शिल्पका इतिहास ग्रीक-मुद्राकी विविध विचित्रताओंसे भरा हुआ है।

हेलसके भास्करगण संसारमें अद्वितीय हैं। किन्तु एशियामाइनरके चित्रकरगण भास्कर और चित्रकला-को मानो परिणयसूत्रमें बद्ध कर संसारमें चित्रविद्याका अलौकिक निदर्शन रख गये हैं। एशियामाइनरके मुद्रा-शिल्पमें शिल्पविद्याका चरमोत्कर्ष दिखलाया गया है। यह स्थान ज्युकसिस (Zeuxis), पारहासयस और एपेलिस आदि भुवनविख्यात चित्रकारोंकी जन्मभूमि है। आइयोनियाके शिल्पियोंने शारीर-विद्या (*Anatomy*)-शास्त्रको अच्छी तरह पढ़ कर चित्रकलामें उसका अपूर्व समावेश किया है। ये चित्र-शिल्पिगण जिन सब प्रसिद्ध आदर्शोंसे मानवीय चित्रविद्याके अपरूप विकाशका सम्पादन कर गये हैं उसकी आज भी अच्छी तरह समालोचना करनेकी शक्ति मानवजातिमें नहीं है। इन सब शिल्पियोंने मनोविज्ञान (*Psychology*) और शारीर-विज्ञानका ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापन किया था, कि उसका ख्याल करनेसे मानुषीशक्तिको मुक्तकण्ठसे धन्यवाद देना होगा। इन लोगोंने मनोवृत्तिके सामान्य परिवर्त्तनको मर्मर-पत्थर और धातुकी बनी मुद्रामें इस प्रकार दिखलाया है, कि वक्ता और कवि सैकड़ों कण्ठोंसे उसे यदि प्रकाश करना चाहें, तो नहीं कर सकते। स्नेहके साथ प्रेमका पार्थक्य, लज्जाके साथ विनयका तारतम्य, औद्धत्यके साथ अहङ्कारका विभेद और क्रोधके साथ असूयाका विश्लेषण अच्छी तरह दिखलाया गया है। सिजिकस (*Cyzicus*) नगरीकी हेक्टा-मुद्रा भास्कर

और चित्रकलाका अद्‌भुत निदर्शन है, जगत्‌में उसकी उपमा नहीं। मूर्त्तिशिल्पमें आइयोनिया अतुल कीर्त्ति छोड़ गई है।

पाश्चात्य ग्रीक शिल्पशालाके आदर्श पर इटली और सिसलीका मुद्राशिल्प विशेष उल्लेखनीय है। इस विद्यालयके आदर्शोंने केवल कमनीय सौन्दर्यका विश्लेषण करनेमें कोशिश की थी। साइराक्युसका पार्सिफोन केवल विलासविह्वला सुन्दरी बालिकामात्र है। उनके सुन्दर नेत्र किसी मानसिक भावके प्रकाशक नहीं। कृत्रिम सौन्दर्यमें इस स्थानका मुद्राशिल्प अद्वितीय है। इटलीका मुद्राशिल्प बहुत कुछ मध्य ग्रीसके जैसा है। सिसलीका मुद्रासौन्दर्य उस देशके विशाल वैभवका परिचय देता है। सिसलीकी यह ऐश्वर्य-सम्पद् ही उसकी पराधीनताका प्रधान कारण है। कार्थेजियसोंके आक्रमणसे सिसलीने थोड़े ही दिनोंके अन्दर स्वाधीनता-रत्न खो दिया था। ज्येष्ठ दियोनिसियसने भी सिसलीके मुद्रासौन्दर्य पर मोहित हो उस पर आक्रमण कर घोर अत्याचार किये थे। परवर्त्तीकालमें रेजियम नगरके पिथागोरसने शिल्पविद्यामें विशेष ख्याति पाई थी। साइराक्युज और सिजियसकी मुद्रा ही पाश्चात्य शिल्पविभागमें श्रेष्ठ आसनको अधिकार किये हुए हैं।

ग्रीक-मुद्राशिल्पके बाद क्रीट द्वीपका मुद्राशिल्प उल्लेखनीय है। यहां हेलसका ही प्रभाव फैला हुआ था। क्रीटवासी दूसरोंका अनुकरण करके ही मुद्राङ्कित किया करते थे। किन्तु प्राकृतिक पदार्थके चित्रणमें इस स्थानके मुद्राशिल्पने अच्छी उन्नति की थी। इन्होंने मुद्राखण्ड पर देवदेवियोंके चित्रोंके साथ पुष्पपल्लवसे आच्छादित पादपकी अवतारणा की है। इनके शिल्पमें कृत्रिमता बहुत थोड़ी देखी जाती है। अनेक विषयोंमें क्रीटका मुद्राशिल्प मौलिक है।

ग्रीक लोग किस प्रकार ढांचेमें मुद्रा प्रस्तुत करते थे उसे डाक्टर वार्गनने बहुत खोज कर निकाला है। उनका कहना है, कि वह ढाचा ३॥ इञ्च ऊंचे ताम्र या कांसेका बना था। उसका आकार ठीक डमरूके जैसा था। उसकी एक पीठ पर सलौकीय (Seleucid) राजाओंकी मुद्रा और दूसरी पीठ पर ओम्फालस (Omphalos)-की उपविष्ट आपलोकी मूर्त्ति चित्रित होती थी। एक ही समयमें किस प्रकार दोनों काम होता था उसका आज भी निरूपण नहीं हो सका है। रोमकी मुद्रा भी उसी प्रणालीसे प्रस्तुत होती थी। प्रसिद्ध मुद्रातत्त्वज्ञके एखेल (Ekhel) की मुद्राके श्रेणीविभागकी पर्यालोचना करनेसे अनेक रहस्य मालूम हो सकते हैं। उन्होंने स्पेनसे विभाग आरम्भ किया है। पीछे गल वा फ्रान्स और उसके बाद ब्रिटेन है। ये सब मुद्राएं ग्रीक-प्रणालीकी अपकृष्ट अनुकरणमात्र हैं। माकिदनके २य फिलिपकी मुद्रा ही इसका दृष्टान्त है। उसके बाद रोम-साम्राज्यकी रौप्य-मुद्रा उन सब प्रदेशोंमें प्रचलित हुई थी। पीछे स्पेनको ताम्रमुद्राका सर्वत्र प्रचार हुआ। जिस समय आइयोनिया और फोसियाका समुद्र-वाणिज्य चारों ओर फैला हुआ था उस समय हिस्पानियावासी ग्रीक-आदर्श पर मुद्रा प्रस्तुत करते थे। पीछे रोम और कार्थेजका मुद्राशिल्प पुर्त्तगालमें प्रचारित हुआ। ईसा जन्मसे पहले ४थी सदीमें स्पेनमुद्रा पर पनिक प्रभाव दिखाई दिया। उसके बाद बारकिड् राजाओं (Barcide)-के आज्ञानुसार खृ० पू० २३४ से २१० तक स्पेनमें कार्थेजीय मुद्राका प्रचार रहा। अनन्तर स्पेनकी मुद्रामें फिनिकीयगणका प्रभाव दिखाई देता है। वह मुद्रा फिनिकीय मुद्राके समान भारी थी, किन्तु उसका आकार कार्थेजीय मुद्रानुयायी था। प्रत्नतत्त्ववित् सिनेर जोवेल (Senor Zobel)-का कहना है, कि ये सब मुद्राएं पहले स्पेनमें ही प्रस्तुत हुई, पीछे दूसरी जगह इसका अनुकरण हुआ। ईसा-जन्मके २०६ वर्ष पहलेसे लाटिन अक्षरकी रोमक मुद्राका स्पेनमें प्रचार था। इन सब मुद्राओंमें जिस जातिसे मुद्रा बनाई जाती थी उसका नाम अङ्कित है। परवर्त्तीकालकी स्पेन-मुद्रामें दो बैल हल चलाते हुए अङ्कित देखे जाते हैं। किसी मुद्रामें राजकीय अट्टालिका अङ्कित है। किसी किसीमें देशका उत्पन्न द्रव्य खोदा हुआ है। जैसे,—मछली वा अनाजकी सींक, दाखकी लताका समूह आदि।

गालकी स्वर्णमुद्राएं ग्रीकप्रणालीसे बनी हुई हैं। किन्तु सभी रौप्यमुद्राएं स्थानीय मुद्राशिल्पसे अङ्कित हैं। किसी किसीमें स्पेनका प्रभाव दिखाई देता है।

मासेलियाके मुद्रातत्त्वमें बहुतसे रहस्य आविष्कृत हुए हैं। मासेलिया वा वर्त्तमान मासेलिस ईसाजन्मके ६०० वर्ष पहले फिनिकियोंका प्रधान वाणिज्य-बन्दर था। एम्बोरिया नामक इसका एक उपनिवेश था। इन दोनों स्थानोंमें मासिलियाकी बहुत-सी मुद्राएं पाई गई हैं। उनमेंसे कुछ फोनि और 'ओवल' (Obal) मुद्राकी तरह थीं। माकिदनाधिपति फिलिपके शासनकालकी मासिलियाकी मुद्राएं बहुत सुन्दर और शिल्पयुक्त थीं। इन सब मुद्राओंके सम्मुख भाग पर अलिभके पत्तोंसे ढका हुआ आटमिसका मस्तक है। किसी मुद्रामें अलिभ-शाखासे अलंकृत इकिसस देवीकी प्रतिमूर्त्ति शोभ रही है।

गालवासी वर्वरोंने ग्रीस और रोमके सोने चांदी लूट कर उनसे नाना प्रकारकी मुद्रा बनाई थी। ये सब मुद्रा ग्रीक-प्रणालीका अपकृष्ट अनुकरणमात्र है। इनमें जिन सब स्वर्णमुद्रा पर दुर्भाग्य भासिञ्जिटोरिक्स (Vercingitorix)की प्रतिमूर्त्ति अङ्कित है उनसे अनेक ऐतिहासिक-तत्त्व मालूम हुए हैं। किसी किसी रौप्य-मुद्रा पर हेलभेटियाके राजा आरजिटोरिक्सकी मूर्त्ति (Orgitorix) अंकित देखी जाती है। मुद्राकी दूसरी तरफ स्वोजलैंण्डके भालूकी मूर्त्ति है। यहां एक समय पीतलकी मुद्राका बहुत प्रचार था। लायन (Lyon) नगरकी यज्ञवेदिका (Altar) अनेक मुद्राओंकी पीठ पर खोदी गई थी। निमौसस (Nimausus)-की मुद्रा मिस्रजयकी घोषणा करती है। इस समयकी मुद्रा पर विजय-लक्ष्मीकी बगलमें कुम्भीर और ताड़का पेड़ अङ्कित है। किसी किसी मुद्रा पर हरिणके दो पांव शोभते हैं।

प्राचीन ब्रिटेनकी मुद्रा गालकी अनुकरण मात्र है। पहले फिनिकीय द्वारा ही ग्रीकमुद्राका ब्रिटेनमें प्रचार हुआ। मुद्रातत्त्वज्ञ इभान्स (Evans)का कहना है, कि ईसाजन्मके २०० वर्ष पहलेसे लगायत १५० वर्षके भीतर ब्रिटेनमें मुद्रा तैयार होती थी। सबसे पहले कोण्टप्रदेशमें मुद्रा प्रस्तुत हुई। पीछे रोमकोंके साथ जब युद्ध होता था उस समय उत्तर और पश्चिम प्रदेशमें उसका प्रचार हुआ। अनन्तर यार्क, लिङ्कलन, नारफोक आदि स्थानोंमें यह प्रचारित हुई। केम्ब्रिज, हाण्टिङ्गडन, बेडफोर्ड, वकिंहम, अक्सफोर्ड, ग्लष्टर और समरसेट आदि विभागोंमें भी धीरे धीरे मुद्राका प्रचार हुआ। ब्रिटेनकी प्राचीन स्वर्णमुद्रा माकिदनपति फिलिपकी मुद्रा जैसी है। १ली सदीमें पहले पहल ब्रिटेनमें अक्षरालंकृत मुद्रा प्रचलित हुई। पीछे चांदी, पीतल और टीनकी मुद्रा भी चलने लगी। ब्रिटेनके निकटवर्त्ती द्वीपोंमें बिलन (Billon) नामक एक *मिश्र धातुनिर्मित प्राचीन मुद्रा देखनेमें आती है।* यह गालदेशकी मुद्राके ढंग पर बनी हुई है। अक्षरयुक्त किसी मुद्रा पर भिरुलेलियम नगरका उल्लेख देखा जाता है। प्राचीन ब्रिटेनके अधिपति कमियस (Commius) का नाम मुद्रा पर अङ्कित है। अनक्यरा (Ancyra) अक्षरमें उत्कीर्ण टुबनोमेल्लानसका उल्लेख है। क्युनो-बेलिनसका नाम और बहुत सी मुद्रा पर सेक्सपियर-वर्णित सिम्बेलीन (Cymbelin) तथा उनके भाई इपाटिकस और उनके पिता टासियोभानसका नाम किसी किसी मुद्रामें पाया जाता है। टासियोभानसने बहुत दिन राज्य किया था। भिरुलेनियममें उनकी राजधानी थी। इपार्टिकसकी मुद्रा अधिक संख्यामें नहीं मिलती। किन्तु क्युनोबेलिनसने बहुत दिन राज्य किया था। कलचेष्टर (Colchester) में उनकी राज-धानी थी। इनके समयकी मुद्रा बहुत मिलती है। स्वर्णमुद्राओंमें ब्रिटेनीय शिल्पका आदर्श है। किन्तु चांदी और पीतलकी मुद्रामें उन्नत रोमक शिल्पका उत्कृष्ट निदर्शन अङ्कित देखा जाता है। ४३ ई०में क्युनोबेलि-नसकी मृत्यु होनेसे स्वतन्त्र ब्रिटेन मुद्रा लुप्त सी हो गई। उनके लड़के आभमिनियस, टगोडुदुनस और विख्यात काराक्टसने कुछ समय राज्य किया था, किन्तु उन लोगोंके समयकी कोई मुद्रा नहीं मिलती। रानी आइसेनीकी मुद्रा ५० ई० तक चली थी। मुद्रा-तत्त्वज्ञ इभानस साहबने उसके बहुतसे प्रमाण संग्रह किये हैं।

इसके बाद प्राचीन इटली मुद्रा उल्लेखनीय है। खृ० पू० ६ठी सदीसे ले कर जुलियससीजरके शासनकाल तक ५०० वर्ष प्राचीन इटली मुद्राका आदर्श देखा जाता

है। रोमक-साम्राज्यकी पहलेकी मुद्रा ही बहुतायतसे मिलती है। इटलीकी मुद्राएं दो श्रेणीमें विभक्त हैं, पहली इटलीकी और दूसरी ग्रीक मुद्राके आकार की। किन्तु विभिन्न आदर्शकी अनेक मुद्राएं स्थानविशेषमें पाई जाती हैं। प्रकृत इटलीकी मुद्रा सोने, चांदी और पीतलकी बनी है। इनमें सोनेकी मुद्राका कम प्रचार है। चांदीकी मुद्रा ही सर्वत्र प्रचलित है। अधिकांश इटली मुद्रा ग्रीक आदर्श पर बनी है, फिर कितनी मुद्रामें पौराणिक चित्र भी देखे जाते हैं। उत्कीर्ण लिपिकी भाषा लाटिन, अस्कान और एट्रस्कान है। इटलीमें समुद्रतोरवर्त्ती इद्रियाकी बहुत-सी देशी मुद्रा पाई जाती है। उनसे सहजमें अनुमान किया जाता है, कि उस समय यह स्थान वाणिज्यका प्रधान केन्द्र था। ईसाजन्मके ३०० वर्ष पहले इद्रिया नगरी वाणिज्यके लिये बहुत मशहूर हो गई थी। इटलीको मुद्रामें बहुत दिन तक 'इसग्रोस'का चिह्न देखा गया। पहले वह रोमक-पौंड वा लाइब्राकी जैसी थी। रोमककी मुद्राका वजन १० औंस तक था। प्रकृत इटलीकी मुद्रा उत्तर और मध्य इटलीमें अधिक संख्यामें देखी जाती है। किन्तु समुद्रोपकूलवर्त्ती काम्पिनिया, कालेब्रिया, लुकानिया और ब्रुटियाई आदि समृद्धिशाली नगरोंमें ग्रीक-मुद्रा ही बहुतायतसे पाई गई है।

इटलीकी मुद्रामें इद्रियाके एपुलोनिया नामक नगरकी मुद्रा ही विशेष चित्ताकर्षक है। पिरहासके युद्धके बादकी मुद्रामें हाथीकी प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है। लाटियमकी मुद्रा भी अत्यन्त सुन्दर है। सामनियम प्रदेशकी मुद्रा बहुत दिनों तक जातीय आदर्श पर बनती रही थी। खृ० पू० ९० ई०में सामाजिक मार्सिक-युद्धमें विभिन्न प्रदेशके शासनकर्त्ताओंने साधारणतन्त्रके शासनको अग्राह्य कर नई मुद्रा चलाई थी। इन सब मुद्राओंके एक पार्श्वमें इटलीवासीकी और दूसरे पार्श्वमें योद्धाओंकी मूर्त्ति हैं। ये सब योद्धा बधके लिये यूप-काष्ठमें बंधे हुए सूअर और बैलके सामने शपथ खा रहे हैं।

ग्रीक-शासनाधीन इटलीके कुछ प्रदेश मुद्राशिल्पकी चमत्कारिताके लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। क्युमिया और न्युपालिसकी मुद्रा द्वारा उस समयकी बहुतसी बातें जानी जा सकती हैं।

इटलीवासी ग्रीकोंने मुद्राशिल्पमें विशेष उन्नति की थी। न्युपालिसमें बहुतसी रौप्यमुद्रा पाई गई हैं। उसके एक पृष्ठ पर 'साइरेन' पार्थिनोप अङ्कित है। कहीं कहीं इटलीके ग्रीकोंके प्रिय देवता होरा और पल्लास (*Hera of Pallas*)-की मूर्त्ति अङ्कित देखी जाती है। काम्पेनियाकी मुद्रा इसी ढंग पर बनाई गई है। उस समयकी पीतलकी मुद्राएं आज भी ज्योंकी त्यों बनी हैं। कालेब्रियाकी ग्रीकमुद्रा शिल्प-सौन्दर्यमें अतुलनीय है। समृद्धशाली टरेण्टमका मुद्रागौरव पृथ्वीमें अद्वितीय है। वैसा मनोमोहन शिल्पनैपुण्यसे भरा चित्र पृथिवीके किसी स्थानमें दिखाई नहीं देता। साइराक्युजके सिवा इसका उपमास्थल ढूढ़नेसे भी नहीं मिलता। टरेण्टमकी स्वर्णमुद्रा देखनेसे आंखें तृप्त हो जाती हैं। उसमें जो लिपिमाला उत्कीर्ण है वह मरकत पंक्तिको तरह शोभती है। किसी किसी स्वर्णमुद्राकी अक्षरमाला असली मणिमालासे अलंकृत है। उसके शिल्पी शत कण्ठसे धन्यवाद देनेके योग्य हैं। वर्ण-विचित्रता करनेमें भी शिल्पीने अद्भुत कौशल दिखलाया है। मुद्रातलमें अलौकिक लावण्यशालिनी देवाङ्गनाएं दिव्य सौन्दर्यमें मनुष्यके वैहारिक शिल्पकी पराकाष्ठा स्वरूप विराजमान हैं। दूसरे तलमें नाना पौराणिक चित्रोंका प्रतिरूप है। किसी मुद्रामें पोसिडोन (Poseidon)-के लड़के टारस उद्दाम यौवनके बलसे दृप्त हो रथरश्मि संयत कर रहा है। कहीं वह तिमि नामकी मछली पर चढ़ कर बड़ी तेजीसे घूम रहा है। किसी मुद्रामें आसन पर बैठे हुए पिता पोसिदनकी गोदमें जानेके लिये हाथ बढ़ा रहा है। जो चांदीकी मुद्रा है उसमें तिमिङ्गिल पर बैठी हुई तरासमूर्त्ति शोभा दे रही है। किसीमें एक नवीन युवक टेकुआ (Spindle) हाथमें लिये खड़ा है। कुछ मुद्राओंमें घोड़े पर सवार व्यक्ति नाना रंगोंमें चित्रित है। उसे देख कर निर्माताको शतकण्ठसे धन्यवाद देना चाहिये। घोड़े पर चढ़े व्यक्तियोंकी विविध गतिको देखनेसे सहजमें अनुमान किया जाता है, कि टारेण्टके अधिवासी घोड़े पर चढ़नेमें बड़े पटु थे और प्रकाश्य क्रीड़ाक्षेत्रमें वे सभी जगह जयलाभ करते थे।

लुकानियाकी मुद्रामें एक तरफ हिराक्लिस और दूसरी

तरफ पल्लासका मस्तक है। किसी किसीमें नेमियन सिंहके साथ युद्ध करनेको तैयार है। इन सब शिल्पोंमें शिल्पियोंकी अप्रतिम निपुणता देखी जाती है।

मेटापण्टम नगरकी मुद्रामें अनेक प्रकारके प्राकृतिक पदार्थोंका चित्र देखा जाता है। किसीमें गेहूं के डंठल अङ्कित हैं। पहले इसके ऊपरी भागमें अनाजके सींक अङ्कित रहती थीं, पीछे जब टारेण्टके अनुकरण पर इसके ऊपरी भागमें देवदेवियोंकी प्रतिमूर्त्ति चित्रित होने लगी, तब अनाजकी सींकोंको निचले भाग पर स्थान दिया गया। देवदेवियोंके मध्य पार्सिफोन, कङ्कर्डिया और हाइजिया प्रधान हैं। अलावा इसके नाना प्रकारके सुरम्य काल्पनिक चित्र भी अंकित देखे जाते हैं।

प्राचीन साइवारिस नगर विलास-वैभवके लिये बहुत प्रसिद्ध था। इस नगरकी अनेक प्रकारकी विचित्र कारुकार्ययुक्त मुद्रा आविष्कृत हुई है। ईसाजन्मसे ५१० वर्ष पहले उक्त नगर क्रोटन द्वारा तहस-नहस कर डाला गया। पीछे वह स्थान आथेन्स-वासियोंका उपनिवेश-स्वरूप हो गया। ईसाजन्मसे ४४१ वर्ष पहले इसका नाम थुरियम था। इस देशके पेरिक्लिसके शासनकालमें बहुत सी आश्चर्य मोहरें आविष्कृत हुई हैं। प्रत्येक मोहरके ऊपरी भाग पर पल्लासका मस्तक अंकित है। किन्तु इसका शिल्पसौन्दर्य मध्य-ग्रीसके जैसा है। पल्लासके मुकुटकी बनावट देखनेसे विस्मित होना पड़ता है। मुकुटके ऊपर सागरपिशाच सिल्ला (Seylla)-की मूर्त्ति चित्रित है। चित्रनैपुण्यकी पर्यालोचना करनेसे वह फिडियसका कल्पनाप्रसूत-सा प्रतीत होता है। पश्चाद्भागमें एक वप्रक्रीड़ापरायण वृषकी मूर्त्ति है।

फोसियाके उपनिवेश भेलिया-नगरमें विविध मुद्राएं पाई गई हैं। जब (५४४ खृ० पू०) पराक्रान्त पारसिक जातिने भेलियामें घेरा डाला, उस समय यहांके अधिवासी वैदेशिक पराधीनताको अस्वीकार कर हिस्पानिया आदि देशोंमें भाग गये थे। भेलिया नगरसे जो प्राचीन रुपये और मोहर पाई गई हैं उनमें एशियाखण्डका प्रभाव दिखाई देता है। उनके एक तरफ एक सिंह अपना कराल मुंह बाये हुए हरिणके बच्चेको निगलना चाहता है और दूसरी तरफ पल्लासकी मूर्त्ति है। सिंहाङ्कित मोहर प्रत्नतत्त्वविदोंके मतसे एशियाखण्डकी मुद्राके ढंग पर बनी हुई हैं। भेलियाकी मोहरमें जो सिंहमूर्त्ति अङ्कित है उसमें भयङ्कर भावकी अपेक्षा सौन्दर्यकी प्रधानता देखी जाती है। आइयोनियामें शिल्पियोंके हाथसे सिंहका विक्रम सौन्दर्यमें परिणत हो गया है। इटलीमें सबसे पहले ब्रुटाइ लोगोंने ग्रीकमुद्रा प्रस्तुत की थी। उनकी मोहरके एक भागमें पोसिदन-मूर्त्ति और दूसरे भागमें दरयावी घोड़े पर बैठे हुए आम्फिट्राइटकी मूर्त्ति अङ्कित है। रौप्यमुद्रा पर पोसिदन और आम्फिट्राइटके मस्तक दोनों ओर खोदे हुए हैं। कलोनियाकी मुद्रा पर तरह तरहके पौराणिक चित्र तथा हरिणकी प्रतिमूर्त्ति है। इन सबसे ग्रीक-धर्मशास्त्रका बहुत कुछ रहस्य जाना गया है। इस मुद्रामें हरिणके बच्चेका सुन्दर नेत्र और चकित भाव देखनेसे शिल्पका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। क्रोटनकी मुद्रामें त्रिशूलाङ्कित राजदण्डकी प्रतिमूर्त्ति तथा सम्मुखभगमें जियसका वाहन ईगलपक्षी है। किसी किसी मुद्राके एक भागमें हिराक्लिस दिव्य-आसन पर और दूसरे भागमें त्रिपद आसन पर पाइथन बैठे हुए हैं। त्रिपदके नीचेसे आपलो अलक्षित भावमें आपलो पाइथनके प्रति तीर फेंकने पर उद्यत हैं। यह चित्रनैपुण्य देखनेसे विस्मयसागरमें गोता खाना पड़ता है। फिर किसीमें पार्थिननके थिसियसकी जैसी मूर्त्ति है, दूसरे भागमें लासिनिया हीराकी प्रतिमूर्त्ति चित्रित है। लोक्रि नगरकी पुरानी मोहर और रुपयेमें जो पौराणिक चित्र अङ्कित है आज तक उसका कोई तत्त्व आविष्कृत नहीं हुआ है। इसके पश्चात् भागमें आइरिन अपूर्व त्रिलासभङ्गी पर तथा सम्मुख भागमें रोमा सिंहासन पर बैठे हुए हैं और पिष्टिस उन्हें मुकुट पहना रहे हैं। इस विषयका ऐतिहासिक निदर्शन आज तक अज्ञात है। पान्दोसिया नगरके रुपये और मोहरमें नगराधिष्ठात्री अप्सरा पाण्डिसाकी लावण्यमयी मूर्त्ति तथा दूसरे भागमें क्राथिस नदीका उज्ज्वल दृश्य है। किसीमें लासिनिया हीराका और दूसरे भागमें पानकी प्रतिमूर्त्ति है। रेजियम नगरकी मुहरें सामियान आदर्श पर बनी हैं। दुर्द्धर्ष शासनकर्त्ता आनाक-जिलसने ई०सन् ४९४-४७६ वर्ष पहले

तक रेजियममें राज्य किया था। इन सब मुहरोंमें वह स्मृतियां संरक्षित रह कर अतीत ऐतिहासिक तत्त्वका परिचय देती हैं। अनाकज़िलसकी मुहरोंमें आलिम्पिक विजयकहानी चित्रित है। उसके एक पार्श्वमें जयचिह्न ज्ञापक गदहेको गाड़ी और दूसरे पार्श्वमें भागते हुए खरहेकी मूर्त्ति अङ्कित है। खरहा पान-देवताका वाहन समझा जाता है। टेरिनाकी रौप्यमुद्रा इटलीकी सभी मुद्राओंसे सौन्दर्य और शिल्पोत्कर्षमें अतुलनीय है। इसके एक ओर दिव्य लावण्यवती अप्सराकी मूर्त्ति और दूसरी ओर वही लावण्यवती रमणी पक्षशालिनी परीकी तरह चित्रित है। बहुतसी मुद्राओंमें उनकी विविध गति और विलासभङ्गी अङ्कित हैं। उनमें मुद्राशिल्पका चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। किसीमें आथेन्स नगरीकी विजयलक्ष्मी-सी मूर्त्ति है। इसका शिल्पसौन्दर्य आश्चर्यजनक है। विजयलक्ष्मीके चारों ओर फलके बोझसे झुकी हुई ओलीभकी डाली अकृत्रिम भावमें चित्रित है।

सिसली द्वीपकी मुहरादि ग्रीक आदर्श पर बनी हैं। पहले जब हेलेनिक और कार्थेजीय औपनिवेशिक दल सिसली द्वीपमें रहता था उस समय उनकी अवस्था उन्नत थी। दोनों ही उपनिवेशोंमें ग्रीकमुद्राका प्रचार था। प्युनिक मुहरादि फिनिकीयके ढंग पर बनी हैं, किन्तु वजनमें इजाइना देशके समान है। खृ० पू० ६ठी शताब्दीसे ले कर रोमक-आक्रमण तक सिसलीकी मुद्रा पाई जाती है। खृ० पू० २१२के बादकी मुद्रा नहीं मिलती। मालूम होता है, कि प्रसिद्ध कार्थेजीय आक्रमणसे इस शिल्प पर भारी धक्का पहुंचा था। इस समयकी मुहरें शिल्प-नैपुण्यमें साइराक्यूसके समान हैं।

सिसलीकी सोने और पीतलकी मुद्रा शिल्पोत्कर्षमें अनुपम है। अक्षरमालाको उत्कीर्ण करनेमें शिल्पीने कमाल कर दिया है। सिसलीवासी-राजाओंने आलिम्पिक क्षेत्रमें जो जयलाभ किया था, बहुत-सी मुद्राओंमें उसका जाज्वल्यमान निदर्शन दिखाई देता है। विजयचिह्न बतलानेवाली मुद्राके तलमें चार घोड़ोंकी गाड़ी, घोड़े वा रथ आदि अंकित है। उससे चित्रकरका असाधारण नैपुण्य दिखाई देता है। लक्ष्यस्थलकी निर्दिष्ट सीमा पर पहुंचनेके पहले बहुत तेज चलनेवाले घोड़ोंका जैसा परिवर्त्तन होता है वही स्वाभाविक भावमें चित्रित है। पिण्डारकी आलिम्पिक कवितावली पढ़नेसे सिसलीकी विजयकाहिनी सत्य-सी प्रतीत होती है। पिण्डारके वर्णनसे मालूम होता है, कि सिसलीवासियोंने ओलिम्पिक क्षेत्रमें घुड़दौड़में छः बार विजय प्राप्त की थी। आरिष्टटलके वर्णनमें इस घटनाकी सचाईमें संदेह करनेका कोई कारण नहीं रह जाता। उस समयके सिसलीवासिगण विजयोल्लाससे उन्मत्त हो धर्मविश्वासके मूलमें कुठाराघात न कर सके। क्योंकि, कई जगह सारथीके बदलेमें स्वदेशके अधिष्ठात्री देवताका चित्र अङ्कित है। इनमेंसे होमरके इलियड काव्यकी नायक-नायिकाका अधिकांश मुद्रातलमें चित्रित है। किसी किसी मुद्रामें सारथीकी प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है। अन्तरीक्षमें नाइस देवी विजेताके गलेमें माला पहना रही है। कुछ मुद्राओंमें प्रकृतिपूजाका उज्ज्वल दृष्टान्त दिखाई देता है। उनमें वन और जलदेवियां आश्चर्य निपुणताके साथ अङ्कित हैं। किसीमें आसुरीय आदर्श पर मनुष्यशिरस्क वृषकी मूर्त्ति अङ्कित है। किसीमें फिनिकीय आदर्श पर छोटा बछड़ा, जिसके सींग निकल रहे हैं, शोभा देता है। किसीमें कुत्तेकी मूर्त्ति चित्रित है। उसके दूसरे पार्श्वमें सौन्दर्यशालिनी अप्सरायें अङ्कित हैं। देवमूर्त्तिके मध्य पल्लास और पासिफोनकी मूर्त्तिको चित्रित करनेमें अप्रतिम शिल्पकौशल दिखाया गया है।

साइराक्युसकी मुद्रा ही ग्रीकशिल्पका चरमोत्कर्ष है। वैहारिक शिल्पका ऐसा उज्ज्वल उदाहरण किसी भी देशमें नजर नहीं आता। एशिया-माइनरवासी शिल्पियोंका गाम्भीर्य और क्रीतद्वीपका माधुर्य, साइराक्युसके मुद्राशिल्पमें एकीभूत हो कर अपूर्व भाव दिखा रहा है। उन सब मुहरों पर नीरव भाषामें अतीत इतिहासकी विचित्र घटनाओंका उल्लेख है। स्वाधीनताजननी वाणिज्य-वैभवशालिनी शिक्षा, सभ्यता और विलासकी केन्द्रस्वरूपा समृद्धिसम्पन्ना साइराक्युस नगरीका उत्थान और पतन मुद्राशिल्पमें चिरस्मरणीय हो रहा है। अधिवासियोंने स्वदेश-वात्सल्यके साधुव्रतसे प्रणोदित हो किस प्रकार कार्थेज और आर्थेन्सके अत्याचारसे जन्मभूमिकी रक्षा की थी, मुहर ही उसका

साक्ष्य देती है। करिन्थके आर्कियसने ईसोसन् ७३४ वर्ष पहले साइराक्युस नगरकी प्रतिष्ठा की। खृ० पू० ६ठी सदीमें यहां प्राचीन प्रणालीके अनुसार सबसे पहले रौप्यमुद्रा बनाई गई। उन सब मुद्राओंमें हेलेनिक विजयकाहिनीका विवरण अङ्कित है। गेला नगरीके अत्याचारी शासनकर्त्ता गेलोनने ईसाजन्मके ४८८ वर्ष पहले ओलिम्पिक घोड़ोंके रथ चलानेमें विजय प्राप्त की थी। उस समय कार्थेजीयोंने तथा जरक्सिसके सैन्य-दलने सिसलीको जीता और प्रतीच्य मालमिस-हिमेरा-युद्धमें (खृ० पू० ५८० ई०में) सिसलीवासीको परास्त किया। साइराक्युसकी मुद्रामें ये सब घटनाएं उज्ज्वल अक्षरोंमें चित्रित हैं।

कुछ मुद्राओंके तलमें अश्वरथ चलानेकी विविध गति-विचित्रता अङ्कित है। जयलक्ष्मी नाइसदेवी अंतरीक्षसे पुष्पमाला विजेताके गलेमें पहना रही हैं। युद्धके वादकी मुद्राओंमें अश्वरथके नीचे एक सिंहमूर्त्ति विराजित है। शेषोक्त मुद्राओंमें गेलोनकी पत्नी दिमारितकी काहिनी वर्णित है। गेलोन द्वारा कार्थेजीयोंके परास्त होने पर उन्होंने निरुपाय हो गेलोन-महिषी दिमारितकी शरण ली थी। दयाशीला दिमारित कार्थेजीयों-की मुक्तिके लिये गेलोनसे क्षमा प्रार्थना की थी। इस स्मरणीय घटनाके पुरस्कारस्वरूप कार्थेजीयोंने दिमारितको एक सौ सुन्दर सिक्के दिये थे। उन्हीं सब सिक्कोंके अनुकरण पर रानी दिमारितने अपने देशमें चांदीका सिक्का चलाया। रानीके नामानुसार उस सिक्केका नाम 'दिमारिता' रखा गया। इन सिक्कोंके एक भागमें अलिभपल्लवसे अलंकृत नाइस वा पल्लास तथा दूसरे भागमें सिंह और चार घोड़ोंकी गाड़ी है। हिमेराके युद्ध और गिलोनके मृत्युकालके अनुसार यह सहज ही अनुमान किया जाता है, कि वे सब मुद्राएं ईसाजन्मसे ४७८ पहले बनी थीं। इस समयकी मोहर और रुपयेमें मिस्री-शिल्पका अधिक प्रभाव दिखाई देता है।

गिलोनकी मृत्युके वाद उनके भाई हिरोणने जो सब मुद्रा चलाई उनमें एक बड़ी राक्षस मूर्त्ति अङ्कित है। राक्षस युद्धमें पराजित हो कर अवसन्न भावमें गिरा हुआ है। उसे देख कर प्रत्नतत्त्वज्ञोंने स्थिर किया है, कि हिरोणने (४७४ खृ० पू०) कुमिके पद्रस्कानोंको परास्त कर सामुद्र वाणिज्य पर एकाधिपत्य लाभ किया तथा सागरतीरवर्त्ती जातियों पर प्रधानता स्थापन की। मुद्रामें उसका चित्र दिया गया है। गिलोन ओलिम्पिकक्षेत्र-में चार घोड़ोंकी गाड़ी चलानेमें मीर हुए थे। हिरोणने भी पाइथियन क्रीड़ामें घुड़दौड़में चार घोड़े जीते थे। मुद्रा देखनेसे वह साफ साफ समझमें आता है। हिरोण-के समयसे प्राचीन प्रणालीका मुद्रा-प्रचार लोप हो गया।

इसके वाद मोहरोंके एक भागमें युवती लावण्यमयी ललनामूर्त्ति और दूसरे भागमें तेज दौड़नेवाले घोड़ोंका चित्र है। गिलोनवंशके अन्तिम राजा सिवुलसके राज्य-कालमें (४५६ खृ० पू०) राजतन्त्रशासनप्रणालीके बदले साधारण तन्त्रशासनप्रणालीका प्रचार हुआ। गिलोन और हिरोणके शासनकालमें साइराक्यूस सभी विषयों-में उन्नतिकी चरमसीमा पर पहुंच गया था। साधारण तन्त्रकी प्रथमावस्थामें जो सब मुहरें प्रचलित हुई थीं उनमें युवती लावण्यमयी ललनामूर्त्ति अङ्कित है। इस समय सोने और चांदी दोनों प्रकारकी मुद्राका प्रचार था। दियोनिसियसके अत्याचारके समय तथा उसके उत्तरा-धिकारियोंके शासनकालमें साइराक्यूसकी ज्योति बुझते हुए चिरागकी तरह एक बार उजाला दे कर सदाके लिये बुझ गई थी। प्रभूत ऐश्वर्यशाली दियोनिसियाके अक्षय धनभंडारकी स्वर्णराशिमें आश्चर्य शिल्प दिख-लाया गया था। दियोनिसियस और उनके वंशधरोंके अत्याचारसे उनका राजत्वकाल थोड़े ही समयमें शेष हो गया। ३४४ खृ० पू०में साइराक्यूसवासियोंने करीन्थवासी टाइमोलिनकी सहायता मांगी थी।

टाइमोलिनकी परहितैषणा तथा विजय-विवरण उस समयकी मोहरमें अङ्कित है। इस समयकी मोहरें करिन्थकी जैसी हैं। उनमें मल्लास और पेगाससकी मूर्त्ति चित्रित है। साइराक्यूसके दुर्दान्त अत्याचारी एगाथक्लिसने फिरसे साधारणतन्त्रकी शासनप्रणालीमें कुठाराघात किया। उसके समय मोहरोंमें भी बहुत हेर-फेर हुआ। मोहरोंमें उनका नाम खोदा हुआ

है। पीछे हिकेतस (२८७-२७६ ख० पू०) तथा एपिरसके राजा परिहास (२७८-२७६ खृ० पू०)-के शासनकालमें भी बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ। अलेकसन्दरके भारतवर्षसे स्वदेश लौटने पर मोहरोंमें प्राच्य प्रभावका विस्तार हुआ। जातीय देवताके बदलेमें परिहासने मोहर और रुपयेमें अपनी मूर्त्ति अङ्कित की। प्राच्यप्रथानुयायी परिहासने एक भागमें अपनी मूर्त्ति और दूसरे भागमें अपनी रानी फिलिस्तिसकी अनुपम लावण्य प्रतिमूर्त्तिको चित्रित किया।

सिसलीकी अन्यान्य मोहरोंमें अधिष्ठात्री देवी सिसिलियाका चन्द्रमाके समान मुखमण्डल उल्लेखयोग्य है। किसी किसीमें एटना अथवा केटनाकी प्रतिमूर्त्ति है और दूसरे भागमें आग्नेय-पर्वताधिष्ठाता देव साइलेनस और वज्रपाणि जियसकी मूर्त्ति शोभती है। एग्रिजेण्टम नगरकी मुद्रा कार्थेजियोंके अधिकार तक प्राचीन प्रथासे बनाई गई। इन सब मुद्राओंमें ईगल पक्षी और सांप अङ्कित है। किसी किसीमें ईगलपक्षी अपनी चोंच फैला कर एक शशकको निगलने पर प्रस्तुत है। दूसरे भागमें विजयशकटका चित्र चित्रित है। फिर किसी किसीमें स्वदेशीय नदीके अधिष्ठात्री देवता अग्रागासकी मूर्त्ति और दूसरे भागमें ईगलपक्षी है। पिण्डार, भर्जिल, ग्रेमियस आदि सुप्रसिद्ध कवियोंने इस विषयको अच्छी तरह प्रमाणित किया है।

कामारिणा नगरकी मुद्रा शिल्प-सौन्दर्यके लिये बहुत प्रसिद्ध है। पिण्डारकी ओलिम्पिक कवितावलीकी ५वीं कवितामें इसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। इन सब मोहरोंके एक भागमें वर्मके ऊपर रखा हुआ मुकुटभूषण और दूसरे भागमें दो पदत्राण तथा उसके बीचमें हस्ततलकी छोटी प्रतिकृति है। किसीमें सिंहचर्मावृत हिराक्लिसकी और दूसरी तरफ विजयी अश्वारोहीकी प्रतिमूर्त्ति है। जलदेवताको दो सींगवाले एक युवककी तरह अङ्कित किया गया है। उनके बालोंसे जल टपक रहा है। प्रवाहिणी हिपारिस स्वाभाविक शोभामें चित्रित है। मुद्राके दूसरे भाग पर बड़े बड़े पंखवाले कलहंसकी पीठ पर चढ़ कामारिणा देवी तरङ्गसंकुला हिपारिस पार कर रही हैं। कामारिणा घूंघटको अलग कर बांह फैलाती हुई पालकी तरह खड़ी है। हंस धीमी चालसे नदीमें तैर रहा है। शिल्पीकी कारीगरी अतुलनीय है। गेला नगरीकी मुद्रा पर मनुष्य शिरस्क सश्रृङ्ग वृषमूर्त्ति और दूसरे भागमें आपलो तथा विजयशकटकी प्रतिकृति है। किसी किसी मुद्रामें नरशिरस्क वृषके चारों ओर तीन मछलीकी मूर्त्ति है। दूसरे भागमें घोड़ेकी गाड़ीमें पुष्पमाला हाथमें लिये नाइसदेवी दण्डायमान है। हिमेराकी मुद्राएं खृ०पू० ६ठी शताब्दीके पहलेकी है। उसकी एक पीठ पर मुर्गा और दूसरी पीठ पर एक सुन्दरी अप्सरामूर्त्ति अङ्कित है। एक ओर झरना वह रहा है और दूसरी ओर सिंहके मुखसे जलधारा वह रही है। किसी मुद्राके एक भागमें आपलो और दूसरे भागमें विजयशकटके नीचे सिंहकी प्रतिकृति है।

पानर्मस नगरकी मुद्राएं बहुत सुन्दर है। इसमें बहुत कुछ मिस्रका प्रभाव देखा जाता है। सेजेष्टा नगरीकी मुद्राके एक भागमें नगराधिष्ठात्री सेजेष्टा तथा दूसरे भागमें एक शिकारी कुत्तेकी मूर्त्ति देखी जाती है। किसी मुद्राके सम्मुख भागमें पार्सिफोन सारथीके वेशमें तथा पश्चाद्भागमें दो कुत्तोंके साथ एक शिकारीका चित्र है।

कार्थेजियोंने प्रधानतः अफ्रिका, सिसली और स्पेन इन तीनों स्थानोंमें मुद्रा प्रस्तुत की थी। कार्थेजीय मुद्राके एक भागमें तालवृक्ष और दूसरे भागमें अश्वमुण्ड है। मिस्री और ग्रीक-मुद्राशिल्पके मेलसे बहुत-सी मुद्रायें अङ्कित हैं। सिसलीके पान्तिकेपियम नगरकी मुद्राके एक भागमें पान (*Pan*) देवताका मस्तक तथा दूसरे भागमें ईगलपक्षीकी मस्तकयुक्त सिंहकी आकृति है।

मिसिया नगरकी मुद्राके सम्मुख भागमें नरमुण्ड और पश्चाद्भागमें मछली खाने पर तैयार ईगलपक्षी है। थ्रेस नगरमें ईसाजन्मसे पहले ५वीं शताब्दीकी बहुत-सी मुद्रायें पाई जाती हैं। इन सब मोहरोंमें पारसिक मुद्राशिल्पका प्रभाव दिखाई देता है। थ्रेसकी अधिकांश मोहर माकिदनकी तरह है। फिनिकीय शिल्पका अनुकरण कई जगह देखा जाता है। बहुत-सी मुहरों और रुपयोंमें हार्मिस (*Hermes*)का विराटवदन तथा दूसरे भागमें ईगलसी मुंहवाली सिंहमूर्त्ति हैं। किन्तु प्रायः सभी मुद्राओंके

पश्चाद्भागमें एक एक बकरेका बच्चा अङ्कित देखा जाता है। बाइजण्टियमकी मुद्रामें डलफिन मछलीके ऊपर वृष मूर्त्ति है। दूसरे भागमें चतुष्कोण सुन्दर शिल्पचातुर्य्ययुक्त सरोवर है। किसीमें फिनिकीय ढंग पर अश्वमुण्ड और दाखका खेत देखा जाता है। किसीमें आश्मीलतासे अलंकृत मूंछ-दाढ़ीरहित दियोनिसियस-की मूर्त्ति है। पटालस और पेरिन्थस नगरकी मुद्राकी बनावट अतुलनीय है। इस श्रेणीके मध्य आन्तोनियस पायस, सेभारस और काराकेल्ला आदि रोमक-सम्राटों-का कीर्त्तिकलाप स्पष्टभावसे चित्रित है। प्रथम न्युथिसके शासनकाल (खृ० पू० ४२४)में जो सब मुद्राएं ढाली गई थीं उनमें बहुत-सी लिपियां उत्कीर्ण देखी जाती हैं। इन लिपियोंमें एशियाखण्डकी शैबिली पूजाका निदर्शन पाया जाता है। शिल्पनैपुण्यमें ये मुद्राएं श्रेष्ठ स्थान पानेके योग्य है। पारसिक शिल्प-के अनुकरण पर एक केण्टर अर्थात् अर्द्ध पुरुष और अर्द्ध अश्वपृष्ठ पर एक लावण्यमयी ललना खड़ी है। परवर्त्ती फिनिकीय भारयुक्त मुद्रामें दियोनिसिका मस्तक देखा जाता है। दियोनिसियसके घुंघराले बालोंको देखनेसे विस्मित होना पड़ता है। दूसरे भाग-में घुटना टेके हुए धनुषमें तीर चढ़ाए हिराक्लिसकी मूर्त्ति है। इन सब मुद्राओंका निर्माणकाल ३५६ २८६ खृ० पू० बताया जाता है। शिल्पनैपुण्य और सौन्दर्य्यमें ये सब अद्वितीय हैं। इस समयकी सोने, चांदी और पीतल तीनों प्रकारकी मुद्रा पाई जाती है।

माकिदन-प्रदेशकी प्राचीन नागरिक और परवर्त्ती कालकी राजकीय मुद्राएं ऐतिहासिक रहस्यसे पूर्ण हैं। वे सब मुद्रा खृ० पू० ६ठी सदीके आरम्भकी बनी हुई हैं। पहले चांदी और पीतलकी मुद्राका, पीछे खृ० पू० ४थी शताब्दीमें मोहरका प्रचार हुआ। ये सब मुद्राएं बहुत कुछ थ्रेससे मिलती जुलती हैं। रुपयेमें फिनिकिया और बाबिलनका विशेष प्रभाव दिखाई देता है। अलेक-सन्दरके शासनकालकी सुरम्य मोहर देखनेसे मुग्ध होना पड़ता है। द्वितीय फिलिपने सबसे पहले मोहर-का प्रचार किया। ई०सन् १५६-१४६के पहलेके रुपये और मोहरमें यहां रोमकाधिपतिका अधिकार देखा जाता है। एकन्थस नगरकी मुद्राएं फिनिकीय आदर्श पर बनी है और उसकी कारीगरी देखने लायक हैं। सम्मुख भागमें एक बैल पर चढ़ाई करनेके लिये उद्यत भयङ्कर सिंहकी प्रतिमूर्त्ति है। चित्रकारने उसमें अपनी अनुपम निपुणता दिखलाई है। इनाइया नगरकी मोहर और रुपयेमें वीर इनियसका मस्तक अङ्कित है। इनियस ट्रय नगरीसे आनकाइसको ढोते आ रहे हैं तथा पश्चा-द्भागमें किउसा आस्कानियसको कंधे पर लिये आ रहा है। ये सब मुद्राएं ५०० वर्ष ई०सन् पहलेकी बनी हैं। इनका शिल्पनैपुण्य अद्भुत है। बार्लिन म्युजियममें ये सब मुद्रा रखी हुई हैं। आम्फिपालिस नगरकी मुद्रामें फिनि-कीय प्रभाव दिखाई देता है। एक भागमें आपलोकी प्रतिमूर्त्ति और दूसरे भागमें भीषणाकृति नारीमूर्त्ति हैं। वृटिश म्युजियममें ये सब मुद्राएं रक्षित हैं। किसी किसीमें चौकोन खेतमें जलते हुए मशालका चित्र है।

"कालकिदीय लीग" द्वारा ३८० खृ० पू०में ओलि-न्थस नगरके टकसाल-घरमें जो रुपये और मोहर ढाली गई थीं उनमें हूबहू फिनिकीय शिल्पका अनुकरण देखा जाता है। सम्मुखमें आपलोकी शान्तिमूर्त्ति और पश्चा-द्भागमें उनकी वंशीका चित्र है। लिट नगरकी मुद्राएं अत्यन्त चित्ताकर्षक है। सामनेमें उपदेवता साटीर एक युवतीके साथ बैठे हुए हैं और पीछेमें ज्यामितिक कौशल-सम्पन्न एक भूलभुलैयाँ है। किसीमें गदहेकी पीठ पर बैठा हुआ शराबका बोतल हाथमें लिये साइलनसकी मूर्त्ति अङ्कित है। दूसरे भागमें सुपक्व दाखोंसे सुशो-भित खेत है। न्युपोलिसकी मुद्राके एक भागमें गर्गनका मस्तक और एक ज्यामितिक खेत है तथा दूसरे भागमें ओलिभपल्लवसे अलंकृत नाइसदेवीकी सुरम्य मूर्त्ति है। आरिष्टटलकी जन्मभूमि अर्थागोरिया नगरीकी मोहर और रुपये देखनेमें बहुत सुन्दर हैं। फिलिपके रुपये और मोहरमें सिंहचर्मावृत मूर्त्ति तथा दूसरी तरफ एक त्रिपदआसन है। पीतलकी मुद्रा पर गदहेकी मूर्त्ति अङ्कित है।

इसके बाद राजमूर्त्तियुक्त रुपये और मोहरका प्रचार हुआ। राजकीय मुद्रामें अश्वारोही वीरकी मूर्त्ति और दूसरी तरफ़ हल जोतनेके तैयार कृषकका चित्र है।

यूती नगरके ग्रीक-राजकी मोहरमें एक ओर एक बैल-गाड़ी और दूसरी ओर त्रिकोणाकार चिह्न है।

माकिदनकी जो मुद्रा पाई गई हैं वह ४९८ वर्ष ई०-सनके पहलेकी है और जरकसिसकी समसामयिक हैं। ये सब मुद्राएं फिनिकीय आदर्श पर बनी हैं। इसके एक ओर घोड़े की पीठ पर सवार एक वीरकी मूर्त्ति है। अलेकसन्दरके समयमें मुद्राशिल्पकी बहुत उन्नति हुई थी। द्वितीय फिलिपके शासनकालमें ही मुद्राशिल्प-का चरमोत्कर्ष देखा जाता है। प्रसिद्ध कवि होरेसने फिलिपके मुहरोंका उल्लेख किया है। इसके एक ओर जियस और दूसरी ओर तालपत्र तथा अश्वारूढ़ वीर-मूर्त्ति अङ्कित है। अलेकसन्दरके शासनकालके प्रारम्भ-में मुद्राकी एक पीठ पर पल्लास और दूसरी पीठ पर जयमालाधारिणी नाइस देवी चित्रित होती थी। अलेक-सन्दर भारतीय ढंग पर मुद्रामें अपनी मूर्त्ति अङ्कित करते थे। उनकी मृत्युके बहुत बाद तक वे सब आदर्श-मुद्रा समझी गई थीं। एशियाके ग्रीक-राजाओं-के मध्य सेल्युकस लिसिसेकस और अन्तिगोनसने अपने अपने नाम पर अलेकसन्दरकी मुद्रा चलाई थी। जब ई०सन्‌के १६० वर्ष पहले रोमकोंने मागसिनियाके युद्धमें जयलाभ किया, तभीसे अलेकसन्दरकी मुद्राका प्रचार घट गया। थ्रेस प्रदेश-के राजा लिसिमेकसने अलेकसन्दरका मुखमण्डल मुद्रा-में अंकित करनेके लिये उन्हें जियस आमनके पुत्ररूपमें करनेके उद्देशसे शिर पर दो भेड़ के सींग चित्रित कर दिये थे। दूसरे भागमें पल्लास देवी कुमारी नाइसको अपने अङ्गमें लिपटाये हुई हैं। प्रथम देमित्रियसकी मुहरें बहुत सुन्दर तथा ऐतिहासिक तत्त्वोंसे परिपूर्ण हैं। इसके सम्मुख भागमें वृषशृङ्गभूषित देमित्रियसका मस्तक तथा पश्चाद्भागमें पोसिदन अथवा नाइस या पक्षशालिनी लावण्यमयी अप्सराकी तरह कीर्त्तिदेवीका उज्ज्वल चित्र है। किसी किसीमें रमणीय मयूरपक्षी देखा जाता है। उसके एक प्रान्तमें कीर्त्तिदेवी वंशी बजा रही हैं और दूसरे प्रान्तमें त्रिशूलधारिणी पोसिदन नाव खे रही है। इस अपूर्व शिल्प-सौन्दर्यमयी चित्रा-वलीको पण्डितोंने देमित्रियस कर्त्तृक नौयुद्धमें पराजित टलेमीकी स्मृतिसम्बन्धीय बतलाया है। ५वें फिलिप-की मुद्राके एक भागमें पार्सियसका मस्तक और दूसरे भागमें जियसके वज्रके ऊपर ईगलपक्षीकी प्रतिकृति है।

उत्तर-ग्रीसके कुछ नगरोंमें भी जो सोने और चांदी-के टुकड़े मिले हैं वे आश्चर्यजनक है। प्राथमिक अवस्थामें घोड़े और घुड़सवारकी विविध गति दिखलाई गई है। ये सब मुद्रा ई०सन् १९६ वर्ष पहलेकी बनी हैं। बहुतोंमें ओक-वृक्षके पल्लवोंसे अलंकृत जियसकी प्रतिमूर्त्ति है। दूसरे भागमें थेसाली वासियोंकी पल्लास-रूपा इतोनिया देवीकी रणरङ्गिणी मूर्त्ति खोदी हुई हैं। गम्फि नगरकी मुहरों पर एक अनवद्याङ्गी युवतीमूर्त्ति है। लेमिया नगरकी मुद्रा पर देमित्रियस पोलियोकात-की प्रियतमा रानीका उज्ज्वल मुखमण्डल है। उसके दाहिनी ओर नवीन युवक हिराक्लिसकी भुवन-मोहिनी मूर्त्ति है। इसका शिल्प सौन्दर्यतत्त्वका अपूर्व निदर्शन-स्वरूप है। लेरिसा नगरीकी मुद्रामें निर्झराधिष्ठात्री देवी लेरिसाकी सुन्दर मूर्त्ति अंकित है। किसी किसी-में एरिथुसकी अलौकिक लावण्यमयी अङ्गलतिका शोभती है।

इलिरियाकी मुहरें शिल्पसौन्दर्यमें प्रथम श्रेणीकी नहीं होने पर भी उनमें बहुतसे अतीत-रहस्योंका विषय झलकता है। इसके एक भागमें नव वसन्तकी आगमन-सूचक कुसुमित तरुवल्लीका अभिनव सौन्दर्य चित्र है तथा दूसरे भागमें दूध पीनेके लिये उद्यत गायका बछड़ा अपनी माको बगलमें खड़ा है। उसका शिल्पनैपुण्य अतुल-नीय है। कुछ मुहरोंके एक भागमें वंशीवाद्यपरायण अपोलाके चारों ओर तीन नाच करनेवाली बिम्बाधरा अप्सरामूर्त्ति और दूसरे भागमें जलती हुई बत्तीको हाथ-में लिये देवाङ्गना खड़ी है।

एपिरसकी मुद्राएं सौन्दर्य चित्र और ऐतिहासिक-तत्त्वका निदर्शन है। एम्बेसिया नगरीके रजतखण्डका शिल्पसौन्दर्य चित्ताकर्षक है। उसके एक भागमें किसी अवगुण्ठनवती शुचिस्मिताकी सलज्जमुग्ध दृष्टि और दूसरे भागमें एक ओबेलिस्क वा स्मृतिस्तम्भ है। ये सब मुद्राएं ई०सन् २४० वर्ष पहलेकी बनी हैं। कुछ मुद्राओंकी एक पीठ पर दिदोनियन जियस और दिवनीकी

प्रतिमूर्त्ति है। पपिरसकी मुहरोंकी अलेकसन्दरके समयमें बहुत उन्नति हुई थी। पिरहासकी मुद्रा शिल्पनैपुण्यमें श्रेष्ठ स्थान पाने योग्य हैं। इनमें विविध पुष्पस्तवकका विचित्र चित्रविन्यास है।

किसी मुद्रामें मुकुटालंकृत आकिलिसकी वीरत्वसूचक प्रतिमूर्त्ति है। दूसरे भागमें दरयावी घोड़े पर सवार वर्मधारिणी थेटिसकी मूर्त्ति चित्रित है। पिरहासके समय ताम्रखण्डका ही बहुत प्रचार था। ये सब ताम्रखण्ड अनुपम शिल्पनैपुण्यसे विभूषित थे। उनमें परिहासकी माता फथियाकी वात्सल्यपूर्ण शान्तमूर्त्ति भी चित्रित है।

करकाइरा द्वीपकी मुद्रा खृ० पू० ६ठी सदीकी बनी है। इनमेंसे कुछ मुद्राके सम्मुख भाग पर दुधारित गायका चित्र और पश्चाद्भागमें पुष्पमालाका विचित्र समावेश है। अन्यान्य मुद्राओंके एक भागमें समुद्रसम्भवा विजयलक्ष्मीकी अपूर्वकान्ति तथा दूसरे भागमें स्वाधीनता और कीर्त्तिदेवीकी सुन्दर प्रतिमूर्त्ति है। यहांकी मुद्रामें जैसी विचित्रता देखी जाती है वैसी और किसी मुद्रामें नहीं देखी जाती। नगराधिष्ठात्री, करकाइरा देवी, कोमस, साइप्रिस, जयलक्ष्मी, यौवन, पल्लास, देशाधिष्ठात्री, अग्निदेव आदि अनेक प्रकारकी विचित्र मूर्त्ति अपूर्व कौशलसे मुद्रातल पर अङ्कित देखी जाती है।

इतोलियाकी स्वर्णमुद्रा ई०सन् २८० वर्ष पहलेकी है। इनसे ऐतिहासिकतत्त्वका बहुत कुछ पता लगा है। स्वर्णमुद्रा पर सिंहचर्मावृत हिराक्लिस और दूसरे पृष्ठ पर गालप्रदेशके वर्ममें इतोलिया देवी विलासभङ्गी पर बैठी हुई हैं। अन्यान्य मुद्रातलमें मृगयाव्यापारका उज्ज्वल चित्र है। रौप्यखण्डके एक भागमें आटलाण्टाकी मूर्त्ति और दूसरे भागमें कालिदनोय वराहकी आकृति चित्रित है।

फोकिस नगरकी मुद्रा ही सबसे प्राचीन है। उनमें खृ०पू० ७वीं सदीकी तारीख अङ्कित देखी जाती है। उसके एक भागमें वृषमुण्ड और दूसरे भागमें सुन्दरी युवतीमूर्त्ति है। परवर्त्ती मुद्रामें बकरे, भेंडे और गाय आदि पालतू पशुओंकी प्रतिमूर्त्ति है। बहुतोंमें एक कदाकार काफ्रिकी मूर्त्ति है—इसका कारण आज भी निर्णीत नहीं हो सका है। आम्फिक्तियनिक समितिकी मुद्रा बहुत सुन्दर है। उसके एक अंशमें आपलोका मन्दिर और दूसरे अंशमें एक गूढ़ रहस्यपूर्ण मन्त्र है। प्लुतार्कने इस सम्बन्धमें एक बड़े प्रस्तावकी रचना की है।

व्युसियाकी मुद्रा अत्यन्त रहस्यपूर्ण है। वे खृ०पू० ६ठी सदीके बनी हैं। मुद्राके एक भागमें हिराक्लिस और दूसरे भागमें शङ्ख और चक्रका चिह्न है। अन्यान्य मुद्रामें जो लिपि उत्कीर्ण हैं उनकी सहायतासे हेड साहबने एक बड़ा इतिहास लिखा है।

आटिकाकी मुद्राने सेलिनके समय बड़ी उन्नति की थी तथा बहुतसे वाणिज्य प्रधान देशोंमें इसका प्रचार हो गया था। ये सब मुद्राएं खृ० पू० ६ठी शताब्दीके पहले की हैं। प्रारम्भिक मुद्रामें एक फलशालिनी ओलिभकी शाखा लटक रही है। पारसिक युद्धके पहलेकी मुद्रामें ओलिभ पल्लवालंकृत अथेनाकी दिव्य मूर्त्ति और दूसरे भागमें पंख फैलाए पेचक तथा उदीयमान सप्तमी चन्द्रका उज्ज्वल चित्र है।

आथेन्सकी मुहरें वाणिज्यप्रधान देशोंमें प्रचलित हुई थी। मुद्रातत्त्ववित् रेजिनाल्ड स्टुआर्डपुलका कहना है, कि सुदूरवर्त्ती भारतके पंजाबमें तथा अरबके नाना स्थानोंमें आथेनीय आदर्श पर बनी हुई मुद्राएं पाई गई है।

परवर्त्ती कालमें फिदियसकी आथेना मूर्त्तिके अनुकरण पर मुद्रातलमें मणिमुक्ता विभूषित मुकुटालंकृता सुषमाशालिनी आथेना और दूसरे भागमें ओलिभशाखा पर बैठी हुई पेचककी मूर्त्ति है। मिथ्रदेतिसकी मुद्रामें विविध ऐतिहासिक रहस्यकी मीमांसा की जा चुकी है। इस समयकी मुद्रामें विद्याधिष्ठात्री मिनर्भा वीणापुस्तक हाथमें लिये अपूर्व शोभा दे रही है। दूसरे भागमें पार्थिननकी अपूर्व स्थापत्य कीर्त्ति है।

बहुतोंका कहना है, कि इजाइना देशकी मुद्रा ही ग्रीक आदर्शका प्राथमिक निदर्शन है। इसी स्थानसे समस्त ग्रीकमुद्राकी उत्पत्ति हुई है। कहते हैं, कि आर्गसके अधिपति फिदनने खृ०पू० ७वीं सदीके प्रारम्भमें सबसे पहले मुद्राका प्रचार किया। इसके पहले प्रतीच्य यूरोपमें ऐसे मुद्राखण्डका प्रचार नहीं

था। इसके पहले पण्यविनिमयकी एक अपूर्व प्रथा थी। इजाइनाको पूर्ववर्त्ती मुद्रा आज भी आविष्कृत नहीं हुई। इस प्राचीन मुद्रामें एक बड़े कुम्भकी मूर्त्ति अङ्कित है।

एकाइया नगरको मुद्रामें बहुतसे ऐतिहासिक तत्त्वोंका उद्धार हुआ है। ये सब मुद्राएं ई०सन्के ३३० वर्ष पहले की है। उस समयके दश विभिन्न नगरोंकी दश प्रकारकी मुद्रा पाई गई हैं। सभी मुद्राओंके एक भागमें दण्डायमान जियस और उपविष्ट हेमितारकी मूर्त्ति है। दूसरे भागमें प्रत्येक नगरका नाम और संक्षिप्त विवरण है।

करिन्थकी मुद्रा अधिक संख्यामें मिलती है। खृ० पू० ६ठी सदीकी मुद्राके एक अंशमें पेगासस और दूसरे अंशमें ? ऐसा चिह्न देखा जाता है। यह करिन्थ नामक आदि अक्षर 'कप्पा (Kappa)' वा क है। परवर्त्ती कालकी मुद्रामें एथेनाकी मूर्त्ति है। स्वर्णमुद्राओंमें भुवनमोहिनी आफ्रदिति वा रतिमूर्त्ति है। किमेरा नगरकी मुद्रामें ओलिभकुञ्जमें उड़ते हुए कबूतरकी मूर्त्ति अङ्कित है।

एलिस नगरकी बहुत सी मुद्राएं आविष्कृत हुई हैं। इन सब मुद्राओंमें जियस, हीरा और नाइसदेवीकी पूजापद्धतिका अविकल चित्र देखनेमें आता है। ओलिम्पियाक्षेत्रके तथा अन्यान्य नाना देवदेवियोंके चित्र भी इस देशके मुद्रातलमें आश्चर्य शिल्पनैपुण्यसे अङ्कित है। दूसरे अंशमें जियासका वज्र तथा उड़ती हुई ईगल्मूर्त्ति है। ये सब मुद्रा खृ० पू० ५वीं सदीकी हैं। किसी मुद्रामें ईगल पक्षी सांपको पकड़े हुए ओलिभकी शाखा पर बैठा है और दूसरे भागमें भागता हुआ खरहा नजर आता है। किसी मुद्रामें पुष्पमाला-सुशोभिता नाइसदेवीकी हास्यमयी मूर्त्ति है। ई०सन्के ४२१ वर्ष पहले एलिसाने स्पार्टानगरके साथ मिल मुद्रा प्रस्तुत की थी। इस समयकी मुद्राकी एक पीठ पर ध्यानमें मग्न जियासकी प्रशान्त मूर्त्ति और दूसरे भागमें विलासचञ्चला नाइसका यौवनसुलभ अपूर्व विभ्रम है। ये सब चित्र शिल्पनैपुण्यमें अद्वितीय हैं। एलिसके साथ जब अर्गाइभ-समितिका सम्मिलन हुआ था उस समय (४०० खृ० पू०)-की मुद्रामें हीराका अनिन्द्य सुन्दर मुखकमल देखनेसे आर्गसके पालिकिटसका स्मरण हो आता है। जब यह सम्मिलन विच्छिन्न हो गया, उस समयकी मुद्रामें प्राचीन आदर्शका चित्र देखा जाता है। वज्रकी ज्वालामयी मूर्त्ति तथा नाइसका विलासविभ्रम मुद्रातल पर अङ्कित है। इसका शिल्पनैपुण्य बड़ा ही अद्भुत है। किसी मुद्रामें ईगल पक्षी एक भीषण सर्पके साथ युद्ध कर रहा है। उसके नीचे त्रिकोणाकार चिह्न है। उस चिह्नको देख कर मुद्रातत्त्ववित् गार्डनरने कहा है, कि यह साइकल नगरके सुप्रसिद्ध भास्कर डेडालसका अपूर्व शिल्पनैपुण्य है। परवर्त्तीकालके मुद्रातलमें फिदियसके जियास चित्रका अविकल अनुकरण देखा जाता है।

इथाका नगरोकी मुद्राके ऊपरी भाग पर युलेसिसका मस्तक है। मेसिनकी मुद्रा पर पार्सिफोनकी मूर्त्ति देखी जाती है। उसके बादकी मुद्रा पर व्यवहारशास्त्रप्रणेता लाइकर्गसका चित्र और नीचे उसका नाम तथा जन्मतिथि खोदी गई है। आर्गसकी मुद्रा पर भेड़ियाकी प्रतिकृति है। दूसरी ओर हीराका चित्र वा अंगरेजी अक्षर A अङ्कित है। किसी किसी मुद्रामें दिवमिदस बाएं हाथमें पताकायुक्त चरखा तथा दाहिने हाथमें तलवार लिये छिप कर कदम बढ़ा रहे हैं।

आर्केडिया नगरकी मुद्रा बहुत प्राचीन है। इसमें प्रकृति पूजाका जाज्वल्यमान निदर्शन देखा जाता है।

खृ० पू० ५वीं सदीकी मुद्राके एक भागमें जियस आसन लगाये बैठे हैं और उनके हाथसे एक ईगलपक्षी उड़ना चाहता है। दूसरे भागमें एक सुन्दर स्त्रीका मुख अङ्कित है। खृ० पू० ६ठी सदीकी मुद्रा पर तरह तरहके अलङ्कार पहने घूंघट काढ़े हीराकी प्रतिकृति शोभा दे रही है। रौप्यमुद्राओंके एक भागमें भालू और दूसरे भागमें आर्कसकी माता कालिष्टोका चित्र है। एपिमिनन्दसकी तरह समकालीन मुद्राकी एक पीठ पर पार्सिफोनका सुन्दर चित्र तथा दूसरी पीठ पर शिशु आर्कसको गोदमें लिये तामिसदेवी खड़ी है। पार्सिफोनके घुंघराले बालोंमें शिल्पीने जो कारीगरी दिखाई है वह अकथनीय है। रौप्यमुद्राके एक भागमें हिराक्लिस तथा दूसरे भागमें एक उड़ते हुए गोधका

चित्र है। आर्त्तमिस नगरके मन्दिरमें गीधका चित्र उत्कीर्ण है। इस स्थानकी पीतलकी मुद्रामें एक ऐतिहासिक आख्यायिका आविष्कृत हुई है। जव हिराक्लिसने स्पार्टाके विरुद्ध चढ़ाई करनेके लिये सिफियससे सहायता मांगी थी, तव आथेनादेवी सेफियसकन्या तथा उनकी पुरोहित-स्त्रीने ष्टिरोपको केशपूर्ण एक डिब्बा दिया था। उस डिब्बेकी ऐन्द्रजालिक शक्तिसे ष्टिरोप आर्गाइभ लोगोंको भय दिखानेमें समथ हुए थे।

जिस समय माकिदन और आफियनके राजे हेल्लासमें अपनी अपनी प्रधानताको ले कर लड़ रहे थे उस समयकी क्रीतद्वीपकी मुद्राओंमें वहुतसे रहस्योंकी मीमांसा हुई है। ये सव मुद्रा खृ० पृ० ५वीं सदीकी वनी है तथा इनमें ग्रीकशिल्पकी छाया सम्पूर्ण रूपसे दिखाई देती है। देवदेवीमें जिग्रास, हीरा, पोसिदन हिराक्लिस, व्रिटोमाटिश और माइनस नगरकी अप्सराओंकी चारुचित्रावली है। किसी मुद्रामें भूलभुलैयाँका चित्र है। वहुत-सी मुद्राओंमें युरोपाका निदर्शन देखनेमें आता है।

रोमकाधिकार-कालमें रोमक-सम्राटोंका चित्र और नामाङ्कित मुद्रा वहुतायतसे देखी जाती है। इन सव मुद्राओंको भाषा लाटिन है। मुद्राके एक भागमें Ste phanos...धारिणी लावण्यवती रमणीमूर्त्ति और दूसरे भागमें वर्म तथा तलवारसे सज्जित एक योद्धाका चित्र है। रौप्यमुद्रामें जरक्लिसका आक्रमण-वृत्तान्त है। इन सव मुद्राओंमें वृषशिरस्क मिनोटर घुटनेको टेक कर एक हाथसे सूर्य और दूसरे हाथसे एक सुन्दरी रमणी (अरियत्नी)-को पकड़नेके लिये हाथ वढ़ा रहे हैं। वार्लिन म्युजिअममें इस समयकी वहुत-सी मुद्राएं संरक्षित हैं। इन मुद्राओंका सौन्दर्य और शिल्प-नैपुण्य दर्शकके मनको मोह लेता है। किसी मुद्रामें Stephanos... धारिणी हीराका चित्र है। स्युन नगरकी मुद्रामें धनुर्धारिणी रमणीमूर्त्ति अङ्कित है। वह नगराधिष्ठात्री देवी समझी जाती हैं। वहुत-सी मुद्राओंमें यूरोपाकी मूर्त्ति विद्यमान है। वे वैल पर सवार है और पश्चाद्भागमें एक सिंहवाहिनी मूर्त्ति है।

प्लिनिके वर्णनसे इन सव घटनाओंका सामञ्जस्य किया जा सकता है। किसी मुद्रामें एक पवित्र वृक्षकी डाली पर म्रियमाण भावमें यूरोपा वैठी हुई हैं। प्लिनि कहते हैं, कि इस सदावहार पेड़की पत्तियां कभी नहीं झड़तीं। दूसरे भागमें एक वैलका चित्र है जिसे मच्छड़ वहुत तंग कर रहा है। इन सव मुद्राओंका शिल्प-नैपुण्य अद्भुत प्रतिभाका परिचायक है। इसके जैसा शिल्प-सौन्दर्य पृथिवीमें और कहीं नजर नहीं आता।

किसी मुद्रा पर फलसे लदा हुआ खजूरका पेड़ है। उतानसकी मुद्रामें समुद्रदेवता ग्लकस तथा दूसरे भागमें दो जलराक्षस हैं। कुछ मुद्राओंमें हिराक्लिस हाइड्राको लाठीसे मार रहे हैं तथा दूसरे भागमें एक वप्रक्रीड़ापरायण वृष मूर्त्ति है। किसी मुद्रामें जियस-म्लान वदनसे वृक्ष पर वैठा है और उसके नीचे एक मुर्गेकी प्रतिकृति है। टेलसकी मुद्रामें सुप्रसिद्ध भास्कर डेडालसकी पित्तलमयी मनुष्य-मूर्त्ति है। उसके दूसरे भागमें पक्षशाली एक उलङ्ग युवक दोनों हाथोंसे पत्थरका टुकड़ा फेंकना चाहता है। इससे एक ऐतिहासिक तत्त्वका उद्धार हुआ है। आपलोनियस रोढियसका वर्णन पढ़नेसे मालूम होता है, कि जव आर्गसवासियोंने क्रीतद्वीप पर आक्रमण करनेके लिये जंगी जहाजोंको उपकूलमें लगाना चाहा था उस समय स्वदेशप्रेमिक टेलसने पत्थर फेंक कर उन्हें वाधा दी थी। पीछे मिदियाकी विश्वासघातकतासे वे विनष्ट हुए।

प्रिससकी मुद्राके एक भागमें गर्गनका मस्तक और दूसरे भागमें एक तीरन्दाज तीर फेंकने चाहता है। किसी मुद्राके पश्चाद्भागमें एक विचित्र शिल्पचित्र है—दिवनिमियस एक भागते हुए लकड़वग्घेकी पीठ पर सवार है। दूसरे भागमें हार्निस जूता पहन कर कदम वढ़ा रही हैं। किसी किसी मुद्रामें आसनोपविष्ट दिवनिसियाकी शान्त और प्रफुल्ल मूर्त्ति है।

युविया नगरमें प्राचीन ग्रीक आदर्शकी मुद्रा पाई गई है। मुद्राके एक भागमें अप्सरामूर्त्ति और दूसरे भागमें वप्रक्रीड़ानिरत वृषमूर्त्ति है। करिष्टसकी मुद्रामें एक ओर पयस्विनी गाय अपने वछड़ेको दूध पिला रही है तथा दूसरे ओर मुर्गेकी मूर्त्तिके नीचे पारसिक युद्धकी स्मृति दिला रही है। प्रतीच्य उपनिवेशोंकी शिक्षा और सभ्यताके केन्द्रस्वरूप कालसिस नगरीकी मुद्रामें विस्मय-

जनक शिल्पनैपुण्य दिखाई देता है। इसके एक भागमें चक्रका चिह्न और दूसरे भागमें रमणीकी मूर्त्ति है। उसकी बगलमें ईगल पक्षी अपनी चोंचको फैला कर एक अजगर सांप निगल रहा है। किसी मुद्रामें वंशीवादनोद्यता रमणीमूर्त्ति नाव पर बैठी हुई है।

साइक्लोडिस और स्पोरेडिस नगरोंकी मुद्रामें एक सुन्दर चित्र है। किसी मुद्रामें मद्यपात्र (Amphora) और दाखका घौद तथा कुछ सुन्दर मछलियोंको मूर्त्ति है। किसी मुद्रामें बकरे और मछली एकत्र चित्रित हैं। अव-शिष्ट मुद्राओंमें पोसिदन तथा आमकी प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है।

एशिया-खण्ड।

पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे एशियामें सबसे पहले एशिया-माइनरकी मुद्रा बनाई गई। यह कहां तक सत्य है अब तक भी स्थिर नहीं हुआ है। यहांकी मोहर आदि चार श्रेणीमें विभक्त है. १ली—स्थानीय प्राचीनतम सुवर्ण-मुद्रा तथा इलेक्ट्रम (Electrum), २री—लिदियान, ३री—ग्रीक-आदर्शयुक्त, ४थी—पार-सिक आदर्शयुक्त। प्रसिद्ध सिज़िकस नगरकी टकसालमें सबसे पहले मुद्रा प्रस्तुत हुई।

उस समयकी मोहर आदिमें विशेष कुछ शिल्प-नैपुण्य नहीं है। इसके बादकी मुद्राएं ग्रीक मुद्राका अविकल अनुकरण है—अलेकसन्दरके समय यहांकी मुद्राकी कारीगरी संसार भरकी मुद्राओंसे बढ़ी चढ़ी थी। बादमें जब ईसाजन्मके १६० वर्ष पहले मागेन-सियर-युद्धमें सर्वत्र ही रोमकी विजयपताका उड़ने लगी उस समय रोमक-मुद्रा होका सब जगह प्रचार हुआ। इस समय मुद्रामें ग्रीक-धर्मशास्त्रका पूरा परिचय मिलता है।

आज तक पृथ्वीमें जितनी मुद्राएं आविष्कृत हुई हैं उनमें एशिया-माइनरके लिदिया नगरकी इलेक्ट्रम-मुद्रा ही सर्वापेक्षा पुरानी है। यह ईसाजन्मसे ७वीं सदीके शुरूकी बनी है। इज़ाइनाकी रौप्यमुद्रा प्राचीनता-में द्वितीय है।

इलेक्ट्रम मिश्रधातु सोनेमें चौथाई भाग चांदी है। यही धातु सबोंसे अधिक समय तक टिकती है। इसका मूल्य चांदीसे तेरह गुणा अधिक है। लिदियाके किसी राजाने ७००वीं सदीके पहले जिस मुद्राका प्रचार किया उसे देखनेसे यह स्पष्टतः बाबिलनीय रौप्यमुद्रा-सी प्रतीत होती है। इसके एक तरफ चतुष्कोणक्षेत्र और दूसरी तरफ तीन रेखामात्र है। मुद्रातत्त्वज्ञ हेड साहब-का कहना है, कि वह फिनिकीय मुद्राके अनुरूप है। लिदियाके राजाने क्रिसस (Cræsus) बाबिलनीय मुद्रासे कम वजनकी मुद्रा तैय्यार की, पर रौप्यमुद्रा बाबिलनीय मुद्रासे अभिन्न थी। पश्चिम-उपकूलवर्त्ती ग्रीक नगर-वासियोंने इस मुद्राका अनुकरण कर सर्वत्र ही मुद्रा ढालना शुरू कर दिया। कुछ ही दिन बाद पारसिक अभ्युदयके समय लिदिया-मुद्राकी स्वतन्त्रता विलुप्त हो गई।

एशियामाइनरके बस्फोरस प्रदेशकी पीतल-मुद्रा बहुत लम्बी और भारी होती है। इसके एक तरफ पार्सिनस और दूसरी तरफ मेडुसाकी मूर्त्ति है। फिर बस्फोरस प्रदेशके राजाने महानुभव मिथ्रदतिसकी स्वर्ण-मुद्राका नया प्रचार किया। इसमें सामान्य शिल्प-चातुर्य देखा जाता है। सिनापि-नगरकी मुद्रामें फ्रिजियादेशके मुकुटालंकृत एक नवीन युवककी सौम्य-मूर्त्ति है। किसी मुद्रामें चन्द्रमाका चिह्न खोदा हुआ है। विसलमुद्राके ऊपर होमरकी मूर्त्ति है। इस समय मुद्राशिल्प क्रमोन्नतिकी सीढ़ी पर चढ़ रहा था। आज कलकी मुद्रामें एक तरह सिनोपिदेवीका मुखमण्डल और दूसरी तरफ मत्स्य-शिकारोद्यत ईगलमूर्त्ति अंकित है। हिराक्लिया नगरकी रौप्यमुद्रा बड़ी ही सुन्दर है। इसमें सिंहचर्मावृत हिराक्लिसकी प्रतिमूर्त्ति है।

एशियाखण्डमें जब ग्रीक-आदर्शका अनुकरण होने लगा तब सबसे पहले माइसियान नगरमें मुद्रा प्रचार हुआ था। सिज़िकस नगरकी मुद्रामें बहुत कुछ रहस्य देखनेमें आता है। ई०सन्‌के ४७८ वर्ष पहले सिज़िकसनगरमें मोहरका व्यवहार देखा जाता है। यह बाबिलनकी मोहर जैसी है और बहुत भारी है। इसमें नाना प्रकारके जीवजन्तुओंके मस्तक अंकित हैं। किसी मुद्रामें सिंहके नीचे एक मछली विशेष निपुणताके साथ चित्रित है।

लाम्पास्कन नगरकी मुद्रामें एक सुन्दरीकी प्रति-मूर्त्ति है। उसके बाल पंडी तक लटक रहे हैं। पार्गा-

मस नगरकी मुद्रा उतनी प्राचीन नहीं है। अधिकांश मुद्रामें आथेनाकी मूर्त्ति तथा तरह तरहकी उत्कीर्ण लिपि हैं। स्मर्णा, सार्दिस, इफिसस आदि एशियाकी अन्यान्य नगरोंको मुद्रामें पार्गामसका अनुकरण देखा जाता है।

द्रयनगरकी मुद्रामें ट्रोजन युद्धका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। आविदस नगरके मुद्रातलमें नाहस-देवीके सामने एक भेंड़की वलि हो रही है। दूसरी ओर ईगलकी मूर्त्ति अङ्कित है। किसी मुद्रामें तीर धनुष हाथमें लिये आपलोकी मूर्त्ति तथा नाना प्रकारकी ग्रीक-लिपि है। पीतलकी मुद्रासे द्रय नगरका इतिहास जाना जा सकता है। किसी मुद्रामें घोड़ेके रथ पर बैठे हेक्टर पेट्रोक्लिसके साथ युद्ध कर रहे हैं। दूसरे भागमें बाघका बच्चा अथवा यमज भ्राता है। किसी मुद्रामें भागने पर उद्यत इलियसकी मूर्त्ति तथा अन्य मुद्रा पर जियास और हीराकी युगल मूर्त्ति है। किसी मुद्रातलमें दो कुठारका चिह्न है।

युलिस और लेसवसकी मुद्रामें वेणुवाद्यपरायण आपलोकी मूर्त्ति है। यह ई०सन् ४०० वर्ष पहलेकी बनी है। उसके बादकी किसी किसी मुद्रामें बहुतसे स्वदेशवत्सल साधुपुरुषोंकी प्रीतिमूर्त्ति है। किसी मुद्रा-में एक ओर थियोफेनिस और दूसरी ओर उनकी पत्नी देवो आर्किमिदेशकी मूर्त्ति चित्रित है।

आइयोनियाकी मुद्रा शिल्पनैपुण्यमें अत्युत्कृष्ट है। किसीके एक पार्श्वमें शिकारोद्यत भयङ्कर सिंहमूर्त्ति और दूसरे पार्श्वमें पक्षविशिष्ट शूकरीकी मूर्त्ति हैं। अलेकसन्दरकी पूर्ववर्त्ती मुद्राओंमें आश्चर्य शिल्पोत्कर्ष देखा जाता है। एक भागमें आपलोको दिव्यकान्ति और दूसरे भागमें मृणाल भक्षणोद्यत मरालकी मूर्त्ति है। एशियाके अद्वितीय और एकमात्र ख्यातनामा भास्कर दियोदोतसका नाम मुद्रातल पर खोदा हुआ है।

इफिनसकी मुद्रामें कोई शिल्पोत्कर्ष नहीं रहने पर भी उनसे अनेक ऐतिहासिक तत्त्वोंका रहस्य मालूम होता है। प्रधानतः गुञ्जनपटु मधुकरश्रेणी इन सब मुद्राओं पर अङ्कित हैं। ई०सन्के ३०४ वर्ष पहले-की मुद्रामें पारस्यशिल्पका अनुकरण देखा जाता है। जब कोनन और फार्नावेगससे लासिदोमोनियाके जंगी जहाजोंको पराजित कर एशियाके ग्रीक नगरोंको स्पार्टा-के अत्याचारसे बचाया था। उस समय रोड्स और सामस-नगरवासियोंने नई मुद्रामें हिराक्लिसकी शिशु-मूर्त्ति अङ्कित की थी। शिशु हिराक्लिस दो भीषण सर्पों-के कण्ठ पकड़ कर उन्हें कष्ट दे रहा है। किसी किसी-में खजूरवृक्षके नीचे एक मृगशावक खड़ा है। ई०सन्के ३०१ वर्ष पहले यहाँ आर्टिकाके मुद्राशिल्पकी प्रधानता देखी जाती है। इस समय पीतलकी मुद्राका प्रचार हुआ तथा ग्रीकदेवी आर्टेमसका चित्र मुद्रातलमें अङ्कित किया गया। दूसरे तलमें खजूर पेड़के नीचे मृगशावक खड़ा है। इसमें शिल्पीने मानो अपनी सारी निपुणता दिखला दी है। लिसिमेकसने इफिससके टकसाल-घरमें सिक्का ढलवाया और उसमें अपनी स्त्री आर्सिनोकी प्रतिमूर्त्ति चित्रित की। उसके नाम पर एक नगर बसाया गया। इन सब मुद्राओंमें अपूर्व शिल्प-सौन्दर्यका परिचय पाया जाता है। पीछे तलेमीवंशके शासन-कालमें सम्राज्ञी द्वितीय वानिसके समय अच्छी मुद्रा प्रचलित हुई। ई०सन् १३० वर्ष पहलेसे इफिसस एशियाखण्डके रोम साम्राज्यका सर्वप्रधान स्थान समझा जाता था तथा ई०सन् ८४ वर्ष पहले विषम विप्लवके समय इस स्थानके अधिवासियोंने मिथ्रदतिसका पक्ष लिया। सम्राज्ञो प्रचलित सुवर्ण मुद्रा द्वारा यह घटना प्रमाणित होती है। मुद्रातत्त्वज्ञ ममसेन साहबने मिथ्रदातसकी मुद्रा द्वारा उस समयका इतिहास लिखा है। इस समयके बादकी रोमक-मुद्राका साधारण नाम चिष्टोफरि (*Chistophori*) है। पीछे जब रोममें गृहविवाद आरम्भ हुआ तबसे इस मुद्राका प्रचार घट गया, सभी जगह राजकीय मुद्रा चलने लगी। इनके स्थापत्यशिल्पमें सर्वाङ्गीण उन्नति देखी जाती है। मुद्रा-तलमें अङ्कित आर्टेमिसके सुप्रसिद्ध मन्दिरका शिल्पो-त्कर्ष देखनेसे विस्मित होना पड़ता है। प्रियण पर्वतके शिखर पर जियस बैठे हुए वर्षा कर रहे हैं। आर्टेमिस-का मन्दिर अनुपम अप्रतिम शिल्पनैपुण्यका परिचयस्थल है। फिर मन्दिरके नीचे नदीदेवता केष्टरकी मूर्त्ति अङ्कित है। इरिथ्रिया नगरकी मुद्रामें एक सवार घोड़े परसे

उतर रहा है और दूसरो ओर पुष्पस्तबक है। यह पारसिक आदर्श पर बनी है। मागनेसियानगरको मुद्रामें थेमिष्टक्लिसका नाम पाया जाता है।

मिलिटनसको मुद्रामें सिंहका प्रतिरूप है। माइकल-युद्धके वादकी मुद्रामें तारका चिह्न देखनेमें आता है। किसी किसीमें आपलोकी सुन्दर मूर्त्ति है। दूसरे भागमें एक सिंह टक लगाये नक्षत्रकी ओर देख रहा है।

स्मर्णा नगरकी प्राचोन मुद्रामें शैवेलोकी सुन्दर दिव्य लावण्यमयी मूर्त्ति तथा दूसरे भागमें एक सिंह चित्रित है। किसी किसोमें शैवेली (Cybele) की सिंहवाहिनो तसवोर है जो हिन्दूको सिंहवाहिनीकी शक्तिमूर्त्तिका उज्ज्वल निदर्शन वता रही है। परवर्त्ती कालकी मुद्रामें मिथ्रदतिस और वेसपासियसके अनेक ऐतिहासिकतत्त्व मालूम होते हैं।

क्यूस नगरकी मोहरादिमें तरङ्गायितकुन्तला स्फिस्कस मूर्त्ति तथा दूसरे भागमें दाखका घौद है। ये सब मुद्रा ई०सन ४६० वर्ष पहलेको बनी है।

सामस-नगरकी रौप्य मुद्रा ई०सन् ४६४ वर्ष पहलेको है। इस रुपयेके एक ओर ऊंचा कूवड़वाला सफेद वैल और दूसरे भागमें सिंहमूर्त्ति है। किसी किसीमें शूलधारिणी होरादेवी अङ्कित है। ईसा जन्मसे ४३६ वर्ष पहले यह स्थान आथेन्सवासियोंके अधिकारमें आया। तभोसे यहां ग्रीक आदर्श पर मुद्रा ढलने लगी। इन सब मुद्राओंमें सर्पदमनकारी हिराक्लिस मूर्त्ति तथा दूसरे भागमें ओलिभपल्लवका गुच्छा है। परवर्त्ती मोहरादि पौराणिक चित्रसे भरो है। किसोमें एशियाखण्डकी 'सामियान' (Samian) होरामूर्त्ति है। अलावा इसके उनमें जो मूर्त्तियां अङ्कित हैं वे अधिकांश हिन्दू देवदेवोकी अनुरूप हैं।

किसी किसोमें पिथागोरसका अपूर्व प्रतिभा-सम्पन्न मुखमण्डल है। उनके सामनेमें भूमण्डल (Globe)-का चित्र है। पिथागोरस ऐन्द्रजालिक छड़ीसे भूमण्डलको मन्त्रमुग्ध कर रहे हैं। केरिया नगरमें ई०सन् ४८० वर्ष पहलेकी मुद्रा पाई जातो है। उसके एक भागमे अफ्रादिति और दूसरे भागमें सिंहवाहिनी-मूर्त्ति है। किसी राजकोय मुद्रामें हिरोदोतसका मुखमण्डल अङ्कित है। वहुतोंमें आपलोका अपूर्व सौन्दर्यमय मुखमण्डल तथा दूसरे भागमें मछली पर सवार एक नवीन युवक को प्रतिकृति देखनेमें आती है। कुछ मुद्रामें अंजोर (Fig) फलका घौद चित्रित है। मिण्डस नगरकी मुहरों पर मिस्री शिल्पका प्रभाव देखा जाता है। इसमें आइससका मुकुटालङ्कार अङ्कित है। केरियाके राजे अतुल ऐश्वर्यके लिये प्रसिद्ध थे उनकी मुहरादिसे इसका प्रमाण मिलता है। केरियाके राजाओंमें मलोसस, हाइड्रियस, पिक्लोदेरस आदि सबसे प्रसिद्ध हैं। मसोलसको विधवा पत्नो आर्टिमिसिया राज्यशासनमें अच्छा नाम कमा गई हैं। उनकी मोहर शिल्पसौन्दर्यका उत्कृष्ट उदाहरण है। केरियाके मध्य कालिम्नाकी मुद्रा ई०सन् ४०० वर्ष पहलेको है। इसके एक भागमें कर्कट मूर्त्ति और दूसरे भागमें पारसिक आदर्शका एक मुकुट है। किसो किसोमें हिराक्लिसकी प्रतिकृति खोदित है। उसके वाद अलेकसन्दरका मुद्राकाल देखा जाता है। परवर्त्ती कालकी मुद्रामे जेनीफनका मुख देखनेमें आता है। मेजिष्टा नगरके रुपयेमें एक ओर 'हेलिया' (Helio) वा सूर्य और दूसरी ओर एक प्रस्फुटित गुलावका फूल है। रोड्स (Rhodes)-द्वीपकी मुहरोंसे वहुत कुछ तत्त्व जाने जा सकते हैं। यह नगर ई०सन् ४८० वर्ष पहले स्थापित हुआ है। इस स्थानकी मुहरमें पक्षशाली शूकर और दूसरे भागमें सिंहमूर्त्ति है। इसका शिल्पसौन्दर्य चित्ताकर्षक है। हेलिओके कुञ्चित-केशोंकी शोभा तथा प्रस्फुटित गुलावका नैसर्गिक सौन्दर्य मुद्राशिल्पका आश्चर्य कोर्त्तिस्तम्भ है। इस स्थानकी राजकीय मुद्राओं पर नार्भासे ले कर मार्कस अरेलियस तकके रोमक-सम्राटोंका नाम खोदा हुआ है। इस समय पीतलके पैसेका यथेष्ट प्रचार था। लिसिया नगरकी मुहरों पर एशियाके पौराणिक चित्रोंका समावेश देखा जाता है। इनके अक्षर, शिल्प और चित्रादिकी संतोषजनक व्याख्या आज तक कोई नहीं कर सका है। प्राचोन मुद्राके अक्षर एशियामाइनरको प्राचोन लिपियोंसे मिलते जुलते हैं। इसका आकार ग्रीक अक्षरसे सम्पूर्ण विभिन्न है। उसका प्रकृत तत्त्व आज तक अन्धकाराच्छन्न है।

इसमें नाना प्रकारके असुर और राक्षसोंकी मूर्त्ति है। अलावा इसके तरह तरहके जीवजन्तुओंके चित्र भी अङ्कित हैं। मुद्रातत्वज्ञ पण्डितोंका कहना है, कि वह ई०-सन् ४८० वर्ष पहले की और आसुरीय (*Assyria*) देशकी आदर्श है। कुछ मुद्रामें सौरजगत्को चित्रावली स्वरूप एककेन्द्रिक वृत्तमाला देखनेमें आती है। किसीमें वराह-मूर्त्ति अङ्कित है। वह वराह अपने तेज दांतों द्वारा प्रलय पयोधिसे पृथिवीकी रक्षा कर रहा है। पर-वर्त्ती मुद्रामें अलेकसन्दरका परिचय पाया जाता है। क्लदियसके रुपयेमें वेणुवाद्यपरायण आपलोकी मूर्त्ति है। राजकीय मुद्रामें अगष्टस तथा तृतीय गार्डियनका नाम देखा जाता है।

माइरा नगरकी मुद्रामें एक दिव्याङ्गना वृक्षकी डाली पर बैठी है। दो बढ़ई दो धारवाले कुठारसे उस वृक्षको काट रहे हैं। कुठाराघातसे दो माली वृक्षसे निकल कर उन्हें अङ्गभङ्ग करनेका भय दिखा रहे हैं। यह चित्रशिल्प सौन्दर्यमें अनुपम है।

पम्फिलियाकी मुद्रामें एशियाका शिल्पवैचित्र्य देखा जाता है। खृ०पू० ५वीं सदी इसका आरम्भकाल है। इसके एक भागमें एक एक वीरकी प्रतिमूर्त्ति और दूसरे भागमें (बलिके यज्ञमें त्रिपाद भूमिप्रार्थी वामनावतारकी तरह) त्रिपद चिह्न है। पाश्चात्य पण्डितोंका कहना है, कि यह सूर्यका साङ्केतिक निदर्शन है।

पर्गा नगरकी सम्राज्ञीकी चित्रमुद्रा बड़े कौशलसे अङ्कित है। यह ई०सन् ४८० वर्ष पहलेकी बनी है। इसमें अनारके दाने, मछली और मनुष्यके नेत्र अंकित देखे जाते हैं। इसका रहस्य आज तक किसीको मालूम नहीं हुआ है। किसी किसीमें आथेना तथा नाइस-देवीकी मूर्त्ति एक साथ दोनों ओर चित्रित है। यह गलेसियाके राजा आमेन्थिसकी मुद्राकी तरह है।

पिसिदियाकी मुद्रा साधारणतः राजचिह्नाङ्कित है। सिलिसिया नगरकी मुद्रा विविध रहस्योंसे परिपूर्ण है। यहां खृ० पू० ५वीं सदीकी बहुत-सी मुद्राएं पाई गई हैं। किसी किसी मुद्रामें शिल्पसौन्दर्यकी पराकाष्ठा देखी जाती है। इसके एक भागमें बकरेकी मूर्त्ति और दूसरे भागमें मुद्राकी छापमात्र है। किसीमें अश्वारोही का चित्र चित्रित है। किसी मुद्रामें दिव्य लावण्य परि-शोभिता अनवद्या आफ्रोदितिकी देहलतिका है। आफ्रो-दिति पद्मासन पर बैठी है। अन्तरीक्षमें एरस (Eros) आ कर उन्हें पुष्पमाला पहना रही हैं। एक भागमें दिवनिसियन प्रेमविह्वल भावसे उन्हें देख रहे हैं। इसका चित्रशिल्प अतुलनीय है। बहुत सी मुद्राओंमें एथेनाकी प्रतिमूर्त्ति और दूसरे भागमें दाखका गुच्छा है। उसके बादकी मुद्रामें अलेकसन्दरका चिह्न अंकित है। किसीमें सिंहकी मूर्त्ति समान भावमें दिखाई देती है।

मुद्रातत्त्वज्ञ पण्डितोंने एक स्वरसे स्वीकार किया है, कि साइप्रस द्वीपकी प्राचीन मुद्रामें ग्रीक आदर्शकी कोई अनुकृति दिखाई नहीं देती। फिनिकीय और मिस्री प्रभाव इसमें अच्छी तरह दिखाई देता है। उसके अक्षर एशियामाइनरके भाषान्तर्गत ग्रीक अक्षरसे सम्पूर्ण विभिन्न हैं तथा नई प्रणालीमें उत्कीर्ण हैं।

इन सब मुद्राओंमें वृष, ईगल, (ठीक गरुड़के जैसा) मेष, सिंह, हरिण, हरिणाक्रमकारी सिंह, स्फिङ्कस आदि नाना प्राणीकी प्रतिकृति खोदी हुई है। देवदेवीके मध्य आफ्रोदिति, हिराक्लिस, आथेना, हार्मिस, जियास तथा आमन प्रधानतः अङ्कित है। किसीमें वृषभारूढ़ देवी, किसीमें मेषवाहिनी अष्टार्टी वा फिनिकीय आफ्रोदिति है। आलेकसन्दरके पहले तक सभी मुद्राओंमें राजा-का नाम अङ्कित था। इभागोरस, निकोक्लिस, निता-गोरस आदि १० राजाओंका राज्यकाल आसानीसे निर्णय किया जाता है। प्रथम तलेमीके भाई मेनेलस इस वंशके अन्तिम राजा थे। इनके शासनकालमें स्वर्ण-मुद्राकी एक पीठ पर सिंहमूर्त्ति अङ्कित रहती थी। किसी मुद्रामें अर्द्धचन्द्रविभूषण प्रस्तरमय लिङ्गमूर्त्ति देखी जाती है।

लिदियाकी प्राचीन मुद्रामें बहुतसे राजाओंके लुप्त कीर्त्तिकलाप देखनेमें आता है। फ्रिजियाकी मुद्रा बहुत कुछ लिदियाकी मुद्रासे मिलती जुलती है। मुद्रातलमें फ्रिजिया राजाओंके वंश-प्रतिष्ठाता चन्द्रदेव वा लुनस-की प्रतिमूर्त्ति है। कई जगह मिनस (Minos)-का चित्र भी देखा जाता है। गलेसिया नगरकी मुद्रामें सम्राट् त्रोजनकी नामाङ्कित पीतलकी मुद्रा अधिक

संख्यामें पाई जाती है। कापोदोकिया नगरकी मुद्रामें ग्रीकशिल्पका विन्दुमात्र छायापात नहीं है। मुद्रातलमें एक पर्वतका चित्र है। उसके ऊपर दिव्यक्रान्तिमयी पर्वत-नन्दिनीकी प्रतिमूर्त्ति देखनेमें आती है। वहुतोंका कहना है, कि यह 'आर्गिस' पर्वतका चित्र है। परवर्त्ती-कालमें पारस्य-वंशोद्भूत पराक्रान्त सम्राट् ४र्थ एरिया-रेथिसकी मुद्रा पाई जाती है। यह ई०सन् २८० वर्ष पहलेकी मुद्रा है। कापादोकियाके राजा अरेफार्निस-का मुद्रासौन्दर्य्य वड़ा ही चित्ताकर्षक है। परवर्त्ती-कालकी मुद्रामें अर्मेणोय राजाओंका नाम पाया जाता है।

सिरियादेशकी प्राचीन मुद्रा पीतलकी वनी है। इस देशमें तलेमीवंशके समयकी वहुत-सी मुद्रा पाई गई है। कुछ मुद्रा मिस्री मुद्राकी जैसी है। इन सव मुद्राओं द्वारा ख० पू० ४थीसे १ली शताब्दी तक सिरियाका इतिहास जाना गया है। मुद्राका वजन फिनिकीय है। प्रथम सेल्युकसने अलेकसन्दरकी मूर्त्तियुक्त स्वर्णमुद्रा-का इस देशमें प्रचार किया। इसके कुछ समय वाद सिरियाके मुद्राशिल्पमें प्राच्यरीतिका अनुकरण देखा जाता है। इस युगकी मुद्रामें शृङ्गयुक्त वृषका मस्तक तथा दूसरे भागमें शृङ्गयुक्त अश्वमुण्ड है। किसीमें सिंहचर्मावृत वृषशृङ्ग शोभित अलेकसन्दरकी मूर्त्ति चित्रित है। उस समय वृष और सिंह देवताका वाहन समझा जाता था। किसी मुद्रामें जियासका मस्तक तथा दूसरे पार्श्वमें वृषशृङ्गयुक्त चार घोड़ोंके रथ पर सवार हो आथेनादेवी युद्ध कर रही है। किसी मुद्रामें वे दो हाथोके रथ पर सवार हो असुरका संहार करना चाहती हैं। इन सव मुद्राओंमें सेल्युकस और उनके लड़के अन्तियोकसका नाम पाया जाता है। किसी किसीमें हिराक्लिस और आपलोकी मूर्त्ति चित्रित है। इसके वाद २य सेल्युकस, २य अन्तियोकस तथा ३य सेल्युकस और ३य अन्तियोकसकी मीमांसा हुई है। ३य अन्तियोकसका वीरत्वव्यञ्जक वदनमण्डल राजोचित औदार्य और गाम्भीर्यसे परिपूर्ण है। इनकी मोहर तलेमीकी मोहरसे किसी किसी अंशमें उत्कृष्ट है। इस मोहरके पश्चाद्भागमें वंशीवादननिरत आपलो अथवा किसी मदकल-गजेन्द्रकी प्रतिमूर्त्ति है। सोलन और आफियसकी अनेक ताम्र मुद्राएं पाई जाती हैं। ४र्थ अन्तियोकसको मुद्रामें उनकी दारुण दुर्द्धर्णता और अत्याचार काहिनी अस्फुट भाषामें लिखी है। इस समयकी वहुत-सी पीतलकी मुद्राओंमें जियासकी मूर्त्ति देखनेमें आती है। १म देमिल्लियसके शासनकालकी मुद्रामें शिल्पका नूतन आदर्श दिखाई देता है। इस समयके रुपयेमें टकसाल-घरका नाम है। कोई कोई मुद्रा देमिल्लियस और उनकी पत्नी लेउदिस पास पास (हरगौरी मूर्त्तिकी तरह) अङ्कित है। वृटिश-म्युजियममें वह अभी भी सुरक्षित है। इस समयकी किसी किसी मुद्रामें वाविलनके एक विद्रोही राजाका नाम देखा जाता है। उन्होंने अपनेको ईश्वरका अवतार वतला कर घोषित किया था। इसके वाद फिनिकोय आदर्श पर निर्मित द्वितीय देमिल्लियस (देव-मित्र) और छठे अन्तियोकसकी मुद्रा पाई जाती है। इसका शिल्पसौन्दर्य्य दर्शकके मनको मोहता है। इसमें ग्रीकशिल्पका अनुकरण नहीं है। फिर भी इस प्राच्य शिल्पकी सौन्दर्य्यसृष्टि और कलानैपुण्य अवलोकन करने-से शिल्पीको शत कण्ठसे धन्यवाद दिया जा सकता है। शिल्पी मुद्रातलमें अपनी प्रतिमूर्त्ति अङ्कित करनेसे वाज नहीं आया। इस सुप्रसिद्ध शिल्पीने मुद्रातलमें अत्या-चारी राजा ट्राइफनका जो मनमोहन स्वाभाविक चित्र अङ्कित किया है वह शिल्प सौन्दर्य्यका अनुपम आदर्श है। राजाके मुकुटशीर्षमें छागशृङ्ग विराजित हैं, नीचे राजाका नाम और उनकी उपाधि 'अटोक्रेट' सन्निवेशित है। २य देमिट्रियसकी मुद्रा द्वारा एशियाखण्डके इतिहासके अनेक अन्धकाराच्छन्न पत्र आलोचित हुए हैं। जिस समय देमिल्लियस पार्थिय राजा द्वारा वन्दी हो कर कारागृहकी अंधेरी कोठरीमें कालयापन करते थे, उस समय उनके राज्यस्थ कर्मचारिवृन्द मुद्रातलमें लंवी लंवी दाढ़ी मूंछोंसे युक्त उनका मुखमण्डल अङ्कित करते थे— इस मुद्रामें शोकसूचक चिह्नका परिचय पाया जाता है। उनकी कारामुक्ति होनेके वाद जव उनकी दाढ़ी मूंछ मूंड़ी गई तव मुद्रा भी उस तरह अंकित होने लगी। उनकी विधवा पत्नी क्लियोपेट्राने वहुत दिन तक प्रबल-

पराक्रमसे राज्य किया था। उनकी मुखाङ्कित मुद्रा अभी भी पाई जाती है। उनके मुखमण्डलमें अवलाजनसुलभ लालित्यका अभाव देखा जाता है। इतिहास उनके चरित्र पर दोषारोपण करता है। शिल्पीके शारीरविज्ञानके साथ मानसचित्रका सामञ्जस्य देखनेसे शतकण्ठसे उन्हें धन्यवाद देना होगा। इनके ८म पुत्र अन्तियोकसने अच्छी मुद्रा प्रचलित की थी। परवर्त्ती मुद्रामें आर्मेनीय सम्राट् टाइग्रेनिसका हीरासे जड़ा हुआ मुकुट शिल्पसौन्दर्यका परिचायक है। मुद्राके दूसरे भागमें अरन्ति (Orotne) अन्तियोकके चरणोंमें लेट रहा है। इससे इतिहासके अनेक तत्त्व मालूम हुए हैं।

सिरियादेशके अन्यान्य नगरोंके मध्य सिरहम और हिरापोलिस नगरकी मुद्रा ही उत्कृष्ट है। इन सब मुद्राओंके तलमें अनेक प्रकारकी उत्कीर्ण लिपि देखनेमें आती है। ये सब ग्रीकशिल्पके आदर्शसे बिलकुल विभिन्न हैं। सिरियाकी प्राचीन मुद्रामें प्राच्यशिल्पका सम्पूर्ण विकाश दिखाई देता है। किसीमें दिव्यलावण्य परिशोभिता किरातवेशा भवानीकी एक अनुपम सौन्दर्यशालिनी सिंहवाहिनी शूलधारिणी रमणी मूर्त्ति है। किसीमें दो सिंहोंके रथ पर देवीमूर्त्ति बैठी हुई हैं। यह मूर्त्ति सम्पूर्ण रूपसे शैवलीदेवीकी तरह है।

अन्तियोक और अरन्तिस नगरको मुद्रा भी प्राच्यशिल्पके आदर्श पर बनी है। इससे अनेक ऐतिहासिक तत्त्व जाने जा सकते हैं। परवर्त्तीकालकी मुद्रामें ग्रीक और लाटिन लिपि देखनेमें आती है तथा मुद्रोत्कीर्ण लिपि द्वारा ४ सदीका परिचय मिलता है। इनमेंसे फर्सेलियन, सिजारियस और आकियम अब्द विशेषरूपसे उल्लेखयोग्य है। किसी मुद्रामें फाराकेल्लाका मुखमण्डल, किसीमें अन्तियोक बैठे हुए हैं और उनके पदतलसे अरन्तिस नदी वह रही है। सुप्रसिद्ध प्राच्यशिल्पी युटिडाइडस इस शिल्पकीर्त्तिके निर्माता हैं। किसी मुद्रामें दीर्घ जटाशीर्ष तालवृक्ष जटाजूटधारी संन्यासीकी तरह दण्डायमान है। हाड्रियनकी समकालीन मुद्रामें ईगलपक्षी बैलका एक पांव ले कर भाग रहा है। इसके सम्बन्धमें ऐसा कहा जाता है, कि कोई राजा गोमेधयज्ञके समाप्तिकालमें गोवध कर पूर्णाहुति देने पर थे, इसी समय इन्द्र वा जियसवाहन ईगल निहत वृषका एक पांव ले कर उड़ गया। जो यज्ञाधिपति थे तथा मख अंशभोजिओंमें अग्रणी थे उन्हींका वाहन गोमांस ले गया, इसे यज्ञका शुभ लक्षण समझ कर राजाने मुद्रातलमें इस स्मृतिको संरक्षित किया था। जियसकेसियसके मन्दिरमेंका एक प्रस्तरमय लिङ्गदेवता मुद्रातलमें अङ्कित है। वह यज्ञक्षेत्र और लिङ्गमन्दिर उस समय तीर्थ समझा जाता था, उसका प्रमाण मिलता है। राजकीय मुद्रामें सिरियाके बहुतसे राजाओंके नाम पाये जाते हैं। साल पिसियस, उरेनियस और आण्टोनाइस आदि रोमक सम्राटोंके भी चिह्न मुद्रातलमें अङ्कित हैं। मेलेरिया तथा दी ओफिलसियानके नाम भी मुद्रामें खोदित हैं।

अपामिया नगरमें सलेकीय राजाओंकी नामाङ्कित मुद्रामें हाथीकी प्रतिमूर्त्ति देखनेमें आती है। एमेसा नगरकी मुद्राके एक अंशमें मन्दिर मध्यवर्त्ती प्रस्तरमयी (शिव) लिङ्गमूर्त्ति है। अलावा इसके नाना गूढ़ार्थक आध्यात्मिक चिह्नका परिचय पाया जाता है। कुछ तान्त्रिक यन्त्र और वीजांकुरादिके अनुरूप हैं। यह एशिया माइनरकी प्राचीन लिपिसे शोभित है, इसमें ग्रीक-सादृश्य का लेशमात्र नहीं। सिविया और फिनिकिया आदर्श पर निर्मित हीरा-खचित मुकुटभूषित एक अवगुण्ठनवती लावण्यमयी ललनामूर्त्ति अङ्कित है। इस स्थानकी अधिकांश मुहरोंमें मन्दिर मध्यस्थ प्रस्तरमय लिङ्गकी प्रतिकृति तथा एक प्रकारका त्रिपत्र लिङ्गके समीप देखा जाता है। हेलियोपोलिस नगरकी मुहरोंके दोनों पार्श्वमें दो प्रकाण्ड मन्दिर हैं। एक मन्दिरमें शस्यशीर्षालंकृत एक देवीमूर्त्ति तथा दूसरे मन्दिरमें नाना प्रकारके पूजोपकरण देखे जाते हैं।

एशियाके मध्य फिनिकियाकी मुद्रा ही सर्वापेक्षा बहुसंख्यक तथा विविध वैचित्रविशिष्ट है। फिनिक वणिकोंने जलधि-नन्दिनी लक्ष्मीको प्रसन्न करनेके लिये सागर सागरमें वाणिज्य जहाज भेजा था। कमलाने चञ्चलताका त्याग कर उन सबोंकी बहुत दिनों तक आराधना की थी— अन्तमें अपनी चञ्चला नामकी सार्थकता दिखलाई थी।

फिनिक मुद्रामें उस देशकी ऐश्वर्यशालिताका स्पष्ट निदर्शन देखा जाता है। यहांकी प्राचीन मुद्रामें कोई मिती नहीं दी गई है, इस कारण यह कबकी बनी है, कह नहीं सकते। फिनिक-मुद्रामें किसी वैदेशिक शिल्पका अनुकरण नहीं है, बल्कि भिन्न भिन्न देशमें इसके हजारों अनुकरण हुए हैं। प्राचीन ग्रीकमुद्रा शिल्प स्वतन्त्र होने पर भी वजनमें फिनिकके समान है। इससे सहजमें अनुमान किया जाता है, कि फिनिक मुद्रामें पाश्चात्य मुद्राशिल्पका अंकुर उत्पन्न हुआ था। प्राथमिक युगके मुद्रातलमें रणतरीका चित्र तथा दूसरे भागमें मत्स्याधिष्ठात्री देवता है। यही फिनिक-सभ्यताका प्रथम सोपान है। उस समय भी फिनिकों-ने वाणिज्यलक्ष्मीकी पूजा करना नहीं सीखा था। उस समय वे लोग जयलक्ष्मीकी उपासना करते थे—बाहुबल-से प्रधानता लाभ की थी। परवर्त्ती मुद्रामें रणतरीके बदलेमें मयूरपक्षी चित्रित हुआ। उस समय जातीय हृदयमें धनलिप्सा और विलास-वैभव दिखलानेकी इच्छा बलवती हो रही थी, सभ्यताका अङ्कुरस्फूरण हो रहा था—इस समयकी फिनिक मुद्रामें बहुतसे वैदेशिक अनु-करण देखे जाते हैं, आज भी उसकी मीमांसा अच्छी तरह नहीं होने पाई है।

फिनिक मोहरादिके द्वितीय युगमें पारसिक और ग्रीक-आदर्श देखा जाता है। इस समयकी मुहरमें पारस्यराजकी प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है। दूसरे भाग-में मत्स्यदेवता डैगन (Dagon) है। फिनिकलिपि-मुद्राका उत्कीर्ण शिल्प प्राच्यभावापन्न है। फिनिकलिपि-मालामें ३ प्रकारके अक्षर देखे जाते है। कौन किस युगका है एकमात्र अनुमानके ऊपर निर्भर करता है। द्वितीय युगकी मुद्रा ई०सन् ४०० वर्ष पहलेकी है। उसके एक भागमें हथियारबंद सेनाओंसे लदा हुआ जंगी जहाज और दूसरे भागमें एक दुर्भेद्य पहाड़ी दुर्ग है। दो भयंकर सिंह सिंहद्वारकी रक्षा कर रहे हैं। परवर्त्तीकालकी मोहरादि पर किसी राजासे निहन्यमान सिंहमूर्त्ति है। किसीके एक भागमें सुसज्जित जङ्गी-जहाज और दूसरे भागमें युद्धके वेशमें सज्जित रथा-रोही राजा है। परवर्त्ती मुद्राके एक भागमें तिमि मछली तथा दूसरे भागमें दरयावी घोड़े पर बैठे हुए धनुर्धारी और एक राजाकी मूर्त्ति है। किसी मुद्रामें पेचक प्रतिकृति अंकित है। पेचक मिस्री जातिकी पताका पर अंकित रहता था। खृ०पू० ४०० मुद्राके एक भागमें 'हंसिया' और दूसरे भागमें 'सूप' अंकित है। कृषिजीवनका अस्त्र अंकित रहनेके कारण पण्डितोंने उस समयको कृषिप्राधान्य अनु-मान किया हैं। इस युगमें मिस्री शिल्पकी प्रधानता देखी जाती है।

तृतीय युगकी फिनिक मोहरादिका वजन पारसिक आदर्श पर बना है। इस समयकी मुद्रा पर 'मेलकार्थ' नामक एक राजाका नाम तथा दूसरे भागमें रणतरीका चित्र देखा जाता है। इसके बादकी सभी मुद्राओंमें तारीख लिखी गई है। टकसाल और राजाका नाम भी इस समयकी मोहरमें अङ्कित है। उसके बादके मुद्रा युगमें सलेउकीय और तलेमी वंशीय 'अलेकसन्दर'की मुद्राका अनुकरण देखा जाता है। पोसिनदनकी अभिनव मूर्त्ति मुद्रातलमें अङ्कित देखी जाती है। यह ग्रीक पोसिदनसे बहुत पहलेकी मुद्रा है। इससे मालूम होता है, कि पोसिदन फिनिकगणके आदिम देवता हैं। अलावा इसके बेरितिस देवीका चित्र और उसकी मुद्रा दूसरी पीठ पर देखी जाती हैं। इस समयकी मुहरोंमें फिनिकीय अष्टकावेरी देवियोंका चित्र अङ्कित देखा जाता है। ब्यब्लस (Byblus) राजाके समय (४०० खृ० पू०)-की मुद्रामें ग्रीक और फिनिक दोनों शिल्प सम्मिलित हैं। इस समय मुद्रातलमें उत्कीर्ण मन्दिरोंका शिखर कोणकार (Conical) है। मन्दिरके भीतर सिरिया देशकी एक देवीकी मूर्त्ति है। उसके एक हाथमें एक सुधाभाण्ड और दूसरे हाथमें पद्मकलिका (समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न लक्ष्मीकी तरह) है। अन्य देवी-मूर्त्तिके हाथमें 'पेपाइरस' का ग्रन्थ (सम्भवतः सपत्नी लक्ष्मी सरस्वती मूर्त्ति) देखा जाता है। मन्दिर मिस्री स्थापत्यशिल्प-निर्मित है। देवीमूर्त्तिके निकट एक सुन्दर विहङ्गम मूर्त्ति है। उसके बाद ईसाजन्मके पहले १९९से लेकर १५३ वर्ष तक सम्राज्ञी वार्णिसके शासनकालमें अनेक प्रकारकी स्वर्ण और ताम्रमुद्राका प्रचार देखा जाता है।

सिडन नगरकी मुद्रा अलेकसन्दरके समयकी तथा उसके पहलेकी है। मोहरादिमें २य तलेमी, २य आसिनो, ३य तलेमी, ४र्थ तलेमी, ४र्थ अन्तियोकस और सलोकीय राजाओंके नाम देखे जाते हैं। स्वर्णमुद्रामें नगराधिष्ठात्री देवीका मस्तक तथा नौकाकी पतवार पर बैठे ईगल पक्षीकी मूर्त्ति है—उसके पास ही ताड़के पेड़की प्रतिकृति है। पीतलकी मुद्रा पर वृषभारूढ़ा युरोपा देवी है। नीचे फिनिकलिपि उत्कीर्ण है। कुछ मुद्रामें एक चक्रके ऊपर बना हुआ एक मन्दिर है। किसीमें अष्टार्टी और आफ्रोदितिकी प्रतिमूर्त्ति है। इन सब मुद्राओंमें जो पूजा-प्रथा अङ्कित देखी जाती है, वह हिन्दू देवीकी पूजा जैसी है। ये सब प्राचीन मुद्रा जुलियस सीजरके शासनकालमें प्रचलित हुई थी। इन सब मुद्रादिका यथार्थ रहस्य आज भी अन्धकारसे ढका है। टायर नगरकी मुद्रा सिडनकी तरह आश्चर्यजनक है। टायरके स्वाधीनता लाभ करनेके पहले सलौकीय राजाओंने इसी स्थानमें मुद्रा प्रस्तुत की थी। प्राथमिक मुद्रामें हिराक्लिसकी मूर्त्ति तथा दूसरे भागमें नावके कर्णधाररूपमें ईगल पक्षी बैठा हुआ है। परवर्त्ती मुद्रामें एक कुण्डलीकृत अजगर सांप खजूर-वृक्षके नीचे अंडेके ऊपर फण फैलाए हुए है और तीक्ष्ण दृष्टिसे चारों ओर ताक रहा है। फिनिक देशमें उस समय खजूरके पेड़की पूजा होती थी। तत्परवर्त्ती मुद्रामें वृक्षके नीचे हरिणका बच्चा तथा एक खिलते हुए फूलके ऊपर गान करनेवाला भौंरा बैठा हुआ है। किसीमें नाइसदेवी ताड़के पंखेसे नैदाघ तापको दूर कर रही है।

पालेस्तिन।

पालेस्तिनके गालिलि-प्रदेशमें तलेमी वंशके राज्यकालकी मुद्रा देखी जाती है। किसी किसीमें प्राचीन बादशाहोंका कुछ परिचय दिया गया है। गदारा नगरमें बादशाहके नामकी एक प्रकारकी मुद्रा पाई गई है। इसके एक भागमें गेरिजिन-पर्वतका चित्र और दूसरे भागमें पर्वतके चारों ओर ऊंचे शिखरके बहुतसे मन्दिर शोभा दे रहे हैं। ७म अन्तियोकसकी जो मुद्रा पाई गई है उसमें उद्भिद्यमान पङ्कजकोटधारिणी एक भुवनमोहिनी मूर्त्ति है। रोमक बादशाहोंकी मुद्राके एक भागमें १०म पल्टन (Tenth legion)-का चित्र और दूसरे भागमें सूअरके बच्चोंकी प्रतिमूर्त्ति अङ्कित है। किसीमें अलेतिण तलेमीकी अलौकिक लावण्यवती कन्या क्लियोपेट्रा तथा उसके भाई-स्वामीका चित्र युगपत् अङ्कित है।

यहूदी।

७म अन्तियोकसके शासनकालमें यहूदियोंने स्वतन्त्र भावसे मोहर बनाना आरम्भ कर दिया। इन सब मुद्राओंका नाम 'सेकेल' (Shekel) है। सभी फिनिक-आदर्श पर चित्रित है। प्रत्येक मुद्रामें इसराइलके सेकेल और उसकी मिती लिखी है। दूसरे भागमें जेरुसलेमका नाम उत्कीर्ण है। अन्यान्य मुद्रामें खिलते हुए कमलपुष्पका चित्र देखा जाता है। उसके बाद महानुभव हिरोड और २य हिरोडकी मुद्रा पाई गई है। इस्राइलके अधिपति साइमनकी रौप्य-मुद्रा अधिक संख्यामें मिलती है। इसके एक भागमें एक सिंहद्वार अङ्कित है।

अरब, आसिरिया, बाबिलन।

अरबदेशके मेसोपोटामिया और ओडेला नगरमें रोमक बादशाहोंकी मुद्रा पाई जाती है। उस समय ये सब देश रोमक राज्यके उपनिवेश-स्वरूप थे। आसुरीय राज्यके निसिबिथ और रेसैनानगर, रोमकमुद्रा पाई गई है। निनेभा नगरमें इस राज्यकी प्राचीनतम मुद्रा मिली है। किन्तु उनका यथार्थ तत्त्व आज भी अज्ञात है। उनमें ग्रीस शिल्पका कोई अनुकरण नहीं देखा जाता। शिल्पके आदर्श पर अनेक प्रकारकी देवदेवीको मूर्त्ति देखनेमें आती है। किसी मुद्राके एक भागमें एक सुन्दर बालकको आकृति है और उसके ऊपर एक सांप अपना फण काढे हुए है। दूसरे भागमें एक मन्दिर है जिसमें देवपूजाका निदर्शन है। सङ्कल्पके घटके जैसा देवीप्रतिमाके सामने एक जलपात्र अङ्कित है। बाबिलोनियामें सोलन ओतिमार्कसके समयकी बहुत-सी मुद्रा पाई गई है।

मिस्र।

एशिया और यूरोपकी तुलनामें अफ्रिकाकी मुद्रा-संख्या बहुत थोड़ी है। मिस्री मुद्राएं भौगोलिक नामानुसार सजाई गई हैं। कोई कोई कहते हैं, कि प्राचीन कालमें ई०सन्के ५००० वर्ष पहले मिस्रदेशमें पत्थरकी मुद्राका प्रचार था। किन्तु अभी उसका नामोनिशान नहीं

है। प्राचीन मिस्रके आविष्कारकों द्वारा समाधिस्थान और पिरामिडके गुप्त प्रकोष्ठमें सोने, चांदी, तांबे, इलेक्ट्रम और पीतलकी अंगूठी जैसी बहुत-सी रिंग आविष्कृत हुई हैं। प्रत्नतत्त्वविदोंका कहना है, कि वे सब रिंग मिस्री सभ्यताके आदि युगकी मुद्रा है। पारसिक आक्रमणके बादसे मिस्रमें पारसिक मुद्रा प्रचलित हुई थी। १म दरायुसके शासनकालमें मिस्रके आर्यनदेश (*Aryandes*) वा आर्यदेश नामक स्थानमें सांचेमें ढली मुद्रा प्रचलित हुई। इस समयका पेपाइरि वा हस्तलिखित ग्रन्थ पढ़नेसे नवप्रचलित मुद्राकी बातें जानी जा सकती है। उसके पहले इस तरहकी मुद्रा नहीं देखी जाती। यह नवप्रचलित मुद्रा फिनिक-शिल्पादर्श पर बनी है। इसके बाद अलेकसन्दरके शासनकालमें ग्रीकशिल्पके नूतन आदर्श पर मोहरें बनने लगीं। १म तलेमीके राजत्वकालमें नई प्रणालीसे मुद्राशिल्पकी प्रतिष्ठा हुई तथा तीन सौ वर्ष तक मिस्रदेशमें यही मुद्रा चलती रही।

मिस्री मुद्रामें जो पारसिक सम्राटोंकी प्रतिकृति अङ्कित है उसका शिल्पसौन्दर्य बड़ा ही सुन्दर है। साइप्रसमें फिनिक तथा अन्यान्य विदेशीय टकसाल-घरकी मुद्रा भी इस समय बहुत प्रचलित हुई थी। जिस समय सलौकीय राजे एशियाखण्डमें मुद्राशिल्पमें उन्नति कर रहे थे, उस समय तलेमीवंशीय मिस्रके राजाओंकी मुद्रा मिस्री चित्रशिल्पके अनुकरण पर बनाई जाती थी। उस मुद्राके एक भागमें १म तलेमीका मस्तक और दूसरे भागमें उनकी महिषीकी प्रतिमूर्त्ति है। २य आर्सिनो, ४र्थ तलेमी और १म क्लिओपेट्राकी मुद्रामें राजदम्पतीका चित्र तथा दूसरे भागमें अभिषेकमें नियुक्त पुरोहितका चिह्न दिखाई देता है। किसी किसी मुद्राके पश्चाद्भागमें ईगलपक्षी और वज्रमूर्त्ति है। कुछ मुद्राओंमें हस्तिचर्मावृत्त वृषशृङ्गमण्डित अलेकसन्दरकी मूर्त्ति चित्रित है। किसी मुद्रामें पेचकवाहिनी पल्लासकी प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है। मिस्रसम्राट् २य तलेमीने फिनिकिया तक अपना राज्य फैलाया था। उस समयकी मिस्री मुद्रा फिनिकिया देशमें पाई जाती है। फिलामेलफसके शासनकालमें बड़ी बड़ी पीतलकी मुद्राका प्रचार था। उसकी तौल १४०० से १६०० ग्रेन अर्थात् प्रायः ८ भरी थी।

३य तलेमी और उनकी युद्धविशारदा महिषी २य वार्णिसने अच्छी अच्छी मुहरोंका प्रचार किया था। पतिकी मृत्युके बाद सम्राज्ञी २य वार्णिसने बहुत दिनों तक प्रबल प्रतापसे राज्य किया था। मुद्रातलमें वार्णिसकी जो लावण्यमयी सौन्दर्यशालिनी मूर्त्ति देखी जाती है, वह शिल्पीके असाधारण शिल्पनैपुण्यकी सूचक है। १म क्लिओपेट्राने ताम्रमुद्रा प्रचलित करके उसमें अपनी प्रतिमूर्त्ति अंकित की थी। यह भी सौन्दर्यसृष्टिका अनुपम दृष्टान्त है। इसके बाद फिलोमेटरोंकी मोहरादि बहुत दिनों तक मिस्रमें प्रचलित रही। अनन्तर मिस्रकी सम्राज्ञी सुप्रसिद्ध ७म क्लिओपेट्राने जिनकी सुन्दरता पर पराक्रमी वीरपुङ्गव जुलियस लट्टू हो गये थे, वीरतागर्वित आण्टोनी जिन्हें पानेके लिये रोमक-साम्राज्यके अतुल ऐश्वर्यको तिलाञ्जलि देने पर प्रस्तुत थे तथा जिनकी विरहवेदनासे पागल हो उन्होंने आत्महत्या कर डाली थी, अद्वितीय चित्रशिल्पी गिडो जिनकी भुवन-मोहिनी प्रतिमाको अङ्कित कर जगत्में अमर हो गये हैं—सौन्दर्यकी उस सुवर्ण प्रतिमा-रूपिणी मुद्रातलमें विलास-विभ्रममें अपना चित्र दिखलाया था। मुद्रातलमें उनके सौन्दर्यकी अपेक्षा विभ्रमविलासको ही अच्छी तरह अङ्कित किया गया है। इसमें ज्योत्स्नामयी निशीथिनीय-प्रशान्त सौन्दर्यकी तरह कमनीय भाव नहीं है। यह विलास-विभ्रममण्डिता क्लियोपेट्राकी मूर्त्ति मरीचिकाकी तरह दर्शकके नयनोंको आकृष्ट करती है।

इसके बाद मिस्रमें रोमकाधिकार आरम्भ हुआ। इस समय मिस्रमें मुद्राशिल्पकी अच्छी उन्नति देखी जाती है। इनमेंसे अलेकसन्द्रिया नगरीका मुद्राशिल्प सौन्दर्यमें, वैचित्र्यमें तथा पुरातत्त्वके रहस्योद्घाटनमें सबसे श्रेष्ठ है। इन सब मुद्राओंको एक श्रेणीमें सजानेसे मालूम होता है, कि सम्राट् अगष्टसके समय इन सब मुद्राओंका आरम्भ तथा आर्टिलियस डोनेसियसके समय अवसान हुआ है। इस समय दियोक्लिसियनने फिरसे ग्रीक आदर्श मिस्रमें प्रचलित किया। जिन सब मुद्राओं पर मिस्री और ग्रीकशिल्पका सम्मिलन देखा जाता है

उनमें मिस्रके पौराणिक चित्र ही अधिक देखे जाते हैं। किसीमें मिस्रका सूर्य-मन्दिर बड़े ठिकानेसे चित्रित है।

इसके बाद ट्रोजन, हाद्रियन और अन्तोनियस पायस आदि रोम-सम्राट्शाहोंकी बहुत-सी मुद्राएं मिस्रमें पाई जाती हैं। अन्तोनियसके शासनकालमें (१३८ ई०में) मिस्री मुद्रामें ज्योतिश्चक्रका एक अपूर्वचित्र अङ्कित देखा जाता है। यह सथियाक सम्वत्सर (Sothiac Cycle) के १४६ ई०में खोदी गई है। इसमें मिस्री ज्योतिःशास्त्रकी विशेष उन्नतिका निदर्शन है। इसके बादकी मुद्रामें नगरके नामादि और सभी मिती चित्रित हैं। बहुत-सी मुद्राओंमें मिस्री पूजापद्धतिके चित्रादि अंकित देखे जाते हैं। पलुसियम नगरकी मुद्रा चित्र-शिल्पमें सर्वश्रेष्ठ है।

अफ्रिकाके अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा साइरेनेका-प्रदेशकी मुद्रा द्वारा इतिहासके अनेक तत्त्वोंका आविष्कार हुआ है। ई०सन्के ६४० वर्ष पहले भी यहां बहुत-सी ग्रीकमुद्रा पाई गई है। बट्टस (Battus) वंशके राजत्वकालसे ले कर अगष्टसके समय तक ७ सौ वर्षकी नाना प्रकारकी मुद्राएं यहां देखी जाती हैं। साइरिन और बार्का नगरमें अनेक सुन्दर मुद्रा मिलती हैं। इनमें प्रधानतः जियासकी मूर्त्ति तथा दूसरे भागमें 'सिलफिया' पेड़की प्रवालपल्लवमाला अंकित है। यहां ईसा-जन्मके ४५० वर्ष पहले रौप्यमुद्रा पहले पहल प्रचलित हुई। फिनिकिया और सामिया आदर्शकी मुद्रा भी यहां मिलती है। जियासकी कुछ मुद्रामें मूंछ दाढ़ीके और कुछमें बिना मूंछ दाढ़ीके मुखमण्डल देखे जाते हैं। शिल्पसौन्दर्य हर हालतमें प्रशंसनीय है। दो एक प्राचीनतम मुद्रा ख० पू० ७वीं सदीकी है। बहुतोंका कहना है, कि यह लिदिया और इजाइनाकी मुद्रासे भी पुरानी है। साइरिनके राजवंशने ख० पू० ४५० तक राजत्व किया था। इस समयकी स्वर्णमुद्रामें ओलिम्पियाका शिल्पानुकरण देखा जाता है। बार्काकी मुद्रा में फिनिक-आदर्शकी पूर्ण छाया दिखाई देती है। इसके दूसरे भागमें सिलफिया वृक्षकी शाखा पर बैठे पेचक, छिपकली और एक खरगोशकी मूर्त्ति है। किसी किसीमें प्युनिक लिपिमें उत्कीर्ण अनेक साङ्केतिक चिह्न देखे जाते हैं। उसका गूढ़ रहस्य आज भी किसीको मालूम नहीं। जिउगिटाना प्रदेशके मध्य कार्थेजके मुद्रा-शिल्पमें अनेक प्रकारकी चमत्कारिता दिखलाई गई है। किसीका कहना है, कि फिनिकशिल्पसे इसकी उत्पत्ति है। इस विषयकी आज तक कोई मीमांसा नहीं होने पाई है। ई०सन्के ४०० सौ वर्ष पहलेसे कार्थेजका अधःपतन है। १४६ ख० पू० तक कार्थेजने मुद्रा-शिल्पकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। कार्थेज-वासियोंने सिसली द्वीपमें जैसी मुद्रा बनाई थी, अपने देशमें भी उसी तरहकी बनाई। पारसिक शिल्प आदर्श पर बनी मुद्रा भी कार्थेजके नाना स्थानोंमें पाई गई है। प्राचीन मुद्रामें अश्व और अश्विनीकुमारके विविध चित्र हैं। किसी मुद्रामें दो यमज भाई घोड़ीका स्तन्य पान कर रहे हैं। अन्यान्य मुद्राओंमें पार्सिफोनकी दिव्यमूर्त्ति तथा दूसरे भागमें फलशाली खजूरके पेड़का चित्र है। किसी मुद्रामें असामान्य रूपलावण्यवती एक रमणीका मुकुटालंकृत मस्तक देखा जाता है। इसका शिल्पसौन्दर्य अतुलनीय है। किसीमें सिंहवाहिनीमूर्त्ति और किसीमें त्रिशूलधारिणी असुरसंहारिणी नाइस-देवीकी मूर्त्ति चित्रित है।

इसके बाद रोमकपुराणके चित्रादि कार्थेजकी पीतलकी मुद्रामें देखे जाते हैं। किसी मोहरमें वरिका देवीका चित्र अङ्कित है। न्युमिदियाकी मोहरमें प्युनिक लिपिके अनेक साङ्केतिक चिह्न देखे जाते हैं। १म जिओवाके शासनकालमें जो मोहरें पाई गई हैं वह विविध तत्त्वोंसे परिपूर्ण हैं। २य बोगाद और २य जिओवाकी मोहरें प्युनिक लिपि और ग्रीकशिल्पका सन्धिस्थल है। मार्क आल्हनियो और मिस्रकी रानी क्लिओपेट्राकी लड़की ८म क्लिओपेट्राके साथ २य जिओवाका विवाह हुआ था। न्यु मिदियाकी मोहरोंमें मिस्रका राजवंशके अन्तिम वंशधर क्लिओपेट्राकी शान्तमूर्त्ति देखनेसे मालूम होता है, कि भावी अधःपतनकी विषाद-कालिमासे उनका मुखमण्डल समाच्छन्न है।

रोमकमुद्रा।

रोमकी मुद्रा दो भागोंमें विभक्त है, प्रजातन्त्र और राजतन्त्र। प्राचीन कालसे अगष्टसके 'संशोधन-आईन'-के

समय अर्थात् ईसाजन्मसे पहले १६ अब्द तक प्रथम युग तथा इस समयसे ले कर ४७६ ई०सन् तक द्वितीय युग है। प्रजातन्त्रका मुद्राशिल्प ठीक किस समय आरम्भ हुआ था, प्रत्नतत्त्वविद् उसे आज भी न बता सके हैं। इस सम्बन्धमें नाना मुनिका नाना मत है। पर हां, प्राचीनतम रोमकमुद्रामें रोमको पौराणिक कहानीके अनेक मूलसूत्र पाये जाते हैं।

रोमकी प्राचीन मोहरें पीतलकी होती थीं। उनमें किसी प्रकारका चित्र नहीं रहता था। गोल और चौकोन पीतलके टुकड़ोंका ही व्यवहार होता था। उसके बाद उनमें छाप पड़ने लगी। मुद्रातत्त्वज्ञ पण्डितोंका कहना है, कि ये प्रथम छापयुक्त पीतलकी मुद्रा सार्वियस डालियस द्वारा बनाई गई हैं। इन मुद्राओंमें भेंड़, बैल, केंकड़े, सूअर आदि जीवजन्तुओंके चित्र देखे जाते हैं। बहुतोंका कहना है, कि ये सब मुद्रा ई०सन्‌की ५वीं शताब्दीके पहलेकी नहीं हैं। इस समय चौकोन पीतलकी मुद्रा गोलाकारमें परिणत हुई। उसके बादके युगमें पिरहासके समय हाथीकी प्रतिमूर्त्ति अङ्कित हुई। मुद्रातत्त्वज्ञ मम्सेन कहते हैं, कि लेकसजुलिया पापिरियाने ई०सन्‌के ४३० वर्ष पहले नई मुद्रा चलाई। किन्तु इनके शासनकालमें मुद्रा इतनी थोड़ी संख्यामें छपती थी कि प्रजा बकरे भेड़े आदि दे कर मालगुजारी चुकाती थी। खरीद बिक्री और वाणिज्य-व्यवसायमें भी यही प्रथा जारी रही। जो हो, पर इतना जरूर है, कि प्राचीन रोमकमोहरादि ग्रीकमुद्राके अनुकरण पर ढाली जाती थी। इसके पीतलके टुकड़ों पर जुपिटरका मुख अङ्कित है। ई०सन्‌के २७० वर्ष पहले रोममें पहले पहल चांदीकी मुद्राका प्रचार हुआ। ई०सन्‌के २२८ वर्ष पहले 'भिक्टोरियाटस' नामक नया रुपया चलता था। सल्लाके समयमें ही सबसे पहले रोममें मोहर प्रचलित हुई। ईसाजन्मके ४६ वर्ष पहले जुलियस सोजरने नई मुहर चलाना आरम्भ किया। इन सब मुद्राओंमें "Q" के जैसा साङ्केतिक चिह्न है। इनमें जेनस बाइफ्रनस (Jonus Bifrons), जुपिटर, पल्लास, हरकुलेश, मार्करी तथा रोमाधिष्ठात्री रोम देवीकी प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है। इस श्रेणीकी जो मुद्रा मुद्राशालामें सजाई गई हैं उनमें निम्नलिखित प्रतिमूर्त्ति देखनेमें आती है।

१—रोमाधिष्ठात्री देवी रोमा, जुपितर, पेतिल्लिया, जुनिया देवी और नेपचुनका मस्तक।

२—पवित्र प्राकृतिक पदार्थ, पवित्र जीवजन्तु आदि।

३—प्रतिष्ठित नगरादिके अधिष्ठात्री देवता आदि। जैसे, हिस्पानियाकी केरिसा, रोमकी जुलिया और अलेकसन्द्रियाकी पमिलिया इन सब देवीकी भुवनमोहिनी मूर्त्ति मुद्राशिल्पके चरमोत्कर्षको प्रमाणित करती है।

४—कल्पित पौराणिक चित्र आदि। जैसे, हस्तिलिया वा पावर, पाल्लर, होनस, भित्तीस और सुसिया आदि।

५—कल्पित दानवादि, जैसे, सिल्ला (Scylla)

६—स्वर्गीय पूर्वपुरुषोंकी प्रतिमूर्त्ति। जैसे—नुमा वा कालपूर्णिया, आस्कस,मार्सियम।

७—पूर्वपुरुषोंकी कीर्त्तिकहानी, जैसे—मार्कस लेपिदसकी प्रतिमूर्त्ति अथवा तलेमी एपिफेनसको मुकुट पहनानेमें उद्यत पमिलिया देवी।

८—नाना प्रकारकी ऐतिहासिक घटनाओंका स्मृतिचित्र।

९—सम्राट् अथवा सेनापतिकी प्रतिमूर्त्ति।

रोमक-मुद्रा द्वारा रोमका यथार्थ इतिहास अच्छी तरह नहीं मालूम। रोमकोंने सर्वांशमें ग्रीकशिल्पका अनुकरण किया था सही, किन्तु वे किसी अंशमें उनसे बढ़ कर नहीं निकले। रोमक मोहरादिमें देव-देवीके चित्रकी अपेक्षा ऐतिहासिक घटना ही अधिक परिमाणमें चित्रित है। बहुतोंमें राजोचित प्रधानता देखी जाती है। फलतः रोम कभी भी मुद्राशिल्पमें ग्रीकका मुकाबला नहीं कर सकता। मार्कस अरेलियसकी मुहरोंसे अनेक ऐतिहासिक तत्त्व जाने जाते हैं। उनमें रोम सम्राट् और सम्राज्ञीकी सुन्दर प्रतिमूर्त्ति भी अङ्कित है। सम्राट्‌के मस्तक पर राजच्छत्र वा राजमुकुट और सम्राज्ञीका मुख अर्द्धावगुण्ठित है, किन्तु जिन्होंने यौवन-सीमामें पदार्पण नहीं किया है उनका मुख बिलकुल खुला है। अलावा इसके ऐतिहासिक घटनाका संपूर्ण

चित्र यदि जानना हो, तो रोमकमुद्रा देखो, उससे कुल बातें मालूम हो जायंगी। ग्रीक शिल्पके अनुकरण पर रोमकोंके इतिहासमें बीच बीचमें जैसा परिवर्त्तन हुआ था, रोमकी मुद्रा ही उसका अपूर्व निदर्शन है। रोमकोंकी देव-देवियां ग्रीक-देवदेवीकी हूबहू अनुकरणमात्र हैं, शिल्प भी ग्रीक शिल्पको छायाके सिवा और कुछ नहीं है। ई०सन्के पहले एशिया खण्डमें भी मुद्राशिल्पकी जैसी उन्नति हुई थी, रोममें उसका सौवां भाग भी नहीं हुई। किंतु सम्राट् अगष्टसके शासनकालमें रोममें शिक्षा-सभ्यताके नवयुगका आविर्भाव हुआ 'अगष्टन' युगको रोमकके इतिहासमें स्वर्ण युग कहा है। इस युगका साहित्य मानो पृथ्वीमें अविनश्वर निदर्शन छोड़ गया है। इस युगके मुद्राशिल्पने भी उसी तरह सर्वाङ्गीण उन्नति की थी।

रोमक-मोहर और रुपयेमें अङ्कित लिभिया, जास्तिसिया और प्रवोणा एग्रिपिनाका चित्रशिल्प सौन्दर्यका अनुपम दृष्टान्त है। ऐसा नैसर्गिक हावभावसे भरा सुन्दर चित्र कहीं भी देखनेमें नहीं आता। रोमक-सम्राट् नृशंस नीरोका चित्र देखनेसे उसका मुखमण्डल आन्तरिक भावोंसे पूर्ण मालूम पड़ता है।

प्राच्य-मुद्रा।

मुद्रातत्त्वज्ञ पण्डितोंने प्राच्यश्रेणीमें निम्नलिखित प्रदेशोंको स्थान दिया है,—प्राचीन पारस्य साम्राज्य, अरव, आधुनिक पारस्य, अफगानिस्तान, भारतसाम्राज्य, चीनस म्राज्य और जापान आदि देश। प्राचीन प्राच्य मुहरादिमें सबसे पहले पारद वा पार्थिय (*Parthian*) तथा पारस्यमुद्राका उल्लेख किया जा सकता है। भारतीय मुहरादि भी ग्रीक, संस्कृत, अरव, पारस्य आदि भाषाकी नाना प्रकारको लिपियोंसे परिपूर्ण है। खृ० पू० छठी शताब्दीमें प्राचीन पारसिक मुद्राशिल्पकी उन्नति देखी जाती है। १म दरायुस वा हयस्ताम्पके समय सबसे पहले पारसिक मुद्राका प्रचार आरम्भ हुआ। इस समय पारसिक लोग वाणिज्यमें अद्वितीय थे। इसके पहले लिदियापति धनकुबेर क्रिससकी मुहर पारस्यमें प्रचलित थी। कहीं कहीं फिनिकिया मुद्राशिल्पका प्रभाव देखा जाता है। राजकीय मोहरोंका नाम 'दारिक' और रुपयोंका नाम 'सिग्ली' था। मोहरादिके एक ओर धनुर्द्धारी पारस्य-सम्राट्की मूर्त्ति और दूसरी ओर नेमियन सिंहकी प्रतिकृति अङ्कित है। किसीमें हीराक्लिस सिंहके साथ अपना विक्रम दिखा रहा है। फर्णावगासकी प्रतिमूर्त्ति-अंकित मुद्रा अत्यन्त सुन्दर है। अलेकसन्दरने पारस्यदेश जय किया था सही किन्तु उसकी स्वाधीनताको वे सम्पूर्णरूपसे विलोप न कर सके थे। पार्थिय-साम्राज्य पहले पारस्यके अधीन था, पीछे ई०सन् २४६ वर्ष पहले पार्थियोंने वागी हो कर पारस्यके दासत्व बंधनको तोड़ ताड़ कर विशाल स्वाधीन साम्राज्यकी नोंव डाली। आगे चल कर वे रोमके साथ प्रतियोगिता करनेमें समर्थ हुए थे। पार्थिय मुद्रामें ग्रीकशिल्पकी छाया देखी जाती है। एक पृष्ठ पर राजाका मस्तक और दूसरे पर स्वदेशके स्वाधीनता-संस्थापक बड़ी बड़ी आंखवाले अर्सकेस धनुर्वाण हाथमें लिये खड़े हैं। उसके नीचे अनेक प्रकारकी उत्कीर्ण लिपि है। अर्सकेस-वंशीय ११वें राजाकी प्रतिमूर्त्ति मुद्रातलमें अङ्कित देखी जाती है। किसी किसीमें सलौकिय (Seleucid) राजाओंका शिल्पानुकरण देखा जाता है। पार्थिय मोहर और रुपयेमें उत्कीर्ण लिपिकी तरह दीर्घ अक्षरमाला पार्थिय साम्राज्यके १७वें राजा फ्रओतेस तथा उनको माता सम्राज्ञी मूसाकी प्रतिमूर्त्ति शिल्पसुषमाका आश्चर्य निदर्शन है। पारस्य प्रदेशमें शासनवंशके राजाओंने पराक्रान्त हो कर २२६ ई०में पार्थिय-साम्राज्यको ध्वंस कर डाला। अर्द्देशी वा अर्त्तक्षत्र इन लोगोंके अग्रनायक थे। इस वंशके सम्राटोंने स्वर्णमुद्राका प्रचार किया। उसके एक भागमें मुकुटालंकृत राजमस्तक और दूसरे भागमें प्रज्वलित अग्निवेदिका है। अग्निवेदिके सम्मुख भागमें प्रशान्त मूर्त्ति पुरोहित पद्मासन पर बैठे हैं और राजा हाथ जोड़े ध्यानमें लीन हैं। इस वंशने अप्रतिहत प्रभावसे चार सौ वर्ष तक राज्य किया और नाना प्रकारकी मुद्रायें चलाई थीं।

अर्त्तक्षत्रके समयमें जरथुस्त्र मतकी विशेष प्रधानता देखी जाती है। उस समयकी उत्कीर्ण लिपि पहवी भाषामें है। इसके बाद ही अरवी मुद्रा है। सार्द

बारह सौ वर्ष तक मिस्रसे चीन देश पर्यन्त इस मुद्राका प्रचार हुआ था। शासनीयोंकी अरबी मुद्रा पह्लवीलिपि-युक्त मुद्रासे मिलती जुलती है।

मुसलमानोंकी प्रथम मुद्रा ४० ई०में बसोरा नगरमें प्रचलित हुई। खलीफा अलीने ही सबसे पहले शासनीय मुहरादिके बदलेमें अपनी मुद्रा चलाई। ७६ ई०सन्‌में अबदुल मालिकका टकसालघर खोला गया। उनकी स्वर्णमुद्रा वा मोहरका नाम 'दीनार' है। यह ग्रीक मोहरादिकी अविकल अनुरूप मात्र है। रौप्यखण्डका नाम 'दिरहम' (द्रम्म) और ताम्रमुद्राका नाम 'फेल' है। इन सब मुद्राओंमें जो सब लिपिमाला देखी जाती है उसका अर्थ 'अली ईश्वरका अवतार वा बंधु है।' मुरादके मुद्रातलमें हजारों धर्मोपदेश देखे जाते हैं। ये सब उपदेश दिल्लीके पठान बादशाहोंकी मुद्रालिपिके सदृश हैं। इस बाद स्पेनदेशकी ओमायद, अफ्रिकाकी फतेमा तथा बागदादकी अब्बासवंशीय मुसलमान बादशाहोंकी दीनार, दीरहम वा द्रम्म और फेल नामकी मुद्राका नाम पाया जाता है। फतेमा वंशकी दीनार और द्रम्म नामकी कुछ मुद्राओंमें एककेन्द्रिक वृत्त देखा जाता है।

इन सब मुद्राओंके बाद ताहिरी, सफरी, समानी, जियारी और ओहिदोंकी दीनारादि मिलती हैं। इसके बाद गजनवी और सलजुकवंशीय मुसलमान बादशाहोंकी मुहरादि प्रचलित हुई।

तैमूरलङ्गने तांबे, पीतल और चाँदीको मुद्रा चलाई। अहमदशाह दुर्रानीके समयकी बहुतों अफगान-मुद्रा आविष्कृत हुई हैं।

चीनदेश।

पाश्चात्य पण्डितोंने परीक्षा द्वारा यह साबित किया है, कि चीनदेशमें बहुत प्राचीन मौलिक मुद्रा मिलती हैं। यह मुद्रा चौकोन भारतीय पुराण वा कार्षापणकी तरह हैं। उनमें ग्रीकशिल्पका कुछ भी अनुकरण नहीं है। फिर भी मुद्रातत्त्वज्ञ पण्डित चीनको प्राचीन मुद्राको ई०सन्‌के पहले ६ठी शताब्दीको नहीं मानते। चीनमें सबसे पहले पीतलकी मुद्राका प्रचार था। चीनदेशको प्राचीन मुद्राका आकार कुछ विस्मयजनक है। कोई तो छुरीकी तरह है और कोई गोल है। किन्तु उसके बीचमें फिर एक चतुष्कोण छेद देखा जाता है। लोग उस छेदमें रस्सी घुसा कर गूंथ रखते थे। इन सब मुद्राका नाम 'कश' है। कशके ऊपर राजाकी उपाधि है और हर जगह उसका मूल्य चीनभाषामें अङ्कित है। चीनदेशकी मुद्रासे वहांके इतिहासका विविध रहस्य मालूम होता है। फिर उसके पदकमें नाना प्रकारके मन्त्रतन्त्र बीजाक्षर आदि भी लिखे हैं। कोरिया, आनम और यवद्वीपकी मुद्रा सर्वांशमें चीनकी अनुकरण मात्र है। जापानकी मुद्रा भी चीनके आदर्श पर बनी है। जापानकी ताम्रमुद्रा चीनकी बिलकुल अनुकरण है। उसमें फिर विविध वर्णोंमें लिखित लिपिमुद्रा देखी जाती है। इस देशकी 'कोबाम' नामकी मुद्रा पृथ्वी भरकी मुद्राओंसे बड़ी है। इसका वजन साढ़े बारह सेर है। फिर कुछ मुद्रा चौकोन है। उनमें ऐन्द्रजालिकका नाम और छड़ी अङ्कित है। चीनदेशके मुद्रातत्त्वको गौर कर देखनेसे मालूम होता है, ईसाजन्मके बहुत पहलेसे वहां मुद्राका व्यवहार था। पाश्चात्य पण्डितोंने, ग्रीक मुद्रा ही पृथिवीकी आदि मुद्रा है, इस भ्रममें पड़ कर चीन मुद्राको ग्रीकमुद्राकी समसामयिक कहा है।

भारतीय मुद्रातत्त्व।

बहुत पहलेसे ही भारतवर्षमें तांबे, चांदी और सोनेकी मुद्राका प्रचार था। भगवान् मनुने कहा है, कि खरीद बिक्री आदि लौकिक व्यवहारके लिये ही मुद्राकी सृष्टि हुई है*। मुद्राका मूल्य किस प्रकार निर्द्धारित होता था, उस सम्बन्धमें मनुसंहितामें इस प्रकार लिखा है :—

८ त्रसरेणु = १ लिक्षा।

३ लिक्षा = १ राजसर्षप।

३ राजसर्षप = १ गौरसर्षप।

६ गौरसर्षप = १ यव।

३ यव = १ कृष्णल।

* "लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि।
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः॥"
(मनु ८।१३१)

५ कृष्णल = १ मास।

१६ मास = १ सुवर्ण।

४ सुवर्ण = १ पल।

१० पल = १ धरण।

२ कृष्णल = १ रौप्यमास।

१६ रौप्यमास = १ राजत, धरण वा पुराण।

१० धरण = १ राजत शतमान।

४ सुवर्ण = १ निष्क।

मनुके मतसे रौप्य 'पुराण' वा धरणका ही दूसरा नाम कार्षापण है। पलके चौथाई भागको कर्ष कहते हैं। तांबेके कर्षका नाम ही पण है।

मनुस्मृतिके उक्त प्रमाणसे मालूम होता है, कि पूर्वकालमें भारतवर्षमें ताम्रपण वा 'पुराण, रौप्यमाष, रौप्य 'पुराण', 'धरण' वा कार्षापण, रौप्य शतमान तथा सुवर्ण और स्वर्णपल वा निष्कका प्रचार था। किसका परिमाण और मूल्य कितना है वह भी पूर्वोक्त प्रकारसे निर्द्धारित हुआ है।

भारतकी आदिमुद्रा।

किस समय भारतवर्षमें प्रथम मुद्राका प्रचार हुआ उसे जाननेका कोई उपाय नहीं। वर्त्तमान पाश्चात्य मुद्रातत्त्वविदोंका कहना है, कि अति प्राचीनकालमें फिनिक वणिकसे ही भारतमें चांदीकी मुद्राका प्रचार हुआ। उसके पहले भारतवर्षमें तांबेकी मुद्रा चलती थी, किंतु स्वर्ण मुद्राका नामोनिशान भी न था। फिनिक वणिक चार्सिसके चांदीके पत्तर दे कर ओफिर (सिन्धु-सौवीर)-से सोनेकी धूल ले जाते थे। भारतवर्षमें पहले स्वर्णमुद्राको जगह इस प्रकारकी स्वर्णधूलिकी थैली (कोष)-का व्यवहार होता था। उस स्वर्णधूलिको पा कर टायरके वणिक धन कुबेर और वणिक्‌राज कह कर संसारमें मशहूर हो गये थे।

बाबिलनके साथ उस प्राचीन कालमें जो भारतवर्षका संस्रव था वह बौद्धोंके बावेरु-जातक * में वर्णित हुआ है। पाश्चात्य मतको बहुत कुछ स्वीकार करने पर भी पूर्वकालमें भारतवर्षमें स्वर्ण मुद्राका प्रचार नहीं था, उसे हम माननेको तैयार नहीं। शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मणमें स्वर्णमुद्राका परिचय पाया जाता है, "हिरण्यं सुवर्णं शतमानं (१२।७।३)।" मनुके ऊपर कहे गये मानसे मालूम होता है, कि सुवर्ण शतमानका दूसरा नाम निष्क है। ऋक्‌संहितामें हम लोग निष्क नामक सुवर्ण-मुद्राका उल्लेख पाते हैं—

"अर्हनविभर्षि सायकानि धन्वार्हंनिष्कं यजतं विश्वरूपं।"

ऋक्‌संहितामें लिखा है, कि कक्षिवान् ऋषिने राजा भावयव्यसे १०० घोड़े और १०० बछड़े के साथ १०० निष्क उपहारमें पाये थे। "शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कां-च्छतमश्वान्" (ऋक्० १।१२६।२)

वर्त्तमान अनुसन्धानके फलसे स्थिर हुआ है, कि फिनिक वणिकोंके अभ्युदयके पहले वैदिक सभ्यता थी। इस हिसाबसे फिनिकियोंके बहुत पहले भारतवर्षमें निष्क नामक स्वर्णमुद्राका प्रचार था, इसमें संदेह नहीं। पाणिनिने भी उस निष्क नामक स्वर्णमुद्राका उल्लेख किया है। वैदिक युगमें आर्यलोग निष्ककी माला गलेमें पहनते थे, वेदमें इसके भी बहुत प्रमाण मिलते हैं। किन्तु उस मुद्राका आकार कैसा था यह अब तक भी अज्ञात है। भारतीय प्राचीन मुद्राओंमें राजमुख अङ्कित रहता था। उसी मुद्राके आदर्श पर अलेकसन्दरकी मुद्रा ग्रीसमें प्रचलित हुई थी, यह पहले ही कहा जा चुका है।

भारतवर्षके नाना स्थानोंसे तांबे और चांदीका 'पुराण' वा 'कार्षापण' आविष्कृत हुआ है। बुद्धगयाके महाबोधिमन्दिरमें तथा भरहुतस्तूपमें इस प्रकार दो हजार वर्ष पहलेकी प्रचलित मुद्राका चित्र दिखाया गया है। इन 'पुराण' मुद्राओंमें एक वा अधिक छेनीके दाग देखे जाते हैं। इसी कारण प्रत्नतत्त्वविदोंने इस मुद्राका छेनीकट्टा (Punchmarked)-मुद्रा नाम रखा है। प्रत्नतत्त्ववित् कनिंहमका कहना है, कि पंजाबमें जब ग्रीक-अधिकार परिवर्त्तन हुआ, तब भारतके कार्षापणने पुराण वा पुराना नाम धारण किया।* किन्तु ग्रीक आगमनके

* प्राचीन बाबिलन दरायुसकी शिलालिपिमें बाबिरुश और भारतीय प्राचीन बौद्धजातकमें 'बावेरु' नामसे मशहूर है। (Babylonian and Oriental Record, 111 p. 7)

* Cunningham's Coins of Ancient India, P. 47.

पहलेसे ही मुद्रा-नामका प्रचार था, यह मन्वादिके वचनोंसे मालूम होता है।† रौप्य कार्षापण वा पुराण का परिमाण अकसर ३२ रत्ती वा ५७६ ग्रेन था। कनिंहमके मतसे कर्षफल अर्थात् आंवलेसे कार्षापण नाम हुआ है। एक एक आँवला १४० ग्रेन तक होता है, यही ताम्र कार्षापणका परिमाण है।‡ मुद्रातत्त्वविद् रापसनके मतसे एक एक सुवर्ण पुराणका परिमाण ८० रत्ती=१४६·४ ग्रेन वा ६·४८ ग्राम, एक एक रौप्य-पुराणका परिमाण ३२ रत्ती=५८·५६ ग्रेन वा ३·७६ ग्राम (Grammes) तथा एक एक ताम्रपुराणका परिमाण ८० रत्ती होने पर भी भारतके नाना स्थानोंमें नाना प्रकारके ताम्रपुराण पाये गये हैं। ईसाजन्मसे पहले २री सदीमें ग्रीकप्रभावसे युक्तप्रदेशमें इस मुद्राका बहुत कुछ रूपान्तर होने पर भी भारतके दूसरे दूसरे स्थानोंमें इसका रूप नहीं बदला था, ठीक पहलेके जैसा था।¶

पुराण-मुद्राओंमेंसे कुछ तो चौकोन और कुछ बादामी रंगकी होती थी। युक्तप्रदेशमें अभी जो ढेपुआ देखा जाता है वह प्राचीन पुराण मुद्राके अनुकरण पर बना है।

अभी स्वर्णमुद्राका नामोनिशान भी नहीं रह गया है, परन्तु भारतवर्षमें एक समय इसका यथेष्ट प्रचार था। प्लिनिका वर्णन इसका काफी प्रमाण देता है। पेरिप्लसने लिखा है, कि भारतवर्षके पूर्व उपकूलमें 'काल्तिस' (Kaltis) नामक एक प्रकारकी स्वर्णमुद्रा प्रचलित थी। पाश्चात्य वणिक् रोमक स्वर्ण और रौप्यमुद्रासे बदल कर उसे अपने देश ले जाते और खासा लाभ उठाते थे। मलयालम् भाषामें इस मुद्राको 'कलुत्ति', सिंहलमें 'करण्ड' और दाक्षिणात्यमें 'कलञ्ज' ग्रीक और रोमक-वणिक् 'कालतिस' कहते हैं।* एक एक कलञ्जबीजका परिमाण कमसे कम ५० ग्रेन होता था। दाक्षिणात्यमें आज भी जो हूण नामकी स्वर्ण-मुद्रा प्रचलित है उसका भी वजन औसतसे ५२ ग्रेन है। यह परिमाण देख कर प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहम साहबने स्थिर किया है कि ग्रीक-वर्णित कालतिस मुद्रा ही स्वर्णमुद्रा तथा अभी हूण मुद्रा कहलाती है।†

ताम्रपुराणको अभी दाक्षिणात्यमें शालाक कहते हैं। इस प्रकार अर्द्ध कार्षापण 'कोण' और कार्षापणका चतुर्थांश 'पादिक' वा टङ्क कहलाता है। प्राचीन पुराणके साथ साथ कोण और पादिक मुद्रा भी आविष्कृत हुई है। बम्बईकी गुहालिपिमें 'पादिक'को सुवर्णका सौवाँ भाग बतलाया गया है। रौप्य-टङ्क वा पादिकका परिमाण ८ रत्ती=१४·४ ग्रेन, कोणका परिमाण १६ रत्ती=२८·८ ग्रेन, ताम्रकार्षापणका परिमाण ⅛, अर्द्ध काकिनी ५ वराटकका परिमाण १० रत्ती=१८ ग्रेन, ¼ काकिनी परिमाण २० रत्ती=३६ ग्रेण, ½ अर्द्ध पणका परिमाण ४० रत्ती=७२ ग्रेन है। काकिनीका दूसरा नाम बोड़ि अर्थात् बौड़ी है। वर्त्तमान कालमें बौड़ीके बदले 'पैसा' चलता है। इसे बोड़िको स्काच भाषामें Bodle और ग्रीक भाषामें Oboli कहते हैं। जिस भारतवासीने सुदूर यवद्वीपमें जा कर आर्यसभ्यताका विस्तार किया था वह जाति अति प्राचीन कालमें पाश्चात्य जगत्में विना मुद्रा प्रचार किये ही लौट आई हो, ऐसा हो नहीं सकता। आज भी ब्रह्मदेश और भारतीय अनुद्वीपोंमें जो 'तिकल' मुद्रा प्रचलित है, बहुतोंका विश्वास है, कि वही इस देशसे ग्रीक और बाबिलनमें जा कर 'सेकेल' कहलाने लगी है। वर्त्तमान कालमें स्वर्णमुद्राको 'मोहर', रौप्य मुद्राको 'टङ्का' वा 'टाका' या रुपया और ताम्रमुद्राको पैसा कहते हैं।

प्राप्तिस्थान और चिह्नसे भी फिर पुराणके नाना प्रकारके भेद देखे जाते हैं, जैसे—

१ वत्स (कौशाम्बीसे आविष्कृत। एक समय

---

† "द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमासकः।
ते षोड़श स्याद्धरणं पुराणञ्चैव राजतम्॥"
(मनु ८।१३६)

‡ Cunningham's Coins of Ancient India p. 45.

¶ Rapson's Indian Coins. p. 2—3.

* W. Elliot's coins of South India, p. 53.

† तामिल-पोण्, कणाड़ी-होण, पारसी-हूण।

कौशाम्बीमें वत्स राजाओंकी राजधानी थी।) चिह्न—गोवत्स।

२ उदुम्बर (पंजावके उत्तर उदुम्बर जनपद था। वहांके लोग भी उदुम्बर कहलाते थे। इसका चिह्न—उदुम्बर या यज्ञडुम्बर।

३ पुष्कर—(अजमीरके निकटवर्त्ती)। इसका चिह्न मछली या विना मछलीके चौकोन सरोवर।

४ अहिच्छत्र—(हिन्दू और बौद्धशास्त्रोक्त अहिक्षेत्र वा अहिच्छत्रपुर) इसका चिह्न अहि (सांप)का छत्र।

५ यौधेय—(सिन्धु प्रदेशवासी यौधेयगण द्वारा प्रचलित) इसमें सशस्त्र मूर्त्ति है।

६ पद्म (नलराजकी राजधानी पद्मावती, वर्त्तमान नाम नरवारसे शायद प्रचलित है।

७ पञ्चाली—(पञ्चाल देशमें प्रचलित, रमणीमूर्त्ति, उसके मस्तकसे मानों पञ्चरश्मि निकल रही है।)

८ पाटली—(मौर्यराजधानी पाटलीपुत्रसे प्रचलित पाटल पुष्प।)

अलावा इसके मयूर, खजूर, रताल्, तक्षशिर आदि नाना चिह्नोंकी प्राचीन मुद्रा भी पाई जाती हैं। फिर जब्बलपुरके अन्तर्गत तेवार (प्राचीन त्रिपुरी वा चेदी) तथा सागर जिलेके एरणसे ब्राह्मी लिपियुक्त ख़ृ० पू० ३य और ४र्थ शताब्दीकी मुद्रा आविष्कृत हुई है। ये सब भारतकी बहुत पुरानी मुद्रा हैं। इनमें वैदेशिक प्रभाव वा संस्रव नहीं है। मथुरा अञ्चलसे 'उपातिक्या' नामाङ्कित ब्राह्मी लिपियुक्त अति प्राचीन मुद्रा पाई गई हैं। उसका लिपिविन्यास देखनेसे वह अलेकसन्दरकी पूर्ववर्त्ती देशी मुद्रा-सी मालूम होती है। इस अञ्चलसे ब्राह्मी लिपियुक्त वलभूतिकी मोहर पाई गई है। यह मथुराके शकयवन प्रभावके पहलेकी है। बुलन्द शहर (प्राचीन नाम वरण)-से ब्राह्मी अक्षरमें 'गोमितस वारणाया' नामाङ्कित अति प्राचीन हिन्दूमुद्रा संगृहीत हुई है। शकाधिकारके बहुत पहले मथुरामें गोमित नामक जो हिन्दू राजा राज्य करते थे, वह मुद्रा उन्हींकी है। प्रसिद्ध प्रत्नतत्त्वविद् बुह्लरने उक्त मुद्रा-लिपिको बहुत प्राचीन माना है। कौशाम्बी वा वत्स पत्तन (यमुना तीरस्थ वर्त्तमान कोसम्) से भी ब्राह्मी अक्षरमें 'काड़स' नामाङ्कित और गोवत्सचिह्नित कार्षापण पाया गया है। यह बहुत पुरानी मुद्रा है, कोई कोई इसे कौनिन्द मुद्रा भी कहते हैं।

भारतमें प्राचीन विदेशी मुद्रा।

पारसि मुद्रा।—अखमणिवंशके शासनकालमें (५००-३०१ ख़ृ० पू०) पारसिक मुद्रा पंजावमें प्रचलित हुई। यहां तक कि, भारतमें प्रस्तुत ईसाजन्मसे पहले ४थी शताब्दीकी अनेकों अखमणि मुद्रा (Gold double Stater) पाई गई है। इस समय जो सब सिग्लई (Sigloi) रौप्यमुद्रा प्रचलित हुई है उनमें देशी कार्षापणका आदर्श दिखाई देता है।

इस देशकी वनाई पारसिक मुद्राओंका मान (सिग्लस = ८६.४५ ग्रेन वा ५.६०१ ग्राम) पारसिक मानके समान था। पीछे इस देशकी ग्रीक-राजाओंकी मुद्रामें भी वही मान जारी रहा।

आथेनीय मुद्रा।—वाणिज्यसूत्रसे भारतवर्षमें आथेन्सकी पेचक मुद्राका प्रचार हुआ। ई०सन्के ३२२ वर्ष पहले आथेनीय टकसाल जब बंद हो गई तब उत्तर भारतमें उसी मुद्राका अनुकरण होने लगा। पेचकके बदलेमें कहीं श्येन पक्षीका चित्र भी रहता था। अलेकसन्दरके आक्रमण कालमें (३२६ ख़ृ० पू०) असक्को (Ascesines) वा शतद्रु प्रवाहित जनपदमें सोफितेस (Sophytes) राज्य करते थे। उनकी मुद्रा भी उसी ढंगकी थी।

अलेकसन्द्रय (Alexandroy) नामाङ्कित माकिदन वीर अलेकसन्दरकी चौकोन रौप्यमुद्रा भारतवर्षमें ढली थी।

यवन-मुद्रा।—अशोक प्रियदर्शीके साथ ग्रीक यवनका सम्बन्ध था। अशोकानुशासन और जूनागढ़के रुद्दामकी लिपिसे यह बात मालूम होती है। इस सम्बन्धके फलसे सेल्युकस (Seleucus) और सीकतेसकी मुद्रामें हाथीका चित्र छपता था।

वाह्लिक-प्रभाव—ई०सन्से पहले ३री शताब्दी तक भारतीय देशी मुद्रामें कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ। २१८ ई०सन्के पहले अन्तियोकके समय दियोदोतसने वागी हो कर वाह्लिक (Bactria) पर अधिकार जमाया।

उन्होंकी मुद्रासे उत्तर पश्चिम भारतीय मुद्राका मान और रूप बिलकुल बदल गया।

पार्थिय वा पारद प्रभाव।—वाह्लिकमें पारद और शकसम्बन्ध प्रयुक्त भारतीय मोहरादिमें पार्थिय प्रभाव लक्षित होता है। ई०सन्से पहले २री शताब्दीके शकराज मौएस (*Moues*) और १ली शताब्दीके शकपति वोनोनेस (Vonones)-की मुद्राओंकी अधिक सम्भव है पार्थिय (Parthian) हाथसे सृष्टि हुई होगी।

रोमक-प्रभाव।—शककुशन राजाओंकी मुद्रा पर रोमक-मान देखा जाता है। यहां तक, कि कुसुल कदेश (Kozola *K*adafes)-की मुद्रा पर रोमकपति अगष्टसका मुख अङ्कित है।

शासन प्रभाव।—३००से ४५० ई०सन्के भीतर काबुलके कुशनराज और पारस्यके शासन (Sassanian) राजवंशका सम्बन्ध हुआ। उसी सूत्रसे काबुलमें शासनमुद्रा प्रचलित हुई। इसके बाद भारतमें जब हूण आधिपत्य फैला, तब उन लोगोंके द्वारा भी शासन-मोहरादिका भारत भरमें प्रचार हो गया।

भारतीय यवन (ग्रीक) राजाओंकी मुद्रा।

ईसाजन्मसे पहले २री सदीमें वाह्लिकके यवन-राजाओंने काबुल और उत्तर भारत पर आक्रमण किया। ई०सन्के २०६ वर्ष पहले अन्तिओक निषध पर्वत पार कर गान्धार राज्य पहुंचे। काबुलपति जलौक-सुभगसेन (Saphagasenus) के साथ उनकी गाढ़ी मित्रता थी। उसी सूत्रसे ग्रीक और भारतीय मुद्राका एकत्र समावेश आरम्भ हुआ। पीछे युथिदेमस और उनके लड़के दिमित्राने भारतवर्ष पर चढ़ाई कर प्रथम उपनिवेश स्थापित किया। उनकी मुद्रा पर ग्रीक परिमाण रहने पर भी वह भारतीय चौकोन मुद्रा-सी है। इस मुद्राके सम्मुख भागमें खरोष्ठी अक्षरमें ग्रीक नाम देखा जाता है। इसके बाद भारतवर्ष जीत कर युक्रेटिड्सने १४७ सलौकाब्द अर्थात् १६५ विक्रम संवत्में जो मुद्रा चलाई उसकी कुछ विशेषता देखी जाती है। इस राजाके समसामयिक पन्तलेवन और अगथोक्लेशकी मुद्रा काबुल और पश्चिम पंजावमें पाई गई है। इन दोनों ग्रीक राजाओंकी मुद्रा पर ब्राह्मी लिपि व्यवहृत हुई है। अगथोक्लेशकी किसी किसी ताम्रमुद्राके दोनों ओर खरोष्ठी लिपि देखी जाती है। अन्तिमकास (Antimachus)-की मुद्रा पर नौयुद्ध जयका चित्र दिखाया गया है।

हेलिओक्लेस (१६०-१२० ख०पू०)-के बाद ग्रीकाधिपत्य वाह्लिकसे निषध (*P*aropanisus) पर्वतके दक्षिण चला गया। उनके राज्यकाल तक ग्रीक राजगण वाह्लिक और पञ्चनद दोनों स्थानोंमें राज्य करते रहे। उन लोगोंकी मुद्रा पर वाह्लिक और भारत दोनों स्थानोंकी लिपि तथा आटिक मान (अर्थात् १ ड्राम = ६७५ ग्रेन) अङ्कित है। किन्तु हेलिओक्लेस और तत्परवर्त्ती अपल्लोदोतस १म और अन्तिअलकिदस (Antiatcidas) आदि परवर्त्ती यवन राजाओंने पारसिक मानका ही व्यवहार किया है।

शकराजाओंकी मुद्रा।

जिस समय भारतके उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें ग्रीक-शासन फैला हुआ था, उस समय उत्तर-भारतमें शक और हिन्दूशासन भी जारी था। वाह्लिकमें यवन-शासनके ही समय चीनसे शकजातिने बाहर निकल कर शक-स्थान पर अधिकार जमाया था। उन लोगोंका आदि परिचय आज तक अज्ञात है। शक राजाओंकी जो सब मुद्रा पाई गई है वे माकिदनीय, सलौकीय, वाह्लिक और पारद मुद्राकी जैसी है। दो एकमें तुर्किस्तानकी सुप्राचीन अरमीय लिपिका निदर्शन देखा जाता है।

शकाधिप मोआ वा मोगसे ही इस जातिकी मुद्रा परिपुष्ट हुई थी। मोग, वोनोनेस (*V*onones) और स्पलगदमकी मुहरोंमें पारद (*P*arthian) की सदृशता देखी जाती है।

मथुराके शक क्षत्रपोंकी किसी किसी मुद्रामें ग्रीकका अनुकरण देखा जाता है। जैसे, रञ्जुबुलकी मोहर और रुपयेमें ग्रीकराज स्त्राटोकी मुद्रानुकृति है। फिर रञ्जुबुलकी किसी किसी मुद्रामें ब्राह्मी लिपि भी देखी जाती है। मथुराके दूसरे दूसरे क्षत्रप राजाओंकी मुद्रामें शुङ्ग और मथुराके हिन्दू राजाओंकी मुद्राका भी सादृश्य है। फिर मियूस (*M*ius) की मुद्रामें हिरकोदेसकी मुद्राका सम्पूर्ण सादृश्य रहनेके कारण बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि जो सब कुशन मुद्रा वाह्लिकमें

प्रस्तुत हुई है. मियूसको मुद्रा भी उसी श्रेणीकी है,—इसमें नन्नैया देवीका मुंह है। कनिष्क, हुष्क और वासुदेव इन तीनों कुशन राजाओंकी मुद्रामें भो उसी प्रकार देवीमूर्त्ति अङ्कित है। कासगरके निकट भी कुछ शकमुद्रा आविष्कृत हुई है। उनमें भारतीय खरोष्ठी और चीनलिपि विद्यमान रहनेके कारण बहुतोंकी धारणा है, कि भारतीय शक्ति यहां तक फैली हुई थी।

कुशन-वंशके जिन सब राजाओंने पञ्जाब पर अधिकार जमाया उनमें कुजुल-कसस (Kujula kadphises) प्रधान थे। उन्होंने ग्रीक-पति एरमैयस (Hermaeus)-के राज्यको हड़प कर लिया था। इसी कारण उनकी मुद्राके एक ओर ग्रीकलिपिमें एरमैयसका नाम और दूसरी ओर खरोष्ठी अक्षरमें 'कुजुल-कसस' नाम देखा जाता है। प्रायः १० ई०सन्में कुजुलकससकी मृत्यु हुई। पीछे उनके वंशधरने पञ्जावसे यमुना तकके विस्तीर्ण जनपदको अपने अधिकारमें कर लिया। पुरावित् कनिंहमका अनुमान है, कि वे ही 'कुजलकर कदुफिसेस' नामसे तथा 'देवपुत्र' उपाधिसे भूषित हुए हैं। पीछे हम लोग हिम-कदफिसेसकी मुद्रा पाते हैं। इनके उत्तराधिकारियोंकी चेष्टासे जो सब स्वर्ण मुद्रा प्रचलित हुई, वह ४थी शताब्दीमें गुप्तराजाओंके समय तक चलती रही। उस समय कुशनोंको बड़ी बड़ी स्वर्णमुद्रामें सुवर्णकी मिलावट थी। हिम-कदफिसेसकी मोहरमें ग्रीक और खरोष्ठी लिपि रहने पर भी उनके परवर्त्ती तीन कुशन राजाओंको मुद्रा पर केवल ग्रीकलिपि देखो जाती है।

इसके बाद हम लोग प्रवल पराक्रान्त शककुशनराज कनिष्क और हुविष्कको मुद्रा देखते हैं। इन दोनों राजाओंकी मुद्रामें साम्य धर्मनीतिका चिह्न है। वैदिक आवस्तिक, बौद्ध, शाक और ग्रीक देवदेवियोंकी मूर्त्ति दोनोंकी मुद्रा पर अङ्कित है। शकाधिप वासुदेवकी मुद्रा ग्रीकलिपियुक्त होने पर भी पहलेकी मुद्रामें शिव और नन्दिमूर्त्ति तथा पीछेकी मुद्रामें बैठी हुई देवीमूर्त्ति चित्रित है। इनके बाद ग्रीकलिपिके बदलेमें अस्पष्ट नागरीलिपि व्यवहृत हुई। भारतवर्षमें हूणके शासनकाल तक इसी प्रकारकी मुद्रा प्रचलित रही।

शकक्षत्रपोंकी मुद्रा।

जिस समय शक-महाराजने भोग-आधिपत्य विस्तार किया था उस समय उनके अधीन लिअक-कुसुलकके पुत्र पतिक क्षत्रप थे। तक्षशिलासे उनका जो ताम्रशासन आविष्कृत हुआ उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि वे छहरात और खुक्षु-सम्प्रदायके क्षत्रप थे। उसी छहरातवंशमें महाक्षत्रप नहपानका जन्म हुआ था। वे समस्त महाराष्ट्र और सुराष्ट्रके अधिपति थे। सुराष्ट्रसे जो सब शाक-मुद्रा पाई गई हैं उनमें नहपानकी मुद्रा प्रथम है। ये आन्ध्रराजसे पराजित और राज्यच्युत हुए थे। इन्हींके समय राजपूतानेमें शकाधिप चष्टनका अभ्युदय हुआ था। धीरे धीरे ये मालव और सुराष्ट्रके अधिपति हो गये थे। इन्हींसे 'शकाब्द' प्रचलित हुआ है। इन्होंने मुद्रा-प्रचार किया तथा राज्यकी सीमा भी बहुत दूर तक बढ़ाई, परन्तु पीछे उनके मरने पर उनके लड़के जयदाम पितृगौरवकी रक्षा न कर सके। जयदामके पुत्र रुद्रदामने अपने बाहु-बलसे विशाल राज्यको अधिकार कर 'महाक्षत्रप' की उपाधि प्राप्त की। उनको तथा उनके वंशधरोंकी मोहरोंमें 'रण्ण महाक्षपस' ऐसा लिखा है।

शकशासन-मुद्रा।

निषध (Paropanisus) पर्वतके ऊपर अक्षु प्रवाहित जनपदोंमें तथा काबुल उपत्यकामें शकशासनका मोहरादि पाई गई है। पारस्यके शासनराज २य होरमजद्दने (३०१-३१० ई० सन्में) काबुलकी कुशन-राजकन्याका पाणिग्रहण किया। उस सूत्रसे दोनों जातिको मिलनसूचक मुद्रा प्रचलित हुई। शासनाधीन अक्षु (Oxus) प्रदेश हूणोंके अधिकारमें आने पर भी वहां इस प्रकारको मिश्रितमुद्रा पाई गई थी। इस समयकी दूसरी दूसरी मोहरोंमें शासन-राजाका शिरोभूषण तथा भ्रष्ट ग्रीकलिपिमें नाम और उपाधि अङ्कित हुई है।

किदार-कुशनमुद्रा।

चीन इतिहाससे मालूम होता है, कि महा युपति (Yueti) दलपति कि-तो-लो जब हूणोंसे तंग तंग आ गया, तब वह निषध पर्वतको पार कर गान्धारराज्य आया और काबुल तथा पंजाबका (४२५ ई०सन्) अधिकारी बन बैठा। कि-तो-लो कुशनमुद्रोक 'किदार' माना गया है। किदारवंशकी मोहरोंका चित्रल और

गिलगिटके उत्तर, सिन्धुनदके पश्चिम तथा काश्मीरके पूर्वमे प्रचार हुआ था। किदारवंशका प्रभाव काश्मीरकी मुद्रा पर देखा जाता है। हूणोंके अभ्युदयसे किदारवंश शक्तिहीन हो गया। हूणाधिप मिहिरकुलके बाद किदारवंशने फिरसे मस्तक उठाया। पीछे ६वीं सदी तक इस वंशने गान्धारका शासन किया था। इसके बाद किदारराज्य ब्राह्मणवंशके अधिकारमुक्त हुआ। किदारराजाओंकी मुहरादि पर एक ओर इस वंशके प्रतिष्ठाता 'किदार'का नाम और दूसरी ओर उस वंशके अन्यान्य राजाओंके नाम अङ्कित हैं।

हूणमुद्रा ।

बहुत पहलेसे भारतवर्षमें हूणजातिका वास होने पर भी श्वेत-हूण वा हारहूण इस देशमे बहुत पीछे आये। श्वेत-हूण अक्षुजनपदवासी तातार-वंशके थे। ५वीं सदीमें इस जातिने प्रबल हो पारस्यके शासनराजाओंके साथ तुमुल संग्राम ठान दिया। २य यजदेगार्दके शासनकाल (४३८-४५७ ई०)-में शासन लोग श्वेत-हूणोंसे परास्त हुए। उसके साथ साथ भारत-सीमान्तका उनका शासनाधिकार श्वेत-हूणोंके हाथ लगा। जिस हूण-अधिनायकने किदार-कुशनोंके हाथसे गान्धारराज्य छीन कर शाकलमे राजधानी बसाई, वे हूणमुद्रामे 'राजा लखन उदयादित्य' और चीन ग्रन्थमे 'लिए-लिह' नामसे प्रसिद्ध है।

हूण मुद्रामें कोई विशेषता नहीं है। वह शासन कुशन अथवा गुप्त मुद्राके अनुकरण पर बनी है। उस मुद्रासे कब और किस किस देशमे उन लोगोंका आधिपत्य फैला था, उसका बहुत कुछ पता लगता है। श्वेत हूणोंकी सबसे प्राचीन मुद्रा शासन-मुद्राकी जैसी है। उसके एक ओर 'शाहि जावल" नामक हूण नायकका नाम और मुख तथा दूसरी ओर शासनीय अग्निवेदी अङ्कित है।

लखन उदयादित्यके पुत्र तोरमाणने राजपूताना और मालव तक अधिकार किया था। मारवाड़-अञ्चलसे उनकी बहुत-सी मोहरें पाई गई हैं। तोरणमाणने पूर्व मालवमे गुप्ताधिकार तकको भी अपना लिया था। मालवसे उनकी चांदीकी अठन्नी (*Hemi* drachm) पाई गई है। यह मुद्रा बुधगुप्तकी मोहरादिके ढंग पर बनी है। तोरमाणका नाम और मुख उलटा कर बैठाया गया है। तोरमाणके पुत्र मिहिरकुलके रजतखण्डमें शासनीय गढ़न रहने पर भी पिता पुत्रके ताम्रखण्डमें शासनीय और गुप्त दोनों मुद्राकी गढ़न देखी जाती है।

युक्तप्रदेश, राजपूताना और मालवके नाना स्थानोंसे अनेक प्रकारकी हूणमुद्रा आविष्कृत हुई है। इनमेंसे किसी मुद्रामे नाम है और किसीमें मिट गया है। ये सब मुद्रा ५४४ ई०सन्‌के पहलेकी होने पर भी किस हूणवंश द्वारा उनका प्रचार हुआ वह आज तक भी किसीको नहीं मालूम। पर हां, प्रत्नतत्त्वविदोंका अनुमान है, कि तोरमाण, मिहिरकुल आदि पराक्रान्त हूण राजाओंके आधिपत्यकालमे भारतके नाना स्थानोंमे उन लोगोंके हूण सामन्त लोग राज्य करते थे। अनिर्दिष्ट हूण मुद्राएं उन्ही लोगोंके द्वारा प्रचलित हुई होगी।

युक्तप्रदेशसे कुछ मिश्र मुद्राएं बाहर हुई हैं। उनकी बनावट शासन-मुद्रा-सी है, फिर भी वह शासनीय पह्लवी, भारतीय, पूर्वनागरी और अज्ञात* एक प्रकार लिपियुक्त है। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमने उन सब मुद्राओंको श्वेत हूण बतलाया है। † किन्तु रापसन आदि मुद्राविद्गण यह स्वीकार नहीं करते। वे लोग उन्हें शासन (Sas-anian) राजवंशको बतलाते हैं। इस मुद्राके एक ओर श्रीवासुदेवका नाम प्राचीन नागरी लिपिमें और दूसरी ओर शासनीय पह्लवी भाषामे अङ्कित देखा जाता है। उसकी गठन पारस्याधिप २य खुशरू परवोजकी मुद्रा जैसी है। इन सब वासुदेव-मुद्राके पह्लवी अंशमे वे 'बहमन (ब्राह्मणवासी), 'मूलतान', 'तकान', 'जबुलिस्तान' और 'सपादलक्षान्' आख्याओंसे विभूषित हैं। इन सब कारणोंसे उन्हें

* इस अज्ञात लिपिको कोई कोई शकशासनीय मुद्रामें व्यवहृत ग्रीक लिपिका परिवर्द्धित रूप बतलाते हैं। (Rapson's Indian coins, p. 30)

† *Numismatic chronicle*, 1894, p, 269, 289,

सिन्धुराजधानी ब्राह्मणावाद, मुलतान, तक्षशिला, जाबुलिस्तान (गान्धार) और सपादलक्ष वा शिवालिकका अधिपति बतलाया गया है। मुद्रालिपिकी आकृतिके अनुसार वासुदेवको ७वीं शताब्दीके राजा कह सकते हैं। वासुदेवकी मुद्राकी तरह कुछ मुद्राओंमें 'शाहितिगिन' नाम अङ्कित है। इसके पश्चाद्भागमें मूलतानके प्रसिद्ध सूर्यदेवको मूर्त्ति देखी जाती है। फिर किसीमें प्राचीन नागर अक्षरमें "हितिवि च ऐराल् च परमेश्वर" अर्थात् हिन्दुस्थान और इराणके अधीश्वर तथा शासनीय पह्लवी लिपिमें "तकान खोरासन मलका" अर्थात् तक्ष वा पञ्जाब और खोरासनके अधिपति, ऐसा लिखा है। इस प्रकार पारसिक राजाओंको और भी कितनी मुद्रा आविष्कृत हुई हैं। किन्तु वे सब मुद्रा किस स्थानकी वा किस समयकी है उसका पता आज तक नहीं चला है।

देशीय राजाओंकी प्राचीन मुद्रा।

शुङ्गमित्र।

पुराणमें शुङ्गमित्र राजाओंके नाम पाये जाते हैं। अयोध्या और पञ्चाल (रोहिलखण्ड) से इस वंशके राजाओंकी मुद्रा पाई गई है। अयोध्यासे मित्रोंकी प्राचीन ताम्र मुद्रा मिलनेके कारण ऐसा अनुमान किया जा सकता है, कि इसी प्रदेशसे मित्रवंशका अभ्युदय हुआ है। इन लोगोंकी अधिकांश ढलाई मुद्रा ब्राह्मी लिपियुक्त है। कहीं कहीं चौकोन मुद्रा भी देखी जाती है।

भारतके नाना स्थानोंमें विभिन्न प्रकारका कार्षापण वा पुराण प्रचलित था, यह पहले ही कहा जा चुका है। ३री शताब्दीमें भारतमें यवनाधिकार होने पर भी भारतीय स्वाधीन राजे बहुत दिनों तक जातीय मुद्रा ही चला गये हैं। दुर्भाग्यवशतः यद्यपि वे सब प्राचीन निदर्शन विलुप्त हो गये हैं, तो भी जो सामान्य निदर्शन मिले है उन्हींका विवरण नीचे दिया गया है।

अश्वक।

तक्षशिला (वर्त्तमान शाहधेरी)के आस पाससे अनेकों अश्वक वा अश्मक मुद्रा पाई गई हैं। इन सब मुद्राओंमें प्राचीन ब्राह्मी अक्षरमें 'वटश्वक' नाम अङ्कित है। मुद्रालिपि देखनेसे मालूम होता है, कि वे सब ई०सन् २री वा ३री सदी पहलेको बनी है। इन्हीं सब मुद्राओंके अनुकरण पर यवनराज पन्तलेवन और अगथोकेलस (१६० खृ० पू०)-की मुद्रा प्रस्तुत हुई हैं।

आजुंनायन।

एक समय पंजाबके उत्तर-पश्चिम आर्जुनायनोंका प्रभाव फैला हुआ था। समुद्रगुप्तकी शिलालिपिमें इस आर्जुनायनवंशका प्रसङ्ग देखनेमें आता है। ईसा जन्मसे पहले १ली सदीमें प्रचलित इस वंशकी जो मुद्रा पाई जाती है उनका नाम औदुम्बर है। इस मुद्राके अनुकरण पर ग्रीकराज अपलोदोतसकी मुद्रा बनाई गई है।

केदार।

हिमालय प्रदेशमें केदारभूमि (वर्त्तमान अलमोरा) के निकट ब्राह्मी अक्षरमे शिवदत्त, शिवपालित' आदिकी मुद्रा पाई गई है। इनके एक भागमें चैत्य-रेलि और दूसरे भागमें मृगचिह्न अङ्कित है। ई०सन्से पहले, ३रीसे १ली सदीके मध्य इन सब मुद्राओंका प्रचार था।

यौधेय।

पञ्जाबके वर्त्तमान भावलपुरके जोहियगण 'यौधेय' नामसे प्रसिद्ध थे। इनकी प्राचीन मुद्राओंको बातें पहले हो लिखो जा चुकी हैं। अलावा इसके षड़ानन कार्त्तिकेय मूर्त्तियुक्त खृ० पू० पहली शताब्दीकी मुद्रा भी यहांसे पाई गई है।

अपरान्त।

मथुराके हिन्दू और शासनीय राजाओंकी मुद्राकी तरह 'महाराजस अपलातस' नामाङ्कित अपरान्तोंकी मुद्रा पाई गई है।

आन्ध्र, अन्ध्रभृत्य वा सातवाहन।

पुराणमें आन्ध्रोंको मगधका अधिपति बतलाया है, किन्तु समसामयिक लिपिसे मगधशासनका कोई प्रमाण नहीं मिलता। यहां तक, कि मगधराज्यसे उन लोगोंकी मुद्रा भी नहीं मिलती। दक्षिणपथमें आन्ध्रराजगण शासन करते थे। धान्यकटक (वर्त्तमान धरणीकोट वा अमरावती) नामक स्थानमें उनकी राजधानी थी। दक्षिणपथके नाना स्थानोंसे उन लोगोंकी मुद्रा पाई गई है। उनमेंसे अधिकांश मुद्राका प्राप्तिस्थान दक्षिण पूर्व भारत है अर्थात् अमरावतीके आसपासका स्थान।

केवल आन्ध्रोंके धनु और वाणमुद्राका प्राप्तिस्थान पश्चिम भारत है। कोई कोई कहते हैं, कि धान्यकटकमें ही आन्ध्रसम्राट्की राजधानी थी। किन्तु साम्राज्यके उत्तर और पश्चिमांशका शासन करनेके लिये औरङ्गावाद जिलेमें गोदावरी तीरस्थ प्रतिष्ठान वा पैठननगरमें उनके प्रतिनिधि अधिष्ठित थे। इसी कारण पश्चिम भारतसे जो सब आन्ध्रमुद्राएं आविष्कृत हुई हैं उनमें राजप्रतिनिधिका नाम देखा जाता है। जैसे गौतमीपुत्र और वासिष्ठी पुत्रकी मुद्रामें 'विलिवायकुरस' तथा माढ़रीपुतकी मुद्रामें 'सेवलकुरस' वा 'शिवालकुरस' नाम देखा जाता है। आन्ध्रमुद्राका विशेषत्व चैत्य चिह्न है। उज्जयिनीसे आविष्कृत अधिकांश मुद्रामें चैत्यचिह्न रहनेके कारण प्रत्नतत्त्वविदोंने स्थिर किया है, कि शकाधिकारके पहले मालवमें आन्ध्रोंका अधिकार था तथा शकाधिप चष्टन और उनके सभी उत्तराधिकारियोंने आन्ध्रदेशसे ही चैत्यचिह्न ग्रहण किया है। फिर आन्ध्रोंकी कुछ मुद्राओंके चिह्न पल्लवमुद्राके सरीखे हैं। इन सब मुद्राओंमें समुद्रयात्री जहाजोंका चित्र देखा जाता है।

आन्ध्र मुद्राएं सीसे और तांबेके मेलसे बनी है। उत्तर भारतीय मुद्राकी गढ़नसे इस मुद्राकी गढ़न बिलकुल जुदा है। सुपारके बौद्धस्तूपसे आन्ध्रोंके कुछ रौप्यखण्ड पाये गये हैं। उनकी गढ़न, वर्णविन्यास और वजन सुराष्ट्र और मालवकी क्षत्रप-मुद्राके समान है। जिन सब मुद्राओंमें 'रण्णो गोतमीपुतस विलिवायकुरस' नाम अङ्कित है वे नहपानके विजेता गोतमीपुत्र सातकर्णी या यज्ञश्री सातकर्णीकी चलाई हुई हैं, उसका आज तक कोई प्रमाण नहीं मिलता। फिर कुछ "माढ़रीपुत" और "वासिष्ठीपुत श्री वदसत" नाम देखा जाता है। ये सब मुद्राएं किस आन्ध्रराजकी हैं, इसका आज तक निर्णय नहीं हो सका है। प्रत्नतत्त्वविद् भाण्डारकरने 'माढ़रीपुत' को एक आभीर (अहीर) बतलाया है।

कालिङ्ग।

पुरी और गञ्जामसे अनेक मुद्राएं आविष्कृत हुई है। इन सब मुद्राओंमें किसी प्रकारकी लिपि नहीं रहने पर भी वे शक-कुशन मुद्राकी जैसी हैं। इस कारण उन्हें १ली शताब्दीकी मुद्रा मान सकते हैं।

आभीर।

शकाधिपत्यकालमें कोङ्कण और सह्याद्रि अञ्चलमें आभीरवंश राज्य करते थे। पुराण और नासिककी शिलालिपिमें उस राजवंशका उल्लेख है। वे अधिक समय शकाधिपोंके सामन्तरूपमें और कुछ समय स्वाधीनभावमें राज्य करते थे। बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि शकपति महाक्षत्रप विजयसेन (१७१ ई०) और दामजड़श्री (१७६ ई०)-के शासनकालमें आभीरोंने अपने अधीश्वरके विरुद्ध हथियार उठाया था। आभीरपति ईश्वरदत्तने महाक्षत्रप राज्यको जीत कर महाक्षत्रप विजयसेन और क्षत्रप वीरदामके अनुकरण पर अपनी मुद्रा चलाई थी। बहुतोंका विश्वास है, कि इसी आभीरराज्यसे त्रैकुटक वा चेदिसंवत् आरम्भ हुआ है। आभीरोंने भी आन्ध्रराजाओंकी तरह मुद्रा पर मातृ-कुल पुरोहितका गोत्र ग्रहण किया था।

नन्दवंश।

नन्दमुद्राकी गठन और अङ्कन बहुत कुछ आन्ध्रोंके जैसा है। इसीसे ये नन्दराज-मुद्राएं आन्ध्रोंके समय सी प्रतीत होती हैं। इन लोगोंको मुद्रा पर बोधिद्रुम, त्रिरत्न और स्तूप अङ्कित रहनेसे बहुतेरे इन्हें बौद्ध मानते हैं। इस वंशके मूलनन्द और बदल नन्दकी मुद्रा पाई गई है।

गुप्त।

श्रीगुप्त इस वंशके प्रतिष्ठाता होने पर भी उनके पोते १म चन्द्रगुप्तसे ही गौरवरवि प्रकाशित हुआ। चन्द्रगुप्तने ही सबसे पहले 'महाराजाधिराज'-की उपाधि ग्रहण कर (३१९ ई०) 'गुप्तसम्वत्' और अपने नामका सिक्का चलाया। पाटलिपुत्रमें उनकी राजधानी थी। उनकी मुद्रामें 'लिच्छवयः' और 'कुमारदेवी' का नाम अङ्कित रहनेसे बहुतोंकी धारणा है, कि कुमारदेवी लिच्छविवंशकी थी और लिच्छविसे चन्द्रगुप्तने पाटलीपुत्र ग्रहण किया था। उनके पुत्र समुद्रगुप्तने अश्वमेधके उपलक्षमें समस्त भारतवर्षको जीता था। अश्वमेध चिह्नाङ्कित उनकी मुद्रा भी पाई गई है। वे समस्त उत्तर भारतके एकच्छत्र सम्राट् हुए थे। उनके वंशधर विक्रमादित्य

उपाधिधारी २य चन्द्रगुप्तके समय (प्रायः ४१० ई०) सुराष्ट्र और मालवाके क्षत्रपाधिकार तक गुप्तसाम्राज्य-भुक्त हुआ था। गुप्तराजवंश शब्द देखो।

गुप्तसम्राट् द्वारा प्रवर्त्तित नाना प्रकारको स्वर्ण और ताम्रमुद्रा पाई गई है। पहले गुप्त-सम्राटोंने मथुराके कुशनराजाओंकी मुद्राके अनुकरण पर अपने अपने नामसे मुद्रा चलाई। अन्तमें उन लोगोंकी मुद्राने स्वाधीन भावसे भारतीय शिल्पका चरमोत्कर्ष लाभ किया। क्षत्रपाधिकार लाभ करके सुराष्ट्र और मालव अञ्चलमें गुप्त सम्राटोंने जो रुपया चलाया उसमें पूर्वतन क्षत्रपमुद्राका अनुकरण देखा जाता है। परन्तु क्षत्रपमुद्राके चैत्यको जगह गुप्तमुद्रामें 'मयूर' का चित्र दिया गया है।

गुप्तसम्राटोंकी स्वर्णमुद्रामें पहले पहल कुशनराजों द्वारा परिगृहीत रोमक मान ही लिया गया था, किन्तु उन लोगोंके यत्नसे हिन्दूधर्माभ्युदयके साथ साथ प्राचीन सुवर्ण मान (=१४६·४ ग्रेन) प्रचलित हुआ। इस प्रकार उनके समयमें ऊपरकी दोनों तरहकी मुद्राका प्रचार देखा जाता है। शिलालिपिमें प्रथम प्रकारकी मुद्रा 'दीनार' और शेषोक्त मुद्रा 'सुवर्ण' नामसे वर्णित है। फिर वलभी अञ्चलमें गुप्त सम्राटोंने जो सब ताम्र मुद्रा चलाई उनमें मयूरके बदले 'त्रिशूल' का चिह्न मौजूद है। उनकी ताम्रमुद्रामें पूर्वानुकृतिका कोई निदर्शन नहीं मिलता। मुद्रातत्त्वविदोंने ताम्रमुद्राओंको गुप्त-सम्राटोंका स्वाधीन उद्भावन और निजकीर्त्ति बतलाया है।

५वीं सदीके अन्तमें सेनापति भटार्कने प्रबल हो कर वलभीके गुप्ताधिकारको छीन लिया। इधर मालवके उत्तर और पूर्वमें गुप्त सम्राट्वंशीय भिन्न भिन्न शाखा राज्य करती थी। इस समय साम्राज्यके विभिन्न अंशोंमें सामन्त राजे स्वाधीन होनेकी कोशिशमें थे। उत्तर-भारतमें उस समय भी गुप्त प्रभाव अक्षुण्ण था। भितरो ग्रामसे आविष्कृत बड़ी बड़ी मुद्रालिपिसे मालूम होता है, कि 'महेन्द्र' उपाधिधारी १म कुमारगुप्तसे तीन राजकुमारोंके नाम पाये जाते हैं। पहले नामको ले कर बड़ा गोलमाल है। कोई तो उन्हें स्कन्दगुप्तका दूसरा नाम स्थिरगुप्त और कोई स्कन्दगुप्तके भाई पुरगुप्त बतलाते हैं। इस राजाकी मुद्रामें 'प्रकाशादित्य' नाम अङ्कित है। उनके लड़के नरसिंहगुप्त थे। मुद्रामें नरसिंह 'नर-बालादित्य' नामसे प्रसिद्ध हैं। इन्हींको किसी किसीने मिहिरकुलविजयी 'बालादित्य' माना है। पीछे दो कुमारगुप्तका नाम मिलता है। वे अपनी मुद्रा पर 'कुमारगुप्त क्रमादित्य' नामसे मशहूर हैं। बहुतोंके मतसे इसी २य कुमारगुप्तके साथ गुप्तसम्राटोंको वंशधारा शेष हुई। किन्तु विष्णुगुप्त चन्द्रादित्यकी बहुत-सी मुद्राएं पाई गई है। उन मुद्राओंके साथ नरबालादित्य और २य कुमारगुप्त क्रमादित्यकी मोहरका सादृश्य रहनेसे उन्हें शेषोक्त राजाओंके उत्तराधिकारी मान सकते हैं। इस वंशके अन्तिम राजाका नाम 'शशाङ्क' है। ६०० ई०में वे कर्णसुवर्णका शासन करते थे। उनका दूसरा नाम नरेन्द्रगुप्त है। उनके दोनों नामोंकी मुद्रा मिलती है।

पूर्व मालवमें सम्राट् स्कन्दके वंशधरगण हो शासन करते थे। यहांसे उस वंशके बुधगुप्तको चांदोकी अठन्नी पाई गई है। इसके सिवाय जयगुप्त, हरिगुप्त और रविगुप्त नामाङ्कित कुछ मुद्राएं भी आविष्कृत हुई हैं।

वलभी।

सेनापति भटार्कसे ही वलभी राजवंशको प्रतिष्ठा हुई है। इस वंशकी जो रौप्यमुद्रा मिली है वह पश्चिमी भारतमें प्रचलित गुप्तमुद्राकी जैसी है। उसके एक भागमें त्रिशूलचिह्न और दूसरे भागमें अस्पष्ट अक्षरमें 'भट्टारकस्य' उपाधियुक्त राजाका नाम है।

नाग।

पुराणसे जाना जाता है, कि जिस समय गुप्त लोग मगधसे प्रयाग तकके विस्तीर्ण भूभागका शासन करते थे उस समय नलकी राजधानी नरवरको प्राचीन पद्मावती नगरीमें नव नागका राज्य था। इस वंशके छः नागराजाओंकी मुद्रा बाहर हुई है। इन नागवंशीय गणपति नागको सम्राट् समुद्रगुप्तने युद्धमें परास्त किया था।

१३वीं सदीमें यहांसे राजपूतमुद्रा निकाली गई है। उनमेंसे मलयवर्मदेवकी मुद्रा पर विक्रम-संवत् अङ्कित है।

मौखरी।

जिस समय पूर्वमगधमें परवर्त्ती गुप्तराजे राज्य करते

थे, उस समय पश्चिम-मगधमें मौखरीवंशका राज्य था। उन्होंने मालवकी गुप्त-मुद्राकी तरह अपने नाम पर मुद्रा चलाई। ईशानवर्मा और शर्ववर्माके नामाङ्कित रजत-खण्ड पाये गये हैं।

पल्लव।

आन्ध्रोंके अभ्युदयसे पहले करमण्डल उपकूलमें पल्लववंशकी अच्छी चलती थी। ये पल्लववंश कुरुम्बर नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनकी दो प्रकारकी मुद्रा पाई जाती है। कुछ मुद्रामें जहाज नाव आदिका चिह्न रहनेसे मालूम होता है, कि पल्लव लोग वाणिज्य व्यवसायके बड़े प्रेमी थे। कुछ स्वर्ण और रजतखण्डोंमें पल्लवोंका जातीय चिह्न केशरीमूर्त्ति और कर्णाटी वा संस्कृत भाषाकी लिपि देखी जाती है। अन्तिम मुद्रायें पीछे प्रचलित हुई थीं।

पाण्ड्य।

दाक्षिणात्यके बहुत दक्षिणमें पाण्ड्यवंशने ३०० वर्ष तक राज्य किया था। उनकी मोहरोंकी गढ़न बहुत कुछ आन्ध्र और पल्लवों-सी है। भारतके सर्वप्राचीन पुराण-मुद्राके बाद ही हस्तिचिह्नयुक्त इन सब मुद्राओंका प्रचार देखा जाता है। ३००से ६०० ई०के भीतरकी बहुत-सी पाण्ड्यमुद्रायें आविष्कृत तो हुई हैं, पर उनसे राज्यकाल वा राजाओंके नामका ठीक ठीक पता नहीं चलता।

चोल।

दाक्षिणात्यमें जब चोलराजाओंकी बढ़ती थी उसी समय चोलमुद्रा प्रचलित हुई। यह मुद्रा दो श्रेणियोंमें विभक्त है—

१ली—राजराजेश्वर चोलके अभ्युदयसे पहले की है। इस मुद्रामें चोलराजचिह्न व्याघ्र और दूसरी ओर पाण्ड्य और चेरचिह्न मत्स्य और धनु देखा जाता है। यह चिह्न देखनेसे मालूम होता है, कि उन सब मुद्राप्रवर्त्तक राजाओंका पाण्ड्य और चेरराजाओं पर आधिपत्य था। मुद्रामें नागरी अक्षरमें चोलराजाओंका नाम भी लिखा है, किन्तु चोलराजाओंकी जो वंशतालिका पाई गई है उसमें नाम नहीं है।

२री—प्रायः १०२२ ई०सन्‌में राजराजेश्वर चोलके अभ्युदयसे आरम्भ है। उसमें विलक्षणता देखी जाती है। इस मुद्राके सम्मुख भागमें दण्डायमान राजमूर्त्ति और पश्चाद्भागमें उपविष्ट राजमूर्त्ति मौजूद है। इन सब मुद्राओंका दक्षिणप्रदेशमें यथेष्ट प्रचार था। सिंहलमें जब चोलोंका आधिपत्य हुआ, तब वहां भी इस श्रेणीकी मुद्रा प्रचलित हुई। कान्दिराज जब तक स्वाधीन रहे तब तक इसी श्रेणीकी मुद्रा चलती रही।

कलचूरी।

प्रतीच्य चालुक्योंकी मुद्रा अधिकारभुक्त उत्तरप्रदेश और कल्याणपुरमें प्रचलित हुई। अभी केवल कलचूरी वंशीय २य राजा सोमेश्वर (११६७ ११७५ ई०)-की मुद्रा आविष्कृत हुई है।

गङ्ग वा कोङ्गू।

महिसुरका पश्चिमांश नन्दिदुर्गसे ले कर सालेम तक एक समय गङ्ग वा कोङ्गू देश नामसे प्रसिद्ध था। यहांसे जो सब मुद्रा पाई गई हैं उनमें चेरचिह्न धनुः और हाथीकी मूर्त्ति अङ्कित है। इस प्रकारकी मुद्रा १०६० ई०के पहले इस देशमें प्रचलित थी। उसीके अनुकरण पर काश्मीराधिप हर्षदेवने अपनी मुद्रा चलाई। राजतरङ्गिणीके निम्नलिखित श्लोकसे इसका पता चला है—

"दाक्षिणात्याभवद्भङ्गिः प्रिया तस्य विलासिनः।
कर्णाटानुगुणष्टङ्कस्ततस्तेन प्रवर्त्तितः॥" (७।९२७)

चालुक्य-मुद्रा।

चालुक्यराज २य पुलिकेशिसे ही चालुक्य-मुद्राका प्रचार हुआ है। ७वीं सदीमें चालुक्यवंश दो भागोंमें विभक्त हो गया। जो पश्चिम दाक्षिणात्यमें राज्य करते थे वे प्रतीच्य और जो कृष्ण तथा गोदावरीके मध्यवर्त्ती पल्लवराज्यको जीत कर वहांके राजा हो गये थे वे इतिहासमें प्राच्य-चालुक्य नामसे प्रसिद्ध हैं। दोनों शाखाकी स्वर्णमुद्रामें वराहचिह्न देखा जाता है। भिन्न भिन्न मुद्रा भिन्न भिन्न छेनीसे भारतीय प्रणाली पर बनाई गई है। प्रतीच्य चालुक्योंकी स्वर्णमुद्राएं मोटी और बहुत जगह प्यालेकी जैसी होती हैं। किसी किसीका विश्वास है, कि चालुक्योंने कदम्ब राजाओंके पद्मटङ्कका अनुकरण कर इस मुद्राको प्रस्तुत किया है।

आराकानके निकटवर्त्ती चेदुवाद्वीपसे चालुक्यचन्द्र शक्तिवर्म्मा (१०००-१०१२ ई०) तथा २य राजराज (१०२१-१०६२ ई०) राजाकी नामाङ्कित और वराह-चिह्नयुक्त बहुत सी मुद्रा बाहर हुई हैं। इन्हें बहुतोंने चालुक्य मुद्रा स्थिर किया है।

कादम्ब।

दाक्षिणात्यके उत्तर-पश्चिम और महिसुरके उत्तरांशसे बहुत-सी कादम्ब-राजाओंकी मुद्रा मिली हैं। इनकी गढ़न प्राचीन चालुक्य मुद्रा-सी है। इनके बीच पद्म-चिह्न रहनेके कारण इनका 'पद्मटङ्क' नाम पड़ा है। कोई कोई पद्मटङ्कका प्रचार-काल ई०सन् ५वीं वा ६ठी सदी बतलाते हैं, किन्तु इन सब मुद्राओंकी संस्कृतलिपि देखनेसे उतनी पुरानी नहीं मालूम होतीं।

रघुवंशी (८५०-६०० ई०)

कान्यकुब्जसे रघुवंशीय राजाओंकी मुद्रा संग्रह की गई हैं। इनमेंसे बहुतों पर 'ह' अक्षर रहनेके कारण कुछ लोग इन्हें हर्षदेवके समयकी मुद्रा मानते हैं। इस मुद्रा को देख कर कन्नोजपति भोजदेवका (८५० ६०० ई०) "श्रीमदादिवराह" द्रम्म बनाया गया है।

तोमर (६७८—११२८ ई०)

पहले तोमरवंश कन्नोज और दिल्ली दोनों जगह आधिपत्य करते थे। इस वंशके सल्लक्षणपाल, अजयपाल और कुमारपालदेवकी मुद्राएं दिल्ली और कन्नोज दोनों जगहोंसे आविष्कृत हुई हैं। १०५० ई०में राठोरपति चन्द्रदेवके कन्नोज जीतने पर तोमरपति अनंगपाल दिल्ली जा कर राज्य करते थे। दिल्लीसे अनंगपाल और महीपालकी मुद्रा पाई गई है। तोमरों-की मोहर फिर बहुत कुछ डाहलकी कलचुरि मुद्रासे और धातव (Billon) मुद्रा बहुत कुछ गान्धारके ब्राह्मणशाहि राजाओंकी मुद्रासे मिलती जुलती है।

राठोर (गाहड़वाल, १०५०-११२८ ई०)

कन्नोजविजेता राठोरपति चन्द्रदेवकी कोई मुद्रा नहीं पाई जाने पर भी उनके लड़के मदनपाल, मदनपाल के लड़के गोविन्दचन्द्र और गोविन्दचन्द्रके लड़के अन्तिम राजा जयचन्द्र या अजयचन्द्रकी मुद्रा संगृहीत हुई है। यह मुद्रा तोमरमुद्राके अनुकरण पर बनी है।

चन्द्रात्रेय या चन्देल (१०६३-१२८२ ई०)

उत्तरमें यमुना, दक्षिणमें कियान, पूर्वमें विन्ध्य और दशान नदीके मध्यवर्त्ती जनपद (जेजाहुति वा महोव नामक स्थान)-में चन्द्रात्रेयगण ई० सन् ६वीं सदीके पहलेसे ही राज्य करते थे। पहले उन्होंने कलचुरि राजाओंकी अधीनता स्वीकार की। इस वंशके महा-राज कीर्त्तिवर्म्मा चेदिपतिने कर्णदेवको परास्त कर कल चुरियोंका अधीनता-पाश तोड़ दिया। चन्द्रात्रेयवंशमें कीर्त्तिवर्म्माने ही सबसे पहले अपने नामको मुद्रा चलाई। उनके नीचे नौ पीढ़ी वीरवर्मा तकके राजाओंने अपने अपने नामसे मुद्राङ्कित किया था। यहांकी मुद्रा कलचुरि मुद्रा सी है।

चाहमान या चौहान।

अजमेरके चौहानवंशने तोमरोंसे दिल्ली ले ली। बादमें जेजाहुतिने अपना अधिकार जमाया। इसी वंशके अन्तिम दो राजे सोमेश्वर और पृथ्वीराजकी मुद्रा मिली है। इनकी मुद्रामें बैल और घुड़सवारका चिह्न है। ११६२ ई०में दिल्ली पृथ्वीराजके हाथसे निकल कर मुसल-मानोंके हाथ लगी। दिल्लीके प्रथम मुसलमान राजाओं की मुद्रा भी पूर्वोक्त हिन्दूमुद्राकी अनुरूप है। त्रिगर्त्त या कांगड़ाके राजपूत राजे भी १३३० से १६१० ई० तक उसी चौहानके आदर्श पर अपनी अपनी मुद्रा चला गये हैं।

पाल।

मगधमें पाल राजवंशका प्रभाव विस्तार होनेके साथ साथ अनेक प्रकारकी मुद्रा प्रचलित हुई थीं उनमें केवल विग्रहपालका रुपया बाहर हुआ है। यह मुद्रा शास-नीय मुहरकी जैसी है। इसके ऊपर "श्रीविग्रह" नाम खोदा हुआ है। बहुतोंका विश्वास है, कि सायडोनिके शिलालेखमें विग्रहपालद्रम्म नामक जिस मुद्राका उल्लेख है वही उक्त मगधपति विग्रहपालका रुपया है।

उपरोक्त विभिन्न राजवंशकी मुद्राके सिवा काश्मीर नेपाल आदि सीमान्त प्रदेशसे भी देशीय राजाओंकी अनेक प्रकारकी मुद्रा आविष्कृत हुई है।

काश्मीर।

काश्मीरमें बहुत पहलेसे ही मुद्रा प्रचलित थी, परंतु

ऐतिहासिक युगसे जो सब मुद्रा अभी चल रही है उनमेंसे जो मुद्रा कनिष्कराजकी मुद्राके ढंग पर बनी थी, उसीका बहुत दिनों तक प्रचार था। इस प्रकारकी मुद्रा पर एक ओर राजा और दूसरी ओर एक देवीकी मूर्त्ति अंकित है।

राजतरङ्गिणीसे जाना जाता है, कि कनिष्कने काश्मीरमें भी राजत्व किया था। जब तक काश्मीरमें हिन्दू-राज्य रहा तब तक कनिष्क मुद्राकी जैसी मुद्राका ही विशेष प्रचार था। उसकी गढ़न एक सी होने पर भी काश्मीरके नागवंशीय कायस्थराजाओंके समयसे इस मुद्राशिल्पकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। इस प्रकार चिताङ्कित सोने और तांबेका दीनार मिलता है। स्वर्ण-दीनारका वेशी भाग रौप्यमिश्रित है। राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि काश्मीरपति जयादित्यने एक तांबेकी खान निकाली थी और ६६ करोड़ दीनार चलाया था। उनके सभा-कवि भट्ट उद्भट प्रतिदिन उनसे लाख दीनार पुरस्कार पाते थे।* किदार कुशनके बाद काश्मीरमें हूणाधिकार विस्तृत होने पर भी नागवंशीय कायस्थराजाओंकी मुद्रामें किदार प्रभाव ही दिखाई देता है। पहले लिख आये हैं, कि काश्मीरपति हर्षदेवने (१०६० ई०) दाक्षिणात्यकी कोंगू मुद्राके अनुकरण पर अपनी मुद्रा चलाई थी।

नेपाल।

नेपालसे यौधेय-मुद्राके आदर्श पर बनी बहुत पुराने ज़मानेकी मुद्रा पाई गई है। कोई कोई पाश्चात्य प्रत्नतत्त्वविद् इन्हें कुशनका अनुकरण बतलाते हैं। किन्तु गढ़न देखनेसे मालूम पड़ेगा कि यह कुशन-कालके बहुत पहलेकी है। उसीके अनुकरण पर ४थी सदीके आरम्भमें यहां लिच्छवि मुद्रा प्रचलित हुई। ६ठी सदी तक इसी प्रकारकी मुद्रा जारी थी। किसीमें गुप्ताक्षरमें मानाङ्क और किसीमें 'गुणाङ्क' नाम जो अङ्कित है उससे मालूम होता है, कि मानदेववर्माका नाम संक्षेपमें 'मानाङ्क' और गुणकामदेवका 'गुणाङ्क' खोदा गया था। 'लिच्छविराजवंश देखो इन सब मुद्राओंके समकालमें नेपालके अधिष्ठात्री देवता

* यह पुरस्कार ताम्रदीनार-सा ही प्रतीत होता है।

पशुपति और वैश्रवणका नाम भी किसी किसीमें देखा जाता है।

गधिया पैसा।

मेवाड़, मारवाड़, दक्षिण पश्चिम, राजपूताना, मालव और गुजरातसे कुछ स्थूल प्राचीन रौप्यखण्ड पाया जाता है जिसे 'गधिया पैसा' कहते हैं। यह पैसा शासनीय मुद्राकी तरह होने पर भी इसमें शिल्पनैपुण्यका यथेष्ट अभाव देखा जाता है।

भारतीय प्राचीन मुद्राशिल्प।

भारतीय प्राचीन मुद्रा यद्यपि शिल्पनैपुण्य और सौन्दर्यमें ग्रीसका मुकावला नहीं करती फिर भी भारतीय मुद्राशिल्पिगण उस समय जैसी कारीगरी दिखा गये हैं वह प्रशंसनीय है। क्या पौराणिक, क्या ऐतिहासिक और क्या सामाजिक, सभी आचार-व्यवहार मूलक दृश्य भारतीय प्राचीन मुद्राखण्डमें बड़े कौशलसे दिखाये गये हैं। वर्त्तमान कालमें प्रचलित भारतीय अथवा विदेशीय किसी भी मुद्रामें उसका निदर्शन नहीं है। औदुम्बर राजाओंकी दो हजार वर्षकी पुरानी मुद्रामें द्वीपिचर्माम्बर और ताण्डवनृत्यकारी शिवका जो विभिन्न प्रकारका सुन्दर चित्र अङ्कित हुआ है वह अतुलनीय है। दो हजार वर्षसे भी ऊपरकी पुरानी यौधेयगणकी मुद्रामें षड़ाननकी जो मूर्त्ति चित्रित है, उसमें भारतीय शिल्पी असाधारण नैपुण्य दिखा गये हैं। उस समयकी त्रिशूलाङ्कित मुद्रामें जो राजमुख अङ्कित हुआ है वह अत्यन्त सुस्पष्ट और सुन्दर है। गुप्त सम्राटोंकी किसी किसी मुद्राका शिल्पनैपुण्य ग्रीक मुद्राका मुकावला करता है। समुद्रगुप्तकी 'अश्वमेध मुद्रा' में अश्वमेधका अश्वचित्र है। उस चित्रसे मालूम होता है, कि गुप्तसम्राट्ने अश्वमेध यज्ञ किया था। भारतीय बौद्धराजाओंकी मुद्रामें चैत्य, बोधिद्रुम, त्रिरत्न और धर्मचक्र देखनेमें आता है। जैन राजमुद्रामें स्वस्तिक, हस्ती, वृषभ आदि मूर्त्तियां बड़ी दक्षतासे अङ्कित हुई हैं। हिन्दूराजाओंकी मुद्रामें नन्दी, सिंह, गाय, बछड़ा, सफेद हाथी, विष्णुचक्र, दौड़ता हुआ घोड़ा तथा नाना देव-देवी और राजमूर्त्ति चित्रित हैं। मुसलमानी अमलसे भारतवर्षमें मुद्राशिल्पका अधःपतन हुआ। दिल्ली साम्राज्य

जब महम्मद घोरीके हाथ लगी उस समय दिल्लीके प्रथम मुसलमान राजाओंने भी चौहान मुद्राके अनुकरण पर मुद्रा चला कर प्रजावर्गको खुश किया था। किन्तु इसलाम धर्मशास्त्रमें चित्रकार्यका निषेध रहनेसे मुसलमान राजोंने मुद्रा पर चित्राङ्कित करना धीरे धीरे उठा दिया जिससे भारतीय मुद्राशिल्पका बिलकुल अधःपतन हो गया।

मध्ययुग तथा वर्त्तमान यूरोपखण्ड।

सुप्रसिद्ध प्रत्नतत्त्वज्ञ केरी (C F. Keary) ने विभिन्न युगकी मुद्राओंका काल-निर्णय इस प्रकार किया है,—

प्रथम युग—रोमसाम्राज्यके पतन (४७६ ई०)-से लेकर जर्मन सम्राट् सरलीमेन (Charlemagne)-के शासनकाल ७६८ ई० तक।

द्वितीय युग—सारलीमेनके समयसे कारलो-भिञ्जियन (Carlovingian)की मुद्रा तमाम यूरोपमें फैल गई। यह मुद्रा स्वाबियन (Swabian) वंशके शासन काल १२६८ ई० तक प्रचलित है।

तृतीय युग—वा उदीयमान नवयुगकी मुद्रा (Renaissance), इस युगमें १२५२ ई०की फ्लोरेन्स नगरकी फ्लारिण मुद्राके प्रचारसे ले कर पौराणिक (Glassical) साहित्य के अभ्युत्थान १४५० ई० तक।

चतुर्थ युग—पौराणिक नवयुग १४५० से १६५० ई० तक।

पञ्चमयुग—वर्त्तमानकाल।

प्रथम युगमें बाइजन्तियम-साम्राज्यके अभ्युदय कालमें अनष्टसंसियसके समय प्रथम युगकी मुद्राका आरम्भ है। असभ्य वर्वरोंने रोम साम्राज्यका अधःपतन करके रोमक मुद्राके अनुकरण पर सैकड़ों नई मुद्रा चलो है। उस समय पातलकी मुद्राका ही अधिकतर प्रचार देखा जाता है। इटलीके अष्ट्रागथों, आफ्रिकाके भेण्डालों, स्पेनके भिसिगथों, गलके फ्रांकों और लम्बार्दियोंने इस समय नाना प्रकारके टङ्क निर्माण किये थे। ये लोग साधारणतः मोहरका व्यवहार करते थे।

द्वितीय युगमें मोहरका व्यवहार घट गया और रौप्यखण्डका प्रचार शुरू हुआ। इस युगमें खृष्टान सम्राटोंकी मूर्त्ति और क्रोसका चिह्न तथा गिर्जेकी प्रतिकृति रु येमें अङ्कित होती थी। कहीं कहीं गाथिक शिल्पका आश्चर्य निदर्शन देखा जाता है।

नवयुगके सर्वप्रधान अग्रनायक और प्रवर्त्तक सम्राट् फ्रे डरिक थे। उन्होंने अपनी मोहरमें आपुलिया-के नर्मान ड्युकोंका अनुकरण किया था। मध्ययुगकी मुद्राने फ्रान्समें अच्छी उन्नति की। पीछे स्कन्दनाभीया, कप्टहल, इङ्गलैण्ड और अरवोंकी मुद्रा तमाम प्रचलित हुई। इस समय स्पेन आदि देशोंमें मुसलमानोंका अभ्युदय था, इसीसे यूरोपीय मुद्रा शिल्पमें अरवी मुद्राका अनुकरण देखा जाता है।

फ्लोरिन मुद्राके एक भागमें 'वैप्तिष्ट' जान (Johan the Baptist) और दूसरे भागमें एक कुमुदकुसुम है। इसका वजन ५४ ग्रेन है। शिल्प सौन्दर्यमें फ्लोरिन मुद्रा विशेषरूपसे प्रशंसनीय है। फ्लोरेन्स नगरकी वाणिज्य-विस्तृतिके साथ साथ यूरोपखण्डमें तमाम फ्लोरिन मुद्राका अनुकरण होने लगा १२८० ई०में भिनिस नगरमें फ्लोरिनके अनुकरण पर मुद्रा ढलने लगी। इसके एक भागमें दण्डायमान यीशुखृष्ट और दूसरे भागमें सेण्टमार्क (St Mark) से डोज (Doge)-का पताका (gonfalon) ग्रहण चित्रित है। यह रुपया 'डुकाट' नामसे चलता था। उस समय जेनोआ नगरकी मोहर भी बहुत प्रसिद्ध थी। मिस्रके मामेलुक सुलतानोंने इटली मुद्राके ढंग पर मोहरका प्रचार किया था।

१५वीं सदीमें जब यूरोपका साहित्याकाश नवोदित पौराणिक भावके प्रकाशसे प्रकाशित हो उठा तभी वर्त्तमान मुद्राशिल्पकी उत्पत्ति हुई। जर्मनीमें १५१५ ई०-को 'डालर' नामक रुपयेका प्रचार हुआ। यही रुपया उस समय यूरोपका प्रधान और सर्वत्र-प्रचलित समझा जाता था। इसके बादसे ही वर्त्तमान मुद्राशिल्पका एकदम अधःपतन हो गया। जर्मनमुद्राके साथ साथ 'शिवलिङ्ग' नामक रौप्यखण्ड प्रचलित हुआ। तभीसे २० शिलिङ्गका एक पौंड माना जाने लगा है।

जो हो, १४५०से १५०० ई० तक मुद्राशिल्पकी बड़ी उन्नति हुई थी। इनमेंसे जर्मन और इटलीके शिल्पी ही श्रेष्ठ आसन पानेके योग्य हैं। इन सब शिल्पियोंने

प्राचीन ग्रीक-शिल्पके अनुकरण पर मुद्रातलमें प्रसिद्ध घटनावलीका उज्ज्वल चित्र बड़ी निपुणतासे अङ्कित किया था। राफेलके अनुकारकोंने भी मुद्राशिल्पकी यथेष्ट उन्नति की थी। १६वीं सदीको शिल्पभूषित सैकड़ों मुद्रा और पदक पाये गये हैं। ये सब पदक शिल्पनैपुण्यमें अनुपम हैं। उस समय फ्रान्सदेश भी शिल्पकार्यमें उन्नति कर रहा था। उन शिल्पियोंमें दुप्रे और वारिन (Dupre & Warin) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

पुर्त्तगालको मुद्रा पर १८वीं सदीके प्रारम्भमें अतुल ऐश्वर्य तथा स्पेनको मुद्रा पर अद्वितीय वाणिज्यवृद्धि और राजोचित आडम्बरका पूर्ण परिचय पाया जाता है। वार्सिलोना नगरीकी मुद्रा पर अनेक राजाओंके नाम हैं। फ्रान्समें विविध प्रकारके रुपये देखे जाते हैं। इनमेंसे कुछ वाइजन्तियमकी मुद्राके अनुकरण पर बने हैं। १३वीं सदीमें फ्रान्समें मोहरका प्रचार पहले पहल आरम्भ हुआ। ६ठे फिलिपके शासनकालकी मोहर और रुपये अत्यन्त सुन्दर हैं।

१४वें लुईकी मुद्रासे अनेक ऐतिहासिक तत्त्व जाने गये हैं। नेपोलियनके समय भी इस शिल्पकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। वहांकी मोहर और रुपयेका शिल्पनैपुण्य प्राचीन ग्रीक मुद्राकी तरह है।

इङ्गलैण्डकी मुद्रा।

ब्रिटेनसे रोमकोंके आनेके समय ४५० ई०से ले कर ८वीं सदीके साकसनवंशीय राजाओंके राज्यकाल तक यहां दो प्रकारको मुद्रा प्रचलित थी, १लो रोमक ताम्रखण्डके अनुकरण पर निर्मित और २रा स्केट्टा (Scetta) नामक प्राचीन रौप्यखण्ड। यथार्थमें हेपटार्कोंके समय इङ्गलैण्डमें मुद्राका पहले पहल प्रचार हुआ। मार्सिया, केण्ट, इष्ट आंग्लिस और नर्द्धाम्ब्रिया आदि स्थानोंकी मुद्रा पाई गई है। इनमेंसे केवल मार्सियाराज अफा (Affa) की मुद्रा ही सुन्दर और ऐतिहासिक तत्त्वकी उपयोगी है। इन्हें रौप्य 'पेनो' कहा जा सकता है। इसके बाद यार्क और केण्टरवेरीके प्रधान पादरी-पुङ्गवका रुपया मिलता है। नर्माणोंके शासनकालमें तथा प्लाण्टाजेनेटवंशके समय भी यह शिल्प पूर्ववत् चलता रहा था। ३य एडवर्डके शासनकालमें सबसे पहले अंगरेजी स्वर्णमुद्राका प्रचार हुआ। इसका परिमाण ६ और ८ पेन्स था। इस समयसे ले कर ट्यु डरवंशके शासनकाल तक मुद्राशिल्पमें कोई परिवर्त्तन नहीं देखा जाता। ३य एडवर्डकी मुद्रामें अर्णवपोत पर आरूढ़ उनकी प्रतिमूर्त्ति अङ्कित है। मुद्राविदोंका कहना है, कि यह १३४० ई०के लुईस युद्धका विजयचिह्नमात्र है। ८म हेनरीके शासनकालमें इस शिल्पका बहुत हेरफेर हुआ तथा सोने और चांदीके सिक्कोंका प्रचार बढ़ गया। इसी समय अंगरेजी 'सोभरिन' प्रचलित हुआ।

रानी इलिजावेथके समय गाथिकशिल्पके आदर्श पर जो सिक्का ढलता था वह बन्द हो गया और उसके बदले आजकलके जैसा ढलने लगा। इस समय टकसालघर भी कई जगह खोले गये थे। प्रथम चार्लसकी मुद्रा पर गृहयुद्ध (Civil war)-के विविध चित्र देखे जाते हैं। इस समय राजकोष सोनेसे खाली हो गया तब १० और २० शिलिङ्ग रुपयेका प्रचार हुआ तथा 'क्राउन' मुद्राका आकार घटा दिया गया। इस समयकी आक्सफोर्डनगरमें प्रस्तुत एक मुद्रा बहुत आश्चर्यजनक है। उसके एक भागमें घोड़े पर सवार प्रथम चार्ल्सकी मूर्त्ति और दूसरे भागमें आक्सफोर्डका घोषणा-पत्र है। क्रोमवेलके समय कुछ मुद्राओंका विशेष शिल्पनैपुण्य देखा जाता है। इसके पश्चाद्भागमें तृतीय विलियमकी वीरत्वव्यञ्जक प्रतिमूर्त्ति है। रानी आनी (Anne)-के शासनकालमें डिन स्विफ्ट (Dean Swift)-की आज्ञासे मुद्रा पर ऐतिहासिक घटनाके चित्र छपने लगे। प्रसिद्ध ताम्र फार्दिङ्गकी उत्पत्ति उन्हींसे हुई है। इसके बाद जार्जगणके शासनकालमें अंगरेज-शिल्पी Pistrucci मुद्राशिल्पका अच्छी तरह संशोधन करके उसमें उन्नति दिखा गये हैं।

अंगरेजी पदकोंमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध घटनाओंके सिवा कोई विचित्रता नहीं देखी जाती। ट्युडर वंशके पदक बहुत ही सुन्दर हैं। Trezzo तथा हालैण्डवासी Stephen का खोदित प्रतिमूर्त्ति निपुणताका उज्ज्वल निदर्शन है। किसी पदकमें स्काटकी रानी मेरीकी सुन्दर

प्रतिमूर्त्ति है। स्टुवार्टके शासनकालमें भी पदकशिल्प-का विशेष उत्कर्ष देखा जाता है। अद्वितीय शिल्प Briot Rawlin-ने इस समय अच्छी प्रसिद्ध पाई थी। तभीसे अंगरेजी मुद्रा और पदकके शिल्पमें कोई विशेषता नहीं देखी जाती।

स्काटलैण्डकी मुद्रा साधारणतः अंगरेजीमुद्राके ढंग पर बनी है। कहीं कहीं शिल्पकी न्यूनता देखी जाती है। १५वीं और १६वीं सदीमें स्काटलैण्डके शिल्प ने बहुत कुछ उन्नति की। रानी मेरीकी मुद्रा पर उनकी सौन्दर्य-शालिनी प्रतिमूर्त्ति ही विशेष उल्लेखनीय है। आयरलैण्डकी मुद्रा पर कोई विशेषता नहीं है। प्राचीन डेन लोगोंकी मुद्रा ही केवल ऐतिहासिकोंका आलोच्य विषय है। २य जेमूसकी मुद्रा पर कुछ विशेषता देखी जाती है।

बेलजियम और हालण्डके मुद्राशिल्पमें कोई फर्क नहीं है। वह केवल फ्रान्स और जर्मनीका अनु-करण है। सिर्फ प्रोटेष्टाण्ट सम्प्रदाय द्वारा जो सब पदक प्रचारित हैं उनमें थोड़ा बहुत शिल्पोत्कर्ष देखा जाता है। १६वीं और १७वीं सदीके बहुतसे पदक पाये गये हैं। उनसे उस समयका इतिहास बहुत कुछ जाना जाता है। लिडेन नगरीका अवरोध और सेन्ना-चेरिव (Sennacherib's)-का सैन्यध्वंस आदि घटना मुद्राकी पीठ पर अङ्कित हुई हैं।

विलियम दि साइलेण्टकी गुप्तहत्या तथा अरमाडा-की पराजय भी मुद्रा और पदकमें अङ्कित हैं। ओल-न्दाज प्रजातन्त्रका इतिहास इसमें अच्छी तरह झलक रहा है।

स्विजरलैण्डकी मुद्रामें बहुत सी चित्रित घटनाओंका समावेश है। फ्रान्किस मोहरके बाद सालेमनका रौप्य-खण्ड देखनेमें आता है। १०वीं-से १३ सदी तक सुआ-बियन मुद्राका ही अधिक प्रचार देखा जाता है। २य फ्रेडरिकके समय शासनकालमें स्वीजलैंण्डके मुद्राशिल्प-की बड़ी उन्नति हुई थी। १४वीं सदीमें स्वीसोंने प्रबल हो कर मुद्राका प्रचार किया। पीछे फरासी-आक्रमण-कालमें स्वीजलैंण्डको मुद्राकी स्वाधीनता जाती रही। जेनेभा और लुसानो नगरकी मुद्रा पर विशेष शिल्पनैपुण्य देखा जाता है।

वर्त्तमान इटली और सिसली।

प्राचीन मुद्राके बाद ही अष्ट्रागथ और लम्बार्दियोंने यहां मुद्रा चलाई थी। पीछे मुसलमानोंके हाथसे इस शिल्पकी ह्रास और परिवर्त्तन हुआ। इसके बाद फ्लोरेन्सका मुद्राशिल्प उल्लेखनीय है। अनन्तर जेनोआ और भिनिसकी मुद्रा ही तमाम प्रचलित हुई थी। इटलीके पदक मुद्राशिल्पके सुन्दर उदाहरण हैं। मिलान नगरकी मुद्रा भी सौन्दर्यमें कम नहीं है।

गियोवन्नी दोण्डालो (Giovanni Dondalo)-के मुद्राशिल्पका उत्कृष्ट आदर्श है।

रोमनगरके मध्ययुगकी मुद्रामें कोई विचित्रता नहीं है, परन्तु इससे अनेक समस्याकी पूर्त्ति हुई है। ७म क्लेमेण्टके समयसे पोपकी प्रधानता मुद्रातलमें स्पष्ट दिखाई देती है।

इटलीके पदक शिल्पनैपुण्यका सुन्दर निदर्शन है। ये सब प्राचीन शिल्पके अनुकरण हैं। मारि और डि पास्ति, एन्जेलो, वलट्ट, स्निराण्डियो, जेण्टाइल बेलिनी, गाम्बेलो, फ्रान्सेस्को, फ्रन्सिया आदि शिल्पियोंकी नामावली और कीर्त्ति बड़े कौशलसे पदकमें खोदी गई है। पदकके तलमें अङ्कित पिसानोकी पौराणिक चित्रशाला और नीतिगर्भ-चित्रावली शिल्प आदर्शमें उच्च आसन पानेकी योग्य है।

पास्तिने पदकके तलमें सिजसमण्डकी महिषी आइ-सोटाका जो चित्र अङ्कित किया है वह अत्यन्त सुन्दर है बेलिनिके पदकमें कनस्तान्तिनोपलके विजेता द्वितीय महम्मदका जो चित्र अङ्कित किया गया है वह सर्वोत्कृष्ट है। परवर्त्ती कालमें मुद्राशिल्पी काभिनोने उनके पूर्व पुरुषोंकी प्रतिभाको कुछ घटा दिया था। पोपोंकी मुद्रासे परवर्त्ती रोमक शिल्पका पूर्ण परिचय पाया जाता है।

जर्मनी।

जर्मनीकी मुद्राका धारावाहिक श्रेणीनिर्णय करना बहुत कठिन है। यह इटली मुद्राका अनुकरणमात्र है। १म फ्रेडरिक और २य फ्रेडरिककी मुद्राका तमाम यूरोप में प्रचार हुआ था। १म माक्सिमिलियनके शासन-कालमें इस शिल्पकी विशेष उन्नति हुई थी। इस

समय मुद्रा पर अश्वारोही सम्राट्की प्रतिमूर्त्ति देखी जाती है।

इसके बाद बमेरिया-राज १म लुइस द्वारा प्रचारित डालरका तमाम जर्मनीमें प्रचार हुआ। इसके बाद ब्राण्डेनर्ग और ब्रान्सुइक मुद्रा सर्वत्र फैल गई। १३वीं सदीमें ४र्थ ओथो (Otho)-के शासनकाल तक मेरो भिञ्जियन और कार्लोभिञ्जियन सम्राटोंको मुद्रा प्रचलित थी। पादरियोंने ब्रूनोके समय ६५० से १८०१ ई० तक सिक्का चलाया था। १६वीं और १७वीं सदीमें हाम-बर्गकी मोहरकी बड़ी उन्नति हुई थी। जर्मन पदक शिल्पोत्कर्षमें इटलीके पदकसे निम्न स्थान पानेके योग्य है। जर्मन पदकके बनानेवाले चित्रकार अथवा भास्कर नहीं थे। वे साधारण सोनारका काम करते थे। जर्मनी अलवर्ट डूरर अद्वितीय शिल्पी थे। उनका पदशिल्प सभी शिल्पियोंसे बढ़ा चढ़ा है। पितृभक्त डूररने पदकमें पिता-माताकीजो अपूर्व प्रतिमूर्त्ति अङ्कित कर गया है, वह शिल्पनैपुण्यका अद्वितीय उदाहरण है। उसी मुद्राके तलमें लूथर, एरासमस, ५म चार्ल्स, माक्सिमिलियन और वर्गण्डीकी सम्राज्ञी रूपवती मेरीकी प्रतिमूर्त्ति विशेषभाव-से प्रशंसनीय है।

नोरवे, डेनमार्क स्वीडेन।

स्कन्दनाभीयदेशमें राजकीय कोई नागरिक मोहर नहीं मिलती। इङ्गलैण्डके डेनिस-विजयसे ही इन सब-का प्रभावकाल आरम्भ है। नौरवे राज्यमें हेरल्ड हेड्राडा-की पेनी पाई जाती है। वे ष्टामफोर्ड ब्रिजके युद्धमें मारे गये, यह मुद्राकी आलोचना करनेसे मालूम होता है। इसके बाद विख्यात डेनिस सम्राट् कानिउट (Canute,-की मुद्रा मिलती है। उस समय इसका इङ्गलैण्ड आदि देशोंमें भी अधिक प्रचार था। पीछे हार्डि कानिउट और मागनसके समय वाइजन्तिदयममें मुद्राशिल्पका अनुकरण देखा जाता है। किन्तु इसमें कोई शिल्पो-त्कर्ष नहीं है। १४वीं सदीमें स्वीडेनमें मेकलेनवर्गके अलवार्टने मुद्राशिल्पकी विशेष उन्नति की। गाष्टाभस आडलसफसकी मुद्रा द्वारा अनेक ऐतिहासिक तत्त्वोंकी मीमांसा हुई है। स्वीडनके १२वें चार्लसके समयकी मुद्रामें बहुत-सा रोमक पौराणिक देवदेवीका चित्र देखा जाता है। अलावा इसके चार्ल्सके सैकड़ों ताम्रानुशासन और ताम्रमुद्रा आविष्कृत हुई।

रूसिया, पोलण्ड और हुङ्गेरी।

१५वीं सदीके पहलेकी रूसियाकी मुद्रा बिलकुल नहीं मिलती। इसकी प्राथमिक मुद्रा पर वाइजन्तियम का शिल्प-प्रभाव देखा जाता है। पिटरो-दि-ग्रेटके समय मोहरकी बड़ी प्रसिद्धि थी। निकोलसने प्लाति-नाम धातु वा श्वेत काञ्चनका सिक्का चलाया था। पोलण्डका सिक्का ११वीं सदीसे आरम्भ हुआ है। पीछे १५वीं सदीमें पोलण्डराज उलादिसलस जगोलोने इस-की बड़ी उन्नति की थी। डालजिक नगरकी मुद्रा पर बहुत-से सुन्दर सुन्दर शिल्पचित्र देखे जाते हैं। ११वीं सदीमें १म ष्टिफेनके समय हुङ्गेरीकी मुद्राने बड़ी तरक्की की थी। पीछे १४वीं सदीमें अञ्जूर चार्लस रावर्टने 'फ्लोरिण' और डुकाट चलाया। इसके बाद जान हुनि याद्दिकी राजकीय मुद्रा श्रेष्ठ आसन पाने योग्य है। अष्ट्रियाकी राजवंशीय हाङ्गेरियो मुद्रा पर बहुतसे सुन्दर चित्र देखनेमें आते हैं। उस समय यहां बहुत-सी मोहर प्रचलित हुई थी। १६वीं और १७वीं शताब्दीमें ट्रानसेल भिनियाकी मुद्रा पर विपुल ऐश्वर्यका परिचय पाया जाता है। क्रूसेड वा धर्मयुद्धके समय तुर्क-साम्राज्यकी अनेक प्रकार विचित्र मुद्रा पाई जाती है। पोप ४र्थ इनोकेण्टकी मुद्रा पर मुसलमानशिल्पका प्रभाव देखा जाता है। इन सब मुद्राओं पर शिल्पोत्कर्ष नहीं रहने पर भी उनसे अनेक ऐतिहासिक तत्त्वोंका मीमांसा हो सकती है।

अमेरिका।

अमेरिकाके मुद्रातत्त्वमें प्राचीनता नहीं है। अभी यूरोपीय उपनिवेशिकोंने वहां अनेक प्रकारकी स्वर्ण और रौप्य मुद्रा चलाई है। डालर यहांकी प्रधान मुद्रा है। वामुंडा और मेलाचुसेट्स नगरमें देवदारुवृक्षाङ्कित मुद्रा ही विशेष उल्लेखनीय है।

भारतमें मुसलमानी अमल।

पहले लिखा जा चुका है, कि भारतमें मुसलमानोंके जमानेसे ही भारतीय मुद्राशिल्पकी अवनति हुई। मह-म्मद घोरीसे शमसुद्दीन अलतमस तक मुसलमानी मुद्रामें

हिन्दू आदर्शकी ही रक्षा की गई थी। प्राचीन मुद्रा-शिल्पकी विगतस्मृति सुलतान अलतमसकी अश्वारोही मुद्रामें मानो एक बार उद्दीप्त हो कर विलीन हो गई है। शाहबुद्दीन महम्मद घोरीसे ले कर गयासुद्दीन तक १० राजाओंकी मोहरमें तुघ्रा वा पारसी लिपिके साथ भारतवासीके मनोरञ्जन वा सुविधाके लिये नागरी अक्षरमें भी नामाङ्कित हुआ है। यहां तक कि, अपनी अपनी मुद्रा पर कुतुबउद्दीनने "भूपाल", फिरोजशाहने "बभूव भूमिपतिः", मैजउद्दीन और अलाउद्दीनने "नृपः" वा "नृपति", नासिरुद्दीनने "पृथ्वीन्द्र" तथा गयासुद्दीनने 'श्रीहम्मीर'की उपाधिका व्यवहार किया था।

इसके बाद मुद्रा पर मूर्त्ति छपना बिलकुल बंद हो जाने पर भी लिपिविन्यासकी अपूर्व परिपाटी और निपुणता देखी जाती है। परवर्त्ती मुसलमान राजाओं-की मोहरों पर कई जगह प्रत्येक राजाके नाम, सन् और कुरानसे उपदेशमूलक वाक्य उद्धृत हुए हैं। भारतीय मुद्रातत्त्वविदोंका कहना है, कि दिल्लीश्वर महम्मद-बिन-तुगलकके पहले तक भारतवर्षमें पूर्व मुद्रामान ही बराबर चला आता था। इस समय भारतवर्षमें भिन्न भिन्न तौलकी भिन्न भिन्न मुद्रा प्रचलित थी। इससे जन-साधारण, विशेषतः व्यापारियोंके पक्षमें विशेष असुविधा समझ कर दिल्लीश्वरने निम्नलिखित मुद्रामान स्थिर कर दिया :—

१ कानी = १ जीतल।
२ „ = दोकानी वा सुलतानी।
६ „ = षष्कानी, ¾ हस्तकानी।
८ „ = हस्तकानी।
१२ „ = दुवाजदह कानी।
१६ „ = खानजदह कानी।
६४ „ = १ तङ्का (चांदीके रुपयेका)
= १७५ ग्रेन।

इसके अतिरिक्त १ कानीके बदलेमें ४ तांबेका 'फल' फेल), दोकानीका मूल्य ८ और हस्तकानीका मूल्य ३२ तांबेका फल निश्चित हुआ। अतएव २५६ तांबेके फलके बदलेमें एक रौप्यटङ्क (रुपया) मिलता था इसके सिवाय उन्होंने २६० कानी मूल्यकी 'निश्फि' वा चवन्नी और ५० कानी मूल्यकी अठन्नी भी चलाई थी। उनके समयकी मोहर 'अशरफी' कहलाती थी। इस अशरफीके अनुकरण पर राजपूतानेके राजाओंने 'अशावरी' नामकी मुद्राका प्रचार किया।

भारतके नाना स्थानोंसे उक्त प्रकारकी अनेक मुसलमानी मुद्रा मिलने पर भी उनमें शिल्पनैपुण्यका कोई विशेषत्व नहीं है। चित्तोरके राणा कुम्भने गुज-रात और मालवके मुसलमान राजाओंको परास्त कर फिरसे प्राचीन हिन्दू आदर्श पर मुद्रा ढलवाना आरंभ कर दिया था। उनके चलाए पैसेके एक ओर स्वस्तिक-चिह्नसम्वलित 'कुम्भक' नाम और दूसरी ओर एकलिङ्ग-के मन्दिर-चित्रके साथ 'एकलिङ्ग' नाम खोदा हुआ है। राणा सङ्गकी मुद्रा पर त्रिशूल और स्वस्तिक चिह्न अङ्कित रहता था।

विजयनगरमें हिन्दू-राजाओंके अभ्युदय होनेसे प्राचीन दाक्षिणात्यकी मुद्राका फिर यथेष्ट प्रचार हो गया। कृष्णानदीके उत्तर तमाम मुसलमानी तङ्क (रुपये) का प्रचार रहने पर भी कृष्णाके दक्षिण राम राजाओंका 'टङ्क' आदि ही प्रचलित था। दाक्षिणात्य-का मुद्रामान इस प्रकार है :—

२ गुञ्जा = १ दुगल (= ½ पणम् वा फणम्)
२ दुगल = १ चवल (= १ पणम्)
२ चवल = १ धारण।
२ धारण = १ होण (= १ प्रताप, माद वा आधा पगोडा।
२ होण = १ वराह (= १ हूण वा पगोडा)

अकबर बादशाहके समय मुसलमानी मुद्राशिल्पकी बहुत कुछ उन्नति देखी जाती है। उन्होंने अपने अपने अधिकारभुक्त सभी प्रधान शहरोंमें कुल मिला कर ४२ टकसाल खोल कर अनेक प्रकारके सोने, चाँदी और ताम्रखण्डका प्रचार किया था। नीचे अकबरी मुद्राकी तालिका और उसका मूल्य दिया गया है।

अकबरी मोहर।

	नाम	परिमाण तोला	माशा	रत्ती	मूल्य।
१।	शाहनशाह … …	१०१	६	७	=१०० लालजलाली मोहर=१०० रुपया वा ४००:० दाम।
२।	छोटाशाहनशाह … …	६१	८	०	=१०० गोल मोहर=६०० रुपया।
३।	रहस … …				=शाहनशाहका आधा।
४।	आत्मा … …				=शाहनशाहका चौथाई।
५।	बिन्सत् … …				=शाहनशाहका पांचवा भाग।
६।	चहारगोषा … …	३	०	५।॰	=३० रुपया।
७।	चुगुल … …	२	६	०	=३ गोल मोहर=२७ रुपया।
८।	इलाही … …	१	२	४॥।॰	=१२ रुपया।
६।	अफतावी … …		१२	१॥।॰	=रुपया=चौका लाल जलाली।
१०।	लाल-जलाली … …	१	०	१॥।॰	=रुपया=४०० दाम।
११।	आदल गुटकी … …		११	०	=४ रुपया (गोल मोहर)।

अकबरी रुपया।

१। रुपी (गोल)=११ मा० ४ र०
२। जलाला (चौका)—११मा० ४र०

इस रूपीका आधा 'दरब', उसका आधा 'चरण', रूपीका $\frac{१}{५}$ 'पण्डु' $\frac{१}{८}$ 'अष्ट' $\frac{१}{१०}$ 'दशा' $\frac{१}{२६}$ 'कला' तथा $\frac{१}{२}$ सुकि'। पुरोनी अकबरशाही गोल रूपीका मूल्य ३६ दाम निर्दिष्ट था।

अकबरी पैसा।

दाम (पैसा)=१ तोला ८ माशा ७ रत्ती=३२३' ५६२५ ग्रेन ताम्रखण्ड। दामका आधा 'अधेला' उसका आधा 'पाउला' और उसका आधा 'दमड़ी'। जब तक मुगल-साम्राज्य अक्षुण्ण था, तब तक अकबरी मुद्रा मान ही चलता रहा था।

मुगल प्रभावके ह्रास और महाराष्ट्रके अभ्युदय होनेसे शिवाजी और उनके वंशधरोंने फिरसे हिन्दूमुद्राका प्रचार किया था। इस समय नेपाल, काश्मीर, मेवार, आसाम और कोचविहारमें भी हिन्दूराजे अपने अपने नाम पर सिक्का चलाते थे। बङ्गालके प्रतापादित्यने कुछ दिनोंके लिये अपने नाम पर सिक्का चलाया था। मेवाड़को छोड़ कर काश्मीर और राजपूतानेके अन्यान्य स्थानोंकी मुद्रा पर मुसलमानी प्रभाव देखा जाता है। अंगरेजी शासनसे भारतीय मुद्रामें बहुत परिवर्त्तन हुआ है। राजपूताने और त्रिवाङ्कोड़ आदि राजाओंकी मुद्रा पर प्राचीन दाक्षिणात्य-मुद्राका कुछ निदर्शन रहने पर भी सभी मुद्रा वृटिश-प्रभावकी गवाही दे रही है। परन्तु नेपालमें अभी भी हिन्दू-मुद्रा चलती है।

वर्त्तमान वृटिश राजत्वमें मोहर, गिनी, अर्द्धगिनी, रुपये, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी, अन्नी, डबल पैसा, पैसा, अधेला और पाई प्रचलित है। वृटिश-प्रभावसे भारतीय मुद्राशिल्पकी दिनों दिन उन्नति हो रही है।

मुद्रावल (सं० क्ली०) बौद्धोंके अनुसार एक बहुत बड़ी संख्याका नाम।

मुद्रामार्ग (सं० पु०) ब्रह्मरन्ध्र, मस्तकके भीतरका वह स्थान जहां प्राण-वायु चढ़ती है।

मुद्रायन्त्र—काष्ठादि कठिन पदार्थों पर अङ्कित चित्र या लिपि मालाकी प्रतिलिपि उतारनेका यन्त्र विशेष। पहले स्याही या रङ्ग, खोदी हुई मूल लिपिमें लगा कर दबानेसे उस

प्रतिकृतिका उद्धारसाधन होता है, इससे अंगरेजी भाषामें इसको प्रेस कहते हैं। इस युगमें विद्योन्नतिके साथ साथ प्राचीनतम ग्रन्थादि संग्रहके लिये और प्रचारोत्कर्ष उपलब्ध कर वैज्ञानिक लिपिमालाकी प्रतिकृति संगठनके लिये यत्नवान् हुए।

पहले हस्तलिखित पोथीके साहाय्यके सिवा विद्यालाभ अथवा अन्यान्य ग्रन्थोंके पढ़नेकी सुविधा न थी। विद्याका गौरव-प्रभाव और आदर बढ़नेके साथ साथ साधारणको हस्त लिखित पुस्तकोंके संग्रहका अभाव अनुभूत हुआ था। एक ग्रन्थ लिखनेका अभ्यास करनेमें जो समय लगता था, लिखित पोथियोंके पढ़नेमें उससे बहुत कम समय व्यय करना पड़ता था। सुनते हैं, कि भारतवर्षके नालन्दाके विद्यामन्दिरमें लिपिग्रथित पुस्तकोंके अधिक प्रचार करनेके लिये बौधयतियोंने मठोंमें एक बहुत बड़ी दवात तय्यार की थी। उसके चारों ओर 'साइफेन' आकारके एक हजार छिद्र थे। ऊपरसे काली या स्याही ढाल कर एक आदमी भारी स्वरसे पोथी पढ़ता और दवातके सहस्र छिद्रके मुंह पर सहस्र छात्र बैठ कर एक ही समय ग्रन्थ सदा संगृहीत करते थे। लिपि देखो।

विद्योत्साही समयकी महार्घताका अनुभव कर या समयको मूल्यवान् समझ पोथियोंको हाथसे लिखनेमें समयका अधिक लगना देख एक ही साथ कई पोथियोंके तय्यार करनेके उपायमें लगे। क्रमशः उनका यत्न और अध्यवसाय सफल हुआ। लकड़ी और जली हुई मट्टीके फलकमें पोथियोंकी भाषाओंके अक्षरोंको एकत्र कर उन पर स्याहीका प्रयोग कर आवश्यकताके अनुसार कागज या भोजपत्र पर पोथीकी नकल उतार लेनेकी व्यवस्था हुई। इसमें भी भ्रम संशोधनकी असुविधा होते देख परवर्त्ती उन्नत चेता विद्वान्मण्डली उक्त प्रथाका उत्कर्ष सम्पादनमें यत्नवान हुई। इसी तरह क्रम विकाशकी धाराके अनुसार क्रमसे मिट्टी, तांबे, लोहा, पीतल और सीसेके अक्षर ढाल कर या छेनीसे काट कर लिपि ग्रन्थके नैपुण्यकी पराकाष्ठा साधित हुई है।

इस समय धातुसे ढाले अक्षरोंको (Cast metal) movable types) एकत्र जोड़ कर कागज पर अभिलषित लिपिका प्रतिफलित पाठ उद्धार करनेके लिये जिस प्रथाका आविष्कार हुआ है, वही यथार्थ मुद्राङ्कण शिल्प (Art of printing) पदवाच्य है। जहां मुद्रण कार्यके उपयोगी यन्त्र आदि रखे हुए हैं, और ढलाई अक्षरसे लिखी भाषाकी प्रतिलिपि संगृहीत होती है, उसी यन्त्रागारको मुद्रायन्त्र (*Printing press*) वा छापाखाना कहा जाता है।

पहले लकड़ी या पत्थर पर ऊपर या नीचे अक्षरोंको खोद कर (Deep cut) दवाव दे कर उसकी नकल उतारी जाती थी। और तो क्या—देवता और दिखावटी चीजोंका चित्र (Wood block) लकड़ी पर खोद कर कागज पर उसकी नकल उतार ली जाती थी। पूर्वोक्त खोदित चित्र (Xylography या Wood engraving) अथवा पत्थर पर अङ्कित अक्षरोंकी नकलको (Lithography) मुख्यतः दवाव डाल कर कागजमें उतार लिया जाता था। यह आज कलके ढलाई अक्षरोंके इच्छित विन्याससे बिलकुल स्वतन्त्र है। अतएव मुद्रायन्त्र या मुद्रणशिल्प (Typography) कहनेसे ही साधारणतः अक्षरमालाका समावेश Writing by types समझना होगा।

यद्यपि लकड़ी पर बने चित्रों और प्रस्तर प्रतिलिपिमुद्रण, उद्भावित आक्षरिक ग्रन्थन लिपिकी नकलसे पूर्णतया पृथक् है फिर भी यह स्वीकार करना होगा, कि अनुसन्धानपरायण उद्यमशील ग्रन्थ प्राप्तु विद्योत्साहियोंके आग्रहके विकाशमें क्रमशः चित्रविद्याके साहाय्यसे बहुग्रन्थकी लाभाकांक्षासे ही वर्णाक्षरोंके समावेश द्वारा पुस्तकादि संग्रहको व्यवस्था की गई। फिर इससे ही विद्योन्नतिके साहचर्य्यार्थ पोथी आदिको पुस्तकके आकारमें छाप कर लोगोंके सहजलभ्य करनेके अभिप्रायसे इस समय छापखानेके प्रयोजन समझ कर उसके उपादानोंका संगठन हुआ है।

चीजोंका चित्र (Figures) दृश्य या जीवादिकी नकल (Picture), वर्णमाला (Letters), शब्द (Words) श्रेणीबद्ध, अर्थद्योतक शब्दपरम्परा अथवा भाषा और भावज्ञापक सम्पूर्ण एक पृष्ठ (*Page*) किसी विशिष्ट आकारमें और विभिन्न रङ्गोंमें दवाव डाल कर किसी

दूसरी चीज पर उसकी नकल उतारनेको ही मुद्राङ्कण कहा जाता है। यहां लकड़ी पर खुदे चित्र या अक्षरोंको भी मुद्राङ्कण विद्याके अन्तर्गत ले लिया गया है।

१५वीं शताब्दीके मध्यमें यथार्थतः यूरोपमें अक्षर मुद्रणका प्रचलन आरम्भ हुआ। किंतु उससे बहुत पहले भी अन्यान्य प्रकारसे अक्षर-मुद्रणकी प्रथा थी। उसका प्रमाण विलियम दी-कङ्करर और उस समयके राजाओंके समयकी दी हुई सनदकी (Charters) मुहरोंमें दिखाई देता है। उस समय लकड़ी या धातु खण्ड पर राजाका नाम खोद कर कागज पर छाप दी जाती थी। यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा, कि यह नामाङ्कण या आवश्यकीय लेखन उच्च नीच भावसे दक्षिण मुखी खुदाई होती थी और उसकी नकल कागज और चमड़े पर सीधी दिखाई देती थी। १२ शताब्दीकी कई पोथियोंमें इस तरहकी मुहर (Impression by means of stamps or dies) दिखाई देती है। उस समय वारंवार आघात देनेके सिवा अन्य कोई सुविधा जनक उपाय उन लोगोंको मालूम नहीं था। किन्तु इस समय तांबेके पत्रों पर (Plate) या लकड़ीके टुकड़ों पर (Blocks) से वार'वार चित्र छपानेकी सुविधाके लिये Copper plate printing, Automatic Numbering और Embossing machine आदि नाना यन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। मुहरके वारंवार परिवर्त्तन और छाप तथा पत्राङ्कके बाद संख्या परिवर्त्तन-प्रणाली चित्र-लिपिमुद्रण (Block printing) के भीतर होने पर भी इसने आक्षरिक मुद्राशिल्प (Typography) साहचर्य लाभ किया है। क्योंकि, इन दोनों प्रथासे ही एक अक्षर या चित्रको वारंवार बदल कर लिया जाता है।

बहुत प्राचीन सभ्य जगत्के सबसे पहले चित्रलिपि और मुद्राङ्कण द्वारा उसकी नकल उतारनेकी प्रथा जारी हुई थी, मुद्रायन्त्रके इतिहासमें उसका सिलसिलेवार विवरण लिपिवद्ध नहीं है। प्राचीन भारत, मिस्र वाविलनीय, काल्दीय, सीरिया, चीन आदि सुसभ्य राज्योंमें शिलालिपि (Inscription) मट्टीकी लिपि (Serra cotta tablets) और साङ्केत मुद्रा (Hieroglyphees) आदिका उद्भव हुआ था। किन्तु उस समय उन सब प्रतिलिपियोंका उद्धार सम्भव हुआ था या नहीं यह अनुमान करनेकी बात है। फिर यह भी स्वीकार है, कि सुप्राचीन आर्य्य हिन्दुओं, वाविलन और काल्दीया वासिगण जो लकड़ीके टुकड़ों पर अक्षर (Block) खोदनेवाली विद्याको जानते थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। पत्थरों पर या ताम्र पत्रों पर कुर्सी-नामा या दानपत्र खोद रखते थे। इसका कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता, कि वे खोदित उक्त प्रकारके फलक-की प्रतिलिपि प्रस्तुत करना जानते थे। यथार्थमें इन सब मुद्राङ्कण-विद्याका सापेक्ष रहने पर भी उन्नति विधायक नहीं हुआ। क्योंकि, शिलालिपिमें अङ्कित अक्षर स्वभावतः वाममुखी लेकिन मुद्रायन्त्रके व्यवहारोपयोगी अक्षरमाला स्वभावतः ही दक्षिण-मुखी लिखी जाती है। अतएव नकल उतारनेके लिये दक्षिणमुखी अक्षरविन्यास और उसके उच्च और निम्न गर्भाङ्कण जिस दिन प्रतिष्ठित हुआ था, उसी दिनसे मुद्रायन्त्र या छापाखानेकी उत्पत्तिकी कल्पना की जा सकती है। शिलाफलकके ऊपर खोदित अक्षरिक लिपि-की उत्पत्ति और परिपुष्टिपूर्ण इतिहास यथास्थान लिखा जायगा। लिपितत्त्व देखो।

प्राच्य और प्रतीच्य सुधीमण्डली एक स्वरसे स्वीकार करती है, कि लकड़ीके टुकड़े पर आवश्यकीय चित्रादि अथवा दाक्षिण मुखी (उल्टा) लिपि खुदाई कर और भाषाके विकाशके साथ नियत पारिवर्त्तनीय अक्षरावलियोंकी नकल उतारनेकी प्रथा जगत्में सबसे पहले केवल चीन और जापानवालोंने ही जारी की थी। सुसभ्य कहलानेवाले यूरोपीय उसका विन्दुमात्र भी उस समय जानते न थे।

सन् १७५ ई०के लगभग चीनवाले अपने बहुत प्राचीन शास्त्रों और काव्य नाटकोंको पत्थर या लकड़ी पर खोद लेते थे और विश्वविद्यालयके सम्मुख रख देते थे। जब आवश्यकता होती तो उसकी नकल भी उतार लेते थे। आज भी चीनमें उस समयके शास्त्रोंकी नकलें मौजूद हैं। ये सब नमूने ऐतिहासिक तत्त्वका अस्फुट प्रमाण कहा जाता है। फिर भी यथार्थमें ६ठी शताब्दीके आरम्भसे ही चीनदेशमें फलकलिपिकी मुद्रणप्रथा

आरम्भ हुई थी। इसी समय 'सुय' राजवंशके प्रतिष्ठाताने स्वदेशवासियोंकी विद्योन्नतिकी कामनासे बहुत धन व्यय कर लुप्तप्राय काव्य नाटकादिका उद्धार करनेके लिये काष्ठफलक पर कई प्राचीन ग्रन्थोंको खुदवा कर छपवाया था। यही इस समय काष्ठफलक लिपिका प्रधान और पहला नमूना है। इसका कुछ विवरण नहीं मिलता, कि इसके बाद इस ढंगकी और कोई पुस्तक छपी थी या नहीं। इसके बाद ई० १०वीं शताब्दीके प्रारम्भमें हम चीनराज्यमें काष्ठफलक खोदित ग्रन्थलिपिकी मुद्रण-परिपुष्टि और प्रचार वाहुल्य देखते हैं।

बौद्धप्रधान जापान द्वीपमें भी ७६४ ई०को फलकलिपि मुद्रण (Block printing)-का अच्छा प्रमाण मिला है। यह सहज ही समझमें आता है, कि इससे पहले जापान राज्यमें मुद्राङ्कणको उन्नतिके लिये चेष्टा की गई थी। सम्भवतः चीनियोंसे ही जापानियोंने फलक-लिपि मुद्रणकी विद्या सीखी थी।

पूर्वोक्त वर्षमें 'स्युतोकू' अपनी विपन्मुक्ति कामनासे देवके लिये विशिष्ट पूजा करनेका मानस किया। उन्होंने अपने मानस व्रतके उद्यापनार्थ पूजाकार्यके लिये खिलौनोंकी तरह छोटे छोटे लकड़ीके टुकड़ों पर १० लाख बौद्ध पैगोडा निर्माण किये थे। पीछे उन्होंने बौद्ध धर्मशास्त्र 'विमलनिर्वाससूत्र' से एक धारणीका उद्धार कर काष्ठफलक पर खुदाईका १८ इञ्च लम्बे और ३२ इञ्च चौड़े कागजके टुकड़े पर मुद्राङ्कित किया। इसी समय एक वार ही १० लाख धारिणी मुद्रित हुई थीं और यथार्थमें इस समयसे ही मुद्रायन्त्रकी आवश्यकता लोगोंको ज्ञात पड़ी थी।

महारानी स्युतोकूने इन धारिणियोंको पैगोडाके शीर्ष स्थानमें रख कर वहांके बौद्ध मन्दिर और संघारामों में भेज कर यथाविहित मानसिक पूजाका उपसंहार किया था।

६८७ ई०में वहांकी एक पत्रिकामें बौद्ध-पुरोहित द्वारा चीनसे लाये गये एक मुद्रित (सुरि-होज्) बौद्धधर्म शास्त्रका उल्लेख है। चीनदेशमें मुद्रित होने पर भी जापानवासी उस समय पुस्तकमुद्रण करना जानते थे, इसमें सन्देह नहीं। यह पत्रिकामें लिखे 'सुरिहोज्'-के आभाससे ही अनुमान होता है।

लोगोंका कहना है, कि चीनने ११वीं शताब्दीके मध्यभागमें नियत परिवर्त्तनयोग्य परस्पर विच्छिन्न मृदक्षर (movable types of clay)-का उद्भावन कर पुस्तकमुद्रणकी विशेष सुविधा की थी। इस समय उसके आदर्श पर सुसभ्य यूरोपीयोंके प्रयत्नसे सीसेके परस्पर विश्लिष्ट अक्षर तय्यार कर मुद्रायन्त्रकी उत्कर्षता और उपकारिता सर्वसाधारणमें विघोषित हो रहा है।

इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध वृटिश-म्युजियम नामक पुस्तकागारमें रखी मुद्रित पुस्तकोंमें १३३७ ई०में कोरिया प्रदेशमें मुद्रित एक ग्रंथका नमूना मिलता है। इसीको खण्डाक्षरमें (Movable types) मुद्रित ग्रन्थके प्राचीनतम यथार्थ नमूने कहनेमें अत्युक्ति नहीं होती। इसके बाद कोरियावाले १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मृदक्षरके बदले ताम्रमुद्रा (तांबेका अक्षर)-का प्रचलन किया। इसी शताब्दीको मुद्रित ग्रन्थावलीकी आलोचना करनेसे कोरियावासियोंको ताम्राक्षरका उद्भावक कहना होगा इसमें जरा भी सन्देह नहीं। क्योंकि उस समय उन्होंने केवल ताम्राक्षर द्वारा ही पुस्तकमुद्रणकार्य सम्पन्न करनेकी शिक्षा पाई थी, इसमें सन्देह नहीं। शायद मुद्राङ्कणक्रियाके आविष्कर्त्ता चीनने लकड़ीसे मिट्टी और इसके बाद ताम्राक्षरमें रूपान्तरित कर मुद्रायन्त्रका अङ्गसौष्ठव परिवर्त्तन और परिवर्द्धन किया होगा, कुछ लोग ऐसा ही लिख गये हैं।

चीन या जापानियोंके इस समुन्नत उपादानसे उन्नतिकामी यूरोप समाजने मुद्रायन्त्रके उपकरणोंका संग्रह किया था, लोगोंकी ऐसी ही धारणा है। Britannica नामक अभिधान-लेखक इस वातकी सत्यता नहीं मानते। उन्होंने लिखा है,—'From such evidence as we have it would seem that Europe is not indebted to the Chinese or Japanese for the art of Blockprinting, nor for that of printing with movable types.' किन्तु उनके पीछेके अन्यान्य सुधीजनोंने पक्षपातरहित हो मुक्त कण्ठसे चीनको मौलिकत्व

स्वीकार किया है।* उनका कहना है, कि चीनके साथ यूरोपका सम्बन्ध न रहने पर भी १३वीं शताब्दीके अन्तमें पर्यटक मार्को पोलो (Marco Polo के यथार्थ प्राच्य सम्बन्धका आभास मिलता है। उन्होंने स्वदेश लौटने पर अपने प्रिय लोगोंसे अपने प्रत्यक्ष देखे हुए मुद्रित चीनदेशीय कागजके रुपयेका (Paper money by stamping it with a seal covered with cinnabar) वृत्तान्त कहा था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है, कि यह चीनकी मुद्रणप्रणालीका एक अङ्ग है।

विशेष पर्य्यालोचना कर देखा गया है, कि मार्कोपोलोके इस मुद्रणशिल्पके विवरणके प्रकाशित करनेके १०० वर्ष बाद यूरोपमें इस अल्पयाससाध्य अति सामान्य मुद्राशिल्पके प्रकार विशेषका आविर्भाव हुआ था। पहले यूरोपमें विभिन्न चित्रसमन्वित खेलनेके ताश (Playing card) और ईसाई धर्मग्रन्थके भजनका अंश एक पत्ताकारमें मुद्रित होने लगा। उसी समय से पौराणिक विद्यावलीके साथ बाइबिलके उपाख्यानांश मुद्रित हो कर नवमुकुलित मुद्राङ्कण विद्याका सौष्ठव सम्पादनकी समधिक चेष्टा समग्र यूरोप-समाजमें अनुभूत हुई थी।

पूर्व समयमें इटली, फ्रान्स, जर्मनी आदि सुसभ्य देशोंमें विश्वविद्यालय (University) और धर्मसंघ (Ecclesiastical establishments)में ज्ञाननैतिक संगठन असंपूर्ण रहनेसे लिपिकर, चित्रकर, ग्रन्थरक्षक, पुस्तकविक्रेता और भेलम और पार्चमेण्ट नामक चर्मपत्र निर्म्माताका एकान्त अभाव हुआ था। क्रमसे व्यवहार और धर्मशास्त्र तथा पाठ्य पुस्तकादिके रचनाप्रसङ्गमें ग्रन्थादिका सर्वाङ्गीण पारिपाट्य सम्पादनार्थ लोगोंका प्रयास और आग्रह होने लगा। इसके अनुसार सुलेखक (Caligraphers) और चित्रकारकी (Illuminator) आवश्यकता प्रतीत हुई। उस समय सुलिखित और सुचित्रित भेलमकी पोथी धनवानकी एक सामग्री थी।

१३वीं शताब्दीके पहलेसे यूरोपमें हस्तलिखित पुस्तकोंकी खरीद बिक्री बढ़ रही थी। १४वीं शताब्दीके अन्तमें स्कूलपाठ्य और भजन सम्बन्धीय सभी पुस्तकें, नत्थी, राजकीय सनद आदि तथा साधु पुरुषोंका चित्र और खेलनेके ताशको तस्वीर कागजों पर अङ्कित कर बेची जाती थी।

जब यह लेखनप्रणाली अच्छी तरहसे परिपक्व हो यूरोपीय जनसमाजमें विशेष रूपसे आदरित हुई थी, जब लिपि विद्या उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी, तब साधारण लोगोंके आग्रहसे यूरोपमें धीरे धीरे कागज, भेलम नामक स्वच्छचर्म, कपास और रेशमी वस्त्रों पर काष्ठफलक खोदित चित्रावलोकी मुद्रणप्रथा (Xylography)-का अंकुर पैदा हुआ था।

एक विषयमें उत्कर्ष-साधन परायण जनसाधारणके यत्नसे दूसरे एक नये पथका अभ्युदय होना अवश्यम्भावी है, यह स्वतः सिद्ध और साधारणके लिये मान्य है। पुस्तककी लिपिके कार्य्यको सुन्दरतासे सम्पादन करनेके लिये और मुद्राङ्कणकी परिपाटी उपलब्धि कर विद्वानोंको फलकमुद्रणकी आवश्यकता प्रतीत हुई। इस तरह हस्तलेखनका सौष्ठव बढ़ानेमें क्रमसे यूरोपमें चित्रमुद्रणका कौशल्य जागरित हो उठा और उसीके विकाशस्वरूप Block-printing प्रथामें चित्राङ्कणकी सुव्यवस्था हुई।

१२वीं शताब्दीमें जर्मनी-देशमें पहले पहल सूती और भेलम नामक वस्त्र पर चित्रमुद्रण आरम्भ होनेका प्रमाण मिलता है। १४वीं शताब्दीके द्वितीयार्द्धमें कागज पर इस तरहकी चित्रविद्याका व्यवहार देखा जाता है। १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कागज पर छपी 'बाइबिल' का बहुत प्रचार हुआ था। १४०० ई०में जर्मनी फ्लेण्डार्स और हालेण्डवाले भी अच्छी तरह इस हालको जान गये थे।

१५वीं शताब्दीके अन्त तक जिस तरह प्रकरणके

---

* "Even in Europe, however, although the mode of writing was alphabetic, it was the Chinese mode of printing that was first practised. Some have even supposed that the knowledge of the art was orginally obtained from the Chinese"

(Eng. Cyclopedia, Art & sc vol, III, p. 746)

फलक मुद्रणकी सुव्यवस्था हुई थी नीचे उसका एक विवरण संक्षेपमें दिया जाता है,—

वर्त्तमान काष्ठचित्र (Wood-engraving) की खुदाई प्रथाके अनुसार पहले भी काष्ठफलकमें पौराणिक अथवा देवचरित व्यक्तिवर्गके चित्र और धर्मशास्त्रका पाठ्य अंश उन्नत छिद्रमें (in relief) खोद लिया जाता था। पहले जलवत् तरल रंग (अस्तर-चित्रविद्याका Dis-temper नामक पदार्थ) विशेष द्वारा उसका ऊपरी भाग भिगा दिया जाता था। जब उसमें कोमलता आ जाती थी, तब उस पर एक भिगे कागजका टुकड़ा फैला दिया जाता था। इसके बाद दवाव देनेके लिये फ्रोटन (Fro tton) नामक यन्त्रविशेष (अंग्रेजी Dabber वा burni-sher नामक यन्त्रकी तरह ही है।) द्वारा उस भिगे हुए कागज पर यत्नके साथ धीरे धीरे घर्षण किया जाता था। जब तक कागजमें आकार उठ नहीं आते थे, तब तक दवाव दिया जाता था। उस समय इसी तरह कागजका एक पृष्ठ छापने (Anopisthographic) के सिवा दूसरा पृष्ठ छापनेका कोई उपाय नहीं था। फलकमुद्रित इस तरहके दो स्वतन्त्र पृष्ठ जिस ओर कोई छाप नहीं होती, उस ओर गोंद लगा कर परस्पर जोड़नेसे फलक-मुद्रित पुस्तक (Block books) का एक एक पृष्ठ जोड़ा जाता था। पीछे उसके विना छपे दोनों पृष्ठोंको एकत्र साट देनेसे मुद्रित पत्रोंका नम्बर सिलसिलेवार लग जाता था और कोरा या विना छपे पृष्ठ नहीं दिखाई देते थे। ब्रूसेलसके राजकीय पुस्तकालयके The Lege-nd of st Servatius हमवर्गके ग्रन्थागारमें Das Zei-tglocklein और आलथर्प तथा गोथाके पुस्तकालयमें Das geistlich and Welltich Rom नामक पुस्तक जो १५०० ई०में मुद्रित हुई थी, उसका भिन्न रूप निदर्शन है। यथार्थमें उस समय पुस्तक-मुद्रण करनेके लिये खोदित काष्ठफलक (Wood Blocks) एवं कागज पर घिसने और छापनेके लिये रबर (Rubber)-के सिवा अन्य किसी चीजकी जरूरत नहीं होती थी।

पहले लोगोंका विश्वास था, कि प्राचीन कालके खेलनेवाले ताशोंका चित्र काष्ठफलक पर छापा जाता था। किन्तु इस समय विशेष विशेष जांच पड़ताल द्वारा जिन प्राचीन खेलोंका संग्रह किया गया है, उनमें अधिकांश हस्त द्वारा चित्राङ्कित सिद्ध हुए हैं। जो सब मुद्रित ताश मिले हैं, वे प्रायः १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मुद्रित हुए थे। ऊपर सङ्घारामसें (Monas-teries) इस तरहके चित्रोंके मुद्रणकी जो बात लिखी गई है, उसके नमूनास्वरूप नर्डलिङ्गन नगरके फ्रान्सिस-कान् मनेष्टरीकी मृत्युकी तालिकामें १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें "VII. Id Augusti, obiit Fraterh Luger, laycus, optimus incisor lignorum" 'खोदित फलक' की एक प्रतिलिपि उद्धृत है।

उल्मकी फिहरिस्त (Registers of Ulm) १३६८ ई०में उलरिक नामक एक व्यक्ति, १४४१ ई०में हैनरिक पिटर वन इरोलज हिम, जोयार्ग और एक व्यक्ति हेनरिक, १४४२ ई०में उलरिक और लिनहार्ट, १४४७ ई०में क्राफियस, एोकेल (निकोऊास खृष्टोफर) और जोहान, १४५१ ई०में विलहम् और १४६१ ई०में उलरिक और मिडगर आदि कई सुप्रसिद्ध और सुप्राचीन खुदाई करने-वालों (Formschneider) का नामोल्लेख है। सिवा इसके नर्डलिङ्गनके लाइसेन्स वसूलोकी फिहरिस्तमें १४२८-१४५२ ई० तक विल्हेलम केगलर, १४५३ ई०में उसकी विधवा पत्नी और १४६१ ई०में भ्राता विलहेल्म पर्य्यायक्रमसे एक ही 'Brieftnecker' काममें लगे हुए थे, ऐसा हो उल्लेख पाया जाता है।

जब मध्य यूरोपमें खुदाईवालोंकी सहायतासे चित्रा-ङ्कणका बहुत प्रचार हुआ था, तब उस समय उन सब चित्रोंके छापनेकी आवश्यकता दिखाई दी और साधारण लोगोंके यत्न करने पर इस अभावकी पूर्त्ति हुई। क्रमशः उसी समयसे जगह जगह छापाखानेकी प्रतिष्ठा हुई। सन् १४१७ ई०में फलाण्डर्स राज्यके एण्टर्व नगरमें Jan de Printere नामसे मुद्रायन्त्र प्रतिष्ठित हुआ। सन् १४४२ ई० तक वहां मुद्रकोंने (Printers and wood engravers) अपने अपने कार्य्योंकी परिचालना की थी। १४५४ ई०में ब्रूसेलस नगरके सेण्ट जान भ्रातृसम्प्रदाय (The Fraternity of St John the Evangelist) में भी प्रतिमूर्त्ति बनानेवालों (Printers and beelde makers) का अभाव न था।

उपरोक्त मुद्रक या खुदाई करनेवाले प्रायः धर्मशास्त्र-लिपि मुद्रणकार्यमें लगे हुए थे, इसीसे मनाष्टरियोंकी फिहरिस्तमें उनके नाम लिखे हुए हैं। उस समय जो खेलनेके ताश छापते थे, वे अपने अपने स्वतन्त्र रूपसे वाणिज्य कार्यकी परिचालना कर गये हैं।

चित्रकारके फलकचित्रण समाप्त होने पर जो केवल दवाव (Press) दे कर उसकी नकल उतारते थे, उनको मुद्रक (Priners) कहा जाता था। सन् १४४० ई०में मेनज् नगरमें Henne Cruse नामक एक विख्यात मुद्राकर था। सन् १४४६ ई०में नूरेमवर्ग नगरमें हेनस् 'Hans' नामक एक आदमी खुदाईके कामका व्रती था। उसके पुत्र Junghans ने सन् १४७० ई०से १४६३ ई० तक पैतृक व्यवसायसे हो जोविका चला कर अपनी आयुके दिन पूरे किये थे। सन् १४५६ ई०में फ्राङ्कफोर्ट नगरमें Hans Von Piedersheim और ग्लासवर्ग नगरमें *P*eter Schott मुद्राङ्कणकार्यमें व्यस्त रहते थे। यह मुद्रक पहले Lebrorum prothocaragmatici (१४६७) ; 'Impressores librorum' और 'Exsculptor librorum' (१४७१); 'Chalcographus' (१४७३); magister artis impressoriae', 'boeckprinter' और १६वीं शताब्दीमें Chalcotypus और Chalcographus नामसे परिचित थे।

ऊपर लिखा गया है, कि मध्य यूरोपमें सबसे पहले मुद्राङ्कणविद्याका विकाश हुआ। यूरोपके जर्मनराज्यमें फलकचित्रण तथा मुद्रणने ई०सन्‌की १५वीं शताब्दीमें शीर्ष स्थान अधिकार किया था। लिजन नगरमें धर्माध्यक्ष Jean de Hinsberg, bishop of Liege (१४१६-१४५५) और वेथानी (Bethany)-मठविहारिणी कौमारव्रतचारिणी उसकी बहनको Unum instreementum ad zmprimendas scripturas et ymagines और Novem prente legnee ad imprimendas ymagines cum quatuordecim aliis lapideis printis लिपिसे सहज ही प्रमाणित होता है, कि उस समय मुद्राकरसे मुद्रित पुस्तक खरीदनेके बदले काष्ठ पर खोदनेवालोंसे ही लोग प्रस्तर या काष्ठ फलक पर अङ्कित लिपिखण्ड हो खरीदते थे।

आज कलकी खोजसे जो सुप्राचीन खोदित फलकचित्र (Wood-cut) मिले हैं, उनमें १४२३ ई०के खुदे सेण्ट ख्रुष्टोफरकी प्रतिमूर्त्ति ही सबसे पुरानी है। आलथर्प नगरके लार्ड स्पेन्सरके पुस्तकालयमें यह रखी हुई है। भियेना नगरके राजकीय (Royal Library) पुस्तकालयमें वाइविलके १४वीं पंक्ति मूललिपिसम्बलित सेण्टसिवाष्टियनके आत्मोत्सर्गाभिनयसूचक एक फलकचित्र रखा हुआ है वह १४३७ ई०में खोदा गया था। ब्लाक फरोष्टके भीतर सेण्ट ब्लेस (St. Blaise) सङ्घाराममें १७७६ ई०में यह फलक मिला है। सिवा इसके वहां १४४० ई०में अङ्कित St. Nicolas de Tolentino-का एक चित्रफलक दिखाई देता है। ब्रुसेलस नगरमें कुमारी मेरीका खुदा हुआ एक चित्र है। इसमें MCCCXVIII अङ्क खुदा रहने पर भी भ्रमात्मक विवेचनासे इसे साधारण लोगोंने ग्रहण नहीं किया। इस समय इसको यथार्थ तारीख १४६८ ई० स्वीकार की गई है। उदगैल संग्रहमें (collectio weigeliana Vol. i) वाइविलके आख्यान मूलक प्रायः १५४ चित्र-फलकोंका विवरण लिखा हुआ है। सिवा इसके इनसाइक्लोपिडिया वृटानिका नामक बड़े अभिधान या वृहत् शब्दकोषमें फलकमुद्राङ्कित प्राचीन पुस्तकोंकी फिहरिस्त दी गई है। उनमें जर्मन देशमें २० और नेदरलैण्डमें १० धर्मसम्बन्धी ग्रन्थ हैं।*

पूर्ववर्त्ती ग्रन्थकर्त्ता एक वाक्यसे यह स्वीकार कर गये हैं, कि जर्मनदेशवासी गुटनवर्ग नामके एक व्यक्तिने मुद्रायन्त्रका आविष्कार किया था, किन्तु वे मुद्राक्षर और मुद्रायन्त्रके यथार्थ उद्भावक हैं या नहीं, 'Gutenberg Was he the Inventor of Printing ?' शीर्षक लेखमें J. H Hessels उस विषयमें पूर्ण रूपसे निवटारा कर गये हैं।

पोप ५वें निकोलसने साइप्रस राज्यके अनुकूल जो मुक्तिपत्र (Letters of indulgence) प्रदान किया था, उसके दो संस्करण सन १४५४ ई०में मेनज नगरमें पहले पहल मुद्रित हुए।

* *E*ncyclopedia Britannica (9th ed) Vol, XXIII. p. 683—684,

यह गुटेनवर्ग पहले मुद्राकरका कार्य करते थे। इसका प्रमाणस्वरूप जो नत्थी मिली है उसमें लिखा है;— जोहन गुटेनवर्ग और जोहन फुष्ट एक ही साथ दोनों समयमें मुद्रण व्यवसाय करने लगे। गुटनवर्गने अपने हिस्सेदार फुष्टसे व्यवसायकी उन्नतिके लिये सन् १४४६-५०में ८००) और १४५२ ई०में ८००) कुल मिला कर १६०० रुपये (गिल्डार) कर्ज लिये। सन १४५५ ई०-में छठों नवम्बरको फुष्ट सूदके साथ उक्त रुपयेकी वसूली के लिये २०२६) रुपयेकी नालिश गुटनवर्गके नामसे कर दो। उक्त नत्थीपत्रमें फुष्टने 'यौथ कारोवार' (Our common work) की वात लिखी है। उन्होंने जवाव-देही की, कि इनसे जो रुपया लिया गया है, वह पुस्तक छापनेके काममें लगा दिया गया है। यन्त्रके निर्माणमें कागज और स्याही खरीदनेमें, घरके भाड़ेमें खर्च हुआ है। जजने भो इन दोनों पक्षके लाभका व्यवसाय (The work to the profit of both) कह कर स्वीकार किया है। उक्त नत्थीकी ४२वीं पंक्तिमें "The work of the books" की वातें लिखी रहनेसे साक्षीमें पुस्तक मुद्रित होनेका प्रमाण मिलता है। गुटनवर्गके साथ फुष्टका मनोमालिन्य हो गया था, किन्तु पीछे मन-मुटावका कारण दूर हो जाने पर फिर उन्होंने एक साथ ही कारोवार किया। सन् १४५७ ई०की १४वीं अगस्त-को मेनज नगरमें इन दोनोंके नामसे एक पुस्तक छपी थी।

उक्त नत्थीके प्रमाणसे गुटेनवर्गको कभी भी मुद्राकरकहा नहीं जा सकता। फुष्टके साथ सुलह सफाटो हो जानेके वाद गुटेनवर्ग मुकदमेके फैसलेके अनुसार महाजनको अपने गच्छित यन्त्र लौटा देने पड़े। इसके वाद वे मेनज़ नगरमें एक राजपुरुष (Syndic) डाकृर होमरीसे अर्थ-साहाय्य प्राप्त कर फिरसे वे मुद्रायन्त्र संगठनमें लग गये। जोहन गुटनवर्गको कृतज्ञ और सरलान्तकरण समझ कर मेजके आर्क विशप २य अडोल्फने सन् १४६५ ई०में उसको अपने अनुचरके रूपमें (dhiener und hoffgesind) रख लिया और उसके भरणपोषणके लिये वार्षिक पहननेके कपड़े और खाद्य द्रव्यादि (20 '*Malter*' of corn and 2 fuder of wine) देना स्वीकार किया। इसके अनुसार गुटेनवर्ग मेनज़को छोड़ कर एल्टिवल (Eltville) नगरमें आर्क विशपके प्रासादमें जा कर रहने लगा। धर्माध्यक्षके साथ रहनेसे अपनेको सम्मानित समझ उसने मुद्रण कार्य्यको छोड़ दिया और अपने यन्त्रादि छापाखानेके सामानोंको (Catholican) मुद्राक्षर आदिको एल्टभिलवासी Henry Bechtermuncze नामक एक व्यक्तिके हाथ सौंप दिया। क्योंकि, गुटेन-वर्गके Catholican मुद्राक्षरमें १४६७ ई०में मुद्रित १४६१ ई०के एक मुक्तिपत्र (Henry) और Nichola Berchtermuncze और Wigandas Spyes de Orthenberg द्वारा मुद्रित होनेका प्रमाण मिलता है। सन् १४६८ ई०में मेनज़ नगरमें गुटेनवर्गकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्युके वाद आर्कविशप अडोल्फने मुद्रा कार्यके उपयोगो विलकुल यन्त्रादि जो गुटेनवर्ग रख गया था, Dr Hamery-को लौटा दिये। सन् १४६८ ई०में २६वीं फरवरीके Dr Homery-के प्राप्ति स्वीकार पत्र हैं। मालूम होता है, कि उन्होंने गुटेनवर्गके मुद्रायन्त्र या छापाखानेके उपकरणोंको पाया है। यह उसके धनसे गढ़ा हुआ था, इसलिये उसोको यह प्राप्य वस्तु समझी गई।*

उपरोक्त विभिन्न मतोंकी आलोचना करने पर गुटेनवर्गको निःसन्देह मुद्रण-कार्य्यका प्रवर्त्तक कहा जा सकता है। उससे या उसके अनुकरणमें अपरापर मुद्राकरोंने वादमें मुद्राक्षर तय्यार किया। जगतके क्रमविकाशकी पद्धतिके नियमानुसार पिछले शिल्पियोंके हाथसे मुद्रणविद्याकी उन्नति हुई और धीरे धीरे वह यूरोपके विविध देशोंमें फैल गई।

---

* *Dr.* Homery acknowledges to have received from the said archbishop "several form, letters, instruments, implements and other things belonging to the work of printing, which Johan Gutenberg had left after his death and which had belonged and still did belong to * Ency. *Brit.* (9th ed) Vol. XXIII p. 685.

किस तरह काष्ठफलकाङ्कित लिपिमालाका व्यय-बाहुल्य और अनुपयोगिताका अनुभव कर यूरोपवासी वियुक्त वर्णमाला विन्यास द्वारा मुद्रायन्त्र या छापा खानेकी उपकारिताका हृदयङ्गम किया गया था और किस तरह फलकमें परस्पर ग्रथित अक्षरोंके बदले एक एक परस्पर-विभिन्न धातव अक्षरकी उत्पत्ति और परिणति हुई थी, नीचे उनका एक संक्षिप्त विवरण देते हैं;—

फलकमुद्राङ्कित ग्रन्थोंको (Block Books) पहले बायें मुखसे खुदाई होती थी (The types were at first designated more by negative than posi tive expressions) । यह प्रभूत परिश्रम और अध्यवसाय सापेक्ष होने पर भी पढ़नेके समय विशेष सुविधाजनक था। सिवा इसके एक फलक पर एक-एक पृष्ठ अङ्कित करनेमें व्ययबाहुल्य भी दिखाई देता है। इस तरहके कायिक परिश्रम और प्रचुर अर्थ व्यय करके भी पुस्तकके बारंबार मुद्रण और संस्करणके भेदसे ग्रन्थके आकार परिवर्त्तनका एकान्त असद्भाव हुआ था। अतएव ऐसे व्यय और परिश्रमको नष्ट कर कोई भी मुद्रित पुस्तकके प्रचारमें साहसी नहीं हुए। गुटेनबर्ग, फुष्ट, स्कोफार आदि शिल्पियोंने खृष्टान सम्प्रदायकी मङ्गल कामनासे केवल बाइबिल ग्रन्थ ही मुद्रित किया है। इस जातीय अभावको दूर करनेके लिये उन्नतिका भी मुद्रण-सम्प्रदाय धीरे-धीरे मुद्रायन्त्रके संस्कारमें आगे बढ़े।

गुटेनबर्गको वृद्धा अवस्था अर्थात् १४६८ ई०में यूरोपमें मुद्राक्षर समूह 'Caragma' caracter या character' ; १४७३ ई०में 'archetype note' 'Sculptoria archetyporumars' ; 'Chalcotypa ars', formea; artificiosoisime imprimendorum librorum forme' आदि नामोंसे प्रचलित थे। सन् १४६८ ई०में स्कोफारका प्रकाशित Grammatica नामक ग्रंथ ढलाई अक्षरका (Sum fusus libellus) उल्लेख है। सन् १४७१ ई०में Bernardus cenninus और उसके पुत्रकी 'Virgil' ग्रन्थ मुद्रण विवरणीसे मालूम होता है, कि "Expressis ante calibe caracteribus et deinde fusis literis" अर्थात् पहले अक्षरोंको इस्पातमें खोदाई कर पीछे ढाले गये थे। सन् १४७३ ई०में नूरेनबर्ग वासी फ्रेडरिक क्रेउजानरने Diogenes के ग्रंथोंके छापनेके समय अक्षरोंको खुदवाया (Sculpsit) था। इसके दूसरे वर्ष उलमवासी जोहन जीनेर (Johan Zeiner) ने पुस्तक मुद्रण कार्य्यमें उत्तम धातव मुद्राक्षर Stagneis caracteribus और Joh. Ph, de Lignamine ने ऐसे अक्षरके व्यवहारकी बात लिखी है। १४८० ई०में निकोलस जानसनने खोदाई और ढलाई (Sculptis ac conflatis) अक्षरों द्वारा पुस्तकको छापा।

ऊपरमें लिखा जा चुका है, कि पहले काष्ठफलक पर हरफ खोद कर पुस्तकोंकी छपाईका काम शुरू हुआ था। इस प्रथासे पुस्तक छपानेमें बहुत खर्च पड़ता था और भ्रमसंशोधन या बारंबार छपानेमें असुविधा और अनुपयुक्त विवेचना कर लोग परस्पर विच्छिन्न अक्षरावली अक्षरोंके निर्माण करनेका उपाय करने लगे। गुटेनबर्ग, फुष्ट और स्कोफार आदि मुद्रक फलक मुद्राकी सहायता से पुस्तक छापते थे। सन् १४५७ ई०में फुष्ट और स्कोफारके यत्नसे जो 'The mainz psalter" पुस्तक मुद्रित हुई थी, वह फलकाक्षर (Block printing) से क्रमशः काष्ठ अक्षरोंमें (Wooden typ s) मुद्राङ्कित होने लगी। सन् १५१६ ई०में इसके पांचवें संस्करण छापते समय पहले संस्करणकी तरह छिद्रोंके काष्ठाक्षरोंक व्यवहार हुआ था। जुनियासके वर्णनसे मालूम होता है, कि हालेण्ड वासियोंका Speculum ग्रन्थ भी उक्त रूपके अक्षरोंसे छपा था। किन्तु यथार्थमें ये अक्षर सब परस्पर पृथक् थे या नहीं, उसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता। सन् १४४८ ई०में Theod Billiander के विवरणसे मालूम देता है, कि पहले फलक पर पुस्तकके सारे पृष्ठों पर मुद्राकरणयोग्य वर्णमाला खुदाई होती थी। यह व्ययसापेक्ष और बहुत ही श्रमसाध्य था। यह देख कर मुद्रकोंने परिवर्त्तनशील काठका हरफ या अक्षर तैयार किया। अक्षरोंको एक साथ जोड़ कर रखनेके लिये उनमें एक एक समान रूपसे छेद कर दिया जाता था। उन छेदोंमें डोरा पिरो कर उसे रखा जाता था। विवली एण्डरने स्वयं इस तरहके अक्षरोंको देखा था या नहीं, इसका कुछ भी उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। वरं इसके बादके

समयमें Dan Specklin (सन् १५८६ ई०में मृत्यु हुई) ष्ट्रासवर्ग नगरमें अपनी आंखों इस तरहका अक्षर देखा था। उन्होंने मेनटेलिन (Menteline) नामक एक मुद्रकसे इस तरहके अक्षरोंके तय्यार करनेकी वातका उल्लेख किया है। इसके वाद Angelo Roccha ने सन् १५९१ ई०में भिनिस नगरमें सच्छिद्र सूत्रग्रथित अक्षरों को देखा था। सन् १७१० ई०में Paulus Pater ने मेनज नगरके फुष्टके कारखानेसे प्राप्त 'वक्स उड' पर खोदित खण्डित सूत्रग्रथित अक्षरोंका नमूना देखा था।

पहले उल्लेख कर चुके हैं, कि बहुत प्राचीन कालमें चीनदेशमें छापाखानेके कार्य्यके लिये फलकमुद्राके वदले पहले मृदक्षर और इसके वाद तांवेके अक्षर वने। उन अक्षरोंको उस समय जली मिट्टी या ढलाई तांवे चौपहली वत्तोके ऊपर खुदाई हुई थी। यूरोपके ष्ट्रासवर्ग और मेञ्जनगरमें फलकाक्षर और खण्डाक्षरके मध्यवर्त्ती समय में Sculpto lusi अक्षरोंका उद्भव हुआ। इन अक्षरोंमें छिद्र करनेसे पहले हरफके यथायोग्य आकारमें एक एक चौपहली वत्ती (Shanks) ढाल कर पीछे उसके एक मुखमें अक्षरका आकार खोदा जाता था। सन् १४७५ ई०में Sensenschmid ने लिखा है, कि Code Justinianus और Lombardus कृत In Psaltrium नामक ग्रन्थ इसी तरह खुदे धातुके अक्षरोंमें (Insculptus) मुद्रित हुए थे। इस प्रणालीसे अक्षरोंके तय्यार करनेमें अधिक कष्ट होता था, इससे उस पर अक्षर खोदनेके लिये छेनी (Punch)-की खोज करनेमें मुद्रक आगे वढ़े। Sculpere, exsculpere insculpere आदि वातोंसे मालूम होता है, कि उसी समयसे ही छेनीसे काट कर अक्षर खोदनेकी प्रथाका अवलम्ब लिया गया है। उस समय यन्त्र द्वारा अक्षर ढालनेका उपाय आविष्कृत न होने पर भी वही प्रथा मुद्राशिल्पकी उन्नतिकी चरम सीमा कही जाती थी। हम स्कोपफारके मुद्रित Grammatica Vetus *Rhythmica* ग्रन्थमें भी अक्षर ढलाईका (Casting of the types) प्रकारान्तरसे प्रमाण पाते हैं।

वर्त्तमान समयमें मुद्रक जो इस्पात दण्डके मुख पर अक्षरका छिद्र या गर्त्त कर लेते हैं, उसीको छेनी कहते हैं। इस छेनीसे एक ताम्रपत्र पर पटकनेसे जो उलटा अक्षर अङ्कित हो जाता है उसीको हिन्दीमें अक्षरका यन्त्र या अंगरेजीमें Matrix कहते हैं। जिस यन्त्रमें जला हुआ सीसा ढाल कर अक्षर वन जाता है, उसको सांचा या Mould कहते हैं।

सुसभ्य यूरोपमें छेनोके अक्षरोंके तैयार होनेके वाद अक्षरोंको ढलाई करनेकी उपाय-उद्भावनकी वाधा उपस्थित नहीं हुई। उन्होंने क्रमशः Punch से Matrix और पीछे *Mould* तय्यार कर लिया। पहले वहां वालूमें सांचों द्वारा अक्षरोंकी ढलाई (Types cast in sand) होती थी। इससे प्रत्येक अक्षरको ऊंचाई (Hight of paper) वरावर नहीं होती थी, क्योंकि उस समय लोगोंने अक्षरके सांचे (Forme lace) ठीक तरहसे और उपयुक्त रीतिसे पकड़ना नहीं सीखा था। गलित सीसा ढालनेवाले सांचेको मजवूतीसे पकड़ने पर कभी अक्षरोंमें कसर नहीं रह जाती और इसकी खड़ाईमें कसर नहीं होती। अथवा ढालनेके समय, छिद्र करनेके समय अक्षरोंके यथास्थान सूते या तारोंसे गांथनेमें कोई रुकावट नहीं होती थी। सूतेसे गांथनेसे अक्षरोंके भ्रमसंशोधनमें वड़ी दिक्कत उठानी पड़ती थी। अक्षर वदलनेमें सूताके वन्धनको खोलना पड़ता था। यह देख कर वे फर्मा (Forme)में एक एक अक्षर समावेश कर वर्णमाला विकाशमें यत्नशील हुए। पूर्वोक्त प्रणालीसे अक्षरोंका समावेश करने पर अक्षरोंके ऊंच नीच होनेके कारण ऊंचे हरूफों पर ही स्याहीका दाग पड़ता था।

इस असुविधाको दूर करनेके लिये कीचड़का सांचा (Clay moulds) तय्यार हुआ। किन्तु मिट्टीके सांचेमें दो चार वार ढालनेके वाद वह सांचा नष्ट हो जाने लगा, इससे अक्षरोंका खुदा स्थान नष्ट भ्रष्ट हो जाता था। इसके फलसे पुस्तकके एक पृष्ठके अक्षरोंको तय्यार करनेमें कितने ही सांचोंकी आवश्यकता होती थी। इससे कार्यमें विलम्ब तो होता ही था, वरं सांचे के परिवर्त्तन छोटे वड़े ऊंच नीच हो जानेके कारण पुस्तकोंकी छपाईमें वड़ी गड़वड़ी उपस्थित होती थी।

इस प्रथाके अनुसार सांचा तय्यार करनेसे धूपमें

सुखाना पड़ता था। इसके बाद इसके भीतरी अंशको उपयुक्तरूपसे साफ कर उसमें गलित धातु ढाल दी जाती थी। पीछे अक्षर बाहर निकाल कर सांचेको साफ करनेमें और एक पृष्ठके हरुफोंको छिद्र करनेमें जो समय लगता था, उससे एक उत्तम काष्ठखोदक (Xylographer) अनायास ही एक पृष्ठके अक्षरोंकी खुदाई कर सकता था। किन्तु इस तरहकी प्रथासे एकके बदले कई आदमियोंको नियुक्त करना पड़ता था। Bernard साहबने लिखा है, कि इस तरहकी प्रथासे भी एक मिहनती कारीगर नित्य हजार अक्षर ढाल सकता था। केवल ढलाईके बाद प्रत्येक अक्षरको घिस कर चौपहल (Squaring after casting) करना पड़ता था। किन्तु इसके सांचेको साफ करनेकी आवश्यकता नहीं होती थी।

इसके बाद पुरानी प्रथाका परिवर्त्तन और अक्षरोंके साफ करनेके साथ साथ साफ साफ ढलाईकी एक नई रीति आविष्कृत हुई। शताब्दीके भीतर ही यह *Poly* type के नामसे मशहूर हो गया। इस समय Stereotype प्रथामें जिस तरह परस्पर जुड़े मुद्राक्षरोंका समावेश होता है इस पाली-टाइप प्रणालीमें भी ढलाई कर उसी तरह अक्षरोंका विन्यास किया जा सकता था। Trithemius के वर्णनको अपनी युक्तिके अनुसार ले कर Lambinet ने लिखा है, कि कोई मुद्रक Abecedarium ग्रन्थकी पृष्ठा कम्पोज (Compose) या संग्रन्थन करनेके समय सीसाके पत्र पर एक समूचा सांचा (Matriplate) खोद कर उस पर गलित धातुको ढाल देता और पीछे एक नलाकार चापयन्त्रको उस गली हुई धातु पर बैठा कर दबा देता था। इस तरह उलटे सांचेमें धातु प्रवेश कर साफ सुथरा सीधा उच्च सांचेके साथ (Revere and in relief) एक टीन या सीसेका पदार्थ बाहर निकल आता था। इससे मुद्राकार्यमें विशेष सुविधा हुई थी। क्योंकि उसमें इच्छानुसार पृष्ठा ढलाई की जा सकती थी। पीछे उन सबको अक्षरोंकी उच्चताके अनुसार काष्ठखण्डमें (Fixed on wooden shanks type high) बांध कर उससे छापनेका काम लेते थे। इससे भ्रमसंशोधनकी सुविधा हो गई। सीसा या टीन अन्य धातुओंसे नम्र होनेके कारण सहज ही चाकूसे इच्छानुसार इनको छोटा बड़ा कर सकते थे।

ल्यून्सके निकट सायोनी (Saoni) नदीके दरारसे सन् १८७८ ई०में १५वीं शताब्दीका जो प्राचीन मुद्राक्षर मिला है, और उसके बादके कई नमूनोंसे अनुमान किया जाता है, कि यूरोपमें पहले गथिक (Gathic) वाष्टार्ड, इटली, या रोमन (Bastard Italian or Roman और वार्गाण्डीय (Burgandian) अक्षरोंका आविष्कार हुआ। इसके बाद नवयुग या मध्ययुगमें *Italic*. Greek, Hebrew, *Arabic*, Syriac, *Armenian*, Etheopic, Samaritan, slavonic, *Russian*, *Etuscan*, Runic, Gothic, scadinavian, *Anglo* saxon, *Irish* आदि विभिन्न देशीय मुद्राक्षरकी परिपुष्टि हुई थी।

किस तरह और किस समय इन सब देशोंके अक्षरोंने परिपुष्टि प्राप्त कर वर्त्तमान स्वच्छ सांचोंका रूप धारण किया है, इसका संक्षिप्त विवरण वृटानिका शब्द-कोषके Typography शब्दकी व्याख्यामें दिया गया है। इन सब अक्षरोंके उन्नतिसाधनके साथ साथ यूरोपमें सङ्गीत विद्याका उत्कर्षसाधक 'षड़ज' आदि सुरसंज्ञा और उसके स्थितिपरिमापक सांकेतिक चिह्नोंका आविष्कार हुआ। सन् १४९५ ई०में वेष्ट मिनिष्टरमें De worde द्वारा मुद्रित Higden कृत Polyc ronicon ग्रन्थमें सङ्गीत-सांकेत मुद्राका व्यवहार दिखाई देता है। सन् १५५० ई०में मार्वेका भजन और स्तोत्रमाला तुगवन्दीमें (Noted) परिवर्त्तन-शील अक्षरोंसे ग्राफटन द्वारा मुद्रित हुई थी। सन् १७०० शताब्दीके अन्तिम समयसे सङ्गीतका गद्य समूह अक्षरोंमें मुद्रित (*Music* printing from type) करनेको प्रथा दूर गई। इसके बाद धातुपत्र पर खुदाई कर या पत्थर पर लिखे Lithographic या *Copper*-plate प्रथाके अनुरूप मुद्राङ्कण कार्य प्रचलित हुआ।

जातीय उन्नति साधनके लिये आज कलकी सभ्यताके युगमें अन्धे और बहरे बालक बालिकाओंके लिये (Deaf and Dumb School प्रतिष्ठित हुए हैं। इन्द्रिय विशेषके शक्ति-प्रभावसे वञ्चित होनेकी वजह वे साधारण प्रथासे

शिक्षा लाभ करनेमें अक्षम हैं। इस तरह वाक्शक्ति-हीन और अन्धे वालकोंके शिक्षा दानके सम्बन्धमें फ्रान्स देशवासी *Valentin Hauy* ने पेरिस नगरमें अन्धाश्रम स्थापित किया था। उनकी वर्णमालाके परिचय और शिक्षा सम्बन्धमें सुविधाजनक एक प्रथाका उद्भावन कर वर्णमाला मुद्रण (Printing for the blind) में यत्नवान हुए। उन्होंने पहले किसी एक विशेष पदार्थ द्वारा कागज (A prepared paper) तय्यार कर लिया। पीछे वे एक टुकड़े कागजमें वर्णमालाओंको वड़े वड़े टेढ़े अक्षरोंमें (Large script character) लिख कर प्रस्तुत कागजके टुकड़े पर उसकी नकल उतारनेके लिये दवात द्वारा 'मश्क' करते रहे। क्रमशः उस कागज पर स्याहीका दाग पड़ कर उसके एक पृष्ठमें उन्नत अक्षर परिस्फुट हो उठा। उस समय अन्धे वालक वालिकायें उस पर हाथ फेर कर वर्णमालाका अभ्यास करनेमें समर्थ होते थे। *Hauy* के छात्र इस प्रथाका अनुकरण करके केवल पाठ्य ही समाप्त करनेका अभ्यास न किया, वल्कि उन्होंने अपने अभ्यासके वलसे स्व उपयोगी अक्षर-प्रस्तुत करनेकी विद्या भी सीखी थी। इससे भी शान्त न हो उन्होंने अपने परिश्रम-फल और मुद्रायन्त्रके निदर्शन स्वरूप १७८७ ई०में अन्धोपयोगी इस तरहकी कुछ वर्णमालामें अपने विद्यालयका कार्य विवरण मुद्रित किया था। सन् १७६१ ई०में लिवरपुलमें अन्ध-विद्यालय प्रतिष्ठित हुआ सही, किन्तु वहां उस समय अक्षरोंमें (Raised character) पुस्तक मुद्रित नहीं हुई थी। सन् १८२७ ई०में एडिनवराके अन्धाश्रमके अध्यक्ष गल साहवने कोणवाले अक्षरों (Angular types) में सेण्ट जानकी अभिव्यक्ति मुद्रित की। इसके वाद ग्लासगो अन्धाश्रमके धनरक्षक अलष्टन साहवने रोमन अक्षर मालाके कैपिटल अक्षरोंको प्रचलित किया। इसके वाद प्रसिद्ध अक्षर ढलाई करनेवाले (Type-founder Dr fry) ने उक्त प्रथाका संस्कार कर छोटे अक्षर (Lower case letters) को कौशलके साथ प्रचलित कर सन् १८३७ ई०में एडिनवराकी सोसाइटी आफ आर्टस्से पारितोषिक प्राप्त किया था।

मुद्रायन्त्रके विकासके साथ साथ भाषाकी परिपाटी भी संगठित हुई। सामयिक इतिहासोंमें उसका ज्वाज्वल्य प्रमाण मौजूद है। भाव भाषामें व्यक्त करनेमें भाषण-कर्त्ताको कभी कभी विराम लेना पड़ता है। इसीलिये अक्षरोंको ढलाईकी प्रथाके साथ-साथ उसके अलग-अलग करनेकी आवश्यकता हुई। इसकी पूर्त्ति होनेके वाद क्रमसे कमा, सेमिकोलन, कोलन, फुलष्टाप, एड-मिरेशन, इन्टेरोगेशन पेरेन्थिसिस आदि विराम चिह्नोंका आविष्कार हुआ। इसके सिवा शब्द या पद्यके प्रथम अक्षरोंकी सुन्दरताके लिये एक तरहका सुन्दर टाइप तैयार हुआ। *Initials* या ornaments और flowers आदि चित्रमय सुन्दर सुन्दर अक्षर तैयार हुए थे। सन् १४६२ ई०में इन सव चित्र-अक्षरोंका अधिक प्रचलन देखा जाता है।

१५वीं शताब्दीमें सभ्य जगत्‌में शिक्षा विस्तारके साहचर्य्यके कारण मुद्रायन्त्रका उद्भव हुआ था। यूरोपके एक राज्यसे दूसरे राज्यमें, नगरोंसे ग्रामोंमें मुद्रा-यन्त्र या छापाखानेकी वृद्धि हुई। इससे पुस्तकोंकी प्रचारवृद्धि अत्यधिक वढ़ गई। उक्त शताब्दीमें पुर्त्त-गालके एक वणिक्‌समाजने व्यवसाय करनेके लिये भारतभूमिमें पदार्पण किया। १६वीं शताब्दीके मध्य समयमें गोवा नगरके जेसुइट् (Jesuits) सम्प्रदायने भारतवासियोंको छापाखानेके रहस्योंको दिखलाया। किन्तु उस समय उन्होंने केवल रोमन अक्षरोंमें छापाखाने-का काम आरम्भ किया था। १६०० ई०में फादर एष्टिफेन (ष्टीवेन्स नामक एक अङ्गरेज)) कोंकणी व्याकरण और पुराने रोमन अक्षरोंमें अत्यन्त निपुणताके साथ रूपान्तरित कर विशेष यशके भागी हो गये हैं। वे अक्षर पुर्त्तगाली अक्षरोंके उदाहरणकी तरह सन्निवेशित हुआ है। अव भी कोंकण देशके रोमन कैथलिक आदर के साथ उस ग्रंथका पाठ किया करते हैं।

१७वीं शताब्दीमें जेसुइट् दल गोवा नगरके सेण्ट-पाल विद्यालयमें और अपनी आवास भूमि राकोल ग्राम-में दो छापाखानोंको प्रतिष्ठित कर अपने धर्म्म प्रचार-कार्य्यके लिये पुस्तकोंको प्रकाशित करने लगे। उन्होंने शताब्द भरमें दक्षिण भारतके लोगोंमें विद्याका वहुत प्रचार किया। किन्तु उक्त शताब्दीके अन्त समयमें गोवा नगरके मिशनरी सम्प्रदायके गृहमन्दिरके प्रधान

कार्योंको देशी खृष्टानों या ईसाइयोंके हाथ सौंप देनेसे Church office-में नाना तरहकी विश्रृङ्खलतायें उपस्थित हुईं। उसी अवनतिके साथ इस दलके द्वारा मुद्रित पुस्तकें भी अवनतिके गड्ढेमें विलीन हो गईं।

अनभिज्ञ अनाड़ी देशी खृष्टानोंके हाथमें पड़ कर भारतीय साहित्यका वहुत अनादर हुआ। उन्नत हृदय प्राचीन मिशनरी-दल वहुत यत्नके साथ और परिश्रम कर छापाखाने (मुद्रायन्त्र) के साहाय्यसे जिन पुस्तकोंको मुद्रित किया था उनमें कुछ उसके वादके समयके खृष्टान साधुओंके (Monks) द्वारा अप्रयोजनीय कह (Waste paper) नष्ट कर दी गईं। वाकी पुस्तकें टेविल या मेज़ पर रखी-रखी दीमकोंके शिकार हो गईं। किन्तु कोचीन राज्यके खृष्टान प्रधान अम्वलक्कडु नगरमें भारतीय मुद्रायन्त्र या छापाखानेके प्राचीन इतिहासका कुछ अंश १८वीं शताब्दी तक सुरक्षित था। यहां जेसुइट दलने १५५० ई०में सेण्ट टामस नामसे एक विद्यालय और गिरजा स्थापित किया। सन् १५९९ ई० में गोआके आर्कविशप *Alexius Maneglo* ने इसका सभापति वन कर उदयपुरमें जो सभा वुलाई, उसकी विवरणीसे उस समयके खृष्टान धर्मके प्रचारका पता चलता है।

उस समय पुर्त्तगाली जेसुइट दल यहां विशेष दक्षता के साथ संस्कृत, तामिल, मलयालम और सीरिय भाषामें शिक्षा देता था। यह अपने देशकी भाषामें लिखी पुस्तकोंको विशेष रूपसे आलोचना भी किया करता था। उन लोगोंके वहुत परिश्रमके फलसे जो ग्रन्थ मुद्रित हुए थे उनके नामके सिवा और कोई चिह्न नहीं मिलता। F. de Souza और Fr *Paulinus* के लिखे विवरणमें इसका कुछ आभास मिलता है। शेषोक्त पौलिनस साहवने लिखा है,—'An. o 1679, in oppido Ambalacatta in lignum incisi alli characterae Tamulici per *Ignatium* Aichamoni indigenam Malabarensem iisque in lucem prodiit opus inscriptum, Vocabulario Tamulio com a significaco Portugueza composto pello *P*, Antem de *Proenca* da Comp de Jesu, Miss de Madure!' इसके द्वारा अनुमान होता है, कि उस समय तामिल और मालावारी भाषाका मुद्रण कार्य सुचारुरूपसे सम्पादित हुआ था।

कोचीन नगरमें १५७७ ई०में जोयानस गणसलविस नामक एक पुर्त्तगालीने पहले मालावारी (तामिल या मलयालम) अक्षरकी खुदाई की थी। कोचीन और त्रिवांकुरकी विजयके समय सुलतान टिपूकी सेनाने अम्वलक्कडु नगरको नष्ट किया। इस समय यहां हिन्दू या खृष्टान कोई भी सुलतानकी तलवारसे वच न सका। पाषाण हृदय मुसलमान प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थोंको जला दिया। इस तरह भारतके वचे खुचे पुराने गौरव वृतान्तको नष्ट कर दिया गया। सुना जाता है, कि इस समय अनेक ब्राह्मण अपनी अपनी मूल्यवान् पुस्तक और वस्तुओंको ले कर दूसरे राज्यमें भाग गये थे। इन्होंने जन्मभूमि परित्याग कर अरण्य भूमिमें जा कर आश्रय लिया था। इनके पास जो कुछ था, वही मुसलमानोंकी दृष्टिसे वचा समझना चाहिये। वाकी सभी पुस्तकें नष्ट हो गईं।

इसके वाद १६७८ ई०में अम्वड्डम नगरमें तामिल अक्षर प्रस्तुत हुआ। Ziegenbalg-को कहना है, कि अक्षरोंके सांचे इतने अपरिष्कार तौरसे तय्यार हुए थे, कि तामिलवासी आज तक भी पढ़नेमें समर्थ नहीं हुए। सन् १७१० ई०में ट्रांकुइवार मिसिनोंके साहाय्यार्थ हल्लो (Halle) नगरवासियोंने तामिल मुद्राक्षर तय्यार कर भेजा। हल्लोवासी मुद्रक तामिल वर्णमालासे सुपरिचित न होने पर भी विशेष निपुणताके साथ अक्षरोंको तय्यार कर वाइविल ग्रन्थके New Testament का Apostles' creed भाग मुद्रित कर भेजा और साथ ही वहांके (हल्लोके) अधिवासियोंने ट्रांकुइवार मिसनकी उन्नतिकामनासे अक्षरोंके साथ एक मुद्रायन्त्र (*Printing* press) या छापाखाना भेज कर समूचे न्यु टेष्टामेण्टको मुद्रित करनेकी प्रार्थना की। इसके अनुसार ट्रांकुइवार नगरमें १७१५ ई०में तामिल अक्षरोंमें न्यु टेष्टामेण्टका मुद्रण कार्य सम्पन्न हुआ। हल्लो नगरके अक्षर मुद्राक्षर मालाके इंग्लिश सांचेमें गठित हुए थे। सन् १७५१

ई०में हल्ली नगरके मुद्रित Arndt's True christianity ग्रन्थमें उक्त अक्षरोंका नमूना है। पीछे भारतवर्षमें अक्षर ढलाईकी व्यवस्था हुई और अपेक्षाकृत क्षुद्र अक्षरोंका प्रचलन हुआ था।

भारतकी तरह सिंहलद्वीपमें भी मुद्रायन्त्रका प्रभाव फैला। सन् १७६१ ई०में मद्रास-सरकारने पाण्डीचेरीके मेवारी मिशनरियोंको मुद्रायन्त्र खोलनेकी आज्ञा प्रदान की। अमेरिकन मिशन प्रेसके मालिक मिष्टर पी, आर हाण्टने विशेष परिश्रमके साथ तामिल वर्णमालाको परिणत सम्पादन की थी। वे अमेरिकासे प्रिमियर सांचेके ढले तामिल अक्षर भारतमें ले आये।

सन् १८५३ ई०में १५वीं सितम्बरको भारतके बड़े लाट सर चार्लस् मेटकाफ द्वारा मुद्रायन्त्रकी व्यवहार-निषेध-प्रथा दूर हो जाने पर यहांके अधिवासियोंने मुद्रायन्त्र प्रतिष्ठित करना आरम्भ किया।

सन् १८६३ ई०में मद्रास नगरमें देशी लोगों द्वारा परिचालित १० मुद्रायन्त्र (छापाखाने) थे। उस समय यहांके लोग काष्ठ निर्मित मुद्रायन्त्रका व्यवहार करते थे। सन् १८७२ ई०मे मद्रासके देशी चार मुद्रायन्त्रोंमें लोहेके बने यन्त्रादि देखे गये थे। उस समय (Hot-Press) आदिका व्यवहार होता था। मद्रासके देशी छापाखानोंकी छपी किताबोंकी सुन्दरता देख कर यूरोपीयोंने बहुत प्रशंसा की थी।

सन् १७७८ ई०में हुगलीके मुद्रायन्त्रमें सबसे पहले एक व्याकरण छपा। इसी समयसे वङ्ग भाषाकी पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। यह व्याकरण ही वङ्गालमें सबसे पहले वङ्ग भाषामें छपा था। नाथनियल ब्रेसी हलहेड (Nathanial *Brasse Halhed*)-ने बहुत परिश्रमसे इस बंगला व्याकरणको संग्रह कर और वङ्गीय सेनादलके अध्यक्ष सुयोग्य और सुपरिचित संस्कृताध्यापक लेफ्टिनाण्ट सी विलकिन्स (पीछे सर चार्लस विलकिन्स)-ने अपने हाथसे अक्षरमाला तय्यार की। महामति विलकिन्सने पञ्चानन नामके एक कर्मकारको इस विद्या (अक्षर खोदाई)की शिक्षा दी। उस मनुष्यने गङ्गाके किनारेके श्रीरामपुर नगरके बापटिष्ट मिशनरी सम्प्रदायकी एक साट बंगला अक्षर (First fount of Bengali types) तय्यार कर दिया। उसने अपने बनाये प्रत्येक अक्षरका दाम १।) सवा रुपया लिया था। सम्भवतः यह अक्षर काष्ठके टुकड़ों पर खुदे हुए थे।

सन् १८१५ ई०में इष्टइण्डिया कम्पनीके मुद्रायन्त्रमें बंगला भाषाका दूसरा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इस समय उक्त प्रेससे और एक सेट (Set) नये और उत्कृष्ट अक्षरोंमें मिष्टर फष्टार कृत लार्ड कर्नवालिसके प्रवन्धसे १७९३ ई०में राजविधिका (Regulations of 1793) बंगला अनुवाद मुद्रित हुआ। सन् १८०३ ई०में श्रीरामपुरके मिशनरी दलने देवनागरी अक्षर तय्यार किया। यही सर्व प्रथम हिन्दीकी लिपि भाषाके अक्षर तय्यार हुए। सन् १८१४ ई०की १३वीं फरवरीको उन्होंने वङ्गअक्षरमें एक मासिक पत्रकी सृष्टि की। उसका नाम हुआ—'दिग्दर्शन'। इसकी प्रथम संख्यामें अमेरिका आविष्कार, भारतका भौगोलिक विवरण भारतीय वस्तुओंका इतिहास, मिष्टर स्याड लियारके डवलिनसे हॉलिहेड तक आकाश भ्रमण, नदिया-राज कृष्णचन्द्ररायकी संक्षिप्त जीवनी और स्थानीय विवरण समूह प्रवन्धाकारमें मुद्रित हुए थे। इसके बाद प्राच्य भाषाका सर्व प्रथम वङ्गभाषामें साप्ताहिक समाचार पत्र 'समाचार दर्पण' इसी वर्षको ३१वीं तारीखको लोगोंके हाथ आया। मिशनरी प्रधान जान क्लार्क मार्समान इसका सम्पादन करने लगे। इस समय कलकत्तेमें एक स्वदेशी 'तिमिर नाशक' नामसे और एक मासिक पत्र निकला। हिन्दू धर्मकी गतिसे साधारण लोगोंकी आस्थारक्षा करना ही इस पत्रका मुख्य उद्देश्य था। सन् १८४१ ई०में समाचार दर्पणका प्रकाशन बन्द हुआ। भारतके बड़े लाट मार्क्विस आफ हेष्टिङ्गस अपने हाथसे पत्र लिख पत्रके सम्पादकका अभिनन्दन किया था।

सन् १७९२ ई०में बम्बई नगरमें (मुद्रायन्त्र). छापाखानेका प्रतिष्ठा हुई। तवसे इस २०वीं शताब्दीके प्रारम्भ तक इस मुद्रायन्त्रका व्यवसाय चरम सीमाको पहुंच गया है। यहांका उन्नतिकाम मुद्रक और प्रकाशकोंके यत्नसे देवनागरी अक्षरोंमें संस्कृत शास्त्र ग्रन्थ बड़ी उत्तमतासे प्रकाशित हो कर प्रचारित हो रहे हैं।

भारतके मुख्य नगर कलकत्ता तथा बहुजनाकीर्ण मद्रास नगरी तथा संस्कृत विद्याके आकर श्रीकाशी धाममें भी इस तरहके आदरके साथ संस्कृत ग्रन्थोंका प्रकाशन नहीं देखा जाता।

सन् १८७० ई०में आगरेसे प्रकाशित एक हिन्दी संवाद पत्रसे मालूम होता है, कि भारतवर्ष, सिंहल और ब्रह्मदेशमें २४ मिशनरियां थीं। इनके तत्त्वावधानमें ३४१० छापाखाने चलते थे और यह कोई ३१ भाषाओंमें पुस्तिका छपा कर वहांके अधिवासियोंमें शिक्षा प्रचार करनेमें यत्नवान हुए थे। एशिया खण्डके समुन्नत जापान द्वीपकी राजधानी टोकियो और नागासाकी नगरमें मुद्रायन्त्रकी समधिक उन्नति हुई है। साधारणतः 'हीराकणा', 'कटाकणा' और चीनी अक्षरोंमें जापानी वर्णमाला बनी हुई है। इन्होंने इस समय अंग्रेजी अक्षरके अनुकरणसे सब प्रकारके सांचोंमें अक्षरोंको ढाल दिया है।

अङ्गरेजीके अनुरूप देवनागरी (हिन्दी) आदि अक्षरोंके जिस तरह विभिन्न अक्षर तय्यार हुए हैं, बंगला अक्षरोंके भी प्राय वैसे ही कई आकारके इस समय ढाले जा रहे हैं। वङ्गाक्षरके लिये हम यथार्थतः श्रीरामपुरके पञ्चानन कर्मकारके ऋणी है। क्योंकि, उन्होंने ही पहले मुखपात्र हो कर विल्किन्स साहबके यत्नसे वङ्गाक्षरकी प्रतिलिपिके उद्धारार्थ काष्ठफलक खोदा था।

श्रीरामपुरमें कागजकी कल और मुद्रायन्त्र स्थापन कर 'फ्रेण्ड आफ इण्डिया' और "समाचार दर्पण" प्रकाशित होनेके समय डाक्टर मार्समानने मनोहर कर्मकारसे पहले किसी वृक्षकी छालमें अक्षर कटवा कर परीक्षा की थी। पीछे उनके अभिमतसे इस्पातके डाइस बना कर सीसेके अक्षर ढालने शुरु हुए। मनोहरके पुत्र कृष्णचन्द्र उत्तम सांचेके डाइस तय्यार कर बंगला पञ्जिका (पञ्चाङ्ग) पुस्तक और चित्र छापने लगे। इस वंशके दूसरे कारीगर अधर चन्द्र कर्मकारके कार्य्यालय (*Type laundery*)में ढले वर्जेस स्माल पाइका और इंगलिस सांचेके अक्षर सर्वांग सुन्दर होते हैं। कितने ही मुद्रक उक्त सांचोंके *Electro matrix* तय्यार कर कार्य चला रहे हैं। सिवा इसके कालिदास कर्मकार बंगला अक्षरके लाङ्ग प्राइमर (*Long primr*) और ब्रिभियार (Brivear) और ग्रेट पाइका तथा अंगरेजी, उर्दू, हिब्रु आदि सांचेके सब प्रकारके अक्षर और तारकनाथसिंह अंग्रेजी Sanserif सांचे में बंगला डबल ग्रेट ढाल रहे हैं।

इस समय बंगलामें निम्नलिखित सांचेके अक्षर ढाले जा रहे हैं। बड़े से छोटे अक्षरोंके नाम—सिक्स लाइन पाइका, फोर लाइन, थ्री लाइन पाइका, डबल ग्रेट, टु लाइन पाइका, ग्रेट, ग्रेटपाइका, इंग्लिश, पाइका, स्माल पाइका, लाङ्ग प्राइमर, वर्जेस और हिन्दीमें आज कल कई सांचेके अक्षर ढाले जाते हैं। उनके नाम इस तरह हैं—सिक्स लाइन पाइका, फोर लाइन पाइका, टु लाइन पाइका, ग्रेट प्राइमर, पाइका, लौंग प्राइमर। अभी वर्जेस और ब्रिभियर नहीं है। स्माल पाइका अल्प मात्रामें व्यवहृत होता है।

फिर इन टाइपोंके केश भी कई हैं। कलकतिया केश, वम्बैया केश, और अब नया इलाहाबादी केश हो गया है, कलकतिया केश कलकत्तेके टाइप फाउण्डरियोंमें तय्यार होता है। वम्बैया केशके तय्यार करनेवाली वम्बई गिरगांवकी गुजराती टाइप फाउण्डरी है। इसके यहांसे बहुत ही सुन्दर टाइप ढाले जा रहे हैं। इन टाइपों पर जनता मुग्ध-सी हो रही है। किन्तु अब नया एक और केश निकल आया जो इलाहाबादी कहलाता है। लोगोंकी दृष्टि अब इसी केशकी ओर झुक रही है।

छापनेकी प्रथा।

पहले ही लिख आये हैं, कि विद्याशिक्षाकी उन्नति करनेके लिये मुद्रायन्त्र या छापाखानेकी उत्पत्ति हुई। पहले चीनवासी, इसके बाद जर्मनी आदि यूरोपवासी और इसके बाद अमेरिकावाले और भारत आदि देशोंके अधिवासी इस प्रथाके साहाय्यसे अपनी अपनी उन्नति करने लगे। उस समय काष्ठादि पर खोदित फलकसे किस तरह लोग प्रतिलिपिका उद्धार करते थे, इसका पूरा पता नहीं लगता। जितना मालूम हुआ है, उससे इतना ही समझमें आता है, कि पहले खुदे फलक पर स्याही दे कर उस पर भिगा हुआ कागज रख

कर ऊपर बनात रख रूलसे धीरे-धीरे दबाव दिया जाता था। इसी प्रथासे प्रतिलिपिका उद्धार समयसापेक्ष समझ कर मुद्रकोंने सहज उपायसे जल्दी जल्दी छापनेके लिये नये यन्त्रके आविष्कारकी कल्पना की। इसके अनुसार काष्ठके मुद्रायन्त्र (wooden printing press) आविष्कृत हुआ। यह इस समयके लौहमुद्रायन्त्रके प्रायः समान ही था।

लौहनिर्मित मुद्रायंत्रके फ्रेमके बीचमें समान्तराल रूपसे विलम्बित दो सीढ़ियां (Two parallel ribs) रहती हैं। इन्हीं सीढ़ियों पर लोहेकी एक चिकनी चौकोन मेज रहती है। यह मेज चमड़ेकी रस्सीसे इस तरह एक चक्रके पहियेसे जुड़ी है, कि इसका हैण्डल घुमानेसे लौहकी मेज आगे पीछे आने जाने लगती है। देशी मुद्रक इसको प्रोन कहते हैं। अङ्गरेजीमें इसका "*Bed* of the press" नाम है। इस मेज पर 'फर्मा' बांध कर छापनेके समय चक्रका हैण्डल घुमा कर मेजको ठीक मुद्रायन्त्रके भीतर ले जाया जाता है। इसको ऊपरसे दबानेके लिये और भी चौकोन समतल लोहेका एक तख्ता रहता है।

प्रेसके वक्ष पर यन्त्र द्वारा सुरक्षित अन्य एक हैण्डल पकड़ कर खींचनेसे ऊपरका यह समतल लौह-पिण्ड यन्त्रताड़ित वेगसे आ कर फर्मा पर गिरता है। इससे कागजोंमें छाप लग जाता है। अङ्गरेजीमें इस दबानेवाले लौह खण्डको Platen कहते हैं।

उपर्युक्त प्रोनके पीछेके दोनों कोन पर कागज अथवा पार्चमेण्टसे मढ़ा एक लौह फ्रेम (Tympan) जुड़ा रहता है। इसमें आलपीन लगा कर कागज रखा जाता है। फ्रेमके मध्यस्थलमें दो काट रहते हैं। फर्माके दोनों पृष्ठोंके छापनेके समय मिलानेके लिये इसकी आवश्यकता होती है। इस फ्रेमके ऊपरके दोनों कोन अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और कागज मुड़ा हुआ एक लौह फ्रेम लगा रहता है। छापनेके लिये जब कोई फर्मा तय्यार होता है तब पहले Tympan के ऊपरी फर्माको छाप कर कैंचीसे उसके अक्षरांशको काट कर फेंक दिया जाता है। इसके द्वारा मुद्रित कागज पर फर्माका अक्षरांशके सिवा स्याहीका दाग अन्य जगह नहीं लगता। इसे फ्रिसकेट (Frisket) कहते हैं। फ्रिसकेट रहनेसे कागज अपने स्थानसे हट भी नहीं सकता।

पहले कहे हुए लकड़ीके बने छापाखानेकी मेजका वक्ष काष्ठफलक पर लोहेके पत्तरसे मढ़ कर तय्यार किया जाता था। इसके दबाव देनेवाला भाग Platen चिकने मर्मर पत्थरसे तैयार होता है।

इस काष्ठयन्त्रके बाद लौहयन्त्रका निर्माण हुआ। पुराने प्रेसोंमें Columbian press (क्लिले प्रेस) शिल्पकौशलमें कई अंशमें हीन है। इसके बाद इम्पेरियल प्रेस (Imperial press) और इसके बाद अपेक्षाकृत नैपुण्ययुक्त Albion press आविष्कृत हुए। मुद्रायन्त्रके बनानेवाले Hopkinson & Cope ने अलबियन प्रेसका चूड़ान्त उत्कर्ष साधन किया है। ये मुद्रायन्त्र मुद्रकके हाथोंसे चलाया जाता है। हाथ चलनेवाला (Hand press) मुद्रायन्त्र सरल और स्वल्प परिश्रमसाध्य होने पर भी इसमें अधिक कागज छपानेको कोई सुविधा नहीं। एक आदमी दिन भरमें २५०० कागज छाप सकता है। इस अभाव और असुविधाको दूर करनेके लिये मुद्रायन्त्रकी शीघ्र परिचालनाके सम्बन्धमें भाप अथवा किसी विशेष शक्तिका प्रयोजन होता है। ऐसे ही मुद्रायन्त्रको इस समय मेशीन (Machine)* कहते हैं। मेशीन नामधारी मुद्रायन्त्रके बीच Wharfedale printing machine, Cylinder printing machine, Rotary printing machine, Treadle platen printing machine आदि विशेष उल्लेखनीय है। यह ष्टीम अथवा ट्रेडलके साहाय्यसे मनुष्य द्वारा परिचालित होता है। इन सब मुद्रायन्त्रोंमें कागज लगाने (Feeding) और उठानेके लिये (Taking off) दूसरे आदमीकी जरूरत नहीं होती। इस समय यन्त्रसंलग्न "Flyer" नामक अंश-विशेषके द्वारा यह कार्य समाहित हो रहा है।

---

* A press is a machine but the latter term is applied by printers to an automatic press. In America all printing machines hand or power are known as presses.

पूर्वोक्त वर्णमालामुद्रण (Typographic printing) के सिवा ष्टिरिया टाइप, इलेकृरो टाइप, उड इनग्रेविङ्ग, प्रोसेस ब्लाक, फोटो इलेक्ट्रो, एचिं, हाफटोन आदि सभी धातक फलक चित्र इन्हीं सब यन्त्रोंके साहाय्यसे मुद्रित होते हैं। सिवा इसके ताम्रफलक या Copper plate और इस्पात फलकाङ्कित (Steel plate engravings) चित्रोंको मुद्रण करनेके लिये नलाकार दो चोंगवाले यन्त्रका आविष्कार हुआ है। यह हमारे देशके ऊख पेरनेकी कलकी तरह है। प्लेटको कागजके साथ दोनों चोंगोंके भीतर डाल कर हैण्डलको घुमानेसे चित्र फलकके साथ दूसरी तरफ वाहर निकल आता है।

लिथोग्राफिक प्रेसमें प्रस्तर पर चित्र अङ्कित कर उन्हें छापते हैं। इसे Autography या Lithography on paper कहते हैं। इस प्रथाके प्राकार भेदसे Photo-lithography, Albert-type, collotype, *H*elio type, Lichtdruk, आदि मुद्रित होता है। जिङ्कोग्राफी (Zinco graphy) लिथोग्राफिक प्रथाका दूसरा रूप है। इसमें पत्थरके बदले रांगा धातुका ही व्यवहार देखा जाता है, किन्तु यह साधारण मुद्रायन्त्र (Letterpress printing) मुद्रणोपयोगी रङ्ग फलकचित्र (Zinco graph process-block) से पूर्णरूप से स्वतन्त्र है। खुदे काष्ठ फलकोंकी तरह यह निम्नोक्त प्रथाके सांचे उच्च मुखी होते हैं। किस तरह उपरोक्त प्रणाली द्वारा कार्य सम्पन्न किया जाता है, वह उसके व्यवसायियोंको जाननेकी जरूरत है। लेख वढ़ जानेके कारण इस विषयका यहां विशेषरूपसे उल्लेख नहीं किया गया। शिल्पविद्या देखो।

यरोपमें मुद्राकार्य सम्पादनके लिये नाना तरहके यन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। केवल प्रिण्टिङ्ग प्रेस या मेशीन ही नहीं ; वल्कि मुद्रायन्त्रके विशेष प्रयोजनीय अङ्गस्वरूप यूरोपीय मुद्रक गेली प्रूफ प्रेस, साइलेण्डरयुक्त कालीकी सील, स्याही देनेके लिये रोलेका मोल्ड, रोलर फ्रेम, प्रेसस्टिङ्ग, प्रेसगार्थी, अक्षर कम्पोज (संग्रन्थन) करनेके लिये कम्पोजिङ्ग ष्टिक, फर्मा आंटनेके कई प्रकारके चेज, लेड और रूल कटर, अक्षरोंके साफ करनेके लिये व्रस, 'पेपरकटिङ्ग मेशीन', कागज काटनेके लिये काड कटिङ्ग और स्कोरिङ्ग मेशीन, कर्नर कटिङ्गमेशीन, पञ्चिङ्ग और आइलेटिङ्ग मेशीन, वायर ष्टिचिङ्ग और वाइण्डिङ्ग मेशीन, अटोमेटिक नम्वरिङ्ग मेशीन, विजिटिङ्ग कार्ड और एनवेलप इम्प्रिटिङ्ग प्रेस, रूलिङ्ग पेनमेकिङ्ग मेशीन; सिउयिङ्ग प्रेस, गोल्ड ब्लकिङ्ग प्रेस, स्क-प्रेस, एम्वसिङ्ग प्रेस, कापी प्रेस और ष्टिरियो टाइपिङ्ग एपारेटस और सर्कुलरस् (आरी) आदि भी तय्यार कर चुके हैं। यह आरी धातु फलकोंके काटनेमें वड़ा उपयोगी है।

शिकदार कम्पनीने यूरोपीयोंके अनुकरण पर देशी मुद्रायन्त्रकी ढलाई कर एक देशी अभावकी पूर्त्ति की है।

ऊपरमें अक्षर प्रस्तुत करने या ढलाई करनेका संक्षिप्त इतिहास दे चुके हैं। इस समय मिलावटी धातुके जो टाइप ढाले जाते हैं उसमें सीसा, एण्टीमनी, टीन और तांवा मिला रहता है। इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध कारखानों फिगिन्स आदि)-के टाइपमें ५५ भाग सीसा, २२ भाग एण्टीमनी और वाकी टीन मिलते हैं। वेसलीके (Besley's) पेटेण्ट टाइपकी धातुमें सीसा, एण्टीमनी, टीन, निकेल, तांवा और विस्माथ धातुएं मिलाई जाती हैं।

समूचे अक्षरोंके चारो कोन शरीर Shank या body कहते हैं। ऊपरके खुदे हुए चिह्न Face, नीचे Feet, सामनेका चिह्न Neck, नीचेकी ओर Be ly, इसके विपरीत पृष्ठ Back, गात्रपार्श्व Side, देहलम्ब Stem, मात्रा Serif इटालिक हरफोंकी कुण्डली Kern, देहाग्र तक Beard, समतल स्कन्ध Shoulder, ऊपरके खुदे हुए चिह्नसे स्कन्ध तक ढालदेश *Level*, लेवेलके भीतरका भाग जिसमें अक्षरका चिह्न रहता है counter, सांचेके गर्भसे तल तक Gauze ; तलदेश गड्ढा Groove नामसे विख्यात है।

अंगरेजी अक्षर प्रायः इञ्चके वरावर तय्यार हुआ करता है। अक्षरकी खड़ाई अर्थात् सांचेके मुखसे नीचे तलदेश तककी अंग्रेजीमें Height to paper कहते है। यह प्रधानतः ११/१२ इञ्च होता है। अमेरिकाके अक्षर

$\frac{६२१}{१०००}$ इञ्च स्पेस् और कोयाड्रेट १ इञ्चका तीसरा भाग तय्यार होता है।

अक्षर ढलाई करनेके समय १ फुटका ७२वां भाग अर्थात् एक इञ्चका छठां हिस्सा परिमाणसे जो स्पेस तय्यार होता है वह अक्षरोंके सजाते समय या कम्पोज करते समय फांक रखनेके लिये दिया जाता है। इसे मुद्रक (em) एम कहते हैं। एक वर्गइञ्च स्थानमें ऐसे कई एमोंका समावेश होता है। उसी परिमाणसे अङ्गरेजी अक्षर इङ्गलैण्ड और भारतमें ढाले जाते हैं। नीचे अक्षरोंकी फिहरिस्त दी गई है।

अक्षरोंके नाम		परिमाण
कैनन	...	...
टु-लाइन डबल पाइका	=	४ लाइन पाइका
„ ग्रेट प्राइमर	=	„ वर्जेस
„ इंगलिश	=	„ एमोरल्ड
„ पाइका	=	„ ननपेरिल
डबल पाइका	=	२ लाइन स्माल पाइका
पैरागन	=	„ लौङ्गप्राइमर
ग्रेटप्राइमर	=	„ वर्जेस
टु-लाइन ब्रिभियर	=	„ ब्रिभियर
इंगलिश	=	„ एमारेल्ड
स्मालपाइका	=	„ रूबी
लौङ्गप्राइमर	=	„ पारल
वर्जेस	=	„ डायमण्ड
ब्रिभियर	=	„ जेम
मिनियन	=	„ ब्रिलियण्ट
एमारेल्ड	...	...
ननपेरिल	=	„ सेमीननपेरिल्
रूबी	...	...
पेरल्	...	...
डायमण्ड	...	...

जेम, ब्रिलियण्ट, सेमीनन पेरिल (मिनकिन या इक्सलसार)

इस फिहरिस्तमें दिये अक्षरोंके सिवा जो अक्षर ढाले जाते हैं, वे पाइकाके हिसावसे ही ढाले जाते हैं। जैसे ५ लाइन पाइका, १० लाइन पाइका आदि। अमेरिकाके अक्षर पोआएट (*Point* system) प्रथासे और फ्रान्स आदि यूरोपके अन्यान्य देशोंमें डिडो पोआएटके (Didot-point system) अनुसार अक्षर ढाले जाते हैं। स्पेस और क्वाडरेट इसी परिमाणसे ही ढाले जाते हैं। स्पेस प्रधानतः चार तरहके हैं। थिक् स्पेस तीनमें, मिडल स्पेस चारमें, थिन स्पेस पांचमें और हेयर ७से १०में पाइकाका एक एम् होता है। इसी तरह कई क्वाडरेट भी तय्यार हुए हैं। यह १ एम २ एम ३ एमके नामसे कहे जाते हैं। इसके सिवा जोब वर्क (Job work) की सुविधाके लिये और भी Hollow, Angle और circular क्वाडरेट तय्यार किये जाते हैं।

अंगरेजोंमें अक्षरोंके सांचे एक नहीं, अनेक रहनेके कारण उनके नाम नहीं दिये गये। Caslon, Figgins, Miller & Richards, Reed & Sons, Shanks (Patent type Co), Steppenson, *Blake* & Co. आदि मुद्रकोंके केटलगोंमें उनके नाम और चित्र दिये गये थे।

अङ्गरेजोंका अनुकरण कर हिन्दी टाइप ढाले जा रहे हैं। अङ्गरेजीकी तरह हिन्दीमें भी सब चिह्न आदि, सुपिरियर अक्षर, इनफिरियर अक्षर, डैस, ब्रेस, ब्रास-रूल, डटरूल, त्रिमरूल लेडर, कम्बिनेशन-रूल, बेभेल्ड रूल, कालम रूल, पार्फोरेटिङ्ग-रूल आदि प्रचलित हुए हैं। बड़े बड़े अक्षर लकड़ीके तय्यार हो रहे हैं। Multi-co'or और Shaded letters आदि अक्षर भी तय्यार हो जानेसे छापेखानेकी उन्नतिको चरमसीमा नजर आती है।

वर्णमालाके अनुसार खाने बना कर उसमें अक्षरोंके रखनेका प्रबन्ध है। अंगरेजोंमें इन खानोंको केस कहते हैं। अंगरेजी अक्षरोंको रखनेके लिये कोई पांच तरहके केसोंका व्यवहार होता है—

१ साधारण—अपर और लोअर केस।

२ डवलकेस—एक लोअर और अपरका अर्द्धांश।

३ ट्रेवल केस—एक अपरकेस और उसका अर्द्धांश।

४ हाफ केस—अपर केसका अर्द्धांश।

५ सान्सपेरिल—घरविहीन केस, इसमें साधारणतः लेड और लकड़ी अक्षर देखे जाते हैं।

उपर्युक्त केस एक एक केस या ष्टेण्ड पर सजाये जाते हैं। इसके प्रत्येक घरमें जो अक्षर रहता है, वह ऊपर दिखा दिया गया है। इन सब अक्षरोंको जोड़ कर शब्द योजनाकी जाती है। इस शब्द योजनाको कम्पोज Compose कहते हैं। जो इस तरह शब्द योजना या कम्पोज करते हैं उन्हें कम्पोजिटर (Compositor) कहते हैं।

केसोंसे टाइप या अक्षर उठा कर जिस वस्तुमें रख कर कम्पोजिटर कम्पोज या शब्दयोजना करते हैं, उस वस्तुका नाम ष्टिक है। यह पीतलके बने होते हैं। इसमें आकार छोटा बड़ा करनेका उपाय भी रहता है। इस ष्टिकमें आठ या नौ पंक्ति तक कम्पोज की जाती है। जब ष्टिक भर जाती है, तब उसे निकाल कर एक लकड़ी बनी एक तख्ती पर रखते हैं, जिसका नाम गेली है। इसका आकार इस तरहका बना हुआ है, जिससे इसमें रखा कम्पोजड् composed मैटर तितर बितर न हो सके। जब यह गेली भर जाती है, तब इसे एक लकड़ी-के बने खानेमें रख देते हैं। इन खानोंमें कई गेलियां रखी जा सकती हैं। इसका नाम रेक Rack है।

गेलीमें जो मैटर कम्पोज (Compose matter) रहता है, उसका प्रूफ उतारना पड़ता है। इसी प्रूफमें भ्रम संशोधन किया जाता है। इसको अंगरेजीमें गेली प्रूफ करेक्सन या First-reading कहते हैं। इसको कम्पोजिटर करेक्सन "Correction" कर दूसरा प्रूफ देता है। इसे रिभाइज प्रूफ कहते हैं। यही प्रूफ ग्रन्थकर्त्ताके पास भेजा जाता है। ग्रन्थकार इसका संशोधन कर फिर छापे खानेमें भेजता है। इस बार कम्पोजीटर फिर उसका करेक्सन करता और प्रूफ देता है। इस प्रूफको Second revised proof कहते हैं। इस बार ग्रन्थकारके पास क्लीन प्रूफ या Corrected proof के साथ इसको भेजा जाता है। ग्रन्थकार इनकी गलतियोंको मिलाता है। कम्पोजिटरसे जो गलती छुट जाती है उसको वह दुरुस्त करता है और पुस्तकके आकारके अनुसार इसका एक फर्म्मा मेकप Make up करता है। पीछे पेज नम्बर) पृष्ठकी संख्या लगा कर ग्रन्थकारके पास आर्डरके लिये भेजा जाता है। इसको Order proof कहते हैं। यदि गलती अधिक नहीं रहती तो ग्रन्थकार इसी पर आर्डर देता है। इसके बाद कम्पोजिटर इसकी गलतियोंको सुधार कर प्रेसमैनके हवाले कर देता है। प्रेसमैन इसको ले कर चेसमें क्रमसे सजाता है। चेसमें कस कर आंटनेके लिये लकड़ीकी छोटी छोटी गुलियां रहती हैं। लकड़ीके एक हथौड़ेसे इन गुलियोंको फर्माके चारों ओर ठोकते हैं। जब फर्मा अंट जाता है, तब इस फर्मा-को मेशीनमें चढ़ाते हैं और इसका एक प्रूफ फिर उतारा जाता है। इसको Machine proof कहते हैं। इस प्रूफकी रही सही गलतियोंको ग्रन्थकारके संशोधित प्रूफसे मिलान कर प्रेसका Proof Reader कर्मचारी मेशीन मैनको छापनेका आर्डर देता है। इसके बाद फर्मा जब छप जाता है, तब इस मैटरको गेलीमें उतार कर कम्पोजिटर उसे डिष्ट्रिब्युट (Distribute) करता है। इस समय Distribute करनेके लिये एक मेशीन आई है, इसे Destributing machine कहते हैं।

अक्षरोंको डिष्ट्रिब्युट करनेके लिये जिस तरह एक मेशीन बनी है। उसी तरह कम्पोज करनेके लिये भी एक मेशीन आविष्कृत हुई है। Fraser's keyed distributing and compo·ing machine. The "Thorne" type setting and distributing machine, Hattersley, Kastenbein और Empire नामक यन्त्र इस विषयमें विशेष उपयोगिता दिखा रही है। 'थनर' नामक यन्त्रसे एक घण्टेमें २० हजार अक्षरोंका कम्पोज किया जा सकता है। इससे अक्षर चाबी द्वारा परिचालित होते हैं। इस समयमें टाइप राइटर "Type Writer" मेशीनकी प्रणालीसे इसकी प्रणाली भी मिलती जुलती है। सिवा इसके लिनो टाइप (The Lino type machine) प्रथासे अक्षर रख मुद्रणकार्य परिचालित होनेसे कम्पोजिटरका अभाव विदूरित हुआ है। इस यन्त्रमें भी टाईप राइटरकी तरह चाबी लगी हुई है। इनमें एक एक में अंगरेजी बंगला वर्णमाला (Alphabets) चित्रित

है। इस यन्त्रसे अक्षर ढाले और कम्पोज भी किये जाते हैं।

यूरोपीय वैज्ञानिक मुद्रक मुद्रातन्त्रको सर्वाङ्गीन उन्नति कर चुके हैं। हिन्दी या अन्य किसी भाषामें ऐसा यन्त्र अभी तक तय्यार नहीं हुआ है। अंगरेजी या अन्य यूरोपीय वर्णमालामें कुल २६ अक्षर हैं। युक्ताक्षर, १. २ आदि संख्या, , ; आदि चिह्न तथा अपर और लोअर केसका कैप् और स्माल कैप और बड़ा टाइप लेकर कुल १५१ खानें होते है। इससे टाइप राइटरकी तरह थोड़ी चावियोंको सजानेमें कोई विशेष असुविधा नहीं होती। संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओंमें अक्षरोंकी संख्या अधिक है, इससे चावीवाले यन्त्रसे इन भाषाओंका काम न चलेगा। यद्यपि अन्यान्य भाषाओंकी अपेक्षा हिन्दी भाषाका आदर दिनों दिन बढ रहा है, फिर भी इस समय इसका अंगरेजीके अनुरूप चावीवाले यन्त्रको तय्यार करना असम्भव-सा दिखाई दे रहा है। लोग कहा करते हैं, कि अंगरेजोंके राज्यमें कभी सूर्यास्त नहीं होता। ऐसे विस्तृत साम्राज्यमें अंगरेजी भाषाका प्रचार होना बहुत सम्भव है। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

ऊपर कह आये हैं,कि अङ्गरेजी अक्षर एक इञ्चके तय्यार होते हैं। अक्षरसे शब्दयोजना करने पर कुछ अक्षरोंके अधिक और कुछ अक्षरोंके कम अक्षरकी जरूरत होती है। इस तरह एक साट तय्यार रहता है। इस साट (Fount) में कितने टाइप रहते हैं, उसकी फिहरिस्तको अङ्गरेजीमें Bill of type कहते हैं।

किसी किसी कारखाने (Foundry)में उपरोक्त निर्दिष्ट साटमें (Fount) परिवर्त्तन दिखाई देता है। वे a=८५००, e=१२०० आदि घटा कर १, २, अङ्कोंको अधिक दिया करते हैं। इससे जोब (Job) कार्य्यमें विशेष सुविधा होने पर भी पुस्तकमुद्रण योग्य अक्षरोंकी कमी हो जाती है। इसी कारणसे सब सुविधाओंके लिये एक तरहका नया साट तय्यार हुआ है।

इस साटमें पाइका अक्षर ७५० पाउण्ड (lbs) लोङ्ग प्राइमर-४८० पाउण्ड, बर्जेस ४००, ब्रिभियर ३३०, मिनियन २८० और ननपेरेल २२० पाउण्ड वजनमें होता है। अङ्गरेजी वर्णमालाके आवश्यक अनुयायी परिमाणकी गणना कर उस साटके अक्षरोंकी संख्या निर्णीत हो चुकी है। इङ्गलैण्डके हाउस अफ कामनकी एक विस्तृत वक्तृता अवलम्बन कर अंग्रेजी भाषामें जो जो अक्षर जितना हुए थे, प्राचीन मुद्रक बहुत परिश्रमके फलसे एक फिहरिस्त संग्रह कर अक्षरोंके साटके निर्णय करनेमें समर्थ हुए हैं। किन्तु सब विषयोंमें उस साटके अक्षर समान भावसे नियोजित नहीं होते। बड़े आश्चर्य्यका विषय है, कि इंग्लैण्डके विख्यात औपन्यासिक Charles Dikens की पुस्तकोंके कम्पोज करने में व्यञ्जनवर्णाक्षर (Consonants) व्यवहारके पूर्व स्वरवर्णाक्षरें (Vowels) की कमी हो गई। इसके विपरीत राजनीति विशारद Lord Macaulay की गाम्भीर्य्यमयी भाषाके (statelier style) स्वरवर्णके खाने खाली होनेसे पहले व्यञ्जन वर्णके अक्षर कम्पोजमें लग जाते हैं। इसके द्वारा यद्यपि अक्षर मालाकी प्रयोजनीयता सुस्पष्ट रूपसे निरूपित की जा नहीं सकती यह सत्य है, किन्तु फिर भी जिस संग्रहसे साधारण मुद्राङ्कणकार्य्यमें सुविधा हो सके, इसके लिये उसका आभास मात्र उक्त साटकी फिहरिस्तमें दिया गया है।

अङ्गरेजी अक्षरमालाको निर्दिष्ट उक्त फिहरिस्तके q और u अक्षर, लेटिन एवं फारसी भाषाके व्यवहारके हिसाबसे कम लगता है। h अक्षर बहुत अधिक और w अनावश्यकीय अनुमित होता है।

कभी कभी अक्षरोंकी संख्या वजनके हिसाबसे ही निर्णीत होती है। ढलाई करनेवाले साट निर्देशके लिये इस तरहकी एक नई प्रथा (Schemes) निकाली है। १२५ पाउण्डके अन्दाजसे रोमन अक्षरोंके एक साटमें १० पाउण्ड वजन इटालिक हरफ, E, M, C, ८ आउन्स, I नौ आउन्स E, ८ पाउण्ड, a h m o t प्रत्येक ५ पाउण्ड; इस प्रकार क्रमशः २३ औंस तक लेनेसे साट पूरा होता है।

छापनेके लिये एक पाण्डुलिपि मिलने पर पहले यह जान लेना आवश्यक है, कि किस टाइपमें कम्पोज होनेसे किताब अच्छी निकलेगी। पीछे उस पाण्डुलिपिका कुछ भाग कम्पोज करके एक पेज बांध लेना उचित है। पाण्डुलिपिके कितने पृष्ठ कम्पोज होने पर एक पेज हुआ, स्थिर करके उसके द्वारा मूललिपिके पृष्ठोंमें भाग देनेसे पृष्ठ

संख्या निकल आयेगी। गेजके अनुसार प्रत्येक पेज ठीक करके उसके वर्गइञ्च परिमाणको निकाल कर उसमें ४से भाग दे। भागफल जो होगा वही हरफका मोटा-मोटी पौंड वजन समझा जायगा। इस प्रकार किसी एक बड़े साटमें सैकड़े पीछे ३०से ४० और छोटे साट में ५० भाग हरफ मान लेनेसे न्युनाधिक्य नहीं रहता। अङ्गरेजी हरफ प्रधानतः ८″+४″ इञ्च पेजके आकारमें मुड़ाई हो कर विकी होते हैं। उनमेंसे प्रत्येकका वजन ८ पौंड होता है।

इस प्रकार फैन्सी टाइपकी तालिका (bills of fancy types) प्रस्तुत करनेमें लोअर केश और कैपिटलके संख्यानुसार एक साट बनाना होता है। अर्थात् ३६ *A* और ७० a ले कर जो साट बनाना होगा उसमें ६० c, ७० i, ३२ m, १० z, ४२ E, ३६ I, २० M, ४ z, ५० कमा, १ से ० तक प्रत्येक १६ तथा अन्यान्य फीगर प्रत्येक १२ करके रहेगा। इस प्रकार एक साट-का वजन प्रधानतः हरफके आकारके ऊपर निर्भर करता है। एक १५ A, ४५ a पाइका कण्डेन्सड लाटिन ३ पौंड तथा १५ A, ३० a पाइका वाइड लाटिन ७ पौंड तक वजनका होता है।

काठके फैन्सी अक्षरोंकी इसी प्रथासे डजनके हिसाव-से साट बनानेकी व्यवस्था की गई है। एक १३ डजन कैपिटल और लोअर केसके साटमें निम्नलिखित अक्षर रखनेसे ही काम चल सकता है।

A B c D E F G H I J K L M N O *P* Q R S
३ २ २ २ ४ २ २ २ ३ २ २ ३ २ ३ ३ २ १ ३ ३

T U V W X Y Z &
३ २ २ २ १ २ १ २

a b c d e f g h i j k l m n
४ ३ ३ ३ ५ ३ ३ ३ ४ २ २ ४ ३ ४

o p q r s t u v w x y z
४ ३ १ ४ ४ ४ ३ २ २ २ ३ १

ff fi ffl Æ œ ! ? . : ; ' — ,
१ १ १ १ १ १ ३ ४ ४ २ ४ ३ २ ३

इसी प्रकार डजन साटकी अंक संख्या—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६०
६ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ५ २५ होगी।

हिन्दी अक्षरमालाओंका ऐसा कोई एक निर्दिष्ट परिमाण करनेका उपाय नहीं है। एक हिन्दी साट अच्छी तरह संगठन करनेमें प्रायः १० सेरसे २ मन तक अक्षरकी आवश्यकता होती है। हिन्दी Job वा पेजके फूटनोट आदिके लिये थोड़े अक्षरोंका व्यवहार करनेसे भी काम चलेगा। किन्तु एक फर्माके लिये ब्रिभियर, वर्जाइस, लोंग प्राइमर, स्मालपाइका, पाइका आदि अक्षरोंकी एकसे दो मन तक जरूरत होती है। इसी परिमाणका अनुसरण करके पुस्तक छापनेके लिये हरफके वोडी अनुयायी हरफ खरीदने होते हैं। अर्थात् ७ फर्मका Matter तैयार हो सके, ऐसा एक साट लेनेसे स्मालपाइका ७×१।. म=८॥. मन हरफ लेना होगा। पीछे लेखकके भाषाग्रन्थनकालमें जिस जिस अक्षरका अभाव होगा उसकी एक स्वतन्त्र तालिका बना कर उस अभावको दूर करना चाहिये।

स्मालपाइका वोडीका २ मन एक हिन्दी हरफके साटमें क ख आदि मुद्राक्षर जिस परिमाणमें आवश्यक हो सकता है केसके घरोंके प्रति लक्ष्य करनेसे उसका बहुत कुछ आभास मालूम हो जाता है। क, द, म, स, अ, त, र, य आदि ऽ१ सेरसे सवा पाव तक; ा करीब ऽ१॥. सेर; व, ल, ह, ि, ी, य, व, प, ओ आदि करीब ऽ॥. सेर, अपर तथा दाएं और वाएं छोटे छोटे घरोंका युक्ताक्षर ५ वा ६ करके अथवा प्रायः आधसे चार छटांक लेनेसे भी काम चल जायगा। मुद्रकको चाहिए, कि वे अपने अपने निर्वाचित इस प्रकार एक साटकी तालिकाके अनुसार हीं अक्षरोंका संग्रह करें। दो मनसे एक साटके हिसावसे वे पहले १॥ वा १॥। मन देवें। पीछे जैसे जैसे काम लगता जाय वैसे वैसे मंगाते जांय।

पेज बांधनेके समय दो हरफकी लाइनको परस्पर अलग रखनेके लिये सीसेका जो पत्तर काममें लाया जाता है उसे 'Lead' कहते हैं। लेड यद्यपि हरफसे पतला होता है, तो भी दोनोंकी एक वर्गइञ्च तौल समान अर्थात् ४ औंस होती है। क्योंकि लेडमें कुल मिला कर २० भाग एण्टिमनि और ७० भाग सीसा रहता है। हरफकी धातुमें इससे भारी अन्यान्य मिश्र-धातुका भी समावेश देखा जाता है।

एक पौंड सीसा ढाल कर लेडका पत्तर बनानेमें सरल रेखाके एम (Linear ems)-के अनुसार उसमें ५३० एमका एक 'फोर टु पाइका' लेड ढाला जा सकता है। इस प्रकार सिक्स-टु पाइका ८०० एम तथा एइट टु-पाइका १०६४ एम प्रस्तुत होता है। 4-to पाइकाका अर्थ एक पाइका एमका चार, 6-to पाइकामें ६ और 8-to पाइकामें ८ हो सके, ऐसा पतला पत्तर समझा जाता है।

ऊपर कहे गये परिमाणके अनुसार ४ वर्गइञ्चका एक पौंड माननेसे मालूम होता है, कि उतनेमें ५७६ पाइका एम लाइन है। किन्तु लेड धातुके परिवर्त्तनके कारण उससे कभी कभी ५२० एम तक तैयार हो सकता है।

एक पुस्तकका पेज ठीक करनेमें किस परिमाणका लेड चाहिये वह नीचे लिखा गया है। जिस मापके लेडकी जरूरत होगी, १ पौंड धातुमें उसका जितना होगा, उतनेको पेजकी चौड़ाईकी एम संख्यासे भाग देने पर जो भाग फल निकलेगा उससे पुस्तकके सारे लेड-को फिरसे भाग दे। उस भागफलमें और भी सैकड़े पीछे ५ अंश अधिक मान लेनेसे आवश्यकीय लेडका अभाव दूर हो जाता है।

दृष्टान्त—२०० पेज रायल अक्टेभो, स्मालपाइका ४५ लाइन लम्बा और २५ एम चौड़ा, इस प्रकारकी पुस्तकके हरफोंमें 8-to पाइका लेड देनेमें कितने लेडोंकी जरूरत होगी?

१०६४ ÷ २५ = ४२॥. ४५ लाइनके मध्य (अंगरेजीमें १ और हिन्दीमें २ करके) १ करके ४४ लेड प्रति पृष्ठमें लगेगा। इस हिसाबसे सारी पुस्तकमें ४४ × २०० = ८८०० ÷ ४२$\frac{१}{२}$ = २०७ + ५ P C (१०$\frac{७}{२०}$) = २१८ पौण्ड लगा। हिन्दीमें इससे दूना लगेगा।

इस प्रकार १ पौंडके सीसेमें २ × ४ एम साइजका २२, ३ × ४ एमका १४ और ४ × ४ एमका १२ 'कोटेसन' ढाला जाता है। १ पौण्डमें १३६ पाइका एम लाइन क्रुम्प (Clump) प्रस्तुत होता है। 4-to पाइकासे मोटे लेडको क्रुम्प कहते हैं। कभी कभी बिलफरम, प्लेकार्ड आदिमें फांक देनेके लिये धातव क्रुम्पके बदलेमें काष्ठ निर्मित रिगलेट (*Reglets*)का व्यवहार होता है। पहले रिगलेटसे पुस्तकके फर्माका पेज कम्पोज होता और छपता था। क्योंकि, धातव लेडकी अपेक्षा काष्ठ रिगलेटका दाम कम है। कभी कभी हरफके समान ऊंचाईका रिगलेट तैयार कर कागजमें ब्लाक बार्डर आदि छापा होते देखा जाता है। टु-लाइन ग्रेट प्राइमर से बड़े रिगलेटका नाम फर्निचर (Furniture) है। फर्माके दो पेजके Margin रखनेके लिये जो पोट वा फांक रखी जाती है उसीके लिये उसका व्यवहार होता है। कई जगह काठके फर्निचरके बदलेमें metal वा Furniture लगा कर काम चलाया जाता है।

काठके फर्निचरको प्रायः पाइका एमके परिमाणमें काट छांट कर बनाया जाता है। प्रधानतः पुस्तकके व्यवहारके लिये जो सब काठके फर्निचर बनाये जाते हैं अंगरेजीमें उनका भिन्न भिन्न नाम है—

८ एम	पाइका	ब्रथ	डबलब्रेड।
७ „	„	„	ब्रड और न्यारो।
६ „	„		डबल न्यारो।
५ „	„		स्पेसल।
४ „	„		ब्रड।
३ „	„		न्यारो।

नन्पेरिल-लोंगप्राइमर, पाइका, ग्रेटप्राइमर, डबल पाइका और टु-लाइन इंगलिश आदि रिगलेट भी मिलते हैं। गेली, फर्मा, केस आदिको निरापद स्थानमें रखनेके लिये जिस प्रकार स्वतन्त्र रैक है लेड, ब्रासरूल, रिगलेट आदिको भी अच्छी तरह रखनेके लिये उसी प्रकारका रैक चाहिये। टुकड़ा लेड या रूल रखनेके लिये *Case* प्रस्तुत करना उचित है। उन सब टुकड़ोंके नष्ट हो जानेसे मुद्रककी विशेष क्षतिकी सम्भावना है।

ऊपर मुद्रायन्त्रके जिन आवश्यकीय उपादानोंका विषय कहा गया, उनमें ष्टिक (Stick) प्रधानतः ३ प्रकारका है;—१ साधारण कम्पोजिंग ष्टिक, २ ब्रोड साइड ष्टिक और ३ न्यूज ष्टिक। पहला ष्टिक पीतल वा लोहेका बना होता है। पुस्तक-पृष्ठके साइजके परिमाणानुसार उसके स्क्रूको घटा बढ़ा कर ठीक कर लेना होता है। दूसरा ब्रोड वा पोष्टर ष्टिक गेलीकी तरह मजबूत काठका बनता है। केवल मेजर बढ़ाने अथवा घटानेके

लिये उसमें स्क्रू लगा हुआ एक धातव Slide रहता है। वह बड़े बड़े हरफोंको सजानेके काममें आता है। तीसरा न्यूज़ ष्टिक एकमात्र खबरके कागजके कालमको कम्पोज करनेके लिये अथवा किसी प्रकारकी एक माप-की प्रचलित पुस्तकके हरफोंको संग्रन्थनमें ही व्यवहृत होता है। वह प्रधानतः मेहगनी काठके साइजके अनुसार बनाया जाता है।

अंगरेजीमें अकसर Solid matter कम्पोज होता है, इस कारण ष्टिकमें अक्षर रखनेके लिये एक सेटिं वा कम्पोजिंग रूल रहना जरूरी है। वह एक पीतलके रूल को आवश्यकीय एम परिमाणके अनुसार lade high काट कर Type-high अंशमें कोना बढ़ा कर बनाया जाता है।

हिन्दीभाषाके शुभचिन्तक यूरोपीय सम्प्रदायने किस प्रकार अलौकिक अध्यवसाय द्वारा देशीय विद्याशिक्षाके प्रचारमें ध्यान दिया था मुद्रायन्त्रके व्याख्यानमें हिन्दी हरफोंकी खुदाई उसका प्रकृष्ट प्रमाण है। भारतवासी पाश्चात्य विद्यालाभको शास्त्रविरुद्ध तथा समाजका महाअनिष्टकर समझते थे। अतएव अंगरेज कम्पनी शिक्षाप्रचारकी ओर विशेष ध्यान न दे सकी। १७६३ ई०में लार्ड कार्नवालिसके भारत-शासनके समय इङ्गलैण्डके 'हाउस आफ-कामन्स'में मिः विलवरफोर्सने भारतीय प्रजावृन्दके मध्य जिससे विद्याका विशेष प्रचार हो, इसी आशय पर एक लंबी चौड़ी वक्तृता दी जिससे जनसाधारणका ध्यान उस ओर खिंच गया। तदनुसार उदारचेता यूरोपीय मिशनरी तथा शिक्षित विद्वन्मण्डलीके यत्नसे विद्याशिक्षाकी उन्नतिके लिये नाना स्थानोंमें मुद्रायन्त्र खोले गये। १७८६ ई०में टीपू सुलतानके साथ जब अंगरेजोंका युद्ध चल रहा था, उस समय लार्ड वेलेस्लीने मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता विलुप्त कर दी थी। इसके बाद उन्होंने ही फिरसे यूरोपीय सिविलियनोंको देशी भाषा सिखानेके लिये १७८७ ई०में कलकत्तेमें 'फोर्ट विलियम कालेज' खोला।

लार्ड मायरा (मार्किस आफ हेष्टिंग्स) श्रीरामपुरके मिशनरियोंको देशीय भाषाशिक्षाके प्रश्रयदाता देख कर स्वयं वहां गये (१८१५ ई०की २७वीं नवम्बर) और उन सबोंकी कार्यावलीको देखा। मिशनरियोंके यत्नसे देशी विविध भाषाओंमें बाइबिलका न्यु टेष्टामेण्ट भाग अनुवादित होता देख उदारचेता हेष्टिंग्स इतने मुक्तप्राण हो गये थे, कि उनकी पत्नी द्वारा प्रतिष्ठित बंगालके अंतर्गत बारकपुर विद्यालय, कलकत्तेका हिन्दूकालेज (१८२६) तथा केरि, मार्समन आदि मिशनरी द्वारा संस्थापित श्रीरामपुर, चुचुड़ा आदि स्थानोंके विद्यालय उनको सम्पूर्ण सहानुभूति लाभ करते हैं। इस प्रकार भारत-प्रतिनिधि लार्ड हेष्टिंग्सको विद्याशिक्षाके प्रचारमें समुत्सुक देख उनकी पत्नी मार्सियनेस-आफ-हेष्टिंग्स, मि० वाटरवर्थ बेली तथा डा० केरीने बड़े यत्नसे देशीय विद्यालयोंका पुस्तकाभाव दूर करनेके लिये १८१७ ई०में "Calcutta school Book Society" नामसे एक समिति संगठन की। लेडी हेष्टिंग्सने अपने बारकपुर-विद्यालयके पाठार्थियोंके लियेस्वयं पुस्तकका संकलन किया। सङ्कलित पुस्तकोंका बङ्गानुवाद कलकत्तेके ४० छापाखानोंमें मुद्रित हो कर कम मोलमें बाजारमें बिका था। महामति लार्ड हेष्टिंग्सने इस सभाकी प्रतिष्ठाके समय वक्तृतामें स्वयं कहा था,—'It is humane, it is a generous, to protect the feeble, it is meritorious to redress the injured, but it is a god-like bounty to bestow expansion of intellect, to infuse the Promethean spark into the statue and waken it into man', उन्होंने १८१८ ई०में मुद्रायन्त्रकी छिनी हुई स्वाधीनताका पुनरुद्धार कर अपनी वक्तृताकी सारवत्ताको भारतवासी जनसाधारणके सामने दिखा दिया है। इसके लिये भारतवासी उनके विशेष कृतज्ञ हैं। उनके उत्साह तथा मिशनरी-सम्प्रदायके उद्योगसे उसी वर्ष 'समाचार दर्पण' नामक सर्वप्रथम बङ्गला संवादपत्र प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार चार वर्ष तक देशी मुद्रायन्त्रोंकी स्वेच्छाचारिता (Licentiousness of the Indian press) देख कर कोर्ट आफ डिरेक्टरोंने बोर्ड आफ कण्ट्रोलके सभापति मिः कानिङ्गको सूचित किया, कि "भारतप्रतिनिधि हेष्टिंग्सको अनुमोदित सम्पादकीय नियमावली

(a code of the *instruction* for the guidance of editos)-को अतिक्रम कर भारतीय संवादपत्रके सम्पादक लोग नियम-लङ्घनके अपराधमें अभियुक्त हुए हैं। अतएव उनका इस अत्याचारका दमन करनेके लिये पार्लियामेण्टके आदेशानुरूप एक अतिरिक्त शक्ति (additional powers) काममें लाई गई है।" सौभाग्य का विषय था, कि पार्लियामेण्टकी सलाह लेनेसे पहले ही कोर्टकी प्रार्थना कार्यमें परिणत हो गई।

लार्ड हेष्टिंग्सके स्वदेश लौटने पर कौंसिलके प्रधान मेम्बर मिः एडमूसने कुछ दिनके लिये भारत-प्रतिनिधिका पद ग्रहण किया। हेष्टिंग्सके शासनकालमें कलकत्तेके मासिकपत्रके सम्पादक मिः जेम्स सिल्क वार्किंहम द्वारा सम्पादित Calcutta Journal नामक पत्रिकामें राजनीतिके प्रतिपक्षमें बहुतसे राजद्रोहसूचक प्रबन्ध प्रकाशित हुए। भारत-प्रतिनिधि एडम्सने उक्त संपादकको दो बार अच्छी तरह लांछित किया था सही, किन्तु पत्रिकाको बंद करनेकी उनकी बिलकुल इच्छा न थी। अंगरेज-शासनाधीन वार्किंहम भारतवर्षसे भगाये गये, परन्तु पत्रिकाका भार एक भारतवासी यूरोपीयके हाथ सौंपा गया था। इसी कारण वृटिश-सरकार उन्हें राज्यसे बहिष्कृत न कर सकी। इस समय इसी ढंग पर अङ्गरेज कर्मचारी द्वारा परिचालित John Bull नाम से एक दूसरी पत्रिका प्रकाशित हुई।

इसके बाद ऐसी राजविद्वेषी पत्रिकाको भी बंद कर देनेकी इच्छासे महामति एडमूसने मुद्रातन्त्रके नये नियमों (New Press law)-को परिवर्त्तन कर मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता छीननेकी कोशिश की। लार्ड आमहर्ष्टने कलकत्ता पदार्पण करते ही इस आईनके सम्बन्धमें बहुत जांच पड़ताल की। १८१५ ई०में उन्होंने कलकत्ता जरनलके सम्पादक मि० आर्नटको नये कानूनके अनुसार अभियुक्त कर भारतवर्षसे निर्वासित किया। इसके कुछ समय बाद ही लण्डन नगरमें प्रकाशित एक पुस्तिका (Pamphlet)-के मूलांशको दोषावह समझ कर उन्होंने उस पत्रिकाका निकलना बंद कर दिया तथा स्वत्वाधिकारीको बहुत जेरबार किया। इतने पर भी संतुष्ट न हो कर कोर्ट आफ डिरेक्टरोंने कानून निकाला कि, 'राजकर्ममें नियुक्त साधारण भद्रव्यक्ति (civil), सैनिक-वृत्तिधारी (military), चिकित्सा-व्यवसायी (medical) अथवा धर्माध्यक्ष (ecclesiastical) मात्र ही किसी संवादपत्रके स्वत्वाधिकारी हो सकते हैं, सम्पादक वा उसका अंशीदार नहीं हो सकते। जो कोई इस नियमका उल्लङ्घन करेगा उन्हें ७ मासके अन्दर कर्मच्युत और भारतवर्षसे विताड़ित किया जायगा।' ऐसी कठोर दण्डाज्ञाके प्रचार होनेसे श्रीरामपुरके मिशनरी-सम्प्रदायने राजद्रोह-सूचक कोई भी प्रबन्ध समाचारदर्पणमें प्रकाशित नहीं किया। उन लोगोंका यह निर्लिप्त भाव देख कर लार्ड आमहर्ष्ट उक्त पत्रिकाको बंद न कर सके।

इसके बाद भारत प्रतिनिधि लार्ड आमहर्ष्टने उक्त पत्रिकाको पारसी भाषामें निकालनेकी बहुत कोशिश की। उन्होंने मुद्रायन्त्रकी जो स्वाधीनता छीन ली थी, उसके लिये वे बहुत दुःखित थे।

कम्पनीकी १८१३ ई०की सनदके अनुसार लाख रुपये लार्ड विलियम बेण्टिङ्कके शासनकालमें १८३३ ई० तक पुस्तक छापने और विद्यालयको सहायता देनेमें खर्च हुए थे। इसके बाद प्रतिनिधि सर चार्ल्स मेटकाफ १८३५ ई०के सितम्बर मासमें मुद्रायन्त्रको स्वाधीनता प्रदान कर देशी लोगोंके निकट पूजनीय हो गये हैं। उनके प्रति कृतज्ञता दिखानेके लिये लोगोंने कलकत्तेमें 'मेटकाफ हाल' नामक पुस्तकालय खोल कर उनके नामको चिरस्मरणीय कर रखा है। इसके पहले संवादपत्रके सम्पादक अपने इच्छानुसार कुछ भी लिख नहीं सकते थे तथा गवर्मेण्ट द्वारा नियुक्त कर्मचारी जब तक जांच नहीं कर लेते थे, तब तक कोई भी प्रस्ताव प्रकाशित नहीं होने पाता था।

२य और ३य अफगान-युद्धके बाद लार्ड लीटनने फिरसे देशीय संवादपत्रोंकी स्वाधीनता छीन कर नया कानून (Press Act वा Gagging Act) जारी किया। १८८१ ई०में अंगरेजी-सेनाके काबुलमें शृङ्खला-स्थापन कर लौटने पर लार्ड रीपनने संवाद पत्रोंको फिरसे स्वाधीनता प्रदान की। इसके लिये भारतवासी उनके बड़े कृतज्ञ हैं। अनन्तर मुद्रायन्त्रको स्वाधीनता छीननेके

सम्बन्धमें फिर कभी भी कोई कानून नहीं निकला। लार्ड लैन्सडाउनके शासनकालमें कौन्सिलबिल और मणिपुर-युद्ध संक्रान्त घटनापरम्पराकी आलोचना कर देशी संवाद पत्रोंने भारत गवर्मेंटके प्रति दोषारोपण किया। इस कारण मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनताको लुप्त कर Sedition Act नामक नया कानून निकाला गया। तभीसे संवादपत्रोंकी भाषा और भावविकाशमें बहुत कुछ वैलक्षण्य देखा जाता है।

मुद्रालिपि (सं० पु०) मुद्रया लिपिः। पांच प्रकारकी लिपियोंमेंसे एक लिपि।

'मुद्रालिपिः शिल्पलिपिर्लि पिर्लेखनिसम्भवा।
गुण्डिकाघूण सम्भूता लिपयः पञ्चधा स्मृताः।
एताभिर्लिपिभिर्व्याप्ता धरित्री शुभदा हर ॥" (वाराहीतन्त्र)

मुद्रालिपि, शिल्पलिपि, लेखनिलिपि, गुण्डिकालिपि और घूणलिपि ये पांच प्रकारकी लिपियां हैं। इनमेंसे मुद्रालिपि-पाठ्य और धार्य है अर्थात् इसे पाठ तथा धारण करनेमें कोई दोष नहीं होता।

"लेखन्या लिखितं विप्रै मुंद्राभिरङ्कितञ्च यत्।
शिल्पादिनिर्मितं यच्च पाठ्य धार्यञ्च सर्वदा ॥"
(मुण्डमालातन्त्र)

२ हरफ।

मुद्राविज्ञान (सं० पु०) मुद्रातत्त्व देखो।

मुद्राशङ्ख (सं० क्लो०) स्वनामख्यात खनिज पदार्थ, मुद्रा शंख।

मुद्राशास्त्र (सं० पु०) मुद्रातत्त्व देखो।

मुद्रिक (सं० स्त्री०) मुद्रिका देखो।

मुद्रिका (सं० स्त्री०) मुद्रा स्वार्थे कन्, स्त्रियां टाप्। १ स्वर्ण रौप्यादि-निर्मित मुद्रा, सिक्का, रुपया।

"सौवर्णी राजतीं ताम्रीमायसीं वा सुशोभिताम्।
सलिलेन सकृद्धौतां प्रक्षिपेत् तत्र मुद्रिकाम् ॥" (मिताक्षरा)

२ अंगूठी। ३ कुशकी बनी हुई अंगूठी जो पितृ-कार्यमें अनामिकामें पहनी जाती है, पवित्री।

मुद्रित (सं० त्रि०) मुद्रा मुद्रणमस्य जातेति मुद्रा इतच्। १ अप्रफुल्ल, मुंदा हुआ। पर्याय—संकुचित, निद्राण, मिलित। २ मुद्राङ्कित, मुद्रण किया हुआ, छपा हुआ। ३ परित्यक्त, छोड़ा हुआ।

मुधा (सं० अव्य०) मुह्यतीति मुह बाहुलकात् क्का, पृषो-दरादित्वात् ह्रस्य ध। १ व्यर्थ, बेफायदा। पर्याय—व्यर्थक, वृथा, निष्फल, निरर्थक।

"मुधाज्ञानं मुधावृत्त' मुधासेवा मुधाश्रमः।
एवं यो युक्तधर्मः स्यात् सोऽमुत्रात्यन्तमश्नुते ॥"
(महाभारत १४।३७.४)

(त्रि०) २ व्यर्थका, निष्प्रयोजन। ३ असत्, मिथ्या।

मुधोल—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके महाराष्ट्र-प्रदेशके अन्तर्गत एक देशी सामन्तराज्य। यह अक्षा० १६° ७' से १६° २७' उ० तथा देशा० ७५° ४' से ७५° ३२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६८ वर्गमील और जन-संख्या ६० हजारसे ऊपर है। इसके उत्तरमें जमखण्डी-राज्य, पूर्वमें बागलकोट तालुक, दक्षिणमें बेलगाम, बीजा-पुर जिला और कोल्हापुर राज्य तथा पश्चिममें बेलगाम जिलेका गोकाक तालुक है। इस राज्यमें ३ शहर और ८१ ग्राम लगते हैं।

समूचा राज्य समतल है। कहीं कहीं नीचा ऊंचा पहाड़ी भूभाग और गण्डशैलमाला नजर आती है। समतलक्षेत्रकी मिट्टी काली और उपजाऊ है। पहाड़ी भूभाग लोहितवर्ण प्रस्तरमय बालुकणसे परिपूर्ण है। इस स्थानको 'माल' कहते हैं। इस भागमें अनाज खूब लगता है।

एकमात्र घाटप्रभा नदी ही इस राज्य हो कर बहती है। वर्षाऋतुमें जब नदी जलसे परिपूर्ण हो जाती है, तब आस पासके स्थानोंमें खेतीबारी शुरू होती है। दूसरे समय सभी स्थानोंमें विस्तीर्ण मरुभूमि-सा मालूम देता है। स्थानविशेषमें कृषक कूप वा तड़ागसे जल निकाल कर खेतीबारीका काम करते हैं। चैत्र वैशाखमें यहां भीषण गर्मी पड़ती है।

यहांके सरदार 'घोरपड़े' उपाधिसे भूषित होने पर भी महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके पूर्वपुरुषसे अपनी वंश-लताकी कल्पना कर अपनेको भोंसले-वंशसम्भूत और क्षत्रिय बतलाते हैं। प्रवाद है, कि इस वंशके आदि-पुरुषने "घोरपड़े" (बहुरूपी) नामक सरीसृपके शरीर-में सूता बांध कर एक दुर्भेद्य दुर्गको जीता था, इसीसे उस वंशकी 'घोरपड़े' उपाधि हुई है।

इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि इन्होंने बीजापुर राज-सरकारमें नौकरी करके सौभाग्यलक्ष्मीको प्राप्त किया था। उक्त राजवंशको दी हुई भूसम्पत्तिका अभी भी यहांके सामन्त लोग भोग कर रहे हैं। शिवाजीकी बढ़ती पर जल कर इन्होंने महाराष्ट्रशक्तिपुञ्जके विरुद्ध अस्त्र उठाया था। किन्तु जब इन्होंने देखा, कि महाराष्ट्र प्रभावसे दाक्षिणात्यकी मुसलमानशक्ति चूर चूर हो गई, तब पेशवाकी अधीनता स्वीकार कर ली। १९वीं सदीसे ये बृटिश सरकारको वार्षिक २६७२ रु० कर देते आ रहे हैं। राजा वेङ्कटराव बलवन्त घोरपड़े (१८८१ २ ई०)-को बृटिश-सरकारने प्रथम श्रेणीका सरदार समझ लिया था। राज्यकी आय कुल मिला कर ३ लाख रुपये-से ऊपर है। सरदारको राजकीय सभी अधिकार है। अपराधीको फांसी देनेमें और और सामन्तोंकी तरह इन्हें पालिटिकल एजेण्टकी सलाह नहीं लेनी पड़ती। इनकी सैन्यसंख्या ४५० है। दत्तकपुत्र लेनेका अधिकार है। पिताके मरने पर बड़े लड़के राजसिंहासन पर बैठते हैं। राज्यमें कुल मिला कर १७ स्कूल और ३ अस्पताल हैं।

२ उक्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० १६° २०′ उ० तथा देशा० ७५° १६′ पू० घाटप्रभा नदीके बायें किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है। शहरमें एक चिकित्सालय है।

मुधोल—१ हैदराबाद राज्यके नान्दर जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ३३५ वर्गमील है। इसमें मुधोल नामक एक शहर और ११५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १८° ५८′ उ० तथा देशा० ७७° ५५′ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। शहरमें एक डाकघर, पुलिस इन्सपेक्टरका आफिस और एक स्कूल है।

मुनक्का (अ० पु०) एक प्रकारकी बड़ी किशमिश या सूखा हुआ अंगूर। यह रेचक होता है। और प्रायः दवाके काममें आता है। विशेष विवरण अङ्गूर शब्दमें देखो।

मुनगा (हिं० पु०) सहिंजन।

मुनब्बतकारी (अ० स्त्री०) पत्थरों पर उभरे बेल-बूटोंका काम।

मुनमुना (हिं० पु०) मैदेका बना हुआ एक प्रकारका पकवान जो रस्सीकी तरह बांट कर छाना जाता है।

मुनरा (हिं० पु०) कानमें पहननेका एक प्रकारका गहना। यह कमाऊं आदि पहाड़ी जिलोंके निवासी पहनते हैं। यह अधिकतर लोहेका ही बनता है।

मुनष्टोन—मूल्यवान् प्रस्तरविशेष, चन्द्रकान्त (Moon stone)। निम्न श्रेणीका Cat's eye या opal कभी कभी मुनष्टोन नामसे बिकी होता है। सिंहलद्वीपजात यह पत्थर सर्वापेक्षा उत्कृष्ट है।

मुनादी (अ० स्त्री०) किसी बातकी वह घोषणा जो कोई मनुष्य डुग्गी या ढोल आदि पीटता हुआ सारे शहरमें करता फिरे, ढिंढोरा।

मुनाफा (अ० पु०) किसी व्यापार आदिमें प्राप्त वह धन जो मूलधनके अतिरिक्त होता है, लाभ, नफा।

मुनासिब (अ० वि०) उचित, वाजिब।

मुनि (सं० पु०) मनुते जानाति यः इति मन-इन् (मनेरुच्च। उण् ४।१२२) अत उच्च। १ मौनव्रती, मननशील महात्मा। पर्याय—वाचंयम, मौनी, व्रती, ऋषि, शापास्त्र, सत्यवाक्।

"फलेन मूलेन च वारिभूरुहां
मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः॥" (नैषध १।१३३)

मुनि कौन हैं? उनका लक्षण क्या है? इस संबंधमें भगवान् कृष्णने अर्जुनसे कहा है—दुःखमें जो घबड़ाते नहीं, सुखमें जिनकी स्पृहा नहीं, अनुराग, भय अथवा क्रोध जिन्हें छू नहीं सकता, वही व्यक्ति मुनि हैं।

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥" (गीता० २।५६)

गरुड़पुराणमें लिखा है,—मुनिगण सभी वासनाओंका परित्याग कर एकमात्र विष्णुमें लीन रहते और सर्वदा उनको प्रसन्न करनेकी कोशिश करते हैं। वे तर्पण, होम, सन्ध्यावन्दन आदि सभी क्रियाओं द्वारा धर्मकामार्थ मोक्षके एकमात्र देनेवाले भगवान् विष्णुको प्राप्त करते हैं। उनके धर्म, व्रत, पूजा, तर्पण, होम, संन्ध्या, ध्यान, धारणा सभी विष्णु हैं,—सभी हरि हैं। हरिके सिवा वे जगत्में और किसीको नहीं जानते, न किसीको देखते तथा सभीको नश्वर समझते हैं।

वेदपुराणादिमें जिन सब ऋषियोंके नाम लिखे हैं उनमें कितने विशेष विशेष मुनि सबसे पहले ब्रह्माके नाना अंगोंसे उत्पन्न हुए थे। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें लिखा है,—ब्रह्माके दाहिने कानसे पुलस्त्य, बायें कानसे पुलह, दाहिनी आंखसे अत्रि, बाईंसे क्रतु, नाकसे अरणि और अङ्गिरा, मुखसे रुचि, वाम पार्श्वसे भृगु, दक्षिण पार्श्वसे दक्ष, छायासे कर्द्दम, नाभिसे पञ्चशिख, वक्षसे वोढू, कण्ठसे नारद, स्कन्धसे मरीचि, गलेसे आपस्तम्ब, जीभसे वशिष्ठ, ओष्ठसे प्रचेता, वामकुक्षिसे हंस तथा दक्षिण कुक्षिसे यति मुनि उत्पन्न हुए। ब्रह्माने अपने अंगसे इन सब पुत्रोंको उत्पादन कर पीछे उनके हाथ प्रजा सृष्टिका भार सौंपा।*

वायुपुराणमें लिखा है,—ब्रह्मा जब गयासुरशिरमें यज्ञानुष्ठान करते थे, तब उन्होंने यज्ञनिर्वाहार्थ अपने मानससे कुछ मुनियोंकी सृष्टि की थी। उन सब मानस सृष्ट मुनियोंके नाम ये हैं,—अग्निशर्मा, अमृत, शौनक, आजलि, मृदु, कुमुख, वेदकौण्डिन्य, हारीत, काश्यप, कृप, गर्ग, कौशिक, वाशिष्ठ, भार्गव, वृद्धपराशर, कण्व, माण्डव्य, श्रुतिकेवल, श्वेत, सुनाक, दमन, सुहोत्र, कक्ष, लौगाक्षि, जैगीषव्य, दधि, पञ्चमुख, ऋषभ, कर्क, कात्यायन, गोभिल, उग्र, जटामाली, चाट्टहास, दारुण, आत्रेय, अङ्गिरस, औपमन्यु, गोकर्ण, गुहावास, शिखंडी, सुपालक, गौतम और वेदशिरा।

इसके अतिरिक्त वेदपुराणादिमें और भी कितने मुनियोंके नाम देखनेमें आते हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उनके नाम यहां पर नहीं दिये गये।

मरीचि, नारद, कर्द्दम, अत्रि, दक्ष, वशिष्ठ आदि मुनियोंकी नामनिरुक्ति ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके ब्रह्मखण्डके वीसवें अध्यायमें सविस्तार लिखी है।

किसी काव्य वा नाटकादिमें मुनियोंका आश्रम वर्णन करते समय वहांकी अतिथिसेवा, हरिणविश्वास, हिंस्रजन्तुओंका प्रशान्त भाव, यज्ञधूम, मुनिबालक, द्रुमसेक, वल्कल और वृक्ष आदिका वर्णन करना होता है।

(कविकल्पलता)

२ जिन। ३ प्रियालवृक्ष, पयारका पेड़। ४ पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़। ५ दमनक, दौना। ६ सातकी संख्या। ७ अष्टवसुके अन्तर्गत आप नामक वसुके एक पुत्रका नाम।

"आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमशान्तो मुनिस्तथा॥"

(हरिवंश भवि० ३।४०)

८ क्रौञ्च द्वीपके एक देशका नाम।

(मत्स्यपु० १२१।८३—८५)

९ द्युतिमानके सबसे बड़े पुत्रका नाम।

(मार्कण्डेयपु० ५३।२२)

१० कुरुके एक पुत्रका नाम।

"अविक्षितमभिष्वन्तं तथा चैत्ररथं मुनिम्॥"

(महाभा० १।९४।४९)

११ एक आभिधानिक। क्षीरस्वामी अमरकोषकी टीकामें कात्यायनका इसी नामसे लिखा है। १२ भारतका एक नाम।

(स्त्री०) १३ दक्षकी कन्या जो कश्यपकी सबसे बड़ी स्त्री थी।

"अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा।
क्रोधा प्राधा च विश्वा च विनता कपिला मुनिः।"

(महाभारत १।६५।१२)

मुनिकर्ण—सह्याद्रिवर्णित राजभेद।

मुनिका (सं० स्त्री०) ब्राह्मीका क्षुप।

मुनिकेश (सं० त्रि०) मुनिकी तरह जटा कलापधारी।

मुनिखर्ज्जूरिका (सं० स्त्री०) मुनिप्रिया खर्ज्जूरिका इति मध्यपदलोपिकर्मधा०। खर्ज्जूरविशेष, एक प्रकारकी खजूर।

---

* "पुलस्त्यो दक्षकर्णाच्च पुलहो वामकर्णतः।
दक्षनेत्रात्तथात्रिश्च वामनेत्रात् क्रतुः स्वयं॥
अरणिर्नासिकारन्ध्रात् अङ्गिराश्च मुखाद्रुचिः।
भृगुश्च वामपार्श्वाच्च दक्षो दक्षिणपार्श्वतः॥
छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिखस्तथा।
वक्षसश्चैव वोढ़ुश्च कण्ठदेशाच्च नारदः॥
मरीचिः स्कन्धदेशाच्च आपस्तम्बस्तथा गलात्।
वशिष्ठो रसनादेशात् प्रचेता अधरोष्ठतः॥
हंसश्च वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्यतिः स्वयम्।
सृष्टिं विधातुश्च विधिश्चकाराशा सुतानपि॥"
(ब्रह्मवै० ब्रह्मख० ८ अ०)

मुनिगाथा (सं० स्त्री०) प्राचीन मुनियोंकी कही हुई वाक्यावली।

मुनिचन्द्र—१ वर्द्धमानके शिष्य एक जैनसूरि। २ ललितविस्तरपञ्जिकाके प्रणेता।

मुनिच्छद (सं० पु०) मुनयः अत्र्यादयः सप्त तत्संख्यकाः छदाः पत्राण्यस्य। १ सप्तच्छदवृक्ष, छतिवनका पेड़। २ मेथिका, मेथी।

मुनितरु (सं० पु०) मुनेरगस्त्यस्य प्रियस्तरुः, मध्यपद लोपि कर्मधा०। वकवृक्ष, पतंग।

मुनिदेश (सं० पु०) एक देशका नाम।

मुनिदेव आचार्य—सुभाषितरत्नकोषके प्रणेता।

मुनिद्रुम (सं० पु०) मुनेरगस्त्यस्य प्रियः द्रुमः मध्यपद लोपि कर्मधा०। १ श्योनाक वृक्ष। २ वक वृक्ष, पतंग।

मुनिधान्य (सं० क्ली०) नीवार धान्य, तिन्नीका चावल।

मुनिनिर्मित (सं० पु०) मुनिना निर्मितः। डिण्डिशफल-वृक्ष।

मुनिपत्र (सं० पु०) दमनक वृक्ष, दौना।

मुनिपरम्परा (सं० स्त्री०) मुनीनां परम्परा। मुनिसमूह।

मुनिपादप (सं० पु०) वक वृक्ष, पतंग।

मुनिपित्तल (सं० क्ली०) मुनीनां पित्तलमिव। ताम्र, तांवा।

मुनिपुङ्गव (सं० पु०) मुनिः पुङ्गव इव। १ मनुश्रेष्ठ। २ कौमारव्याकरणके प्रणेता।

मुनिपुत्र (सं० पु०) मुनीनां पुत्र इव मुनिप्रियत्वादस्य तथात्वं। १ दमनक वृक्ष, दौना। २ ऋषिपुत्र, मुनिके लड़के।

मुनिपुत्रक (सं० पु०) १ खञ्जन पक्षी। मुनिपुत्र स्वार्थे कन्। २ मुनिपुत्र देखो।

मुनिपुष्प (सं० क्ली०) मुनिद्रुम इति ठाजादावूर्द्ध्वं द्वितीयादचः। (पा ५।३।८३) इत्य 'विनापि प्रत्ययेन पूर्वोत्तरपदयोर्विभाषालोपो वक्तव्यः' इति काशिकोक्तेद्रुम इत्यस्य लोपे मुनिः, तस्य पुष्पं। १ वकपुष्प, विजयसारफूल। कार्त्तिकमासमें वकपुष्प द्वारा श्रीविष्णुको पूजा करनेसे अश्वमेघ यज्ञका फल लाभ होता है।

"विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम्।
कार्त्तिके योऽर्च्चयेत् भक्त्या वाजिमेधफलं लभेत्॥"
(तिथितत्त्व)

यह फूल पर्युषित नहीं होता। पर्युषित (वासी) होने पर भी इससे पूजाकी जा सकती है।

"विल्वपत्रञ्च माघ्यञ्च तमालामलकीदलम्।
कह्लारं तुलसीञ्चैव पद्मञ्च मुनिपुष्पकम्।
एतत् पर्युषितं न स्यात् यच्चान्यत् कलिकात्मकम्॥"
(एकादशी तत्त्व)

मुनिपूग (सं० पु०) मुनिप्रियः पूगः। गुवाकविशेष, एक प्रकारकी सुपारी। पर्याय—रामपूग, कामीन, सुरेवट।

मुनिप्रिय (सं० पु०) १ पक्षिराजधान्य। २ पिण्डी खर्जूर वृक्ष, पिण्ड खजूर। ३ प्रियाल वृक्ष, चिरोंजेका पेड़।

मुनिप्रिया (सं० स्त्री०) तिलवासिनी शालि, एक प्रकारका सुगंधित धान।

मुनिभक्त (सं० क्ली०) देवधान्य, तिन्नीका चावल।

मुनिभेषज (सं० क्ली०) मुनीनां भेषजम्। १ आगस्त्य, अगस्तका फूल। २ हरीतकी, हड़। ३ लङ्घन, उपवास।

मुनिभोजन (सं० क्ली०) श्यामाक धान्य, तिन्नीका चावल।

मुनिमरण—एक देशका नाम।

मुनियां (हिं० स्त्री०) १ लाल नामक पक्षीकी मादा। (पु०) २ अगहनमें होनेवाला एक प्रकारका धान।

मुनिरत्न—मुनिसुव्रतचरित और अमरचरितके रचयिता।

मुनिरत्नसूरि—अम्लस्वामिचरित्रके प्रणेता।

मुनिवन (सं० क्ली०) १ वह वन जिसमें मुनि वास करते हैं। २ मुनि द्वारा रक्षित वन।

मुनिवर (सं० पु०) १ पुण्डरीक वृक्ष, पुंडरिया। २ मुनियोंमें श्रेष्ठ। ३ दमनक, दौना।

मुनिवल्लभ (सं० पु०) प्रियाल वृक्ष, विजयसार।

मुनिवीर्य (सं० पु०) स्वर्गके विश्वदेव आदि देवताओंके अन्तर्गत एक देवता।

मुनिवृक्ष (सं० पु०) अगस्ति वृक्ष, वकम।

मुनिव्रत (सं० त्रि०) मौनव्रतावलम्वी।

मुनिश (सं० पु०) मुनियोंका समूह।

मुनिशस्त्र (सं० क्ली०) मुनीनां शस्त्रं। श्वेतदर्भ, सफेद कुश।

मुनिसत्र (सं० क्ली०) एक यज्ञका नाम।

मुनिसुत (सं० पु०) १ दमनक वृक्ष, दौना। २ मुनिपुत्र।

मुनिसुन्दरसूरि—अध्यात्म-कल्पद्रुमके प्रणेता।

मुनिसुव्रत (सं० पु०) मुनिषु सुव्रतः। जैनियोंके एक तीर्थङ्करका नाम। जैन शब्द देखो।

मुनिस्थल (सं० क्ली०) जनपदभेद।

मुनिस्थान (सं० क्ली०) मुनीनां स्थानं। आश्रम।

मुनिहत (सं० पु०) राजा पुष्पमित्रकी एक उपाधि।

मुनिहय (सं० पु०) समष्ठिल क्षुप, कोकुआ नामका कंटीला पौधा।

मुनीन्द्र (सं० पु०) मुनीनां मनन शीलानां योगिनामिन्द्रः श्रेष्ठः। १ बुद्धदेव। २ ऋषिश्रेष्ठ।

"पतन्तमेव तस्माच्च पाणिभ्यां स तमग्रहीत्।
मुनीन्द्रः प्रकटीभूय समाश्वास्य जगाद च॥"

(कथासरित्सा० ३२-३०६)

३ दानवभेद। (हरिवं० २५।५५) ४ पाषण्डमुख-चपेटिकाके प्रणेता।

मुनीन्द्रता (सं० स्त्री०) मुनीन्द्रस्य भावः तल-टाप्। मुनीन्द्रका भाव या धर्म।

मुनीम (अ० पु०) १ नायब, सहायक। २ साहूकारोंका हिसाब किताब लिखनेवाला।

मुनीम—नूर-उल हक नामक एक मुसलमान कवि। बरेली नगरमें ये काजी-पद पर अधिष्ठित थे। इनकी बनाई हुई पारसी कविताको मुसलमानमात्र बड़े आदरसे पढ़ते हैं। इन्होंने कवितामें कुरानका अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त ये अरबी और पारसी भाषामें कसीदा, मसनवी और पारसी दीवानकी रचना कर गये हैं। इन्होंने कुल मिला कर ३ लाख श्लोकोंकी रचना की थी। १७८६ ई०में दिल्ली नगरमें ये विद्यमान थे।

मुनीम खां—मुगल-बादशाह बहादुरशाहका एक मंत्री। इसके पिताका नाम सुलतान बेग बर्लस था। बादशाहके अनुग्रहसे इसने काबुलके प्रतिनिधि-पदको प्राप्त किया था। सम्राट् बहादुरशाहने दिल्लीके सिंहासन पर बैठते ही इसे अपना वजीर बनाया और खानखानाकी उपाधि दी। १७११ ई०में इसकी मृत्यु हुई। यह 'इल्लामात मुनीमी' नामसे एक पुस्तक लिख गया है।

मुनीम खाँ (खानखाना)—मुगल-बादशाह अकबरशाहका प्रधान सचिव और दिल्लीका एक प्रसिद्ध उमरा। १५६० ई०में खानखानान बैराम खांकी पदच्युतके बाद दिल्लीश्वरने इसे महामान्य सचिवके पद पर नियुक्त किया। खान जमानकी मृत्युके बाद यह जौनपुरका शासनकर्त्ता हुआ। १५६७ ई०में यहां इसने गोमती नदीका एक पुल निर्माण किया। वह पुल आज भी उसकी अक्षय कीर्त्तिकी घोषणा कर रहा है। १५७५ ई०में बङ्गेश्वर दाऊद खाँके पराभवके बाद यह बंगालका मुगल प्रतिनिधि हो कर आया।

महम्मद-इ-बख्तियारसे ले कर शेरशाहके राज्यकाल तक गौड़ (लक्ष्मणावती) नगरमें मुसलमानोंकी राजधानी थी। पीछे इस स्थानको अस्वास्थ्यकर देख कर नवाबगण खावासपुर तोड़ामें राजधानी उठा ले गये। मुनीम खाँ बङ्गालमें आ कर गौड़नगरकी शोभा देख विमोहित हो गया था। परित्यक्त राजधानीका जीर्ण-संस्कार करा कर वहाँ इसने अपना राजप्रासाद बनवाया। थोड़े ही दिनोंके अन्दर भीषण रोगसे गौड़-नगरमें इसकी मृत्यु हुई।

मुनीमुष (सं० क्ली०) नगरभेद।

मुनीवती (सं० स्त्री०) स्थानभेद।

मुनीर लाहोरी (मुल्ला)—लाहोरवासी एक मुसलमान कवि, मूलतानवासी मुल्ला अबदुल मजीदका लड़का। इसका असल नाम अबुल-बरकत था। इसने पहले 'सखूनसञ्ज' और पीछे 'मुनीर'की उपाधि प्राप्त की। 'इनसाए मुनीर' नामक इसका बनाया हुआ एक इनसा जनसाधारणका विशेष आदरणीय है।

मुनीश (सं० पु०) मुनेरीशः। १ वाल्मीकि। २ बुद्धदेव। ३ मुनिश्रेष्ठ।

मुनीम शेख—बङ्गेश्वर सुलतान सुजाके एक सभा-कवि। १६५८ ई०में सम्राट् आलमगीरके साथ सुजाका जब युद्ध चल रहा था, उस समय ये रणक्षेत्रमें उपस्थित थे। इनकी रची कविताओंकी भणितामें 'मुनीम' उपाधि देखी जाती है।

मुनीश्वर (सं० पु०) १ मुनिओंमें श्रेष्ठ। २ विष्णु। ३ बुद्ध।

मुनीश्वर सार्वभौम—१ सिद्धान्तसार्वभौम नामक सिद्धान्त-

शिरोमणिके एक टीकाकार। २ रङ्गनाथके पुत्र विश्वरूपको दीक्षाका दूसरा नाम।

मुन्थहा (सं० स्त्री०) मुन्था।

मुन्था (सं० स्त्री०) नीलकण्ठोक्त ताजकप्रसिद्ध इन्थिहा शब्दार्थ। ज्योतिषमें जिस प्रकार ज्ञातव्यक्तिके राशिचक्रमें लग्नादि स्थिर कर फलका निरूपण करना होता है, उसी प्रकार नीलकण्ठोक्त ताजकमें वर्ष-प्रवेश करके उसका लग्न और मुन्था स्थिर कर फलाफल निर्णय किया जाता है। मुन्था लग्नसे ही गणना की जाती है। वृहस्पति जिस तरह प्रतिवर्ष एक एक राशिसे अन्य राशिमें जाता है, उसी प्रकार मुन्था भी एक एक राशि हो कर जाती है। इसकी बाईं ओरसे गणना की जाती है। जैसे, एक व्यक्तिका मेष लग्नमें जन्म हुआ है, उसके दूसरे वर्ष वृषराशि मुन्था होगी, तीसरे वर्ष मिथुन, चौथे वर्ष कर्कट इत्यादि क्रमसे मुन्थाका निरूपण करना होगा। मुन्था स्थिर करके पीछे उसीके अनुसार उसका फल निरूपण करना होता है।

मुन्थाफल।—जिस वर्ष लग्नमें मुन्था होती है उस वर्ष शत्रुभय, मान, पुत्र, अश्वलाभ और प्रतापवृद्धि आदि शुभफल होते हैं। धनभावमें मुन्था होनेसे उत्साहवृद्धि, यश, सम्मान, राजाकी कृपासे अर्थप्राप्ति, मिष्टान्नभोजन, बल, पुष्टि और सुख होता है। तृतीयभावमें स्वीय पराक्रम द्वारा वित्त और सुखलाभ आदि शुभफल होंगे। चतुर्थभावमें शरीरपीड़ा, शत्रुक्षय, आपसमें विवाद आदि अशुभफल ; पञ्चमभावमें सद्बन्धुलाभ, सौख्यलाभ, सौख्य और पुत्रलाभ आदि शुभफल ; षष्ठभावमें शरीरको कृशता, शत्रुवृद्धि, रोग, चोर, अग्नि वा राजभय, कार्य और अर्थनाश आदि अशुभ ; सप्तम भावमें स्त्री, पुत्र और बन्धुनाश, उत्साहभङ्ग, धन और धर्मनष्ट आदि अशुभ ; अष्टम भावमें शत्रु और तस्करसे भय, धर्म और अर्थनाश आदि नाना प्रकारके अमङ्गल ; नवम भावमें स्वामित्वप्राप्ति, अर्थागम, धर्मोत्सव आदि शुभफल ; दशम भावमें राजप्रासाद, परोपकार और सत्कार्यसिद्धि ; एकादश भावमें विलास, सौभाग्य, नीरोगिता आदि शुभफलप्राप्ति तथा द्वादशभावमें मुन्था होनेसे अधिक व्यय, दुर्जनका संसर्ग, शरीरपीड़ा, अपने विक्रमसे अर्थलाभ, धर्मार्थहानि और सर्वदा सभीसे विवाद हुआ करता है।

वर्षप्रवेशकालमें जो कोई भाव पापग्रहसे क्षुतदृष्टि द्वारा देखा जायगा, उस भावमें यदि मुन्था रहे, तो उस भावके कथित शुभफलोंका नाश और अशुभ फलोंकी वृद्धि होती है। शुभग्रह और स्वामिग्रहके योग तथा दृष्टि और इत्थशाल योग द्वारा मुन्थाका फलाफल जानना होगा। बलविशिष्ट मुन्था जिस भावमें होगी उस भावका शुभफल होता है। इसका विपरीत होनेसे अर्थात् पापयुक्त, पापदृष्ट और पापमुथ शिलादियोगमें अशुभ होता है। जन्मलग्नका चौथा, छठा, सातवां, आठवां वा बारहवां हो कर वर्षप्रवेशकालमें उसी प्रकार मुन्था यदि पापयुक्त, पापदृष्ट अथवा पापग्रहके साथ इत्थशाल वा इसराफादि योग रहे, तो भावका नाश होता है और यदि शुभग्रह वा स्वामिग्रहसे दृष्ट हो, तो शुभफल होगा। जन्मकाल और वर्षप्रवेशकालमें अशुभ भावस्थ मुन्था यदि जन्मलग्नसे भी विरुद्ध स्थानस्थ तथा पापयुक्त वा पापदृष्ट हो, तो उस भावफलका नाश होता है तथा दोनों लग्नके शुभ स्थानस्थ होनेसे उस भावका शुभफल होगा। वर्षप्रवेशकालमें लग्नसे अशुभ भावस्थ मुन्था यदि जन्मलग्नसे भी विरुद्ध स्थानस्थ तथा पापयुक्त वा पापसे देखी जाती हो तो उस भावफलका नाश होता है।

जन्मकालके लग्नसे चतुर्थ स्थानस्थ मुन्था यदि शुभग्रहयुक्त हो, तो पितृव्यलाभ और यदि पापयुक्त हो, तो राजभय और अति कष्ट होता है। इसी प्रकार दूसरे भावका भी फल जानना चाहिये। वर्षप्रवेशकालके लग्नसे जिस भावमें स्वामिग्रह वा शुभग्रहयुक्त होगा उस जन्मलग्नसे जो भावगत होगा वह भाव चिन्तित फलका शुभ होगा, पापयुक्त होनेसे उस फलका नाश होता है। परन्तु यदि वर्षाधिपति बलवान् हो कर शुभफलदायक हों, तो मुन्था-जनित अशुभ फल नहीं होगा।

सूर्यके घरमें अर्थात् सिंहराशिमें मुन्था होनेसे अथवा सूर्य और मुन्थाके एक घरमें रहनेसे राज्य, राजसङ्गम, गुणकी उत्कर्षता और स्थानलाभ होता है तथा मुन्था पर सूर्यकी दृष्टि रहनेसे भी ऐसा ही फल होगा। चन्द्रमाके

घरमें अर्थात् कर्कटमें मुन्था होनेसे अथवा चन्द्रमाके साथ मुन्थाका योग रहनेसे अथवा मुन्था चन्द्रमा द्वारा देखी जानेसे नीरोगिता और सन्तोष लाभ होता है। उक्त मुन्थामें पापग्रहकी दृष्टि रहनेसे नाना प्रकारका कष्ट होता है। मुन्था मङ्गलगृहस्थित मङ्गलयुक्त वा मङ्गलदृष्ट होनेसे पित्तरोग, अस्त्राघात और रक्तस्राव होता है। शनिगृहस्थित वा शनिदृष्ट मुन्था मङ्गलयुक्त होनेसे भी इसी प्रकारका फलाफल हुआ करता है। बुध वा शुक्रगृहस्थित मुन्थामें बुध वा शुक्रको दृष्टि अथवा योग होनेसे स्त्रीकी बुद्धि द्वारा लाभ, सुख, धर्म और यश होता है। इसमें पापग्रहका योग रहनेसे अत्यन्त कष्ट होता है। मुन्था वृहस्पतिके घरमें हो और वृहस्पतिसे दृष्ट वा युक्त हो, तो स्त्री, पुत्र, सुख, सुवर्ण और वस्त्रलाभ होता है तथा उसी प्रकार मुन्थाके साथ शुभ ग्रहका इत्थशाल-सम्बन्ध होनेसे राज्यकी प्राप्ति होती है। शनिगृहस्थित मुन्था शनियुक्त वा शनिदृष्ट होनेसे वातरोग, मानहानि, अग्निभय और धनक्षय होता है, किन्तु उक्त मुन्थामें यदि वृहस्पतिकी पूर्णदृष्टि रहे, तो शुभफल होगा। मुन्था राहुकी सुखस्थित होनेसे धनलाभ, यश, सुख और धर्मको उन्नति तथा उस मुन्थामें वृहस्पति वा शुक्रकी दृष्टि अथवा योग रहनेसे उच्च पद सुवर्ण और वस्त्रलाभ होता है। जिस राशिमें राहु रहता है, उस राशिका जितना अंश राहुका भोग होगा वह राहुका मुख, जितना अंश भोग हो चुका है वह पृष्ट तथा भोग्यराशिको सप्तम राशि उसका पुच्छ है, ऐसा जान कर फल निरूपण करना होता है। मुन्था राहुको पृष्ठस्थित होनेसे शुभ, पुच्छ पर होनेसे शत्रुभय और कष्ट तथा उस पर पापग्रहकी दृष्टि रहनेसे सुख हुआ करता है।

ग्रहगण जन्मकालमें बलवान् हो कर यदि वर्षप्रवेशकालमें बलवान् रहे तो वर्षके प्रथमार्द्धमें शुभ और शेषार्द्धमें अशुभ फल, फिर यदि जन्मकालमें दुर्बल तथा वर्षप्रवेश कालमें बलवान् हो तो प्रथमार्द्धमें अशुभ और शेषार्द्धमें शुभ हुआ करता है। यदि मुन्थास्वामी वर्षलग्नसे चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम वा द्वादशस्थित हो कर अन्तर्गत वक्री वा पापग्रह कर्त्तृक दृष्ट वा युक्त हो और पापग्रहसे चतुर्थ वा सप्तम स्थानस्थित हो, तो शुभ नहीं होता, रोग और धनक्षय होता है। यदि मुन्थाधिपति वर्षलग्नके अष्टमाधिपतिके साथ एकत्र स्थित अथवा अष्टमाधिपति कर्त्तृक क्षुतदृष्टि द्वारा दृष्ट हों, तो शुभ नहीं होता। ये दोनों योग यदि समकालमें हो, तो मरण तथा एक योग हो, तो मरणके समान दुःख होता है। मुन्था और मुन्थापति जन्मकालमें शुभयुक्त और शुभदृष्ट हो कर वर्षप्रवेश कालमें अशुभ होनेसे वर्षके प्रथमार्द्धमें शुभ और शेषार्द्धमें कष्ट और यदि जन्मकालमें अशुभ तथा वर्षकालमें शुभ हो तो प्रथमार्द्धमें शुभ और शेषार्द्धमें शुभ होगा। (नीलकण्ठोक्त ताजक) वर्षप्रवेश देखो।

मुन्द्रा—बम्बई प्रदेशके कच्छ सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक नगर और बन्दर। यह अक्षा० २२° ४६' उ० तथा देशा० ६९° ५२' पू० कच्छकी खाड़ी पर अवस्थित है। जनसंख्या १० हजारसे ऊपर है। बन्दरसे नगरमें माल असबाब ले जानेके लिये एक पक्की सड़क दौड़ गई है। यहांसे १४ मील उत्तर एक दुर्ग है। दुर्गकी मसजिदकी धवलचूड़ा बहुत दूरसे दिखाई देती है। शहरमें एक अस्पताल है।

मुन्नभट्ट (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकार।

मुन्ना (हिं० पु०) १ छोटोंके लिये प्रेमसूचक शब्द, प्यारा। २ तारकशी कारखानेके वे दोनों खूंटे जिनमें जंता लगा रहता है।

मुन्ना जान—अयोध्याके नवाब नासिर उद्दीन हैदरका लड़का। १८३७ ई०में नासिरके मरने पर उसका चचा नासिरउद्दौला आबू मुजफ्फर मुइ-उद्दीन महम्मद आदिलशाह लखनऊकी मसनद पर बैठा। उसके आदेशसे मुन्ना जान चुनार-दुर्गमें कैद किया गया। १८४६ ई०में कारागारमें ही उसकी मृत्यु हुई।

मुन्नी बेगम—बङ्गालके नवाब मीरजाफर खांकी रानी, नजम उद्दौलाकी माता। मीरजाफर तथा नजम उद्दौला और सैफ उद्दौला नामक अपने दोनों पुत्रोंके परलोकवासी होने पर यह अंगरेज-प्रतिनिधि वारेन हेष्टिंग्स द्वारा उक्त नवाब वंशधर मुबारक उद्दौलाकी अभिभाविका हुई थी। १७९९ ई०में इसका देहान्त हुआ।

मुन्नूँ (हिं० पु०) मुन्ना देखो।

मुन्यन्न (सं० क्ली०) मुनेरन्नं । मुनियोंके खानेका अन्न, तिन्नीका चावल आदि ।

"मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्।
अक्षारलवणाञ्चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥"

(मनु ३।२५७)

मुन्ययन (सं० पु०) यज्ञभेद ।

मुन्यालय (सं० पु०) एक प्राचीन तीर्थका नाम ।

मुन्येरु—मान्द्राजप्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक नदी । यह निजाम राज्यसे निकल कर बेजवाड़ाके आगिकटसे १० कोस उत्तर कृष्णा नदीमें आ मिली है ।

मुन्शी कालीनाथ राय—२४ परगनेके अन्तर्गत टांकीका सुप्रसिद्ध जमींदार । दानशीलताके लिये इनका नाम वङ्गालमें प्रसिद्ध है ।

मुन्शी यशोवन्त राय—एक पारसी दीवानके रचयिता । १७१२ ई०में ये जीवित थे ।

मुन्शी मूलचांद—दिल्लीवासी एक कायस्थ सन्तान । कविता-शक्तिके कारण इनकी उपाधि मुन्शी थी । ये कवि नासिरके शिष्य थे । उर्दू भाषामें लिखित शाहनामाका कुछ अंश इनका बनाया हुआ है । १८२२ ई०में इनकी मृत्यु हुई ।

मुन्शी श्यामप्रसाद—उर्दू भाषाके गौड़-इतिहासके प्रणेता ।

मुफलिस (अ० वि०) धनहीन, निर्धन ।

मुफलिसी (अ० स्त्री०) निर्धनता, गरीबी ।

मुफसिद (अ० पु०) झगड़ा या फसाद करनेवाला आदमी ।

मुफस्सल (अ० वि०) १ वह जिसकी तफसील की गई हो, ब्योरेवार । (पु०) २ किसी केन्द्रस्थ नगरके चारों ओरके कुछ दूरके स्थान ।

मुफीद (अ० वि०) लाभदायक, फायदेमन्द ।

मुफ्त (अ० वि०) जिसमें कुछ मूल्य न लगे, सेंतका ।

मुफ्ती (अ० पु०) १ धर्मशास्त्री । (वि०) २ जो विना दाम दिये मिला हो, मुफ्तका ।

मुबतिला (अ० वि०) गृहीत, पकड़ा हुआ ।

मुबादिला (अ० पु०) बदला, पलटा ।

मुबारक (अ० वि०) १ जिसके कारण बरकत हो । २ शुभ, मङ्गलप्रद ।

मुबारक अली खां—वङ्गाल विहार और उड़ीसाका एक सूबेदार । यह १८२४ ई०की २३वीं दिसम्बरको बंगालकी मसनद पर बैठा ।

मुबारक उद्दौला—वङ्गेश्वर मीरजाफर अली खांका छोटा लड़का । १७७०के मार्च मासमें अपने भाई सैफउद्दौलाके मरने पर यह पितृसम्पत्तिका अधिकारी हुआ । अङ्गरेजराजके साथ इसकी शर्त्त थी, कि वह १६ लाख रुपया मासिक लेगा और निजामतकी देखरेखका भार उसके सहकारीके हाथ रहेगा । १७९३ ई०में मुर्शिदाबाद नगरमें उसकी मृत्यु हुई । डा० हामिलटनके मतसे १७९६ ई०में इसका देहान्त हुआ । फोरेष्टरके भ्रमण वृत्तान्तमें इसे मीरजाफरका पौत्र और मीरनका पुत्र बतलाया है ।

मुबारक खाँ—१ अहमद शाहका पुत्र । मालवके राजा सुलतान महम्मदका दरबारी था । सुलतान महम्मदके मरनेके बाद उनका पुत्र कुतबुद्दीन तख्त पर बैठा । इसी समय महम्मद खिलजी गुजरात पर चढ़ाई करनेके उद्देश्य से ससैन्य चढ़ आया । उसके सुलतानपुरमें आने पर वहांके मालिक अलाउद्दीनने किलेको बन्द कर ऊपरसे गोलाबारी करने लगे । महम्मद खिलजीने सात दिन तक इस किलेको रोक रखा था । इसके बाद कुतुबुद्दीनके चाचा मुबारक खांने बीचमें पड़ कर इन दोनोंमें सुलह करा दी ।

मुबारक खां २य—सुलतान महम्मद शाहका भाई । महम्मद शाहके मरनेकी खबर पा कर गुजरातके सरदार तथा मन्त्रियोंने भतीजा महमूद खां तथा मुबारक खांको गद्दीका उत्तराधिकारी समझ कर इन दोनोंको खानदेशके बावल नगरमें कैद कर दिया ।

कुछ लोग कहते हैं, कि बहादुर खांने गद्दी पानेकी आशामें अपने भाइयों तथा अन्यान्य कुटुम्बियोंको मार डाला था । केवल महमूद खां बच गया था ।

महम्मदशाहकी मृत्युके बाद मन्त्रियोंने उसके पुत्रको तख्त पर बैठाया । यह नाबालिग था । किन्तु मुबारक खांको अक्लमन्द तथा होशियार समझ मन्त्रियोंने उसको मार डालनेके लिये अकबर खां नामक एक जमींदारको सपुर्द कर दिया । दूसरे दिन सबेरे मुबारक खांको

वह बात कही गई। इस पर मुवारक खाँ रोने लगा। अरब खाँने मुवारक पर रहम खा कर या मुवारक खांके बखशीश देनेके लालचमें आ कर कैदसे मुक्त कर दिया। वह दोनों नङ्गी तलवार ले कर दरवारमें पहुंच गये। वहांके पहरेदार इधर-उधर चले गये थे। कोई न मिला कि मुवारक खांको रोकता। सरदारों तथा दरवारियोंसे दो एक हाथ चली, फिर सब भाग खड़े हुए। फल यह हुआ, कि मुवारक खाँने तख्त पर कब्जा किया और अपने भतीजेको नजरबन्द कर लिया।

इसके बाद मुवारक खाँने एक फरमान निकाल कर सरदारोंको सूचित किया, कि मैं अपने भतीजेकी नावालगीमें राज्यका शासन करूंगा। जो मेरी वश्यता स्वीकार करेंगे वही सरदार पद पर रह सकेंगे। यह सुन कर सरदार लोग डर गये, देखा अवस्था शोचनीय है। लाचार हो कर उन लोगोंको आना पड़ा, सबोंने अधीनता स्वीकार की और एक एक कर आ कर सलाम बजा कर अपनी हाजिरी कराई। धीरे धीरे मुवारक खांकी चल गई। रुपया भी इन्हींके नाम पर ढलने लगा। इसके बाद तो मुवारक खां नहीं, बल्कि मुवारकशाहके नामसे रियासतकी सलतनत करने लगे।

मुवारकवाद (फा० पु०) बधाई, किसी संबंधी, इष्टमित्र आदिके यहां पुत्र होने पर आनन्द प्रकट करनेवाला वचन या सन्देसा।

मुवारकवादी (फा० स्त्री०) १ बधाई। २ वे गीत आदि जो शुभ अवसरों पर बधाई देनेके लिये गाए जायं।

मुवारकशाह—सैयदवंशके दिल्लीके सम्राट्। खिलजी खांकी मृत्युके बाद उसका पुत्र मुवारक मैजूद्दीन, अवदुल फतेह मुवारकशाहका खिताव ले कर सन् १४२१ ई०में तख्त नसीन हुआ। उसने तख्त पर बैठते ही लाहोर तथा दियालपुरका शासन-भार मालिक रजवके हाथ सौंप दिया। इस समय पञ्जावकी गक्कर जाति बड़ी प्रभावान्वित हो उठी। इसका नेता यशराज ठट्ठ आदि स्थानोंको लूट पाट कर जम्बू आ गया। यहांके मीरराज अलीशाहको हरा कर उसने कैद कर लिया। उसका मनसूबा बढ़ा। सारे हिन्दुस्थानको दखल कर लेनेके ख्यालसे वह दिल्ली पर चढ़ाई करनेके लिये फौजोंको इकट्ठा करने लगा। इसके बाद उसने लाहोरको घेर कर वहांके शासनकर्त्ता मुगल जिराक खांको कैद कर लिया। पीछे उसने सरहिन्द पर भी आक्रमण किया था।

इसके उपरान्त सम्राट् मुवारकशाह सेनाके साथ दिल्लीसे सरहिन्दमें आया। यह खबर सुन कर गक्करोंके नेता यशराज या यशरथ नगर छोड़ कर लुधियानाको भाग गया। इस अवसर पर जिराक खां भी कैदसे छुट गया और मुवारकशाहके साथ आ मिला। सन् १४२१ ई०की ८ अक्तूबरको वादशाहकी फौजोंसे गक्करों-लड़ाई हुई। इस लड़ाईमें गक्करोंके सरदार बुरी तरहसे हार चन्द्रभागा नदीको पार कर पहाड़ोंमें जा कर छिप गया। मुहर्रम निकट था इससे मुवारकशाह अपनी राजधानी दिल्ली लौट गया।

इधर वादशाह मुवारक अभी दिल्ली भी न पहुंचा था, तब तक उधर यशरथने फिर लाहोर पर आक्रमण किया और वहां घेरा डाल दिया। उसका यह घेरा छः महीने तक रहा। किन्तु उसकी चहारदीवारी बड़ी मजबूत थी, इससे उस नगरका यशरथ कुछ भी बिगाड़ न सका। फिर वहांसे आ कर उसने जम्बू पर आक्रमण किया। किन्तु सफलीभूत न हो कर फिर फौज एकट्ठी करनेमें लगा। जिस समय यशरथ विपाशा नदी को पार कर अपने कार्य्यमें तत्पर था उस समय लाहोर और जम्बूके वीरोंने आ कर शाहीकी पलटनका साथ दिया। सबोंने यशरथका पीछा किया, किन्तु उसको कौन पा सकता था। वह फिर पहाड़की गुफाओंमें जा कर छिप रहा। इसके वादशाही सैन्यने कलानूर आ कर निरीह गक्करोंको बड़ा तंग किया। इस अत्याचारसे कितनों हीने अपने प्राण विसर्जन किये। इसके बाद शाही फौज लौट गई। किन्तु इससे यशरथ अपने कार्य्यसे विरत नहीं हुआ। वादशाहकी फौज दिल्ली पहुंचते न पहुंचते यशरथ फिर समरक्षेत्रमें कूद पड़ा। उसने बारह हजार फौजोंको साथ ले कर जम्बूके राजा भीमरायको मार कर लाहोर तथा दियालपुर पर कब्जा कर लिया। यशरथको मालूम हो गया कि मालिक सिकन्दर उसकी ओर फौजोंको ले कर चढ़ा चला आ रहा है, तब वह अपनी लूटी हुई सम्पत्तिको ले कर फिर पहाड़ी गुफामें जा छिप गया।

मुवारकशाहकी अमलदारीमें यशरथ वार वार उत्पात मचाया करता था। सन् १४२७ ई०में यशरथने कलानूर आ कर सिकन्दरको हराया और सिकन्दरको लाचार हो कर लाहोर भाग जाना पड़ा। वादशाह मुवारकशाहने सिकन्दरको सहायताके लिये फौजें भेजी, उससे पहले ही यशरथने उसे पराजित कर उनकी धन सम्पत्ति लूट ली थी।

सन् १४२६ ई०में कावूलके अमीर शेख अलीने पञ्जाव पर आक्रमण किया। ऐसा सुयोग पा कर गकरोंने शेखअलीके साथ मिल कर लाहोरमें कई तरहके उपद्रव किये थे। फिरिस्ताके पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस काण्डमें कोई चालीस हजार हिन्दू मारे गये थे। शेख अली मुगल सैन्य ले कर इरावती नदीके किनारे मुलतान पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुआ। पञ्जाव वासियोंने वड़ी क्रूरतासे युद्ध किया था। वड़ी घनघोर लड़ाई हुई। अन्तमें मुगलोंकी गहरी हार हुई। आधेसे अधिक मुगल मारे गये। भागनेसे जो वचे, वह भी झेलम नदीमें कूद पड़े और डूव गये। मोर शेखअली कुछ नोकरोंके साथ अपना सा मुंह ले कर घर भागे।

सन् १४३२ ई०. मालिक यशरथ और शेख अमीर अलीने फिर मिल कर पञ्जाव पर आक्रमण किया। इस वार भी वादशाहके रणचातुर्यसे अमीरको मुंहकी खानी पड़ी। षड्यन्त्रकारियों द्वारा मुवारकशाह मसजिदमें नमाज पढ़ते समय मारे गये। इन्होंने कुल तेरह वर्ष तीन महीना राज्य किया था।

मुवारकशाह खिलजी—दिल्लीका एक मुसलमान सुलतान इसका असल नाम कुतुव उद्दीन था। पिता अलाउद्दीन खिलजीके मरने पर यह १३१७ ई०में दिल्लीके सिंहासन पर वैठा। इस समय छोटे भाई साहवुद्दीन उमर खांके साथ इसका विवाद खड़ा हुआ। फलतः उमर खांके पृष्ठपोषक अलाउद्दीनका काफूर नामक एक क्रीतदास मारा गया।

सुप्रसिद्ध पारसी कवि अमीर खुशरूने मुवारकशाहका *गुणग्राम वर्णन कर* यथेष्ट पुरस्कार पाया।

१३११ ई०में मालिक खुशरू नामक इसके एक विश्वस्त क्रीतदासने इसे मार डाला और खुशरू शाह नामसे दिल्लीके सिंहासन पर वैठा। मुवारकके शासनकालसे ही भारतवर्षमें खिलजी-राजवंशका अवसान हुआ।

मुवारकशाह शर्की—जौनपुरका एक शर्की वंशीय शासनकर्त्ता। इसका असल नाम मालिक वासिल (कर्णफल) था। ख्वाजा जहान शर्कीने इसे गोद लिया था। १४०१ ई०में यह सिंहासन पर वैठा।

इस समय दिल्ली राजसरकारमें अराजकता और विशृङ्खलताको प्रवल देख मुवारकने स्वाधीनता अवलम्वन कर अपने मन्त्रियोंकी सलाहसे सरताज पहना और अपने नामसे सिक्का चलाया। १८ मास राज्य करनेके वाद इसका देहान्त हुआ। पीछे १४०१ ई०में इसका छोटा भाई इव्राहिम शाह राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुआ।

मुवारक शेख—मुनवा-उल्-आयून नामक कुरानका टीकाकार। यह सम्राट् अकवर शाहके विख्यात मन्त्री आईन-इ अकवरीके प्रणेता अवुल फजल और सेख फैजीका पिता था। नागोरमें इसका घर था। इसके पिता सेख मूसा तुर्क जातिके थे। १५०५ ई०में इसका जन्म और १५६३ ई०में लाहोर नगरमें देहान्त हुआ। लाश आगरा नगरमें दफनाई गई थी।

मुवारिज उल-मुल्क—इदरका एक शासनकर्त्ता। इसका असल नाम मालिक हौसेन वामनी था। लोग इसे निजाम-उल-मुल्क कहा करते थे। २य सुलतान मुजफ्फरने इसे इदरका शासनकर्त्ता वनाया। यह अत्यंत साहसी था। सुलतान मुजफ्फरने जो इसे इदरका शासनकर्त्ता वनाया था, इससे उसके वजीर लोग वड़े अप्रसन्न थे। उसे पदच्युत करनेकी ताकमें वे सवके सव लग गये।

एक दिन निजाम-उल्-मुलकके सामने एक व्यक्ति राणाके वलविक्रमको प्रशंसा कर रहा था, इस पर निजामने एक कुत्तेकी ओर इशारा करते हुए कहा, 'राणाको धिक्कार है, कि वह इदर आ कर मेरा मुकावला करे, नहीं तो मैं उसे यही कुत्ता समझूंगा।' जव यह खवर राणाके कानोंमें पहुंची, तव वे आगवबुले हो गये और उसी समय दलवलके साथ इदरकी चढ़ाई कर दी।

राणाका आगमन-संवाद पा कर निज़ाम-उलमुल्कने सुलतान मुजफ्फरको सूचित किया, कि चालीस हजार घुड़सवारके साथ राणा इदर पर चढ़ाई करनेके लिये बागरमें अपेक्षा कर रहे है। इस समय इदरकी सैन्य-संख्या पांच हजार घुड़सवारसे अधिक न थी। फिर इनमें भी कुछ अह्मदनगरमें रहते थे। सुलतानके मन्त्रियोंने यह संवाद कुछ समय तक छिपा रखा। किंतु जब उसने देखा, कि इस प्रकारका संवाद गुप्त रखनेसे भविष्यमें विपदकी आशङ्का है, तब सुलतानके निकट यह बात खोल दी। सुलतान मुजफ्फरके निजामके सहायतार्थ उनसे सलाह पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि निज़ाम-उल-मुल्क अक्सर वृथा युद्धकी आशङ्का किया करता है। अतएव बादशाहके गुप्तचर द्वारा जब तक कोई संवाद न भेजा जाय, तब तक इस विषयमें हस्तक्षेप करना उचित नहीं।

अतः सुलतानने वजीरोंकी बात मान कर उस समय कोई सेना नहीं भेजी। इधर राणा सजधज कर इदरमें आ धमके। निज़ाम उल-मुल्कने इस समय मुवारिज उल मुल्ककी उपाधि धारण की थी। कोई उपाय न देख उसने युद्ध करनेका संकल्प किया। किन्तु उसके बंधु-बान्धवोंने उसे ऐसा दुःसाहसिक कार्य करनेसे रोका। क्षोभ और अपमानसे वह जल भुन रहा था, इस कारण किसीकी बातको कान न दे अह्मदनगरकी यात्रा कर दी।

अह्मदनगर जाते समय राहमें सुलतान द्वारा भेजी गई सेनाके साथ मुवारिज-उल-मुल्कको भेंट हुई। अब सबोंने मिल कर उक्त नगरमें राणाका मुकाबला करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा को। अतः अह्मदनगरमें कुल १२०० घुड़सवार और १००० पैदल सिपाही नगरकी रक्षाके लिये दुर्गमें रख वे लोग युद्धके लिये आगे बढ़े। राणाकी सेनाके नगर पहुंचने पर ४०० मुसलमान घुड़सवारने घुस कर एक एक कर सभीको यमपुर भेज दिया। यहां तक, कि ४०० सेनाने प्रायः २० हजार हिन्दू सेनाको छिन्न भिन्न कर बहुत दूर तक खदेरा था। किन्तु ऐसा प्रभाव दिखलाने पर भी कोई फल नहीं निकला। क्योंकि, राणाकी सैन्यसंख्या बहुत ज्यादा थी। मुवारिजके बन्धुवर्ग उसे अह्मदनगर दुर्गमें ले गये। वहां उन्होंने देखा, कि दुर्ग शत्रुओंके हाथ लग गया है। अब कोई रास्ता न देख मुवारिज उल-मुल्क वार्णी नगरको भागा।

अह्मदाबादके शासनकर्त्ता कियाम उल-मुल्क मुवारिज उल-मुल्ककी सहायतामें आ रहा था। किन्तु राहमें उसने सुना, कि अह्मदाबादके युद्धमें मुवारिज मारा गया। पीछे तीसरे दिन जब उसे मालूम हुआ कि यह संवाद सरासर झूठा है, तब मुवारिजको लानेके लिये आदमी भेजा। दोनों रावणपाल नामक ग्राममें मिल कर राणाका पीछा करनेकी तय्यारी करने लगे। किन्तु जब उन्होंने सुना, कि राणाने चित्तोरको यात्रा कर दी, तब मुवारिज उल् मुल्क फिरसे अह्मदनगर लौटा।

मुवारिज उल् मुल्क २य—१म मुवारिज उल् मुल्कका लड़का। इसका असल नाम युसुफ था। सम्राट् बहादुर शाहने निजाम खाँको मुवारिज-उल-मुल्ककी पदवी दी थी।

मुबालिगा (अ० पु०) बहुत बढ़ कर कही हुई बात, लंबी चौड़ी बात, अत्युक्ति।

मुबाहिसा (अ० पु०) किसी विषयके निर्णयके लिये होनेवाला विवाद, बहस।

मुमकिन (अ० वि०) सम्भव, जो हो सकता हो।

मुमतहिन (अ० पु०) परीक्षा लेनेवाला, इम्तहान लेनेवाला।

मुमुक्षा (सं० स्त्री०) मुक्तिमिच्छा, मुच-सन्, अ टाप्। मुक्तिकी इच्छा, मोक्षकी अभिलाष।

मुमुक्षु (सं० पु०) मोक्तुमिच्छतीति मुच-सन, तत उ। मुक्ति अभिलाषी, जो मुक्तिकी कामना करता हो।

"एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्म्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥"

(गीता ४।१५)

मुमुक्षुको चाहिये, कि वे निषिद्ध और काम्यकर्मका परित्याग कर श्रवण और मननादि द्वारा भगवत्की आराधनामें प्रवृत्त होवें।

मुमुक्षुता (सं० स्त्री०) मुमुक्षोर्भावः तल्-टाप्। मुमुक्षत्व, मुमुक्षका भाव या धर्म।

मुमुचान (सं० पु०) मुञ्चति जलं इति मुच्-(मुचियुधिभ्यां सन्वच्च । उण् २।९१) इति आनच् कित्, सन्वच्च । १ मेघ, बादल । २ वह जो मुक्त हो गया हो, वह जिसका मोक्ष हो गया हो।

मुमूर्षा (सं० स्त्री०) मर्तुमिच्छा मृ सन्, अ-टाप् । मरणेच्छा, मरनेकी अभिलाषा ।

मुमूर्षु (सं० त्रि०) मर्त्तुमिच्छुः मृ-सन् तत-उ । आसन्न मृत्यु, जो मर रहा हो ।

''व्यक्तं त्वं मर्त्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे ।
मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन् ननु स्युर्विक्लवागिरः ॥"

जीवके मुमूर्षुकाल उपस्थित होने पर शालग्राम शिलाके निकट उसे ले जाना चाहिये और वहां तुलसी-वृक्ष स्थापन कर उसे भगवन्नामामृत श्रवण कराना चाहिये। क्योंकि, जहां शालग्रामशिला रहती है, वहां स्वयं भगवान् विष्णु विराज करते हैं। उस जगह जीवके प्राणत्याग करनेसे वह विष्णुपदको पाता है। जहां शालग्रामशिला रहती है, वहांसे एक कोसके मध्य यदि जीव प्राणत्याग करे तो वह स्थान कीकट (मगध) देश भी क्यों न हो, तो भी जीवको वैकुण्ठकी प्राप्ति होती हैं।

तुलसीकाननमें यदि जीवका प्राणत्याग हो, तो उसके सभी पाप दूर होते हैं तथा वह विष्णुलोकको जाता है। मुमूर्षुकालमें जीवके मुखमें तुलसीदल और गङ्गाजल देना उचित है। इससे उसके सभी पाप नष्ट होते हैं और अन्तमें उसे सद्गति होती है।

मुमूर्षुकाल उपस्थित होने पर उसे गङ्गाके किनारे ले जाना उचित है। क्योंकि, गङ्गामें प्राणत्याग करनेसे मोक्ष होता है। काशीमें जल वा स्थल जिस किसी स्थानमें मृत्यु होनेसे जीव मोक्षको पाता है। सागरसङ्गममें जल, स्थल और अन्तरीक्ष कहीं पर मृत्यु क्यों न हो, मुक्ति अवश्य होती है।* गङ्गातटसे दो कोस तकका स्थान गङ्गाक्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्रके मध्य जिस किसी स्थानमें प्राणत्याग करनेसे गङ्गा-मृत्युका फल होता है।†

मरण और मृत्यु शब्द देखो।

मुमताजमहल—सम्राट् शाहजहांकी प्रियतमा महिषी। इसका असल नाम आर्जुमन्द बानो बेगम था। लोग इसे कुदसिया कहा करते थे। इसका पिता वजीर आसफ नूरजहांका भाई था। १५९२ ई०में यह पैदा हुई और १६१२ ई०में सम्राट् शाहजहांके साथ ब्याही गई। इसके गर्भसे अनेक सन्तान उत्पन्न हुई थीं। दक्षिण-देशके बुर्हानपुरमें रहने समय इसकी छोटी लड़की दहरा आरा १६३१ ई०की ७वीं जुलाईको पैदा हुई। इसके कुछ घंटे बाद ही इसका देहान्त हुआ। जैनाबादके सुरम्य उद्यानमें इसकी लाश पहले दफनाई गई थी। कुछ वर्ष बाद वह कङ्कालमय देहतरु आगरानगर लाया और वहीं गाड़ा गया। सम्राट् शाहजहां अपनी प्रियतमा महिषीके प्रति ऐकान्तिक अनुराग दिखानेके लिये उसके मकबरेके ऊपर विचित्र मर्मर पत्थरका बना एक सुरम्य और अत्याश्चर्य स्मृतिस्तम्भ स्थापन कर अपनी प्रीति और अनुरक्तिका जाज्वल्यमान निदर्शन छोड़ गये हैं। यही पृथिवीको मनुष्यकीर्त्तिका आश्चर्य स्मृतिमन्दिर ताजमहल है। इसके बनानेमें

---

* ''शालग्राम शिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ।
तत्सन्निधौ त्यजेत् प्राणान् याति विष्णोः परं पदम् ॥"

लिङ्गपुराण—

शालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः ।
कीकटेऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं नरः ॥" कीकटो मगधः

तुलसीकानने जन्तोर्यदि मृत्युर्भवेत् क्वचित् ।
स निर्भर्त्स्य यमं पापी लीलयैव हरिं विशेत् ॥
प्रयाणकाले यस्यास्ये दीयते तुलसीदलम् ।
निर्वाणं याति पक्षीन्द्र पापकोटि युतोऽपि सः ॥

कूर्मपुराणम्—

गङ्गायाञ्च जले मोक्षो वाराणस्यां जले स्थले ।
जले स्थले चान्तरीक्षे गङ्गासागरसङ्गमे ॥
गङ्गायां त्यजतः प्राणान् कथयामि वरानने ।
कर्णे तत्परमं ब्रह्म ददामि मामकं पदम् ॥"

† तथा—

'तीरात् गव्यूतिमात्रन्त परितः क्षेत्रमुच्यते ।
अत्र दानं जपो होमो गङ्गायां नात्र संशयः ।
अत्रस्थास्त्रिदिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥"

(शुद्धितत्त्व मुमूर्षुकृत्य)

साढ़े सात करोड़ रुपये खर्च हुए थे। ताजमहल स्थापत्य-शिल्पमें अद्वितीय कीर्त्ति है। १६५४ ई०में इसका निर्माणकार्य समाप्त हुआ। ताजमहल देखो।

मुमृताजसिकोह—सम्राट् शाहजहांका दूसरा लड़का।

मुम्मड़िदेव—एक जैनसूरि, अल्लाड़सूरिके पुत्र। यह संसार तरणी नामसे योगवाशिष्ठके स्थितिप्रकरणकी एक टीका लिख गये है।

मुम्बई—बम्बई देखो।

मुयस्सर (अ० वि०) मयस्सर देखो।

मुयाजम खाँ खानखाना—मीरजुम्ला देखो।

मुयाजम खाजा—सम्राट् अकबर शाहका मामा, हुमायूंकी स्त्री हमीदा बानो बेगमका भाई। यह बहुत दुर्वृत्त और दुश्चरित्र था। सम्राट्ने इसके असच्चरित्रके लिये कई बार इसे राज्यसे निकाल भगाया था। १५६४ ई०में इसने अपनी स्त्री फतीमा बीबीको विना किसी कारणके मार डाला, इस पर सम्राट्ने इसे कैद कर लिया और दूसरे वर्ष मरवा डाला।

मुयाजम महम्मद—बहादुरशाह देखो।

मुयासो—पश्चिम-बङ्गवासी असभ्य जातिविशेष। कमरुद्दीन उमूर खांने भाटघोरा आक्रमणकालमें इस जातिके साथ युद्ध किया था।

मुरंडा (हिं० पु०) १ भूने हुए गरमागरम गेहूंमें गुड़ मिला कर बनाया हुआ लड्डू, गुड़-धानी। (वि०) २ शुष्क, सूखा हुआ।

मुर (सं० क्ली०) मूर्यते इति मुर अन्यत्रापीति भावे क। १ वेष्टन, वेठन। (पु०) मुरति वेष्टतेऽसौ मुर-क। २ दैत्यविशेष। इसे विष्णु भगवान्ने मारा था, इसीसे उनका एक नाम 'मुरारि' पड़ा।

"शम्बरं द्विविदं वाणं मुरं बल्कलमेव च।
अन्यांश्च दन्तवक्रादीनवधीत् कांश्च घातयत्॥"
(भाग० ३।३।११)

मुरई (हि० स्त्री०) मूली देखो।

मुरक (हिं० स्त्री०) मुरकनेकी क्रिया या भाव।

मुरकना (हि० क्रि०) १ लचक कर किसी ओर झुकना, मुड़ना। २ फिरना, घूमना। ३ लौटाना, वापस होना। ४ विनष्ट होना, चौपट होना। ५ किसी अङ्गका किसी ओर इस प्रकार ... [illegible] ... न हो, मोच खाना। ६ हिचकना, [illegible]।

मुरका (हिं० पु०) १ बहुत ऊंचा और बड़े बड़े दांतोंवाला सुन्दर हाथी। २ गड़रियोंका भोज जो वे अपनी विरादरीको देते हैं।

मुरकाना (हिं० क्रि०) १ फेरना, घुमाना। २ लौटाना, घुमाना। ३ किसी अंगमें मोच लाना। ४ नष्ट करना, चौपट करना।

मुरकी (हिं० स्त्री०) कानमें पहननेकी छोटी बाली।

मुरकुल (हिं० स्त्री०) हिमालय और शिकिममें होनेवाली एक प्रकारकी लता। इसकी शाखाओंमेंसे एक प्रकारका रेशा निकलता है जिससे रस्सियां आदि बनाई जाती हैं। इसका दूसरा नाम 'बेरी' भी है।

मुरगण्ड (सं० पु०) मुरं वेष्टनमिव गण्डति रजति अनेन गण्ड-अच्। वरण्ड, मुंहासा।

मुरगा (फा० पु०) १ एक प्रसिद्ध पक्षी। यह सफेद, पीला आदि कई रंगोंका होता है। खड़ा होने पर इसकी ऊंचाई प्रायः एक हाथसे कुछ कम होती है। इसके नरके सिर पर एक कलगी होती है। लोग इसे घरमें पालते और मांस खाते हैं। इसके बच्चेको चूजा कहते हैं। विशेष विवरण कुक्कुट शब्दमें देखो। २ पक्षी, चिड़िया।

मुरगाबी (फा० स्त्री०) मुरगेकी जातिका एक पक्षी। यह जलमें तैरता और मछलियां पकड़ कर खाता है। यह पानीके भीतर कुछ देर तक गोता मार कर रह सकता है। इसके पर मुलायम होते हैं और नर मादा दोनों प्रायः एक-से ही होते हैं। जलकुक्कुट देखो।

मुरगाली (हिं० स्त्री०) मूर्वा।

मुरङ्गिका (सं० स्त्री०) मूर्वा।

मुरङ्गी (सं० स्त्री०) १ कृष्ण शिग्रुवृक्ष, काला सहिंजन। २ रक्तपुष्प शोभाञ्जनवृक्ष, लाल फूलवाला सहिंजन।

मुरचंग (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा। यह लोहेका बना होता और मुंहसे बजाया जाता है। इससे ताल भी देते हैं।

मुरचा (हिं० पु०) मोरचा देखो।

मुरची (सं० पु०) पश्चिम दिशाके एक देशका नाम।

मुरछना (हिं० क्रि०) १ शिथिल होना। २ अचेत होना, बेहोश होना।

मुरछल (हिं० पु०) मोरछल देखो।

मुरछा (हिं० स्त्री०) मूर्च्छा देखो।

मुरज (सं० पु०) मुरात् संवेष्टनात् जायतेऽसौ मुर-जन-ड। मृदङ्ग, पखावज।

मुरजफल (सं० पु०) मुरजवत् फममस्य। पनसवृक्ष, कटहलका पेड़।

मुरजित् (सं० पु०) मुरं जयति जि-क्विप्, तुक् च। मुर नामक राक्षसको जीतनेवाला, श्रीकृष्ण।

मुरझाना (हिं० क्रि०) १ फूल या पत्ती आदिका कुम्हलाना, सूखने पर होना। २ सुस्त हो जाना, उदास होना।

मुरड़ (हिं० पु०) अभिमान, अहंकार।

मुरड़की (हिं० स्त्री०) मरोड़ देखो।

मुरण्ड (सं० पु०) मुरेण वेष्टनेन अन्त इव गोलाकृतिरिव, शकन्ध्वादित्वादकारलोपः। १ लम्पक देश। २ वहांकी भूमि।

मुरतंगा (हिं० पु०) आसाम, बंगाल और चट्टग्राममें मिलनेवाला एक प्रकारका ऊंचा पेड़। इसके हीरकी लकड़ी लाल और कड़ी होती है। इससे सजावटके सामान बनाए जाते हैं।

मुरतहिन (अ० पु०) वह जिसके पास कोई वस्तु रेहन या गिरों रखी जाय, रेहनदार।

मुरता (हिं० पु०) पूर्वी बङ्गाल और आसाममें मिलनेवाला एक प्रकारका जंगली झाड़। इससे प्रायः चटाई वा सीतलपाटी बनाई जाती है।

मुरदर (सं० पु०) मुरारि, श्रीकृष्ण।

मुरदा (फा० पु०) १ मृतक, वह जो मर गया हो। (वि०) २ मृत, मरा हुआ। ३ जो बहुत ही दुर्बल हो। ४ मुरझाया हुआ, कुम्हलाया हुआ।

मुरदार (फा० वि०) १ मृत, अपनी मौतसे मरा हुआ। २ अपवित्र। ३ बेदम, बेजान। (फा० पु०) ४ वह जानवर जो अपनी मौतसे मरा हो और जिसका मांस खाया न जा सकता हो।

मुरदारी (फा० पु०) अपनी मौतसे मरे हुए जानवरका चमड़ा।

मुरदासंख (फा० पु०) औषधविशेष। यह फूंके हुए सीसे और सिन्दूरसे बनता है।

मुरदासिंघी (हिं० स्त्री०) मुरदासंख देखो।

मुरद्विष् (सं० पु०) मुरं द्वेष्टि द्विष् क्विप्। कृष्ण, मुरारि।

मुरधर (हिं० पु०) मारवाड़ देशका प्राचीन नाम।

मुरन्दला (सं० स्त्री०) मुरं वेष्टनं सेतुं दलति भिनत्ति, दल-अच् स्त्रियां टाप्। नर्मदा नदी।

मुरना (हिं० क्रि०) मुड़ना देखो।

मुरब्बा (अ० पु०) चीनी या मिसरी आदिकी चाशनीमें रक्षित किया हुआ फलों या मेवों आदिका पाक। यह उत्तम पदार्थोंमें माना जाता है। विशेष विवरण मिष्टपाक शब्दमें देखो। २ ऐसा चतुष्कोण जिसके चारों भुज बराबर हों। ३ किसी अंकको उसी अंकसे गुणन करनेसे प्राप्त फल, वर्ग। (वि०) ४ उसी अंकसे गुणन द्वारा प्राप्त, वर्गीकृत।

मुरब्बी (अ० पु०) १ पालन करनेवाला। २ आश्रयदाता, रक्षक। ३ सहायक, मददगार।

मुरमर्दन (सं० पु०) मुरं तन्नामानमसुरं मृद्नाति चूर्णीकरोतीति, मृद्-ल्यु। विष्णु, मुरारि।

मुररिपु (सं० पु०) मुरस्य रिपुः। मुरारि।

मुरल (सं० पु०) १ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। गुण—वृंहण, वृष्य, स्तन्य, और श्लेष्मवर्द्धक। २ प्राचीनकालका एक प्रकारका बाजा। इस पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता था।

मुरला (सं० स्त्री०) मुरं वेष्टनं लाति ला क। नर्मदा-नदी।

"मुरला मारुतोद्धूतमगमत् कैतकं रजः।"

(रघु० ४।५५)

२ केरल देशकी काली नामकी नदी।

मुरलिका (सं० स्त्री०) मुरली, बाँसुरी।

मुरली (सं० स्त्री०) मुरं अंगुलि वेष्टनं लाति प्राप्नोतीति ला क स्त्रियां ङीप्। बाँसुरी नामका प्रसिद्ध बाजा जो मुंहसे बजाया जाता है। संस्कृत पर्याय—वंशी, वंशिका, वंशनालिका, सानेयिका, सानेयी, सानिका, मुरलासिका। श्रीकृष्णजी इस मुरलिको बजाते थे।

"वादयन मुरलीं कृष्णः शृङ्गं वेनुं तथा परम्।
कात्यायनीं नमस्कृत्य हरिः पद्मदलेक्षणः ॥"
(राधातन्त्र)

२ आसाममें होनेवाला एक प्रकारका चावल।

मुरलीगञ्ज—विहार और उड़ीसाके भागलपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह दाउस वा कोशी नदीके किनारे बसा हुआ है। यहां नमक, चीनी, रुई, सोरे और लोहेका जोरों वाणिज्य चलता है। नदी तीरवर्त्ती घाटोंका सौन्दर्य वड़ा ही मनोरम है।

मुरलीधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, मुरल्याः धरः। श्रीकृष्ण।

"वैकुण्ठदक्षिणे भागे गोलोकं सर्वमोहनम्।
तत्रैव राधिका देवी द्विभुजो मुरलीधरः॥" (तन्त्रसार)

मुरलीधर—एक कवि, कालिदास मिश्रके पौत्र। कवीन्द्र-चन्द्रोदयमें इनका नामोल्लेख है। इनकी कविता बड़ी ललित होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं।

तूं लेरे नित राम नाम मन रे
गोकुल गरुड़ स्वामी गिरिधर रे।
नरोत्तम निरञ्जन निराकार तूं दर दर
दर दर दरनजा मुरलीधर का नित तू बर रे॥

मुरली मनोहर (सं० पु०) श्रीकृष्णका एक नाम।

मुरलीवाला (हिं० पु०) श्रीकृष्ण।

मुरवा (हिं० पु०) १ पैरका गिट्टा, एंड़ीके ऊपरकी हड्डी के चारों ओरका घेरा। २ एक प्रकारकी कपास जो तीन चार वर्ष तक फलती है।

मुरवैरी (सं० पु०) मुरस्य वैरी। मुरारि, श्रीकृष्ण।

मुरव्वत (अ० स्त्री०) मुरोवत देखो।

मुरशिद (अ० पु०) १ गुरु, पथदर्शक। २ पूज्य, माननीय। ३ धूर्त्त, चालाक।

मुरसुत (सं० पु०) मुर दैत्यका पुत्र वत्सासुर।

मुरस्सा (अ० वि०) जड़ित, जड़ा हुआ।

मुरस्साकार (अ० पु०) वह जो गहनोंमें नग या मणि जड़ता हो।

मुरस्साकारी (अ० स्त्री०) गहनोंमें नग वा मणि जड़नेवाला, जड़िया।

मुरहा (सं० पु०) मुरं हन्ति हन क्विप्। विष्णु, कृष्ण।

मुरहा (हिं० वि०) १ जो मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ हो। ऐसा बालक माता पिताके लिये दोषी माना जाता है। २ जिसके माता पिता मर गए हों, अनाथ। ३ उपद्रवी, नटखट।

मुरहारी (सं० पु०) मुर दैत्यको मारनेवाला विष्णु वा श्रीकृष्ण।

मुरा (सं० स्त्री०) मुरति सौरभेन वेष्टयति मुर इगुपधत्वात् क टाप् च। १ एक प्रसिद्ध गंधद्रव्य जिसे एकाङ्गी या मुरामांसी भी कहते हैं। पर्याय—तालपर्णी, दैत्या, गन्धकुटी, गन्धिनी, गन्धकटी, सुरभि, शालपर्णिका। गुण—तिक्त, शीतल, स्वादु, लघु, पित्त और वायुनाशक, ज्वर, असृक, भूतादिदोष तथा कुष्ठ और कासनाशक। इसका [illegible] गुण—अलक्ष्मी, रक्ष और ज्वरनाशक। २ कथासरित्सागरके अनुसार उस नाइनका नाम जिसके गर्भसे महानन्दके पुत्र चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुए थे।

मुराड़ा (हिं० पु०) जलती हुई लकड़ी, लुआठा।

मुराद (अ० स्त्री०) १ अभिलाषा, इच्छा। २ अभिप्राय, आशय।

मुराद (१म सुलतान)—तुरुष्कका ओसमान वंशीय तीसरा सम्राट्। यह मुराद खां गाजी और स्वावान्दगार रूम नामसे मशहूर था। १३५९ ई०में पिता अर्खानके मरने पर यह तुर्क-सिंहासन पर बैठा। यह कठोर प्रकृतिका आदमी था। अपने पुत्र और अधीनस्थ कर्मचारियोंके प्रति यह निष्ठुरताको पराकाष्ठा दिखा गया है।

यह एक विख्यात योद्धा था। ३७ युद्धोंमें जयलाभ करके इसने मुसलमान साम्राज्यका विस्तार किया था १३६० ई०में दलवलके साथ यूरोप जा कर एड्रियानोपलमें राजधानी बसाई। अङ्गरेजी इतिहासमें यह आमुराथ रूम नामसे मशहूर है। १३८९ ई०में जब इसकी उमर ७१ वर्षकी थी तब रणक्षेत्रमें एक योद्धाके हाथसे इसकी मृत्यु हुई। यह (किसीके मतसे इसका पिता) जानीसारी नामक दुर्द्धर्ष मुसलमान सेनादलको स्थापन कर गया है।

मुराद (२य सुलतान)—तुरुष्कका एक सम्राट्। पिता १म महम्मदकी मृत्युके बाद १४२२ ई०में यह तुर्कके सिंहासन पर बैठा। इसने ही सबसे पहले रणक्षेत्रमें

कमानका व्यवहार किया था। १४४३ ई०में अपने पुत्र द्वितीय महम्मदको राज्यभार सौंप आप घोर चिन्तामें समय बिताने लगा। किन्तु पुत्रको राजकार्य चलानेमें असमर्थ देख वह फिरसे राजसिंहासन बैठा। इस समय इसने विख्यात योद्धा सिकन्दर बेगको परास्त किया और हंगेरियोंको छिन्न भिन्न कर डाला। विख्यात ऐतिहासिक गिवनके मतसे १४५१ ई०में इसकी मृत्यु हुई। इसके पुत्र महम्मदने कुस्तुनतुनियाको जीता था।

मुराद (३य सुलतान)—एक तुर्क सुलतान। पिता २य सलीमके मरने पर १५७४ ई०में यह कुस्तुनतुनियाके सिंहासन पर बैठा। पारस्यराजसे इसने अर्मेनिया, मिदिया और तौरी नगर तथा हंगेरी-राजसे गियानो जीता था। १५९५ ई०में इसकी मृत्यु हुई। यह फतुहत उस-सियाम नामसे एक ग्रन्थ लिख गया है।

मुराद (४र्थ सुलतान)—एक तुर्क सम्राट्; १म अहमदका पुत्र। १६२३ ई०में चचा मुस्ताफाको राज्यच्युतिके बाद यह कुस्तुनतुनियाके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुआ। १६३७ ई०में इसने बोगदाद नगरको जीता था। १४४० ई०में अधिक शराब पीनेके कारण इसका देहान्त हुआ।

मुरादअली—एक मुसलमान कवि। यह बहुत-सी कविता लिख गया है जिनमेंसे एक नीचे देते हैं।

"मत करोरे कोई बात अयानी ऐसी बातां
का रब निगहबानी।
समझ समझ कर मुखते निकासो
निकसी बात और हुई है बेगानी।
मुरादअली अब सांची कहत है
किस गिरते पर तत्ता पानी। ॥"

मुराद वक्स—गुजरातका एक सुलतान, सम्राट् शाहजहांका छोटा लड़का। सम्राट्ने इसे गुजरात, ठट्ट और भोखर प्रदेशका शासनकर्त्ता बनाया था। सम्राट् आलमगीरने इसे पकड़ा और वन्दीभावमें ग्वालियर दुर्ग भेज दिया। १६४२ ई०में औरङ्गजेबके आदेशसे यह दुर्गमें मार डाला गया।

मुराद मिर्जा—सम्राट् अकबर शाहका दूसरा लड़का। फतेपुर सिकरीमें सेख सलीम चिस्तीके घर १५७० ई०में इसका जन्म हुआ था। १५९५ ई०में सुलतान मुराद पिताके कहनेसे दाक्षिणात्य जीतनेको गया। यहां १५९९ ई०में इसकी मृत्यु हुई।

मुरादनगर—युक्तप्रदेशके मीरट जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह मीरट नगरसे ९ कोस पश्चिममें अवस्थित है। ३री सदीके पहले मिर्जा महम्मद मुराद मुगलने इस नगरको बसाया। उसकी बनाई हुई एक बड़ी सराय और मसजिद आज भी इसकी प्राचीन समृद्धि घोषणा करती है।

मुरादाबाद—युक्तप्रदेशके रोहिलखण्ड विभागका एक जिला। यह अक्षा० २८° २०' से २९° १६' उ० तथा देशा० ७८° ४' से ७९° ०' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २२८५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बिजनौर और नैनीताल, पूर्वमें रामपुर राज्य, दक्षिणमें बुदौन और पश्चिममें गङ्गानदी है।

इस जिले हो कर गङ्गा, सोत और रामगङ्गा नदी बहती है। नदीतीरवर्ती तथा ग्रामसन्निहित स्थानोंमें खेतीबारी होती है। अन्यान्य स्थान प्रायः जङ्गलमय है। रघुवाला और बहारपुरमें दो बड़े बड़े पहाड़ नजर आते हैं। सोत नदीमें सभी समय जल रहता है। नदीमें सेवार बहुत है, इस कारण नाव ले जानेमें बड़ी दिक्कत होती है। अलावा इसके दाम और शेवला नदीका जल दूषित होनेके कारण लोगोंका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। यहां मलेरिया ज्वरका अधिक प्रकोप देखा जाता है। उस समय खेतीहर अपने अपने खेतोंसे यथासमय अनाज काट कर नहीं ला सकते।

बहुत पहलेसे ही रोहिलखण्ड विभाग पाञ्चालके अहीर राजाओंके अधिकारमें चला आ रहा था। इस जिलेके दक्षिणपूर्व अंशमें आज भी अहीर लोग कुछ परगनोंका भोग कर रहे हैं। बरेलीके अन्तर्गत अहिच्छत्रापुरीमें उनकी राजधानी थी। पीछे मुरादाबादके सम्बलनगर जब वाणिज्य-व्यवसायसे बहुत उन्नत हो गया, तब राजधानी यहीं पर उठा कर लाई गई।

चीनपरिव्राजक यूएनचुवंग ७वीं सदीके आरम्भमें काशीपुर और अहिच्छत्रा नगरको देख गये हैं। किन्तु उन्होंने सम्वल-राजधानीका कोई उल्लेख नहीं किया है। भारतवर्षमें मुसलमानी अमलके कुछ समय

बाद ही यह स्थान स्थानीय शासन केन्द्ररूपमे ले लिया गया। १२६६ ई०पे गयासुद्दीन बलबनने इस जिले पर चढ़ाई कर दी। अमरोहा जीत कर उसने हिन्दू अधिवासियोंको कत्ल करनेका हुकुम दे दिया। कठा रोहिल खण्ड)-के राजाराय ककराने जब स्थानीय शासनकर्त्ता का काम तमाम किया, तब १३६५ ई०में फिरोज तुगलकने उस पर हमला कर दिया। सम्राट्के आनेकी खबर सुन कर राय ककरा डर गया और कुमायुनकी ओर भागा। अनन्तर सम्राट्ने उसकी राजधानीको लूट कर मालिक खिताब नामक एक मुसलमानके हाथ वहांका शासनभार सौंपा और आप दिल्लीको चल दिये। १४०३ ई०मे जौनपुरका विख्यात सुलतान इब्राहिम सम्बल नगरको जीत कर वहां अपना प्रतिनिधि छोड़ आया। इसके चार वर्ष पीछे दिल्लीश्वर फिरोज तुगलकने जौनपुरके राजाको हरा कर यह स्थान दिल्लीमें मिला लिया। १४७३ ई०में जौनपुर-राजवंशधर सुलतान हुसेनने सम्बल नगरमे अपनी विजय पताका फहराई थी। इसके बाद १४९८ ई०में सम्राट् सिकन्दर लोदीने इस जिलेको फिरसे जीत कर दिल्ली साम्राज्यमे मिला लिया। सम्राट् सिकन्दर चार वर्ष तक सम्बलनगरमें रहे थे। पीछे इस स्थानका शासन कार्य दिल्ली-सरकारके अधीन सामन्त सरदारों द्वारा परिचालित होने लगा।

१६वीं शताब्दीके मध्य भागमे सम्बलके शासनकर्त्ता अहिया मरणने सुलतान महम्मद आदिलके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। उसका दमन करनेके लिये दिल्लीश्वरने सेना भेजी थी। किन्तु युद्धमें शाही सेना हार कर भागी। दूसरे वर्ष कठारिया सरदार राजा मित्रसेनके सम्बलनगर पर चढ़ाई करनेसे अहिया मरणने उनके विरुद्ध युद्धयात्रा की। कुण्डारखो नामक स्थानमें दोनों दलमें घनघोर युद्ध हुआ। आखिर मित्रसेन हार कर भागे।

सम्राट् हुमायुन्के शासनकालमें अली कुली खाँ सम्बलका शासनकर्त्ता था। इस समय स्वाधीन कठारियोंने बागी हो कर सम्बल नगर पर चढ़ाई कर दी। मुगल शासनकर्त्ताके हाथ हिन्दूसेनादल अच्छी तरह पराजित हुआ था। १५६६ ई०मे तैमुरके वंशधर कुछ मिर्जाने सम्राट् अकबर शाहके विरोधी हो कर सम्बलके राजकर्मचारियोंको परास्त और सम्बल दुर्गमे कैद किया। इस संवादसे उत्तेजित हो बादशाहने हुसेन खाँ नामक एक सेनापतिको उन लोगोंके विरुद्ध भेजा। मुगल-सेनाके पहुंचने पर वे सम्बलपुरको छोड़ कर अमरोहाकी ओर भाग गये। मुगल-सेनापतिके पीछा करने पर उन्होंने गङ्गा नदी पार कर जान बचाई।

सम्राट् शाहजहांने रुसतम खाँ नामक एक मुसलमानको कठार प्रदेशका शासनकर्त्ता बनाया। उसने १६२५ ई०में पहले अपने नाम पर, कुछ वर्ष पीछे उसे बदल कर मुराद शाहके नाम पर मुराद नगर बसाया था। शाहजादा मुराद पीछे औरङ्गजेबके हाथ मारा गया।

औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद जब मुगल-शक्तिका ह्रास हुआ, तब कठारिया लोग विद्रोही हो कर कुछ समयके लिये स्वाधीनता रक्षामें समर्थ हुए थे। इस समय मुसलमान शासनकर्त्ता कन्नौज नगरमे राजपाट उठा ले गये। १७२५ ई०में सम्राट् महम्मदशाहने इस प्रदेशको पुनः जीत कर मुरादाबादमें मुगल-सहकारी नियुक्त किया था। इसके बाद प्रायः ११ वर्ष तक रोहिलोंके दिल्ली सम्राटोंकी अधीनता स्वीकार करने पर भी सच पूछिये तो वे यहां स्वाधीनभावमें शासनविधिकी रक्षा कर गये हैं।

१७४४ ई०मे मुरादाबाद अयोध्याके वजीरके हाथ आया। १८०१ ई०में अंगरेजोंने इस पर अपना अधिकार जमाया। पीछे १८५७ ई०के गदर तक यहां कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई।

उसी सालकी १२वीं मईको मीरटका विद्रोह संवाद यहां तक फैल गया। १८वीं मईको मुजफ्फर नगरका विद्रोहि-दल पकड़ा गया। दूसरे दिन २९ नं०के देशी पदातिक दलने विद्रोही हो कर कारागारको तोड़ फोड़ डाला। २१वीं मईको उन्होंने अश्वारोही सेनादलके साथ मिल कर रामपुरके विद्रोहियोंको मार भगाया। ३१ मईको रामपुरका घुड़सवार-दल बुलन्दशहरसे लौटा। दूसरे दिन बरेली और शाहजहान्पुर जा विद्रोहसंवाद जब मुरादाबादके चारों ओर फैल गया, तब २९ नंकी देशी पदाति दलने अङ्गरेज कर्मचारियोंके ऊपर गोला बरसाना शुरू कर दिया। अङ्गरेज-दल कोई उपाय न

देख मीरटको भागा। उसके दश दिन बाद बरेली-ब्रिगेड मुरादाबाद पहुंचा। उन्होंने स्थानीय विद्रोहियों-को साथ ले दिल्ली पर चढ़ाई की। जून मासके अन्तमें रामपुरके नवाबने अंग्रेजोंकी ओरसे इस जिलेकी शान्ति रक्षाका भार ग्रहण किया। किन्तु विद्रोहियोंके ऊपर वे अपना प्रभुत्व जमा न सके। मजू खां नामक एक विद्रोहि-नेता यथार्थमें मुरादाबादका शासनकर्त्ता था। १८५८ ई०में जेनरल जोन्सके अधीनस्थ ब्रिग्रेड सेनादल के पहुंचने पर यहां शान्ति स्थापित हुई। पीछे अङ्गरेजों की देखरेखमें इस स्थानकी बहुत कुछ उन्नति हुई है।

मुरादाबाद नगर यहांका विचार सदर है। अलावा इसके अमरोहा, चन्दोसी, सम्बल, सराइतरणी, हसनपुर, बछरौन, मौनगर, मिर्सा, ठाकुरद्वार, धानवारा, अघवनपुर, मोगलपुर और नरोलो नगर आदिमें स्थानीय वाणिज्य की बहुत कुछ उन्नति देखी जाती है।

गङ्गा और रामगङ्गा नदीमें बाढ़ आ कर कभी कभी शस्यादिको नष्ट कर देती है। अङ्गरेजोंके दखलमें आने-के बादसे ले कर आज तक यहां छः बार दुर्भिक्ष हुआ है। १८०३ ई०में यहां प्रथम बार दुर्भिक्ष हुआ। जलाभाव-रूप प्राकृतिक दुर्घटना इसका मूल कारण नहीं थी। इस समय महाराष्ट्र सेनादलने यहां ऊधम मचाया था जिससे अनाजको बड़ी क्षति हुई थी। इसके बाद पिण्डारी डकैत-सरदार अमीर खांके अत्याचारसे भी इस स्थान को दुरवस्था दूनी बढ़ गई थी। अनन्तर १८२५ और १८३७-३८ ई०में यहां द्वितीय और तृतीय बार दुर्भिक्ष दिखाई दिया। सिपाहीविद्रोहने देशको और भी उजाड़-सा बना दिया। १८६४ ई०में चौथी बार दुर्भिक्ष-देव फिरसे उपस्थित हुए। इस समय मुरादाबादके अधिवासियोंको आमकी गुठली खा कर प्राणधारण करना पड़ा था।

इसके बाद १८६८-६९ और १८७७-७८ ई०में फिरसे दुर्भिक्षका सूत्रपात हुआ। गवर्मेण्टके बहुत यत्न करने-पर भी लोगोंका अन्नकष्ट दूर नहीं हुआ। इस समय अर्थ और खाद्य सामग्रीके अभावसे राजपूताने आदि दूर देशवासी बहुतसे लोग यहां आये जिससे यहांके दुर्भिक्षने और भी भीषण आकार धारण किया।

यहां अवध रोहिल खण्ड रेलवेके रहने तथा चन्दौसी बिलावी, कुण्डारखि, खरगपुर, मुरादाबाद, मोगलपुर, मुस्ताफापुर और कायड आदि नगरोंमें स्टेशन होनेके कारण रेलपथ द्वारा वाणिज्यकी बड़ी सुविधा हो गई है। इसके सिवाय मीरठ, बरेली, अनुपशहर और नैनी-ताल आदि स्थानोंमें जाने आनेके लिये पक्की सड़क है। चन्दौसीसे अलीगढ़ तक रेलवे लाइन दौड़ गई है।

इस जिलेमें १५ शहर और २४५० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १० लाखसे ज्यादा है। शहरोंमें मुरादाबाद, चन्दौसी, अमरोहा और सम्बल प्रधान है। यहांकी मुख्य उपज गेहूं, जुआर, बाजरा, धान, ईख, कपास, तेलहन और पटसन है। विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पीछा पड़ा हुआ है। अभी कुल मिला कर ३५० पबलिक और ३०० प्राइभेट स्कूल हैं। मुरादा-बाद शहरमें शिक्षकके लिये नारमल स्कूल है। स्कूलके अलावा १५ अस्पताल भी हैं।

२ मुरादाबाद जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २८° ४१' से २९° ८' उ० तथा देशा० ७८° ४२' से ७९° पू०-के मध्य अवस्थित है। रकबा ३१३ वर्गमील और आबादी ढाई लाखके करीब है। इसमें ३ शहर और २९२ ग्राम लगते हैं।

३ मुरादाबाद जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षा० २८° ४१' उ० तथा देशा० ७८° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। यह शहर कलकत्तासे रेलवे द्वारा ८६८ मील और बम्बईसे १०८७ मील दूर पड़ता है। जनसंख्या दिनों दिन बढ़ रही है। अभी कुल मिला कर ७५ हजारसे ऊपर है जिसमें मुसलमानोंकी संख्या ज्यादा है। १६२४ ई०में सम्राट् शाहजहान द्वारा नियुक्त केतरके शासनकर्त्ता रुस्तम खांने युवराज मुराद बखशके नामसे इस नगरको बसाया। रामगङ्गाके किनारे रुस्तम खां एक दुर्ग बना गया है। इसके सिवा १६३४ ई०में निर्मित जुम्मा मसजिद और शासनकर्त्ता अजमतउल्ला खांका मकबरा देखने लायक है। शहरमें एक म्युनिसिपल हाल, एक तहसीली अस्पताल और एक गिरजा है। १८८१ ई०में स्टेशनके समीप एक अनाथालय और कुष्ठाश्रम खोला गया है। शहरमें हाई स्कूल, सिकेण्ड्री और प्राइमरी स्कूलके सिवाय शिक्षकोंका एक ट्रेनिङ्ग स्कूल भी है।

मुरादी (फा० पु०) वह जो कोई कामना रखता हो, आकांक्षी।

मुराफा (फा० पु०) छोटी अदालतमें हार जाने पर बड़ी अदालतमें फिरसे दावा पेश करना, अपील।

मुरार (हि० पु०) कमलनाल, कमलकी जड़।

मुरार—हिन्दीके एक कवि, हास्यरसकी यह बहुत-सी कविता लिख गये हैं जिनमेंसे एक नीचे देते हैं।

> मोरे भोरे ही आये हैं सैंयां।
> मैं दौर झपटके परि हूं पैंयां
> डार फिरों गर बहियां॥
> बहुत दिनन पाछे पायो मैं सैंया
> नित उठ लेहों बलैया।
> हाहा करत हूं कर जोरत
> हूँ-अब न बिसारो गुसैंयां॥
> अन्तकाल जिन तोरा गुसैंयां
> जैसे गहो मोरि बहियां।
> मुरार पिया अब लाज राखिया
> सङ्ग एक ही ठैयां॥

मुरारई—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २४° २७' १५" उ० तथा देशा० ८७° ५४' पू०के मध्य विस्तृत है। यहां इष्ट-इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन है।

मुरारि (सं० पु०) मुरस्य अरिः। १ श्रीकृष्ण।

> "मुरः क्लेशे च सन्तापे कर्मभोगे च कर्मिणाम्।
> दैत्यभेदेऽप्यरिस्तेषां मुरारिस्तेन कीर्त्तितः॥"
>
> (ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्मख० ११० अ०)

मुर शब्दका अर्थ क्लेश, सन्ताप, कर्मियोंका कर्मभोग और दैत्यभेद है। भगवान् विष्णु इन सबके नाश करनेवाले हैं, इसीसे इनका नाम 'मुरारि' पड़ा। इस मुरारि नामका स्मरण करनेसे जीवके क्लेश और सन्ताप आदि अति शीघ्र नष्ट होते हैं। वामनपुराणके ५३ ५८ अध्यायमें भगवान् विष्णु द्वारा मुर नामक राक्षसके मारे जानेका प्रसङ्ग है।

२ अनर्घराघव नामक ग्रन्थके प्रणेता। इस ग्रन्थका नामोल्लेख नवम शतकके रत्नाकर कविने अपने हरविजय नामक काव्यमें किया है।

मुरारिगुप्त—चैतन्य महाप्रभुके एक शिष्य। ये वैद्यवंशीय और श्रीचैतन्य महाप्रभुके एक देशवासी थे। चैतन्य भागवतमें लिखा है, कि मुरारिका घर श्रीहट्टमें था।

मुरारि उच्च शिक्षा पानेके लिये नवद्वीप गये और धीरे धीरे वहांके अधिवासी हो गये। मुरारि और निमाई पण्डित बचपनमें गङ्गादास पण्डितके टोलमें एक ही साथ पढ़ते थे। वैष्णव ग्रन्थमें मुरारि और निमाईके सम्बन्धमें बहुत-सी गल्पें लिखी हैं।

ठाकुर नरहरि जिस प्रकार सबसे पहले गौरलीलाका पद रच कर यशस्वी हो गये हैं, मुरारिने भी सबसे पहले उसी प्रकार गौरलीलाका आदि ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थका नाम 'चैतन्यचरित' है जो संस्कृत भाषामें १४३५ शकमें रचा गया है।

> "चतुर्दशशताब्दान्ते पञ्चत्रिंशतिवासरे।
> आषाढ़े सितसप्तम्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः॥"
>
> (चैतन्यचरित)

श्रीचैतन्यदेवकी उमर जब २८ वर्ष थी उसी समय मुरारिने उक्त ग्रन्थ लिखा था। वे बचपन होसे महाप्रभुके साथी थे, प्रभुकी जो सब अद्भुत घटनाएं इन्होंने आंखों देखी थीं उन्हींका अधिकांश इस ग्रन्थमें लिखा गया है। इसलिये ऐतिहासिक अंशमें इस ग्रन्थका मोल ज्यादा है।

लोचनदास ठाकुरका चैतन्यमङ्गल प्रधानतः इसी ग्रन्थके आधार पर लिखा गया है। वे अपने ग्रन्थमें इस बातको स्वीकार कर गये हैं।

मुरारिदान—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि। ये जोधपुरनरेशके आश्रयमें रहते थे और उनके राज्यके एक ऊँचे कर्मचारी भी थे। इन्होंने यशवन्त यशोभूषण नामक अलङ्कारका एक उत्तम तथा भारी ग्रन्थ ८५१ पृष्ठोंका संवत् १९५० के लगभग बनाया। यह ग्रन्थ संवत् १९५४ ई०में प्रकाशित हुआ। आप संस्कृतके एक अच्छे पण्डित थे और अलङ्कारोंके शुद्ध लक्षण निरूपण करनेमें आपने अच्छा श्रम किया है तथा उत्तम पाण्डित्य दिखाया है। करीब २५ वर्ष हुए, आप इस लोकसे चल बसे। आपकी कविता सरस होती थी, उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं।

"कैसी अलीकी भली यह बानि है देखिये पीतम ध्यान लगाय कै।
छांक गुलाब मधूसों मुरारि सु बेलि नवेलिनमें बिरमाय कै॥
खेलत केतकी जाय जुहीन मैं केलत मालती वृन्द अघाय कै।
आनर्फो जोवत खोवत दौस पै सोवत हैं नलिनी संग आय कै॥"

मुरारिदासजी—एक कविराज। ये सूरजमल कविराजके दत्तक पुत्र थे। इनका संवत् १८६५में बूंदीमें जन्म हुआ। मृत्यु-संवत् १९६४। ये संस्कृत, प्राकृत, डिंगल तथा हिन्दी भाषाके अच्छे ज्ञाता और कवि थे। इन्होंने बूंदीनरेश रामसिंहजीकी आज्ञासे वंशभास्करको पूरा किया जिस पर इन्हें बड़ा पुरस्कार दिया गया। इन्होंने वंशसमुच्चय तथा डिंगलकोष नामक ग्रन्थ बनाये। इनकी कविता प्राकृत-मिश्रित ब्रजभाषामें होती थी।

मुरारिभट्ट (सं० पु०) १ सारसंग्रहके प्रणेता। २ तर्कभाषाटीकाके रचयिता। ये गङ्गाधरके पुत्र और तर्कभाषा प्रकाशिकाके प्रणेता कौण्डिन्यके गुरु थे।

मुरारिमिश्र (सं० पु०) १ शङ्कराचार्यके एक प्रतिद्वन्द्वी। माधवकृत संक्षेप शङ्करजय ग्रन्थमें इनका उल्लेख है। २ वर्द्धमानकृत न्यायकुसुमाञ्जलिके एक टीकाकार। ३ अङ्गत्वनिरुक्ति नामक मीमांसा ग्रन्थके रचयिता। ४ इष्टिकालनिर्णय, पर्वनिर्णय, पारस्करगृह्यसूत्र मन्त्रभाष्य, प्रायश्चित्तमनोहर और शुभकर्म-निर्णयके प्रणेता। शेषोक्त ग्रन्थ इन्होंने राजा त्रिविक्रमनारायणकी सभामें रह कर लिखा था।

मुरारि श्रीपति सार्वभौम—पदमञ्जरी नामक संस्कृत अभिधानके प्रणेता।

मुरारी (सं० पु०) मुरारि देखो।

मुरारे (सं० पु०) हे मुरारि।

मुराव (मौर्य)—कृषिजीवि जातिविशेष। ये लोग अपनेको सूर्यवंशी क्षत्रिय बतलाते हैं। मुराई, मुराऊ और मोरी आदि शब्द इसके रूपान्तर हैं। शुद्ध संस्कृत शब्द 'मौर्य' है जो देश देशकी भाषा और भिन्न भिन्न बोलीके कारण पूर्वी बोलीमें परिणत हो कर 'मुराव' हो गया है। अग्निकुलके प्रमारवंशकी ३५ शाखाएं हैं जिनमेंसे एक मौर्य नामकी शाखा है। इस मौर्यवंशमें सम्राट् चन्द्रगुप्त और अशोक आदि चक्रवर्त्ती राजे हुए हैं। उनकी राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) में थी। गहलोत-वंशके राजाओंसे पूर्व चित्तोरमें भी इस वंशके बड़े बड़े प्रतापी राजा हुए हैं जिन्होंने सम्वत् ५४० से ७८४ तक चित्तोरका शासन किया। चित्तोरके मौर्यवंशीय महाराज मानको बाप्पा रावलने जिसकी माता प्रमार और पिता गहलोत था, अन्य सामन्तोंकी सहायतासे गद्दीसे उतार कर स्वयं राज्य करना प्रारम्भ किया। आज कलके मुराव लोग इन्हीं मौर्य महाराजाओंके वंशज हैं।

मुराव नामनिरुक्तिके सम्बन्धमें मतभेद देखा जाता है। ब्रूक साहब मूली शब्दसे मुराव नामकी उत्पत्ति बतलाते हैं, पर इसे ये लोग युक्तिसंगत नहीं समझते, क्योंकि मूलीकी खेती प्रायः सभी जाति करती हैं। फिर कोई कहते हैं, कि चौहानवंशमें मुरारि दास आगरेका राजा था और उसके वंशजोंका नाम मुराव हुआ। परन्तु यह भी ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इससे मुराव जाति चौहानोंकी शाखा ठहरती है।

इन लोगोंका कहना है, कि "मुराव लोग मौर्य सम्राट् महाराज चन्द्रगुप्त हीके वंशज हैं और यह मौर्य-वंशज ही देशमें भिन्न भिन्न स्थानोंमें फैल कर भिन्न भिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हो गये। मौर्य शब्द देखो। फर्रुखाबादके समीप ही संकोसा नामका एक प्राचीन स्थान है। वहां मुरावोंके पूर्वज राजा शाक्यने तपस्या की थी। वही राजा शाक्य विद्वानों द्वारा शाक्यमुनि कहे जा कर सम्बोधन किये गये हैं और उन्हींकी संतान आज कल 'शाक्यवंशी मुराव' याने 'सकसेना मुराव'-का एक भेद है। वहां राजा शाक्यमुनिका आश्रम था। मेवाड़ राज्यके अन्तर्गत चित्तोर भी मौर्य वंशजोंका बसाया हुआ है। इसीके समीप चन्द्रगुप्तको "मौर्य यानशाला' थी जहांके कारखानेमें 'मौर्ययान' बनते थे। यहां ही मौर्यराजे विशेष रूपसे रहते थे। यह स्थान पहले मौर्ययानके नामसे प्रसिद्ध था, पर अभी 'मोरवन' कहाता है।"

मुरावोंके भेद—जाति अनुसन्धानकारियोंके मतसे मुराव, काछी और कोइरी यह तीनों जातियां एक ही हैं, केवल नाममात्रकी भिन्नता है। यह सब एक ही वंशकी शाखाएं हैं। यह तीनों जातियां अपनी चाल ढाल और रीति रिवाजके कारण एक प्रतीत होती हैं। इनमें दूसरेके साथ विवाह तथा खान-पान आदिका

सम्बन्ध होता है। इन जातियोंके भेद और उपभेद प्रायः एक हीसे हैं। कुल मिला कर २३८ भेद हैं, जैसे,—भदोरिया, भगत व भक्त, हरदियां, काछी, कन्नौजिया, कछवाहा, शाक्यसेनी (सक्सेना), ठकुरिया सनेराहा, वागवांन, वकन्दर, मीठा, भूंकरवाल, पूर्विया, वेहमन, ठकुलिया, सक्टा, पछवाहा, मालिकपुरी आदि।

सूर्यवंशमें महानन्दके पुत्र अत्यन्त पराक्रमी चन्द्रगुप्त नामक राजा हुए। वे श्रेष्ठ धर्मका अवलम्बन करने वाले, गुणज्ञ कृतज्ञ और वेदशास्त्रवेत्ता थे। चन्द्रगुप्त और प्रियदर्शी देखो। इन्हींके वंशमें आज कलकी मुराव जाति है।

मुरासा (हिं० पु०) कर्णफूल, तरकी।

मुरासापुर—अयोध्या प्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह रायबरेलीसे माणिकपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां स्थानीय उत्पन्न अनाजों-की बिक्रीके लिये एक बड़ी हाट है। प्रति वर्ष दुर्गापूजाके समय एक मेला लगता है। सूती कपड़ेकी छींट तैय्यार होनेके कारण यह स्थान प्रसिद्ध है।

मुरासा रकम—लखनऊवासी एक मुसलमान कवि। इसका असल नाम मीर महम्मद आता हुसेन खां था। नवाव मनसूर अली खाँ सफदरजङ्गके आश्रयमें रह कर इसने जराइत अङ्गरेजी तारीख, काशिमी, इनसाए तहीमन और नौतरज-मुरासा तथा १७७५ ई०में नवाव आसफ उद्दौलाके राजत्वके प्रारम्भमें उर्दू भाषामें चहार-दरवेश-की रचना की।

मुरियारी— विहारकी मल्लाह जातिकी एक श्रेणी। कोई कोई इन्हें केवट जाति कहते हैं। प्रवाद है, कि इनके पूर्वपुरुष कालिदास दक्षिण देशसे विहारमें आये थे।

इनमें वाल और यौवन दोनों प्रकारका विवाह प्रचलित है। साधारणतः बचपनमें ही कन्याका विवाह हुआ करता है। बहुविवाह अवस्थाके अनुसार प्रचलित है। जो जितनी पत्नियोंका भरण पोषण करनेमें समर्थ है वह उतने ही विवाह कर सकता है। सगाईके मतसे विधवा-विवाह प्रचलित है। मृत स्वामीके कनिष्ठ भाई-के रहते विधवा उसीसे ब्याह करती है। इनमें विवाह-च्छेद या तल्लाक देनेका दृष्टान्त नहीं है।

धर्मविषयमें ये लोग बहुत सावधान रहते हैं। मैथिल ब्राह्मण इनकी पुरोहिताई करते हैं, इसीसे इन्हें समाज-का निन्दाभाजन नहीं होना पड़ता। छोटे देवतामें वन्दी, परमेश्वरी और पांचपीर ही प्रधान हैं। जहां ठाकुरपूजा होती है, उस घरको ये लोग गोसांईघर कहते हैं। जब कभी जरूरत पड़ती, तब उस स्थानका गोबरसे लीप पोत कर फल, पान और मिष्टान्नादिसे देवताकी पूजा करते हैं।

मुरियारि लोग प्रायः कुर्मियोंके जैसे हैं। ब्राह्मण इनके हाथका जल और मिष्टान्नादि ग्रहण करते हैं। खाद्यादि हिन्दुओं सा है। जो केवल नाव खे कर अपनी अपनी गुजर करते हैं वे ही लोग शराब पीते हैं। भागल-पुरके मुरियारि अपनेको मुन्नाब कहते हैं और खेतीवारी द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। धीरे धीरे इनकी संख्या बढ़ती जा रही है। आरा जिलेमें इनकी संख्या बहुत ज्यादा है। मुङ्गेर, भागलपुर, पूर्णिया, मालदह और सन्थाल परगने आदि स्थानोंमें इन लोगोंका वास देखा जाता है।

मुरीद (अ० पु०) १ शिष्य, चेला। २ वह जो किसीका अनुकरण करता या उसके आज्ञानुसार चलता हो, अनु-यायी।

मुरु (सं० पु०) १ देशभेद, एक देशका नाम। २ लौह-विशेष, एक प्रकारका लोहा। ३ गुल्मभेद, एक प्रकारकी झाड़ी।

मुरुआ (हिं० पु०) एड़ीके ऊपरका घेरा, पैरका गट्टा।

मुरुकुटिया (हिं० वि०) मरकट देखो।

मुरुण्डक (सं० पु०) उद्यानके अन्तर्गत पर्वतभेद

मुरुतानदेश (सं० पु०) देशभेद, शायत मूलतान।

मुरुदेश (सं० पु०) देशविशेष, शायत मरुदेश।

मुरेठा (हिं० पु०) १ पगड़ी, साफा। २ मुरैठा देखो।

मुरेर (हिं० स्त्री०) मरोड़ देखो।

मुरेरना (हिं० क्रि०) मड़ोरना देखो।

मुरेरा (हिं० पु०) १ मुंडेरा देखो। २ मरोड़ देखो।

मुरैठा (हिं० पु०) नावकी लम्बाईमें चारों ओर घूमी हुई गोट जो तीन चार इञ्च मोटे तख्तोंसे बनाई जाती है और गूढ़ाके ऊपर रहती है।

मुरौअत (अ० स्त्री०) मुरौवत देखो।

मुरौवत (अ० स्त्री०) १ शील, लिहाज। २ भलमानसी, आदमीयत।

मुर्ग (फा० पु०) मुरगा देखो।

मुर्गकेश (फा० पु०) मरसेकी जातिका एक पौधा। इसमें मुरगेको चोटीके-से गहरे लाल रंगके चौड़े चौड़े फूल लगते हैं। इसका दूसरा नाम जटाधारी भी है।

मुर्गखाना (फा० पु०) मुरगोंके रहनेके लिये बनाया हुआ स्थान।

मुर्गावी (फा० पु०) मुरगाबी देखो।

मुर्गोद—बम्बई प्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १५° ५३´ उ० तथा देशा० ७४° ५६´ पू० बेलगाम शहरसे २७ मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। यहांके सूती कपड़ेका वाणिज्य ही प्रधान है। प्रति वर्ष मल्लिकार्जुन-मन्दिरमें चिदम्बरेश्वरके उपलक्षमें छः दिन तक मेला लगता है। १५६५ ई०में तालीकोटाकी लड़ाईके बाद सिरसङ्गीके वर्त्तमान सर देसाईके पूर्वपुरुष विस्त गौड़ने शहर पर अधिकार जमाया। उसकी मृत्युके बाद यह शिवाजीके हाथ लगा। शहरमें एक बालक और एक बालिकाका स्कूल है।

मुर्चा (फा० पु०) मोरचा देखो।

मुर्तकिब (अ० वि०) अपराध करनेवाला, कसूरवार।

मुर्त्तजपुर—१ बरार-राज्यके अमरावती जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० २०° २६´ से २०° ५३´ उ० तथा देशा० ७७° १८´ से ७७° ४७´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें मुर्त्तजपुर और कर्ञ्जवीवी नामक दो शहर और २६० ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २०° ४४´ उ० तथा देशा० ७७° २५´ पू०के मध्य अवस्थित है। आबादी ६ हजारसे ऊपर है। अह्मदनगरके मुर्त्तज निजाम शाहके नाम पर इसका नामकरण हुआ है। यहां सूती कपड़ेका अच्छा कारोबार होता है।

मुर्दनी (फा० स्त्री०) १ आकृतिका वह विकार जो मरनेके समय अथवा मृत्युके कारण होता है, मुख पर प्रकट होनेवाले मृत्युके चिह्न। २ शवके साथ उसकी अन्त्येष्टि क्रियाके लिये जाना, मुर्देके साथ उसे गाड़ने वा जलानेके स्थान तक जाना। ३ मृतककी अन्त्येष्टिक्रियाके लिये जानेवालोंका समूह।

मुर्दा (फा० पु०) मुरदा देखो।

मुर्दाफरास—बङ्गालकी डोम जातिकी शाखाविशेष। ये लोग श्मशानमें शवदाहका कार्य करते हैं। इनका कार्य गङ्गापुत्रोंके जैसा है। किन्तु गंगापुत्रोंका आदर मुर्दाफराससे कुछ अधिक है।

मुर्दावली (फा० स्त्री०) १ मुर्दनी देखें। (वि०) २ मृतकके सम्बन्धका, मुरदेका।

मुर्दासिंगी (फा० पु०) मुरदासंख देखो।

मुर्मि—असभ्य जातिविशेष। इन्हें तमंभूटिया कहते हैं। ये लोग मोङ्गलीय जातिसे उत्पन्न हुए हैं। अति प्राचीन कालमें ये नेपालमें आ कर बस गये हैं। आकार प्रकार देखनेसे ये तिब्बतीय जातिसे उत्पन्न मालूम देते हैं। हिमालय प्रदेशीय सकल जातिकी तरह इनके मध्य अनेक थर वा गोत्र हैं। सगोत्रमें विवाह नहीं होता। ममेरा चचेरा अर्थात् पितृपक्षमें सात पीढ़ी बाद दे कर विवाह होता है। मातृगोत्रके सम्बन्धमें कोई नियम नहीं है। ये लोग मातृगोत्रके आत्मीयके साथ बेरोकटोक विवाह कर सकते हैं। इन लोगोंके मध्य पोष्यपुत्रकी तरह पोष्यभ्रातृ ग्रहण करनेका नियम है। जिस किसी व्यक्तिको ये भाई बना सकते हैं। पहले जिसको भ्रातृरूपमें ग्रहण करना होगा उसे सूचना दी जाती है। पीछे मंजूर करने पर एक दूसरेको उपहार देता है। अनन्तर पुरोहित आ कर पोष्यभ्राताको गोत्रान्तरित करते हैं। जो जिसका भ्राता होगा उसे उसके सामने खड़ा हो कर एक एक रुपया अदल बदल करना होता है और विवाह प्रथाकी तरह एक दूसरेको कपालमें दहीका तिलक लगाता है। इस कार्यमें पुरोहितको एक रुपया दक्षिणामें देना होता है। सबसे अन्तमें आत्मीयगणको भोज दिया जाता है। इस प्रकार संस्कार पूर्वक जो भ्रातृभावमें ग्रहण किया जाता है वह तब सगोत्रके मध्य परिणत हो जाता है। कोई उसका नाम ले कर पुकार नहीं सकता। पोष्यभ्राता अपनी भ्रातृपत्नीके साथ बातचीत नहीं कर सकता तथा सात पीढ़ी जब तक नहीं बितती तब तक आदान प्रदान नहीं होता। यदि कोई

निषिद्ध गोत्रकी कन्यासे विवाह करे, तो वह उसी समय समाजसे बहिष्कृत और जातिच्युत होता है। नेपालमें इससे और भी कठिन दण्ड देनेकी प्रथा है। विवाह करने वालेको पकड़ कर दासरूपमें भिन्न जातिके हाथ बेच लिया जाता है अथवा कभी कभी उसका सिर काट लिया जाता है। मुर्मिगण भोटिया, लेप्चा, निमुस, खामुस, यक्ष, मङ्गर, गुरु और सनोयरोंके साथ 'मिथ' (मिताली) वा भ्रातृत्व संस्थापन कर सकते हैं।

इन लोगोंके मध्य यौवन-विवाह प्रचलित है। विवाहके पहले पुरुष और स्त्रीके एकत्र सहवास करनेसे कोई दोष नहीं माना जाता। किन्तु इस समय यदि कोई कुमारी गर्भवती हो जाय, तो उसे गर्भोत्पादकका नाम कह देना पड़ता है। पीछे वह गर्भोत्पादक नगद ५० या ६० रुपये तथा अलङ्कारादि दे उस गर्भवतीसे विवाह करता है। कन्याके घरमें रातको विवाहकार्य सम्पन्न होता है। लामागण पुरोहितका काम करते हैं तथा वर-कन्याके कपालमें धान और दहीका तिलक दे कर आशीर्वाद देते हैं। उस समय वर कन्याकी मांगमें सिन्दूर लगाता है। पीछे लामा पुरोहित दोनोंके कपालको सटा देते हैं। यही विवाहका प्रधान अङ्ग समझा जाता है। बहुविवाह प्रचलित रहने पर भी अवस्थाके अनुसार लोग प्रायः यह काम नहीं करते। विधवाओंका नियमपूर्वक विवाह नहीं होता, उसे रखेली तौर पर रखा जाता है। इससे उत्पन्न सन्तान विवाहिता स्त्रीके पुत्रोंकी तरह उत्तराधिकारिरूपमें गिनी जाती है। व्यभिचारिणी और अप्रियभाषिणी होनेसे सभी स्त्री त्याग कर सकता है। पति-परित्यक्ता स्त्रीसे फिर कोई विवाह नहीं कर सकता।

पुत्रगण समानभावमें सम्पत्तिके अधिकारी हैं। पुत्रके नहीं रहने पर कन्या सम्पत्तिकी हकदार होती है। पतिपुत्रहोना विधवाका भरणपोषण सभीको करना पड़ता है।

धर्मसम्बन्धमें इन्हें कोई निर्दिष्ट संज्ञा नहीं दी जाती। हिन्दू और बौद्धधर्मके मेलसे इनके धर्मकी उत्पत्ति हुई है। इनके लामा धर्ममें हिन्दूप्रभाव दिखाई देता है। सभी पताकाओंके ऊपर "ओम्" लिखा रहता है। लामागण सभी धर्म कार्योंमें पुरोहिताई करते हैं। पूर्वकालकी लुप्त प्राय देवदेवीके मध्य दो एकका नाम देखा जाता है। प्रस्तरमय देवता थङ्गवलको आज भी पूजे जाते हैं। इस प्रतिमाको नये कपड़ेसे ढक कर और उसके ऊपर चावल छिड़क कर पूजते हैं। प्रतिवर्ष भाद्रमासमें बकरे और मुरगेको काट कर उसका रक्त उस प्रतिमा पर डाला जाता है। ठीक इसी प्रकार पुमुंज देवता वा धनाधिष्ठात्री देवताकी पूजा होती है। यह वृक्ष पर वास करते हैं। इन लोगोंका विश्वास है कि जो उस देवताकी पूजा नहीं करता उसे ज्वर और वातव्याधि खूब सताती है। दुर्गा पूजाके समय मध्यम पाण्डव भीमकी पूजा होती है। इस पूजामें भैंसे, बकरे, मुरगे और हंस आदिकी बलि दी जाती है। अन्य देवताके मध्य 'सेरकिब्बों' 'गिप' 'चांग्रेसी' प्रधान हैं। अलावा इसके बहुतसे छोटे छोटे ग्राम्य देवता भी हैं। उनकी संख्या कितनी है, ब्राह्मण लोग आज तक भी स्थिर न कर सके हैं।

इनके मध्य जो धनी हैं, वे शवदेहको जलाते हैं और एक टुकड़े हड्डीको किसी निभृत गुहामें गाड़ देते हैं। साधारण लोगोंकी लाश गाड़ी जाती है। कब्रमें लाशके सिरको उत्तरकी ओर करके मुंहमें आग देते हैं। पीछे कब्रके चारों ओर एक पत्थरकी दीवार खड़ी की जाती है। उसके ऊपर एक पताका रहती है। सिर्फ सात दिन तक ये लोग अशौच मानते हैं। अशौचकालमें कोई भी नमक नहीं खाता। आठवें दिन मांस, चावल, अंडे, केले और मिष्टान्नादि ले कर कब्रके समीप श्राद्धकर्म करते हैं। पीछे स्वजातीय व्यक्तियोंको भोज दिया जाता है। मृत व्यक्तिके एक खण्ड कपड़ेको घरमें रखते हैं। छः मास तक प्रति दिन मृत व्यक्तिके पुत्रको उस कपड़ेमें प्रेतके लिये भोजन देना होता है। छः मासके बाद लामा आ कर सपिण्डीकरण करते हैं।

मुर्मि लोग प्रधानतः खेतीबारी द्वारा अपना गुजारा चलाते हैं। बहुतेरे पुलिसका तथा गुर्खा सेनादलमें काम करते हैं। नेपालमें ये लोग योद्धजातिके मध्य गिने नहीं जाते। ७० वर्ष पहले जङ्ग बहादुरने मुर्मियोंको ले कर किरान्ति सैन्यदलका संगठन किया था।

दार्जिलिङ्गके चायके बगीचोंमें बहुतसे मुर्मि काम करते हैं। खानपानमें ये लोग उतना विचार नहीं करते। गाय, सूअर, मुरगे, बेंग आदि सभी जन्तुओंका मांस खाते हैं। ये शराब पीना बहुत पसन्द करते हैं। हिमालय प्रदेशमें निम्न श्रेणीसे इनकी सामाजिक मर्यादा बहुत ऊंची है। नेपाली ब्राह्मण और क्षत्रिगण इनके हाथका जल और मिष्टान्न खा सकते हैं। ये लोग दोतिया, लेपचा, लिम्बू आदि सभी जातियोंके साथ खान पान करते हैं।

मुर्मुर (सं० पु०) १ तुषाग्नि, भूसीकी आग। २ मन्मथ, कामदेव। ३ सूर्याश्व, सूर्यके रथके घोड़े। स्त्रियां टाप्। ४ मुर्मरा नामकी नदी।

"भारती सुप्रयागो च कावेरी मुर्मुरा तथा।"

(भारत ३।२२१।१५)

मुर्रा (हिं० पु०) १ मरोड़फली नामकी ओषधि। इसकी लता जंगलोंमें होती है। २ पेटमें ऐंठन हो कर पतला मल निकलना और बार बार दस्त होना। ३ पेटका दर्द। (स्त्री०) ४ हिसार और दिल्ली आदिमें होनेवाली एक प्रकारकी भैंस। इसके सींग छोटे, जड़के पास पतले और ऊपरकी ओर मुड़े हुए होते हैं।

मुर्रातिसार (हिं० पु०) मरोड़ देखो।

मुर्री (हिं० स्त्री०) १ दो डोरोंके सिरेको आपसमें जोड़नेकी एक क्रिया। इसमें गांठ नहीं दी जाती, केवल दोनों सिरोंको मिला कर मरोड़ देते हैं। २ कपड़े आदिमें लपेट कर डाली हुई ऐंठन या बल। ३ कपड़े आदिको मरोड़ कर बटी हुई बत्ती। ४ चिकन या कशीदेकी कढ़ाईका एक प्रकार। इसमें बटे हुए सूतका व्यवहार होता है। ५ एक प्रकारकी जंगली लकड़ी।

मुर्रीका नैचा (हिं० पु०) एक प्रकारका नैचा। इसमें कपड़ेकी मुर्री या बत्ती बना कर जोरसे लपेटते जाते हैं। देखनेमें यह उलटी चीज हो-की तरह जान पड़ती है। परन्तु वस्तुतः बत्ती होती है। इस प्रकार बना हुआ नैचा उतना मजबूत नहीं होता। जहां कपड़ा सड़ता है, वहींसे बत्ती टूटने लगती है और बराबर खुलती ही चली जाती है।

मुर्रीदार (फा० वि०) जिसमें मुर्री पड़ी हो, ऐंठनदार।

मुर्वा (सं० पु०) मरूल या गोरचकरा नामका जंगली पौधा। इससे प्राचीनकालमें प्रत्यञ्चाकी रस्सी बनाई जाती थी। गोरचकरा देखो।

मुर्वारा—१ मध्यप्रदेशके अन्तर्गत दक्षिण जब्बलपुरकी एक तहसील। यह अक्षा० २३° ३६' से २४° ८' उ० तथा देशा० ७०° ५८' से ८०° ५८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११६६ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें मुर्वारा नामक एक शहर और ५१६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २३° ५०' उ० तथा देशा० ८०° २४' पू० जब्बलपुर शहरसे ५६ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजार है। शहर दिनों दिन उन्नति कर रहा है। १८७४ ई०में म्युनिसपैलिटी स्थापित हुई है। यहां लाख, चमड़े, घी, लोहे, चूने, नमक, चीनी, तमाकू, और गरम मसालेका व्यवसाय होता है। यहां सरकारी मि. ई. स्कूल, जनाना मिशन, बालिका स्कूल और अस्पताल हैं। कटना नदी पार होनेके दो बड़े बड़े पुल हैं।

मुर्शिद कुली खाँ—बङ्गालके एक सूबेदार। यह दाक्षिणात्यवासी एक दरिद्र ब्राह्मणके लड़के थे। हाजी सुफिया नामक एक फारस देशका मुसलमान सौदागर इन्हें खरीद कर इस्पाहन नगर ले गया। उसने इनकी सुन्नत कराई और मुसलमानधर्ममें दीक्षित कर इनका महम्मद हादी नाम रखा। ब्राह्मण बालककी प्रतिभा देख कर वह सौदागर इन्हें दासकार्यमें नियुक्त न करके अपने पुत्रोंके साथ विद्याशिक्षा देने लगा। किन्तु कुछ दिन बाद सौदागरकी मृत्यु हो गई। पीछे उसके लड़कोंने हादीको क्रीतदासत्वसे छुटकारा दे कर स्वदेश लौट जानेकी अनुमति दी। हादी निराश्रय हो कर जन्मभूमिको लौटे, किन्तु मुसलमानधर्म ग्रहण करनेके कारण अपने समाजमें न लिये गये। अनन्तर वे बेरार-प्रदेशके दीवान और राजस्वसंग्राहक अबदुल्लाके अधीन राजस्वविभागमें नौकरी करने लगे। कार्यक्षेत्रमें उतर कर इन्होंने थोड़े ही दिनोंके अन्दर ऐसी कार्यदक्षता और बुद्धिमत्ता दिखलाई, कि सम्राट् औरङ्गजेब दाक्षिणात्यमें रहते समय इनका तैयार किया हुआ राजस्व हिसाब देख कर बहुत आश्चर्यान्वित हो गया था।

हैदराबादके दीवानका पद जब खाली हुआ, तब सम्राट्ने इन्हें 'कारतलब खाँ'की उपाधि और मनसब अर्थात् सेनानायक बना कर उक्त दीवानी-पद पर प्रतिष्ठित किया।

महम्मद हादी दीवानी पद पा कर असाधारण दक्षता-से कार्य करने लगे। सम्राट्की इन पर बड़ी कृपा रहती थी। जियाउल्ला खाँकी पदच्युतिके बाद सम्राट्ने इन्हें 'मुर्शिद कुली खाँ'की उपाधि दे कर बङ्गालका दीवान बनाया।

मुर्शिदकुली उक्त दीवानी पद पर अधिष्ठित हो कर ढाका नगर आये और यहां शस्यशालिनी बङ्गभूमिका ऐश्वर्य देख कर चमत्कृत हो गये। किन्तु इस समय बङ्गालमें राजस्व ले कर बड़ी गड़बड़ी मच रही थी, कोई खास नियम नहीं था। मुर्शिदने नई व्यवस्था जारी करके थोड़े ही दिनोंके मध्य एक करोड़ रुपया कर निश्चित कर दिया।

इनके दीवानी पद पानेसे पहले बङ्गालकी अधिकांश भूमि सैन्यरक्षार्थ जागीरस्वरूप दे दी गई थी। अतएव बङ्गालके राजस्वसे वहांके नाजिमके अधीनस्थ सभी सामन्तोंका खर्च नहीं जुटता था। मुर्शिदकुली खाँने सम्राट्के आदेशसे बङ्गदेशकी जागीर प्रथाको उठा दिया। इस प्रकार बङ्गका राजस्व-संस्कार करके मुर्शिद कुली सम्राट्के बड़े प्रेमभाजन हो गये थे।

सम्राट् औरङ्गजेबके समयसे प्रत्येक सूबामें एक नाजिम (सूबादार) और एक दीवान नियुक्त होते थे। नाजिमका काम आज कलके मजिष्ट्रेटके जैसा था। वे सैन्यपरिचालना और बाहरके शत्रुसे देशकी रक्षा तथा शासन फौजदारीका विचार करते थे। दीवानका काम बहुत कुछ आज कलके कलक्टरके जैसा था। वे सरकारी खजाना उगाहते तथा आय व्ययको देख-भाल करते थे। कहीं कहीं दीवानको नाजिमकी सलाह लेनी पड़ती थी।

मुर्शिद कुली खाँके दीवानी-पद पर नियुक्त होनेके पहलेसे ही औरङ्गजेबका पोता आजिम उस्सान बङ्गालका नाजिम था।

आजिम उस्सान प्रतिद्वन्द्वी मुर्शिदकुली खाँकी कार्य-कुशलता पर सन्तुष्ट न था। उनके दीवानी कार्यकी प्रसार देख कर नाजिमकी ईर्षा बलवती होने लगी। वह बादशाहके भयसे बाहरसे तो सद्भाव दिखाता, पर भीतरसे उनका काम तमाम करनेकी चेष्टा करता था।

किन्तु बङ्गदेशवासिगण दुर्वृत्त जागीरदारोंके हाथसे छुटकारा पा कर दीवानकी मंगल कामना करने लगे।

आजिम उस्सान मुर्शिदकुलीको गुप्तहत्या करनेके लिये गुप्त-घातकका अनुसन्धान करने लगा। अबदुल वाहिद नामक एक घुड़सवार सेनादलके अधिपतिने वेतन बाकी रहनेके हीलेसे दीवानको मार डालनेका सङ्कल्प किया। एक दिन मुर्शिद कुली खाँ सशस्त्र पहरुओंके साथ नाजिमसे मुलाकात करने रवाना हुए। उन्हें नाजिमके षड़यन्त्रका हाल पहलेसे ही कुछ कुछ मालूम था। इस कारण वे हमेशा सशस्त्र और विश्वस्त अनुचरोंके साथ घूमा करते थे। थोड़ी दूर जाने पर अबदुल वाहिदने दलबलके साथ उन्हें राहमें रोका और अपना प्राप्य वेतन मांगने लगा। दीवान भी उसका अभिप्राय समझ कर बाघकी तरह निर्भीक हृदयसे पालकी परसे कूद पड़े और तलवार निकाल कर उन लोगोंको राह छोड़ देने कहा। अबदुल वाहिद दीवानकी निर्भीकता और वीरता पर डर गया। पीछे वह दीवानके साथ साथ नाजिमके समीप गया। नाजिम ही इस षड़यन्त्रका मूल है, यह समझनेमें दीवानको अब देर न लगी। उन्होंने नाजिमके दरबार-घरमें उपस्थित हो कर यथोचित सम्मान दिखानेके बदले म्यानसे तलवार खींच कर कहा, 'मुझे यह अच्छी तरह मालूम हो गया, कि आप ही इस षड़यन्त्रके मूल हैं, यदि मेरा संहार करना ही आपका संकल्प हो, तो आइये, अस्त्रधारण कीजिये, और खुल्लमखुल्ला भिड़ जाइये यदि मेरा जीवन लेना आपने निश्चय कर लिया है, तो आपका जीवन भी रहने न पायेगा, इसे ध्रुव जानिये।'

आजिम उस्सान मुर्शिद कुली खाँके ऐसे वीरोचित व्यवहारसे बिलकुल दंग रह गये। यह घटना कहीं औरङ्गजेबको भी न मालूम हो जाय, इस भयसे वह दीवानको प्रसन्न करनेकी कोशिश करने लगा और अबदुल वाहिदको दण्ड देनेका भय दिखाया।

मुर्शिदकुली खाँने उसी समय दीवानखाना लौट कर सरकारी कर्मचारियोंको विद्रोही सैन्यकी यह घटना अच्छी तरह लिए रखनेको हुकुम दिया। पीछे उन लोगोंका वाकी वेतन चुका कर सैन्यश्रेणीसे उन्हें अलग कर दिया तथा इन सब घटनाओंका सरकारी कागज़-पत्र सम्राट् के निकट भेज दिया। इसके वाद ढाकामें रहना अच्छा न समझ कर दीवानखानाके कर्मचारिवृन्द तथा जमींदार कानूनगो आदिके साथ सलाह करके इन्होंने चूनाखाली परगनेके मुकसुदावाद नामक स्थानमें राजधानी वसानेका संकल्प किया। क्योंकि, यह स्थान वङ्गका केन्द्रस्वरूप था।

मुर्शिदकुली खाँ अब विना आजिम उस्सानकी सलाहके सभी काम काज करने लगे। वे दीवानखाना और तत्संश्लिष्ट सभी कर्मचारियोंको मुकसुदावाद उठा लाये।

औरङ्गजेव इस समय दाक्षिणात्यमें रहते थे। यह सब हाल जब उन्हें मालूम हुआ, तब वे आजिम उस्सान पर बड़े विगड़े और उसे विहारमें आ कर रहनेके लिये पत्र लिखा।

मुर्शिद् कुली खाँ मुकसुदावाद आनेके एक वर्ष वाद कागज पत्र तय्यार कर तथा जागीरसे काफी राजकर वसूल कर दाक्षिणात्यमें वादशाहके शिविरमें आये। वङ्गालसे ऐसी मोटी रकम कभी भी वादशाहके समीप नहीं भेजी गई थी। इस समय सम्राट् को भी रुपयेका वहुत दरकार था। अतएव उन्होंने मुर्शिदकुलीकी कार्यकुशलता पर अत्यन्त प्रसन्न हो उन्हें उत्कृष्ट खिलअत, वादशाही पताका, जयडंका सम्मानसूचक परिच्छद और सेनानायकका पद दे कर वङ्गाल, विहार और उड़ीसाका दीवान तथा डिपटी नाजिमके पद पर नियुक्त किया। इसके साथ साथ मुर्शिदकुलीने 'मुतिमुल-उल-मुल्क आला आजवाले जाफर खाँ नासिरी नासिरजङ्ग' की उपाधि पाई।

मुर्शिदकुली खाँने वङ्गाल लौटते ही अपने नाम पर मुकसुदावादका 'मुर्शिदावाद' नाम रखा तथा टकसाल खोल कर सिक्का चलाना शुरू कर दिया।

पहले मेदिनीपुर उड़ीस्याके अन्तर्गत था, मुर्शिदकुलीने अभी उसे वंगालमें मिला लिया तथा अपने जमाई सुजाउद्दीन खाँको उड़ीसाका नायव दीवान बना कर भेजा। अभी वे विश्वासी हिन्दू अमलाओंके द्वारा प्रत्येक चकले और मौजेके राजस्व वन्दोवस्तके लिये वद्ध-परिकर हुए। आप भी राज्यका अधिकांश स्थान देखने लगे। अनेक हिन्दू जमींदारोंको इन्होंने कैद किया और किसी किसीको थोड़ी थोड़ी वृत्ति दे कर उनकी जमिंदारी जब्त कर ली।

इन्होने भूपतिराय और किशोर राम नामक दो विश्वस्त ब्राह्मणोंको कोषाध्यक्ष तथा मुंशी (Private Secretary)-के पद पर नियुक्त किया था। इन्होंने ही वस्तुतः वङ्गदेशमें मुसलमान-शक्तिकी जड़ मजबूत की थी। छोटे छोटे हिंदू जमिंदारोंको वे तरह तरहका कष्ट दे कर उनसे राजस्व उगाहते थे।

इस समय १७०७ ई०में औरङ्गजेवकी मृत्यु हो जानेसे दिल्लीका सिंहासन ले कर आपसमें विवाद खड़ा हुआ। आखिर सम्राट्का मध्यम पुत्र आजिम शाह सिंहासन पर वैठा। आजिम उस्सान यह संवाद पा कर अपने लड़के फरुंख-सियरको वङ्गालका प्रतिनिधि बना पिताके लिये सिंहासन पानेकी इच्छासे दिल्लीको रवाना हुआ। उसका पिता मुयाजिम महम्मद शाह आलम ही औरङ्गजेवका वड़ा लड़का था। युद्धमें आजिमशाह परास्त हुआ। शाह आलम 'वहादुरशाह' नामसे दिल्लीके सिंहासन पर वैठा। १७०७ ई०में पिताके कहनेसे आजिम उस्सान दिल्लीमें रहने लगा। इधर मुर्शिद कुली वंगाल, विहार और उड़ीसाके सर्वमय शासनकर्त्ता हो उठे तथा वङ्गदेशमें तमाम मुसलमान प्रभाव फैलाने लगे।

इतने पर भी वे वीरभूम और विष्णुपुरके जमिंदारोंका कुछ विगाड़ न सके। इनमेंसे आमद उस्सा नामक एक धर्मपरायण पठान सरदार झाड़खण्डके पहाड़ी प्रदेशमें स्वाधीन भावसे राज्य करता था। वह आयका आधा रुपया दीन दरिद्रोंके दुःख दूर करने, भूखोंको अन्न देने आदि नाना प्रकारके सत्यकार्योंमें खर्च करता था। मुर्शिद कुली खाँ इसे अपने अधीन न कर सके।

दूसरे विष्णुपुरके वीर जमिंदार दुर्जनसिंह झाड़-

खण्डके समीपस्थ आरण्य प्रदेशमें अपना वासस्थान निर्दिष्ट करके स्वाधीन भावसे राज्य करते थे। मुर्शिद कुली लाख चेष्टा करके भी उसका दमन न कर सके।

त्रिपुरा, कोचविहार और आसामके हिन्दूराजे उस समय भी स्वाधीन भावसे राज्य करते थे। कुली खाँ उनसे कर स्वरूप वार्षिक कुछ भेंट लिया करते थे। वे लोग भी नवावको हाथी, गजदन्त, मृगनाभि आदि विविध बहुमूल्य द्रव्य उपहारमें दे कर उसके बदले खिलअत पाते थे तथा नवावकी श्रेष्ठता स्वीकार करते थे।

कहते हैं, कि कुली खाँने जिस समय वादशाहके समीप कागज-पत्र पेश किया, उस समय प्रधान कानूनगो दर्पनारायणने उस पर अपना हस्ताक्षर करनेसे इन्कार किया था। इस कारण नवावने मौखिक मित्रता दिखा कर पीछे उन्हें अनाहार मार डाला। इस घटनाके प्रायश्चित्त स्वरूप नवावने दर्पनारायणके पुत्रको पितृ-पद प्रदान किया। राजशाही देखो।

मुर्शिदकुली जब दीवान थे, उस समय हुगलीका फौजदार स्वाधीनभावसे कार्य करता था। किन्तु कुली खाँने वङ्गालका दीवान और नाजिम दोनों पद पा कर दिल्लीके वादशाहके आदेशानुसार वाली वेग नामक एक व्यक्तिको हुगलीका फौजदार बनाया। पहले फौजदार मुजिया उद्दीन जैन उद्दीनने फरासी और ओलन्दाजों की सहायतासे नवावकी सेनाके साथ चन्दननगरके समीप युद्ध किया। नवावका एक हिन्दूसेनापति जिसका नाम दलीप वा दिलावतसिंह था, एक फरासीकमानके गोलेसे पञ्चत्वको प्राप्त हुआ।

जैन उद्दीनने अनुचरों तथा पेशकार किङ्करसेनके साथ दिल्लीकी यात्रा की। वहां उसकी मृत्यु होनेके वाद किङ्करसेन मुर्शिदावाद लौटा और निर्भयसे मुर्शिद कुली खांको बांए हाथसे सलाम वजाया। नवावके इसका कारण पूछने पर उसने कहा, कि "जिस दाहिने हाथसे वादशाहको सलाम किया है, उस हाथसे किस प्रकार नवावको सलाम करूंगा।" जो कुछ हो, नवावने उस समय उसे कोई सजा न दी। पीछे तहविल हड़प करनेके अपराधमें किङ्करसेनके पाजामे बिड़ाल ठूस दिया और भैंसके दूधमें नमक मिला कर उसे पिला दिया। फल यह हुआ, कि उदरामयरोगसे किङ्करसेन थोड़े ही दिनोंके मध्य कराल कालका शिकार वना।

जब कभी राजस्व देनेमें विलम्ब होता, तब नवाव हिंदू जमिंदारोंको कठोर दण्ड देते थे। उन्हें पाल्की आदि पर चढ़नेका हुकुम नहीं था। उत्सवादिमें आतशबाजी कोई भी नहीं कर सकता था। किन्तु उनके राजकर्मचारी अधिकांश हिन्दू थे।

राजशाहीके जमींदार उदयनारायण नवावके अत्यन्त प्रियपात्र थे। किसी घटनामें उदयनारायणके आत्महत्या करने पर उनकी जमिंदारी रामजीवनको दी गई।

नवाव वैशाख मासके आरम्भमें एक एक पुण्याह करके तीस लाख रुपया राजस्व और विविध उपहार दिल्ली भेजते थे।

भूषणाके जमींदार सीतारामरायने वहांके मुसलमान फौजदार आबू तूरपको मार डाला था। इस कारण नवावने अत्यन्त क्रुद्ध हो बक्स अली खाँके अधीन एक दल सेना भेज कर सीतारामकी जमींदारी लूटने और उन्हें कैद करनेका हुकुम दिया। स्टुवार्टने लिखा है, कि सीताराम पकड़े जा कर मुर्शिदावाद लाये और शूली पर चढ़ा दिये गये तथा उनके स्त्रीपुत्र दासरूपमें विक गये। इस समय दिल्लीमें सिंहासन ले कर बड़ी गड़बड़ी मच रही थी। आखिर आजिम उस्सानका बड़ा लड़का फरुखसियर १७१३ ई०में दिल्लीके सिंहासन पर बैठा। कुली खाँ वङ्गालके दीवान और नाजिम बनाये गये। नवावने भी यथासमय उपयुक्त उपहार और वार्षिक राजस्व भेज कर वादशाहका सम्मान किया।

इसके पहले अङ्गरेज कम्पनीने औरङ्गजेवसे विना शुल्कके अथवा कम शुल्क पर नाना स्थानोंमें कोठी खोल रखी थी। किन्तु मुर्शिद कुलीने देशी वाणिज्यकी उन्नतिके लिये अंगरेजोंकी प्रार्थनाको ग्राह्य नहीं किया तथा नियमित शुल्क दे कर वाणिज्य करनेका हुकुम दिया। इस पर अंगरेजोंने वादशाहके निकट दूत भेजे। अंगरेजी दूत बड़े कौशलसे सैयद अवदुल्ला और सैयद होसेन अली खाँ नामक सम्राट्के दोनों वजीरों मुट्ठीमें ला कर

अपना मतलब निकालनेकी कोशिश करने लगे। इस समय सम्राट् फरुखसियरके साथ राजपूतराज अजित्‌सिंहकी कन्याके विवाहकी बातचीत चल रही थी। किन्तु सम्राट्‌के पीड़ित रहनेके कारण विवाह स्थगित होने पर था। इसी समय डाक्टर हमिल्टन साहबने सम्राट्‌को चंगा कर अपना मतलब निकाल लिया। पहले इन लोगोंने आजिम उस्सानसे कलकत्ता सुतालुटी और गोविन्दपुर ये तीन ग्राम खरीदनेकी अनुमति पाई थी। अभी सम्राट्‌से ३८ ग्राम और भी खरीदनेका हुकुम मिला। इसी समयसे कलकत्तेमें श्रीवृद्धिका सूत्रपात हुआ।

१७१८ ई०में कुली खाँने विहार प्रदेशकी भी दीवानी पाई। १७१६ ई०में फरुखसियरके मारे जाने पर महम्मद शाह सम्राट् हुए। उन्होंने भी मुर्शिद कुलीको पूर्वपद पर कायम रखा।

नवावने डकैतोंका दमन करनेके लिये नाना प्रकारका उपाय अवलम्बन किया था। कहते हैं, कि उनके समय एक घाटमें बाघ और बकरी पानी पीती थी।

नवावने अपनी अंतिम अवस्था देख कर मकवरा बनानेका हुकुम दिया। मुराद फर्रास नामक एक व्यक्तिके ऊपर यह भार सौंपा गया। मुरादने आस पासके सभी हिन्दू मन्दिरोंको तोड़ फोड़ कर उनके माल मसालेसे छः महीनेके भीतर मसजिद और मकवरा तैयार कर दिया। हिन्दुओंके मन्दिरके बदलेमें अपने अपने मकानके सामान देने पर भी मुराद उसे लेनेको राजी नहीं हुआ था। इस प्रकार मुर्शिद कुलीने हिन्दुओंके प्रति जैसा अत्याचार किया था, वह वर्णनातीत है।

अपने नाती सरफराज खाँको अपना उत्तराधिकारी बना कर मुर्शिद कुली खाँ १७२५ ई०में इस लोकसे चल बसे।

मुसलमान ऐतिहासिकोंने मुर्शिद कुलीको एक आदर्श महापुरुष बतलाया है। परवर्त्ती मुसलमान लोग पीरकी तरह उनकी पूजा करते थे। यथार्थमें उन्होंने रोमक-सम्राट् ब्रूटसकी तरह जैसी न्यायपरता दिखलाई थी वह पृथिवी भरके लिये दृष्टान्त स्वरूप है। उनके पुत्रने किसी विवाहिता स्त्रीके साथ बलात्कार किया था, इस अपराधमें एक मात्र पुत्र होने पर भी नवावने उसे मरवा डाला था। इस प्रकार एक नहीं, कितनी न्यायपरता वे दिखला गये हैं।

एमानुद्दीन नामक हुगलीके कोतवालने एक मुगलकी कन्या पर बलात्कार किया था, पर हुगलीके फौजदारने इसका ठीक इन्साफ नहीं किया। मुगलने नवावके पास नालिश पेश की। नवावने कुरानके विधानानुसार अपराधीको पत्थर फेंक कर मार डालनेका हुकुम दिया।

वे सप्ताहमें दो दिन विचारालयमें बैठते थे तथा खूनी मुकदमेका स्वयं विचार करते थे। जिससे पक्षपात न हो, इस विषयमें वे विशेष सावधान रहते थे। वे दानमें हातम और विचारमें नसरू खाँके जैसे थे। धर्मकार्यमे वे मुक्त हस्तसे दान करते थे। महम्मदके जन्मोत्सवमें सौ हजार आदमीको खिलाया जाता था। अपने हाथसे कुरान लिख कर मक्का, मदीना, बोगदाद आदि तीर्थस्थानोंमें भेजते थे।

वे स्वयं विद्वान् थे और विद्वान् व्यक्तिका आदर भी करते थे। विलासिताको वे दिलसे घृणा करते थे। नसेरूबानु नामक एकमात्र विवाहिता स्त्री पर ही हमेशा अनुरक्त थे। उस समयके मुसलमान समाजमें अपनी स्त्री पर अनुरक्त रहनेकी अपेक्षा गौरवका और कोई भी विषय न समझा जाता था।

देशको उन्नत बनानेकी कामनासे वे अनाजोंको रफतनी होने नहीं देते थे। जो कोई बाजारकी दर बढ़ा देता उसे गदहे पर चढ़ा कर नगरके चारों ओर घुमाया जाता था। उस समय एक रुपयेमें ५।६ मन चावल मिलता था। लोग मासिक २।३ रु० आयसे ही प्रति दिन हलुआ पूरी खा सकता था। साधारणतः लोगोंकी सुख स्वच्छन्दता बहुत बढ़ गई थी। चोर डकैतोंका बिलकुल भय न था। केवल हिन्दू जमींदार राजस्वके कारण बुरी तरह सताये जाते थे।

गणितमें उनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। स्वयं सभी प्रकारका हिसाब देखते थे। विना शुल्कके अंगरेजोंको वे वाणिज्य नहीं करने देते थे।

मुर्शिद कुली खाँको दोषने बिलकुल छुआ ही नहीं था,

सो नहीं। मनुष्यचरित्रमें दोष रहना स्वाभाविक है। पर ह साधारण नवाब लोग जैसे चरित्रवान् थे, उनसे हजार गुणा ये वढ़े चढ़े थे। जो व्यभिचारके कारण अपने एकमात्र पुत्रका शिरश्छेद कर सकते इतिहास व टसको तरह उन्हें सर्वदा अपने हृदयमें धारण कर रखेगा। मुसलमानधर्मके वे पक्के अनुरागी थे, कसर इतनी ही थी, कि वे ब्राह्मण-सन्तान थे। फिर भी उनके जैसे उस समयके मुसलमान समाजमें बुद्धिजीवी कार्य-कुशल, न्यायपरायण, सुदक्ष और संयत चरित्रवाले शासनकर्त्ता-का विलकुल अभाव था। इन्हीं सव कारणोंसे मरनेके वाद भी वे पीरकी तरह पूजित हुए थे।

मुर्शिदावाद—(पुराना नाम मकसुदावाद या मुकसुदा-वाद) वङ्गालके प्रेसीडेन्सी डिविजनका एक जिला। यह अक्षा० २३° ४३′ से २४° ५२′ उत्तर और ८७° ४९′ से ८८° ४४′ पूरवके बीच फैला हुआ है। इसका रकवा २१४३ वर्गमील है। यह आकारमें समत्रिभुज त्रिकोणके जैसा है। इसकी उत्तरी और पूर्वी सीमा पर पद्मानदी अर्थात् गङ्गाकी मुख्यधारा वहती है जो इसे मालदह और राजशाहीसे अलग करती है, दक्षिण पूर्वी सीमा पर जलंगी वहती है और इसे नदियासे अलग करती है। इसके दक्षिणमें वर्द्धमान तथा पश्चिममें वीरभूम और संथाल परगना है।

इसके वीचो वीच भागीरथी वहती है जिससे दो हिस्से हो जाते हैं। पश्चिमी हिस्सा राढ़ कहलाता है और पूर्वी हिस्सा वागड़ी। भूतत्त्व और कृषिके विचारसे ये दोनों खण्ड सर्वथा भिन्न हैं। राढ़की जमीन कड़ी और पथरीली है। इस तरहकी जमीन छोटा-नागपुरसे वीरभूम जिले तक चली गई है। यह जमीन साधारणतः ऊंची नीची है। वीच वीचमें वड़े वड़े गड्ढे हैं और समुद्रके सोते नीचेसे वह गये हैं। कहीं कहीं टीला भागीरथीके तट तक फैला हुआ है। राढ़-की जमीन देखनेमें वहुत कुछ लाल है और उसमें चूने और लोहेके क्षार (Oxide of iron) मिले हुए हैं। नदियोंमें अचानक वाढ़ उमड़ आया करती है लेकिन इससे धरती अधिक समय तक डूवी नहीं रहती। इस लिये गङ्गाके टापुओंकी जमीन जैसी यहांकी जमीन उप-जाऊ नहीं है। यहां केवल आमन धान होता है।

वागड़ीकी जमीन पूरव वङ्गालकी जैसी चारों ओरसे गंगा, भागीरथी, और जलंगीसे घिरी हुई है। वीच वीचमें गंगाकी शाखा और उपशाखा वहती हैं। यहांकी जमीन प्रायः केवाल है। हर साल वाढ़से डूव जाती है। जिस कारण यहांके लोगोंको अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं। जो हो, यह जमीन सवसे वढ़ कर उपजाऊ है। यहां आशु और आमन दोनों प्रकारके धान लगते हैं।

वहरमपुरमें सदर अदालत तो है लेकिन वंगालकी नवावी राजधानी मुर्शिदावाद शहर हीमें वहुत लोग रहते हैं। गंगाके किनारे ही इस जिलेकी वड़ी वड़ी हाट हैं। उनमें भगवानगोला या अलातलि और धुलियान ही सवसे वड़ी है। गंगाकी शाखायें भागी-रथी, भैरव, सियालमारी और जलंगी इस जिलेमें वहती हैं तथा इन सभोंके किनारे भी छोटी छोटी अनेक हाट हैं। सूती थानाके पाससे भागीरथी अनेक शाखा प्रशाखाओंको विस्तार करती हुई अधिकांश पुराने और नये शहरोंके पास हो कर वहती है। वर्ष भर छः महीनों-में इन नदियों द्वारा नाविक-व्यापार खूव चलता है। इसके पूरवी या वायें किनारे पर जंगीपुर, जियागञ्ज, मुर्शिदावाद, कासिमवाजार और वहरमपुर शहर तथा दाहिने किनारे वदरोहाट और रंगामाटी (कर्णसुवर्णका ध्वंसावशेष) वसे हुए हैं। पश्चिमकी ओरसे शिंगा आ कर गंगामें मिली है। पागला, वांसलोई, द्वारका, ब्राह्मणी, मयूराक्षी और कुइया अनेक स्थानोंमें वहती हुई अन्तमें भागीरथीमें आ गिरी हैं। इस जिलेमें प्रथम २५ मील छोड़ कर समूचे वायें किनारे पर ऊंचा वांध दिया गया है।

राढ़-अञ्चलमें ही खनिज द्रव्योंकी खान है। जगह जगह लोहा पाया जाता है। पश्चिम भागमें कंकड़ वहुत है जिससे रास्ता मरम्मत किया जाता है। यहांके जङ्गलमें रेशमका कीड़ा, मधुमक्खीका छत्ता, नाना प्रकार औषधि लताएं, मूल और लाह पाये जाते हैं। संथाल और धांगड़ लोग पटसन और डूमरके पेड़ों पर लाहके कीड़े पालते हैं।

इस जिलेके दक्षिण-पश्चिम मयूराक्षी और द्वारका नदीके सङ्गम पर १६ वर्गमील फैली हुई 'हेजल' नामकी

निम्न भूमि है। वर्षाकालमें यह स्थान जलसे डूब जाता है। उस समय आउस और बोरो धान लगते हैं। इस जिलेमें बड़े बड़े जानवर नहीं दीख पड़ते। राढ़में कई तरहके हिरण पाये जाते हैं। इसमें ५ शहर और ३६६८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १३ लाखसे ऊपर है। केवल सद्गोप, ग्वाले, ब्राह्मण आदि अनेक वर्णके लोग रहते हैं। वैष्णवोंकी यहां एक बड़ी संख्या है।

मुर्शिदाबाद मुसलमानोंकी राजधानी होने पर भी शहरमें तथा शहरके आसपास हिन्दुओंकी ही संख्या अधिक है। जिलेके उत्तर पूरब तथा दक्षिण पूरबमें कृषि प्रधान स्थानों हीमें मुसलमान अधिक पाये जाते हैं। यहां सैकड़े पीछे ५२ हिन्दू तथा ४८ मुसलमान हैं।

मुर्शिदाबाद, बहरमपुर, कान्दि या जेमोकान्दि, जंगीपुर और बेलडंगा, ये सब जिलाके प्रधान शहर हैं। वाणिज्यप्रधान स्थानोंमें भागीरथीके दोनों किनारों पर बसे हुए जियागञ्ज, आजिमगंज, भगवान्‌गोला, धुलियान, मुरार और नलहाटी उल्लेखनीय हैं। ऐतिहासिक स्थानोंमें रांगामाटी, बद्रीहाट या गयासाबाद, सैदाबाद, कालकापुर, कासिमबाज़ार और गड़ियारका रणक्षेत्र देखने योग्य हैं।

यहांकी मुख्य उपज धान है। पश्चिममें आमन और पूरबमें आउस धान होता है। पूरबमें जाड़े के दिनोंमें गेहूं, जौ, कलाय (उड़द) आदि अनाज उपजते हैं। यहां पटुआ अधिक नहीं होता। तालाब और धारके जलसे खेती की जाती है।

इस जिलेकी वाणिज्य-समृद्धि पहलेकी अपेक्षा बहुत कम हो गई है। नवाबी अमलमें व्यापारके लिये मुर्शिदाबाद जिला ही प्रधान था। यहांका प्रधान व्यवसाय रेशम है। अभी इस व्यवसायकी भी बड़ी अवनति हो गई है। तौभी सरकारकी चेष्टासे जिलेके दक्षिण-पूरबमें रेशमको पैदा करनेकी कोशिश हो रही है। इसके लिये बहरमपुरमें कृषितत्त्ववेत्ता नियुक्त हैं। उनके कार्य्यालयमें भिन्न भिन्न प्रकारके रेशमके नमूने मिलते हैं।

मुर्शिदाबाद टसर और गरदके लिये सर्वत्र प्रसिद्ध है। अभी तक कितने गावोंमें बिनाई होती है लेकिन आज कल यहांके जुलाहोंकी हालत अच्छी नहीं। १८६० ई०में नीलहोंके साथ बमबखेड़े के बाद यहांसे नीलकी खेती उठ ही गई है। मुर्शिदाबाद और बरहमपुरमें हाथी दांतकी बनी कितनी ही चीजें तथा सोने और चांदीकी जड़ीके काम होते हैं। इस जिलेके खगड़ाके कांसेका बरतन प्रसिद्ध है।

नदी और रेलवेके द्वारा व्यापारकी सुविधा होनेके कारण यहां बहुतसे जैन वणिक रहते हैं। पहले यहां नदीके द्वारा ही अधिक व्यापार होता था लेकिन बीच बीचमें भागीरथीके हट जानेके कारण बड़ी असुविधा हुई है।

नलहाटीसे आजिमगंज तक रेलवे है। इसके अलावा इस जिलेमें १५ पक्की सड़कें भी हैं।

पहले डकैतीके लिये यह जिला बदनाम था। अब शान्तिका अच्छा प्रबन्ध है।

इस जिलेमें ४ सब डिविजन, २३ थाने और ६८ परगने हैं। ग्रीष्म ऋतुमें यहां गरमी अधिक पड़ती है। पानीका पूरा निकास न रहनेके कारण मलेरिया लोगोंको खूब सताती है। प्लीहाकी बड़ी शिकायत है। यहां ५ अस्पताल हैं।

पुरातत्त्व।

आज कल मुर्शिदाबाद भागीरथीके पूर्वी किनारे पर बसा हुआ है। लेकिन १८वीं शताब्दीमें भागीरथीके दोनों किनारों पर एक विशाल नगर सुशोभित था। मुर्शिद कुली खांने अपनी राजधानी पूर्वी तट पर ही बसाई थी। पीछे क्रमशः वह दोनों किनारों पर फैल गई। मुर्शिद कुली खांने बंगालको १० चाकलामें बांटा था, मुर्शिदाबाद उन्हींमें से एक चाकला है और आज कल बड़ा हो गया है। भागीरथीकी धारा बदलनेसे पूर्वी भागकी प्राचीन कीर्त्ति नष्ट हो गई है, लेकिन पश्चिम भागमें अभी तक पुरानी कीर्त्तिके बहुतसे चिह्न हैं।

गयासाबादमें सम्राट् अशोकका एक लाट निकाला गया है। इसके निकट महीपाल नामका एक विशाल नगर था। पालवंशी राजे लोग यहां राज्य करते थे। इस ग्रामके आस पासका सभी स्थान एक समय महीपाल नगर कहाता था। १३वीं शताब्दीमें गौड़के सुलतान गयासुद्दीनने इस नगरको नष्ट कर इसीके माल मसालेसे गयासाबाद बसाया। गयासाबादकी बड़ी उन्नति हुई थी। इसमें पहले सात हाटें लगती थीं, अब हाटोंके

स्थानमें छोटे छोटे गांव हैं। यहां एक दरगाह है जिसे लोग गयाद्दीनकी दरगाह कहते हैं और एक देव-मन्दिर भी है।

मुर्शिदाबादसे ६ कोस पर रांगामाटी है। यहांकी मिट्टी लाल होती है इसीसे इसको रांगामाटी कहते हैं। एक समय यह स्थान गौड़की प्राचीन राजधानी कर्ण-सुवर्ण समझा जाता था। अभी यह भागीरथीके पेटमें है। ईंट, पत्थर, मूर्त्तिखंण्ड आदि पूर्व कीर्त्तिकी याद दिलाता है। अभी तक नदी-गर्भमें पुराने गृहखंड तथा गुप्त राजाओंकी मुद्रा आदि पाई जाती है। यहां दक्षिण राढ़ीय और वारेन्द्र कायस्थोंका प्रसिद्ध समाज था। कर्ण-सुवर्णकी प्राचीन समृद्धिका विषय कर्णसुवर्ण शब्दमें देखो।

महीपाल गांवके वारेमें पहले ही लिखा जा चुका है। यह वाड़ला ष्टेशनसे आध कोस पर है। वाड़ला-से गयासावाद तक ४ कोसकी दूरीमें प्राचीन महीपाल नगरके खंडहर पाये जाते हैं। तिरुमलयकी गिरिलिपि-से जाना जाता है कि राजेन्द्र चोलके दिग्विजय कालमें उत्तरराढ़में राजा महीपाल राज्य करते थे। गौड़ देखो। इन्हीं महीपालका वसाया हुआ नगर अभी महीपाल गांवमें परिणत हो गया है। अभी भी इस गांवमें महीपालदेवके राजभवनों, दूसरे दूसरे महलों तथा मन्दिरोंके खंडहर दीख पड़ते हैं। इससे ७ मीलके फासले पर सागर नामका एक वड़ा तालाव है। लोगोंका कहना है कि यह तालाव राजा महीपालका खुदवाया हुआ है। इसकी लम्वाई प्रायः आध कोस है। इतना वड़ा तालाव इस प्रान्तमें नहीं है।

यह मुर्शिदावाद जिला उत्तर राढ़ नामसे प्रसिद्ध है। आदित्यसूरके राज्यकालमें उत्तर-पश्चिम प्रान्तसे जो ५ कायस्थ आ कर उत्तर-राढ़में वस गये वे ही वर्त्तमान उत्तर राढ़ीय कायस्थोंके आदिपुरुष थे। उत्तरराढ़के सिंहेश्वर, यजान, वहड़ान, मेहग्राम और विरामपुर इन पांच ग्रामोंमें वे पांचों आ वसे थे। इसीलिये ये पांचों गांव उत्तरराढ़ीय कायस्थोंका आदिसमाज माने जाते हैं। सूरपाल और सेन शोंके प्रभाव नष्ट होने पर यहांके उत्तरराढ़ीय कायस्थ लोग प्रवल हो उठे और आधो स्वाधीनतासे राज्य करने लगे। फतहसिंह परगना इन लोगोंका कर्म-क्षेत्र रहा। वादशाह अकवरकी आज्ञासे राजा मानसिंह जव वंगाल विजय करने आये उस समय भी उत्तरराढ़ीय कायस्थ लोग राज्य करते थे। ये लोग पठान लोगोंके साथ मानसिंहके विरुद्ध लड़े, लेकिन मुगलसेनाके एक प्रधान कर्मचारी सवितारायकी चेष्टासे फतहसिंहके कायस्थ, शूर और हाड़ि राज्य नष्ट कर दिये गये। उत्तर राढ़ीय कायस्थोंकी प्राचीन कीर्त्ति इस जिलेके अनेक स्थानों में विखरी हुई है। उनमें सोमेश्वर घोष द्वारा प्रतिष्ठित यजानकी सर्वमंगला और सोमेश्वर नामक शिवमन्दिर तथा पांचथुपि गांवमें उत्तरराढ़ीय राजाओंकी कीर्त्ति उल्लेखयोग्य है।

मुर्शिदावाद शहरसे ३ मील दक्षिण-पूरव चुनाखालि नामका पुराना गांव है। पठान राज्यमें यह विशेष प्रसिद्ध था। टोडरमलने जव परगना विभाग किया तो इस गांवके पास फैला हुआ रकवा चुनाखालि परगना कहलाया। यहां मसनद औलियाकी कब्र है। कब्रके पास एक शिलाखण्ड पर अवुल मुजफ्फर फिरोज सुल-तान (१४६० ई०)-का नाम पाया जाता है। पहले यहांका कागज प्रसिद्ध था। यहांके जंगीपुर महकूमेमें चांदपाड़ा गांव है। हुसेन वादशाह होनेके पहले सुवुद्धिरायके अधीन काम करता था। पीछे उसने गौड़का सुलतान हो सुवुद्धि रायको गांव वे लगान देना चाहा। सुवुद्धि रायने गांवको वे लगान लेनेसे इन्कार किया। अन्तमें इसका एक आना निश्चित कर चांदपाड़ा उन्हें दे दिया गया। तभीसे इसका नाम 'एक आना चांदपाड़ा' हुआ है।

चांदपाड़ासे तीन कोस पश्चिम एक वड़ा तालाव है जो शेखकी दिग्गी नामसे प्रसिद्ध है। शिलालेखसे मालूम होता है, कि ६२१ हिजरीके रवि-उस्सानिके महीनेमें हुसेन शाहके राज्यकालमें यह दिग्गी खोदी गई थी।

जंगीपुरसे ६ कोस उत्तर पश्चिम 'जीयत् कुंडि' नाम-का एक गांव है। इस स्थानमें एक अत्यन्त पुराना कुंड या तालाव है जो अभी सूख गया है। यही जीयत् कुंडि या जीवत्कुंड है। इसीके नाम पर गांवका भी नाम पड़ा है। कुंड वहुत छोटा मालूम होता है तो भी एक दिन वहुत गहरा था। इसके चारों ओर ईंटोंके वने मकानोंके खंडहर और देवदेवीकी टूटी फूटी मूर्त्तियां इधर उधर पड़ी हुई हैं। ईंट और मूर्त्तियोंको

देखनेसे मालूम होता है, कि यह स्थान अत्यन्त पुराना है। पुराने सिक्के और अस्त्रादि यहां पाये गये हैं। कुंडके पेटमें आधी गड़ी हुई देवीमूर्त्ति दीख पड़ती है। यही कुंडकी अधिष्ठात्री देवी है। कुछ समय पहले कुंडसे कुछ दूर एक विशाल पत्थरका टुकड़ा दिखाई देता था जिसे लोग सुरंगका दरवाजा समझते थे।

जोयत्कुंडिसे तीन मील पूर्व महाशाल नामका गांव है। यहां भी एक वड़ा तालाव है। हुसेनशाहके एक दरबारी मंगलसेनका यहां मकान था। अभी भी उसका खंडहर दीख पड़ता है। हुसेन शाहका यहां सिक्का पाया गया था। मंगलसेन महाशालके चौधरी वंशके आदि पुरुष थे। कितने लोग समझते हैं, कि मंगलसेनके नाम पर मंगलपुर परगनाका नाम पड़ा है।

मुर्शिदावादके वैष्णव समाजमें श्रीनिवासाचार्य्यका वड़ा प्रभाव दीख पड़ता है। प्रसिद्ध वैष्णव कवि गोविन्द-दास और रामचन्द्र कविराज तेलियाबुधुरि गांवमें रहते थे।

सेरपुर परगनेके अताई नगरमें एक मजबूत किला था। यहां राजा मानसिंह सदलवल पहुंचे थे। यहां मुगलों और पठानोंका घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें जीतनेके वाद मानसिंहकी कृपा सविता राय पर पड़ी। सविता रायका भाग्योदय हुआ, इन्हें फतहपुर परगना मिला। वर्त्तमान जमुआ-कान्दिका राजवंश सवितारायका वंशज है। इस वंशकी कीर्त्ति इस परगनेके अनेक स्थानोंमें विखरी पड़ी है।

इस जिलेके प्रसिद्ध मोतीझीलके पूर्वी किनारे पर कुमारपुर या कोयांरपाड़ा गांव है। यह वैष्णवोंका प्रिय स्थान है। जीवगोस्वामीकी प्रिय शिष्या हरिप्रिया ठाकुरानीने वृन्दावनसे कुमारपुर आ यहां राधामाधवकी मूर्त्ति स्थापन की। उनका वनवाया हुआ पुराना मन्दिर टूट गया, अभी एक नये मन्दिरमें मूर्त्ति स्थापित हैं।

वङ्गालमें यूरोपके व्यापारी लोग आने लगे और मुर्शिदावादमें उनकी कोठियां वनने लगीं। ओलन्दाजोंने ही सवसे पहले कासिमवाजारके पश्चिम कालिकापुरमें अपनी कोठी वनाई। अभी कालिकापुरमें उनके समाधि-क्षेत्रको छोड़ और कोई दूसरा चिह्न नहीं है।

ओलन्दाजोंके वाद अङ्गरेज लोगोंने कासिमवाजार आ अपनी कोठी वनाई। कलकत्तेकी व्यापारिक उन्नतिके पहले १७वीं और १८वीं शताब्दीमें कासिमवाजार वङ्गालका सवसे वड़ा वाणिज्य स्थान था। रेशम, रूई, रेशम और टसरके कपड़ों, मसलिन और हाथी दांतसे वनी अनेक वस्तुओंके व्यवसायके लिये कासिम वाजारका नाम एशिया और यूरोपके सभी मुख्य मुख्य वन्दरगाहोंमें प्रसिद्ध हो गया था। ई० सन्‌की १८वीं सदीके अन्त तक कासिमवाजार एक स्वास्थ्यप्रद स्थान समझा जाता था। १६वीं सदीके शुरूसे कासिमवाजारके भाग्यने पलटा खाया। इसके नीचेकी भागीरथीकी धार १८१३ ई०में वंद हो गई तथा साथ ही व्यापार और स्वास्थ्य भी जाता रहा। समयके फेरसे अव कासिमवाजारके चारों ओर जङ्गल ही जङ्गल है और अव यहां मलेरियाका अड्डा हो गया है। यहांके राय राजवंशके लोग इसका नाम किसी तरह जीवित रक्खे हुए हैं। अंग्रेज रेसिडेन्सी, उसके पासके समाधि स्थान, दो एक पुराने शिव मन्दिर और जैन लोगोंके नेमिनाथके मन्दिर आदिके पुराने खण्डहर इसकी पुरानी स्मृतिकी रक्षा कर रहे हैं।

१६६५ ई०में वादशाह औरङ्गजेवसे सनद पा कर अरमनियाके व्यापारियोंने सैदावाद आ अपनी कोठी खोली। पलासी-युद्धके वाद उन्होंने एक विशाल गिर्जाघर वनाया जो अभी तक सैदावादमें वर्त्तमान है। उनके वाद फ्रान्सवालोंने यहां आ कर कोठी वनाई। १८२६ ई०में सड़क वननेके समय यह कोठी ढाह दी गई। यह स्थान आज कल फरासडंगा नामसे विख्यात है।

इतिहास।

यह जिला वहुत दिन पहले शूर और पालवंशीय राजाओंका कर्मक्षेत्र था तथा इसके भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न जातिके राजाओंका उत्थान और पतन हुआ। तो भी इसका वास्तविक और शृङ्खलावद्ध इतिहास ई०सन्‌की १८वीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही सिलसिलेवार मिलता है। मुर्शिदकुली खां १७०३ ई०में मुकसुदावाद आया। इसने वर्त्तमान निजामत किलाके पूरव कुलुड़िया नामक स्थानमें दीवान खाना

और महल बनवाये तथा निपुणताके साथ दीवानी चलाई। १७०७ ई०में औरङ्गजेबकी मृत्यु हुई। आजिम उस्सानकी सहायतासे बहादुरशाह दिल्लीके सिंहासन पर बैठा। उसने संतुष्ट हो अपने पुत्र आजिम उस्सानको बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाका सूबेदार बनाया। लेकिन आजिमको बहुत समय पिताके पास रहना पड़ा था, इसलिये फर्रुखसियरको बङ्गालका प्रतिनिधि रख छोड़ा।

इस समय मुर्शिद कुली बादशाह बहादुरशाहसे आज्ञा ले कर बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानीके तथा बङ्गाल और उड़ीसाके नायब नाजिमके पदको प्राप्त कर दीवानी और निजामतके सभी कार्य्य स्वाधीनताके साथ करने लगा। मुर्शिदकुली खाँ देखो।

१७०६ ई०में फर्रुखसियर और मुर्शिद कुलीको कुछ जरूरी कामके लिये दिल्ली जाना पड़ा और इन लोगोंके स्थानमें शेर बलवत् खांको बंगाल, बिहार और उड़ीसा सम्बन्धी सभी कार्यका भार मिला। इस शेर बलवंत खांको ८५ हजार रु० दे कर अङ्गरेजी कम्पनीने बङ्गाल, बिहार और उड़ीसामें बेरोक-टोक व्यापार करनेका हुकुम पाया था। इसी वर्षके नवम्बरके महीनेमें शेर बलवंतने छुट्टी ली। १७१० ई०में आजीम उस्सानका प्रतिनिधि हो मुर्शिदकुली फिर कार्य्यक्षेत्रमें उतरा।

सन् १७१२ ई०के फरवरीके महीनेमें बहादुर शाह मर गया। उसकी मृत्युके बाद ही उसके लड़कोंमें विवाद खड़ा हुआ। विवादमें अजीम मारा गया। उसका बड़ा भाई मैज उद्दीन् "जहान्दार शाह"-की उपाधिसे सिंहासन पर बैठा। दिल्लीके उलट फेरकी खबर मुर्शिदाबादमें लोगोंको अच्छी तरह न लगी थी। मुर्शिद कुली यहाँ अजीमके मृत्यु-संवादको दबा कर उसीके नामसे सिक्का चलानेकी कोशिश करता था। अन्तमें जहान्दारको ही सम्राट् बतला कर उसने घोषणा कर दी।

इधर फर्रुखसियर आजिम उस्सानका प्रतिनिधि हो ढाकामें कई वर्ष रहा और बहादुरशाहके गद्दी पर बैठनेके बाद मुर्शिदाबाद आ कुछ दिन लालबागके महलमें ठहरा। पश्चात् वह राजमहल हो कर पटना गया और वहीं रहने लगा। बहादुर शाह और आजिमकी मृत्यु बाद उसने पटनेमें अपनेको "बादशाह" बतला कर घोषित किया और बादशाही लेनेके लिये मुर्शिदकुलिसे सहायता मांगी। लेकिन मुर्शिदकुलीने जवाब दिया, कि मैंने जहान्दारको बादशाह स्वीकार कर लिया है, इसलिये अब उनके विरुद्ध मैं कोई काम नहीं कर सकता। इस पर फर्रुखसियर बड़ा बिगड़ उठा और मुर्शिदको सारी सम्पत्ति तथा शिर काट लानेके लिये सैयद हुसेन अलीको भेजा। इस समय फर्रुखसियरने अंग्रेज और डच लोगों पर ४।५ रु०का दावा किया। अङ्गरेज लोगोंने नवाबके कर्मचारीको रिश्वत दे कर इस बार अपना पिंड छुड़ाया।

फर्रुखसियरकी सेनाको मुर्शिद कुली खांने बार बार हराया और अन्तमें उसके प्रधान कर्म्मचारीके भाई रसीद खांको मार डाला। दिल्लीकी गड़बड़ीका समाचार पा फर्रुखसियर आगरेकी ओर बढ़ा तथा सैयद भाइयोंकी असीम चेष्टासे १७१३ ई०में दिल्लीके सिंहासन पर बैठा। मुर्शिदकुलीने भी पूर्व प्रथाके अनुसार बादशाहको नजर आदि भेज उनके मानकी रक्षा की।

पहलेसे असन्तुष्ट रहने पर भी फर्रुखसियर जानता था, कि मुर्शिद एक कार्यदक्ष और विश्वस्त कर्म्मचारी है। अतएव इसके वर्त्तमान व्यवहारसे पहलेके द्वेषको भूल कर इस बार इसीको उन्होंने बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाकी सूबेदारी तथा दीवानी दी।

इसकी सूबेदारीमें बङ्गालकी सुख सम्पत्ति कुछ चढ़ी बढ़ी थी, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मुर्शिदकुली खां देखो। अपने पुत्रको प्राणदण्ड देनेके बाद मुर्शिद अपने नाती सरफराज खाँकी ओर अधिक झुका। यहां तक कि १७२४ ई०में अपने दामाद सरफराजके बाप सुजाउद्दीनके लिये कोशिश न कर सरफराजको मुर्शिदाबादका नाजिम बनानेके लिये मुर्शिद विशेष प्रयत्न करता था। लेकिन सुजाउद्दीनने दरबारके कर्मचारियोंको मुट्ठीमें कर लिया जिससे मुर्शिदका उद्देश्य सफल न हो सका। १७२५ ई०में मुर्शिदकी मृत्युके बाद सुजा ही बङ्गालका सूबेदार हुआ और अपने पुत्र सरफराजके व्यवहारसे सन्तुष्ट हो उसे बङ्गालकी दीवानी स्थायी रूपसे दे दी। सुजाने बङ्गालके सुशासनके लिये एक मन्त्री सभा

स्थापित की। हाजी अहमद और अलीवर्दी खाँ इन दोनों भाइयों तथा राय आलमचांद और जगत् सेठ फतहचांद इन चारोंसे यह मन्त्रिसभा संगठित हुई थी। इन चारोंमें राजकर सम्बन्धी विचारमें आलमचांद ही श्रेष्ठ था, इसीलिये सुजा खाँके अनुरोधसे बादशाहने उसे 'रायरायां'-की उपाधि दी। इसके पहले बङ्गालके किसी कर्म्मचारीको यह उपाधि न मिली थी। नवाब घरानोंने जब दीवानी छोड़ दी तो रायरायां ही दीवानी और राजकीय विभागमें श्रेष्ठ हो उठे। आलमचांद ही पहले पहल नायब दीवानसे प्रधान दीवान हुआ था।

मुर्शिद कुली खाँके समयमें जो जमींदार लोग कैद हुए थे, सुजाने उनमें जो निरपराध थे उन्हें मुक्त कर दिया। इससे जमींदार लोग सुजासे अत्यन्त सन्तुष्ट थे।

मुर्शिदके समयमें खालसा और जागीरके राजकर तथा सभी तरहके आववाब ले कर करीब डेढ़ करोड़ वार्षिक आय थी। सुजाने राजकर घटा दिया, तो भी आववावकी वृद्धिके कारण उसके समयमें वार्षिक आय करीब दो करोड़ रु० हो गई। आववावकी वृद्धि होने पर भी प्रजा सुजासे असन्तुष्ट न हुई।

सुजाने पहले बंगाल और उड़ीसाकी सूबेदारी पाई थी। १७३२ ई०में फकर-उद्दौला विहारका शासक था। लेकिन उसके कुव्यवहारसे दिल्लीके राजकर्मचारी अप्रसन्न रहते थे। पश्चात् खाँ दौरानकी सलाहसे सुजा उद्दीनने विहारका भी शासन भार अपने ऊपर लिया। इस सुजा खाँको कृपासे अलीवर्दीने विहारकी नायब नाजिमी और "महवत् जंग बहादुरकी उपाधि" बादशाहसे पाई। सचमुच सुजाके स्नेहके कारण ही हाजी अहमदके वंशधरोंका भाग्योदय हुआ था।

१७३९ ई०में अपने लड़के सरफराज खांको अपना उत्तराधिकारी निश्चित कर सुजा इस लोकसे चल बसा। सुजाउद्दीन देखो।

सुजाउद्दीनके जीते जी ही सरफराजके अनेक शत्रु हो गये थे। केवल सुजाकी उदारता और सद्व्यवहारसे मुग्ध हो कोई भी उसके पुत्रकी बुराई न करता था। सुजाकी मृत्युके बाद सरफराजकी संकीर्णता देख शत्रु लोग उठ खड़े हुए। उसकी विलासिता देख उसके पिताके मन्त्री आलमचांदने उसे बहुत समझाया बुझाया, लेकिन उसने चिढ़ कर वृद्ध मन्त्रीका बड़ा अपमान किया। आलमचांदने नितान्त असन्तुष्ट और मर्माहत हो कर उसके शत्रुओंका पक्ष लिया। जगत्सेठ भी नवाबके आचरणसे दुःखित हो उसका शत्रु हो गया।

सुजाने सरफराजको अपने मित्र हाजी अहमद पर श्रद्धा रखने कहा था, लेकिन सरफराजने इसकी परवाह न की। अतएव प्रधान प्रधान राजकर्मचारी उसे राज्यच्युत करनेके लिये षड़यन्त्र रचने लगे। इसी समय अलीवर्दी खां राज्यलोभसे सरफराजके विरुद्ध युद्ध करने चला। हाजी अहमदने उसका साथ दिया। गिरियाके निकट दोनों फौजोंमें मुठभेड़ हुई। १७४० ई०मे अलीवर्दी मुर्शिदाबादकी मसनद र आ बैठा। सरफराज खां देखो।

गद्दी पर बैठ नवाब अलीवर्दी खाँ मुर्शिद कुलीके समयसे सञ्चित अगाध धनका स्वामी हो गया। गुलाम हुसेनके मतसे इस समय नवाबने बादशाह महम्मदके पास करीब १ करोड़ रुपये उपहारमें भेजे थे। बादशाहने इसे सात हजारी मनसबदार बनाया और "सुजा-उल मुल्क हेसाम उद्दौला" की उपाधिसे सम्मानित किया। नवाब अलीवर्दी खाँने अपने पहलेके दीवान जानकी रामको राजाकी पदवी दे प्रधान दीवान और नायब दीवान चिन्मयको 'रायरायाँ'-की पदवी दे खालसा विभागका दीवान बनाया। इसका बहनोई क्रमशः इसकी कृपा पा कर मीरबक्सी या प्रधान सेनापति हुआ। मीरजाफर देखो।

अलीवर्दीने क्रमशः अपने पैर जमा कर पहले सुजाउद्दीनके दामाद और कटकके शासक मुर्शिदकुली खांको समूलनष्ट किया। बाद य: मरहठोंके विरुद्ध लड़ने चला। अनेक युद्धक्षेत्रोंमें सेनाके साथ रह कर इसने अपनी वीरताका परिचय दिया, फिर भी प्रजाकी भलाईके लिये मराठा सेनापति बाजीरावको चौथ देनेको सहमत हुआ। इसके राज्यकालमें मराठोंने जो उपद्रव मचाया उसीको इतिहासमें "वर्गीका हंगामा" कहते हैं। वर्गी और अलीवर्दी खां देखो।

१७५६ ई०में नवाब शोथ और उदररोगसे पीड़ित हो अन्तिम बार शय्या पर पड़ा। इस समय इसका प्यारा नाती सिराजउद्दौला इसकी राज्यकी देखभाल करता

था। अन्तमें नवाबके मरने पर सिराज ही बङ्गालका स्वाधीन नवाब हुआ। अलीवर्दीके समय हिन्दू और मुसलमान दोनों ही एक समान राज्यके ऊंचे पद पर नियुक्त किये गये थे। राजा जानकीरामका पहले ही उल्लेख हो चुका है। १७५३ ई०में उसकी मृत्युके बाद उसके चारों लड़कोंको अलीवर्दीसे खिलअत मिली थी। उसका लड़का राजा दुर्लभराम सेनाविभागका प्रधान दीवान था। राजा रामनारायण पटनेका नायब नाजिम था। रायरायां चिन्मय राय तथा आलमचांदके लड़के ऊंचे ऊंचे पद पर नियुक्त हुए थे। उच्च पदस्थ हिन्दू-कर्मचारी हो मनसबदार (सेनानायक) बनाये जाते थे। अलीवर्दीके ऐसे हिन्दूप्रेमके ही कारण हिन्दू-मुसलमान सेनानायक लोग अविचलित उत्साहसे नवाबकी जय-पताकाके नीचे डटे रहे। शत्रु लोग बाहरसे आ कर कुछ अनिष्ट न कर सके।

अलीवर्दीके गुण सिराजमें न थे अतएव इसका प्रभाव लोगों पर न पड़ सका। इसके बुरे आचरणसे अधिकांश सेनापति और प्रधान प्रधान हिन्दू कर्मचारी इससे विरक्त हो उठे। इस कारण पूरी सहायता और सम्पत्ति रहते हुए भी इसकी राजलक्ष्मी कुछ ही दिनोंमें विमुख हो गई। पलासीकी लड़ाईसे इसके भाग्यने पलटा खाया तथा इङ्गलैण्डके गोरोंका भाग्योदय हुआ। सिराज-उद्दौला और कम्पनी शब्दमें सविस्तार वर्णन देखो।

मीरजाफरके नाममात्रको नवाबी पद पानेके बाद मीर-कासिम कुछ समय तक पुराने गौरवको लौटानेकी चेष्टा करता रहा, लेकिन उसका राज्य नष्ट हो गया और अन्तमें उसे संन्यास लेना पड़ा। मीरजाफर और मीरकासिम देखो।

मीरकासिमके बाद बूढ़ा मीरजाफर अंगरेजोंको कठ-पुतलीकी तरह मुर्शिदाबादके सिंहासन पर कुछ दिन बैठा। १७६५ ई०में उसके मरने पर उसका लड़का उत्तराधिकारी हुए। उसके साथ भी अंगरेज लोगोंको नई सन्धि हुई। इस सन्धिके फलस्वरूप अंगरेजी कम्पनीने मानो शासनकार्य अपने हाथमें ले लिया।

संधिमें यह भी निश्चित हुआ कि बड़ा लाटसे परामर्श ले एक नायब नियुक्त करना होगा और बिना उनकी अनुमतिके वह नायब हटाया नहीं जा सकता।

१७६५ ई०में जब अयोध्याके वजीरने अंगरेजोंसे हार खा कर, कम्पनीको पूरी अधीनता स्वीकार कर ली, तब इलाहाबाद और कोराको छोड़ उसके सभी स्थान लौटा दिये गये। कम्पनीने बादशाहको ये दोनों स्थान दे, इसके बदलेमें बादशाही फरमानके अनुसार बंगाल, बिहार और उड़िसाकी दीवानी प्राप्त की। उन दिनों नवाब बादशाहको प्रतिवर्ष २६ लाख रु०थे उपहार भेजता था। अंगरेज लोगोंने उसे देनेका भी भार लिया तथा प्रति वर्ष वे निजामतके खर्चके लिये ५३८६१३१) रु० देनेमें भी सहमत हुए।

१७६६ ई०में नजमउद्दौलाकी मृत्यु हुई। पीछे उसका १६ वर्षका भाई सैफ उद्दौला नवाब हुआ। उसके साथ अंगरेज लोगोंकी एक सन्धि हुई और उसका वेतन घटा कर ४१८६१३१) रु० कर दिया गया। १७७० ई०में सैफउद्दौला चल बसा और उसका भाई मुवारक उद्दौला नवाब हुआ। उसके साथ भी एक सन्धि हुई तथा उसकी वृत्ति ३१८१९९१ रु० कर दी गई। मुर्शिदा-बादके नवाबके साथ यही अन्तिम सन्धि है। इसके बाद 'सूबेदार' नाम रहने पर भी सारी शक्ति अंगरेज-सरकारके हाथ आ गई। १७७२ ई० अङ्गरेज-सरकारने निजामतके खर्चके लिये अधिक रु०की जरूरत न समझ केवल १२ लाख रु० निश्चित कर दिया। अभी तक यही वृत्ति निश्चित है।

मुबारक उद्दौलाके बाद क्रमशः दिलवर जङ्ग, सैयद जैन उल आबुन खाँ (अली जा), सैयद अहमद अली खाँ (वाला जा), मुबारक अली खां (हुमायू जा) तथा उसका लड़का मनसूरअली खां मुर्शिदाबादका नवाब नाजिम हुआ मनसूर अली खांके समयमें १८७८ ई०में निजामतमें बड़ी गड़बड़ी मची जिससे नवाबको बहुत कर्ज हो गया। इसके पहले ही नवाबके हीरा जवाहिरात सरकारकी देख-भालमें रक्खे गये थे। नवाबने उन्हें बेच कर अपने कर्ज चुकानेकी प्रार्थना की। सरकारने एक कमीशन बैठाया। कमीशनने विचार कर निर्णय किया, कि नवाब नाजिमको किसी प्रकार ऋण करनेका अधिकार नहीं है।

१८८० ई०को १ली नवम्बरको मनसूर अलीने नवाब

नाजिमका पद छोड़ दिया। १८८२ ई०की १७वीं फरवरीको उसका लड़का सैयद हुसेन अली खाँ वहादुर सरकारसे सनद पा कर नवाव वहादुर हुआ। उसको उपाधि इम्‌तिषम्‌-उल्‌ मुल्क रइस्‌ उद्दौला, अमीर उल उमरा, नवाव सर सैयद हुसेन अली खां वहादुर महब्वत जङ्ग G. C. I. E हुई। मुर्शिदावादके निज़ामत महलमें निज़ाम रहते हैं। इनकी सलामीमें १६ वार तोप दगती है। इनके पुत्र वर्त्तमान नवाव वासिफ अली मिर्ज़ा, K. C. S. I. K. C. V. हिन्दू-मुसलमानके प्रति समभाव दिखलाते हुए मुर्शिदावादके भूतपूर्व नवावकी उदारता और महत्त्वकी रक्षा कर रहे हैं।

मुर्शिदावाद शहर—वङ्गकी पुरानी राजधानी। मुर्शिदावाद जिलेके लालवाग सव डिविजनका यह हेड क्वार्टर अर्थात्‌ प्रधान कार्य्यालय है। यह अक्षा० २४° १२´ उ० तथा देशा० ८८° १७´ पू०के मध्य भागीरथीके वायें किनारे पर वसा हुआ है। इसकी आवादी आज कल करीव ३५ हजार है।

इसका पहले मुक्सुदावाद नाम था और पहले यहों पर वङ्गालकी राजधानी थी। अव यह अङ्गरेजी राज्यमें शामिल है। यहां पहलेके नवावोंके विलुप्त प्रभावके प्रमाण आज तक वर्त्तमान हैं। ये मुसलमान नवाव एक समय इसी शहरसे सम्पूर्ण वङ्गालका शासन करते थे। १७०७ ई०में मुर्शिद कुली खाँ ढाका छोड़ गंगातीरवर्त्ती मक्सुदावादमें सूवादारी मसनद उठा ले गया और राज्य चलाने लगा। पलासी-युद्धमें पराजयके वादसे नवावी हुकुमत कम होने लगी तथा धीरे धीरे अङ्गरेजी कम्पनीका शासन वढ़ने लगा। गड़िया युद्धके वाद नवावी शासन का अन्त हुआ। इष्ट इंडिया कम्पनीके दीवानी पानेके वाद केवल निज़ामतके अधिकारी रह कर ही नवाव लोग सन्तुष्ट हुए। क्लाइव, मीर कासिम आदि देखो।

नामकरण।

ई० सन्‌की १८वीं सदीके पहले अर्थात्‌ मुर्शिद कुली खाँके वङ्गालमें आनेके पहले मकसुदावाद या मुक्सुदावाद एक छोटा शहर समझा जाता था। किस समय इस शहरकी उत्पत्ति हुई, ठीक मालूम नहीं पड़ता। कुछ लोग कहते हैं, कि सुलतान हुसेन शाहके समयमें मुखसूदन दास नामका एक नानकपन्थी संन्यासी था। उसने सुलतानके रोगको अच्छा कर दिया था। इस उपकारमें सुलतानने उसे यह स्थान लखराज दे दिया। उसी संन्यासीके नाम पर इसका नाम मुखसुदावाद पड़ा। रियाज-उल सलातीनका ग्रन्थकार लिखता है, कि मुखसुद खां नामक किसी वणिक्‌के नामसे मुक्सुदावाद नाम हुआ है। वादशाह अकवरके समयमें मुक्सुद खाँका उल्लेख है। वह वङ्गालके शासक सैयद खांका भाई था। वंगालके अनेक स्थानोंमें उसने राजकार्य्य किया था। यह मुक्सुद खां रियाजका मुक्सुस खाँ एक है या नहीं ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। जो हो, लेकिन थेलरके मतसे वादशाह अकवरके समयमें ही यह शहर वसाया गया था।

फिर भी १७वीं शताब्दीके लिखे दिग्विजयप्रकाश नामक संस्कृत भौगोलिक ग्रन्थमें "मौरसुधावाद" नाम पाया जाता है। यहांकी किरीटेश्वरीका प्रसंग भी उक्त ग्रन्थमें आया है।

१७०३ ई०में मुर्शिद कुली खाँ मुकसुदावाद आ कर दीवानी करने लगा। उसके दूसरे वर्ष दाक्षिणात्यसे लौट कर मुकसुदावाद नाम वदल उसने अपने नाम पर इसका "मुर्शिदावाद" नाम रखा। मुर्शिद कुली खां देखो।

१७७२ ई०में वङ्गालका राज्य दूसरोंके हाथ गया और इस शहरकी अवनति होने लगी। शासन स्थान दूसरी जगह उठ जानेके कारण जनसंख्या भी कम होने लगी। १८१५ ई०में यहां डेढ़ लाखसे ऊपर लोग रहते थे। अभी केवल ३५ हजार लोग रहते हैं। १७५६ ई० मुर्शिदावाद शहर भागीरथीके दोनों किनारे लम्वाईमें ५ मील और चौड़ाईमें २॥ मील फैला हुआ था। इसका घेरा करीव ३० मील लिखा गया है।

१८वीं शताब्दीका इतिहास ले कर ही इस शहरकी प्रधानता दिखलाई जाती है। १७०४ ई०में मुर्शिदकुली खांने यहां राजपाट स्थापित कर अपने नाम पर इसका नामकरण किया। उस समयसे ले कर २०वीं शताब्दीके वर्त्तमान समय तक इस शहरमें वङ्गालके नवाव घरानेके महलें मौजूद है। १७९० ई०में लार्ड कार्नवालिसने वङ्गालके फौजदारी शासन-विभागको कलकत्तेमें स्थापित किया जिससे मुर्शिदावादकी ऐतिहासिक प्रधानता जाती रही।

१६९६ ई०में उड़िसाके वागी अफगानोंने ५ हजार मुगल-सेनाको हरा इस नगरको लूटा। कहा जाता है, कि युवराज आजिम उस्सानने गुप्तरूपसे मुर्शिदकुलीको मारना चाहा। मुर्शिद ढाकासे यहां भाग आया। उसके यत्नसे मुक्सुवाद महलोंसे सुशोभित मुर्शिदावाद हो गया। इससे यह अनुमान होता है, कि उस समय मग और पोर्त्तुगीज डकैतोंका उपद्रव कम हो गया था जिससे राजसीमाकी रक्षा करना उतना जरूरी नहीं समझा जाता था। मुर्शिदने सोचा कि, यहांसे वङ्गाल, विहार और उड़िसाका शासन करनेमें सुविधा होगी और हुगली किनारेके शहर तथा गावोंके साथ खूब व्यापार चलेगा। सम्भवतः यही विचार कर उसने यहां राजधानी वसाई थी।

इस शहरके नवाबी कीर्त्तियोंमें वर्त्तमान निजामत-प्रासाद, निजामत किला, आइना-महल, अन्दर महल, निजामत कालेज और इमामवाड़ा आदि विशेष कर उल्लेखयोग्य है।

१८३७ ई०में जेनरल मकल्युडकी देखरेखमें पुराने प्रासादोंकी मरम्मत होने लगी जिसमें १० लाख ६७ हजार रु० खर्च हुए। नवाव सिराजउद्दौलाकी वनाई इमामवाड़ा मसजिद मुहरममें आतशवाजोके समय जल गई जिसकी मरम्मतमें १८४७ ई०को ६ लाख रु० खर्च हुए। यह हुगलीके प्रसिद्ध इमामवाडे से वहुत वड़ो है। नवाव सिराज इसमें जितना धनरत्न आदि छोड़ गया था उसमें अधिकांश मीरकासिमने बेच दिया। मुहर्रमके समयमें अनेक स्थानोंसे लोग यहां जमा होते है। इसके अलावा ख्वाजा खिजिरके उत्सव समयमें वड़ा समारोह होता है। इसमें पौष संक्रान्तिकी हिन्दू-प्रथाके जैसे नदीजलमें दीप वहाये जाते हैं।

इसके वाद मुवारक-मंजिलकी मणिवेगम मसजिद, मनसूरगंजका मोती-झीलप्रासाद, भागीरथी किनारेके खुशवागका समाधिमञ्च देखने योग्य है। मोती झील पर पहले नवाजिस महम्मदने अपने रहनेके मकान वनवाये थे। पीछे गौड़ नगरकी पठान कीर्त्तिके ध्वंसावशेषसे सिराजउद्दौलाने मोती झील, प्रासाद और मनसूरगञ्जनगर स्थापित किये। इस प्रासादसे ही वह पलासीके युद्धक्षेत्रमें उतरा था। यहां ही कर्नेल क्लाइवने मीरजाफरको सूवेदारी मसनद पर वैठाया था। यहीं रह कर वङ्गालके दीवान लार्ड क्लाइवने कम्पनीकी ओरसे पहले पहल कर वसूल किया था। यहां लार्ड वारेनहेष्टिंग्स और सर जान्सोर १७७१-७३ ई०में रह गये हैं।

मुलकी (अ० वि०) १ मुल्की देखो। २ देशी।

मुलकी—मान्द्राज प्रदेशके दक्षिण कणाड़ा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १३° ५' १५" उ० तथा देशा० ७४° ४९' ३५" पू०के मध्य अवस्थित है। मङ्गलूरसे यह ६॥ कोस उत्तर समुद्रकी खाड़ी पर वसा हुआ है। खाड़ीके पास ही समुद्रगर्भसे कुछ पर्वतशृङ्ग देखे जाते हैं जो मुलकी या 'प्रिमिरा रक' नामसे प्रसिद्ध है।

मुलगुन्द—वम्वई प्रदेशके धारवार जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १५° १७' उ० तथा देशा० ७५° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। यह स्थान एक समय तासगांव सामन्तराजके अधीन था। १८४५ ई०में यहांके सरदार वंशके कोई उत्तराधिकारी न रहनेके कारण यह स्थान वृटिशसाम्राज्यमें मिला लिया गया।

मुलजिनापुर—गुजरात प्रदेशके महिकान्थ पोलिटिकल एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। वड़ौदापति गायकवाड़को ये कर देते हैं।

मुलजिम (अ० वि०) अभियुक्त, जिस पर कोई अभियोग हो।

मुलतवी (फा० वि०) जो कुछ समयके लिये रोक दिया गया हो, जिसका समय टाल दिया गया हो।

मुलतान—मूलतान देखो।

मुलतानी (हिं० वि०) १ मुलतानका, मुलतान संवंधी। (स्त्री०) २ एक रागिणी। इसमें गांधार और धैवत कोमल, शुद्ध निषाद और तीव्र मध्यम लगता है। इनके अतिरिक्त तीनों स्वर शुद्ध होते हैं। शास्त्रमें इसे श्रीरागकी रागिणी कहा है। हनुमत्‌के मतसे यह दीपक रागकी रागिणी है। इसके गानेका समय २१ से २४ दण्ड तक है। ३ एक प्रकारकी वहुत कोमल और चिकनी मिट्टी। यह खास कर मुलतानसे आती है। इसका रंग वादामी होता है और यह प्रायः सिर मलनेमें सावुनकी तरह काममें आती है। इससे सोनार लोग सोना साफ करते। छीपी लोग अनेक प्रकारके रंगोंमें अस्तर देने और साधु आदि इससे कपड़ा रंगते हैं।

मुलना (अ० पु०) मौलावी, मुल्ला।

मुलम्मची (हिं० पु०) किसी चीज पर सोने या चांदी आदि-का मुलम्मा करनेवाला, गिलट करनेवाला।

मुलम्मा (अ० वि०) १ चमकता हुआ। २ जिस पर सोना या चांदी चढ़ाई गई हो, सोना या चांदी चढ़ा हुआ। (पु०) ३ वह सोना या चांदी जो पत्तरके रूपमें, पारे या बिजली आदिकी सहायतासे अथवा और किसी विशेष प्रक्रियासे किसी धातु पर चढ़ाया जाता है। इसे गिलट या कलई भी कहते हैं। साधारणतः मुलम्मा दो प्रकारका होता है, गरम और ठंढा। जो मुलम्मा कुछ विशिष्ट क्रियाओं द्वारा आगकी सहायतासे चढ़ाया जाता है वह गरम और जो बिजलीकी बैटरीसे अथवा और किसी प्रकार बिना आगकी सहायताके चढ़ाया जाता है वह ठंढा मुलम्मा कहलाता है। ठंढेकी अपेक्षा गरम मुलम्मा अधिक स्थायी होता है।

४ ऊपरी तड़क-भड़क, वह बाहरी भड़कीला रूप जिसके अन्दर कुछ भी न हो।

मुलम्मासाज (फा० पु०) किसी धातु पर सोना या चांदी आदि चढ़ानेवाला, मुलम्मा करनेवाला।

मुलहठी (हिं० स्त्री०) मुलेठी देखो।

मुलहा (हिं० वि०) १ जिसका जन्म मूल नक्षत्रमें हुआ हो। २ उपद्रवी, शरारती।

मुलाँ (अ० पु०) मौलवी, मुल्ला।

मुलाकात (अ० स्त्री०) १ आपसमें मिलना, एक दूसरेका मिलाप। २ मेल मिलाप, हेलमेल। ३ प्रसङ्ग, रति-क्रीड़ा।

मुलाकाती (अ० पु०) परिचित, वह जिससे मुलाकात या जान पहचान हो।

मुलागुल—आसाम प्रदेशके श्रीहट्ट जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह खासी पर्वतके नीचे लूवा नदीके किनारे अवस्थित है। जयन्ती पर्वतवासी वणिक् सम्प्रदाय यहांकी हाटमें आ कर पण्यद्रव्य खरीदते हैं। इसके सिवाय यहां हाथी आदिका शिकार करनेका एक प्रधान अड्डा है, इस कारण यहां थाना आदि प्रतिष्ठित हुए हैं। जिस जंगलमें हाथीका शिकार किया जाता है, वह भी मुलागुल कहाता है।

मुलाजिम (अ० पु०) १ प्रस्तुत रहनेवाला, पास रहनेवाला। २ सेवक, नौकर।

मुलाजिमत (अ० स्त्री०) सेवा, नौकरी।

मुलाम (अ० पु०) मुलायम देखो।

मुलायम (अ० वि०) १ सख्तका उलटा, जो कड़ा न हो। २ नरम, हलका। ३ सुकुमार, नाजुक। ४ जिसमें किसी प्रकारकी कठोरता या खिंचाव आदि न हो।

मुलायमत (अ० स्त्री०) १ मुलायम होनेका भाव। २ सुकुमारता, कोमलता, नाजुकता।

मुलायमरोआँ (हिं० पु०) सफेद और लाल रोआँ जो मुलायम होता है।

मुलायमियत (अ० स्त्री०) १ मुलायम होनेका भाव, नर्मी। २ कोमलता, नजाकत।

मुलायमी (अ० स्त्री०) मुलायमत देखो।

मुलाहज़ा (अ० पु०) १ निरीक्षण, देखभाल। २ सङ्कोच। ३ रिआयत।

मुलिलाडेरी—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ प्रदेशके हालर विभागान्तर्गत एक सीमान्त राज्य।

मुली—१ गुजरातके झालावार प्रान्तस्थित एक देशीय सामन्त राज्य। यह अक्षा० २२°३८´ से २२°४६´ उ० तथा देशा० ७१°२५´ से ७७ ३८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १३३ वर्गमील और जनसंख्या ८० हजारके लगभग है। यह स्थान स्वभावतः ही समतल है। कहीं कहीं गण्डशैलमाला देखी जाती है। यहां रुई काफी पैदा होती है। निकटवर्त्ती धोलूरा बन्दरमें ही यहांके उत्पन्न अनाज बिकने जाते हैं। यहांकी आबहवा उतनी खराब नहीं है। यहांके सामन्त परमारवंशीय राजपूत हैं, सभी ठाकुर कहलाते हैं। अभी उक्त ठकुरात-सम्पत्ति विभिन्न पट्टीदारोंमें बंट गई है। सरदार सर्त्तनसिंहजी (१८८२-८५) परमारवंशके उज्ज्वल रत्न थे। विद्यादि नाना सद्गुणों से विभूषित थे। यहांके ठाकुरको बृटिश सरकार और जूनागढ़के नवावको वार्षिक ६३५ रु० कर देना पड़ता है। सैन्यसंख्या २२५ है। इसमें इसी नामका एक शहर और २० ग्राम हैं।

२ उक्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २२°३८´ उ० तथा देशा० ७१°३०´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ६ हजारके लगभग है। यहां नारायणस्वामि-

सम्प्रदायका एक मन्दिर है। घोड़की पीठकी जिन तैयार होनेके कारण यह स्थान प्रसिद्ध है।

मुलुक (अ० पु०) मुल्क देखो।

मुलेठी (हिं० स्त्री०) घुंघची या गुंजा नामकी लताकी जड़ जो औषधके काममें आती है, जेठी मधु। विशेष विवरण यष्टिमधु शब्दमें देखो।

मुल्क (अ० पु०) १ देश। २ सूबा, प्रान्त। ३ संसार, जगत्।

मुल्कगीरी (अ० स्त्री०) देश पर अधिकार प्राप्त करना, मुल्क जीतना।

मुल्की (अ० वि०) १ देशसंबंधी, देशी। २ शासन या व्यवस्था संबंधी।

मुल्तवी (अ० वि०) जो रोक दिया गया हो, जिसका समय आगे बढ़ा दिया गया हो, स्थगित। मुलतवी देखो।

मुल्वागल—१ महिसुरके कोलार जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३° १' से १३° २२' उ० तथा देशा० ७८° १४' से ७८° ३६' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३२७ वर्गमील और जनसंख्या ७० हजारके लगभग है। इसमें मुल्वागल नामक एक शहर और ३५१ ग्राम लगते हैं। पालर नामकी नदी तालुकके पश्चिम हो कर बह गई है। यहां बहुतसे जलाशय और कूप हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १३° १०' उ० तथा देशा० ७८° २४' पू० कोलर शहरसे १८ मील पूरबमें अवस्थित है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है।

मुल्ला (अ० पु०) मुसलमानोंका आचार्य वा पुरोहित, मौलवी। मौलवी देखो।

मुवक्किल (अ० पु०) वह जो अपने किसी कामके लिये कोई वकील नियुक्त करे, वकील करनेवाला।

मुशज्जर (अ० पु०) एक प्रकारका छपा हुआ कपड़ा।

मुशटी (सं० स्त्री०) मुश-अटन्-पृषोदरादित्वात् साधुः। सितकङ्गु, सफेद कंगनी धान।

मुशफ़िक़ (अ० वि०) १ कृपालु, दयालु। २ मित्र, दोस्त। ३ दयावान, रहम दिल।

मुशल (सं० पु०) धान आदि कूटनेका डंडा, मूसल।

मुशलिका (सं० स्त्री०) मुष (वृषादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८) इति कलश्चित् स्यात्, टाप्, ततः संज्ञायां कन्, अकार स्येत्वं। १ तालमूली। संस्कृत पर्याय—पली, सुवहा, तालपत्रिका, गोधापदी, हेमपुष्पी, भूताली, दीर्घकन्दिका, मूषली, तालिका, तालमूलिका, अर्शोघ्नी। गुण—मधुर, शीतल, वृष्य, पुष्टि और बलप्रद, पिच्छिल, कफद, पित्त, दाह और श्रमनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—मधुर, वृष्य, उष्णवीर्य, बृंहण, गुरु, तिक्त, रसायन और गुदरोगनाशक। २ गृहस्थित सरीसृप-विशेष, छिपकली।

मुशली (सं० पु०) मूसल धारण करनेवाले बलदेव।

मुशलीकन्द (सं० पु०) तालमूलिका।

मुश्क (फा० पु०) १ मृगनाभि, कस्तूरी। २ गंध, बू। (स्त्री०) ३ कंधे और कोहनीके बीचका भाग, भुजा।

मुश्कदाना (फा० पु०) एक प्रकारकी लताका बीज। यह इलायचीके दानेके समान होता है। जब यह टूटता है, तब कस्तूरी की सी सुगंध निकलती है। संस्कृतमें इसे लता-कस्तूरी कहते है। इसका गुण स्वादिष्ट, वीर्यजनक, शीतल, कटु, नेत्रोंके लिये हितकर, कफ, तृषा, मुखरोग और दुर्गन्ध आदिका नाश करनेवाला माना गया है।

मुश्कनाफ़ा (फा० पु०) कस्तूरीका नाफा जिसके अन्दर कस्तूरी रहती है।

मुश्कनाभ (फा० पु०) वह मृग जिसकी नाभिमें कस्तूरी होती है। कस्तूरीमृग देखो।

मुश्कबिलाई (फा० स्त्री०) एक प्रकारका बिलाव। इसके अंडकोशोंका पसीना बहुत सुगंधित होती है, गंध-बिलाव। इसके कान गोल और छोटे होते हैं और रंग भूरा होता है। दुम काली होती है, पर उस पर सफेद छल्ले पड़े रहते हैं। इसकी लम्बाई प्रायः ४० इंच होती है। यह राजपूताने और पंजाबको छोड़ कर सारे भारत वर्षमें पाया जाता है। यह बिलोंमें रहता है और शिकारी होता है। यह पाला भी जा सकता है और चूहे, गिलहरी आदि खा कर जीवनधारण करता है। इसे संस्कृतमें गन्धमार्जार कहते हैं। गन्धमार्जार देखो।

मुश्कमेंहदी (फा० स्त्री०) एक प्रकारका छोटा पौधा। यह बागोंमें शोभाके लिये लगाया जाता है।

मुश्किल (अ० वि०) १ दुस्साध्य, कठिन। (स्त्री०) २ कठिनता, दिक्कत। २ विपत्ति, मुसीबत।

मुश्की (फा० वि०) १ कस्तूरीके रंगका, काला। २ मुश्क मिश्रित, जिसमें कस्तूरी पड़ी हो। (पु०) ३ वह घोड़ा जिसका शरीर काला हो।

मुश्त (फा० पु०) मुट्ठी।

मुश्तहिर (अ० वि०) जो प्रसिद्ध किया गया हो, जिसका इश्तहार दिया गया हो।

मुश्ताक (अ० वि०) १ इच्छा रखनेवाला, चाहनेवाला। २ प्रेमी, आशिक।

मुषक (सं० पु०) मूषिक, चूहा।

मुषल (सं० पु० क्ली०) मोषति मुष्यतेऽनेन वेति मुष्-(वृषादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८) इति कलश्चित् स्यात्। १ मूसल। २ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

(भारत १३।४।५२)

मुषली (सं० स्त्री०) मुष्यते इति मुष्-कल ङीष्। १ तालमूलिका। २ गृहगोधिका, छिपकली।

मुषल्य (सं० त्रि०) मुषल मर्हतीति मुषल-(दण्डादिभ्यो यः। पा ४।१।४६) मुषलवध्य।

मुषा (सं० स्त्री०) मुष्-क-टाप्। मूषा, सोना आदि गलानेकी घरिया।

मुषि (सं० स्त्री०) चोरी।

मुषित (सं० त्रि०) मुष्-कर्मणि-क्त। १ चोरित, चुराया हुआ। १ वञ्चित, ठगा हुआ।

मुषितक (सं० क्ली०) १ नीच भावसे चोरी। २ चोरीका माली।

मुषीवन् (सं० पु०) तस्कर, चोर।

मुष्क (सं० पु०) मुष्णाति वीर्य्यमिति मुष-(सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्। उण् ३।४१) इति कक्। १ अण्डकोष। २ मोक्षक वृक्ष, मोखा नामका पेड़। ३ तस्कर, चोर। ४ ढेर, राशि। (त्रि०) ५ मांसल, मांससे भरा हुआ।

मुष्कक (सं० पु०) मुष्क संज्ञायां कन्। १ वृक्षविशेष, मोखा नामक पेड़। संस्कृत पर्याय—गोलीढ़, झाटल, घण्टापारुलि, मोक्ष, मोक्षक, मुष्क, मोचक, मुश्कक, गौलिक, मेहन, क्षारवृक्ष, पाटली, विषापह, जटाल, वनवासी, सुतीसुक, गोलिह, क्षारश्रेष्ठ, घण्टा, घण्टाक, झाट। यह वृक्ष सफेद और कालेके भेदसे दो प्रकारका होता है। इसका गुण—कटु, तिक्त, ग्राही, उष्ण, कफ और वातनाशक, विष, मेद, गुल्म, कण्डूवस्तिरोग, कृमि और शुक्रनाशक माना गया है। (भावप्र०) राजनिघण्टुके मतसे यह रेचक, पाचक, प्लीहा और उदररोगनाशक है।

मुष्कादिवर्ग (सं० पु०) मुष्कक आदि करके द्रव्यगण। मुष्कक, स्नुक्, वरा, द्वोपी, पलाश, धव और शिंशपा ये सब द्रव्यगण हैं। इसका गुण—गुल्म, मेह, अश्मरी, पाण्डु, मेद, अर्श और कफ तथा शुक्रनाशक।

(वाभट सूत्रस्था० १५ अ०)

मुष्ककच्छ (सं० स्त्री०) पोता बढ़ना।

मुष्कभार (सं० त्रि०) प्रवृद्ध मुष्क, बढ़ा हुआ पोता या अंडकोष।

मुष्कर (सं० पु०) प्रशस्तः मुष्कोऽस्यास्तीति मुष्क (ऊषसुषिमुष्कमधो रः। पा ५।१।१०७) इति र। १ महाण्डकोष, बड़ा पोता। २ पुरुषको मूत्रेन्द्रिय।

मुष्कवत् (सं० त्रि०) १ मुष्कयुक्त. अंडकोषवाला। २ मुष्क सदृश, अंडकोषके जैसा।

मुष्कशून्य (सं० पु०) मुष्केण शून्या। वृषणरहित, वह जिसके अंडकोष निकाल लिये गये हों, वधिया। २ राजाओंका अन्तःपुररक्षक। पर्याय—अनुपस्थ, स्त्रीस्वभाव, महल्लिक।

मुष्कावर्ह (सं० पु०) मुष्कं आवृहति उन्मूलयतीति आवृ-वृह-कर्मण्यण्; यद्वा आवर्हणं आवर्हः भावे घञ्, मुष्कस्यावर्हः। कोषोन्मूलक, वह पशु जिसका वधिया किया गया हो।

मुष्ट (सं० पु०) १ चोरी। (त्रि०) २ मर्दित, मसला या नष्ट किया हुआ।

मुष्टामुष्टि (सं० अव्य०) परस्पर मुष्टिप्रहार द्वारा युद्धमें प्रवृत्त होना, आपसमें घूंसेबाजी।

मुष्टि (सं० पु० स्त्री०) मुष्-क्तिच्। १ एक प्राचीन परिमाण जो किसीके मतसे ३ तोलेका और किसीके मतसे ८ तोलेका होता था।

"स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धं पलं शुक्तिरष्टमिका तथा।
शुक्तिभ्याञ्च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रश्चतुर्थिका॥"

(शार्ङ्गधरसंहिता १ अ०)

२ बद्धपाणि, मुट्ठी। ३ कुञ्च्यग्रभाग, परिमाणविशेष, छटांक।

"अष्टमुष्टिर्भवेत् कुञ्चिः कुञ्चयोऽष्टौ च पुष्कलः।"

(प्रायश्चित्तत०)

मुष-क्तिन्। ४ मोषण, चोरी। ५ प्रहारविशेष, मुक्का, घूंसा।

"चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान्॥"

(मार्क०पु० ९०।१५)

यदि कोई आदमी राहमें चलते चलते थक गया हो, भूखसे व्याकुल हो रहा हो और उसके पास खानेको कोई चीज न रहे, तो मुट्ठी भर मूंग, जौ और तिल बिना मांगे अर्थात् स्वामीकी अनुपस्थितिमें उठा लेनेसे उसे चोरीका पाप नहीं लगता। यदि उसे अत्यन्त भूख न लगी हो, तो पाप अवश्य लगेगा।

"तिलमुद्गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथिस्थितैः।
क्षुधार्त्तैर्नान्यथा विप्र विधिवद्भिरिति स्थितिः॥"

(कूर्मपु० उपवि० १५ अ०)

मुष स्तेये अधिकरणे क्तिन्। ६ शस्यगोपनकाल, दुर्भिक्ष। दुर्भिक्ष उपस्थित होने पर अनाजको छिपा रखना होता है।

"कच्चिद्बलवञ्च मुष्टिञ्च परराष्ट्रे परन्तप।
अविहाय महाराज! निहंसि समरे रिपून्॥"

(भारत २।५।६५)

७ ऋद्धि नामक औषध। ८ घण्टापाटलिवृक्ष, मोखा नामका पेड़। ९ कंसके दरबारका एक मल्ल। १० छुरे, तलवार आदिकी मूंठ, बेंट।

मुष्टिक (सं० पु०) मुष्णाति परवीर्यमिति मुष क्तिच्, संज्ञायां कन्। १ राजा कंसके पहलवानोंमेंसे एक जिसे बलदेवजीने मारा था।

मुष्टिः प्रयोजनमस्य मुष्टि-कन्। २ स्वर्णकार, सुनार। ३ चार अंगुलकी नाप। ४ मुट्ठी। ५ तान्त्रिकोंके अनुसार एक उपकरण जो बलिदानके योग्य होता है।

मुष्टिकस्वस्तिक (सं० पु०) नृत्यकालमें मुष्टिका अवस्थान-भेद, नाचनेके समय मुट्ठीका संचालन।

मुष्टिका (सं० स्त्री०) १ मुक्का, घूसा। २ मुट्ठी।

मुष्टिकान्तक (सं० पु०) मुष्टिकस्य अन्तकः। मुष्टिक नामक मल्लको मारनेवाले, बलदेव।

मुष्टिदेश (सं० पु०) धनुषका वह भाग जो मुट्ठीमें पकड़ा जाता है।

मुष्टिद्यूत (सं० क्ली०) मुष्ट्या द्यूतं क्रीड़ितं। द्यूतक्रीड़ा-विशेष। पर्याय—क्षुल्लक।

मुष्टिन्धय (सं० पु०) मुष्टिं धयति पिबति धेट (नाड़ी-मुष्ट्योश्च। पा ३।२।३०) इति खश्, (अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्। पा ६।३।६७) इति मुम्। १ बालक। २ मुष्टिबंधन-क्रिया, मुक्का।

मुष्टिमेय (सं० त्रि०) मुष्ट्या मेयः। मुष्टि द्वारा परिमेय, मुट्ठी भर, बहुत थोड़ा।

मुष्टियुद्ध (सं० क्ली०) मुष्टि द्वारा युद्ध, घूंसेबाजी।

मुष्टियोग (सं० पु०) १ हठयोगकी कुछ क्रियाएं जो शरीरकी रक्षा करने, बल बढ़ाने और रोग दूर करने-वाली मानी जाती हैं। जो रोग आयुर्वेदकी अच्छी अच्छी औषधियोंसे आरोग्य न होते हों, सामान्य मुष्टि-योग अवलम्बन करनेसे वे अति शीघ्र आरोग्य हो सकते हैं। जैसे—खानेके पहले दाहिनी करवट सो कर बाएं नाकसे श्वास ले कर उठ बैठना तथा प्राणायामकी तरह बाएं नाकको रुई अथवा हाथसे मूंदना। इसी प्रकार जब दाहिने नाकसे श्वास चलने लगे, तब खानेको बैठना। ऐसा करनेसे ऊर्द्ध्वांग श्लेष्मा और अम्लरोग दूर होता है।

वातज स्वरभङ्गमें तेल और नमक, पैत्तिकमें घी और मधु तथा कफजमें क्षार, कटुद्रव्य और मधु इन्हें एकत्र चबा कर खानेसे तालु, जिह्वा और दन्तमूलाश्रित श्लेष्मा दूर होती है तथा मुंह परिष्कार रहता है।

२ किसी बातका कोई छोटा और सहज उपाय।

मुष्टिहत्या (सं० स्त्री०) १ मुष्टि प्रहार द्वारा हत्या। २ मुष्टि प्रहार, घूंसेबाजी।

मुष्टिहन् (सं० त्रि०) हाथापाई युद्ध करनेवाला।

मुष्क (सं० पु०) मुष-बाहुलकात् कथन, ततः संज्ञायां कन्। राजसर्षप, सरसों।

मुसक (फा० पु०) मुश्क देखो।

मुसकराना (हिं० क्रि०) ऐसी आकृति बनाना जिससे जान पड़े कि हंसना चाहते हैं, बहुत ही मन्द रूपसे हंसना।

मुसकराहट (हिं० स्त्री०) मुसकरानेकी क्रिया या भाव, मधुर या बहुत थोड़ी हंसी।

मुसका (हिं० पु०) रस्सीकी वनी हुई एक प्रकारकी छोटी जाली। यह पशुओं, खास कर बैलोंके मुंह पर इसलिये बांध देते हैं जिसमें वे खलिहानों या खेतोंमें काम करते समय कुछ खा न सकें। इसे जाला भी कहते हैं।

मुसकान (हिं० पु०)) मुसकराहट देखो।

मुसकाना (हिं० क्रि०) मुसकराना देखो।

मुसकानि (हिं० स्त्री०) मुसकराहट देखो।

मुसकिराना (हिं० क्रि०) मुसकराना देखो।

मुसकिराहट (हिं० स्त्री०) मुसकराहट देखो।

मुसकुराना (हिं० क्रि०) मुसकराना देखो।

मुसकुराहट (हिं० स्त्री०) मुसकराहट देखो।

मुसखोरी (हिं० क्रि०) खेतमें चूहोंकी अधिकता होना, मुसहरी।

मुसजर (अ० पु०) एक प्रकारका छपा कपड़ा।

मुसटी (सं० स्त्री०) सितकंगु, एक प्रकारका धान।

मुसटो (हिं० स्त्री०) चुहिया।

मुसदी (हिं० स्त्री०) मिठाई वनानेका सांचा।

मुसद्दिका (अ० वि०) परीक्षित, जांचा हुआ।

मुसना (हिं० क्रि०) अपहृत होना, लूटा जाना।

मुसन्ना (अ० पु०) १ किसी असल कागजकी दूसरी नकल जो मिलान आदि वास्ते रखी जाती है। २ रसीद आदिका वह आधा और दूसरा भाग जो रसीद देनेवालेके पास रह जाता है।

मुसन्निफ़ (अ० पु०) ग्रन्थकर्त्ता, पुस्तक वनानेवाला।

मुसव्वर (अ० पु०) कुछ विशिष्ट क्रियाओंसे सुखाया और जमाया हुआ घीकुवांरका दूध या रस। यह औषध के काममें व्यवहृत होता है। इसका प्रयोग विशेषतः रेचनके लिये वा चोट आदि लगने पर मालिश और सेंक आदि करनेमें होता है। यह प्रायः जंजीवार, नेटाल और भूमध्यसागरके आसपासके प्रदेशोंसे आता है। इसका गुण चरपरा, शीतल, दस्तावर, पारेको शोधनेवाला तथा शूल, कफ, वात, कृमि और गुल्मको दूर करनेवाला माना गया है।

मुसमर (हिं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। यह खेतके चूहोंको पकड़ कर खाता है। इसे मुसहर भी कहते हैं।

मुसमरवा (हिं० पु०) १ मुसमर नामकी चिड़िया। २ चूहा खानेवाली एक नीच जाति, मुसहर।

मुसम्मा (अ० वि०) जिसका नाम रखा गया हो, नामधारी।

मुसम्मात (अ० वि०) १ मुसम्मा शब्दका स्त्रीलिङ्ग रूप, नामधारिणी। (स्त्री०) २ स्त्री, औरत।

मुसरा (हिं० पु०) पेड़की वह जड़ जिसमें एक ही मोटा पिण्ड धरतीके भीतर वहुत दूर तक चला जाय और इधर उधर शाखाएं न हों।

मुसरिया (हिं० स्त्री०) वह सांचा जिसमें कांचकी चूड़ियां वनाई जाती हैं। २ चूहेका वच्चा, मुसरी। ३ मुसरा देखो।

मुसल (सं० पु० क्ली०) मुस्यति खण्डयतीति मुस् (वृषादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८) कलः, चित् स्यात्। १ धान कूटने का एक औजार। यह लंवा मोटा डंडा-सा होता है। इस के मध्य भागमें पकड़नेके लिये खड्डा-सा होता है और छोर पर लोहेके साम जड़ी रहती है। २ आयुधविशेष, मुद्गर।

"मुसलस्त्वत्रिशीर्षाभ्यां करैः पादैर्विवर्जितः।
मूले चान्तेऽति सम्बन्धः पातनं पोथनं द्वयम्॥"
(वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद)

मुसल—एशियाखण्डके तुरुष्क राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन समृद्ध नगर। यह अक्षा० ३६° ५१' उ० तथा देशा० ४३° ५' पू० ताइग्रीस नदीके पश्चिमी किनारे अवस्थित है। नदीके किनारे वसे होनेके कारण कभी कभी नगर वाढ़के जलसे डूव जाया करता है। इसके ठीक दूसरे किनारे अर्थात् नदीके वाएं किनारे जगत्‌को प्राचीन तम राजधानी निनिमे नगरीका खंडहर मौजूद है। निनिमे नगरकी तरह यह नगर भी दीवारसे घिरा है।
निनिमे देखो।

इस नगरसे २८ मील दक्षिण नदीगर्भमें विख्यात जिकर-उल्-आवाज वा निमसद्-वांध देखनेमें आता है। यह ताइग्रीस नदीके एक किनारेसे दूसरे किनारे तक फैला हुआ है। उसके ७ मील दक्षिण भी जिकर इस्माइल नामक वांधका खंडहर पड़ा है। शायत ताइग्रीस नदीकी धाराके रुक जानेके कारण उक्त दोनों वांध तैयार हुए हैं।

इस नगरकी समृद्धिका परिचय मसलिन कपड़े का प्रचार बंद होनेसे ही समझा जाता है। जेनोफनके

वृत्तान्तमें इस स्थानको Mes Plyae कहा है। पूर्व-कालमें जब उत्तमाशा अन्तरीपके चारों ओर अथवा स्वेज-योजक हो कर भारतवर्ष आने जानेका पथ आविष्कृत नहीं हुआ था, उस समय यूरोपीय वणिक् संप्रदाय पैदल चल कर मुसल नगर आता और वहीं कुछ समय ठहरता था। वाणिज्य करनेके उद्देशसे भारतीय वणिक्‌गण तुरुष्कराज्य जाते थे, उसके यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं। जबसे यूरोपीय वणिक् दल समुद्रपथसे आने लगा, तबसे यहांके वाणिज्यव्यवसायमें भारी धक्का पहुंचा, साथ साथ जनसंख्या भी घट गई। नगरके बाहर नेब्वि फुनुस ग्रामके एक बड़े स्तूपके मध्य भग्नावस्थामें पतित एक मसजिद देखी जाती है। जनसाधारणका विश्वास है, कि यह पैगम्बर जोनाका समाधि-मन्दिर है। यहां बहुतसे सोते भी बहते हैं।

मुसलक (सं० पु०) १ पर्वतभेद। २ सरीसृपविशेष।

मुसलधार (हिं० क्रि० वि०) मूसलधार देखो।

मुसलमान—अरब देशवासी इस्लाम धर्म्मावलम्बी जाति-विशेष। महम्मदके चलाये धर्ममें विश्वास और आस्था रख जिन लोगोंने उनके मतका अनुसरण किया था, वे ही अरब देशीय मुसलमान कहे जाते हैं। इस्लाम-धर्मके सेवक साधु प्रकृति महम्मदके चेलोंका नाम मुसलिम् (Moslem) था। इसका अर्थ है—मुक्त पुरुष। अरबी भाषामें मुसलमान शब्दका बहुवचनमें मुसलमीन हो जाता है। इसीलिये महम्मदीय सम्प्रदाय धर्मगौरवज्ञापक मुसलमीन शब्दसे विभूषित हुआ है। इसी मुसलमीन शब्दका अपभ्रंश मुसलमान शब्द है। मुसलमान-रमणियां भी मुसलमानिन कहलाती हैं और वे अपने प्राचीन धर्म इस्लाम* धर्मको मानती हैं।

देश भेदसे उक्त मुसलमान जाति कई नामोंसे पुकारी जाती है। इस जातिके यूरोपमें मूर, अरबी, मुसलमान और तुर्क आदि कई नाम हैं। उत्तर-अफ्रिकामें यह जाति मगरबी कहलाती थी। किन्तु पीछे १६वीं शताब्दीके मध्यसे मूर कहलाने लगी है। मालूम होता है, कि जब यूरोपीयोंका यहां प्राधान्य हुआ और बहुतेरे यूरोपवासी यहां आ कर बस गये, तबसे यह जाति मूर कहलाने लगी। आबिसिनिया और न्यूबियाके मुसलमान हबशी, फारसके रहनेवाले पारसी, भारतीय मुसलमान सम्प्रदायके लोग हबशी, खण्डा, नेडे, पठान (अफगान), मुगल, तातार, पारसी, अरबी और तुर्क कहलाते हैं। तामिलमें तुर्कारा, चुलिया, तेलगु तुर्कवलु, जोनङ्गी, ब्रह्ममें प-थी, चीनमें होईहोय, कोएपान्थे। सिवा इनके सुमात्रा, सिंहल, यव और बलि प्रभृति द्वीपोंमें मुसलमान जातिके समागम होनेसे उन देशोंमें इसके विविध नाम दिखाई देते हैं। जैसे अरबके पश्चिमाभिमुखमें अग्रगामी स्पेन और उत्तर-अफ्रिका विजयी मुसलमान 'मूर' कहलाये, वैसे ही पूर्वाञ्चलवासी सार्किया मुसलमान-सम्प्रदायने 'सारासिन' नामसे पूर्व-अफ्रिका और एशिया खण्डमें प्रतिपत्ति विस्तार की थी। सहारा मरुभूमिके पर्य्यटनकारी प्राचीन अरब दल खृष्टान-सम्प्रदाय द्वारा 'सारासेन' नामसे पुकारा गया। इसे 'सहारा-जदेन' भी कहते हैं।

मध्ययुगमें जिन मुसलमानोंने यूरोपके फ्रान्स राज्यको जीत कर सिसिली द्वीपमें वास किया था वे ही खृष्टान-ग्रन्थोंमें 'सारासेन' नामसे पुकारे गये हैं। इस शब्दकी व्युत्पत्तिके सम्बन्धमें यूरोपीय ग्रन्थकारोंके विविध मत दिखाई देते हैं। Du Cange का कहना है, कि इब्राहिमकी स्त्रीका नाम सारा था। इसी सारा नामसे सारासेन नामकी उत्पत्ति हुई। Hottinger के

* मुसलमान और इस्लाम शब्द "सलम्" धातुसे उत्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है—निरापद, मुक्त अथवा मुक्तिदान करनेवाला। जिस धर्मका आश्रय लेनेसे इस धराधामकी यात्रा निर्विघ्न पार कर पारलौकिक मुक्ति मिलती है, महम्मदने उसी प्रसिद्ध और पवित्र धर्ममतका इस्लाम नाम रखा। सलाम, तसलीम, सलामत और मुसलिम शब्द उक्त धातुके प्रत्ययवाची शब्द हैं। मुसलीम शब्दके बहुवचनके रूपान्तरमें भी मुसलमान पद साधित होता है। भारतीय मुसलमान साधारणतः मुसलिम अर्थात् आदि मुसलमान और नव मुसलिम (नवमुक्त) अर्थात् स्वधर्मत्यागी इस्लाम-धर्मानुरागी भेदसे दो तरहके हैं। ये कभी कभी अपनेको महम्मदी या मोमिन भी कहते हैं। इनका आचरित धर्म 'दीन-इ-इस्लाम' कहलाता है।

मतसे अरवी 'साराका' शब्दके लूट या अपहरण शब्दसे 'साराकिन', Forster-के मतसे सहारा मरुभूमिसे और Stephanus Byzantinusके मतसे अरबके सरक जनपदवासी होनेसें इनका साराकानी या सारासेनी नाम हुआ। किन्तु अनुमान होता है, कि सार्किन् (पूर्वाञ्चलवासी) शब्दका अपभ्रंश शब्द सारासेनी हुआ होगा। क्योंकि ष्ठोलेके ग्रन्थमें ईसाके जन्मसे पहली शताब्दीमें ताइग्रीस और युफ्रेटिसके मध्यवर्त्ती जनपदवासी वेदौइन अरवगण, जो एशियाखण्डके रोमस्थित और पार्थीय राज्यके मध्यस्थलमें स्वतन्त्रतापूर्वक राज्यशासन किया था, वे ही सारासेनी नामसे उक्त हुए हैं। पीछे जिन सब अरबोंने महम्मदीधर्मको ग्रहण कर एशिया और अफ्रिकाखण्डमें इसलाम साम्राज्यकी स्थापना की थी, वे भी "सारासेनी" नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध हैं।

इसलाम अभ्युदयके डेढ़ शताब्दीके भीतर सारासेनोंने दक्षिण-यूरोप और उत्तर-अफ्रिकामें प्रभाव जमाया था, यहाँ आज भी कायरो नगरके हकीम और अमरी मसजिद आलम्ब्राके राजप्रासादका शिल्पचातुर्य्य दिखाई देता है, वह यूरोपीय चित्तके इतिहासमें सारासेनी स्थापत्य (Saracenic style या architecture) नामसे विख्यात है। सुप्रसिद्ध यूरोपीय कारीगर रावर्टस् लिउइस मर्फि, जोन्स, आदिने इसी शिल्पकी नकल कर सिडेनहामके "कृष्टाल पैलेस" नामक अट्टालिकासे शिल्पचातुर्य दिखलाया है। कुस्तुनतुनिया नगरमें भी सारासेनी स्थापत्यका अभाव दिखाई नहीं देता।

किस तरह महम्मदके प्रभावसे अरव देशमें इसलाम धर्मका दौरदौरा हुआ और किस तरह इस महम्मदी-सम्प्रदायने अपनी तलवारके बलसे दक्षिण यूरोप, उत्तर-अफ्रिका, मध्य और दक्षिण एशियाखण्डमें एक नई जाति और साम्राज्य स्थापित किया था, या किस प्रणाली द्वारा वह नये इसलाम मतके अनुष्ठानको कार्यान्वित करने पर वाध्य हुआ था, इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

उत्पत्ति।

५७१ ई०में अरवके मक्का नगरमें महम्मदका जन्म हुआ। उम्रकी वृद्धिके साथ साथ उनको उचित रूपसे शिक्षा प्राप्त हुई। इसी समय मूर्त्तिपूजक, मगी और खृष्टानोंका अभ्युदय हुआ था। विविध मतावलम्बियोंके मत-पार्थक्यसे देशमें एक अभावनीय अनिष्टपात तथा धर्मविप्लवकी आशङ्का कर उन्होंने दुर्दशाग्रस्त अरवोंके लिये मुक्तिका पथ प्रशस्त किया था। वे अपनी ४० वर्षकी अवस्थामें अपने मतको सर्वसाधारणमें फैलाने लगे। वह अपनेको ईश्वर-प्रेरित पैगम्बर कहते थे।

मक्काके रहनेवाले जो मूर्त्तिपूजक थे, खास कर कोराइस जातिवाले इस नये धर्मको पुरानी प्रथाका घोर विरोधी समझ कर महम्मदके प्राण-नाशकी चिन्ता करने लगे। इन विपक्षियोंको अपने सम्प्रदायके विरुद्ध खड़े होते देख तथा अपने पक्षवालोंको कमज़ोर देख मक्का छोड़ देश पर्य्यटन करनेके लिये चले गये। वे १६ दिन तक भ्रमण करते करते यायेव नगरमें पहुंचे।

६२२ ई०को १६वीं जुलाईको महम्मद मक्का छोड़ मदीनात् अल्-नव्वीमें चले आये। इसी भागनेकी तिथिसे इसलाम धर्मकी भित्ति दृढ़ हुई। खलीफा उमरने इस दिनको मुसलमान अभ्युदयका प्रथम हिजराद् कहा है। उसी समयसे आज तक मुसलमानोंका हिजरी सन् चला आता है।

मदीनेमें आ कर महम्मद अपने चेलोंके गुरु, खलीफा या राजा बने थे। यहां रह कर उन्होंने जिस तरह अपने सहकारियों और चेलोंको सहायतासे इसलाम धर्मको पुष्टि तथा विस्तृति की थी उसका हाल दूसरी जगह लिपिवद्ध हुआ है। ६३२ ई०में अरव-वासियोंको मुक्तिका पथ दिखलानेवाले महात्मा महम्मद ६४ वर्षकी उम्रमें जगत्में शान्ति स्थापित कर इस लोकसे चल बसे। मृत्युके समय उन्होंने अपनी प्रियतमा पत्नी आयेसाकी भुजा पर शिर रख कर शान्तिपूर्ण हृदयसे आकाशकी ओर देखते हुए स्वर्गके सर्वश्रेष्ठ साथीके उद्देश्यसे अपने प्राण विसर्जन किये। इससे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि महम्मद अन्तिम स्वर्गकी चिरानन्दप्राप्तिकी प्रत्याशामें आनन्दित हुए थे। महम्मद देखो।

मक्केसे मदीना भागनेके दिनसे अर्थात् महम्मदी हिजरीकी प्रतिष्ठासे महम्मदकी मृत्युके दिन तक १० वर्षोंमें मुसलमानधर्म और मुसलमान जातिने एशियाखण्डमें ऐसी जबरदस्त जड़ पकड़ ली थी, कि गत १४वीं

शताब्दीमें राजधर्म और जातिगत विप्लव और कितने ही परिवर्त्तन होने पर भी कोई उस जड़को हिला न सका। आज भी इस्लामधर्मके १४ करोड़ अनुयायी विद्यमान हैं।

महम्मदके चेलोंके मदीने आने पर महम्मदीय सम्प्रदायमें जुवीवेके पुत्र अवदुल्ला प्रथम मुसलमान पुत्रके रूपमें अरव देशमें अवतीर्ण हुए थे। क्रमशः मुसलमान जातिने महम्मदीय शक्तिके प्रभावसे तलवार और कुरान हाथमें ले कर "दीन् दीन्"के शब्दसे एशिया और यूरोप के दक्षिणी भूभागोंको गूंजा दिया था।

इतिहासके पढ़नेवाले प्रायः सभी जानते हैं, कि इस्लामधर्म प्रवर्त्तक महम्मदके जन्मसे पहले अरवमें एकमात्र सूर्य्योपासक मगी और मूर्त्तिपूजक और कृष्टान सम्प्रदायका प्रादुर्भाव हुआ था। विभिन्न मतावलम्बियोंके एकत्र समावेश होने पर मत-पार्थक्यके कारण आपसमें विवादकी सम्भावना रहती ही है, अतएव मग प्रधान फारसके साथ 'वाइजाण्टाइन'-का घोर विरोध होनेके कारण राष्ट्रविप्लव हुआ था। इन दोनों साम्राज्यों में आत्मश्लाघाकी प्रवलता थी। लगानके भारसे प्रजा पीड़न और विरोधी धर्मसम्प्रदायके मनोमालिन्यके कारण राजशक्तिका क्रमशः अवसान हुआ। इसी तरह विख्यात फारस साम्राज्य धीरे धीरे कमजोर हो गया। फारस देखो।

सुप्राचीन जरथुस्तर (Zoroaster) मतानुयायी फारसवाले फिर एकतासूत्रमें न बंध सकनेके कारण नई महम्मदीय शक्तिके सामने अपने धर्म्मकी रक्षा करनेमें समर्थ न हुए। फल यह हुआ, कि ये दोनों राज्य अरवोंके हाथ आ गया। उस समय जो अरववासी हम्मदीय सम्प्रदायकी तलवारके भयसे स्वच्छन्दतापूर्वक इस्लामधर्मको ग्रहण किया, समय पा कर वे ही मुसलमान स्वधर्मी समझ मुसलमान समाजमें मिला लिये गये। यहूदी और खृष्टानोंको सम्मान विसर्जन करना पड़ा था और कर देनेसे उनका छुटकारा हुआ था। विधर्मी काफिर मुसलमानोंको तलवारसे टुकड़े टुकड़े कर दिये गये।

परिवृद्धि।

इस समय मुसलमान जातिके अधिनायक और मुसलमान साम्राज्यके अधीश्वर केवलमात्र इस्लाम-धर्म-प्रवर्त्तक महम्मद ही हुए। उनके उत्तराधिकारीके रूपमें पीछेके खलीफोंने मुसलमान समाजका नेतृत्व लाभ किया था। उनकी राजशक्तिके धर्म्मप्रणोदित होनेसे और जातीय एकताके कारण उनके शासनदण्डने देश-देशान्तरमें अपना विस्तार किया था।

इस खलीफावंशके प्रथम शताब्दीका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि मुसलमान सम्प्रदाय श्रृङ्खलावद्ध विजयके अभियानोंसे मुसलमान-साम्राज्यको समृद्धि भूषासे अलंकृत किया था। आवूबकरके शासनकालमें वीरवर खालेदने समग्र सिरिया, मेसोपोटामिया और उसके सेनापति अमरुविन-आसने समूचे मिस्र राज्यको अरव राज्यमें मिला लिया। वहां उन्होंने १४ महीने घेरा रखनेके वाद अलेकजेण्ड्रिया और मेम्फिसको जीत कायरो नगरकी स्थापना की थी।

मिस्र जीत कर मुसलमान सैनिकोंने भूमध्यसागरतीरवर्त्ती साइरेनिका आदि छोटे छोटे राज्यों पर अधिकार कर लिया। इसी समय अफ्रिकाके वर्वर दलके साथ अरवी मरुपुत्रोंका सद्भाव स्थापित हुआ। इससे मुसलमान शक्ति और भी दृढ़ हो गई थी।

सैयद विन-आवी-वक्सने सन् ६३५ ई०के काड़ेसिया युद्धमें, ६३७ ई०में जलूला रणक्षेत्रमें और ६४२ ई०के होवलन और नेहवन्द रणाङ्गणमें फारसकी सेनाओंको पराजित कर फारसके राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसमानके राजत्वकालमें सन् ६४८ ई०में सायप्रेस द्वीप लूट लिया गया था। इसके वाद अवदुल्ला विन-उमरने खुरासान पर अधिकार कर वाह्लिक राज्य तक आगे वढ़ मुसलमान साम्राज्यका विस्तार किया था।

आलीविन आवितालके राज्यकालमें गृहविवाद आरम्भ हुआ। फलतः राष्ट्रविप्लव मच गया। उन्होंने इस वलवेको शान्त करनेकी भरपूर चेष्टा की, किन्तु अन्तमें वलवाइयोंमें प्रधान अब्दुल रहमान विन् मोलजमके हाथसे मारे गये। उनके राजत्वसे ही महम्मद पर्कीय

खलीफा वंशके शासनका लोप हुआ। इसके बाद उमैयदोंने खलीफा-सिंहासनको सुशोभित किया था।

इस वंशके पहले खलीफा मोयातिया युफ्रेटिस तीरवर्त्ती क्यूयग नगरीसे दमश्क नगरमें अपनी राजधानी उठा ले गये। उनके राजत्वकालमें मुसलमान-सेनापति उक्वाबिन नफिरके प्रयत्नसे सन् ६७५ ई०में कैरवाननगरकी स्थापना हुई। इसके बाद उन्होंने उक्वा टांजियार हो कर अटलाण्टिक महासागरके किनारे तक मुसलिम प्रभाव विस्तार किया। वहांसे समुद्रको पार कर स्पेन राज्यमें जाते समय उनकी मृत्यु हुई। अतएव नेताके अभावमें मुसलमान शक्ति छिन्न भिन्न हो उठी और इस सुदूर पश्चिम-अफ्रिकाके भूभागमें मुसलमानों द्वारा छिन्न भिन्न राज्य फिरसे स्वतन्त्र बन गये।

इसके बाद फिर ६८८ ई०में जिब्राल्टर प्रणाली तक समग्र उत्तर-अफ्रिका अरब जातिके हाथ आ गया। खलीफा प्रथम वालिद्के राजत्वकाल (७०५-७१५ ई०)में अरब-साम्राज्य सीमाने विस्तृतिकी पराकाष्ठा लाभ की थी। ऐसे समय स्पेनके राजा रडरिक-क्यूटरने अपने शासनकर्त्ता जुलियानासकी कन्याको विशेषरूपसे लांछित और अपमानित किया। इस पर जुलियानास क्रुद्ध हो कर राजाके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। उसने उस समय अफ्रिकाके प्रतिनिधि मूसा बिन नौशेरको स्पेनके राजा रडरिकके विरुद्ध अग्रसर होनेके लिये ललकारा। इसके अनुसार अरब-सेनापति तारीख-बिन जियादने समुद्र पार कर स्पेन राज्यमें पदार्पण किया। उन्हींके नामानुसार इस स्थानका 'जेरैल-तारीख' (तारीखपर्वत) नाम पड़ा। पीछे इस शब्दका अपभ्रंश हो कर इस अन्तरीपका नाम जिब्राल्टर (Gibralter) हो गया।

तारीख-बिन जियाद स्पेन राज्यमें पहुंच कर सन् ७११ ई०की १६वीं जुलाईको जेरैल डीला फ्रंण्टके युद्धमें रडरिकको पराजित कर वहांसे भगाया। इसके बाद कुछ ही समयमें उन्होंने आन्दालुसिया, ग्रनेडा और मर्सिया आदि स्थानोंमें महम्मदीय शक्तिका प्रभाव विस्तार किया था। इधर पूर्व ओर खुरासानके राजा कोतिया बिनने मुसलिम मवराल नहर, बुखारा, तुर्कीस्थान और ख्वारिजम राज्यों पर अधिकार कर मुसलमान साम्राज्यकी वृद्धि की थी। इन्हींके राजत्वकालमें महम्मद बिन् काशिम अल-तकेफिने सन् ७१२ ई०में सिंधु प्रदेश पर चढ़ाई की। इसके बाद उन्होंने गुजरातको जीत कर चित्तौर पर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थान किया। किन्तु वे वहां वाप्पा रावके द्वारा पराजित हुए।

सन् ७१४ ई०में मुसलमान साम्राज्यका आयतन जिस तरह बढ़ा हुआ था, इतिहासमें उसका उल्लेख है। इसी समय मुसलिम वीर एशिया और यूरोपखण्डकी समूची सभ्य जातियों पर अधिकार करने और उनमें इस्लामधर्मका प्रचार करनेमें समर्थ हुए थे। उक्त दोनों महादेशोंके मध्यभागमें समुद्रसे खुश्की तक विस्तृत भूखण्डोंमें मुसलमान जातिकी विजयपताका फहराने लगी थी। पश्चिम अटलाण्टिक महासागर, उत्तर परिनिज पर्वतमाला, दक्षिण सहारामरुभूमि तक विस्तृत समग्र उत्तर-अफ्रिकाके राज्य (मिस्र और अबिसिनिया राज्य) और पूर्वाञ्चलोंमें अर्थात् एशियाखण्डके समग्र सिसाइटिक प्रायद्वीप (अरब), पेलेस्टाइन, सिरिया, अर्मेनियाके कुछ अंश, एशियामाइनर, मेसोपोटमिया, फारस, काबुल और सिन्धुनदके पूर्व ओरके प्रदेश मुसलमान साम्राज्यके अधिकारमें चले आये। इन सब देशोंके अधिवासियोंमें इस्लामधर्मका प्रचार हुआ था। इससे महम्मदी सम्प्रदायकी और भी पुष्टि हुई थी। इसी समयसे मुसलिम-सम्प्रदाय भारत पर अधिकार करनेमें यत्नवान् हुआ। यहां भी उन्होंने अपनी जातिको इसी धर्ममें दीक्षित कर इस्लाम शक्तिको वृद्धि की थी। ११वीं शताब्दीमें इस मुसलमान साम्राज्यमें और भी छोटे छोटे कई राज्योंके मिल जानेसे इसका कलेवर बहुत विशाल हो गया था। बहुत दिनों तक मुसलमानोंने इस विशाल साम्राज्यका शासन किया था। इसके इस राजत्व कालमें स्पेन राज्यके सिवा अन्य कोई भूभाग इस्लामधर्मकी छायाके बाहर न जा सका।

सुलेमानके राजत्वकाल (७१५-७१७ ई०)में एशियामाइनर और कुस्तुनतुनिया तथा मरबिन अबद अल-

आजिजके शासनकाल (७१७ ७२०)-में जोर्जन और तन्निस्थान राज्य मुसलमान साम्राज्यके अन्तर्गत हुए। उमारके वंशधर २रे येजिद (७२० ७२५) और पोछेके खलीफों'को शासन-शक्तियोंके ह्रास होनेके कारण और हेसामके राज्यलाभकी बलवती आकांक्षासे मुसलमान राज्योंमें अन्तर्विप्लव उपस्थित हुआ। विश्रृङ्खल शासनके कारण प्रजा वागी हो उठी। इससे खलीफा-पदके लिये लालायित दूसरे नेताओंको मुसलमान-समाजका नेतृत्व करनेका सुअवसर हाथ लगा। सन् ७२४से ७४३ ई०में खलीफा हेसामके राजत्वकालमें मुसलमानोंके विजयी भुजा पहले पराजित हुई। सन् ७३२ ई०में पैटियरके युद्धमें मुसलमान-सेनापति अब्दुर-रहमान-बिन् अवदुल्ला चार्ल्स मार्टेलेसे पराजित हुए। इस युद्धके वाद यूरोप महादेशमें अरववासियोंका अक्षुण्ण प्रताप क्षीण हो गया। लाङ्गो-एडकर औदे नदी तीर तक मुसलमान राज्यकी सीमा निर्द्धारित हुई।

इसके वाद ७४६ ई०में जब अब्बासवंशने धर्मप्राण मुसलमान-समाजका नेतृत्व लाभ किया, तब ओसमैयद्-के वंशधर वड़े निष्ठुर भावसे मारे गये थे। इस वंशका एकमात्र राजा अब्दुर-रहमान-विन् मोयावियाने स्पेन राज्यमें भाग कर अपनी जान बचाई और वहांके कर्डोभ नगरमें ७५६ ई०में उस्मैयद्ने राजपाटकी स्थापना कर खलीफा का पद ग्रहण किया।

अब्बासवंशके अधिकारके समय बुगदाद् नगरमें राजपाटका बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ। अनेक परिश्रमसे और भी कई राज्य मुसलमान साम्राज्यमें मिला लिये गये थे। भूमध्यसागरके क्रोट, कर्सिका, सार्डिनिया और सिसली द्वीप भी अफ्रिकाके मुसलमान शासनकर्त्ताके अधीन हो गये।

पूर्ववर्त्ती खलीफोंने अपने अपने वीर्य्यके प्रभावसे सभ्यजगत्में राज्य प्रतिष्ठा कर जैसा सुयश पैदा किया था, इस अब्बासवंशने भी शिल्पविद्या और साहित्यके सम्बन्धमें विशेष आग्रह और अनुरोध दिखा कर विद्वन्मण्डली और सभ्य समाजसे वैसी ही प्रशंसा प्राप्त की थी। मनसूर, हारुण-अल-रसीद और मामून आदि खलीफोंने साहित्य जगत्में ऊंचा स्थान प्राप्त किया था। इनका राज्य काल भी मुसलमानोंकी शक्ति-वृद्धिका शानदार नमूना है।

मानसिक चित्तवृत्तिके उन्नति साधनमें एकान्तिक आशक्ति होनेके कारण अब्बासवंशीय राजे निर्जनप्रिय और विलासी हो गये। राजकार्यमें शिथिलता दिखाई देने पर मुसलमानोंके प्रतिनिधियोंने आपसमें गृहविवाद खड़ा किया। क्रमशः धीरे धीरे इस विवादने जड़ पकड़ लिया। बुगदादकी राजशक्ति उस समय वाहरसे अक्षुण्ण दिखाई देने पर भी भीतरसे खोखली हो रही थी। साम्राज्यके सुदूर प्रदेशमें पहले पहल बलवेकी आग भड़क उठी। अवदुर रहमानके स्पेन राज्यमें स्वतन्त्र स्वाधीन उस्मैयद् राज्यका स्थापन इसका प्रारम्भ है। इस दृष्टान्तको अवलम्बन कर अन्यान्य स्थानोंके मुसलमान धर्मप्रतिनिधियोंने स्वाधीन होना चाहा।

विद्यानुरागी और विलासी अब्बासवंशीय खलीफों-ने इस राष्ट्रविप्लवके समय वहां अपना रहना विपद्-जनक समझ कर अपनी तथा अपने सिंहासनकी रक्षाके लिये तुर्कोंको पहरेदार नियुक्त किया और प्रधान प्रधान मन्त्रियों (अमीर-उल-उमरा)-के प्रति जरूरतसे अधिक क्षमता दे कर उनके हाथ राज चलानेका भार भी सौंप दिया।

राज्य-शासनके इस तरहकी व्यवस्थाके कारण तथा सेलजुक तुर्क वंशके आक्रमण और राज-कार्योंमें तुर्कोंका प्राधान्य होनेके कारण खलीफा नाममात्रके नेता रह गये। सन् १२५८ ई०मे हुलाकु द्वारा बुगदाद् पर आक्रमण कर अधिकार कर लेनेसे अब्बासवंशका अन्त हुआ।

ओसमैयदवंशीय खलीफा मोयवियरने दमश्क नगरमें राजधानी स्थापित की, इससे और पिछले अब्बासवंश-के बुगदाद नगरकी प्रतिपत्तिके समय तक मुसलमान जातिका अभ्युदयक्षेत्र अरब राज्य समूचे मुसलमान साम्राज्यका एक नगण्य प्रदेश बन गया है। यह शीघ्र ही कई सामन्तराज्योंमें विभक्त हो गया। सब विभागोंमें

केवल जेमेन प्रदेशने महम्मदके जन्मसे १५वीं शताब्दी तक विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। प्रति वर्ष यहांके पवित्र नगरमें तीर्थयात्रियोंके समागम वेदोइनके सरदारोंमें परस्पर विग्रह और नेजेद प्रदेशमें वहाबीवंशके अभ्युत्थान और अवसानके सिवा अरवी मुसलमान राज्योंकी और किसी ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख नहीं पाया जाता है।

सिरिया, फारस, मौरिटानिया और स्पेन राज्यको जीत लेनेके बाद अरब जातिकी व्यवसायिक उन्नति आरम्भ हुई। केवल इसलामधर्म एवं एक अरबी भाषाका प्रचार रहनेके कारण वणिकोंके आने जानेकी सुविधा होनेसे इस सुविस्तृत मुसलमान साम्राज्यमें एक वाणिज्य-साम्राज्यकी स्थापनामें भी विशेष सुअवसर प्राप्त हुआ था। बुगदाद राजवंशकी विलासिता अव्वासवंशीय खलीफोंकी सुख समृद्धि और विलासवासना पूर्ण करनेके लिये भारतीय शौकीनी चीजोंको ले जानेको वहांके वणिक् पैदल चल कर भारतमें आते थे। ६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें अरबी भारतके विविध प्रदेशोंमें आ कर बस गये। उसी समयसे बहुतेरे भारतीय राजे हिन्दू-धर्मको तिलाञ्जलि दे कर मुसलमान बन गये। इसके बाद अरबोंने भारतीय द्वीपपुञ्ज, सिंहापुर, सुमात्रा, जावा (यव), सिलेबिश आदि द्वीपोंमें और तो क्या—सुदूर चीनमें भी वाणिज्यके लिये मुसलमानी प्रभाव फैलाया।

पैदल चलनेवाले अरबी वणिक्-सम्प्रदाय खुश्कीकी राहसे तातार राज्य और साइबिरियाके उत्तरांश तक जा जा कर निर्विघ्न वाणिज्य व्यवसाय किया करता था। अफ्रिकाखण्डमें वह नाइगर तक चला जाता था। यहां १०वीं शताब्दीसे मुसलमानोंके प्रभावसे घाना, वङ्गरा तोकूर, कुकु, सेनायार, दफुर, बुर्नू, टिम्बकटु और मल्ली आदि कई सामन्तराज्योंकी प्रतिष्ठा हुई थी। अफ्रिकाके पूर्वीय किनारे वाबेलमान्देब प्रणालीसे जंजीवार तक समुद्रके किनारे उनके यत्नसे मकशुआदा, मेलिन्दे, सोफला, केलू और मुजाम्बिक बन्दर स्थापित हुए। यहांसे वे माडागास्कर-वासियोंके साथ वैदेशिक वाणिज्य निर्वाह करते थे। लुसिटोनियाके अधिवासी वाणिज्यप्रिय वणिक् जलकी राहसे चीजोंको ले कर ११वीं शताब्दीमें सुदूर अमेरिकामें भी पहुंचे थे। वहांके लोगोंका विश्वास है, कि अरब सम्प्रदायने ही अमेरिकाका आविष्कार किया था।

वसुन्धराकी भोगविलासभूमि हिन्दू-सेवित भारत पर अधिकार करना ही मुसलमानोंकी साम्राज्य विस्तारका हद है। किन्तु वास्तवमें ७वीं शताब्दीके अन्त और ८वीं शताब्दीके आरम्भसे भारतमें मुसलमान सम्प्रदायका आविर्भाव हुआ था। खलीफोंकी भोगलालसाकी परितृप्तिके लिये मुसलमान वणिकोंने भारतके साथ सम्बन्ध स्थापित किया। मीरकासिमके सिन्धु आक्रमणसे ही भारतमें मुसलमानके आगमन और इस्लामधर्मका प्रचार होना आरम्भ हुआ। इसके बाद ११वीं शताब्दीमें गजनीके सुलतान महमूदकी कृपासे भारतमें मुस्लिम शक्तिकी स्थापना हुई। यह मुसलमान-वीर सत्रहवार आक्रमण कर भारतसे बहुत-सा धन लूट ले गया। इसके द्वारा विख्यात सोमनाथका मन्दिर और वहांकी देवमूर्त्तियां धूलमें मिला दी गई थीं। महमूदने फारससे भारतके उत्तर-पश्चिम पञ्जाब प्रदेश तक अपने राज्यका विस्तार किया था। इसके प्रायः दो शताब्द बाद सन् ११९३ ई०में महम्मद गोरीने भारतकी सबसे पुरानी राजधानी दिल्ली पर अधिकार कर मुसलमानी राज्य शासनका विस्तार किया। सन् १८५७ के बलवे तक दिल्ली नगरी मुसलमानोंकी राजधानी कही जाती थी। यहां पठानोंके अन्तमें १४वीं शताब्दी तक मुगलवंशका अभ्युदय दिखाई दिया। मुगल सम्राट् बाबर शाह भारत पर आक्रमण कर दिल्लीके राजसिंहासन पर अधिकार किया। उसके पौत्र सम्राट् अकबर शाहके और प्रपौत्रके पौत्र औरङ्गजेबके समय भारतमें मुसलमानोंका प्रभाव चरम सीमा तक पहुंचा था।

भारतवासी इस्लाम धर्मावलम्बी मुसलमान विविध जातियोंसे उत्पन्न हुए हैं। इनमें बहुतेरे अन्यान्य शाखाओंकी अरब जातिके सन्तान हैं। कितने ही फारसवासी इरानी जातिसे उत्पन्न हुए हैं और कितने ही शक, तातार,

मुगल, तुर्क, बलूच, अफगान, अग्निकुलराजपूत, जाट और आर्य्योपनिवेशके पूर्व भारतमें आये मुगलोंकी शाखा-जातिसे इस्लाम-धर्म ग्रहण करनेके बाद भारतीय मुसलमान-सम्प्रदाय बढ़ा हुआ था। आर्यावर्त्त भूमिमें मुगल, अफगान, पाठान और विशुद्ध अरबी मुसलमान शेख कहे जाते हैं।

उपरोक्त मुसलमान सन्तान महमूद, चङ्गेज खाँ, तैमूरलङ्ग, बाबर, नादिरशाह, अहमदशाह और अन्यान्य भारत-आक्रमणकारी अथवा उनके सङ्गी साथियोंने भारतमें आ कर धीरे धीरे दिल्ली, हैदराबाद, अर्काट, लखनऊ, रोहेलखण्ड आदि स्थानोंमें उपनिवेश कायम कर लिया है। वर्त्तमान अङ्गरेजी राज्यके सैनिक विभागमें भी बहुतेरे मुसलमान भर्त्ती हुए हैं और कार्य्य कर रहे हैं।

भारतके पश्चिम सीमान्त पर पञ्जाबप्रदेशमें और सिन्धुनदके तीरवर्त्ती राज्योंमें—विशेषतः मुगल, तुर्क, अफगान और बलूच वंशीय मुसलमान दिखाई देते हैं। सिवा इनके वहां राजपूत, जाट और अन्यान्य हिन्दू-सम्प्रदायसे उत्पन्न मुसलमानोंकी बस्ती देखी जाती है। पञ्जाबमें भी रेकनादोयाब और सिन्धुसागर अन्तर्वेदीमें मुलतानी, भट्टी, खुरल, अवन् आदि जिन मुसलमानोंकी बस्ती हैं; वे यूनानी वंशके हैं। बहवलपुरका दाऊद-वंश, शाहपुर जिलेके तुवाने, गुड़गांव जिलेके मेवाती और गुजराती मुसलमानोंने उत्तर-भारतके विविध प्रदेशोंमें अपने अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। उक्त दाऊद-वंशीय मुसलमान अपनेको बुगदादके अल-अब्बास-वंशीय खलीफों (७४९-१२५८)-के खान्दानके बतलाते हैं। दाऊद नामक एक व्यक्ति द्वारा इस वंशकी स्थापना हुई थी, इसीसे इसका दाऊदवंश नाम पड़ा था। कुछ लोगोंका विश्वास है, कि ये बलूच जातिके हैं। बहुत दिनों तक सिन्धु-प्रदेशमें रह जानेके कारण ये बहुत बदल गये हैं। इन्होंने बहवलपुर छोड़ कर प्राचीन लङ्ग और जोहिया जातिको जीत कर शतद्रुके किनारोंके प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इन लोगोंके प्रयत्नसे कृषिकार्यकी उन्नतिके लिये कितनी ही नहरें खुदवाई गई थीं। कोरेसी, किस्मानी, गोवीसे सेवाजी आदि उपाधि रहनेसे अनुमान होता है, कि ये अरबके रहनेवाले हैं।

युक्तप्रदेशके रोहेलखण्ड रोहेले अफगान, मेरटमें कौवों, भूपाल, मन्दसोर और जौरामें अफगान; अयोध्यामें सैयद; हैदराबाद (सिन्धु)-में बलूच; हैदराबादमें (दक्षिण) सैयद। भारतके अफगान प्रायः अपने ही देशीय वंशोपाधि या जातीय संज्ञासे पुकारे जाते हैं। जैसे—युसूफजै, बराकजै, मेहसून आदि।

दाक्षिणात्यके कर्णाटक राज्यमें जिस वालाजा-वंशने राष्ट्रविप्लवकी विशृङ्खलतामें राजकार्यका निर्वाह किया था, वह अपनेको खलीफा (६४४) उमरके वंशसे उत्पन्न होना स्वीकार करते हैं। इस वंशके लोग पहले समरकन्द फिर कर्णाटकमें आ कर बसे।

दाक्षिणात्य सूबेदार और हैदराबादके सैयदवंशके प्रतिष्ठाता निजाम दक्षिण-भारतीय मुसलमान-राजशक्तिके श्रेष्ठतम हैं। इस वंशने भारतमें आ कर भी मुसलमान-प्रभावको कायम रख कई जातिके लोगों पर अपना आधिपत्य जमाया था। अरब, निग्रो, हबशी, उत्तर-भारतीय हिन्दू, कनाड़ी, तैलङ्गी, मराठा, गोंड़ और कोल आदि सभ्य और असभ्य जातियोंसे सैनिक चुन कर निजाम दाक्षिणात्यमें अपने शासनदण्डकी परिचालना करते मद्रास प्रेसिडेन्सीके दक्षिणमें मोपला, लब्बाई, नओआइति नामसे तीन तरहके मुसलमान दिखाई देते हैं। इनके पिता अरबी और माता देशी हैं। जब भारतमें आ कर अरबी मुसलमान वाणिज्य करने लगे थे, उस समयसे मुसलमान वणिक् और मल्लाह पश्चिम-भारतीय किनारे पर आ कर निकृष्ट जातिकी स्त्रियोंके सहवाससे सन्तान उत्पन्न करने लगे। ये सब वर्णसङ्कर पुत्र मोपला (मापिल्ला), लब्बाई, जोनङ्गी, जोनकर आदि नामसे विख्यात हुए। पिता मुसलमान होने पर माता हिन्दू नारी होनेके फलसे इनके कर्म हिन्दू जैसे दिखाई देते हैं। मा-पिल्लाई (मातृपुत्र)-का अर्थ मपला या मोपला होता है। मलबार प्रदेशमें इनकी बस्ती अधिक देख पड़ती है। लब्बाई अरबी लबक (प्रार्थना) शब्दसे उत्पन्न हुआ है। ये अरबी वणिक् या मल्लाहके औरस और देशी माताके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। नओआइति अर्थात् नवागत प्रायः तीन सौ वर्ष हुए वे कार्यके लिये भारतके कोङ्कण प्रदेशमें आये थे।

बहुत प्राचीन समयसे ही मुसलमान-वणिकोंके साथ भारतीय रमणियोंका सम्बन्ध हुआ था। आवूजैदकी विवरणीसे इसका प्रमाण मिलता है। यह विवरणी सन् ९१६ ई०में तय्यार हुई थी। उन्होंने उस समय-सिंहली स्त्रियोंकी चरित्र-हीनताका विषय वर्णन किया है।

आविसिनी और निग्रो जातीय मुसलमान भारतमें हब्शी, हबसी और सिदि नामसे विख्यात हैं। भारत-सम्राट् और देशीय राजन्यवर्गके यहां गुलामी या नौकरी किया करते थे। पीछे भारतमें मुसलमानोंकी संख्या बढ़ गई। बम्बई नगरके कई कोस दक्षिण समुद्र किनारे जंजीरावासी सिदि सम्प्रदायने स्वाधीन भाव तथा दोर्दण्ड प्रतापसे राज करता था।

भारत प्रायद्वीपके उत्तर-पश्चिम किनारे गुजरात, सिन्धु, कच्छ और बम्बई प्रदेशमें और राजपूतानेमें वोहरा नामके मुसलमान दिखाई देते हैं। ये शेख-उल् जबलके चेलोंसे उत्पन्न हैं। अपनेको इस्माइल कहा करते हैं। वाणिज्य ही इनकी प्रधान जीविका है।

सिन्धु प्रदेशमें मेमन या मेहमन नामसे जिन मुसलमानोंकी बसाई वे हिन्दू वंशधर हैं। सुना जाता है, कि सिन्धुवासी एक निःसन्तान हिन्दू अपनी स्त्रीके साथ पुत्र कामनासे ६०० वर्ष पहले मुसलमान बन गया। महमून सुमानीने बुगदाद नगरमें उसकी कामनाकी पूर्त्तिके लिये ईश्वरसे प्रार्थनाकी। इससे उसको सात पुत्र उत्पन्न हुए। उक्त मुसलमान वंशधर आज भी सुमानी नामका बड़ा आदर करते हैं। गुजरात और बम्बई विभागमें इस श्रेणीके मुसलमान वाणिज्य कर जीविका चलाते हैं।

सुमात्रा आदि भारतीय द्वीपपुञ्जके पश्चिम अञ्चलमें भी इस्लाम धर्मका प्रचार कर मुसलमानोंने अपनी संख्या बढ़ाई है। वहांकी पहाड़ी जातिने यद्यपि इस्लामधर्मको स्वीकार कर लिया है। तथापि इनके आदिम धर्म (मूर्त्तिपूजा) का भाव इनके हृदयसे नहीं गया है। चीनदेशमें जो मुसलमान हैं, वे इस्लामधर्मके प्रचार करनेमें विशेष यत्नशील नहीं दिखाई देते। वे इस्लाम धर्मके नियमोंका विधिवत् पालन नहीं करते।

इस्लामधर्मके माननेवाले मुसलमानोंके दो फिर्के हैं। एक शिया और दूसरा सुन्नी। भारत, तुर्किस्तान, तुरुष्क और अरबमें सुन्नी और फारसमें शिया-सम्प्रदायका प्राधान्य दिखाई देता है। महम्मदके चलाये मुक्तिमार्गके अनुसरणमें परस्पर पृथक् पथका अवलम्बन करने पर भी इन दोनों सम्प्रदायोंमें विशेष रूपसे मत पार्थक्य दिखाई देता है। सुन्नी सम्प्रदायका कहना है, कि महम्मदके बाद आबूबकर, उमर, उस्मान और अली ही खलीफा पदके उत्तराधिकारी थे। किन्तु इसके विपरीत शिया-सम्प्रदायवालोंका कहना है, कि महम्मदके बाद उनके दमाद और भ्राता अली खलीफा पदका यथार्थ उत्तराधिकारी हैं और ये खुदाके भेजे दूत हैं।

दोनों सम्प्रदायके भारतीय मुसलमान भिन्न भाव और भिन्न स्थानोंमें खुदाईकी इबादत किया करते हैं। किंतु इन दोनों फिर्कोंमें शेख, सैयद, मुगल, पठान हैं। इनमें पिता-पुत्रमें भी मत-पार्थक्य दिखाई देता है। कहीं कहीं बेटा सुन्नी तो पतोहू शिया दिखाई देता है। बीबी फातमाके गर्भसे अली पैदा हुए। इनके लड़केवाले महम्मदके नाती सैयद या सायादत (प्रभु) नामसे मशहूर हैं। ये दोनों फिर्कोंको मानते हैं। शेख खास कर अरबी हैं। मुगल, पठान, सैयदके सिवा सुन्नी फिर्केवाले सभी शेख कहलाते हैं। इसलिये इनमें अनेक मिस्री भी मिल गये हैं। पठान अफगानी खान्दानके हैं। ये भारत पर आक्रमण करनेवाले मुसलमानोंके साथ आ कर भारतके सीमा पर बस गये हैं। बलूची अफगानोंके साथ यहां आये। ये सभी वीर और युद्ध-व्यवसायी थे। कितने ही अपने देशके उपजानेवाली चीजोंको ला-ला कर भारतके विविध बन्दरोंमें बेचते और अन्य चीजें यहांसे खरीद कर अपने देशमें ले जाते हैं। भारतके विविध स्थानोंमें ये काबुली कहे जाते हैं।

मुगलोंका 'बेग' अलकाब है। ये अरबी मुसलमानोंकी अपेक्षा दृढ़ काय (मजबूत) और गोरे होते हैं, तैमूरके अभ्युत्थानसे ही भारतमें मुगलोंका अभ्युदय हुआ। इसके बाद बाबरशाहसे बहादुर शाह तक मुगल-सम्राटोंके राजत्व कालमें भारत भरमें मुगलोंका प्रभाव फैल जाने पर भी दूसरे अरबी मुसलमान-सम्प्रदायकी तरह

मुगल इसलामधर्मके प्रचारमें यत्नशील नहीं हुए। किसी भी हिन्दूको या किसी अन्य अन्तर्ज गुलाम जातिको बलपूर्वक इन्होंने मुसलमान नहीं बनाया, किन्तु यह विश्वास नहीं होता, कि मुगलोंके इतने दिनोंके शासनमें किसीने इसलामधर्मका परिग्रह नहीं किया। सम्राट् अकबर एक नया धर्म चलानेके प्रयासी हुए थे। इतिहासके जानकार अच्छी तरहसे जानते है, कि अकबरकी कृपा प्राप्त करनेके लिये कितने ही हिन्दुओंने स्वधर्म परित्याग किया था। सम्राट् औरङ्गजेबने इसलामधर्ममें कई सौ हिन्दुओं और कितने ही अनार्य्य जातिके लोगोंको मुसलमान बनने पर बाध्य किया था। इसके सम्बन्धमें केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि पूर्वके मुसलमानोंकी तरह मुगल धर्म फैलानेमें कटिबद्ध न हो राज्य विस्तार करनेमें यत्नशील हुए थे। धनागम और राज्यविस्तारकी बलवती आशा उनके धर्म और मोक्षके पथको पार कर काम और अर्थके मार्ग पर दौड़ रही थी। वास्तविक ही वे धर्मचर्चा और ज्ञानप्राप्तिमें पराङ्मुख हो गये थे। और तो क्या बहुतेरे हो अरबी भाषामें लिखित कुरानके एक दो आयतोंके सिवा और कुछ नहीं जानते थे। उनके अध्ययनके लिये फारसी और हिन्दुस्तानी भाषाओंमें और सर्वसाधारणके लिये अङ्गरेजी, तामिल, मलय और ब्राह्मी आदि भाषाओंमें कुरानका अनुवाद किया गया था।

भारतीय मुसलमान सम्प्रदायमें केवल हिन्दुस्तानी या उर्दू भाषा प्रचलित है। केवल ऊंचे दर्जेके मुसलमानोंमें फारसी भाषाका व्यवहार दिखाई देता है। उच्च शिक्षा प्राप्त हिन्दूजातियोंमें रह कर और अपनी ज्ञानान्धताके कारण भारतीय मुसलमान सम्प्रदाय मुगलवंशके अन्तसे आज २०वीं शताब्दीके अंगरेजी शासन तक नहीं हो सके। केवल जाट, राजपूत, बङ्गालियोंमें अनेक धर्मका महान् परिवर्त्तन दिखाई देता है। बङ्गालमें मुसलमान नवावने अपने कठोर शासन और प्रबल अत्याचारसे प्रजाको उत्पीड़ित कर और उसे प्राणदण्डका भय दिखा कर मुसलमान बनाया था। उनकी इस समयकी अवस्थाका पर्य्यवेक्षण करनेसे मालूम होता है, कि वे आज तक कलमा पढ़ कर मुसलमान नहीं बने हैं। वे हिन्दु देव-देवियोंमें आज भी आस्था रखते हैं। कहीं कहीं वे मानसिक पूजा भी करते देखे गये हैं।

भारतीय मुसलमानधर्म।

कई जातियोंसे मुसलमान समाजका संगठन हुआ है, इससे इनके धर्ममें पार्थक्य दिखलाई देता है। स्वयं धर्मप्रवर्त्तक महम्मद जिस कुरानको लिख गये थे, उसको पढ़नेसे किसी तरह मुसलमान धर्मकी निन्दा नहीं की जा सकती। बुढ़ा सनातनधर्म, हिन्दूधर्म प्रौढ़ जैन और बौद्ध, युवा ईसाई धर्म, आदिके व्यवहारिक आचारका निर्णय कर शिशु महम्मदीयधर्मने सत्य और मुक्तिका द्वार खोल दिया है, उससे महम्मदीय अभिव्यक्तिकी सारवत्ता और सार्थकता सूचित होती है। महम्मदने "एकमेवाद्वितीयम्" पथका अनुसरण कर एक ईश्वरकी ही उपासना प्रचलित की है। कुरान पढ़नेसे यह स्पष्ट मालूम होता है, कि विविध सम्प्रदायके प्रति विशेष वीतराग न थे। किन्तु धर्मप्रचारके प्रसङ्गमें महम्मद या महम्मदीयोंने इस साधुवाक्यकी रक्षा की थी या नहीं, यह मुसलमान-समाजकी लड़ाईके इतिहासमें लिखा है। विधर्मी काफिर पिछले युगके उद्धत और जयस्पर्द्धी मुसलमानों द्वारा जैसे दण्डित किये गये थे, पहलेके इस्लाम (अर्थात् महम्मदीय धर्मके अभ्युत्थानके समय) सम्प्रदायके हाथसे उनको वैसी कठोर ताड़ना सह्य करनी पड़ी थी या नहीं यह अनुमान किया जा नहीं सकता। यथार्थमें इस्लाम-धर्मके प्रतिष्ठाके विषयमें और एक बात है, जातिवरिता तथा कोराइस आदि विविध मूर्त्तिपूजक सम्प्रदायोंके विद्वेषभावने उस समयके मुसलमान-सम्प्रदायको प्रतिहिंसाकी अग्निमें झोंक दिया था। इसमें सन्देह नहीं, कि उस नवमुसलिम सम्प्रदाय अपने पक्ष-समर्थनके लिये तलवार हाथमें ले कर अपनी आकांक्षाओंको बलवती रखनेके लिये सचेष्ट था। पीछेके विलासी और भोगप्रिय खलीफोंकी वर्त्तमान राज्यलालसा और धनलोभने उस समयके मुसलमानोंको डाकू और लूटेरा बना दिया था। यथार्थमें धर्म-प्रचार उनका मुख्य उद्देश्य न था। उनके साम्राज्य-विस्तार की कल्पनाके साथ साथ महम्मदीय राजधर्म समूचे

मुसलमान-साम्राज्यमें फैल गया था। कोई जातिके डरसे, कोई प्राणके भयसे और कोई मान-रक्षाके लिये मुसलमान बनने पर बाध्य हुआ था। इस तरह इसलाम-धर्म अटलाण्टिक महासागर किनारेसे प्रशान्त-महासागर तक फैल गया था।

भारतमें इसलाम-धर्मके प्रचार होनेके बाद जब हिंदू और मुसलमान जाति आपसमें मिल कर रहने लगी थी, तब इन दोनों जातियोंमें कभी किसी तरहका झगड़ा फसाद नहीं होता था। ये जातियां उस समय अपने अपने धर्मके अनुसार कार्य सम्पन्न कर सुखसे दिन बिताती थीं, और तो क्या—१४वीं शताब्दीमें मुगल-विजयके बाद जब समूचा भारतवर्ष तैमूरके हाथ आया, तब भी मुसलमानोंने हिन्दू-धर्म पर आघात न किया था। उस समय दोनों धर्मावलम्बियोंमें ऐसा सद्भाव था, कि विजेता मुसलमानोंने उसी विजित ब्रह्मण्य-धर्मकी क्रिया-आश्रय लिया था। दूसरे ओर हिन्दू भी महम्मद और पैगम्बरोंकी प्रशंसा करते थे। इस सम्बन्धके फलसे हिन्दूसमाजमें सत्यनारायणकी पूजा, ओलाई बीबीकी पूजा, पीरको शिरनी चढ़ानेकी प्रथा प्रचलित हुई। इससे अधिक आश्चर्यका विषय यह है कि भारतवासी सुन्नी और शिया (Schiites) नामक दो मत-विरोधी मुसलमान-सम्प्रदायके भारतमें आनेके बाद आपसमें विरुद्ध भाव त्याग कर प्रेमसूत्रमें बंधे थे, विजित देशमें धनागमका सुअवसर खोजनेके अभिप्रायसे ही हो या, शान्तिप्रिय हिन्दुओंकी एकताके कारण ही दो मुसलमानोंने देवाधिष्ठित भारतभूमिमें स्वाभाविक शान्तिभाव धारण किया था। मुगल-सम्राट् अकबर शाह विविध धर्मावलम्बियोंको मिला कर एक नये मतकी सृष्टि करना चाहते थे। इस मतका नाम 'इलाही' (स्वर्गीय) रखा गया था। उनके धर्मका मूल मन्त्र यह था—"एक ईश्वरके सिवा और कोई देवता नहीं। अकबर उसके प्रतिनिधि खलीफा हैं।" इस संस्कृत धर्ममत स्थापनका मुख्य उद्देश्य हिन्दू, फारसी, यहूदी और ईसाई धर्मावलम्बियोंको एक करना था। सम्राट् अकबरका यह मत फारसवालोंके सूफी और हिन्दुओंके वेदान्त मतके अनुरूप ही है।*

भारतमें मुसलमानोंके आनेके बाद किस तरह हिन्दू मुसलमान बने थे, मुसलमान पीरोंकी पूजा और हिन्दू धर्म-सम्प्रदाय विशेषके प्रवर्त्तकोंका इतिहास पढ़नेसे उसका विशेष विवरण जान सकते हैं। मुसलमानी धार्मिक तीर्थोंमें मक्काका हज ही सबसे प्रधान है। सिवा इसके जियारात या छोटे पीरों और पैगम्बरोंके मकबरोंके रहनेसे यह स्थान और पवित्र तीर्थ रूपमें गिना जाता है। इन्हीं सब साधुचेता पीरोंके अमानुषिक क्षमताको देख कर हिन्दुओंका चित्त भी आकर्षित हुआ था। दुःखका विषय है, कि मुसलमानोंके पवित्र तीर्थ मक्केमें हिन्दुओंके जानेका कोई उपाय नहीं। मक्केमें प्रवेश करनेके समय बिना मुसलमान हुए कोई भी नहीं जा सकता। हिन्दुओंका विश्वास है, कि वहां मक्केश्वरनाथ नामक शिवलिङ्ग विद्यमान है। मक्का शब्द देखो।

कयूफाके निकटके नजफके मसोद-इ-अली कर्बालाके इमाम हसनकी मसजिद, खुरासानके इमाम राजाकी मसजिद और अन्यान्य इमामजादा और महापुरुषोंके

* "Nay, such was the harmony which prevailed between the adherants of the two creeds, that we find Brahmanical practices and many of the prejudices of caste adopted by the conquerors at a very early period, while on the other hand, the Hindus learned to speak with respect of Mohamed and the prophets of Islam. And what is perhaps still more remarkable, the Mohammedan sectaries, the Sonnites and the Schiites, laid aside wonted animosities when they entered the Peninsula. The change which thus gradually took place in the religious feelings of all parties, encouraged the emperor, Akbar, to make an attempt at the establishment of a new religion, * * * *. The object of this religious reformer was to unite into one body Mohammedans, Hindus, Zoroastrians, Jews and Christians. The creed of Akbar, indeed, bears considerable resemblance to that of the Persian Sufis or to that of the Hindus of the Vedanti School."
The Faiths of the World, Vol. VII, p. 469.

मकवरे, मसजिद होनेसे साधारण मुसलमानोंके पवित्र तीर्थ और पूजाका कारण हो उठा है। सिवा इसके एशियाके अन्यान्य स्थानों और भारतवर्षमें मुसलमान धर्मवीरोंकी कब्र है। इन सभी महा पुरुषोंने अमानुषिक क्रियाकलाप दिखा कर सर्वसाधारणके प्रिय और पूज्य बने हैं। मुसलमानोंके संग साथसे हिन्दू भी ऐसी शक्तिसम्पन्न इन सब महात्माओंको विशेष सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। और तो क्या, उन उन महापुरुषोंके स्थानमें आ कर मानसिक पूजा देनेमें भी हिन्दू संकुचित न होते थे।

बुगदाद नगरके समीप जाल नगरके शेख अवदुलका दिरकी (घौप-उल्-आलम् ४७१ हिजरी) मसजिद मुलतानके निकटके सुलतान सव्वुवका मकवरा भी पूजनीय है। लाहोरके (अन्तःपाती दीपालदालके) शाह-शमसुद्दीनका मकवरा भी पूजाई है। लाहोरके उक्त साधुके बहुतसे हिन्दू भी चले थे। लोगोंका कहना है, कि उनका कोई धर्मप्रवण हिन्दू चेलोंने उनसे प्रार्थना की कि मैं गंगास्नान करूंगा। उन्होंने कहा, कि तुम अपनी आखें बन्द कर लो। आखें बन्द कर लेने पर उसने देखा, कि आत्मियोंके साथ गङ्गा मानो सैकतमें अवस्थान करती हैं। पवित्र जाह्नवीके स्पर्श तथा स्नान करनेके वाद प्रफुल्लित हो कर उन्होंने जैसे ही नेत्र खोले वैसे ही अपनेको गुरुके निकट बैठे पाया। शमसुद्दीन्के इस तरहका अलौकिक चमत्कार देख कर हिन्दू-सम्प्रदाय उनके प्रति विशेष अनुरक्त हुआ था। अब भी हिन्दू उनके मकवरेकी रक्षा करते हैं। वे मुसलमानोंको अपना यह अधिकार देना नहीं चाहते।

दिल्ली नगरके कुतव उद्दीनकी मसजिद, मुलतानके शेख बहादुरद्दीन जकरियाका मकवरा और फरीद उद्दीनकी मसजिद, पानीपतके शेख शरीफ बूअली, कालन्दर और बदायूंके शाह निजामुद्दीन अटलियाका मकवरा आदि हिन्दू और मुसलमानोंके लिये उन साधुओंके विचारण-क्षेत्र होनेसे तीर्थ हो गया है। सिवा इनके बङ्गाल और मध्य और दक्षिण भारतके बहुसंख्यक पीरोंके स्थानमें हिन्दुओंके भी प्रतिनिधि देखे जाते हैं।

पीर देखो।

इन सब मुसलमान साधु पुरुषोंके मकवरोंके सिवा हिन्दू सम्प्रदाय-विशेषके प्रवर्त्तकों द्वारा भी हिन्दू मुसलमानोंका सम्बन्ध हुआ था। १५वीं शताब्दीके अन्तमें गुरु नानक द्वारा सिक्ख धर्म प्रचलित हुआ। इसमें हिन्दू मुसलनमान दोनोंकी पद्धतिको एकत्र कर दोनों सम्प्रदायोंको एक अविच्छिन्न बन्धनमें बांधा गया था। सिक्ख-धर्मावलम्बी हिन्दू-मुसममानमें कोई प्रभेद नहीं है। सिक्ख देखो।

बादशाह अकवर शाहके राजत्वकालमें हिंदू-मुसलमान सम्मिलित सिक्खधर्मने बड़ी उन्नति लाभ की थी। उनके पुत्र (सलीम) जहांगीरके शासनकालमें इसलाम-धर्ममें अधिक विश्वास रखनेके कारण सिक्खधर्मवालोंको कठोर यातना सहनी पड़ी थी। उसी समयसे आज तक महम्मदीय सम्प्रदायसे सिक्खोंका घोर विरोध चला आता है।

मुगल-सम्राट् अकवरके चलाये (इलाही) धर्म और हिन्दू-सम्प्रदाय द्वारा चलाया सिक्ख धर्म दोनों इसलाम और ब्राह्मण्य धर्मके सम्बन्ध और संमिश्रणमें विशेष सहायक हुए थे। फिर कुरानकी नीति-पद्धतिके विरुद्ध और सम्पूर्ण रूपसे असङ्गत होने पर भी भारतीय मुसलमान हिंदू क्रियाकाण्डके अनुष्ठानमें विशेष श्रद्धा रखते थे। और तो क्या वे हिन्दू महापुरुषोंके आदर करने तथा अनेक उत्सवोंमें सम्मिलित होनेसे विचलित नहीं होते थे। इस तरह महम्मदीय-सेवक-मण्डलीके लिये निन्दनीय होने पर भी भारत-मुसलमानके समाजमें धीरे धीरे साधु पूजाके रूपमें मूर्त्तिपूजा घुस पड़ी है।

नानकसे पहले महात्मा-कवीर एकेश्वरवादको चला कर हिन्दू-मुसलमानोंको एकता-सूत्रमें बांध इन दोनों सम्प्रदायोंके सम्मानभाजन हुए थे। यह धर्म सम्प्रदाय कवीर-पन्थी कहलाता है।

लाहोरके अन्तर्गत ध्यानपुर-निवासी बावालाल नामक एक हिंदूने दरवंश बावालाली नामसे एक नया धर्म-सम्प्रदाय चलाया। शाहजहांके पुत्र दारा शिकोहके साथ उनके धर्ममतके संबंधमें बहुत आलोचनायें और वादानुवाद हुआ था। चन्द्रभान शाहजहानी नामक फारसी ग्रंथमें उनके धर्ममतका विवरण लिखा है।

बादशाह आलमगीरके राज्यकालमें शाहदौला नामक एक महापुरुषका आविर्भाव हुआ। ये अपने अद्भुत शक्ति बलसे हिन्दू-मुसलमानोंके चित्तोपहरण करनेमें समर्थ हुए थे। उक्त दोनों सम्प्रदायोंकी धन-सम्पत्ति द्वारा इन्होंने छोटे गुजरात नगरको सौधमालाओंसे विभूषित किया था। यदि मुसलमानोंके इतिहास-प्रसिद्ध हातमताई होते, तो इनकी वदान्यतामें उनकी यशोरश्मि धीमी पड़ जाती।

सिवा इसके इलाहाबादके सैयद शाह जुदूर, बक्सर-के शेख महम्मद अली हाजो जिलानी आदि अद्भुत कर्म्मा महात्मागण भी हिन्दुओंके चित्ताकर्षणमें समर्थ हुऐ थे। इस समय अब्दुला कादिर (गिलानी पीर इ पीरां और पीर-इ-दस्तगीर) और बदीउद्दीन आदि सिरियावासी महापुरुषोंके नाम उल्लेख-योग्य है। सिवा इनके बङ्गालके अन्यान्य स्थानोंमें भी प्रसिद्ध पीरोंके मक बरे दिखाई देते हैं। उनमे पूर्व बङ्गके खुलना जिलेके बाघेरहाटके खाँ जहां आली फकीरके मकबरेको हिन्दू पूजते हैं। यहां कई बड़े बड़े जलाशय है। लोगोंका कहना है, कि इस फकीरके तपके प्रभावसे हो यह कीर्त्ति दिखाई देती है।

भारतीय मुसलमानोंकी सामाजिक क्रिया।

पहले कह चुके हैं, कि मुसलमान-सम्प्रदायके बाहु-बलसे अटलाण्टिक-महासागर प्रान्तसे प्रशान्त-महासागर के द्वीपमाला तक मुसलमानोंकी साम्राज्य-सीमा फैली थी। इसीके साथ उस देशके रहनेवाले सभी मुसल-मान-धर्मके अनुसार आचार-व्यवहार करने लगे थे। उनके आचार-व्यवहारकी पर्य्यालोचना करनेसे यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है। इस विषयमें जरा भी संदेह नहीं, कि उस धर्मके अवलम्बी विभिन्न जातिके आचार-व्यवहार आदि सामाजिक जीवनने, जातिके विभिन्नता-के अनुसारसे और देशभेदसे विभिन्न भाव धारण किया था। मुसलमानोंके कुरानके आयतोंमें जो सब आचार-विचार लिखे हैं, 'देशभेदसे आचारभेद' इस व्यवहार वाक्यके याथार्थ्य उपलब्ध कर विभिन्न ग्राम-वासी मुसलमान उस पवित्र सत्य-मार्गकोकी उलङ्घन कर विकल्पसे और अनुकल्पसे महम्मदी धर्मके प्रति-ष्ठित कितने ही आचारोंके साथ अपने अपने देश-प्रच-लित कितने ही नित्यनैमित्तिक कर्मकाण्ड बना लिये हैं। मूलधर्मके व्यतिक्रमसे जैसे स्थान-विशेषमें मूर्त्ति-पूजा प्रचलित हुई है। वैसे ही देशमें भी अपने अपने सामाजिक और नैतिक आचारादिकी बहुत सी विल-क्षणतायें दिखाई देती है।

भारतीय मुसलमानोंमें जातकर्म आदि सामाजिक पद्धति विशेषरूपसे हिन्दू प्रथाकी भित्ति पर बनाई गई है। यह महम्मदी पद्धतिके अनुसार निष्पादित होने पर भी उसमें हिन्दुओंके चिर-प्रचलित कर्मकाण्डोंका पूरा पूरा समावेश दिखाई देता है। प्रायः एक हजार वर्ष तक हिन्दुओंकी वासभूमि भारतमें रह कर मुसलमानोंने अपने अनुकरण-प्रियता-गुणसे हिन्दुओंके आचारका पक्ष-पाती हो कुरानके द्वारा निर्दिष्ट क्रिया-पद्धतिके अनुष्ठेय अङ्गविशेषका समाधान कर लिया है।

बालिकाके ऋतुमती होने पर उसके पुष्पोत्सव और गर्भाधान क्रिया समाधानके समय हिन्दू शास्त्रीय व्यवस्था-का सम्यक्-पन्थानुवर्त्तन करने पर और साथ ही मूर्खों-की तरह गीत वाद्यादिकी तय्यारी कर पवित्र कार्य्यमें वीभत्स कार्य्य करते हैं। अनुकरण-प्रिय भारतीय मुसल-मान भी ऐसे अवसरों पर नाच-गाने कराते हैं। किन्तु बड़े बड़े मुसलमानोंमें यह उत्सव प्रकाशरूपसे नहीं किया जाता; वरन् गुप्तरूपसे यह उत्सव मनाया जाता है।

गर्भिणी स्त्रीके अन्तिम दिनमे 'सतवास' और नवम मासके पहले 'सानुक फतिहा' उत्सवकी विधि है। यह हिन्दुओंके कच्चा और पक्का साध-भक्षणकी तरह है। इस दिन गन्ध द्रव्य या पुष्पमाला तथा नये वस्त्रभूषण पहनां कर स्त्रीको सुशोभित किया जाता है। सात माससे नवें मासके आरम्भ तक गर्भिणीको नये वस्त्र पहनने-की मना हो है। उक्त दिन दोनों कुटुम्बके लोग निम-न्त्रित किये जाते और गर्भिणीके साथ भोजन करते हैं।

सूतिका-गृहमे प्रवेश और सन्तान पैदा करने पर प्रसूतीकी नाड़ी सुखानेके लिये हिन्दुओंके अनुसार ही पाचनादिका प्रयोग किया जाता है। नाल काटनेके बाद दाई उत्पन्न शिशुको वस्त्रसे ढांक कर 'पुरुष-महल'-

में ले जाती है। इसी समय खतीब जोरसे शिशुके दाहने कानमें आजान् और बायें कानमें तक्बिर पढ़ते हैं। जन्म दिनको अथवा सप्ताहके भीतर उसी दिनका नामकरण किया जाता है। विशेषतः जन्मकालके ग्रह और नक्षत्र नामका विचार कर तथा उसके पहले अक्षर पर ही शिशुका नाम रखा जाता है। कभी कभी वंशानुगत, पितृ-पितामह, साधुपुरुष कुरानके किसी एक पृष्ठका पहला अक्षर अथवा कई नामोंको लिख कर उनमें एक चुन कर शिशुका नाम रखा जाता है। सिवा इस दिनके अनुसार भी शिशुका नाम रखा जाता है। तीसरे दिन पट्टी और छठवें दिन षष्टि-उत्सव होता है। छठवें दिन स्नान करा कर नया वस्त्र पहनाया जाता है। साधारण लोगोंका विश्वास है, कि इस दिन छठी देवी आ कर बालककी तकदीरकी रचना करती हैं। कभी कभी ७वें और नवें दिन छठीका उत्सव मनाया जाता है।

मुसलमान-सुराके अनुसार ४०वें दिन गर्भिणीका अशौचान्त होता है। ये उत्सव 'चिल्ला' नामसे मशहूर है। इस दिन रमणियां कुरान छू कर पवित्र हो कर मसजिदमें जाती हैं। अशौचकालमें मसजिदमें जानेका और खुदाकी इबादत करनेका इनको अधिकार नहीं। इस दिनको या दूसरे दिन खुदाके नाम पर बकरेकी बलि दी जाती है। इसको उकीफा कहते हैं। इसका पोलाव पका कर घर घर बांटा जाता है।

४०वें दिन या उसके बाद ही बालकका मस्तक मुंडन किया जाता है। यह हिन्दुओंके चूड़ाकरणके अनुसार ही किया जाता है। मनौत रहने पर माथेमें शिखा भी रखी जाती है।

४०वें दिन सूतिका-गृहसे निकलनेके बाद दिनमें ही चिल्ला उत्सव सम्पादित होता है। सन्ध्या समय बालकको सुला कर स्त्रियां अपने नृत्य-गानमें रात बिताती हैं। इसको 'गहवारा' कहते हैं। कभी कभी ४०वें दिनके भीतर भी यह उत्सव देखा जाता।

सिवा इसके चौथे मासमें "लडडू बनाना" दांत-निकलने पर कान छिदाने पर भी कुटुम्बोंको आमन्त्रित कर उत्सव मनाते हैं। मुसलमानिनें इलायची भेज कर तथा पुरुष चिट्ठी भेज कर निमन्त्रण दिया करते हैं। जो स्त्रियां इलायची ले जाती है, वे निमन्त्रित होनेवाले लोगोंके (जब वह निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं) गलेमें, पेटमें और पीठमें चन्दनका लेप कर देती हैं। पीछे उनके मुखमें मिश्री, इलायची और हाथमें पानका बीड़ा दे कर चली आती हैं। यदि कोई स्त्री निमन्त्रण स्वीकार नहीं करती तब केवल उसकी देहमें दासी चन्दन लगा और हाथमें पानका बीड़ा दे कर चली आती है। पीछे निमन्त्रण स्वीकार करनेवाली स्त्रियोंके लिवा लानेके लिये पालकी भेज दी जाती है।

निमन्त्रण पा कर जब लोग आमन्त्रणकारीके घर जाते हैं, तब उनको साथमें कुछ उपढौकन ले जाना पड़ता है। गहना, धोती, साड़ी या कोट, कुरता, पुष्प, इत्र आदि मिठाई, पान, सुपारी आदि सब तरहकी चीजें व्यवस्थानुसार देनी पड़ती है।

जब बालक एक वर्षका होता है, तब साल-गिरह या वर्षगांठका उत्सव मनाया जाता है। यह हम लोगोंके जन्मोत्सवकी तरह जन्म दिनको हुआ करता है। ४ वर्ष ४ महीना और ४ दिन पर बालकको बिस्मिल्ला शुरू कराया जाता है। यानी विद्याका श्रीगणेश होता है। आमन्त्रित व्यक्ति सन्ध्यासे पहले ही आ जाते हैं। जब सब कोई एकत्र होते हैं, तब गुरु आ कर एक तखती पर चन्दनसे "बिस्मिल्ला हिर्रहमाने रहीम" चन्दनसे लिखता है और यह लिखा हुआ शब्द बालकको चटाया जाता है। यह हम लोगोंके विद्यारम्भोत्सवकी प्रतिच्छाया-मात्र है। इसके बाद लड़का मकतब या स्कूलमें पढ़नेके लिये भेजा जाता है या मौलवी आ कर अक्षराभ्यास कराने लगता है। सातसे चौदह वर्षके भीतर लड़का 'सुन्नत' करा दिया जाता है।

बालक और बालिकाओंके कुरानकी शिक्षा समाप्त होने पर उसकी परीक्षाके लिये 'दादिया' उत्सव किया जाता है। यह उत्सव हमारे गुरु दक्षिणाके उत्सवकी तरह है। इस समय भी शुभ दिन मनोनीत कर कुटुम्बियोंको निमंत्रित किया जाता है। निमंत्रित पुरुष स्त्रीके सामने लड़का अपने गुरुके पास बैठ कर कुरानकी आयत पढ़ता है। इसके बाद गुरुको दक्षिणा-स्वरूप वस्त्र

और रुपया बालक देता है। सिवा इसके कुरानके ३० परिच्छेदोंमें एक एक परिच्छेद समाप्त होने पर दादिया उत्सव मनाया जाता है। कभी कभी कुरानके एकांश, द्वितीयांश, तृतीयांश और चतुर्थांश या समाप्तिके वाद चार वार उत्सव किया जाता है।

बारहसे चौदह वर्षके भीतर बालिका जब प्रथम ऋतुमती होती है तब यह वालिग और नापाक कहलाती है। यह बालिका किसी पवित्र कार्यमें भाग नहीं लेती। इस दिन ७ या ६ विवाहिता स्त्रियां आ कर उसकी देह मालिश कर एक निर्जन कोठरीमें ले जाती हैं। वहां बालिकाको ७ दिन तक बन्द रहना पड़ता है। सात दिनके वाद पञ्चपल्लवों द्वारा स्नान कर शुद्ध हो घरके कामोंमें लग जाती है।

बालकको भी १२से १८ वर्षके भीतर जब कभी स्वप्नदोष (*Pollutio nocturna*) उपस्थित होता है, तभीसे वह वालिग कहाने लगाता है। इसी समयसे वह कलमा, नमाज, भिक्षादान या तीर्थ आदिका अधिकारी होता है। इसके वाद यदि वह स्वकर्त्तव्य कर्मको अवहेलना करता है, तो दण्डका भागी होता है।

जिस रातको स्वप्नदोष होता है, जब तक वह गुशल नहीं करता, तब तक वह नापाक रहता है, उस समय तक वह न नमाज पढ़ता, न मसजिदमें जा सकता है और न कुरान पढ़नेका ही अधिकारी रहता है।

गुरुदीक्षा लेनेके वाद प्रत्येक मुसलमानको ईश्वर (खुदा)-की पांच आज्ञाओंको मानना पड़ता है—१ कलमा पढ़ना, २ नमाज पढ़ना, ३ रोजा रखना, ४ जकात देना और ५ हजके लिये मक्के जाना। जो इन पांचों आज्ञाओंका पालन नहीं करते वे खांटी धर्मविश्वासी मुसलमान नहीं कहे जाते।

"ला-इलाही इल्-लाल-लाहो महम्मद-उर-रसुल्-ल्लाहा" अर्थात् एक यथार्थ ईश्वरके सिवा दूसरा कोइ ईश्वर नहीं और पैगम्बर महम्मद उनके दूत हो कर इस धरित्री पर आये थे। यह कलमाका प्रारम्भ है। इसके वाद पांच तलता नमाज पढ़ना होता है। १ फजरका नमाज (प्रातःकालीन प्रार्थना), २ जहरका नमाज (मध्याह्नको प्रार्थना), ३ असेरका नमाज (वैकालिक स्तोत्र), ४ मगरवका नमाज (सायं सन्ध्या), ५ ऐशामा नमाज (रात्रिको प्रार्थना)। इन फर्जोंके सिवा और भी कितने ही सुन्नात् नाफिल हैं। इसलामधर्मभक्त नाममात्र ही १ नमाज-इ इसराक (सवेरे ७॥ बजेकी प्रार्थना), २ नमाज-इ-चास्त (६ बजेकी प्रार्थना), ३ नमाज-इ-तहज्जुद अर्थात् आधी रातसे ऊषाकालके भीतरकी प्रार्थना और ४ नमाज इ तरावी (प्रत्येक दिन प्रातः ८ बजेकी प्रार्थना) इन नफीलोंका पालन किया करते हैं।

मुसलमान वर्षके नवें (रमजान) महोनेमें हरेक मुसलमानको रोजा रखना फर्ज है। इस उपवासमें खाना पीना, स्त्री-प्रसङ्ग, पान खाना, सूर्ती जर्दाका खाना या नस्य लेनेको भी मनाही है। जो लोग इस वातको अवहेलना करते हैं, उनके लिये रोज रोज एक एक गुलाम मुक्तिदान और ६० भिक्षुओंको भोजन करानेकी विधि है। यह कर न सकने पर वे दूसरे समय हरेक उपवास तोड़नेके लिये ६० दिन और एक दिन उपवास करते हैं।

कहीं कहीं देखा जाता है, कि छोटे दरजेकी स्त्रियां जब कोई व्रतोपवास करती हैं, तब रातके शेष प्रहरमें कुछ खा लेती हैं। इसी तरह मुसलमानोंमें प्रत्येक रोजा रखनेवाला मुसलमान रातके चौथे पहरमें (सदरगाही) कुछ खाते पीते हैं। इसके वाद सारा दिन उपवास रह शामका नमाज पढ़ पढ़ कर रोजा खोलते है। दशवें महोनेकी पहली तारीखको रमजानकी ईद पर्व मनाया जाता है। इस दिन बड़े शौकसे खुदाकी इवादत और खाने पोनेको बहुत वड़ी तय्यारी होती है।

भीख देना और मक्केकी हज-यात्रा मुसलमानोंके लिये एक आवश्यकीय कर्त्तव्य है। हरेक मुसलमानको ही अपने अधिकृत सम्पत्तिसे धन पशु अन्न फल आदि सभी चीजें दान करना पड़ती है। अर्थात् अपने ४० वस्तुओंमें हरसाल एक वस्तु दान करनी पड़ती है। मक्केमें आ कर काबाका दर्शन कर अपनेसे पहले हरेकको जो शुद्धाचार करना पड़ता है, वह "कानून-इ-इस्लाम" में लिखा हुआ है। इस समय यदि कोई तीर्थयात्री 'पाक' 'एहराम' कपड़ेको पहन कर स्त्री-चुम्बन जैसे दुषित कार्य करते हैं, तो उसके तीर्थयात्राका फल व्यर्थ

हो जाता है। हिन्दू-समाजमें भी इसी तरहका विधान है। तुलसीदासने लिखा भी है,—"ज्यों तीरथ कर पाप।"

हिन्दुओंमें जैसे सात वार प्रदक्षिण करनेका नियम है, वैसे ही मुसलमान जब कावाका दर्शन करते हैं, तब उनको कावाकी इमारतके चारो ओर घूमना पड़ता है। इसके वाद वे कदम इ इब्राहिम, शफा और मुर्वा पहाड़ आदि परिक्रमण कर मीनावाजार, मदीना आदि स्थानोंके तीर्थोंमें प्रार्थनाये करते हैं।

इस देशके मुसलमानोंमें वाल-विवाह भी प्रचलित है। प्रधानतः १८ वर्षके दुल्हहसे १३ या १४ वर्षकी दुलहिनका विवाह हुआ करता है। कभी कभी दोनों पक्षसे वाक् दानसे ही विवाह संबंध दृढ़ हो जाता है।

विवाह।

विवाहके समय मुदावतनीयां (जिसे हिन्दू लोग 'अगुआ' कहते है) दोनों पक्षोंसे वातचीत कर विवाह पक्का करता है। दुल्हह और दुलहिनके मां वापके विवाहादि सामाजिक क्रिया-कर्म और खान्दानी रीतिरश्मोंको जान कर विवाह करनेको तय्यार होने पर मुल्ला आ कर 'ठिकजी' देख कर विवाहका फलाफल कहते हैं। विवाहकी वातचीत समाप्त हो जाने पर वरपक्षसे 'थारे पान पटना' शर्कराना, 'मंगनी' 'पूरियां' भयलिज खुन्दलाना नमचूसी आदि काम किये जाते हैं।

वरकी ओरसे कन्याके घर मंगनी (उपढौकन) भेजनेके वाद कन्याका वाप वरके घर पकवान तय्यार कराकर भेजता है। इस समय यदि कई महीनेके लिये विवाह रुक जाये, तो भयलिज खुन्दवाना उत्सव शुरू हो जाता है। इस समय वर तथा कन्यापक्षो कुटुम्बियोंको भोज देना होता है। भावी दामाद अपनी सासको जव पहले पहल सलाम करता है, तब रूमाल, अंगुठी और रुपया उपहार पाता है। किन्तु जब तक विवाह नहीं हो जाता, तव तक दुल्लह दुलहिनके पास जाने नह पाता और न किसी तरहको उपभोग्य वस्तुको ही खाने पाता है।

नमकचूसी हो जानेके वाद दुल्हह दुलहिनके घर आ कर मिठाईके सिवा नमकीन चीजें भी खा सकता है। इसी समयसे दुल्हह दुलहिनको या दुलहिन दुल्हहको अपने इच्छानुसार उपढौकनकी चीजें भेजा करते हैं। महर्रम आखिरी, चहारसम्वा, रमजान, ईद-इ-कुर्वानी आदि पर्वों पर इस तरहके उपढौकन भेजनेका नियम है।

दुल्हहके हल्दी लग जानेके एक या दो सप्ताह पहले दुलहिनके फांढ़में पानी सुपारी दे कर घरकी स्त्रियां उसकी देहमें गुप्तरूपसे हल्दी लगाती हैं। इसके वाद जब दुल्हहकी देहमें हल्दी लग जाती है, तब उसी दिन शामको या दूसरे दिन दुलहिनके कपालमें प्रकाश्य रूपसे हल्दी लगाई जाती है। सभी सुहागिनियां एक एक करके दुलहिनकी देहमें हल्दी छुआती हैं। वरकी ओरसे कन्याके घर वड़े छामछुमसे पिसी हल्दी और पिसी मेंहदी भेजी जाती है। इसीसे जिल्वा तक हर रोज कपालमें हल्दी छुआई जाती है। इसके वाद आयुर्वृद्धिका भोज होता है। इसके वाद देशाचार और लौलिक व्यवहार कर नियत दिनको दुल्हह दुलहिनके घर जाता है। और काजी आकर निकाह* पढ़ा देता है। इस तरह विवाहका काम समाप्त होता है। कभी कभी काजी नहीं आता, लेकिन अपने प्रतिनिधिको भेज कर यह कार्य सम्पन्न कराता है।

जिल्वा या वासी विवाहके दिन तक इनके यहां भी हिन्दुओंकी तरह देहमें अन्तिम हल्दी लगाई जाती है। विवाहके वाद दुल्हह दुलहिनको अपने घर लाता है। इसके तीसरे और चौथे दिन हिन्दुओंकी तरह दुल्हह दुलहिनका कंकण छूटता है। फर्क इतना ही है, कि हिन्दुओंका कंकणसूत्र हल्दीमें रंगा और उसमें दुर्वादल बंधा रहता है। मुसलमानोंका कंकण लाल रङ्गका होता है। और इसमें फुलेना लगा रहता है। तथा इसमें मोती, फूल और पैसा बांधा रहता है। यह सूत्र

* निकाह शब्दसे यथार्थमें विवाह ही समझमें आता है। इस देशमें मुसलमानोंमें विधवाके दुवारे विवाहको निकाह कहते हैं। स्त्री पुरुषके प्रथम विवाहको सादी कहते हैं। सादी शब्दका अर्थ आमोदोल्लास हैं। फारसी भाषामें निकाह शब्द ही विवाह अर्थबोधक है।

बर कन्याके घर खोलता है। इसके साथ साथ कलशे-की मिट्टी हटाना और 'हातवर्त्तन' पंच जुमागी आदि लौकिक क्रियायें की जाती हैं।

महम्मदकी आज्ञा, कुरान, और इसलामी साराके अनुसार चार से अधिक विवाह निषिद्ध है। लेकिन बहुतसे आदमी इस नियमको न मान बहुतसे विवाह कर लेते हैं, नवाव टिपू सुलतानने ६०० रमणियोंका पाणिपीड़न किया थो।

मुसलमान धर्म-ग्रन्थोंमें १४ विवाहों कि मनाही है:-१ मां, २ दरमाता या सौतेली मां, ३ बेटी, ४ हविवा बेटी, ५ बहन, ६ फुआ, ७ खाला या मौसी, ८ भाई स्त्री ६ भाञ्जी, १० दूध पिलानेवाली दाई, ११ सहोदर बहन, १२ शास, १३, पतोहू या पुत्रवधू और १४ शाली। पत्नी-के मर जाने पर शालीसे विवाह हो सकता है। इनमें चाचाकी लड़कीसे विवाह कर लेना बड़ा ही गौरवान्वित है। इस सम्बन्धकी पुष्टि करनेवाली एक कहावत है:—"चाचा अपना, चाची पराई, चाचीकी बेटीसे सादी खुदाई।"

इन लोगोंमें भी पत्नीत्यागकी प्रथा है, 'तलाक-बपान्-इ-तालाक-इ-रजाई और तालाफ इ-मुतल्लाका'—इन तीन प्रकारसे पत्नीसे सम्बन्ध विच्छेद हो सकता है। विवाहके समय दान दहेज जो मिलता है, उसका आधा विवाह तोड़ते समय लौटा देना ही युक्ति युक्त है। तलाक देने पर भी उस स्त्रीसे फिर विवाह कर सकते हैं, तलाक-इ मुतल्लकाके मुताविक जो स्त्री छोड़ दी जाती है, उससे फिर सहवास नहीं किया जा सकता, किन्तु यदि छोड़ी हुई स्त्री दूसरा भर्त्तार कर ले और उसे त्याग कर फिर अपने पूर्व भर्त्तारसे सहवास करनेकी प्रार्थना करे, तो ऐसी दशामें वह अपनी छोड़ी हुई पत्नीको फिर ग्रहण कर सकता है।

मुसलमानोंके विवाहकार्यमें जो देशाचार किये जाते हैं, उनके लिये विशेष समयकी आवश्यकता होती है। छोटे दर्जेके दरिद्र निर्द्धनताके कारण कुल-क्रिया-ओंको नहीं कर सकते। राजाके लड़का और उमराओं-के विवाहमें केवल देहमें हल्दी लगानेमें ही प्रायः ६ मही-ने बीत जाते हैं। धनिकोंके यहां रोज हल्दी लगानेके साथ भोजोत्सव और नाच गाने होते रहते हैं। अन्यान्य देशाचार और लौकिक व्यवहार कर विवाह करनेमें लग-भग १ वर्ष ही खतम हो जाता है।

बड़े आदमियों और मध्य श्रेणीके लोगोंमें विवाह करनेमें ११ दिन लगते हैं। पहले तीन दिन हल्दी लगाने-का काम, चौथे दिन मेंहदी भेजना, पांचवें दिन कन्या-के घरसे वरके घर मेंहदी और हल्दीका भेजना, ६वें दिन कन्याका पात भिन्नत, ७वें दिन वरके; ८वें दिन (मट-फोड़) कलसेकी मिट्टी, तेल गड़ाई, बिबियान और बूढ़ी ६वें दिन दहेज, १०वें दिन झोल फोरना, ११वें दिन निकाह और जिलवा। इसके दो चार दिन बाद कंकणका खोलना, हाथ-वर्त्तन और साधारणतः पांच दिनके बाद जुमागी होती है। यदि समयकी कमी हो, तो एक दिनमें ही हरेक घण्टेमें एक एक काम किया जा सकता है।

विश्वास।

ये भूत प्रेतोंमें विश्वास करते हैं। भूतों और बुरे ग्रहोंकी शान्तिके लिये ये ताविज भी बाँधते हैं,। इसके लिये ये मन्त्र आदिका भी प्रयोग करते हैं।

भौतिक तत्त्व देखो।

बङ्गालमें शेख, सैयद, मुगल, पठान—ये चार श्रेणी-के मुसलमान हैं। ये सम्भवतः उत्तर भारतसे यहां आये थे। पश्चिमीय मुसलमान-समाजमें अरबी शेख, और अलीके वंशधरगण सैयद नामसे परिचित हैं। किन्तु बङ्गालके आदिम अधिवासियों जिन लोगोंने इसलाम धर्म ग्रहण किया था, उनमें भी शेख दिखाई देते है। बङ्गालका यह मुसलमान सम्प्रदाय विविध श्रेणीके लोगोंसे संगठित हुआ है।

बङ्गालके मुसलमानोंमें दो समाजिक विभाग हैं—उच्च श्रेणी और सङ्गतिसम्पन्न दरिद्र भेदसे ये स्वातन्त्र्य दिखाई देते हैं। वैदेशिक खाटी मुसलमान और इस देशके धर्मत्यागी उच्चवंशीय हिन्दुओंसे बने मुसलमान असरफ या सरीफ-समाज और निम्न श्रेणीके धर्मत्यागी हिन्दुओंसे बने मुसलमानोंसे कमीने और रजोल हुए हैं। विहारके नव मुसलिमों उत्तर बङ्गालके नस्या और पूर्व बङ्गालके शेखोंकी भी इस समाजमें गणना होती है।

सिवा इसके जुलाहे, धूनिया, कुजड़े, तुर्कनाऊ और दरजी आदि अजलाफ श्रेणी गिने जाते हैं। मूल बात यह है, कि हिन्दू-समाजमें ब्राह्मण और शूद्रका जैसा प्रभेद है, मुसलमान-समाजमें भी असराफ और अजलाफोंका वैसा ही अलगाव है। सैयद पुरोहित और मुगल पठान मुसलमानमें क्षत्रिय माने जाते हैं।

उक्त दोनों समाजोंके सिवा अर्जाल नामक और एक श्रेणी विभाग दिखाई देता है। हालालखोर, लालवंगी, आब्दाल और बेदिया, आदि निकृष्ट जातियां इस समाजके अन्तर्गत हैं। ये किसी भी मुसलमान सम्प्रदायमें नहीं मिल जुल सकतो। ये हिंदुओंके मेहतरों, दुसाधों और कोली आदि जातियोंके अनुरूप हैं।

नीच जातिके हिन्दुओंकी तरह मुसलमानोंमें भी सामाजिक कानूनको भङ्ग करने पर दण्डविधानके लिये एक पञ्चायत रहती है। जुलाहे, कुंजड़े, कोली, दरजी, धुनिया आदि आजलाफोंके भीतर भिन्न नामोंसे यह पञ्चायत विद्यमान है। विहारमें पञ्चायत ही नाम है और बङ्गालके ढाकेमें मातव्वर आदि। प्रत्येक स्थलमें दोसे पांच सदस्योंसे यह पञ्चायत संगठित होती है। स्थानविशेषमें इसके सिवा और भी एक साधारण सभा या पञ्चायत है। उच्चश्रेणीके सभी मुसलमान इस पञ्चायतकी आज्ञा शिरोधार्य्य करते हैं। ढाका नगरके प्रत्येक मुहल्लेमें निर्वाचित सरदारों द्वारा परिचालित एक पंचायत है। सामाजिक किसी बड़े बड़े झगड़ेका निवटारा करते समय सभी पञ्चायतोंके सरदार एकत्र हो कर साधारण पञ्चायतको बुलाते हैं। असराफ श्रेणीके सिवा सभी इस सभाकी बातें मानते हैं।

उक्त पञ्चायतके सदस्य प्रधानतः अपने-अपने समाजके धनवान् व्यक्तियों द्वारा ही चुने जाते हैं। इस निर्वाचनमें नये सभ्यके लिये भोज दे कर वोट संग्रह किया जाता है। विभिन्न श्रेणीका कन्या-विवाह, व्यभिचार, अखाद्य भक्षण, अकारण ही स्त्रीको परित्याग करना, दूसरेको पत्नी कन्याका अपहरण, अपनी जातिके विरुद्ध झूठा अभियोग, या झूठमूठ शिकायत करना आदि कार्य्योंके दण्डविधानके लिये पञ्चायत सभाकी बैठक होती हैं। हुक्का, पानी, वन्द करना या उसका हज्जाम धोबीको मना करना, बेटी-बेटाका विवाह वन्द करना आदि पञ्चायत द्वारा किया जाता है। समाजमें पञ्चायतका प्रभुत्व या प्रभाव रहनेसे साधारण अपने इच्छानुसार कार्य करनेमें असमर्थ हैं। विवाह, वाणिज्य और सामाजिक विषयोंमें वैलक्षण्य निर्द्धारण कर अपनी आज्ञा देना ही पञ्चायतका कार्य है। कोई धुनियां यदि अपनी जातिकी स्त्रीसे विवाह न कर किसी दूसरी (नीच या ऊंची) रमणीके साथ प्रेम-परिणय करे, तो सब तरहसे समाजमें लांछित और दण्डनीय होता है; किन्तु यदि वह उस स्त्रीके पैतृक व्यवसायका आश्रय कर लेता है, तो समाजको कोई आपत्ति नहीं रह जाती।

असराफ और कृषिजीवी शेखोंमें इस तरहकी पञ्चायतका कुछ भी प्रभाव नहीं। कुसंस्कारसे हो या साधारणकी समझसे ही हो, अपराधी समाजके द्वारा दण्डनीय होता है। इनमें सभी अपनेको वड़े हैं।

विदेशसे आनेवाले मुसलमानोंका कुल-गौरव अधिक है। ये अपने अपने खान्दानके विवाहादि घटनाओंको लिख लिया करते हैं। इस तरह इनके घर घर खान्दानी तवारीख रहती है। नीच श्रेणीमें कन्याका विवाह कर देनेसे इज्जतकी मट्टीपलीद होगी, इससे यह अपने खान्दान में ही विवाह कर लेते हैं। पठान पठानके यहां, सैयद सैयदके यहां अपनी अपनी लड़की देते लेते हैं। असराफ-समाज अपने लड़केका विवाह अन्य श्रेणीके लोगोंके यहां भी कर लेता है। सैयद खान्दानमें असली शेखोंका विवाह होता है। सैयद शेखोंके यहां अपनी लड़कीकी सादी नहीं करते। किन्तु उनकी लड़की लेते हैं।

असराफ और अजलाफोंमें विशेष अलगाव रहने पर भी कहीं कहीं दोनों दलमें पुत्रीका लेन देन विद्यमान है। असराफ नीच घरमें अपनी लड़की नहीं देते; किन्तु अजलाफकी कन्या ले सकते हैं। इससे केवल उनके खान्दान पर धब्बा आता है। यदि ये मनुष्य अपने घर दूसरे नीचकी कन्या ला कर विवाह कर लेता है, तो उससे खान्दानमें किसी तरहका धब्बा नहीं लगता। इस विवाहकी स्त्रीसे जो लड़का उत्पन्न होता है, वह अपना

माताके कुलको मर्यादा पाता है। वह अपने खान्दानकी विवाहिता स्त्रीके उत्पन्न पुत्रकी बराबरीका नहीं होता।

धनहीन असराफ अपने घरमें कार्य करनेमें असमर्थ हो कर धनवान् अजलाफोंके घर अपनी इज्जत सौंप रहे हैं। धनके जोरसे अजलाफ असराफोंको हाथमें कर उनकी कन्या लेने लगे हैं। इस तरह धीरे धीरे धनी अजलाफ, संग साथ कर असराफोंमें मिल गये हैं और जुलाहे शेख सैयद कहलाने लगे हैं।

बङ्गालमें ब्राह्मण और कायस्थोंमें कुलकी क्रिया द्वारा जैसे वंशगौरव-वृद्धिकी चेष्टा देखी जाती है, वैसे ही मुसलमान-समाजमें खान्दानको ऊंचा करनेकी चेष्टा देखी जाती हैं। सिवा इसके सामाजिक आभिजात्यकी भी इनमें जोर दिखाई देता है। हिन्दू-समाजकी तरह इनमें भी जाति-विचार मौजूद है। ऊंचे दरजेके मुसलमान नीचे दरजेके मुसलमानोंके साथ उठना बैठना या एक साथ बैठ कर खाना पीना पसन्द नहीं करते।

इस समय बङ्गालमें मुसलमान जातिके जो सब दल मौजूद हैं, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं। उनके कार्यों से ही उनकी वंशमर्यादाका परिचय मिलता है।

१ आवदाल या डोकले—यह देशी दुसाधोंकी श्रेणीमें गिने जाते हैं। झाड़ूदार, दाई, वर्जानदा आदि नीच कार्यों द्वारा ये जीविका अर्जन करते हैं। मुसलमान-समाजमें ये वेदिया समाजमें गिने जाते हैं। ये मसजिदमें जा सकते हैं, लेकिन खुदाकी इबादत करते समय लोगोंमें मिल नहीं सकते।

२ अफगान—अफगानिस्थानके रहनेवाले पठान हैं। ये वैदेशिक होने पर संयुक्तप्रान्त तथा बंगालमें इनका उपनिवेश है।

३ आजात, अजलाफ, नस्या, नव मुसलिम्—ये सभी निम्न श्रेणीके हिन्दुओंसे बने मुसल्लोंसे संगठित हैं। दक्षिण बंगालके पाद और चाण्डालगण इसलाम धर्म स्वीकार करने पर अजलाफ श्रेणीभुक्त हुए, उत्तर बंगालके राजवंशी और मेच जातिवाले नस्या और विहारी निम्नश्रेणीके हिन्दू नव मुसलिम्के नामसे पुकारे जाते हैं।

४ आखन्दजी या खन्दकार—मुसलमान मुदर्रिस। ५ आतशबाज,—अग्निक्रीड़ा-कौतुकका बनानेवाला। ६ बैकाली और बाखो—गल्ला बेचनेवाला, बढ़ई और लुहार। ७ वेदिया और नर—ये चमारोंकी तरह हैं। ८ बेहरा-कमकर या कहार जातीय या वेलदार—चाण्डाल द्वारा उत्पन्ना, नूनियाका काम करनेवाला यानी मिट्टी खोदनेका काम करनेवाला या पालकी ढोनेवाला।

९ बेसाती और भगवानी। १० भाड़ और पंवरिया। ११ भाट। १२ भटियारा। १३ भातिया। १४ चकलाई, चौदाली, दतिया, दोहरिया, माहीफरोस, माहीमाल, निकारी और पाभरा। १५ चम्बा। १६ चट्की—चुरीदार। १७ छत्ना—थाली तैयार करनेवाला, १८ ठठेरा जैसी जाति। १९ चिक् और कसाई। २० चूड़ीवाला और लहेरी। २१ दफादार और नलिया। २२ दफाली और नगरची। २३ दाई और मेहना। २४ दरजी। २५ धावा। २६ धोबी। २७ धुनियां। २८ फकीर। २९ गद्दी या घोषी। ३० तुर्क नाऊ। ३१ हिजड़ा—नाचगानकारी (पंवरियाके श्रेणीका दूसरा रूप)। ३२ जुलाहा। ३३ कागजी (कागज तैयार करनेवाला)। ३४ कलाल (मद्य बेचनेवाला)। इनका राङ्गो भी नाम है। ३५ कालन्दर और मन्दारिया (फकीर)। ३६ कान। ३७ कसबी, वेश्या, मालजादि, तवायफ। जातीय दलमें न रहने पर भी साम्प्रदायिक पेशादारोंमें इनकी गणना होती है। इससे ये स्वतन्त्र जातिकी हैं। ३८ काजी—मुसलमानोंके शासनकालमें मजिष्टरका काम करनेवाला काजी कहलाता था। उन्हीं काजियोंके वंशधर। खां—उच्च खान्दानकी उपाधि। नाना स्थानमें मजुमदार, ठाकुर, विश्वास, चौधरी, राज आदि भी मुसलमानोंमें उपाधि दिखाई देती है। मालूम होता है, कि ये हिन्दूसे मुसलमान बनाये गये हैं। राजवंशधर मुसलमान अपनेको राजवंशी बतलाते हैं।

३९ खोजा, ख्वाजा या वणिक् श्रेणीसे अलग है। खोजाका अर्थ है खोजवा या अण्डविहीन। पञ्जाब प्रदेशके सुन्नी सम्प्रदायके आगा खां ह शागिर्दोंका सम्प्रदाय इसी नामसे मशहूर है। ४० तेली—तेल पेरनेवाली तेली जाति। ४१ कुंजड़ा यानी शाक सब्जी बेचनेवाला। ४२ माली, ४३ मल्लाह। ४४ मल्लिक अलाउद्दीन गोरीके सेनापति सैयद इब्राहिम एक बार

विहार प्रदेशमें वहांके वलवेको शान्त करनेके लिये आये। वलवा शान्त हो जाने पर प्रत्येक ग्राममें उन्होंने अपनी सेनाके सैनिकोंको रखा। इन सैनिकोंने हिन्दू रमणियों से विवाह कर वहां ही अपनी वस्ती कायम कर ली। विहारका जब वलवा शान्त हो गया, तब इब्राहिमको मल्लिककी उपाधि मिली। फल यह हुआ, कि ये उपाधि इब्राहिमने अपने सैनिकोंके सिर मढ़ दिया। तभीसे ये मल्लिक कहलाने लगे। विहार शरीफमें इब्राहिमकी कब्र है।

४५ मंगन। भिक्षुक या भीख मांगनेवाली जाति। ४६ मणिपुरी। ४७ मसालची, मसाल दिखलानेवाले। ये दादूमियां सम्प्रदायके हैं।

४८ मीर—(अमीर शब्दका अपभ्रंश) ४९ मीरधा या मिर्जा। मिरीयासिन् या तोम मिरीयासिन—वजनियां। ५१ मियां। ५२ मुगल। ५३ मोची (चमार)। ५४ मुकेरी। ५५ नायक, नालवन्द, नानवाई और पनेरी। ५६ पठान। ५७ पटुवार, रङ्गरेज, सावुन वनानेवाला, सरदार और शिकलगार। ५८ पीराली—(यशोर और खुलना जिलावासी—ये पुराने हिन्दू संस्कार देशाचारका पालन किया करते हैं।) ५९ सैयद। ६० साम्वुनी। (वङ्गाली और मग जातिके सहयोगसे उत्पन्न)। ६१ शेख (पुरनिया जिलेके शेखोंमें वङ्गाली, कलाइया, हवलियार और खोदा नामसे चार स्वतन्त्र दल हैं। वङ्गाली शेख वंगला और हिन्दी मिली हुई वोली वोलते हैं। ये कोच और राजवंशसे उत्पन्न है। हिन्दुओंकी तरह अपने कुलमें विवाह नहीं करते। इनमें कितने ही अभी भी विषहरीकी पूजा किया करते हैं। हवली परगनेमें रहनेसे हवलीयर और कोशी नदीके पश्चिमी प्रदेशोंमें रहनेसे ये खोदा कहलाते हैं। ६२ सोनार, टिकुलिहार, ठठाई। ६३ ठाकुराई और ६४ तूंतिया।

उपर्युक्त मुसलमान समाजके आभिजात्यानुसार वङ्गाली मुसलमान सम्प्रदाय निम्नलिखित रूपसे विद्यमान है।

(क) असराफ या उच्च श्रेणीके मुसलमान—

१ सैयद, २ शेख, ३ पठान, ४ मुगल, ५ मल्लिक और ६ मिर्जा। किसी किसी जिलेमें पठान और मुगल अजलाफ समाजके अन्तर्भुक्त हैं।

(ख) अजलाफ या निम्नश्रेणीके मुसलमान—

१ शेख (खेती करनेवाले) पीराली और ठाकुर ई।

२ दरजी, जुलाहा, फकीर और रङ्गरेज।

३ वड़ी, भटियारा, चीक, चुडिहार, दाई, धावा, धुनियां, गद्दी, कलाल, कसाई, तेली, कुंजड़ा, लहेरी, माहिफरोस, मल्लाह, नलिया, निकारी।

४ आवदाल, भाखो, वेदिया, भाट, चम्वा, दफाली, धोवी, हज्जाम, मोची (चमार), नागरची, नट, पनवारिया मदारी, तूंतिया।

(ग) अर्जाल या अछूत मुसलमान—भांड़, हलालखोर, हिजड़ा, कसवी, लालवेगी, भङ्गी, मेहतर।

वङ्गालमें मुसलमानोंका अधिकार।

सन् ११९९ ई०में वङ्गालके सेनवंशीय महाराज लक्ष्मणसेनको पराजित कर मुहम्मद इ-वख्तियार खिलजीने वङ्गाल पर अधिकार जमाया। तवसे १७६५ ई० तक जव अङ्गरेजी कम्पनी दीवानीका अधिकार पा चुकी थी तव तक मुसलमानोंका प्रभाव अक्षुण्ण था। यहांके नवावोंके प्रयत्नसे और कार्यविशेषके अनुरोधसे विभिन्न श्रेणीके मुसलमान राज-कार्यमें नियुक्त थे अथवा मुसलमान जातिके उपभोग्य वाणिज्य-सम्भार विविध देशोंसे सैयद, मुगल, पठान आदि श्रेणीके मुसलमान यहां आ कर वस गये। मुसलमान साधु और उपर्युक्त कर्मचारिगण भी माफी जमीन (विना मालगुजारीकी जमीन) पानेसे आ कर यहां रह गये। गयासुद्दीन्ने (१२१४–२७ ई०), नासिरुद्दीन्ने (१४२६–५७ ई०) और हुसैन शाहने (१४९७–१५२१ ई०) वङ्गालमें फकीर और उमरावोंके रहनेके लिये सैकड़ों ग्राम और भूसम्पत्ति दान किया था।

१३३४ से १५५६ ई०तक वङ्गालके स्वाधीन मुसलमान राजवंशके अधिकारके समय उत्तर भारतके मुसलमान-सम्राटोंके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो वहुसंख्यक मुसलमान वङ्गालमें आकर रहने लगे। गोरी राजवंशके अन्तमें और घोर अत्यचार मुहम्मद तुगलकके शासन कालमें वङ्गालमें मुसलमानोंकी संख्या वढ़ गई। मुगल-सम्राट् अकवरके इलाही धर्म प्रचारके सम्वन्धमें कितने ही धर्मप्रचारक मुसलमानोंने वङ्गालके मुसलमानोंकी पुष्टिकी

थी। कितने ही मुसलमान वङ्गालको धन धान्य-पूर्ण देख कर भी चले आये थे। वहांका वर्त्तमान मुसलमान-सम्प्रदाय वैदेशिक विविध श्रेणीके मुसलमानोंसे संगठित हैं। सिवा इसके यहां इस्लामधर्म ग्रहण करनेवाले (हिन्दू) समाजका विस्तार होनेसे वङ्गालके किसी किसी विभागमें मुसलमानोंका ही प्राधान्य दिखाई देता है।

राढ़देशके गौड़ नगरमें (लक्ष्मणावर्ती) मुसलमानों के राजपाट स्थापित होने पर किसी तरह उत्तर, पूर्व, और दक्षिण वङ्गाल मुसलमानोंने विस्तृति और प्रतिपत्ति लाभ की थी, वङ्गालके मुसलमानराज और नवाब खान्दानके इतिहास पढ़नेसे उसका विशेष परिचय मिलता है। गौड़, पाण्डुया, राजमहल, ढाका, मुर्शिदाबाद, नोयाखाली, वगुड़ा, वाकरगञ्ज, मैमनसिंह, कोचविहार, रङ्गपुर, चट्टग्राम आदि स्थानोंमें धीरे धीरे जिस तरह मुसलमानोंका आधिपत्य फैला हुआ था, उसका संक्षिप्त इतिहास नीचे दिया जाता है।

डाकृर वायज, वुकानन, हेमिल्टन, ब्रायन, हजसन् आदि जातितत्त्वके अनुसन्धान करनेवालोंके प्रयत्नसे उत्तर वङ्गालके मुसलमानोंका जो इतिहास प्रकल्पित हुआ है, उससे मालूम होता है, कि कोच जाति हिन्दू-समाजमें अनादृत और हेयस मझी जाती थी, इससे उसने मुसलमान धर्मका आश्रय लिया था। समाजमें ऊंचा स्थान पाना ही उनके धर्मपरिवर्त्तनका प्रधान कारण है। रङ्गपुरमें मुसलमान समाजकी प्रतिपत्ति न रहने पर भी वहांके मुसलमान आदिम अधिवासियोंके वंशधर प्रतीत होते हैं। वहांके आदिम अधिवासी विविध स्थानोंके मुसलमानोंके प्रभावसे या मुसलमानों फौजोंके वलप्रयोगसे मुसलमान वनाये गये थे।

१३वींसे १४वीं शताब्दीमें धर्मोन्मत्त मुसलमान सैनिकोंके प्रयत्नसे पूर्व वङ्गालमें मुसलमानोंका नीव जमा। इन्होंने अपनी तलवारका भय दिखा निम्न श्रेणीके लोगोंमें या यों कहिये, कि सघन जंगलोंको पार कर श्रीहट्ट जिलेमें एक ग्रामसे दूसरे ग्रामोंमें मुसलमान धर्मका सिक्का जमाया था। अब भी पूर्व वङ्गालमें आदम साहब, शाहजलाल, मुजर्रद्द और कारफर्मा साहब आदि धर्मवीर और सैनिकोंका नाम सुनाई देता है।

सन् १३३८ ई०में पूर्व वङ्गालमें मुसलमान राजवंशके शासनाधीन हुआ था। ये राजे डेढ़ सौ वर्ष सोनारगांव (सुवर्णग्राम)-मे रह कर राजकर्म चलाते थे। सोनारगांवकी वाणिज्य-समृद्धिका विषय इतिहासके पढ़नेवालोंसे अविदित नहीं। सुवर्णग्राम देखो।

आक्रमणके वाद विभिन्न वीरजाति द्वारा परिवेष्टित होने पर भी भारतीय-मुसलमान साम्राज्यकी पूर्वी सीमा पर अवस्थित इस महानगरमें वहुतेरे मुसलमान साधुओंका समावेश हुआ था। उन सबोंके मकबरोंके खण्डहरोंसे आज भी उस पुराने जनपदका ज्ञान होता है। इस नगरमें पूर्व वङ्गालके स्वन्दकार वंशका तथा जलालुद्दीनके उस्तादका जन्म हुआ था। पूर्व वङ्गालमें मुसलमानोंके साढ़े पांचसौ वर्षके आधिपत्यमें हम केवल जलालुद्दीनको ही (१४१४-१४३० ई०) हिन्दू-धर्म विद्वेषी और प्रकृत विरुद्धाचारी देखते हैं। इसने इसलाम धर्मके विस्तार करनेके लिये हाथमें हथियार लेकर जिहादकी घोषणा की थी। कुरानका सहारा या मृत्युका आश्रय लेनेके सिवा उस समय हिन्दुओंके लिये तीसरा कोई पथ नहीं था। केवल सत्रह वर्षमें मुसलमानोंकी जितनी संख्या वढ़ी थी, उतनी पिछले ३००सौ वर्षोंमें वढ़ी थी या नहीं सन्देह है। इस समय मुसलमानोंके भयसे कामरूप राज्यमें या कछारके वन जङ्गलोंमें जा कर हिन्दुओंने आश्रय लिया था।

उत्तर-भारतसे वङ्गालमें मुसलमानोंके आने और उपनिवेश कायम करनेका विशेष कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। सम्राट् अकवरके राजत्वकालमें वङ्गाल अस्वास्थ्यकर-स्थान कहा जाता था। मुगल आक्रमणकारी यहांका आना कालापानी समझते थे। उस समयके नवाब और उमरा आदि जमींदार यहांका खजाना वसूल कर दिल्ली, और आगरेमें विलासवासना चरितार्थ करनेके लिये लौट आते थे। उनके अधीनस्थ-नौकर चाकरों और सैनिकोंमें कुछ लोग वहांकी स्त्रियोंके साथ विवाह कर वहां ही रह गये थे। इसी तरह धीरे धीरे वङ्गालके स्थान-स्थानमें कभी कभी मुसल-

मान-सेना-सम्प्रदायका अधिष्ठान हुआ था। अतएव प्रत्येक राजधानी और छावनीके समीप एक एक धर्म-प्रचारका केन्द्र स्थापित हुआ।

दिल्ली दरबारके हुक्मसे राजकार्य्य चलानेके लिये वङ्गालमें मुसलमानोंके आनेके सिवा यूरोपीय वणिक्-सम्प्रदायके बहुत पहले अरवी और एक वणिक्-सम्प्रदाय समुद्रपथसे चट्टग्राम आदि बंगालकी पूर्वी सीमामें आ कर वस गया था। इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता कि किस समयसे यह मुसलमान वणिक्-सम्प्रदाय वङ्गोपसागरके किनारे आ पहुंचा था। १६वीं शताब्दीके आरम्भमें वार्वोसा जब वङ्गाल देखनेके लिये आये थे, तब उन्होंने किनारेके विभागमें वैदेशिक अरवी, फारसी, हवशी और भारतीय व्यवसायियोंकी वस्ती देखी थी। उन्होंने यह भी लिखा है, "वङ्गेश्वर और वहांके मुसलमान हाकिमोंके अनुग्रह लाभकी प्रत्याशामें प्रति दिन देशीय हिन्दू अधिवासी मूर वन रहे हैं।"

सिजर फ्रेडरिक और विसेण्ट लेब्रान्सने सन् १५७० ई०में वङ्गालमें रहते समय सन्दीपमें मूर जातिकी वस्ती देखी थी। १६वीं शताब्दीमें अरवी वणिक्-समितिने अपने वाणिज्यके साथ-साथ चट्टग्राममें इस लामधर्मका प्रचार किया था।

सिवा इसके मुसलमानी शासनके साथ सब जगह गुलामी प्रथाका भी प्रचलन हुआ। वङ्गालमें अत्याचार और अनाचार और शासनकी विशृङ्खलताके समय बहुतेरे दरिद्र हिंदू सन्तान दुःखसे छुटकारा पानेकी आशासे मुसलमानोंकी गुलामी मंजूर कर ली थी। आराकानी (मग) और आसामी डाकूदलके आक्रमण, दुर्भिक्ष और मड़क तथा राजविप्लवसे वङ्गालके हिंदू सन्तानको अन्न कष्टके कारण अपने अपने लड़केवालेको मुसलमानके हाथ वेचना पड़ा। मुसलमानोंने जितने गुलाम खरीदे थे, उन सबको मुसलमान बना लिया।

बलपूर्वक मुसलमान समाजमें लानेके सम्बन्धमें कितने ही ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। वर्नियरके भ्रमण वृत्तान्तमें लिखा है, कि "हत्याकारी, और व्यभिचारी हिन्दू भी मुसलमान वन जानेसे अपने दोषसे छुटकारा पा जाता था। इस समयमें जाति और समाज-च्युत अनेक हिन्दुओंने मुसलमानोंका आश्रय लिया था। उस समय मुसलमानोंका ऐसा प्रादुर्भाव था, कि प्रत्येक मुसलमानको ही घरके सामने एक वधना लटका रखना होता था। एक बार एक मौलवी एक हिंदू-प्रधान गांवमें गये। वहां किसीके दरवाजे पर वधना लटकता देख अपने शागिर्दका घर पा न सके। इस पर उन्होंने क्रोधित हो इस वातकी खबर नवावको दी थी। मौलवीके इस अपमानका वदला चुकानेके लिये नवावने फौज भेजी थी और उस ग्रामके हिन्दुओंको मुसलमान वनने पर वाध्य किया। उस समय फकीर मौलवी आदिकी अपमानमें हिन्दूकी दुर्गति रोजकी घटना थी।

पूर्व-वङ्गालके जलालुद्दीन्, श्रीहट्टके शाह जलाल, आराम वागके महम्मद इस्माइल शाह गाजी और यशोरके हाकिम खाँ जहां अलीके दीवान पीर अली (यथार्थ-महम्मद ताहिर) आदि मुसलमानोंने हिन्दुओंको जबरदस्ती मुसलमान वनाया था। भगवान् चैतन्यदेवके अभ्युदयकालके मुसलमानोंके अत्याचार और काजियोंके प्रभावका हाल उस समयके लिखे वैष्णव-ग्रन्थोंमें विद्यमान है। वैष्णव प्रवर ब्राह्मण हरिदासकी मुसलमान ख्याति तथा वैष्णव-धर्म ग्रहण करनेकी बात वहुतोंको मालूम हो सकता है।

महम्मद इ-वख्तियारका विहार आक्रमण और वहां वौद्धधर्म-याजकोंकी हत्याकाण्डके वाद लोगोंको धर्मयाजक और उपदेशकोंके अभावमें हिन्दुओंको मुसलमान धर्मका आश्रय लेना पड़ा था। वरिसाल और खुलना जिलेके वहुतेरे सम्भ्रान्त व्यक्ति इसी तरह मुसलमान हुए हैं।

विहारके ब्राह्मण और कायस्थसे जो मुसलमान हो गये हैं वे शेख कहलाते हैं। इनके साथ वैदेशिक शेखोंका आदान-प्रदान चलता है। वाभन, राजपूत या मैमनसिंह जिलेके उच्च श्रेणीके हिन्दू मुसलमान होने पर पैठान कहे जाते हैं और नीच जातिके हिन्दू नवमुसलिम समाजमें लिये गये हैं। फिर भी कालक्रमसे वे अवस्थाकी उन्नतिके साथ साथ मुसलमानोंमें शेख कहलाने लगेंगे।

आज भी मुसलमानोंके नामोंमें आधे हिन्दू और आधे मुसलमान नाम दिखाई देते हैं:—काली शेख, व्रज शेख, गोपालमण्डल आदि। इससे अनुमान होता है, कि मुसलमान होने पर भी हिन्दुओं पर अभी मुसलमानी छाप नहीं लगा है या कुरानके तत्त्वोंका उन पर प्रभाव नहीं पड़ा है। फलतः उनका नाम कुछ अंशमें अभी भी विद्यमान हैं। और उनके नामके आगे जो शेख उपाधि जोड़ी गई है, वह भी सम्मानसूचक ही है।

केवल वैदेशिक मुसलमानोंके प्रयत्नसे बङ्गालमें देशी हिन्दुओंको मुसलमान बना कर मुसलमानोंकी संख्या नहीं बढ़ी थी बरन् नीच श्रेणीकी हिन्दू-विधवायें समाजकी असह्य यन्त्रणाको न सह सकने पर पतिवती बननेकी लालसासे मुसलमान बन गईं। इससे भी मुसलमान समाजकी वृद्धि हुई है। सिवा इसके कितनी ही हिन्दू-विधवायें मुसलमानोंसे फंस जाने पर जातिच्युत हो जानेसे बाध्य हो कर मुसलमान हो गईं। इसी तरह कितने ही हिन्दू-सुन्दरी मुसलमानों पर आसक्त हो मुसलमान हो गये हैं, इससे मुसलमानोंकी संख्या बढ़ी है। सिवा इसके मुसलमानोंके राज्यमें मुल्ला और मौलवियोंके प्रभाव अक्षुण्ण रहनेकी वजह उनके पीरोंके यहां आने जाने तथा छुआछूत होनेसे भी कितने ही हिन्दू मुसलमान बन गये।

शिया सुन्नी—इन दो फिर्कोंके सिवा बङ्गालमें हनीफी, शफाई, मालिकि और हम्बली नामसे और भी चार नये फिर्के देखे जाते हैं। इन चार फिर्कोंमें विशेष फर्क नहीं। बङ्गालमें हनीफी फिर्केके मुसलमान अधिक देखे जाते हैं। इनमें कितने ही अहूलीशहा और कितने ही गर मुकल्लिद हैं।

१७वीं शताब्दीमें अरबमें ओहाबी नामका एक नया फिर्का पैदा हुआ। इनमें कुसंस्कार नहीं था। इस्लामधर्मको पवित्रताकी रक्षा करनेके लिये ही इस फिर्केका जन्म हुआ। यह इमाम्, सुलतान—और तो क्या महम्मदका हुक्म माननेके लिये तैयार नहीं। नेजद नगरवासी महम्मद ओहाबने इस फिर्केका जन्म दिया था। काफरोंके साथ युद्ध कर धर्ममतके संस्थापन ही इस सम्प्रदायका प्रधान उद्देश्य है। रायबरेलीके सैयद अहमद शाहने भारतमें इस मतको चलाया था। सन् १८२६ ई०में उन्होंने सिक्खोंके विरुद्ध जेहादकी घोषणा की थी। उक्त सैयद महम्मद और उनके शागिर्द मौलवी महम्मद इस्माइल पटनेमें रह कर विहार और बङ्गाल ओहाबी मतके प्रचार करनेमें प्रयासी हुए थे।

उक्त सैयद महम्मदसे बिलकुल अलग पूर्व बङ्गालमें हाजी शरियत् उल्ला नामका एक जुलाहा मक्केसे लौट कर ओहाबी मतका प्रचार करने लगा था। धीरे धीरे फरीदपुर और ढाकेमें उसके बहुतेरे शागिर्द हो गये। इसका लड़का दादू मियां अपने बापका धर्मप्रचार कार्य्य करने लगा। इसने शीघ्र ही ढाका, वाकरगञ्ज, फरीदपुर, नोयाखाली, पबना आदि स्थानोंमें किसान और नीच जातियोंके लोगोंको अपने फिर्केमें शामिल कर लिया। इसी व्यक्तिने दुर्गोत्सवके लिये अलग कर वसूल करना बंद करनेके लिये लठधारी और डाकुओंको ले कर जमींदारोंसे एक खासी लड़ाई छेड़ दी थी। अन्तमें अङ्गरेजोंने इसे दण्ड दिया। सन् १८६० ई०में दादू मियांकी मृत्यु हो गई।

हिन्दुओंके देशाचारोंका पालन, हिन्दू उत्सवोंमें या ताजियोंमें शामिल होना, पीर पैगम्बरोंकी इबादत तथा जुम्माका नमाज आदिको मना कर हाजी शरीयतने अपने मतको चलाया था। हिन्दूधर्मकी प्रतिद्वन्द्विता करना ही इस मुसलमान सम्प्रदायका मुख्य उद्देश्य था।

पटनेके ओहाबी-मतका अनुसरण कर जौनपुरके मौलाना करामत अली पूर्ववर्त्ती प्रचारकोंके मत विस्तार करनेमें यत्नशील हुए। पीछे वे हाजी-मतकी उपेक्षा कर हनीफी-सम्प्रदायकी पोषकता की थी। उन्होंने दादू मियांका लक्ष्य कर अङ्गरेजोंके अधीन भारतको फिर "दारुलहार्व" कह कर घोषणा नहीं की थी। उन्होंने हिन्दुओंकी कुसंस्कारोंका पालन करना और शरीयतोंके पूर्वपुरुषोंको शिरनी चढ़ाना और ताजिया बनाना आदि कामोंको मना किया था। जुम्माका नमाज और पीरोंके मकबरों पर शिरनी चढ़ाना आदि कह पुरानी बातोंको उन्होंने अपने ओहाबी-समाजमें फिर चलाया था। सन् १८७४ ई०में करामत अलीकी मृत्युके बाद उनके लड़के हाफिज अहादने विशेष दक्षताके साथ पूर्व तथा उत्तर

वङ्गालमें ओहावी-मतका प्रचार किया। इस सम्प्रदाय-के अन्यान्य प्रचारकोंमें हुगली जिलेके फुरफुरा ग्रामके शाह आबुवकर और मुर्शिदावाद जिलेके वनोधिया ग्राम-के हजरतका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है।

उपर्युक्त दो अभिनव धर्मसम्प्रदाय फराजी, नमाज हाफिज, हिदायती सारा आदि नामसे निम्न श्रेणीके मुसलमानोंमें परिचित हैं। वे पूर्व मतानुवर्त्ती मुसल-मान सम्प्रदायको सानिकी, बेदावी, बेदैयनी, यावेतारा कहते हैं। दादू मियांका सम्प्रदाय ही यथार्थमें फराजी कहलाता है। इसमें महम्मदी ताहल इ हादी या रफिया दीन् और ला मजहवी आदि विभाग हैं। उधर करामत अलीके शागिर्द और उत्तराधिकारी तायैयूनी नामसे विख्यात है।

दादू मियांके मरनेके बाद करामत अलीके चलाया धर्म पूर्व-वङ्गालके निम्नश्रेणीके किसानोंमें प्रचलित हुआ। दादू मियांका लड़का सैजुद्दीन खां बहादुर फरीद पुरवासी किसानों और जुलाहों पर अधिकार जमाने पर भी करामत् अलीके शागिर्दोंसे पूर्व और दक्षिण वङ्गाल भर गया है। उक्त सम्प्रदायके मतैक्यके कारण कभी कभी महरम पर दोनों सम्प्रदायोंमें खूब दङ्गा हंगामा हो जाता है।

इस ओहावी-सम्प्रदायके अभ्युत्थानके पहले पूर्व और उत्तर बंगालके निम्नश्रेणीके मुसलमान सम्पूर्ण-रूपसे हिंदू भावापन्न थे, वे दूर्गापूजा और विभिन्न हिंदू उत्सवोंमें सम्मिलित होते थे। हैजा, चेचक आदि-के फैलनेके समय शीतला और कालीकी पूजा और कभी कभी धर्मराज, मनसा और विपहराकी पूजा वे करते थे। अन्यान्य सामाजिक व्यवहारोंमें भी मुसलमानोंमें हिंदू-देशाचार प्रचलित था। विवाहादि शुभ कर्मोंमें विवाह-में सिन्दुर देना, वैद्यनाथतीर्थमें गंगोदक प्रदान, ग्राम्य-देवताकी पूजा और जन्मकालमें षष्ठीपूजा आदि देशा-चार भी उनमें दिखाई देता है।

हिंदुओंकी तरह कोई कुसंस्कारमें पड़ जाने पर बंगालके मुसलमानोंमें भी प्रायश्चित्त करनेका नियम है। अब्दुल कादिर जिलानी, आबू इसहाकशामी (चिस्तीवासी), महीउद्दीन तुकशवन्द और अब्दुल कादिर सुहारवर्दी नामके चारों पीर प्रत्येक मुसलमान-के पूजनीय हैं। ओहावी-सम्प्रदायके सिवा सभी सम्प्र-दायके मुसलमान पीरोंका आदर किया करते हैं। मुसलमानोंका विश्वास है, कि इस देहको त्याग कर भी पीरोंकी आत्मायें मक्का या मदीनेमें रह कर रोज नमाज पढ़ा करती हैं। वे सूक्ष्म शरीरमें रह कर जीवों-की मंगलकामना किया करते हैं। इसीलिये उन लोगों-के मकवरे तीर्थ समझे जाते हैं। साधारण लोगोंको पुत्रकी कामनासे पीरों पर शिरनी चढ़ाते भी देखा जाता है। शिक्षित मुसलमानोंमें इस विश्वासका ह्रास हो रहा है।

भारतीय पीर या मुसलमान महापुरुषोंमें हजरत मुई-नुद्दीन् चिस्त सबसे प्रधान पुरुष हैं। सन् ११४० ई०में फारसमें इनका जन्म हुआ। भारतमें आकर १२३४ ई०में अजमेरमें रहते समय वह मरे। भारतसे दूरके रहने-वाले हिन्दू मुसलमान इस मुसलमान तीर्थका दर्शन करने आते हैं। स्वयं टिकारीके भूतपूर्व महाराज रण-वहादुरसिंह प्रत्येक वर्ष यहां आया करते थे।

सिवा इसके वङ्गालके कई स्थानोंमें पीरोंका दरगाह दिखाई देता है। इनमें कितनोंका नाम उल्लेखनीय है। इन पीरोंके सम्बन्धमें विचित्र कहानियां प्रचलित हुई हैं।

१ माचाण्डाली सईफ—२४ परगनेके गङ्गासागर सङ्गमके निकट।

२ खाँ जहां अली—बागेरहाट उपविभागके राम-विजयपुरमें।

३ शाह सुलतान वगुड़ा जिलेके महास्थाननामक प्राचीन नगरमें। हिन्दूराज परशुरामके यहां भिक्षा मांग इन्होंने राजाको राजच्युत किया था। पीछे राजाकी कन्या शीलादेवी फकीरके पञ्जेसे निकल करतोया जल-में डूब गई। यहां शीलादेवीका घाट एक तीर्थ रूपमें हो गया है। फकीरके दरगाहमें हरसाल मेला होता है।

४ पीर वदर—चट्टग्रामके मल्लाहोंके कुलदेवता। हिन्दू, मुसलमान और फिरङ्गी (अङ्गरेज) मल्लाह एकत्र ही उस पीरको पूजा चढ़ाते हैं। मुसलमान चट्टग्राम-वासी देर उद्दीन नामक मुसलमानको पीरवद्दर कहते हैं। सन् १५४० ई०में इसकी मौत हुई। पुर्त्तगालोंका

कहना है, कि एक पुर्त्तगीज मल्लाह मुसलमान बन कर बदर नामसे मशहूर हुआ। बहुतोंका विश्वास है, कि यह ख्वाजा खिजिर है। चट्टग्रामी भाषामें बदरशब्दका अर्थ है—अनुग्रह प्रार्थना। चट्टग्राम और बङ्गालके अन्यान्य स्थानोंके मल्लाह मालसे लदी नावको खोलते समय 'बदर बदर' पीरका नाम उच्चारण कर लेते हैं।

५ शाह अहमद घेसुदराज—त्रिपुरा राज्यके अन्तर्गत खरमपुरमें यहां उसकी कब्र है। इसने श्रीहट्टके शाह जलालकी ओरसे श्रीहट्टके राजा गौरगोविन्दके विरुद्ध युद्ध किया था। रणक्षेत्रमें ही इसकी मृत्यु हुई।

६ ख्वाजा मिर्जा हलीम—चम्पारणके नेहासी ग्राम में यहां हर साल एक मेला होता है।

७ पातुकी सेन (साइन)—मोतिहारीकी कचहरी-के सामने। पातुकी १८६४ ई० तक जीवित रहा।

८ मखदुम शरीफ उद्दीन्—विहारमें।

९ मखदुम शाह आबूफते—हाजीरमें।

१० असगर अली शाह—मुजफरपुरमें।

उपर्युक्त पीरोंके सिवा मुसलमानोंमें और भी कितने ही पौराणिक महापुरुषोंके नाम पाये जाते हैं। इनमें पैगम्बर ख्वाजा खिजिर (ये महम्मदके जन्मसे १ हजार वर्ष पहले इस धरती पर मौजूद थे) बहराइचके गाजी मियां, सुन्दरवनके जिन्दागाजी, हिमालयके निकटके गाजी मदार, सत्यपीर या सत्यनारायण, अमरोहाके शेख साधु, गयाधामके सुलतान शाही, पांच पोर, मुसलमान गाजी मियां, पीरबदर, जिन्दा गाजी, फरीद, शेख ख्वाजा खिजिर, और शेख साधु आदि नामों पांच पीर मनोनीत कर लेने हैं। यथार्थमें ये बट या पोपल वृक्षके नीचे मिट्टीके पांच पिण्ड बना कर पूजा करते हैं। पढ़े लिखे मुसलमान इसको 'पञ्चत नीपाक'-की कल्पना करते हैं। शिया-सम्प्रदायके मतसे महम्मद, अली फतिमा, हासेन और हुसेन—ये ही पांच और सुन्नियोंके मतसे महम्मद और उनके चार चार यानी उनके पिछले प्रथम खलीफोंको ले कर पांच परियां 'पञ्चतनोपाक'की कल्पना हुई है।

मुसलमान साहित्य।

गत १५वीं शताब्दीमें मुसलमान जाति धीरे धीरे जिस तरह बढ़ी है और विजय प्राप्त की है, जातीयता-के अभ्युदयके साथ साथ मुसलमान साहित्य और विज्ञानकी उसी तरह कमी हुई है। यथार्थ बात यह है, कि वीरचेता महम्मदी इसलामधर्मकी विस्तृति और प्रचार करनेमें तथा राज्य विजय-वासनामें उत्तावला हो कर साहित्यादीको जलाञ्जलि दे दी थी। पहले खलीफा ही धर्म विस्तारमें लगे हुए थे। उनके बादके खलीफों-के अमलमें जब मुसलमान-साम्राज्य यूरोपसे एशिया-तक फैल चुका था और जब राज्यलोलुपताका इस तरह अन्त हुआ था, जब खलीफा विषयवासनासे परितृप्त हो कर धीरे धीरे सौभाग्य सुख उपभोग कर रहे थे, तभी, उनके हृदयमें माधुर्य्यमयी कवित्वस्पृहा जागरित हो उठी थी। उनकी यह बलवती आकांक्षा अभी दृढ़ भी होने न पाई थी, कि भोगविलासमें ही मुसलमान जाति विलीन हो गई।

प्रधान खलीफा अलमन्सुर, हारुन अल रसोद और अलमामून विशेष अनुराग और उत्साह द्वारा मुसलमान साहित्यकी जैसो उन्नति की थी, पिछले पार्थिव सुख-लालसाप्रिय मुसलमानराजे वैसी ज्ञानोन्नतिका पथ प्रशस्त न कर सके थे।

सिरिया, पेलेष्टाइन, अरब, फारस, अर्मेनिया, नटोलिया मिदिया, या आजरबैजान, बेबिलोन, असिरिया, सिन्धु, सिजस्थान खुरासान, तावरोस्थान, जुर्ज्जन, काबुल-स्थान, जावुलिस्थान, मकरनदर, बुखारिया, इजिप्ट (मिस्र) मौरिटानिया, इराक, मेसोपोटामिया और युथोपियासे जिब्राल्टर तक समूचे उत्तर अफ्रिका जर्जिया, सार्कसिया आदि विविध राज्य खलीफा हारुन अल रसोदके अधीन-में थे। उस समय विस्तृत राज्यमें मुसलमान जाति और इसलामधर्मका प्रभाव फैलने पर भी उस देशके अधिवासी अपनी भाषा भूल न सके। अथवा अपनी भाषा त्याग कर इन लोगोंने अरबी भाषा नहीं सोखी। सिवा इसके महम्मदवंशीय खलीफोंके मक्केमें रहनेके बाद ही ओम्मैयद और अब्बासवंशीय खलीफोंके क्रमानुसार दमश्कस् और बुगदाद नगरमें राजपाटके परिवर्त्तन होनेके कारण खलीफा उत्साहहीन हो गये। इससे अरबी भाषा दर्शन, विज्ञान, साहित्य, व्याकरण

आदि विविध साम्प्रदायिक ग्रन्थ पुष्ट नहीं हो सके। जिस समयके ज्ञानचर्च्चा और साहित्योन्नतिके लिये राजप्रसाद लाभ किया था, उस समय अरब जातिका जातीय जीवन निस्तेज होता आ रहा था।

अरबमें कुरानकी रचना हो जानेके बाद वेदान्त, दर्शन और विज्ञान आदि विषयोंकी उत्कर्षताज्ञापक अन्य किसी ग्रंथ-संग्रहका उल्लेख नहीं मिलता। महम्मद की अभिव्यक्तिमें जो जिस तरह अप्सराओंकी लालित्य-मयी रूपमाधुर्यका विकाश है, पीछेके भोगलालसाप्रिय महम्मदी उसी तरह सुन्दरी सुन्दरी परियों और युवतियों की अवतारण कर अरब और फारस देशकी कहानियोंमें और इसका विभाग विस्तार कर गये हैं।

ऐसा कहा जा नहीं सकता कि ज्योतिष और गणित-में मुसलमान बिलकुल उन्नति न कर सके; वे ग्रह, नक्षत्र, राशिचक्रके निर्णय आदि विषयोंमें सम्यक् रूपसे पारदर्शी हुए थे। खलीफा अलमामूनके राजत्व-कालमें आबू अब्दुल्ला महम्मद बिन् मूसाने अरबी भाषा में अलजबरा (Algebra) नामक बीजगणित हिन्दूशास्त्र-की रचना की थी। ऐसा नहीं कहा जा सकता है, कि इस ग्रंथकी रचना करते समय उन्होंने हिंदुओंके प्राचीन बीजगणित, लीलावती, आदि ग्रंथोंसे सहायता नहीं ली है। सुविज्ञ और सुप्रसिद्ध पाश्चात्य पण्डित कुलब्रुक, डाक्टर फाएटस, कासिरी आदि एक स्वरसे प्रतिपादन कर गये है।

फारसके शाहराजे कवित्वके विशेष पक्षपाती थे। उनके राजत्वकालमें महाकवि-शिरोमणिने जन्म ले कर फारसी भाषाको अलंकृत किया था। फारस राज्यमें मुसलमान-दार्शनिकोंका बिलकुल अभाव न था। फिरदौसी जैसे कविने भी भूखों प्राण त्याग किया था।

भारतमें मुगल-सम्राट् अकबरके अमलमें और उन्हीं-की कृपासे अबुल फजल, फैजी आदि बहुतेरे मुसलमान पण्डितोंने हिंदूशास्त्र और महाभारत आदिका फारसी भाषामें अनुवाद किया था। सुना जाता है, कि इसी सुचतुर बादशाहकी आज्ञासे उस समयके 'अल्लोपनिषत्' नामसे कुरानकी अरबी भाषा मिली हुई संस्कृत ग्रन्थ अथर्ववेदका उपनिषदांश कह कर प्रचारित किया गया था। अकबर और अन्यान्य विद्योत्साही नवाबों द्वारा विविध भाषाओंसे भी मुसलमान साहित्यके कलेवरकी पुष्टि हुई थी। अन्यान्य विज्ञानोंके साथ साथ सङ्गीत-विद्याने भी मुसलमान राजतन्त्रमें प्रवेश किया था।

यदि अरब जातिके अभ्युत्थानके अव्यवहितके बाद ही मुसलमान साम्राज्यका निधन साधन न होता, तो अरबी भाषा उन्नति और ग्रन्थोंका विकास असम्भव था या नहीं कौन कह सकता है? महम्मदीय धर्मजगत्-से अरबी प्रभाव दूर होने पर वहांके अधिनायक स्वाधीन बन जगह जगह राजपाट कायम कर लिया। उस समयसे विविध देशी ग्रन्थ मुसलमानी साहित्यको अलंकृत कर रहे हैं।

मुसलमानधर्म—महम्मदका चलाया इस्लामधर्म। इस-को एकेश्वरवाद कहा जा सकता है। महम्मदने अरब-राज्यमें जिस पवित्र मुस्लिमधर्म मतका प्रचार किया, और महम्मदीय-समाजमें जो धर्म-मत नित्य और सार-सत्य स्वीकृत हुआ है, कुरानमें उसी मतका वर्णन आया है। महम्मदने स्वयं इस ग्रन्थकी रचना की थी। वे ईश्वर-प्रेरित दूतसे जो जो बातें रोज रोज सुनते थे, उन्होंने उन्हीं बातोंको इस ग्रन्थमें लिखा था। ईश्वर दूत-प्रतिपादित कुरानके सिवा सोन्ना या पैगम्बर द्वारा कथित व्याख्या-नांश, इस्लामधर्मतत्त्वज्ञोंके वाक्यमें एक हों और कियास ज्ञान विस्तार द्वारा धर्मपालन ही धर्माङ्ग है। सिवा इस-के इस धर्मके 'इमाम्' और 'दीन' ये दो प्रधान हैं। मत-प्रकाशकके प्रति विश्वास स्थापन हो "ईमान" निष्ठा और श्रद्धाके साथ उस धर्मके निरूपित आचारादि प्रतिपालनका नाम "दीन" है। देवाराधना और शारीरिक पवित्रता, २ भिक्षादान, ३ उत्सवादि उपवास और मक्कायात्रा—ये चार आचाराङ्ग हैं और १ ईश्वरवाक्य, २ स्वर्गीय दूतोंकी अभिव्यक्ति, ३ कुरान, ४ पैगम्बरोंके उपदेशोंमें कयामतके दिन जीवोंके पुनरुत्थान आदि विषयमें अभिज्ञान ही ज्ञान कर्माङ्ग है।

इस धर्मका मर्म यह है, कि परमेश्वर एकमात्र अद्वि-तीय, नित्य, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी और परम कारुणिक हैं; केवल उपासनादि श्रेयसाधन और सर्वतो-

भावसे कर्त्तव्य है। उनकी महिमाकी प्रतिनियत देवदूत सर्वत्र घोषणा कर रहे हैं। इस परिदृश्यमान सदा विश्व-संसार ही उनके सृष्टित्व और नियन्तृत्वका एकमात्र निदर्शन स्थल है। वे ही जगत्‌के कर्त्ता हैं, वे ही जगत्-पालनकर्त्ता तथा वे ही जगत्‌के भाग्याभाग्यके विधाता हैं। उन्हींकी शक्ति और आज्ञासे मानव आदि प्राणी-को जन्म, जरा, मरण आदि मिलता रहता है। इस धर्मा-वलम्बियोंका बीजमन्त्र "ला इलाही इल्लिल्ला महम्मद रसूल-इल्लाह" अर्थात् एकके सिवा ईश्वर द्वितीय नहीं। महम्मद उसीके भेजे हुए। जिनको इस वाक्यका विश्वास नहीं वे सच्चे मुसलमान नहीं।

इस इस्लामधर्मके प्रवर्त्तककी सब बातों पर गवेषणा-पूर्ण विचार करनेसे वास्तवमें उनको एकेश्वरवादी स्वीकार करना पड़ता है। उनके मीमांसित धर्ममत वेदान्त मत-का आभास रहने पर भी उसमें अनेक देशाचार सामा-जिक क्रियाकाण्डकी अवतारणा रहनेसे इसने भिन्न रूप धारण किया है। एक समय मुसलमानोंके भुजबलसे जो इस्लामधर्म यूरोपके अटलाण्टिकप्रान्तसे एशियाके प्रशान्तमहासागर तक फैला हुआ था, उसका विवरण नीचे लिखा जाता है।

धर्ममत।

वर्त्तमान सभ्य जगत्‌में जितने प्रकारके धर्ममत प्रचलित हैं, उनमें सबसे पीछेका मुसलमान धर्म ही है। प्राचीन हिन्दूधर्मका काल निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। बौद्धधर्म ढाई हजार वर्षसे प्रचलित है। ईसाईधर्मको भी २०वीं शताब्दी चल रही है। किन्तु हालका मुसलमान-धर्म केवल डेढ़ हजार वर्षसे अपने पुराने सहयोगियोंके साथ प्रतिद्वन्द्विता करनेमें समर्थ हुआ है। ईसाकी छठीं शताब्दीमें महम्मदने जन्मग्रहण कर इस धर्मको चलाया था। धर्मकी प्रकृति जाननेके लिये प्रवर्त्तकके कार्य्योंको उनकी शिक्षा दीक्षाको जानना अत्यावश्यक है।

महम्मदने ईसाई धर्मप्रचारकपालकी तरह सब जगह यही कहा है,—"मैंने किसी नये धर्मकी सृष्टि नहीं की है, यह प्रचलित पुराना सनातनधर्म है और हमारे पूर्वपुरुषों-ने भी इसी धर्मका अनुसरण किया था। इब्राहिम, पैग-म्बर और ईसा भी इस धर्मकी महिमा गा चुके हैं।"

अरबदेशकी उस समयकी अवस्थाने महम्मदके धर्म प्रचारमें विशेष साहाय्य किया था। क्योंकि, अरब नाना प्रकारके मूर्त्तिपूजक धर्मोंका केन्द्र था। फिर भी; उन-में कोई भी विशेष प्रभाव सम्पन्न था। केवल तीर्थ स्थानोंमें एकत्र हो कर प्रकाश्य भोजनके सिवा धर्मकी और कोई अङ्गस्फूर्त्ति दिखाई नहीं देती थी। मक्का ही इन तीर्थोंका राजा था। उस समयके मक्काके काबा या मन्दिरमें ६०० देवमूर्त्तियां थीं। उनमें काले पत्थरका एक प्रसिद्ध लिङ्ग ही विशेषभावसे उल्लेखनीय है। कहा गया है, कि यह लिङ्ग स्वर्गसे गिरा था। उस समयके अरब सर्वशक्तिमान विधाताको "अल्ला" कहते थे।

उस समयकी धर्महीनताको देख कर महम्मदके मन एकेश्वरवादकी बात जागरित हो उठी। उन्होंने वाणिज्य-के लिये सिरियामें जा कर यहूदी और खृष्टानोंको साथ परिचित हुए और मोजेस, यीशुखृष्टकी महिमा और कीर्त्ति कलाप जान आये। उस समयके खृष्टानोंकी अवस्था बहुत शोचनीय हो गई थी। महम्मदने उस समय एके-श्वरवादके निगूढ़ तत्त्वको जनसमाजमें प्रचार करनेका सङ्कल्प किया था। महम्मदके मतसे यह इस्लामधर्म ही मनुष्यके पारलौकिक उन्नति और जीवको मुक्तिका यथार्थमें मूलमन्त्र है सर्वशक्तिमान् ईश्वरके प्रति एकाग्र चित्तसे आत्मनिर्भर करना ही मुसलमानधर्मका मुख्य उद्देश्य है। इस ऐकान्तिकभक्तिको पैगम्बर 'इमान' कहते हैं। जनसाधारणके इस विश्वासके वशवर्त्ती हो क्रम-से दो विभाग कर लिये हैं। १ एकेश्वरवाद और २ महम्मद ईश्वरके भेजे हुए हैं या उनके अवतार हैं। यह विश्वास ही मुसलमानधर्मकी भित्ति। "ला-इलाही इ-लिलल्ला" यह कलमा (शब्द) ही मुसलमानधर्मका मूल-मन्त्र है। एक ही समयमें संग्रामक्षेत्र अथवा मसजिद के भीतरमें सभी जगह यह वाणी प्रतिध्वनित हो रही है। हिस्पानियासे हिन्दुस्थान तक मुसलमानधर्मकी भेरी जोरोंसे बज रही है।

ईसाई लेखकोंका कहना है, कि महम्मदने खृष्टानधर्म-का अनुसरण कर अपने मतकी सृष्टि की है। किन्तु धर्म-विषयमें साम्प्रदायिकताका अभाव प्रायः दिखाई नहीं देता।

प्राच्य भाषाविद् पण्डित मनियर विलियमने कहा है, कि केवल महम्मदने ही धर्मराज्य संस्थापनका संकल्प किया था। क्योंकि, दूसरे किसी धर्मके पैगम्बर धर्म-राज्य स्थापित करनेमें समर्थ न हुए। महम्मदके समय-में अरबप्रदेशमें मूर्त्तिपूजक धर्मका प्रचार था। उसको देख कर मन ही मन उन्होंने स्थिर किया कि ईसाईधर्म, यहूदी और मूर्त्तिपूजक-धर्मकी जगह एक सार्व-भौमिक धर्मराज्यकी स्थापना करनी होगी। महम्मदने स्वीकार किया है, कि यही मनुष्य जातिका मूलधर्म और *सबसे पहले इब्राहिमको सर्वशक्तिमान परमेश्वरने* इस धर्मका प्रत्यादेश किया था। महम्मदका कहना है, कि ईसाई-धर्म और अन्यान्य धर्मोंमें ईश्वरका अंश है; किन्तु उनके मतसे ईश्वरके तोन होनेकी कल्पना असम्भव है।

महम्मदके मतसे मानवात्मा नित्य है। मरनेके बाद मनुष्यमात्र ही अपने अपने कर्मोंका फलभोग करता है। पापी और मूर्त्तिपूजक तथा नास्तिक सभी अन्धकार-पूर्ण समाच्छन्न और प्रज्वलित हुताशनपूर्ण नरकमें जाता है। धार्मिकगण सर्वदा स्वर्गसुखभोग तथा पापात्मा अविच्छिन्न नरककुण्डकी यन्त्रणा सहा करते हैं। इस धर्मनिष्ठ सम्प्रदायको प्रति दिन ५ बार मक्केकी मस्‌जिद्-में उपासना करनी होगी। यही उनका प्रधान और मुख्य धर्म है। उपासना द्वारा मानव ईश्वरके यहां जानेके आधे पथको पार कर सकता है। उपवाससे उनके घर-के दरवाजे पर पहुंचना और साहाय्यप्रार्थी व्यक्तियों (दोनों)-को सहायता करनेसे या उनके प्रति दया भाव दिखानेसे मनुष्य उनके समोप पहुंचता है। ऐसा कुरान-में लिखा है।

देहशुद्धि और बारंबार भगवान्‌की आराधना साधा-रणके लिये विधेय है। प्रत्येक व्यक्तिको हरेक शुक्रवार-के दिन मस्‌जिदमें आ कर ईश्वरका भजन करना चाहिये। एकेश्वरवादमूलक इसलाम-धर्मकी जन्मभूमि स्वरूप मक्का नगरमें अन्तत: जीवनमें एक बार भी मक्का नगरमें जाना चाहिये। मनुष्यमात्र ही चार-विवाह कर सकता है। कुरानमें ज्ञानकृत वध, लाम्पट्य, परापवाद, झूठो गवाही देना, सत्यको असत्य प्रमाणित करना ही अत्यन्त पाप गिने गये हैं। कुसीद ग्रहण, द्यूतक्रीड़ा, मद्यपान और सुअरका मांस भक्षण भी नितान्त निषिद्ध कर्म हैं।

मुसलमानोंका यह विश्वास है, कि कयामतके दिन ईश्वर एक बहुत बड़ी सभा कर कब्रके सभी मृत पुरुषों-को एकत्र कर उनके दोष गुणका विचार कर यथाविधि दण्ड और पुरस्कार दिया करते हैं। यही अन्तिम विचारका दिन है। उनका दृढ़ विश्वास है, कि मृतदेह-को कब्रमें गाड़ते समय ईश्वर अपने दूतको यह जाननेके लिये भेजते हैं, कि वह मनुष्य "परमेश्वर एकमात्र अद्वि-*तीय हैं और महम्मद उनके भेजे दूत हैं*" मानता था या नहीं। दूत आ कर मुक्त आत्मासे पूछने पर यदि वह उक्त बात स्वीकार करे, तो वह स्वर्गीय सुख भोगनेमें समर्थ होता है। यह उस मृत पुरुषोंके प्रथम विचारका दिन है। किन्तु यदि वह व्यक्ति यह बात स्वीकार न करे, तो वह इसी प्रथम विचारसे अन्तिम विचारके दिन तक नरककी वीभत्स यन्त्रणा सहता है। मुसलमानों-का कहना है, कि मृत्युके समय मृत्यु-दूत (यम) आ कर मानव-शरीरसे आत्माको निकाल ले जाता है। किन्तु भविष्य-वक्ताओंकी आत्मा सशरीर स्वर्गमें जाते हैं। सिवा इसके जीवात्माओंको व्यक्तिविशेषके कर्मा-नुसार यातना भोग करनी पड़ती है।

इसका कुछ उल्लेख नहीं मिलता कि किस समय और कब कब्रसे जीवात्माका उत्थान होगा। महम्मदने अपने शागिर्दोंके जाननेके लिये कहा है, कि जीवात्माके कब्रसे उठनेके विषयमें ईश्वरके दूत जिब्राइलसे पूछने पर भी मैंने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं पाया। मुसलमान कहा करते हैं, कि उस कयामतके दिन सूर्य पश्चिम ओर उदय होंगे, पृथ्वी धूम्राच्छन्न होगी, मनुष्य वाक्यभाषी, पशु-पक्षियोंमें विलक्षणता दृष्टिगोचर होता है। इसके विषयमें महम्मदने स्वयं कहा है, कि कयामतके दिन यह परिदृश्यमान समूची पृथ्वी ईश्वरको एक मुट्ठीमें धूल हो जायेगी और स्वर्ग अण्डाकार हो कर उनके दाहिने हाथ में विराजमान उस समय देवदुन्दुभि बज उठेगी और भूर्लोक और स्वर्गलोकके सभी प्राणी ध्वंसप्राप्त होंगे। इसके बाद फिर एक बार दुन्दुभि बज उठेगी, तब सभी जीव उठ बैठेंगे। फिर जगत्-पिता परमात्माका दर्शन

करेंगे। कुरानमें लिखा है, कि परमेश्वर स्वयं उनका विचार करेंगे और जिस शरीरको जो आत्मा है, वह उनके द्वारा पुरस्कार पायेगी। आस्तिक स्वर्गसुखका भोग करेंगे।

कुरानमें कई तरहके नरकों (जहन्नुम)-का वर्णन आया है। यह भी सात तरहके हैं। प्रथम भागमें धर्म-कर्महीन मुसलिमगण, दूसरे ईसाई, तीसरे यहूदी, चौथे साबियान, पांचवें मगी, छठें मूर्त्तिपूजक, सातवें द्वैध चित्त-धर्मद्वेषीगण अवस्थान करते हैं।*

शिष्योंको भय दिखानेके लिये महम्मदने भी पाप भेदसे नरकोंकी अवतारणा की है। इन सबोंमें पदत्राण-विहीन पाद आगमें रखवाना ही सबसे लघुदण्ड कहा गया है। उत्तप्त तैलपूर्ण कड़ाहमें फेंक देना या उसमें भूंज देना नास्तिकोंके लिये निर्द्धारित दण्ड है। पहले नास्तिक रह कर पीछे यदि महम्मदी धर्ममें आ जाय, तो उसको भी प्रायश्चित्त स्वरूप नरक-यन्त्रणा भोग करनी होगी। इसके बाद वह उससे मुक्त हो कर स्वर्गमें जाता है।

उक्त स्वर्ग और नरक नामक सुखदुःखालयमें अराफ नामक एक लोक है। जिनका पाप पुण्य समान है वे ही लोग जा कर वहां बसते हैं। नरकके ऊपरसे "पुलसेरत्" नामक एक पुल है। यह बालकी तरह पतला तलवार-की धारसे भी तेज है। सब मनुष्यको इस पुलसे पार करना होगा। जो धार्मिक और सत्य हैं, वे ही हंसते खेलते उस पुलसे पार हो जाते हैं। किन्तु पापी और झूठा आदमी इस पुलसे पार होनेकी चेष्टा करते ही उस परसे गिर कर पातालके महाघोर नरकमें पतित होते हैं।

इबलिस शैतानका प्रतिनिधि है। वह विधाताकी पूजा या आदमको इज्जत नहीं करता। इसलिये वह अल्लाके हुक्मसे सदा नरकमें वास करता है। कयामतके दिन तक उनको इसी तरहकी नरक-यन्त्रणाका भोग करना होगा। किसी किसीका कहना है, कि विधाताने मनुष्योंको दुष्कार्यमें प्रवृत्ति करानेके लिये उसे छोड़ रखा है। कयामतके दिन उसका भी विचार होगा। वे ही मनुष्योंके चित्तमें दुर्मति प्रदान किया करते हैं। वे ही पापाचारिणी स्वर्गीय दूतियोंमें प्रधान हैं। उनके अधीन में १९ दूत हैं, वे पापात्माओंको दण्ड दिया करते हैं।

मुसलमानोंके द्वारा वर्णित स्वर्गका चित्र बड़ा ही मनोरम है। वहां कलकलनादिनी सुरतरङ्गिणी प्रवाहित हो रही हैं और अलौकिक लावण्यवती चिरयुवती देव-बालागण दल बांध कर घूम रही हैं। उनके बिजलीकी तरह चमकदार रूप सौन्दर्य पर मनुष्योंका नेत्र नहीं ठहरता। वे मरणान्तमें धर्मात्माओंको स्वर्गमें ले जाती हैं तथा नकीर और मुनकीर नामकी दो देवाङ्गनायें प्रेतात्माका विचार किया करती हैं। फैसलेके दिन दूती सिंहासन ढोया करती हैं। जिब्राइल ही स्वर्गीय दूतोंके अग्रनायक और पुण्यके मूलप्रकृति स्वरूप हैं। वे मेरी और महम्मदके सामने मनुष्यके वेशमें उपस्थित हुए थे।

महम्मदीय स्वर्ग सप्ततल और सर्वापेक्षा श्रेष्ठतम सुख-धाम है।* वहां महम्मद वास करते हैं। इसके दरवाजे पर महम्मदवापी नामक एक प्रस्रवण है। मुसलमान कहते हैं, कि इस प्रस्रवण या जलाशयका एक चिल्लू पानी पी लेनेसे जन्मकी तरह पिपासाकी शान्ति हो जाती है। स्वर्गीय-भूमि केवल कस्तूरी कुङ्कुमादि सुगन्ध द्रव्योंसे पूर्ण, और मुक्ता हेकिकवत मणि वहांका पत्थर है। महलोंकी दीवार चांदी और सोनेकी बनी है।

* जहन्नुम, लज्जा, हत्तमा, सुईर, शकार, जहीम, हबिया,—ये सात नरक हैं।

* मुसलमान-धर्मशास्त्रोंमें ९ स्वर्गोंका उल्लेख है, उनमें ७ बिहिस्त, ८वां कुर्सी या स्फटिक स्वर्ग और नवां उर्श या भगवानके रहनेका स्थान। ७ बिहिस्त इस तरह है—१ दर-उल-जलाल (मुक्ता-निर्मित)। २ दर उस सलाम (चूर्णी-निर्मित)। ३ जुन्नात उल्-मारा (रूपदस्ता निर्मित)। ४ जुन्नात्-उल्-खाल्द (पीले मूंगों द्वारा खचित)। ५ जुन्नत उल नाइम (हीरों द्वारा निर्मित)। ६ जुन्नत्-उल्-फर्दूस (स्वर्ण-निर्मित)। ७ दारल कड़ात् (कस्तूरी निर्मित)। सिवा इनके कुछ लोग जुन्नत्-उल् आदामको (इडन-उद्यान या नन्दन-कानन) पार्थिव स्वर्ग कहते हैं।

वृक्षके डालपत्त सब सोनेके होते हैं। वृक्षोंमें प्रधान वृक्ष का नाम 'तुवा' अर्थात् सुखतरु है। सम्भवतः हिन्दू-शास्त्रोक्त कल्पतरुका नाम सुन कर ही इस सुखतरुकी कल्पना हुई होगी। यह तरु महम्मदके घरमें अवस्थित है। अनार, खजूर, अंगूर आदि उत्तमोत्तम फलके भारसे उक्त वृक्षकी शाखायें नीचे लटक रही हैं और महम्मदके चेलोंके घरोंको स्पर्श कर रही हैं। इसी वृक्षकी जड़से अनन्त कोस तक विस्तृत स्थानमें दुग्ध, मद्य, मधु आदि सुपेय द्रव्योंकी झील वहां मौजूद है। उन सब स्रोतोंसे महम्मदकी वापी भरी रहती है। मरकत मणि तथा हीरोंसे उस वापीकी सीढ़ियां तय्यार हुई हैं।

उपर्युक्त स्वर्गीय शोभा अप्सराओंके रूपसौन्दर्य्यके अनुरूप हो गठित हुई है। महम्मदी धर्मके विश्वास रखनेवाले उन अप्सराओंके साथ सुखसम्भोग किया करते हैं। महम्मदने जनसाधारणको अपने मतमें लानेके लिये शागिर्दोंको अपने प्रलोभनयुक्त वचनोंसे प्रलुब्ध किया है—

"जो मनुष्य इस धर्म (मुसलमानधर्म)में विश्वास करते हैं, वे अन्तमें स्वर्गमें जा कर दुग्धफेननिभ शय्यासे भी उत्तम शय्या पर सोते हैं। वहां वह नाना जातीय अलौकिक सुस्वादुपूर्ण फलोंका आहार करते हैं और अप्सराओंके साथ विषयसुखके सम्भोगमें समर्थ होते है।" कुरानमें लिखा है, कि "अति निकृष्टगुणसम्पन्न धर्मविश्वासी भी ७२ स्वर्गीय अप्सराओंके साथ भोग-विलास किया करते हैं। सिवा इसके इहलोकको विवाहिता स्त्री भी वहां मौजूद रहती है। उन्हें रहनेके लिये एक मणिमय भवन और भाजनके लिये मनुष्योंके दुर्लभ सुस्वादुपूर्ण भोजन मिलता है।

उनकी अवस्थाके अनु ार उनकी पोशाक और गृहालङ्कार प्रभृति विविध द्रव्योंसे तय्यार होता है। इसके सिवा भी वह मनुष्य इन द्रव्योंके रसास्वादन तथा इस विषय-सुखका भोग करनेके लिये अनेक क्षमता और अनन्त कालव्यापिनी यौवन पाते हैं। वहां इच्छा होते ही उसकी पूर्त्ति हो जाती है।

महम्मदका स्वर्ग उनका कपोलकल्पित नहीं है इसका अधिकांश यहूदी, ईसाई, फारसी, हिन्दू आदि मतोंसे उनके द्वारा संग्रह किया गया है।

महम्मदने दूसरे धर्मवालोंको अपने धर्ममें लानेके लिये स्वर्गका जो मनमुग्धकर चित्र अङ्कित किया था, वह अतुलनीय है। हिन्दुओंकी कल्पनागठित अप्सराओंसे परिपूर्ण नन्दन काननका प्रलोभन महम्मदके ख्यालमें होनप्रभ हैं। महम्मदने नरक (जहन्नुम)-का चित्र जिस तरह विभीषिकामय चित्रित किया है तथा स्वर्गको जिस तरह बढ़ा कर मनमोहन रूप दिया है, उससे अशिक्षित सम्प्रदाय शीघ्र ही प्रलुब्ध हो जाता है।

जिन्होंने विशेषरूपसे कुरान नहीं पढ़ा है उनका साधारणतः विश्वास है, कि महम्मदने सभी धर्मोंकी निंदा की है। किन्तु यथार्थमें यह सब मिथ्या है। महम्मद यहूदी और ईसाइयोंको "बलकिताब" अर्थात् धर्मग्रन्थके अधिकारी कहा है। अर्थात् कुरानके मतसे जहां ईश्वरका नाम लिया जाता है, वह स्थान पवित्र है। प्रत्येक मुसलमानको उस स्थानकी रक्षा करना उचित है। महम्मदने गिरजा आदिकी भी रक्षा करनेका उपदेश दिया है।

पृथ्वीके धर्मोंके ऐतिहासिक जी, डब्लिउ, लिटनका कहना है, कि मुसलमानधर्ममें स्त्रियोंकी सामाजिक अवस्था ईसाईधर्मकी स्त्रियोंकी अपेक्षा बहुत उच्च है। केवल हिन्दूधर्मके सिवा सामाजिक व्यवस्था सङ्कलनमें मुसलमान धर्मका अन्य कोई प्रतिद्वन्द्वी दिखाई नहीं देता।

मुसलमानोंके मजहबमें देवदूतोंको पवित्र, सूक्ष्म और अग्निमय देह लिखा है। उनके पिता माता नहीं। सभी जगत् पिताके इच्छासे उत्पन्न हैं और उनके द्वारा धर्मको रक्षाके लिये विविध पदों पर अधिष्ठित हैं। वे इन्द्र जयी हो कर अतुल स्वर्गीय सुख भोग करते हैं। कोई खड़ा हो कर, कोई बैठ कर, कोई हिल कर, कोई सो कर, कोई अवनत मस्तक हो कर पूर्व जन्मके पापोंका (ईश्वरके गुणानुवाद कर) प्रक्षालन कर रहे हैं। कोई यमपुरमें चित्रगुप्तकी तरह लिखने पढ़ने और हिसाब रखनेमें ही मस्त है। कोई मनुष्य जातिके पालन करनेका भार लेते हैं, कोई अनन्त कालसे भगवत्-सिंहासन-रक्षामें

नियुक्त हैं। दो व्यक्ति-मनुष्योंके पाप पुण्यका हिसाब ही रखते हैं। इन सबोंमें जिब्राइल धर्म-संस्थापनमें, माइकल भगवान्‌के विरोधी शैतानोंके दमन करनेमें, इसरायल (अज़रायल) यमदूत रूपसे और इसराफिल कयामतके दिन भेरी बजाया करते हैं। इबलिस भगवत विद्वेषी हैं, बाबा आदमको सम्मान-रक्षा न कर सकनेके कारण स्वर्गच्युत हुए हैं।

यह देवदूत और मृत् आत्माओंमें मुसलमानोंने जिन (उपदेवता) नामसे अपर एक उपदेवताका उल्लेख किया है। देवदूतोंकी तरह इनकी अग्निमय देह होने पर भी अपेक्षा कृत मोटी देह कही गई है। ये अमर नहीं हो सकते हैं। मनुष्योंमें सबसे पहले नाना आदमकी पैदाइस हुई। सृष्टिसे पहले ये लोग धराधाममें विचरण कर गये हैं।

मुसलमान शास्त्रोंमें कहा गया है, कि आदमसे महम्मद तक ८ लाख पैगम्बर पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए हैं। ये सभी आपसमें बड़े हैं और मृत्युलोकके पापोंसे मुक्त हैं। वाञ्छाकल्पतरु भगवानने मानव जातिके हितके लिये कभी-कभी उनके पवित्र धर्मकी जो अभिव्यक्ति धरतीके लोगोंके समीप अपने प्रेरित आदर्श पुरुष द्वारा प्रकटित की है महम्मदके कथनानुसार उनकी संख्या १०४ है। उनमें १० आदम, ५० शेथ, ३० इनक या इद्रिस, १० इब्राहिम, १ मूसा (*Moses*), १ दाउद (*David*), १ ईसा (गसपेल) और १ महम्मदके (कुरान) समीप अभिव्यक्त तथा पीछे उससे प्रकाशित हुआ।

साम्प्रदायिक विभाग।

कहा गया है, कि महम्मदने जीवित अवस्थामें भविष्य गणना कर कहा है, कि उनके चलाये इसलामधर्मके ७३ विभाग होंगे और एक धर्मके मतावलम्बी गण ही यथार्थ यथार्थ मतका अनुसरण करेंगे। अन्यान्य श्रेणीके लोग केवल उसका अनुकरण करेंगे।

वर्त्तमान समयमें इसलामधर्मके तीन विभाग दिखाई देते हैं। सुन्नी, शिया और ओहावी। सुन्नियोंका कहना है, कि हम महम्मदके यथार्थ उपासक हैं। सुन्नी आबूबकर, आमर और ओसमानको पैगम्बर स्वीकार करते हैं। इनमें प्रथम दो महम्मदके ससुर हैं और तीसरे उनके दामाद हैं। सुन्नियोंके और चार उपविभाग हैं।

शिया लोगोंका कहना है, कि पैगम्बरोंको महम्मदके दामाद अलीके समीप अवश्य ही उपस्थित होना होगा। अलीने महम्मदकी लड़की बीबी फातमाके साथ विवाह किया था। शिया लोगोंने पहले प्राधान्य लाभ नहीं किया। महम्मदकी मृत्युके ३॥ वर्ष बाद वे प्रबल हो उठे। वे महम्मदके १२ पैगम्बर कहते हैं। ये १२ इमाम या धर्म संस्कारकोंके नामसे विख्यात हैं। अली उनके प्रथम पैगम्बर तथा आबू कासिम या मेंहदी अन्तिम हैं। महम्मदके देहावसानके २५८ वर्ष बाद एक अज्ञात ऐन्द्रजालिक उपायसे मेंहदीका भी देहावसान हुआ। पृथ्वीके प्रलयके पहले फिर वे प्रादुर्भूत हुए। उनमें ३२ उपविभाग हैं। कोई-कोई अलीको महम्मदकी अपेक्षा बड़ा समझते हैं। कोई सम्प्रदाय फिर अलीको ईश्वरका अवतार समझते हैं। किसी किसी अंशमें शियाने सुन्नियोंकी अपेक्षा धर्म विषयमें अधिकतर कठोर व्रत अवलम्बन किया था।

ओहावियोंकी पैदाइस बहुत हालकी है। आधी शताब्दी पहले इस सम्प्रदायका प्रादुर्भाव हुआ। मुसलमान धर्मकी पवित्रताकी रक्षा करना ही इनका उद्देश्य है। इनकी धर्मान्धताके कारण उन्मत्तप्राय हो कर कई बार काफिरोंके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए थे।

तुर्की, मिस्री, अरबी और भारतीय मुसलमानोंमें सुन्नियोंकी संख्या आधेसे अधिक है। भारतके ओहावीने हिन्दू और बौद्ध धर्मसे बहुतेरे प्रसाद और बौद्ध कुसंस्कारोंको ग्रहण किया है।

भारतीय मुसलमान चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं। १ सैयद (कहा गया है;—ये पैगम्बर महम्मदके अंशसे पैदा हुए हैं।) २ मुगल, ३ पठान और ४ शेख।

भारतीय इन चार श्रेणीके मुसलमानोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मुसलसमाजमें इस तरहकी कहावत प्रसिद्ध है:—पहले इसलामधर्मके प्रवर्त्तक महम्मद मुस्तफा और उनके अनुचर शेख नामसे पुकारे जाते थे। एक दिन स्वयं महम्मद दामाद अली, कन्या पुत्री फातिमा और नाती हुसेन और हसनको साथ ले कर पांचो आदमी एकत्र बैठे थे। ऐसे समय स्वर्गीय दूत जिब्राइल

उनके सामने अवतीर्ण हो कर उनमें माथे पर आवा (छाता) फैला कर महम्मदको देख कहा था, कि फातिमा और तीनों-चारोंके खान्दानके लोग सैयद (राजा) के नामसे पुकारे जायेंगे। इसके सम्बन्धमें और भी एक कहावत है, कि महम्मदने अपनी लड़की बीबी फातिमा तुज्जहाराको अलीके हाथ सौंपते समय भगवानसे प्रार्थना की थी, कि फातिमाके गर्भ तथा अली के औरससे उत्पन्न सन्तान सन्तति सैयदके नामसे पुकारी जाये।

उपर्युक्त कहावतोंमें कुछ तथ्य हो या न हो हमें इतिहासमें फातिमाके पुत्र हुसैनसे सैयद हुसैनी और हासनसे सैयद हासनी और अलीकी दूसरी स्त्रीसे सैयद अलीवी खान्दानकी उत्पत्ति देखते हैं।

महम्मद स्वयं शेखके नामसे परिचित होते थे। यह शेख श्रेणी तीन भागोंमें विभक्त है। महम्मदके अनुचर और वंशधर शेख कोरेशी, आबूबकर, सादिकके वंशधर शेख सादिकी और उमरके वंशधर शेख फरूकी नामसे पुकारे गये। शेख शब्दका अर्थ सर्दार तथा दलपति होता है।

पैगम्बर इशहाक (Isaac)-ने अपने पुत्र ईसूको आशीष या दुआ देते समय कहा था, कि "तुम्हारा वंश राजवंश कहलायेगा।" उसी समयसे उनका वंश एक स्वतन्त्र "गोल" या समाज बन गया। 'गोल' शब्द ही कालक्रमसे 'मुगल' शब्द बन गया। घटनाक्रमसे वालवाग नामक एक मुगलने एक दुर्जय शत्रुको पराजित किया। इस पर मुहम्मदने उसे वेग (राजा) शब्दसे पुकारा। उसी समयसे यह वंश वेग कहलाने लगा। मङ्गोलियावासीसे कोई कोई मुगल शब्दकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

मुगलोंमें फारसी इरानी शिया मतके और तुर्कीवाले सुन्नी हैं। शियामें फिर तुशिय, मफहरी, इरानी, और तिन-यारी नामसे और सुन्नियोंमें सुन्नत, जुम्मोउत, तसानुन और चारयारी आदि विभाग दिखाई देते हैं। मतभेदके कारण उक्त दोनों सम्प्रदाय एक दूसरेके विरोधी हैं। शिया सुन्नियोंको खारिजी वा विद्वेषवादी और सुन्नी शियावालोंको रफजी (निन्दक) कहा करते है।

विस्तृत विवरण शिया और सुन्नी शब्दमें देखो।

पठान पैगम्बर याकुब (Jacob)-के वंशधर हैं। सायर ग्रन्थमें इनकी उत्पत्ति इस तरह लिखी है:— महम्मद मुस्तफाने किसी युद्धमें अपने कुश सेनापतियों-को भेजा। रणक्षेत्रमें वे मारे गये। इस पर उन्होंने अपने सेवकोंको अपना एक नेता मनोनीत करनेका हुकुम दिया। इसके अनुसार उन सबोंने महम्मदके वंशके खालिद बिन वालिदके वंशधर एक मनुष्यको अपना सरदार मनोनीत कर उस युद्धको जीता था। इसके बाद पैगम्बर उन सबोंको फत्ताहन (रणजयकारी) उपाधिसे सम्मानित किया था। कालक्रमसे फत्तान् शब्दसे वे पठान कहलाने लगे। दूसरे लोगोंका कहना है, कि महम्मदने वालिदके पुत्र खालिदको युद्ध जीतने-के लिये पुरस्कार स्वरूप खांकी पदवी दी। उसी समयसे पठानोंमें 'खां' की उपाधि चल पड़ी। उत्पत्ति-के अनुसार पठानोंमें भी विभिन्न दलोंकी सृष्टि हुई है। जैसे:—युसुफसे युसुफजै, लुदीसे लोदी आदि।

उपर्युक्त चार श्रेणीके सिवा भारतवर्षमें 'नौया आयते' यानी नवागत नामसे और एक श्रेणी दिखाई देती है। इसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें नाना तरहकी किम्वदन्तियां प्रचलित हैं। मदीनावासी कितने ही लोगोंने महम्मदकी शवदेहको दूसरी जगह ले जानेके लिये मकबरे-को खोदा था। मकबरेके पहरेदार यह खबर पा कर उन सबोंको नगरसे भगा दिया। क्रमसे वे ग्रामसे भाग कर जन्मभूमि छोड़ देनेको बाध्य हुए। उन्होंने ही भारतमें आ कर नवागत दलकी पुष्टि की थी। फिर कुछ लोग कहते हैं, कि खलीफा हारुण अल्‌रसीदने जिन कोरेशोंको राज्यसे बाहर कर दिया था, उन्हींके वंशधरसे इस वंशकी उत्पत्ति है। टीपूसुलतानने नौ स्वामीवाली स्त्रीके गर्भजात सन्तानसे इस 'नौआ आयते' दलकी उत्पत्तिकी कल्पना करते हैं। ये लोग विद्यावत्तामें, शास्त्र और विज्ञानकी आलोचनामें तथा वाणिज्य-विषयमें मुसलमान-समाजके मध्य शीर्ष-स्थानको अधिकार किये हुए हैं। दाक्षिणात्य-की मुसलमान राजसरकारमें इस सम्प्रदायकी यथेष्ट

प्रतिपत्ति देखी जाती है। हैदर अली और टीपूसुलतान के अनेक सभासद इसी दलके थे। हिन्दूमें जिस प्रकार ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार ये लोग भी मुसलमान समाजमें सम्मानित होते हैं।

सुन्नीसम्प्रदायभुक्त पठानोंके मध्य घर-महम्मदी नामक एक और स्वतन्त्र दल है। 'हिन्दुस्थानको छोड़ कर काबुल, कन्धार, फारस वा अरबके किसी भी स्थान में इस दलके मुसलमान नहीं देखे जाते। फिरिस्ताके मतसे ६०० हिजरीमें इस दलकी उत्पत्ति हुई है। इन लोगोंके साथ दूसरे दूसरे मुसलमान समाजका विशेष प्रभेद नहीं दिखाई देता। केवल शवदेहको दफनाना, नमाजके समय हाथ उठाना आदि अनेक विषयोंमें अन्यान्य समाजके साथ इनकी पृथकता देखी जाती है।

भारतीय मुसलमान लोग पीर और पैगम्बर अर्थात् साधुसंन्यासियोंका विशेष सम्मान करते तथा उनकी वासभूमि अथवा विचरण स्थानको पवित्र तीर्थ समझ कर वहां जाते हैं। भारतके जिस जिस स्थानमें इनका मकबरा मौजूद है, वह स्थान मुसलमान-समाजमें पवित्र तीर्थ समझा जाता है।

मुसलमानधर्मका विस्तार।

मुसलमानधर्म थोड़े ही दिनोंके अन्दर संसार भर में फैल गया था। १२ वर्षके भीतर सभी अरब वासियों ने मुसलमानधर्म ग्रहण किया। अरबी मुसलमानोंने सिरिया, पारस्य और अफ्रिकामें अर्द्धचन्द्र चिह्नित ध्वजा को उड़ाया था। महम्मदकी मृत्युके २०० वर्ष बाद पैगम्बरोंने उसी ध्वजाको सहायतासे साम्राज्यको नींव डाली थी तथा अटलाण्टिक महासागरके तीरवर्त्ती स्पेन-देश तक अपना प्रभाव फैला लिया था। वहां सरसेन वा मूरोंने ८०० वर्ष तक अप्रतिहत प्रभावसे शासन किया था। उनका जातीय चिह्न अर्द्ध चन्द्रध्वज पीछे राज-दण्डमें परिणत हुआ। ८वीं सदीसे ही मुसलमान लोग सौभाग्यकी सीढ़ी पर चढ़ गये। उनकी सेनाने मध्यएशियाको पार कर चीनदेश जीता तथा अफगा-निस्तान और हिन्दूकुश लांघ कर भारतकी सीमा पर आ धमकी। थोड़ी ही सदीके भीतर उन्होंने पञ्चनदके पवित्र क्षेत्रसे प्राग्ज्योतिष तक विजय वैजयन्ती फहराई थी तथा भारतवर्षमें विशाल साम्राज्य स्थापन कर अप्रतिहत प्रभावसे राज्यशासन किया था। हिन्दू-धर्मके सजीव प्रस्रवण-भारतवर्षमें उनके धर्मध्वजकी अपेक्षा राजदण्डकी ही प्रधानता देखी जाती थी। उन्होंने हिन्दूधर्मके विराट् विग्रहको तोड़नेके लिये हजारों उपाय-का अवलम्बन किया था, बाएं हाथमें कुरान और दाहिने हाथमें तलवार ले कर महम्मदकी महिमा गाई थी, लाखों देवमन्दिरको अग्नि और तलवारसे तहस नहस कर दिया था, हिन्दूकी पवित्र देवप्रतिमाको तोड़ फोड़ डाला था। हजारों बालक बालिका और वनिताको बिना कारणके बलिदान दिया था। इतना करने पर भी वे हिन्दूधर्म-के विराट् विग्रहको स्पर्श नहीं कर सके थे। धर्म-प्राण हिन्दूने अकुण्ठित चित्तसे तेज तलवारकी धारसे तथा प्रज्वलित अग्निमें जीवनको न्योछावर कर दिया था। फिर भी वे सनातनधर्मका त्याग न कर सके।

चीनदेशमें भी मुसलमानधर्म बौद्धधर्मके व्यूहको भेद न कर सका था।

सेलजुकवंशीय तुरुकों तथा अटमानोंने एक समय पाश्चात्य खण्डमें अद्वितीय प्रभाव फैलाया था। उनका साम्राज्य ध्वंसको प्राप्त हुआ तथा १४५३ ई०में कुस्तुनतुनिया उनके हाथ लगा। इस १५वीं सदीमें मुसलमान-गौरव सौभाग्यगगनके शीर्ष स्थानमें चढ़ गया था तथा थोड़े ही समयमें इटली, हङ्गेरी और जर्मनीमें भी उनकी तूती बोलने लगी थी। इसके बाद भारतवर्षमें २०० वर्ष तक मुसलमान प्रभाव अक्षुण्ण रहा। किन्तु प्रतीच्य भूभाग पर १५वीं सदीके अवसान-कालमें उनका प्रभाव ढीला पड़ गया। उनका सौभाग्य-सूर्य डूबने चला। इस समय सिसली उनके हाथसे जाता रहा तथा १४९२ ई०में स्पेनवासियोंने प्रबल हो कर उनकी हजार वर्षकी सञ्चित शक्तिको चूर कर डाला। एक समय मुसलमान लोग शिक्षा, सभ्यता, शौर्य और वीर्यमें पृथ्वी पर अद्वितीय हो गये थे। किन्तु अभी मन्दप्रभ हो कर वे पूर्व-गौरवका अनुध्यान कर रहे हैं।

मुसलमानधर्म ही मुसलमान राज्यका मेरुदण्ड था। मुसलमानधर्मका इतिहास ही उनके जातीय जीवनकी पूर्ण छवि है।

६ठी सदीसे लेकर १४वीं सदीके मध्य मुसलमान साम्राज्य बहुत दूर तक फैल गया। इस समय दक्षिण यूरोप, उत्तर अफ्रिका तथा मध्य और दक्षिण एशिया खण्डमें महम्मदीय सम्प्रदायकी विजय पताका फहराती थी। १५वीं सदीसे अपने अपने सम्प्रदायके मध्य धर्ममत-विपर्यय तथा खृष्टान-जगत्‌में कुस्तुनतुनियां और सार्लीमनके प्रादुर्भावसे यूरोपखण्डमें अर्द्धचन्द्र (Crescent) के बदले क्रोस-चिह्न (Cross) प्रतिष्ठित हुआ था। इस प्रकार अधःपतित ईसाधर्मके पुनरभ्युत्थानसे सरसेनी प्रभाव धीरे धीरे यूरोपसे जाती रही। उत्तर अफ्रिका-वासी मूर लोग भी बहुत कुछ ईसाई हो गये। सारे यूरोपमें एकमात्र तुरुष्कके सुलतान ही इसलामधर्म तथा चन्द्रचिह्नाङ्कित महम्मदीय जातीयकेतनको आज भी अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुए हैं।

समस्त मुसलमान साम्राज्यके मध्य तुरुष्क (यूरोपीय)-के सुलतान तथा पारस्याधिपति शाहराज गण वर्त्तमानकालमें मुसलमान गौरवको अक्षुण्ण रखे हुए हैं। तुरुष्काधिपतिने १८५४ ई०में रूसयुद्धमें और १८६७ ई०में ग्रीस-युद्धमें महम्मदीय सैन्यके बाहुबल और वीरताको दिखला दिया है। जिन शाहराजोंने एक दिन राज्य-प्रयासी हो कर देश देशान्तरमें जयध्वनि निनादित की थी, जिस नादिरशाहका गौरव और वीरत्वकहानी आज भी भारतवासीके हृदयमें जागरूक है, वह शाहवंश आज रूसराहुके कराल कवलमें ग्रस्त हो गया है। यद्यपि वे स्वाधीन राजा कह कर आज भी जनसाधारणमें परिचित हैं, तथापि राजनैतिक संस्थानरक्षाके कारण अभी वे रूस राजके मुखा-पेक्षी और परामर्शाधीन हैं।

भारतवर्षमें मुगलवंशके अवसान होने पर हैदराबादके निजाम वंश ही दक्षिणभारतमें अपनी प्रतिपत्ति अक्षुण्ण रख सके हैं। धनबल ले कर यदि तुलना की जाय, तो तुरुष्कके सुलतान और पारस्याधिपके नीचे ही निजामको स्थान दिया जा सकता है।

१४९२ ई०में पारस्यराज शाह इस्माइल गद्दी पर बैठा। तभीसे शाह लोग शिया-सम्प्रदायके दलपति कहला कर मुसलमान-समाजमें आदर पाते हैं। इसी समयसे पारस्यवासी और तुर्क जातीय मुसलमानोंके मध्य घनघोर विवाद चला आ रहा है। इस सूत्रसे दोनों राजवंशके मध्य दो सदी तक खून खराबी होती रही।

जो मुसलमान-शक्तिपुञ्ज एक समय संसारमें अदम्य समझा जाता था, आज वह जातीयताके दैन्य और दुर्बलताके कारण अधःपतनको प्राप्त हो गया है। अटमान साम्राज्यकी अवनति मुसलमान शासनकर्त्ताओंके स्वजाति विद्वेषसे ही हुई थी। कुरान-प्रतिपादित इसलाम धर्मके एकेश्वरवादने जब ज्ञानवान् मुसलमानोंके चित्तमें धर्मकी उद्दाम आकांक्षामें शिथिलता उत्पादन कर दी थी, जब प्राचीन कवियोंके प्रकृति मूलजात परा और अपरा शक्तिरूप दार्शनिक तत्त्व द्वारा जगत्‌की उत्पत्ति तथा ईश्वरत्व निष्पादित और स्वीकृत हुआ था, तबसे ही यथार्थमें इसलामधर्मकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। अंगरेज और फरासी अभ्युदय तथा ईसाधर्मका प्रचार उसका दूसरा कारण था।

उन्नति और अवनतिका कारण।

डेढ़ हजार वर्ष व्यापी इसलामरूप जातीय जीवन किस प्रकार धर्मके अभ्युत्थानके कुछ समय बाद ही विलुप्त हो गया, उस जातीय जीवनके इतिहासकारोंने इस सम्बन्धमें जो सिद्धान्त दिखलाया है वह संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

मुसलमानजाति तथा इसलामधर्म यद्यपि एक समयमें विलुप्त नहीं हुआ तो भी यथार्थमें लक्ष्यभ्रष्ट हो उद्दामशून्य जातीय जीवनको वहन करनेमें बाध्य हुआ था। इसका मुख्य कारण है, तत्प्रतिपादित सुखानुध्यान, धर्मविश्वासीका अनन्त स्वर्गसुखभोग और स्वर्गीय विद्याधरी लाभ आदि मोहका प्रलोभन। जगत्‌में इच्छारूप रूपवती युवतीके पाणिपीड़न, मदिरादि प्राणोन्मादक वस्तुके पान आदि अनेक अनैतिक विषयोंमें कुरानका प्रश्रय रहनेके कारण तथा तलवार द्वारा काफरके दमनप्रसङ्गमें धर्मविस्तृति और बिना कारणके विभिन्न जातिके प्रति निर्यातनकामी हो उल्लसित अरबी जनसाधारण थोड़े ही समयके मध्य इसलामधर्ममें दीक्षित हुए थे। फिर अर्थागमकी सुविधाकी आशासे मुसलमानोंने प्राण-नाशका भय दिखा कर तलवार और कुरान छू कर विधर्मियोंकी दीक्षादान द्वारा जिस असार और

घृणित पन्थका अवलम्बन किया था वही भविष्यमें महम्मदीय सम्प्रदायके अधःपतनका कारण हुआ।

महम्मदने मदीनामें रह कर अपने नवीन मतसे जिन सब कठोर नैतिक उपदेशोंको विधिबद्ध किया था उसका पालन करना असुविधाजनक समझ कर ही मदीनावासी उस समय उनके विरुद्ध खड़े हो गये थे। मूर्त्ति पूजकोंने एकेश्वरवादरूप कठोर कल्पना और उस समय प्रचलित सामाजिक आचार व्यवहारके ऊपर उन्हें हस्तक्षेप करते देख उनके प्रति तीव्र कटाक्षपात किया था। धीरे धीरे मतभेद होनेके कारण आपसमें घनघोर लड़ाई छिड़ गई। महम्मद देखो।

महम्मदने प्राचीन कुसंस्कारको दूर करनेके लिये अरबवासीको बहुविवाहनिषेध, एकदारपरिग्रह, पूर्वतन सम्पर्कविरुद्ध विवाह-प्रथाका संस्कार, पत्नी आदि पारिवारिक रमणियोंको ऐश्वर्यभुक्त कर उत्तराधिकारीको समर्पण आदि कुप्रथा दूर कर दी तथा विषयके उत्तराधिकारित्वके सम्बन्धमें रमणियोंको पुरुषसे आधा अधिकार प्रदान किया। इस प्रकार कुछ संस्कारोंको उस समयका महम्मदीय सम्प्रदाय ग्रहण करनेमें वाध्य हुआ था। किन्तु इसके अलावा विरोधी मत ही प्रथम विवादका कारण हुआ था। तायेफवासी तकफाइट जातिकी सामाजिक शिथिलताकी प्रश्रयप्रार्थनाके प्रसङ्गमें उसका उल्लेख देखा जाता है। होनाइन-युद्धके बाद तकफाइट दूतने जब मदीना आ कर मद्यपान, रब्बादेवीकी मूर्त्ति स्थापन आदि इसलामधर्मके विरोधी कुछ पूर्वतन अत्याचारीका अनुष्ठान करनेकी इच्छा प्रकट की, तब महम्मदने मुक्तकण्ठसे उसे मना किया था। पीछे स्वयं महम्मदने ही अपने कठोर नीतिमार्गका अतिक्रम कर मानवके भोगसुखका द्वार खोल दिया था। उन्होंने स्वयं १८ विधवा और सधवासे विवाह कर मनुष्य जीवनकी कामप्रवृत्तिकी निवृत्तिको साधन किया था। स्वर्गीय मधु और मद्यके ह्रद्का छायावलम्बन कर पार्थिव मदिरा पान द्वारा महम्मदीय वीरोंने अपने अपने तृषित हृदयमें शान्तिवारि ढालनेकी शिक्षा दी थी। इस प्रकार नाना विषयोंमें प्रश्रयप्राप्त हो अज्ञ और अन्तःसारशून्य निर्भीक अरबवासीने अर्थलोभसे तथा डरके मारे इसलामका अवलम्बन किया था। धीरे धीरे उन लोगोंके भुजबलसे तथा भिन्न देशीय महम्मदीय शिष्य-सम्प्रदायके औद्धत्य और जिघांसासे आस पासके देशोंके अधिवासिवृन्द इसलाम धर्म ग्रहण करनेको वाध्य हुए थे। इस प्रकार क्रमशः स्पेनसे ले कर पूर्वमें चीन साम्राज्य तक मुसलमान जातिके विस्तारके साथ ही साथ इसलाम धर्म सुप्रतिष्ठित हुआ था।

उक्त सुविस्तृत मुसलमान साम्राज्यमें इतने थोड़े समयके अन्दर प्रतिपत्ति लाभ करके भी इसलामधर्म क्यों नहीं स्थायित्व लाभ कर सका, इसका ठीक ठीक कारण बतलाना कठिन है। किन्तु उन्नतिके बाद अवनति स्वभाव-सिद्ध है। महम्मदने ईश्वरको ऐकत्व और नियन्तृत्वको कल्पना की थी। उसमें त्रित्व आरोपित न होनेके कारण हेत्वाभासका कारण हुआ है। निर्गुण पुरुषार्थके सत्त्व, रजः और तमः; सगुण ईश्वरके ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तथा ईसाइयोंके Father, the son और the Holy ghosts यही त्रित्व ईश्वरशक्तिका परिचायक है। महम्मदके ईश्वर अद्वितीय, आत्ममय, महान, अनिर्वचनीय और पवित्र हैं। परमेश्वर जब पवित्र हुए, तब वे किस प्रकार तदाकारमें गठित मनुष्यादिको छोटेसे छोटे पाप कार्यमें लिप्त रहना पसन्द करते? उपयुक्त प्रायश्चितको छोड़ कर किस प्रकार पाप दूर हो सकता? पापमुक्तिके कारण इसलामधर्म ग्रहण यदि स्वर्गलाभका प्रशस्त पथ निर्देशक हो तथा उस सम्बन्धमें भगवान्‌का विचार यदि उपेक्षाका ही विषय हो, तो ईश्वर-कल्पनाको अवश्य ही भगवच्छासनपद्धतिका विरोधी स्वीकार करना पड़ेगा। अतः इस प्रकार भगवान्‌के क्षमालाभकी प्रत्याशा नहीं रहती तथा उनकी शासन-शक्तिका अनुध्यान करके भी हम लोगोंके मनमें किसी भय वा भक्तिका सञ्चार नहीं होता। महम्मदके धर्मप्रकरणमें ऐसी युक्तिकी गम्भीरता न रहने तथा वह दृढ़मूल न होनेके कारण स्वर्गीय चरित्र एवं देवसमाज ऐसे असंश्लिष्ट भावमें समावेशित हुआ है, कि वह अन्धोंके लिये बिलकुल सुन्दर मालूम होने पर भी वह दूरदर्शीकी तीक्ष्ण और गम्भीर दृष्टिसे अयौक्तिक तथा पौर्वापर्य सामञ्जस्यविहीन कहा गया है। ज्ञानी मुसलमान

सम्प्रदाय उक्त सारहीन मतका खण्डन कर मीमांसा और युक्तिसे इसलामधर्ममें जो विशाल एकेश्वरवादका प्रवर्त्तन किया है, वह पारस्यवासी विज्ञतम मुसलमानके निकट दार्शनिक-युक्ति-प्रतिष्ठित 'सुफी' मतसे प्रसिद्ध है। सुफी देखो

धर्मकर्मपद्धति।

ऊपरमें मुसलमान जातिकी सामाजिक कुलपद्धतिका विषय कहा गया। उन सामाजिक और अनुष्ठेय देशाचारके साथ धर्मार्थ-कर्त्तव्य कुछ कार्यकलाप भी विधिबद्ध हैं। जातीयधर्मके अन्तर्भुक्त होनेके कारण मुसलमानमात्रको ही उसका पालन करना उचित है। महम्मदीयगण इसी कारण महम्मद द्वारा प्रवर्त्तित बारह महीनोंमें कर्त्तव्य धर्माचारोंको प्राणपणसे पालन करते हैं। आज भी मुसलमानोंके मध्य निम्नलिखित पर्व और उत्सव मनाये जाते हैं।

मास — अनुष्ठेय कर्म।

१ मुहर्रम—मुहर्रम पर्वका उत्सवादि और भोज। यह महीनेके प्रथम १० दिनमें अर्थात् असुरामें शुरू होता है। दूसरेके मतसे इस समय स्वर्ग और नरक, तकदीर, हयात् आदिकी प्रथम सृष्टि हुई थी। मुहर्रम देखो।

२ शफर—प्रथम १३ दिन तयरा-तयजी महीनेके अन्तिम बुधवारको आखरी चहार सुम्बाका ईद उत्सव।

३ रबिउल अव्वल—१२वें दिनमें महम्मद मुस्तफाके तिरोधानके उपलक्षमें पर्वानुष्ठान।

४ रबि-उस-सानि—पीर-इ दस्तगिरका (पीरान्-इ पीर) पूजा-पर्व। महीनेके ११वें दिनमें पीरसाहबके सम्मानार्थ भोगदान और फतीहादिका पाठ होता है।

५ जुम्मादि-उल-अव्वल—जिन्द शाहमदार (सिरियावासी बदि उद्दीन नामक एक साधु) फकीरके उद्देशसे पर्वानुष्ठान। भारतवर्षमें यह पर्व 'दम-मदार' कहलाता है। मदार साहब सिरीयासे कानपुरके समीप माखनपुरमें आ कर बस गये थे। अभी प्रायः सभी मुसलमानोंके बड़े बड़े गांवमें अलम वा स्मृति चिह्न स्थापन करके मदारका अस्ताना रखा जाता है। इस महीनेके १६वें दिनमें अधिवास और १७वें दिनमें पर्व और उत्सव आरम्भ होता है।

६ जुम्मादि-उल-आखिर—११ दिनमें कादर अली साहबका उरस। नागपत्तनके समीप नागोर नगरमें इस फकीरका समाधितीर्थ विद्यमान है। दाक्षिणात्यके मोपला, लब्बग, मङ्गल आदि साफी मतावलम्बी निकृष्ट श्रेणीके देशी मुसलमान इसके सम्मानार्थ एक महोत्सव करते हैं।

७ रजब—इस महीनेके किसी एक बृहस्पति वा शुक्रवारको रजब सलार (सलार मसाउद गाजी) के कन्दरी तथा सैयद जलाल उद्दीनके कुंदो नामक पर्वका अनुष्ठान होता है। उक्त दोनों साधुकी प्रेतात्माको तृप्त करनेके लिये पुलाव चढ़ाया जाता और फतिहाका पाठ होता है। शिया साम्प्रदायिक मौला अलीके उद्देशसे कुंदो उत्सव मनाते हैं। भारतवर्षको छोड़ कर दूसरे देशवासी मुसलमानोंके मध्य यह उत्सव नहीं होता। इस महीनेके १५वें या १६वें (किसीके मतसे २७वें) दिनमें महम्मदको मिराज वा स्वर्गारोहण-पर्व मनाया जाता है।

८ शाबन—१४ दिनमें शब-इ-बरात भोजपर्व, इसके पहले दिन उसका आर्फा।

९ रमजान—रोजा। इस महीनेमें मुसलमान मात्रको रात्रिके अन्तिम प्रहरसे ले कर सन्ध्याके बाद नमाज तक उपवास करना पड़ता है। इस समय तरावीह और आयतफ-काफ बैठना नामक भजनपाठ तथा लैलत-उल कदरका शब-बय-दावी अर्थात् रमजान महीनेका अन्तिम रात्रि-जागरण पर्वानुष्ठान।

१० सवाल—इस मासके पहले दिनको ईद-उल्-फितर या रमजानकी ईद होती है।

११ जिकोयेदा या जेलकद—बन्दा नमाज या घेसुद-राजपोरके इस महीनेकी १६वीं तारीखको चिराग दिखलाया जाता है।

१२ जलहज्ज—६वीं तारीखको वकर-ईद (कुर्बानी) या ईद-उल्-जुहा, इसका आर्फा और दावत देनेका दिन।

भारतीय सभी मुसलमान वारहों त्योहारोंको मानते हैं। ये इन त्योहारों पर उपवास, पारण, पूजा, शिरनी चढ़ाना या चिराग दिखलाना आदि उत्सवोंका आयोजन करते हैं। सिवा इसके कहीं कहीं फकीरोंके स्थानमें या पिल्लेमें चिराग, चन्दन, उर्श और फतिहा देनेकी रीति है। पीरोंके सम्मान दिखलानेके लिये कहीं कहीं मेला भी होता है। मुहर्रम महीनेकी १८वीं तारीखको अखाड़ोंका भोज शुरू होता है। इस दिन भगवान्‌ने महम्मद्‌के समीप प्रकाशमें ही इस्लाम जगत्‌को अधिकार देनेका अभिमत प्रकट किया था। मक्का और मदीनेके बीचमें 'गदीर खुम्' नामक स्थानमें महम्मद्‌की ईश्वरसे भेंट हुई थी इससे महम्मद्‌के शागिर्द इसको 'गदीर त्योहार' कहते हैं।

मुसलमानोंकी हिजरीमें वारह महीनेके वारह चन्द्रोंमें जो करना कर्तव्य है, ऊपरमें उसकी फिहरिस्त दी गई है। इसके करनेकी रीति या क्रियाकलाप विस्तृत रूपसे यहां लिखा न गया।

मुसलमानोंका हिजरी सन् चान्द्रमासके अनुसार गिना जाता है। किन्तु अमावस्याके बाद जिस दिन चन्द्र दिखाई देता है वही दिन महीनेका अन्त समझा जाता है। उसके वाद ही दूसरे महीनेकी तारीख मानी जाती है।

इनमें देवके उद्देशसे नजरानमाज अर्थात् पुलाव, रोटी, शिरनी और उत्तम उत्तम फल मूलादि उपहार देनेकी विधि है। कभी कभी भगवान्‌को पशुवलि चढ़ाते हैं। प्रत्येक शुभकर्ममें शिरनी चढ़ाई जाती और फतिहा पढ़ा जाता है। बहुत जगहोंमें मुसलमान फकीर, फतिमा, अली आदिके लिये भी प्रार्थना और पूजा अर्थात् शिरनी चढ़ाया करते हैं।

तरिफत या स्वर्गमार्गके खोजनेवाले मुसलमानोंको पहले मुरीद (शिष्य), पीछे फकीर और इसके बाद वाली (साधु-पुरुष) होनेके लिये चेष्टा करनी होती है। कोई पुरुष या रमणी मुरीद होनेकी इच्छा करे, तो उसे पहले अपने खान्दानी और विश्वासी पीरके अनुयायी किसी साधु पुरुषके स्थानमें जाना पड़ता है। अथवा उनको या उनके आत्मीयोंको अपने घर बुला अवस्थानुरूप भोजन कराना पड़ता है। इसके वाद 'मुर्शद'-को वजू खतम कर मुरीद होनेवालेको दाहने हाथसे पकड़ना पड़ता है। किन्तु स्त्रीका हाथ नहीं पकड़ा जाता, वरन् रुमाल या अञ्चलका एक हिस्सा पकड़ना होता है। इस समय मुर्शद मुरीद्‌को कलमा और रफात पढ़ा कर उनके हाथमें एक प्रति निजवा या पीरोंकी फिहरिस्त दे पीरोंके प्रति *सम्मान प्रदर्शन करनेका हुक्म* देता है। इसके वाद उपयुक्त दक्षिणा दे कर सलाम कर मुरीद मुर्शद्‌को विदा करता है। इस तरह गुरु-शिष्योंमें भेंट मुलाकात होनेके वाद मुर्शद मुरीद्‌के कानमें गुप्त रहस्य कह देता है।

मुरीद्‌से फकीर होता है, इस समय मुरीद्‌को फिर एक मेला (भोज) देना होता है। विभिन्न श्रेणीके ४०।५० फकीर तथा उनके बंधुबांधव और भिक्षु निमन्त्रित हो कर आते हैं। पुष्प, चन्दन, शिरनी, गांजा, भांग, सुरती आदि उन अभ्यागत फकीरोंको दिया जाता है।

मुर्शद आ कर पहले दाढ़ी, मूंछ और दोनों भौंहको छांट कर आवरू खोल देते और उसके साथ साथ कुरानका मन्त्र पढ़ते हैं। इसके वाद उस फकीरको स्नान करा कर कलमा-ए-तय-अव, कलमा-ए-शहादत्, कलमा-ए-तमजिद्, कलमा-ए-तोवजिद् और कलमा-ए-रद्-ए-कुफुव तथा साधारण उस्तगफा और फकीर-सम्प्रदायके विशिष्ट और भी १० कलमाका पाठ कराया जाता है। इसके वाद उसे फकीरके उपयुक्त कण्ठा, शेली और तसविया आदि माला लंगोटा, लुंगी, तसमा, कमरवंद आदि पहनाया जाता तथा हाथमें छड़ी, रुमाल और समुद्रसे उत्पन्न एक प्रकारके नारियलकी माला आदि पहना कर मुर्शद अपना जूठा शरवत पिला देता है।

फकीरका वेश वनानेके समय एक एक साज फकीरके अंगमें पहना कर मुर्शद कुरानका मन्त्रपाठ करता है। इस प्रकार सजधज कर फकीर अपना पहला नाम छोड़ देता और नया नाम ग्रहण करता है। इस समय गुरुका सदुपदेश पानेके वाद पीरोंकी भक्तिपूर्वक पूजा और सम्मान करता और तव उसकी फकीरी दीक्षा सम्पन्न होती है।

फकीरोंके मध्य भी बे-सारा (विधिवहिर्भूत) और बा-सारा (विधिसिद्ध) नामक दो विभाग हैं। जो गांजा, भांग, अफीम, शराव, बोजा (मादक द्रव्यविशेष) ताड़ी, नारियेली (नारियलसे प्रस्तुत मादकविशेष) पीता है तथा महम्मदके उपदेशानुसार उपवास, देवाराधना और चित्तवृत्तिका संयम करना नहीं सीखता उसे बे-सारा और जो महम्मदके बतलाये हुए आदेशका पालन करता, भजन और उत्सवादिमें लगा रहता उसे बा सारा कहते हैं।

इन फकीरोंमेंसे जो तीर्थयात्रामें अपना जीवन विताते वे दरवेश कहलाते हैं। दरवेश श्रेणीके मध्य जो कृषि, वाणिज्य और भिक्षावृत्ति द्वारा स्त्रीपुत्रका पालन करते वे बा-सारा और सालिक नामसे प्रसिद्ध हैं। तीर्थ-यात्रादि इनके धर्मकर्मका प्रधान अङ्ग है। मज्जुब (संसार-निर्लिप्त) श्रेणीके दरवेश विवाहादि नहीं करते। सिर्फ कोपीन पहन कर वे बाजार वा रास्ते रास्ते घूमते हैं। इस श्रेणीके मध्य कितने बुजुर्गी दिखा कर पूजनीय हो गये हैं। तृतीय आजादगण ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर निभृत स्थानमें उपासना करते हैं। ये लोग सर्वांग मुण्डन कर लेते हैं। भिक्षासे जो कुछ मिलता है वही खा कर रह जाते हैं। तीर्थपर्यटन इनका मुख्य कर्म है। शेषोक्त दोनों श्रेणीके फकीर गृहहीन होते और बे-सारा कहलाते हैं।

इसके अतिरिक्त कलन्दर, रसूलशाही और इमाम-शाही नामक और भी तीन दरवेशश्रेणी हैं। कलन्दरके मध्य भी बे-सारा और बा-सारा नामक दो स्वतन्त्र दल देखनेमें आते हैं। ये लोग निर्जन स्थानमें घर बना कर दिन विताते हैं। गृहस्थ जो कुछ श्रद्धापूर्वक देता है, वही इनकी उपजीविका है। इस श्रेणीके मध्य कोई कोई विवाह भी करता है, पर अधिकांश ऐसे हैं, जो संसार-शून्य हो ईश्वरकी उपासनामें समय विताते हैं। रसूल-शाही लोग मूंछ दाढ़ी आदि मुड़वा लेते हैं। कौपीन और उत्तरीय वस्त्रके सिवा इनका और कोई पहनावा नहीं है। इनमें कोई भी विवाह नहीं करता। भिक्षा ही उपजीविका है। जो फकीर नाकसे ले कर कपाल तक काली मिट्टीका ऊर्द्ध्वपुण्ड्र लगाता, मूंछ दाढ़ी मुड़वा लेता उसे इमामशाही दरवेश जानना चाहिये। ये लोग ब्रह्मचर्यावलम्बी और भिक्षाजीवी है।

मुशायक पीर मुर्शद जादी और खुलफाङ्ग नामक दो भाग में विभक्त है। ये लोग बा-सारा और गृही हैं। मुरीदोंको दीक्षा देना इनका प्रधान कार्य और उप-जीविका है। ये लोग राजाके दिये हुए इनाम और जागीरका भोग करते हैं। कोई कोई धनाढ्य उमरा वा नवाब-सरकारसे मासिकवृत्ति भी पाता है।

यह मुशायक वा मुर्शदगण कभी कभी पीरका खलिफत् वा प्रतिनिधिका पद पाते हैं। पीर जिसे खलिफत् देते हैं उसे सङ्गतिसम्पन्न होनेमें साधारण मुशायक फकीर और आत्मीय कुटुम्बोंको निमन्त्रण कर भोज देना होता है। शिरनी वा पुलावके ऊपर फतिहा पढ़नेके बाद वह उपस्थित जनसाधारणको बांट दिया जाता है तथा सबके सामने वह खलीफाके पद पर अभिषिक्त होता है।

जो मुशायक वाली (महापुरुष) होना चाहता है उसे कृच्छ्रसाध्य कार्यका अनुष्ठान करना पड़ता है। इन-में जगल, जिकिर, कम्मव आदि उल्लेखनीय हैं। ये सब रियाजत्, औरद्, दीद् और जिकिरका विषय अच्छी तरह जाननेके लिये मुशायकोंसे सहायता मांगनी पड़ती है।

कोई कोई मुशायक वा दरवेश पञ्चेन्द्रियको रोकने-की शिक्षा देता है। एक पञ्च इन्द्रिय पञ्चमौजी नामसे प्रसिद्ध है। १ सर्पमौजी—कर्ण, अच्छी तरह पता लगाए विना सुनते ही गुस्सा आना और बदला लेनेको उतारू होना, २ चिलमौज—चक्षु, वस्तु-विशेषको देखते ही लोभ आकर्षण और चित्तहरण, ३ भ्रमरमौजी—नासिका, सूंघते ही चित्तकी विकृति, ४ कुकुरमौजी—जिह्वा, खाद्य द्रव्यमें लोभ करनेवाला और ५ वृश्चिकमौजी—लिङ्ग, कामोद्दीपनकारी, यह पञ्चेन्द्रिय काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य नामक छः रिपुओंका प्रवर्त्तक होनेके कारण दरवेशोंने उन्हें रोकनेकी व्यवस्था दी है। अर्थात् चित्त-वृत्तिको काबूमें करके भक्ति और ज्ञानमार्गमें विचरण करना मानवका एकान्त कर्त्तव्य है, इसी कारण उन्होंने जनसाधारणको इन्द्रियसंयम करनेका आदेश दिया है।

मृत्युकाल उपस्थित होने पर मुसलमान मात्रको

ही समाधिके लिये व्यस्त होना पड़ता है। यहां तक, कि कोई कोई मुसलमान राजा वा नवाब मृत्युके बहुत पहले समाधिके लिये एक स्थान चुन लेते हैं। कभी कभी उस स्थानमें बड़ी बड़ी इमारत बनवाते और उद्यान लगाते हैं। वह इमारत आकारभेदसे समाधिमन्दिर, मसजिद, मुसेलेउम वा दरगाह कहलाती है।

मृत्युके चार पांच दिन पहले प्रत्येक रोगीको वसिका वा वसिउतनामा (मृत्युकालका इच्छापूर्वक दान-पत्र) लिख कर उपयुक्त उत्तराधिकारी स्थिर करना पड़ता है। मृत्युकाल उपस्थित होने पर एक कुरान जानने वाला मुल्ला बुलाया जाता और वह सुरा-ए यासिन सुनाता है। इस समय कलमा-ए तयीब और कलमा ए-शहादतका पाठ किया जाता है। मृत्युश्वास पहुंच जाने पर शरबत पिला कर प्राणवायु निकालनेकी कोशिश की जाती है।

मृत्यु हो जाने पर शवका मुंह ढक दिया जाता और उसके दोनों पैर एक साथ बांध दिये जाते हैं। पीछे वह लाश कब्रिस्तानमें पहुंचाई जाती है। दफनानेके पहले उसे स्नान कराया जाता है। इस समय गोसल-मुर्दा-शो आ कर मट्टी खोदता और उसमें जल डाल कर शवदेहको सुला देता है। पुरुष होने पर नाभिमूलसे ले कर जानु तक और स्त्री होनेसे छातीसे ले कर पाद-तल तक सफेद वस्त्र द्वारा ढक दिया जाता है। इसके बाद कुछ गरम और ठंढे जलमें तौलिया भिगो कर उससे शवके सारे शरीरको रगड़ कर धोते हैं। नाक और मुंहमें जो कुछ मैल रहता है उसे भी साफ किया जाता है। इसके बाद वजू समाप्त कर फिरसे बेरके पत्ते मिले हुए जलसे शवका शरीर धोया जाता है। जलमें जितनी वार धोया जायेगा, उतनी वार कलमा-ए-शहादत—"उश-हद दो अन्ना-ला-इल लाहा इल्लाहे ल्लाहा वहदहु ला शरिक लहु वो उश हद्दो अन्ना महम्मदन आबदहु वे रसुलहु"—का पाठ होता है।

गोसलकार्य शेष होने पर कफन या नया वस्त्र पहनाया जाता है। पुरुष होने पर लुंगी वा इजेर, अलफा, पिरान वा कुर्त्ता (यह गले से लगायत एड़ी तक लंबा रहता है) और लफाफा वा आवरण वस्त्र तथा स्त्री होने पर सिनाबंध वा चोली और दमनी वा शिरबंधनी नामक दो अतिरिक्त वस्त्र रहता है। इसके बाद मृतकी आंखमें काजल, हाथमें अंगूठी वा पैसा दे कर सुरमा लगाया जाता है तथा कपाल, नाक, हथेली और पैरके तलवे, घुटने आदि स्थानोंमें कपूर छुला कर समाधि-स्थानमें लाया जाता है। राहमें शव ढोनेवाले कलमा पढते जाते हैं।

समाधिस्थानमें जो कब्र खोदी जाती है उसकी गहराई पुरुष होने पर कमर तक और स्त्री होने पर छाती तक होती है। इस स्थानके लिये मृत व्यक्तिको मूल्य देना पड़ता है। शिया और सुन्नी सम्प्रदायकी कब्रमें बहुत फर्क रहता है। सुन्नी उपरोक्त शियाप्रणालीसे बिलकुल उलटा कब्र खोदता है।

निम्न श्रेणीके मुसलमान समाधिस्तम्भ स्वरूप कब्रके ऊपर मट्टीका एक टीला खड़ा कर देते हैं। जो कुछ धनवान् हैं वे कब्र पर पत्थर गाड़ देते हैं। नवाब और बादशाह बड़ी बड़ी इमारत बना कर समाधि-मन्दिर स्थापन कर गये हैं। आगराका ताजमहल इसका उज्ज्वल निदर्शन है। समाधिके ऊपर ईंटोका स्तम्भ खड़ा करना वा नाम खोदना मुसलमान-शास्त्र-निषिद्ध है, पर आज कलके मुसलमान इस नियमका पालन नहीं करते।

मुसलमानमात्रको ही शवके पीछे जाना उचित है। निसकत्-उल् मसमविह नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि मुसलमान, यहूदी अथवा जो कोई धर्मावलम्बी क्यों न हो, अशक्त होने पर उसे कमसे कम ४० कदम तक शवके पीछे पीछे जरूर जाना चाहिये। मुसलमान शास्त्रमें निम्नलिखित ५ 'फर्ज कफाइया' मुसलमानमात्रका अवश्य कर्त्तव्य बतलाया गया है,—१ सलाम करने पर सलाम करना। २ पीड़ितको देखना और उसके मङ्गलके लिये खुदासे इबादत करना। ३ पैदल कब्रिस्तान तक शवके पीछे पीछे जाना। ४ निमन्त्रण स्वीकार करना। ५ छींकनेके बाद 'अलहमद्-ओ-लिल्लाह' कहनेसे उसी समय 'यर-हमक-अल्लाह' कह कर उसका प्रत्युत्तर देना। हम लोगोंके देशमें भी छींकनेके बाद 'जीव' और प्रत्युत्तरमें 'त्वयासह' कहनेकी प्रथा है।

समाधिके बाद तीसरा दिन तीज, जोरारात वा फूल

चढ़ाना नामसे प्रसिद्ध है। इस दिन प्रेतात्माके उद्देशसे मृतके आत्मीय तरह तरहके फल, चिउंड़ा, पान-सुपारी आदि ले कर मुल्लाके साथ कब्रिस्तानमें जाते हैं और प्रेतात्माकी मुक्ति-कामनाके लिये एक दो वा तीन बार कुरानका पाठ करते हैं। कभी कभी तो ५० से १०० मुल्ला बैठ कर प्रेतात्माकी मङ्गलकामना करते हैं। इसके बाद कब्रके ऊपर रंगा हुआ कपड़ा बिछा कर उसके ऊपर फूल छिड़क देते अथवा फूलकी मालाकी चादर ढंक देते हैं। इसके बाद फतिहा पाठ करके सभी घर लौटते हैं। महम्मदीय स्मृतिमें इस क्रियाका कोई विधान नहीं है, वह केवल भारतीय हिन्दुओंका अनुकरण देशाचारमात्र है। इस प्रकार १० दिनमें दशपिण्ड, २० दिनमें पिष्टक पिण्ड और ३० दिनमें फतिहा और भोज तथा ४०वें दिनमें श्राद्धाचार किया जाता है।

४० दिनका कार्य्यारम्भ होनेके पहले अर्थात् ३६वें दिनमें वे १०वें दिनकी तरह पुलाव आदि बांध कर उस प्रेतात्माको उत्सर्ग करते हैं। पीछे उस दिन संध्यासे तरह तरहकी रसोई बना कर एक बिरतनमें तथा अर्गजा, सुरमा, काजल, अबीर, पान और सुपारी तथा कुछ वस्त्र और अलङ्कार एक दूसरे बरतनमें सजा कर प्रेतका भोगविलास चरितार्थ करनेके लिये, उसको प्राणवायु जिस स्थान पर निकली है, ठीक उसी जगह गाड़ रखते हैं। पीछे समाधि स्थानके ऊपर मालाका चन्द्रातप लटका देते हैं। इसको लहद-भरना कहते हैं। मुसलमानोंका विश्वास है, कि ४० दिनमें प्रेतात्मा घर छोड़ कर चला जाता है। उसके एक दिन पहले यदि उसके उद्देशसे खाद्यादि न दिया जाय, तो ४०वें दिनमें वह पिण्ड खानेको नहीं आता। इस दिन रातको जग कर कुरान मौलूदका पाठ किया जाता है। महम्मदीय शास्त्रमें ऐसा कोई नियम नहीं है, यह आधुनिक मुसलमान सम्प्रदायका कल्पित है।

कहीं कहीं मृत्युस्थानमें प्रतिदिन मृत व्यक्तिके उद्देशसे एक आब-खोरा जल और रोटी रख दी जाती है दूसरे दिन सवेरे वह जल एक पेड़के मूलमें डाल कर रोटी और ग्लास फकीरको दे दिया जाता है तथा फिरसे नया प्रबन्ध होता है। इसी प्रकार ४० दिन तक चलता रहता है। अलावा इसके मृतस्थान, शवधौत स्थान और कब्रिस्तानमें हर एक रातको रोशनी जलाई जाती है। अवस्थानुसार ३, १० वा ४० रात तक यही नियम चालू रहता है। कोई कोई इस अशौचके समय मसजिदमें जलपूर्ण नये पात्रके साथ रोटी आदि खाद्य द्रव्य भेजा करता है। मसजिदका कोई आदमी फतिहा पाठ कर उसे स्वयं खा लेता है। ४०वें दिनमें पूर्वकथित जियारत समाप्त होता है। इस दिन फकीर, आफिज़ान, दरिद्र और अपने बन्धुओंको बड़े समारोहसे खिलाया जाता है। मृत्युके बाद तीसरे, छठे, नौवें और बारहवें महीनेमें प्रेतात्माकी तृप्तिके लिये मासिक श्राद्ध और सपिण्डीकरणकी तरह पुलाव आदि खाद्य द्रव्य प्रस्तुत कर फतिहा-पाठके बाद सभीको बांटा जाता है। इस दिन अवस्थापन्न व्यक्तिमात्र ही दीन दुःखीको वस्त्र और धन दान करते हैं। शामको कब्रके ऊपर फूलकी चादर बिछाते हैं। स्त्रियां ४०वें दिनमें तथा वार्षिक जियारतमें कब्रिस्तानमें आ सकती हैं। इसके सिवा अन्यान्य समय उन्हें आना निषेध है। प्रति शुक्रवारको कब्रिस्तान जा कर प्रेतके उद्देशसे फतिहा-पाठ करना प्रत्येक मुसलमानका कर्तव्य है।

वार्षिक जियारत वा सपिण्डीकरण होनेके बाद प्रेतात्मा पितृपुरुषोंके साथ गिनी जाती है। इस समय एकमात्र शब-ए-बरात वा बकरीद उत्सवमें उन लोगोंके नामसे एक साथ फतिहा-पाठ किया जाता है। मुसलमानोंके मध्य वार्षिकश्राद्धमें भोज्यदान आदिका भी विधान है।

इन लोगोंमें प्रकृत अशौच १० दिन तक रहता है। इन दश दिनोंमें कोई भी मृतके आत्मीयके हाथका जल नहीं पीता। अशौचके समय वे मांस मछली कुछ भी नहीं खाते। इस समय आचार और बासी खाद्य खाना भी निषिद्ध है। भारतीय मुसलमानोंने हिन्दूके अनुकरण पर इस देशाचारको ग्रहण किया है। कुरानमें इसका कोई विधिनिषेध नहीं देखा जाता।

उक्त उत्सव और क्रियापद्धतिके सिवा आर्य्यावर्त्तवासी मुसलमान हिन्दुओंकी तरह नौ-रोज नववर्षारम्भ पर्व तथा वसन्त वा वसन्तोत्सव और भाद्रमासमें नौका-

पर्वका अनुष्ठान करते हैं। सम्राट् अकबरके शासन-कालमें नौ-रोज पर्व बड़ी धूमधामसे मनाया जाता था। इस वर्षारम्भके दिन विभिन्न श्रेणीके मुसलमान दल बांध कर घूमते थे। बन्धुवान्धवोंके साथ भ्रमण, सदालाप, आपसमें साक्षात् और आलिङ्गन आदि द्वारा आपसका मनोमालिन्य दूर होता और आत्मीयताकी वृद्धि होती थी। इस दिन स्वयं बादशाह जनसाधारण के साथ मिल कर आमोद आह्लादमें मस्त रहते थे। घर घर नाच गान, आत्मीय कुटुम्बोंका भोज होता, रोशनी बाली जाती, उपढौकनादि भेजे जाते और जनसाधारणके उल्लास-कोलाहलसे नगर प्रतिध्वनित हो कर समारोहकी पराकाष्ठा दिखलाता था। अन्दर-महलमें भी इसी प्रकार-का आमोदस्रोत बहता था।

वसन्तऋतुके शुभागमन पर कोमल कुसुमकिशलय परिशोभित वासन्ती वनराजी जब वसुन्धराको नये भूषणसे भूषित कर देती थी, तब आर्यहिन्दू लोग नव-रागरञ्जित वसुन्धराके उस स्फूर्त्तिविनाशको देख कर वासन्ती वेशभूषासे अपनेको सजा वसन्तके शुभागमन-की सूचना करते थे। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें यह वस-न्तोत्सव मदनमहोत्सव नामसे वर्णित हुआ है।

मदनमहोत्सव देखो।

वर्त्तमान समयमें श्रीपञ्चमीके दूसरे दिन तथा उत्तर-पश्चिम भारतमें होलीपर्वके दिन इसी प्रकार वासन्ती उत्सव मनाया जाता है। मुसलमान बादशाह और नवाब वसन्तकालीन मलयमारुत सेवनके लिये इसी प्रकार वेशभूषा करते थे। जो इस दिन वासन्ती वस्त्र नहीं पहनता उसे राजदरबारमें घुसने नहीं दिया जाता था। यहां तक कि, इस दिन मुसलमान बादशाह और उमरा लोगोंके हाथी, घोड़े, ऊंट आदिको भी पीले वस्त्रसे आच्छादित कर नगरमें घुमाया जाता था। इस दिन बादशाह एक दरबार बैठाते और जनसाधारणको भोज देते थे। इस समय सिंहव्याघ्रादि हिंस्र जन्तुका खेल दिखाया जाता था।

लखनऊ नगरमें श्रावणकी वर्षा शेष होने पर नौका-विहार पर्वका अनुष्ठान होता है। वह वृन्दावनचन्द्रके नौकाविहार पर्वका अनुकरणमात्र है। इस दिन बांसकी एक नाव बना कर उस पर मिट्टीके प्रदीप सजाते और उसे नदीमें बहा देते हैं।

मुसलमान जातिके सभी प्रकारके शुभानुष्ठानोंमें फतिहापाठकी विधि देखी जाती है। ये लोग सभी धर्मकर्मोंका पालन करते हैं। प्रत्येक मुसलमान धर्म-के मुख्य पथ पर चढ़नेके लिये खुदासे इबादत करता है। सम्प्रदायभेदसे इस नमाजप्रणालीमें बहुत पृथक्ता देखी जाती है। शिया, सुन्नी और हाजी सम्प्रदायके नमाजमें जैसी पृथक्ता है उसे लिख कर प्रकट करना कठिन है। विभिन्न समयकी नमाजमें केवल समय-निरूपणात्मक सामान्य प्रभेद लिपिबद्ध हुआ है। नीचे साधारण नमाज-का पाठ लिखा जाता है।

मुसलमानोंकी भजनाप्रणाली वा नमाज अन्यान्य धर्मसम्प्रदायकी उपासनासे बिलकुल स्वतन्त्र है। अरबी कुरानशास्त्रमें यह उपासनाप्रणाली रकत अर्थात् सुन्नत, फरज और नफिल नामक तीन विशेष भागोंमें विभक्त है।

मुसलमान-सम्प्रदायके मध्य अकेला अथवा मस-जिदमें अनेक लोग इकट्ठे हो कर नमाज पढ़नेकी विधि प्रचलित है। धर्ममें प्रवृत्ति तथा भजनमें आसक्ति पैदा करनेके लिये प्रत्येक मसजिदमें एक मोवाजन नियुक्त रहता है। वह व्यक्ति वन्दना समयके कुछ पहले मस-जिदके किसी ऊंचे स्थान पर किबला (मक्का) की ओर खड़ा हो कर अजान देता है। इस समय वह अपने कानोंमें दोनों तर्जनीके अग्र भागको घुसा कर हथेलीसे कानकी जड़को दबाये रहता है। पीछे चार बार 'अल्ला-हो अकबर', दो बार 'अशहद्दो-अन-ला इल्लाहा इल-ल्लाहो', दो बार 'वो-अश-हद्दो अन महम्मद-उर रसूल उल्लाहे' पढ़ता है। इसके बाद दाहिनी ओर घूम कर दो बार 'हय-अल-अश-सलओवत' तथा बाईं ओर घूम कर दो बार 'हय अल-फल्लाह' कह कर चिल्लाता है और तब मक्काकी ओर मुंह कर दो बार 'अंस सल्लातो खेर-रून्-मिन-नन-नोयम्' तथा दो बार 'अल्ला हो अकबर' और एक बार 'ला इल्-लाहा, इल्लल्लाहो' पढ़ कर अजान शेष करता है। इसके बाद वह अपने दोनों हाथोंसे मुखको ढक कर भगवान्के समीप अपनी प्रार्थना सुनाता

है। अशुचि, सुरापायी, रमणी और उन्मादग्रस्तके लिये अज़ान देना मना है।

कुरानमें वन्दना करनेका जो पांच समय कहा है, उनमें फजरकी नमाजमें चार रकत अर्थात् दो सुन्नत् और दो फरज; जहरकी नमाजमें वारह रकत अर्थात् ४ सुन्नत, ४ फरज, २ सुन्नत और २ नफिल; असरकी नमाजमें ८ रकत् अर्थात् ४ सुन्नत-घैर-मोवक्केदा प्रायः कोई भी यह नहीं पढ़ता) और ४ फरज (इसीको सव कोई पढ़ता है), मग्रिवकी नमाजमें ७ रकत अर्थात् ३ फरज, २ सुन्नत और २ नफिल तथा एशाकी नमाजमें १७ रकत अर्थात् ४ सुन्नत-घैर मेवेक्केदा (कोई भी इसे नहीं पढ़ता), साधारणमें ४ फजर, २ सुन्नत, २ नफिल ३ वाजिव उल वित्तर और २ तुसफी-उल वित्तरका पाठ किया जाता है।

उपासक पहले मुंह, हाथ और पांवको धो कर मसजिदमें अथवा नमाज पढ़नेके निर्दिष्ट स्थानमें मुसल्ला वा जाए-नमाज अथवा गलीचे आदिके ऊपर मक्काभिमुखी हो खड़ा होता है। वादमें "इन्नि वाज्जाहातो वाम्भिक्या लिल्लजी फतरस समावाते अल अर्दा हनीफों ओमा-अनामिनल मुशरकि' कह कर सवसे पहले एकाग्रचित्त हो भगवान्के उद्देशसे इस्तग्फार (क्षमाप्रार्थना) तथा प्रातःकालीन सुन्नत् रकत् और नियत (प्रणाम) समाप्त करता है।

प्रातःकालीन सुन्नत् वन्दनाके समय 'न्नवेता अन ओसेल्लिया लिल्लाहेता आला रेक-अतेई सलातिल फजर सुन्नते रसूल इल्लाहे-ता' ला मुतवजिहान एलाजेः तिल कारतोश्वरी फतेह अल्ला हो अकवर" इस मन्त्रका पाठ करना होता है।

इसके वाद हनिफी-साम्प्रदायिक दोनों हाथोंकी सभी अंगुलियोंको फैला कर वृद्धांगुलिसे कर्णमूलके पश्चाद भागको छूता और 'अल्ला हो अकवर' पढ़ता है। इसके वाद नाभिके वाएं और उसके ऊपर दाहिने हाथको रख कर जमीन पर दृष्टि डालता है। अनन्तर सिजदाह हो कर प्रणाम करता और क्रमशः सना, तउज और तस्मिया पढ़ता है। जैसे—सना,-'सुभान नाखल्ला हुम्मा वेहमदेका वेतवार रसक मोका ओताअल्ला जद्दोका ओला एलाहा आघयरोका।' तउज, 'आउस विल्लाह मिननस-सैतान निर-रहीम।' तसमिया,—विसमिल्ला हिर-रहमान निर-रहीम।' इसके वाद सुरे फतेहा वा सुरा-ए-आलहमद' पढ़ना होता है। वह इस प्रकार है—

'अल-हामदो लिल्लाहे रव-विल आ-लेमिन अरहमार-निर-रहीम-ए-मालिके. इओमिद्दिन ईयाका नावदो ओया-ईयाका ना स्ताइन एहेदेनाश सेरातल मुस्तक-इमा सेरा तल लज़िना आन आमता आलेहिम घैयदिल माखदुवे आलेहिम वालद दोआल्लिन्।"

इसके वाद नमाज पढ़नेवाला अपने इच्छानुसार कुरानका १ला वा २रा पारा पढ़ता है। इस समय समूचा कुरान पढ़नेका नियम है, परन्तु विसमिल्लाका उच्चारण करना मना है। इसके वाद दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रख सामने सिर हिला 'रुकु' भावमें खड़ा हो कर 'सुभानर रवि उल आजिम' तथा सरल भावमें खड़ा हो कर 'समामा अल्ला हो लायमन हम्मायदा रवावना लुक् अल हमद' नामक रुकुकी तसवी ३से ५ वार तक पढ़ना होता है। इसके वाद फिरसे सिजदा हो कर (घुटना टेक कर) उसे ५ वार 'सुभानर रवावी उल अल्ला' पाठ कर माथा उठा कर कुछ समयके लिये घुटने पर वल दे वैठता है। पीछे फिरसे सिजदा हो कर तसवोका पाठ करता है। प्रत्येक वार उठने वा वैठनेके समय अल्ला-हो-अकवर' पढ़ना होता है।

इसके वाद सिजदासे 'क्रियाम' हो खड़ा हो कर विसमिल्लाके साथ कुरानका एक पारा और विना विसमिल्लाके दूसरा एक पारा पढ़ कर एक वार रुकु, दूसरो वार 'कियाम' और पीछे पहलेके जैसा 'सिजदा' करे। अनन्तर वैठ कर उपासनाका शेषांश अर्थात् 'आहयात् और दरुद' (भगवान्को अनुग्रह प्रार्थना) समाप्त कर पहले दाहिनी और पीछे वांई ओर मुंह घुमावे। इस प्रकार दोनों ओर मुंह घुमानेके समय उपासना करनेवाला 'आसल्ला मुन आलयकुम रहमत उल्लाहे कह कर दो वार सलाम करे। इसके वाद दोनों हाथोंकी फव्जो द्वारा दोनों हाथोंको दृढ़वद्ध कर फिरसे उसे कंधेके साथ एक सीधमें फैलावे। पोछे 'मुनाजात' प्रार्थना कर दोनों हाथोंको सिकोड़ और मुंहको ढक उपासना समाप्त करे। यही द्वितीय रकत् उपासना है।

चार रकतकी उपासना करनेमें पहले दो यथारीति समाप्त करके दूसरेमें आहयात्के अर्द्धांश तककी आवृत्ति करनी होती है। इसके बाद तसमियाहसे ले कर तृतीय और चतुर्थ रकतमें आहयात् समूचा पढ़ कर उपासना शेषकी जाती है। यह चारों सुन्नत-रकत नामसे प्रसिद्ध है।

तीन फरज रकतमें पहले दो रकतकी उपासना शेष कर आहयात् और सेलाम पाठ पर्यन्त शेष करना होता है। चार फरज रकतमें प्रायः इसी तरह है, केवल इसमें सबसे पहले तकवीका पाठ किया जाता है। जैसे—

अल्ला हो अकबर—४ बार; अश-हद्दो अन-ला इल्लाहा इल्लल्लाहो—२ बार ; वो आशा-हद दो अन् महम्मद उर रसूल उल्लाहे (हय्)—२ बार ; हय आल' अस सलावत—२ बार; अल्ला हो अकबर—२ बार और सबसे पीछे 'लाह इल्लाहा हाह इलाला यलाहा महम्मद-उर रसूल-उल्लाह' का सिर्फ एक बार उच्चारण करना होता है।

मुसलिन-बिन-हिज्जाज नैशापुरी—काश्मीरवासी एक मुसलमान कवि। ये अबदुल्ला आबू मुसलिम और अबुल हुसेन मुसलिम-बिन-अल हिज्जाज बिन मुसलिम अल-कुशैरी नामसे परिचित थे। शाही मुसलो नामक कुरानकी टीकामें इन्होंने प्रायः छः लाख प्रवाद-वाक्यका मूल उद्धृत किया है। इसके सिवाय इनका बनाया हुआ मसनद-कबीर नामक एक और ग्रन्थ मिलता है। इनका जन्म ८१७ और मरण ८७५ ई०में हुआ।

मुसली (हिं० पु०) १ मुशली देखो। (स्त्री०) २ हल्दीकी जातिका एक पौधा। इसको जड़ औषधके काममें आती है और बहुत पुष्टिकारक मानी जाती है। यह पौधा सीड़की जमीनमें उगता है। यह खास कर विलासपुर जिलेके अमरकण्टक पहाड़ पर बहुत पाया जाता है।

मुसल्लम (फा० वि०) १ जिसके खण्ड न किये गये हों, पूरा। (पु०) २ मुसलमान देखो।

मुसल्ला (अ० पु०) १ नमाज पढ़नेको दरी या चटाई। २ एक प्रकारका बरतन। यह बड़े दियेके आकारका होता है। बीचमें यह उभरा हुआ होता है। इसमें मुहर्रममें चढ़ौआ चढ़ाया जाता है। २ मुसलमान देखो।

मुसवाना (हिं० क्रि०) १ लुटवाना। २ चोरी कराना।

मुसव्विर (अ० पु०) १ चित्रकार, तस्वीर खींचनेवाला। २ बेलबूटे बनानेवाला।

मुसव्विरी (अ० स्त्री०) १ चित्रकारी। २ नक्काशी, बेल-बूटेका काम।

मुसहर—एक प्रकारकी जंगली जाति। जातितत्त्वविद्गण इन्हें वनवासी द्राविड़ीय जातिके वंशधर बतलाते हैं। विन्ध्यकैमूकी अधित्यकाभूमि, सोननदीके पार्श्व-तीर्थ अववाहिकाप्रदेश तथा उत्तर पश्चिम और मध्य-भारतमें कई जगह इस जातिका वास देखा जाता है। इन लोगोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी किंवदन्तियां सुनी जाती हैं।

वनभूमिका आश्रय लेनेके कारण लोग इन्हें वन-मानुस, वनराज, देवशिशा, मासखान वा मुशेरा कहते हैं। मिर्जापुरवासियोंका कहना है, कि परमेश्वरने सृष्टिके प्रारम्भमें प्रत्येक जातिसे एक एक आदमी तथा उनके जातीय व्यवसायके लिये एक एक अस्त्र और व्यवहारार्थ एक घोड़ा दिया। इस वंशके आदिपुरुषने अपनी दुर्बुद्धि-वशतः घोड़े के पंजरेमें गड्ढा बना कर उस पैर रख घोड़े पर चढ़ना चाहा। परमेश्वरने यह देख कर उसे अभिशाप दिया, कि 'तुम इसी प्रकार मिट्टी खोद खोद कर मूसा पकड़ कर खायगा।' तभीसे मूसा खाना इनका जातिय व्यवसाय हो गया है। मूसा पकड़ कर खाते हैं, इसीसे इनका नाम मुसहर हुआ है।

इन लोगोंके मध्य बहतवार, चाँड़वार, चिकसौरिया, धार, कनौजिया, मगहिया (मागधी) वा देशवार, नाथुआ, पछमा, सूरजिया और तिरहुतिया नामके कई दल हैं। इनमेंसे चाँड़वार दलमें—धरमुल्ला, चिकसौरिया दलमें—गियारी, कछुहा, कोसिलवाड़, महतवार, पुत्वारी, फुलवार और शोनवाही ; मगहिया दलमें—बालकमुनि, दैतनिया, गहलोत, पैल, रिखमुनि, ऋषिमुनि और तिसवाड़िया तथा तिरहुतिया दलमें—बाँसघाट, पहाड़ोलगर, धनहारिया, सरपुरका-यकवाड़िया, कसमेठा, मत्तारिया, बैयार, बलगाछिया, बत्वाड़ी, भादुयार, भाखियासिन, मुंड़यार, चुड़िहार, धङ्गपतिया, दियार, दोदकार, गौड़िया, गेण्डुआ, गिभारी, काश्यप, खटवार, मेहारिया, मन्दवार, सन्धोया, सोनधुआर, खुरुयार, ठिकाइत, भोगता, उलौड़िया और उपवाड़िया आदि गोत्र या वंश-विशेषका परिचय पाया जाता है।

इन लोगोंमें भी सगोत्र विवाह नहीं होता। यहां तक, कि माता वा मातामह अथवा पितामहके विवाह-सम्बन्धीय गोत्र सम्पर्कमें भी विवाह निषिद्ध है। गङ्गाके उत्तर तीरवासी मुसहरोंमें विशेषतः बाल्यविवाह ही चलता है। किन्तु शाहाबाद जिलेमें युवती कन्याका विवाह होते देखा जाता है। विवाहकालमें इनका कोई मन्त्र नहीं है। किसी भी श्रेणीके ब्राह्मण इनकी पुरोहिताई नहीं करते।

विवाहमें वरके शिर पर चावल और जल छिड़का जाता है। इसके बाद कन्याकी माता आकर कन्याको अपनी गोदमें बिठाती और वर पांच बार मांगमें सिन्दूर लगाता है। विवाहके समय ये लोग हिन्दूके अनुकरण पर कुछ देशाचारोंका भी अनुष्ठान करते हैं।

बहुविवाह निषिद्ध होने पर भी सगाई प्रथासे विधवा विवाह होता है। ये लोग कालो, ठाकुराणी माई, तुलसीवीर, रामवीर, भरवारवीर, आसनवीर, चड़कवीर और रिखमुनिकी पूजा करते हैं। वीरोंकी पूजामें शूकरबलि तथा अन्यान्य उपहार चढ़ाए जाते हैं। ब्राह्मणकी सलाह ले कर भकत लोग वीरोंकी पूजा करते हैं। विवाह, जातकर्म, नामकरण आदि विषयोंमें ये लोग ब्राह्मणसे शुभदिन निर्णय करा लेते हैं। हिन्दूको तरह ये लोग भी अन्त्येष्टिक्रिया तथा श्राद्ध करते हैं। सिर्फ १५ दिन अशौच रहता है। वार्षिक श्राद्ध भी होता है। श्राद्ध-कर्ममें भाँजा पुरोहिताई करते देखा जाता है। वैशाखी पर्व, माघकी श्रीपञ्चमी पर्व, शुक्ल श्रावणपञ्चमी पर्व तथा वर्षारम्भमें कजरी पर्व और होली वा फगुआ पर्वोत्सवमें ये लोग बहुत आमोद प्रमोद करते हैं। इनमेंसे वैशाखी और माघी पर्व बड़े ठाटबाटसे किया जाता है।

मुसहिल (अ० वि०) वह दवा जिससे दस्त आवे, दस्तावर।

मुसाफि—एक मुसलमान-कवि। इसका असल नाम शेख गुलाम हमदनी था। रोहिलखण्डके मुरादाबाद जिलान्तर्गत अमरोहा नगरमें इसका जन्म हुआ था। पीछे वहांसे आगरा नगरमें आ कर कुछ दिन ठहरा। लखनऊ नगरमें रहते समय इसकी कवित्व प्रतिभा चमक उठी। १८३० ई०में इसका जीवन-प्रदीप सदाके लिये बुझ गया। वह छः दीवान और दो कविजीवनी लिख गया है।

मुसाफिर (अ० पु०) यात्री, राहगीर।

मुसाफिर—१ मुसलमान-साधु वा फकीर। धर्मप्राण मुसलमानोंने इन फकीरोंके रहनेके लिये नगर नगरमें जो मकान बनवा दिये हैं उन्हें मुसाफिरखाना कहते हैं।

मुसाफिरखाना (अ० पु०) १ यात्रियोंके खास कर रेलवे यात्रियोंके ठहरनेके लिये बना हुआ स्थान। २ धर्मशाला, सराय।

मुसाफिरत (अ० स्त्री०) मुसाफिर होनेकी दशा, मुसाफिरी।

मुसाफिरी (अ० स्त्री०) १ मुसाफिर होनेकी दशा। २ यात्रा, प्रवास।

मुसा-बिन-मैमुन—एक प्रसिद्ध मुसलमान-दार्शनिक। पाश्चात्य यूरोपखण्डमें ये Maimon des नामसे प्रसिद्ध हैं। चिकित्साविद्यामें भी इनकी अद्भुत पारदर्शिता थी, इसीसे यहूदियोंने इन्हें वैद्यश्रेष्ठ (Eagle of doctors) कहा है। आवेरहो (Averrhoes) नामक विख्यात पण्डितवरके समीप रह कर इन्होंने दर्शन और आयुर्वेद शास्त्र सीखा था। इसी समय वे अरबी, हिब्रू, कालदीय और तुर्कभाषा भी सीखने लगे। आखिर इन्होंने कायरो नगरमें आ कर दर्शनशिक्षाके प्रचारके लिये एक मठ खोला। ग्रीस और अलेकसन्द्रिया आदि दूर दूर देशोंसे अनेक छात्र इनके निकट पढ़ने आते थे। इनका बनाया हुआ धर्मतत्त्व नामक एक बड़ा ग्रन्थ जनसाधारणकी आदरकी वस्तु है।

मुसाहब (अ० पु०) वह जो किसी धनवान् या राजा आदिके समीप उसका मन बहलाने अथवा इसी प्रकारके और कामोंके लिये रहता है, पार्श्ववर्त्ती।

मुसाहबत (अ० पु०) मुसाहबका पद या काम।

मुसाहबी (अ० स्त्री०) मुसाहबका पद या काम।

मुसीका (हिं० पु०) मुसका देखो।

मुसीबत (अ० स्त्री०) १ तकलीफ, कष्ट। २ विपत्ति, संकट।

मुस्क—बेलुचिस्तानका एक पाश्चात्य भूभाग। यहां दुर्गादिसे परिशोभित अनेक नगर देखे जाते हैं। मेमा-

सनि, नौशिरवासी और मेरवारी ब्राहुइ जाति यहाँ अपना प्रभाव फैलाए हुई है।

मुस्किल (अ० स्त्री०) मुश्किल देखो।

मुस्की (हिं० स्त्री०) मुसकराहट देखो।

मुस्टंडा (हिं० वि०) १ हृष्टपुष्ट, मोटा ताजा। २ बदमाश, गुंडा।

मुस्त (सं० पु०) मुस्तयति एकत्र संहतीभवतीति मुस्त-क, एकशिफायामस्य बहुमूल-सम्बद्ध तया तथात्वं। १ मुस्तक, नागरमोथा। १ कन्दविषभेद।

मुस्तक (सं० पु० क्ली०) मुस्त स्वार्थे कन्। तृणमूल-विशेष, मोथा। इसे तैलङ्गमें तुगमेस्त, सकहतु-गुविय और तामिलमें कोरय कहते हैं। संस्कृत पर्याय—कुरुविन्द, मेघ, मुस्ता, मुस्त, राजकसेरु, मेघाख्य, गाङ्गेय भद्रमुस्तक, अभ्रनामक, श्रीभद्रा, भद्रक, भद्रा। गुण—तिक्त, कटु, वायुनाशक, ग्राहक, दीपन। (राजव०) भावप्रकाशके मतसे पर्याय—वारिदनामक, कुरुविन्द, कोरक-सेरुक, भद्रमुस्त, गुन्द्रा, और नागर मुस्तक। गुण—कटु, शीतल, ग्राहक, तिक्त, दीपन, पाचन कषाय, कफ, पित्त, अस्रक्, तृष्णा, ज्वर और कृमि-नाशक। अनुपदेशमें जो मोथा उपजता है वही बढ़िया है। सब प्रकारके मोथोंमें नागरमोथेको श्रेष्ठ बतलाया है। १ स्थावर विषभेद।

"चत्वारि वत्सनाभानि मुस्तके द्वे प्रकीर्त्तिते॥"

(सुश्रुत कल्पस्था० २ अ०)

मुस्तकादि (सं० पु०) विषम ज्वरमें कषायभेद।

मुस्तकाद्यमोदक (सं० क्ली०) अजीर्णरोगमें प्रयोज्य मोदक-औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, चितामूल, लवङ्ग, जीरा, कृष्णजीरा, यमानी, वनयमानी, सौंफ, पान, सोयाँ, शतमूली, धनियाँ, दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, मेथी और जायफल, प्रत्येक २ तोला करके, मोथा ४८ तोला और चीनी कुल मिला कर जितना हो उससे दूनी अर्थात १॥० सेर।

इन सब द्रव्योंको यथाविधान पाक करके मोदक बनावे। मात्रा ॥० तोलासे १ तोला, और अनुपान शीतल जल बतलाया गया है। प्रति दिन शामको इसका सेवन करनेसे ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य अरुचि, अजीर्ण, आमदोष और विसूचिका आदि रोग नष्ट होते हैं तथा बलवीर्य और अग्निकी वृद्धि होती है।

(भैषज्यर० ग्रहण्यधिकार)

मुस्तग—मध्यएशियाके चीन-तातारमें अवस्थित कौन-लुन पर्वतमालाके एक अंशका नाम। मुस्तगसङ्कटके दक्षिण अक्षु और कोकशाल नदीके सङ्गमस्थल पर अक्षु नगर बसा हुआ है। यह अक्षा० ७८° ५८' उ० तथा देशा० ४१° ६' पू०के मध्य फैला हुआ है। पश्चिम और पूर्व एशियाके चीन देशीय पण्यद्रव्योंका वाणिज्यकेन्द्र होनेके कारण यह नगर बहुत समृद्धिशाली हो गया है।

मुस्तगिरि (सं० पु०) पर्वतभेद।

मुस्तग़ीस (अ० पु०) १ वह जो किसी प्रकारका इस्त-ग़ासा या अभियोग उपस्थित करे, फरियादी। २ मुद्दई, दावेदार।

मुस्तनद (अ० वि०) जो सनदके तौर पर माना जाय, विश्वास करनेके योग्य, प्रामाणिक।

मुस्तसना (अ० वि०) १ अलग किया हुआ, छाँटा हुआ। २ जो अपवाद स्वरूप हो। ३ जिसका पालन औरोंके लिये आवश्यक हो, बरी किया हुआ।

मुस्तहक (अ० वि०) १ हकदार, अधिकारी। २ योग्य, पात्र।

मुस्ता (सं० स्त्री०) मुस्त टाप्। मुस्तक, मोथा।

मुस्ताइद खाँ—सम्राट् बहादुर शाहके वजीर इनायत उल्ला खाँका मुन्शी। इसका असल नाम महम्मद शाकी था। इसने मासिर-इ-आलमगिरी नामसे सम्राट् आलमगीर बादशाहका इतिहास लिखा है। ४० वर्ष तक मुगल-राजसरकारमें रह कर इसने जो सब घटनाएं अपनी आखों देखी थीं उन्हींका इस ग्रन्थमें विवरण है। अपने प्रतिपालकके आदेशसे इसने १७१० ई०में उक्त ग्रन्थ समाप्त किया।

मुस्ताक—पटनावासी मुसलमान-कवि महम्मद कुलीखाँ का एक नाम। इसके पिताका नाम हासिम कुली खाँ था। इसने महम्मद रोशन जोसिस्के समीप लिखना पढ़ना सीखा था। पीछे यह नवाव जैन उद्दीन अहाद खाँ हैवतजङ्गके गृहरक्षक (दारोगा) के पद पर नियुक्त हुआ। १८०१ ई०में इसकी मृत्यु हुई।

मुस्ताकी—दिल्लीवासी एक मुसलमान-कवि। इसका असल नाम शेख रिजाक-उल्ला था, किन्तु इसकी काव्योपाधि मुस्ताकी थी और इसी नामसे यह जनसाधारणमें परिचित था। इसने सुलतान सिकन्दर वादशाहके शासनकालमें वकायत्-मुस्ताकी नामसे एक इतिहास लिखा। पारसी भाषामें रचित इसकी कवितादिमें मुस्ताकी तथा हिन्दी कविताओंमें 'राजन्' भणिता देखनेमें आती है। यह हिन्दी भाषामें 'जोतनिरञ्जन' नामक एक सुन्दर काव्य लिख गया है। इसका जन्म १४९५ और मरण १५६१ ई०में हुआ।

मुस्ताजव खाँ—गुलिस्तान-इ रहमत नामसे इसने अपने पिता हाफिज रहमत खाँका एक जीवन-इतिहास लिखा है। १८३३ ई०में इसकी मृत्यु हुई।

मुस्ताद (सं० पु०) मुस्तामत्तीति अद-अण्। शूकर, जंगली सूअर। यह मोथेकी जड़ खाता है।

मुस्तादि (सं० क्ली०) १ वातपैत्तिक ज्वरनाशक कषाय-औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मोथा, पित्तपापड़ा, चिरायता, खसखसकी जड़ और लाल चन्दन कुल मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला। जब जल ८ तोला रह जाय, तब उसे उतार कर आध तोला चीनी ऊपरसे डाल दे। इसका सेवन करनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होता है। २ विषमज्वरनाशक औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—मोथा, आँवला, गुलञ्च, सोंठ, भटकटैया कुल मिला कर २ तोला, इसे ३२ तोले जलमें पाक करे। जब जल ८ तोला बच रहे, तब नीचे उतार कर पीपलका चूर्ण २ माशा और मधु २ माशा डाल कर सेवन करे। इससे विषमज्वर अति शीघ्र नष्ट होता है।

मुस्ताफा—इसलामधर्म-प्रवर्त्तक महम्मदका एक नाम।

मुस्ताफा खाँ—१ दिउ प्रदेशका एक मुसलमान शासनकर्त्ता। यह तुर्क जातिका था। १५३१ ई०में दिउ आक्रमणकालमें इसने पुर्त्तगीजोंको परास्त किया था।

२ वङ्गालका एक मुसलमान विद्रोही। यह नवाव अलीवर्द्दी खांके विरुद्ध हो कर महाराष्ट्र दलमें मिल गया था।

मुस्ताफा (१म)—एक तुर्क सुलतान। यह १६१७ ई०में कुस्तुनतुनियाके सिंहासन पर बैठा, किन्तु अपने चरित्रदोषके कारण थोड़े ही समयके अन्दर राज्यच्युत और कारारुद्ध किया गया था। १६२१ ई०में अपने भतीजे ओसमानका काम तमाम कर फिरसे सिंहासन पर बैठा सही, पर निज कर्मदोषसे १६२३ ई०में अपने सेनादलके हाथ मार डाला गया।

मुस्ताफा (२य)—एक तुर्कसम्राट्। १६९५ ई०में यह सिंहासन पर अधिरूढ़ हुआ। यह एक विख्यात वीर था। तेमसया नामक स्थानमें इम्पिरियलिष्ट सेनादलको परास्त कर इसने भिनिसीय, पेलीय और रूसोंको हराया था। इसके वाद जयोल्लाससे विमुग्ध हो यह आद्रियनोपल-नगरमें आमोद प्रमोदमें दिन विताने लगा। इसी समय प्रजाओंने विद्रोही हो कर १७०३ ई०में इसे राज्यच्युत किया। इसके छः महीने वाद उन्माद रोगसे इसकी मृत्यु हुई।

मुस्ताफा (३य)—तुर्कसम्राट् अहमद तृतीयका पुत्र। १७५७ ई०में यह कुस्तुनतुनियाके सिंहासन पर बैठा। १७७४ ई०में इसकी मृत्यु हुई।

मुस्ताफा (४र्थ)—एक तुर्क सुलतान। १८०७ ई०में यह राजसिंहासन पर बैठा। उसके दूसरे ही वर्ष वह राजच्युत और निहत हुआ।

मुस्ताफापुर—२४ परगने जिलेके वशीरहाट उपविभागके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यहां राजा प्रतापादित्यका प्रतिष्ठित एक बड़ा नवरत्न मन्दिर विद्यमान है।

मुस्ताफानगर—मान्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत एक नगर।

मुस्ताफा विन् महम्मद सैयद—अक्साम आयात् कुरान नामक कुरानशास्त्रकी पारसी टीकाका प्रणेता।

मुस्ताफावाद—युक्तप्रदेशके मैनपुरी जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २७° ८' से २७° ३१' उ० तथा देशा० ७८° २७' से ७८° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३१८ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें एक शहर और २६५ ग्राम लगते हैं। अरिन्द, सेङ्गर, और सिरसा नामकी तीन नदी वहती हैं। यहां तहसील कचहरी तथा दीवानी और फौजदारी अदालत है।

मुस्ताफावाद—पञ्जाव प्रदेशके अम्वाला ज़िलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३०° १२' उ० तथा देशा० ७७° १३'

पू०के मध्य अवस्थित है। यहां सिख राजाका एक दुर्ग-प्रासाद है।

मुस्ताफाबाद—अयोध्या प्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। इस स्थान हो कर अवध रोहिलखण्ड रेल-लाइनके दौड़ जानेसे स्थानीय वाणिज्यकी बड़ी उन्नति हुई है। यहां हिन्दू और मुसलमान कीर्त्तिके अनेक निदर्शन हैं।

मुस्ताफाबाद—युक्तप्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत एक नगर। यह नगर पहले सौधमाला और समाधि-मन्दिरसे विभूषित था। अंग्रेजी शासनके पहले राजा दर्शन सिंहने इस नगरको लूटा था, तभीसे स्थानीय समृद्धिका अवसान हो गया है।

मुस्ताफा हुसेन—आगरा-वासी एक मुसलमान कवि। दिल्लीके विताड़ित राजकविश्रेष्ठ बहादुर शाहसे इसने काव्य और अलङ्कार शास्त्र सीखा था। स्वरचित दीवानके प्रत्येक गजलकी भणितामें इसने राजाकी काव्योपाधि 'जाफर' नामका ही व्यवहार किया है।

मुस्ताभ (सं० क्ली०) मुस्तस्येवाभा यस्य। मुस्तक-विशेष, नागरमोथा।

मुस्तु (सं० पु०) मुस्यति खण्डयत्यनेन मुस्-बाहुलकात् तुक्। मुष्टि, मुट्ठा।

मुस्तैद (अ० वि०) १ सन्नद्ध, जो किसी कार्यके लिये तत्पर हो,। २ चुस्त, चालाक।

मुस्तैदी (अ० स्त्री०) १ सन्नद्धता, तत्परता। २ उत्साह, फुरती।

मुस्तौफा (अ० पु०) वह पदाधिकारी जो अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंकी जाँच-पड़ताल करे, आयव्यय परीक्षक।

मुस्र (सं० क्ली०) मुस्-रक्। १ मूसल, मुसली। २ नयन-जल, आँसू।

मुहकम (अ० वि०) दृढ़, पक्का।

मुहकमा (अ० पु०) विभाग, सरिश्ता।

मुहतमिम (अ० पु०) व्यवस्थापक, इन्तजाम करनेवाला।

मुहतरफा (अ० पु०) वह कर जो व्यापार वाणिज्य आदि पर लगाया जाय।

मुहताज (अ० वि०) १ जिसे किसी ऐसे पदार्थकी बहुत अधिक आवश्यकता हो जो उसके पास बिलकुल न हो। २ आश्रित, निर्भर। ३ आकांक्षी, चाहनेवाला। ४ दरिद्र, गरीब।

मुहब्बनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका फल जो नारंगीकी तरहका होता है।

मुहब्बत (अ० स्त्री०) १ प्रीति, प्रेम। २ मित्रता, दोस्ती। ३ इश्क, लौ।

मुहब्बत खाँ—एक विख्यात मुगल-सेनापति। जहांगीर बादशाहकी कृपासे उच्चासन पा कर इसे भारी दिमाग हो गया और आखिर बादशाह होके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। यहां तक कि, राजशक्ति ग्रहण करनेकी उच्चाशाने उसके हृदयमें जड़ पकड़ ली थी। जिस राजनैतिक मन्त्रकुहकसे वह परिचालित हुआ था, जहांगीर और नूरजहां शब्दमें वह साफ साफ लिखा है।

जहांगीर और नूरजहां देखो।

काबुल नगरमें महब्बतका जन्म हुआ। पिता घोरबेगने इसका जमाना बेगनाम रखा था। सम्राट् अकबर शाहके अधीन जमानाबेग ५ सौ मनसबदार था। इस समय इसने कई छोटी छोटी लड़ाइयोंमें वीरता दिखा कर अच्छा नाम कमा लिया था। धीरे धीरे इसके बल-वीर्यकी कहानी चारों ओर फैल गई। इसके सिवा इसके पास और भी कितने सद्गुण थे जिनसे इसने जनसाधारनको वशीभूत कर लिया था।

सुराप्रियता और विलासिता जहांगीर बादशाहकी राजकार्यपरिचालनशक्तिकी घोर बाधक थी। उपयुक्त कर्मचारी तथा परिदर्शनके अभावमें मुगल-साम्राज्य छिन्न भिन्न हो जायगा, समझ कर बादशाह राजकार्यपटु अनेक सद्गुणसम्पन्न महब्बतके प्रति विशेष आकृष्ट हुए। धीरे धीरे पदोन्नतिके साथ साथ इसकी मर्यादा और ऐश्वर्यकी भी वृद्धि होने लगी। क्रमशः मुगलसाम्राज्यमें इसकी बहुत चल बनी।

बादशाह जहांगीर कभी कभी महब्बतकी सलाह न ले कर अपनी प्रियतमा पत्नी नूरजहांकी ही सलाह लिया करते थे। नूरजहां राज्यकी सर्वमयी कर्त्री हो उठी, देख कर महब्बत जलने लगा। १६२६ ई०में इसने सम्राट्को अपने काबूमें लानेके लिये दलबलके साथ उन्हें

पकड़ा और कुछ दिनके लिये बंदीभावमें अपने खेमेमें रखा। नूरजहां यह संवाद पा कर अपनी सेनाके साथ सम्राट्को छुड़ा लानेकी इच्छासे अग्रसर हुई। दोनों पक्षमें घनघोर युद्ध हुआ। किन्तु इस पर भी वह सम्राट्को छुड़ा न सकी। पीछे बड़े कौशलसे उसने सम्राट्का उद्धार किया।

मुहब्बतने नूरजहांके प्राणनाशके लिये जिस प्रकार सम्राट्को उभाड़ा था, नूरजहां भी उसी प्रकार बदला चुकाने लगी। मुहब्बत ताड़ गया, पर जरा भी परवाह न की। कुत्तेकी तरह नाना स्थानोंमें खदेरे जाने पर भी उसकी जिघांसावृत्ति अटूट रही। मलिनवेशमें वह आसफ खांके शिविरमें और शाहजहांको मुगलसिंहासन देनेका वचन दिया। जहांगीरके मरने पर मुहब्बतके ही उद्यमसे अनेक विघ्नबाधाओंको झेलते हुए शाहजहां भारत साम्राज्यके अधीश्वर हुए।

शाहजहांके शासनकालके दूसरे वर्ष मुहब्बत दिल्लीका शासनकर्त्ता हुआ। १६३४ ई०को दाक्षिणात्यमें रहते समय इसकी मृत्यु हुई। दाक्षिणात्यसे मृतदेह दिल्ली नगर ला कर दफनाई गई। इसके बड़े लड़के मिर्जा आमनउल्ला 'खानजमान' और छोटे लुहरास्पने 'मुहब्बत खाँ'की उपाधि पाई।

आगरा नगरमें यमुनाके किनारे मुहब्बतके प्रासादका ध्वंसावशिष्ट निदर्शन आज भी देखनेमें आता है।

मुहब्बत खाँ—विख्यात मुगलसेनापति मुहब्बत खाँका लड़का। इसका असल नाम लुहरास्प था। शाहजहांके शासनकालमें १६३४ ई०में पिताके मरने पर यह दो बार काबुलका शासनकर्त्ता बनाया गया था। १६७० ई०में सम्राट् आलमगीरने इसे काबुलसे ला कर महाराज यशोवन्तके बदले इसीको दाक्षिणात्य जीतनेके लिये भेजा था। १६७४ ई०में काबुलसे लौटते समय इसकी मृत्यु हुई।

मुहब्बत उल्ला खाँ (नवाब)—लखनऊवासी एक मुसलमान कवि। इसके पिताका नाम हाफिज रहमत खाँ था। इसने मिर्जा जाफरअली हजरत और मकीनसे विद्या सीखी थी। इसके बनाये हुए 'असार मुहब्बत' नामक मसनविका जनसाधारणके निकट विशेष आदर है।

मुहब्बत गाजी—वङ्गेश्वर अलीवर्दी खाँ।

अलीवर्दी खाँ देखो।

मुहम्मद (अ० पु०) अरबके एक प्रसिद्ध धर्माचार्य जिन्होंने इस्लाम वा मुसलमानी धर्मका प्रवर्त्तन किया था।

विशेष विवरण महम्मद शब्दमें देखो।

मुहम्मदी (अ० पु०) मुहम्मद साहबका अनुयायी, मुसलमान।

मुहर (फा० स्त्री०) मोहर देखो।

मुहरा (हिं० पु०) १ सामनेका भाग, आगा। २ निशाना। ३ मुंहकी आकृति। ४ शतरंजकी कोई गोटी। ५ पन्नी घोटनेका शीशा। ६ घोड़ेका एक साज जो उसके मुंह पर पहनाया जाता है।

मुहरी (हिं० स्त्री०) १ मोरी देखो। २ मोहरी देखो।

मुहर्रम—१ मुसलमानोंका पहला महीना। हिन्दुओंके निकट जिस प्रकार वैशाख मास पुण्यप्रद समझा जाता है, उसी प्रकार मुसलमानोंके लिये मुहर्रम है। इसीसे इस महीनेको मुसलमान लोग 'मुहर्रम-उल हराम' कहते हैं।

२ मुहर्रमके महीनेमें अनुष्ठेय मुसलमान पर्वभेद। यह पर्व प्रधानतः तीन भागोंमें विभक्त है,—१ला मुहर्रमकी ईद, २रा हसन हुसेनका आत्मोत्सर्ग और ३रा आशुरा या मुहर्रमके महीनेका आद्य दशाहसाध्य अनुष्ठान।

१ला मुहर्रमकी ईद।

मुसलमानोंका कहना है, कि मुहम्मद मुस्तफाका मुहर्रम उत्सव बहुत पहलेसे ही प्रचलित था। पैगम्बर महम्मदने अपने शिष्योंको इस उत्सवके साथ (आशुराके समय) १० कार्य करनेकी अनुमति दी—१ला स्नान, २रा नया कपड़ा पहनना, ३रा आंखोंमें काजल या सुरमा लगाना, ४था उपवास, ५वां भजन वा वन्दना, ६ठा तरह तरहकी रसोई बनाना, ७वां शत्रुमित्रमें समभाव अर्थात शत्रुके साथ मेल रखना, ८वां साधु और पण्डितोंका साथ करना, ९वां अनाथके प्रति दया और उन्हें भिक्षा देना, १०वां साधारण दरिद्रको भिक्षा देना।

मुसलमानोंके अनेक धर्मग्रन्थोंमें लिखा है, कि मुहर्रमके १०वें दिन ऐसी घटना हुई थी,—१ वृष्टिपात,

२ आदम और हवाका मर्त्यलोकमें अवतरण तथा प्रजा सृष्टिका आरम्भ, ३ दश हजार पैगम्बरोंकी पवित्र आत्मा को भगवद्यौत्यलाभ, ४ आर्या वा नवम स्वर्ग, ५ कुर्सी वा ईश्वरका स्फटिकका बना हुआ विचारासन, ६ विहिश्त या सप्तम स्वर्ग, ७ दोजख वा नरक, लोभह वा विचारफलनिर्देशक फलक, ६ कलम अर्थात् विचार लिखनेकी लेखनी, १० तकदीर अर्थात् अदृष्ट वा भाग्य, ११ हयात् या प्राण और १२ मामत् या मृत्युकी उत्पत्ति ।

२४ हसन-हुसेनका आत्मोत्सर्ग।

रौज़ात्-उस-सोहादा, कानजुल गराइब आदि ग्रन्थों में हसन और हुसेनके आत्मविसर्जनकी अनेक प्रकारकी कथायें लिखी हैं। इनमेंसे इतिहासकारोंने जिन्हें प्रामाणिक समझ कर प्रकाशित किया है, वही नीचे लिखा जाता है।

ओसमानने अपने शासनकालमें आत्मीय मयाविया-को सिरियाराज्य प्रदान किया। मयावियाके मरनेके बाद उसका लड़का आयजिद सिरियाके सिंहासन पर बैठा। उस समय मुहम्मदके वंशधर इमाम हसन उत्तराधिकारीकी हैसियतसे * मदीनाके सिंहासन पर अरबके खलीफारूपमें अधिष्ठित थे।

दुष्ट प्रजाओंकी उत्तेजनासे आयजिदके साथ हसन-की शत्रुता चली। आयजिद भी अहङ्कारसे उन्मत्त हो गया। उसने हसनको सामान्य फकीरका लड़का और दुर्बल समझ कर अपनी अधीनता स्वीकार करनेको कहला भेजा।

हसनने यह सुन कर सिरियापतिको सूचित किया, 'क्या हो आश्चर्य है, कौन किसकी पूजा करेगा! कहांसे धर्मराज्य स्थापित हुआ? अच्छी तरह सोच विचार लो। धनलोभ और रिपुके वशवर्त्ती हो कर ऐसा अन्याय कार्य करनेका दुस्साहस न करो; क्या तुम्हें मालूम नहीं, कल ही तुम्हें खुदाके समीप इसकी कैफियत देनी होगी। हसनकी बात पर आयजिद जरा भी विचलित नहीं हुआ।

अवदुल्ला जुवर नामक एक मदीनावासी आयजिदके अधीन काम करता था। उसे एक अत्यन्त रूपवती स्त्री थी। उस स्त्री पर आयजिद आसक्त हो गया। एक दिन आयजिदने जुवरको अपने महलमें बुला कर कहा, 'जुवर! मेरे एक सुन्दर और चतुर बहन है, क्या तुम उससे विवाह करना चाहते हो? मैं समझता हूं, कि तुम ठीक उसके उपयुक्त पात्र हो।' यह सुन कर अवदुल्ला मानो एक तरहसे राजी हो गया, आशासे उत्साहित हो उसने कहा, 'जहांपनाह! तन मन धनसे यह दास आपकी आज्ञा पालन करनेको तैयार है।' आयजिद उसे अन्दर महलमें बैठा कर कहीं चला गया। एक घंटेके बाद फिर आ कर कहा, 'अवदुल्ला! कन्याकी बिलकुल इच्छा है, तुम्हारे सिवा दूसरेके साथ वह विवाह करना नहीं चाहती। किन्तु तुम्हारा विवाह हो चुका है, इसलिये जब तक तुम वर्त्तमान पत्नीको छोड़ न दो, तब तक वह तुमसे विवाह नहीं कर सकती।' मूर्ख अवदुल्लाने उसी समय अपनी स्त्रीको तलाक-मुताल्लक नियमके अनुसार छोड़ दिया। आयजिद फिर एक बार लौट कर बोला, 'राजकन्या अभी राजी हो गई है, वह चाहती है, कि विवाहका दहेज पहले ही मिल जाय।' जुवरने कहा, 'मैं दरिद्र हूं, राजकन्याको देने लायक मेरे पास दहेज कहां?' आयजिदने उसे आश्वासन दे कर कहा, 'इसके लिये चिन्ता मत करो, मैं तुम्हें सूवादार बना कर भेजता हूं।' यह कह कर उसने जुबेरको बहुत दूर देशमें भेज दिया, साथ साथ वहांके सूबेदारको लिख भेजा कि जुबेरको पहले सूबेदारी पद दे कर जिस किसी तरहसे हो उसका प्राण ले लेना।' आखिर सूबेदारने वैसा ही किया।

इधर आयजिदने अपने राजदूत मूसा असरीके हाथ जुबेर-की स्त्रीको कहला भेजा, 'बिना अपराधके तुम्हारे खामीने तुम्हें छोड़ दिया इसके लिये खुदाने भी उसे उपयुक्त सजा दी है। अभी यदि तुम चाहो, तो मेरी महिषी बन सकती हो। दूतके मदीना पहुंचने पर इमाम हसनने उसे आनेका कारण पूछा। इसने सारी बातें कह सुनाईं।

* महम्मदके बाद आबूबकर पीछे ओमर, ओमरके बाद ओसमान, ओसमानके बाद मुहम्मदका दामाद, अली खलीफा हुआ था। इसीसे अलीके लड़के हसन और हुसेन थे।

इस पर इमामने भी उसे कह दिया कि, यदि वह औरत आयजिदसे विवाह करना न चाहती हो तो उसे कह देना, कि मैं उससे विवाह करनेको तैयार हूं।

मूसाने आ कर जुबरकी स्त्रीसे पहले सिरियाराजके धनऐश्वर्यका हाल कहा, पीछे राजाका आदेश भी कह सुनाया। दूतके मुखसे सारी बातें सुन कर जुबेरकी स्त्रीने कहा, 'तुम्हें क्या और कुछ कहना है ?' दूत बोला, इस शहरके खलीफा अलीका लड़का और मुहम्मदका नाती इमाम हसन भी तुमसे विवाह करना चाहता है।' स्त्रीने बड़े धीर-भावमें उत्तर दिया, 'धन जन ऐश्वर्य यह सभी क्षणिक है, ज्वारके जलके जैसा है, अतएव मैं धन ऐश्वर्य कुछ भी नहीं चाहती। पर हां, जिस धनको पानेसे मैं खुदाके समीप जवाब दे सकूं, उसी हसनके धनसे मैं धनी होना चाहती हूं।

दूतके मुखसे यह बात सुन कर हसन उसके घर गया और उससे विवाह कर लिया। दूत लौट कर आयजिदके पास आया और सारी घटना कह सुनाई। उसी दिनसे आयजिद हसनका जानो दुश्मन हो गया। उसने विष खिला कर हसनका प्राण लेना चाहा। किन्तु हसन पहले होसे ताड़ गया था, इस कारण आयजिद्की एक भी चाल न चली। इसके बाद आयजिदने कुफी-की प्रजाओंसे कहा, 'तुममेंसे जो कोई हसनको अपने राज्यमें बुला कर उसका काम तमाम करेगा, उसे मैं अपना 'वजीर' बना दूंगा।

कुफोकी प्रजा इस प्रलोभनमें भुला गई। उन्होंने हसनके पास झूठा संवाद भेजा कि, हम लोग आयजिद्-के उत्पीड़नसे तंग तंग आ गये। इस समय यदि आप दया कर कुफी-राज्यमें पधारें, तो सभी प्रजा आपकी ओरसे तलवार उठावेगी।' हसन मीठी मीठी बातोंमें पड़ कर कुफीदेशको चल दिया। इधर आयजिदने भी अपने मन्त्री मारवानको मदीना भेजा।

हसन मुसलनगरमें आ कर वहाँके प्राकृतिक सौन्दर्य-से विमुग्ध हो एक गृहस्थका अतिथि हुआ। गृहस्थने अच्छा मौका देख कर उसी दिन खाद्यमें विष मिला दिया। किन्तु इससे हसनका कुछ भी अनिष्ट न हुआ, देख उसने फिरसे विषका प्रयोग किया। इस बार हसन अत्यन्त पीड़ित हो गिर पड़ा। तुरत आयजिद्के पास यह खबर भेजी गई। आयजिदने गृहस्थको लिख भेजा कि, 'जिस किसी तरहसे हो, इसका काम तमाम करो। वजीरका पद तुम्हें ही मिलेगा।' संयोगवश वह पत्र हसनके हाथ लगा। अब वह बिलकुल चुप रहा, किसी से कुछ नहीं कहा। उसने स्थिर किया, कि फौरन यहां-से निकल जाना ही अच्छा है।

एक दिन एक दुष्ट बर्छेकी नोकमें विष लगा कर हसनके पास आया और हाथ जोड़ कर बोला, 'मेरे आँख नहीं हैं, मुझे पूरी उम्मीद है, कि यदि मैं श्रीमान्‌के चरण-कमलमें दोनों आंखोंको घिसूं तो फिरसे आंख पा जाऊं।' इतना कह कर वह हसनके चरणोंमें लेट गया और बर्छेसे इमामके शरीरको बुरी तरह घायल कर दिया। रक्तस्रोत बहने लगा। वहां जितने आदमी खड़े थे सबोंने उस दुष्टको पकड़ना चाहा। हसनने उन्हें रोक कर कहा, रक्तके बदलेमें रक्त लेनेका नियम है सही, पर अभी तक मैं जीवित हूं; अतएव इस अभागेका प्राण क्यों नष्ट किया जायगा ? यह निश्चय जानो, खुदा इस पाखण्डीको सचमुच अंधा बना कर उपयुक्त दण्ड देंगे।' इस प्रकार हसनने उस दुर्वृत्तको छोड़ तो दिया, पर विषकी ज्वालासे बहुत दिन तक कष्ट भोग किया था।

अब शत्रुपुरीमें रहना अच्छा न समझ कर हसन मदीना लौटा। वहां आयजिदका मन्त्री मारवान पहले हीसे ठहरा हुआ था। उसने जोयादा नामक एक औरत-को मोटी रकम दे कर काबू कर लिया और उसके हाथ तीव्र विष दे कर हसनका प्राणनाश करनेको कहा। वह दुष्ट औरत धनके लोभसे गहरी रातको विष ले कर हसनके सोनेके कमरेमें गई। वहां उसने देखा कि सिरहानेमें मसलिनसे ढका हुआ एक जलपात्र रखा हुआ है, सो वह फौरन उसी जलमें विष मिला कर वहांसे चल बनी। हसन उस समय भी पीड़ित ही था, उसने प्याससे व्याकुल हो कर अपनी बहन कुलसुमसे जल मांगा। कुलसुमने बिना जाने उसी विषाक्त जल-पात्रको भाईके हाथ दे दिया। जल पीते ही हसनको तमाम अन्धकार ही अंधकार दिखाई देने लगा, विषकी

यन्त्रणासे वह तड़पने लगा। उसे मालूम हो गया, कि इस बार बचनेकी कोई उम्मीद नहीं। छोटे भाई हुसेनको बुला अनेक प्रकारके हितोपदेश दे वह इस लोकसे चल बसा। जन्नात उल-बकिया नामक कब्रमें उसकी लाश गाड़ी गई।

हुसेनने भाईके लिये बहुत विलाप किया। उसके आत्मीय स्वजनोंने उसे बहुत समझाया बुझाया। अब वही खलीफा हुआ। कुफाके अधिवासियोंने उससे क्षमा मांगते हुए कहा, 'खुदाके नाम पर सौगंध खा कर हम लोग कहते हैं, कि यदि आप इन दरिद्रोंके देशमें पदार्पण करें, तो इस बार हम लोग निश्चय ही धर्मके लिये आपकी ओरसे प्राणपणसे युद्ध करेंगे।'

सरल हृदयवाले हुसेनने कुफियोंकी बात पर विश्वास कर अपने प्रिय भतीजे मुसलिमको वहां भेजा। मुसलिमके कुफा पहुंचने पर तीस हजार लोगोंने आ कर उसकी पूजा की और वे सभी रात दिन उसका आदेश पालन करनेमें मुस्तैद रहे। उन लोगोंके आनुगत्यका संवाद मुसलिमने हुसेनको लिख भेजा। इस संवादसे हुसेन नितान्त प्रीत और उत्साहित हो अपने तथा भाईके परिवारको साथ ले कुफा राज्यमें चल दिया।

इधर आयजिदने कुफियोंको कहला भेजा, 'खबरदार! जो हुसेनका पक्ष लेगा, उसका निस्तार नहीं, वह सवंश मारा जायेगा।' मुसलिमको सभी कुफावासी चाहते थे, उन्होंने आयजिदके कठोर संवादको उसके सामने खोल दिया। सबोंने उसे सलाह दी, कि अब क्षण भर भी इस राज्यमें उसे रहना उचित नहीं।

मुसलिम हानी नामक एक व्यक्तिके घर छिप रहा। आयजिदके अनुगत सूबेदार अबदुल्लाको यह खबर मालूम हो गई। उसने मुसलिमको हाजिर करनेके लिये हानीसे कहा। भक्त हानीने उसकी बात पर कान नहीं दिया। सूबेदारके हुकुमसे हानी मारा गया। मुसलिम भी पकड़ा और निष्ठुर भावसे मारा गया। उसके ६।७ वर्षके दो अनाथ लड़के कैदमें ठूस दिये गये। दोनों लड़कोंके मलिन मुखको देख कर जेलरको तरस आया। उसने दोनों लड़कोंको बचानेकी आशासे छोड़ दिया। वे दोनों सुरा नामक एक काजीके घर छिप रहे।

सूबेदारने दोनों बालकको पकड़नेके लिये ढिंढोरा पिटवा दिया। सुराने डरके मारे उन्हें काफिला वा पर्यटक दलके साथ भेज दिया। शामको वे दोनों अपने साथी और पथको भूल गये। अब वे एक खजूर पेड़के नीचे बैठ कर रोने लगे। इसी समय हारिसकी एक क्रीतदासी जल ले कर उसी राहसे जा रही थी। उसने दोनों बालकोंका चाँदसा मुखड़ा देख कर कहा, 'क्या तुम ही दोनों मुसलिमके लड़के हो?' पिताका नाम सुन दोनों बालक और भी फूट फूट कर रोने लगे। क्रीतदासी उन्हें अपने मालकिनके पास ले आई। हारिसकी पत्नी दोनों बालकका मुँह देख कर मातृस्नेहसे अभिभूत हो गई। गोदमें ले कर वह रोने लगी और पुत्रके समान उनका लालन पालन करने लगी। हारिस पर भी उन दोनों बालकोंको पकड़नेका भार था। किन्तु उसकी स्त्रीने खामोसे यह बात न कही और दोनों बालकोंको पासवाली कोठरीमें छिपा रखा। रातको बालकने स्वप्नमें देखा, कि उसका पिता मुसलिम उन्हें खोज रहा है। वे दोनों बड़े जोरसे चिल्ला उठे। वह चिल्लाहट हारिसके कानमें पहुंची। धूर्त्त हारिस बड़ी तेजीसे वहां आया और दोनों लड़कोंको पहचान लिया। बस फिर क्या था, उसने दोनोंको पकड़ कर एक दूसरेके बालोंमें बांध दिया। उसकी स्त्री दासदासी आत्मीय स्वजनोंने उसे इस कामसे रोका, परन्तु हारिसने किसीकी बात न सुनी। राहमें एक नदीके किनारे दोनों बालकोंकी हत्या की गई। हारिस दोनों मुण्ड ले कर सूबेदारके पास हाजिर हुआ और इस कामके लिये इनाम मांगा। किन्तु कोई भी हारिसके व्यवहार पर प्रसन्न नहीं हुआ, सभी इस हृदयविदारक घटनाको देख कर विचलित हो गये। सूबेदार अबदुल्लाने बड़े असंतुष्ट हो कर कहा, 'मैंने तुम्हें मार डालनेका हुकुम नहीं दिया था, केवल पकड़ लानेको कहा था, तब फिर ऐसा घृणित कार्य क्यों किया? जिस नदीके किनारे दोनों अनाथ बालकोंका सिर काटा गया है, वहीं पर तुम्हारा भी सिर काटा जायेगा।' सूबेदारका हुकुम फौरन तामिल किया गया, हारिसको अपने किये हुए कामोंका उचित इनाम मिला।

इसके बाद इमाम हुसेन कुफिराज्यमें आये। यहां

मुसलिम तथा उसके दो नन्हें लड़कोंके मारे जानेकी खबर सुन कर बड़े मर्माहत हुए। इसके कुछ समय बाद ही सिरियासे आयजिदके दो वजोर हुसेनके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुए। उन्होंने हुसेनको कहला भेजा, 'हुसेन! यदि जीवनमें ममता हो, तो फौरन आयजिदकी अधीनता स्वीकार कर जाओ, नहीं तो तुम्हारा निस्तार नहीं।' उत्तरमें हुसेनने कहा, 'क्या तुम लोग मुसलमान हो? क्या तुम्हारी अक्ल मारी गई है, खिलाफत किसका है? किसके पिता और किसके नानासे इस्लामधर्मका प्रचार हुआ है? यदि तुम लोग मेरे विरुद्ध 'जहाद' (धर्म-युद्ध) करना चाहते हो, तो मैं खुदाके पैरों पर अपनी जान न्योछावर करनेको तैयार हूं।'

सिरियापतिने युद्ध ठान देनेको हुकुम दे दिया। आयजिदकी सेनाने फुरात (युफ्रे टिस) नदीके समीप छावनी डाली। नदीके दूसरे किनारे 'मारिया' नामक जंगलमें हुसेन दल बलके साथ उपस्थित हुए। यही स्थान 'करवला' नामसे मशहूर है। करवलामें पहुंच हुसेनने सबों से सम्बोधन कर कहा था, "भाई मुसलमान, इस्लाम-धर्मिगण! यदि किसीको भी स्त्री-पुत्रपरिवारके प्रति ममता हो, तो मैं दिल खोल कर कहता हूं, तुम लोग इस करवलाको छोड़ कर अपने घर चले जाओ। क्योंकि दिव्य चक्षुसे देखता हूं, कि मैं इस करवलामें धर्मके लिये जीवन उत्सर्ग करूंगा, तव फिर व्यर्थ क्यों तुम लोग मेरे लिये कष्ट और विपद् झेलोगे?" इस प्रकार हुसेनके कहनेसे कोई तो मक्का और कोई मदीनेकी ओर चल दिया। सिर्फ ७२ आदमी वहां रह गये। पीछे ओमर और अवदुल्लाके अधीन कुछ दल सिपाही आयजिदका पक्ष छोड़ कर हुसेनके दलमें मिल गया। शत्रु-पक्षमें ३० हजार आदमी थे। हुसेन मुट्ठी भर सेना ले कर कब तक ठहर सकते थे। उनके प्रिय अनुचरोंने धर्मके लिये सैकड़ों शत्रुसेनाको यमपुर भेज कर अपने जीवनको उत्सर्ग कर दिया था। उनमेंसे हुर, अवदुला, औवन, हन्तला, हयलाल, अब्बास, अकवर और कासिम ही प्रधान थे।

धर्मयुद्धमें जब सभी एक एक कर प्राण दे रहे थे, उसी समय हुसेनके प्रिय पुत्र जैन-उल-आवेदीन कठिन रोगसे पीड़ित रहने पर भी धर्मके लिये प्राण न्योछावर करने पर उतारू हो गये। उनका अभिप्राय समझ कर हुसेनने अपने पुत्रको आलिङ्गन कर कहा, 'मेरे नयनोंके तारे! ऐसी बात फिर कभी भी मुखसे न निकालना, तुम मेरे वंशकी रक्षा करोगे। मेरे पिता, पितामह और बड़े भाई जो दैव रहस्य रूपी मन्त्र मेरे कानोंमें फूंक गये हैं, मैं उस अमूल्य रत्नको तुम्हें देता हूं, प्रलय काल तक मेरा वंशधर उस रहस्यका अधिकारी रहेगा।'

जैन-उल-आवेदीन पितासे वह गुप्त रहस्य मालूम कर उनके आदेशानुसार रणस्थलको छोड़ चले गये। पुत्रको विदा कर हुसेन जुलजन्ना नामक अपने एक प्रियतम घोड़े पर रणस्थलमें प्रकट हुए। उस समय वे प्याससे छटपटा रहे थे, कहीं भी जल नहीं मिलता था। शत्रुपक्षको सम्बोधन कर उन्होंने कहा, 'मुसलमान भाइयो! क्या तुम लोग नहीं जानते, कि मेरे जिस मातामहके मूल मन्त्रको तुम लोग उच्चारण करते हो, मैं उन्हीं पैगम्बरका नाती हूं और अलीका पुत्र हूं। ईश्वर अथवा अपने पैगम्बरसे क्या तुम लोग डरते नहीं, उस अन्तिम विचारके दिन क्या तुम्हें मेरे मातामहकी जरूरत नहीं पड़ेगी? उस अन्तिम दिनको सोच कर क्या तुम लोग भीत और कम्पित नहीं होते? तुम लोगोंके हाथसे धर्मके लिये हमारे आत्मीय कुटुम्ब बन्धु बान्धव सभी प्राण विसर्जन कर रहे हैं। यह सब बात तो दूर रहे, अभी मेरा यही अनुरोध है, कि परिवार सहित मुझे इस अरब देशसे आजम (पारस्य) देश जाने दो। यदि जाने न दोगे, तो खुदाकी दुहाई है, थोड़ा जल पिला कर मेरी जान बचाओ। देखो! तुम्हारे हाथी, घोड़े, ऊंट, गाय, बैल सभीको काफी जल मिल रहा है, किन्तु मैं ऐसा अभागा हूं कि मेरा परिवार जलके लिये तड़प रहा है (जलाभावसे मातृस्तनमें भी दूध नहीं, बच्चोंके कण्ठ सूख रहे हैं।

हुसेनके कातर स्वरसे सबोंका हृदय पिघल गया। बहुतेरे उनके सामनेसे हट गये, कुछ समयके लिये शान्ति डंका बजाया गया। किन्तु शान्ति कहां? उनके परिवारके मध्य जलके लिये हृदयभेदी आर्त्तनाद हो रहा था।

दूसरे दिन पुनः रण-डंका बजाया गया। आज हुसेन जीवन उत्सर्ग करनेके लिये प्रस्तुत हुए। आज

उन्होंने आत्मीय स्वजनोंको आलिङ्गन करते हुए कहा, मेरे आत्मोसर्गके बाद कोई भी बिखरे हुए बालोंसे छाती पीट पीट कर न रोना, विलाप करना मूर्खोंके लिये है, ज्ञानियोंके लिये नहीं। विपद् और विरहमें धैर्य रखना ही कर्त्तव्य है।' इस प्रकार आत्मीय स्वजनोंको उपदेश दे कर धर्मवीरने एक बार रुद्रमूर्त्ति धारण की। इस बार उनके प्रबल आक्रमणको शत्रु सेना सह न सकी, युफ्रे-टिसके दूसरे किनारे तक खदेरी गई। किन्तु अफसोस! हुसेन प्यासे थे, आगे कदम नहीं बढ़ता था, जल मिला सही, पर उसी समय उन्हें तृष्णार्त्त परिवारवर्गकी याद आ गई, जल पीना हराम समझा और घोड़े परसे उतर गये। इस समय परीराज-पुत्र जाफर उनकी मददमें वहां पहुंचा। उसने अलक्ष भावमें युद्ध करके शत्रुकुल-को निर्मूल करनेका अभिप्राय प्रकट किया। किन्तु हुसेनने धीरभावसे कहा, 'जाओ जाफर! मैं तुम्हारी सहायता नहीं चाहता। तुम अमानुष हो, तुम्हारे साथ मानुषका युद्ध नहीं शोभता। मैं अधर्म युद्ध हरगिज नहीं करूंगा। फिर युद्ध करनेका ही क्या प्रयोजन! मुहूर्त्त भरके लिये इस संसारमें आया हूं,—मेरे आत्मीय सभी स्वजन मुझे छोड चले गये, तब फिर मैं ही अकेला क्यों रहूं? जाओ, खुदा तुम्हारा कल्याण करें।' अब जाफर कर ही क्या सकता था, रोता पीटता चला गया। अभी हुसेन निरस्त्र थे, प्राण देनेको तैयार थे। किन्तु क्या आश्चर्य, कोई भी शत्रु सामने नहीं आता। जो उनका मुख देखता वहीं लौट जाता था। आखिर आयजिद्के अनुगत सुमार-जिल-जौसनको साथ ले नर-पिशाच सिनान कार्यक्षेत्रमें उतरा। जागीरके लोभसे दोनों ही लुब्ध थे। किन्तु उन्हें भी खुली आँखोंसे हुसेनके समीप आनेका साहस न हुआ। सुमार मुख-को ढक कर सामने आया। हुसेनने उसे सम्बोधन कर कहा, 'तुम कौन हो? मुंह परका परदा हटाओ।' सुमारने परदेको हटा लिया, उसके मुंहमें दो बड़े वराहदन्त थे, वक्षःस्थल कृष्णवर्णसे चिह्नित था। हुसेनने उसका उद्देश समझ कर कहा, 'थोड़ी देर ठहर जाओ। आज ईदवार (शुक्रवार) है. मुहर्रमको दशमी है, जहर-का अच्छा समय है, फरज रफत्-इवादत खतम कर लेने दो।' इतना कह कर हुसेन पहली नमाजसे उठ ज्यों ही दूसरी बार घुटना गिराने पर थे, त्यों ही सुमारने तेज शस्त्राघातसे हुसेनके शिरको धड़से अलग कर दिया।

हुसेनके मरने पर ओमर और अवदुल्लाने आत्मीय स्वजनोंकी मृत देहको संग्रह कर उनके ऊपर नमाज-इ-जनाजा-का पाठ किया और सबोंको दफनाया।

दूसरे दिन घुड़सवार और पैदल सिपाही खुली नामक एक व्यक्तिकी देखरेखमें हुसेनका मुण्ड रख कर सभी अपनी अपनी पेटीमें दो एक मुण्ड बंद कर सिरियाको चल दिये। दुर्वृत्त खुली बर्छेकी नोकमें हुसेनके मुण्डको गांथ कर शहर शहर दिखाता चला।

जहां रक्तसे तराबोर मुण्डहीन हुसेनका दल बल गिरा पड़ा था, कुछ सिपाही हुसेनके परिवारवर्गको उसी जगह घसीट लाये। उस मर्मभेदी दृश्यको देखनेसे पत्थर भी पिघल जाता है। हुसेनकी प्रियपत्नी शहर-वाणो और उसकी बहन जैनाव और कुलसुम उस दृश्य-को देख कर बेहोश हो पड़ीं, चीत्कार कर विलाप करने लगीं, 'भाई महम्मद तुम कहां हो, अपने प्रिय नाती हुसेन-को दुर्दशा देख जाओ। जिस गालको तुम इतने आदर-से चूमते थे, आज उस गाल पर रुधिर पीनेवाले भीषण खड्गका चिह्न है। एक बार देख जाओ, तुम्हारे ही आत्मीय परिजन गृहशून्य, बान्धवशून्य निराश्रय हो गये हैं—अनाथ हो कर हाहाकार कर रहे हैं। जैनाव और कुलसुमका विलाप सुन कर शत्रुके भी नेत्रोंसे आंसू बहा था। इस प्रकार वन्दिभावमें वे सबके सब सिरिया लाई गईं।

हुसेनका मुण्ड लाते समय राहमें अनेक प्रकारका आश्चर्य दृश्य दिखाई दिया था। इमाम इस्माइलने लिखा है, कि मौसल शहरमें मुण्डको ला कर एक मस-जिदमें रख दिया गया और बाहरसे ताली भर दी गई। पहरूने झरोखेसे देखा था, कि एक सफेद मूंछोंवाले लम्बे जवानने पेटीसे हुसेनका मुण्ड निकाल कर अजस्र आँसू बहाया और उसे बार बार चूमा। इस प्रकार एक एक कर सभी पितृपुरुषोंने आ कर मुण्ड ले चुम्बन और अश्रुजलसे अभिषेक किया था। कहीं वे लोग मुण्ड ले

कर भाग न जांय इस आशङ्कासे पहरूने दरवाजा खोल कर भीतर प्रवेश किया। किन्तु 'पैगम्बर लोग ऊषा-लोकमें मुण्ड देखने आये हैं, अभी तूने यहां आ कर क्यों उन लोगोंका असम्मान किया' यह कह कर एक आदमीने उसके गालमें तमाचा जमाया। उस तमाचे-से उसके गालमें काला दाग पड़ गया। सबेरे पहरूने आ कर नायकसे अपनी दुरवस्था और पूर्व घटना कह सुनाई।

यथासमय सभी मुण्ड सिरिया लाये गये। आयजिदके आनन्दका पारावार न रहा। मुण्डोंको देख कर उसने कहा, "सुफियान और ओमयाका वंशनाश करना जिसका उद्देश्य था, अरव और आजमका खलीफा होनेकी उच्चाशा-से जो उन्मत्त हो गया था ; देखो, खुदाने उसे उपयुक्त दण्ड दिया।' हुसेनके छोटे लड़के जैन उल आवेदीनको यह वात तीरके समान जा लगी। उसने उठ कर कहा, 'सिरियावासी आयजिदके पक्षावलम्वी लोभी अमीरो! मैं पूछता हूं, कि तुम लोग मेरे पिताके नानाके धर्ममतका पालन करते हो या आविसुफियानके मतका? क्या तुम लोगोंको खुदाका डर नहीं है?' छोटे वालककी वात सुन आयजिदने अत्यन्त क्रुद्ध हो उसी समय वालकका सिर काट डालनेका हुकुम दिया। किन्तु वालकके चाँद-सा मुखड़ा देख कर अमीर और उमरा लोगोंको बड़ी दया आई। उनका अरजू विनतीसे पाषाणहृदय आय-जिदका भी मत पलट गया। सिरियापतिने जैन-उल-आवेदीनसे पूछा, 'वच्चा! वेधड़क कहो, तुम क्या चाहते हो?' वालकने उत्साहपूर्वक कहा, "मैं तीन चीज चाहता हूं, १ मेरे पिताके हत्याकारीको मुझे सौंप दें, २ परिवारवर्ग और मुण्डोंको लवाजमा दे कर मुझे मदीना भेज दें और ३ कल शुक्रवार है, मुझे खुतवा पढ़ने दें।"

आयजिद वालकके प्रस्ताव पर सहमत तो हो गया, पर उसके साथ साथ चुपकेसे अपने सिरीय खतिवको अपने पितृपुरुषके स्तुतिमूलक खुतवा पढ़नेकी भी सलाह दी। दूसरे दिन सिरीय खतिव राजाके कथना-नुसार महम्मद और अलीके वंशधरोंकी निन्दा कर उच्च स्वरसे आविसुफियान और ओमियाकी तारीफ की। इस पर वालकने मर्माहत हो आइजिदसे कहा, 'यह कैसा राजादेश! क्या आपने मुझे खुतवा पढ़नेका हुकुम नहीं दिया है?' जितने सभासद वहां उपस्थित थे सवोंने वालकसे खुतवा सुनना चाहा। राजाकी आज्ञा पा कर जैन-उल आवेदीन महम्मद और अलीके वंशधरोंकी सुख्याति गा कर जोरसे खुतवा पढ़ने लगा। उसकी मीठी वातोंसे सिरियावासी प्रेमाश्रु वहाने लगे। सिरिया पतिने देखा, कि उसके सभी अनुगत वालककी वात पर विचलित हो गये हैं। पीछे उन्होंने कहीं मेरे विरुद्ध अस्त्रधारण न करें, इस आशङ्कासे उसने अपने मोवा ज्ञानको कमातका पाठ अर्थात् धर्मोपदेश देनेका हुकुम दिया। भजना शेष होने पर समस्त मुण्ड और उपयुक्त-राहका खर्च दे कर जैन उल आवेदीनको मदीना भेज दिया गया। ४० दिनके वाद आवेदीन करवला पहुंचा और आत्मीय स्वजनोंकी मृत देहमें मुण्डको जोड़ कर उनकी समाधिक्रिया सम्पन्न की। मदीना आ कर सभी महम्मद और हसनकी कब्रके पास गये और अजस्र आंसू वहाये। पीछे समस्त मदीनाराज्य जैन-उल आवेदीनके अधिकारभुक्त हुआ।

४६ हिजरीमें हुसेनने अपने जीवनको उत्सर्ग किया था। उसी दिनसे ईद उत्सवका आमोद प्रमोद उठ गया, उसकी जगह शोकचिह्नधारण और सर्वत्र विलाप प्रच-लित हुआ।

३। आशुरा अर्थात् मुहर्रमके प्रथम १० दिनका अनुष्ठान।

प्रथम चन्द्रदर्शनके सन्ध्याकालसे मुहर्रम उत्सव शुरू होता है। किन्तु दूसरे दिनके प्रातःकालसे मुहर्रमके महीनेका पहला दिन गिना जाता है।

... खन वा त्रयोदशी तिथि तक रहता है। किन्तु शुरूके दश ही दिन आशुरा वा पर्व दिन माने जाते हैं।

पर्वके लिये एक खास घर वना रहता है। वह घर आशुरखाना (दशाहकाघर), ताजियाखाना (शोकागार) और आस्ताना (फकीरका स्थान) समझा जाता है। मुहर्रमसे ५-६ दिन पहले आशुरखाना वनाया जाता है। चन्द्रदर्शन होनेसे ही हुसेनके नाम पर थोड़ी शक्करके ऊपर 'फातिहा' दे कर वाजा वजाते हुए 'आलोंया' करनेकी

जमीन कुदालीसे कोड़ी जाती है। कितने तो दो तीन दिन वाद वहां गड्डा करते हैं। आशुरखानेके सामने ही चौकोन गड्ढा बनाया जाता है। इसीका नाम 'आलोया' है। प्रतिवर्ष एक ही जगह पर 'आलोया' करना उचित है। शामको उत्सवके दिन तक वहां रोशनी वाली जाती है और उस घेरेके बाहर बालवृद्धयुवा सभी एकत्र हो कर लाठी अथवा तलवारका खेल करते हैं। उस समय 'या अली या अली, शाह हसन, शाह हसन, शाह हुसेन, शाह हुसेन, दुल्हा, हाय दोस्त, हाय दोस्त, रहियो रहियो' सभी इसी प्रकार वार वार चिल्लाते हैं। इस समय कोई तो जलते मशालके ऊपर कूदता है, कोई वार वार आगका गोला घुमाता है।

आलोयाकी वगलमें रातके समय तरह तरहके खेल खेलनेकी ही रीति है, दिनको उतना नहीं होता। स्त्रियां अशुरखानेको छोड़ कर केवल आलोया बनाती हैं तथा मरसिया वा अलीके वंशधरोंकी अन्त्येष्टिके उपलक्षमें स्तुति गान करती हैं। वे लोग भी 'शाह जवान, शाह जवान, तोनों तीनों, लुहसेन लुहसेन, डूवा डूवा, गिरा गिरा मरा मरा, पड़ा पड़ा,' इस प्रकार कहती हुई छाती पीटती हैं। आखिर 'या अली' एक वार कह कर थोड़ा विश्राम लेती और फिर मालूम रहने पर 'मरसिया' गान करती हैं। कोई कोई स्त्री काठकी सिला वा मट्टीके दरेकोके ऊपर वत्ती वाल कर उसीको वगल शोक प्रकट करती है। १म, ३य और ४र्थ खनवा तिथिमें आशुरखाना गलीचे, झाड़, चँदवा, लएठन आदि तरह तरहके असवावसे सजाया जाता है।

इस देशमें आलम वा ध्वजा सादा, पंजा, इमाम, जादा, पीरान, साहिवान आदि नामोंसे भी मशहूर है। यह जयपताकाको जैसी होती है। साधारणतः दो प्रकारका आलम देखा जाता है, महो और मुरातिव। मही में मछलीका चिन्ह रहता है और मुरातिव जरी, लाल वा सफेद कपड़े से सजाया जाता है।

हुसेनकी पताकाकी तरह सभी जगह आलमका व्यवहार होता है। किन्तु भारतवर्षमें विभिन्न पीर, साधु वा धर्मके लिये जिन्होंने प्राणको न्योछावर कर दिया है उनके नाममें भी आलम शब्दका प्रयोग देखा जाता है। जैसे पंज-मुसकिल, कुशा, आलम-इ-अब्बास, आलम-इ-कासिम, आलम-इ-आला अकवर इत्यादि।

आलम अक्सर तांवे, पीतल और लोहेके वने होते हैं। कहीं कहीं उसमें सोना, चांदी और मणि माणिक्य भी जड़ा रहता है। सोनारके घर आलम वनाये जाने पर बड़ी धूमधामसे वाजेगाजेके साथ उसे आशुरखाना लाया जाता है। प्रतिपद्, चतुर्थी वा पञ्चमीके दिन वह गड्ढेमें ला कर रखा जाता है। कहीं कहीं उसकी वगलमें कदमर सूलका पदचिह्न भी अङ्कित रहता है। आलम स्थापन कालमें धूप धूना आदि जलाया जाता है तथा हसन हुसेनके नामसे शरवतके ऊपर फतिहा दिया जाता है। वह शरवत पीछे धनी दीन सभीको वांटा जाता है। इस प्रकार प्रतिदिन शामको फतिहा और कुरान पढ़ा जाता तथा फूलसे पंजा सजाया जाता है। उस जगह नाना श्रेणीके फकीर उपस्थित रहते हैं, दिनको वे केवल कुरान पढ़ते हैं। किन्तु रात भर जग कर रौजात्-उस-सोहादा अर्थात् धर्मके लिये आत्मोत्सर्ग करनेवालोंकी जीवनी पढ़ी जाती और मरसियाका गान होता है। जो धनी मुसलमान हैं, वे शुवह शाम दोनों वक्त विना मांसकी खिचड़ी और शरवत तय्यार करते हैं तथा इमाम हुसेनके नामसे फतिहा दे कर उसको खाते हैं और दीन दुःखियोंको भी देते हैं।

किसी किसीके आशुरखानेमें हरएक रातको ख्वानी (शोकसङ्गीत) होती है। इसके लिये कुछ मधुरकण्ठ-वाले बालक सिखाये जाते हैं। शोकसङ्गीत सुननेके लिये वंधुबांधव, फकीर और अनेक दर्शक उपस्थित होते हैं।

सप्तमीके दिन आशुरखानेसे तरह तरहका आलम निकाला जाता है और एक घुड़सवार उसे ले कर घूमता है। एक आलम ले जाते समय यदि दूसरा आलम राह-में मिल जाय, तो आलिङ्गनके तौर पर एक दूसरेसे स्पर्श कराया जाता है। आलम निकालनेके समय मरसिया' गान गाया जाता और धूप धूना जलाया जाता है। आलम-के लौटने पर दो तीन प्याला शरवत तैयार कर फतिहा दिया जाता है। सप्तमीके दिन पूर्वाह्न और अपराह्नमें शहरमें घूमनेके लिये निजा (वल्लम) निकाला जाता है।

उसे कपड़े से लपेट कर दोनों ओर सामला बांधा जाता है। वह सामला हवामें उड़ता रहता है। उसके माथे पर हुसेनके मुण्डस्वरूप एक नीवू रखा जाता है। कोई कोई वल्लमके बदलेमें बांसके डंडेको काममें लाता है। उस डंडेको ले कर कुछ आदमी बाजा बजाते हुए गृहस्थ के घर घर जा भीख मांगते हैं। गृहस्थ इच्छानुसार भीख देता है। भीख पाने पर मुजावीर (आशुरखानेका परिचारक) गृहस्थको कुछ भस्म दे आता है।

उसी दिन शामको नलसाहब और जुलफिकर बाहर होता है। नलसाहब अवस्थानुसार सोने, चांदी और लोहे आदि धातुओंका बना होता है। इसे वे लोग हुसेन के घोड़े का खूर समझ कर पूजते हैं। नलसाहबको बड़ी तेजोसे बाहर किया जाता है। उस समय वृद्ध, नारी और बालकोंको दूर रहना पड़ता है, नहीं तो जान पर खतरा है।

अष्टमीके दिन शामको बरजथी वा कुदरती आलम और नवमीके दिन अब्बास-इ-आलम तथा हुसेनी आलम निकाला जाता है।

दशमीको रातको (आलम-इ-कासिमको छोड़ कर) सभी आलम वा पताका और तावुत वा ताजिये ले कर 'सवगस्त' या रात्रिपर्यटन-उत्सव शेष करते हैं। इस समय बड़ी धूमधाम होती है, समूचा रास्ता रोशनीसे जगमग करता है। तरह तरहके आमोदप्रमोद होते हैं। निम्नश्रेणीके मुसलमान पहर रातको और उच्च श्रेणीके दो पहर रातको बाहर निकलते हैं। सभी प्रकार-की युद्ध-सज्जा, यहां तक कि रण-क्रीड़ा भी दिखलाई जाती है।

करवलेमें जैसा हुसेनका मकबरा है, कोई ठीक उसी आदर्श पर, कोई मदीनेका नकशा ले कर, कोई मुहम्मद-के कब्रिस्तानके अनुकरण पर ताजिया बनाता है। उस ताजियेको तरह तरहके कागजों और झालरोंसे सजाते हैं। अवस्थानुसार ताजियेमें तारतम्य देखा जाता है। कोई कोई ताजियेके बदलेमें शाहनसीन वा दादमहल (राजसभा) बनाता है। भगवान्‌ने मुहम्मदको स्वर्ग लानेके लिये देवदूत जबरिलके हाथ जिस बुराक (घोड़े) को भेजा था, बहुतेरे मुसलमान फिर उसीकी तरह काठका बुराक बना कर उसे अच्छी तरह सजाते और रास्तेमें निकालते हैं।

हिंदुओंके गाजनमें जिस प्रकार संन्यासी वा स्वाङ्ग बाहर निकलते हैं, उसी प्रकार उस दशमी रातको मुहर्रमके बहुतसे फकीर तरह तरहका साज पहन कर बाहर होते हैं। इन सब फकीरोंका भिन्न भिन्न साजसज्जाके अनुसार भिन्न भिन्न नाम है। जैसे, १ महालीवाला, २ बनावा, ३ लयला, ४ मजनू, ५ भारङ्ग, ६ मलङ्ग, ७ आङ्गाडोशा, ८ सिद्धि वा काफ्रि फकीर, ९ बगोला, १० कांयाश, ११ हातकठेराबाला, १२ नकसावंदी, १३ हाजी अहमक और हाजी बेकुफ, १४ बूढ़ बूढ़ी, १५ जल्लालिया और खाकिया, १६ बाघशा, १७ मटकीशाह, १८ चटनीशाह, १९ हाकिम, २० मुसाफिरशाह, २१ मुगल, २२ वैजखोरा, २३ मुजीकरम, २४ अड़शा, २५ योगिया, २६ वकाल, २७ नकलिशा, ३० कम्बलशा इस प्रकार स्वांग बाहर निकलते हैं। पहले बङ्गालमें भी ये सब स्वाङ्ग निकलते थे, पर अभी वैसा उत्साह नहीं देखा जाता।

इस समय हुसेनके नाम पर पुलाव, खिचड़ी, शिरनी आदि चढ़ा कर दीन दुःखियोंको बांटी जाती है। सभी समूचा शहर पर्यटन भर आखिर आशुरखानेमें लौटते हैं।

इसका दूसरा दिन मुहर्रमकी १०वीं तारीख, एकादशी तिथि, शाहदत-का रोज अर्थात् जीवनोत्सर्गका दिन समझा जाता है। इस दिन सबेरा होनेसे पहले रातकी तरह बड़ी धूमधामसे ताजिये आलम आदिको ले कर करवलेकी ओर दौड़ते हैं। इस दिन करवलेमें बड़ी भीड़ लग जाती है। ताजिये आदिको तालावके किनारे रख कर रोटी, शिरनी, बूटी, खिचड़ी, पुलाव और मिष्टान्नादिके ऊपर हुसेन तथा दूसरे दूसरे धर्मवीरोंके नाम फातिहा देते और पीछे सबोंको बांटते और पवित्र प्रसाद समझ कर कुछ घर भी लाते हैं। इस प्रसादका सामान्य अंश भी मिल जाने पर मुसलमान लोग अपनेको धन्य समझते तथा भक्ति पूर्वक उसे ग्रहण करते हैं।

फतिहाके बाद ताजियेसे असबाब और आलमको खोल कर उसमेंसे गोरकी तरह अंश निकाल जलमें डुबा देते हैं। कोई कोई जलमें डुला कर ताजियेको लौटा लाता है, परन्तु बहुतेरे जलमें फेंक

आते हैं। जो ताजियेको घर लौटा लाते, वे तीन दिनके बाद फतिहा दे कर ताजियेसे आलमदार कागजादि खोलते हैं और दूसरे वर्षके लिये रख देते हैं। आलमसे धोती और अलङ्कारादि खोल कर जलमें धो डालते और तब पेटीमें वन्द रखते हैं। इसके बाद पूर्वोक्त खाद्यादिके ऊपर फतिहा पढ़ कर कुछ अंश बांट देते और कुछ घर ले आते हैं।

बुराक और नलसाहबको भी जलमें डुबा कर घर लाया जाता है। बुराक पर फिरसे नया रङ्ग चढ़ा देते और नलसाहबको चन्दन-चर्चित कर रखते है।

फकीर तथा सभी मुसलमान स्नान करके कपड़ा बदलते और मरसिया गान करते घर लौटते हैं।

इस दिन प्रायः सभी मुसलमान अपने अपने घर पुलाव, खिचड़ी आदि तरह तरहकी रसोई पकाते तथा मौलाअली और हुसैनके नाम उत्सर्ग कर बन्धुबांधव मिल कर खाते और दुखियोंको भी खिलाते हैं।

द्वादशी रातको भी मर्सियागान तथा कुरान और हुसेनका स्तोव पढ़ा जाता है। दूसरे दिन भी सवेरे पुलाव वा खिचड़ी पकायी जाती है। सभी पहले होकी तरह उत्सर्ग करके खाते और खिलाते हैं। इस त्रयोदशीकी रातको आलमोंके सामने पान, सुपारी, फल फूल और इतर आदि चढ़ाया जाता है। दूसरे दिन अशुरखानेके सामनेवाले अस्थायी मण्डपोंको तोड़ फोड़ डालते और आलमोंको वकसमें रख देते हैं। इसी प्रकार मुहर्रम उत्सव सम्पन्न होता है।

उत्सवके दिन तक मांस, मैथुन, कदाचार और असत्सङ्ग आदि करना विलकुल मना है। इस समय सभी अत्यन्त पवित्रभावमें रह कर अशौच नियमका पालन करते हैं।

मुहर्रमी (अ० वि०) १ मुहर्रमसम्बन्धी, मुहर्रमका। २ शोक-व्यञ्जक। ३ मनहूस।

मुहर्रिर (अ० पु०) लेखक; मुंशी।

मुहर्रिरी (अ० स्त्री०) मुहर्रिरका काम, लिखनेका काम।

मुहलत (अ० स्त्री०) मोहलत देखो।

मुहलैठी (हिं० स्त्री०) मुलेठी देखो।

मुहल्ल (अ० पु०) महल्ला देखो।

मुहसिन (अ० वि०) अनुग्रह करनेवाला, एहसान करनेवाला।

मुहसिल (अ० वि०) १ तहसिल वसूल करनेवाला, उगाहनेवाला। २ प्यादा, फेरीदार।

मुहाफिज (अ० वि०) संरक्षक, हिफाजत करनेवाला।

मुहाफिजखाना (अ० पु०) कचहरीमें वह स्थान जहां सब प्रकारकी मिसलें आदि रहती हैं।

मुहाफिज दफ्तर (अ० पु०) कचहरीका वह कर्मचारी जिसकी देखरेखमें मुहाफिजखाना रहता है।

मुहाल (अ० वि०) १ असंभव, ना-मुमकीन। २ दुष्कर, कठिन। (पु०) ३ महाल देखो। ४ महल्ला देखो।

मुहाला (हिं० पु०) पीतलका वह बंद या चूड़ी जो हाथोके दाँतमें शोभाके लिये चढ़ाई जाती है।

मुहावरा (अ० पु०) १ लक्षणा या व्यञ्जना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही बोली या लिखी जानेवाली भाषामें प्रचलित है और जिसका अर्थ प्रत्यक्षसे विलक्षण हो। जैसे, लाठी खाना, चमड़ा खींचना, गुल खिलाना आदि। २ अभ्यास, आदत।

मुहासिव (अ० पु०) १ गणितज्ञ, हिसाब जाननेवाला। २ हिसाव लेनेवाला, आँकनेवाला।

मुहासिवा (अ० पु०) १ हिसाव, लेखा। २ पूछ-पाछ।

मुहासिरा (अ० पु०) युद्ध आदिके समय किले वा शत्रुसेनाको चारों ओरसे घेरनेका काम, घेरा।

मुहासिल (अ० पु०) १ आय, आमदनी। २ लाभ, नफा। ३ विक्री आदिसे होनेवाली आय।

मुहिब्व (अ० पु०) प्रेम रखनेवाला, मित्र।

मुहिम (अ० स्त्री०) १ कोई कठिन या वड़ा काम, मारके का या जान जोखोंका काम। २ युद्ध, लड़ाई। ३ फौजको चढ़ाई, आक्रमण।

मुहिर (सं० पु०) मुह्यति ज्ञानरहितो भवत्यनेन लोकः मुह्यति सभायामिति वा मुह (इषिमदीति। उण् १।५२) इति किरच्। १ कामदेव। (त्रि०) २ मूर्ख, जड़बुद्धि ३ असभ्य, जंगली।

मुहीम (अ० स्त्री०) मुहिम देखो।

मुहुः (सं० अव्य०) वार बार, फिर फिर।

मुहुक (सं० क्ली०) मोहक, मोहनेवाला।

मुहुर्गिर (सं० त्रि०) सर्वदा गीयमान, जो हमेशा गान करता हो।

मुहुपुची (हिं० पु०) काले रंगका एक प्रकारका छोटा कीड़ा। यह मूंगफलीकी फसलको नष्ट कर देता है। रातको ये कीड़े अधिक उड़ते दिखाई देते हैं। ये पत्तियों पर अंडे देते हैं जिससे पत्तियां सूख जाती हैं। इनसे खेतके खेतकी फसल काली हो जाती है। वर्षा होने पर ये सब कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

मुहुर्भाषा (सं० स्त्री०) मुहुः भाषा भाषणम्। १ पुनः पुनः कथन, वार वार कहना। पर्याय—अनुलाप। २ द्विरुक्ति, दो वार कहना।

मुहुर्भुज् (सं० पु०) अश्व, घोड़ा।

मुहुर्मुहुस् (सं० अव्य०) वार वार, फिर फिर।

मुहुर्वचस् (सं० क्ली०) मुहुः पुनः पुनः वचस्। वार वार कहना।

मुहुश्चारी (सं० त्रि०) वार वार होनेवाला।

मुहुस् (सं० अव्य०) मुह (मुहेः किच्च। उण २।११९) इति उस् किच्च। पुनः पुनः, वार वार।

मुहुष्काम (सं० त्रि०) पुनः पुनः प्राप्तेच्छु, वार वार पानेकी इच्छा रखनेवाला।

मुहूर्त्त (सं० पु० क्ली०) हूर्च्छ तीति (अशिगृसिभ्यः क्त। उण् ३।८९) इत्यत्र वाहुलकात् हुर्च्छेरपि उज्ज्वलदत्तः, मुडागमश्च प्राक् (राल्लोपः। पा ६।४।२१) इति सूत्रेण छस्य लोपः। द्वादशक्षण परिमित काल, दिन रातका तीसवां भाग। सुश्रुतके मतसे वीस कलाका नाम मुहूर्त्त है। एक लघु अक्षरके उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उसे अक्षिनिमेष कहते हैं। लघु अक्षर, जैसे क, इस 'क' का उच्चारण करनेमें जो समय लगता है उसका नाम अक्षिनिमेष है।

इस प्रकार पन्द्रह अक्षिनिमेषका एक काष्ठा, तीस काष्ठाका एक कला और वीस कलाका एक मुहूर्त्त होता है। कलाके दशवें भागको भी मुहूर्त्त कहते हैं। तीस मुहूर्त्तकी एक दिन रात होती है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ६ अ०) 'दिनपञ्चदशभागैकभाग' प्रायः दो दण्ड होता है। किन्तु दिनमान घटता वढ़ता है। इस कारण जव दिनमान घटता है, तव दो दण्डसे भी कम मुहूर्त्त होगा। दिनमान अधिक होनेसे मुहूर्त्त भी दो दण्डसे अधिक होगा। दिवामान जितने दण्डका होगा, उसका पन्द्रहवाँ भाग मुहूर्त्त है। रात्रिकालमें भी इसी नियमसे मुहूर्त्त स्थिर किया जाता है। ८ मिनिटका एक मुहूर्त्त होता है।

"प्रातःकालो मुहूर्त्तां स्त्रीनृसङ्ग वस्तावदेव तु।
मध्याह्नस्त्रि मुहूर्त्तस्याद पराह स्ततः परम्॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यात् श्राद्धं तत्र न कारयेत्।
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु॥" (तिथितत्व)

२ निर्दिष्ट क्षण या काल, समय। ३ फलित ज्योतिषके अनुसार गणना करके निकाला हुआ कोई समय जिस पर कोई शुभ काम आदि किया जाय। ४ ज्योतिर्विद्, ज्योतिषी।

मुहूर्त्तक (सं० त्रि०) मुहूर्त्त सम्वन्धयुक्त, एक मुहूर्त्त।

मुहूर्त्तगणपति (सं० पु०) समय-निर्णायक प्रसिद्ध ज्योति ग्रन्थभेद। इस सम्वन्धमें मुहूर्त्तचिन्तामणि, मुहूर्त्तदीपक, मुहूर्त्तदीपिका, मुहूर्त्तमार्त्तण्ड, मुहूर्त्तवल्लभा ये सव ग्रन्थ पाये जाते हैं।

मुहूर्त्तज (सं० पु०) मुहूर्त्तगर्भजात पुत्र।

मुहूर्त्तस्तोम (सं० पु०) एकाहभेद।

मुहूर्त्ता (सं० स्त्री०) दक्षकी एक कन्याका नाम। यह धर्म वा मनुकी पत्नी थी। इसके पुत्र मुहूर्त्त कहलाते थे।

मुहेर (सं० पु०) मुह्यति विचित्तीभवतीति मुह-(मुहेरादयः। उण् १।३२) इति एरक्। मूर्ख, जड़बुद्धि।

मू (सं० स्त्री०) मव्यते इति मव् क्विप् (ज्वरत्वरश्रीव्यविमवामुप धायाश्च। पा ६।४।२०) इति साचोवकारस्योट् इत्यादेशः। वन्धन।

मूँग (हिं० पु०) एक अन्न जिसकी दाल वनती है।

विशेष विवरण मुद्ग शब्दमें देखो।

मूँगफली (हिं० स्त्री०) सारे भारतमें होनेवाला एक प्रकारका क्षुप। यह क्षुप तीन चार फुट तक ऊंचा हो कर पृथ्वी पर चारों ओर फैल जाता है। डंठल इसके रोएँदार होते हैं और सीकों पर दो दो जोड़े पत्ते होते हैं। ये पत्ते आकारमें चकवंडके पत्तोंके समान अंडाकार, पर कुछ लंवाई लिये होते हैं। जव सूर्य डूव जाते हैं, तव इसके पत्तोंके जोड़े आपसमें मिल जाते हैं और

सूर्योदय होने पर फिर अलग हो जाते हैं। इसमें अर-हरके फूलोंकेसे चमकीले पीले रंगके २-३ फूल एक साथ और एक जगह लगते हैं। इसको जड़में मिट्टीकी अन्दर फल लगते हैं। उन फलोंके ऊपर कड़ा और खुरदुरा छिलका होता है तथा अंदर गोल, कुछ लंबोतरा और पतले लाल छिलकेवाला फल होता है। यह फल रूप-रंग तथा स्वाद आदिमें बादामसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। इसी कारण इसे चिनियां बादाम भी कहते हैं।

फागुनके प्रारम्भमें ही जमीनको अच्छी तरह जोत कोड़ कर दो दो फुटके फासले पर छः छः इञ्चके गड्ढे बना कर इसके बीज बो देते हैं। एक सप्ताहमें बीज यदि अंकुरित न हो, तो कुछ सिंचाईकी जरूरत है। आश्विन कार्त्तिकमें पीले रंगके फूल लगते हैं, ये फूल मटरके फूलोंके समान होते हैं। इसके डंठलोंकी गांठों-मेंसे जो सीरें निकलती हैं, वही जमीनके अन्दर जा कर फल बन जाती हैं। जब फल पक जाते हैं, तब मिट्टी खोद कर उन्हें निकाल लेते हैं और धूपमें सुखा कर काममें लाते हैं। ये फल या तो साधारणतः यों ही अथवा ऊपरी छिलकों समेत भाड़में भून कर खाए जाते हैं। इनसे तेल भी निकाला जाता है। यह तेल खाने तथा दूसरे अनेक कामोंमें आता है। इसका रंग जैतून के तेलकी तरहका होता है। चिनिया बदाम मधुर, स्निग्ध, वात तथा कफकारक और कोष्ठको बद्ध करने-वाला माना जाता है। किसी किसीके मतसे यह गरम और मस्तक तथा वीर्यमें गरमी उत्पन्न करनेवाला है। २ इस क्षुपका फल, चिनिया बदाम, विलायती मूंग'।

मूंगा (हिं० पु०) १ समुद्रमें रहनेवाले एक प्रकारके कृमियों के समूह-पिण्डकी लाल ठठरी जिसकी गुरिया बना कर पहनते हैं। इसकी गिनती रत्नोंमें की जाती है। समुद्र-तलमें एक प्रकारके कृमि खोलड़ोकी तरह घर बना कर एक दूसरेसे लगे हुए जमते चले जाते हैं। ये कृमि अचर जीवोंमें हैं। ज्यों ज्यों इनकी वंशवृद्धि होती जाती है, त्यों त्यों इनका समूह-पिण्ड थूहरके पेड़के आकारमें बढ़ता चला जाता है। सुमात्रा और जावाके आसपास प्रशांत महासागरमें समुद्रके तलमें ऐसे समूह-पिण्ड हजारों मील तक खड़े मिलते हैं। इनकी वृद्धि बहुत जल्दी जल्दी होती है। इनके समूह एक दूसरेके ऊपर पटते चले जाते हैं जिससे समुद्रकी सतह पर एक खासा टापू निकल आता है। मूंगेकी केवल गुरिया ही नहीं बनती, छड़ी, कुरसी आदि बड़ी बड़ी चीजें भी बनती हैं। साधारणतः मूंगेका दाना जितना ही बड़ा होता है, उतना ही अधिक उसका मूल्य भी होता है। कवि लोग बहुत पुराने समयसे ओंठोंकी उपमा मूंगेसे देते आए हैं। प्रवाल देखो।

२ एक प्रकारका रेशमका कीड़ा जो आसाममें होता है। (स्त्री०) ३ एक प्रकारका गन्ना। इसके रसका गुड़ अच्छा होता है।

मूंगिया (हिं० वि०) १ मूंगका सा, हरे रंगका। (पु०) २ एक प्रकारका अमौआ रंग। यह मूंग-का सा हरा होता है। ३ एक प्रकारका धारीदार चारखाना।

मूंछ (हिं० स्त्री०) ऊपरी ओंठके ऊपरके बाल जो केवल पुरुषोंके उगते हैं। ये बाल पुरुषत्वके विशेष चिह्न माने जाते हैं। श्मश्रु देखो।

मूंछी (हिं० स्त्री०) बेसनकी बनी हुई एक प्रकारकी कढ़ी। इसमें बेसनके सेव या पकौड़ियां आदि पड़ी होती हैं, सेव या पकौड़ियोंकी कढ़ी।

मूंज (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका तृण। इसमें डंठल या टहनियाँ नहीं होतीं, जड़से बहुत ही पतली दो दो हाथ लंबी पत्तियां चारों ओर निकली रहती हैं। ये पत्तियां बहुत घनी निकलती हैं जिससे पौधा बहुत-सा स्थान घेरता है। पत्तियोंके बीचमें एक सूत्र यहांसे वहां तक रहता है। पौधेके बीचोबीचसे एक सीधा काण्ड पतली छड़के रूपमें ऊपर निकलता है। इसके सिरे पर मंजरी या घूएके रूपमें फूल लगते हैं। सरकंडेसे इसमें इतना ही प्रभेद है, कि इसमें गाँठें नहीं होतीं और छाल बड़ी चमकीली तथा चिकनी होती है। सींकेसे यह छाल उतार कर बहुत सुन्दर सुन्दर डलियाँ बुनी जाती हैं। मूंज बहुत पवित्र मानी जाती है। ब्राह्मणके उपनयन संस्कारके समय बटुको मुञ्जमेखला पहनानेका विधान है।

मूंड़ (हिं० पु०) कपाल, सिर।

मूंड़कटा (हिं० पु०) धोखा दे कर दूसरेको नुकसान पहुंचानेवाला, दूसरेकी हानि करनेवाला।

मूंड़न (हिं० पु०) चूड़ाकरण संस्कार, मुण्डन।

मूंड़ना (हिं० क्रि०) १ सिरके बाल बनाना, हजामत करना। २ धोखा दे कर माल उड़ाना, ठगना। ३ दीक्षित करना, चेला बनाना। ४ भेंड़ोंके शरीर परसे ऊन कतरना।

मूंड़ी (हिं० स्त्री०) १ मस्तक, सिर। २ किसी धातुका शिरोभाग।

मूंड़ोबंध (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेच। इसमें एक पहलवान दूसरेकी पीठ पर चढ़ कर उसकी बगलों के नीचेसे अपने हाथ ले जा कर उसकी गरदन दबाता है।

मूंदना (हिं० क्रि०) १ ऊपरसे कोई वस्तु डाल या फैला कर किसी वस्तुको छिपाना, आच्छादित करना। २ छिद्र, द्वार, मुख आदि पर कोई वस्तु फैला या रख कर उसे बंद करना, खुला न रहने देना।

मूक (सं० त्रि०) मव्यते बध्यतेऽसौ मव-(बाहुलकात् कक्। उण् ३।४१) इति उपधाया वकारस्य चोट्। १ वाक्य-रहित, गूंगा। पर्याय—अवाक्। जो स्पष्टरूपसे वाक्य उच्चारण नहीं कर सकता, उसे मूक कहते हैं। सुश्रुतमे लिखा है, कि गर्भावस्थामे स्त्रियोंके जो सब अभिलाष होते हैं, उन्हें अवश्य पूरे करने चाहिये, नहीं तो वायु विगड़ जाती है और गर्भस्थ शिशु गूंगा, बहरा, काना, लंगड़ा, कुबड़ा आदि होता है।

"गर्भो वातप्रकोपेण दौहृदे चावमानिते।
भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूको मिन्मिन एव च॥"

(सुश्रुत शारीरस्था० २ सू०)

निदानस्थानमें लिखा है, कि कफयुक्त वायु जब शब्दवाहिनी धमनीमे भर जाती है, तब रोगी अकर्मण्य, मूक और मिन्मिन होता है। उस वायुके सरल होनेसे फिर वे सब दोष रहने नहीं पाते।

"आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः।
नरान् करोत्यक्रियवान् मूकमिन्मिन गद्गदान्॥"

(सुश्रुत निदानस्था० १ अ०)

जो जन्मबधिर है, वही मूक या गूंगा होता है। गूंगा होनेसे ही बहरा होगा। किन्तु यदि वह रोगवशतः गूंगा हो गया हो, तो बहरा नहीं हो सकता। बधिर शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। २ हीन, विवश, लाचार।

(पु०) मव्यते बध्यते जालिकेरिति कक्। २ मत्स्य, मछली। ३ दैत्य, दानव। ४ तक्षकके एक पुत्रका नाम।

मूकता (सं० स्त्री०) मूकस्य भावः तल्, टाप्। मूकत्व, गूंगापन।

मूकलराय (सं० पु०) मेवाड़के राणा मोकलदेव।

मूकाम्बिका (सं० स्त्री०) १ दुर्गाका एक नाम। २ एक प्राचीन नगरीका नाम।

मूकिमन् (सं० पु०) मूकस्य भावः मूक (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्। पा ५।१।१२३) इति भावे इम-निच्। मूकत्व, गूंगापन।

मूका (हिं० पु०) १ किसी दीवारके आर पार बना हुआ छेद। २ छोटा गोल झरोखा, मोखा। ३ बंधी हुई मुट्ठीका प्रहार, घूंसा।

मूकिमा (सं० पु०) मुकिमन् देखो।

मूचीप (सं० पु०) प्राचीन जातिविशेष।

मूजवत् (सं० पु०) १ पर्वतभेद। २ उस देशके रहनेवाले। (अथर्ववेद ५।२२।५)

मूजालदेव (सं० पु०) राजभेद।

मूजी (अ० पु०) खल, दुष्ट।

मूठ (हिं० स्त्री०) १ मुष्टि, मुट्ठी। २ उतनी वस्तु जितनी मुट्ठीमें आ सके। ३ मुठिया, दस्ता। ४ एक प्रकारका जूआ। इसमें कौड़ियां बंद करके बुझाते है। ४ मन्त्र तन्त्रका प्रयोग, जादू।

मूठना (हिं० क्रि०) नष्ट होना, मर मिटना।

मूठा (हिं० पु०) घास फूसको रस्सीसे बांध बांध कर बनाए हुए लट्ठे के आकारके लंबे लंबे पूल जो खपरैलकी छाजनमें लगाए जाते हैं, मुट्ठा।

मूठाली (हिं० स्त्री०) तलवार।

मूठि (हिं० स्त्री०) १ मूठ देखो। २ मुट्ठी देखो।

मूड़ (हिं० पु०) मूंड़ देखो।

मूढ़ (सं० त्रि०) मुह-क्त। १ मूर्ख, बेवकूफ। २ स्तब्ध, निश्चेष्ट। ३ बाल, जो सयाना न हो। ४ जिसे आगा-पीछा न सूझता हो, ठगमारा। (क्ली०) ५ मूर्च्छा।

मूढ़गर्भ (सं० पु०) गर्भज रोगभेद, गर्भस्रावादि रोग। इसके निदानादिका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—ग्राम्यधर्म, सवारी द्वारा पथश्रम, प्रस्खलन, पतन, धारण, अभिघात, विपरीत भावमें सोना वा बैठना, उपवास, मलमूत्र-वेगके प्रतिघात, रूक्ष, कटु तिक्तभोजन, साग या अतिशय क्षारसेवन, अतिसार, वमन, विरेचन, दोलन, अजीर्ण वा गर्भशातन (गर्भस्राव कराना) आदि कारणोंसे वृन्तबन्धनच्युत फलकी तरह गर्भका बंधन शिथिल हो जाता है। गर्भका बंधन शिथिल होनेसे समान वायु गर्भाशयको अतिक्रम कर यकृत और प्लीहाके अन्त्रविवरमें घुस जाती और कोष्ठदेशको मथ देती है। इससे जठरदेश आलोड़ित होनेके कारण प्रयुक्त अपान वायु निश्चेष्ट हो कर पार्श्व, वस्ति, शीर्ष, उदर, योनिदेशमें शूल, आनाह और इन सबके मध्य कोई एक उपद्रव उत्पन्न कर गर्भको नष्ट कर डालती है। तरुणगर्भ शोणितस्रावके द्वारा विनष्ट हो जाता है। गर्भ बढ़ कर प्रसवकालमें जब प्रवेशपथ पर नहीं आता अथवा अपान वायु द्वारा प्रतिहत होता है, तब उसे भी मूढ़गर्भ कहते हैं।

यह मूढ़गर्भ चार प्रकारका है,—कील, प्रतिखुर, बीजक और परिघ। बाहु, शिर और पैर ऊपरकी ओर तथा शरीर नीचेकी ओर रह कर जब कीलकी तरह योनिमुखको रोके रहता है, तब उसे कील; एक हाथ, एक पैर और शिर निकल कर शरीर रुक जाता है, तब उसे प्रतिखुर; एक हाथ और शिरके निकलनेको बीजक तथा भ्रूणके परिघकी तरह योनिमुखको आवृत्त रखनेसे उसे परिघ कहते हैं।

कोई कोई यही चार प्रकारके मूढ़गर्भ बतलाते हैं, पर यह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि, जब कुपित वायु द्वारा पीड़ित हो कर वह गर्भ अपत्यपथमें भिन्न भिन्न आकार प्रकारमें रहता है, तब किसी गर्भके दो और किसीके सिर्फ एक सक्थि कुछ वक्रभावमें निकलनेके लिये योनिमुखके आगे आ जाते हैं।, फिर किसीका सक्थि और शरीर कुछ वक्र और नितम्ब देश तिर्यग्-भावमें रह कर योनिमुखमें ठहरता है। किसीके वक्ष, पार्श्व और पृष्ठ इन तीनोंमेंसे कोई एक अङ्ग पहले अपत्यमुखमें आ कर योनिमुखको रोकता है। फिर किसीके अपत्यपथके पार्श्व भागमें स्वतन्त्र भावसे मस्तक रहता है और सिर्फ एक बाहु बाहरमें देखी जाती है, किसीका मस्तक कुछ वक्रभावमें अपत्यपथके पार्श्वभागमें रहता है तथा दोनों बाहु देखी जाती हैं। किसीका समूचा शरीर वक्रभावमें रहता है तथा हाथ, पांव और शिर यही सब अंग पहले देखे जाते हैं। किसीका एक पांव अपत्यपथमें और दूसरा पायुदेशमें रहता है। मूढ़गर्भ रोगमें विशेषतः प्रसवकालमें ये आठ प्रकारकी अवस्थाएं हुआ करती हैं। इनमेंसे शेषोक्त दो अवस्था असाध्य हैं। बाकी सभी अवस्थाओंमें इन्द्रियज्ञानका वैपरीत्य, आक्षेप और अपत्यपथका संरोध अथवा मक्कल नामक रोग उत्पन्न होता है। इन अवस्थाओंमें श्वास, कास वा भ्रमके द्वारा पीड़ित होनेसे रोगीको परित्याग करना ही उचित है।

वायुजनक द्रव्यसेवन, रात्रिजागरण, मैथुन प्रभृति अहिताचारोंसे गर्भिणीके अपत्यपथमें वायु कुपित हो कर उस पथके द्वारको रोक देती है अर्थात् इससे वायु भीतरमें रह कर गर्भाशयके द्वारको रोकती है। इससे गर्भ पीड़ित होता और गर्भस्थ बालकका श्वासरोध हो कर गर्भनाश होता है तथा हृदयदेशमें पीड़ा उत्पन्न होनेसे गर्भिणीके भी प्राणनाश होनेकी सम्भावना है। इसको योनिसम्वरण कहते हैं।

वन्ध्या स्त्रियोंका आर्त्तव शोणित अच्छी तरह नहीं निकलनेसे वह शोणित कुक्षिदेशमें सञ्चित हो कर रक्तविद्रधि रोग उत्पन्न करता है। पुत्रवती स्त्रीको यदि इस प्रकारका रोग हो, तो उसे 'मक्कल' रोग कहते हैं, वायु कुपित हो कर जब अपत्यपथको बंद कर देती है, तब शोणित अच्छी तरह न निकल कर क्रमशः कुक्षिदेशमें सञ्चित हो कठिन हो जाता है, इसीसे इस रोगकी उत्पत्ति होती है। इस समय रोगीके कुक्षिदेशमें अत्यन्त शूलवेदना होती है।

कालक्रमसे फल जिस प्रकार स्वभावतः डंठलसे

अलग हो कर जमीन पर गिरता है, गर्भके भी उसी प्रकार धीरे धीरे नाड़ीबन्धनसे मुक्त होने पर प्रसवका समय उपस्थित होता है। कृमि, वायु वा अभिघातके द्वारा फल जिस प्रकार असमयमें जमीन पर गिर पड़ता है, गर्भ भी उसी प्रकार असमयमें निकलता है। चतुर्थ मास तक गर्भस्राव होता रहता है। उसके बाद छठे महीनेमें गर्भस्थ शिशुका शरीर कुछ कुछ कठिन हो जाता है, इस कारण पतन द्वारा गर्भ बाहर निकलता है। जो स्त्री गर्भावस्थामें मस्तक न उठा सकती है तथा शीत-लाङ्गी, लज्जाहीना, नीलवर्ण और उन्नत शिराकी हो जाती है उसका गर्भ नष्ट हो जानेकी सम्भावना है। केवल नष्ट ही नहीं, उसके जान पर भी खतरा है। गर्भ-में स्पन्दन तथा समस्त लक्षण नहीं रहनेसे एवं पाण्डु और श्यामवर्ण दिखाई देनेसे उच्छ्वासमें दुर्गन्ध निक-लती है। इस प्रकार दुर्गन्ध निकलने तथा शूलवेदना होनेसे जानना चाहिये, कि गर्भस्थ सन्तान गर्भमें ही मर गई है। गर्भवती स्त्रीके मानसिक वा आगन्तुक उप-ताप अथवा पीड़ा द्वारा भी कुक्षिदेशमें गर्भ विनष्ट होता है।

चिकित्सा।

मूढ़गर्भरूप शल्यका उद्धार करना अत्यन्त कष्टकर है। क्योंकि इसमें योनि, यकृत्, प्लीहा और अन्त्र इन-के मध्यस्थित गर्भाशयके भीतर सिर्फ स्पर्श द्वारा कार्य करना होता है। उत्कर्षण, आकर्षण, स्थानापवर्त्तन, उत्कर्त्तन, भेदन, छेदन, पीड़न, ऋजुकरण और दारण आदि गर्भसम्बन्धमें वा गर्भिणीके सम्बन्धमें ये सब कार्य केवल हाथसे ही करने होते हैं। अतएव इस समय विशेष सावधानता रखनी होगी।

मूढ़गर्भकी गति स्वभावतः ८ प्रकारकी बतलाई गई है। उनमेंसे अकसर तीन ही प्रकारसे गर्भसङ्ग होता है। गर्भ निकलने अथवा प्रसव नहीं होनेको गर्भसङ्ग कहते हैं। मस्तक, स्कन्धदेश वा जघनदेशके अपत्यपथमें विषमभावसे स्थित होनेसे ही यह त्रिविध गर्भसङ्ग हुआ करता है। गर्भमें सन्तानके जीवित रहनेसे प्रसव कराने-को कोशिश करनी चाहिये। प्रसव नहीं करा सकने-से गर्भिणीको महामुनि च्यवन-प्रणीत मन्त्र सुनाना उचित है। मन्त्र इस प्रकार है,—

"इहामृतञ्च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनी।
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते॥
इदम मृतमपां समुद्धृतं वै लघु गर्भमिमं प्रमुञ्चतु स्त्री।
तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम्॥
मुक्ताः पशो विपाशाश्च मुक्ताः सूर्य्येण रश्मयः।
मुक्ता सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि विरमामितः॥"

इसके बाद प्रसव करानेके लिये यथोक्त औषधका भी प्रयोग करे। गर्भस्थ सन्तानके मर जाने पर गर्भिणी-को चित सुला कर दोनों जांघको कुछ टेढ़ा रखे। कमरके नीचे कपड़ा लपेट कर कमर ताने रहे। पीछे गर्भसे मृत सन्तानको खींच कर बाहर निकालनेमें धामनी और शाल्मलिका रस, गेरू मट्टी तथा हाथमें घी लगा कर अपत्यपथमें घुसावे और गर्भको खींचे। गर्भस्थ मृत शिशुके दोनों सक्थी बाहर निकल पड़नेसे अनुलोमभाव-में उन्हें खींच कर बाहर करे। यदि एक ही सक्थी प्रसवपथमें आ जाय, तो दूसरेको प्रसारित करा कर बाहर खींच निकालना होगा और यदि केवल नितम्बदेश पहले अपत्यपथमें आ जाय, तो नितम्बदेशको ऊपर उठा कर दोनों सक्थीको प्रसारित करा कर बाहर निकाले।

तिर्यग्भावमें परिघकी तरह आ जानेसे अर्थात् गर्भा-शयके एक पार्श्वमें शिर और दूसरे पार्श्वमें पैर रहनेसे प्रसवके द्वारमें नहीं आनेसे पश्चाद् अर्द्धभागको ऊपर उठा कर पूर्वार्द्ध भाग (शिरकी ओर)-को अपत्यपथमें ऋजुभावमें ला कर निकाले। शिरको अपत्यपथके पार्श्वमें घुमा कर कंधेके अपत्यपथमें ला कर बाहर करना होगा। शेष दो प्रकारका मूढ़गर्भ असाध्य है। असाध्य-की हालतमें अर्थात् हाथसे बाहर न निकाल सकने पर शस्त्रका प्रयोग करना चाहिये। गर्भस्थ शिशुके जीवित रहनेसे कभी भी शस्त्रको काममें न लावे, नहीं तो माता और सन्तान दोनों ही नष्ट होती हैं।

सन्तानके गर्भमें मर जानेसे उसे बाहर निकालना बहुत कठिन है। मण्डलाग्र वा अंगुली नामक शस्त्र द्वारा मस्तकको विदीर्ण कर शंकु द्वारा पहले सभी कपालखण्डको बाहर निकाले। पीछे वक्ष वा कक्षदेश-को पकड़ कर बाहर करना होगा। मस्तक अलग नहीं

होनेसे अक्षिकुट या गण्डदेशको पकड़ कर खोंचना होगा। स्कन्धदेशसे यदि अपत्यपथ बंद रहे, तो जिस अंश द्वारा बंद हुआ है, उस अंशमें संलग्न बाहुको काट डाले। गर्भस्थ बालकका उदर वायु द्वारा पूर्ण रहनेसे उसे फाड़ कर पहले सभी आंतोंको बाहर निकाले। इससे गर्भस्थ शरीर शिथिल हो जाता और बहुत जल्द बाहर निकाला जा सकता है। जांघसे यदि अपत्यपथ बन्द रहे, तो पहले जांघकी हड्डियोंको काट कर बाहर निकाले। गर्भका जो जो अङ्ग अपत्यपथको रोकता है, पहले उसी अङ्गको काट कर गर्भको निकाले और गर्भिणीकी रक्षा करे। वायुके प्रकोपवशतः गर्भकी गति विविध प्रकारकी होती है। महामति वैद्यको उचित है, कि वे इस अवस्थामें बड़ी सावधानोसे चिकित्सा करें। मृतगर्भको बाहर निकालनेमें जरा भी विलम्ब न करे, नहीं तो श्वासके रुक जानेसे गर्भिणीका प्राण निकल जानेकी सम्भावना है। इस प्रकार चीरफाड़ करनेके लिये मण्डलाग्र नामक शस्त्रका व्यवहार करना चाहिये। तीक्ष्णधार वृद्धिपत्र नामक शस्त्रका व्यवहार करनेसे गर्भिणीको आघात लगनेका डर है। गर्भमें कुछ और बखेड़ा होनेसे पूर्ववत् गर्भपात करे अथवा गर्भिणीके दोनों पार्श्वको परिपोड़ित कर हाथसे बाहर निकाले। गर्भपात करनेमें अपत्यपथको तैलाक्त करना उचित है।

इस प्रकार गर्भके निकालने पर प्रसूतिके शरीरमें गर्म जलका सेक दे और पीछे योनिदेशमें स्नेहका प्रयोग करे। इससे योनिशूल निवृत्त हो कर योनिदेश कोमल होता है। अनन्तर दोष और वेदना दूर करनेके लिये पोपल, पिपरामूल, सोंठ, इलायची, हींग, भार्गी, यमानो वच, अतिविषा, रास्ना और चव्य इन सब द्रव्योंको अच्छो तरह पोस कर घीके साथ सेवन करे। बिना घोके भी इसका सेवन किया जा सकता है। पीछे शाक वृक्षको छाल, अतिविषा, ग्वालपाठा, कटुकी और गजपोपलको पूर्ववत् पान करावे। अनन्तर तीन, पांच वा सात दिन तक फिरसे स्नेहपान करावे। अथवा रात्रिकालमें आसव वा अरिष्ट सेवन भी हितकर है। शिरीष या अर्जुन वृक्षके जलसे आचमन करना भी उचित है। दूसरे दूसरे जो सब उपद्रव होते हैं, चिकित्सकको चाहिये, कि वे उपद्रव जिस दोषसे हुए हैं, पहले उसीकी चिकित्सा करें। देहके अच्छी तरह संशोधित होनेसे पहले थोड़ा थोड़ा करके स्निग्ध द्रव्य खिलावे और क्रोधहीन हो कर प्रतिदिन स्वेद और अभ्यङ्गका प्रयोग करे। वायुशान्तिकर औषधके साथ दूधको पाक कर दश दिन तक सेवन करना होगा। पीछे मांसरस भो उसी प्रकारसे सेवन करना उचित है। अनन्तर इसो नियमसे चार मास सेवन करनेसे सभी दोष दूर हो जायंगे और बलका सञ्चार होगा। अब ओषधकी कोई जरूरत नहीं होगी। इस अवस्थामें योनिदेशमें सन्तर्पणार्थ, अभ्यङ्ग, वस्तिकार्य और भोजनमें वायुशान्तिकर बलातैलका प्रयोग विशेष हितकर है। बलातैलकी प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल, बलामूल, दशमूली यवकोल और कुलथी हरएकका क्वाथ तेलसे आठ गुना और उससे भी आठ गुना दूध, सबको एक साथ पाक करे। जब पाक सिद्ध हो जाय, तब मधुरगण, सैन्धव, अगुरु, सर्जरस, सरल काष्ठ, देवदारु, मञ्जिष्ठा, चन्दन, कुष्ठ, इलायची, पोतकाष्ठ, जटामांसी, शैलज, तगरपादुका और पुनर्णवा, इनका चूर्ण उसमें डाल कर मट्टीके बरतनमें रखे और मुंह बंद कर दे। उपयुक्त मात्रामें स्त्रियोंके सूतिका रोगमें यह तेल बहुत उपकारो है। इससे आक्षेपक आदि वात-व्याधि दूर होती, धातु पुष्ट और स्थिरयौवन होता है।

(सुश्रुत मूढ़गर्भ चिकित्सा॰धि॰)

मूढ़चेतन (सं॰ त्रि॰) १ निर्बोध, बेवकूफ। २ व्याकुल-चित्त ३ सरल।

मूढ़चेतस् (सं॰ त्रि॰) मूढ़चेतन, निर्बोध।

मूढ़ता (सं॰ स्त्री॰) मूढ़स्य भावः तल-टाप्। मूढ़त्व, बेवकूफो।

मूढ़धो (सं॰ त्रि॰) मूढ़ा धीयस्य। मन्दबुद्धि, जड़।

मूढ़प्रभु (सं॰ त्रि॰) मूढ़श्रेष्ठ, निहायत बेवकूफ।

मूढ़मति (सं॰ स्त्री॰) मूढ़ा मतिर्यस्य। मन्दबुद्धि, मूर्ख।

मूढ़रथ (सं॰ पु॰) ऋषिभेद।

मूढ़वात (सं॰ पु॰) किसी कोशमें रुको या बंधी हुई वायु।

मूढ़ात्मा (सं॰ त्रि॰) निर्बोध, मूर्ख।

मूढ़ेश्वर (सं० पु०) १ एक विख्यात साधु। (लि०) २ मूढ़प्रभु, निहायत अहमक।

मूत (सं० त्रि०) मव, मू, मूर्व वा क। १ बद्ध, बंधा हुआ। (क्ली०) २ धान रखनेके लिये घासका बना हुआ आधारविशेष।

मूत (हिं० पु०) १ वह जल जो शरीरके विषैले पदार्थोंको ले कर प्राणियोंके उपस्थ मार्गसे निकलता है, पेशाव। मूत्र देखो। २ पुत्र, सन्तान।

मूतना (हिं० क्रि०) शरीरके गंदे जलको उपस्थ मार्गसे निकालना, पेशाव करना।

मूतरी (हिं० पु०) एक प्रकारका जंगली कौवा, महताव।

मूत्र (सं० क्ली०) मूत्र्यते इति मूत्र घञ्, लोकाश्रयत्वात् क्लीवत्वं, यद्वा मुच्यते त्यज्यते इति मुच् (सिविमुच्योष्टे रूच्। उण् ४।१६२) इति ष्ट्रन् किद्भवति, टेरूकारादेशः। उपस्थ-निर्गत जल, मूत, पेशाव। पर्याय—मेहन, गुह्य-निस्यन्द, स्रवण। मूत्रविज्ञान देखो।

"आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः।
शिराभिस्तज्जलं नीतं वस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात्॥"
(शार्ङ्गधर ४ अ०)

हम लोग जो सब वस्तु खाते हैं उसका सारांश रस और असार मलरूपमें परिणत होता है। तरल पदार्थ-का सारांश रस द्वारा और असारांश शिरा द्वारा वस्ति-देशमें लाये जा कर मूत्ररूपमें परिणत होता है। मूत्र त्याग करना प्राणीमात्रका धर्म है। किस समय किस प्रकार मूत्रत्याग करना चाहिये, शास्त्रमें इसकी व्यवस्था इस प्रकार लिखी है।

समाहित हो मलमूत्रका त्याग करना चाहिये अर्थात् इस समय बोलना नहीं चाहिये। साफ सुथरे स्थानमें मलमूत्र त्याग करना उचित है।

"वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः।
कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः॥" (आह्निकतत्त्व)

घरसे नैऋत कोणमें, तीर फेंकनेसे वह जिस स्थान-में जा गिरे, उसके बाद मलमूत्र त्याग करना ही शास्त्र-विधि है। घरके पास मलमूत्र कभी भी त्याग नहीं करना चाहिये।

"नैऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः।
तिष्ठेन्नचिरं तस्मिन्नैव किञ्चिदुदीरयेत्॥"
(आह्निकतत्त्व)

ब्राह्मणको चाहिये, कि वे यज्ञोपवीत दाहिने कान पर रख कर मलमूत्र त्याग करे। दिनको उत्तर मुंह और रातको दक्षिण मुंह बैठ कर मलमूत्र त्याग करना चाहिए। दिन वा रातको छाया, अन्धकार, प्राणभय और पीड़ादि होनेसे जिस किसी दशामें हो, पेशाव कर सकते हैं। अच्छी हालतमें मलमूत्र त्यागका जो नियम बतलाया गया है, उसीका पालन करना कर्त्तव्य है।

पथ, भस्म, गोव्रज अर्थात् गाय जिस स्थान पर विचरण करती है, जोता हुआ खेत, जल, चितिभूमि, अर्थात् जो सब वृक्षमूल देवताका स्थल समझा जाता है, पर्वत, जीर्ण देवायतन, वल्मीक, ससत्त्व गर्त्त अर्थात् वह गर्त्त जिसमें पिपीलिकादि जीव रहते हैं, नदीतट और पर्वतमस्तक, इन सब स्थानोंमें तथा वायु, अग्नि, विप्र, आदित्य, जल और गाय इन सबकी ओर देख कर मलमूत्र त्याग करना बिलकुल निषिद्ध है। चलते चलते तथा खड़ा हो कर मलमूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। जूता वा खड़ाऊं आदि पहन कर भी मलमूत्र त्याग करना मना है। जलपात्रको स्पर्श कर मलमूत्र त्याग नहीं करना चाहिये, उस समय जलपात्रको हटा कर रखना उचित है। मलमूत्र त्यागके बाद उसे दाहिने हाथसे पकड़ कर शौचादि कार्य करे। मलमूत्र त्याग करते समय यदि जलपात्र छू जाय, तो वह मदिरा पात्र-के और जल मदिराके समान हो जाता है। पीछे उस जलसे यदि आचमनादि किया जाय, तो चान्द्रायण व्रत करना उचित है। सशब्दसे मलमूत्र त्याग करनेसे निःस्व होता है, अतएव शब्द करके मूत्रत्याग करना उचित नहीं। *

* "दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थ ब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा॥
कृत्वायज्ञोपवीतन्तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम्।
विण्मूत्रे च गृही कुर्याद् यद्वा कर्णे समाहितः॥

मूत्र अपवित्र होता है, किन्तु गोमूत्र अपवित्र नहीं होता। वैद्यकशास्त्रमें मूत्रके गुणादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—गाय, भैंस, बकरा, भेड़ा, घोड़ा गदहा और ऊंट इन सब जानवरोंका मूत्र तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, तिक्त पीछे लवणरस, लघु, शोधनकर, कफ, वात, कृमि, मेद, विष, गुल्म, अर्श और उदररोग, कुष्ठ, शोफ, अरुचि, और पाण्डुरोगमें शान्तिकर, हृदय और अग्निवर्द्धक माना जाता है।

गोमूत्र—कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, फिर भी क्षारयुक्त होनेके कारण वायुका प्रकोपकारी नहीं, लघु, अग्निवर्द्धक, पवित्र, पित्तवर्द्धक, वातश्लेष्माका शान्तिकर, शूल, गुल्म, उदर, आनाह आदि रोगोंमें तथा विरेचन, आस्थापन आदि मूत्रसाध्य कार्योंमें व्यवहार्य और प्रशस्त है।

माहिषमूत्र—अर्श, उदर, शूल, कुष्ठ, मेह, आनाह, शोफ, गुल्म और पाण्डुरोगमें हितकर।

छागमूत्र—कास और श्वासहारी, शोफ, कमला और पाण्डुरोगनाशक, कटु, तिक्त और कुछ वायुका प्रकोपकारक।

मेषमूत्र—कास, प्लीहा, उदर, श्वास और शोषरोग नाशक, मलसंग्राहक, लवण, तिक्त और कटुरस, उष्ण और वातनाशक।

अश्वमूत्र—अग्निवृद्धिकर, कटु, तीक्ष्ण और उष्ण, वात और पित्तविकारनाशक, कफघ्न, कृमि और दद्रुरोगनाशक।

हस्तिमूत्र—तिक्त और लवणरस, भेदक, वातघ्न, पित्तप्रकोपक और तीक्ष्ण।

गर्दभमूत्र—तीक्ष्ण, अग्निकर, कृमि, वात और कफका शान्तिकर, गरल, चित्तविकार और ग्रहणीरोगमें विशेष उपकारक।

करभमूत्र—शोफ, कुष्ठ, उदररोग, उन्माद, वायुरोग, अर्श और कृमिरोगनाशक।

मानुषमूत्रमें पूर्वोक्त सभी गुण हैं तथा यह विषनाशक माना जाता है। (सुश्रुत सूत्रस्था मूत्रवर्ग)

अत्रिसंहितामें लिखा है, कि वैद्यकशास्त्रने जहां मूत्रपानकी व्यवस्था दी है वहां बकरे और गायका मूत्र ही प्रशस्त है तथा भेंड़े, भैंसे और घोड़ेका मूत्र तैलपाक स्थानमें व्यवहृत होता है।

"अजागवीगतं मूत्रं पाने शस्तं भिषग्वर।
आविकं माहिषञ्चाश्वं तैलपाके विधीयते॥" (९ अ०)

मूत्रपरीक्षास्थलमें लिखा है, कि वायुकी वृद्धि होनेसे मूत्र पाण्डुवर्णका, पित्तकी वृद्धि होनेसे रक्त और नीलवर्णका, कफकी वृद्धि होनेसे धवल और झाग दे कर पेशाब उतरता है।

मूत्रपरीक्षा।

"वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलञ्च पित्ततः।
रक्तमेव भवेद्रक्तात् धवलं फेनिलं कफात्॥" (भावप्र०)

वातादिके विगड़नेसे मूत्रमें दोष दिखाई देता है। इसके लक्षणादिका विषय वैद्यक ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है।

रोगों वा वातादि दोषोंको निरूपण करनेमें मूत्र परीक्षा भी विशेष उपयोगी है। निर्दिष्ट लक्षणानुसार मूत्रके वर्ण वा अन्यान्य विषयोंको विकृतिविशेष द्वारा

यद्येकवस्त्रो यज्ञोपवीतं कर्णे कृत्वा अवगुण्ठित इति।
कर्णं दक्षिणकर्णं। शाल्यायनः।
छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः।
यथा सुखमुखः कुर्यात् प्राणावाधभयेषु च॥
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे।
न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते॥
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन।
न ससत्त्वेषु गर्त्तेषु न गच्छन्नपि संस्थितः॥
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके।
वाय्वग्निविप्रानादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥
'नच सोपानत्को मूत्रपुरीषे कुर्यात्। (इत्यापस्तम्बः)
"करगृहीतपात्रे या कृत्वा मूत्रपुरीषके।
मूत्रतुल्यन्तु पानीयं पीत्वा चान्द्रायणञ्चरेत्॥
वारिपात्रं करे कृत्वा मूत्रं त्यजति यो नरः।
सुरापात्रसमं पात्रं तज्जलं मदिरासमम्॥" (आह्निकतत्त्व)
"निःस्वाः सशब्दमूत्राः स्युर्नृपा निःशब्दधारया।
भोगाढ्याः समजठरा निःस्वाः स्युर्घटसन्निभाः॥"
(गरुड़पु० ६३ अ०)

दोषभेद निश्चय करनेको मूत्र परीक्षा कहते हैं। चार दण्ड रात रहते बिछावन परसे उठ कर पेशावकी पहली धारा वाहर निकाल दे, उसके बाद जो पेशाव उतरेगा उसे कांचके वरतनमें रखे। यही पेशाव परीक्षाके योग्य है। परीक्षा करते समय उसे वार वार हिलावे और उसमें एक एक बुंद करके तेल डाले।

प्रकृतिभेदसे मूत्रका वर्ण—वातप्रकृति व्यक्तिका स्वाभाविक मूत्र सफेद, पित्त प्रकृतिका और पित्त-श्लेष्म प्रकृतिका तेलके समान, कफप्रकृतिका आविल, वात-श्लेष्म प्रकृतिका घना और सफेद तथा रक्तवातप्रकृतिका मूत्र कुसुम फूलके रंगके जैसा होता है। रोगविशेषके अन्यान्य लक्षण दिखाई नहीं देने पर केवल इसी प्रकार मूत्रपरीक्षा करे। इससे किसी प्रकार पीड़ाकी आशङ्का नहीं रहती।

दूषित मूत्रका लक्षण—वातदुष्ट मूत्र स्निग्ध, पाण्डुवर्ण अथवा श्यामवर्ण अर्थात् कृष्णपीतवर्ण अथवा अरुणवर्णका होता है। इस मूत्रमें यदि थोड़ा तेल डाला जाय, तो उसमेंसे मूत्रके फफोले ऊपर उठते हैं। पित्तदुष्ट मूत्र लाल होता है, तेल डालनेसे उसमेसे भी फफोले निकलते हैं। श्लेष्मदुष्ट मूत्र फेनयुक्त और आविल तथा आमपित्त-दूषित मूत्र सफेद सरसों तेलके समान होता है। वात पित्त द्वारा दूषित मूत्रमे तेल डालनेसे उसमेंसे श्यामवर्णके बुदबुद उठते हैं। वायु और श्लेष्मा इन दोनों दोषोंसे दूषित मूत्रमें तेल डालनेसे वह मूत्र तेलके साथ मिल कर कांजीकी तरह दिखाई देता है। श्लेष्मा और पित्त द्वारा दूषित मूत्र पाण्डुवर्णका होता है।

सान्निपातिक दोष अर्थात् वात, पित्त और श्लेष्मा इन तीनों दोषोंसे मूत्र दूषित होने पर वह लालया काला दिखाई देता है। पित्तप्रधान सन्निपात रोगीका मूत्र किसी वरतनमें बंद रखनेसे उसका ऊपरी भाग पीला और निचला भाग काला मालूम होता है। वातप्रधान सन्निपातमें मध्य भाग काला और कफाधिक सन्निपातमे मध्यभाग सफेद दिखाई देता है।

प्रायः सभी रोगोंमें इस प्रकार लक्षणका विचार कर रोगके दोषभेदका पता लगाना आवश्यक है। केवल थोड़ेसे रोग ऐसे हैं जिनमें मूत्र लक्षणका कुछ विशेष लक्षण निर्दिष्ट है, जैसे—ज्वरादि रोगमें इसकी अधिकता रहनेसे मूत्र ईखके रसके समान, जीर्णज्वरमें छागमूत्रके समान और जलोदर रोगमें घृतकणाके समान पदार्थ दिखाई देते हैं। मूत्रातिसाररोगमें मूत्र अधिक निकलता हैं और उसे रखनेसे उसका निचला भाग लाल मालूम होता है। आहार जीर्ण होने पर मूत्र स्निग्ध और तेलकी तरह होता है। अतएव अजीर्ण रोगमें मूत्रमें विपरीत लक्षण दिखाई देता है। क्षयरोगमें मूत्र काला होता है और यदि सफेद दिखाई दे, तो समझना चाहिये कि रोग असाध्य है। प्रमेह रोगमें मूत्रमें नाना प्रकारकी भिन्नता देखी जाती है। मूत्रविज्ञान शब्दमें मूत्रपरीक्षाका सविस्तर विवरण दिया गया है।

मूत्रविज्ञान देखो।

वायु, पित्त, कफ सन्निपात, अभिघात, अश्मरी और शर्करा आदि कारणोंसे मूत्रदोष होता है। कोष, मूत्रनाली और वस्तिमें दर्द दे कर बड़े कष्टसे थोड़ा पेशाव उतरनेसे उसे वायुज मूत्रदोष; पीला वा लाल मूत्रकोष, मूत्रनाली और वस्तिदेशमें जलन दे कर पेशाव आनेसे पित्तज मूत्रदोष; कोष, मूत्रनाली और वस्तिदेशमे दर्द देने तथा स्निग्ध, शुक्ल और अनुष्ण पेशाव उतरनेसे उसे श्लेष्मज मूत्रदोष कहते हैं। मूत्रवाही स्रोतपथके क्षत वा अभिहत होनेसे अत्यन्त वेदनायुक्त मूत्रदोष होता है तथा उसमें वात और वस्तिरोगकी तरह सभी लक्षण दिखाई देते हैं। पुरीषके वेग रोकनेसे वायु-विगुण तथा उससे उदराध्मान और शूलके साथ मूत्ररोध होता है। अश्मरी-जन्य एक और प्रकारका मूत्रदोष होता है। शर्करा और अश्मरीकी उत्पत्तिका कारण एक ही है। भेद इतना ही है, कि शर्करा पित्तसे पाक हो कर वायु द्वारा छोटे छोटे आकारोंमें खण्डित होती है तथा श्लेष्मा द्वारा उसका अवयव तैयार होता है। शर्करा जन्य मूत्रदोषमे हृत्-पीड़ा, कम्प, कुक्षिदेशमे शूल तथा अग्निमान्द्य आदि उपद्रव होते हैं। इससे मूर्च्छा और मूत्राघात होता है। मूत्रनालीके मुखस्थित छोटे शर्करा-खण्डोंके निकल जानेके बाद जव तक दूसरा खण्ड उस जगह नहीं आ जाता, तव तक वेदना साम्य रहती है।

मूत्रदोषकी चिकित्सा।

अश्मरी-जन्य मूत्रदोषकी दोषानुसार चिकित्सा और स्नेहादि क्रिया करनी चाहिये। गोखरू, गुग्गुल, हवूषा, भटकटैया, विजवंद, शतमूली, रास्ना, वरुण, गिरिकर्णिका और विदारि गन्धादिगणके साथ लैमृत घृत वा तैल पाक करके पान वा अनुवासन अथवा उत्तरवस्तिका प्रयोग करे। इससे वातज मूत्रदोषकी भी शान्ति होती है। गोखरूके रसमें गूड़, क्षीर तथा सोंठके साथ तेल पाक करके भी पूर्वोक्त प्रकारसे प्रयोग किया जा सकता है। पित्तज मूत्रदोषमें पञ्चतृण, उत्पलादि, काकोल्यादि और न्यग्रोधादि गणके साथ घृत पाक करके उदरवस्तिका प्रयोग करे। इन सब द्रव्योंको ईखके रस, दूध और दाखके रसमें स्नेह पाक करके तीनों प्रकारके कार्यों में प्रयोग किया जाता है। रास्ना, गुग्गुल, मुस्तादिगण तथा वरुणादिगण, इनके साथ पाक किया हुआ तेल तथा यवागू कफज मूत्रदोषमें हितकर है।

काकडूमर, श्वेतपुनर्नवा, कुश और अश्मभेद, इनके चूर्णको जलके साथ अथवा सुरा, ईखका रस और कुशका जल पीनेसे मूत्रदोष प्रशमित होता है। अभिघात मूत्रदोष होनेसे सद्यव्रणको चिकित्सा करना उचित है। इस रोगमें वायुशान्तिकर क्रिया अवश्य करनी चाहिये। स्वेद, अवगाह, अभङ्ग, वस्ति और चूर्ण क्रियाके प्रयोग द्वारा भी यह शान्त होता है। (सुश्रुत० उ० ६० अ०)

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात देखो।

मूत्रकर (सं० त्रि०) मूत्रजनक।

मूत्रकृच्छ्र (सं० क्लो०) मूत्रे कृच्छ्रं, मूत्रजन्यकृच्छ्रमिति वा। रोगविशेष। इसमें पेशाव वहुत कष्टसे या रुक रुक कर थोड़ा थोड़ा आता है, इसीसे इसको मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

"व्यायामतीव्रौषधरुक्षमद्यप्रसङ्गनृत्यद्रुतपृष्ठयानात्।
आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात् स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ॥"

व्यायाम, तीव्र औषध, सर्वदा रुक्ष मद्यसेवन, नृत्य, तेज दौड़नेवाले घोड़ेकी सवारी, जलप्लावित देशकी मछली खाना, अध्यशन और अजीर्ण, इन सव कारणोंसे वात, पित्त, कफ, सन्निपात, शल्य, पुरीष, शुक्र और अश्मरीज ये आठ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होते हैं।

जव अपने कारणसे वातादि प्रत्येक दोष कुपित हो कर अथवा तीनों दोष एक ही समय कुपित हो वस्तिदेशको आश्रय कर मूत्रद्वारको पीड़न करता है, तव बड़े कष्टसे मूत्रत्याग होता है, इस कारण इस रोगको मूत्रकृच्छ्र रोग कहते हैं।

वातिक मूत्रकृच्छ्र—इस रोगमें वङ्क्षण, वस्ति और शिश्नमें वहुत वेदना होती तथा थोड़ा थोड़ा कर पेशाव उतरता है।

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र—इस रोगमें वस्ति और शिश्न गुरु तथा शोथयुक्त और मूत्र पिच्छिल होता है।

सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र—इस रोगमें वातादि दोषके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। यह रोग अत्यन्त कष्टसाध्य है।

शल्यज मूत्रकृच्छ्र—कण्टकादि शल्य द्वारा मूत्रवाहिस्रोत क्षत वा आहत होनेसे अत्यन्त कष्टकर रोग उत्पन्न होता है। इसमें वातजकी तरह अन्यान्य लक्षण दिखाई देते हैं।

पुरीषज मूत्रकृच्छ्र—पुरीषके रुक जानेसे यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें आध्मान, वातवेदना और मूत्ररोध हुआ करता है।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्र—शुक्रदोषजन्य यह रोग होनेसे शुक्रदोष कर्त्तृक दूषित और मूत्रमार्गमें दौड़ता है तथा वडे कष्टसे शुक्रमिश्रित मूत्र निकलता है। इस समय रोगी वस्ति और शिश्नवेदनासे छटपटाता है।

अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र—अश्मरी होनेसे मूत्र अत्यन्त कष्टसे आता है। अश्मरीहेतुक होनेके कारण इसे अश्मरीज कहते हैं।

सुश्रुतके मतसे शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्र ९ प्रकारका होता है। अश्मरी और शर्कराको समानता होनेके कारण नवम संख्याका उल्लेख नहीं किया गया। अश्मरी और शर्करा दोनोंके कारण और लक्षण प्रायः एक-से हैं। जव अश्मरी पित्त द्वारा पाचित, वायु द्वारा शोषित और कफ संस्रवरहित अथच चीनीकी तरह आकृतिविशिष्ट हो मूत्रमार्ग द्वारा निकलता है, तव उसे शर्करा कहते हैं। इसमें हृदय और कुक्षिदेशमें वेदना, कम्प, अग्निमान्द्य और मूर्च्छा होती तथा वडे कष्टसे मूत्र निकलता है।

चिकित्सा ।

वातज मूत्रकृच्छ्रमें अभ्यङ्ग, स्नेह और निरूहवस्तिका प्रयोग तथा स्वेद, प्रलेप, उत्तरवस्ति, परिषेक और शालपानि आदि पञ्चमुल क्वाथका प्रयोग करना होगा। गुलञ्च, सोंठ, आंवला, असगन्ध और गोखरू, इनका क्वाथ पीनेसे भी वेदनायुक्त वातिक मूत्रकृच्छ्र रोग अति शीघ्र दूर होता है।

तिल तैल, वराह और भालूकी चर्बी तथा गायका घी कुल मिला कर ऽ४ सेर, चूर्णके लिये रक्त पुनर्नवा, भेरेण्डाका मूल; शतमूली, रक्त चन्दन, श्वेत पुनर्नवा, विजवंद, पाषाणभेदी और सैन्धव, सब मिला कर एक सेर। क्वाथके लिये दशमूल, कुलथी और जौ कुल साढ़े बारह सेर, जल १॥४ सेर, शेष १६ सेर। पीछे यथानियम पाक कर मात्रानुसार सेवन करनेसे शूलसंयुक्त मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें शीतल परिषेक, शीतल जलमें अवगाहन, शीतल प्रलेप, ग्रीष्मचर्याका नियम, वस्तिक्रिया और दधि आदि दुग्धविकारका सेवन करे। दाख, भूमिकुष्माण्ड, ईखका रस और घृत इन सबका पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें प्रयोग करे। कुश, काश, शर, दर्भ और ईख इनके मूलका क्वाथ बना कर पीनेसे पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र दूर होता और मूत्राशय साफ रहता है। शतमूली, काश, कुश, कण्टकारी, भूमिकुष्माण्ड और शालिधान्यका मूल तथा इक्षुमूल, इनका क्वाथ जब शीतल हो जाय, तब मधु और चीनी डाल कर पीनेसे भी पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। त्रिकण्टकाद्यघृत भी इस रोगमें हितकर है।

श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्रमें क्षारप्रयोग, तीक्ष्ण और उष्ण औषध, अम्ल और पानीय, स्वेद, यवकृत अन्न, वमन, निरूहवस्ति तथा तक्र आदि लाभजनक है। छोटी इलायचीको चूर्ण कर गोली बनावे, पीछे उसे मूत्र, सुरा वा कदलीवृक्षके रसके साथ पान करनेसे भी श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र प्रशमित होता है। तिन्दूकबीजको मट्ठे अथवा प्रवाल चूर्णको चावलके जलके साथ पीनेसे कफज मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है। त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, गुग्गुल और मधु इनकी गोली बना कर गोखरूके काढ़ेके साथ खानेसे भी यह रोग अति शीघ्र जाता रहता है।

समभावमें कुपित त्रैदोषिक मूत्रकृच्छ्र रोगमें उक्त वातजादि दोषज मूत्रकृच्छ्रोक्त क्रिया एक साथ करनी होगी। किन्तु पहले वायुका प्रशमन कर, पीछे कफ-पित्तका प्रशमन करना उचित है। यदि त्रिदोषके मध्य कफका प्रकोप अधिक हो, तो पहले वमन, पित्तका प्रकोप अधिक होनेसे विरेचन तथा वायुका प्रकोप अधिक होनेसे पहले वस्तिक्रिया करनी होगी। वृहती, कण्टकारी, आकनादि, मुलेठी और इन्द्रजौ इसका क्वाथ पीनेसे आमदोषका पाक तथा त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। कुछ गरम दूधके साथ ईखका गुड़ मिला कर इच्छानुरूप पान करनेसे सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र अति शीघ्र जाते रहते हैं।

अभिघातज मूत्रकृच्छ्रमें वातज मूत्रकृच्छ्रकी तरह चिकित्सा करे। मद्य वा चीनी मिले हुए घी वा अर्द्धांश चीनीके साथ दूध पीनेसे अभिघातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। आँवलेके रस अथवा ईखके रसमें मधु मिला कर पीनेसे सरक्त मूत्रकृच्छ्र प्रशमित होता है।

शुक्रज मूत्रकृच्छ्रमें मधुसंयुक्त शिलाजतु चाटे। इलायची, हींग और घी मिला हुआ दूध पीनेसे मूत्रदोष दूर होता है।

पुरीषजन्य मूत्रकृच्छ्रमे स्वेदप्रयोग, फलवर्त्ति वा विरेचक द्रव्यको चूर्ण कर नलिका द्वारा गुह्यमें फुत्कार दे। अभ्यङ्ग और वस्तिक्रिया भी इस रोगमें उपकारी है। गोखरूके रसको यवक्षारके साथ मिला कर पीनेसे पुरीषज मूत्रकृच्छ्र बहुत जल्द आराम होता है।

सप्तच्छद, अमलतास,—केतकी मूल, इलायची, नीम, करञ्ज, कुटज और गुलञ्च इन सबका सिद्ध जल द्वारा यवागू पाक करके मधुके साथ पान करे। अथवा ककड़ीके बीजको अच्छी तरह पीस कर कांजी और सैन्धवलवणके साथ २ तोला करके प्रतिदिन सेवन करे। गोखरू, अमलतास, काश, दुरालभा, पाषाणभेदी और हरीतकी इनके काढ़ेमें मधु डाल कर पान करनेसे भी दुस्साध्य मूत्रकृच्छ्र अति शीघ्र आरोग्य होता है। कण्टकारीके आध सेर रसमें मधु डाल कर पीनेसे त्रिदोष नष्ट होता है। तिल, घी

और दूधके साथ ककड़ीबीजका चूर्ण सेवन करने तथा अच्छी तरह पीसे हुए त्रिफलाके चूर्णमें कुछ नमक मिला कर जलके साथ पीनेसे भी मूत्रकृच्छ्र में लाभ पहुंचता है। जौ, भेरंड, तृण-पञ्चमूली, पाषाणभेदी, शतावरी, गुग्गुल और हरीतकी, इनके काढ़े में गुड़ मिला कर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र रहने नहीं पाता। ईखका गुड़ और आँवलेका चूर्ण तथा यवक्षार और ईखकी चीनी, समान भाग ले कर खानेसे भी यह रोग शान्त होता है। भूमिकुष्मांड, अनन्तमूल, अजश्रृङ्गी, गुलञ्च और हल्दी इन्हें एक साथ मिला कर सेवन करनेसे वायुज और पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

इलायची, पाषाणभेदी, शिलाजित, पीपल, ककड़ीका बीज, सैन्धव और कुंकुम इनका बराबर बराबर भाग ले कर अच्छी तरह चूर्ण करे, पीछे उसे चावलके जलके साथ पीनेसे असाध्य मूत्रकृच्छ्र रोग भी प्रशमित होता है। जारित लौहको मधुके साथ सेवन करनेसे तीन दिनके भीतर मूत्रकृच्छ्र आरोग्य होता है।

पुनर्नवाका मूल १२॥. सेर, दशमूल, शतमूली, विजबंद, असगंध, तृणपञ्चमूल, गोखरू, शालपर्णी, गोरक्षतण्डुल, गुलञ्च और सफेद विजबंद, प्रत्येक १।. सेर। इन्हें १॥४ सेर जलमें पाक करे। जब जल १६ सेर रह जाय तब उतार ले। फिर घी ८ सेर, मुलेठी, सोंठ, दाख और पीपल प्रत्येक पाव भर, यमानी आध सेर, पुराना गुड़ ऽ३॥. सेर, रेंड़ीका तेल ऽ४ सेर इन्हें एक साथ मिला कर पाक करे। खानेसे पहले उक्त दोनों प्रकारके काढ़े का सेवन करनेसे सभी प्रकारके मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं। विशेषतः यह औषध राजा वा राजाके समान व्यक्तिके लिये लाभदायक और रसायन है।

(भावप्रकाश मूत्रकृच्छ्ररोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीके मूत्रकृच्छ्राधिकारमें तृणपञ्चमूल, पञ्चतृणक्षीर, त्रिकण्टकादि, धात्र्यादि, बृहद्धात्र्यादि, अमृतादि शतावर्यादि, हरीतक्यादि, तारकेश्वर, मूत्रकृच्छ्रान्तक, त्रिकण्टकाद्यघृत और मूत्रकृच्छ्रहर इन सब औषधों की व्यवस्था है। इनका सेवन करनेसे भी मूत्रकृच्छ्ररोग प्रशमित होता है। चिकित्सकको उचित है, कि वे रोगकी अवस्था देख कर उक्त औषधका प्रयोग करें।

चरक, चक्रदत्त, हारीत आदि ग्रन्थोंमें इस रोगके निदान और औषधादिका विषय लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुछ नहीं लिखा गया।

बालकोंके मूत्रकृच्छ्ररोगमें बड़े कष्टसे पेशाब आता है। कभी कभी तो पेशाब बिलकुल आता ही नहीं। ऐसी हालतमें ४।५ रत्ती सोरा ठंढे जलमें मिला कर उसे खिलाना चाहिये। यदि जरूरत देखे तो दिनमें दो तीन बार इसका प्रयोग कर सकते हैं।

एलोपेथी मतसे तलपेटमें उष्ण जलका स्वेद, नाइट्रिक इथर अथवा स्पिरिट आफ जुनिपर, अवस्थाके अनुसार उसे १० बुंद तक जलमें मिला कर दो घंटेके अन्तर पर पिलावे। इससे मूत्रकृच्छ्र अति शीघ्र नष्ट होता है।

मूत्रकोश (सं० पु०) मूत्राशय, वह स्थान जहां मूत्र रहता है।

मूत्रक्षय (सं० पु०) मूत्रस्य क्षयः। मूत्राघातरोगभेद।

मूत्रग्रन्थि (सं० पु०) मूत्राघातरोगभेद।

मूत्रग्रह (सं० पु०) घोड़े का मूत्रसङ्गरोग। इसका लक्षण इस प्रकार है।

"स्तोकं स्तोकं सफेनञ्च कृच्छ्रान्मूत्रं करोति यः।
तस्य वातसमुत्थन्तु विद्यान्मूत्रग्रहं बुधः॥
दाहोच्छ्वासयुतः पित्तान्मूत्ररोगः प्रजायते।
वाजिनः पीतमूत्रस्य अथवा रक्तमूत्रिणः।
कफजे मूत्ररोगे तु सान्द्रमूत्रं सपिच्छिलम॥"

(जयदत्त ४७ अ०)

इस रोगमें थोड़ा थोड़ा करके घोड़े को पेशाब उतरता है। यह रोग वायुके बिगड़नेसे होता है। पित्तजन्य होनेसे दाह और उच्छ्वास तथा मूत्र पीला और लाल तथा श्लेष्मज होनेसे पिच्छिल और गाढ़ा पेशाब होता है।

मूत्रजठर (सं० पु०) मूत्रघात रोगविशेष।

मूत्रदशक (सं० क्ली०) मूत्राणां दशकम्। हाथी, भेड़ा, ऊँट, गाय, बकरा, घोड़ा, भैंसा, गदहा, मनुष्य और स्त्री इन दशके मूत्रोंका समूह।

मूत्रदोष (सं० पु०) मूत्रस्य दोषो यस्मात्। १ प्रमेहरोग। २ मूत्रघातरोग। ३ मूत्रकृच्छ्ररोग।

मूत्रनिरोध (सं० पु०) मूत्रस्य निरोधः यद्वा मूत्रं निरुणद्धीति रुध-अण् । मूत्रप्रतिबन्धक रोगविशेष । इस रोगमें मूत्ररोध होता है ।

"पिष्टं वै मालतीमूलं ग्रीष्मकाले समाहृतम् ।
साधितं छागदुग्धेन पीतं शर्करयान्वितम् ।
हरेन्मूत्रनिरोधञ्च हरेद्वै पाण्डु शर्कराम् ॥"
(गरुडपु० १६१ अ०)

ग्रीष्मकालमें मालतीका मूल उखाड़ कर उसके रेशेको अच्छी तरह पीस कर बकरीके दूधमें पाक करे । बाद में चीनीके साथ उसका पान करनेसे मूत्रनिरोध, पाण्डु और शर्करा विनष्ट होती है ।

मूत्रपञ्चक (सं० क्ली०) मूत्राणां पञ्चकम् । पञ्चविध मूत्र, पांच प्रकारका मूत ।

"गवामजानां मेषीनां महिषीणाञ्च मिश्रितम् ।
मूत्रं या गर्दभीनाञ्च तन्मतं मूत्रपञ्चकम् ॥" (राजनि०)

गाय, बकरी, भेंड़ी और गदही इनके मूत्रोंको मूत्रपञ्चक कहते हैं ।

मूत्रपतन (सं० पु०) मूत्रस्य पतन मस्मात्, पुरीष निरोधकरणादस्य सततमूत्रपतनात् तथात्वं । १ गन्धमार्जार, गंधविलाव । २ मूत्रका पतन, मूत्र गिरना ।

मूत्रपुट (सं० क्ली०) मूत्रस्य पुटं । नाभिका अधोभाग, मूत्राशय ।

'नाभेरधो मूत्रपुटं वस्ति मूर्त्रा शयोऽपि च ।' (हेम)

मूत्रपथ (सं० पु०) मूत्रस्य पन्था । योनि ।

मूत्रप्रसेक (सं० पु०) मूत्रनाली ।

मूत्रफला (सं० स्त्री०) मूत्रं मूत्रवर्द्धनं फलं परिणममस्याः । १ कर्कटी, ककड़ी । २ त्रपुषी, खीरा ।

मूत्रबीजक (सं० पु०) असनवृक्ष ।

मूत्ररोध (सं० पु०) मूत्रस्य रोधः । मूत्रकृच्छ्र रोग, एकबारगी पेशाब रुक जानेका रोग ।

मूत्तल (सं० क्ली०) मूत्रं लाति आदत्ते वर्द्धयतीत्यर्थः ला-क । १ त्रपुष, खीरा । २ चिर्भटिका । (त्रि०) ३ मूत्रवर्द्धक, पेशाब बढ़ानेवाला ।

मूत्रला (सं० स्त्री०) मूत्रल टाप् । १ कर्कटी, ककड़ी । २ वालुकी, एक प्रकारकी ककड़ी ।

मूत्रवहनाड़ी (सं० स्त्री०) मूत्रवहा नाड़ी । जिस नाड़ी द्वारा आमाशयसे वस्तिदेशमें मूत्र लाया जाता है उसे मूत्रवहा नाड़ी कहते हैं ।

'पक्वाशयगतास्तत्र नाड्यो मूत्रवहास्तु याः ।
तर्पयति सदा मूत्रं सरितः सागरं यथा ॥
सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मुखान्यासां सहस्रशः ।
नाड़ीभिरुपनीतस्य मूत्रस्यामाशयान्तरात् ॥"
(सुश्रुतनि० ३ अ०)

नदी जिस प्रकार जल ले कर सागरकी ओर दौड़ती है, पक्वाशयगत मूत्रवहा नाड़ियां भी उसी प्रकार वस्तिमें मूत्रवहन करती हैं । जो सब नाड़ियां आमाशयके मध्य हो कर मूत्रवहन करती हैं अत्यन्त सूक्ष्मताके कारण उनका मुख दिखाई नहीं देता । जाग्रत वा स्वप्नावस्थामें उस नाड़ी हो कर मूत्र बह कर मूत्राशयमें भर जाता है ।

मूत्रविज्ञान—जिस ज्ञानबलसे मूत्रके नाना भेद और दोषादोष जाने जाते है वही मूत्रविज्ञान है । महर्षि जातुकर्णने 'मूत्रविज्ञान' नामक एक आयुर्वेदीय ग्रन्थकी रचना की है । वर्त्तमान सदीमें यूरोपीय चिकित्सा शास्त्र हीका अधिक प्रचार और आदर देखा जाता है । यूरोपीय चिकित्सक रोग निदानके लिये अनेक स्थलोंमें मूत्रकी परीक्षा करते हैं । वे मूत्रके उपादानभूत पदार्थोंकी परीक्षा कर शारीरिक धातुकी स्वच्छन्ता मालूम कर लेते हैं । पाश्चात्य प्रणालीसे शिक्षित चिकित्सकगण भी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा मूत्रमे किस किस पदार्थका कितना कितना अंश है, उसे कह सकते हैं । आज कलके वैद्य उस प्रकार मूत्रपरीक्षा करनेमें बिलकुल अक्षम हैं । इस कारण जनसाधारणको विश्वास है, कि आयुर्वेदके ग्रन्थकार मूत्रपरीक्षा प्रणालीका हाल अच्छी तरह नहीं जानते थे । वे लोग केवल मूत्रके परिमाण, वर्ण और गन्धकी सहयतासे बहुत कुछ शारीरिक यन्त्रकी प्रक्रियाका पता लगा सकते थे । चरकमें भी इसके सिवा मूत्र परीक्षाको कोई विशेष विधि देखनेमें नहीं आती । पर हां, पूर्वकालमें सुविज्ञ कविराज पात्रस्थित मूत्रमें एक बूंद तेल डाल कर उसको गतिविधि देख रोगीका भावी शुभाशुभ कह देते थे । मूत्र देखो ।

अभी वैसे बहुदर्शी और विज्ञ वैद्य बहुत थोड़े हैं ।

अतएव आज कल मूत्रपरीक्षा साधारणतः पाश्चात्य मत-से ही की जाती है।

पाश्चात्य मतसे शिक्षित चिकित्सकगण मूत्रकी परीक्षा कर किसी विशेष बातका पता नहीं लगा सकते, केवल अनुमानसे किसी किसी रोगका निदान बतलाते हैं। जैसे, मूत्रमें शक्कर अधिक रहनेसे बहु मूत्रका उत्पत्ति निर्णय। किन्तु पाश्चात्य ज्ञानियोंकी मूत्रपरीक्षा इस बीसवीं सदीके उन्नति समयमें भी इतनी अग्रसर नहीं हुई, कि मूत्र-विश्लेषण द्वारा स्त्रीपुरुष अथवा पुत्रोत्पादिका शक्तिका निर्णय कर सके। किन्तु महर्षि जातुकर्ण-के मूत्रविज्ञानमें मूत्रपरीक्षाकी नाना प्रणालीका उल्लेख देखनेमें आता है, पर अभी वह काममें नहीं लाई जाती।

फिलहाल यूरोपीय चिकित्साप्रणालीसे जिस प्रकार अग्निमें उत्तप्त कर मूत्रको परीक्षाकी जाती है, प्राचीन-कालमें भी उसी प्रकार की जाती थी। जातुकर्णने लिखा है—

"मूत्रैः पयस्तुल्यमितं विमिश्रे।
मूलस्य चूर्णं खलु पुष्करस्य।
प्रक्षिप्य पक्वं मृदुनाग्निना तत्
मेद्र प्रदुष्टं यदि लोहितं स्यात्।"

मूत्र और दुग्ध समान भाग ले कर उसमें कुछ पुष्कर मूलका चूर्ण डाल दे और धीमी आंचमें पाक करें। पीछे उसमें यदि लालवर्ण दिखाई दे, तो जानना चाहिये कि वह मेद धातुसे दूषित हुआ है।

स्त्रीके गर्भ हुआ है वा नहीं, वह मूत्रकी परीक्षा करके ऋषि लोग बतला देते थे। किन्तु समस्त यूरोपखण्डमें आज तक भी ऐसा कोई चिकित्सक नहीं, जो केवल मूत्रकी परीक्षा करके गर्भोत्पत्तिका पता लगा सके। जातुकर्णने कहा है—

मूत्रे नार्य्याः क्षिपेत् श्वेतशाल्मली पुष्पचूर्णकम्।
तत्रैव घृतवद्द्रव्यं दृश्यते चेत् परेऽहनि।
ततो गर्भं विजानीयात् स्त्रिय इत्थं विशेषतः॥"

स्त्रीके मूत्रमें श्वेत शाल्मली पुष्पका चूर्ण डाल कर रख दे। दूसरे दिन यदि उसमें घीके जैसा तरल पदार्थ बहता दिखाई दे, तो समझना चाहिये, कि वह स्त्री गर्भ-वती हुई है।

महर्षि जतुकर्णके नीचे लिखे हुए श्लोकसे मालूम होता है, कि मूत्र परीक्षा द्वारा पुरुष या स्त्रीका पता लगाया जाता था।

"मूत्रैस्तुल्यमिते तैले मिश्रयेत् मूलजं रसम्।
करकस्य ततो विद्यात् पीताभं यदि तद्भवेत्
पुरुषस्येति तन्मूत्रं नीलाभं चेद्भवेत् स्त्रियः॥"

मूत्रमें उतना ही तेल मिला कर पीछे करकमूलका रस डाल दे। वह मूत्र यदि पीला दिखाई दे, तो पुरुष-का मूत्र और यदि नीला दिखाई दे, तो स्त्रीका मूत्र समझना चाहिये।

मूत्र परीक्षा द्वारा स्त्रीकी पुत्रोत्पादिका शक्ति और वन्ध्यात्वका पता लगाया जाता था।

"मूत्रे कदुष्णे नारीणां निक्षिप्योज्ज्वलहीरकम्।
दिनत्रयावसाने तद्दृश्यते वेदनिर्मलम्।
सन्तानोत्पादिका शक्तिर्नष्टो ज्ञेया ततः स्त्रियां॥'

स्त्रीके मूत्रको कुछ गरम कर उसमें एक टुकड़ा सफेद हीरा डाल दे। तीन दिनके बाद यदि वह हीरेका टुकड़ा मलिन दिखाई दे, तो उस स्त्रीकी सन्तानोत्पादिका शक्ति नष्ट हो चुकी है, ऐसा जानना चाहिये।

मूत्र परीक्षा द्वारा ऋषि लोग यहां तक कह देते थे कि यह मूत्र बालकका है या युवा अथवा वृद्धका।

"मूत्रैः समश्चोष्ट्रदुग्धे सेवचूर्णं विमिश्रिते।
प्रक्षिप्य यदि तत्रैव फेनरेखा न दृश्यते।
ततो बालस्य जानीयादधिका चेद्यवीयसः।
अल्पा वृद्धस्य तन्मूत्रं भवेदिति मुनिश्चितम्॥"

मूत्रमें उतना ही ऊंटका दूध मिला कर सेवका चूर्ण डाल दे। यदि उसमें फेनरेखा दिखाई न दे, तो वह बालकका, अधिक फेनरेखा दिखाई देनेसे युवाका और थोड़ी फेनरेखा रहनेसे वह वृद्धका मूत्र जानना चाहिये

इस प्रकार मूत्रपरीक्षा विषयक बहुतसे श्लोक जतु-कर्णकी पुस्तकमें देखे जाते हैं। विस्तार हो जानेके भय-से वे सब यहां नहीं लिखे गये।

कविवल्लभ रामदासको ज्योतिष सारार्णव पुस्तकके सामुद्रिक अध्यायमें मूत्रपरीक्षाकी जगह इस प्रकार लिखा है,—

"न मूत्रं फेनिलं यस्य विष्ठा चाप्सु निमज्जति।

अर्थात् मूत्रत्यागके समय जिनकी फेनरेखा (झाग) नहीं देखी जाती उन्हें अपुत्रक समझना चाहिये। इस प्रकार मूत्रपरीक्षा विषयक सैकड़ों श्लोक हैं जिनसे विज्ञ चिकित्सकगण प्राच्य और पाश्चात्य मूत्रविज्ञानके उत्कर्षापकर्षका विचार कर सकते हैं।

वर्त्तमान पाश्चात्य चिकित्सकोंने मूत्रतत्त्वके संबंधमें बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं, यहां संक्षेपमें लिखा जाता है।

जीवोंके लिङ्गद्वार हो कर प्रवाहित शारीरिक जलीय मल ही मूत्र है। हम लोग खानेके समय जो जल पीते हैं उसका तथा खाद्यद्रव्यका जलभाग कुछ तो पसीनेमें परिणत होता और कुछ मूत्ररूपमें परिणत हो कर लिङ्गद्वारसे बाहर निकल जाता है। शारीरिक अस्वस्थताके कारण कभी कभी मूत्रमें विकृति देखी जाती है। सुस्थ शरीरका मूत्र जलके समान स्वच्छ और तरल, सामान्य रोगमें पीलापन लिये लाल और मेहादि दोष दुष्ट होनेसे वह अस्वच्छ और अपेक्षाकृत गाढ़ा होता है। रोगविशेषमें रक्तस्राव भी हुआ करता है।

द्रव्यरसका विकृतिप्राप्त जल-भाग पहले वृक्क (Kidney)-में आ कर जमा होता है। पीछे वहांसे bladder वा मूत्राशयमें चालित होनेसे तलपेट टन टन करने लगता है। इसी समय स्वभावतः मूत्रत्यागकी इच्छा होती है। यह मूत्र शरीरत्यक्त दूषित जलीय मलके सिवा और कुछ भी नहीं है।

मूत्रपरीक्षा।

शरीरके भीतरके अन्यान्य यन्त्रोंकी तरह मूत्रयन्त्रमें भी जलन और पीड़ा हुआ करती है। इस समय मूत्रका रंग कई तरहका हो जाता है और उसमें शर्करादि नाना प्रकारके पदार्थ दिखाई देते हैं। स्वभावतः मूत्रके हजारवें भागमें ९६७ भाग जल, १४॥ भाग युरिया, आध भाग युरिक एसिड, १० म्युकस तथा ८ भाग सलफेट और फस्फेट आफ सोड़ा, पोटास, मगनेसिया और क्लोराइड आव-सोडियम रहता है। वृक्कमें पीड़ा होनेसे उन सब पदार्थोंका न्यूनाधिक्य तथा अन्यान्य अस्वाभाविक वस्तु भी दिखाई देती है।

रासायनिक।

मूत्रकी परीक्षा करते समय उसके वर्ण, स्वच्छता, अस्वच्छता, गन्ध और नीचे कोई अधःक्षेप है या नहीं, पहले इसीकी ओर लक्ष्य करना परमावश्यक है। पीछे उसका आपेक्षिक गुरुत्व तथा वह अम्लाक्त है वा क्षारयुक्त, जानना होता है। अम्लरसयुक्त मूत्रमें नीलवर्णका लिटमस (blue litmus paper) कागज और क्षारयुक्त मूत्रमें (alkaline urine) लोहित वर्णका लिटमस कागज डुबानेसे वह यथाक्रम लाल और नीलवर्णमें तथा क्षारयुक्त मूत्रमें टर्मारिक पेपर डुबानेसे वह पाटलवर्णमें पलट जाता है। अभी यह परीक्षा बंद कर दी गई है। मूत्रक्षारमें यदि एमोनियाकी अधिकता रहे, तो पूर्वोक्त भींगे और परिवर्त्तित कागज सुखानेके बाद फिरसे यथाक्रम लाल और पीले हो जाते हैं। पहले मूत्रके स्वाभाविक पदार्थोंकी परीक्षा करना आवश्यक है। अधिक परिमाणमें युरेटस रहनेसे मूत्र अस्वच्छ और गदला दिखाई देता है, किन्तु आंच पर चढ़ानेसे वह साफ हो जाता है। क्लोराइड परीक्षाके लिये पहले मूत्रको नाइट्रिक एसिड (Nitric acid) द्वारा सामान्य अम्लाक्त कर ले, पीछे उसमें नाइट्रेट आफ सिलभरलोशन मिलावे, इससे शुभ्र क्लोराइड आफ सिलभर अधःक्षिप्त देखनेमें आयेगा। युरिया परीक्षाके लिये वाटरवाथमें मूत्रको गरम कर ले। पीछे उसमें नाइट्रिक एसिड मिलानेसे नाइट्रेड आव युरिया नीचे बैठ जायगा। अणुवीक्षण यन्त्रके द्वारा उसकी परीक्षा करनेसे वह चौकोन वा छः कोनवाले खपड़ेकी तरह दिखाई देता है। २४ घंटेके मध्य युरिया कितना निकला है उसे जाननेके लिये एक स्वतन्त्र यन्त्र बना है। कष्टिक सोडा और ब्रोमिन सोल्युशनको मूत्रके साथ मिलानेसे उसमेंसे क्रमशः नाइट्रोजन गैस निकलता है। उसीके परिमाण द्वारा युरियाका अंश निकाला जा सकता है।

मूत्रमें यदि (Uric acid) युरिक एसिडकी परीक्षा करनी हो, तो मूत्रको आंच पर चढ़ा कर गाढ़ा कर ले। पीछे उसमें Hydrochlorid एसिड डाले। कुछ समय बाद Uric acid का Crystals नीचे बैठ जायगा।

अणुवीक्षणकी सहायतासे अर्थात् ऊपर कहे गये Murexide Test द्वारा परीक्षा की जा सकती है।

सलफेटस रहनेसे नाइट्रेट आफ वैरेटालोशन मिलाने पर सलफेट आफ वैरेटा नीचे वैठ जाता है। फोस्फेटस और एमोनिस-मागनेसियम टेष्ट द्वारा एमोनिया और मागनेसियमकी परीक्षाके समय शुभ्रवर्णका अधःक्षेप देखा जाता है।

मूत्रमें अस्वाभाविक पदार्थ सञ्चित रहनेसे परीक्षा द्वारा उसका निर्णय किया जा सकता है। उन पदार्थोंका विषय संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

अण्डलाला (Albumen)—मूत्रमें रक्त, रक्तका सिरम, काइल, लिम्फ, पूय वा शुक्र रहनेसे उत्ताप, नाइट्रिक एसिड संमिश्रण और पाइक्रिक एसिड परीक्षा द्वारा एलवुमेन (अण्डलाला) का अस्तित्त्व जाना जा सकता है।

एक टेष्ट-ट्यूबका तिहाई भाग मूत्रसे भर कर स्पिरिट लैम्प द्वारा उसे गरम करनेसे मूत्रके ऊपर दूधके जैसा सफेद और गाढ़ा पदार्थ दिखाई देता है। मूत्रमें अधिक फोस्फेटस रहनेसे ताप द्वारा वह अधःस्थ और ऊपर कहे गये वर्णमें परिणत होता है। नाइट्रिक एसिड मिलानेसे फोस्फेटस गल जाता है, किन्तु एलवुमेन नहीं गलता। अधिक एलवुमेन रहनेसे वह उत्ताप द्वारा अत्यन्त गाढ़ा और सफेद हो जाता है।

एक दूसरे टेष्ट-ट्यूबमें कुछ मूत्र ले कर उसमें ५ वा ६ बुंद नाइट्रिक एसिड डालनेसे यदि वह सफेद हो जाय तो, जानना चाहिये, कि उसमें एलवुमेन अथवा युरेटस (मूत्रका अम्लज उपादानविशेष) है। आंच देने पर यदि वह गल जाय तो युरेटस, नहीं तो एलवुमेन जानना होगा। मूत्रमें पाइक्रिक एसिड मिलानेसे नाइट्रिक एसिड परीक्षाक तरह अ .:क्षेप होता है।

पित्त Bile)—मूत्रमें पित्त है वा नहीं, Gmelin's और Pettenkofer's test नामक परीक्षा द्वारा वह जाना जाता है। पित्त शब्द देखो।

सिष्टिन, ल्युशिन और टाइरोसिन रहनेसे मूत्रका अधःस्थ पदार्थ सब्ज रंगका दिखाई देता है।

शर्करा (Sugar)—मूत्रमें चीनीका भाग कितना है उसे मालूम करनेके लिये Moor's test, Trommer's test, Fehling's test, Hassal's test, Fermention test, Dr. Johnson's वा Picric acid test और Bismuth test आदि विभिन्न परीक्षाका आविष्कार हुआ है।

१ मुरटेष्ट—एक ट्यूबमें समान भाग मूत्र और लाइकर पोटाश रख कर उसे गरम करनेसे वह पाटलवर्णमें परिणत हो जाता है। वर्ण जैसा गाढ़ा होगा उसीके अनुसार मूत्रशर्कराका परिमाण स्थिर किया जा सकता है।

२ ट्रोमस टेष्ट—मूत्रमें कुछ बुंद सलफेट आव कपार लोशन मिला कर उसका आधा लाइकर पोटाश मिलावे। पीछे उसे गरम करनेसे लोहिताभ पाटल सव अक्साइड आव कपार नीचे वैठ जायगा।

३ फेलिंसटेष्ट—पोटाश टार्ट, लाइकर सोडो, सलफेट आव कपार और परिष्कृत जल द्वारा 'फेलिंस् ष्टाण्डार्ड सोल्युशन' तैयार कर उसे (२०० सौ ग्रेन) एक कांचके वरतनमें गरम करे। जब तक उसका नीलापन दूर न हो जाय, तब तक उसमें क्रमशः मूत्रको नाप कर ढाले। जितने मूत्रसे २०० ग्रेन सोल्युशनका वर्ण पलट जाय उतने मूत्रमें १ ग्रेन शर्करा रहती है। अतएव २४ घंटों अर्थात् दिनरातके मूत्रमें कितनी शर्करा निकलती है, इसीसे उसका पता लगाया जा सकता है। इसमें उत्ताप देनेसे लोहिताभ वा पाटलवर्णका सब अक्साइड आव कपार नीचे जम जायगा।

४ हासेल्सटेष्ट—अनुवीक्षण द्वारा शर्करा मिले हुए मूत्रमें टोरोवली नामक एक प्रकारका सूक्ष्म उद्भिज्ज दिखाई देता है। मूत्रमें झाग आने अथवा सड़ जाने होसे टोरिउला कोष (Torula cells) समूह दिखाई देता है, किन्तु स्वाभाविक मूत्रमें वैसा पदार्थ नहीं दिखाई देता।

५ फार्मेण्टेसन टेष्ट—शर्करायुक्त मूत्रमें थोड़ा जर्मन इष्ट मिला कर उत्तप्त स्थानमें रख दे, इससे कार्वनिक एसिड गैस उत्पन्न होगा।

६ डा० जोनसन्स वा पाइक्रिक एसिड टेष्ट—लाइकर पोटासी और पाइक्रिक एसिडको मिला कर मूत्रके साथ उत्तप्त करनेसे वह गाढ़ा लाल हो जाता है।

७ विसमथ टेष्ट—विसमथ, ग्लिसारिन, सोल्यु-

शन आव सोडियम-हाइड्रास और जल तीनोंको एकत्र कर मूत्रके साथ गरम करनेसे काला अधःक्षेप दिखाई देगा।

८ शर्करायुक्त मूत्रको नील और कार्बनेट आव सोडाके साथ गरम करनेसे वह क्रमशः सब्ज, लाल और अन्तमें पीला हो जाता है। इसको Indigo Carmine test कहते हैं।

दग्धाम्लरस (Acetone)—मूत्रमें स्वभावतः सामान्य परिमाणमें एसिटोन रहता है। बहुमूत्ररोगमें अचैतन्यावस्था उपस्थित होने पर उसकी वृद्धि होती है। टिंक्चिल मिलानेसे वह लाल वर्णमें पलट जाता है। डा० लीवर (Dr. Lieber)-का कहना है, कि पोटाश आइयोटाइड २० ग्रेन और लाइकर पोटाश १ ड्रामको एक साथ उत्तप्त कर उसमें एसिटोनयुक्त मूत्र मिलानेसे मूत्र उसी समय पीला हो जाता है।

रावर्टके ग्रन्थमें उक्त परीक्षाप्रथा अवलम्बित होने पर भी एसिटोन परीक्षाकालमें चिकित्सक उस पर विश्वास नहीं करते।

वर्त्तमान चिकित्सक Legal's test नामक परीक्षाका अनुसरण कर एसिटोन निर्णय करते हैं। कुछ मूत्र में ताजा तैयार किया हुआ गाढ़ा सोडियमनाइट्रो प्रुसिड साल्युशन (Concentrated solution of sodium nitro-prusside) २ वा ३ बूंद तथा लाइकर सोडा कई बूंद मिलानेसे मूत्र तामड़े रंगका और कुछ मिनटके बाद पीला हो जाता है। किन्तु उक्त वर्णमें पलटनेके पहिले यदि उसमें एसेटिक एसिड अधिक मात्रामें ढाल दिया जाय, तो एसिटोनयुक्त मूत्र सुन्दर सिन्दूर वर्णका हो जाता है। फिर विना एसिटोन मिला हुआ मूत्र स्वभावतः पीले रंगमे रूपान्तरित होता है।

मूत्रमें अन्यान्य पदार्थ भी रह सकते हैं। काइल वा चर्वी रहनेसे इथर द्वारा वह गलाया जाता है। रक्त, पीप, म्युकस और वृक्कांश (Renal cast) रहनेसे अनुवीक्षणकी सहायता द्वारा इसका पता लगाया जा सकता है। म्युकस एपिथेलियम और पीप रहनेसे मूत्र गदला दिखाई देता है। लाइकर पोटाश मिलानेसे पीप रस्सीके समान हो जाती है, किन्तु म्युकसमें वैसा नहीं होता। मूत्रमें रक्त रहनेसे वह लोहित वा धूम्रवर्णका होता है तथा रासायनिक परीक्षा द्वारा उसमें अण्डलाला दिखाई देती है।

आणुवीक्षणिक।

उपरोक्त अस्वाभाविक पदार्थोंके परीक्षाकालमें मूत्रको कुछ देर तक रख देनेसे जो विभिन्न प्रकारका अधःक्षेप जमा होता है अनुवीक्षण द्वारा यदि अच्छी तरह देखा जाय, तो उससे बहुत-सी बातें जानी जा सकती हैं। वे अधःक्षिप्त वस्तु ऐसे विभिन्न आकारको धारण करती हैं, कि उसे देखनेसे ही आश्चर्यान्वित होना पड़ता है।

१ मूत्राम्ल (Uric acid) मूत्रके नीचे सुरकीके चूर्णके जैसा जम जाता है। वह देखनेमें तामड़े वा पाटलवर्णका होता है। म्युरेक्सिड टेष्ट द्वारा युरिक एसिडकी परीक्षा की जाती है। यन्त्रकी सहायतासे उसमें भिन्न भिन्न आकारके दाने दिखाई देते हैं। उनमेंसे कुछ तो चौकोन और कुछ अंडाकार वा पीपेकी तरह होता है।

२ मूत्राम्लज उपादान (Urates)—अर्थात् युरेट आव सोडियम, एमोनियम और लाइम जो मूत्रके नीचे पाया जाता है वह सुरकीके चूरके जैसा तथा पोला, तामड़े रंगका, सफेद अथवा पाटल रंगका होता है। उत्ताप देनेसे अदृश्य वा गल जाता है। युरेट आव सोडियम और एमोनिम सूक्ष्म सूक्ष्म दानेदारका-सा रूप धारण करता है। ये सब देखनेमें गोल और अस्वच्छ रेणुवत् होते हैं तथा उनके चारों ओर सूत्र और रेखा जैसी शिराओं (Spine)-से आवृत रहती हैं।

३ अग्जोलेट आव लाइम (Oxalates)—लोहिताभ और अम्लरसविशिष्ट पदार्थ। इस अधःक्षेपका ऊपरी भाग बहुत सफेद, पर निचला भाग धूसरवर्ण कोमल पदार्थके जैसा दिखाई देता है। उत्ताप अथवा लाइकर पोटाश द्वारा वह नहीं गलता, किन्तु कोई मिनरल एसिड मिलानेसे अदृश्य हो जाता है। अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा करनेसे उनमेंसे कुछ अष्टकोणविशिष्ट (Octahedra) वा मन्दिराकार (Pyramidical) और कुछ डम्बलके जैसे (Dumb-cell) दिखाई देते हैं।

४ फोस्फेटस (Phosphates)—क्षारयुक्त मूत्रको कुछ देर तक रखनेसे उसके नीचे फोस्फेटसका अधःक्षेप होता है। इससे मूत्र गदला दिखाई देता है। आंच पर चढ़ानेसे उसका गदलापन और भी बढ़ जाता है, परन्तु एक बुंद नाइट्रिक एसिड डाल देनेसे फोस्फेटस गल जाता है। इस प्रकार मूत्रमें प्रधानतः दो प्रकारके दाने देखे जाते हैं। उनमेंसे पहला फोस्फेट आव लाइम एटेलर फोस्फेटस नामसे और दूसरा फोस्फेट आव एमोनियम और मागानेसियम त्रिकोणाकार (Triple phosphates) नामसे परिचित है।

५ कार्बनेट आव लाइमका भी कभी कभी अधःक्षेप होता है। इसके दाने बिलकुल स्वतन्त्र हैं।

६ सिष्टिन (Cystine) वा कोषज पदार्थ अधिक रहनेसे मूत्र स्वभावतः तेलकी तरह गदला और पीताभ हरिद्वर्ण दिखाई देता है। उसमें थोड़ा अम्लरस भी पाया जाता है। कष्टिक एमोनिया और मिनरल एसिड द्वारा वह गल जाता है। अणुवीक्षण द्वारा वे सब छः कोनवाले खपड़ेकी तरह परीक्षित हुए हैं।

७ ल्युसिन (Leucine)—यह देखनेमें गाढ़ा हरित् वा कृष्णवर्ण तैलविन्दुकी तरह है।

८ टाइरोसिन—सूचिकाके जैसे दाने।

९ चर्वी—पालक्लि (Pancreas) की पीड़ामें मूत्रमें चर्वी रहती है। वह मूत्र अस्वच्छ और दूधके समान दिखाई देता है। इथर मिलानेसे वह साफ हो जाता है। अणुवीक्षण द्वारा बहुत बारीक रेणु दिखाई देते हैं।

१० म्युकस और एपिथेलियम—मूत्रमें सभी समय प्रायः श्लैष्मिक झिल्लीका त्वक् (Epithelium) और श्लैष्मिक पदार्थ (Mucens) विद्यमान रहता है। पीपके साथ अनेक समय इसका भ्रम होता है। अणुवीक्षण द्वारा एपिथेलियम अंकुरयुक्त वृहत् कोषके जैसा दिखाई देता है। शल्कके जैसा होनेसे उसे स्कोएमस (Squamous) और लम्बाकृति होनेसे उसे Columnar कहते हैं। एपिथेलियम और पीपकी पृथक्ता पहले ही लिखी जा चुकी है।

मूत्रयन्त्रकी पीड़ाओंका वर्णन करनेसे पहले उन सब व्याधियोंमें प्रधानतः कौन कौन औषध और मुष्टियोग प्रयोग किया जा सकता है नीचे उसीकी एक संक्षिप्त तालिका दी गई है।

साधारण औषध।

१ मूत्रकारक औषध (Diuretics)—स्निग्ध पानीयसेवन, टैप द्वारा उदरका जल निकालना, कमरमें सरसोंका लेप (Sinapism), शुष्क कापिं सैन्धव लवण और सोरा मिले हुए जलकी तलपेटमें पट्टी, तेल और जल की मालिश, नाभिकुण्डमें खटमलोंका दाब रखना, आदि कार्य द्वारा मूत्रवृद्धि होती है। औषधके मध्य एसिटेट वा नाइट्रेट आव पोटाश, एसिटेट वा नाइट्रेट आव एमोनिया, आइओडाइडस, लिथियर लवण, जिन नामक मद्य नाइट्रिक इथर, डिजिटेलिस, स्ट्रोफैन्थस, इस्कुइल, सेनेगा, साइट्रेट आव कैफिन, स्कोपेरियम, स्पार्टिन कलचिकम्, वकु, युभायरसाई, पैरिरा, टार्पेण्टाइन, वैलसम, कोपेवा, क्युवेब, वेञ्जयिक एसिड और टि कैन्थराइडिस आदि मूत्रकारक माने जाते हैं।

२ मूत्रनिवारक औषध (Anti-diuretics)—बेलेडोना, अफीम, कोडिन और आर्गट।

३ मूत्रयन्त्रकी श्लैष्मिक झिल्लीमें काम करनेवाली औषध ये सब हैं, पैरिरा, वकु, ट्रिटिकम-रेपेन्स, नाना प्रकारका वैलसम, वेञ्जयिक एसिड और वेञ्जयेट आव एमोनिया, कोपेवा, तारपीन तेल, चन्दनका तेल आदि।

४ मूत्रयन्त्रमें कंकर वा पथरी होनेसे निम्न लिखित औषधका व्यवहार किया जा सकता है। यथा—(क) युरिक एसिड कैलक्युलाइ गलानेके लिये एसिटेट वा साइट्रेट आव पोटाशियम, पाइपारयेजिन और लिथियर लवण समूह, (ख) सफफेटिक कैलक्युली होनेसे वेञ्जयिक और साइलिसिलिक एसिड का व्यवहार करना उचित है।

५ मूत्राधारमें पीड़ा होनेसे रोमाइडस, अफीम, मर्फिया, हाइयोसाइमस और बेलडोना आदि औषधोंका प्रयोग करे। विशेष विशेष स्थलमें—पैरिरा, वकु, युभायर्साइ आदिका प्रयोग किया जा सकता है। नक्सभमिका और ष्ट्रिक्निया बलकारक माना गया है। हमेशा मूत्रत्याग होनेसे बेलेडोना विशेष फलप्रद है।

मूत्रविकृतिके कारण रोग और उसकी चिकित्सा।

डा० चेनीर (Dr. Cheyne)-के मतसे पेय द्रव्योंके रसका तिहाई भाग मूत्ररूपमें निकल जाना आवश्यक है। किन्तु पसीना निकलनेके तारतम्यानुसार पेशावकी मात्रामें भी विलक्षणता देखी जाती है। इसके अतिरिक्त चवाने, चूसने लायक आदि अन्यान्य द्रव्य जो हम लोग खाते हैं, वह भी पेय जलीय पदार्थका वहुत कुछ अंश ग्रहण करनेको वाध्य है। अतएव यथार्थमें कितना जल पीनेसे उसका कितना परिमाण मूत्ररूपमें वाहर निकलेगा वा निकल सकता है इसका निर्णय करना विलकुल असम्भव है। पर हां, पेशाव अधिक हुआ वा रुक गया, यह पेशाव करनेवाला ही कह सकता है।

मूत्र अधिक निकलने अथवा उसका ह्रास होनेसे जानना होगा, कि कोई न कोई रोग अवश्य हुआ है। जिससे पेशाव सरल और सहजसे हो, मनुष्यमात्रको इस विषयमें लक्ष्य रखना एकान्त कर्त्तव्य है। जिससे मूत्राघात उपस्थित हो, ऐसे विषयको यत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिये। लगातार आलस्यमय जीवन विताना, अत्यन्त कोमल और गरम विछावन पर सोना, शुष्क अथच उद्दीपक वस्तु खाना तथा उत्तेजक और अवरोधक गुणविशिष्ट मद्यादि पीना, ये सब मूत्रकृच्छ रोगीके लिये विशेष अहितकर हैं। जिनके मूत्रकृच्छ्र रोग हुआ है तथा उससे पथरी होनेकी सम्भावना है उनके लिये मूत्ररोधक द्रव्यमात्र तथा जिससे मूत्रकृच्छ्रता उत्पादन कर सकें, ऐसी वस्तु खाना निषिद्ध है।

मूत्रको अधिक देर तक रोक न रखना चाहिये; नहीं तो वह शरीरके अभ्यन्तरस्थ जलीयांशमें पुनः सम्मिलित हो कर शरीरको क्लेदयुक्त बना देता है। इस प्रकार वार वार मूत्रके सञ्चित और उसके प्रथम जलीयांशके ऊर्द्ध्वगत होनेसे मूत्रस्थलीमें मूत्रका अंश क्रमशः गाढ़ा हो जाता है और उसीसे पथरी आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती है। मूत्रस्थलीमें Stone वा gravel सञ्चित होनेसे पेशाव करनेके समय वहुत कष्ट होता है। जो आलसी और अकर्मण्य है उनके कष्टकी सीमा नहीं रहती। कितने रोगी इस रोगके शिकार वन गये हैं, उसकी शुमार नहीं। जिसका जीवन किसी तरह वच गया है, वह अत्यन्त कष्टसे समय विताता है।

कभी कभी लोग लज्जाके कारण पेशाव रोकनेको वाध्य होते हैं, पर इससे मूत्रसञ्चय होनेके कारण मूत्रकोष अत्यन्त वढ़ जाता है। उस समय इसकी धारकता-शक्ति शिथिल हो जाती है। इस कारण मलमूत्र त्यागके समय वेगको नहीं रोकना चाहिये। उससे स्वास्थ्यमें वड़ी हानि पहुँचती है। लज्जाके कारण मूत्रवातरोगकी उत्पत्ति विशेषतः स्त्रियोंमें वहुत देखी जाती है। वृद्धावस्थामें अथवा उपदंशादि रोगके वाद मूत्रमार्गके शिथिल पड़ जानेसे मूत्रावरोधका व्याघात होता है। नीचे मूत्र और तत्सम्वन्धीय पीड़ादिके कारण संक्षेपमें लिखे जाते हैं।

मूत्रमें शुक्लांश (Albumen) विद्यमान रहने तथा दुर्वलताके कारण जव शोथ आदि लक्षण दिखाई देते हैं, तव उसे साण्डशुक्ल मूत्र (Albuminuria) रोग कहते हैं। मूत्रके साथ रक्त, अन्नरस (Chyle) लसीका (Lymph), पीप वा शुक्रका मिश्रण; डिपथिरिया (त्वच्छादन), हैजा, न्युमोनिया और सस्फोटक ज्वर; मूत्रयन्त्र अथवा गर्भके दवावके कारण वृक्क-धमनीमें रक्तकी अधिकता; रक्तकी अपरिष्कृति (अर्थात् व्राइटिस डिजिज और गर्भावस्थामें रक्तके मध्य अनेक अनिष्टकर पदार्थोंका संमिश्रण); वहुत दिन तक सीसकघटित औषध वा द्रव्यका व्यवहार; शीताद (Scurvy) मलेरिया ज्वर, रक्ताल्पता (Anaemia), वहुमूत्ररोग, उपदंशरोगके कारण शरीरमें नाना परिवर्त्तन और रक्तकी हीनता तथा अधिक परिमाणमें एलवुमेन (अण्डलाला)-युक्त द्रव्योंका खाना आदि कारणोंसे इस रोगकी उत्पत्ति हुआ करती है।

इस रोगसे पीड़ित रोगी स्वभावतः शीर्ण हो जाता है। मुखमण्डल क्रमशः पांशुवर्ण और स्फीत होता है। मूत्रकी अल्पता और उसका आक्षेपिक गुरुत्व स्वाभाविकसे न्यून अर्थात् १'१० हुआ करता है। परीक्षा द्वारा एलवुमेन (अण्डलाला) पाया जाता है। कभी कभी समूचा शरीर सूज आता है। इस समय रोगीका शिर चकराने लगता और वह कमजोरी मालूम करता है।

गर्भावस्थामें मूत्रमें एलवुमेन रहना एक गुरुतर पीड़ाका लक्षण समझा जाता था। किसी किसी गर्भिणीके

गर्भकालका आक्षेप रोग ही प्राचीन चिकित्सकोंके मतसे इसका मूल कारण समझा जाता था। किन्तु अभी परीक्षा द्वारा स्थिर हुआ है, कि सैकड़े पीछे २०के मूत्रमें एलबुमेन विद्यमान रहता है और वह कभी कभी आक्षेप रोगके बाद ही मूत्रमें देखा जाता है। गर्भावस्थामें पक्षाघात, अन्धता (Amaurosis), शिरःपीड़ा, भ्रमि (शिर घूमना), रक्तस्राव, सूतिकाक्षेपज उन्मत्तता आदि पीड़ाओंके साथ भी मूत्रमें अण्डलाला पाई जाती है। प्रसवके बाद मूत्रमें प्रायः एलबुमेन नहीं रहता।

गर्भिणीके मूत्रमें एलबुमेन रहनेके दो कारण हैं, १ला गर्भावस्थामें स्वभावतः ही भ्रूणके पुष्टिवर्द्धनार्थ और २रा विवृद्ध जरायु कर्त्तृक मेइन वा शिरामें रक्तपरिचालनाका व्याघात होनेसे रक्तमें अधिक परिमाणमें एलबुमेन रहता है। इसी कारण गर्भके पांच महीने तक प्रायः मूत्रमें एलबुमेन नहीं देखा जाता। प्रथम गर्भवतीको अकसर यह रोग हुआ करता है। क्योंकि, उनका उदर सहजमें नहीं फैलता जिससे उदरस्थ शिराके ऊपर अधिक दबाव पड़ता है। चिकित्सकगण इसे पूर्ववर्त्ती (Predisposing) कारण ही बतलाते है, यदि ऐसा नहीं होता, तो प्रायः सभी स्त्रियोंको यह पीड़ा हो सकती थी। इसके अतिरिक्त कोई हठात् परिवर्त्तन, हिमसेवन वा तज्जनित हठात् पसीनेका सूख जाना आदि उद्दीपक कारणोंसे भी (Exciting causes) अण्डलाला निकला करती है।

गर्भावस्थाका एलबुमिन्युरिया प्रसवके बाद ब्राइटाख्य रोगमें (Bright's disease)-में परिवर्त्तित हो सकता है। पेशावके साथ शरीरसे एलबुमेनके बाहर निकलनेसे भ्रूणकी पुष्टिमें बहुत बाधा पहुंचती है। इसी कारण अकसर इस रोगाक्रान्त गर्भवतीका गर्भपात होते देखा जाता है।

इस रोगका प्रधान लक्षण शोथ है। जरायुके ऊपर दबाव पड़नेसे पैरमें रस जम सकता है। किन्तु जब मुंह और हाथ फुल जाता है, तब मूत्रके एलबुमेनकी परीक्षा कर चिकित्सा करना उचित है। इस समय कभी कभी समूचा शरीर फूट जाता है। शिरःपीड़ा, भ्रमि- दृष्टिका अभाव, आदि लक्षणोंसे भी रोगकी अवस्था जानी जाती है।

मूत्रपरीक्षाकालमें केवल एलबुमेन ही पाया जाता है, सो नहीं। अणुवीक्षण द्वारा देखनेसे उसमें एपिथिलियेल सेल, ट्यूब काष्ट और रक्तकणिका (Blood-Corpuscle) नजर आती है।

रोगका कारण निर्णय कर मूत्र और पसीना लानेवाली औषधकी व्यवस्था करे तथा रोगीको बलकारक पथ्य दे। मूत्र लानेवाली ओषधियोंमें ये सब प्रधान हैं,—टिं डिजिटेलिस ३ वा ४ बुंद, टिंफेरिपरक्लोराइड १० से १५ बुंद, एसिटेट आव पोटाश १० से १५ ग्रेन। इन्हें १ औंस जलमें मिला कर प्रति दिन ३ बार करके पीनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। एलबुमेनका परिमाण ह्रास करनेके लिये गालिक एसिड, टिंष्टिल, पार्थिवाम्ल, फिटकरी और पोटाश आइओडाइडका व्यवहार करना चाहिये। शरीर और पैरको गरम रखनेके लिये सर्वदा फ्लानेलको काममें लाना चाहिये।

हाथ पैरकी कौषिक झिल्लीसे रक्तका जल-भाग निकल जानेसे ही शोथ उत्पन्न होता है। गर्भावस्थामें रक्तका परिवर्त्तन और विवृद्ध जरायुके चाप द्वारा रक्तके परिचालनका व्याघातही इसका कारण है। इस शोथमें एपिस मेलिफिका वा माक्षिकविष अव्यर्थ महौषध है। उपरोक्त मूत्रकारक औषधका भी प्रयोग किया जा सकता है। १ बुंद माक्षिक विषके टिंचरको १ औंस जलमें अच्छी तरह मिलावे, प्रति दिन आध ड्राम १ छटांक जलमें मिला कर दिनमें तीन बार करके सेवन करनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। होमियोपाथ गण इसके विशेष पक्षपाती हैं।

पूर्वोक्त औषधका सेवन करनेसे यदि पीड़ाकी शान्ति न हो, वरन् दिनों दिन वृद्धि ही देखी जाय, तो अकाल प्रसव कराना ही उचित है, नहीं तो कठिन सूतिका क्षेपज आक्षेप वा वृक्कमें (Kidney) ब्राइटस रोग उत्पन्न हो सकता है। ७वें वा ८वें मासमें अकाल प्रसव करनेसे गर्भस्थ सन्तानके नष्ट होनेका डर नहीं रहता; वरन् इस प्रकार रोगसे पीड़ित प्रसूति यदि पूर्ण

कालमें प्रसव करे, तो प्रायः मृत-सन्तान ही भूमिष्ठ होती है।

सुस्थावस्थामें मूत्रमें एलवुमेन वा पेप्टोन नहीं मिलता, किन्तु दीर्घकालस्थायी अजीर्ण रोगमें तथा अस्थिमज्जोप (Osteomyelitis), अभ्यन्तर पूय (*Empyema*), सपूय अन्त्रावरण प्रदाह (*Peritonitis*), क्षयकास (*Phthisis*), फुस्फुसप्रदाह (*Pneumonia*), शीताद (Scurvy) आदि व्याधियोंमें मूत्रमें पेप्टोन पाया जाता है। इस रोगका ऐसा कोई विशेष लक्षण नहीं जिससे रोगके अस्तित्वका पता लग सके। मूत्र हिलानेसे उसमें बहुत फेन आता है और परीक्षा द्वारा एलवुमेन पाया जाता है।

मूत्रयन्त्र अथवा उसके वस्तिकोटर (*Pelvis*)-में पीपका सञ्चार, मूत्राधार अथवा मूत्रमार्गमें प्रदाह, प्रदर-रोग (Leucorrhaea) और मूत्रमार्गके समीप स्फोटकके विकाश आदि कारणोंसे मूत्रके साथ पीप निकलती है। इसे (*Pyuria*) या पीप मिश्रितमूत्ररोग कहते हैं। इसमें मूत्र गदला और दुर्गन्धयुक्त होता है। लाइकर पोटाश मिलानेसे रज्जुवत् पीप और उत्ताप होनेसे एलवुमेन पाया जाता है। अणुवीक्षण द्वारा पीपका कण दिखाई देता है। पीपके तारतम्यानुसार रोगके लक्षण-में भी कमी वेशी देखी जाती है।

मूत्रयन्त्रके वस्तिकोटर (*Pelvis*)से पीप निकलने पर भी मूत्र पीपमिश्रित और अम्लाक्त तथा श्लैष्मिक झिल्लीके त्वक्‌में परिपूर्ण रहता है। इस समय कमरमें हमेशा दर्द मालूम होता है। मूत्राधारसे पीप निकलनेसे मूत्रत्यागके वाद रज्जुवत् पीप तथा मूत्रमार्गमें पीप रहनेसे मूत्रत्यागके पहले ही पीप निकल पड़ती है। प्रदरजनित मूत्रमें पीप रहनेसे कैथिकर नामक नलयन्त्र द्वारा मूत्र निकलनेके समय उसमें पीप नहीं दिखाई देती। अधिक दिन यह पीड़ा स्थायी होनेसे मूत्रयन्त्र आक्रान्त हो सकता है।

रोगका मूल कारण वतला कर पहले चिकित्सा द्वारा उसीकी यन्त्रणा दूर करना उचित है। पीछे पीप-की उत्पत्ति रोकनेके लिये फिटकरी, गालिक एसिड डिककसन, युभायर्सी या वकु, वैलसम, कोपेवा, तार-पिनका तेल और सङ्कोचक औषधोंका प्रयोग करना चाहिये। मूत्राशयमें जलन (Cystitis) देनेसे मृदु कार्वलिक वा जिङ्क (दस्ताधातु) लोशन द्वारा पिच-कारी तथा वहां पर उष्ण स्वेद और प्रलेप दे। रोगीके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये बलकारक आहार, जलवायु-परिवर्त्तन, समुद्रजलमें स्नान, बलकारक औषध (Tonics) काडलिभर आयलकी व्यवस्था करे।

अजीर्णताके कारण रक्तके मध्य अधिक चर्वीके सञ्चय तथ मूत्रवाह प्रणाली (Ureters)-के मध्यस्थित लसीका-नाड़ीके स्फोति-जन्य विदारणसे ही अन्नरसा-श्रित मूत्र (Chylous Urine) रोगकी उत्पत्ति स्वीकार की जा सकती है। इस सम्बन्धमें डा० ल्युइस और कनि-हमका कहना है, कि Filaria sanguinis Hominis नामक पराङ्गपुष्टकारी सूक्ष्म कीट मूत्रवाह प्रणालीको लसिका नालीके मध्य प्रवेश कर एकत्र लोष्ट्राकारमें अवस्थान करते हैं। उनके दवावसे उक्त नाली भिन्न हो मूत्रसह लसिका और अन्नरसके निकलनेमें सहायता पहुंचाती है। डा० मानसन (Dr. *Manson*) ने परीक्षा द्वारा उस कीटजातिके Diurna, *Nocturna* और *Pers tans* नामक तीन प्रकारके भेद निर्देश किये हैं अर्थात् वे सव कीड़े दिन रात रक्तमें रहते हैं। फिर ये तीनों कीट भी भिन्न भिन्न आकारके होते हैं। मादा ३।४ इञ्च लम्बी और वालकी तरह पतली तथा नर उससे कुछ छोटा होता है। उनका डिम्ब $\frac{१}{१६००}$ से $\frac{१}{६००}$ लम्बा होता है। वे सव डिम्ब अण्डाकारसे क्रमशः लम्बे होते हैं। यह अवस्था उनकी भ्रूण (Embryo) कहलाती है।

उक्त विभिन्न श्रेणीके कीटोंके अवस्थानानुसार मूत्र-में भी दिनमानादिक्रमसे अन्नरस (Chyle) देखा जाता है। ग्रीष्मप्रधान देशोंमें ही प्रधानतः इस रोगका प्रादु-र्भाव हुआ करता है। वाल वृद्ध युवा तथा विशेषतः स्त्रीजाति ही इस रोगसे आक्रान्त होती है।

इस व्याधिसे आक्रान्त होनेसे पहले किसी प्रकार का भी लक्षण दिखाई नहीं देता। हठात् यह व्याधि आक्रमण कर देती है। उस समय मूत्र लोहिताभ श्वेत-

वर्णका हो जाता है। कभी कभी फेनयुक्त तथा बरतन में रखनेसे ऊपरी भागमें दूधकी छालीके जैसा पदार्थ दिखाई देता है। रासायनिक परीक्षा द्वारा उसमें साण्ड-शुक्र, रक्ततान्त (Fibrin) और चर्बी पाई गई है। इथर मिलानेसे उसका कुछ अंश गल जाता है। अणुवीक्षण की सहायतासे उसके मध्य तैलविन्दु, शस्यवत्कोष, परा-ङ्गपुष्टप्राणी और लोहितवर्ण रक्तकणिका दृष्टिगोचर होती है। उत्ताप देनेसे मूत्र शिथिलभावमें संयत होता और उससे दूधसी गंध निकलती है। रोगीके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कोई विशेष व्यतिक्रम नहीं देखा जाता, केवल उसकी देह शीर्ण और दुर्बल हो जाती है। वह कमरमें उदरके नीचे और मूत्रमार्गमें वेदनाका अनुभव करता है। कभी कभी संयत काइल द्वारा भी मूत्रावरोध होता है।

मूत्रमें पीप वा फोस्फेट रहने पर भी इस रोगके साथ भ्रम हो सकता है। उस समय रासायनिक प्रक्रिया द्वारा प्रकृत रोगका पता लगाये विना काम नहीं चलता। बहुकालव्यापी यह रोग बिलकुल आरोग्य हो जाने पर भी फिरसे अथवा बीच बीचमें हो सकता है। कभी कभी अकस्मात् रोगीको मृत्यु भी हो जाती है।

कभी कभी रोग विना चिकित्साके भी आरोग्य हो जाता है। औषधोंमें पोटाश आइओडाइड, पाइको नाइटेट आव पोटाशियम, टिं-ग्रिल और मानग्रोभ वृक्षकी छालका व्यवहार कर सकते हैं। लवणाक्त जलमें स्नान और बलकारक पथ्यसे भी बहुत उपकार होता है। थोड़ा मांसका जूस भी दिया जा सकता है। शरीरमें फिलेरिया कीटको न घुसने देनेके लिये गरम जलको ठंढा करके पीना और खाद्य द्रव्यादिको जलसे पाक करना चाहिये।

सरक्त-मूत्र रोग निम्नोक्त कारणसे उत्पन्न हुआ करता है। १ आघात, २ तारपिनका तेल वा कन्था-रिस नामक स्पेन देशीय माक्षिक औषध (Cantharidis)-का सेवन अथवा मूत्रपथरी, कर्कटरोग, एम्बलिजम, साण्डशुक्रमूत्र (Acute Bright's disease)-से मूत्रयन्त्रका रक्ताधिक्य वा प्रदाह ; ३ मूत्राधारका रक्ताधिक्य वा प्रदाह अथवा उसमें अर्बुद (Polypus) शिराप्रसारण (Varicose veins) अथवा कर्कटरोग ; ४ प्रमेह (Gonorrhaea) वा किसी दूसरे कारणसे मूत्रमार्गमें प्रदाह ; ५ धूम्ररोग (Purpura), शीताद (Scurvy), वसन्त और हैजा आदि विषज रोगोंसे रक्तका तारल्य और परिवर्त्तन, ६ दारुण मनस्ताप और ७ ग्रीष्मप्रधानदेशमें मूत्रयन्त्रमें पराङ्गपौष्टिक कीटका संस्थान ही प्रधान कारण है। कभी कभी प्रातिनिधिक उपसर्गका भी कारण दिखाई देता है। ग्रीष्मप्रधान मोरिसस द्वीपमें इस संक्रामक रोगका प्रादुर्भाव हुआ करता है।

इस रोगमें मूत्र लाल दिखाई देता है। हमेशा वा कभी कभी मूत्रके साथ रक्त गिरता है। अङ्गचालना, अश्वारोहण वा द्रव्यविशेषके खानेसे यह रोग बढ़ता है। मूत्रयन्त्रसे रक्त निकलने पर मूत्र धूम्रवर्णका दिखाई देता है। मूत्रयन्त्रके वस्तिगह्वर और मूत्रवाहप्रणालीसे निकलते समय लंबा और कीटाकृति संयत रक्त तथा मूत्राधारसे रक्तस्राव होने पर पेशाब करनेके बाद रक्त गिरता है। मूत्रमार्ग (Urethra) से निकलने पर पहले ही रक्त निकलता है। अणुवीक्षण द्वारा रक्तकणिका तथा रासायनिक द्वारा शुक्रांश पाया जाता है। इस समय उस स्थानमें वेदना होती तथा रक्तस्रावके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। कभी कभी सैनिक तथा गुल्मवायु (हिष्टिरिया) रोगाक्रान्त स्त्रियां बड़े कौशलसे मूत्रके साथ रक्त मिला देती हैं। ऐसी हालतमें रक्तस्रावके लक्षण रोगनिर्णयके सहकारी होते हैं। यह रोग अकसर आरोग्य हो जाता है।

एसिड गालिक, सुगर आव लेड, पाइरो गालिक एसिड, एसिड सलफ्युरिक डिलके साथ टिं ओपियाई, हमामेलिस आदि औषध सेवनीय है। वहिर्देशमें आर्गटिन इञ्जेक्सन करनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। मूत्राधारमें होनेसे शीतल जलकी पिचकारी तथा मूत्रमार्गमें होनेसे एक साउण्ड वा कैथिटर यन्त्रको कुछ देर तक लगा कर रखनेसे बहुत उपकार होता है।

उपरोक्त लोहित सभी रक्त कणिकाएं जब गल कर मूत्रके साथ बाहर निकलती हैं, तब उसे हिमाटिन्युरिया (Haematinuria) वा Haemoglobinuria कहते हैं। इसमें स्नायुमण्डलकी क्रियाके व्यतिक्रम होनेके कारण मूत्रयन्त्रस्थ रक्तनालियाँ स्फीत हो उनके मध्य-

वर्त्ती रक्तस्रोतके मध्य पहले ही रक्तकणिकायें द्रव हो जाती तथा वही मूत्रमें मिल कर बाहर निकलती हैं।

मलेरिया और दूषित ज्वर (Septic fever) मूत्रयन्त्रके ऊपर शीतल वायुसञ्चालन, धूम्ररोग और शीताद पीड़ासमूह, उदजन वाष्प आघ्राण आदि कारणोंसे रक्तकणिकाएं गल कर मूत्रमें मिल जाती हैं। पर्यायक्रमसे इस पीड़ाके उपस्थित होने पर उसे पारक्सिज़्मल हिमोग्लोबिनिउरिया कहते हैं। यह प्रायः युवकोंको ही हुआ करता है।

इसमें मूत्र गदला, काला अथवा पोर्ट नामक शरावके जैसा दिखाई देता है। इसमें नीचे जो अंश बैठ जाते हैं अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा करनेसे वे कंकरके जैसे मालूम होते हैं। रासायनिक परीक्षा द्वारा अधिक एलबुमेन पाया जाता है। स्पेक्ट्रोस्कोप (Spectroscope) द्वारा मूत्रके मध्य अङ्गपक कमला नीबूके रंगकी तरह दो रेखा देखी जाती हैं। पर्यायक्रमसे हिमोग्लोबिनिउरिया आरम्भ होनेके पहले दुर्बलता, शीत, कम्प, कटिदेशमें वेदना, दोनों पैरमें यन्त्रणा और दृढ़ता, उदरमें शूलवत् वेदना, निद्रावेश, जृम्भन, पिपासा, शिरोवेदना, मुखश्री म्लान वा धूम्रवर्ण, कभी कभी वमन, विवमिषा और अण्डकोषके संकोचन आदि लक्षण दिखाई देते हैं। पीछे कृष्णवर्ण मूत्रत्याग होने लगता है। ज्वर नहीं रहता, शरीरमें ताप भी स्वाभाविकसे कम रहता है। विरामकालमें मूत्र स्वाभाविक तथा रोगी सुस्थता मालूम करता है। शरीरकी चमड़ी पीली हो जाती है।

इस रोगमें कुनाइन और टिंचर विशेष लाभदायक है। दूसरी दूसरी औषधोंमें आर्सेनिक गालिक एसिड, एसिटेट आव लेड, डिजिटेलिस, आर्गट और पोटाश आइयोडाइड सेवनीय है। रोगी हमेशा गरम वस्त्र पहने रहे नहीं तो, ठंढ लगने पर रोग बढ़ जानेकी सम्भावना है। कभी कभी विना चिकित्साके यह रोग आरोग्य होते देखा गया है।

मूत्रनिस्राव नहीं होनेसे अचैतन्य, आक्षेप आदि लक्षण यदि दिखाई दे, तो जानना चाहिये, कि मूत्रक्षयविकार (Uraemia) रोग उत्पन्न हुआ है। प्राचीन चिकित्सकोंके मतसे मूत्रका यवक्षार-ज्ञान-विशिष्ट उपादान (Urea) अपस्रावित न हो कर कार्बनेट आव एमोनियामें परिवर्त्तित होनेसे उक्त पीड़ा उत्पन्न होती है। किन्तु आज कलके चिकित्सक उसे स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं, कि युरिया और युरिक एसिड आदि अनिष्टकर पदार्थ मूत्रके द्वारा नहीं निकलनेसे रक्तस्रोतमें उनके जम जानेके कारण शोणित विषाक्त और सरल हो कर इस रोगको उत्पन्न करता है। डा० ट्राबि (Dr. Traube)-का कहना है, कि तरल शोणितके ऊपर किसी प्रकारका दबाव पड़नेसे मस्तिष्कमें इडिमा उत्पन्न होती है तथा उससे युरिमियाके लक्षण दिखाई देते हैं।

हैजा और ब्राइटस पीड़ाका उपसर्ग, ये दोनों रोग युरिटर की अवरुद्धता तथा मूत्रावरोधके कारण उत्पन्न होते हैं। इस समय रोगीके मस्तकके पश्चाद्भागमें वेदना होती है और सामनेका भाग भारी मालूम होता है। शिर चकराना, निद्रावेश, श्रवण और दर्शनशक्तिका ह्रास, वमन, उदरामय, हस्तपदादिका स्पन्दन, कभी कभी मृगी वा संन्यासरोगकी तरह आक्षेप, नाड़ीकी दुर्बलता, उत्ताप की न्यूनता, श्वासकृच्छ्र, श्वास और पसीनेमें मूत्र सी दुर्गन्ध, प्रलाप, अचैतन्य आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। पीड़ाके शुरूमें शिरमें दर्द और वमन होता है। कभी कभी आक्षेपादि होते भी देखा जाता है। आक्षेप उपस्थित होने पर मुखमण्डल उदास मालूम होता और कनीनिका प्रसारित होती है। युरिटरकी अवरुद्धताके कारण रोगमें निम्नोक्त कई लक्षण दिखाई देते हैं, जैसे—मूत्रकी अल्पता और देखनेमें जलके समान तरल, अङ्गप्रत्यङ्गस्पन्दन, अनिद्रा, श्वासप्रश्वास मृदु और कष्टकर, अत्यन्त पिपासा, जिह्वा और मुखाभ्यन्तर शुष्क, निद्रावेश और अस्थिरता। ऐसे रोगीको ६से १२ दिनके भीतर मृत्यु होती है। इस रोगमें अचैतन्यका आक्षेप नहीं रहता।

संन्यास वा मृगी रोग अथवा अफीम और बेलडोना सेवनके कारण विषमय भाव (poisoning) के साथ इस पीड़ाका भ्रम हो सकता है। इस कारण चिकित्सक को उचित है, कि वे अच्छी तरह रोगको पहचान कर उसकी चिकित्सा करें। इसकी चिकित्साप्रणाली इस प्रकार है—

कमरमें गरम जलका स्वेद, पुलटिश वा ड्राय कापिं तथा त्वक्की क्रियावृद्धिके कारण कभी कभी वाष्प अथवा गरम जलमें स्नान कराना उचित है। उदरामय रहनेसे पहले उसीको शान्त करनेकी चेष्टा करे, पर एकबारगी मलरोध न करे। क्योंकि, मल द्वारा अनेक विषाक्त पदार्थ बाहर निकल जाते हैं जिससे रोग आरोग्य होनेकी सम्भावना है। दस्त बंद करनेसे वे सब विषाक्त पदार्थ निकल नहीं सकते और इससे रोग आरोग्य होनेमें बाधा पहुंचती है। रोगी यदि अचैतन्य हो जाय, तो गलेमें ब्लिष्टर देना उचित है। मृगी रोगकी तरह आक्षेप होनेसे क्लोरोफार्मका सुंघना, क्लोराइस हाइड्रास, नाइट्रेट आव एमाईल, नाइट्रोग्लिसरिन, एमोनिया, इथर, ओजोनिक इथर, वेंञ्जयेट आव सोडा आदि प्रयोज्य है। जिस पीड़ामें उपसर्ग स्वरूप यह व्याधि होती है उसकी अच्छी तरह चिकित्सा करना उचित है। कालेरा रोगमें प्रधानतः उपसर्गरूपमें युरिमिया देखी जाती है। उस समय जब तक पेशाव नहीं उतरे, तब तक मूत्राधार (Kidneys)-के ऊपर ब्लिष्टर आदि दे कर दूषित शोणितको शोषण तथा मूत्रकोष हो कर तरल मिश्रमूत्रको निकालनेकी कोशिश करनी चाहिये, इस समय रोगीके श्वासकृच्छ्र और पिपासाकी वृद्धि होती है। साथ साथ दृष्टिशक्तिका ह्रास और शिर चकराने लगता है। इस समय रोगीकी अवस्था बड़ी शोचनीय हो जाती है, जीनेकी कोई आशा नहीं रहती। बालक बालिका, वा वयोवृद्धके पांच वा छः बार भेद वा कोलेराके आकारमें दस्त आनेसे घरके लोग युरिमियाकी आशङ्कासे पूछा करते हैं कि दस्तके साथ पेशाव आया है वा नहीं। भेदके बाद दुर्बल शरीरमें यदि मूत्राघात उपस्थित हो, तो मूत्रवाहिका नालीके संकुचित पथमध्य हो कर मूत्र प्रवहणको विशेष असुविधा होती है तथा दो वा तीन दिन इस प्रकार मूत्रके रुक जानेसे युरिमिया विष शरीर और रक्तमें सञ्चालित हो देहवल्लीमें एक विषधारा ढाल देता है। उस विषकी ज्वालासे जर्जरित हो मनुष्य रोगकी निदारुण यन्त्रणा भोग करते करते जीवन विसर्जन करता है।

बहुमूत्ररोग प्रधानतः दो प्रकारका है—१ मधुमेह (Diabetes Mellitus) और २ तृष्णातिशययुक्त बहुमूत्र (Diabetes Insipidus)। ये दोनों रोग बहुमूत्रके अन्तर्भुक्त होने पर भी उनकी प्रकृति एक-सी नहीं है। मधुमेह नामक बहुमूत्ररोगमें मूत्रके साथ शर्करा निकलती है और दूसरेमें शर्करा बिलकुल नहीं रहती।

अधिक परिमाणमें और बार बार मूत्रत्याग होने तथा उस मूत्रके परीक्षाकालमें शर्कराका निकलना दिखाई देनेसे बहुमूत्र पीड़ा जाननी चाहिये। एलोपैथिक के मतसे यह रोग ग्लाइकोसुरिया (Glycosuria) नामसे भी परिचित है।

डा० बेनार्डका कहना है, कि खाये हुए द्रव्यकी शर्करा और वस्तुसार (Starch) बहुत कुछ यकृतकी क्रिया द्वारा ग्लाइकोजन अर्थात् द्राक्षा शर्करामें रूपान्तरित होती है। यकृत प्रणाली (Hepatic Duct) और अधः अवरोहिणी शिरा (inferior vena cava) के शोणितमें स्वभावतः ही सहस्रांशके १ से ३ भाग तक द्राक्षा-शर्करा रहती है। सुस्थ शरीरमें फेफड़ेके मध्य वह दग्ध हो जाती है। इसी कारण धमनोके रक्तमें शर्करा नहीं पाई जाती। यदि आहार द्वारा शरीरमें अधिक शर्करा प्रवेश करे, अथवा यकृतकी क्रियाके व्यत्यय के कारण अतिरिक्त द्राक्षाशर्करा सम्पूर्णरूपसे दग्ध न हो जाय, तो शर्करा रक्तमें मिल कर मूत्रके साथ बाहर निकलती है।

डा० पेभीका मत बिलकुल स्वतन्त्र है। वे कहते हैं,- कि यकृतमें शर्करा उत्पन्न नहीं होती। स्वभावतः मूत्रमें जो सामान्य शर्करा रहती है, साधारण परीक्षा द्वारा वह दिखाई नहीं देती। इस रोगमें अन्त्रादि रक्त नालियां शिथिल हो जाती हैं और उस कारण यकृत्की धमनीमें नियमित रूपसे रक्त परिवर्त्तित नहीं हो सकता। यकृत् शिराके रक्तस्रोतमें अतिरिक्त आक्सिजन-मिश्रित रक्त प्रवाहित रहनेसे उसके मध्यका प्राचुर्युक्त पदार्थ समूह शर्करामें परिणत हो कर साधारण रक्त-स्रोतसे गमन करता है और उसके बाद क्रमशः मूत्रके साथ बाहर निकल पड़ता है अधिक प्राचुर्युक्त द्रव्य भक्षण, क्लोरोफार्म आघ्राण, कुंचिला (Strychnine) द्वारा शरीर विषाक्त होना, श्वासकास और हुपिंकफ आदि फेंफड़ेको

पीड़ा, मृगी, संन्यासरोग और धनुष्टङ्कारादि स्नायुमण्डलकी व्याधि; यकृत् और अन्यान्य यन्त्रके आघात तथा पाललिक (*Pancreas*) पीड़ा अथवा उसके सम्पूर्ण ध्वंस आदि कारणोंसे शर्कराका परिमाण बढ़ जाता है। डा० वोलार्डने स्थिर किया है, कि ४र्थ कोटर (*Ventricle*) अथवा स्नैहिक स्नायुओं (Sympathetic nerves)-की उत्तेजनासे इस रोगकी उत्पत्ति होती है। जो कुछ हो; स्नायुमण्डलका क्रियावैलक्षण्य ही जो इस रोगोत्पत्तिका मूल कारण है, इसमें किसीका मतभेद नहीं देखा जाता।

गात्रमें शैत्यसंलग्न, उत्तप्त शरीरमें शीतल जलपान, अधिक शर्करा वा श्वेतसारयुक्त आहार्य भोजन, अतिरिक्त सुरापान, मानसिक परिश्रम वा विषय कार्यमें अधिक मनोनिवेश, अत्यन्त मनःकष्ट या शोक, मेरुदण्ड वा मस्तकके ऊपर आघात, स्नैहिक स्नायुमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन, सस्फोटक ज्वर और गेठिया वात आदि रोग इसके उद्दीपक कारण हैं। कभी कभी यह वंशपरम्परासे चला आता है। २५से ६५ तक यह रोग होनेकी सम्भावना है। निश्चेष्ट नगरवासी और विलासी धनी व्यक्ति साधारणतः इस रोगसे आक्रान्त हुआ करते हैं। भारतवर्ष, सिंहलद्वीप और इटाली देशमें ही इस रोगकी प्रबलता देखी जाती है। यहूदियोंके मध्य बहुमूत्र रोगीकी संख्या ही अधिक है।

इस रोगमें पृष्ठांशस्थित मज्जाके ऊपरका बड़ा अंश Medulla oblongata) और पन्सभेरोलाईकी निकटस्थ धमनियां स्फीत होती तथा स्नायुविधानमें अपकृष्टता और क्षय देखा जाता है। कभी कभी मेडुला आब लङ्गाटा, पन्सभेरोलाई और स्नैहिक स्नायुके ऊपर अर्बुद (बतौरी) देखा जाता है किन्तु उसके ऊपर निर्भर करके यथार्थ रोगका निर्णय नहीं किया जा सकता। अतएव इसमें रोगनिर्देशक कोई भी परिवर्त्तन संघटित नहीं होता। अन्यान्य परिवर्त्तनके मध्य मूत्रयन्त्रका प्रदाह और फेफड़ेमें यक्ष्मारोगका चिह्न विद्यमान रहता है। हृत्पिण्ड छोटा, पाललिका बड़ी अथवा छोटी, पाकाशय फैला हुआ तथा उसकी श्लैष्मिक झिल्ली स्थूल होती है। त्वक्में क्षत और चर्मरोग आदि दिखाई देते हैं।

साधारण लक्षणके सिवा इस रोगमें मूत्रयन्त्र और पाकयन्त्र सम्बन्धीय अनेक विकार देखनेमें आते हैं। उन सब विकारोंको अच्छी तरह देख सुन कर प्रवीण चिकित्सक रोगनिर्णय और उसकी चिकित्साकी सुव्यवस्था करें। नीचे सिलसिलेवार लक्षणादिका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

रोगी देखनेमें अत्यन्त कृश और दुर्बल, मुखमण्डल चिन्तायुक्त और मलिन, चर्म शुष्क; पेशियां शिथिल और कोमल, सर्वाङ्गमें वेदना, कभी कभी शीतबोध, दोनों पांव स्फीत और शोथयुक्त, पुरुषत्वका ह्रास, आलस्य, कर्कश स्वभाव और मानसिक शक्तिके ह्रास आदि लक्षण वर्त्तमान रहते हैं। रक्त तथा शरीरके अन्यान्य निस्रावमें शर्करा पाई जाती है। उत्ताप स्वाभाविकसे कुछ कम होता है। रोगीके ज्वर होनेसे उपयुक्त उत्ताप नहीं दिखाई देता। दृष्टिशक्तिमें वैलक्षण्य और स्नायुशूल होता है। फलकास्थित (*Patella*)-की प्रतिक्रिया शिथिल पड़ जाती है। रोग कठिन होनेसे मस्तिष्क और फेफड़ेमें पीड़ा होती तथा अन्तमें अत्यन्त दुर्बलता, उदरामय निद्रावेश, आक्षेप और अचैतन्यादि गुरुतर लक्षण दिखाई देते है।

शरीके मध्य शर्कराका परिमाण अधिक रहनेसे एसिटोन (*Acetone*) नामक पदार्थ उत्पन्न होता है और इससे एसिटोनिमिया (*Acetonoemia*) अर्थात् अचैतन्य और विकारका लक्षण उपस्थित हो कर रोगीको मार डालता है। अधिक शर्करा अथवा चर्वी मिले हुए रक्त या जमावट चर्वीके मस्तिष्कमें सञ्चालित होनेसे अचैतन्य और आक्षेपादि होनेकी सम्भावना है। अचैतन्य होनेसे पहले उदरके ऊद्‌र्ध्वदेशमें वेदना, अत्यन्त कोष्ठबद्धता, दम फूलना, प्रलाप और निजार्क(*Kneejerk*) का ह्रास आदि उपद्रव होते हैं।

मूत्रयन्त्रसे वार वार अधिक मात्रामें मूत्र निकलता है। वह मूत्र कुछ उत्तेजक होता, इस कारण मूत्रमार्गमें जलन देती है। पुरुष वा स्त्रीको बाह्य जननेन्द्रियमें उत्तेजना और कटिदेशमें वेदना होती है। २४ घंटेके मध्य मनुष्यका स्वाभाविक पेशाव २ से ३ पाइंट होता है, पर इस पीड़ामें साधारणतः उतने समयमें ८ से ३०

पाइंट तक होते देखा गया है। मूत्र जलवत् परिष्कार और स्वच्छ होता है। उसका आपेक्षिक गुरुत्व कमसे कम १.१५ और ज्यादेसे ज्यादा १.६० है, किन्तु साधारणतः १.३० से १.४० तक हुआ करता है। उष्ण स्थानमें रखनेसे मूत्रमें फेन आता है। शर्कराकी अधिकताके कारण कपड़ेमें दाग पड़ जाते हैं। मूत्र पर चिउँटी वा मक्खी बैठ कर मीठा रस चूसती है।

युरिया और युरिक एसिडका भाग बढ़ता है। मूत्रमें सैकड़े पीछे ८से १२ भाग शर्करा रहती है। २४ घंटेमें १५ से २५ औंस शर्करा निकलती है। खानेके बाद, विशेषतः मिष्टान्न और ष्टार्चयुक्त वस्तु खानेके बाद मूत्रमें शर्कराका भाग अधिक देखा जाता है। रोगी ज्वराक्रान्त होनेसे शर्करा कम हो जाती है अथवा कभी कभी तो बिलकुल रहती ही नहीं। मांस खानेके बाद भी शर्कराका ह्रास होता है। कभी कभी मूत्रमें एलबुमेन और काइल रहता है।

शरीरकी दुर्बलताके कारण भूख नहीं लगती जिससे पाकयन्त्रमें विकार उत्पन्न होता है। इस समय उदरका ऊपरी भाग भारी मालूम पड़ता है, खट्टी डकार आती, मल कड़ा और फेनयुक्त निकलता तथा हमेशा कोष्ठबद्धता मालूम होती है। पीड़ाकी अन्तिम अवस्थामें आमाशय वा उदरामय हो सकता है। रालमें शर्करा पाई जाती है और उस शर्कराके लाकटिक एसिडमें बदलनेसे राल खट्टी हो जाती है। रोगीको प्यास बहुत लगती है, जीभ सूख जाती, लाल दिखाई देती, कभी कभी सरस अंकुरयुक्त हो जाती है। पहले प्रश्वास वायुमें मूल नामक मदिराकी तरह मीठी गन्ध तथा रोग कठिन होनेसे सिर्का (Vinegar) अथवा सड़ी पची बीयर शराबकी सी गंध निकलती है। मसूढ़ा कोमल और रक्तस्रावयुक्त होता है।

बहुमूत्ररोग दीर्घकाल स्थायी होनेसे क्रमशः यक्ष्मा, स्फोटक, दग्धव्रण (Carbuncle), विदग्ध दृष्टि (Soft cataract) और विचर्चिका (psoriasis) आदि उपसर्ग उपस्थित होते हैं। प्रधानतः इस पीड़ाकी गति उतनी प्रबल नहीं है, किन्तु कभी कभी इसके लक्षण प्रबल होते देखे जाते हैं। रोगकी प्रथमावस्थामें लक्षणोंका प्रकोप होता है, किन्तु पीछे उतना नहीं रहता। अधिकांश रोगी १से ३ वर्षके भीतर कराल कालके शिकार बन जाते हैं। शेषावस्थामें मूत्रका परिमाण और शर्कराका भाग थोड़ा हो जाता है, किन्तु मूत्रमें एलबुमेन रहता है। खानेमें अरुचि, अनिवार्य वमन, उदरामय और अन्यान्य लक्षण दिखाई देते हैं। आखिर दुर्बलताके कारण अथवा किसी दूसरे उपसर्गसे रोगीकी मृत्यु होती है।

यह पीड़ा कठिन होने पर भी रोगी कभी कभी आरोग्य हो जाता है। नियमानुसार भोजन, परिधान और व्यायाम करनेसे रोगी बहुत दिन तक जीवित रह सकता है। युवकोंकी पीड़ा ही कुछ गुरुतर होती है। बुढ़ापेका रोग उतना प्रबल नहीं होता। रोगीके अचैतन्य हो जानेसे कभी कभी संन्यासरोगके साथ इसका भ्रम होता है, किन्तु प्रश्वासित वायुको गंध और मूत्रको परीक्षा करनेसे सहज हीमें रोग निर्णय किया जा सकता है।

आहारकी सतर्कता ही इस पीड़ाकी मुख्य चिकित्सा है। चीनी, मधु, आलू, मीठाफल, अन्न, सागूदाना, मटर और अन्यान्य ष्टार्चघटित द्रव्य खाना निषिद्ध है। मांस, मछली, डिम्ब, भूषिर बिस्कुट, मैदेकी रोटी कुछ जली रोटी, मक्खन, मथा हुआ दूध, दूधकी छाली, खोरा और सागसब्जी खाना विशेष फलदायक है। बिना चीनीके चाय और कहवेका व्यवहार किया जा सकता है। चीनीके बदलेमें साकेरिनको काममें ला सकते हैं। दूधमें इसलिये मना किया गया है, कि उसमें शर्करका भी भाग है। किन्तु थोड़ा व्यवहार करनेसे कोई नुकसान नहीं। पशुविशेषका यकृत् वा शुक्ति अपकारी है। डा० डनकिनका कहना है, कि बहुमूत्रग्रस्त रोगीको प्रति दिन ६से ८ पाइंट मथा हुआ दूध (मट्ठा निकाला हुआ दूध वा दूधका जल-भाग) अथवा तरल मट्ठा पिलानेसे शर्करका ह्रास हो सकता है अनेक समय वह भी विशेष फलप्रद नहीं होता। मद्यमें ब्रैण्डी, ह्विस्की और तिक्तफल मद्यका थोड़ा सेवन करा सकते हैं, परन्तु पोर्ट और शेरी आदि दाखसे बनाया हुआ मद्य बिलकुल निषिद्ध है। बीच बीचमें रोगीकी रुचि बदलनेके

लिये पथ्य बदल देना उचित है, नहीं तो क्षुधामान्द्य हो सकता है। यदि पथ्य खानेमें रुचि न हो, तो थोड़ी रोटी दे सकते हैं। प्यास रोकनेके लिये वर्फ, एसिड फोस्फरिक डिल, क्रीम आव टटार सोल्युशन, भिचि वा कार्लस-वाड आदि धातव जलका सेवन कराना उचित है। जलपान निषेध करनेसे विपरीत फल होनेकी सम्भावना है। रोगीको हमेशा गरम कपड़े से ढके रहना चाहिये जिससे ठंढ लगने न पावे। सामुद्रिक जलवायु इस रोगमें विशेष उपकारी है।

अफीम इस रोगकी महौषध है। २४ घंटेके भीतर १ से १० ग्रेन तक अफीम तथा $\frac{१}{२}$ ग्रेन तक कोडोया-का व्यवहार किया जा सकता है। अन्यान्य ओषधोंमें वाइकार्वनेट आव सोडा वा पोटाश, पेपसिन, आर्सेनिक, पोटाश ब्रोमाइड वा आइवाइड, कोनायम, कनाविस इण्डिका, लाकटिक, एसिड वा लाकटेट आव सोडा कुनाइन, आर्गट, भेलेरियन, क्रियोजोट, पार्माङ्गनेट आव आव पोटाश, लाइकर फेरी डाइएलिसेटस, पेरक्साइड आव हाइड्रोजन आदि प्रयोज्य है। उक्त औषधको स्नायु-मण्डलकी अवसादक तथा शर्करादग्धकारक माना गया है। रोग पुराना होनेसे काडलिभर आयल और टिं-ष्टिल विशेष फलप्रद है। नया होनेसे अक्सिजन आघ्राण, आभ्यन्तरिक कार्वलिक वा साइलिसिक एसिड और थाइमलका प्रयोग किया जा सकता हैं।

R कोडाया ... gr. ss.

क्रियोजोट ... m ⅓

एक: नोक्सभमिका ... gr. ss.

एक: जेनसियान ... q. s.

इन सबको ले कर एक गोली बनावे। इस प्रकार तीन गोली दिनमें तीन बार खानी चाहिये। रोग पुराना होने पर निम्नलिखित औषध दिनमें २ या ३ बार दे सकते हैं।

कोडलिभर आयल—१ ड्राम।

टिं-ष्टिल १० बुंद।

एकोया (जल) १ औंस।

डायेबिटिज इन्सिपिडस, पोलिइयुरिया वा पोली-डिपसिया (*Polyuria—Polydipsia*) नामक और भी एक प्रकारका वहुमूत्ररोग है। इसमें मूत्रका आपे-क्षिक गुरुत्व कम होता है तथा शक्करका भाग नहीं रहता।

इसमें स्नायुमण्डलके क्रियाव्यतिक्रमके कारण मूत्र-यन्त्रस्थ धमनियोंकी मांसपेशी शिथिल और स्फीत होती है जिससे अधिक परिमाणमें पेशाव निकलता है। पश्चादिके ४र्थ कोटर (Ventricle) के तलदेश, शरीरके भीतरके बड़े सप्लानचिक स्नायु (Splan-chnic), छातीके स्नैहिक स्नायु अथवा भेगस स्नायु-को सूचिकावेध द्वारा उत्तेजित करनेसे कृत्रिमरूपमें यह व्याधि उत्पन्न हो सकती है।

मेरुदण्ड वा मस्तकके ऊपर आघात, दारुण मन-स्ताप, ठंढ लगना, उत्तप्त शरीरमें शीतलजलपान, अति-रिक्त परिश्रम वा अत्यधिक सुरापान आदि उत्तेजनासे तथा हिष्टिरिया रोग अथवा वंशपरम्परा रोग रहनेसे हठात् वचपन या जवानीमें यह रोग आक्रमण कर देता है। इस समय मस्तिष्कमें अर्बुद, चतुर्थ कोटरके तलदेशकी अपकृष्टता, सोलर प्लेकसस, सप्लानचिक स्नायु अथवा फुस्फुस पाकाशयिक स्नायु (*Pneumo gastric nerves*) के ऊपर अर्बुद तथा असाड़ मूत्रपात (Enu-rism) आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

इस प्रकार बार बार अधिक परिमाणमें मूत्रत्याग होनेसे उसे वहुमूत्ररोग जानना चाहिये और उसकी चिकित्सा जहां तक हो, जल्द करनी चाहिये। उस समय मूत्रको परीक्षा करनेसे उसका आपेक्षिक गुरुत्व १·०८ से १·०५ तक होता है, मूत्रमें शक्कर नहीं पाई जाती, किन्तु इस अवस्थाको एजोटुरिया (Azoturia) कहते हैं। इस समय रोगीको ऐसी प्यास लगती है, कि यदि जल नहीं मिले तो वह मूत्र पीनेसे भी वाज नहीं आता रोगी क्रमशः दुवला पतला होता और हमेशा उदास रहता है। चर्म शुष्क और शिथिल, उदरके ऊर्द्ध्व भाग-में वेदना, मलवद्धता, क्षुधामान्द्य, मुखके भीतर शुष्कता, शारीरिक दुर्वलता आदि लक्षण दिखाई देते हैं। पीड़ाकी शेषावस्थामें अत्यन्त शीर्णता और दुर्वलता, आहारमें अनिच्छा, उदरामय और वमनादि लक्षणोंका विकाश होते देखा जाता है। मधुमेहके साथ इस रोगका भ्रम तो

होता है, पर रासायनिक परीक्षा और आपेक्षिक गुरुत्व की स्वच्छता देखनेसे सहजमें इस रोगका पता लगाया जा सकता है । इसकी गति हमेशा मंद रहती है, किसी किसी रोगमें तेज भी दिखाई देती है । यह दुश्चिकित्स्य यान्त्रिक पोड़ा, दुर्बलता, उदरामय और शीर्णता आदि विभिन्न कारणोंसे वा प्रसंग उपस्थित होनेसे रोगीकी मृत्यु हो जाती है ।

अफीम, मेलेरियन, लौहघटित औषध, आगेंट, पोटाश-आइयो डाइड, आर्सेनिक, बेलडोना, पोटाश ब्रोमाइड, एसिड नाइट्रिक डिल, एपिटपाइरिन और पिलोकार्पिन इञ्जेक्सन आदि इस रोगमें व्यवस्थेय हैं। मेरुदण्ड, ग्रीवाका पश्चाद्भाग वा उपपर्शु काप्रदेशमें (Hypochondriac region) अविरत वैद्यु तिक स्रोत संलग्न करे । बलकारक पथ्य इस रोगमें विशेष लाभजनक है। जलपान बिलकुल बन्द कर देनेसे अनिष्टकी सम्भावना है।

वृक्क वा मूत्रयन्त्रका रक्ताधिक्य (Renal Congestion) प्रधानतः प्रबल और अप्रबलके भेदसे दो प्रकारका है। प्रबल रक्ताधिक्य रोगको कभी कभी वृक्क कौष (Catarrhal Nephritis) कहते हैं । स्फोटक ज्वर, शीतलवायु सेवन, कन्थराइडिस, तारपिनका तेल, कोपेवा आदि औषध-सेवन, बहुमूत्रके कारण मूत्रकी उत्तेजना, मूत्रयन्त्रमें एम्बलाई वा कर्कटरोग, प्रदाहकी प्रथमावस्था और हिष्टिरिया रोगजन्य रक्तनालियोंका प्रबल प्रसारण ही रक्ताधिक्यके प्रबल तथा हृत्पिण्ड वा फुसफुसकी किसी पुरानी पीड़ाके कारण शिरा-सञ्चालनका व्याघात, वृक्कधमनी (Renal Vein) और अधःअवरोहिणी शिरा (Inferior vena cava) के सङ्गमके ऊपरी भागमें विवर्द्धित गर्भाशय अथवा उदर रोगके सिरम (Serum) द्वारा चाप पड़नेसे वृक्कमें रक्त सञ्चित हो अप्रबल रक्ताधिक्य रोगकी उत्पत्ति होती है।

इसमें मूत्राशय विवर्द्धित और आरक्तिम तथा मालफिगियेन बोडीके निकट आरक्तिमता और छोटा छोटा लाल दाग दिखाई देता है। सभी मूत्रनालियोंकी श्लैष्मिक झिल्लीमें सामान्य प्रदाह रहता है। अप्रबल रक्ताधिक्यमें मूत्रयन्त्र क्रमशः संकुचित और दृढ़ होता है। कभी कभी एम्बलाई भी देखी जाती है ।

मूत्र थोड़ा, तामड़े रंगका और गाढ़ा होता है। उसमें एलबुमेन, एपिथेलियम, फाइब्रिन-काष्ट और कभी कभी रक्त रहता है। अधिक परिमाणमें युरेटस नीचे बैठ जाता है। रोगी कमरमें दर्द और भारी मालूम करता है। कभी कभी मूत्र जलके जैसा तथा आक्षेपिक गुरुत्वमें न्यून दिखाई देता है। एम्बाईके बढ़ जानेसे कमरमें बहुत दर्द होता है तथा एलबिमिन्युरिया वा हिमच्यु रियाका प्रकोप देखा जाता है। कमरमें आर्द्र वा शुष्क कापि, फोमेण्टेशन अथवा पुलटिश देना उचित है। विरेचक औषध और उष्ण स्नान बहुत लाभदायक माना गया है। कभी कभी स्निग्धकारक पानीयका भी व्यवहार किया जाता है।

पूयज वृक्ककौष (Suppurative Nephritis) रोगमें मूत्रयन्त्र बड़ा और आरक्तिम तथा छोटा वा बड़ा स्फोटकयुक्त होता है। कटिदेश, अन्त्र और अन्त्रावरक झिल्ली (Peritoneum) अथवा वक्षकोटरमें भी स्फोटकका निकलना देखा जाता है। आघात, मूत्राश्मरीकी उत्तेजना, मूत्राधार और मूत्रमार्गके ऊपर और निकटवर्त्ती स्थानमें अधिक प्रदाह तथा पाइमिया (Pyaemia) और एम्वलिजम आदि ही रोगोत्पत्तिका कारण होता है।

पहले कमरके एक पार्श्वमें दर्द मालूम होता है, अङ्गचालनाके द्वारा धीरे धीरे यह बढ़ता जाता है तथा मूत्राधार, अण्डकोष और ऊरुदेश तक वह फैल जाता है। अत्यन्त शीत और कम्प, वमन, मूत्रका लौहित्य और गाढ़ता, उसमें रक्तमिश्रण, अत्यन्त ज्वर, मूत्रक्षयविकार (Uraemia) आदि लक्षण दिखाई देते हैं। स्फोटक होनेसे उतना दर्द नहीं होता । वस्तिगह्वर स्फोटक होनेसे पेशाबमें पीप आती है।

एस्पिरेटाके द्वारा पीप निकालना, बलकारक औषध और पुष्टिकर पथ्यका सेवन करना इस रोगमें विशेष लाभजनक है।

वृक्कवस्त्यौष (Pyeritis वा Pyo-Nephrosis) रोगकी उत्पत्तिके कारण ये सब हैं,—मूत्राश्मरी, कर्कट और गोटी (tubercle) रोग, निकटवर्त्ती स्थानमें प्रदाह, शैत्यसंलग्न, तारपिन वा कन्थराइडिस (माक्षिक-

विष) आदि सेवन तथा युरिटरका चाप और अवरुद्धता। यह मूत्रयन्त्रके वस्तिकोटर झिल्ली-प्रदाह नामसे भी प्रसिद्ध है। प्रबल और प्राचीनके भेदसे यह दो प्रकारका है। प्रबल प्रकारमें मूत्रयन्त्रके वस्तिकोटरकी श्लैष्मिक झिल्ली आरक्तिम, रक्तस्रावचिह्नयुक्त और कोमल होती है। उसके भीतर निःसृत वहिस्त्वक (Epithelial) कोष पीपमय म्युकससे आच्छन्न रहता है। प्राचीन प्रकारमें श्लैष्मिक झिल्ली पांशुवर्ण वा श्लेटके रंगकी तरह हो जाती है। बीच बीचमें स्फीतशिरा दिखाई देती है, इसमें प्रायः पीप रहती है। अवरुद्धता दीर्घ कालव्यापी होनेसे पीपके साथ एमोनियाका लवण, युरिक एसिड और फोस्फेटस संयुक्त होता है तथा उससे मूत्रसे दुर्गन्ध आती है। झिल्लीदाहज वृक्ककोष रोगमें मूत्रयन्त्र कुछ बढ़ता जाता है। उस समय उसका कोष (Capsule) आसानीसे छिन्न हो सकता है।

इसमें वार वार मूत्रत्याग होता है। उसके साथ साथ कटिदेशमें वेदना होती तथा मूत्रमें म्युकस, रक्त और पीपका सञ्चार होते देखा जाता है। इस समय ज्वर भी आक्रमण कर देता है। रोग पुराना होनेसे क्षयज्वर (Hectic fever) का प्रकोप देखा जाता है। दुर्बलताके कारण ही आखिर मृत्यु होती है। मूत्रवाहप्रणालीके मध्य कोई मूत्राश्म रहनेसे उसके निकलनेके बाद मूत्रके साथ पीप निकलती है। अधिक मूत्र और पीप सञ्चित होनेसे कटिदेशमे एक कोमल अर्बुदका अनुभव होता है।

शरीरमें अत्यन्त वेदना रहने पर अफीम और मर्फियाका सेवन करना उचित है। मर्फिया इञ्जेक्सन देनेसे भी बहुत उपकार होता है। ठंढे जल और लघुपथ्यका सेवन करना चाहिये।

पेरिनिफ्राइटिस (Perinephritis) रोगमे वृक्कके चारों ओरकी कौषिक प्रणालीमें जलन देती है। आघात वा शैत्यतासंलग्न ही इसका कारण है। वेदना अधिक नहीं होने पर भी कटिप्रदेश (Lumber region) स्फीत होता है। कभी कभी इसमें स्फोटक उत्पन्न होते देखा गया है।

प्रबल मूत्राघात व्याधि (Acute Bright's disease) मूत्रस्रावके ह्रासके कारण उत्पन्न होती है। इसमें सर्वाङ्गमें शोथ, दुर्बलता और रक्ताल्पता (Anaemia) उत्पन्न होती है। साण्डशुक्र मूत्ररोगकी परिपुष्टिसे इस रोगका विकाश निर्णय कर Dr. Richard Bright ने पहले इसका आनुपूर्विक इतिवृत्त सङ्कलन किया था, इस कारण लोग इसका Bright's Disease नाम रखा है। इसका दूसरा नाम Acute Disquamative Nephritis वा Tubal Nephritis है।

शिशुकाल, गात्रचर्मका अपरिष्कार, अमिताचार, सर्वदा शैत्यसंलग्न स्थानमें वास, इत्यादि कारण; आरक्त ज्वर (Scarlet fever)के बाद हाम, वसन्त, त्वकूच्छादन (Diphtheria) प्रबल वातरोग (acute rheumatism), मोहक ज्वर (Typhus fever), मलेरिया ज्वर और विसूचिका आदि रोगके बाद; उत्तप्त शरीरमें ठंढ लगानेसे, गर्भावस्थामें, अग्नि द्वारा शरीर दग्ध होनेसे अथवा शरीर कई जगह सोराइसिस वा डार्मेटाइटिस चर्मरोग उत्पन्न होनेसे क्रियावरोधजनित दैहिक अनिष्टकर पदार्थ मूत्रयन्त्र हो कर निकलते हैं तथा उससे मूत्रयन्त्रकी सूक्ष्म नालियोंकी श्लैष्मिक झिल्लीमें प्रबल दाह आदि रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

प्रदाहके कारण नया नया कोष उत्पन्न होता है और उसका भग्न एपिथेलियमके साथ उक्त नालियोंमें सञ्चित हो कर मूत्रको रोकता है। इस प्रकार मूत्रयन्त्र और चर्मकी क्रिया रुक जानेसे युरिया आदि अपकृष्ट पदार्थ रक्तमें मिल कर रक्तको तरल बनाता है। पीछे वह कौषिकविधान और रक्ताम्बु-स्रावी (Serous) कोटरमें सञ्चित हो कर शोथ उत्पन्न करता है।

इस रोगमें दोनों मूत्रयन्त्र बड़े और भारी तथा चिकने और अरक्तिम होते हैं; काटनेसे वह अंश कालापन लिये लाला दिखाई देता है। बीच बीचमें सामान्य रक्त चिह्न भी रहता है। बाह्य अंश (Cortical) पाटलवर्ण सा दिखाई देता है तथा पिरामिडिकल अंश रक्तसे भरा होता है। कोष (Capsule) आसानीसे काटा जा सकता है। सान्तरवृक्ककोष (Interstitial Nephritis) रोगमें मध्यवर्त्ती कौषिक विधान शुभ्र तथा नाना प्रकारके कोष और चर्बीके कणोंसे युक्त देखा जाता है।

अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा करनेसे बहुसंख्यक एपिथेलियेल कोष, लोहित रक्त कणिका, निःसृत फाइब्रिन और युरिनारि काष्ट देखनेमें आते हैं। एपिथेलियेल कोष बढ़ कर ट्यूबके मध्य एकल अवस्थान करता है। कोषमें चर्बी और प्रोटिन विन्दुके रहनेसे यह बड़ा, अस्वच्छ और बादलके जैसा दिखाई देता है। कोषके इस वर्द्धित आकार वा स्फीतताको 'Cloudy swelling' कहते हैं। दूसरे दूसरे ट्यूबमें एपिथेलियमका चिह्नमात्र भी नहीं रहता, केवल फाइब्रिनका सांचा रहता है। उस सांचे के मूत्रद्वार हो कर निकल जानेसे उसे हायलिन काष्ट (Hyaline cast) कहते हैं। अन्यान्य उपसर्गोंके मध्य वायुनालीमें प्रदाह, फुस्फुस-प्रदाह, वक्षोन्तर्वेष्टौप, हृदन्तरवेष्टौप और शोथ देखा जाता है। कभी कभी हृतपिण्डकी भी परिवृद्धि होती है।

रोगके प्रवेश करते ही शीत और कम्प होने लगता है। पहले मस्तक और सर्वाङ्गमें वेदना मालूम होती तथा वार वार उल्टी आती है। स्थानविशेषमें शोथ और मूत्रक्षयविकार उपस्थित होता है। रोगके जड़ पकड़नेसे रक्ताम्बुस्रावी (Serous) कोटर और कौषिक विधानमें रक्तका जलभाग (Serum) सञ्चित हो समूचे शरीरमें शोथ उत्पन्न करता है। मुखमण्डल रक्तशून्य, स्फीत और मैदेके जैसा दिखाई देता है। गात्रचर्म शुष्क और सामान्य ज्वरका लक्षण रहता है। पांच सात घंटेके भीतर समूचा शरीर सूख जाता है। वह सूजन इतनी बढ़ जाती है, कि रोगी पहचानमें नहीं आता। रोग आरोग्य होने पर ऊरुदेशमें छिन्न छिन्न शुभ्र रेखा पड़ जाती है। समूचे शरीरमें शोथके परिचायकस्वरूप वक्षरुदक (Hydrothorax), फुसफुस और ग्लाटिश शोथ (Œdema of lungs & glottis) उत्पन्न होता है। इसके साथ साथ सिरसविधानका भी प्रादुर्भाव देखा जाता है। उपसर्गस्वरूप अन्त्रावरण-प्रदाह, वक्षोन्तर्वेष्टौष, हृद्वेष्टौप (pericarditis), हृदन्तरवेष्टौप, वायुनाली-प्रदाह, फुस्फुस-प्रदाह आदि पीड़ायें भी आक्रमण कर देती हैं। इन सब उपसर्गोंमें प्यास और ज्वरकी वृद्धि होती है तथा नाड़ी द्रुत और पूर्ण होती देखी जाती है। रोगीके क्रमशः दुर्बलता, क्षुधामान्द्य, मलवद्धता और शिरोवेदना होती है। धीरे धीरे मूत्रक्षयविकारके लक्षण भी देखे जाते हैं।

रोगी हमेशा कमरमें दर्द मालूम करता है तथा रातको वार वार मूत्रत्याग होता है। वह मूत्र धूम्र, पाटल अथवा कालापन लिये लाल होता है। आपेक्षिक गुरुत्व १.२५से १.३० है। रासायनिक परीक्षासे एलबुमेन पाया जाता है। अणुवीक्षणकी सहायतासे लोहित रक्तकणिका, परिवर्त्तित वा भग्न एपिथेलियलकोष, फाइब्रिन-कणा और रक्त, एपिथेलियल हायलिन वा ग्रेनिउलरके सांचे आदि दिखाई देते हैं। कभी कभी रोगीके बांई ओरका कोष (Left ventricle) बढ़ा हुआ तथा प्रकोष्ठास्थित सम्बन्धीय (Radial) धमनी सिकुड़ी मालूम होती है। बड़ी धमनी (Aorta)के ऊपर विशेषतः दक्षिण पशुकाके निकट कान लगानेसे पहला शब्द अस्पष्ट वा द्विगुणित तथा दूसरा शब्द उच्च और धातव मालूम होता है।

यह रोग अति शीघ्र आरोग्य होता है कभी कभी बहुत दिन तक रह जाता है। रोग अच्छे हो जानेके बाद भी मूत्रमें बहुत दिनों तक एलबुमेन विद्यमान रहता है। जिस कारण यह पीड़ा होती है, रोगके विशेष विशेष लक्षण और मूत्रका स्वभाव देख कर यदि चिकित्सा की जाय तो बहुत जल्द वह आरोग्य हो जाता है। किन्तु हठात् युरिमियाके लक्षणके साथ दिखाई देनेसे उसका निर्णय करना कठिन हो जाता है।

यह रोग कठिन होने पर भी बहुतसे रोगी इसके पंजेसे छुट गये हैं। मूत्रमें बहुत दिन तक एलबुमेनका रहना एक अशुभ लक्षण समझा जाता है। मूत्रसे एलबुमेन जब तक अच्छी तरह अदृश्य नहीं हो जाता तब तक रोगको आरोग्य हुआ नहीं कह सकते। रोगकी शेषावस्थामें युरिमिया, एडिमा आव ग्लाटिस वा लंस, प्लुरा वा पेरिकार्डियमके मध्य सिरम सञ्चय, इरिसिप्लस, गाङ्ग्रिन् आदि उपसर्ग अशुभ हैं।

रोगीको बढ़िया और गरम घरमें रखना चाहिये। जिससे उसके बदनमें ठंढ न लगने पावे, इस पर विशेष ध्यान रहे कभी कभी कमरसे रक्त निकाल देनेसे भारी लाभ पहुंचता है। परन्तु दुर्बल रोगीका रक्त निकालना

नहीं चाहिये। बार बार शुष्क कापिं देनेसे भी उपकार होता है। प्रथमावस्थामें लघु पथ्य हीका सेवन करना चाहिये। नाइट्रोजिनस् खाद्य निषिद्ध है। दूध जहां तक पचा सके, दे सकते हैं। उष्ण वाष्पमें भावना या स्नान (Vapour bath), फलानेल वस्त्र परिधान आदि उपायसे गात्रचर्मकी क्रियावृद्धि करना चिकित्सकका प्रधान कर्त्तव्य है। पूर्णमात्रामें नाइट्रेट और एसिटेट आव पोटाश तथा लाइकर-एमन-एसिटेटको काफी जलके साथ कुछ बुंद टिं हेनवेन मिला कर व्यवहार करनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। कोई कोई चिकित्सक भाइनम एण्टिमनिका प्रयोग करते हैं। अभ्यन्तरमें जेवरण्डा और त्वकके मध्य पिलोकारपीन इञ्जेक्ट किया जा सकता है। उत्तेजक औषध मात्रका ही व्यवहार निषिद्ध है।

अप्रबल अवस्थामें, विशेषतः शोथ उत्पन्न होने पर पोटाश टार्टएसिडा, टिं डिजिटेलिस, टिं स्कुइट, साइट्रस आव काफिन और इन्फ्युजन आव ब्रुमटपस आदिका व्यवहार किया जाता है। दस्त लानेके लिये इलेट्रियम और पाल्भ जुलावका प्रयोग किया जा सकता है। कटिदेशमें शुष्क कापिं, सिनापिजम, फोमेण्टेसन, पुल्टिस और क्लोरोफार्म-लिनिमेण्टका मालिश करनेसे बहुत उपकार होता है। टार्पेण्टाइन स्टूप और लाइकरलिटो देना उचित नहीं तथा अफीमका सेवन भी निषिद्ध है।

प्रबल अवस्थाका कुछ ह्रास होनेसे कुनाइन टिं-ष्टिल फेरो पट-एमन-साइट्रास और सिरपफेरी फोस्फेटिस की इत्यादि सेवनीय हैं। निद्राके लिये क्लोरल हाइड्रास और हौसिन विशेष उपकारी हैं। अनेक समय फचसाइन, टैनिन, वेञ्जयेट आव सोडा और नाइट्रोगिलसिरिनके प्रयोगसे भी फल देखा गया है। किन्तु उनकी उपकारिताके ऊपर निर्भर करके बैठ रहना उचित नहीं। क्रमशः बलकारक पथ्य तथा अल्प मात्रामें पोर्ट और शेरी मद्य सेवनकी व्यवस्था विधेय है। आरोग्य होनेके बाद भी गरम कपड़ेसे शरीरको हमेशा ढके रहना चाहिये। वायुपरिवर्त्तनसे भी बहुत उपकार होता है। बीच बीचमें गरम पानीसे स्नान करा सकते हैं।

प्रबल पीड़ाके परिणामसे अविरत आर्द्रता वा शीतलता भोगसे सहसा भूवायुका उत्ताप-परिवर्त्तन; अमिताचार और अतिरिक्त उग्र सुरापान, शारीर-प्रकृतिका व्यतिक्रम अथवा रक्तदूषण, गेठिया वात, उपदंश, ट्युबार्किलस और स्क्रफ्युलस पीड़ामें अथवा सीसक द्वारा शरीरका विषाक्त होना, वृक्कका वस्तिकोटर अथवा मूत्राधार वा मूत्रमार्गमें जलन देना; गर्भावस्था और दीर्घकालव्यापी अजीर्णता आदि रोग शरीरमें जड़ पकड़ कर ही दीर्घकालस्थायी ब्राइटाख्य व्याधि (Chronic Bright's disease) उत्पन्न करता है।

मूत्रयन्त्रके ट्युबोंका प्रदाह स्थायी होनेसे उसमें एपिथेलियल कोष बढ़ जाता है। पीछे वही रेणुवत् पदार्थमें परिणत हो कर मूत्रयन्त्रको बड़ा बना देता है। उस समय कोषमें अधिक चर्बी जमी हुई देखी गई है।

इस प्राचीन ट्युबल निफ्राइटिस रोगमें मूत्रकी स्वल्पता, वर्णका गदलापन और आपेक्षिक गुरुत्व प्रायः स्वाभाविक रहता है। शिर चकराना, शिरमें दर्द, क्षीण श्वास-प्रश्वास, अजीर्णता, क्षुधामान्द्य, सर्वदा मूत्रत्याग, मुखमण्डल स्फीत और मैदेके रंगके जैसा, गात्रत्वक् शुष्क, उदर स्फीत, वमन, दृष्टिका व्यतिक्रम, मूत्रयन्त्राधारमें वेदना और हाथ पैरमें शोथ आदि लक्षण दिखाई देते हैं। आनुषङ्गिक पीड़ाके मध्य हृत्पिण्डऔर फुसफुसमें नाना प्रकारकी व्याधि तथा समय समय पर संन्यास (Apoplexy) रोग आक्रमण कर देता है। अप्रबल ब्राइटाख्य रोगमें भी वामकोष (left ventricle)की वृद्धि और हृत्पिण्डमें बहुत परिवर्त्तन होता है।

उपरोक्त लक्षणके बाद यह रोग चार विभिन्न अवस्थामें परिणत होता है; जैसे—१ श्वल्कपातज वृक्कशोथ (Chronic Desquamative Nephritis) वा सफेद और चिकना वृक्कक (Large, white or smooth kidney), २ संकुचित वृक्कक (Cirrhotic kidney) यह ग्रेन्युलर किडनी वा क्रोनिक इण्टेर्ष्टिसिपल निफ्राइटिस नामसे भी प्रसिद्ध है; ३ चर्बी-युक्त वृक्कक (Fatty kidney) तथा सफेद चर्बीयुक्त वृक्कक (Lardaceous वा Albuminoid kidney)

प्रबल ब्राइटाख्य रोगको परिणति, ठंढ लगने, बार बार स्त्रीके गर्भ सञ्चार अथवा यक्ष्मारोगके उपसर्गसे

शल्कपातज वृक्कौष रोगकी उत्पत्ति होती है। यह रोग प्रायः युवक और युवतियोंको हुआ करता है। इसमें दोनों वृक्क बड़े, पांशुवर्णके, चिकने और कोषच्छेदी होते हैं। अणुवीक्षण द्वारा उसके ट्यूबोंके मध्य बहुतसे एपिथेलियम कोष देखे जाते हैं। वे सब कोष स्फीत, मेघवर्णाभ, चरबी-युक्त, कभी कभी रेणुवत् और तैलविन्दु-विशिष्ट होते हैं। रोग प्राचीन होनेसे ट्यूबोंके परिवर्त्तनके कारण मूत्रयन्त्र सिकुड़ जाता है।

रोगके आरम्भमें निम्नोक्त लक्षण दिखाई देते हैं। मूत्र अस्वच्छ और स्वल्प, अधःक्षेपयुक्त, कभी कभी धूम्रवर्ण वा रक्तमिश्रित होता है। आपेक्षिक गुरुत्व स्वाभाविक है, कभी कभी कुछ बढ़ जाता है। इसमें एलबुमेन और एपिथेलियमको मात्रा अधिक रहती है। अणुवीक्षण द्वारा एपिथेलियम कोषोंका विशेष परिवर्त्तन तथा रेणुमय, चरबी युक्त और स्वच्छ सांचे दिखाई देते हैं। रोगीका मुखमण्डल स्फीत, रक्तशून्य और चमकीला दिखाई देता है। शोथ, सिरस, विधानमें प्रदाह और धीरे धीरे युरिमियाका उदय होता है। नाक तथा अन्यान्य स्थानोंकी श्लैष्मिक झिल्लीसे बीच बीचमें रक्त स्राव भी हुआ करता है।

जर्मनदेशीय चिकित्सक विवर्द्धित शुभ्र वृक्कको परिणाम-अवस्थाको ही इसके संकोचनका मूल कारण बतलाते हैं। इङ्गलैण्डके सुविज्ञ चिकित्सकगण वृक्कमें कौपिकविधानके प्रदाह तथा उस प्रदाहके कारण कौशिकविधानके चापसे ही अन्तमें ट्यूबोंके सङ्कोचनकी कल्पना करते हैं।

गेठिया वात, सीसा धातुके द्वारा शोणितकी विषाक्तता, अतिरिक्त सुरापान, खुले बदनमें बार बार ठंढ लगना तथा बुढ़ापेकी दुर्बलताके कारण आभ्यन्तरिक वृक्कौष (Chronic interstitial Nephritis) रोगकी सहजमें उत्पत्ति हो सकती है।

इसमें धीरे धीरे दोनों मूत्रयन्त्र खर्व तथा कैपस्युल अस्वच्छ, कठिन और दुर्भेद्य होते हैं। काटनेसे वे उपास्थि (Cartilage)-विधानकी तरह मालूम होते तथा लोहित वा पाटलाभ-लोहितवर्ण दिखाई देते हैं। बीचबीचमें सिष्ट (कोष) रहता है। ग्रन्थिवातयुक्त वृक्कमें युरेटस दिखाई देता है। सूक्ष्म परिवर्त्तनमेंसे कुछ ट्यूब एपिथेलियम द्वारा विवृद्ध तथा कुछ संकुचित अथवा भग्न एपिथेलियमसे परिपूर्ण रहते हैं। उसकी रक्तवाहिप्रणालियां प्रायः विलुप्त रहती हैं।

यह पीड़ा पहले शरीरमें गुप्त भावसे जड़ पकड़ती है। पीछे चर्म शुष्क, कर्कश, मुखमण्डल संकुचित और म्लान दिखाई देता है। अजीर्णता, दुर्बलता तथा फुस्फुसमें प्रदाह और युरिमिया दिखाई देनेसे रोगको बद्धमूल हुआ जानना चाहिये। इस समय मूत्र पतला और अधिक परिमाणमें निकलता है, आपेक्षिक गुरुत्व स्वाभाविकसे भी कम होता है। परीक्षा करनेसे थोड़ा एलबुमेन पाया जाता है। अणुवीक्षण द्वारा स्वच्छ और रेणुवत् सांचे दिखाई देते हैं। रोगकी शेषावस्थामें मूत्र थोड़ा और बीच बीचमें शोथ उत्पन्न होता है। इससे हृत्पिण्ड बहुत बढ़ जाता है।

चरबीयुक्त वृक्क (Fatty kidney)-मे दोनों मूत्रयन्त्र बड़े पांशुवर्ण और लोहित चिह्न द्वारा आच्छन्न रहते हैं। अणुवीक्षण द्वारा कोषमें तैलविन्दु दिखाई देता है। कटा हुआ अंश तैलाक्त होता और कागज रखनेसे उसमें दाग पड़ जाते हैं। इधरसे कुछ अंश गल जाता है। इसके लक्षण एलबुमिन्युरियाके जैसे होते हैं।

अण्डलालाश्रित वृक्करोगमें दोनों मूत्रयन्त्र बड़े, सफेद, चिकने तथा उसके कोष काले, सूखे और चरबी मिले हुए होते हैं। ट्यूबमें स्वच्छ सांचा दिखाई देता है। रोग पुराना होने पर मूत्रयन्त्र शिथिल हो जाता है जिससे मूत्र पतला और जलके जैसा होता है। उसका आपेक्षिक गुरुत्व १.१२से १.०५ है। कभी कभी अण्डलाला थोड़ी और कभी कुछ भी नहीं रहती है। अणुवीक्षण द्वारा छोटे, सफेद और रेणुमय सांचे नजर आते हैं। इसमें शोथादिका कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं देखा जाता।

गर्भके आरम्भमें स्नैहिक स्नायुमण्डलीके विकारके कारण गर्भिणी बार बार मूत्रत्याग करती है। यह बहुमूत्ररोगसे बिलकुल स्वतन्त्र है। गर्भके अन्तिम कुछ महीनोंमें भ्रूणके अनुलम्ब वा दैर्घ्य एषिसस वा मध्यदण्डके वस्तिकोटरके अड़े भावमें रहनेसे मूत्रकोषके ऊपर

दबाव पड़ता है। अतएव इससे धारणाशक्तिका ह्रास होता है और इसीसे गर्भिणी बहुत मूत्रत्याग करती है।

हाथसे परीक्षा करके यदि भ्रूणका अङ्गभावमें रहना स्थिर किया जाय, तो उसको हाथसे उदरके ऊपरकी ओर लम्ब भावमें स्थापित कर दे तथा जिससे वह फिर पूर्वावस्थामें न गिर पड़े इसके लिये एक बन्धनी (bon dage) लगा देनी चाहिये। इससे वार वार जो पेशाब आता है, सो बन्द हो जायगा।

इस प्रकार मूत्रत्यागकालमें किसी किसी प्रसूतिके मूत्रमें फोस्फेटस नामक पदार्थका चूर्ण बरतनके नीचे जम जाता है। ऐसी हालतमें गर्भिणी स्वभावतः दुर्बल हो जाती है। उसके बलाधान और मूत्रसंस्कारके लिये विज्ञ चिकित्सकको बलकारक और लौहघटित औषध तथा उपयुक्त पथ्यका प्रयोग करना चाहिये।

जिस प्रकार किसी विशेष कारणसे गर्भावस्थामें वार वार मूत्रत्याग होता है प्रायः उसी प्रकार गर्भिणी-के मूत्रावरोध भी हुआ करता है। गर्भके प्रथम ३।४ मास में जरायुका पीछेकी ओर घूम जाना ही इसका प्रधान कारण है। क्योंकि, इस अवस्थामें वस्तिकोटरके मध्य जरायु वक्रभावमें दवा रहता है जिससे मूत्रनाली अव-रुद्ध हो जाती है। मूत्र जितनी वार रुकेगा, उतनी वार शला (Catheter) द्वारा पेशाब कराना उचित है, नहीं तो मूत्रकोषके पेशाबसे भर जानेसे श्लैष्मिक झिल्ली (mucous membrane)-की पीड़ा उत्पन्न होती है। पेशाब करानेके बाद हाथसे वस्तिकोटरसे जरायुको उठा देना चाहिये। ऐसा करनेसे भविष्यमें कोई शिका-यत नहीं रहने पाती। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात देखो।

उपरोक्त कारणसे केवल मूत्र ही नहीं विगड़ता, पर मूत्रयन्त्र वा वृक्कमें भी कई उपसर्ग देखे जाते हैं। वृक्क मूत्रयन्त्रकी गोली (Tubercle of the kid-ney) गल कर छोटे छोटे स्फोटक उत्पन्न करती है। ट्युबार्कल द्वारा युरिटाके आवद्ध होनेसे मूत्रयन्त्र सूज जाता है। कभी कभी अर्बुदके निकलनेसे मूत्रयन्त्र कर्कटरोगसे (cancer of kidney) आक्रान्त होते देखा जाता है। फिर कभी मूत्रयन्त्रमें Hydatid cyst, Bilharzia haematobia, Strongylus gi-gans, Pentastoma denticulatum और Filaria sanguinus hominis आदि पराङ्गपुष्ट कीट (Para-sitic growths) उत्पन्न होते हैं। कभी मूत्रमें पथरी (Urinary calculi) उत्पन्न हो कर रोगको और भी कठिन बना देती है। मूत्रयन्त्रके मध्य पथरी होनेसे रोगीकी कमरमें जो शूलवत् वेदना होती है उसे वृक्क शूल (Renal colic) और मूत्राशय प्रदाह (cystitis) कहते हैं। विशेष विवरण वृक्क शब्दमें देखो।

मूत्रविवन्धघ्न (सं० त्रि०) मूत्र विवन्धं हन्ति हन-टक्। मूत्रविवन्धरोगनाशक।

मूत्रविष (सं० त्रि०) मूत्रयोगमें विषाक्त।

मूत्रवृद्धि (सं० स्त्री०) अन्तर्वृद्धिरोग। २ मूत्रकी वृद्धि।

मूत्रशुक्र (सं० क्ली०) मूत्राघातरोगविशेष। मूत्राघात देखो।

मूत्रशूल (सं० पु०) मूत्रके समय शूल वा वेदना।

मूत्रशोधनिका (सं० स्त्री०) चिर्भटिका, वनककड़ी।

मूत्रशौक्र (सं० क्ली०) श्लेष्मज मूत्ररोग। श्लेष्माके विगड़नेसे जब मूत्रदोष उत्पन्न होता है, तब मूत्र सफेद दिखाई देता है। मूत्र और मूत्रकृच्छ्र देखो।

मूत्रसंक्षय (सं० पु०) मूत्रक्षयरोग।

मूत्रसङ्ग (सं० पु०) मूत्राघात रोगभेद, मूत्रोत्सङ्ग रोग।

मूत्रसाद (सं० पु०) मूत्राघातरोग।

मूत्राघात (सं० पु०) मूत्रस्य आघातो निरोधो येन। प्रस्रावरोधक रोगविशेष, पेशाब बंद होनेका रोग। वैद्यकमें यह रोग बारह प्रकारका कहा गया है,—वात-कुण्डली, वातष्ठीला, वातवस्ति, मूत्रातीत, मूत्रजठर, मूत्रोत्सङ्ग, मूत्रक्षय, मूत्रग्रन्थि, मूत्रशुक्र, उष्णवात तथा दो प्रकारका मूत्रौकसाद, कफज, और पित्तज।

वातकुण्डली—इसमें वायु कुपित हो कर वस्तिदेश-में कुण्डलीके आकारमें टिक जाती है। इससे पेशाब बंद हो जाती और वस्तिदेशमें वेदना होती है तथा पेशाब बड़े कष्टसे थोड़ा थोड़ा करके आता है।

वातष्ठीला—इसमें वायु मूत्र द्वारा या वस्तिदेशमें गांठ या गोलेके आकारमें हो कर पेशाब रोकती है।

वातवस्ति—इसमें मूत्रके वेगके साथ ही वस्तिको

वायु वस्तिका मुख रोक देती है जिससे वस्ति और कुक्षिदेशमें दर्द होता है।

मूत्रातीत—इसमें बार बार पेशाव लगता और बहुत कष्टसे थोड़ा थोड़ा होता है।

मूत्रजठर—इसमें मूत्रका प्रवाह रुकनेसे अधोवायु कुपित हो कर नाभिके नोचे पीड़ा उत्पन्न करती है।

मूत्रोत्सङ्ग—इसमें उतरा हुआ पेशाव वायुकी अधिकतासे मूत्रनाल वा वस्तिमें एक बार रुक जाता है और फिर बड़े वेगके साथ कभी कभी रक्त लिये हुए निकलता है। इसमें कभी तो पोड़ा होती और कभी बिलकुल होती ही नहीं।

मूत्रक्षय—इसमें खुश्कीके कारण वायु-पित्तके योगसे दाह होता है और मूत्र सूख सा जाता है। यह बहुत कष्टसाध्य है।

मूत्रग्रन्थि—इसमें वस्तिमुखके भीतर पथरीकी तरह गांठ सी हो जाती है और पेशाव करनेमें बहुत कष्ट होता है।

मूत्रशुक्र—इसमें मैथुन करनेके समय उतरा हुआ पेशाव शुक्रके साथ निकलता है अथवा पेशाव आनेके पहले और पीछे भस्मोदककी तरह शुक्र निकलता है।

उष्णवात—इसमें व्यायाम या अधिक परिश्रम करने और गरमी या धूप सहनेसे पित्त कुपित हो कर वस्तिदेशमें वायुसे आवृत्त हो जाता है। इसमें दाह होता है और मूत्र हल्दीकी तरह पीला और कभी कभी रक्त मिला आता है। इसका दूसरा नाम कड़क भी है।

पित्तज मूत्रौकसाद—इसमें पेशाव कुछ जलनके साथ गाढ़ा गाढ़ा हो कर निकलता है और सूखने पर गोरोचनके चूर्णकी तरह हो जाता है।

कफज मूत्रौकसाद—इसमें सफेद, पिच्छिल और गाढ़ा पेशाव कष्टसे निकलता है।

चिकित्सा।

कषाय, कल्क, घृत, भक्ष्य, लेह, पेय, मधु, आसव, स्वेद और उत्तरवस्ति ये सब विधान विशेष उपकारक हैं। अश्मरीनाशक तथा मूत्र जन्य उदावर्त्तका योग भी प्रयोज्य है। २ तोले एर्वारु बीजके चूर्णको सैन्धव और धान्याम्लके साथ खानेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। इस रोगमें सचल लवणके साथ शराब या मधुयुक्त मांसकी चटनीके साथ गुड़की बनी हुई शराब पीनेसे बहुत उपकार होता है। प्रति दिन सवेरे २ तोला कुंकुमके साथ बासी मीठा पानी पीनेसे मूत्राघात रोग अति शीघ्र नष्ट होता है। अनारके रस, सैन्धव और काफी इलायची, जीरे और सोंठके साथ शराब पीनेसे भी यह रोग आरोग्य होता है।

पृथक्पर्ण्यादिवर्ग और गोखरूके मूलको आधसेर जल तथा मूलके चौगुने दूधमें पाक करे। जब जल बिलकुल जल जाय केवल दूध बच रहे, तब ठंढा होने पर चीनी और मधुके साथ उसे पान करे। इससे वायु और पित्तजन्य मूत्राघातरोग विनष्ट होता है। गदहे और घोड़े की विष्ठाको कपड़ेमें अच्छी तरह निचोड़ कर उसका रस पीनेसे मूत्ररोगकी शान्ति होती है। कण्टकारी (कटरंगनी)के रस अथवा मधुके साथ उसका कल्क आँवलेके रस, चावलके जल अथवा आँवलेके साथ छोटी छोटी इलायचीका चूर्ण डाल कर उपयुक्तमात्रामें सेवन करनेसे यह रोग अति शीघ्र आरोग्य हो सकता है। ताड़के नये मूल तथा खीरे और ककड़ीके रसको दूधके साथ सवेरे पान करे। मधुर द्रव्यके साथ दूध पाक कर उसमें घी मिला कर पान करनेसे भी बहुत उपकार होता है। विजबंद, गोखरू, कुलथी, कलाय, वंशमूल, देवदारु, चितामूल और आँवलेका बीज इन सबका चूर्ण, अश्मरी और त्रिदोषशान्तिके लिये मदिराके साथ सेवन करे।

पाटलवृक्षके क्षारको सात बार परिस्रुत करके तेलके साथ पान; नल, ईख, कुश, ककड़ीके बीज, खीरेके बीजको दूधमें परिस्रुत करके घृतके साथ पान, पाटली, यवशूक, तिल इन सब द्रव्योंको क्षीरोदकके साथ, दारचीनी, इलायची और त्रिकटु चूर्ण उसमें डाल कर पान करनेसे सभी प्रकारका मूत्राघात दूर होता है। अथवा प्रत्येकके चूर्णको गुड़के साथ मिला कर चाटे, तो रोग बहुत जल्द नष्ट होता है।

इस रोगमें स्नेह-स्वेदका प्रयोग करके पीछे विरेचन करे। बादमें देहके संशोधित होनेसे उत्तरवस्तिका प्रयोग करना आवश्यक है। अधिक स्त्रीप्रसङ्गसे रक्त निकलने

पर स्त्रीसंसर्गका त्याग तथा बृंहणीय अर्थात् देहके पुष्टिकर विधानका अवलम्बन करना चाहिये। अर्द्ध पाल मधु, एकपाल क्षीर, घृत, अलकुसीका बीज, तिल्वक लोध और पीपलका चूर्ण इन्हें चमचेसे अच्छी तरह मिला जितना हथेलोमें आ सके उतना ले कर चाटे। इसके कुछ समय वाद ही दूधका सेवन करे। विजवंद, वेरको गुठली, मुलेठी, गोखरू, शतमूली, मृणाल, केशर, कुलथी, कलाय, महाशतमूली, शालपर्णी, पढार, पिठवन, पोला विजवंद, भूमिकुष्माण्ड और काकोल्यादिगण, बराबर बराबर भाग ले कर उससे चौगुने दूध और गुड़में पाक करे। जब ३२ सेर रह जाय, तब उसे कपड़ेसे छान कर आठ सेर घीके साथ पाक करे। पाकसिद्ध हो जाने पर उसमें २ सेर मधु मिला कर एक कलसीमें रखे। प्रतिदिन उस घृतका परिमित मात्रामें सेवन करनेसे सभी प्रकारके मूत्राघात, मूत्रदोष और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट होते हैं। (सुश्रुत उ०)

भावप्रकाश, चरक, वाभट आदि ग्रन्थोंमें जहां मूत्राघात रोगाधिकार आया है वहां इस रोगके निदान और चिकित्साका विशेष विवरण लिखा है।

मूत्रातीत (सं० पु०) मूत्राघातरोगभेद। (सुश्रुत)

मूत्राधिक्य (सं० क्ली०) मूत्रस्य आधिक्यं वाहुल्यं। श्लेष्मजन्यरोगभेद।

मूत्राशय (सं० पु०) मूत्रस्य आधारः। नाभिका अधोदेश, नाभिके नीचेका वह स्थान जिसमें मूत्र संचित रहता है। संस्कृत पर्याय—मूत्रपुट, वस्ति।

"एकसम्बन्धिनोह्यते गुदास्थि विवरस्थिताः।
मूत्राशयो मलाधारः प्राणायतनमुत्तम्॥"

(सुश्रुत नि० ३ अ०)

मूत्राष्टक (सं० क्ली०) मूत्राणां अष्टकम्। गाय, वकरी, भेड़ी, भैंस, घोड़ी, गदही, ऊंटनी और हथनी इन आठ जानवरोंके मूत्रका समूह।

"गोऽजाविमहिषाश्वानां खरोष्ट्र करिणां तथा।
मूत्राष्टकमिति ख्यातं सर्वशास्त्रेषु सम्मतम्॥"

(परिभाषाप्र० ३ ख०)

मूत्रासाद (सं० पु०) मूत्रौकसाद नामक मूत्राघातरोग।

मूत्रिका (सं० स्त्री०) सल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़।

मूत्रित (सं० त्रि०) मूत्रमस्य संजातं, मूत्र इतच, यद्वा मूत्रयति स्म इति मूत्र क। कृतमूत्रोत्सर्ग, पेशाव किया हुआ। संस्कृत पर्याय—मीढ़।

मूत्रोत्सङ्ग (सं० पु०) मूत्राघातरोगभेद।

मूत्रोष्णता (सं० स्त्री०) पित्तजन्य मूत्ररोगभेद।

मूत्र्य (सं० त्रि०) मूत्रसम्बन्धीय।

मून—एक विख्यात भाषाके कवि। ये जातिके ब्राह्मण थे और जिले गाजीपुर असोथरके रहनेवाले थे। सम्वत् १८६० ई०में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। रामरावणयुद्ध नामक इनका बनाया ग्रन्थ पाया जाता है। इनकी कविता आदरणीय है। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं।

विम्ब मैं प्रवाल मैं न जपा पुष्पमाल मैं
न ईंगुर गुलाल मैं न किंचित निहारे मैं।
दाड़िम प्रसून मैं न मून धरा सून मैं
न इन्द्रकी वधून मैं न गुंजा अँधियारे मैं॥
है कुसुम रंग मैं न कुंकुम पतंग मैं
न जावक मजीठ कंज पुंज वारि डारे मैं।
राधे जु तिहारी पदलालिमा की समताको
हेरि हारे कविता न आवत विचारे मैं॥

मूना (हिं० पु०) १ पीतल वा लोहेकी अँकुसी जो टेकुए पर जड़ी रहती है और जिसमें रस्सी या डोरा फँसा रहता है। २ एक झाड़ी इसके फल वेरके समान सुन्दर सुन्दर होते हैं।

मूर (सं० पु०) १ मूढ़जन, वेवकूफ आदमी। (त्रि०) २ मारक, मारनेवाला।

मूरचा (फा० पु०) मोरचा देखो।

मूरदेव (सं० पु०) मारकक्रोड़ राक्षस।

मूरध (हिं० पु०) मूर्द्धा देखो।

मूरा (हिं० पु०) मूली।

मूरि (हिं० स्त्री०) १ मूल, जड़। २ जड़ी, बूटी।

मूरी (हिं० स्त्री०) मूली देखो।

मूर्ख (सं० पु०) मुह् (मुहेः खो मूर्च्। उण् ५।२२) इति ख, धातोः मूरादेशश्च। १ माष, उर्द। २ वनमुद्ग, वनमूंग। (त्रि०) ३ गायत्रीरहित, जो गायत्री नहीं जानता हो।

"क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च।
यथेष्टाचरणस्याहु र्मरणान्तमशौचकम्॥"

'क्रियाहीनस्य नित्यनैमित्तिक क्रियाननुष्ठायिनः मूर्खस्य गायत्री रहितस्य' (शुद्धितत्त्व) ४ अज्ञ, नासमझ, जाहिल। नवरत्नमें लिखा है, कि मूर्ख बातोंसे वशीभूत रहते हैं।

"मित्रं स्वच्छतया रिपुं नय बलैर्लुब्धं धनैरीश्वरं।
कार्येण द्विजमादरेण युवतीं प्रेम्णा गुरोर्वान्धवान्॥
अत्युग्रं स्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं।
विद्याभी रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद्वशम्॥"

(नवरत्न)

मूर्खता (सं० स्त्री०) मूर्खस्य भावः तल-टाप्। मूर्खत्व, बेवकूफी।

"अदाता वंशदोषेण कर्मदोषाद्दरिद्रता।
उन्मादो मातृदोषेण पितृदोषेण मूर्खता॥" (चाणक्य)

वंशदोषसे कृपण, कर्मदोषसे दरिद्र, मातृदोषसे उन्माद और पितृदोषसे मूर्खता प्राप्त होती है। पिताके दोषसे पुत्र मूर्ख होता है।

तिथितत्त्वमें लिखा है, कि अष्टमी तिथिमें नारियल खानेसे मूर्ख होता है।

"कलङ्की जायते विल्वे तिर्य्यग्योनिश्च निम्बके।
ताले शरीरनाशः स्यान्नारिकेले च मूर्खता॥"

(तिथितत्त्व)

मूर्खत्व (सं० पु०) अज्ञता, नादानी।

मूर्खभ्रातृक (सं० पु०) मूर्खो भ्रातास्येति, नित्यं कप्। मूर्ख भ्रातृयुक्त, जिसके भाई मूर्ख हों।

मूर्खिमा (सं० पु०) मूर्खस्य भावः (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च्। पा ५।१।१२३) इति भावे इमनिच्। मूर्खता, मूर्खका भाव या धर्म।

मूर्च्छन (सं० पु०) १ संज्ञा लोप होना या करना, बेहोश करना। २ मूर्च्छित करनेका मन्त्र वा प्रयोग। ३ कामदेवका एक वाण।

मूर्च्छना (सं० स्त्री०) मूर्च्छ-युच्-टाप्। सङ्गीतमें एक ग्रामसे दूसरे ग्राम तक आरोह-अवरोह। ग्रामके सातवें भागका नाम मूर्च्छना है। भरतके मतसे गाते समय गलेको कँपानेसे ही मूर्च्छना होती है और किसी किसी का मत है, कि स्वरके सूक्ष्म विरामको ही मूर्च्छना कहते हैं। तीन ग्राम होनेके कारण २१ मूर्च्छनाएं होती हैं, जैसे—ललिता, मध्यमा, चित्रा, रोहिणी, मतङ्गजा, सौवीरी, षण्डमध्या, षड्ज, पञ्चमा, मत्सरी, मृदुमध्या, शुद्धान्ता, कलावती, तीव्रा, रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, खेदरी, सुरा, नादावत और विशाला।

महादेवने इन सबका मूर्च्छना नाम रखा है—

"स्वरः संमूर्च्छितो यत्र रागतां प्रतिपद्यते।
मूर्च्छनामिति तामाहुः कवयो ग्रामसम्भवाम्॥
ललिता मध्यमा चित्रा रोहिणी च मतङ्गजा।
सौवीरी षण्डमध्या च षड्ज मध्यम-पञ्चमा॥
मत्सरी मृदुमध्या च शुद्धान्ता च कलावती।
तीव्रा रौद्री तथा ब्राह्मी वैष्णवी खेदरी सुरा॥
नादावती विशाला च त्रिषु ग्रामेषु विश्रुताः।
एकविंशतिरित्युक्त्वा मूर्च्छना चन्द्रमौलिना॥
मूर्च्छनां कलयतो मुरशत्रोर्वंशिका ध्वनिविशेषवितानैः।
मूर्च्छनां ययुरनङ्गशरौघैरङ्गना रतिपतेरिव सेना॥"

(सङ्गीत-दामोदर)

षड्ज ग्रामकी मूर्च्छना, जैसे ललिता, मध्यमा, चित्रा, रोहिणी, मतङ्गजा सौवीरी षण्डमध्या।

मध्य ग्रामकी मूर्च्छना, जैसे—पञ्चमा, मत्सरी, मृदु-मध्या, शुद्धा, अन्ता, कलावती, तीव्रा।

गान्धार ग्रामकी मूर्च्छना, जैसे—रौद्री, ब्राह्मी, वैष्णवी, खेदरी, सुरा, नादावती और विशाला।

(सङ्गीतशास्त्र)

मूर्च्छा (सं० स्त्री०) मूर्च्छ (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) इति अ टाप्। १ प्राणीकी वह अवस्था जिसमें उसे किसी बातका ज्ञान नहीं रहता, वह निश्चेष्ट पड़ा रहता है। २ मूर्च्छना, रागगतिविशेष।

"क्रमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
सा मूर्च्छेत्युच्यते ग्रामस्था एताः सप्त सप्त च॥"

(शिशुपालटीका १।१० मल्लिनाथ)

क्रम क्रमसे सातों स्वरोंका जो आरोह और अवरोह होता है उसे मूर्च्छा कहते हैं। यह ग्रामस्थित है तथा ग्राममें सात सात मूर्च्छा है। ३ रोगभेद।

मूर्च्छारोग देखो।

मूर्च्छाक्षेपा (सं० पु०) मूर्च्छाके साथ प्रबल अनिच्छा-प्रकाश।

मूर्च्छागत (सं० त्रि०) मूर्च्छां गतः २-तत्। मूर्च्छित, मूर्च्छापन्न।

मूर्च्छारोग (सं० पु०) रोगविशेष, वायुरोग। इस रोगमें रोगी मूर्च्छित हो जाता है। वैद्यकशास्त्रमें इसके निदानादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—विरुद्ध वस्तुका खा जाना, मलमूत्रका वेग रोकना, अस्त्रशस्त्रसे सिर आदि मर्म स्थानोंमें चोट लगना अथवा सत्त्व गुणका स्वभावतः कम होना, इन्हीं सब कारणोंसे वातादि दोष मनोधिष्ठानमें प्रविष्ट हो कर अथवा जिन नाड़ियों द्वारा इन्द्रियों और मनका व्यापार चलता है उनमें अधिष्ठित हो कर तमोगुणकी वृद्धि करके मूर्च्छा उत्पन्न करते हैं। मूर्च्छा आनेके पहले शैथिल्य होता है, जंभाई आती है और कभी कभी शिर या हृदयमें पीड़ा भी जान पड़ती है।

मूर्च्छारोग सात प्रकारका कहा गया है, जैसे—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज, रक्तज, मद्यज और विषज। भिन्न भिन्न मूर्च्छामें पृथक् पृथक् दोषकी अधिकता रहनेसे भी सभी मूर्च्छा रोगोंमें पित्त ज्यादा रहता है। क्योंकि, पित्त और तमोगुण मूर्च्छा रोगका आरम्भक है।

वातज मूर्च्छामें रोगीको पहले आकाश नीला या काला दिखाई पड़ने लगता है और वह बेहोश हो जाता है, पर थोड़ी ही देरमें होशमें आ जाता है। इसमें कम्प अङ्गमर्द, हृदयमें पीड़ा, शारीरिक कृशता, देहका वर्ण श्याम वा लाल हो जाता है। पित्तज मूर्च्छामें रोगी पहले आकाशको लाल, पीला या हरा देखते देखते बेहोश हो जाता है और मूर्च्छा छूटते समय उसकी आँखें लाल हो जाती हैं, शरीरमें गर्मी मालूम होती है, प्यास लगती है और शरीर पीला पड़ जाता है। श्लेष्मज मूर्च्छामें रोगी स्वच्छ आकाशको भी बादलोंसे ढका और अंधेरा देखते देखते बेहोश हो जाता है और बहुत देरमें होशमें आता है। मूर्च्छा छूटने समय शरीर ढीला और भारी मालूम होता है और पेशाब तथा वमनकी इच्छा होती है। सन्निपातजमें उपर्युक्त तीनों लक्षण मिले जुले प्रकट होते हैं और मिरगीके रोगीकी तरह वह जमीन पर अकस्मात् गिर पड़ता है और बहुत देरमें होशमें आता है। मिरगीसे भेद इतना होता, है, कि इसमें मुंहसे फेन नहीं आता, दांत नहीं बैठते और नेत्र विकृत नहीं होते हैं। रक्तज मूर्च्छामें अंग, स्कन्ध और दृष्टि स्थिर-सी हो जाती है तथा साँस साफ चलती नहीं दिखाई देती। मद्यज मूर्च्छामें रोगी हाथ पैर मारता और अनाप शनाप बकता हुआ जमीन पर गिर पड़ता है। जब तक मद्य नहीं पचता, तब तक यह मूर्च्छा दूर नहीं होती। विषज मूर्च्छामें कम्प, प्यास और झपकी मालूम देती है तथा जैसा विष हो, उसके अनुसार और भी लक्षण देखे जाते हैं।

मूर्च्छा होनेके कारण जो भ्रम मालूम होता है उसे भ्रमरोग कहते हैं। वायु, पित्त और रजोगुणके एक साथ मिलनेसे भ्रमरोगकी उत्पत्ति होती है। इस रोगमें रोगी अपने शरीर तथा सभी पदार्थोंको घूमते हुए मालूम करता है, इसी कारण वह खड़ा नहीं रह सकता और यदि खड़ा रहे, तो गिर पड़ता है।

वातादि दोष जब अत्यन्त कुपित हो कर प्राणाधिष्ठान हृदयको दूषित कर देते हैं तथा उस दुर्बल रोगीके मन और इन्द्रियोंके कार्योंको विनष्ट कर अत्यन्त मूर्च्छित कर डालते हैं तब उसे संन्यास रोग कहते हैं। अत्यन्त मूर्च्छाका नाम ही संन्यास है। यह रोग अत्यन्त भयानक है। सूचीवेध, तीक्ष्ण अञ्जन, तीक्ष्ण नस्य आदि तुरत होशमें लानेवाले उपायोंका अवलम्बन नहीं करनेसे यह रोग दूर नहीं होता, रोगी थोड़े ही समयमें प्राणत्याग करता है।

चिकित्सा।

मूर्च्छारोगके आक्रमण-कालमें आँख और मुंह आदि स्थानोंमें ठंडे जलका छींटा दे कर मूर्च्छाको दूर करना आवश्यक है। होशमें आने पर उसे मुलायम बिछावन पर सुला कर पंखा करे। दांतोंके बैठ जानेसे उसे फौरन जिस किसी उपायसे हो, छुड़ा दे। जलके छींटोंसे यदि मूर्च्छा न छूटे, तो निशोदलका टुकड़ा दो भाग और सूखा चूना दो भाग, इन्हें एकत्र एक शीशीमें भर कर रोगीको सुंघावे। सैन्धवलवण, मरिच और पीपल, इन्हें जलमें पीस कर सुंघनेको दे। शिरीष वीज, पीपल, मरिच, सैन्धवलवण, लहसुन, मैनसिल,

वच इन सब द्रव्योंको गोमूत्रके साथ अथवा सैन्धवलवण, मरिच और मैनसिलको मधुके साथ पीस कर आँखमें अञ्जन देनेसे मूर्च्छा दूर होती है।

जलसेक, अवगाहन, मणि, माला शीतलप्रदेह, व्यजन, शीतल पान, गंध आदि शैत्यक्रिया मूर्च्छारोगमें विधेय है। चीनी, पयार, ईखका रस, दाख, मौल, खजूर और काश्मर्य इनके रसको पाक कर पानीय प्रयोग करे। काकोल्यादिगणके साथ पाक किया हुआ घृत, मधुरवर्गके साथ दूध और दाड़िमके साथ जंगली जानवरके मांसका रस पाक कर सेवन करावे। जौ, शालि अन्न और मटर मूर्च्छारोगमें पथ्य है। भुजङ्गपुष्प, मिर्च, खसखसकी जड़, बेरकी मज्जा समान भाग ले कर खिलानेसे भी मूर्च्छारोगको शान्ति होती है।

मटर भिगोये हुए जलमें मृणाल, मधु और चीनीके साथ पीपल और हरीतकी सेवन करावे। मूर्च्छाकालमें नाक और मुंहको बंद कर दे तथा स्तन पान करावे। इस समय सर्वदा तीक्ष्ण शिरोविरेचन और वमन कराना हितकर है। हरीतकी या आँवलेके रसमें पक्व घृत पान करानेसे मूर्च्छारोगमें बहुत लाभ पहुंचता है। दाख, चीनी, अनार, खसखसकी जड़ और नीलोत्पल इनका काढ़ा गंधयुक्त कर रोगीको पिलावे। पित्तज्वरमें जो सब योग कहे गये हैं वही सब योग इस रोगमें विशेष उपकारी हैं।

दोष तथा तमोगुणकी अधिकतासे जो व्यक्ति मूर्च्छित हो गया है, उसे तब तक संज्ञा लाभ नहीं होता जब तक वह होशमें नहीं आता। यह रोग अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार कच्चे मिट्टीके टुकड़ोंके जलमें गिरनेसे उन्हें विलीन होनेके पहले बाहर निकालना कर्त्तव्य है, उसी प्रकार मूर्च्छित व्यक्ति जिससे प्रबुद्ध हो जाय, पहले उसी की चेष्टा करनी चाहिये। तीक्ष्ण अञ्जन, धूम, नखके भीतर सूचिका-घात, अपूर्व गीतवाद्य, आत्मगुप्ता (केवांच) को शरीरमें घिसना, इन सब क्रिया द्वारा रोगीको प्रबुद्ध करना होता है।

मूर्च्छारोगमें आनाह, लालास्राव और श्वासका उपद्रव रहनेसे उसके आरोग्यकी सम्भावना नहीं है। क्योंकि ये सब लक्षण दुःसाध्य समझे जाते हैं। अच्छी तरह होश आने पर तीक्ष्ण संशोधन, लघु पथ्य, शक्करके साथ त्रिफला, चितक, सोंठ और शिलाजतुका प्रयोग करे। विशेषतः पुराना घी इस रोगमें बहुत उपकारी है। इस प्रकार एक मास तक चिकित्सा करनेसे यह रोग दूर हो सकता है। मूर्च्छारोगमें दोषोक्त ज्वरकी औषधका प्रयोग करना चाहिये। विषजन्य मूर्च्छारोगमें विषघ्न औषधका प्रयोग बताया गया है। (सुश्रुत मूर्च्छारोगाधि०)

भावप्रकाश, चरक आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें इस रोगके निदान और चिकित्सादिका विशेष विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुछ नहीं लिखा गया।

एलोपैथिक मतसे मूर्च्छारोग नाना कारणों से उत्पन्न होता है। मूर्च्छा (*Syncope*) होनेसे संज्ञा बिलकुल जाती रहती है। जिस जिस कारणसे यह रोग मनुष्य-शरीर पर आक्रमण करता है, नीचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

हृत्पिण्डके प्राचीर अथवा किसी प्रधान धमनीके फट जानेसे अथवा उदर-रोगमें टैप (भेदन) द्वारा बड़ी बड़ी रक्तनालीका चाप दूर करनेसे उनमेंसे अकस्मात् रक्त बहने लगता है और इसी कारण हृत्पिण्डके कोटरके रक्तशून्य हो जानेसे संज्ञाका लोप होता है। फिर हृदयस्थ मुकुट-धमनी (Coronary veins) के रुद्ध रहने अथवा ज्वरादि व्याधिके कारण हृत्पिण्डमें अपरिष्कार रक्त संचालित होनेसे यक्ष्मा और कर्कटरोग आदि कठिन व्याधि तथा हृत्पिण्डके यान्त्रिक रोग, अत्यन्त शोक, मस्तिष्ककी कठिन पीड़ा, अत्यन्त दुर्गन्ध, विकृत शब्द, अत्यधिक भयसञ्चार स्नैहिक स्नायु अथवा पाकाशयके ऊपर आघात, अधिक देर तक उष्ण जलमें अवस्थान, वज्राघात, अग्नि द्वारा शरीर दाह, काथिटर नामक नलप्रवेश, उत्तप्त शरीरमें जल पान वा उपवासके बाद अधिक भोजन तथा ताम्रकूट, एकोनाइट, एसिड, हाइड्रोसियेनिक वा उरेरा सेवनके बाद, हृत्पिण्डका आक्षेप हृद्वेष्ट (*Pericardium*) में जलीय रक्त (Serum) सञ्चयके कारण हृत्पिण्डके ऊपर चाप आदि उद्दीपक कारणोंसे मूर्च्छा आ जाती है। युवक और युवती, दुर्बल हृदयकी स्त्रीजाति तथा स्नायुप्रधान धातुविशिष्ट

व्यक्तियोंकी स्वाभाविक शारीरिक दुर्बलता और रक्तकी तरलताके कारण भी यह रोग हुआ करता है।

मूर्च्छाके कारणानुसार हृत्पिण्डमें भी अनेक परिवर्त्तन होते हैं। यदि रक्त निकलनेके कारण मूर्च्छा और मृत्यु हो जाय, तो हृत्कोटर संकुचित हो जाता है। हृत्पिण्डकी पेशीको अवसन्नताके कारण रोग होनेसे सभी कोटर फैल जाते तथा उनमें तरल और संयत रक्त देखा जाता है। इस समय फेफड़े और मस्तिष्कमें रक्त बिलकुल नहीं रहता।

मूर्च्छा हठात् अथवा उपरोक्त कई लक्षणोंके बाद उपस्थित होती है। इस समय कुछ पहले अत्यन्त दुर्बलता, शिर घूमना, हस्तपदादि कंपन, उदरके ऊर्द्ध्व प्रदेशमें वेदना, विवमिषा वा वमन, मुखमण्डल चिन्तायुक्त और पाँशुवर्ण, गात्रचर्म पसीनेसे तरावोर, समय समय कम्प, क्षणिक शीत और क्षणिक ग्रीष्मानुभव, नाड़ी पहले द्रुत और क्षीण, पीछे मृदु और अनियमित, श्रवण और दृष्टिशक्तिका व्यतिक्रम (विशेषतः कानमें अनेक प्रकारका शब्द सुनाई देना और रोशनी देखनेमें तकलीफ होना) श्वास, प्रश्वास तेज, अनियमित और शोकजनक, सर्वदा जृम्भण, अस्थिरता तथा कभी कभी आक्षेप आदि लक्षण भी देखे जाते हैं। इसके बाद ही रोगीको मूर्च्छा आ जाती है।

मूर्च्छागत रोगीका वर्ण प्रायः मृतदेहके वर्णके जैसा मालूम होता है। गात्रचर्म शीतल और पसीनेसे तरावोर, कनीनिका प्रसारित तथा नाड़ी अत्यन्त क्षीण और मृदु हो जाती हैं। श्वास प्रश्वास मृदु और अनियमित भावसे बहता रहता है। कभी कभी रोगीकी वेहोशीमें मलमूत्रत्याग होते भी देखा जाता है। इस अवस्थामें रोगी धीरे धीरे आरोग्य हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। मूर्च्छाकालमें हृत्पिण्डके ऊपर ष्टेथोस्कोप नामक यन्त्र लगा कर सुननेसे पहला शब्द बहुत मृदु सुनाई देता है।

किसी प्रत्यावर्त्तनिक कारण द्वारा यह रोग होनेसे पहले उसीको दूर करना उचित है। रोगीको सुला कर उसके कपड़े लत्ते खोल देने और मुख पर ठंढे जलका छींटा देनेसे बहुत उपकार होता है। बीच बीचमें एमोनिया भी सुंघा सकते हैं। इसकी तीव्र गंध मस्तिष्ककी रुद्ध वायुको मथ देती है जिससे रोगी होशमें आ सकता है।

एमोनिया, मृगनाभी (Musk), ब्राण्डी और इथर आदि ष्टिमुलेण्ट (उत्तेजक) औषध इस रोगमें बहुत लाभजनक है। रोगी यदि कोई चीज निगल न सकता हो, तो ष्टिमुलेण्ट, एनिमा या इथरके हाइपोडार्मिक सिरिञ्ज (पिचकारी) द्वारा इञ्जेक्ट करना ही उचित है। रोग कठिन होनेसे हृत्पिण्डके भीतर रक्त टिकानेके लिये हाथ और दोनों पैरको टुर्निकेट वा एसमार्कस वैण्डेज द्वारा बांध दे। हृत्पिण्डके स्थानमें उत्ताप, उत्तेजक लिनिमेण्ट, मष्टाड प्लैष्टर और वैद्युतिक स्रोत संलग्न करे। इसके अलावा हाथ और पैरमें गरम जलसे भरे हुए बोतलका ताप देना उचित है। कभी कभी रक्तसंक्रमण (Trans-fusion of blood) वा कृत्रिम उपायसे श्वास प्रश्वास सञ्चालन करना आवश्यक है।

मिरगी वा अपस्मार रोगमें भी (Epilepsy) मूर्च्छा होती है। इसकी चिकित्सा और लक्षणादि यथास्थानमें लिखा गया है। अपस्मार देखो।

मस्तिष्क क्रियाके विगड़नेसे आक्षेपादियुक्त जो मूर्च्छागत वायुरोग उपस्थित होता है अंगरेजीमें उसे Hysteria कहते हैं। यह रोग अक्सर युवती और युवककी ही हुआ करता है। १५से २० वर्षको विधवा, अविवाहिता और वन्ध्या स्त्रियां ही इस रोगसे आक्रान्त देखी जाती हैं। ऋतुकालमें रजके अच्छी तरह नहीं निकलने तथा मानसिक अस्वच्छन्दताके कारण ही यह रोग उत्पन्न होता है।

विशेष विवरण हिष्टिरिया शब्दमें देखो।

मूर्च्छाल (सं० त्रि०) मूर्च्छा अस्त्यस्येति (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) इति लच्। मूर्च्छित, जिसे मूर्च्छा आई हो।

मूर्च्छित (सं० त्रि०) मूर्च्छास्य सञ्जाता मूर्च्छा, तारकादित्वादि तच्। १ मूर्च्छायुक्त, वेहोश। पर्याय—मूर्त्त, मूर्च्छाल। २ मारा हुआ। यह पारे आदि धातुमें व्यवहृत होता है। ३ वृद्ध, बूढ़ा। ४ मूढ़, वेवकूफ। ५ व्याप्त, फैला हुआ।

"किं नु खल्वद्य गम्भीरो मूर्च्छितो न निशाम्यते।
यथा पुरमयोध्यायां गीतवादित्रनिस्वनः॥"

(रामायण २।११४।१९)

मूर्ण (सं० त्रि०) मूर्व नहे-क्त । वृद्ध, बंधा हुआ ।

मूर्त्त (सं० त्रि०) मूर्च्छ-क्त (राल्लोपः । पा ६।४।२१) इति छलोपः (न ध्याख्या पृमूर्च्छिमदाम् । पा ८।२।५७) इति निष्ठा तकारस्य नत्वाभावः । १ मूर्च्छित, अचेत । २ जिसका कुछ रूप वा आकार हो, साकार । नैयायिकोंके मतसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन मूर्त्त पदार्थ हैं । इनके गुण रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरु, स्नेह और वेग हैं ।

मूर्त्तामूर्त्तका साधारण गुण—संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग और विभाग ।

"रूपं रसः स्पर्शगन्धौ परत्वमपरत्वकम् ।
द्रवो गुरुत्वं स्नेहश्च वेगो मूर्त्तगुणा अमी ॥
सङ्ख्यादिश्च विभागान्त उभयेषां गुणो मतः ॥"

(भाषापरिच्छेद ८५-८६)

मूर्त्तजा अली खाँ—आर्काटका एक मुसलमान शासनकर्त्ता यह दोस्त अली खाँका दामाद था । दोस्त अलीके मरने पर जब उसका लड़का सफदर अली कर्णाटककी मसनद पर बैठा, तब मूर्त्तजाने गुप्तचर द्वारा उसे मरवा कर सिंहासन पर अधिकार जमाया । इस समय निजाम उल्-मुल्क, रघुवीर भोंसले, अंगरेज और फरासीसोंने कर्णाटकराज्यका अधिकार ले कर राष्ट्रविप्लव खड़ा कर दिया । बचावका कोई रास्ता न देख वह स्त्रीके वेशमें वेल्लूरदुर्ग भाग गया । इसके बाद षड्यन्त्र करके इसने सफदरके युवक पुत्रका काम तमाम किया । फरासी राजनैतिक डुप्लेके अनुग्रहसे ही यह आर्काटके सिंहासन पर बैठनेमें समर्थ हुआ था । १७६२ ई०में यह वेल्लूर जा कर रहने लगा ।

मूर्त्तजा निजाम शाह (१म)—अह्मद नगरका एक मुसलमान शासनकर्त्ता । १५६५ ई०में पिता हुसेन निजाम शाहके मरने पर यह सिंहासन पर बैठा, किन्तु इस समय यह नाबालिग था, इस कारण माता खञ्जा सुलतानाने ६ वर्ष तक राजकार्य चलाया । २४ वर्ष राज्य करनेके बाद यह पागल हो गया । इसके लड़के मीरन हुसेन निजाम शाहने इसे कैद कर धूम प्रयागसे मार डाला । जमा उल्-हिन्द नामक मुसलमान-इतिहासमें लिखा है, कि मीरनने विष खिला कर इसका प्राण लिया था । १५८८-८९ ई०में यह घटना हुई थी ।

मूर्त्तजा निजाम शाह (२य)—अह्मद-नगरके निजामशाही वंशका अन्तिम राजा । यह हवशी सेनापति मालिक अम्बरके हाथका खिलौना था । १६०० ई०में बहादुर निजाम शाहको कैद कर मालिक अम्बरने इसे सिंहासन पर बिठाया था । १६२८ ई०में अम्बरके लड़के फतेखाँने इसे मार डाला ।

मूर्त्तता (सं० स्त्री०) मूर्त्तस्य भावः तल्-टाप् । मूर्त्त होनेका भाव या धर्म ।

मूर्त्ति (सं० स्त्री०) मूर्च्छ-क्तिन् (न ध्याख्येति । पा ८।२।५७) इत्यष्मात्तकारस्य नत्वं । १ काठिन्य, कठिनता । २ शरीर, देह । ३ प्रतिमा, किसीके रूप या आकृतिके सदृश गढ़ी हुई वस्तु । ४ स्वरूप, आकृति ।

"आचार्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्त्तिः प्रजापतेः ।
भ्राता मरुत्पतेर्मूर्त्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥
दयाया भगिनि मूर्त्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयम् ।
अग्नेरभ्यागतो मूर्त्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥"

(भागवत ६।७।२९-३०)

यहां पर मूर्त्ति शब्दका अर्थ स्वरूप वा सदृश है । जैसे,—आचार्य ब्रह्माके स्वरूप, पिता प्रजापतिके स्वरूप, इत्यादि । ५ ब्रह्मसावर्णिके एक पुत्रका नाम ।

(भाग० ८।१३।२१)

६ रंग या रेखा द्वारा बनी हुई आकृति, चित्र ।

मूर्त्तिकार (सं० पु०) १ मूर्त्ति बनानेवाला । २ तसवीर बनानेवाला, मुसौवर ।

मूर्त्तित्व (सं० क्ली०) मूर्त्तेर्भावः त्व । मूर्त्तिका भाव या धर्म, शरीरत्व ।

मूर्त्तिधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, मूर्त्तेः धरः । मूर्त्तिविशिष्ट, मूर्त्तिधारणकारी ।

मूर्त्तिप (सं० पु०) देवमूर्त्तिरक्षाकारी पुरोहित, पुजारी ।

मूर्त्तिपूजक (सं० पु०) वह जो मूर्त्ति या प्रतिमाकी पूजा करता हो, मूर्त्ति पूजनेवाला ।

मूर्त्तिपूजा (सं० स्त्री०) मूर्त्तिमें ईश्वर या देवताकी भावना करके उसकी पूजा करना ।

मूर्त्तिमत् (सं० क्ली०) मूर्त्तिः काठिन्यमस्याश्रित मूर्त्ति मतुप् ।

१ शरीर, देह। (त्रि०) २ जो रूप धारण किये हो, स-शरीर। २ साक्षात् गोचर। (पु०) ३ कुशपुत्र। स्त्रियां ङीप्। मूर्त्तिमती।

"दर्शयामास तं गङ्गा तदा मूर्त्तिमती स्वयम्।"
(महाभारत ३।१०८।१४)

मूर्त्तिमय (सं० त्रि०) मूर्त्ति स्वरूपे मयट्। मूर्त्तिस्वरूप।

मूर्त्तिमान् (सं० त्रि०) मूर्त्तिमत् देखो।

मूर्त्तिलिङ्ग (सं० क्ली०) प्राग्ज्योतिष पुरस्थित शिवलिङ्ग-भेद।

मूर्त्तिविद्या (सं० स्त्री०) १ प्रतिमा गढ़नेकी कला। २ चित्रकारी।

मूर्द्ध (हिं० पु०) मस्तक, शिर।

मूर्द्धक (सं० पु०) मूर्द्धन्यभिषिक्त इति मूर्द्धन संज्ञायां कन्। क्षत्रिय।

मूर्द्धकर्णी (सं० स्त्री०) छाता या और कोई वस्तु जो धूप, पानी आदिसे बचनेके लिये सिर पर रखा जाय।

मूर्द्धकर्परी (सं० स्त्री०) जलयान, टोकरा।

मूर्द्धखोल (सं० क्ली०) मूर्द्धः खोल इव। छत्र। मूर्द्धकर्णी देखो।

मूर्द्धज (सं० पु०) मूर्द्धिन जायते जन-ड। १ केश, बाल। (त्रि०) मूर्द्धजात मात्र, शिरसे उत्पन्न होनेवाला।

मूर्द्धज्योतिस् (सं० क्ली०) ब्रह्मरन्ध्र।

मूर्द्धतस् (सं० अव्य०) मूर्द्धन् सप्तम्यर्थे पञ्चम्यर्थे वा तसिल, मस्तक पर वा मस्तकसे।

मूर्द्धतैलिक (सं० त्रि०) नासतैलभेद। यह तेल सूंघनेसे कफ निकल जाता है और दिमाग साफ रहता है।

मूर्द्धन् (सं० पु०) मूर्वति बध्नाति यत्तेति मूर्व (श्वन् उक्षन् पूषन्। उण् १।१५८) इति कनिन उकारस्य, दीर्घः, वकारस्य धकारश्च। मस्तक, शिर।

मूर्द्धन्य (सं० त्रि०) मूर्द्धन्-यत्। १ मूर्द्धासे सम्बन्ध रखनेवाला, मूर्द्धासम्बन्धी। २ मस्तक या शिरमें स्थित।

"अर्जुनः सहसाज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना।
मणिं जहार मूर्द्धन्यं द्विजस्य सह मूर्द्धजम्॥"
(भागवत १।७।५५)

मूर्द्धन्यवर्ण (सं० पु०) वे वर्ण जिनका उच्चारण मूर्द्धासे होता है। मूर्द्धन्य वर्ण ये हैं—ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और स।

मूर्द्धन्वान् (सं० पु०) १ गन्धर्वका नाम। २ वामदेव ऋषि जो ऋग्वेदके दशम मण्डलके अष्टम सूक्तके द्रष्टा थे।

मूर्द्धपात (सं० पु०) मस्तकविदारण, शिर फाड़ना।

मूर्द्धपिण्ड (सं० पु०) करिकुम्भ, हाथीका मस्तक।

मूर्द्धपुष्प (सं० पु०) मूर्द्धिन पुष्पमस्य। शिरीषपुष्प।

मूर्द्धरस (सं० पु०) मूर्द्धस्थस्तदुपरिस्थो रसः। भक्त-फेन, भातका फेन।

मूर्द्धवेष्टन (सं० क्ली०) मूर्द्धिनः वेष्टनं। उष्णीष, पगड़ी।

मूर्द्धाभिषिक्त (सं० पु०) १ क्षत्रिय। २ राजा।

"राज्ञो मूर्द्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः।
तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गान्युतचेतनः॥"
(भागवत ६।१५।४१)

३ मिश्रजातिविशेष। इसकी उत्पत्ति ब्राह्मणसे विवाहिता क्षत्रिय स्त्रीके गर्भसे कही गई है।

"स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान् सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्॥" (मनु १०।६)

इस जातिकी वृत्ति हाथी, घोड़े और रथकी शिक्षा तथा शस्त्र-धारण है।

महाभारतमें लिखा है, कि परशुरामने जब पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर दिया, तब क्षत्रिय-रमणियोंने नियोगक्रमसे ब्राह्मण ऋषि द्वारा सन्तान उत्पादन किया था वही सन्तान मूर्द्धाभिषिक्त है।

मूर्द्धाभिषेक (सं० पु०) शिर पर अभिषेक या जलसिञ्चन होना।

मूर्द्धेश्वर—बम्बई प्रदेशके उत्तर कनाड़ा जिलान्तर्गत होन-वार उपविभागका एक नगर और बन्दर। यह अक्षा० १४° ६' उ० तथा देशा० ७४° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। यहांके समुद्रगर्भमें विस्तृत एक पार्वतीय भूखण्ड-के ऊपर एक प्राचीन ध्वंसावशिष्ट दुर्ग और शिवमन्दिर देखा जाता है।

मूर्वा (सं० स्त्री०) मूर्वति इति मूर्व-अच्-टाप्। मरोड़-फली नामकी लता। संस्कृत पर्याय—देवी, मधुरसा, मोरटा, तेजनी, स्रवा, मधुलिका, धनुःश्रेणी, गोकर्णी

पीलुकर्णी, स्रुवा, मूर्वी, मधुश्रेणी, क्षुनु, श्रेणी, सुरङ्गिका, देवश्रेणी, पृथक्त्वचा, मधुस्रवा, अतिरसा, पीलुपर्णिका, दिव्यलता, ज्वलिनी, गोपवल्ली।

इसमें सात आठ डंठल निकल कर इधर उधर लताकी तरह फैलते हैं। फूल छोटे छोटे, हरापन लिए सफेद रंगके होते हैं। हिमालयके उत्तरखण्डको छोड़ कर भारतवर्षमें और सब जगह यह लता होती है।

इसकी सरस पत्तियोंसे रेशे निकलते हैं जो बहुत मजबूत होते हैं। इससे प्राचीनकालमें उन्हें बट कर धनुषकी डोरी बनाई जाती थी। उपनयनमें क्षत्रिय लोग मूर्वाकी मेखला धारण करते थे। एक मन पत्तियोंसे आध सेरके लगभग सूखा रेशा निकलता है। कहीं कहीं उससे रस्सी और चटाई भी बनाई जाती है। यूरोपमें इसके रेशेसे समुद्रतलको साफ करनेवाले मजबूत जाल बनाते हैं। त्रिचिनापल्लीमें मूर्वाके रेशोंसे बहुत अच्छा कागज बनता है। परन्तु इसमें खर्च ज्यादा पड़नेके कारण व्यवसायियोंके लिये सुविधाजनक नहीं है।

मूर्वाके रेशे बहुत मुलायम और रेशमकी तरह सफेद होते हैं। तुरत ही तोड़ी हुई पत्तीको टोकरेमें रख कर किसी उपायसे उसका रस निकाल डाले। बाद उसमें बहुत बारीक रेशे देखनेमें आयेंगे। अनन्तर उन्हें चार पांच मिनट तक जलमें रख कर अच्छी तरह धो डाले और तब छायामें सुखा कर कुल रेशे निकाल ले। चालीस मन पत्तियोंसे कभी कभी एक मन रेशा निकलता है।

मूर्वाकी जड़ औषधके काममें आती है। वैद्य लोग इसे यक्ष्मा और खाँसीमें देते हैं। बीज और पत्तीका रस सांपके काटनेकी एक महौषध है। इससे घोन्नस नामक सर्पविष दूर होता है, इसी कारण मराठी भाषामें मूर्वाका एक नाम 'घोनसफन' भी है।

वैद्यकके मतसे इसका गुण—अतिरिक्त, कषाय, उष्ण, हृद्रोग, कफ, वात, वमि, प्रमेह, कुष्ठ और विषमज्वरनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे—पित्त, अस्र, मेह, त्रिदोष, तृष्णा, हृद्रोग, कुष्ठ, कण्डु और ज्वरनाशक।

मूर्वामय (सं० पु०) मूर्वास्वरूपे मयट्। मूर्वास्वरूप। क्षत्रिय लोग उपनयन कालमें मूर्वाकी मेखला धारण करते थे।

"मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी॥"
(मनु २।४२)

मूर्विका (सं० स्त्री०) मूर्वा।

मूल (सं० क्ली०) मवते वध्नाति वृक्षादिकमिति मू-म ङ्कशाक्यविभ्यः क्लः। उण् ४।१०८) इति क्ल। १ पेड़ोंका वह भाग जो पृथ्वीके नीचे रहता है, जड़।

"भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं मूलानि च फलानि च।
हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च॥"
(मनु० ३।२२७)

२ आदि, आरम्भ। ३ निकुंज। ४ पास, समीप। ५ मूलवित्त, असल जमा या धन जो किसी व्यवहार या व्यवसायमें लगाया जाय।

"अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः।
अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम्॥"
(मनुसं० ८।२०२)

६ आदि कारण, उत्पत्तिका हेतु। ७ नीवँ, बुनियाद। ८ ग्रन्थकारका निजका वाक्य या लेख जिस पर टीका आदि की जाय। ९ शूरण, जिमीकन्द। १० पिप्पली मूल। ११ पुष्कर मूल। १२ कुड़विशेष। १३ अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमेंसे उन्नीसवाँ नक्षत्र। इस नक्षत्रका नाम मूल वा मूला है। निर्ऋति इसके अधिपति हैं। इसका आकार सिंहपुच्छके जैसा तथा शङ्खमूर्त्ति और नवतारामय है। यह नक्षत्र अधोमुख नक्षत्र है। यह वानर जातिका है। शतपद-चक्रानुसार इस नक्षत्रमें भू, ध, फ, ढ, इन चार पदोंके यथाक्रम यही चार नाम होते हैं। इस नक्षत्रमें जिसका जन्म होता वह वृद्धावस्थामें दरिद्र, अत्यन्त चिन्तित, समस्त कालानुरागी, मातृ-पितृहन्ता और आत्मीय स्वजनका उपकारी होता है। (कोष्ठीप्र०) इस नक्षत्रमें मांस नहीं खाना चाहिये।

"चित्राहस्ताश्रवणासु तैलं क्षौरं विशाखाश्रवणासु वर्ज्यम्।
मूले मृगे भाद्रपदासु मांसं योषिन्मघाकृत्तिकसोत्तरासु॥"
(तिथितत्त्व)

१४ दुर्गराष्ट्र।

"स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः।
षड्विधं बलमादाय प्रतस्थे दिग्जिगीषया॥" (रघु ४।२६)

१५ देवताओंका आदि मन्त्र या वीज (त्रि०) १६ मुख्य, प्रधान।

मूलक (सं० पु० क्ली०) मूल-संज्ञायां कन्। कन्दविशेष, मूली। संस्कृत पर्याय—राजालुक, महाकन्द, हस्तिदन्तक, नीलकण्ठ, मूलाह्व, दीर्घमूलक, मृत्क्षार, कन्दमूल, हस्तिदन्त, सित, शङ्खमूल, हरित्पर्ण, रुचिर, दीर्घकन्दक, कुञ्जरक्षार, मूल। इसका गुण—तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निदीपक, दुर्नाम, गुल्म, हृद्रोग और वातनाशक, रुचिप्रद और गुरु। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे यह दो प्रकारका है, छोटा और वड़ा। छोटेका पर्याय—लघु-मूलक, शालाक, कटुक, मिश्र, वालेय, मरुसम्भव, चाणक्यमूलक और मूलकपोतिका। गुण—कटुरस, उष्णवीर्य, रुचिकारक, लघु, पाचक, त्रिदोषनाशक, स्वरप्रसादक तथा ज्वर, श्वास, नासारोग, कण्ठरोग और चक्षुरोगनाशक। वड़ी मूली हाथीके दातके समान वड़ी होती और नेपालमें उपजती है। इसका गुण—रूक्ष, उष्णवीर्य, गुरु और त्रिदोषनाशक। तैलादि स्नेह द्वारा पाक कर इसका सेवन करनेसे त्रिदोष नाश होता है। इसके शाकका गुण—पाचन, लघु, रुचिकर और उष्ण माना गया है।

मूलसे मूलक नाम पड़ा है। साधारणतः मूलक पांच प्रकारका है—चाणक्य, गृञ्जल, पिण्ड, वाल और गुर्जर।

शास्त्रमें लिखा है, कि माघके महीनेमें मूलक नहीं खाना चाहिये। सौर और चान्द्र दोनों ही महीनेमें मूलक खाना निषिद्ध है तथा माघके महीनेमें देवता और पितरोंको भी यह नहीं चढ़ा सकते।

"मकरे मूलकञ्चैव सिंहे चालावुकं तथा।
कार्त्तिके शूरणञ्चैव सद्यो गोमांसभक्षणम्॥"
(कर्मलोचन)

"पितृणां देवतानाञ्च मूलकं नैव दापयेत्।
ददन्नरकमाप्नोति भुञ्जीत ब्राह्मणो यदि॥
ब्राह्मणो मूलकं भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्।
अन्यथा याति नरकं क्षत्रो विट्शूद्र एव च॥" (मलमासत०)

भारतमें सभी जगह, यहां तक, कि हिमालयके १६ हजार फुट ऊंचे स्थानमें भी मूलक उत्पन्न होता है। यह अकसर जाड़े में ही हुआ करता है। किन्तु शीत प्रधान देशोंमें यह सभी समय उत्पन्न होते देखा जाता है।

मूलीकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मतभेद है। बेन्थम, डि कण्डोल आदि R. Raphanistrum नामक जंगली पेड़से ही इसकी उत्पत्ति वतलाते हैं। इस जङ्गली उद्भिद्को खाद मिले हुए उर्वरा स्थानमें रोपनेसे धीरे धीरे उसीसे चौथे जन्ममें मूलक होते देखा गया है, परन्तु वह उद्भिद् इस देशमें न रहनेके कारण उससे भारतीय मूलीकी उत्पत्तिकी कल्पना नहीं की जा सकती। यह सालमें दो वार वोई जाती हैं, इसीसे प्रायः सव दिन मिलती है। भारतवर्षके उर्वर क्षेत्रमें यह मनुष्यकी ऊंचाईके समान होती देखी गई है।

मूलीके बीजसे एक प्रकारका दुर्गन्धयुक्त तेल निकलता है। वह तेल वर्णहीन और जलसे भारी होता तथा उसमें गन्धकका भाग अधिक रहता है। बीज ही साधारणतः औषधमें काम आता है, पर मूल भी बीजके समान गुणप्रद है। यह साधारणतः उत्तेजक मूत्रकारक और अश्मरी नाशक है। मूत्रकृच्छ, मूत्ररोध, मूत्रानुवन्ध और मूत्राशयकी पथरीमें मूलीके शाकका रस विशेष फलदायक है।

(पु०) मूले जातः मूल (पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्कराद्वुन्। पा ४।३।२८) इति वुन्। २ चौंतिस प्रकारके स्थावर विषोंमेंसे एक। मूल प्रकार इति मूल (स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्। पा ५।४।३) इति कन्। ३ मूलस्वरूप। "नारी कवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत्।" (भाग० ९।९।४९)

(त्रि०) ४ उत्पन्न करनेवाला, जनक।

मूलकच्छद (सं० पु०) कृष्ण शिग्रु, काला सहिजन।

मूलकपर्णी (सं० स्त्री०) मूलकस्य पर्णमिव समानस्वादं पर्णमस्याः, ङीप्। शोभाञ्जनवृक्ष, सहिजनका पेड़।

मूलकपोता (सं० स्त्री०) वालमूलक, कच्ची मूली।

मूलकपोतिका (सं० स्त्री०) अति वालमूलक, अत्यन्त कच्ची मूली। गुण—कटुतिक्त रस, उष्ण वीर्य और लघुपाक।

मूलकवीज (सं० क्लो०) मूलकस्य वोजम्। मूलक शस्य, मूलीका वीज।

मूलकमूल (सं० क्ली०) मूलक मिव मूलमस्याः। क्षीरकञ्चुकी वृक्ष।

मूलकर्मन् (सं० क्ली०) मूलञ्च तत्कर्म चेति। त्रासन, उच्चाटन, स्तम्भन, वशीकरण आदिका वह प्रयोग जो ओषधियोंके मूल द्वारा किया जाता है, टोना। २ उनचास उपपातकोंमेंसे एक।

"सर्वाकरेष्व धोकारो महायन्त्रप्रवर्त्तनम्।
हिंसोपधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो म लकर्म च॥"
(मनु ११।६४)

३ प्रधान कर्म। पूजादिमें कुछ कर्म प्रधान होते हैं और कुछ अङ्ग। जो कर्म नहीं करनेसे कार्य सिद्ध नहीं होता वही मूलकर्म है।

मूलकारण (सं० क्ली०) मूलञ्च तत् कारणञ्चेति। प्रधान कारण, प्रधान हेतु।

मूलकारिका (सं० स्त्री०) मूल-कारक-स्त्रियां टाप्, अकार स्येत्वं। १ चण्डी। २ मूलग्रन्थार्थ-प्रकाशक पद्य। ३ मूलधनकी एक विशेष प्रकारकी वृद्धि।

मूलकृच्छ्र (सं० क्ली०) मूलेन तद्रसपानेन कृच्छ्र। स्मृतियों में वर्णित ग्यारह प्रकारके पर्णकृच्छ्र व्रतोंमेंसे एक व्रत। इसमें मूली आदि कुछ विशेष जड़ोंके साथ या रसको पी कर एक मास व्यतीत करना पड़ता था।

"फलैर्मासेन कथितः फलकृच्छ्रो मनीषिभिः।
श्रीकृच्छ्रः श्रीफलैः प्रोक्तः पद्माक्षै रपरस्तथा॥
मासेनामलकैरेवं श्रीकृच्छ्र मपरं स्मृतम्।
पत्रै र्मतः पत्रकृच्छ्रः पुष्पैस्तत् कृच्छ्र उच्यते।
मूलकृच्छ्रः स्मृतो मूलैस्तोय कृच्छ्रो जलेन तु॥"
(मिताक्षरा)

मूलकृत् (सं० त्रि०) मूलं करोति कृ-क्विप्। मूलप्रस्तुतिकारी।

मूलकेशर (सं० पु०) निम्बुक, नीबू।

मूलखानक (सं० पु०) वर्णसङ्कर जातिविशेष। इस जातिके लोग पेड़ोंकी जड़ खोद कर जीविका निर्वाह करते थे।

"व्याधाञ्छाकुनिकान् गोपान् कैवर्त्तान् मूलखानकान्।
व्यालग्रहानुञ्छ वृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः॥"
(मनु ११।२६०)

मूलग्रन्थ (सं० पु०) असल ग्रन्थ जिसका भाषान्तर टोका आदि की गई हो।

मूलच्छेद (सं० पु०) मूलस्य छेदः। १ जड़से नाश। २ पूर्ण नाश।

मूलज (सं० क्ली०) मूलात् जायते जन-ड। १ आद्रक, अदरक। २ उत्पलादि। (त्रि०) ३ मूलोद्भव मात्र, मूलसे जो कुछ हो।

मूलजाति (सं० स्त्री०) प्रधान वंश।

मूलतस् (सं० अव्य०) मूल पञ्चमी वा सप्तम्यर्थे तसिल। मूलसे वा मूलदेशमें।

मूलताई—१ मध्यप्रदेशके बेतुल जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २१° २५´ से २२° २३´ उ० तथा देशा० ७७° ५७´ से ७८° ३४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १०५६ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें १ शहर और ४१७ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन बड़ी उपजाऊ है।

२ उक्त उपविभागका विचार-सदर। यह अक्षा० २१° ४६´ उ० तथा देशा० ७८° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां देवमन्दिरसे सुशोभित एक सुन्दर दिग्गी नजर आती है। स्थानीय लोगोंका विश्वास है, कि ताप्ती नदी इसी हृदसे निकली है।

मूलतान—पञ्जावप्रदेशका एक विभाग। यह अक्षा० २८° २५´ से ३३° १३´ उ० तथा देशा० ६९° १६´ से ७३° ३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। मूलतान, झङ्ग, मोण्टगोमरी और मजुफायगढ़ नामक चार जिलोंको ले कर यह विभाग संगठित है। यहांका क्षेत्रफल २९५२० वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखसे ऊपर है। इसमें २६ शहर और ५०८५ ग्राम लगते हैं। इस विभागका अधिकांश मरुभूमि है। सुलेमान पहाड़ पर अवस्थित मनरो किला और साल्ट रेंज परका सकेसर स्वास्थ्य-स्थान समझा जाता है।

मूलतान—पंजावप्रदेशका एक जिला। यह देशा० २९° २०´ से ३०° ४५´ उ० तथा देशा० ७१° ५२´ पू०के मध्य

अवस्थित है। इसके उत्तरमें झङ्ग, पूर्वमें मोण्ट-गोमरी, दक्षिणमें बहवलपुर वा भावलपुर राज्य और पश्चिममें मुजफ्फरगढ़ जिला है। चन्द्रभागा और शतद्रु नदीके मध्यवर्ती बड़ी दोआब नामक अन्तर्वेदी भूभाग ले कर यह जिला संगठित है। बीच बीचमें इरावती नदी बह जानेसे रेकना दोआबका कुछ अंश भी इसमें आ गया है। उक्त तीनों नदियोंके दोनों किनारे विस्तीर्ण शस्यपूर्ण समतल क्षेत्र देखे जाते हैं। इसके सिवा प्रायः सभी भूभाग पहाड़ी उपत्यकासे भरे पड़े हैं। मोण्टगोमरी जिलेके समीप दोनों नदियोंके मध्य भागमें वाड़ नामक अनुर्वर प्रदेश है। यहां विपासा और इरावती नदीका पुराना गड्ढा देखा जाता है। जब मूलतान प्रदेश इन चारों नदियोंके जलसे परिप्लावित होता था, उस समय यह जगह बहुत हरी भरी दिखाई देती थी, अनाज काफी उपजता था। १०वीं सदीमें अलमसुदि नामक मुसलमान ऐतिहासिक के वर्णनानुसार मालूम होता है, कि यह मूलतान प्रदेश १ लाख २० हजार ग्रामोंमें विभक्त था। उस समय मूलतानराज्य जनसाधारणसे पूर्ण तथा शस्यसम्भारमें अतुलनीय था। विपासा नदीकी गति बदलनेके कारण यहां जलका अभाव रहता है जिससे स्थानीय समृद्धिका ह्रास हो गया है। यहां झील और नहरके द्वारा खेती बारी-का काम चलता है।

मूलतान नगरका प्राचीन नाम कश्यपपुर और मूल-शाम्बपुर है। प्रवाद है, कि आदित्य और दैत्योंके पिता महर्षि कश्यपके नामानुसार ही इस नगरका नाम पड़ा है। हिकाटियस, हिरोदोतस, टलेमी आदि भौगोलिकों-ने इस स्थानका कश्यपपुर नामसे ही उल्लेख किया है। टलेमीकी एक पुस्तकमें काश्मीरसे मथुरापुरी तकका देश कास्पिरियाइ (Kaspeiraei) तथा उसकी राजधानी कास्पिरिया (Kaspeiraea) नामसे उल्लिखित है। पुरातत्त्व-वेत्ता कनिंहम पंजाबके अन्तर्गत जो कश्यपपुर है उसीको कास्पिरिया बतलाते हैं। ई० सन्‌की २री शताब्दीमे यह कास्पिरिया नगर पंजाबकी राजधानी तथा बड़ा समृद्धिशाली था, ऐसा इतिहासमे पाया जाता है। इसके प्रायः पांच सौ वर्ष पहले अर्थात् मकदूनियाके सिकन्दर महान्‌के आक्रमणके समय यह नगर दुर्द्धर्ष मल्लि जातिका वासस्थान था। यवनराज सिकन्दरके साथ युद्धमें मल्लि राजे हार गये।

सिकन्दर इस नगर पर अधिकार कर फिलिप नामक अपने एक सेनापतिको यहांका क्षत्रप (Satrap) नियुक्त कर गये थे। अनन्तर गुप्तराजवंशके अभ्युत्थानसे शीघ्र ही यह यवनराज्य नष्ट हो गया। इसके कुछ दिन बाद बक्त्रीय राजाओंकी वीरतासे फिर दूसरी बार मूलतानमें यवनशासन स्थापित हुआ। उन राजाओंको प्रचलित मुद्रा आज तक उक्त बातोंका प्रमाण दे रही है।

प्राचीन अरबी भौगोलिकोंने मूलतानराज्यको सिन्धु प्रदेशमें शामिल कर लिया है। उन लोगोंके लेखानु-सार यह नगर चचराजके अधिकारमें था। इस प्रसिद्ध राजाके राज्यकालमें चीनपरिव्राजक यूएनचुवंग मूलतान देखने आये थे। उन्होंने वहां सूर्यदेवकी एक सुवर्णमयी मूर्त्ति देखी थी। उन्होंने इस स्थानका "मूलसाम्बपुर" नामसे उल्लेख किया है। भविष्यपुराणमें यह स्थान "मित्रवन" नामसे वर्णित हुआ है। साम्बने इस स्थानमें सूर्य्यमूर्त्ति स्थापित की; तबसे यह "साम्बपुर" कहलाने लगा। विस्तृत विवरणके लिये भोजक ब्राह्मण शब्द देखो।

डाक्टर कनिंहमका अनुमान है, कि इस स्थानके मूलतान नामकी उत्पत्ति सूर्य्योपासकोंके इस प्रसिद्ध मन्दिरसे ही हुई है; परन्तु डाक्टर अपार्ट आदि ऐति-हासिक मल्लिजातिकी वासभूमि अर्थात् मल्लस्थानसे मूल-तान शब्दकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

मुसलमान जातिके अभ्युत्थानके कुछ ही दिन बाद सिन्धुराज्यके साथ मूलतान जिलेको भी महम्मद बिन् कासिमने खलीफा साम्राज्यमें मिला लिया। खलीफा वंशके अवसान होने पर सिन्धुप्रदेशमें मुसलमान शक्ति-का भी ह्रास हुआ। ई०सन्‌की ९वीं शताब्दीके अन्तमें मन्-सुरा और मूलतान नगरमें दो स्वाधीन राजाओंने अपनी विजय पताका फहराई। चन्द्रभागा और शतद्रु के संगम-स्थानमें अरबके अमीरवंशीय शासकोंने अपना प्रभाव फैलाया था। गजनी-साम्राज्यके अभ्युदय तक इस अमीरवंशने सिन्धुप्रदेशमें अरबी शक्ति अक्षुण्ण रखी थी।

१००५ ई०में गजनीके सुलतान महमूदने मुलतान

नगरमें घेरा डाला। उसने इस नगर और सिन्धुराज्यको जय कर यहां मुसलमान-शासक नियुक्त किया।

इसके बाद कुछ समय तक सुमरा और गोर राजाओंके अधीन रह मूलतान फिर १४४२ ई०में स्वाधीन हो गया। यहांके रहनेवालोंने शेख युसूफ नामक एक मुसलमानको अपना शासक बनाया था। उत्तर भारतमें मुगल-सम्राटोंके अधिकार बढ़ने पर मूलतान भी उनके शासनमें आ गया और मुगलसाम्राज्यके अन्त तक एक सूबेकी राजधानी रहा। १७३८-३९ ई०में नादिरशाहके भारताक्रमणके बाद सदोजै अफगान वंशीय जाहिद खांको महम्मद शाहने यहांका नवाब बनाया। उसके वंशजोंने अफगानों और मरहठोंके दिन-रात आक्रमण और अत्याचार करने पर भी यहांके बड़ि दोआब अंचलमें अपना शासन फैला लिया था।

१८वीं शताब्दीके शेषार्द्धमें मुसलमानों और सिक्ख जातिके अन्तर्विप्लवके कारण यहांका इतिहास विशृङ्खल हो गया है। इस विद्रोहके कारण परस्पर युद्ध हुआ और शक्तिका बहुत ह्रास हुआ; पश्चात् १७७९ ई०में सदोजै अफगानवंशीय मुजफ्फर खाँ मूलतानका शासक बना। भंगी सरदारोंके अत्याचारोंसे पीड़ित होने पर भी अपने अधिकृत प्रदेशकी रक्षाके लिये उसने कितने ही उपाय निकाले। पंजाबकेशरी रणजित् सिंह कई बार आक्रमण करके भी मूलतानको विजय न कर सके। बार बार पराजित हो अपनेको अपमानित समझ उन्होंने १८१८ ई०में अपनी दुर्जय सिक्ख सेना ले फिरसे मूलतान आ घेरा। इस बार घोरतर युद्धके बाद उन्होंने मुजफ्फर खाँ और उसके पांच लड़कोंको रणक्षेत्रमें मार मूलतान पर अधिकार कर लिया।

रणजित् सिंह मूलतानमें अपना कर्मचारी नियुक्त कर इस प्रदेशका शासन करते थे, लेकिन शासक लोग अनुचित कर संग्रह और अत्याचारसे प्रजाको पीड़ित करने लगे और फलतः अपने पदसे हाथ धो बैठे। पीछे १८२९ ई०में दीवान शिवानमल मूलतानके शासनकर्त्ता हो कर आये। ये साथ ही साथ डेरा इस्माइल खां, डेरा गाजी खां, मुजफ्फरगढ़ और झंग जिलेके भी शासक हुए थे। पहिलेके शासकोंके अत्याचारों और युद्धोंके कारण यह स्थान प्रायः जनशून्य हो गया था। दीवान शिवानमलने अनेक स्थानोंसे लोगोंको बुला बुला कर अपने अधिकृत प्रदेशमें बसाया था। इन्होंने अनेक स्थानोंमें नहर और तालाब खुदवा कर कृषि और वाणिज्यको उन्नति की थी।

रणजित् सिंहकी मृत्युके बाद शिवानमलके साथ काश्मीर राज्यका विरोध खड़ा हुआ। १८४४ ई०की ११वीं सेप्टम्बरको शत्रुओंकी गोली हृदयमें लगनेसे इनकी मृत्यु हुई। बादमें इनका लड़का मूलराज मूलतानके शासक नियुक्त हुए, लेकिन लाहोर सरकारसे इनको भी अनबन रही। लाहोरसरकारको सन्तुष्ट करनेके लिये रुपये देनेमें ये असमर्थ थे, अतः इन्होंने पदत्याग करना निश्चय किया।

लाहोरमें प्रतिनिधि-सभा (Council of regency) के स्थापित होने पर अंग्रेज कर्मचारियोंसे मूलराजकी नहीं पटती थी। विवाद दिनों दिन बढ़ता ही गया। मूलराजके आदेशसे दो अंगरेज कर्मचारियोंके मारे जाने पर मूलतानमें एक बड़ा विद्रोह उठ खड़ा हुआ। यही इतिहास-प्रसिद्ध प्रथम सिक्ख युद्ध है। फिर द्वितीय सिक्ख युद्धके बाद ही मूलतानके साथ समूचा पंजाब अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया। १८४९ ई०की २री जनवरीको अंग्रेजी सेनाने मूलतान अधिकार किया, किन्तु २२वीं जनवरी तक दुर्गमें रह मूलराज अपनी रक्षा करते रहे। अन्तमें अपनेको अंग्रेजोंसे कमजोर देख इन्हें आत्मसमर्पण करना पड़ा। अंग्रेजी सरकारके विचारसे इन्हें प्राणदण्ड मिला, लेकिन सरकारने दया दिखा कर इन्हें प्राणदण्डके बदले कालापानी दिया। उसी समयसे मूलतान अंगरेजोंके शासनमें आ रहा है।

मूलतानके शिल्प ये हैं:—ऊनी कपड़े, रुई और ऊनके कार्पेट, कलई किये हुए वर्त्तन, चांदीके काम और जेवर, रेशमी कपड़े, रेशम और रूईके मिश्रित कपड़े, और हाथी दांतके काम आदि।

यहांको रफतनी गेहूं, रुई, नील, चमड़े, हड्डी और सोडाके कार्बोनेट और आमदनी चावल, तेलहन, तेल, चीनी, घी, लोहा और फुटकर चीजें हैं।

यह जिला एक डिपुटी कमिश्नरके शासनमें है। यह

मूलतान, शुजाबाद, लोधरान, मैलसी और काबीरवाला पांच तहसीलोंमें विभक्त है।

शिक्षाके विचारसे प्रदेशके २८ जिलोंमें मूलतानका स्थान तीसरा है। फिलहाल सब मिला कर इसमें करीब ३०० स्कूल हैं। यहां एक संगीत स्कूल भी है।

मूलतानमें एक सिविल अस्पताल, स्त्रियोंके लिये विक्टोरिया जुबिली अस्पताल, दो शाखा अस्पताल और शहरके बाहर २८ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेकी तहसील। यह अक्षा० २९° २९´ से ३०° २८´ उ० तथा देशा० ७१° १७´ से ७१° ५८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६५३ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखके करीब है। इसमें मूलतान नामक एक शहर और २८९ ग्राम लगते हैं।

३ पञ्जाब प्रदेशका एक प्रधान शहर और मूलतान जिलेका विचार सदर। यह अक्षा० ३०° १३´ उ० तथा देशा० ७१° ३१´ पू०के मध्य अवस्थित है। रेलवे द्वारा यह करांचीसे ५७६ मील और कलकत्तेसे १४२९ मील दूर पड़ता है।

नगरके चारों ओर ऊंची दीवार खड़ी है। केवल दक्षिण ओर इरावती नदी मन्द गतिसे बहती है।

उक्त इरावती नदीकी गति तथा स्थानीय प्राचीन-नदीगर्भ देखनेसे मालूम होता है, कि तैमूरलङ्ग जब भारत वर्ष पर चढ़ाई करने आया उस समय यह नदी नगरसे पांच कोस दक्षिण चन्द्रभागाके साथ मिली हुई थी। नगरके सामने उस नदीकी गतिके परिवर्त्तनकालमें जो दो द्वीप बन गये उन्होंके ऊपर सौधमालाविभूषित दुर्ग बनाया गया था। क्योंकि, आसपासके विस्तीर्ण प्रान्तर-से उनको ऊंचाई ५० फुट ज्यादा है। १८५४ ई०में अंग-रेजी सेनाने यहांके चहारदीवारीको तोड़ डाला था। १८४९ ई०में अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद नगरकी बड़ी उन्नति हुई है। किलेमें अभी अंगरेजी सैन्यदल रहता है। वाणिज्य व्यवसाय करनेके उद्देशसे दूर दूर देशके अनेक लोग यहां आ कर बस गये हैं। हुसेन द्वारसे ले कर वाली महम्मदके द्वार तक एक बड़ी सड़क दौड़ गई है। उस सड़क पर जो बाजार बसा है वह नगरको समृद्धिका परिचय देता है।

विस्तीर्ण स्तूपके अलावा यद्यपि प्राचीन मूलतान नगरी (कश्यपपुर)-का कोई विशेष निदर्शन नहीं दिखाई देता, फिर भी ग्रीक-वीर अलेकसन्दरके आक्रमणसे इस नगरका प्राचीन इतिहास मिलता है। उक्त विजयी महात्माने मल्लि (मालव) जातिको परास्त कर इस प्राचीन राजधानी पर अधिकार किया था।

यहांकी प्रधान इमारतोंमें अरबवासी मुसलमान साधु बहाउद्दीन और रुकन उल आलमका मकबरा विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। उसके समीप प्रह्लादपुरी नामक नर-सिंहमूर्त्ति-प्रतिष्ठित एक सुप्राचीन हिन्दूमन्दिर है। १८४८-४९ ई०में निकटस्थ दुर्गके बारूदखानेमें आग लग जानेसे उसका बहुत कुछ अंश उड़ गया। दुर्गके मध्यस्थलमें सूर्यका बड़ा मन्दिर अवस्थित है। हिन्दूविद्वेषी मुगल-औरङ्गजेबने इसे तहस नहस कर उसके ऊपर मसजिद बनवाई। वह जुम्मा मसजिद सिखजातिकी प्रधा-नताके समय बारूदखानेके रूपमें व्यवहृत हुई थी। उस समय भी आग लग जानेसे उसका अधिकांश नष्ट हो गया। १८४८ ई०में मूलराजके विद्रोहकालमें मि० भांस एग्न्यु और लेफ्टेनाण्ट एण्डर्स नामक जो दो अंगरेज-कर्मचारी मारे गये उन्होंकी स्मृतिरक्षाके लिये दुर्गमें ७० फुट ऊंचा एक मीनार खड़ा किया गया था। नगर-के पूर्व ओर हिन्दूशासनकर्त्ताओंके बनाये हुए प्रसिद्ध आमखास (दरबार-घर)-में अभी तहसीलके कार्या-लय लगते हैं। दक्षिण ओर दीवान शावन मल्लका मकबरा है।

लाहोर-राजधानी और कराची बन्दर तक रेलवे लाईन दौड़ जानेसे नगरकी वाणिज्यसमृद्धि दिनों दिन बढ़ रही है। इसके सिवाय रेल और नाव द्वारा अमृतसर, जालन्धर, पिण्डदादन खां, भिवानी, दिल्ली आदि नगरों तथा सुजाबाद, लोधवान्, मैलसी, सरायसिन्धु, खरोड़, तुलम्बा, जलालपुर और दन्यापुर आदि जिलोंके विभिन्न नगरोंमें वाणिज्य द्रव्य ले कर जाने आनेका अच्छा प्रबन्ध है। कन्धारवासी अफगान वणिक् सीमान्तसङ्कटको पार कर यहां आते और खरीद बिक्री करते हैं। शहरमें तीन हाई स्कूल, यूरोपीय बालकोंका एक मिडिल स्कूल और बालिकाके लिये सेण्ट मेरी कन्भेण्ट मिडिल स्कूल हैं।

इसके अतिरिक्त छावनीमें इङ्गलिश और रोमन कैथलिक चर्च, चर्च मिशनरी सोसाइटीका स्टेशन, सिविल अस्पताल और जन.ना-विक्टोरिया जुबली अस्पताल है।

मूलतान (गोराबाजार)—यह उक्त नगरसे १॥ मील पूर्वमें अवस्थित है। यह अक्षा० ३०° ११´ १५´´ उ० तथा देशा० ७१° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां यूरोपीय पदाति, एक कमानवाही और दो देशी पदाति सेनादल रहते हैं।

मूलतान—मध्यभारतके भूपावर एजेन्सीके धारराज्यके अन्तर्गत एक नगर। यहांके सरदार राठोरवंशीय राजपूत हैं।

मूलत्व (सं० क्लो०) मूलस्य भावः त्व। प्रकृतित्व, मूलका भाव या धर्म।

मूलत्रिकोण (सं० क्लो०) मूलञ्च तत् त्रिकोणञ्चेति। रवि आदि ग्रहोंका राशिरूप गृहविशेष। ग्रह जब मूलत्रिकोणमें रहते हैं तब मध्यम बलके माने जाते हैं। रविका मूलत्रिकोण, सिंहराशि, चन्द्रका वृष, मङ्गलका मेष, बुधका कन्या, बृहस्पतिका धनु, शुक्रका तुला और शनिका कुम्भ है।

"सिंहो वृषश्च मेषश्च कन्या धन्वी घटो घटः।
अर्कादीनां त्रिकोणानि मूलानि राशयः क्रमात्॥"
(ज्योतिस्तत्त्व)

मूलदेव (सं० पु०) १ कंसराज। २ अग्निमित्रके पुत्र सुमित्रका हत्याकारी।

मूलदेव—१ योगाचार्यभेद। शाक्तरत्नाकरमें इनका परिचय है। २ कामशास्त्रके एक उपदेष्टा। पञ्चशायक ग्रन्थमें इनका उल्लेख आया है। ३ आयुर्वेद-ग्रन्थके रचयिता। ४ केरलप्रश्न नामक ज्योतिःशास्त्रके रचयिता।

मूलद्रव्य (सं० पु०) मूलञ्च तत् द्रव्यञ्चेति। १ मूलधन, पूंजी। २ आदिम द्रव्य या भूत जिससे और द्रव्यों या भूतोंकी उत्पत्ति हुई हो।

मूलद्वार (सं० क्लो०) प्रधान द्वार, सिंहद्वार, सदर फाटक।

मूलद्वारवती (सं० स्त्री०) द्वारवती नगरीका प्राचीन अंश। यह भाग आजकलकी द्वारकासे कुछ दूर प्रायः समुद्रके भीतर पड़ती है।

मूलधन (सं० क्लो०) मूलञ्च तद्धनञ्चेति। आदिद्रव्य, वह असल धन जो किसी व्यापारमें लगाया जाय, पूंजी। संस्कृत पर्याय—परिपण, नीवी।

मूलधातु (सं० पु०) १ अकृत्रिम धातु। २ मज्जा।

मूलनगर (सं० क्लो०) प्रकृत नगरभाग।

मूलनाश (सं० पु०) मूलस्य नाशः। मूलद्रव्यका विनाश।

मूलनिकृन्तन (सं० त्रि०) मूलोच्छेदन।

मूलपद्म (सं० क्लो०) तान्त्रिकके मतसे शरीराङ्गविशेषका नाम।

मूलपर्णी (सं० स्त्री०) मूले पर्णमस्याः ङीप्। मण्डूकपर्णी नामकी ओषधि।

मूलपाक (सं० पु०) द्रव्यादिका मुख्य पाक।

मूलपुरुष (सं० पु०) मूलः पुरुषः। बीजपुरुष, आदिपुरुष, सबसे पहला पुरखा जिससे वंश चला हो।

मूलपुलिशसिद्धान्त (सं० पु०) पुलिशकृत आदि सिद्धान्त ग्रन्थ।

मूलपुष्कर (सं० क्लो०) मूले पुष्करमस्य, पुष्करमिव मूलमस्येति वा। पुष्करमूल।

मूलपोती (सं० स्त्री०) मूल प्रधाना पोती। पूतिकाशाकभेद, छोटी पोय नामका शाक। पर्याय—क्षुद्रवल्ली, पोतिका। गुण—त्रिदोषघ्न, वृष्य, बलकर, लघु, रुचिकारक, जठरानल-दीपन।

मूलप्रकृति (सं० स्त्री०) मूला चासौ प्रकृतिश्चेति। आद्याशक्ति।

"सर्वप्रसूता प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
न शक्तः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना।
सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्मायया विना॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणपतिख०)

मूल प्रकृति ही सृष्टिकर्त्री है। परमेश्वर भी इस प्रकृतिके विना सृष्टि नहीं कर सकते। उन्होंने इसी प्रकृतिके द्वारा जगत्‌की सृष्टि की है। सांख्यकारिकामें लिखा है—

"मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥"
(सांख्यका० ३)

मूलप्रकृति अविकृति है, अर्थात् महदादि विकृतिरहित है, जब प्रकृतिमें किसी प्रकारकी विकृति नहीं होती, जब जगदवस्था नहीं है, प्रकृतिकी विकृतिके आरम्भ होनेसे जब इस जगत्‌की सृष्टि होती है, फिर जब

प्रकृतिका स्वरूपपरिणाम होता है, तब इस जगत्का ध्वंस होता है। यही अवस्था प्रकृतिकी मूल अवस्था कहलाती है।

मूलप्रणिहित (सं० त्रि०) मूले प्रणिहितः। मूलविषयमें सावधान।

"ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये।
तान् प्रसह्य नृपो हन्यात् समित्रज्ञातिबान्धवान्॥"
(मनु ९।२६९)

मूलफलद (सं० पु०) मूले च फलं ददातीति दा-क। पनस वृक्ष, कटहल।

मूलबन्ध (सं० पु०) १ हठयोगकी एक क्रिया। इसमें सिद्धासन वा वज्रासन द्वारा शिश्न और गुदाके मध्य-वाले भागको दबा कर अपान वायुको ऊपरकी ओर चढ़ाते हैं। २ तन्त्रोपचार पूजनमें एक प्रकारका अंगुलि-न्यास।

मूलबर्हण (सं० क्ली०) १ मूलोच्छेदन। २ मूलानक्षत्र।

मूलभद्र (सं० पु०) मूलश्चासौ भद्रश्चेति। कंसराज।

मूलभव (सं० त्रि०) मूलाद्भवतीति भू-अप्। जो मूलसे उत्पन्न हो।

मूलभार (सं० पु०) कन्दसमूह।

मूलभृत्य (सं० पु०) १ पुरातन भृत्य, पुराना नौकर। २ पुश्तैनी नौकर।

मूलमण्डल (सं० क्ली०) पूर्ण मण्डल।

मूलमन्त्र (सं० पु०) मूलश्चासौ मन्त्रश्चेति। बीजमन्त्र। महाविद्या आदि देवताओंके जो सब बीजमन्त्र हैं उन्हें मूलमन्त्र कहते हैं।

मूलमाधव (सं० क्ली०) तीर्थभेद। यहां स्नान करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं।

मूलमित्र (सं० पु०) गोभिलका एक नाम।

मूलरस (सं० पु०) मूलेरसोऽस्याः। मोरट लता, मूर्वा।

मूलराज—जयसलमेरके एक रावल। इनके पिताका नाम रावल जैतसी था। पिताके मरने पर ये १२९४ ई०में राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए।

जिस समय मूलराजका अभिषेक हुआ, उस समय जयसलमेरका किला मुसलमान सैनिकोंसे घिरा था। उनका सेनापति नवाव महबूब खाँ था। मुसलमानी सेना किले पर आक्रमण करने लगी और यादवसेना किलेकी रक्षामें नियुक्त हुई। इस घनघोर लड़ाईमें नौ हजार मुसलमानी सेना मारी गई। अधिक सेनाका क्षय देख महबूब खाँ बची खुची सेनाको ले कर भाग चला। कुछ दिन बाद उसने फिरसे सैन्यसंग्रह कर किले पर धावा बोल दिया। एक वर्ष तक मुसलमानी सेना किलेको घेरे रही। इतने समय तक अन्नके अभावसे यादवसेनाको भारी कष्ट पहुंचने लगा। इस मूलराजने अपने सरदारोंको बुलाया और कहा, 'अब तक हम लोग अपनी स्वाधीनताकी रक्षा अच्छी तरह करते रहे, परन्तु अब भोजन-के लिये कुछ भी नहीं है और कोई उपाय भी नहीं सूझता जिससे हमलोग अपनी रक्षा कर सकें। इसलिये हम लोगोंको इस समय क्या करना चाहिये, इसका निर्णय आप लोग करें।' सरदारोंने उत्तर दिया, 'स्त्रियोंको जुहार व्रतका अवलम्बन करना चाहिये और हम लोगोंको रणमें अपनी वीरता दिखा कर स्वर्गपुर चलनेको तैयार हो जाना चाहिये।' किलेमें इस प्रकारका विचार हो रहा था, उधर मुसलमानोंने समझा कि किले पर अधिकार होना बड़ा कठिन है, क्योंकि इतने दिन हो गये और हमारी सेना भी दिनोंदिन घट रही है, अतः किलेको घेर कर पड़ा रहना व्यर्थ है। यह सोच कर मुसलमानी सेना वापस चली गई। इसी समय रत्नसीने सेनापतिके छोटे भाईको किलेके भीतर बुलाया और उसका आदर सत्कार कर बातें करने लगे। उसे किलेमें आनेसे मालूम हुआ, कि किलेमें सेनाके लिये रसद बिलकुल नहीं है। वह वहांसे भाग कर दौड़ा दौड़ा सेनापतिके पास पहुंचा और किलेकी सब बातें कह सुनाईं। बस फिर क्या था, सेनापति फूले न समाया और तुरत लौट कर किलेको फिरसे घेर लिया। उस समयका कर्त्तव्य तो पहले निश्चित ही हो चुका था, स्त्रियोंने जुहार व्रतका अव-लम्बन किया और पुरुषोंने अगणित यवनसेनाका विनाश करके स्वर्ग प्राप्त किया।

बातकी बातमें सुरपुर सदृश जयसलमेरका राज-भवन श्मशानतुल्य हो गया। रत्नसीके दो लड़के सेना-पति महबूबके द्वारा रक्षित थे। उन्होंने मूलराज तथा रत्नसी आदिका अन्तिम संस्कार किया। किलेमें ताली भर कर नवाव चला गया।

मूलराज—गुजरातके सोलाङ्की वंशीय एक राजा। ये चावड़वंशके अन्तिम राजा सावन्त सिंहके नाती थे। इन्होंने ५६ वर्ष तक राज्य किया। प्रवाद है, कि माताके पेटको फाड़ कर ये बाहर निकले थे।

मूलराज—मूलराजप्रदेशके एक हिन्दू राजा। १८४८ ई०में वृटिश सरकारके विरुद्ध खड़े होनेसे ये निर्वासित हुए थे। मूलतान देखो।

मूलवचन (सं० क्ली०) मूलञ्च तत् वचनञ्चेति। १ प्रकृत वचन। २ मूल ग्रन्थका वचन।

मूलवणिग्धन (सं० क्ली०) वणिजां धनं वणिग्धनं मूलं वणिग्धनं। वणिकोंका मूल धन, वणिकोंकी पूँजी।

मूलवत् (सं० त्रि०) १ सुमिष्ट मूलयुक्त, जिसकी जड़का स्वाद मीठा हो। २ जड़के गुणकी तरह कार्यकारी।

मूलवाप (सं० पु०) वह जो वृक्षोत्पादनके लिये जड़ लगाते हों।

मूलवित्त (सं० क्ली०) मूलञ्च तत् वित्तञ्चेति। मूलधन, पूँजी।

मूलविद्या (सं० स्त्री०) १ प्रधान ज्ञान। २ द्वादशाक्षर मन्त्रविशेष।

मूलविनाशन (सं० क्ली०) जड़से नाश।

मूलविभुज (सं० त्रि०) जो जड़को टेढ़ा कर लाठी आदि बनाता हो।

मूलविरेचन (सं० पु०) मूलं विरेचनमस्य। तृवृतादि शिफारूप श्रेष्ठ विरेचन।

"सतला शङ्खिनी दन्ती द्रवन्ती गिरिकर्णिका।
तृवृच्छ्यामोदकीर्या च प्रकीर्या क्षीरिणी तथा॥
छगलाण्डी गवाक्षी च कुचाक्षी गिरिकर्णिका।
मसूरविदला चैव भवेन्मूलविरेचनम्॥"

(वाभट चिकित्० ६ अ०)

सतला, शङ्खिनी, दन्ती, द्रवन्ती, गिरिकर्णिका, निसोथ, गुलञ्च, नटकरञ्ज, कण्टकी करञ्ज, क्षीरिणी, छगलाण्डी, गवाक्षी, कुचाक्षी, गिरिकर्णिका और मसूरविदला ये सब द्रव्य श्रेष्ठविरेचन कहे गये हैं।

मूलविष (सं० क्ली०) मूले विषमस्य। जिसकी जड़ विषैली हो, जैसे कनेर।

मूलव्यसन (सं० क्ली०) मूलञ्च तद्व्यसनञ्चेति। मारण, वधका दण्ड।

"चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान्।
पुक्कस्या जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः॥"

(मनु १०।३८)

"व्यसनं दुःखं तस्य मूलं मारणं तद्वृत्तिः।"

(मेधातिथि)

प्राणदण्ड पाने योग्य व्यक्तियोंका जो राजाकी आज्ञासे वध करता है उसे मूलव्यसनवृत्तिमान् कहते हैं।

मूलव्रती (सं० त्रि०) मूल खा कर गुजारा चलानेवाला।

मूलशकुन (सं० पु०) प्रथम पक्षी। (वृहत्स० ९५।६०)

मूलशाकट (सं० क्ली०) मूलानां भवनं क्षेत्रं मूल (भवने क्षेत्रे इक्ष्वादिभ्यः शाकटशाकिनौ। पा ५।२।२९) इत्यत्र वार्त्तिक वलात् शाकट। मूलक्षेत्र, वह खेतमें जिसमें मूली, गाजर आदि मोटी जड़वाले पौधे बोए जायं।

मूलशोधन (सं० पु०) पुण्डरीक वृक्ष।

मूलसङ्घ (सं० पु०) आदि जैनसम्प्रदायभेद।

मूलसर्वास्तिवाद (सं० पु०) बौद्धसम्प्रदायभेद।

मूलसाधन (सं० क्ली०) प्रधान अवलम्बन, मूल अस्त्र।

मूलसिंह—जयसलमेरके रावल। इनका असल नाम मूलराज सिंह था, पर लोग इन्हें मूलसिंह ही कहा करते थे। अखैसिंहकी मृत्यु होने पर ये ही राजसिंहासन पर बैठे। इनके तीन पुत्र थे, रायसिंह, जैतसिंह और मानसिंह। रावल मूलराजके मंत्रीका नाम स्वरूपसिंह था। वह बड़ा ऊधमी और दुराचारी था। उसकी स्वेच्छाचारितासे जयसलमेरकी क्या प्रजा, क्या सामन्त मण्डली सभी तंग तंग आ गये थे। उसके अत्याचारसे पीड़ित सरदारसिंह नामक एक सरदारने युवराज रायसिंहसे प्रार्थना की, 'आप ऐसा कोई प्रवन्ध कर दें जिससे हम लोगोंको इस दुःखसे छुटकारा मिले।' रायसिंह उससे अप्रसन्न थे ही, वे सहज ही सम्मत हो गये। एक दिन राजसभामें रायसिंहने स्वरूपसिंहको कतल करनेके लिये म्यानसे तलवार निकाली। स्वरूपसिंहने भाग कर मूलराजकी शरणमें जाना चाहा, पर युवराजकी तलवारने बड़ी शीघ्रतासे उसका काम तमाम कर दिया। उसी समय सरदार सिंहने मूलराजको भी मारनेका प्रस्ताव

किया। परन्तु युवराज रायसिंहने इसे स्वीकार नहीं किया।'

रायसिंहकी संहारमूर्त्ति देख कर रावल मूलराज अन्तःपुरमें चले गये। इधर सरदारोंने विचारा, कि मूलराजके सिंहासन पर बैठे रहनेसे अब हम लोगोंका कल्याण नहीं। उन्होंने आपसमें सलाह कर युवराजसे कहा, कि हम लोग आपको राजतिलक देते हैं, अब आप ही राज्यभार ग्रहण कीजिये। सब सामन्तोंकी एक राय देख कर युवराजने पिताको कैद कर लिया और स्वयं राजकार्य चलाने लगा, परन्तु वह राजसिंहासन पर नहीं बैठा।

तीन महीने चार दिन कैद रहनेके बाद अनूपसिंहकी स्त्रीके उद्योगसे मूलराज कैदसे छूट कर पुनः राजगद्दी पर बैठे। राजगद्दी पर बैठते ही उन्होंने अपने पुत्र रायसिंहको निर्वासित कर दिया। रायसिंह ढाई वर्षके बाद जब फिरसे जयसलमेर लौटे, तब मूलराजने उनसे तथा उनके अनुचरोंसे अस्त्र छीन कर उन्हें देवाके किलेमें कैद कर लिया। मूलराजने उस किलेमें आग भी लगवा दी थी, जिसके फलसे रायसिंह अपनी स्त्रीके साथ जल कर भस्म हो गये। सन् १८१८ ई०में उन्होंने इष्ट इण्डिया कम्पनीके साथ सन्धि कर ली थी। सन्धिके बाद मूलराज दो वर्ष जीवित रह कर इस लोकसे चल बसे।

मूलसूत्र (सं० क्ली०) वेदान्तदर्शनादिका अभिव्यक्त सूत्र।

मूलस्थल (सं० क्ली०) नगरभेद।

मूलस्थली (सं० स्त्री०) थाला, आलवाल।

मूलस्थान (सं० क्ली०) १ प्रधान स्थान। २ भित्ति, दीवार। ३ ईश्वर। ४ मूलताननगरी। ५ आदि स्थान, बाप दादाकी जगह। स्त्रियां ङीष्। ६ गौरी।

मूलस्थानतीर्थ (सं० क्ली०) मूलतान नगर जहां भास्कर तीर्थ था। चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्गने इस स्थानको म्युलो-सान-पुलो नामसे उल्लेख किया है।

मूलस्थायी (सं० त्रि०) १ सृष्टिके आदिसे रहनेवाले। (पु०) २ शिव।

मूलस्रोतस् (सं० क्ली०) १ नदीका उत्पत्ति-स्थान। २ मूल नदी।

मूलहर (सं० त्रि०) मूलनाशक, जड़ काटनेवाला।

मूला (सं० स्त्री०) मूलानि बहुलानि सन्त्यस्याः मूल-अर्श आदित्वादच्, टाप। १ शतावरी, सतावर। २ मूला नक्षत्र।

"द्वितीयां षष्ठीमष्टम्यां कारयेत् शान्तिकर्म च।
अश्विनी-रामूलाश्च पुष्या पुनर्वसुस्तथा॥"
(इन्द्रजाल १ अ०)

मूला—१ मध्यप्रदेशके चंदा जिलेकी एक पर्वतश्रेणी। यह मूलनगरसे ३ मील पूरब है। इसकी चोटियां अधिक ऊंची नहीं हैं। उत्तर-दक्षिण यह १८ मील फैली हुई हैं। इस जङ्गली स्थानमें वनैले हाथी और गोंड़ जातिके लोग रहते हैं। धोर्ना, झिरी और खोलसा नामक उपत्यकायें एक समय बड़ी बड़ी झीलोंसे भरी थीं। इन सब स्थानोंमे बड़े बड़े वाणिज्य-प्रधान गांव बसे हुए हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। इसका रकवा ५०१८ वर्गमील है।

३ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २०° ४०' उ० और देशा० ७०° ७३' पूरबके मध्य अवस्थित है। यहां तेलिंगा जातिके लोगों हीका रहना अधिक होता है। छींट और चन्दनके व्यवसायके लिये यह स्थान बहुत कुछ प्रसिद्ध है।

मूलाधार (सं० पु०) मूलानामाधारः, मूलं प्रधानं आधार इति वा। गुह्य और लिंगके बीच दो अंगुली परिमित स्थान। इसका दूसरा नाम त्रिकोण है और यह इच्छा, ज्ञान और क्रियात्मक होता है। इस मूलाधारमें कोटि सूर्यके समान प्रभा विशिष्ट स्वयम्भूलिंग विराजमान हैं। इसका बाहरी भाग सोनेके जैसा है। इसके दलोंकी संख्या ४ और अक्षर व, श, ष तथा स हैं।

"मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके।
मध्ये स्वयम्भूलिंगस्तु कोटि सूर्यसमप्रभम्॥
तद्बाह्ये हेमवर्णाभं व-स वर्णं चतुर्द्दलम्॥"
(तन्त्रसार)

इस मूलाधारमें गंगा, यमुना और सरस्वती ये तीनों तीर्थ विराजमान हैं। जो षट्चक्रभेद करनेमें समर्थ हैं वे इन तीनों तीर्थोंमें स्नान करते हैं।

"इड़ा मलस्थाननिवासिनी या सूर्यात्मिका या यमुना प्रवाहिका।
तथा सुषुम्ना मलदेशगामिनी सरस्वती रक्षति मज्जनात्मकम्॥
मनोगतस्नानपरो मनुष्यो मन्त्रक्रियायोगविशिष्टतत्त्ववित्।
महीस्थतीर्थे विमले जले मुदा मूलाम्बुजे स्नाति सुमुक्ति भागभवेत्॥
सर्वाणि तीर्थे सुरतीर्थपावनी गंगामहासत्त्वविनिर्गता सती।
करोति पापक्षयमेव मुक्तिं ददाति साक्षादमलार्थं पुण्यदा॥"
(रुद्रयामल) पट्चक्रभेद शब्द देखो।

मूलानूर—मान्द्राज-प्रदेशके कोयम्वतोर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १०° ४५′ २०″ उ० तथा देशा० ७७° ४६′ पू०के मध्य अवस्थित है।

मूलाभ (सं० क्ली०) मूलक नामक उद्भिदविशेष।

मूलाभिधर्मशास्त्र (सं० क्ली०) आदि अभिधर्मशास्त्र।

मूलायतन (सं० क्ली०) आदिम आवास, पूर्व निवास।

मूलाविद्याविनाशक (सं० त्रि०) जड़से अज्ञान-अन्धकार-को नाश करनेवाला।

मूलाशिन् (सं० त्रि०) कन्दसेवी, कन्दमूल खा कर रहनेवाला।

मूलासङ्कट—ब्राहुई पर्वतमालाके ऊपर एक पहाड़ी रास्ता। कच्छ-गंडावसे लोग इस रास्ते हो कर बेलुचिस्तानके झालवान प्रदेश जाते हैं। कच्छ-गंडावसे निकलनेके कारण इस पहाड़ी रास्तेको गंडाव भी कहते हैं। पीरछट्ट, टोफाङ्ग, और गट्टी नामक स्थानसे आनेका यही रास्ता है। इस रास्तेकी लम्बाई १०२ मील है। बीच बीचमें विश्राम करनेके लिये चट्टियां हैं। पीरछट्टसे १२ मीलकी दूरी पर कुहो (१२५० फोट ऊंचा) नामक स्थान, १६ मीलकी दूरी पर हताटी, १६ मीलकी दूरी पर नार (२८५० फीट), १२ मील पर पेस्तर खाँ (३४०० फीट), १०॥ मील पर पट्की (४२५० फीट), १२ मील पर पीसीवेन्ट (४६०० फीट) तथा उसके बाद १२ मील पर वशी (५००० फीट) नामक स्थानमें एक अड्डा है। यहांसे और १२ मीलकी दूरी पर मूलानदीके उत्पत्ति-स्थानके पास अगिरा गांव है जिसकी ऊंचाई समुद्रतलसे ५२५० फीट है।

१८३९ ई०में जनरल विलसायरकी सेना खिलात् लेनेके बाद इसी रास्ते हो कर लौटी थी। पीरछट्टसे खोजदारकी ओर ५० मील आने पर कुहौ पामीवात, झा, हताटी, फजान, पीरलक्का, हासना, नार, आदि स्थानोंमें कृषि वारी होती है। चढ़ाईके समय यहां छावनी डालनेसे विशेष कष्ट नहीं होता। यहांका जलवायु स्वास्थ्य-प्रद है। जलावनकी लकड़ियोंका भी अभाव नहीं।

मूलाह्व (सं० क्ली०) मूलं आह्वा आख्या यस्य। १ मूल, जड़। २ मूल देखो।

मूलिक (सं० त्रि०) १ मूल सम्बन्धीय। २ मूल, प्रधान। (पु०) ३ कन्दमूल खा कर रहनेवाला संन्यासी।

मूलिका (सं० स्त्री०) ओषधियोंकी जड़, जड़ी।

मूलिकामूल (सं० क्ली०) क्षीरिका मूल, खिरनीको जड़।

मूलिन् (सं० पु०) मूलमस्यास्तीति मूल-इति। १ वृक्ष, पेड़। स्त्रियां ङीप्। २ ओषधि, दवा।

मूलिनीवर्ग (सं० पु०) मूलिनीनां वर्गः। सुश्रुतोक्त सोलह प्रकारके मूल, जैसे—नागदन्ती, श्वेतवचा, श्यामा, त्रिवृत्, श्वेतापराजिता, मूषकपर्णी, गोडुम्बा, ज्योतिष्मती, विम्बी, शणपुष्पी, विषाणिका, अश्वगन्धा, द्रवन्ती और क्षीरिणी।

मूली (सं० स्त्री०) मूल-गौरादित्वात् ङीष्। १ ज्येष्ठी। २ नदीभेद।

"ताम्रपर्णी तथा मूली शरवा विमला तथा।"
(मत्स्यपु० ११२।३१)

मूली (हिं० स्त्री०) १ एक पौधा जो अपनी लम्बी मुलायम जड़के लिये बोया जाता है। यह जड़ खानेमें मीठी, चरपरी और तीक्ष्ण होती है। मूलक देखो। २ एक प्रकारका बांस। ३ मूलिका, जड़ी बूटी।

मूलीभूत (सं० पु०) मूलयुक्त, आदि।

मूलेर (सं० पु०) मूलतीति मूल (मूलेरादयः। उण् १।६२) इत्येरक्। १ जटा। २ राजा।

मूलोच्छेद (सं० पु०) मूलोत्पाटन, जड़से नाश।

मूलोत्खात (सं० त्रि०) जड़से विनष्ट, जड़से उखाड़ा हुआ।

मूलोत्पाटन (सं० क्ली०) जड़से उखाड़ना।

मूल्य (सं० क्ली०) मूलेन आनाम्यते अभिभूयते मूलेन समं वा इति मूल-(नौवयोधर्मेत्यादिना। पा ४।४।९१)

इति यत्। १ किसी वस्तुके बदलेमें मिलनेवाला धन, कीमत। पर्याय—वस्न, अवक्रय।

"पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते।
शेषेत्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत्॥"

(मनुसंहिता८।३२२)

मूल्यते अर्घ्यते इदं। २ मासिक वेतन, तनखाह। पर्याय—कर्मण्या, विधा, भृत्या, भृति, भर्म्म, वेतन, भरण्य, भरण, निर्वेश, पण।

"मूल्येन यः कर्म करोति स भृतकः।" (मिताक्षरा)

(त्रि०) मूलं रोपणमर्हतीति मूल यत्। ३ प्रतिष्ठाके योग्य, कदरके लायक।

मूल्यकरण (सं० क्ली०) मूल्य निरूपण, दाम ठीक करना।

मूल्यवान् (सं० त्रि०) जिसका दाम अधिक हो, कीमती।

मूल्यविवर्जित (सं० त्रि०) १ मूल्यहीन। २ अमूल्य।

मूशली (सं० स्त्री०) तालमूली।

मूशा खाँ—वङ्गालका एक मुसलमान जमींदार, ईशा खाँ का लड़का और शीलमानका पोता। यह शब्दरत्नावली नामक अभिधान-प्रणेता मथुरेशका प्रतिपालक था। कोलब्रूक साहबके मतसे १६६६ ई०में मथुरेशने यह ग्रन्थ रचा था। संस्कृत ग्रन्थमें मूशा खाँको जगह मूर्च्छा खाँ लिखा है।

मूष् (सं० पु० स्त्री०) मोषति अपहरतीति मूष-इगुपधत्वात् क। १ मूषिक, चूहा। २ सोना आदि गलानेकी घरिया।

मूषक (सं० पु० स्त्री०) मूष-स्वार्थे कन्। १ इन्दुर, चूहा। २ तैजसावर्त्तनी, सोना आदि गलानेकी घरिया।

मूषककर्णी (सं० स्त्री०) १ आखुकर्णी, मूसाकानी नामकी लता। २ द्रवन्ती।

मूषकमारी (सं० स्त्री०) श्रुतश्रेणी नामकी लता।

मूषकयुग्म (सं० क्ली०) ह्रस्व और दीर्घ मूषाकर्णी।

मूषकवाहन (सं० पु०) गणेश।

मूषकशत्रु (सं० पु०) बिड़ाल, बिल्ली।

मूषका (सं० स्त्री०) मूषक-स्त्रियां टाप्, क्षिपकादित्वात् न अत इत्वं। मूषिका, छोटा चूहा।

मूषकाद (सं० पु०) मूषकं अत्ति अद-अप्। मूषिकभक्षक, बिल्ली।

मूषकाराति (सं० पु०) मूषकाणां अरातिः। बिड़ाल, बिल्ली।

मूषकाह्वया (सं० स्त्री०) १ मूषिकमारी, श्रुतश्रेणी नामकी लता। २ आखुकर्णी, मूसाकानी। ३ दन्तीवृक्ष। ४ मूषिकस्त्री, बिल्ली।

मूषा (सं० स्त्री०) मूषति गृह्णातीति मूष क, स्त्रियां टाप्। १ स्वर्णाद्यावरण पात्र, सोना आदि गलानेकी घरिया। संस्कृत पर्याय—तैजसावर्त्तिनी, आवर्त्तिनी, मूषी। २ देवताड़क, देवताड़ वृक्ष। ३ मूषिक स्त्रीजाति, बिल्ली। ४ गोक्षुर वृक्ष, गोखरूका पौधा। ५ गवाक्ष, झरोखा।

मूषाकर्णी (सं० स्त्री०) मूषयोः कर्णा इव पत्राण्यस्याः। आखुकर्णी, मूसाकानी।

मूषातुत्थ (सं० क्ली०) मूषा-जातं तुत्थं। नीलतुत्थ, तूतिया। पर्याय—कांस्यनील, हेमतुत्थ, वितुन्नक।

मूषिक (सं० पु०) मूष्णाति द्रव्याणीति मूष (मूषेर्दीर्घश्च उण् २।४२) इति ककन्, दीर्घश्च। १ चूहा, मूसा। पर्याय—उन्दुरु, आखु, मूष, मूषीक, उन्दुरु, वभ्रु, वृष, आखनिक, वृश, मूषक, पिङ्ग, उन्दुरुक, नखी, खनक, बिलकारी, धान्यारि, बहुप्रज। इसके मांसका गुण—श्वास, वायु और कासनाशक, पित्त और दाहवर्द्धक। (राजनि०) राजवल्लभके मतसे—मधुर, स्निग्ध, व्यवायी और बलवर्द्धक। इन्दुर देखो। पारिभाषिक मूषिक, यथा—

"विभवे सति नैवात्ति न ददाति जुहोति च।
तमाहुराखुं तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुध्यति॥"

(मार्क० पु०)

जो व्यक्ति विभव रहते हुए भी भोजन, दान और यज्ञादिका अनुष्ठान नहीं करते उन्हें मूषिक कहते हैं। ऐसे व्यक्तिका अन्न खानेसे चान्द्रायणव्रत द्वारा पाप दूर होता है। २ महाभारतके अनुसार दक्षिणके एक जनपदका प्राचीन नाम।

"द्रविड़ाः केरलाः प्राच्याः मूषिका वनवासकाः।"

(भार० ६।९।५८)

मूषिकपर्णी (सं० स्त्री०) मूषिक-कर्णवत् पर्णानि यस्याः। जलज तृणविशेष, जलमें होनेवाला एक प्रकारका तृण। पर्याय—चित्रा, उपचित्रा, न्यग्रोधी, द्रवन्ती, सम्बरी, वृषा, प्रत्यक्श्रेणी, सुतश्रेणी, पुत्रश्रेणी, आखुपर्णिका, वृषपर्णी,

मूषिका, फञ्जिपत्रिका, मूषिपर्णिका सञ्जिन्ना, मूषीकर्णी सुकर्णिका। (शब्दरत्ना०)

मूषिकतैल (सं० क्ली०) तैलौषधविशेष। योनिकन्दरोगमें यह तेल बहुत उपकारी है। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ४ सेर और चूहेका मांस १ सेर; इस मांसको टुकड़े टुकड़े करके तेलमें पकाना होता है। जब मांस बिलकुल गल जाय, तब जानना चाहिये, कि पाक सिद्ध हो गया। (सारकौ०)

मूषिकरथ (सं० पु०) मूषिकरथो यस्य। गणेश। गणेशका वाहन मूसा है।

मूषिकरुहा (सं० स्त्री०) मूषिकलोम, मूसेका रोआं।

मूषिकसाधन (सं० क्ली०) मूषिकस्य साधनम्। साधना विशेष। यह साधना यदि सिद्ध हो जाय तो मनुष्य चूहेकी बोली समझ कर उससे शुभ अशुभ फल कह सकता है। इसकी साधनप्रणालीका विषय कृकलाशदीपिकामें इस प्रकार लिखा है,—

जिस दिन यह साधना करनी होगी, उसके पूर्व दिन उपवास करे। सिद्धिके दिन सवेरे शुद्धचित्त और पवित्र हो नदीके किनारे जा भक्तिपूर्वक 'ओं मूष्यै नमः' यथाशक्ति इस मन्त्रका जप करे। भगवतीकी कृपासे यदि मन्त्र सिद्ध हो जाय, तो चूहेकी बोली सहजमें समझ सकेंगे।

दूसरा तरीका—निम्नोक्त प्रकारसे भी चूहेकी बोली समझमें आ सकती है। जैसे,—"श्रीं श्रीं मुष्यै स्वाहा' इस मन्त्रको अत्यन्त पवित्र भावसे यदि रात्रिके शेष भागमें हजार बार जप करे, तो चूहेको बोली समझमें आ सकती है। फिर ऐं श्रीं ह्रीं ओं ह्रीं ओं मूषिक विचर्चिके स्वाहा' इस मन्त्रसे अपनी स्त्री अथवा परस्त्रीके साथ शय्या पर बैठ कर यथाशक्ति जप करनेसे मूषिकशब्द जाना जाता है। शब्दके मालूम हो जानेसे देशकी दुर्भिक्षादि शुभाशुभ घटना जानी जा सकती है।*

* "अथ वक्ष्ये महेशानि! मूषिकाशब्दसाधनम्।
उपोष्य पूर्वेऽहनि शुद्धमानसः प्रातः शुचिः सुन्दरवेशधारी॥
गत्वा नदीतीरमुर्षी सतारां ङेन्तां नमोऽन्तां प्रजपेच्च यत्नात्।
सिद्धावधिः श्रीगिरिराजकन्या प्रसादतो मूषिकशब्दविद् भवेत्॥
अन्यच्च—किंवा रमायुगमम मूषिङेन्तां द्विठावधिप्रोक्तमवीतिमन्यत्।
जपेत् सहस्रञ्च शतं निशान्ते ततो महेशानि भवेत्तदेव॥
अन्यच्च—वाग्गीं रमाञ्चप्रददासि विद्यां लज्जाञ्च तारञ्च पुनश्च लज्जाम्।
तारं पुनर्मूषिकशब्दपूर्वं विचर्चिके वह्निवधूसमेतम्॥
शय्यामुपेत्याशु जपेच्च विद्यां स्वकान्तया वा परकान्तया वा।
ततो महेशानि सराजगोष्ठी ब्रवेरहो मूषिकशब्दवृन्दम्॥
दुर्भिक्षं वा सुभिक्षं वा बन्धश्चापि शुभाशुभम्।
देशानाञ्च महेशानि शीघ्रं ब्रूते शुभाशुभम्॥"
(कृकलाशदीपिका)

मूषिकस्थल (सं० क्ली०) स्थानभेद। (मार्कण्डेयपु० ३४।६५)

मूषिका (सं० स्त्री०) १ मूषिकपर्णी, मूसाकानी। २ उन्दुरु, चूहा।

मूषिकाङ्क (सं० पु०) मूषिकः उन्दुरुर्वाहनत्वेन अङ्कः चिह्नमस्य। गणेश।

मूषिकाञ्चन (सं० पु०) मूषि-कं अञ्चति स्वाहाहन तया प्राप्नोतीति अञ्च-ल्यु। गणेश।

मूषिकाद (सं० पु०) मूषिकभक्षक, बिल्ली।

मूषिकाद्यतैल (सं० क्ली०) तैलौषधविशेष। गुदभ्रंश रोगमें इस तेलका व्यवहार करनेसे बहुत उपकार होता है। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—मूषिकमांसका काढ़ा ८ पल, दशमूल प्रत्येक १ पल, चितामूल २ पल, जीवनीयगणका कल्कतैल चवन्नी भर, धीमी आंचमें इस तेलका पाक करना होगा।

"मूषिकमांस कुडवं दशमूलं पलोन्मितम्।
चित्रकं द्विपलञ्चात्र क्वाथश्चाष्ट गुणेऽम्भसि॥
पादावशेषं कर्त्तव्यं तैलं पाच्यं पयःसमम्।
जीवनीयन्तु तत्पादैः पचेत् मृद्वग्निना भिषक्॥
अभ्यङ्गान्नाशयत्याशु गुदभ्रंशं सुदारुणम्।"

दूसरा तरीका—बृहत् पञ्चमूल और आंत निकाले हुए चूहेको दूधमें पाक करे। पीछे उस दूधको तथा वातघ्न औषधके साथ सिद्ध तैलको एकत्र मिलानेसे यह तैल प्रस्तुत होता है। इसे गुह्यदेशमें मालिश करने तथा पीनेसे गुदभ्रंश रोग शान्त होता है। (भैषज्यर० क्षुद्ररोगाधि०)

मूषिकान्तकृत् (सं० पु०) मूषिकाणां अन्तकृत्। बिड़ाल, बिल्ली।

मूषिकार (सं० पु०) पुंमूषिक, नर चूहा।

मूषिकाराति (सं० पु०) मूषिकाणामरातिः। बिड़ाल, बिलाव।

मूषिकाह्वय (सं० पु०) मूषिकस्य आह्वा आख्या यस्य। मूषिककर्णी, मूसाकानी।

मूषिकिका (सं० स्त्री०) मूषिका, चुहिया।

मूषिकोत्कर (सं० पु०) मूसोंका टीला (mole-hill)

मूषिपर्णिका (सं० स्त्री०) मूषिपर्ण-कन् टाप्, अत इत्वं। मूषिकपर्णी, मूसाकानी।

मूषा (सं० स्त्री०) मूष-क, स्त्रियां ङीप्। १ मूषा, सोना गलानेकी घरिया। २ महा मूषिक, बड़ा चूहा।

मूषीक (सं० पु० स्त्री०) मोषति इति मूष बाहुलकात् ईकन्। मूषिक, मूसा।

मूषीककर्णी (सं० स्त्री०) मूषिकस्य कर्णवत् पर्णमस्याः। मूषिकपर्णी, मूसाकानी।

मूषीकरण (सं० क्ली) घरियामें धातु गलानेकी क्रिया।

मूषीका (सं० स्त्री०) मूषीक-टाप्। इन्दुर, मूसा।

मूष्यायण (सं० त्रि०) मोषति अपहरतीति मूष क, चौर जारः, तस्यापत्यं इति—मूष-फक् बाहुलकात् वृद्ध्यभावः। गुप्त व्यभिचारसे उत्पन्न पुरुष, दोगला।

मूस (हिं० पु०) चूहा।

मूसदानी (हिं० स्त्री०) चूहा फंसानेका पिंजड़ा।

मूसना (हिं० क्रि०) चुरा कर उठा ले जाना।

मूसर हिं० पु०) १ मूसल देखो। २ असभ्य, अपढ़।

मूसरचंद (हिं० पु०) १ अपढ़, गंवार। २ हट्टा कट्टा पर निकम्मा, मुसंडा।

मूसल (हिं० पु०) १ धान कूटनेका एक औजार। यह लंबा मोटा डंडा-सा होता है। इसके बीचमें पकड़नेके लिये खड्डा-सा होता है और छोर पर लोहेकी साम जड़ी रहती है। २ एक अस्त्र जिसे बलराम धारण करते थे। ३ राम वा कृष्णके पदका एक चिह्न।

मूसलधार (हिं० क्रि० वि०) इतनी मोटी धारसे जितना मोटा मूसल होता है।

मूसला (हिं० पु०) वह जड़ जो मोटी और सीधी कुछ दूर तक जमीनमें चली गई हो, जिसमें इधर उधर सूत या शाखाएं न फूटी हों।

मूसली (हिं० पु०) हल्दीकी जातिका एक पौधा। इसकी जड़ औषधके काममें आती है और पुष्ट्ई मानी जाती है। यह पौधा सीड़की जमीनमें उगता और नदियोंके कछारों में भी पाया जाता है। बिलासजिलेके अमरकण्टक पहाड़ पर नर्मदाके किनारे यह बहुतायतसे मिलता है।

मूसा (हिं० पु०) चूहा।

मूसा—यहूदी लोगोंके पैगम्बर। इनको खुदाका नूर दिखाई पड़ा था। किताबी या पैगंबरी मतोंका आदि पवर्त्तक इन्हींको समझना चाहिये।

मिस्रभाषामें इनका नाम वरुणपुत्र है। इन्होंने जिन पांच किताबोंकी रचना की थी, वे मुसलमानोंके निकट तौराहत नामसे मशहूर हैं। मिस्रके दार्शनिक तत्त्वके केन्द्रस्थान हेलियोपोलिस (कोशिक=रामसेस=सूर्यनगर) नगरमें इन्होंने लिखना पढ़ना सीखा था। शिक्षालाभके बाद वे मरुदेश भाग गये। पीछे इन्होंने इसराइलोंको इजिप्तके बाहर निरापद स्थानमें ले जा कर रखा था। इसके स्मरणार्थ आज भी अरबमें मूसाकुण्ड तथा आमुन मूसा नामक प्रस्रवण तीर्थक्षेत्ररूपमें समझा जाता है।

मूसा—मध्यभारतकी एक छोटी नदीका नाम। यह मध्यभारतमें निजामराज्य हो कर बहती है और हैदराबाद नगरके पाससे होती हुई कृष्णा नदीमें जा मिलती है।

मूसा इब्न-नासिर—एक अरबी योद्धा और मुरि प्रदेशका शासनकर्त्ता। इसने ७०७ ई०में अपनी सेना ले उत्तर-अफ्रिकाको लूटा और वहां मुसलीम-शासनका विस्तार किया। पश्चात् भूमध्यसागर पार कर ७१० ई०में यह स्पेन राज्यमें जा पहुंचा। वहां भी नगरों आदिको लूट कर अनेक उपद्रव मचा कर धन इकट्ठा किया।

इसके बाद उसने ७११ ई०में अपने विजयी सेनापति तारिखको अपनी सेना ले स्पेनको जय करने भेजा। वहांका गथिकराज रडिक युद्धमें हार तथा मारा गया पीछे तारिखने टोलेडो आदि कई नगरों पर अधिकार कर लिया। ७१२ ई०में वह अलजिसिरस नगरमें उतरा

तथा सेभिलरैज और सेरिमा नगरको अधिकारमें ला टोलेडोको ओर बढ़ा। यहां भी नासिरने अपने उद्धत सेनापति तारिखको दण्ड दे उसे पदच्युत कर दिया। इस अत्याचार कथाको सुन कर खलीफा वालिदने दोनोंको सिरिया लौटनेकी आज्ञा दी। तारिखने खलीफाकी आज्ञा मान ली और फलतः टोलेडोके सिंहासन पर फिर विराजमान हुआ था। लेकिन अभिमानी मूसाने उस समय खलीफाकी आज्ञा न मानी और विजयप्राप्तिमें मन लगाया। ७१५ ई०में वह स्पेनके ४ सौ प्रतिष्ठित लोगों, १० हजार अन्यान्य वन्दियों और कई सौ ऊंटों तथा धनसम्पत्तिके साथ अपना देश लौट आया।

मुस्लिम गौरवकी इस प्रकार रक्षा करने और अतुलसम्पत्ति अधिकार करने पर भी खलीफा वालिद सन्तुष्ट न हुए वरन् उन्होंने उसका तिरस्कार ही किया। उनके वंशधर सुलेमानने मूसाको जेल दे उससे २ लाख मुहरें संग्रह कीं। इस प्रकार बहुत धन एकत्रित करने पर भी सुलेमानकी ईर्षाग्नि न बुझी। अन्तमें वे धीरे धीरे मूसाका सर्वनाश करनेमें लग गये। यहां तक कि मूसाके एक लड़केका शिर काट कर उस शिरको वे अपने हाथमें लिये मूसाके कारावासमें उपस्थित हुए। इस प्रकार सर्वस्वान्त और वन्दी हो वीर श्रेष्ठ मूसाने ७११ ई०में शरीरत्याग किया।

मूसाकानी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी लता। यह प्रायः सारे भारतवर्षकी गीली भूमिमें चौमासेमें पाई जाती है। इसके पत्ते आकारमें गोल और प्रायः आधसे डेढ़ इञ्च तकके होते हैं। ये पत्ते देखनेमें चूहेके कानके समान, बीचमें कमानदार और रोएंदार होते हैं। इसकी शाखाएं बहुत घनी होती हैं और इसकी गांठोंमेंसे जड़ निकल कर जमीनमें जम जाती है। इसमें बैंगनी या गुलाबी रंगके छोटे छोटे फूल और चनेके समान गोल फल लगते हैं। ये फल पहले हरे अथवा बैंगनी रंगके और पकने पर भूरे रंगके हो जाते हैं। चीरने पर वे दो दलोंमें विभक्त हो जाते हैं। प्रत्येक दलमेंसे एक बीज निकलता है। इसके प्रायः सभी अंग दवामें काम आते हैं। खास कर चूहेके विषको दूर करनेके लिये इसे लगाया और इसका काढ़ा पीया जाता है। इसके दो भेद हैं, वड़ी मूसाकानी और छोटी मूसाकानी। अलावा इसके और भी कितने भेद हैं। उनमेंसे एक भेदके पत्ते गोभीके पत्तोंकी तरह लंबे और किनारे पर कटावदार होते हैं। दूसरा भेद क्षुपजातिका होता है जो एकसे चार फुट तक ऊंचा होता है। इसका डंठल पीला होता है जिसमेंसे बहुतसी शाखाएं निकलती हैं। इन सबका व्यवहार पथरीके समान होता है। इसका दूसरा नाम चूहाकानी भी है। मूषाकर्णी देखो।

मूसाखां—मालवका एक मुसलमान शासनकर्त्ता। माण्डुके सिंहासन पर बैठ कर यह अपना दलबल ले गुजरातके सुलतान मुजफ्फरके विरुद्ध खड़ा हुआ था। युवराज अहमदने इसे राज्यच्युत करके पिताके आदेशसे आलम खांको सिंहासन पर बिठाया था।

मूसा खेल—पंजावको पश्चिमी सीमा पर एक पहाड़ी स्थान। यह कालाबागके दक्षिण पूरब साल्टरेंजके पश्चिमांशमें अक्षा० ३२° ४१´ उ० और देशा० ७१° ३६´ पू०के बीच अवस्थित है। यहां दुर्द्धर्ष पहाड़ी अफगान रहते हैं।

मूसाफाहा—(अरबी) अरबी मुसलमानोंका अभिनन्दन वा अभिवादनप्रथा विशेष। हिन्दुओंके नमस्कार या यूरोपियनोंके 'सेकहैण्ड' के जैसा अरबी लोगोंका तसमिना या मुसाफहा होता है। आपसमें भेंट होने पर वे दाहिनी तलहथी मिला कर फिर उसे हृदय या टोपी आदिसे लगा लेते हैं।

मृकण्डक (सं० पु०) मृगस्य कण्डूरिव समासे पृषोदरादित्वात् गलोपे मृकण्डुः मृकण्ड इति केचित्तत पठन्ति इत्युज्ज्वलदत्तः, ततः संज्ञायां कन्। मृकण्ड मुनि।

मृकण्डु (सं० पु०) मृगस्य कण्डुरिव समासे पृषोदरादित्वात् गलोपः। एक मुनि, मार्कण्डेय ऋषिके पिता।

"मार्कण्डेयोऽपि मार्कण्डो मृकण्डुश्च मृकण्डकः।"

मृक्तवाहस (सं० क्ली०) देवताओंके शुद्धहविःप्रापक, हवनकी वस्तु पानेवाला।

मृक्ष (सं० पु०) १ दर्व्वीविशेष, चमचा। (त्रि०) २ शोधक, परिचरणीय।

मृक्षिणी (सं० स्त्री०) मृष्टवती, परिमृष्टा।

मृग (सं० पु०) मृगयते अन्वेषयति तृणादिकं मृग्यते वा इति मृगइगुपधत्वात् कर्त्तरि च क। १ पशुमात्र, विशेषतः वन्य पशु, जंगली जानवर।

"आरण्यानाञ्च सर्वेषां मृगानां माहिषं विना।"

(मनु ५।६

'मृग शब्दोऽत्र महिषपर्य्युदासात् पशुमात्रपरः' (कुल्लुक)

२ हस्तिविशेष, हाथियोंकी एक जाति जिसकी आंखें कुछ बड़ी होती हैं और गण्डस्थल पर सफेद चिह्न होता है। ३ नक्षत्रभेद, मृगशिरा नक्षत्र। ४ अन्वेषण, खोज।

"जनस्थाने भ्रान्तं कनकमृगतृष्णान्धितधिया
वचो वैदेहीति प्रतिपदमुदश्रुप्रलपितम्।
कृतालङ्काभर्त्तुर्वदनपरिपाटीषु घटना
मयाप्तं रामत्वं कुशलवसुता न त्वधिगता॥"

(साहित्यद० ४।१७)

५ याच्ञा, प्रार्थना। ६ मार्गशीर्षमास, अगहनका महीना। मृग शब्दसे मृगशिरा नक्षत्र होता है। इसी नक्षत्रमें इस मासकी पूर्णिमा होती है इसीसे अगहनके महीनेको मृग कहते हैं। ७ यज्ञविशेष। ८ मृगनाभि, कस्तूरीका नाफा। ६ मकर राशि।

मृगकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदगृदक्षिणायने।
विषुवती तुला मेषे गोलमध्ये तथा पराः॥" (तिथितत्त्व)

१० स्वनामख्यात पशुविशेष, हिरन। पर्याय—कुरङ्ग, वातायु, हरिण, अजिनयोनि, शारङ्ग, चारुलोचन, जिन योनि, कुरङ्गम, ऋष्य, ऋश्य, रिष्य, रिश्य, लण, एणक।

"मसूरू रोहितो न्यङ्कुःसम्बरो वभ्रुणो रुरुः।
शशैणहरिणाश्चेति मृगा नवविधा मताः॥"

(कालिकापु० ६७ अ०)

मृग नौ प्रकारके कहे गए हैं—मसूरू, रोहित, न्यंकु, सम्बर, वभ्रुण, रुरु, शश, एण और हरिण। ये सब मृग देवीपूजामें चढ़ाये जाते और पूजादिकार्यमें इनका चर्मासन बड़ा प्रशस्त है। भावप्रकाशके मतसे इनका मांस पित्तश्लेष्महर, किंचित् वातवर्द्धक, लघु और बलवर्द्धक माना गया है।

मृगकी नाभिसे नाफा या कस्तूरी निकलती है। किस हिरनकी नाभिसे नाफा निकलता है इसके लक्षण आदिका विषय युक्तिकल्पतरुमें विस्तृतरूपसे लिखा है।

मृगनाभि और हरिण शब्दमें विशेष विवरण देखो।

११ पुरुषोंके चार भेदोंमेंसे एक। इसका लक्षण—

"वदति मधुरवाणीं दीर्घनेत्रोऽतिभीरुः
श्चपलमतिसुदेहः शीघ्रवेगो मृगोऽयम्।
शशके पद्मिनी तुष्टा मृगे तुष्टा च चित्रिणी।
वृषभे शङ्खिनी तुष्टा हये तुष्टा च हस्तिनी।
पद्मिनीशशयोर्योनिमेढ्रकौ चतुरंगुलौ।
चित्रिणीमृगयोर्योनिमेढ्रकौ च तथाविधौ॥" (रतिमञ्जरी)

अत्यन्त मधुरभाषी, बड़ी आंखोंवाले, भीरु, चपल, सुन्दर और तेज चलनेवाले पुरुषको मृग कहते हैं। यह मृग जातीय पुरुषकी चित्रिणी स्त्रीके लिये उपयुक्त कहा गया है।

१२ अन्वेष्टा, तलाश करनेवाला। १३ वैष्णवोंके तिलकका एक भेद। १४ ज्योतिषमें शुक्रकी नौ वीथियोंमेंसे आठवीं वीथी। यह अनुराधा, ज्येष्ठा और मूलामें पड़ता है।

मृगकानन (सं० क्ली०) मृगयाका उपयुक्त वन, वह उपवन जो शिकार खेलनेके लिये रख छोड़ा गया हो।

मृगकायन (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

मृगक्षीर (सं० क्ली०) मृग्याः क्षीरं मृग्याः पदं इत्यादिवत् विभावः। मृगीदुग्ध, हिरनीका दूध।

मृगगामिनी (सं० स्त्री०) मृग इव गच्छतीति गम-णिनि ङीप्। १ विडङ्ग, वायविड़ंग। (त्रि०) २ मृगके जैसा चलनेवाला।

मृगघर्मज (सं० क्ली०) मृगघर्मात् मृगनाभिघर्मात् मृगघर्मवत् जायते जन-ड। १ जवादि नामक गन्धद्रव्य। २ मृगनाभि, कस्तूरीका नाफरा। (त्रि०) ३ मृगघर्मजात; मृगनाभिसे निकला हुआ।

मृगचर्म (सं० पु०) हिरनका चमड़ा। यह पवित्र माना जाता है। इसका व्यवहार उपनयन संस्कारमें होता है और इसे साधु संन्यासी बिछाते हैं।

मृगचर्या (सं० स्त्री०) मृग जैसा आचरण।

मृगचारिन् (सं० त्रि०) मृगके समान आचारवान् साधु।

मृगचेटक (सं० पु०) मृगान् पशून चेटयति प्रेरयति स

शब्देन रात्रिशेषं ज्ञापयतीति चिर्-णिच् ण्वुल। खट्टास, गन्धबिलाव।

मृगछाला (हिं० स्त्री०) मृगचर्म।

मृगजरस (सं० पु०) एक रसौषध जिसका व्यवहार रक्तपित्तमें होता है। शोधा हुआ पारा और मृत्तिका लवण अडूसके रसमें एक दिन मले। बादमें इसका एक मास तक उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे रक्तपित्त रोग जाता रहता है।

मृगजल (सं० पु०) मृगतृष्णाकी लहरें।

मृगजहु (सं० पु०) हरिण शिशु, हिरनका बच्चा।

मृगजा (सं० स्त्री०) कस्तूरी, मृगनाभि।

मृगजालिका (सं० स्त्री०) मृगाणां जालिका। मृगको बांधने का जाल।

मृगजीवन (सं० पु०) मृगैः पशुभिः जीवतीति जीव-ल्यु। व्याध, मृग द्वारा जीविकानिर्वाह करनेवाला।

मृगजृम्भ (सं० पु०) १ घोड़ेका एक रोग। इसका लक्षण—

"मृगरोगी यदा वाजी जृम्भवान् जायते मुहुः।
मृगजृम्भं तदा तस्य व्याधिं समुपलक्षयेत्॥"
(जयदत्त ५५ अ०)

घोड़के वारंवार जंभाई करनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। २ खोये वा चोरी गये हुए धनकी खोज।

मृगणा (सं० स्त्री०) मृग-युच् टाप्। अपहृत वस्तुओंकी खोज।

मृगपशु (सं० त्रि०) पशुसङ्घ, पशुओंका समूह।

मृगतीर्थ (सं० क्ली०) शारीरक्रिया सम्पादनार्थ वह पथ जिस हो कर पुरोहित सवन यागके बाद चलते हैं। (आश्व० श्रौ० ५।११।२) २ तीर्थभेद।

मृगतृष् (सं० स्त्री०) मृगाणां तृट्, पिपासा अत्र जलभासकत्वात्। मृगतृष्णा।

मृगतृषा (सं० स्त्री०) मृगतृष्णा।

"जगन्मृगतृषातुल्यं वीक्ष्येदं क्षणभंगुरम्।
सज्जनैः सङ्गतः कुर्यात् धर्माय च सुखाय च॥"
(कामन्दकी ३।१३)

मृगतृष्णा (सं० स्त्री०) जलाभासत्वात् मृगाणां तृष्णा विद्यतेऽस्यां। जल वा जलकी लहरोंको वह मिथ्या प्रतीति जो कभी कभी मरुभूमिमें कड़ी धूप पड़नेके समय होती है। ग्रीष्मकालमें जब वायुकी तहोंका घनत्व उष्णताके कारण असमान होता है, तब पृथ्वीके निकटकी वायु अधिक गरम हो कर ऊपरको उठना चाहती है; परन्तु ऊपरवाली तहें उसे उठने नहीं देतीं, इस कारण उस वायुकी लहरें पृथ्वीके समानान्तर बहने लगती हैं। यही लहरें दूरसे देखनेमें जलकी धारा-सी दिखाई देती है। मृग इससे प्रायः धोखा खाते हैं, इसी कारण इसको मृगतृष्णा, मृगजल आदि कहते है। संस्कृत पर्याय—मरीचिका, मृगतृष्णिका, मृगतृष्, मृगतृषा।
(शब्दरत्ना०)

मृगतृष्णि (सं० स्त्री०) मृगतृष्णा।

मृगतृष्णिका (सं० स्त्री०) मृगतृष्णा-स्वार्थे कन्, स्त्रियां टाप्, अत इत्वञ्च। मृगतृष्णा।

"स्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य।
जातः सखे! प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम्॥"
(शकुन्तला ६ अ०)

मृगतोय (सं० क्ली०) मरु-मरीचिका।

मृगत्व (सं० क्ली०) मृगस्य भावः त्व। मृगका भाव या धर्म।

मृगदंश (सं० पु०) कुक्कुर, कुत्ता।

मृगदंशक (सं० पु०) मृगान् पशून् दशति दन्श-ण्वुल्। कुक्कुर, कुत्ता।

मृगदाव (सं० पु०) १ मृगकानन, वह वन जिसमें बहुत मृग हों। २ काशीके पास सारनाथ। सारनाथ देखो।

मृगदृश् (सं० त्रि०) मृगस्य दृगिव दृक् यस्य। मृगलोचन, मृगाके समान आँखवाला।

मृगद्युत् (सं० त्रि०) मृगेण द्युत् क्रीड़ा यस्य। मृगयाकारी, आखेट करनेवाला।

मृगद्यु (सं० त्रि०) मृगयाकारी, शिकारी।

मृगधर (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ राजा प्रसेनजित्के एक प्रधान मन्त्रीका नाम।

मृगधूम (सं० पु०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

मृगधूर्त्त (सं० पु०) मृगेषु पशुषु धूर्त्तः वञ्चकत्वात्। शृगाल, गीदड़।

मृगधूर्त्तक (सं० पु०) मृगधूर्त्त देखो।

मृगनाथ (सं० पु०) सिंह। 'मृग' शब्दके आगे पति,

नाथ, राज आदि शब्द लगनेसे सिंहवाचक शब्द बनता है।

मृगनाभि (सं० पु०) मृगस्य नाभिः तदभ्यन्तरे जातत्वात् तथात्वं। कस्तूरी। पर्याय—मृगमद, सहस्रभित्, कस्तूरिका, वोधमुख्या। कस्तूरी तीन प्रकारकी होती है—कामरूपोद्भवा, नेपाली और कश्मीरी। इनमें कामरूपोद्भवा श्रेष्ठ, नेपाली मध्यम और कश्मीरी निकृष्ट होती है। कामरूपकी कस्तूरी कृष्णवर्ण, नेपाली नीलवर्ण और कश्मीरी कपिलवर्णकी होती है। इसके गुण—कटु, तिक्त, क्षार, उष्ण, शुक्रवर्द्धक, गुरु, कफ, वात विष, छर्दि, शीत, दौर्गन्ध और दोषनाशक।* कस्तूरी शब्द देखो।

कस्तूरीका नामक मृगजाति (Moschus mocheferous) के नाभिमूलमें यह उत्पन्न होती है इसीलिये इसको भारतमें मृगनाभि कहते हैं। इस जातिके मृग साधारणतः हिमालयके पहाड़ी प्रदेश, मध्य और एशिया तथा साइबिरिया राज्यके जंगलोंमें छिप कर चलते फिरते है। ये बड़े डरपोक होते हैं। जंगलमें शिकारीके प्रवेश करने पर ये बड़े वेगसे घने जंगलमें जा छिपते हैं। कभी कभी पहाड़ों पर ६० फोटकी छलांग मारते देखे गये हैं। दिनमें ये शायद ही बाहर निकलते हैं। रातमें चर कर ये पेट भरते हैं। कदमें ये ग्रेहाउण्ड कुत्तेसे बड़े नहीं होते।

उक्त मृगजातिके नामानुसार कभी कभी इसको कस्तूरी भी कहते हैं। उत्तर भारतमें इसे कस्तूरी, मशक, बंगालमें कस्तूरी, मृगनाभि ; मराठी, तामिल, तेलगु, मलयालम् आदि दाक्षिणात्यकी भाषाओंमें कस्तूरी, अरबीमें मिस्क्, मिश्क्, मुस्क्, फारसीमें मास्क्, पंजाबमें मस्क नाफा, बर्म्मामें कोदो, अंगरेजीमें *Musk*, फ्रेंचमें Musc Graine D'Ambertte, जर्मनमें Moschus, Bizam ; इटालियनमें Muschio और स्पेनमें Almizele कहते हैं।

प्राणितत्त्ववेत्ताओंने मृगनाभिका अवस्थान और उत्पत्ति निर्णय कर जो विचार प्रकाशित किया है वे नीचे लिखे जाते हैं।

इस जातिके मृगोंकी नाभिमें पिण्ड जैसे कोपके मध्य कड़ी गंधवाला मृगनाभि नामक पदार्थविशेष एकत्रित होता है। मेढ्रत्वक् अर्थात् पुरुषलिङ्गके अगले चमड़ेके पास उत्पन्न होनेके कारण इसको *Proeputial bag* या लिङ्गाग्र स्थली कहते हैं। यह १॥ इंच व्यासका एक पिण्डकोष होता है। इसका चमड़ा रोओंसे ढका रहता है। इसमें एक गोल छिद्र रहता है जिसे दबानेसे भीतरसे एक रसवत् पदार्थ निकलता है। यह कोप प्रायः गोल होता है

नाभि मूलमें उक्त गन्धद्रव्य सञ्चित होनेके पहले दो वर्ष तक दूध जैसा तरल रहता है। तब क्रमशः दाने बनने लगते हैं। ताजा रहने पर वह अदरककी रोटी जैसा (Ginger-bread) कोमल होता है लेकिन धीरे धीरे सूख जाता है। जिस समय नाभिमें कस्तूरी उत्पन्न होती है उस समय पुरुषमृगके मल मूत्रमें भी मृगनाभिकी गन्ध पायी जाती है और उस समय इनके मूत्र, गुह्यसे निकले हुए रस और पूंछके अगले भागसे एक प्रकारकी खराब अस्वास्थ्यकर गन्ध निकलती है। हरिणियोंके शरीरसे कोई गन्ध नहीं निकलती।

सुगन्ध और गुण मालूम होने पर लोगोंको कस्तूरीकी आवश्यकता सूझ पड़ी है। शिकारी लोग दल बांध बांध इन हरिणोंको ढूढ़ने निकलते हैं। एक एक असली मृगनाभिका दाम १०।१५ रु० होता है।

कस्तूरीके व्यवसायमें लाभ देख बहुतसे लोग कृत्रिम उपायसे कस्तूरी तैयार करने लगे हैं। वे तुरतके मरे मृगशावकके पेटके चमड़ेसे कृत्रिम नाभिकोष प्रस्तुत कर उसमें रक्त, यकृत् आदि भर देते हैं। बादमें भीतर और बाहर असली कस्तूरी मर्दन कर उसे सुगन्धित कर देते हैं। असली मृगनाभिसे इसमें एक अन्तर यह है कि इसमें नाभिमूल (Navel) नहीं पाया जाता। कभी कभी नाभिकोषसे असली कस्तूरी निकाल कर उसमें मृगनाभिके जैसा कोई दूसरा पदार्थ कस्तूरीके

---

* "कामरूपोद्भवा कृष्णा नेपाली नीलवर्णयुक्।
काश्मीरी कपिलच्छाया कस्तूरी त्रिविधा स्मृता ॥
कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नेपाली मध्यमा भवेत्।
काश्मीरदेशसम्भूता कस्तूरी ह्यधमा स्मृता ॥
कस्तूरिका कटुस्तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः।
कफवातविषच्छर्दि शीतदौर्गन्धदोषहृत् ॥"
(भावप्रकाश)

साथ भर दिया जाता है। प्राचीन पुर्त्तगीज व्यापारियोंके वृत्तान्तसे मालूम होता है, कि चीनवाले बहुत पहले हीसे कृत्रिम मृगनाभि प्रस्तुत कर व्यवसाय करते थे, वे मृग-चर्मके कृत्रिम गोलाकार कोष प्रस्तुत कर उसमें बैल या गायके यकृत्‌को चूर कर कस्तूरीके साथ मिला कर बेंचते थे।

साइबिरियाके मृगनाभि (The cabardien or Russian Musk)-की गन्ध उतनी अच्छी नहीं होती। आसामकी कस्तूरीकी कड़ी गन्ध होती है और इसका मूल्य भी अधिक होता है। टोन्‌किन् (The Tonquin or Chinese Musk) कस्तूरी सबसे अच्छी गन्धकी और मूल्यवान् होती है। इसका एक एक कोष २६ से ३२ शिलिंगमें बिकता है। इङ्गलैण्ड हीमें इसका विशेष मान है। इससे टिंचर मस्क आदि एलोपैथिक औषधि प्रस्तुत होती है। भावप्रकाशकी कथित कामरूपी, नेपाली और कश्मीरी कस्तूरीमेंसे काम-रूपी ही का अधिक गुण बतलाया गया है। अनुमान किया जाता है कि यह चीन या तिब्बतके हरिणोंकी नाभि होती थी और सम्भवतः उन देशोंसे प्रसिद्ध कामरूप राज्यमें आसाम हो कर वाणिज्यके लिये आती थी।

शिकारी लोग जो कस्तूरी बेचनेके लिये बाजार लाते हैं वह प्रायः रोओंसे ढकी रहती है। शिकारके बाद वे पेटके चमड़ेके साथ नाभि काट लेते हैं। पीछे आगसे तपाये पत्थरके टुकड़े पर उसके मांसको सुखा लेते हैं। इस विधिसे ऊपरके रोएं नष्ट नहीं होते। नाभिकोष काट कर उसे धूपमें सुखाना सबसे अच्छा है। आज कल एशिया और भारतसे यूरोप और अमेरिकामें तमाम कस्तूरीका व्यवसाय चलता है।

उपदंश, प्रमेह आदि शृङ्गारजनित रोगोंमें दो या तीन दिन एक ग्राम सरसोंके बराबर कस्तूरी सेवन करनेसे उपकार दीख पड़ता है। क्षतभागमें प्रलेप देनेसे मांस बढ़ता है। घीके साथ मिला कर घरमें रखनेसे गंदी हवा दूर हो जाती है। शौकीन लोग इसे तम्बाकूके साथ पीते हैं। मृत्युकालमें नाड़ी क्षीण होने पर टिंचर मस्क या थोड़ी-सी कस्तूरी मधुके साथ पीस कर सेवन करानेसे नाड़ीकी गति पलट आती है। सूतिका घरमें प्रसूतिकी नाड़ी शुष्क करनेके लिये पानके साथ कस्तूरी खानेको दी जाती है। यह शरीरकी दुर्बलता दूर कर उत्तेजना शक्ति (Stimulative action) बढ़ाती है। पीठकी पीड़ामें कस्तूरीका मर्दन विशेष उपकार करता है। इसकी गन्ध कड़ी होने पर भी इससे एक प्रकारकी सुगन्धि तैयार होती है।

इंगलैण्डमें मस्कसे जो जो औषध प्रस्तुत होती है वे आक्षेपनिवारक, कामोद्दीपक और उष्णवीर्य्यकर हैं। मोहकज्वर (Typhus) आन्त्रिक ज्वर (Typhoid) और क्षयकर ज्वरोंमें (Asthenic type), आक्षेपके साथ हांफना, कण्ठनालीके द्वारा आक्षेप (Laryngismus stridulus), खांसी (Whoofing congh), अपस्मार (Epilepsy) और ताण्डव (Chorca) आदि रोगोंमें इससे विशेष उपकार होता है।

भारतसे प्रतिवर्ष बुसाहर, चाङ्ग थान, यारकन्द आदि स्थानोंमें कस्तूरीकी रफ्तनी होती है। दस्त इ-खस्तान या ग्रेट तातार मरुदेशकी कस्तूरीका मूल्य प्रति औन्स ४२। रु० है। भारतीय कस्तूरीका मूल्य प्रति औन्स २०) रु०से अधिक नहीं होता।

व्यापारमें नकली कस्तूरीका प्रचार हो रहा है। गन्धके लिये असली कस्तूरीके स्थानमें वैसी ही गन्ध-वाले दूसरे पदार्थसे भी कस्तूरीकी गन्ध प्रस्तुत की जाती है।

दूसरे जीव और उद्भिजमें भी कस्तूरीकी-सी गन्ध मिलती है। इन सबोंमें भारतके छछूंदर (musk-rats) उल्लेखनीय है। डरने पर इसके शरीरसे कस्तूरी जैसी कड़ी गन्ध निकलती है। इसके मलमूत्रसे भी इसी प्रकारकी दुर्गन्ध निकलती है। प्रसिद्ध सौगन्ध-कार मि० पिसे अपने बनाये Art of Perfumery नामक ग्रन्थमें लिखते हैं कि यद्यपि आजकलका शौकीन सभ्य समाज कस्तूरीकी कड़ी गन्धको पसन्द नहीं करते तौ भी इतना जरूर है कि यूरोपवासी जनसाधारण इसकी गन्धसे प्रतिदिन मोहित होते हैं। यूरोपके अधिकांश गन्धद्रव्य कस्तूरीके संयोगसे प्रस्तुत होते हैं। इससे गन्धद्रव्यकी शक्ति बढ़ती है और यह उसके स्थायित्व और कोमलत्व (Snbtility of odour)-को

प्रतिपोषक होती है। परन्तु छछूंदरकी अंतड़ीसे उत्पन्न कस्तूरी जैसी गन्ध किसी काममें नहीं आती।

साबुन, सैचेट पाउडर और तरल एसेन्सोंमें इसकी मूलगन्ध दी जाती है। साबुनको क्षारज प्रतिक्रियाकी वृद्धिके साथ गन्धकी भी अधिकता दीख पड़ती है। कपूर, आर्गट्, मलेरिया आदि मिलानेसे इसकी तीखी गन्ध दूर हो जाती है।

जीवज कस्तूरी गन्धसारको छोड़ उद्भिद् जगत्‌में कई लताओंमें इस प्रकारकी गन्ध पाई जा सकती है। कस्तूरी नामक वृक्षकी गन्ध प्रायः वैसी ही होती है। Mimulus, Moschatus. Ferula Sumbul और Hibiscus *Abelmoschus* प्रभृति कस्तूरीसी गन्धयुक्त लताओंकी गन्ध कितने ही कामोंमें आती है। इन द्रव्योंका अनेक स्थानसे चलान होता है। इसका बीज सुगन्धित तेल और सुगन्धित द्रव्य (*Perfumery*) बनानेके काममें आता है।

मृगनाभिजा (सं० स्त्री०) मृगनाभिर्जायते जन-ड स्त्रियां टाप्। कस्तूरी।

मृगनाभ्याद्यवलेह (सं० पु०) अवलेहभेद। यह अवलेह स्वरभङ्ग रोगमें विशेष उपकारी है। प्रस्तुत प्रणाली—मृगनाभि, छोटी इलायची, लवङ्ग, वंशलोचन, इन्हें समान भाग घृत और मधुके साथ मिला कर अवलेह करना होगा। (भावप्र०)

मृगनेत्रा (सं० स्त्री०) मृगनेत्र (नेतृर्नक्षत्र उपसंख्यानं। पा ५।४।११६) इत्यत्र काशिकोक्तेः अप्। मृगशिरा नक्षत्रसे युक्त रात्रि। अगहन महीनेके बीसवें दिन २० दण्डके बादसे ले कर संक्रान्ति तकके कालको मृगनेत्रा कहते हैं। इसमें श्राद्ध, नवान्न आदि वर्जित हैं।

"सा अग्रहायणस्य विंशतिदण्डाधिकत्रयोविंशदिनावधि संक्रान्तिपर्य्यन्तं प्रायः सम्भवति, तत्र नवान्नश्राद्धनिषेधो यथा—

"वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः।
अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत्॥
धनुषि यत् कृतं श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति नवान्नामिषकाङ्क्षिणः॥"

(मलमासतत्त्व)

(त्रि०) मृगस्य नेत्रे इव नेत्रे यस्य। ३ मृगतुल्यनेत्र,

मृगपति (सं० पु०) मृगाणां पतिः। १ सिंह। २ कामप्रद, श्रेष्ठ।

"यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-
मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः।" (भाग० ५।२५।१०)

मृगपद (सं० क्ली०) १ मृगका पैर। २ मृगके खुरका चिह्न या गड्ढा जो जमीन पर पड़ गया हो।

मृगपालिका (सं० स्त्री०) कस्तूरी मृग।

मृगपिप्लु (सं० पु०) अपिप्लवते भासते इति अपिप्लु-बाहुलकात् संज्ञायां ड, अपेरल्लोपश्च, मृगः हरिणः पिप्लुरत्र। चन्द्रमा।

मृगप्रभु (सं० पु०) मृगाणां प्रभुः ६-तत्। सिंह।

मृगप्रिय (सं० क्ली०) मृगाणां प्रियम्। १ पर्वततृण, भूतृण। गुण—बलकर, रुचिकर, पुष्टिकर और पशुहितकारक। स्त्रियां टाप्। २ जलकदली।

मृगबन्धनी (सं० स्त्री०) मृगः बध्यते अनयेति बंध-ल्युट्, स्त्रियां ङीप्। मृगबन्धनार्थ जाल, हरिण पकड़नेका फंदा।

मृगभक्षा (सं० स्त्री०) मृगैर्भक्ष्यतेऽसौ भक्ष-कर्मणि अप्-टाप्। १ जटामांसी। २ इन्द्रवारुणी, इन्द्रायन।

मृगभद्र (सं० पु०) हाथियोंकी जाति।

मृगभोजनी (सं० स्त्री०) विशाला, ग्वालककड़ी।

मृगमद (सं० पु०) मृगाः माद्यन्ति अनेनेति मद-अप। कस्तूरी।

"मृगमदकृतचर्च्या पीतकौषेयवासा।
रुचिरशिखि-शिखण्डावद्धधम्मिल्लपाशा॥" (छन्दोम०)

२ हरिणकेसे नयन होनेका गर्व या अभिमान।

मृगमदवासा (सं० स्त्री०) मृगमदस्येव वासः सौरभोऽस्याः। कस्तूरी मल्लिका।

मृगमदा (सं० स्त्री०) मृगमदा-स्त्रियां टाप्। कस्तूरी।

मृगमदासव (सं० क्ली०) मृतसञ्जीवनी ५० पल, जल २ पल, मृगनाभि ४ पल, मिर्च, लवङ्ग, जायफल, पीपल, दारचीनी, प्रत्येक २ पल, इन्हें एक बरतनमें रख कर उसका मुंह बंद कर दे और एक मास तक उसी तरह रख छोड़े। पीछे जलको छान ले, जलका यथायोग्य मात्रामें सेवन करनेसे विसूचिका, हिक्का और सान्निपातिक ज्वर नष्ट होता है।

मृगमन्द (सं० पु०) हस्तिश्रेणीभेद, हाथियोंकी एक जाति।

मृगमन्दा (सं० स्त्री०) कश्यप ऋषिकी क्रोधवशा नाम्नी पत्नीसे उत्पन्न दश कन्याओंमेंसे एक। इससे ऋक्ष, सृमर और चमर जातिके मृग उत्पन्न हुए थे।

मृगमन्द्र (सं० पु०) हस्ति श्रेणीभेद, हाथियोंकी एक जाति।

मृगमय (सं० त्रि०) वन्य श्वापदविशिष्ट, जंगली हिंसक जन्तुसे भरा हुआ।

मृगमरीचिका (सं० स्त्री०) मृगतृष्णा देखो।

मृगमातृक (सं० पु०) कस्तूरी मृग, लंबोदर मृग।

मृगमातृका (सं० स्त्री०) कस्तूरी मृगी।

मृगमालारस (सं० पु०) प्रमेहाधिकारमें रसौषध-विशेष।

मृगमित्र (सं० पु०) चन्द्रमा।

मृगया (सं० स्त्री०) मृग्यन्ते पशवोऽस्यां इति मृग णिच्, (इच्छा। पा ३।३।१०१) इत्यत्र परिचर्यापरिसर्यामृगया टाट्यानामुपसंख्यानम्।' इति वार्त्तिकोक्त्या से यकिणि-लोपः। राजाओंकी वनमें मृगहनन क्रिया, शिकार, अहेर। पर्याय—आच्छोदन, मृगव्य, आखेट। यह कामज व्यसन-विशेष है, अतः शास्त्रमें इसकी निन्दा की गई है।

"मृगयाक्षो दिवा स्वप्नः परीवादो स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गुणः॥"
(मलमासतत्त्व)

नैषधमें लिखा है, कि राजाओंके लिये मृगया दोषा वह नहीं है।

"अनलम्बकुलाशिनोभक्षान्निजनीड़द्रुमपीड़िनः खगान्।
अनवद्यतृणार्द्दिनो मृगान् मृगयाघाय न भूभृतां घ्नताम्॥"
(नैषध २।१०)

मृगयारण्य (सं० क्ली०) क्रीड़ाकानन, वह वन जिसमें आखेट किया जाय। प्राचीनकालमें राजे महराजे शिकार करनेके लिये अरण्य लगवाते थे।

"कारयेन्मृगयारण्यं क्रीड़ाहेतोर्मनोरमम्॥"
(कामन्दकी नीति० १४।२८)

मृगयावन (सं० क्ली०) शिकारोपयोगि-वन, आखेट करने लायक जंगल।

मृगयु (सं० पु०) मृगं यातीति मृग (मृगय्वादयश्च। उण् १।३८) इति कु, निपात्यते च। १ ब्रह्मा। २ शृगाल। ३ व्याध।

मृगरसा (सं० स्त्री०) मृगस्य मृगमांसस्येव रसोऽस्याः। सहदेइया नामक पौधा, महाबला।

मृगराज् (सं० पु०) राजते दीप्यते ऽसौ राज-क्विप्, ततः मृगाणां राट्। सिंह।

मृगराज (सं० पु०) मृगाणां राजा (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। १ सिंह। २ व्याघ्र। ३ एक प्राचीन कविका नाम।

मृगराजधारिन् (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ सिंहराशि।

मृगराजलक्ष्मन (सं० क्ली०) सिंहचिह्न।

मृगराटिका (सं० स्त्री०) मृग-रट-ण्वुल, स्त्रियां टाप्, अत इत्वञ्च। जीवन्ती।

मृगरिपु (सं० पु०) मृगाणां रिपुः ६-तत्। सिंह।

मृगरोग (सं० पु०) मृगस्य रोगः। १ मृगज्वर। २ घोड़ेका घातकरोग। इसमें वे जल्दी जल्दी सांस लेते हैं और उनके नथुने सूज-से आते हैं। यह रोग बहुत कष्टसाध्य है। इसमें ६ मासके भीतर घोड़ेकी मृत्यु हो सकती है। जबसे उन्हें उसास आने लगे, तभीसे अच्छी तरह चिकित्सा करनी चाहिये।

मृगरोचन (सं० पु०) कस्तूरी, मुश्क।

मृगरोमज (सं० त्रि०) मृगाणां रोमभ्यो जायते इति जन ड। पशुलोमजात वस्त्रादि, पशुके रोओंसे तैयार किया हुआ कपड़ा।

मृगलण्डिका (सं० पु०) फलविशेष।

मृगलाञ्छन (सं० पु०) मृगः लाञ्छनं चिह्नमस्य। चन्द्रमा।

मृगलाञ्छनज (सं० पु०) मृगलाञ्छनात् जायते जन-ड। चन्द्रज, बुध।

मृगलेखा (सं० स्त्री०) मृगचिह्नित चन्द्रमाकी कलङ्क रेखा, चन्द्रमाका धब्बा।

मृगलोचना (सं० स्त्री०) मृग-इव लोचने यस्याः। मृग-नयना, हरिणके समान नेत्रवाली स्त्री (पु०) २ चन्द्रमा (त्रि०) ३ हरिणके समान नेत्रवाली।

मृगलोचनी (सं० स्त्री०) मृगलोचना देखो।

मृगव (सं० पु०) बौद्धशास्त्रके अनुसार एक बहुत बड़ी संख्याका नाम।

मृगवती (सं० स्त्री०) सृमर और भल्लूकादिकी पुराण-कल्पित आदिमाता।

मृगवधाजीव (सं० पु०) मृगवधः आजीव उपजीविका यस्य। मृगजीवी व्याध, वहेलिया।

मृगवन (सं० क्ली०) १ पश्वादिपरिवृत राजरक्षित उपवन-विशेष, राजाका वह वन जिसमें तरह तरहके जन्तु रहते हैं। २ श्वापदसङ्कुल वन्यप्रदेश, हिंसक जन्तुओंसे भरा हुआ जङ्गल।

मृगवनतीर्थ (सं० स्त्री०) नर्मदा नदीके तट पर अवस्थित एक तीर्थका नाम। यहां स्नान करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं।

मृगवल्लभ (सं० पु०) मृगाणां वल्लभः प्रियः। कुन्दुरु तृण।

मृगवादि (सं० पु०) मृगतृष्णाका जल।

मृगवाहन (सं० पु०) मृगो वाहनमस्येति। १ वायु। २ राजभेद। (सह्याद्रि० ३३।१२५)

मृगवीथि (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार शुक्रकी नौ वीथियोंमेंसे एक। इसमें शुक्रग्रह अनुराधा, ज्येष्ठा और मूला पर आता है। फिर किसीके मतसे श्रवणा, शत-भिषा और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें मृगवीथि होती हैं।

मृगवैदिक (सं० क्ली०) आसनविशेष।

मृगव्य (सं० क्ली०) मृगान् विध्यति अत्र इति व्यध (अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।४८) इति काशिकोक्त्या अधिकरणे ड। मृगया, शिकार।

मृगव्याध (सं० पु०) १ मृगान्वेषी व्याध। २ नक्षत्र-भेद (Sirius) ३ शिव। ४ ग्यारह रुद्रमेंसे एक।

मृगशायिका (सं० स्त्री०) मृगकी शायित अवस्था, हरिणकी वह अवस्था जब वह लेटा रहता है।

मृगशाव (सं० पु०) मृगशिशु, हरिणका बच्चा।

मृगशिर (सं० क्ली०) मृगशिरा नक्षत्र।

मृगशिरस् (सं० पु० क्ली०) मृगस्येव शिरोऽस्य। सत्ता-ईस नक्षत्रोंके अन्तर्गत पाँचवां नक्षत्र। पर्याय—मृग-शीर्ष, आग्रहायणी। (अमर) इस नक्षत्रके अधिपति चन्द्रमा हैं। यह तिर्यङ्मुख नक्षत्र है। इस नक्षत्रमें जन्म लेनेसे जातकका देवगण होता है। यह नक्षत्र सर्पजाति का है। इसका आकार बिल्लीके पैरके जैसा है और यह तीन ताराओंसे मिल कर बना है। कन्यालग्नका वीस पल वीतनेसे आकाशमें इस नक्षत्रका उदय होता है।

"मूषिकाशनपदाकृतौ विधौ व्योममध्यमिलिते वितारके।
शारदेन्दुमुखि ! कन्यकोदयादीत्तयानञ्कलाः कलावति ॥"

मृगशिरा नक्षत्रके पूर्वार्द्धमें अर्थात् ३० दण्डके बीच वृषराशि तथा अपरार्द्धमें मिथुनराशि होती है। इस नक्षत्रमें उत्पन्न मनुष्य मृगचक्षु, सुन्दर कपोलवाला, अत्यन्त बलवान्, राजप्रिय, साहसी, अतिशय कामुक, स्थिरप्रकृतिका, अल्पधर्मविशिष्ट, मित्र-पुत्रसे युक्त और थोड़ा धनवान् होता है। (कोष्ठीप्र०)

वृहज्जातकके मतसे वह चपल, चतुर, भीरु स्वभाव-का, कार्यपटु, उत्साही, धनी और भोगी होता है। मृग-शिरा नक्षत्रमें जन्म होनेसे अष्टोत्तरी दशाके मतानुसार रविकी दशा होती है। इस नक्षत्रका दशाभोग-काल २ वर्ष है तथा प्रति पादमें ६ मास, प्रति दण्डमें १२ दिन और प्रति पलमें १२ दण्ड करके भोग होता है। यह साधारण नियम है। इस नियममें नक्षत्रमान ६० दण्ड-का माना गया है। जहां नक्षत्रमान ६० दण्डसे कम वेशी होता है, वहां २ वर्षको नक्षत्रमानसे भाग देने पर जो भोगफल होगा वही एक एक दण्डका भोगकाल है। विंशोत्तरी मतसे इस नक्षत्रमें जन्म होनेसे मङ्गलकी दशा होती है।

मृगशिरा (सं० स्त्री०) सर्वे सान्ता अकारान्ताश्चेति मृग-शिरोऽदन्त, मृगशिर-टाप्। मृगशिरानक्षत्र।

मृगशीर्ष (सं० पु० क्ली०) मृगस्य शीर्षमिव शीर्षमस्य। मृगशिरा नक्षत्र।

मृगशीर्षक (सं० त्रि०) मृगशीर्ष स्वार्थे कन्। मृगशीर्ष।

मृगशीर्षन् (सं० पु०) शीर्षस्य शीर्षन् इत्यादेशः ततो मृगस्येव शीर्षास्य। मृगशिरा नक्षत्र।

मृगशृङ्ग (सं० क्ली०) मृगस्य शृङ्गं। हरिणका सींग। इसको भस्म हृद्रोगमें बहुत उपकारी है।

मृगशृङ्गवती (सं० पु०) उपासक सम्प्रदायभेद।

मृगश्रेष्ठ (सं० क्ली०) व्याघ्र, बाघ।

मृगशङ्ख (सं० क्ली०) मृगकी हड्डी।

मृगसत्र (सं० क्ली०) उन्नीस दिनका एक सत्र।

मृगहन् (सं० स्त्री०) मृगं हन्ति हन-क्विप्। व्याध, बहे-लिया।

मृगा (सं० स्त्री०) मृगमांसतुल्यः रसोऽस्ति अस्याः मृग-अर्श-आदिभ्योऽच्। सहदेवी लता।

मृगाक्षी (सं० स्त्री०) मृगस्येव अक्षि तद्वत्पुष्पं वा अक्षिणी नयने अस्याः, अक्षि (अच्नोऽन्यतरस्यां। पा ५।४।७६।) इति अच् स्त्रियां ङीष्। १ विशाला। मृगलोचन-तुल्यनेत्रयुक्ता, हरिणकेसे नेत्रोंवाली।

मृगाखर (सं० पु०) वन्यपशुका गर्त्त, जंगली जन्तुके रहनेका मान।

मृगाङ्क (सं० पु०) मृगः अङ्को यस्य। १ चन्द्रमा।

"विनिद्रपद्मालिगतालिकैतवान्।

मृगाङ्कचूड़ामणिवर्ज्जनार्जितम्॥" (नैषध १।७८)

चन्द्रमामें मृगचिह्न है, इस कारण उनका मृगाङ्क नाम पड़ा। चन्द्रमा पर पृथिवीकी छाया पड़ती है, उसी छायाको बहुत दूर रहनेके कारण लोग चन्द्रकलङ्क कहते हैं। यथार्थमें वह कलङ्क नहीं है, पृथ्वीकी छाया-मात्र है।

"लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्के शशसंस्थितम्।

न विदुः सोमदेवापि ये च नक्षत्रयोनयः॥" (हरिवंश)

'यथा दर्पणं प्राप्य परावृत्ता नयनरश्मयः ग्रीवास्थमेव मुखं दर्पणगतमिव पश्यन्ति एवं चन्द्रमण्डलं प्राप्य परावृत्तास्ते दूरत्वदोषात् पृथिवीमध्यकरूपामिव चन्द्रमण्डलगतां पश्यन्ति स एव चन्द्रे कलङ्क इत्युपचर्यते' (टीका) २ कपूर, कपूर। ३ वायु, हवा।

मृगाङ्कगुप्त—नवसाहसाङ्कचरितके प्रणेता पद्मगुप्तके पिता।

मृगाङ्कज (सं० पु०) मृगाङ्क जन-ड। १ कस्तूरी। २ चन्द्रज, बुध।

मृगाङ्कदत्त (सं० पु०) अयोध्याराज अमरदत्तके पुत्र तथा अष्टाङ्गहृदयटीकाके प्रणेता अरुणदत्तके पिता।

मृगाङ्करस (सं० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा एक भाग, सोना एक भाग, मुक्ता दो भाग, गन्धक दो भाग और सोहागा एक भाग, इन्हें कांजीमें पीस कर लवणके भाण्डमें भर चार पहर तक पाक करे। इसकी मात्रा ४ रत्ती है। यह औषध मिर्च, पीपल और मधुके साथ चाटनेसे राजयक्ष्मरोग नष्ट होता है। यह औषध खानेके बाद अविदाही घृत, पक्व व्यञ्जन और लघुमांस पथ्य है। इसके अलावा महामृगाङ्क और राजमृगाङ्क-रस भी बतलाया गया है। इस महामृगाङ्करसकी प्रस्तुत प्रणाली—सोनेकी भस्म १ भाग, पारेकी भस्म २ भाग, मुक्ताकी भस्म ३ भाग, गन्धक ४ भाग, सोनामक्खी ५ भाग, मूंगा ६ भाग और सोहागेका लावा १ भाग, इन्हें एकत्र कर टावा नीबूके रसमें तीन दिन मल कर गोलाकार बनावे। पीछे उसे कड़ी धूपमें सुखा कर मूषाके मध्य लवणयन्त्रमें ४ पहर पाक करे। जब ठंढा हो जाय, तब औषधको निकाल कर उसके साथ हीरा एक भाग, (अभावमें वैक्रान्त) मिलावे। इसकी मात्रा २ रत्ती और अनुपान मिर्च वा पीपल चूर्णके साथ घृत है। इस औषधके सेवनकालमें घृतादि बलकर द्रव्य खाना तथा क्षयरोगोक्त विधिके अनुसार चलना आवश्यक है। इसका सेवन करनेसे यक्ष्मा, स्वरभेद और कासादि नाना प्रकारका रोग शान्त होता है।

राजमृगाङ्करस—पारा ४ तोला, सोना १ तोला, तांबा १ तोला, मैनसिल २ तोला, हरताल २ तोला, गंधक २ तोला, इन्हें एक साथ पीस कर बड़ी बड़ी कौड़ीमें भरे। पीछे बकरीके दूधमें सोहागा पीस कर उससे सभी कौड़ियोंका मुंह बन्द कर दे तथा मट्टीके भांड़में रख कर ऊपरसे अच्छी तरह लेप चढ़ा दे। पीछे लेप सूख जाने पर गजपुटमें पाक करे और ठंढा हो जाने पर औषध चूर्णको बाहर निकाल ले। इसकी मात्रा २ रत्ती और अनुपान घृत, मधु वा १० पीपल अथवा १६ मिर्च है। इसका सेवन करनेसे सभी प्रकारका क्षय दूर होता है। (भैषज्यरत्ना० राजयक्ष्मरोगाधि०)

मृगाङ्कलेखा (सं० स्त्री०) विद्याधर-राजकन्याभेद।

मृगाङ्कवती (सं० स्त्री०) उज्जयिनीके राजा धर्मध्वजकी स्त्रीका नाम। २ विद्याधरराज मृगाङ्कसेनकी स्त्रीका नाम।

मृगाङ्कक (सं० पु०) मृगाङ्क, चन्द्रमा।

मृगाङ्गजा (सं० स्त्री०) १ मृगनाभि, कस्तूरी। २ वारुणीलता।

मृगाङ्गना (सं० स्त्री०) मृगाणामङ्गना। हरिणी, हिरनी।

मृगाजीव (सं० स्त्री०) १ मृगनाभि, कस्तूरी। २ वारुणी लता। ३ व्याध।

मृगाटवी (सं० स्त्री०) मृगकानन, मृगवन।

मृगाण्डजा (सं० स्त्री०) मृगाण्डात् जायते इति जन-ड कस्तूरी।

मृगाद् (सं० स्त्री०) मृगान् अत्तीति अद् क्विप्। १ सिंह २ तरक्षु, चीता। ३ व्याघ्र, वाघ।

मृगादन (सं० पु०) अत्तीति अद्-ल्यु, मृगस्य अदनः छोटा वाघ, चीता।

मृगादनी (सं० स्त्री०) मृगैरद्यते भुज्यतेऽसौ इति अद्-कर्मणि ल्युट्, स्त्रियां ङीष्। १ इन्द्रवारुणी, इन्द्रयान। २ सहदेवी, सहदेई। ३ मृगेर्वारु, सफेद इन्द्रायन। ४ कर्कटी ककड़ी।

मृगाधिप (सं० पु०) मृगाणामधिपः। सिंह, शेर।

मृगाधिपत्य (सं० क्ली०) वनजन्तु पर प्रभुत्व।

मृगाधिराज (सं० पु०) मृगाणामधिराजः। सिंह, शेर।

मृगान्तक (सं० पु०) मृगाणामन्तकः नाशकः। चित्र-व्याघ्र, चीता।

मृगार (सं० पु०) १ अथर्ववेदके ४।२३—२९ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि। २ प्रसेनजित् राजाके मन्त्री।

मृगारसूक्त (सं० क्ली०) मृगार ऋषि-द्रष्ट सूक्त।

मृगाराति (सं० पु०) मृगाणामरातिः। १ कुक्कुर, कुत्ता। २ मृगशत्रु।

"मार्गे मार्गे मृगयति मृगारातिरामे विरामे।
शोकं शोकं गतवतिगते लक्ष्मणे लक्ष्मणेन॥"
(महानाटक)

मृगारि (सं० पु०) मृगाणामरिः। १ सिंह। २ व्याघ्र, वाघ। ३ रक्तशिग्रु वृक्ष, लाल सहिजनका पेड़। (राजनि०) ४ कुक्कुर, कुत्ता।

मृगारेष्टि (सं० क्ली०) तैत्तिरीयसंहिता ४।७।१५ तथा अथर्ववेदके ४।२३—२८ सूक्तका नामान्तर।

मृगावती (सं० स्त्री०) १ यमुनातीरवर्त्ती दाक्षायणी नगरी। २ पुराण, इतिहास और आख्यायिकादि-कथित बहुतसी राजकन्याएं।

मृगाविध (सं० पु०) मृगान् विध्यति इति व्यध-क्विप् (अन्येषामपि दृश्यते। पा ६।४।१३७) इति दीर्घश्च। १ व्याध। २ मृगावेधनशील, वह जो मृग मारता हो।

मृगाश (सं० पु०) सिंह।

मृगाशन (सं० पु०) मृगाश देखो।

मृगास्य (सं० त्रि०) १ मृगतुल्य मुख, हरिण जैसा मुख-वाला। १ मकरकान्ति।

मृगित (सं० त्रि०) मृग क्त। अन्वेषित।

मृगी (सं० स्त्री०) मृग-जातौ ङीष्। १ मृगजाति, मादा हरिण, हिरनी। २ कश्यप ऋषिकी क्रोधवशा नाम्नी पत्नीसे उत्पन्न दश कन्याओंमेंसे एक। यह पुलह ऋषिकी पत्नी थी और इसीसे मृगोंकी उत्पत्ति हुई है

"क्रोधान्च जज्ञिरे कन्या द्वादशैवात्मसम्भवाः।
ता भार्या पुलहस्य स्युर्मृगी मन्दा इरावती॥
भूता च कपिला दंष्ट्रा कषा तिष्या तथैव च।
श्वेता च सरमा चैव सरसा चेति विश्रुताः॥
मृग्यास्तु हरियाः पुत्रा मृगाश्चान्ये शशास्तथा।
न्यङ्कवः शरभा ये च पुरवः पृषताश्च ये॥"

३ तीन अक्षरका एक छन्द। ४ अपस्मार नामक रोग। ५ कस्तूरिका, कस्तूरी। ६ पीले रंगकी एक प्रकारकी कौड़ी जिसका पेट सफेद होता है।

मृगीकुण्ड (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

मृगीत्व (सं० क्ली०) मृगीका भाव या धर्म।

मृगीदृश् (सं० स्त्री०) मृगीव दृक् यस्याः। हरिण-नयना स्त्री, वह स्त्री जिसकी आंखें हरिण-सी हों, मृग नयनी।

मृगीपति (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। २ नर-मृग।

मृगीलोचना (सं० स्त्री०) मृग्याइव लोचने यस्याः। हरिण-नयना स्त्री, मृगनयनी।

मृगू (सं० स्त्री०) राममार्गवेयकी माता।

मृगेक्षण (सं० क्ली०) मृगस्य ईक्षणं। १ मृगका दर्शन। २ मृगचक्षु, मृगकी-सी आंख। (त्रि०) ३ मृग जैसी आंखवाला।

मृगेक्षणा (सं० स्त्री०) मृगैरीक्ष्यते प्रियत्वात् इति ईक्ष-ल्युट् स्त्रियां टाप्। १ मृगैर्वारु, सफेद इन्द्रायण। (राजनि०) २ मृगनयना स्त्री।

मृगेन्द्र (सं० पु०) मृगाणामिन्द्रः श्रेष्ठः। १ सिंह, पशु-राज।

"मृगाणाञ्च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥"
(गीता १०।३०)

२ छन्दोविशेष।

मृगेन्द्रचटक (सं० पु०) मृगेन्द्र इव विक्रमी चटकः। श्येनपक्षी, बाज चिड़िया।

मृगेन्द्रता (सं० स्त्री०) मृगेन्द्रस्य भावः तल् टाप्। मृगेंद्रका भाव या धर्म, सिंहत्व।

मृगेन्द्रमुख (सं० क्ली०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें तेरह अक्षर रहते हैं जिनमेंसे १, २, ३, ४, ६, ६ और ११ अक्षर लघु और शेष गुरु होते हैं।

मृगेन्द्राणी (सं० स्त्री०) १ वकवृक्ष। २ सिंहनी।

मृगेन्द्राशी (सं० स्त्री०) मृगेन्द्रेण अश्यते इति अश् घञ्, गौरादित्वात् ङीष्। वासक, अड़ूस। राजनि०)

मृगेन्द्रासन (सं० क्ली०) सिंहासन।

मृगेन्द्रास्य (सं० त्रि०) १ सिंहमुख। (पु०) २ शिव।

मृगेल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली। यह युक्तप्रांत, बंगाल, पंजाब तथा दक्षिणकी नदियोंमें पाई जाती है। इसकी आखें सुनहरी होती हैं। यह डेढ़ हाथके लगभग लंबी और तौलमें नौ या दस सेर होती है।

मृगेश (सं० पु०) सिंह।

मृगेष्ट (सं० पु०) मुद्गरपुष्पवृक्ष, गन्धराज फूलका पेड़।

मृगैर्वारु (सं० स्त्री०) मृगस्य प्रिया इव वारुः। श्वेत इन्द्रवारुणी, सफेद इन्द्रायन। पर्याय—मृगाक्षी, श्वेतपुष्पा मृगादनी, चित्रवल्ली, बहुफली, कपिलाक्षी, मृगेक्षणा, चित्र चित्रफला, पथ्या, विचित्रा मृगचिर्भिटा, कुस्मिनी, देव,ा, कटूफला, लघुचिर्भिटा। गुण—दुर्जर, गुरु, मन्दानलकारक और रक्तपित्तहारक। (राजनि०)

मृगेश्वर (सं० पु०) मृगाणामीश्वरः। मृगेन्द्र, सिंह।

मृगेष्ट (सं० पु०) मृगाणामिष्टः। मुद्गर पुष्पवृक्ष, गंधराज फूलका पेड़।

मृगोत्तम (सं० पु०) मृगश्रेष्ठ, सिंह। २ मृगशिरानक्षत्र।

मृगोत्तमाङ्ग (सं० क्ली०) मृगशिरानक्षत्र।

मृग्य (सं० त्रि०) मृग्यते अन्विष्यतेऽसौ मृग-कर्मणि यत्। अन्वेषणीय, खोजने लायक।

मृचय (सं० पु०) १ मरणशील, क्षणस्थायी।

मृचय (सं० पु०) मृत्तिकाराशि, मिट्टीका ढेर।

मृच्छकटिक (सं० क्लो०) राजा शूद्रकका बनाया हुआ एक प्रसिद्ध संस्कृत नाटक। शूद्रक देखो।

मृच्छिलामय (सं० त्रि०) मृच्छिला-विकारे मयट्। मृत्तिका वा शिलाविकार।

मृज (सं० पु०) मृज्यतेऽसौ इति मृज-कृत्य ल्युटोबहुलेमिति कर्मणि क। वाद्यविशेष, मुरज नामका बाजा।

मृजा (सं० स्त्री०) मृज्यते इति मृज् (षिद्भिदादिभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४) इति अङ्, टाप् च। मार्ज्जन।

मृजानगर (सं० क्ली०) नगरभेद।

मृजापुर—युक्तप्रदेशके अन्तर्गत एक जिला और नगर। (भ० ब्रह्मखण्ड० ४७।१७२-७४) मीर्जापुर देखो।

मृजावत् (सं० त्रि०) मृजा-मतुप् मस्य व। पवित्रान्वित।

मृजाहुसेन अली—त्रिपुरावासी एक मुसलमान जमींदार। इष्ट इण्डिया कम्पनीके दशसाला वन्दोबस्तके कागजमें इसका नाम पाया जाता है। अतएव वह उससे एक सदी पहले विद्यमान था। त्रिपुराके अन्तर्गत वरदाखातमें इसकी जमींदारी थी। कवित्वशक्तिके लिये यह बहुत कुछ प्रसिद्ध था। सैयद जाफर खाँ नामक एक सुकवि इसीके समयमें विद्यमान थे। कहते हैं, हुसेन अली कालीपूजा बड़ी धूमधामसे करता था।

मृज्य (सं० त्रि०) मृज्यते यत् इति मृज् (मृजेर्विभाषा। पा ३।१।११३) इति क्यप्। मार्ग्य, मार्जन करने योग्य।

मृड (सं० पु०) मृड़ति हृष्यतीति मृड़ इगुपधत्वात् कर्त्तरि क। १ शिव, महादेव।

मृड्ङ्कण (सं० पु०) मृड्नति सुखयतीति मृड़ (मृड़ः कीकन कंकणौं। उण् ४।२४) इति कङ्कण। बालक।

मृड़न (सं० क्ली०) सुखीकरण, आनन्दित करना।

मृड़य (सं० त्रि०) सदय, दयालु।

मृड़ा (सं० स्त्री०) मृड़-टाप्, ङीप् च। दुर्गा।

मृड़ाकु (सं० पु०) एक ऋषि।

मृड़ानी (सं० स्त्री०) दुर्गाका एक नाम।

मृड़ीक (सं० पु०) मृड़तीति मृड़ (मृड़ः कीकन् कङ्क" उण् ४।२४) इति कीकन्। हरिण, हिरन।

मृणाल (सं० पु० क्ली०) मृण्यते हिंस्यते भक्षणाद्यर्थं यत् मृण् (तिमिविशिविडि़ मृणिकुलि? पिपत्तिपर्ञ्चिभ्यः कालन। उण् १।११७) इति कालन्। पङ्कजादिका नाल, कमलका डंठल जिसमें फूल लगा रहता है। संस्कृत पर्याय—पद्मनाल,

मृणाली, मृणालिनी, पद्मतन्तु, बिसिनी नलिनीरुह। गुण—शीतल, तिक्त, कषाय, पित्तदाह, मूत्रकृच्छ्र, विकार और रक्तवमननाशक। (राजनि०) २ उशीर खस। ३ वीरण मूल, खसकी जड़। ४ कमलकी जड़, मुरार।

मृणालक (सं० पु०) मृणाल-स्वार्थे कन्। मृणाल, कमलनाल।

मृणालकण्ठ (सं० पु०) जलचर पक्षिविशेष।

मृणालमूल (सं० क्ली०) पद्मकन्द।

मृणालवत् (सं० त्रि०) मृणाल-मतुप् मस्य व। मृणाल-विशिष्ट, जिसमें कमलनाल लगा हो।

मृणालाद्यतैल (सं० क्ली०) वातरक्ताधिकारमें तैलौषध-विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ४ सेर, चूर्णके लिये पद्मनाल, नीलोत्पल, शालूक, अनन्तमूल, सुगंधवला, नागकेशर, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, चिरायता, पद्मबीज, केशर, पद्मार, कटकी, अनन्तमूल, प्रियंगु, पित्तपापड़ और अड़ूस फूल मिला कर १ सेर; गन्धतृण मूलका रस ४ सेर, दूध २ सेर। पीछे यथाविधान तेलपाक करना होगा। इस तेलका वस्तिक्रिया, नस्य, अभ्यङ्ग और पीनेमें प्रयोग करनेसे पित्तजन्यरोग नष्ट होता है।

(भावप्र० वातरक्ताधिकार)

मृणालिन (सं० पु०) मृणालमस्तीतित्यर्थे इनि। पद्म, कमल।

मृणालिनी (सं० स्त्री०) मृणालानि अस्याः सन्तीति मृणाल-(पुष्करादिभ्यो देशे। पा ५।२।१३५) इति इनि, ङीप् च। १ पद्मिनी, कमलिनी। २ पद्मयुक्तदेश, वह स्थान जहां कमल हों। ३ पद्मसमूह। ४ पद्मलता।

मृणाली (सं० स्त्री०) मृणाल-गौरादित्वात् ङीष्। मृणाल, कमलका डंठल।

मृत (सं० क्ली०) मृ-क्त। १ मृत्यु, मरण। २ याचित वस्तु, मांगी हुई वस्तु। (त्रि०) ३ याचित, मांगा हुआ। ४ गतप्राण, मरा हुआ। पर्याय—परासु, प्राप्त-पञ्चत्व, परेत, प्रेत, संस्थित, प्रमीत। कलियुगमें मृत व्यक्ति ही धन्य है।

"धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरे गतं।
पृथ्वी मन्दफला जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः॥
मर्त्याः स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः।
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या नरा ये मृताः॥"

(गरुड़पु० ११५ अ०)

मृतक (सं० क्ली०) मत-स्वार्थे कन्। १ शव, मुर्दा। २ मरणाशौच।

"यदि स्यात् सूतके सूतिर्मृतके च मृतिस्तथा।
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषेद्विरात्रकम्॥" (शुद्धितत्त्व)

मृतककर्म (सं० पु०) वह कृत्य जो मृतक पुरुषकी शुद्धि-गतिके लिये किया जाता है, प्रेतकर्म।

मृतकधूम (सं० पु०) भस्म, राख।

मृतकल्प (सं० त्रि०) मृत (ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः। पा ५।३।६७) इति कल्पप्। मृतप्राय, रोग, शोक, दारिद्र्य आदि कष्टसे मृतके समान जीवनधारणकारी।

मृतकान्तक (सं० पु०) मृतकस्य अन्तकः भक्षकत्वात्। शृगाल, गीदड़।

मृतगृह (सं० क्ली०) १ मुमूर्षु गङ्गायात्रीके रहनेके लिये गृह (Moribund house)। २ समाधिस्थान, कब्र।

मृतजीव (सं० पु०) मृतश्चासौ जीवश्चेति नीललोहिता-दिवद्विशेषणसमासः। १ तिलकवृक्ष। २ मरा हुआ प्राणी।

मृतजीवनी (सं० स्त्री०) १ दुग्धिका, दुधिया घास। २ वह विद्या जिससे मुर्देको जिलाया जाता है।

मृतजीविन् (सं० पु०) दुग्धिका, दुधिया घास।

मृतण्ड (सं० पु०) मृतः अण्डः कारणत्वेन यस्य शक-न्ध्वादित्वात् पररूपं। सूर्यपिता।

मृतधर्मा (सं० त्रि०) नष्ट हो जानेवाला, नश्वर।

मृतप (सं० पु०) मृतरक्षक, शवदेहकी रक्षा करनेवाला।

मृतपा (सं० पु०) १ शवरक्षक। २ शव-वस्त्रशय्यादिग्राही, नदीके किनारे श्मशान पर लाश ले जानेवाले नीच श्रेणी-के लोग।

मृतभ्रज (सं० त्रि०) नष्टवीर्य।

मृतमत्त (सं० पु०) मृतेन शवेन मत्तः भक्ष्यलाभात्। शृगाल गीदड़।

मृतमनस् (सं० त्रि०) हतचैतन्य, उदास।

मृतवत्सा (सं० स्त्री०) मृता वत्सा यस्याः। १ मृतापत्या, वह स्त्री जिसकी सन्तति मर मर जाती हो। २ योनि-

व्यापद्दोषभेद। शुक्रशोणितके विगड़नेसे योनिव्यापद्से ही मृतवत्सा दोष उत्पन्न होता है। योनिव्यापद् देखो।

मृतवस्त्रभृत् (सं० त्रि०) मृतके परिच्छदादि पहननेवाला।

मृतवार्षिक (सं० त्रि०) अहोरात्रिव्यापी वर्षणसंबंधीय।

मृतशब्द (सं० पु०) मृत्युसंवाद।

मृतसंस्कार (सं० पु०) मृतस्य संस्कारः। मृतव्यक्तिकी संस्कारदाहादि अन्त्येष्टि-क्रिया।

मृतसञ्जीवनी (सं० क्री०) मृतव्यक्तिका प्राणदान, मुर्देको जिला देना।

मृतसञ्जीवनरस (सं० क्री०) ज्वररोगनाशक रसौषध विशेष। बनानेका तरीका—रस १ तोला और गंधक २ तोला, इन्हें खलमें अच्छी तरह घोंट कर काजल बनावे। पीछे उसमें अवरक, लोहा, तांवा, विष, हरताल, कौड़ीको भष्म, मैनसिल, हिङ्गुल और सोनामक्खी, प्रत्येक १ तोला तथा अतीस १ तोला, चितामूल १ तोला, हस्तिशुण्डका मूल १ तोला और त्रिकटु १ तोला डाल कर अच्छी तरह पीसे। बादमें अदरक, निसोथ और सिद्धि नामक प्रत्येक द्रव्यके रसमें तीन दिन तक भावना दे। इसके बाद फिरसे मथ कर चिथड़े और मट्टीसे पोते हुए बोतलमें वा शीशीमें रख कर बालुका यन्त्रमें पाक करे। दो पहरके बाद उसे निकाल कर अदरकके रसमें फिरसे घोंटनेसे मृतसञ्जीवनरस तैयार होता है।

"ओं अघोरेभ्यश्च घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।" इस अघोर मन्त्रसे रसरक्षा और पूजा करके दो पहर तक आंच दे। दूसरे दिन ठंढा हो जाने पर उसे फिरसे अदरकके रसमें मल कर सुखा ले। २ या ३ रत्ती प्रति दिन अदरकके रसमें सेवन करनेसे कठिन रोग आरोग्य होता है।

मृतसञ्जीवनी (सं० स्त्री०) मृतं मृतशल्यं जीवयतीति जीव-ल्युट्, ङीप् च। १ गोरक्षदुग्धा, दुधिया घास। २ मृतजीवनार्थिका विद्या। इस विद्यासे मृतव्यक्ति जीवन लाभ कर सकता है, इसीसे इसको मृतसञ्जीवनी कहते हैं। दैत्यगुरु शुक्राचार्य इस विद्यामें पारदर्शी थे। देवताओंने यह विद्या जाननेके लिये कचको शुक्रके पास भेजा था। कच बड़ी आसानीसे यह विद्या सीख कर देवलोकको लौटा। पीछे इन्द्रादि देवताओंने कचसे यह विद्या सीखी थी। (भारत १।७०-८० अ०) मृतसञ्जीवनी मन्त्र जपनेसे सर्वार्थ सिद्ध होता है।

मृतसञ्जीवनी (सं० स्त्री०) ज्वररोगकी औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—एक वर्षका पुराना गुड़ ३२ सेर, कूटी हुई बावलेकी छाल २० पल, अनारकी छाल, अडूसकी छाल, मोचरस, वराक्रान्ता, अतीस, असगंध, देवदारु, बेलकी छाल, परवलकी छाल, शालपर्णी, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, गोखरू, बेर, ग्वालककड़ीका मूल, चितामूल, केवांचका बीज और पुनर्नवा प्रत्येकका चूर्ण १० पल तथा जल २५६ सेर। इन्हें एक साथ मिला कर एक भाँड़में रखे और ऊपरसे ढक्कन द्वारा ढक दे। १६ दिनके बाद उसमें सुपारी ४ सेर और धतूरेका मूल, लवङ्ग, पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, रक्तचन्दन, सोयां, यमानी, मिर्च, जीरा, कृष्णजीरा, कचूर, जटामांसी, दारचीनी, इलायची, जायफल, मोथा, सोंठ, गठिवन, मेथी, मेढासिंगी और सफेद चन्दन प्रत्येक दो पलको अच्छी तरह कूट कर डाल दे। अनन्तर पहलेके जैसा फिरसे ४ दिन तक उसी भांड़में रख कर ढक दें। इसके बाद यथाविधान वकयन्त्रमें चुआ कर मद्य तैयार करें। इसे पीनेसे देहकी दृढ़ता तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है। सान्निपातिक ज्वरमें तथा विसूचिका रोगमें हिमाङ्गके समय इस 'मृतसञ्जीवनी' का बार बार प्रयोग किया जा सकता है।

मृतसञ्जीवनीरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—विष १ भाग, सोहागा २ भाग, जायफल ३ भाग, तांबा ४ भाग इन्हें सोंठके काढ़ेमें खल करके दो माशेकी गोली बनावे। इसका अनुपान सोंठ, पीपल, मिर्च, सैन्धवलवण, चिता वा अदरकका रस है। रोगीके शरीरमें कपूर और चन्दन लगाना तथा कांसेके बरतनमें करके जलसेक करना उचित है। पथ्य शालिधान्यका अन्न, मट्ठा और ईखका रस है। इसका सेवन करनेसे महाघोर सान्निपातिक ज्वर, त्रिदोषज्वर, विषमज्वर, आमवात, वातशूल, गुल्म, प्लीहा, जलोदर, शीत, दाह, ज्वर, अग्निमान्द्य और वातरोग नष्ट होता है।

दूसरा तरीका—पारा एक भाग और गन्धक दो

भाग, इनका काजल बना कर अवरक, लोहा, तांवा, विष, हरताल, कौड़ी, मैनशिला, हिंगुल, चिता, वलात्मिका, अतीस, सोंठ, पीपल, मिर्च, सोनामक्खी, प्रत्येक एक भाग, अदरकका रस, सिद्धिकी पत्तियोंका रस और सम्हालूकी पत्तियोंका रस, इन तीनों प्रकारके रसमें तीन तीन दिन भावना दे कर शीशीमें बंद रखे। पीछे वालुकायन्त्रमें दो पहर तक पाक करके अदरकके रसमें मले। सान्निपातिक विकारसे रोगी यदि मृतप्राय हो जाय, तो यह औषध उसे अच्छा कर देती है। भगवान् शङ्करने स्वयं यह औषध प्रस्तुत की है।

(रसेन्द्रसारसंग्रह ज्वराधि०)

तीसरा तरीका—पीपल १ भाग, वत्सनाभ विष १ भाग, हिङ्गुल २ भाग इन्हें जंबीरी नीबूके रसमें घोट कर मूली-बीजके समान गोली बनावे। अनुपान शीतल जल है। इसका सेवन करनेसे ज्वरातिसार, विसूचिका और सन्निपात ज्वर आरोग्य होता है। इसे मृतसञ्जीवनी गोली भी कहते हैं।

चौथा तरीका—पारा और गन्धक समभाग, विष चतुर्थांश, अवरक सबोंके समान, इन्हें धतूरेके रसमें पीस कर रस्नाके रसमें एक पहर तक घोंटे। पीछे धवफूल, अतीस, मोथा, सोंठ, जीरा, सुगंधवाला, यमानी, धनिया, वेलसोंठ, अकवन, हरीतकी, पीपल, कूटज-वल्कल, इन्द्रजौ, कपित्थ, अनार और सुगंधवाला प्रत्येक दो तोला, इन्हें चौगुने जलमें पाक कर चतुर्थ भागावशेष क्वाथमें तीन दिन भावना दे कर वालुकायन्त्रमें धीमी आंचसे पकावे। इसकी मात्रा ४ रत्ती और अनुपान सोंठ, अतीस, मोथा, देवदारु, पीपल, वच, यमानी, सुगंधवाला, धनिया, कूटज-वल्कल, हरीतकी, धवफूल, इन्द्रजौ, वेलसोंठ, अकवन और मोचरस, समान भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे मधुके साथ इसका सेवन और लेपन करनेसे असाध्य ज्वरातिसार रोग नष्ट होता है।

(रसेन्द्रसारस०)

मृतसञ्जीवनीसुरा (सं० स्त्री०) एक वाजीकरण औषध। प्रस्तुत प्रणाली—नया गुड़ १२॥० सेर, वावलेकी छाल, वेरकी छाल और सुपारी प्रत्येक २ सेर, अदरक एक पाव, कुल मिला कर जितना हो उससे आठ गुना जल। पहले गुड़को घोल कर पीछे यथाक्रम अदरक, वावलेकी छाल और वेरकी छाल उसमें डाले और अच्छी तरह मिलावे अनन्तर सुपारी और लोध डाल कर ढक्कनसे वरतनका मुंह वंद कर दे और २० दिन उसी अवस्थामें रख छोड़े। अनन्तर मिट्टीके मोहिका यन्त्रमें और मयूराक्षेपित मंत्रमें धीमी आंचसे गरम करे। पीछे उस वरतनमें सुपारी, एलवालुक, देवदारु, लवङ्ग, पद्मकाष्ठ, खसकी जड़, रक्तचन्दन, दारचीनी, इलायची, जायफल, मोथा, गठिवन, सोंठ, सोयां, यमानी, मिर्च, जीरा, मंगरैला, कपूर, जटामांसी, मेथी, मेढ़ासिंगी, रक्त चन्दन प्रत्येक ४ तोला, अच्छी तरह कूट कर डाल दे। इसके वाद सुरा प्रस्तुत करनेकी प्रणालीके अनुसार चुआवे। उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे वल, अग्नि, पुष्टि, स्मृति और रतिशक्ति आदि वढ़ती है। यह सबसे उमदा वाजीकरण है।

मृतसञ्जीविन् (सं० त्रि०) मृतको जिलानेवाला।

मृतसूत (सं० पु०) रससिन्दूर।

मृतसूतक (सं० क्ली०) १ मृतवत्सा, मृत सन्तान उत्पन्न करनेवाली स्त्री। २ जारित पारद, भस्म किया हुआ पारा।

मृतस्नात (सं० त्रि०) ज्ञातिवन्ध्वादीनामन्यतमस्मिन् मृते सति मृतमुद्दिश्य विधिना स्नातः। मृतोद्देशसे स्नात, जिसने किसी सजाति या बंधुके मरने पर उसके उद्देश्यसे स्नान किया हो। पर्याय—अपस्नात। २ संस्कारार्थ स्नापित मृत, वह मुरदा जिसे दाहके पूर्व स्नान कराया गया हो। ३ जिसे मरनेके कुछ समय पहले स्नान कराया गया हो।

मृतस्नान (सं० क्ली०) मृत मुद्दिश्य स्नानं। मृतोद्देशसे स्नान, किसी भाई बंधुके मरने पर किया जानेवाला स्नान। २ मृतकका स्नान।

मृतस्वमोक्तृ (सं० पु०) मृतवत् स्वराज्याधनादिकं मुञ्चतीति मुच-(वासरूपोऽस्त्रियां। पा ३।१।९४) इति पक्षे तृच्। १ राजर्षि। २ राजा कुमारपालका एक नाम।

मृतहार (सं० पु०) मृतवहनकारी, मुरदा ढोनेवाला।

मृतहारिन् (सं० पु०) शववाही, मुरदा ढोनेवाला।

मृताङ्ग (सं० पु०) शवदेह, लाश।

मृताङ्गार (सं० पु०) मुरदेकी भस्म।

मृताण्ड (सं० पु०) पक्षियोंका दृश्यमान प्राणहीन अण्ड

मृताधान (सं०.पु०) चिताके ऊपर शव रखना ।

मृतामद (सं० क्ली०) मृतः नष्टः आमदः अस्मात् । तुत्थ, तूतिया ।

मृतालक (सं० क्ली०) मृतमालयति इति अल-णिच् ण्वुल् । १ आढ़की, अरहर । २ गोपीचन्दन ।

मृताशन (सं० त्रि०) शवदेह-भक्षणकारी, मुरदा खानेवाला ।

मृताशौच (सं० क्ली०) वह अशौच जो किसी आत्मीय, संबंधी, गुरु, पड़ोसी आदिके मरने पर लगता है और जिसमें शुद्ध होने तक ब्रह्मचर्यके साथ देवकर्म तथा गृहकर्मसे अलग रहना पड़ता है ।

मृताहन् (सं० क्ली०) मृतस्य अहः । मृताहदिन, मृत्यु दिन वा तिथि । मृताहदिनमें पितृ आदिका श्राद्ध करना होता है ।

मृति (सं० स्त्री०) मृ-क्ति । मरण, मृत्यु ।

मृतिमन (सं० पु०) हैजा ।

मृतोत्थापनरस (सं० क्ली०) आयुर्वेदोक्त औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—पारा १ भाग, गंधक २ भाग, मैनसिल १ भाग, विष १ भाग, हिंगुल १ भाग, अबरक १ भाग, ताँबा १ भाग, लोहा १ भाग, हरिताल १ भाग और सोनामक्खी १ भाग इन्हें एक साथ चूर कर बिजौरा, जामुन, सम्हालू, वलात्मिकाकी पत्तियाँ, प्रत्येकके रसमें ३ दिन मर्दन कर भूधरयन्त्रमें पाक करें । एक दिन पाक करके पीछे चीतामूलके क्वाथमें २ पहर तक घोटते रहें । मात्रा आध रत्ती तथा अनुपान कपूर, हींग और त्रिकटु-के साथ अदरकका रस है । इसका सेवन करानेसे मृतप्राय व्यक्ति भी जी जाता है । पथ्य दूध बताया गया है । (भैषज्यरत्ना० ज्वराधिकार)

मृतोद्भव (सं० पु०) समुद्र, महासागर ।

मृत्कण (सं० क्ली०) मृत्तिकाखण्ड, मिट्टीका टुकड़ा ।

मृत्कपाल (सं० क्ली०) भृष्ट खर्पर, जली हुई मिट्टी ।

मृत्कर (सं० पु०) करोतीति कृ-अच्, मृदां करः, घटादि-निर्मातृत्वादस्य तथात्वं । कुम्भकार, कुम्हार ।

मृत्कांस्य (सं० क्ली०) शराव, ढक्कन ।

मृत्किरा (सं० क्ली०) मृदं किरतीति कॄ-(इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः । पा ३।१।१३५) इति क, (ॠत इद्धातोः । पा ७।१।१०८) इति इत् । घुंघरू ।

मृत्खलिनी (सं० स्त्री०) चर्मकषा वृक्ष, चमरखा ।

मृत्ताल (सं० क्ली०) मृदं तालयति प्रतिष्ठापयतीति तल्-णिच् , (कर्मण्यण् । पा ३।२।१) इति अण् । आढ़की, अरहर ।

मृत्तालक (सं० क्ली०) मृत्ताल संज्ञायां कन् । १ आढ़की, अरहर । २ सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन ।

मृत्तिका (सं० स्त्री०) मृदेव इति मृद्- (मृदस्तिकन् पा ५।४।३९) स्वार्थे तिकन्, स्त्रियां टाप् । १ तुवरी, अरहर । (राजनि०) २ मृद्, मिट्टी । पर्याय—मृदा, मृति । (भरत)

मृत्तिकाविज्ञानकी उत्पत्ति विशेषतया वास्तुविद्या और कृषिविद्याकी उन्नतिके लिये हुई है । कैसी मिट्टीमें कौन कौन उद्भिद् अच्छी तरह लग सकता है और उस मिट्टीके गुण तथा उत्पादिका-शक्ति कैसी है, इत्यादि विषयोंकी कृषिवेत्ताओंने पर्य्यालोचना की है । वास्तुशास्त्रज्ञ स्थपति (Engineer)-गण अट्टालिका, प्रासाद और देवमन्दिरादि निर्म्माण करनेके समय मिट्टीकी स्थिरताका पर्य्यवेक्षण कर उनकी नींव डालते हैं । मिट्टी यदि बलुई अथवा हलकी हो तो दीवार बैठ जानेका बहुत डर रहता है, इसी कारण वे लोग मिट्टीकी तहोंके गुणागुण जान कर गृह-निर्म्माण किया करते हैं ।

हिन्दुओंके प्राचीन वेदादि शास्त्रोंमें मिट्टीकी पवित्रता आदि गुणोंका वर्णन है । वाजसनेय-संहिताके "यत्पुरुषं व्यदधुः" मन्त्रका पाठ कर वेश्याके द्वारकी मिट्टी ले कर भगवतीका स्नान कराना दुर्गोत्सव पद्धतिमें पाया जाता है । यागादिमें मिट्टीसे वेदी बनानेका आदेश है । गंगा-की मृत्तिकाको तो हिन्दूमात्र पवित्र समझते हैं । मिट्टी-के शिवलिङ्गकी पूजा हिन्दुओंके घर घर होती है । इनके अतिरिक्त नदी, नहर और बड़े बड़े तालावके किनारे-की पवित्र मिट्टीसे देवदेवीकी मूर्त्तियाँ बनाई और पूजी जाती हैं । प्राचीन समयमें मिट्टीकी प्रतिमूर्त्ति (Terra cotta figure) और मृत्फलक (Terra-cotta tablets) बनाये जाते थे, इससे प्राचीन सभ्यजातिके मिट्टीके उत्तम व्यवहारका पता चलता है । बच्चोंके खेलनेकी पुतली तथा रसोईके बरतन आदि विभिन्न मिट्टीसे

बनाये जाते हैं। मकान बनानेकी ईंट दूसरे प्रकारकी मिट्टीसे बनाई जाती हैं।

वैज्ञानिक आलोचनासे पृथिवीके स्तरोंके सम्बन्धमें जो सिद्धान्त पाये गये हैं, पृथिवी और भूमि शब्दोंमें उनके नाम और गुणादि लिखे हैं। विज्ञानिकोंका इसमें एकमत है कि जलवायुके कारण मिट्टी क्रमशः कठिन पत्थरमें परिणत हो जाती है। मिट्टीके विकारसे जिस प्रकार हांड़ी आदि मिट्टीके बरतन तैयार होते हैं उसी प्रकार जलवायु आदिके संयोगसे भूगर्भस्थ मृत्तिकास्तर भी विकारको प्राप्त हो कर पीली मिट्टी सफेद मिट्टी, पत्थर और पीछे हीरकादि मूल्यवान् मणिमें रूपान्तरित हो जाता है। पर्वत, पृथिवी, भूमि और मणि शब्द देखो।

विश्वकर्मप्रकाशमें मिट्टीके श्वेतादि चार वर्ण तथा ब्राह्मणादि श्रेणीविभागका उल्लेख है तो भी भूतत्त्ववेत्ताओंने अध्यवसाय और अनुसन्धान द्वारा पाटलादि भिन्न भिन्न मृत्स्तरोंका अस्तित्व निर्धारित किया है। बालुमय छिद्रवाली मिट्टीसे ले कर, ज्वालामुखीके तरलोद्गारके बने कठिन पत्थर तक क्रमानुसार जितने कठिन स्तर पृथ्वीके गर्भमें पाये जाते हैं उनके नाम जनसाधारणको शायद ही मालूम हों अतएव उनका उल्लेख यहां छोड़ दिया जाता है।

वराहमिहिरकी वृहत्संहितामें भूगर्भस्थ जलसंस्थानके निर्णयके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न तहोंका इस प्रकार उल्लेख है:—

मनुष्यके शरीरमें जैसे रक्तप्रवाहिनी शिराएं रहती हैं वैसे ही पृथ्वीमें भी ऊपर और नीचे जलवाहिका शिराएं हैं। आकाशसे एक ही रंगका और एक ही रसवाला जल नीचे आता है, वही भिन्न भिन्न मिट्टीमें भिन्न भिन्न वर्ण और रसको धारण करता है। जल और मिट्टीका निकट सम्बन्ध होनेके कारण दोनोंकी आलोचना एक साथ की जाती है।

यदि निर्जल स्थानमें बेंतका पेड़ रहे तो उससे तीन हाथ पश्चिम अर्द्ध पुरुष (१२० अंगुल) नीचे पश्चिमके सोतेमें जल बहता है। उससे अर्द्ध पुरुष नीचे पीले रंगका मेढ़क, पीली मिट्टी और पुटभेदक पत्थर इन चिह्नोंके नीचे जल रहता है। जलहीन स्थानमें यदि जामुनका पेड़ रहे तो उससे उत्तर तीन हाथ दूर दो पुरुष नीचे पूर्ववाहिनी शिरा अर्थात् धार रहती है। उस स्थानमें एक पुरुष नीचे लोहगन्धिका मिट्टी और पीला मेढ़क रहता है। जामुनके पेड़से पूरब यदि नजदीकमें वल्मीक हो तो उसके दक्षिणमें दो पुरुष दूर और नीचे स्वादिष्ट जल रहता है। मिट्टी खोदते समय आधा पुरुष नीचे मत्स्य और पारावतके समान चट्टान होते हैं तथा इसकी मिट्टी नीले रङ्गकी होती है और जल प्रभूत परिमाणमें बहुत दिनों तक रहता है। उदुम्बर वृक्षसे तीन हाथ पश्चिमके एक पुरुष नीचे उजला सांप, अंजनके समान पत्थर और उसके नीचे उत्तम जलवाली शिरा रहती है। अर्जुन वृक्षके तीन हाथ उत्तरमें यदि वल्मीक दीख पड़े तो उसके पश्चिम आधा पुरुष दूरमें जल रहता है। मिट्टी खोदते समय आध पुरुषकी दूरी पर उजला गोह, एक पुरुष नीचे धूसरी मिट्टी और उसके नीचे क्रमशः काली, पीली, उजली और बलुई मिट्टी और उसके नीचे अपरिमित जल रहता है। जो निर्गुण्डी वृक्ष वल्मीक पर खड़ा है उससे तीन हाथ दक्षिण दो पुरुष नीचे जमीनमें स्वादिष्ट जल रहता है। उससे भी आध पुरुष नीचे रोहित मछली, उससे नीचे कपिलवर्ण और उससे भी नीचे पाण्डुरवर्णको मिट्टी, फिर बालू और शक्कर तथा शक्करके नीचे जल मिलेगा। यदि बेरके पेड़के पूर्व वल्मीक दिखाई दे तो जानना चाहिये कि वहां तीन पुरुष नीचे जमीनमें जल और जलसे आध पुरुष नीचे सफेद गोह नामक जन्तु है। यदि पलाश-समन्वित बेरका पेड़ रहे, तो तीन पुरुष नीचे जमीनमें पश्चिमकी ओर जल रहता है। फिर उससे भी एक पुरुष नीचे दुन्दुभिका चिह्न दिखाई देगा। बेल और डूमर वृक्ष जहां एक साथ उगे हों, वहांसे तीन हाथ दक्षिण छोड़ कर यदि तीन पुरुष जमीन खोदी जाय, तो जल और उससे आध पुरुष नीचे काला मेढ़क पाया जायगा। काकोदुम्बर वृक्षके समीप वल्मीक दिखाई देनेसे १६॥ फुट नीचे पश्चिम दिग्वाही सोता मिलेगा। इससे भी आध पुरुष नीचे कुछ पाण्डुवर्ण और पीली मिट्टी तथा सफेद पत्थर और

कुमुदके जैसा चूहा अवस्थित है, ऐसा जानना चाहिये। जलहीन देशमें जहां कमीला वृक्ष दिखाई दे, वहां पूरबकी ओर तीन हाथ नीचे पहले दक्षिणवाहिनी शिरा और उसके बाद नीलकमल तथा कबूतरके रंग-सी मिट्टी दिखाई देगी। फिर उससे एक हाथ नीचे खोदने पर अजगन्धि मछली और खारा जल निकलेगा। श्योणक वृक्षसे उत्तर पश्चिम दो हाथ छोड़ कर तीन पुरुष नीचे कुमुद नाम्नी शिरा बहती है। यदि विभीतक वृक्षके दक्षिण वल्मीक रहे, तो उसके पूरब आध पुरुष नीचे सोता बहता है। ५॥ फुट खोदने पर सफेद मिट्टी और केशरके जैसा चमकीला पत्थर मिलेगा। जहां कचनार वृक्षके ईशान कोनमें काला वल्मीक रहे और जहां कुश उगे हों, वहां साढ़े चार पुरुष नीचे अधर्षणीय जल है। करीब छः फुट जमीन खोदने पर कमलोदर सदृश लाल सर्प, कुरुविन्द पत्थर और लाल मिट्टी पाई जायगी। यदि वल्मीक पर सप्तपर्णवृक्ष मिले, तो उससे उत्तर पांच पुरुष नीचे जल है, ऐसा जानना चाहिये। जमीन खोदनेसे आध पुरुष नीचे पीला मेढ़क, हरतालके रंग-सी मिट्टी, अबरकके समान पत्थर और नीचे जलका सोता बहता है।

जिस वृक्षके नीचे मेढ़क दिखाई दे, वहांसे हाथ भर दूर साढ़े चार पुरुष नीचे जमीनमें जल पाया जाता है। वहां नकुल, नोली, पोली और सफेद मिट्टी तथा मेढ़क वर्णका पत्थर मिलेगा। यदि करञ्ज वृक्षके दक्षिण सांपका विल दिखाई दे तो दो हाथ छोड़ कर सोलह फुट जमीन खोदने पर जलका सोता बहता दिखाई देगा। खोदते समय कछुव, उत्तरकी ओर बहनेवाला सोता और पीला पत्थर और उसके बाद फिर स्वादिष्ट जल मिलेगा। महुए वृक्षके उत्तर सांपका विल रहनेसे वहांसे पांच हाथ पश्चिम करीब ५० फुट नीचे जमीनमें जल है, ऐसा जानना चाहिये। जमीन खोदते समय पांच फुट पर सांप, काली मिट्टी, कुलथीके रंगके जैसा पत्थर और जलका सोता मिलता है। यदि तिलक वृक्षके दक्षिण वल्मीक रहे और वहां कुश तथा दूब खूब उगी हो, तो पश्चिमकी ओर पांच पुरुष नीचे पूर्वशिरा होगी। यदि कदम्बके पश्चिम सांपका वास हो, तो वहांसे तीन हाथ हट कर यदि ३० फुट जमीन कोड़ी जाय, तो जलका सोता अवश्य मिलेगा। यदि ताड़ वा नारियल वृक्ष वल्मीक पर खड़ा हो, तो छः हाथ पश्चिम चार पुरुष नीचे जमीनमें दक्षिणवाहिनी शिरा रहती है। कैथ वृक्षके दक्षिण यदि साँपका विल रहे, तो उत्तर सात हाथ छोड़ कर २५ फुट नीचे तक जल मिलेगा। जमीन खोदते समय सांप, काली मिट्टी, पुटभेदक पाषाण उसके बाद सफेद मट्टी और तब पश्चिम तथा उत्तरवाहिनी शिरा नजर आयेगी। अश्मन्तक वृक्षके बाएं बेरका पेड़ या सांपका विल हो, तो वहांसे छः हाथ हट कर २० फुट जमीन खोदने पर जल मिलेगा।

जमीन खोदते समय पहली तहमें कूर्म, धूसरवर्णका पत्थर, बलुई मट्टी और उसके नीचे उत्तर और पूर्वकी ओर बहनेवाला सोता दिखाई देगा। हल्दीके पौधेके बाएं यदि वल्मीक रहे, तो वहाँसे तीन हाथ पूरब हट कर १८ फुट नीचे जमीनमें जल पाया जाता है। खोदते समय पहले नीला सांप, पीली मिट्टी, मरकतके जैसा पत्थर, उसके नीचे काली मिट्टी, पीछे पश्चिमवाहिनी शिरा और उसके बादकी तहमें दक्षिण-वाहिनी शिरा मिलेगी। जलहीन देशमें यदि सजलभूमिके चिह्न दिखाई दें तथा जहां कोमल कुश और दूब उगी हो वहां ३॥० फुट जमीन खोदने पर जल मिलेगा। जहां भार्गी, त्रिवृता, दन्ती, शूकरपादी, लक्ष्मणा और नवमालिकालता हो, वहांसे दो हाथ की दूरी पर तीन पुरुष नीचे जल रहता है। जहां स्निग्ध और लम्बी लम्बी शाखासे युक्त छोटे कदके वृक्ष खड़े हों, वहां जल अवश्य रहेगा। किन्तु जहां सछिद्र पत्र युक्त वृक्ष हों वहां जल विलकुल नहीं है, ऐसा जानना चाहिये। तिल, अमड़ा, वरुणक, भिलावाँ, बेल, तिन्दूक, अंकोल, पिण्डार, शिरीष, अञ्जन, परुषक, वंजुल और अतिवल ये सब सुस्निग्धवृक्ष यदि वल्मीक द्वारा परिवृत हों तो वहांसे तीन हाथ उत्तर साढ़े चार पुरुष नीचे जमीनमें जल रहता है। जहां अतृण क्षेत्र सतृण तथा सतृण क्षेत्र अतृण हो, वहां जलके नीचे धन गड़ा है ऐसा जानना चाहिये। कण्टकी वृक्ष कण्टकशून्य अथवा अकण्टक वृक्ष कण्टकयुक्त होनेसे वहांसे तीन हाथ पश्चिम १७ फुट जमीन खोदने पर जल अथवा धन मिलेगा। जहां जमीनसे कुछ

गम्भीर शब्द सुनाई दे वहां साढ़े तीन पुरुष नीचे उत्तरवाहिनी शिरा रहती है। जिस वृक्षकी एक शाखा झुक गई अथवा पाण्डु वर्णकी हो गई हो उस वृक्षके १८ फुट नीचे जल है, ऐसा जानना चाहिये। जिस वृक्षके फलपुष्पमें विकृति दिखाई दे, उससे तीन हाथ हट कर यदि २२ फुट जमीन खोदी जाय तो जल-स्रोत मिलेगा।

जिस कण्टकारिका लतामें कांटे न हों तथा सफेद फूल लगे हों उसके साढ़े तीन पुरुष नीचे जल है, ऐसा कह सकते हैं। जहां दो शिरवाला खजूरका पेड़ खड़ा हो उसके पश्चिम १६ फुट नीचे जमीनमें जल रहता है। यदि कनियार या सफेद फूलवाला ढाकका पेड़ रहे तो तीन पुरुष नीचे जल मिलेगा। जिस मिट्टीमें उष्मा अथवा धूम है वहां दो पुरुष नीचे जल तथा महाजल-प्रवाहयुक्ता शिरा भी है। जिस खेतकी फसल नष्ट अथवा स्निग्ध और अत्यन्त पीली हो जाती है उसके दो पुरुष नीचे महाशिरा रहती है। यदि पीलूवृक्षके उत्तर वल्मीक रहे, वहांसे पश्चिमकी ओर जल तथा ३० फुट नीचे उत्तरगामिनी शिरा रहती है। खोदते समय पहली तहमें मेढ़क, फिर कपिल वर्णकी मिट्टी और पत्थर तथा उसके नीचे जल मिलेगा। यदि पीलूक वृक्षके पूरब वल्मीक रहे, तो वहांसे साढ़े पांच हाथके फासले पर सात पुरुष नीचे जल है, ऐसा मालूम होता है। खोदते समय पहली तहमें सित और असित वर्णयुक्त एक हाथका सांप और उसके नीचे खारा जल, करीर वृक्षके उत्तर सांपका वास होनेसे उसके दक्षिण जल तथा पहली तहमें पीला बेंग रहता है। यदि रोहितक वृक्षके पश्चिम सर्पनिवास रहे तो उसके दक्षिण तीन हाथकी दूरी पर ६२ फुट जमीन खोदनेसे क्षार-समन्विता पश्चिमवाहिनी शिरा पाई जाती है। इन्द्रतरुके पूर्व वल्मीक दिखाई देनेसे उसके पश्चिम हाथ भरकी दूरी पर ८० फुट नीचे शिरा मिलती है। खोदते समय पहली तहमें कपिलवर्णका गोह नामक जंतु मिलेगा। यदि सुवर्ण नामक वृक्षके वाम भागमें सर्पका बिल रहे, तो दक्षिणकी ओर दो हाथ हट कर पन्द्रह पुरुष नीचे जल रहता है। खननकालमें २ फुट नीचे खारा जल, नकुल, तांबेके जैसा पत्थर और लाल मिट्टी पाई जाती है। उसके नीचे दक्षिणवाहिनी पृथिवीकी शिरा बहती है। यदि बेर और रोहित नामक वृक्ष एक साथ मिल कर उत्पन्न हुए हों और वहां वल्मीक न रहे, तो तीन हाथ पश्चिम हट कर ५० फुट नीचे जल रहता है। जमीन खोदते समय पहली दक्षिणवाहिनी शिरासे स्वादिष्ट जल बहती है तथा दूसरी शिरा उत्तरकी ओर चली गई है। वहां पत्थर, सफेद मिट्टी और बिच्छू रहता है। यदि बेर और करील वृक्ष एक साथ अवस्थित हो, तो तीन हाथ पश्चिम १०० फुट जमीन खोदने पर ईशानवाहिनी प्रचुर जलसे युक्त शिरा मिलेगी।

बेरवृक्ष पीलूवृक्षके साथ उत्पन्न होनेसे तीन हाथ पूर्व ११० फुट नीचे खारा जल रहता है। जहां ककुभ और करील अथवा ककुभ और बिल्ववृक्ष एकत्र संयुक्त हो, वहांसे दो हाथ पश्चिम पचीस पुरुष नीचे जल है, ऐसा जानना चाहिये। जहां वल्मीकके ऊपर पोली दूब और कुश उगे हों, वहां यदि कुआँ खोदा जाय, तो १२० फुट नीचे जल मिलेगा। जहां वल्मीकके ऊपर भूमिकदम्ब और दूब देखी जाय, वहांसे तीन हाथके फासले पर पचीस पुरुष नीचे जल पाया जाता है। जहां तीन वल्मीकके मध्य कई तरहके वृक्षोंके साथ रोहितकवृक्ष रहे वहां १८ फुट नीचे जल है, ऐसा जानना चाहिये। जहां कई गांठवाला शमीवृक्ष हो और उसके उत्तर वल्मीक रहे, वहांसे पांच हाथके फासले पर पचास पुरुष नीचे जल है। एक स्थानमें यदि पांच वल्मीक रहे और बीचका वल्मीक पीला दिखाई दे, तो वहां पचपन पुरुष नीचे शिरा मिलेगी। जहां पलाशके साथ शमीवृक्ष उगा हो वहां पश्चिमकी ओर साठ पुरुष नीचे जल रहता है। जमीन खोदते समय वहां सांप और बलुई पोली मिट्टी मिलेगी। जहां श्वेत रोहितवृक्ष वल्मीक द्वारा परिवृत हो, वहांसे एक हाथ पूर्व सत्तर पुरुष परिमित जमीन खोदने पर जल पाया जायगा। जहां कांटोंसे युक्त सफेद शमीवृक्ष हो, वहां थोड़ी दूर दक्षिण दो फुट नीचे जल रहता है, किन्तु करीब डेढ़ फुट जमीन खोदने पर सांप मिलेगा। जामुन तथा त्रिवृत्, मूर्वा, शिशुमारी, सारिवा, शिवा, श्यामा, वीरुधी, वाराही, ज्योतिष्मती, गरुड़वेगा, शूकरिका, माप-

पर्णी और व्याघ्रपद ये सब लताएं यदि वल्मीकके ऊपर हों तथा वहां सांप रहते हों, तो वल्मीकसे तीन हाथ उत्तर अठारह फुट नीचे जल रहता है। किन्तु जंगलमें उक्त लक्षण रहनेसे तीन फुट नीचे और मरुदेशमें चालीस फुट पर जल मिलेगा।

जहां तृण, वल्मीक और गुल्म आदि कुछ भी न हो तथा एक-वर्णा भूमि पर जहां विकार दिखाई दे वहां जल रहता है, ऐसा जानना होगा, जहांकी भूमि स्निग्धा और निम्ना, वालुका-समन्विता और शब्दयुक्ता हो वहां पचीस या तीस फुटकी गहराई पर जल रहता है। स्निग्ध वृक्षों के दक्षिण चार पुरुषमें जल रहता है। जिस अङ्गलमय और जलाभूमिमें पृथिवी धंस गई हो, उसके एक पुरुष नीचे जल पाया जाता है अथवा जहां विना किसी प्रकार घरके कीड़े मकोड़े रहते हों, वहां एक पुरुष नीचे वहुत जल रहता है। जहांकी मिट्टी ठंढी और गरम होगी तथा इन्द्रधनुष, मछली वा वल्मीक रहेंगे वहांसे चार हाथ हट कर ३॥० पुरुष नीचे जमीनमें शीतोष्ण जल है, ऐसा जानना चाहिये। वल्मीककी पंक्तिमें यदि एक वल्मीकका मस्तक अत्यन्त उन्नत हो तो उसके नीचे शिरा रहती है। जहां अनाजके बोये सूख जाते अथवा अंकुरित नहीं होते वहां भी जल रहता है। फिर न्योग्रोध, पलाश और डूमर वृक्ष जहां एक साथ मिल कर उगे हों यहां तीन पुरुष नीचे जल रहता है तथा वट और पीपलके एक साथ होनेसे उत्तरवाहिनी शिरा रहती है। गांव या शहरके अग्नि कोणमें कुआं रहे, तो वह कुआं हमेशा भय या दाहजनक होता है। नैर्ऋत कोणमें कुआं रहनेसे वालकक्षय और वायुकोणमें रहनेसे स्त्रीभय होता है। इन तीन दिशाओंको छोड़ कर वाकी दिशाओंमें कूपका रहना शुभप्रद है।

जहां पादप, गुल्म और वल्ली स्निग्ध और निच्छिद्र पत्रयुक्त हों अथवा कुश, नल और नालिक रहे, वहां शिरा पाई जाती है। जहां खजूर, जामुन, अर्जुन, बेंत, दूध-वाला पेड़, गुल्म और वल्ली अथवा नाग, शतपत्र, नीप, नक्तमाल, सिन्धुवार, विभीतक या मदयन्तिके वृक्ष हों वहां ३ पुरुष नीचे जल रहता है तथा जहां पर्वतके ऊपर पर्वत है, वहां भी ३ पुरुष नीचे जल रहेगा। जो मिट्टी मौअफ, काश और कुशसमन्वित, नीलवण और शर्करा युक्त है अथवा जिस स्थानकी मिट्टी लाल और काली है, वहां वहुत स्वादिष्ट जल रहता है। जहांकी मिट्टी शर्करायुक्त और ताम्रवर्णविशिष्ट होगी वहांका जल खारा होगा। फिर कपिलवर्णको होनेसे कषाय-जल, कुछ पाण्डुवर्णकी होनेसे खारा और नीलवर्णकी होनेसे स्वादिष्ट जल मिलेगा। जहां शाक, अश्वकर्ण, अर्जुन, विल्व, सर्ज, श्रीपर्णी, अरिष्ट, धव और शीशमके पेड़ोंके पत्ते फटे अथवा रूखे हों वहां आस-पासमें जल नहीं रहता, पर दूरमें रह सकता है। जहांकी मिट्टी सूर्य, अग्नि, भस्म, ऊंट और खच्चरके रंग-सी हो वहां विलकुल जल नहीं रहता। यदि अंकुर लाल वा क्षीर युक्त हों तथा पृथिवी लाल रंगकी दिखाई दे, तो पत्थरके नीचे भी जल रहता है।

जहां वैदूर्य्यवर्ण, मूंग और मेघ सदृश मेचक (श्यामवर्ण) वर्णयुक्त वा पाकोन्मुख उदुम्बर सदृश अथवा भृङ्ग और अञ्जनकी तरह आभाविशिष्ट या कपिल-वर्णकी शिला रहे उसके समीप प्रचुर जल है, ऐसा जानना होगा। जो शिला कबूतर, मोम, घीके समान अथवा क्षौमवस्त्रके रंगकी अथवा सोमलताके रूपकी हो, वहां अक्षय जल पाया जाता है। ताम्रसमेत विचित्र पृषत द्वारा कुछ पाण्डुवर्ण, भस्म, ऊंट और खरके समान भृङ्ग वा आंगुष्ठिक पुष्प सदृश अथवा सूर्य और अग्निकी तरह वर्णविशिष्ट शिला जलविहीन होती है। जो शिला चन्द्ररश्मि, स्फटिक, मौक्तिक और हेम सदृश रूपविशिष्ट वा इन्द्र-नीलमणि, हिंगुल और कज्जलकी तरह आभायुक्त अथवा उदयकालीन सूर्यकी किरण और हरतालकी तरह आभाविशिष्ट हो, वह शुभप्रद मानी जाती है।

ऊपर भूगर्भस्थ जिन जलस्रोतों और तहोंका उल्लेख किया गया वे मिट्टीके साथ असम्बन्ध भावमें सन्नि-विष्ट होने पर भी यथार्थमें मिट्टी और मिट्टीके विकार पत्थरोंकी तहके साथ अच्छी तरह सन्निविष्ट हैं। सच्छिद्र मिट्टीकी तहमें ही (Porous layers of earth) जलकी आभ्यन्तरिक गति होती है, शायद यह सभीको मालूम होगा। वृहत्संहितामें स्तरादिका नामनिर्देश नहीं रहने पर भी अनुमानसे उनकी कल्पना की जाती है।

वास्तुशास्त्रमें घर बनानेके लिये ब्राह्मणके लिये उत्तर-प्लव, क्षत्रियके लिये पूर्वनिम्न, वैश्यके लिये दक्षिण निम्न और शूद्रके लिये पश्चिम निम्न भूमि ही प्रशस्त कही गई है। ब्राह्मण सभी स्थानोंमें वास कर सकते हैं, किन्तु शेष तीन वर्णोंको अपने अपने निर्दिष्ट शुभस्थानमें ही वास करना चाहिये। यदि घरके आस पास वल्मीक तथा बहुतसे गड्ढे हों, तो वह स्थान विशेष विपज्जनक है। घरके मध्य एक हाथ गोल गड्ढा खोद कर उसी मट्टीसे पीछे उसे भर दे। यदि मिट्टी कम हो जाय, तो वह स्थान अनिष्टकर समझा जाता है, अतः वहां वास करना उचित नहीं। गर्त्तमें जो सफेद, लाल, पीली और काली मिट्टी दिखाई देती है वह यथा क्रम ब्राह्मणादि चारों वर्णके लिये शुभप्रद है। घृत, रक्त, अन्न और मद्यतुल्य गन्धवती भूमि ब्राह्मणादि चारों वर्णके लिये मङ्गलकारक; कुश, शर, दूर्वा और काश विशिष्ट तथा मधुर, कषाय, अम्ल और कड़ुई स्वादवाली भूमि भी ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये हितकर है।

उपरोक्त विवरण पढ़नेसे स्पष्ट अनुमान होता है, कि पूर्ववर्त्ती हिन्दू स्थपतिगण मिट्टीके वर्ण, रस और उसके ऊपर उत्पन्न उद्भिज्जादिकी प्रकृति निर्णय कर मिट्टीकी तहकी दृढ़ता और गृहनिर्माणको उपयोगिता निर्वाचन कर लेते थे। वालुकाप्रधान ऊपर भूमिमें घर नहीं बनाना चाहिये। जिस स्थानकी मट्टी जलीय रससिक्त नहीं अथवा जिस स्थानके समीप जलाशयादि वा भूगर्भस्थ जलवाहिका प्रणाली बहुत नीचे बहती है, वहां भी घर बनाना उचित नहीं। वास्तु शब्द देखो।

कृषिकार्य (Agriculture) चलाने अथवा उपवन लगानेके लिये मिट्टीके बलाबलका अवश्य विचार करना चाहिये। प्रस्फुटित पुष्पभाराभरणभूषित, प्रचुर फल-शालिनी, सुस्निग्ध त्वक् द्वारा आच्छन्न, असत् पक्षि-परिशून्य और प्रशस्त संज्ञाप्राप्त सतेज तरुराजिकी छाया द्वारा जो भूमि समतल है, जहां देव, ऋषि, द्विज, साधु और सिद्धगण वास करते हैं; जो सत् पुष्प और शस्य-परिव्याप्त, स्वादिष्ट और निर्मल जलपूर्ण, आह्लादयुक्त तथा सुन्दर हरिद्वर्ण नवतृण द्वारा परिशोभित है ऐसी उर्वर भूमि ही जनसाधारणके लिये प्रिय और शुभकर है। जो स्थान छिन्न, भिन्न, दग्ध, कण्टकयुक्त, रूक्ष, कुटिल, वृक्ष-समन्वित, क्रूरपक्षियुक्त, निन्द्यसंज्ञित, शुष्क, शीर्ण और बहुपर्णरूप वर्मसमन्वित वृक्षोंसे समाच्छादित है ऐसा स्थान कृषि और उद्यानके लिये अशुभप्रद है।

जहां चतुष्पथ, श्मशान सदृश शून्यगृहयुक्त, अमनोज्ञ, विषम, सर्वदा ऊपर (क्षार मृत्तिकायुक्त) अवस्कर, अङ्गार, नृकपाल, भस्म, तुष और शुष्क तृण द्वारा व्याप्त तथा प्रव्रजित, नग्न, नापित, धूर्त्त, रिपु, बंधन, सौनिक, श्वपच, शठ, यति और पीड़ित लोकसमन्वित अथवा आयुध और मद्यविक्रययुक्त स्थान विशेष शुभकर नहीं है।

कृषकगण उर्वरताशक्ति बढ़ानेके लिये मट्टीमें तरह तरहकी खाद देते हैं। धान आदि अनाज उपजाने तथा वृक्षादि रोपनेके लिये उपरोक्त जो सब स्थान स्वभावतः उर्वरा है वहां खाद देनेकी जरूरत नहीं पड़ती। एकमात्र अनुर्वर जमीनमें ही खाद दी जाती है। कभी कभी उर्वरा जमीनमें भी इसलिये खाद दी जाती है जिससे अनाज खूब उत्पन्न हो। सड़ी मछली वा मांस, सरसों, रेंड़ी, तीसी आदिकी भूसी, गोबर और विष्ठा आदिको मिट्टीमें सड़ा कर पीछे खेतमें देनेसे उर्वराशक्ति बढ़ती है।

जलाशयके प्रान्तभागमें वाटिका लगाना उचित है। मुलायम मिट्टीमें वृक्ष हरे भरे रहते हैं। ऐसी मिट्टीमें यदि तिल बोया जाय तो काफी उपजता है। कटहल वृक्ष-के काण्डमें गोबर लेप कर उसे लगाया जाता है।

मिट्टीमें कीटादिके रहनेके कारण वृक्षादि नष्ट हो जाते है। अतः कीटोंसे बचानेके लिये मिट्टीमें अथवा वृक्षके तलमें नाना प्रकारके पदार्थ दिये जाते हैं। घृत, उशीर, तिल, मधु, विड़ङ्ग, क्षीर और गोबर द्वारा वृक्ष-मूलको लेप कर उनका संक्रमण और विरोपन करे। बकरे और भेड़की विष्ठाका चूर्ण २ आढ़क (४ सेर= १ आढ़क), तिल १ आढ़क, सत्तू १ प्रस्थ (आढ़कका चतुर्थांश), जल १ द्रोण और उतना ही गोमांस; इन्हें सात रात बासी करके वृक्षलता गुल्मादिमें सेक देनेसे फलपुष्पकी वृद्धि होती है। कुलथी, कलाय, मूंग, तिल और जौके सत्तूको जमीनमें देनेसे भी उर्वरा शक्ति बढ़ती है। वृक्ष शब्द देखो।

कृषक लोग खेतोंको जोत कर मिट्टी उखाड़ते हैं। पीछे चौकी दे कर उसे समतल बना देते हैं। आवश्यकतानुसार वा शस्यबीजके तारतम्यानुसार उस जमीनमें खाद दी जाती है। धान्यादि फसलोंके लिये नदी-तटकी पंकी मिट्टी ही बहुत उपयोगी है। कड़ी या बलुई मिट्टीमें धान उतना नहीं लगता, पर तरबूज आदि खूब लगता है। ईंट आदि बनानेमें भी इस प्रकारको मिट्टी उपयोगी है।

काली मिट्टी (Black cotton soil)-में कपास अधिक लगती है। तिलक मिट्टी वा गोपीचन्दनका वैष्णव लोग तिलक लगाते हैं। प्रासादादिको रंगनेमें हल्दी रंगकी पला मिट्टी (Yellow earth) और लोहित वर्णकी गेरूमिट्टी साधारणतः व्यवहृत होती है। इससे साधु पुरुष और अवधूतोंका गैरिक वस्त्र रंगाया जाता है। गिरिव्रजपुर (राजगृह) में लोहित वर्णकी मिट्टी देखी जाती है। वहांके अधिवासियोंका विश्वास है, कि भीम द्वारा जरासन्ध मारे जाने पर उसीके रक्त मिलनेसे मिट्टी लोहितवर्णकी हो गई है। वर्द्धमानको 'रांगा मिट्टी'-का हाल हम लोग बचपनसे ही सुनते आये हैं। वैज्ञानिक परीक्षा द्वारा साबित हुआ है, कि लोहेका अंश रहनेके कारण इसका ऐसा वर्ण हो गया है। क्रिटेसस (Cretaceous) पहाड़ी युगस्तर पर खड़ी मिट्टी पाई गई है। क्रीट-द्वीपमें पहले पहल इस क्रोटन मिट्टीका उद्भव देख कर पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने इसका ऐसा नाम रखा है। यह औषधार्थ तथा प्रासाद रंगनेके काममें आती है। हल्दी रंगको पेउड़ी मिट्टी हाइड्रास सेसकुइ अक्साइड (Hydras sesquioxide) योगसे उत्पन्न है। हरिताल मिट्टी खनिज मिट्टीका विकारमात्र है। औषधके लिये इसका अधिक प्रयोजन होता है। हरतालकी भस्म शर्दीकी एक महौषध कही गई है। सज्जी मिट्टी (fuller's earth) वा रजक मिट्टी वस्त्रादिको सफेद करनेमें काम आती है। राजपूतानेसे इस सज्जी मिट्टीकी अधिक आमदनी होती देखी जाती है। इससे मैले कपड़े साफ किये जाते हैं।

ऊपर गङ्गामृत्तिकाका माहात्म्य कहा जा चुका है। गङ्गातट परको बलुई मिट्टीमें भी खेतीवारीका अभाव नहीं है। इसका प्रधान गुण कुष्ठादि दुरूह चर्मरोग-नाशक है। जब अनेक प्रकारकी औषध खाने पर भी शरीरका रक्त विशुद्ध हुआ न दिखाई दे, तब भक्तिपूर्वक सारे शरीरमें गङ्गाकी मिट्टी लगानेसे भारी उपकार होता है। दारुण ग्रीष्मके समय शरीरमें फुंसियोंके निकल आने अथवा तीव्र सुरापान द्वारा शरीरका रक्त उत्तप्त हो जानेके कारण खुजली आदि होनेसे दिनमें दो बार गङ्गाकी मट्टी लेपे, बहुत उपकार होगा। हिन्दू लोग हरि मिट्टी (तुलसी वृक्षकी निम्नास्थ मिट्टी)-को रोगारोग्यका निदान समझ कर भक्तिपूर्वक उसे खाते हैं।

अगर हमेशा मट्टी खाई जाय, तो पाण्डुरोग होता है। (निदान)

शौचार्थ अर्थात् मलमूत्र त्याग करके विशुद्धिताके लिये मिट्टीका व्यवहार करना होता है। यह मिट्टी पांशुल स्थान, कर्दम मार्ग, उपरदेश, दूसरेके शौचावशेष, देवायतन, कूप, गृह और जलसे ग्रहण नहीं करनी चाहिये। जलाशयादिके किनारेसे मिट्टी ले कर शौच-कार्य करना उचित है।

"आहृत्य मृत्तिकां कूलाल्लेपगंधापकर्षणाम्।
कुर्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः॥
नाहरेत् मृत्तिकां विप्रः पांशुलान्न च कर्दमात्।
न मार्गान्नोषराद्देशाच्छौचशिष्टां परस्य च॥
न देवायतनात् कूपात् गेहान्न च जलात्तथा।
उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः॥"

(कूर्मपु० उपवि० १२ अ०)

स्नान करनेके समय शरीरमें मट्टी लगा कर स्नान करना चाहिये। इसका विधान इस प्रकार लिखा है—लिङ्गदेशमें तथा नाभिके अधोभागमें दो बार, अधोभागमें तीन बार, शरीरमें छः बार, दोनों पैरमें छः बार, कटिदेशमें तीन बार, दोनों हाथमें दो बार मट्टी लगा कर पीछे शरीरप्रक्षालनके बाद, दो बार आचमन करे* अनन्तर

* मृदा प्रक्षाल्य लिङ्गन्तु द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि।
अधश्च तिसृभिः कार्य षड्भिः पादौ तथैव च॥
कटिश्च तिसृभिश्चापि हस्तयोर्द्विश्च मृत्तिकाः।
प्रक्षाल्य कायं हस्तौ च द्विराचम्य यथाविधि।
ततः सम्मार्जनं कृत्वा मृदमेवाभिमन्त्रयेत्॥" (अग्निपु०)

निम्नोक्त मन्त्रसे मृत्तिका अभिमन्त्रण करना आवश्यक है। मन्त्र इस प्रकार है,—

"अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेनामितबाहुना॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम्।
मृत्तिका ब्रह्मदत्तासि प्रजया च धनेन च॥
मृत्तिके त्वाञ्च गृह्णामि काश्यपेनाभिमन्त्रिताम्।
मृत्तिके जहि मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
त्वया हृतेन पापेन ब्रह्मलोकं व्रजाम्यहम्॥" (अग्निपु०)

मृत्तिकालवण (सं० पु०) क्षारमृत्तिका, मिट्टीका लोना। पुराने घरोंकी मिट्टीकी दीवारों पर सीड़ होनेसे एक प्रकारका नमक लग जाता है उसीको मृत्तिकालवण कहते हैं।

मृत्तिकावती (सं० स्त्री०) नर्मदातीरस्थ प्राचीन नगरभेद। (भारत वनपर्व २५३१८) तेसियसने (Ptesias)ने इस नगरका मार्तिखोरा (Martikhoras) नामसे उल्लेख किया है।

मृत्तिजतैल—भूगर्भनिःसृत तैलभेद, पृथ्वीके भीतरसे निकला हुआ एक प्रकारका तेल (Mineral oils), मिट्टीका तेल। भिन्न भिन्न देशमें इसका भिन्न भिन्न नाम है। दाक्षिणात्य—मट्टिकातैलम्, माट्टिकातैल; बंगाल—मेटेतेल; नेपाल—काला शिलाजित् (शिलाजतु), कुमायुन—शिलाजित् (Bitumen); मराठी—मट्टि-चा-तेल, गुर्जर—मट्टि नु-टेल; तामिल—मन येन्नी, मानतैलम्; तेलगू—मण्डितैलम्, भूमितैलम्, मण्डि-नूने; कणाड़ी—मुन्नुयान्ने; मलय—मन तैलम्, वर्म्मा—ये-नो, येना, येनान्; संस्कृत—पृथ्वीतैलम्; अरबी—निफ्त्, काफ्राल-याहुद; फारसी—काफ्राल-याहुद; चीन—थि-यु; जापान—केसोसेना-आवरा; सुमात्रा—जापु; फ्रेंच—*Petrole*; जर्मन—Stein-ol; अङ्गरेजी—*Petroleum* या Rock-oil।

पहाड़ अथवा पहाड़ी-भूमिसे तेल जैसा एक गाढ़ा पदार्थ निकलता है जिसे साधारणतः पहाड़का पसीना कहते हैं। पहले यह वातादिकी पीड़ा दूर करनेके काम आता था परन्तु आजकल औषधमें इसका बहुत कम प्रयोग होता है। पृथ्वीके प्रायः सभी भागोंमें यह पहाड़ी तेल पाया जाता है। स्थानभेदसे इसकी आकृति और प्रकृतिमें अन्तर दीख पड़ता है। कठिनतम शिलाजतु (Bitumen)-से तरल नापथा (Naptha)-के बीच और भी अनेक पृथ्वीजात तैलकर पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है, उनमें मृत्तिजतैल (*P*etroleum)-को मध्यम श्रेणीमें रख सकते हैं। वर्ण और गठित पदार्थकी विषमताके अनुसार इनके भेद निश्चित किये जाते हैं। बिटुमेन या शिलाजतुकी कठिनताके भेदोंके अनुसार उन पदार्थोंके भिन्न भिन्न नाम रक्खे जाते हैं। उनके आकरिक पिच् (Mineral Pitch), आस्फाल्ट (Asphalte) पिसस्फाल्टम् (Pisasphaltum) आदि नाम हैं। उनका वर्ण अत्यन्त काला होता है। नापथा नामक एकदम तरल तेलका वर्ण अपेक्षाकृत फीका होता है। किरोसिन्, पाराफिन् आदि कोयलेके खनिज तेलकी तरलताके साथ साथ वर्णमें भी अन्तर पड़ता है। पेट्रोलियम नामक पहाड़का तेल ऊपर लिखे खनिज तेलकी अपेक्षा गाढ़ा और लसलसा तथा उसका वर्ण हल्दीके जैसा कुछ पीला होता है।

उत्तर-भारतके अनेक स्थानोंमें, आसाम, वर्म्मा, बेलुचिस्तान, फारस; ककेसस्की पहाड़ीभूमि, जर्जिया, पिनसलभिनिया, भर्जिनिया, वेस्ट इण्डिज द्वीप, उत्तर अमेरिकाके अनेक स्थानोंमें विशेषतः यूनाइटेड् ष्टेट्सके पेलिओजाइक पर्वत, डान्यूब नदीके उत्तर भूभाग, इटली, बभेरिया, हनोवर, जाण्टे, स्वीजर्लैंड, इंगलैण्ड, फ्रान्स और चीनसाम्राज्यके भिन्न भिन्न स्थानमें यह तेल भूगर्भसे निकाला जाता है।

शिलाजतु और मिट्टीके तेलका व्यवहार आयुर्वेदमें बतलाया गया है। प्राचीन पाश्चात्य सभ्यसंसारमें भी पहाड़ी तेल प्रचलित था। हिरोदोतसने जासिन्थस् (Zacynthus या Zante)-के प्रस्रवणका उल्लेख किया है। अरब और पारसी जातिके प्राचीन विवरणमें हिट्की तैल-निर्झरिणीकी कथा लिखी है। प्लिनि और डाइओकोराइडिस्ने बत्ती जलानेके काममें आनेवाले जिस एग्रिगेण्टस तेलका उल्लेख किया है, वह उस समय "सिसिलीय तैल"के नामसे प्रचलित था। चीनराज्यके प्राचीन कागजपत्रोंमें पेट्रोलियमके प्रस्रवणका उल्लेख पाया जाता है। मार्कपोलो और उसके पूर्वके परि-

व्राजकोंके भ्रमणवृत्तान्तमें कास्पियन सागरके किनारेके समीप भूभागमें और बकुके अग्निमन्दिरके पास प्रचुर तैलस्रवणका वर्णन पाया जाता है।

उत्तर-अमेरिकाका पेट्रोलियम-तेल संसारके प्रायः सभी देशोंको प्रकाश देनेके काममें आता है। आजकलकी बत्तीवाली तरह तरहकी लालटेनोंमें प्रायः पेट्रोलियम ही जलाया जाता है। भारतीय नारियल या अंडीतेलके दीपक प्रायः लोप हो गये हैं।

१६२६ ई०में अमेरिकाके फ्रान्सिस्कन् मिसन सम्प्रदायने यहांके पहाडी तेलका अस्तित्व उल्लेख किया है। भारत-वासी इस तेलका व्यवहार बहुत पहलेसे जानते थे। वर्म्मा के रहनेवालोंको अपने देशके तैलकूप और उस तेलका व्यव हार ईसामसीहके जन्मके बहुत पहले हीसे मालूम था।

पञ्जावप्रदेशके शाहपुर जिलेके दुमा, चिन्नूर और हंगुच गांव ; झेलम जिलेके सद्रियाली और सुलगी गांव ; वन्नु जिलेकी वड़कटा नदीके किनारे अलगद गांव ; कोहाट जिलेके पनोबा प्रस्रवण ; रावलपिण्डी जिलेके दुल्ला, जाफर, वोयारी, चारहुत, गुंडा, लुंडिगढ़, वसला, चिरपाड़ और राटा ओतर नामक स्थानमें नाना प्रकारके पार्वतीय निःस्राव पाये जाते हैं। कहीं तो वह अलकतरा या अस्फल्टके जैसा काला और गाढ़ा और कहीं कुछ पोला होता है। वहांके रहनेवाले उस तेलको जलाने तथा औषधरूपमें मालिश करनेके काममें लाते हैं। हजारा जिलेके सेरा पर्वत पर तीन प्रस्रवण हैं; उनसे नारंगीके रेशे जैसा एक प्रकारका सफेद पदार्थ निकलता है जिसकी गंध किरोसिन या पेट्रोलियमकी जैसी कड़ी नहीं होती, वरन् मीठी होती है। वह गोंदके जैसा (Mucilaginous) दिखाई देता है। किसी किसी निःस्रावमें सल्फेट आव् आयरन पाया जाता है।

कुमाउन जिलेकी रामगंगा और सरयूनदीके बीच चूना पहाड़के छिद्रोंसे शिलाजतु निकलते देखा जाता है। वह औषध हीके काममें आता है।

आसाम-विभागके डिहिंग नदीके उत्तर तिपन् पहाड़ तथा डिहिंग और डिसंग नदियोंके बीचकी पर्वतमाला, दिराक् और तिराप नदीके बीच कोयलेकी खान, तिरापके पूर्ववर्त्ती भूभाग तथा बड़िडिहिंगके किनारे सुकोङ्ग नामक स्थान, नामरूप नदीके किनारे नामरूप और नामचिक् नदीके किनारे नामचिक नामक मैदानमें मिट्टीके तेलका प्रस्रवण पाया जाता है। उनका तेल तरल, कृष्णवर्ण और कड़ी गंधवाला होता है। उनका आपेक्षिक गुरुत्व ·६७१ है। वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा उसे परिष्कार कर लाल-टेनोंमें जलनेयोग्य (*Lamp oil*) बनाया जाता है। किसी किसी पार्वत्य निर्यासको चुआ कर उसके पाराफिन्स् नामक कठिन भागको निकाल कर उससे मोमबत्तियां बनाई जा सकती हैं। चुआनेके समय जो गाद रह जाती है उससे Lubricating oil (जो तेल इंजिन या कलपुर्ज़ोंमें दिया जाता है) तैयार होता है। तैलकूपमें सल्फ्यूरेटेड् हाइड्रोजन वाष्प अथवा तेलमें गन्धकका अस्तित्व पा कर इस देशके लोग इसे कभी कभी 'गन्धकका तेल' कहा करते हैं।

हिमालयके नीचे तियोक नदीके किनारे (अक्षा० २७° ३० तथा देशा० ९५° ५′ पू०के बीच) मिट्टीके तेल मिलनेवाली पत्थरकी तह दिखाई देती है। इसके अलावे तिरु, सफ्राइ, दिखु, और हिलजान नामक पहाड़ी झरनों की रेतीली जमीनमें भुरभुरा पत्थर (Sand-Stone), कोयला (Coal , पाइरिटस् (*Pyritous*) और कार्बनिसस् (Carbonaceus shales) एवं लखिमपुर जिलेके दिग्रोइ नामक स्थानमें तैल भाण्डार आविष्कृत हुए हैं।

अलवरप्रदेशके तिजारा नामक स्थानमें शिलाजतु सम्बन्धी जो तेल निकलता है उसमें परीक्षा करनेसे २५·५६ भाग विटुमेन और ३·७२ भाग कार्बन पाया गया है। निःस्रावविशेषमें ३०से ले कर ६० भाग तक जलनेवाले पदार्थ (Combustible matter) पाये जाते हैं।

कच्छप्रदेशके मोहुर, जुलेराइ और लुकपत् नामक स्थानके सव् न्युमालिटिक और उसके नीचे भूस्तरमें (Sub-numulitic and next succeeiding beds) रजन और शिलाजतु मिश्रित पदार्थ पाया जाता है। इस देशके लोग उसे धूनेकी तरह देवमन्दिरादिमें जलाते हैं।

बेलुचिस्तानके मोरि पहाड़के खट्टान नामक स्थानमें

तेलका एक बड़ा कूप है। उस मिट्टी तेलकी गन्ध प्रायः गन्धककी जैसी है। उस खानसे प्रतिवर्ष प्रायः ५० हजार पीपा तेल वाणिज्यके लिये अनेक देशोंमें भेजा जाता है। गाढ़ा और लसलसा होनेके कारण उस तेलको निकालनेमें बड़ी कठिनाई होती है। उसका आपेक्षिक गुरुत्व सबसे अधिक है। २८०° फोरेन्हिटके उत्तापसे वह जल सकता है। उसमें हाइड्रोकार्बन न रहनेके कारण यह जलनेके तेल रूपमें व्यवहृत नहीं होता। इंजिन, कल पुरजे आदिमें यह तेल (lubricate) दिया जाता है। इसका फी सैकड़ा ५० अंश चुआ कर फेंक देनेसे, परिष्कृततेलके ऊपरके प्रथम तृतीयांशका आपेक्षिक गुरुत्व ·९१० तथा शेष अंशका ·९३० होता है। आपेक्षिक गुरुत्वके साथ तुलना करनेसे उक्त परिष्कृत तेलका लसलसापन (Viscosity) अनेक अंशोंमें कम दीखता है। अत्यन्त उत्तप्त वाष्पसे परिष्कार करने पर परिष्कृत तेलका ¼ (अर्थात् अपरिष्कृत तेलका ⅛) अंश जो प्राप्त होता है उसका आपेक्षिक गुरुत्व ·९५८ तथा ६०° फा०, उसका गोंद १६८ है (६०° फा० सरसों तेलके गोंद साधारणतया १०० रक्खी जाती है।

डेरा इस्माइल खांके निकट शिराणी पर्वतके चिन्खेल ग्राममें मिट्टीसे तेल निकाला जाता है, (१५°५° सेन्टि०) उसका आपेक्षिक गुरुत्व ·८२०६ तथा ज्वालनमात्रा ९१° फा० है। यह हल्दी रंगका सुगंधयुक्त तेल बहुत कुछ वाणिज्यके लिये परिष्कृत रूस देशके तेलके जैसा होता है। पंजाब सरकारसे भेजे गये डा० वार्डेनने एक दूसरे स्थानके तेलकी परीक्षा कर कहा है, कि यह अमेरिका या रसियाके किरोसिन तेलसे किसी गुणमें कम नहीं है।

अफगानिस्तानमें "मोमियाइ" नामका जो मिट्टीका एक प्रकारका तेल (Bituminous product) बाजारमें बिकता है वह असली चीज नहीं है। परीक्षा करनेसे उसमें पक्षी आदिका मल पाया गया है।

वर्म्मा हीमें मिट्टीके तेलके कुएं अधिक पाये जाते हैं। अत्यन्त प्राचीनकालसे उत्तर वर्म्मामें मिट्टीके तेलका व्यवसाय चला आ रहा है। दक्षिण वर्म्मामें भी इस तेलकी खानें हैं। वहाँके रहनेवाले तेल निकाल कर आराकानके निकटवर्त्ती द्वीपोंमें भेजते हैं। आराकान विभागके कौकपो और आकायाव; इरावती विभागके थयेत्माओ और हेनज़ादा तथा उत्तर वर्म्माके दक्षिण विभागके पकोक्कु और मागवे नामक स्थानमें बड़े बड़े तेलके कुएं दीख पड़ते हैं। मेसर्स फिनले, फ्लेमिंग एण्ड को०, वर्म्मा ओयाल को० और आराकान पेट्रोलियम कम्पनी आदि वणिक् सम्प्रदायका जोरों व्यवसाय चल रहा है। इनके अतिरिक्त इस देशवाले भी अनेक खानोंसे तेल निकाल कर व्यापार करते हैं। दुःखकी बात है, कि इस देशके व्यापारियोंका भेजा हुआ तेल उपरोक्त कम्पनियोंके परिष्कृत तेलकी बराबरी नहीं कर सकता।

आराकनके बोरोंगा, लिदौंगा, मिन्बिन्, रामरी और चेडुवा द्वीपमें मिट्टीके तेलका बड़ा कारबार है। उनमें बोरोंगा-ओयाल वर्क्स क० और रमरी-ओयाल-वर्क्स-प्रस्पेक्टिंग कम्पनीने विशेष ख्याति प्राप्त की है।

भिन्न भिन्न स्थानके मिट्टी तेलका वर्ण, मिश्रित पदार्थ, लसलसापन, गन्ध और आपेक्षिक गुरुत्वकी विभिन्नताके कारण उन सबोंकी भिन्न भिन्न रासायनिक प्रक्रियाका यहां उल्लेख नहीं किया गया।

मेसर्स सि. एम, वारने और एफ, एच, छोररने रंगूनके मिट्टीके तेलमें C ९ H १८ से C १३ H २६ तक ओलिफाइन (Olefines) तथा C ७ H १६ से C ९ H २० तक पाराफिन (Paraffins) का अस्तित्व पाया था। इनके अतिरिक्त उन्होंने परीक्षा द्वारा नापथलीन (Naphthalene) और उसके साथ जिलिन् (Xylene) और क्युमिन् देखा था। मेसर्स फिन्ले, फ्लेमिंग एण्ड को०के तेलके नमूनेमें फी सैकड़ा 4½ भाग पाराफिन पाया जाता है। अपरिष्कृत अवस्थामें इस पदार्थकी द्रावणमात्रा (Melting Point) १२५॥ फा० है। अन्य द्रव्योंमें ८१३ आपेक्षिक गुरुत्वकी नापथा (उसकी ज्वालनमात्रा ६७° फा०) तथा लुब्रिकेटिंग और अन्य तैल भाग मिश्रित रहते हैं।

रासायनिक प्रक्रिया द्वारा, वाष्प या उत्तापकी सहायतासे या साधारण चुआनेकी विधिसे परिष्कृत कर

विक्रीके लिये तेल प्रस्तुत किया जाता है। सबसे हलका और तरल तेल साधारणतः धूना, रजन आदिको गोला करनेमें काम आता है। उससे भारी तेल लालटेनों या ष्टीम-बुआयलरमें कोयलेके स्थानमें जलाया जाता है।

मूल मिट्टीके तेलके अंशविशेषसे जो द्रव्य चुआये (Distallates) जाते हैं, नीचे उनकी एक तालिका दी जाती है।

१ रिगोलिन् (Rhigolene)—३०° उत्तापसे खौलने लगता है। इसे (*Boiling Point*) मात्रामें मलनेसे संवेद-राहित्य (Anaesthetic) उपस्थित होता है।

२ पेट्रोलियम इथर (*Petroleum Ether*)— यह केरोसोलिन, रिगोलिन् या शेरवुड् ओयालके नामसे प्रसिद्ध है। ४५° से ६०° डिग्री उत्ताप दे कर चुआनेसे वर्णहीन उत्तम तेल निकलता है। उसमें मिट्टीके तेल की बहुत कम गंध रहती है। ५०°—६०° उत्तापमाला और आपेक्षिक गुरुत्व ·६६५ है। खुले स्थानमें रखनेसे अक्सिजन निकल जाता और गुरुत्व ०·६७० से ० ६७५ हो जाता है और वह सहज ही जलने लगता है। इसे वात रोगमें मलनेसे दर्द दूर होता है।

३ पेट्रोलियम इथर न० २—६०° से ७०° डिग्री उत्ताप से चुआने पर गेसोलिन और कानाडोल उत्पन्न होते हैं। आपेक्षिक गुरुत्व ०·६६५ ; ७०° से ६०° डिग्री उत्ताप से भी चुआने पर यह तेल पाया जाता है।

४ पेट्रोलियम वेन्‌जिन्—७०° से १२०°के बीच चुआने से प्राप्त होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ·६८० से ०·७००°० सुरासार (Alcohol) भी इससे गल जाता है। यह ६०° से ८०° उत्तापमें जल उठता है। अक्सिजन सोख कर गुरुत्व बढ़ाता है। चर्बी रवर, आस्फाल्ट और टार्पेन्टाइन डाल देनेसे गल जाता है। कोलोफोनि (धूना विशेष), मष्टिक और डामर रेजिन सहज ही गल जाते हैं। खुजली आदि चर्मरोग पर लगानेसे फायदा मालूम होता है तथा उसके कीड़े नष्ट हो जाते हैं। पेटके शूलमें इसको खानेसे लाभ पहुंचता है। दीप जलाने, शारीरतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये मृतशरीरकी रक्षा करने, तेल मलने तथा वार्निस और लैकर (Lacqur) प्रस्तुत करनेमें ही इसका अधिक प्रयोग होता है।

५ लिग्रोयिन्—यह तेल लिग्रोयिन् या वंडर लैम्पमें जलाया जाता है।

६ कृत्रिम तार्पिन तेल, पेट्रोलियम और पौलिशिंग ओयाल—१२०°-१७०° वाष्पीय उत्तापसे चुआये जाते हैं। आपेक्षिक गुरुत्व ० ७४०—० ७४५ है। तीसीतेलयुक्त वार्निसका गोला करने और मुद्राक्षर (Pinter's type) को साफ करनेमें इसका व्यवहार देखा जाता है।

७ इलिमिनेटिंग ओयाल, पेट्रोलियम, केरोसिन, पाराफिन ओयाल, रिफाइंड पेट्रोलियम—दीप जलाने और शीतप्रधान देशोंके रक्षित उपवनों (green house)-को गरम रखनेके काममें इसका व्यवहार होता है। आपेक्षिक गुरुत्व ६·७४ से ० ८१ है। खुले वरतनमें ज्वलनमाला (*Flashing Point*) ६०°-११० फा० ; दीपनमाला ११०° १३०° फा०।

८ लुब्रिकेटिंग ओयाल—आपेक्षिक गुरुत्व ०°·८५० से ० ६११। इसका वर्ण नैलस्फटिकके जैसा कुछ पीला होता है। बादाम, चरवी और सरसोंके तेलको लसलसा करनेके लिये यह मिलाया जाता है। कभी कभी इसमें कठिन पाराफिन भी रहता है।

तेल चुआनेके बाद जो (Residues) बच रहता है उससे प्रायः गैस नामक जलनेवाला पदार्थ बनाया जाता है।

पहले ही लिखा जा चुका है कि केवल पेट्रोलियमको ही मृत्तिजतैल नहीं कहते ; किरोसिन (*Kerosine*) कोयलेका खनिज तेल तथा शिलाजतु आदि अन्यान्य पार्वतीय तेल भी मृत्तिजतैलके अन्तर्गत हैं। किन्तु शिलाजतु काव्यवहार दूसरे प्रकारका है। इसलिये उसका विवरण अन्यत्र दिया गया है। शिलाजतु देखो।

किरोसिन और पेट्रोलियमके गुण, प्रकृति और व्यवहार प्रायः एकसे हैं, इसलिये दोनोंका वर्णन यहां लिखा गया। इस देशके लोग सस्तापनके कारण दीपमें कराञ्जतेल ही अधिक जलाते हैं। उद्भिज्जतेल तैयार करनेमें परिश्रम और पैसे अधिक लगते हैं, लेकिन मिट्टीका तेल कुएंसे पम्प द्वारा निकाल कर भी काममें लाया जा सकता है।

सस्ता होनेके कारण और और तेलोंको अपेक्षा मिट्टीके तेलका व्यापार बढ़ता जाता है। नारियल और अंडी तेलके कोमल प्रकाशके स्थानमें आजकल किरो-

सिनके हो दीप अधिक जलते हैं। परन्तु इस तेलसे अधिक प्रकाश होने पर भी विपद्की सम्भावना रहती है। किरोसिन या पेट्रोलियम लालटेनके तैलपात्रको उत्तप्त कर वाष्प उत्पन्न करता है उसके फट जाने पर घर जल जा सकता है। टूटे फूटे वर्णर (Burner) अथवा वर्णरके मुंहको अपेक्षा कम वत्ती दे कर रोशनी जलाना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसी हालतमें आग लगनेकी सम्भावना रहती है। अतएव घरमें किरोसिनका दीप जला छोड़ कर नहीं सो जाना चाहिये। इससे और भी दूसरी दूसरी विपत्ति आ सकती है। इससे घरकी वायु इतनी पतली हो जाती है कि सांस रुक जाती जिससे मृत्यु तक हो जाया करती है। कभी कभी इसके धूएंके कण श्वासक्रियामें बड़ा व्याघात पहुंचाते हैं। इससे श्वासकृच्छ्र रोग हो कर पीछे मृत्यु हो सकती है।

ऐसी अनेक दुर्घटनाओंके होने पर भी इस देशके लोग पैसेके ख्यालसे देशी तेलके स्थानमें विदेशी विषको घरमें स्थान देते हैं। आजकल प्रायः प्रत्येक घरमें करासनकी वत्ती जलती है। छोटेसे बड़े तक सभी करासन जलाते हैं। केवल भारत हीमें नहीं वरन् व्यापारियोंका जिन जिन सभ्य देशोंमें आन-जान है वहां भी करासिन जलाया जाता है। यूरोपके सभ्य राज्यों, अमेरिकाके भिन्न भिन्न राज्यों, अफ्रिका महादेश, तुर्किस्तान, फारस, अरब आदि राज्यों तथा सभ्यजाति-शासित द्वीप समूहोंमें पेट्रोलियम और करासिन तेल बहुतायतसे विक्रीके लिये भेजे जाते हैं। १८८६ ई०से यूनाइटेड ष्टेट्स अमेरिका और वर्म्माके साथ पेट्रोलियम-व्यापारकी प्रतिद्वन्द्वतामें रूसने ख्याति लाभ की है। प्रतिवर्ष इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड, यूनाइटेड ष्टेट्स, एशिया, रूस, ष्ट्रेट् सेटलमेन्ट और अन्यान्य देशोंसे २ करोड़से अधिक रु०का मिट्टीका तेल और दूसरा दूसरा खनिज तेल भारतवर्ष आता है। १८८८-८९ ई०में केवल यूनाइटेड ष्टेट्ससे २०६५४००० तथा एशियाटिक रूससे १७५-१६००० गैलन तेलकी यहां आमदनी हुई थी।

भारतवर्षमें जो तेल आता है उसका अधिकांश नेपाल, लंका तथा सिन्ध पिसिन् रेलवे हो कर पश्चिम सीमा वर्त्ती लुनवेला, शिविस्थान, टिरा, काबुल, लद्दाख, तिब्बत तथा पूर्वमें मणिपुर, श्याम, शान्राज्य और फिरान्ती प्रदेशमें भेजा जाता है।

मृत्पाण्डु (सं० पु०) पाण्डुरोगभेद। मट्टी खानेसे जो पाण्डुरोग होता है उसे मृत्पाण्डु कहते हैं।

पाण्डु रोग देखो।

मृत्पात्र (सं० क्ली०) मृन्निर्म्मितं पात्रः। मृत्तिकानिर्मित पात्र, मट्टीका वरतन।

मृत्पिण्ड (सं० पु० क्ली०) मृन्निर्म्मितः पिण्डः। लोष्ट्र, ढेला।

मृत्फली (सं० स्त्री०) मृदि फलनमस्याः ङीप्। कुष्टौषध।

मृत्पच (सं० पु०) कुम्भकार, कुम्हार।

मृत्सा (सं० स्त्री०) व्याधि, रोग।

मृत्यु (सं० पु०) म्रियतेऽस्मादिति मृ- (भूसिजमृड्भ्यां युक्त्युकौ उण् ३।२१) इति त्युक्। १ यम। २ कंस। (भागवत१०।१।४६) (पु० क्ली०) ३ प्राणवियोग, प्राण छूटना, मौत। पर्याय—पञ्चता कालधर्म, दिष्टान्त, नाश, मरण, निधन, पञ्चत्व, मृत, मृति, नैधन, संस्था, काल, परलोकगम, दीर्घनिद्रा, निमीलन, अस्त, अवसान, भूमिलाभ, निपात, विलय, आत्ययिक, अप्यय।

(शब्दरत्ना०)

दर्शनशास्त्रकी आलोचना करनेसे यह स्पष्ट मालूम होता है, कि मृत्यु और कुछ भी नहीं है, केवल देह-इन्द्रियका वियोग और संयोग है। जन्म होनेसे मृत्यु अवश्यम्भावी है और फिर मृत्यु होनेसे भी जन्म अवश्यम्भावी है। जन्मके साथ मृत्युका सम्बन्ध और मृत्युके साथ जन्मका सम्बन्ध है।

इस संसारमें जीवने जन्म ले कर नाना प्रकारका कार्य करके नाना प्रकारका अदृष्ट सञ्चय कर रखा है। (कर्मजन्य संस्कार ही अदृष्ट पदवाच्य हैं) ये सब अदृष्ट संस्कार सूक्ष्म शरीरमें निबद्ध हैं। जीवको जब जरा उपस्थित होती है, तब वह सांपकी केंचुलके समान इस जीर्ण शरीरका परित्याग करता है। इसीका नाम मृत्यु है।

आत्मा अजर, अमर और सुखदुःखरहित है तथा उसके जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, सुख नहीं और दुःख भी नहीं है। आत्मा सच्चिदानन्दरूपी है। अब प्रश्न होता है, कि यह जन्म मृत्यु होती है किसकी? वार वार कौन जन्मग्रहण

करता है, और कौन मरता है? इस प्रश्नको हल करनेमें जन्म, जीवन और मृत्यु ये तीनों ही बात कहनी पड़ती है। ऋषिमात्रका ही कहना है, 'नायं हन्ति न हन्यते'' आत्मा किसीको नहीं मारती और न स्वयं ही मरती है। मृत्यु नामक कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। तब फिर यह मृत्यु शब्द किसके ऊपर लागू है? कैसी घटनाके ऊपर मृत्यु शब्दका व्यवहार होता है? इस विषय पर थोड़ा विचार करना परमावश्यक है। कुछ घास, लकड़ी और रस्सी आदिके मेलसे घर तथा जल, वायु और मिट्टीके मेलसे घटादि बने। फिर क्षिति, जल और बीजके एकत्र होनेसे अंकुर उत्पन्न हुआ, उससे शाखा पल्लवादि निकले, अब कहा गया, वृक्ष उत्पन्न हुआ है। कुछ दिन बाद उन सबोंके अवयव विश्लिष्ट हुए अथवा उन सब अवयवोंका संयोग विध्वस्त हो गया। क्या इस समय यह नहीं कहा जाता कि घर गिर पड़ा, घड़ा फूट गया और वृक्ष मर गया है? अभी थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम होगा, कि कैसी घटना पर अर्थात् कैसी अवस्थामें हम लोग भग्न, ध्वंस और मृत्यु शब्दका व्यवहार करते हैं। अवयवका शैथिल्य, विकार अथवा संयोगध्वंश, इसीके ऊपर उक्त शब्दका व्यवहार किया गया है। अब उसे निर्जीव पदार्थसे उठा कर सजीव पदार्थके ऊपर लानेसे मालूम पड़ेगा, जीवन्तपदार्थका मरण क्या है? जन्ममरण और कुछ भी नहीं है, अवयवका अपूर्व संयोगभाव जन्म और उसका वियोगभाव मृत्यु है।

मरण और आत्यन्तिक विस्मृति दोनों समान हैं। जिन कारणोंने जीवको देहमें आवद्ध रखा था उन कारणों या संयोगविशेषके विनष्ट होनेसे अत्यन्त विस्मरण वा महाविस्मरण नामक मृत्यु होती है। मृत्यु होने पर देहादिमें अन्य प्रकारका विकार उपस्थित होता है। अतएव अवयवोंके अपूर्व संयोगका नाम जन्म और वियोगविशेषका नाम मृत्यु है।

जन्ममृत्युके लक्षणसे यही मालूम होता है। "अपूर्वदेहेन्द्रियादिसंघातविशेषेण संयोगश्च वियोगश्च।" जिसके अवयव हैं उसीकी मृत्यु होती है और जिसके अवयव नहीं, उसकी मृत्यु भी नहीं। नितान्त सूक्ष्म और निरवयव इन्द्रियोंकी भी मृत्यु नहीं होती।

आत्मा मरती नहीं, इन्द्रिय भी नहीं मरती, यह सिद्धान्त यदि सत्य है, तो 'अमुक व्यक्ति मरा है' 'अमुक मरेगा' ऐसा न कह कर देह मरी है, देह मरेगी, ऐसा ही कहना उचित था, लेकिन ऐसा तो कोई कहता नहीं, नहीं कहनेका कारण क्या? थोड़ा विचार करनेसे इसका कारण समझमें आयेगा। हम लोग इस दृश्यमान संघात अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन इन सबके सम्मिलनभावका विनाश देख कर ही मृत्यु शब्दका प्रयोग करते हैं। किन्तु प्राणसंयोगका ध्वंस ही उक्त शब्दका प्रधान लक्ष्य है। प्राण-व्यापारकी निवृत्ति हुए विना अन्य सम्बन्धकी निवृत्ति नहीं होती।

जीवन और मरण वा मृत्यु जीव् और मृ धातुसे ही निकले हैं। इसके धातव अर्थकी पर्यालोचना करनेसे उक्त अर्थका ही बोध होता है। जीव् धातुका अर्थ प्राणधारण और मृ-धातुका अर्थ प्राणपरित्याग है। इससे मालूम होता है, कि प्राण जब तक देहेन्द्रियसंघातमें मिला रहता है तब ही तक उसका जीवन है, विच्छेद होनेसे ही मृत्यु होती है। अतएव यह कहना पड़ेगा, कि मरण में आत्माका विनाश नहीं होता, केवल देहके साथ उसका विच्छेद हो जाता है। मैं मरा और अमुक मरा इसका अर्थ औपचारिक है। आत्माके अध्यास रहनेसे ही देहादि संघात अहंप्रत्ययगम्य होता है तथा उसी कारण ऐसा औपचारिक प्रयोग हुआ करता है। किन्तु प्राणसंयोगका ध्वंस ही यथार्थ मरण है।

मरण शब्द देखो।

जिनकी मृत्यु अवश्यम्भावी है, उनमें निम्नोक्त लक्षण उपस्थित होते हैं। ये सब लक्षण दिखाई देनेसे जानना चाहिये कि वह अब अधिक देर नहीं ठहर सकता। ये लक्षण सुश्रुतमें इस प्रकार कहे गये हैं,—

शरीरका जो अङ्ग स्वभावतः जैसा है, उसकी अन्यथा होनेसे मृत्युका लक्षण जानना चाहिये। जैसे, शुक्लवर्णकी कृष्णता, कृष्णवर्णकी शुक्लता, रक्त आदि वर्णका कुछ और वर्ण होना, स्थिरकी अस्थिरता, अस्थिरकी स्थिरता, स्थूलकी कृशता, कृशकी स्थूलता, दीर्घका ह्रस्वत्व वा

ह्रस्वकी दीर्घता अथवा किसी अङ्गका हठात् शीतल, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, विवर्ण वा अवसन्न होना, शरीरके सम्बन्धमें ऐसी घटनाको स्वभावका विपरीत कहते हैं। शरीरका किसी अङ्गसंस्थानसे अङ्गस्थलित, उत्क्षिप्त, अवक्षिप्त, पतित, निर्गत, अन्तर्गत, गुरु वा लघु होना भी स्वभावका प्रतिकूल है।

शरीरमें अकस्मात् प्रवालवर्णविशिष्ट व्यङ्ग (चकत्ते दाग)-का बहुत निकलना, ललाटकी शिराएं दिखाई देना, नाककी रीढ़में दर्द होना, सवेरे ललाटसे पसीना निकलना, नेत्ररोग नहीं रहने पर भी आँसू बहना, मस्तक पर गोबरके चूर्णकी तरह धूल दिखाई देना अथवा मस्तक पर कबूतर, सफेद चील आदि पक्षीका गिरना; भोजन नहीं करने पर भी मलमूत्रकी वृद्धि या भोजन करने पर मल मूत्रका अभाव; स्तनमूल हृदय वा वक्षःस्थलमें वेदना; किसी अङ्गका मध्यस्थल फड़कना और आधा शरीर सूज आना अथवा समूचा शरीर सूख जाना तथा स्वर नष्ट, हीन, विकल वा विकृत होना अथवा दांत, मुंह, नख आदि स्थानमें विवर्ण पुष्पकी तरह चिह्न वा दृष्टि-मण्डलमें भिन्न प्रकारका विकृतरूप अथवा केश वा अङ्ग तैलाभ्यक्तकी तरह दिखाई देना; अतीसार रोगमें अरुचि, दुर्बलता वा कासरोगमें तृष्णा मालूम होना; क्षीणता, वमन, फेनके साथ पीपरक्त निकलना; भग्नस्वर और वेदनासे छटपटाना; हाथ, पांव और मुख स्फीत, क्षीण, रुचिहीन, नाभि, स्कन्ध और पैरका मांस शिथिल होना तथा ज्वर और खांसीसे पीड़ित होना, इनमेंसे कोई एक लक्षण दिखाई देनेसे जानना चाहिये कि मृत्यु पहुंच गई।

जो व्यक्ति पूर्वाह्नमें खाता और अपराह्नमें वमन कर देता है, तथा जिसके पाकाशयमें अम्लरस नहीं रहने पर भी अतिसारकी तरह मल निकलता है, जो जमीन पर गिर कर बकरेकी शब्द करता है, जिसका कोष शिथिल और उपस्थ संकुचित हो जाता है तथा जिसकी ग्रीवा भङ्ग हो जाती है, जो अपना निचला ओंठ दांतोंसे दबाता या ऊपरका ओंठ चाटता है अथवा जो अपने बालों और कानोंको उखाड़नेकी चेष्टा करता है; देवता, गुरु, सुहृद और वैद्यसे द्वेष रखता है, जिसका पापग्रह अधिकतर मन्द वा मन्दस्थानमें जा कर जन्मनक्षत्रको पीड़न करता और वज्र द्वारा अभिहत होता है, उसका आयुःशेष हुआ जानना चाहिये। जिसकी उत्कट पीड़ा एकवारगी बंद हो जाती अथवा जिसके शरीरमें आहारका फल नहीं देखा जाता उसकी मृत्यु शीघ्र होती है। इन सब अरिष्ट लक्षण द्वारा मृत्युका निश्चय किया जाता है।

छायादिके द्वारा मृत्यु-लक्षणका निर्णय।

जिसकी छाया श्याव, लोहित, नील वा पीतवर्णकी होती है उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये। लज्जा, श्री, बल, तेज, स्मृति तथा शरीरकी प्रभा जिसकी हठात् नष्ट हो जाती है अथवा पहले ये सब गुण नहीं होने पर भी हठात् उत्पन्न होते हैं उसका आसन्नकाल निश्चय ही उपस्थित है। जिसका नीचेका ओंठ गिरा और ऊपरका ओंठ उठा हुआ अथवा दोनों ओंठ जामुनकी की तरह स्याह दिखाई दें उसका जीवन दुर्लभ है। जिसके दांत कुछ लाल वा श्यामवर्णके तथा गिर पड़े हों, वा काले हो गये हों, स्तब्ध, अवलिप्त, कर्कश और स्फीत हों, जिसकी नाक टेढ़ी, स्फुटित, शुष्क, अवनत वा उन्नत, जिसके दोनों नेत्र विषम, स्तब्ध, रक्तवर्ण और अधोदृष्टिविशिष्ट हों तथा हमेशा अश्रुपात होता हो उसकी मृत्यु सन्निकट है। जिसके बाल मांग फाड़नेकी तरह दिखाई दे, भ्रू छोटे वा चौड़े हों तथा आंखोंके पल छिन्न हों अथवा जो रोगी मुखस्थित अन्नको निगल नहीं सकता हो, मस्तक सीधा नहीं रख सकता हो तथा सर्वदा एकाग्रदृष्टि और अचेतन रहे, उनकी मृत्यु बहुत जल्द होती है। रोगी सबल हो वा दुर्बल, यत्नपूर्वक उठा कर बैठानेसे जो मूर्च्छित हो जाय, जो चित सो कर दोनों पैरोंको समेट लेता है अथवा हमेशा फैलानेकी चेष्टा करता है, जिसके हाथ पांव ठंढे हो गये हों तथा ऊर्द्ध श्वास (कौवेकी तरह मुंह बा कर श्वास छोड़ना) आता हो, जिसकी नींद नहीं टूटती अथवा जो सर्वदा जगा रहता है, जिसका शरीर किसी विषसे दूषित न होते हुए भी लोमकूपसे रक्त निकलता है, उस रोगीकी मृत्यु सन्निकट जानो चाहिये। पूर्वजन्मका कर्म, विपरीत उपचार तथा जीव अनित्य होनेके कारण मृत्यु होती है मरनासन्न व्यक्तिके निकट भूत, प्रेत,

पिशाच और राक्षसादि आते हैं तथा रोगीकी मृत्यु-कामना करके उसकी सभी औषधोंके वीर्यको नष्ट कर डालते हैं। इसी कारण जिसकी आयुशेष हो चली है उसका कोई भी प्रतिकार सफल नहीं होता।

शरीर वा स्वभावमें किसी प्रकारकी विकृति दिखाई देनेसे ही उसे सामान्यतः अरिष्टलक्षण कहते हैं। इस अरिष्टलक्षण द्वारा भी मृत्युका विषय स्थिर किया जाता है।

जो व्यक्ति ग्राम्य शब्दको अरण्यके समान वा अरण्य शब्दको ग्राम्यके समान अनुमान करता है, जो शत्रुकी बात पर हृष्ट और मित्रकी बात पर कुपित होता है, अथवा मित्रकी बात सुनना नहीं चाहता उसकी मृत्यु निकट है। जो व्यक्ति गरमको ठंढा वा ठंढेको गरम समझ कर ग्रहण करता है वा शीतप्रयुक्त रोमाञ्च हो कर भी शरीरकी वेदनासे छटपटाता है, शरीर अत्यन्त उष्ण रहने पर भी शीतयुक्त और कम्पित् होता है, प्रहार वा अङ्गच्छेद करने पर भी जो उसका तनिक भी अनुभव नहीं करता, जिसका शरीर पांशुविकीर्णकी तरह दिखाई देता है, जिसके शरीरका वर्ण पलट जाता है, स्नान कराने वा चन्दन लेपनेसे जिसके शरीर पर नीली मक्खी बैठती हैं, सभी प्रकारका खाया हुआ रस क्रमशः जिसके दोषको बढ़ाता है अथवा मिथ्या आहार द्वारा जिसकी दोषवृद्धि और अग्निमान्द्य होता है, जो कोई रस नहीं जान सकता, सुगन्ध वा दुर्गन्धका जिसे कुछ भी अनुभव नहीं; शीत, उष्ण, हिम आदि काल, अवस्था वा दिक् अथवा अन्य कोई भाव विपरीत भावमें ग्रहण करता है, दिनमें जो व्यक्ति ग्रह नक्षत्रादिको प्रज्वलित-सा, रातको ज्वलंत सूर्य वा दिनको चन्द्रकिरण, मेघशून्य आकाश, इन्द्रधनु वा निर्मल आकाशमें सविद्युत् मेघ, आकाशमण्डल अट्टालिका वा विमानयानसे पूर्ण, मेदिनीमण्डलको धूम, नीहार वा वस्त्रके द्वारा आवृत-सा तथा सभी लोगोंको प्रदीप्त अथवा जलप्लावितकी तरह देखता है अथवा जो व्यक्ति सनक्षत्र अरुन्धती ध्रुव नक्षत्र वा आकाशगङ्गाको तथा अपनी छायाको उष्ण जलमें वा ज्योत्स्नाके आदर्शमें नहीं देख पाता अथवा जिसे वह छाया अङ्गहीन वा विकृत दिखाई देती है उसकी मृत्यु निकटवर्त्ती है।

(सुश्रुत सूत्रस्था० २६-३२ अ०)

इन सब अरिष्टलक्षणोंसे मृत्युका निश्चय किया जा सकता है। इसके अलावा किस रोगमें कैसा लक्षण होनेसे मृत्यु होती है उसका विषय भी सुश्रुतमें सविस्तर लिखा है।

फिर पुराणादि शास्त्रोंमें भी मृत्युके पूर्वलक्षणका विषय देखा जाता है।

"अरिष्टानि महाराज! शृणु वक्ष्यामि तानि ते।
येषामालोकनान्मृत्युं निजं जानाति योगवित्॥"

(मार्कण्डेयपु० ४३ अ०)

यदि सभी अरिष्ट लक्षण मालूम हो जांय, तो योगवित् अपनी अपनी मृत्युका विषय जान सकते हैं। ये सब मृत्युलक्षण विस्तार हो जानेके भयसे नहीं लिखे गये। मार्कण्डेय पुराणके ४३ वें अध्यायमें विशेष विवरण लिखा है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि कल्पान्तरमें भयसे माया-गर्भसे मृत्युकी उत्पत्ति हुई। इसी मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधका जन्म हुआ है।

"हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे तथानृतम्।
कन्या च निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च॥
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः।
भयाज्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्॥"

अस्यापत्यादि—

"मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णा क्रोधाश्च जज्ञिरे।
दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः।"
नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्द्ध्वरेतसः॥"

मार्कण्डेयपुराणके दुःसहानुशासन नामक अध्यायमें मृत्युकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है,—जिसने जन्म लिया है, मृत्यु उसकी देहके साथ उत्पन्न हुई है, आज हो वा सौ वर्षके बाद, पर मृत्यु उसकी अवश्यम्भावी है।

"मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्॥"

(भागवत १०।१ अ०)

मृत्युके बाद शोक करना बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य नहीं है। क्योंकि, को लाख प्रयत्न करने पर भी लौट नहीं सकता, जिसकी अन्यथा करना बिलकुल असम्भव है उसके लिये शोक प्रकट करनेसे लाभ क्या?

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे नत्वं शोचितुमर्हसि ॥" (गीता)

गरुड़पुराणमें लिखा है कि, भगवान् विष्णुका अकाल-मृत्युप्रशमनस्तोत्र पढ़नेसे अकालमृत्यु नहीं होती।
(गरुड़पु० २५८ अ०)

मृत्युके पहले दानरूप होम आदि करना हितकर है। अतएव सबोंको उचित है, कि मृत्युके पहले थोड़ा बहुत सत्कर्मका अनुष्ठान अवश्य करे। जिसकी मृत्यु निकट देखे उसे गङ्गाके किनारे ले जावे और दोनों पैरको गङ्गाजलमें रख कर मुखमें गङ्गाजल देवे। इससे उसके सभी पाप नष्ट होते हैं और अन्तमें वह विष्णुलोकको जाता है। देवीपुराण ६७।२७ और काशीखण्ड ४१६ अध्याय-में मृत्युका सविस्तर विवरण देखनेमें आता है।

ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि आयुष्काल क्षय होनेसे मृत्यु सभी लोगोंको प्रपीड़ित कर डालती है। उस समय, क्या औषध, क्या मन्त्र, क्या जप, क्या होम, कोई भी उन्हें जरा और मरणसे नहीं बचा सकता। जिस प्रकार दीप तेल और बत्तीके रहते भी हवाके झोंकेसे बुझ जाता है उसी प्रकार आयु रहते हुए भी कारणरूपा हवासे मनुष्यका जीवन-प्रदीप बुझ जाता है।

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं दूयते मया।
नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः ॥
त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया चापि मानवम्।"
"वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः ॥
विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥"
(ज्योतिस्तत्त्व)

फलितज्योतिषमें मृत्युकालनिर्णयका कुछ साङ्केतिक आभास दिये गये हैं। मनुष्य-शरीरमें प्रधानतः किस समय और किस प्रकार मृत्यु उपस्थित होती है, उसीके लक्षणादि निरूपण कर ज्योतिषियोंने मृत्युकाल जाननेके लिये निम्नोक्त उपाय बतलाये हैं।

"अहोरात्रं यदेकत्र वहते यस्य मारुतः।
तदा तस्य भवेदायुः सम्पूर्णं वत्सरद्वयम् ॥
अहोरात्रद्वयं यस्य पिंगलायां सदागतिः।
तस्य वर्षद्वयं ज्ञेयं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ॥
त्रिरात्रं वहते यस्य वायुरेकपुटे ।स्थलः।
वत्सरं यावदायुः स्यात् प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
रात्रौ चन्द्रो दिवा सूर्यो वहेद्यस्य निरन्तरम्।
विजानीयात्तस्य मृत्युः षण्मासाभ्यन्तरे सुधीः ॥
एकादिषोड़शाहानि यदि भानुर्निरन्तरम्।
वहेद्यस्य च वै मृत्युः शेषाहेन च मासिकैः ॥
सम्पूर्णं वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते।
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥
मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं प्रजायते।
तदासौ चलितो ज्ञेयो दशाहे म्रियते ध्रुवम् ॥
याम्यनासापुटे यस्य वायुर्वाति दिवानिशम्।
तथान्तमेवं तस्यायुः त्रिवेदब्दत्रयेण हि ॥
द्व्यहोरात्रं त्र्यहोरात्रं वायुर्वहति सन्ततः।
सार्द्धैक मासात्तस्यापि जीवितं किल हीयते ॥
नरनासापुटयुगे दशाहानि निरन्तरम्।
वायुश्चेति सहसा यान्ति स जीवेद्दिवसत्रयम् ॥
नासावर्त्तद्वयं हित्वा वायुरुष्णो मुखाद्वहेत्।
शंसेद्दिनद्वयादर्वाक् जीवितं तस्य निश्चितं ॥
सूर्ये सप्तमराशिस्थे जन्मसंस्थे निशाकरे।
दंष्टारस्तत्पूर्णकालेऽप्यकाले तस्य नाशिताः ॥
यस्य रेतो मलं मूत्रं क्षुतं युक्तं मलं तथा।
इहैकदा भवेद्यस्य अब्दं तस्यायुरिष्यते ॥
पृथ्वीजले शुभे तत्त्वे तेजोमिश्रफलोदयः।
हानिर्मृत्युकरौ पुंसामुभयो व्योममारुतौ ॥"
(फलितज्यो०)

उपरोक्त भूतोदय फलको छोड़ कर शारीरिक लक्षण द्वारा भी मृत्युकाल जाना जा सकता है। पहले दाहिने हाथकी मुट्ठीको शिर पर रख कर अपनी आंखोंसे उस हाथका पहुंचा देखे, जिसकी छः महीनेमें मृत्यु होगी वही व्यक्ति मुट्ठीको हाथसे पृथक् देखेगा। छः महीनेमें जिसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है, वह निर्वापित तेलकी बत्तीकी धूमगन्ध अनुभव नहीं कर सकता। कहते हैं, कि जो इस प्रकार अपनी आंखोंसे नाकका अगला भाग नहीं देख पाता उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये। मृत्यु-के छः मास पहले छींक नहीं आती, ऐसी भी किम्वदन्ती है।

दाहिने हाथको मध्यमांगुलिको मुड़ कर अंगुष्ठके नीचे लगा बाकी तीन उंगलियोंको जमीन पर सटा कर रखे। पीछे उन्हें एक एक कर उठा कर अंगुष्ठके नीचे ले जावे। यदि अनामिका अंगुष्ठके निम्न भाग तक पहुंच जाय, तो जानना चाहिये, कि उस व्यक्तिका आयु-काल सिर्फ दो पहर रह गया है।

जिस व्यक्तिका शरीर नीला हो जाय तथा वह कटु, अम्ल और लवणरसयुक्त द्रव्यका कुछ और स्वाद मालूम करे, तो उसकी छः मासके अन्दर मृत्यु होगी।

समर्थ पुरुषको यदि स्त्रीप्रसङ्गके बाद तमाम अंधकार सा दिखाई दे और पीछे उसके मनमें क्षोभ उपस्थित हो, तो वह पांच महीनेके अन्दर ही यमराजका मेहमान बनेगा।

प्रातःकालमें जिसके हृदय, चरण और हाथ सूख जांय, वह सिर्फ तीन मास तक जीवित रह सकता है। जिसका शरीर अकस्मात् कम्पित हो उठे उसकी चार मासके अभ्यन्तर और जो अपनी प्रतिमूर्त्ति तथा मस्तकको जलप्रतिविम्बमें नहीं देख पाता उसकी छः मासमें मृत्यु होती है।

जो दिनको आकाशमें तारे देखते है, रातको नहीं देखते, जिनका बुद्धिभ्रंश और वाक्य स्खलित हो गया है जो इन्द्रधनुष और छिद्र नहीं देख सकता, रातको चंद्रमा और सूर्य दोनों ही देखता है तथा चारों ओर इन्द्रधनुषमण्डलके साथ पर्वत और पर्वतके ऊपर गन्धर्वोंका नगरालय, दिनको चन्द्रमा और रातको शरीरकी आकृति निरीक्षण करता है, उसकी मृत्यु सन्निकट समझनी चाहिये।

जिसके हाथ हठात् शिथिल हो गये हैं, श्रवणशक्ति जाती रही है और जो स्थूल व्यक्तिको कृश और कृशको स्थूल देखता है, वह एक मासके भीतर पञ्चत्वको प्राप्त होगा। जो व्यक्ति अपनी छायाको दक्षिणकी ओर अच्छी तरह नहीं देख पाता, वह सिर्फ पांच दिन तक जीवित रह कर परलोकवासी होगा।

जो व्यक्ति मृत्युशय्या पर पड़े रह कर भी आह भरते हैं उनकी मृत्यु होनेकी सम्भावना नहीं। जिस रोगीको नाक टेढ़ी हो गई हो, उसकी दो तीन दिनके मध्य अवश्य मृत्यु होगी।

पुराणादि नाना हिन्दूशास्त्रों और वैद्यक ग्रन्थोंमें एक सौ एक प्रकारकी मृत्युका उल्लेख हैं। उनमेंसे एक कालप्राप्त मृत्यु है और बाकी सभी व्याधि, आकस्मिक विपद् अथवा अभिशाप दारुण आगन्तुक नामसे प्रसिद्ध हैं।* बुढ़ापेमें जो मृत्यु होती है उसीको कालमृत्यु कहते हैं। ऊपरमें मृत्युकी पौराणिक उत्पत्ति तथा दर्शनशास्त्रकी को यथायथ युक्ति दिखलाई गई। हिन्दूको छोड़ कर बाकी सभी मतावलम्बियोंका मृत्युसम्बन्धमें एक मत है। संहारमूर्त्ति देवादिदेव महादेव ही मृत्युके आदिकर्त्ता हैं, किन्तु यमराज हैं उनके अधिनायक। यमराज ही मृत्युके बाद जीवात्माके सत् असत् कर्मोंका विचार करते हैं। चित्रगुप्त उनके प्रधान सहकारिरूपमें पापपुण्यका हिसाब ठीक कर रखते हैं। मृत्युके नियामक होनेके कारण यमराजका एक नाम मृत्यु भी है।

४ विष्णु। ५ अधर्मके औरससे निर्ऋतिके गर्भसे उत्पन्न एक पुत्रका नाम। ६ ब्रह्मा। ७ माया। ८ कलि। ९ आचार्यभेद। १० बौद्धदेवता पद्मपाणिके एक अनुचर। ११ अष्टद्वापरके व्यासभेद। १२ ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक। १३ एकाहभेद। १४ फलित ज्योतिषोक्त आठवाँ ग्रह। १५ ज्योतिषोक्त १७वां योग। १६ कामदेव। १७ साममेद। १८ बौद्ध-देवता पद्मपाणिका अनुचरविशेष।

मृत्युक (सं० पु०) मृत्युसम्बन्धीय।

मृत्युकन्या (सं० स्त्री०) मृत्युकी अधिष्ठात्री देवी, यमकन्या।

मृत्युजित् (सं० पु०) मृत्युं जितवान् जि क्विप्। १ मृत्युञ्जय, जिसने मृत्युको जीत लिया हो। २ शिवका एक रूप।

---

* "एकोत्तरं मृत्यु शतमस्मिन् देहे प्रतिष्ठितम्।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः।
ये त्विहागन्तवः प्रोक्तास्ते प्रशाम्यन्ति भेषजैः॥
जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्न शाम्यति।
पीड़ितं रोगसर्पैश्चैरपि धन्वन्तरिः स्वयम्।
सुखीकर्त्तुं न शक्नोति कालप्राप्तं हि देहिनम्॥"
(सारचन्द्रिका)

मृत्युञ्जय (सं० पु०) मृत्युं जितवान् जि-खस् मुमच् । शिव, महादेव । इन्होंने मत्युको जय किया था, इसीसे इनका नाम मृत्युञ्जय हुआ । इनका नामनिरूपण इस प्रकार देखा जाता है—

"शिवो लीनो निर्गुणे चेत् श्रीकृष्णे प्राकृते लये ।
कथं तव गुरोर्नाम मृत्युञ्जय इति श्रुतौ ॥
सुतपा उवाच ।
"ब्रह्मणोऽन्ते मृत्युकन्या प्रनष्टा जलविन्दुवत् ।
संहर्त्री सर्वलोकानां ब्रह्मादीनां नराधिप ॥
कतिधा मृत्युकन्यानां ब्रह्मणां कोटिशो लये ।
कालेन लीनः शम्भुश्च सत्त्वरूपी च निर्गुणे ॥
मृत्युकन्या जिता शश्वत शिवेन गुरुणा मतम् ।
न मृत्युना जितः शम्भुः कल्पे कल्पे श्रुतौ श्रुतम् ॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिख० ५१ अ०

प्राकृतिक लयमें श्रीकृष्ण एवं निर्गुणमें शिवजी जब लीन होते हैं तब उन्हें मृत्युञ्जय कैसे कहा जा सकता ? इसके उत्तरमें सुतपाने कहा है—ब्रह्माके लय होने पर मृत्युकन्या जलविन्दुके समान नष्ट हो जाती है, ये ही सर्वलोक और ब्रह्मादिको संहार करनेवाली है । ब्रह्मा और मृत्युकन्याके करोड़ों वार लय होने पर सत्त्वरूपी शिव काल द्वारा निर्गुणमें लीन हो जाते हैं । अतएव शिवने वारंवार मृत्युको जीता है किन्तु मृत्यु उन्हें जीत न सकी है । इसीलिये उनका नाम मृत्युञ्जय हुआ है । मृत्युञ्जयतन्त्रमें लिखा है, कि संकट पीड़ादि उपस्थित होने पर मृत्युञ्जयकी पूजा करने पर सभी प्रकारके रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं । इस शिवपूजाका विधान नीचे लिखा जाता है ।

८० तोला मृत्तिका ले कर पौराणिक मन्त्र पाठ कर शिव वनावे । पाश्चात् कांसेके पात्रमें इन्हें स्थापन कर यथाविधि पूजा करे । पहले पञ्चगव्यसे और पीछे पञ्चगव्यके प्रत्येक पदार्थको ले कर स्व स्व मन्त्र द्वारा स्नान कराना चाहिये । जिसे रोग हुआ हो उसके रोगकी शान्तिकी कामनासे नाम गोत्रादिका उच्चारण कर सङ्कल्प करे । पश्चात् यथाविधि षोड़शोपचार पूजा कर सहस्र विल्वदल उत्सर्ग तथा सहस्र वार जप करे । अनन्तर होम करना, होमके वाद उपयुक्त दक्षिणा देना उचित है । कारण, इस पूजामें किसी वातकी न्यूनता न होनी चाहिये । इस प्रकार एक ही शिवपूजा करनेसे फल प्राप्त हो सकता है, किन्तु कलियुगमें समयके प्रभावसे प्रत्येक कामको, चार वार करना आवश्यक है । अतएव यह पूजा भी चार वार करनी चाहिये । दूसरे दूसरे युगमें एक वार करने का विधान है । पूजा समाप्त होने पर इस पूजाका ८० तोला भर जल तांबेके पात्रमें ले कर कुशसे रोगीका शरीर सींचे । इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे रोगी सव प्रकारके रोगोंसे मुक्त हो जाता है ।

"मृत्युञ्जयं समापूज्य लिङ्गं त्रिभुवनेश्वरम् ।
रोगार्त्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत् बन्धनात् ॥
यस्तु सम्पूजयेद्भक्त्या लिङ्गं मृत्युञ्जयाभिधम् ।
यमोऽपि प्रणमेद्भक्त्या किं करिष्यति चामयः ॥
तस्य पूजाविधिं वक्ष्ये शृणु मत्प्राणवल्लभे ।
जातिभेदं मृत्तिकान्तु गृहीत्वाशीति तोलकम् ॥
निर्म्माय पार्थिवं लिङ्गं कांस्याधारे निवेशयेत् ।
पौराणिकेन मन्त्रेण कुर्य्याच्च गठनं बुधः ॥
स्नापयेत् पञ्चगव्येन प्रत्येकस्याष्टतोलकम् ।
स्वस्वमन्त्रैश्च प्रत्येक-द्रव्येण स्नापयेत् सुधीः ॥
रोगक्षयकामनया नामगोत्रादि पूर्वकम् ।
उपविश्यासने विप्रा धृत्वा धौते च वाससी ॥
रुद्राक्षमालां कण्ठे च धृत्वा भस्मत्रिपुण्ड्रकम् ।
उपचारं षोड़शकं देयं भक्त्या प्रयत्नतः ॥
सुवर्णस्यासनं देयं तथैवाभरणानि च ।
वस्त्र युग्मं प्रदद्यात्तु परिधेयं यदा भवेत् ॥
मधुपर्कं कांस्यपात्रे दद्याद्भोजनयोग्यकम् ।
विल्वपत्रसहस्रञ्च अभग्नं विनिवेदयेत् ॥
एवं सम्पूज्य लिङ्गैकं जपेन्मन्त्रं सहस्रकम् ।
ततो होमं प्रकुर्य्याच्च दक्षिणां ब्राह्मणे ददेत ॥
सुवर्णं वा तदर्द्धं वा देवि ! विभवमानतः ।
अंगहीना न कर्त्तव्या पूजा चाफलदा यतः ॥
एकलिङ्गं समाराध्य फलं स्यादन्यके युगे ।
तत् फलं लभते देवि ! कलौ संख्या चतुर्गुणा ॥
ताम्रपात्रे तु संस्थाप्य अशीति तोलकं जलम् ।
तज्जलेनैव देवेशि कुशैः संमार्ज्ज्य रोगिणाम् ॥
क्षिपेद्दीपशिलायाञ्च मन्त्रमुच्चार्य मामकम् ।
एवं विधिविधानेन पूजयेन्मम लिङ्गकम् ॥

यादृक् तादृक् भवेद्रोगो नाशमेति मयोदितः ।
साङ्गेन पूजयित्वा च लभते वाञ्छितं फलम् ॥
(मृत्युञ्जयमन्त्र)

तन्त्रसारके मृत्युञ्जय-प्रकरणमें मृत्युञ्जय प्रयोगके सम्बन्धमें लिखा है—

"यथाविधि जितेन्द्रिय हो अग्निमें मृत्युञ्जयकी पूजा कर दूधसे सींचा गुड़ीच ले कर एक मास तक प्रतिदिन एक सहस्र आहुतिसे होम करनेसे शङ्करसुधाप्लावित शरीर, आयु, आरोग्य, सम्पत्ति, यश और पुत्र बढ़ते हैं। गुड़ीचके साथ, वट, तिल, दूब, दूध और घी आदि सात द्रव्य द्वारा क्रमशः ७ दिन १००८ आहुतिसे होम करे। इस प्रयोगके समय प्रतिदिन सातसे अधिक ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराना आवश्यक है। पश्चात् पुरोहितको यथाविधि दक्षिणा देनी पड़ती है। इस प्रकार प्रयाग करनेसे साधक कृत्याद्रोह आदिसे मुक्त हो निःसंशय १०० वर्षकी आयु प्राप्त करता है। कोई अभिचार करने, कठिन ज्वर होने, घोर उन्माद रोग, शिरोरोग अथवा दूसरा कोई असाध्य रोग होने या ग्रह, पीड़ा, मोह, दाह, महाभय आदि उपस्थित होने पर इस प्रकारके होमसे शान्ति प्राप्त होती है और सब प्रकारकी सम्पत्ति मिलती है। जो प्रतिदिन दूबसे ११ आहुति होम करते हैं उन्हें मृत्यु-भय नहीं रहता, विशेषतः उनकी आयु और आरोग्यता बढ़ती हैं। सुधा, वल्ली, बकुल, इसकी समिध द्वारा होम करनेसे समुदाय रोग, सिद्धार्थ द्वारा होम करनेसे महाज्वर और अपामार्गके समिध द्वारा होम करनेसे समुदाय रोगकी शान्ति होती है।" (तन्त्रसार०)

इन्हें छोड़, तन्त्रसारमें मृत्युञ्जय यन्त्रका उल्लेख है। यथाविधि इस यन्त्रको भोजपत्र पर लिख कर हाथमें धारण करनेसे ग्रहपीड़ा, भूत, अपमृत्यु और व्याधिभय तथा और किसी प्रकारके दुखकी शंका नहीं रहती, प्रति दिन लक्ष्मी और कीर्त्तिकी वृद्धि होती है।
(तन्त्रसार मृत्युञ्जययन्त्र)

मृत्युञ्जयरस (सं० पु०) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली,—पारा १ माशा, गन्धक २ माशा, सोहागेका लावा ४ माशा, विष ८ माशा, धतूरेका बीज १६ माशा, सोंठ, पीपल और मिर्च प्रत्येक १० माशा ७ रत्ती, इन सब द्रव्योंको धतूरेकी जड़के रसमें अच्छी तरह पीस कर एक एक माशेकी गोली बनावे। इसका अनुपान है, वातपित्त ज्वरमें डावका जल और चीनी, पित्तश्लेष्म ज्वरमें मधु तथा सान्निपातिक ज्वरमें अदरखका रस। इस औषधके सेवन करनेसे सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधि०)

दूसरी प्रणालीः—गोमूत्रमें शोधित विष, मिर्च, पीपल, गन्धक, और सोहागा प्रत्येक एक भाग और जंबीरी नीबूके रसमें शोधित हींग दो भाग ले, सबोंको चूर कर मूंगके समान गोटी तैयार करे। इनमें पारा एक भाग दिया जाय, तो हींगकी आवश्यकता नहीं होगी। मधुके साथ इसको चाटनेसे सब ज्वर, दहीके पानीके साथ सेवन करनेसे वातज्वर, अदरखके रसके साथ कठिन सान्निपतिक ज्वर, जंबीरी नीबूके साथ अजीर्ण ज्वर तथा जीराचूर्ण और गुड़ अनुपानके साथ सेवन करनेसे विषम ज्वर नष्ट होते हैं। तीव्र ज्वर और अतिशय दोषमें तथा रोगी बलवान रहे तो पूर्णमात्रा ४ गोली है। स्त्री, बालक और क्षीण रोगीको अर्द्धमात्रा तथा अतिवृद्ध, क्षीण और बच्चे रोगीको एक गोलीका चतुर्थ भाग देना चाहिये। यह औषध मृत्युको जय करती है इस लिये इसका नाम मृत्युञ्जय हुआ।

मृत्युतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

मृत्युतूर्य (सं० क्ली०) वाद्ययन्त्रविशेष, वह बाजा जो शवदाहके समय बजाया जाता है।

मृत्युदूत (सं० पु०) १ यमदूत। २ मृत्युसंवादवहनकारी

मृत्युद्वार (सं० क्ली०) नवद्वारका वह द्वार जिस हो कर प्राणवायु निकलती है।

मृत्युनाशक (सं० पु०) नाशयतीति नश णिच् ण्वुल्, मृत्योर्नाशकः। १ पारद, पारा। (त्रि०) २ मरणहारक, जिसने मृत्युको नाश किया है।

मृत्युनाशन (सं० क्ली०) अमृत, जिसे पीनेसे मृत्युभय नहीं रहता।

मृत्युपथ (सं० पु०) मृत्योः पन्थाः। मरणका पथ, मरनेका उपाय।

मृत्युपा (सं० पु०) शिव

मृत्युपाश (सं० पु०) मृत्योः पाशः। मृत्युका पाशास्त्र, यमका बंधन।

"न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीर विकत्थनं तव गृह्णन्त्वभद्राः।"

(भागवत ३।१८।१०)

मृत्युपुष्प (सं० पु०) मृत्यवे निजनाशाय पुष्पमस्य, सति पुष्पोद्गमे अस्य नाशात्तथात्वं। इक्षु, ईख। स्त्रियां टाप्। २ कदलीवृक्ष, केला।

मृत्युफल (सं० पु०) मृत्यवे स्वनाशाय फलमस्य। १ महाकाल नामक फल। २ कदली, केला।

मृत्युबन्धु (सं० पु०) १ यम। २ मृत्युकालमें बन्धुवत् काम करनेवाला। (त्रि०) ३ मरणशील, मरनेवाला।

मृत्युबीज (सं० पु०) मृत्यवे स्वनाशाय बीजमस्य। १ वंश, बाँस। २ मृत्युका बीज, मृत्युका कारण जन्म। जन्म होनेसे मृत्यु अवश्यम्भावी है। अतएव जन्मही मृत्युका बीज है।

मृत्युमङ्गुरक (सं० पु०) वह ढोल जो मृत्युकालमें बजाया जाता है।

मृत्युभय (सं० पु०) मृत्योर्भयं, मरनेका डर। मनुष्यके जितने प्रकारके भय हैं, उनमें मृत्युभय ही प्रधान है। जीव यदि कठोर मृत्युयन्त्रणाका भोग न करता, तो वह कभी भी मृत्यु नहीं डरता।

मृत्युभृत्य (सं० पु०) मृत्योर्भृत्यः किङ्कर इव मरणहेतुत्वात्। रोग।

मृत्युमत् (सं० त्रि०) मृत्युः विद्यतेऽस्य, मृत्युरस्त्यर्थे मतुप्। मृत्युयुक्त, मृत्युविशिष्ट।

मृत्युमार (सं० पु०) बौद्धोंका निर्दिष्ट मारभेद।

मृत्युराज (सं० पु०) यमराज।

मृत्युरूपी (सं० पु०) १ यम वा यमदूत। २ वर्णमालाका 'श' अक्षर। (त्रि०) ३ मृत्युके समान आकारवाला।

मृत्युलङ्घनोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

मृत्युलोक (सं० पु०) मृत्योर्लोकः। यमलोक।

"अस्मिन् त्वयोयास्यति मृत्युलोकं संच्छाद्यमानो ममवाणजालैः।"

(रामायण ६।३६।७२)

मृत्युवञ्चन (सं० पु०) मृत्युं वञ्चयतीति वञ्चि-ल्यु। १ शिव। २ विल्ववृक्ष, बेलका पेड़। ३ दण्डकाक, डोम कौआ।

मृत्युसञ्जीवन (सं० त्रि०) मृतसञ्जीवन, मृत व्यक्ति जिससे जीवनलाभ कर सके।

मृत्युसञ्जीवनी (सं० स्त्री०) मृतसञ्जीवनी विद्याभेद, शुक्रोपासिता विद्या।

मृत्युसात् (सं० अव्य०) मृत्युमें परिणत।

मृत्युसुत (सं० पु०) केतुग्रह।

मृत्युसूति (सं० स्त्री०) मृत्यवे सूतिः प्रसवो यस्याः सा। कर्कटी, केकड़ेकी मादा जो अंडे देते ही मर जाती है।

"यथा कर्कटकी गर्भमादत्ते मृत्युमात्मनः।"

(भारत विराटपर्व)

मृत्युसेना (सं० स्त्री०) मृत्योः सेना। मृत्युकी सेना, यमदूत।

मृत्स (सं० त्रि०) पिच्छिल, चिपचिपा।

मृत्सा (सं० स्त्री०) प्रशस्ता मृत् इति मृत् (सस्नौ प्रशंसायां। पा ५।४।४०) इति स टाप्। १ प्रशस्त मृत्तिका, गोपीचन्दन।

मृत्स्ना (सं० स्त्री०) प्रशता मृत् इति मृत्स्न-टाप्। १ प्रशस्त मृत्तिका, पवित्र मिट्टी। २ काक्षी, गोपीचन्दन।

मृत्स्नाभाण्डक (सं० क्ली०) मृत्स्नानिर्मितं भाण्डम्, ततः संज्ञायां कन्, अभिधानात् पुंस्त्वं। भाण्डविशेष, भाँड़।

मृद् (सं० स्त्री०) मृद्नाति प्रलये चूर्णतया स्वकारणे लीयते इति मृद् कर्त्तरि क्विप्। मृत्तिका, मिट्टी। इस शब्दका अधिकतर व्यवहार समस्त पद बनानेमें होता है।

मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधुचतुष्पथम्।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन्॥"

(मनु ४।३९)

२ तुवरी, अरहर।

मृदङ्कुर (सं० पु०) हारीतपक्षी, परेवा।

मृदङ्ग (सं० पु०) मृद्यते आहन्यते असौ इति मृद्-विड़ालादिभ्यः कित् (उण् १।१२०) इति अङ्गच् सच कित्, यद्वा मृदङ्गमस्य। १ एक प्रकारका बाजा। यह ढोलकसे कुछ लंबा होता है। इसका ढाँचा पक्की मिट्टीका होता है, इसीसे यह मृदङ्ग कहलाता है। प्रवाद है, त्रिपुरासुर

जब मारा गया था, तब उसके रक्तसे पृथिवीमण्डल इतना तराबोर हो गया, कि कीचड़ उठ आया था। भगवान् ब्रह्माने उसी रक्त मिली हुई मिट्टीसे मृदङ्ग बनाया और उसका दोनों ओर असुरके चमड़े से मढ़ दिया। उसकी शिरा-से वेष्टनी और रज्जु तथा अस्थिसे गुल्म आदि बनाया गया। त्रिपुरारि महादेव इन्द्रादि देवताओंसे वेष्टित हो बड़े आनन्दसे नृत्य करने लगे और गजाननसे नृत्यके साथ ताल देनेको कहा। उसी समयसे मृदङ्गकी सृष्टि हुई है। उस समयका मृदङ्ग देखनेमें आजकलके पखावज-के जैसा था। बहुतेरे पखावजको ही मृदङ्ग कहते है। कालक्रमसे मृदङ्गका निर्माण-कौशल और सौष्ठव बहुत कुछ बदल गया है। सङ्गीतदर्पणकारके मतानुसार मट्टीका बना हुआ यन्त्र सहजमें फूट जानेके भयसे द्वापर-युगमें कृष्णलीलाके समयसे वह काठका बनाया जाने लगा।

मृदङ्गक (सं० क्ली०) छन्दोभेद। इसके प्रति चरणमें १५ अक्षर करके होते है। १, २, ४, ८, ११, १३, १५वां वर्ण गुरु और शेष लघु होते हैं।

मृदङ्गफल (सं० पु०) मृदङ्ग इवतदाकृति फलमस्य। पनस-फल, कटहल।

मृदङ्गफलिनी (सं० स्त्री०) मृदङ्गवत् फलमस्त्यस्याः इति ङीप् च। कोषातकी, तरोई।

मृदङ्गी (सं० स्त्री०) मृदङ्गः तदाकारफलमस्त्यस्या इति मृदङ्ग-अर्श आद्यच् ङीष् च। कोषातकी, तरोई।

मृदर (सं० पु०) मृदुर-अच् (कुदरादयश्च। उण् ५।४१) इति निपात्यते। १ व्याधि, रोग। २ विल। (त्रि०) ३ क्षणस्थायी। ४ क्रीड़नशील।

मृदव (सं० क्ली०) नाटककी भाषामें गुणके साथ दोष-के वैषम्यका प्रदर्शन।

मृदा (सं० स्त्री०) मृद-टाप्। मृत्तिका, मिट्टी।

मृदाकर (सं० पु०) वज्र।

मृदाह्वया (सं० स्त्री०) सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन।

मृदित (सं० त्रि०) मृद-धातोः कर्मणि क्त। चूर्णीकृत, चूर चूर किया हुआ। (क्ली०) २ शूकरोग। शूक देखो।

मृदिनी (सं० स्त्री०) मृद् भावे क, मृदः चूर्णीकरण-मस्त्यस्याः मृद्-इनि, स्त्रियां ङीप्। प्रशस्त मृत्तिका, अच्छी मिट्टी। २ मृत्स्ना, गोपीचन्दन।

मृदु (सं० त्रि०) मृद्यते म्रदितुं शक्यते इति म्रद्-(प्रथि-म्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च। उण् १।२८) इति कु। १ कोमल, मुलायम। २ जो सुननेमें कर्कश या अप्रिय न हो। ३ सुकुमार, नाजुक। (स्त्री०) ४ घृत-कुमारी, घीकुआँर। ५ सफेद जातिपुष्प, जाही नामक फूलका पौधा। ६ बृंहण धूमपानविशेष। ७ मृत्युञ्जय राजपुत्र। (विष्णु० ४।२१।३)

मृदुक (सं० त्रि०) नम्र, मुलायम।

मृदुकण्टक (सं० पु०) श्वेतझिण्टी, कटसरैया।

मृदुकण्टकफला (सं० स्त्री०) कर्कटी लता, ककड़ी।

मृदुकर्म (सं० क्ली०) कठिनको मुलायम करना (त्रि०) २ मृदु कार्यकारी, नरम काम करनेवाली।

मृदुकृष्णायस (सं० क्ली०) मृदु च तत् कृष्णायसं चेति। सीसक, सीसा।

मृदुकोष्ठ (सं० पु०) कोमल कोष्ठ।

मृदुक्रिया (सं० स्त्री०) १ धीरे धीरे कर्मसमाधान, आहिस्ता आहिस्ता काम करना।

मृदुखुर (सं० पु०) घोड़ोंके खुरका एक रोग।

"मृदुखुरश्च विख्यातो मृदुर्यस्य खुरो भवेत्।"
(जयदत्त ३६ अ०)

घोड़ोंके खुर अत्यन्त मृदु अर्थात् कोमल होनेसे यह रोग होता है।

मृदुगण (सं० पु०) मृदूनां गणः। नक्षत्रोंका एक गण जिसमें चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा और रेवती ये चार नक्षत्र हैं।

"चित्रामित्रमृगान्तभं मृदुभंगणः" (ज्योतिस्तत्त्व)

मृदुगंधिक (सं० पु०) १ गुल्मभेद। (त्रि०) २ मृदुगन्ध-विशिष्ट।

मृदुगमना (सं० स्त्री०) मृदुगमनमस्याः। १ हंसी। (त्रि०) २ मन्दगमनविशिष्ट, धीमी चालसे जानेवाली।

मृदुग्रन्थि (सं० पु०) मञ्जर तृण, एक प्रकारी घास जिस-में बहुतसी गांठे होती हैं।

मृदुचर्मिन् (सं० पु०) मृदु कोमलं चर्म त्वक् तदस्त्यस्य चर्म (व्रीह्यादयश्च। पा ५।२।११२) इति इनि। १ भूर्जवृक्ष,

भोजपत्रका पेड़। (त्रि०) २ कोमलत्वग्‌विशिष्ट, जिसकी छाल मुलायम हो।

मृदुचाप (सं० पु०) दानवभेद।

मृदुच्छद (सं० पु०) मृदुः छदः पत्रमस्य। १ भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका पेड़। २ पीलूवृक्ष। ३ कुक्कुरद्रुमः कुकशिम्बा। ४ श्रीताल। ५ कोङ्कणदेश प्रसिद्ध पोएडल्लू। ६ नल, नरकट। ७ शिलिपनी तृण। ८ पिंडखजूर। ६ लाल लजालू।

मृदुजातीय (सं० त्रि०) दुर्बल प्रकृतिका।

मृदुता (सं० स्त्री०) मृदु-तल्, टाप्। १ कोमलता, मुलायमियत। २ मन्दता, धीमापन।

मृदुताल (सं० पु०) वृक्षभेद, श्रीताल।

मृदुतीक्ष्ण (सं० त्रि०) मृदु और तीक्ष्ण, कोमल और तेजस्वी।

मृदुत्वच् (सं० पु०) मृदुवत् त्वचोऽस्य। भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका पेड़।

मृदुदर्भ (सं० पु०) शुक्ल कुश, सफेद दाभ।

मृदुनक (सं० क्ली०) मृदा मृदुपरिणामेन उत् ऊद्ध्वं नीयते यत् इति उत्-नी-उप्रकरणे (अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।४८) इत्यत्र काशिकोक्त्या ड, ततः स्वार्थे कन्। सुवर्ण, सोना।

मृदुपत्र (सं० पु०) मृदूनि पत्राण्यस्य। १ नल, नरकट। २ कोमल पर्ण, मुलायम पत्ता। ३ भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका पेड़। ४ शाकविशेष, रक्त चिल्ली।

मृदुपत्री (सं० स्त्री०) मृदूनि पत्राणि यस्याः। चिल्ली शाक।

मृदुपर्वक (सं० पु०) मृदूनि पर्वाण्यस्य कप्। बेत, बेंत। (त्रि०) २ कोमल पर्वविशिष्ट, मुलायम गांठवाला।

मृदुपीठक (सं० पु०) मछलीकी एक जाति जिसकी पीठ मुलायम होती है।

मृदुपुष्प (सं० पु०) मृदूनि कोमलानि पुष्पाण्यस्य। १ शिरीषवृक्ष, सिरीस। (त्रि०) २ कोमल कुसुमयुक्त, कोमल फूलवाला।

मृदुपूर्व (सं० त्रि०) विनयपूर्वक।

मृदुप्रिय (सं० पु०) १ दानवभेद।

मृदुफल (सं० पु०) मृदूनि फलान्यस्य। १ विकण्कतक वृक्ष। २ मधु नारिकेल, नारियल। ३ विकण्टक वृक्ष। (त्रि०) कोमल फलयुक्त।

मृदुबीज (सं० पु०) विकंकत वृक्ष।

मृदुर (सं० पु०) श्वफल्कके एक पुत्रका नाम।

मृदुरोमवत् (सं० पु०) १ खरगोस। (त्रि०) २ कोमल लोमविशिष्ट, जिसके रोएं मुलायम हों।

मृदुल (सं० क्ली०) मृदु मृदुत्वमस्त्यस्य मृदु (सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७) इति लच्। १ जल, पानी। २ अंजीर। (त्रि०) ३ कोमल, मुलायम। ४ कोमल हृदय, दयामय।

मृदुलता (सं० स्त्री०) मृदुलस्य भावः तल्-टाप। १ मृदुका भाव या धर्म। २ शूली तृण।

मृदुला (सं० स्त्री०) सुलेमानी खजूरका पेड़।

मृदुलोमक (सं० पु०) मृदूनि स्पर्शसुखानि लोमानि यस्य स, स्वार्थे कन्। १ शशक, खरहा (त्रि०) २ कोमलरोमविशिष्ट, जिसके रोएं मुलायम हों।

मृदुवर्ग (सं० पु०) मृदूनां वर्गः। मृदुगणोक्त नक्षत्र। मृदुगण देखो।

मृदुवाच् (सं० त्रि०) मधुरालापी।

मृदुवात (सं० पु०) मन्द मारुत, धीरे धीरे बहनेवाली हवा।

मृदुविद्ध (सं० पु०) श्वफल्कके एक पुत्रका नाम। (भाग० ९।२४।१५)

मृदुस्पर्श (सं० त्रि०) मृदुःस्पर्शः यस्य। कोमल स्पर्शविशिष्ट, जो छूनेमें मुलायम हो।

मृदुहृदय (सं० त्रि०) कोमल हृदय, दयालु।

मृदू (सं० अव्य०) मृदुभाव।

मृदूत्पल (सं० क्ली०) मृदु कोमलं उत्पलं। नीलपद्म, नीला कमल।

मृदूभाव (सं० पु०) अमृदुका मृदु भाव, जो पहले मृदु नहीं था, उसका मृदु होना।

मृद्‌ग (सं० पु०) मृदं पङ्कं गच्छति कारणत्वेन प्राप्नोतीति गम-ड। मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली।

मृद्घट (सं० पु०) मृन्निर्मितः घटः मध्यपदलोपि कर्मधा०, मिट्टीका घड़ा।

मृद्भाण्ड (सं० क्ली०) मृत्तिकानिर्मित पात्र, मट्टीका भांड़।

मृद्वङ्ग (सं० क्ली०) मृदु कोमलं अङ्गं यस्य । १ वङ्ग, रांगा । २ कोमल अवयव, कोमल शरीर ।

मृद्वी (सं० स्त्री०) मृदु (वोतो गुणवचनात् । पा ४।१।४४) इति ङीष् । १ कोमलाङ्गी, । २ कपिल द्राक्षा, सफेद अंगूर (त्रि०) ३ मृदु, कोमल ।

मृद्वीका (सं० स्त्री०) मृदु बाहुलकात् ईकन् टाप् । १ द्राक्षा, दाख । २ कपिल द्राक्षा, सफेद दाख । ३ द्राक्षासव, अंगूरको शराब ।

मृद्वीकादि (सं० पु०) द्राक्षादि सिद्ध कषाय, पित्तज्वरमें यह बहुत उपकारी है ।

मृद्वीका मधुकं निम्बं कटुका रोहिणी समा ।
अवश्यायस्थितं पाक्यमेतत् पित्तज्वरापहम् ॥"
(चक्रदत्तपित्तज्वरचि०)

मृद्वीकादिकषाय (सं० पु०) कषायौषधभेद ।

मृद्वीकासव (सं० पु०) द्राक्षासव, अंगूरकी शराब ।

मृध (सं० क्ली०) मर्धते क्लिद्यतीति मृध् क । युद्ध, लड़ाई ।

अपयाते ततो देवे कृष्णे चैव महात्मनि ।
पुनश्चावर्तत मृधं परेषां लोमहर्षणम् ॥"
(हरिवंश १८२।१)

मृधस् (सं० पु०) युद्ध, लड़ाई ।

मृधा (सं० अव्य०) मृषा, झूठमूठ ।

मृध्र (सं० त्रि०) १ शत्रु, दुश्मन । (क्ली०) २ घृणा, तिरस्कार ।

मृन्मय (सं० त्रि०) मृद्-विकारे स्वरूपे वा मयट् । मृत्-स्वरूप, मिट्टीका बना हुआ ।

मृन्मरु (सं० पु०) मृत्सु मरुः । पाषाण, पत्थर ।

मृन्मान (सं० क्ली०) कूप, कुआँ ।

मृल्लोष्ट (सं० क्ली०) मृत्तिकाखण्ड, मट्टीका टुकड़ा ।

मृशा खाँ—एक मुसलमान जमींदार । मूशा खाँ देखो ।

मृषा (सं० अव्य०) मृष्यते इति मृष-का । १ मिथ्या, झूठ-मूठ । (त्रि०) २ असत्य, झूठ ।

मृषाज्ञान (सं० क्ली०) मिथ्या ज्ञान, झूठी समझ ।

मृषात्व (सं० क्ली०) मृषा भावे त्व । मिथ्यात्व, असत्यता ।

मृषादान (सं० क्ली०) वृथा दान ।

मृषादृष्टि (सं० स्त्री०) १ भूल देखना । २ भ्रमपूर्ण मत-प्रदान, झूठी समझ ।

मृषाध्यायिन् (सं० पु०) मृषाध्यायति चिन्तयतीति ध्यै णिनि । वक, वगुला ।

"कङ्को वको बकोटश्च तीर्थसेवी च तापसः ।
मीनघाती मृषाध्यायी निश्चलाङ्गश्च दाम्भिकः ॥"
(राजनि०)

मृषानुशासिन् (सं० त्रि०) मृषा अनुशास्-णिनि । मिथ्या अनुशासनकारी, वृथा अनुयोग करनेवाला ।

मृषाभाषिन् (सं० त्रि०) मृषा भाषते भाष णिनि । मिथ्या-वादी, झूठ बोलनेवाला ।

मृषार्थक (सं० क्ली०) मृषा-अर्थोऽस्य, बहुव्रीहौ कप् । अत्यन्त असम्भवार्थ वाक्य, जो होने योग्य नहीं हो उसे कहना, जैसे, वन्ध्यासुत, खपुष्प, इत्यादि ।

मृषालक (सं० पु०) मृषा मिथ्या अचिरस्थायित्वेन मुकुलोद्गमकाल एव इत्यर्थः अलं अलङ्करणं कायति प्रकाशयतीति कै-क । आम्रवृक्ष, आमका पेड़ । इसमें थोड़े ही दिन मंजरियोंका अलङ्कार रहता है, इसीसे इसका यह नाम रखा गया है ।

मृषावाच् (सं० स्त्री०) मिथ्या वाक्य, झूठा वचन । (त्रि०) २ मिथ्यावादी, झूठ बोलनेवाला ।

मृषावाद (सं० पु०) मृषा मिथ्या वादः कथनं । १ मिथ्या-वाक्य, असत्य वचन । २ असत्य भाषण, झूठ बोलना ।

मृषावादिन् (सं० त्रि०) मृषा-वदतीति वद्-णिनि । मिथ्या-वादक, झूठ बोलनेवाला ।

मृषोद्य (सं० क्ली०) मृषा-वद् (राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्य-कृष्टपच्याव्यथ्याः । पा ३।१।११४) इति क्यप्, निपातितश्च । १ मिथ्या वाक्य, असत्य वचन । (त्रि०) २ मिथ्यावादी, झूठ बोलनेवाला ।

मृष्ट (सं० त्रि०) मृज-क्त । १ शोधित । (क्ली०) २ मरिच, मिर्च ।

मृष्टवत् (सं० त्रि०) परिशुद्ध भावयुक्त ।

मृष्टि (सं० स्त्री०) १ परिशुद्धि, शोधन । २ अन्नादिका संस्कारविशेष ।

मृष्टेरुक (सं० त्रि०) १ वदान्य, मधुरभाषी । २ मिष्टाशी, मिष्टान्न खानेवाला । ३ अतिथिद्वेषी ।

में (हिं० अव्य०) १ अधिकरण कारकका चिह्न जो किसी शब्दके आगे लग कर उसके भीतर, उसके बीचका या उसके चारों ओर होना सूचित करता है, आधार या अवस्थानसूचक शब्द। (पु०) २ बकरीके बोलनेका शब्द।

मेंगनी (हिं० स्त्री०) ऐसे पशुओंकी विष्ठा जो छोटी छोटी गोलियोंके आकारमें होती है, जैसे बकरीकी मेंगनी, ऊँटकी मेंगनी।

मेंबर (अ० पु०) किसी सभा या गोष्ठीमें सम्मिलित व्यक्ति, सभासद, सदस्य।

मेक (सं० पु०) मे इति कायति शब्दं करोतीति कै-शब्दे क। छाग, बकरा।

मेकदार (अ० पु०) परिमाण, अंदाज।

मेकल (सं० पु०) विन्ध्य पर्वतका एक भाग। यह भाग रीवाँ राज्यके अन्तर्गत है और इसमें अमरकण्टक है। नर्मदा नदी इसी पर्वतसे निकली है। यह मेखलाके आकारका है, इसीसे इसको मेखला भी कहते हैं।

मेकलकन्यका (सं० स्त्री०) मेकलः मेखलायुक्तः विन्ध्यपर्वतः तस्य कन्यका, तस्य नितम्बदेशात् निःसृता। नर्मदा नदी।

मेकलसुता (सं० स्त्री०) नर्मदा नदी।

मेकलाद्रि (सं० पु०) मेकलः अद्रिः। विन्ध्यपर्वत।

मेकलाद्रिजा (सं० स्त्री०) मेकलाद्रेजाता जन-ड, स्त्रियां टाप्, नर्मदा नदी।

रेवेन्दुजा पूर्वगङ्गा नर्मदा मेकलाद्रिजा' (हेम)

मेक्षण (सं० क्ली०) यज्ञीय पात्रविशेष। यह चमच या करछीके आकारका और चार अंगुल चौड़ा तथा आगेकी ओर निकला हुआ होता है।

मेख (हिं० पु०) १ मेष देखो। (स्त्री०) २ जमीनमें गाड़नेके लिये एक ओर नुकीली गढ़ी हुई लकड़ी, खूँटा। २ कील, काँटा। ३ लकड़ीकी फट्टी जो किसी छेदमें बैठाई हुई वस्तुको ढीली होनेसे रोकनेके लिये इधर उधर पेशी जाय। इसे पच्चड़ भी कहते हैं। घोड़ेका लंगड़ापन जो नाल जड़ते समय किसी कीलके ऊपर ठुक जानेसे होता है।

मेखड़ा (हिं० स्त्री०) बाँसकी वह फट्टी जिसे डले या झावेके मुँह पर गोल घेरा बना कर बांध देते हैं।

मेखल (हिं० स्त्री०) १ किङ्किणी, करधनी। वह वस्तु जो किसी दूसरी वस्तुके मध्य भागमें उसे चारों ओरसे घेरे हो। मेखला देखो।

मेखला (सं० स्त्री०) मीयते प्रक्षिप्यते कायमध्यभागे इति मि संज्ञायां खलः गुणश्च स्त्रियां टाप्। १ सिकड़ी या मालाके आकारका एक गहना जिसे स्त्रियां कमरको घेर कर पहनती हैं, करधनी। पर्याय—सप्तकी, रसना, सारसन, काञ्ची, काञ्चि, रशना, वक्षा, रसन, रशन, कक्ष्या, सप्तका, सारशन, कलाप। (जटाधर)

कोई कोई पण्डित आठ लड़वाले हारको मेखला कहते हैं।

"एकयष्टिर्भवेत् काञ्ची मेखला त्वष्टयष्टिका।
रसना षोड़श ज्ञेया कलापः पञ्चविंशकः॥" (भरत)

२ खड्गादि निबन्धन, पेटी या कमरबंद जिसमें तलवार बाँधी जाती है। ३ वह वस्तु जो किसी दूसरी वस्तुके मध्य भागमें उसे चारों ओरसे घेरे हुए पड़ी हो। ४ कमरमें लपेट कर पहननेका सूत या डोरी, करधनी। ५ कोई मण्डलाकार वस्तु, गोल घेरा। ६ शैलनितम्ब, पर्वतका मध्य भाग। ७ नर्मदानदी। ८ पृश्निपर्णी, पिठवन। ९ डंडे, मूसल आदिके छोर पर या औजारके मूठ पर लगा हुआ लोहे आदिका घेरदार बंद, सामी। १० मूंजके बने हुए वे तीन सूते जो उपनयनके समय पहने जाते हैं। उपनयनकालमें ब्राह्मण मुञ्जकी, क्षत्रिय मौर्वीकी और वैश्य पटसनकी मेखला बना कर पहनते हैं।

"मौञ्जी त्रिवित्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्य तु मौर्वीमा वैश्यस्य शणतान्तवी॥"
(संस्कारतत्त्व)

यदि मुञ्जतृण न मिले तो कुशकी मेखला बना कर पहने, आजकल उपनयनके समय प्रायः सभी जगह कुशकी ही मेखला पहनी जाती है।

"मौञ्ज्यभावे कुशेनाहुर्ग्रन्थिनैकेन च त्रिभिः।"
(कौर्म उपवि० ११ अ०)

११ होमकुण्डके ऊपर चारों ओर बना हुआ मिट्टीका घेरा।

"यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदिष्यते।
हस्तैके मेखलास्तिस्रो वेदाग्निनयनांगुलाः॥
कुण्डे द्विहस्ते ता ज्ञेया रसवेदगुणांगुलाः।
चतुर्हस्ते तु कुण्डे ता वसुतर्कयुगांगुलाः॥"
(तिथितत्त्वमें पञ्चरा)

१२ यज्ञवेष्टनसूत्र। १३ कपड़ेका टुकड़ा जो साधु लोग गलेमें डाले रहते हैं, कफनी।

मेखलकन्यका (सं० स्त्री०) मेखलस्य मेखलोपलक्षितस्य कन्यकेव प्रसूता। नमदानदी।

मेखलापद (सं० क्ली०) नितम्बो, मध्यभाग।

मेखलाल (सं० त्रि०) १ मेखलालंकृत, जो मेखला पहने हो। (पु०) २ शिव, महादेव।

मेखलावत् (सं० त्रि०) मेखलायुक्त, जिसमें मेखला हो।

मेखलाबन्ध (सं० क्ली०) १ मेखला पहननेकी क्रियाविशेष। २ मेखला बन्धन।

मेखलाविन् (सं० त्रि०), मेखला अस्त्यस्येति मेखला-मतुप् मस्य व। मेखलाधारी, मेखला पहननेवाला।

मेखलिक (सं० त्रि०) मेखलाशोभी।

मेखलिन् (सं० पु०) १ मेखलाधारी ब्रह्मचारी। २ शिव, महादेव।

मेखली (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका पहनावा। इसे गलेमें डालनेसे पेट और पीठ ढकी रहती है और दोनों हाथ खुले रहते हैं। यह देखनेमें तिकोना और ऊपर चौड़ा तथा नीचे नुकीला होता है। २ कटिबन्ध, करधनी।

मेखवा (फा० पु०) सवारी ले कर चलते समय जब राहमें आगे खूंटा मिलता है; तब उससे बचनेके लिये अगला कहार यह शब्द बोलता है।

मेगज़ीन (अं० पु०) १ वह स्थान जहां सेनाके लिये बारूद रखी जाती है, बारूदखाना। २ सामयिक पत्र विशेषतः मासिक पत्र जिसमें लेख छपते हैं।

मेघ (सं० पु०) मेहतीति मिह-अच् (न्यङ्क्वादीनाञ्च पा ७।३।५३) इति कुत्वम्। १ मुस्तक, मोथा। २ तण्डुलीय शाक। ३ राक्षस। ४ आकाशमें घनीभूत जलवाष्प जिससे वर्षा होती है, बादल। पर्याय—अवभ्र, वारिवाह, स्तनयित्नु, बलाहक, धाराधर, जलधर, तड़ित्वान्, वारिद, अम्बुभृत्, घन, जीमूत, मुदिर, जलमुच, धूमयोनि। (अमर) अभ्र, पयोधर, अम्भोधर, व्योमधूम, खनाखन, वायुदारु, नभश्चर, कन्धर, कन्ध, नीरद, गगनध्वज, वारिमुच्, वामुक्, वनमुच्, अब्द, पर्जन्य, नभोगज, मदयित्नु, कद, कन्द, इवेड़, गदाम्बर, खतमाल, वातरथ, श्वेतनील, नाग, जलकरङ्क, पेचक, भेक, दर्दुर, अम्बुद, तोयद, अम्बुवाह; पाथोद, गदाम्बर, गाडव, वारिमसि। (त्रिका०)

वैदिक पर्याय—अद्रि, ग्रावा, गोत्र, वल, अश्न, पुरुभोजा, बलिशान, अश्मा, पर्वत, गिरि, व्रज, चरु, वराह, शम्बर, रौहिण; रैवत, फलिग, उपर, उपल, चमस, अहि, अभ्र, बलाहक, मेघ, दृति, ओदन, वृषन्धि, वृत्र, असुर और कोश। (वेदनिघण्टु १।१०)

आकाशमें जो हम लोग कृष्ण, श्वेत आदि वर्णकी वायवीय जलराशिकी रेखा वाष्पाकारसे चलती हुई देखते हैं उसीका नाम मेघ (Cloud) है। पर्वतके ऊपर कुहेसेकी तरह गहरा अन्धकार दिखाई देता है वह मेघका रूपान्तरमात्र है। वह आकाशमें सञ्चित घनीभूत जलवाष्पसे बहुत कुछ तरल होता है। वह तरल कुहरेकी जैसी वाष्पराशि पीछे घनीभूत हो कर स्थानीय शीलता के कारण अपने गर्भस्थ उत्तापको नष्ट कर शिशिर विन्दुकी तरह वर्षा करती है।

मेघ और कुहेसे (Fog)-की उत्पत्ति प्रायः एक-सी है। प्रभेद इतना ही है, कि मेघ आकाशमें चलता है और कुहेसा पृथ्वी पर। सूर्यदेवकी प्रखर किरण जब समुद्र पर पड़ती है, तब उसकी जलराशि वाष्पाकारमें उड़ कर वायुगतिके अनुसार सञ्चालित होती है। वह सूक्ष्म जालीय वाष्प (Aqueous Vapour) शीतल वायुके चापसे ऊपर उठता और सूक्ष्मतम तथा परिशुष्क वायुस्तरमें सञ्चित हो जाता है। इस प्रकार बार बार सञ्चित होनेके कारण वह वाष्पराशि आकाशमें नीली वा काली (Visible Vapours) दिखाई देती है। कभी कभी सूर्यकी किरण पड़नेके कारण वह तुषार-सा प्रतीत होता है।

पहले कहा जा चुका है, कि एकमात्र अग्नि वा उत्ताप ही मेघ और कुहेसेकी उत्पत्तिका कारण है। कहीं कहीं आग जलानेसे हम लोग देखते हैं, कि चारों

ओरकी वायु आ कर अग्निशिखाको सन्ताड़ित करती है। वहांका वायुस्थित उद्जन अग्निके साथ दग्ध हो कर वाष्पमें परिणत हो जाता और पतला हो कर ऊपर उठता है। पीछे बाहरकी वायु आ कर स्वाभाविक नियमानुसार उस वायुशून्य स्थानको अधिकार कर लेती है। इसीलिये उत्तापयुक्त स्थानमें वायुका सन्ताड़न स्वभावतः ही अधिक हुआ करता है। यही कारण है, कि सूर्यकक्षा (Ecliptic) के मध्यवर्त्ती स्थानमें अर्थात् कर्कट और मकरक्रान्ति सोमाके मध्यस्थ भूभागमें सूर्यको गरमी अधिक पड़नेके कारण वायुको गति प्रवल हो जाती जिससे कभी कभी तूफान आ जाया करता है। यही दक्षिण पश्चिम और उत्तर-पूर्व मौसूम वायु और वृष्टिका एकमात्र कारण है। वायु देखो।

सूर्यके उत्तापसे इस प्रकार ऊपर उठी हुई वाष्पराशि आकाशमें धीरे धीरे मेघका आकार धारण करती है। ठंढ लगनेके कारण उसकी कणा (Molecules) आपसमें मिल कर घनी हो जाती और पीछे वही कणा जलविन्दुमें परिणत हो कर वृष्टिके आकार (Rains)-में पृथ्वी पर गिरती है। शीतकालमें वायुके स्वाभाविक उत्तापकी न्यूनताके कारण तथा भूपृष्ठ पर संलग्न जलीय वायु जिसमें उत्तापकी मात्रा अधिक रहती है, कुहेसेका आकार धारण करती है। पीछे उस पर जब ऊपरकी शीतल वायुका दबाव पड़ता है तब वह ओस (Dews) में बदल जाती है।

मेघ और कुहेसेके कणोंकी परीक्षा करनेसे देखा गया है कि वे बुंद कठिन उपादनभूत (Solid drops) नहीं हैं, वे सूक्ष्मतम वायुपिण्ड (Air bells या Vesicles और साबुनके फफोले जैसी हैं। वे वाष्पकोष ठंढ लगनेके कारण जब घनीभूत होते; तब वृष्टि होती है। ऋतुविशेषकी जलवायुके उत्तापके परिवर्त्तनके साथ साथ उन वाष्पकोषोंकी परिणति कुछ और देखी जाती है। शीतप्रधान उत्तर यूरोपभागमें अगस्तके महीने उसका व्यास (Minimum) कमसे कम ·०००६ इञ्च और दिसम्बरके महीने ज्यादेसे ज्यादा प्रायः ·००१५ हो जाता है। यह नियम सभी जगह एक-सा नहीं रहता, कहीं कहीं मईके महीनेमें इसमें न्यूनता देखी जाती है।

इस प्रकार मेघकणों और वाष्पकोषोंमें ठंड लगनेसे जलीय आकार धारण करते ही वर्षा क्यों नहीं होती? वह जलके रूपमें ऊपर क्यों उठ जाता और तब वहांसे वर्षा करता है? इसका कारण यह है, कि वाष्पकणके जलीय पिण्ड बहुत बारीक (Extreme tenuity of the aqueous envelope) होनेके कारण वे मोटी वायुसमुद्रको तहको भेद कर नीचे नहीं आ सकते। क्योंकि, मेघकणमें आपेक्षिक गुरुत्व कभी कभी वायुसे अधिक देखा जाता है।

यथार्थमें जो मेघपुञ्ज आकाशमें स्थिर हो कर रहता है वह स्वभावतः ही सङ्कर्षणके कारण (जल) भारी हो कर नीचेकी ओर उतरता है। सूक्ष्मसे अपेक्षाकृत गुरुभार मेघकणा जब नीचे उतरती है उस समय परिशुष्क वायुस्तरमें संयुक्त होते ही उसके जलप्रधान कोष शुष्कवायुमें मिश्रित हो अदृश्य हो जाते हैं। इस प्रकार मेघ निम्न भागमें जितना ही अदृश्य होगा उतना ही उसके ऊपर नये वाष्पकोष दिखाई देंगे। इसी कारण ऐसे मेघोंसे प्रायः वृष्टिपात होते नहीं देखा जाता है। फिर शून्यमार्गमें सभी समय एक वायवीय शक्ति (Atmospheric force) रहती है अर्थात् जलराशिसे विकर्षण प्रभावमें हमेशा उत्थित जलराशि (Ascending current) ऊद्‌र्ध्वगामी होनेके कारण वृष्टि होनेमें बाधा डालती है। जिस गतिसे ऊद्‌र्ध्वगामी वाष्पस्रोत वायुसागरको भेद कर ऊपर उठता है, परिष्कार ऋतुमें अर्थात् जिस दिन आकाशमें मेघ नहीं रहता, वाष्पकोषका पतनपरिमाण उससे कहीं कम होता है। यही कारण है, कि Cumuli नामक मेघराशि प्रातःकालकी अपेक्षा मध्यकालमें ही सबसे ऊंचे स्थानमें उठ जाती है। सन्ध्याकालमें ज्यों ज्यों सूर्यका उत्ताप घटता जाता है त्यों त्यों वाष्पस्रोतकी गति क्षीण होने लगती है तथा मेघ धीरे धीरे अपेक्षाकृत उत्तप्त वायुस्तरमें अवतीर्ण हो क्षयको प्राप्त होता है। जलके विकर्षण और सङ्कर्षण (Evaporation and condensation)-के कारण मेघकी उत्पत्ति और वृष्टिपरिणति हुआ करती हैं।

वृष्टिपात जो जीव और जगतका मङ्गलजनक है, वह किसीसे भी छिपा नहीं है। जगत्‌के आदिग्रन्थ ऋग्वेद

संहिताके १।१८१।८ तथा अथर्ववेदके ४।१५।७-८ मन्त्रमें वायुकर्त्तृक मेघकी उत्पत्ति तथा वृष्टिपातका उल्लेख है। इन विश्वरक्षक मेघोंकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई है अथवा किस समय वे गर्भधारण कर कितने दिनोंके बाद जल-राशिकी वर्षा करते हैं, प्राचीन संस्कृत पुराणादि शास्त्रों और ज्योतिषग्रन्थोंमें इसका उल्लेख देखनेमें आता है। यूरोपीय वैज्ञानिकोंने समुद्रजलसे वाष्पाकारमें ऊपर उठी हुई जलराशिके रूपान्तरको ही जो मेघकी उत्पत्तिका कारण बतलाया है, भारतीय प्राचीन ऋषियोंको बहुत पहलेसे ही वह वैज्ञानिकतत्त्व मालूम था। नीचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

ब्रह्माण्डपुराणमें मेघका जो उत्पत्ति-विवरण दिया गया है वह ठीक वैज्ञानिक मतके जैसा है। जैसे—

"तेजो हि सर्वभूतेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलं।
समुद्रात्वम्भसां योगात् रश्मयः प्रवहन्त्यपः॥
ततोऽयनवशात् काले परिवृत्तो दिवाकरः।
नियच्छति पयो मेघे शुक्लाशुक्लैर्गभस्तिभिः॥
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।
सर्वभूतार्थहितार्थाय वायूभूताः समन्ततः॥
ततो वर्षति सोऽम्भांसि सर्वभूतविवृद्धये।
वायव्यं स्तनितञ्चैव विद्युदग्निसम प्रभम्॥
मेहनानुमिहेत्यातो मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च।
भ्रमिष्यन्ति यथा चापस्तदन्तं कवयो विदुः॥"
(ब्रह्माण्डपु०)

तेज अपनी ज्योति द्वारा सभी भूतोंसे उनका जल-भाग खींचता है तथा सूर्यदेव भी अपने तेज प्रभावसे समुद्रसे जलीय वाष्प ग्रहण कर शुक्ला-शुक्लकिरण द्वारा उसे मेघोंमें प्रदान करते हैं। वह मेघ वायु द्वारा चालित और प्राणियोंकी भलाईके लिये चारों ओर विक्षिप्त हो जल बरसाता है तथा उसीसे सभी प्राणियोंकी परिपुष्टि होती है। वे सब मेघ अग्निज, ब्रह्मज और पक्षजभेदसे तीन प्रकारके हैं। मेघा-च्छन्न दिनकी वायुसे जिन मेघोंकी उत्पत्ति होती है, वे महिष, वराह और मत्त मातङ्गका रूप धारण कर पृथ्वी पर विचरण और क्रीड़ा करते हैं, वही मेघ अग्निज नामसे प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मज मेघ ब्रह्मनिश्वाससे उत्पन्न होता है। यह विद्युद्गुणविहीन, जलधारावलम्बी महाकाय और मृदुवर्षी हो कर कोस वा आध कोस परिमित स्थानमें तथा पर्वतके सामने वा बीचके वनप्रदेशमें जल बरसाता है। प्रजाओंकी मङ्गलकामना करके देवराज इन्द्रने जिन सब मेघों द्वारा पर्वतोंके पंख कटवा लिये थे उन्हें पक्षज मेघ कहते हैं। (ब्रह्माण्डपुराण ५८ अ०)

कूर्मपुराणमें त्रेतायुगके समय मेघोत्पत्तिका जो वर्णन आया है उसमें भी वही आभास देखनेमें आता है। जैसा—

"अपां सिद्धे प्रतिगते तदा मेघाम्बुना तु वै।
मेघेभ्यः स्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्ज्जनम्॥"
(कूर्म पु० २८।२६)

त्रेतायुगके आरम्भमें मेघोंसे ही जल बरसता था। उस जलके पृथिवी पर स्पर्श होते ही प्राणियोंके उपयोगी वृक्षादि उत्पन्न होते थे जिनसे उनके स्वास्थ्यमें बहुत लाभ पहुंचता था। (कूर्म पु० २८।२६)

प्रलयकालीन मेघप्रसंगमें जो विवरण दिया गया है उससे मालूम होता है कि संसारध्वंसके लिये उप-युक्त समयमें मेघोंकी सृष्टि होती थी। वे सब मेघ विभिन्न वर्णके होते थे। कोई मेघ नील कमलके जैसा, कोई कुसुम पुष्पके जैसा, कोई धूम्रवर्ण-सा, कोई पीला, कोई लाल, कोई शङ्ख और कुन्दके जैसा सफेद, कोई अञ्जनके जैसा काला और मैनसिलके जैसा लाल, कोई कपोत वर्णके जैसा, कोई रुद्राक्ष, कोई कर्बूर वर्णविशिष्ट, कोई वीरवधूटीके जैसा और कोई पीला होता था। वे सब मेघ पर्वताकार वा गजयूथाकार भयङ्कर रूप धारण कर घोर शब्द करते हुए आकाशको गुंजा देते थे। अनन्तर वे भीषण मेघ प्रभूत परिमाणमें वारिवर्षण कर सभी जागतिक अमङ्गल और अग्नितेजको दूर करते थे। इस प्रकार महाजलप्रपात द्वारा अग्निके नाश हो जानेसे साद्रिद्वीपा पृथ्वी सौ वर्ष तक जलमें डुबी रहती थी। (कूर्म पु० उपवि० ४३ अ०)

ज्योतिस्तत्त्वमें आवर्त्त, सम्वर्त्त, पुष्कर और द्रोण नामक चार प्रकारके मेघोंका उल्लेख है। इनमेंसे आवर्त्त-मेघ निर्जल, सम्वर्त्तमेघ बहुजलविशिष्ट, पुष्कर दुष्करजल और द्रोण शस्यपूरक होता है।

"त्रिय ते शाकवर्षे तु चतुर्भिः शोधिते क्रमात्।
आवर्त्त विद्धि सम्वर्त्त पुष्करं द्रोणमम्बुदम्॥
आवर्त्तो निर्जलो मेघोः सम्वर्त्तश्च बहूदकः॥
पुष्करो दुष्करजलो द्रोणः शस्यप्रपूरकः।

पाश्चात्य विज्ञानशास्त्रोंमें भी मेघके विभिन्न नाम, उनकी वर्षणशक्ति तथा वर्णादिका विषय लिखा है। वायुतत्त्वविद् हौयार्डने मे मेघोंको सिरस (Cirrus), क्युमिलस (cumulus) और ष्ट्रेटस (Stratus) नामक तीन भागोंमें बाँटा है। उनमें फिर उन्होंने Cirra-cumulus, Cirra-Stratus, Cumulo-Stratus और Nimbus नामक कई थोकोंकी कल्पना की है। ये सब हम लोगोंके देशके कृषक-सम्प्रदायके कुदाल, कुठार और वकरे आदि मेघोंके जैसे हैं।

Cirrus मेघको नाविककी भाषामें *Cat's tail* वा विड़ालपुच्छ कहते हैं। ये सब मेघ आकाशमें बहुत पतले बुने हुए जालके जैसे दिखाई देते हैं। आकाशमें Cirra मेघोंकी तुषारछटाको देख कर बहुतोंने Mackerel Sky नामसे आकाशकी शोभाका वर्णन किया है।

ग्रीष्मकालीन cumulus नामक मेघको नाविकभाषामें ball of cotton कहते हैं। ये सब मेघ सुदूर दिग्वलयमें अर्द्ध गोलाकारमें विलम्वित रहते हैं। पीछे वे आपसमें मिल कर एक ऊँचे पर्वतकी तरह घोर काले मेघोंमें परिणत हो कर दिग्वलयमें ही टिके रहते हैं। उस समय उनके शीर्ष भाग समुज्ज्वल सूर्यके आलोकसे आलोकित हो कर तुषार-धवल हिमानी शिखरको तरह मालूम होते हैं।

सूर्यास्तके समय दिग्वलयमें वन्धनीकी तरह जो प्रलम्व Stratus नामक मेघमाला-स्तर दिखाई देता है, वह सूर्योदय होनेसे अदृश्य हो जाता है। Cumulus-Stratus नामक मेघ काला और नीला होता है। Nimbus नामक मेघ प्रायः धूसरवर्णका और किनारेमें झालर (Fringed edges)-सा कटावदार होता है। cirrus और cumulus का कुदालिया मेघ दक्षिण-पश्चिम वा उत्तरपूर्व वायुगतिके समानान्तर भावमें आकाशको ढके रहते हैं। ये मेघ सभी मेघोंसे ऊपर उठते और नीचे उतरते समय वायुस्तरमें मिल जाते हैं।

उक्त Cirri श्रेणीमें Halos और Parhelia नामक मेघकणा रहती है। वह कणा तुषारपरिणत वाष्पकणाके ऊपर रोशनी पड़नेसे ही चमकीली दिखाई देती है। ये उज्ज्वल तुषारखण्ड (Snow flakes) नभमण्डलके बहुत ऊँचे स्थानमें चलते हैं। इस प्रकारके मेघ दिखाई देनेसे ऋतुका परिवर्त्तन समझा जाता है। ग्रीष्मकालमें वर्षापात और शीतऋतुमें तुषारपात इसका अवश्यम्भावी फल है।

पताका आदिके सञ्चालनसे वायुकी गति उत्तराभिमुखी दिखाई देने पर भी *Cirri* मेघोंको हम लोग स्वभावतः दक्षिण वा दक्षिण-पश्चिम वायुस्रोतसे सन्ताड़ित होते देखते हैं। वे सब मेघ नीचे उतरते समय आपसमें मिल कर घने हो जाते हैं तथा उस स्थानके वायुस्तरके जलसे भारी रहनेके कारण वे सब मेघकणा सहजमें ही जलाकार धारण करती हैं। इस प्रकार cirro-stratus मेघस्तरमें परिणत होनेसे ही जल वरसते देखा जाता है।

उपरोक्त कारणोंसे *Cirro-Cumulus* मेघके वाष्पकोष जब जलसे भारी हो जाते हैं तब चन्द्रमा वा सूर्यकी रोशनी पड़नेसे वे एक नई रोशनीकी सृष्टि करते हैं। जब वे मेघ सूर्य वा चन्द्रमाके सामने आते हैं, तब उनकी ज्योतिके चारों ओर एक आलोकछटा (coronae) दिखाई देती है। इन मेघोंके उदय होनेसे दारुण ग्रीष्मका आगमन समझा जाता है। सूर्योदयके साथ साथ जब वे मेघ उदय होते हैं, तब आकाश समूचा दिन ढँका रहता है और वर्षा होनेकी विलकुल सम्भावना नहीं, शामको उन मेघोंके अदृश्य हो जानेसे आकाश और भी साफ दिखाई देता है। दो पहर दिनको गरमी जितनी ही वढ़ती है उतनी ही मेघकी संख्या बढ़ती देखी जाती है। ऊपर कहे गये नियमानुसार ये सब मेघ दिनके समय ऊर्द्ध्वगामी वाष्पस्रोतकी सहायतासे आकाशमें बहुत ऊंचे चले जाते हैं। यहां वे शीतल वायुप्रवाहित स्तरमें आ कर जलसिक्त (Saturated) होते हैं। मेघ और वाष्पस्रोतकी गतिके वलावलके अनुसार मेघ और वाष्पराशि उससे अधिक ऊर्द्ध्वस्तरमें सन्निहित होती हैं और वहां शीतल वायुस्तरमें

सञ्चित हो दो पहरके समय काली घटासे आकाशको ढक लेती है। ऐसी मेघराशि सभी समय संध्याकालमें आकाशसे अदृश्य नहीं होती। वह क्रमशः घनीभूत हो कर यदि Cumulo stratus मेघमें रूपान्तरित हो, तो भारी तूफानके साथ वृष्टि होनेकी सम्भावना रहती है।

जब घनघटासे आकाशमण्डल छा जाता है, तब वृष्टिपातके पहले अथवा ठीक बाद ही वज्राघात होते देखा जाता है। जिन सब मेघोंसे वज्रसमन्वित वृष्टिपात होता तथा तूफान (Thunder storm) उठता है, वे प्रायः भूपृष्ठसे ३०००से ५००० फुट तक आकाशगर्भमें निमज्जित रहते हैं। कभी कभी ये मेघ इससे भी बहुत ऊंचे स्थानमें उड़ते दिखाई देते हैं। हाम्बोल्टने समुद्रपृष्ठसे १५ हजार फुट ऊंचे होलुकट पर्वत-शृङ्ग पर तथा आरोगाने २६६५० फुटकी ऊंचाई पर ऐसे तूफानी मेघमें (storm cloud) विद्युत् (Lightening) का रहना देखा है। मेघकी विद्युत् तथा वायुगर्भके ताड़ित प्रवाहको ले कर Lame, Becquerel, Peltier आदि प्रसिद्ध वैज्ञानिक विभिन्न सिद्धान्त पर पहुंचे है,—वाष्पकणाके घनत्व निबन्धन तथा उसके मध्य जो गोलक (Globules) हैं उनके परस्पर संघर्षणके कारण ही बिजली चमका करती है।

विस्तृत विवरण ताड़ित और विद्युत शब्दमें देखो।

भारतीय पुराणादि शास्त्रोंमें प्रलयकालीन मेघोंके विभिन्न वर्णका जो उल्लेख है, उसका कारण नहीं दिखलाये जाने पर भी सौर जगतके व्यतिक्रम और ग्रहादि रश्मिकी पृथक्तासे ही वे सब मेघ विभिन्न वर्णके हो गये हैं, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। जिस प्रकार सूर्यकिरणकी पृथक्ताके अनुसार ब्राह्ममुहूर्त्त, मध्याह्नकाल तथा सूर्यास्तकालमें मेघमाला विभिन्न वर्णकी दिखाई देती है उसी प्रकार अन्यान्य ज्योतिष्कके प्रभावसे भी मेघका रंग पीला, लाल, आदि होना सम्भव-सा है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने वाष्पकणा (Vesicles) के प्रकृतिगत तारतम्यके साथ विभिन्न प्रकारके आलोकरश्मिपातको ही मेघवर्णकी विचित्रताका कारण बतलाया है। संध्याकालमें सूर्यकी किरण सिन्दुर सी दिखाई देती है, इस कारण उस समयके मेघको हम लोग सिंदुरिया मेघ कहते हैं।

गर्भधारण।

कहा जाता है, कि जेठ महीनेकी शुक्लाष्टमीसे चार दिन तक मेघ वायुसे गर्भ धारण करता है। उन कई दिनों यदि मन्द वायु बहे तथा आकाशमें सरस मेघ दीख पड़े तो शुभ जानना चाहिये और उन दिनों यदि स्वाती आदि चार नक्षत्रोंमें क्रमानुसार वृष्टि हो तो सावन आदि महीनोंमें वैसो ही वृष्टि होगी और उससे शुभफल होगा। यदि ऐसा न हो तो नाना प्रकारके अमंगल और चोर आदिका भय रहता है। इस सम्बन्धमें वशिष्ठने यों कहा है—विद्युत्, जलकण और धूल आदिसे मलिन वायुयुक्त और सूर्य तथा चन्द्रमासे परिछिन्न धारणा ही शुभ धारणा है। जब विद्युत् श्रेष्ठ शुभाशाके प्रति उपस्थित होती है तब सर्वनाशकी वृद्धि होती है। बालकोंके क्रीड़ास्थलमें पांशु और जलका बरसना, पक्षियोंका पांशु तथा जलादिमें क्रीड़ा करना और मीठा बोलना, चांद और सूर्यके मण्डलको स्निग्ध और अत्यन्त दूषित होना, धारणकालमें इन सब नक्षत्रोंके दीख पड़ने पर वृष्टि हो तो उससे सर्वनाश होता है। मेघ स्निग्ध, एकत्र और मन्दगामी हो तो सभी फसल और सम्पत्ति देनेवाली वृष्टि होती है।

किसी किसीका कहना है कि कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षके बाद गर्भदिवस होता है, लेकिन यह सत्य नहीं है। गर्गादि ऋषिके मतसे अगहनके शुक्लपक्षकी पड़िवाके बाद जिस दिन चन्द्रमा और पूर्वाषाढ़का संयोग होता है उसी दिनसे गर्भका लक्षण जानना चाहिये। चन्द्रमाके जिस नक्षत्रको प्राप्त होने पर मेघके गर्भ रहता है, चन्द्रवशसे १९५ दिनोंमें उस गर्भका प्रसवकाल आता है। शुक्लपक्षका गर्भ कृष्णपक्षमें, कृष्णपक्षका शुक्लपक्षमें, दिवसजात गर्भ रातमें, रातका गर्भ दिन तथा संध्या समयका गर्भ विपरीत संध्यामें प्रसव करता है। मृगशिरा तथा पूस शुक्लपक्षके गर्भ मन्द फलवाले होते हैं। पूस कृष्णपक्षके गर्भका प्रसवकाल सावनका शुक्लपक्ष है, माघ शुक्लपक्षका मेघ सावन कृष्णपक्षमें, माघ कृष्णपक्षका मेघ शुक्लपक्षमें, फागुन शुक्लपक्षका मेघ भादो कृष्णपक्षमें, फागुन कृष्णपक्षका मेघ आश्विन शुक्लपक्षमें, चैत शुक्लपक्षका मेघ आश्विन कृष्णपक्षमें तथा चैत कृष्णपक्षका मेघ

कार्त्तिक शुक्लपक्षमें जल बरसता है। पूरबका मेघ पश्चिम और पश्चिमका पूरब जाता है। शेष दिशाओंमें वायुका भी इसी प्रकार विपर्य्यय होता है। ईशान कोण और पूरबकी हवा आकाशको विमल तथा आनन्दप्रद बनाती और मृदुजल बरसाती है; चन्द्रमा और सूर्य स्निग्ध होते तथा बड़े शुक्लमण्डलसे घिर जाते हैं। आकाश यदि स्थूल, बहुल तथा स्निग्ध मेघयुक्त या घनसूची, क्षरक और लोहित मेघयुक्त हो अथवा काकाण्ड या मयूरचन्द्रकका रंग धारण करे तो नक्षत्र और चन्द्रमाकी विमल ज्योति होती है। ईशान तथा पूरब दिशामें मेघ वर्त्तमान हों और इन्द्रधनुष एवं दामिनीके दमकसे सुशोभित और गंभीर गर्जन करते हों तथा पशु पक्षी शान्त शब्द करें तो संध्या मनोहारिणी हो जाती है।

अगहन और पूसमें मेघ संध्याकी लाली तथा मण्डल धारण करें तथा अगहनमें जाड़ा खूब पड़े और पूसमें वर्फ अधिक गिरे, तो मेघका गर्भ पुष्ट नहीं होता। माघमें यदि प्रबल वायु बहे, चन्द्रमा और सूर्यकी किरणें धुंधली दीख पड़ें तथा खूब जाड़ हो तो मेघयुक्त सूर्यका उगना और डूबना अच्छा है। फागुन महीनेमें यदि रूखी और तेज हवा बहे, मेघ सरस हों, परिवेष असम्पूर्ण हो, सूर्य अग्निके जैसा पिंगल और ताम्र वर्णका हों तो शुभ जानना चाहिये। चैतमें गर्भका पवन, मेघ, वृष्टि और परिवेषयुक्त होना भी शुभ है। वैशाखमें मेघ यदि वायु, जल, शब्द और विद्युत् युक्त हो तो गर्भ हितकारक होता है। मुक्ता, चांदी, तमाल, नीलकमल या अंजनके जैसे वर्णवाले अथवा जलचर प्राणियोंके रूप धारण करनेवाले मेघ प्रचुर वृष्टि करते हैं और गर्भ सूर्यकी प्रखर किरणोंसे उत्तप्त और मन्द वायुयुक्त हो तो मेघ मानो क्रोधित हो मूसलधार वृष्टि करते हैं। अशनि, उल्का, पांशु पात दिग्दाह, भूमिकम्प, गन्धर्वनगर, कीलक, केतु, ग्रहयुद्ध, निर्घात, रुधिरादि वृष्टि-विकृति, परिघ, इन्द्रधनुष और राहु-दर्शन इन सब उत्पातोंसे तथा दूसरे त्रिविध उत्पातोंसे गर्भ नष्ट होता है। सभी ऋतुओंकी अपेक्षा पूर्वाभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा तथा रोहिणी नक्षत्रमें वर्द्धितगर्भ प्रचुर वृष्टि करता है। शतभिषा, अश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति और मघासंयुक्त गर्भ शुभप्रद और बहुत दिन तक पालनेवाला होता है। त्रिविध उत्पातसे गर्भ नष्ट होता है। चन्द्रमा जब इन नक्षत्रोंमें-से किसी एकमें अवस्थान करते हैं तब अगहनसे वैशाख तक ६ महीनोंमें यथाक्रम ८, ६, १६, २४, २०, और ३ दिन तक लगातार वृष्टि होती है। क्रूरग्रह संयुक्त होने पर गर्भ ओले, अशनि तथा मछलीकी वृष्टि करता है और चन्द्रमा अथवा सूर्य शुभग्रह संयुक्त या शुभग्रहोंसे घिर जाय तो मेघ खूब बरसता है। गर्भके समय यदि अकारण अतिवृष्टि हो तो गर्भ नष्ट हो जाता है। द्रोणके आठवें भागसे अधिक वर्षा होने पर गर्भ नष्ट होता है। पुष्टगर्भ यदि ग्रहोपघातादिके कारण न बरसे तो आत्मीय गर्भ प्रसवकालमें ओलोंके साथ जल बरसाता है। जिस प्रकार पयस्विनियोंका दूध अधिक दिन सञ्चित रहनेके कारण कठिन हो जाता है उसी प्रकार बहुत दिन बीतने पर जल कठिन हो जाता है। जो गर्भ पांच निमित्त द्वारा पुष्ट होता है वह सौ योजन तक बरसता है। उन निमित्तोंमेंसे यदि एक एक निमित्तका अभाव हो, तो उतनी दूर तक वृष्टि नहीं होती। पञ्चनिमित्तक गर्भ एक द्रोण जल बरसाता है। पवन निमित्तक ३ आढ़क और विद्युन्निमित्तक ६ आढ़क जल वर्षण करता है। जो गर्भ पवन, सलिल, विद्युत्, गर्जित और मेघरूप पञ्चनिमित्तयुत है वह प्रचुर जल देता है। यदि गर्भकालमें ही अधिक वर्षा हो जाय, तो प्रसवकाल अतिक्रान्त होनेके बाद केवल जलकणा बरसती देखी जाती है। (वृहत्संहिता)

मेघ-प्रवर्षण।

ज्येष्ठ-पूर्णिमाके बाद यदि पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें वृष्टि हो, तो जलके परिमाण और शुभाशुभके सम्बन्धमें विद्वानोंने ऐसा कहा है; हाथ भर गहरा गड्ढा बना कर जलका परिमाण स्थिर करना होता है। यदि वह वर्षाके जलसे भर जावे, तो एक आढ़क जल हुआ है ऐसा जानना होगा। कोई कोई कहते हैं, कि जहां तक नजर दौड़ाई जाय, वहां तक यदि जल ही जल दिखाई दे, तो उसे अतिवृष्टि कहते हैं। फिर किसी किसीके मतानुसार दश योजन मण्डल वृष्टिका नाम अतिवृष्टि है। किन्तु गर्ग, वशिष्ठ और पराशरका कहना है, कि बारह योजनके

बाद वृष्टी नहीं जाती। जिन सब नक्षत्रोंमें अतिवृष्टि होती है, वे सभी नक्षत्र बरसते हैं। परन्तु पूर्वाषाढ़से ले कर मूला तकके नक्षत्रों में यदि वृष्टि न हो, तो सभी नक्षत्रों में अनावृष्टि होती है। यदि निरुपद्रव चन्द्र पूर्वाषाढ़ा, मृगशिरा, हस्ता, चित्रा, रेवती और धनिष्ठामें रहे, तो १६ द्रोण; शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वातीमें ४ द्रोण; कृत्तिकागणमें १०; श्रवण, मघा, भरणी और मूला-में १४; फल्गुनीमें २५; पुनर्वसुमें २०; विशाखा और उत्तरा-षाढ़ा नक्षत्रमें २०; अश्लेषा नक्षत्रमें १३, उत्तरफल्गुनी और रोहिणीमें २५; पूर्वभाद्रपद, पुष्या और अश्विनी नक्षत्रमें १२ और आर्द्रामें १८ द्रोण जल बरसता है। नक्षत्रगण यदि रवि, शनि और केतुसे पीडित तथा मङ्गलसे आहत हो, तो वृष्टि नहीं होती। परन्तु निरु-पद्रव और शुभग्रहयुक्त होनेसे मङ्गल होता है।

(वृ०सं० २३ अ०)

५ सङ्गीतके छः रागोंमेंसे एक। हनुमतके मतसे इस रागकी ब्रह्माके मस्तकसे और किसी किसीके मतसे आकाशसे उत्पत्ति है। यह ओड़व जातिका राग है और इसमें ध नि सा रे ग ये पांच स्वरसे लगते हैं। हनुमत्के मतसे इसका सरगम इस प्रकार है—ध नि सा रे ग म प ध। वर्षाकालमें रातके पिछले पहर इसे गाना चाहिये।

यह राग सुन्दर, सांवला और हाथमें तेज तलवार लिये हुए है। हनुमत्के मतसे इसकी रागनियां पांच है, जैसे—टङ्का, मल्लारी, गुर्जरी, भूपाली, देशकारी; ८ पुत्र हैं, जैसे—जालन्धर, सार नटनारायण, शङ्करा-भरण, कल्याण, गजधर, गान्धार और साहाना। कला-नाथके मतसे इसकी रागिनी छः है, जैसे—बङ्गाली मधुरा, कामोदा, धनाश्री, तीर्थकी, देवाली; इस मतसे भी ८ पुत्र हैं किन्तु नटनारायण, शङ्कराभरण और कल्याणकी जगह केदार, मारुजल और भरत हैं। सोमेश्वरके मतसे भी इसकी रागिणी ६ हैं—मल्लारी, सौरटी, सावेरी, कौशिकी, गान्धारी, हरश्टङ्गारी, पुत्र पूर्ववत् हैं। भरतके मतसे इसकी पांच रागनियां ये हैं—मल्लार, मूलतानी, देशी, रतिवल्लभा, कावेरी; पुत्र ८—कलायर, वागेश्वरी, सहाना, पुरीया, कानड़ा, तिलकस्तम्भ, शङ्कराभरण। इन आठ पुत्रोंकी भार्या ये हैं—करणाटी, कादवी, कदमनाट, पहाड़ी, मांफ, परज, नटमञ्जरी, शुद्धनट। (स० दामोदर)

मेघकफ (सं० पु०) मेघानां कफ इव। करका, ओला।

मेघकर्णी (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृभेद।

मेघकाल (सं० पु०) मेघानां कालः समयः। वर्षाकाल, वर्षाऋतु।

"स्थलसलिल चरायां व्यत्ययो मेघकाले।

प्रचुरसलिलवृष्ट्यै शेषकाले भयाय॥" (वृहत्सं० ६५।५८)

मेघकूटाभिगर्जितेश्वर (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

(ललितवि०)

मेघगम्भीर (सं० स्त्री) मेघकी तरह गम्भीर, वादलकी तरह शान्त।

मेघगर्जन (सं० क्ली०) मेघस्य गर्जनं। मेघध्वनि, बादल-की गरज। जिस दिन वादल गरजे उस दिन वेदपाठ नहीं करना चाहिये। उपनयनके दिन यदि बादल गरजे तो उपनयन टाल देना चाहिये। क्योंकि, इस दिन वेद-पाठ हो नहीं सकता। 'उपनीय दददवेद' मनुके इस वचना नुसार उपवीत ग्रहणके बाद ही वेदारम्भ करना होता है। जिस दिन वादल गरजता है उस दिन शास्त्रचिन्ता भी नहीं करनी चाहिये। यदि कोई करे, तो उसकी आयु, विद्या, यश और वल ये चारों नष्ट होते हैं।

"संध्यायां गर्ज्जिते मेघे शास्त्रचिन्तां करोति यः।

चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्यायशो बलम्॥"

(स्मृति)

मेघगिरि (सं० पु०) पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम।

मेघङ्कर (सं० त्रि०) मेघकारी, जिससे बादल वनता है।

मेघचन्द्र शिष्य—श्रुतबोधटीकाके रचयिता।

मेघचिन्तक (सं० पु०) चिन्तयतीति चिन्ति ण्वुल् मेघानां चिन्तकः तस्यैव जलपायित्वात्। १ चातक पक्षी, चकवा। (त्रि०) २ मेघचिन्तन विशिष्ट, मेघको चाहनेवाला।

मेघज (सं० त्रि०) मेघाज्जायते जन-ड। मेघभव वस्तु, बादलसे उत्पन्न होनेवाली वस्तु।

मेघजाल (सं० क्ली०) मेघानां जालं। अभ्रिय, बिजली।

मेघजीवन (सं० पु०) मेघो जीवनं जीवनोपायो यस्य। चातकपक्षी, चकवा। कहा जाता है, कि चकवा मेघका

जल छोड़ कर दूसरा जल नहीं पीता, इसीसे उसको मेघजीवन कहते हैं। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ चाप पक्षी, नीलकण्ठ।

मेघज्योतिस् (सं० पु०) मेघस्य ज्योतिरग्निः मेघादुत्पन्न ज्योतिर्वा। वज्राग्नि, बिजली।

मेघडम्बर (सं० पु०) मेघस्य डम्बरः। १ मेघगर्जन।

"अजायुद्धे ऋषिश्राद्धे प्रभाते मेघडम्बरे।
दम्पत्योः कलहे चैव बह्वारम्भे लघुक्रिया॥" (उद्भट)

२ बड़ा शामियाना, बड़ा चँदोवा। ३ एक प्रकारका छत।

मेघडम्बर रस (सं० पु०) एक रसौषध जो श्वास और हिचकीके रोगमें दी जाती है। समान भाग पारे और गन्धककी कज्जलीको चौलाईके रसमें पांच दिन खरल करे पीछे मजबूत घरियामें रख कर वालुका यन्त्रसे दिन भर आँच देनेसे यह बनता है। इसकी मात्रा ६ रत्ती है।

मेघतरु (सं० पु०) मेघका आकारभेद।

मेघतिमिर (सं० पु०) मेघेन तिमिरं अन्धकारो यत्र। मेघाच्छन्न दिन, बदलीका दिन।

मेघतीर्थ (सं० क्ली०) प्राचीन तीर्थभेद। शिव उ० २१।१।१)

मेघत्व (सं० क्ली०) मेघस्य भावः त्व। मेघका भाव या धर्म।

मेघदत्त—एक व्यक्तिका नाम। (श्रीहर्ष ३६)

मेघदीप (सं० पु०) मेघजनितो दीप इव। विद्युत, बिजली।

मेघदुन्दुभि (सं० पु०) १ असुरभेद, एक राक्षसका नाम। २ मेघगर्जन, बादलकी गरज।

मेघदुन्दुभिस्वरराज (सं० पु०) बुद्धभेद।

मेघदूत—महाकवि कालिदास द्वारा प्रणीत एक खण्डकाव्य। इस ग्रन्थमें नायक यक्ष विदेशमें रह कर अपनी प्रियतमा पत्नीके लिये विरह करते हैं। महाकवि कालिदासने मेघको दूत बना कर उसका विरह संदेश उसकी स्त्रीके पास भेजा है। कालिदास देखो।

२ मेरुतुङ्गसूरिविरचित एक जैन ग्रन्थ। जैन पण्डित मेरुतुङ्ग, सूरि और शीलरत्न सूरिने इसकी दो प्रसिद्ध टीका लिखी हैं।

मेघद्वार (सं० स्त्री०) शून्य, आकाश।

मेघधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

मेघना—पूर्व बंगालकी एक नदी। इसकी उत्पत्ति गंगा (पद्मा) और ब्रह्मपुत्र नदके संयोगसे हुई है। इसकी विस्तीर्ण जलराशिको देख वर्त्तमान भौगोलिक लोग इसे बंगीय डेल्टेका एक प्रधान मुहाना मानते हैं। भैरव बाजारसे ले कर श्रीहट्टके बराक वा सुरमा संगम तक प्राचीन ब्रह्मपुत्रका खात स्थानविशेषमें मेघना कहलाता है। किसी किसी मानचित्रमें मैमनसिंह जिलेमें बहती हुई जो एक छोटी नदी भैरव बाजारके पास ब्रह्मपुत्रमें मिलती है उसका आदिमेघनाके नामसे उल्लेख है। वर्त्तमान कालमें पद्मा और यमुना (ब्रह्मपुत्र) गोआलंदोमें संयुक्त हो चांदपुरकी दूसरी ओर मेघनाके मुहानेमें गिरती हैं। इन दो नद और नदीकी जलराशिको धारण कर मेघना विशालकाय हो गई है। अतः जब तब अपनी बाढ़ोंसे तीरवासियोंको खूब सताया करती है और कभी कभी दोनों किनारोंको बसा कर निकटवर्त्ती मनुष्य, पशु पक्षी आदि जीवोंको डकार जाती है।

इसकी विस्तीर्ण जलराशिने दक्षिण-पूर्व बंगालको दो भागोंमें विभक्त किया है। दहिने अर्थात् पश्चिमी किनारेमें उत्तरसे दक्षिणकी ओर मैमनसिंह, ढाका, फरीदपुर, बाकरगंज तथा बायें अर्थात् पूरबी किनारे त्रिपुरा और नोआखालीके जिले दीख पड़ते हैं। जलप्रवाहके प्रबल होनेके कारण इसके तीर निरूपित नहीं हो सकते। आज जिस किनारे हो कर धार बहती है, १० दिनके बाद वही स्थान गावोंके साथ नदीगर्भमें विलीन हो जाता है।

दक्षिण शाहबाजपुर, हतिया और सन्द्वीप नामक तीन सगृहत् डेल्टेको घेर कर मेघना चार शाखाओंमें विभक्त हो बंगालकी खाड़ीमें गिरती है।

मेघनाके ज्वार और भाटोंके प्रबल होनेके कारण एक ओर देश जलगर्भमें जाता है तो दूसरी ओर नये देशकी उत्पत्ति होती है। समुद्रजल तथा भिन्न भिन्न स्रोतोंसे उद्वेलित हो मेघना भांति भांतिकी वस्तुओंको बहा कर समुद्र मुख पर सञ्चय करती है जिससे बड़े बड़े चर बनजाते हैं तथा वृक्षादिसे युक्त द्वीपोंकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार गत ४३ वर्षोंमें नोआखाली जिला समुद्रकी ओर ५, ६ मील अधिक बढ़ गया है।

धसना गिरने पर स्थानविशेषमें वृक्षादि नदीगर्भमें ऐसी मजबूतीसे अटक जाते हैं, कि भाटेके समय उस हो कर नाव चलाना बड़ा कठिन हो जाता है। क्योंकि, नावकी पेंदी आघात लगने पर फट जाती है और सम्भवतः नाव डूब भी जा सकती है। इसके अतिरिक्त नदी गर्भस्थ चोरा बालू बड़ा भयानक है। ज्वार भाटेके समय नदीकी बाढ़ देखने योग्य होती है। अमावास्या और पूर्णिमा तथा अन्यान्य दिनोंमें ज्वारके समय जल प्रायः १०से १८ फीट तक ऊपर उठता है। बाढ़ गरजनेके पहले बादलकी-सी गरज सुनाई देती है। उसके कुछ ही देर बाद तुलाराशिकी जैसी बाढ़की तरंगे (Bore) द्रुत-गतिसे आगे बढ़ती हैं। यह बाढ़ नाविकोंके लिये बड़ा भयावह होती है। १०वीं या ११वीं चैतको जब सूर्यदेव विषुवत् रेखाके ऊपर आते हैं तो उन दिनोंमें बाढ़की लहर बहुत ऊपर उठती हैं। इस समय और दक्षिण वायुके प्रबल वेगसे बहने पर कई दिन बाद भी नावोंके द्वारा व्यापार बन्द रहता है।

बाढ़की लहर मानो २० फोट ऊंची रूईकी ढेर ले प्रति घंटे १५ मीलके हिसाबसे आगे बढ़ती है। इस समय जो कुछ सामने आता है वह सभी विपर्य्यस्त, ध्वस्त और नदीगर्भमें निमज्जित हो जाता है। कई मिनटके बाद जलके समतल होने पर नदी पूर्वरूप धारण करती है। फिर लबालब नदी ज्वार और भाटेकी क्रीड़ा करने लगती है।

साइक्लोन अर्थात् गोल आंधीके प्रबल झकोरोंके साथ साथ मई और अक्टोबर महीनोंमें मौनसूनके परिवर्त्तन समय इस नदीमें बड़ी ऊंची तरङ्ग (Storm-waves) दिखाई देती हैं। १८६१ ई०के मई महीनेके तूफानमें ४० फीट ऊंची उठ कर तरङ्गने समूचे हथिया द्वीपको डूबो दिया था। १८७६ ई०के ३१वीं अक्टोबरके तूफानमें ऐसी ही विपद् आई थी। संध्या समय तूफान उठी और आधी रातमें कई स्थानोंमें बाढ़का गर्जन सुन पड़ा जिससे वृष्टि-की सनसनाहट स्तम्भित-सी हो गई। बस, इस प्रकार तीन-तरंगके उठते उठते समूचा देश क्षणमें जलमग्न हो गया। वहांके लोग असावधान रहनेके कारण कहीं भाग भी न सके। बाढ़के आगे जो कुछ पड़ा वह सबका सब नष्ट हुआ। उस प्रलयरात्रिमें केवल नोआखाली-के हथिया और शनद्वीपमें गौ आदि पशुओंको छोड़ एक लाखसे अधिक मनुष्य जलगर्भमें समाधिस्थ हुए। इसके बाद उस स्थानकी जलवायुके बिगड़ जाने और अन्नादिके अभावसे उससे अधिक लोग महामारी आदि रोगोंसे आक्रान्त हो काल कवलित हुए।

मेघनाट (सं० पु०) एक राग जो मेघरागका पुत्र माना जाता है।

मेघनाथ (सं० पु०) इन्द्र।

मेघनाद (सं० पु०) मेघं नादयतीति नद-णिच् अण्। १ वरुण। २ लङ्केश्वर रावणका पुत्र। देवराज इन्द्रको युद्धमें परास्त करनेके कारण इसको इन्द्रजित् नामसे भी प्रसिद्धि थी। इसने लङ्काके युद्धमें दो बार राम लक्ष्मण-को हराया था, अनन्तर भयङ्कर युद्ध होने पर लक्ष्मणके हाथ मारा गया। यह मेघमें छिप कर युद्ध किया करता था, इसीसे इसका नाम मेघनाद हुआ। इन्द्रजित् देखो। मेघनस्य नादः। ३ मेघका शब्द, बादलकी गरज। ४ पलाश। ५ तण्डुलीयशाक। ६ दानवभेद। (हरिवंश ३३२।९०) ७ मयूर, मोर। ८ बिड़ाल, बिल्ली। ९ छाग, बकरा। १० वरुण वृक्ष। ११ मृतसञ्जीवनी। १२ सह्याद्रि-वर्णित दो राजोंका नाम। (सह्या० ३३।८३,३३।१०४) (त्रि०) १३ मेघ सदृश शब्दविशिष्ट, बादलके समान गरजनेवाला।

मेघनादजित् (सं० पु०) मेघनादं जयति जि-क्विप्। लक्ष्मण।

मेघनादमूल (सं० क्ली०) चौलाईकी जड़।

मेघनादरस (सं० क्ली०) ज्वरनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—एक एक तोला रूपा, कांसा और तांबा तित राजके काढ़ेमें डाल कर छः बार गजपुटमें पाक करे। इसकी मात्रा पानके साथ दो रत्ती है। इससे विषम ज्वर नष्ट होता है। पथ्य दुग्धान्न बतलाया गया है।

ज्वरातिसार रोगमें सोंठ, अतीक्ष, मोथा, चिरायता, विष, कुटकी छाल, कुल मिला कर २ तोला, इसे आध सेर जलमें सिद्ध करे। जब आध पाव जल बच रहे, तब नीचे उतारे। उसी काथके साथ इस औषधका सेवन

करानेसे तरुणज्वर, जीर्णज्वर, तृष्णा और दाहकी निवृत्ति होती है। (भैषज्यरत्नावली ज्वराधिकार)

मेघनादनुलासक (सं० पु०) मेघनादं अनुलक्षीकृत्य लसति क्रीड़ति लस-णिनि। मयूर, मोर।

मेघनादानुलासिन् (सं० पु०) मेघनादं अनु लसतीति लस-णिनि। मयूर, मोर।

मेघनादिन् (सं० पु०) १ इन्द्रजित्। (त्रि०) २. मेघके जैसा शब्द करनेवाला।

मेघनामन् (सं० पु०) मेघस्य नाम इव नाम तस्य। मुस्तक, मोथा।

मेघनादारि—श्रीभाष्यनय-प्रकाशके रचयिता।

मेघनिर्घोष (सं० पु०) मेघस्य निर्घोषः। १ मेघशब्द, बादलकी गरज। पर्याय—स्तनित, गर्जित, रसित, ध्वनित, ह्रादित। (त्रि०) २ मेघतुल्य ध्वनिविशिष्ट, बादलके समान शब्द करनेवाला।

"यदि मां मेघनिर्घोषो नोपगच्छति नैषधः।
अद्य चामीकरप्रख्यं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्॥"

(भार० ३।७३।११)

मेघनीलक (सं० पु०) तालीशवृक्ष।

मेघपर्वत (सं० पु०) पर्वत भेद, मेघगिरि।

(मार्क०पु० ५५।१३)

मेघपालीतृतीयाव्रत (सं० स्त्री०) मेघपालीर नामसे अनुष्ठित व्रतविशेष।

मेघपुष्प (सं० पु०) मेघ इव पुष्पति प्रकाशते इति पुष्पविकाशने अच्। १ शक्र-हय, इन्द्रका घोड़ा। २ श्रीकृष्णके रथके चार घोड़ोंमेंसे एक।

तं मन्ये मेघपुष्पस्य जवेनसदृशं हयम्॥"

(भारत० ४।४३।२१)

(क्ली०) मेघस्य पुष्पमिव। ३ जल, पानी। ४ पिण्डाभ्र। ५ नदीजल, नदीका पानी। ६ अजशृङ्ग, बकरेके सींग। ७ मुस्तक, मोथा।

मेघपुष्पा (सं० स्त्री०) १ वेतस, बेंत। २ जल, पानी। ३ करका, ओला।

मेघपृष्ठ (सं० पु०) घृतपृष्ठका पुत्रभेद।

(भाग० ५।२०।२१)

मेघपृष्ठि (सं० पु०) क्रौञ्च द्वीपके एक खण्डका नाम।

मेघप्रवाह (सं० पु०) स्कन्दानुचरभेद (भारत शल्यपर्व)

मेघप्रसव (सं० पु०) मेघः प्रसव उत्पत्तिस्थानमस्य इति। १ जल। (त्रि०) २ मेघजात, बादलसे उत्पन्न।

मेघफल (सं० पु०) १ विकङ्कत फलवृक्ष। २ मेघके वर्ण द्वारा वर्षके शुभाशुभ फलका निर्णय।

मेघवह्न (सं० पु०) मन्त्रभेद।

मेघवन—तीर्थभेद।

मेघवल (सं० पु०) कथासरित् सागरवर्णित नायकभेद।

मेघभगीरथठक्कुर (सं० पु०) किरणावली प्रकाशव्याख्या आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। भगीरथमेघ ठक्कुर देखो।

मेघभट्ट—वैद्यवल्लभ टीकाके प्रणेता।

मेघभूति (सं० पु०) मेघात् भूतिर्जन्मास्य। वज्र, बिजली।

मेघमञ्जरी (सं० स्त्री०) काश्मीराधिप विजयपालकी एक कन्याका नाम। (राजतर० ८।२०६)

मेघमठ (सं० पु०) राजा मेघवाहन-प्रतिष्ठित मठ और विद्यागार।

मेघमण्डल (सं० क्ली०) आकाश।

मेघमय (सं० त्रि०) मेघाच्छन्न।

मेघमल्लार (सं० पु०) सम्पूर्णजातिका एक राग। यह मेघराग और इसकी पत्नी मल्लारीके योगसे बनता है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

मेघमाल (सं० पु०) मेघमाला वर्णसादृश्येन अस्त्यस्य अर्श-आद्यच्। १ रम्भाके गर्भसे उत्पन्न कल्किके एक पुत्रका नाम।

"सा पुत्रं सुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ।
महोत्साहौ महावीर्यौ सुभगौ कल्किसम्मतौ॥"

(कल्कि०पु० ३१ अ०)

प्लक्षद्वीपका एक पर्वत। (भाग० ५।२०।३१) ३ राक्षसविशेष। (रामायण ३।२९।३१) ४ बादलोंकी घटा।

मेघमाला (सं० स्त्री०) मेघानां माला। मेघश्रेणी, बादलोंकी घटा। पर्याय—कादम्बिनी। २ स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका नाम।

मेघमालिन् (सं० त्रि०) १ मेघपरिवृत, बादलोंसे ढका हुआ। (पु०) २ स्कन्दका एक अनुचर। ३ एक असुर। ४ एक राजा।

मेघयोनि (सं० पु०) मेघस्य योनिः उत्पत्तिकारणं १ धूम, धूआं। २ कुज्झटिका, कुहरा।

मेघरव (सं० पु०) सङ्घात-जलचर पक्षी।
(चरक-सूत्रस्था० २७ अ०)

मेघरवा (सं० स्त्री०) स्कन्दकी अनुचरी एक मातृका का नाम।

मेघराग (सं० पु०) मेघनामको रागः। छः प्रकारके रागोंमेंसे एक राग। इसका स्वरूप इस प्रकर है—

"मेघः पूर्णो धत्रयः स्यादुत्तरायत मूर्च्छनः।
विकृतो धैवतौ ज्ञेयः शृङ्गाररस पूरकः॥"

ध्यान, जैसे,—

"नीलोत्पलाभवपुरिन्दु समानवक्त्रः
पीताम्बरस्तृषितचातकयाच्यमानः।
पीयूषमन्दुहसितोघन मध्यवर्त्ती
वीरेषु राजति युवा किल मेघरागः॥" मेघ शब्द देखो।

किसी किसीके मतसे यह राग धैवत-वर्जित है, किन्तु प्रधानतः कोमल धैवतमें गाया जाता है। वर्षाऋतुकी रातका अन्तिम पहर इसके गानेका उपयुक्त समय है।

मेघराज (सं० पु०) १ बुद्धभेद। मेघानां राजा, टच् समासान्तः। १ पुष्करावर्त्तक आदि मेघोंका नायक, इन्द्र।

मेघराजि (सं० स्त्री०) मेघसमूह, बादलोंकी घटा।

मेघरांव (सं० पु०) १ सङ्घात जलचर पक्षिविशेष। यह सब पक्षी दल बांध कर उड़ते हैं। २ मयूर, मोर।

मेघरेखा (सं० स्त्री०) मेघश्रेणी, मेघपुञ्ज।

मेघलेखा (सं० स्त्री०) मेघपंक्ति, बादलोंकी घटा।

मेघवत् (सं० अव्य०) १ मेघसदृश, बादलके जैसा। (त्रि०) २ मेघाच्छन्न, बादलोंसे ढका हुआ।

मेघवन (सं० त्रि०) मेघवाहन नामक अग्रहारभेद।
(राजत० ३।८)

मेघवर्ण (सं० त्रि०) मेघस्येव वर्णोऽस्य। १ मेघसदृश वर्णयुक्त, जिसका रंग मेघके जैसा हो। (पु०) २ मेघके जैसा वर्ण।

मेघवर्णा (सं० स्त्री०) नीलीवृक्ष, नीलका पौधा।
(भारत० सभापर्व)

मेघवर्त्त (सं० पु०) प्रलयकालके मेघोंमेंसे एकका नाम।

मेघवर्त्म (सं० क्ली०) मेघानां वर्त्म पन्थाः। आकाश।

मेघवर्ष—प्रश्नोत्तरमालिकाके प्रणेता।

मेघवह्नि (सं० पु०) वज्र, बिजली।

मेघवान् (सं० पु०) पश्चिम दिशाका एक पर्वत।

मेघवार—जातिविशेष।

मेघवासस् (सं० पु०) १ दैत्यभेद। २ मेघपरिहित, बादलसे ढका हुआ।

मेघवाहन (सं० पु०) मेघो वाहनमस्य। १ इन्द्र। २ एक बौद्ध राजाका नाम। ३ काश्मीरके एक राजाका नाम। ४ एक राजपुत।

मेघवाहिन् (सं० पु०) १ इन्द्र। २ स्कन्दानुचर मातृभेद।

मेघविजय महोपाध्याय—एक जैन-ग्रन्थकार। इन्होंने १७०१ ई०में हेमचन्द्रकृत शब्दानुशासनकी चन्द्रप्रभा-हेमकौमुदी नामकी टीका लिखी।

मेघवितान (सं० क्ली०) १ छन्दोभेद। (पु०) मेघसमूह।

मेघविस्फूर्जिता (सं० स्त्री०) एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें यगण, मगण, नगण, सगण, रगण, रगण और एक गुरु होता है। (छन्दोमञ्जरी)

मेघवेग (सं० पु०) महाभारतोक्त राजभेद। (भा० द्रोणपर्व)

मेघवेश्मन् (सं० क्ली०) मेघानां वेश्म भवनं। आकाश।

मेघश्याम (सं० त्रि०) मेघके जैसा काला।

मेघसख (सं० पु०) हरिवंशके अनुसार एक पर्वतका नाम।

मेघसन्देश (सं० पु०) मेघदूत।

मेघसन्धि (सं० पु०) मगधराजभेद। (भारत १४ पर्व)

मेघसम्भव (सं० पु०) १ नागभेद। २ जल।

मेघसार (सं० पु०) मेघस्य सार इव। चीनकर्पूर, चीनिया कपूर।

मेघसुहृद (सं० पु०) मेघाः सुहृदो मित्राणि यस्य। मयूर, मोर।

मेघस्तनित (सं० पु०) मेघस्य स्तनितः। मेघशब्द, बादलकी गरज। (त्रि०) २ मेघवत् शब्दकारी, बादलके जैसा गरजनेवाला।

मेघस्कन्दिन् (सं० पु०) महासिंह।

मेघस्तनितोद्भव (सं० पु०) मेघस्य मेघस्तनितादुद्भ

उत्पत्तिरस्य नवमेघशब्देनास्य अंकुरोत्पत्तेस्तथात्वं । विकङ्कत वृक्ष ।

मेघस्वन (सं० पु०) मेघस्य स्वनः। १ मेघशब्द, मेघका गर्जन। (त्रि०) मेघस्य स्वनः शब्द इव शब्दो यस्य। २ मेघके सदृश शब्दविशिष्ट, बादलकी तरह गरजनेवाला।

मेघस्वनाङ्कुर (सं० पु०) वैदूर्यमणि, बिल्लौर। प्रवाद है, कि बादलके गरजने पर वैदूर्य मणिकी उत्पत्ति होती है।

मेघस्वर (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

मेघस्वाति (सं० पु०) एक राजाका नाम।

मेघह्राद (सं० पु०) मेघस्य ह्रादः। मेघस्वन, बादलकी गरज।

मेघा (हिं० पु०) मण्डूक, मेढ़क।

मेघाख्य (सं० क्ली०) मेघस्य आख्या नामास्य। मुस्तक, मोथा।

मेघागम (सं० पु०) मेघस्य आगमः। १ मेघका आगमन। २ धाराकदम्ब, केलिकदम्ब। मेघानां आगमोऽत्र। ३ वर्षाकाल।

मेघाच्छन्न (सं० त्रि०) मेघेन आच्छन्नः। मेघ द्वारा आच्छादित, बादलोंसे ढका हुआ।

मेघाच्छादित (सं० त्रि०) बादलोंसे ढका हुआ, बादलोंसे छाया हुआ।

मेघाटोप (सं० पु०) मेघस्य आटोपः शब्दः। मेघशब्द, बादलोंका गर्जन।

मेघाडम्बर (सं० पु०) मेघस्य आडम्बरः। १ मेघडम्बर, बादलोंकी गरज। २ मेघकी विस्तृति, बादलका फैलाव।

मेघानन्द (सं० पु०) मयूर, मोर।

मेघानन्दा (सं० स्त्री०) बलका, बगुला।

मेघानन्दी (सं० पु०) मेघेन आनन्दतीति आनन्द-णिनि। मयूर, मोर।

मेघान्त (सं० पु०) मेघानां अन्तोऽवसानमत्र। शरत्-काल।

मेघाभा (सं० पु०) भूजम्बु वृक्ष, बनजामुनका पेड़।

मेघारि (सं० पु०) मेघस्य अरिः। वायु। वायुके बहनेसे मेघ एक जगह स्थिर नहीं रह सकता इसीसे वायुको मेघारि कहते हैं।

मेघावतत (सं० त्रि०) मेघ द्वारा समाच्छादित, बादलोंसे ढका हुआ।

मेघावली (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (राजतर० ४।६८८)

मेघास्थि (सं० क्ली०) मेघानां अस्थीव। करका, ओला।

मेघास्पद (सं० क्ली०) मेघानां आस्पदं स्थानम्। आकाश।

मेघाह्व (सं० पु०) १ अभ्रक, अबरक। २ उशीर, खस।

मेघेश्वर—उड़ीसाके प्रसिद्ध भुवनेश्वरक्षेत्रके अन्तर्गत एक प्राचीन शिवलिङ्ग। भुवनेश्वरके उत्तरी भागमें भास्करेश्वरसे १०० गज पूरब मेघेश्वरका सुप्रसिद्ध मन्दिर और उसके पास ही मेघकुण्ड अवस्थित है। मन्दिर पत्थरका बना हुआ है। बहुत प्राचीन होने पर भी इसका शिल्पसौन्दर्य ज्योंका त्यों है। परन्तु अभी पहलेकी तरह यात्री नहीं आते, इस कारण इसकी प्रसिद्धि दिनों-दिन घटती जा रही है। और तो क्या, उत्कलके इतिहासके साथ इस मेघेश्वर मन्दिरका संस्रव रहने तथा एकाम्रपुराण, एकाम्रचन्द्रिका, स्वर्णाद्रिमहोदय आदि क्षेत्रमाहात्म्यमें वर्णित होने पर भी राजा राजेन्द्र-लाल आदि पुराविदोंमेंसे किसीने भी इस मन्दिरका नाम तक भी उल्लेख नहीं किया है। एकाम्रपुराणमें लिखा है,—

अत्यन्त पराक्रमी मेघोंने सिद्धिकी कामना करते हुए देवराज इन्द्रसे कहा, 'देवराज! यदि आज्ञा मिले, तो हम लोग एकाम्रमें जा कर बिन्दुतीर्थमें स्नान करनेके बाद महेश्वरकी पूजा करें। क्योंकि वहां जो कुछ पुण्य कार्य किया जाता है, वह सभी अक्षय होता है। फिर हम लोग यह भी चाहते हैं, कि वहां प्रासाद और शिवालयका निर्माण करें। इसलिये हे प्रभो! हमें इच्छित वर प्रदान कीजिये।' इन्द्रने 'तथास्तु' कह कर उन्हें वे सब कार्य करनेका हुकुम दे दिया। अनन्तर उन्होंने कल्पवृक्षके समीप ईशानकोनमें निर्मल शिलाके नीचे एक सुन्दर स्थान चुन कर विश्वकर्माको बुलाया और उनसे अपना अभिप्राय प्रकट किया। इस पर विश्वकर्माने स्वयं पत्थर आदि ला कर एक बहुत ऊँचा मनोहर प्रासाद बनाया। पर्जन्य, प्लावन, अञ्जन, वामन, सम्पत्ति, द्रोण, जीमूत और अतिवर्षण इन सब

कर्मनिपुण शिवतत्त्वविद् जल देनेवाले आठ मेघोंने खाई और फाटकसे युक्त उस प्रासादकी प्रतिष्ठा की तथा मन्त्रयोगसे दान, अर्चा, तप और यज्ञके द्वारा महादेवको सन्तुष्ट किया। भगवान् देवादिदेवने स्वयं प्रकट हो कर कहा, 'तुम लोग क्या वर मांगते हो, मांगो। यह सुन कर मेघगण अत्यन्त प्रसन्न हो बोले 'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये जिससे हम लोग आपको इस प्रासादमें हमेशा देख पावें।' मेघोंका करुणायुक्त वाक्य सुन कर भगवान् शङ्करने कहा, 'मैं तुम लोगोंके अनुरोधसे अवश्य इस प्रासादमें रहूंगा और मेरा नाम 'मेघेश्वर' रहेगा* और यह जो तालाब है उसका जल सर्वपाप विनाशक तथा पुण्यप्रद होगा।' इस प्रकार भगवान्का वचन सुन कर मेघगण बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रणाम कर स्वर्गकी ओर चल दिये।

एकाम्रपुराण और स्वर्गादि महोदयमें मेघसे मेघेश्वरकी उत्पत्तिका वर्णन होने पर भी वह अति प्राकृत मालूम होता है। इस मेघेश्वर मन्दिरमें पहले एक बड़ी शिलालिपि थी जो अभी अनन्तवासुदेवके मन्दिरमें संलग्न है। उस उत्कीर्ण लिपिसे इस प्रकार जाना जाता है,—

गौतमगोत्रमें पण्डितमान्य द्वारदेव नामक एक राजपुत्रने जन्म लिया। उनसे पण्डितपुङ्गव मूलदेव उत्पन्न हुए। मूलदेवके पुत्र प्रसिद्ध अहिरम, अहिरमके पुत्र स्वप्नेश्वर और कन्या सुरमा थी। चोड़गङ्गके लड़के राजराजके साथ सुरमा देवीका विवाह हुआ। स्वप्नेश्वरने अपने बहनोई वा गङ्गराजकी ओरसे लड़ कर युद्धक्षेत्रमें वीरताका अच्छा परिचय दिया था। उन्होंने ही बहुत रुपये खर्च कर इस मेघेश्वर नामक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की। मेघेश्वर-प्रतिष्ठाके बाद उन्होंने सुदर्शन चक्रके साथ विष्णुमूर्त्तिकी भी प्रतिष्ठा की थी।†

चोड़गङ्गपुत्र राजराज १२वीं सदीके १म भागमें राज्य करते थे। यह मन्दिर उन्हींके समयमें बनाया गया था।

मेघेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) रेवा वा नर्मदातीरस्थ तीर्थभेद।

मेघोदक (सं० क्ली०) मेघस्य उदकं। मेघतोय, बादलका जल।

मेघोदय (सं० पु०) मेघस्य उदयः। मेघका उदय, बादलका आरम्भ।

मेघोदर (सं० पु०) मेघस्येव उदरमस्य। अर्हत्‌पिता।

मेघ्य (सं० त्रि०) मेघभव, बादलसे उत्पन्न।

मेङ्गनाथ (सं० क्ली०) जातिभेद।

मेङ्गनाथ—१ गीत गोविन्दटीकाके प्रणेता कमलाकरके पिता। २ एक विख्यात ज्योतिर्विद्। मुहूर्त्तमार्त्तण्डवल्लभमें नारायणने इनका उल्लेख किया है।

मेङ्गनाथ भट्ट—मीमांसाविधि भूषणके प्रणेता गोपालभट्टके पिता।

मेङ्गनाथसर्वज्ञ—रुद्रानुष्ठान पद्धतिके रचयिता।

मेच (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।

मेच (हिं० स्त्री०) १ पर्यंक, पलंग। २ बेंतकी बुनी हुई खाट।

मेच—आसामकी एक पहाड़ी जाति। इन्हें लोग मेचो भी कहते हैं। आसामके ग्वालपाड़ा जिलेमें, विशेषतः पश्चिममें भूटानद्वारसे ले कर कंकी नदी तक हिमालय की पहाड़ी तराईमें तथा उत्तर बंगालकी मेची नदीके किनारे इनका वास है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि ग्वालपाड़ाका नामकरण मेचपाड़ा और मेचसे हुआ है। किन्तु मेचपाड़ाका जमींदार अपनेको राजवंशी बतलाता है और मेच जातिका संस्रव स्वीकार नहीं करता। मेच लोगोंके आकारप्रकार, सुन्दर शारीरिक गठन, सबल अस्थिचर्म आदि देखनेसे अनुमान होता है कि ये मंगोलियां जातिकी एक शाखा हैं। आजकल दिनों दिन इन लोगोंकी संख्या घटती जाती है। बहुतोंकी समझ है कि सरकार द्वारा झूमप्रथाका निवारण और हलकृषिका प्रवर्त्तन ही इन लोगोंकी अधोगतिका कारण है।

लिम्बुजातिके उत्पत्ति विवरणीमें इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है, कि जगत्‌पिताके आदेशसे तीन भ्राता स्वर्गसे वाराणसीमें उतरे। यहांसे ये लोग अपना

---

* "अथोवाच प्रसन्नात्मा मेघान् सर्वान् स ईश्वरः।
मेघेश्वरोऽहं चात्र नाम्ना त्रिषु निगद्यते॥"
(एकाम्रपु० ३८ अ०)

† Jour. As. S. of Bengal. vol. LXVI. pt I p13.

वासभूमिकी खोजमें उत्तरकी ओर चले। पश्चात् ये ब्रह्मपुत्र और कोली नदीके बीच खचर नामक स्थानमें उपस्थित हुए। कनिष्ठ भ्राता उस स्थानको वसनेके योग्य समझ वहीं रह गया। इनके वंशधर हो कोच, धिमाल और मेच जातिके आदि पुरुष हैं। शेष दोनों भाई नेपालके दूसरे स्थानमें जा वसे। इन लोगोंसे लिम्बु और खाम्बु जातिकी उत्पत्ति हुई। एक दूसरे उपाख्यानके अनुसार मेच लोग आसामके आदिम निवासी हैं और गारो जातिके संस्रवसे उत्पन्न हैं। एक तीसरी किम्वदन्तीके अनुसार एक जातिच्युत नेपाली और खचर स्थानकी रहनेवाली एक पहाड़ी स्त्रीसे मेच जातिकी उत्पत्ति हुई। इनका मंगोलीय आकार प्रकार देख कर अनुमान होता है कि इन लोगोंमें आस पासकी पहाड़ी जातियोंका रक्तसंस्रव हुआ है।

दार्जिलिंग और जलपाइगुड़ी जिलेके मेच लोग अग्निया और जाति नामके दो थोकोंमें विभक्त हैं। पूर्व या आसाम प्रान्तके मेच लोग अग्निया, आसामी, काछड़ा या काछाड़ी और खानपाइ नामक चार विभागों मे वंटे हुए हैं। अपने अपने थोकोंको छोड़ दूसरे थोक वालोंके साथ इनका विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। अग्निया मेच लोग एक मात्र राजवंशी लोगोंको और जाति मेच-लोग धिमाल, ढेकरा और अग्निया मेचलोगोंको अपने साथ मिला हुआ समझते हैं। यदि भिन्न श्रेणीका कोई व्यक्ति किसी मेचस्त्रीके प्रणयमें पड़ मेच जातिमें मिलना चाहे तो जाति प्रवेशके मूल्य स्वरूप उसे एक भोज देना पड़ता है।

दार्जिलिंग-वासी अग्निया और जाति मेचों और आसामके चार थोकोंके मध्य वमोड़ा, वोशमाठा, छोङ्ग फर्थांग, चौंग फ्रांग इशारे, कुकताथारे, मोछारे, नर्जेनारे, फदाम, सवाइयारे और शिविनागरे आदि १२ श्रेणियां पाइ जाती हैं। वे लोग अपनी अपनी श्रेणी हीमें विवाहादि करते हैं।

अग्निया मेच जातिमें लड़कीके वारहवें वर्ष और लड़केके सोलहवें वर्षमें ही विवाह होता है। जातिमेचोंमें ही १६ वर्षसे २० वर्ष तक विवाह होते देखा जाता है। अनेक स्थानोंमें विवाहके पहले सद्भावस्थापन भी किया जाता है। धनवान् लोग हिन्दुओंका अनुकरण करते हैं।

वर और कन्यापक्षके उपस्थित कुटुम्बोंके सामने बांसके चोंगेके जलसे कन्याके पैर धुला देनेसे हो विवाह समाप्त होता है। पश्चात् कन्या और वर एक कमरेमें सोते हैं और कन्या वाहर होने पर शिवपूजा करती है। जातिमेच लोगोंमें पैर धुलानेकी पद्धति नहीं है, वर और कन्याके आपसमें सुपारी पान वदला कर लेने हीसे विवाह हो जाता है।

इन लोगोंमें विधवा विवाह प्रचलित है, लेकिन पुत्रवती विधवाको प्रायः ब्रह्मचर्य्य हो अवलम्बन करना पड़ता है। ऐसी विधवा यदि विवाह करना चाहे तो अपने देवर हीसे विवाह कर सकती है।

ये लोग प्रायः शैव हैं और बाथो नामक शिव तथा वलिखुंड़ी नामक काली ही इन लोगोंके प्रधान उपास्य देवता हैं। जातिमेच लोगोंकी गृहदेवी ही कुलदेवता होती हैं जो शिवकी मां कही जाती हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग सिमिशि, तिस्तावुड़ी, महेश्वर ठाकुर, संन्यासी और महाकाल मूर्त्तिकी उपासना करते हैं।

ये लोग अपने मुर्दोंको जलाते हैं और ४ या ८ दिनमें श्राद्ध करते हैं। वहुतेरे वार्षिक श्राद्ध भी करते हैं।

ये लोग सभी प्रकारके मद्य मांस खाते पीते हैं। सूअर, गो, सांप, छुछुन्दर आदि भी खाते हैं। राजवंशी और धिमाल आदि जाति इन लोगोंसे कहीं अधिक उन्नत हैं। नेपाली लोग इनका छुआ जल पीते हैं।

मेचक (सं० क्ली०) मचति वर्णान्तरेण मिश्रोभवति मच् (कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन्। उण् ५।३५) इति वुन् ततः (पचिमच्योरिच्च उण् ५।३७) इति इत्वे लघपधगुणः यद्वा मच मचि कल्कने अकन्, 'मचि परिमुचं नाम्नि' इति एत्वं। १ नीलाञ्जन, सुरमा। २ अन्धकार, अंधेरा। ३ मोरकी चन्द्रिका। ४ धूम, धूआं। ५ शोभाञ्जन, सहिजन। ६ मेच। मेघ, बादल। ७ पीतशाल, पियासाल सौवर्च्चल लवण। ९ विट्लवण। १० चिचित्रवर्ण। ११ कृष्णपीतरक्त वर्ण। १२ मन्दविष वृश्चिक जाति, विच्छूकी एक छोटी जाति। १३ मुष्क वृक्ष

१४ कुन्दुरु। (त्रि०) १५ श्यामल, काला।

मेचकता (सं० स्त्री०) श्यामता, कालापन।

मेचकजाई (हिं० स्त्री०) मेचकता देखो।

मेचका (सं० स्त्री०) वनकार्पासी, वन कपास।

मेचकाञ्जन (सं० क्ली०) कृष्णाञ्जन, काला सुरमा।

मेज (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पहाड़ी घास। यह हिमालय पर ५००० फुटकी ऊंचाई तक पाई जाती है। इसे घोड़े और चौपाए बड़े चावसे खाते हैं।

मेज़ (फा० स्त्री०) लंबी चौड़ी चौकी जो बैठे हुए आदमीके सामने उस पर रख कर खाना खाने, लिखने पढ़ने या और कोई काम करनेके लिये रखी जाती है।

मेज़पोश (फा० पु०) चौकी या मेज़ पर बिछानेका कपड़ा।

मेज़बान (फा० पु०) भोजन कराने या आतिथ्य करानेवाला, मेहमानदार।

मेजर (अ० पु०) फौजका एक अफसर।

मेजा (हिं० पु०) मेंढ़क, मण्डूक।

मेट (अ० पु०) मजदूरोंका अफसर या सरदार, जमादार।

मेटनहार (हिं० पु०) मिटानेवाला, दूर करनेवाला।

मेटना (हिं० क्रि०) १ घिस कर साफ करना, मिटाना। २ दूर करना, न रहने देना। ३ नष्ट करना।

मेटिया (हिं० स्त्री०) घड़ेसे छोटा मिट्टीका बरतन। इसमें दूध दही आदि रखा जाता है।

मेटी (हिं० स्त्री०) मेटिया देखो।

मेटुआ (हिं० स्त्री०) मेटकी देखो।

मेटुवा (हिं० वि०) कृतघ्न, किये हुए उपकारको न माननेवाला।

मेठ (सं० पु०) मेटति उन्मांद्यति मेट-अच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। हस्तिपक, हाथीवान।

मेड़ (हिं० पु०) १ मिट्टी डाल कर बनाया हुआ खेत या जमीनका घेरा, छोटा बांध। २ दो खेतोंके बीचमें हद या सीमाके रूपमें बना हुआ रास्ता। ३ ऊंची लहर या तरंग।

मेड़बंदी (हिं० स्त्री०) १ मिट्टी डाल कर बनाया हुआ घेरा। २ इस प्रकार घेरा बनानेकी क्रिया।

मेड़क (हिं० पु०) मेढ़क देखो।

मेड़का (हिं० पु०) १ किसी गोल वस्तुका बना हुआ किनारा। २ किसी वस्तुका मंडलाकार ढांचा।

मेड़राना (हिं० क्रि०) मँड़राना देखो।

मेड़री (हिं० स्त्री०) १ किसी गोल या मंडलाकार वस्तुका उभरा हुआ किनारा। २ मंडलाकार वस्तुका ढांचा। ३ चक्कीके चारों ओरका वह स्थान जहां आटा पिस कर गिरता है।

मेडल (अ० पु०) चांदी, सोने आदिकी वह विशेष प्रकारकी मुद्रा जो कोई अच्छा या बड़ा काम करने अथवा विशेष निपुणता दिखाने पर किसीको दी जाय। इस पर देनेवालेका नाम खुदा रहता है तथा जिस बातके लिये दिया जाता है उसका भी उल्लेख रहता है।

मेड़िया (हिं० स्त्री०) मण्डप, छोटा घर।

मेढ़क (हिं० पु०) एक जलस्थलचारी जन्तु। यह तीन चार अंगुलसे ले कर एक बालिश्त तक लंबा होता है। यह पानीमें तैरता है और जमीन पर कूद कूद कर चलता है। इसके चार पैर होते हैं जिनमें जालीदार पंजे होते हैं। यह फेफड़ोंसे श्वास लेता है, मछलियोंकी तरह गलफड़ोंसे नहीं। विशेष विवरण मण्डूक शब्दमें देखो।

मेढ़ा (हिं० पु०) सींगवाला एक चौपाया। यह लगभग डेढ़ हाथ ऊंचा और घने रोयोंसे ढका होता है। इसका रोयाँ जो बहुत मुलायम होता है ऊन कहलाता है। इसका माथा और सींग बहुत मजबूत होते हैं। ये आपसमें बड़े वेगसे लड़ते हैं, इससे बहुतसे शौकीन इन्हें लड़ानेके लिये पालते हैं। मादा भेड़ जितनी ही सीधी होती हैं, उतने ही मेढ़े क्रोधी होते हैं।

विशेष विवरण मेष शब्दमें देखो।

मेढ़ासिंगी (हिं० स्त्री०) एक झाड़ीदार लता। यह मध्यप्रदेश और दक्षिणके जंगलोंमें तथा बम्बईके आसपास बहुत होती है। इसकी जड़ औषधके काममें आती है और सर्पका विष दूर करनेके लिये प्रसिद्ध है। इसकी पत्तियाँ चबानेसे जीभ देर तक सुन्न रहती है।

मेषशृङ्गी देखो।

मेढ़ी (हिं० स्त्री०) १ तीन लड़ियोंमें गूथी हुई चोटी। २ घोड़ोंके माथे परकी एक भौंरी।

मेढ़्र (सं० पु०) मेहत्यनेनेति मिहपसेचने (दाम्नीशसयुयुवस्तु

तुदविसिचिमिहपतदशनहः करणे। पा ३।२।१८२) इति ष्ट्रन्।
१ शिश्न, लिङ्ग। यह गर्भस्थित बालकके सातवें महोनेमें होता है।

पञ्चभूतोंमेंसे एक पृथिवीके रजोगुणांशसे इस शिश्नकी उत्पत्ति होती है। "रजोंऽशैः पञ्चभिस्तेषां क्रमात् कर्मेन्द्रियाणि तु।" (पञ्चदशी) जिसका मेढ़ स्वाभाविक अनावृत रहता है वह महापातकी समझा जाता है। नरकभोगके बाद वह महापापके कुछ चिह्न और व्याधि ले कर जन्म लेता है और दुश्चर्मा कहलाता है।

"शृणु कुष्ठगणं विप्र उत्तरोत्तरतो गुरुं।
त्रिचर्च्चिका तु दुश्चर्मा चर्चरीय स्तृतीयकः॥"
'दुश्चर्मा स्वभावतोऽनावृतमेढ्रः' (स्मृति)

२ मेष, मेढ़ा।

मेढ्रत्वच् (सं० स्त्री०) मेढ्रस्य त्वक्। लिङ्गाच्छादक चर्म, वह चमड़ा जिससे लिङ्ग ढका रहता है।

मेढ्ररोग (सं० पु०) उपस्थरोग, लिङ्गरोग।

मेढ्रशृङ्गी (सं० स्त्री०) मेढ्रस्य शृङ्गमिव शृङ्गमस्याः गौरादित्वात् ङीष्। मेषशृङ्गी वृक्ष, मेढासिंगी।
मेढासिंगी देखो।

मेण्ठ (सं० पु०) हस्तिपक, हाथीवान।

मेण्ड (सं० पु०) हस्तिपक, हाथीवान।

मेण्ढ (सं० पु०) मेष, मेढा।

मेतार्य (सं० पु०) जैनमतानुसार ग्यारह गणाधिपोंमेसे एक।

मेतृ (सं० पु०) स्तम्भ-रोपणकर्त्ता, मीनार खड़ा करनेवाला।

मेथा (सं० स्त्री०) मेथिका, मेथी।

मेथि (सं० पु०) मेथन्ते पशवोऽत्रेति मेथ-सङ्गे (सर्वधातुभ्य इन्। उणा् ४।११७) इति इन्। १ खूंटा जिसमें पशु बांधे जाते हैं। (स्त्री०) २ मेथिका, मेथी।

मेथिका (सं० स्त्री०) मेथतीति मेथ ण्वुल् टापि अत इत्वं। क्षुपविशेष, मेथी। पर्याय—मेथिनी, मेथी, दीपनी, बहुमूलिका, बोधिनी, गन्धबीजा, ज्योति, गन्धफला, बल्लरी, चन्द्रिका, मन्था, मिश्रपुष्पा, कैरवी, कुञ्चिका, बहुपर्णी, पीतबीजा। यह पौधा भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र होता है, इसकी पत्तियां कुछ गोल होती हैं और सागकी तरह खाई जाती हैं। इसकी फलियोंके दाने मसाले और औषधके काममें आते हैं और देखनेमें कुछ चौखूटे होते है। इसकी फसल जाड़ेमें तैयार होती है। इसका गुण—कटु, उष्ण, अरुचिनाशक, दीप्तिकारक, वातघ्न तथा रक्तपित्तप्रकोपन माना गया है।

मेथिनी (सं० स्त्री०) मेथतोति मेथ-णिनि-ङीप्। मेथिका, मेथी।

मेथिष्ठ (सं० त्रि०) मेथिके पार्श्वमें अवस्थित।

मेथी (सं० स्त्री०) मेथि-कृदिकारादिति पक्षे ङीप्। मेथिका। मेथिका देखो।

मेथीमोदक (सं० पु०) ग्रहणीरोगकी एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, जीरा, कृष्णजीरा, धनिया, कटफल, कुट, कर्कटशृङ्गी, यमानी, सैन्धव, विट्लवण, तालिशपत्र, नागेश्वर, तेजपत्र, दारुचीनी, इलायची, जायफल, जैत्री लवङ्ग, मुरामांसी, कर्पूर, रक्तचन्दन, सबका बराबर बराबर चूर्ण। कुल चूर्ण मिला कर जितना हो उसे दूने पुराने गुड़ और उपयुक्त जलमें पाक करे। पाक सिद्ध हो जाने पर कुछ घी और मधु ऊपरसे डाल दे। यह अग्निकारक और संग्रहणी आदि रोगमें बहुत उपकारी है।

मेथीमोदक (सं० पु०) वाजीकरणाध्याय।

मेथौरी (हिं० स्त्री०) मेथीका साग मिला कर बनाई हुई उर्दकी पीठीकी बरी।

मेद (सं० पु०) मेद्यति स्निह्यतीति मिद्- अच्। १ शरीरके अन्दरकी वपा नामक धातु, चरबी। सुश्रुतके अनुसार मेद मांससे उत्पन्न धातु हैं जिससे अस्थि बनती है। भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें लिखा है, कि जब शरीरके अन्दरकी स्वाभाविक अग्निसे मांसका परिपाक होता है, तब मेद बनता है। इसके इकट्ठा होनेका स्थान उदर है। मेदस् देखो। २ आलम्बुषा, गोरखमुंडी। ३ ऐरावतकुलजात नागविशेष।

"विहङ्गः शरभो मेदः प्रमोदः संहतापनः।
ऐरावतकुलादेते प्रविष्टा हव्यवाहनम्॥"
(महाभा० १।५७।११)

४ मोटाई या चरबी बढ़नेका रोग। ५ कस्तूरिका, कस्तूरी। ६ एक अन्त्यज जाति। इसकी उत्पत्ति मनु-

स्मृतिमें वैदेहिक पुरुष और निषाद स्त्रीसे कही गई है वन जन्तु मारना ही इनकी जातीय वृत्ति है।

(मनु १०।३६।४८)

मेदक (सं० पु०) मिद-ण्वुल्। जगल सुरा; पीठीसे बनी हुई एक प्रकारकी शराब।

मेदज (सं० पु०) मेदात् जायते इति जन ड। १ भूमिज, गुग्गुल। (त्रि०) २ मेदोभव, जो चरबीसे उत्पन्न हो।

मेदन (सं० क्ली०) स्नेहन, चरबी लगाना।

मेदपाट (सं० पु०) राजपूतानेके मेवाड़ राज्यका संस्कृत नाम। मेवार देखो।

मेदपाठ (सं० क्ली०) वत्स गोत्रीयका एक ग्रन्थ।

मेदपुच्छ (सं० पु०) एड़क, दुंबा मेढ़ा।

मेदस् (सं० क्ली०) मेद्यति स्निह्यतीति मिद् (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। शरीरस्थ मांसप्रभव ४थे धातु, चरबी। इसका गुण—वातनाशक, बल, पित्त और कफदायक माना गया है। इसका स्वरूप—

"षन्मासं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते।
तदतीव गुरु स्निग्धं बलकार्यतिवृंहितम्॥" (भावप्र०)

अपनी अग्निके द्वारा शरीरके अन्दर जो मांस परिपाक होता है, उसे मेद कहते हैं। यह अतिशय गुरु, स्निग्ध, बलकारी और अति वृंहित होता है।

यह प्राणियोंके उदर और अस्थिमें रहता है। जिसके शरीरमें अधिक मेद रहता है, उसे तोंद निकल आता है।

"मेदो हि सर्वभूतानामुदरेष्व स्थषु स्थितम्।
अतएवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत्॥" (भावप्र०)
"मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थि समुद्भवः।" (सुश्रुत)

२ रोगविशेष, मेद रोग। ३ स्नेहविशेष। वसा देखो।

मेदःसार (सं० त्रि०) मेदस्वी, मेदप्रधान।

मेदस्कृत् (सं० क्ली०) मेदः करोतीति मेदस्-कृ-क्विप्। मांस।

मेदस्तेजस् (सं० क्ली०) अस्थि, हड्डी।

मेदस्पिण्ड (सं० पु०) चर्बीका गोला।

मेदस्वत् (सं० त्रि०) मेदयुक्त, जिसे चरबी हो।

मेदस्विन् (सं० त्रि०) १ मेदोमय, जिसमें बहुत चरबी हो। (क्ली०) २ मेदजन्य स्थूलदेह, चरबीके कारण जिसका शरीर मोटा गया हो

मेदा (सं० स्त्री०) मेदोऽस्याः अस्तीति मेद-अच्-टाप्। अष्टवर्गमेंसे एक प्रसिद्ध ओषधि। यह ज्वर और राजयक्ष्मामें अत्यन्त उपकारी कही गई है। कहते हैं, कि इसकी जड़ अदरककी तरह, पर सफेद होती है और नाखून गडानेसे उसमेंसे मेदके सामान दूध निकलता है। वैद्यकमें यह मधुर, शीतल तथा पित्त, दाह, खाँसी ज्वर और राजयक्ष्माको दूर करनेवाली कही गई है। यह मोरङ्गकी ओर पाई जाती है। संस्कृत पर्याय—मेदोद्भवा, जीवनी, श्रेष्ठा, मणिच्छिद्रा, विभावरी, वसा, स्वल्पपर्णिका, मेदःसारा, स्नेहवती, मेदिनी, मधुरा, स्निग्धा, मेधा, द्रवा, साध्वी, शल्यदा, बहुरन्ध्रिका, पुरुषदन्तिका।

मेदा (अ० पु०) पाकाशय, पेट।

मेदिनी (सं० स्त्री०) मेदोऽस्या अस्तीति मेद-इनि-ङीप्। १ मेदा। २ काश्मरी। ३ पृथिवी। मधुकैटभके मेद द्वारा पृथिवीकी उत्पत्ति हुई है, इसीसे इसका नाम मेदिनी पड़ा है।

'गतप्राणौ तदा जातौ दानवौ मधुकैटभौ।
सागरः सकलो व्याप्तस्तदा वै मेदसी तयोः॥
मेदिनीति ततो जातं नाम पृथ्व्याः समन्ततः।
अभक्ष्या मृत्तिका तेन कारणेन मुनीश्वराः॥"

(देवीभागवत ३।१३.८)

यह मेदिनी मेदसे उत्पन्न है, इसीसे मिट्टीको अभक्ष्य बतलाया गया है।

मेदिनीकर—मेदिनीकोष वा नानार्थकोष नामक अभिधानके प्रणेता। इनके पिताका नाम प्राणधर है।

मेदिनीज (सं० पु०) १ भूमिज, मङ्गलग्रह। २ मेदिनीपुत्र। (त्रि०) ३ पृथिवीजातमात्र।

मेदिनीद्रव (सं० त्रि०) मेदिन्याः द्रवः। धूलि, धूल।

मेदिनीपति (सं० पु०) मेदिन्याः पतिः। पृथिवीपति।

मेदिनीपुर—बङ्गालका एक जिला। यह अक्षा० २१° ३६' से २२° ५७' उ० तथा देशा० ८६° ३३' से ८८° १७' पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ५१८६ वर्गमील है। यह जिला वर्द्धमान विभागके सबसे दक्षिणमें अवस्थित है। इसके उत्तरमें वर्द्धमान और बाँकुड़ा; पूर्वमें हुगली और हवड़ा; दक्षिणमें बङ्गोपसागर; दक्षिण-पश्चिममें

वालेश्वर ; पश्चिममें मयूरभञ्ज सामन्त राज्य और सिंहभूम तथा उत्तर-पश्चिममें मानभूम जिला है। मेदिनीपुर नगर इसका विचार सदर है।

जिला बहुत बड़ा और प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण है। प्रधानतः इस स्थानको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है, १ला समुद्र तटवर्त्ती स्थान, २रा डेल्टाभूमि और ३रा समतल और उच्चभूमि। पश्चिम-भूभागकी पहाड़ भूमिको छोड़ कर और सभी स्थानोंमें खेती वारी होती है। हिंस्र जन्तुओंसे भरा हुआ यह पहाड़ी भूभाग 'जङ्गल-महाल' कहलाता है। पूर्व और दक्षिण पूर्वके जलमय भूभागमें तथा रूपनारायण नदीके मुहानेसे ले कर वालेश्वरके उत्तर तक फैले हुए हिजली विभागमें भी धान आदि फसल उत्पन्न होती है। यहां जलका कभी अभाव नहीं होता। इस जिले हो कर हुगली तथा उसकी सहायक नदियां रूपनारायण, हल्दी और रसूलपुर बहती हैं। रूपनारायण नदी शिलाई नदीके जलसे परिवर्द्धित हो हुगली-पायेण्टके समीप भागीरथीमें मिलती है। हल्दी नदी तमलुक उपविभागके नन्दीग्रामके समीप गङ्गामें मिली है। कलियाघाई और कसाई नामक इसकी दो शाखा-नदियां वक्र गतिसे जिलेमें वहती हैं। मेदिनीपुर नगर कसाई नदीके किनारे वसा है। रसूलपुर नदी कौखालीके समीप भागीरथीमें गिरी है।

उपरोक्त नदी और शाखा नदियोंको छोड़ कर खेती-वारी तथा वाणिज्यकी सुविधाके लिये इस जिलेमें कुछ नेहर काटी गई हैं। इनमें उलुवेड़ियासे पूर्व-पश्चिममें मेदिनीपुर तक विस्तृत 'हाईलेभल कनाल' तथा रूपनारायण मुहानेके गेयोखालीसे हिजली विभागके रसूलपुर नदी तक विस्तृत दो लंबी चौड़ी नहर ही उल्लेखनीय हैं। पश्चिमदिग्वर्त्ती जङ्गल विभागमें लाख, टसर, मोम, धूना, काष्ठ आदि वाणिज्यद्रव्य पाये जाते हैं। वन्य भूभागमें नाना प्रकारके जीवजन्तु रहते हैं। समुद्र और पहाड़ी भूमिके मध्यवर्त्ती होनेके कारण यहां बहुतसे सर्प देखे जाते हैं।

समूचे जिलेका पुराना इतिहास नहीं मिलता। प्राकृतिक दृश्य देखनेसे मालूम होता है, कि बहुत पहले पश्चिम देशभाग घने जंगलमें परिणत था। धीरे धीरे पहाड़ी अनार्य जाति आर्यसभ्यतामें आ कर जंगल काट कर यहां बस गई। पीछे दक्षिण वङ्गसे बहुतसे लोग वाणिज्यके उद्देशसे यहां आने लगे जिससे यह जिला सभ्यजातिका वासस्थान समझा जाने लगा।

समुद्रोपकूलवर्त्ती गाङ्गेय मुहाने पर अवस्थित तमलुक नगरी अपना प्राचीन कीर्त्ति-गौरव दिखा रही है। प्राचीन बौद्धोंने ५वीं सदीमें यहां आ कर उपनिवेश बसाया। समुद्रपथसे वैदेशिक वाणिज्यमें सुविधा देख कर यहां एक वन्दर भी खोला गया था। इसी स्थानसे, जहां तक सम्भव है, भारतीय बौद्धगण ब्रह्मराज्यमें तथा जावा आदि भारत-महासागरस्थ द्वीपोंमें वाणिज्यके उद्देशसे आते जाते होंगे। ७वीं सदीके आरम्भमें प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक युएनचुवंग इस स्थानको देखने आये थे। वे ताम्रलिप्त नगरका एक महासमृद्धिशाली वन्दररूपमें वर्णन कर गये हैं। उन्होंने यहां १० बौद्ध-संघाराम, २०० फुट ऊँचा एक अशोकलाट (स्तम्भ) और हजारसे ऊपर श्रमणोंका वास देखा था।

ताम्रलिप्त और तमलुक देखो।

प्राचीन हिन्दू उपाख्यानमाला पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह नगर पहले समुद्रोपकूलसे ८ मीलकी दूरी पर अवस्थित था।

यहांके मयूरवंशीय राजे क्षत्रिय थे। उस वंशके अन्तिम राणा निःशङ्कनारायणके कोई सन्तान न थी, इस कारण उनके मरने पर कालू भूँइया नामक एक पहाड़ी सरदार राज्याधिकारी हुआ। कालू सरदारसे तमलुकमें कैवर्त्त राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई। पहले वे लोग भूँइया नामक अनार्य-जाति समझे जाते थे, पीछे हिन्दूधर्मग्रहण कर हिन्दूसमाजमें मिल गये। इस वंशके वर्त्तमान राजा कालूसे २७ पीढ़ी नीचे हैं।

वङ्गालमें पठान आधिपत्य विस्तारके साथ साथ यह स्थान भी पठानराजके दखलमें आ गया। परन्तु जो सब राजा-उपाधिधारी हिन्दू जमींदार थे उनका अधिकार नहीं छीना गया। उदासी और विलासी मुसलमानोंको काबूमें करके देशी सामन्तगण एक समय मेदिनीपुरमें अपनी अपनी प्रधानताका परिचय दे गये हैं।

मेदिनीपुर जिलेका पश्चिम और दक्षिण हिजली भाग

मुसलमानी अमलमें जलेश्वर सरकारमें मिला लिया गया। मुगल बादशाह अकबर शाहके समय यहांसे १२॥ लाख रुपया कर वसूल होता था। जलेश्वर नगरमें ही इसका विचार-सदर प्रतिष्ठित था। अभी यह बालेश्वरके अन्तर्भुक्त है। जलेश्वर और बालेश्वर देखो।

१७६० ई०से अंगरेज कम्पनीके साथ मेदिनीपुरका संस्रव आरम्भ हुआ। उसी साल इष्ट इण्डिया कम्पनीने मीरजाफर खाँको राज्यच्युत कर मीरकासिम खाँको वङ्गालकी मसनद पर विठाया। मीरकासिम अपनी पदोन्नतिके वदलेमें कम्पनीको मेदिनीपुर, चट्टग्राम और वर्द्धमान जिला देनेको वाध्य हुए।

पूर्व और दक्षिणमें समुद्र तथा पश्चिममें पर्वतमाला विस्तीर्ण रहनेके कारण यहां वैदेशिक शत्रु नहीं घुस सकता। दक्षिण उड़ीसासे मरहठे लोग दल बांध बांध कर यहां आते और मेदिनीपुरको लूट जाते थे। एक समय मरहठोंने सारे मेदिनीपुरमें अपना आधिपत्य फैला लिया था, किन्तु लूटमारकी ओर उनका विशेष झुकाव था। इस कारण वे अपनी शक्तिको बहुत दिन तक अक्षुण्ण न रख सके। वर्गी देखो।

जिलेके पश्चिममें अवस्थित जङ्गल भूमिके जमींदार भी दल बांध कर यहां आते और समतलक्षेत्रमें शस्यादि को लूट ले जाते थे। जंगलमहालके दस्युपालक ये सरदार वा जमींदार अपनेको राजा बतलाते हैं। १७७४ ई०में वे ऐसे दुर्द्धर्ष हो उठे थे, कि अंगरेज कर्मचारियोंके प्रति भी अत्याचार करनेसे बाज नहीं आये। यहां तक कि वे आपसमें अकथनीय अत्याचार भी कर डालते थे, जिसके लिये उन्हें जरा भी घृणा नहीं होती थी। उन लोगोंके अत्याचारसे छुटकारा पानेके लिये स्थानीय जमींदारोंको सशस्त्र सिपाही रखने पड़े थे। शरत्काल-में कटनीके समय वे लोग शस्त्रधारी सेनादलसे अपनी प्रजाको मदद पहुंचाते थे।

वर्गियों तथा इन जंगलवासी लुटेरोंके आक्रमणसे देशकी रक्षाके लिये जलेश्वरमें बहुत पहलेसे ही एक सीमान्त दुर्ग प्रतिष्ठित था। अलावा इसके जिलेमें जहां कहीं सभ्य धनिक... ...न भी अपनी रक्षाके लिये प्रासादके चारों ओर खाई खुदवा रखी थी और एक एक दुर्गप्रासाद भी बनवाया था। उन दुर्ग-प्रासादोंमें वे कभी कभी उन लुटेरोंसे बचनेके लिये छिप रहते थे।

जङ्गलमहालके इन सरदारोंमें मयूरभञ्जके राजाकी भी गिनती की जा सकती है; क्योंकि उनके अधिकृत परगनोंसे उनके अधीन सेनादल बाहर निकलता और लूट मार कर प्रजाको तंग तंग करता था। अंगरेज गवर्मेण्टकी पुरानी नत्थियोंसे इस बातका पता लगता है। १७८३ ई०में गवर्नर जेनरलने जब मयूरभञ्जके राजाका अधिकार छीनना चाहा, तब वे एक दूसरे विरोधी सरदारकी सहायतासे अंगरेजोंके विरुद्ध खड़े हुए और एक दल सेना ले कर अंगरेजोंके अधिकृत जिलेको जीतने चले। इस समय सुचतुर अंगरेज राजने उड़ीसाके महाराष्ट्रीय शासनकर्त्ताकी सहायतासे मयूरभञ्जराजको परास्त किया था। उसी समयसे मयूरभञ्जराज मेदिनीपुरके अन्तर्गत अपनी सम्पत्तिके लिये वृटिश-सरकारको वार्षिक ३२००) रुपया कर दे रहे हैं।

अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद मेदिनीपुर-विभागके आकारमें बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ है। १८३६ ई० तक हिजली एक स्वतन्त्र कलेक्टरीके अन्दर रहा, पीछे वह मेदिनीपुरमें मिला लिया गया। तभीसे ले कर आज तक वह मेदिनीपुर जिलेके शासनाधीन है। १८७२ ई०में हुगली जिलेके अन्तर्गत चन्द्रकोण और वर्द्धा परगना इसके अन्तर्भुक्त हुआ। १८७६ ई०में विचार कार्यकी सुविधाके लिये सिंहभूमिसे ४५ ग्राम ले कर इसमें शामिल किये गये।

इस जिलेके राजाकी उपाधि धारण करनेवाले प्राचीन जमींदारवंशमें वागड़ीराजवंश, नयग्रामवंश, मैनाराजवंश, तमलुक राजवंश, नारायणगढ़वंश और बलरामपुर राजवंश उल्लेखनीय हैं। मैना, तमलुक, वागड़ी आदि राजवंशका विवरण यथास्थानमें दिया गया है। उड़ीसा और वङ्गालके मध्यवर्त्ती प्राचीन समृद्ध नगरोंमें जो बौद्ध, हिन्दू, महाराष्ट्रीय और मुसलमानोंकी स्थापित कीर्त्ति तथा देशीय जमीदारोंके प्रतिष्ठित देवमन्दिर, गढ़ और जलाशय हैं उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जायगा

उपरोक्त जमीन्दार-वंशमें बलरामपुर राजवंशकी अनेक कीर्त्ति-कहानियाँ सुनी जाती है। खड़्गपुर, केदार-कुण्ड और बलरामपुर परगने ले कर इस वंशकी प्रतिपत्ति है। पहले जिन सब जमींदारोंने अपने पराक्रमसे जङ्गलमहालको कटवा कर उसका जो कुछ भाग दखल कर लिया था उनके वंशधर आज भी उन भागों पर दखल रखते हैं। अंगरेजोंके निकट वे लोग सामान्य जमींदार गिने जाने पर भी एक समय वे अपने अपने अधिकृत प्रदेशमें स्वाधीनभावसे राज्य कर गये हैं। बलरामपुर परगना इसी जङ्गलमहालके अन्तर्गत है।

१५८२ ई०में राजा टोडरमल बङ्गाल और उड़ीसाके राज्यसंक्रान्त बन्दोबस्तके लिये यहां आये और राजकीय कार्यकी सुविधाके लिये सदर-चौधरी-पदकी सृष्टि कर गये। वही चौधरीवंश यहांके सत्त्वाधिकारी है। १७९३ ई०में लार्ड कार्नवालिसके दशशाला बन्दोबस्तके समय राजा वीरप्रसाद चौधरी उक्त तीनों परगनोंके अधिकारी थे। १८३८ ई०में बाकी खजाना न दे सकनेके कारण उनकी राजसम्पत्तिको गवर्मेण्टने नीलाममें खरीद लिया। पीछे वह खासमहाल नामसे प्रसिद्ध हुआ।

इस राजवंशके आदि राजाका नाम भीम महापात्र है। वे इस प्रदेशके खैराराजके गढ़-सरदार या सेनाध्यक्ष थे। सेनापति तथा राजदीवान लक्ष्मणसिंह (कर्णगढ़राजवंशके आदिपुरुष)-ने षड़यन्त्र करके राजाको मार डाला। खैराराजवंश निम्न श्रेणीके हिन्दू हैं और एक प्रकारकी जंगली जातिसे इनकी उत्पत्ति बतलाई जाती है।

राजा भीम महापात्र ९७५ बङ्गाब्दमें राजसिंहासन पर बैठे। 'भीमसागर' नामक दिग्गी आज भी उनकी कीर्त्ति घोषणा करती है। उनके लड़के हरिचन्दनके शासनकालमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। हरिचन्दनके मरने पर उनके पुत्र राणा मुकुन्दराम महापात्र 'मुकुन्दसागर' रूप सत्कीर्त्ति स्थापन कर गये हैं। मुकुन्दरामके पुत्र ४र्थ राजा पीताम्बरके स्वर्गवासी होने पर ११६० बङ्गाब्दमें उनके पुत्र शत्रुघ्न महापात्र राजाकी उपाधि धारण कर राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। घड़ुई डकैतोंका विद्रोह-दमन तथा पञ्चरत्न और जोड़बङ्गला मन्दिरमें श्यामसुन्दरजी और सिंहवाहिनीकी मूर्त्ति स्थापित कर वे अपने नामको उज्ज्वल कर गये हैं।

११७५-११९२ बङ्गाब्द राजा नरहरि चौधरीका राज्यकाल है। इस समय चुआड़विद्रोह, बर्गीके हंगामा, घड़ुई विद्रोह आदिसे मेदिनीपुर उत्पन्नप्राय हो गया था। वे नृशंस, क्रोधी और महाप्रतापी थे। १७६० ई०में मेदिनीपुरका शासन-भार अंगरेजोंके हाथ आने पर भी राजा नरहरिने अंगरेजोंका प्रतिनिधित्व स्वीकार नहीं किया। उनके समसामयिक नारायणगढ़के राजा परीक्षित् बहुत उदार थे।

११९२ से १२३५ बङ्गाब्द राजा वीरप्रसादका राज्यकाल है। उनकी मृत्युके बाद उनकी स्त्री मुञ्जराने इंद्रनारायण चौधरीको गोद लिया। राज्यभ्रष्ट और श्रीभ्रष्ट हो इनकी अवस्था बहुत शोचनीय हो गई।

बलरामपुर राजवंशके वासस्थानका नाम आड़ासिनिरगढ़ है। इनके और भी १२ महल थे। कालपरिपरिवर्त्तनसे राजवंशकी अवनतिके साथ वे सब भी विलुप्त हो गये। अयोध्यागढ़के समीप जोड़बंगला और पञ्चरत्नमन्दिर विद्यमान है।

कंसावतीतीरवर्त्ती धरेन्दा परगनेमें धरेन्दार राजवंशकी प्रतिपत्ति है। हुगली जिलेके दशघरा नामक स्थानमें इन लोगोंका आदि वास था। इस वंशका कोई एक व्यक्ति नवाबकी कोपदृष्टिमें पड़ कर सवंश यमपुर सिधारा। सिर्फ उसकी एक गर्भवती स्त्रीने देवरके साथ भाग कर जान बचाई थी। धारेन्दाके घने जंगलमें आने पर उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। चचा नारायणपालने उस लड़केका नाम महेश्वर 'पाल' रखा। वे पाल उपाधिधारी और कायस्थ कुलके थे।

नारायण पालने स्थानीय जमींदार मांझी राजाको परास्त कर धरेन्दा प्रदेशमें अपनी गोटी जमायी और जहां उनकी भौजाई और भतीजा आ कर बस गया था उस स्थानका नारायणपुर नाम रखा। उन्होंने बाघासिनी नामक सिंहवाहिनी मूर्त्ति और दामोदरचन्द्रजी नामक शालग्रामकी मूर्त्ति प्रतिष्ठा कर पूजाका बंदोबस्त कर दिया। मांझी राजाओंके तालपत्रके बने हुए छत्र वा राजचिह्न धारण करनेकी प्रथा इस वंशमें राजा नारा-

यणपालने ही चलाई थी। इसके अतिरिक्त इन्द्रद्वादशी तिथिमें आज भी उन लोगोंके ईद पर्वोत्सवका अनुष्ठान होता है।

इस वंशमें राजा नारायणपालके बाद शिवनारायण, खड़गसिंह, बाबूराम, शिवराम, प्रतापनारायण, उदय नारायण, कार्त्तिकराम, रामनारायण, मथुरामोहन, कृष्णमोहन, अक्षय नारायण और श्रीनारायणने यथाक्रम राज्य किया। राजा खड़गसिंहपालने कलाई कुण्डा नामक स्थानमें गढ़ बनवाया। राजा कार्त्तिक रायने अपनी वीरताके कारण 'हारावल' की उपाधि पाई थी।

गढ़बेताके चारों ओर आज भी बगड़ी राजवंशकी कीर्त्तिके निदर्शन देखनेमें आते हैं। समस्त बगड़ी परगना देवी सर्वमङ्गलाकी देवोत्तर-सम्पत्ति कहलाती है। प्रवाद है, कि उज्जयिनीराज विक्रमादित्यने इस देवीप्रतिमाकी प्रतिष्ठा की थी। स्थानीय कंसेश्वर शिव-मन्दिर और सर्वमङ्गला देवीमन्दिरकी बनावट देखनेसे मालूम होता है, कि वे दोनों मन्दिर एक ही समयके बने हैं।

गढ़बेताका प्राचीन भग्नावशेष दुर्ग देखनेसे इस राजवंशके प्रभाव और समृद्धिका विषय जाना जाता है। आज भी लाल दरवाजा, हनुमान दरवाजा, पेशा-दरवाजा और राउत दरवाजा नामक प्रवेश-द्वार इष्टक-स्तूपमें परिणत हो कर अतीत कीर्त्तिका परिचय देते हैं। रायकोट नामक स्थानमें जिन सब पत्थरों और ईंटोंका स्तूप पड़ा है, वह राजा तेजश्चन्द्रका प्रासाद कहलाता है। यहांके दुर्गमें जो सब कमान थी उन्हें वृटिश सरकार उठा ले गई है। झालदा ग्रामके समीप नयाबसत् ग्राममें राजा गणपति औउचका बनाया हुआ एक छोटा किला है। राजा यादवचन्द्रसिंह द्वारा प्रतिष्ठित झालदा दुर्ग अभी खंडहरमें पड़ा है।

गढ़बेता दुर्गके उत्तरी द्वारके सामने जलटुङ्गी, इन्द्र-पुष्करिणी, पाथुरी-हादुआ, मङ्गला, कवेशदिग्गी, आम-पुष्करिणी और हदुआ नामक सात तालाब हैं। प्रत्येक तालाबके ठीक बीचमें एक एक पत्थरका बना मन्दिर है। दुर्गके समीप रहनेके कारण बहुतेरे इस पुष्करिणी और मन्दिरको चौहानके समय (१५५५-१६१० ई०) का हुआ अनुमान करते हैं।

दांतनके निकटवर्त्ती सातदौला और मुगलमारी ग्राममें बहुत बड़े बड़े महलोंका खंडहर देखनेमें आता है। उन्हें देखनेसे मालूम होता है, कि एक समय वहां महासमृद्धिसम्पन्न राजा राज्य करते थे। कालक्रमसे वे सभी तहस नहस हो गये हैं। मुगल लोग जिस स्थानमें मराठी सेनासे परास्त हुए थे, वही स्थान मुगलमारी कहलाता है। इस युद्धमें दांतनगढ़के राजाने वीरता दिखा कर 'वीरवर' की उपाधि पाई थी। वह ग्राम दांतनसे दो मील उत्तर पड़ता है।

दांतन नगरमें विद्याधर नामक तथा वहांसे २ मील पूरब शशांक नामक दो बड़ी दिग्गी हैं। उत्कलराज मुकुन्ददेवके प्रधान मन्त्री विद्याधरके आदेशसे विद्याधर पुष्करिणी खोदी गई थी। उसकी लम्बाई १६०० और चौड़ाई १२०० फुट है। पाण्डववंशीय राजा शशाङ्क देव जब जगन्नाथ देवके दर्शन करने आये थे उस समय उन्होंने यहां अपने नाम पर एक पुष्करिणी खुदवाई थी। उस पुष्करिणीकी लम्बाई ५ हजार और चौड़ाई २५०० फुट है। प्रवाद है, कि दोनों पुष्करणियोंमें सम्बन्ध रखनेके लिये जमीनके अन्दर ७॥ फुट ऊंचा और ४॥ फुट चौड़ा एक पत्थरका नाला चला गया है। दांतनका श्यामलेश्वर मन्दिर देखने लायक है। कहते हैं, कि विक्रमादित्यके श्वशुर भोजराजने यह मन्दिर बनवाया था। कालापहाड़ने मन्दिरके सामने जो पत्थरकी वृषमूर्त्ति है उसके अगले दोनों पैरोंको तोड़ दिया है।

प्रायः आध सदी पहले राजा यदुचरण सिंहने ग्वालतोरमें पञ्चरत्न मन्दिर बनवाया। इसका शिल्पनैपुण्य देखने योग्य है। राजाने इस मन्दिरमें बालचन्द्र नामक शालग्राममूर्त्तिको स्थापित करना चाहा था, किन्तु स्थापित करनेके पहले ही उसमें एक गायका बछड़ा मर गया था जिससे अपवित्र समझ कर उसे छोड़ दिया गया।

नयाग्राम राजवंशका कीर्त्तिकलाप उनकी राजधानी खेलरगढ़ नामक स्थानके आसपास प्रदेशोंमें दृष्टिगोचर होता है। उस वंशके द्वितीय राजा प्रतापचन्द्रसिंहने १४६० ई०में यहां जिस गढ़की नींव डाली थी उसे

उनके लड़के बलभद्रसिंहने पूरा किया। यहां जो दो अश्वारोही पारसिक वा शक-प्रतिमूर्त्ति पाई गई है वह बहुत कुछ अरबकी प्राचीन विध्वस्त निनिभ नगरीके स्तूपमें प्राप्त मूर्त्तिकी जैसी है।

बलभद्रकी मृत्युके बाद राजा चन्द्रशेखरसिंह राजपद पर अधिष्ठित हुए। उन्होंने १६वीं सदीमें चन्द्ररेखागढ़ और प्रासाद बनवाया। यह दक्षिणमें निविड़ जङ्गलसे परिपूर्ण है। चन्द्ररेखागढ़से १ मील पूरब देउल नामक शिव-मन्दिर है। नयग्राम राजवंशके खर्च वर्चसे मन्दिरको देवसेवा निर्वाह होती है।

कयारचांद नामक विस्तीर्ण प्रस्तरोंकी स्तम्भावली भी उल्लेखनीय हैं। जहरसिंह नामक एक हिन्दू-सरदार ११७० बङ्गाब्दमें वे सब स्तम्भ स्थापन कर गये हैं। प्रवाद है, कि विपक्षसैन्यको डर दिखानेके लिये ही सेना-बलवृद्धिसूचक वे सब स्तम्भ खड़ा किये गये थे।

उड़िसा-साई नामक पत्थरका मन्दिर राजा चौहान-सिंहने ६६६ बङ्गाब्दमें बनावाया था। बगड़ी राजवंशका यह ऐतिहासिकतत्त्व शिलालिपिसे निकाला गया है।

मैनागढ़-राजवंशकी कोर्त्ति मैनागढ़ दुर्ग और राज-प्रासाद कसाई नदीके पश्चिमी किनारे बनाया गया था। पहले चारों ओर खाई खुदवा कर उस स्थानको द्वीपाकारमें परिणत कर दिया था। मट्टीका धुस्स दीवारके तौर पर द्वीपसीमा पर खड़ा है। वह धुस्स अभी बांसके जंगलसे ढक गया है जिससे लोग वहां नहीं जा सकते। द्वीपके मध्य भागमें चारों ओर खाई खुदवा कर वहां राजभवन और दुर्ग बनाया गया था।

मैनागढ़का राज-इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि राजा लाऊसेनने यह दुर्ग बनाया है। वे गौड़ेश्वर-के सामन्त थे। महाराष्ट्रपतिके अभ्युदय पर जब लाउ-सनके वंशधर 'चौथ' न दे सके, तब महाराष्ट्रीयदलने बाहुबलेन्द्र नामक एक व्यक्तिको मैनागढ़ सिंहासन प्रदान किया। मैनागढ़ देखो।

मैनाके दक्षिणमें प्रायः नौ मीलका एक बड़ा गड्ढा है। पहले इस स्थानमें समुद्रकी खाड़ी थी। मैनाके राजाओंने बांध उठवा कर इस स्थानको कृषि और वास करने लायक बना दिया। इस खातके बगलमें तिलदा, जल-चक प्रभृति गावोंके भूमिगर्भ (१६।१७ फीट नीचे)-से जो सब वस्तुएं मिली हैं उनसे अनुमान होता है कि प्राचीन कालमें यह बन्दर वा समुद्रकूलस्थित नगर रहा होगा।

तमलुक जनपदका प्राचीनत्व और प्रत्नतत्त्व यथा-स्थान वर्णित हो चुका है। वर्गभीमाके मन्दिरका गठन बौद्ध शिल्पके जैसा है। इससे अनुमान किया जाता है कि इस स्थानमें बौद्ध-प्रधानताके समय यह मन्दिर उठाया गया था। द्वितीय तमलुक राजवंशके प्रतिष्ठाता राजा ताम्रध्वजने नरनारायणके महिमाकीर्तनके लिये कृष्णार्जुन मन्दिरकी स्थापना की थी। प्रवाद है, कि महाराज युधिष्ठिरका अश्वमेधीय घोड़ा कृष्ण और अर्जुन द्वारा रक्षित हो जब ताम्रलिप्त आया तब धार्मिक राजा ताम्रध्वजने उसे रोका था। युद्धमें जय न पा सकने पर अर्जुन और कृष्ण वैष्णव-श्रेष्ठ ताम्र-ध्वजके अतिथि हुए। भक्तप्रधान ताम्रध्वजने श्रीकृष्ण-के चरणोंकी नित्य पूजाके लिये कृष्णार्जुन-मूर्त्तिकी स्थापना की थी।

नारायणगढ़ राजवंशका राजप्रासाद ही उनकी उल्लेखनीय कीर्त्ति है। उसकी बनावटमें विशेष निपुणता न रहने पर भी उसके तालाव देखनेयोग्य हैं।

इस जिलेमें मेदिनीपुर, घाटाल, चन्द्रकोणा, राम-जीवनपुर, क्षीरपाल और तमलुकनगर ही प्रधान हैं। परन्तु सम्प्रति कराटाइ सब-डीवोजनकी बड़ी उन्नति हुई है।

अत्यन्त प्राचीनकालसे यह व्यापारके लिये प्रसिद्ध है। जङ्गलमहालमें नीलका कारबार होता था। चावल, चीनी, रेशम एवं तांबे और पीतलके बरतनोंकी खूब रफतनी होती है। सुना जाता है, कि यहांके पुराने कारीगर तीन चार सौ रु०की एक एक चटाई तैयार करते थे। उसकी कारीगरी आश्चर्यजनक है। ढाकेके मसलिन्‌की जैसी यहांकी चटाईकी भी ख्याति थी।

पहले वृटिश सरकार यहां नमकका खास कारबार करती थी। उसके छोड़ देने पर जनसाधारणने नमक बनाना शुरू किया। सरकार तब केवल कर उगाहने लगी।

१८७३ ई०सें वह कर हरएक हंडरवेटमें ४।≈१० नियत हुआ था। नाव आदिको छोड़ व्यापार करनेका दूसरा उपाय न था। अब बी० एन डबल्यू रेलवेके यहां आने पर व्यापारमें विशेष सुविधा हुई है।

बाढ़ और अनावृष्टिके कारण यहां समय समय पर दुर्भिक्ष होता रहा है। १८२३,-३१,-३२,-३३, ३४, १८४८, १८५०, १८६४, १८६६, १८८१, १८६१ आदि वर्षोंमें यहां अकाल पड़ा था। साथ साथ लोगोंकी मृत्यु भी बेशुमार हुई थी। यहांका जलवायु २४ परगनेके जैसा है। हैज़ा, शीतला आदिका प्रकोप हमेशा रहता है। १८६१ ई०में 'वर्द्धमानका ज्वर' यहां संक्रामक रूपमें फैला था।

यहां स्कूलों, संस्कृत टोलों आदिकी खासी संख्या है। करीब १५-२० अस्पताल हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २१° ४६´ और २२° ५७´ उ० और देशा० ८६° ३३´ और ८७° ४३´ पू०के बीच अवस्थित है। इसका रकबा ३२७१ वर्गमील है। इसके अन्दर मेदिनीपुर, नारायणगढ़, दांतन, गोपीवल्लभपुर, भाड़ग्रांव, भीमपुर, शालबानि, केशपुर, देवरागढ़, चेता और सरंग थाना हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचारसदर। यह अक्षा० २२° २५´ उ० और देशा० ८७° १६´ पू०के मध्य बसा हुआ है। इसकी आबादी प्रायः ३४ हजार है। यहां एक आर्ट कालेज है। यहांसे मेदिनीपुर हाई लिभेल कैनेल (Midnapore High Level canal) दलबेड़िया तक चला गया है।

मेदुर (सं० त्रि०) चिकना, स्निग्ध।

मेदोज (सं० पु०) अस्थि, हड्डी।

मेदोधरा (सं० स्त्री०) शरीरकी तीसरी कला या झिल्ली जिसमें मेद या चरबी रहती है।

मेदोरोग (सं० पु०) मोटाई या चरबी बढ़नेका रोग। व्यायाम-रहित, दिवानिद्राशील, अधिक घृतादि और कफकारक पदार्थ खानेवालोंके भुक्त अन्नरससे मेदोधातुकी अत्यन्त वृद्धि होती है जिससे शरीरके सारे स्रोत आवृत हो जाते हैं। स्रोतके आवृत होनेसे अस्थि आदि अन्यान्य धातुकी सम्यक् पुष्टि नहीं होने पाती और उसी कारण नितम्ब, पार्श्व, उदर और स्तनादिमें उत्तरोत्तर केवल मेद ही सञ्चित होने लगता है। इससे लोग अत्यन्त स्थूल-काय हो नितान्त अकर्मण्य, कास, क्षुद्रश्वास, तृष्णा और मोहयुक्त, स्निग्धांग, सोनेके समय खर्राटे मारनेवाले, अवसन्न, क्षुधा, स्वेद और दुर्गन्धयुक्त, क्षीणबल और अल्पमैथुन होते हैं। मेदके द्वारा स्रोतोंके बंद हो जाने पर वायु कोष्ठस्थ अग्निको प्रदीप्त कर आहारको अत्यन्त शीघ्र पचा कर उसे सोख लेती है इससे फिर भूख लग जाती है। ऐसी हालतमें यदि भोजनमें देर हो जाय, तो वायु और पित्त प्रकुपित हो दाहादि नाना प्रकार शारीरिक पीड़ा उत्पन्न करते हैं।

"मेदसावृतमार्गत्वात् वायुः कोष्ठे विशेषतः।
चरन् सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि॥
तस्मात् शीघ्रन्तु जरयत्याहारञ्चापि काङ्क्षति।
विकारान् सोऽश्नुते घोरान् कांश्चित् कालव्यतिक्रमात्॥"
"एतावुपद्रवकरौ विशेषात् पित्तमारुतौ।
एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा॥"

शरीरस्थ मेदकी अत्यन्त वृद्धि होने पर सहसा वातादि प्रकोपित हो वातव्याधि, प्रमेहपीड़का, ज्वर, भगन्दर, विद्रधि आदि घोर विकार-समूह उत्पन्न कर जीवनको नष्ट कर देते हैं।

"मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः।
विकारान् दारुणान् कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितं॥"

यह भी देखा जाता है, कि नपुंसक और कृत्रिम नपुंसक बकरे चर्बीके अत्यन्त बढ़ने पर उसको यन्त्रणा न सह सकते और छटपटा कर प्राणत्याग करते हैं।

शास्त्रकार अत्यन्त स्थूल और कृश व्यक्तिको सभी विषयमें अकर्मण्य समझ उनकी घृणा करते हैं। फिर भी इन दोनोंमें वे कृश व्यक्ति ही को अच्छा समझते हैं।

"स्थूलादपि कृशो वरं।

इसकी चिकित्सा—मेदोरोगाक्रान्त व्यक्ति नियमपूर्वक वमनविरेचन द्वारा शरीर-संशोधन कर शालि और काउनके पुराने चावलका भात तथा कुल्थी और मूंगका जूस सेवन करे। परिश्रमी, चिन्ताशील, स्त्रीसेवी, मद्य पीनेवाला, रातको जागनेवाला, जौ और श्यामक चावल खानेवाला इस रोगसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। मेदोवृद्धिको रोकनेके लिये भातके मांड़के साथ हींग और अंडी पत्तेकी राख खानी चाहिये।

गुरुच और त्रिफलाका काढ़ा पीनेसे यह रोग जाता रहता है। उस काढ़ेके साथ लौहचूर्ण किम्वा त्रिफलाके काढ़ेके साथ मधु खानेसे मेदोरोगकी शान्ति होती है। प्रातःकाल मधुके साथ जल अथवा भातका गरम मांड़ पीनेसे शरीरकी स्थूलता दूर हो जाती है। त्रिकटु (सोंठ, पीपल और मिर्च), त्रिफला और त्रिमद (चिरायता, मोथा और विड़ंग) इन नौ द्रव्योंमें नौ भाग गुग्गुल मिला कर गरम जलके साथ प्रतिदिन खानेसे मेद, कफ और आमवातसे उत्पन्न रोग कुछ ही दिनोंमें शान्त हो जाते हैं। मधुके साथ पीपलका चूर्ण खानेसे मेद और कफ रोग दूर होते हैं। धतूरेके पत्तोंका गाढ़ा जलरहित रस स्थूलता दूर करनेके लिये उद्वर्त्तन अर्थात् पैरसे क्रमानुसार ऊपर मस्तक तक मर्दन करावे। अड़ूस पत्रका रस अथवा विल्वपत्रका रस शंखचूर्णके साथ शरीरमें लगानेसे देहकी दुर्गन्ध जाती रहती है। वाला, तेजपात, रक्तचन्दन, शिरीष, खसकी जड़, नाग केशर और लोध इन सबोंका चूर्ण शरीरमें लगाने अथवा प्रलेप देनेसे चर्मदोष और पसीनेकी निवृत्ति होती है। स्वेद-निवृत्तिके लिये वकुलपत्र और हर्रे जलमें पीस कर स्नानसे पहले यथाक्रम उद्वर्त्तन करे। केवल हर्रेका भी इस प्रकार उद्वर्त्तन करनेसे स्वेदकी निवृत्ति होती है।

उक्त रोगमें बराबर मेदःक्षयकी चेष्टा करनी चाहिये। फिर भी अत्यन्त मेदःक्षय न होने पावे इस पर ध्यान रखना आवश्यक है। मेदके क्षय होने पर प्लीहा-की वृद्धि, सन्धियोंकी शिथिलता, शरीरकी रुखाई तथा उसे मेदस्विजीवके मांस खानेकी इच्छा होती है।

चर्वीके विकार किम्वा ह्रास होनेसे प्राणियोंकी देहमें रोगोंकी उत्पत्ति होती है। इसके विकार या ह्राससे जितना अनिष्ट होता है वैद्यकशास्त्रके चार स्नेहोंमेंसे अन्यतम स्नेहके जैसा इसका व्यवहार होनेसे उतना ही उपकार भी होता है। शिशुमार, मेष, कूर्म्म, वराह आदि-की चर्वीका वातरोग आमवात, अपस्मार और उन्माद आदि रोगोंमें वाह्य प्रयोग करनेसे उपकार होता है।

मेदोरोहिणी (सं० स्त्री०) जलरोगविशेष।

मेदोऽर्बुद (सं० पु०) मेदयुक्त गांठ या गिल्टी जिसमें पीड़ा हो। २ ओठका एक रोग।

मेदोवती (सं० स्त्री०) मेदा, चरवी।

मेदोवृद्धि (सं० स्त्री०) मेदसः वृद्धिः। १ चरवीका बढ़ना, मोटाई। २ अण्डवृद्धि।

मेद्य (सं० त्रि०) मेदोभव, चरवीसे उत्पन्न।

मेध (सं० पु०) मेध्यते वध्यते पश्वादिरत्रेति मेध-घञ्। १ यज्ञ। २ हवि। ३ यज्ञमें वलि दिया जानेवाला पशु। ४ यज्ञमें दिये जानेवाले पशुका अवयव। ५ वाजसनेयसंहिताके ३३, ६३ सूक्तके रचयिता ऋषि। ६ प्रियव्रतके एक पुत्रका नाम।

मेधज (सं० पु०) विष्णु।

मेधपति (सं० पु०) मेधस्य यज्ञस्य पतिः। यज्ञपालक।

मेधयु (सं० त्रि०) १ मेदमय, जिसे चरवी हो। २ वलिष्ठ, वलवान्। ३ संग्रामेच्छु, लड़ाई करनेकी जिसकी इच्छा हो।

मेधस् (सं० पु०) मेधते इति मेध-असुन्। १ स्वाय-म्भुव मनुपुत्र।

मेधस (सं० पु०) मुनिविशेष।

मेधसाति (सं० स्त्री०) १ यज्ञका दान या लाभ मेध। प्रियव्रतके एक पुत्रका नाम।

मेधा (सं० स्त्री०) मेधते संगच्छते अस्यामिति मेध(- षिद्भि-दादिभ्यो इङ्। पा० ३।३।१०४) इत्यङ् टाप्, धारणशक्ति युक्ता धीर्मेधा मेधते संगच्छतेऽस्यां सर्वं बहुश्रुतं विषयी-करोति इति वा। धारणावती बुद्धि। जिन्हें मेधा अधिक रहती है, वे प्रायः सभी स्मरण रख सकते हैं। इसको साधारण बोल चालमें मुखस्थ करने या याद करनेकी शक्ति कहते हैं। मेधा बढ़ानेवाले ये सब हैं— सतत अध्ययन, तत्त्वज्ञान कथा, श्रेष्ठ तन्त्रशास्त्रावलोकन, अच्छे ब्राह्मणों और आचार्य आदिकी सेवा।

किसीकी यदि मेधा नष्ट हो गई तो नियमपूर्वक ओषधादिका सेवन करनेसे उसकी मेधा शक्ति फिरसे उद्दीप्त हो सकती है। सुश्रुतमें इस सम्बन्धमें यों लिखा है। उजले सोमराजके फलको धूपमें सुखा कर चूर कर ले। उस चूर्णको गुड़में मथ कर तेलके वरतन-में डाल दे। पीछे उस वरतनको सात रात धानमें रक्खे। पश्चात् उसे निकाल कर प्रतिदिन सूर्योदयके समय उसका पिंड बना कर उपयुक्त परिमाणमें गरम जलके

साथ सेवन करे। औषध पच जाने पर भल्लातकके विधानानुसार दो पहरको शीतल जलसे स्नान कर शालि वा साठी धानका चावल, दूध और मधुके साथ भोजन करे। छः मास तक इस प्रकार नियम रखनेसे मेधाकी अतिशय वृद्धि होती तथा दीर्घायुःलाभ होता है। कुष्ठ, पाण्डु और उदररोगी प्रातःकाल सूर्यकी लालिमाके दूर होने पर इस औषधके अर्द्ध पलकी गोली बना कर काली गौके दूधके साथ खावे। जीर्ण होने पर अपराह्न कालमें बिना नमकके आंवलेके जूसके साथ घृतयुक्त अन्न भोजन करना चाहिये। एक महीने तक यह नियम पालन करनेसे मेधा खूब बढ़ जाती है और शरीर नीरोग हो जाता है। चित्रक मूलके सेवनका भी यही नियम है, तब विशेषता यही है, कि हल्दी और चित्रकमूलके दो पलकी गोलीका सेवन चाहिये और और नियम पहले जैसे हैं।

प्रथमतः—अन्नको छोड़ कर मण्डूकपर्णीका रस जहां तक पच सके उस परिमाणमें ले कर उसे दूधमें अच्छी तरह मिला कर या दूधके साथ पीवे। यह पुराना हो जाय, तो यवान्न दूध या तिलके साथ खावे और दूध पीवे। तीन महीने तक यह नियम पालन करनेसे ब्रह्मतेजविशिष्ट और अत्यन्त मेधावी होता है।

द्वितीयतः—भोजनके पहले ब्राह्मीरस यथाशक्ति पी कर औषध पुराना होने पर नमक रहित यवागू पीना चाहिये। यह नियम सात रात पालन करनेसे ब्रह्मतेजोविशिष्ट और मेधावी होता है। तृतीयतः, सात रात यह नियम रखनेसे इच्छित पुस्तकमें व्युत्पत्ति होती है और नष्टस्मृति फिर प्राप्त हो जाती है। यदि फिर सात रात तक यह नियम पालन किया जाय तो दो बार उच्चारण करनेसे एक सौ तक कही गई बातें याद रह जाती हैं। इस प्रकार २१ रात तक नियमपालन करनेसे दारिद्र्य दूर होता है, वाग्देवी मूर्त्तिमती हो कर उसके शरीरमें प्रवेश करती है, श्रुति आदि शास्त्र समूह उसके आयत्त हो जाते हैं और वह श्रुतिधर १०५ वर्ष तक जीवित रहता है। ब्राह्मीरस २ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, विड़ंग, तण्डुल १ कुड़व, वच २ पल, त्रिवृत् २ पल, हर्रे, आंवला, बहेरे प्रत्येक १२ पल इन सबके चूर्ण और उपयुक्त रस तथा घीको एक साथ पाक कर कलसीमें डाल मुंह बंद कर दे। उसके बाद पूर्वोक्त विधानानुसार यथासाध्य परिमाणमें सेवन करे। इसके पुराना होने पर दूधके साथ अन्न खावे। ऐसा करनेसे दारिद्र्य दूर होता है और वह श्रुतिधर हो जाता है। हिमालयमें उत्पन्न वच और आंवला बराबर हिस्सेमें पिंड़ाकार बना कर दूधके साथ तथा पुराना होने पर दूधके साथ अन्न भोजन करना चाहिये। १२ रात तक इसका सेवन करनेसे स्मृतिशक्तिका विकाश होता है और दो बार अभ्यास करने पर कोई भी विषय याद हो जाता है। दूसरा विधान—वच दो पल ले कर क्वाथ तैयार करे और उसे दूधके साथ पी जावो। (सुश्रुत मेधा और आयुष्कामीय रसायन)

२ दक्ष प्रजापतिकी एक कन्या।

"कीर्त्तिर्लक्ष्मीधृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धाक्रिया मतिः।"

(अग्निपु० गयाभेदनामाध्याय)

३ सोलह मातृकाओंमें एक मातृका। नान्दीमुखश्राद्धमें इनकी पूजा की जाती है।

"गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।" (भवदेवभट्ट)

४ धन, सम्पत्ति।

मेधाकरी (सं० स्त्री०) १ शंखपुष्पी, सफेद अपराजिता। २ ब्राह्मीक्षुप।

मेधाकवि—एक भाषा-कवि। इनका जन्म सं० १८६०में हुआ था। इन्होंने चित्रभूषण नामक ग्रन्थ चित्रकाव्यका बड़ा ही सुन्दर बनाया।

मेधाकार (सं० त्रि०) प्रज्ञाकर्त्ता, मेधाजनक।

मेधाकृत (सं० क्ली०) मेधं करोतीति-कृ-क्विप् तुक्च। १ सितावरशाक। २ (त्रि०) मेधाजनक।

मेधाचक्र (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (राजत० ८।१४०५)

मेधाजनन (सं० त्रि०) १ ज्ञानवर्द्धक, जिसमें मेधाकी वृद्धि हो। (क्ली०) कृष्ण सर्षप, काली सरसों।

मेधाजित् (सं० पु०) मेधां जितवानिति-जि-क्विप्। कात्यायन मुनि।

मेधातिथि (सं० पु०) मेधयाः धारण-बद्युद्धे रतिथिरिव। १ मनुसंहिताके प्रसिद्ध भाष्यकार। ये भट्ट वीरस्वामीके पुत्र थे। २ प्रियव्रतके पुत्र और शाकद्वीपके अधिपति। (भाग० ५।२०।२४) ३ सत्तरहवें द्वापर युगके व्यास।

(देवीभा० ११३१२०) ४ प्रजापति कर्दमके पुत्र । (मार्कण्डेय पु० ५३।१५) ५ दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें सप्तर्षिमेंसे एक (मार्क०पु० ९४।८) । ६ कण्व मुनिके पिता । (महाभारत०) । ७ कण्ववंशमें उत्पन्न एक ऋषि । ये ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके १२-१३ सूक्तोंके द्रष्टा थे । ८ एक मुनि । (स्त्री०) ९ नदीविशेष ।

"चर्म्मण्वती मही चैव मेध्या मेधातिथिस्तथा ।
ताम्रावती वेत्रवती नद्यस्त्रिस्रोऽथ कौशिकी ॥"

(भा० ३।२१।२३)

मेधायुन् (सं० स्त्री०) ब्राह्मीक्षुप ।

मेधारुद्र (सं० पु०) मेधया रुद्र इव । कालिदास ।

मेधावत् (सं० त्रि०) मेधा अस्ति अस्य इति मेधा मतुप् मस्य व (पा ५।२।१२१) मेधाविशिष्ट, बुद्धिमान् ।

मेधावती (सं० स्त्री०) १ महाज्योतिष्मती लता । (त्रि० २ मेधाविशिष्टा, वह स्त्री जिसकी धारणशक्ति तीव्र हो ।

मेधावन् (सं० त्रि०) धारणाशक्तिवाला, जिसकी स्मरणशक्ति तीव्र हो ।

मेधावर (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित नायकभेद ।

मेधाविक (सं० क्ली) मेधावी ।

मेधाविता (सं० स्त्री०) मेधाविनः भावः तल्-टाप् । मेधावित्व, मेधावीका भाव या धर्म, चतुर्बुद्धिता ।

मेधाविन् (सं० पु०) मेधास्त्यस्येति मेधा (अस्मायामेधास्रजो विनिः । पा ५।२।१२१) इति विनि । १ शुक पक्षी, तोता । २ मदिरा, शराब । ३ पण्डित, विद्वान् । ४ व्याड़ि । ५ किसी ब्राह्मणका पुत्र (भारत १२।१७५) ६ सुनयका पुत्र और नृपञ्जयका पिता । ७ भव्य और वर्पके एक पुत्रका नाम ।

(त्रि०) ८ मेधायुक्त, जिसकी धारणा-शक्ति तीव्र हो । वैदिक पर्याय—विप्र, विग्र, गृत्स, धीर, वेन, कण्व, ऋभु, नवेदस, कवि, मनीषिन्, मान्धातृ, विधातृ, मनश्चित्, विपन्यव, आकेनिप, उशिज, कीस्तास, अद्धातय, मतय, मतुथस् और वधित । (वेदनि० ३।१५)

मेधाविनी (सं० स्त्री०) मेधाविन्-ङीप् । १ ब्रह्माकी पत्नी । २ मेधाविशिष्टा ।

मेधाविरुद्र—एक आलंकारिक ।

मेधावा (सं० पु०) त्रि०) मेधाविन् देखो ।

मेधासूक्त (सं० क्ली०) वैदिक सूक्तभेद ।

मेधि (सं० पु०) मेध्यते खले स्थाप्यते इति मेध (सर्वधातुभ्य इन । उण् ४।११८) इति इन् । १ उस स्थान पर गड़ा हुआ खंभा जहां खेतसे ला कर फसल फैलाई जाती है । दानेवाले बैल इसी खंभेमें बंधे हुए चारों ओर घूम कर पैरोंसे डंठलोंके दाने झाड़ते हैं । ज्योतिषमें लिखा है, शुक्र और बृहस्पतिवारमें, रेवती, स्वाती, हस्ता, मूला और मृगशिरा नक्षत्रमें तथा स्थिर लग्नमें इसे स्थापन करना होता है । (ज्योतिस्तत्त्व) २ स्तूप आदिका अंशविशेष ।

मेधिर (सं० त्रि०) मेधा अस्यास्तीति मेधा (मेधारथाभ्यामिरन्निरचौ वक्तव्यौ । पा ५।२।१०९) इति काशिकोक्त्या इरन् । १ मेधावी, तत्पर बुद्धिवाला ।

"त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च" (ऋक् १।२५।२०)
'हे मेधिर मेधाविन् वरुण !' (सायण)

२ यज्ञवान् । ३ हविष्मान् ।

मेधिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन मेधावी मेधाविन् (अतिशायने तमबिष्ठनौ । पा ५।३।५५) इति इष्ठन् (विन्मतोर्लुक । पा ५।३।६५) इति विनो लुक् । अतिशय मेधायुक्त, धारणाशक्तिवाला ।

मेध्य (सं० त्रि०) मेध्यते इति मेध् (ऋहलोर्ण्यत् । पा ४।१।१२४) इति ण्यत् यद्वा—मेधामर्हतीति मेधा दण्डादित्वात् यत् । १ पवित्र, शुचि । नित्यमेध्य वस्तु यथा—कारुहस्तगत और पण्यप्रसारित वस्तु तथा ब्रह्मचारीका भैक्ष्य, ये सब नित्यमेध्य हैं ।

"नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यमेध्यमिति स्थितिः ॥"

(मनु ५।१२९)

२ मेधाजनक, बुद्धि बढ़ानेवाला । (पु०) मेधायै हितः मेधा (उगवादिभ्यो यत् । पा ५।१।२) इति यत् । ३ खदिर, खैर । ४ यव, जौ । ५ छाग, बकरा ।

मेध्या (सं० स्त्री०) मेध्य-टाप् । १ रक्त वचा । २ रोचन, रक्त कमल । ३ केतकी । ४ ज्योतिष्मती । ५ शंखपुष्पी । ६ ब्राह्मी । ७ श्वेत वचा । ८ शमी । ९ मण्डुकी । १० गोरोचना । ११ शर्करा । १२ इक्षु, ईख । १३ अपराजिता । (राजनि०) १४ महाभारतके अनुसार एक नदीका नाम ।

मेनका (सं० स्त्री०) मन्यते इति मन् 'मनेराशिषि च' इति वुन् ततः। (नशिमन्योरलिट्येत्वं वक्तव्य' । पा ६।४।१२०) इत्यत्र काशिकोक्त्या अकारस्य एत्वं। १ अप्सरोभेद, स्वर्गकी वेश्या। इन्द्रकी आज्ञासे मेनकाने विश्वामित्र का तप भंग किया था। इसीके गर्भसे शकुन्तलाका जन्म हुआ। दुष्यन्त और शकुन्तला देखो।

मेनैव मेना स्वार्थे कन्। २ पार्वतीकी माता, हिमालयकी स्त्री। कालिकापुराणमें लिखा है—जिन दिनों दक्षकन्या सती महादेवके साथ क्रीड़ा करती थी उस समय मेनका सतीकी नितान्त हितैषिणी सखी थी। जब सतीने दक्षके घर प्राण त्याग किया तब मेनकाने उनके लिये तथा इस आशासे कि वे हमारी कन्या हो कर जन्म लें, कठिन तप किया। भगवती काली इस तपस्यासे सन्तुष्ट हो मेनकाके सामने उपस्थित हुई और वर मांगने कहा। मेनकाने उनसे एक सौ बलवान् और दीर्घायु पुत्र तथा एक कन्याकी याचना की। तब भगवतीने मेनकासे कहा, 'तुम्हारे एक सौ बलवान् पुत्र होंगे और जगत्के कल्याणके लिये मैं ही तुम्हारी कन्या होऊंगी।'

वर पानेके बाद मेनकासे मैनाक उत्पन्न हुआ। मैनाक ने इन्द्रसे शत्रुता ठानी और फलतः अपने दोनों पक्षोंके साथ आज तक समुद्रमें आश्रय लिये हुए हैं। पश्चात् मेनकाके निन्यानवे पुत्र हुए, और बादमें सतीका जन्म हुआ। (कालिकापु० ४२ अ०)

वामनपुराणमें इनका जन्मवृत्तान्त यों लिखा है। आषाढ़ और अगहनकी अमावस्यामें इन्द्रने भक्तिके साथ पितृगणके लिये पिण्डदान किया था। इससे पितृगण बड़े सन्तुष्ट हुए। इन पितृ लोगोंके मानसी कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम देवोंने मेनका रक्खा। पश्चात् देवोंने इस मानसी कन्याको पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयसे ब्याह दिया।

अनन्तर हिमालय और मेनकाके तीन कन्यायें हुईं। रक्तवर्णा, रक्तनेत्रा तथा रक्ताम्बर-धारिणी ज्येष्ठा कन्याका नाम रागिणी, मध्यमाका कुटिला तथा सबसे छोटीका नाम काली था। इसी कालीने कठोर तप कर महादेवको पतिरूपसे प्राप्त किया था।

(वामनपु० ७४-७५ अ०)

मेनकाघट्ट—आसामप्रदेशके जटोदरके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ। (ब्रह्म० ख० १६।२१)

मेनकात्मजा (सं० स्त्री०) मेनकाया आत्मजा। १ दुर्गा। २ शकुन्तला।

मेनकाप्राणेश (सं० पु०) मेनकायाः प्राणेशः पतिः। हिमालय।

मेनकाहित (सं० क्ली०) रासक नामक नाटकका एक भेद।

मेनगुन—ब्रह्मराज्यके अन्तर्गत प्राचीन अमरपुर और वर्त्तमान मन्दाले राजधानीके मध्यवर्त्ती एक नगर। यहां ब्रह्मराज बोदो पिया वा मेन्तवगाई द्वारा १८१६ और १८१६ ई०में बनाये हुए दो सुन्दर मठ (पागोडा) हैं। उनका शिल्पनैपुण्य देखने योग्य है। उन दोनों पागोडोंमेंसे एक गोल और दूसरा चौकोन है। जिस आकृतिसे इसका आरम्भ हुआ था, कि यदि सम्पूर्ण हो जाता तो इसको ऊंचाई ५०० फुट होती, परन्तु १६५ फुट ऊंचा ले जा कर ही इसका काम शेष हो गया है। १८३६ ई०के भूमिकम्पसे यह नष्ट हो गया है। प्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सु महामति फार्गुसनने लिखा है, कि १६वीं सदीकी यह कीर्त्ति मिस्रके पिरामीड्की जैसी है।

मेनन्द्रस—यवनराज मिलिन्द (Menondros)

मिलिन्द देखो।

मेना (सं० स्त्री०) मान्यते पूज्यते इति मान पूजायां (बहुलमन्यत्रापि। उण् २।४६) इति इनच् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ मेनका, पितरोंकी मानसी कन्या।

"अग्निष्वात्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः।
तेभ्यः स्वाहा स्वधा जज्ञे मेना वैतरणी तथा॥"

(कूर्मपु० १२ अ०)

२ स्त्री। ३ वृषणाश्वकी कन्या। ४ वाक्। (निघं० ४ ११) ५ हिमवान्की स्त्री, मेनका। ६ नदीविशेष।

मेनाङ्कबु—भारत महासागरस्थ सुमात्राद्वीपके अन्तर्गत एक प्राचीन जनपद। यह मलयजातिकी वासभूमि है। यह भारतीय द्वीपखण्ड बहुत पहलेसे ही सभ्यताके आलोकसे आलोकित हुआ था। यहां तक कि, अन्यान्य द्वीपवासी मलयवंशीय सरदारगण अपनेको मेनाङ्कबुराजवंशसे उत्पन्न समझ कर गौरव करते थे। विषुवरेखाके दक्षिणवर्त्ती इस जनपदका भूपरिमाण ३ हजार

वर्गमील है तथा यह ६० मील लम्बी और ५० मील चौड़ी एक विस्तीर्ण पहाड़ी उपत्यका भूमि पर अवस्थित है। इसके दक्षिणमें १०७५० फुट ऊंचा तलंग पर्वत तथा ६८०० फुट ऊंचा सिङ्गालङ् और मारपी पर्वत हैं। तलङ्ग और मारपीसे कभी कभी आग निकलती है। उत्तरमें ५००० फुट ऊंची सगो पर्वतमाला देखी जाती है।

यह उपत्यकाभूमि वहुत कुछ उर्वरा है। जलका अभाव न रहनेके कारण कभी भी फसल नहीं मरती। मध्यभागमें १५ मील लंबा और ५ मील चौड़ा एक मछलीसे भरा हुआ तालाब है। इसका तथा समग्र उपत्यकाभूमिका प्राकृतिक दृश्य देखते वनता है। भू-तत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम हुआ है, कि यह स्थान भालकेनिक, प्लुटोनिक और सेडिमेण्टरी-स्तर-से भरा पड़ा है।

इस वहु जनपूर्ण प्राचीन देशका प्रकृत इतिहास आज तक भी मालूम नहीं। फिर यह भी न मालूम, कि किस समय यहांके अधिवासियोंने इस्लामधर्मको अप नाया था।

De Barros-का भ्रमण वृत्तान्त पढ़नेसे जाना जाता है, कि पुर्त्तगीज लोग सुमात्रा उपकूलमें आ कर इस देश-के जिन सामन्तराज्योंका उल्लेख कर गये हैं उनमें इस प्राचीन समृद्धि राज्यका नाम नहीं मिलता। दूसरे दूसरे राज्य प्रायः मलयसरदारों द्वारा परिचालित होते थे। उस समय मेनाङ्कबु सोनेकी खान और अस्त्रव्यवसाय के लिये प्रसिद्ध था।

ऐतिहासिकोंका अनुमान है, कि यहांके मलय लोग जावा-वासियोंके साथ मिल कर हिन्दूकी धर्मनीति और सामाजिक सभ्यताको सीख कर वहुत कुछ उन्नत हो गये हैं। आज भी उस संस्रवका परिचय उनकी भाषा-में जो संस्कृत शब्द मिला है, उसीसे साफ साफ मालूम होता है।

राजोपाख्यानमें लिखा है, कि पर्पात-सि वतङ्ग और कयितुमाङ्गुङ्ग नामक दो भाइयोंने मेनाङ्कबु राज्यकी स्थापना की। प्रयाङ्गन नगरमें इनकी राजधानी थी। सन्ध सुपूर्व नामक मलयका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि पालेमवङ्गसे जावा वासियोंने यहां आ कर उपनिवेश वसाया। पीछे उन्हींके द्वारा यहांकी समृद्धि और श्रीवृद्धि हुई।

सङ्गनील उतम, शूरवय, इन्द्रगिरि, इन्द्र, भूमि, आगुङ्ग और गुणराज आदि संस्कृत-मिश्रित तथा मारपी, रिन्धित्, जम्बि, पालिमवङ्गन, वणु-आसिन, रैजङ्ग, सारवी आदि-देश वा स्थानवाचक यव (जावा) शब्द देख कर जावावासीका संस्रव अपरिहार्य प्रतीत होता है। फिर मेनाङ्कबुके स्तम्भगात्रखोदित शिलालिपिकी भाषामें भी यव-संस्रव देखा जाता है।

पुर्त्तगीजोंके अभ्युदयके पहले यहां जो यव-प्रभाव फैला था, वह डिवरोके ग्रन्थप्रमाणसे स्पष्ट मालूम होता है। उन्होंने लिखा है, यहांके अधिवासी वहुत वलिष्ठ हैं, उनके शरीरका वर्ण तपाये सोनेके जैसा है, शरीरकी आकृति देखनेसे ही ये लोग शान्त प्रकृतिके मालूम होते हैं। जावा-द्वीपके समीप रहते हुए भी दोनों देशवासियों-की आकृतिमें जो अन्तर दिखाई देता है, उससे सच-मुच आश्चर्य होता है। इस प्रकार जातिगत विकृति रहने पर भी यहां यावाधियत्यका प्रमाण सुमात्रावासीके जौजो (यवी) शब्दसे ही सूचित होता है। (Decade 3, *Bk* 5, Chapt. 1) मलय भाषामें इस यवी शब्दसे देशीय और वैदेशिकके संस्रवोत्पन्न अर्थ समझा जाता है।

१८०७ ई०में यहां एक अभिनव और संस्कृत इस्लाम धर्ममतकी प्रतिष्ठा हुई। मक्कासे लौटे हुए एक मलयवासी साधुने उस धर्ममतका पाद्रि वा रिञ्चि नाम रखा। वह पुर्त्तगीज धर्मयाजक 'पादरी' के अनुकरण पर अथवा कोरिञ्चि (Korinchi) जिलेमें पहले पहल प्रवर्त्तित होनेके कारण उस शब्दके अपभ्रंश पर कहा जाता है। जो इस नवीन मतमें दीक्षित हुए उनका मलयवासी द्वारा ओराङ्पूतिः (श्वेत मनुष्य) नाम रखा गया। सफेद कपड़ेको छोड़ कर और किसी प्रकारका रंगा हुआ कपड़ा पहनना इस धर्मके विरुद्ध है। रिञ्चि वा धर्माध्यक्षोंने १८२२ ई०के मध्य मेनाङ्कबु प्रदेशमें जो धर्मशक्ति और राजशक्ति फैलाई थी उसकी आलोचना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। इसमें माद क वस्तुका

सेवन तथा तम्बाकू और पान खाना निषिद्ध बताया है। यदि कोई मादक वस्तु चुरा कर खाय और वह मालूम हो जाय, तो उसे प्राणदण्ड भी मिल सकता है। हर एक आदमीको सिर मुंड़वाना और टोपी पहना उचित है। कोई भी पराई स्त्रीके साथ बातचीत नहीं कर सकता। स्त्रियाँ पहनावेके ऊपर बिना बुरका डाले बाहर नहीं निकल सकतीं। ऐसी कठोर धर्मनीतिका शिथिल प्रकृतिवाले मलयवासी पालन न कर सके; इसी कारण यह इसलाम-धर्म बहुत दूर तक फैलने न पाया। पादरियोंको जनता अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे जिससे धर्मप्राणताका ह्रास हो गया।

इन धर्मप्रवर्त्तकोंने आगे चल कर कई युद्धोंमें विजय-लाभ किया और सुमात्राके मध्यदेशमें एक विस्तीर्ण राज्य बसाया। ओलन्दाजोंके साथ विवाद हो जानेसे दोनों पक्षमें घमसान लड़ाई छिड़ी। १८४० ई०में तीन वर्ष तक लगातार लड़ाईके बाद मुसलमान मलय लोगोंने ओलन्दाजोंके निकट अपनी हार स्वीकार की।

उपनिवेश शब्द देखो।

मेनाजा (सं० स्त्री०) मेनायाः जायते इति जन-ड स्त्रियां टाप्। पार्वती।

मेनाद (सं० पु०) मे इति नादोऽस्य। १ बिड़ाल, बिल्ली। २ छाग, बकरा। ३ मयूर, मोर।

मेनाधव (सं० पु०) मेनायाः धवः। हिमालय।

मेनि (सं० पु०) १ आयुध विशेष।

(शतपथब्रा० ११।२।७।२४)

२ वज्र। ३ वाग्वज्र। ४ शक्ति।

मेनिला (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

मेनुल (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

मेन्धिका (सं० स्त्री०) मां शोभामिन्धयति प्रकाशयतीति इन्ध-णिच् ण्वुल् टापि अत इत्वं। क्षुपविशेष, मेंहदी।

मेन्धी (सं० स्त्री०) मां शोभामिन्धयतीति इन्ध-णिच्-अच् गौरादित्वात् ङीष्। क्षुपविशेष, मेंहदी।

मेम (सं० पु०) बौद्धके मतसे एक बड़ी संख्याका नाम।

मेम (अं० स्त्री०) १ यूरोप या अमेरिका आदिकी स्त्री। २ ताशका एक पत्ता। इसे बीबी या रानी भी कहते हैं। यह पत्ता बादशाहसे छोटा और गुलामसे बड़ा माना जाता है।

मेमदपुर—गुजरात प्रदेशके महीकान्थ विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्तराज्य। यहांके सरदार बड़ोदाके गायकवाड़को प्रतिवर्ष १८० रुपया कर देते हैं।

मेमना (हिं० पु०) १ भेड़का बच्चा। २ घोड़ेकी एक जाति।

मेमार (अ० पु०) भवन निर्माण करनेवाला शिल्पी, इमारत बनानेवाला।

मेमारी—बङ्गालके वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। रेशमी धोती और साड़ीके व्यवसायके लिये यह स्थान बहुत कुछ मशहूर है। यहां इष्ट इण्डिया रेल कम्पनीका एक ष्टेशन है।

मेमिष (सं० त्रि०) पलकशून्य दृष्टि, जिसकी आंखों पर पलक न हो।

मेमोरियल (अं० पु०) १ वह प्राचीन पत्र जो किसी बड़े अधिकारीके पास विचारार्थ भेजा जाय। २ स्मारक चिह्न, यादगार।

मेय (सं० लि०) १ परिमाणार्ह, जिसकी नाप जोख हो सके। २ जो नापा जोखा जानेवाला हो।

मेरक (सं० पु०) १ विष्णुशत्रुभेद, एक असुर जिसे विष्णुने मारा था।

मेरठी (हिं० पु०) गन्नेकी एक जाति जो मेरठकी ओर होती है।

मेरवना (हिं० क्रि०) १ दो या कई वस्तुओंको एकमें करना, मिलाना। २ संयोग कराना, मिलाप कराना।

मेरा (हिं० सर्व०) 'मैं' के संबंधकारकका रूप, मुझसे संबंध रखनेवाला।

मेराउ (हिं० पु०) मेराव देखो।

मेराव (हिं० पु०) मिलाप, समागम।

मेरो (हिं० सर्व०) मेराका स्त्री-रूप, (स्त्री०) २ अहङ्कार।

मेरु (सं० पु०) मि-(मिपीभ्यां रुः। उण् ४।१०१) इति रु। १ एक पुराणोक्त पर्वत जो सोनेका कहा गया है। पर्याय—सुमेरु, हेमाद्रि, रत्नसानु, सुरालय।

"देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते।
प्रागायतः स सौवर्णो उदयो नाम पर्वतः।"

(मत्स्यपु० १२१।८)

यह पर्वत देवताओंका आवासस्थल है। सुमेरु देखो।

२ जपमालाके बीचका बड़ा दाना जो सब दानोंके ऊपर होता है। इसीसे जपका आरम्भ और इसी पर उसकी समाप्ति होती है। तन्त्रमें लिखा है, कि जप-करनेके समय मेरुका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये, करनेसे वह जप निष्फल होता है।

जब करमालासे जप किया जाता है, तब मध्यमाके दोनों पर्व मेरु माने जाते हैं। इसी मेरुको शक्ति भिन्न और सभी विषयोंमें जानना होगा। शक्तिविषयमें स्वतन्त्र नियम है। साधारण शक्तिविषयमें तर्जनीके दोनों ही पर्व मेरु हैं; किन्तु श्रीविद्या विषयमें कुछ प्रभेद है, वह यह है, कि उसमें अनामिका और मध्यमाके दोनों ही पर्व मेरु माने जात हैं। ३ एक विशेष ढांचेका देवमन्दिर। यह षट्कोण होता है और इसमें १२ भूमिकाएं या खण्ड होते हैं। भीतरमें अनेक प्रकारके मोखे और चारों दिशाओंमें द्वार देते हैं। इसका विस्तार ३२ हाथ और ऊंचाई ६४ हाथ होनी चाहिये। ४ वीणाका एक अंग ५ पिङ्गल या छन्दशास्त्रकी एक गणना जिससे यह पता लगता है, कि कितने कितने लघु गुरुके कितने छंद हो सकते हैं।

मेरुआ (हिं० पु०) खेत बराबर करनेके पाटेका छोर पर-का भाग जिसमें रस्सियाँ बँधी होती हैं।

मेरुक (सं० पु०) मिनोति क्षिपति गन्धानिति मि-रु, संज्ञायां कन्। १ यक्षधूप, धूना। २ ईशानकोणमें अवस्थित एक देश। (वृहत्स० १४।२९)

मेरुकल्प (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

मेरुकूट (सं० पु०) मेरुशृङ्ग।

मेरुग्रन्थि (सं० पु०) वृक्क, गुरदा।

मेरुटू—बौद्धमतानुसार एक बहुत बड़ी संख्या।

मेरुतुङ्ग (सं० पु०) १ जैनाचार्य। इन्होंने कङ्कालाध्याय-वार्त्तिक नामक वैद्यकग्रन्थ और १३६० ई०में प्रबन्ध-चिन्तामणिकी रचना की। २ मेघदूतकाव्य, महापुरुष-चरित और सूरिमन्त्रकल्पसारोद्धार नामक तीनों ग्रन्थके प्रणेता। जिनप्रभसूरिने शेषोक्त ग्रन्थकी टीका लिखी है। ३ लघुशतपदीके रचयिता।

मेरुदण्ड (सं० पु०) १ पीठके बीचकी हड्डी, रीढ़। २ पृथ्वीके दोनों ध्रुवोंके बीच गई हुई सीधी कल्पित रेखा (*Axis*)

मेरुदु—बौद्ध मतानुसार एक बहुत बड़ी संख्याका नाम।

मेरुदुहितृ (सं० स्त्री०) मेरुकन्या।

मेरुदृश्वन् (सं० त्रि०) मेरुदर्शनकारी।

मेरुदेवी (सं० स्त्री०) मेरुकी कन्या और नाभिकी पत्नी जो विष्णुके अवतार ऋषभदेवकी माता थीं।

मेरुधामा (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ वह जो मेरु पवत पर रहता हो।

मेरुध्वज (सं० पु०) राजभेद।

मेरुनन्द (सं० पु०) स्वारोचिष मनुके एक पुत्रका नाम।

मेरुपीठ—प्राचीन तीर्थभेद।

मेरुपुत्री (सं० स्त्री०) मेरुकी कन्या।

मेरुपृष्ठ (सं० क्ली०) १ मेरुशिखर। २ आकाश। ३ स्वर्ग।

मेरुप्रभ (सं० त्रि०) मेरुवत्प्रभासम्पन्न, जिसकी छटा मेरु पर्वत-सी हो।

मेरुप्रभवन (सं० क्ली०) वनभेद। (हरिवंश)

मेरुप्रस्तार (सं० पु०) मेरुवत् कल्पित छन्दोयोजन।

मेरुबलप्रमर्द्दिन (सं० पु०) यक्षराजभेद।

मेरुभूत (सं० पु०) जाति विशेष।

मेरुभूतसिन्धु (सं० पु०) पह्लव देशका दूसरा नाम।

मेरुमन्दर (सं० पु०) पर्वतभेद। (भागवत ५।१६।१२)

मेरुमती—सह्याद्रिपाद-प्रवाहित एक नदी। इसके किनारे बहुतसे तीर्थ हैं। (देशावली)

मेरुमूल (सं० क्ली०) मेरुसानु, पहाड़का निचला भाग।

मेरुमिश्र—विवादचन्द्र नामक ग्रन्थके प्रणेता। किसी किसीने इनका नाम मिसरू मिश्र रखा है।

मेरुयन्त्र (सं० क्ली०) १ बीजगणितमें एक प्रकारका चक्र। २ चरखा।

मेरुवर्ष (सं० क्ली०) वर्षभेद। (मार्कपु० ६०।७)

मेरुवर्द्धनस्वामी (सं० पु०) राजतरङ्गिणी वर्णित एक व्यक्ति।

मेरुव्रज (सं० क्ली०) नगरभेद।

मेरुशास्त्री—अर्कसंग्रहोपन्यासके प्रणेता, ब्रह्मानन्दके गुरु। १८५९ ई०में ये विद्यमान थे।

मेरुशिखर (सं० पु०) १ मेरुकी चोटी। २ हठयोगमें

माने हुए मस्तकके छः चक्रोंमेंसे सबसे ऊपरका चक्र। इसका स्थान ब्रह्मरन्ध्र, रंग अवर्णनीय और देवता चिन्मय शक्ति है। इसके दलोंकी संख्या १०० और दलोंका अक्षर ओंकार है।

मेरुशिखरकुमारभूत (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

मेरुश्रीगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

मेरुसावर्ण (सं० पु०) ग्यारहवें मनुका नाम।

"ततस्तु मेरुसावर्णो ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः।
ऋतुश्च ऋतुधामा च विश्वक्सेनो मनुस्तथा॥"

(मनुपु० अ०)

मेरुसुन्दर—भक्तामरकालावरोध नामक जैन-ग्रन्थके रचयिता।

मेरुसुसम्भव (सं० पु०) कुष्माण्डवंशीय राजभेद।

मेरे (हिं० सर्व०) १ 'मेरा' का बहुवचन। २ 'मेरा' का वह रूप जो उसे संबंधवान् शब्दके आगे विभक्ति लगानेके कारण प्राप्त होता है।

मेल (सं० पु०) मिल्-घञ्। १ मिलानेकी क्रिया या भाव, संयोग। २ पारस्परिक घनिष्ट व्यवहार, मित्रता, दोस्ती। ३ एक साथ प्रीतिपूर्वक रहनेका भाव, अनबनका न रहना। ४ अनुकूलता, अनुरूपता। ५ मिश्रण, मिलावट। ६ ढंग, प्रकार। ७ समता, जोड़।

मेलक (सं० पु०) मिल-भावे घञ् स्वार्थे कन्। १ सहवास, संग। २ मेला। ३ समूह, जमावड़ा। ४ समागम, मिलन। ५ वर और कन्याकी राशि, नक्षत्र आदिका विवाहके लिये किया जानेवाला मिलान।

विवाहके पहले वर और कन्याकी राशिका मिलान करना जरूरी है। यदि दोनोंकी राशिमें अच्छी तरह मेल खाय जाय, तो दम्पतिके सुख ऐश्वर्यादिकी वृद्धि और यदि मेल न खाय, तो कलह, दुःख आदि विविध प्रकारके अशुभ होते हैं।

ज्योतिषमें लिखा है, कि पहले आपसकी राशि स्थिर कर गणका निरूपण करे। क्योंकि, अपनी अपनी जातिमें अर्थात् अपने अपने गणमें जो विवाह होता है वही शुभदायक है। देवगण और नरगणमें विवाह मध्यम, देवगण और राक्षसगणमें अधम, नरगण और राक्षसगणमें विवाह होनेसे अशुभ होता है। ऐसे मेलकका नाम गणमेलक है। अलावा इसके मेलकमें राजयोटक, द्विद्वादश, नवपञ्चम, अरिद्विद्वादश, मित्रद्विद्वादश, मित्रषड़ष्टक, अरिषड़ष्टक आदि विचार कर मेलक स्थिर करना होता है।

द्विद्वादश और नवपञ्चम—वरकी राशिसे कन्याकी राशि, द्वितीय होनेसे कन्या दुःखभागिनी, द्वादश होनेसे धनविशिष्टा और पतिप्रिया, पञ्चम होनेसे पुत्रनाशिनी और नवम होनेसे पतिप्रिया और पुत्रवती होती है।

अरिद्विद्वादश—धनु और मकर, कुम्भ और मीन, मेष और वृष, मिथुन और कर्कट, सिंह और कन्या, तुला और वृश्चिक, वर और कन्याकी राशि होनेसे अरिद्विद्वादश होता है। इसम विवाह होनेसे मृत्यु और धनकी हानि होती है।

मित्रद्विद्वादश—धनु और वृश्चिक, कुम्भ और मकर, मेष और मीन, सिंह और कर्कट, मिथुन और वृष, तुला और कन्या, वर और कन्याकी राशि होने पर भी मित्रद्विद्वादश होता है। इसमें विवाह होनेसे शुभ है।

मित्रषड़ष्टक—मकर और मिथुन, कन्या और कुम्भ, सिंह और मीन, वृष और तुला वृश्चिक और मेष, कर्कट और धनु, कन्या और वरकी राशि होनेसे मित्रषड़ष्टक होता है। इसमें विवाह मध्यम माना जाता है।

अरिषड़ष्टक—मकर और सिंह, कन्या और मेष, मीन और तुला, कर्कट और कुम्भ, वृष और धनु, वृश्चिक और मिथुन, कन्या और वरकी राशि होनेसे अरिषड़ष्टक होता है। यदि कन्याके आठवेंमें वर और वरके छठेमें कन्याकी राशि पड़े तो उसे अरिषड़ष्टक कहते हैं। यह अरिषड़ष्टक अत्यन्त निन्दित है। इसमें विवाह नहीं करना चाहिये।

राजयोटक—वर और कन्याकी एक राशि वा समसप्तम, चतुर्थदशम अथवा तृतीय एकादश होनेसे राजयोटक होता है। यह राजयोटक मेलक सबसे श्रेष्ठ है। (ज्योतिस्तत्त्व)

इस प्रकार मेलक देख कर हिन्दूमात्रको विवाह

देना उचित है। इससे शुभ और अशुभ जाना जाता है, इसीसे इसका नाम मेलक हुआ है।

मेलकलवण (सं० क्ली०) मिलतीति मिल-ण्वुल्, मेलकं लवणम्। औषधलवण।

मेलगिरि—मान्द्राज प्रदेशके सालेम जिलान्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह अक्षा० १२° १०' से १२° ३' उ० तथा देशा० ७७° ३८' से ७८° २' पू०के मध्य विस्तृत है। यह अधित्यकाभूमि साधारणतः ३५०० फुट ऊंची है। इसका सबसे ऊंचा शिखर पोनासिहेटा ४६६६ फुट ऊंचा है। यहां मलयाली नामक दुर्द्धर्ष पहाड़ी जाति रहती है। पहाड़ी जंगल-भागमें वांस और चन्दनके पेड़ देखे जाते हैं। पीनेके जलका अभाव होनेके कारण यह स्थान बड़ा ही अस्वास्थ्यप्रद हो गया है।

मेलघाट—मध्यभारतके बरारराज्यके इलिचपुर जिलान्तर्गत एक पहाड़ी विभाग और तालुक। यह अक्षा० २१° १०' से ले कर २१° ४७' उ० तथा देशा० ७६° ३४' से ले कर ७७° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें मध्यप्रदेश और ताप्ती नदी, पूर्वमें ताप्ती और निमारी, दक्षिणमें इलिचपुर तालुक तथा पश्चिममें मध्यप्रदेश है। भूपरिमाण १६३१ वर्गमील है।

यह पर्वतश्रेणी सतपुराको एक शाखा है और पूर्व-पश्चिममें विस्तृत है। वैराड़के पास यह समुद्रतलसे ३६८७ फीट ऊंची है और ताप्ती उपत्यकासे आ कर मिली है।

पहाड़के पूर्वमें मल्लाना, पश्चिममें दुलघाट और चिन्धारा नामके बहुतसे गिरिपथ हैं। पार्वतीय वनभाग गवर्नमेण्टकी देखभालमें है। इन्हीं पथोंसे वनजात नाना प्रकारकी वस्तु विकनेके लिये समतल क्षेत्रमें भेजी जाती है।

इस पर्वतसे बहुत-सी छोटी छोटी नदियां निकली हैं जिनमेंसे ताप्ती नदीकी पूर्णा और क्षिपना शाखा ही उल्लेखनीय हैं। गर्मीमें अधिकांश नदियां सूख जाती हैं।

मेलघाट पर्वत पर एक भी नगर नहीं है। गाविलगढ़ और नर्णाला नामक दो प्राचीन दुर्ग महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीके अभ्युदयकालसे ही प्रसिद्ध है। चिकालदा नामक एक बड़े ग्रामकी आवहवा अच्छी है। वह समुद्रपृष्ठसे ३७७७ फीट ऊंचा है। अलावा इसके धारणो, ढेवा और वैरागढ़ ग्राममें प्रति साल एक मेला लगता है।

यहांके अधिवासी असभ्य पहाड़ी हैं। उनमें कर्कु जातिकी ही संख्या अधिक है। वे लोग कोलारिया शाखासे निकले हैं और हिमालयके उत्तर पूर्व पथ हो कर भारतमें घुस गये हैं। ये महादेव और दूसरे दूसरे हिन्दू-देव-देवीकी पूजा करते हैं। अलावा इसके मृत पिता माता आदि पूर्वपुरुषकी भी पूजा करते हैं तथा उनके लिये फुलजागनी उत्सव मनाते हैं। ये कुसंस्कारावद्ध तथा भूतप्रेतादि देवताओं पर विश्वास करते हैं। किसीके मरने पर ये कब्रिस्तानमें एक सागोनका तख्ता गाड़ देते हैं।

कर्कु जब बरार आया तब यहां नेहाल जातिका आधिपत्य था। क्रमशः वह बलहीन हो कर स्वस्थान-भ्रष्ट हो गया है तथा कर्कुने उसके स्थान पर अधिकार कर लिया है। अभी नेहालगण अपनी भाषा तक छोड़ कर कर्कु जातिकी भाषा बोलने लगे हैं। यही दो जातियां परस्पर सद्भावसूत्रमें आवद्ध हैं। ये एक साथ बैठ कर धूमपान करते हैं। ये दोनों ही कृषिजीवी हैं; कोई कोई चोरी कर अपना गुजारा चलाते हैं।

मेलन (सं० क्ली०) १ मिलन, एक साथ होना, इकट्ठा होना। २ जमावड़ा। ३ मिलानेकी क्रिया या भाव। ४ वालागांवके पूर्वमें अवस्थित एक पुराना गांव।

मेलपवुर—मद्रास प्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत एक नगर।

मेलपलैयम्—मद्रासप्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत एक नगर। यह तिन्नेवल्ली नगरसे डेढ़ कोसकी दूरी पर अवस्थित है।

मेलमल्लार (सं० पु०) एक रागिनी जिसकी स्वरलिपि इस प्रकार है। स स स रे प ध स स ध प म ग रे स।

मेला (सं० स्त्री०) मिल-णिच्, अङ् टाप्। १ मेलक, मिलन। २ बहुतसे लोगोंका जमावड़ा। ३ मसि, रोशनाई। ४ अञ्जन। ५ महानीली (राजनि०)

मेला (हिं० पु०) १ बहुत-से लोगोंका जमावड़ा, भीड़

भाड़। २ देवदर्शन, उत्सव, खेल, तमाशे आदिके लिये बहुत से लोगोंका जमावड़ा।

मेलाठेला (हिं० पु०) भीड़ भाड़ और धक्का, जमावड़ा।

मेलानन्दा (सं० स्त्री०) मस्याधार, दवात।

मेलानी (हिं० क्रि०) १ मेलनाका प्रेरणार्थक रूप। २ रेहन या गिरवी रखी हुई वस्तुको रुपया दे कर छुड़ाना।

मेलान्धु (सं० स्त्री०) मस्याधार, दवात।

मेलापक (सं० पु०) सम्मिलन, ग्रहादिका संयोग।

मेलामन्दा (सं० स्त्री०) मस्याधार, दवात।

मेलाम्बु (सं० पु०) मेलेव अम्बु अत्र। मस्याधार, दवात।

मेलायन (सं० क्ली०) सम्मिलन।

मेलाव—बम्बई प्रदेशके बड़ोदा राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° ३४′ उ० तथा देशा० ७२° ५२′ पू०के मध्य अवस्थित है।

मेली (हिं० पु०) १ मुलाकाती, वह जिससे मेल हो, संगी। (वि०) २ हेल मेल रखनेवाला, जल्दी हिल मिल जानेवाला।

मेलु—बौद्ध मतानुसार एक बहुत बड़ा संख्याका नाम।

मेलुकोट—मैसूरराज्यके हसन जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। म्युनिसपलिटीका देखरेखमें रहनेके कारण यह साफ सुथरा है। यह अक्षा० १२° ४०′ उ० तथा देशा० ७६° ४३′ पू०के बीच पड़ता है। यहांके अधिवासियोंमेंसे श्रीवैष्णवकी ही संख्या अधिक है।

पहले यहां एक महासमृद्धिशाली नगर था। कालक्रमसे यद्यपि वह नष्टभ्रष्ट हो गया, तो भी आज उसका खंडहर वहांकी पूर्वस्मृतिका गौरव घोषणा करता है। ईस्वीसन् १२वीं सदीमें वैष्णवधर्मप्रवर्त्तक रामानुज चोलराजके अत्याचारसे बचनेके लिये यहां ११ वर्ष ठहरे थे। उसी समयसे यहां वैष्णव ब्राह्मणोंका अड्डा जम गया है। वल्लालवंशीय नरपतियोंको वैष्णवधर्ममें दीक्षित कर उन्होंने बहुत-से रुपये पाये थे और उसी रुपयेसे देवमन्दिरका खर्च चलाया था। १७७१ ई०में महाराष्ट्र-सेनाने जब नगरको नष्ट भ्रष्ट कर डाला तबसे यह नगर श्रीभ्रष्ट हो गया है।

यहांका वेलुवापुल्लेराय नामक सर्वप्रधान श्रीकृष्णका मन्दिर मैसूरराज्यकी देखभालमें है। पहाड़ परका नरसिंह मन्दिर भी उल्लेखयोग्य है। करीब चार सौ श्रीवैष्णव ब्राह्मण वेलुवापुल्ल मन्दिरमें रहते हैं। उक्त सम्प्रदायके गुरु भी वहीं रहते हैं।

सूती कपड़े और खसखसके पंखेके लिये यह स्थान बड़ा मशहूर है। यहां 'नाम मृत्तिका' नामकी एक प्रकार सफेद मिट्टी मिलती है जो वैष्णवोंकी आदरकी चीज है। तिलक लगानेके लिये यह काशी, वृन्दावन आदि स्थानोंमें भेजी जाती है।

मेलुद (सं० पु०) बौद्धमतानुसार एक बहुत बड़ी संख्याका नाम।

मेलूर—१ मद्रासप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ६२८ वर्गमील है। २ उक्त उपविभागके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम।

मेलूर—मैसूर राज्यके बङ्गलोर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां प्रति वर्ष चैत्र शुक्ल पक्षमें गंगादेवीके उद्देश्यसे १४ दिन तक एक मेला लगता है इस मेलेमें सैकड़ों गाय आदि पशु बिकते हैं।

मेल्टिंग केट्ल (अं० पु०) सरेस गलानेकी देगचा। यह एक ढकनेदार दोहरा बरतन होता है। नीचेके बरतनमें पानी भर कर उसके अन्दर दूसरा बरतन रख कर उसमें सरेस भर देते हैं और ढक कर आंच पर चढ़ा देते हैं। पानीकी भापसे सरेस गल जाता है। गल जाने पर उसे रोलर मोल्डमें ढाल देते हैं जिससे वह जम जाता है और स्याही देनेका बेलन तैयार हो कर निकल आता है।

मेल्हना (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव। इसका सिक्का खड़ा रहता है।

मेव—राजपूतानेकी ओर बसनेवाली एक लुटेरी जाति। मेव पहले हिन्दू थे और मेवातमें बसते थे, पर मुसलमानी बादशाहतके जमानेमें ये मुसलमान हो गये। अब ये लोग लूट पाट प्रायः छोड़ते जा रहे हैं।

मेवड़ी (हिं० स्त्री०) निगुंडी, संभालू।

मेवा (फा० पु०) १ खानेका फल। २ किशमिश, बादाम, अखरोट आदि सुखाए हुए बढ़िया फल।

मेवा (हिं० पु०) सूरतके गन्नेकी एक जाति। इसे खजुरिया भी कहते हैं।

मेवाटी (फा० स्त्री०) एक पकवान। इसके अन्दर मेवे भरे रहते हैं।

मेवाड़—दक्षिण राजपूतानेके अन्तर्गत एक विस्तीर्ण भू-भाग। यह अक्षा० २३° ३´ से २५° २८´ उ० तथा देशा० ७३° १´ से ७५° ४६´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें वृटिश-सरकारका अजमेर-मेरवाड़ और शाहपुर; उत्तरपूर्वमें जयपुर और बूँदी, पूरबमें कोटा और टोंक, दक्षिणमें मध्यप्रदेश या बम्बई प्रदेशके बहुतसे राज्य और पश्चिममें अरावली पहाड़ हैं। जनसंख्या १५ लाखके करीब है। यहांके उदयपुर, चित्तोर और कमलमेरु आदि नगरोंमें वीरप्राण राजपूत हिन्दूवीर अप्रतिहत प्रभावसे जो राज्यशासन कर गये हैं, उसे भाटकवि राजपूताने भरमें अपने गीतके साथ गाया करते हैं। वे राजपूत राजगण इतिहासमें मेवाड़के राणा नामसे प्रसिद्ध हैं। बहुतेरे इस राजपूत वंशमें शकसंस्रवकी कल्पना करते हैं। जो कुछ हो, राजोपाख्यानमें अयोध्याधिपति सूर्यवंशावतंस रामचन्द्रसे ही इस राजवंशकी वंशलता प्रथित हुई है।

भाटोंके गीतसे मालूम होता है, कि मेवाड़-राजवंशके प्रतिष्ठाता राजा कनकसेन लोहकोटका परित्याग कर द्वारका आये। सौराष्ट्रभूममें हूणोंसे खदेड़े जानेके बाद उनकी संज्ञा 'गुहिलोत' हुई। सूर्यवंशीय उपनिवेशिक राजा कनकसेन पीछे दलबलके साथ उदयपुर उपत्यकाके आहर नामक स्थानमें आये। इसीसे उक्त सम्प्रदायका 'अहेरिया' नाम हुआ। पीछे उनकी एक शाखा शिशोदा नामक स्थान जीतनेके बाद शिशोदीय कहलाई।

हूणोंने सौराष्ट्रके बाद वलभीपुरको लूटा। उस युद्धमें केवल चन्द्रावतीपुरीके परमारराजकन्या शिलादित्यकी स्त्री पुष्पवती ही की जान बची थी। प्रवाद है, कि दैवसंयोगसे उस समय वे अपनी जन्मभूमिके अम्बा भवानीतीर्थदर्शनको गई हुई थी। जब वहांसे लौटी तब उन्हें अपने स्वामीकी मृत्युका संवाद मिला। अब वे शोकसन्तप्त हृदयसे पहाड़की गुफामें छिप रही। वे गर्भवती थीं, वहीं पर उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रको उन्होंने वीरनगरनिवासिनी कमलावती नाम्नी एक ब्राह्मणीके हाथ सौंप कर ब्राह्मणोचित शिक्षा देने और राजपूतकन्याके साथ विवाह करनेका हुकुम दिया और आप सती हो गईं। पुरोहितकन्या कमलावती माताकी तरह उस पुत्रका लालन पालन करने लगी। गुहामें जन्म होनेके कारण उसका नाम 'गुह' वा 'गुहिल' रखा गया। ब्राह्मणके घरमें प्रतिपालित वह राजकुमार धीरे धीरे क्षत्रोचित हिंसादिवृत्तिका पक्षपाती होने लगा। ग्यारहवें वर्षमें वह एक तरह स्वाधीन हो गया; कमलावतीके मातहतमें न रहा।

इस समय वन्यप्रदेशमें घूम घूम कर वह राजकुमार भीलजातिका प्रेमभाजन हो गया। इदर राज्यके दुर्द्धर्ष भीलसरदार माण्डलिकने बालकके वीरोचित व्यवहार पर संतुष्ट हो उसे अपना राज्य तथा अधीनस्थ वीरवन पुत्रोंको समर्पण किया। कहते हैं, कि इस समय एक भीलने अपनी अंगुली काट कर उसी रक्तसे गुहके कपालमें राजटीका दिया था। इस इदरराज्यमें गुहके वंशधरोंने ८ पीढ़ी तक राज्य किया। पीछे भीलोंने उद्धत हो कर राजा नागादित्यको गुप्तभावसे मार डाला। नागादित्यका तीन वर्षका छोटा लड़का बप्पा भण्डेरा दुर्गमें लाया गया और यदुवंशीय एक भील-सरदारके अधीन उसका लालन पालन हुआ। बालकके जीवनको विपदसंकुल देख भील-सरदारने उसे पराशर वनके मध्य नगेन्द्र-नगरमें छिपा रखा। यहीं पर उसका बाल्यजीवन व्यतीत हुआ।

बप्पाका वीरजीवन धीरे धीरे विकशित होने लगा। उसने अपने प्रतिभाबलसे चित्तोर नगरको जीत लिया। इस्पाहन, तुरान, इरान, काफ्रिस्तान, इराक, कन्धहार, काश्मीर आदि देशोंको जीत कर वहांकी राजकन्याओंसे विवाह किया। उन सब स्त्रियोंसे जो पुत्र उत्पन्न हुए उनका नाम नौशेरा अफगान रखा गया।

बप्पाराव देखो।

बप्पाके चित्तोर-अधिकार, मेवार-शासन और चित्तोर-त्यागके बाद उस वंशमें यथाक्रम अपराजित, कालभोज, खुमान, भर्तृभट्ट, सिहजी, उल्लट, नरवाहन, शालिवाहन, शक्तिकुमार, अम्बाप्रसाद, नरवर्मा, यशोवर्मा आदि गुहि-

लोत राजवंशधरके वाद अपने समाजका नेतृत्व ग्रहण कर वीरताकी पराकाष्ठा दिखा गये हैं।

वोगदादके खलीफावंशीय वालीद, ओमार, हासम, अलमनसूर, हारुण-अलरसीद और अलमामुनके शासन-कालमें मुसलमान सेनाने भारत जीतनेके लिये प्रस्थान किया। उन लोगोंकी भेजी हुई सेनाने समुद्रके किनारे पहुंचते ही चित्तोर-नगरी जीतनेके उद्देशसे मेवाड़राज्य पर आक्रमण कर दिया। गजनीके राजा आलप्तगीन, सवुक्तगीन और महमूदके शासनकालमें उनके भारत-आक्रमणके प्रतिद्वन्द्वि स्वरूप शक्तिकुमार, नरवर्मा, यशोवर्मा आदि वीरोंने जन्मग्रहण किया था।

इसके वाद समरसिंहके अभ्युदयकालमें राजपूतकुल-गौरव जग उठा। पीछे इस वंशके कर्ण, राहुप आदि वीरोंने चित्तोर पर दखल जमाया। राहुप मन्दोरके परिहार राजपुत्र राणा मोकलको परास्त कर शिशोदिया आये। उन्हें मुसलमान-आततायी शमसुद्दीनके साथ युद्ध करना पड़ा था। कर्ण और राहुपके नाम शिलालिपिमें नहीं है, इस कारण दोनोंके अधिकार-संबंधमें वहुतेरे विश्वास नहीं करते।

लक्ष्मणसिंहके राज्यकालमें पठान-राज अलाउद्दीनने चित्तोर पर आक्रमण किया। राजाके चचा राणा भीम-सिंह उनके विरुद्ध युद्ध करके मारे गये और उनकी स्त्री पद्मिनी सती हो गई। इस युद्धमें गोरा और वादल नाम दो राजपूतवीरोंने पठान-सम्राट्को नाकोदम कर दिया था। इसके वाद अजयसिंह और राणा हम्मीरने चित्तोरकी सम्मान रक्षा की थी। हम्मीरके अधीनस्थ नायक मालदेवके पुत्र वनवीरकी वीरता कहानी राजपूत-के इतिहासमें प्रसिद्ध है।

हम्मीरके मरने पर क्षेत्रसिंह मेवाड़के सिंहासन पर बैठे। उन्होंने अजमेर, जहाजपुर, मण्डलगढ़, छप्पल आदि स्थान फतह किये। उन्हें गुप्तभावसे मार कर लक्षराणा चित्तोरके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए।

लक्षराणाके वाद चण्डके स्वार्थ त्याग करने पर वालक मोकलजी सिंहासन पर बैठे। किन्तु इस समय राठोर-की प्रतिपत्ति वढ़ती देख चण्डने वड़ी वीरतासे चित्तोरके राठोरप्रभावका दमन किया। मोकलजीका काम तमाम कर राणा कुम्भ राजसिंहासन पर बैठे थे। इन्होंने मैरता की राठोर-राजकन्या मीरावाईसे विवाह किया था। मीराका रूप और कृष्णप्रेमकहानी राजपूत-इतिहासमें अतुलनीय है। कुम्भ और मीरावाई देखो।

कुम्भके वाद राणा राजमल्ल और पीछे उनके लड़के राणा सङ्ग (संग्रामसिंह) ने राजसिंहासन सुशोभित किया। आप मुगल-सम्राट् वावरशाहके साथ युद्ध कर राजपूतगौरवको अक्षुण्ण रख गये हैं।

सङ्गके वाद यथाक्रम रत्न, विक्रमजित और राणा उदयसिंहने राज्य किया। उदयसिंह कापुरुष थे। वे मुगल-सम्राट्से अपनी हार कबूल कर चित्तोरको छोड़ उदयपुरमें अपना राजपाट उठा लाये। उदयसिंहको मृत्यु होने पर राजपूत-कुलकेशरी राणा प्रतापसिंहका अभ्युदय हुआ। राणा प्रतापके असाधारण अध्यवसाय, कष्टसहिष्णुता और राजपूतोचित वीरत्व प्रभाव तथा अकवरशाहके पराभवकी ओर ध्यान देनेसे शरीर सिहर उठता है। प्रतापसिंह देखो।

प्रतापके वाद धीरे धीरे राजपूत प्रतिभाका अवसान होता चला। प्रतापके मरने पर उनके लड़के अमरसिंह और मेवाड़के अन्तिम स्वाधीन राजा राणा कर्ण उदयपुर-के सिंहासन पर अभिषिक्त हुए थे। राणा कर्णके अन्तिम समयमें मेवाड़प्रदेशमें मुगलसम्राट् जहांगीरका प्रभाव फैला। कर्णके वाद जगत्सिंह और पीछे राज-सिंहने राजपूतजातिको लुप्तकीर्त्तिका पुनरुद्धार किया। ये लोग मुगलको अधीनता स्वीकार करनेको वाध्य हुए थे। इसके वाद राणा जयसिंह और २य अमरसिंहके शासनकालमें औरङ्गजेवके प्रभावसे राजपूत शक्तिका ह्रास हो गया था।

मुगलशक्तिके अवसानके वाद राणा संग्रामसिंह मेवाड़के सिंहासन पर बैठे। इनके शासनकालमें मार-वाड़ और अम्बरके साथ संधि हुई। नादिरशाहका दिल्ली लूटना और महाराष्ट्र सेनाका मालव और गुर्जर-आक्रमण इन्हींके समय हुआ। मालवमें चौथा संग्रहके वाद वाजीराव मेवाड़ जीतनेको अग्रसर हुए। राणाने राजकर दे कर उनसे पिंड छुड़ाया।

इसके वाद वे अपने भांजे मधुसिंहके अम्बर सिंहा-

सत्ताधिकार ले कर ईश्वरसिंहके विरुद्ध खड़े हुए। राजमहलमें दोनों पक्षमें घमसान युद्ध छिड़ा। युद्धमें राणा परास्त हुए जिससे मेवाड़की राजशक्ति कमजोर हो गई।

जगत्‌सिंहकी मृत्युके बाद राजा २य प्रतापसिंहने मेवाड़ राजशक्तिका पुनरुद्धार करनेकी कोशिशकी। उनके लड़के राणा राजसिंह २य और राणा अरिसिंहने यथा क्रम मेवाड़का शासन किया था। अरिसिंहके शासनकालमें होलकर और सिन्दे-राजने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। विद्रोही सामन्तोंने राणाको राज्यच्युत करनेका षड़यन्त्र रचा जिससे दोनोंमें युद्ध खड़ा हो गया। राणा हार खा कर भागे। पीछे वे किसी बूंदी राजपुत्रके हाथ यमपुर सिधारे। अनन्तर उनके लड़के हमीरसिंह राजपद पर बैठे। इस समय राजमाताके साथ राजमन्त्री अमरचांदका विवाद खड़ा हुआ। १७७८ ई०में बालकराज हम्मीरको बचपनमें मृत्यु हुई। १७३६ ई०में महाराष्ट्रके आगमनसे ले कर १७७८ ई०में हमीरके मृत्युकाल तक मेवाड़ राजशक्ति कमजोर हो जानेसे राज्यकी धीरे धीरे अवनति हो गई थी।

हमीरकी मृत्युके बाद उनके भाई राणा भीमसिंह मेवाड़के सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनके शासनकालमें होलकर और सिन्देने मेवाड़ पर आक्रमण किया तथा मेवाड़-राजकन्या कृष्णकुमारीका विवाह ले कर सारे राजस्थानमें भयङ्कर युद्ध हो गया था।

भीमसिंह देखो।

अर्बुद (आबू) शैलशिखर पर राणा समरसिंहकी उत्कीर्ण शिलालिपिसे उनके पहलेके राजाओं और महात्मा टाड द्वारा सङ्कलित राजस्थानोंके इतिहाससे मेवाड़ राजवंशकी तालिका इस प्रकार उद्धृत हुई है—

१ वप्पक वा वप्पा (७३५ ई०)। २ गुहिल। ३ शील। ४ कालभोज। ५ भर्त्तृभट्ट। ६ अम्बसिंह वा सिंह। ७ महायिक। ८ खुमान वा खुम्मान। ९ अल्लट। १० नरवाहन। ११ शक्तिकुमार। १२ शुचिवर्मा। १३ नरवर्मा। १४ कीर्त्तिवर्मा। १५ वैरट वा हंसपाल। १६ वैरीसिंह। १७ विजयसिंह, (इन्होंने मालवराज उदयादित्यकी कन्यासे विवाह किया। इनकी कन्या अल्हनदेवीके साथ चेदिराज गयकर्णका विवाह हुआ।) १८ अरिसिंह। १९ चोड़। २० विक्रमसिंह। २१ क्षेमसिंह। २२ सामन्तसिंह, (ये आबुपति प्रह्लादन द्वारा पराजय हुए।) २३ कुमारसिंह। २४ मथनसिंह। २५ पद्मसिंह। २६ जैत्रसिंह, (इन्होंने तुरुष्क और सन्धक सेनाको हराया था) २७ तेजसिंह (१२६७ ई०)। २८ समरसिंह (१२७८ ई०)। २९ रत्नसिंह। ३० श्रीजयसिंह। ३१ लक्ष्मणसिंह। ३२ अजयसिंह। ३३ अरिसिंह। ३४ हम्मीर। ३५ खेतसिंह या क्षेत्रसिंह। ३६ लक्षसिंह। ३७ मोकल, (१४२८ ई०), प्रवाद है, कि वे १३९८ ई०में अपने भाई चण्डका काम तमाम कर स्वयं राजा बन बैठे थे। ३८ कुम्भ (१४३८)। ३९ उदयसिंह, इन्होंने अपने पिता कुम्भको बिजलीके प्रयोगसे मारा था। ४० राजमल्ल (१४८९)। ४१ संग्रामसिंह (१म, १५०६) ४२ रत्नसिंह (१५२७)। ४३ विक्रमादित्य (१५३२)। ४४ (१५३५-३७ ई० बनवीरका अराजक राज्यशासन)। ४५ उदयसिंह, २य (१५३७)। ४६ उदयसिंहके लड़के प्रताप सिंह (१५७२)। ४७ अमरसिंह (१५९७)। ४८ कर्णसिंह (१६२०)। ४९ जगतसिंह (१६२८)। ५० राजसिंह (१६५२)। ५१ जयसिंह (१६८०)। ५२ अमरसिंह २य (१६९९)। ५३ संग्रामसिंह २य (१७११)। ५४ जगतसिंह (१७३४)। ५५ प्रतापसिंह २य (१७५२)। ५६ राजसिंह २य (१७५४)। ५७ अरिसिंह राणा (१७६१)। ५८ हम्मीर (१७७३)। ५९ भीमसिंह (१७७८)। ६० जोवनसिंह (१८२८)। ६१ सरदारसिंह (१८३८)। ६२ स्वरूपसिंह (१८४२)। ६३ शम्भूसिंह (१८६१)। ६४ सज्जनसिंह (१८७४)। ६५ इनहरणसिंह। ६६ फतेहसिंह (१८८५)। ६७ राजा चन्द्रशेखर प्रसाद सिंह (१९२८)। उदयपुर देखो

उपरोक्त राजगण प्रायः पुत्रादि क्रमसे मेवाड़के सिंहासन पर बैठ गये हैं। केवल ३७वें, ४४वें और ५९वें राजा अपने भाईके उत्तराधिकारी हुए थे।

मेवाड़राज्यका ऐतिहासिक और भौगोलिक विवरण आबू, उदयपुर, कमलमेरु और चित्तोर आदि शब्दोंमें दिया गया है। इन वर्द्धनशील, वीरप्राण और वीर्य-

शाली राजवंशका कीर्त्तिकलाप भी उन्हीं शब्दोंमें मिलेगा। अलावा इसके पार्श्ववर्त्ती मारवाड़, अम्बर आदि राज्य-प्रसङ्गमें भी मेवाड़का आनुषङ्गिक इतिवृत्त और भौगोलिक संस्थान दिया गया है।

मेवाड़के राणा और राजपूत क्षत्रिय कहलाये जाने पर भी वे लोग हिन्दूशक संस्रवसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसी कर्नेल टाड आदि ऐतिहासिकोंकी धारणा है। बहुत पहले हीसे उत्तरभारतमें शक आदि वैदेशिक जातियोंका समागम होनेके कारण इस प्रकार एक संस्रव होना असम्भव प्रतीत नहीं होता। राजपूत देखो।

जो कुछ हो, राजपूत लोग कट्टर हिन्दू हैं। हिन्दू पद्धतिके अनुसार ही वे क्रिया कलापका अनुष्ठान करते हैं। शक राजाओंने जब पंजावप्रदेशमें अपना आधिपत्य फैलाया था उस समय पड़ोसी राजपूत जातिने भी भिन्न देशीय राजकुलकी कुछ पद्धियोंका अनुकरण किया होगा, ऐसी आशा नहीं की जाती।

मेवाड़ राजगण जिन सब उत्सवोंका अनुष्ठान करते हैं, वे शक जातिसे लिये गये हैं ऐसा बहुतोंका विश्वास है। माघकी श्रीपञ्चमी वा वासन्ती पञ्चमी उत्सवके दो दिन बाद भानुसप्तमी वा भास्करसप्तमी, किसी राजकुमारके राज्याभिषेकके बाद सूर्य्यमूर्त्तिको रथ पर रख कर यह रथयात्रा उत्सव मनाया जाता है। यह भी प्राचीन शकजातिके मध्य प्रचलित था। फागुनमें अहेरिया, शिवरात्र और होली पर्व। अहेरिया और होलीपर्वको भी कोई कोई आदि शक जातिका उत्सव बतलाते हैं।

चैत महीनेके आरम्भमें ही सम्वत्सरा अर्थात् राणाका वार्षिक पितृश्राद्ध होता है। राजप्रासादमें और महासती नामक समाधि-मन्दिरमें बड़ी धूमधामके साथ यह उत्पन्न होता है। चैत्र सप्तमीमें शीतलादेवीकी पूजा होती है। ये शीतला ग्रीक वा फ्रिजियन और रोमकोंकी साइबिल-देवीकी तरह सन्तान सन्ततिकी रक्षा करनेवाली मानी जाती हैं। चैत्रशुक्लपक्षमें वासन्ती पूजा वा नवरात और उसके बाद गौरी पूजाके उपलक्षमें पुष्पमेला लगता है। यह मेला बहुत कुछ रोमकी *Cerealia* के जैसा है। इसके बाद गङ्गोरे वा गङ्गा गौरी उत्सव, अशोकाष्टमीव्रत, रामजन्मोत्सव, दशहरा, मदन त्रयोदशी आदि उत्सव मनाये जाते हैं।

वैशाखमें नकाड़ा-का आशवरी, छोटी गङ्गागौरी, चान्द्र वैशाख चतुर्दशीमें सावित्रीव्रत, जेठमें आरण्यषष्ठी, आषाढ़में रथयात्रा; सावनमें तीज, नागपञ्चमी और राखी; भादोंमें जन्माष्टमी; आश्विनमें आयुधशालासे खड्ग निकाल कर उसकी पूजा, भिखारीनाथ और माता-जलसन्दर्शन, दशहरा, रामलीला आदि उत्सव; कार्तिकमें अन्नकोट, झूलनयात्रा और मकरसंक्रान्तिका उत्सव होते देखा जाता है; अगहनमें भास्करसप्तमी और गङ्गाका जन्मोत्सव होता है। पूसके महीनेमें किसी प्रकारका पर्वोत्सव नहीं होता।

ऊपर कहे गये मासानुक्रमिक उत्सवोंमें स्वयं राणासे ले कर साधारण प्रजा सभी शामिल होते हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उन सब उत्सवोंका आनुपूर्विक विवरण नहीं दिया गया। हिन्दूशास्त्रकी रीतिके अनुसार वे सब उत्सव किये जाने पर भी उनमें राजपूतजातिका कुछ लौकिक आचार भी घुस गया है।

मेवाड़में शैव, शाक्त और वैष्णव धर्मकी प्रधानता देखी जाती है। मेवार-राजमहिषी धर्म-परायणा मीराबाईका उन्मादकर कृष्णकीर्त्तन-प्रवाह एक समय सारे राजपूतानेमें बह गया था। ब्रजके दुलाल श्रीकृष्णचन्द्र मेवाड़में सभी जगह पूजित होते हैं। देवपूजामें राजपूतोंकी अटल भक्ति है। पूजा वा उत्सवके समय ये लोग दत्तचित्तसे देवताकी पूजा करते और उन्हें बलि चढ़ाते हैं। राजपूत रमणियोंकी सतीत्व-कीर्त्ति इतिहासमें चिरस्मरणीय है। भीमसिंहकी स्त्री पद्मिनीकी सतीत्व-कहानी चांद कविकी सुधामयी कवितासे आज भी सारे भारतवासीके कण्ठसे प्रतिध्वनित होती है। पठान या मुगल राजाओंके साथ युद्धमें पराजय होनेके बाद असंख्य हिन्दूवीर रमणियां आत्मरक्षाके लिये चितारोहण कर सतीत्वका उज्ज्वल दृष्टान्त दिखा गई हैं।

इस राज्यमें कुल मिला कर ८३५८ ग्राम और १७ शहर लगते हैं। जनसंख्या १५ लाखके करीब है। अधिवासियोंमें मैर, मीना, कोली वा भीलगण प्रधान हैं। ये

लोग पहले हीसे मेवाड़राजके सेनादलमें शामिल हो कर युद्ध विग्रहादिमें मदद देते आये हैं।

वर्त्तमान राणाका नाम है, राजा चन्द्रशेखर प्रसाद-सिंह देव बहादुर।

मेवाड़भील—राजपूतानेके मेवाड़ राज्यवासी भीलजाति-विशेष। राजपूत वीरोंके साथ युद्धमें वीरता दिखा कर ये लोग भी इतिहासमें प्रसिद्ध हो गये हैं। राणा प्रताप-सिंहकी भीलसेना ले कर मुगलबादशाहके साथ युद्ध एक इतिहासप्रसिद्ध घटना है। भील देखो।

मेवाड़ी (हिं० पु०) १ मेवाड़-प्रदेशका निवासी। (वि०) २ मेवाड़में रहनेवाला, मेवाड़से सम्बन्ध रखनेवाला।

मेवात—दिल्ली राजधानीका दक्षिण-विभाग। मुसल-मानी अमलदारीमें मथुरा गुरगांव, अलवर और भरतपुरका बहुत कुछ अंश ले कर यह प्रदेश गठित हुआ था। यहांके राजपूत सरदारगण दस्युवृत्तिके कारण इतिहासमें प्रसिद्ध हो गये हैं। यहां तक कि, ये दिल्लीवासी पठान और मुगलोंको भी उत्यक्त करनेमें जरा भी न डरते थे। आईन-इ-अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह प्रदेश सूबा आग्राके अन्तर्भुक्त था। नारनौल, अल-वर, तिजारा और रेवारी नगर अपने सरदारके आधिपत्य और वीरत्वके प्रभावसे प्रसिद्ध हो गया था।

मेवातके यादववंशीय राजपूत-सरदार राजा मंगल-सिंहका विवाह पृथ्वीराजकी सालीसे हुआ था। पठान-सम्राट् बलबनने यहांके दस्युदल नेताओंको सम्पूर्ण रूपसे परास्त कर मेवात राज्य., अपना प्रभाव जमाया तथा इसी समय दस्युप्रभाव उच्छेद करनेके लिये उन्होंने स्थान स्थान पर थाना मुकर्रर किया।

तैमूर शाह जब भारतवर्ष आये थे उस समयके प्रसिद्ध मेवाती सरदार बहादुर अपने शौर्यवीर्यके लिये इस प्रदेशमें प्रसिद्ध हो गये थे। उन्हींसे दिल्लीराजदर-बारके विशेष विख्यात खानजादावंशका अभ्युदय हुआ। इसी वंशने विशेष दक्षता और विचक्षणताके साथ बहुत दिनों तक इस प्रदेशमें शासन किया था।

बाबर शाहके भारत विजय करनेके समय हसन खाँ खानजादा मेवातके प्रधान सामन्त थे। तिजारासे उन्होंने सपरिवार अलवर नगरमें आ कर राजपाट स्थापित किया। सम्राट् बाबर शाहके साथ फतहपुर-युद्धमें मेवातीसरदार हसन खाँ निहत तथा राजपूतगण परा-भूत हुए। हसन खांके पुत्रने बाबरकी अधीनता स्वीकार की।

दाक्षिणात्यके आदिलशाह-वंशके राजा आदिलशाहके प्रधान वजीर हीमू (ये १५५६ ई०में पानीपतके मैदानमें पराजित हुए थे) माचारीके मेवाती थे। हीमूकी मृत्युके बाद यहांके अधिवासियोंने सम्राट् अकबर शाहकी विपुल वाहिनीके सामने बड़ी दृढ़ताके साथ आत्मरक्षा की थी। कुछ दिन बाद मेवात पुनः मुगलोंके हाथ पड़ा और यहीं खानजादे अपने अपने क्षमता बलसे मुगलराज्य-के सेनाविभागमें प्रवेश कर बड़े प्रसिद्ध हो गये थे।

महम्मद शाहके राजत्वकालमें १७२० ई०के करीब किसी समय जाट-दस्युदल मेवातमें दिखाई दिया तथा १७२४ ई०के बीच उन्होंने लूट पाट कर समूचे मेवात प्रदेशको नष्ट भ्रष्ट कर डाला। जो कुछ हो, १७७५ ई०में जाटोंको पराजित और राज्यच्युत कर राजा प्रतापसिंहने अलवर दुर्ग अधिकार कर लिया। उस समयसे वह उसी वंशके अधिकारमें आ रहा है। अलवरके वर्त्तमान महाराव राजा प्रतापसिंहके वंशधर थे। प्रतापके अभ्युदयके बाद मेवातकी कहानी अलवर और भरतपुर सामन्तराज्यकी कहानीके साथ मिली हुई है।

मेवातके सरदार-वंशधर मेवाती नामसे परिचित हैं। बहादुर नाहरके बादसे वे खानजादा नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। देशके अधिकांश अधिवासी ही मेव जातिसे उत्पन्न हैं। मेव जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मतभेद पाया जाता है। मेवगणका कहना है, कि वे यादव, कच्छ वाहा और तुयर राजपूतके वंशधर हैं किन्तु बहुतेरे उन्हें उस देशके आदिम अधिवासी मानते हैं। बहुतोंका अनु-मान है, कि ये लोग मीना जातिकी दूसरी शाखा है।

मेवोंमें ५२ थोक है। उनमेंसे बड़े १२ थोक पाल और छोटे गोत्र नामसे विख्यात हैं। मीना और मेव जाति-में विवाह चलता था, सम्राट् अकबर शाहके समय किसी विवाह-उपलक्षमें दोनों श्रेणीमें एक घोर गड़बड़ी मची जिससे सम्राट ने उनका वैवाहिक सम्बन्ध उठा दिया।

गजनोपति महमूदके राजपूताना आक्रमणके समय ११वीं सदीमें मेवोंने मुसलमान-धर्म अवलम्बन किया। उस समयसे उनमें हिन्दू और मुसलमानोंको अनेक मिश्रित आचार व्यवहार प्रचलित हैं। मेवगण वराइचके मुसलमान पीर सैयद सालर मशाउदकी बड़ी भक्ति करते हैं। भारतके अन्यान्य पीरोंको दरगाह देखनेके लिये वे प्रायः तीर्थयात्रा करते हैं किन्तु कभी भी हज नहीं करते। हिन्दूके त्योहारोंमें होली और दिवालीको वे बड़े धूमधामसे मनाते हैं। हिन्दूके जैसा उनकी भी कन्याएं पितृ सम्पत्तिकी अधिकारिणी नहीं हो सकतीं। उनमें सगोत्र-विवाह निषिद्ध माना जाता है, पुरुष और स्त्रीका वेषभूषा हिन्दूके समान है।

विद्याशिक्षामें इनका कोई विशेष अनुराग नहीं है। मूर्ख होनेके कारण वे प्रायः कठोर भाषाका प्रयोग करते हैं। सामाजिक सम्भ्रमकी रक्षा कर कथोपकथनमें वे बड़े अनभ्यस्त हैं। उनमें पुत्र वा कन्या-हत्या प्रचलित थी पर अब वह प्रथा सम्पूर्णरूपसे जाती रही। दुर्द्धर्ष दस्युवृत्ति छोड़ देने पर भी आजकल वे चोरी करनेके कारण आत्मसम्मानको रक्षा नहीं कर सकते। उनमें फकीर लालसिंहके वंशधर ही बड़े सम्माननीय हैं। ये किसीके हाथका भी अन्न या जल ग्रहण नहीं; करते किन्तु दूसरे सम्प्रदायकी कन्या लेनेमें बाध्य होते हैं। मीना देखो।

मेवात—राजपूतानेके उत्तर-पूर्व अधित्यका भूमिके अन्तर्गत मेवात प्रदेशको एक शैलश्रेणी। यह दिल्ली और पंजाब प्रदेशके गुरगांव जिलेके सीमान्त देशमें अवस्थित है।

मेवाती—राजपूतानेकी प्राचीन मेवात प्रदेशमें रहनेवाली एक जाति।

मेवाफरोश (फा० पु०) फल या मेवे बेचनेवाला।

मेवास—वम्बईप्रदेशके खान्देश पालिटीकल एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामान्तराज्य। यह सतपुरा पर्वतके पश्चिममें अवस्थित है। नर्मदा और ताप्तीके बहनेके कारण यह स्थान बहुत स्वास्थ्यप्रद है। यहांके अधिवासी भील जातिके हैं। ये लोग रणप्रिय और दुर्द्धर्ष हैं। चिखली, नालसिंहपुर, नवलपुरी, गभोली और काठी नामक पांच सामन्तराज्य ले कर यह संगठित हुआ है। यहांको शीशमका तख्ता बहुत प्रसिद्ध है।

मेवासा—वम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सामन्तराज बड़ोदाके गायकवाड़ तथा वृटिश-सरकारको वार्षिक कर देते हैं।

मेवासी (हिं० पु०) १ घरमें रहनेवाला, घरका मालिक। २ किलेमें रहनेवाला, संरक्षित और प्रबल।

मेशिका (सं० स्त्री०) मञ्जिष्ठा, मजीठ।

मेशी (सं० स्त्री०) जल।

मेष (सं० पु०) मिषति अन्योऽन्यं स्पर्द्धते इति मिष् स्पर्द्धायाम् अच्। १ पशुविशेष, भेड़ा।

"मेषेण्य सूपकाराणां कलहो यत्र वर्द्धते।
स भविष्यत्यसन्दिग्धं वानराणां भयावहः॥"

(पञ्चतन्त्र ५।६१)

संस्कृत पर्याय—मेढ़, उरभ्र, उरण, ऊर्णायुः, वृष्णि, एड़क, मेंड़, हुड़, शृङ्गिण, अवि, लोमश, वली, रोमश, मेडू, भेड़क, लेण्ड, हुलु, मेण्टक, हुड़, संफल। (हेम) इसके मांसका गुण मधुर, शीतल, गुरु, विष्टम्भ और वृंहण है। (राजनि०) राजवल्लभके मतसे पित्त और कफ बढ़ानेवाले पदार्थ तथा कुसुम्भ शाकके साथ इसका मांस खाना बड़ा अनिष्टकारक है। मेष देखो।

२ औषधविशेष। ३ (मेदिनी) ३ नैगमेष ग्रह। (भावप्रकाश) ४ दरक। ५ जीवशाक सुसना। (राजनि०) ६ राशिविशेष। मेषराशि अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रों के प्रथम पादमें यह राशि होती है। वैशाख महीनेमें इस राशिमें सूर्य उगते हैं। बारह राशियोंके चक्रमें इसका प्रथम स्थान है। इस राशिसे दूसरी दूसरी राशिकी गणना होती है।

ज्योतिषमें इस राशिके स्वरूप और संज्ञादि विषयका वर्णन इस प्रकार है। मेष—पुरुष, चर, अग्निराशि, ह्रस्वाङ्ग, चतुष्पद रक्तवर्ण, उष्ण-स्वभाव, पित्तप्रकृति, अतिशय शब्दकारी, पर्व्वतचारी, उग्रप्रकृति, पीतवर्ण, दिनमें बलवान्, पूर्व्व दिशाका अधिपति, विषमलग्न, अल्पस्त्रीप्रिय, अल्पसन्तान रूक्षवपुः, क्षत्रियवर्ण, समान अंग।

(नीलकण्ठी ताजक)

यवनेश्वरके मतसे मेष आद्य राशि है। इससे समान शरीर, कालपुरुषका मस्तक, बकरे और भेड़की

सञ्चारभूमि, गुहा पर्वत और चोर लोगोंकी वासभूमि, अग्नि, धातु और रत्नकी खान समझी जाती है।

मेषको जैसी आकृतिके कारण इस राशिका नाम मेष हुआ है। इसकी अधिष्ठात्री देवीका आकार मेषके जैसा है। राशिगणकी ओज, युग्म, विषम आदि संज्ञा है उनमें इस राशिको संज्ञा ओजराशि है। इसका विशेष नाम क्रिय है। यह चरराशि है। मेषराशिमें सूर्यका उच्चस्थान रहता है अर्थात् मेषमें सूर्य रहें तो अत्यन्त बलवान् होते हैं। वैशाखका महीना ही मेषराशिका भाग्यकाल है। मेष रविका उच्चस्थान है लेकिन उच्चांशका भोगकाल थोड़ा है। मेषके केवल १० दिन अर्थात् १ वैशाखसे १० वैशाख तक उच्चांश भोगनेका समय है, उसके बाद सूर्यके उच्चस्थानमें रहने पर भी वे उच्चांशच्युत हो जाते हैं। इस उच्चांशमें भी फिर सूच्चांश अर्थात् उत्तम उच्चांश भोगनेका समय है और वह एक दिन है। मेष जैसे सूर्यका उच्चस्थान है वैसे ही यह शनिका नीचस्थान है। शनि इस राशिमें रहे तो दुर्बल हो जाता है। मेषका शनि बड़ा अनिष्टकर होता है।

मेषराशि मंगलका मूल त्रिकोण तथा स्वगृह है। मंगल मेषराशिमें रहे तो मध्यबली होता है। यह राशि ६ भागोंमें विभक्त की जा सकती है उसे षड्वर्ग कहते है। क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश ये ही षड्वर्ग हैं। प्रत्येक राशिको षड्वर्ग करके ग्रहगण किस वर्गमें किस प्रकार हैं यह स्थिर करना होता है।

मेषराशिमें जन्म होनेसे मनुष्य विमलकेशयुक्त, चञ्चल, त्यागशील, दीप्तिविशिष्ट, शुचि, विलासप्रिय, अतिशय वक्ता, दुर्दान्त, गृहवासहीन, क्रूर, अल्पलोचन, अल्पमेधा, धनपति और दाता होता है।

मेषराशिमें रवि आदि ग्रह रहें तो मनुष्य शास्त्रोक्त उचित कर्मोंका करनेवाला, दुष्टप्रिय, क्रोधी, उद्योगी, रमणेच्छु, कृपण और श्रेष्ठ क्रिया करनेवाला होता है। यह रवि यदि अपने तुंगांशमें रहे तो वह साहसकर्म्मरत, रक्तपित्त व्याधियुक्त, कान्ति और सत्त्व-सम्पन्न तथा मानवश्रेष्ठ होता है।

खनाका वचन है, कि मेषमें यदि सूर्य रहें तो घर सोने चांदीसे भर जाय।

मेषस्थ रवि चन्द्रमासे दृष्ट हों तो मनुष्य दानरत, बहुभृत्ययुक्त, युवतीप्रिय तथा कोमलशरीर होता है। मंगलसे दृष्ट हों तो, संग्राममें अत्यन्त वीर्यसम्पन्न, क्रूर, रक्तचक्षु और केशवाला, तेज और बलयुक्त होता है। बुधसे देखे जांय, तो भृत्यका काम करनेवाला, अल्पधन, सत्त्वहीन, बहुदुःखयुक्त और मलिनदेह; बृहस्पतिसे देखे जांय तो विपुलधनी, दाता, राजमन्त्री या दण्डनायक; शुक्रके देखने पर कुत्सित स्त्रीका पति, अनेक शत्रुवाला, बन्धुहीन, दीन और कुष्ठरोगी; शनिके देखनेसे दुःखभागी, कार्य्यमें उत्साही, जड़बुद्धि और मूर्ख होता है।

मेषराशिमें चन्द्र रहें, तो मनुष्य सेवाकर्म्मकारी स्थिरधनयुक्त, भ्रातृहीन, साहसी, कामुक, कुनखी, चंचल, सम्मानित, अनेक पुत्रोंसे युक्त, जलभीरु और स्त्रैण होता है। ये मेषस्थ चन्द्र सूर्यसे दृष्ट हों, तो अतिशय उग्रकर्मकर, धनी, आश्रितपालक, वीर और संग्रामरुचि होता है। मंगल देखे, तो नेत्र और दांतरोगयुक्त, अतिशय तापित, मंडलाध्यक्ष और बहुमूत्ररोगपीड़ित; बुध देखे तो नाना विद्यासम्पन्न आचार्य, सद्वक्ता, साधुओंसे सम्मानित, सत्कवि और विपुल कीर्त्तिमान्; बृहस्पति देखे तो बहुधन, भृत्य और समृद्धिसम्पन्न, राजमन्त्री या राजा; शुक्र देखे तो श्रेष्ठयुवतीयुक्त और विलासी तथा शनिके देखने पर विद्वेष्टा, बहुदुःखभोगी, दरिद्र, मलिन देहविशिष्ट और मिथ्यावादी होता है।

मेषमें मंगल रहे तो तेजस्वी, सत्ययुक्त, शूर, क्षितिपति या रणप्रिय, साहस कर्माभिरत, उग्रस्वभाव, तथा वीर अनेक पत्नी और पुत्रयुक्त होता है। इस मंगलको यदि सूर्य देखे, तो राजा और उदार, मातृरहित, क्षतांग, स्वजनद्वेषी और मित्रहीन; चन्द्रमा देखे तो ईर्षायुक्त, परधनापहारी और देवभक्त; बुध देखे तो द्वेष्टा और वेश्यापति; बृहस्पति देखे तो अतिशय गुणवान्, प्रभु और धनवान्; शुक्र देखे तो स्त्रीके लिये बन्धनभोगी, मित्रहीन तथा बीच बीचमें स्त्रीके लिये धनक्षय और

शनि देखे तो चौरघातक, अतिशय शूर, निर्दय, नीच स्त्री पर आसक्त और स्वजनविहीन होता है।

मेषराशिमें बुध रहे, तो मनुष्य विग्रहप्रिय, अस्त्रवेत्ता, अतिशय चतुर, प्रतारक, सर्वदा चिन्तान्वित, अत्यन्त कृश, संगीत और नृत्यकर्ममें रत, असत्यवादी, रतिप्रिय, लिपिवेत्ता, मिथ्यासाक्ष्यदाता, वहुभोजनशील वहुश्रमोत्पन्न, धनधान्य-विनाशकर, अनेक बन्धनभोगी, रणमें अस्थिर और वञ्चक होता है। इस बुधको सूर्य देखे तो सत्यवादी, सुखी, राजसम्मानित और बन्धुप्रिय तथा इस बुधको चन्द्र देखे तो युवतियोंका चित्तहारी, सेवक, मलिनदेह और गतिशील; मंगल देखे तो मिथ्याप्रिय, सुन्दरवाक्य और कलहयुक्त, पंडित, प्रचुर धनवान्, भूमिप्रिय और शूर; बृहस्पति देखे तो सुखी, प्रभूत धनवान् तथा पापात्मा; शुक्र देखे तो नृपकार्यकारी, सुभग, विश्वासी, अति चतुर, दुःखभोगी और शनि देखे तो अतिशय दुःखी, उग्रप्रकृति-सम्पन्न, हिंसारत तथा स्वजन विहीन होता है।

मेषराशिमें बृहस्पति रहनेसे रागादिसम्पन्न, कर्मठ, वक्ता, सत्त्व अधर्मयुक्त, दाम्भिक, विख्यातकर्मा, तेजस्वी, वहुशत्रु और वहुव्ययार्थयुक्त, क्रोधी, क्रूर और दण्डनायक होता है।

यह गुरु यदि रविसे देखा जाय, तो धार्मिक, अनृतभीरु, प्रसिद्ध, भाग्यवान्, अशुचि और रोमश; चन्द्रमाके देखनेसे इतिहास और काव्यकुशल, वहुरत्न और अनेक स्त्रीयुक्त, नृपति और पण्डित; बुधके देखनेसे झूठा, पापी, विद्वान्, कपटी और नीतिवेत्ता; शुक्रके देखनेसे सर्वदा-गृह, शय्या, वस्त्र, गन्ध, माल्य, अलङ्कार और युवतीस्त्री सम्पन्न, धनी, बुद्धिमान् तथा भीरु; शनिके देखनेसे मलिनदेह, लोभी, क्रोधी, साहसी, अस्थिरमित्र और माननीय होता है।

मेषराशिमें शुक्र रहनेसे रोगी, दोषी, विरोधी, डाही, वन और पर्वतमें विचरणकारी, नीच, कठोर, शूर, विश्वासी और दाम्भिक होता है।

यह शुक्र यदि रविसे देखा जाय, तो स्त्रीके कारण दुःखी और धनी; चन्द्रके देखनेसे उद्धत, अत्यन्त चपल, कामी और अधम स्त्रीका स्वामी; मङ्गलके देखनेसे धन, सुख और मानहीन, दीन, पराकांक्षी और मलिन वेशधारी; बुधके देखनेसे मूर्ख, प्रगल्भ, अनार्यगात्रसम्पन्न, अविनयी, चौर; नीच प्रकृतिका और क्रूर; बृहस्पतिके देखनेसे विनयी, सुदेह और वहुपुत्र; शनिके देखनेसे अतिशय मलिनदेह, लोकसेवक और चोर होता है। मेषराशिमें शनि रहनेसे व्यसनी, बन्धुद्वेषी, आलसी, निष्ठुर, निन्दित कर्मकारी और निर्धन हुआ करता है।

यह शनि रविसे देखे जाने पर कृषिकर्ममें निरत, धनवान्, गो, मेष और महिषयुक्त तथा पुण्यात्मा; चन्द्रमाके देखनेसे चंचलस्वभाव, नीच प्रकृतिका, दुःखी, दीन; मङ्गलके देखनेसे प्राणिवधपरायण, क्षुद्र प्रकृतिका, चोरका सरदार, यशस्वी, मांस और मद्यप्रिय; बुधके देखनेसे मिथ्यावादी, अधर्मी, वाचाल, चोर यथेच्छाचारी, सुख और विभवहीन; बृहस्पतिके देखनेसे परदुःखमें कातर, परकार्यमें निरत, लोकप्रिय, दाता और उद्यमशील; शुक्रके देखनेसे मद्य और स्त्रीमें आसक्त, गुणवान्, वलवान् और राजप्रिय होता है। (बृहज्जातक)

७ लग्नविशेष, मेषलग्न। 'राशीनामुदयो लग्नं' राशियोंके उदयका नाम लग्न है। मेषराशिका जब उदय होता है, तब वही फिर लग्न कहलाता है। अर्थात् जब तक मेषराशिमें सूर्य रहते हैं, तब तक ही वह लग्न है। उस समय यदि किसीका जन्म हो, तो उसका मेषलग्न होगा।

प्राचीन लग्नमानके साथ वर्त्तमान लग्नमानका मेल नहीं खाता। प्राचीन मेष लग्नमान ३।४७ पल है।

यदि किसीका मेषलग्नमें जन्म हो, तो वह अत्यन्त क्रोधी, भेदकर्त्ता, पित्त और वायुप्रकृतिका, अत्यन्त क्लेशसहिष्णु, बचपनमें गुरुजनरहित, अधम पुत्रयुक्त, विदेशवासी, नीच स्वभावका और बहुमित्रयुक्त होता है। मेषलग्न जात व्यक्तिकी अस्त्र या विष, पित्तज व्याधि, दुर्ग वा उच्च स्थानसे पतन हो कर मृत्यु होती है। (सत्याचार्य)

यह लग्नका साधारण फल है। विशेष फलका विचार करनेमें ग्रहसंस्थान तथा उसका सम्बन्ध स्थिर कर लेना होता है।

मेष (सं० पु०) सींगवाला एक चौपाया, मेढ़ा। यह लग-

भग डेढ़ हाथ ऊँचा और घने रोयोंसे ढका रहता है। ये बहुत मजबूत, काले, सफेद और टेढ़े सींगवाले होते हैं। सफेद मेढ़ेके रोयें काले भेड़ से मुलायम आर सींग भी छोटे होते हैं। प्राणितत्त्वविदोंने दोनों ही श्रेणीके मेढ़ेको Caprinae में शामिल किया है। मेढ़ेकी-नाकोंकी हड्डी और सींग स्वभावतः ही मजबूत होते हैं। ये आपसमें बड़े वेगसे लड़ते हैं, इससे बहुतसे शौकीन इन्हें लड़ानेके लिये पालते हैं। मेढ़ेकी लड़ाई बड़ी ही आश्चर्यजनक होती है। इसका मांस कड़ा होता है और उसके शरीरमें अधिक चरवी रहनेके कारण एक प्रकारकी कीड़ा उत्पन्न होता है, इसीसे बहुतेरे इसका मांस खानेसे घृणा करते हैं। मेढ़ेका कोमल मांस सुखसेव्य है। यह Mutton नामसे जनसाधारणमें आदरणाय है।

नर और मादा दोनोंके ही सींग होते हैं। मादाके सींग बहुत बड़े नहीं होते। सींग चूड़ाकार होते तथा कपालके आगेसे निकल कर पीछेकी ओर कान तक चले गये हैं। नाककी हड्डी बकरेसे ऊँची और मजबूत होती है। दानों आँख खोपड़ीकी बगलमें कानसे थोड़ी ही दूर पर है। दोनों कान बकरेके जैसे होते हैं। रोयाँ बहुत मुलायम होता और ऊन कहलाता है। शीतकालमें वे सब रोए बड़े हो जाते हैं और ग्रीष्मकालमें उन्हें काट लिया जाता है। सामय (Chamois) और मेरिनो (Merino) नामक पहाड़ी रोएंदार बकरेकी जातिको बहुतेरे इसी मेष श्रेणामें शामिल करते हैं। इसके रोए और चमड़े बहुतसे कामोंमें आते हैं।
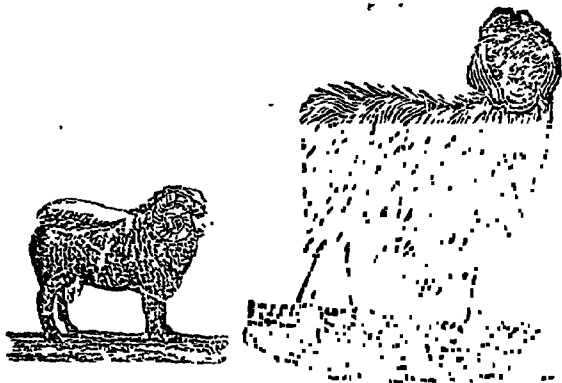
समतलक्षेत्रका मेढ़ा। पहाड़ी मेमना।

काश्मीरका रामु, शतद्रुतीरवर्त्ती प्रदेशका ऐमु और नेपालका थर (Nemorhaedus proclivus) काश्मीरसे सिक्किम तकके हिमालय पर्वत पर ६ से १२ हजार फुटकी ऊंचाई पर वास करता है। आराकन, सुमात्रा, मलय प्रायद्वीप, तेनासरिम और चीन देशके पहाड़ी प्रदेश में इस श्रेणीके मेष देखे जाते हैं, किन्तु वे हिमालय प्रदेशमें मिलनेवाले मेषसे छोटे होते हैं। निविड़वनमाला-विभूषित हिमालयके पहाड़ी प्रदेशमें कठोरताको सहते हुए ये स्वभावतः ही मजबूत हो गये हैं। यहां तक कि जंगली कुत्तेसे आक्रान्त होने पर भी ये जरा भी नहीं डरते। कभी कभी ये सींगसे आततायी को मार कर यमपुर भेज देते हैं। पहाड़ी कन्दराओंमें ये स्वच्छन्दपूर्वक वास करते हैं।

माघ फागुनमें ये जोड़ा खाते और आसिन कातिकमें सिर्फ एक बच्चा जनते हैं। प्राणितत्त्वविद् एडमका कहना है, कि हिमालयके उत्तर-पश्चिम-सीमान्तवासी मादा मेढ़े वैसाख और जेठके महीनेमें बच्चा देती है।

पहाड़ी मेढ़ेका मांस कड़ा तथा खाने लायक नहीं होता। हिमालय पर रहनेवाले सामय, मेषजातिके अन्तर्भुक्त माने जाने पर भी ये यथार्थमें बकरे और हरिण श्रेणीके अन्तर्गत हैं। मेषश्रेणीमें उसकी गिनती न होनेके कारण यहां उसका विषय छोड़ दिया गया।

१ हिमालय पर होनेवाला ताहेर नामक जङ्गली बकरा (Hemitragus Jemlaicus) मेषजातिके अन्तर्भुक्त है। यह सिमलामें जेहर, नेपालमें भारल, काश्मीरमें जगला, कुणवरमें भूला और खरणी आदि नामोंसे प्रसिद्ध है। मुखसे गुह्यद्वार तक इसकी लम्बाई ४ फुट ८ इञ्च और ऊंचाई ३० से ४० इञ्च है। पूंछ ७ इञ्च और सींग १२ इञ्च लंबे होते हैं। ये पर्वतकी बहुत ऊंची चोटी पर भी चढ़ सकते हैं। माघसे कातिक तक ये कहां छिप रहते हैं, किसीको मालूम नहीं। छोटा छोटा मेमना बहुत ऊंचा चढ़ नहीं सकता। ये चैत वैशाखमें जंगलमें रहते हैं। सङ्गम ऋतुमें ये ऐसे कामातुर हो जाते हैं कि कितनी नर मेढेको जानसे मार भी डालते हैं। दूरसे वह जंगली वराहके जैसा पर नजदीक आनेसे सुन्दर दिखाई देता है। लण्डन नगरकी पशु-

शालोंमें इस जातिके मेषके रोंए ऐसे छांट दिये गये हैं, कि उसे देखनेसे लकड़बग्घेका भ्रम होता है। मादाका मांस कोमल और खाद्योपयोगी, पर नर मेढ़ेका मांस अखाद्य होता है।

२ नीलगिरिके जंगली मेष (H. hylocrius) को तामिल भाषामें बड़ आड़ू कहते हैं। यह आकृतिमें हिमालयजात मेषके सदृश है, केवल ऊंचाईमें ६ से ८ इञ्च तक कम होता है।

नीलगिरि, पश्चिमघाट-पर्वतमाला, महिसुर वैनाड़, मदुरा, पलनी, कोचिन, डिण्डिगल, त्रिवाङ्कोड़ और अनमलयके पहाड़ों पर इस जातिके मेष विचरण करते देखे जाते हैं। इस श्रेणीके मेमने धूम्रवत् पिङ्गलवर्णके होते हैं। बूढ़ा मेष बिलकुल काला होता है। मादा एक बारमें दो बच्चे जनती है।

३ मार्खोर (Copra megaceros) नामक अफगान और काश्मीरदेशके मेष ग्रीष्मकालमें धूसर और शीतकालमें मटमैलापन लिये सफेद होता है। बूढ़े मेषके बड़ी बड़ी दाढ़ी होती है तथा पीठ और छातीमें घने रोंये होते हैं। वे रोंए घुटने तक लटके रहते हैं। नर मढ़के एक भी रोआं नहीं होता। बड़े मेष वा बकरेकी लम्बाई ११॥ हाथ होती है। उसके सींग ४ फुटसे ४'-४" तक लम्बे होते हैं। दोनों सींगमें ३४ इञ्चका फासला रहता है।

पीरपञ्जाल नामक हिमगिरिश्रेणी, काश्मीर उपत्यका, हजारा-पर्वतश्रेणी, चनाव और झेलमके मध्यवर्त्ती वर्द्धमान-पर्वत पर, विपासा नदीके उत्पत्ति-स्थानमें, सुलेमान पहाड़ पर तथा अफगानिस्तानमें ये छोटा छोटा दल बांध कर घूमते हैं। इसके सींगको शिकारी लोग अधिक मोलमें बेचते हैं।

पश्चिम, मध्य और उत्तर एशिया तथा पारस्यराज्यमें (Capraegagrus) श्रेणीके मेष रहते हैं। उपरोक्त श्रेणीके अन्तर्भुक्त होने पर भी बहुत पृथकता देखी जाती है।

हिमालयका दक्खिन उक्त श्रेणीके जैसा है। कदमें छोटा होने पर भी रंग छोड़ कर और सभी विषयमें समता देखी जाती है। इस श्रेणीका मेष (Capra sibirica) मध्य-एशियासे साइबिरिया तकके विस्तृत स्थानोंमें जा कर रहता है। दल बांध कर बाहर निकलता है। प्रत्येक दलमें सौसे अधिक मेष रहते हैं। कातिकमासमें मेढ़ा पहाड़की चोटी परसे उतर कर मेढ़ीके साथ सहवासमें मत्त रहता है। भीरु होने पर भी अन्य विषयोंमें यह साहस और सद्बुद्धिका परिचय देता है। पहाड़की चोटी पर जहां एक भी मेष नहीं जा सकता वहां यह आइबेक (Ibex) स्वच्छन्दसे आ जा सकता है। उस समय उसका बुद्धिकौशल देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। एक सरल पत्थरके टुकड़े पर केवल दो खुरके बल एक आइबेक सो जाता है तथा विपरीत ओर जानेवाला मेष उस तंग स्थानमें आसानीसे उसे लांघ कर अपने अभीष्ट स्थानको चला जाता है। ये केवल एक बच्चा जनता है।

४ पंजाबका जंगली मेष वा उड़ियाल (Ovis cycloceros) हिमालय समतट, पेशावर और पंजाबके हजारा आदि पहाड़ी भूभागमें पाया जाता है। ये कातिक मासमें कामोन्मत्त हो कर स्त्री सहवास करते हैं तथा एक समय सिर्फ दो बच्चे जनते हैं। दूरसे ये हरिणके जैसे दिखाई देते हैं। पर्वतकी अनुर्वर भूमि ही इनका विचरण स्थान है।

तिब्बतीय शा-पू (Ovis vignei वा O- montana) हिन्दूकूश, पामीर और कास्पियनसागर तक विस्तीर्ण भूभागमें हजार फुट ऊंचे पर्वत पर इनका वास है। गात्रवर्ण रक्ताभ धूसर है। तिब्बतीय ना-वा स्ना (Ovis Nahura) हिमालय प्रदेशमें भरूर या भरल कहलाता है।

यह मेष गाढ़ा नीला होता है, इसीलिये नेपालमें इसका नेरवती (नीलवती) नाम पड़ा है। बड़ा मेष मुंहसे पूंछ तक ४॥ या ५ फुट लम्बा होता है। पूंछ ७ इञ्च तथा ऊंचाई ३०-३६ इञ्च होती है। ये झुण्डके झुण्ड चलते हैं। मादा और नर मेष कभी कभी समूचा वर्ष एक साथ रहते हैं। जेठ या आषाढ़ महीनेमें ये एक बार दो बच्चे जनते है। आसिन कातिकमें इनके शरीरमें चर्बी होनेसे मेषमांस उत्तम समझा जाता है। हिमालयके बीच तिब्बतके तुषारधवल नयान या नियार (Ovis Ammonoides) नामकी और एक मेषकी जाति

देखा जाती है। ये प्रायः १३ हाथ (४ फुट ४ इञ्च) ऊंचे और इनके सींग प्रायः ३ फुट ४ इञ्च लम्बे होते हैं। सींगकी परिधि १७ से २४ इञ्च मोटी होती है। इस प्रकार इनके दो बड़े बड़े सींग और खोपड़ी एक साथ तौलमें २० सेर तक देखी गई है। इनके बड़े बड़े सींग होनेके कारण ये स्वेच्छासे समतलभूमिमें शिर झुका कर चर नहीं सकते। मुंह मिट्टीमें लगनेसे सोंगकी नोक मिट्टी तक छू जाती है। इस प्रकार सींगके खोलमें एक खरगोश अचानक लुका सकता है। मादा-मेषका सींग १८ इञ्च तक लम्बा होता है।

ये प्रायः १५ हजार फुट ऊंचे पर्वतवक्षमें घूमते फिरते हैं। शीतकालमें हिमालयके तुषारशिखर पर ये अनायास ही जाते आते हैं। इसी कारण ठंढ लगने पर ये झुण्डके झुण्ड मर जाते हैं। स्त्री-पुरुष परस्पर विभिन्न स्थानोंमें रहता है। ये हरिणके समान छलांग मार सकते हैं। इसलिये सहजमें इनका शिकार करना मुश्किल है। लादक आदि बौद्धोंके प्रधान देशोंमें देवताके उद्देश्यसे रखे गये पवित्र पत्थरके टुकड़े पर स्ना अथवा आइवेकका सींग सजा रहता है।

बोखाराके पूर्व अञ्चलमें पामीर अधित्यकासे १६ हजार फुट ऊंचे रुश या रस (Ovispolii) नामक और भी एक प्रकारके मेष देखे जाते हैं। अलावा इसके अर्मेनियामें O.Gmelini, कामरूकटकाक O,nivicola काकेशस पर्वतके *Cylindricornis*, कर्शिका और सार्डिनियाकी वनभूमिके O. musimon, अटलास पर्वतका O. tragelphus, अमेरिकाके रफी पर्वतके O. montana और O. Californiana आदिकी आकृतिमें विचित्रता रहने पर मुंह और देहको गठनप्रणालीको ले कर मेषश्रेणीके अन्तर्भुक्त किया जा सकता है। इनके शरीरमें काफी पशम होती है। चमरी-गो और दक्षिण अमेरिकाका पर्वतप्रिय लामा नामक पशु मेष जातिके अन्दर तो नहीं आता' पर पशमके कारण यहां उल्लेख किया गया।

प्राणितत्त्वविदोंने खोज कर निकाला है, कि आज तक समग्र भूमण्डलमें २१ प्रकारके विभिन्नजातीय मेष हैं। उनमेंसे एशियामें १५, यूरोपमें ४, अफ्रिकामें ३ और अमेरिकामें २ प्रकारके मेष हैं। अष्ट्रेलिया और पोलिनेसिया द्वीपपुञ्जमें पहले पहल मेष नहीं था। बादमें विभिन्न देशवासी वणिकोंसे उन देशोंमें लाया गया था। सभ्यजातिके समागममें प्रयोजनीय और व्यवहारोपयोगी घोड़े आदि सभी पशु वहां लाये गये थे।

फिलहाल संसारमें सब जगह मेषके ऊनका वाणिज्य प्रचलित है। स्पेन, जर्मन आदि यूरोपीय देश, अफ्रिका,मद्रास बम्बई आदि भारतीय नगर, अष्ट्रेलिया द्वीप, अमेरिका और अपरापर प्राच्य और प्रतीच्य देशोंसे इंगलैण्ड और भारतमें लोम आता है। देशी और कश्मीरी शाल, आलवान, आदि ऊनसे बनते है। मध्य-एशियो, हिमालयजात मेष और बकरेका ऊन सबसे अच्छा होता है।

बंगालमें ऊनी कपड़े नहीं बनते इसलिये कोई भी मेष नहीं पालता है। बङ्गालमें चीनी और रेशमके व्यवसायसे जितना लाभ होता है, मद्रास और बम्बईवासी केवल ऊनके कारोबारमें उससे अधिक लाभ उठाते हैं। विशेष चेष्टा करने पर यहां भी प्रचुर ऊन उत्पन्न हो सकता है।

पचास वर्ष पहले अस्ट्रेलिया द्वीपमें लाख रुपयेका भी ऊन उत्पन्न नहीं होता था तथा सौसे अधिक वर्ष पहले वहां एक भी मेष नहीं था। अंगरेज-वणिकोंके उत्साहसे वहां आज कल इतने मेष रखे गये हैं जिससे प्रति वर्ष ३ करोड़ रुपयेसे अधिकका ऊन उत्पन्न होता है।

भारतमें तृण या शस्यादिकी कमती नहीं है। उत्साह रहनेसे बंगाल देशके प्रत्येक जिलेमें बिना खर्चके लाखों मेष पाले जा सकते हैं। वीरभूम, मानभूम, हजारीबाग, राजमहल, भागलपुर आदि प्रदेशोंमें बहुतसे पहाड़ी स्थान हैं। वहांकी घाससे बिना खर्चके करोड़ों मेष प्रतिपालित हो सकते हैं जिनको बेचनेसे करोड़ों रुपयेकी आमदनी हो सकती है। अलावा इसके विन्ध्य पर्वतकी ऊंची अधित्यकामें मेष पोसनेसे उनका ऊन शीतप्रधान हिमालयवक्ष काश्मीरसे उत्तर आसाम तक पहाड़ी मेषके ऊनके समान हो सकता है। विन्ध्य-पर्वतके एक मेषसे ५से ६ सेर ऊन होता है जो १०)-१५) रुपयेमें बिकता है। मेष जातिविशेष ही लोमकी उत्पत्तिका अवान्तर कारण है।

हिमालयके उच्चशिखर पर बङ्गदेशीय मेष ले जानेसे उसका ऊन शालके लायक नहीं रह जाता और शाललोमका बकरा अगर हुगली जिलेमें ला कर रखा जाय, तो वह अश्व-कम्बलोपयोगी लोम नहीं देगा। गर्म देशके अच्छे मेषोंमें भी अधिक कोमल लोम होता है। मेष जातिके मध्य मरिणो सबसे अच्छा है। उसके कोमल लोमसे मरिणो नामक प्रसिद्ध वस्त्र प्रस्तुत होता है।

मेषक (सं० पु०) मिषतीति मिष-अच्, संज्ञायां कन्। १ जीवशाक, सुसना। २ मेढ़ा। ३ नैगमेषग्रह।

मेषकम्बल (सं० पु०) मेषलोमनिर्मितः कम्बलः मध्य-पदलोपि कर्मधा०। मेषलोमनिर्मित वस्त्र, भेड़के ऊनसे बनाया हुआ कपड़ा। पर्याय—ऊर्णायू।

मेषकुसुम (सं० पु०) चक्रमर्द, चकवंड नामक पौधा। (वैद्यनि०)

मेषपाल (सं० पु०) मेषपालक, गड़रिया।

मेषपुष्पा (सं० स्त्री०) मेषशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

मेषमांस (सं० क्ली०) मेषस्य मांसं। मेषका मांस, भेड़-का मांस। इसका गुण—बृंहण, पित्त और श्लेष्मकर तथा गुरुपाक माना गया है।

मेषलोचन (सं० पु०) मेषस्य लोचनमिव पुष्पमस्य। १ चक्रमर्द, चकवंड। (त्रि०) २ वह जिसकी आँखें भेड़-सी हों।

मेषवल्ली (सं० स्त्री०) मेषप्रिया वल्ली। अजशृङ्गी, मेढ़ा-सिंगी।

मेषवाहिन् (सं० त्रि०) १ मेषारोही, भेड़ पर चढ़नेवाला। स्त्रियां ङीप्। २ स्कन्दानुचर मातृभेद।

मेषविषाणिका (सं० स्त्री०) मेषस्य विषाणं शृङ्गमिव प्रतिकृतिरस्याः, विषाण-प्रतिकृतौ कन् टापि अत इत्वं। मेषशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

मेषशृङ्ग (सं० पु०) मेषस्य शृङ्गमिव तदाकृतित्वात्। १ स्थावर विषभेद, सिंगिया नामक स्थावर विष।

"मेषशृङ्गस्य पुष्पाणि शिरीषधवयोरपि।"
(सुश्रुत उ० १७ अ०)

(क्ली०) २ भेड़का सींग।

मेषशृङ्गी (सं० स्त्री०) मेषशृङ्ग गौरादित्वात् ङीष्। अज-शृङ्गी वृक्ष, मेढ़ासिंगी। पर्याय—नन्दीवृक्ष, मेषविषाणिका, चक्ष, चक्षुर्वहन, मेढ्रशृङ्गी, गृहद्रुमा। इसका गुण—तिक्त, वातवर्द्धक, श्वास और कासवर्द्धक, पाकमें रुक्ष, कटु, तिक्त, व्रण, श्लेष्मा और अक्षिशूल-नाशक। इसके फलका गुण—तिक्त, कुष्ठ, मेह और कफनाशक, दीपन, कास, कृमि, व्रण और विषनाशक।

मेषसंक्रान्ति (सं० स्त्री०) मेष राशि पर सूर्यके आनेका योग वा फल। इस दिन हिन्दू लोग सूत दान करते हैं इससे इसे 'सतुआ संक्रान्ति' भी कहते हैं।

मेषहृत् (सं० पु०) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

मेषा (सं० स्त्री०) मिष्यतेऽसौ मिष-कर्मणि घञ्-टाप्। १ त्रुटि, गुजराती इलायची। २ चमड़ेका एक भेद जो लाल भेड़की खालसे बनता है।

मेषाक्षिकुसुम (सं० पु०) मेषाणां अक्षिवत् कुसुमान्यस्य। चक्रमर्द, चकवंड।

मेषाख्य (सं० पु०) बालग्रहविशेष, नैगमेषग्रह।

मेषाण्ड (सं० पु०) मेषस्य अण्डमिव अण्डमस्य। इन्द्र।

मेषान्त्री (सं० स्त्री०) मेषस्य अन्त्रमिव अन्त्रं सूक्ष्मत्व-मस्याः। १ वस्तान्त्री वृक्ष। २ अजान्त्री लता।

मेषालु (सं० पु०) मेषाप्रियं आलुः। वर्वरावृक्ष, वन-तुलसी।

मेषाह्वय (सं० पु०) मेषस्य आह्वयः आह्वाऽस्य। चक्रमर्द, चकवंड।

मेषिका (सं० स्त्री०) मेषी-स्वार्थे कन् टाप् ह्रस्वः। मेषी, भेड़ी।

मेषी (सं० स्त्री०) मिष्यते गृह्यतेऽसौ इति मिष-घञ् ङीप्। १ तिनिशवृक्ष, सीसमकी जातिका एक पेड़। २ जटामांसी। ३ मेष स्त्रीजाति, भेड़ी। पर्याय—जालकिनी, अवि, एड़का, मेषिका, कूररी, रुजा, अविला, वेणी। इसके दूधका गुण—मधुर, गाढ़ा, स्निग्ध, कफापह, वातवृद्धि तथा स्थौल्यकारक। (राजनि०) दधिका गुण—सुस्निग्ध, कफपित्त कर, गुरु, वात और वातरक्तमें पथ्य, शोफ और व्रणनाशक। मट्ठेका गुण—क्लिष्टगन्ध, शीतल, मेधाहर, पुष्टिज्, स्थौल्यकर, मन्दाग्निदीपन, सारक पाकमें शीतल, लघु, योनिशूल, कफ और वातरोगमें बड़ा

हितकर। घीका गुण—वृद्धिनाशक, बलावह, शरीरक, विस्रगन्धिकारक। यह घी अतिशय गुरु होता है इसलिये सुकुमार शरीरवालोंको इसका वर्जन करना चाहिये। (राजनि०) मांसका गुण—वातनाशक, दीपन, कफ-पित्तवर्द्धक, पाकमें मधुर, वृंहण और बलवर्द्धक। (भावप्र०)

मेसूरण (सं० क्ली०) फलितज्योतिषमें दशम लग्न जो कर्म-स्थान कहा जाता है।

मेंहदी (हि० स्त्री०) पत्ती झाड़नेवाली एक झाड़ी। यह बलोचिस्तानके जंगलोंमें आपसे आप होती है और सारे हिन्दुस्तानमें लगाई जाती है। इसमें मंजरीके रूपमें सफेद फूल लगते हैं जिनमें भीनी भीनी सुगंध होती है। फल गोलमिर्चकी तरहके होते हैं और गुच्छोंमें लगते हैं। इसकी पत्तीको पीस कर चढ़ानेसे लाल रंग आता है। इसीसे स्त्रियां इसे हाथ पैरमें लगाती हैं। बगीचे आदिके किनारे भी लोग शोभाके लिये एक पंक्तिमें इसकी टट्टी लगाते हैं।

मेह (सं० पु०) मेहति क्षरति शुक्रादिरनेनेति, मिह-घञ्। १ प्रमेह रोग। विशेष विवरण प्रमेह शब्दमें देखो।

मेहतीति मिह-अच्। २ मेष, भेड़ा। ३ प्रस्राव, मूत। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जल, ब्राह्मण, गो और वायु इनके सामने पेशाब नहीं करना चाहिये, करनेसे प्रज्ञा नष्ट होती है।

"प्रत्यग्निं प्रति सूर्यञ्च प्रति सोमोदकद्विजान्।
प्रति गां प्रति वातञ्च प्रज्ञा नश्यति मेहतः॥" (मनु ४।५२)

मेह (हिं० पु०) १ मेघ, बादल। २ वर्षा, मेंह।

मेहकर—१ बरारराज्यके बुलदाना जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १९° ५२´ से २०° २५´ उ० तथा देशा ७६° २´ से ७६° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १००८ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें मेहकुर नामक १ शहर और ३१३ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० २०° १०´ उ० तथा देशा० ८६° ३७´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ५३३० है। प्रवाद है, कि यहां मेघकर नामक एक राक्षस रहता था। विष्णुने शार्ङ्गधर मूर्त्ति धारण कर उसका विनाश किया। उसी मेघकरके नामसे इस स्थानका मेहकर नाम हुआ है।

नगरके बाहर एक टूटा फूटा मकान देखा जाता है। लोगोंका कहना है, कि वह प्रायः २ हजार वर्ष पहले हेमाड़पन्थी द्वारा बनाया गया था। १७६० ई०में रघुरावके विद्रोहमें मदद पहुंचानेवाले नानपुरके भोंसले सरदारोंको दण्ड देनेके लिये पेशवा बाजीरावने सिन्धेराज और निजाम-मन्त्री रुकनउद्दौलाके साथ यहां छावनी डाली। १८७१ ई०में देवगाँवकी संधि तोड़ देनेके कारण नागपुरपति अप्पा साहब भोंसलेको दण्ड देनेके लिये अंगरेज सेनापति जेनरल डवटन यहां छावनी डालनेको वाध्य हुए।

यहांके हिन्दू और मुसलमान तांती अपने अपने व्यवसायसे बहुत उन्नत हो गये थे। मुसलमान तांतियोंने गत ४ सदीके भीतर ऐसा धन कमाया, कि पिंडारियोंके अत्याचारसे आत्मरक्षा करनेके लिये अपने अपने खर्चसे नगरके बाहरकी टूटी फूटी दीवारकी फिरसे मरम्मत कर नगरको सुदृढ़ कर लिया। मोमिनके प्रवेशद्वारमें जो शिलालिपि उत्कीर्ण है उसमें यह बात स्पष्ट लिखी है।

पिण्डारी डकैतोंके अत्याचार और उपद्रवसे नगर धीरे धीरे श्रीहीन हो गया। १८०३ ई०में दुर्भिक्ष और महामारीसे जनशून्य नगर दुर्दशाकी चरम सीमा पर पहुंच गया। अभी भी यहांके तांती अच्छी अच्छी धोती तैयार कर पैतृक वाणिज्य-गरिमाको अक्षुण्ण रखे हुए हैं। किन्तु मैन्चेष्टरके बने कपड़े कम मोलमें बिकनेके कारण देशी महंगे कपड़ेका आदर दिनों-दिन घटता जा रहा है।

मेहकुलान्तकरस (सं० पु०) प्रमेहरोगका एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—रांगा, अबरख, पारा, गंधक, चिरायता, पिपरामूल, त्रिकटु, त्रिफला, निसोथ, रसाञ्जन, विडङ्ग, मोथा, बेलसोंठ, गोखरूका बीया, अनारका बीया, प्रत्येक एक तोला, शिलाजित १ पल, इन सब वस्तुओंको वनककड़ीके रसमें घोंट कर एक रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान बकरीका दूध, जल, आंवलेका रस वा कुलथीका क्वाथ, है। इसका सेवन करनेसे २० प्रकारका प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग आरोग्य होता है।

(भैषज्यरत्ना०)

मेहघ्नी (सं० स्त्री०) मेहं हन्तीति हन टक् ङीप्। हरिद्रा, हल्दी।

मेहतर फा० पु०) १ बुजुर्ग, सबसे बड़ा। २ नीच मुसलमान जाति। यह झाड़ू देने, गंदगी उठाने आदिका काम करती है।

मेहदी—अफ्रिकावासी दुर्द्धर्ष मुसलमान जाति। फतोयावंशीय अफ्रिकाके प्रथम खलीफा मेहदासे इस सम्प्रदायका 'मेहदी वा मेधी' नाम पड़ा। मिस्रमें अङ्गरेजी प्रभुत्व स्थापित होनेके बाद यहांकी अङ्गरेज गवर्मेण्ट अफ्रीका राज्यकी सीमा बढ़ानेके उद्देश्यसे आस पासके राज्योंको हड़प करने लगी। इसी सूत्रसे सुदानके मेहदियोंके साथ वृटिश-सरकारका घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। गत १८८४-८५ ई०के सूदनकी लड़ाईमें अङ्गरेजसेनापति लार्ड किचनर १८६७ ई०में सूदनके मकबरेको कलङ्कित कर मेहदीजातिकी शक्ति कमजोर कर दी थी। इसी वीरताके कारण वे सरदार किचनरकी उपाधिसे भूषित हुए। आज भी जब कभी अङ्गरेजोंके साथ किसीका युद्ध होता है, तब मेहदी-सम्प्रदाय उसके विरुद्ध हथियार उठाता है।

मेहन (सं० क्ली०) मिहति सिञ्चति मूत्ररेतसी इति मिह् सेचने ल्यु। १ शिश्न, लिंग। २ मूत्र, मूत।

मेहनत (अ० स्त्री०) मिहनत, श्रम।

मेहनताना (फा० पु०) किसी कामकी मजदूरी, परिश्रमका मूल्य।

मेहनती (अ० वि०) मेहनत करनेवाला, परिश्रमी।

मेहना (सं० स्त्री०) मेह्यते क्षार्यते शुक्रमस्यामिति, मिह-क्षरणे णिच् अधिकरणे युच् स्त्रियां टाप्। १ महिला, स्त्री। २ मंहनीय।

मेहनावत् (सं० त्रि०) वर्षणविशिष्ट, वृष्टिप्रद।

मेहमान (फा० पु०) अतिथि, पाहुना।

मेहमानदारी (फा० स्त्री०) आतिथ्य, अतिथि-सत्कार।

मेहमानी (फा० स्त्री०) १ आतिथ्य, अतिथि सत्कार।

मेहमिहिरतैल (सं० क्ली०) प्रमेह-रोगोक्त तैलौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ४ सेर, काढ़ेके लिये बेलकी छाल, पढ़ारकी छाल, गनियारीकी छाल, गुलञ्च, आंवला, अनार कुल मिला कर १२॥० सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध ४ सेर, चूर्णके लिये नीमकी छाल, चिरायता, गोखरू, अनार, रेणुक, बेलसोंठ, देवदारु, दारुहरिद्रा, मोथा, त्रिफला, तगरपादुका, दारु, जामुनकी छाल, खसमूल कुल १ सेर। पीछे तैलपाकके विधानानुसार इसका पाक करना होगा। यह तेल लगानेसे प्रमेह, मूत्रदोष, हाथ पैर और मस्तककी ज्वाला बहुत जल्द दूर होती है। (भैषज्यरत्ना० प्रमेहरोगाधि०)

मेहमुद्गररस (सं० पु० मेहे मेहरोगे मुद्गर इव रसः। प्रमेहरोगका एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—

रसाञ्जन, सांचर नमक, देवदारु, बेलसोंठ, गोखरूका बीया, अनारका बीया प्रत्येक एक तोला, लौह ६ तोला, गुग्गुल १ पल। इन सब द्रव्योंको एक साथ घीमें मिला कर मले। बाद उसके एक रत्तीकी गोली बनावे। इसके सेवनसे बीस प्रकारका प्रमेह और मूत्रकृच्छ्रादि अति शीघ्र जाता रहता है। (भैषज्यरत्ना० प्रमेहरोगाधि०)

मेहमुद्गरवटिका (सं० स्त्री०) प्रमेह रोगकी गोली। इसके बनानेका तरीका—रसाञ्जन, सांचर नमक, देवदारु, बेलसोंठ, गोखरूका बीया, अनार, चिरैता, पीपलकी जड़, प्रत्येक एक तोला, लौहचूर्ण, गुग्गुल १ पल इन सबोंको घीमें अच्छी तरह मिला कर १ माशाकी गोली बनावे। इसका अनुपान बकरीका दूध या जल है। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, हलीमक आदि रोग प्रशमित होता है। (भैषज्यरत्ना० प्रमेहरोगाधि०)

मेहर (फा० स्त्री०) मेहरबानी, कृपा।

मेहर—आगरामें रहनेवाले एक मुसलमान कवि। ये चुनारके मुनसिफ थे। इनका यथार्थ नाम मीर्जा हातिम आलिबेग था। 'पाजमेहर' नामक एक दीवान लिख कर इन्होंने मेहरकी उपाधि पाई थी। १८७३ ई०में ये आगरामें विद्यमान थे।

मेहर—लखनऊके राज्यच्युत नवाब अमीन उद्दौला सैयद आघाअली खांकी उपाधि। ये एक प्रसिद्ध कवि थे। इनका बनाया एक उर्दू दीवान पाया जाता है।

मेहर—१ बम्बई प्रदेशके सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण १५२५ वर्गमील है। इसके उत्तरमें लरखाना, पूर्वमें सिन्धुनद, दक्षिणमें सेवान और पश्चिममें खिलात है।

इस विभागका पश्चिमांश पहाड़ी अधित्यकासे पूर्ण है। यह ६ हजार फीट ऊंचा है। सिर्फ पश्चिम नाराखालके दोनों किनारोंकी भूमि समतल है। इस छोटी नदी और सिन्धुनदके बीचका भूभाग उर्वरा है। फसल अच्छी लगनेके कारण यहां वहुवा, मारुई, कूदन आदि और भी वहुत-सी खाड़ियां खोदी गई हैं। पहाड़के पासकी भूमिमें रूई अच्छी लगती है। स्थान स्थान पर लवण प्रधान 'कालर' नामक उषर भूमि है। खीरथर पर्वत श्रेणीमें फिटकरी पाई जाती है।

मेहर और खैरपुर-नाथेशाह नामक दोनों नगर ही प्रधान हैं। खीरथर गिरिशृङ्गमें धर-यारो और दन्ना-टौअर नामक दो नगरोंकी आवहवा अच्छी है।

यहां एक तरहका मोटा सूती कपड़ा तैयार होता है जो नाव द्वारा हैदराबाद आदि नगरोंमें भेजा जाता है।

२ उक्त जिलान्तर्गत एक तालुक। भू-परिमाण २८२॥ वर्गमील है।

३ उक्त जिलान्तर्गत एक प्रधान नगर। यह म्युनिसि-पलिटीकी देख-भालमें है। यह अक्षा० २७° २ से ले कर २७° २१´ उ० तथा देशा० ६७° ३०´ से ले कर ६८° ४०´ पू० ककोल खाड़ीके तीर पर अवस्थित है।

मेहरनासिर (मिर्जा)—फारसके राजा करीम खांके आश्रित एक राजवैद्य। हकीमी विद्यामें पारदर्शिताके साथ साथ इन्होंने कवितामें भी अच्छा नाम कमाया था। फारसके कवियोंकी बनाई जितनी 'वासन्तीवर्णना' मिली हैं उनमें इनकी लिखी मसनवी ही सबसे अच्छी है।

मेहरवान (फा० वि०) कृपालु, अनुग्रह करनेवाला। बड़ों-के सम्बोधनके लिये अथवा किसीके प्रति आदर दिख-लानेके लिये भी इस शब्दका प्रयोग होता है।

मेहरवानगी (फा० स्त्री०) मेहरवानी देखो।

मेहरवानी (फा० स्त्री०) कृपा, अनुग्रह।

मेहरा (हिं० पु०) १ स्त्रियोंकी-सी चेष्टावाला, स्त्री-प्रकृति-वाला। २ स्त्रियोंमें वहुत रहनेवाला। ३ जुलाहोंकी चरखीका घेरा। ४ खत्रियोंकी एक जाति।

मेहराव (अ० स्त्री०) द्वारके ऊपरका अर्द्धमण्डलाकार बनाया हुआ भाग, दरवाजेके ऊपरका गोल किया हुआ हिस्सा। मेहराव बनानेकी रीति प्राचीन हिन्दू शिल्पमें प्रचलित न थी। विदेशियोंमें विशेषतः मुसलमानोंके द्वारा ही इस देशमें इसका प्रचार हुआ है।

मेहरावदार (फा० वि०) ऊपरकी ओर गोल कटा हुआ।

मेहरारू (हिं० स्त्री०) स्त्री औरत।

मेहरी (हिं० स्त्री०) १ स्त्री, औरत। २ पत्नी, जोरू।

मेहरुन्निसा—सम्राट् जहांगीरकी पत्नी नूरजहांकी कन्या। यह शेर अफगानकी लड़की थी। इसीके साथ जहांगीर-का छोटा लड़का शाहरियारका विवाह हुआ था।

मेहरुन्निसावेगम—सम्राट् आलमगीरकी ५वीं लड़की। यह १६६१ ई०में अरंग महल नामकी स्त्रीसे पैदा हुई थी। सुलतान मुराद वक्सका लड़का युवराज एजिद वक्सने इससे विवाह किया था। १७०४ ई०में राजकन्याका पर-लोक-वास हुआ।

मेहवज्र (सं० क्ली०) प्रमेहरोगका एक औषध। प्रस्तुत प्रणाली—रससिन्दूर, कान्तलौह, शिलाजीत, मैनसिल, गंधक, त्रिकटु, त्रिफला, वेल, जीरा, निर्मली, हल्दी। इन सबोंको भंगरैयेके रसमें तीस दफे भावना दे कर आध तोलेकी गोली बनावे। यह औषध मधुके साथ चाटना होता है। इसका अनुपान महानीमका बीया तीन तोला, चावलका पानी ८ तोला, घी १ तोला है। इससे कठिन प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र वहुत जल्द दूर होता है।

(रसेन्द्रसारस० प्रमेरोगाधि०)

मेहसी—चम्पारण जिलेके मधुवनी महकुमेके अन्तर्गत एक पुराना बड़ा गांव। यह मुजफ्फरपुरसे मोतिहारी जानेके रास्ते पर अवस्थित है। इष्ट इण्डिया कम्पनीने जब पहले पहल बंगालमें अधिकार पाया उस समय उन्होंने इसे उत्तर-विहारका सदर बनाया था। यहां बढ़िया तम्बाकू तैयार होता है। यहांकी कोठीके अङ्गरेज लोग तम्बाकूका बीया लाते थे।

मेहानल (सं० पु०) मेहे मेहरोगे अनल इव। प्रमेह रोगका एक औषध। इसके बनानेकी प्रणाली—रस-सिन्दुर और रांगेका बराबर बराबर भाग ले कर मधुमें मिलावे। बादमें दो रत्तीकी गोली बनावे। इसका अनुपान कुत्रकी जड़ और दूध है। इसके सेवनसे पुराना प्रमेह अति शीघ्र दूर हो जाता है।

(भैषज्यरत्ना० प्रमेहरोगाधि०)

मेहिन् (सं० पु०) मेहः मेहरोगः अस्यास्तीति इनि। मेहरोगी, सुजाकी।

मेहेदपुर—मध्यभारतके इन्दौर राज्यान्तर्गत एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २३° २१' उ० तथा० देशा० ७५° ४०' पू० सिप्रा नदीके दाहिने किनारे, उज्जयिनी रेलवे स्टेशनसे १२ कोस पर अवस्थित है। यहां बम्बई-गवर्मेण्टके अधीनस्थ एक सेनावास है। १८१७ ई०में अङ्गरेज सेनापति सर टामस हिसलपने नदीके दूसरे किनारे होलकर राजकी महाराष्ट्र सेनाको हराया और उनकी ६३ कमानें छीन ली थीं। सिप्राके किनारे तीन हजार मराठी मारे गये थे।

मेहेरपुर—१ नदिया जिलान्तगत एक उपविभाग। यह अक्षा० ३३° ३६' से ले कर २४° ११' उ० तथा देशा० ८८° १८' से ले कर ८८° ५३' पू०के बीच पडता है। भू-परिमाण ६३२ वर्गमील है। यहां तेहाट, मेहेरपुर, करीमपुर और आंगनी नामके चार थाने लगते हैं।

२ नदिया जिलान्तर्गत एक नगर और विभार सदर। इसका प्राचीन नाम मिहिरपुर है। यह अक्षा० २३° ४७' उ० तथा देशा० ८८° ३४' पू० भैरव नदीके किनारे अवस्थित है। यहां पीतलके बरतनोंका बड़ा भारी कारबार है। चर्च मिशनरी सोसाइटीका एक प्रचारकेन्द्र यहां अवस्थित है।

मेहोमदाबाद (महमूदाबाद)—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके खेरा जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भू-परिमाण १७४ वर्गमील है।

२ उक्त महकूमेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ५०' उ० तथा देशा० ७२° ४६' पू०के बीच पड़ता है। यहां बम्बई-बड़ोदा मध्यभारत रेलवे लाइनका एक स्टेशन है, इस कारण यहांके वाणिज्यमें बड़ी उन्नति हुई है। १४७९ ई०में गुर्जरपति महमूद बेगड़ाने इस नगरको बसाया था। राजा ३य महमूदने (१५३६-५४) नगरको बढ़ा कर यहां ६ मील तक एक मृगया-वन बनवाया। इस उद्यानके चारों कोनोंमें चार सुन्दर प्रासाद और अट्टालिका-प्रवेशके दाहिने किनारे एक एक बाजार हैं। यहांके अन्यान्य प्रत्नतत्त्वोंमें महमूद बिगाड़ाके प्रधान मन्त्री मुबारक सैयद और उनके सालेका १४८४ ई०में बनाया जो समाधि-मन्दिर है वह उल्लेखयोग्य है।

मैं (हिं० सर्व०) स्वयं, सर्वमान उत्तम पुरुषमें कर्त्ताका रूप।

मैंगानिज (Manganese)—खनिज पदार्थविशेष। रसायनशास्त्रमें इसे अधातु (Manganese) कहा है। प्रायः सभी स्थानोंमें यह काले अक्सिद (Black oxide) के आकारमें पाया जाता है। यह साधारणतः सफेदी लिये भूरे रंगका तथा क्षणभङ्गुर और कठिन होता है। यहां तक कि इससे इस्पात भी कट जाता है। इसमें सामान्य चुम्बक-आकर्षणशक्ति है। बहुत देर तक खुले स्थानमें रख देनेसे वायु लगनेके कारण यह असिडाइजड हो जाता है। उल्कापत्थर-संश्लिष्ट लोहेमें यह पदार्थ अधिक परिमाणमें रहता है। इसका आणविक गुरुत्व ५५ और आपेक्षिक गुरुत्व ८०७१ है। अधिक गरमी लगनेसे कार्बोनके द्वारा उक्त प्रस्तरज लोहेका आधा अक्सिद निकाल देनेसे यह पदार्थ पाया जाता है। दूसरे उपायसे असल मैंगानिज नहीं निकाली जा सकती। लोहेके साथ मिलानेसे यह उक्त धातुको अत्यन्त दृढ़ और टिकाऊ बना देती है। कांच और एनामेल रंग करनेके लिये इसका अधिक व्यवहार देखा जाता है।

कार्बोन मिलानेसे इसमेंसे Carbonate of magnesia और हाइड्रोक्लोरिक एसिड तथा ब्लैक-अक्सिदके योगसे chlorides of Manganese उत्पन्न होता है। यह Proto-chloride, perchloride और sesquichloride के भेदसे तीन प्रकारका है। अलावा इसके Protoxide, sesquioxide. binoxide, peroxide, manganic, acid और permanganic acid तथा Sulphate of manganese और Sulphides of Manganese आदि विभिन्न मिश्र पदार्थ इसके योगसे प्रस्तुत होता है।

मैकल (मेकल)—मध्यप्रदेशके मण्डला जिलान्तर्गत बिलासपुरके समीप एक गिरिश्रेणी। यह अमरकंटकसे दक्षिण-पश्चिम ७० मील तक फैली हुई है। पीछे यह क्रमशः सालेतेकी नामसे दौड़ गई है। इसकी अधित्यकाभूमि २ हजार फीट ऊंची है जिनमें लाफा नामक शृङ्ग

३२०० फीट है। इसकी चोटी पर बड़े बड़े सीसमके पेड़ हैं। पर्वत परके रहनेवाले 'दहिया' प्रथासे खेती-वारी करते हैं।

मैका (हिं० पु०) मायका देखो।

मैगनेसियम—स्वनामप्रसिद्ध धातव पदार्थविशेष। इसीसे असल मैगलेसिया-क्षार उत्पन्न होता है। १८०८ ई०में सर हामफ्रे डेभिसको पटासियम और क्लोरइड विश्लेषण करनेके समय इस धातुका अस्तित्व मालूम हुआ। यह चांदीकी तरह सफेद होता और पीटनेसे बढ़ता है। सूखी हवामें रखनेसे किसी प्रकारका रूपान्तर नहीं होता, किन्तु जलीय वायुयुक्त स्थानमें रखनेसे उसके ऊपरी भाग पर थोड़े ही समयके अन्दर मैगनेसिया जम जाती है। उपयुक्त ताप (Boiling point) से इसमें-से *Hydrogen* वाष्प निकलती है। अधिक ताप लगनेसे जब यह जल कर लाल हो जाता है, तब उसमेंसे एक प्रकारकी सफेद रोशनी निकलती है। यह रोशनी बहुत सफेद होनेके कारण, अग्नि-क्रीड़ा-प्रदर्शनी तथा फोटोग्राफि-कार्यमें इससे तैयार किया हुआ फीता वा तार जलानेके काममें आता है। अधिकांश विषयमें यह दस्तेके जैसा है। जो सब धातु साधारण उत्तापसे (Ordinary temperature) जरा भी परिवर्त्तन नहीं होती, उस धातुमें इसका आणविक गुरुत्व बहुत थोड़ा है। अधिक उत्तापसे यह गल जाता है। इसका आक्सिड ही औषधके काममें आनेयोग्य मैगनेसिया है।

कार्बनेट आव मैगनेसिया और हाइड्रोक्लोरिक एसिड-से Chloride of magnesium तथा सलफेट आव मैग-नेसिया और सलफाइड आव बारियम (Sulphide of barium) से Sulphide of magnesium बनता है।

मैगनेसिया (Magnesia)-क्षारमृत्तिकाभेद। इस खारी मिट्टीमें बाराइटी (Baryta), स्ट्रोन्सिया (Strontia) और चूने (*Lime*) आदिका अंश रासायनिक विश्लेषणसे पाया जाता है। लिडिया राज्यके मैगनेसिया नगरमें यह मिट्टी पहले पहल देखी गई थी, इसीसे इसका नाम मैगनेसिया हुआ है।

मैगनेसियम नामक धातु भस्म (Oxide) होनेसे वर्त्तमान आकारमें परिवर्त्तित होती है। साधारणतः प्रचण्ड उत्ताप द्वारा कार्बनेटको दग्ध करनेसे मैगनेसिया पायी जाती है। दग्ध करनेके समय कार्बनेट जल कर एक प्रकारकी रोशनी देता है। औषधालय आदिमें यह कैल-सिनड मैगनेसिया नामसे व्यवहृत होता है। लेवोरे-टरीसे विशुद्ध नाइट्रेटको दग्ध करके भी परिष्कृत मैग-नेसिया निकाली जा सकती है।

उपरोक्त विभिन्न प्रकारके द्रव्यसे जो मैगनेसिया पाई जाती है वह सफेद चूना होने पर भी उसका घनत्व एक दूसरेसे विभिन्न होता है। अग्नि उत्तापसे इस भस्मका और कोई रूपान्तर नहीं होता और न यह गलती ही है। वायुसे यह कार्बनेटाम्ल और जल खींचती है। जलमें डुबोये रहनेके बाद यह क्रमशः तापके साथ तथा *Hydrate of magnesia* आकारमें आ जाती है। स्वभा-वज Crystallized hydrate of magnesia में पार्थिव ब्रुसाइट (Brucite) मिली रहती है। यह सफेद चूर्णमें रूपान्तरित होने पर भी जल तथा अङ्गाराम्लशोषणमें समर्थ है। जलमें भिगो कर रखनेसे इसका बहुत थोड़ा अंश गलता है। इसमें अम्लनाशक और विरेचकगुण रहनेके कारण चिकित्सक लोग अन्यान्य औषधोंके साथ इसका प्रयोग करते हैं।

अन्यान्य पदार्थोंके साथ मिला कर इसे स्वतन्त्रगुण-विशिष्ट किया गया है। एलोपैथिकके मतसे कार्बन मिलानेसे इसमेंसे बाइकार्बनेट, मनोकार्बनेट आव मैग-नेसिया बनती है। यह भी अम्लनाशक और विरेचक है। अलावा इसके साइट्रिक एसिड मिलानेसे इससे जो citrate of magnesia बनती है उसका अम्लमधुर पानीय रूपमें व्यवहार किया जा सकता है। यह मृदु-विरेचक और हृद्य है। इस प्रकार नाइट्रिक एसिड मिलानेसे nitrate of magnesia, फोसफेट आव सोडा मिलानेसे Phosphate और hypo-phosphate of mag-nesia, सिलिकेट मिलानेसे Silicates और hydrated silicate of magnesia तथा गन्धक मिलानेसे sulphate of magnesia पार्थिव पदार्थमें एक साथ मिली हुई उत्पन्न देखी जाती है।

मैंगल (सं० पु०) १ मत्त हाथी, मस्त हाथी। (त्रि०) २ मत्त, मस्त।

मैच (अं० पु०) किसी प्रकारके गेंदके खेल अथवा इसी प्रकारके और किसी खेलकी बाजी।

मैत्र (सं० क्ली०) मित्रादागतमिति, यद्वा मित्रस्येदमिति (तस्येदम् : पा ४।३।१२०) इति अण। १ अनुराधा नक्षत्र। मित्रः सूर्यो देवतास्येति। २ आदित्यलोक, सूर्य-लोक।

"पायुनोत्क्रममाणान्तु मैत्रं स्थानमवाप्नुयात्।
पृथिवीं जघनेयाय ऊरुभ्याञ्च प्रजापतिम्॥"

(भार० १२।३१७।३)

३ पुरीषोत्सर्ग, मलत्याग।

"ततः कल्यं समुत्थाय कुर्यान्मैत्रं नरेश्वरः।
नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः॥"

(अह्नि० त०)

मित्रस्य भावः मित्र-अण्। ४ मित्रता, मित्रका भाव। (त्रि०) ५ मित्रसम्बन्धी, मित्रका। ६ मित्रता-शाली, दोस्ती करनेवाला।

"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥"

(गीता १२।१३)

७ हीनके प्रति कृपा करनेवाला, दयालु। (पु०) ८ ब्राह्मण।

"जप्येनैव तु संसिध्येत् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते॥"

(मनु० २।८७)

९ उदय मुहूर्त्तसे तृतीय मुहूर्त्त, सूर्य जिस मुहूर्त्तमें उदय होते हैं उससे तीसरे मुहूर्त्तका नाम मैत्र है।

"मैत्रे मुहूर्त्ते शशलाञ्छनेन योगं गतासूत्तरफल्गुनीषु।"

(कुमार १।६)

१० प्राचीनकालकी एक वर्णसंकर जाति। व्रात्य-वैश्यसे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है।

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात् सुधन्वाचार्य एव च।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च॥'

(मनु १०।२३)

११ वेदकी एक शाखा।

मैत्रक (सं० क्ली०) मित्रता, दोस्ती।

मैत्रकन्यक (सं० पु०) बौद्धभेद।

मैत्रता (सं० पु०) मैत्रस्य भावः तल् टाप्। मित्रता, बन्धुत्व।

मैत्रभ (सं० क्ली०) अनुराधा नक्षत्रका नामान्तर।

मैत्रवर्द्धक (सं० त्रि०) मित्रता वृद्धिकारी।

मैत्रशाखा (सं० स्त्री०) वैदिक शाखाभेद।

मैत्रसूत्र (सं० क्ली०) १ मैत्रतारूप रज्जु। २ बौद्धसूत्र-भेद।

मैत्राक्ष (सं० पु०) एक प्रकारका प्रेत।

मैत्राक्षज्योतिक (सं० पु०) पूयभक्ष प्रेतयोनिविशेष, मनुके अनुसार एक योनि जिसमें अपने कर्त्तव्यसे भ्रष्ट होनेवाला वैश्य जाता है। (मनु १२।१२ कुल्लुक)

मैत्राबार्हस्पत्य (सं० त्रि०) मित्र और बृहस्पति सम्बन्धीय।

मैत्रायण (सं० पु०) मित्रस्य अपत्यं पुमान्। (नड़ादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) इति मित्र-फक्। १ मित्रका गोत्रापत्य। (क्ली०) २ सूर्यकी तरह प्रतिदिन विचित्र गतिविशिष्ट।

"न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत्॥"

(भारत १२।७९६१ श्लो०)

३ गृह्यसूत्रके प्रणेता एक ऋषि। ४ मैत्र नामक वैदिक शाखा।

मैत्रायणक (सं० त्रि०) मैत्रायणसम्बन्धीय।

मैत्रायणि (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

मैत्रायणी (सं० स्त्री०) एक बौद्ध स्त्री आचार्य्या, पूर्णकी माता।

मैत्रायणीय (सं० पु०) मैत्रायणसम्बन्धीय एक वैदिक शाखा।

मैत्रायण्य (सं० पु० मैत्रायणका गोत्रापत्य।

मैत्रावरुण (सं० पु०) मित्रश्च वरुणश्चेति (देवताद्वन्द्वे च। पा ७।३।२१) इति मित्रस्य वृद्धिः (दीर्घाच्च वरुणस्य। ७।३।२३) इति वरुणस्य न वृद्धिः, तयोरपत्यमिति, मित्रा-वरुण-अण्। अगस्त्य, मित्रावरुणका अपत्य। ऋग्वेदमें लिखा है—उर्व्वशीको देख कर मित्र और वरुण दोनों देवताओंका वीर्य्य एक जगह स्खलित हो गया था, उसी वीर्य्यसे अगस्त्य और वशिष्ठ ये दो ऋषि उत्पन्न हुए थे। * मित्र, वरुण, अगस्त्य और वशिष्ठ शब्द देखो।

* "उतासि मैत्रावरुणो वशिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवा पुष्करे त्वाददन्त॥"
(ऋक् ७।३३।११)

मैत्रावरुणि (सं० पु०) मैत्रावरुणयोरपत्यमिति मैत्रावरुण (अत इञ्। पा ४।१।९५) इति इञ्। १ अगस्त्य।

"तेऽभिगम्य महात्मानं मैत्रावरुणिमच्युतम्।
आश्रमस्थं तपोराशिं कर्मभिः स्वैरभिष्टुवन्॥"
(भारत ३।१०३।१४)

२ सोलह ऋत्विजोंमेंसे पाँचवां ऋत्विज।

मैत्रावरुणीय (सं० त्रि०) मैत्रावरुण ऋत्विज् सम्बन्धीय।
(सांख्यकौ० ३०।३)

मैत्रि (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य। इनके नाम पर मैत्र्युपनिषद्की रचना हुई है।

मैत्रिक (सं० पु०) मित्र सम्बन्धीय, मित्रका कार्य।

मैत्रिन् (सं० त्रि०) मैत्रं मित्रता तदस्यास्तीति मित्र-इन्। मित्र, दोस्त।

"स एव बन्धुः स पिता स मैत्री जननी च सा।
स च भ्राता पतिः पुत्रो यः कृष्णवर्त्म दर्शयेत्॥"
(पञ्चरात्र २८।२३)

मैत्री (सं० स्त्री०) मैत्र-ङीष्, यद्वा मित्र-भावे ष्यञ्, ङीष् ततः (हलस्तद्धितस्य। पा ६।४।१५०) इति यलोपः। मित्रका भाव, मित्रका कर्म, मित्रता, बन्धुत्व। विद्विष्ट, पतित, उन्मत्त, बहुवैर, अतिशय निन्दित, अतिकीटक, असती स्त्री तथा उसका स्वामी, क्षुद्र, मिथ्यावादी, अतिशय व्ययशील, परोवादरत तथा शठ, इन सब व्यक्तियोंसे मैत्री नहीं करनी चाहिये। उनके साथ मित्रता करनेसे पद पदमें विपद्की सम्भावना है।

"विद्विष्ट पतितोन्मत्त बहुवैरातिकीटकैः।
बन्धकीबन्धकीभर्त्तृ क्षुद्रानृतकथैः सह॥
तथातिव्ययशीलैश्च परीवादरतैः शठैः।
बुधो मैत्री न कुर्व्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत्॥"
(विष्णुपु० ३।११ अ०)

मैत्रीनाथ (सं० पु०) एक ग्रन्थकार।

मैत्रीपूर्व (सं० त्रि०) मित्रता पूर्वक।

मैत्रीबल (सं०पु०) मैत्री मित्रता बलमस्य। १ बुद्धका नाम। मैत्री, मुदिता आदि योगके चार साधन-कर्म है जो बुद्धको प्राप्त हो गये थे; इसीलिये उनका यह नाम पड़ा। २ शाक्यमुनिके अवतार एक राजाका नाम। (त्रि०) ३ मित्रताके बन्धनमें बंधा हुआ।

मैत्रीभाव (सं० पु०) बन्धुता।

मैत्रेय (सं० पु०) मैत्रे मित्रतायां साधुरिति मैत्र-ढञ्। १ बुद्धभेद, एक बुद्धका नाम जो अभी होनेवाले हैं। मित्रयोरपत्यमति मित्रयु (गृष्ट्यादिभ्यश्च। पा ४।१।१३६) इति ढञ्, (ततः केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः। पा ७।३।२) इति यु स्थाने इयादेशे प्राप्ते (दाण्डिनायन हास्तिनायन। पा ६।४।१७४) इति युलोपो निपातितः। २ मुनिविशेष, भागवतके अनुसार एक ऋषिका नाम जो पराशरके शिष्य थे और जिनसे विष्णु पुराण कहा गया था।

"एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः।
प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत॥"
(भागवत ३।७।१)

३ सूर्य्य। ४ वर्णसंकर जातिविशेष, प्राचीनकालकी एक वर्णसंकर जाति। इसकी उत्पत्ति वैदेह पिता और अयोगव मातासे कही गई है। इसका काम दिन रातकी घड़ियोंको पुकार कर बताना था।

"मैत्रेयकन्तु वैदेहो माधूकं सम्प्रसूयते।
नॄन् प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टा ताड़ोऽरुणोदये॥"
(मनु १०३३.)

(त्रि०) ५ मित्रसम्बन्धी। ६ मित्रयुवंशोद्भवादि

"दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृपः।
मैत्रायणी ततः शाखा मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः॥"
(हरिवंश ३२।७७)

उतासि च हे वशिष्ठ। मैत्रावरुणः। मित्रावरुणयोः पुत्रोऽसि ब्रह्मन् वशिष्ठ! उर्वश्या अप्सरसो मनसो समायं पुत्रः स्यादिति ईदृशात् संकल्पात् द्रप्सं रेतः मित्रावरुणयोरुर्वशीदर्शनात् स्कन्नमासीत्, तस्मादधिजातोऽसि।

तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्व्वशीम्।
रेतश्चस्कन्द तत् कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे।
तेनैव च मुहूर्त्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ।
अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च तत्रर्षी सम्बभूवतुः॥
बहुधा पतितं रेतः कलशे च जले स्थले।
स्थले वशिष्ठस्तु मुनिः सम्भूतो ऋषिसत्तमः॥
कुम्भे त्वगस्त्यः सम्भूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः।
उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः॥"
(सायण)

७ बोधिसत्त्वभेद । मृच्छकटिकके विदूषकका नाम। स्त्रियां ङीष्। ८ मैत्रेयी, मैत्रेय द्वारा उच्चारित उपनिषद् ।

मैत्रेयक (सं० पु०) एक वर्णसंकर जाति। (मनु० १०।३४)

मैत्रेयरक्षित (सं० पु०) एक वैयाकरण । इन्होंने तन्त्रप्रदीप या अनुन्यास नामक जिनेन्द्रबुद्धिकृत काशिका-विवरण पञ्चिकाकी टीका लिखी। अलावा इसके इन्होंने अपने बनाये धातुप्रदीपमें न्यासकारं धातुपारायण और रूपावतार आदि ग्रन्थोंका उल्लेख किया है।

मैत्रेयवन (सं० पु०) एक प्राचीन वन।

मैत्रेयिकी (सं० स्त्री०) १ दोस्तोंमें परस्पर विवाद, मित्रयुद्ध। २ वह जो मित्रयुसे उत्पन्न हुई हो।

मैत्रेयी (सं० स्त्री०) १ उपनिषद् भेद । २ अहल्याका एक नाम। ३ सुलभा। (आश्वलायन गृह्यसू० ४।४) ४ योगिराज याज्ञवल्क्यकी स्त्री । ज्ञान और विद्यामें मैत्रेयी याज्ञवल्क्यके समान ही थी। याज्ञवल्क्यने संन्यास ग्रहण करनेकी इच्छासे एक दिन मैत्रेयीसे कहा कि मैं अब संन्यास ग्रहण करने जाता हूं। अतः मैं चाहता हूं, कि जो कुछ धन है वह तुमको और कात्यायनीको आधा आधा बांट दूं। नहीं तो हमारे न रहने पर सम्भव है तुम लोगोंमें झगडा हो। मैत्रेयीने कहा— इन नश्वर पदार्थोंको ले कर मैं क्या करूंगी। मुझे इन पदार्थोंसे कुछ भी प्रयोजन नहीं, आप उस ब्रह्मज्ञानका उपदेश मुझे दें जिससे यथार्थ कल्याण हो। मैत्रेयीके कहने पर याज्ञवल्क्यने ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया। मैत्रेय पतिके संन्यास ग्रहण करने पर यह वहां ही रह कर अध्यात्मतत्त्वका अनुशीलन करने लगी।

मैत्र्य (सं० क्ली०) मित्र-ष्यञ्। मित्रता, दोस्ती।

"प्राहुः साप्तपदं मैत्र्यं जनाः शास्त्रविचक्षणाः।
मित्रताञ्च पुरस्कृत्य किञ्चिद्वक्ष्यामि तच्छृणु॥"

(पञ्चतन्त्र, ३।५।३९)

मैथिल (सं० पु०) मिथिला निवासोऽस्येति मिथिला (सोऽस्यनिवासः। पा ४।३।८९) इति अण्। १ मिथिला देशवासी। २ मिथिलाधिपति, मिथिलादेशका राजा। ३ राजर्षि जनक। (त्रि०) ४ मिथिलादेशका। ५ मैथिलासम्बन्धी।

मैथिलकायस्थ—१ मिथिलावासी एक कायस्थ कवि। कवीन्द्र चन्द्रोदयमें इनका उल्लेख देखनेमें आता है। २ कायस्थकी एक श्रेणी। कायस्थ देखो।

मैथिलवाचस्पति (सं० पु०) एक प्रसिद्ध पण्डित।

मैथिलब्राह्मण—मिथिलावासी-ब्राह्मण सम्प्रदाय। सीताके पिता जनक या मिथिकी राजधानी मिथिलासे इसका नामकरण हुआ है। मिथिला देखो। ये लोग पञ्चगौड़के अन्तर्गत हैं।* आजकल तिरहुत, सारण, मुजफ्फरपुर, दरभङ्गा, भागलपुर, मुङ्गेर, पूर्णिया और नेपालके किसी किसी अंशमें इस श्रेणीके ब्राह्मणोंका प्रधान वास देखा जाता है। अलावा इसके युक्त प्रदेश और बङ्गालमें भी कहीं कहीं ये लोग आ कर बस गये हैं। जिनका बङ्गालमें वास है वे वैदिकश्रेणीके साथ मिल गये हैं।

मैथिल ब्राह्मणोंके मध्य वात्स्य, शाण्डिल्य, भरद्वाज, काश्यप, कात्यायन, गौतम, सावर्ण, पराशर, कौशिक, गर्ग और कृष्णात्रेय गोत्र हैं। फिर इन ग्यारह गोत्रोंमें १७७ 'डीह' वा 'मूल' हैं। इनमेंसे वात्स्यगोत्रमें ४६, शाण्डिल्यगोत्रमें ५८, भरद्वाजगोत्रमें १३, काश्यपगोत्रमें ७, पराशरगोत्रमें ४, कौशिकमें २, गर्गगोत्रमें १ और कृष्णात्रेय गोत्रमें १ मूल पाया जाता है।

मैथिलश्रेणीके मध्य प्रधानतः पांच कुल देखे जाते हैं, १ श्रोत्रिय, २ योग, ३ पञ्जिबद्ध, ४ नागर और ५ जैवार। इन पांच कुलोंमें पूर्वोक्त कुल यथाक्रम परवर्त्ती कुलोंसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं।

श्रोत्रिय जब नीच घरमें विवाह करते हैं, तब उन्हें काफी रुपये मिलते हैं। किन्तु इसमें जो सन्तान उत्पन्न होती है वह मातृकुलसे श्रेष्ठ होने पर भी पितृकुलके दूसरे दूसरे व्यक्तियोंके निकट समान आदर नहीं पा सकती। जो श्रोत्रिय निम्न घरमें विवाह करता, उसका तो अपनी श्रेणीमें मान अवश्य घटता, पर कन्याके पिताका यह कार्य सम्मानजनक और उत्तम समझा जाता है। ऐसा कुलनियम रहने पर भी बङ्गाल देशकी तरह छानवीन नहीं है। बिहार-वासियोंका कहना है, कि इस देशमें बल्लालसेनका आधिपत्य स्थायी न रहनेके कारण

* "सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड़ोत्कल मैथिलाः।
पञ्चगौड़ाः समाख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः॥"

हो बङ्गालके जैसा यहां कठोर नियमका प्रचार न हो सका। मैथिल कुलश्रेष्ठगण अकसर पण्डित, पञ्जिकार और घटकको साथ ले कर तिरहुत तथा जहां जहां मैथिल ब्राह्मणोंका वास है, वहां जाते और कुलका निर्णय करते हैं। इस प्रकार सामाजिक सम्मिलनसे कुलका दोष गुण मालूम हो जाता और वैवाहिक सम्बन्ध निरूपित होता है। ये लोग प्रधानतः वंशशुद्धिकी ओर लक्ष्य रख कर आदान प्रदान करते हैं।

इन लोगोंमें 'विकौआ' एक श्रेणी है जिसमें जो अधिक विवाह कर सके वही श्रेष्ठ गिने जाते हैं। पर आज कल यह प्रथा जाती रही। सौराट, रसाढ़, वरहरा आदि स्थानोंमें प्रति वर्ष शुद्धिके अन्तिम मासमें सभा लगती है जिसमें हजारों ब्राह्मण शास्त्रालोचनार्थ एकत्रित होते और विवाह-सम्बन्ध स्थिर करते हैं। ये लोग कट्टर सनातन धर्मावलम्बी, शिष्टाचारी तथा शास्त्र और वेदविद् हुआ करते हैं। अतएव सम्प्रति भी कितने मैथिल ब्राह्मण 'महामहोपाध्याय' आदि उपाधियोंसे भूषित देखे जाते हैं। अधिकांश लोग नित्य संध्योपासनादिके अतिरिक्त शालग्राम और पार्थिव-शिवलिङ्ग-पूजनके विना भोजन नहीं करते। ये पञ्चदेवोपासक होते हुए भी साधारणतः शक्ति-उपासक हैं। विशेष विवरण मिथिला शब्दमें देखो।

मैथिलश्रीदत्त—मिथिलादेशवासी एक प्रसिद्ध पण्डित। इन्होंने आचारादर्श, आवसथ्याधानपद्धति, छन्दोगाह्निक, पितृभक्ति या श्राद्धकल्प, व्रतसार, समयप्रदीप आदि ग्रन्थ लिखे थे। कमलाकर, दिवाकर, रघुनन्दन आदिने इनका नाम उद्धृत किया है।

मैथिलिक (सं० पु०) मिथिलावासी।

मैथिली (सं० स्त्री०) मैथिलस्तन्नामा राजा तस्यापत्यं स्त्री। मिथिलादेशके राजाकी कन्या, सीता।

मैथिलीशरण—सीतारामतत्त्व प्रकाशके रचयिता।

मैथिलेय (सं० पु०) मिथिला-सम्बन्धीय, मिथिलाका।

मैथुन (सं० क्ली०) मिथुने सम्भवतीति मिथुन-(सम्भूते पा ४।३।४१) इति अण्, मिथुन-स्येदमित्यण वा। स्त्रीके साथ पुरुषका समागम, रति-क्रीड़ा।

"असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥"

संस्कृत पर्याय—सुरत, अभिमानित, धर्षित, सम्प्रयोग, अनारत, अब्रह्मचर्यक, उपसृष्ट, विमर्द्द, क्रीड़ारत्न, महासुख, व्यवाय, ग्राम्यधर्म, रत, निधुवन। इसका गुण और दोष—धातुक्षयकारक, रति और सन्तानदातृत्व। अधिक मैथुन करनेवालेको श्वास, खांसी और ज्वर तथा जो मैथुन विलकुल नहीं करता उसे प्रमेह, मेद, ग्रन्थि-रोग और अग्निमान्द्य होता है। स्त्री-संसर्ग नहीं करनेवालेकी आयु बढ़ती, वह कभी बूढ़ा नहीं होता तथा उसके शरीर, वल, वर्ण और मांसकी वृद्धि होती है। पूज्यस्थान, अशुचिस्थान, सेकस्थान, मनुष्यके निकट, सवेरे, शाम और पर्वके दिन मैथुन नहीं करना चाहिये। रजस्वला स्त्री, अकामी, मलिन, वन्ध्या, वर्णज्येष्ठा, वयोज्येष्ठा, व्याधियुक्ता, अङ्गहीना, योनिदोषदुष्टा, सगोत्रा, गुरुपत्नी, भिक्षुकी, कपट व्रतधारिणी और वृद्धा इन सब स्त्रियोंके साथ सम्भोग करना मना है। करनेसे अधर्म, आयुःक्षय और नाना प्रकारकी व्याधि होती है।

वयस और रूपगुणमें एकसी, कुल और शीलयुक्ता, वाजीकरणपीड़िता (जिसने वाजीकरणोक्त औषधका सेवन किया हो), अधिकामा, हृष्टा और अलंकृता स्त्रीके साथ रातके पहले पहरमें मैथुन करना चाहिये। मैथुनके वाद शक्करके साथ दूध पीना, निद्रा वा गौड़िक रस भोजन करना हितकर है। (राजवल्लभ)

भावप्रकाशमें मैथुनके विधिनिषेधके वारेमें इस प्रकार लिखा है,—मनुष्यके शरीरमें मैथुन करनेकी हमेशा इच्छा वनी रहती है। उस इच्छाको रोक कर यदि मैथुन विलकुल न किया जाय, तो मेहरोग, मेहोवृद्धि और शरीरमें शिथिलता उत्पन्न होती है। ग्रीष्म और शरत्-कालमें वालास्त्री, शीतकालमें तरुणी, वर्षा और वसन्त कालमें प्रौढ़ा स्त्रीके साथ सम्भोग करना वहुत प्रशस्त और लाभदायक है। सोलह वर्ष तककी स्त्रीको वाला, १६ से ३२ को प्रौढ़ा और ३२से जिसकी उमर अधिक हो गई है उसे वृद्धा कहते हैं। वृद्धा स्त्रीके साथ मैथुन नहीं करना चाहिये। प्रतिदिन वाला स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे वलकी वृद्धि, तरुण स्त्रीसे ह्रास और प्रौढ़ा-स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे शरीर जराग्रस्त होता है।

वाला-स्त्री मैथुन सद्योवलकारक तथा वृद्धा मैथुन सद्यः प्राणनाशक है। तरुणी स्त्रीके साथ मैथुन करने से वृद्धा आदमी भी जवान हो जाता है। जो अपनी उमरसे अधिक उमरवाली स्त्रीके साथ सम्भोग करता वह युवा होने पर भी जराग्रस्त होता है।

विधिपूर्वक मैथुन करनेसे परमायुकी वृद्धि, वार्द्धक्य-की अल्पता, शरीरकी पुष्टि, वर्णकी प्रसन्नता और बलकी वृद्धि होती है। हेमन्तकालमें वाजीकरण औषधका सेवन कर बल और कामवेगके अनुसार यथासम्भव मैथुन करना चाहिये। शिशिर कालमें इच्छाके अनुसार मैथुन करना उचित है। वसन्त और शरत्‌कालमें तीसरे दिन-में तथा वर्षा और ग्रीष्मकालमें १५वें दिनमें मैथुन करना चाहिये। इस विषयमें सुश्रुतने कहा है, कि पण्डितों-को चाहिये, कि वे सभी ऋतुमें तीन दिन और ग्रीष्म कालमें पन्द्रह दिनके अन्तर पर स्त्री-प्रसङ्ग करें।

शीतकालमें रातको, ग्रीष्मकालमें दिनको, वसन्तकाल में दोनों वक्त, और वर्षाकालमें बदलीके दिन तथा शरत्‌कालमें कामका उदय होनेसे ही मैथुन किया जा सकता है। शामको, पर्वके दिन, भोरको, दो पहर रातको, दो पहर दिनको कभी भी मैथुन नहीं करना चाहिये; करनेसे भारी अनिष्ट होता है। प्रकाश्य स्थान, अति लज्जाजनक स्थान, गुरुजन सन्निहित स्थान तथा जिस स्थानसे व्यथाजनक आर्त्तनादि सुना जाय, वैसा स्थान मैथुनकार्यमें निषिद्ध है।

जो स्थान अत्यन्त निभृत, सुवासित और मृदुमन्द सुखवायु हिल्लोलसे मनोरम है वही स्थान मैथुनके लायक है।

अतिरिक्त भोजनके बाद मैथुन नहीं करना चाहिये। जो व्यक्ति अधैर्य, क्षुधार्त्त, दुर्न्यस्ताङ्ग (जिसके हाथ पैर अनुपयुक्त भावमें हैं), पिपासित, जिसे मलमूत्रादिका वेग उपस्थित हुआ हो और जो रोगग्रस्त हो उनके लिये मैथुन विशेष हानिकारक है।

नियमपूर्वक वाजीकरण औषधका सेवन करनेसे घोड़ेके समान ताकत आ जाती है। उस समय प्रसन्न वदनसे समान कुलमें उत्पन्ना, रूपगुणसे सम्पन्ना अलं-कारसे अलंकृता, सच्चरित्रा अथच अत्यन्त कामाभिका-ङ्क्षिणी युवती स्त्रीके साथ मैथुन करना चाहिये। मनुष्य को चाहिये, कि वह मैथुनाभिलाषी हो स्नान करनेके बाद चन्दनादि सुगन्ध द्वारा शरीरको लेप कर, वीर्यवर्द्धक द्रव्य खा कर, उत्कृष्ट वस्त्र पहन कर और पान चबा कर पत्नीके प्रति अतिशय अनुरागी, कामभावापन्न और पुत्राभिलाषी हो कर सुखशय्या पर पत्नीके साथ मैथुन करें।

आत्मसंयममें असमर्थ हो रजस्वला स्त्रीके साथ संभोग करनेसे दर्शनशक्तिका ह्रास, परमायुकी हीनता, तेजकी हानि और धर्मका नाश होता है।

संन्यासिनी, गुरुपत्नी, सगोत्रा तथा वृद्धा स्त्रीके साथ जो मैथुन करता उसकी परमायु घटती है।

गर्भिणी स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे गर्भपीड़ा; व्याधि पीड़िताके साथ करनेसे बलहानि; हीनाङ्गी, मलिना, द्वेषभावापन्ना, अकामा और वन्ध्या स्त्री अथवा खुले स्थानमें मैथुन करनेसे शुक्रक्षीणता और मनकी अप्रस-न्नता होती है।

ऊपरमें गर्भिणी शब्दका जो उल्लेख किया गया उसका तात्पर्य यह कि गर्भसञ्चारके दिनसे ले कर दूसरे महीनेमें अर्थात् गर्भस्थिरताका निश्चय हो जानेसे अथवा गर्भसञ्चारके दिनसे ले कर तीसरे महीनेमें यथोक्त नक्ष-त्रादि प्राप्तिके बाद पुंसवन संस्कार समाप्त होने पर मैथुन नहीं करना चाहिये। क्योंकि व्यासने कहा है, कि पुंसवन समाप्त होने पर स्त्रियोंको नदी तट जाना, पतिके साथ एक शय्या पर सोना, मृतवत्सा स्त्रीको देखना तथा आमिष भोजन न करना चाहिये।

क्षुधातुर, संक्षोभितचित्त, तृष्णार्त्त और दुर्बल अवस्था-में अथवा मध्याह्न समयमें मैथुन करनेसे शुक्रकी हीनता होती और वायु बिगड़ जाती है।

व्याधिपीड़िता स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे प्लीहा और मूर्च्छादि विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है तथा अन्तमें मृत्यु तक भी हो सकती है। सवेरे या दो पहर रातको मैथुन करनेसे वायु और पित्तका प्रकोप बढ़ता है। तिर्यक्‌योनि, अयोनि, अर्थात् कच्ची उमरके कारण जो योनि मैथुनके लायक न हो अथवा दुष्ट योनिमें

मैथुन करनेसे उपदंश रोग होता है, वायु बिगड़ जाती है तथा शुक्र और सुखका क्षय होता है।

मलमूत्र रोक कर अथवा शुक्रधारण कर या चित सो कर मैथुन करनेसे शुक्राश्मरीकी उत्पत्ति हो सकती है। अतएव इस लोक और परलोकमें सुखी रहनेके लिये हर एक मनुष्यको चाहिये, कि वह ऊपर कहे गये मैथुनके नियमोंके अनुसार चले।

मैथुनके समय मोहप्रयुक्त गिरते हुए वीर्यको कभी भी न रोके। स्नान, चीनी मिला हुआ दही, चीनी शक्कर आदिकी बनी हुई वस्तु खाना, वायुसेवन, मांसरस भोजन और निद्रा यह सब कार्य मैथुनके बाद हितजनक है। अत्यन्त मैथुन करनेसे शूल, खांसी, ज्वर, दमा, कृशता, पाण्डु तथा आक्षेप आदि विविध रोगोंकी उत्पत्ति होती है। (भावप्र० पूर्वख०)

आयुर्वेद और धर्मशास्त्रका अवलोकन करनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि एकमात्र सन्तानोत्पत्तिके लिये ही मैथुन करना चाहिये। अतएव इन्द्रिय-चरितार्थके लिये निषिद्ध दिनमें मैथुन करना विशेष दोषावह और अधर्मजनक है। धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि पर्वदिन (चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति) तथा ज्येष्ठा, मूला, मघा, अश्लेषा, रेवती, कृत्तिका, अश्विनी और उत्तर-भाद्रपद, उत्तराषाढ़ा और उत्तरफल्गुनी नक्षत्रमें मैथुन निषिद्ध है;

"ज्येष्ठा मूला मघाश्लेषा रेवती कृत्तिकाश्विनी।
उत्तरात्रितयं त्यक्त्वा पर्ववर्जं व्रजेदृतौ॥" (आह्निकतत्त्व)

इसके अतिरिक्त और सभी विषयोंमें आयुर्वेदके साथ एकमत है। सन्तानोत्पत्तिके लिये धर्मपत्नीके साथ किस प्रकार मैथुन करना चाहिये उसका विधान सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—स्वामी एक मास ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर स्त्रीके ऋतुकालके चौथे दिन अपराह्न कालमें दूध घीके साथ भात खावे। स्त्री भी एक मास ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर उस दिन तेल लगावे और उड़द मिली हुई वस्तु भोजन करे। पीछे स्वामी वेदादि पर विश्वासी और पुत्रकामी हो कर ऋतुके चौथे, छठे, आठवें, दशवें और बारहवें दिनमें स्त्रीके साथ मैथुन करे। कन्याकामी होनेसे अयुग्म दिनमें मैथुन करना उचित है। तेरहवें दिनसे मैथुन नहीं करना चाहिये।

ऋतुके प्रथम दिनमें मैथुन करनेसे पुरुषका आयुक्षय होता है। उस समागमसे यदि गर्भ रह जाय तो प्रसवकालमें वह गर्भ नष्ट हो जाता है। दूसरे और तीसरे दिन भी मैथुन करनेसे उसी प्रकारका फल लाभ होता है। इसी कारण चौथे दिनसे अर्थात् रजके बन्द होने पर मैथुन करनेको कहा है।

(सुश्रुत शरीरस्था० २०अ०)

शास्त्रमें आठ प्रकारका मैथुन बतलाया है।

"स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।
मैथुनं विविधं त्यज्यं व्रते क्रीड़ाविवृद्धये॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणपतिख० ४० अ०)

स्मरण, कीर्त्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिष्पत्ति यही अष्टाङ्ग मैथुन है। व्रत वा पूजादिके दिन यह अष्टाङ्ग मैथुन नहीं करना चाहिये। इस अष्टाङ्ग मैथुनकी निवृत्ति ही ब्रह्मचर्य्य है। योगशास्त्रमें लिखा है, कि ब्रह्मचर्य्यकी प्रतिष्ठा होनेसे प्रज्ञा प्राप्त होती है। जब इस अष्टाङ्ग मैथुनसे किसी प्रकारका मानसविकार उपस्थित न हो तब ही ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा हुई, जानना चाहिये।

धर्मपत्नीको छोड़ कर अन्य स्त्रीके साथ मैथुन नहीं करना चाहिये, करनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

मैथुनधर्मिन् (सं० पु०) मैथुनधर्मोऽस्यास्तीति इनि। मैथुनधर्मविशिष्ट।

"यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानं परं तपः।
निर्वृ तिं मीनराजस्य दृष्ट्वा मैथुनधर्मिणः॥"

(भा० ९।६।३९)

मैथुनवास (सं० क्लो०) मैथुनके समय पहननेका कपड़ा।

मैथुनाभिघात (सं० पु०) एक प्रकारका रोग जो मैथुनके समय आघात वा चोट लगनेसे होता है।

मैथुनिक (सं० त्रि०) मैथुनकारी, संभोग करनेवाला।

मैथुनिन् (सं० त्रि०) मैथुन अस्त्यर्थे इनि। कृतमैथुन, स्त्रीके साथ संभोग करनेवाला। मैथुनके बाद स्नान कर लेनेसे शुद्ध होता है।

"आचामादेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ।"
(मनु ५।१४४)

मैथुन्य (सं० त्रि०) मैथुनमें हितकर, गान्धर्व विवाह।
"गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः।"
(मनु ३।३२)

मैदा (फा० पु०) गेहूंका चूर्ण ।

इस देशमें मैदाके नामसे प्रसिद्ध हैं। यह सारे संसारमें प्रधान खाद्यके रूपमें व्यवहृत होता है। आकार-भेदसे यह चार तरहका होता है: (१) बहुत बारीक मैदा, (२) अपेक्षाकृत मोटा आटा और (३) इससे मोटा रामजी तथा (४) एक तरहका भूसी मिला हुआ आटा। ये चार तरहके आटा हमारे नित्य व्यवहारकी सामग्री हैं। देशी आहारीय द्रव्योंमें जितने पक्वान्न या मिष्टान्न तय्यार होते हैं, वे प्रायः सभी मैदाके संयोगसे प्रस्तुत होते हैं। आटेसे केवल रोटियां तय्यार होती है। सूजीसे हलवा तैयार होता है। कभी कभी सूजीको रोटी भी बनती है।

गेहूं पीसनेके लिये चक्की या जांतका व्यवहार किया जाता है। इस जाँतका आकार गोल और थालीकी तरह चिपटा पत्थरसे तय्यार किया जाता है। इसके दो दल होते हैं। उनमेंसे एक दल नीचे जमीनमें गाड़ दिया जाता है। इन दलोंमें जो छेद रहता है, उनमें एक किल-के साथ निचला दल जमीनमें गड़ा रहता है। ऊपरके दलमें एक काठका टुकड़ा जिसको हत्था कहते हैं, ठोक दिया जाता है। इसी हत्थेको पकड़ कर इसे चलाया जाता है। इन दोनों दलोंमें लोहेको छेनीसे दांव निकाल दिये जाते हैं, इसीसे इसमें डाला हुआ गेहूं चूर्णविचूर्ण हो जाता है। इसके बाद इसको चालनसे छान लेते हैं। क्रमसे मोटे पतलेका विभाग किया जाता है। बहुत पतले भागको मैदा और उससे मोटेको आटा और उससे भी मोटेको सूजी कहते हैं। इसके छाननेसे चालनमें जो बच जाता है, वह चौकर या भूसी कहलाता है।

जाँतका पीसा हुआ आटा सब तरहके आटोंसे उत्तम और पुष्टिकर है। किन्तु इस समय जाँतेसे पीसे आटेका प्रचार बहुत कम दिखाई देता है। यूरोपीय वणिक्-समितिने आटा पीसनेके लिये एक आटाको कल तय्यार की है, जिसको अङ्गरेजीमें Flour-mill कहते हैं। इसके द्वारा आटा जाँतेकी अपेक्षा सरलतासे पीसा जाता है।

इस कलका पीसा आटा तीन तरहका होता है। यह १, २ और ३, नं०के नामसे विख्यात है। आटेके व्यवसायी पीसनेके पहले आटेके बीजोंके पुष्टापुष्टका विचार करते है। पुष्ट गेहूके दानेका आटा अच्छा होता है। पतले या अपुष्ट गेहूंका आटा उतना अच्छा नहीं होता।

गेहूं पीसनेके पहले उसको अच्छी तरह चुन लेते हैं। पहले इसके साथ मिले हुए अन्य दानोंको झरना-से अलग कर देते हैं। इसके बाद इसमें जो मट्टी लगी रहती है, उसको निकालनेके लिये इसे खूब अच्छी तरह धोते और फिर सुखाते हैं। कहीं कहीं सूर्य्यतापके अभावमें यन्त्रसे निकली हुई भापसे सुखाते हैं।

पहले यूरोप महादेशके विविध देशोंमें जाँतेका बहुत प्रचार था, जैसे हमारे यहां अब भी हैं। उन्नतिशील जातियां उन्नति पथका लक्ष्य रख उक्त यन्त्रके आविष्कार करनेमें लगी हुई थीं। वे लोग पहले मनुष्यके परिश्रम-को लाघव करनेके उद्देश्यसे (Wind-mill) वायुयन्त्रसे जाँता चलाने लगे। इस तरह एक मिनटमें १ सौ या १२० बार जाँत चलाने लगा। हाथसे जांता चलानेको अपेक्षा इसमें बड़ी सुविधा हुई। किन्तु इसमें एक खराबी पैदा हो गई। वह यह कि अधिक तेजीसे चलनेसे तापकी वृद्धि हो कर आटा जांतेमें सट जाता था। इससे मैदेकी बड़ी हानि होनेकी सम्भावना हुई।

इस असुविधाको दूर करनेके लिये कलकी ओर लोगोंकी दृष्टि गई। जांतमें आटा सटने न पावे इसके लिये वहांके वैज्ञानिक धुरन्धर बद्धपरिकर हुए। काकेरिन, गर्डन टेलर, बमिल, पिसेल मालेलन, वैंक्स, गुडियर, वेष्ट्रेप, सगाइलर, वल्क, सियली हारउड, ह्वाइट आदि विज्ञानविद् इसकी खोजमें लगे। बडिल साहबने उत्तप्त वायु द्वारा बीज गरम करनेका यन्त्र आविष्कार किया। महात्मा ह्वाइटने देशी चर्खा प्रथासे गोलाकार पत्थरके टुकड़ोंसे आटा पीसनेका उपाय निकाला। उन टुकड़ों-को रोलर कहते हैं। इन रोलरोंके संघर्षणसे जो

उत्तापकी वृद्धि होती है, उसको दूर करनेके लिये पत्थरके सैकड़ोंमें छिद्र किये जा कर वाहरसे हवा पहुंचाई जाती है। यह रोलर भी ऐसे ढङ्गसे बनाये गये जिससे उत्तापके मारे आटा जमने नहीं पाता। सिवा इसके इससे गेहूं इस तरह पिस जाता है, कि उसकी भूसीमें जरा भी आटा नहीं रह जाता। और फिर मैदा चाल कर जो भूसी बचती है, उसको फिर एक बार कलमें देते हैं। इस बार भूसी रह ही नहीं जाती। यह बहुत बारीक हो कर मैदामे मिल जाती है। इस कलमे प्रति क्वार्टर गेहूंसे अन्यान्य कलोंकी अपेक्षा प्रायः एक शिलिङ्ग मूल्यका अधिक आटा तय्यार होता है। साइलस् एण्टी फ्रिकसन् कोर्न मिल (Schicles Antifriction cornmill) न्यूजपृष्ठ (convex) और दूसरा कुब्जपृष्ठ प्रस्तर खण्ड गठित है। सिवा इसके फ्रान्सदेशवासी Mr Falguiere और M. D. Arblay ने भी स्वतन्त्र रूपसे मैदा पीसनेकी एक कल तैयार की है। इसके लिये साधारणके ये बड़े ही धन्यवादार्ह है।

सन् १८५५ ५६ ई०में विख्यात क्रिमियाके युद्धके समय ब्लाक लावा समरमे अङ्गरेज सरकारने ब्रुइजर और एवान्तान्स नामक दो ष्टीमरोंमें आटा पीसनेकी कल भेजी थी। यह कल इञ्जीनियर मिष्टर फेअर वेअरनके यत्नसे ष्टीमरोंके एञ्जिनसे परिचालित हुई थी। इससे प्रति घण्टा बीस बुसल तथा दिन भरमे २४ हजार पाउण्ड आटा तैयार होता था।

सन् १८५६ ई०मे पहले ब्लाकलावाके निकट ब्रुइजर मैदा पीसने लगी। इससे नित्य १८ हजार पाउण्ड मैदा अङ्गरेजीसेनाके भोजनके लिये तय्यार होने लगा। यह ष्टीमर वहां तीन महीना टिका रहा। कुल १८ लाख पाउण्ड गेहूंसे १३३० हजार पाउण्ड मैदा तयार किया गया और वाकी गेहूं भूसी आदिके रूपमें चला गया। गेहूंका दाम तथा पिसाईकी मजदूरीका हिसाब लगा कर देखा गया तो आधे सेर आटेमे सरकारका एक पेनी खर्च पड़ा। ब्रुइजर ष्टीमरसे आटा पीसा गया और इधर एवाडंस ष्टीमरसे रोटियां तय्यार कर सेनाओंको दी जाने लगी।

वर्त्तमान् युगमें प्रायः सभी देशोंमें मैदा पीसनेकी कलें हो गई हैं। इस तरह तो आटा पीसनेकी कई तरहकी चक्कियां और कलें तय्यार हुई है, किन्तु दो तरहकी कलोंके पीसे हुए आटेका बड़ा आदर है। एक चक्की; (Grind stone) वा दूसरी रोलरमिल (Roller mill) का।

यह मैदा विविध देशोंमें विविध नामोंसे परिचित है। फ्रान्सीसी इसे Fleur de farine, जर्मन—Feines mehl Sammel mehl कहते हैं। हिन्दीमें—आटा, मैदा, पिसान; मलयमें—तपुङ्ग, पुलुर; पुर्त्तगालीमें—Florde Farine; संस्कृतमें—गोधूमपिष्ट, समिता, समीद; सिंहली-भाषामे—तिरुविट्ट; तामिल भाषामें—गोदम्ब मवु; तेलगुमें—गोधूम पिण्डी; इटलीमें—सेमोलिना; बंगालमें—गोधूमपिष्ट, आटा, मैदा, सूजी नामसे यह प्रसिद्ध है। चालनीसे छाने हुए साफ वारीक अंशको मैदा कहते हैं। इसी तरह चावल पीस कर भी मैदा तय्यार करते हैं। बंगला मे इसे सफेदा और हिन्दीमें चौरठ कहते हैं। कहीं कहीं मैदाके बदले यही चौरठ व्यवहार होता है। सिवा इसके रोगियोंके खानेके लिये जौ, सागु, आरारोट, शाठी, सिंघाड़ेसे भी आटा तय्यार होता है। केलो, कन्द आदिका भी आटा बनता है, किन्तु बहुत कम।

भारतीय चावलकी तरह गेहूं (Wheat) या मैदा (Meal of wheat-flour) भी एक वाणिज्यकी सामग्री है। बहुत दिनोंसे गेहूंका व्यवसाय चला आता है। युरोप अमेरिका, भारत, चीन, ब्रह्म, जापान, आदि देशोंमें प्रायः सर्वत्र ही गेहूंकी खेती और उसका व्यवसाय होता है। भारतीय आयुर्वेदमें भी इसका नाम आया है। भावप्रकाशमें गेहूंकी उत्पत्ति आदिका पूर्ण विवरण लिखा हुआ है। गोधूम देखो।

प्राचीन हिन्दू भी गेहूं पीस कर आटा तय्यार करना जानते थे। भावप्रकाश, अभिधान चिन्तामणि, राजनिर्घण्ट, आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें 'समिता' शब्दमें मैदेका उल्लेख है,—

"गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोषितास्ततः।
प्रोक्षिता यन्त्रनिष्पिष्टा श्चालिताः समिताः स्मृताः॥"

(राजनिर्घण्ट)

इससे स्पष्ट ही मालूम होता है, कि उस समयके मनुष्य गेहूं धो कर, कूट कर, सुखा कर यन्त्रसे पीस कर

उसे छान कर मैदा बनानेका उपाय जानते थे। किन्तु कहीं ऐसा कोई सुदृढ़ प्रमाण नहीं मिलता, कि यह लोग मैदा तयार कर किसी दूसरे देशोंमें भेज वाणिज्य करते थे। फिर भी इङ्गलैण्ड आदि युरोपके सुदूर देशोंमें गेहूंकी रफ्तनी की जाती थी। इसके प्रमाणकी भी आवश्यकता नहीं। इस गेहूंकी वाणिज्य-रक्षाके लिये इङ्गलैण्डमें सर्व प्रथम तृतीय एडवर्डने सन् १३६०-६१ई०में (34th Edw, III c, २०) कानून बनाया। इसके बाद भी इस कानूनका आदर होता आया है। यह यूरोपमे Corn-law and Corn Tade कहा जाता है।

मैदान (फा० पु०) १ धरतीका वह लंबा चौड़ा विभाग जो समतल हो और जिसमें पहाड़ी या घाटा आदि न हो, दूर तक फैली हुई सपाटभूमि। २ वह लंबी चौड़ी भूमि जिसमें कोई खेल खेला जाय अथवा इसी प्रकारका और कोई प्रतियोगिता या प्रतिद्वन्द्विताका काम हो। ३ वह स्थान जहां लड़ाई हो, युद्धक्षेत्र। ४ रत्न आदिका विस्तार, जवाहिरकी लम्बाई चौड़ाई। ५ किसी पदार्थका विस्तार।

मैदानी—पंजाबप्रदेशके बान्नु जिलान्तर्गत एक पर्वतश्रेणी इसका दूसरा नाम सिनगढ़ या चिचाली भी है। बान्नु उपत्यकासे पूरवमें अवस्थित रह कर कुरम और गंभोलाको सिन्धुसे अलग करती है। इसका सबसे ऊंचा शिखर कालाबागसे १६ मील पश्चिम समुद्रपृष्ठसे ४७४५ फुट ऊंचा है। इस शैलमालासे आध कोस दक्षिण मैदान नामक एक गिरि है जो समुद्रकी तहसे ४२५६ फुट ऊंचा है। यहां मैदान नगर (लौहगढ़) है। यह अक्षा० ३२°५१´ उ० तथा देशा० ७१° ११´ ४५´´ पू०के बीच पड़ता है। मियांवालीसे एक रास्ता निकला है जो तङ्गदेरा गिरिसङ्कट हो कर बान्नु उपत्यका तथा वहांसे मैदानी शिखरके दक्षिण तक चला गया है।

मैदालकड़ी (हिं० स्त्री०) औषधके काममें आनेवाली एक प्रकारकी जड़ी। यह सफेद रंगकी और बहुत मुलायम होती है। वैद्यकमें इसे मधुर, शीतल, भारी, धातुवर्द्धक और पित्त, दाह, ज्वर, तथा खांसी आदिको दूर करनेवाली माना है।

मैधातिथ (सं०पु०) १ मेधातिथि सम्बन्धीय। २ सामभेद।

मैधाव (सं० पु०) मेधावीका पुत्र।

मैधावक (सं० पु०) मेधा, धृतिशक्ति।

मैध्यातिथ (सं० क्ली०) सामभेद।

मैन (हिं० पु०) १ कामदेव। २ मोम। ३ रालमें मिलाया हुआ मोम। इससे पीतल वा तांबेकी मूर्त्ति बनानेवाले पहले उसका नमूना बनाते हैं और तब उस नमूने परसे उसका सांचा तैयार करते हैं।

मैनफल (हिं० पु०) १ मझोले आकारका एक प्रकारका झाड़दार और कंटीला वृक्ष। इसकी छाल खाकी रंगकी, लकड़ी सफेद अथवा हलके भूरे रंगकी, पत्ते एकसे दो इञ्च तक लम्बे और अण्डाकार तथा देखनेमें चिड़चिड़ेके पत्तोंके समान, फूल पीलापन लिये सफेद रंगके, पांच पंखड़ियों वाले और दो या तीन एक साथ मिले होते हैं। इसमें अखरोटकी तरहके एक प्रकारके फल होते है जो पकने पर कुछ पीलापन लिये सफेद रंगके होते हैं। इसकी छाल और फलका व्यवहार ओषधिमें होता है। २ इस वृक्षका फल। इसमें दो दल होते हैं और इसके बीज बिहीदानेके समान चिपटे होते हैं। इसका गूदा पीलापन लिये लाल रंगका और स्वाद कड़ुआ होता है। इस फलको प्रायः मछुए लोग पीस कर पानीमें डाल देते हैं, जिससे सब मछलियां एकत्र हो कर एक ही जगह आ जाती हैं और तब वे उन्हें सहजमें पकड़ लेते हैं। यदि ये फल वर्षा ऋतुमें अन्नकी राशिमें रख दिये जांय तो उसमें कीड़े नहीं लगते। वमन करानेके लिये मैनफल बहुत अच्छा समझा जाता है। वैद्यकमें इसे मधुर, कड़ुआ, हलका, गरम, वमन कारक, रूखा, भेदक, चरपरा, तथा विद्रधि, जुकाम, घाव, कफ, आनाह, सूजन, त्वचा रोग, विषविकार, बवासीर और ज्वरका नाशक माना है।

मैनशिल (हिं०पु०) मैनसिल देखो।

मैनसिल (हिं०पु०)एक प्रकारकी धातु। यह मिट्टीकी तरह पीली होती है और यह नेपालके पहाड़ोंमें बहुतायतसे होती है। वैद्यकमें इसे शोध कर अनेक प्रकारके रोगों पर काममें लाते हैं और इसे गुरु, वर्णकर, सारक, उष्णवीर्य, कटु, तिक्त, स्निग्ध, और विष, श्वास, कुष्ठ ज्वर, पाण्डु, कफ तथा रक्त दोष-नाशक मानते हैं।

पर्याय—मनोज्ञा, नागजिह्वा, नैपाली, शिला, कल्याणिका, रोगशिला, गोला, दिव्यौषधि, कुनटी, मनोगुप्ता।

मैना (हिं० स्त्री०) काले रंगका एक प्रकारका प्रसिद्ध पक्षी। इसकी चोंच पीली वा नारंगी रंगकी होती है, समूचा शरीर चिकने काले परसे ढका होता है। यह पक्षी उतना सुन्दर नहीं होने पर भी सिखाने पर मनुष्यको तरह मीठी बोली बोल सकता है। इसीलिये लोग इसे पोसते हैं। कोई कोई पक्षी अपने स्वाभाविक शक्तिसे इस प्रकार बोलता है मानो कोई आदमी बोल रहा हो। राधाकृष्ण आदि देव नाम, अपने पालनेवालेके घरके सभी लोगोंका नाम जिसके मुंहसे जिस तरह सुनती है, अपने अभ्यास-बलसे ठीक उसी तरह बोलती है। उसे सुननेसे अकसर गुरुजनकी बोलीका भ्रम हो जाता है।

इङ्गलैण्डमें इस जातिके पक्षीको Mino Bird, जावामें चित्त और मेञ्चो तथा सुमात्रामें टिओङ्ग कहते हैं। पक्षितत्त्वविदोंने इस जातिके पक्षियोंको शाखाचारी (inses Sorial पक्षिश्रेणीमें शामिल करके oracias दलमें निबद्ध किया है।

स्थानभेदसे मैनामें आकृतिगत बहुत विलक्षणता देखी जाती है। जावा, सुमात्रा और पूर्व समुद्रस्थ सभी द्वीपोंमें जो मैना पाई जाती है उसकी आकृति भारतीय पहाड़ी मैनासे स्वतन्त्र है।

पूर्वद्वीपमें मिलनेवाली मैनाकी चोंच स्वभावतः छोटी और मजबूत होती है। लम्बे मस्तकमें दो छोटी छोटी आंखें हैं। दोनों पैर छोटे होने पर भी भारतीय मैनाके जैसे हैं। पूंछ छोटी होती है, मस्तकके ऊपर कलंगी, कानके पास और पीठ पर पीले चमड़ेका दाग तथा दोनों पंखके अग्रवर्ती दो पर हलदी रंगके दिखाई देते हैं।

भारतीय मैनाके दोनों पैर और पूंछ अपेक्षाकृत लम्बी होती है। किसी किसी पक्षितत्त्वविद्ने इनमें बहुत थोड़ा फर्क देख कर Eulabes Indicus, Mino Dumonatii, Gracula, Calva, Sturnus Indicus आदि नामोंसे श्रेणीविभाग किया है।

मैना साधारणतः कीड़ा, सत्त और पका फल खाना पसन्द करती है। किसी किसी पहाड़ी मैनाको बकरेका मांस खाते देखा गया है। यह सहजमें पोस मानती है। हिमालयके पहाड़ी प्रदेश और आसामसे उनके बच्चेको पकड़ कर पक्षिव्यवसायी शहरमें बेचते हैं। इन सब बच्चोंका पालना बहुत कठिन है। क्योंकि, अपने घोंसलेमें पाले पोसे जाने पर वह जैसा सबल और फुरतीला होता है, वैसा गृहस्थके पींजरेमें रह कर नहीं होता।

पोस माननेके साथ साथ वह मनुष्यकी बोलीका अनुकरण करना सीखती है। मार्सडन साहबने लिखा है, कि ऐसा कोई भी पक्षी नहीं जो स्पष्टरूपसे मैनाकी तरह मनुष्यकी बोलीका अनुकरण कर सकता हो*। Bontius साहब जावामें एक मुसलमान-रमणी द्वारा पाली गई मैनाको देख कर चमत्कृत हो गये थे। M. Les·on-ने इस प्रकार और भी एक पक्षीको मलय-भाषा में बोलते सुना है।

२ एक जाति जो राजपूतानेमें पाई जाती है और मैना कहलाती है।

मैनाक (सं० पु०) मेनकाया अपत्यं पुमान् मेनकायां भव इति वा मेनकाअण, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ पुराणानुसार पर्वतका नाम जो हिमालयका पुत्र माना जाता है। कहते हैं, कि इन्द्रसे डर कर यह पर्वत समुद्रमें जा छिपा था; इस कारण यह अब तक सपक्ष है। लंका जाते समय समुद्रकी आज्ञासे इसने हनुमानजीको आश्रय देना चाहा था। पर्याय—हिरण्यनाभ, सुनाभ, हिमवत् सुत। मेनका देखो।

२ हिमालयकी एक ऊंची चोटीका नाम। इस पर मेखिलवर्द्धिनी नामकी देवमूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

(बृहत्नीलतन्त्र १३ अ०)

मैनाकस्वसृ (सं० स्त्री०) मैनाकस्य स्वसा। पार्वती। (हेम)

* "It has the faculty of imitating human speech in greater perfection than any other of the feathered tribe." Eng. Cy. Nat, vol. 11 p 139.

मैनागढ़—मेदिनीपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन बड़ा गांव। यह तमलुकके पश्चिम सुवर्णरेखा नदीके किनारे अवस्थित है। मैनराजवंशके अधिकार-कालमें इस स्थानने गढ़ और नाना देव-मन्दिरोंसे परिशोभित हो कर अपूर्व श्रीको धारण किया था। घनरामकृत धर्ममङ्गल पढ़नेसे इस राजवंशके प्रताप और प्रतिपत्तिका विषय मालूम हो जाता है।

राजा गोवर्द्धन वाहुवलीन्द्र इस प्राचीन राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। पहले वे उक्त जिलेके सवङ्ग परगनेके जमींदार थे। युद्ध और सङ्गीत-विद्यामें विशेष पारदर्शिता देख कर उस समयके स्वाधीन महाराष्ट्र-सरदार महाराजदेव राजा वहादुरने इन्हें राजा और वाहुवलीन्द्रकी उपाधि दी तथा मैना (मैना चौंगरा) परगना पारितोषिक दे कर सम्मानित किया।

गोवर्द्धनके मरने पर उनके पुत्र राजा परमानन्द वाहुवलीन्द्र सिंहासन पर बैठे। वे सवङ्गका परित्याग कर मैनामें आ कर वस गये। यहां उनका वनाया हुआ मैनागढ़ प्रासाद आज भी विद्यमान है। राजा परमानन्दके बाद यथाक्रम माधवानन्द, गोकुलानन्द, कृपानन्द, जगदानन्द, व्रजानन्द, आनन्दानन्द और राधा श्यामानन्द वाहुवलीन्द्र आदि मैनागढ़के राजपदको अलंकृत कर गये हैं।

राजा राधाश्यामानन्दके पितामह व्रजानन्द वाहुवलीन्द्रसे मैनाराजवंशकी समृद्धिका ह्रास हुआ। उनके शासनकालमें मेदिनीपुर जिलेमें भीषण वाढ़ और दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ था जिससे मैनागढ़में हाहाकार मच गया था। राजा दुर्भिक्षप्रपीड़ित प्रजाओंके प्राण बचानेमें ऋणजालमें फंस गये थे। इधर प्रजा भी जीविकार्जनमें अकृतकार्य हो राज्यसे भाग रही थी। इस दुर्भिक्ष के समय अर्थाभावके कारण उन्होंने सवङ्ग और मैना सम्पत्तिका कुछ अंश बेच डाला। किन्तु उनके पूर्ववर्त्ती राजे देवमन्दिर-स्थापन, पुष्करिणी खनन और ब्रह्मोत्तर दान करके मैनागढ़ राजवंशकी ख्याति अर्जन कर गये हैं। इन पूर्वपुरुषोंमेंसे किसी एक व्यक्तिने ताम्रलिप्तराजको युद्धमें परास्त कर उनसे श्रीरामपुर आदि नौ ग्राम छीन लिये थे। पूर्वतन राजाओंमें लाउसेनका नाम विशेष प्रसिद्ध है। १८८१ ई०में राजा राधाश्याम वाहुवलीन्द्रके मैनागढ़ और तमलुक भूसम्पत्तिकी आय २० हजार रुपये थी। वृद्ध राजा बड़े दयालु थे, इस कारण सभी प्रजा उन्हें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखती थी। उनके तीनों कुमार 'छत्रपतिराज' कहलाते थे।

मैनामती—त्रिपुरा राज्यके अन्तर्गत एक गिरिमाला। यह पहले त्रिपुराराज्यकी सम्पत्ति समझी जाती थी।

मैनामती—वङ्गराज माणिकचांदकी महिषी। इनकी धर्मचर्याकी विशेष ख्याति है।

मैनाल (सं० पु०) जालिक, धीवर।

मैनावली (सं० स्त्री०) एक वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक चरण चार तगनका होता है।

मैनिक (सं० पु०) मीनं हन्तीति मीन (पक्षिमत्स्य मृगान् हन्ति पा ४।४।३५) इति ठक्। जालिक, जो मछली पकड़ कर अपनी जीविका चलाता हो।

मैनी—वम्बईप्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १७° १९´ उ० तथा देशा० ७४° ३४´ पू०के मध्य एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है।

मैनेय (सं० पु०) जातिभेद।

मैन्द (सं० पु०) १ एक असुर, कंसका अनुचर। भगवान्‌ने कृष्णरूपमें इसका संहार किया था। (हरिवंश ४१ अ०) २ एक प्रकारका वन्दर।

मैन्दहन् (सं० पु०) मैन्दं हन्तीति हन् क्विप्। विष्णु।

मैनपुरी—युक्तप्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन एक जिला। यह आगरा विभागके अन्तर्गत है। भूपरिमाण १६६७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें एटा जिला, पूरवमें फर्रुखावाद, दक्षिणमें एटावा जिला और जमुना नदी तथा पश्चिममें आगरा और मथुरा जिला है। मैनपुरी नगर जिलेका विचार-सदर और वाणिज्यकेन्द्र है।

गङ्गा और जमुनाके दोआबमें रहनेके कारण समूचे जिलेकी भूमि ऊंची है। अङ्गरेजी-राज्यमें खेती वारीकी सुविधाके लिये जङ्गल काट कर समतलक्षेत्र बनाया गया है।

दोआवके अन्यान्य जिलोंकी तरह यहांकी मिट्टीकी तह चार भागोंमें विभक्त है, जैसे—मटियार (कीचड़), भूर (बलुई), दुमत् (दलदल) और पिलिया (थोड़ा

दलदल)। जमुना तथा शर्शा, अनङ्गा, सेनगार, रिन्द, कालीनदी और ईशान नदके सिवा यहां और भी ह्रदके आकारकी कितनी झीलें हैं। इन्हीं झीलोंसे दोनों किनारोंकी जमीन पटाई जाती है जिससे खेतमें पंक पड़ जाता है। स्थानीय ग्वाले कृषिजीवी होने पर भी गाय भेड़ आदि पालते और दस्युवृत्ति द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं।

गङ्गासे दो नहर काट कर इस जिलेमें लाई गई है। एटावा-ब्रांच नहर सेनगार और रिन्द नामक दो नदी तथा कानपुर-ब्रांच रिन्द और ईशान नदीके मध्य देश हो कर वह गई है। अलावा इसके निम्न गङ्गा-नहर (Lower Ganges Canal) जिलेके उत्तर पूर्व कोन हो कर बहती है, इसलिये काली-नदीकी बहुतसी शाखाओंसे वहांका प्रदेश पटता है। इस प्रकार प्रचुर जलकी सुविधा होनेसे खरीफ और रब्बी बहुतायतसे उपजती है। एतद्भिन्न ईख और रुईकी खेती भी काफी होती है। कृषिजात सब प्रकारके शस्य, रुई, नील और घीकी यहांसे बहुत जगहोंमें रफ्तनी होती है। यहां यूरोपियोंकी देख-रेखमें नील और सोरा तैयार हो कर विकता है। अलावा इसके रुईसे सूता, चूड़ी, हुक्का, गड़गडा और काठकी बनी बहुत-सी वस्तु बिक्रीके लिये तैयार होती है। मैनपुरी, सरिसागञ्ज, सिकोहावाद, कड़हाल और फरहा नामक नगर यहांका वाणिज्यभाण्डार है। सरिसागंजकी हाट गवादि पशु, स्फटिककी माला, चीनी, नमक, रुई और चमड़ेकी बिक्रीके लिये प्रसिद्ध है। यह सब पण्यद्रव्य नाव द्वारा नाना स्थानोंमें भेजा जाता हैं। इष्ट-इण्डियन रेलवे कम्पनीका सिकोहावाद और भदान नगरमें दो स्टेशन है जिसमें वाणिज्य द्रव्य भेजनेमें बड़ी सुविधा होती है।

इस जिलेका प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। कहते हैं, कि पाण्डवोंका यहां आधिपत्य था। प्राचीन नगरके निदर्शन-स्वरूप जो सब टूटे फूटे स्तूप दिखाई पड़ते हैं उनमेंसे किसी किसीमें उस भारतीय युद्धकी कीर्त्ति उल्लिखित है। इन सब खण्डहरोंसे बहुत स्मृति-निदर्शन आविष्कृत हुए हैं जिनसे अनुमान होता है, कि इन सब स्थानोंमें बौद्ध-प्राधान्य-युगके बहुत पहले भी आर्यसभ्यता थी। आर्य हिन्दूगण यहां जो नगरकी स्थापना कर राजत्व कर गये हैं, वर्त्तमान ध्वंसावशेष ही उनका अन्यतम निदर्शन है।

कन्नौज-राज्यकी महासमृद्धिके समय यह स्थान हिन्दू-राजाओंके अधीन था। इस कन्नौज-राजवंशके सौभाग्यसूर्य जब डूब गये तब कन्नौजराज्य राप्री और भोनगांवके दो सामन्तोंके शासनाधीन हुआ। उस प्राचीन-कालमें यहां मेव, भर और चिराड़ आदि आदिम जातियोंका वास और प्रभाव विस्तृत था। बादमें १५वीं सदीमें चौहान राजपूतोंने उन्हें परास्त कर अपना प्रभुत्व फैलाया। चौहान कुलके अभ्युदय होनेके पहले हीसे इस जिलेके पश्चिम प्रांतके वन-प्रदेशमें युद्धप्रिय अहीर जाति रहती थी। आज भी वहां इस जातिका वास देखा जाता है।

मुसलमान-प्रभाव विस्तृत होनेके बादसे ही इस जिलेका धारावाहिक प्रकृत ऐतिहासिक उपाख्यान संग्रह किया जाता है। ११९४ ई०में राप्रीमें मुसलमान शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। उसके बाद दिल्लीके मुसलमान राजाओंके अधीनस्थ शासनकर्त्ताओंने इसका शासनकार्य परिचालित किया। सुलतान बहलोललोदीके राजत्वकालमें (१४५०-१४८८ ई०में) यह जिला दिल्ली और जौनपुर राजसरकारोंकी अधीनता स्वीकार कर दोनोंको ही सेनासे मदद पहुंचाता था। लोदी राजवंशका प्रभाव फैलनेके बाद मुगलोंके भारत-आक्रमण पर्यन्त राप्री नगर उक्त लोदीवंशके अधीन रहा। १५२६ ई०में मुगल सम्राट् बाबरशाहने इस स्थान पर अधिकार किया। तदनन्तर कुछ समयके लिये शेरशाहके पुत्र कुतब खाँ अफगानने इस जिलेको मुगलोंके हाथसे छीन लिया। कुतब खां द्वारा मैनपुरी नगरी नाना सौधमालासे विभूषित हुई थी। आज भी उसका टूटा फूटा खंड पड़ा है। शेरशाह द्वारा सताये जाने पर हुमायूं भारत लौटे और मैनपुरी पर अधिकार कर बैठे। सम्राट् अकबरशाहने इसे आगरा और कन्नोज सरकारमें मिला लिया। बाद उसके उन्होंने यहांके लुटेरोंका दमन करनेके लिये बहुत-सी सेना भेजी। बाबरवंशधरोंका शासन-प्रभाव औरङ्गजेबके समयसे अधिक बढ़ा चढ़ा तो था पर इस-

लाम धर्मको प्रतिष्ठा यहां न जमने पाई। यहां तक, कि कुछ मुसलमान जमींदारोंको छोड़ जो राज-सरकारसे पुरस्कारस्वरूप भूमि पाते थे, यहांके स्थानीय अधिवासियोंमें और कोई भी मुसलमान धर्ममें दीक्षित न हुए। अकबर शाहके वंशधरोंके शासनकालमें रापी नगर श्रीभ्रष्ट हो कर जनशून्य हो गया तथा एटावा नगर समृद्धिसम्पन्न हो कर राजधानीमें परिणत हुआ।

दोआबके अपरापर स्थानोंके साथ धीरे धीरे यह जिला भी १८वीं शताब्दीके अन्तमें महाराष्ट्रोंके कब्जेमें आ गया था। बाद उसके वह अयोध्या राज्यके अधिकारमें आया। १८३१ ई०में जब अयोध्याके वजीरने अङ्गरेजराजको पार्श्ववर्त्ती प्रदेश छोड़ दिया तब मैनपुरी नगरी समग्र एटावा जिलेका विचार सदर हो गई। अङ्गरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद १८०४ ई०में होल्करने इस पर चढ़ाई कर दी। इसके बाद सिपाही-विद्रोहको छोड़ यहां और कोई विशेष शासन विप्लव न घटा।

अङ्गरेजोंके दखलमें आनेके बाद शासन विभागकी सुशृङ्खलाके लिये इस जिलेके कुछ भाग निकाल कर एटा और एटावा जिला संघटित किया गया तथा मैनपुरी नगरीके चारों ओरके ११ परगनोंको ले कर वर्त्तमान जिला गठित हुआ। मैनपुरीके चौहान राजा अङ्गरेज-गवर्मेण्ट द्वारा यहांके तालुकदार नियुक्त हुए। इस समय अङ्गरेजोंका राजस्व तथा दीवानी और फौजदारी विचार-विभागके नियमोंको कष्टकर जान स्थानीय राजपूत जमींदार अङ्गरेजोंके विरुद्ध उठ खड़े हुए। अङ्गरेजोंने उन्हें सजा दे कर अपने वशमें किया था। इसी जमींदार-दलनसे सिपाही-विद्रोहके समय गंगाकी नहर काटना यहांकी उल्लेखयोग्य घटना है।

१८५७ ई०की १२वीं मईको मेरटकी हत्याकाण्ड तथा २२ मईको अलीगढ़का विद्रोह-संवाद मिला। यह संवाद पाते ही ६ नम्बरकी देशी पलटन इस विद्रोहमें शामिल हो गई। बाद उसके जब झांसीसे विद्रोहदल यहां आ पहुंचा तब अङ्गरेज लोग मैनपुरीको छोड़ आगरा भाग गये। झांसीकी सेनाके नगर पर धावा बोलनेके समय वहांके अधिवासी बड़ी दक्षताके साथ नगरकी रक्षामें तत्पर थे। विद्रोहियोंको भगा कर पुनः अङ्गरेज-शासन प्रतिष्ठित होने तक चौहानराजने स्वयं यहांका शासनकार्य चलाया था। १८५८ ई०में विद्रोह दमनके बाद जब अङ्गरेजराज राज्यरश्मि धारण कर धीर गतिसे राजविधि परिचालित करने लगे तब मैनपुरी राजने अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया। उसी समयसे यहां शान्ति है तथा दोनों दलोंमें मित्रता चली आती है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह मैनपुरी, घिरोर और करौली परगनोंको ले कर गठित है। यहां रिन्द और ईशान नदी एवं कानपुर और गंगाकी नहर बहती है। भूपरिमाण ३४६ वर्गमील है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २७° १४' १५" उ० तथा देशा० ७९° ३' ५" पू० ग्रांडट्रंक रोडके आगराकी शाखा पर अवस्थित है। प्राचीन मैनपुरी नगरी और उसके पासके माखमगञ्जको ले कर वर्त्तमान मैनपुरी नगरी बनी है। प्रवाद है, कि पाण्डवोंके समय मैनदेवन यह नगर बसाया। आज भी मैनदेवकी प्रतिमूर्त्ति स्थापित है।

१३६३ ई०में असौलीसे चौहान राजपूत लोग यहां आ कर रहते थे। उन्होंने जहां दुर्ग बनाया था उसके निकटका स्थान क्रमशः नगर बन गया। १८०२ ई०में यह नगर एटावा जिलेका सदर बनाया गया। १८०३ ई०में राजा यशवंत सिंहने माखमगञ्ज स्थापन किया। १८०४ ई०में होल्करने नगर लूट कर जला डाला। अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद बड़ी विपत्ति झेल कर यह नगर श्रीसम्पन्न हो गया है। नगरके उपकण्ठस्थ राइकेशगंज और लेनगंज *Mr, Raikes* और Mr. Lane-के नाम पर प्रतिष्ठित है।

यहांके राजपूत और अहीर अपनी कन्याकी हत्या कर विवाहके खर्चसे छुटकारा पाते थे। १८७५ ई०की प्रचारित राजदण्ड-विधिका उल्लङ्घन कर यहांके अधिवासियोंने यह वीभत्स कार्य किया था।

मैपाड़ा—बङ्गालके कटक जिलान्तर्गत एक नदी। ब्राह्मणीकी दक्षिण शाखा इसी नामसे वंगोपसागरमें गिरती है। इसके

दूसरी तरफ वंसगढ़ नामक खाड़ी अवस्थित है। मद्रास-से देशी नाव चावल वेचनेके लिये मैपाड़ा मुहानेमें आया करती है। इस नदीमुख पर मैपाड़ा नामक एक छोटा द्वीप भी है। यह अक्षा० २०° ४१´ ३०´´ उ० तथा देशा० ८७° ६´ १५´ पू०के मध्य अवस्थित है।

मैमन (सं० पु०) सौवीर गोत्रे वर्त्तमानस्य मिमतस्य अपत्यं ण (फायटाहृतिमिमताभ्यां या फिञौ। पा ४।१।१५०) सौवीर गोत्रीय मिमतका अपत्य। इस अर्थमें फिञ् प्रत्यय भी होता है जिससे 'मैमतायनि' पद वनता है।

मैमनसिंह—वङ्गालप्रदेशके ढाका विभागान्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २३°५७´से २५° २६´उ० तथा देशा० ८९° ३६´से ९१° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६३३२ वर्गमील है। इसके उत्तर गोरा पर्वतमाला, पूर्वमें श्रीहट्ट और त्रिपुरा, दक्षिणमे ढाका और पश्चिममें यमुना नदी है। मैमनसिंह नगर वा नशीरावाद इस जिलेका सदर है।

इस जिलेका अधिकांश स्थान समतल है। प्रायः सभी जगह श्यामल शस्यक्षेत्र नजर आता है। वहुत-सी नदियों और नहरोंके जिलेके मध्य वहनेसे जमीन वहुत उर्वरा हो गई है। इस प्रदेशका एकमात्र मधुपुर जङ्गल वा गढ़गुजालिस खेती-वारी लायक नहीं है। यह जंगल ढाका जिलेके उत्तरसे ले कर मैमनसिंहके मध्य देशमें ब्रह्मपुत्र तक फैला हुआ है। इसका तलदेश साधारण क्षेत्रसे अपेक्षाकृत ऊंचा है। ऊंचाई सव जगह एक-सी नहीं है, पर इतना जरूर है, कि कोई भी स्थान १०० फुटसे अधिक ऊंचा नहीं। असंख्य शालवृक्ष इस जंगलमें देखे जाते हैं। इसकी लम्वाई प्रायः ४५ मील और चौड़ाई ६ से १६ मील है। रकवा ४०० वर्गमीलसे ऊपर होगा। ग्रीष्म और वर्षाकालमें यह जंगलमय स्थान वहुत अस्वास्थ्यकर रहता है, अन्यान्य ऋतुओंमें आवहवा अच्छी नहीं रहती।

यमुना नदी दावकोवा नामक स्थानसे इस जिलेमें घुसती है। पीछे वह उत्तर दक्षिणाभिमुखी हो प्रायः ६४ वर्गमील रास्ता तै कर सलीमावाद तक आई है पण्यद्रव्यवाही नावें सभी समय यमुनामें आती जाती हैं। वर्षा ऋतुमें इसकी चौड़ाई इतनी वढ़ जाती है, कि कहीं कहीं छः मीलसे भी अधिक देखी जाती है। यमुना में प्रखर स्रोत वहनेके कारण प्रति वर्ष चर पड़ जाता है। ब्रह्मपुत्र नदी इस जिलेके उत्तर-पश्चिम कराईवाड़ीके समीप हो कर दक्षिणकी ओर तोक तक वह गई है। मेघना नदीका विस्तार इस जिलेमें वहुत थोड़ी दूर तक है।

मैमनसिंहकी जमीन साधारणतः तीन श्रेणीमें विभक्त है, जैसे—१ वलुई, २ दोरस, ३ मतियार। इनमें-से प्रथम श्रेणीकी जमीन नदीके किनारे अवस्थित है। इसमें नील और पटसन उपजता है। २य श्रेणी जला-भूमि है: इस जमीनमें वोरो धान लगता है। ३य श्रेणी-की जमीन सवसे अच्छी है। वहां धान खूव उपजता है। मधुपुर जङ्गलके समीप किसी किसी स्थानमें लौह-मिश्रित लाल मिट्टी देखनेमें आती है।

इस जिलेके पूर्व भागमें जलमय स्थान तो वहुतसे हैं, पर उनमें हवड़ा-विल ही उल्लेखनीय है। वहुत घना जंगल होनेके कारण इस जिलेमें तरह तरहके जंगली जन्तुओंका वास देखा जाता है। पहले नदीके किनारे चरके ऊपर वहुतसे वाघ भालू रहते थे। अभी वाघकी संख्या वहुत घट गई है। चीता, हरिण, जंगली भैंस, सूअर आदि अधिक संख्यामें देखे जाते हैं। गारो और सुसङ्ग पहाड़ पर हाथी रहता है। वहांसे प्रति वर्ष वृटिश सरकार हाथी पकड़ कर लाती है। पहले केवल वहांके राजाको ही हाथी पकड़नेका अधिकार था, पर अभी गवर्मेण्टने उसे उठा दिया है। अव जो चाहे वह हाथीका शिकार कर सकता है।

प्राचीन कालमें यह जिला प्राग्ज्योतिष या कामरूप राज्यके अन्तर्गत था। प्राग्ज्योतिषके एक प्रसिद्ध राजा भगदत्त कुरुक्षेत्रके महाभारत युद्धमें लड़े थे। वे किरातों-के राजा थे और उनका राज्य समुद्र तक फैला हुआ था। उनकी राजधानी गौहाटी (आसाम)-में थी, परन्तु उनके प्रासादका स्थान मधुपुरके जंगलमें वतलाया जाता है जहां प्रति वर्ष मेला लगता है।

पुराने ब्रह्मपुत्रका केवल पश्चिमी भाग वल्लाल सेनके दखलमें था, पूर्वी भाग नहीं। सम्भवतः इसी कारण पश्चिमी भागमें वल्लालसेनकी चलाई हुई कुलीन

प्रथा पाई जाती है लेकिन पूर्वी भागमें यह प्रथा नहीं दीख पड़ती।

सन् ११६६ ई०में मुसलमानोंका वङ्गालमें प्रवेश हुआ सही, पर पूरब वंगाल उनके शासनमें न आया। १३५१ ई०में शमसुद्दीन इलियस शाहने समूचे सूबे पर अधिकार जमाया और ढाकाके पास सोनारगांव पूरब बंगालके सूबेदारोंका काम हुआ। पूरब बंगालमें बलवा होता रहा और महमूद शाहने १४४५ ई०में इसको फिरसे विजय किया। उसका वंश १४८७ तक राज्य करता रहा और उस समय यह प्रान्त मुअज्ञमाबाद सूबेके अन्तर्गत रहा। स्थानीय लोगोंका कहना है, कि सुलतान हुसैन शाह और उसके लड़के नशरत शाहने पूरब मैमनसिंह फतह किया था। हुसैन शाहने इस जिलेकी दक्षिणी सीमाके पास इकडालामें एक किला बनवाया और वहांसे अहमोंके विरुद्ध सेना भेजी। कहा जाता है, कि हुसैनके नाम पर हुसैनशाही परगना कायम हुआ और नशरतशाही आदि २२ परगनोंका नाम उसके लड़केके नाम पर रक्खा गया। जो हो, पूरब बंगाल पर पूर्ण विजय न हो पाई थी। १६वीं सदीके उत्तरार्द्धमें इसमें अनेक स्वाधीन राजे उठ खड़े हुए जिनके सरदार भुइंया कहलाते थे। इन भुइंयोंमें ईशा खां प्रसिद्ध था। इसीने मैमनसिंहके प्रसिद्ध वंशकी स्थापना की थी। वह वंश पीछे हैवत नगर और जंगलवारीका दीवान साहब कहलाया। इन लोगोंका राज्य दूर तक फैला हुआ था। राल्फफिच साहब १५८६ ई०में यहां आये थे उन्होंने ईशा खांको सभी राजोंमें श्रेष्ठ बतलाया है। उस समय दूसरा प्रसिद्ध भुइंया गाजी खानदानका एक सरदार था जो ढाकाके भावल और मैमनसिंहके राज भावल परगनेका शासन करता था। १५८२ ई०में पैमाइशके समय टोडरमलने मैमनसिंहको सरकार बजुहामें मिला दिया।

१७६५ ई०में बङ्गालकी दीवानी पाने पर मैमनसिंह इष्टइण्डिया कम्पनीके हाथ आया और निआवत नामक हल्केमें मिला लिया गया। १७६५ ई०के करीब मैमनसिंह जिला संगठित हुआ और यहां एक कलक्टर नियुक्त हुए। १७९१ ई०में ढाकासे कलक्टरकी अदालत मैमनसिंह लाई गई। इस जिलेमें तबसे शासन सम्बन्धी बहुत कुछ परिवर्त्तन हुए हैं। १८६६ ई०में सिराजगंज थाना इससे निकाल कर पबना जिलेमें तथा बोगरा और ढाका जिलेसे दीवानगंज और अटिया थाना निकाल कर इसमें मिलाये गये।

ऐतिहासिक चिह्न इस जिलेमें बहुत कम देखनेमें आता है। केवल मट्टीका एक पुराना किला है जिसका घेरा करीब २ वर्गमील होगा। यह सम्भवतः ५०० वर्ष पहले पहाड़ी जातियोंका हमला रोकनेके लिये बनवाया गया था।

इस जिलेमें ८ शहर और ६७७० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ४० लाखके करीब है। विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पीछा पड़ा हुआ है। १८८१ ई०से लोगोंका इस ओर कुछ कुछ ध्यान आकृष्ट हुआ है। अभी कुल मिला कर ३ हजारसे ऊपर स्कूल हैं। इसमेंसे २ शिल्प कालेज, १५० सिकेण्ड्री और बाकीमें प्राइमरी स्कूल हैं। मैमनसिंह जिला स्कूल, नसिराबादका कालेज और टङ्गैलका प्रमथा मनमथ कालेज प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त ४० अस्पताल भी हैं।

इस जिलेमें चावल और पटसन बहुतायतसे उत्पन्न होता है। यहांके कलक्टर साहबकी रिपोर्टसे मालूम होता है, कि पहले जो सब जमीन परती रहती थी अभी उसमें पटसन काफी उपजता है। फिर यहां तिल, सरसों, तम्बाकू, ईख आदिका भी अभाव नहीं है। रुई, सुपारी, नारियल, चीनी, गेहूं आदि अन्यान्य देशोंसे आमदनी तथा चावल, पटसन, नील चमड़े, पीतल और तांबेके बरतन, घी आदि चीजोंकी यहांसे रफ्तनी होती है।

पूर्व समयमें किसोरीगंज और बाजितपुरका मलमल कपड़ा बहुत मशहूर था। दोनों जगह इष्ट इण्डिया कम्पनीकी कोठी थी। आजकल भी कहीं कहीं मलमल तैयार होता है। यहां अच्छी अच्छी शीतलपाटी और चटाई बुनी जाती है।

२ उक्त जिलेका एक महकूमा। यह अक्षा० २४° ७' से २५° ११' उ० तथा देशा० ८६° ५१' से ६०° ४१' पू०के मध्य अवस्थित है। इसमें नसिराबाद और मुकागाछा नामक शहर और २३६७ ग्राम लगते हैं। इसका अधिकांश

उपजाऊ है। मधुपुर जंगल इसके दक्षिण पड़ता है।

३ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा० २४° २५' उ० तथा देशा० ९०° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। क्षेत्रफल ९६० एकड़ है। यहां २ प्राचीन हिन्दूदेव मन्दिर देखनेमें आते हैं। स्कूलके अलावा शहरमें दातव्य चिकित्सालय और म्युनिसिपल सिपाही रहते हैं।

मैया (हिं० स्त्री०) माता, माँ।

मर (हिं० पु०) १ सोनारोंकी एक जाति। (स्त्री०) २ सांपके विषकी लहर।

मैरता—राजपूताना मारवाड़ प्रदेशके अन्तर्गत एक विभाग और नगर। मन्दोर सामन्तराव दूधने इस नगरकी स्थापना की। वादमें वे ३६० गांव और नगर समन्वित यह विभाग अपने पुत्र जयमल्लको दे गये। यहांके राठोरगण मैरता नामसे प्रसिद्ध हैं। मारवाड़ इतिहासमें इनकी वीरत्व-काहिनी दी गई है। यहां वहुतसे मन्दिर आदिके निदर्शन हैं। मारवाड़ देखो।

मैरव (सं० पु०) मेरुसम्बन्धीय।

मैरवाड़—मारवाड़ प्रदेशका नामान्तर। मारवाड़ देखो।

मैरा (हिं० पु०) खेतोंमें वह छाया हुआ मचान जिस पर बैठ कर किसान लोग अपने खेतोंकी रक्षा करते हैं।

मैरावण (सं० पु०) असुरभेद, महीरावण।

मैरेय (सं० क्ली०) मारं काम जनयतीति मार-ढक्। निपातनात् साधुः। १ मदिरा, शराव। २ गुड़ और धौके फूलकी वनी हुई एक प्रकारकी प्राचीन कालकी मदिरा। सुश्रुतके मतसे इसका गुण तीक्ष्ण, कषाय, मादक, अर्श, कफ, और गुल्मनाशक, क्रमि, मेद और वायुका शान्तिकर तथा गुरुपाक माना गया है।

३ सुरा और आसव प्रस्तुत कर इन दोनों प्रकारकी मदिराको एक वरतनमें एकत्र कर उसमे थोड़ा मधु मिलानेसे जो तैयार होता है उसे मैरेय कहते हैं। मद्य शब्दका पर्याय मैरेय है। सुतरां मद्य मात्रको ही मैरेय कहा जाता है। मैरेय शब्द साधारणतः क्लीवलिंगमें व्यवहृत होता है। कहीं कहीं पुंलिङ्ग भी होता है।

"तीक्ष्णः कषायो मदकृत् दुर्नाम कफगुल्महृत्।
क्रमिमेदोऽनिलहरो मैरेयो मधुरो गुरु॥"

(सुश्रुत सूत्रस्था० ४५ अ०)

मैरेयक (सं० पु० क्ली०) १ मद्यभेद। २ वर्णसंकर जातिभेद।

मैरेयाम्बु (सं० क्ली०) काञ्जिकभेद, मैरेय शराब।

मैल (हिं० वि०) १ मलिन, मैला। (स्त्री०) २ गर्द, धूल, किट्ट आदि जिसके पड़ने या जमनेसे किसी वस्तुकी शोभा या चमक दमक नष्ट हो जाती है, मलिन करनेवाली वस्तु। ३ दोष, विकार। ४ फीलवानोंका एक संकेत। इसका व्यवहार हाथीको चलानेमें होता है।

मैलखोरा (हिं० वि०) १ मैलको छिपा लेनेवाला, जिस पर जमी हुई मैल जल्दी दिखाई न दे। (पु०) २ वह वस्त्र जो शरीरकी मैलसे शेष कपड़ोंकी रक्षा करनेके लिये अन्दर पहना जाय। ३ साबुन। ४ काठी या जीनके नीचे रखा जानेवाला नमदा।

मैलन्द (सं० पु०) भ्रमर, भौंरा।

मैला (सं० स्त्री०) नीलीवृक्ष।

मैला (हिं० पु०) १ गलीज, विष्ठा। २ कूड़ा कर्कट। ३ मैल देखो। (वि०) ४ जिस पर मैल जमी हो, जिस पर गर्द, धूल या कीट आदि हो। ५ विकार-युक्त, दूषित। ६ गंदा, दुर्गन्धयुक्त।

मैलाकुचैला (हिं० वि०) १ जो बहुत मैले कपड़े आदि पहने हुए हो। २ बहुत मैला, गंदा।

मैलापन (हिं० पु०) मैला होनेका भाव, गंदापन।

मैलापुर—मद्रास नगरके उपकण्ठस्थ एक गण्डग्राम। खृष्टान साधु सेण्ट थोमी (St Thome) के नाम पर इसका नाम सेण्ट थोमी पड़ा। आज वह मद्रासके सीमाभुक्त है। किसी किसीके मतसे यही प्राचीन मणिपुर है।

मैलावरम—मद्रासप्रदेशके कृष्णा जिलेका वेजवाड़ा तालुकके अन्तर्गत एक भूसम्पत्ति और नगर।

मैवङ्ग—आसामप्रदेशके उत्तर कछाड़ विभागके अन्तर्गत एक नगर। वराइल शैलश्रेणीके दो शिखरोंके मध्य यह अवस्थित है। १७वीं सदीमें कछाड़ी राजोंने हिन्दूसंस्रवके प्रभावसे स्पर्द्धित हो यहां राजधानी बसाई थी। पीछे इस देशकी राजशक्तिके अवसान होने पर मैवङ्ग नगर अवनतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया।

अभी यह जंगलसे ढक गया है। टूटा फूटा मन्दिर अब भी उस अतीत कीर्त्तिकी घोषणा कर रहा है।

१८८८ ई०में कुछ धर्मोन्मत्त कछाड़ीने यहां राजविद्रोह खड़ा कर दिया। शम्भुदान नामक एक व्यक्तिने विविध रोगोंको आरोग्य करके अपनेको ईश्वर-प्रेरित घोषित किया। मूर्ख लोग इस बात पर तथा अलौकिक शक्ति पर मुग्ध हो कर उसके शिष्य बन गये। मैवङ्गमें उन लोगोंका आस्ताना कायम हुआ। इस उद्धत धर्मसम्प्रदायने धीरे धीरे ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया, कि उनके अत्याचार और उपद्रवसे आस-पासके लोग तंग तंग आ गये। उनकी दस्युवृत्ति दमन करनेके लिये स्वयं डिपटी कमिश्नर सशस्त्र पुलिसोंके साथ मैवङ्गमें उपस्थित हुए। इस संवाद पर विद्रोहीदलने मैवङ्गका परित्याग कर उत्तर कछाड़के विचारसदर गुनजोङ्ग पर आक्रमण कर दिया। यहां पुलिसके साथ शम्भुदानके अनुयायियोंका एक युद्ध हुआ। युद्धमें तीन पुलिस कर्मचारी मारे गये पीछे उन आततायियोंने नगरको लूटा और जला दिया। इसके बाद उनके मैवङ्ग लौटने पर मेजर बाइड (Major Boyd)ने दलबलके साथ यहां छावनी डाली। दूसरे दिन सवेरे अङ्गरेजी सेनाने उनके आस्ताने पर चढ़ाई कर दी। मूर्ख विद्रोहीदलका विश्वास था, कि शम्भुदान अपने योगबलसे अंगरेजोंकी गोलीको हवामें उड़ा देंगे; किन्तु थोड़े ही समयके अन्दर उनका यह भ्रान्तविश्वास जाता रहा। संग्रामके बाद कछाड़ियोंका बलक्षय होता देख विद्रोहीदल रणस्थलसे भाग चला। युद्धमें मेजर बाइड घायल हुए और कुछ दिन बाद धनुष्टङ्कार रोगसे परलोकको सिधारे। शम्भुदानने पहले छिप कर अपनी जान बचाई, पर पीछे पुलिसने उसे पकड़ा और यमपुरको भेज दिया। उसका प्रधान वा धर्मगुरु मानसिंह था। सरकारने उसे कालेपानीकी सजा दी।

मैश्रधान्य (सं० क्ली०) एक प्रकारका खाद्य पदार्थ जो चावलोंके मेलसे बनाया जाता है।

मैसरम—निजाम राज्यके हैदराबाद तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा गाँव। यह हैदराबाद नगरसे ५ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां निजामके पदातिक सेनादलकी एक छावनी है। पहले महासमृद्धशाली महिषागम नगरी विद्यमान थी। प्राचीन हिन्दूमन्दिरको ध्वंसावशेष आज भी उस अतीत स्मृतिकी घोषणा करता है। मुगल बादशाह औरङ्गजेबने गोलकुण्डाको जीत कर यहांकी हिन्दूकीर्त्तिको नष्ट कर डाला तथा सबसे बड़े मन्दिरके ध्वंसावशेषसे एक मसजिद बनवाई। हैदराबादकी मक्का मसजिदमें यहांकी हिन्दूकीर्त्तिका निदर्शन पाया जाता है।

मैसूर—दक्षिण भारतके अन्तर्गत एक प्राचीन हिन्दूराज्य। अभी यह बृटिश सरकारके अधीन एक मित्रराज्य समझा जाता है। इस सामन्त राज्यकी नामनिरुक्तिके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियां सुनी जाती हैं। कोई 'महिष उरु' वा महिष नामसे और कोई महिष असुर नामके अपभ्रंशसे प्राचीन महिसुर देशको नामोत्पत्ति बतलाते हैं। यह अक्षा० ११° ३६´ से १५° २´ उ० तथा देशा० ७४° ३८´ से ७८° ३६´ पू०के मध्य विस्तृत है। महिसुर नगरमें इस सामन्त-राज्यकी राजधानी है, किन्तु विचार-विभाग बङ्गलूरमें है। महिसुरराज्य अङ्गरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद बङ्गलूरकी श्रीवृद्धि हुई। यहां बृटिश-सरकारका एक सेनावास स्थापित है। इसमें १२८ शहर और २० हजार ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६० लाखके लगभग है।

सारा महिसुर राज्य पूर्व और पश्चिमघाट-पर्वतमाला तथा नीलगिरिका अधित्यकामय सानुदेशपूर्ण देशभाग, समुद्रपृष्ठसे २ हजार फुट ऊंचा है। केवल कृष्णा और कावेरी अववाहिकाका मध्यवर्त्ती अधित्यकादेश ३ हजार फुट तक ऊंचा देखा जाता है। अधित्यका भूमिमें जहां तहां धानकी फसल लगती है।

उपरोक्त अधित्यकाभूमिमें कुछ गिरिश्रृङ्ग मस्तक उठाये महिसुर राज्यके विशाल समतल क्षेत्रकी रक्षा कर रहे हैं। श्रृङ्गोंमें नन्दिदुर्ग (४८१० फुट) और सवन दुर्ग (४०२४ फुट), राज्य-रक्षाके लिये हिन्दू प्रधान्यकालमें कवल दुर्ग, शिवगन्धा, चित्तल दुर्ग आदि सुदृढ़ गिरिदुर्ग स्थापित हुए थे। शत्रुओंके साथ बार बार युद्धमें लिप्त रहनेके कारण सवन दुर्ग इतिहासमें प्रसिद्ध हो गया है। सिर्फ कवलदुर्ग दुर्द्धर्ष बन्दियोंके चरम-

स्थान रूपमें निरूपित हुआ है। अलावा इसके मुलंा-इनागिरि (६३१७ फुट), कुदुरीमुख (६२१५ फुट), बाबा बुदनगिरि (६२१४ फुट), कालहत्ती (६१५५ फुट), रुद्रगिरि (५६९२ फुट), पुरुषगिरि (५६२६ फुट), मेर्त्तिगुड्ड (५४५१ फुट) और वोद्दिनगुड्ड (५००६ फुट), नामक कुछ ऊंचे शृङ्ग महिसुरराज्यमें अवस्थित हैं। बाबाबुदन वा चन्द्रद्रोण गिरिमालाके मध्य जागर नामक बहुत उर्वरा अधित्यका है।

महिसुर राज्य प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है, पश्चिम भागका पर्वतमालाका सानुदेशांश मलनाड़ तथा पूर्व भागका धान्य जलादि परिपूर्ण समतल क्षेत्र मैदान कहलाता है। इन सब विस्तीर्ण शस्यक्षेत्रोंमें जल देनेके लिये जहां तहां नहर काट कर लाई गई है। नदियोंमें कृष्णा, कावेरी, उत्तर और दक्षिण पेन्नार, पालार, गर्जिता, नेत्रवती, तुङ्गभद्रा, वेदवती, यागची, लोकपावनी, शरावती, सिमला, अर्कवती, लक्ष्मणतीर्थ, गुन्दल, कव्वनी, होन्नुहोले, चित्रावती, पापहनी आदि नदियाँ और शाखा नदियां प्रधान हैं। अलावा इनके और भी कितने छोटे सोते पहाड़ी ढालू-प्रदेशसे वह कर पूर्वोक्त नदियोंमें गिरते हैं।

नदियोंकी अववाहिका-भूमि पर्वत-गह्वरगत तथा तोरभूमि पार्श्ववर्त्ती समतलक्षेत्रकी अपेक्षा ऊंची होनेके कारण उनके जलसे खेतीवारीमें उतना लाभ नहीं पहुंचता। बाढ़के समयके अतिरिक्त नहरमें उतना जल नहीं रहता, इससे नावें माल ले कर नहीं आ जा सकतीं। केवल तुङ्गभद्रा और कण्वनी नदीमें लकड़ी बहने लायक जल रहता है। कावेरी आदि बड़ी बड़ी नदियोंमें नाव आदिकी विशेष सुविधा नहीं होने पर भी उसका जल खेतीवारीमें बहुत काम आता है। बाँध खड़ा कर इस नदीका स्रोतोवेग रोक दिया गया है और उसीसे कृषिकार्यका काम बड़ी आसानीसे चलता है।

कोर्त्तागिरिसे हिरियुट और मोक्ककलमुस नामक स्थानमें कुछ प्रस्रवण देखे जाते हैं। इस स्थानके दक्षिण भागमें पहाड़ी मट्टी खोदने पर जमीनके अन्दरसे जल निकलता है।

पश्चिमघाट पर्वतके समीप तरह तरहके वृक्ष, लता और जन्तुपरिपूर्ण विस्तीर्ण वनराजि विराजित है। पर्वत पर भिन्न भिन्न प्रकारका पत्थर और अवरक पाये जाते हैं। समतलक्षेत्र पर कहीं तो कंकड़ और कहीं रुई उत्पन्न होने लायक काली मिट्टी नजर आती है। आलावा इसके खनिज लोहे और स्वर्णादि धातुका भी अभाव नहीं है।

इस राज्यका कोई धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता, किन्तु प्राचीन शिलालिपि और ताम्रशासनादि पढ़नेसे मालूम होता है, कि उनमें जो स्थान वर्णित हैं, वे रामायण और महाभारतके समयसे ही प्रसिद्ध हैं। पौराणिक वर्णनसे ज्ञात होता है, कि यहां श्रीरामचन्द्रके सहचर वालिके भाई सुग्रीवका राज्य था। ई० सन्‌के ३री सदीमें बौद्धधर्म प्रचारकोंने यहां अपनी गोटी जमाई। पीछे यहां जैनप्रभाव विस्तृत हुआ। आज भी तरह तरहकी शिल्पयुक्त जैन और बौद्धकीर्त्ति उन सब युगोंकी प्रधानता सूचित करती हैं।

शिलालिपि, ताम्रशासन, राजवंशचरिताख्यान, पाश्चात्य भौगोलिक टलेमीका वृत्तान्त और मुसलमान इतिहास पढ़नेसे दाक्षिणात्यके राजवंशोंका जो इतिहास मालूम हुआ है उसकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि अति प्राचीन कालमें कादम्बवंशीय राजाओंने १४वीं सदी तक उत्तर महिसुरका शासन किया था। वनवासीनगरमें उनकी राजधानी थी। इतने दिनोंके शासनमें उन्होंने किस प्रकार महिसुर राज्यको समृद्ध-शाली बना दिया था, उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। आगे चल कर उन्होंने चालुक्य राजाओंकी अधीनता स्वीकार की थी। कादम्ब-राजवंश देखो।

जिस समय कादम्ब-राजगण महिसुरका शासन करते, ठीक उसी समय कोयम्बतोर और समूचे दक्षिण-महिसुरमें गङ्ग वा कोंगु (किसीके मतसे चेड़)-वंशीय राजाओंका राज्य था। पहले कड़ूरनगरमें और पीछे कावेरी तीरवर्त्ती तालकड़ नगरमें उनकी राजधानी स्थापित हुई थी। ९वीं सदीमें चोलराजाओंके अभ्यु-दयसे कोंगुवंशका अधःपतन हुआ। शिलालिपि पढ़नेसे मालूम होता है, कि गङ्गवंशीय पूर्व राजे जैनधर्मावलम्बी

थे। २री सदीमें जैनधर्मका परित्याग कर उन्होंने सनातन हिन्दूधर्मका आश्रय लिया था।

पूर्व-महिसुरमें सुप्राचीन पल्लववंशीय राजे राज्य करते थे। वे ७वीं सदीमें चालुक्य राजाओंसे परास्त होने पर भी १०वीं सदी तक शत्रुपुञ्जके विरुद्ध डटे रहनेसे बाज नहीं आये।

चालुक्योंने ४थी सदीमें यहां आ कर अपना प्रभाव फैलाया। १२वीं सदी तक वे पूर्ण प्रतापसे यहांका शासन करते रहे। अन्तिम सदीमें वल्लालवंशीय सरदारोंने चालुक्यराजको परास्त कर उनका राज्य हड़प कर लिया। चोल और कलचूरी राजाओंने भी यहां कुछ समय तक राज्य किया था।

ये हयसाल वल्लालवंशीय राजे जैनधर्मावलम्बी, वीर और उन्नतचेता थे। वे वर्त्तमान सीमान्तभुक्त समस्त महिसुरप्रदेश तथा कोयम्बतोर, सलेम, धारवाड़ आदि राज्योंके कुछ अंशको जीत कर शासनकार्य्य चलाते थे। १६१० ई० तक उन्होंने द्वारसमुद्र (द्वारकावती पत्तन वर्त्तमान हलेवीड) में राजपताका फहराई थी। उसी साल दिल्लीश्वर अलाउद्दीनके विख्यात मुगल-सेनापति मालिक काफूर जब दाक्षिणात्य जीतनेको आया तब उसने वल्लालराजको हराया और कैद किया तथा उसके राज्यको अच्छी तरह लूटा। उसके १६ वर्ष बाद महम्मद तुगलकके भेजे हुए मुसलमान सेनादलने द्वारसमुद्रको तहस नहस कर डाला। आज भी हयसालेश्वरका शिल्पमण्डित देवमन्दिर प्राचीन समृद्धिका परिचय देता है। इसके सिवा कुछ जैन और हिन्दू मन्दिर प्राचीन जैन और हिन्दूयुगकी प्रधानता घोषित करते हैं।

हयसाल-वल्लालवंशकी अवनतिके साथ साथ दाक्षिणात्यमें तुङ्गभद्रा तीरवर्त्ती विजयनगरमें एक और हिन्दू राजवंशका अभ्युदय हुआ। १३३६ ई० में वरङ्गल-राजके हुक्क और बुक्क नामक दो प्रधान कर्मचारीने विजयनगर आ कर राजपाट बसाया। हुक्क हरिहर नाम धारण कर सिंहासन पर बैठे। उसका प्रतिष्ठित यह राजवंश 'नरसिंह' वंश नामसे प्रसिद्ध हुआ। मुसलमान ब्राह्मनी राजवंश इस हिन्दूराजवंशका चिरशत्रु था। १५६५ ई०में दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध चार शाही वंशोंने मिल कर विजयनगराधिप रामराजको तालिकोटकी लड़ाईमें हराया और मार डाला। उनके वंशधरगण दक्षिण भाग गये और वहां कमजोर होने पर भी पहले पेनुगोण्डामें और पीछे चन्द्रगिरिमें राजपाट बसाया। यहां रह कर उन्होंने कुछ समय तक विजेता मुसलमान-राजाओंके विरुद्ध हथियार उठाया था।

पेनुकोण्डाके नरसिंहवंशके अन्तिम राजाके शासन-प्रभावमें जब शिथिलता आ गई तब स्थानीय पलिगार-सरदार स्वाधीन होनेकी कोशिश करने लगे। इस समय दक्षिण महिसुरके उदैयारों, उत्तरमें केलड़ीके नामको पश्चिममें वलम (मञ्जराबाद) के नायकों तथा चित्तलदुर्ग और तारिकेरके बेद्दर-सरदारोंने जब देखा, कि नरसिंहके राजप्रतिनिधि तिरुमलकी शक्ति कमजोर हो गई है, तब उन्होंने मिल कर १६१० ई०में उदैयारको अधिनायकतामें श्रीरङ्गपत्तन दुर्गको आक्रमण और फतह किया। तभीसे मैसूरमें उदैयारके राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

उक्त उदैयारके राजा विजयराजसे नौ पीढ़ी नीचे थे। प्रवाद है, कि भाई कृष्णराजके साथ विजयराज अपनी जन्मभूमि सौराष्ट्रके अन्तर्गत द्वारकासे १३९९ ई० में दाक्षिणात्य आये। ये लोग यादववंशीय क्षत्रिय थे।

विजयनगरके राजवंशके गौरव रविका दाक्षिणात्य-गगनमें पूर्ण रूपसे उदय होने पर इस यादववंशने वीरताकी पराकाष्ठा दिखलाई थी। तदनुसार राजाके अनुग्रहसे उन्होंने हदनीस नामक स्थानका सामन्तपद प्राप्त किया। राजा उदैयार द्वारा श्रीरङ्गपत्तन अवरुद्ध होनेके पहले यादव सरदारोंने पुरगढ़ नगरमें एक दुर्ग बना कर उसका महिषासुर वा महिसुर नाम रखा। महिषमर्दिनीको महिसुर-राजवंशकी कुलदेवी देख कर अनुमान होता है, कि यादवगण महिषासुर निधन-कारिणी चामुण्डादेवीके विशेष भक्त थे। देवीके प्रति भक्तिवशतः ही वे लोग देवी नामके पक्षपाती हुए थे।

श्रीरङ्गपत्तनमें उदैयारराजवंशकी राजधानी स्थापित होने पर भी इतिहासमें उन्हें प्रकृत महिसुरका राजा बतलाया है। राजा उदैयार द्वारा श्रीरंगपत्तन विजयके

बाद उनके वंशधर यामराज और कंठीराजने महिसुर राज्य-सीमाको बहुत कुछ बढ़ा दिया था। १६३८-१६५८ ई० तक कण्ठीराजने दोर्दण्ड प्रतापके साथ महिसुर राज्यका शासन किया। इस समय वे रात-दिन लड़ाईमें उलझे रहनेपर भी उन्होंने राजधानीकी सुरक्षाके लिये दुर्ग और चहारदीवारी बनवाई, टकसाल-घर खोले तथा राजस्व उगाहनेके लिये अच्छे अच्छे कार्य किये। उनके नामकी होणमुद्रा १७३१ ई०में जब मुसलमानोंने महिसुरको जीता था, उस समय यहांकी प्रचलित जातीय मुद्रा समझी जाती थी।

कण्ठीराजके पौत्र चिक्कदेवरायने प्रबल प्रतापसे ३४ वर्ष दक्षिणभारतका शासन किया। उनके राज्यकालमें १६८७ ई० को समस्त महिसुरवासी शैवधर्मको छोड़ कर वैष्णव हो गये थे। १७०४ ई० में चिक्कदेवरायका परलोकवास हुआ। वर्षों राज्य करके वे जिस विस्तृत राज्यकी स्थापना कर गये हैं उसका राजस्व प्रायः एक करोड़ रुपया था।

चिक्कराजके बाद उनके वंशके दो राजपुत्रोंने १७३१ ई० तक राज्य किया। पीछे प्रकृत वंशमें उत्पन्न भिन्न शाखाभुक्त रामराज नामक एक राजवंशधरको सिंहासन पर बिठाया गया। राज्यशासनमें अक्षम देख दलवाई (सेनापति) और दीवानने उन्हें तख्तसे उतार दिया और कबल दुर्गमें घेरा डाला। इसी अस्वास्थ्यप्रद स्थानमें उनकी मृत्यु हुई। अनन्तर चिक्क कृष्णराज नामक एक राजकुटुम्बको १७३४ ई० में महिसुरके सिंहासन पर अभिषिक्त किया गया।

सामन्तप्रधान चिक्क कृष्णराजके जमानेमें दाक्षिणात्यके सुप्रसिद्ध मुसलमान-सेनापति हैदरअलीने अपनी वीरता और रणकौशलसे १७६३ ई०में वेदनूरकी लड़ाईमें महिसुर-राजको परास्त कर राजसिंहासनको अपनाया और राजकोषको लूटा। हैदरने असाधारण प्रतिभाबलसे दक्षिणभारतमें जिस मुसलमान-शक्तिका विस्तार किया था उस सुख-ऐश्वर्यका उसके वंशधर टीपू-सुलतानको अधिक दिन भोग न हुआ।

हैदर और टीपूसलतान देखो।

१७९९ ई०के श्रीरङ्गपत्तन अवरोधकालमें टीपू सुलतानकी मृत्यु हुई। इस समय अङ्गरेजराजने महिसुरको जीत कर अरुकदु-वासी प्राचीन हिन्दूराजवंशधर रामराजके पुत्र कृष्णराजको सिंहासन पर बिठाया। उसी सालसे ले कर १८१० ई० तक नाबालिग राजाका राज्य शासन करनेके लिये पूर्णीहया नामक एक मराठा ब्राह्मण राजमन्त्रीके पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने अपने अमित तेज और अध्यवसायसे राज्यकार्य चला कर राजकोषको भर दिया था। बालिग होनेपर राजाने राज्यभार अपने हाथ लिया तथा शासनविशृङ्खलताके कारण जो कुछ धन जमा था, कुल खर्च कर दिया। आखिर १८३१ ई० में अंगरेजराज स्वतः प्रवृत्त हो कर उनकी ओरसे राज्यशासन करने लगे। १८६८ ई० में उनके मरने पर वेत्तड़कोट राजवंशीय चिक्ककृष्ण अरसूके लड़के चामराजेन्द्र उदैयारको उन्होंने गोद लिया। कृष्णराजके छलसे महिसुरका शासनभार ग्रहण कर अंगरेजराजने शासनकी सुव्यवस्थाके लिये दो कमिशनर नियुक्त किये। किन्तु इससे राजकार्यमें बड़ी गड़बड़ी मची। पीछे १८३४ ई० में कर्नल मोरिसन एक मात्र कमिशनर नियुक्त हुए। उनके बाद सर मार्क कुबोन राजकार्यमें विशेष दक्षता दिखा कर अच्छा नाम कमा गये हैं। १८६१ ई० तक उनके शासनकालमें महिसुरराज्यमें कोई उच्छृङ्खलता दिखाई नहीं देती।

उसी साल वृटिशशासन प्रणालीसे राज्यशासन करनेके लिये वृटिश-सरकारने अच्छा प्रबंध कर दिया। कोर्ट आव डिरेक्टरकी अनुमतिसे देशी राजाके हाथ शासनविधि सौंपी गई। राजकार्य सुचारुरूपसे चलता है या नहीं, इसको देखभाल करनेके लिये तीन विभागीय अंगरेज परिदर्शक नियुक्त हुए। इस समय गोद लेनेका अधिकार जिससे कायम रहे तथा बालक राजा सयाने होने पर स्वयं शासनभार ग्रहण कर सके, इसके लिये शासन-विधिमें बहुत हेर फेर हुआ। १८८१ ई०में महाराज चामराजेन्द्र उदैयारका अभिषेक कार्य यथारीति सम्पन्न हुआ। भारत राजप्रतिनिधिरूपमें मान्द्राजके शासनकर्त्ता उस समय उपस्थित थे। महिसुरके चीफ कमिश्नरने दीवानके हाथ कुल भार सौंप दिया। इस समय चीफकमिश्नर और साधारण सचिवका पद जाता

रहा। अलावा इसके शासनविषयमें और भी कितने परिवर्त्तन हुए थे।

उसी वर्ष महाराजके ऊपर राज्यशासनभार अर्पित होने पर भी राजकार्य विधिमें कोई हेर फेर नहीं हुआ। महाराज व्यवस्थापक सभाकी सलाहसे सभी काम काज करते थे। कोई नया कानून निकालनेमें उन्हें भारत सरकारकी सलाह लेनी पड़ती थी। वे राजस्वका अपव्यय नहीं कर सकते थे। महाराजकी निजस्व सम्पत्ति राजस्वसे अलग रहती थी। आज भी यहां शासनविभाग और विचारविभाग स्वतन्त्र है। एक यूरोपीय और देशीय विचारक हाईकोर्टकी प्रणालीके अनुसार विचार-कार्य करते हैं। महिसुर और सिमोगा नगरमें एक सिविल और सेसन जज अधिष्ठित हैं। बङ्गलूरका विचार कार्य चीफकोर्टके प्रधान विचारपतिको ही करना पड़ता है। प्रत्येक जिलेका शासनकार्य कुछ डिपटी-कमिश्नरके हाथ है। इसके अतिरिक्त एक जुडिसियल असिस्टेण्ट, मुनसिफ और आमिलदार स्थानीय दीवानी और फौजदारी का विचार करते हैं। प्रत्येक जिलेके मजिष्ट्रेटके अधीन पुलिस नियुक्त है। प्रत्येक थानेका कार्य एक एक सहकारी पुलिस कर्मचारी द्वारा चलता है। वर्त्तमान सामन्तका नाम है सर श्री कृष्णराज उद्दैयार वहादुर जी, सी, एस आई, जी, वी, ई।

राज्यके दूसरे दूसरे संस्कारोंमें जेलखाने, पूर्त्तविभाग, शिक्षाविभाग, पैमासीविभाग, आदिमें अच्छा प्रवन्ध है।

प्रतिवर्ष 'दशहरा' उत्सवके वाद प्रत्येक तालुकसे दो वा तीन प्रतिनिधि निर्वाचन करके एक सभा की जाती है। विचारविभागके अध्यक्ष 'दीवान' महाशय सवके सामने राज्यकी विचारविवरणी पढ़ते हैं तथा परवर्त्ती वर्षके राजकार्य्यमें कौन कौन अच्छे अच्छे काम करनेके लिये शासन-समिति वाध्य हुई है उसे भी वे उपस्थित लोगोंको सुनाते हैं। अन्तमें स्थानीय प्रतिनिधि अपने अपने देशका अभाव तथा अभियोग सभामें पेश करते हैं सभा जैसा उचित समझती है वैसा ही फैसला सुनाती है। वे सव कागज नत्थी करके रख दिये जाते हैं। इस प्रतिनिधि-सभामें जो कुछ पास होता है पहले उसका अंगरेजीमें अनुवाद कर पीछे जनताके समझनेके लिये देशी भाषामें रूपान्तरित किया जाता है।

यहांके आदिम अधिवासियोंमें पहाड़ी कुरुवोंकी संख्या ही अधिक है। ये लोग जंगलमें हाली नामक छोटी झोपड़ी वना कर रहते हैं। ये काले और ठिंगने होते हैं, सिर पर वाल रखते और जूड़ा वांधते हैं। स्त्रियां प्रायः जंगलसे वाहर नहीं निकलतीं। जेनु-कुरु वगण उनकी एक शाखा है। फिर इरसिगर, सोसिगर आदि कुछ असभ्य जातियां हैं जो निर्जन प्रदेशमें रहती और जंगली जंतु पकड़ कर उसीसे गुजारा चलाती हैं।

मलनाद-प्रदेशमें होलियास मन्नालु और होन्नालु नामक कुछ आदिम जातियोंका वास है। ये लोग खेती वारी करके जीविका निर्वाह करते हैं। वोकलिग जाति ५० शाखाओंमें विभक्त है। ये लोग भी कृषिजीवी हैं। इस जातिकी संख्या महिसुर भरमें अधिक है। यहांके ब्राह्मण पञ्चद्राविड़ ब्राह्मणके अन्तर्भुक्त हैं।

यहांका हिन्दू सम्प्रदाय प्रधानतः तीन धर्मावलम्वी है, १ स्मार्त्त, २ माध्व और ३ श्रीवैष्णव। स्मार्त्तगण अद्वैत, माध्वगण द्वैत और श्रीवैष्णवगण विशिष्टा द्वैतमतपोषक हैं। वणिक् सम्प्रदायमें अधिकांश लिङ्गायत् हैं। ये लोग ब्राह्मणोंका सम्मान नहीं करते। इसके अतिरिक्त श्रावण गोलमें कुछ पुरोहित हैं। यहां गोमतेश्वर नामक एक वड़ी देवमूर्त्ति आज भी देखी जाती है। वस्ति वा जैनमन्दिरोंमें भी तीर्थङ्करादिकी प्रतिमूर्त्ति नजर आती है।

पहले लिखा जा चुका है, कि ई०सन्‌से पहले इस राज्यमें वौद्ध और जैन प्रभावका प्रचार था। ध्वंसावशिष्ट निदर्शन आज भी उस स्मृतिकी रक्षा किये हुए है। चालुक्यवंशके जमानेमें स्थापत्य-शिल्पविद्या उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गई थी। हयसाल वल्लालवंशीय राजाओंके शासनकालमें (१०००—१२०० ई०के मध्य) कुछ चारुशिल्पमय मन्दिर वनाये गये। उनमें-से सोमनाथपुरका विख्यात मन्दिर राजा विक्रमादित्य वल्लाल द्वारा वेल्लूरका विष्णुमन्दिर १११४ ई०में राजा विष्णुवर्द्धन द्वारा, और द्वारसमुद्रका काइतेश्वर शिव-मन्दिर राजा विजयनरसिंह द्वारा स्थापित हुआ था। अन्तिम शिवमन्दिरका निर्माणकार्य शेष होते न होते १३१०-११ ई०में मुसलमान सेनापति मालिक काफूरने

आ कर महिसुर पर आक्रमण कर दिया। यही कारण है, कि वह बड़ा मन्दिर समाप्त होने न पाया, अधूरा ही रह गया।

यहांके अधिवासी प्रधानतः कनाड़ी भाषामें बोल-चाल करते हैं। कहीं कहीं उस भाषामें भी तारतम्य देखा जाता है। कहीं पूर्वाड़ा-हालमें कनाड़ी अर्थात् ७वीं सदीकी शिलालिपि लिखित कनाड़ी भाषा है। कहीं हालेकनाड़ी या १४वीं सदीके शेष भागमें प्रवर्त्तित प्राचीन भाषा है। इस भाषामें सभी प्राचीन शास्त्र और महिसुरका अधिकांश शिलाफलक लिखे गये हैं और ३रा होसकण्णड़ अर्थात् वर्त्तमान प्रचलित कणाड़ी भाषा प्रचलित है।

पहले कहा जा चुका है, कि यहांके अधिवासी साधारण कृषिकार्य्य द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। सभी खाने लायक वस्तु यहांकी प्रजाओंसे उत्पन्न होती है। रागी अनाज ही अधिवासियोंका प्रधान भोजन है। अलावा इसके यूरोपीय वणिक्‌सम्प्रदायके यत्नसे ईख, नारियल, सिनकोना, रुई, तम्बाकू, दारचीनी, कहवे, ककोए आदिकी खेती होती है।

१८७५-७८ ई०में यहां काफी वर्षा न होनेसे दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। प्रजाका क्लेश दूर करनेके लिये खजाने-से ७ लाख रुपया खर्च किया गया। राजाने दया पर-वश हो दुर्भिक्ष पीड़ित प्रजाओंको ८० लाख रुपयेकी सम्पत्ति छोड़ दी तथा मैनसन हाउस रिलीफ फण्डसे १५ लाख ५० हजार रुपया ले कर खर्च किया गया।

अनाज आदिका वाणिज्य छोड़ कर यहां कागज, कांचकी चूड़ी, लाल मरको चमड़ा, कम्बल और पश-मीनेका विस्तृत कारबार है। यहां अच्छे अच्छे सूतोंके कपड़े भी तय्यार होते हैं। नावके अलावा रेल द्वारा वाणिज्य चलाया जाता है। मान्द्राज और मराठा-रेलवे-लाईन इस राज्य हो कर दौड़ गई है।

सैनिकशक्ति—१ली जून १६०३ को मैसूरकी सेनासंख्या ५०८६ थी जिनमें २०६३ गोरे और २६६६ देशी सैनिक थे। युद्धके ख्यालसे मैसूर नवां डिविजन (सिकन्दरा-बाद)-के अन्तर्गत है और वर्त्तमान समयमें भारतके प्रधान सेनापतिके अधीन है। इसे घुड़सवार और पैदल सेना तथा तोपखाना है। सैनिक-केन्द्र केवल बंगलोर है और वहां भोलन्टीयर राइफलकोर अर्थात् राइफलवाले स्वयं सेवकोंका सैन्यदल है। १६०३में स्वयं सेवक सैनिकोंकी संख्या प्रायः १५२५ थी। चिकमल-गढ़ और सकलेशपुरमें भी राइफलवाले सैनिक हैं।

१६०४ ई०की सरकारी मंजूरीके अनुसार मैसूर २७२२ सैनिक रखता था जिनमें प्रायः आधे मुसलमान थे। सिलदार घुड़सवारोंको दो रेजिमेण्ट और बाढ़ पैदल सैनिकोंकी चार बटालियन है। स्थानीय घुड़-सवार सैनिक मैसूरमें रहते हैं और बाढ़ बटालियन मैसूर, शिमोगा और बंगलोरमें रहती हैं।

युद्धविभागमें बजटका करीब १० लाख रुपया खर्च होता है।

शिक्षा—पहले तो यह राज्य शिक्षामें बड़ा पिछड़ा हुआ था परन्तु सम्प्रति मैसूर सरकारके प्रबन्ध और प्रयत्नसे शिक्षाका यहां अच्छा प्रचार हो गया है और हो रहा है। बंगलोरके सेंट्रल कालेज और मैसूरके महाराजा कालेज जो फष्ट ग्रेडके है और मद्रास विश्वविद्यालयसे सम्बन्ध रखते हैं विशेष उल्लेखनीय है। इनके अलावे और भी इस राज्यमें कई अच्छे अच्छे कालेज हैं और मैसूरमें ताताके फंडसे रिसर्च अर्थात् अनुसन्धान विभाग भी चलता है। प्राथमिक शिक्षा पर पूर्ण ध्यान दिया गया है और शिक्षामें इसे अब उन्नत कह सकते हैं।

२ उक्त राज्यके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० ११° ३६' से १३° ३' उ० तथा देशा० ७५° ५५' से ७७° २०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५४६६ वर्ग-मील है। इसके उत्तरमें हसन और तुमकुर जिला, पूरबमें बङ्गलोर और मान्द्राजका कोयम्बतोर जिला, दक्षिणमें नीलगिरि और मलवार जिला तथा पश्चिममें कूर्ग है।

यहांका स्वाभाविक सौन्दर्य्य बड़ा ही मनोरम है। पहाड़ी अधित्यका और उपत्यकाभूमि घने जंगलोंसे, फलो फुली लताओंसे तथा हरे भरे अनाजोंसे शोभा दे रही है। पश्चिमघाट पर्वतके मलनादप्रदेशसे यह जिला पूरबकी ओर नीचा होता गया है। यहां कावेरी नदी घाट-पर्वतको लांघ कर नीचे गिरी है, वह स्थान शिव-समुद्र कहलाता है। यहां कावेरी शिवसमुद्र नामक

छोटे द्वीपको घेर कर समुद्रके किनारे नदीमुखमें श्रीरङ्ग तीर्थ नामक पवित्र डेल्टेको लांघती हुई वङ्गोपसागरमें गिरती है। इस नदीके वाम भागमें हेमवती, लोकपावती और सिमसा तथा दक्षिणमें लक्ष्मणतीर्थ, कव्वानी और होन्नूहोले नामक शाखा नदी वहती है।

पहले कहा जा चुका है, कि यह स्थान पर्वत-संकुल है। यहां श्लेट, दानेदार तथा तरह तरहके पत्थर देखनेमें आते है। पर्वतको गुफामें लाहेका अभाव नहीं है। पर्वतसे जो नदियां निकली है उनमें कुछ कुछ सोना भो पाया जाता है। जंगलमें चन्दन, शाल आदिके वृक्ष हो अधिक देखे जाते हैं। वाघ आदि खूंखार जानवरोंको छोड़ कर यहांके जंगलमें वहुतसे जंगली हाथी पाये जाते हैं। लोग हाथीका शिकार करते और उन्हें वाजारमें ला कर वेचते हैं।

महाभारतके समय यह कावेरी नदी तथा उस पर अवस्थित तीर्थ वहुत प्रसिद्ध थे। किन्तु प्रकृत इतिहास सम्राट् अशोकके परवर्त्ती समयसे ही आरम्भ हुआ है। गाङ्गवंशके अवसानके वाद यथाक्रम चोल, चालुक्य, हयसालवल्लाल, विजयनगर-राजवंश और उदैयारोंने यहांका शासन किया।

इन उदैयार राजोंने विजयनगरके राजप्रतिनिधि श्रीरङ्गपत्तन पर अपना आधिपत्य जमाया। ये लोग पूर्वापर मुसलमानोंके साथ मित्रता करके राजकार्य्य चलाते थे। १६८७ ई०में इन्होंने औरङ्गजेवके सेनापति कासिम खांसे ३ लाख रुपयेमें वङ्गलूर दुर्ग खरीद लिया। १६६६ ई०में दिल्लीके वादशाहने उदैयारराजको हाथी दांतके वने सिंहासन पर विठाया और राजसनद दी। १७०४ ई०में चिक्कदेवराजके मरने पर उदैयारराज दलवाईके हाथके खिलौने वन गये। १७६१ ई०में लार्ड कार्नवालिसने अङ्गरेजका सेनापति वन कर वङ्गलूरको अधिकार किया। दूसरे वर्ष उन्होंने और भी कितने दुर्ग टीपू सुलतानसे छीन लिये। १७६६ ई०में टीपूकी मृत्यु होने पर मार्किस आव वेलेस्लीने एक चार वर्षके नावालिग राजकुमारको सिंहासन पर विठा कर हिन्दूराज्यका प्रवर्त्तन किया।

इस जिलेमें २७ शहर और ३२११ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १२ लाखसे ऊपर है। शहरोंमें महिसुर, श्रीरङ्गपत्तन, मलवल्ली और हूनसुरनगर प्रधान है। जिले भरमें ७ सौके करीव स्कूल और ३० अस्पताल है।

३ उक्त जिलेका एक तालुक, यह अक्षा० १२'७' से १२'२७' उ० तथा देशा० ७६'२८' से ७६' २०' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३०६ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीव है। इसमें महिसुर नामक एक शहर और १७० ग्राम लगते हैं। यहां नारियल, सुपारी, केला तथा तरह तरहकी शाकसब्जी उत्पन्न होती है।

४ मैसूर राज्यकी राजधानी। अक्षा० १२' १८' उ० तथा देशा० ७६' ४०' पू० श्रीरङ्गपत्तनसे ५ कोस दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है।

चामुण्डा पहाड़के नीचे विस्तीर्ण उपत्यका पर यह नगर वसा हुआ है। पर्वतके ऊपर चामुण्डा देवीका मन्दिर शोभती है। चामुण्डा देवीने महिषासुरको मार कर इसी पर्वत पर विश्राम किया था। इस पर्वतके समीप पुरोहितोंका वास और महाराजका विश्रामभवन दिखाई देता है।

यह देवमूर्त्ति महिसुर राज्यकी अधिष्ठात्री और राजाओंकी कुलदेवी है। मन्दिर चारों ओर पत्थरको ऊंची दीवारसे घिरा है। गोपुर नामक सिंहद्वारके चारों वगल नाना देव-देवियोंकी मूर्त्ति अङ्कित हैं।

राजवंशके नियमानुसार इस मन्दिरमें राजकुमार और राजकुमारियोंका नामकरण होता है। देवी प्रस्तरमयी अष्टभुजा और सिंहवाहिनी है। असुरकी महिषाकृति देह मनुष्य-सी है। उसकी पीठ सिंहकी ओर है और वह अपने मस्तकको घुमाकर देवीकी ओर देख रहा है। देवीने दाहिने हाथसे त्रिशूल पकड़ कर असुरकी छातीमें घुसेड़ दिया है और वांए हाथमें नागपाश ले कर उसे मजवूतीसे वांध रखा है। उनके अन्यान्य हाथोंमें नाना प्रकारके हथियार हैं। देवीके दोनों पैर सिंहके ऊपर हैं और सिंहकी पीठ असुरकी ओर होनेपर भी वह मस्तक घुमा कर असुरको पकड़े हुए हैं।

प्रतिवर्ष शारदीय दुर्गापूजाके समय यहां सैकड़ों वेदपारग ब्राह्मण इकट्ठे होते और नौ दिन याग, होम, श्रीसूक्त, भूसूक्त, मत्स्यसूक्त, पुरुषसूक्त और पञ्चाक्षरमंत्र जपते हैं। प्रति दिन चण्डीपाठ भी होता है। देवीके

सामने बलि देनेका नियम नहीं है। निम्नश्रेणीके मनुष्य पवतके नीचे पशुबलि देते हैं।

उक्त शारदीय पूजाको हम लोग नवरात्रव्रत कहते हैं। महाराजके प्रासादमें भी जो नवरात्रव्रत होता है वह भी सम्पूर्णरूपसे सात्त्विक पूजा है। देवीके मन्दिरके समीप नरसिंहदेवका मन्दिर है। चिक्कदेवराजने विष्णुमन्त्रमें दीक्षित होनेके वाद इस मन्दिरका निर्माण किया होगा। मन्दिरकी बनावट बहुत अच्छी है।

राजाका विश्रमागार पवतके बहुत ऊंचे शिखर पर बना हुआ है। राजपरिवारवर्ग जब देवीकी पूजा करने आते हैं तब इसी स्थानमें ठहरते हैं। पहाड़के समीप देवराज नामक ह्रद और उसके सामने स्वर्गीय राजाओं-के समाधिस्थान हैं। भूतपूर्व महाराज कृष्णरायकी समाधिके ऊपर जो अट्टालिका बनी है वह बहुत उत्कृष्ट है। महाराज जिस बड़े कूर्मासन पर बैठ कर जप किया करते थे वह उनको समाधिके ऊपर रख दिया गया है और उस पर महाराजकी प्रस्तरप्रतिमूर्त्ति विराजमान है। दूसरे दूसरे राजाओंके भी यहाँ पर समाधि-मन्दिर देखे जाते हैं। वे लोग जिस जिस पत्थरके आसन पर बैठ कर जप करते थे, प्रत्येककी समाधिके ऊपर वह पत्थर रखा हुआ है।

यहांका 'दशहरा' उत्सव जनसाधारणके देखने लायक है। इस समय देश देशान्तरसे बहुत लोग जमा होते हैं। उस समय राजभवनके सामने लंबे चौड़े मैदानमें घुड़-सवार सेना कतारमें खड़ी होती है। उसके पीछे नंगी तलवार हाथमें लिये पाइक और पाइकके पीछे पैदल सेना और सबसे पीछे नकीब और ध्वजावाहक खड़े रहते हैं। इसके बाद महाराज बहुमूल्य मणिमुक्तादि खचित वस्त्रोंसे भूषित हो कृष्णराय उदैयारके हाथी-दांतके बने हुए सुन्दर कारुकार्ययुक्त सिंहासन पर बैठते हैं। उस समय तोप दागी जाती है। अनन्तर वैदिक ब्राह्मण राजाके चारों ओर खड़े हो कर वेदगानसे राजाको आशीर्वाद देते हैं। बादमें भांति भांति बाजे बजाये जाते हैं। सेना एक स्वरसे जयोच्चारण करती है। इस समय अङ्गरेज राजप्रतिनिधिके उपस्थित होने पर उन्हें-सलामी तोपें दी जाती हैं। सम्भ्रान्त व्यक्तियोंका सम्मान करने-के लिये प्रधान सेनापति दरवाजेके सामने खड़े रहते हैं तथा वे दो अभ्यागत व्यक्तियोंको आदरपूर्वक दरबारमें लाते हैं।

अङ्गरेज-प्रतिनिधिसे नीचे सभी राजकर्मचारियोंको राजसम्मान दिखानेके लिये राजसिंहासनके सामने आ कर शिर झुकाना पड़ता है। राजा भी दाहिने हाथकी उंगलीसे अपना चिबुक स्पर्श कर सम्मान ग्रहण करते हैं। इसके बाद हाथी आदिकी तरह तरहका खेल शुरू होता है। यह सब हो जाने पर महाराज स्वयं समरवेश-में सेनासे परिवेष्टित हो एक निर्दिष्ट स्थानमें जाते और शमीवृक्षमें तीरका निशाना करते हैं। इस समय भी तोपध्वनि होती है। अनन्तर सभी विजयोल्लाससे मत्त हो राजभवन लौटते हैं। प्रथानुसार पान और सुपारी बांटनेके बाद सभा भङ्ग होती और महाराज उक्त सिंहा-सनका प्रदक्षिण, पूजा और प्रणाम कर अन्तःपुर जाते हैं। यही महाराजका नवरात्रव्रत है।

नगरके दक्षिण भागमें यहांका दुर्ग पड़ता है। १५२४ ई०में उदैयार राजाओंके यत्नसे वह दुर्ग बनाया गया है। दुर्गके समीप दलवाईकी खोदी हुई बड़ी दिग्गी है। १८०० ई०में महाराजके यत्नसे तथा यूरोपीय कारीगरोंके शिल्प-से दुर्ग और उसके भीतरके राजप्रासादका अङ्गसौष्ठव बढ़ाया गया। प्रासादके सामने 'सेज्ज' या दशहरा उत्सवका बैठक-घर है। वह शिल्पनैपुण्ययुक्त काठके खंभोंसे सुसज्जित है। यहांका हाथी-दांतका बना हुआ सिंहासन देखने लायक है। कहते हैं, कि सम्राट् औरङ्ग-जेबने राजा चिक्कदेवराजके शौर्यपर प्रसन्न हो १६६६ ई०-में उन्हें यह यह सिंहासन दिया था। अभी वह सिंहा-सन सोने और चांदीके पत्तरोंसे विभूषित है। राज-प्रासादके मध्य 'अम्बाविलास' नामक दरबार घर तथा चित्रशाला विशेष उल्लेखनीय है। यह चित्रशाला प्राचीन राजप्रासाद समझी जाती थी। इसके चारों ओर जो मिट्टीकी दीवार थी उसे टीपू सुलतानने तोड़ दिया था। अभी उसका पुनः संस्कार किया गया है।

दुर्गके पश्चिम द्वारके सामने जगन्मोहन-महल नामक एक बड़ा महल है। यूरोपीय कर्मचारियोंके स्वागतके लिये भूतपूर्व महाराजने इस महलको बनवाया था, वह

विश्रामभवन भी कहलाता था। महलके अन्दर जितने कमरे हैं सभी ऐतिहासिक घटनाके अच्छे अच्छे चित्रों-सजे हुए हैं। फिर राज-उपभोगके लायक उनमें अनेक से असवाव भी देखे जाते हैं। इसकी बगलवाला उद्यान और कुञ्जवन वड़ा ही चित्ताकर्षक है। नगरके पूर्वभाग-में पुराना रेसिडेन्सी महल है। उसमें अभी सेसनकोर्ट लगती है। उसके दक्षिण-पूर्वमें सर जेम्स गार्डनका नाया हुआ वर्त्तमान रेसीडेन्सी प्रासाद है। ऊंची भूमि पर होनेके कारण इस प्रासाद परसे समूचा नगर दिखाई देता है। कर्नलवेलेस्ली (ड्यूक आव वेलिङ्गटन)-ने अपने रहनेके लिये जो मकान वनवाया था उसमें अभी दीवानी अदालत वैठती है।

मैस्मेरतत्त्व—भौतिक क्रियाके जैसी एक प्रकारकी क्रिया। जिस शास्त्र द्वारा कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्तिका शरीर स्पर्श कर अथवा उसके शरीर पर हाथ फेर कर या अंगुलिसंचालन द्वारा उसके चित्तको अपने एकाग्रचित्तके जैसा या अपने अभिमतके अनुवर्त्ती करनेमें समर्थ होता है उसे मैस्मेरतत्त्व (Mecsmerism) कहते हैं। यह कार्य्य शरीरस्थ चौम्बिक-प्रवाहका (animal magnetism) केवल संकर्पणविकर्पण है। प्रसिद्ध फ्रेंच वैज्ञानिक और चिकित्सक फ्रेडरिक एन्टन मेस्मेर साहवने इस विज्ञानका आविष्कार किया था। इसीलिये उनके नाम पर यह नया विज्ञान मैस्मेरतत्त्व हुआ है।

किस वैद्युतिक शक्तिसे आत्मविभ्रमरूप यह चित्त-विकृति और वाह्यसंज्ञालोप होता है तथा शारीरतत्त्व (Physiological), निदानशास्त्र (Pathological) और आत्मविज्ञान (Psychological) तत्त्वका निदान-भूत जो मैस्मेरिक व्यापार देखनेमें आता है, उसके वास्तविक कारणका आज तक निरूपण न हो सका है। जो हो, इसके द्वारा मनुष्य-शरीरसे एक ऐसे तत्त्वका प्रवाह उत्पन्न किया जा सकता है जिससे आश्चर्य्यजनक कार्य्य हो सकते हैं।

यह वात नहीं है, कि मैस्मेर साहवके आविष्कारके पहले इस शास्त्रका लोगोंको कुछ ज्ञान ही न था, परन्तु यह कहा जा सकता है, कि उक्त चिकित्सक महोदयने इस शास्त्रको शृङ्खलावद्ध विज्ञानके रूपमें लोगोंको दिया और दृढ़तापूर्वक इसे एक वैज्ञानिकतत्त्व प्रमाणित कर दिया।

उन्होंने अपने उद्भावित इस भौतिक व्यापारका निदान स्वरूप एक काल्पनिक प्रतिनिधि (agent) या अन्य-पदार्थ स्वीकार कर लिया है। पश्चात् उस सर्वव्यापी प्रतिनिधि शक्तिको मूल उपादान कर उन्होंने अपने वैज्ञानिक तत्त्वका इस प्रकार तक किया है; वे कहते हैं,—'जीव देहगत चुम्वकाकर्षणी शक्ति सम्पूर्ण जगत्‌में रसाकारमें व्याप्त है। आकाशस्थ ग्रह नक्षत्रादि, पृथिवी तथा जीवजगत्‌में परस्पर एक आन्तर्जातिक प्रभाव विद्यमान रखनेके लिये यह शक्तितरंग सहयोगिता (Medium) करती है। यह प्रवाह अविरामगतिसे चलता रहता है, किसी क्षण उसका रोध नहीं होता; अतएव उस शक्ति-प्रवाहके ह्रासके वाद पुनरुत्पत्तिकी सम्भावना नहीं रहती। यह ऐसा सूक्ष्मतम है, कि जगत्‌के सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म किसी वस्तुके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती। किन्तु यह शक्तिप्रवाह प्रकृतिमात्रका आकार धारण, विवर्द्धन और संवहन (receiving, propagating, commnicating all the impressions of motion) करनेमें समर्थ है और इसका भी ज्वार भाटा अर्थात् ह्रासवृद्धि (Susceptible of flux and reflux) होती है।

जीवदेह मात्र इस प्रतिनिधिकशक्तिस्रोतके कार्य-कारणके सम्बन्धाधीन अर्थात् इसका कार्यफल उपलब्ध करनेमें समर्थ है। जीवदेहके स्नायुमूलमें (into the substance of the nerves) स्वतः उद्रिक्त हो कर यह स्रोत शीघ्र ही स्नायुमण्डल पर आक्रमण करता है अर्थात् समग्र स्नायुमण्डलमें फैल जाता है।

विशेष परीक्षासे जाना गया है, कि मनुष्य शरीरका यह शक्तिप्रवाह चुम्वकके अनुरूप गुणविशिष्ट होता है। एवं इसके मध्यगत परस्पर विभिन्न और सम्पूर्ण पृथक् प्रकृतिकी शक्तिपरम्पराका अनुधावन करनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि जैसे दो विशिष्ट केन्द्रोंसे ऐसे विभिन्न भावापन्न स्रोत नियमितरूपसे परिचालित होते हैं। इस जैविक चुम्वकशक्तिके कार्य्य और गुण, सजीव आर

निर्जीव पदार्थमात्र एक शरीरसे दूसरे शरीरमें सञ्चालित किये जाते हैं। यह आकर्णण दूरवर्त्ती होने पर भी समप्रवाह है अर्थात् दो वस्तुओंके एक दूसरेसे बहुत दूर होने पर भी उन दोनोंके बीच एक आन्तरिक आकर्णणशक्ति विद्यमान रहती है इसलिये उन दोनोंमें कार्य-कारण सम्बन्धकी रक्षाके लिये किसी माध्यमिक सूत्रकी आवश्यकता नहीं रहती। इच्छा करने पर यह दर्पणमें प्रतिफलित और परिवर्द्धित किया जा सकता है। सञ्चयन, केन्द्राभिकुञ्चन, विस्फारण, प्रसारण, सञ्चालन और शब्दाभिवर्द्धन आदि गुण इसमें आरोपित किये जाने पर भी कुछ दोष नहीं होता यद्यपि यह रस-तरंग समग्र जगत्‌में व्याप्त ही है तो भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, कि सभी जीवोंमें इसका समान प्रभाव नहीं है अर्थात् इस जैविक चुम्बकशक्तिकी ह्रास और वृद्धि होती है। ऐसे कितने ही स्वल्पसंख्यक पदार्थ या जीव हैं जो ऐसे विपरीत गुणवाले हैं, कि उनकी उपस्थिति मात्रसे दूसरे व्यक्ति पर विन्यस्त चैतन्यापहारिका मैस्मेरिक शक्तिका अपनोदन होता है। यह जैविक चुम्बकशक्ति स्नायविक दुर्बलता तथा दूसरे दूसरे रोगोंको बहुत जल्द आरोग्य कर सकती है। इससे औषधोंकी क्रियाशक्ति पूर्णताको प्राप्त होती है। स्वास्थ्यवृद्धिके विषयमें यह ऐसी कार्यकारी है, कि चिकित्सक बड़ी आसानीसे रोगको दूर कर सकते हैं। यहां तक, कि वे इसके द्वारा जनसाधारणके स्वास्थ्य, अत्यन्त जटिल रोगोंकी भी उत्पत्ति और परिवृद्धिके कारण तथा रोगोंका प्रकृतिका पता लगा सकते हैं। इस रोगोंके लक्षणादिकी परीक्षा कर वे सहजमें रोगोंको दूर कर सकते हैं। रोगीके प्राणनाशका डर नहीं रहता और न उसे किसी प्रकारकी विपत्ति ही घेर सकती है। रोगीकी अवस्था, शारीरिक ताप तथा स्त्री वा पुरुषत्वके सम्बन्धमें किसी प्रकारका विचार करना निष्प्रयोजन है। कहनेका तात्पर्य यह कि यह जैविक चुम्बकशक्ति जागतिक मङ्गलस्वरूपमें मनुष्यजातिके रोगारोग्य और रक्षा-विषयके निदानभूत एक सार्वजननी जीवशक्तिका संचार कर देती है।

डा० मैस्मेर चुम्बकशक्तिके सञ्चालनप्रभाव द्वारा लोगोंको जिस उपायसे उस शक्तिके वशीभूत (magnetised) करते थे, वह बड़ा ही आश्चर्यजनक है। उसके बाहरवाले जिन सब घरोंमें लोग चिकित्साके लिये आते थे उन घरोंके बीचमें १ वा १॥ फुट ऊंचा ओक लकड़ीका बना हुआ एक गोल बरतन गड़ा रहता था। उस बरतनमें कांचका चूर्ण, लोहेका चूर्ण और चुम्बक घटित जल (Magnetised Water)-पूर्ण बोतलको कई तहोंमें बैठा कर एक ढकनीसे उसका मुंह बंद कर देते हैं। ढंकनमें बहुतसे छेद रहते हैं और उन छेद हो कर भिन्न भिन्न ऊंचाईकी चिकनी छड़ पिरोई रहती है। उन छड़ोंका ऊपरी भाग टेढ़ा रहता है तथा इच्छानुसार उसे उठाया जा सकता है। इस काठके बरतनको बाकेट (baquet) वा मैगनेटिक टब कहते हैं।

इस बरतनके चारों ओर रोगियोंको पानीमें एक एक बाद खड़ा कर प्रत्येकके हाथमें एक एक लोहेके छड़ दे। उसके अगले भागको रोगस्थानमें लगाना पड़ता है। इस समय एक रस्सीसे रोगियोंको घेरना अथवा दूसरेकी वृद्धांगुलिको पकड़वा कर कतारमें खड़ा रखना उचित है। इस समय घरके भीतर पियनोफोर्टके साथ गीत आदि शुरू होता है। शक्तिसञ्चालक (Magnetiser) १०।१२ इञ्च लम्बा बहुत बारीक और चिकनी लोहेकी शलाका ले कर वहां खड़ा रहता है।

उस वैकेटका गह्वर आकर्णणी शक्ति (magnetic virtues)से भरा रहता है। इसका भीतरी भाग इस प्रकार सजा रहता है, कि इस शक्तितरङ्ग (magnetic fluid)-को आसानीसे उसमें सञ्चित कर सकते हैं। वे सब शलाका विभिन्न शरीरमें बरतनके शक्तिपुञ्जके प्रवाह-प्रदानकी परिचालक (Conductors) हैं। वह रस्सी जिससे रोगी घिरा रहता है उसका अथवा वृद्धांगुली-शृङ्खलसञ्चालित शक्तितरङ्गका कार्यफल वृद्धिका उपाय मात्र है। शक्ति-सञ्चालकको पहले हीसे अपने वाद्य यन्त्रको आकर्णणी-शक्तितरङ्ग द्वारा सञ्चारित (charged) कर रखना चाहिये। बाद कसङ्गीतमें जितनी ही निपुणता दिखायेगा, सुर निकलनेके साथ साथ शक्तिको उतनी ही अधिकता और वृद्धि होगी। बाजा बजानेका उद्देश्य है रोगियोंका चित्त एकाग्र करना अथवा उन्हें

निश्चल शान्तमूर्त्ति धारण करता। वे सङ्गीतकी सुमधुर तानसे विमोहित हो कर धीरे धीरे आकर्षणी शक्तिके क्रियाफलभागी लायक हो जाते हैं। शक्ति-सञ्चालकके हाथमें जो शलाका रहती है उससे अपने शरीरमेंसे निकली हुई शक्तितरङ्ग एककेन्द्रीभूत की जाती तथा उसीसे उस चौम्बिक शक्तिका प्रभाव बढ़ता है।

इस प्रकार वैकेटके चारों ओर विभिन्न श्रेणीमें खड़े मनुष्य एक समयमें आकर्षणी शक्तिका प्रभाव लाभ करते हैं। उन वक्र लौहदण्डोंमें प्रवाहित टबकी चुम्बकशक्ति; देहवेष्टनी रज्जुका सञ्चारणप्रभाव; अङ्गुष्ठ-शृङ्खल; वाद्योद्यमके मनोहारी शब्दोत्थान प्रसङ्गमें वायुके साथ चुम्बकीय शक्तिका संमिश्रण; रोगीका मुखमण्डल, मस्तकके ऊपर, मस्तकका पिछला भाग, रोगस्थान और सभी अवयवोंमें शक्तिसञ्चालकका दण्ड वा अंगुलि सन्ताड़न और केन्द्राभिमुख-दृष्टि (always observing at the direction of the poles); शक्तिसञ्चालकका तीव्र कटाक्ष आदि मनुष्यके शरीरमें चुम्बकीय शक्ति प्रवहनका अच्छा उपाय है। फिर कमर और पेट पर अंगुलि वा हाथका दबाव देनेसे मेस्मेरिक-शक्तिका सञ्चार होता है। कभी देरसे और कभी ५।७ घण्टेके वाद भी उस शक्तिका आवेश दिखाई देता है।

रोगी वा पात्रविशेष (*Patients*)-को मैस्मेरिक प्रक्रियाधीन करनेके वाद उसकी देहमें भिन्न भिन्न अवस्थामें भिन्न भिन्न भाव उत्पन्न हुआ करता है। कुछ तो धीर और *शान्त भावसे* मेस्मेरिक-प्रभाव सहा करता है और कुछ खांसी, थोड़ी वेदना तथा स्थानिक वा सारे शरीरमें उत्ताप अनुभव करता है तथा कभी कभी पसीना भी निकलते देखा गया है। कोई विचलित, कोई आक्षेप द्वारा प्रतिहत हो जाता है। शक्तिसञ्चालनकालमें अधिकांश व्यक्तिके जो आक्षेप उपस्थित होता है वह दीर्घकालस्थायी और अधिक प्रबल हो जाता है। कभी कभी हाथ पैर वा सारे शरीरमें अनियमित ऊर्द्ध्वाधःक्षेप होता है। इस समय शोक दुःख, उल्लास, आमोद, चित्तवृत्तिकी अवनति तथा कभी कभी मोह, आलस्य और निद्राभाव (Drowsiness) आ कर उपस्थित होता है।

पात्र (*Patients*)-की आक्षेपावस्थाकी पर्यालोचना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। जिन्होंने नहीं देखा है, वे कभी भी उसकी प्रकृतिका अनुभव नहीं कर सकते। एक ओर रोगी वा पात्र जिस प्रकार आक्षेप द्वारा विचलित होता है, दूसरी ओर उसी प्रकार वे शान्ति-सुखसे निद्राकी कोमल गोदमें सोये हुए मालूम होते हैं। इन दोनों भावोंकी तुलना करनेसे विस्मित होना पड़ता है। इधर आक्षेपके कारण अस्थिरता जैसी वेदनादायक है उधर गाढ़ी नींदका हीला उसी प्रकार सुख-ऐश्वर्यका भावद्योतक है। दुर्घटना विशेषका पुनः पुनः आवर्त्तन तथा समवेदना विशेष आश्चर्य-जनक है। कभी कभी रोगी एक दूसरे पर झपटता, आपसमें हंसता और अनाप शनाप वकता है। ये सब कार्य शक्तिसञ्चालकके प्रभावसे ही हुआ करते हैं। पात्रकी अघोरावस्था वा मस्तिष्ककी जड़ता कैसी भी क्यों न हो, शक्तिसञ्चालकने आदेश, मुखभङ्गी वा हाथ पैरका हाव भाव देख कर उसीके अनुसार वह शक्तिमान् पात्र अपने चित्तकी विभिन्न अवस्थाका विकाश करता है।

मेस्मेर उद्भावित इस तत्त्वकी यथार्थताकी मीमांसा करनेके लिये फरासीसी गवर्मेण्टने M. Baiby, Lavoisier, Franklin आदि कई मनीषियोंको नियुक्त किया था। उनकी रिपोर्टमें लिखा है, "तथा कथित मिथ्या प्रतिनिधिक शक्ति प्रकृत और प्रचलित चुम्बक-शक्ति नहीं है। उनके अत्यन्त अद्भुत शक्तिकुण्डको वलावल सूचिका (Needle) और इलेक्ट्रोमिटर (Electrometer)-के द्वारा परीक्षा कर देखा गया है, कि उसमें चौम्बिक-शक्ति वा ताड़ित-शक्तिका विलकुल ही अस्तित्व नहीं। यह मानवेन्द्रिय वा रासायनिक अथवा तान्त्रिक-प्रक्रियाका अतीत है। परन्तु उन्होंने जो शक्ति-सञ्चालनरूप व्यापक-व्यापारका अनुष्ठान किया है, वह सम्भवतः उनके अन्धविश्वासका ही फल है। वे लोग प्रकृत तत्त्वानुसन्धानसे पराङ्मुख हैं। यद्यपि इस विश्वासके फलसे कोई कोई रोगी आरोग्य होते देखा गया है तथापि यह विपद्-रहित नहीं है, क्योंकि आक्षेपकी अधिकताके कारण कमजोर स्त्री और पुरुषमात्र ही मानसिक दुर्वलताके सबबसे अकसर बुरा फल पाते हैं।

डा० फ्राङ्कलिन आदि द्वारा उक्त रिपोर्टमें ऐसी निन्दा की जाने पर भी उस नूतन प्रथाका विलोप नहीं हुआ। उसके बाद जो विवरण प्रकाशित हुआ उसमें लिखा है, कि डा० मैस्मेरके निकाले हुए रोगारोग्यपन्था पर सबोंने विश्वास कर लिया है। देशवासीके विश्वास पर उक्त सम्प्रदाय दिनों दिन पुष्ट होता जा रहा है। मि० मैस्मेरने इससे काफी रुपया भी कमाया था।

इस मैस्मेरतत्त्वका पहले इङ्गलैण्डमें प्रभाव जमने न पाया। वहांके चिकित्सक-समाजमें यह पहले भयावह समझा गया। आखिर डा० पार्किन्सनने एक 'मेटालिक ट्राकृर' प्रस्तुत कर स्वतन्त्र उपायसे जैविक आकर्षणी-शक्ति सञ्चयका उपाय निकाला। उस यन्त्रकी सहायतासे वे प्रायः ढाई सौ मनुष्य और जीवदेहकी परीक्षा कर सफल काम हुए थे। इसके बाद उन्होंने रोगारोग्य-विषयमें उस यन्त्रकी उपकारिता लिपिबद्ध कर एक लम्बा चौड़ा प्रबंध किया था। पीछे बाथ निवासी डा० विलियम फल्कनर और डा० हेगार्थने उनका पक्ष समर्थन कर उक्त तत्त्वके विस्तारमें बड़ी सहायता पहुंचाई थी।

डा० मैस्मेरकी मृत्युके बाद बहुतसे वैज्ञानिक और चिकित्सक-प्रवर जैविकोंने चुम्बकाकर्षणी शक्तिकी परिवृद्धि और विस्तारके विषयमें ध्यान दिया तथा वे प्रसिद्ध रोगोपशमकारि-शक्ति (Curative agent) का परिचय दे गये हैं।

जैविक चुम्बकशक्तिके प्रभावसे मनुष्यके शरीरमें जो विभिन्न प्रकारकी क्रिया देखी जाती है तथा उस क्रियाके संघटनके लिये जो विभिन्न उपाय अवलम्बित और आविष्कृत हुआ है, एकमात्र मेस्मर और उनके यूरोप महादेशस्थ शिष्यसम्प्रदाय उसकी बहुत कुछ उन्नति करके कार्यक्षेत्रमें उतरे थे। जिस व्यक्तिको मेस्मेरिक क्रियाके अधीन लाया जायगा उसे सामने खड़ा कर ये लोग गृहस्थित उस चुम्बकशक्तिपूर्ण पात्रको छुलाते तथा उसके शिरसे ले कर पैर तक हाथ फेरते थे। इस प्रकार बार बार हाथ फेरनेसे वह आदमी आध घंटेके भीतर स्पन्दहीन हो मैस्मेरिक शक्तिके अधीन हो जाता है। प्रक्रियाकारक (mesmeriser) को सभी समय उस पात्र (Patient)-के चक्षुके ऊपर अपनी दोनों आंखोंको स्थिर रखना चाहिये। सभी इस प्रक्रिया द्वारा अभिभूत होगा ऐसी आशा नहीं की जाती। आध घंटेके भीतर जिसमें प्रक्रियाका असर हुआ न देखे उसे परित्याग करना ही उचित है। मैस्मेरके मतानुसार एक व्यक्तिको शक्तितत्त्वके अधीन लानेमें दो व्यक्तियोंका प्रयोजन होता है, किन्तु डा० ब्रेड इसे स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं, कि चित्तको एकाग्र करनेके लिये वस्तुविशेषके ऊपर स्थिर दृष्टि रखनेसे ही वह व्यक्ति वशीभूत हो जायगा, दो व्यक्तिकी बिलकुल जरूरत नहीं।

स्नायविक दौर्बल्यविशिष्ट व्यक्तिको स्थिर दृष्टि वा शक्तिसञ्चालन (Passes or fixed attention)-क्रियाके अधीन करनेसे विभिन्न फल देखनेमें आता है। इस विभिन्न अवस्थाके सम्बन्धमें प्रसिद्ध जर्मन लेखक Kluge ने निम्नलिखित कुछ क्रम निर्देश किये हैं।

१ जाग्रतावस्था (waking)—ज्ञान और पञ्चेन्द्रियकी कर्मशक्ति पूर्णरूपसे वर्त्तमान रहती है। पात्र सभी विषयोंमें धारणक्षम रहता है।

२ अर्द्धजाग्रतावस्था (*Half*-sleep वा imperfect crisis)—इन्द्रियां कार्यकारी अवस्थामें समभावसे रहती है। केवल दृष्टिविभ्रम होता है। दोनों चक्षु एकाग्र चित्तके अनुबलसे जिस द्रव्यविशेषमें विन्यस्त रहता है उससे लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है।

३ शाक्तिक-निद्रा (*Magnetic* mesmric sleep) इन्द्रियां अपने अपने कार्यमें अक्षम रहती हैं। पात्रकी अवस्था स्पन्दहीन, संज्ञाशून्य और जड़ है।

४ स्वप्न-सञ्चरावस्था (*Perfect* crisis or simple somnambulism)—इस अवस्थामें रोगी भीतरसे जाग्रत (Wake within himself) रहता है तथा धीरे धीरे वह देहमें आ जाता है। उसकी यह अवस्था निद्रित भी नहीं है और न जागरित ही है वरं इसे दोनोंकी मध्यवर्त्ती कोई अवस्था कहा जा सकता है।

५ तीक्ष्ण वा निर्मल दृष्टि (Lucid visions)—इस अवस्थामें रोगी अपने शरीरगत आन्तरिक और मानसिक सभी विषयोंका सम्यक् ज्ञान लाभ तथा रोग-प्रकृतिका अवश्यम्भावी स्वाभाविक परिणतिका ठीक ठीक लक्षण

निर्णय करने तथा रोगनिर्णयके साथ साथ उन उपयुक्त रोगनाशक औषधोंका निर्देश कर देनेमें समर्थ होता है। इस समय उसकी अवस्था बहुत कुछ योगसमाधिकी तरह हो जाती है। पात्रकी इस अतीन्द्रिय पदार्थ दर्शन पर अवस्थाको फरासी भाषामें Clairvoyance और जर्मन भाषामें Hallschen कहते हैं।

६ युक्तयोगदृष्टि (Universal lucidity)—इसमें पात्रकी दूरदर्शिता बहुत कुछ बढ़ जाती है। इसके द्वारा वह निकट वा दूरमें अवस्थित वस्तुमात्रका ही आनुपूर्विक विवरण कह देनेमें समर्थ होता है। जर्मन भाषामें इस अवस्थाको Allgemeine Klarheit कहते हैं।

मैस्मेरविद्याविदों (Mesmersts) द्वारा उपरोक्त छः क्रम बतलाये जाने पर भी शक्तिसञ्चालक वा मेस्मेराइजके श्रेणीभुक्त बहुतेरे शेषोक्त दो योगभावकी कार्यकारिता स्वीकार करनेको तय्यार नहीं। किन्तु जैविक शक्तितत्त्वविद् प्रसिद्ध पण्डितमण्डली इस विषयको समर्थन कर बहुतेरे उदाहरण लिपिबद्ध कर गये हैं। Dr. Elliotson, Mr, Braid, Mr, James Simpson आदि मनीषियोंने इस मेस्मेरिक तत्त्वके साथ शिरोमिति विद्या (Phrenology) एक अत्यन्त आश्चर्य्य सामञ्जस्य निर्णय किया है, उनके मतानुसार पात्रकी ऐसी जाग्रत निद्रावस्थामें मस्तिष्कका जो जो अंश (Phrenlogical organs) मेस्मेराइजर स्पर्श करते हैं, उस उस अंशका कार्य्यविकाश उसी समय पात्रके मुखसे होता है। जैसे भाषाके स्थानमें हाथ रखनेसे वाक्यस्फूर्त्ति, दाक्षिण्य (benevolence) स्थान छूनेसे दयाभावकी समुपस्थिति इत्यादि।

५वें और ६ठे व्यापारके सम्बन्धमें वर्त्तमान मेस्मेराइजरोंका विश्वास नहीं होने पर भी उन्होंने उसकी कार्य्यकारिताको मालूम कर लिया तथा परीक्षा द्वारा उसकी नींव मजबूत कर ली। पीछे १८३८ ई०की १ली सितम्बरको Lancet नामक पत्रिकाके Mr, Wakley-ने तथा १८४४ ई०की ४थी अगस्तको Sir John Forbesने अनेक दर्शकोंके सामने एलेजिस नामक एक फरासी बालकके ऊपर अतीन्द्रिय पदार्थदर्शन (Clairvoyance) शक्तिकी परीक्षा की। शक्त्याधीन अवस्थामें बालकके जो अद्भुत मानसिक प्रभाव उपस्थित हुआ था। स्वाभाविक होशमें आने पर वह उस स्मृतिशक्तिका असाधारण प्रभाव लोगोंके सामने न बतला सका।

जर्मनोके विख्यात रासायनिक M, Richenbach-ने जैविक चुम्बकशक्ति घटित व्यापारोंका एक नया वैज्ञानिक तत्त्व दिखलाया। उनका विश्वास है, कि इस साधन व्यापारमें उन्होंने मेस्मेर प्रवर्त्तित पन्थके अतिरिक्त एक स्वाभाविक शक्तिका आश्रय लिया था। उस शक्तिका नाम है Odyle या odlore। उनके इस नये तत्त्वको मूल प्रकृतिकी मीमांसा न होने तथा शक्तिसञ्चालनके कारणरूपमें अन्यान्य वस्तुकी सहायता लेनेसे जनसाधारण उसके मौलिकत्वको स्वीकार नहीं करते।

मैहर (हिं० पु०) १ वह तलछट जो घी या मक्खनको गरम करने पर नीचे बैठ जाती है, घी वा मक्खन तपानेसे निकला हुआ मट्ठा। २ नैहर देखो।

मैहर—१ मध्यभारतके बाघेलखण्ड पोलिटिकल एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २३° ५६' से ले कर २४° २४' ३० तथा देशा० ८०° २३' से ले कर ८१° ०' पू०के मध्य विस्तृत है। इसके उत्तर नागोद राज्य, पूर्वमें रेवा राज्य, दक्षिणमें अंगरेजाधिकृत जब्बलपुर जिला तथा पश्चिममें अजयगढ राज्य है। भूपरिमाण ४०७ वर्गमील और जनसंख्या ७० हजारके करीब है। इलाहाबादसे जब्बलपुर तक विस्तृत इष्ट इण्डिया रेलपथ इसी राज्यके बीचोबीच हो कर दौड़ गया है। पहले यह सामंतराज्य रेवाराज्यके अधीन था। बुन्देलखण्डमें अंगरेजीराज्य स्थापित होनेसे बहुत पहले पन्नाके बुन्देलराजने इस पर दखल जमाया। मरते समय वे उक्त सम्पत्ति ठाकुर दुर्जनसिंहके पिताके हवाले कर गये। अंगरेजोंका आधिपत्य फैलने पर ठाकुरराजने अंगरेजोंका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया जिससे अंगरेजोंने उनके दखलमें कोई छेड़ छाड़ न की। १८२६ ई०में दुर्ज्जनसिंहकी मृत्यु होने पर उनके दो पुत्रोंमें राज्याधिकारको ले कर विवाद खड़ा हुआ। दोनों पक्षोंमें लड़ाई शुरू हो गई। अंगरेज-राजने इस विवादसे राज्यविशृंखलता देख दोनों पुत्रोंके बीच राज्य बांट दिया। विष्णुसिंहको मैहर तथा प्रयागदासको विजय-

राघवगढ़ मिला। १८५८ ई०के गदरमें विजयराघवगढ़के सामन्त शामिल थे। इसलिये उनकी सारी जायदाद अंगरेजोंने जब्त कर ली। विष्णुसिंहके पौत्र राजा रघुवीर सिंह योगी-सम्प्रदाययुक्त हिन्दू थे। पीछे राजा रघुवीरने रेलपथ खोलनेके लिये वृटिश-सरकारको मुफ्तमें जमीन दे दी तथा पण्यद्रव्य पर जो महसूल लगता था, उसे उठा दिया। इस प्रत्युपकारमें अंगरेजोंने १८७७ ई०के दिल्ली दरबारमें राजाको वंशानुक्रमिक राजाकी उपाधि और सम्मान-सूचक ९ सलामी तोपें दीं।

यह राजवंश स्वराज्यके मध्य अंगरेज-शासनविधि-से कोई सम्बन्ध न रखते हुए राजकार्यकी परिचालना कर सकते हैं, केवलमात्र गुरुतर अपराध और यूरोपियों-के विवाद संक्रान्त विचारमें उन्हें गवर्नमेण्टकी सलाह लेनी पड़ती है। वर्त्तमान सामन्तका नाम है श्रीमन् राजा व्रजनाथसिंह जू देव बहादुर। उन्हें वृटिश सर-कारकी ओरसे ९ तोपोंकी सलामी मिलती है। राज्यकी आय करीब चार लाख रुपयेकी है।

२ उस सामंतराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° १६' उ० तथा देशा० ८०° ४६' पू० दक्षिण प्रदेश जानेके विस्तृत रास्ते के किनारे अवस्थित है। १९वीं सदीमें यहां एक दुर्ग बनाया गया है, जिसमें आजकलके राजे रहते हैं। यहां स्थानीय शस्यादि और जंगली वस्तुओंका वाणिज्य होता है। वाणिज्यको सुविधाके लिये यहां इष्ट इण्डिया रेलवे-लाइनका एक स्टेशन है। उत्तर-पश्चिम और दक्षिणपूर्वमें दो बड़ी बड़ी झीलें हैं जिनसे शहरकी शोभा बढ़ गई है, साथ साथ वह स्थान स्वास्थ्यप्रद भी हो गया है। जनसंख्या ६८०२ है। यहां एक सरकारी डाकघर, एक स्कूल और एक अस्पताल है

मैहिक (सं० त्रि०) मेह रोग सम्बन्धीय, जिसे प्रमेह हुआ हो।

मोगरा (हिं० पु०) १ काठका बना हुआ एक प्रकारका हथौड़ा जिससे मेख इत्यादि ठोंकी जाती है। २ मोगरा देखो। ३ मुँगरा देखो।

मोगला (हिं० पु०) मध्यम श्रेणीका और साधारणतः बाजार में मिलनेवाला केसर। विशेष विवरण केसर शब्दमें देखो।

मोंछ (हिं० स्त्री०) मूँछ देखो।

मोंढ़ा (हिं० पु०) १ बाँस, सरकंडे या बेंतका बना हुआ एक प्रकारका ऊँचा गोलाकार आसन। यह प्रायः तिरपाईसे मिलता जुलता होता है। २ बाहुके जोड़के पास कंधेका घेरा, कंधा।

मोआ (मोवा)—राजपूतानेके जयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २७° ३' उ० तथा देशा० ७६° ५९' पू० आगरासे अजमेढ़ जानेकी पक्की सड़कके किनारे अवस्थित है।

मोआ (मोवा)—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागान्त-र्गत एक बन्दर और नगर। इसका वर्तमान नाम मुहुरा है। यहांसे स्थानीय सामुद्रिक वाणिज्य परिचालित होता है।

मोआमारिया—आसामके लखिमपुर जिलेमें रहनेवाली एक असभ्य जाति। ब्रह्मपुत्रके दक्षिण और बुड़ी-डिहिङ्ग-के उत्तर तथा शिंफाशैलके पश्चिम जो मटक नामक स्थान है, वहां इस जातिका वास अधिक देखा जाता है। इसी कारण इनका दूसरा नाम मटक या मरान पड़ा है। यह आहम जातिकी एक शाखा है। आहम-राजवंशका प्रभुत्व और शासनशक्ति ह्रास होनेके कुछ ही समय पहले यह जाति यहां आ कर बस गई है। ये सभी वैष्णवधर्मावलम्बी हैं। आहम-राजाओंने इनमें दुर्गो-त्सव पूजाविधि प्रचार करनेकी चेष्टा की थी इसीसे सभी लोग इस तान्त्रिक शक्तिकी उपासनाका घोर विरोधी हो कर राजद्रोही हो गए। राजा गौरीनाथके समय इन्होंने निम्न आसाम पर चढ़ाई कर दी। इस समय अंगरेज सेनाने विद्रोहियोंको गौहाटीसे मार भगाया; किन्तु ये स्वाधीनताकी रक्षा कर कुछ समयके लिये स्वतन्त्र सरदारके अधीन राज्यशासन करते रहे। वैष्णव वीर इस सरदारके वंशधर 'बड़ा सेनापति' उपाधिसे भूषित हुए थे।

१८२५ ई० में ब्रह्मके रहनेवाले आसामसे विताड़ित होने पर अंगरेजराज द्वारा मटकके सरदारवंश स्थानीय राजा बन गये। १८३९ ई०में जब उनकी मृत्यु हो गई तब अंगरेजराजने सरदार पुत्रके साथ किसी तरह-

का बन्दोबस्त न कर मटक सहित समूचा लखिमपुर जिला अंगरेज-शासनभुक्त कर लिया।

यह मटक जाति अभी आसामको दूसरी दूसरी जातिके साथ मिल गई है। आजकल उनमें और किसी प्रकारकी जातीय प्रधानता देखी नहीं जाती। वह पूर्वतन मटक-सामन्तराज्य फिलहाल भिन्न भिन्न मौजोंमें बंट गया है। समतलभूमिके रहनेवाले मटक, जंगली मराण तथा वैष्णवप्रधान मोआमारिया नामसे परिचित हैं। तिफुक-गोसाई इनके धर्मगुरु हैं।

मोई (हिं० स्त्री०) १ घीमें साना हुआ आटा। यह छींटकी छपाईके लिये काला रंग बनानेमें कसीस और धौके फूलोंके काढ़ेमें डाला जाता है। २ मारवाड़ देशमें होनेवाली एक प्रकारकी जड़ी। कहीं कहीं इसे ग्वालिया भी कहते हैं।

मोक (सं० क्ली०) पशुचर्म, जानवरका चमड़ा।

मोका (हिं० पु०) १ मद्रास, मध्यभारत और कुमायूंके जंगलमें होनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। इसके पत्ते प्रति वर्ष झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी और सफेदी लिये भूरे रंगकी होती है और आरायशी सामान बनानेके काममें आती है। खरादने पर इसकी लकड़ी बहुत चिकनी निकलती है और इसके ऊपर रंग और रोगन खूब खिलता है। इसकी लकड़ी न तो फटती है और न टेढ़ी होती है। यह वृक्ष वर्षा ऋतुमें बीजोंसे उगता है। इसे गेठा भी कहते हैं। २ मोरवा देखो। ३ मौका देखो।

मोकि (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

मोक्तृ (सं० त्रि०) मुच-तृच्। मोचनकर्त्ता, मुक्त करनेवाला।

मोक्ष (सं० पु०) मोक्ष्यते दुःखमनेन, मोक्ष-करणे-घञ्। मुक्ति।

"न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले।
सर्वाशासंक्षये चेतः क्षयो मोक्ष इति श्रुतिः॥"
(सांख्यसा० २।३।२५)

आकाश पाताल या भूतल आदि किसी भी स्थानमें मोक्ष नहीं है, केवल आशाके नाश होनेसे ही मोक्ष होता है।

जीव केवल कर्मके बंधनसे बंधा हुआ है। उस कर्मको छेद कर सकनेसे ही मोक्ष प्राप्त होता है।

मोक्षका विषय दर्शनशास्त्रमें विशदरूपसे लिखा है, लेकिन यहां पर संक्षिप्त रूपसे समझा दिया जाता है।

परम पुरुषार्थका नाम मोक्ष है। पुरुषार्थ शब्दसे पुरुषका प्रयोजन समझा जाता है। पुरुषका जो अभिलषणीय है वही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ चार भागोंमें बांटा गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष वा अपवर्ग इनमें मोक्ष परम पुरुषार्थ है। बाकी तीनों पदार्थ ही विनाशी है। मोक्ष विनाशी है, इसीसे वह परमपुरुषार्थ है। मोक्ष शब्दके व्युत्पत्तिगत अर्थके प्रति लक्ष्य करनेसे बन्धनमोचन ही मोक्ष समझा जायगा। बन्धन शब्दसे जीवात्माका ही बंधन समझना चाहिये। इस बन्धनका अर्थ है सुखदुःख-भोग वा संसार।

जीवात्माका संसार वा बन्धन अज्ञानमूलक है। अर्थात् मिथ्याज्ञान संसारका हेतु है, जब तक कारण विद्यमान रहता है, तब तक कार्यकी निवृत्ति बिलकुल नहीं होती। अतएव जब तक मिथ्याज्ञान समूल दूर न हो जायगा, तब तक संसार-निवृत्ति वा मुक्ति हो ही नहीं सकती। मुक्ति परमपुरुषार्थ है, मुक्तिके लिये सबोंको समुत्सुक होना उचित है। बद्ध रहना कोई भी पसन्द नहीं करता, सभी बन्धन मुक्ति हो चाहता है। मिथ्याज्ञान बन्धन हेतुका कारण है। तत्त्वज्ञान मिथ्याज्ञानका समुच्छेदक वा विनाशक है। बिना तत्त्वज्ञानके और किसी भी उपायसे मिथ्याज्ञान दूर नहीं होता। मिथ्याज्ञानके दूर नहीं होनेसे मुक्ति नहीं होती। अतएव तत्त्वज्ञान मुक्तिका कारण है। तत्त्वज्ञान दो प्रकारका है, परोक्ष और प्रत्यक्ष। जो मिथ्याज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है वही परोक्ष है। परोक्ष तत्त्वज्ञान द्वारा ही उसका उच्छेद होता है; किन्तु जो मिथ्या ज्ञान प्रत्यक्ष है परोक्ष तत्त्वज्ञान द्वारा उसका विच्छेद नहीं होता। उसके उच्छेदके लिये प्रत्यक्ष तत्त्वज्ञान आवश्यक है। रज्जुमें सर्पका भ्रम होनेसे वह सर्प नहीं, रज्जु है। इस प्रकार यदि दूसरा आदमी बार बार कहे तो भी भ्रान्त व्यक्तिका सर्पभ्रम दूर नहीं होगा; क्योंकि भ्रान्त व्यक्तिका सर्पभ्रम प्रत्यक्षात्मक है। दूसरेके उक्तिमूलक

जो तत्त्वज्ञान होता है, वह परोक्ष तत्त्वज्ञान है। परोक्ष तत्त्वज्ञान अपरोक्ष भ्रमका निवर्त्तक नहीं होता। यह रज्जु है, इस प्रकार जब तक प्रत्यक्षात्मक तत्त्वज्ञान नहीं होगा, तब तक उसका सर्पभ्रम दूर नहीं होगा, उसे उस रज्जुके पास जानेका साहस नहीं होगा। दिक् मोह आदि स्थानोंमें भी इसी प्रकार देखनेमें आता है। अतएव यह सिद्ध हुआ, कि प्रत्यक्ष मिथ्याज्ञान परोक्षतत्त्वज्ञानके द्वारा दूर नहीं होगा। प्रत्यक्ष मिथ्याज्ञानकी निवृत्तिके लिये प्रत्यक्ष तत्त्वज्ञानकी आवश्यकता है।

देहादिमें आत्मबुद्धि आदि संसारका हेतु है। वह प्रत्यक्षात्मक मिथ्याज्ञान है। उसकी निवृत्तिके लिये प्रत्यक्षात्मक आत्मतत्त्वज्ञान सम्पादन करना होगा। शास्त्र और आचार्यके उपदेशानुसार जो आत्मतत्त्वज्ञान होता है, वह परोक्ष है, प्रत्यक्षात्मक नहीं। इस कारण शास्त्र अध्ययन करने वा गुरुके उपदेशसे आत्मतत्त्व मालूम हो जाने पर भी उससे देहादिमें आत्मबुद्धिकी निवृत्ति नहीं होती, आत्मतत्त्व-साक्षात्कारकी अपेक्षा रहती है।

आत्मतत्त्व-साक्षात्कारके अनेक उपाय शास्त्रोंमें कहे गये हैं। श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही आत्म-साक्षात्कारका प्रधान उपाय है। श्रवण शब्दका अर्थ है अद्वितीयब्रह्ममें वेदान्तवाक्यके तात्पर्यका अवधारण। मनन शब्दसे युक्ति द्वारा श्रुत्युक्त अर्थके सम्भावितत्वका अनुसन्धान समझा जाता है। अर्थात् श्रुतिने जो कहा है वह सम्भवपर है, युक्तिद्वारा इस प्रकार अवधारण करनेका नाम मनन है। निदिध्यासनका अर्थ है शास्त्रमें श्रुत तथा युक्ति द्वारा सम्भावित विषयकी लगातार चिन्ता।

"आत्मा वा अरे! द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः।" (श्रुति)

"श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः।
मत्वा च सततं ध्येयः एते दर्शनहेतवः॥" (विज्ञानभिक्षु)

ये सब विषय आदर-पूर्वक अविच्छेदसे बहुत दिनों तक अनुष्ठित होनेसे आत्मतत्त्व-साक्षात्कार होता है। दीर्घकाल श्रवणादिका अनुशीलन तीव्र विषय वैराग्य भिन्न नहीं हो सकता। नित्यानित्यवस्तुविवेक अर्थात् यह नित्य वस्तु है, यह अनित्य है, इसका सम्यक् ज्ञान, मूलभोगविराग अर्थात् वैराग्य, शमदमादि सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व ऐसे चार साधनसम्पन्न पुरुष ब्रह्मजिज्ञासाके अधिकारी कहे गये हैं। किन्तु इनमेंसे नित्यानित्य वस्तुविवेक वैराग्यका हेतु है तथा शमदमादि वैराग्यका कार्य है। अतएव वैराग्यकी गणना मुख्य साधन रूपमें होना उचित है। एकमात्र वैराग्य ही ब्रह्मविद्याके अधिकारका मुख्य साधन है। इसी अभिप्राय पर मण्डूकोपनिषद्में कहा है—

"परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।"

सभी कर्मफल अनित्य है, कर्म द्वारा नित्य पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकता। अतः ब्राह्मणको वैराग्यका अवलम्बन करना चाहिये। विरक्त ब्राह्मणको नित्यवस्तु जाननेके लिये ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरुके पास जाना उचित है।

विवेक चूड़ामणिमें भगवान् शङ्कराचार्यने कहा है,—

"वैराग्यञ्च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्योपजायते।
तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः॥"

जिसके तीव्र वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व प्राप्त हुआ है, शमादि साधन उसीसे सफलता लाभ करता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि वैराग्य ही ब्रह्मविद्याका अभ्यर्हित साधन है। सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी चिन्ता, संसारगतिकी पर्यालोचना तथा विषयदोष दर्शनादि भी वैराग्यका उपाय है।

सांख्यकारिकामें भी भगवान् कृष्णने कहा है,—

"पुरुषार्थज्ञानमिदं गुह्यं परमर्षिणा समाख्यातम्।
स्थित्युत्पत्तिप्रलयाश्चिन्त्यन्ते यत्र भूतानाम्॥"

जिस मोक्षजनक ज्ञानके लिये प्राणियोंकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयकी चिन्ता की जाती है उसीको परमर्षिने गोपनीय पुरुषार्थ ज्ञान कहा है।

यहां पर स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयकी चिन्ताको तत्त्वज्ञानका हेतु बतलाया गया है। छान्दोग्य उपनिषद्में पञ्चाग्नि विद्या द्वारा संसारगतिको ले कर उपसंहारमें कहा है, कि "तस्माज्जुगुप्सेत" अर्थात् संसारगति बहुत

विचित्र है, इसलिये वैराग्यका अवश्य अवलम्बन करना चाहिये।

सृष्टि, स्थिति और प्रलयविषयक चिन्ताको वैराग्यका उपाय कहा है। अतएव यहां इन विषयों पर कोई विचार करना आवश्यक है। सृष्टिविषयमें तीन मत बहुत कुछ प्रसिद्ध हैं—आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्त्तवाद। आरम्भवाद नैयायिक और वैशेषिकका, परिणामवाद सांख्य और पातञ्जलका तथा विवर्त्तवाद वेदान्तीका अनुमत है।

आरम्भवादमें कारण सत् और कार्य असत् है। इस मतमें सत्-कारणसे असत् कार्यकी उत्पत्ति होती है। कारण कार्योत्पत्तिके पहले विद्यमान रहता है, किन्तु उत्पत्तिके पहले कार्यका अस्तित्व नहीं है। परमाणु आदिकारण है, वह नित्य है। अतएव वह द्व्यणुकादि कार्यकी उत्पत्तिके पहले विद्यमान था। किन्तु द्व्यणुकादि कार्य-उत्पत्तिके पहले विद्यमान न थे। इसी कारण आरम्भवादका दूसरा नाम असत्कार्यवाद है।

परिणामवादमें असत्की उत्पत्ति स्वीकार नहीं की जाती। इस मतमें उत्पत्तिके पहले भी कार्य सूक्ष्मरूपमें कारणमें विद्यमान था। कारणके व्यापार द्वारा केवल कार्यकी अभिव्यक्ति होती है। तिलमें तेल है, जो पीसनेसे बाहर निकलता है, दूध दहीके रूपमें और मिट्टी घड़ेके रूपमें परिणत होती है। इस प्रकार सत्त्वादि तीनों गुण महत्तत्त्वरूपमें और महत्तत्त्व अहङ्काररूपमें परिणत होता है। इस परिणामवादका दूसरा नाम सत्कार्यवाद है। परिणामवाद और विवर्त्तवाद बहुत कुछ मिलता जुलता है। विवर्त्तवादमें कारणमात्र सत् और कार्य असत् है। कार्य स्वरूपमें असत् होने पर भी कारणरूपमें वह सत् है, ऐसा कहा जा सकता है। कारणका संस्थान मात्र ही कार्य है, कारणसे भिन्न कार्य नहीं है। कारणका जैसा निर्वाचन किया जाता है, कार्यका वैसा निर्वाचन नहीं किया जाता। इसी कारण विवर्त्तवादका दूसरा नाम अनन्यवाद वा अनिर्वचनीयवाद है। रज्जुमें सर्पभ्रम, शुक्तिकातमें रजतभ्रम आदि विवर्त्तवादका दृष्टान्त है। रज्जुमें परिकल्पित सर्प तथा शुक्तिकातमें परिकल्पित रजत जिस प्रकार रज्जु और शुक्तिकासे भिन्न नहीं है तथा अनिर्वचनीय है, उसी प्रकार ब्रह्ममें परिकल्पित विषयादि प्रपञ्च ब्रह्मसे भिन्न नहीं है तथा अनिर्वचनीय है। जो निर्वाच्य है वह सत्य, जो अनिर्वाच्य है वह मिथ्या, सत्यवस्तुका निर्वचन अवश्यम्भावी और मिथ्यावस्तुका निर्वचन असम्भव है। ब्रह्म निर्वाच्य है, इस कारण ब्रह्म सत्य है। जगत् वा विषयादिप्रपञ्च अनिर्वाच्य है। इस कारण जगत् मिथ्या है। लेकिन जगत्‌के पारमार्थिक सत्यत्व नहीं रहने पर भी व्यवहारिक सत्यत्व अवश्य है। जब तक शुक्तितत्त्व साक्षात्कृत नहीं होता, तब तक शुक्तिपरिकल्पित रजत सत्य समझा जाता तथा जब तक रज्जुतत्त्व साक्षात्कृत नहीं होता, तब तक रज्जुमें परिकल्पित सर्प सत्य ही समझा जाता है। रज्जुतत्त्व तथा शुक्तितत्त्वके साक्षात्कृत होनेसे परिकल्पित सर्पका तथा रजतका मिथ्यात्वबोध होता है। उसी प्रकार जब तक ब्रह्मतत्त्वका साक्षात्कार नहीं होता, तब तक जगत् सच्चा ही समझा जाता है। ब्रह्मतत्त्वके साक्षात्कार होनेसे जगत् मिथ्या प्रतीत होगा। जब जगत् यथार्थमें सत्य नहीं, तब जगत्‌की मायामें मुग्ध हो परमार्थ सत्यवस्तु अर्थात् ब्रह्मसे दूर रहना कहां तक युक्तिसंगत है, स्वयं विचार लें।

वेदान्तके मतसे माया सहित परमेश्वर जगत्सृष्टिका कारण है। मायाकी शक्ति अपरिमित और अनिरूपणीय है। प्रपञ्च विचित्र है। कारणगत वैचित्र्य नहीं रहनेसे कार्यकी विचित्रता नहीं हो सकती। अतएव कार्यवैचित्र्यका हेतुभूत प्राणिकर्म सृष्टिका सहकारि-कारण हैं। सृज्यमान पदार्थ नामरूपात्मक है, सृष्टिके प्राक्क्षणमें सृज्यमान समस्त नाम और रूप परमेश्वरकी बुद्धिसे प्रतिभात होता है। प्रतिभात होनेसे ही 'यह करेंगे' इस प्रकार संकल्प करके उन्होंने जगत्‌की सृष्टि की। परमेश्वरने पहले आकाशकी सृष्टि की। पीछे आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वीकी सृष्टि हुई। यह आकाशादि विशुद्ध भूत है अर्थात् अपञ्चीकृत वा अविमिश्र भूत है। इनमें एकके साथ दूसरेका मेल नहीं है। इस विशुद्ध आकाशादि पञ्चभूतका दूसरा नाम पञ्चतन्मात्र है। क्योंकि, पांचोंमेंसे

प्रत्येक तन्मात्र है। अर्थात् आकाश आकाशमात्र, वायु वायुमात्र इत्यादि। आकाशादिमेंसे कोई भी भूतान्तर-मिश्रित नहीं है।

परमेश्वरने मायासहित जगत्‌की सृष्टि की है। माया त्रिगुणात्मिका है, तत्सृष्ट आकाशादि भी त्रिगुणात्मक हैं लेकिन आकाशादि त्रिगुणात्मक होने पर भी तमोगुण ही उसमें अधिक है। इस कारण सत्त्वादि गुणका कार्य आकाशादिमें दिखाई नहीं देता।

आकाशादि पञ्च तन्मात्रमेंसे एक एक ज्ञानेन्द्रियकी सृष्टि हुई है। आकाशके सात्त्विकांशसे श्रोत्र, वायुके सात्त्विकांशसे त्वक्, तेजके सात्त्विकांशसे चक्षु, जलके सात्त्विकांशसे रसन तथा पृथ्वीके सात्त्विकांशसे घ्राण-की उत्पत्ति हुई है। श्रोत्रका अधिष्ठात्री देवता सूर्य, रसनका अधिष्ठात्री देवता वरुण और घ्राणका अधिष्ठात्री देवता अश्विनीकुमार है।

श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रिय यथाक्रम दिक् आदि पांच देवतासे अधिष्ठित हो शब्दादि विषयको ग्रहण करती अथवा उसमें ज्ञान सम्पादन करती हैं। आकाशादि पञ्चतन्मात्रका सात्त्विकांश एक साथ मिल कर मन और बुद्धिकी सृष्टि करता है। अहङ्कार और चित्त मन तथा बुद्धिके अन्तर्गत है। मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त इनका नाम अन्तःकरण है। मनका अधिष्ठात्री देवता चन्द्र, बुद्धिका चतुर्मुख, अहङ्कारका शंकर तथा चित्तका अधिष्ठात्री देवता अच्युत है। मन प्रभृति अन्तःकरण उक्त देवताओंसे अधिष्ठित हो उस विषयका भोग करता है।

आकाशादि पृथक् पृथक् रजके अंशसे पांच कर्मेन्द्रियकी उत्पत्ति हुई है। आकाशके रजोंशसे वाक्, वायुके रजोंशसे हाथ, तेजके रजोंशसे पैर, जलके रजोंशसे पायु और पृथिवीके रजोंशसे उपस्थ उत्पन्न हुआ है। इनके अधिष्ठात्री देवता यथाक्रम अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, यम और प्रजापति है।

आकाशादिगत रजके अंशोंके मिलनेसे प्राणादि वायुपञ्चककी सृष्टि हुई है। कर्मेन्द्रिय क्रियात्मक होनेके कारण पूर्वाचार्योंने उन्हें रजोंश स्थिर किया है। आकाशादिसे पञ्चीकृत पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई है।

पञ्चीकरणका विषय पञ्चीकरण शब्दमें देखो।

इस पञ्चीकृत पञ्च महाभूतसे यथाक्रम भूर्लोक वा भूमि-लोक, भुवर्लोक वा अन्तरीक्ष लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक जो एक दूसरेके ऊपर अवस्थित है उनकी तथा नीचेके अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल नामक चार प्रकारके स्थूल शरीरकी एवं तद्भोग्य अन्नपानादिकी उत्पत्ति होती है।

स्थूल शरीरका दूसरा नाम अन्नमयकोष है। कर्मेन्द्रियके साथ प्राणादि वायुपञ्चकका नाम प्राणमयकोष और कर्मेन्द्रियके साथ मनका नाम मनोमयकोष और ज्ञानेन्द्रियके साथ बुद्धिका नाम विज्ञानमयकोष है। संसारका मूलीभूत अज्ञान आनन्दमयकोष है। यह पञ्चकोष आत्मा नहीं है, आत्मा कुछ और है। सदानन्द योगीन्द्रका कहना है,—विज्ञानमयकोष ज्ञानशक्तिमान् है, वह कर्तृरूप है। इच्छाशक्तिवान् मनोमयकोष करणरूप है। क्रियाशक्तिमान् प्राणमय कोष कार्यरूप है। एक साथ मिले हुए प्राणमय, मनोमय, और विज्ञानमयकोषको लिङ्गशरीर वा सूक्ष्मशरीर कहते हैं। पूर्वाचार्यगण कहते हैं,—

"पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्॥"

पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशेन्द्रिय यह भोगसाधन सूक्ष्म शरीर है। अपञ्चीकृत भूतसे यह उत्पन्न हुआ है। यह सूक्ष्म शरीर मोक्षपर्यन्त स्थायी है।

पूर्वाचार्योंने संसारके मूलीभूत अज्ञानको कारण-शरीर बतलाया है। यह प्रत्येक शरीर व्यष्टि और समष्टि-रूपमें दो श्रेणियोंमें विभक्त है। जीव व्यष्टिकारण-शरीराभिमानी है और ईश्वर समष्टिकारण शरीराभिमानी है। समष्टिकारण शरीर वा समष्टि अज्ञान विशुद्ध सत्त्वप्रधान है, तदुपहित चैतन्य सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, जगत्कारण और ईश्वर नामसे प्रसिद्ध है। समष्टि सूक्ष्म शरीराभिमानी वा समष्टि सूक्ष्म शरीर उपहित चैतन्य सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ और प्राण कहे गये हैं। हिरण्यगर्भ आदि जीव है। व्यष्टि सूक्ष्म शरीरोपहित चैतन्य तैजस नामसे, समष्टि स्थूल-शरीरोपहित चैतन्य वैश्वानर वा विराट् नामसे तथा

व्यष्टि स्थूलशरीरोपहित चैतन्य विश्व नामसे प्रसिद्ध है। इससे मालूम होता है, कि एकमात्र चैतन्य विभिन्न उपाधि योगसे विभिन्न शब्दमें कहा गया है, वस्तुगत इनमें कोई भेद नहीं है।

सृष्टिका विषय एक तरह संक्षेपमें कहा गया। अब प्रलयका विषय कहता हूं। प्रलय शब्दका अर्थ है त्रैलोक्यविनाश वा सृष्ट पदार्थका नाश। प्रलय चार प्रकारका है, नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक। सुषुप्तिका नाम नित्यप्रलय है। सुषुप्तिकालमें सुषुप्त पुरुषके पक्षमें सभी कार्य प्रलीन हो जाते हैं। श्रुतिने कहा है,—सुषुप्ति अवस्थामें द्रष्टासे विभक्त वा पृथग्भूत दूसरा कोई द्रष्टव्य पदार्थ नहीं रहता। इस कारण द्रष्टा नित्य चैतन्यस्वरूप होने पर भी बाह्यविषयका अभाव होता है, इस कारण सुषुप्तिकालमें बाह्यवस्तुका ज्ञान नहीं रहता। धर्माधर्म आदि उस समय कारणरूपमें अवस्थित रहता है। अन्तःकरणकी दो शक्ति है, ज्ञान-शक्ति और क्रियाशक्ति। सुषुप्तिकालमें ज्ञानशक्ति-विशिष्ट अन्तःकरणका विलय होता है, इस कारण सुषुप्त-पुरुषके गंधादिका ज्ञान नहीं रहता। क्रियाशक्ति-विशिष्ट अन्तःकरण विलीन नहीं होता, इस कारण सुषुप्तपुरुषको प्राणनादि क्रिया वा श्वास प्रश्वासविशिष्ट नहीं होता है।

कार्यब्रह्म वा हिरण्यगर्भके दिवसका शेष होने पर त्रैलोक्यमें जो प्रलय होता है उसका नाम नैमित्तिक प्रलय है। ब्रह्माका दिन और रात चार हजार युगके समान है।

कार्यब्रह्मका विनाश होनेसे सभी कार्योंका जो विनाश होता है उसका नाम प्राकृत प्रलय है। ब्रह्माका आयु-काल द्विपरार्द्ध-परिमित है। इस आयुष्कालके अव-सान होनेसे कार्यब्रह्मका विनाश होता है। कार्यब्रह्मके विनाश होनेसे उसमें अधिष्ठित ब्रह्माण्ड, तदन्तर्वर्त्ती चतु-र्दश लोक, तदन्तर्वर्त्ती स्थावर जङ्गमादि प्राणिदेह, भौतिक घटपटादि तथा पृथिव्यादि सभी भूतवर्ग प्रलीन हो जाते हैं। मूल कारणभूत प्रकृति वा मायामें सभी प्रलीन होते हैं, इसीसे इसका नाम प्राकृत प्रलय है। यह प्रलय मायासे हुआ करता है, परब्रह्मसे नहीं। क्योंकि प्रध्वंसरूप प्रलय ब्रह्मनिष्ठ नहीं है—मायानिष्ठ है। ब्रह्ममें परिकल्पित जगत् तत्त्वज्ञान द्वारा ब्रह्ममें बाधित होता है।

यह बाधरूप प्रलय ब्रह्मनिष्ठ है। द्विपरार्द्धकाल शेष होनेके पहले कार्यब्रह्मका ब्रह्मसाक्षात्कार होने पर भी ब्रह्माण्डाधिकाररूप प्रारब्ध कर्मकी परिसमाप्ति नहीं होती, इस कारण अधिकार काल तक (द्विपरार्द्धकाल) कार्यब्रह्मके विदेहकैवल्य वा परम-मुक्ति नहीं होगी। ब्रह्मलोकवादियोंके ब्रह्मसाक्षात्कार होनेसे उन्हें भी विदेहकैवल्य होगा।

ब्रह्मसाक्षात्कारनिमित्तक सर्वजीवको मुक्तिका नाम आत्यन्तिक प्रलय है। एक जीववादमें वह एक ही समय सम्पन्न होगा और नाना जीववादमें क्रमसे होगा। एक दो करके जीव मुक्त हुआ है, होता है और होगा। इस प्रकार धीरे धीरे ऐसा समय आ पहुंचेगा, कि सभी जीव मुक्त हो जायेंगे। एक भी जीवबद्ध नहीं रहेगा। यही आत्यन्तिक प्रलय है। नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका हेतु कर्मोपरम है। इन सब प्रलय में भोग हेतु कर्मका उपरम होनेके कारण भोगमात्रका उपरम होता है। संसारका मूल कारण अज्ञान है वह इन सब प्रलयमें विनष्ट नहीं होता। किन्तु आत्यन्तिक प्रलय होनेसे ब्रह्मसाक्षात्कार वा तत्त्वज्ञानका उदय होता है। तत्त्वज्ञान होनेसे मिथ्याज्ञान वा अज्ञान रहने नहीं पाता। अतएव आत्यन्तिक प्रलयसे संसारका मूल कारण अज्ञान विनष्ट हो जाता है। अतएव आत्यंतिक प्रलयके बाद फिर सृष्टि नहीं होती। इस प्रलयको महाप्रलय कहते हैं।

नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत प्रलयका क्रम सृष्टि-क्रमके विपरीत क्रमसे जानना होगा। सृष्टिक्रमसे यदि प्रलय हो, तो पहले उपादान-कारणका विनाश और पीछे तदुपादेय कार्यका विनाश होगा, किन्तु यह बिल-कुल असम्भव है। क्योंकि उपादान कारणके विनष्ट होनेसे कार्य किसका आश्रय किये हुए रहेगा। यह देखा जाता है, कि मट्टीके बने हुए घड़े आदि जब टूट फूट जाते तब फिर वे मिट्टीमें ही मिलते हैं। पहले मट्टीका विनाश और पीछे उससे प्रस्तुत घड़े आदिका

विनाश अदृश्यचर है। जिस क्रमसे सीढ़ीसे ऊपर चढ़ते हैं, उसी क्रमसे उतरना भी पड़ता है। अतएव यह कहना अनुचित नहीं होगा, कि प्रलयकालमें पृथिवी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश अहङ्कारमें और अहङ्कार अज्ञान वा अविद्यामें लीन होता है। प्रलयके विषयमें दार्शनिकोंके मध्य मतभेद देखा जाता है। प्रलय देखो।

मीमांसक आचार्य लोग प्रलयको स्वीकार नहीं करते नैयायिक-प्रवर उदयनाचार्यने नाना प्रकारके अनुमानोंकी सहायतासे प्रलयका अस्तित्व स्वीकार किया है। पुराणशास्त्रमें प्रलयको मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। फिर भी महाप्रलय वा आत्यन्तिक प्रलयके विषयमें आचार्योंका एक मत नहीं है। कोई कोई नैयायिक आचार्य महाप्रलयको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि महाप्रलयका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पातञ्जल-भाष्यकारने आत्यन्तिक प्रलयको स्वीकार नहीं किया है, ऐसा मालूम होता है। वाचस्पतिमिश्रने तत्त्ववैशारदी ग्रन्थमें कहा है, कि श्रुति, स्मृति इतिहास और पुराणमें सर्ग प्रतिसर्गपरम्परासे अनादित्व और अनन्तत्व श्रुत हुआ है। प्रकृतिके विकारोंकी नित्यता भी शास्त्रसिद्ध है। अतएव आत्यन्तिक प्रलयको शास्त्रानुकूल नहीं कह सकते। क्रमिक विवेकख्याति द्वारा धीरे धीरे सभी जीव मुक्त होंगे, अतः एक ही समयमें संसारका उच्छेद हो जायगा, यह कल्पना भी प्राचीन प्रतीत नहीं होती। क्योंकि सभी जीव अनन्त और असंख्य हैं। इसी प्रकार वे आत्यन्तिक प्रलयको स्वीकार नहीं करते। किन्तु वैदान्तिक आचार्य लोग आत्यन्तिक प्रलयको निर्विवाद स्वीकार कर गये हैं।

सृष्टि और प्रलयका विषय कहा गया, अब स्थितिकालीन संसारगतिका विषय संक्षेपमें कहता हूं। जो धर्मात्मा हैं वे उत्तरमार्ग (देवयान) अथवा दक्षिणमार्ग (पितृयान) इन दो मार्गोंमेंसे किसी एक मार्गका अवलम्बन कर परलोक जाते और पुण्यानुरूप फलभोग करते हैं। फलभोगके बाद वे पुनः मर्त्यलोकमें आते हैं तथा सञ्चित शुभकर्मके तारतम्यानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य हो कर अथवा सञ्चित पापकर्मके अनुसार कुत्ते, सूअर और चण्डाल आदि योनिमें जन्म लेते हैं।

पञ्चाग्निविद्योपासक, सगुण ब्रह्मोपासक वा प्रतीकोपासनानिरत धर्मात्मा गृहस्थ दक्षिण मार्गमें वा पितृयानमें जाते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रमी इनके लिये उत्तममार्ग ही कहा गया है। उत्तरमार्गगामी पहले अर्चिर्देवतासे अहर्देवता, अहर्देवतासे शुक्लपक्षदेवता, शुक्लपक्षदेवतासे उत्तरायण देवता, उत्तरायण देवतासे संवत्सर देवता, संवत्सर देवतासे आदित्य देवता, आदित्यसे चन्द्र और चन्द्रसे विद्युत् देवताको प्राप्त होते हैं। देवयानगामी जीव जब विद्युद्देवताको प्राप्त होते हैं, तब ब्रह्मलोकसे कोई अमानव पुरुष उपस्थित हो कर उत्तरमार्गगामी जीवको सत्यलोकमें ले जाते हैं तथा कार्यब्रह्मको प्राप्त करा देते हैं। यह उत्तरमार्ग देवपथ वा ब्रह्मपथ नामसे प्रसिद्ध है। इससे मालूम होता है, कि जो कार्यब्रह्मप्राप्तिके लायक हैं उनकी उत्तर-मार्गमें गति होती है। छान्दोग्य उपनिषद्में भी ऐसा ही कहा है। किसी किसी उपनिषद्में कुछ कुछ वैलक्षण्य भी देखा जाता है।

उत्तरमार्गका विषय कहा गया। अब दक्षिणमार्गका विषय कहा जाता है। जो ग्राममें इष्ट, पूर्त्त और दान करते हैं अर्थात् जो केवल कर्मानुष्ठानतत्पर हैं, वे मरने पर पहले धूमाभिमानी देवताको, पीछे धूमदेवतासे रात्रिदेवता, रात्रिसे कृष्णपक्षदेवता, कृष्णपक्षसे दक्षिणायनदेवता, दक्षिणायनसे पितृलोक, पितृलोकसे आकाश और आकाशसे चन्द्रको प्राप्त होते हैं। यहां पर भी पहलेकी तरह यह समझना होगा, कि मृतजीवको धूमदेवताके समीप ले जाते हैं। इसी प्रकार एक दूसरेके पास पहुंचाया जाता है। चन्द्रमण्डलमें उसको योगोपयोगी जलमय देह बनती है।

आरोह कहा गया, अब अवरोहका विषय कहता हूं। आरोहका अर्थ है इस लोकसे परलोक जाना और अवरोहका अर्थ है परलोकसे इस लोकमें आना।

जिस पुण्यकर्मके फलभोगके लिये जीव चन्द्रलोकमें जाता है, फलके उपभोग द्वारा वह कर्म जब क्षयको प्राप्त होता है, तब जीव क्षणकालमें चन्द्रलोकमें नहीं रह सकता। उस समय जीव पुनः इस लोकमें आ कर

जन्म लेता है। इस लोकमें आने वा अवरोहको प्रणाली इस प्रकार है; चन्द्रमण्डलमें उपभोगके लिये कर्मका क्षय होनेसे, घृतकाठिन्यके विलयकी तरह उसका चन्द्रलोकीय शरीरारम्भक जल विलीन हो कर आकाशमें चला जाता है। उस जलके साथ जीव भी आकाशमें पहुंचता है। आकाशकी तरह सूक्ष्मावस्था प्राप्त वा आकाशभूत जीव उस जलके साथ वायुको प्राप्त होता है। वायु द्वारा इधर उधर सञ्चालित हो कर शरीरारम्भक जलके साथ जीव वायुभावमें आनेके बाद धीरे धीरे धूमभाव वा वाष्प भावापन्न होता है। धूम हो कर वह अभ्रभावापन्न, अभ्रभावापन्न हो कर मेघभावापन्न वा वर्षणयोग्यतापन्न मेघ भावापन्न होता है। उन्नत प्रदेशमें मेघसे वृष्टि होती है। वृष्टिके साथ पृथ्वी समागत जीवऔषधि, वनस्पति, धान, जौ, तिल आदि नाना रूपापन्न तथा पर्वततट, दुर्गमस्थान, नदी, समुद्र, अरण्य और महादेशादिमें सन्निविष्ट होता हैं।

अनुशमी वा कर्मशेषवान् जीव बड़े कष्टसे वहांसे निकलता है। वर्षादि भावसे जीवका निकलना बड़ा कष्टसाध्य है। क्योंकि, वर्षाधाराके साथ जीव पर्वततट पर गिर कर नदीमें मिलता है। नदी द्वारा वह समुद्रमें मिल कर पीतजलके साथ मकरादिकी कुक्षिमें घुस जाता है। वह मकरादि अन्य जलजन्तु द्वारा खाये जाने पर उसके साथ वह उसीकी कुक्षिमें चला जाता है। कालक्रमसे मकरादि जन्तुके साथ समुद्रमें विलीन हो कर जलभावापन्न होता है। इस अवस्थामें समुद्र-जलके साथ मेघ द्वारा आकृष्ट हो कर फिरसे वृष्टिके समय मरुदेशमें, शिलातट पर वा अगम्यप्रदेशमें पतित हो कर रहता है। फिर वहां भी पहलेकी तरह भिन्न भिन्न जन्तुके पेटमें चला जाता हैं। कभी कभी तो अभक्ष्य स्थावररूपमें उत्पन्न हो कर वहीं पर सूख जाता है।

भक्ष्य स्थावररूपमें वा शस्यादि रूपमें उत्पन्न होनेसे भी दूसरा शरीर सहजमें प्राप्त नहीं होता। क्योंकि उद्र्ध्वरेता, बालक, वृद्ध वा क्लीवादि द्वारा भक्षित शस्यादिके साथ अनुशमी, उनके कुक्षिगत होने पर भी मलादिके साथ निकल कर वह मिट्टीके रूपमें परिणत होनेके समय पुनः शस्यादि भावापन्न होता है। काकतालीय न्यायमें रेतःसे ककारिकर्त्तृक भक्षित हो कर रेतके साथ स्त्रीके गर्भाशयमें प्रविष्ट हो कर रेत गिरानेवालेका आकार धारण करता है। अनुशयी जीव उक्त प्रकारसे माताके गर्भाशयमें प्रविष्ट हो मूत्रपुरीषादि द्वारा उपहित माताके उदरमें एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, दश मास रह कर बड़े कष्टसे माताके उदरसे बाहर निकलता है। जहां पर मुहूर्त्त भर भी ठहरना कष्टकर है, वहां दश दश मास ठहरना कैसा कष्टकर होगा पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

पेड़ पर चढ़ा हुआ आदमी यदि हठात् गिर जाय, तो गिरनेके समय उसे जिस प्रकार ज्ञान नहीं रहता चन्द्रमण्डलसे उतरते समय अनुशयियोंका भी उसी प्रकार ज्ञान जाता रहता है। क्योंकि, उस समय उनके भोगहेतुभूत कर्म उत्पन्न नहीं होता।

जो स्वर्गभोगार्थ चन्द्रमण्डलमें आरोहण नहीं करते जो एक देहसे दूसरी देहमें जाते हैं उनके मृत्युकालमें देहान्तरतापक कर्मका वृत्तिलाभ होता है इसीसे उनके ज्ञान रहता है। प्रतिपत्तव्य देह विषयमें दीर्घतर भावना उत्पन्न होती है।

जो इष्टादिकारी नहीं हैं, प्रत्युत अनिष्टकारी वा पापकर्मानुष्ठायी हैं, वे चन्द्रमण्डलमें जाने नहीं पाते। वे यमालयमें जा कर अपने कर्मके अनुरूप यमनिर्दिष्ट यातनाका अनुभव कर जन्मग्रहणके लिये इस लोकमें आते हैं। जो विद्याकर्मशून्य हैं उनकी लोकान्तरमें गति वा लोकान्तरसे आगति नहीं होती। छोटे छोटे कीट पतङ्गोंका इस लोकमें ही वार वार जन्ममरण होता है। यह विचित्र संसारगति कितनी वार हुआ करती है, उसकी शुमार नहीं। इस संसारगतिका निर्देश करके श्रुतिने कहा है,—'तस्माज्जुगुप्सेत' जब संसारगति ऐसी कष्टकर है, कि छोटे छोटे जन्तु लगातार जन्ममरणजनित दुःख भोग करनेके लिये ही सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं, तब वैराग्यका अवलम्बन करना ही उचित है। जिससे इस प्रकार भयङ्कर संसारसागरमें पुनः पुनः उतरना न पड़े वैसा ही करना सर्वथा श्रेयस्कर है। जिस शरीरके लिये लोग अनेक प्रकारके दुष्कर्म कर बैठते हैं उस शरीरकी अवस्थाकी यदि अच्छी तरह पर्यालोचनाको

जाय, तो निश्चय है, कि सुधीगण वैराग्यके पक्षपाती हुए बिना नहीं रह सकते। यह शरीर मलमूत्रका भाण्डार है, अपवित्रताका आधार है। आश्चर्यका विषय है, कि जिस शरीर ले कर हम लोग ऐसा अहङ्कार करते हैं उस शरीरकी अपेक्षा दूसरी कोई वीभत्स वस्तु है वा नहीं, कह नहीं सकते।

सुधियोंका कहना है, कि शरीरमें कभी भी पवित्रताका लेशमात्र नहीं देखा जाता। उसका आदि, मध्य और अन्त सभी अपवित्र है। संसारकी ऐसी भयावह गति है, कि यह अपवित्र शरीर भी विना उद्वेगके नहीं रह सकता। जरा, मरण, शोक, रोग यह जीवके हमेशा साथ रहनेवाला है। शरीरका मरण अवश्यम्भावी है, इस कारण संसार-गतिको पर्यालोचना कर वैराग्य तथा आत्मसाक्षात्कारके लिये श्रवण, मननादि उपायका अवलम्बन करना बिलकुल ठीक है।

वैराग्य आत्मतत्त्वज्ञानका एक उत्कृष्ट उपाय है। संसारगतिकी पर्यालोचना द्वारा वैराग्यका आविर्भाव होता है। इस संसार-गतिका विषय संक्षेपमें कहा गया। सृष्टि, स्थिति, प्रलय, इस विषयको वार वार आलोचना करते करते तीव्र वैराग्यका उदय होता है, तब फिर जीव स्थिर नहीं रह सकता। मोक्षलाभके लिये व्याकुल हो कर मनन और निदिध्यासन किया जाता है। धीरे धीरे आत्मतत्त्वज्ञानलाभ होनेसे फिर मायिक वन्धन नहीं रहता, अज्ञान दूर हो जाता है। जीव उस समय 'तत्त्वमसि' वाक्यका याथार्थ्य समझ सकता है। उसी समय उसे मोक्ष होता है। तत्त्वज्ञान जब तक नहीं होता, तब तक उसका भ्रम दूर हो ही नहीं सकता। अतएव तत्त्वज्ञान ही एकमात्र मोक्षका कारण है।

जो मोक्षाभिलाषी हैं उन्हें उचित हैं, कि वे पहले तत्त्वज्ञानलाभकी चेष्टा करें।

नित्यानित्य वस्तुविवेक, इहामूत्रफलभोगविराग, शम, दम, उपरति और तितिक्षा आदि साधनसम्पत्ति प्राप्त कर सकनेसे मोक्षलाभ होता है। सृष्टि, स्थिति और प्रलयके विषयकी आलोचना करनेसे, कौन वस्तु नित्य और कौन वस्तु अनित्य है। यह आसानीसे जाना जा सकता है। "ब्रह्मैव नित्यं वस्तु ततोऽन्यदखिलमनित्यमिति विवेचनम्।"

ब्रह्म ही एकमात्र नित्य वस्तु है, इसके सिवा और सभी अनित्य हैं। अतएव नित्यवस्तुका त्याग कर अनित्यके प्रति आकृष्ट होना विद्वानोंका कर्त्तव्य नहीं। अतः विद्वानोंको चाहिये, कि वे अनन्यकर्मा हो तत्त्वज्ञानलाभके प्रति विशेष लक्ष्य रखें। तत्त्वज्ञानलाभ करनेसे वे वन्धनसे मुक्त हो मोक्षलाभ करते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि वन्धनमोचन ही मोक्ष है तथा यही परम पुरुषार्थ वा अपवर्ग है। मोक्ष ब्रह्मज्ञान-समधिगम्य है। ब्रह्म-ज्ञानलाभका प्रथम उपाय वैराग्य है। यह वैराग्य किस उपायसे लाभ किया जाता है, ऊपर कहा जा चुका है। विनश्वर क्षणिक सुखकी लालसामें विमुग्ध हो अविनश्वर मोक्षके लिये समुत्सुक न होना सोनेके लिये यत्न न कर आपातरमणीय चमकीली मुट्ठी भर धूलीके लिये कोशिश करनेके समान है।

वेदान्त देखो।

न्यायदर्शनमें मोक्षका विषय जैसा लिखा है बहुत संक्षेपमें उसका विषय यहां पर लिखा जाता है।

न्यायके मतसे आत्यन्तिक दुःखका ध्वंस ही मुक्ति है। शरीर-इन्द्रियादिका सम्बन्ध रहनेसे दुःखका अत्यन्त विनाश असम्भव है। क्योंकि, अनिष्ट वा अनभिमत विषयके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध होनेसे दुःखकी उत्पत्ति और अनुभव अनिवार्य है। अतएव मुक्तिकालमें शरीर और इन्द्रियके साथ आत्माका कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। आत्मा शरीर और इन्द्रियसे विच्छिन्न हो जायगी। शरीरको इन्द्रियोंके साथ आत्माका विच्छेद होनेसे आत्माको जिस प्रकार दुःख नहीं हो सकता, उसी प्रकार सुख भी नहीं हो सकता। यहां तक, कि शरीरादि सम्बन्धके सिवा आत्मामें किसी प्रकारका ज्ञान चेतना तक भी होने नहीं पाती। क्योंकि, आत्मा मनके साथ, मन इन्द्रियके साथ, इन्द्रिय विषयके साथ संयुक्त होनेसे आत्मामें ज्ञान वा चेतनाका सञ्चार वा उत्पत्ति होती है। मुक्तिकालमें चक्षुरादि इन्द्रियके साथ सम्बन्ध अलग होनेसे जिस प्रकार आत्माके चाक्षुषादि ज्ञान नहीं हो सकता, मनके साथ भी सम्बंध अलग

होनेसे कारण उसी प्रकार मानसिक ज्ञान भी नहीं आ सकता। मनके साथ आत्माका सम्बन्ध मानसिक ज्ञानका कारण है। भिन्न भिन्न मनके साथ भिन्न भिन्न आत्माका सम्बन्ध है, इस कारण भिन्न भिन्न व्यक्तिका मानसिक ज्ञान भी विभिन्न समयमें विभिन्न हुआ करता है।

मानसिक ज्ञान सर्वदा समान भावमें नहीं होता। अतएव वह कादाचित्क है। यह कार्य अवश्य उसका कारण रहेगा। आत्माके साथ मनका संयोग मानस ज्ञानका मुख्य कारण है। यह अन्वय व्यतिरेकसिद्ध वा प्रत्यक्षगम्य है। फिर त्वगिन्द्रियके साथ मनका संयोग ज्ञानसामान्यका कारण है। अलावा इसके और कोई भी ज्ञान नहीं होता। चक्षुरादि विशेष विशेष इन्द्रियके साथ मनःसंयोग चाक्षुषादि विशेष विशेष ज्ञानका कारण है।

त्वगिन्द्रिय सर्वदेहव्यापी है, अतएव जिस किसी इंद्रियके साथ मनका संयोग क्यों न हो, त्वगिन्द्रियके साथ मनःसंयोग अपरिहार्य है। क्योंकि, त्वगिन्द्रिय देहव्यापी होनेके कारण सभी इंद्रिय प्रदेश त्वगिन्द्रियकी विद्यमानता है। अभी यह साबित हुआ, कि मुक्ति अवस्थामें इंद्रियादिके साथ सम्बन्ध अलग होनेसे आत्मामें किसी प्रकारका सुख दुःख वा ज्ञान नहीं रहता, रह भी नहीं सकता। मिट्टी पत्थर जड़ पदार्थकी तरह मुक्तिकालमें आत्माभी सुख दुःख तथा ज्ञानादिसे रहित हो जाती है।

न्यायदर्शनके अनुसार मुक्तिकी इस अवस्थाके प्रति लक्ष्य करके चार्वाकने आस्तिकोंको सम्बोधन करते हुए उपहासमें कहा है, कि महामुनिके मतसे मुक्तिकालमें सुख दुःखकी तरह ज्ञान वा चेतना तक भी नहीं रहेगी, अतएव मुक्तिकी अवस्था तथा प्रस्तरादिकी अवस्थामें कुछ भी वैलक्षण्य नहीं। ऐसी मुक्तिका विषय जिन्होंने उपदेश दिया है उसका नाम गोतम है। गोतम शब्दका अर्थ उन्होंने इस प्रकार लगाया है, गोका अर्थ गोपशु और तम प्रत्ययका अर्थ श्रेष्ठ अर्थात् वे गोपशुश्रेष्ठ हैं।

जो कुछ हो, गोतमके मतमें सोलह पदार्थका तत्त्वज्ञान होनेसे ही मुक्ति होती है।

"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥" (गौतमसू० १।१)

इस मतमें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान यही सोलह पदार्थ हैं। इनका तत्त्वज्ञान होनेसे निःश्रेयस वा मुक्तिलाभ होता है।

इनमेंसे प्रमेय पदार्थका तत्त्वज्ञान अन्य निरपेक्षरूपमें निःश्रेयस हेतु—प्रमाणादि पदार्थका तत्त्वज्ञान परम्परासम्बन्धमें आत्मनिश्चय सभी अनर्थका मूल है। देहादिमें आत्मनिश्चय होनेके कारण ही स्वभावतः देहादिके अनुकूल विषयमें राग वा उत्कट अभिलाष तथा देहादिप्रतिकूल विषयमें द्वेष हुआ करता है। राग और द्वेषको दोष कहा है। राग और द्वेष रहनेसे उस विषयमें प्रवृत्ति अनिवार्य है। जिस विषयमें राग होता है उसका संग्रह तथा जिस विषयमें द्वेष होता है उसका परिहार करनेके लिये प्रवृत्ति लोगोंकी स्वाभाविक है। प्रवृत्ति होनेसे ही धर्माधर्मका सञ्चय होगा। किसी प्रवृत्ति द्वारा अर्थात् शास्त्रविहित विषयमें प्रवृत्ति द्वारा धर्मका तथा किसी प्रवृत्ति द्वारा अर्थात् प्रतिषिद्ध विषयमें प्रवृत्तिके द्वारा अधर्मका सञ्चय होता है। धर्माधर्म सुख दुःखका हेतु है, जन्म वा शरीर-परिग्रहके विना सुख दुःख नहीं हो सकता। अतएव प्रवृत्तिका कारण प्रवृत्तिसञ्चित धर्माधर्मके लिये जन्म हुआ करता है। जन्म लेनेसे सुख दुःखका भोग करना ही पड़ेगा। देखा जाता है, कि मिथ्याज्ञान वा देहादिमें आत्मबुद्धि ही अनर्थका मूल है।

आत्मा वास्तविक देहादि नहीं है, देहादिसे भिन्न है; इस प्रकार तत्त्वज्ञानका यथार्थ आत्मज्ञान होनेसे देह ही आत्मा है, यह मिथ्याज्ञान जाता रहता है। आत्मा अविनाशी है। देहादिकी तरह आत्माका विनाश नहीं हो सकता। आत्मा देहादि नहीं है, देहादिसे सम्पूर्ण पृथक् है, ऐसा तत्त्वज्ञान हो जानेसे फिर देहके प्रतिकुलाचरणमें समुद्यत व्यक्तिके प्रति उतना द्वेष नहीं हो सकता। अतएव तत्प्रयुक्त अधर्म भी होने नहीं

पाता। जो देहको आत्मा बतलाते हैं, वे देहके अनिष्टकारीसे जिस प्रकार द्वेष करते हैं, देहके अनुकूल स्रक-चन्दन सेवनादिके अनिष्टकारीसे द्वेष करने पर भी उस प्रकार द्वेष नहीं करते।

अतएव तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान दूर होनेसे राग-द्वेष दूर होता है। रागद्वेष दूर होनेसे तन्मूलक प्रवृत्ति तथा तज्जन्य धर्माधर्म सञ्चय अवगत होता है। पूर्वसञ्चित धर्माधर्म तत्त्वज्ञान द्वारा विनष्ट वा दग्ध हो जाता है। इसलिये वह फिर रहने नहीं पाता या रहनेसे भी फल अर्थात् सुख दुःख उत्पादनमें समर्थ नहीं होता। धर्मा-धर्मके दूर होनेसे उस फलभोगके लिये जन्म नहीं लेना पड़ता। जन्म नहीं होनेसे ही दुःखका नाश होता है। इस दुःखका नाश निःश्रेयस वा मुक्ति है।

सांख्यके मतसे अत्यन्त निवृत्ति ही मुक्ति है। "अथ-त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।" (सांख्यसू० १।१) त्रिविध दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिका नाम परमपुरुषार्थ वा मोक्ष है।

सांख्याचार्योंका कहना है, कि जगत्‌में यदि दुःख न रहता तथा लोग उसे परित्याग करनेके अभिलाषी न होते, तो कोई भी शास्त्रप्रतिपाद्य विषय जाननेकी इच्छा नहीं करता। प्राणिमात्र ही दुःखका अनुभव करता है तथा स्वभावतः ही प्रतिकूल रूपसे सोचता रहता है। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो दुःखको अपने अनुकूल-रूपसे विवेचना नहीं कर सकता हो। प्रतिकूल विषय परित्याग करनेकी इच्छा भी लोगोंका स्वाभाविक है।

जिस दुःखके अप्रतिहत प्रभावमें सभी मनुष्य एकान्त जर्जरित तथा अपने उच्छेदसाधनमें नितान्त आग्रहान्वित हैं, शास्त्र उसी दुःख समुच्छेदका उपाय निर्द्धारण करता है। सुतरां शास्त्रप्रतिपाद्य विषय लोगोंके ज्ञातव्य और अपेक्षित है। अतएव शास्त्रप्रतिपाद्य विषयमें लोगोंका मनोयोग नितान्त जरूरी है।

सत्य है सही, पर शास्त्रोपदिष्ट उपायसे दुःखका उच्छेद साधन करना बड़ा कठिन है। क्योंकि विवेक-ज्ञान दुःखसमुच्छेदका शास्त्रोपदिष्ट उपाय है। विवेक-ज्ञान अनायाससाध्य नहीं है, अनेक जन्म-परम्परासे मेहनत करने पर विवेकज्ञान लाभ किया जाता है;—

"बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।" (गीता०)

लौकिक उपायसे किन्तु अल्पायाससे दुःखका उच्छेद साधन किया जा सकता है। सद्वैद्यके उपदेशानु-सारसे उत्तम औषधके व्यवहार करनेसे शरीर दुःखका, मनोज्ञ स्त्रीपानभोजनादिके परिसेवनसे मानस दुःखका, नीतिशास्त्रकुशलता और निरापद समीचीन स्थानमें अव-स्थिति द्वारा आधिभौतिक दुःखका तथा मणिमन्त्रादि-की सहायतासे आधिदैविक दुःखका प्रतिकार सहसा सम्पन्न हो सकता है। ऐसे सहज उपायसे जब दुःख-का प्रतिकार हो सकता है तब कष्टकर शास्त्रोपदिष्ट उपायसे लोगोंकी प्रवृत्ति एकान्त असम्भव है। एक कहावत ऐसा है,—

"अक्के चेन्मधुविन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्।
इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत्॥"

घरके कोनेमें अगर मधु मिले तो, पहाड़ पर जाने-का क्या प्रयोजन? अभिलषित विषयकी सिद्धि होने पर कौन विद्वान् यत्न करता है। इसका तात्पर्य यह है, कि थोड़े परिश्रमसे यदि कार्य सिद्धि हो, तो कोई भी दुष्कर उपाय न करें।

यह युक्ति आपाततः रमणीय होने पर भी थोड़ा मनोनि-वेशकी सहायतासे चिन्ता कर देखनेसे खुद ही इसकी असारता जानी जाती है। देखा गया है, कि यथाविधि औषध सेवन, मनोज्ञ स्त्रीपानभोजनादिका उपयोग निरा-पद स्थानमें अवस्थिति और नीतिशास्त्रका अभ्यास तथा मणिमन्त्रादिका संग्रह करने पर भी आध्यात्मिकादि दुःखका प्रतिकार नहीं किया जा सकता। अतएव उस दुःखनिवृत्तिका उपाय होने पर भी ऐकान्तिक वा अव्य-भिचारी उपाय नहीं है और भी जाना जा सकता है, कि इन सब उपायोंसे तत्काल दुःखकी निवृत्ति होनेसे कालान्तरमें उस तरहके दुःखका पुनराविर्भाव होता है, यह प्रत्यक्षसिद्ध है।

विवेकज्ञान ही केवल दुःखनिवृत्तिका एकमात्र उपाय है। अथच विवेकज्ञान द्वारा दुःखका उच्छेदसाधन होनेसे पुनः दुःखका आविर्भाव एकान्त असम्भव है। कारण, मिथ्याज्ञान दुःखका निदान वा आदि कारण है, विवेकज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान समूल नष्ट होनेसे अकारण

उत्पत्तिकी आशंका नहीं हो सकती। वेदोक्त यज्ञादि द्वारा स्वर्ग लाभ किया जा सकता है तथा उससे दुःखकी निवृत्ति भी हो सकती है तथा अनेक जन्मपरम्पराके आयाससाध्य विवेकज्ञानकी अपेक्षा यज्ञादिका अनुष्ठान थोड़े दिनोंमें हो भी सकता है तथापि इसके अनुष्ठानसे भी दुःखका समुच्छेद होने पर भी अत्यन्त समुच्छेद नहीं होता।

उसका एकमात्र कारण यही है, कि वेदोक्त अनुष्ठानमें पशु और वीजादिकी हिंसा करनी होती है। यह हिंसा पापजनक है। यज्ञानुष्ठानसे जिस प्रकार प्रभूत पुण्य संचय होता है, उसी प्रकार उसे हिंसासाध्य वतला कर प्रभूत पुण्यके साथ साथ यत्किंचित् पापका भी संचय होता है। अतएव यज्ञकर्त्ता जब स्वोपार्जित पुण्यराशिके फलस्वरूप स्वर्गसुखका उपभोग करेंगे तब हिंसाके लिये पापांशके फलस्वरूप यत्किञ्चित दुःख भी उन्हें भोग करना होगा। किन्तु स्वर्गीय पुरुष सुखकी मोहनी शक्तिके प्रभावसे ऐसा मुग्ध हो जाते हैं, कि दुःखकणिकाको वे दुःख समझते ही नहीं।

"मृष्यन्ते हि पुण्यसम्भारोपनीता स्वर्गसुधामहाह्रदावगाहिनः कुशलाः पापमात्रोपपादितां दुःखवह्निकणिकाम्" (तत्त्वकौ०)

वेदोक्त स्वर्गफलजनक कर्म इस प्रकार नहीं है। कर्मके तारतम्यानुसार स्वर्गका तारतम्य होता है तथा स्वर्ग भी चिरस्थायी नहीं है, फल उसका भी नाश होगा। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" (गीता०)

पुण्यात्मा लोगोंके स्वर्गभोग करनेके बाद पुण्यक्षय होनेसे मर्त्यलोकमें प्रवेश करती हैं। अतः इससे सावित हुआ, कि दृष्ट वा लौकिक उपाय औषधादि तथा अदृष्ट वा वैदिक उपाय यज्ञानुष्ठानादि इसके किसी उपायसे भी दुःखकी एकदम निवृत्ति नहीं हो सकती। सुतरां वेदोक्त एकमात्र विवेकज्ञानरूप उपाय अवलम्बन करनेसे ही दुःखकी बिलकुल निवृत्ति हो सकती है।

अतएव यह सिद्ध हुआ, कि यह दुःखनिवृत्ति दृष्ट उपायसे या शास्त्रीय यागयज्ञादिके अनुष्ठानसे भी नहीं होती है। प्रात्यहिक क्षुन्निवृत्तिकी तरह दुःखनिवृत्ति होती है सही पर आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होता, पुनराय उसकी उत्पत्तिकी सम्भावना रहती हैं।

वेदोक्त यज्ञादि अनुष्ठान द्वारा स्वर्गप्राप्त होता है, स्वर्ग अर्थमें दुःखविरोध सुख है। इसलिये उससे दुःखनिवृत्ति हो सकती है तथा अनेक जन्मपरम्परासे आयाससाध्य विवेकज्ञानकी अपेक्षा वेदोक्त यज्ञादिका अनुष्ठान थोड़े समयमें हो सकता है तथापि वेदोक्त यज्ञादि अनुष्ठान द्वारा दुःखका समुच्छेद होने पर भी अत्यन्त समुच्छेद नहीं होता। यज्ञादि हिंसादि दोषयुक्त उससे पाप और पुण्य दोनों होता है। इसीसे हिंसाजनित पापहेतु दुःख तथा पुण्यके लिये स्वर्ग होता है।

अतएव इससे दुःखका ऐकान्त उच्छेद नहीं होता। लौकिक धनादि और वैदिक कर्मकाण्ड दोनों ही समान है आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति धनादि द्वारा नहीं होती, वैदिक यागयज्ञादि द्वारा भी नहीं होती। इस विषयका सिद्धान्त यही है, कि वेदविचारजनित विवेकज्ञानके सिवा अन्य किसी हालतसे भी मोक्षरूप परमपुरुषार्थ लाभ नहीं हो सकता।

सम्प्रति वन्धन क्या है, कहता हूं। मुक्ति वन्धनसापेक्ष है। सुतरां मुक्ति शब्दसे ही वन्धन कहा गया है। दुःखनिवृत्ति ही मुक्ति है। यह बातमें कहा गया है, कि दुःखसंयोग ही वन्धन है। जीवका वन्धन क्या स्वाभाविक है? इस प्रश्नके उत्तरमें शास्त्रने कहा है,—वन्धन स्वाभाविक नहीं। स्वाभाविक होनेसे शास्त्रमें जो मुक्तिका उपाय निर्देश है तथा जो विधान या अनुष्ठानप्रणाली कथित है वह वृथा हो जाती है। वन्धन स्वाभाविक होनेसे शास्त्रमें मोक्षका उपाय अभिहित नहीं होता है यह निश्चय है। अग्निकी उष्णता स्वाभाविक है वह किसी हालतसे निवारित नहीं होती। होनेसे उसके साथ अग्नि भी कम हो जाती है। स्वभाव अपवाहित नहीं होता, जब तक द्रव्य है तभी तक रहता है। दुःखसंयोगरूप वन्धन स्वाभाविक होनेसे वह जब तक पुरुष है तभी तक रहेगा, किसी तरह नहीं हटेगा। अतएव दुःखसंयोगरूप बंधन पुरुषका स्वाभाविक नहीं है।

नित्य शुद्धादि स्वभाव पुरुषका वन्धन है, प्रकृति योग व्यतीत संभव नहीं होता। अतएव इसी प्रकृतिके वन्धनसे मुक्त होनेके लिये जीवमात्रको ही चेष्टा करना विधेय है।

मुक्ति सम्बन्धमें यह मत है कि आत्मामें जो सुख दुःख मोहादि प्राकृतिक धर्म प्रतिविम्वित हुआ है उसके तिरोहित होनेसे ही आत्माको मुक्ति होती है। जिस प्रकारसे हो प्राकृतिक सम्बन्धका उच्छेद होना ही परम-पुरुषार्थ है।

मुक्ति होनेसे आत्मा किस अवस्थामें रहती है वह वचनातीत, वह अवस्थामें जाना नहीं जाता। सुषुप्ति इसका कई एक दृष्टान्त हो सकता है। इस मतसे पञ्च विंशतितत्त्वमें ज्ञान या तत्त्वके स्वरूप साक्षात्कार होनेसे दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है—दूसरे उपायसे नहीं। वानप्रस्थ हो, संन्यासी हो अथवा गृही हो पञ्चविंशतितत्त्वमें पूर्ण ज्ञान लाभ कर सकने पर भी आत्यन्तिक दुःख मोचन हो जाता है तथा किसी समय-में भी उसे और दुःखमें अभिभूत होना नहीं पड़ता।

"पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसेत्।
जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥"

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञ पुरुष जटी, मुण्डी, शिखी अथवा जो कोई आश्रमवासी क्यों न हो मुक्ति लाभ करना ही होगा।

तत्त्वज्ञान होने पर भी देहसत्त्वमें परममुक्ति या कैवल्य नहीं होता। तब भी पूर्वानुभूत संस्कारका शेष रहता है। तत्त्वज्ञान अज्ञानसंस्कारको दग्ध करने पर भी वह दग्धवीजको तरह आभासभावमें अवस्थित रहता है। शरीरपातके वाद वह निरवशेष हो जाता है। सुतरां तव प्रकृत विदेह-कैवल्य वा आत्यन्तिक दुःख-निवृत्तिरूप मोक्ष सुसम्पन्न होता है। (सांख्यद०)

मुक्ति शब्द देखो।

२ पाटलिवृक्ष, पाँडरका पेड़। ३ मोचन, किसी प्रकारके वंधनसे छूट जाना। ४ मृत्यु, मौत। ५ पतन, गिरना। विश्लेष, शास्त्रों और पुराणोंके अनुसार जीवका जन्म और मरणके वंधनसे छूट जाना।

"जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥"
(गीता० ७।२९)

मोक्षक (सं० पु०) मोक्षतीति मोक्ष ण्वुल्। १ मुष्ककवृक्ष, मोखा नामक पेड़। २ मोक्ष शब्दार्थ। (त्रि०) ३ मोचन-कर्त्ता, मोक्ष करने या देनेवाला।

'असन्धितानां सन्धाता सन्धितानाञ्च मोक्षकः।'
(मनु ४।३४२)

मोक्षण (सं० पु०) मुक्तिदान, मोक्ष देनेकी क्रिया।

मोक्षणीय (स० त्रि०) मोक्ष-अनीयर्। क्षेपणीय।

"पापा बुद्धिरियं राजन् दैवेनापि कृता यदि।
तथापि मोक्षणीयोऽर्थो नैव बुद्धिमतां भवेत्॥"
(गौ० रामा० २।२०।१६)

मोक्षतीर्थ (सं० क्ली०) मोक्षप्रदं तीर्थं। तीर्थभेद, मोक्ष-प्रदायक तीर्थ।

मोक्षद (सं० त्रि०) मोक्षं ददाति दा-क। मोक्षदाता, मोक्ष देनेवाला।

मोक्षदा (सं० त्रि०) १ मुक्तिदायिनी, मुक्ति देनेवाली। (स्त्री०) २ अगहन सुदी एकादशी।

मोक्षदेव (सं० पु०) चीनपरिव्राजक युएनचुवंगको उपाधि।

मोक्षद्वार (सं० पु०) १ मुक्तिका उपाय। २ सूर्य। ३ काशी।

मोक्षधर्म (सं० पु०) १ मुक्तिविषयक धर्म। २ महाभारत-के अन्तर्गत पर्वाध्याय।

मोक्षपति (सं० पु०) तालके मुख्य साठ भेदोंमेंसे एक। इसमें १६ गुरु ३२ लघु और द्रुत मात्राएं होती हैं।

मोक्षपुरी (सं० स्त्री०) काशीक्षेत्र आदि सात पुरी। अयो-ध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारा-वती ये सव पुरी मोक्षदायिका हैं इसीसे मोक्षपुरी कही गई हैं।

"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिका॥" (स्कन्दपु०)

मोक्षमहापरिषद् (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी प्रधान धर्म-समिति।

मोक्षमूलर (Max Muller)-शर्मण्यदेश (जर्मनी)-वासी एक विख्यात संस्कृतशास्त्रवित् पण्डित। शब्दशास्त्र (Philology)-में उनकी विलक्षण बुद्धि थी। १८२३

ई०में देसौ (Dessau) नगरमें उनका जन्म हुआ। इनके पिता एनहाल्टदेशाऊके ड्युकालपुस्तकागारमें लाइब्रे रियन थे।

अध्यापक मूलर सम्भ्रान्तवंशमें उत्पन्न हुए। यह किसीसे भी छिपा नहीं है। उनका पितृ और मातृ-वंश जर्मनदेशमें विशेष सम्भ्रांत था। दोनों ही सारदाके अनुगृहीत थे। पितामह महाकवि गेटे शिक्षा-विभागके प्रधान संस्कारक थे, इस कारण उनका तमाम आदर था। पिता विलहेल्म मूलर एक सुप्रसिद्ध जर्मन कवि थे। पिताके दारिद्र्यदोषके कारण कविपुत्र मोक्षमूलरको बचपनसे ही बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं। उन्हें शैशवकालसे ही जीविकाउर्जनके साथ साथ अपनी चेष्टासे शिक्षासोपान पर चढ़ना पड़ा था।

दारिद्र्यप्रपीड़ित बालक मोक्षमूलर बड़े अध्यवसायसे लिखना पढ़ना शुरू कर दिया। विद्यालाभके बाद किसी बन्धु द्वारा अवरुद्ध हो कर इन्होंने स्वयं उत्तरमें कहा था, "दरिद्रता और कठोर परिश्रमने मुझे अपनी उन्नति करनेमें सहायता पहुंचाई है।"

बालक मोक्षमूलर १२ वर्षकी उमर तक हेसेऊ विद्यालयमें पढ़ते रहे। यहां सङ्गीतविद्यामें इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। यहां तक कि, इनके सङ्गीतसे तात्कालिक जर्मनवासी अनेक महात्मा मुग्ध हो कर इनके प्रति आकृष्ट हो गये थे। पिताकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होनेके कारण इस समय भी ये हाथकी लिखी पुस्तकोंकी नकल करने और उसीसे जीविका चलाने लगे।

१८४१ ई०में लिपजिक कालेजमें प्रविष्ट हो कर इन्होंने १८४३ ई०में Ph D. की उपाधि प्राप्त की। विश्वविद्यालयमें उस समय हर्मण और हाप्ते नामक दो पंडित संस्कृत पढ़ाते थे। उन्हींसे मोक्षमूलरकी संस्कृतविद्यामें अच्छी व्युत्पत्ति हो गई। संस्कृतकी ओर उनका अनुराग दिनोंदिन बढ़ने लगा।

उपाधि पानेके बाद इन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालयमें प्रवेश किया। पूर्वजन्मार्जित सुकृतिसे इनके सुकोमल हृदयमें संस्कृत अनुरागका सञ्चार होने लगा। भारत और एशियाखण्डसे संगृहीत हाथके लिखे प्राचीन संस्कृत और अन्यान्य प्राच्यभाषाकी ग्रन्थोंकी तालिका देख कर ये मुग्ध और आकृष्ट हो गये और बर्लिनके विश्वविद्यालयमें आ कर उनका अध्ययन करने लगे। यहां हिब्रू और संस्कृतकी चर्चामें अविश्रान्त परिश्रम और आयास स्वीकार कर प्रसिद्ध भाषातत्त्ववित् अध्यापक वप और सोलिङ्गके यत्नसे इनका उन सब भाषाओंमें पूरा दखल हो गया था।

अठारह वर्षकी उमरमें मोक्षमूलर विद्यालयका परित्याग कर जीविकार्जनमें अग्रसर हुए। पेटकी चिन्तामें रात दिन लगे रहने पर भी इन्होंने लिखना पढ़ना नहीं छोड़ा। इस समय इन्होंने संस्कृत साहित्य-समुद्रको मथ कर रत्न निकाल लिये और अपनी मातृभाषाकी उन्नतिमें बद्धपरिकर हुए। २० वर्षकी उमरमें कदम बढ़ाते ही इन्होंने विष्णुशर्माकृत हितोपदेशका जर्मनभाषामें अनुवाद कर एक नया रास्ता निकाला।

संस्कृत-साहित्यके अध्ययनके साथ साथ इनकी ज्ञानपिपासा भी धीरे धीरे बढ़ने लगी। इसके बाद ये फ्रांसकी राजधानी पेरिस शहरमें आ कर प्राच्य भाषावित् पण्डितप्रवर युजिन् बुर्नाफके यत्न और उपदेशसे ज्ञानोन्नति करनेमें अग्रसर हुए।

पेरिस नगरमें पण्डित बुर्नाफकी संस्कृत-साहित्यविषयक वक्तृता सुन कर प्राचीन आर्यहिन्दुओंके परम पूजनीय ग्रन्थ तथा सारी प्राचीन आर्यजातिके आदिग्रन्थ वेदके ऊपर उनका विशेष अनुराग हो गया। उस ज्ञानमय वेदको अध्ययन तथा उसके यथेष्ट प्रचारका इन्होंने बीड़ा उठाया तथा सभाष्य ऋग्वेद प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रकट की। इसी समय बुर्नाफके साथ इनका परिचय हुआ। उक्त अध्यापकसे शिक्षाके प्रारम्भकालमें विशेष कष्ट पा कर ये अपनी सङ्कल्पसिद्धिके विषयमें निरुत्साह हो गये। अभी वे बुर्नाफके आदेशानुसार मूल और भाष्यके साथ ऋग्वेदग्रन्थ सङ्कलन करनेमें लग गये। बुर्नाफने इनसे कहा था, "इस बड़े कार्यमें जब हाथ डाला है, तब यूरोपकी संगृहीत सभी पुस्तकोंको पढ़ो और उनका पाठ मिला कर देखो। वेद प्रकाश करनेमें सभाष्य प्रकाशित करना ही उचित है, केवल कुछ श्लोकोंके ऊपर निर्भर नहीं किया जा सकता

उसमें दुरूह और दुर्बोध अंश जोड़ देना अच्छा होगा।"

इस बाईस वर्षके युवकको यह कठिन कार्य कर डालनेकी धुन लग गई। इसके पहले मुद्रित पण्डित वर डा० रोसनके बनाये हुए वेदभागके कुछ अंशों पर इनकी दृष्टि पड़ी। लाख चेष्टा करने पर भी ये सारे यूरोप महादेशमें एक जगह एक सम्पूर्ण वेदग्रन्थका संग्रह न कर सके। जर्मनी और फ्रान्सके पुस्तकालयोंमें संगृहीत ग्रंथोंसे भिन्न भिन्न अंशोंका उद्धार कर ये १८४६ ई०में इङ्गलैण्ड गये और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयकी विख्यात वडलियन लाइब्रेरीमें संगृहीत हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थोंसे पूर्वसंगृहीतांशोंका पाठोद्धार करने लगे।

इस समय प्रगाढ़ पण्डित राजनीतिकुशल जर्मन राजदूत वैरन बुनसेनके साथ मोक्षमूलरका परिचय हुआ। वे इन ज्ञानसन्धित्सु दरिद्र जर्मन युवकके अध्यवसाय पर बड़े मुग्ध और सन्तुष्ट हुए। पीछे उन्होंने भारतवाणिज्यमें प्रसिद्ध इष्टइण्डिया कम्पनीको वेद छपवानेका कुल खर्च देनेके लिये राजी किया। अङ्गरेज-वणिक्-समितिकी सहानुभूतिसे उल्लासित हो युवक मोक्षमूलरने वेदके भाष्य और मूल संग्रहरूप महाकार्यमें हाथ लगाया।

१८४६से १८७३ ई० तक असाधारण अध्यवसाय और अटूट परिश्रम कर मोक्षमूलरने अपना बहुत समय वेदसङ्कलनमें ही विताया। १८४६, १८५३, १८५६ और १८६३ ई०में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके छापेखानेमें उनके सम्पादित ऋग्वेदका एकसे छः भाग तक मुद्रित हुआ। १८७४ ई०की १४वीं सितम्बरको आक्सफोर्डमें रह कर इन्होंने अपने ऋग्वेदग्रन्थके छठे भागकी उपक्रमणिका शेष की। *इसी दिन लण्डन शहरमें प्राच्यभाषाविदोंकी* महाजातीय समितिकी पहली बैठक हुई। (The first day of the International Congress of Orientalists in London)। वेद-सङ्कलनमें इन्होंने प्रसिद्ध फरासी पण्डित अलेकसन्दर भान हम्बोल्ट और अध्यापक इ बुर्नोफ, सिमेलियर बुनसेन, मिल, ट्रिथेन्, रोअर, वार्डेली, गोल्डस्टुकर, वैलएडाइन, भावदाजी, थियोडर औफ्रेक्ट, डा० फिट्ज एडवर्ड हाल, प्रो० हौग, कावेल, एगलिं, थियो और इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध ह० ह० विलसन आदि संस्कृताध्यापकोंसे आन्तरिक श्रद्धाके साथ अकुण्ठित भावमें सहायता पाई थी।

वेद-सङ्कलन कालमें १८५०को ये आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके Deputy Taylorian Professor of Modern languages पद पर नियुक्त हुए। इस समय भारत-तत्वसम्बन्धीय उपदेश देनेके लिये इन्होंने वक्तृता दी। चार वर्ष तक इसी पद पर रह कर १८५४ ई०में सहकारीसे प्रकृत अध्यापक (Professorship)-पद पर इनकी तरक्की हुई। १८५६ ई०में इन्होंने वडलियन लाइब्रेरीके क्युरेटर पदको सुशोभित किया था। इसके बादसे ही ये यश सौरभ और उपाधि रत्नसे अच्छी तरह सम्वर्द्धित हुए। इस समय केम्ब्रिज और एडिनवरा विश्वविद्यालयसे इन्हें L. L. D-की उपाधि मिली। पीछे ये फ्रेञ्च इन्सटिट्यूटके वैदेशिक सभ्यपद पर नियुक्त हुए।

इस समय इन्होंने प्राच्य धर्मशास्त्रसम्बन्धमें प्रायः ५० ग्रन्थोंका अनुवाद किया तथा बहुतसे विभिन्न संस्कृत साहित्य और उनमें भी किसी किसीका अनुवाद करा कर छपवाया और प्रचार किया। विभिन्न प्राच्यदेशके धर्मशास्त्रोंको मथ कर यह अङ्गरेजी भाषामें जो सब ग्रन्थ सङ्कलन कर गये हैं, वह विद्यार्थीमात्रके पढनेकी वस्तु है। इन्होंने वैदेशिक पुराणशास्त्र-सागरमें डूब कर 'पुरातत्त्वका समन्वय' नामक ग्रंथ रचा है। इन्होंने आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज, ग्लासगो, एडिनवरा आदि विश्वविद्यालयके छात्रोंको अपनी गभीर गवेषणा और असामान्य प्रतिभाके परिचय स्वरूप जो सरल वक्तृता और उपदेश दिया था वही पुस्तकके आकारमें मुद्रित हुआ। इनमें Science of language, India what can it teach us? Chips from a German workshop, H story o Sanskrit literature, Six system of Hindu Philosophy आदि उल्लेखनीय हैं। इनके लिखे अङ्गरेजी ग्रंथोंकी भाषा इतनी उज्ज्वल तथा भाव ऐसा गम्भीर है, उसे पढ़नेसे स्वभावतः ही मनमें भक्ति और श्रद्धाका उदय होता है। माधुर्यमयी संस्कृत भाषाके गौरवव्यञ्जक भावोच्छ्वास आपे आप पाठके मनमें आग्रह उत्पन्न कर देता है।

१८७८ ई०में रावर्ट हार्वर्टने 'धर्मकी उत्पत्ति और विकाश'के सम्बन्धमें वक्तृता देनेके लिये एक वृत्ति दी। अध्यापक मोक्षमूलर उस व्यवस्थापित वृत्तिके दान-पत्रानुसार वक्ताके पद पर नियुक्त हुए। उनकी धर्मोपदेशपूर्ण वक्तृता दिनमें दो बार सुन कर श्रोता तृप्त न होते थे। १८८८ ई०में स्काटलैण्डके प्रसिद्ध वैरिष्टर एडम गियोगर्डने धर्मविज्ञान 'Science of Religion' संक्रान्त वक्तृताके लिये एक दूसरी वृत्ति प्रदान की। अध्यापक मोक्षमूलर उसके भी वक्ता नियुक्त हुए थे। पीछे वे सब वक्तृताएं छप गई और विद्वत्समाजमें उनका प्रचार तथा यथेष्ट आदर हुआ।

ऋग्वेदका प्रचार कर मोक्षमूलर विश्वविख्यात हो गये हैं। ऋग्वेदका प्रथम संस्करण छपवानेमें जितना खर्च हुआ था उससे दूना लाभ हुआ। इष्ट-इण्डिया कम्पनीके डिरेक्टरोंने ५०० ग्रन्थ बेच कर ७५००० रुपये संग्रह किये। इसके बाद इन्होंने उक्त समाष्य ऋग्वेद-साहित्य-संहिताका एक संस्कृत-संस्करण प्रकाशित करनेकी इच्छा प्रकट की। तदनुसार इन्होंने भारतके स्टेट सेक्रेट्रीसे सहायता मांगी। विलायतके भारत-सचिवने जब उनकी मांग पूरी न की, तब इन्होंने फिरसे इष्ट-इण्डिया कम्पनीकी भारतीय कौंसिलमें अपना अभिप्राय पेश किया। कम्पनीके भारतीय पुस्तकालयके लाइब्रेरियन् विख्यात संस्कृतज्ञ पण्डित महामति ह, ह, विलसनने इस महत् उद्देश्यकी सिद्धिके लिये इण्डिया कौंसिलकी साहित्यसमितिको (Literary Committee of the India Council) विशेषरूपसे अनुरोध किया, पर कोई फल न निकला।

इस समय भारतीय बहुतसे सम्भ्रान्त व्यक्तियोंने उनके प्रकाशित ऋग्वेदके प्रथम संस्करणको पुनः निकालनेकी उनसे अनुमति मांगी थी। उदारमति मोक्षमूलरने कहा था, उपर्युक्त पण्डितों द्वारा यदि इसका पुनः संस्करण हो जाय, तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं; किन्तु दुःख है, कि इसका पुनः मुद्रण करके ही क्या फल होगा। मैंने इस सम्बन्धमें फिरसे तीन वर्ष आलोचना करके जो भ्रमसंशोधन कर ग्रन्थका कलेवर बढ़ानेकी इच्छा की है उसका इससे कोई फल नहीं होगा। फिर प्रथम संस्करणके मुद्रणकालमें हम जिन आदर्श ग्रन्थोंके आधार पर मुद्रणकार्यमें अग्रसर हुए थे अभी उसकी अपेक्षा और भी हमें एक आध ग्रन्थ मिला है। उससे इस संस्कृत संस्करणका जहां तक हम समझते हैं, बहुत उपकार हो सकता है।'

इस प्रकार कुछ समय बीत जाने पर विद्योत्साही स्वधर्मनिरत विजयनगरके उदार राजाने मोक्षमूलरको इस आशय पर एक पत्र लिखा, कि ऋग्वेदके संस्कृत-संस्करण छपवानेमें जो कुछ खर्च होगा उसे वे सहर्ष देंगे। उस पत्रमें उन्होंने भारतवासीकी कृतज्ञता जताते हुए लिखा था,—"Your study of the literature of India and its people, has decidedly established a great claim on all Hindus to help you to the best of their abilities in any undertaking, much more in one of such literary and religious importance to ourselves." उक्त महाराज बड़े लाटकी व्यवस्थापक सभाके सभ्य थे। मान्द्राजके शासनकर्त्ता सर मनष्टुवार्ट ह, ग्राण्डफके साथ उसकी गाढ़ी मित्रता थी।

राजासे इस प्रकार वचन पा कर मोक्षमूलरने फिरसे वह वृहत् कार्य ठान दिया। इस समय इनकी अवस्था ढल गई थी, इसलिये अपने कार्यके सहायकरूपमें इन्होंने संस्कृताभिज्ञ Dr. Winternitz को ग्रहण किया। दोनों महान् व्यक्ति वर्णाशुद्धि और भ्रमसंस्कारादि कार्य शेष कर १८८८ ई०के वसन्तकालमें ग्रन्थ छपवानेमें लग गये। १८९२ ई०की २०वीं अप्रिलको राजाके अनुग्रहसे इस द्वितीय संस्करणका कार्य समाप्त हुआ। इसके कुछ समय पहले वम्बईवासी बोड़श राजारामशास्त्री और गोरे शिवराम शास्त्री नामक दो पण्डितोंने सायणका भाषाटीका समेत एक ऋग्वेद प्रकाशित किया। वह ग्रंथ यद्यपि विशुद्ध नहीं था, तो भी उसे मोक्षमूलरने कई जगह सहायता ली थी।

उन्होंने विजयनगराधिप महाराजधिराज सर पशुपति आनन्द गजपतिराज K. C. I. E. को तथा अपने मित्र और सहायकोंको धन्यवाद देते हुए ग्रन्थका उपसंहार किया। जिस राजवंशमें बुकराय सायणके प्रतिपालक थे,

उस वंशके आनन्दगजपति महाराज उस वेद-मुद्रण कार्यके उत्साहदाता हो कर सर्वजनपूज्य होवें, इसमें आश्चय ही क्या ? ऋग्वेदकी प्राचीनता स्वीकार कर अध्यापक मोक्षमूलरने लिखा है,—"After the latest researches into the history and chronology of the books of the Old Testament we may now safely call the *Rig-veda* the oldest book, not only of the *Aryan* humanity, but of the whole world, and may hope that

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ।
तावदृग्वेदमहिमा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥"

वैदिकयुगके प्रतिपाद्य चारों वेद, ब्राह्मण और उपनिषदादि; वेदान्त, दर्शन और विभिन्न पुराण, धर्मशास्त्र और संस्कृत नाटकादिकी आलोचना कर अध्यापक मोक्षमूलर इङ्गलैण्ड और अमेरिकामें प्राचीन भारतका एक साधन-प्रभाव फैला गये हैं। उनके लिखे हुए ग्रन्थ ही इस उद्दीपनाका प्रधान कारण है। उन्होंने केवल दूसरेके आविष्कृत तत्त्वका जनसाधारणके निकट भिन्न देशीय भाषामें प्रकाशित ही नहीं किया, वरन् प्राचीन संस्कृत साहित्यको मथ कर उसमेंसे एक ऐतिहासिक तत्त्वका भी उद्धार किया था। उन्होंने ही सबसे पहले संस्कृत साहित्यको श्रुति और स्मृति पुराणादि नामसे दो भागोंमें बांटा है। भारतवर्षमें हस्तलिखित लिपिका प्रचार होनेके पहले वेदादिका श्रुति पुरुषपरम्पराको रक्षा करनेके लिये गान होता था, इस कारण ब्राह्मण समाजमें शाखा, चरण, प्रवरादि विभाग संघटित हुए। क्योंकि एक ब्राह्मण समाज वा श्रेणीके लिये समस्त वैदिक साहित्यका स्मरण रखना बहुत कठिन है। इस श्रुतियुगमें श्रौत और गृह्यसूत्रसाहित्यकी सृष्टि हुई। श्रौत और गृह्यसूत्रके साथ साथ प्राचीन ब्राह्मणसमाजी शाखा, चरण और प्रवरादि विभागका आचार-व्यवहार निर्देश कर धर्मसूत्र रचा गया था। धर्मसूत्रके बाद धर्मस्मृतिका अभ्युदय हुआ। मनुसंहिता (स्मृति) इसी प्रकार एक धर्मसूत्रके ऊपर प्रतिष्ठित थी। वर्त्तमान आविष्कृत मानवसूत्र उसका प्रमाण है।

उनके मतसे अति प्राचीन कालसे ले कर बौद्धराज अशोकके शासनकाल तक श्रुतियुग विद्यमान था, इसके बाद लिपियुगका आरम्भ हुआ। भारतवर्षमें लिपिप्रणाली विस्तृत होनेके बाद विभिन्न बौद्ध और हिन्दू धर्मग्रन्थ और उपाख्यानादि रचे गये थे।

मोक्षमूलरने वैदिक साहित्यको तीन भागोंमें विभक्त किया,—१ संहिता, २ ब्राह्मण, ३ उपनिषद्। उनकी कल्पनाके अनुसार ईसाजन्मके पहले १००० से ६००के मध्य ब्राह्मणकाल, उसके बाद ४०० ई० तक उपनिषद्काल है, अतएव वेदसंहिता ईसाजन्मके १००० वर्ष पहले की है। यह मत कहां तक सत्य है, उस पर पीछे विचार किया जायगा। वैदिक साहित्यका कालनिर्णय करनेमें अध्यापक प्रवर जैसी भूल कर गये हैं, पौराणिक साहित्य और प्राचीन काव्यादिका कालनिर्णय करनेमें वैसे ही वे प्रत्नतत्त्वविदोंके निकट हास्यास्पद हुए हैं।

वेद और पुराण देखो।

१८२३ ई०में जन्म ले कर प्राच्य और प्रतीच्य जगत् तथा आर्य संस्कृत भाषाके साथ प्रतीच्य भाषाओंका शब्दसामञ्जस्य दिखलाते हुए महामति मोक्षमूलर २०वीं सदीके आरम्भमें ही इस लोकसे चल बसे।

मोक्षलक्ष्मीविलास (सं० पु०) काशी विश्वेश्वरके पासका एक मंडप।

मोक्षवत् (सं० त्रि०) मोक्षः विद्यतेऽस्य मोक्ष-मतुप् मस्य व। मोक्षयुक्त, जिसकी मुक्ति हो गई हो।

मोक्षविद्या (सं० स्त्री०) वेदान्तशास्त्र।

मोक्षशास्त्र (सं० क्ली०) मोक्षप्रदं शास्त्रं। जिस शास्त्रमें मोक्षविषयक उपदेश है।

मोक्षशिला (सं० स्त्री०) जैन मतानुसार वह लोक जहां जैन धर्मावलम्बी साधु पुरुष मोक्षका सुख भोगते हैं, स्वर्ग।

मोक्षसाधन (सं० क्ली०) साध्यतेऽनेनेति साधनं, मोक्षस्य साधनं। मोक्षका उपाय, योगादि जिसे अवलम्बन कर जीव मुक्तिपथका पथिक होता है, तपस्या।

मोक्षा (सं० स्त्री०) मोक्षदा देखो।

मोक्षिण (सं० त्रि०) मोक्षः अस्यास्तीति मोक्ष-इनि। मोक्षयुक्त, वह पुरुष जिसकी मुक्ति हो गई हो।

मोक्षोपाय (सं० पु०) मोक्षस्य मुक्तेरुपायः। मुक्ति-साधन, जिसे अवलम्बन करनेसे मुक्ति मिलती है, तपस्या, समाधि, योग, ज्ञान।

"स तं कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कृपयाभिपरिप्लुतः।
उवाच दानवश्रेष्ठं मोक्षोपायं ददामि ते॥"
(हरिवंश २५५। ६३)

मोक्ष्य (सं० त्रि०) जो मोक्षके योग्य हो, मोक्षका अधिकारी।

मोख (मुह्मद) –पंजाब प्रदेशके रावलपिण्डी जिलान्तर्गत एक नगर। यह सिन्धु नदके बायें किनारे पर अवस्थित है। पहले इंडस्ष्टिम फ्लोटिला कम्पनीका वाष्पीय जहाज इस वाणिज्य केन्द्रसे कोटरी तक जाता आता था। रेलवे लाइनके हो जानेसे जहाज द्वारा वाणिज्यका ह्रास हो गया है। अभी बड़ी बड़ी देशी नाव द्वारा देशीय पण्य द्रव्यका वाणिज्य होता है। स्थानीय पराछा नामक वणिकजाति द्वारा अफगानिस्तानके साथ यहांका वाणिज्य सम्बन्ध हो गया है।

मोखा (हिं० पु०) दीवार आदिमें बना हुआ छेद जिससे धूआं निकलता है और प्रकाश तथा वायु आती है।

मोखेर—मध्यभारतके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक नगर।

मोग (सं० पु०) वसन्तरोगभेद, चेचक।

मोगरा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बहुत बढ़िया और बड़ा बेला। २ मोंगरा देखो।

मोगल—मुगल देखो।

मोगलपुर—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ५५′ ४३″ उ० तथा देशा० ७८° ४५′ ५५″ पू० रामगंगा नदीसे एक मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन दुर्गचिह्न पड़ा हुआ है।

मोगलभिन—कराची जिलेके शाहबन्दर उपविभागके अन्तर्गत एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° २३′ उ० तथा देशा० ६८° १८′ ३०″ पू० सिन्धुनदकी पिन्यारी शाखाके गांगरो नामक अंशमें अवस्थित हैं। नगरसे एक कोस दक्षिण २०० गज × १३॥ गज चौड़ा एक बांध है। उसके ऊपर बावला गाछ हो कर एक सुन्दर पथ दिखाई पड़ता है। गांगरो नदीका जल मीठा और पिन्यारीका जल खारा होता है। यहां प्रति वर्ष माघ महीनेमें एक मुसलमान फकीरके उद्देश्यसे एक मेला लगता है। इस समय पीरके समाधि-मन्दिरमें पूजा देनेके लिये दूर दूर देशोंसे लोग आकर रहते हैं।

मोगलमारो—मेदिनीपुर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां मुगलके साथ यहांके हिन्दू जमींदारोंका एक युद्ध हुआ था। मेदिनीपुर देखो।

मोगलसराय—युक्तप्रदेशके वाराणसी जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° १६′ ३०″ उ० तथा देशा० ८३° १०′ ४५″ पू०के मध्य अवस्थित है। काशी जानेके लिये यहांसे इष्टइण्डियन रेलवेकी एक लाइन दौड़ गई है।

मोगली (हिं० स्त्री०) एक जंगली वृक्ष। यह गुजरातमें अधिकतासे पाया जाता है। इससे एक प्रकारका कत्था बनाया जाता है और इसकी छाल चमड़ा सिझानेके काममें आती है।

मोगा—१ पञ्जाब प्रदेशके फिरोजपुर जिलेकी एक तहसील। भू-परिमाण ८११ वर्गमील है जिनमेंसे ७३३ वर्गमील भूमिमें खेतीबारी होती है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और उपविभागका विचार सदर। यह ग्रांडट्रंकरोडके किनारे अवस्थित है। यह लुधियाना और फिरोजपुरका शस्यभण्डार है। लुधियाना-फिरोजपुर-रेलपथ विस्तृत हो जानेसे यह स्थान वाणिज्यका केन्द्र हो गया है।

मोगिनन्द (मोगनन्द)—पंजाबके सिरमूर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २०° ३२′ उ० तथा देशा० ७७° १६′ पू० शिवालिक पर्वतमालाके मोगिनन्द संकटके किनारे अवस्थित है। १८१५ ई०के गोरखा-युद्धके समय नाहनकी चढ़ाईके समय अंगरेजी सेनाने यहां छावनी डाली थी।

मोग्यो—अंगरेजाधिकृत ब्रह्मके थरावती जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १७° ५८′ २०″ उ० तथा देशा० ९०° ३३′ २०″ पू०के बीच पड़ता है।

मोघ (सं० त्रि०) मुह्यतेऽस्मिन्निति मुघ घञ्, न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वं। १ निरर्थक, निष्फल।

"यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम्।
गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥"
(मनु ९।५०)

२ हीन। (पु०) ३ प्राचीर।

मोघता (सं० स्त्री०) मोघस्य भावः तल-टाप्। मोघत्व, निष्फलत्व।

मोघपुष्पा (सं० स्त्री०) मोघं पुष्पं रजो यस्याः। वन्ध्या। (राजनि०)

मोघा (सं० स्त्री०) मोघ-स्त्रियां टाप्। १ पाटला, पाडरका वृक्ष। २ विडङ्ग, वायविडंग। ३ बदरी, बेर। ४ निष्फला।

मोघिया (हिं० स्त्री०) मोटी मजबूत और अधिक चौड़ी नरिया। यह खपरैली छाजनमें बँड़ेरे पर मँगरा बांधनेमें काम आती है।

मोघिया—राजपूताना और मध्य भारतमें रहनेवाली एक असभ्य जाति। यह पहले दस्युवृत्ति द्वारा अपनी जीविका चलाती थी। अभी अंगरेजोंके कठोर शासनसे डर कर बहुत कुछ शान्त हो गई है।

मोघिया—पूर्व बंगाल और आसामवासी एक जाति। सम्भवतः इसकी उत्पत्ति मगजातिसे हुई है।

मोघोलि (सं० पु०) प्राचीर।

मोघ्य (सं० पु०) विफलता, नाकामयाबी।

मोङ्गराज—बंगालका एक राजा।

मोच (सं० क्ली०) मुञ्चति त्वगादिकमिति मुच्-अच्। १ कदलीफल, केला। (पु०) २ शोभाञ्जन वृक्ष, सहिंजनका पेड़। ३ सेमलका पेड़। ४ पांडरका पेड़। (स्त्री०) ५ शरीरके किसी अंगके जोड़की नसका अपने स्थानसे इधर उधर खिसक जाना, चोट या आघात आदिके कारण जोड़ परकी नसका अपने स्थानसे हट जाना। इसमें वह स्थान सूज आता है और उसमें बहुत पीड़ा होती है।

मोचक (सं० पु०) मोचयति संसारादिति मुच-णिच् ण्वुल्। १ मोक्ष, मुक्ति। २ कदली, केला। ३ शिग्रु, सहिजनका वृक्ष। ४ विरागी, विषय-वासनासे मुक्त। ५ मुष्कक वृक्ष, मोरवा नामक पेड़। (त्रि०) ६ मुक्तिकारक, छुड़ानेवाला।

'अमुक्तो मोचकश्चायमकालः कालचोदकः।'
(शिवपु० वायुस० २।५१)

मोचन (सं० क्ली०) मुच-ल्युट्। १ मोक्ष। मुक्ति करना।
"अवतीर्य रथात्तूर्णं कृत्वा शौचं यथा विधि।
रथमोचनमादिश्य सन्ध्या मुपविवेशह ॥" (भारत)
२ कम्पन, कांपना। ३ शाठ्य, शठता। ४ बंधन आदि खोलना, छुड़ाना। ५ दूर करना, हटाना। ६ रहित करना, ले लेना। मोचनकर्त्ता, छुड़ानेवाला।
"धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथायुषम्।"
(भाग० ६।१३।२३)

मोचनपट्टक (सं० क्ली०) १ वह वस्तु जिससे जल छांका जाय। २ जलपरिष्कारक, पानी साफ करनेवाला।

मोचना (हिं० क्रि०) १ छोड़ना। २ गिराना, बहाना। ३ छुड़ाना, मुक्त करना। (पु०) ४ लोहारोंका एक औजार जिससे वे लोहेके छोटे छोटे टुकड़े उठाते हैं। ५ हज्जामोंका वह औजार जिससे वे बाल उखाड़ते हैं।

मोचनिका (सं० स्त्री०) मोचनी, भटकटैया।

मोचनिर्यास (सं० पु०) मोचस्य निर्यासः। मोचरस, सेमरका गोंद। मोचरस देखो।

मोचनी (सं० स्त्री०) मोचयति रोगात् संसारादिति वा मुच् णिच्-ल्यु, स्त्रियां ङीष्। १ कण्टकारी, भटकटैया। २ मोक्षकर्त्री।

मोचनीय (सं० त्रि०) मुच-अनीयर्। मोचनयोग्य, मुक्ति करने लायक।

मोचपुष्पा (सं० स्त्री०) १ बन्ध्या स्त्री, बांझ स्त्री। २ कदलीवृक्ष, केलेका पेड़।

मोचयितृ (सं० त्रि०) मुच्-णिच्-तृच्। मोचनकर्त्ता, मुक्ति देनेवाला।

मोचरस (सं० पु०) मोचस्य रसः। शाल्मलिनिर्यास, सेमरका गोंद। पर्याय मोचस्रुत्, मोचस्राव, मोचनिर्यास, पिच्छिलसार, सुरस, शाल्मलीवेष्ट, मोचसार। इसका गुण—कषाय, कफ-वातनाशक, रसायन, बल, पुष्टि, वर्ण, वीर्य, प्रज्ञा और आयुर्वर्द्धक माना गया है।
(राजनि०)

मोचसार (सं० पु०) मोचरस, सेमरका गोंद।

मोचस्रव (सं० पु०) मोचरस देखो।

मोचा (सं० स्त्री०) मुञ्चति त्वचमिति मुच्-अच्-टाप्। १ शाल्मलीवृक्ष, सेमरका पेड़। २ कदलीवृक्ष, केलेका पेड़। ३ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। ५ शल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़।

केलेको मोचा कहते हैं। केलेके गाछमें पहले मोचा पड़ता है तब उससे धीरे धीरे केला निकलता है जो थोड़े ही दिनोंमें मोटा होता और पकता है। मोचेकी तरकारी बड़ी अच्छी होती है सिर्फ कच्चे केलेका मोचा तीता होता है।

मोचाट (सं० पु०) १ कृष्णजीरक, काला जीरा। २ रम्भास्थि, केलेका गाभ। ३ कदलीवृक्ष, केलेका पेड़। ४ चन्दनवृक्ष। (वैद्यकनि०)

मोचाफल (सं० क्ली०) कदली, केला।

मोचारस (सं० पु०) केलेके थम्भोंका पानी।

मोचिक (सं० पु०) १ केला। २ मोचनकारिणी, मुक्ति देनेवाली।

मोचिका (सं० स्त्री०) १ मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली। २ केला।

मोचिन् (सं० त्रि०) मोचनशील, छुड़ानेवाला।

मोचिनी (सं० स्त्री०) कण्टकारी, पोईका पौधा।

मोचिलिन्दा (सं० स्त्री०) राजादनवृक्ष, खिरनीका पेड़।

मोची (सं० स्त्री०) मुच्यते रोगो ययेति मुच्-घञ्, ङीप्। १ हिलमोचिका। (त्रि०) २ मोचिन् देखो।

मोची—बंगाल-बिहारमें रहनेवाली एक जाति। यह चर्मकार-श्रेणीका एक विभाग है। इस जातिके लोग चमड़ा साफ करते तथा चमड़ेका व्यवसाय कर अपनी जीविका चलाते हैं। बहुतोंका कहना है, कि चमार मोचीसे हीन है। मोची साधारणतः अस्पृश्य जाति कह कर परिगणित है। स्थानविशेषसे मोची लोग मृत गोमांस भक्षण नहीं करते, किन्तु चमार लोग गोमांस भक्षण करते हैं। मोची जूता और अनेक तरहकी चमड़ेकी वस्तु बनाते हैं। उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें मोची लोग मृत गौका चमड़ा नहीं उतारते किन्तु बंगालके मोची ऐसा करते हैं और चमड़ेका व्यवसाय भी करते हैं।

मोचियोंकी उत्पत्ति ले कर अनेक प्रवाद हैं। प्रजापतिके एक पुत्र देवताओंके यज्ञार्थ गो-मांस और घी संग्रह कर देते थे। उस समय यज्ञमें निहत गौ फिर जिलाई जाती थी। इसीसे यज्ञीय गो-मांसका कुछ भाग उक्त प्रजापतिके पुत्रको खाना पड़ता था। एक दिन दैव संयोगसे प्रजापतिके पुत्र मरी गायको नहीं जिला सके। कारण उनकी गर्भवती स्त्रीने यज्ञीय कुछ मांस छिपा रखा था। मृत गौको पुनः नहीं जिला सकनेके कारण प्रजापतिके पुत्र अत्यन्त डर गये तथा अन्यान्य प्रजापतियोंको इसका कारण अनुसंधान करनेको कहा। उसकी गणना कर सबोंने बता दिया कि स्त्रीने मांस चुराया है। तब सबोंने उस मांसापहारिका स्त्रीको समाजच्युत कर दिया। उसी स्त्रीके गर्भसे प्रथम पुत्र मोची हुआ। उस समयसे मनुष्यने यज्ञार्थमें निहत पशुको पुनर्जीवित करनेमें अक्षम हो, गो-हत्या परित्याग किया।

दूसरा प्रवाद यह है, कि किसी समय ब्रह्मा नाच करते थे। उस समय उनके शरीरके पसीनेसे मोची वंशका आदिपुरुष मोचीरामका जन्म हुआ। मोचीराम घटनाक्रमसे दुर्वासा मुनिकी क्रोधाग्निमें जल गये। दुर्वासाने मोचीरामका अधःपतन करनेके लिये एक रूपवती विधवा ब्राह्मण-कन्याको मोचीरामके पास भेजा। वह कन्या मोचीरामके सामने जा खड़ी हुई, मोचीरामने उसे 'जननी' कह कर सम्बोधन किया। किन्तु दुर्वासाने ऐन्द्रजालिक शक्तिसे उस विधवाको गर्भवती कर दिया। तब जनसाधारण भी मोचीरामको गर्भकर्त्ता समझने लगे। सुतरां मोचीराम उस विधवाके साथ जातिच्युत हुए। बादमें यथासमय विधवाके गर्भसे बड़ा राम और छोटा राम दो यमज पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्हीं दो पुत्रोंसे मोची जाति दो प्रधान विभागोंमें विभक्त है। यथा—बड़ा भागिया और छोटा भागिया। छोटा भागियालोग चमड़ेका व्यवसाय तथा वाद्यक्रिया कर और बड़ा भागिया खेती बारी कर अपनी जीविका चलाते हैं। इनमें फिर उत्तर राढ़ी और दक्षिणराढ़ी दो विभाग हैं। दोनों विभागके लोग एक साथ बैठ नहीं खाते और न परस्पर विवाह ही करते हैं।

बैताल, कोरुड़, मालभूमिया, सरकारी तथा शंखी मोची जूता बनाते और मरम्मत करते हैं।

मोचियोंमें काश्यप और शाण्डिल्य गोत्र हैं, किन्तु गोत्रको ले कर विवाह विषयमें कोई गोलमाल नहीं है।

इनकी विवाह-प्रथा बहुत कुछ निम्नश्रेणीके हिन्दुओं-सी है। एक आदमीके साथ दो बहिनका विवाह हो सकता है। इनमें बाल्य और यौवन दोनों विवाह प्रचलित हैं जिनमें अकसर बाल्यविवाह ही होता है।

डा० ओयाइजने लिखा है, कि पहले मोचियोंकी विवाह-प्रथा बड़ी जघन्य थी। विवाह-उपलक्षमें व्यभिचार और शराब खूब चलती थी। किन्तु अभी उन लोगोंमें कुछ उन्नतिसी जान पड़ती है। उनमें बहु विवाह प्रचलित हैं। स्त्रीके व्यभिचारिणी होने पर स्वामी उसे छोड़ सकता है। इसमें गांवके मध्यस्थ या पंचायतकी अनुमति लेनी पड़ती है। आजकल मोचियोंको विधवा-विवाहमें उतना अनुराग नहीं है। विधवाविवाह दिन पर दिन घटती ही जाती है। सम्भवतः कुछ दिनोंमें यह प्रथा विलुप्त हो जायगी। उनका कहना है, कि विधवाविवाह और वेश्यावृत्तिमें कुछ भी पार्थक्य नहीं है।

मोचियोंमें अधिकांश ही शैव हैं। बहुतेरे बेतुया मोची वैष्णवधर्म मानते हैं। चेचक होने पर ये शीतला देवीको सूअरकी बलि देते हैं। मोची इनके आदि-पुरुष मोचीराम दास और रुईदासकी पूजा करते हैं।

मोचियोंकी पूजा ब्राह्मण पुरोहित कराते हैं। कहते हैं, कि बल्लालसेनने बड़ा भागिया मोचियोंकी पूजाके लिये एक ब्राह्मण दिया था। ये ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणोंसे हीन समझे जाते हैं। इनके हाथका जल कोई भी ग्रहण नहीं करता। मोची लोग मृतदेहको जलाते तथा एक महाने श्राद्ध करते हैं। छोटा भागिया मोची डोम हाड़ीकी तरह ग्यारह दिनमें ही श्राद्ध करता है। मोचीका नापित भी उसकी स्वजाति है। छोटा भागिया मोची और चमार गोमांस, सूअरका मांस तथा मुर्गा आदि खाता है। बड़ा भागिया, बेतुया और चाषा कोलाई मोची गो और सूअरका मांस तो नहीं खाता पर मुर्गी खाता है। ये लोग गांजा और मदिरा आदि खूब पीते हैं। डोमके सिवा और कोई भी इसके हाथका जल ग्रहण नहीं करता।

मोची लोग चमड़ा साफ करते और जूता आदि बनाते हैं। अलावा इसके ये लोग बांसकी चचरी, टोकरी, मेज आदि भी बुनते हैं। ये मृत गवादिका चमड़ा उतार कर बिक्री करते हैं। इस लोभमें पड़ कर वे अकसर पशु को विष खिला देते और उसके मर जाने पर उसका चमड़ा उतार बाजारमें बेच डालते हैं।

मोची मनुष्यका शव स्पर्श नहीं करता। दुर्गापूजामें महिष-बलि होने पर ये बड़े आदरके साथ उसे ग्रहण करते हैं।

बहुत मोची ढाक, ढोल, तबला आदि बनाता है और वही बजा कर अपना पेट पालता है। वर्द्धमान जिलेमें मोचीयोंकी संख्या सर्वापेक्षा अधिक है। आज कल मोची लोग नाना प्रकारका व्यवसाय और खेतीबारी कर काफी लाभ उठा रहे हैं।

मोच्य (सं० त्रि०) मुच-यत्। मोचनार्ह, छोड़ देनेयोग्य।

मोछ (हिं० स्त्री०) मूँछ देखो।

मोछिका-यन्त्र (सं० क्ली०) सुराश्च्योतन यन्त्र, वह बरतन जिसमें शराब चुआई जाती है।

मोजपुर—राजगढ़से दो योजन पश्चिममें अवस्थित एक नगर।

मोजरा (अ० पु०) मुजरा देखो।

मोजा (फा० पु०) १ पैरोंमें पहननेका एक प्रकारका बुना हुआ कपड़ा। इससे पैरके तलवेसे ले कर पिंडली या घुटने तक ढक जाते हैं। इसले पायतावा (Stocking) भी कहते हैं। २ पैरमें पिंडलीके नीचेका वह भाग जो गिट्टे के आसपास और उससे कुछ ऊपर होता है। ३ कुश्ती का एक पेंच। इसमें जब खिलाड़ी अपने विपक्षीकी पीठ पर होता है, तब एक हाथ उसके पैरके नीचेसे ले जा कर उसकी बगलमें जमाता है और दूसरे हाथसे उसका मोजा या पिंडलीके नीचेका भाग पकड़ कर उसे उलट देता है।

मोट (हिं० स्त्री०) १ गठरी, मोटरी। (पु०) २ चमड़े-का बड़ा थैला। इसके द्वारा खेत सींचनेके लिये कुए-से पानी निकाला जाता है। इसका दूसरा नाम चरसा भी है। (वि०) ३ जो बारीक न हो, मोटा। ४ कम मोलका, साधारण।

मोटक (सं० क्ली०) मुच्यते भुग्नीक्रियते इति मुट्-घञ्, ततः कन् द्विगुण भुग्न कुशपत्रत्रय। श्राद्धादि पितृकार्यमें मोटकका प्रयोजन होता है। तीन कुश ले कर

उसके बीच जो पेंच दिया जाता है उसीको मोटक कहते हैं।

२ पद्यावलीधृत एक कवि।

मोटकी (सं० स्त्री०) मोटक-ङीष्। एक रागिणीका नाम।

मोटन (सं० क्ली०) मुट-ल्युट्। १ चूर्णीकरण, पीसना। २ आक्षेप। ३ वायु, हवा।

मोटनक (सं० क्ली०) एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण, दो जगण, और अन्तमें एक एक लघु गुरु कुल मिला कर ११ अक्षर होते हैं।

मोटर (अं० पु०) १ एक विशेष प्रकारकी कल या यन्त्र जिससे किसी दूसरे यन्त्र आदिका संचालन किया जाता है, चलनेवाला यन्त्र। २ एक प्रकारकी प्रसिद्ध छोटी गाड़ी। यह इस प्रकारके यन्त्रकी सहायतासे चलती है। इस गाड़ीमें तेल आदिकी सहायतासे चलनेवाला एक इंजिन लगा रहता है जिसका सम्बन्ध उसके पहियोंसे होता है। जब इंजिन चलाया जाता है तब उसकी सहायतासे गाड़ी चलने लगती है। यह गाड़ी प्रायः सवारी और बोझ ढोने अथवा खींचनेके काममें आती है।

मोटरी (हिं० स्त्री०) गठरी।

मोटा (सं० स्त्री०) १ छोटी वलाका पेड़। २ जयन्ती। ३ चुक, चूकाका साग।

मोटा (हिं० वि०) १ जिसके शरीरमें आवश्यकतासे अधिक मांस हो, जिसका शरीर चरवी आदिके कारण बहुत फूल गया हो। २ जिसका घेरा या मान आदि साधरणसे अधिक हो। ३ जिसकी एक ओरकी सतह दूसरी ओर की सतहसे अधिक दूरी पर हो, दलदारा। ४ जो खुब चूर्ण न हुआ हो, दरदरा। ५ बढ़िया या सूक्ष्मका उलटा, घटिया। ६ साधारणसे अधिक, भारी या कठिन। ७ जो देखनेमें भला न जान पड़े, बेडौल। ८ घमंडी, अहंकारी। (पु०) ९ मर्खा जमीन, मार। १० बोझ, गट्ठर।

मोटाई (हिं० स्त्री०) १ मोटे होनेका भाव, स्थूलता। २ शरारत, बदमाशी।

मोटाकोटनी—बम्बईप्रदेश महीकांटा एजेन्सीके अन्तर्गत एक देशीय सामन्तराज्य। यहांके सरदारोंको राजकर नहीं देना होता है।

मोटाना (हिं० क्रि०) १ मोटा होना, स्थूल काय ... जाना। २ धनवान हो जाना। ३ अहंकारी हो जाना, अभिमानी होना।

मोटापन (हिं० पु०) मोटाई, स्थूलता। मोटापन।

मोटापा (हिं० पु०) मोटे होनेका भाव,

मोटिया (हिं० पु०) १ मोटा और खुरखुरा देशी कपड़ा, खद्दड़। २ बोझ ढोनेवाला, कुली; मजदूर।

मोट्टायित (सं० क्ली०) मुट-भावे घञ् बाहुलकात् घञस्तुट्; ततो भृशादित्वात् क्यङ्, ततो भावे-क्त। स्त्रियोंके स्वाभाविक दश प्रकारके अलंकारोंमेंसे एक अलंकार। इसका लक्षण—

"कान्तस्मरणवार्तादौ हृदितद्भावभावतः।
प्राकट्यमभिलाषस्य मोट्टायितमुदीर्य्यते॥"

(उज्ज्वल-नीलमणि)

सखी आदिके निकट नायककी कथा आदि उपस्थित होने पर उससे अवहित चित्तमें दत्तकर्ण नायिकाके चित्ताभिलाषकी जो अभिव्यक्ति होती है उसीको मोट्टायित कहते हैं। इन नायिकाओंका एक स्वाभाविक अलंकार है।

मोठ (हिं० स्त्री०) मूगकी तरहका एक प्रकारका मोटा अन्न। इसे वनमूंग भी कहते हैं। यह प्रायः सारे भारतमें होता है। इसकी बोआई ग्रीष्म ऋतुके अन्त या वर्षाके आरंभमें और कटाई खरीफकी फसलके साथ जाड़ेके आरम्भमें होती हैं। यह बहुतही साधारण कोटिकी भूमिमें भी बहुत अच्छी तरह होता है और प्रायः बाजरेके साथ बोया जाता है। अधिक वर्षासे यह खराब हो जाता है। इसकी फलियोंमें जो दाने निकलते हैं, उनकी दाल बनती है। यह दाल साधारण दालोंकी भांत खाई जाती है और मन्दाग्नि अथवा ज्वरमें पथ्यकी भांति भी दी जाती है। वैद्यकमें इसे गरम, कसैली, मधुर, सीतल, मलरोधक, पथ्य, रुचिकारक, हलकी वादी, कृमिजनक तथा रक्त पित्त, कफ, वात, गुदकील, वायुगोले; ज्वर, दाह और क्षयरोगकी नाशक माना है। इसकी जड़ मादक और विषैली होती है।

मोठस (हिं० वि०) मौन, चुप।

मोड़ (हिं० स्त्री०) १ रास्ते आदिमें घूम जानेका स्थान,

वह स्थान जहांसे किसी ओरको मुड़ा जाय। २ घुमाव या मुड़नेका भाव। ३ घुमाव या मुड़नेकी क्रिया। ४ कुछ दूर तक गई हुई वस्तुमें वह स्थान जहांसे वह कोना या गुमाव डालती हुई दूसरी ओर फिरी हो।

मोड़ना (हिं० क्रि०) १ फेरना, लौटाना। २ किसी कामके करनेमें आनाकानी करना, आगा पीछा करना। ३ विमुख होना, पराङ्मुख होना। ४ किसी फैली हुई सतहका कुछ अंश समेट कर एक तहके ऊपर दूसरी तह करना। ५ धार भुथरी करना, कुंठित करना। ६ किसी छड़की-सी सीधी वस्तुका कुछ अंश दूसरी ओर फेरना।

मोड़ा (हिं० पु०) लड़का, बालक।

मोड़ी (हिं० स्त्री०) १घसीट या शीघ्र लिखनेकी लिपि। २ दक्षिण भारतकी एक लिपि जिसमें प्रायः मराठी भाषा लिखी जाती है।

मोढ़ (सं० पु०) राजवंशभेद।

मोण (सं० पु०) मुण-अच्। १ शुष्क फल, सूखा फल। २ नक्र, मगर। ३ मक्षिका, मक्खी। ४ सर्पकरण्ड, बाँस या सींकका बना ढक्कनदार टोकरा।

मोतदिल (अ० वि०) जो न बहुत गरम और न सर्द हो, शीत और उष्णता आदिके विचारसे मध्यम अवस्थाका।

मोतबर (अ० वि०) १ विश्वास करने योग्य, जिस पर विश्वास किया जा सके। २ जिस पर विश्वास किया जाता हो, विश्वासपात्र।

मोतियदाम (हिं० पु०) एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें चार यगण होते हैं।

मोतिया (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बेला। इसकी कली मोतीके समान गोल होती है। २ रूसा नामकी घास, जब तक वह थोड़ी अवस्थाकी और नीलापन लिये रहती है। ३ एक प्रकारका सलमा। इसके दाने गोल होते हैं और यह जरदोजीके काममें किनारे किनारे टांका जाता है। ४ एक चिड़िया जिसका रंग मोतीका सा होता है। (वि०) ५ हलका गुलाबी वा पीले और गुलाबी रंगके मेलका। ६ मोती सम्बन्धी, मोतीका। ७ छोटे गोल दानोंका वा छोटी गोल कड़ियोंका।

मोतियाबिन्द (हिं० पु०) आंखका एक रोग विशेष। इसमें उसके एक परदेमें गोल झिल्ली-सी पड़ जाती है जिसके कारण आँखसे दिखाई नहीं पड़ता।

मोतिहारी—१ विहार और उड़ीसाके चम्पारण जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २६° १६′ से २७° १′ उ० तथा देशा० ८४° ३०′ से ८५° १८′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १५१८ वर्गमील और जनसंख्या १० लाखसे ऊपर है। मोतिहारी, आदापुर, ढाका, रामचन्द्र, केशरिया, मधुवन और गोविन्दगञ्ज थानाके अन्तर्भुक्त ग्रामादि ले कर यह महकूमा बना है।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर और जिलेका विचारसदर। यह अक्षा० २६° ४०′ उ० तथा देशा० ८४° ५५′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारके लगभग है। बेतिया, ढाका, सेराहा, मोतीपुर, सत्तरघाट और गोविन्दगञ्ज आदि नगरोंमें जाने आनेकी सुविधाके लिये पक्की सड़क दौड़ गई है। इस कारण यहांकी वाणिज्यमें दिनों-दिन उन्नति देखी जाती है। झरनेके पूर्वी किनारे बसे होनेके कारण नगरका दृश्य बड़ा ही मनोरम है। यहां सरकारी कार्यालय, कारागार और एक स्कूल हैं। कारागारमें ३५६ कैदी रखे जाते हैं। यहां तेल पेरने, दरी बुनने और जाल बनानेका जोरोंसे कारबार होता है।

मोती (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध बहुमूल्य रत्न जो छिछले समुद्रोंमें अथवा रेतीले तटोंके पास सीपीमेंसे निकलता है। (विशेष विवरण मुक्ता शब्दमें देखो)।

२ कसेरोंका एक औजार। इससे वे नक्काशी करते समय मोतीकी-सी आकृति बनाते हैं। ३ बाली जिसमें बड़े बड़े मोती पड़े रहते हैं।

मोतीचूर (हिं० पु०) १ छोटी बुंदियोंका लड्डू। २ कुश्तीका एक पेंच जिसमें प्रतिद्वन्द्वीके बाएं पैरको अपने दाहिने पैरसे फँसा कर और हाथसे उसका गला लपेट कर उसे चित्त कर देते हैं। ३ एक प्रकारका धान। इसकी फसल अगहनमें तैयार होती है।

मोताज्वर (सं० पु०) चेचक निकलनेके पहले आनेवाला ज्वर।

मोतीझरना—सन्थाल परगनेके राजमहल उपविभागान्तर्गत दमान-इ-को नामक पहाड़ी विभागका एक जल-

प्रवाह। इष्ट-इण्डिया (E. I. R) रेलवे-लाइनके महाराजपुर स्टेशनके समीप यह बहता है। यहां हर साल माघ महीनेमें एक मेला लगता है।

मोतीझिरा (हिं० पु०) छोटी शीतलाका रोग, मोतिया माता निकलनेका रोग।

मोती तालाव—मैसूर जिलेके अष्टग्राम तालुकके अन्तर्गत एक छोटा ह्रद। अनेक झरनोंके आपसमें मिल जानेसे यह बना है। यह अक्षा० १३° १०' उ० तथा देशा० ७८° २५' पू०के मध्य अवस्थित है। विख्यात वैष्णवधर्मप्रवर्त्तक रामानुज जब पासके मेलुकोट गांवमें रहते थे उसी समय वे इसके चारों ओर बांध बंधवा गये है।

मोतीपल्ली—मद्रासप्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक प्राचीन बन्दर। यह अक्षा० १५° ४३' ४०" उ० तथा देशा० ८०° २०' पू०के बीच पड़ता है। यहांके निदर्शनोंसे अनुमान होता है, कि एक समय समुद्रके किनारे यह नगर बड़ा समृद्धिशाली था। कोई कोई प्रत्नतत्त्वविद् इसे पर्याटक मार्कोपोलोवर्णित मुत्फिली (Mutfili) नगरी कहते हैं। १२६० ई०में मार्कोपोलोके परिदर्शनकालमें इस नगरमें रानी रुद्राम्मा राजत्व करती थीं। उनके सुनीतिपूर्ण राजकार्यसे वैदेशिक पर्याटक बड़े प्रसन्न हुए थे। उस समय यहां वाणिज्य खूब होता था।

मोतीबेल (हिं० स्त्री०) बेलेका वह भेद जिसे मोतिया कहते हैं, मोतिया बेला।

मोतीभात (हिं० पु०) एक विशेष प्रकारका भात।

मोतीराम—१ एक कवि। इन्होंने कृष्णविनोदकाव्य लिखा। २ कणादके एक पुत्रका नाम।

मोतीलाल—एक भाषा-कवि। ये बाँसी राज्यके रहनेवाले थे। इनका जन्म १५६७ ई०में हुआ था। इन्होंने गणेशपुराणका भाषान्तर किया है।

मोतीसिरी (हिं० स्त्री०) मोतियोंकी कंठी, मोतियोंकी माला।

मोतूर—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक पहाड़ी अधित्यका। यह अक्षा० २२° १७' उ० तथा देशा० ७८° ३७' पू०के मध्य समुद्रपोठसे ३५०० फुट ऊंची है। यहांकी आबहवा बड़ी ही अच्छी है। एक समय यहां कामतीर सेनानिवासका एक स्वास्थ्यवास स्थापनाके लिये बड़ी चेष्टा की गई थी परन्तु पर्वत पर चढ़ना कठिन समझ कर सेनाओंने यह स्थान छोड़ दिया।

मोथ (सं० पु०) मुस्तक, मोथा।

मोथा (सं० पु०) १ मुस्तक, नागरमोथा नामक घास। २ उपर्युक्त घासकी जड़ जो ओषधिकी भांति प्रयुक्त होती। यह तृण जलाशयोंमें होता है। इसकी पत्तियां कुशकी पत्तियोंकी तरह लम्बी लम्बी और गहरे हरे रंगकी होती हैं। इसकी जड़ें बहुत मोटी होती है जिन्हें सूअर खोद कर खाते हैं।

मोद (सं० पु०) मुद्-भावे घञ्। १ हर्ष, आनन्द। २ पांच भगण, एक मगण, एक सगण और एक गुरु वर्णका एक वर्णवृत्त। ३ सुगन्ध, खुशबू।

मोदक (सं० पु०) मोदयति वाला दीनिति मुद्-णिच्-ण्वुल्। १ खाद्य द्रव्यविशेष, लड्डू।

यह गुड़से बनाया जाता है। भगवती दुर्गा देवीको मोदक देनेके समय निम्नोक्त मन्त्र पढ़ना होता है।

"मोदकं स्वादुसंयुक्तं शर्करादिविनिर्म्मितम्।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि॥"

(दुर्गोत्सवपद्धति)

भावप्रकाशमें और भैषज्यरत्नावलीमें मथिकामोदक, मुस्तामोदक, कामेश्वरमोदक, वेसनमोदक आदिकी प्रस्तुत प्रणाली देखी जाती है।

इनका वर्णन उन उन शब्दोंमें देखो।

२ औषध आदिका बना हुआ लड्डू। ३ गुड़। ४ यवासशर्करा। ५ शर्करादि द्वारा पक्वौषधविशेष। सुखबोधमें लिखा है, कि मोदक औषधका पूर्णवीर्य ६ महीने तक रहता है अर्थात् मोदक औषध तैयार कर ६ महीने तक व्यवहार किया जा सकता है, अन्तमें इसका तेज नष्ट हो जाता है। ६ एक वर्णशंकर जाति। इसकी उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और शूद्र मातासे मानी जाती है। इस जातिके लोग मिठाई आदि बना कर अपनी जीविका चलाते हैं। ७ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें चार भगण होते हैं।

(त्रि०) ८ हर्षक, मोद या आनन्द देनेवाला।

मोदकर (सं० पु०) १ एक प्राचीन मुनिका नाम। (त्रि०) २ हर्षजनक, आनन्द देनेवाला।

मोदककार (सं० पु०) मिठाई बनानेवाला, हलवाई ।

मोदकमय (सं० लि०) मिठाईसे भरा हुआ ।

मोदकिका (सं० स्त्री०) मिष्टद्रव्य, मीठी वस्तु ।

मोदकी (सं० स्त्री०) १ जातीपुष्प वृक्ष, चमेली फूलका पेड़ । (लि०) आनन्ददायिनी, आनन्द देनेवाली ।

मोदन (सं० क्ली०) मोदयति मुद्-णिच्-ल्युट् । १ शिक्थक, मोम । २ मदनवृक्ष, मैनागाद ॥ मुद् भावे ल्युट् । ३ हर्ष, आनन्द । ४ सुगंधि फैलना, महकना । (लि०) ५ हर्षजनक, आनन्द देनेवाला ।

"वृकगृध्रशृगालानां तुमुले मोदनेऽहनि ।
आसीद्दह्यहयो घोरस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥"
(भारत० ६।२३।७६)

मोदनाथ—ताजिक चिन्तामणिके रचयिता ।

मोदनी (सं० स्त्री०) १ यूथिका, सफेद जूही । २ उपोदिका, पोय ।

मोदनीय (सं० त्रि०) आह्लादयोग्य, आनन्द करनेके लायक ।

मोदपुर—एक प्राचीन नगरका नाम ।

मोदमोदिनी (सं० स्त्री०) मोदात् मोदो महान् हर्षः सोऽस्या अस्तीति मोदमोद-इनि ङीप् । जम्बू, जामुन ।

मोदयन्ती (सं० स्त्री०) मोदयतीति मुद्-णिच्-शतृ ङीप् । वनमल्लिका, जंगली चमेली ।

मोदा (सं० स्त्री०) मोदयति गन्धेनतोषयतीति मुद्-णिच् अच् टाप् । १ अजमोदा, वन-अजवाइन । २ शाल्मलिवृक्ष, सेमलका पेड़ ।

मोदाक (सं० पु०) पुराणानुसार एक वृक्षका नाम ।

मोदाकिन् (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक पर्वतका नाम ।

मोदाख्य (सं० पु०) मोदमाख्याति रसपल्लवादिना विस्तारयतीति आ ख्या-क । आम्रवृक्ष, आमका पेड़ ।

मोदागिरि (सं० पु०) एक देशका नाम ।

मोदाढ्या (सं० स्त्री०) मोदेन आमोद-गन्धेन आढ्या बहुला । १ अजमोदा, वन-अजवाइन । २ हर्षयुक्ता, प्रसन्न रहनेवाली स्त्री ।

मोदाद्रि—मुंगेरके पासके एक पर्वतका एक पौराणिक नाम ।

मोदापुर (सं० क्ली०) नगरभेद ।

मोदायनि (सं० पु०) मोदका गोत्रापत्य ।

मोदित (सं० लि०) मोदो हर्षोऽस्य जातः तारकादित्वादितच् । हर्षयुक्त, आनन्दित ।

मोदिन् (सं० लि०) मोदयति मुद्-णिच्-णिनि । हर्षदायक, आनन्द देनेवाला ।

मोदिनी (सं० स्त्री०) १ अजमोदा । २ मल्लिका, चमेली । ३ यूथिका, जूही । ४ कस्तूरी । ५ मदिरा, शराब । ६ मल्लिकापुष्पविशेष । पर्याय—वरपत्नी, कुमारिका, वृत्त मल्लिका । इसका गुण—कटु, उष्ण, श्लेष्मघ्न, गन्धबहुल और मुखरोगनाशक । (राजनि०)

मोदी (हिं० पु०) १ आटा, दाल, चावल आदि बेचनेवाला बनिया, भोजन सामग्री देनेवाला बनिया । २ वह जिसका काम नौकरोंको भरती करना हो ।

मोदीखाना (फा० पु०) अन्नादि रखनेका घर, गोदाम ।

मोधुक (हिं० पु०) मछली पकड़नेवाला, धीवर ।

मोन (हिं० पु०) मोना देखो ।

मोनस (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम ।

मोना (हिं० क्रि०) १ भिगोना, तर करना । (पु०) २ बाँस, मूंज आदिका ढक्कनदार डला, पिटारा ।

मोनाल (हिं० पु०) एक प्रकारका महोरव पक्षी । यह शिमलेके आस पास बहुत पाया जाता है । इसे नीलमोर भी कहते हैं ।

मोनिया (हिं० स्त्री०) बांस या मूंजकी बनी हुई पिटारी, छोटा मोना ।

मोपला (हिं० पु०) मुसलमानोंकी एक जाति जो मद्रासमें पाई जाती है ।

मोम (फा० पु०) १ वह चिकना और नरम पदार्थ जिससे शहदकी मक्खियां अपना छत्ता बनाती हैं । मधुमक्खीके छत्तेको निचोड़ कर जो रस निकाला जाता है उसे मधु और जो सीठी रह जाती है उसे मोम कहते हैं । यह भिन्न भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, हिन्दी—मोम; बङ्गाल—मोम; दाक्षिणात्य —मोम; मराठा—मेना ; गुजराती—मीन ; तामिल—मेभुक्कु ; तेलगु—मैनाम् ; कनाड़ी—मोना ; मलय—मेभुका ; ब्रह्म—फयोनिई ; सिङ्गापुरी—इहि ; संस्कृत—मधुजम ; अरबी—

शाम; फारसी—मोम; चोन—पेह्‌ला (सफेद), हवङ्ग-ला (पोला); फरासी—Cire; जर्मनी—Wachs ; इटली और स्पेन—Cere ; रूसिया—Wosk, Wosh और मलय—लेलिन्‌।

मधुमक्खियां तरह तरहके फुलोंसे मधु चुसती हैं। उस फुलोंके सारसे उनके शरीरमें रसके आकारमें मीठा मधु और मलरूपमें मोम जमा होता है। उनके पेटके नीचे अंगूठीकी समान जो गड्ढा रहता है उससे शारीरिक क्लेदस्वरूप भिन्न भिन्न पदार्थ मिश्रित मोमका टुकड़ा निकालता है। उस टुकड़ेसे वे एक एक मधु-मक्खीका अंडा रहने लायक घर बनाती हैं। वही सब घर छत्ता कहलाता है। जब तक अंडे फोड़ कर बच्चे बाहर नहीं निकलते तब तक मक्खियां उस छत्तोंको नहीं छोड़ती हैं। बच्चेके निकलने पर वे अन्यत्र उड़ जाती हैं।

पर्वत, वनप्रदेश, पद्मसर, कमलावन, साधारण उद्यान और उपवनादिमें भिन्न भिन्न प्रकारकी मक्खियोंसे भिन्न भिन्न प्रकारके छत्ते बनाये जाते हैं। उन सब छत्तों तथा मोमका उपादान एक-सा नहीं है जुदा जुदा है। सभी प्रकारका मधु, विशेषतः कमला मधु उपकारी और सुगंधित होता है।

मधुका संग्रह करनेके लिये पृथिवीके प्रायः सभी सभ्य देशोंमें इसका खासा प्रबंध है। किस उपायसे छत्तेकी रक्षा और वृद्धि करनी होगी तथा मधु संग्रहके बाद छत्तोंको तोड़ फोड़ कर किस प्रकार मोम संचय किया जाता है, उसका विवरण यथास्थानमें दिया गया है।

एक एक छत्तेमें आध सेरसे पांच सेर तक मोम पाया जाता है। कभी कभी छत्तेके साथ और कभी छत्तेसे मधु निचोड़ कर बाजारमें बेचा जाता है। जो सिट्ठी बच जाती है उसे थोड़ी गरमीसे साफ करने पर मोम पाया जाता है। यही मोम बाजारमें बिकने आता है।

बाजारमें साधारणतः सफेद और पीले रंगका मोम देखनेमें आता है। मधु निकालनेके बाद सूखे छत्तेको गरम जलसे परिपूर्ण कड़ाहके ऊपर रख देनेसे मोम गल या पिघल जाता है। अब इस पिघले हुए मोममें जरा भी मैल रहने नहीं पाता। पहले छत्तेके मोममें कोयला (भिन्न जातिका पदार्थ) मिला रहता है। गरमी लगनेसे वह कड़ाहमें पिघल जाता है, केवल तरल मोम तेलके समान ऊपरमें बहने लगता है। पीछे उस तरल मोमको उठा कर दूसरे बरतनमें रखते अथवा उसी कड़ाहमें ठंढ लगनेके लिये छोड़ देते हैं। ठंढ लगने पर मोम पुनः कड़ा हो कर जम जाता है। तब उसे टुकड़े टुकड़े कर कड़ाहसे निकाला जाता है। जब तक मोमका मैल दूर न हो जाय तब तक इसी प्रकार उसे साफ करते रहना उचित है। गरम जलमें छत्ते डुबानेके पहले उसमें दो चार बुंद नाइट्रिक एसिड डाल देनेसे जलकी परिष्कारक शक्ति बढ़ती है।

कड़ाहके नीचे जो मैल जम जाता है, उसमें भी मोम रहता है। उस मैल समेत मोमको फिरसे दूसरे छत्तेके साथ गलाया जाता है। पुराने छत्तेसे भी मोम पाया जाता है। उस सूखे और धूल मिले हुए छत्तेसे जब मोम निकालना होता है, तब पहले उसे एक जलपूर्ण बरतनमें पांच सप्ताह तक रख छोड़ते हैं। उसमेंसे निकली दुर्गंधसे बचनेके लिये मोमके कारखाने-में ढंकनेदार बरतन रहता है। पुराने मोममें गरमी देनेसे वह स्वभावतः ही पीले रंगका हो जाता है। वह पीला मोम सफेद मोमसे किसी अंशमें घटिया नहीं है। बढ़िया सफेद मोम तैयार करनेमें ताजे छत्ते-को थोड़े जलके साथ कड़ाहमें पाक करना होता है। गरमी देनेके समय सर्वदा सावधान रहना उचित है। मोम तथा कड़ाह जिससे जलने न पावे इसके लिये बीच बीचमें जल देते रहना चाहिये। पीछे उस गरम कड़ाहसे जब गन्धविशिष्ट हल्दी रंगका फेन निकलने लगे, तब उसे उठा कर दूसरे बरतनमें रखना होगा। जब फेन फेन निकलना बंद हो जाय, तब उस रसको किसी दूसरे ठंढे बरतनमें रखे पीछे उसमें फिरसे छत्ते डाल कर ऊपर कहे गये तरीकेसे आँच दे। इससे बढ़िया मोम तो निकलेगा, पर वह मोम बिलकुल सफेद नहीं होता। उसमें एक स्वाभाविक हल्दी रंगकी आभा रहती है। सफेद मोम सभी कार्योंमें व्यवहृत होता है, इस कारण मोमको सफेद बनाना परमावश्यक है।

इस उद्देश्य-सिद्धिके लिये मोम-व्यवसायी पीले मोमको ले कर फीते अथवा चादरके समान पतला करते हैं। अनन्तर उसे छत पर अथवा मैदानमें बिछा कर बीच बीचमें उसके ऊपर जल छिड़का करते हैं। इस प्रकार बार बार सूर्यकी किरणसे उत्तप्त होनेसे मोमके ऊपर पीलापन रंग जम जाता है। उसका भीतरी और तल भाग उस समय भी पीला ही रहता है। पीछे उसे पुनः गला कर और फीते या पत्तरके रूपमें बना कर धूपमें सुखानेसे उसमें सफेदी आ जाती है। इसी प्रक्रियासे मोम सफेद बनाया जाता है। कभी कभी सालफ्युरिक एसिड, वाइक्रोमेट आव पोटाशसे मोमको परिष्कार करते हैं। यह लिवारेटेड क्रोमिक एसिड थोड़े ही समयके अन्दर मोमको साफ बना देता है।

मोमसे सिलिवक्स, लिथोग्राफिक क्रेयोन्स और माष्टिक आदि बनाये जाते हैं। फिर इसकी बत्तियां भी बनाई जाती हैं जो बहुत ही हलकी और ठंडी रोशनी देती हैं। खिलौने और ठप्पे आदि बनानेमें भी इसका व्यवहार होता है।

औषधमें भी मोमका यथेष्ट व्यवहार देखा जाता है। यह स्निग्धताकारक और आर्द्रताजनक है। कभी कभी यह १०से २० ग्रेन औषधमें डाल कर रोगीको सेवन कराया जाता है। साधारणतः यह मरहमों आदिमें डाला जाता है। हिन्दूप्रधान भारतवर्षमें सूअरकी चर्वीके बदलेमें मोमका मरहम विशेष आदरणीय है। क्योंकि सूअरकी चर्वी हिन्दू लोग नहीं छूते। इसके सिवा सूअरकी चर्वीकी अपेक्षा मोम अधिक दिन ठहरती है, सड़ कर बरबाद नहीं होता। इसी कारण आयुर्वेदविद्गण १ भाग पीले मोम और ४ भाग मधुसंयुक Ceromel नामक एक मिश्रपदार्थका सूअरकी चर्वीके बदलेमें व्यवहार करते हैं।

सामान्य खुजली या और कोई जखम होनेसे हम लोग उस स्थान पर मोमकी मरहम-पट्टी बांधते हैं। चवन्नी भर मोम, छटांक भर नारियलका तेल और दो आने भर आइडोफरम वा गंधक मिलानेसे बढ़िया मोम बनता है। मोम और अफीम वा कुनाईनको नारियलके तेलमें गला कर जखम या खुजली पर लगानेसे बहुत लाभ पहुंचाता है। मोम चमड़ेको शिथिल कर उसे सुखा डालता है।

काठकी वस्तुमें दीमक आदि लग कर उसे बहुत जल्द बेकाम बना देता है। किन्तु मोम और तारपिनको मिला कर यह उसमें लगाया जाय, तो सभी कीड़े मर जाते हैं जिससे काठ ज्योंका त्यों बना रहता है।

हिन्दूकी पूजा, व्रत और शुभ कर्मादिमें मोमकी बत्तीका प्रयोजन पड़ता है। दुर्गापूजाके समय मोमकी बत्ती जलानेका नियम है। दुर्गादि शक्तिमूर्त्तिके हाथ मोमके पद्मफूल और मोमके फूलकी मालासे सजाये हुए देखे जाते हैं।

विशुद्ध मोमकी बत्तीको छोड़ कर वर्त्तमान चर्वीकी बत्तीमें भी अधिक मोम रहता है। मोमबत्तीका व्यवसाय बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। भारतके सभ्य हिन्दूगण तथा वैदेशिक मुगल, पठान, अरबी, पारसी, तुर्क, चीन, रूस, जापान, अंगरेज, फ्रान्स, जर्मनी, अष्ट्रिया, इटली, स्पेन आदि देशोंमें करासिन तेल और कोल गैसके आविष्कार होनेके पहले इस मोमबत्तीका विशेष प्रचार था तथा एक समय इसका बे-रोक-टोक वाणिज्य चलता था। मोमबत्ती देखो।

मोमजामा (फा० पु०) वह कपड़ा जिस पर मोमका रोगन चढ़ाया गया हो, तिरपाल। ऐसे कपड़े पर पड़ा हुआ पानी आर-पार नहीं होता।

मोमदिल (फा० वि०) दूसरोंके दुःखसे शीघ्र द्रवित होनेवाला, बहुत कोमल हृदयवाला।

मोमना (हिं० वि०) मोमका-सा, बहुत ही कोमल।

मोमबत्ती (हिं० स्त्री०) शिल्पजात पण्यद्रव्यविशेष। मधुमक्खी नामक जीवके शरीरके मलसे इसकी उत्पत्ति है। छत्तेमें मक्खी कैसी कुशलतासे बच्चोंके लिये गड्ढा बनाती है उसे देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। प्रत्येक गड्ढा चौकोन बना होता है। इस छत्तेसे मधुको निकाल कर जो सिट्ठी बच जाती है उसे गरम कर मोम बनाया जाता है। उस मोमके भीतर बत्ती दे कर उसे घरमें जलाते हैं।

केवल मक्खीका झुण्ड ही इसका मूल कारण है सो नहीं। अन्यान्य प्राणीकी चरबीसे बत्ती बनाई जाती है।

किसी किसी देशमें ऐसा पेड़ पाया जाता है जिसके निर्यासमें चर्बीके जैसा जलनेवाला पदार्थ है। उसे अन्यान्य द्रव्योंके साथ मिलानेसे रोशनी देने लायक उपयुक्त बत्ती बनती है। दीपमाला-विभूषित सुरम्य राजप्रासादमें बत्तीकी रोशनी जैसी शोभामय और सुखप्रद है, वैसी ही दरिद्रके घरोंमें भी। दिल्लीके सुसमृद्ध राजकक्षमें बत्तीके प्रकाशकी अतुल शोभा जैसी मनोहारी है, हमेसा बर्फोंसे ढके हुए घास आदिसे रहित लापलैण्डवासीकी वासभूमि उत्तर-महासागरकूलमें तथा उसके आसपासके द्वीपोंमें भी वह मनुष्यका एकमात्र आनन्ददायक है। उस शीतप्रधान देशमें जब वहांके लोग एक वर्षसे ऊपर सूर्यमुख देखने न पाते, तब इसी बत्तीका प्रकाश उन लोगोंके उस अभावको दूर करता है।

वहांकी चरबीकी बनी हुई बत्ती ही सूर्यालोकके बदलेमें व्यवहृत होती है। यही चरबी उन लोगोंका खाद्य और परिधेय है। परिधेय कहनेसे गात्राच्छादक वस्तुका ही बोध होता है, किन्तु यहां पर उसका तात्पर्य कुछ और है। पहनावा जिस प्रकार गरमी और ठंडसे शरीरको बचाता और हृष्ट पुष्ट रखता है उसी प्रकार बत्तीकी रोशनी भी उनके खुले बदनको ठंढ लगनेसे बचाती है। वे लोग हमेशा इसीके उत्तापसे शरीरकी रक्षा किया करते हैं।

वाह्यजगत्‌में चरबी जिस प्रकार वायुके संयोगसे अग्नि द्वारा जलती तथा गरमी और रोशनी देती है, उसी प्रकार हम लोगोंके शरीरके रक्तमें वह प्रविष्ट हो कर वायुकोषमें जब लाई जाती, तब अम्लजन संश्लिष्ट हो कर हम लोगोंके शरीरमें गरमी देती है। खाद्यद्रव्यका मेदोमय वा श्वेतक्षारविशिष्ट पदार्थ ही उत्तापशक्तिका उत्पादक है।

इसके रासायनिक उपादानोंमें हम अङ्गार, उद्‌जन और औक्सिजन देखते हैं; कृष्णवर्ण अङ्गारने उद्‌जन और औक्सिजनके साथ रासायनिक संयोगसे मिल कर कैसी अपूर्व श्वेतमूर्त्ति धारण की है। मोमबत्ती जलाते समय उस रासायनिक क्रियाका विश्लेषण होता रहता है। अग्निशिखाके उत्तापसे इसका कठिन शरीर गलता रहता है। सूतकी बत्तीके चारों तरफ कटोरीकी तरह भीतरको ढालू गड्ढा हो जाता है। उत्तप्त तरल मोम कैशिक-आकर्षणशक्तिके वश हो कर बत्तीमेंमें चढ़ती है और लौके साथ भाप बन कर उड़ जाती है। फूंक कर बुझा देने पर भी एक धुआँ-सा ऊपरको उड़ता रहता है। बत्तीको बिना छुआये उस भापमें जलती हुई दियासलाई लगानेसे बत्ती फिरसे जलने लगेगी। इससे अनुमान होता है, कि मेद वा मोमसे उत्पन्न भाप ही वास्तवमें जलता रहता है।

जलती हुई मोमबत्तीकी लौ गोलाकार होती है, उसके ऊपरका अंश बारीक और सूई-सा पतला होता है। लौके चारों तरफका बाहरी हिस्सा ही जल कर प्रकाश करता है, मध्यभागमें मेद या मोमकी भाप रहती है। जब लौ अच्छी तरह जलती रहती है, तब आलोकशिखाकी बाहरकी वायु आलोक-मध्यस्थित वाष्पमें प्रवेश नहीं कर पाती और मध्यस्थित वायु कभी भी शिखाके बाहरकी वायुके साथ मिल नहीं सकती। पर्याप्त वायुके न होने पर बत्ती बुझ जाती है अथवा अच्छी तरह जलती नहीं है। इस समय हम उसमेंसे ज्यादा धुआं निकलते हुए देखते हैं, शिखाके भीतरकी वायु कुछ थोड़ी-सी बाहर निकल आती है। बिना चिमनीकी मट्टीके तेलकी ढिबरीमेंसे जो धुआं निकलता है, उसका कारण है उत्थित वायुके समान वायुका अभाव। इस धुआंमें अङ्गारमें अंगारके अणु प्रचुर परिमाणमें विद्यमान रहते हैं।

मोमबत्तीकी लौके बाहर उत्तापका आधिक्य देखा जाता है। उस उत्तापके कारण ही उत्तप्त स्थानके मेद वाष्पसे अंगारके अणु परमाणु विश्लिष्ट हो जाते हैं और पृथक् रहते हुए ही वे जल कर भस्म हो जाते हैं।

उद्‌जन शिखामें स्वाभाविक उज्ज्वलता नहीं होती। कोई कठिन पदार्थ इसमें डालनेसे उस पदार्थके पृथक् पृथक् परमाणु लौमें दग्ध होकर उजाला करते हैं। जलती हुई बत्तीमें प्रधानतः तीन चीजें मिलती हैं। पहले तो, घरमें जो जाले पड़ जाते हैं, उसमें उसका कुछ अंश मिल जाता है। दूसरे, इसकी उद्‌जन वाष्प अम्लजनके साथ रासायनिक संयोगसे मिल कर जलीय वाष्पके रूपमें परिणत हो जाती है। तीसरे इसका अंगार उपादान वायुके

अम्लजनके साथ मिल कर कावलिक एसिड या द्रावल अंगार पैदा करता है।

बहुत प्राचीन समयमें एशिया और यूरोपखण्डमें बत्तीके बदले मशाल और चिराग जलते थे। मध्ययुगमें मेद द्वारा प्रस्तुत कृत्रिम बत्ती यूरोपमें प्रचलित हुई। परन्तु एसियाखण्डके सुसभ्य और सुप्राचीन देशोंमें उससे भी बहुत पहलेसे मोमबत्तीका प्रचलन हुआ था। भारतके बौद्ध-मन्दिरादिमें मोमबत्ती जलानेकी व्यवस्था थी। चीन देशमें भी बहुत शताब्दी पहलेसे मोमबत्ती बनाई गई थी। मुसलमान लोग किसी किसी पर्वमें मोमबत्ती जलाया करते थे।

बत्ती प्रधानतः दो प्रकारसे बनती है—(१) साँचेमें ढाल कर (Moulded) और (२) डुबो कर (Dipped)। वर्त्तमान समयमें मोमके सिवा चरबी और पेड़ोंका गोंद मिला कर बत्ती बनाई जाने लगी है। बाजारमें विभिन्न पदार्थोंसे बनी हुई जो विभिन्न प्रकारकी बत्तियां बेची जाती हैं, वे wax-candles, tallow-candles, paraffine candles, spermaceti candles, composition candles, stearine candles, palm oil candles आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। बीचमें कपासके सुतलीकी एक बत्ती और उसके चारों तरफ मोम चरबी या तैलज पदार्थोंका एक आच्छादन देनेसे मोमबत्ती बन जाती है। नारियलका तेल, मोम, जीवमेद तथा Myrica cerifera, Rhus succedanea, Ceroxylon andicola, Benincacerifera, Ligustrum lucidum, Stillingia, sebifera, Bassia latifolia, Cocos nucifera, Vateria indica, Ficus umbellata, Aleurites, Canarium, Carapa, Garcinia, Sapium आदि जापान, चीन, जावा, हिमालयदेश, अमेरिका आदि स्थानोंमें उत्पन्न होनेवाले वृक्षोंके निर्यास से भी बत्ती बनती है। इसके सिवा मान्द्राजमें पैदा होनेवाला अंडीका तेल इलिपूतेल और मार्गोसा तेलके नीचेका सार, इनसे भी मोम जैसा एक ईषत् कठिन पदार्थ (Vegetable wax) निकलता है, उससे भी बत्ती बन सकती है।

चीनदेशमें चू-पे-ला, सू-ला, कोकस-पेला नामके कीट (Wax-insect) होते हैं, जो Ligustrum Japonicum, L. lucidum, L. obtusifolium और Fraxinus श्रेणी-वृक्षोंमें लाक्षा-कीटकी तरह रह कर वृक्षज मोम पैदा करते हैं। जब ये कीड़े तमाम पेड़ पर छा जाते हैं, तब वह तुषारसे आच्छादित-सा जान पड़ता है। मंगोलीय-राजवंशके अभ्युदयसे चीनदेशमें इस वृक्षज मोमका व्यवसाय होता था, इस बातका प्रमाण मिलता है। इन पराङ्मुष्ट कीटोंके द्वारा जून माससे वृक्षोंमें मोम जैसा एक पदार्थ सञ्चित होता रहता है। अगस्त महीनेके अन्तमें अथवा सेप्टेम्बरके प्रारम्भमें पेड़ोंको छील कर यह मोम संग्रह किया जाता है। उसके बाद गरम जलसे भरे हुए कड़ाहेमें डाल कर उसे गलाया जाता है। अच्छी तरह गल जाने पर उसे ठंडे पानीसे भरे हुए पात्र में उडेल दिया जाता है तब Spermaceti की तरहका अस्वच्छ मोम-पिण्ड परस्पर पृथक् हो जाते हैं। यदि पेड़को छील कर मोम संग्रह करनेमें देरी हो, तो ला-चा या असंस्कृत मोम खराब हो जाता है। कारण शरत्-ऋतुमें कीटगण उससे नीड़ निर्माण करते हैं जो छोटेसे फिर मुरगीके अण्डेकी तरह बड़े हो जाते हैं। शरत्कालमें ये सैकड़ों अण्डे देते हैं। चीनके लोग इन अण्डोंको मई मासमें इकट्ठा करके चो नामक शरतृणके पातसे ढक रखते हैं। जून मासमें कीटोंको पेड़ पर चढ़ा दिया जाता है, तब वे नवीन शाखा पल्लवोंसे संयुक्त हो कर फिरसे मोम-जननक्रियासे व्याप्त हो जाते हैं। पिपीलिकायें इन कीटोंकी प्रधान शत्रु है। इनसे कीटोंकी रक्षाके लिए पेड़की जड़में चूना लगा दिया जाता है।

भारतमें पहिले जिस प्रथासे मोमबत्ती बना करती थी, वर्त्तमान प्रथासे बिलकुल ही न्यारी थी। तब सांचेमें ढालकर बत्ती बनानेकी रिवाज न थी। लखनऊके बत्ती बनानेवाले कारीगर लोग बांस चीर कर उसकी खपच्चियां बना कर उसमें बीच बीचमें छेद करते थे। पीछे उन छेदोंमें सूत या बत्ती पहना कर उसे घरकी छत्तसे या किसी ऊंचे स्थानमें लटका देते थे। कभी कभी यह काम ऊँची चौकीसे भी लिया जाता था।

पीछे उत्तप्त कड़ाहेमें चरबी या मोम गला कर एक सछिद्र करछुली (चमचेके आकारकी) से गली हुई चरबीको धीरे धीरे उस पर चढ़ा दिया करते थे। फिर जरा ठण्डी होने पर उसे चिकने तख्ते पर ढरका कर

गोल बना लिया जाता था। परन्तु इन बत्तियोंका वजन सबका एकसा न होता था। यह एक हाथ या एक बिलस्तके नापसे काटी जाती थी।

फिलहाल मोमबत्तीके सिवा और भी सब प्रकारकी चरबी वा तेल और वृक्षनिर्यास-जात बत्ती मशीनसे ढाली जाती है। इन सब बत्तियोंके उपादानमें सुहागा (Borax) मिला देनेसे बत्तीकी लौमें उज्ज्वलता अधिक होती है।

मेदके सिवा सिर्फ तिमिमत्स्यके वायुकोषका तेल भी (Spermaceti) काममें काफी व्यवहृत होता है। Catadon macrocephalus और Physeter macrocephalus नामक सदन्त तिमि जातिका तेल भी उत्कृष्ट है, साधारण वा दन्तहीन तिमिके तेलसे यह अपेक्षाकृत निकृष्ट है। यह Train-oil नामसे परिचित है और सिर्फ कल कब्जोंमें ही व्यवहृत होता है। वृक्षज तेलके अन्दर आसालटी और डहोमेदेशमें उत्पन्न Elæis guineensis नामक वृक्षका ताल-सदृश स्थानका निर्यास (Palm oil) और अमेरिकाके Eleis melanocca वृक्षका बीज-तैल ही सबसे ज्यादा व्यवहृत होता है। अङ्गरेज बत्ती बनानेवाले ढलाई चरबीकी बत्तीसे प्रतिवर्ष लगभग २५ टन नारियल तेलका व्यवहार करते हैं। मृत्तिज तैल आविष्कार होनेके बाद पिट्रोलियमसे पाराफिन बत्ती बनने लगी है। इसके सिवा Ozokerit (ओजोकेरिट) नामक मृत्तिज मोम भी (Earth-wax) इस काममें व्यवहृत होता है।

मोमहण—मोमहणविलास नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। आप प्रयागदासके पुत्र और हरिवाघलके पौत्र थे। आपने फिरोज शाहके पुत्र महमूद शाहके आश्रयमें रह कर १४१२ ई०में उक्त ग्रन्थ लिखा था।

मोमिन (अ० पु०) १ धर्मनिष्ठ मुसलमान। २ जोलाहोंकी एक जाति।

मोमियाई (फा० स्त्री०) १ कृत्रिम। शिलाजतु, नकली शिलाजीत। कुछ लोगोंका विश्वास है, कि मोमियाई मनुष्यके शरीरको आँचसे तपा कर निकाली हुई चिकनाईसे तैयार की जाती है, इसीसे ये मुहावरे बने हैं। २ काले रंगकी एक चिकनी दवा जो मोमकी तरह मुलायम होती है। यह दवा घाव भरनेके लिये प्रसिद्ध है।

मोमी (फा० वि०) १ मोमका बना हुआ। २ मोमका-सा।

मोयन (हिं० पु०) माँड़े हुए आटेमें घी या चिकना देना जिसमें उससे बनी वस्तु खसखसी और मुलायम हो।

मोयुम (हिं० पु०) एक लता। यह आसाम, सिकिम और भूटानमें बहुतायतसे उत्पन्न होती है। इस लतासे अत्यन्त चमकीला रंग तैयार किया जाता है जिससे कपड़े रंगे जाते हैं।

मोर (हिं० पु०) १ एक अत्यन्त सुन्दर बड़ा पक्षी जो प्रायः चार फुट लम्बा होता है और जिसकी लम्बी गर्दन और छातीका रंग बहुत ही गहरा और चमकीला नीला होता है। विशेष विवरण मयूर शब्दमें देखो। २ नीलमकी आभा जो मोरके परके समान होती है।

(स्त्री०) सेनाकी अगली पंक्ति।

मोरङ्ग—नेपाल देशका पूर्वी भाग। यह कोशी नदीके पूर्व पड़ता है। संस्कृत ग्रन्थोंमें इसी भागको 'किरात देश' कहा गया है। इस देशमें जंगल और पहाड़ियां बहुत हैं। इस देशका कुछ भाग पूर्णिया जिलेमें भी पड़ता है।

मोरचंग (हिं० पु०) मुरचंग देखो।

मोरचन्दा (हिं० पु०) मोरचन्द्रिका देखो।

मोरचन्द्रिका (हिं० स्त्री०) मोर पंखके छोरकी वह बूटी जो चन्द्राकार होती है

मोरचा (फा० पु०) १ लोहेकी ऊपरी सतह पर चढ़ जानेवाली वह लाल या पीले रंगकी बुकनीकी-सी तह जो वायु और नमीके योगसे रासायनिक विकार होनेसे उत्पन्न होती है इसे जंग कहते हैं। यह लाल बुकनी वास्तवमें विकार प्राप्त लोहा ही है। २ दर्पण पर जमी हुई मैल। ३ वह गड्ढा जो गढ़के चारों ओर रक्षाके लिये खोद दिया जाता है। ४ वह स्थान जहांसे सेना, गढ़ या नगर आदिकी रक्षा की जाती है वह स्थान जहां खड़े हो कर शत्रुसेनासे लड़ाई की जाती है। वह सेना जो गढ़के अन्दर रह कर शत्रुसे लड़ती है।

मोरछड़ (हिं० पु०) मोरछल देखो।

मोरछल (हिं० पु०) मोरकी पूंछके परोंको इकट्ठा बांध कर बनाया हुआ लम्बा चँवर। यह प्रायः देवताओं और राजाओं आदिके मस्तकके पास डुलाया जाता है।

मोरछली (हिं० पु०) १ मौलसिरी देखो। २ मोरछल हिलाने-वाला।

मोरछांह (हिं० पु०) मोरछल देखो।

मोरजुटना (हिं० पु०) एक प्रकारका आभूषण जो सोनेका बनता और रत्नजड़ित होता है। इसके बीचका भाग गोल बेंदेके समान होता है और दोनों ओर मोर बने रहते हैं। यह बेंदेके स्थान पर माथे पर पहना जाता है।

मोरट (सं० क्ली०) मुर् वेष्टने (शकादिभ्योऽटन्। उण् ४।८१) इति अटन्। १ इक्षुमूल, ऊखकी जड़। २ अङ्कोल पुष्प, अंकोलका फूल। ३ प्रसवसे सातवीं रातके बादका दूध। ४ एक प्रकारकी लता। इसका दूसरा नाम क्षीर-मोरटा भी है। संस्कृत पर्याय—कर्णपुष्प, पोलुपत्र, मधुस्रव, घनमूल, दीर्घमूल, पुरुष, क्षीरमोरट। वैद्यकमें इसे मधुर, कषाय, पित्त, दाह और ज्वरनाशक, वृष्य तथा बलवर्द्धक माना है। (राजनि०)

मोरटक (सं० क्ली०) मोरट-स्वार्थे कन्। १ मोरट देखो। २ खदिरभेद, सफेद खैर।

मोरटा (सं० स्त्री०) मोरट टाप्। दूर्व्वा, दूब।

मोरध्वज (हिं० पु०) एक पौराणिक राजाका नाम।

विशेष विवरण मयूरध्वज शब्दमें देखो।

मोरन (हिं० स्त्री०) १ मोड़नेकी क्रिया या भाव। २ बिलोया हुआ दही जिसमें मिठाई या कुछ सुगंधित वस्तुएं डाली गई हों। इसे शिखरन भी कहते हैं।

मोरना (हिं० क्रि०) १ मोड़ना देखो। २ दहीको मथ कर मक्खन निकालना।

मोरनी (हिं० स्त्री०) १ मोर पक्षीकी मादा। २ मोरके आकारका अथवा और किसी प्रकारका एक छोटा टिकड़ा जो नथमें पिरोया जाता है और प्रायः होठोंके ऊपर लटकता रहता है।

मोरपंख (हिं० पु०) मोरका पर। यह देखनेमें बहुत सुन्दर होता है और इसका व्यवहार अनेक अवसरों पर प्रायः शोभा या शृंगारके लिये अथवा कभी कभी औषध रूपमें भी होता है।

मोरपंखी (हिं० स्त्री०) १ वह नाव जिसका एक सिरा मोरके परकी तरह बना और रंगा हुआ हो। २ मल-खंभकी एक कसरत। यह बहुत फुरतीसे की जाती है और इसमें पैरोंको पीछेकी ओरसे ऊपर उठा कर मोरके पंखीकी-सी आकृति बनाई जाती है। (पु०) ३ एक प्रकारका बहुत सुन्दर, गहरा और चमकीला नीला रंग जो मोरके परसे मिलता जुलता है। (वि०) ४ मोरके पंखके रंगका, गहरा चमकीला नीला।

मोरपखा (हिं० पु०) १ मोरका पर, मोरपंख। २ मोर-पंखकी कलगी जो प्रायः श्रीकृष्णजी मुकुट या चीरेमें खोंसा करते थे।

मोरपाँव (हिं० पु०) जंगी जहाजोंके बावर्चीखानेकी मेज पर खड़ा जड़ा हुआ लोहेका छड़ जिसमें मांसके बड़े बड़े टुकड़े लटकाए रहते हैं।

मोरमुकुट (हिं० पु०) मोरके पंखोंका बना हुआ मुकुट जो प्रायः श्रीकृष्णजी पहना करते थे।

मोरलुर—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके बरदा पर्वतमालाके पूर्वदिग्वर्त्ती एक नगर और दुर्ग। १८६० वाघरकी चढ़ाईके समय यहांका सब सिंह भाग गया। उसके पहले यहां सिंहका बड़ा भारी उपद्रव था।

मोरवा (हिं० पु०) १ मोर देखो। २ वह रस्सी जो नाव-की किलवारीमें बांधी जाती है और जिससे पतवारका काम लेते हैं।

मोरशिखा (हिं० स्त्री०) एक जड़ी। इसकी पत्तियां ठीक मोरकी कलगीके आकारकी होती हैं। यह जड़ी बहुधा पुरानी दीवारों पर उगती है। इसकी सूखी पत्तियों पर पानी छिड़क देनेसे वे पत्तियां फिर तुरन्त हरी हो जाती हैं। वैद्यकमें इसे पित्त, कफ, अतिसार और बालग्रह दोष-निवारिणी माना गया है।

मोरसी—बेरारराज्यके अमरावती जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१° २०´ उ० तथा देशा० ७८° ४´ पू०के मध्य नर्का नदीके किनारे अवस्थित है।

मोरा (हिं० पु०) अकीक नामक रत्नका एक भेद। यह प्रायः दक्षिण भारतमें होता है और इसे 'बाबाघोड़ी' भी कहते हैं।

मोरा—बम्बई प्रदेशके ठाना जिलान्तर्गत एक बन्दर। यहांसे उराण नगरका वाणिज्यद्रव्य भेजा जाता है। यहां प्रायः २२ भट्टियां हैं। शराब और उराण कारखानेके नमककी रपतनी इसी बन्दरसे होती है।

मोराक (सं० पु०) काश्मीरराज प्रवरसेनके मन्त्री। ये मोराकभवन नामका एक देवमन्दिर स्थापना कर गये हैं।

मोरादाबाद—उत्तरपश्चिम भारतका एक नगर और जिला। मुरादाबाद देखो।

मोराना (हिं० क्रि०) १ चारो ओर घुमाना, फिराना। २ रस पेरनेके समय ऊखकी अंगारीको कोल्हूमें दबाना।

मोरार—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यके अन्तगत एक नगर। यह अक्षा० २६° १६′ ४०″ उ० तथा देशा० ७८° १६′ ३०″ पू० सिन्धु नदीकी मोरार शाखाके किनारे अवस्थित है। यहां बंगीय सेनादलकी ग्वालियर विभागकी एक छावनी थी। १८५८ ई०के बादसे ले कर १८८६ ई० तक यह स्थान अंगरेजोंके दखलमें था। शेषोक्त वर्षमें वह सिन्देराजको प्रत्यर्पित किया गया और अंगरेजी सेना झांसी चली गई है।

मोरारका-कुण्ड—उत्तरभारतके बुशहर राज्यान्तर्गत एक पर्वतश्रेणी। यह शतद्रु और यमुनाके बीच अवस्थित है।

मोरासा—बम्बई प्रदेशके अहमदाबाद जिलेके परान्तिज उपविभागके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २३° २७′ ४५″ उ० तथा देशा० ७३° २५′ ४५″ पू० महजम नदीके तीर पर अवस्थित है। यह इदर और धुन्धरपुर दो सामन्तराज्य और गुजरातके बीच पड़ता है। यहां छींट कपड़े और तेलका विस्तृत कारोबार है।

मोरिका (सं० स्त्री०) एक स्त्री-कवि।

मोरिया (हिं० स्त्री०) कोल्हूमें कातरकी दूसरी शाखा जो बांसकी होती।

मोरिसस—भारत-महासागरस्थित एक द्वीपका नाम। पहले यह द्वीप फ्रांसीसियोंके अधिकारमें था तथा मरिस्क नामसे परिवर्त्तित हो कर आइल-डो फ्रांस नामसे प्रसिद्ध था। अङ्गरेजोंके अधिकारके पश्चात् भारतीय औपनिवेशिक अधिकांश रूपसे यहां बस गया और उसी दिनसे यह विशेष उन्नत होने लगा है। जलवायु तथा आर्द्र-भूमिके कारण यहां प्राणनाशक रोगोंका बाहुल्य है। जो गरीब मजदूर अन्नाभावके कारण भारतसे यहां थे उनमेंसे अधिकांश अकाल होमें काल कवलित हो गये। बंगालके लोग इस द्वीपको "मारीचशहर" के नामसे घोषित करते हैं। रावणके अनुचर मारीचके नाम पर इन लोगोंने इस द्वीपका यह नाम रखा है।

यह अक्षा० २०° से २०° ३४′ दक्षिण तथा देशा० ५७° २०′ से ५७° ४६′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसका विस्तार उत्तर दक्षिण ३८ मील तथा पूर्व पश्चिम २७ मील तथा भूपरिमाण ७०० वर्गमील है।

यहांके अधिवासी मुख्यतः चार भागोंमें विभक्त हैं। पहला भारतीय उपनिवेशिक, दूसरा स्वाधीन दाससम्प्रदाय, तीसरा फ्रांसीसी औपनिवेशिक और चौथा इस द्वीपके आदि निवासी।

यह द्वीप चतुर्दिक् सागर-स्थित प्रवाल द्वीप समूहोंसे परिवेष्टित है। ये छोटे छोटे द्वीप इतने निम्न हैं, कि ज्वारके समय सम्पूर्ण द्वीप जलमग्न हो जाते हैं। भाटाके समय केवल इनके उच्च शिखा समुद्रमें शुष्क भूमिके समान दृष्टिगोचर होते हैं। उपरोक्त प्रवाल शृङ्गोंमेंसे आजकल कई द्वीप बन गये हैं। मूलद्वीप (मोरिसस)-में उपस्थित होनेके लिये इन प्रवाल द्वीपोंसे गुजरते हुए कई टेढ़ी राहोंसे जाना होता है।

मोरिसस द्वीपमें कई पर्वतश्रेणियां हैं। दक्षिण-पूर्व उपकूलमें "ब्रावण्ट अन्तरीप" की निकटवर्त्ती पर्वतश्रेणियां ३००० फीट ऊंची हैं और उत्तर-पूर्वके लूई बन्दरके "पीटरबोट" नाम पवतकी चोटी २६०० फीट ऊंची है। पर्वतोंके पत्थरोंको देखनेसे ज्ञात होता है, कि ज्वालामुखीके विस्फोटके कारण ही इन पर्व्वतश्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई है। इसका भूमिभाग उर्वरा होने पर भी अधिकांश जलमग्न रहता है।

पर्व्वतीय प्रान्तमें जहाज बनाने लायक ऐसी कोई भी लकड़ी नहीं पाई जाती। हां, जंगलोंमें ईबन लौहकाष्ठ तथा लालकाष्ठ आदिसे विशेष आमदनी होती है। किन्तु नारियल, बांस और शहतूत आदिके वृक्ष केवल गृहकार्य्य तथा जलानेके ही काममें लिये जाते हैं।

यहां कार्त्तिकसे वैशाख पर्य्यन्त लगातार जलवृष्टि होती रहती हैं और इसी कारण वर्षके अधिकांश समय तक यह द्वीप प्रायः जलमग्न रहा करता है। और खास कर इसीलिये यहांकी वायु अस्वास्थ्यकर रहती है, यहां कड़ोसे कड़ी गर्मी ८७ डिग्री और कड़ीसे कड़ी शीतलता ६० डिग्री है। वायु साधारणतः दक्षिण-पूर्व दिशाकी ओर चला करती है।

यहांकी उपज धान, गेहूं, चना, मकई आदि अन्न तथा आलू, और अनेकों प्रकारकी शाकसब्जियां तथा आम, पपीता और पियारा आदि फल हैं। इसके अतिरिक्त ऊख को खेती यहां अधिकतासे होती है। यहांको वनी चीनी भारतवर्ष तथा यूरोपके कई देशोंमें भेजी जाती है। भारतवर्षमें इस चीनीको मारीचशहरकी चीनी कहते हैं।

यहां घोड़े, गाय आदि पशुओंका एकदम अभाव है। चरीके कमीके कारण अन्य देशोंसे ला कर भी नहीं पाला जा सकता। देशवासी अपने कामके लिये खच्चर और गधे पालते हैं। वकरी, सूअर और भेड़ोंकी संख्या पर्य्याप्त है और सर्व्वसाधारण इसको अपने खाद्यमें व्यवहृत करते हैं।

यहांका प्रधान नगर लुई वन्दर (Port louis) है। यह अक्षा० २०° ६' दक्षिण तथा देशा० ५७° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। द्वीपके उत्तर-पश्चिम कोणके उपसागर-की एक छोटी समुद्रखाड़ी पर अवस्थित हैं। खाड़ीकी मुहानाके पास ही टोनेलिया द्वीप तक एक मूंगेकी चट्टान है। तूफानके समय इससे जलपोतोंकी रक्षामें बड़ी सहायता मिलती है। फ्रांसीसी तथा अङ्गरेज जैसी सभ्य जातियोंके अधिकारमें रहनेके कारण इसकी यथेष्ठ उन्नति हुई है। इस शहरके किला, छावनी, अदालत, वाजार, विश्वविद्यालय, थियेटर, अस्पताल, डेक तथा पुस्तकालय उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त महिवर्ग तथा ग्राण्डपोर्ट नामक दो छोटे शहरमें अनेकों प्रकारको वस्तुएं क्रय-विक्रय होती है। यहांका शासन "सिचलिस-पुञ्जके साथ साथ सकौंसिल गवर्नर हाथमें हैं।

मोरिससकी चीनी तथा अन्यान्य वाणिज्य वस्तुएं चटेभिया, वम्बई, सूरत, मस्कट, कलकत्ता, फारस, अरव-सागरके किनारेके शहर, अफ्रिकाके पश्चिमीय तटवर्त्ती शहरों, उत्तमाशा अन्तरीप, माडागास्कर तथा इङ्गलैण्ड प्रभृति देशोंको भेजी जाती है। इसके अतिरिक्त यहांसे नील, लौंग तथा अनेक प्रकारके काठ भी दूसरे देशोंमें भेजे जाते हैं। भारतवर्षसे रूई और रेशम तथा विला-यतसे सूती कपड़े तथा शराव, तेल, टोपी, लोहा और इस्पातकी वनी व्यवहार्य वस्तुएं यहां आती हैं। अरव और फारसके उपकूलवर्त्ती नगरोंमें मोरिसस चीनीका कार-वार है। इसके वदले यहांसे मेवा (सूखे अंगूर तथा पिस्ता आदि) मोरिसस भेजा जाता है। माडागास्कर द्वीपसे केवल धान तथा जौ आदि पशुओंको रफ्तनी होती है।

सन् १५०५ ई०में पोर्त्तगीज मल्लाहोंने मोरिसस तथा वोर्वो द्वीपका पता लगाया। १५४५ ई०में उन लोगोंने इस द्वीपको अपने अधिकारमें किया, परन्तु तौ भी इन लोगोंने यहां वास्तविक उपनिवेश कायम नहीं किया। १५९८ ई०में ओलन्दाज व्यापारी यहां आये और उन लोगोंने अपने प्रजातन्त्रके प्रतिष्ठाता मोरिस साहवके नाम पर इस द्वीपका नाम मोरिसस रखा। १६४० ई०-में इन लोगोंने ग्राण्डपोर्ट नगर वसाया। परन्तु अनुपयुक्त जलवायुके कारण १७०८ ई०में इन्हें इस द्वीपको छोड़ना पड़ा। सन् १७१५ ई०में फ्रांसीसियोंने इस द्वीपको अपने अधिकारमें करके लुई वन्दरमें अपना उपनिवेश कायम किया। इनके समयमें इस द्वीपका नाम Isle-france) पड़ा। १८१० तक यहांका वाणिज्य निष्कण्टक रूपसे फ्रांसीसियोंके अधिकारमें रहा। परन्तु सन् १८१४ ई०में सन्धिको शर्त्तोंकी जमानत-स्वरूप इन्होंने इस द्वीपको अङ्गरेजोंके हाथ समर्पण कर दिया।

मोरी (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तुके निकलनेका संग-द्वार। २ नाली जिसमेंसे पानी विशेषतः गंदा और मैला पानी वहता हो, पनाली। ३ मोहरी देखो।

(स्त्री०) ४ क्षत्रियोंकी एक जाति जो चौहान जाति के अन्तर्गत है।

मोरी—सन्थाल परगनेके गोदा उपविभागके धमान इ-की नामक स्थानका एक बड़ा शैल। यह राजमहल शैल-मालाके एक सबसे ऊंचा शिखर है।

मोरैलगञ्ज—खुलना जिलान्तर्गत एक नगर और बन्दर। यह पांगुरी नदीके किनारे हरिणघाटा या बलेश्वर संगम-से ढाई मील उत्तर अवस्थित है। चावल और अनेक प्रकारके शस्यकी सामुद्रिक वाणिज्य-परिचालनाके लिये १८६६ ई०में बंगाल गवर्मेण्टने यह स्थान बन्दर कह कर घोषणा किया। १८७२ ई०में मेसर्स मोरैल और लाइट फुटने स्थानीय जंगल कटवा कर इसे आवाद किया था। धीरे धीरे मोरैलगञ्ज एक वाणिज्यकेन्द्र हो गया। उक्त दो अङ्गरेज पुङ्गवोंने इस स्थानको उन्नतिके लिये बहुत रुपये खर्च किये थे।

मोरेश्वरभट्ट—वैद्यामृतके रचयिता।

मोरो—१ सिन्धुप्रदेशके हैदराबाद जिलेके नौसहर उप-विभागान्तर्गत एक तालुक।

२ उक्त विभागका विचार-सदर। यह अक्षा० २६° ४०′ उ० तथा देशा० ६८° २′ पू० मोरो वंशोय वाजिद्द फकीर नामक एक फकीरने दो सौ वर्ष पहले यह नगर स्थापित किया।

मोर्चा (फा० पु०) मोरचा देखो।

मोर्णा—बेरार राज्यमें प्रवाहित एक नदी। यह पूर्णानदीकी दूसरी शाखा है। इसके किनारे आकोला नगर अव-स्थित है।

मोर्वनीकर—नरहरिदीक्षितका नामान्तर।

मोर्वी—वम्बईप्रदेशके काठियावाड़के हाला विभान्तर्गत एक देशीय सामन्तराज्य। यह अक्षा० २२° २३′ से ले कर २३° ६′ उ० तथा० देशा० ७०° ३०′ से ले कर ७१° ३′ पू०-के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ८२२ वर्गमील है। मच्छु नदीके किनारे मोर्वी नगर अवस्थित है। यहां नदी पर एक बांध है। कच्छोपसागरतीरवर्त्ती, वावा-निया नगर यहांका वाणिज्य-बन्दर है। यहां तरह तरह-का शस्य, ऊख और रूई पैदा होती है तथा नमक और सूती कपड़ेका यहां एक विस्तीर्ण कारवार है। राज-कोटसे मोर्वी नगर जानेके लिये एक सड़क है।

यहांके सरदार लोग ठाकुर उपाधिधारी तथा झाड़ेजावंशके राजपूत हैं। ये अपनेको कच्छका राज-वंशज बतलाते है। नवगढ़ वंशके साथ इनका कुछ भी सम्पर्क नहीं है। कहते हैं, कि कच्छके कोई रावचंशीय सरदारके बड़े लड़के १७वीं सदीमें अपने छोटे भाई द्वारा चुपकेसे मारे गये थे, इसीसे वे सपरिवार भाग कर यहां आये। पहले यह कच्छके दखलमें था। बाद उसके कच्छराजोंने इनकी स्वाधीनता मानी। आज तक भी मोर्वीसरदार कच्छका जंगी बन्दर और उपविभाग दखल कर रहे है।

अङ्गरेजोंकी राजसामन्त-तालिकामें यह राज्य द्वितीय श्रेणीके अन्तर्भुक्त किया गया है। १८०७ ई०में दूसरे दूसरे काठियावाड़के सरदारोंने जिस सूत्र पर अङ्गरेज-राजको अंगीकारपत्र लिख दिया इन्होंने भी अवनत मस्तकको उसी शर्त्त पर स्वाक्षर किया। जूनागढ़के नवाब, बड़ोदाराज और अङ्गरेज राजको सरदारगण कर देते हैं। इनकी सैन्यसंख्या ४५० है। मालिया नामक ४र्थी श्रेणीका सामन्तराज्य इसी राजवंश द्वारा विछिन्न हो कर गठित हुआ है।

यहांके सरदारोंका अपनी प्रजा पर पूरा स्वत्व है। यहां तक, कि दोषीको प्राणदण्डकी आज्ञा देने पर भी उन्हें पोलिटिकल एजेण्टकी अनुमति नहीं लेनी पड़ती। जनसंख्या ८७४९६ है। इस सामन्तराज्यमें १४० ग्राम लगते है। यहां ५ कैदखाने, ४६ स्कूल और ६ मेडिकल स्कूल हैं। जिनमें पचीस हजार रोगी रखे जाते हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ४६′ उ० तथा देशा० ७०° ५३′ पू० मच्छुनदीके पश्चिम किनारे पर अवस्थित है। जनसंख्या १७८२० है।

मोल (हिं० पु०) १ वह धन जो किसी वस्तुके बदलेमें बेचनेवालेको दिया जाय, कीमत। २ दूकानदारकी औरसे वस्तुका मूल्य कुछ बढ़ा कर कहा जाना।

मोष (सं० पु०) मुष-स्तेये घञ्। १ प्रत्याहरण, चोरी। २ लुण्ठन, लूटना। छेदन, छेदना। ४ वध करना। ५ आच्छेद, दण्ड देना। ६ प्रतारणा, ठगी।

मोषक (सं० पु०) मुष्णातीति मुष्-ण्वुल् । तस्कर, चोर ।

मोषण (सं० क्ली०) मुष-ल्युट् । १ लुण्ठन, लूटना । २ चोरी करना । ३ छोड़ना । ४ वध करना । ५ वह जो चोरी करता या डाका डालता हो ।

मोषयित्नु (सं० पु०) १ ब्राह्मण । २ कोकिल, कोयल ।

मोषा (सं० स्त्री०) १ चौर्य, चोरी । २ डकैती ।

मोषितृ (सं० त्रि०) मुष-तृण । १ मोषणकर्त्ता, वह जो चोरी करता हो । २ चौर, चोर ।

मोष्टृ (सं० त्रि०) मुष-तृच् । मोषक, चोर ।

मोह (सं० पु०) मोहनमिति मुह-भावे घञ् । १ मूर्च्छा, बेहोशी । २ अविद्या । अविद्यासे मोहकी उत्पत्ति होती है । ३ दुःख, कष्ट । मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि ब्रह्माको बुद्धिसे मोहकी उत्पत्ति हुई है ।

"बुद्धेर्मोहः समभवदहङ्कारादभून्मदः ।
प्रमोदश्चाभवत् कण्ठान्मृत्युर्लोचनतो नृप ॥"
(मत्स्यपु० २ अ०)

गीतामें लिखा है, कि क्रोधसे मोहकी उत्पत्ति होती है । जीव विषयकी चिन्ता करते करते उसमें सङ्गाभिलाष होता है, विषयसङ्गसे कामना, कामनाको पूरी न होनेसे क्रोध, क्रोधसे मोह, मोहसे स्मृतिभ्रंश,और स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिनाश तथा बुद्धिके नाश होनेसे विनाश होता है ।

"ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशाद् विनश्यति ॥"
(गीता २ अ०)

जगत्‌में ममत्व बुद्धि ही मोहका स्वरूप है, 'मेरा घर मेरा लड़का, यह सब मेरा है', इस प्रकार ममत्व बुद्धिको ही मोह कहते हैं ।

"मम माता मम पिता ममेयं गृहिणी गृहम् ।
एतदन्यं ममत्वं यत् स मोह इति कीर्त्तितः ॥"
(पद्मपु० क्रियायोगसार)

धर्मविमूढ़ताको मोह कहते । जान बूझ कर पाप करना यही मोहका कार्य है । यह मोहजन्य पाप प्रायश्चित्तसे विनष्ट होता है ।

"अकामातः कृतं पापं वेदाभ्यासेन नश्यति ।
कामतस्तु कृतं मोहात् प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥
अत्र मोहादिति को मोहः—
मोहशब्देन देवेन्द्र ! बुद्धिपूर्वोव्यतिक्रमः ।
उच्यते पण्डितैर्नित्यं पुराणे सांशपायनः ॥"
(प्रायश्चित्तविवेक)

पद्मपुराणके भूमिखण्डमें मोहकी वृक्षरूप कल्पना की गई है । उक्त वृक्षका बीज लोभ, मूल मोह, स्कन्ध, असत्य, शाखा माया, पत्र दम्भ और कौटिल्य, पुष्प सभी कुकार्य, सुगन्ध पिशुनता और अज्ञानफल अधर्मपोषक है । जो यह वृक्ष लगाता है उसका पतन निश्चय है ।
(पद्म० भूमिख० ११ अ०)

४ भ्रम, भ्रान्ति । ५ शरीर और सांसारिक पदार्थोंको अपना या सत्य समझनेकी बुद्धि जो दुःखदायिनी मानी जाती है । ६ प्रेम, प्यार । ७ साहित्यमें ३३ संचारी भावोंमेंसे एक भाव, भय, दुःख, घबराहट, अत्यन्त चिन्ता आदिसे उत्पन्न चित्तकी विकलता ।

मोहक (सं० त्रि०) १ मोहोत्पादक, मोह उत्पन्न करनेवाला । २ मनको आकृष्ट करनेवाला, लुभानेवाला ।

मोहकार (हिं० पु०) पीतल या तांबेके घड़ेका गला समेत मुहंड़ा ।

मोहठा (सं० पु०) दश अक्षरोंका एक वर्णवृत्त । इसके प्रत्येक चरणमें तीन रगण और एक गुरु होता है । इसे बाला भी कहते हैं ।

मोहड़ा (हिं० पु०) १ किसी पात्रका मुंह या खुला भाग । २ किसी पदार्थका अगला या ऊपरी भाग । ३ मुंह, मुख । ४ मोहरा देखो ।

मोहजनक (सं० पु०) मोहस्य जनकः । मोहोत्पादक, मोह उत्पन्न करनेवाला ।

मोह-तसीव—नवाब-सरकारमें नियुक्त राजकर्मचारी । शहरके आस पासके बाजारोंमें ये व्यवसायियोंके कामोंकी देखभाल करते थे । अलावा इसके बाजार दरको ठीक करना, बटखरे आदि पर निगाह रखना इनका प्रधान काम था । फिर शराबी, दुष्ट, लम्पट और

अन्यान्य कुपथगामी लोग प्रकाश्य स्थानमें किसी प्रकार-अन्याय आचरण न करे, इस ओर भी इनका विशेष लक्ष्य रहता था।

मोहताज (अ० वि०) १ धनहीन, गरीब। २ जिसे किसी बातकी अपेक्षा हो।

मोहताजी (हिं० स्त्री०) मोहताज होनेकी क्रिया या भाव।

मोहन (सं० पु०) मोहयतीति मुह णिच् ल्यु। १ धुस्तूर-वृक्ष, धतूरेका पौधा। २ कामदेवके पांच वाणोंमेंसे एक वाणका नाम।

"कामस्यैते जगज्जैत्रमोहनास्त्राधिदैवतम्।
तद्रूपहृतचित्तोभूत् समाधिस्थेव तत्क्षणम्॥"
(कथासरित्सा० ७१।१३२)

३ नृपविशेष, एक राजाका नाम। ४ मोह लेनेवाला व्यक्ति, जिसे देख कर जी लुभा जाय। ५ श्रीकृष्ण। ६ एक वर्णवृत जिसके प्रत्येक चरणमें एक सगण और एक जगण होता है। ७ एक प्रकारका तान्त्रिक प्रयोग जिससे किसीको बेहोश या मूर्च्छित करते हैं। ८ प्राचीनकालका एक प्रकारका अस्त्र जिससे शत्रु मूर्च्छित किया जाता था। ९ कोल्हूका कोठा अर्थात् वह स्थान जहां दबनेके लिये ऊखके गाँड़े डाले जाते हैं। इसे कुंडी और घगरा भी कहते हैं। १० बारह मात्राओंका एक ताल। इसमें सात आघात और पांच खाली रहते हैं।

मोहन (हिं० वि०) मोह उत्पन्न करनेवाला।

मोहन—मोहन-सप्तशतीप्रणेता एक कवि।

मोहन—सिन्धुप्रदेशवासी मत्स्यजीवी जातिविशेष। ये लोग पहले हिन्दू थे, पीछे मुसलमान संसर्गमें आ कर मुसलमान हो गये। आरलिता नगरके रहनेवाले अरबोंको ये लोग अपना पूर्वपुरुष मानते हैं। मछलीको पकड़ कर बाजारमें बेचना इनका जातीय व्यवसाय है।

इन लोगोंके मध्य बुन्दरी, कराचा, लाना, झावर और बुड्डारा नामक पांच स्वतन्त्र दल हैं। मोहनोंकी आकृति प्रकृति उतनी खराब नहीं है। बचपनमें इनका गात्रवर्ण और मुखाकृति सुन्दर रहती है। हमेशा धूप और वृष्टिमें रहनेसे रंग खराब हो जाता है। मानचर, मणियार और किञ्जर नामक स्थानके जलाशयमें ये लोग मछली पकड़ा करते हैं। किञ्जरमें जाम तमाची नामक एक सिन्धुसामन्तराजके प्रासादका भग्नावशेष देखा जाता है। प्रवाद है, कि राजाने नूरेन नामक एक धीवर-की लड़कीको ब्याहा था। कवि शाहभट भी अपने ग्रन्थ-में इस घटनाका उल्लेख कर गये हैं।

इन लोगोंका चरित्र कलुषित है। सतीत्व किसको कहते हैं, ये लोग जानते तक भी नहीं। शराब, अफीम, भांग आदि मादक वस्तुका सेवन इनका नित्यकर्म है। ये तैरनेमें बड़े दक्ष होते हैं, बचपनसे ही तैरना सीखते हैं। पीर और मुल्लाओंका आस्ताना तथा मसजिदमें जा कर नमाज आदि पढ़ना इनका धर्म है। सिन्धुनद-को ये लोग ख्वाजा खिजिर समझ कर उसकी भक्ति करते और कभी कभी नदीके किनारे आ उसकी पूजा करते हैं। खड्डासुशी नामक दलके सरदार सामाजिक लड़ाई झगड़े का फैसला करते हैं।

झावरश्रेणीके धीवर कुम्भीर और शिशुक खाते हैं। ये लोग समाजमें नीच समझे जाते हैं।

मोहन—१ अयोध्याप्रदेशके उनाव जिलेकी एक तहसील। भूपरिमाण ४३७ वर्गमील है। मोहन औरस, असीवान, झालोतर-अजगांव और गौड़िन्द्र-प्रसन्दन नामक चार परगना ले कर यह उपविभाग संगठित है।

२ उक्त उपविभागका विचार-सदर और जिलेका एक नगर। सई नदीके किनारे अक्षा० २६° ४६' ५५" उ० तथा देशा० ८०° ४' पू०के मध्य विस्तृत है। मुसलमानी अमलमें यह स्थान बहुत समृद्धिशाली था। अभी वाणिज्य समृद्धिका बहुत कुछ ह्रास हो गया है। इसका प्राचीन नाम मैना वा मायापुर है। नगरके दक्षिण सई नदीके ऊपर एक पुल है। इसे अयोध्यापति नवाब सफदरजङ्गके मन्त्री महाराज नवल-रायने बनवाया था। पुलकी बगलमें एक ऊंचा टूटा फूटा स्तूप देखनेसे वह एक प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष समझा जाता है। अभी प्राचीन मुसलमान फकीरोंका समाधि-मन्दिर इसके ऊपर शोभा दे रहा है।

यहांके अधिवासिगण सम्भ्रान्तवंशीय मुसलमान

। लखनऊ राजसरकारमें काम करके सभी प्रायः सुखी हैं।

मोहन—अयोध्या प्रदेशके खेरो जिला और नेपालराज्यके मध्य हो कर प्रवाहित एक छोटी नदी। पहाड़ी स्रोतरूपमें निकली हुई करना और गन्धार शाखाके जलप्रवाहसे बढ़ कर चन्दनचौकीके उत्तर नदी रूपमें बह गई है। पीछे रामनगरके उत्तर कौरियाला नदीमें आ कर मिलती हैं। इस नदीमें महाशिर मछली पाई जाती है।

मोहन—पञ्जाबके बुसहर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० ३१° २६' उ० तथा देशा० ७८° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां बद्रीनाथका एक प्रसिद्ध मन्दिर है।

मोहनऔरस—उनाव जिलेकी मोहन तहसीलके अन्तर्गत एक परगना। सई नदीके किनारे अवस्थित मोहन नगर इसका वाणिज्यकेन्द्र है।

मोहनगञ्ज—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत दिग्विजयगञ्ज तहसीलका एक पहला और बड़ा गांव। यहां स्थानीय अनाजका जोरों कारोबार चलता है।

मोहनगञ्ज—वाराणसी जिलेका एक प्राचीन नगर।

मोहनचान्दवसु—एक सुप्रसिद्ध सङ्गीत-विशारद। कलकत्तेके अन्तर्गत बसुपाड़ामें इनका घर था। इनका चलाया हुआ हाफ-आखड़ाई सङ्गीतके सुर जनसमाजमें बहुत प्रसिद्ध है। यह सुर गायकसमाजमें 'मोहनचान्दसुर' कहलाता है।

मोहनदास—पदके रचयिता एक वैष्णव कवि। श्रीनिवास आचार्य प्रभुके शिष्य थे, इस कारण कवि मोहनदासको उनका समसामयिक व्यक्ति कहनेमें कोई आपत्ति नहीं।

मोहनदासमिश्र—हनुमत्कृत महानाटकके टीकाकार।

मोहनपण्डित—तर्ककौमुदीटीकाके रचयिता।

मोहनपुर—बम्बईप्रदेशके महीकाण्ठा पोलेटिकल एजेन्सीके अधीनस्थ एक सामन्तराज्य। यहांके सरदार आबू पर्वत सन्निहित चन्द्रावतीके रावबंशसे उत्पन्न हुए हैं। उस वंशके यशपाल नामक एक राजपूत १२१७ ई०में चन्द्रावतीसे हटोल नामक स्थानमें आ कर बस गये। यहां तेरह पीढ़ी रहनेके बाद ठाकुर पृथ्वीराज घोरवाड़ामें अपना घर उठा लाये। उनकी जागीर आदि भूसम्पत्ति उनके पुत्रोंमें बट गई: इससे अधिकारियोंको भिन्न भिन्न स्थानमें जा कर रहना पड़ा। १८८२ ई०में ठाकुर उमेदसिंहके मरने पर उनके लड़के ठाकुर हिम्मतसिंह सामन्त पद पर अधिष्ठित हुए। ये लोग परमार राजपूतवंशके रेहवाड़ शाखाके अन्तर्भुक्त हैं। बड़ोदाराज, इदरराज और अङ्गरेजराजको ये लोग कर देते हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर।

मोहनभट्ट—एक भाषाकवि। ये बांदाके रहनेवाले थे। इन्हींके पुत्र प्रसिद्ध पद्माकर कवि थे। ये पहले बुन्देला पन्ना-नरेशके दरबारमें थे। तदनन्तर जयपुरके महाराज सवाई प्रतापसिंह और जगत्‌सिंहके दरबारमें रहे। इनकी कविता बहुत सरस और मधुर होती थी।

मोहनभोग (सं० पु०) मोहनश्चासौ भोगश्चेति। १ एक प्रकारका हलुआ। बनानेका तरीका—सूजीको घीमें अच्छी तरह भून कर उसमें जल या दूध और चीनी डाले। अच्छी तरह पाक हो जाने पर उसमें कपूर और इलायचीका चूर छोड़ दे। यह खानेमें सुस्वाद और बलकर है। (पाकराजेश्वर) २ एक प्रकारका केला। ३ एक प्रकारका आम।

मोहनमाला (सं० स्त्री०) सोनेकी गुरियों या दानेकी बनी हुई माला।

मोहनलाल—बालबोध नामक व्याकरणके प्रणेता। इनके पिताका नाम हीराधर था।

मोहनलाल—बंगालके नवाब सिराजुद्दौलाके एक विख्यात हिन्दू सेनापति। ये दीवान-इ-आला थे। बाद उसके मादर उल-मोहन अर्थात् प्रधान मन्त्री हुए। नवाबकी आज्ञासे ये राजकीय विभागके प्रत्येक कामकी देखभाल करते थे। महाराजकी उपाधि और उसके साथ बादशाही प्रथाके अनुसार नाकड़ा और झालरदार पालकी व्यवहार तथा पांचहजारी मनसबदारी इत्यादि इन्हें मिली थी। मोहनलालका सर्व-व्यवहार और अत्यधिक उन्नति ही सिराजके अधःपतनका मूल था।

१७५७ ई०के पलासी-मैदानमें बंगाली वीर मोहनलालने अपनी वीरताका पूरा परिचय दिया था। सिराज जिस समय राजमहलमें पकड़े गये उसी समय मोहनलाल भी भगवान्‌गोलामें पकड़े गये थे। बादमें

कारागारसे छूटने पर राजा दुर्लभरामके हाथ पड़े। सुना जाता है, कि राजा दुर्लभरामने उनकी सम्पत्ति दखल करनेके लिये उन्हें मार डाला था। मोहनलालके पुत्र पूर्णियाके फौजदार थे।

मोहनलाल—एक हिन्दू कवि। इन्होंने १७८३ ई०में आनिस-उल-अहवाब नामक एक तजकीरा संकलन किया। उनके ग्रन्थकी भणितामें लिखा है, कि अयोध्याके नवाब आसफ उद्दौलाने समसामयिक कवि हाजिनका तजकीरा देख कर उन्हें भारतीय कवियोंकी इस प्रकार एक तजकीरा बनाने कहा। इस प्रकार यह ग्रन्थ संकलित हुआ। उन्होंने भणितामें 'आनिस' नाम लिया था।

मोहनलालगञ्ज—१ अयोध्याप्रदेशके लखनऊ जिलान्तगत एक तहसील। भूपरिमाण २७२ वर्गमील है। यह मोहनलालगंज और निगोहन-सिसैन्दी परगना ले कर संगठित है।

२ उक्त तहसीलका एक परगना। यहां पहले भरजातिका वास था। भरजातिकी वासभूमि और दुर्गादि चिह्नस्वरूप भरडिही नामक स्थानके स्तूपकी ईंट आदि आज भी अतीत कीर्त्तिका निदर्शन है। १०३२ ई०में सैयद सलार मसाउद यहां चढ़ाई करके भी भरोंको विध्वस्त न कर सके। १४वीं सदीमें चमार गोड़ जातीय अमेठी राजपूतोंने भरोंको भगा कर इस पर कब्जा किया। १५वीं सदीमें सेख मुसलमानोंने राजपूतोंको वहांसे मार भगायो। इसी वंशके कोई व्यक्ति सेलिमपुर नगर बसा कर वहीं रहते थे।

३ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २६° ४०´ ४५´´ उ० तथा देशा० ८१° १´ ३०´ पू०के मध्य पड़ता है। जानवाके राजपूतोंने यह नगर बसाया। मुसलमान नवाबोंके समय राजपूतगण यहांके सत्वाधिकारी थे। अनन्तर १८५९ ई०में वर्त्तमान तालुकदारवंशके राजा कालीप्रसादके हाथ इसकी परिचालनका भार सौंपा गया। उक्त राजाने यहां एक गंज बनवा कर वाणिज्यकी खूब उन्नति की। उस समयसे यह नगर मोहनलालगञ्ज नामसे प्रसिद्ध हैं। तालुकदार वंशका प्रतिष्ठित शिव-मन्दिर देखने लायक हैं।

मोहनलाल—पारस्यभाषाविद् एक हिन्दू-पण्डित। ये काश्मीर-राजवंशीय राजा मणिरामके पौत्र और पण्डित बुद्धसिंहके पुत्र थे। इनका दिल्लीनगरमें वास था। मोहनने दिल्ली-कालेजमें ही अपना पढ़ना समाप्त किया था। १८३२ ई०के जनवरीमें ये पारसी-मुन्सी पद पर नियुक्त हो कर लेफ्टिनेण्ट वार्निस और डा० जिरार्डके साथ पारस्यराज्यमें भेजे गये थे। वहांसे लौट कर इन्होंने पञ्जाब, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, खुरासान और पारस्यभ्रमणवृत्तान्त नामक एक पुस्तक लिखी। १८३४ ई०में कलकत्तेमें यह किताब छपी थी।

मोहनवल्लिका (सं० स्त्री०) वन्दाक, मोहनवल्ली।

मोहनशर्मा—अन्योक्तिशतकके रचयिता। इनके पिताका नाम अनिरुद्ध सूरि था।

मोहनसिंह—एक हिन्दू-राजा, राव कर्णके पुत्र। १६७२ खृष्टाब्दमें महम्मदशाहसे मारे जाने पर उनकी स्त्रियां सती हो गई थीं।

मोहना (सं० स्त्री०) मोहयति पुष्पेणेति मुह-ल्यु-टाप्। १ तृण। २ एक प्रकारकी चमेली।

मोहना (हिं० क्रि०) १ किसी पर आशिक या अनुरक्त होना, रीझना। २ मूर्च्छित होना, बेहोश हो जाना। ३ मोहित करना, लुभा लेना। ४ भ्रममें डाल देना, धोखा देना।

मोहनार—मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यहां सोरेका विस्तृत कारबार है।

मोहनास्त्र (सं० पु०) प्राचीनकालका एक प्रकारका अस्त्र। कहते हैं, कि इसके प्रभावसे शत्रु मूर्च्छित हो जाता था।

मोहनिद्रा (सं० स्त्री०) मोहरूपा निद्रा मध्यपदलोपि कर्मधा०। मोह, मोहरूप निद्रा।

मोहनिशा (सं० स्त्री०) मोहरात्रि देखो।

मोहनी (सं० स्त्री०) मुह्यत्यनयेति मुह ल्युट्, स्त्रियां ङीप्। १ उपोदकी, पोईका साग। २ वटपत्री, पथरफोड़। ३ माया।

"माया तु मोहनी नाम मायैषा संप्रदर्शिता।
(भारत० १४।५०।४५)

४ वैशाख सुदी एकादशी। ५ एक लम्बा सूत-सा कीड़ा। यह हल्दीके खेतोंमें पाया जाता है। इसे पा कर

तान्त्रिक लोग वशीकरणयन्त्र बनाते हैं। ६ भगवान्‌का वह स्त्री रूप जो उन्होंने समुद्र-मथनके उपरान्त अमृत बांटते समय धारण किया था। ७ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें सगण, भगण, तगण, यगण और मगण होते हैं। ८ एक प्रकारकी मिठाई। ८ वशीकरणका मन्त्र, लुभानेका प्रभाव। (त्रि०) ६ मोहित करनेवाली, चित्तको लुभानेवाली।

मोहनीय (सं० त्रि०) मुह अनीयर्। मोहित करनेके योग्य, मोह लेनेके लायक।

मोहमन्द—देहरादुन जिलेके शिवालिक पर्वतश्रेणीका एक गिरिपथ।

मोहपा—मध्यभारतके नागपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१° १६' उ० तथा देशा० ७८° ५२' पू०के बीच पड़ता है। यहां नवाव हसनअली खाँका प्रासाद है। कल्मेनवरसे शावर जानेका रास्ता इसी नगरके बीचोबीच हो कर गया है।

मोहफिल (अ० स्त्री०) महफिल देखो।

मोहव्वत (अ० स्त्री०) मुहव्वत देखो।

मोहमन्द (सं० पु०) मोह-उत्पादक मन्त्रविशेष।

मोहमन्द—स्वाधीन अफगान जातिभेद। काबुल, श्वात-नदी, सफेदको और हिन्दूकुशके पहाड़ी प्रदेशमें इनका वास है। काबुल और गजनीका युसुफजै जातिके अफगानसे ये लोग उत्पन्न हुए हैं। १३वींसे ले कर १५वीं सदी तकके भीतर ये लोग वर्त्तमान वासभूमिमें आ कर बस गये और एक दूसरेसे पृथक् पृथक् हो गये। पहले सिनवारी और मामन्दोके साथ इनका भारी विरोध था। वादशाह औरङ्गजेब मोमन्दोंको परास्त कर उनसे एक बड़ा लड़ाईका डंका छीन लाये। उस डंकाके बजनेसे सिनवारी लोग डरके मारे कांपने लगते थे।

१८४१, १८५१, १८५४, १८६४, १८७३, १८७८ और ७९ ई०में मोहमन्दोंने अङ्गरेजोंके विरुद्ध हथियार उठाया था। १८७३ ई०में सिचनी दुर्गके अध्यक्ष मेजर मैक-डोनाल्ड सिचनी शाखाके मोमन्दोंसे मारा गया था।

लालपुरा, सङ्करसराय योखदन्द आदि ग्रामोंमें इनका वास है। इन लोगोंके मध्य तारकजै, हालिमजै, वाईजै और ख्वाजै आदि श्रेणियां देखी जाती हैं। ये लोग उद्धत स्वभावके, दुर्वृत्त, निर्दय, अत्याचारप्रिय और स्त्री चुरा लानेमें पटु हैं।

अङ्गरेजी अमलदारीके वाद ये लोग धीरे धीरे शान्त प्रकृतिके हो गये हैं। अभी वाणिज्य व्यवसायकी ओर इनका विशेष ध्यान है। पहले मोमन्द राज्य हो कर बहुतेरे व्यवसायी माल ले कर भारतवर्ष आते थे। मोह-मन्दगण उनसे महसूल लिया करते थे। मोहमन्द सर-दारोंके मध्य लालपुरका खाँ-वंश ही सर्वश्रेष्ठ हैं। ये लोग काबुलके अमीरको अपना अधीश्वर मानते हैं।

मोहमय (सं० त्रि०) मोह-स्वरूपे मयट्। मोहस्वरूप।

मोहमुद्गर (सं० पु०) शङ्कराचार्य विरचित संसारका अनित्यताज्ञापक एक ग्रन्थ।

मोहयितृ (सं० त्रि०) मुह-णिच्-तृच्। मोहकारक।

मोहर (फा० स्त्री०) १ किसी ऐसी वस्तु पर लिखा हुआ नाम, पता या चिह्न आदि जिससे कागज वा कपड़े आदि पर छाप सकें, अक्षर, चिह्न आदि दवा कर अंकित करनेका ठप्पा। २ उपर्युक्त वस्तुकी छाप जो कागज वा कपड़े आदि पर ली गई हो, स्याही लगे हुए ठप्पेको दवानेसे बने हुए चिह्न या अक्षर। ३ स्वर्णमुद्रा, अशरफी।

मोहरा (हिं० पु०) १ किसी वरतनका मुंह या खुला भाग। २ सेनाकी अगली पंक्ति जो आक्रमण करने और शत्रुको हटानेके लिये तैयार हो। ३ फौजकी चढ़ाईका रूख, सेनाकी गति। ४ किसी पदार्थका ऊपरी या अगला भाग। ५ एक प्रकारकी जाली जो बैल, गाय, भैंस इत्यादिका मुंह कस कर गिरांवके साथ बांधनेके लिये होती है। यह मुंह पर बांध कर कस दी जाती है जिससे पशु खाने पीनेकी चीजों पर मुंह नहीं चला सकता। ५ चोली आदिकी तनी या बंद। ६ कोई छेद वा द्वार जिससे कोई वस्तु वाहर निकले।

मोहरा (फा० पु०) १ शतरंजकी कोई गोटी। २ रेशमी वस्त्र घोटनेका घोटना। यह प्रायः बिल्लौरका बनता है। ३ मिट्टीका सांचा जिसमें कड़ा, पछुआ ढालते हैं। ४ सोने चांदी पर नकाशी करनेवालोंका वह औजार जिस-से रगड़ कर नकाशीको चमकाते हैं, दुआली। ५ जहर मोहरा। ६ सिंगिया विष।

मोहरात्रि (सं० स्त्री०) मोहस्य रात्रिः। १ दैनन्दिन प्रलय।

"एवं पञ्चाशदब्दे च गते तु ब्रह्मणो नृप।
दैनन्दिनन्तु प्रलयं वेदेषु परिकीर्त्तितम्॥
मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदविद्भिः पुरातनैः।
तत्र सर्वे प्रणष्टाश्च चन्द्रार्कादि दिगीश्वराः॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ५४ अ०) प्रलय शब्द देखो।

ब्रह्माके पचास वर्ष बीतने पर जो दैनन्दिन प्रलय होता है उसीको मोहरात्रि कहते हैं।

२ जन्माष्टमी रात्रिका नाम मोहरात्रि है।

"दीपोत्सवचतुर्द्दश्याममया योग एव चेत्।
कालरात्रिर्महेशानि! तारा काली प्रियङ्करी।
जन्माष्टमी महेशानि! मोहरात्रि प्रकीर्त्तिता॥"

(शक्तिसङ्गमतन्त्र)

मोहराना (फा० पु०) मोहर करनेकी हुजरत, वह धन जो किसी कर्मचारीको मोहर करनेके लिये दिया जाय।

मोहरी (हिं० स्त्री०) १ बरतन आदिका छोटा मुंह या खुला भाग। २ पाजामेका वह भाग जिसमें टांगें रहती हैं। ३ मोरी देखो। ४ एक प्रकारकी मधुमक्खी जो खानदेशमें होती है।

मोहर्रिर (अ० पु०) वह जो किसीके कागज आदि लिखनेका काम करता हो, मुंशी।

मोहलत (अ० स्त्री०) १ फुरसत, अवकाश। २ किसी कामके पूरा करनेके लिये मिला हुआ या निश्चित समय, अवधि।

मोहल्ला (अ० पु०) महल्ला देखो।

मोहवत् (सं० त्रि०) मोह-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। मोहयुक्त, मोहविशिष्ट।

मोहशास्त्र (सं० क्ली०) मोहोत्पादकं शास्त्रमिति मध्यपदलोपि कर्मधा०। अविद्याजनक ग्रन्थ, वह शास्त्र जिसकी आलोचना करनेसे मोहकी उत्पत्ति होती है।

"एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेन सुरारिणा।
चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः॥
कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम्।
पञ्चरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः॥"

(कूर्म्मपु० १४ अ०)

महादेवसे भेजे जाने पर विष्णुने कापाल, नाकुल, भैरव आदि मोहशास्त्र प्रणयन किये। यह मोहशास्त्र असच्छास्त्र वा मिथ्याशास्त्रके बीच गिना जाता है।

मोहार (हिं० पु०) १ द्वार, दरवाजा। २ मुंहड़ा, अगला भाग। ३ मधुमक्खीकी एक जाति जो सबसे बड़ी होती है। इसे सारंग भी कहते हैं। ४ मधुका छत्ता। ५ भौंरा।

मोहारनी (हिं० स्त्री०) पाठशालामें बालकोंका एक साथ खड़े हो कर पहाड़े पढ़ना।

मोहाल (अ० पु०) पूरा गांव वा उसका एक भाग अथवा कई गांवोंका समूह जिसका बन्दोबस्त किसी नंबरदारके साथ एक बार किया गया हो।

मोहाल (हिं० पु०) १ मधुमक्खीकी एक जाति, मोहार। २ मधुमक्खीका छत्ता।

मोहित (सं० त्रि०) १ मोह या भ्रममें पड़ा हुआ, मुग्ध। २ मोहा हुआ, आसक्त।

मोहिन् (सं० त्रि०) मोहयति मुह, णिच्-णिनि। मोहकर्त्ता, मोहनेवाला। मोहिनी देखो।

मोहिनी (सं० त्रि०) १ मोहनेवाली। (स्त्री०) २ त्रिपुरमाली नामक फूल, बेला। ३ वटपत्री, पथरफोड़। ४ विष्णुके अवतारका नाम। भागवतके अनुसार विष्णुने यह अवतार उस समय लिया था जब देवताओं और दैत्योंने मिल कर रत्नोंके निकालनेके लिये समुद्र मथा था और अमृतके निकलने पर दोनों उसके लिये परस्पर झगड़ रहे थे। उस समय भगवान्ने मोहिनी अवतार धारण किया था और उन्हें देखते ही असुर मोहित हो कर बोले थे, कि *अच्छा लाओ हम दोनों दलोंके लोग बैठ* जांय और मोहिनी अपने हाथसे अमृत बांट दे। दोनों दलोंके लोग पंक्ति बांध कर बैठ गये और मोहिनी रूप विष्णुने अमृत बांटनेके बहानेसे देवताओंको अमृत और असुरोंको सुरा पिला दी। (भारत० १।१८ अध्याय) ५ माया, जादू। ६ वैशाख शुक्ल एकादशीका नाम। ७ अर्द्धसम वृत्तिका नाम। इसके पहले और तीसरे चरणमें बारह और दूसरे तथा चौथे चरणमें सात मात्राएं होती हैं और प्रत्येक चरणके अन्तमें एक सगण अवश्य होता है। ८ पन्द्रह अक्षरोंके एक वर्णिक

छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें सगण, भगण, तगण, यगण और सगण होते हैं।

मोही (हिं० वि०) १ मोहित करनेवाला। २ मोह करनेवाला, प्रेम करनेवाला। ३ लोभी, लालची। ४ भ्रम या अविद्यामें पड़ा हुआ, अज्ञानी।

मोहुक (सं० पु०) मोहविधायक, मोह करनेवाला।

मोहेला (हिं० पु०) एक प्रकारका चलता गाना।

मोहेलो (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली। यह हिमालय और सिंधकी नदियोंमें मिलती है।

मोहोपनिषत्—एक उपनिषद्का नाम।

मोहोपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारभेद, एक अलङ्कारका नाम जो केशवदासके अनुसार उपमाका एक भेद है; पर और आचार्य जिसे भांति अलङ्कार कहते हैं।

मौ—मध्यभारतके इन्दोर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° ३३' उ० तथा देशा० ७५° ४६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३५ हजारसे ऊपर है। मन्दसोर-सन्धिकी ७वीं शर्त्तके अनुसार सर जान मालकोलमने इसे बसाया था। उसी शर्त्तके अनुसार यहां बहुत-सी अङ्गरेजी-सेना भी रहती है। यहां राजपूताना मालवा-रेलवेकी मालवा शाखाका एक स्टेशन है। शहरमें एक पारसी स्कूल, एक रेलवे स्कूल और एक कानमेण्ट स्कूल है। स्कूलके अलावा मिलिटरी अस्पताल और एक सिविल अस्पताल है।

मौ—युक्तप्रदेशके झांसी जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २५° ६' से २५° २६' उ० तथा देशा० ७८° ४६' से ७६° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३६ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें मौ-रानीपुर नामक १ शहर और १६४ ग्राम लगते हैं। यह तहसील विन्ध्य-शैलमालासे ढकी हुई है। प्राचीन मूर्च्छा राज्यका कुछ अंश इसके अन्तर्गत है। इसके पश्चिममें धसान नदी बहती है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और वाणिज्यकेन्द्र। यह अक्षा० २५° १४' ४०" उ० तथा देशा० ७०° १०' ४५" पू०के मध्य अवस्थित है। रानीपुर नगर यहांसे २ कोस पश्चिम पड़ता है। बहुतेरे इसे मौ-रानपुर कहा करते हैं। छतपुर-राजके अत्याचारसे तंग आ कर झांसीका वणिक्-सम्प्रदाय यहां आ कर बस गया। तभीसे यह छोटा गांव नगरमें परिणत हो गया और वाणिज्यकी भी धीरे धीरे वृद्धि होने लगी। यहां खड़ुआ नामक सूती कपड़ेका अच्छा कारबार है। अमरावती, मिर्जापुर, नागपुर, फरुखाबाद, हातरस, कानपुर और दिल्ली आदि नगरोंमें सफेद और रंगे कपड़ेकी रफ्तनी होती है।

मौ—युक्तप्रदेशके बांदा जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २५° ५' से २५° २४' उ० तथा देशा० ८१° ७' से ८१° ३४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३१६ वर्गमील और जनसंख्या ६५ हजारके करीब है। इसमें राजपुर नामक १ शहर और १६४ ग्राम लगते हैं।

मौ—युक्तप्रदेशके आजमगढ़ जिलान्तर्गत मुहम्मदाबाद तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २५° ५७' उ० तथा देशा० ८३° ३४' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या २० हजारके करीब है। शहर कब बसाया गया है मालूम नहीं, पर यह बहुत प्राचीन शहर है, इसमें सन्देह नहीं। आईन-इ-अकबरी पढ़नेसे मालूम होता है, कि शाहजहान् बादशाहने अपनी लड़की जहानारा बेगमको यह शहर प्रदान किया था। उक्त बेगमने यहां एक सराय बनवायी थी जो आज भी मौजूद है। १८६३ ई०में कुर्बानी ले कर यहां भारी दंगा हो गया था। शहरमें अस्पताल, डाकघर और दो स्कूल हैं।

मौ-ऐमा—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलान्तर्गत सरौन तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५° ४२' उ० तथा देशा० ८१° ५६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारके करीब है। जिले भरमें यही सबसे पहला शहर जहां १८६६ ई०में प्लेग दिखाई दिया था। यह स्थान सूती कपड़ेके लिये बहुत कुछ प्रसिद्ध है। शहरमें एक स्कूल है।

मौक (सं० पु०) मुकका गोत्रापत्य।

मौका (अ० पु०) १ घटनास्थल, वह स्थान जहां कोई घटना संघटित हो। २ अवसर, समय। ३ देश, स्थान।

मौकुलि (सं० पु०) काक, कौआ।

मौकूफ (अ० वि०) १ रोका हुआ, बंद किया हुआ। २ रद किया गया, मनसूख किया गया। ३ काम करनेसे

रोका गया, नौकरीसे अलग किया गया। ४ अधिष्ठित मुनहसर।

मौकूफी (फा० स्त्री०) १ मौकूफ होनेकी क्रिया या भाव। २ कामसे अलग किया जाना, बरखास्तगी। ३ प्रतिबंध, रुकावट।

मौक्तिक (सं० क्ली०) मुक्तेव मुक्ता-(विनयादिभ्यष्ठक। पा ५।४।३४) इति ठक्। १ मुक्ता। विशेष विवरण मुक्ता शब्द-में देखो। २ अन्न।

मौक्तिकतण्डुल (सं० पु०) मौक्तिकमिव शुक्लः तण्डुलोऽस्य। धवलयावनाल। सफेद मक्का, बड़ी ज्वार।

मौक्तिकदाम (सं० पु०) बारह अक्षरोंका एक वर्णिकछंद। इसके प्रत्येक चरणमें दूसरा, पांचवां, आठवां और ग्यारहवां वर्ण गुरु और शेष लघु होते हैं अर्थात् इसके प्रत्येक चरणमें चार जगण होते हैं।

मौक्तिकप्रसवा (सं० स्त्री०) मौक्तिकस्य प्रसवा। शुक्ति, सीप।

मौक्तिकमाला (सं० स्त्री०) १ ग्यारह अक्षरोंकी एक वर्णिक वृत्तिका नाम। इसके प्रत्येक चरणका पहला चौथा, पाँचवां, दसवां और ग्यारहवां अक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं तथा पांचवें और छठे वर्ण पर यति होती है। इसे अनुकूला भी कहते हैं। २ मुक्तामाला, मुक्ताका हार।

मौक्तिकरत्न (सं० क्ली०) मौक्तिकमेव रत्नं। मुक्तारत्न।

मौक्तिकशुक्ति (सं० स्त्री०) मौक्तिकानां शुक्तिः। शुक्ति, सीप।

मौक्तिकावलि (सं० पु०) मौक्तिकस्य आवलिः। मुक्तावली, मोतीकी माला।

मौक्य (सं० क्ली०) मूकस्य भावः मूक-(वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) ष्यञ्। मूकका भाव।

मौक्ष (सं० क्ली०) सामभेद, एक प्रकारका साम गान।

मौक्षिक (सं० त्रि०) ग्रहणके अन्तमें ग्रहमोक्षसम्बन्धीय।

मौख (सं० क्ली०) मुखस्येदमिति मुख-अण्। १ मुख-सम्बन्धाधीन पाप, मुखसे होनेवाला पाप। यह अभक्ष्य भक्षणरूप है। अभक्ष्य भोजन करनेसे जो पाप होता है उसे मौख कहते हैं। (प्रायश्चित्तवि०) २ एक प्रकारका मसाला। (त्रि०) ३ मुखसम्बन्धी।

मौखर (सं० त्रि०) मुखर-अण्। मुखरका भाव, बहुत अधिक या बढ़ बढ़ कर बातें करना।

मौखरी—उत्तर-भारतका एक प्राचीन राजवंश। किस समय इस राजवंशका प्रथम आधिपत्य विस्तृत हुआ, यह मालूम नहीं। अशोकलिपिकी तरह प्राचीन अक्षर पालिभाषामें 'मोखलिनम्'-शब्दाङ्कित मोहर (Seal) आविष्कृत होनेसे मालूम होता, कि मौर्यवंशके प्रभावकालमें इस वंशका अभ्युदय हुआ था, किन्तु उस समय इस वंशके कौन कौन राजा किस किस देशमें राज्य करते थे, वह आज तक भी स्थिर नहीं हुआ है। गुप्तवंशके साथ मौखरीराजका एक समय सम्बन्ध था, यह शर्ववर्माकी उत्कीर्ण लिपिसे जाना जाता है। गुप्तवंशके साथ मौखरियोंकी लड़ाई भी छिड़ी थी। आदित्यसेनकी अप्सड़-लिपिमें लिखा है, कि मौखरीवंशने हूणोंको परास्त करके अच्छी ख्याति पाई थी। दामोदरगुप्तने उस मौखरीवंशको परास्त किया था।

नाना स्थानोंसे आविष्कृत उत्कीर्ण लिपिकी सहायतासे हम १० मौखरी राजोंके नाम पाते हैं। जैसे—

१म हरिवर्मा—महिषी जयस्वामिनी।

२य आदित्यवर्मा—(१मके पुत्र) महिषी हर्षगुप्ता।

३य ईश्वरवर्मा—(२यके पुत्र।

महिषी उपगुप्ता। ईश्वरवर्माने धारा, अन्ध्र, सुराष्ट्र आदि राजाओंके साथ युद्ध किया था।

४र्थ ईशानवर्मा—(३यके पुत्र) महिषी लक्ष्मीवती।

५म शर्ववर्मा—(४र्थके पुत्र) मगधराज दामोदरगुप्तके समसामयिक।

६ष्ठ सुस्थितवर्मा—मगधाधिप महासेनगुप्तके समसामयिक।

७म अवन्तिवर्मा—स्थाण्वीश्वराधिप प्रभाकरवर्द्धनके समसामयिक।

८म ग्रहवर्मा—(७मके पुत्र) इन्होंने सम्राट् हर्षदेवकी बहन राज्यश्रीको ब्याहा था। श्रीहर्षचरितमें इनका परिचय आया है। ये मालवराजके हाथसे मारे गये थे।

६म भोगवर्मा—इनका मगधाधिप आदित्यसेनकी कन्यासे विवाह हुआ था। नेपालके लिच्छविराज २य शिवदेव इनके जमाई थे।

१०म यशोवमदेव।

उपर जिन सब मौखरीराजोंके नाम लिखे गये वे लोग ६ठी और ७वीं सदीमें मगधके एक अंशमें राज्य करते थे। ७वीं सदीके शुरूमें इन्होंने स्थाण्वीश्वरके वर्द्धनवंश तथा नेपालके लिच्छविवंशके साथ मिलता कर ली थी। लिच्छवि-राजवंश देखो।

उपरोक्त मौखरी-राजोंको छोड़ कर कुछ मौखरी सामन्त राजोंके भी नाम मिलते हैं। नागार्जुनी शैल पर जो शिलालिपि उत्कीर्ण है उससे मालूम होता है कि मौखरीवंशमें यज्ञवर्मा नामक एक पराक्रान्त सामन्त-राज थे। जिनके पुत्रका नाम शार्दूलवर्मा था। शार्दूलके भी वीरवर अनन्तवर्मा नामक एक पुत्र था। अनन्तवर्माने नागार्जुनी शैल पर अर्द्धनारीश्वर और कात्यायनी मूर्त्ति तथा बराबर-शैल पर कृष्णरूपी विष्णु-मूर्त्तिको प्रतिष्ठा की थी।

मौखर्य्य (सं० क्लो०) मुखरस्य भावः मुखर ष्यञ्। मुखर-का भाव, बहुत अधिक वा बढ़ बढ़ कर बोलना।

मौखिक (सं० त्रि०) मुखस्येदं मुख-ठक्। १ मुखसंबंधी, मुखका। २ जबानी।

मौख्य (सं० क्लो०) मुखस्य भावः अण्। मुख्यत्व, प्रधा-नता।

मौगा (हिं० वि०) १ मूर्ख, दुर्बुद्धि। २ जनखा, हिजड़ा।

मौगी (हिं० स्त्री०) स्त्री, औरत।

मौग्ध्य (सं० क्लो०) मुग्धभाव।

मौघ्य (सं० क्लो०) विफलता, वृथा।

मौच (सं० क्लो०) कदली फूल, केलेका फूल।

मौज (अ० स्त्री०) १ लहर, तरंग। २ धुन। ३ सुख, मजा। ४ मनकी उमंग, जोश। ५ प्रभूति, विभव।

मौजवत (सं० त्रि०) १ मुजवत् नामक पर्वतजात। २ मुजका गोत्रापत्य।

मौजा (अ० पु०) गाँव, ग्राम।

मौजी (हिं० वि०) १ मनमाना काम करनेवाला, जो जीमें आवे वही करनेवाला। २ मनमें कभी कुछ और कभी कुछ विचार करनेवाला। २ सदा प्रसन्न रहनेवाला, आनन्दी।

मौजूद (अ० वि०) १ उपस्थित, हाजिर। २ प्रस्तुत, तैयार।

मौजूदगी (फा० स्त्री०) सामने रहनेका भाव, उपस्थिति।

मौजूदा (अ० वि) वर्त्तमान कालका, जो इस समय मौजूद हो।

मौञ्ज (सं० त्रि) मुञ्जतृणनिर्मित, मूंजका बना हुआ।

मौञ्जक (सं० पु०) मूंजका एक एक पत्ता।

मौञ्जकायन (सं० पु०) मुञ्जक-गोत्रापत्य, मुञ्जक ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

मौञ्जवत (सं० त्रि०) १ मुञ्जवान् पर्वतसम्बन्धीय। २ मुञ्ज-वत्‌जात, मुञ्जवान् पर्वतमें उत्पन्न।

मौञ्जवान (सं० त्रि०) मौजवत देखो।

मौञ्जायन (सं० पु०) मुञ्ज ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

मौञ्जायनीय (सं० पु०) मौञ्जायन-सम्बन्धीय।

मौञ्जिन् (सं० त्रि०) मेखलायुक्त। १ मूंजकी बनी हुई मेखला। २ जो मूंजकी मेखला धारण किये हुए हो, जो मूंजकी मेखला पहने हो। ३ मौञ्जीय देखो।

मौञ्जिबन्धन (सं० पु०) यज्ञोपवीत संस्कार, जनेऊ।

मौञ्जी (सं० स्त्री०) मुञ्जस्येयमिति मुञ्ज-अण्, स्त्रियां ङीप्। मुञ्ज निर्मित मेखला, मूंजकी बनी हुई मेखला।

"मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्य च मौर्व्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी॥"

(संस्कारतत्त्व)

मौञ्जीतृणाख्य (सं० पु०) मौञ्जीतृणमित्याख्यास्य। मुञ्ज, मूंज।

मौञ्जीपत्ता (सं० स्त्री०) मौञ्जीपत्र-मिव पत्रमस्याः वल्वजा।

मौञ्जीय (सं० त्रि०) मुञ्ज सम्बन्धीय, मूंजका बना हुआ।

"वर्णत्वमाश्रमत्वञ्च योऽधिकृत्य प्रवर्त्तते।
स वर्णाश्रमधर्मस्तु मौञ्जीया मेखला यथा॥"

(मनुटी०कु० २।२५)

मौढ्य (सं० क्लो०) मूढ़स्य भावः कर्म्म वा। (गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्। १ मोह।

"यो मां सर्व्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्च्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः॥"

(भागवत ३।२९।२२)

२ मूढ़ता। (पु०) मूढ़स्यापत्यं (कुर्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति ण्य। २ मूढपुत्र।

मौण्ड्य (सं० क्ली०) मुण्ड-ष्यञ्। केशवपन, मुण्डन।

"या तु कन्या प्रकुर्यात् स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति।
अंगुल्योरेव च छेदं खरेणोद्वहनं तथा॥" (मनु० ८।७०)

मौत (अ० स्त्री०) १ मरनेका भाव, मरण। २ वह देवता जो मनुष्यों वा प्राणियोंके प्राण निकालता है, मृत्यु। ३ मरनेका समय, काल। ४ अत्यन्त कष्ट, आपत्ति।

मौताद (अ० स्त्री०) मात्रा।

मौत्र (सं० क्ली०) मूत्र-अण्। मूत्र सम्बन्धीय।

मौद (सं० पु०) मोदेन प्रोक्तमधीयते विदुर्वा। (छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि च। पा ४।२।६६) इति मोद-अण्। मोद नामक छन्दोवक्ता, अध्येता वा ज्ञाता अर्थात् यह छन्द जो बोलते हैं या अध्ययन करते हैं अथवा जिन्हें मालूम है।

मौदक (सं० क्ली०) १ मोदद्वष्ट। (त्रि०) २ मोदकसम्बन्धीय।

मौदकिक (सं० त्रि०) प्रकृता मोदकाः (समूहवच्च बहुषु। पा ५।४२) इति मोदक-ठक्। प्रकृत मोदक, प्रस्तुत मोदक।

मौदनेयक (सं० त्रि०) मोदेन (कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ्। पा ४।२।९४) इति ढकञ्। मोदनकर्तृक अनुष्ठेय।

मौदयानिक (सं० त्रि०) मोदमान (काश्यादिभ्यष्ठञ् ञिठौ। पा ४।२।११६) इति ञिठ्। मोदमानसम्बन्धी।

मौदहायन (सं० पु०) मोदहायनका गोत्रापत्य।

मौद्ग (सं० त्रि०) मुद्गेन संसृष्टः (मुद्गादण्। पा ४।४।२५) इति मुद्ग-अण्। मुद्गसंसृष्ट, मुद्गयुक्त। मुद्ग या मूंगके संयोगसे जो कुछ रांधा जाता है उसे मुद्ग कहते हैं।

मौद्गल (सं० पु०) मुद्गलस्य ऋषेर्गोत्रापत्यं (कण्वादिभ्यो गोत्रे। पा ४।२।१११) इति अण्। मौद्गल्य, मुद्गलऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

मौद्गलि (सं० पु०) काक, कौआ।

मौद्गल्य (सं० पु०) मुद्गलस्यापत्यमिति मुद्गल-ष्यञ्। १ मुद्गल ऋषिके पुत्रका नाम। ये एक गोत्रकार ऋषि थे। इस गोत्रके पांच प्रवर थे, यथा—और्व्व, च्यवन, भार्गव, जामदग्न्य और आप्नुवत्।

"मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः।"
(हरिवंश ३२।७०)

२ मुद्गल ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

मौद्गल्यायन (सं० पु०) गौतमबुद्धके एक प्रधान शिष्यका नाम।

मौद्गल्यीय (सं० त्रि०) मुद्गल (कृशाश्वादिभ्यश्छन्। पा ४।२।८०) इति छन्। १ मुद्गल ऋषि जिस देशमें रहते थे उस देशमें। २ मुद्गलसे निवृत्त। ३ मुद्गलनिवास। ४ मुद्गलके आस पासका देश।

मौद्गिक (सं० त्रि०) मुद्गैः क्रीतं (तेन क्रीतं। पा ५।१।३७) मुद्ग-ठञ्। मुद्ग द्वारा क्रीत, मूंगसे खरीदा हुआ।

मौद्गीन (सं० त्रि०) मुद्गेन जीवति खञ्। १ मुद्ग द्वारा जीविका निर्वाहकारी, जो मूंगका व्यवसाय कर अपनी गुजर करता हो। (क्ली०) मुद्गानां भवनं क्षेत्रमिति मुद्ग (धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्। पा ५।२।१) इति खञ्। २ मुद्गभवोचित क्षेत्र, वह खेत जिसमें मूंग उत्पन्न होती हो।

मौधा—युक्तप्रदेशके हमीरपुर जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २५° ३०' से २५° ५२' उ० तथा० देशा० ७९° ४३' से ८०° २७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४५२ वर्गमील और जनसंख्या ६० हजारके करीब है। इसमें मौधा नामक १ शहर और १३० ग्राम लगते हैं। इसके पूर्वमें केन और पश्चिममें विरमा है। तहसीलकी अधिकांश भूमि उर्वरा है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५° ४०' उ० तथा० देशा० ८०° ७' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ६ हजारसे ऊपर है। ७१३ ई०में मदनपाई नामक एक परिहार राजपूतने इस नगरको बसाया। इलाहाबादके मुगल-शासनकर्त्ताके लड़के दलीर खांके मारे जाने पर यहां उसका मकबरा तैयार किया गया था। यहां चौखारीके राजा खुमानसिंह और गुमानसिंह द्वारा प्रतिष्ठित एक भग्न दुर्ग देखनेमें आता है। बांदाके मुसलमान राजा अली बहादुरने उस दुर्गके ऊपर पत्थरका एक मजबूत किला बनवाया था। सिपाही-युद्धके समय महाराष्ट्र-सेनापति भास्कररावने इस दुर्ग पर कचौढ़ाई

थो। शहरमें एक अमेरिकन मिशन और एक मिडिल स्कूल है।

मौन (सं० क्लो०) मुनेर्भावः इति मुनि-अण्। १ शब्द-प्रयाग-रहित, न बोलनेकी क्रिया या भाव, चुप्पी। पर्याय—अभाषण, तूष्णी, तूष्णीक। (अमर)

"ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघा विपर्य्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य स प्रसवा इव॥"
(रघु० १।२२)

'ना पृष्टः कस्यचित् ब्रूयात्' इस शास्त्रानुसार, विना पूछे कोई बात न कहनी चाहिये। यदि कहीं पर किसी विषयकी आलोचना की गई हो तथा वहां उस विषयसे जानकार व्यक्ति उपस्थित हो पर उससे कोई विषय पूछा न गया हो ; तो उसे मौन रहना ही उचित है। चाणक्य-ने कहा है, कि जहां मूर्ख लोग वाद-प्रतिवाद करते हों वहां मौन अवलम्बन करना चाहिये।

"दर्दुरा यत्र भाष्यन्ते मौनं तत्रैव शोभनम्॥"
(चाणक्य)

स्मृतिमें लिखा है, कि मैथुन, दन्तधावन, स्नान, मलमूत्रत्याग और भोजनके समय मौनावलम्बन करना उचित है।

"उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने।
स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्॥" (तिथितत्त्व)

वाक्नियमनको मौन कहते हैं। यह एक प्रकारकी तपस्या है।

२ मुनिव्रत, मुनियोंका व्रत। ३ फागुन महीनेका पहला पक्ष। (त्रि०) ४ चुप, जो न बोले।

मौन (हिं० पु०) १ पात्र, बरतन। २ डब्बा। ३ मूंज आदिका बना टोकरा या पिटारा।

मौ नगर—युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° ३′ ३०″ उ० तथा देशा० ७८° ४०′ १५″ पू०के मध्य गाङ्गन नदीसे १ कोस पूरबमें अवस्थित है। यहां सूती कपड़े बुननेका अच्छा कारबार चलता है।

मौनता (सं० स्त्री०) मौन होने या रहनेका भाव, चुप होना।

मौनतुण्ड (सं० त्रि०) मौनं तुण्डं यस्य अवनतमस्तकः नीचा मुंह।

मौनभट्ट (सं० पु०) १ उत्तररामचरितके टीकाकार नारायणके पूर्वपुरुष। २ तर्करत्नाकरसेतुके प्रणेता दामोदरके पिता।

मौनव्रत (सं० क्ली०) मौनमेव व्रतम्। मौन धारण करनेका व्रत। इस व्रतमें वाक्नियमन आवश्यक है।

मौनव्रतिन् (सं० त्रि०) मौन व्रतमस्यास्तीति इति। मौनव्रतावलम्बी, चुप रहनेवाला।

मौनव्रती—उपासक सम्प्रदायविशेष। ये लोग संन्यासाश्रमी हैं, किसीके भी साथ बोलचाल नहीं करते। ये संयतवाक् हो कर केवल परमार्थसाधनके उद्देशसे मौनव्रतका अवलम्बन कर भगवच्चिन्तामें निमग्न रहते हैं, इसीसे इनको मौनी या मौनव्रती कहते हैं।

मौना (हिं० पु०) १ घी या तेल आदि रखनेका एक विशेष प्रकारका बरतन। २ सींक या कोस और मूंजका तंग मुंहका ढक्कनदार टोकरा, पिटारी। ३ कांस और मूंजसे बुन कर बनाया हुआ टोकरा जिसमें अन्न आदि रखा जाता है।

मौनाटभञ्जन—युक्तप्रदेशके आजमगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५° ५७′ ५″ उ० तथा देशा० ८३° ३५′ ४०″ पू०के मध्य तौंसनदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। आईन-इ-अकबरीमें भी इस प्राचीन नगरका उल्लेख है। शाहजहां बादशाहने अपनी कन्या जहानाराको यह नगर दान किया था। उस समय यह नगर ८४ महल्लोंमें बंटा था तथा यहां ३६० मसजिदें थीं। अङ्गरेजी अमलदारीके शुरूमें यह नगर फैजाबाद-बेगमोंकी जागीर था। उसके पहलेसे शासनविशृङ्खलताके कारण स्थानीय समृद्धिका बहुत कुछ ह्रास हो गया है। यहां साइन नामक एक प्रकारका सूती कपड़ा बनता है। विलायती सूतेकी आमदनीसे इसमें शिथिलता आ गई है।

मौनिक (सं० त्रि०) मुनिरिव (अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्। पा ५।३।१०८) इति इवार्थे ठक्। मुनि तुल्य, मुनिके समान।

मौनिचिति (सं० पु०) मुनिचित (सुतङ्गमादिभ्य इञ्। पा ४।२।८०) इति इञ्। १ मुनिचित जहां विद्यमान हैं

२ मुनिचितसे निवृत्त। ३ मुनिचितका निवास। ४ मुनिचितके पासका देश।

मौनित्व (सं० क्ली०) मौनिनो भावः त्व। मौनीका भाव वा धर्म, मौन।

मौनिन (सं० त्रि०) मौनमस्यास्तीति मौन (अत इनि ठनौ। पा ५।२।११५) इति इनि। १ मौनयुक्त, चुप रहनेवाला। २ मुनि।

"ततः स चिन्तयामास राजा जामातृकारणम्।
विवेद च न तन्मौनी जगृहेऽर्थञ्च तं नृपः॥"
(मार्कण्डेयपु० ७५।३६)

मौनिस्थलिक (सं० त्रि०) मुनिस्थल (कुमुदादिभ्यष्ठक्। पा ४।२।८०) इति ठक्। १ मुनिस्थलयुक्त स्थान। २ मुनिस्थलसे निवृत्त। ३ मुनिस्थलका निवास। ४ मुनिस्थलका देश।

मौनि (सं० त्रि०) मौनिन् देखो।

मौनी (हिं० स्त्री०) करोरेके आकारकी टोकरी। यह प्रायः कांस और मुंजसे बुन कर बनाई जाती है।

मौनीवावा—एक ब्राह्मधर्मावलम्बी। सन् १८५६ ई०में नदिया जिलेके अन्तर्गत आवुदिया नामक गांवमें कायस्थ वंशमें मौनीबावाका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम रामचन्द्र घोष था। वे परम वैष्णव और हरिभक्तिपरायण थे। गृहस्थी अच्छी न होनेके कारण रामचन्द्र पावनामें रह कर काम काज किया करते थे। रामचन्द्रके दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्यारीलाल और छोटेका नाम हीरालाल था। ये दोनों भाई भी पावनाके अंगरेजी स्कूलमें पढ़ते थे। उस स्कूलके एक अध्यापक ब्राह्म थे। वे प्यारीलालका पवित्र जीवन देख कर ईश्वरभक्ति तथा ब्राह्मधर्मका उपदेश उन्हें दिया करते थे।

ये दोनों बालक ज्यों ज्यों बढ़ने लगे त्यों त्यों उनका धर्मभाव प्रबल होने लगा। इसी समय उनके माता पिताका वियोग हुआ। माता पिताकी मृत्युके अनन्तर इन बालकोंने प्रकाशरूपसे ब्राह्म धर्म ग्रहण कर लिया।

ब्राह्मधर्म ग्रहण करनेके साथ ही साथ हिन्दू धर्मसे इनका सम्बन्ध टूट गया। इससे इन्हें अर्थका कष्ट होने लगा। प्यारीलालने अपने छोटे भाईके पढ़नेका खर्च चलानेके लिये पढ़ना छोड़ कर एक नौकरी कर ली। वह पहले पहल जलपाईगुड़ीके विद्यालयमें शिक्षक नियुक्त हुआ। तदनन्तर रङ्गपुरके अन्तर्गत गोपालपुरके अङ्गरेजी स्कूलमें प्रधान शिक्षकका काम करने लगा। बहुत दिनों तक यह यही काम करता रहा।

प्यारीलालने अध्यापक होते ही अपना ब्याह कर लिया था। अधिक देर तक निद्रा न आवे इस लिये वह एक बेंच पर सोया करता था। दिन रात मिला कर वह ३।४ घंटे ही सोता था; प्यारीलाल घरमें रह कर घरके काम धंधोंसे जो कुछ समय पाता उसमें वह भगवद्भजन किया करता था।

इस प्रकार साधन भजन तथा संसारका काम करते करते प्यारीलालको बारह वर्ष बीत गये। इसी समय उसकी स्त्री भी मर गई। स्त्रीके मरनेसे वह कुछ व्याकुल अवश्य हुआ था, परन्तु उसी व्याकुलता वैराग्यके रूपमें परिणत हो गई। स्त्रीके मरते ही उसने घरके काम धंधे छोड़ दिये और एकान्तमें रह कर वे भजन पूजन करने लगे।

प्यारीलालकी स्त्रीके मरने पर उसके मित्रोंने उससे पुनः ब्याह करनेके लिये अनुरोध किया था परन्तु उन्होंने एक भी न सुना। इसी अवसरमें इनके छोटे भाई पढ़ना छोड़ कर रुपया कमाने लगे। प्यारीलालने अच्छा अवसर देख छोटे भाईको घरका काम सौंप दिया और आप भजन करनेके लिये चित्रकूट चले गये। प्यारीलालने निःसहाय अवस्थामें ब्राह्म धर्म ग्रहण किया था, परन्तु उनके हृदयमें हिन्दू-धर्मके लिये पिपासा जागृत थी। इसी कारण उन्होंने पर्वतगुहामें जा कर योग साधनेका विचार ठान लिया।

तीन वर्ष तक चित्रकूटके पर्वत पर योग साधन कर प्यारीलाल ओंकारनाथ पर्वत पर योग साधन करनेके लिये चले गये। ओंकारनाथ पर्वत योगसाधनके लिये एक उत्तम स्थान है। वहां आ कर अनेक साधु संन्यासी योगसाधन तथा तपस्या करते हैं। प्यारीलालने उस पर्वत पर अपने लिये एक उत्तम स्थान बना लिया। एक वर्ष तक उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की थी। इस बीचमें आसन छोड़ कर उठते उन्हें किसीने नहीं देखा था। उनकी कठिन तपस्या देख कर लक्ष्मीनारायण सेठ नामक

एक धनीने उनके लिये एक गुफा बनवा दी थी। इस गुफामें आ कर प्यारीलाल पहलेकी अपेक्षा और अधिक दृढ़तासे योगसाधन करने लगे। इसी समय उन्होंने मौनव्रतका अवलम्बन किया था। वे किसीसे बातचीत नहीं करते थे। इसी प्रकार छः महीनेके बाद मौनीवाबा-के नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई।

मौनीवाबाके दर्शनके लिये समय समय उनकी गुहाके बाहर बड़ी भीड़ लग जाया करती थी। सभी अपने अपने दुःखके निवारणके लिये मौनीवाबाके समीप जाया करते थे। पूर्वोक्त धनीने एक बार कहा था "पहले मैं बड़ा दरिद्र था जिस दिनसे मौनीवाबाकी कृपा हुई है उसी दिनसे हमारे धनकी वृद्धि होने लगी है।' मौनीवाबा अपने शरीरकी रक्षाका कुछ भी प्रयत्न नहीं करते थे। वे पाव भर दूध और एक छटाक विल्वपत्रका रस पीते थे। ७१ वर्षकी अवस्थामें सन् १८९६ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

मौनेय (सं० पु०) मुनेरपत्यं पुमान् मुनि (इतश्चानिञ्। पा ४।१।१२२) इति ढक्। गन्धर्वगणविशेष*, गन्धर्वों और अप्सराओं आदिका एकमातृक गोत्र। इन जातियोंमें माताका गोत्र प्रधान होता है। क्योंकि इनके पिता अनिश्चित होते हैं।

मौन्दा—नागपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २१° ८´ उ० तथा देशा० ७९° २२´ पू०के मध्य कानाटो नदीके किनारे अवस्थित है। यह स्थान यशोवन्तराय गुजरके अधिकारमें है। यहां उनका बनाया हुआ एक किला है। स्थानीय कपड़ेके कारबारके कारण यह स्थान प्रसिद्ध है।

मौर (हिं० पु०) १ एक प्रकारका शिरोभूषण। यह ताड़-पत्र या खुखड़ी आदिका बनाया जाता है। २ शिरोमणि, सरदार। ३ छोटे छोटे फूलों वा कलियोंसे गुथी हुई लम्बी लम्बी लरोंवाला घौद, मंजरी। ४ गरदनका पिछला भाग जो सिरके नीचे पड़ता है, गरदन।

मौरजिक (सं० त्रि०) मुरजस्तद्वादनं शिल्पमस्य मुरज-(पा ४।४।५५) इति ढक्। मुरजवादक, मृदंग बजानेवाला।

मौरना (हिं० क्रि०) वृक्षों पर मंजरी लगना, आम आदिके पेड़ों पर बौर लगना।

मौरव (सं० त्रि०) दैत्यराज मुरुका वंशोद्भव।

मौरसिरी (हिं० स्त्री०) मौलसिरी देखो।

मौरी (हिं० स्त्री०) छोटा मौर जो विवाहमें वधूके सिर पर बांधा जाता है।

मौरूसी (अ० वि०) बाप दादाके समयसे चला आया हुआ, पैतृक।

मौर्ख्य (सं० क्ली०) मूर्खस्य भावः ष्यञ् (वर्णदृढ़ादिभ्यः ष्यञ्च। पा ५।१।१२३) मूर्खका भाव या धर्म, बेवकूफी।

मौर्य (सं० पु०) मुराया अपत्यं मुरा-ण्य। मुराका अपत्य, चन्द्रगुप्त।

मौर्य—भारतका एक पराक्रान्त प्राचीन राजवंश। बहुत-से पुराणोंका मत है, कि चन्द्रगुप्तसे ही मौर्यवंशका अभ्युदय हुआ है। विष्णुपुराणके टीकाकारने लिखा है—"चन्द्रगुप्तं नन्दस्यैव पत्न्यन्तरस्य मुरासंज्ञकस्य पुत्रं मौर्याणां प्रथमम्।" अर्थात् नन्दके मुरा नामक एक स्त्री थी, उसी स्त्रीके गर्भसे चन्द्रगुप्तका जन्म हुआ था। ये ही मौर्य राजाओंमें प्रथम थे। मुद्राराक्षसके ४थें अङ्कमें "मौर्योऽसौ स्वामिपुत्रः परिचरणपरो मित्रपुत्रस्तवाह" इत्यादि मलयकेतु-की उक्ति द्वारा चन्द्रगुप्तको नन्दका पुत्र कहा जा सकता है।

दक्षिणा पथसे जो एक संस्कृत ग्रन्थ आविष्कृत हुआ है, उसमें भी लिखा है, कि नन्द राजाओंके मध्य सर्वार्थसिद्धि एक थे। उनके दो स्त्री थीं, मुरा और सुनन्दा। मुराके गर्भसे मौर्य और सुनन्दाके गर्भसे नवनन्द उत्पन्न हुए। सर्वार्थसिद्धिने आगे चल कर नवनन्दको राजा और मौर्यको सेनापति बनाया था। यथासमय मौर्यके १०० पुत्र हुए जिनमेंसे एकमात्र चन्द्रगुप्तने ही नवनन्दके कराल कवलसे रक्षा पाई थी। चन्द्रगुप्त शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

---

* "गन्धर्वाप्सरसः पुण्या मौनेयांस्तु निबोधत।
चित्रसेनोग्रसेनौ तु ऊर्णायुरनिघस्तथा॥
धृतराष्ट्रस्तथोमांश्च सूर्यवर्चास्तथैव च।
युगवत् तृणपत् कार्ष्णो निदिश्चित्ररथस्तथा॥
त्रयोदशः शालिशिरः पर्यन्यश्च चतुर्दशः।
इत्येते देवगन्धर्वाश्चतुर्त्रिंशच्छुभाप्सरा॥"
(अग्निपुराण)

दक्षिण-देशीय बौद्धग्रन्थोंमें मौर्यवंशकी उत्पत्ति और प्रकारसे दिखलाई गई है। बुद्धघोषरचित विनयपिटककी समन्तपासादिका नामक टीका और महानाम स्थविर-कृत महावंशटीकामें लिखा है,—

चन्द्रगुप्तकी माता मोरिय-नगराधिपकी पटरानी थी। एक दुर्दान्त राजाने मोरिय-नगरको जीत कर राजाको मार डाला। उस समय उनकी पटरानी गर्भवती थीं। वे अपने बड़े भाईकी सहायतासे पुष्पपुरमें भाग आई और वहीं रहने लगीं। यथासमय उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वही पुत्र पीछे चन्द्रगुप्त-मौर्यवंशीय राजकुमार कहलाया।

जैनाचार्योंका मत कुछ और है। उत्तराध्ययनटीका और हेमचन्द्रके स्थविरावलि-चरितमें इस प्रकार लिखा है,—

"राजा नन्दके मयूरपोषकगण जहां रहते थे उस मयूरपोषक ग्राममें चाणक्य परिव्राजकके वेशमें भिक्षाके लिये वहां उपस्थित हुए। मयूरपोषकके दलपतिकी कन्या उस समय आसन्न-प्रसवा थी। उसकी चन्द्रपान करनेकी इच्छा हुई। किस प्रकार उसकी इच्छा पूरी हो, घरवालोंने चाणक्यसे यह बात कही। चाणक्यने कहा, 'यदि उत्पन्न होते ही वह पुत्र मुझे दिया जाय, तो मैं उपाय बता सकता हूं।' इच्छा पूरी नहीं होनेसे गर्भ-नाश होगा, इस प्रकार आशङ्का कर उसके माता पिता चाणक्यकी बात पर राजी हो गये। अनन्तर चाणक्यने उपरमें एक वस्त्रसे ढका हुआ गुप्त छेददार तृण-मण्डप और नीचे जल-पूर्ण पात्र प्रस्तुत किया। पूर्णिमाकी रातको गर्भिणीने उस जलके भीतर प्रतिविम्बित पूर्ण-चन्द्रको देखा और चन्द्रसुधा पान कर परितृप्त हुई। गुप्त-छेददार तृणमण्डपके मध्य चन्द्रसुधा पान करके पुत्र उत्पन्न हुआ था। इस कारण उसका नाम चन्द्रगुप्त पड़ा। ये मयूरपोषक-कुलसे उत्पन्न हुए हैं।*

गुर्विणीं तत्र संक्रान्तं पूर्णेन्दुं तमदर्शयत्।
पिवेत्युक्त्वा च सा पातुमारेभे विकसन्मुखी॥
सापाद्यथा यथा गुप्तपुरुषेण तथा तथा।
प्यधीयत पिधानेन तच्छिद्रं तार्णमण्डपम्॥
पूरिते दोहदे चैवं समयेऽसूत सा सुतम्।
चन्द्रगुप्ताभिधानेन पितृभ्यां सोऽभ्यधीयत॥
चन्द्रवच्चन्द्रगुप्तोऽपि व्यवर्द्धत दिने दिने।
मयूरपोषककुलोत्पन्नलिनीवनभासकः॥"

(परिशिष्टपर्व ८।२३५ २४६)

प्रत्नतत्त्वविद् राजा राजेन्द्रलाल मित्रका कहना है, कि नेपाली बौद्ध ग्रन्थ पढ़नेसे विन्दुसारको चन्द्रगुप्त-का पुत्र वा मौर्यवंशीय नहीं कह सकते। चन्द्रगुप्त मौर्य-वंशके प्रथम और शेष राजा थे*। किन्तु यह बात ठीक नहीं जंचती।

नेपाली बौद्धग्रन्थ दिव्यावदानमें विन्दुसार और उनके पुत्र अशोकको मौर्य ही बतलाया गया है†। सभी पुराण, पालि महावंश और दीपवंशके मतसे चन्द्रगुप्तके बाद उनके लड़के विन्दुसार राजा हुए थे। विन्दुसार-के बाद अशोकने राजसिंहासन को सुशोभित किया। किन्तु नेपाली बौद्ध ग्रन्थमें चन्द्रगुप्तका नाम नहीं आया है तथा मौर्यराज अशोकका ऐसा परिचय है,—

राजगृहके राजा विम्बिसार थे। विम्बिसारके पुत्र अजातशत्रु, अजातके उदयी, उदयीभद्रके मुण्ड, मुण्डके काकवर्णी, काकवर्णीके सहली, सहलीके तुलकुची, तुलकुचीके महामण्डल, महामण्डलके प्रसेनजित्, प्रसेन-जित्के नन्द, नन्दके विन्दुसार और विन्दुसारके बड़े पुत्र सुसीम और छोटे पुत्र अशोक थे।

(दिव्यावदान-पांशुप्रदावदान)

पौराणिक लोग नन्दके साथ मौर्यवंशका सम्बन्ध जानते थे, यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है। अभी नेपाली बौद्ध ग्रंथमें उसीका समर्थन देखा जाता है।

---

* "चाणक्योऽकारयच्चाथ सच्छिद्रं तृणमण्डपम्।
पिधानधारिणं गुप्तं तदूर्द्ध्वं चामुचन्नरम्॥
तस्याधो ऽकारयामास स्थालं च पयसाभृतम्।
उर्ज्जराकानिशीथे च तत्रेन्दुः प्रत्यविम्बत॥

* Dr. R. Mitra's Indo Aryans, Vol, 11

† "त्यागशूरो नरेन्द्रोऽसौ अशोको मौर्यकुञ्जरः।
जम्बूद्वीपेश्वरो भूत्वा जातोऽद्धर्मलकेश्वरः॥"

(दिव्यावदान-अशोकावदान २९)

किन्तु उक्त वंशपरिचयके मध्य चन्द्रगुप्तका नाम क्यों नहीं आया, कह नहीं सकते।

पौराणिक मतसे महानन्दिसे ही क्षत्रिय राजवंशका ध्वंस हुआ। मालूम होता है, कि इसी मतका समर्थन करते हुए मुद्राराक्षस नाटककारने चन्द्रगुप्तको 'वृषल' कहा है। किन्तु उत्तरापथके संस्कृत नेपाली बौद्ध-ग्रन्थ में तथा दक्षिणापथके पाली बौद्ध-ग्रन्थमें मौर्यवंशको विशुद्ध क्षत्रिय* बतलाया है। यहां तक कि सम्राट् अशोक जब रोगसे मरणापन्न थे, उस समय तिष्यरक्षिताने उन्हें प्याज खानेकी व्यवस्था दी थी। इस पर उन्होंने कहा था, 'देवि! अहं क्षत्रियः कथं पलाण्डुं परिभक्षयामि†।" (दिव्यावदान) अर्थात् मैं क्षत्रिय हूं, किस प्रकार प्याज खाऊंगा। प्रियदर्शी देखो।

अशोककी ऐसी उक्तिसे स्पष्ट मालूम होता है, कि वे केवल नामके क्षत्रिय नहीं थे, वरन् आहार व्यवहारमें क्षत्रियोचित नियमका पालन कर चलते थे। चन्द्रगुप्तके समय मौर्य्याधिकार समस्त उत्तर-भारतमें फैला हुआ था। पीछे उनके पोते अशोक प्रियदर्शीने हिमाचलसे ले कर कुमारिका तक अपना अधिकार फैलाया, किन्तु उनके वंशधरोंकी वैसी ख्याति, प्रतिपत्ति और आधिपत्य था वा नहीं, संदेह है। प्रियदर्शीने अन्तमें बौद्धधर्म ग्रहण किया था, किन्तु उनके उत्तराधिकारियोंने ठीक उसी प्रकार बुद्ध, धर्म और सङ्घकी सेवा की थी, ऐसा मालूम नहीं होता। उनके पोते दशरथके अनुशासनसे जाना जाता है, कि उन्होंने जैन आजीवकोंकी सेवामें प्रचुर दान किया था।

विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य और भागवतपुराणके मतसे मौर्यवंशीय १०।११ राजाओंने १३७ वर्ष राज्य किया था। महावंशके मतसे चन्द्रगुप्त ३४ वर्ष, विन्दुसार २८ वर्ष और अशोक ३७ वर्ष राज्य कर गये हैं।

किन्तु विभिन्न पुराणमें मौर्यराजाओंका नाम और शासन काल कुछ और प्रकारसे लिखा है। जैसे—

ब्रह्माण्डपु०	विष्णुपु०	मत्स्यपु०	भागवतपु०
१। चन्द्रगुप्त २४	चन्द्रगुप्त	चन्द्रगुप्त	
२। विन्दुसार वा	विन्दुसार	वारिसार	
भद्रसार २५			
३। अशोक ३६	अशोक	अशोक	अशोक
४। कुणाल ८	सुयशा	सुयशा	
५। बन्धुपालित ८	दशरथ	दशरथ	सगल
६। हर्ष ८			
७। सम्प्रति ६	सङ्गत		
८। शालिशूक १३	शालिशूक	शालिशूक	
९। देवशर्मा ७	सोमशर्मा	सोमशर्मा	
१०। शतधन्वा	शतधन्वा	शतधन्वा	
११। बृहद्रथ	बृहद्रथ		

पुराणके मतसे बृहद्रथ मौर्यवंशीय अन्तिम राजा थे, किन्तु बौद्ध लोग इसे स्वीकार नहीं करते। चीनपरिव्राजक यूएनचुवंगने दावेके साथ कहा है, कि मगधाधिप पूर्णवर्मा ही अशोक वंशके अन्तिम राजा थे। कर्णसुवर्णराज शशाङ्कने जब बोधिवृक्ष नष्ट करनेकी चेष्टा की, तब इन पूर्णवर्म राजाने ही (प्रायः ५६० ई०में) बोधिवृक्षको पुनः सञ्जीवित किया था।

इधर नेपाली बौद्धग्रन्थ दिव्यावदानमें लिखा है, कि पुष्यमित्र ही मौर्यवंशके अन्तिम राजा थे। दिव्यावदानमें अशोकसे पुष्यमित्र की पुरुषपरम्परा इस प्रकार लिखी है—अशोक, उनके लड़के बृहस्पति, बृहस्पतिके लड़के वृषसेन, वृषसेनके लड़के पुष्यधर्मा और पुष्यधर्माके लड़के पुष्पमित्र वा पुष्यमित्र थे। इस पुष्पमित्रसे ही मौर्यवंश समुच्छिन्न हुआ।

"यदा पुष्यमित्रो राजा प्रभाति
तदा मौर्यवंशः समुच्छिन्नः।"

पुष्पमित्र शब्द देखो। (दिव्यावदान)

सम्भवतः मौर्यवंशका राज्य खो जाने पर भी इसका प्रभाव हठात् विलुप्त नहीं हुआ। यहां तक, कि ५०० शकमें उत्कीर्ण बदामीकी गुहालिपिसे जाना जाता है, कि चालुक्यराज कीर्त्तिवर्माने दक्षिणापथकी नल, मौर्य

* "मोरियानं खत्तियानं वंशे जातं सिरिधरान्।
चन्द्रगुत्तोति पुञ्ञातन चानक्को ब्राह्मणो ततो॥"
(महावंश ५।१३)

† दिव्यावदान (Edited by E. B. Cowel, p. 409.)

आदि जातियोंको परास्त किया था। अधिक सम्भव है, कि उत्तरापथमें राज्यसम्पद् खो कर मौर्यवंशधरगण दाक्षिणात्यमें जा छोटे सामन्तराजरूपमें राज्य करते होंगे।

८वीं सदीमें कोटा-झालरापाटनसे मौर्यवंशने राज्याधिकार पाया था। झालरापाटने जो शिलालिपि आविष्कृत हुई है उससे जाना जाता है, कि ७४६ संवत्में मौर्यराज दुर्गगण राज्य करते थे। कोटाके निकटवर्त्ती कणस्वाग्रामस्थ महादेव-मन्दिरकी शिलालिपिमें लिखा है; कि मौर्यवंशीय संकुकके वंशधर और पुत्र राजा शिवगण ७६६ सम्वत्में विद्यमान थे।

मौर्य्यदत्त—दशकुमारचरितोक्त एक नायकका नाम।

मौर्य्यपुत्र—जैनमतानुसार ग्यारह गणाधिपोंमेंसे एक।

मौर्व्वी (सं० स्त्री०) मूर्वाया विकारः (मूर्वा अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः। पा ४.३।१३५) इति अण्-ङीप्। १ धनुर्गुण, धनुषकी प्रत्यंचा। २ अजशृंगी, मेढ़ासिंगी। ३ मूर्वामयी, मूर्वातृणसम्बन्धीय। क्षत्रियके उपनयनके समय मूर्वातृणकी मेखला पहले पहननी होती है।

"मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्य तु मौर्व्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी॥"
(मनु २।४२)

मौल (सं० पु०) मूलं वेदेति मूल-अण्। १ भूम्यादिका मूल ज्ञाता, प्राचीनकालके एक प्रकारके मन्त्री।

"यत्परम्परया मौलाः सामन्ताः स्वामिनं विदुः।
तदन्वयस्यागतस्य दातव्या गोत्रजैर्मही॥" (दायतत्त्व)

ये भूम्यादि समस्त मूलोंसे अवगत हैं इसलिये इन्हें मौल कहते हैं। इसका लक्षण—

"ये तत्र पूर्वं सामन्ताः पश्चाद्देशान्तरं गताः।
तन्मूलत्वात्तु ते मौलाः ऋषिभिः परिकीर्त्तिताः॥"

२ वह जो शत्रुओंके मध्य उदास रहता है।

(त्रि०) ३ मूलभूत, मूलसे सम्बन्ध रखनेवाला।

"मौला द्वादश यास्त्वेता ह्यमात्याद्यास्तथा च याः।
सप्ततिश्चाधिका ह्येताः सर्वं प्रकृतिमण्डलम्॥"
(कामन्दकी ८।२५)

मौलभारिक (सं० त्रि०) मूलभारं हरति, वहति आवहतीति वा मूलभार (तद्धरति वहत्यावहति भाराद्वंशादिभ्यः। पा ५।१।५०) इति ठञ्। मूलभारहरणकारी, वहनकारी।

मौलवी (अ० पु०) १ अरबी भाषाका पण्डित। २ मुसलमान धर्मका आचार्य जो अरबी, फारसी आदि भाषाओंका ज्ञाता हो।

मौलसिरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका बड़ा सदाबहार पेड़। इसकी लकड़ी अंदरसे लाल और चिकनी होती है जिससे मेज, कुर्सी आदि बनाई जाती है। यह दरवाजे और संगहे बनानेके काम आती है। इसके फूल मुकुटके आकारके तारेकी भांति छोटे छोटे होते हैं और उनसे इत्र बनाया जाता है। इसके फल पकने पर खाने योग्य होते हैं और बीजोंसे तेल निकलता है। इसकी छाल ओषधियोंमें काम आती है। इसका पेड़ बीजोंसे उत्पन्न होता है और सब देशोंमें लगाया जा सकता है। पश्चिमी घाट और कनाड़ाके जंगलोंमें यह स्वच्छन्दरूपसे उगता है। यह पेड़ बहुत दिनोंमें बढ़ता है। यह बरसातमें फूलता और शरद ऋतुमें फलता है। इसके फूल सफेद, कटावदार और छोटे छोटे बहुत ही कोमल और मीठी सुगन्धवाले होते हैं। इसका संस्कृत पर्याय—वकुल, केसर, सीधगंध, मुकुल, मधुपुष्प, सुरभि, शारदिक, करक और चिरपुष्प।

मौलि (सं० पु० स्त्री०) मूल सूतङ्गमादित्वात् इञ्। १ चूड़ा, किसी पदार्थका सबसे ऊंचा भाग।

"एवमुक्त्वा स वामेन यदा मौलिमुपास्पृशत्।
शिरश्च राजसिंहस्य पादेन समलोड़येत्॥"
(भारत ६।५६।५)

२ किरीट। ३ संयतकेश, जूड़ा। ४ मस्तक, सिर। ५ मुख्य या प्रधान व्यक्ति, सरदार। ६ अशोक वृक्ष। ७ भूमि, जमीन।

मौलिक (सं० पु०) मूले आद्ये जातः ठञ्। १ कुलीन भिन्न, राढ़ीय और वारेन्द्र ब्राह्मणोंमें 'श्रोत्रिय', दक्षिणराढ़ीय कायस्थोंमें 'मौलिक', दाक्षिणात्य वैदिक ब्राह्मणोंमें 'अन्यपूर्व-परिणेता', बङ्गज कायस्थोंमें 'मध्यल्य', ये लोग मौलिक कहलाते हैं। मध्यल्यका लक्षण—कुलमध्यस्थित कुलीनके विश्रामस्थलको मध्यल्य कहते हैं। दूसरा लक्षण, जैसे—

कुलोनको छोड़ अन्य सिद्धवंशमें जो जन्म ले कर दश पीढ़ी तक कुलाच्चना करता वह भी मध्यल्य कहलाता है। यह मध्यल्य फिर दो प्रकारका है, सिद्ध और साध्य। प्रकृत सिद्धवंशमें जन्म ले कर दश पीढ़ी तक यथारोति कुलाच्चेना करनेसे उसे सिद्ध और सिद्धपदका आकाङ्क्षितव रह कर दश पीढ़ी तक कुलाच्चेना करनेसे उसे साध्य कहते हैं।

दक्षिण-राढ़ीय कायस्थोंमें ८ घर सन्मौलिक वा सिद्ध मौलिक हैं; ये आठ घर इस प्रकार हैं, दत्त, सेन, दास, कर, गुह, पालित, सिंह और देव। वङ्गाल कायस्थोंमें गुह मौलिक नहीं हैं, कुलीन हैं। बहत्तर घर साध्य-मौलिक हैं।

साध्यमौलिक यथा—होड़, खर, धर, धरणी, वाण, आयिच, सोम, पैलुर, साम, भञ्ज, विन्द, गुण, वल, लोध, शर्मा, वर्मा, हुचि, मुंचि, चन्द्र, रुद्र, रक्षित, राज, आदित्य, विष्णु, नाग, खिल, पिल, गूत, इन्द्र, गुप्त, पाल, भद्र, ओम, अंकुर, वन्धुर, नाथ, शांय, हेश, मान, गण्ड, राहा, राणा, राहुत, साना, दाहा, दाना, गण, उपमाता, खाम, क्षोम, धोर, ओघ, वीद, तेजः, अर्णव, आश, शक्ति, भूत, ब्रह्म, शान, क्षेम, हेम, वर्द्धन, रङ्ग, गुई, कोर्त्ति, यशः, कुण्ड, नन्दी, शील, धनुः और गुण यही ७२ घर साध्यमौलिक हैं। (कुलाचार्यका॰)

२ देशविशेष। (मार्क॰पु॰ ५७।४८)

(त्रि॰) ३ मूलसम्बन्धी वा मौलसम्बन्धी। भारभूतं मूलं हरति वहति आवहति वा (तद्धरतिवहत्यावहतिभारात् वंशादिभ्यः। पा ५।१।५०) ४ मूलभारहारक, मूलभारवाहक वा नेता।

मौलिक्य (सं॰ क्ली॰) मूलिकस्य भावः कर्म वा (पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्। पा ५।१।१२८) इति मूलिक-यत्। मूलिकका कर्म।

मौलिन् (सं॰ त्रि॰) मुकुटधारी, जिसके सिर पर मौलि या मुकुट हो।

मौलिमण्डन (सं॰ क्ली॰) शिरोभूषण, मस्तकके एक अलंकारका नाम।

मौलिमाला (सं॰ स्त्री॰) शिरोशोभाके लिये एक प्रकारको माला।

मौलिमालिका (सं॰ स्त्री॰) वह फूल या मौलिकमाला जो मस्तककी शोभा बढ़ानेके लिये दी जाय।

मौलिमालिन् (सं॰ त्रि॰) शिरोमाल्यधृक्। उदयाचल-मौलिमालिन् शब्दसे सूर्यदेव जाना जाता है।

मौलेय (सं॰ पु॰) पुराणानुसार एक जाति।

मौलिरत्न (सं॰ क्लो॰) शिरोरत्न, सिरकी मणि।

मौलि (सं॰ त्रि॰) मौलिन् देखो।

मौल्य (सं॰ त्रि॰) मूल्यसम्वन्धीय।

मौषल (सं॰ क्ली॰) मूषलमिव, मूषलस्येदमिति वा मूषल-अण्। १ मूषलवत्, मूषलके समान। २ महाभारतके एक पर्वका नाम।

"मौषलं पर्व चोद्दिष्टं ततो घोरं सुदारुणम्।
महाप्रस्थानिकंपर्व स्वर्गारोहणिकं ततः॥"
(भारत आदिप॰)

(त्रि॰) ३ मूषलसम्बन्धी।

मौषिकि (सं॰ पु॰) मूषिकाके गर्भसे उत्पन्न।

मौषिकीपुत्र (सं॰ पु॰) शतपथ-ब्राह्मणके अनुसार एक आचार्यका नाम।

मौष्टा (सं॰ स्त्री॰) मुष्टिप्रहरणमस्यां क्रीड़ायां मुष्टि-ण्ण। मुष्टिप्रहरणक्रीड़ा, घूंसेकी मार, मुक्कामुक्की।

मौष्टिक (सं॰ पु॰) स्तेय, चोरी।

मौसम (अ॰ पु॰) मौसिम देखो।

मौसर (अ॰ वि॰) १ जो सुगमतासे मिल सके, सुप्राप्त। २ उपलब्ध, प्राप्त।

मौसल (सं॰ त्रि॰) मुसल-अण्। मूसल-सम्बन्धी, मूसलका।

मौसली (हिं॰ स्त्री॰) मौलसिरी देखो।

मौसल्य (सं॰ पु॰) मुसलस्य गोत्रापत्य (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति मुसल-यञ्। मूसल नामक ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

मौसिम (अ॰ पु॰) १ उपयुक्त समय, अनुकूल काल। २ ऋतु।

मौसिमी (फा॰ वि॰) १ समयोपयोगी, कालके अनुकूल। २ ऋतुसम्बन्धी, ऋतुका।

मौसियाउत (हिं॰ वि॰) मौसेरा।

मौसियायत (हिं॰ वि॰) मौसियाउत देखो।

मौसी (हिं० स्त्री०) माताकी बहिन, मासी।

मौसुल (सं० पु०) मुसलमान, मुसलिमका अपभ्रंश।

मौसेरा (हिं० वि०) मौसीके द्वारा सम्बद्ध, मौसीके सम्बन्धका।

मौहूर्त्त (सं० पु०) मुहूर्त्तमधीते वेद वा (तदधीते तद्वेद। पा ४।२।५०) इत्यण्। ज्योतिर्व्वेत्ता, मुहूर्त्त बतलानेवाला।

मौहूर्त्तिक (सं० पु०) मुहूर्त्तं तद्बोधकं शास्त्रमधीते वेद वा (ऋतुकथादिसुत्रान्तात् ढक्। पा ४।२।६०) इति, मुहूर्त्त-ढक्। १ ज्योतिर्व्वेत्ता, मुहूर्त्त बतलानेवाला। २ दक्षकी मुहूर्त्ता नामकी कन्यासे उत्पन्न एक देवगण।

"मौहूर्त्तिका देवगणा मुहूर्त्तायाश्च जज्ञिरे।"

(भागवत ५।१३।२२)

(त्रि०) ३ मुहुर्त्तोद्भव, मुहूर्त्तासे उत्पन्न।

म्याँव (हिं० स्त्री०) बिल्लीकी बोली।

म्यान (हिं० पु०) १ कोष जिसमें तलवार कटार आदिके फल रखे जाते हैं, तलवार कटार आदिका फल रखनेका खाना। २ अन्नमय कोश, शरीर।

म्याना (हिं० क्रि०) म्यानमें डालना, म्यानमें रखना।

म्यानी (फा० स्त्री०) पाजामेकी काटमें एक टुकड़ेका नाम जो दोनों पल्लोंको जोड़ते समय रानोंके बीचमें जोड़ा जाता है।

म्युनिसिपैल्टी (अं० स्त्री०) किसी नगरके नागरिकोंकी वह प्रतिनिधि-सभा जिसे उस नगरके स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा अन्यान्य आन्तरिक प्रबन्धोंका स्वतन्त्ररूपसे नियमानुसार अधिकार हो। प्रायः सभी बड़े नगरोंमें वहांकी सफाई, रोशनी, सड़कों और मकानों आदिकी व्यवस्था तथा इसी प्रकारके और अनेक कार्यों के लिये म्युनिसिपैलिटीका संघटन होता है। इसके सदस्योंका चुनाव प्रायः प्रति तीसरे वर्ष कुछ विशिष्ट योग्यतावाले नागरिकोंके द्वारा हुआ करता है।

म्युजियम (अं० पु०) वह स्थान जहां देश तथा विदेशके अनेक प्रकारके अद्भुत और विलक्षण पदार्थ संगृहीत हों, आजायब-घर।

म्यों (हिं० स्त्री०) बिल्लीकी बोली।

म्योंड़ी (हिं० स्त्री०) एक सदाबहार झाड़का नाम। इसमें केसरिया रंगके छोटे छोटे फूलोंकी मंजरियां लगती हैं डालियोंमें आमने सामने पत्तियां होती हैं जिनके बीचसे दूसरी शाखाएं निकलती हैं। इसकी पत्तियोंके बीचमें एक सींक होती है जिसके सिरे पर एक और दोनों ओर दो दो पत्तियां होती हैं जो कुल मिल कर पांच पांच होती हैं। यह झाड़ वनोंमें होता है और बागोंके किनारे बाढ़ पर भ लगाया जाता है। वैद्यकमें म्योंड़ी उष्ण और रूक्ष मानी गई है और इसका स्वाद कटु तथा तिक्त लिखा गया है। यह खांसी, कफ, सूजन और अफराको दूर करती है। इसका प्रयोग वात रोगमें भी होता है और इसकी पत्तियोंकी भाप बवासीरकी पीड़ाको दूर करती है। पर्याय—नीलिका, नीलनिर्गुंडी, सिंहक, सिंहवार, निर्गुण्डी।

म्रक्ष (सं० पु०) म्रक्ष घञ्। १ स्वदोष-गूहन, अपने दोषोंको छिपाना। २ म्रक्षण। ३ बध।

म्रक्षण (सं० क्ली०) म्रक्ष-कर्मणि ल्युट्। १ तैल। २ द्रव्यके द्रव्यान्तर द्वारा संयोजन। ३ स्नेहन, वशीकरण। ५ लेपन, लगाना। ६ तैल-घृताद्यभ्यङ्ग, तेल या घी लगाना। ७ अपने दोषोंको छिपाना, मक्कारी।

म्रदिमन् (सं० पु०) मृदोर्भावः मृदु (पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। पा ५।१।१२२) इति इम निच्। १ मृदुता, कोमलता। २ नम्रता, आजिजी।

म्रदिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन मृदुः, मृदु-इष्टेर्लोपः। अति मृदु, अत्यन्त कोमल।

म्रदीयस् (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन मृदुः, मृदुईयसु, टेर्लोपः। अति मृदु, अत्यन्त कोमल।

म्रातन (सं० क्ली०) कैवर्त्तीमुस्तक, केवटी मोथा।

म्रियमाण (सं० त्रि०) १ मृतकल्प, मृतप्राय। २ अवसन्न। ३ दुःखित। ४ अतिशय कातर।

म्लुक्त (सं० क्ली०) म्लुच्-क्त। चोरित।

म्लान (सं० त्रि०) म्लै हर्षक्षये क्त (संयोगादेरातोर्यण्वतः। पा ८।२।४३) इति निष्ठा तस्य न। १ मलिन, कुम्हलाया हुआ। २ दुर्बल, कमजोर। ३ मैला, मलिन। (पु०) ४ ग्लानि, शोक।

म्लानता (सं० स्त्री०) म्लानस्य भावः तल् टाप्। १ म्लान होनेका भाव, मलिनता। २ ग्लानि।

म्लानि (सं० स्त्री०) म्लै-नि, स च नित्। १ कान्तिक्षय, मलिनता। २ ग्लानि, शोक।

म्लायिन् (सं० त्रि०) म्लै-णिनि, युकागमः। १ म्लानियुक्त, म्लान। २ दुःखी।

म्लास्नु (सं० त्रि०) क्षीण, शीर्णतामाप्त।

म्लिष्ट (सं० त्रि०) म्लेच्छ क्त (क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धेत्यादि। पा ७।२।१८) इति सूत्रेण निपातितः। १ अस्पष्ट, जो साफ न हो। २ अव्यक्तवाणी बोलनेवाला, जो स्पष्ट न बोलता हो। ३ म्लान।

म्लेच्छ (सं० क्ली०) म्लेच्छस्तद्देशः उत्पत्तिस्थानत्वेनास्त्यस्य अर्श आदित्वादच्। १ हिङ्गुल, हींग।

"हिङ्गुलन्दरदं म्लेच्छमिङ्गुलञ्चूर्णपारदम्॥"

(भावप्रकाश)

(त्रि०) २ पामर, नीच। ३ जो सदा पाप कर्म करता हो, पाप-रत। (पु०) ४ अपभाषण, कटु वचन। ५ मनुष्योंकी वे जातियां जिनमें वर्णाश्रम धर्म न हो, किरात शवर पुलिन्दादि जातियां। हरिवंशमें लिखा है—इन्होंने आर्य्यजनोचित सभी धर्मोंको छोड़ दिया था। राजा सगरने अपनी प्रतिज्ञा पूरी तथा गुरुकी आज्ञाका पालन करनेके लिये इन लोगोंका धर्म तथा वेषभूषाको हरण कर लिया था। शकोंको आधा शिर मुंड़ाने, यवन और काम्बोजोंको समूचा शिर मुंड़ाने, पारदोंको खुले केश रहने और पह्लवोंको दाढ़ी मूंछ रखनेकी आज्ञा दे कर उन्हें वेदाध्ययन और वेदविहित कर्मानुष्ठान करनेसे मना कर दिया था।

"सगरः स्वां प्रतिज्ञाञ्च गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्मं जघान तेषां वै वेशान्यत्वं चकार ह॥
अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्।
जवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानान्तथैव च॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना॥"

(हरिवंश १५ अ०)

ये लोग अपने अपने धर्मका परित्याग करनेके कारण म्लेच्छ हो गये हैं। क्योंकि बौधायनस्मृतिमें लिखा है कि, जो गोमांस-खादक, विरुद्ध और बहुभाषी तथा सभी प्रकारके आचारविहीन हैं वे ही म्लेच्छ कहलाते हैं। अतएव यही सब जातियां स्वधर्म और आचारका परित्याग कर म्लेच्छ कहलाने लगी हैं।

"गोमांसखादको यश्च विरुद्धं बहु भाषते।
सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते॥"

(प्रायश्चित्ततत्त्व)

महाभारतमें लिखा है, कि जब विश्वामित्र वशिष्ठदेवकी पयस्विनी गायको चुरा लाये, तब पयस्विनी नन्दिनीने विश्वामित्रको परास्त करनेके लिये अपनी पूंछसे पह्लवोंकी, पलानसे द्राविड़ और शकोंकी, योनिसे यवनकी, गोबर, मूत और पार्श्वदेशसे शवरकी तथा फेनसे पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, वर्वर, खस, चिबुक, पुलिन्द, चीन, हूण, केरल आदि अनेक प्रकारके म्लेच्छोंकी सृष्टि की थी।

"असृजत् पह्लवान् पुच्छात् प्रस्रवाद्द्राविड़ाञ्छकान्।
योनिदेशाच्च यवनान् शकृतः शवरान् बहून्॥३६
मूत्रतश्चासृजत्काञ्चिच्छवरांश्चैव पार्श्वतः।
पौण्ड्रान् किरातान् यवनान् सिंहलान् वर्वरान् खसान्॥३७
चिबुकांश्च पुलिन्दांश्च चीनान् हूणान् सकेरलान्।
ससर्ज फेनतः सा गौम्र्लेच्छान् बहुविधानपि॥३८
तै विसृष्टै र्महासैन्यैर्नानाम्लेच्छगणैस्तदा।
नानावरणसंछन्नैर्नानायुधधरैस्तथा॥३९
अवाकीर्यत संरब्धै विश्वामित्रस्य पश्यतः॥"

(महाभारत १।१७५ अ०)

शब्दकल्पद्रुमकारने भागवतकी दुहाई दे कर लिखा है,—

"देवयान्यां ययाते र्द्वौ पुत्रौ यदुः तुर्वसुश्च। शर्मिष्ठायां त्रयः पुत्राः द्रुह्युः अनुः पुरुश्च। तत्र यदुप्रभृतयश्चत्वारः पितुराज्ञाहेलनं कृतवन्तः पित्रा शप्ताः। ज्येष्ठपुत्रं यदुं शशाप तव वंशे राजचक्रवर्त्ती माभूदिति। तुर्वसुद्रुह्यानून् शशाप युष्माकं वंश्या वेदबाह्या म्लेच्छा भविष्यन्ति। इति श्री भागवतम्॥"

अर्थात् राजा ययातिके दो स्त्री थीं, देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानीके गर्भसे यदु और तुर्वसु तथा शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्य, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इन सब पुत्रों मेंसे यदु आदि ४ पुत्रोंने ज

राजा ययातिकी आज्ञाका पालन न किया तब राजाने क्रोधमें आ कर उन्हें शाप दिया। ज्येष्ठ पुत्र यदुको शाप मिला, कि तुम्हारे वंशमें कोई भी राजचक्रवर्त्ती न होगा तथा तुर्वसु, द्रुह्य और अनुके वंशधर वेदमार्गविरहित म्लेच्छ होंगे।

किन्तु शब्दकल्पद्रुमका उक्त मतसमर्थक एक भी वचन भागवतमें देखनेमें नहीं आता। यदु, तुर्वसु वा द्रुह्युके सन्तान म्लेच्छत्वको प्राप्त नहीं हुए और न एक समय राज्यहीन ही हुए। यदि ऐसा होता, तो पुराणमें यादव आदि राजवंशोंका उल्लेख ही न रहता। यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुके वंशीय राजाओंके नाम भागवतमें ६म स्कन्धके २३वें अध्यायमें वर्णित है।

इन लोगोंके राज्यप्राप्तिके सम्बन्धमे भागवतमे इस प्रकार लिखा है—

"दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम्।
प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्रे उदीच्यामनुमीश्वरम्॥२२
भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम्।" (६।१९ अ०)

अर्थात् दक्षिण-पूर्वमें द्रुह्यु, दक्षिणमें यदु, पश्चिममें तुर्वसु और उत्तरमें अनु राजा बनाये गये थे। फिर भागवतमें दूसरी जगह लिखा है,—

"द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः। १४
आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः।
धृतस्य दुर्मदस्तस्मात् प्रचेताः प्राचेतसं शतम्॥१५
म्लेच्छाधिपतयोऽभवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः॥" (६।२३)

अर्थात् द्रुह्युके पुत्र बभ्रु, बभ्रुके सेतु, सेतुके आरब्ध, आरब्धके गान्धार, गान्धारके धर्म, धर्मके धृत, धृतके दुर्मद, दुर्मदके प्रचेता और प्रचेताके सौ पुत्र उत्पन्न हुए। इन्होंने म्लेच्छोंके अधिपति हो कर उत्तर दिशामें आश्रय लिया था।

महाभारतके आदिपर्व (८५ अ०)-में लिखा है,—ययातिके पुत्रोंके मध्य यदुके वंशमें यादव, तुर्वसुके वंशमें यवन, द्रुह्युके वंशमें भोज और अनुके वंशमें म्लेच्छ जाति उत्पन्न हुई है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि हरिश्चन्द्रवंशीय राजा बाहु, हैहय, तालजङ्घ आदि क्षत्रियोंसे परास्त हो कर अपनी रानीके साथ जंगल भाग गये थे। वहां रानीके जब गर्भ रहा, तब उसकी सपत्नीने गर्भस्तम्भनके लिये उसे विष खिला दिया। उस विषके प्रभावसे गर्भस्थ बालक ७ वर्ष तक गर्भमें रहा। राजा बाहु जो इस समय वृद्ध हो गये थे, और्व नामक ऋषिके आश्रममें पञ्चत्वको प्राप्त हुए। कुछ समय बीत जाने पर राजमहिषीने विषके साथ एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र प्रसव किया। और्वने उस पुत्रका जातकर्मादिकार्य करके 'सगर' नाम रखा। उपनयनादि संस्कार हो जानेके बाद और्वने उसे वेद, अखिलशास्त्र और भार्गवाख्य आग्नेय अस्त्रकी शिक्षा दी, पीछे सगरने जब मातासे इस वनवासका कारण और पिताका नाम पूछा, तब उसने आद्योपान्त सब कह सुनाया। इस पर सगरने क्रुद्ध हो कर पिताके राज्यापहरणकारियोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा करके प्रायः सभी हैहयोंको मार डाला। शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लवोंने सगरसे आहत हो कर वशिष्ठको शरण ली। अनन्तर वशिष्ठने इन लोगोंको जीवन्मृतप्राय देख कर सगरसे कहा, 'वत्स! इन मरे हुएको मारनेसे क्या लाभ? मैंने इन्हें तुम्हारी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये अपने धर्म और ब्राह्मण संसर्गको छुड़ा दिया है।' इस पर सगरने वशिष्ठदेवके कथनानुसार यवनोंको शिर मुड़ाने, शकको आधा शिर मुड़ाने, पारदोंको लंबे लंबे केश तथा पह्लवोंको मूंछ दाढ़ी रखनेका हुकुम दिया। इन सब क्षत्रियोंके अपने धर्मका परित्याग करनेसे ब्राह्मणोंने भी इन्हें छोड़ दिया। अतएव वे लोग म्लेच्छत्वको प्राप्त हुए। तभीसे उनके वंशधर म्लेच्छ जातिमें गिने जाने लगे।

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्ग नामक एक प्रजापति थे। उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाको ब्याहा था जिसके गर्भसे वेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पुत्र अत्यन्त अधार्मिक था। महर्षियोंने अधर्मके भयसे डर कर उसे अधर्मका त्याग करनेके लिये बहुत अनुनय विनय किया, पर वेनने उनकी बात पर कान नहीं दिया। इस पर महर्षियोंने उसे शाप दिया। उसी शापसे राजाकी मृत्यु हुई। अनन्तर ब्राह्मणोंने अराजक भयसे भयभीत हो इसकी देहको मथ डाला

जिससे म्लेच्छ जातिको उत्पत्ति हुई। ये लोग बिलकुल काले हैं*।

शास्त्रमें म्लेच्छ भाषा सीखनेसे मना किया है।

"न सातयेदिष्टकाभिः फलानि वै फलेन तु।
न म्लेच्छभाषां शिक्षेत नाकर्षेच्च पदासनम्॥"
(कूर्मपु० उपवि० १५ अ०)

म्लेच्छके साथ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये।

"जड़मूकान्धबधिरां स्तैर्य्यग्योनीन् वयोऽतिगान्।
स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान् मन्त्रकालेऽपसारयेत्॥"
(मनु० ७।१४९)

यह जाति पशुधर्मी है तथा सब प्रकारके आर्याचार-रहित है।

"गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यक्योनिगतेषु च।
पशुधर्मिषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यसि॥"
(भारत १८४।१५)

वृहत्पराशरसंहिता (१अ०)-में लिखा है,—

"हिमपर्वतविन्ध्याद्रौ विनशनप्रयागयोः।
मध्ये तु पावनो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परम्॥"

अर्थात् हिमालय और विन्ध्याद्रिके मध्य तथा विनशन (सरस्वतीके अन्तर्धानप्रदेश) और प्रयागके मध्यवर्त्ती जितने स्थान हैं, सभी पुण्यदेश हैं, -इसके बाहरका देश म्लेच्छदेश है।

वृहत्पराशरके मतसे—

"ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा जाता स्तेऽनुक्रमेण तु।
क्रमातिक्रमतश्चान्ये म्लेच्छान्य वर्णसम्भवाः॥" (६अ०)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जाति यथाक्रम उत्पन्न हुई। इनके परस्पर संस्रवसे अन्यान्य जातियोंकी उत्पत्ति हुई, किन्तु म्लेच्छ जाति एतद्भिन्न अन्य वर्णसे उत्पन्न हैं।

विष्णुपुराणके मतसे (६४ अ०)—"न म्लेच्छान्त्यजपतितैः सह सम्भाषणं कुर्यात्।" अर्थात् द्विजातिको म्लेच्छ, अन्त्यज और पतितके साथ आलाप नहीं करना चाहिये।

पराशरने भी कहा है—

"म्लेच्छलूनाशनस्पर्शे क्षेत्रे वा यदि वा खले।
उपस्पर्शे शिरः प्रोक्ष्य संशुद्धो जायते द्विजः॥"
"आममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसम्भवाः।
म्लेच्छभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः॥"
(वृहत्पराशर ६ अ०)

म्लेच्छको भोज्य द्रव्यादि छूने अथवा किसी क्षेत्र और स्थलादिमें उसके साथ संस्पर्श हो जानेसे द्विज व्यक्तिको चाहिये, कि मस्तक पर जल छिड़क कर शुद्ध हो लेवे।

कच्चा मांस, घी, मधु और फलोत्पन्न कोई भी स्नेह पदार्थ म्लेच्छके बरतनसे निकाल लेनेसे ही शुद्ध हो जाता है।

म्लेच्छकन्द (सं० पु०) म्लेच्छप्रियः कन्द इति मध्यपद-लोपिकर्मधा०। लशुन, लहसुन।

म्लेच्छजाति (सं० स्त्री०) म्लेच्छस्य जातिरिति ६-तत् पुरुषः, म्लेच्छरूपा जातिरिति वा। गोमांस खानेवाला, बहुविरुद्ध बोलनेवाला और सर्वाचारविहीन वर्ण।

"गोमांसखादको यस्तु विरुद्धं बहु भाषते।
सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते॥"
(प्रायश्चित्ततत्त्व)

अमरसिंहने किरात, शबर और पुलिन्द जातिको म्लेच्छ कहा है।

* "वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः।
मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीताति दुर्मुखी॥
सुतीर्था नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा।
अधर्मनिरतः कामी बलवान् वसुधाधिपः॥
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः।
धर्माचारप्रसिद्धार्थं जगतोऽस्य महर्षिभिः॥
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः॥
शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः।
ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः॥
तत्कायान्मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातयः॥
शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः॥"
(मत्स्यपु० १३।३-८)

"मेदाः किरातशवरपुलिन्दा म्लेच्छजातयः।" (अमर)

मनुमें लिखा है, कि पौण्ड्रक, औड्र, द्राविड़, कांवाज, जवन, शक, पारद, पह्लव, किरात, दरद, खश आदि क्षत्रिय जाति अपने धर्मोंके परित्याग करने तथा ब्राह्मणों द्वारा छोड़े जानेसे म्लेच्छजातित्वमें परिणत हुई थी।

"पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविड़ाः काम्बोजाः जवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः॥
मुखबाहूरूपज्जानां या लोके जातयो वहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्य्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥"
(मनु० १०।४४ ४५)

म्लेच्छदेश (सं० पु०) म्लेच्छानां देशः म्लेच्छप्रधानो देशो वा। चातुर्वर्ण्यव्यवस्थादिरहित स्थान। पर्याय—प्रत्यन्त। जिस स्थानके मनुष्य शिष्टाचारविहीन होते अथवा असंस्कृत बोलते हैं उस स्थानको म्लेच्छस्थान या म्लेच्छदेश कहते हैं।

"चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते।
म्लेच्छदेशः स विज्ञेय आर्यावर्त्तस्ततः परम्॥" (स्मृति)

जहां वर्णाश्रम धर्मका पालन नहीं होता तथा जहां ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ, और भिक्षु ये चार आश्रम नहीं हैं, वही स्थान म्लेच्छदेश है। भगवान् मनुने भी कहा है—

"चरति कृष्णसारस्तु मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परम्॥"
(मनु २।२३)

जिस देशमें कृष्णसार मृग स्वभावतः विचरण करता है वह देश यज्ञिय है अर्थात् पुण्यदेश है। एतद्भिन्न और सभी देश म्लेच्छदेश कहलाते हैं।

म्लेच्छन (सं० क्ली०) १ अस्फुटकथा, गूढ़ बात। २ म्लेच्छ भाषामें कथन, गंदी भाषामें बोलना।

म्लेच्छभोजन (सं० पु०) भुज्यते यदिति भुज् कर्मणि ल्युट् म्लेच्छानां भोजनं। १ यावक, बोरो। २ गोधूम, गेहूं।

म्लेच्छमण्डल (सं० क्ली०) म्लेच्छानां मण्डलं समूहोऽत्र। म्लेच्छदेश।

म्लेच्छमुख (सं० क्ली०) म्लेच्छे म्लेच्छदेशे मुखमुत्पत्तिरस्य। ताम्र, तांबा।

म्लेच्छाख्य (सं० क्ली०) १ ताम्र, तांबा। २ म्लेच्छ।

म्लेच्छाश (सं० पु०) म्लेच्छैरश्यते इति अश-कर्मणि घञ्। म्लेच्छभोजन, गेहूं।

म्लेच्छास्य (सं० क्ली०) म्लेच्छे म्लेच्छदेशे आस्यमुत्पत्तिरस्य। ताम्र, तांबा।

म्लेच्छित (सं० क्ली०) म्लेच्छ-देश्योक्तौ क्त। म्लेच्छभाषा, अपशब्द।

य

य—हिन्दी वर्णमालाका २६वां अक्षर। इसका उच्चारण-स्थान तालू है। यह स्पर्श वर्ण और ऊष्म वर्णके बीचका वर्ण है, इसीलिये इसे अन्तःस्थ वर्ण कहते हैं। इसके उच्चारणमें कुछ आभ्यन्तर प्रयत्नके अतिरिक्त संवार, नाद और घोष नामक वाह्य प्रयत्न भी होते हैं। यह अल्पप्राण है। इसकी माता कुण्डलिनीस्वरूप है तथा इस वर्णमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर रहते हैं।

इस वर्णका ध्यान—

"धूम्रवर्णां महारौद्रीं षड् भुजां रक्तलोचनाम्।
रक्ताम्बरपरीधानां नानालङ्कारभूषिताम्॥
महामोक्षप्रदां नित्यामष्टसिद्धिप्रदायिनीम्।
एवं ध्यात्वा यकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

इस वर्णकी अधिष्ठात्री देवी धूम्रवर्णा, अति भयङ्करी, षड्भुजा, रक्तलोचना, रक्तवस्त्रपरीधाना, नानालङ्कार-भूषिता, अष्टसिद्धि, मोक्षदायिनी और नित्या है। इस देवीका ध्यान कर इसका मन्त्र (यकार) दश बार जपना होता है। पीछे इसे प्रणाम करना उचित है। यह वर्ण सदा त्रिशक्ति और त्रिविन्दु युक्त है।

"त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दुसहितं सदा।
पञ्चमामि सदा वर्णं शक्तिमन्मोक्षमव्ययम्॥"
(वर्णोद्धारतन्त्र)

इसका स्वरूप—यह वर्ण चतुष्कोणमय तथा पलाल धूमसङ्काश और स्वयं परमकुण्डली है। यह पञ्चप्राण, पञ्चदेवतास्वरूप तथा त्रिशक्ति और त्रिविन्दुविशिष्ट है।

"यकारं शृणु चार्वङ्गि चतुष्कोणमयं सदा।
पलालधूमसङ्काशं स्वयं परमकुण्डली॥
पञ्चप्राणमयं वर्णं पञ्चदेवमयं सदा।
त्रिशक्तिसहितं वर्णं त्रिविन्दु सहितं तथा।
प्रणमामि सदावर्णं मूर्तिमन्-मोक्षमव्ययम्॥"
(कामधेनु ५ प०)

इसके पर्याय वा नाम—वाणी, वसुधा, वायु, विकृति, पुरुषोत्तम, युगान्त, श्वसन, शीघ्र, धूमार्चि, प्राणिसेवक, शङ्खाभ्रम, जटी, लोला, वायुवेगी, यशस्करी, सङ्कर्षण, क्षपा, वालहृदय, कपिलप्रभा, आग्नेय, व्यापक, त्याग, होम, यान, प्रभा, सुख, चण्ड, सर्वेश्वरी, धूम, चामुण्डा, सुमुखेश्वरी, त्वगात्मा, मलय, माता, हंसिनी, भृङ्गिनायक, शोषक, मीन, धनिष्ठा, अनङ्गवेदिनी, मेष्ट, सोम, पंक्तिनामा, पापहा और प्राणनाशक। ये सब शब्द यकारवाचक हैं।

"यो वाणी वसुधा वायुर्विकृतिः पुरुषोत्तमः।
युगान्तः श्वसनः शीघ्रो धूमार्च्चिः प्राणिसेवकः॥
शङ्खाभ्रमो क्षपा वालो हृदयं कपिलप्रभा।
आग्नेयो व्यापकस्त्यागो होमं यानं प्रभासुखम्॥
चण्डः सर्वेश्वरी धूमश्चामुण्डा सुमुखेश्वरी।
त्वगात्मा मलयो माता हंसिनी भृङ्गिनायकः॥
ते नमः शोषको मीनो धनिष्ठा नङ्गवेदिनी।
मेष्टः सोमः पंक्तिनामा पापहा प्राणसंज्ञकः॥"
(नानातन्त्रशास्त्र)

मातृकान्यासमें इस वर्णका हृदयमें न्यास करना होता है। काव्यके आदिमें इस वर्णका प्रयोग करनेसे लक्ष्मी प्राप्त होती है।

'यो लक्ष्मीं वस्तु दाहं व्यनयथ लवौ शः सुखं हस्तुखेदम्।"
(वृत्तरत्नाकर)

२ मुग्धबोध—व्याकरणमें दिकादिगणसूचक धातु अनुबन्धनविशेष। ३ छन्दःशास्त्रके अन्तर्गत गणविशेष। छन्दःशास्त्रमें 'य' अक्षर रहनेसे प्रथम वर्ण लघु और शेष दो वर्ण गुरु समझे जाते हैं। (मादि गुरुः पुनरादिलघुर्यः" (छन्दोम०)

य (सं० पु०) यातीति या गतौ ड। १ यश। २ योग। ३ यान, सवारी। ४ याता, सारथी। ५ संयम। ६ छन्दःशास्त्रमें यगणका संक्षिप्त रूप। ७ यव, जौ। ८ त्याग। ९ प्रकाश।

यक (सं० त्रि०) यत्-अकच् (अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राकटेः। पा ५।३।७१) यत् शब्दार्थ। जो। एक देखो।

यकअंगी (हिं० वि०) १ एक अंगवाला। २ एक पत्नी या पतिके साथ रहनेवाला या वाली। ३ एक हीके आश्रित, एक ही पर रहनेवाला। ४ एकाङ्गी देखो। (स्त्री०) ५ एकाङ्गी देखो।

यककलम (फा० वि०) १ एक ही वार कलम चला कर, एक ही वार लिख कर। २ एक-वारगी, एकाएक।

यकता (फा० वि०) जो अपनी विद्या या विषयमें एक ही हो। जिसके मुकावलेका और कोई न हो।

यकताई (फा० स्त्री०) यकता या अद्वितीय होनेका भाव, अद्वितीयता।

यकन् (सं० पु०) यकृत्। यकृत् देखो।

यकपरा (फा० पु०) एक प्रकारका कबूतर। इसका सारा शरीर सफेद होता है केवल डैनों पर दो एक काली चित्तियां होती हैं।

यक-वयक (फा० वि०) एकवारगी, एकदमसे।

यकवारगी (फा० वि०) एक-वारगी, एक दमसे।

यकवारगी (फा० वि०) यकवयक, एकाएक।

यकसां (फा० वि०) एक समान, वरावर।

यकायक (फा० वि०) एकाएक, एकवारगी।

यकार (सं० क्ली०) य स्वरूपे कार य-का वर्ण।

यकीन (अ० पु०) प्रतीति, पतवार।

यकीनन (अ० [illegible]) अवश्य, बेशक।

यकृत् (सं० स्त्री०) यज् (शकेर्ऋतिन्। उण् ४।५८) इत्यत्र 'वाहुलकात् यजेः कश्च' इत्युज्ज्वलदत्तोक्त्या ऋतिन्, अस्य च कः। कुक्षिके दक्षिणभागस्थ मांस-खण्ड, पेटमें दाहिनी ओरकी एक थैली जिसमें पाचनरस

रहता है और जिसकी क्रियासे भोजन पचता है। संस्कृत पर्याय—कालखण्ड, कालखञ्ज, कालेय, कालक, करण्डा, महास्नायु। ऋग्भाष्यमें सायणाचार्यने लिखा है, कि हृदयके समीप वर्त्तमान कालमांस विशेषको यकृत् कहते हैं।

वैद्यकमें इसका लक्षण इस प्रकार देखनेमें आता है,—

"अधो दक्षिणतश्चापि हृदयाद् यकृतः स्थितिः।
तत्तु रञ्जकपित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम्॥
प्लीहामयस्य हेत्वादि समस्तं यकृदामये।
किन्तु स्थितिस्तयो ज्ञेयो वामदक्षिणपार्श्वयोः॥"

(भावप्र०)

हृदयके नीचे यकृत् रहती है। रञ्जक पित्तका आश्रय-स्थान यकृत् है। यह यकृत् रक्तसे उत्पन्न होती है।

इसका लक्षण—प्लीहा और यकृत् इन दोनों रोगोंके हेतुलक्षणादि एक-से हैं। प्रभेद इतना ही है, कि प्लीहा बाईं ओर और यकृत् दाहिनी ओर रहती है। प्लीहा और यकृत् सबोंको होता है, किन्तु जब यह बढ़ता है, तब उसे रोग कहते हैं। उस समय उसकी चिकित्सा करना उचित है।

हारीतसंहितामें लिखा है, कि रक्त वायु द्वारा प्रेरित हो कर कफ द्वारा गाढ़ा होता और पीछे पित्त द्वारा परिपक्व हो कर यकृत्‌रूपमें परिणत होता है। अर्थात् प्राणीके शरीरमें जो यकृत् रहती है वह पूर्वोक्त त्रिदोषसे दूषित हो कर बढ़ जाती है। यकृत्के बढ़ जानेसे मनुष्य धीरे धीरे दुबला पतला होने लगता है। यदि उसका प्रतिकार समय पर न किया जाय, तो निम्नोक्त लक्षण दिखाई देनेके बाद रोगी कराल कालके गालमें फँस जाता है। वमि, थकावट मालूम होना, डकार आना, दम फूलना, भ्रम, दाह, अरुचि, तृष्णा, शिरमें दर्द, खांसी, हृदयमें सशल्य शूलवेदना, निद्रानाश, प्रलाप, हृदयकी जड़ता और पेट बोलना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। ये सब लक्षण यदि दिखाई दें, तो जानना चाहिये, कि रोगीकी यकृत् बढ़ गई है।

"वाते नोदीरितं रक्तं कफेन च घनीकृतम्।
पित्तेन पाकतां प्राप्तं त्रिदोषसंश्रितं यकृत्॥
लक्षणं तस्य वक्ष्यामि तेनं तच्चापि लक्षयेत्।
क्षीयते तेन मनुजो मृत्युराशु प्रवर्त्तते॥
वमिक्लमोस्तथोद्गारो ह्रलासः श्वसनं भ्रमः।
दाहोऽरुचिस्तृषा मूर्च्छा कण्ठे दाहः शिरोव्यथा॥
हृच्छूलश्च प्रतिश्यायः ष्ठीवनं कटुकासह।
सशल्यं हृदिशूलश्च निद्रानाशः प्रलापतः॥
हृदये मन्यते जाड्यं उदरं गर्जते भृशम्।
एतैर्लिङ्गैर्विजानीयात् यकृत्कोष्ठे च वक्षसि॥"

(हारीत चिकि० ४ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि प्लीहा और यकृत् ये दोनों एक ही कारणसे हुआ करते हैं। हृदयके वाम पार्श्वमें प्लीहा और दक्षिण पार्श्वमें यकृत्का स्थान निर्दिष्ट है। विदाहिद्रव्य (कुलथी कलाय और सरसोंका साग आदि) और अभिष्यन्दी अर्थात् भैंसके दही खानेवाले मनुष्यके रक्त और कफ बिगड़ कर यह रोग हुआ करता है। यह रोग होनेसे रोगीका शरीर पीला और अवसन्न हो जाता है, थोड़ा थोड़ा ज्वर आता, रुचि घट जाती और बलका ह्रास होता है। इस रोगमें श्लेष्मिक और पैत्तिक उपद्रव होते हैं। (भावप्र० प्लीहायकृदधि०)

साधारणतः देखनेमें आता है, कि बहुत दिनके ज्वरीको ही प्लीहा और यकृत् होती है। यकृत्की ह्रास और वृद्धि हाथसे जानी जा सकती है।

प्लीहा शब्दमें वैद्यक मत देखो।

वर्त्तमान पाश्चात्य चिकित्साशास्त्रके मतसे यकृत् (liver) शरीरके भीतरका एक प्रधान यन्त्र है। इसमें पाचन-रस रहता है और इसकी क्रियासे भोजन पचता तथा कोष्ठ परिष्कार रहता है। इस यन्त्रकी क्रियामें वैलक्षण्य दिखाई देनेसे शरीरमें जो सब उपद्रवसूचक रोग उत्पन्न होते हैं नीचे उसका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

कभी कभी यकृत्में दर्द (Hepatalgia) मालूम होता है। स्नायुप्रकृतिके सभी मनुष्योंको इसी प्रकार दर्द होते देखा जाता है। पित्तकोषमें पित्तपत्थर होनेसे भी वेदना होती है।

यकृत्-क्रियामें व्यतिक्रम होनेसे जण्डिस वा न्यावा रोग (Jaundice वा Icterus) उत्पन्न होता है। पित्तके कम निकलने या रुक जानेके कारण रक्तमें अधिक पित्त

मिल जाता है जिससे आँखका योजक, त्वक्, चर्म और मूत्र पीला दिखाई देता है।

किसी किसी चिकित्सकके मतसे पित्तका वर्णज पदार्थ और पित्ताम्ल यकृतमें उत्पन्न होता है। स्रावके रुक जानेके कारण यदि पित्तकोष और पित्तनालियां पित्तसे भर जायं, तो शिरा और लसीका नाड़ी द्वारा पित्तका रंग सुख जाता और चमड़े तथा निस्राव आदि-का रंग पीला हो जाता है। दूसरे दूसरे चिकित्सकोंके मतसे पित्तका वर्णज पदार्थ स्वभावतः ही शोणितमें रहता है तथा वह यकृत् द्वारा बाहर निकल जाता है। यदि किसी कारणवशतः यकृत्की क्रिया खराब हो जाय तो वह क्रमशः रक्तके भीतर सञ्चित हो जाता है तथा उसके त्वक् आदि शारीरिक विधान और निस्राव पीले पड़ जाते हैं। उपरोक्त दोनों मत एक ही कारणसे प्रतिष्ठित हुए हैं। पर हां, मत पृथक्ताके अनुसार यह अवरुद्धता-व्यापार यथाक्रम Obstructive और Suppressiveके भेदसे दो प्रकारका है।

यकृत् प्रणाली (हेपैटिक डक्ट)-के मध्य पित्तपथरी, गाढ़े पित्त अथवा पराङ्गपुष्ट कीट (Round worm, Hydateds आदिका) के रहने, आँतमें जलन होनेके कारण हेपैटिक डक्तके रन्ध्रके सिकुड़ने अथवा अर्वुदादि द्वारा यकृत् प्रणालीके ऊपर दबाव पड़नेके कारण अवरुद्धता, उसकी पेशीके आक्षेप और अवशता आदि कारणोंसे ही कामला रोग उत्पन्न होता है। कभी कभी पीतज्वर (Yellow fever) वा पौनपुनिक ज्वर (*Relapsing fever*); स्वल्पविराम ज्वर और सविराम ज्वर; सर्पाघात अथवा फस्फोरस, पारे, तांबे, एण्टिमणि आदि धातुविषमें विषाक्तता, यकृत्की खर्वता, यकृत्में रक्तकी अधिकता, मनस्ताप द्वारा यकृत्क्रियाका व्यतिक्रम, दूषित वायु द्वारा रक्तकी अपरिष्कृति; सद्योजात शिशुके न्युमोनिया रोगके कारण रक्तकी अपरिष्कृति; पाकक्रियाके लिये नियमातिरिक्त पित्तनिस्राव, बहुत दिन तक कोष्ठबद्धता; आँतसे रक्तस्राव होनेके बाद यकृत्-शिरा (*Portal veins*)-के मध्य स्वल्पशोणितसञ्चालन, इनफ्लुएनजा और पैत्तिक रोगमें पित्तनाली अवरुद्धताके कारण और कभी कभी जण्डिस् एपिडेमिक (बहुव्यापी) रूपमे आक्रमण करता है। बच्चेके जन्म लेनेके बाद कुछ दिन तक पित्त अधिक परिमाणमें निकलता है। यदि वह आँतके रास्तेसे न निकले, तो जण्डिस होनेकी सम्भावना है। किसी कारणवश लोहितवर्णकी रक्त-कणके नष्ट हो जानेसे चमड़ा पीला हो जाता है। प्रधान पित्तनाली-के अभाव या सम्पूर्ण अवरुद्धता रहनेसे सांघातिक जण्डिस होते देखा जाता है।

आम्बिलिकल भेन वा नाभिरज्जुसंश्लिष्ट शिरा (Umbilical veins)-में जब प्रदाह होता अथवा यकृत् धमनीके मध्य प्रवाहित सामान्य रक्तपित्तमें मिल कर यकृत्प्रणालीसे सिनोससके मध्य होता हुआ रक्तस्रोत जाता है, तब भी यह रोग आक्रमण कर सकता है।

चर्म, सिरस, कौषिकविधान, मस्तिष्क, स्नायुसमूह और यन्त्रादिमें पीतवर्णतारूप शारीरिक परिवर्त्तन देखा जाता है। अवरुद्धताके कारण पीड़ा उपस्थित होनेसे यकृत् और पित्तका आधार बढ़ जाता है। प्रथमावस्थामें यकृत् आरक्तिम, वृहत् और पीतवर्ण, पीछे रोग पुराना होनेसे वह पाटल, सब्ज या काला हो जाता है। गर्भ-वती स्त्री यदि इस रोगसे अधिक दिन आक्रान्त रहे तो गर्भजात शिशु भी आगे चल कर यह रोग भुगता है।

विशेष लक्षणके मध्य पीड़ाके आरम्भमें मूत्र पीताभ और पीछे योजकत्वक् (Conjunctiva) तथा चर्म पीत वर्णका हो जाता है। धीरे धीरे वह पीतवर्णसे पाटलाभ कृष्णाभ और सब्ज तथा उम्र, वर्ण और चर्वीके न्यूना-धिक्यके अनुसार नाना प्रकारका भी हो जाता है। ओठ और मसूढ़े का रंग पतले चर्मविशिष्टकी तरह गाढ़ा होता है। मूत्रका वर्ण कभी जाफरानकी तरह पीला, कभी मेहागिनी काठ वा पोर्टसुराके रंगका अथवा कुछ सब्ज हो जाता है। उसका परिमाण स्वाभाविकसे न्यून होता है। यदि उसमें सफेद कपड़ा डुबा दिया जाय, तो वह पीला हो जाता है। रासायनिक परीक्षा द्वारा मूत्रमें पित्त और पित्ताम्ल पाया जाता है। कहीं कहीं अणुवीक्षण द्वारा मूत्रमें ल्युसिन (Leucine) तथा टाइरोसिन (Tyrosine) नामक दो पदार्थ देखे जाते हैं। आँतमें पित्तके नहीं घुसनेसे मल कड़ा, दुर्गन्धयुक्त और सफेद कीचड़के समान हो जाता है तथा उससे उत्तराध्मान, उदरामय व

आमाशय होते हुए भी देखा जाता है। तैलाक्त पदार्थमें अरुचि होती है तथा खट्टी डकार आती है। पसीने, राल, दूध और आंसूमें पित्त दिखाई देता है। रक्तमें पित्ताम्ल रहनेके कारण खुजली आदि होती है। हृत्पिण्डकी क्रिया धीमी पड़ जाती है। मस्तिष्क भी विगड़ जाता है; आँखके सामने कभी कभी पीली रेखा (Xanthopsy) भी देखी जाती है। यदि रोग शीघ्र चंगा न हो, तो अचैतन्य वा आँतसे रक्तस्राव द्वारा रोगीकी मृत्यु होती है।

मैलेरिक काकेसिया, सीसक द्वारा विषाक्तता, एडिसन्स डिजिज, हरित्पीड़ा (*Chlorosis*) और कर्कट रोगमें चमड़ेकी विवर्णता देख कर यदि भ्रम हो जाय, तो मूत्र और कञ्जकूटिभाकी परीक्षा करके भ्रान्ति दूर करनी चाहिये। अवरुद्धता-जनित पीड़ामें मूत्रमें पित्ताम्ल रहता है, मलमें पित्त नहीं रहता। द्वितीय प्रकारसे उत्पन्न जण्डिसमें चमड़ा थोड़ा पीला दिखाई देता है, मलमें थोड़ा बहुत पित्त रहता है; मूत्रमें ल्युमिन् और टाइरोसिन देखनेमें आता है। रक्तस्राव और विकारका लक्षण उपस्थित होनेसे भावी फल अशुभकर है गर्भावस्थामें यह पीड़ा जान ले लेती है। डक्तके प्रदाहसे जो पीड़ा होती वह उतना कष्ट नहीं देती।

चिकित्सा—अवरुद्धता रहनेसे अन्त्र, त्वक् और मूत्रयन्त्रकी क्रियाको बढ़ा देना उचित है। सुचारुरूपसे त्वक्क्रिया करने तथा खुजली आदिको हटानेके लिये उष्ण बाथ वा एल्फेलाइन बाथ देना चाहिये। कोष्ठको साफ रखनेके लिये मृदुविरेचक और मिनरल वाटरका प्रयोग करे। स्वास्थ्यवृद्धिके लिये आयरन और अन्यान्य टनिक हितकर है। अभ्यस्त कोष्ठ-बद्धताके दूर करनेके लिये प्रति दिन खानेके बाद ५।१० ग्रेन आक्सलवाइल तथा ब्लुपिल, टैरैक्सेसाई नाइट्रोम्युरियेट एसिड डिल, एमनस्युरियट, पडफ्लिन, वैपटिसिन आदि पित्तनिःसारक औषधका प्रयोग करे। यकृत्में रक्त जमा रहनेसे वहां फोमेंटेशन, सिनापिजम और पुलटिश देना उचित है। इस समय तरल और बलकारक द्रव्य रोगीको खाने दे। चरबी और शक्कर मिली हुई वस्तु खाना मना है। दुर्बलता और टाइफेड लक्षण दिखाई देनेसे बलकर औषध (Stimulent)-का प्रयोग करे। यदि रक्त बहता हो तो उसे किसी प्रकार बन्द कर देना उचित है।

रि सि पि

ए नाइट्रोमिउः डिल १० बुंद

एमन म्युरिएट ५ ग्रेन

सवकस् टारेक्सेसाइ आध ड्राम

इन्फ्युजन जेनसियन १ औंस

एकमात्र दिनमें ३ वार और रातमें निम्नोक्त गोलीका सोनेके पहले सेवन करे।

रि सि पि

पडफ्लिन् रेजिनि आध ग्रेन

पिल कलोसिन्थ कों ३ ग्रेन

हेपाटिक कञ्जेश्चन (Hypatic Congestion) वा यकृत्का रक्ताधिक्य—अधिक मात्रामें शराब वा गुरुपाक द्रव्य भोजन और अति भोजन; शरीरमें अत्यन्त तापाधिक्य वा उस अवस्थामें शीतवातसंस्पर्श; प्रदाहकी प्रथमावस्था; हठात् चोट लगना; ऋतु या अर्शका रक्तस्राव बंद होना; हृत्पिण्ड वा फुसफुसकी पुरानी पीड़ा आदि कारणोंसे हिपाटिक भेनमें रक्त बहुत हो जाता है।

इस समय यकृत् कुछ बड़ी और कठिन होती तथा काटनेसे रक्त बहुत निकलता है। यकृत् धमनीमें अधिक रक्त होनेसे लोब्युलके चारों ओरका स्थान लाल होता है और रक्तसे भर जाता है। हिपैटिक भेनमें अधिक रक्त रहनेसे लोब्युलका मध्यस्थान आरक्तिम दिखाई देता है। यह दीर्घकालस्थायी होनेसे उक्त भेजकी शाखा-प्रशाखा रक्तसे भर जाती है; लोब्युलका बहिर्भाग (जहां पोटाल शिरा है) रक्तशून्य और वसायुक्त तथा उनके बीच बीचमें पित्तनली देखी जाती है। इस प्रकारकी यकृत्को काटनेसे वह जायफलके सदृश मालूम पड़ती है, इसीसे इसको Nutmeg-liver कहते हैं। यह पीला, सफेद और लाल होता है।

यकृत्के स्थानमें वेदना, भारी और आकृष्टता मालूम होती है। खानेके बाद बाईं करवट सोनेसे वह वेदना बढ़ती और कभी कभी दाहिने कंधे तक फैल जाती है। रोगके अधिक दिन रह जानेसे प्लीहा भी बढ़ जाती है।

भूख नहीं लगती, जीभ मैली दिखाई देती और खट्टी डकार आती है। सामान्य ज्वरका लक्षण दिखाई देता है, मूत्र थोड़ा और लाल निकलता है। छूनेसे यकृत् बड़ी मालूम होती है।

चिकित्सा—यकृत्के ऊपर जोंक या यथेष्टकपि लगावे। अन्यान्य वाह्यप्रलेप औषधोंमें पुलटिस, सिनापिजम्, शुष्ककोपि तथा फोमेण्टेशनका व्यवहार हितकर है। दूषित खाद्यजनित पीड़ाकी प्रथम अवस्थामें मृदु वमनकारक औषध अथवा रातमें ब्लुपिल और कलोसिन्थको मिला कर गोली सेवन करावे। सबेरे साइट्रेट वा सलफेट आव मागनिसिया, सलफेट आव सोडा, क्रीम आव टार्टर आदि लावणिक विरेचक औषधको काममें लावे। प्रवल लक्षण दिखाई देनेसे तिक्त वलकारक औषध और धातव जलका सेवन करे।

प्रवल हेपैटाइटिस (Acute *Hypatitis*) वा यकृत्‌का प्रदाह—यह दो प्रकारका है, पेरिहिपाटाइटिस और सपिउरेटिभ हेपैटाइटिस। यथाक्रम इनका लक्षण और कारण नीचे लिखा जाता है।

पेरिहिपाटाइटिस—किसी प्रकारकी चोट लगने और पेरिटोनाइटिस तथा निकटवर्त्ती स्थानमें जलन होनेसे इसकी उत्पत्ति होती है। इसमें रोगी यकृत्के ऊपर तीक्ष्ण वेदना मालूम करता है; कास, श्वास और प्रश्वास द्वारा यह वेदना और भी बढ़ जाती है। सामान्य ज्वरके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। लीभरकी क्रियामें कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं होता।

सपिउरेटिभ हेपैटाइस—हेपैटिक कञ्जेश्चनके सभी कारणोंका आतिशय्य होनेसे यकृत्में प्रदाह और स्फोटक उत्पन्न होता है। आम्बिलाइकेल सेनमें जलन होनेसे छोटे छोटे बच्चोंकी यकृत्में कभी कभी स्फोटक पैदा होता है। ग्रीष्मप्रधान देशोंके स्फोटकमें एमिराकोलाई नामक सूक्ष्म उद्भिज्ज दिखाई देता है, वह भी एक कारण है।

इस रोगमें निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं,—यकृत्में आकर्षक वेदना और स्पन्दनका अनुभव, दक्षिण लोव आक्रान्त होनेसे दक्षिण स्कन्ध और स्कैप्युला तक उसी प्रकारकी वेदना; जण्डिस, अरुचि, जीभ मैली और लाल, प्यास अधिक लगना, विवमिषा, वमन, उदरामय, कोष्ठ अवरुद्धता और कभी कभी उदरीरोग होते देखा जाता है।

जाड़ा और साधारणतः शीत और कम्पके साथ ज्वर आता है। पीप जम जानेसे वार वार कम्प, हैकटिक ज्वर, नैशघर्म, अत्यन्त दुर्वलता और शीर्णता उपस्थित होती है। पहले मूत्र थोड़ा और लाल, स्फोटक उत्पन्न होनेके वाद पतला और परिमाणसे अधिक निकलता है। रोग कठिन होनेसे दुर्वलता और अचैतन्य आदि विकारोंके लक्षण उपस्थित हो कर रोगीकी मृत्यु होती है। कभी कभी स्फोटककी पीपके रूपान्तरित हो जानेसे रोग असाध्य हो जाता है। अनेक समय वाहरी भाग फट जाता है, उसके पहले उस जगहका चमड़ा लाल दिखाई देता है। इस प्रकार विदीर्ण हो जाने पर भी रोग आरोग्य हो सकता है।

पेरि और सपिउरेटिभ हिपाटाइटिस रोग इन दोनोंका स्थिर करना बहुत कठिन है। पीप होनेसे रोगका पता लगानेमें कोई दिक्कत नहीं होती। पीप सहित यकृतीय रोगके साथ, पीप आनेके पहले पित्तकोषमें प्रदाह और पीपका संचार, पीप उत्पन्न करनेवाला हाइडेटिड सिष्ट, उदर प्राचीरमें स्फोटक और अन्त्रावरण प्रदाहका भ्रम होता है। पेरिनोटाइटिसमें फ्रकचुअेशन नहीं पाया जाता तथा साथ साथ शीतकम्प हो कर ज्वर नहीं आता। रोगके आनुपूर्विक इतिवृत्तको छोड़ कर दोनोंमें कुछ भी प्रभेद मालूम नहीं होता। उदरप्राचीरमें स्फोटक होनेसे अधिक दुर्वलता, शीतकम्प और जण्डिस नहीं रहता। यकृत्के वाहर खास कर एन्सिफोरम कार्टिलेजके समीप विदीर्ण होने वा ब्राङ्काई फट जानेसे भी रोग आरोग्य हो सकता है। अन्यान्य स्थानोंमें स्फुटित होनेसे सांघातिक होता है, पीप सहित स्फोटक दुरारोग्य है।

चिकित्सा—वाह्य देशमें कोपि, लिचि फोमेण्टेशन, पुलटिस और सिनापिजम प्रयोज्य हैं; लवण और पारदघटित विरेचक औषधका सेवन करावे। आमाशय रहनेसे इपिकाकिवाना दे। पीप होनेसे एस्पिरेटर वा ट्रोकर ओकान्युला द्वारा पीपको वाहर निकाल दे। काष्टिक पोटाश द्वारा अथवा काट कर जखम करनेसे भी पीप निकल सकती है। अनन्तर एण्टिसेप्टिक लोषण और

मरहम आदिका उस ज़खमको भरनेके लिये व्यवहार करे। रोगीके लिये कुनाइन, टिंटिक, पार्थिवाम्ल तथा दुर्बल होनेसे बलकर औषधका सेवन लाभजनक है। दर्द दूर करनेके लिये अफीमका प्रयोग करे। दूध, दालका जूस पथ्य देना आवश्यक है।

यकृत्‌की पीतवर्ण खर्वता (Acute yellow Atrophy of the liver)—बहुतेरे इसे यकृत्‌विधानका विस्तृत प्रदाह कहते हैं। फोस्फोरस द्वारा शरीर विषाक्त, दारुण मनस्ताप, मलेरिया स्थानमें वास, अ-िताचार, सुरापान और उपदंशादि रोगोंसे यह रोग सहजमें आक्रमण कर सकता है।

रोगके आक्रमण करनेसे यकृत् खर्व हो जाती है। वह देखनेमें कोमल, पीलापन लिये हुए लाल और उसका कैपस्युल सिकुड़ा हुआ मालूम होता है। पीड़ाकी प्रथमावस्थामें उसका विधान आरक्तिम दिखाई देता है। अणुवीक्षण द्वारा सभी कोष ध्वंसप्राय तथा उनके बदलेमें तैलविन्दु और वर्णजपदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। अन्तमें तथा और भी दूसरे दूसरे स्थानोंमें रक्तस्रावका चिह्न मौजूद रहता है।

यकृत्‌में जो कभी कभी विभिन्न प्रकारकी अपकृष्टता (Degeneration) देखी जाती है उनमें चरबी और मोमयुक्त यकृत्‌की हीनता उल्लेखनीय है। अधिक भोजन, सुरापान, यक्ष्मा, कर्कट और पुराने आमाशय आदि दीर्घकालस्थायी रोगमें तथा शिथिल स्वभावसे ही प्रधानतः यकृत्‌का वसाजन्य रोग (Fatty liver वा Hepar Adiposum) आक्रमण करता है। उस समय यकृत् बिलकुल गोल और चिकनी, पीली, छूनेमें मुलायम और स्थितिस्थापकताहीन होती तथा सहजमें छिन्न हो जाती है। काटनेसे तेल निकलता है। कटे हुए खण्डके ऊपर कागज रखनेसे वह तैलाक्त हो जाता है तथा वह इथरसे गलता है। प्रायः सैकड़े पीछे ४० से ४५ भाग तैलाक्त पदार्थ तथा ओलिन, मार्जेरिन और कोलेष्ट्रिन रहता है।

स्कुफ्युला वा केरिज आदि प्राचीन रोग मलेरिया ज्वरसे Amyloid of waxy liver रोगकी उत्पत्ति होती है। रोगके आक्रमण करनेसे यकृत् बड़ी होती और उसका आवरक विधान फैल जाता है। काटनेसे रक्त नहीं निकलता तथा वह सफेद और पांशुवर्णका दिखाई देता है। कटा हुआ अंश चिकना होता है। आइयोडिन मिलानेसे उसका रंग पलट जाता है।

इस समय रोगी यकृत्‌स्थानमें भारी, आकृष्टता और अस्वच्छन्दता मालूम करता है। उसके साथ साथ यकृत् धमनीमें रक्तस्रोतको अवरुद्धता और न्यावाके लक्षण दिखाई देते हैं। उसके बाद पुराना अन्त्रावरण-प्रदाह और उदरी रोग उपस्थित होता है। अन्यान्य लक्षणोंके मध्य दुर्बलता, रक्ताल्पता और रक्तकी तरलता देखी जाती है। छूनेसे यकृत् कड़ी मालूम होती है। व्यायाम, बलकारक औषध, सुपथ्य और प्रस्रवणादिका धातव जलपान इस रोगका महौषध है। स्वास्थ्यरक्षाके लिये वायुपरिवर्त्तन विशेष हितकर है।

यकृत्‌का हाइड्रेटिड् अर्बुद—(Hydatid tumour) कुत्ते और चीता बाघकी आँतमें एक प्रकारका कीड़ा (Tape-worm) रहता है। जमीन पर आनेसे उसका अंडा नाना स्थानोंमें फैल जाता है। जब वह खाद्यके साथ मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करता है, तब पित्तनालीके मध्य हो कर अथवा पाकाशयके प्राचीरको भेद कर यकृत्‌के भीतर चला जाता है। यकृत्‌के मध्य अंडोंके फूटनेसे एचिनोकोकस, होमिनिस नामक स्कोलेक्स (Scolex) वा नया कीड़ा उत्पन्न होता है। उनकी उत्तेजनाके कारण एक आधारकी जैसी झिल्ली (Germinal membrance) पैदा होती है। उस झिल्लीकी प्रत्येक तहमें गोल कोष वा सिष्ट (Cyst) उत्पन्न हुआ करता है तथा प्रत्येक सिष्टके भीतर बहुसंख्यक छोटे छोटे डिम्बाकार कीट दिखाई देते हैं। आइसलैण्ड और औष्ट्रेलिया द्वीपमें यह रोग मध्यवयस्क तथा दरिद्र व्यक्तियोंके मध्य सदा देखा जाता है।

हाइडेटिड अर्बुदके चारों ओर कठिन सफेद वा पीली झिल्ली रहती है। उनके मध्य कुछ सफेद, मुलायम और पांशुवर्णके कोष देखे जाते हैं जिन्हें मातृकोष कहते हैं। उसके भीतर वर्णहीन स्वच्छ जलवत् पदार्थ रहता है। उसका आपेक्षिक गुरुत्व १·०७ से १·१५ है, प्रतिक्रिया क्षारधर्माक्रान्त है। रासायनिक परीक्षासे उसमें क्लोरा-

इड और सिसिनेटे आव सोडियम पाया जाता है। उक्त मातृ-कोषके प्राचीरमें बहुतसे छोटे छोटे डिम्बाकार उप-कोष दृष्टिगोचर होते हैं। उन उपकोषोंमें एचिनोको-कस कीट पाया जाता है। ट्युमर फट जानेसे मृतदेहमें उसका चिह्न रहता है।

अर्बु द होनेसे यकृत् स्थानमें विशेषतः एपिगाष्ट्रीयममें तथा दक्षिण हाइपोकण्ड्रियेक रिजनमें स्फीतता, भार-बोध और आकृष्टता रहती है। उसमें पीप होनेसे शीत-कम्पज्वर और अत्यन्त वेदना होती है। कभी कभी प्लीहाकी वृद्धि और उदरी रोग होते देखा जाता है। अर्बु द बड़ा होनेसे मसृणता, स्थितिस्थापकता, फ्रिक-शन और हाइडेटिड फ्रेमिटस मालूम होता है। अर्बु द यदि बहुतसे सिष्टोंके बने हों, तो वह लोष्ट्राकार, दृढ़ और वेदनायुक्त होता है। दक्षिण हाइयोकण्ड्रियेक रिजनमें अर्बु द होनेसे छातीके ऊपर तक जड़ता (Dullness) फैल जाती तथा उसके भी ऊपर वक्ररेखासी दिखाई देती है। सूक्ष्म ट्रोकर द्वारा परीक्षा करनेसे जलवत् रस निकलता है। रासायनिक परीक्षा द्वारा लवण पाया जाता है।

प्लुरिटिक एफियोजन, यकृत्का स्फोटक और किडनीका हाइडेटिड अर्बु दके जैसा दिखाई देता है, इस कारण रोगनिर्णयकालमें कभी कभी भ्रम हो जाया करता है, किन्तु हाइडेटिड फ्रेमिटस और रोगके आनुपूर्विक विवरण द्वारा इसको अन्य रोगसे पृथक् किया जा सकता है।

यह रोग बहुकालव्यापी होने पर भी यदि उपयुक्त चेष्टा की जाय, तो आरोग्य हो जाता है। यकृत्के फट जानेसे जब अन्त्रावरणमें जलन देती है, तब रोगीके जीनेकी आशा नहीं रहती।

चिकित्सा—अर्बु दके ऊपरी भागमें कष्टिक पटोश द्वारा क्षत करके कोषस्थ जलको ट्रोकर वा एस्पिरेटर द्वारा बाहर निकालता है। क्योंकि उससे अर्बु द और उदर प्राचीरके मध्य मिल जानेके कारण उसका रस अन्त्रा-वरक झिल्ली (पेरिटोनियम) में प्रवेश नहीं कर सकता। उस रसके पेरिटोनियममें कुछ कुछ प्रवेश करनेसे अत्यंत प्रदाह उपस्थित होता है। ट्रोकरको बाहर करनेसे समय उदरके छिन्न स्थानमें दबाव दे। ऐसा करनेसे वह जलवत् रस चारों ओर फैल नहीं सकता। कभी कभी सिष्टको नष्ट करनेके लिये गैलभेनो-पंचर वा इलेकट्रो लिसिसका व्यवहार करना होता है। सिष्टके फिरसे उत्पन्न होनेसे उसमें टिंचर आइओडिन वा पित्तको इञ्जेक्ट करे। पीपका संचार होनेसे अच्छी तरह काट कर यकृत्की स्फोटककी तरह चिकित्सा करना उचित है।

यकृत्में कर्कटरोग (Cancer of the liver) होनेसे यकृत्के स्थानमें लोष्ट्राकार अर्बु द देखा जाता है। कर्कट-की विभिन्नताके अनुसार यकृत् कोमल वा कठिन हुआ करती है। कटा हुआ अंश शुभ्र, पीताभ, श्वेत और बीच बीचमें लाल रेखा दिखाई देती है। यकृत् भारी और असमान, विधान न्यूनाधिक परिमाणमें विनष्ट और चापप्राप्त तथा पोर्टल भेनमें थ्रम्बुसिस और पेरिटोनाइटिस विद्यमान रहना आदि शारीरिक परिवर्त्तन दिखाई देता है। पित्तनालीके रुक जानेसे तरह तरहका सिष्ट उत्पन्न होता है। व्यापित प्रकारके कर्कट रोगमें यकृत् छोटी हो जाती है।

यकृत्के स्थानमें वेदना होती है, कभी कभी तो वह वेदना असह्य हो जाती है। उदर, स्कन्ध और पीठमें भी दर्द मालूम होता है, उदरकी शिराएं परिपूर्ण और फैल जाती हैं। रोगी शीर्ण, दुर्बल और रक्तहीन हो जाता है, थोड़ा थोड़ा ज्वर आता, भोजन नहीं पचता और श्वासकृच्छ्र तथा सेलिना वर्त्तमान रहती है। मूत्रमें इण्डिकोनका परिमाण अधिक पाया जाता है।

यकृत्का सिफिलिटिक गोमेटा, सिरोसिस और एमिलयेड अपकृष्टताके साथ भ्रम हो सकता है। अति यन्त्रणा ककेक्सिया द्वारा दूसरे रोगके साथ इसकी पृथक्ता जानी जाती है। यह रोग बहुत मुश्किलसे आरोग्य होता है। सुविज्ञ चिकित्सक द्वारा चिकित्सा करानेसे बहुत उपकार हो सकता है।

यकृत् संकोचन (Gindrinker's liver वा Cirrhosis of the liver)—खाली पेटमें तीव्र मदिरा सेवन, मैलेरिया स्थानमें वास वा दीर्घकाल ग्रीष्म भोग, अधिक परिमाणमें गुरुपाक द्रव्यभोजन, पाकक्रियाका व्यतिक्रम, स्थानिक पेरिटोनाइटिससे प्रदाहकी विस्तृति आदि कारणोंसे यकृत् संकोचन उपस्थित होता है।

बहुतोंके मतसे लोबिउलके मध्यवर्त्ती कोषसंस्थानमें जलन देती है। वह जलन यदि बहुत दिन रह जाय, तो लोबिउल स्थित कोष और पित्तनालीको संकुचित कर देता है। कोई कोई कहते हैं, कि प्रथमावस्थामें पित्त-कोषोंमें अपकृष्टता होती है। पीछे उसके धीरे धीरे खर्व होनेसे तदनुसार चारों बगलका संस्थान अर्थात् कैप-स्थुल संकुचित हुआ करता है। ३०से ले कर ५० वर्ष-के पुरुषोंके मध्य ही यह रोग होते देखा जाता है।

यकृत् अर्द्धायत, खर्व और गोलाकार तथा पाण्डुवर्ण-का दिखाई देता है। यकृत्का कैप्सिउल मोटा और मजबूत होता तथा सहजमें नहीं फटता। कहीं कहीं वह पेरिटोनियमके साथ मिला हुआ देखा जाता है। कटा हुआ भाग देखनेमें कुछ पांशुवर्ण वा पीताभ होता है; बीच बीचमें शुभ्रवर्ण और रज्जुवत् झिल्ली दिखाई देती है। पोर्टील शिराकी छोटी छोटी शाखा प्रशाखा और कैशिकागुलि अवरुद्ध वा विलुप्त होती हेपैटिक धमनी फैली रहती और उससे नई नई कौशिका उत्पन्न हो कर नवोत्पादित झिल्लीमें फैल जाती है। अणुवीक्षण द्वारा कुछ लोबिउल संकुचित, शुभ्रवर्णके और उनके कोष विलुप्त दिखाई देते हैं। लोबिउलकी परिधिसे वे सब परिवर्त्तन आरम्भ होते हैं। दूसरे दूसरे लोबिउल पीले दीख पड़ते हैं; क्योंकि उनके कोषोंमें कुछ पित्त रहता है। प्रथमावस्थामें लीभर स्वाभाविकसे बड़ा होता है। इस पीड़ाके साथ चरबी और एमिलयेड अपकृष्टता वर्त्त-मान रहनेसे यकृत्को खर्वता दिखाई नहीं देती। उपरोक्त कारणोंको छोड़ कर अन्यान्य कारणोंसे यकृत्के खर्व होनेसे उसके प्रदेशमें उक्त प्रकारकी उच्चता देखी नहीं जाती।

अन्य जिन सब कारणोंसे यकृत् खर्व हो सकती है उनका संक्षेपमें वर्णन करना आवश्यक है।

(१) हृत्पिण्डकी पीड़ाके कारण हेपैटिक भेनमें अप्रबल रक्ताधिक्य होनेसे लोबिउलके मध्यवर्त्ती स्थान क्षयको प्राप्त होता है और उससे यकृत् खर्व हो जाती है।

(२) डा० मार्चिसनका कहना है, कि मदिरा नहीं पीनेसे भी एक प्रकारका सिरोसिस होता है, जिससे यकृत् झिल्ली कोमल और शस्यवत् ऊंची (Granular) दिखाई देती है।

(३) पोर्टील भेन या उसकी शाखायें जलन होने-से सिरोसिस हो सकता है।

(४) पुरानी पेरि-हेपेटाइटिस पीड़ामें यकृत् छोटी हुआ करती है।

(५) उपदंश-रोगके कारण सिरोसिस होनेकी सम्भावना है।

(६) बार बार मलेरिया ज्वर होनेसे अथवा अन्त्रमें क्षत रहनेसे यकृत् छोटी होती है जिसे डाक्टर रोकि-टानष्कि (Dr. Rokitansky), रेड एट्रफि (Red Atrophy) तथा डाक्टर फ्रेरिक्स (Dr. Frerichs) क्रोनिक एट्रफी (Chronic Atrophy) कहते हैं।

यकृत् बढ़ जानेके कारण रोगी दक्षिण हाईपोकण्ड्र-येक रिजनमें भार और अस्वच्छन्दता अनुभव करता है। कभी कभी वमन, डकार और अजीर्णता होती है। पोर्टल शिरा की अवरुद्धता के कारण उदरी रोग होता है। पोर्टाल शिराका मुख अवरुद्ध होनेसे उसका रक्त इपिगा-ष्ट्रीक भेन द्वारा इन्फिरियाके भिनाकेभामें जाता जिससे उदरकी दक्षिण पार्श्वस्थ स्फीत होती है। रोगके अच्छी तरह दिखाई देने पर स्पर्श द्वारा यकृत् लोष्ट्राकार मालूम होती है तथा उसमें कभी कभी फ्रिकशन शब्द सुना जाता है। उदरामय, रक्तस्राव, प्लीहाविवृद्धि, अर्श अथवा जण्डिस् दिखाई देता है। रोगीका शरीर शीर्ण, चर्म-शुष्क, मुखश्री मृत्वर्ण और कभी कभी चमड़ेके ऊपर पर्पिउराका चिह्न नजर आता है। मूत्रमें युरिक एसिड, युरेटस तथा कहीं कहीं युरिरिथ्रन् अधःक्षेप होते देखा जाता है। रोग दीर्घकालस्थायी होनेसे यकृत्में कोई विशेष यन्त्रणा नहीं रहती। किन्तु उसके साथ पेरि-टोनाइटिस उपस्थित रहनेसे दबाव डालने पर दर्द मालूम होता है।

यह रोग दीर्घकालव्यापी है। धातुदौर्बल्य, विकार-युक्त जण्डिस, फुसफुसकी पीड़ा, प्रबल पेरिटोनाइटिस और अन्त्रसे रक्तस्राव आदि उपसर्ग दिखाई देनेसे रोगी-की मृत्यु होती है। प्रथमावस्थामें रोगनिर्णय करना बहुत कठिन है, पीछे धीरे धीरे यकृत्के बढ़नेसे जब उसके

ऊपरी भागको उच्चता लक्षित होती है तथा उदरी और उदरकी शिराएं स्फीत होती हैं, तब इस रोगका आसानीसे पता लगता है।

चिकित्सा—पहले यकृत्के ऊपर जोंक या मष्टर्ड ब्लिष्टर बैठावे अथवा फोमेण्टेशन और पुलटिस दे। पीछे साइट्रेट आव पोटाश आदि लावणिक विरेचक देना उचित है। बहुत दिनके रोगीको पोटाशि आइ-ओडिड्, नाइट्रोम्युरेटिक एसिड डिल आदि और औषधों-का सेवन करावे। चमड़ेकी क्रियावृद्धिके लिये उष्ण वा नाइट्रोम्युरियेटिक एसिड बाथ देना उचित है। वमन रोकनेके लिये हाइड्रोसियानिक एसिड डिल और विषमथ-को काममें लावे। उदरी होनेसे स्कूइल, ब्लुपिल, डि० स्कोपेराई आदि मूत्रकारक औषध दे। विरेचनार्थ पल्भ जुलाव कम्पाउण्ड वा इलेटिरियम दिया जाता है। उदरमें अधिक सिरम सञ्चित होनेके कारण यदि श्वासकृच्छ्र हो जाय, तो उदरभेद (Paraceatesis abdomenis) करना कर्त्तव्य है। जण्डिस वर्त्तमान रहनेसे पित्त निकालनेके लिये पडफ़िन, बेञ्जयेट आव एमोनिया, इपिकाक, ब्लुपिल आदि औषधका प्रयोग करे। यकृत्में सिफिलिटिक गोमेटा, ट्यूबार्केल आदि उत्पन्न हुआ करता है। यह बहुत दिन तक रहता है।

यकृतकी पीड़ाओंमें प्रयोज्य औषध—

पित्तनिःसारक औषध (Cholago gues)—जैसे, ब्लुपिल, ग्रे पाउडर, कैलमेल, पडफ़िन, एलोज, जुलाब, कलसिन्थ, कलचिकम्, इपिकाकुआना, नाइट्रो-हाइड्रो-क्लोरिक एसिड डिल, सल्फेट और फसफेट आव सोडि-यम, बेञ्जयेट आव सोडियम, एमोनियम्, सैलिसिलेट आव सोडियम्, युनिमिन, आइरिडिन, इनिउलिन, जग-लैण्डिन, क्रोटन आयल, सेना, टार्टारेट आव सोडा, टाराक्सेकम हाइड्रास्टिन इत्यादि।

पित्तदमनकारक औषध (Anti-cholagogues)—अफीम, मर्फिया, एसिटेट आव लेड आदिका व्यवहार करनेसे पित्तका निकलना बंद हो जाता है।

पोर्टल रक्तस्रोतके खर्वकारक औषध (Portal Dep-letants)—लावणिक और उग्रविरेचक औषधका सेवन करनेसे जलवत् मलत्याग हो कर पोर्टल रक्तसञ्चालनकी खर्वता होती है। कभी कभी जोंक वा कैपिं ग्लैस बैठाने-से भी काम चल सकता है। कोई कोई रक्त चूसनेकी सलाह देते हैं।

यकृत्के परिवर्त्तक औषध (Hepatic Alteratives —क्लोराइड आव एमोनियम, फसफरस, आर्सेनिक, एण्टिमनि तथा कभी कभी लौहघटित परिवर्त्तक समझे जाते हैं।

होमियोपैथिकके मतसे यकृत्की विकृतिके लिये विभिन्न अवस्थामें विभिन्न प्रकारके औषधकी व्यवस्था है। यकृत्से पित्त निकलना जब बंद हो जाय, तब प्रथमावस्थामें पोडोफिलम पेल्टेटुम्, लेप्टाण्ड्रा, भर्जि-निका और बीच बीचमें नक्सभमिका दो एक मात्राका सेवन करानेसे बहुत उपकार होता है। कभी कभी मार्कुरियस सलिओबिलिसके बाद लेप्टाण्ड्रा, टाराक्सा-कम और नाइट्रोम्युरियटिक एसिडका सेवन करा कर टर्किज बाथ और यकृत्स्थानमें मर्दन करके भी विशेष फल देखा गया है।

अन्यान्य उपसर्गोंके साथ पित्त निस्राव की अधिकता होनेसे एकोनाइट, एलोज, आर्जेण्टम्, नाइट्रोटिस, केलि-डोनियम् माजुम, केमोमिला, मार्कुरियस् सल, इपिकाक, नक्स और रसटाक्स आदिका अवस्थाभेदसे प्रयोग किया जा सकता है।

दूषित पित्तस्रावमें मार्कुरियस् सल, इपिकक वा आर्सेनिकम्का यथाक्रम प्रयोग करे। कभी कभी ऐसी जगहमें एलोपैथिकके मतसे परिस्कृत रेंडी तेलका जुलाब, तीसीकी चाय, गोंद मिला हुआ जल और वार्ली खिलाने-से भी उपकार पाया गया है। किन्तु असल होमियो-पाथगण ऐसी चिकित्साके पक्षपाती नहीं हैं।

यकृत्में शूलवत् वेदना होनेसे एकोनाइट, बेलेडोना, ब्राइओनिया और नक्सका सेवन करानेसे आशातीत फल पाया जाता है। नियमित पथ्य भोजन, वायुपरि-वर्त्तन और प्रस्रवणादिके जलमें स्नान और उष्णजलपान विशेष उपकारक है।

कामला, पाण्डु वा न्यावा रोगमें रोगीकी हालत विशेष कर एलुमिना, लाइकोपा लेप्टाण्ड्रा, नक्स, पोडो फिलमा सलफर, एकोनाइट, कैन्थराइडी और टेरिबिन्थका सेवन

कराना चाहिये। कभी कभी नियमित रूपसे निबूका रस पिलानेसे भी विशेष फल होता है। टार्किस वाथ भी उपकारी है।

सुविज्ञ चिकित्सकोंने न्याबाकी १२ अवस्था बतलाई हैं। उनके मतसे इस रोगकी प्रथमावस्थामें एकोनाइट और पीछे पोडोफिलम्का सेवन करना उचित है। यकृत्के वेदनास्थान और उदरको कस कर बांधनेसे बहुत उपकार होता है। द्वितीयावस्थामें बेलेडोना, कालकेरिया कार्ब और लाइकोपाडियम उपकारक है। कोई कोई एलोहोमियोपाथ कहते हैं, कि ऐसी अवस्थामें कभी कभी उष्ण जलमें स्नान करने, वेदना-स्थानको घिसने और टिं बेल, टिं एकोनाइट और क्लोरोफारम द्वारा प्रस्तुत मालिश तथा फ्लालेनादिके द्वारा कस कर बांध देनेसे उपकार होता है। इस अवस्थामें रोग यदि बढ़ जाय, तो मर्फिया इञ्जेकट करनेसे और क्लोरोफारम सुंघानेसे कुछ शान्ति मिलती है। होमियोपाथगण क्लोरोफारम व्यवहारके घोर विरोधी हैं।

तृतीयावस्थामें एकोनाइट, केमोमिला, इग्नासिया, नक्स और सलफर; बढ़ जानेसे लाकेसिस और कुटारीका सेवन तथा टर्किस वाथ उपकारक है। चतुर्थावस्थामें एकोनाइट, केमो इग्नासिया और टर्किस वाथ बहुत फलप्रद माना गया है। पञ्चमावस्थामें उपरोक्त सभी प्रकारका औषध आवश्यकतानुसार दिया जा सकता है। षष्ठावस्थामें आर्सेनिक, लाकोसिस और कुटारी तथा सप्तमावस्थामें एकोनाइट ब्राइओनिया, मार्कुरियस और लाकोसिस व्यवहार्य है। अष्टमावस्थामें एकमात्र कुटारो लाकोसिस हितजनक है। नवमावस्थामें एकोनाइट, मार्कसल और पोडोफिलम तथा दशममें पित्तनाभिके मध्य कैटारा उत्पन्न होनेसे केमोमिला, डिजिटालिस, मार्कसल और पोडोफिलम्का व्यवहार किया जा सकता है। कभी कभी यकृत्के स्थानमें (Hepatic regian) छोटे डुस (Douche) वा कलसादि पात्रविशेष द्वारा शीतल जलका प्रयोग करनेसे उपकार होता है। एकादशमें रोगकी साधारण अवस्था दिखाई देनेसे यदि उपरोक्त प्रकारकी चिकित्सा की जाय तो बहुत लाभ पहुंचता है। किन्तु रोगके दूषित होनेसे पहले प्रदाह दूर करनेके लिये एकोनाइटका प्रयोग करे। पीछे बेलेडोना, केमोमिला, कफियाक्रूड़ा, हायसाइमस, नक्स, कुटारी और लाकोसिसका प्रयोग करनेसे बहुत फायदा मालूम होता है। द्वादश या शेषावस्थामें रोग जब दुःसाध्य हो जाय, तो स्वभावके ऊपर निर्भर करनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। विभिन्न देशके झरने आदिका पहाड़ी जल, लघु पथ्य, टर्किस वाथ, वायु परिवर्त्तन और यकृत् स्थानको अच्छी तरह ढका रखना उचित है। चिकित्सक आवश्यकतानुसार पूर्वोक्त औषधादिका व्यवस्था कर सकते हैं।

यकृत्के प्रदाह (Hepatetes)-में एकोनाइट और बेलेडोना पर्यायक्रमसे दिया जा सकता है। आवश्यकतानुसार बेलेडोना और नक्स व्यवहार्य है। स्थानको गरम रखनेके लिये पुलटिस वा स्वेद दिया जा सकता है। यदि क्षतके कारण जलन हो, तो आर्जनाइट्रस, मार्क करोसाई वा मार्कसल; कर्कटिका (Cancer)-के कारण होनेसे आर्स, नक्स, वैराइटा, कार्ब, फस्फरस वा मेंटल-आलव तथा वक्षोन्तर्वेष्टशोथ (Pleurisy)-के कारण होनेसे एकोनाइट, ब्राइओनिया, मार्कसल, पोटासि आवडियम और सलफर ही लाभजनक है।

यकृत्की पीतवर्ण खर्वता (Yellow atrophia)-में इरिस भार्सिककोलर, लेप्टाण्ड्रा, मार्जिनिका, पोडोफिलम, एकोनाइट, बेलेडोना, क्रोटालस, हरिडस, मार्कसल, नक्स, ष्ट्रिकनिया, केमोमिला, ब्राइओनिया, लाकेसिस, चायना और सलफरका अवस्थानुसार प्रयोग करे।

यकृत्के दीर्घकालव्यापी प्रदाह वा सङ्कोचनसे उत्पन्न रोगमें यकृत्की मेदापकृष्टता, रक्ताधिक्यजन्य विवृद्धि, *Pyle-phlebitic Atrophy, Peri-Hepatic Atrophy,* Red Atrophy आदि सुरासेवनजनित यकृत्-विकृतिमें एकोनाइट, बेलेडोना ब्राइओनिया, नक्स, इग्नासिया, पालस, पोडोफिलम् आदिका व्यवहार किया जा सकता है। एक टम्बलर जलमें १२ बुंद नक्सभमिका डाल कर प्रति घंटेमें १ चमचा पीनेसे पेटका गोलमाल जाता रहता और जीभ साफ रहती है। उक्तक्रिया परिवर्त्तित होनेसे रोग आरोग्य और औषध सेवनकी सुविधा होती है।

यदि नासायन्त्र हो कर रक्त निकलता हो, तो एकोनाइट, वेलेडोना, अर्णिका, वागलिक एसिडका प्रयोग करे और पेट पर बरफकी थैली रखे और शीतल जल पीनेको दे। उदरान्त्रसे स्राव निकलने पर हममेलिस, गलिक वा टानिक एसिड और सलफरको काममें लावे। cirrhosis रोगकी शेषावस्थामें Ascites और anasarca उदरी होनेसे आर्स, चायना, कोपेवा, डिजिटालिस और इलेटेरियम्का प्रयोग करना चाहिये।

यकृत्में पीप वा स्फोटक होनेसे रोगकी अवस्था देख कर चिकित्सा करनी चाहिये। यह रोग औषध द्वारा आरोग्य होनेकी सम्भावना नहीं। लीभर एबसेस पक जानेसे कंपनीके साथ साथ ज्वर आता है जिससे नाड़ी धीरे धीरे क्षीण हो जाती है। मष्टाडँ ब्लिष्टर वा वेलेडोना-ष्ठिप्टर द्वारा वह बहुत कुछ ह्रास हो जाता है। उस स्फोटकको चीर फाड़ करा कर बहुतसे रोगी अच्छे हो गये हैं।

मार्कसल उपदंशजनित होनेसे मार्कप्रेटो आइयोडाइड, हेपर सलफर, एसिडम नाइट्रिकम्, लाकोसिस, लाइकोपोडियम् आदिका अवस्थानुसार प्रयोग किया जा सकता है। Waxy, Lardaceous और Amyloid liver रोगमें मार्कप्रटो आइओडाइड, आर्सेनिक, आसाफोटिडा, फस, साइलिसिया, हेपर साल और सलफर देवे। यदि गरमीका घाव (Syphilis) हुआ हो, तो पोटाशि आइओडाइड, आइडिन, मार्कप्रटो सिरप फेरी, आइयोडाइड और आइलासापेल उडहल आदि निर्झरका जल बहुत लाभजनक है। वैक्सि लीभरके साथ यदि फुसफुसमें फोड़ा हो जाय, तो कैल्क-क, चायना, पाटाश, आइयोडाइड, लाइकोप, फस्फरस, ष्टानम तथा अन्यान्य रोग संयुक्त होनेसे चायना, कुटना, आर्सेनिक, कार्वोमेजिटेब्लिस और सलफरका प्रयोग किया जा सकता है।

चरबीसे युक्त बढ़ी हुई यकृत्की द्वितीयावस्थामें नक्स, पालस, पोडाफ और सलफरका सेवन तथा स्वभावके ऊपर निर्भर करना ही उचित है। डा० विलियम-मर्गान-उद्भावित फेरि एमन, साइट्रास, कमष्ट्रिकनि, कम जिजिटालिक और टानब्रिज, मोफट आदि स्थानोंमें भूगर्भस्थ कूपका धातवजलका एकत्र सेवन करनेसे लाभ पहुंचता है।

सामान्य विवृद्धमें (Simple Hypertrophy of the liver) पोडोफिलम और नक्स विशेष उपकारी है। यकृत्का हाइडेटिम अर्बुद होनेसे अम्रा-ग्रिसिया, कल्क-कार्ब, आर्स, मार्क, पालसाटिला, सावाडिल्ला, ग्राफाइटिस, ष्टानम और सलफरका व्यवहार किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार सुईसे विद्ध कर, छुरीसे काट कर और इलेक्ट्रिसिटीसे उसे फाड़ कर औषधादिका निषेक करना चाहिये। जल, आइयोडिन सोल्युसन, पोर्टसुरा और पित्तका प्रधानतः इञ्जक्सन करते देखा जाता है।

यकृत्में कर्कट रोग (cancer of the liver) नाना प्रकारसे हुआ करता है। क्षतकी आकृति वा स्थानानुसार वह विभिन्न नामसे परिचित है; १ कोमल कर्कटरोग (medulary cancer), २ मस्तिष्काकृति (Encephaloid cancer), ३ कर्कटवत् (Carcinoma), ४ कोड़कसदृश मांसपिण्डमय और ५ कृष्णकर्कटरोग (Melanotic cancer) आदि विभिन्न प्रकारके सरल और सुसाध्य यकृत् क्षतमें कोनियम, वेल, म्युरेट आव वैराइटा, एकोनाइट, डिजिटेलिस, मेजरिउन, सोलेनम नाइग्राम, ब्राइओनिया, आर्स, फोस्फरस, मार्क आयडी, आर्ज नाइट्रस, नक्स, चायना, कोपेवा, लाइकोपोडियम्, पोडोफिलम्, भेरेट-आलव, पालसाटिला आदि औषधोंका लक्षणानुसार व्यवहार करनेसे विशेष फल पाया जाता है। यदि उदरकी क्रियामें कोई गड़बड़ी हो, तो नक्सभमिकाके साथ इपिकक वा क्रियोसोट (Kreasot) का सामान्य मात्रामें सेवन कराना फलप्रद है।

रक्तहीनता (Anaemia)-के लक्षण दिखाई देनेसे लौहघटित औषधादिका प्रयोग करना उचित है। आइयोडाइड, लाकटेट एमनियो-साइट्रेट, फोस्फेट तथा डा० मर्गान-कृत मिश्र औषध Ferr, Ammocitrate cum strych, C. Quinae, C, Dig; काडलिभर आयल आदि खानेको देवे। यदि वमनके लक्षण दिखाई दे, तो उक्त मिश्र औषध (compound)-का परिष्कृत नारियलके तेल, पेपसिन अथवा पानक्रियेटिन अथवा डाक्टर

पारिसके रासायनिक फुडके साथ सेवन करावे। इस रोगमें झरने आदिका जल बहुत उपकारी है।

यकृत्प्लीहारिलौह—औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, लोहा, अबरक, प्रत्येक १ तोला, तांबा २ तोला, मैनसिल, हल्दी, जयपाल, सोहागा, शिलाजित, प्रत्येक १ तोला। इन्हें एकत्र कर दन्तीमूल, निसोथ, चितामूल, सम्हालू, त्रिकटु, अदरक वा भीमराजके रस वा क्वाथमें भावना दे कर बेरकी आंठीके समान गोली बनावे। अनुपान रोगीके दोषके अवस्थानुसार स्थिर करे। इस औषधका सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत् और ज्वरादि अति शीघ्र दूर हो जाते हैं।

दूसरा तरीका—लोहा ८ तोला, अबरक ४ तोला, रससिन्दूर ४ तोला, त्रिफला प्रत्येक १३ तोला, करकच लवण ८ तोला, पाकार्थं जल १८ सेर, शेष २। सेर, शतमूलीका रस २। सेर और दूध ४॥ सेर, इन सब द्रव्योंको एक साथ मिला कर पाक करे। पीछे ओल, कापालिका, चई, विडङ्ग, पट्टिका लोध्र, शरपुङ्ख, आकनादि, चितामूल, सोंठ, पञ्चलवण, यवक्षार, विडङ्क, यवानी और थूहरका मूल, प्रत्येक १२ तोला उसमें डाल दे। मात्रा और अनुपान रोगोके दोष और बलानुसार स्थिर करना चाहिये। इसका सेवन करनेसे यकृत्, प्लीहा और गुल्म प्रभृति रोग नष्ट होते हैं। (भैषज्यरत्नाकर)

यकृत्प्लीहोदरहरलौह (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लोहा १ भाग, लोहेका आधा अबरक, उसका आधा रससिन्दूर, अबरक और लोहा मिला कर जितना हो उससे तिगुना त्रिफला। इन सब द्रव्योंको ८ गुनेमें पाक करे। जब आठवां भाग रह जाय तब उसे नीचे उतार कर उतना ही घी तथा लोहे और अबरकसे दूना शतमूलीका रस और दूध मिलावे। अनन्तर उसे फिर मिट्टी वा लोहेके बरतनमें पाक करे। पहले लोहेका अर्द्धांश पाक कर जब पाक सिद्ध हो जाय, तब दूसरा अर्द्धांश उसमें डालना होगा। लोहेके साथ ओल, चई, विडङ्ग, लोध्र, शरपुङ्ख, आकनादि, चितामूल, सोंठ, पञ्चलवण, यवक्षार, वृद्धताड़क बीज, यमानी और मोम, ये सब द्रव्य लोहे और अबरकके समान करके डालना होगा। इसकी भी मात्रा और अनुपान दोषके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होता है। इसका सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि रोग शान्त होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

यकृदरिलौह (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लौहचूर्ण ४ तोला, अबरक ४ तोला, तांबा २ तोला, कागजी नीबूके मूलकी छाल ८ तोला और अन्तर्धूममें भस्म किया हुआ कृष्णसारका चमड़ा ८ तोला, इन सब द्रव्योंको जलमें घोंट कर ६ रत्तीकी गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे यकृत, प्लीहा आदि नाना प्रकारके रोग दूर होते हैं। (भैषज्यरत्ना०)

यकृदात्मिका (सं० स्त्री०) यकृदिव आत्मा स्वरूपं यस्याः बहुव्रीहौ क, टापि अत इत्वं। तैलपायिका, झींगुर।

यकृदुदर (सं० क्ली०) उदररोगभेद, पेटकी एक बीमारी। इसका लक्षण—दक्षिण भागमें यकृत् दूषित होनेसे मन्द-मन्द ज्वर, अग्निमान्द्य और कफ-पित्तके सभी लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इस रोगमें रोगी दुर्बल और पाण्डु वर्णका हो जाता है। इस रोगका दूसरा नाम यकृद्दाल्युदर है। (सुश्रुत निदानस्था० ७ अ०) उदररोग देखो।

यकृद्वैरिन् (सं० पु०) यकृतो वैरी नाशकः। रोहितकवृक्ष, मयनाका पेड़।

यकोला (हिं० पु०) एक प्रकारका मझोला पेड़। इसके पत्ते प्रति वर्ष शिशिर ऋतुमें झड़ जाते हैं। इसकी लकड़ी अन्दरसे सफेद और बड़ी मजबूत होती है और सन्दूक, आरायशी सामान आदि बनानेके काम आती है। इसे मसूरी भी कहते हैं।

यक्ष (सं० पु०) यक्ष्यते पूज्यते इति यक्ष घञ्, यद्वा लक्ष्मीयक्ष्मोतीति अक्ष-अण्। १ गुह्यकमाल, निधि-रक्षक यक्ष। २ गुह्यकेश्वर, कुबेर। ३ इन्द्रगृह। ४ धनरक्षक। ५ पूजा। ६ देवयोनिविशेष, कुबेरका अनुचर।

"आजग्मुर्यक्षनिकराः कुबेरवरकिङ्कराः।
शैलज प्रस्तरकरा अञ्जनाकारमूर्त्तयः॥
विकृताकारवदनाः पिङ्गलाक्षी महोदराः।
स्फटिका रक्तवेशाश्च दीर्घस्कन्धा च केचन॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णज० १७ अ०)

ये कुबेरके अनुचर हैं। इनकी आकृति विकराल होती है। पेट फूला हुआ और कंधे बहुत भारी होते

हैं तथा हाथ पैर घोर काले रंगके होते हैं। ये लोग प्रचेताकी संतान हैं।

"प्रचेतसः सुता यक्षास्तेषां नामानि मे शृणु।
केवलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा।
मेघमाली च यक्षाणां गण एष उदाहृतः॥"

(अग्निपुराण)

इनकी नामनिरुक्ति—

"मैवं भोः रक्ष्यतामेष यैरुक्तं राक्षसास्तु ते।
ऊचुः खादाम इत्यन्ये ये ते यक्षास्तु यक्षणात्॥"

(विष्णुपु० १।५।४१)

ब्रह्माने जब इस जगत्‌की सृष्टि की, तब उनके रजोमात्रात्मिका दूसरा शरीर धारण करनेसे उन्हें क्षुधा और कोप उत्पन्न हुआ। क्षुधातुर हो उन्होंने क्षुत्क्षामोंकी रचना की। वे सबके सब कुरूप और दाढ़ी मूंछवाले थे। जब वे अपने मालिकको खाने दौड़े, तब उनमेंसे जिसने कहा, 'ऐसा मत करो, इनकी रक्षा करो' वे राक्षस और जिसने 'इन्हें पकड़ो खाओ' कहा, वे यक्ष कहलाये।

फिर भी लिखा है,—

"धातुर्यक्षत्यथोक्तस्त्वदने क्षयणे च सः।
यद्यक्षतयुक्तवानेष तस्माद्यक्षो भवत्ययम्॥"

(अग्निपुराण)

यक्ष धातुका अर्थ अदन तथा क्षपण है। जिन्होंने 'खायेंगे' ऐसा कहा था उनका नाम यक्ष हुआ।

यक्षगणका उल्लेख पुराण आदि शास्त्र ग्रन्थोंमें रहने पर भी इस समय इस बातका पता लगाना बड़ा कठिन है, कि उनका स्थान कहां था, इस समय वे किसी रूपमें वर्त्तमान हैं वा नहीं। मनुसंहितामें लिखा है, कि वर्हिषद नामक अत्रिपुत्रसे यक्षगण उत्पन्न हुए।

बहुतोंकी धारणा है, कि यक्षगण एक अलौकिक प्राणी है। इस धारणाका मूल क्या है, इसका पता लगाना कठिन ही नहीं, किन्तु नितान्त असम्भव भी है। पुराणों तथा कथासरित्सागर आदि ग्रन्थोंमें ऐसी अनेक कथाएं लिखी हैं जिनमें मनुष्योंके साथ यक्षोंके वैवाहिक सम्बन्धका वर्णन है। शास्त्र ग्रन्थोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णोंके वंश वर्णनके साथ ही यक्षवंशका भी वर्णन पाया जाता है। इन सब बातोंको देखते इस बातको माननेमें कुछ भी सङ्कोच नहीं होता, कि यक्षगण अलौकिक थे। यक्षोंके सम्बन्धमें आज कलके विद्वानोंमें दो प्रकारके मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वानोंका अनुमान है, कि यू अथवा यहूदियोंको मिस्रवासी हिक्सो (Hyks) कहा करते थे। उसीके अपभ्रंशसे यक्ष शब्द हुआ है। यक्षगण कुवेरके धनरक्षक थे। आज भी हम लोगोंमें 'यक्षका धन' यह प्रवाद प्रचलित है। इस प्रवादका अर्थ समझा जाता है, 'महाकृपणका धन'। इस प्रवादके द्वारा भी यक्षोंका महाकृपण होना साबित होता है। उस समयके यू या यहूदी भी सूद खाते और महाकृपण हुआ करते थे। मरचैंट आव वेनिस नामक नाटकमें महाकवि सेक्सपीयरने शाईलाक नामक जिस यहूदीका चित्र अङ्कित किया है उससे पूर्वोक्त बात प्रमाणित होती है। मालूम पड़ता है इसी कारण यक्ष और यू अथवा यहूदियों को एक पर्यायमें लोग मानते हैं।

दूसरे पक्षका कहना है, कि हिक्स (ह्यक्ष) यक्ष, ये शब्द सादृश्यवाचक अवश्य हैं, परन्तु हिक्स शब्द यहूदियोंका वाचक नहीं है। मिस्रदेशका एक राजवंश हिक्स नामसे मशहूर है। हिक्स जिस देश पर चढ़ाई करते, उसे छार खार करके छोड़ देते थे। दुर्धर्षता और अत्याचारपरायणताके कारण ही भारतीय उनको यक्ष कहने लगे होंगे। हिक्स अथवा यक्ष एक समय मिस्रके राजा थे यह बात इतिहाससे प्रसिद्ध है। मिस्रदेशके शिलालेखों तथा स्तम्भोंसे यह बात प्रमाणित है।

(भारतवर्षीय इतिहास)

यक्षकर्द्दम (सं० पु०) यक्षप्रियः कर्द्दमः। एक प्रकारका अंग-लेप। यह कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कंकोल मिला कर बनाया जाता है। कहते हैं, कि यक्षोंको यह अंगलेप बहुत प्रिय है।

यक्षकन्याकासाधन (सं० क्ली०) तन्त्रोक्त कुमारीसाधन प्रकारभेद।

यक्षकूप (सं० पु०) पुराणानुसार पुण्यतोया पुष्करिणीभेद।

यक्षकृत्य—काश्मीरमें रहनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग कब्रसे लाशको निकालते थे। यक्षकी तरह पहनावा पहननेवालेको यक्षकृत्य और मनुष्यरूपधारीको मनुष्य-

कृत्य कहते हैं। राजा मध्यान्तिकने क्रीतदासरूपमें मनुष्य-कृत्योंको काश्मीरमें ग्रहण किया था।

यक्षग्रह (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्रकारका कल्पित ग्रह। कहते हैं, कि जब इस ग्रहका आक्रमण होता है तब आदमी पागल हो जाता है।

यक्षण (सं० क्ली०) १ पूजन करना। २ भक्षण करना, खाना।

यक्षतरु (सं० पु०) यक्षप्रियो यक्षाश्रितो वा तरुः। वट-वृक्ष, बड़का पेड़। कहते हैं, कि वटका वृक्ष यक्षोंको बहुत प्रिय होता है और उसी पर वे रहा करते हैं।

यक्षता (सं० स्त्री०) यक्षस्य भावः तल्-टाप्। यक्षत्व, यक्षका भाव या धर्म।

यक्षत्व (सं० पु०) यक्षका भाव या धर्म।

यक्षदर (सं० क्ली०) काश्मीरका एक प्रदेश।

(राजतर० ५।८७)

यक्षदासी (सं० स्त्री०) शूद्रककी पत्नी। (दशकुमार)

यक्षधूप (सं० पु०) यक्षप्रियो धूपः। १ साधारण धूप जो प्रायः देवताओं आदिके आगे जलाया जाता है। २ धूनक, धूप, धूना। पर्याय—सर्ज्जरस, अराल, सर्वरस, बहुरूप, राल, धूनक, वह्निवल्लभ, रभस, सालसार, सालज-सालनिर्यास, सर्ज्ज।

कालिकापुराणमें लिखा है, विष्णुकी पूजाके समय यक्षधूप नहीं देना चाहिये, लेकिन देवीपूजामें यह बड़ा प्रशस्त माना गया है।

"न यक्षधूपं वितरेत् माध्वाय कदाचन।
यक्षधूपेन वा देवीं महामायां प्रपूजयेत्॥"

(कालिकापु० ६८ अ०) धूप शब्द देखो

२ सरल वृक्षरस, ताड़पीनका तेल। पर्याय—पायस, श्रीवास, सरलद्रव। (हेम)

यक्षनायक (सं० पु०) १ यक्षोंके स्वामी, कुवेर। २ जैनों-के अनुसार वर्त्तमान अवसर्पिणीके अर्हत्‌के चौथे अनु-चरका नाम।

यक्षप (सं० पु०) यक्षपति, कुवेर।

यक्षपति (सं० पु०) यक्षाणां पतिः। यक्षोंके स्वामी, कुवेर।

यक्षपाल (सं० पु०) बौद्धराजभेद।

यक्षपुर (सं० पु०) वरदासे ६ योजन दक्षिणमें अवस्थित एक बड़ा गांव, अलकापुरी। यहां कायस्थोंका निवास है। (देशावली १४१।२।३)

यक्षभृत् (सं० त्रि०) यक्षं पूजां विभर्त्ति भृ-क्विप् तुक् च। पूजित, जिसकी पूजा की गई हो।

यक्षमल्ल (सं० पु०) १ नेपालके ठाकुरी वंशके तृतीय राजा, ज्योतिर्मल्लके पुत्र। नेपाल देखो। २ बौद्ध मतानुसार लोकेश्वरभेद।

यक्षरस (सं० पु०) यक्षप्रियो रसः शाकपार्थिवादिवत् समासः। पुष्पमद्य, फूलोंसे तैयार की हुई शराब। इसका दूसरा नाम मध्वासव भी है।

यक्षराज् (सं० पु०) यक्षेषु राजते इति राज् (सत्सूद्विषद्रु-हेति। पा ४।२।६१) इति क्विप्। १ यक्षोंके राजा, कुवेर। २ यक्षराजमात्र, मणिभद्र।

यक्षा इव मल्ला राजन्ते अत्र, राज् क्विप्। ३ रङ्ग-मण्डप।

यक्षराज (सं० पु०) यक्षाणां राजा (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति समासान्तष्टच्। यक्षोंके राजा, कुवेर।

यक्षराट्पुरी (सं० स्त्री०) यक्षराजपुरी, अलकापुरी। कैलास पर्वतस्थित कुवेरपुरीको अलकापुरी कहते हैं।

(जटाधर)

यक्षरात्रि (सं० स्त्री०) यक्षप्रिया यक्षाणां रात्रिरिति वा। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा जो यक्षोंकी रात मानी जाती है। इसे दीपालि भी कहते हैं।

यक्षवर्मन्—शाकटायनकृत शब्दानुशासनकी चिन्तामणिके टीकाकार।

यक्षलोक (सं० पु०) वह लोक जिसमें यक्षोंका निवास माना जाता है। सांख्य और वेदान्तके मतसे आठ लोक हैं, यथा—ब्रह्मलोक, पितृलोक, सोमलोक, इन्द्रलोक, गन्धर्वलोक, राक्षसलोक, यक्षलोक और पिशाचलोक।

यक्षवित्त (सं० त्रि०) यक्षाणां वित्तमिव रक्षणीयं वित्तं यस्य। १ जो धन व्यय न करे, कृपण।

(क्ली०) यक्षाणां वित्तं। २ यक्षका धन। प्रवाद है, कि कोई कोई यक्षका धन पाते हैं; किन्तु इस धन पर उनका अधिकार नहीं रहता और न यह खर्च ही किया जा सकता है।

यक्षसाधन (सं० क्लो०) यक्षाणां साधनम्। यक्षोपासना। जिस तरह देवादिकी आराधना करनेसे सिद्धिलाभ होता है उसी प्रकार यक्ष, यक्षी, पैशाची आदिकी उपासना कर मारण, उच्चाटन आदिमें सिद्धिलाभ होता है अर्थात् यक्षसिद्ध व्यक्ति इच्छा करने पर मारण, उच्चाटन आदि बैठे बिठाए कर सकते हैं। यह साधना ऐहिक सुखप्रद है; किन्तु परलोकमें बड़ा अनिष्टफल देनेवाला है। इसीलिये शास्त्रमें इस साधनाको निन्दित कहा है। इससे जीवकी अधोगति होती है, अतएव यह साधना किसीको नहीं करनी चाहिये।

"यक्षाणां यक्षिणीनाञ्च पैशाची नाञ्च साधनम्।
भूतवेतालगान्धर्व मारणोच्चाटनानि च।
अधोगमनमेतेषां साधने ऐहिकं हितम् ॥"
(वाराहीतन्त्र०)

यक्षसेन (सं० पु०) बौद्धराजभेद।

यक्षस्थल (सं० पु०) पुराणानुसार एक तीर्थका नाम।

यक्षाङ्गी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

यक्षाधिप (सं० पु०) यक्षस्य अधिपः। यक्षपति, कुबेर।

यक्षाधिपति (सं० पु०) यक्षाणां अधिपतिः। यक्षोंके स्वामी, कुबेर।

यक्षामलक (सं० क्लो०) यक्षाणामामलकम्। पिण्डखर्ज्जूर वृक्ष, पिंड खजूरका पेड़।

यक्षावास (सं० पु०) यक्षाणामावासो वासस्थानम्। वटवृक्ष, बड़का पेड़। इस वृक्ष पर यक्षोंका निवास माना जाता है।

यक्षिणी (सं० स्त्री०) यक्षः पूजा अस्त्यस्याः यक्ष-इनि-ङीप्। १ कुबेरकी पत्नी। २ यक्षकी पत्नी। ३ दुर्गाकी एक अनुचरीका नाम।

यक्षिणीत्व (सं० क्लो०) यक्षिण्याः भाव-त्व। यक्षिणीका भाव या धर्म।

यक्षी (सं० स्त्री०) यक्षस्य भार्या यक्ष पुंयोगादिति ङीष्। यक्षकी पत्नी।

"यक्षी वा राक्षसी वापि उताहोस्वित् सुराङ्गना।
सर्वथा कुरु नः स्वस्ति रक्षस्वास्माननिन्दिते ॥"
(भारत ३।६४।११७)

२ कुबेरकी पत्नी। (पु०) ३ वह जो यक्षकी उपासना करता हो अथवा उसे साधता हो।

यक्ष (सं० पु०) १ यज्ञशील, वह जो यज्ञ करता हो। २ एक प्राचीन जनपदका वैदिक नाम जो वक्षु भी कहलाता था और इसी नामकी नदीके आस पास था, आक्सस नदीके आस पासका प्रदेश। ३ इस जनपदका निवासी।

यक्षेन्द्र (सं० पु०) यक्षोंके स्वामी, कुबेर।

यक्षेश् (सं० पु०) जैन अवसर्पिणीके एकादश और अष्टादश अर्हत्का अनुचर या उपासक।

यक्षेश्वर (सं० पु०) यक्षाणामीश्वरः। यक्षोंके स्वामी, कुबेर।

यक्षोडुम्बरक (सं० क्लो०) यक्षप्रियमुडुम्बरम्, ततः स्वार्थे कन्। अश्वत्थ फल, पीपलका फल।

यक्ष्म (सं० पु०) व्याधि, क्षय नामक रोग।

यक्ष्मगृहीत (सं० त्रि०) यक्ष्मरोगग्रस्त, यक्ष्मा रोगसे पीड़ित।

यक्ष्मग्रह (सं० पु०) यक्ष्मा इव ग्रहः। क्षय या यक्ष्मा नामक रोग।

"कृत्तिकादीनि नक्षत्रानीन्दोः पत्न्यस्तु भारत।
दक्षशापात् सोऽनपत्यस्तास्तु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥"
(भाग० ६।६।२३)

यक्ष्मघ्नी (सं० स्त्री०) यक्ष्माणं हन्ति हन (अमनुष्यकर्त्तृके च। पा ३।२।५३) इति टक्, ततो ङीप्। द्राक्षा, दाख।

यक्ष्मनाशन (सं० त्रि०) १ यक्ष्मरोगनाशकारी, क्षयरोग नाश करनेवाला। (पु०) २ ऋग्वेदमें १०म मण्डलके १६१ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि।

यक्ष्मा (सं० पु०) (बाहुलकात् यक्षयतेरपि। उण् ४।१५०) इत्यत्र उज्ज्वलदत्तोक्त्या मनिन् प्रत्ययेन साधुः। क्षयी नामक रोग, तपेदिक। पर्याय—क्षय, शोष, राजयक्ष्मा, रोगराट्।

यक्ष्मरोगकी उत्पत्तिका विषय कालिकापुराणमें यों लिखा है,—अश्विनी आदि २७ दक्षकी कन्याओंके साथ चन्द्रमाका विवाह हुआ था। महात्मा चन्द्रमा इन सब पत्नियोंमेंसे केवल रोहिणी पर ही सदा आसक्त रहते थे। इस पर दूसरी दूसरी पत्नियां जलने लगीं और

पिताके समीप जा कर सारी बात कह सुनाई। दक्ष चन्द्रमाके पास गये और उनसे बोले, 'तुमने सभी कन्याओंसे विवाह किया है, सभी तुम्हारी धर्मपत्नी हैं। इनके प्रति बुरा वर्त्ताव करना उचित नहीं, सबोंके प्रति समान व्यवहार करना तुम्हारा धर्म है। अतएव आजसे वैसा ही करना।' चन्द्रमाने उस समय स्वीकार तो कर लिया; पर दक्षके चले जाने पर रोहिणी पर इतना आसक्त हो गये, कि सबोंके प्रति समान व्यवहार न कर सके। पहलेकी तरह दिन रात केवल रोहिणीके ही पास रहने लगे।

तब अन्यान्य पत्नियोंने पुनः पिताके पास जा कर चन्द्रमाका वह दुर्व्यवहार कह सुनाया। यह सुन दक्ष फिर चन्द्रमाके निकट आये और उन्हें अनेक प्रकारके धर्मयुक्त वाक्योंसे सबोंके प्रति समान व्यवहार रखनेका उपदेश दिया और यह भी कहा, कि तदनुसार वे यदि कार्य न करेंगे, तो उन्हें शाप दे दूंगा। चन्द्रमा दक्षका उपदेश मान तो लिया पर रोहिणीके प्रेममें जरा भी न्यूनता न दिखा सके। तब अन्यान्य पत्नियां प्राणत्याग करनेका संकल्प कर पिताके निकट गईं और रोती रोती बोलीं, 'चन्द्रमा आपकी बात बिलकुल ही न सुनेगा। अब हम लोगोंके जीनेकी आवश्यकता नहीं। हम लोगोंकी तपस्याका उपाय बता दें। हम तपस्या कर इस देहका त्याग करेंगी।'

दक्ष कन्याओंको इस प्रकार रोती देख क्रोधसे जल उठे। उस समय उनके नासिकाग्रसे रमणीसम्भोगलोलुप, अधोमुख, निम्नदृष्टि, जगत्‌के कालोत्पादक, भीषण यक्ष्मरोगकी उत्पत्ति हुई। उसका मुखमण्डल दंष्ट्राभीषण, वर्ण अङ्गारवत् कृष्ण, केश स्वल्प, आकृति अति दीर्घ, कृश तथा शिराव्याप्त, हाथमें एक दण्ड था।

इस रोगने जब हाथ जोड़ कर दक्षसे कहा, 'अभी मैं क्या करूं, कहां जाऊं, कृपया कहिये।' तब दक्षने उत्तर दिया, 'तुम अति शीघ्र चन्द्रमाके शरीरमें प्रवेश करो।' तदनुसार यक्ष्म दक्षका हुक्म पा कर धीरे धीरे चन्द्रमाके शरीरमें घुस गया। इस रोगके उत्पन्न होते ही राजा चन्द्रमामें लीन हो गये और इसीलिये संसारमें यह रोग राजयक्ष्म नामसे प्रसिद्ध है।

जब यह रोग चन्द्रमाके शरीरसे निकला तो ब्रह्माने उन्हें बहुत कष्ट दे कर उनके शरीरसे सब अमृतको बाहर निकाल लिया। इस रोगने ब्रह्मासे प्रार्थना की, 'मैं स्वच्छन्दतासे चन्द्रमाके शरीरमें रहता था। अब मैं क्या करूं, कहां जाऊं, मेरी वृत्ति क्या होगी, मेरी स्त्री भी कौन होगी, आप कृपया बता दीजिये।'

तब ब्रह्माने यक्ष्मरोगसे कहा, 'जो व्यक्ति दिन रात सभी समय रमणियों पर आसक्त हों, रतिक्रीड़ामें मग्न रहता हो, तुम उसीके शरीरमें वास करो। जो श्वासरोग, काशरोग या श्लेष्मरोगयुक्त हो कर स्त्री-प्रसंग करे तुम उसीमें प्रवेश करो। तृष्णा नामक मृत्युकी कन्या गुणमें तुम्हारे समान है वह स्त्री हो कर सदा तुम्हारी अनुगामिनी होगी। दुर्बलता ही तुम्हारा कर्त्तव्य कर्म होगा। तुम जिस शरीरमें रहोगे, उसकी क्षीणता होगी, मैंने तुम्हारी वृत्ति स्थिर कर दी, अब तुम जहां चाहो, जा सकते हो।' (कालिकापु० १९,२० २१ अ०)

"वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विष माशनात्।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्॥" (चरक)

मलमूत्रादिका जोरसे चलना, अतिरिक्त शुक्रक्षय, साहस और विषम भोजन इन्हीं चार कारणोंसे त्रिदोष कुपित हो कर यक्ष्मरोग उत्पन्न करता है। जितने प्रकारके रोग हैं उनमें यह रोग सबसे भयानक है।

वायु, मूत्र और पुरुषादिका वेगसे चलना, मैथुन और लङ्घनादि धातुका क्षय होना, असङ्गत साहसिक कार्य करना (अर्थात् बलवान्‌के साथ युद्धादि) तथा विषमाशन (बहुत या थोड़ा अथवा अकाल भोजन) इन्हीं चार कारणोंसे मानवोंको त्रिदोषज यक्ष्मरोग उत्पन्न होता है। इसके सिवा और भी बहुतसे कारण हैं।

इसकी नामनिरुक्ति—

"वैद्यैर्व्याधिमतां यस्माद्व्याधिर्यत्नेन यक्ष्यते।
स यक्ष्मा प्रोच्यते लोके शब्दशास्त्रविशारदैः॥

यक्ष्यते पूज्यते—

"राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः।
तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः॥
क्रियाक्षयकरत्वात्तु क्षय इत्युच्यते बुधैः।
संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते॥" (भावप्रकाश)

वैद्य लोग बड़े यत्नसे इस रोगको पूजते हैं इसीसे इसका नाम यक्ष्मरोग पड़ा है। यह रोग पहले राजा चन्द्रमाको हुआ था इसी कारण इसे राजयक्ष्मा कहते हैं। यह क्रियाक्षय करता है इसलिये क्षय तथा शारीरिक रसादि सोखता है अतः इसे शोष भी कह सकते हैं।

यक्ष्मरोगकी सम्प्राप्ति—कफप्रधान त्रिदोष द्वारा रसवहा सभी धमनियां जब रुद्ध होतीं तब धातु क्षीण हो कर शोष रोग उत्पन्न होता है, अथवा अतिशय स्त्री-प्रसंग द्वारा पहले शुक्रधातु अति क्षीण हो कर शोष रोग उत्पन्न करता है। रसवहा धमनीके रुद्ध होनेसे रसक्षय किस प्रकार हो, इसका कारण चरकमुनि इस प्रकार निश्चय कर गये हैं, सभी स्रोतोंके बन्द होनेसे हृदयका इस विदग्ध अर्थात् दूषित कासके वेगसे ऊपरकी ओर आता है तथा कई प्रकारसे बाहर निकलता रहता है। स्रोत बन्द हो जानेसे बिना कासरोगके भी कुपित वायु द्वारा रस सूखता है। फिर यह भी लिखा है, कि स्रोत बंद होनेसे धातुक्षय तथा धातुक्षय होनेसे वायु कुपित हो जाती है। यह सब अनुलोमक्षय है। प्रतिलोमक्रमसे भी क्षय हुआ करता है।

प्रतिलोमक्रमका विषय इस प्रकार कहा गया है। जो बड़े स्त्री-प्रसङ्गी हैं पहले उन्होंका शुक्रक्षय होता है। शुक्रक्षय होनेसे मज्जा क्षीण, मज्जा क्षीण होनेसे अस्थि, इसी प्रकार क्रमशः मज्जासे रस तक सभी धातु नष्ट हो जाती हैं। इस पर ऐसा प्रश्न उठ सकता है, कि कारणके अभावसे कार्यका क्षय होना भी सम्भवपर है। कार्यभूत शुक्रक्षय होनेसे कारणभूत मज्जा आदि किस प्रकार सुखा सकती है? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि शुक्रक्षय होनेसे वायु कुपित हो कर मनुष्योंको शोषग्रस्त बना देती है।

यक्ष्मरोगका पहला रूप—यक्ष्मरोग होनेसे पहले निम्नोक्त सभी लक्षण दिखाई देते हैं। इससे पहले श्वास, शरीरवेदना, कफनिष्ठीवन, तालुशोष, वमि, अग्निमान्द्य, मत्तता, प्रतिश्याय, कास, निद्रा तथा रोगीकी दोनों आंखें शुक्लवर्ण हो जाती हैं। मांस भोजन और मैथुनकी बड़ी इच्छा रहती है। स्वप्नमें काक, शुक, शजारु, मयूर गृध्रिनी, वानर और कृकलास द्वारा वाहित होता है तथा जलहीन नदी और सूखा पेड़ तथा पवन, धूम और दावानल आदि स्वप्नमें दिखाई पड़ता है।

यक्ष्मरोगका लक्षण—इस रोगमें कंधे और पीठमें पीड़ा, हाथ पांवमें दर्द तथा ज्वर होता है। यही तीन लक्षण प्रायः हुआ करते हैं। महामुनि चरकने इन्हीं तीनोंका उल्लेख किया है। किन्तु सुश्रुतमें छः लक्षण कहे हैं। यथा—भक्ष्य द्रव्यमें अरुचि, ज्वर, श्वास, कास, रक्तोद्गीरण तथा स्वरभेद। इन सब लक्षणोंके दिखाई देनेसे राजयक्ष्मरोग हुआ है, ऐसा जानना चाहिये।

दोषके भेदसे भिन्न भिन्न लक्षण हैं यथा—यक्ष्मरोग वातोल्वण होनेसे स्वरभेद, शूल तथा स्कन्ध और पार्श्वदेश संकुचित होता है। पित्तोल्वणमें ज्वर, दाह, अतीसार तथा रक्तोद्गीरण, कफोल्वणसे मस्तकका गुरुत्व, भक्ष्यद्रव्यमें अरुचि, कास तथा कण्ठभेद हुआ करता है।

यक्ष्मरोग सान्निपातिक होने पर भी दोषको उल्वणताके अनुसार वातादिका पृथक् लक्षण दिखाई देता है, किन्तु सुश्रुतमें कहा है, कि यक्ष्मरोग एकमात्र सन्निपातात्मक है, फिर भी इससे वातादि दोषमें जो दोष प्रबल होगा उसका लक्षण स्पष्ट दिखाई देगा। असाध्य यक्ष्मरोगका लक्षण—उक्त स्वरभेदसे ले कर कण्ठ तक ग्यारह अथवा सुश्रुतके अनुसार छः या ज्वर, कास और रक्तोद्गीरण ये तीन लक्षणवाले यक्ष्मरोगीकी चिकित्सा करना निष्फल है। क्योंकि जिसमें ये सब लक्षण हैं वह यक्ष्मरोगी कदापि आरोग्य नहीं हो सकता। इसमें विशेषता यह है, कि उक्त ग्यारह या छः किंवा तीन लक्षणयुक्त यक्ष्मरोगीका अगर मांस तथा बलक्षय हो, तो वह हरगिज अच्छा नहीं हो सकता। अर्थात् इसमें कितनी भी चिकित्सा क्यों न की जाय सब बेकाम है। किन्तु यदि उपरोक्त सभी लक्षण दिखाई पड़ें तथा रोगीका बल और मांस क्षीण न हो तो उसकी विधिपूर्वक चिकित्सा करनेसे फायदा पहुंच सकता है।

जो यक्ष्मरोगी बहुत ज्यादा भोजन करता फिर भी वह दुर्बल ही बना रहता है, उसका यह रोग असाध्य है। जिस यक्ष्मरोगीको अतिसार हुआ है अथवा अण्डकोष और शरीर सूज आया है उसे भी असाध्य जानना चाहिये। कारण, इस रोगमें अतिसार होनेसे उसके

जीनेकी ज़रा भी आशा नहीं की जा सकती। बल मलमूलक तथा जीवन शुक्रमूलक है, अतएव जिससे यक्ष्मरोगीका शुक्रक्षरण और मलका परित्याग न हो उस ओर चिकित्सकको विशेष ध्यान रखना चाहिये। इस रोगीके दोनों नेत्र शुक्लवर्ण अथवा अन्नमें अरुचि या ऊर्द्ध्वश्वास अथवा बहुत कष्टके साथ अधिक शुक्रक्षरण होनेसे तुरत मृत्यु हो जाती है।

यक्ष्मरोगी यदि थोड़ी उम्रका हो अथच अच्छे वैद्यसे उसकी चिकित्सा की गई हो तथा वह किसी प्रकारका उलङ्घन न करे, चिकित्सकका नियम ठीक तरह प्रतिपालन कर एक हजार दिन जीवित रहे, तो उसके जीवनकी बहुत कुछ आशा की जा सकती है। किन्तु इस पर अधिक विश्वास नहीं है, यह समय बीत जाने पर यह छोड़ा भी जा सकता है, पर उसकी सम्भावना बहुत कम है। अतः यह रोग नहीं छूटता है ऐसा कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं।

जो यक्ष्मरोगी ज्वरविरहित, बलवान्, क्रियासहनशील व्याधिप्रशमन विषयमें यत्नवान्, दीप्ताग्नि तथा कृशताहीन हो उसीकी चिकित्सा करनी चाहिए।

इस रोगके विशेष विशेष लक्षण—अतिशय स्त्रीप्रसंग करनेसे जिसे यह रोग होता है उसे शुक्रक्षयसे उत्पन्न लक्षण दिखाई देते हैं अर्थात् शिश्न और अण्डकोषमें वेदना और रति-क्रीड़ामें असमर्थता होती, बहुत समयके बाद थोड़ा शुक्र गिरता, रोगी पाण्डु वर्णका हो जाता और पूर्वानुक्रमसे अर्थात् पहले शुक्रक्षीण और पीछे मज्जाक्षीण विपरीत क्रमसे धातुक्षीण हुआ करता है।

शोकज शोषलक्षण—शोकके हेतुभूत नष्ट वस्तुकी चिन्ता करनेसे शरीरमें शिथिलता बिना मैथुनके शुक्रक्षय तथा शोषके दूसरे दूसरे लक्षण हुआ करते हैं।

वार्द्धक्यके कारण शोषके लक्षण—वार्द्धक्य वशतः शोष उत्पन्न होनेसे रोगीकी कृशता तथा वीर्य, बुद्धि, बल और इन्द्रियशक्तिकी अल्पता, कम्प, अरुचि, फूटे कांसेके बरतनके शब्दके समान स्वर, बड़ी चेष्टा करने पर भी श्लेष्माके न निकलनेसे शरीरकी गुरुता, अरुचि, मुख, नासिका और चक्षुस्राव, बल तथा प्रतिभा शुष्क और रूक्ष हो जाती है।

रास्तेमें चलनेके कारण शोषरोगीके लक्षण—अत्यन्त पथश्रान्तिप्रयुक्त शोष रोग होनेसे शरीर शिथिल और वर्ण भूनी हुई वस्तुकी तरह कर्कश होता है, उसे स्पर्शज्ञान नहीं रहता, कण्ठ और मुह हमेशा सूखता रहता है।

व्यायामके कारण शोषके लक्षण—बहुत परिश्रमसे शोष उत्पन्न होने पर पूर्वोक्त पथपर्यटनके कारण शोष रोगीके तथा उरःक्षत रोगके सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

उरःक्षतका कारण—धनुः आकर्षण आदि अत्यन्त आयास, गुरुता, भारवहन, बलवान्के साथ युद्ध, विषम अथच उच्च स्थानसे पतन, द्रुतगामी बलवान् बैल, घोड़े, हाथी और ऊंटोंकी गति रोकना, लम्बा पत्थर, काठ, पत्थरका टुकड़ा या अस्त्र चला कर शत्रुको भगाना, जोरसे पढ़ना, दौड़ कर बहुत दूर जाना, तैर कर नदी पार करना, घोड़ेके साथ दौड़ना, तेजीसे नाचना तथा अन्यान्य मल्लयुद्धादि, किसी प्रकार कर्मसे अभिहत और अतिशय मैथुन आदि कारणोंसे वक्षःस्थल (छाती) में उरःक्षत रोग होता है।

इससे वक्षमें भङ्ग, विदारण तथा भेदवत् वेदना, शूल, पादशुष्कता, गात्रकम्प, पार्श्वमें वेदना और शरीर सूख जाता है। वीर्य, बल, वर्ण, रुचि और अग्नि क्रमशः क्षीण हो जाती है तथा ज्वर, गात्रवेदना, मनकी ग्लानि, मल-भेद और अग्निमान्द्य होता है। इसमें खांसीके साथ दूषित श्याव अथवा पीला दुर्गन्धित रक्तमें मिला हुआ गठीला कफ बराबर निकलता रहता है। शुक्र और ओजोधातु क्षय होता है जिससे रोगी बहुत दुर्बल हो जाता है। इस रोगका पूर्वरूप प्रायः प्रकाशित नहीं होता।

इसके विशिष्ट लक्षण—उरःक्षत रोगीके वक्षःस्थलमें वेदना, रक्तवमन तथा अत्यन्त कास होता है। इसमें रक्तमिश्रित पेशाब उतरता तथा बगल, पीठ और कमरमें वेदना होती है।

मलमूत्रादिके रोकने और धातुक्षयके कारण वातादि दोष प्रतिलोमको प्राप्त हो कर यह रोग उत्पन्न करता है। इसमें अन्नका अपरिपाक तथा निःश्वास अत्यन्त पूतिगन्धयुक्त होता है।

इस रोगीके बल या अग्निकी दीप्ति रहनेसे एवं

रोगका लक्षण थोड़ा और थोड़े दिनका रहनेसे उसका रोग इलाजसे अच्छा होता है। अगर एक वर्षसे अधिक समय तक यह रोग सब लक्षणोंसे युक्त रहे तो उसे असाध्य जानना चाहिये। (भावप्र० यक्ष्मरोगाधि०)

सुश्रुतके मतसे इस रोगका निदान—मूलमूत्रादिका वेग धारण, अति मैथुन और अतिरिक्त उपवास आदि धातुक्षयकारक कार्य, बलवान् व्यक्तिके साथ मल्लयुद्ध तथा किसी दिन थोड़ा, किसी दिन अधिक अथवा असमय पर भोजन आदि कारणोंसे यक्ष्मरोग होता है। रक्तपित्त पीड़ाकी बहुत दिनों तक इलाज नहीं करानेसे वह क्रमशः राजयक्ष्मरोगमें परिणत हो जाती है। वायु, पित्त और कफ ये तीन दोष जब कुपित हो कर रसवाही शिराओंको रुद्ध करते हैं तब क्रमशः रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रधातु क्षीण हो जाती हैं। कारण, रस ही सब धातुओंका पुष्टि करनेवाला है। उस रसकी गति रुद्ध हो जाने पर दूसरी किसी धातुका पोषण नहीं हो सकता। अथवा अतिरिक्त मैथुनके कारण शुक्रक्षय होनेसे उस शुक्रकी क्षीणता पूरी करनेमें अन्यान्य धातुका भी क्रमशः क्षय हुआ करता है। इसीका नाम क्षयरोग या यक्ष्मा है।

पूर्व लक्षण—इस रोगके उत्पन्न होनेसे पहले श्वास, अङ्गवेदना, कफ, निष्ठीवन, तालुशोष, वमि, अग्निमान्द्य, मत्तता, प्रतिश्याय, कास, निद्राधिक्य, दोनों नेत्रोंकी शुक्लता, मांसभक्षण और मैथुनमें चाह आदिका लक्षण पहले ही प्रकाशित होते हैं। फिर इस समय रोगीको स्वप्नमें दिखाई देता है, कि पक्षी, पतङ्ग और श्वापद उसे आक्रमण कर रहा है। केश, भस्म और अस्थिस्तूपसे ऊपर वह मानों खड़ा है, जलाशय सूख गया है तथा पर्वत और ज्योतिष्क उस पर टूट कर गिर रहा है।

साधारण लक्षण—रोग उत्पन्न होनेके बाद प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद, अरुचि, दोनों पार्श्वोंका संकोच और वेदना, शिरमें दर्द, ज्वर, स्कन्ध देशमें अतिमात्र सन्ताप, अङ्गमर्द, रक्तवमन और मलभेद ये सब लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें स्वरभङ्ग, स्कन्ध और दोनों पार्श्वोंका संकोच वा वेदना, वाताधिक्यके लक्षण, ज्वर, सन्ताप, अतीसार और रक्तनिष्ठीवन पित्ताधिक्यके लक्षण तथा शिरोवेदना, अरुचि, कास, प्रतिश्याय और अङ्गमर्द श्लेष्माधिक्यके लक्षण हैं। जिसके जिस दोषकी अधिकता होती है उन सब लक्षणोंमेंसे वही दोषज लक्षण उनके अधिकतर प्रकाशित होते हैं।

साध्यासाध्यनिर्णय—यक्ष्मरोग स्वभावतः ही दुःसाध्य है। रोगीका बल और मांस क्षीण न होनेसे उक्त प्रतिश्याय आदि ग्यारह लक्षण दिखाई देनेके बाद भी आरोग्य होनेकी आशा की जा सकती है। किन्तु यदि बल और मांस क्षीण हो जाय अथवा ये ग्यारह लक्षण दिखाई न दे कर कास, अतीसार, पार्श्ववेदना, स्वरभङ्ग, अरुचि और ज्वर ये छः लक्षण दिखाई दें अथवा श्वास, कास और रक्तनिष्ठीवन केवल यही तीन लक्षण प्रकाशित हों, तो भी रोग असाध्य समझा जाता है।

सांघातिक लक्षण—यक्ष्मरोगी अधिक खाने पर भी यदि क्षीण होता जाय अथवा अतीसार उपद्रवयुक्त हो किंवा उसके अंडकोष और उदरमें सूज जाय, तो उसे भी असाध्य जानना होगा। दोनों नेत्र रक्तहीनताके कारण अत्यन्त शुक्लवर्णता, अन्नमें विद्वेष, ऊर्द्ध्वश्वास और बड़े कष्टसे अधिक शुक्रक्षय इनमें जो कोई उपद्रव उपस्थित होगा उसकी भी मृत्यु निकट समझनी चाहिये।

उरःक्षत-निदान—गुरुभार वहन, बलवान्‌के साथ मल्लयुद्ध, उच्च स्थानसे पतन, गो, अश्व आदिको दौड़ते समय बलपूर्वक पकड़ना, पत्थर आदि पदार्थको बलसे दूर फेंकना, तेजीसे बहुत दूर जाना, बड़े जोरसे पढ़ना, अधिक तैरना और कूदना तथा अधिक स्त्री-सहवास करना, वक्षःस्थलमें वेदना होनेका प्रधान कारण है। जो हमेशा कभी बेशी और कभी कम भोजन करते हैं उन्हींका वक्षःस्थल क्षत होनेकी अधिक सम्भावना है। इस प्रकार जो वक्षःस्थल क्षत होता है उसीको उरःक्षत कहते हैं। इस रोगमें वक्षःस्थल विदीर्ण या भिन्न हुआ-सा मालूम होता है तथा दोनों पार्श्वोंमें वेदना, अङ्गशोष और कांपता रहता है। क्रमशः बल, वीर्य, वर्ण, रुचि और अग्निकी हीनता, तथा ज्वर, व्यथा, मनोमालिन्य, मलभेद, कासके साथ दुर्गन्धविशिष्ट श्याव या पीतवर्ण ग्रन्हिल और रक्तमिश्रित कफ हमेशा अधिक परि-

माणमें निकलता है। अतिरिक्त कफ और रक्तवमनसे जब शुक्र और ओज पदार्थ क्षोण हो जाता है, तब रक्त-स्राव तथा पार्श्व, पृष्ठ और कटिमें वेदना होती है। यह उरःक्षत रोग भी यक्ष्माके अन्दर है। जब तक इसके सभी लक्षण दिखाई न दें अथच रोगीका बल और वर्ण ठीक रहे तथा रोग पुराना न हो तभी तक यह रोग साध्य है। एक वर्ष बीतने पर ही रोग खराब हो जाता है। फिर सभी लक्षण दिखाई देनेसे रोगी दुर्बल होता है। अधिक दिनों तक भी यह विना इलाजके रहे तो असाध्य हो जाता है।

यक्ष्मरोग नितान्त दुश्चिकित्स्य है। रोगोके बलकी रक्षा और मलरोध रखनेमें चिकित्सकको सर्वदा होशियार रहना चाहिए। कभी भी विरेचक औषधका प्रयोग न करे। पर हां, एकबारगी मलबद्ध होनेसे मृदुविरेचक औषध दिया जा सकता है। बकरेका मांस खाना, बकरीका दूध पीना, चीनीके साथ बकरीका दूध घी पीना, बकरेया हरिणके गोदमें पड़ा रहना तथा बिछावनके पास हरिण या बकरा रखना यक्ष्मरोगीके लिये बड़ा उपकारक है। रोगी यदि कृश, हो जाय, तो चीनी और मधुके साथ उसे मक्खन खानेको देना उचित है। अगर मस्तकमें, पंजरेमें या कंधेमें दर्द रहे, तो सोयाँ, मुलेठी, कुट, तगर और सफेद चन्दन, इन्हें एकत्र पीस कर घी मिलावे। पोछे उसे गरम कर प्रलेप दे। इससे वेदनाकी बहुत कुछ शान्ति होती है। अथवा विजबंद, रास्ना, नोल, मुलेठी और घी ये सब द्रव्य; अथवा गुग्गुल देवर दारु, श्वेतचन्दन, नागकेशर और घृत अथवा क्षीरकंकोली, विजबंद, भूमिकुष्माण्ड, एलवालू और पुनर्णवा ये पांच द्रव्य; अथवा शतमूली, क्षीरकंकोली, गन्धतृण, मुलेठी और घी, इन्हें एक साथ पीस कर उष्ण प्रलेप दे। इससे मस्तक, पार्श्व और स्कन्धकी पोड़ा दूर होती है। रक्त वमन दूर करनेके लिये आध तोला मधुके साथ २ तोला आलनेका जल या २ तोला कुकसिमाका रस पिलावे। रक्तपित्त रोगमें जो सब योग या औषध रक्तवमन दूर करनेके लिये कहे गये हैं, उनमेंसे जो सब किया ज्वरादिके अविरोधी हैं उनका भी प्रयोग किया जाता है। पार्श्वशूल ज्वर श्वास और प्रतिश्याय आदि उपद्रव रहनेसे धनियां, पीपल, सोंठ, शालपर्णी, पिठवन, भटकटैया, कटैया, गोखरू, बेलकी छाल, सोनापाठेकी छाल, गाम्भारी, पढ़ारकी छाल, गनियारीकी छाल इन सब द्रव्योंका काढ़ा सेवन करनेसे बहुत उपकार होता है। अलावा इसके लवङ्गादिचूर्ण; सितोपलादिलेह, वृहद्वासावलेह, च्यवनप्राश, द्राक्षारिष्ट, वृहत्चन्द्रामृतरस, क्षयकेशरी, मृगाङ्करस, महामृगाङ्करस, राजमृगाङ्करस, काञ्चनाभ्ररस, रसेन्द्र और वृहद्रसेन्द्रगुड़िका, हेमगर्भपोट्टलीरस, सर्वाङ्गसुन्दररस, अजापञ्चकघृत, बलागर्भघृत, जीवन्त्याद्यघृत और महानन्दादि तैल इन सब औषधका प्रयोग रोगकी अवस्था देख कर करना चाहिये। रक्तवमन यदि होता रहे, तो मृगनाभिसंयुक्त औषधका प्रयोग न करे। ज्वरको हालतमें घो वा तेलका प्रयोग बहुत अनिष्टकर है। (सुश्रुत यक्ष्मरोगाधि०)

भावप्रकाश, भैषज्यरत्नावली, चरक, चक्रदत्त आदिमें इस रोगके अनेक औषध और मुष्टियोगकी व्यवस्था है। विस्तार हो जानेके भयसे उनका उल्लेख यहां पर नहीं किया गया। चिकित्सकको चाहिये कि, सोच विचार कर दोषके बलाबलके अनुसार इस रोगको चिकित्सा करें।

इस रोगका पथ्यापथ्य—रोगोका अग्निबल क्षीण नहीं होनेसे दिनमें पुराना बारीक चावल, मूंगकी दाल, बकरे और हरिणका मांस तथा परवल, बैंगन, डूमर, सहिंजन और पुराने कुम्हड़ेको तरकारी खानेको दे। तरकारी आदिको घी और सैन्धवलवणके साथ रोंधना उचित है। रातको जौ या गेहूंकी रोटी, मोहनभोग, ऊपर कही गई तरकारी, बकरीका दूध अथवा थोड़ा गायका दूध दिया जा सकता है। श्लेष्माका प्रकोप रहनेसे दिनमें भी अन्न न दे कर रोटी देना उचित है। अग्निमान्द्य होनेसे दिनमें भात वा रोटी और रातमें थोड़ा दूध मिला हुआ सागूदाना, अरारोट और बारली खानेको देवे। यदि वह भी अच्छी तरह न पचे तो दोनों शाम सागूदाना देना अच्छा है। ऐसी हालतमें जौ २ तोला, बकरेका मांस ८ तोला और जल ६६ तोला इन्हें एकत्र कर पाक करे। पोछे २४ तोला जब बच जाय, तब उसे उतार कर छान ले। उस

काढ़ेको २ तोला घीमें बघार कर उसमें थोड़ा हींग, पीपलका चूर्ण और सोंठका चूर्ण मिला कुछ काल तक पाक करे। पाक शेष होने पर उसमें थोड़ा अनारका रस डाल रोगीको पान करावे। यह जूस यक्ष्मरोगमें बहुत हितजनक और पुष्टिकारक है। इस रोगमें गरम जलको ठंढा कर पिलाना उचित है। शरीरको हमेशा कपड़े ढका रखना चाहिये।

निषिद्धकर्म—इस रोगमें ठंढमें रहना, धूप सेवना, रातमें जगना, गीत गाना, जोरसे बोलना, घोड़े पर चढ़ कर घूमना, मैथुन करना, मलमूत्रका वेग रोकना, व्यायाम करना, राह चलना, श्रमजनक कार्य करना, तम्बाकू पीना, मछली, दही, कटुद्रव्य, अधिक लवण, सेम, मूली, आलू, उड़द, शाक, हींग, प्याज और लहसुन आदि खाना बहुत हानिकारक है। इस रोगमें शुक्रक्षय होने न पावे इस पर विशेष ध्यान रहे जिन सब कारणोंसे मनमें कामभाव उपस्थित हो, उनका हमेशा परित्याग करना चाहिये।

यह रोग महापातकज है। जिन्होंने पूर्वजन्ममें महापातक किये हैं, नरक भोगनेके बाद इस जन्ममें उन्हें वह महापातक व्याधिरूपमें पीड़ित करता है। अतएव इस व्याधिके होनेसे सबसे पहले उसका प्रायश्चित्त करना उचित है। कारणका नाश होनेसे कार्य आपे आप निवृत्त होता है। इस व्याधिका कारण महापातक है, इसलिये सबसे पहले महापातकका नाश करना चाहिये। पापका क्षय होनेसे पापसे होनेवाले रोगका भी नाश होता है। इसलिये सबसे पहले प्रायश्चित्तानुष्ठान करके सुवैद्य द्वारा अच्छी तरह चिकित्सा करावे।

यदि कोई मोहवशतः प्रायश्चित्त न करे और इस रोगसे उसकी मृत्यु हो जाय, तो उसका दाह, अशौच आदि कुछ भी नहीं होगा। यदि कोई उसका दाहादि करे, तो उसे भी यतिचान्द्रायण करना होगा।

(प्रायश्चित्तवि०)

पाश्चात्य चिकित्सकोंके मतसे फुसफुस-विधान कठिन है और उसमें क्रमशः कौड़िक परिवर्त्तन अर्थात् गर्त्त आदि होने तथा रक्तकाश, श्वासकृच्छ्र, शीर्णता, दुर्बलता और ज्वरके लक्षण आदि वर्त्तमान रहनेसे उसे यक्ष्मा कहते हैं। यह दो प्रकारका है, प्रवल और पुरातन।

किसी किसी ग्रन्थकारका कहना है, कि यक्ष्मारोग प्रदाहके कारण उत्पन्न होता है। किन्तु डा० चार्कट (Dr. Charcot) तथा अन्यान्य श्रेष्ठ चिकित्सक कहते हैं, कि केवल ट्युबार्कलके सञ्चारके कारण यह पीड़ा होती है। डा० राबर्ट (Dr. Roberts)-के मतसे य रोग कई प्रकारसे हो सकता है ;—

(१) क्रुपस न्युमोनियामें प्रदाहयुक्त खण्ड स्वाभाविक भावको प्राप्त न हो कर यदि पनीरवत् अपकृष्टतामें परिणत हो, तब यह रोग होता है।

(२) कैटैरैल न्युमोनियामें यदि बहुतसे नवजात एपिथिलियेल-कोष विगलित और शोषित न हो, तो उनके भीतरी चापके द्वारा आस पासका फुसफुस-विधान विध्वंस हो कर कोटर उत्पन्न करता है। डा० निमेयरके मतसे इसीसे अधिकांश प्रवल यक्ष्मरोगकी उत्पत्ति होती है।

(३) पुरानी न्युमोनियासे जो यक्ष्मा होती है उसे फाइब्रयेड थाइसिस कहते हैं।

(४) वायुकोषके मध्य नये नये एपिथिलियेल-कोष उत्पन्न न हो कर वहां ट्युबार्केल उत्पन्न होता है तथा परस्पर संयोग द्वारा लोष्ट्र-कार धारण करता है। अन्तमें वे सब तथा आस पासके अंश गल जाते हैं। उपदंश-पीड़ा-जनित गोमेटाका सञ्चार होनेसे उक्त कोषमें यक्ष्मा उत्पन्न होती है।

(५) पलमोनारी धमनीकी शाखामें एम्बलिजम् होनेसे कभी कभी यक्ष्मा हो सकती है।

१ कौलिक। २ २०से ३० वर्षके व्यक्तिके लिये। ३ शारीरिक दुर्बलता। ४ कार्यविशेष ; जैसे—नाना प्रकारका उत्तेजक द्रव्य सूंघना अथवा अस्वास्थ्यकर स्थानमें रहना। ५ शिथिल स्वभाव, अमिताचार और अन्यान्य अनियमित कार्य। ६ मन्द खाद्यद्रव्य तथा परिपाकका व्यतिक्रम। ७ अपरिष्कार वायुसेवन, वस्त्रादि द्वारा वक्षःप्राचीर संकोचन। ८ सीली जगहमें रहना अथवा वहांकी वायुमें अधिक ठंढ रहनेसे अत्यन्त मानसिक परिश्रम, मनस्ताप और शोक इत्यादि। खांसी;

मोहक ज्वर (Typhus fiver), आन्त्रिक ज्वर (Typhoid fiver), बहुमूल, कण्ठनलोप (Laryngitis), फुस्फुसप्रदाह (Pneumonia) आदि पीड़ाके बाद, गर्भजात वा प्रसवके बाद, विशेषतः अधिक रक्तस्रावके बाद यह रोग हो सकता है। कोई कोई कहते हैं, कि जिस पशुके यक्ष्मारोग हुआ है, उसका मांस खाने वा दूध पीनेसे अथवा उस रोगसे आक्रान्त व्यक्तिको प्रश्वास-वायुका जो आघ्राण करता उसे भी यह रोग हो सकता है। Dr. Koch-का मत है, कि यक्ष्मश्लेष्मा स्थित Tubercle Bacillus-के शरीरमें प्रवेश करनेसे यक्ष्मरोग होता है।

ठंढ लगने, फेफड़ेमें उत्तेजक और दुर्गन्धयुक्त वायुके घुसने, बहुत शोक या चिन्ता करनेसे यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

प्रबल यक्ष्मा (Acute वा Galloping Phthisis) धीरे धीरे बढ़ती है। इस कारण रोगको द्रुतगामी अवस्था देख सुन कर चिकित्सकोंने 'इसका गेलोपिं ष्टेज' नाम रखा है।

रोगाक्रान्त होनेके बाद शरीर दिनों दिन दुबला पतला होता जाता है। अन्तमें केवल अस्थिपंजर रह जाता है। विशेष परिवर्त्तन एकमात्र शरीरके अभ्यन्तर भागमें हुआ करता है। मृत्युके बाद शरीर-व्यवच्छेद करनेसे मृतदेहमें कभी कभी फेफड़ेके ऊपर यक्ष्मकोटर और कुजित काशके साथ फुसफुस-प्रदाहका चिह्न विद्यमान रहता है, ब्रङ्काईटस, ब्रङ्कोन्युमोनिया और फुसफुसके नीचे कोटर देखनेमें आता है। ट्यु वार्कल-जनित रोगमें फुसफुसके ऊपर ही कोटर हुआ करता है। डा० चार्कटने अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा करके देखा है, कि गुटिका वा दृढ़ अंशोंका मध्य स्थान कोमल है, उसके चारों ओर एक बड़ी झिल्ली और बड़ा बड़ा कोष (Giant cells) रहता है।

इस पीड़ामें ज्वर हमेशा आया करता है। वमन, विवमिषा, क्षुधामान्द्य, उदरामय, वक्षमें वेदना, खांसी, श्लेष्मोद्गम और रक्तोत्काश आदि देखे जाते हैं। कभी कभी पीड़ाके आरम्भमें ही हिमपोटिसिस् उपस्थित होता है। बहुत ज्वर आता, शरीर शीर्ण हो जाता और लोहेके मोरचेके समान श्लेष्मा निकलती है। कैटेरल न्युमोनियाजनित रोगमें छातीमें वेदना, अत्यन्त श्वास-कृच्छ्, अधिक श्लेष्मानिर्गम और घर्म आदि लक्षण विद्यमान रहते हैं। ट्युवार्कल वा गुटिकाजनित व्याधि और अत्यन्त ज्वर, शीर्णता, दुर्बलता, रात्रिकालमें अतिशय घर्मनिर्गम, कभी कभी कम्प उपस्थित और कभी कभी विकारके लक्षण दिखाई देते हैं।

पीड़ाके प्रारम्भमें पहले ब्रङ्काइटिसका लक्षण दीख पड़ता है। फुसफुसके नीचे वा ऊपरका भाग कभी कठिन कभी कोमल और अन्तमें छिद्र लक्षणयुक्त हो जाता है। बाह्यदृश्यमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन नहीं होता और न क्षतस्थानमें कोई कमी वेशी ही देखी जाती है। चोट करनेसे पीड़ित अंशमें जड़ पदार्थकी तरह घनगर्भ (Dull) अथवा ढक ढक शब्द निकलता है। कान लगा कर सुननेसे श्वासप्रश्वासमें खांसी-सा शब्द मालूम होता है। अस्वाभाविक शब्दके मध्य पहले मायेष्ट क्राङ्कि (moist crankling) और पीछे वृहत्, सरस और रियि रालस (Rales) तथा अन्तमें कैसर्नस रङ्कस सुना जाता है। स्वर खन् खन् करता है।

यह रोग अत्यन्त कठिन है। न्युमोनिया-संक्रान्त यक्ष्मा होनेसे वह कभी कभी आरोग्य हो जाती है। किंतु गुटिकायुक्त होनेसे जीवनरक्षाका उपाय नहीं।

बलकारक पथ्य और औषध व्यवस्थेय है। ज्वर दूर करनेके लिये कुनाइन तथा खांसी, दमा और पसीना रोकनेके लिये डाक्टर एण्डरसन पट्टोपिया इञ्जेक्टको सलाह देते हैं। उनके मतसे बरफके जलमें भिगाया हुआ फ्लानेल दिनमें ३ या ४ बार (प्रत्येक बार आध घंटा तक) ऊपर लगानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। ब्रांडी पीना और मांसका जूस भी विशेष उपकारक है। छाती पर पुलटिस, टार्पेण्टाइन ष्टुप और उत्तेजक लिनिमेण्टकी मालिश करे। कुनाइन २ ग्रेन, पल्भडिजिटेलिस आध ग्रेन और अफीम १ ग्रेनको गोली बना कर दिनमें तीन बार सेवन कराया जा सकता है। इससे बहुत फायदा होता है।

पुरानी यक्ष्मामें (Chronic pthisis)—फुस्फुसके एपेक्स (Apex) और ऊपरका लोब (Upper lobe)

आक्रान्त होता है। रोग ऊपरसे धीरे धीरे नीचे चला आता है। डाक्टर फ्राउलवके मतानुसार एपेक्सके १ वा १॥ इञ्च नीचे तथा फुस्फुसके वाह्य और पश्चाद्भागमें पीड़ा शुरू होती है।

इस पीड़ासे मृत्यु होने पर दोनों फुस्फुसमें थोड़ा बहुत परिवर्त्तन होता है। रोगके आरम्भमें फुस्फुसके ऊपरी भाग पर एकत्र सञ्चित अथवा आपसमें विभिन्न छोटे छोटे पांशुवर्णके ट्युवार्कल उत्पन्न होते हैं। उस समय पीड़ित अंश कठिन और जेलेटिनके जैसा दिखाई देता है। गुटिका पहले वायुकोषमें ब्रङ्काहको श्लैष्मिक झिल्लीमें वक्षावरक झिल्ली (Pleura)-के नीचे रक्त-नालीके चारों ओर वा आस पासकी लसीकाग्रन्थियोंमें (Lymphatic glands) उत्पन्न होती है। पीछे उन गुटिकाओंका रंग पीला और वह स्थान कोमल हो जाता है, रोग जब आरोग्य होने पर होगा, तब गुटिका गल कर शरीरमें मिल जायगी अथवा श्लेष्माके साथ बाहर निकल आयेगी।

कभी कभी उन गुटिकाओंके चूर्णापकृष्टतामें परिणत होनेसे रोग स्थगित हो जाता है। किन्तु इनके गलनेसे अकसर छोटे छोटे गर्त्त उत्पन्न हुआ करते हैं तथा उन सबके एक साथ मिल जानेसे एक बड़ा यक्ष्मगह्वर बन जाता है। उसके निम्नदेशकी श्लेष्मा और विगलित झिल्ली तथा कभी कभी ऊपरमें ब्रङ्काइका छिद्र रहता है। वे छिद्र गोल या अण्डाकारके होते हैं। कभी कभी वे बिलकुल बंद हो जाते हैं। रक्तनालिया रुद्ध वा स्वाभाविक रहती हैं। कभी कभी दो एकके मध्य एनिउरिजम वा एकृसियस दिखाई देता है। अलावा इसके न्युमोनिया, ब्रङ्काइटिस, पुरानी प्लुरिसी तथा कहीं कहीं कोलाप्स आव लंस वा एम्फिसिमाका चिह्न रहता है। लेरिंसमें तथा ब्रङ्काइकी श्लैष्मिक झिल्लीमें नाना प्रकारके क्षत देखे जाते हैं।

पीड़ा प्रायः हठात् रक्तोत्काशसे आरम्भ होती है। कभी कभी वह फुस्फुसकी पीड़ाके परिणामस्वरूप उपस्थित होती है। रोगका निरूपण करनेके लिये रोग-स्थानमें भी कुछ लक्षण रहते हैं।

छातीमें जगह जगह वेदना होती है। प्लुरिसी वा सर्वदा पेशीके सञ्चालन द्वारा वह वेदना उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। खांसी पहले सूखी और कष्टकर होती तथा खानेके बाद, रातमें और सोनेके समय वा सो कर उठनेके बाद बढ़ जाती है। लेरिंसकी श्लैष्मिक झिल्लीके आक्रान्त होनेसे खांसी कर्कश और स्वरभङ्ग होता है। कभी कभी खांसी इतनी बढ़ जाती है, कि कै हो जाता है। इसके बाद ही श्लेष्मोद्गम होते देखा जाता है। यह पहले स्वच्छ और तरल, कभी दृढ़ और अस्वच्छ होती है। इसके बाद श्लेष्मामें पीप रहने तथा यक्ष्मा-गह्वरके बड़े होनेसे श्लेष्मा दुर्गन्ध, सब्ज और पीली होती है। जलमें वह डूब जाती है।

अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा कर देखनेसे उस श्लेष्मामें पीप, रक्तकणिका, बहुसंख्यक वसाकोष और तैलविन्दु, कङ्करवत् चूर्ण और फुसफुस झिल्ली दृष्टिगोचर होती है। रासायनिक परीक्षा द्वारा उसमें शर्करा पाई जाती है। इस पीड़ामें रक्तकाश एक प्रधान लक्षण है। अनेक समय यह रोगके शुरूमें हुआ करता है। शोणित श्लेष्माके साथ वह रेखावत् दिखाई देती अथवा एक बारमें इतना अधिक निकलता है, कि रोगीका जीवन नष्ट हो सकता है। रक्तश्लेष्माके साथ संश्लिष्ट हो कर बाहर निकलनेसे यक्ष्माके साथ कैटरेल न्युमोनिया रहनेकी सम्भावना है। थोड़ा रक्तस्राव होनेसे रोगी कुछ शान्ति मालूम करता है, किन्तु रक्त यदि अधिक निकले, तो दुर्बलता बढ़ जाती है। किसी किसी ग्रन्थकारका कहना है, कि ब्रङ्क्यिल कैशिकासे रक्तस्राव होता है। किन्तु बहुतेरे पलमोनरी धमनीकी छोटी छोटी शाखासे इसकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

फुस्फुसके मध्य ट्युवार्कल सञ्चित होनेसे शरीर गरम हो जाता है। वह गरमी कभी १०१।२०२ और कभी १०३।१०४ डिग्री तक चढ़ जाती है। ट्युवार्कल जब गलने लगता है, तब शरीरकी गरमी उससे कम अर्थात् १०१से १०० तक हो जाती है। छिद्र होनेसे पुनः ज्वर बढ़ जाता है। कैटरेल न्युमोनियामें ट्युवर्कल सञ्चित होनेसे उक्त पीड़ाका उत्ताप बढ़ता है। कोई कोई कहते हैं, कि पीड़ित पार्श्वका उत्ताप जो बढ़ जाता है वह विश्वासयोग्य नहीं है। नाड़ी-गति १०० से

१२०, दुर्बल और तेज होती है। शरीरकी चरबी क्षयको प्राप्त होती है, इस कारण रोगी देखनेमें शीर्ण बलहीन और मलिन मालूम होता है। अङ्ग, प्रत्यङ्ग, वक्ष, उदर आदि क्रमशः शीर्ण होता जाता है, किन्तु मुखमण्डल वैसा शीर्ण नहीं होता। पेशियां शिथिल, केश पतले और कहीं कहीं बिलकुल सफेद हो जाते हैं, चमड़ा सूख जाता और शल्कवत् एपिडार्मिस द्वारा ढक जाता है। कभी कभी छातीके ऊपर कोलेगमा अर्थात् काला दाग दिखाई देता है। उंगलीका अगला भाग मोटा, नाखून हथेलीकी ओर झुके हुए, दोनों पैर स्फीत, शरीर और कञ्जक्टाइभाका वर्ण फीका, क्षुधामान्द्य, तैलाक्त पदार्थमें अरुचि, कोष्ठबद्ध, मसूड़े में एक लोहित रेखा, जीभ फटी और लाल, वमन, विवमिषा, अजीर्ण, अन्तमें उदरामय आदि लक्षण वर्त्तमान रहते हैं। मूत्र लोहिताभ, कभी कभी उसमें एलवुमेन वा शर्करा पाई जाती है। पीड़ा कठिन होनेसे भी रोगीके जीवनकी आशा रहती है। स्त्रियोंका ऋतु बंद हो जाता है। फुसफुसमें गर्त्त होनेसे ज्वरका स्वभाव बदल जाता है। सबेरे ज्वरका सामान्य विराम रहता है; दो पहरको कुछ जाड़ा दे कर वह बढ़ जाता है। उस समय हाथ पैरमें बहुत जलन होती है तथा गण्डदेशमें लाल वर्ण दिखाई देता है। दो पहर रातके बाद पसीना निकलता और ज्वर घटता जाता है। इसको हेकटिक फीवर कहते हैं।

प्रथम वा स्थगित अवस्था (Consolidated stage) सुप्रा और इनफ्रा क्लैभिक्युलर रिजन झुका हुआ दिखाई देता है, किन्तु वह एम्फिसिमायुक्त रहनेसे कुछ उन्नत मालूम होता है। एपेक्स जब बहुत आक्रान्त होता, तब पीड़ित पार्श्वका स्कन्ध निम्नगामी दिखाई देता है। श्वास-प्रश्वास कालमें पीड़ित स्थान अच्छी तरह सञ्चालित नहीं होता और न वह उतना फैलता ही है। छूनेसे वाक्विकम्पन बढ़ता है; किन्तु कभी कभी स्वाभाविक अथवा उससे भी कम मालूम होता है। चोट करनेसे ढक ढक शब्द होता है। कभी कभी पीड़ाके प्रारम्भमें प्रतिघातमें होनेसे रैजोनेट शब्द उत्पन्न होता है। कान लगानेसे श्वास प्रश्वासका शब्द मृदु, कर्कश वा जार्कि और कभी कभी सुप्रास्पाइजसरिजनमें एक विशेष शब्द सुना जाता है जिसे कोग्ड ह्वील रेस्पिरेशन (Cogged wheel respiration) कहते हैं। कभी कभी श्वास-प्रश्वास शब्द ब्लोयि तथा ब्रङ्कियेल हुआ करता है। प्रश्वास शब्द दीर्घ और कर्कश; सुस्थ फुस्फुसका श्वास-प्रश्वास शब्द प्युराइल वा ऊंचा होता है। अस्वाभाविक शब्दके मध्य ड्राय क्राक्लि पाया जाता है। जहां ढक ढक शब्द करता है वहां हृत्पिण्डका शब्द जोरसे सुनाई देता है। दक्षिण फुस्फुसके ऊपर वह शब्द उच्च भावमें सुननेसे एक विशेष चिह्न कहलाता है। वहांका प्लुरा आक्रान्त होनेसे ग्रेञ्जि वा क्रिकि शब्द सुना जा सकता है। हृत्पिण्ड, पाकस्थली, प्लीहा और यकृत् सामान्य परिमाणमें ऊद्ध्र्वगामी होता है। प्लुराकी स्थूलताके चाप द्वारा बाईं ओर सवक्लेभियन धमनीमें ममर शब्द सुनाई देता है। भौकैल रेजोनेन्स बहुत थोड़ा बढ़ता है।

द्वितीय वा गलनेकी अवस्था (Softening stage)—पीड़ित स्थान अधिक नत और वक्षसञ्चालन मृदु मालूम होता है। वाक्विकम्पन प्रथमावस्थाके जैसा होता है। परिमाण करनेसे खर्वता विशेषरूपसे दिखाई देती है। प्रतिघात करनेसे प्रायः कई जगह ढक ढक शब्द करता है। कान द्वारा ब्लोयि वा ब्रङ्कियेम रेस्पिरेसन सुनाई देता है। अस्वाभाविक शब्दके मध्य यथेष्ट क्रौलि और सूक्ष्म तथा ववलि रङ्कस निश्वास और प्रश्वासमें सुननेमें आता है। वाक्प्रतिध्वनि बढ़ जाती है। पूर्वोक्त यन्त्रादि कुछ अपने स्थानसे हट जाते हैं।

तृतीय वा गह्वरक अवस्था (Stage of Excavation)—गह्वरका अग्र प्राचीर जब पतला होता, तब इनफ्राक्लाभिक्युलर रिजन कुछ उन्नत हो जाता है और यदि पतला न हो, तो वह स्थान अधिक नत दिखाई देता है। निश्वासकालमें पीड़ित स्थान फैल जाता है। छूनेसे गह्वरमें अधिक श्लेष्मा और पीप रहनेके कारण यकृत्का रङ्काल फ्रेमिटस मालूम होता है। उस समय उसका आकार छोटा रहता है। चोट देनेसे गह्वरके ऊपर कठिन झिल्ली रहनेके कारण सामान्य ढक ढक आवाज सुनी जाती है। पीड़ित फुस्फुसके अन्यान्य अंशोंमें प्रतिघात करनेसे भी ढक ढक शब्द सुनाई देता है। कान लगा

कर सुननेसे श्वास-प्रश्वासका शब्द ब्लोयि, ट्युब्युलर, कैभर्नस अथवा एम्फरिक मालूम होता है। निश्वास छोड़ते समय चूसने और सिसकनेके जैसा शब्द सुनाई देता है। अस्वाभाविक शब्दके मध्य एपेक्सके ऊपरी भाग पर वृहत् मायेष्ट रालस और रिङ्गि रालस तथा कभी कभी गार्गलिङ्ग वा मेटालिक टिंकि पाया जाता है। वाक्ध्वनि वढ़ती और खन् खन् आवाज होती है। पेक्टरिलोकी और ह्विस्पारि पेक्टरिलो हमेशा सुना जाता है। टोसिव रेजोनेन्स भी सुननेमें आता है। हृत्पिण्ड-का शब्द बड़े जोरसे सुनाई देता है। कभी कभी इसका धक्का लगनेसे गह्वरमें विशेष रङ्काई उत्पन्न होता है। स्थलविशेषमें गह्वरके ऊपर एनिउरिजम मर्मर शब्द सुना जाता है। मालूम होता है, मानो वह फुस्फुसकी सभी धमनियोंकी शाखासे उत्पन्न होता हो। बड़े गह्वरमें फ्रुकचुमेशन पाया जाता है।

रिट्रोग्रेसिव थाइसिस—अर्थात् यक्ष्मरोग जब आरोग्य होने पर होता है, तब कुछ विशेष भौतिक चिह्न दिखाई देते हैं, जैसे—दूसरी अवस्थाके बाद आरोग्य होनेसे सरस शब्दके बदले दिनों दिन सूखी और क्लिकि आवाज पाई जाती है। कोटर उपस्थित होनेके बाद आरोग्य होनेसे कैभर्नस रङ्कसके बदलेमें सोनोरस रङ्कस वा शुष्क ब्रङ्कियेल मर्मर शब्द सुनाई देता है तथा कभी कभी नाना प्रकारका फ्रिकशन वा घर्षण शब्द उठता है। किन्तु केवल उक्त चिह्नोंके ऊपर निर्भर नहीं किया जा सकता; इनके साथ साथ ज्वरादि लक्षणोंका लाघव होनेसे वे सहकारी हो जाते हैं।

लेरिंसमें क्षत, ब्रङ्काइटिस, न्युमोनिया, प्लुरिशी, न्युओ थोरक्स, ट्युबार्किउलर पेरिटोनाइटिस; अन्त्र, विशेषतः इलियममें क्षत, फिश्चिउला इन-एनो, डाये-विटिस, ट्युबार्किउलर मेनिञ्जाइटिस और एमिलयेड लीभर आदिसे यह रोग उपसर्गाकारमें आता दिखाई देता है।

भोगकालका कोई निश्चित समय नहीं है। रोगी धीरे धीरे दुर्वलता, हेक्टिक ज्वर और उपरोक्त उपसर्गसे मृत्युमुखमें पतित होता है।

रोगके आमूल इतिहास, रक्तोत्काश, शीर्णता, ज्वर, अंगुलिके अग्रभागमें स्थूलता, काश, स्वरभङ्ग इत्यादि लक्षण और भौतिक परीक्षा द्वारा आसानीसे रोगका पता लगाया जाता है।

पीड़ा ट्युवार्कलघटित अथवा कौलिक होने अथवा रोगी अल्पवयस्क वा स्वभावतः दुर्वल रहनेसे रोग बहुत जल्द कठिन हो जाता है। चिकित्सा द्वारा रोग-यन्त्रणा दूर होती तथा रोगी कुछ समय तक जीवित रह सकता है। कहीं कहीं एकदम आरोग्य हुआ भी देखा गया है। अत्यन्त श्वासकृच्छ, सर्वदा रक्तोत्काश, प्रचुर पांशुवर्ण और दुर्गन्धमय श्लेष्मोद्गम, रात्रिकालमें बहुत पसीना, ब्राइटस-डिजिज, न्युमेथोरक्स, अन्त्र-विदारण, अत्यन्त ज्वर, दुर्वलता, शीर्णता और अरुचि आदि उपसर्ग तथा लक्षण गुरुतर समझे जाते हैं। यह रोग भी भिन्न भिन्न प्रकारका हुआ करता है।

१ फुस्फुसके ऊपर ट्युवार्कल जमनेके कारण यदि यक्ष्मा हो, तो उसे ट्युवार्किउलर कहते हैं। २ लेरिंस, ट्रेकिया और ब्रङ्काईके मध्य ट्युवार्कलजनित क्षत होने-से उसे लैरिञ्जियेल वा ब्रङ्कियेल थाइसिस कहते हैं। ३ क्रुपस वा कैटेरल न्युमोनिया पीड़ामें फुसफुसके कठिन भाग पर ट्युवार्कल वा गह्वर उत्पन्न होनेसे वह न्युमो-निक थाइसिस कहलाता है। ४ मिकैनिकस वा माइनर्स (miners) थाइसिस। यह कभी कभी नाइफ ग्राइण्डर्स (Knife grinders) थाइसिस भी कहलाता है। फुसफुसके मध्य लोहे वा पत्थरके चूर्ण आदि घुसनेसे यह रोग उत्पन्न होता देखा जाता है। ५ पुराने प्लुरिशी और पुराने न्युमोनिया रोगसे फ्राइ-ब्रयेड थाइसिस उत्पन्न होता है। ६ फुसफुसके गामेटाके गलनेसे जब गर्त्त हो जाता है, तब उसे सिफिलिटिक थाइसिस कहते हैं। ७ फुस्फुसके मध्य निःसृत और संयुक्त रक्तके क्रमशः विगलित होनेसे वह हेमरेजिक थाइ-सिस कहलाता है। ८ रक्तनालोंके मध्य एम्बलिजम होनेसे तत्पार्श्ववर्त्ती विधान ध्वंस हो जाता जिससे एम्वलिक थाइसिस उत्पन्न होता है।

सूखे और साफ सुथरे स्थानमें रहना, वायु परिवर्त्तन करना, गरम कपड़ा पहनना और अमिताचारका परिहार करना उचित है। प्रति दिन घोड़े पर चढ़ कर वा पैदल

भ्रमण करना स्वास्थ्यप्रद है। यदि रोगी ऐसा न कर सके, तो गाड़ीसे भी भ्रमण कर सकता है। जलन देनेसे उसीके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। रोगोकी स्वास्थ्योन्नति और रक्तकी गुणवृद्धिके लिये नाइट्रिक सलफ्युरिक अथवा फोस्फरिक एसिड डिल, जेनसियन, कलम्बा और कैसकेरिला आदि तिक्त बलकारक औषधों के साथ प्रयोग करना कर्त्तव्य है। अन्यान्य ओषधोंमें कुनाइन, सैलिसिन, ष्ट्रीकनिया आदिका प्रयोग करे। विशेष ओषधोंके मध्य काडलिभर आयल, सिरप हाइ-पोफस्फेट आव लाइम, पैनक्रियेटिक-इमोलसन, सल-फाइड आव कैलसियम, मावेस्कम थैप्सस, एक्ष्ट्राक्ट आव मल्टिन, कौमिस वा मल्किवाइन आदि व्यवहार्य है। कोई कोई ग्लिसिरिन वा आलिभ आयल देनेको कहते हैं। काडलिभर आयलके बदलेमें मुरहल, ग्लिसिरिन और दूधका पानी व्यवहृत होता है।

नैशघर्म रोकनेके लिये आक्साइड आव जिङ्क, टिं बेलेडोना, लाइकर मर्फिया, सलफ्युरिक तथा गैलिक एसिड आदि दे अथवा आगर्टिन वा एट्रोपिया इञ्जेकसन करे। डाक्टर मारेल (Dr. Marrel) पाइक्रोटक्सिन् १ का ६० भाग ग्रेन अथवा ५ मिनिम (बुंद) मास्केरिन सोल्युसन रातको सोनेके समय व्यवहार करनेकी सलाह देते हैं।

खांसीकी उग्रता रोकनेके लिये आक्सिमेल सिलि, सिरप टोलू, टिं कैम्फर कं, डोभर्स पाउडर, कोटन क्लोरा-इल, ब्रोमाइड आव एमोनियम, लैकरिक एसिड (१० बुंद करके दिनमें दो बार) नाना प्रकारका लिंटस, प्रुनस भार्जिनस, टिं जेलसिमियम, बेलेडोना और कोनायम आदि ओषधका व्यवहार करे।

पीड़ित स्थानके ऊपर फोमेण्टसन, पुलटिस, मष्टर्ड प्लष्टर, ब्लिष्टर, कोटन आयल, लिनिमेण्ट, टार्टर एमेटिक आयेनमेण्ट इत्यादि मालिश करनेके लिये व्यवहृत होता है।

श्लेष्मा दुर्गन्धमय होनेसे क्रियोसोट, आइओडिन, कार्वलिक एसिड, आयल, युकैलिप्टस, टेरिबिन, पाइन आयल, आइयोडोफरम्, मेन्थल, सलफ्युरस एसिड, हाइड्रोक्लोरिक एसिड इत्यादिको गरम जलमें गला कर सूंघना तथा आभ्यन्तरिक सोडि-सलफो-कार्वलस, बेञ्ज-येट आव सोडियम, थाइमल, टेरिबिन् आदि सेवन करना चाहिये। दूध, मांसका जूस आदि बलकारक पदार्थ खानेको देना चाहिये। मदिराके मध्य थोड़ा सेरि, बीयर वा आरेञ्जवाइनका व्यवहार किया जाता है। कोई कोई गदहो और बकरीके दूधको बहुत उपकारी बतलाते हैं।

उदरामय रोगमें बिशमथ, सवनाइट्रस, पलम्बडोमारी और क्लोरोडाइन इत्यादिका व्यवहार करे। कोई कोई कोटा व्यवहार करनेकी सलाह देते हैं। किन्तु इस प्रकार-की चिकित्सा द्वारा आज तक कोई फल नहीं देखा गया है। समुद्रवायु सेवन यक्ष्मरोगमें बहुत उपकारी है; विशेषतः प्रथमावस्थामें बहुत कुछ फलदायक है।

पीड़ाकी प्रथमावस्था।

रि फेरिकुइनी एकसाइट्रस	५ ग्रेन
टि जिञ्जिबारिस	१० बुंद
इनः कलम्बा	१ औंस
दिनमें ३ बार करके।	
रिः ओलियम मुरही	१॥ ड्राम
लाइकर पोटासो	१० बुंद
लाइकर एमोनिया फोर्ट	आध बुंद
ओलियम कैसी	उसका आधा
सिरप	आध ड्राम
जल	१ औंस

होमियोपाथिकके मतसे यक्ष्मरोगकी भिन्न भिन्न अवस्थामें भिन्न भिन्न प्रकारका ओषध व्यवहृत होता है। सुविज्ञ चिकित्सकोंका कहना है, कि सभी अवस्थामें रोगके बलाबल और लक्षणानुसार ओषधका व्यवहार करना चाहिये।

यक्ष्मान्तकलौह (सं० क्ली०) यक्ष्मानाशक औषधविशेष। प्रस्तुतप्रणाली—रास्ना, तालीशपत्र, कपूर, शिलाजित, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद (विड़ङ्ग मोथा और चितामूल) प्रत्येक एक एक भाग तथा कुल मिला कर जितना हो उतना लोहा, इन्हें एकत्र कर मर्दन करे। इसका दूसरा नाम रास्नादिलौह है। इस औषधका सेवन करनेसे

खांसी, स्वरभङ्ग, क्षयकास, क्षत और क्षीण रोग नष्ट होता तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

यक्ष्मारिलौह (सं० क्ली०) यक्ष्मरोगनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सोनामक्खी, विड़ङ्ग, शिलाजित, हर्रेका चूर और लोहा, इन्हें मधु और घीके साथ पीस कर चाटनेसे कठिनसे कठिन यक्ष्मा दूर होती है। कविराजश्रेष्ठ भानुदासके मतसे सब चूर्णके बराबर लौहचूर्ण ले कर उसे घी और मधुके साथ चाटे तो विशेष लाभ पहुंचता है। (भैषज्य० यक्ष्माधिकार)

यक्ष्मिन् (सं० त्रि०) यक्ष्म यक्ष्मरोगः अस्यास्तीति इनि। यक्ष्मरोगी, क्षयरोगी।

"यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः।
ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एवच॥"

(मनु० ३।१५४)

यक्ष्मिणी—वारणसीके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

यक्ष्मोदा (सं० स्त्री०) रोगभेद।

यखनाचार्य—दाक्षिणात्यके एक विख्यात स्थपति। प्रवाद है, कि वे एक क्षत्रिय और राजपुत्र थे। एक दिन क्रोधमें आ कर उन्होंने एक ब्राह्मणकी हत्या कर डाली। इसका उपयुक्त प्रायश्चित्त करनेके लिये वे ब्राह्मणके पास गये। ब्राह्मणने उन्हें वाराणसीसे कुमारिका तक देवमन्दिर बनवा कर अपने पापका प्रायश्चित्त करनेकी आज्ञा दी। तदनुसार उन्होंने यह कठोर व्रत अवलम्बन किया था। किसी किसीका कहना है, कि वे पञ्चालदेशवासी थे। देवशिल्पी विश्वकर्माका शिष्य बन कर वे स्थापत्यविद्यामें बड़े पारदर्शी हुए थे। गुरुकी आज्ञासे उन्होंने दक्षिणभारतके नाना स्थानोंमें अपना शिल्पनैपुण्य दिखानेके लिये बहुत मन्दिर बनाये थे। धारवाड़ जिलेमें आज भी यखनाचार्यकी प्रणालीके अनुसार बने मन्दिरका ध्वंसावशेष पड़ा हुआ है।

यखनी (फा० स्त्री०) १ तरकारी आदिका रसा, शोरवा। २ उवले हुए मांसका रसा। ३ वह मांस जो केवल लहसुन, प्याज, धनिया और नमक डाल कर उवाल लिया जाय।

यगछी—मैसूरराज्यके अन्तर्गत एक उपनदी। यह बाबाबुदन पहाड़से निकल हेमावतीसे मिलती हुई कावेरीमें गिरती है। इस नदी पर कदूर जिलेमें १६ और हसन जिलेमें ५ आनिकट हैं।

यगण (सं० पु०) छन्दःशास्त्रमें आठ गणोंमेंसे एक। यह एक लघु और दो गुरु मात्राओंका होता है। इसका संक्षिप्त रूप ये हैं। इसका देवता जल माना गया है और यह सुखदायक कहा गया है।

यगर—पहाड़ी असभ्यजातिविशेष।

यगाना (फा० वि०) १ जो वेगाना न हो, नातेदार। २ अनुपम, एकता। ३ अकेला, फर्द। (पु०) ४ भाइ-बंद। ५ परम मित्र।

यगूर (हिं० पु०) एक प्रकारकी बहुत ऊंचा वृक्ष। इसकी लकड़ीका रंग अन्दरसे काला निकलता है। यह सिलहटकी पूर्वी और दक्षिण पूर्वी पहाड़ियोंमें बहुत होता है। इसकी लकड़ीसे कई तरहकी सजावट की और बहुमूल्य वस्तुएं बनाई जाती है। इसे आगमें जलानेसे बहुत उत्तम गंध निकलती है। इसे सेसी भी कहते हैं।

यग्य (सं० पु०) यज्ञ देखो।

यच्छ (सं० पु०) यक्ष देखो।

यच्छत् (सं० त्रि०) यम-चा-दान-धातोः शतृ। १ दानकर्त्ता, दान देनेवाला। २ उपरमकर्त्ता, चित्तको हटानेवाला।

यच्छिनी (सं० स्त्री०) यक्षिणी देखो।

यज (सं० पु०) १ यज्ञ। २ अग्नि।

यजत् (सं० पु०) यज-शतृ। यागकर्त्ता, वह जो यज्ञ करता हो।

यजत (सं० पु०) यजतीति यज् (भृ-मृ-दृशि-यजि पर्विपच्यमितमितमिहर्यिभ्योऽतच् । उण् ३।११०) इति अतच्। १ ऋत्विक्। २ एक वैदिक ऋषिका नाम जो ऋग्वेदके एक मन्त्रके द्रष्टा थे। (त्रि०) ३ यष्टव्य, यजनका विषयीभूत।

यजति (सं० पु०) यज्-बाहुलकात्-अति। याग, यज्ञ।

यजत्र (सं० पु०) यजतीति यज् (अमिनक्षियजिवधिपतिभ्यो ऽत्रन्। उण् ३।१०५) इति अत्रन्। १ अग्निहोत्री। २ यजनशील, वह जो यज्ञ करता हो।

यजथ (सं० पु०) १ देवपूजा, यज्ञ। २ स्तुतिकर्त्ता, वह जो स्तुति करता हो।

यजन (सं० क्लो०) इज्यते इति यज-ल्युट्। १ वेदविधिके अनुसार होता और ऋत्विक् आदिके द्वारा काम्य और नैमित्तिक कर्मोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान करना, यज्ञ करना। यह ब्राह्मणोंके षट्कर्मोंमेंसे एक है।

"अध्यापनं अध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहञ्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥"
(मनु १।८८)

पशुक्षीर, आज्य, पुरोडास, सोम, ओषधि और चरु आदि; हविः, खदिर, पलाश, अश्वत्थ, न्यग्रोध और उडुम्बर प्रभृति; समिध्, स्रुक्, स्रुव, उदूखल, मूषल, कुठार, खनित्र, यूप, दास, दर्भ, चर्म और प्रस्तर और पवित्र भाजनादि द्रव्योपकरण, उद्गाता, होता, अध्वर्यु और ब्रह्मादि ऋत्विक् द्वारा पूर्वोक्त द्रव्योंके साथ जो काम्य और नैमित्तिक कर्म किया जाता है उसका नाम यजन या याग है।

इज्यतेऽत्रेति यज् अधिकरणे ल्युट्। १ यज्ञस्थान, वह स्थान जहाँ यज्ञ होता है।

यजनकर्त्ता (सं० पु०) यज्ञ या हवन करनेवाला।

यजनीय (सं० त्रि०) यज्-अनीयर्। यजनके योग्य, यज्ञ करने लायक।

यजन्त (सं० पु०) यज ऋच्। यागकर्त्ता, यज्ञ करनेवाला।

यजप्रैष (सं० त्रि०) यजशब्दयुक्त प्रैष या आमन्त्रणमन्त्र।

यजमान (सं० पु०) यजतीति यज-शानच्। १ वह जो यज्ञ करता हो, दक्षिणा आदि दे कर ब्राह्मणोंसे यज्ञ, पूजन आदि धार्मिक कृत्य करानेवाला। पर्याय—व्रती, यष्टा।

"नाहं तथाद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन।" (भागवत ३।१६।१८)

जो यज्ञमें व्रती हैं उन्हींका नाम यजमान है। २ वह जो ब्राह्मणोंको दान देता हो। महादेवकी आठ प्रकारकी मूर्त्तियोंमेंसे एक प्रकारकी मूर्त्ति।

यजमानक (सं० पु०) यजमान या यज्ञादि करनेवाला।

यजमानता (सं० स्त्री०) यजमान देखो।

यजमानत्व (सं० क्ली०) यजमानस्य भावः त्व। यजमानका भाव या धर्म।

यजमानब्राह्मण (सं० क्ली०) वह ब्राह्मण जो यजमानका काम करता हो।

यजमानलोक (सं० पु०) वह लोक जिसमें यज्ञ करके मरनेवालोंका निवास माना जाता है।

यजमानशिष्य (सं० पु०) यज्ञाध्ययनकारी ब्राह्मणका दीक्षित शिष्य, वह शिष्य जो यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणसे दीक्षित हुआ हो।

यजमानी (हिं० स्त्री०) १ यजमानका भाव या धर्म। २ यजमानके प्रति पुरोहितकी वृत्ति। ३ वह स्थान जहां किसी विशेष पुरोहितके यजमान रहते हों।

यजस् (सं० क्ली०) याग, यज्ञ।

यजा (सं० स्त्री०) शास्त्रके अनुसार पुण्यचरित्रा एक रमणी। सीता, शमा, भूति आदिके साथ इसका नाम पाया जाता है। (पारस्करगृह्य० २।१७)

यजाक (सं० त्रि०) यजतीति यज-दाने आकन्। दानकर्त्ता, दान देनेवाला।

यजि (सं० पु०) यजतीति यज् (सर्वधातुभ्य इन्। उणा० ४।११७) इति इन्। १ यष्टा, यज्ञ करनेवाला। २ यजन, यज्ञ करना।

यजिन (सं० त्रि०) यजनकारी, यज्ञ करनेवाला।

यजिष्ठ (सं० त्रि०) बड़ा पूज्य, यष्टृतम।

यजिष्णु (सं० त्रि०) यज-इष्णुच्। यजनशील, यज्ञ करनेवाला।

यजीयस् (सं० त्रि०) यज-ईयसु। अतिशय यजनशील, बड़ा यज्ञ करनेवाला।

यजु (सं० पु०) चन्द्राश्वभेद।

यजुर्मय (सं० त्रि०) यजुर्मन्त्र-सम्बलित।

यजुर्लक्ष्मी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका मन्त्र।

यजुर्विद् (सं० त्रि०) यजुः यजुर्वेदं वेत्ति विद् क्विप्। यजुर्वेदवेत्ता, यजुर्वेद जाननेवाला।

यजुर्वेद (सं० पु०) यजुरेव वेदः, यजुषां वेद इति वा। भारतीय आर्योंके चार प्रसिद्ध वेदोंमेंसे एक वेद। इसमें विशेषतः यज्ञकर्मका विस्तृत विवरण है और यह इसीलिये वेद त्रयीमें मिश्रितरूप माना जाता है। यज्ञोंमें अध्वर्यु जिन गद्य मन्त्रोंका पाठ करता था, वे यजु कहलाते थे। इस वेदमें उन्हीं मन्त्रोंका संग्रह है इसलिये इसे यजुर्वेद कहते हैं।

ज्योतिषमें लिखा है, कि इस वेदके अधिपति शुक्र हैं।

"ऋग्वेदाधिपतिर्जीवः सामवेदाधिपः कुजः।
यजुर्वेदाधिपः शुक्रः शशिजोऽथर्ववेदराट् ॥"
(ज्योतिस्तत्त्व

कूर्मपुराणमें लिखा है, कि इस वेदके वक्ता वैशम्पायन हैं। पहले यह वेद एक था बाद उसके यह चार भागोंमें विभक्त हुआ है।

"ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः।
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ॥
जैमिनं सामवेदस्य श्रावकं सोऽन्वपद्यत।
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तं ऋषिसत्तमम् ॥
एक आसीद्‌यजुर्वेदस्तञ्चतुर्धाव्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूद् यस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरात् ॥
आध्वर्यवं यजुर्भिः स्याद् ऋग्भिर्होत्रं द्विजोत्तमाः।
उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः ॥"
"ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः।
यजूंसि च यजुर्वेदं सामवेदञ्च सामभिः ॥
एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
शाखायान्तुशतेनाथ यजुर्वेद मथाकरोत् ॥"
(कूर्मपु० ४९ अ०)

इसके दो मुख्य भेद हैं—कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयी। कृष्ण यजुर्वेदमें यज्ञोंका जितना पूर्ण और विस्तृत वर्णन है उतना और संहिताओंमें नहीं है। इन दोनोंकी भी बहुत सी शाखाएं हैं जिनमें थोड़ा बहुत पाठ-भेद है। अब तक यजुर्वेदकी जो संहिताएं मिली हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—काठक, कपिस्थल-कठ, मैत्रायणी और तैत्तिरीय। ये चारों कृष्ण यजुर्वेदकी हैं। शुक्ल या वाजसनेयीको काण्व और माध्यन्दिनी दो शाखाएं हैं। पतंजलिके मतसे यजुर्वेदकी १०१ शाखाएं हैं; पर चरणव्यूहमें केवल ८६ शाखाएं दी हैं और वायु-पुराणमें २३ शाखाएं गिनाई गई हैं। इसके संहिता भागमें ब्राह्मण और ब्राह्मणभागमें संहिता भी मिलती है। इस वेदमें अनेक ऐसे विधिमन्त्र भी हैं जिनका अर्थ बहुत थोड़ा या कुछ भी नहीं ज्ञात होता। कुछ प्रार्थनाएं भी ऐसी है जो बिलकुल अर्थरहित जान पड़ती हैं। इसके कुछ मन्त्र ऐसे हैं, जिनसे सूचित होता है; कि उस समय लोगोंमें ब्रह्मज्ञानकी बहुत कम चर्चा थी। इसमें देवताओंके नामोंके साथ बहुत से विशेषण भी मिलते हैं जिससे जान पड़ता है, कि भक्तिकी ओर भी लोगोंके कुछ कुछ प्रवृत्ति हो चली थी।

विशेष विवरण वेद शब्दमें देखो।

यजुर्वेदिन् (सं० त्रि०) यजुर्वेदमधीते वेत्ति वा इनि यजुर्वेदवेत्ता अध्येता वा। १ ब्राह्मणविशेष। जो यजुर्वेद-के अनुसार सब कृत्य करता है उसे यजुर्वेदी ब्राह्मण कहते हैं। इस देशके वैदिक श्रेणी ब्राह्मणोंमेंसे अधिकांश ही यजुर्वेदीय हैं। राढ़ीय श्रेणीके मध्य यजुर्वेदीय ब्राह्मण नहीं हैं। पशुपति भट्ट आदि इस यजुर्वेदी ब्राह्मणोंकी संस्कारपद्धति लिख गये हैं। २ यजुर्वेदका जाननेवाला।

यजुर्वेदी (सं० त्रि०) यजुर्वेदिन् देखो।

यजुःशाखिन् (सं० त्रि०) यजुःशाखा भुक्त।

यजुश्रुति (सं० पु०) यजुर्वेद।

यजुष्क (सं० त्रि०) यजुर्मन्त्रसम्वलित।

यजुष्कृत (सं० त्रि०) यजुःमन्त्रसे पूजा या उत्सर्ग किया हुआ।

यजुष्कृति (सं० स्त्री०) यजुर्मन्त्र द्वारा देवताको देना।

यजुष्क्रिया (सं० स्त्री०) यजुस् अभिमन्त्रणरूप यज्ञकी क्रियाविशेष।

यजुष्टम (सं० क्ली०) अयमेषामतिशयेन यजुः। उत्कृष्टतम यजुर्मन्त्र।

यजुष्टर (सं० क्ली०) अयमनयोरतिशयेन यजुः। मध्यम प्रकार यजुर्मन्त्र।

यजुष्टस् (सं० अव्य०) यजुस् तसिल्, षत्व, तस्य चट। यजुर्वेदसे, यजुर्वेदानुसार।

यजुष्टा (सं० स्त्री०) यजुषो भावः तल् टाप्। यजुष्टव, यजुका भाव या धर्म।

यजुष्पति (सं० पु०) यजुषां पतिः। विष्णु।

यजुष्पात्र (सं० क्ली०) एक प्रकारका यज्ञपात्र।

यजुष्मत् (सं० त्रि०) यागमन्त्रको क्रियासम्वन्धीय।

यजुष्य (सं० त्रि०) यज्ञ-सम्बन्धी, यज्ञका।

यजुस् (सं० क्ली०) इज्यतेऽनेनेति यज् (अर्त्तिपृवपियजीति। उण् २।११८) इति उसि। वेदविशेष, यजुर्वेद।

यजुर्वेद और वेद शब्द देखो।

यजुष्मात् (सं० अव्य०) यजुर्मन्त्रके रूपमें ।

यजूदर (सं० लि०) १ जिसके उदरमें यजुर्मन्त्र है। (पु०) २ ब्राह्मण ।

यज्ञ (सं० पु०) इज्यते हविर्दीयतेऽत्र, इज्यन्ते देवता अत्र इति वा यज् (यजयाचयतविच्छ प्रच्छादो नङ् । पा ३।३।९०) इति नङ्। याग, मख । पर्याय—सव, अध्वर, याग, सप्ततन्तु, मख, क्रतु, इष्टि, इष्ट, वितान, मन्यु, आहव, सवन, हव, अभिषव, होम, हवन, महः । (शब्दरत्ना०) जिसमें सभी देवताओंका पूजन अथवा घृतादि द्वारा हवन हो उसे यज्ञ कहते हैं। यज्ञ दो प्रकारका है। सभी यज्ञ सात्त्विक, राजसिक और तामसिकके भेदसे तीन प्रकारका है।

यज्ञकी उत्पत्तिका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—

"शृणुध्वं द्विजशार्दूला यत्पृष्टोऽहं महाद्भुतम् ।
यज्ञेषु देवास्तिष्ठन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजाः ।
अन्नेन भूता जीवन्ति पर्यन्याद्न्नसम्भवः ॥
पर्य्यन्यो जायते यज्ञात् सर्वं यज्ञमयं ततः ।
स यज्ञोऽभूद्वराहस्य कायात् शम्भुविदारितात् ॥"

एकमात्र यज्ञ द्वारा देवगण संतुष्ट होते हैं, अतएव यज्ञ ही सबोंका प्रतिष्ठापक है। यज्ञ पृथ्वीको धारण किये हुए है, यज्ञ ही प्रजाको पापोंसे बचाता है। अन्नसे जीवगण जीवित रहते हैं, वह अन्न फिर बादलसे उत्पन्न होता है और बादलकी उत्पत्ति यज्ञसे होती है, अतएव सभी जगत् यज्ञमय है । महादेवसे वराहदेवकी देह फाड़े जाने पर उससे वह यज्ञ किस प्रकार उत्पन्न हुआ था उसका विषय नीचे लिखा जाता है। शरभ द्वारा वराहकी देह विदारित होने पर ब्रह्मा, विष्णु और प्रमथोंके साथ महादेव जलसे उस देहको निकाल आकाशको चले गये । पीछे वह देह विष्णुचक्र सुदर्शन द्वारा खण्ड खण्ड की गई। वह भिन्न भिन्न खण्ड यज्ञरूपमें परिणत हुआ। कौन कौन अङ्ग किस किस यज्ञरूपमें परिणत हुआ था उसका विषय इस प्रकार है। दोनों भ्रू तथा नासिकादेशका सन्धिभाग ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ, कपोलदेशके उच्च स्थानसे ले कर कर्णमूलके मध्यस्थित सन्धिभाग तक वह्निष्टोम यज्ञ, चक्षु और दोनों भ्रूका सन्धिभाग व्रात्यस्तोम यज्ञ, मुखाग्र और ओष्ठका सन्धिभाग पौन र्भव स्तोमयज्ञ, जिह्वामूलीय सन्धिभाग वृहस्तोम और वृहत्स्तोम नामक यज्ञ, जिह्वादेशके अधोदेशसे अतिरात्र तथा वैराज यज्ञ हुआ। यथानियम वेदाध्ययन तथा वेदा- ध्यापन ही वैदिक यज्ञ है। पितरोंके उद्देशसे तर्पण ही पैतृक यज्ञ है। देवताके उद्देशसे होमादि करना दैवयज्ञ, छागादिका बलिदान भौतिक यज्ञ, अतिथिसेवा नृयज्ञ, प्रतिदिन स्नान तर्पणादिका अनुष्ठान नित्ययज्ञ, यज्ञवराह- की कण्ठसन्धि तथा जिह्वासे ये सभी यज्ञ और उनकी विधियां उत्पन्न हुई थीं। अश्वमेध, महामेध और नर- मेध आदि प्राणिहिंसाकार जो सब यज्ञ हैं, हिंसाप्रवर्त्तक वे सब यज्ञ चरणसन्धिसे उत्पन्न हुए थे। राजसूय, वाजपेय तथा ग्रहयज्ञ पृष्ठसन्धिसे और प्रतिष्ठा, उत्सर्ग, दान, श्रद्धा तथा सावित्री आदि यज्ञ हृदयसन्धिसे एवं उपनयनादि संस्कारक यज्ञ, और प्रायश्चित्त विपक्ष यज्ञ यज्ञवराहकी मेढ्रसन्धिसे निकला था। राक्षसयज्ञ, सर्पयज्ञ, सभी प्रकारका अभि- चारयज्ञ, गोमेध तथा वृक्षजाप आदि यज्ञ खुरसे उत्पन्न हुए थे। मावेष्टि, परमेष्टि, गोष्पति; भोगज और अग्नि- षोम यज्ञ लांगूलसे निकला था। संक्रमादि कृत्य नैमि- त्तिक यज्ञ तथा द्वादश वार्षिक यज्ञ लांगूल सन्धिसे; तीर्थप्रयाग, मास; सङ्कर्षण, आर्क और आथर्वण नामक यज्ञ नाड़ीसन्धिसे ; ऋचोत्कर्ष, क्षेत्रयज्ञ, पञ्चमार्ग, निम्न संस्थान और हेरम्ब नामक यज्ञ जानुदेशसे उत्पन्न हुआ था।

इस प्रकार यज्ञवराहकी देहसे एकसौ आठ यज्ञकी उत्पत्ति हुई थी। यज्ञवराहके पोत (मुखका अग्रभाग) से स्रुक् तथा नासिकासे स्रुव, ग्रीवादेशसे प्राग्वंश (होमगृहके पूर्व भागका घर), कर्णरन्ध्रसे इष्टापूर्त्त, दंतसे श्रुप और रोमसे कुश उत्पन्न हुआ था।

दायें और बायें पैरसे काष्ठ, मस्तकसे तरु और पुरो- डास, दोनों नेत्रसे यज्ञकुम्भ; पृष्ठदेशसे यज्ञगृह और हृत्- पद्मसे स्वयं यज्ञ उत्पन्न हुए। इस यज्ञवराहकी देहसे भाण्ड, हविः आदि द्रव्योंकी उत्पत्ति हुई। यज्ञरूपमें

सब जगत्को आप्यायित करनेके लिये यज्ञवराहकी देह यज्ञरूपमें परिणत हुई। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इस प्रकार यज्ञको सृष्टि करके सुवृत्त, कनक और घोरके निकट आये। उन्होंने सुवृत्तादिके तीनों शरीरोंको एकत्र कर मुख वायु द्वारा परिपूर्ण कर दिया। ब्रह्माके सुवृत्त-की देहमें मुखवायु सञ्चारित करनेसे दक्षिणाग्निकी विष्णु-के कनककी देहमें करनेसे पञ्च वैतानभोजी गार्हपत्य, अग्निकी और महादेवके घोरकी देहमें मुखवायु परिपूर्ण करनेसे आहवनीय अग्निकी उत्पत्ति हुई। त्रिजगद्‌व्यापी यह तीनों अग्नि ही त्रिभुवनका मूलीभूत कारण हैं। यह तीनों अग्निदेव प्रतिदिन जहां रहते हैं, समस्त देवगण अपने अपने अनुचरोंके साथ उस स्थान पर वास करते हैं। यह तीनों अग्नि कल्याणका आधार और देवता-स्वरूप हैं। जहां ये तीनों अग्निदेव मन्त्रादि द्वारा बुलाये जाते हैं वहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों वर्ग विराज करते हैं। इसी अग्निसे यज्ञक्रिया सम्पन्न होती है। ये तीनों अग्निदेव यज्ञके पुत्ररूपमें कल्पित हुए हैं।

(कालिकापु० ३० अ०)

पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें लिखा है, कि ब्रह्माने पहले यज्ञानुष्ठान किया। ब्रह्मा, उद्‌गाता, होता और अध्वर्यु ये चारों यज्ञवाहक हुए। प्रत्येकके चार चार करके परिवार हैं जो साकुल्यमें १६ ऋत्विज् नामसे प्रसिद्ध हैं।

(पद्म० सृष्टि० ३१)

पहले कहा जा चुका है, कि सभी प्रकारके यज्ञ सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकार-के हैं। तीनों यज्ञोंका विषय गीतामें इस प्रकार लिखा है। जिनके जैसा स्वभाव है, वे उसी प्रकारके यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। सात्त्विक प्रकृतिवाले सात्त्विक यज्ञका, राजसिक राजसिक यज्ञका और तामसिक तामसिक यज्ञका अनुष्ठान करते हैं।

(गीता० १७।९—११)

फलाभिसन्धिवर्जित हो अवश्य कर्त्तव्य ज्ञान कर जो शास्त्रविहित यज्ञ किया जाता है, उसे सात्त्विक-यज्ञ कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है, कि दर्शपूर्णमास, चातु-र्मास्य और ज्योतिष्टोमादि यज्ञ काम्य और नित्यभेदसे दो प्रकारके कहे गये हैं। "दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत्" स्वर्गकी कामना करके दर्शपूर्णमास-यज्ञ करे, इस विधानके अनुसार जो यज्ञ किया जाता है वह काम्य। 'यावज्जीवन' अग्निहोत्रं जुहोति' जब तक जीवन रहे, तब तक अग्निहोत्र यज्ञका अनुष्ठान करे। फलाकांक्षा-वर्जित हो जो इस प्रकारका यज्ञ किया जाता है उसे नित्य कहते हैं। अतएव फलकामनाका त्याग कर केवल चित्तशुद्धिके लिये अवश्य कर्त्तव्य ज्ञान कर जो यज्ञानु-ष्ठान किया जाता है उसीका नाम सात्त्विक यज्ञ है। सात्त्विक-प्रकृतिके लोग इसी यज्ञका अनुष्ठान करते हैं।

स्वर्गादि फलकामना करके वा अपने महत्त्वप्रकाशके लिये जो यज्ञ किया जाता है उसे राजस-यज्ञ कहते हैं। मरने पर स्वर्ग मिलेगा, इहलोकमें सुख पाऊंगा, सभी मुझे धार्मिक कहेंगे, इत्यादि भावमें अर्थात् इह और पार-लौकिक सुखके लिये जो यज्ञ किया जाता है वह राजस-यज्ञ है। सात्त्विकगण यह यज्ञ नहीं करते। इस यज्ञमें भी सभी प्रकारके शास्त्र-विधिनिषेध मान कर चलना होता है।

जो यज्ञ शास्त्रविधि-वर्जित और अन्नदान-विहीन है, तथा जिस यज्ञमें शास्त्रोक्त मन्त्र नहीं है, यथाविहित दक्षिणा नहीं है और जो श्रद्धापूर्वक नहीं किया जाता उसे तामस-यज्ञ कहते हैं। जो यज्ञ शास्त्रविहित व्यव-स्थानुसार नहीं किया जाता, जिस यज्ञमें ब्राह्मणादिको अन्नदान नहीं होता, जिसमें उदात्तानुदात्त आदि स्वरोंमें मन्त्र उच्चारित नहीं होता, जिस यज्ञमें यथाविहित दक्षिणा न दिया जाता, जो यज्ञ ऋत्विक् ब्राह्मणादिके प्रति विद्वेष-बुद्धिसे अश्रद्धापूर्वक किया जाता है उसका नाम तामस-यज्ञ है। क्या इस लोक, क्या परलोक, किसी भी समय इस तामस-यज्ञ द्वारा शुभ नहीं होता। सात्त्विक वा राजसिकमेंसे कोई भी यह नहीं करते। यह तामस-यज्ञ सबोंके लिये निन्दित है।

त्रिविध-यज्ञका विषय कहा गया। अधिकारभेदसे मनुष्य अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार यह यज्ञ किया करते हैं।

गीतामें लिखा है,—

"गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञाना वस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्मसमग्रं प्रविलीयते॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतं ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥
दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥
श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीनविषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥"

(गीता ४।२३-२८)

यज्ञादिका परित्याग करना किसीको भी उचित नहीं है, पर हां फल-कामना-वर्जित हो कर ही उसका अनुष्ठान करे।

जो फलकामना-विहीन और कर्तृत्व-भोक्तृत्वाध्यास-वर्जित है, जिसका चित्त ज्ञानस्वरूप ब्रह्ममें लीन है, वे यदि यज्ञादि कर्मोंकी रक्षा करनेके लिये यज्ञादि कर्मोंका अनुष्ठान करें, तो वह कर्म फल सहित विनष्ट होता है। इसका तात्पर्य यह, कि जिनके फलभोगको चाह नहीं है, मैं कर्त्ता, मैं भोक्ता यह अध्यास भी जिनके नहीं है, 'तत्त्वमसि' महावाक्यप्रतिपाद्य ब्रह्म और आत्मामें अभेद न मानती हुई जिसकी चित्तवृत्ति आत्मवृत्तिमें विलीन है, वे यदि प्रारब्धवशतः अथवा लोकानुग्रहार्थ ज्योतिष्टोमादि क्रियाका अनुष्ठान करें, तो उनके यज्ञादिकर्म फल सहित विनष्ट होते हैं अर्थात् ऐसे कर्मोंसे उसे फिर बद्ध होना नहीं पड़ता।

आहुति देना ब्रह्म है, घृत भी ब्रह्म है, फिर ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्मरूप होता जो होम करते हैं, वे भी ब्रह्म हैं तथा यज्ञादि द्वारा लभ्य स्वर्गादि भी ब्रह्म है, ऐसे यज्ञादि कर्मोंमें जिनकी ब्रह्मबुद्धि है, वे ही ब्रह्मको लाभ करते हैं। कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान और अधिकरण इन पांच प्रकारके कारकोंसे यज्ञरूप क्रिया सम्पन्न होती है। इन्द्रादि देवताके उद्देशसे घृतादि त्यागका नाम याग है। इन्द्रादि देवताके उद्देशसे जो घृतादि दान किया जाता है उसका नाम सम्प्रदान है। यज्ञका घृतादि ही हविः, इस घृतादिका प्रक्षेप ही कर्म, जुहू आदि करण, अध्वर्यु कर्त्ता और आहवनीयाग्नि अधिकरण हैं। ऐसे यज्ञादि कर्मोंमें ब्रह्मदृष्टिरूप समाधि होनेसे अनुष्ठाताको ब्रह्मत्व ही लाभ होता है।

कुछ योगी ऐसे हैं, जो पूर्वोक्त प्रकारसे दैवयज्ञ किया करते हैं। अन्यान्य तत्त्ववेत्ता योगी ब्रह्मरूप अग्निमें आत्माका आहुति देते हैं। दर्शपूर्णमास ज्योतिष्टोमादि जिन सब यज्ञोंमें इन्द्र, अग्नि, वायु आदिको तृप्त किया जाता है उसीका नाम दैवयज्ञ है। फिर 'ब्रह्म' वा 'तत्' रूप ज्वलन्त अनलमें 'त्वं' रूप जीवात्माकी आहुति दे कर जो यज्ञ किया जाता है उसका नाम ज्ञानयज्ञ है। संन्यासि लोग ऐसे ज्ञानयज्ञका अनुष्ठान किया करते है।

फिर कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो श्रोत्रादि इन्द्रियोंको संयमरूप अग्निमें, कुछ शब्दादि विषयराशिको इन्द्रियरूप अग्निमें आहुति दिया करते हैं। इसका तात्पर्य यह कि यम, नियम, आसन, प्राणायामादि करके प्रत्याहारपरायण पुरुष श्रोत्रादि पञ्च ज्ञानेन्द्रियको शब्दादि विषयसे निवृत्त करके संयमरूप अग्निमें होम करते हैं। फिर कोई कोई योगी इन्द्रियोंके कर्म और प्राणादिका कर्मराशिको ज्ञानोद्दीपित आत्मसंयम योगरूप अग्निमें होम किया करते हैं।

कोई कोई व्यक्ति द्रव्यत्याग यज्ञका कोई तपोयज्ञका, कोई योगरूप यज्ञका, कोई वेदाभ्यासरूप यज्ञका, कोई ज्ञानरूप यज्ञका अथवा दृढ़व्रतरूप यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य विभिन्न प्रकारके यज्ञका अनुष्ठान किया करते हैं। कूप तड़ाग खुदवाने, देवमन्दिरादि बनवाने, भूखोंको अन्न देने, धर्मशालादि बनवाने, शरणागत जीवोंकी रक्षा करने तथा श्रौतविधानोक्त विविध दान करनेका नाम द्रव्ययज्ञ है। कृच्छ्र चान्द्रायणादि साधन और क्षुधा तृष्णा शीत उष्ण सहिष्णुताका नाम तपोयज्ञ; चित्तवृत्तिके निरोधरूप अष्टाङ्गयोगसाधनका नाम योगयज्ञ; यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि धारण कर गुरुशुश्रूषापूर्वक श्रद्धाके साथ ऋगादि वेदाभ्यासका नाम वेदयज्ञ; गूढ़ार्थयुक्तिपूर्वक वेदार्थ निश्चयावधारणका नाम ज्ञानयज्ञ, किसी नियममें जरा भी त्रुटि न हो,

ऐसे यज्ञका नाम दृढ़व्रतयज्ञ है। (गीता ५।२८-१३)

अन्यान्य योगीगण अपानवायुमें प्राणकी आहुति देते, अपानका होम करते और कुछ संयताहारी योगी प्राण और अपानकी गति रोक कर प्राणायामपरायण हो प्राण में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियकी आहुति देते हैं।

ये सब यज्ञकारिगण यज्ञको समाप्त करके निष्पाप हो यज्ञके बाद अमृतभोजन करते और सनातन ब्रह्मको पाते हैं। जो ऊपर कहे गये यज्ञका अनुष्ठान नहीं करते वे स्वर्गकी बात तो दूर रहे, इस लोकमें भी शुभफल नहीं पाते। पूर्वोक्त बारह प्रकारके यज्ञ जो जानते अथवा उन्हें श्रद्धापूर्वक करते हैं वे ही यज्ञविद् हैं। ऐसे मनुष्य क्रमशः पापसे छुटकारा पा कर अमृतत्त्व पाते हैं, किन्तु जो व्रतादिका अनुष्ठान नहीं करते वे मुक्ति तो क्या पायेंगे, इस संसारमें सुखसम्पद् भी नहीं पाते।

इस प्रकारके अनेक यज्ञ वेदादिमें कहे गये हैं। जितने प्रकारके यज्ञ हैं सबोंसे ज्ञानयज्ञ ही श्रेष्ठ है। क्योंकि फलके साथ सभी कर्म ज्ञानमें पर्यवसित होते हैं। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि काठको ढेरको भस्म कर डालती है उस प्रकार ज्ञानाग्नि कर्मराशिको भस्म कर देती है। अतएव ज्ञानयज्ञ ही एकमात्र मुक्तिका उपाय है।

"अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥"

(गरुड़पु० ११५ अ०)

यथाविधि वेदाध्यायनका नाम ब्रह्मयज्ञ, पितरोंके उद्देशसे यथारोति श्राद्धतर्पणादिका नाम पितृयज्ञ, देवताओंके उद्देशसे होमादि करनेका नाम दैवयज्ञ और देवताओंको नियमपूर्वक वलि चढ़ानेका नाम भौतयज्ञ और अतिथिसेवाका नाम नृयज्ञ है। इन पांच यज्ञोंको पञ्च महायज्ञ कहते हैं। सबोंको यह पञ्चमहायज्ञ करना उचित है। पञ्चमहायज्ञ देखो।

यज्ञादि कर्म द्वारा ही जीव संसार बंधनमें फंस जाते और विद्या द्वारा उससे मुक्ति-लाभ करते हैं। इससे साधारणतः यही समझा जाता है, कि यज्ञादि कर्मोंका त्याग करना श्रेय है। किन्तु इस संदेहको दूर करनेके लिये भगवान्ने कहा है, कि 'यज्ञो वै विष्णुः' इस श्रुतिके अनुसार जो यज्ञ भगवान्के उद्देश्यसे किया जाता है, फलकी आकाङ्क्षा यदि न रहे तो उससे जीवका बंधन नहीं होता। अतएव फलकामना-रहित हो भगवान्के उद्देशसे यज्ञादि करना उचित है। (गीता० ३।९-१५)

कल्पके आरम्भमें प्रजापतिने यज्ञाधिकारी जीवोंकी सृष्टि कर यही कहा था, कि, "इस यज्ञ द्वारा तुम लोग समृद्धशाली होओगे। यही यज्ञ तुम लोगोंकी मनोवाञ्छित फल होगा। इस यज्ञ द्वारा तुम लोग देवताओंको संतुष्ट करो और देवगण भी तुम लोगोंको संतुष्ट करेंगे। इस प्रकार परस्पर सन्तोष साधन द्वारा तुम लोग परस्पर कल्याण लाभ करोगे।'

यज्ञादि द्वारा इन्द्रादि देवताओंको संतुष्ट करनेसे वे जल देंगे जिससे पृथ्वी शस्यशालिनी होगी। पृथ्वीके शस्यशालिनी होनेसे तुम लोग भी संतुष्ट होगे। इस प्रकार तुम लोगोंके कार्यसे देवताओंकी और देवताओंके कार्यसे तुम लोगोंकी मनस्कामना पूरी होगी। यज्ञादि द्वारा इन्द्रादि देवताओंको सेवा करनेसे स्वर्गादि लाभ भी होगा। यज्ञ द्वारा देवगण संतुष्ट हो कर मनोवांछित फल प्रदान करेंगे। इस देवदत्त भोगको पा कर जो व्यक्ति देवताओंको दिये विना स्वयं भोग करते हैं वे चोर हैं। देवताओंके संतुष्ट होनेसे मनुष्य अन्न और सुवर्णादि मनोवाञ्छित भोग्य द्रव्य पाते हैं। इन सबको देवदत्त ऋणस्वरूप जानना चाहिये। देवताओंकी तृप्तिके लिये धान जौ आदि द्वारा देवोद्देशसे वैश्वदेव, अग्निहोत्र, जातेष्टि इत्यादि यज्ञ करना होगा। जो व्यक्ति ये सब न करके केवल अपना मतलब निकालना जानते हैं उन्हें परस्वापहारी चोर कहना चाहिये। जो यज्ञावशेष अन्न भोजन करते हैं वे सभी पापोंसे मुक्त होते हैं। जो पापात्मा पुरुष केवल अपने लिये ही अन्न पाक करता है, वह मानो केवल पाप ही भोजन करता है। श्रद्धाभक्तिपूर्वक जो वेदविहित कार्य करते हैं, वे सभी पापोंसे छुटकारा पाते हैं। देवताका चढ़ाया हुआ प्रसाद खानेसे मनुष्य पवित्र होता है। जो केवल अपना ही पेट भरनेकी फिक्रमें रहता है, वह पञ्चशूनादि पापोंसे निस्तार नहीं पाता। गृहस्थोंके घरमें ऊखल, जाता, चूल्हा, जलकी कलसी और झाड़ू ये पांच जीवहिंसाके स्थान हैं; इन्हें पञ्चशूना कहते हैं। इस हिंसाजन्य

पापसे जीवके स्वर्गलाभकी सम्भावना नहीं। किन्तु यह पञ्चसूनाजनित पाप पञ्चयज्ञसे दूर होता है। वेदाध्ययन और सन्ध्योपासनाका नाम ऋषियज्ञ, अग्निहोत्रादिका देवयज्ञ, बलिवैश्वदेवका भूतयज्ञ, अन्नादि द्वारा अतिथि सत्कारका नाम नृयज्ञ और श्राद्धतर्पणादिका नाम पितृयज्ञ है। जो प्रतिदिन इस पञ्चयज्ञका अनुष्ठान किये विना भोजन करता है, उसका वह स्थान पापकी ढेरके समान है।"

अन्नसे शरीर, अन्न मेघकी वृष्टिसे, मेघ यज्ञसे और यज्ञ कर्मसे उत्पन्न होता है। अग्निहोत्रादि सभी यज्ञ वेदसे तथा वेद ब्रह्मसे उत्पन्न हुए हैं। अतएव सर्वगत अविनाशी परब्रह्म धर्मरूप यज्ञादिमें सदा प्रतिष्ठित हैं। इसलिये सबोंको यथाशास्त्र यज्ञादिका अनुष्ठान करना उचित है।

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि क्षत्रियोंको आरम्भयज्ञ, वैश्यको हविर्यज्ञ, शूद्रको परिचारयज्ञ और ब्राह्मणको जपयज्ञ करना चाहिये।

"आरम्भयज्ञाः क्षत्राःस्युर्हविर्यज्ञः विशः स्मृताः।
परिचारयज्ञाः शूद्रास्तु जपयज्ञास्तु ब्राह्मणाः॥"
(मत्स्यपु० ११८ अ०)

जिस यज्ञानुष्ठानसे जीवहिंसा होती है, वैसा यज्ञ करनेसे अधर्म होता है। धर्मशास्त्र कहते हैं, कि यज्ञमें जो पशु वध किया जाता है और उससे जो हिंसा होती है उस वैधहिंसामें पाप नहीं होता। किन्तु सांख्यदर्शन इसे स्वीकार नहीं करते, वे कहते हैं, कि इस वैधहिंसामें भी पाप होगा। इस हिंसाका विषय सांख्यमें इस प्रकार आलोचित हुआ है,—

शास्त्रादिष्ट पशु वधादि हिंसा करनेसे भी पाप होगा। सांख्योंका कहना है, "माहिंसात् सर्वा भूतानि" अर्थात् किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे। कहनेका तात्पर्य यह कि हिंसा करनेसे ही पाप होगा। "अग्निषोमीयं पशुमालभेत" अग्निषोमयज्ञमें पशुवध करना चाहिये। इत्यादि विधि द्वारा यज्ञ सम्पादनके लिये पशुहिंसा कही गई है। इसका तात्पर्य यह कि विना पशुहिंसाके यज्ञ सम्पन्न नहीं होता, अतः उस हिंसा द्वारा यज्ञ समाप्त करना चाहिये। किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, यह सामान्य शास्त्र और अग्निषोमीय पशुकी हिंसा करे, यह विशेष शास्त्र है। शास्त्रीय नियमानुसार अकसर विशेष-शास्त्रका विषय छोड़ कर और सभी जगह सामान्य शास्त्रका विषय लिया जाता है। विशेष-शास्त्र सामान्य-शास्त्रका बाधक है तथा सामान्य-शास्त्र विशेष-शास्त्र द्वारा बाधित होता है। किन्तु यथार्थमें ऐसा बाध्य-बाधक भाव नहीं हो सकता, अर्थात् विशेष-शास्त्र सामान्य-शास्त्रको बाधक या सामान्य-शास्त्र विशेष-शास्त्र द्वारा बाधित नहीं हो सकता। क्योंकि, परस्पर विरोध नहीं होनेसे बाध्य-बाधक भाव नहीं होता अर्थात् एक दूसरेको बाधा नहीं दे सकता। यथार्थमें विरोध बिलकुल नहीं है। कारण, किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, इस निषेध वाक्यसे मालूम होता है, कि प्राणिहिंसा करनेसे मनुष्यको पापभागी होना पड़ता है।

'अग्निषोमीय पशुकी हिंसा करे' यह वाक्य हम लोगोंको यह बतलाता है, कि अग्निषोमीह पशुकी हिंसा यज्ञका उपकारक है वा सम्पादक। विना अग्निषोमीय पशु-हिंसाके यज्ञ नहीं हो सकता, अतएव अग्निषोमीय पशुकी हिंसा द्वारा यज्ञसम्पन्न करना चाहिये। इन दोनों वाक्योंमें कुछ भी विरोध नहीं हो सकता। क्योंकि, यज्ञीय पशुहिंसा, यज्ञका सम्पादन और मनुष्यका प्रत्यवाय यह दोनों ही वाक्योंका निर्वाह करता है। अतएव यहां पर दोनों वाक्योंमें विरोध वा बाध्यबाधक भाव नहीं हो सकता। शास्त्रमें यदि ऐसा उपदेश रहता, कि अग्निषोमीय पशुहिंसासे मनुष्यके पाप नहीं होता, तो विरोध और बाध्यबाधक भाव हो सकता था। कारण, पापका उत्पादन करना और नहीं करना परस्पर विरुद्ध है। वह विरुद्ध दोनों धर्म एक पदार्थमें नहीं रह सकता। अतएव सांख्याचार्योंने साबित किया है, कि यज्ञमें जो वैध पशुवध है, वह भी पापजनक है। अतएव वैदिक-यज्ञ करनेसे जैसा अधिक पुण्य होता है वैसा हिंसाजनित पाप भी होता है।*

---

* "न च 'माहिंस्यात् सर्वा भूतानीति' सामान्यशास्त्रं विशेषशास्त्रेण अग्नीषोमीयं पशुमालभेतेत्यनेन बाध्यत इति युक्तं

अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि जितने वैदिक-यज्ञ हैं, ऐतरेयब्राह्मण, शतपथब्राह्मण आदिमें उनका विधान वर्णित है। सम्प्रति ये सब यज्ञ नहीं होते। आज कल पूजा, यज्ञ, होमादि ही यज्ञ कहे जाते हैं।

वेदनिघण्टुमें यज्ञके १४ पर्याय कहे गये हैं, यथा— वेन, अध्वर, मेध, विदथ, नार्य, सवन, होत्र, इष्टि, देवताता, मख, विष्णु, इन्दु, प्रजापति, घर्म।

(वेदनिघण्टु ३।१७)

आर्य ऋषिगण बहुत पहले नाना प्रकारके यज्ञ करते थे। इन सब आदि-यज्ञोंकी प्रक्रियाएं जिस वेदमें लिखी गई हैं वही यजुर्वेद नामसे प्रसिद्ध है। वेद देखो।

यजुर्वेद-संहितामें हम लोग इन सब यज्ञोंका विवरण पाते हैं,—

१ दर्शपूर्णमास, २ पिण्डपितृयज्ञ, ३ अग्निहोत्र, ४ चातुर्मास्य, ५ अग्निष्टोम, ६ षोड़शीयाग, ७ द्वादशाहयाग, ८ गवामयनसत्र, ९ वाजपेय, १० राजसूय, ११ चरक-सौत्रामणि, १२ अश्वमेध, १३ पुरुषमेध, १४ सर्वमेध, १५ ब्रह्मयज्ञ और पितृमेध। अलावा इनके चार वेदोंका ब्राह्मणभागमें हमें अनेक प्रकारके यज्ञोंका उल्लेख मिलता है।

आपस्तम्बकृत यज्ञपरिभाषासूत्रमें लिखा है,—

श्रौत और गृह्यके भेदसे यज्ञ दो प्रकारका है। श्रौत-सूत्रमें यज्ञका प्रयोग, प्रकार और पद्धति जिस प्रकार उप-

रघुनन्दनने वैधहिंसा-विचारकी जगह यज्ञीय पशुवधसे पाप नहीं होगा ऐसा साबित किया है। वे कहते हैं, कि "तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः" अर्थात् यज्ञमें जो पशुवध होता है, वह अवधस्वरूप है अर्थात् इससे वधजन्य पाप नहीं होगा। हिंसा शब्द देखो।

विरोधाभावात् विरोधे हि बलीयसा दुर्वल वाध्यते, नचेहास्ति कश्चित् विरोधः भिन्नविषयत्वात्। तथाहि माहिंस्यादिति निषेधेन हिंसाया अनर्थहेतुभावो ज्ञाप्यते नत्वक्रत्वर्थत्वमपि अग्निषामीयं पशुमालभेतेत्यनेन तु पशुहिंसायाः क्रत्वर्थत्वमुच्यते। न त्वनर्थहेतुत्वाभावस्तथा सति वाक्यभेदप्रसङ्गात् न चानर्थ हेतुत्वक्रतूपकारकत्वयोः कश्चिदस्ति विरोधः। हिंसा हि पुरुषस्य दोषमावक्ष्यति क्रतोश्चोपकरिष्यति" इत्यादि। (सांख्यतत्त्वकौमु०)

दिष्ट है वह श्रौत तथा गृह्यसूत्रोक्त पद्धतिनिवद्ध यज्ञ गृह्य कहलाता है। विधिपूर्वक यज्ञमें दीक्षित न होनेसे श्रौत कार्यमें अधिकारी नहीं हो सकता, किन्तु उपनीत होनेसे ही घरके कामोंका अधिकारी हो जाता है। सोमसंस्था और हविःसंस्था भेदसे श्रौत यज्ञके दो तथा पाकसंस्था भेदसे गृह्ययज्ञका एक विभाग निरूपित हुआ है। इसलिये यथार्थमें श्रौत और गृह्ययज्ञ तीन प्रकारके हैं। यह सोमादि तीन प्रकारका जो संस्थायज्ञ है, उनमेंसे प्रत्येकका सात भेद है, इसलिये यज्ञकथा कहनेसे प्रधानतः प्रकारकी यज्ञकथाका बोध होता है। आश्वलायन और कात्यायन श्रौतसूत्रमें (६, ११, १६६, २७, १२, ३, १६०) सात प्रकारकी सोमसंस्थाका विषय लिखा है और दूसरे दूसरे स्थानमें अन्यान्य संस्थाओंकी भी वर्णन है। विशेषतः अथर्ववेदीय गोपथब्राह्मणकी (१।५।२३) इन तीन प्रकारकी संस्थाके नाम या इक्कीस प्रकार यज्ञके नाम नीचे दिये गये हैं।

अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम नामक सात प्रकारका याग सोमसंस्था नामसे; अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य और पशुबन्ध नामक सात याग हविःसंस्था तथा सायंहोम, प्रातर्होम, स्थालीपाक, नवयज्ञ, वैश्वदेव, पितृयज्ञ और अष्टका नामक सात यज्ञ पाकसंस्था कहलाता है।

दर्श और पौर्णमासयागको एक संख्यामें शामिल करके लाट्यायन-सूत्रकार (५।४।१०)-ने सौत्रामणियागको हविःसंस्थामें गिना है। दूसरे ग्रन्थमें पाकसंस्थाके अन्तर्गत यागोंकी भी पृथक्ता देखी जाती है। सोमसंस्थाका कहीं कहीं सोमयज्ञ, क्रतु, ज्योतिष्टोम और सुत्या नामसे उल्लेख किया गया है। हविःसंस्थादिका भी हविर्यज्ञ आदि भिन्न भिन्न नामोंसे व्यवहार देखा जाता है। किसी किसी ग्रन्थमें सोम, होत्र और इष्टिभेद यज्ञोंका तीन भेद वर्णित है। अग्निष्टोम आदि सप्तसोमसंस्था ही सोम; अग्न्याधेय, अग्निहोत्र और सायंहोमादि होत्र नामसे तथा दर्शपौर्णमास आदि इष्टि नामसे कहे गये हैं।

गोमेध, अश्वमेध आदि सभी सोमयज्ञके अन्तर्गत है।

ताण्ड्यब्राह्मणादिमें ये सब सोमयज्ञ एकाह, अहीन और सत्र नामक तीन श्रेणीमें विभक्त हैं। एक दिनमें होनेवाले छोटे छोटे सोमयागोंको एकाह कुछ दिनमें होनेवाले मध्यम प्रकारके यागोंको अहीन तथा अधिक समयमें होनेवाले बड़े यज्ञोंको सत्र कहते हैं। पाकसंस्थाके अन्तर्भुक्त वैश्वदेव तथा उसके अतिरिक्त वरुणप्रघास और साकमेध नामक तीनों याग चातुर्मास्यके अन्तर्गत हैं। पशुबन्धको कोई कोई निरूढ़ पशुबन्ध भी कहते हैं। उनमें इष्टि एक विशेष नाम है। इष्टि अनेक तरहकी हैं, जैसे—आयुष्कामेष्टि, पुत्रेष्टि, पवित्रेष्टि, वर्णकामेष्टि, प्राजापत्येष्टि, वैश्वानरेष्टि, नवशस्येष्टि, ऋक्षेष्टि, ओषपताष्टि इत्यादि।

पशुसाध्य यागमात्रको ही पशुयाग कहते हैं। अनतिप्राचीन अथर्वपरिशिष्टमें (५।१) उसीके अनुकल्पको 'पिष्टपशु' कहा है। उसमें पिठारे (पीसे हुए चावल)के बने हुए व्यवहार होता है। मनुसंहितामें भी (५।३७) घृतपशुका उल्लेख देखा जाता है किन्तु वह यज्ञार्थक नहीं है।

उक्त ग्यारह प्रकारके यज्ञोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनोंका समान अधिकार है। ब्राह्मण द्वारा गृहीत शूद्रोंका इसमें अधिकार नहीं। इस यज्ञमें ऋक् (पद्य), यजुः (गद्य) और साम (गीत) ये तीन प्रकारके सर्वविध वेदमन्त्र ही व्यवहृत होते हैं। दर्श और पौर्णमास नामक दो यागोंमें ऋक् और यजुः मन्त्रकी ही आवश्यकता होती है। साममन्त्रका विशेष प्रयोजन नहीं होता। अग्निहोत्र नामक यज्ञमें ऋङ्मन्त्रका व्यवहार नहीं है; सिर्फ गद्य प्रधान यजुःमन्त्रसे ही वह सम्पन्न होता है। किन्तु आदि सोमसंस्था अग्निष्टोम नामक सर्वप्रधान यज्ञमें सभी प्रकारके (ऋक्, यजुः और साम) मन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। इस कारण उक्त यागमें ऋग्वेदवित् होता, यजुर्वेदवित् अध्वर्यु, सामवेदवित् उद्गाता तथा सम्पूर्ण त्रिवेदवित् अर्थात् ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता और अथर्वसंहिताके मध्य स्थित ऋक्, यजुः और साममन्त्र जिन्होंने अध्ययन किये हैं वे ही चतुःसंहितावित् ब्रह्मा हैं। ये चार व्यक्ति ऋत्विक् वृत होते हैं।

ऋत्विकोंको ऋग्वेद और सामवेदीय मन्त्र उच्चैःस्वरसे तथा यजुर्वेदीय पाठ उपांशुक्रमसे उच्चारण करना चाहिये। आश्रुत, प्रत्याश्रुत, प्रवर, संवाद और सम्प्रैषकी जगह यजु उपांशुक्रमसे पढ़नेका नियम नहीं है। आवश्यकतानुसार यथास्थानमें (१२, १४, १६ सू०) यह सब मन्त्र मध्यम और तारस्वरमें ही पाया जाता है। आज्य दोनों भाग समर्पणके पहले आश्राव, प्रत्याश्राव, प्रवर, संवाद और सम्प्रैषमन्त्र स्वरमें पढ़ना चाहिये। स्वर शब्दमें देखो।

सोमयज्ञ समूहोंका प्रात्यहिक कार्यकलाप प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन और तृतीय सवन कहलाता है। प्रातःकालीन प्रातःसवन यागाङ्गकी विधि एतरेय, तैत्तिरीय, शतपथ और छान्दोग्य आदि ब्राह्मणमें तथा आश्वलायन, कात्यायन और सांख्यायणसूत्रमें विशदरूपसे लिखा गया है। स्विष्टकृत अङ्गयागके आश्रावादि और माध्यन्दिन सवनका मन्त्र मध्यमस्वरसे तथा तृतीय सवनका मन्त्र क्रुष्टस्वरसे पढ़ा जाता है।

यज्ञकी परिभाषाके २य सूत्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन्हीं तीन द्विजातियोंका यज्ञमें अधिकार बतलाया है। किन्तु आर्त्विज्य अर्थात् ऋत्विकका कार्य एकमात्र ब्राह्मणको ही करना चाहिये। क्षत्रिय और वैश्य सिर्फ यजमान हो सकते हैं। अतएव यजमानको पाठ्य मन्त्रादिका पाठ और यजमान-कर्त्तव्य यागाङ्गादिका अनुष्ठान भी करनेका अधिकार है। शूद्रका वह भी अधिकार नहीं है।

सोमयज्ञके अहीन और एकाहमें सोलह ऋत्विक दीक्षित होते हैं। उनमें होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता ये चार प्रधान हैं। मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत होताके; ब्राह्मणाच्छंसि, आग्नीध्र और पोता ब्रह्माके; प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता और सुब्रह्मण्य उद्गाताके सहकारी हैं। सूत्रमें ये सोलह तथा गृहपतिकुल सत्तरह ऋत्विक् दीक्षित होते हैं। (आश्व० श्रौ० ४।१ सूत्रमें देखो।) अलावा इसके यज्ञविशेषमें आत्रेय, सदस्य, उपगाता और शमिता आदि भी वृत हुआ करते हैं। ऐतरेयब्रा० ७।१।१ देखो।

सभी क्रतुओंमें अग्निदेवका सिर्फ एक बार आह्वान होगा। अर्थात् प्रति दिन या प्रत्येक काममें पुनः पुनः अग्निकी स्थापना न करनी होगी। जिन सब यज्ञोंमें प्रधानतः तीन प्रकारकी अग्निकी स्थापना करनी होती है

उन 'त्रेताग्नि' साध्य यागोंको क्रतु अर्थात् सप्त सोम-संस्था कहते हैं। त्रैताग्नि यथा—१म गार्हा, २य 'दक्षिण' और ३य 'आहवनीय' आश्वलायनके २य अ० २य और ४र्थ सूत्रमें गार्हपत्याग्निको पिता; दक्षिणाग्निको पुत्र और आहवनीयाग्निको पौत्र कहा है। विशेषतः शतपथ-में १।६।२।४ आदि और कात्या० श्रौ०सू० २।७।२६ और ५।८।६ आदि देखो। छान्दोग्य उपनिषद्के २।४।११ और ४।१३।१ तथा मनुके २३ अध्याय २३१ श्लोकमें भी त्रेताग्निका परिचय है।

आध्वर्युको ही यज्ञमात्रका प्रधान कर्त्ता जानना चाहिये। आध्वर्युके क्रियागुणसे ही यज्ञ संगठित होता है। होता, ब्रह्मा और उद्गाता उसके अलङ्कार-स्वरूप हैं। अर्थात् यजुरूप यज्ञदेहमें ऋक् जिस प्रकार भूषणस्वरूप है, सामरूप मणि भी उसी प्रकार उसमें आश्रित रह कर यागके सौष्ठवको बढ़ाती है।

होममात्रमें सर्पणशील घृत (गव्य घृत)-की ही आहुति देंगे तथा जुहूको ही केवलमात्र होमसाधन पात्र समझेंगे। आघारादिके लिये जुहू द्वारा असम्पाद्य कार्यमें स्रुव ही होमसाधन पात्र होगा। विशेष उल्लेख नहीं रहनेसे आहवनीयाग्निमें ही आहुति देनी चाहिये। प्रति कार्यकी समाप्तिमें जुहू आदि यज्ञपात्रोंको उष्णोदकादि द्वारा ऊपर कहे गये नियमोंसे संस्कृत करना होगा। उनके नष्ट होने पर फिरसे दूसरा ग्रहण करनेका नियम है। नित्याग्निहोत्रकारीको चाहिये, कि वे अग्न्याध्यानकालसे ले कर यावज्जीवन यज्ञपात्रकी यत्नपूर्वक रक्षा करें। उनके मरने पर उनकी चिता पर शवके ऊपर यथाविधि और यथास्थान पात्रोंको सजा कर जलानेका नियम है। जिन दो लकड़ियोंको रगड़ कर अग्नि निकाली जाती है उन दो अरणियोंका सत्कार भी इसी नियमके अधीन है।

मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञके प्रमाण हैं। इसलिये उन ग्रन्थोंके अनुसार सभी यज्ञ समाप्त करना उचित है। वैदिक मन्त्र और ब्राह्मणभागमें जो सब वचन अम्नात नहीं हैं अर्थात् वेदमें अपठित हैं उन्हें मन्त्र नहीं कह सकते। वे प्रवर, ऊह आदि कहलाते हैं। यागोंमें देव-वरण और मनुष्यवरण—ऋत्विकादिके इन दोनों प्रकारके वरणोंके वाक्यको ही प्रवर कहते हैं। वैदिक मन्त्रा-न्तर्गत शब्दादिके परिवर्त्तन तथा यज्ञीय संकल्प वाक्य और आशीर्वादमें यजमानादिके नाम ग्रहण यथाक्रम ऊह और नामधेयग्रहण नामसे मन्त्रांशविशेषमें सन्निविष्ट हुए हैं।

२ विष्णु। (भारत १३।१६९।११७)

यज्ञक (सं० पु०) यज्ञ-स्वार्थे कन्। १ यज्ञ। २ याजक, यज्ञ करनेवाला।

यज्ञकर्त्ता (सं० त्रि०) यज्ञ करनेवाला, याजक।

यज्ञकर्मन् (सं० क्ली०) यज्ञरूपं कर्मधा०। १ यज्ञरूप काम यज्ञ। २ यज्ञका काम। ३ ब्राह्मण। ब्राह्मणोंके यज्ञ ही एकमात्र अवश्य कर्त्तव्य कर्म है। (रामायण १।१३।३६)

यज्ञकल्प (सं० पु०) विष्णु।

यज्ञकाम (सं० त्रि०) यज्ञाभिलाषी, यज्ञकी इच्छा करने-वाला।

यज्ञकार (सं० त्रि०) यज्ञकारी, यज्ञ करनेवाला।

यज्ञकारी (सं० पु०) यज्ञकार देखो।

यज्ञकाल (सं० पु०) १ यज्ञादिके लिये शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट समय। २ पौर्णमासी, पूर्णिमा।

यज्ञकीलक (सं० पु०) यूपकाष्ठ, काठका वह खूंटा जिसमें यज्ञके लिये बलि दिया जानेवाला पशु बांधा जाता था।

यज्ञकुण्ड (सं० क्ली०) यज्ञस्य कुण्डः। यज्ञका कुण्ड। जिस कुण्डमें होम किया जाता है उसको यज्ञकुण्ड कहते हैं। हाथ भर चौकोन तांबेकी धातुसे होमके लिये जो कुण्ड तैयार किया जाता है वही होमकुण्ड कहलाता है। इस होमकुण्डके ऊपर स्थण्डिल बना और संस्कार कर उसमें होम करना होता है।

यज्ञकृत् (सं० त्रि०) यज्ञं करोतीति कृ-क्विप्, तुकच। १ यागकर्त्ता, यज्ञ करनेवाला। (पु०) २ विष्णु। ३ सह्याद्रिवर्णित एक राजा।

यज्ञकृन्तत्र (सं० क्ली०) यज्ञका अंशविशेष।

यज्ञकेतु (सं० पु०) १ यज्ञवित्। २ यज्ञप्रज्ञापक, वह जो यज्ञकी क्रियाओंका ज्ञाता हो। ३ रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम।

यज्ञकोप (सं० पु०) १ यज्ञद्वेषी, वह जो यज्ञसे द्वेष करता

हो। २ रावणके दलका एक राक्षस जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायणमें है।

यज्ञक्रतु (सं० पु०) १ सम्पूर्ण याग, यज्ञका शेष। २ विष्णु। ३ यज्ञ। ४ क्रतुयाग।

यज्ञक्रिया (सं० स्त्री०) १ यज्ञके काम। २ कर्मकाण्ड

यज्ञगाथा (सं० स्त्री०) यज्ञार्थ विहित मन्त्र।

यज्ञगिरि (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम

यज्ञगीता (सं० स्त्री०) यज्ञप्रकरण निर्वाह करनेका मन्त्र

यज्ञगुप्त—एक प्रसिद्ध जैन।

यज्ञघोष—एक प्राचीन कवि।

यज्ञघ्न (सं० त्रि०) यज्ञं हन्ति हन-टक्। १ यज्ञनाशकारी, यज्ञ विध्वंस करनेवाला। २ राक्षस।

यज्ञछाग (सं० पु०) वह बकरा जो यज्ञमें बलि दिया जाता है।

यज्ञज्ञ (सं० त्रि०) यज्ञं यज्ञावधानं जानाति ज्ञा-क। यज्ञविद्-यज्ञके विधान जाननेवाला।

यज्ञतति (सं० स्त्री०) १ वलि। २ यज्ञमें उत्सर्ग करने योग्य उपकरण आदि।

यज्ञतनु (सं० स्त्री०) १ यज्ञ प्राकार। २ यज्ञाङ्गकी ईंट आदि। ३ व्याहृतिभेद।

यज्ञत्राता (सं० पु०) १ यज्ञरक्षाकर्त्ता, वह जो यज्ञकी रक्षा करता हो। २ विष्णु।

यज्ञदक्षिणा (सं० स्त्री०) वह दक्षिणा जो यज्ञके समाप्त हो जाने पर यज्ञ करनेवाले पुरोहितकी तृप्तिके लिये दी जाय।

यज्ञदत्त (सं० पु०) १ रामायणमे वर्णित एक व्यक्ति। इसका वध-वृत्तान्त ले कर प्रसिद्ध फरासीसी पण्डित *M. Chezy* एक कविता बना गये हैं। २ जैन हरिवंश और कथासरित्सागर-वर्णित दो व्यक्ति।

यज्ञदत्तक (सं० पु०) वह पुत्र जो यज्ञके प्रसादस्वरूप प्राप्त हुआ हो।

यज्ञदत्तशर्मा—यजुर्वेदी एक ब्राह्मण।

यज्ञदीक्षा (सं० स्त्री०) यज्ञस्य दीक्षा। यज्ञविषयक-दीक्षा। ब्राह्मणोंकी यज्ञदीक्षा होनेसे उनका तीसरा जन्म होता है।

"मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौंजीवन्धने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥"
(मनु० २।१६९)

यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होनेका नाम यज्ञदीक्षा है। ब्राह्मणों की उत्पत्ति पहला जन्म, उपनयन दूसरा जन्म तथा यज्ञदीक्षा तीसरा जन्म है।

यज्ञदीक्षित—अग्नीध्रप्रयोगके रचयिता।

यज्ञदेव—जैनहरिवंशके अनुसार एक व्यक्ति।

यज्ञद्रव्य (सं० क्ली०) यज्ञस्य द्रव्य। यज्ञीय द्रव्यादि, वह द्रव्य जिससे यज्ञ हो।

यज्ञद्रुह् (सं० पु०) यज्ञ द्रुह्यति द्रुह-क्विप्। यज्ञमे विघ्न बाधा डालनेवाला राक्षस।

यज्ञधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, यज्ञस्य धरः। विष्णु।

यज्ञधीर (सं० त्रि०) यज्ञ आदिमें विलक्षण बुद्धि।

यज्ञधूप (सं० पु०) सर्ज्ज वृक्ष, धूनाका पेड़।

यज्ञनारायण—१ महाभारत व्याख्यान और रघुनाथविलासके प्रणेता। २ एक वैयाकरण। माधवीय धातुवृत्तिमे इनका नामोल्लेख है।

यज्ञनारायण दीक्षित—१ प्रभामण्डल नामक शास्त्रप्रदीपन-टीकाके रचयिता। २ वेङ्कटेश्वर कृत चित्रवन्ध, रामायणके एक टीकाकार, गोविन्ददीक्षितके पुत्र। ये अपने भाई (वार्त्तिकाभरणके प्रणेता) वेङ्कटेश्वर दीक्षितके गुरु थे। ३ आचार्यभेद।

यज्ञनिष्कृत (सं० त्रि०) यज्ञके निर्गमनकर्त्ता।

यज्ञनी (सं० त्रि०) यज्ञं नयति नि-क्विप्। यज्ञनिर्वाहक, यज्ञके नेता।

यज्ञनेता (सं० पु०) महासोमलता।

यज्ञनेमि (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

यज्ञपति (सं० पु०) यज्ञस्य पतिः। १ यजमान, वह जो यज्ञ करता हो। २ यज्ञपालक सोम। ३ विष्णु।

यज्ञपति उपाध्याय—तत्त्वचिन्तामणिप्रभाके प्रणेता। रघुनाथ और गदाधरने इनका मत उल्लेख किया है।

यज्ञपत्नी (सं० स्त्री०) यज्ञस्य पत्नी। १ यज्ञकी स्त्री, दक्षिणा। २ पुराणानुसार यज्ञ करनेवाले माथुर ब्राह्मणोंकी वे स्त्रियां जो अपने पतियोंके मना करने पर भी श्रीकृष्णके लिये भोजन ले कर वनमें गई थीं।

यज्ञपथ (सं० पु०) १ यज्ञकी प्रणाली। २ वह रास्ता जिससे यज्ञमें जाया जाता है।

यज्ञपद (सं० स्त्री०) यज्ञकामी, वह जो यज्ञके लिये विचरण करता हो।

यज्ञपरिभाषा—आपस्तम्बकृत सूत्रभेद।

यज्ञपरुस् (सं० क्ली०) यज्ञांश।

यज्ञपर्वत—पुराणानुसार एक पर्वतका नाम जो नर्मदाके उत्तर-पश्चिममें है।

यज्ञपशु (सं० पु०) यज्ञाथ पशुः। १ वह पशु जिसका यज्ञमें बलिदान किया जाय। २ घोटक, घोड़ा। ३ बकरा। यज्ञकर्ममें जिन सब पशुओंका प्रयोजन होता है उन्हें यज्ञपशु कहते है। वासुदेवभट्टकृत यज्ञपशुमीमांसामें इनकी विस्तृत आलोचना है।

यज्ञपात्र (सं० क्ली०) यज्ञस्य पात्रं। यज्ञमें काम आनेवाले काठके बने हुए बरतन।

यज्ञपात्रीय (सं० त्रि०) यज्ञपात्रसम्बन्धीय।

यज्ञपादप (सं० पु०) विकङ्कत वृक्ष, बंटकीका पेड़।

यज्ञपार्श्व (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। इनका उल्लेख पराशर स्मृतिमें है।

यज्ञपाल (सं० पु०) यज्ञका संरक्षक, यज्ञकी रक्षा करनेवाला।

यज्ञपुच्छ (सं० क्ली०) यज्ञका शेषभाग।

यज्ञपुमस् (सं० पु०) यज्ञरूपी पुमान्। यज्ञपुरुष, विष्णु।

यज्ञपुरुष (सं० पु०) यज्ञरूपी पुरुषः। विष्णु।

यज्ञप्री (सं० त्रि०) यज्ञे हविर्भिः प्रीणयति प्री क्विप्। यज्ञीय हविः आदि द्वारा देवताओंका प्रीति उत्पादक।

यज्ञफलद (सं० त्रि०) यज्ञफलं ददातीति दा-क। यज्ञका फल देनेवाले, विष्णु।

यज्ञबन्धु (सं० पु०) यज्ञकर्मके सहकारी।

यज्ञबाहु (सं० पु०) १ अग्निका एक नाम। २ पुराणानुसार शाल्मलिद्वीपके एक राजाका नाम।

यज्ञभाग (सं० पु०) यज्ञस्य भागः। १ यज्ञका अंश जो देवताओंको दिया जाता है। २ देवताभेद, वे देवता जिन्हें यज्ञका भाग मिलता है।

यज्ञभाजन (सं० क्ली०) यज्ञस्य भाजनं। यज्ञपात्र।

यज्ञभाण्ड (सं० क्ली०) यज्ञस्य भाण्डं। यज्ञका भाण्ड, यज्ञपात्र।

यज्ञभावन (सं० त्रि०) विष्णु।

यज्ञभुज् (सं० त्रि०) यज्ञं भुङ्क्ते भुज-क्विप्। यज्ञभोक्ता विप्र।

यज्ञभूमि (सं० स्त्री०) यज्ञस्य भूमिः। यज्ञस्थान, वह स्थान जहां यज्ञ होता है।

यज्ञभूषण (सं० पु०) कुश।

यज्ञभृत् (सं० पु०) यज्ञं बिभर्त्ति भृ-क्विप्। विष्णु।

यज्ञभैरव—सूतगीतटीकाके प्रणेता।

यज्ञभोक्तृ (सं० त्रि०) यज्ञस्य भोक्ता। विष्णु।

यज्ञमण्डप (सं० पु० क्ली०) यज्ञवेदी, यज्ञ करनेके लिये बनाया हुआ मण्डप।

यज्ञमण्डल (सं० क्ली०) यज्ञस्थल, वह स्थान जो यज्ञ करनेके लिये घेरा गया हो।

यज्ञमन्दिर (सं० पु०) यज्ञशाला।

यज्ञमनस् (सं० त्रि०) यज्ञादिमें न्यस्तचित्त।

यज्ञमन्मन् (सं० त्रि०) यज्ञकार्यमें मतिमान्, विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाला।

यज्ञमय (सं० त्रि०) यज्ञ-स्वरूपे मयट्। यज्ञस्वरूप, विष्णु।

यज्ञमहोत्सव (सं० पु०) यज्ञ एव महोत्सवः। यज्ञरूप महोत्सव, यज्ञके लिये भारी उत्सव।

यज्ञमालि—बृहन्नारदीय पुराण-वर्णित एक ब्राह्मण, वेदमालिके पुत्र।

यज्ञमित्र—एक प्रसिद्ध जैन-साधु।

यज्ञमिश्र—रत्नपञ्चक नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता।

यज्ञमुख (सं० क्ली०) यज्ञका आरम्भ या मुखपात।

यज्ञमुष (सं० पु०) यज्ञापहरणकारी राक्षस।

यज्ञमुह् (सं० पु०) यज्ञमोहकारी राक्षस।

यज्ञमूर्त्ति—असिद्धिनिरूपण व्याख्यानके प्रणेता, काशीनाथके पूर्वपुरुष। ये एक सुपण्डित थे।

यज्ञमूर्त्ति काशीनाथ—तत्त्वचिन्तामणिके एक टीकाकार।

यज्ञमेनि (सं० क्ली०) आयुधविशेष, एक प्रकारका अस्त्र।

यज्ञयशस् (सं० क्ली०) यज्ञकी गरिमा।

यज्ञयूप (सं० पु०) यूपकाष्ठ, वह खम्भा जिसमें यज्ञका बलि-पशु बांधा जाता था।

यज्ञयोग्य (सं० पु०) यज्ञे योग्य उचितः। १ उडुम्बरवृक्ष, गूलरका पेड़। २ यागार्ह, यज्ञके योग्य।

यज्ञरस (सं० पु०) सोम।
यज्ञराज (सं० पु०) चन्द्रमा।
यज्ञरुचि (सं० पु०) दानवभेद, एक दानवका नाम।
यज्ञरेतस् (सं० क्ली०) सोम।
यज्ञर्त्त (सं० त्रि०) यज्ञके लिये निर्दिष्ट या रक्षित।
यज्ञलिङ्ग (सं० पु०) श्रीकृष्णका एक नाम।
यज्ञवचस् (सं० क्ली०) १ यज्ञमन्त्र। (पु०) २ आचार्य-भेद, राजस्तन्वायनका गोत्रापत्य।
यज्ञवत् (सं० त्रि०) यज्ञः विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। यज्ञविशिष्ट, यज्ञ करनेवाला।
यज्ञवनस् (सं० त्रि०) संभक्त यज्ञ, परस्पर विभक्त यज्ञ।
यज्ञवराह (सं० पु०) विष्णु। कहते हैं, कि विष्णुने वराह रूप धारण करनेके उपरान्त जब अपना शरीर छोड़ा तब उनके भिन्न भिन्न अंगोंसे यज्ञकी सामग्री बन गई। इसीसे उनका यह नाम पड़ा। कालिकापुराणके २९, ३० और ३१वें अध्यायमें विशेष विवरण वर्णित है।
यज्ञ शब्द देखो
यज्ञवर्द्धन (सं० त्रि०) यज्ञको बढ़ानेवाला।
यज्ञवर्मा—एक प्राचीन राजाका नाम।
यज्ञवल्क (सं० पु०) १ प्राचीन ऋषि, याज्ञवल्क्यके पिता। ये यज्ञके लिये उपदेश देते थे इसीसे इनका यह नाम पड़ा है। २ मिताक्षराके रचयिता।
यज्ञवल्ली (सं० स्त्री०) यज्ञस्य वल्ली। सोमवल्ली, सोमलता।
यज्ञवाट (सं० पु०) यज्ञस्य वाटो गृहं। यज्ञस्थान, यज्ञशाला।
यज्ञवास्तु (सं० क्ली०) यज्ञस्थान।
यज्ञवाह (सं० त्रि०) १ याजक, यज्ञ करनेवाला। २ कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।
यज्ञवाहन (सं० त्रि०) १ यज्ञवहनकारी, यज्ञ करनेवाला। २ ब्राह्मण। ३ विष्णु। ४ शिव।
यज्ञवाहस् (सं० त्रि०) १ यज्ञनिर्वाहक, यज्ञ करनेवाला। २ यज्ञका प्रापणीय अंश।
यज्ञवाहिन् (सं० त्रि०) यज्ञ वह-णिनि। यज्ञवहनकारी, यज्ञका सब काम करनेवाला।
यज्ञविद् (सं० त्रि०) यज्ञं वेत्ति विद्-क्विप्। यज्ञवेत्ता, यज्ञ जाननेवाला।
यज्ञविद्या (सं० स्त्री०) यज्ञ विषयमें सम्यक् अभिज्ञान।
यज्ञवीर्य (सं० पु०) विष्णु।
यज्ञवृक्ष (सं० पु०) यज्ञस्य वृक्षः। १ वटवृक्ष, बड़का पेड़। २ विकङ्कतवृक्ष, कंटकीका पेड़। जिस वृक्षकी लकड़ीसे यज्ञीय होम होता है उसको यज्ञवृक्ष कहते हैं।
यज्ञवृध् (सं० त्रि०) यज्ञसे परितुष्ट।
यज्ञवेदी (सं० स्त्री०) यज्ञके लिये बनाई गई ऊंची वेदी।
यज्ञवैशस (सं० क्ली०) यज्ञको नाश या अपवित्र करना।
यज्ञव्रत (सं० त्रि०) यज्ञकारी, यज्ञ करनेवाला।
यज्ञशत्रु (सं० पु०) यज्ञस्य शत्रुः। १ राक्षस। २ खर राक्षसका एक सेनापति जिसे रामचन्द्रने मारा था।
यज्ञशरण (सं० क्ली०) यज्ञवेदीके ऊपर निर्मित सामयिक आच्छादन।
यज्ञशाला (सं० स्त्री०) यज्ञस्य शाला। यज्ञगृह, यज्ञ करनेका स्थान।
यज्ञशास्त्र (सं० क्ली०) यज्ञविषयकं शास्त्रं। यज्ञ विषयक शास्त्र, वह शास्त्र जिसमें यज्ञों और उनके कृत्यों आदिका विवेचन हो।
यज्ञशील (सं० त्रि०) यज्ञं शीलं स्वभावो यस्य। १ यज्ञानुष्ठानकारी, यज्ञ करनेवाला।

"वर्द्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद् विदुर्बुधाः॥"
(मनु० ११।२२)

यज्ञशील व्यक्तिका जो धन है वह देवस्व है। देवसेवामें ही यह धन लगाना उचित है। (पु०) २ ब्राह्मण।
यज्ञशूकर (सं० पु०) यज्ञवराह देखो।
यज्ञशेष (सं० पु०) यज्ञस्य शेषः। यज्ञावशिष्ट, यज्ञका शेष।
यज्ञश्री (सं० स्त्री०) यज्ञस्य श्रीः। १ यज्ञका धन। २ पुराणानुसार एक राजाका नाम।
यज्ञश्रीसातकर्णी—दाक्षिणात्यके सातवाहनवंशीय एक राजा। सातवाहनवंश देखो।
यज्ञश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) यज्ञे श्रेष्ठा। सोमवल्ली, सोमलता।

यज्ञसंशित (सं० स्त्री०) यज्ञोल्लासित ।

यज्ञसंस्तर (सं० पु०) १ वह स्थान जहां यह मण्डप बनाया जाय, यज्ञभूमि । २ शुक्लदर्भ, सफेद कुश ।

यज्ञसंस्था (सं० स्त्री०) यज्ञका आकार या मूलभित्ति ।

यज्ञसदन (सं० क्लो०) यज्ञस्य सदनं । यज्ञस्थान; यज्ञ करनेका स्थान या मण्डप ।

यज्ञसदस् (सं० क्ली०) यज्ञमें उपस्थित जनमण्डली ।

यज्ञसाध (सं० त्रि०) यज्ञं साधयतीति साध-क्विप् । यज्ञसाधक, यज्ञकी रक्षा करनेवाला ।

यज्ञसाधन (सं० त्रि०) यज्ञं साधयतीति साध-णिच्-ल्यु । १ यज्ञसाधक, यज्ञकी रक्षा करनेवाला । (पु०) २ विष्णु ।

यज्ञसाधनी (सं० स्त्री०) सोमलता ।

यज्ञसार (सं० पु०) यज्ञे सार उत्कृष्टः । यज्ञोडुम्बरवृक्ष, गूलरका पेड़ ।

यज्ञसारथि (सं० क्ली०) साममेद ।

यज्ञसिद्धि (सं० स्त्री०) १ यज्ञकी समाप्ति । २ यज्ञकी उद्देश्यसिद्धि ।

यज्ञसूकर (सं० पु०) विष्णु । यज्ञवराह देखो ।

यज्ञसूत्र (सं० क्ली०) यज्ञे धृतं सूत्रं । यज्ञोपवीत, जनेऊ । यह सूत्र यज्ञ कर धारण किया जाता है इसलिये इसे यज्ञसूत्र कहते हैं । यज्ञोपवीत देखो ।

यज्ञसेन (सं० पु०) १ राजा द्रुपद । २ विदर्भके एक राजाका नाम । ३ दानवभेद । ४ विष्णु । ५ दो ब्राह्मण ।

यज्ञसोम (सं० पु०) कथासरित्सागरवर्णित एक ब्राह्मण ।

यज्ञस्तम्भ (सं० पु०) यूप, वह खंभा जिसमें पशु बांधा जाता है ।

यज्ञस्थल (सं० क्ली०) १ यज्ञमण्डप । २ कलिङ्ग देशान्तर्गत एक नगर । ३ ग्रामभेद । ४ अग्रहारभेद ।

यज्ञस्थाणु (सं० पु०) यज्ञस्थम्भ, वह खंभा जिसमें यज्ञपशु बांधा जाता है ।

यज्ञस्थान (सं० क्ली०) यज्ञस्य स्थानं ६-तत् । यज्ञवाट, जहां यज्ञ होता है ।

यज्ञस्वामिन् (सं० पु०) कथासरित्सागर-वर्णित एक ब्राह्मण ।

यज्ञहन् (सं० त्रि०) यज्ञं हन्ति हन-क्विप् । १ यज्ञमें विघ्नबाधा डालनेवाला राक्षस । (पु०) २ शिव ।

यज्ञहृदय (सं० पु०) विष्णु ।

यज्ञहोता (सं० पु०) यज्ञहोतृ देखो ।

यज्ञहोतृ (सं० पु०) १ यज्ञका होता, यज्ञमें देवताओंका आवाहन करनेवाला । २ भागवतके अनुसार उत्तममनुके एक पुत्रका नाम ।

यज्ञांश (सं० पु०) यज्ञस्य अंशः । यज्ञका अंश, यज्ञका भाग ।

यज्ञांशभुज् (सं० पु०) देवगण ।

यज्ञागार (सं० पु०) यज्ञशाला, वह स्थान या मण्डप जहां यज्ञ होता हो ।

यज्ञाङ्ग (सं० पु०) यज्ञं अङ्गति प्राप्नोतीति अङ्ग-अण । १ उडुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़ । २ खदिर वृक्ष, खैरका पेड़ । ३ ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी । ४ विष्णु । (क्ली०) यज्ञस्य अङ्गं । ५ यज्ञका अंग, यज्ञका अवयव ।

यज्ञाङ्गा (सं० स्त्री०) यज्ञमङ्गति प्राप्नोति या अङ्ग-अण् टाप् । सोमवल्ली, सोमलता । (राजनि०)

यज्ञात्मन् (सं० पु०) यज्ञ आत्मा यस्य । विष्णु ।

यज्ञात्मन्मिश्र—एक पण्डित, पार्थसारथिमिश्रके पिता ।

यज्ञाधिपति (सं० पु०) यज्ञके स्वामी, विष्णु ।

यज्ञानुकाशिन् (सं० त्रि०) १ यज्ञीय सदस्य; यज्ञका सब काम देखनेवाला । २ यज्ञतत्त्वप्रकाश करनेवाला ।

यज्ञान्त (सं० पु०) यज्ञस्य अन्तोऽवसानं यस्मिन् । १ अवभृत, वह शेष कर्म जिसके करनेका विधान मुख्य यज्ञके समाप्त होने पर है । २ यागशेष, यज्ञका अन्न ।

यज्ञान्तकृत् (सं० पु०) यज्ञान्तं करोति कृ-क्विप् तुकृच । विष्णु ।

यज्ञायज्ञिय (सं० क्ली०) साममेद ।

यज्ञायतन (सं० क्ली०) यज्ञमण्डप ।

यज्ञायुध (सं० क्ली०) दश प्रकारका यज्ञपात्र ।

यज्ञायुधिन् (सं० त्रि०) यज्ञपात्र द्वारा सम्पन्न, यज्ञपात्रनिष्पादित ।

यज्ञारङ्गेशपुरी (सं० स्त्री०) नगरभेद ।

यज्ञारि (सं० पु०) यज्ञस्य दक्षयज्ञस्य अरिर्नाशकः । १ शिव । २ राक्षस ।

यज्ञार्थ (सं० अव्य०) यज्ञके निमित्त ।
यज्ञार्ह (सं० त्रि०) यज्ञका उपयुक्त ।
यज्ञावयव (सं० त्रि०) यज्ञ एव अवयवो यस्य । विष्णु ।
यज्ञाशन (सं० पु०) देवता ।
यज्ञासाह (सं० त्रि०) यज्ञसह, यज्ञकी धारयिता ।
यज्ञिक (सं० पु०) अनुकलितो यज्ञदत्तः (वह्वचो मनुष्य नाम्नष्ठच् वा । पा ५।३।३८) इति ठच् (ठाजादावूर्द्धं द्वितीयदचः । पा ५।३।८३) इति प्रकृति द्वितीयादच ऊद्‌र्ध्वस्य लोपः । १ यज्ञदत्तक, वह पुत्र जो यज्ञके प्रसादस्वरूप मिला हो । २ पलाशवृक्ष, पलाशका पेड़ ।
यज्ञिन् (सं० त्रि०) यज्ञ-इनि । विष्णु ।
यज्ञिय (सं० त्रि०) यज्ञमर्हति यज्ञ (यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ । पा ५।१।७१) इति घ । १ यज्ञकर्मार्ह, यज्ञ करने योग्य । २ यज्ञकी हितकर वस्तु । (पु०) ३ द्वापर युग । ४ खदिर वृक्ष, खैरका पेड़ । ५ पलाश ।
यज्ञियदेश (सं० पु०) यज्ञियश्चासौ देशश्चेति । यागकरणोपयोगी देश, वह देश जिसमें यज्ञ करनेका विधान है ।
यज्ञियपत्रक (सं० पु०) सितदर्भ, सफेद कुश ।
यज्ञियशाला (सं० स्त्री०) यज्ञिया शाला । यागमण्डप, मखगृह ।
यज्ञीय (सं० पु०) यज्ञे भवः यज्ञ (गहादिभ्यश्च । पा ४।२।१३८) इति छ । १ उडुम्बर वृक्ष,गूलरका पेड़ । (त्रि०) यागसम्बन्धीय, यज्ञका ।
यज्ञीय ब्रह्मपादप (सं० पु०) यज्ञीयश्चासौ ब्रह्मपादपश्चेति । विकङ्कत वृक्ष, कंटकीका पेड़ । (राजनि०)
यज्ञेश्वर (सं० पु०) यज्ञानामीश्वरः । विष्णु; यज्ञेश ।
यज्ञेश्वरार्य (सं० पु०) निरुक्तोल्लिखित आचार्यभेद ।
यज्ञेश्वरी (सं० स्त्री०) मन्त्रभेद ।
यज्ञेषु (सं० पु०) ब्राह्मणोक्त एक व्यक्ति ।
यज्ञेष्ट (सं० क्ली०) यज्ञे इष्टं । दीर्घरोहिषक तृण, रोहिस नामकी घास । (राजनि०)
यज्ञोडुम्बर (सं० पु०) यज्ञोचितः उडुम्बरः । उडुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़ । इस वृक्षकी लकड़ीसे यज्ञकर्म होता है इसीसे इसे यज्ञडुम्बर कहते हैं । पर्याय—हेमदुग्धी, मखफल, यज्ञाङ्ग, हेमदुग्धक, उडुम्बर, जन्तुफल । इसका गुण—शीतल, रुक्ष, गुरु, पित्त, कफ और अस्रनाशक, मधुर, वर्णकर तथा व्रणका शोधन और रोपणकारक । (भावप्र०)

यज्ञोपकरण (सं० क्ली०) यज्ञस्य उपकरणं । यज्ञका उपकरण, वह वस्तु जो यज्ञमें काम आती है ।
यज्ञोपवीत (सं० क्ली०) यज्ञधृतं उपवीतं । यज्ञसूत्र, जनेऊ । पर्याय—पवित्र, ब्रह्मसूत्र, द्विजायनी । (त्रिका०) यथाविहित यज्ञ करके यह उपवीत पहनना होता है, इसीसे इसको यज्ञोपवीत कहते हैं ।

"पवित्रं यज्ञसूत्रञ्च यज्ञोपवीतमित्यपि ।
यज्ञसूत्रं तदेवोपवीतं स्याद्दक्षिणे भुजे ॥
उद्धृते वामबाहौ तु प्राचीनावीतमन्यदः ।
निवीतन्तु तदेव स्यांदूर्द्ध्वंवक्षसि लम्बितम् ॥"
(जटाधर)

यह बायें हाथके ऊपरसे दाहिने हाथकी ओर लटका रहता है इसीसे इसका नाम उपवीत है ।

"ऊर्द्ध्वन्तु त्रिवृतं सूत्रं सधवानिर्मितं शनैः ॥
तन्तुत्रयमधोवृत्तं यज्ञसूत्रं विदुर्बुधाः ॥
त्रिगुणं तद्ग्रन्थियुक्तं वेदप्रवरसम्मितम् ।
शिरोधरान्नाभिमध्यां पृष्ठार्द्धपरिमाणकम् ॥
यजुर्विदां नाभिमितं सामगानामयं विधिः ।
वामस्कन्धेन विधृतं यज्ञसूत्र फलप्रदम् ॥"
(कल्किपु० ४ अ०

तीन सूत्रोंको एक साथ लपेट कर यह बनाया जाता है । सधवाको ही यह बनाना चाहिये । विधवाका बनाया हुआ यज्ञोपवीत नहीं पहनना चाहिये । उस सूत्रको फिर तीन गुण करके वेदोक्त प्रवरके अनुसार अर्थात् जिस गोत्रके लिये जितना प्रवर विदित है, उतनी ही ग्रन्थि देनी चाहिये । यदि प्रवरकी संख्या तीन हो, तो ग्रन्थिकी संख्या भी तीन और यदि चार तो ग्रन्थिकी भी चार संख्या होगी । यजुर्वेदियोंके यज्ञोपवीतका प्रमाण मस्तकसे नाभि तक तथा सामवेदियोंका बायें कंधेसे दहिने हाथके अंगूठे तक होगा । ग्रन्थि दे कर निम्नोक्त मन्त्र पढ़ करके इसे पहनना होता है । मन्त्र इस प्रकार है—

"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं बृहस्पतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥"

उपनयनसंस्कार।

वेदाध्ययनके लिये बटुको गुरुके समीप ले जाते हैं, इसीसे इस संस्कारको उपनयनसंस्कार कहते हैं। उप शब्दका अर्थ है गुरुके समीप, जिस कर्म द्वारा गुरुके समीप लिवाया जाता है, वही उपनयन पदवाच्य है।*

यह संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनोंमें होता है। इसमें एक विशेष नियम यह है, कि ब्राह्मण बालकके लिये आठवें वर्षमें यह संस्कार करनेका विधान है। यदि इस समय विघ्नवशतः न किया जाय, तो १६ वर्षके भीतर जरूर करना चाहिये। यदि १६ वर्षके भी भीतर न हो, तो उसे पतितसावित्रीक कहते हैं। पीछे प्रायश्चित्त करके उसका उपनयन करना होगा। क्षत्रियों-के लिये ११वां वर्ष उपनयनका प्रशस्तकाल है। इस समय यदि न हो, तो बीस वर्षके भीतर भी हो सकता है। बीस वर्षके बाद उपनयन देनेमें प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

क्षत्रिय बालकके लिये १२वें वर्षमें उपनयन संस्कार करने-का विधान है। इसके बाद १४ वर्ष-तक भी किया जा सकता है। यदि १४वें वर्षमें भी न हो, तो पूर्वोक्त-रूपसे प्रायश्चित्त करना होगा। पतितसावित्रीक होनेसे उसे व्रात्य कहते हैं। व्रात्य होने पर उसका यथा-विधान प्रायश्चित्त करके यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। *

व्यवस्था।

पारस्कर-गृह्यसूत्रमें उपनयन-व्यवस्थासम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है,—ब्रह्मचारी जिस समय भिक्षा लेंगे, उस समय ब्राह्मणको 'भवत्' शब्दका पूर्वमें प्रयोग करके भिक्षा मांगनी चाहिये, अर्थात् 'भवति भिक्षां देहि' ऐसा कह कर भिक्षा मांगे। क्षत्रिय 'भवत्' शब्दका मध्यमें और वैश्य अन्तमें प्रयोग करके भिक्षा ग्रहण करे। भिक्षा पहले मातासे पीछे मातृबन्धु तथा अन्यान्य स्त्रियोंसे और उसके बाद पिता एवं पितृ-बन्धुओंसे मांगनी चाहिये।

भिक्षामें पाई हुई वस्तु आचार्यको निवेदन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णके बटुक जब तक सूर्यास्त न हो, तब तक वाग्यत हो अग्निके समीप बैठे रहें। इन तीनों ही वर्णोंको ब्रह्मचर्यावस्थामें चार-पाई आदि पर नहीं सोना चाहिये। क्षार लवणका व्यवहार बिलकुल न करे। उन्हें दण्डधारण, अग्नि-परिचरण, गुरुशुश्रूषा और भिक्षाचर्या करना उचित है। प्रतिदिन जो भिक्षा मिले, वह आचार्यको दे। मधु, मांस, मज्जन (ह्रद और देवतीर्थादि स्नानका नाम मज्जन है), उपर्य्यासन, स्त्रीगमन, अनृतवाक्यप्रयोग और अदत्ता-दान परित्याग करे।

४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्यका अवलम्बन करना होता है। इतने दिनोंके अन्दर प्रति वेद १२ वर्ष करके पढ़ना चाहिये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका वस्त्र यथाक्रम शाण, क्षौम और आविक होना चाहिये। ऐणेय अर्थात् हरिणका चर्म ब्राह्मणका, उत्तरीय रुरुका चर्म क्षत्रिय और बकरे या गोचर्म वैश्यका उत्तरीय होगा। अथवा इन तीनों वर्णों-का गोचर्म उत्तरीय हो सकता है। ब्राह्मणकी रशना (मेखला) मौञ्जी अर्थात् मुञ्जतृणकी क्षत्रियकी धनुर्ज्या और वैश्यकी मौर्वी या मुरु नामक तृणविशेषकी मेखला होगी।

तथाच विष्णुधर्मोत्तरे—

"षोडशाब्दो हि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः।
विंशतिः स चतुर्थी च वैश्यस्य परिकीर्त्तिताः॥
सावित्री नातिवर्त्तेत अत ऊर्द्ध्वं निवर्त्तते॥"

---

* "गृह्योक्तकर्मणा येन समीपं नीयते गुरोः।
बालो वेदाय तद्योगात् बालस्योपनयनं विदुः॥" इतिस्मृतेः

* "गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भैकादशेषु क्षत्रियः गर्भ-द्वादशेषु वैश्यः। आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवति आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य आचतुर्विंशाद् वैश्यस्य अत ऊर्द्ध्वं पतित-सावित्रीका भवन्ति। नैतानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न एतैर्विवाहयेयुः। गर्भवर्षमष्टमं येषां वर्षाणां तानि वर्षाणि गर्भाष्टमानि तेषु गर्भाष्ट-मेषु वर्त्तमानं ब्राह्मणमुपनयेत्।"

उपनयनकालमें यदि मुञ्जतृणका अभाव हो, तो ब्राह्मण कुश, अश्मन्तक और वल्वजकी भी मेखला धारण कर सकते हैं। आजकल उपनयनकालमें कुशकी ही मेखला बनाई जाती है।

दण्डधारणके विषयमें ब्राह्मणको पलाशका, क्षत्रियको विल्वका और वैश्यको यज्ञडूमरका दण्डधारण करने कहा है। इस दण्डका परिमाण ब्राह्मणका केश तक, क्षत्रियका ललाट तक और वैश्यका नासिका तक होना चाहिये।*

आज कल उपनयनकालमें विल्व, यज्ञडूमर और बांसका ही दण्ड ग्रहण करते देखा जाता है। किन्तु इस दण्डके धारणमें तीनों वर्णोंकी भिन्न भिन्न प्रकारकी व्यवस्था लिखी है।

अष्टम वा गर्भाष्टम वर्षमें ही ब्राह्मणका उपनयन होना चाहिये। पारस्करगृह्यसूत्रके भाष्यमें गदाधरने नाना प्रमाणादि दिखलाते हुए कहा है, कि छठे और सातवें वर्षमें भी उपनयन हो सकता है। इसमें कुछ विशेषता भी देखी जाती है, अर्थात् ब्रह्मवर्चसकी कामना करके सातवें वर्षमें, आयुष्कामनामें आठवें वर्षमें, तेजस्कामनामें नवें वर्षमें, अन्नादिकामनामें दशवें वर्षमें, इन्द्रियकामनामें ग्यारहवें वर्षमें और पशुकामनामें बारहवें वर्षमें उपनयन होगा। फिर यह भी लिखा है, कि ब्रह्मवर्चस कामना करके ब्राह्मणका पांचवें वर्षमें उपनयनसंस्कार हो सकता है। बलार्थी क्षत्रियका छठे वर्षमें तथा अर्थार्थी वैश्यका आठवें वर्षमें भी उपनयन हो सकता है। विष्णुवचनमें भी लिखा है, कि धनकामीका छठे वर्षमें, विद्याकामीका सातवें वर्षमें, सभी प्रकारके कामनाविशिष्ट व्यक्तिका आठवें वर्षमें तथा कान्त्यभिलाषी व्यक्तिका नवें वर्षमें उपनयनसंस्कार हो सकता है।

नृसिंहवचनमें लिखा है, कि सूर्यके उत्तरायण होने पर यज्ञोपवीत-संस्कार करना चाहिये। वेदोंमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके दूसरे दूसरे समयमें भी यज्ञोपवीत-संस्कार करनेकी बात देखी जाती है। ब्राह्मणका वसन्त ऋतुमें, क्षत्रियका ग्रीष्ममें और वैश्यका शरत् ऋतुमें यज्ञोपवीत-संस्कार करना लिखा है। मासके सम्बन्धमें ज्योतिषमें लिखा है, कि माघ आदि पांच महीने अर्थात् माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख तथा ज्येष्ठ—इन्हीं पांच महीनोंमें यज्ञोपवीत करना शास्त्रसम्मत है। उपनयन शुक्लपक्षमें किया जाता है, किन्तु शेष तीन तिथि अर्थात् त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या इन तीन तिथियोंको छोड़ कर कृष्णपक्षमें भी उपनयन हो सकता है। जन्मनक्षत्र, जन्ममास और जन्मतिथिमें भी उपनयन नहीं देना चाहिये। बड़े लड़केके लिये ज्येष्ठमास भी निषिद्ध है। परन्तु प्रति प्रसव-वचनसे मालूम होता है, कि वशिष्ठके मतसे जन्मदिन, गर्गके मतसे ८ दिन, अत्रिके मतसे १० दिन, भागुरिके मतसे जन्मपक्ष ही निषिद्ध है, इन सबको बाद दे कर जन्ममासमें उपनयन हो सकता है। कोई कोई कहते हैं, कि जन्ममास जो निषिद्ध बतलाया है, उसका तात्पर्य यह कि प्रथम दश दिन बाद दे कर किया जा सकता है। उपनयनमें बृहस्पतिशुद्धिका अच्छी तरह विचार करना होता है। बृहस्पति यदि बारहवें, आठवें और चौथे घरमें हों, तो उपनयन-संस्कार किसी हालतसे नहीं हो सकता।

यदि बृहस्पति अतीव दुष्ट वा सिंहराशिस्थ हों, तो भी चैत्रमासमें उपनयन दिया जा सकता है, किन्तु दूसरे

* "अत्र भिक्षाचर्यचरणं।१ भवत पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत २ भवन्मध्यां राजन्यः।३ भवदन्त्यां वैश्यः।४ मातरं प्रथमामेके।७ आचार्याय भैक्षं निवेदयित्वा वाग्यतोऽहःशेषं तिष्ठेदित्येके।८ अधःशाय्यक्षारलवनाशी स्यात्।१० दण्डधारणमग्निपरिचरणं गुरुशुश्रूषा भिक्षाचर्या।११ मधुमांसमज्जनोपर्यासनस्त्रीगमनानृतादत्तादानानि वर्ज्जयेत्।१२ अष्टाचत्वारिंशत् वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत्।१३ द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम्।१४ वासांसि शाणक्षौमाविकानि।१६ ऐणेयमजिनमुत्तरीयं ब्राह्मणस्य।१७ रौरवं राजन्यस्य।१८ आजं गव्यं वा वैश्यस्य।१९ सर्वेषां वा गव्यमसति प्रधानत्वात्।२० मौञ्जी रशना ब्राह्मणस्य।२१ धनुर्ज्या राजन्यस्य।२२ मौर्व्वी वैश्यस्य।२३ मुञ्जाभावे कुशाश्मन्तकवल्वजानां।२४ पालाशो ब्राह्मणस्य दण्डः।२५ वैल्वो राजन्यस्य।२६ औदुम्बरो वैश्यस्य।२७ केशसम्मितो ब्राह्मणस्य। ललाटसम्मितः क्षत्रियस्य। घ्राणसम्मितो वैश्यस्य।" (पारस्करगृह्य २।५ कण्डिका)

महोनेमें नहीं। हस्तादित्रय, दैत्यरिपुत्रय तथा शक्र, इन्दु, पुष्या, अश्विनी और रेवती नक्षत्रमें ; शुक्र, रवि और बृहस्पतिवारमें उपनयन प्रशस्त है। पुनर्वसु नक्षत्रमें ब्राह्मणको उपनयन संस्कार नहीं करना चाहिये। यदि कोई करे, तो फिरसे उसका संस्कार करना होगा। तृतीया, एकादशी, पञ्चमी, दशमी और द्वितीया तिथिमें उपनयन हो सकता है। जिस दिन अनध्याय हो उस दिन तथा चतुर्थी तिथिमें उपनयन निषिद्ध है।

अपराह्नकालमें यदि उपनयन-संस्कार किया जाय, तो उसका फिरसे संस्कार करना उचित है। विशुद्ध दिनमें संकल्पादि करके नान्दीमुख श्राद्ध करनेके बाद यदि अकालिक अनध्याय हो अर्थात् दैवात् यदि मेघ गरजता हो, तो इस दिन उपनयन-संस्कार होगा, परन्तु वेदारम्भ नहीं होगा। पीछे विशुद्ध दिन तथा अनध्यायको बाद दे कर वेदारम्भ करना होगा। उपनयनके दिन पूर्वसन्ध्यामें यदि मेघ गरजे, तो उस दिन उपनयन-संस्कार नहीं होगा। मेघ गरजनेसे अनध्याय होता है। अनध्यायमें वेदारम्भ नहीं करना चाहिये। वेदारम्भ ही उपनयनका प्रधान अङ्ग है। इस अनध्यायके अनुरोधसे ही मेघगर्जनके दिन उपनयन-संस्कार निषिद्ध हुआ है। वसन्तऋतुको छोड़ कर यदि कृष्णपक्ष, गलग्रह और अपराह्नकालमें उपनयन-संस्कार हो, तो उसका फिरसे उपनयन-संस्कार करना होगा। कृष्णा-चतुर्थी, सप्तमी, अष्टमी और नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या और प्रतिपद इन सब तिथियोंका नाम गलग्रह है।

वसन्तऋतुको छोड़ कर इस गलग्रहमें उपनयन नहीं होगा। उपनयनके दिन वेदारम्भ करके दूसरे दिन प्रत्यारम्भ करना होगा। यदि इस प्रकार प्रत्यारम्भ न हो, तो उसे गलग्रह कहते हैं।

सभी अष्टका, युग और मन्वन्तरादि भी अनध्याय हैं। अतएव इस अनध्यायमें भी उपनयन संस्कार नहीं होगा।

उपनयन कालमें जब सावित्रीका अध्ययन कराना होता है, तब पहले पाद पादरूपमें, पीछे अर्द्ध कममें और अन्तमें समस्त अध्ययन करावे। इस सावित्री-अध्ययनके सम्बन्धमें क्षत्रिय और वैश्यमें कुछ विशेषता है। आचार्य क्षत्रिय वा वैश्यको उपनयन दिनसे एक वर्ष, छठे महीने, चौबीसवें, बारहवें वा तीसरे दिन गायत्रीका अध्ययन करा सकते हैं। किन्तु ब्राह्मणको उसी दिन गायत्रीदान करना चाहिये। दूसरे दूसरे सम्बन्धमें उसका इच्छा-विकल्प जानना होगा। क्योंकि, ब्राह्मण आग्नेय अर्थात् अग्निदेवताक हैं, इसलिये उपनयन दिन ही सावित्री दान करना होगा।

इस गायत्रीके विषयमें भी कुछ विशेषता है अर्थात् ब्राह्मणको गायत्री छन्दोयुक्त गायत्री "त्वत्सवितुर्वरेण्य" इत्यादि (ऋक् ३।६२।१०), क्षत्रियको त्रिष्टुभ गायत्री "देवसवितः' इत्यादि (शुक्लयजुः ९।१), और वैश्यको जगती गायत्री, 'विश्वारूपाणि प्रतिमुञ्चत" इत्यादि (ऋक् ५।८१।२) प्रदान करे। अथवा आचार्यके इच्छानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनोंको ही केवल गायत्री प्रदान करे।*

---

* "अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायोपसन्नाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय। दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके। पुच्छोर्द्धर्चशः सर्वाञ्च तृतीयेन सहानुवर्त्तयन् संवत्सरे षण्मासे चतुर्विंशत्यहे द्वादशाहे षड़हे त्र्यहे वा। सद्यस्त्वेव गायत्रीं ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो वै ब्राह्मण इति श्रुतेः। त्रिष्टुभं राजन्यस्य। जगतीं वैश्यस्य। सर्वेषां वा गायत्रीं।"
(पारस्करगृह्यसू० २।३।२-१०)

'उपनयनदिनमारभ्य संवत्सरे पूर्णे वा षण्मास्ये चतुर्विंशत्यहे वा द्वादशाहे षड़हे वा त्र्यहे वा सावित्रीमनुब्रूयादाचार्यः।... क्षत्रियवैश्ययोरेते कालविकल्पाः। ऐते कालविकल्पाः आचार्यशुश्रूयादिशिष्यगुणतारतम्यापेक्षा इति हरिहरः।'

'आग्नेयो वै ब्राह्मणः सद्यो वा अग्निर्जायते तस्मात् सद्यएव ब्राह्मणाय चाशुब्रूयात्।'

'त्रिष्टुप् छन्दो यस्याः सा त्रिष्टुप, तां सावित्रीं त्रिष्टुभं देव सवितरित्यादिकां क्षत्रियस्यानुब्रूयात्। जगतीछन्दस्कां विश्वारूपाणि प्रतिमुञ्चत इत्यच वैश्यस्यानुब्रूयात्। जगतीच्छन्दो यस्या सा तां, गायत्रीच्छन्दोयस्याः सा गायत्री तां सावित्रीं सर्वेषां ब्राह्मणक्षत्रियविशां तत्सवितुरित्युयवमनुब्रूयात् वा शब्दो विकल्पार्थः।' (गदाधर २।३ कण्डिका)

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंको मेखला त्रिवृत्ता होनी चाहिये। उस त्रिवृत्ताको फिर तीन बार करके ग्रन्थि देनी होगी। तीन, पांच वा सात बार ग्रन्थि दी जा सकती है अथवा प्रवरके संख्यानुसार ग्रन्थि देनेका विधान है। कोई कोई कहते हैं, कि ३, ५ ७ इसका तात्पर्य प्रवरकी संख्याके सिवा और कुछ नहीं है। अर्थात् जिस गोत्रमें जितना प्रवर विहित है उतनी ही ग्रन्थि देनी चाहिये।

वैदिक युगसे ही यज्ञोपवीत पहननेकी प्रथा चली आती है। किसी किसीका कहना है, कि वेदके ब्राह्मण और उपनिषद्‌के समय यज्ञानुष्ठान या वैदिक उत्सव आदिमें ही जनसाधारण यज्ञसूत्र पहना करते थे। सभी समय यज्ञसूत्र पहना जाता था। ऐसा बोध नहीं होता, वरन् जो हमेशा यज्ञसूत्र पहना करते थे उनको लोग 'धर्मध्वजी' कह कर हंसी उड़ाते थे। शतपथब्राह्मणमें इसके बारेमें ऐसा लिखा है—

"प्रजापति वै भूतान्युपासीदन्। प्रजा वै भूतानि वि नो धेहि यथा जीवमेति ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणां जान्वा च्योयासीदंस्तानब्रवीद्यज्ञो वोऽन्नम-मृतत्वं व ऊर्ज्जः सूर्यो वो ज्योतिरिति ॥१॥ अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदंस्तान-ब्रवीन्मामि—मासि वोऽशन स्वधा वो मनोजवो न चन्द्रमा वो ज्योतिरिति ॥२॥ अथैनं मनुष्या प्रावृता उपस्थं कृत्वोपासीदंस्तातब्रवीत् सायंप्रातर्वोऽशनं प्रजा वो मृत्युर्वेऽग्निर्वो ज्योति-रिति ॥३" (शतपथब्रा० २।४।२१-३)

उक्त प्रमाणसे जाना जाता है, कि प्रजापतिके पास जानेके समय देवगण यज्ञोपवीती और पितृगण प्राचीना-वीती हो कर गये थे।

कौषीतकी-ब्राह्मणोपनिषद्‌में लिखा है—

"सर्वजिद्ध स्म कौषीतकि रुद्यन्ते मादित्यमुपतिष्ठते।
यज्ञोपवीतं कृत्वोदकमानीय त्रिः प्रसिच्योदपात्रं ॥"

अर्थात् सर्वजित् कौषीतकि यज्ञोपवीत पहन कर सूर्यकी उपासना करते थे। इस विषयमें पण्डित सत्य-व्रत सामश्रमी ऐसा लिख गये हैं, "वस्तुतो वेदाध्यय-नायाचार्यसमीपे नयनमेवोपनयनं यज्ञोपवीतधारणान्तु दैवकार्यानुष्ठानार्थमेव सूत्रकारेण विहितमिति यदा यदैव दैवकार्य कर्त्तव्यं भवेत् तदा तदैव धार्य स्यादिति।" (गोभिलगृह्यभाष्य २।१०।३७) स्मृतिके मतसे द्विजाति यदि यज्ञसूत्रहीन हों, तो उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है। अग्निपूजक पारसी लोग भी यज्ञोपवीत पहनते हैं। किसी यागयज्ञादि विशेष उत्सवमें वे स्त्री-पुरुष दोनों ही जनेऊ पहना करते हैं।

गृह्यसूत्रकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि एक समय हिन्दू-रमणियां भी यज्ञोपवीत पहनती थीं। सामवेदीय गोभिल गृह्यसूत्रमें लिखा है—

"प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयञ्जपेत् सोमोऽद-ददगन्धर्वायेति पश्चादग्ने संवेष्टितं कटमेवं जातीयं वाऽ-न्यत् पदा प्रवर्त्तयन्तीं वाचयेत् प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतामिति स्वयं जपेत्।" (२।१।१९-२१) अर्थात् वस्त्रावृता यज्ञोपवीतिनी कन्याको भावि-पति अपने सामने ला "सोमोऽददद् गन्धर्वाय"* इत्यादि मन्त्र पढ़ें तथा अग्निकी बगलमें रखे हुए कट या ऐसे किसी आसनको वह कन्या पैरसे ठेलती हुई लावे। उसी समय इस भावी वधुको 'प्र मे'† मन्त्र पाठ करावे। यजुर्वेदीय पारस्कर गृह्यसूत्रमें "स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च" इत्यादि वचनमें उपनीत और अनुपनीत दोनों तरहकी स्त्रियोंका उल्लेख है। इसके सिवा गोभिलगृह्यसूत्रमें (१।३।१५) "कामः गृह्यऽग्नौ पत्नी जुहुयात् सायंप्रातर्होमौ गृहाः पत्नी गृह्य एषोऽग्निर्भवतीति।" अर्थात् इस अग्निको गृह्य और पत्नीको गृहा कहते हैं। इस कारण अगर पत्नीकी इच्छा हो, तो शाम और सबेरे दोनों वक्त होम करना चाहिये। इत्यादि प्रमाण द्वारा उपवीतके साथ साथ स्त्रियोंको भी होम करनेका अधिकार दिया गया है। माधवाचार्यने पराशरसंहिताके भाष्यमें लिखा है—

"द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्यो वध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनां उपनयनं अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षा इति वधूनां तूपस्थिते विवाहे कथञ्चिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः।" अर्थात् स्त्रियाँ दो प्रकारकी हैं—ब्रह्म-वादिनी और सद्योवधू। ब्रह्मवादिनियोंके उपनयन

---

* मन्त्रब्राह्मण १।१।७।

† मन्त्रब्राह्मण १।१।८।

अग्नीन्धन, वेदाध्ययन और अपने घरमें ही भिक्षा मांगनी होगी ; किन्तु सद्योवधुओंके विवाहकालमें नाममात्र उपनयन कर विवाह करना उचित है।

पहले हम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तोन द्विजातियोंके उनयनकी बात कह आये हैं। अब द्विजकन्याओंके भो उपनयनकी व्यवस्था लिखते हैं। पारस्कर-गृह्यसूत्रभाष्यमें हरिहर स्मृतिका वचन उद्धृत कर लिख गये हैं,—औरस, पुत्रिकापुत्र, क्षेत्रज, गूढ़ज, कानीन, पुनर्भूज, दत्त, क्रीत, कृत्रिम, दत्तात्मा, सहोढ़ और अपविद्धसुत ये बारह प्रकारके द्विजातिपुत्र ही संस्कारके योग्य हैं। किसीके मतसे द्विजजात कुण्ड और गोलक इन दोनोंका भी संस्कार करना होगा।१ यहां तक, कि षण्ढ, अन्ध, वधिर, स्तब्ध, जड़, गद्गद, पंगु, कुब्ज, वामन, रोगार्त्त, शुष्काङ्ग, विकलाङ्ग, मत्त, उन्मत्त, मूक, शय्यागत, निरीन्द्रिय और पुरुषत्वहीन मनुष्यको भी यथोचित संस्कार करना होगा।२ पारस्करगृह्यसूत्रके भाष्यमें रथकार (बढ़ई) और सदाचारी शूद्रोंके भी उपनयनकी व्यवस्था है। उक्त भाष्यमें २।४ गदाधरने आपस्तम्बका वचन उद्धृत कर लिखा हैं, "शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनं। इदञ्च रथकारस्योपनयनं।" 'अदुष्टकर्मणां मद्यपानादिरहितानामिति कल्पतरुकारः।' शूद्र भी यदि अदुष्टकर्म अर्थात् विशुद्धाचारी हो, तो उसका भी उपनयन होगा तथा बढ़ईका भी उपनयन संस्कार होगा।

यह उपनयन ऋक्, यजुः, साम और अथर्व्व इन्हीं चार वेदोंके अनुसार होता है। इस देशमें ऋक्, यजुः और साम वेदोंके अनुसार यज्ञोपवीत प्रचलित है। उनमें भवदेवभट्ट सामवेदियोंकी, रामदत्त और पशुपति यजुर्वेदियोंकी तथा कालेसी ऋग्वेदियोंकी पद्धति लिख गये हैं।

ऋग्वेदीय उपनयन।

ज्योतिःशास्त्रानुसार विशुद्ध दिन देख कर उपनयनसंस्कार करना होता है। बृहस्पति, रवि, चन्द्र और तारा शुद्धिमें हरिशयनको छोड़ और सभी समयमें उत्तरायण गलग्रहादि दोषरहित होनेसे शुक्लपक्षमें वेद और वर्णाधिप शुक्र होनेसे दशयोगभङ्ग, युत-यामित्रवेधरहित दिनमें रवि, बृहस्पति और शुक्रवारमें ; द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, एकादशी, द्वादशी और दशमी तिथिमें ; पुष्या, हस्ता, अश्विनी, उत्तर-फल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, स्वाती, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा और पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें उपनयन होना चाहिये। उपनयन शब्द देखो।

उपनयनकालमें ब्राह्मण तीनों वर्णोंके अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके आचार्य हो सकते हैं। उपनयनकालमें ब्राह्मणको आचार्य बना कर तब उपनयन देना चाहिये। क्योंकि, क्षत्रिय और वैश्यको केवल वेद पढ़नेका ही अधिकार है, वेद पढ़ानेका नहीं। उपनयनसंस्कारमें वेदारम्भ कराना होता है, इसलिये वह सिर्फ ब्राह्मणका ही कर्त्तव्य है, दूसरे वर्णका नहीं।

जिस दिन बालकका उपनयन होगा, उसके पूर्व दिन पिताको संयत हो कर रहना चाहिये। पीछे उपनयनके दिन प्रातःकृत्यादि करके वह वृद्धिश्राद्ध करे। यदि वृद्धिश्राद्ध पिता न कर सके, तो बड़ा भाई या सपिण्डज्ञाति भी कर सकता है।

शुभ दिनमें नियमपूर्वक आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है। जो आचार्य होंगे, वे उपनयनके स्थानमें जा कर पहले आचमन और प्राणायाम तथा पीछे निम्न प्रकारसे संकल्प करें। "अमुकं शर्माणमुपनेष्ये" इस प्रकार संकल्प करके मुण्डितमस्तक और कृतस्नान माणवक (बटु) को अपने समीप ला कुशण्डिका और उपलेप-

---

(१) "औरसः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गूढ़जस्तथा।
कानीनश्च पुनर्भूजा दत्तः क्रीतश्च कृत्रिमः॥
दत्तात्मा च सहोढ़श्च त्वपविद्धसुतस्ततः।
पिण्डदोऽंशहरश्चैषां पूर्वाभावे परःपरः॥
एते द्वादशपुत्राश्च संस्कार्याः स्युर्द्विजातयः।
केचिदाहु र्द्विजै र्जातौ संस्कार्यौ कुण्डगोलकौ॥"
(हरिहर भा०)

(२) "षण्ढान्धबधिरस्तब्धजड़गद्गदपङ्गुषु।
कुब्जवामनरोगार्त्त शुष्काङ्गिविकलाङ्गिषु॥
मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये।
ध्वस्तपुंस्त्वेऽपि चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचिताः॥"
(हरिहरकृत पारस्करगृह्यसूत्र भाष्यधृत २।४)

नादि अग्निप्रतिष्ठापनान्त कर्म करके 'समुद्भव' नामसे अग्निस्थापन करना होगा।

अनन्तर वटुको आहतवास,* प्रावरणवास पहना कर यज्ञोपवीत और कृष्णजिन उसके बायें कंधेमें डाल दे। यज्ञोपवीत पहनाते समय आचार्य निम्नलिखित मन्त्रको पढ़ें।

"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥"
(पारस्करगृह्यसूत्र २।२।११)

नीचे लिखे मन्त्रसे कृष्णाजिन उत्तरीय पहनाना होता है,—

"प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः कृष्णाजिनं देवता कृष्णाजिनपरिधापने विनियोगः।"

"ओं मित्रस्य चक्षुर्धरुणं बलीयस्तेजो यशस्विस्थविरं समिद्धं।
अनाहतस्यं वसनं जरिष्णुः परीदं वाज्यजिनं दधेऽहम्॥"
(पारस्करगृह्यसूत्र २।२।११)

अनन्तर शक्तिके अनुसार वटुको अलङ्कारादि पहनना होता है। वटु आचमन करके आचार्यके दक्षिण भागमें बैठे और कृताञ्जलि हो गुरुसे कहे, "ओं उपनयन्तु-मां युष्मद्पादाः।" इस पर गुरु इस प्रकार कहें, "ओं उपनेष्यामि भवन्त" माणवक "बाढ़ं" बोले अनन्तर आचार्य प्राणको संयत करके "कुमारसंस्कारार्थमुपनयनाख्यकर्म तदङ्गमग्न्याधानं देवतापरिग्रहार्थं करिष्ये" इस प्रकार संकल्प कर 'ओं भर्भुवः स्वः स्वाहा। इदं प्रजापतये नमः।" इस मन्त्रसे दो समिध होम करें। पीछे आचार्यको इस अन्वाहित अग्निमें, "अग्निं जातवेदसमिध्येन प्रजापतिं प्रजापतिश्चाघोरदेवते आज्येनाग्निं पवमानमग्निं प्रजापतिञ्च एताः प्रधानदेवता आज्यद्रव्येण हविःशेषेण स्विष्टकृतमिध्मसन्नहनेन रुद्रं विश्वान् देवान् संश्रावेण सर्वप्रायश्चित्तदेवता अग्निं देवान् विष्णुमग्निं वायुं सूर्य प्रजापतिञ्च ज्ञाताज्ञातदोषनिर्हरणार्थमना ज्ञात मिति तिस्रः आजद्रव्येण साङ्गेन कर्मणा सद्योऽहं यक्षे। इस प्रकार संकल्प कर वर्हि और आस्तरणादि इध्माधानान्त कर्म करना होगा।

अनन्तर आचार्य समुद्भव नामक अग्निकी पूजा कर अग्निसे उत्तर पश्चाद्भागमें बैठे हुए बालक द्वारा चार आज्याहुतिसे होम करावें।

"ओं अग्न आयूंषोति" 'तिसृणां शतं वैखानसा ऋषयोऽग्निः पवमानो देवता देवी गायत्री छन्द आज्यहोमे विनयोगः।'

"ओं अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषंच नः।"
आरे बाधस्व दुच्छुना (ऋक् ९।६६।१९) स्वाहा इदमग्नीपवनाभ्यां नमः।

"ओं अग्निऋर्षिः पवमानं पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयं।" (ऋक् ९।६६।२०) स्वाहा इदमग्नीपवनाभ्यां नमः।

"ओं अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्य्यं।
दधद्रयिं मयि पोषं" (ऋक् ९।६६।२१) स्वाहा इदमग्नीपवनाभ्यां नमः।

'हिरण्यगर्भऋषिः प्रजापतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः आज्यहोमे विनियोगः।

"ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां।" (ऋक् १०।१२१।१०) स्वाहा इदं प्रजापतये नमः।

अनन्तर अग्निके उत्तर आचार्य ऊर्द्ध्वभावमें तथा माणवक कृताञ्जलि हो प्रत्यङ्मुखभावमें बैठें। पीछे आचार्य माणवकके हाथ निम्नलिखित मन्त्रसे जल दें।

श्यावाश्वऋषिः सविता देवतात्रिष्टुप्छन्दोञ्जलिपूरणे विनियोगः।

"ओं तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनं।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि॥"
(ऋक् ५।८२।१)

इसके बाद माणवक उस जलको जमीन पर गिरावे। उस समय आचार्य ब्रह्मचारीके अंगूठेके साथ दाहिना हाथ निम्नोक्त मन्त्रसे पकड़ें।

---

* आहतवास शब्दका अर्थ है वह वस्त्र जो कुछ धोया हुआ नया और सफेद हो तथा किसीसे भी वह छुआ न गया हो।

"ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्।
आहतं तद्विजानीयात् सर्वकर्मसु पावनम्॥"

"साङ्ख्यऋषिः सविताश्विपूषाणो देवता उपनयने माणवकः हस्तग्रहणे विनियोगः ।"

"ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां ।" (शुक्लयजु० १।१०,२२,२४).

'श्रीअमुकदेवशर्मन् हस्तं ते गृह्णामि ।'

(आश्वलायन-गृह्यसूत्र १।२०।४)

यह कह कर माणवकका नाम रखना होगा। यदि किसी कारणवशतः उसका नामकरण न हुआ हो, तो इस समय होना आवश्यक है।

आचार्य फिरसे पूर्वोक्त मन्त्र पढ़ कर तथा पूर्वोक्त प्रकारसे माणवककी अञ्जलि जलसे भर दे। माणवक भी उस जलको पहलेकी तरह जमीन पर गिरावे। फिरसे आचार्य नीचे लिखे मन्त्रको पढ़ कर माणवकका अंगुष्ठ सहित दाहिना हाथ पकड़े।

'प्रजापतिऋषिः सविता देवता उपनयने माणवकहस्तग्रहणे विनियोगः ।' 'ओं सविता ते हस्तमग्रहीत् श्री अमुक देवशर्मन् हस्त ते गृह्णाति ।'

(आश्वलायनगृह्यसूत्र १।२०।५)

अनन्तर आचार्य पुनः वटुकके हाथमें जल देवें और वटुक भी उस जलको जमीन पर गिरावे। आचार्य निम्न मन्त्रसे फिर पहलेकी तरह वटुकका हाथ पकड़े।

'प्रजापतिऋषिरग्निर्देवता उपनयने माणवकहस्तग्रहणे विनियोगः।' "ओं अग्निराचार्यस्तवासौ हस्तं गृह्णामि" श्री अमुक देवशर्म्मन्। (आश्व०गृह्य १।२०।५)

अनन्तर आचार्य कुमारको निम्न मन्त्रसे सूर्य दिखावें। मन्त्र—"ओं देव सवितरेषते ब्रह्मचारी तं गोपाय समावृतः।" (आश्व०गृह्य० १।२०।६) आचार्य वटुकसे पूछें—'कस्य ब्रह्मचार्यसि ।' वटुक जवाब देंगे, 'प्राणस्य ब्रह्मचार्यस्मि' 'कस्त्वामुपनयते ।' 'कायत्वा परिददामि ।'

(आश्व० गृह्य० १।२०।७)

वाद उसके आचार्यको चाहिये कि वे वटुकको निम्न मन्त्रसे अग्निका प्रदक्षिण करावें। "युवा इति" 'विश्वामित्र ऋषिर्धामो देवता त्रिष्टुप् छन्दो अग्निप्रदक्षिणीकरणे विनियोगः।'

'ओं युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।' (ऋक् ३।८।४)

अनन्तर आचार्य पूर्वकी ओर मुंह करके पूर्वकी ओर बैठे हुए मानवककी पीठसे कंधे होते हुए हृदयदेशमें हाथ ले जांय और निम्नलिखित मन्त्र पढ़ें—

"ओं तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः।" (ऋक् ३।८।४) वाद उसके आचार्य और ब्रह्मचारी दोनों पूर्वाभिमुख हो अग्निके पश्चिम बैठे। इस समय ब्रह्मचारी एक समिध् अग्निमें होम करे। वादमें एक और समिध इस मन्त्रसे अग्निमें आहुति दे।

"ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। तथा त्वमग्ने वर्द्धस्व समिधा ब्राह्मण वयं स्वाहा।"

(आश्व० गृह्य० १।२१।१)

ब्रह्मचारी उसके वाद अग्निस्पर्श कर उदक द्वारा तीन दफे मन्त्र पाठ कर आचमन करे।

"ओं तेजसा मा समनज्मि तेजसा ह्येवात्मानं समनक्ति।"

(आश्व० गृह्य० १।२१।२-३)

हर दफे मुखप्रक्षालन, आचमन तथा अग्निस्पर्श कर मन्त्र पढ़ना होगा। वाद उसके माणवक उठ कर कृताञ्जलि-पूर्वक अग्निको निम्न मन्त्रसे उपस्थापन करे।

"मयि मेधातिथिं" 'षण्णां हिरण्यगर्भ ऋषिः पूर्वत्रयानां अग्नीन्द्रसूर्या देवता उत्तरत्रयाणमग्निर्देवता षण्णामासुरी गायत्री छन्दोऽग्न्युपस्थापने विनियोगः।"

"ओं मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्ते जो दधातु।
ओं मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्रं इन्द्रियं दधातु॥
ओं मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु।
ओं यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासं॥
ओं यत्ते अग्नेवर्च्चस्तेनाहं वर्च्चस्वी भूयासं।
ओं यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासं॥"

(आश्व० गृह्य १।२१।४).

इस प्रकार अग्निकी उपासना कर अग्निसे आशीर्वाद लेना होगा। आशीर्वाद लेनेके समय निम्नोक्त मन्त्र पढ़ना होता है।

"मानस्तोक इति" 'कौत्स ऋषी रुद्रो देवता जगती-छन्दः आशीःकर्मणि विनियोगः।'

"ओं मा नस्तोके तनये मा न आयौ
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।

वीरान्मा नो रुद्र भामितोवधी
ईर्विष्मन्तः सदमित्त्वा जवहामह ॥"

(ऋक् १।११४।८)

अनन्तर यज्ञीय भस्म अंगुष्ठ और कनिष्ठासे उठा कर तिलक लगाना होगा। "ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः" यह पढ़ कर कपालमें "ओं कश्यपस्य त्र्यायुषं, ओं अगस्त्यस्य त्र्यायुषं" इस मन्त्रसे नाभिमें, "ओं यद्देवानां त्र्यायुषं, ओं तन्नो अस्तु त्र्यायुषं" (शुक्लयजु ३।६२) इस मन्त्रसे गले और पीठमें तिलक लगाना होता है। तदनन्तर मस्तकमें हाथ धो कर हाथसे निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर अग्निको प्रार्थना करनी चाहिये।

"ओं गर्भ ऋषिः सारस्वताग्निर्देवता अनुष्टुप्छन्दः अग्निप्रार्थने विनियोगः। ओं चमेश्वरश्च मे यज्ञपतये नमः। यत्ते न्यूनं तस्मै त उपधत्ते अतिरिक्तं तस्मै ते नमः।'

''स्वस्ति श्रद्धां यशःप्रज्ञां विद्यां बुद्धिं श्रियं बलम्।
आयुष्यं तेजः आरोग्यं देहि मे हव्यवाहन ॥"

ओं नमः, ओं नमः।

बादमें ब्रह्मचारी दोनों जांघ पृथ्वी पर रख कर गुरुको इस मंत्रसे प्रणाम करे, अभिवादये श्री अमुकदेव शर्माणं भोः।'

अनन्तर आचार्य, 'अधीहि भोः सावित्री।' ब्रह्मचारी बोले 'वदति भो अनुव्रतहि' ऐसा कहें। बादमें ब्रह्मचारीका हाथ पकड़ कर उत्तरीय वस्त्र द्वारा आच्छादन करें और तब यह मन्त्र पढ़ावें।

'विश्वामित्र ऋषिर्गायत्रीच्छन्दः सविता देवता सावित्रीजपे विनियोगः।'

"ओं भूर्भुवः स्व। तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात् ओं।"

(ऋक् ३।६२।१०)

'ओं तत्सवितुर्वरेण्यं' यह प्रथमपाद, 'भर्गोदेवस्य धीमहि' यह द्वितीयपाद, 'धियो यो नः प्रचोदयात्' यह तृतीयपाद इस प्रकार सावित्री पाठ करावें। पादरूपसे यदि सावित्रीपाठ न हो सके तो पदको आधा कर पहले पाठ, पीछे समस्त गायत्रीका पाठ करावें।

'ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः' यह मन्त्र भी पढ़ाना होता है।

अनन्तर आचार्य ब्रह्मचारीके हृदयदेशके समीप हाथकी ऊर्द्धाङ्गुलिके रख कर निम्नोक्त मन्त्रका पाठ करें।

'प्रजापति ऋषिर्बृहस्पतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दो माणवकस्य हृदयालम्भने विनियोगः।'

"ओं मम व्रते हृदयं ते दधामि मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु
मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यं।"

(आश्व० गृ० १।२१।७)

तदनन्तर आचार्य इस मन्त्रसे वटुककी कमरमें मेखला बांध दें।

'विश्वामित्र ऋषिर्मेखला देवता त्रिष्टुप्छन्दो मेखला परिधाने विनियोगः।'

"इयं दुरुक्तात् परिबाधमानावर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमाहरन्ती स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम ॥"

(मन्त्रब्राह्मण १।६।२७)

"ओं ऋतस्य गोप्त्री तपसः परस्वीघ्नति रक्षः सहमाना अरातीः।
सा मा समन्त मभि पर्येहि भद्रे धर्त्तारस्ते मेखले मा रिषाम ॥"

(मन्त्रब्राह्मण १।६।२८)

इस मन्त्रसे माणवकके केशपरिमाण सीधा पलासदण्ड ले कर उसे धारण करो।

"ओं स्वस्ति नो मिमीतेति।" 'स्वस्त्यात्रेय ऋषिश्वेदेवा देवता त्रिष्टुप्छन्दो दण्डधारणे विनियोगः।'

"ओं स्वस्ति नो मिमीताभश्विना भगः स्वस्ति-देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतना ॥"

(ऋक् ५।५२।११)

अनन्तर गुरु वटुकको इस प्रकार प्रश्न पूछें। 'ब्रह्मचार्यसि' इस पर बटुक उत्तर दे—'ब्रह्मचार्यस्मि'। 'अपोशानं कर्मकुरु' वटुक करोमि' ऐसा कह 'मां दिवा स्वाप्सीः' 'न दिवा स्वपिमि' मूत्रपुरीषादौ मृद्भिः शौचाचमनञ्च कुरु' 'करोमि'। 'आचार्याधीनो वेदमधीष्व' 'अधीष्ये' 'ब्रह्मचर्यं चर' 'परिष्यामि'। 'सायंप्रातर्भिक्षेत' 'बाढ़' 'सायं प्रातः समिधमादध्यात्' 'बाढ़'।

(आश्वगृह्य १।२२।५६)

इस प्रकार वटुक आचार्यके प्रश्नोंका उत्तर दे। अनन्तर ब्रह्मचारी हाथसे जल स्पर्श कर बद्धाञ्जलि हो यह मन्त्र पढ़े।

"ओं त्वं व्रतानां व्रतपतिरसि सावित्रीं द्वादशरात्रञ्च-रिष्यामि तच्छकेय तन्मेराध्यासं।

बादमें ब्रह्मचारी पात्रको हाथमें ले कर भिक्षा मांगे। पहले मातासे 'भवति ! भिक्षां देहि' कह कर भिक्षा मांगे। माता पहले उसके हाथमें थोड़ा जल डाल कर भिक्षा दे। माताके बाद मातृबन्धु स्त्रियोंसे भिक्षा मांगनी होती है। अनन्तर 'भवत् ! भिक्षां देहि' यह पढ़ कर पिता और पितृबन्धु अन्यान्य पुरुषोंसे भिक्षा ले। ब्रह्मचारी भिक्षामें जो कुछ वस्तु मिले, उसे आचार्यको समर्पण करे। आचार्य 'उपयुज्यतां' यह अनुज्ञा दें। बाद उसके ब्रह्मचारी मध्याह्न सन्ध्या उपासना कर दिन भर वहीं ठहरे। आचार्य प्रायश्चित्तहोम तथा स्विष्टकृत होम समाप्त कर ब्रह्मकर्म प्रतिष्ठार्थं दक्षिणा देवें।

अनन्तर सूर्य डूबनेके बाद ब्रह्मोदन करना होता है। सूर्यास्तके बाद ब्रह्मचारी सायं सन्ध्याकी उपासना कर उपलेपनाद्याग्नि प्रतिष्ठापनान्त कर्म करे। बाद उसके आचार्य प्राणको संयत कर 'अनुप्रवचनीय होमं तदङ्गमग्न्याधानं करिष्ये' इस प्रकार संकल्प कर देवतापरिग्रहार्थं दो समिध द्वारा निम्नोक्त मन्त्रसे प्रजापति होम करे।

'ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा' पीछे इस अन्नादि अग्निमें 'अग्निं वेदसमिध्मेन प्रजापतिं प्रजापतिश्चाघोरदेवते आज्येन सदसस्पतिसवितृवयः प्रधानदेवताश्चरुद्रव्येण स्विष्टकृतमिध्मसन्नऽनेन रुद्रं विश्वान् देवान् संस्रावेण सर्वप्रायश्चित्तदेवता अग्नि देवान् विष्णुं अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिञ्च ज्ञाताज्ञातदोषनिर्हरणार्थमनाज्ञातमिति तिश्र आज्यद्रव्येण कर्मणा अद्योऽहं यक्ष्ये।'

इस प्रकार अग्निका ध्यान कर चरुस्थाली, प्रोक्षणीपात्र, श्रुव, स्रुक् इन सब पात्रोंको यथास्थान रख चरुपाकके नियमानुसार चरुपाक करना होगा।

बाद उसके आचार्य आज्यसंस्कारादि आरम्भ कर शेष पर्यन्त 'मेधातिथिः कण्व ऋषिर्गायत्रीछन्दः सदसस्पतिर्देवता चरुहोमे विनियोगः।' "ओं सदसस्पतिमद्भूतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यं। सनिं मेधामियाशिषं स्वाहा।" (ऋक् १।१८।६) इदं सदसस्पतये नमः। तत् सवितुरित्यस्य मध्यभोगाथिनो धियो विश्वामित्र ऋषिगायत्रीछन्दः सविता देवता चरुहोमे विनियोगः। "ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्" स्वाहा (ऋक् ५।८२।१) इदं सवित्रे नमः। ओं ऋषिभ्यः स्वाहा। इदं ऋषिभ्यो नमः। इस प्रकार चरुहोम करे। पीछे पूर्णाहुति समाप्त करके दक्षिणा देवे। अनन्तर ब्रह्मचारी ब्राह्मणादि भोजनके बाद परिसमूहन और पर्युक्षण कर्म कर क्षारलवणवर्जित अन्न भोजन करे।

मेधाजनन।—उपनयनके दो दिन बाद तथा समावर्त्तनके पहले मेधाजनन करना होता है। शुभदिनमें एक मूलका पलाश, उसके अभावमें कुशस्तम्भ ला कर पूर्व व पश्चिमकी ओर रोपना होगा। 'ओं अद्येत्यादि मेधाजननं करिष्ये।' इस प्रकार संकल्प करके पलाश वा कुशमूलको अलंकृत कर अपूपादि द्वारा उसकी अभ्यर्च्चना करे और तीन वार प्रदक्षिण दे। ब्रह्मचारी इसको जलसे सींचे, पीछे आचार्य ब्रह्मचारीको यह मन्त्र पढ़ावे।

"अग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा अस्येवं मां सुश्रवः सौश्रवसं कुरु। यथात्वं देवानां यज्ञस्य निधिपा अस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासं।" (आश्वलायन-गृह्यसूत्र १।२२।१९)

इस मन्त्रको तीन वार जप कर तथा उसे पढ़ कर तीन वार प्रदक्षिण करना होगा। अनन्तर पूर्वधृत मेखला, अजिन और वास यहीं पर छोड़ दे और तब निम्नोक्त मन्त्र पढ़ कर अन्य वस्त्रादि पहने।

"ओं युवा सुवासा परिवीत आगात्
स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति
स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥" (ऋक् ३।३।४)

अनन्तर ब्रह्मचारी वेदका अध्ययन करे।

वेदारम्भ।—शुभदिनमें आचार्य यथाविधान संकल्प करके उपलेपादि अघोरान्त होमादि शेष करें। पीछे नीचे लिखे प्रकारसे होम करना होगा। ऋग्वेदके आरम्भमें 'ओं पृथिव्यै स्वाहा, इदं पृथिव्यै। ओं अग्नये स्वाहा, इदमग्नये। ओं ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे। ओं प्रजापतये

स्वाहा, इदं प्रजापतये। ओं देवेभ्यः स्वाहा, इदं देवेभ्यः। ओं ऋषिभ्यः स्वाहा, इदं ऋषिभ्यः। ओं श्रद्धायै स्वाहा, इदं श्रद्धायै। ओं सदसस्पतये स्वाहा, इदं सदसस्पतये। ओं अनुमतये स्वाहा, इदं अनुमतये।'

इस प्रकार होम करके आचार्य अग्निसे उत्तर-पूरबकी ओर मुंह करके बैठे। पीछे ब्रह्मचारी प्रत्यङ्मुखसे बैठ कर दाहिने हाथसे गुरुका दहिना पैर और बायें हाथसे बायां पैर पकड़े। पीछे आचार्य उसे ओंकार व्याहृति-पूर्वक पाठ करावें। वेदपाठ कराते समय पहले पादाव-च्छेदमें और पीछे अर्द्धावच्छेदमें और उसके बाद समूचा पढ़ जांय।

मधुच्छन्दा ऋषयोऽग्निर्देवता गायत्रीच्छन्दो वेदारम्भे विनियोगः। "ओं अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव-मृत्विजं। होतारं रत्नधातममित्यादि।" इस प्रकार वेदा-ध्ययन करावें।

इसके बाद समावर्त्तन करना होता है। समावर्त्तन शब्द देखो।

यजुर्वेदीय उपनयन-पद्धति।

जिस दिन उपनयन होगा, उसके पूर्व दिन पित्रादि संयत हो कर रहें। उपनयनके दिन सबेरे प्रातःकृत्यादि करके स्वस्तिवाचन और संकल्प करें। पीछे गौर्यादि षोड़श-मातृका और वृद्धिश्राद्ध कर पूर्वमुख हो बैठें और अग्निस्थापन करें।

आचार्य इस समय एक हाथ लम्बा चौड़ा स्थण्डिल बना कर उसे जलसे तीन बार संमार्जन करें और गोबर-से तीन बार लीपें। पीछे कुशसे तूष्णीम्भावमें पूर्वाग्र तीन रेखा करके उससे थोड़ी मिट्टी तीन बार खोद निकालें। अनन्तर जलसे तीन बार अभ्युक्षण करके अपने दाहिनी बगल अग्नि लावें और ज्वलत्कुश द्वारा क्रव्यादंशका परित्याग करें। इसके बाद उन्हें तूष्णी-म्भावमें अग्निको उस स्थण्डिलमें आरोपण करना होगा।

इस समय विधानानुसार यजुर्वेदोक्त कुशण्डिका करना उचित है। पीछे बटुकको क्षौर, स्नान और वस्त्रादि द्वारा अलंकृत करके आचार्यके समीप लावें। इसके बाद आचार्य अग्निकी बगलमें उसे कुशके ऊपर बैठा कर 'ओं ब्रह्मचर्यमागामिति' यह मन्त्र पढ़ें। पीछे बटुकके भी 'ओं ब्रह्मचर्यमागामिति' मन्त्र कहने पर आचार्य फिर-से उसको 'ओं ब्रह्मचार्यसानीति' मन्त्र पढ़ावें। बादमें बटुकको पुनः 'ओं ब्रह्मचार्यसानीति' मन्त्र कहना होगा। अनन्तर आचार्य प्रवरके संख्यानुसार ग्रन्थि दी हुई मेखला तथा क्षौमादिका शुक्लवस्त्र निम्नोक्त मन्त्र पढ़ कर बटुकको पहनावें।

"ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्य्यदधादमृतं तेन त्वा परिदध्याम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे।"

(पारस्करगृह्य० २।२।७)

इसके बाद आचार्य एक त्रिदण्डकाको ले कर—

"ओं इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्, प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयं।"

"ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं बृहस्पतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बल-मस्तु तेजः।" (पारस्करगृह्य० २)

"ओं यो मे दण्डः परापतत् वैहायसोऽधिभूम्यां तमहं पुनरा ददत् आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय" इस मन्त्रसे बटुकको प्रदान करें।

अनन्तर आचार्य बटुकको अंजलिमें जल दे कर इस मन्त्रसे सूर्यदर्शन करावें।

"आपो हिष्ठा मयोभुव स्तान ऊर्ज्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥" (शुक्ल यजुः ११।५०)
"यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥" (शुक्ल यजुः ११।५१)
"तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥" (११।५२) इस मन्त्रसे जल दें।

"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।" (शुक्ल यजुः ३६।२४)

पीछे माणवकके दाहिने कंधेसे लगे हुए हस्त द्वारा हृदयदेश स्पर्श कर "ओं मम व्रते हृदयं ते दधामि, मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व

बृहस्पतिष्ट्वानियुनक्तु असम्।" (पारस्करगृह्यसू० २।२।१६)
इस मन्त्रका जप करे।

अनन्तर आचार्य माणवकको दाहिने हाथसे पकड़ कर पीछे "ओं को नामासि" उत्तरमें माणवक कहे, 'श्री अमुकदेव शर्माहं भोः'। पीछे आचार्य फिरसे प्रश्न करें, 'ओं कस्य ब्रह्मचार्य्यसि' माणवक 'ओं भवतः' उत्तर दे। इसके बाद गुरु निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करें। 'ओं इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्याग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव श्री-अमुकदेवशर्मन्। अथ माणवकं भूतेभ्यः परिददाति गुरुः 'ओं प्रजापतयेत्वा परिददामि, देवाय त्वा सवित्रे परिददामि, उद्भ्य स्त्वोषधीभ्यः परिददामि, द्यावा-पृथ्वीभ्यां त्वा परिददामि, विश्वेभ्यस्त्वादेवेभ्यः परि-ददामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै।"

(पारस्करगृह्य २।२।२६)

इसके बाद माणवक अग्निका प्रदक्षिण कर गुरुके उत्तर बैठे। पीछे गुरु ब्रह्माको यथाशक्ति वरण करें। अनन्तर अग्निके दक्षिण प्रागग्रकुशके साथ ब्रह्मासन बिछा उस पर 'ब्रह्मन्निहोपविश्यता' कह कर ब्रह्माकी स्थापना करे। पीछे अग्निके उत्तर प्रणीता प्रणयन करके सकृत् अच्छिन्न कुश द्वारा ईशान कोणसे ले कर दक्षिणा-वर्त्तमें अग्निपरिस्तरण करे। पीछे उस अग्निके उत्तर प्रयोजनीय सभी द्रव्य रखें। वे सब द्रव्य ये हैं—पवित्र-छेदन तीन, पवित्र दो, प्रोक्षणी पात्र, आज्यस्थाली, चरु-स्थाली, समार्जन कुश ६, उपयमन कुश १२ समिध ३ स्रुव, आज्य, ब्रह्मदक्षिणा और दूसरे ३ समिध।

पीछे उस पवित्रसे एक पवित्र ले कर पवित्रच्छेदन कुश द्वारा उसे काटे और प्रोक्षणीपात्रमें रख दें। पीछे उसमें प्रणीता जल रख कर बायें हाथके तले प्रोक्षणी पात्र रखे, दाहिने हाथसे वह जल ले कर कुछ प्रोक्षणी जलके साथ मिलावे और अन्य सभी पात्रोंको प्रोक्षण करे। इसके बाद प्रणीताके दक्षिण प्रोक्षणी पात्रको रखना होगा फिर आज्यस्थलीको अपने सामने ला कर पूर्वासादित आज्य उसमें निरूपण करे और अग्निमें उसे ले जा कर पर्य्यग्नि करनेके लिये जलती हुई अग्नि उठावे। आज्य-स्थालीमें इसे तीन बार परिभ्रमण करा कर होमाग्निमें फेंक दे।

इसके बाद पूर्वासादित स्रुवको प्रतापित करके सम्मार्जन कुश द्वारा मूलसे अग्रपर्य्यन्त संमार्जन करे पीछे उसे पुनः प्रतापित करके प्रोक्षणीके उत्तर रख दे। अनन्तर आज्यस्थालीको अपने सामने रख प्रोक्षणी पात्रस्थ पवित्र को उठावे और उससे कुछ घी ले कर उस घीको देखे। पीछे प्रोक्षणीपात्रस्थित जल और उपयमन सभी कुशों-को बायें हाथसे पकड़ पूर्वासादित तीन समिध् उत्थित हो अग्निमें आहुति देनी होगी। अब जमीन पर बैठ प्रोक्षणी पात्रस्थित पवित्र और जलको उठावे तथा ईसान कोण-से ले कर दक्षिणावर्त्तमें आज्यको पर्युक्षण करे। इसके बाद उस पवित्रको प्रणीतापात्रमें रख कर प्रोक्षणी पात्र-संस्रव करनेके लिये अग्निसे उत्तर रखे।

अनन्तर यजमान अन्वारम्भ करनेके बाद स्रुवको उठावे और घृतसे आघराज्यभाग होम करे।

होम इस प्रकार होगा—"ओं प्रजापतये स्वाहा; इदं प्रजापतये। ओं इन्द्राय स्वाहा, इदमिन्द्राय, ओं अग्नये स्वाहा, इदमग्नये। ओं सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय।" इस प्रकार होम करके स्रुव संलग्न हविःशेषको प्रोक्षणी-पात्रमें रखना होगा।

इसके बाद समुद्भव नामक अग्निस्थापन करके उसकी पूजा करनी होगी। पीछे महाव्याहृतिहोम, 'ओं भूः स्वाहा, इदं भुः। ओं भुवः स्वाहा, इदं भुवः इदं सूर्याय। अनन्तर विधुनामक अग्निकी स्थापना करके संकल्प करना होगा। 'ओं तन्नो अग्ने' इत्यादि मन्त्रसे प्रायश्चित्त होम करना होता है। पीछे प्राजापत्य होम, जैसे—'ओं प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये। ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इदमग्नये स्विष्टकृते।' इसके बाद संस्रव प्राण और आचमन करके दक्षिणा देनी होती है।

तदनन्तर गुरु बटुकसे पूछें, ओं ब्रह्मचार्यसि। पीछे बटुक उत्तर दे 'ओं ब्रह्मचार्य्यस्मि।' फिर गुरु कहें, 'ओं अपोशानं कर्म कुरु, माणवक बोले, 'ओं न स्वयामि।' 'ओं कर्म कुरु' गुरुके इस वाक्य पर माणवक "ओं करवाणि" ऐसा उत्तर दे। 'ओं मा दिवा स्वापसीः' ओं न स्वपामि, 'ओं वाक्यं यच्छ, ओं यच्छामि ओं समिधमाधेहि, ओं आदधामि।' आचार्यके इन सब प्रश्नोंका बटुक इस प्रकार उत्तर दे।

इसके बाद माणवक अग्निके उत्तर पूरबको ओर मुंह करके बैठे और दाहिने हाथसे गुरुका दाहिना पांव तथा बायें हाथसे बायाँ पांव पकड़े। इस समय गुरु उसे गायत्री दें। यह गायत्री पादावच्छेद द्वारा पढ़ावें। पहले "ओं भूर्भुवः स्व" (यजुः ३६।३) पीछे "ओं तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।" (३।३५) उसके बाद "ओं धियो यो नः प्रचोदयात् ओं" (३।३५) इस प्रकार गायत्री दें। पीछे समग्र गायत्री पाठ करावें।

अनन्तर समिदाधान करना होगा। पहले माणवक दाहिने हाथसे इस मन्त्र द्वारा अग्निपरिसमूहन करे। मन्त्र—"ओं अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु, यथा,—त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि, एव मां सुश्रवः सौश्रवसं मा कुरु। यथा—त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधियोऽस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासं।"

(पारस्करगृह्यसू० २।४।२)

उसके बाद माणवक जल द्वारा ईशानकोणसे दक्षिणावर्त्तमें अग्निपर्युक्षण करे। पीछे उपस्थित हो कर निम्न मन्त्रसे एक समिध आधान करे। मन्त्र—"ओं अग्नये समिध माहार्षं बृहते जातवेदसे, यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसि। स्वमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभि ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासं स्वाहा।" (पारस्करगृह्यस० २।४।३)

तब परिसमूहनादि क्रमसे अपर दोनों समिधोंको अग्निमें आहुति दे। दोनों हाथोंसे अग्निमें प्रतापित तथा अपना मुख निम्नोक्त मन्त्र पाठ कर मार्जना करे। मन्त्र—"ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि। आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि, अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मे आपृण।"

(शुक्ल यजु ३।१७)

'ओं मेधां मे देवः सविता आदधातु मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु, मेधामश्विनी देवा वाधत्ता पुष्करस्रजौ।' (पारस्करगृह्य २।२।८)

'ओं अङ्गानि मे आप्यायन्तां तथा मुखं ओं वाक्च आप्यायतां नासिके एकैकशः ओं नासिकाच आप्यायतां ओं प्राणाश्च आप्यायन्तां, तथा एकैकशश्चक्षुषो, चक्षश्च मे आप्यायतां। तथा एकैकशः कर्णो, ओं श्रोतश्च आप्यायतां तथा सर्वाङ्ग, ओं यशोबलञ्च आप्यायतां। बटुक पीछे अनामिका अंगुलिसे भस्मका तिलक दरे।

(ललाटमें)—"ओं कश्यपस्य त्र्यायुषं।" (ग्रीवामें)—"ओं जामदग्नेस्त्र्यायुषं।" (दाक्षिणांशमे)—"ओं यद्देवानां त्र्यायुषं।" (हृदयमें)—"तन्मे अस्तु त्र्यायुषं। (शुक्ल यजु ३।६२)

तदनन्तर माणवक पहले मातासे 'ओं भवति! भिक्षां देहि' यह कह कर भिक्षा मांगे। उसके बाद मातृबन्धु दूसरी दूसरी स्त्रियोंसे भिक्षाके लिये प्रार्थना करे। 'ओं भवन! भिक्षां देहि' यह कह कर पितासे पीछे पितृबन्धुओंसे भिक्षा ले। इस भिक्षासे जो द्रव्य प्राप्त हो, वह आचार्यको दे। गुरु शिष्यको शान्ति और आशीर्वाद आदि देवें।

ब्रह्मचारी मौन हो कर सारा दिन वहां बैठा रहे। बादमें सायं सन्ध्या कर पूर्ववत् समिदाधान और अक्षारलवणयुक्त हविष्य भोजन करे।

वेदारम्भ।—उपनयनके बाद विशुद्ध दिनमें वृद्धिश्राद्धादि किये जाने पर आचार्य बटुकको अपने पास विठावे और अग्निको स्थापना करें। (आज कल यह उपनयनके दिन ही हुआ करता है।)

आचार्य यथाविधि अग्निस्थापनके बाद आधारआज्यभाग अग्निमें होम करके 'अग्ने त्वं समुद्भवनभासि' इस प्रकार समुद्भव नामक अग्निको स्थापना और उसको पूजा कर वेदाहुति होम करें। 'ओं पृथिव्यै स्वाहा, इदं पृथिव्यै, ओं अग्नये स्वाहा इदमग्नये, इति ऋग्वेदे। 'ओं अन्तरीक्षाय स्वाहा, इदमन्तरीक्षाय, ओं वायवे स्वाहा, इदं वायवे।' इति यजुर्वेदे। 'ओं दिवे स्वाहा, इदं दिवे, ओं सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय।' इति सामवेदे। 'ओं दिग्भ्य स्वाहा, इदं दिग्भ्यः। ओं चन्द्रमसे स्वाहा, इदं चन्द्रमसे' इत्यथर्ववेदे।

'ओं ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे, ओं छन्दोभ्यः स्वाहा इदं छन्दोभ्यः। ओं प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये। ओं देवेभ्यः स्वाहा, इदं देवेभ्यः। ओं ऋषिभ्यः स्वाहा,

इदं ऋषिभ्यः। ओं श्रद्धायै स्वाहा, इदं श्रद्धायै। ओं मेधायै स्वाहा, इदं मेधायै। ओं सदसस्पतये स्वाहा, इदं सदसस्पतये ओं अनुमतये स्वाहा इदमनुमतये।' उसके बाद अन्वारम्भ तथा महाव्याहृतिहोम करना होगा। 'ओं भूः स्वाहा, इदं भूः। ओं भुवः स्वाहा, इदं भुवः। ओं स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय।'

अनन्तर प्रायश्चित्त होम और प्राजापत्य होम होता है। 'ओं प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये। ओं अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इदमग्नये स्विष्टकृते।'

बादमें संस्रव प्राशन और आचमन कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी होती है। तदन्तर माणवक गुरुके आगे पूर्वाभिमुख बैठ कर दाहिने और बायें हाथसे गुरुका दाहिना और बायां पैर पकड़े। पीछे गुरु ओंकार और व्याहृतिपूर्वक वेद पाठ करावें। पहिले पदावच्छेदसे, पीछे अर्द्धावच्छेदसे और तब समग्र ऋक् पाठ करावें। ऋग्यथा--'ओं अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं। होतारं रत्नधातमं।' (ऋक् १।१।१)

यजुः यथा—'ओं इषे त्वा ऊर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण।'

(शुक्लयजुः १·१)

साम यथा—'ओं अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। निहोता सत्सि बर्हिषि। (साम १।१।१)

"ओं शंनो देवी रभिष्टये आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तुनः।" (ऋक् १०।९।४) बाद उसके आचार्य शान्ति और आशीर्वाद दे कर अच्छिद्रावधारण करें।

गुरुके घर पर वेदाध्ययन आदिके बाद समावर्त्तन करना होता है। किंतु सम्प्रति उपनयनके दिन ही समावर्त्तन हुआ करता है। ब्रह्मचारीके सिर्फ तीन दिन या सात दिन ब्रह्मचर्य्यका अवलम्बन करना पड़ता है। बाद उसके वह दण्ड छोड़ कर गार्हस्थ्यधर्म अवलम्बन करता है। (समावर्त्तन शब्द देखो।

सामवेदीय उपनयनपद्धति।

वृद्धिश्राद्धके बाद पिता आचार्य बने। यदि वे न बन सकें तो स्वयं एक ब्राह्मणको बनावे। इसमें ज्ञाति या मामा आदि भी आचार्य हो सकते हैं।

पिता आदि जो कोई आचार्य होंगे वे पहले समुद्भव नामके अग्नि स्थापन कर विरूपाक्ष जप पर्य्यन्त कुशण्डिका यथानियम सम्पन्न करेंगे। जिसका उपनयन होगा। उसीको माणवक कहते हैं। माणवकको सवेरे भोजन करा कर शिखा सहित मस्तक मुण्डन करावे। पीछे स्नान करा कर कुण्डल आदि अलंकार तथा क्षौमवसनके अभावमें शुक्ल तथा अखण्ड सूती कपड़ा पहनावे, इसके साथ साथ एक दूसरे कपड़ेसे उसे ढक कर बिठावे। इस समय आचार्य प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिधकी आमन्त्रक अग्निमें आहुति दे कर समस्त व्यस्त महाव्याहृति होम करावें। यह होम निम्नोक्त रूपसे करना होता है। यथा—'प्रजापति ऋषि गायत्रीछन्दो अग्निर्देवता महाव्याहृति होमे विनियोगः। "ओं भूः स्वाहा।" 'प्रजापति ऋषि रुष्णिकच्छन्दो वायुर्देवता महाव्याहृतिहोमे विनियोगः, "ओं भुवः स्वाहा". 'प्रजापति ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्य्योदेवता महाव्याहृति होमे विनियोगः' 'ओं स्वः स्वाहा। प्रजापति ऋषिवृहतीछन्दः प्रजापतिर्देवता व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमे विनियोगः, "ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा' पीछे आचार्य निम्नलिखित पांच मन्त्रसे पांच आहुति दे। 'अग्नि-वायु-सूर्य-चन्द्र-परमात्मदेवताका उपनयनआज्यहोमे विनियोगः' (गोभिलगृह्य २।१०।१६)

१। "ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि-तच्छकेयं तेनर्ध्यास मिदं मह मनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा।" (मन्त्रब्राह्मण १।६।९)

२। "ओं वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्त प्रब्रवीमि तच्छकेयं, तेनर्ध्यास मिद मह मनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा।" (मन्त्रब्राह्मण १।६।१०)

३। "ओं सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रवीमि तच्छकेयं, तेनर्ध्यास मिदमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा।"

(१।६।११)

४। "ओं चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तेनर्ध्यास मिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा।"

(म०ब्रा० १।६।१२)

५। "व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तेनर्ध्यास मिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा॥"

(म०ब्रा० १।६।१३

इस प्रकार आज्याहुति द्वारा होम कर अग्निके पश्चिमकी ओर आचार्य उदगग्र कुशसे प्राङ्मुख हो ऊद्ध्वभावसे बैठें। इस समय माणवक अग्नि और आचार्यके बीच कृताञ्जलिपुटसे आचार्याभिमुख हो उदगग्र कुशसे ऊद्ध्वभावसे बैठे। अभी वटुककी दाहिनी ओरसे कोई मन्त्रवान् ब्राह्मण वटुक और आचार्यकी हस्ताञ्जलि उदकसे पूर्ण करे। पीछे आचार्य इस उदकाञ्जलि देख कर निम्नोक्त मन्त्र जप करें।

'प्रजापतिऋषिरनुष्टुप्छन्दो अग्निवायुसूर्यचन्द्रादयो देवता उपनयने आचार्यस्य माणवकं प्रेक्षमाणस्य जपे विनियोगः।' (गोभिलगृ० १।६।१४)

"ओं आगन्त्रा समगन् महि प्र सुमर्त्यं युयोतन।
अरिष्टाः सञ्चरेमहि स्वस्ति चरतादयं॥"

(मन्त्रब्राह्मण १।६।१४)

अनन्तर आचार्य उदकाञ्जलि हो उदकाञ्जलियुक्त माणवकको यह मन्त्र पढ़ावें। 'प्रजापति ऋषिराचार्यो देवता उपनयने माणवकवाचने विनियोगः।' (गोभिल २।१०।२१) 'ओं ब्रह्मचर्य मागामुपमानयस्व।'

(मन्त्रब्राह्मण १।६।१६)

उसके बाद आचार्य माणवकको निम्नोक्त मन्त्रसे उसका नाम पूछें।

'प्रजापतिऋषिश्च म्नर्देवता आचार्य ब्रह्मचारिणोर्वचनप्रतिवचने विनियोगः।' (गोभिल २।१०।२२)

'ओं कोनामासि।' (म०ब्रा० १।६।१७)

पीछे वटुक निम्न मन्त्रसे देवताश्रय, गोत्राश्रय या नक्षत्राश्रय करे, "असौ नामास्मि।" (म०ब्रा० १।६।१७) अर्थात् हे गुरो! मेरा यह नाम है, ऐसा कहे।

तब आचार्य और वटुक दोनों उदकाञ्जलि परित्याग करें। पीछे आचार्य दाहिने हाथसे वटुकका सांगुष्ठ दाहिना हाथ इस मन्त्रसे पकड़ें।

'प्रजापतिऋषिः सवित्राश्विपूषाणो देवता उपनयने आचार्यस्य माणवकहस्तग्रहणे विनियोगः।'

"ओं देवस्य ते सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णामि" (म०ब्रा० १।६।१८) 'अमुकदेवशर्मन्निति।'

यह कह कर माणवकका नाम कहें।

पीछे आचार्य इस प्रकार माणवकके हाथ पकड़ कर निम्नलिखित मन्त्रसे जप करें।

'प्रजापतिऋषिरग्न्यादयो देवता उपनयने माणवकहस्ताग्राय जपे विनियोगः।' "ओं अग्निस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् अर्यमा हस्तमग्रहीत् मित्रस्त्वमसि मर्मणा अग्निराचार्य स्तव।" पीछे आचार्य माणवकको निम्न मन्त्रसे प्रदक्षिण करा कर पूर्वाभिमुखी करे।

'प्रजापतिऋषिः सूर्यो देवता उपनयने माणवकस्यावर्त्तने विनियोगः। ओं सूर्यस्यावृतमन्ववर्त्तस्व श्री अमुक देवशर्मन्निति' यह पढ़ कर माणवकका नाम कहें। पीछे आचार्य पहले माणवकका दक्षिणास्कन्ध और पीछे नाभिदेश स्पर्श कर यह मन्त्र पढ़ें।

'प्रजापतिऋषिर्नाभ्यन्तरौ देवते उपनयने ब्रह्मचारिनाभिदेशस्पर्शने विनियोगः।' "ओं प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददामि" (म०ब्रा० १।६।२०) अमुक देवशर्माणं यह कह कर माणवकका नाम उच्चारण करें।

अनन्तर आचार्य माणवकके ऊपरी भागमें यह मन्त्र पढ़ कर उसे स्पर्श करें।

'प्रजापतिऋषिर्वायुर्देवता उपनयने ब्रह्मचारिनाभ्युपरिस्पर्शने विनियोगः।' 'ओं अहुर इदं ते परिददामि' (म०ब्रा० १।६।२१) 'श्रीअमुकदेवशर्माणं' कह कर माणवकका नाम उच्चारण करें। आचार्य फिरसे माणवकके हृदयदेशको निम्नलिखित मन्त्रसे स्पर्श करें।

प्रजापतिऋषिः कृशानुर्देवता उपनयने ब्रह्मचारिहृदयस्पर्शने विनियोगः।' "ओं कृशन इदं ते परिददामि" (म०ब्रा० १।६।२२) 'श्रीअमुकदेवशर्माणं' कह कर माणवकका नाम उच्चारण करना होगा। पीछे दाहिने हाथसे आचार्य माणवकका दाहिना स्कन्ध छू कर यह मंत्र पढ़ें।

प्रजापतिऋषिः प्रजापतिर्देवता उपनयने ब्रह्मचारिदक्षिणस्कन्धः स्पर्शने विनियोगः।' "ओं प्रजापतये त्वा परिददामि" (म०ब्रा० १।६।२३) 'श्रीअमुकदेवशर्मन्' कह कर माणवकका दाहिना कंधा छुए और यह मंत्र पढ़े।

'प्रजापति ऋषिः सवितादेवता उपनयने ब्रह्मचारिवामस्कन्धस्पर्शने विनियोगः।' "ओं देवाय त्वा सवित्रे परिददामि" (म०ब्रा० १।६।२४) 'श्रीअमुक देवशर्मन्। कह कर माणवकका नाम ले।

अनन्तर आचार्य इस मंत्रसे माणवकको सम्बोधन करे—

'प्रजापतिर्ऋषिर्जगतीच्छन्दो ब्रह्मचारी देवता उपनयने ब्रह्मचारिसम्बोधने विनियोगः।' "ओं ब्रह्मचार्यसौ" (म०ब्रा० १।६।२५) इस प्रकार सम्बोधन करनेके बाद ब्रह्मचारीका नाम लेवें। अनन्तर आचार्य सम्बोधित ब्रह्मचारीको निम्न मन्त्रसे प्रेरण करें।

प्रजापतिर्ऋषि र्ब्रह्मचारी देवता उपनयने ब्रह्मचारी प्रैष्ये विनियोगः।" ओं समिधमाधेहि। ओं अपोशानं कर्म कुरु। ओं मा दिवा स्वाप्सीः।" (म०ब्रा० १।६।२६) ब्रह्मचारी 'बाढ़म्' कहे।

पीछे ब्रह्मचारीको कौपीन पहनना होता है। इसके बाद आचार्य अग्निके उत्तर जायं और उदगग्र कुश पर पूरबकी ओर मुंह कर बैठें। अनन्तर माणवक दाहिनी जाँघ गिरा कर उदगग्र कुश पर आचार्यकी ओर मुंह करके बैठे। पीछे आचार्य माणवकको त्रिप्रदक्षिणा त्रिवृता मुञ्जमेखला पहना कर निम्नलिखित मन्त्र दो बार पढ़ावें।

'प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो मेखला देवता उपनयने मेखला-परिधापने विनियोगः।

"ओं इयं दुरुक्तात् परिबाधमाना
वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना
स्वसा देवी सुभगा मेखलेयं॥
ओं ऋतस्य गोप्त्री तपसः परस्पी
घ्नती रक्षः सहमाना अरातीः।
सा मा समन्तमभि पर्य्येहि भद्रे
धर्त्तारस्ते मेखले मा रिषाम्॥"(म०ब्रा० १।६।२७ २८)

अनन्तर आचार्य यज्ञोपवीत कृष्णसाराजिनके सहित माणवकको यह मन्त्र पढ़ कर पहनावें।

'प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो विश्वेदेवा देवता उपनयने यज्ञोपवीतदाने विनियोगः। "ओं यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वोपवीतेनोपनह्यामि।" 'प्रजापति ऋषिः शक्करीच्छन्दोऽजिनं देवता उपनयने अजिनपरिधापने विनियोगः' "ओं मित्रस्य चक्षुर्धरुणं बलीयस्तेजो यशस्वी स्थविरं समृद्धं। अनाहनस्य वसनं जरिष्णुपरीदं वाज्येजिनं दधेयं।

पीछे माणवक आचार्यमें उपसन्न अर्थात् खूब नजदीक जा कर बैठे।

'प्रजापतिर्ऋषिराचार्यो देवता आचार्यमन्त्रणे विनियोगः' "ओं अधोहि भोः सावित्रीं।" आचार्यके इस प्रकार प्रश्न करने पर माणवक "मे भवाननुब्रवीतु" ऐसा कहे। अनन्तर आचार्य पासमें बैठे हुए माणवकको पाद पाद और पीछे आध आध और उसके बाद समस्त गायत्रीका अध्यापन करे।

"विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सविता देवता जपोपनयने विनियोगः।" "ओं तत् सवितुर्वरेण्यं" यह प्रथमपाद पीछे "ओं भर्गो देवस्य धीमहि" यह द्वितीय पाद, "ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि" यह पूर्वार्द्ध, पीछे "ओ धियो योनः प्रचोदयात्" यह उत्तरार्द्ध, अनन्तर "ओं तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्।" (म०ब्रा० १।६।२९) इस पूर्ण गायत्रीका तीन बार पाठ करावें। इसके बाद आचार्य माणवकको महाव्याहृति पृथक् पृथक् तथा ओङ्कार-पूर्वक ओङ्कारान्त और ओङ्कार पुटित करके पढ़ावें।

यथा—'प्रजापति ऋषिर्गायत्री छन्दो अग्निर्देवता महाव्याहृति पाठे विनियोगः।' ओं भूः। प्रजापति ऋषिरुष्णिक्छन्दोवायुर्देवता महाव्याहृति पाठे विनियोगः। ओं भुवः। प्रजापति ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता महाव्याहृतिपाठे विनियोगः। ओं स्वः।' अनन्तर आचार्य माणवकको सप्रणवव्याहृतिक तथा प्रणवान्त गायत्रीको अध्यापना करावें।

इसके बाद आचार्य माणवकके परिमाणानुसार बेल या पलाशका एक दण्ड उसे दे कर यह मन्त्र पढ़ावें।

'प्रजापतिर्ऋषिः पङ्क्तिछन्दो दण्डाग्नी देवते उपनयने माणवक दण्डार्पणे विनियोगः।

'ओं सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवाः। देवेष्वेवमहं सुश्रवः सुश्रवा ब्राह्मणेषु भूयासं॥"

(म०ब्रा० १।६।३१)

अनन्तर ब्रह्मचारी दण्ड ग्रहण कर भिक्षा मांगे। पहले माताके निकट भिक्षा मांगनी होगी। मातासे इस प्रकार कहे, 'भवति भिक्षां देहि' कह कर भिक्षा मांगे।

दण्डाग्रमें भिक्षाकी एक थैली रहेगी। माता पहले यथासाध्य भिक्षा दे। यह भिक्षा पाने पर माणवक 'स्वस्ति' यह वाक्य कहे। फिर मातृबन्धु तथा अन्यान्य स्त्रियोंके निकट पूर्वोक्तरूपसे भिक्षा मांगे।

इस प्रकार स्त्रियोंसे भिक्षा ग्रहण कर पिताके निकट भिक्षा मांगने जाय और 'भवन् भिक्षां देहि' इस प्रकार प्रार्थना करे। पिताके भिक्षा देने पर ब्रह्मचारी स्वस्ति कह कर उसे ग्रहण करे। इसके बाद पितृबन्धु आदि अन्यान्य पुरुषोंसे भिक्षा ग्रहण करनी होगी। भिक्षामें जो कुछ मिले वह आचार्यको दे दे।

इसके बाद आचार्य पहलेकी तरह समस्त महाव्याहृति होम करके प्रादेशप्रमाण घृताक्त समिधकी अग्निमें आहुति दे और शाट्यायन-होमादि वामदेव्य गानान्त उदीच्य कर्म समाप्त करें। इस समय यदि पिता आचार्य हों, तो कर्म करानेवाले ब्राह्मणको दक्षिणा देनी होगी और यदि अन्य व्यक्ति आचार्य बने, तो उन्हें भी दक्षिणा देनी होती है।

ब्रह्मचारीको इस समय सूर्यास्त पर्यन्त वाग्यत हो कर रहना पड़ेगा। इसके बाद सन्ध्याकालमें सन्ध्या उपासना करके समुद्भव अग्निसंस्थापन करे। पीछे 'ओं इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्' यह मन्त्र जप कर दाहिनी जांघ जमीन पर गिरावे। बादमें दक्षिण-पश्चिम और उत्तर क्रमसे उदकाञ्जलि सेक तथा अग्निपर्युक्षण कर समिध होम करना होगा। पहले प्रादेशप्रमाण घृताक्त तीन समिध ग्रहण कर पहले और तीसरे समिधको तूष्णीम्भावमें आहुति दे। केवल मध्य समिधको निम्नलिखित मन्त्रसे आहुति देनी होगी।

मन्त्र यथा—

"प्रजापतिऋषिरग्निर्देवता गायत्री समिद्धाने विनियोगः।"

"ओं अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा-त्वमग्ने समिधा समिध्यस्येवं महमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन धनेनान्नेन समेधिषीय स्वाहा।"

इसके बाद कर्मशेषोक्त विधि द्वारा फिरसे अग्निपर्युक्षणोपक्रम दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तरक्रमसे उदकाञ्जलि सेक करे।

अनन्तर ब्रह्मचारी 'अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्माहं भोऽभिवादये।' इस प्रकार अग्निको अभिवादन कर 'ओं क्षमस्व' से उसका परित्याग करे। संध्याके बाद भिक्षालब्ध अन्नको क्षारलवण वर्जन कर तथा सघृत चरुशेषको उदक द्वारा अभ्युक्षण कर 'ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' इस मन्त्रसे अपोशान करे। पीछे मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ इन तीन अंगुलियोंसे अन्न ग्रहण कर 'ओं प्राणाय स्वाहा, 'ओं अपानाय स्वाहा, ओं समानाय स्वाहा, ओं उदानाय स्वाहा, ओं व्यानाय स्वाहा।' इस प्रकार पञ्चाहुति द्वारा अन्नको भूमि पर निःक्षेप करे। बाद उसके भोजनपात्रको बायें हाथसे पकड़ कर वाग्यत हो भोजन करने लगे। भोजन कर चुकने पर 'ओं अमृतपिधानमसि स्वाहा।' कह कर फिरसे अपोशान करके आचमन करे।

यह अग्निकार्य समावर्त्तन पर्यन्त प्रतिदिन सुबह और शाम दोनों समय करना होता है। भोजन यावज्जीवन इसी नियमसे करना होगा।

यज्ञोपवीतके चौथे दिन सावित्री-होम करनेका विधान है।

अथर्व्ववेदीय उपनयन पद्धति।

अथर्व्ववेदीय कौशिकसूत्र, दारिलकृत तद्भाष्य, सायणाचार्यकृत अथर्व्वसंहिताभाष्य और केशवकृत अथर्व्वपद्धतिके अनुसार अथर्व्ववेदीय उपनयनपद्धति लिखी जाती है :—

उपनयनके पूर्व दिन माणवकके पितादि संयत हो कर रहें और उपनयनके दिन सबेरे प्रातःकृत्यादि करके स्वस्ति-वाचन और सङ्कल्प करें। इसके बाद गौर्य्यादि षोड़श-मातृकाकी पूजा और वृद्धिश्राद्धादि करके ब्राह्मण और माणवकको खिलावे। उपनयन-क्रियामें पहले माणवकका क्षौरकर्म करना होता है। क्षौरकर्म करनेके लिये सामने एक जलपूर्ण पात्र रख निम्नोक्त मन्त्रसे उसको अभिमन्त्रित कर लेना होगा।

"आयगमनत् सविता क्षुरेणोष्णेन वराच उदके नहि।
आदित्या रुद्रा वसव उदन्तु सचेतसः
सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥" (अथर्व० ६।६८।१)

अनन्तर 'आयमगन्' सिर्फ इतना ही कह कर क्षुर-मार्जन करे। "उष्णेन वाचो" इस मन्त्रांशको उच्चारण कर क्षौर जलसे अनुमन्त्रित करे। "आदित्या रुद्रा" यह पढ़ कर माणवकके मस्तकको गरम जलसे धो डाले। पीछे 'सोमस्य यज्ञो' मन्त्रपाद तथा

"येन वपत् सविता क्षुरेण सोममस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान ॥"
(अथर्व ६।६८।२)

यह मन्त्र पढ़ कर माणवककी दर्भशिखाको छोड़ कर समूचा शिर मुण्डन कर दे।

अनन्तर पूरवको ओर बैठ कर अग्निस्थापन करना होता है। यथाविधि संस्थापित अग्निके सामने उष्णोदकके साथ शान्त्युदकको प्रदक्षिणक्रमसे संस्थापन करके आचार्य वहां यज्ञीय सभी उपकरणादि लावें। क्षौरकर्मके बाद आचार्य माणवकसे 'ब्रह्मचर्य्यमागममुप-मानयस्व" ऐसा कहनेके लिये कहे। ब्रह्मचारीके ऐसा कहने पर आचार्य फिरसे उसको पूछें, 'को नामासि किं गोत्र इत्यसाविति यथानामगोत्रे भवस्तथा प्रब्रूहि।'

ब्रह्मचारी उत्तर दे, "अमुक शर्मनामाहं अमुकगोत्रोऽहं अमुकप्रवरोऽहम्।"

इसके बाद ब्रह्मचारी फिरसे आचार्यसे कहे "आर्षेयं मा कृत्वा बन्धुमन्तमुपनय।"

आचार्य उत्तर दें, "आर्षेयं त्वा कृत्वा बन्धुमन्यमुप-नयामि।"

इसके बाद आचार्य निम्नोक मन्त्रसे ब्रह्मचारीको अञ्जलिमें जल दें, "ओं भूर्भुवः स्व र्जनदोम्।" ब्रह्मचारी वह उदकाञ्जलि सूर्यको प्रदान करे। अनन्तर आचार्य-के ब्रह्मचारीका दाहिना हाथ पकड़ने पर ब्रह्मचारी "एय म आदित्य पुत्रस्तन्मे गोपायस्व' यह मन्त्र पढ़ कर सूर्य दर्शन करे।

इसके बाद आचार्य बाहुगृहीत ब्रह्मचारीको "अप-क्रामन् पौरुषेयाद्वृणान"— (कौ०सू० ७६) इस मन्त्रसे पूर्वकी ओर विठावें और दहिने हाथसे ब्रह्मचारीका नाभिदेश संस्पर्श कर निम्नोक्त सभी मन्त्र जप करें।

"अग्निर् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः। इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तर-स्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु" (अथर्व० १।६।१)

"विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूय-मस्मिन्।

मेमं सनाभिरुत वान्यनाभि र्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधोयः" (अथर्व० १।३०।१)

"आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथ्वीमुस्त्रियाभिः। अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्वृहद्-राष्ट्रं संवेश्यं दधातु।" (३।८।१)

"अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पते रभिशस्तेर-मुञ्चः। प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्देवा नामग्ने भिषजा शचोभि" (७।५५।१)

"आ रभस्वेमामृतस्य श्नूष्टिमच्छिमद्य मानाजरदष्टिर-स्तुते। असुं त आयु पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गामाप्र मेष्ठाः।" (अथर्व० ८।२।१।)

"प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदा मग्निमिव जातमसि संधमामि।

नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय ते करमा।"
(८।२।४)

"विपासहि" इत्यादि (११।४।१)

यदि आचार्य कार्यमें जल्दी करें फिर भी यदि उन्हें प्रकृष्ट कार्य शक्ति रहे, तो आचार्य गणस्थानमें पूर्वोक्त 'आचातमित्र' इत्यादि (११।४।३) अहं मन्त्रको जप करे। अनन्तर सद्रं सिः। (४।३०) इत्यादि मन्त्र आचार्य ब्रह्मचारको एक एक पाद पढ़ावे। पीछे आचार्य ब्रह्मचारीको आच्छादित करके तीन बार प्राणा-याम करें और जलके बरतनमें वत्सतरी (बछिया)-का मुख दिखा कर निम्नोक्त मन्त्रसे उसे उत्सर्ग करे—

"समिन्द्र नो मनसा ने गोभिः सं सूरिभिर्हं-
रिवन्त्सं स्वस्त्या।
सं ब्राह्मण देव देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ
यज्ञिया नाम ॥' (अथर्व ७।१०२।२)

"सं वर्च्चसा पयसा सं तनूभिर गन्महि
मनसा सं शिवेन कृणो।

त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु
तन्वो यद् विरिष्टम् ॥" (६।५।४३)

अनन्तर ब्रह्मचारी निम्नोक्त मन्त्रसे भद्रमुञ्जाकी बनी हुई मेखला पहने। मन्त्र इस प्रकार है—

"श्रद्धया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव।

"सा नो मेखले मतिमा धेहि तपइन्द्रियञ्च।"
(६।१३३।४)

"यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे।
सा त्वं परिष्वजस्व मां दीर्घायु त्वाय मेखले॥"
(६।१३४।४५)

पीछे आचार्य निम्नोक्त मन्त्र पढ़ा कर माणवकको मन्त्रादिविहित यज्ञोपवीत दान करें। मन्त्र यथा—
"ओं यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।"

इसके बाद निम्नोक्त मन्त्र पढ़ कर आचार्य माणवकको दण्ड दान करें। मन्त्र यथा—
"मित्रावरुणयोस्त्वा हस्ताभ्यां प्रसूत प्रशिषा प्रतिगृह्णामि।"
(कौ० सू० ५६।३)

"श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनुत्वा रभे।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्यो दृचि स्वाहा॥"
(६।४८।१)

पीछे ब्रह्मचारी—"मित्रावरुणयोस्त्वा हस्ताभ्यां प्रसूतः प्राशिषा प्रति गृह्णामि," "सुश्रव" सुश्रवसं कुरु" "अवक्रोऽविधुरोऽहं भूयास" तथा "श्येनोऽसि" इत्यादि मन्त्र पढ़ कर दण्ड ग्रहण करे। पीछे आचार्य माणवकको अमन्त्रक कृष्णाजिन देवें।

इसके बाद आचार्य ब्रह्मचारीको 'अहं रुद्रेभिः' इत्यादि सूक्त प्रत्येक ऋक्‌के अनुसार पढ़ावें।

अनन्तर माणवक यथा शास्त्र ब्रह्मचारि-व्रत ग्रहण कर आठ समिध ले कर निम्नोक्त मन्त्र पढ़े और अग्निमें आहुति दें।

मन्त्र यथा—
"अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तत्समापेयं तस्मै राध्यतां तन्मे समृध्यतां मा व्यनशत्तेन राध्यासं तत्ते प्रब्रवीमि तदुपाकरोमि अग्नये व्रतपतये स्वाहा। वायो व्रतपते। सूर्य व्रतपते। चन्द्र व्रतपते। आपो व्रतपत्न्यो देवा व्रतपतयो। वेदा व्रतपतयो। व्रतानां व्रतपतयो व्रतमचारिषं तदशकं तत्समापं तन्मेराद्धं तन्मे समृद्धं तन्मे मा व्यनशत्तेन राद्धाऽऽस्म तद्वः प्रब्रवीमि तदुपाकरोति व्रतेभ्यो व्रतपतिभ्यः स्वाहा।"
(कौशिकसू० ५६।७)

अनन्तर आचार्य मेखला पहने हुए ब्रह्मचारीको यथाविधि सावित्री पढ़ावे और पीछे इस प्रकार उपदेश दें। यथा—"अग्नेश्चासि ब्रह्मचारिन् मम च (नित्य भोजनकाले) अपोशानकर्म कुरु। ऊर्द्ध्वन्तिष्ठस्व (कूपं निरीक्षयेः), (मा वृक्षारोहणं कुरु) मा दिवा स्वाप्सीः, समिधमाधेहि।" (कौ०सू० ५६।१२)

ब्रह्मचारी 'बाढ़' यह उत्तर दे। पीछे आचार्य "ओं अग्नये त्वा परिददामि ब्रह्मणे त्वा परिददामि, उदङ्काय त्वा परिददामि शूल्वाणाय त्वा परिददामि शत्रुञ्जयाय त्वा क्षात्राणाय त्वा परिददामि मार्त्युञ्जयाय त्वा मार्त्यवाय परिददामि अघोराय त्वा परिददामि तक्षकाय त्वा वैशालेयाय परिददामि हाहाहूहूभ्यां त्वा गन्धर्वाभ्यां परिददामि, योगक्षमाभ्यां त्वा परिददामि भयाय च त्वा मभयाय च परिददामि, विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि, विश्वेभ्यस्त्व भूतेभ्यः परिददामि सप्रजापतिकेभ्यः" (कौशिकसू० ५६।१३) इससे धान जौको अभिमन्त्रित कर ब्रह्मचारीके मस्तक पर छिड़के। अनन्तर आचार्य यथाविधि अन्यान्य सभी कर्म कर डालें।

अथर्ववेदीकी मेखला और दण्डादिके विषयमें नियम,—ब्राह्मणकी भाद्रमौञ्जी मेखला, क्षत्रियकी मौर्वी वा धनुर्ज्या और वैश्यकी क्षौमिकी मेखला होगी। अलावा इसके ब्राह्मणके लिये पलाश दण्ड, क्षत्रियके लिये अश्वत्थ और वैश्यके लिये न्यग्रोधावरोह दण्ड कहा है।

दण्ड यदि नष्ट हो जाय, तो दूसरा दण्ड बना कर 'मेत्विन्द्रिय' इत्यादि मन्त्रसे पुनः उसे ग्रहण करे सभी जगह यह नियम प्रचलित है।

वस्त्र—ब्राह्मणका हरिण वा ऐणेय वस्त्र, क्षत्रियका

रौरव और पार्षत वस्त्र तथा वैश्यका आजाविक वस्त्र होगा। परन्तु क्षौम, शाण और कम्बल वस्त्र ब्राह्मणादि तीनों वर्ण धारण कर सकते हैं।

भिक्षानियम—ब्राह्मणकुमार कहे, "भवति भिक्षां देहि", क्षत्रियकुमार, 'भिक्षां भवतो ददातु' और वैश्य-बालक 'देहि भिक्षां भवति' ऐसा कहे।

यदि माता भिक्षा दे, तो सबोंको 'ओं स्वस्ति' कह कर ग्रहण करना चाहिये। ब्राह्मण सात कुलमें, क्षत्रिय तीन कुलमें और वैश्य दो कुलमें भिक्षाचरण करे। स्तेन अर्थात् चोर और पतित व्यक्तिको छोड़ कर गाँवमें और सभोके यहां भिक्षा मांग सकते हैं।

ब्रह्मचारीको भिक्षामें जो कुछ मिले उसे वह आचार्य-के निकट समर्पण करे। आचार्य वह भिक्षा ले कर पुनः शिष्यको लौटा दें। इसके बाद आचार्यको यथा विहित सभी अग्निकार्य करने होंगे। विशेष विवरण अथर्ववेदीय कौशिकसू० और केशवपद्धति देखो।

यज्ञोपासक (सं० पु०) १ यज्ञपूजाकारी। २ यज्ञकारी, वह जो यज्ञ करता हो।

यज्य (सं० त्रि०) यजन करने योग्य।

यज्यु (सं० त्रि०) यजतीति यज् (यजिमनिशुद्धिदसिजनिभ्यो युच्। उण् ३।२०) इति युच्। १ यजुर्वेद-वेत्ता ब्राह्मण। २ यजमान।

यज्वन् (सं० पु०) यज् (सुयजोर्ङ्वनिप्। पा ३।२।१०३) इति ङ्वनिप्। विधिपूर्वक यज्ञकारी, वह जो शास्त्रा-नुसार यज्ञ करते हैं।

यज्वनांपति (सं० पु०) चन्द्रमा।

यज्विन् (सं० त्रि०) यज्वा, यज्ञ करनेवाला। यज्वन् देखो।

यडर (हिं० पु०) एक प्रकारकी पक्षी।

यण्व (सं० क्लो०) सामभेद।

यत् (सं० अव्य०) हेतु।

यत (सं० त्रि०) यम-क्त, मस्य लुक्। १ नियन्त्रित, नियमित। २ दमन किया हुआ, शासित। ३ प्रतिबद्ध, रोका हुआ।

यतगिर (सं० त्रि०) यता संयता गीर्वाक् यस्य। संयत वाक्, ठीक वचन।

यतङ्कर (सं० पु०) यमनकर्त्ता, वह जो प्रतिबन्ध करता हो।

यतन (सं० पु०) यत्न करना, कोशिश करना।

यतनीय (सं० त्रि०) यत्-अनीयर्। यत्न करने योग्य, कोशिश करने लायक।

यतम (सं० त्रि०) यत् (या बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्। पा ५।३।९३) इति डतमच्। बहुतोंमेंसे एक।

यतमान (सं० पु०) १ यत्न करता हुआ, कोशिशमें लगा हुआ। २ अनुचित विषयोंका त्याग और उचित विषयों-में मन्द प्रवृत्तिके निमित्त यत्न करनेवाला।

यतर (सं० त्रि०) यत् (किं यत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्। पा ५।३।९२) इति डतरच्। दोमेंसे एक।

यतरश्मि (सं० त्रि०) यता वाक् यस्य। संयत वाक्ययुक्त।

यतव्य (सं० त्रि०) प्रयत्नवान्, कोशिश करनेवाला।

यतव्रत (सं० त्रि०) यतं व्रतं यस्य। संयमरूपव्रत-धारी, बहुत संयमसे रहनेवाला।

यतस् (सं० अव्य) तद् (पञ्चम्यास्तसिल्। पा ५।३।७। इति तसिल् ततोऽव्ययत्वं। १ हेतु। २ जिसके द्वारा। ३ जिससे। ४ जिसमें।

यतस्रुच् (सं० त्रि०) उद्यतस्रुक्, तैयार स्रुवा।

यतात्मन् (सं० त्रि०) यत आत्मा यस्य। संयतचित्त, संयमी।

यति (सं० पु०) यतते चेष्टते मोक्षार्थमिति यत् (सर्वधा-तुभ्य इन्। उण् ४।११७) इति इन्। १ निर्जितेन्द्रिय-ग्राम। पर्य्याय—यती, भिक्षु, संन्यासी, कर्मन्दी, रक्त वसन, परिव्राजक, तापस, पराशरी, परिकांक्षी, सङ्करी, परिरक्षक। (हेम)

जो यति हैं अर्थात् मोक्षपरायण हैं, वे अवि-मुक्त क्षेत्र या मुक्तिधाममें वास करेंगे।

मनुका कहना है, स्नातक द्विजोंको यथा शास्त्र गृह-स्थाश्रम धर्मका पालन कर वानप्रस्थका आश्रय करना चाहिये। गृहस्थ जब देखें, कि उनका शरीर कांपने और बाल पकने लगा है और उनके पुत्रका भी पुत्र हो गया, तब उनको जङ्गलका रास्ता ढूंढ़ना चाहिये। वान-प्रस्थ-आश्रममें अपने जीवका तीसरा भाग बिता कर

चौथे भागमें नियमानुसार सब सङ्ग छोड़ संन्यास-आश्रमका अनुष्ठान करना चाहिये। एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जा कर अर्थात् ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ धर्मका अनुष्ठान करनेके बाद उन आश्रमोंमें अग्निहोत्रादि होम पूरा कर जितेन्द्रियत्व लाभ करना उचित है।

ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण इन्हीं तीनों ऋणोंके बन्धनसे अपनेको उद्धार कर मोक्षप्रद संन्यास आश्रममें मन लगाना चाहिये। किन्तु इन ऋणोंका परिशोधन कर जो लोग मोक्षधर्मकी सेवा करते हैं उनको विपथगामी होना पड़ता है। नियमानुसार वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन, और शक्ति भर यज्ञानुष्ठान कर मोक्षमें मन लगाना चाहिये। जो द्विज ऐसा न कर मोक्षमें मन लगाता है, वह नरकमें जाता है।

प्रजापति याग समाधान तथा सर्वस्वान्त दक्षिणा दे कर आत्मामें अग्नि आधान कर ब्राह्मणको प्रवज्या अर्थात् संन्यासग्रहण करना चाहिये। सर्वभूतोंमें अभय-प्रदान कर घरसे संन्यास ले ब्रह्मवादी व्यक्ति तेजोमय लोकोंको पाते हैं, जिस द्विजसे किसी प्राणीको डर नहीं लगता, उस द्विजको देहत्याग करनेके बाद कभी किसी प्राणीसे भय नहीं होता अर्थात् वह भयशून्य हो जाता है।

यतियोंको चाहिये, कि वे घरसे निकल दण्ड कमण्डलु हाथमें ले काम्य विषय उपस्थित होने पर भी उससे आस्थाशून्य हो मौनधारण कर परिव्राजक धर्मका आचरण करें। यति अग्निहीन, वासहीन व्याधि-प्रतिकारकी उपेक्षा करते हुए स्थिर बुद्धि रह और सदा ब्रह्मभावका आश्रय ले कर जङ्गलमें रहना चाहिये। केवल भिक्षाके लिये ही गांवमें आना उचित है। मट्टीका भिक्षापात्र वृक्षमूल ही रहनेका स्थान, पुराने कौपीन आदि परिधेय-वस्त्र, असहाय भावसे एकान्त वास और सर्वत्र ही समदृष्टिका प्रयोग करना संन्यासीका एकान्त कर्त्तव्य है। जीने और मरने किसी भी बातकी कामना करना संन्यासीको उचित नहीं। किन्तु जिस तरह नौकर अपने निर्दिष्ट वेतनके लिये नियत समयकी प्रतीक्षा करता है, उसी तरह कर्माधीन रह जीवनकाल या मरणकालकी प्रतीक्षा संन्यासीको भी करनी चाहिये। पथमें देख देख पैर धरना तथा वस्त्रसे पानी छान कर पीना चाहिये। सत्य बोलना तथा मनमें जो काम पवित्र जंचे वही काम संन्यासीको करना उचित है। कटु तथा अपमानजनक बातोंको सहना तथा किसीको भी अपमानित कर पराजित करना संन्यासीके लिये न्याय-संगत नहीं। यह क्षणभंगुर शरीर धारण कर किसीके साथ शत्रुता करना उचित नहीं। यदि कोई क्रोध प्रकाश करे तो संन्यासीको भी उसके बदलेमें क्रोधित न हो जाना चाहिये। वरं उसके प्रति कुशल वार्त्ताका प्रयोग करना चाहिये। सप्तद्वारविषयक जो वाक्य है, उसे भूल कर भी प्रयोग करना उचित नहीं। नेत्र आदि पञ्चेन्द्रिय और मन-बुद्धि द्वारा गृहीत विषय पर ही वाक्यकी प्रवृत्ति होती है। इसीसे पण्डित लोग इस वाक्यको सप्तद्वारके नामसे पुकारते हैं अथवा सप्त-स्थानीय प्राणवाक्यके द्वारस्वरूप हैं, इससे वाक्यको सप्त द्वार कहते हैं। यतियोंको सर्वदा ब्रह्मवाणी बोलना और ब्रह्मके ध्यानमें निरत रहना उचित है। वे किसी विषयकी कामना न करें वरं सब विषयोंमें निस्पृह हो कर रहें। केवल उन्हें आत्मावलम्बन कर अकेला नित्य सुख या मोक्षकी कामना कर इस संसारमें विचरण करना चाहिये। भूकम्प आदि उत्पात या अङ्ग स्फुलिङ्ग आदि विषयों, नक्षत्र तथा हस्तरेखा आदिके फलाफल कह कर किसीके यहां भिक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा न करनी चाहिये।

जिस मकानमें भिक्षुक या ब्राह्मण या वानप्रस्थ, कुत्ता या और कोई भिक्षार्थी भिक्षाके लिये खड़े हों उस मकानमें यतिको जाना उचित नहीं। मुण्ड मुड़ा कर दाढ़ी मूंछ और हाथके नखोंको कटवा कर दण्ड कमण्डलु और भिक्षापात्र हाथमें ले कर किसी प्राणीको जरा भी कष्ट न दे यतिको नित्य विचरण करना चाहिये। यतिका भिक्षा या भोजनपात्र अतैजस अर्थात् चमकीला न होना चाहिये। फिर भी उस पात्रमें किसी प्रकारका छिद्र न हो। यज्ञीय चमसोंकी जैसी शुद्धि होती है, वैसी यतिके भोजनपात्रोंकी शुद्धि जलसे धो देनेसे ही हो जाती है। अलाबूका पात्र, (तांबा) काठका

बना बरतन, मिट्टीका पात्र, बांसका बना बरतन यतियों-के लिये स्वयम्भु मनुने निर्दिष्ट किया है।

यतिको केवल प्राण रक्षाके लिये नित्य एक बार भिक्षा ग्रहण करना, किन्तु अधिक भोजन कदापि न करना चाहिये। क्योंकि अधिक भोजन करनेसे विषयोत्पत्ति-की आशङ्का रहती है। गृहस्थके घर रसोईकी आग बुझ जाने, ओखल, मूसलका काम खतम हो जाने और गृहके सब लोगोंके भोजन कर लेने तथा जूठे बरतनों-को हटा देने पर तीसरे पहर यतिको भिक्षा ग्रहण करने जाना चाहिये। भिक्षा पाने पर न खुश होना, और भिक्षा न मिलने पर दुःख प्रकट नहीं करना चाहिये। 'न च हर्षयो वा न च विस्मयो वा'। जिससे प्राणकी रक्षा हो सके उतना ही यतीको भिक्षा ग्रहण करना चाहिये। अन्यान्य व्यवहार-कार्य्योंमें द्रव्यकी आसक्तिसे भी दूर रहना यतिका एकान्त कर्त्तव्य है। यदि कोई भिक्षा देने-का आग्रह करे, तो यतिको इच्छा न रहने पर या भिक्षा हो चुकने पर आदरके साथ अस्वीकार कर देना चाहिये। यति मुक्तकामी हैं सही, किन्तु अत्यन्त पूजाप्राप्तिके कारण उसके संसार-बंधनकी शङ्का हो सकती है। इससे भूखों या निर्जन स्थानमें रह कर विषयोंसे आकृष्ट इन्द्रियोंको एक एक करके विषयसे हटा देना चाहिये। इन्द्रियोंका निरोध, रागद्वेषादिका क्षय तथा सर्वभूतोंमें अहिंसा भाव रखना आदि इन्हीं सब उपायों द्वारा मनुष्य मुक्तिप्राप्तिका अधिकारी होता है। कर्मदोषके कारण जीवकी तरह तरहकी गति प्राप्ति—नरकमें जाना, तथा यमालयकी यातना आदि विषयोंकी आलोचना प्रत्या लोचना यतिको करते रहना चाहिये। प्रियतमोंके वियोग, अप्रिय लोगोंके हाथ संयोग, जरा द्वारा अभिभव और व्याधि द्वारा पीड़ा, इस देहसे जीवात्माका उत्क्रमण, पुनः गर्भवास द्वारा पुनर्जन्म और सहस्र सहस्र योनियोंका भ्रमण—वे सब यातनायें जीवके कर्मदोषके कारण होती रहती हैं। इन्हीं सब विषयोंको मन चिन्ता करते रहना यतिको उचित है। यह निश्चय जानना चाहिये, कि जीवके सभी तरहके दुःख अधर्मसे ही उत्पन्न होते हैं और अक्षय सुख समृद्धि धर्मके अधीन हैं। योग द्वारा परमात्माके अन्तर्य्यामित्व, निरवयत्व आदि सूक्ष्मस्वरूपकी उपलब्धि करना चाहिये और क्या उत्तम है, क्या अधम है—सर्व देहमें हो उनका अधिष्ठान है, इसकी चिन्ता न करनी चाहिये। चाहे मनुष्य किसी भी आश्रममें हो या आश्रम-धर्मभ्रष्ट ही क्यों न हो—फिर भी, सर्वभूतोंमें समदर्शी होनेसे उसे वर्णाश्रमत्याग-के लिये धर्ममें अनधिकारित्व अथवा प्रायश्चित्त करनेके बाद आश्रय करना न होगा। वर्णाश्रम आदिका चिन्ह-धारण धर्मका कारण नहीं हो सकता। निर्मली फल जलमें डाल देनेसे जल साफ हो जाता है, किन्तु निर्मली फलका नाम लेनेसे ही जल साफ नहीं हो जाता। विहित कर्मोंके करनेसे ही धर्म होता है, केवल वर्णाश्रम-का लिङ्ग धारण करनेसे धर्म नहीं होता।

अपने शरीरमें दुःख हो तो हो, किन्तु कीटपतङ्गोंकी रक्षाके लिये दिन रात पथ देख-देख कर चलना चाहिये। भूल चूकसे दिन रातमें यति द्वारा जो जीव नाश होते हैं, उन्हीं पापोंके प्रायश्चित्तस्वरूप उसको स्नान कर छः बार प्राणायाम करना चाहिये। यदि प्राणायाम विधि-पूर्वक सप्तव्याहृति और दश प्रणवयुक्त प्राणायामत्रय (पूरक, कुम्भक, रेचक आदि) किया जाये, तो यह ब्राह्मण-के लिये तपस्या ही समझनी चाहिये। सोने, चांदी आदि धातुओंका मल आगमें तपानेसे जैसे चला जाता है, वैसे ही प्राणायाम द्वारा इन्द्रियविकारादि दोषोंका नाश करना चाहिये। स्थानविशेषमें चित्तबन्धनरूप धारणा कर सब पापोंका नाश करना उचित है। अपने विषयोंसे इन्द्रिय आकर्षणरूप प्रत्याहार द्वारा विषय-संसर्गरूप सब पापोंसे दूर रहनेकी चेष्टा करना उचित है और परब्रह्म लीन रह कर क्रोधादि अनीश्वर गुणों पर विजय प्राप्त करना चाहिये।

जीवको देव-पश्वादि उत्कृष्टोपकृष्ट योनियोंमें किस कारणसे भ्रमण करना होता है, यह विषय आत्मज्ञानहीन मनुष्यको कभी नहीं मालूम हो सकता, क्योंकि यह विषय ध्यानयोगसे हो जाना जा सकता है। इसलिये चरित सदा ध्यानपरायण होना उचित है। ध्यान-योगसे सम्यक् आत्मदर्शनसम्पन्न व्यक्ति पापपुण्यकर्मों द्वारा संसारबन्धनमें नहीं आता। आत्मदर्शनहीन मनुष्य ही संसारकी गति प्राप्त कर सकता है। अहिंसासे

इन्द्रियोंको विषयशक्तिसे हटा कर वैदिक कर्म्मों और विकट तपस्या द्वारा ब्रह्मपद साधित होता है।

यह देह अस्थिरूप स्तम्भ पर खड़ी है, स्नायु रूपी रस्सीसे बंधो है। रक्त तथा मांस द्वारा लिपी पोती गई है, चर्म द्वारा आच्छादित, मूत्र तथा विष्ठासे परिपूर्ण है, दुर्गन्धमय, जराशोकसे आक्रान्त, तरह तरहके व्याधियोंका घर, क्षुधापिपासासे कातर, प्राय रजोगुणयुक्त है; अनित्य तथा पञ्चभूतोंका आवास स्वरूप है। यही जान कर इस देहकी मायाका प्रतिकार करना चाहिये। इसकी पूर्ण चेष्टा करनी चाहिये, कि फिर हम इस देहवन्धनमें न पड़ें। नदी किनारेका वृक्ष तथा वृक्ष पर बैठी चिड़िया जैसे आनन्दसे स्थान त्याग करती है, वैसे ही ज्ञानवान् जीव प्राक्तन कर्मोपक्षय अथवा जीवन्मुक्त अवस्थामें इस देहरूपी आश्रयको त्याग कर संसारवन्धनरूपी गांठसे मुक्त होते रहते हैं, वे पुत्रादि प्रियसंयोग अपनी सुकृतिका तथा अप्रियसंयोग अपनी दुष्कृतिका कारण समझते हैं। इस तरहके ध्यानसे प्रियाप्रिय सुकृत-दुष्कृतादि चित्तके सब क्षोभाक्षोभोंको त्याग कर वे सनातन ब्रह्मको प्राप्त करते हैं। जिस भावसे सम्पन्न होने पर मन सब विषयोंसे निस्पृह होता है, उसी भावसे ही इहलोक या परलोक सर्वत्र ही नित्य सुख प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे उपायसे क्रमशः सभी आसक्तियोंको दूर कर मानापमान, शीतोष्ण, सुखदुःखादि समस्त द्वन्द्वभावोंसे मुक्त हो कर वे ब्रह्ममें अवस्थान करते हैं। सभी तरहके कर्मफल ध्यानपरायण मनुष्यको ही प्राप्य है, किन्तु ध्यानहीन अर्थात् आत्मज्ञानरहित व्यक्ति किसी भी क्रियाका फल नहीं पा सकते।

यज्ञ देवता और परमात्माविषयक वेदमन्त्र अथवा उपनिषद् आदिमें जो वेदश्रुतियां अभिहित हैं उन सबोंका जप करना अवश्य कर्त्तव्य है। जो अज्ञानी हैं या जो ज्ञानवान् हैं, या जो स्वर्गकामी या मुक्तकामी हैं, उन सबोंके लिये यह वेद ही एकमात्र अवलम्बन है। ऐसे विधानसे जो ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करते हैं, वे इहलोकके सब पापोंसे छुट कर परब्रह्मको पाते हैं।

संयतात्मा परमहंस आदि यतियोंके साधारण धर्म कहे गये। यतिको चाहिये, कि वे पूर्वोक्त नियमके अनुसार दिन यापन करें। (मनु ७ अध्याय)

२ ब्रह्माका पुत्र-विशेष। (भागवत ४।८।१)

३ नहुषका पुत्र। (भारत १।७५।३०) ४ विश्वामित्रका पुत्र।

५ कर्मसे उपरत, अर्थात् जिन्होंने कर्मोका त्याग किया है। (ऋक् ८।३।९)

(स्त्री०) यम्यते रसनात्रेति (स्त्रियां क्तिन्। पा ३।३।९४) इति क्तिन् (अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामिति। पा ६।४।३७) इति मकारलोपः। ६ पाठविच्छेद, जिह्वेष्ट विश्रामस्थान। पढ़ते पढ़ते जहां विश्राम किया जाता है, उस स्थानको यति कहते हैं। छन्दोमञ्जरीमें प्रत्येक छन्दमें कहां यति होगी, यह छन्दके लक्षणोंसे जाना जाता है।

श्वेत माण्डव्य ऋषियोंने यति होनेकी इच्छा प्रकट नहीं की थी।

"श्वेतमाण्डव्य प्रमुख्यास्तु नेच्छन्ति मुनयो यतिम्।
इत्याह भट्टः स्वग्रन्थे गुरुमें पुरुषोत्तमं॥"
(छन्दोम० १ अ०)

नियम्यते इति यम-क्तिन्, यतते चेष्टते व्रतादिरक्षार्थमिति या यत-इन्। ७ विधवा। ८ राग। ९ सन्धि। (शब्दरत्ना०) १० वाद्याङ्ग प्रवन्धविशेष।

सङ्गीतदामोदरके मतसे—यति, रोढ़ा, आदि बारह प्रवन्ध या लेख है। इसके भी फिर तीन भेद हैं।

"चतुर्विधं पदं तालं त्रिप्रकारं लयत्रयम्।
यतित्रयं तथा तोद्यं मया दत्तं चतुर्विधं॥"
(मार्क०पु० २३।५३)

११ यमन, प्रतिवंध।

यतिचान्द्रायण (सं० क्ली०) यतिभिरनुष्ठेयं चान्द्रायणं। व्रतविशेष। यति लोग इसका अनुष्ठान करते हैं, इसलिये इसका नाम यतिचान्द्रायण पड़ा है।

"अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिण्डान् मध्यदिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन्॥"
(मनु ११ अ०)

इस चान्द्रायणमें पादोन धेनु चतुष्टय दान करने होते

हैं। असमर्थ होने पर सवा ग्यारह कार्पापण दान करनेसे भी काम चलेगा।

प्रायश्चित्तके विधानानुसार इसका अनुष्ठान करना होता है। यदि कोई व्यक्ति पतित वा महापातकीके दाहादि करे, तो उसे चान्द्रायण-व्रत करना होता है। शास्त्रमें जिन्हें अदाह्य कहा है, जैसे, आत्महत्याकारी और कुष्ठ रोगसे मरा हुआ, उनका यदि प्रायश्चित्त किये विना दाहादि क्रिया जाय, तो उसे यतिचान्द्रायण व्रत करना होगा। (प्रायश्चित्तवि०)

यतित्व (सं० क्ली०) यतेर्भावः त्व। यतिका धर्म, भाव या कर्म।

यतिथ (सं० त्रि०) यतोऽधिक, जितना तितना।

यतिधर्म (सं० पु०) यतेर्धर्म। यतियोंका धर्म, संन्यास। यति देखो।

यतिधर्मन् (सं० पु०) श्वफल्कका एक पुत्र।

यतिधा (सं० अव्य०) जितने अंशमें, जितने उपायसे।

यतिन् (सं० त्रि०) यत संयमोऽस्यास्तीति इनि। संयमी, जितेन्द्रिय।

यतिनी (सं० स्त्री०) १ संन्यासिनी। २ विधवा।

यतिभङ्ग (सं० पु०) काव्यका वह दोष जिसमें यति अपने उचित स्थान पर न पड़ कर कुछ आगे या पीछे पड़ती है और जिसके कारण पढ़नेमें छंदकी लय विगड़ जाती है।

यतिभ्रष्ट (सं० पु०) वह छंद जिसमें यति अपने उपयुक्त स्थान पर न पड़ कर कुछ आगे या पीछे पड़ी हो, यतिभंग दोषसे युक्त छन्द।

यतिमैथुन (सं० क्ली०) यतीनां दुष्टयतीनामिव गोपनीयं मैथुनं। यतिगोप्य रति। पर्याय—लज्जनरत।

यतिवर्य (सं० पु०) एक प्रसिद्ध नैयायिक, शिरोमणि कृत दीधितिके एक टीकाकार।

यतिसान्तपन (सं० क्ली०) यतिचान्द्रायणव्रतविशेष। इसमें तीन दिन केवल पञ्चगव्य और कुश-जल पी कर रहना पड़ता है। शंखस्मृतिके मतसे तो यह व्रत तीन दिनका है, परन्तु जावालके मतसे सात दिनका है। गोमूत्र, गोवर, दूध, दही, घृत, कुशका जल इनमेंसे एक एकको प्रतिदिन एक बार पी कर रात दिन उपवास करना पड़ता है। इसीका नाम सान्तपनकृच्छ्र या यतिसान्तपन है।

यती (सं० स्त्री०) १ रोक, रुकावट। २ मनोराग, मनोविकार। ३ विधवा। ४ छन्दोंमें विरामका स्थान। ५ शलक रागका एक भेद। ६ मृदंगका एक प्रवन्ध। ७ सन्धि। (पु०) ८ यति, संन्यासी। ६ जितेन्द्रिय। १० जैन मतानुसार श्वेताम्बर जैन साधु।

यतीम (अ० पु०) १ मातृपितृहीन, अनाथ। २ वह बहुत बड़ा मोती जिसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि यह सीपमें एक ही निकलता है। ३ कोई अनुपम और अद्वितीय रत्न।

यतीमखाना (फा० पु०) वह स्थान जहां अनाथ बालक रखे जाते हैं, अनाथालय।

यतीयस् (सं० क्ली०) रौप्य, चांदी।

यतुक (सं० पु०) यतूका देखो।

यतुन (सं० त्रि०) १ गन्ता, जानेवाला। २ यतनशील, यत्नवान्।

यतूका (सं० स्त्री०) यत् बाहुलकात् उकन् पक्षे उक्, स्त्रियां टाप्। चक्रमर्द, चकवँड़का पौधा।

यतोजा (सं० त्रि०) जिससे उत्पन्न।

यतोद्भव (सं० त्रि०) जिससे उत्पन्न।

यत्काम्या (सं० अव्य०) जिस अभिप्रायसे।

यत्कारिन् (सं० त्रि०) जो काम करनेवाला।

यत्कार्य (सं० अव्य०) जिस काममें।

यत्किञ्चित् (सं० त्रि०) थोड़ा-सा, बहुत कम।

यत्क्रतु (सं० त्रि०) जिस उपायसे, जिस संकल्पसे।

यत्न (सं०पु०) यत (यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्। पा ३।३।९०। इति नङ्। १ रूप आदि २४ गुणोंके अन्तर्गत एक गुण। यह तीन प्रकारका होता है। यथा—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि। कृतिसाध्य इष्टसाधनत्वमतिको चिकीर्षा कहते हैं इसीसे प्रवृत्ति होती है। जैसे मधुर और विषयुक्त अन्न खानेसे बड़ी हानि पहुंचती है। इसलिये बड़ी हानिकी आशंका रहनेसे खानेवालेकी प्रवृत्ति नहीं होती। यहां चिकीर्षाके अभाव होनेसे वह नहीं खायगा। जब खानेवाला जान जाता है, कि इसे खानेसे मेरी हानि होगी तब उसकी खानेकी प्रवृत्ति नहीं होती। किन्तु जब वह

बिल्कुल ही नहीं समझ सकता तब उसे खा लेता है। (भाषापरिच्छेद १४८-१५०)

२ उद्योग, कोशिश। ३ उपाय, तदबीर। ४ रक्षाका आयोजन। ५ रोग शान्तिका उपाय, उपचार।

यत्नवत् (सं० त्रि०) यत्नः विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। यत्नविशिष्ट, यत्नमें लगा हुआ।

यत्नाक्षेप (सं० पु०) अलंकारशास्त्रोक्त आक्षेपभेद।

यत्र (सं० अव्य०) यत्-सप्तम्यां त्रल्। जहां, जिस जगह।

यत्रकाम (सं० अव्य०) यथेच्छा या इच्छानुसार।

यत्रकामावसाय (सं० पु०) योगियोंकी एक शक्तिका नाम, अणिमादि आठ सिद्धियोंमेंसे एक, इच्छानुसार योगियोंका किसी जीवदेह या शून्यमार्ग आदिमें जाना।

यत्रकामावसायिन् (सं० त्रि०) यत्रकामावसाय-शक्ति-विशिष्ट, अपनी इच्छानुसार शून्यमार्गमें जानेवाला योगी।

यत्रतत्र (सं० अव्य०) १ जहां तहां, कुछ यहां कुछ वहां। २ जगह जगह, कई स्थानोंमें।

यत्रतत्रशय (सं० त्रि०) जहां तहां सोनेवाला।

यत्रत्य (सं० त्रि०) जहांसे उत्पन्न।

यत्रसायंप्रतिश्रय (सं० त्रि०) जहां रात्रिका प्रारम्भ हो वहीं रहना।

यत्रस्थ (सं० त्रि०) यत्र तिष्ठति स्था-क। जहां तहां रहनेवाला।

यत्राकूत (सं० क्ली०) संकल्प, मनमें जो इच्छा हुई हो।

यत्रु (सं० स्त्री०) छातीके ऊपर और गलेके नीचेकी मंडलाकार हड्डी, हंसली।

यथऋषि (सं० अव्य०) ऋषि अनुसार।

यथर्तु (सं० अव्य०) १ ऋतुके समान। २ निर्दिष्ट समयके अनुसार, यथासमय।

यथर्त्तुक (सं० त्रि०) निर्दिष्ट ऋतुसम्बन्धीय।

यथर्षि (सं० अव्य०) ऋषिकथित वाक्यानुसार।

यथा (सं० अव्य०) सादृश्य, जिस प्रकार, जैसे, ज्यों। पर्याय—वत्, वा तथा, एव।

यथाकनिष्ठ (सं० अव्य०) कनिष्ठं अनतिक्रम्य इत्यव्ययी-भावः यथाकनिष्ठं। कनिष्ठको अतिक्रम न करके।

यथाकर्त्तव्य (सं० त्रि०) यथा-कृ-तव्य। कर्त्तव्यानु-रूप, जैसा करना चाहिए वैसा।

यथाकर्म (सं० अव्य०) कर्मके अनुरूप, कामके मुता-बिक।

यथाकर्मगुण (सं० अव्य) कर्मगुणं अनतिक्रम्य इत्यव्ययी-भावः। कर्म और गुणके समान, कर्म तथा गुणको अतिक्रम न करके।

यथाकल्प (सं० अव्य०) संकल्पानुरूप, शास्त्रके मुताबिक।

यथाकाण्ड (सं० अव्य) काण्ड अर्थात् शाखाके अनुरूप।

यथाकाम (सं० त्रि०) १ जिस प्रकार कामनाविशिष्ट। (अव्य) २ कामनानुरूप, इच्छानुसार।

यथाकामिन् (सं० त्रि०) यथा कामयते इति कामि-णिनि, यद्वा काममनतिक्रम्य प्रवृत्तिरस्यास्तीति यथाकाम 'अत इनिठनाविति' इनि। स्वेच्छाचारी, अपनी इच्छा-के अनुसार काम करनेवाला। पर्याय—स्वरुचि, स्वच्छन्द, स्वैरी, अपावृत, स्वतन्त्र, निरवग्रह, निर्यन्त्रण। (जटाधर)

यथाकाम्य (सं० क्ली०) यथेष्ट, कामनानुरूप।

यथाकाय (सं० अव्य०) कायके अनुरूप, आकृतिके समान।

यथाकार (सं० अव्य०) जिस प्रकारसे।

यथाकारिन् (सं० त्रि०) यथा करोति कृ-णिनि। स्वेच्छा-चारी, मनमाना काम करनेवाला।

यथाकार्य (सं० त्रि०) यथाकर्त्तव्य, जैसा करने योग्य।

यथाकाल (सं० पु०) १ उपयुक्त समय, शुभकाल। (अव्य०) २ उपयुक्त समयमें।

यथाकुल (सं० अव्य०) कुलके अनुरूप, कुलधर्मानु-सारसे।

यथाकुलधर्म (सं० अव्य०) कुलधर्मानुसारसे, जिस कुलमें जिस प्रकार नियम हो उसके अनुसार।

यथाकृत (सं० त्रि०) १ रीत्यनुरूप, जैसा किया या स्वीकृत किया हुआ है। १ (अव्य०) २ कृतानुरूप।

यथाकृष्ट (सं० अव्य० कृष्टानुरूप, बार बार कर्षण।

यथाक्रतु (सं० त्रि०) कल्पनानुरूप।

यथाक्रम (सं० अव्य०) क्रममनति क्रम्येति अव्ययीभावः। क्रमानुसार, क्रमशः।

यथाक्रोश (सं० अव्य०) कोसके समान।

यथाक्षम (सं० अव्य०) क्षमतानुरूप, यथाशक्ति।

यथाखात (सं० अव्य०) खातके समान, जिस तरह गड्ढा खोदा हुआ है उसी तरह।

यथाख्या (सं० त्रि०) १ यथा आख्यायुक्त। (अव्य०) २ आख्यानुरूप।

यथाख्यानचरित्र (सं० पु०) सब कषायों अर्थात् काम क्रोधादि पावकोंका जिन साधुओंने क्षय किया हो उनका चरित्र।

यथाख्यान (सं० अव्य०) आख्यानानुरूप, जिस प्रकार आख्यान है उस प्रकार।

यथागत (सं० त्रि०) जैसा आया है वैसा।

यथागम (सं० अव्य०) आगममनतिक्रम्य इत्यव्ययीभावः। १ आगमानुरूप, शास्त्रके समान। प्रवादानुरूप, जो पूर्वापर चला आ रहा है।

यथागात्र (सं० अव्य०) १ प्रतिगात्र, देह देहमें। २ गात्रानुरूप।

यथागुण (सं० अव्य०) गुणमनतिक्रम्य इत्यव्ययीभावः। गुणानुरूप, गुणकी तरह।

यथागृह (सं० अव्य०) १ गृहानुरूप, घरके समान। २ गृहप्रति।

यथाग्नि (सं० अव्य०) अग्निके समान।

यथाङ्ग (सं० अव्य०) प्रतिगात्र, अङ्ग अङ्गमें।

यथाचमस (सं० अव्य०) प्रतिचमस, एक एक चमचा करके।

यथाचार (सं० अव्य०) कुलानुरूप, रीतिके अनुसार।

यथाचारिन् (सं० त्रि०) यथा चरति चर-णिनि। पूर्वाचारविशिष्ट, पूर्व आचार पर चलनेवाला।

यथाचिन्तित (सं० त्रि०) जिस तरह चिन्ता की गई है, चिन्तानुसार।

यथाचोदित (सं० त्रि०) उपदेशानुसार, उपदेशके मुताबिक।

यथाजात (सं० त्रि०) यथा न जातः, इति जातोऽपि पुत्रादिरजात इव प्रतीयते विद्यया शौर्येण वा न कैरपि विदितत्वात्। १ मूर्ख, वेवकूफ। २ नीच।

यथाजाति (सं० अव्य०) जात्यनुरूप, जातिके अनुसार।

यथाजोष (सं० अव्य०) सन्तोषके समान।

यथाज्ञप्त (सं० त्रि०) यथा ज्ञापि-क्त। जिस प्रकार आदिष्ट, जैसा कहा गया है।

यथाज्ञान (सं० अव्य०) ज्ञानमनतिक्रम्य अव्ययीभावः। ज्ञानानुरूप, समझके मुताबिक।

यथाज्येष्ठ (सं० अव्य०) ज्येष्ठानुसार, बड़के मुताबिक।

यथातत्त्व (सं० अव्य०) यथार्थ, प्रकृत।

यथातथ (सं० अव्य०) यथा वर्त्तते तथा नातिक्रम्य इति अनतिवृत्तौ अव्ययीभावः (अव्ययीभावश्च। पा ५।२।१८) इति नपुंसकत्व (ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य। पा १।२।४७) इति ह्रस्वः। यथार्थ, उचित।

यथातथ्य (सं० अव्य०) यथार्थ, जैसाका तैसा, हू-बहू, ज्योंका त्यों।

यथात्मक (सं० त्रि०) स्वभावानुरूप, प्रकृतिके समान।

यथादत्त (सं० त्रि०) जैसा दिया गया है वैसा।

यथादर्शन (सं० अव्य०) जैसा दर्शन वैसा, देखनेके मुताबिक।

यथादाय (सं० अव्य०) अंशानुरूप, जिसका जैसा अंश है वैसा।

यथादिश् (सं० अव्य०) सब तरफ, प्रतिदिश्।

यथादिश (सं० अव्य०) यथादिश् देखो।

यथादिष्ट (सं० त्रि०) यथा-दिश-क्त। जैसा कहा गया है वैसा।

यथादीक्षा (सं० अव्य०) दीक्षानुरूप, शिक्षाके मुताबिक।

यथादृष्ट (सं० अव्य०) दृष्टके अनुरूप, जैसा देखना।

यथादृष्टि (सं० अव्य०) जैसी दृष्टि, जिस भावमें देखना।

यथादैवत (सं० अव्य०) जिस प्रकार देवता, प्रतिदेवता।

यथाधर्म (सं० अव्य०) धर्ममनतिक्रम्य इत्यव्ययीभावः। धर्मानुरूप, धर्मानुसार।

यथाधीत (सं० अव्य०) अधीतानुरूप।

यथानियम (सं० अव्य०) नियमानुसार, कायदेके मुताबिक।

यथानिरुप्त (सं० अव्य०) यथा प्रदत्त, जिस तरह उत्सर्ग किया गया है।

यथान्याय (सं० अव्य०) न्यायमनतिक्रम्य इत्यव्ययी-भावः। न्यायके अनुसार, यथोचित।

यथानुसार (सं० त्रि०) जिस प्रकार।

यथान्युप्त (सं० अव्य०) जिस तरह दिया गया है।

यथापद (सं० अव्य०) पद या शब्दके समान।

यथापराध (सं० अव्य०) जैसा दोष, अपराधानुसार।

यथापर्व (सं० अव्य०) १ मेल मेलमें। २ अङ्ग अङ्गमें।

यथापूर्व (सं० अव्य०) पूर्वमनतिक्रम्य इत्यव्ययीभावः। १ जैसा पहले था वैसा ही, पहलेकी नाईं। २ ज्योंका त्यों।

यथाप्रज्ञ (सं० अव्य०) ज्ञानानुरूप, प्रज्ञानुसार।

यथाप्रतिरूप (सं० अव्य०) जैसारूप वैसा, प्रतिरूपा-नुसार।

यथाप्रदिष्ट (सं० स्त्री०) जैसी आज्ञाकी गई है वैसा ही।

यथाप्रदेश (सं० अव्य०) १ उपदेशानुसार। २ ठीक तरहसे। ३ यथास्थानमें।

यथाप्राण (सं० अव्य०) यथाशक्ति, शक्तिकी अनुसार।

यथाप्रार्थित (सं० अव्य०) जिस तरह प्रार्थना की गई थी वैसा ही।

यथाप्रीति (सं० त्रि०) प्रीतिको समान।

यथाबल (सं० अव्य०) बलानुसार, यथाशक्ति।

यथाबुद्धि (सं० अव्य०) बुद्धिके अनुसार, समझके मुताबिक।

यथाभक्ति (सं० अव्य०) भक्तिके अनुसार।

यथाभक्षित (सं० अव्य०) भक्षणानुरूप, जिस तरह खाया गया है उसी तरह।

यथाभवन (सं० अव्य०) १ प्रतिभवन, प्रतिगृह। २ भवनानुरूप। ३ निर्दिष्ट भवन।

यथाभाग (सं० अव्य०) १ भागके अनुसार जितना चाहिए उतना, हिस्सेके मुताबिक। २ यथोचित।

यथाभाजन (सं० अव्य०) भाजन या पात्रके समान।

यथाभिकाम (सं० अव्य०) यथाभिरुचि।

यथाभिप्रेत (सं० अव्य०) इच्छानुसार।

यथाभिरुचित (सं० अव्य०) यथेप्सित, इच्छानुसार।

यथाभिलषित (सं० त्रि०) यथेप्सित, जैसी इच्छाकी हुई हो।

यथाभिलिखित (सं० त्रि०) लिखनेके मुताबिक।

यथाभिवृष्ट (सं० अव्य०) १ वर्षणानुरूप, वर्षाके मुताबिक। २ दृष्टिपथ तक वृष्टिपात।

यथामति (सं० अव्य०) बुद्धिके अनुसार, समझके मुताबिक।

यथामुखीन (सं० त्रि०) यथामुख (यथामुख संमुखस्य दर्शनः ख। पा ५।२।६) इति ख। मुखप्रतिबिम्बाश्रय, एक सा।

यथामुख्य (सं० अव्य०) प्राधान्यक्रमसे, प्रधानतासे।

यथाम्नाय (सं० अव्य०) वेदोंके अनुसार।

यथायजुस् (सं० अव्य०) यजुर्मन्त्रके समान।

यथायथ (सं० अव्य०) (यथास्वे यथायथम्। पा ८।१।१४) यथास्व, तुल्य, समान, मुताबिक।

यथायुक्त (सं० अव्य०) यथोचित, मुनासिब।

यथायुक्ति (सं० अव्य०) युक्तिके अनुसार, परामर्शके मुताबिक।

यथायोग्य (सं० अव्य०) योग्यतानुसार, जैसा चाहिए वैसा-मुनासिब, उपयुक्त।

यथारम्भ (सं० अव्य०) जिस तरह आरम्भ हुआ है वैसा।

यथारुचि (सं० अव्य०) रुचिके अनुसार, पसंदके मुता-बिक।

यथारूप (सं० त्रि०) रूपके समान, प्रकृतिके मुताबिक।

यथार्थ (सं० अव्य०) अर्थं अनतिक्रम्य इति यथार्थं। १ यथारूप, जैसा ठीक होना चाहिए वैसा, जैसाका तैसा। १ ठीक, वाजिब।

यथार्थता (सं० स्त्री०) यथार्थस्य भावः तल्-टाप्। यथार्थका भाव, सचाई।

यथार्ह (सं० त्रि०) यथा योग्य।

यथार्हण (सं० अव्य०) योग्यतानुसार।

यथार्हवर्ण (सं० पु०) यथार्हं यथायोग्यं वर्णयतीति वर्ण-

अच्। १ चर। २ यथायोग्य अक्षर। ३ यथायोग्य-रूप। ४ यथायोग्य वर्ण।

यथालब्ध (सं० त्रि०) १ जितना प्राप्त हो उसीके अनुसार, जो कुछ मिले उसीके मुताबिक। २ जैनियोंके अनुसार जो कुछ मिल जाय उसीसे संतुष्ट रहनेकी वृत्ति।

यथालाभ (सं० त्रि०) जो कुछ मिले उसीके अनुसार, जो प्राप्त हो उसी पर निर्भर।

यथावकाश (सं० अव्य०) अवकाशानुसार, छुट्टीके मुताबिक।

यथावत् (सं० अव्य०) पूर्णमत, जैसेका तैसा। २ जैसा चाहिये वैसा, अच्छी तरह।

यथावस्थित (सं० अव्य०) १ जैसा था वैसा ही। २ सत्य, ठीक। ३ स्थिर, अचल।

यथाविध (सं० अव्य०) ज्ञानके अनुसार, बुद्धिके मुताबिक।

यथाविध (सं० अव्य०) जिस प्रकारसे।

यथाविधि (सं० अव्य०) विधिपूर्वक, विधिके अनुसार।

यथाविहित (सं० अव्य०) जैसा विधायन हो वैसा ही, विधिके अनुसार।

तथाशक्य (सं० अव्य०) जहां तक हो सके, सामर्थ्य भर।

यथाशक्ति (सं० अव्य०) शक्तिमनतिक्रम्य इत्यव्ययीभावः। सामर्थ्यके अनुसार, जितना हो सके।

यथाशय (सं० अव्य०) अभिप्रायानुसार, इच्छाके मुताबिक।

यथाशास्त्र (सं० अव्य०) शास्त्रमनतिक्रम्य इति यथाशास्त्रं। शास्त्रानुसार, जैसा शास्त्रोंमें वर्णित है वैसा।

यथाश्रय (सं० अव्य०) आश्रयस्थानानुरूप।

यथाश्रुत (सं० त्रि०) १ शास्त्रज्ञानानुरूप, जैसा शास्त्र है वैसा। (अव्य०) २ शास्त्रज्ञानके अनुसार।

यथाश्रुति (सं० अव्य०) श्रवणानुरूप, शास्त्रके मुताबिक।

यथासंदिष्ट (सं० अव्य०) यथोपदिष्ट, जैसा कहा गया है वैसा हो।

यथासंपद (सं० अव्य०) साध्यानुसार, शक्तिके मुताबिक।

यथासंप्रत्यय (सं० अव्य०) विश्वासानुरूप, प्रतीतिके अनुसार।

यथासंस्थ (सं० अव्य०) यथावस्थित।

यथासंहित (सं० अव्य०) सन्धिके अनुसार, संहिताके मुताबिक।

यथासख्य (सं० अव्य०) सख्यानुसार, मिलता भावसे।

यथासङ्कल्पित (सं० त्रि०) मन ही मन जिस तरहका संकल्प किया गया है।

यथासङ्गत (सं० अव्य०) क्षमताके अनुसार।

यथासन्धि (सं० अव्य०) उपयुक्त स्थान, ठीक जगह पर।

यथासमय (सं० अव्य०) १ उपयुक्त समय, ठीक समय पर। २ समयके अनुसार, जैसा समय हो वैसा।

यथासमाम्नात (सं० अव्य०) यथाकथित, कहे मुताबिक।

यथासम्भव (सं० अव्य०) यथासङ्गत, जहां तक हो सके।

यथासाध्य (सं० अव्य०) यथाशक्ति, जहां तक हो सके।

यथास्तुत (सं० अव्य०) जैसी स्तुति की गई हो, पूजित।

यथास्तोम (सं० अव्य०) स्तोमके अनुसार।

यथास्थान (सं० अव्य०) उचित स्थान पर, ठीक जगह पर।

यथास्थाम (सं० अव्य०) यथास्थान, नियत जगह पर।

यथास्थित (सं० अव्य०) सत्य।

यथास्मृति (सं० अव्य०) स्मृतिके प्रमाणानुसार।

यथास्व (सं० अव्य०) स्वमनतिक्रम्येत्यव्ययीभावः। यथावाञ्छित, जैसी इच्छा हो।

यथास्वैर (सं० अव्य०) १ धीरतानुसार, धैर्यसे। २ स्वेच्छानुरूप, मनके मुताबिक।

यथाहार (सं० अव्य०) आहारके जैसा, भोजनके मुताबिक।

यथेच्छ (सं० अव्य०) जितना या जैसा जीमें आवे उतना या वैसा, इच्छाके अनुसार।

यथेच्छक (सं० त्रि०) इच्छानुसार कार्यकारी, मनमाना काम करनेवाला।

यथेच्छा (सं० स्त्री०) इच्छानुसार, मनमाना।

यथेच्छाचार (सं० पु०) जो जीमें आवे वही करना और उचित अनुचितका ध्यान न करना, स्वेच्छाचार।

यथेच्छाचारी (सं० त्रि०) १ यथेच्छाचार करनेवाला, मन माना आचार करनेवाला। २ जो कुछ जीमें आवे वही-करनेवाला, मनमौजी।

यथेच्छित (सं० त्रि०) इच्छानुसार, मनमाना।

यथेसत् (सं० अव्य०) यथाघटित, यथागत।

यथेरसा (सं० स्त्री०) १ यथाभिलाषी, मनमाना।

यथेप्सित (सं० अव्य०) ईप्सितमनतिक्रम्येति। यथा-वाञ्छित, जैसी इच्छा।

यथेष्ट (सं० अव्य०) इष्टमनतिक्रम्येति। यथेप्सित, जितना चाहिये उतना।

यथेष्टचारिन् (सं० पु०) यथेष्टं चरतीति चर-णिनि। १ पक्षी। (त्रि०) यथाभिमत स्थानविचरणकारी, अपने मनके अनुसार घूमनेवाला।

यथेष्टतस् (सं० अव्य०) यथेष्ट-तसिल्। इच्छानुसार मनके मुताविक।

यथेष्टाचरण (सं० त्रि०) यथेष्टं आचरणं यस्य। यथे-ष्टाचारी, मनमाना काम करनेवाला। जो शास्त्रके नियम पर न चल कर अपनी इच्छानुसार काम करता है उसीको यथेष्टाचारी कहते हैं।

यथेष्टाचारिन् (सं० त्रि०) यथेष्टमाचरितुं शीलमस्य इति इनि। स्वेच्छाचारी, अपने मनके अनुसार व्यवहार करनेवाला।

यथोक्त (सं० त्रि०) १ यथाकथित, जैसा कहा गया हो। उक्तमनतिक्रम्य इत्यव्ययीभावः। (अव्य०) २ उक्तानु-सार, कहे हुएके मुताविक।

यथोक्तकारिन् (सं० त्रि०) यथोक्तं करोति कृ-णिनि। यथोक्तरूप अनुष्ठानकारी, शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया हो वही करनेवाला। २ आज्ञाकारी।

यथोक्तवादिन् (सं० पु०) यथोक्तं वदति वद-णिनि। १ दूत। (त्रि०) २ वह जो उचित बोलते हैं।

यथोचित (सं० अव्य०) उचितमनतिक्रम्येति। १ यथा-योग्य, जैसा चाहिये वैसा। २ यथाप्राप्त, जो मिले वही। (त्रि०) यथोचितमस्यास्तीति अर्शआद्यच्। यथार्ह, ठीक।

यथोत्तर (सं० त्रि०) १ उचित उत्तर। (अव्य०) २ उत्तरानुरूप, जवाबके मुताबिक।

यथोत्साह (सं० अव्य०) उत्साहमनतिक्रम्य इति। १ उत्साहसे। २ यथासामर्थ्य, सामर्थ्यके मुताबिक।

यथोदय (सं० त्रि०) यथाप्रकाश, जैसा उदय।

यथोदित (सं० त्रि०) १ यथाकथित, कहनेके मुताबिक। (मनु ३।१८७) (अव्य०) २ उदितं कथितमनतिक्रम्येति अव्ययीभावः। ३ उक्तानुरूप, कथितानुसार।

यथोद्गत (सं० त्रि०) जिस प्रकार बहिर्गत, अंकुरित या उत्पन्न।

यथोद्दिष्ट (सं० त्रि०) यथाकीर्तित, जैसा कहा गया हो।

यथोद्देश (सं० अव्य०) उद्देशानुसार, अभिप्रायके मुता-बिक।

यथोद्भव (सं० अव्य०) उद्भवानुरूप।

यथोपजोष (सं० अव्य०) जैसा सुख।

यथोपदिष्ट (सं० त्रि०) जैसा उपदेश दिया गया है।

यथोपदेश (सं० अव्य०) उपदेशानुसार।

यथोपपत्ति (सं० अव्य०) उपपत्तिके अनुसार।

यथोपपन्न (सं० त्रि०) जिस प्रकार प्राप्त हुआ है।

यथोपपाद (सं० अव्य०) यथासम्भव।

यथोपयोग (सं० अव्य०) उपयुक्त प्रयोग।

यथोपस्मार (सं० अव्य०) अपस्मारके अनुसार।

यथोपाधि (सं० अव्य०) उपाधिके समान।

यथोप्त (सं० त्रि०) जिस प्रकार मुण्डन किया गया है।

यथौचित्य (सं० अव्य०) औचित्यानुसार।

यद् (सं० त्रि०) यजति सर्वैः यदार्थैः सह सङ्गतो भव-तीति यज् (त्यजितनियजिभ्योडित्। उण् १।१३१) इति अदि, डित्। नैयायिकके मतसे बुद्धिस्थत्वोपलक्षित धर्मावच्छिन्न।

यदर्थ (सं० त्रि०) जिस कारण, जिस लिये।

यदा (सं० अव्य०) यस्मिन् काले यद् (सर्वैकान्यकियत्तदः। पा ५।३।१५) इति दा। १ जिस समय, जिस वक्त, जब। २ जहां।

यदाकदा (सं० अव्य०) जब तब, कभी कभी।

यदात्मक (सं० त्रि०) जिसके समान।

यदि (सं० अव्य०) अगर, जो। इस अव्ययका उपयोग वाक्यके आरम्भमें संशय अथवा किसी वातकी अपेक्षा सूचित करनेके लिये होता है।

यदिच (सं० अव्य०) यद्यपि, अगरचे।

यदिचेत् (सं० अव्य०) यदिच देखो।

यदिच्छा (सं० स्त्री०) जैसी इच्छा।

यदीय (सं० लि०) यस्येदमिति यद् (वृद्धाच्छ। पा ६।२। ११४) इति छ। यत्सम्बन्धी, जिस वारेमें।

यदु (सं० पु०) यजते इति यज् उ, पृषोदरादित्वात् जस्थाने दकारः। देवयानीके गर्भसे उत्पन्न ययातिके वड़े लड़केका नाम।

आर्यजातिके आदिग्रन्थ ऋक्‌संहितामें भी यदुका वृत्तान्त लिखा है। (ऋक् १।३६, १८, १।५४।६, १।१७०।६, ४।३०।१७, ५।३१।८, ६।४५।१, ८।४।७, ८।७।१८, ८।६।१४, ८।१०।५, ६।६१।२, १०।४६।८) उक्त संहितामें 'उत त्या तुर्वं शायदू अस्नातारा शचीपतिः। इन्द्रो विद्वां अपपयत्।" (४।३०।१७) भाष्यमें सायणाचार्यने लिखा है,—"उत्यापि च अस्नातारास्नातारौ ययातिशापादनभिषिक्तौ त्या त्यौ प्रसिद्धौ तुर्वशायदू तुर्वशनामानं यदुनामकं च राजानौ शचीपतिः कर्मणां पालकः। यद्वा शचीन्द्रस्य भार्या तस्या पतिर्भर्त्ता विद्वान् सकलमपि जानन्निन्द्रोऽपारयत्। अभिषेकार्हावकारयत्।"

उक्त मन्त्रभाष्यके तात्पर्यार्थसे स्पष्ट मालूम होता है, कि महाभारतोक्त ययातिके शापसे यदुका लोप हुआ और भागवतपुराणके प्रमाणानुसार वे पुनः राज्याधिकारी हुए। यदु पहले पिताके शापसे राज्यभ्रष्ट हुए थे, पीछे शचीपति इन्द्रकी अनुकम्पासे वे पुनः राजसिंहासन पर वैठे। अतएव महाभारत और भागवतोक्त असम्बन्ध प्रयोग भ्रमात्मक नहीं है, यह वैदिक मन्त्रसे सिद्ध हुआ है। ययाति देखो।

महाभारतमें इनका विषय इस प्रकार लिखा है,— राजा ययातिकी पत्नी देवयानीके गर्भसे यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। ययातिके पुत्रोंमें यदु सवसे वड़ा था।

शुक्रके शापसे ययाति वूढ़े हो गये। उन्होंने वड़े लड़के यदुसे वुला कर कहा, 'शुक्रके शापसे मैं वूढ़ा और विलकुल दुर्वल हो गया हूं। परन्तु मैं यौवन उपभोगसे तृप्त नहीं हुआ। इसलिये तुम मेरा बुढ़ापा और सभी पाप ले लो और अपनी युवावस्था मुझे दो, जिससे मैं युवक हो कर काम्यविषयका उपभोग कर सकूं। जव हजार वर्ष पूरा हो जायगा, तव पुनः तुम्हारी युवावस्था लौटा दूंगा।' यदुने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा, 'राजन्! वुढ़ापेमें खाने पीने आदि विषयोंमें अनेक दोष देखे जाते हैं, इसलिये अपनी जवानी दे कर आपका बुढ़ापा लूं, इसे मैं अच्छा नहीं समझता। जो वूढ़े होते उनकी दाढ़ी मूंछ विलकुल सफेद हो जाती, वे निरानन्द, शिथिल, वलिविशिष्ट, संकुचित गात्रके, कुत्सित, दुर्वल और कृश होते हैं, कोई कार्य करनेकी उनमें शक्ति न रह जाती तथा उन्हें युवकों और सहचरोंका अवज्ञापात्र होना पड़ता है, ऐसी वृद्धावस्था मैं लेना नहीं चाहता; राजन्! आपके मुझसे और भी कितने प्रिय पुत्र हैं उन्हींमेंसे किसी एकको अपना बुढ़ापा लेने कहिये, मैं नहीं ले सकता।' इस पर ययातिने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर उन्हें शाप दिया, 'तुमने मेरे हृदयसे जन्म ले कर भी मुझे अपनी जवानी न दी, इस कारण तुम्हारे वंशमें कोई भी राजा न होगा।' इसी यदुवंशमें यादवोंकी उत्पत्ति हुई थी। (भारत १।८५ अ०)

द्वापरयुगके शेषमें श्रीकृष्णने इस वंशमें जन्म लिया। श्रीकृष्णने देहत्यागके पहले ब्राह्मणके शापसे इस यदुकुलको ध्वंस होते देखा था।

विशेष विवरण यदुवंश शब्दमें देखो।

२ राजा हर्य्यश्वके एक पुत्रका नाम।

(हरिवंश ९३।४४)

यदुध्र (सं० पु०) पुराणानुसार एक ऋषिका नाम।

यदुनन्दन (सं० पु०) यदुकुलके आनन्द देनेवाले, श्रीकृष्णचन्द्र।

यदुनन्दन—एक प्रसिद्ध भक्त। ये पहले एक तार्किक थे। उनकी उपाधि चूड़ामणि थी और ये शान्तिपुरके आस पासके रहनेवाले थे।

एक समय भक्तप्रवर हरिदास ठाकुर एकान्तमें वैठ कर नाम जप रहे थे, उसी समय यदुनन्दन भी वहां जा उपस्थित हुए। उन्होंने हरिदासको पागल कह कर

उपहास किया। अन्तमें जब उन्होंने उन्हें भक्त समझा तब हरिदाससे एक प्रश्न पूछा, (१) ईश्वर निराकार है या साकार? (२) सृष्टिमें विषमता होनेका क्या कारण है?
कहना फजूल होगा कि हरिदासने इसका उचित उत्तर दिया था।

इस प्रकार बातचीतके समय श्रीअद्वैतप्रभु वहां उपस्थित हुए। तर्कचूड़ामणिका गर्व चूर हो गया और वे अद्वैत प्रभुसे दीक्षित हुए।

प्रसिद्ध रघुनाथदास गोस्वामी इन्हींके शिष्य थे। रघुनाथदास देखो। उन्होंने अपनी बनाई विलापकुसुमाञ्जलीमें लिखा है—

"प्रभुरपि यदुनन्दना य एषः,
प्रिययदुनन्दन उन्नतप्रभावः।
स्वयमतुलकृपामृताभिषेकं
मम कृतवांस्तमहं गुरुं प्रपद्ये॥"

श्रीचैतन्य-चरितामृतमें लिखा है,—यदुनन्दन वासुदेवके विशेष अनुगत थे। वासुदेवदत्त देखो।

यदुनन्दन—मुहुर्त्तमञ्जरीके प्रणेता।

यदुनन्दनदास—चैतन्यभागवत, चैतन्यचरितामृत, भक्तिरत्नाकर, और नरोत्तमविलासमें पांच यदुनन्दनका परिचय मिलता है; क्रमशः उनका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखते हैं,—

१म—श्रीगौराङ्गके चरित-लेखक गदाधर पण्डितके शिष्य यदुनन्दनाचार्य। इनका वासस्थान कण्टक नगर था। चैतन्यचरितामृतमें ये अद्वैतप्रभुकी शाखा कह कर परिचित हैं। उसमें लिखा है,—"श्रीयदुनन्दनाचार्य अद्वैतकी शाखा" इनकी कौलिक उपाधि 'चक्रवर्त्ती' थी। बाद उसके पण्डिताईमें 'आचार्य'-की ख्याति हुई। इनकी स्त्रीका नाम श्रीमती लक्ष्मी था। इनकी श्रीमती और नारायणी नामकी दो कन्याएं थीं। इन दोनों कन्याओंका विवाह वीरचन्द्रसे हुआ था। ये यदुनन्दन एक सुकवि थे।

२य—झामटपुर-निवासी यदुनन्दनाचार्य। इनके बारेमें और कुछ नहीं है।

३य—कण्टक नगरमें नित्यानन्दका पार्षद। गदाधर दास ठाकुरके शिष्य एक यदुनन्दन चक्रवर्त्ती थे। इन पर उक्त गदाधरदासकी स्थापित गौराङ्गमूर्त्तिकी सेवाका भार सौंप गया था। ये भक्त-मण्डलीमें सुपरिचित तथा भक्तिरत्नाकरमें पदके रचयिता कह कर परिचित हैं।

नित्यानन्द-भक्त—इस गौरदास यदुनन्दनके बन्धु और समसामयिक थे।

४र्थ—वासुदेव दत्तके शिष्य और रघुनाथ दासके गुरु। यदुनन्दन देखो।

५म—मालिहाटीके रहनेवाले वैद्यकुलमें उत्पन्न प्रसिद्ध पदकर्त्ता यदुनन्दनदास। कण्टकनगरसे उत्तर भागीरथी नदीके पश्चिमी किनारे पर अवस्थित मालिहाटी गांवमें इनका जन्म हुआ था।

यदुनन्दन जातियोंमें अम्बष्ठ होने पर भी वैष्णव-समाजमें यदुनन्दन दास ठाकुर नामसे मशहूर थे। ये हेमलता ठाकुरानीके शिष्य थे। हेमलता ठाकुरानी बुधाई-पाड़ाके निवासी लक्ष्मीनिवासाचार्यकी दुहिता और मन्त्रशिष्या थीं। १५१६ शकाब्दमें उन्होंने कर्णानन्द रचना किया था।

यदुनाथ (सं० पु०) यदुनां नाथः। यदुवंशके स्वामी, श्रीकृष्ण।

यदुनाथ—आगम-कल्पवल्ली नामक तन्त्रके रचयिता।

यदुनाथमिश्र—निर्णयदीपिका नामक संस्कृत ग्रन्थ रचयिता। इन्होंने १८४३ ई०में उक्त ग्रन्थ समाप्त किया था।

यदुपति (सं० पु०) यदूनां पतिः। श्रीकृष्ण।

"यदुपते क्व गता मथुरापुरी रघुपतेः क्व गतोत्तरकोशला।
इति विचिन्त्य कुरुष्व मनः स्थिरं न सदिदं जगदित्यवधारय॥"
(रूपसनातनगो०)

यदुपति—वेदेशतीर्थके शिष्य। इन्होंने जयतीर्थ कृत तत्त्वविवेकटीका, तत्त्वसंख्यानविवरण और न्यायसुधा नामक तीन ग्रन्थोंकी टिप्पनी बनाई थी। अलावा इसके उनकी लिखी भागवतपुराणटीका और बल्लभाचार्य कृत मीमांसासूत्रभाष्यकी टीका मिलती है।

यदुभरत—प्रश्नावली नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता।

यदुभूप (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

यदुराई (हिं० पु०) श्रीकृष्ण।

यदुराज (सं० पु०) यदुकुलके राजा, श्रीकृष्ण।

यदुराट् (सं० पु०) यदुराज देखो।

यदुवंश (सं० पु०) राजा यदुका कुल, यदुका खानदान।

यदुवंश—यदुके पुत्रोंमें क्रोष्टु और सहस्रजित्का वंश बहुत मशहूर है। सहस्रजित्के एक पुत्र था जिसका नाम हैहय था। हैहयसे दशवीं पीढ़ीमें कार्त्तवीर्यार्जुन उत्पन्न हुए। दत्तात्रेयकी आराधनासे इन्हें वर मिला था। कुछ पुराणोंमें लिखा है, कि दत्तात्रेय विष्णुके अवतार थे। कार्त्तवीर्यने दत्तात्रेयसे अधर्म द्वारा सेवाका दूर करना, धर्म द्वारा पृथ्वीका जीतना, शत्रुसे पराजित न होना, भुवनविख्यात पुरुषके द्वारा अपनी मृत्यु और युद्धक्षेत्रमें हजार बाहुकी प्राप्ति आदिका वर पाया था। कार्त्तवीर्यने दश हजार यज्ञ किये थे, सप्तद्वीपा वसुमतीको अपने अधिकारमें कर लिया था। उनके शासनकालमें कोई भी किसीका द्रव्य नहीं चुरता और न कोई दुःखी ही था। वे धर्मसे राज्यपालन करते थे, समय लङ्काधिपति रावणने उनकी राजधानी पर चढ़ाई कर दी। इस पर कार्त्तवीर्यने क्रोधमें आ कर रावणको पशुओंके समान बांध रखा। कर्कोटकवंशी नागोंको परास्त कर इन्होंने माहिष्मती नगरीको बसाया। ८५ हजार राज्य करनेके बाद ये परशुरामके हाथसे मारे गये। कार्त्तवीर्यके सौ पुत्र थे जिनमेंसे केवल जयध्वज आदि पांच ही बच गये थे। जयध्वज अवन्तीके राजा थे उनके तालजङ्घ नामक एक पुत्र था। तालजङ्घके भी सौ पुत्र थे और वे भी तालजङ्घ हीं कहलाते थे। उनमेंसे अधिकांश सगरके हाथ मारा गया। पीछे भरत राज्याधिकारी हुए। भरतके एक पुत्र था, वृष उसका नाम था। वृषके पुत्र मधु और मधुके वृष्णि आदि सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। इसी वंशकी यदुके बाद यादवसंज्ञा हुई। इस वंशका मधुसे माधव और वृष्णिसे वृष्णि नाम पड़ा। वीतिहोत्र, सुव्रत, भोज, अवन्ति, शौण्डिकेय, तालजङ्घ, भरत और सुजात आदि इसी हैहयवंशकी शाखा हैं। यदुके दूसरे पुत्र क्रोष्टु थे। उनके दो स्त्रियां थीं, माद्री और गन्धारी। पुत्रोंमें अनमित्र, युधाजित्, देवमीढुष और वृजिनीवान ये प्रसिद्ध हैं। वृजिनीवानके वंशज शशविन्दु चौदह रत्नोंके प्रभु और चक्रवर्त्ती हुए थे। शशविन्दुको दश हजार स्त्रियां थीं और एक स्त्रीसे एक एक लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनके प्रपौत्र उशनाने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उशनाके पौत्रका नाम ज्यामघ था। ये बड़े स्त्रैण थे। इनकी स्त्रीका नाम शैब्या था। यद्यपि ज्यामघके कोई सन्तान न थी, पर स्त्रीके डरसे वे विवाह नहीं कर सकते थे। एक समय राजा ज्यामघने किसी नगर पर धावा बोल दिया। सभी नगरवासी जान ले कर भागे। एक सुन्दरी राजकन्या किसी प्रकार भाग न सकी। ज्यामघ ब्याह करनेकी इच्छासे उसे अपने घर ले आये। कन्याको देखते ही रानी शैब्या आगबबूला हो गई। इस पर ज्यामघने अपना अभिप्राय छिपा कर कहा, 'मैं इसे अपनी स्त्री बनानेके लिये नहीं लाया, वरन् पतोहू बनानेकी इच्छासे लाया हूं। उस समय भी ज्यामघके एक भी पुत्र न था। कुछ समयके बाद ज्यामघके एक पुत्र हुआ। आगे कर उसीसे वह कन्या ब्याही गई। पुत्रका नाम विदर्भ था। इसी वंशमें सात्वत उत्पन्न हुए थे। सात्वतके सात पुत्र थे, जिनमें भज्यमान, अन्धक, वृष्णि, देवावृध आदि प्रसिद्ध हैं। देवावृध और उनके पुत्र बभ्रुकी पुराणोंमें बड़ी प्रशंसा गाई है। एक श्लोक इनके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है "बभ्रु श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः" अर्थात् बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं तथा देवावृध देवोंके तुल्य हैं। इनके उपदेशसे कितने ही मनुष्योंने मोक्ष पाया था। विदर्भके एक और पुत्र था, लोमपाद उनका नाम था। अङ्गदेशका वे शासन करते थे। राजा दशरथसे इनकी गाढ़ी मित्रता थी। एक बार लोमपादके पापसे उनके राज्यमें बारह वर्ष तक अनावृष्टि रही। पीछे वेश्याओंके द्वारा लुभा कर उन्होंने ऋष्यशृङ्ग मुनिको अपने देशमें बुलाया। मुनिके आनेसे राज्यमें वृष्टि हुई। दशरथकी कन्याको लोमपादने गोद लिया था। वही कन्या मुनिको ब्याही गई सात्वतके दूसरे पुत्र महाभोज भी बड़े धर्मात्मा थे। उन्हींसे भोजवंशकी सृष्टि हुई। सुप्रसिद्ध राजा श्वफल्क इसी वंशमें हो गये हैं। जहां वे रहते थे वहां व्याधि तथा अनावृष्टिका भय नहीं रहता था। एक बार काशी राज्यमें तीन वर्ष तक

अनावृष्टि रही, इसलिये काशीराज श्वफल्कको अपनी राजधानीमें ले गये। श्वफल्कके काशी पदार्पण करते ही बड़ी वृष्टि हुई। काशीराजने कृतज्ञतास्वरूप अपनी कन्या गान्दिनीको उनसे व्याह दिया। उसी गान्दिनीके गर्भसे अक्रूरका जन्म हुआ था। प्रसेन और सत्राजितने वृष्णिके वंशमें जन्मग्रहण किया था। स्यमन्तक मणिके उपाख्यानप्रसङ्गमें इन दोनोंसे पुराणोंके वक्ता तथा श्रोतामात्र परिचित हैं। सूर्यकी उपासना करनेसे सत्राजितको स्यमन्तक मणि मिली थी। उस मणिको गलेमें पहन कर सत्राजित द्वारकापुरीमें गये। मणिको देख कर यादव चकित हो गये। श्रीकृष्णने भी कहा, 'अच्छा होता, यदि यह मणि उग्रसेनके गलेमें ही शोभायमान होती।' मणि पर सभीकी स्पृहा देख कर सत्राजितने वह मणि अपने छोटे भाई प्रसेनको दे दी। मणिमें ऐसा गुण था, कि जो कोई शुद्धता और यत्नपूर्वक उसे धारण करता उसको उस मणिसे आठ भार सुवर्ण प्रतिदिन मिलता था और राज्यके सभी विघ्न दूर होते थे। अशुद्धावस्थामें मणि धारण करनेवालेका सर्वस्व नाश हो जाता था। एक दिन प्रसेन अशुद्ध अवस्थामें ही उस मणिको धारण कर जंगल गये वहां एक सिंहके द्वारा मारे गये। प्रसेन देखो। आखिर मणि चुरानेका कलङ्क श्रीकृष्णको ही लगा। इस कलङ्कको दूर करनेके लिये श्रीकृष्ण मणि ढूंढने निकले। आखिर इक्कीस दिन युद्ध करके श्रीकृष्णने जाम्बवान्‌से वह मणि छीन ली। जाम्बवान्‌ने प्रसन्न हो कर अपनी कन्या भी श्रीकृष्णको व्याह दी। इस प्रकार श्रीकृष्णका कलङ्क दूर हुआ। सत्राजितने श्रीकृष्ण पर कलङ्क लगाया था। अतएव अपने कर्मसे लज्जित हो कर उन्होंने भी अपनी कन्या सत्यभामाका विवाह श्रीकृष्णसे कर दिया। स्यमन्तक मणि पर सत्राजित हीका अधिकार रहा। सत्यभामासे शतधन्वा, कृतवर्मा और अक्रूर विवाह करना चाहते थे। इसलिये इस अपमानका बदला लेनेके लिये शतधन्वाने सत्राजितको मार डाला और स्यमन्तक मणिको ले लिया। इस समय पाण्डवोंके जतुगृहदाहके उपलक्षमें श्रीकृष्ण वारणावत नगरमें गये थे। सत्यभामाने श्रीकृष्णके समीप जा कर अपने पिताके मारे जाने तथा मणिके अपहरणका वृत्तान्त कहा। श्रीकृष्णने शतधन्वाको मार डाला सही, पर स्यमन्तक मणि हाथ न लगी। क्योंकि, शतधन्वाने पहले ही वह मणि अक्रूरको दे दी थी। अक्रूरने मणिरक्षाका कोई उपाय न देख श्रीकृष्णको वह मणि दे दी। उस मणि पर बहुतोंकी आँखें गड़ी थी, इस कारण श्रीकृष्णने उसे अक्रूरके पास ही रहने दिया। सात्वतपुत्र अन्धकके कुकुर, भज्यमान आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे। कुकुरके वंशमें उग्रसेन तथा कंस आदिने जन्म लिया। भज्यमानके पुत्र देवमीढुष और देवमीढुषके शूर हुए। शूरकी स्त्रीका नाम मारिषा था। मारिषाके गर्भसे वसुदेव आदि दश पुत्र तथा पृथा, श्रुतदेवा आदि पांच कन्याएं उत्पन्न हुई थीं। कुन्तिभोज वसुदेवके पिता शूरके मित्र थे। कुन्तिभोजके कोई वंशधर न रहनेके कारण शूरने उन्हें अपनी कन्या पृथाको कन्यारूपमें दे दिया। इसी पृथाका नाम कुन्ती पड़ा था। कुन्ती पाण्डुको व्याही गई थी। वासुदेवकी दूसरी बहिन श्रुतदेवाका कारुष वृद्धशर्मासे हुआ था। उसके दो पुत्र थे, दन्तवक्र और महाशूर। श्रुतकीर्त्ति केकयराजको व्याही गई थी। उसके प्रतर्द्दन आदि केकय नामक पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे। राजाधिदेवीका अवन्तीराजके साथ विवाह हुआ था। उसके गर्भसे विन्दु और अनुविन्दु नामक दो पुत्रोंने जन्मग्रहण किया। श्रुतश्रवा चेदिराज दमघोषसे व्याही गई थी। जिससे शिशुपाल नामक पुत्र हुआ। युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें यही शिशुपाल श्रीकृष्णके हाथसे मारा गया था। देवकी आदि कंसकी सात बहनोंका वासुदेवसे विवाह हुआ था। श्रीकृष्ण और बलराम ये ही दो वसुदेवके पुत्र थे। रोहिणीके गर्भसे बलराम और देवकीके गर्भसे श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण किया। कंसके कारागारमें श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए थे। कृष्ण देखो। संयोगवश उसी दिन नन्दके घर एक कन्या उत्पन्न हुई थी। वसुदेव कंसके भयसे पुत्रको नन्दके यहां रख कर और उनकी कन्याको ले कर मथुराके कारागारमें चले आये। वह कन्या स्वयं योगमाया थी। कंसने योगमायाको मरवा डालनेकी इच्छासे उसे पत्थर पर पटकनेकी आज्ञा दी। पत्थर पर पटकनेके समय

योगमाया आकाशमें उड़ कर अन्तर्धान हो गई। उस समय उसने कहा,' तुम्हारा शत्रु गोकुलमें बढ़ रहा है।' तभीसे कंसने श्रीकृष्णका काम तमाम करनेकी लाखों प्रयत्न किये, पर एकमें भी सफलता प्राप्त न हुई। आखिर श्रीकृष्णके हाथ कंस मारा गया। कंसके मारे जाने पर उग्रसेन जिसे कंसने राज्यच्युत कर दिया था, राजसिंहासन पर बैठा। देवकी और वसुदेव बन्धनसे मुक्त हुए। श्रीकृष्णके सोलह हजार एक सौ स्त्रियां थीं। जिनमें सिर्फ आठ पटरानी थीं। श्रीकृष्णके आठ अयुत और आठ लक्ष पुत्र हुए। उन पुत्रोंकी वंशवृद्धिसे यदुवंशमें असंख्य मनुष्य हो गये थे। यदुवंशकी संख्या नहीं कही जा सकती। अन्तमें यदुवंशी उच्छृङ्खल हो कर ब्राह्मण शापसे दग्ध हो गये।

यदुवंशमणि (सं० पु०) श्रीकृष्णचन्द्र।

यदुवंशी (सं० पु०) यदुकुलमें उत्पन्न, यादव।

यदुवर (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

यदुवीर (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

यदूत्तम (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

यदृच्छया (सं० त्रि० क्रि०) १ अकस्मात्, अचानक। २ इत्तफाकसे, दैवसंयोगसे। ३ मनमाने तौर पर, विना किसी नियम या कारणके।

यदृच्छयाभिज्ञ (सं० पु०) कृतसाक्षाके पांच भेदोंमेंसे एक, वह साक्षी जो घटनाके समय आपसे आप या अकस्मात् आ गया हो।

यदृच्छा (सं० स्त्री०) यदृ ऋच्छ-मयूरव्यंसकादित्वात् निपातनात् सिद्धं। १ स्वेच्छाचरण, केवल इच्छाके अनुसार व्यवहार। पर्याय—स्वैरिता, स्वरिता। २ आकस्मिक संयोग, इत्तफ़ाक।

यद्देवत (सं० त्रि०) जिसका जो देवता।

यद्द्वन्द्व (सं० क्ली०) साभभेद।

यद्भविष्य (सं० पु०) १ अदृष्टवादी। २ मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली।

यद्यु वा (सं अव्य०) यदि, अगरचे।

यद्वा (सं० स्त्री०) १ बुद्धि। २ पक्षान्तर।

यद्वातद्वा (सं० अव्य०) कभी कभी।

यद्विध (सं० त्रि०) जिस प्रकार, जैसे।

यद्वृत्त (सं० क्ली०) यथावृत्त, जो घटना।

यन्त (सं० पु०) यम-तृच्। १ सारथी। २ हस्तिपक, फीलवान। (त्रि०) ३ विरतिकारक, वैरागी।

यन्तव्य (सं० त्रि०) यम-तव्य। यमनीय, दमनयोग्य।

यन्ता (सं० पु०) सारथी।

यन्ति (सं० स्त्री०) यम-क्तिच् (न क्तिचि दीर्घश्च। पा ६।४।३९) इति अनुनासिकलोपः दीर्घश्च न भवति। दमन।

यन्त्र (सं० क्ली०) यच्छत्यनेनेति यम (गधूनीयचिवचिषमिस-दिक्षदिम्य त्रः। उणा ४।११६) इति त्र। १ पात्रभेद। २ नियन्त्रण। (हेम) ३ अग्नियन्त्र, तोप या बन्दूक। ४ दारुयन्त्रादि, लकड़ीकी कल। ५ देवाद्यधिष्ठान,। (देवीभागवत ३।२६।२१)

तन्त्रमें लिखा है, कि यन्त्रमें देवताका अधिष्ठान रहता है। इसीलिये यन्त्र अङ्कित कर देवताकी पूजा-की जाती है।

भिन्न भिन्न देवताओंका यन्त्र अङ्कित कर धारण करना विधिसङ्गत है। यन्त्र कवच धारण करनेसे विघ्न बाधा दूर होती है। पूजायन्त्र साधारणतः चन्दन द्वारा अङ्कित हुआ करता है।

यन्त्र लिखनेके द्रव्यके विषयमें विषयतन्त्रमें इस तरह लिखा है—

"काश्मीररोचनाद्राक्षा-मृगेभमदचन्दनैः।
विलिखेद्धेमलेखन्या यन्त्राणि तानि देशिकः॥
भूमिस्पृष्टं शवस्पृष्टं दग्धं निर्म्माल्यसङ्गतम्।
विदीर्णं लङ्घितं मंत्री यत्रं नैव च धारियेत्॥
सौवर्णे राजते पात्रे भूर्ज्जे वा सम्यगालिखेत्।
अथवा ताम्रपात्रे वा गुटिकां कृत्य धारयेत्॥
यावजीवं सुवर्णे स्यात् रौप्ये विंशतिवार्षिकं।
भर्ज्जे द्वादशवर्षाणि तदर्द्धं ताम्रपट्टके॥"

इति यंत्रलिखनद्रव्य" (तंत्रसार)

काश्मीर या केशर, गोलोचन, अदरख, कस्तूरी और चन्दन—इन्हीं सब द्रव्योंसे सोनेकी कलमसे यन्त्र लिखना चाहिये। जो यन्त्र भूमिसे या मुर्देसे छू गया हो, निर्म्माल्यसे तय्यार हुआ हो, टूटा हो या किसीं उसे लांघ दिया हो, उस यन्त्रको न पहनना चाहिं

सोने या चांदीके पत्र पर अथवा भोजपत्र तथा ताम्रपत्र पर लिख कर उसे मोड़ माड़ कर पहनना चाहिये। सुवर्ण पर लिखा यन्त्र यावज्जीवन, चांदी पत्रका लिखा यन्त्र २० वर्ष, भोजपत्रका लिखा १२ वर्ष और ताम्रपत्रका लिखा यन्त्र ६ वर्ष तक पहना जा सकता है।

साधारणतः यन्त्र दो तरहका होता है। एक पूजा-यन्त्र, दूसरा पहननेका यन्त्र। पूजायन्त्रसे जिस देवता-को पूजा करनी होगी, उसी देवताका यन्त्र अङ्कित कर उसमें पूजा करनी पड़ती है, इस तरहके यन्त्रको पूजा-यन्त्र कहते हैं।

जो यन्त्र लिख कर पहना जाता उसका नाम पह-ननेका यन्त्र या धारणयन्त्र है, इसी धारणयन्त्रको भोज-पत्र पर लिख कर पहना जाता है। यन्त्र लिख कर उस-का यथाविधि संस्कार करना आवश्यक है। संस्कार होने पर उसको धारण करना चाहिये।

यन्त्र-संस्कारके सम्बन्धमें 'तन्त्रसार' नामक ग्रन्थमें इस तरह लिखा है,—पहले साधकको चाहिये, कि वह स्नानादि कर गुरुकी अर्चना करें। इसके बाद 'ह्रीँ' मन्त्रसे पञ्चगव्य शोधन कर "ॐ" मन्त्रसे यन्त्रको पञ्च-गव्यमें छोड़ देना चाहिये। पीछे उससे यन्त्र निकाल कर सोनेके बने पात्रमें रख पञ्चामृतसे स्नान कराना आवश्यक है। पीछे इसको दूधसे स्नान करा फिर इसको ठण्ढे पानीसे करना होगा। इसके बाद चन्दन, सुगन्धित द्रव्य, कस्तूरी, कुंकुम, दूध, दही, घी, मधु, और शक्कर—इन्हीं सब वस्तुओं द्वारा प्रत्येक बार स्नान, कराना उचित है। इसके बाद जलपूर्ण आठ सोनेके कलशों द्वारा स्नान करा कर कलशेके कषाय जल द्वारा उस यन्त्रकी स्नान-क्रिया सम्पादित होनी चाहिये।

इस तरह यन्त्रको स्नान करा उसे सोनेके पात्रमें रख कर "यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्" इस गायत्री मन्त्रसे अभिषिक्त करना आवश्यक है, कि कुशासे स्पर्श करा करा कर पुनः गायत्री मन्त्रसे १०८ बार अभिमन्त्रित करने पर उस यन्त्रमें देवताका अधिष्ठान हो जाता है। इसके बाद आत्मशुद्धि कर देवताका षड़ङ्गन्यास करना होता है और उस यन्त्र-में देवताका ध्यान और आह्वान कर उसमें देवताकी प्राण-प्रतिष्ठा कर षोड़शोपचारसे और विविध मुद्राप्रद-र्शन द्वारा इष्टदेवताकी पूजा करनी चाहिये। पीछे उस यन्त्रमें पट्टवस्त्र, आभूषण, मुद्गर, चामर, घण्टा और अन्यान्य द्रव्य यत्नपूर्वक प्रदान करना चाहिये। फिर सर्वकामनाकी सिद्धिके लिये एक हजार इष्टदेवताका मन्त्र जपना आवश्यक है। इसके उपरान्त बलि चढ़ा कर प्रणाम करना होता है। पीछे १०८ बार होम करना चाहिये। होम करते समय उस यन्त्र पर प्रत्या-हुति देना होगा। होम करनेमें अशक्त होने पर होमको संख्याका दुगना जप करना पीछे गुरुको शक्तिके अनु-सार अलंकृत गोदान दक्षिणामें देना उचित है।

तन्त्रप्रदीपमें लिखा है, कि काष्ठ पर भीत या दीवार पर यन्त्र स्थापित करनेसे उसके पुत्र, पौत्र, धान्य और आयुका विनाश होता है। अन्यान्य तन्त्रमें भी लिखा है, कि जिसको गृह, पुत्र, पौत्र, धान्य आदि पर ममता है, वह मनुष्य दीवार या काठ पर यन्त्र स्थापन न करेगा।

यन्त्र-संस्कार।

"शृणु देवि महाभागे जगत्कारिणि कौलिनी।
तस्योद्यापनकर्म्माङ्गं सर्ववर्णविनिर्णयं॥
स्नात्वा सङ्कल्पयेन्मन्त्री गुरोरर्च्चनमाचरेत्।
पञ्चगव्यं ततः कृत्वा शिवमन्त्रेण मन्त्रितम्॥
अत्र चक्रं क्षिपेन्मन्त्री प्रणवेन समाकुलम्।
तदुद्धृत्य ततश्चक्रं स्थापयेत् स्वर्णपात्रके॥
पञ्चामृतेन दुग्धेन शीतलेन जलेन च।
चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुंकुमेन च॥
पयोदधिघृतक्षौद्र-शर्कराद्यै रनुक्रमात्।
तोयरूपान्तरैः कुर्य्यात् पञ्चामृतविधिं बुधः॥
हाटकैः कलसैर्देवीमष्टाभिर्वारिपुरितैः।
कषायजलसम्पूर्णैः कारयेत् स्नानमुत्तमम्॥
स्नानं संप्राप्य तां देवीं स्थापयेत् स्वर्णपीठके।
यन्त्रराजाय विद्महे महातन्त्राय धीमहि॥
तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्॥
स्पृष्ट्वा यन्त्रं कुशाग्रेन गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्।
अष्टोत्तरशतं देवि देवताभावसिद्धये॥

आत्मशुद्धिं ततः कृत्वा षड़ङ्गं देवतां यजेत् ।
तत्रावाह्य यजेद् देवीं जीवन्यासं समाचरेत् ॥
उपचारषोड़शभिर्महामुद्रादिभिः सदा ।
फलताम्बूलनैवेद्यं देवीं तत्र समर्च्चयेत् ॥
पट्टसूत्रादिकं दद्यात् वस्त्रालङ्कारमेव च ।
मुद्गरं चामरं घंटां यथायोग्यं महेश्वरि ॥
सर्वमेतत् प्रयत्नेन दद्यादात्महिते रतः ।
ततो जपेत् सहस्रन्तु सकलेप्सितसिद्धये ॥
वलिदानं ततः कृत्वा प्रणमेचक्रराजकम् ।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा सम्पाताज्यं विनिक्षिपेत् ॥
होमकर्म्मण्यशक्तश्चेद्दि्वगुणं जपमाचरेत् ।
धेनुमेकां समानीय स्वर्णशृङ्गाद्यलङ्कृताम् ॥
गुरवे दक्षिणां दद्यात् ततो देव्या विसर्ज्जनम् ।
फले भित्तौ तथा पट्टे स्थापयेद्‌यन्त्रमीश्वरि ।
धनधान्यपुत्रपौत्र आयुश्च तस्य नश्यति ॥" (तन्त्रसार)

धारणयन्त्र ।

धारण-यन्त्रोंमें पहले भुवनेश्वरी यन्त्रका वर्णन आया है। यह यन्त्र लिखनेके लिये आठ तरफ अर्गल लिख कर उसमें आं ह्रीं क्रों ये तीन मन्त्र लिखना होगा। इसके वादके आठ कोनोंमें चार कोनोंमें नमः स्वाहा हुं फट् ये चार मन्त्र और वाकी चार कोनोंमें वौषट् मन्त्र परवर्त्ती आठ कोनोंमें आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं क्रों—ये अष्टवर्गात्मक मन्त्र और वादके आठ कोनोंमें 'कामिनी रञ्जिनी स्वाहा' यह अष्टवर्ण मन्त्रके एक-एक वर्ण इसके वादके अर्गलान्तर्गत अष्ट कोष्ठोंमें ह्लं ह्लां ह्लिं ह्लीं ह्लुं ह्लूं, ह्यं ह्यां, ह्यिं ह्यीं ह्यं ह्यां ह्यि ह्यीं ह्युं ह्यूं, ह्वं ह्वां ह्विं ह्वीं ह्वुं ह्वूं, हं हां हिं हुं हूं, ह्लें ह्लैं ह्लों ह्लौं ह्लं ह्लः, ह्यें ह्यैं ह्यों ह्यौं ह्यं ह्यः, ह्वें ह्वैं ह्वों ह्वौं ह्वं ह्वः, हें हैं हों हौं हं हः—इन्हीं सव अक्षरोंको यथाक्रमसे दो पंक्तिमें विन्यास करना होगा। इसमें पहला वर्णषट्क पूर्व ओर दूसरा वर्णषट्क अग्निकोणमें, तीसरा वर्णषट्क दक्षिण ओर चौथा वर्णषट्क नैर्ऋत कोणमें, पांचवा वर्णषट्क पश्चिम ओर छठा वर्णषट्क वायुकोणमें, सातवां वर्णषट्क उत्तर ओर और आठवां वर्णषट्क ईशान कोणमें रखना होगा। उसके वादके कोषमें ह्रां गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरो हुं फट् स्वाहा ये षोडशाक्षर मन्त्रके एक एक मन्त्र, उसके वादके अष्टदलका अष्टकेशरमें क्रमशः 'अं हंसः इं हंसः आं ईं हंसः ईं ॐ हंसः ईं हंसः ॐ ऋं हंसः ईं हंसः ईं हंसः ऋं हंसः ईं हंसः औं अं हंसः अः हंसः, ऐं ओं हंसः औं अं हंसः अः' इन सव मन्त्राक्षरों-को रखना होगा। उसके ऊपर अष्टदलमें 'आं ह्रीं क्रों' ये मन्त्र तीन पंक्तिमें लिखना होगा। पीछे सारे पद्म घेर कर 'आं क्रों' ये मन्त्र भी तीन पंक्तिमें लिखना होगा। इसके वाद अनुलोमसे पचास वर्ण द्वारा घेर कर उन सव विलोमोंमें रखे पचास वर्णोंसे घेरना होगा। इसके वाद दूसरा पद्ममुखके साथ वहिर्देशमें दूसरे पद्मके घरको घेर देना होगा। इस यंत्रसे साधकका महा कल्याण होता है।

त्वरिता धारणयन्त्र ।

इस मन्त्रके लिखनेके लिये आठ पंखड़ियोंका एक कमल अङ्कित करना चाहिये। उसकी कर्णिकामें एक प्रणवका विन्यास करना होता है। इस प्रणवमें 'हूं' इस मन्त्रको लिख कर वीचमें नाम अर्थात् 'हुं अमुक' वसमानय' लिखना उचित है। पीछे अष्टदलोंमें अष्टाक्षर मन्त्रके अष्टवर्ण, इसके वाद शक्ति अर्थात् 'क्रीं' इस मन्त्र द्वारा तीन पंक्तिमें घेर देना होगा। यह मन्त्र कमलके ऊपर ही रहेगा और इसके मुख पर भी एक कमल अङ्कित होगा। यह यन्त्र वशीकरण ग्रहादि भय-नाशक और लक्ष्मी तथा कान्तिका देनेवाला है।

नवदुर्गाका धारणयन्त्र ।

पहले वारह पंखडियोंका एक कमल लिख कर उनमें प्रणव और "ह्रीं हुं" और वीचमें नाम और वारहों पंखडियोंमें "महिषमर्द्दिनी स्वाहा" इस मन्त्रके दो दो विन्यास करना चाहिये और सभी पत्तों पर "ॐ उत्तिष्ठ पुरुषिकिस्वपिषो भयंमें समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा" इस मन्त्रके तीन तीन अक्षरोंका विन्यास करना आवश्यक है, अन्तमें जो वर्ण वाकी वचें अन्तिम दलमें लिखा जायेगा।

मातृका वर्णसे उसके चारों ओर घेर कर उसके वाद दो 'भूपूर' लिखना होगा। यह यन्त्र धारण करनेसे सव सम्पद लाभ होगा तथा भूतोपद्रव भी शान्त होगा। जो राजा राजभ्रष्ट हो गये हों उनको चाहिये, कि वे इस

यन्त्रको धारण करें। ऐसा करनेसे वे राजा राजश्री सम्पन्न हो जायंगे। यह यन्त्र सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

लक्ष्मीयन्त्र।

पहले बारह पंखडियोंको अङ्कित कर उसमें प्रणव फिर बारहों पंखडियोंके किञ्जल्कमें "श्रीं ह्रीं क्लीं" इन तीन मन्त्रके दो दो करके वर्ण इसके ऊपर बारह पंखडियोंके बारह किञ्जल्कोंमें "ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्ष्रौं जगत् प्रसूत्यै नमः" इस द्वादश अक्षरके मन्त्रके द्वादश वर्ण यथाक्रम विन्यास करना उचित है। इसके बहिर्भागमें सोलह पंखडियोंके कमलके सोलह पराग या केसरमें दो दो प्रथम बत्तीस पत्तों पर सोलह स्वर्णवर्ण लिखना होगा। पीछे लक्ष्मीके दो मन्त्रों और वषट् अन्त त्वरिता मन्त्रसे इस यन्त्रको घेर कर भूपुरद्वयके प्रत्येक कोनेमें व्यञ्जनवर्णके अवशिष्ट अन्तिम वर्णद्वय इसका विन्यास करना चाहिये। इस लक्ष्मीयन्त्र धारण करनेसे सब तरहके ऐश्वर्य्य लाभ और सब तरहके दुःखोंका विनाश होता है।

त्रिपुरभैरवीयंत्र।

नवयोनिके बीचसे आरम्भ कर "हसरैं हस कलरीं हसरौं" इस त्रिकूटमन्त्रका एक कूट लिखना चाहिये। इस तरह तीन बार मन्त्र लिख कर अष्टदलके प्रत्येक दलमे गायत्रीके तीन तीन वर्ण लिख कर उसे पचास वर्णोंसे घेर देना उचित है। पीछे भूपुरद्वय द्वारा उसको घेर कर इस भूपुरके प्रत्येकका विन्यास और कोनेमें कामबीज लिखना चाहिये। इस यन्त्रके धारण करनेसे त्रिभुवनके लोग विक्षुब्ध तथा लक्ष्मी प्राप्त होगी।

त्रिपुरायन्त्र।

ऊदुर्ध्वमुखी त्रिकोण पर अधोमुखी त्रिकोण अङ्कित कर उसमें 'क्लीं' इस बीजमें ह्रीं बीज लिखना होगा। इसके बाद छः कोणोंमें 'ऐं' बीज लिख दो त्रिकोणोंके सन्धिस्थलमें हूं यह बीज, पीछे उसे 'स्त्रीं' बीजसे घेर देना आवश्यक है। इस यन्त्रके धारण करनेसे सौन्दर्य्य और सम्पत्ति प्राप्त होता है।

श्रीविद्यायंत्र।

रेफ् और इकारके बीच देवीका नाम लिख उसके सामने द्वितीयान्त साध्य नाम लिखना चाहिये। उसके ऊपर मन्त्र लिख यह श्रीचक्रके बाहर मातृका वर्णावलीसे घेर देना होता है। पीछे पूजाके समय यथाविधि संस्कार कर यन्त्रसे छुआ कर एक सौ आठ बार मन्त्र जप करना चाहिये। यह यन्त्र सोने या चांदीके पात्रमें रख हाथमें बांधनसे जगत् वशीभूत होता है। हृदयमें धारण करनेसे कामिनीको हृदयवल्लभ, कण्ठमें धारण करनेसे धनलाभ, कपालमें बांधनेसे स्तम्भन और शिखामें बांधनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

गणेशयन्त्र।

पहले तो ऊद्र्ध्वमुखी त्रिकोण बना कर उसके ऊपर अधोमुखी त्रिकोण बनाना होगा। इन छः कोनोंके बीचके प्रणवमें 'गं' गणेशबीज लिख इसके चारों ओर श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं यह मन्त्र लिखना होगा। इसके बाद उसके बाहरके छः कोष्ठोंमें ओं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं ये छः बीज पीछे छः जोड़ों पर 'नमः स्वाहा वषट्, हुं वौषट् फट्' ये छः अङ्गमन्त्र लिखना। पीछे कमलके आठों पंखडियोंमें तीन तीन मन्त्रवर्ण लिख बाकी वर्ण अन्तकी पंखड़ियोंमें लिखना होगा। गणप १, तये व २, रद्द व ३, रसद ४, वर्जनं ५, मे वस ६, मानय ७ स्वाहा ८, इस तरह विभाग कर आठ पंखडियोंमें लिखना चाहिये। पीछे उसे एक पंक्ति अनुलोम वर्ण द्वारा घेर कर उसके बाहर आं क्रों इन वर्णों द्वारा घेर देना होगा। यह यन्त्र फिरसे भूपुर द्वारा घेर देना चाहिये। इस यन्त्रके प्रयोग सब तरहकी सम्पत्तिकी प्राप्ति होगी।

श्रीरामयंत्र।

बीचमें प्रणव लिख कर छः कोणोंमें 'रामाय नमः' इसके बाद छहों जोड़ों पर नमः, स्वाहा, वषट् हुं वौषट्, फट्, इस षड़ङ्गमन्त्रको लिख कोण और गण्डमें ह्रीं क्लीं यह मन्त्र लिखना चाहिये। इसके बाद किञ्जल्कमें दो दो स्वरवर्ण लिख अष्टदल कमलको पत्तों पर मालामन्त्र लिखना चाहिये। अन्तिम पत्ते पर इस मालामन्त्रके अन्तके पांच वर्ण लिखना आवश्यक है। अन्यान्य पत्तों पर छै छै करके वर्णविन्यास करना चाहिये। इसके बाद दशाक्षर मन्त्र द्वारा उसे घेर कर पीछे मातृका वर्णोंसे घेरना होता है। उसके बाहर भूपुर लिख उसके चारों

और 'क्ष्रौं' इस नृसिंहमन्त्र और चारों कोनों पर 'हुं' यह वराहमन्त्र लिखना। इस यन्त्रके धारण करनेसे सब-सम्पद् लाभ होता है।

नृसिंहयन्त्र।

बीचमें बीज और साध्य नामादि लिख आठ पंख-ड़ियोंमें,—

"उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखं।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युं मृत्युं नमाम्यहम्॥"

इस मन्त्रका चार चार वर्णविन्यास करना चाहिये। उसके चारों ओरसे मातृकावर्ण द्वारा घेर कर उसके बाहर भूपुर लिख हरेक कोणमें 'क्ष्रौं' यह मन्त्र लिखना। इसके बांध रखनेसे क्षुद्रविष, ग्रहदोष, शत्रुध्वंश और लक्ष्मी प्राप्त होती है।

गोपालयंत्र।

'ग्लौं' इस पिण्डको मन्त्र 'क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' से घेर देना होता है। इसके बाद ऊद्‌ध्वमुख त्रिकोण पर अधोमुखी त्रिकोण खींच कर इन छः कोणों पर "क्लीं कृष्णाय स्वाहा" यह मन्त्र एक एक करके लिख इसके बाहर दश दलका कमल अङ्कित कर "गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा" यह दशार्ण मन्त्र उन दश दलों पर लिखना चाहिये। इन दश दलोंके प्रत्येक जोड़ पर 'क्लीं' यह कामबीज लिखना उचित है, इसके बाद सोलह दल-का कमल अङ्कित कर सोलह किञ्जल्कमें सोलह स्वर विन्यास कर सोलह पत्रों पर 'ॐ नमोः कृष्णाय देवकी-पुत्राय हुं फट् स्वाहा' यह सोलह अक्षरका मन्त्र लिखना होगा। इसके बाहर बत्तीस दल लिख उसके केशरमें व्यञ्जन वर्ण और अनुष्टुप् मन्त्रका एक एक वर्ण दलमें विन्यस्त करना होगा। अनुष्टुप् मन्त्र यथा,—"ग्लौं क्लीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे श्यामलाय गोपी-जनवल्लभाय स्वाहा।" पीछे यही मन्त्र 'ओं क्रों' इस मन्त्रसे घेर कर भूपुर विन्यास कर 'क्लीं कृष्णाय गोवि-न्दाय' यह अष्टाक्षरमन्त्र उसमें लिखना चाहिये। इस यन्त्रके धारण करनेसे सब विपदोंका नाश और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है।

कृष्णयंत्र।

पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिणमें दो दो चार रेखायें अङ्कित करनी होगी। चार कोणों पर चार रेखायें खींच कर उसके मध्यमें और अन्तमें दो वलय लिखना चाहिये। इसमें,—

"तं शुकादेव देवेतं तं वेदे वरतोवतम्।
तां वतो रुढतो ख्यातं तं ख्यातो देवकीसुतम्॥"

इस अनुष्टुप् मन्त्र पद्मबन्ध रीतिके अनुसार लिख कर अष्टकोण विवरमें 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय' यह अष्ट वर्ण लिखना होगा। इस यन्त्रके बाहर "ॐ नमो भग-वते वासुदेवाय" इस द्वादश अक्षरके मन्त्रसे घेर देना चाहिये। इस यंत्रसे सब कामनायें पूर्ण होती हैं। पलाश-के पत्ते पर लिख कर इस यंत्रको गोशालामें रख दें, तो गोधनकी वृद्धि होती है।

शिवयंत्र।

पहले छः कोणोंका मण्डल लिख उसमें 'ह्रौं' यह प्रसाद बीज और बीचमें साध्य नाम लिखना आवश्यक है। पीछे छः कोणोंमें 'ॐ नमः शिवाय' इस छः अक्षर मंत्रके एक एक लिख इन आठ कोणविवरोंमें 'नमः स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् ॐ फट्' यह षड़ङ्ग मंत्र लिखना होगा। इसके बाहर पञ्चदल पद्म लिख एक-एक दलमें "ॐ ईशानाय नमः ॐ तत्पुरुषाय नमः ॐ अघोराय नमः ॐ सद्यो-जाताय नमः, ॐ वामदेवाय नमः" ये पांच मंत्र पूर्वादि-क्रमसे लिखना चाहिये। इसके बाहर अष्टदल कमल अङ्कित कर उसके प्रत्येक दलमें मातृकावर्णके अष्टवर्गका एक एक वर्ग लिखना चाहिये। इसके बाद त्र्यम्बकं मंत्र द्वारा इस यंत्रको घेर देना होगा। मन्त्र यथा,—"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं उर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्" इस यंत्रको बांधनेसे आयु आरोग्य और ऐश्वर्यलाभ होता है।

मृत्युञ्जययन्त्र।

पहले मध्यस्थलमें प्रणव, प्रणवके बीच साध्याक्षर लिख अष्टदल पद्मके प्रत्येक दलमें जुं, जूं एवं कोण दलमें सः, यह मंत्र लिख पीछे भूपुर अङ्कित कर इसके चारो ओर 'सं' और चारो कोणोंमें 'ठं' यह वर्ण विन्यास करना होगा। यह यंत्र बांधनेसे सारे भय भाग जाते हैं। ग्रहपीड़ा और भूतभय, अपमृत्युभय, व्याधिभय आदि की कोई शङ्का नहीं रहती।

कालीयंत्र।

पहले त्रिकोण आदिमें वीज और साध्याक्षर लिख इसके वाहर अष्ट कोणोंमें आदि वीज लिखना होगा। इसके वाहर त्रिकोण द्वन्द्वमें छः आदि वीज एवं इसके वहिर्भागमें दो स्वरवर्णका विन्यास कर अष्टदलमें स्वाहाके साथ बीजषट्क लिखना होगा। इसके वाद इसको दो पंक्ति कुर्चवीजसे घेर कर इसके वाहर दो भूपुर लिखना होगा। इस भूपुरके चारो ओर आद्यवीज और चतुस्कोणमें मायावीजद्वय लिखना चाहिये। इस यन्त्रके धारण करने पर साधक जगत्पूज्य होता है।

तारायंत्र।

दोनों त्रिकोणोंमें सुवर्णशलाकासे सोनेका पट्ट रौप्यफलक या भोजपत्र आदिमें कुंकुम गोलोचन, रक्तचन्दन, जटामांसी आदि द्रव्य समान भागसे ले कर पंक्ति क्रमसे मूलयन्त्रके होलेखा और रैफके वीचमें अमुकके अमुक रक्षा करो, अमुकीके उत्तम पुत्र उत्पादन कर दो, अमुकको ज्ञानवान् वनाओ—इत्यादि साध्य विषय लिख षट्कोणोंमें आ, ई ऊ, ऐ, औ, अः—यही छः दीर्घस्वर विन्यास करना होगा। पीछे अष्टदलोंमें ऐं हीं, ऊं एँ हूं फट् स्वाहा—यही अष्ट वर्णको लिखना चाहिये इसके वाह्य भागमें भूपुरद्वय लिख उसके अष्ट कोणोंमें चन्द्रविन्यास करना होगा। सोनेके कलमके अभावमें दुर्वाकान्त या कुशाको जड़से यन्त्रको लिखा जा सकता है। यह यन्त्र पीत (पीला) वस्त्र और जतु द्वारा घेर कर रक्तसूत्र द्वारा वन्धन कर शिशुओंको कण्ठ, रमणियोंके वायें हाथमें, और पुरुषोंके दाहने हाथमें धारण करना चाहिये। इस यन्त्रके पहनेसे वन्ध्या पुत्र लाभ करती है। निर्धन व्यक्ति धनवान् होता है। पहले गौतम आदि ऋषि लोगोंने ज्ञानलाभके लिये और विजयाभिलाषो राजोंने विजयके लिये यह यन्त्र धारण किया था।

तंत्रसार।

जिन सव यन्त्रोंकी वात ऊपर लिखी गई वे सव धारण या शरीरके किसी हिस्सेमें वांधने योग्य हैं। यह सभी यन्त्र भोजपत्र पर लिखे जांय और पहले कहे हुए नियमके अनुसार शुद्ध या संस्कार कर इनका प्रयोग करना चाहिये। संस्कार न कर यन्त्र वांधनेसे उसका कुछ फल नही होता।

सिवा इसके जो यन्त्र लिख कर पूजाकी जाती है, उसे पूजायन्त्र कहते हैं। धारणयन्त्रके साथ पूजा यन्त्रका किसी किसी स्थलमें अलग कभी दिखाई देता है। इस पूजायन्त्रका विषय तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा गया है,—

श्रीविद्यायंत्र।

एक त्रिकोण अङ्कित कर, उसमें विन्दु और उसके वाहर आठ कोण वनाना होगा। इसका नाम संहारचक्र है। इसके वाहर दश कोणद्वय और इसके वाहर चौदह कोण अङ्कित करना चाहिये। इसका नाम स्थिति चक्र है। इसके वाहर अष्टदल और इसके वाहर सोलह दलका पद्म अङ्कित कर उसके वाहर भूपण स्वरूप वृत्तद्वय अङ्कित किया जायगा। उसके वाहर सृष्टिचक्रात्मक चार द्वार अङ्कित करना होगा। यह यन्त्र सिन्दुर या कुंकुमादिसे लिखा जाता है अथवा यह यन्त्र सुवर्ण चांदी, पञ्चरत्न अथवा स्फटिक द्वारा उत्कीर्ण-कर तय्यार करना चाहिये।

'क्रोक्रमोंमें लिखा है, कि जो मनुष्य समरेखा न खींच कर यह यन्त्र तय्यार करता है, उसका सर्वस्व विनष्ट होता है। जहां जिस देवताकी स्थिति निर्दिष्ट है, वहां उसी देवताकी अर्च्चना न करनेसे साधकके मांस और रक्तसे उस देवताका पारणा होता है। इस यन्त्रमें पशुकी दृष्टि न लगनी चाहिये। सतर्क हो कर यह यन्त्र अङ्कित करना चाहिये। यदि दैवात् कोई मनुष्य पशुके सामने ही यन्त्र अङ्कित करे, तो इससे वह अङ्गहीन हो जाता है।

'भूतभैरव'-में लिखा है, कि इन यन्त्रोंको लिखते समय कमलका केशर न देना चाहिये। यदि कोई ऐसा करता है, तो उसे भैरव योगिनियोंके साथ उसकी हत्या कर देते हैं। हां, यह भी ध्यान रखने योग्य है, कि यह यन्त्र रातको कदापि लिखा न जाये।

अपराजिता, करवी अथवा जूहीके पुष्पमें देवीका वास रहता है, अतएव इस यन्त्रकी उसके फूलसे भी पूजा हो

सकती है। एक हाथके अन्दाजमें यह यन्त्र अङ्कित किया जाता है।

रत्न आदिसे भी यह यन्त्र तैयार किया जाता है। रत्न आदिसे तय्यार करनेमें इच्छानुसार एक, दो या चार तोले रत्न ले कर यन्त्र तय्यार करना होता है। इससे अधिक होनेसे साधकको प्रायश्चित्त करना पड़ता है। भूमिमें यंत्र अङ्कित कर लाल गुटिकासे यंत्र पुरित कर अर्चना करनेसे साधकके सर्व प्रकारकी विघ्नवाधायें दूर होती है। सोना, चांदी और तांवाको त्रिलोह कहते हैं। दश भाग सोना, वारह भाग तांवा और सोलह भाग चांदी मिला कर उससे यन्त्र तय्यार कर देवीकी अर्च्चना करने पर साधकके सौभाग्यलाभ और शीघ्र ही अणिमादि ऐश्वर्य लाभ होता है।

प्रवाल, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, स्फटिक अथवा मरकत मणिसे यंत्र अङ्कित कर पूजा करनेसे धन, पुत्र, दारा और यशलाभ होता है। तांवेके पत्र पर यंत्र तय्यार कर पूजा करनेसे कान्तिवृद्धि, सोनेके पत्र पर यंत्र तय्यार करनेसे शत्रुनाश, चांदीके पत्र पर करनेसे मङ्गल और स्फटिक पर यंत्र खुदवानेसे सव कार्योंकी सिद्धि होती है। सव पूजायंत्रोंका यही नियम है।

श्यामापूजायंत्र।

पहले विन्दु इसके वाद अपने वीज 'क्रीं' इसके बाद भुवनेश्वरी वीज 'ह्रीं' लिख कर इसके वाहर त्रिकोण अङ्कित करनेकी विधि है। उसमें वाहर त्रिकोण चतुष्टय अङ्कित कर वृत्त, अष्टदल पद्म, फिर वृत्त अङ्कित कर उसके वाहर चार द्वार वनाना होगा।

यन्त्र लिखनेके वाद पात्रके सम्वन्धमें मुण्डमालायंत्रमें इस तरह लिखा है, कि तांवेके पात्रमें, मनुष्यके कपालास्थित अर्थात् श्मशानकी लकड़ी पर शनि और मङ्गलवारको मृत मनुष्यके शरीरमें सोनेके पात्रमें, चांदीके पात्रमें, लौहपात्रमें विधानानुसार यंत्र तय्यार करना चाहिये। इस यंत्रका प्रकारान्तर पहले ६ कोण अङ्कित कर उसके वाहर तीन त्रिकोण और उसके वाहर वृक्ष अष्टदल कमल और चतुर्द्वार लिख कर यंत्र तय्यार करना उचित है।

वगलामुखीका पूजायन्त्र।

पहले त्रिकोण और उसके वाहर छः कोण अङ्कित कर वृत्त और अष्टदल पद्म अङ्कित करना होता है उसके वाहर भूपुर अङ्कित कर यन्त्र तय्यार करना चाहिये।

(तन्त्रसार)

इसी प्रणालीसे धारणयन्त्र और पूजायंत्र तय्यार करना चाहिये।

नवग्रहके भी यंत्र कवचकी व्यवस्था देखी जाती है। रवि आदि ग्रहोंके प्रकुपित होने पर यंत्र कवचादि वांधनेसे उनकी शांति होती है।

३ वैद्यक शास्त्रोक्त औषधपाक और अस्त्रप्रयोग आदिके लिये नाना प्रकारके यंत्र हैं। संक्षेपमें उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

आयुर्वेदीय यंत्र।

सुश्रुतमें लिखा है,—यंत्र सव मिल १०१ हैं। इसमें हाथ ही प्रधानतम यंत्र है। क्योंकि हाथके विना किसी यंत्रका प्रयोग नहीं किया जा सकता। अतएव हाथ सव तरहके यंत्रोंके कामका अवलम्वन है। मन और शरीरके क्लेशजनक कांटेको निकालनेके लिये ही यंत्रकी आवश्यकता है।

ये सव यंत्र छः भागोंमें विभक्त हैं। यथा,—स्वस्तिक यंत्र, सन्दंशयंत्र, तालयंत्र, नाड़ीयंत्र, शलाकायंत्र और उपयंत्र।

पूर्वोक्त ६ प्रकारके यन्त्रोंमें स्वस्तिकयन्त्र २४ प्रकारका है। सन्दंश (सँडासी) यन्त्र दो तरहका, तालयन्त्र दो, नाड़ीयन्त्र २०, शलाकायन्त्र २८ और उपयन्त्र २५ प्रकारका है। ये सव यन्त्र लौह द्वारा ही तय्यार होने चाहिये। किंतु लौहके अभावमें दृढ़दन्त तथा शृङ्ग आदि द्वारा भी तय्यार किया जा सकता है। सव यन्त्रोंके मुखका आकार व्याघ्रादि हिंस्रजन्तुओंके मुखके आकारका होना चाहिये या मृग पक्षीके मुखका आकार करना चाहिये। अथवा शास्त्रके मतसे गुरुके आदेशानुसार अन्ययन्त्र सामने रखे। या युक्तिपूर्वक तय्यार किया जा सकता है।

यंत्रतय्यार करनेका विधि।

सव यन्त्र इस प्रकारसे तय्यार करने होंगे, जिससे

ये उपर्युक्त प्रकारके हों (अत्यंत छोटे या अत्यन्त बड़े) न होने चाहिये। यंत्र इस तरहसे निर्म्माण करना चाहिये, जिससे ये देखनेमें सुन्दर, तीक्ष्ण, चिक्कण मुख-युक्त, विशेष कठिन सुग्राही हों, अर्थात् सहज हीमें पकड़ जा सकें।

स्वस्तिकयन्त्र।

स्वास्तक यंत्र १८ उंगली लम्बा बनाना होता है। २४ तरहके स्वस्तिक यंत्रोंके मुख सिंह, व्याघ्र, वृक, तरक्षु, भालु, चीता, बिड़ाल, सियार, हरिण, और तर्व्वा-रुक—इन दश तरहके पशुओंके मुखके आकार और कौआ, कङ्क, टिटहरी, चास, भास, शशघाती, उल्लू, चिल्ली, श्येन, गृध्र, क्रौञ्च, भृङ्गराज, अञ्जलि कर्णावभञ्जन, और नन्दिमुख, इन १४ तरहके पक्षियोंके मुखके आकार-यंत्र तय्यार करने चाहिये। ये २४ प्रकारके यंत्र हैं लौह खण्डों द्वारा तैयार करना चाहिये। ये लौहखण्डद्वय एक किलसे बंधे रहते हैं। इस खिलके दोनों मुख मसूर-दालकी तरह चौड़े बने रहते हैं। इसकी जड़ अर्थात् पकड़नेको जगह अंकुशकी तरह टेढ़ा होता है। हाथमें बाण या कण्टकादि कोई प्रकाश्य कांटा गड़ जाने पर उसके निकालनेके लिये इस स्वस्तिक यंत्रकी आवश्यकता होती है।

सन्दंशयंत्र।

सन्दंशयंत्र भी दो तरहका होता है। १ बढ़ई या लुहारकी संडसीकी तरह, इसमें कील रहती है। इसको सन्दंश-यंत्र कहते हैं। सनिग्रह कहते हैं। दूसरे प्रकार-के यंत्रमें कील नहीं रहती, यह हजामके भोचनेकी तरह होता है। इन दोनों तरहके यंत्रोंको अनिग्रहयंत्र कहते है। ये १६ उंगल लम्बे होने चाहिये। चमड़ेमें, मांसमें, शिराओंमें तथा नाड़ियोंमें धसे हुए कांटोंके निकालनेके लिये यंत्र व्यवहृत किये जाते हैं।

तालयंत्र।

तालयंत्र भी दो तरहका होता है। यह १२ उंगल लम्बा तय्यार करना होता है। दो तरहके तालयंत्रोंमें एक मत्स्यताल अर्थात् शल्कको तरह पतला, टेढ़ा और एक मुखवाला होता है। दूसरा यंत्र दोमुखा होता है। कान, नाकसे मैल गिरानेके लिये इस यंत्रकी आवश्य-कता होती है।

नाड़ीयंत्र।

नाड़ीयंत्रसे बहुत तरहके काम होते हैं। इससे यह कई तरहके आकारके बनाये जाते हैं। मुंहके भेद-से यह यंत्र दो तरहके बनते हैं। एकका मुख एक ओर, दूसरेका मुख दोनों ओर इन यंत्रोंमें छिद्र रहते हैं। देहके स्रोतोंसे कांटे आदि निकालनेके लिये शरीरके फोड़े और ववाशिर आदि रोगकी परीक्षाके लिये, अस्थिमें समाई हुई वायु, दूषित रक्त, स्तन्य आदिसे दूह कर दूध निकालनेके लिये, देहके भीतरके चीरफाड़ करने-वाले रोगोंको अस्त्रचिकित्साके सहायतार्थ और देहकी भीतरी फोड़ोंके लिये दवा प्रयोग करनेकी सुविधाके लिये नाड़ी-यंत्रोंका व्यवहार किया जाता है। ये यंत्र शिरा, धमनी, मलद्वार और मूत्र द्वारा देहगत स्रोत-समूहमें उत्पन्न हुए रोगोंमें प्रयोग किये जाते हैं इससे उन स्रोतोंकी आकृतिके परिमाणके अनुसार इन यंत्रों-की लम्बाई और मोटाईका निर्णय कर यथासाध्य युक्ति-से यंत्र तय्यार करने चाहिये।

इन सब नाड़ियंत्रोंमें भगन्दर-यंत्र दो तरहके हैं। एक, एक छिद्रवाला, दूसरा दो छिद्रवाला होता है। व्रण या फोड़ेका यंत्र एक ही तरहका होता है। वस्तिक यंत्र चार प्रकारका है - उत्तर वस्तियंत्र पुरुष और स्त्रीके भेदसे तीन तरहका होता है। मूत्रवृद्धियंत्र १, दको-दरयंत्र २, धूमयंत्र ३, निरुद्धप्रकाशयंत्र १, सन्निरुद्ध गुदयंत्र १, अलाबूयंत्र १, कुल २० प्रकारके हैं।

शलाका यंत्र।

शलाकायन्त्रसे बहुत तरहके कार्य्य सम्पादित होते है, इससे ये नाना आकारके तय्यार किये जाते हैं। ये कार्य्यभेदसे मोटे लम्बे बनाये जाते हैं। ये यन्त्र कार्य्य विशेषसे भिन्न रूपसे १, २, ३ या इससे अधिक संख्या-में तय्यार किये जाते हैं। शलाकायन्त्र कुल २८ तरह-के होते हैं। उनमें गण्डुपद या केंचुआके मुखकी तरह-के दो होते हैं। शरपुङ्खमुखाकृति २, सर्पफण मुखा-कृति २ और वडिशमुखाकृति २ प्रकार—इन आठ प्रकारके यन्त्रोंमें केचुएको आकृतिके दो एषण कार्य्यमें

अर्थात् व्रणादिकी शोषनाली खोजनेमें व्यवहृत होती है। शरपुंखमुखाकृतिके २ व्यूहन कार्य्यमें अर्थात् व्रण आदिके मध्यगत किसी अंशको काट कर मांस निकालनेके लिये, सर्पफणामुखाकृति दो, चालन कार्य्यमें अर्थात् आघात हेतु स्थानान्तरित अस्थिको हटा कर यथास्थान नियोजनके लिये और बडिशमुखाकृति दो, शरीरसे कांटे आदि निकालनेके लिये प्रयुक्त हुआ करते हैं। कांटा बाहर करनेके लिये दो तरहका शलाका-यन्त्र व्यवहृत हुआ करता है। इन यन्त्रोंका आधा खण्ड मसूरकी दालके बराबर तथा वक्र मुंहका होता है।

फोड़ेको साफ करनेके लिये छः तरहके यन्त्र प्रयुक्त होते हैं। इन यंत्रोंके मुंहमें या अग्रभागमें रुई जुड़ी रहती है, इसीलिये इसे तुली कहते हैं। फोड़ेमें क्षार और औषध प्रयोग करनेके लिये तीन तरहके यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। इनके मुखकी गठन थैलीकी तरह नीची है। व्रण आदि जलानेके लिये छः तरहके यन्त्र प्रयुक्त होते हैं। उनमें तीन तरहके मुख काली जामुनकी तरह और तीन अंकुशकी तरह टेढ़े मुखकी आकृति वाले होते हैं। नाक आदिके भीतरका घाव छेदनेके लिये एक तरहकी शलाकाका प्रयोग होता है। इसके मुखका आकार बेरकी गुठलीके शस्यके आधे खण्डको तरह होता है और मुखका अग्रभाग थैलीको तरह नीचा और मुंहके दोनों ओर धार रहती है।

नयनोंमें अञ्जन या सुरमा लगानेके लिये भी एक तरहकी शलाकाकी जरूरत होती है। इस शलाका यंत्रका आकार उड़दके दानेकी तरह मोटा और इसके दोनों ओर पुष्पके मुकुलकी तरह दो मुख होते हैं। मूत्रमार्ग या पेशाबके रास्ते अथवा योनिद्वारको साफ करनेके लिये या पेशाब करानेके लिये भी एक तरहको शलाका (यंत्र)-का व्यवहार होता है। इसके मुखका अग्रभाग मालती पुष्पकी डण्टीकी तरह मोटा और गोलाकार होता है।

उपयंत्र।

रस्सी, वेणिका यानी गुथा हुआ केश, पाट, चर्म, छाल, लता, वस्त्र, अष्ठीलाश्म (लम्बा गोल पत्थर-विशेष) मुद्गर, हस्ततल, पदतल, अंगुलि, जिह्वा, दन्त, नख, मुंह, केश, लगाम, वृक्षकी शाखा, प्रवाहण, हर्ष, अयस्कान्त, क्षार, अग्नि और औषध, ये पचीस उपयंत्र निर्दिष्ट हैं। इन उपयन्त्रोंका शरीरमें देहके सब अवयवोंके जोड़ोंमें, कोठोंमें और धमनीमें आवश्यकतानुसार सावधानीसे प्रयोग होता है।

यंत्रके कार्यकी प्रयोजनीयता।

यंत्र-कार्य्य २४ प्रकारके हैं। निर्घातन अर्थात् इधर उधर मञ्चालनपूर्वक बहिष्करण, पूरण (व्रणमें पिचकारी द्वारा तैल आदि प्रेरणा), बन्धन, व्यूहन अर्थात् व्रण यानी फोड़ोंमें घुसा कर फोड़ेके कुछ अंशका निकालना, वर्त्तन चालन (शल्यादि स्थानान्तरित या कांटेको इधर उधर करना), विवर्त्तन, विकृतकरण, पीड़न (उंगलियोंसे दबा कर पीब निकालना, मार्ग विशोधन, विकर्षण (मांसमें गड़े हुए कांटोंका निकालना), आहरण (खींच कर बाहर लाना), आंछन (जरा मुंह पर लाना), उन्नमन, अधःस्थित शिरः कर्णादिको ऊपर उठाना, विनमन, भञ्जन, उन्मथन, प्रविष्ट शल्य या घुसा हुआ कांटा पथमें शलाका द्वारा आलोड़न, आचुषण, मुखसे बिगड़े हुए खूनको स्तनसे खींचना, एषण, चीरना, धोना, ऋजुकरण, प्रधमन, नाकमें नस्य आदि का प्रयोग और प्रमार्जन आदि इन्हीं सब कार्योंमें यंत्रोंकी आवश्यकता होती है।

इसका कुछ ठिकाना न था, कि देहमें कितने प्रकारके शल्य अर्थात् बाधाजनक कार्य उपस्थित हो सकते हैं। अतएव बुद्धिमान् चिकित्सक स्नान और कर्म्मानुसार सूक्ष्म विवेचना कर यंत्रक्रियाकी कल्पना करें।

यन्त्रका दोष।

यंत्रके १२ दोष हैं,—बहुत मोटा, असार अर्थात् अशोधित लौहादि निर्मित, बहुत लम्बा, बहुत छोटा, अग्राही, विषयग्राही, (धरनेकी असुविधा जिस यन्त्रमें न हो), टेढ़ा, शिथिल, अत्युन्नत, मृदुकीलक, (हल्का खिलका) मृदु नख और मृदुपार्श्व आदि ये यंत्रके कई कई दोष हैं। उक्त सब दोषोंसे रहित १८ उंगलियोंका यंत्र उत्तम है। अतएव चिकित्सकोंको चाहिये, कि वे

उक्त दोषोंका ध्यान रख यन्त्रादि निर्माण करा कर प्रयोग करें।

दृश्यादृश्य कांटेका निकालना।

शरीरमें धसा हुआ दृश्य शल्य अर्थात् जो कांटे शरीरमें गड़ जान पर भी दिखाई देते हैं, वे सिंह मुंह-के यंत्रोंसे और न दिखाई पड़नेवाला कांटा कङ्कमुखादि यन्त्र द्वारा वाहर करना चाहिये। इस कांटेको निकालनेमें धीरे धीरे शास्त्र मतसे काम लेना चाहिये।

सब तरहके यन्त्रोंमें कङ्कमुख यन्त्र ही विशेष उपयोगी होता है। क्योंकि, यह यन्त्र शरीरके मर्म और सन्धि-स्थानोंमें घुस सकता है और सहज ही वाहर भी निकाल लिया जा सकता है। इसके साहाय्यसे देहमें घुसे कांटे भी मजवूतीसे पकड़ कर खींच लिये जा सकते हैं। दूसरे सिंहमुखवाले यन्त्रोंके मुंह मोटे हैं, इसीलिये शरीरके वीच सहज ही घस नहीं सकते और इनके निकालनेमें भी असुविधा होती है।

(सुश्रुत यन्त्र० १२ अ०)

यन्त्र द्वारा ही यह सव कार्य्य सम्पन्न होते हैं। इसके सिवा औषधपाक करनेके लिये भी कई यन्त्रोंका उल्लेख दिखाई देता है। संक्षेपमें हम इसका भी विवरण नीचे देते हैं।

वालुकायन्त्र—आधा हाथ गहरे एक पात्रमें एक औषधपूर्ण काचकी प्याली रख कर इसके गले तक वालू-भर दी जाती है। इसके वाद अग्नि जला कर इस प्याली-की औषधको पाक किया जाता है। इसीयन्त्रको वैद्य लोग वालुकायन्त्र कहते हैं।

दोलायन्त्र—पारद संयुक्त औषध एक त्रिफल भोज-पत्रसे ढांक कर उसको एक पोटली तय्यार रखते हैं। पीछे डोरेसे यह पोटली एक काठके टुकड़े के साथ मज-वूतीसे वांध देते हैं। इसके वाद खटाईसे पूर्ण पात्र पर इस काठके टुकड़े को इस तरहसे लटका देते हैं जिससे यह डोरेसे वंधा काठका टुकड़ा इस पात्रमें ही झूलता रहे। इसके वाद इस पात्रके नीचे आग जला कर पकाते हैं। ऐसे यन्त्रको ही दोलायन्त्र कहते हैं।

स्वेदनयन्त्र—एक थाली जल भरकर यन्त्र द्वारा वन्द कर देना होता है। पीछे इस यन्त्रके ऊपर स्वेद औषध रख कर आगसे पकाते हैं। इसीका नाम स्वेदनयन्त्र हैं।

विद्याधरयन्त्र—एक थालीमें पारद रख कर उसके ऊपर एक और थाली ऊद्र्ध्वमुखी रखनी होगी। इसके वाद गिली नम्र मिट्टीसे उक्त दोनों थालियोंके जोड़को वन्द कर देनी होगी। इसके वाद ऊपरको थालीमें जल भर कर चूल्हे पर रख कर उसके नीचे आग जला कर पांच पहर तक सिद्ध करना होता है। पीछे ठंढा होने पर इस यन्त्रसे रस निकाला जाता है, इसीका नाम विद्याधरयन्त्र है।

भूधरयन्त्र—भूषामें पारद रख कर इसे वालुकासे ढांक देना होता है। इसके वाद उसके चारों ओर कंडे (सूखा गोवर) एकत्र कर उसमें आग लगा कर जला देना चाहिये।

डमरुयन्त्र—भूषा यन्त्रके साथ इसका प्रभेद इतना ही है, कि इस थालीके मुखोंको वन्द करना आवश्यक है। (भावप्र० मध्य०)

ज्योतिषिक यन्त्र।

वहुत प्राचीन कालसे ज्योतिषिक तत्व निर्णयार्थ यन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। ये यन्त्र लकड़ी अथवा धातुओंके वने होते हैं। इनके द्वारा हम लोग पदार्थ-की प्रक्रियाविशेषका हैं। स्थिति और कार्य्यादि यथायथ रूपसे जान सकते हैं। वैज्ञानिक तत्वावलो-चनासे उद्भावित शिल्पनैपुण्यपूर्ण इस वनावटी उपाय द्वारा वस्तुविशेषका कार्य्यफल प्रत्यक्ष प्रमाणसिद्ध किया जा सकता है। इससे ही इसको यन्त्रके नामसे पुकारा गया है।

चिकित्साशास्त्रके व्यवच्छेद यन्त्र (Instrument for Surgical operation), वकयंत्र आदि रासाय-निक प्रक्रियाके उपकरण (Chemical apparatus) ज्योतिषिक यन्त्र (Astronomical Instrument), ग्रन्थादि प्रकाशनयन्त्र (Printing press and machinary) आटेकी कल (Flour mill) और तेल कल (Oil-man-factory) या अन्य यंत्रोंका अभाव नहीं है। शेषोक्त स्थानोंके यंत्रोंमें एञ्जिन ही प्रधानतम है। वाकी असंख्य यन्त्र या कल कारखानोंकी आलोचना करना हमारा

उद्देश्य नहीं। प्राचीन समयमें भारतीय वैज्ञानिकोंने जिन सब यंत्रोंका आविष्कार किया था, उन्हीं सबोंका यहां उल्लेख किया जाता है।

पाश्चात्य ज्योतिःशास्त्रके उत्कर्ष-ज्ञापक Teles cope, Quadrant, Sextant आदि यन्त्रोंके ज्योतिष्क-मण्डलीके कोण आदिके निर्णयकी उपकारित देख बहुतेरे हो विस्मित होते हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि हमारे भारतमें ऐसे यंत्र विद्यमान न थे। पहलेके भारतीय आर्य ज्योतिष्क निरुपण और गणना-कार्यके विषयमें अनभिज्ञ न थे। ये लोग भी विशेष उद्यमके साथ ग्रह-नक्षत्र आदि स्थानोंके निरुपणार्थ यंत्रादिका आविष्कार कर जगत्के सामने चिरस्मरणीय अपनी कीर्त्ति रख गये हैं।

आर्यभट, लल्लाचार्य, ब्रह्मगुप्त, सूर्यसिद्धान्तकार और भास्कराचार्यने ज्योतिष्क-मण्डलके ज्ञातव्य विषय निरूपणार्थ बहुतेरे यंत्रोंका उल्लेख किया है। हम उन सबोंका संक्षिप्त विवरण यहां देते हैं।

१ भू-भगोलयंत्र (गोलयंत्र) (Armillary sphere) भूगोलके आवश्यकीय विवरण-संग्रह करनेके लिये अत्याश्चर्यजनक गोलयंत्रका आविष्कार हुआ है। पहले एक लकड़ीके गोल टुकड़े पर भूपृष्ठ अङ्कित कर उस भूगोलके (Earth globe) मध्य केंद्र द्वारा मेरुद्वय तक एक लकीर खींचो, पीछे उस भूगोलके दोनों ओर अर्थात् ऊपर और नीचे दण्डेके बराबर अन्त पर दोनों विस्तृत पांतोंमें दो वृत्त संलग्न कर दो। ये उस भूगोलकी आधारकक्षा है। पीछे उस भूगोलककी चारो सीमाओं पर भगोल निवन्धनार्थ पातपोतवृत्त (Equinoctial colure) या विषुव सम्वन्धिनी कक्षा (विषुवत् वृत्त) स्थिर करो। इसके बाद आधार कक्षाद्वयके अर्द्धच्छेद स्थानमें भूगोल मध्यवृत्तकी कल्पना करो। इसके उपरान्त मेष आदि १२ राशियोंका अहोरात्र वृत्त-बंधन करना होगा। पहले इस क्रांतिवृत्तको उंगल परिमित ३६०° भगणांश (Graduated divisions of the degrees of the Circles) द्वारा समभागसे विभक्त कर देना होगा। फिर इस अहोरात्र वृत्तमें १२ राशिपात कर एक वृत्तपात करना, क्योंकि सूर्यदेवने उन मेष आदि राशियोंमें कल्पित अहोरात्रवृत्त अङ्कित किया है। यंत्रके यह वृत्त प्रायः लोहे या पीतलके तारसे बने होते हैं।

इस रविकक्षाके लिये उत्तरायण और दक्षिणायण तीन तीन छः अर्थात् विषुव-रेखासे उत्तर और दक्षिण क्रमसे तीन तीन वृत्त बैठाना होगा। अर्थात् मेषके अन्तिम एक, कन्याके प्रारम्भमें एक, वृषके शेष और सिंहके आरम्भमें तथा मिथुनके अन्त और कर्कटके प्रारम्भमें दूसरा, इस तरह उत्तरायण और दक्षिणायन एक दूसरेसे ठीक विपरीत राशियोंमें तीन वृत्त बैठेंगे। इन सब वृत्तोंकी अपनी अपनी द्युज्याके व्यासार्द्धके परिणामानुसार ही रचना करनी होगी। अर्थात् विषुवत् वृत्तके (क्रांतिपातवृत्त और अयनान्तवृत्त) प्रमाणके अनुमानसे ही इन तीनों वृत्तोंको खींचना चाहिये। विषुवत् वृत्तकी अपेक्षा मेषांतवृत्त कम, उसकी अपेक्षा वृषोन्तवृत्त कम, उसकी अपेक्षा मिथुनान्तवृत्त कम—इस तरह उत्तरोत्तर अल्प व्यासार्द्ध वृत्त खींचने चाहिये। इस तरहसे तीन वृत्त तय्यार कर भ्रांति विक्षेप भागानुसार दृष्टांत गोलमें निबंध करना होगा अर्थात् विषुवत् वृत्तप्रदेशसे क्रांतिवृत्तके (Declination) और विक्षेप प्रदेशके (Latitude) दूरत्वके अनसार निरूपण करना चाहिये अथवा आधार वृत्तको समभागसे खंडित कर अङ्कित करना उचित है।

इस तरह सूर्य्यकी अस्फुट क्रान्तिको ले कर गणना करनेसे वृत्तपातकी मीमांसा की जाती है अथवा इस भूगोलयन्त्रके आधारकक्षाद्वयके क्रमिक अङ्कपातसे (Graduation) द्वारा स्थिरीकृत हो सकता है। यह क्रमिकाङ्क रेखा-क्रान्ति (Declination) और विक्षेप (Latitude) के लिये होता रहता है। विक्षेप शब्दसे क्रान्तिसूत्र (Circle of declination) द्वारा क्रान्तिवृत्तकी (ecliptic) दूरता समझनी होगी।

इस तरह दक्षिण-भगोलार्द्धमें भी अहोरात्र-वृत्त पात किया जाता है। अभिजित्, सप्तर्षि, अगस्त्य, ब्रह्महृदय आदि स्थिर नक्षत्रोंके अवस्थानके निर्णयसे रेखा पात करनेसे प्रायः और भी ४२ वृत्ताङ्कन किये जा सकते हैं। याम्योत्तरवृत्त रेखा विषुवत्, अयन, अपमण्डल, (क्रान्तिवृत्त) आदि खगोलके यावतीय ग्रह नक्षत्र आदि

की गति जानी जा सकती है और अस्त, मध्यम और साधारण लग्नोंका अनुमान होता है।

२—स्वयंवाहगोलयन्त्र (Self-revolving Spheric instrument)—दिन और रात्रिकालनिर्णयार्थं यह यन्त्र बना था। दृष्टान्त गोलाकारमें छिन्न मोमजामेका कपड़ा लगा कर क्षितिजवृत्त स्थिर कर लेते हैं। इसके बाद उसका नीचला भाग जलप्रवाहके आघातके परिचालित कर लेनेसे मेरुदण्डाश्रित वह दृष्टान्त गोलक धीरे धीरे भ्रमण करने लगता है। यह लोकालोक वेष्टित अर्थात् दृश्यादृश्य सन्धिके वृत्तके द्वारा क्षितिजख्यावृत्तके साथ संसक्त होता है। बहुतेरे लोग तुङ्गबोज एकत्र करके भी दृष्टांत गोलके स्वयंवाही कार्य्य सम्पादन किया करते हैं। सूर्य्यसिद्धान्तके गूढ़ार्थप्रकाश नामकी टोकामें रङ्गनाथने इसको प्रक्रिया इस तरह लिखी है। जैसे,—

"निबद्धगोलवाहिभूं तयष्टिप्रान्तयोर्यथेच्छया स्थानद्वये स्थानत्रये वा नेमिं परिधिरूपामुत्कीर्य्यतां तालपत्रादिना चिक्कण वस्तुलेपेनाच्छाद्य तत्र छिद्रं कृत्वा-तन्मार्गेण पारदोर्द्धं परिधौ पूर्णो देय, इतरार्द्धं परिधौ जलं च देयं ततो मुद्रित छिद्रं कृत्वाथष्टाग्रे भित्तिस्थनलिकयोः क्षेप्ये, यथा गोलोऽन्तरीक्षा भवति। ततः पारदजलाकर्षितयष्टिः स्वयंभ्रमति। तदाश्रितो गोलश्च।"

इस यन्त्रकी उपकारिता पर ध्यान देनेसे अनुमान होता है, प्राचीन ज्योतिर्विद्गण ग्रहादि ज्योतिष्क मण्डलीके साथ-साथ पृथ्वीको भी अपनी कक्षा पर भ्रमण करनेकी बात स्वीकार करते थे। साधारण जानकारोंके-लिये वे प्रकाशित जगत्की तरह अपने रचे दृष्टान्त गोलके भी आह्निक आदि गति स्थिर कर यन्त्रके साहाय्यसे दिखा गये हैं। फिर वे केवल स्वयंवाही यन्त्र तय्यार कर ही निश्चित नहीं थे; वरं वे प्रकृत भूगोलके दिवारात्र रूपकाल परिवर्त्तनके अनुकरणसे यह अनुकल्प गोलकमें भी निरूपित समयके सामञ्जस्य-रक्षा करनेमें समथ हुए थे।

"कालसंसाधनार्थाय तथा यंत्राणि साधयेत् ॥ १९
एकाकी योजयेद्वीजं यंत्रे विस्मयकारिणि।
शङ्कुयष्टिधनुश्चक्रैश्छायायंत्रैरनेकधा ॥२०
गुरूपदेशाद्विज्ञेयं कालज्ञानमतन्द्रितैः ॥" (सूर्यसिद्धांत)

सूर्य्यसिद्धान्तके इस वचनसे अनुमान होता है, कि दिनगत आदि कालके सूक्ष्मज्ञान प्राप्त करनेके निमित्त स्वयंवाही गोलातिरिक्त और भी बहुतेरे यन्त्रोंका आविष्कार हुआ था। उनकी छाया ले कर समय माननिरूपणार्थं शंकु (Gnomon), यष्टियन्त्र (staff) धनुः (arc), चक्र (Wheel), आदि प्रसिद्ध छायासाधक यन्त्रोंका आविष्कार हुआ था।

३ शंकुयंत्र (Gnomon)—काल और दिक् निर्णयके निमित्त यह यन्त्र व्यवहृत होता था। जलसे समीकृत शिलाप्रदेश अथवा वज्रलेप चबूतरा आदि सम स्थानमें सकेन्द्र एक वृत्त अङ्कित कर उस पर १२ उंगल विभाग मान एक लकड़ीकी किल शंकु समतल मस्तक परिधि काष्ठदण्ड रखना चाहिये।

"समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धोदन्तिदंतजः शंकुः।
तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम् ॥"
(सिद्धांतशि० यंत्राध्याय ९ श्लोक)

इस तरह वृत्तकेंद्र पर शंकुस्थापित कर दिनको पूर्व्वाह्न और अपराह्न अर्थात् उदय कालके बाद शंकुके छायांत प्रदेश-मण्डल परिधिके जिस ओर निपतित होगा, वह पश्चिम और मध्याह्न या माध्यन्दिन रेखा पार कर अस्तकाल तक सूर्य्यकी छाया जो विपरीतकी ओर पतित होती है, उसी ओरको पूर्व कहते हैं।

इसके बाद पूर्व और पश्चिमके शंकु छायाग्रबिन्दुद्वयको केन्द्र बना कर परस्पर सम्मिलित रेखाको घुमा कर वृत्त अङ्कित करो। इस निष्पाद्यवृत्तद्वयकी परिधि परस्पर परस्परके पार करेगी। परिधि विभाजित वृत्तांशद्वय-सम्मिलित स्थानको तिमि (मत्स्याकार) कहा गया है। इसके बाह्यवृत्तभागको पोंछ कर फेंक देनेसे वृत्तसंयुक्त एक ओर तिमिमुख और दूसरा संयोगांश पोंछ है। इस मुखसे एक सरल रेखा बीचको पूर्वी और पश्चिमी रेखाको काटती हुई पुच्छ या पोंछ तक खींचनेसे एक दक्षिणोत्तर रेखा बन जाती है। इसको याम्योत्तर रेखा (meridian circle) कहते हैं। इससे दिशा और भूपृष्ठके देशके स्थान और कालका निरूपण हो सकता है। इस यन्त्रसे यह सहज ही निर्णय हो सकता है कि सूर्य्यदेव दिनमें किस

समय किस रेखा पर रह कर संसारको गर्मी पहुंचाते हैं। सिवा इसके इससे याम्योत्तर-रेखा और अस्फुट क्रान्तिको (Declination of the sun) गणना कर दिनमानका भी निर्णय हो सकता है। इस तरह समतलक्षेत्रमें एक चक्र निवद्ध कर उसमे शंकु वैठा कर शंकुयन्त्र या सूर्य्यघड़ी (Sundial) तय्यार किया जाता था। उसमें इन घड़ियोंकी तरह १ से १२ तक घन्टाका चिह्न अङ्कित न कर इसके डायल पर ६० समान भाग कर दिया जाता था। इसीको ६० दण्ड कहते थे। पृथ्वीके दिन रातकी कक्षा पर परिभ्रमण करते समय (Obliquity of the Ecliptic) हम लोग जिस तरह सूर्य्यकी टेढ़ी चालको देखते हैं, इस शंकु यन्त्रमें शंकुछायाके प्रतिभातसे उसके परिमाणके अनुसार दण्डादिका विभाग किया जाता था।

समझ लो कि प्रभातके अरुणोदयमें शंकुच्छायावृत्त परिधिका जो दण्ड अन्तमे गिरता है, वह पश्चिम है, पीछे उत्तरायण अथवा दक्षिणायनके अनुसार सूर्य्यदेवको प्रत्यक्ष गति जिस ओर टेढ़ी हो जाती है, प्रातः मध्याह्न और सायं सन्ध्या क्रमसे शंकुच्छाया भी उसी तरह स्थानविशेषमें अर्थात् विषुवत् रेखासे अन्तरित प्रदेशोंके न्यूनाधिकके अनुसार) उत्तर या दक्षिण ओर घूम आती है। इसी तरह उदयसे अस्त तक शंकुच्छाया क्रमशः पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूमा करती है। यही छाया जव जिस दण्डांशसे हो कर वृत्तमें घूम आयेगी, तव दिनमें दिवाकर यानी सूर्य्य उतनेही दण्ड पार कर रहे हैं, ऐसा समझना चाहिये।

४ यष्टियन्त्र (Staff instrument)—उपर्युक्त शंकु यन्त्रकी तरह इसमें भी समतल पृष्ठ चौकोन भूमि या लकड़ीके एक टुकड़े पर वृत्त अङ्कित करना चाहिये। गोलाध्यायके यन्त्राध्याय विभागमें इसका प्रकरण इस तरह लिखा है—

"त्रिज्याविष्कम्भर्द्धि वृत्तं कृत्वादिगंकितं तत्र।
दत्त्वाग्रां प्राक् पश्चाद्द्यु ज्यावृत्तं च तन्मध्ये ॥ २८ ॥
तत्परिधौ षष्ट्यंकं षष्टिर्नष्ट्यु तिस्ततः केन्द्रे ।
त्रिज्यांगुला निधेया यष्ट्यग्राग्रान्तरं यावत् ॥ २९
तावत्या मौर्व्या यद्द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत्तत्र।
दिनगतशेषा नाड्यः प्राक् पश्चात् स्युः क्रमेणैवम् ॥"

अर्थात् समतलभूमिमे त्रिज्या परिमित उंगल (Radius of a greater circle) कर्कटवृत्तके साथ साथ और यथास्थान दिशा अङ्कित करना चाहिये। फिर उसको गोल ज्ञान कर उसमें प्राक् और पश्चात् अग्रा (Sine of amplitude) और उत्तर और दक्षिण ज्या व्यासस्वरूप प्रदान करना उचित है। इस तरह अग्राग्रवद्ध सूत्रको क्षितिजवृत्तके उदयास्त सूत्र कहा जा सकता है। इसके वाद उस वृत्तके मध्य भागमें समकेन्द्रमें द्युज्या परिमित (Cosine of declination or radius of diurnal circle) कर्कट (व्यासार्द्ध) द्वारा और एक वृत्त खींच कर उसे ६० नाड़ी अर्थात् विभाग करना चाहिये। इसके द्वारा सूर्य्यको दिन रातको गति (Daily revolution) ६० भागोंमें विभक्त होनी चाहिये। इसके वाद त्रिज्यापरिमित उंगल एक सरल रेखाके मूल केन्द्रस्थलमें संलग्न कर सूर्य्यकी ओर दण्डाग्रको इस तरहसे पकड़ना चाहिये कि किसी तरह उस दण्डको छाया न लगे। यह यष्ट्यग्र ही उस समयके गोलकोंके ऊपर सूर्य्यका अवस्थान-मुहूर्त्त समझना चाहिये।

इसके वाद पूर्व ओरके त्रिज्यावृत्तका जो अग्राग्र चिह्न है उसका और यष्ट्यग्रके मध्य भागको ऋजुशलाकासे भेद कर उस शलाकाको द्युज्यावृत्तमें जीवावत् धारण करनी होगी। यह कभी ज्यार्द्ध न होगी। इस तरह शलाकाग्रद्वयके धनुमे जितनी घड़ी वीतेगी उतनी संख्या ही दिन गत काल समझना चाहिये। इस तरह पश्चिम अग्राग्रके षष्ट्यग्रद्वयके मध्यमें भी शलाका द्वारा दिनका शेष समय समझना होगा। दिनके शेषका अंश ही दिनमान और उसका दिनगत नाड़ी होती है। इन दोनोंकी एकतासे दिनमानकी उपलब्धि होती रहती है।

ऊपर जो भूमिके वृत्तका विषय लिखा गया है उसे क्षितिजवृत्त जानना चाहिये। उसके पूर्व और पश्चिम भागमें अग्रा रहता है। अग्राग्र विन्दुका उपरिगत विलम्बित रेखा उदयास्त सूत्र कहा जाता है। अग्रभागमें उदित रवि जिस तरहसे दिन रातके वृत्तकी कक्षा पर

जाते हैं, उसी तरहसे केन्द्रस्थानमें निवद्धमूल यष्टिके अग्रभागमें भ्रमणशील सूर्यकी गति पड़ती रहनेसे यष्टि नष्ट छाया होती है। कारण, कि पहले ही कहा जा चुका है, कि पष्ठ्याग्रमें रवि समरेखा पर है। अग्राग्रसे गणना करनेसे दिन रात वृत्त पर सूर्य तक जितनी घटिकायें होंगी, वे घटिकायें दिनगत काल या समय समझी जायेगी। इसीके निरूपणके लिये आकाशमें द्युज्यावृत्त अङ्कित करनेकी आवश्यकता नहीं। केवल अग्राग्र और पष्ठ्यग्रद्वयके वीचका स्थान शलाका द्वारा भेद कर दोनोंका अन्तर ले लेनेसे ही हो सकता है। ऐसा होनेसे भूमि पर लिखा द्युज्या वृत्तके उस ज्यारूपी शलाका द्वारा धनुमें घटिका ज्ञानकी उपलब्धि करानी ही युक्तियुक्त है।

पूर्वोक्त प्रथासे निवद्ध जो यष्टि निस्तेज हो गई है, उसके ऊपरसे नीचे तक जो लम्बी रेखा है, वही उस समयकी शंकु (Sine of altitude) होती है। शंकु और केन्द्र इन दोनोंके मध्यस्थान (Sine of zenith distance) दृग्ज्या और शंकुके पूर्व और पश्चिमकी अन्तर रेखा और वाहु है ('प्रागपराशानरान्तरं वाहुरिति रक्ष्यति')

उदयकालमें अथवा अस्तकालमें यदि यष्टिको नष्टद्युति या निस्तेज माना जाय, तो यह दण्ड सम्पूर्णरूपसे भूलग्न रहेगा। इस तरह पष्ठ्यग्र और प्राच्यपरा रेखा (पूर्व-पश्चिम रेखा)-का अन्तर त्रिज्यावृत्तमें ज्यार्द्धवत् रहता है। वही अग्रा (Sine of amplitude) कहलाता है। पहले कहा जा चुका है, कि उदयास्तसूत्र अभिलषित समयमें शंकुका कार्य करता है। इस शंकुको और उदयास्त सूत्रके ही वीचका जो व्यवधान है, वह वारह गुणा कर शङ्कुसे भाग देने पर पल निकलता है।

यष्टियन्त्रके साहाय्यसे दो विभिन्न स्थानोंकी उन्नतिज्या या शंकु (Sines of the altitudes of the sun) ले कर पीछे दोनों समयका शंकु और भुज स्थिर करना होगा। भुजद्वय यदि उत्तर और दक्षिण हों, तो जोड़ देने होंगे और यदि समसंज्ञायुक्त हों, तो घटा देने होंगे। इसके वाद इस राशिको १२से गुणा कर दोनों शंकुओंके अन्तरसे भाग देनेसे भागफल पलभा होगा। प्राच्यापरा रेखाका अन्तर और शंकुका वर्गफल भुज है।
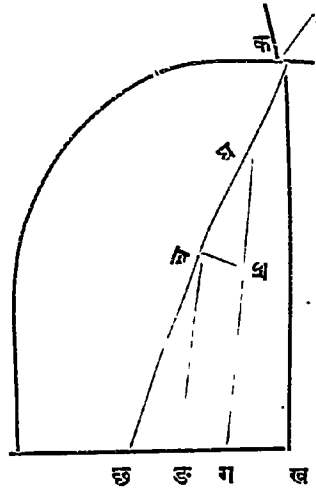
समझ लो, कि 'ख' विन्दु 'ख' 'छ' क्षितिज वृत्तकीर (प्राच्यपरा रेखाका) पूर्वी या पश्चिमी सीमा 'क' उसका 'ख' मध्यमें (Zenith), 'छ' 'च' 'घ' अहोरात्रवृत्त 'च' औ 'छ' उसमें सूर्यके विभिन्न समयका अवस्थान घटता है। अतएव घ ग और च ङ शंकु (Sine of the altitude of the sun) तव ख ग और ख ङ रेखा दो भुजा होगी। ग ङ या च ज दोनों भुजाओंके अन्तर और घ ज दोनों शंकुओंका अन्तर स्थिर करना होगा।

५ चक्रयन्त्र (Vertical circle)—सूर्यके उन्नतांश (Sun's altitude) और नतांशका (Zenith distance) निर्णय करनेके लिये यह यंत्र आविष्कृत हुआ है। सिद्धान्तशिरोमणिके यंत्राध्याय प्रकरणमें इसकी आकृति और प्रस्तुत प्रणाली इस तरह लिखी है,—

"चक्रं चक्रांशाङ्कं परिधौ श्लथशृङ्खलादिकाधारम्।
धात्री त्रिभ आधारात् कल्प्या भार्द्धेऽत्र खार्द्धं च॥
तन्मध्ये सूक्ष्माक्षं क्षिप्तार्काभिमुखनेमिकं धार्य्यम्।
भूमेरुन्नतभागास्तत्राक्षच्छायया भुक्ताः॥
तत्खार्द्धान्तिश्च नता उन्नतलवसंगुणीकृतं द्युदलम्।
द्युदलोन्नतांशभक्तं नाड्यः स्थूलाः परैः प्रोक्ताः॥"

धातुमय या दारुमय समतल चक्र तय्यार कर शृङ्खलादि आधार द्वारा उसका नेमिदेश सदा और झुला कर

के रखना चाहिये। पीछे चक्रमें वारीक छिद्र आधार-स्थान तक एक लम्बी रेखा खींचो। इसके बाद इस धातु चक्र पर बीचसे तिर्य्यक् रेखायें खींचनी होगी। ये तिर्यक् रेखायें किस तरह खींचनी होगी, इसका विवरण नीचे दिया जाता है।

इस चक्रके परिधिदेशमें भगणांश (Graduated to degrees) अंकित कर आधार स्थानमें त्रिभ (Three signs) अर्थात् ९०° राश्यन्तरमें केन्द्रसे परिधि तक तिर्य्यग्र रेखा खींचनी होगी। परिधि संलग्न उस तिर्य्यक् रेखाको धात्री (Earth) या क्षिति (Horizon) कह कर कल्पना करनी होगी। भार्द्धका अन्तर इस नेमिके विपरीत ओर जो ऊर्द्ध्व रेखा चक्रपरिधिको स्पर्श करेगी, वही खार्द्ध (Zenith) समझना अर्थात्-आधारविन्दुसे ९०° व्यवधानमें पृथ्वी कल्पना करनेसे उसको ठीक विपरीत दिशाका विंदु ही खार्द्ध-विन्दु कल्पित होगा।

चक्रकेन्द्रके वारीक छिद्रमें बहुत पतली शलाका घुसा दो। इस शलाकाका नाम अक्ष है। इसके चक्र-नेमि जिस भावसे सूर्य्यकी ओर रह सके, उसी भावसे आधारमें (Placing the circle in a rerticle plane) रखो। इस तरह रखनेके बाद अक्षकी छाया परिधिके जिस स्थानमें पड़ेगी उस स्थान पर कुज-चिह्न—इन दोनोंके अंतरमें जो अंश है, वही रविका उन्नतांश है अथवा जो स्थान पृथ्वीका स्थान निर्दिष्ट हुआ है, उस स्थानसे अक्षछाया (Shadow of the suns by the axis) चक्रका जितना अंश संख्याका अतिक्रम करेगा, वही उन्नतांश स्थिर करना होगा। परिधिके जिस विन्दुमें अक्षकी छाया पतित हुई है, वही छाया-स्थान और खार्द्धविन्दुका अन्तर जो वृत्तांश है, वही नतांश जानना होगा।

नतोन्नतांश जाननेके सिवा इस यंत्रमें दूसरी तरह-घटिका आनयन तथा समय निरूपण भी किया जाता है। दिनार्द्धमान और मध्य दिनका उन्नतांश ज्ञान कर गणना कर अनुपात करनेसे अर्थात् दिनार्द्ध लब्ध उन्नतांशसे गुणा कर उस गुणनफलको मध्यदिनोन्नतांश (Meridian altitude)-से जो भागफल आयेगा, वही अभिलषित समय होगा। कई ज्योतिर्विदोंका यह मत है। किंतु सिद्धांतशिरोमणिके वासनाभाष्यकार स्वयं भास्कराचार्य्यने इसके सम्बंधमें लिखा है,—

"यदि मध्यन्दिनोन्नतांशैर्दिनार्द्धनाड्यो लभ्यन्ते तदेभिः किमित्येवं स्थूला घटिकाः स्युः।"

उपर्युक्त चक्र द्वारा ग्रहादिका वेधज्ञान होता है। इसीलिये इसको वेधयंत्र (Instrumenf of observation) कहते हैं। इससे ग्रहोंके स्फुट स्थान किस तरह निर्णय किये जाते हैं, उसीका उल्लेख यहां किया जाता है।

"रैवत्र्यर्कपुष्यांतिमवारुणानामृक्षद्वयं नेमिगतं यथा स्यात्।
दूरेऽन्तरेऽल्पेषु भखेचरौ वा तथात्र यन्त्रं सुधिया प्रधार्यम्॥
नेमिस्थ दृष्ट्याग्रगतं प्रपश्येत् खेटं च धिष्ण्यस्थ च योगताराम्।
नेम्यङ्कयोरन्तरजोऽस्तु मध्ये येऽशः स्थिता भध्रुवको युतस्तैः॥
प्रत्यक् स्थिते भेऽथ पुरः स्थिते तै

र्हीनो ध्रुवः स्यात् खचरस्य भुक्तम्॥"

मघा, पुष्या, रेवती, शततारका आदि स्थिर तारों (Fixed star)-के बीच दो तारोंको लक्ष्य कर चक्र-यंत्रको इस तरह मजबूतीसे रखो जिससे वे सदा नेमिगत ही रहें। पीछे धिष्ण्यद्वयमें एकको लक्ष्य कर नेमिमें स्थान अङ्कित करो। इसके बाद आगे या पीछे दृष्टि दौड़ा कर ग्रहको प्रायः अक्षगत कर विद्ध करना चाहिये। अक्षमूल और ग्रहके अंतर शर ग्रहावधि है। अक्षमूल नेमिके जिस स्थानमें लगेगा, उस स्थानमें भी अङ्क करना होगा। इन भग्रहाङ्कद्वयके बीच जो अंश है, वही भध्रुवयुत स्फुट ग्रह है। अर्थात् ध्रुवविहीन और क्रांतिवृत्तोपरि स्थापित नक्षत्रमात्र अथवा चित्राके अन्तर्गत अल्प अक्षांशयुक्त (२° दक्षिण) किसी नक्षत्र पर यंत्र स्थिर करनेसे ग्रहका खेट निर्णय करना होगा। वह निर्दिष्ट नक्षत्रसे बहुत दूर पर अवस्थित है, फिर भी यह स्पष्ट दिखाई देता है, कि ग्रह चक्रनेमिमें चला गया है।

इस तरहसे चक्रको रख कर इसके समतल पृष्ठको बराबर (along its plane) लक्ष्य करो, तो ग्रह अक्ष मूलके विपरीत ओर दिखाई देगा। उसको क्रान्तिवृत्त-को समरेखामें धारण कर पहलेके निर्दिष्ट एक तारे पर

दृष्टिपात करो। इस तारे और ग्रहमें जो अंतर दिखाई देता हो वह भ्रुवयुक्त अथवा भ्रुवहीन करनेसे ग्रहके स्फुटग्रहोंका (Celestial longitude) जान सकते हैं।

६ नाड़ीवलय (Equatoreal dial)—लग्नमान निर्णयार्थक यन्त्रविशेष। सिद्धान्तशिरोमणिमें लिखा है,—

"अपवृत्ते कुजलग्ने लग्नं चाथो खगोलनलिकान्तः।
भूस्थं ध्रुवयष्टिस्थं चक्रं यष्ट्या निजोदयोऽथाङ्कम्॥
व्यस्तं यष्टी भायामुदयेऽर्कः नरस्य नाड़िका ज्ञेया
इष्टच्छाया सूर्यान्तरेऽथ लग्नं प्रभायां च।
केनचिदाधारेणा ध्रुवाभिमुखकीलकेऽत्र धृते।
अथवा कीलच्छायातलमध्ये स्युर्नता नाड्यः॥"

अर्थात् आवश्यकीय परिमाणसे सुन्दररूपसे निष्पन्न एक लकड़ीका चक्र तय्यार कर उसके नेमिके ऊपरी तलेके समदेशको ६० घटिकायोंमें विभक्त करना चाहिये। इसके वाद विशेष बुद्धिमानोके साथ चक्रनेमिके दोनों पार्श्वोंमें परस्पर उदयके असमान प्रमाणानुसार राशिचक्रके मेषादि राशिको छः अंशोंमें विभाजित कर देना होगा। इसके वाद चक्रनेमिके दोनों पार्श्वमें अङ्कित बारह राशियोंके प्रत्येक राशिके उदयास्तकालको फिर २ होरा, ३ द्रेक्काण, ३'२० अंशके नवांश, २' १०' के द्वादशांश और तीस अंशोंमें विभाजित करना। यही षड़्वर्ग कहा जाता है।

उदयके विलोमक्रमसे चक्रमें राशिपात करना, अर्थात् मेषके पश्चिममें वृष, वृषके पश्चिम मिथुन इत्यादि। सर्वतोभद्र-यंत्रोक्त प्रकारसे विपरीत भावसे राशिपात कर पीछे उसी चक्रमें खगोलकी ध्रुवयष्टिके ऊपर भूकेन्द्राभिमुखी कर रखना यहां ध्रुवयष्टि (*Polar axis*) मेरुके उन्नतांशानुरूपसे उन्नत करना होगा।

इसी तरह निष्पादित यंत्रके साहाय्यसे किस तरह राशि और अंश द्वारा सूर्यका ग्रह (Sun's longitude) निरूपणके साथ साथ कालनिर्णय और (चक्रवृत्तमें) दिगंश स्थिर करना होगा। उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

पहलेके निरूपित दिवसके उदयकालका ठीक कर लेना होगा। जिस दिनका काल जाननेकी जरूरत है, उस दिन उदित रविके मेषादि राशियोंमें जितना अंश रविका वीत गया है, वह और भुज्यमान राशिका भाग राशिक्षेत्र भागमें रख कर पहले रविका चिह्न स्थिर करना होगा। उस दिनके उदयके समयमें जो यष्टिच्छाया पश्चिम दिग्वर्त्तिनी हुई है, उस छायाका रविचिह्न जहां होगा, वहीं यन्त्रको मजबूतीसे रखना चाहिये। अब सूर्य जैसे जैसे ऊपर उठते जायें, यष्टिच्छाया भी वैसी वैसी क्रमसे उदयचिह्नसे चक्रके नीचेकी ओर (Nadir) घूमती रहती है। छायाके दोनों चिह्नोंमें जो घटिकापात होगी, वही दिनमान समझना चाहिये और उससे यष्टिच्छायाको जिस राशिका जितना क्षेत्रांश है, वही लग्न (*Horoscope*) है अर्थात् सूर्योदयविन्दुसे छायाग्र विन्दु क्षेत्रांशसे जितनी दूर हट जायगी, उसी वृत्तांशके अनुसार दिनगत काल और छायाके स्थानमें ही लग्नमान लेना होगा।
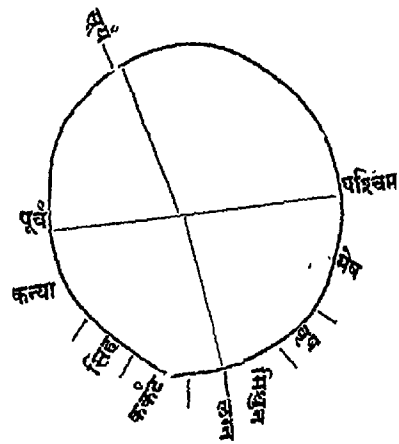
ऊपर जो चित्र दिखाया गया, उसके द्वारा नाड़ीवलय-यंत्रका कार्य सम्यक् उपलब्धि हो सकता है। सूर्य्यदेव जिस तरह पूर्वसे पश्चिम आकाशमें विचरण करते हैं, उसी तरह यष्टिच्छाया भी पश्चिमसे पूर्वकी ओर आती रहती है। इसलिये राश्योदय निरूपणके लिये यन्त्रमें उपरोक्त चित्रकी तरह राशिचक्रके विलोम

निपात करना होगा। पश्चिमसे लग्न तक जो वृत्त-रेखा होगी, वही होरामान समझना होगा।

ऊपर कहा जा चुका है, कि यन्त्रके राशिचक्र षड़-वर्गमें गिराओ। इस तरह चक्र खगोल मध्यस्थ ध्रुव-यष्टिके साथ बांध देनेसे और क्या फल हो सकता है। इसके उत्तरमें महामति भास्कराचार्य्यका कहना है, कि चक्रमें इष्ट प्रमाण कीलक प्रोथित कर इस तरह किसी आधार पर चक्र स्थिर करना होगा, जिससे वह कील ध्रुवाभिमुख हो। चक्र स्थिर हो जाने पर कीलकी छाया इष्ट समयमें जहां पड़ेगी, यंत्रके नीचेकी ओरके उसी चिह्नमें नत-नाड़िका जानी जायेगी।

७ घटिका या कपालयंत्र। (Clepsydra) दिनरातके कालमान निर्देशके लिये सूर्य्यसिद्धांतमें (१३।२१-२५) कपालादि यंत्रका उल्लेख है। ये सब प्रक्रियायें नीचे लिखी जाती हैं—

"तोययंत्रकपालादैर्मयूरनरवानरैः॥
ससूत्र-रेणुगर्भैश्च सम्यक् कालं प्रसाधयेत्॥
पारदाराम्बुसूत्राणि शुल्वतैलजलानि च।
बीजानि पांसव स्तेषु प्रयोगास्तेऽपि दुर्लभाः॥
ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुण्डे मलाम्भसि।
षष्टिर्मज्जत्य होरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्॥
नरयंत्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ।
छायासंसाधनैः प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम्॥"

कपालाकार या गोलार्द्धके अनुरूप नीचे सूक्ष्म छिद्र युक्त एक ताम्रपात्र प्रस्तुत कर वह वैसे ही आकारके स्वच्छ जलपूर्ण बड़े एक दूसरे पात्रमें डाल देना चाहिये क्रमसे इस छिद्रसे धीरे धीरे जल प्रवेश कर ऊपरवाले पात्रको नीचे बड़े पात्रमें डुबा देना चाहिये। पात्रको आकृतिके अनुसार रन्ध्रपथ ऐसा संकीर्ण करना होगा कि नाक्षत्राहोरात्र (Nycthemeron) यन्त्र नीचे कुण्डमें ६० बार निमग्न हो, किसी तरह कम या अधिक न हो, इसके द्वारा दिनके ६० दण्ड का निरूपण होता रहता है। कपालकी तरह घटीखण्ड द्वारा यह यंत्र निर्माण किया जाता है इसीसे इसका नाम कपाल-यंत्र है, "तत् कपालकं कपालमेव कपालकं घटखण्डानां कपालपदवाच्यत्वात् घटाधस्तनार्द्धाकारं यंत्रं घटीयंत्रं स्फुटं सूक्ष्मम्।" किस तरह इस यंत्रकी गठन करनी होगी, उसका विवरण सूर्य्यसिद्धांत-टीकामें रङ्गनाथने इस तरह लिखा है—

"शुल्वस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत् षड़ंगुलोच्चं द्विगुणायतास्यम्।
तदंभसा षष्टिपलैः प्रपूर्यं पात्रं घटार्द्धप्रतिमं घटी स्यात्॥
सत्र्यंशमाषत्रयनिर्मिता या हेम्नः शलाका चतुरांगुला स्यात्।
विद्धं तया प्राक्तनमत्रपात्रं प्रपूर्य्यते नाड़िकयाम्बुभिस्तत्॥

मेघादि व्यवधानरूप मलरहित सूर्य आकाशमें प्रतिभात होने पर अर्थात् निर्मल आकाशमें सूर्य्योदय होने पर नरयंत्र स्थापित होता था। यह बारह अंगूल शंकु और घटीयंत्रकी तरह कालसाधक है। दिनमें ही प्रायः इसकी उपकारिता उपलब्धि होती है। मनुष्यकी तरह यह यंत्र बड़े आकारमें बनता था। सम्भवतः इसीसे इसका ऐसा नाम रखा गया होगा।

मयूर और वानर-यंत्रका प्रचलन अब दिखाई नहीं देता। सम्भवतः स्वयंवहार्थ इन सब यंत्रोंका प्रयोग था। इनके कार्य्यसाधनका ढङ्ग कई तरहके और दुर्गम होनेके कारण विशेष रूपसे लिखा नहीं गया। रेणुगर्भ (sand-vessels) वालुकायंत्रकी तरह ससूत्र विलम्बित रह कर दिनमानांश बतलाता था, वैसे ही यह मयूरयंत्रके मयूरोदर-गह्वरमें रहती वालुकाराशि स्वयं चालित हो कर मयूरके मुखविवरसे निरूपित समयके अनुसार बाहर निकालता था। वानरयंत्र भी इसी तरह किसी उपायसे सुसिद्ध हुआ था। यह सब यंत्र स्वयं वहनके लिये उसको खोखले आर (Hollow spokes) मध्य पारद और जल, सूत, डोरी (शुल्व) और तैलयुक्त जल, तुङ्ग-बीज और पांशु (धूलि) आदि प्रयोग करना होता था।

८ स्वयंवहयन्त्र (self-revolving instrument) कैसे यंत्रको स्वयंवाही शक्तिसम्पन्न करना होता था, उसका विवरण सिद्धान्तशिरोमणिके यंत्राध्यायमें इस तरह लिखा है,—

"लघुदारुज समचक्रे समसुषिराराः समान्तरा नेम्यां।
किञ्चिद्वक्रा तोज्याः सुषिरोस्यार्द्धं पृथक् तासाम्॥
रसपूर्णं तच्चक्रं द्वयाधाराक्षस्थितं स्वयं भ्रमति।
उत्कीर्य्य नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम्॥

तदुपरि तालदलाद्यं कृत्वा सुषिरे रसं क्षिपेत् तावत् ।
यावद्रसैकपार्श्वे क्षिप्तं जलं नान्यतो याति ॥
पिहितच्छिद्रं तदतश्चक्रं भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम् ।
ताम्रादिमयस्याङ्कुशरूपनलस्याम्बुपूर्णस्य ॥
एकं कुण्डजलान्तर्द्वितीयमग्रं त्वधोमुखं च वहिः ।
युगपन्मुक्तं चेत् कं नलेन कुण्डाद्बहिः पतति ॥
नेम्यां बद्धा घटिकाश्चक्रं जलयन्त्रवत् तथा धार्यम् ।
नलकप्रच्युतसलिलं पतति यथा तद्घटी मध्ये ॥
भ्रमति ततस्तत् सततं पूर्णघटीभिः समाकृष्टम् ।
चक्रच्युतं तदुदकं कुण्डे याति प्रणालिकया ॥"

(सिद्धांतशि० य० ५०-५६)

पहले बहुत छोटी लकड़ीका एक चक्र तय्यार कर उसकी परिधिमें छिद्रवाले आर जोड़ो। यह आर एक समान बराबर छिद्रवाले हों। इसके बाद ये आर चक्र-नेमिमें सम अन्तर पर जोड़ना चाहिये। सभी नदीके आवर्त्तकी तरह एक ही ओर टेढ़ें दिखाई देते हैं। बादमें ये छिद्रवाले आरोंमें सुषिरार्द्ध तक पारद डाल कर आरका मुंह बन्द कर देना चाहिये। पीछे दोनों ओरके आधारों पर चक्रकेन्द्रदण्ड (Axis) रखनेसे वह यन्त्र शान देनेवाली चाकको तरह स्वयं घूमने लगती है। इसका कारण यह है, कि यन्त्रके एक भागमें पारद आर-मूलमें और दूसरे भागमें उसका अग्रभाग प्रधावित होता है। इस तरह आरोंके परस्पर भार एक तरफको झुक जाती और दूसरी तरफको घूमने लगती है।

भ्रमयन्त्रके द्वारा यन्त्रनेमिके चारों दिशा खोल कर केवल दो उंगल सुषिरके छिद्र और फैलाव होनेसे उस पर ताड़का पत्ता घुसेड़ ऊपरसे मोम दे कर बन्द कर देना चाहिये। इसके बाद पूर्ववत् चक्रको दो आधार-अक्षों पर रख नेमिके ऊपर भागके ताड़के पत्तेको काट डालनेके बाद उस छिद्रमें जल और पारद ढालना चाहिये। पहले नेमिके ठीक अर्द्धांश रस द्वारा भर कर दूसरी बगलमें जल डालना चाहिये। जलके छेदसे बाहर निकल जाने पर चक्रका छिद्र बन्द कर देना आवश्यक है। तब उस जल द्वारा प्रतिरुद्ध द्रवरस और अपने गुरुत्वके बलसे दूसरी ओर अर्थात् जिस बगल जल है, उस बगल जानेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये बन्द छिद्र वह चक्र जल द्वारा आकृष्ट हो कर स्वतः ही घूमने लगता है।

९ कुक्कुटनाड़ीयन्त्र (Syphon)—इस यन्त्रसे कभी कभी चक्रका स्वयं महत्त्व सम्पादित हो सकता है। ताम्रादि धातुओंसे अंकुशाकार टेढ़ा नल तय्यार कर जलसे उसे भर देने पर उसके दोनों मुंह बन्द कर देना चाहिये। इसके बाद उसका एक मुंह जलपात्रमें फेंक कर दूसरा मुंह खोल देने पर उस जलपात्रका कुल जल नल द्वारा निकल जाता है।

पूर्वोक्त स्वयंवाही चक्रके नेमिदेशमें कई जलपात्र सटा कर उन्हें जलयन्त्र (Water wheel)की तरह दो आधार-अक्ष इस तरह जोड़ना चाहिये, कि जिससे नलसे प्रवाहित जल घटीपात्रोंमें पड़े। इस तरह जलपात्रके पूर्ण हो जाने पर उसके बोझसे आकृष्ट हो वह चक्र घूमने लगेगा, पीछे इस चक्रके पात्रसे नीचे गिरा हुआ जल प्रणाली द्वारा फिरसे कुण्डमें जाता है। इस तरह प्रणाली द्वारा आया जल वारम्वार जलपात्रमें आनेसे यन्त्रके निरन्तर स्वयंवहत्व सम्पादित होता है।

ऊपर जो स्वयंवहत्व प्रकरण लिखा गया, वह दुर्लभ है अर्थात् मनुष्य अनायास ही सम्पन्न नहीं कर सकता। यदि यह स्वीकार न किया जाये, तो सब घरोंमें स्वयंवाही यन्त्रकी अधिकता दिखाई देती। सूर्यसिद्धान्तके टीकाकार रङ्गनाथने लिखा है,—"इयं स्वयंवहविद्या समुद्रान्तनिवासिजनैः फिरङ्ग्याख्यैः सम्यगभ्यस्तेति। कुहकविद्यात्वादत्र विस्तारानुद्योग इति।" अर्थात् यह स्वयंवहविद्या समुद्रप्रान्तवासी यूरोपीयोंको सम्पूर्णरूपसे अभ्यस्त है। यह विद्या कुहकविद्या होनेसे विस्तारपूर्वक नहीं लिखी गई।

१० चाप या धनुः (Semi-circle) और ११ तुरीय (quadrant) और वर्त्तमान यूरोपीय जातियोंका निकाला १२ षड़ांशवृत्तयन्त्र (Sextant)—गोलका गोलत्व, घटिकाज्ञान, नतोन्नतिज्ञान, नक्षत्रादिका दूरत्व-निरूपण आदि विविध विषयोंके निर्द्धारण करनेके लिये ये यन्त्र विशेष उपयोगी हैं।

१३ फलकयंत्र (*Rectangle*)—चतुरस्र और चतुष्कोण

विशिष्ट एक खण्ड लकड़ीका टुकड़ा ले कर यह यन्त्र तय्यार करना होता है। अन्यान्य यन्त्रोंके साहाय्यसे दिङ्मण्डलका उन्नतांश लक्ष्य कर स्फुटकाल (Apparent time) उपलब्ध नहीं होता। इससे महामति भास्कराचार्य्यने फलकयंत्रका आविष्कार किया था। सिद्धांतशिरोमणिमें इस यन्त्रकी प्रक्रिया इस तरह लिखी है—

"कर्त्तव्य' चतुरस्रक सुफलकं खांकाङ्गुलैर्विस्तृतं
विस्ताराद् द्विगुणायतं सुगणकेनायाममध्ये तथा।
आधारः श्लथशृङ्खलादिघटितः कार्य्यो च रेखा तत-
स्त वाधारादवलम्वसूत्रसदृशी सा लम्वरेखोच्यते॥
लम्वं नवत्यंगुलकैर्विभाज्य, प्रत्यंगुलं तिर्यगतः प्रसार्य।
सूत्राणि तत्रायतसूक्ष्मरेखा, जीवाभिधानाः सुधिया विधेयाः॥
आधारतोऽधः खगुणाङ्गुलेषु, ज्यालम्वयोगे सुषिरं च सूक्ष्मम्।
इष्टप्रमाणा सुषिरे शलाका, त्वेप्याक्षसंज्ञा खलुसा प्रकल्प्या॥
षष्ट्यंगुलव्यासमतश्च रन्ध्रात् कृत्वा सुवृत्तं परिधौ तदङ्कम्।
षष्ट्या घटीनां भगणांशकैश्च, प्रत्यंशकव्याम्वुपलैश्च दिग्भिः।
अग्रे सरन्ध्रा तनुपट्टिकैका, षष्ट्यंगुला दीर्घतया तथाङ्क्या।
यत् खण्डकैः स्थूलचरं पलाद्यं तद्गोकुहृत् स्याच्चरशिञ्जिनीह॥"

पहले धातु वा श्रीपर्ण्यादि काष्ठ द्वारा चिकना और समतल चौकोन फलक तय्यार करना चाहिये। इसकी ऊंचाई ६० उंगल और लम्वाई १८० उंगल हो। इसके वाद लम्वाईके मध्यविन्दुमें यन्त्रका आधार ठीक कर शिथिल शृङ्खल द्वारा लम्वे भावसे लटका कर रखो। इस तरह फलक स्थित रहनेसे आधारविन्दुके नीचेके सूत्र का अवलम्वन कर एक लम्वी रेखा (Perpendicular) खींचो।

पीछे उस लम्बी रेखाको नव्वे भागोंमें विभक्त कर फलककी चौड़ाई भागमें तिर्य्यक्भावसे लम्वी रेखायें गिराओ। ये रेखायें भी एक उंगलके अन्तर और तिर्य्यक्त्वके कारण ऊपरी और निचली सीमा-रेखाके साथ समान्तर (Parallel) हों। इसी तरह सव रेखाएं ज्याके रूपमें ली जायेंगी। आधारके नीचेकी ओर तीस उंगलके अन्तर पर जो त्रिंशज्या रेखा (30th sine at the 30 digit) होगी, उसके जिस स्थान पर लम्वी रेखा आ कर मिली है उस मध्यविन्दुमें एक छिद्र कर उसमें आवश्यक परिमाणकी एक शलाका घुसा दो। यही अक्षरेखा (Axis) समझो। पीछे उस रन्ध्रको केन्द्रमान कर ३० उंगल कर्कटक (radius) द्वारा एक वृत्त वनाओ, तो यह वृत्त ६० संख्यक ज्याको स्पर्श करेगा। अतएव इसका व्यास भी ६० उंगल होगा।

इसके उपरान्त इस वृत्तमें ६० घटिका, ३६०° भगणांशक (degree) और उसका प्रति अंश दश-दश पानीयपलमें विभाग कर अंकित करो। इसके वाद ताम्र आदि धातुकी अथवा वांसकी शलाकाके आकारका ६० उंगल लम्वी एक पट्टिका तयार कर उस पर फलकांगुलकी तरह रेखा खींच लेनी होगी। समग्र पट्टिका ही अर्द्धांगुल विस्तृत होगी। केवल इसके सामने जो एक छिद्र रहेगा, वह कुठाराकार और एक उंगल वड़ा वना लेना होगा। पीछे उस कुठार भागके फैलावमें घुसाई हुई शलाकामें पट्टिकाका छिद्र घुसा देनेसे इसके अर्द्धांगुल विस्तृत लम्वांशका एक पार्श्व लम्वरेखाके साथ समसूत्रमें मिल जाता है।

इसी यन्त्रके साहाय्यसे पलके परिमाणानुसार खण्डकके द्वारा स्थूल चरार्द्ध जान कर उसको २६ संख्यामें विभाजित करो। ऐसा करनेसे चरज्या (sine of the ascensional difference) प्राप्त होती है।

क्रांतिवृत्तके प्रत्येक राशिकी चरज्या (sine of the ascensional difference) निर्णयार्थ महामति भास्कराचार्य्यने संक्षिप्त एक उपाय वतलाया है। उन्होंने १, २, या ३ राशिकी (जिस स्थानकी पलभा १ उंगल) चरज्या १०।८।३ $\frac{१}{२}$ को (दिङ्नागसत्र्यंशगुणैः) मान लिया है। पीछे उस चारखण्डको सार्द्ध ४ उंगल (४।३०) चारखण्ड ४५।३६।१५ समझा जायेगा।

जिस साक्षदेशका (Place having latitude) पलभा ८ उंगलसे कम है, उस स्थानकी पलभा ले कर इस तीन पलयुक्त राशिको गुणा करनेसे कुल चरज्या पाई जाती है। फिर इस पलात्मकत्रयको (१०।८। ३१ $\frac{}{२}$) छः गुणा

करनेसे पल समय असुमें रूपान्तरित होगा। खल्पत्वके कारण इसकी भी ज्या इसी तरह होगी। किन्तु यदि त्रिज्या व्यासार्द्धकी इस तरह चरज्या हो, तो ३० व्यासार्द्धकी चरज्या कितनी होगी।

व्यासार्द्ध ३४३८ की कल्पना कर लेने पर चरज्या निर्णीत हो सकती है। इसको ३० उंगलमें व्यासार्द्धका समानुपात करनेसे यह संख्या किस तरह परिवर्त्तित होगी, उसका विवरण नीचे बहुराशियोंमें दिया गया है।

३४३८ ; १०×६=६०' : : ३० उंगल

$$\frac{६० \times ३०}{३४३८} =$$

यन्त्रोक्त १ राशिकी चर संख्या है, किन्तु १० को ६×३० या १८०से गुणा और ३४३८से भाग न दे कर भास्कराचार्य १८०को ३४३८ संख्याका $\frac{१}{१६}$ अंशको समान ले एक ही बार शुभङ्करी प्रथासे १६से हरण करनेको कहा है

निरक्षदेशके ४, ११, १७, १८, १३, ५ इस खण्डकोंके प्रत्येकको पलकर्ण (अक्षकर्ण) द्वारा गुणा कर १२ से भाग देनेसे खदेशके खण्डक स्थान (Portion at a given place) निरूपित होंगे। इनके प्रत्येक यथाक्रम राश्यांशकी भुजाका १५०' परिमाण होगा। इसके वाद उस खण्डकसे अयनांश गति (Precession of the equinoxes) से सूर्यके यथार्थ राश्यांश (True longitude to the Sun's place) स्थिर कर भुजज्या कल्पना करो। उक्त भुजज्याको ६० से भाग दे उस भागफलमें पलकर्ण जोड़ दो। इसके वाद उस योगफलको दश गुणा कर उसमें चारका भाग दो। ऐसा होनेसे जो भागफल होगा, उसे अंगुलात्मिका यष्टि समझ लो। यह यन्त्र सुषिरसे पट्टिकामें लगा दो। इस तरह रन्ध्रसे आरम्भ कर यंत्रपरिमित उंगल गणना कर पट्टिका पर चिह्नाङ्कित करो।

इस समय इस फलकयन्त्रको इस तरहसे धारण करो, जिससे उसके दोनों ओर एक समयमें सूर्यका तेज या किरण पड़े। ऐसा होनेसे यह मालूम होगा, कि यह यन्त्र ठीक दृङ्मण्डलकी समरेखा पर अवस्थित है। उस यंत्रके किनारे अङ्कित सूर्य्याभिमुख नेमिको दृङ्मण्डल सदृश समझना। इस तरह अवलम्बमान यंत्रको सुषिरमें जो अक्ष रहता है उसकी छाया वृत्तपरिधिके जिस अंश पर पड़ती है, वही स्थान सूर्यका स्थान होनेकी कल्पना की जाती है। इसके वाद अक्षप्रोत पट्टी पर रविचिह्न स्थापित करना। पट्टीको पहलेकी तरह पकड़नेसे सूर्यके उत्तर गोलमें या दक्षिण गोलमें अवस्थानक्रमसे यष्टिरेखा यंत्रके ऊपर या नीचे गिरेगी। फलकमें कितने उंगल चरज्या प्रतिफलित होगी, उसको गणना कर उसी स्थान पर दाग देना होगा। चिह्नस्थानमें ज्या रेखा वृत्तका जहां संयोग होगा, उससे निचले वृत्तमें लम्ब रेखा तक जितनी घटिकायें होंगी, वही उस समयका नतांश समझना। वह रविचिह्न यदि दोनों रेखाओंमें रहे, तो वहां उसके अनुयायी दूसरी रेखाकी कल्पना कर नाड़ी (Ghatis to or after midday) अवधारण करना। उंगल परिमित यष्टिका अग्रबिन्दुसे सावधानता पूर्वक यंत्रमें उत्तर अथवा दक्षिण वृत्त गोलमें (सूर्य उत्तरायणमें या दक्षिणायनमें रहनेसे उसीके अनुसार ऊपर या नीचेकी ओर समान्तर रेखापात करना होगा) लम्बरेखाकी समान्तर रेखामें लब्ध चरज्या (sine of ascesional diefference) फैला दो। इन चिह्नस्थानोंके जिस जगह ज्या और इस तरहकी फैली हुई चरज्या मिल कर वृत्तके खल्पांश मात्र काटती गई है, उस वृत्तांशका दूरत्व हो मध्य दिनको अग्रवर्त्ती या परवर्त्ती घटिका समझी जाती है।

१४ धीयन्त्र (Genius instrument)—यष्टियन्त्रके

* वर्त्तमान अङ्गरेजी प्रथासे इस अङ्कका अनुपात करने पर निम्नोक्त नियमसे यह संशोधित करना होगा :—

1 If cosine of lat : sine of lat } : : What will sine of declination of 1 sign or 2 or 3 sign, give.
or as 12 : Palabha } : Kujya of 1, 2 or 3 signs

2. 1: cosine of declination : this result : : what will radius : sine of ascensional difference in Kalas

साहाय्यसे ज्ञानवान् व्यक्तिमात्र ही आकाशके, भूतलके अथवा जलगर्भके पदार्थमात्रको दृष्टि-गोचरीभूत कर उसका दैर्घ्य, विस्तार और रेखादिका परिमाण जान सकते हैं। युक्तिसे यह निष्पन्न होता है इससे ही भास्कराचार्यने इसको धीयन्त्र कहा है।

"वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं तत्खान्तरं तस्य समुच्छ्रयञ्च।
यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ धीयन्त्रवेदी वद किं न वेत्ति॥"
(यन्त्राध्याय ४१)

दूरस्थित वांसकी चोटी और जड़ देख कर हाथके यन्त्रके साहाय्यसे जो अपने दूरत्व और उन्नतांशका निरूपण कर सकते हैं, वे इस धीयंत्रके साहाय्यसे खगोलस्थ ग्रह नक्षत्र आदिके और जलगर्भके प्रतिबिम्बित चित्रके मान आदिका निर्देश करनेमें सम्यक् पारदर्शी होते हैं। इस यन्त्रके व्यवहार करते समय पादनिम्नस्थ भूमि सदा ही समतल हो।

समतल भूमिमें खड़े हो कर यष्टिके मूलदेशमें नेत्र रख उत्तर ध्रुव नक्षत्र पर उसका अग्र भाग लम्बभावसे भुला कर संलग्न करनेसे यष्टि जिस रूपमें हो, उस यष्टिके अग्र और मूलसे दो लम्बी सरल रेखायें भूमि पर खींचो। खींची हुई दोनों लम्बी रेखाओंमें जो स्थान है उसका समकोण त्रिभुजकी भुजा और दोनों लम्बका अन्तर या वियोग फलकोटि और यष्टिका परिमाण ही कर्ण है। कोटिको यष्टि (१२ उंगल) द्वारा गुणाकर भुजसे भाग देनेसे पलभा होती है। इसका अनुपात :—

भुज : कोटि : १२ उंगल (यष्टि) पलभा।

१५ याम्योत्तरभित्तियन्त्र (Transit circle)—याम्योत्तररेखामें (Meridian line) किसी ज्योतिष्क-केन्द्रका आगमन होनेसे उसी आगमनको अतिक्रम कहा जाता है। ज्योतिष्क अतिक्रमकाल-निरूपण करनेके लिये जो यंत्र व्यवहृत होता है, उसका याम्योत्तरभित्ति या अतिक्रम-यंत्र (Transit instrument) कहते है। ऐसे समधरातल पर दो स्तम्भ खड़ा करो जहां जरा भी ऊंच नीच न हो। उस पर एक शलाका और एक दूरवीक्षणयंत्र दृढरूपसे रख दो। ईंट या लकड़ीके मजबूतीसे बने दोनों अवलम्बनके ऊर्द्ध्व-मुख रखे दो धातुमय आधारों पर समान दो उपयुक्त गह्वरमें शलाकाका दोनों छोर लगाना चाहिये। ये दोनों छोर इस तरह बराबर मोटा और गोलाकार हो, कि इस शलाकाको एक बार समधरातल रूपमें स्थापित कर दूरवीक्षणको घुमानेसे उसका समतलत्व विनष्ट न हो।

इस शलाकाके एक छोरमें दो स्क्रू या पेच रहते हैं, उसके एकको भिन्न भिन्न ओर घुमानेसे शलाकाका छोर उन्नतानत हो सकें इसलिये शलाकाको समधरातलरूपसे रखनेसे और कोई कसर नहीं रह जाती। दूसरे स्क्रूको घुमानेसे शलाकाकी पार्श्वगति उत्पन्न होती है और उसके द्वारा शलाकाको इच्छानुरूप पूर्व या पश्चिम ओर व्यवस्थापित किया जा सकता है। इस तरह चतुराईसे शलाका ठीक समतलभावसे पूर्व-पश्चिममें रखनेसे याम्योत्तर रेखासूचक (पूर्व निरूपित और दूर पर संस्थापित) किसी चिन्हसे दूरवीक्षणको यथास्थान रखना, जिससे उसके घुमानेसे दूरवीक्षणकी समरेखा ठीक याम्योत्तर रेखाको लक्ष्य कर घूम सके।

दूरवीक्षणके भीतरी मध्यरेखाको लम्बभावसे और नेत्रमुकुरके अधिश्रयणमें कितने ही तारोंसे बने एक पूर्व-पश्चिम व्याससयुक्त और कई दक्षिणोत्तर रेखा विलम्बित एक तारचक्र स्थापित रहता है। उसमें एक तार मध्यस्थलमें समधरातलरूपसे रहता है और दूसरे ५ या ७ परस्पर बराबर दूरी पर लम्बभावसे स्थापित रहते हैं। ये संयोजित तारमण्डल स्क्रू द्वारा पार्श्वकी ओर धरातल रेखा क्रमसे चालित हो सके और यह चालन द्वारा लम्बभावसे स्थित तारोंके वीचके तारको इस तरह रखा जा सके, जिससे उस दूरवीक्षणकी मध्य रेखा द्वारा दर्शनरेखा भी अवच्छिन्न हो। जब दूरवीक्षण ठीक उत्तर-दक्षिण ओर सूचक रेखा क्रमसे घूमती है, तब यह वीचका तार भी ठीक याम्योत्तररेखाके साथ एक धरातलस्थ हो कर सञ्चालित होता है। अतएव सूर्य या चन्द्रमण्डलके एक ओर या उसके विपरीत छोर अथवा कोई नक्षत्र, जिस जिस समयमें इस दूरवीक्षणके वीचके तारके साथ संयुक्त (सटता) और उससे वियुक्त (हटता) दिखाई दे; उस उस समय नाक्षत्रिक कालमान घड़ी द्वारा निरूपण करनेसे उन दोनों समयके

मध्यकाल द्वारा उस ज्योतिष्कके केन्द्रका अतिक्रम काल निरूपित होता है। इस तरह भिन्न-भिन्न ज्योतिष्कका काल निरूपित होने पर उसके परस्पर अन्तर भी निरूपित होते हैं। कारण, पृथ्वीके आह्निक गतिनिवन्धन प्रायः सभी ज्योतिष्क ही नाक्षत्रिक परिमाणके २४ घण्टेमें एक बार प्रदक्षिण अर्थात् ३६०° डिग्री परिभ्रमण करती है, ऐसा ही अनुमान करते हैं। सिवा इसके जब वासन्तिक विषुव (महाविषुवपद) माध्यन्दिन रेखामें आता है, तब यदि नाक्षत्रिक घटिकामें ० शून्य घण्टा हो अर्थात् उस घड़ीके कांटेकी गति आरम्भ हो, तो उस घटिका द्वारा निरूपित अतिक्रमकालको अंशकलादिमें परिवर्त्तित करनेसे एक समयमें ज्योतिष्कको निरक्षोदय (Right ascension) निरूपित होता है। निरक्षोदय और क्रांति निरुपित होनेसे सहज ही ज्योतिष्क मण्डलोंका (Heavenly bodies) स्थान सन्निवेश निरूपित हो सकता है।

प्राचीरवृत्त (*Mural* circle) ज्योतिष्ककी क्रान्तिका निरूपण करनेके लिये स्वतन्त्र यन्त्रविशेष। ईंटोंके वने प्राचीर या चहारदीवारी या स्तम्भगात्रमें यह यन्त्र आवद्ध रहता है, इसीसे इस वृत्ताकार यन्त्रका नाम प्राचीरवृत्त है। एक धातुनिर्म्मित चक्रके नेमिदेश ३६० अक्षमें सम भागसे विभक्त करना पड़ता है। जिससे इस अंशसूचक वृत्तके किसी एक स्थानसे इन सब अंशोंकी गणना आरम्भ कर पुनर्वार उस स्थानके आगे तक आ कर इस ३६०° अंशकी गणना शेष हो। इस चक्रके बीचसे कितने ही तार नेमिमें आवद्ध हैं। चक्रके केन्द्रस्थलमें एक गोल छिद्र, उसको पार कर एक आवर्त्तन कील जुड़ी रहती है। उसी कीलमें याम्योत्तर भित्तियन्त्रके दूरवीक्षणकी तरह एक दूरवीक्षण संलग्न किया जाता है। इस दूरवीक्षणके ऊपर और नीचेके पार्श्वमें दो भुजायें दृढ़वद्ध रहती हैं। अतएव चक्रको दृढ़वद्ध कर दूरवीक्षण घुमानेके साथ साथ कील और उसकी दोनों भुजायें घूमने लगती हैं और भुजामें संलग्न चिह्नों द्वारा चक्रनेमिकी अंश संख्या निरूपित होती है। इस यन्त्रका दूरवीक्षण इस ढङ्गसे स्थापित होना चाहिये जिससे याम्योत्तरभित्तियन्त्रके दूरवीक्षणकी तरह ठीक उत्तर-दक्षिण ओर स्थापित हो कर याम्योत्तर रेखा लक्ष्य कर घूम सके। ऐसा करनेसे इसके द्वारा अतिक्रमणकाल और ज्योतिष्क समूहके परस्परका दूरत्व निरूपित हो सकेगा, किंतु किस तरह इस यन्त्र-साहाय्यमें ज्योतिष्ककी क्रान्ति अवधारितकी जा सकती है, वही नीचे लिखी जाती है:—

पहले इस यन्त्रके चक्रको मध्यन्दिन रेखाके साथ समभावसे योजना करनी होगी। पीछे इस तरह इसे बैठाना होगा, कि जिससे चक्र दूरवीक्षणसे ठीक समान्तराल भावसे रहे। इसके उपरांत मेरुतारकाके ऊद्‌र्ध्वतन और अधस्तन अतिक्रमस्थान स्थिर कर उसके मध्यवर्त्ती माध्यन्दिन रेखा खण्डको दो खण्ड करनेसे वही अवच्छेदविन्दु ही खगोलका मेरु समझा जायगा। खगोलके मेरुनिरूपणके लिये पूर्वोक्त मेरुतारकाका ऊद्‌र्ध्वतन और अधस्तन अतिक्रम स्थानके साथ समसूत्रमें अवस्थित यन्त्र चक्रनेमिके जो दो विन्दु होंगे। उनके बीच भागको दो खण्ड करनेसे चक्रनेमिके अवच्छेदकका जो विंदु होगा, वही खगोलकका मेरु है। इसी अवच्छेदविन्दुको मेरुविन्दुका स्थान कहते हैं। इसी स्थानसे ही चक्रनेमिकी अंश संख्याकी गणना आरम्भ होती है। इसीलिये इस स्थानको (९) कल्पना की जाती है। इसी तरह (०) अङ्कित स्थानको खगोलके मेरुका समसूत्रमें स्थापित कर चक्रके दृढ़वद्ध करना होगा। पीछे जब दूरवीक्षण घुमा कर किसी चिह्नित नक्षत्रके प्रति लक्ष्य ठीक करना होगा, तब इस दूरवीक्षण भुजा द्वारा जो अंश सूचित होगा, वह ग्रहण कर यथाविहित गणना करनेसे उस नक्षत्रके मेरु अन्तर निर्णीत होगा। इसके वाद ६०से मेरु अन्तर देनेसे जो वाकी बचे वही क्रान्तिसूचक जानना। इस तरह निरूपित क्रान्ति और निरक्षोदय द्वारा ज्योतिष्कका स्थापन सन्निवेश स्थिर किया जाता है।

यदि एक ही समय दो ज्योतिष्कके आपसमें दूरत्व निरूपण करना हो, तो इस चक्रको इस तरह रखना चाहिये कि दूरवीक्षणको घुमाने पर उसमें दोनों ज्योतिष्क ही दिखाई दे। जब दोनों ज्योतिष्क दिखाई दे, तब दूरवीक्षणको भुजासे चक्रनेमिके अंशसूचक जो

दो संख्यायें रखी जायेंगी, उनकी बड़ी संख्यामें छोटी संख्या घटा देनेसे जो संख्या बाकी बचेगी, उससे उनके दूरत्वकी उपलब्धि होगी।

ऊपरमें सूर्यसिद्धान्त और सिद्धान्तशिरोमणिसे जिन सब यन्त्रोंकी बात कही गई, उनमें कितने ही भास्कराचार्यके समयमें बनी थीं। ज्योतिर्विद्-प्रवर भास्करसे बहुत पहले वराहमिहिर, आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, लल्लाचार्य आदि प्राचीन भारतीय ज्योतिषी यन्त्रोंका व्यवहार कर ज्योतिष्कके कालमान आदिका निर्णय कर गये हैं।

भारतीय हिन्दू-ज्योतिषियोंने यन्त्रके सम्बन्धमें बहुत आलोचना-प्रत्यालोचना कर जिन सब यन्त्रग्रन्थोंका प्रतिपादन किया है, उनको पढ़नेसे आर्य ज्योतिषियोंके वेधादि द्वारा ग्रहज्ञानशक्तिकी सम्यक् उपलब्धि हो सकती है। इस समय जो सब संस्कृत ग्रन्थ पाये जाते हैं, उनमें कई ग्रंथोंके नाम नीचे दिये जाते हैं,—

(क) सर्वतोभद्रयन्त्र—भास्कराचार्य विरचित।

(ख) यन्त्रराज—महेन्द्रसूरि द्वारा प्रणीत। महेन्द्रसूरि दिल्लीके बादशाह फिरोजशाह तुगलकके दरबारके प्रधान दरबारी या प्रधान पण्डित थे। १३०० शाके महेन्द्रसूरिके शिष्य मलयेन्दुसूरिने यंत्रराजकी टीका लिखी थी। यह यंत्रराजग्रंथ ५ अध्यायोंमें पूर्ण हुआ है। गणिताध्याय, यंत्रघटनाध्याय, यंत्ररचनाध्याय, यंत्रशोधनाध्याय, यन्त्रविचाराध्याय।

(ग) यंत्रचिन्तामणि—वामन-पुत्र चक्रधर रचित। ग्रंथकारने स्वयं इस ग्रंथका टीका की है। सिवा इसके और भी कई टीकायें पाई जाती हैं। यथा,—

१ यन्त्रचिन्तामणिदीपिका, (यंत्रचिंतामणिकी टीका), गोदावरी तीरवर्त्ती पार्थपुर-निवासी मधुसूदनके पुत्र रामदैवज्ञ-प्रणीत। (१५१४ शाके)

२ यंत्रचिन्तामणिदीपिका—प्रणेता हरिशङ्कर।

३ यंत्रचिन्तामणिविवृत्ति—प्रणेता पारणशुक्ल।

४ „ उदाहरण (१७१४ शाके), कृपाराम मिश्र।

५ „ (१७६७), दिनकर।

६ „ भवानीशङ्कर।

७ „ मालिका रामशुक्ल।

८ यन्त्रचिन्तामणि मालिका परमशुक्ल।

९ „ रामशङ्कर।

(घ) ध्रुवभ्रमयन्त्र—नर्मदात्मज पद्मनाभ-रचित। (१३२० शाके)

(ङ) प्रतोदयन्त्र—ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञ विरचित।

(च) यन्त्रराज या सिद्धान्त-सम्राट्—प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् राजा जयसिंहने युक्लिड या उक्लैदिसका अनुवादक जगन्नाथके साहाय्यसे आरबी 'मिजास्ती' नामक ग्रंथ संस्कृतमें अनुवाद कर "सिद्धान्तसम्राट्"-के नामसे प्रचार किया था। सिवा इसके यंत्रराज रचना प्रकार या जयसिंहकारिका नामसे जयसिंह-रचित और एक ग्रंथ दिखाई देता है।

(छ) गोलानन्द—चिंतामणि दीक्षित प्रणीत (१७१३ शाके)। यज्ञेश्वरसे गोलानन्दानुभाविका नामसे इसकी टीका प्रकाशित की है।

(ज यंत्रराजघटना और यंत्रराज-पद्धति—मथुरानाथ शुक्ल नामक एक मालवीय-ब्राह्मण रचित। (१७०४ शाके)

(झ) यंत्रोध्यायविवृत्ति—रामचंद्रकृत।

(ञ) यंत्रसार—नन्दराम मिश्र-प्रणीत। (१७६३ शाके)

भारतीय आर्य्ययुगके प्रतियोगी रूपमें पाश्चात्य जगत्के सुप्राचीन काल्डीय, बबिलन, ग्रीस, अलेक-जण्ड्रिया नगरोंमें भी ज्योतिःशास्त्रकी उन्नतिके साथ साथ यंत्रादिका आविष्कार हुआ था। मुसलमान-साम्राज्यके अभ्युदयकालमें विभिन्न प्रकारके यंत्रोंका उद्भव हुआ था। उनमें अरबवालोंके आविष्कृत दूरवीक्षण और समुद्र सूर्यतारकादिकी उच्चता निर्णयका चक्रयंत्र (Astrolabe) विशेष प्रशंसाह है। अम्बराधिप सवाई जयसिंहने भारतीय ज्योतिःशास्त्रकी उन्नतिके सम्बन्धमें प्राच्य और प्रतीच्य यन्त्रके सम्यक् उपकारिता उपलब्धि कर इन सब यन्त्रों और स्वकपोलोद्भावित नये नये यन्त्रोंको भी अपने वेधशालामें (observatory) स्थापित किया था। उनके अपने रचित जयप्रकाश, रामयन्त्र और सम्राट्यन्त्र वैदेशिकके अनुकरणसे गठित

हुआ था। वे वेधशाला स्थापनकार्यमें यूरोपवासियोंके अग्रणी थे। उनके अध्यवसायसे दिल्ली, जयपुर, मथुरा, बनारस और उज्जैयिनी नगरीमें वेधशालायें प्रतिष्ठित हुई थीं। वेधालय और जयसिंह देखो।

वर्त्तमान युगमें भारतीय यन्त्र चर्चाकी कमी होने पर भी बिल्कुल अभाव नहीं है। बहुत दिनकी बात नहीं है, कि उड़ीसेके खण्डपाड़ा राज्यके राजा नृसिंह भद्र-राज भ्रमरवर राज्यपत्नि और उसके पुत्र श्यामबन्धु-तनय महामहोपाध्याय चन्द्रशेखर सिंहने सामन्त (जन्म १८३५ ई०) सम्पूर्ण वैदशिक शास्त्रानभिज्ञ होने पर भी उस दिन अपनी बुद्धि द्वारा ज्योतिषिकयन्त्र निर्माणमें और यन्त्र परिचालनका परिचय दिया है उनके कार्य्यकर्म और गणनादि देख कर यूरोपीय ज्योतिषि समाज विस्मित हो गया है। राजवंशधर चन्द्रशेखर उड़िया वर्णमाला और संस्कृत तथा उड़िया भाषाके सिवा तीसरी भाषा जानते न थे। उनका असाधारण ज्योतिशास्त्राभिज्ञताने उनको विख्यात् यूरोपीय ज्योतिर्विद Tycho Brahe-की अपेक्षा उच्चासन प्रदान किया है।

वर्त्तमान यूरोपमें वैज्ञानिकोंके उत्साहसे बहुतेरे ज्योतिर्विद्या विषयक यन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। इन सब यन्त्रोंका विवरण लेख बढ़ जानेके भयसे यहां लिखा न गया। ऊपर केवल याम्योत्तर भित्तियन्त्र और प्राचीर वृत्तका उल्लेख किया गया। क्योंकि कुछ संस्कृत ग्रन्थकार इन सबको उपकारिता उपलब्ध कर उसका विवरण लिख गये हैं। इस तरह प्राचीन विवरणोंमें दिगंशयन्त्रका भी (Azimuth circle) आभास मिलाता है। विद्यालय देखो।

विज्ञानचर्चाकी उन्नतिके साथ साथ नाना तरहके रासायनिक और वैज्ञानिक यन्त्रोंका आविष्कार हुआ है। जड़विज्ञानके अन्तर्गत विद्युत-आलोक और जलके सम्बन्धमें पदार्थज्ञानघातक जिन सब यन्त्रोंका उद्भव हुआ है उन सबोंका विवरण विज्ञान शब्दोंमें और रासायनिक यन्त्रादिका इतिहास रसायन शब्दमें लिखा गया है। विज्ञान और रसायन देखो।

यन्त्रक (सं० क्ली०) यम्यते काष्ठमनेनेति यमधातोस्त्र-प्रत्ययेन यन्त्रः ततः स्वार्थे क-प्रत्ययेन निष्पन्नं। १ यन्त्र-काष्ठ, कुन्द। २ सुश्रुतके अनुसार कपड़ेका वह बंधन जो घाव आदि पर बांधा जाता है, पट्टी। इसे अंगरेजी-में bondage कहते हैं।

यन्त्रयति बध्नाति सेतुमम्बूनोनीति यन्त्रि ण्वुल्। (त्रि०) ३ शिल्पिमात्र, यंत्र आदिकी सहायतासे चीजें तैयार करनेवाला। ४ चर्मी, संयमी। ५ वशीकरणशील, वशमें कर लेनेवाला।

यन्त्रकरण्डिका (सं० स्त्री०) भोजवाजी प्रदर्शनार्थ पेटि-कामेद, वाजीकरोंकी पेटो जिसके द्वारा वे अनेक प्रकारके खेल करते हैं।

यन्त्रकर्मकृत् (सं० पु०) शिल्पी, वह शिल्पकार जो यन्त्र आदिकी सहायतासे चीजें तैयार करता हो।

यन्त्रगरुड़ (सं० पु०) यन्त्रकौशलमें प्रस्तुत गरुड़ाकृति। इसकी कल घुमानेसे गरुड़ आपसे आप उड़ने लगता है।

यन्त्रगृह (सं० क्ली०) यंत्रस्य ग्रहः। १ तैलशाला, वह स्थान जहां तेल चुआया जाता है। २ वेध-शाला। ३ ३ रासायनिक यंत्रागार। ४ यंत्रणा देनेका घर वह स्थान जिसमें प्राचीनकालमें अपराधियों आदिको रख कर अनेक प्रकारको यंत्रणा दी जाती थी।

यन्त्रगोल (सं० पु०) कलायविशेष, उरद।

यन्त्रचेष्टित (सं० क्ली०) भौतिक क्रिया, जादूगरी।

यन्त्रण (सं० क्ली०) यंत्र-ल्युट्। १ रक्षण, रक्षा करना। २ बंधन, बांधना। ३ नियम।

यन्त्रणवासन् (सं० क्ली०) क्षतादि बांधनेके लिये शाटक, सुश्रुतके अनुसार कपड़ेका वह बंधन जो घाव आदि पर बांधा जाता है।

यन्त्रणा (सं० स्त्री०) यंत्रि (न्यास श्रन्थो युच्। पा ३।३।१०७) इति युच् टाप्। १ वेदना, दर्द। २ यातना, तकलीफ।

यन्त्रतक्षान् (सं० पु०) यंत्रकार, वह जो यंत्र बनाता हो।

यन्त्रदृढ़ (सं० त्रि०) अर्गलाबद्ध।

यन्त्रधारागृह (सं० क्ली०) वह स्नानगृह जो यंत्र द्वारा परिचालित धारायुक्त हो, फुव्वारा।

यन्त्रनाल (सं० क्ली०) वह नल जिसके द्वारा कूएं आदिसे जल निकाला जाता है।
यन्त्रपुत्रक (सं० पु०) कलकी पुतली।
यन्त्रपेषणी (सं० स्त्री०) पिष्यतेऽनयेति पिष्-करणे ल्युट् ङीप्, यंत्रमेव पेषणी। पीसनेका यंत्र, चक्की।
यन्त्रप्रवाह (सं० पु०) १ यन्त्र द्वारा परिचालित जलस्रोत २ दमकल।
यन्त्रमन्त्र (सं० पु०) जादू, टोना।
यन्त्रमय (सं० त्रि०) मन्त्रसम्बन्धीय, यन्त्रगठित।
यन्त्रमातृका सं० स्त्री०) चौंसठ कलाओंमेंसे एक कला। इसमें अनेक प्रकारके यन्त्र या कलें आदि बनाना और उनसे काम लेना सम्मिलित है।
यन्त्रमार्ग (सं० पु०) जलप्रणाली, खाल।
यन्त्रयुक्त (सं० त्रि०) १ यन्त्रसमन्वित, यन्त्र मिला हुआ। २ हाल डांड़ और पालयुक्त नाव आदि।
यन्त्रराज (सं० पु०) ज्योतिषमें एक यन्त्र जिससे ग्रहों और तारोंकी गति जानी जाती है।
यन्त्रवत् (सं० त्रि०) यन्त्रः विद्यतेऽस्य यन्त्र अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। यन्त्रविशिष्ट, यन्त्रयुक्त।
यन्त्रविद्या (सं० स्त्री) कलोंके चलाने और बनानेकी विद्या।
यन्त्रशर (सं० पु०) वह अस्त्र जो यन्त्रकी सहायतासे फेंका जाता है।
यन्त्रशाला (सं० स्त्री०) १ वेधशाला। २ वह स्थान जहां अनेक प्रकारके यन्त्रादि हों।
यन्त्रसूत्र (सं० पुं०) वह सूत्र जिसकी सहायतासे कठपुतली नचाई जाती है।
यन्त्रापीड़ (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपात ज्वर। इसका लक्षण—

"येन मुहुर्ज्वरवेगात् यन्त्रैर्यावापी ड्यते गात्रम्।
रक्तं पीतञ्च भवेत् यन्त्रापीड़ः स विज्ञेयः॥" (भावप्र०)

जिस सन्निपात ज्वरके कारण शरीरमें बहुत अधिक पीड़ा होती है और रोगीका लहू पीले रंगका हो जाता है उसे यंत्रपीड़ कहते हैं।
यन्त्रारूढ़ (सं० त्रि०) यंत्र पर रखा हुआ।
यन्त्रालय (सं० पु०) १ मुद्रायन्त्र, छापाखाना। २ यन्त्रागार मात्र, वह स्थान जहां कल या यंत्रादि हों।
यन्त्राश (सं० पु०) एक राग जो हनुमतके मतसे हिंडोल रागका पुत्र है।
यन्त्रिका (सं० स्त्री०) यन्त्रयति कृतकौतुकापीड़यतीति यन्त्रि ण्वुल्, टापि अत इत्वं। १ स्त्रीकी छोटी बहन, छोटी साली। २ छोटा ताला।
यन्त्रित (सं० त्रि०) यंत्रि-क्त। १ जो यंत्र आदिकी सहायतासे बांधा या बंद कर दिया गया हो रोका या बंद किया हुआ। २ ताला लगा हुआ, तालेमें बंद।
यन्त्रिन् (सं० त्रि०) यंत्र अस्त्यर्थे इन् वा यंत्रयति ऽध्नाति यंत्रि बन्धने णिनि। १ बन्धकारक, यंत्रमंत्र करनेवाला, तांत्रिक। २ बाजा बजानेवाला।
यन्त्रि (सं० त्रि०) यन्त्रिन् देखो।
यन्त्रोपल (सं० पु०) चक्कीका पत्थर।
यन्द (हिं० पु०) स्वामी।
यन्निमित्त (सं० अव्य०) जिस कारणसे, जिसके लिये।
यन्मंहिष्ठीय (सं० क्ली०) सामभेद।
यन्मध्ये (सं० अव्य) जिसके भीतर अन्दर।
यन्मय (सं० त्रि०) यद्व्याप्त। यत् स्वरुप, जैसा।
यन्मात्र (सं० त्रि०) जिस परिमाणमें।
यन्मूर्धनि (सं० पु०) जिसका शिर।
यम (सं० पु०) यमयति नियमति जीवानां फलाफलमिति यम-अच्। १ भारतीय आर्योंके एक प्रसिद्ध देवता जो दक्षिण दिशाके दिक्पाल कहे जाते हैं और आज कल मृत्युके देवता माने जाते हैं। पर्याय—यमराज, पितृपति, समवर्त्ती, परेतराट्, कृतान्त, यमुनाभ्राता, शमन, यमराट्, काल, दण्डधर, श्राद्धदेव, वैवस्वत, अन्तक, धर्म, जीवितेश, महिषध्वज, औडुम्बर, दण्डधार, कीनाश, दध्न, महिषवाहन, शीर्णपाद, भामशासन, कङ्क, हरि, कर्मकर। (जटाधर)

वैदिक विवरण।

वैदिक निघण्टु ग्रंथमें (५।५) 'यम' और 'मृत्यु' पृथक् रूपसे उल्लेख है। व्याख्याकारोंके मतकी आलोचना करनेसे भी मालूम होता है, कि मृत्यु और यम विभिन्न वैदिक देवता हैं। निरुक्तकार यास्क, नैघण्टुक काण्ड-निर्वचनकार देवराजयज्वा तथा निरुक्तटीकाके

दुर्गाचार्यके मतसे जो प्राणिमात्रके मारक हैं, वे ही मृत्यु हैं, अर्थात् वह देवता जो मरने पर भोगायतन देहसे जीवात्माको विमुक्त करते हैं। दुर्गाचार्यने मृत्यु और यमकी भिन्नताको स्वीकार कर कहा है, "मृत्यु-देवता निश्चय ही मध्यलोकसञ्चारी वायु हैं।" किन्तु यमके सम्बन्धमें महामुनि यास्कने लिखा है, "जो जीवमात्रको ही कर्मानुयायी स्थान प्रदान करते हैं, वे ही यम हैं।" देवराजयज्वाने उक्त निर्वचनानुसार दानार्थं दा धातुसे कर्त्त वाच्यमें अच् प्रत्यय करके 'यम' पदको सिद्ध किया है और कहा है, कि यम नभश्चारी वायुविशेष हैं। यास्क प्रदर्शित यमदेवताकी स्तुतिमें 'सङ्गमनं जनानां' अर्थात् जो कर्मफलभोगी जीवोंको इस लोकसे दूसरे लोकमें ले जाते हैं वे ही यम हैं। अतएव उपरोक्त घटनासे स्पष्ट मालूम होता है, कि मृत्यु और यम कार्यतः भिन्न होने पर भी दोनोंमें बहुत कुछ सदृशता देखी जाती है। अथर्व्ववेदमें "यः प्रथमः प्रवतमाससादः यमाय नमो अस्तु मृत्यवे" (६।२८।३।) इस मन्त्र द्वारा यम अन्यान्य सभी देवोंसे श्रेष्ठ हैं तथा 'मृत्यु' नामसे ही उनकी पूजा होती है। यहां यम और मृत्यु दोनों एक हैं। ऋग्वेदके १०।१८।१ मन्त्रमें मृत्यु देवताकी स्तुति देखी जाती है। फिर १०।१४।१ मन्त्रमें यमका पूजनीयत्व घोषित हुआ है। देवराजके व्याख्यानुसार इसका अर्थ है, 'जो देवता सम-तलवासी, ऊद्ध्र्वप्रदेशवासी, निम्नदेशवासी सभी भूत-जातिसे परिचित हैं, जो क्या पुण्यवान्, क्या पापी सभीका गन्तव्य मार्ग-दर्शक हैं, जो विवस्वद्देवके प्रशंस-नीय पुत्र हैं, जो पक्षपातशून्य हृदयमें कर्मफलानुसार जीवोंको इस लोकसे दूसरे लोकमें जानेके लिये उपयुक्त शरीर दान करते हैं, जो प्राणधारी जीवमात्रके ही राजा कहे जाते हैं उस 'यम' नामक देवताको हविः प्रदान द्वारा पूजा करो।'

इससे यमको पूजनीयता अच्छी तरह समझा जाती है।

वेदमें कई जगह यम और उनकी बहिन यमी (वा यमुना) को विवस्वत् और सरण्युकी यमज सन्तति बत-लाया है। (ऋग्वेद १०।१७।२) यम और यमीकी कथो-पकथनमें यम कहते हैं, "हम लोग गन्धर्व तथा अप्या योषाके पुत्र हैं।" (१०।१०।४) ऋग्वेदके कई स्थानोंमें यमको वरुण कहा है और उनका अग्निके साथ एकत्र वर्णन देखा जाता है। कहीं कहीं अग्नि और यम (१०।२१) अभिन्न भावमें उल्लिखित हैं। फिर कहीं (१।१६४ सूक्त) अग्नि, यम और मातरिश्वाका एकत्र अभिन्नरूपसे वर्णन देखनेमें आता है।

प्रेत (मृत व्यक्तिगण) स्वर्ग जा कर सबसे पहले यम और वरुणको देखते हैं। (१०।१४ सूक्त) ऋग्वेदके वर्णनसे प्रतीत होता है, कि यम मृत पितरोंके विशेषतः आङ्गिरसोंके अधिपति हैं। परवर्त्ती तैत्तिरीय आरण्यक (६।५) और आपस्तम्ब-श्रौतसूत्रमें (१६।६) यमके घोड़ोंका वर्णन है। उनके खुर लौहमण्डित और चक्षु सुवर्णज्योतिविशिष्ट हैं। अथर्व्ववेदमें भी (१८।२ सू०) लिखा है, कि वे ही मृत व्यक्तियोंको आश्रम देते तथा भविष्य वास-स्थान ठीक करते हैं। फिर नवममण्डलके ११३ वें सूक्तमें आकाशके दूरवर्त्ती तथा उच्चतम अंशमें यमका स्थान कल्पित हुआ है। त्रिलोकमें मध्य दो सवितृलोक और तीसरा यमलोक है। वाजसनेय-संहिताके वर्णनानुसार यम यमीके साथ उच्चतम स्वर्ग-में विराजित हैं तथा उनके चारों ओर दिव्य सङ्गीत और वीणाध्वनि हो रही है।

यम और यमकी कथोपकथनमें यमीने यमको सर्व-प्रथम मरणशील बतलाया है। यम ही सबसे पहले देहत्याग कर मरणपथके नेता हुए हैं। फिर अथर्व्ववेद (६।२८) में मृत्युको यमका पथस्वरूप भी बतलाया है। ऋग्वेदमें यमकी विभीषिकाका विशेष उल्लेख तो देखनेमें नहीं आता पर अथर्व्ववेदमें यम विभीषिकास्व-रूप हैं।

ऋग्वेद (१०।१६५ सू०) में एक उल्लू या कपोतको यमका दूत कहा है। यह उल्लू मृत्युका नामान्तर मात्र है। अथर्व्ववेद (८।८सू०) में इस रूपकका उल्लेख देखनेमें आता है। किंतु यमके यथार्थ दूत (१०।१४) ही भीषण कुत्ते हैं। उनमेंसे एक भिन्न भिन्न रंगका और दूसरा साँवला है। उनके चार सफेद आँख और बड़ी नाक है। दोनों सरमा (देवता-ओंकी एक कुतिया)-के पुत्र हैं। वे यमके पथकी रक्षा

करते हैं। प्रेत व्यक्तिगण उन दोनों कुत्तोंके सामनेसे बड़ी तेजीसे भागते हैं। प्रसिद्ध पाश्चात्यपण्डित ब्लुमफिल्डका कहना है, कि दोनों कुत्ते चंद्र और सूर्यके रूपक वर्णनमात्र हैं।

वेदके यम पारसिकोंके आदिधर्मशास्त्र अवस्तामें 'यिम' नामसे वर्णित हैं। ग्रीक पुराणके प्लुतो (Pluto) और मिनस (Minos) के साथ यमकी सम्पूर्ण सदृशता है। अवस्ताके यिम और वेदके यममें कोई पृथक्ता नहीं। (यस्न३०।३) यिमके यिमे नामक यमज बहिन थी। वे ही मानवजातिके आदि मातापिता हैं। अवस्तामें यिमके पिताको 'विवंहृत्' और वेदमें भी यमके पिताको 'विषस्वत्' कहा है। अतएव दोनोंमें कुछ भी पृथक्ता नहीं देखी जाती। वेदके यम यमीके कथोपकथनमें यमका चरित्र अति उज्ज्वल भावमें वर्णित है। यमीके सम्भोगार्थ बार बार प्रार्थना करने पर भी यमने उसे नाना युक्ति द्वारा टाल दिया था। किन्तु अवस्तामें 'यिम' 'यिमे' जिस प्रकार दम्पतीरूपमें वर्णित है, ऋग्वेदमें भी उसी प्रकार यमी यमके साथ सम्बन्ध परिचयमें 'दम्पती' शब्दका प्रयोग देखा जाता है। यमने भी कहा है, कि, 'ऐसा युग आयेगा, जब भाई और बहिनमें सहवास करोगे।' (१०।१०।१०)

पौराणिक।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि विश्वकर्माके संज्ञा नामक एक कन्या थीं। रविके साथ उसका विवाह हुआ था। संज्ञाने रविको देख कर आँखें मूंद ली थी, इसलिये रविने क्रुद्ध हो कर उसे शाप दिया, कि तुमने मुझे देख कर चक्षुःसंयम (आंख मूंद ली) कर लिया, इस लिये तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा वह प्रजासंयम-यम होगा अर्थात् वह प्रजाओंको संयमन करेगा।' संज्ञाने रविका यह निदारुण अभिशाप सुन कर पुनः चञ्चल दृष्टि उनकी ओर डाली। इस पर रविने फिरसे उसे कहा था, 'जब तुमने मुझे पुनः चञ्चल दृष्टिसे देखा, तब तुम्हारे जो कन्या जन्म लेगी वह चञ्चला नदीरूपमें परिणत होगी।' कालक्रमसे उसके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्र प्रजासंयम यम और कन्या यमुना कहलाई। (मार्कण्डेयपुराण ७७ अ०)

स्मृतिमें चौदह यमोंके नाम देखनेमें आते हैं। तर्पण कालमें चौदह यमके उद्देशसे तर्पण करना होता है। उन चौदहोंके नाम ये हैं, यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औडुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त। इन चौदहों यमोंका तिलमिश्रित तीन अञ्जलि जल द्वारा तर्पण करनेसे सालभरका किया हुआ पाप नष्ट होता है। विशेषतः कृष्णाचतुर्दशीके दिन नदीमें यमतर्पण करना चाहिये। यमुना नदीमें तर्पण करनेसे सभी पाप दूर होते हैं।

"यां काञ्चित् सरितं प्राप्य कृष्णापक्षे चतुर्दशीम्।
यमुनायां विशेषेण नियतस्तर्पयेद् यमान्॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥
औडुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥
एकैकस्य तिलैर्मिश्रांस्त्रींस्त्रीन् दद्याज्जलाञ्जलीन्।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥" (तिथितत्त्व)

प्रतिदिन जब तर्पण करना होता है तब यह यमतर्पण करना आवश्यक है। परन्तु असमर्थ होने पर इन सब यमोंके उद्देशसे एक एक अञ्जलि जल द्वारा तर्पण किया जा सकता है।

यम पापी और पुण्यात्माके पाप-पुण्यका विचार कर पापीको नरक और पुण्यात्माको स्वर्गमें भेजते हैं। धर्मानुसार पापपुण्यका विचार करते हैं, इसलिये इन्हें धर्मराज कहा है। ये पापी और पुण्यात्माको भिन्न भिन्न रूपमें दर्शन देते हैं। पुण्यात्माके निकट इनका निम्नोक्त प्रकारका रूप होता है। यम जब पुण्यात्मा व्यक्तिको देखते हैं, तब वे चतुर्बाहु, श्यामवर्ण, शङ्खचक्रगदापद्म और गरुड़वाहन आदि भागवत-चिह्न धारण करते हैं।

"तानागतांस्ततो दृष्ट्वा नरान् धर्मपरायणान्।
भास्करिः प्रीतिमासाद्य स्वयं नारायणो भवेत्॥
चतुर्बाहुः श्यामवर्णः प्रफुल्लकमलेक्षणः।
शङ्खचक्रगदापद्मधारी गरुड़वाहनः॥
स्वर्णयज्ञोपवीती च स्मेरचारुतराननः।
किरीटी कुण्डली चैव वनमालाविभूषितः॥"

(पद्मपुराण क्रियायोगसार २२ अ०)

पापात्माके निकट उनका निम्न प्रकारका रूप होता है। तीस योजन लंबा उनका अंग, तड़ागके समान नेत्र, धूम्रवर्ण, अतितेजस्वी, प्रलयके मेघगर्जनके समान उनकी ध्वनि, लोम अग्निस्फुलिङ्गकी तरह दांतोंकी पंक्ति लंबी और सड़सीकी तरह नख, सूपकी तरह अति प्रचण्ड महिषारूढ़, हाथमें भीषण दण्ड, चर्मवास और मुख भ्रूकुटि-कुटिल होता है।

"त्रिंशद्योजनदीर्घाङ्गो वापीसदृशलोचनः।
धूम्रोवर्णो महातेजाः प्रलयाम्भोधरध्वनिः॥
तृणाधिराजलोमा च ज्वलदग्निशिखाग्रवत्।
नासारन्ध्रस्फुरच्छ्वासस्वनैर्जितमहानिलः॥
सुदीर्घदशनश्रेणिः सूर्योपमनखावलिः।
प्रचण्डमहिषारूढ़ः सन्दंशदशनच्छदः॥
दण्डहस्तश्चर्मवासा भ्रूकुटिकुटिलाननः॥"
(पद्मपु० क्रियायोगसा० २२ अ०)

फिर पद्मपुराणके उत्तरखण्ड २२७वें अध्यायमें लिखा है,—

"दंष्ट्राकरालवदनं भ्रूकुटिकुटिलाननं।
ऊर्द्ध्वकेशं महाश्मश्रुं प्रस्फुरत् साधकोत्तरम्॥
अष्टादशभुजं शुद्धं नीलाञ्जनचयोपमम्।
सर्वायुधोद्यतकरं ब्रह्मदण्डेन तर्ज्जकम्॥
महामहिषमारूढं दीप्ताग्निसमलोचनं।
रक्तमाल्याम्बरधरं महामेरुमिवोत्थितं॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्तमिव सागरं।
ग्रसन्तमिव त्रैलोक्यमुद्गिरन्तमिवानलं॥
मृत्युं चैव समीपस्थं कालानलसमप्रभं।
कालं चाचलसङ्काशं कृतान्तं च भयावहम्॥"

पौराणिक लोग अकसर कहा करते है, कि देवताओंके श्मश्रु नहीं, किन्तु पाद्ममें यमके श्मश्रुके प्रमाण पाते हैं।

इस संसारमें जो सब मनुष्य सर्वदा पुण्यकर्म तथा देवद्विजमें भक्ति और तपश्चर्यादिका अनुष्ठान करते हैं। उन्हें यमका भय नहीं रहता अर्थात् यम उन्हें दण्ड नहीं दे सकते।

"ये भक्ताः पुण्डरीकाक्षे कर्मणा मनसा गिरा।
स्वकर्मनिरता दान्ता न नियम्या हि ते त्वया॥
कृष्णः संपूजितो यैस्तु यैः कृष्णः समुपासितः।
यैश्च नित्यं स्मृतः कृष्णो न ते त्वद्विषयोपगाः॥"
इत्यादि (अग्निपु० नरसिंहप्रादुर्भावाध्याय)

जो भक्त कायमनोवाक्यसे विष्णुकी पूजा करते तथा स्वकर्मपरायण होते हैं, उन्हें यमका भय नहीं रहता।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें लिखा है, कि सावित्री-कृत यमाष्टकका प्रतिदिन प्रातःकाल भक्तिपूर्वक पाठ करनेसे यमका भय दूर तथा उसके सभी पाप दूर होते हैं।

"सावित्र्युवाच—
तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा।
धर्मांशं यं सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः।
अतो यन्नामशमनमिति तं प्रणमाम्यहम्॥
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परं।
कर्मानुरूपकाले च तं कृतान्तं नमाम्यहम्॥
बिभर्त्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे।
नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वदेहिनाम्॥
विश्वे यः कलयत्येव यः सर्वायुश्च सन्ततम्।
अतीव दुर्निवार्य्यश्च तं कालं प्रणमाम्यहम्॥
तपस्वी वैष्णवो धर्मी संयमी विजितेन्द्रियः।
जीविनां कर्मफलदं तं यमं प्रणमाम्यहम्॥
स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवे।
पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम्॥
यज्जन्म ब्रह्मणो वंशे ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
यो ध्यायति परं ब्रह्म ब्रह्मवंशं नमाम्यहम्॥
इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने।
यमस्तां विष्णुभजनं कर्मपाकमुवाच ह॥
इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात् प्रमुच्यते॥
महापापी यदि पठेत् नित्यं भक्त्या च नारद।
यमः करोति तं शुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम्॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० २८ अ०)

गरुड़पुराणके उत्तरखण्ड ३३वें अध्यायमें यमलोकका इस प्रकार वर्णन है,—

मनुष्यलोकसे यमलोक ८६ हजार योजन दूर है, इस महापथ हो कर ही पापी मनुष्य यमलोक जाते हैं। वहां गले हुए तांबेकी तरह अग्निस्रोत हमेशा वहा करता है। कोई स्थान कांटोंसे आकीर्ण है और कोई अग्नितुल्य उत्तप्त वालूकी कणसे व्याप्त है। वहां वृक्षादि भी नहीं है, कि प्रेतगण विश्राम करें। उस भीषण यममार्गमें भूख प्यास आदि बुझानेका कोई उपाय नहीं है। जिसने जैसा पाप किया है वह उसी प्रकारके पथसे यमलोक जाता है। पापियोंके यन्त्रणासूचक उच्च चीत्कारसे पत्थर भी विदीर्ण हो जाता है।

याम्य और नैऋत कोणके मध्य वज्रमय सुरासुरको अभेद्य वैवस्वत यमकी पुरी वनी है। वह पुरी चौकोन है, उसमें चार दरवाजे और सात तोरण हैं। यम वहां पर दूतोंसे घिरे हुए हमेशा वैठे रहते हैं वह यम-भवन हजार योजन विस्तृत है और समुज्ज्वल विद्युज्ज्वाला वा सूर्यतेजकी तरह चमक रहा है। सर्वरत्नविमण्डित यम-भवन पांच सौ योजन ऊँचा है। वह भवन वैदुर्य-मणिमण्डित सहस्र गोलाकार स्तम्भोंसे घिरा है। उसके झरोखे मुक्ताजालमण्डित है और उस पर एक सौ पताका फहरा रहो हैं। एक सौ फाटकों पर लगातार घंटाध्वनि हुआ करता है। वहां भगवान् धर्म दश योजन विस्तीर्ण नीलाम्वरसन्निभ आसन पर वैठे हैं। वे ही धर्मके नियन्ता, पापियोंके भयदाता और धार्मिकोंके सुखदाता हैं। उनके चारों ओर वेणुध्वनि होती और शंख वजाते हैं।

यमपुरोके मध्य चित्रगुप्तका घर शोभता है। वह वीस योजन विस्तीर्ण है और दश योजन ऊँचे लोहेके प्राचोरसे घिरा है। ऊपरमें सैकड़ों पताका शोभती और तरह तरहकी गीतध्वनि होती है। घरके मध्य मणिमुक्ताका आसन विछाया हुआ है। उस आसन पर चित्रगुप्त वैठ कर मनुष्यकी आयु गणना करते हैं और कायस्थोंके साथ अठारह प्रकारके दोषोंसे रहित हो मनुष्यको सुकृतिका परिमाण लिखते हैं। उनके चारों ओर सव प्रकारको व्याधि मूर्त्ति धारण कर खड़ी है। सौ हजार यमदूत तरह तरहके हथियारसे पापियोंको सजा देते हैं।

उक्त पुराणके उत्तरखण्ड १६वें अध्यायमें भी यममार्गका विवरण है। वहां "यमश्चतुर्भुजो भूत्वा शङ्खचक्रगदादिभृत्"—अर्थात् यम चतुर्भुज और शङ्खचक्रगदाधर हैं। वे अञ्जनाद्रिसमप्रभाविशिष्ट है, महिपकी सवारी है और प्रलयकालीन जलधरकी तरह गरजते हैं। उनका शरीर तीन योजन विस्तृत है। हाथमें भीषण लौहदण्ड और पाशास्त्र है। आँखोंसे विजलीके समान अंगार निकल रहे हैं। किन्तु उनकी दोनों भयानक आँखें वक्र हैं। यम पापियोंको बुला कर उनके किये हुए दुष्कर्मोंके लिये भय दिखलाते है।

उक्त पुराणके १६वें अध्यायमें चित्रगुप्तपुरका वर्णन है।

वराहपुराण (१६६ अ०)-में नचिकेताने यमालयादिका जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है--

प्रेतपतिका नगर चार हजार योजन लंवा और दो हजार योजन चौड़ा है। इस नगरमें नाना प्रकारके स्वर्णमण्डित हर्म्यप्रासाद और अट्टालिका हैं। कैलासशिखरके समान ऊँचे सोनेके प्राचीरसे यह नगर घिरा है। वहांकी सभी नदियां विमलसलिलशालिनी और दिर्घिका नलिनीमण्डिता हैं। वड़े वड़े पथोंसे हाथी, घोड़े तथा असंख्य नर-नारी आती जाती है। हमेशा शोरगुल हुआ करता है। कोई नाचता है और कोई रोता है। वहांकी सवसे श्रेष्ठ नदीका नाम पुष्पोदका है। उसके दोनों किनारे एक पंक्तिमें तरह तरहके वृक्ष शोभा दे रहे हैं। नदीका जल सुशीतल और सुगन्धित है। उस जलमें विशाल जांघवाली गन्धर्व-रमणियां हमेशा जलक्रीड़ा करती हैं। यमलोकके सुवर्णनिर्मित अट्टालिकाओं तथा पुष्पोदकके जलमें दिव्याङ्गना अप्सरायें तथा किन्नरियां नाना प्रकारको क्रीड़ा द्वारा पुण्यवान् लोगोंको प्रसन्न किया करती हैं। दिव्याङ्गनाओंके भूषण-शिञ्जन तथा जलतुर्यनिनादसे वह पुष्पोदिका अमरावतीकी मन्दाकिनीको भी मात करती है। यमालयके मध्यस्थलमें वैवस्वती नामकी एक और महा नदी है। उसके जलमें कुन्द इन्दुवर्णके हंस सर्वदा विचरण करते हैं तथा उत्तप्त कनकद्युतिसम्पन्ना कमलिनी सदा प्रस्फुटित रहती हैं। सभी सोपान सोनेके वने हैं और जल

अमृतके समान स्वादिष्ट और सुगन्धित है। उस नदीमें सुन्दर मदमाती देववाला तरह तरहकी वाद्यध्वनिके साथ गीत गाती हैं जिसे सुन कर दर्शक अपनेको भूल जाते हैं। यमपुरकी ऐसी छटाके सामने अमरावतीका चारुचित्र भी मलिन हो जाता है। ऐसे रमणीय यमालयमें प्रवेश करनेके दो दरवाजे हैं। उनमेंसे एक सोनेका बना है और दश योजन चौड़ा है तथा दोनों बगल ऊंची दीवार खड़ी है। इस पथसे देवता, ऋषि और पुण्यात्मागण प्रवेश करते हैं। यह पथ नानायन्त्र सुशोभित और शतप्रासादसमाकीर्ण है। दूसरा दरवाजा लोहेका है। वह भयानक और पापियोंके लिये बना है। यह पथ प्रचण्ड अग्निसे उत्तप्त रहता है। जो पापी, नृशंसक और दुरात्मा हैं वही इस पथसे प्रवेश करते हैं।

इस रमणीय यमालयमें मृत व्यक्तिके विचारार्थ सुन्दर रत्नमयी दिव्य यमसभा है। इस सभामें जितेन्द्रिय वीतराग तपस्विगण रहते हैं। यह सभा पापी और पुण्यात्मा दोनोंके लिये बनी है। धर्मराजकी इस सभाका नाम धर्मसंहिता है। जो प्रजापति, पराशर, उद्दालक, आपस्तम्ब, बृहस्पति, शुक्र, गौतम, शङ्ख, लिखित, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह आदि धर्मशास्त्रप्रयोजको तथा यम-संहिताके अनुयायी शास्त्रसम्मत धर्मकर्मका अनुष्ठान करते । वे यमपुरमें परमसुख ऐश्वर्य्यमें समय बिताते हैं।

यमदूतगण डरावने, काले, लम्बी दाढ़ीवाले और बेढंगे होते हैं। वे लोग यमके आज्ञानुसार पापियोंको दण्ड देते हैं यहां सर्वतेजोमयी शुभ यमके द्वारा पूजिता सर्वसाधिनी मोहनी देवी रहती हैं। सुरासुर और ऋषियोंकी भी वे पूज्य हैं। उनके शरीरसे क्लेशदायक व्याधियां निकलती हैं। भीषण मृत्यु और उनके अनुचरवर्ग वहां विराजमान हैं। अनेक प्रकारके ज्वर और दारुण वेदना नरनारीका रूप धारण कर वह खड़ी रही हैं। कामक्रोधविचारिणी नानारूपधारिणी रमणियों चारों ओर हलहला शब्दसे पृथ्वीको कंपा देती हैं। अलावा इसके कुष्माण्ड, यातुधान, राक्षस, पिशिताशन, एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद, बहुपाद, एकबाहु, द्विबाहु, त्रिबाहु, बहुबाहु, शंकुकर्ण, महाकर्ण, हस्तिकर्ण आदि यमदूत नाना आभरणोंसे भूषित तथा कुठार, कुदाल, चक्र, शूल, शक्ति, तोमर, धनु, असि, मुद्गर आदि अस्त्रोंसे सज्जित हो पापियोंको कष्ट देते हैं। अन्यान्य यमदूतगण दधि, गन्ध, तरह तरहके खाद्य वस्त्र और सवारियां ले कर पुण्यात्माओंकी अपेक्षा करते हैं। पूर्वोक्त यमसभाके मध्यस्थलमें प्रेतपुराधिपति बैठते हैं। इसी यमलोकमें चित्रगुप्तपुर अवस्थित है। इस चित्रगुप्तपुरमें वैतरणी नदी बहती है। यहां नाना प्रकारके सुकृत और दुष्कृतका स्थान विद्यमान है।

वराहपु० १९९-२०५ अ० देखो।

ज्योतिषिक।

सुप्रसिद्ध पण्डित बाल-गङ्गाधर तिलकने Orion और Arctic Home in the vedas नामक पुस्तकमें वैदिक ज्योतिषका उद्धार कर यमपथ और पितृलोकका जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है—

विष्णुपुराण पढ़नेसे मालूम होता है, कि देवयान और पितृयान सूर्यके भ्रमणपथ (क्रान्तिवृत्त)-का अंश विशेष है। यमका पथ देवयानके विपरीत अर्थात् पितृयान वा दक्षिणपथ है। पुराणमें भी यमको दक्षिणदिक्पाल कहा है। साधारण प्रवचनमें भी 'यमके दक्षिण द्वार' का उल्लेख है। सिद्धान्तज्योतिष और पुराणके मतसे उत्तरायण (देवयान वा देवलोक)-में जब सूर्य ६ मास रहते हैं, तब देवताओंका दिन और जब दक्षिणायन (पितृयान-यमलोक)-में ६ मास रहते हैं, तब देवताओंकी रात्रि होती है। अतएव पितृयाण दक्षिणपथ वा यमलोकका नामान्तरमात्र है। अभी यमद्वारमें कल कल शब्द करती हुई वैतरणी नदी बहती है। वहां प्रहरी स्वरूप जो दो कुत्ते हैं उनका ज्योतिषिक अर्थ इस प्रकार दिया गया है—ऋग्वेद (१०।१४-सू०)-में लिखा है—

"हे यम! वैतरणीके किनारे तुम्हारे द्वारके प्रहरीस्वरूप जो चार चार आंखवाले और पथरक्षक दो कुत्ते हैं तथा जिनके दृष्टि सभी मनुष्यों पर पड़ती है, उनके क्रोधसे इन मृत व्यक्तियोंकी रक्षा करो। हे राजन्! इन्हें कल्याणभागी बनाओ।" फिर १०।४३ सूक्तमें देवी

नौका द्वारा वैतरणी पार करनेकी बात लिखी है।

तैत्तिरीय-ब्राह्मण (१।१।२)में दो दिव्य श्वा (कुत्ते) का उल्लेख है तथा वहां कालकञ्ज (कालपुरुष) नामक असुरका वर्णन भी पाया जाता है।

उपरोक्त वैदिकवर्णन द्वारा तिलक कहते हैं, कि आकाशगङ्गा (मन्दाकिनी वा छायापथ) यमद्वारकी वैतरणी है, उस मन्दाकिनीके मध्य जो अगस्त्य नक्षत्र (Argo navis) है वह दिव्य नौका स्वरूप है तथा जिन दो दिव्य (ज्योतिर्मय) कुत्तोंकी बात लिखी है, उनमेंसे एक कुत्ता लुब्धकनक्षत्र (Canis major वा sirius canis श्वन् आकाशगङ्गाके पश्चिमी किनारे और दूसरा आकाशके पूर्वी किनारे रहता है। दूसरे कुत्तेका नाम प्रलुब्धक (Canis mionr = Procyon = (greek) Prokuan (संस्कृत) प्रश्वन्) है। ये दोनों ज्योतिर्मय ताराकूपी कुत्ते वैतरणीके दोनों किनारे अवस्थित हैं। पहले ही कहा जा चुका है, कि विषुववृत्से ले कर सूर्यके समस्त दक्षिणपथका नाम यमलोक है। मृगशिरा नक्षत्रमें विषुवन् नहीं रहनेसे यमलोक जानेमें वैतरणी नदी नहीं पड़ती तथा दोनों कुत्तोंके सामने हो कर नहीं जाना पड़ता। अवस्ता और ग्रीकपुराणमें यमद्वार पर वैतरणी (Styx) और दोनों कुत्तोंके रहनेका हाल लिखा है। इन दोनों नामोंका पाश्चात्य अर्थ आज भी कुक्कुरबोधक है। ग्रीकपुराणके यम (Hades) अपनी पत्नी पार्सिफोन (Persephone)-के साथ एक आसन पर बैठ कर विचार करते थे तथा उनका अनुचर कुत्ता (Cerberus) वैतरणी (Styx)-के दूसरी किनारे यमराजकी रक्षा करता था। लुब्धक नक्षत्रको ऋग्वेद-में 'सरमा' कहा है। सरमासे ही सारमेय (अथर्ववेद १८।२ सू०) हुआ है। इसका विवरण यही स्थिर हुआ, कि जिस समय मृगशिरा नक्षत्रमें विषुवद्दिन होता था उसी प्राचीनतम कालमें इस यमराज्यकी कल्पना हुई थी।

ऋग्वेद (१०।१० सूक्त) में विवस्वान् और सरण्युकी सन्तति यम और यमी यमज भाई बहिनका उल्लेख है। यमीने यमके साथ जब सहवास करनेकी इच्छा प्रकटकी तब यमने उसे नाना युक्तिसे टाल दिया। उसके लाख अनुरोध करने पर भी यमने स्वीकार नहीं किया। वेदमें यमके बड़े भाई वैवस्वत (मनु) और अवस्ताके यिमको एक व्यक्ति कहा है। यिमने अपनी बहनसे विवाह कर मनुष्यवंशकी सृष्टि की। वे ही अवस्ताके मनु हैं। हिमप्रलयकालमें जीवोंकी रक्षा करते हैं।

तिलकने गहरी खोज कर यह साबित किया है, कि जब पुनर्वसु नक्षत्रमें विषुवन् रहता था, उस समयके विषुवन्की अवस्थितका अवलम्बन कर इस रूपको-पाख्यानकी कल्पना हुई है। देवमाता अदिति पुनर्वसु नक्षत्रकी देवी है। वे बारह आदित्योंकी भी माता हैं। जिस समय देवयान वा देवलोक तथा पितृयाण वा यम-लोक अदिति नक्षत्रमें मिला हुआ था। उसी समयसे अदिति देवजननी हुई हैं। यम और यमी यमज होनेका कारण यह है, कि पुनर्वसु नक्षत्रके दो तारे हैं (Castar Pallux) वही सम्भवतः यम और यमी हैं। यूरोपके वेदज्ञ पण्डितमण्डली यम और यमीको दिनरात मानती हैं। उन लोगोंके मतसे यम और यमीके मिलनेसे दिन-रात होती है। आकाशगङ्गाके पश्चिम पार्श्वमें ही पुनर्वसु नक्षत्र अवस्थित है। तिलकका कहना है, कि पुनर्वसुमें जो दो तारे हैं, शाकल्यसंहिताके मतसे उनमें से एकका नाम यमकौ है। अतएव इस यमक (यम और यमी)से ही पुनर्वसु नक्षत्रमें अवस्थित नरमिथुन-रूपी मिथुनराशिकी कल्पना है। अभी मिथुनराशिमें ये दोनों उज्ज्वल तारे (Castor, Pallux) देखे जाते हैं। वराहके मतसे लुब्धक (मृगव्याध वा (Sirius वा Canis major) तथा प्रलुब्धक (Procyon) पुनर्वसुमें अव-स्थित हैं। अतः राशिचक्रका मिथुनराशि जो यम और यमी-संघटित व्यापारमें कल्पित है वह स्पष्ट प्रतीत होता है। पाश्चात्य पण्डितोंका कहना है, कि उसमें प्रथम नरमिथुनका आकार वर्णित हुआ है। पारसिकों के आदि धर्मशास्त्र अवस्तामें इस नरमिथुनसे मनुष्यकी सृष्टि बतलाई है। मिस्रपुराणके ओसिरिस और आइ-सिस यम और यमीसे विभिन्न नहीं हैं।

ग्रीकपुराणमें जो यमके कुत्ते (Cerberus) सरमा (Hermes echidna) और वैदिक वर्णनमें कुत्तोंका उल्लेख है, उससे डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रने प्राचीन

आर्य और सेमतिक जातिके शवदाह वा समाधि प्रथाका आविष्कार किया है। उनका कहना है, कि वेदमें जो श्येन (मिस्रदेशके पुराणमें केवल श्येनको ही Hawk यमका दूत कहा है) और कुत्तेको यमका दूत कहा है, इसका अर्थ यह कि वैदिक युगमें शवदाह वा समाधिप्रथा सर्वत्र प्रचलित न थी। (Indo Aryan, vol II, p. 161) उस समय मृतदेह जंगलमें गाड़ दी जाती थी और कुत्ते, गीध्र आदि पक्षी उसे निकाल निकाल कर खाते थे। उत्तर मङ्गोलिया तथा प्राचीन पारसिक जातिकी शाखा विशेषमें यह प्रथा आज भी प्रचलित है। सोगडियाना तथा वाह्लिकमें भी यही प्रथा प्रचलित थी। ग्रीक पुराणमें हिराक्लीसने इस कुत्तोंको मार डाला था, अर्थात् इस विभत्स प्रथाको उठा दिया था।

श्रीमद्भागवत, देवी भागवत, ब्रह्मपुराण, नारदीय पुराण (उत्तरभाग ५-६ अ०) अग्निपुराण और स्कन्द पुराणमें यम, यमलोक और यमदूतादिका सविस्तार वर्णन है।

पारिभाषिक यमदण्ड—कार्त्तिक मासके ८ दिनसे ले कर अग्रहायणमासके ८ दिन तक यमदण्ड कहलाता है। इन दिनों लघु आहार करना उचित है। लघु आहार करनेवाले दीर्घजीवि होते हैं।

"कार्त्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टाग्रहायणस्य च।
यमस्य दर्शना एते लघ्वाहारी स जीवति" (वद्यक)

२ शरीरसाधनापेक्ष नित्य कर्म, चित्तको धर्ममें स्थिर रखनेवाले कर्मोंका साधन।

मनुके अनुसार शरीर-साधनके साथ साथ इनका पालन नित्य कर्त्तव्य है। मनुने अहिंसा, सत्यवचन, ब्रह्मचर्य, अकल्कता और अस्तेयमें पांच यम कहे हैं।

"अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता।
अस्तेममिति पञ्चैते यमाश्चैव व्रतानि च॥" (मनु)

गरुड़ पुराणमें भी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच प्रकारके यम कहे हैं।

"अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ।
यमाः पञ्चाथ नियमाः शौचद्विविधमीरितम्॥"
गरुड़पु० १०६ अ०)

परन्तु उसी पुराणमें दूसरी जगह यमकी संख्या दश कही गई है। यथा—

"ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्कता।
अहिंसास्तेयमाधूर्ये दमश्चैते यमाः स्मृताः॥"
(गरुड़पु० १०६ अ० और याज्ञवल्क्यस० ३।३१३)

ब्रह्मचर्य, दया, क्षान्ति, ध्यान, सत्य, अकल्कता, अहिंस अस्तेय, माधुर्य और दम ही दश प्रकारके यम हैं।

"आनृशंस्यं क्षमासत्यमहिंसा दम आर्जवम्।
प्रीति-प्रसादो माधुर्यं मार्दवञ्च यमा दश॥"
(पारस्करगृह्य० २।७)

पारस्कर-गृह्यसूत्रमें भी आनृशंस्य, क्षमा, सत्य अहिंसा, दम, ऋजुता, प्रीति, प्रसाद, माधुर्य और मृदुता ये दश प्रकारके यम बतलाये हैं। 'यम' योगके आठ अंगोंमेंसे पहला अंग है।

यच्छति नियच्छति इन्द्रियग्राममनेति यम-घञ्। ३ संयम, मन, इन्द्रिय आदिको वश या रोकमें रखना। ४ काक, कौआ। ५ शनि। ६ विष्णु। यमज, जोड़े। ७ दो की संख्या। ८ वायु।

यमक (सं० क्लो०) यमं युग्मभावं कायति प्राप्नोतीति कै-क। १ शब्दालङ्कारविशेष। इसका लक्षण—

भिन्न भिन्न आर्थावाले स्वरव्यञ्जनोंकी क्रमिक आवृत्ति होनेसे यह अलङ्कार होता है अर्थात् एक ही शब्द कई बार आनेसे यह अलङ्कार होगा। उदाहरण—

"नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयेत् स सुरभिं सुरभिं समनोभरैः॥"
(साहित्यद० १० परि)

पलाश, पलाश, पराग, पराग, लतान्त, लतान्त, सुरभि, सुरभि इस शब्दका भिन्न भिन्न अर्थमें व्यवहार होनेसे यह अलङ्कार हुआ है।

"यमकादो भवेदैक्यं डलोर्बवोलरोस्तथा।"
(साहित्यद० १० परि०)

यमकादि स्थानमें 'ड, ल, ब, व, र, ल' इन सब वर्णोंका ऐक्य हुआ करता है।

"भुजलतां जड़तामबलाजनः" यहां 'जलता और जड़ता' इन दो शब्दोंका प्रयोग होनेसे यमक अलङ्कारकी हानि नहीं हुई।

यह अलङ्कार युग्मपादयमक, अयुग्मपादयमक, आदियमक और अन्तयमक, पादमध्ययमक, पादान्तयमक, पादादियमक, पादादिमध्ययमक, पादाद्यन्तयमक, मध्यान्तयमक, काञ्चीयमक, गर्भयमक, चक्रवालयमक, पुष्पयमक, महायमक, मिथुनयमक, अन्तयमक, विषमयमक, समुद्गयमक और सर्वयमक भेदसे बहुत प्रकारका है।

इसके लक्षण और उदाहरण आदि काव्यादर्शके दशवें परिच्छेद तथा भट्टिकाव्यके दशवें सर्गमें लिखे हैं।

२ व्यूहविशेष, सेनाको एक प्रकारका व्यूह या गमाव। (महाभारत ४।५५।५२) ३ सदृश, समान। ४ वृत्तका नाम जिससे प्रत्येक चरणमें एक नगण और दो लघु मात्राएं होती हैं। (त्रि०) ५ यमज, वे दो बालक जो एक साथ ही उत्पन्न हुए हों। (पु०) ६ संयम।

यमकनमर्दी—बम्बई प्रदेशके बेलगांव जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ८' उ० तथा देशा० ७४° ३२' पू०के बीच पड़ता है।

यमकात (सं० पु०) १ यमका छुरा वा खाँड़ा। २ एक प्रकारकी तलवार।

यमकातर (हिं० पु०) यमकात देखो।

यमकालिन्दी (सं० स्त्री०) यमः कालिन्दी च सुतः सुता च यस्याः। संज्ञा, सरण्यु, सूर्यपत्नी, यम और यमुनाकी माता।

यमकिङ्कर (सं० पु०) यमस्य किङ्करः। यमदूत, यमको किंकर।

यमकीट (सं० पु०) यमसूचकः कीटः। भूकीटविशेष, केंचुवा।

यमकील (सं० पु०) विष्णु। (हेम)

यमकूट—निषधके उत्तरदिक्स्थ एक प्रकारका नाम।
(जैन हरिवंश ५६।२।१०)

यमकेतु (सं० पु०) यमका केतु, मृत्युध्वज, मृत्युसूचक।

यमकोटि (सं० स्त्री०) वह पुरी जो देवताओं द्वारा बनाई गई है और जो भूगोलके चारों ओर लङ्कासे पूर्वकी ओर अवस्थित है।

"लङ्काकुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनञ्च।
अधस्ततः सिद्धपुरः सुमेरुः सौम्येऽथ याम्ये वाड़वानलश्च॥
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।"
(सिद्धान्तशिरोमणि)

यमक्षय (सं० पु०) यमस्य क्षयः। यमके लिये क्षय वा नाश, मृत्यु।

यमगाथा (सं० स्त्री०) वह स्तुतिमन्त्र जो यमके उद्देश्यसे किया गया हो, तैत्तिरीय-संहिताका ५।१।८।२ मन्त्र।

यमगीत (सं० क्ली०) विष्णुपुराणके तीसरे अंशका सातवां अध्याय जिसमें यमकी स्तुति है।

यमघण्ट (सं० पु०) यमं घण्टयतीति घण्ट-अण्। १ ज्योतिषके अनुसार एक दुष्ट योग। इस योगमें शुभ काम वर्जित है। यह योग रविवारके दिन मघा और पूर्वफल्गुनी, सोमवारके दिन पुष्या और अश्लेषा, मंगलवारको ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी और अश्विनी, बुद्धवारको हस्ता और आर्द्रा, बृहस्पतिको मूला, पूर्वाषाढ़ा, रेवती और उत्तरभाद्रपद, शुक्रवारको स्वाति और रोहिणी तथा शनिवारको शतभिषा और श्रवणा नक्षत्र होने पर होता

इस योगमें यदि कोई यात्रा करें तथा वे इन्द्रके समान भी व्यक्ति क्यों न हों तथापि उनकी मृत्यु होगी ही होगी। विवाहमें वैधव्य, कृषिवाणिज्यमें निष्फलता, विद्याके आरम्भमें मूर्खता, गृहप्रवेशमें भङ्ग, चूड़ामें मरण, ऋणदानमें फलकी शून्यता तथा व्रत आदि भी फलरहित हो जाते हैं। इसलिये इसमें कोई शुभ काम नहीं करना चाहिए।

इसमें कुछ प्रतिप्रसव देखनेमें आता है। वह यह, कि इस यमघण्टयोगमें आठ दण्डके बाद यात्रा करनेसे शुभ होगा।

यह विशेष नियम रहने पर भी प्रतिप्रसव मानना युक्ति संगत नहीं। जिन सब स्थानोंमें दोष है उसे त्याग करना ही विधेय है। तब जहां कार्यकी बड़ी हानि हो वहां प्रतिप्रसव मान कर कार्य करना जरूरी है। २ दीपावलीका दूसरा दिन, कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपद।

यमघ्न (सं० त्रि०) यमं हन्ति इन-हन-क। यमघाती।

यमचक्र (सं० पु०) यमराजका शस्त्र।

यमज (सं० त्रि०) यमो यमकः सन् जायते इति जन-ड एक गर्भसे एक ही समयमें और एक साथ उत्पन्न होनेवाली दो सन्तानें। एक साथ जन्म लेनेवाले दो बच्चोंको यमज कहते हैं। इस यमज सन्तानोंमें जो पहले जन्म लेगी वही सन्तान ज्येष्ठ कहलायेगी। निषेकके आदिकालको ले कर ज्येष्ठत्व स्थिर करना कठिन है। सुतरां जो सन्तान पहले जन्म लेगी वही ज्येष्ठ होगी।

"वहिर्वर्योषु चारित्राद् यमो पूर्वं जन्मतः।
यस्य जातस्य यमयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम्।
सन्तानः पितरश्चैव तस्मिन् ज्येष्ठं प्रतिष्ठितम्॥"
'जन्मप्राथम्यात् ज्येष्ठं यमयोः ननु निषेकप्राथम्यात्
जन्मप्राथम्यसन्देहे मुखदर्शनप्राथम्यात्॥" (उद्वाहतत्त्व)

सुश्रुतमें लिखा है, कि बीज अर्थात् शुक्रशोणित गर्भाशयका अभ्यन्तरस्थ वायु द्वारा भिन्न अर्थात् द्विधा विभक्त होनेसे दो सन्तान उत्पन्न होती हैं। यह यमज सन्तान होना पापका फल है। शास्त्रमें लिखा है, कि यमज सन्तान होनेसे प्रायश्चित्त करना होता है।

(सुश्रुत शारीरस्था०)

(पु०) २ दोषान्वित घोटक, ऐसा घोड़ा जिसका एक ओरका अंग हीन और दुर्बल हो और दूसरी ओरका वही अंग ठीक हो। ३ अश्विनीकुमार।

यमजात (सं० त्रि०) यमज देखो।

यमजातना (सं० स्त्री०) यमयातना देखो।

यमजित् (सं० पु०) यमं मृत्युं जितवान् जि-क्विप् तुक् च। मृत्युञ्जय, मृत्युको जीतनेवाले अर्थात् शिव।

यमतीर्थ (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक तीर्थका नाम

यमत्व (सं० क्ली०) यमस्य भावः त्व। यमका भाव या धर्म।

यमदंष्ट्र (सं० पु०) १ असुरभेद। (कथासरित्सा० ६।१६) २ देवपक्षीय एक योद्धा। ३ एक राक्षसका नाम।

यमदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) वैद्यकके अनुसार आश्विन, कार्त्तिक और अगहनके लगभगका कुछ विशिष्ट काल। इसमें रोग और मृत्यु आदिका विशेष भय रहता है और इसमें अल्प भोजन तथा विशेष संयम आदिका विधान है। कुछ लोगोंके मतसे यह समय कार्त्तिकके अन्तिम आठ दिनों और अगहनके आरम्भिक आठ दिनोंका है। और कुछ लोगोंके मतसे आश्विनके अन्तिम आठ दिन और पूरा कार्त्तिक मास इसके अन्तर्गत है। यम देखो।

यमदग्नि (सं० पु०) जमन् हुतभक्षणशीलः, प्रज्वलितोऽग्निरिव, पृषोदरादित्वात्, जस्य यः। जमदग्निमुनि, भगवान् परशुरामके पिता।

जमदग्नि और परशुराम शब्द देखो।

यमदण्ड (सं० पु०) यमस्य दण्डः। यमराजका डंडा, कालदण्ड।

यमदुतिया (हिं० स्त्री०) यमद्वितीया देखो।

यमदूत (सं० पु०) यमस्य दूतः। १ यमके दूत। ये अतिशय विकृताकार, पाश और मुद्गर आदि हाथमें ले कर विद्यमान हैं। इनके दंष्ट्राकरालवदन, अंगारसदृश प्रभाविशिष्ट, प्रज्वलित अग्निके समान नेत्र और महावीर हैं। ये सब यमदूत आसन्नमृत्यु व्यक्तिके पास जाते और उसे यमदूतके समीप ले जाते हैं।

"क यूयं विकृताकाराः पाशमुद्गरपाणयः।
दंष्ट्राकरालवदनाः अङ्गारसदृशप्रभाः॥
यूयं सर्वे महावीरा ज्वलत्पावकलोचनाः।
कृता तथापि युष्माकमियं केन सुदुर्गति॥
यमदूता ऊचुः।—
यमदूता वयं सर्वे यमाज्ञाकारिणः सदा।
त्वद्दत्तोऽयं द्विजास्माकं सुमहान् कश्मलोदयः॥"

(पद्मपु० क्रियायोगसा० ६ अ०)

२ काक, कौआ। स्त्रियां ङीप्। ३ नौ समिधोंमेंसे एक।

यमदूतक (सं० पु०) यमस्य दूत इवेति कन्। १ काक, कौआ। पूरक-पिण्डदानके बाद वायसको बलि देनी होती है। एवं उस समय कहना पड़ता है, कि मैंने यह पिण्ड प्रदान किया तुम यमके पास इसे पहुंचाओ। पूरकपिण्ड देखो। २ यमके दूत।

यमदूतिका (सं० स्त्री०) यमस्य दूतिकेव। तिन्तिड़ीवृक्ष, इमलीका पेड़।

यमदेवता (सं० स्त्री०) यमो देवता अधिष्ठात्री यस्याः। भरणी नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाती देव यम हैं। प्रत्येक नक्षत्रकी एक एक अधिष्ठात्री देवी हैं।

यमदैवत (सं० त्रि०) यमदेवतासम्बन्धीय।

यमद्रुम (सं० पु०) यम इव भयावहः द्रुमः। शाल्मलि-वृक्ष, सेमरका पेड़। इसका यह नाम इसलिये है, कि इसमें फूल तो बड़े सुन्दर देख पड़ते हैं परन्तु उससे कोई खाने लायक फल नहीं उत्पन्न होता।

यमद्वितीया (सं० स्त्री०) यमप्रियां द्वितीया, मध्यपदलोपि कर्मधा०। कार्त्तिक मासकी शुक्लाद्वितीया। बोल-चालमें इसे भाई-दूज कहते हैं। यह चान्द्रकार्त्तिक-मासमें होती है। कार्त्तिकमासकी शुक्लाद्वितीयाके दिन भाईके पूजा नहीं करनेसे सात जन्म तक भाईका नाश होता है।

महाभारतमें लिखा है,—पहले कार्त्तिकमासकी शुक्ला द्वितीया तिथिको यमराजने अपनी बहन यमुनाके यहां भोजन किया था। इसीलिये इस दिन बहनके यहां भोजन करना और उसे कुछ देना मंगलकारक और आयुर्वृद्धिकर माना जाता है।

"कार्त्तिके तु द्वितीयायां शुक्लायां भ्रातृपूजनम्।
यो न कुर्यात् विनश्यन्ति भ्रातरः सप्तजन्मनि॥"

यमद्वितीयाको बहनके हाथसे भोजन करना होता है, इस कारण भोजनकालमें जो पञ्चमयामार्द्ध है उस समय तिथि प्राप्त होनेसे ही यह कृत्य होगा।

भ्रातृद्वितीया देखो।

इस तिथिमें कहींको यात्रा न करनी चाहिये। यदि कोई करे, तो उसकी मृत्यु होती है।

"तथा यमद्वितीयां यात्रायां मरणं भवेत्।"
(ज्योतिःसारस०)

पद्मपुराणमें यमद्वितीया-व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है,—कार्त्तिक मासकी शुक्लाद्वितीयाके दिन यह व्रत करनेसे अपमृत्युका भय नहीं रहता। इस दिन प्रातःकृत्यादि करके शुभ औडुम्बर (गूलर) वृक्षमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी स्थापना कर नाना उप-चारसे पूजा करनी होती है। पीछे मृत्यु विनाशके लिये अलङ्कारयुक्त धेनु ब्राह्मणको दान करना आवश्यक है। धेनुके अभावमें वस्त्र सहित जलका घड़ा दान किया जा सकता है।

पीछे सरस्वती पूजा करके यत्नपूर्वक बहनके हाथसे भोजन करे तथा उसे वस्त्र और अलङ्कारादि दे। इस व्रतके प्रभावसे वर्ष भरमें किसीके भी साथ कलह नहीं होता, यमदूत व्रतधारीसे दूर रहता है, अपुत्रके पुत्रलाभ होता है, निर्धन धन पाता है, तथा उसके सप्तजन्मकृत पाप नष्ट होते हैं, इत्यादि। पद्मपुराणसे इस व्रतकी कथा नीचे उद्धृत की गई—

"ब्रह्मोवाच।

यदि चेच्छसि विप्रेन्द्र व्रतानां व्रतमुत्तमम्।
व्रतं यमद्वितीयाख्यं शृणु त्वं मृत्युवारणम्॥
कार्त्तिके मासि शुक्लायां द्वितीयायां मुनीश्वर।
कर्त्तव्यं तद्विधानेन ह्यपमृत्युनिवारणम्॥
ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम्।
प्रातः कृत्वा द्विजः स्नानं दन्तधावनपूर्वकम्॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः।
कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः॥
विधिं विष्णुञ्च रुद्रञ्च संस्थाप्यौडुम्बरे शुभे।
पद्मं सप्तदलं कृत्वा पूजयेत् सुस्थमानसः॥
चन्दनागुरुकर्पूर-कङ्कुमैर्द्विजसत्तम।
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यै र्नारिकेलादिभिः फलैः॥
सरस्वतीञ्च वरदां वीणापुस्तकधारिणीं।
ध्यायेत् शुक्लाम्बरधरां हंसवाहनसंस्थिताम्॥
ततो मृत्युविनाशार्थं सालङ्कारां पयस्विनीम्।
विप्राय वेदविदुषे गाञ्च दद्यात् सवत् सकाम्॥
अपमृत्युविनाशाय संसारार्णवतारिकाम्।
विप्र तुभ्यमिमां रौद्रीं धेनुः सम्प्रददे ह्यहम्॥
इति वाक्यविचारेण धेनुं दद्यात् द्विजातये।
कुलीनाय सुशान्ताय रोगहीनद्विजाय वै॥
तस्याप्यलाभे विप्रेन्द्र विप्राय सदुपानहौ।
दद्यात् कार्त्तिकशुक्लायां द्वितीयायां विशेषतः।
ज्ञातिश्रेष्ठान् तथा वृद्धान् संपूज्य चाभिवादयेत्
नारिकेलादिदानेन तोषयेत् स्वजनानपि॥
ततः सोदरसम्पन्ना भगिनीयाभवन्मुने।
तस्या गृहं समागत्य श्रद्धयानोऽभिवादयेत्॥
भद्रे भगिनि सुभगे त्वदङ्घ्रिसरसीरुहे।
श्रेयसेऽद्य नमस्कर्त्तुमागतोऽहं तवालयम्॥

इति श्रुत्वा भगिन्यादिः सोदरं विनयान्विताः ।
मृदुवाक्यैस्ततस्तस्य पूजनं क्रियते महत् ॥
अद्य भ्रातृमती भ्रातस्त्वं नो वयसि बान्धवः ।
भोक्तव्यं भोऽद्य मद्गेहे त्वायुषे कुलदीपक ॥
कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां सहोदरः ।
यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्च्चितः ।
अस्मिन् दिने यमेनापि पूजिता भगिनी शुभा ॥
स्वसुर्नरो वेश्मनि यो न भुङ्क्ते यमद्वितियादिनमेव लब्धा ।
तं पापिनं सर्वसुराः प्रबुध्य संसारमार्गे रटयन्ति विप्र ॥
तस्माद् भ्राता स्वसृगृहे भोक्तव्यं मासि कार्त्तिके ।
शुक्लायाञ्च द्वितीयायां सर्वैश्वर्य्याय भो द्विज ॥
वर्षे वर्षे च कर्त्तव्यं यशसे आयुषे श्रिये ।
ततः संप्राप्य सुमते भगिन्यै सुविधानतः ॥
स्वर्णालङ्कारवस्त्रादिदानसत्कारमादरात् ।
प्रदद्यान्मुनिशार्द्दूल पूर्व्वयावनतः सुधीः ॥
स आशिषं प्रगृह्यास्या नमस्कृत्य क्षमापयेत् ।
सर्वा भगिन्यः सन्तोष्या ज्येष्ठानुक्रमशस्तदा ॥
वस्त्रान्नपानसत्कारैर्भोजनैः पुष्टिवर्द्धनैः ।
करोत्येवं नरो विद्वान् न याति यमयातनम् ॥
अपमृत्युं न प्राप्नोति सत्यं सत्यं हि नान्यथा ।
यैर्भगिन्यः सुवासिन्यो वस्त्रालङ्कारतोषिताः ॥"
इत्यादि । (पद्मपु० उत्तरखण्ड १२५ अ०)

यमद्वीप (सं० पु०) द्वीपभेद, सम्भवतः यवद्वीपका दूसरा नाम ।

यमधानी (सं० स्त्री०) यमपुरी ।

यमधार (सं० पु०) यमा युग्मीभूतो धाराऽस्य यद्वा यमवत् विनाशिका धारा यत्र । पार्श्वद्वय धारायुक्त अस्त्रविशेष । ऐसी तलवार या कटारी आदि जिसके दोनों ओर धार हो ।

यमन (सं० क्ली०) यम-भावे ल्युट् । १ बन्धन, बांधना । २ प्रतिबंध या निरोध करना, नियमसे बांधना । ३ विराम देना, ठहराना । ४ रोकना, बंद करना । (पु०) यमयति नियमतीति यम-ल्युट् । ५ यमराज । (त्रि०) यमयति वशमानयतोन्द्रियग्राममिति । ६ संयमकर्त्ता, संयमी ।

"यन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः" (शुक्लयजु० ९।२२)
'यमनः स्वयं संयमकर्त्ता भवसि' (महीधर)

यमकल्याण (सं० पु०) एमन देखो ।

यमनक्षत्र (सं० क्ली०) भरणी नक्षत्र । इस नक्षत्रको अधिष्ठात्री देवता यम माने जाते हैं इसीलिये इस नक्षत्र का नाम यमनक्षत्र पड़ा है ।

यमनगर (सं० क्ली०) यमपुरी, यमकी राजधानी । (वराहपु०)

यमनिका (सं० स्त्री०) यच्छति आकृणोतीति यम ल्युु, कन्-टाप् । यवनिका, नाटकका पर्दा ।

यमनियम (सं० क्ली०) अष्टाङ्गयोगसाध्य साधनविशेष ।

यमनी (अ० स्त्री०) एक प्रकारका बहुमूल्य पत्थर । इसकी गणना रत्नोंमें होती है । यह पत्थर अरबके यमनप्रदेशसे आता है ।

यमनेत्र (सं० त्रि०) यम जहां अधिनायकरूपसे वर्त्तमान हैं ।

यमन्वन् (सं० पु०) वृद्धि द्वारा वर्द्धितको एक संज्ञाका नाम ।

यमपुर (सं० पु०) यमके रहनेका स्थान, यमलोक । इसके विषयमें यह माना जाता है, कि मरने पर यमके दूत प्रेतात्माको पहले यहां ले आते हैं और तब उसे धर्म-पुरमें पहुंचाते हैं ।

यमपुरी (सं० स्त्री०) यमलोक, यमपुर ।

यमपुरुष (सं० पु०) यम एव पुरुषः । १ यमराज । २ यमदूत ।

यमप्रस्थपुर (सं० पु०) एक प्राचीन नगर । यह कुरुक्षेत्र-के दक्षिणमें था । कहते हैं, कि वहांके निवासी यमके उपासक थे । शंकराचार्यने वहां जा कर निवासियों को शैव बनाया था ।

यमप्रिय (सं० पु०) प्रीणातीति प्री-क, यमस्य प्रियः । वटवृक्ष, बड़का पेड़ ।

यमभगिनी (सं० स्त्री०) यमस्य भगिनी स्वसा, यमुना नदी ।

यममार्ग (सं० पु०) यमस्य मार्गः ६-तत् । मृत्युपथ ।

यममार्गगमन (सं० क्ली०) १ यमपथानुवर्त्तन, मृत्युपथ पर जाना । २ कृतकार्यको पुरस्कार-प्राप्ति ।

यमयन (सं० पु०) शिव, ब्रह्मशिरोहर्त्ता । (हरिवंश २७८।२७)

यमया (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार एक प्रकारका नक्षत्रयोग ।

यमयातना (सं० स्त्री०) यमके दूतोंकी दी हुई पीड़ा, नरककी पीड़ा । २ मृत्युके समयकी पीड़ा ।

यमयिष्णु (सं० त्रि०) नमस्कारेच्छु ।

यमरथ (सं० पु०) १ महिष, भैंसा । २ यमका वाहन ।

यमराज (सं० पु०) प्राणिसंयमनात् यमप्रभृतयः किङ्कराश्तेषु राजते यमेन संयमेन राजते इति वा, राज-क्विप् । यम ।

यमराज (सं० पु०) यमश्चासौ राजा चेति (राजाहःसखिभ्यष्टच् । पा ५।४।९१) इति टच् । १ यमोंके राजा धर्मराज जो मरनेके पीछे प्राणोके कर्मोंका विचार करके उसे दंड या उत्तम फल देते हैं ।

"पुरी संयमनी तस्य चित्रगुप्तस्तु लेखकः ।
भृत्यौ चण्डमहाचण्डौ धूमोर्णाविजये प्रिये ।
विचारभूमिका नीचिः सहायाः कालपूरुषाः ॥" (जटाधर)

२ ज्ञानार्णवके प्रणेता एक प्रधान चिकित्सक ।

यमराज्य (सं० क्ली०) यमस्य राज्यं । यमलोक ।

यमराष्ट्र (सं० क्ली०) यमलोक ।

यमर्क्ष (सं० क्ली०) यमाधिदैवतं ऋक्षं । यमनक्षत्र, भरणी नक्षत्र ।

यमल (सं० क्ली०) यमं लातीति ला-क । १ युग्म, जोड़ा । (त्रि०) २ यमज, दो लड़के जो एक ही साथ पैदा हुए हों ।

यमलपत्रक (सं० पु०) यमलं यमजं पत्रमस्य, बहुव्रीहौ क । १ अश्मन्तकवृक्ष, मूंजकी तरहकी एक घास । २ कोविदारवृक्ष, कचनारका पेड़ ।

यमलच्छद (सं० पु०) काञ्चनारवृक्ष, कचनारका पेड़ ।

यमलपत्रक (सं० पु०) १ कनेर । २ अश्मन्तक ।

यमलपुर— वसूही नदीके किनारे एक बड़ा गांव । (भ० ब्रह्मख० ५७।१७५-८)

यमलवयदुर्ग—मद्रास प्रदेशके कृष्णाजिलेके अन्तर्गत एक बड़ा शैल । यह अक्षा० १६° ५७' २२" उ० तथा देशा० ८०° ३८' ८" पू०के मध्य अवस्थित है ।

यमलसू (सं० स्त्री०) वह गौ जिसके दो बच्चे एक साथ उत्पन्न हुए हों ।

यमला (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका हिक्का या हिचकीका रोग जिसमें थोड़ी थोड़ी देर पर दो दो हिचकियां एक साथ आती हैं और सिर तथा गरदन कांपने लगती है । २ तान्त्रिकोंकी एक देवी । ३ एक प्राचीन नदीका नाम ।

यमलार्ज्जुन (सं० पु०) यमलौ च तौ अर्ज्जुनौ । गोकुलके दो अर्जुनवृक्ष । इसका विषय भागवतमें इस प्रकार लिखा है,—कुबेरके दो पुत्र नलकूवर और मणिग्रीव थे । ये दोनों एक बार मद्य पी कर मत्त हो रहे थे और नंगे हो कर नदीमें स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे । ऐसे समयमें नारद अकस्मात् वहां जा उपस्थित हुए और उन्हें इस अवस्थामें देखा । स्त्रियां नारदको देख अत्यन्त लज्जित हो गईं और शापके भयसे वस्त्र पहन लिया । किन्तु नलकुवर और मणिग्रोव ऐसे मदोन्मत्त हो गये थे कि नारदको आना उन्हें विलकुल ही मालूम न हुआ और इसी अवस्थामें वे जाने लगे । नारदने यह अवस्था देख कर उन्हें शाप दिया कि तुम दोनों अर्जुन वृक्षरूपमें परिणत होगे । ऐसा ही हुआ । नारदके अभिशापसे दोनों भाई गोकुलमें यमलार्ज्जुन वृक्ष हो गये । अनन्तर श्रीकृष्णने उस समय इनका उद्धार किया था जब वे यशोदा द्वारा बांधे गये थे । (भागवत १०।१० अ०)

यमलार्ज्जुनहन् (सं० पु०) यमलार्ज्जुनौ हतवान् इति हन्-क्विप् । श्रीकृष्ण ।

यमली (सं० स्त्री०) यमल-स्त्रियां ङीष् । १ एकमें मिली हुई दो चीजें, जोड़ी । २ स्त्रियोंका घाघरा और चोली ।

यमलेश्वर—पुराणानुसार नेपालका शिवलिङ्ग-विशेष ।

यमलोक (सं० पु०) यमस्य लोकः । वह लोक जहां मरनेके उपरान्त मनुष्य जाते हैं, यमपुरी । यमालयका विस्तृत विवरण यम शब्दमें देखो ।

यमवत् (सं० त्रि०) संयमी ।

यमवत्स (सं० पु०) यमज गोवत्स, वे गायके दो बछड़े जो एक ही साथ उत्पन्न हुए हों ।

यमवाहन (सं० पु०) यमस्य वाहनः। यमका वाहन, भैंसा।

यमवृक्ष (सं० पु०) शाल्मलि वृक्ष, सेमरका पेड़।

यमवैवस्वत—सूर्यके पुत्र यम।

यमव्रत (सं० क्ली०) यमस्य धर्मराजस्येव व्रतं। राजाका धर्म। निरपेक्ष हो कर सबोंके प्रति समान विचार करनेका नाम यमव्रत है। यम सबोंके पाप और पुण्यके अनुसार समान भावसे विचार करते हैं। इसीसे वे यमव्रत कहे जाते हैं। (मनु० ६।३०७)

यमशिख (सं० पु०) वेतालभेद।

(कथासरि० सा० १२१।२६)

यमश्रेष्ठ (सं० त्रि०) यम जिनके पितरोंसे श्रेष्ठ हों।

यमश्वन् (सं० पु०) यमालयके द्वाररक्षक कुक्कुरभेद, कुर्व्वर।

यमसदन (सं० क्ली०) यमस्य सदनं। यमलोक, यमपुर।

यमसभ (सं० क्ली०) यमका विचारमण्डप।

यमसात् (सं० अव्य०) यमस्य अधीनं इत्यर्थे वसात। यमके अधीन करना, यमके घर भेजना।

यमसादन (सं० क्ली०) यमस्य सादनं। यमपुर, यमगृह।

यमसान (सं० त्रि०) मुंहसे तृणदान करनेवाला।

यमसू (सं० त्रि०) १ यमजप्रसविनी, जिसके एक ही गर्भसे एक साथ दो सन्तानें हों। (पु०) २ सूर्य।

यमसूक्त (सं० क्ली०) यमका स्तोत्र, ऋग्वेदका १०।१० सूक्त।

यमसूर्य (सं० क्ली०) पश्चिम और उत्तरमें शालायुक्त अट्टालिका, ऐसा घर जिसके पश्चिम उत्तरमें शाला हो।

यमस्तोम (सं० पु०) एकाहभेद, एक दिनमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

यमस्वसृ (सं० स्त्री०) यमस्य स्वसा भगिनी। १ यमुना। २ दुर्गा।

यमहन्ता (सं० पु०) कालका नाश करनेवाला।

यमहार्दिका (सं० स्त्री०) देवीकी एक अनुचरीका नाम।

यमहासेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक तीर्थका नाम।

यमातिरात्र (सं० पु०) ४६ दिनोंमें होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

यमादर्शनत्रयोदशी (सं० स्त्री०) शुक्ला त्रयोदशीभेद भविष्यपुराणमें इस दिन व्रत करनेकी विधि है। इस दिन जो व्रत करते हैं उनको यमका दर्शन नहीं होता।

यमादित्य (सं० पु०) सूर्यका एक रूप।

यमानिका (सं० स्त्री०) यमानी स्वार्थे कन्। स्वनामख्यात पण्य द्रव्यविशेष। अजवायन। इसे महाराष्ट्रमें उम्वा, कलिङ्गमें डंडू, तैलङ्गमें ओममो और तामिलमें अमन कहते हैं। संस्कृत पर्याय—अजमोदा, उग्रगन्धा, ब्रह्मचर्या। (अमर) साधारणतः अजवायन चार प्रकारकी है, यमानी, वनयमानी, पारसिक और खोरासानी। इनमें फिर यमानीके भी दो भेद हैं, क्षेत्रयमानी और यमानी। क्षेत्रयमानीको अजमोदा कहते हैं। इसका सेवन करनेसे अग्निमान्द्य नष्ट होता है, इसीसे इसको यमानी कहते हैं।

इसका गुण—कुष्ठ और शूलनाशक, हृद्य, पित्ताग्निकारक और वायु, कफ और कृमिनाशक है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे पर्याय—यमानी, उग्रगन्धा, ब्रह्मदर्भा, अजमोदिका, दिप्यका, दिप्या और यमाह्वया। गुण—पाचक, रुचिकर, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कटुतिक्तरस, मधु, अग्निप्रदीपक, पित्तवर्द्धक, शुक्रघ्न तथा शूल, वायु कफ, उदर, आनाह, गुल्म, प्लीहा और कृमिनाशक।

अजमोदा देखो।

पारसिक यमानी—यमानीपाचक, रुचिजनक, धारककर्षणकारक और गुरु। इसके शाकका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, वायुकर, अर्श, श्लेष्मा, शूल, आध्मान, कृमि और छर्दिनाशक तथा दीपक। (भावप्र०)

अजवायन देखो।

यमानिकादिचूर्ण (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—अजवायन, चितामूल, पीपल, यवक्षार, वच, दन्तीमूल प्रत्येककी बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे। मात्रा आधा तोला और अनुपान उष्ण जल, दहीका पानी

सुरा वा आसव। इस चूर्णका सेवन करनेसे प्लीहारोग नष्ट होता है। (भैषज्य० प्लीहायकृदधिकार)

यमानी (सं० स्त्री०) यच्छति विरमति निवर्त्तते अग्निमान्द्यमनयेति यम-करणे ल्युट्, ङीष्, पृषोदरादित्वात् साधुः। यमानिका, अजवायन।

यमानीषाड़व (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अजवायन, इमली, सोंठ, अमलबेत, अनार, खट्टाबेर, प्रत्येक दो तोला, धनिया, सचल लवण, जीरा और दारचीनी प्रत्येक एक तोला, पीपल १००, मिर्च २०० और चीनी ४ पल। सबको एक साथ पीसना होगा। यह संग्राही है। इसे मुंहमें रख कर धीरे धीरे निगलना होता है। इससे जीभ सफ रहती, भूख बढ़ती और खांसी दूर होती है। (भैषज्यरत्ना० अरोचका)

यमानुग (सं० पु०) अनुगच्छति इति अनुगः, यमस्य अनुगः। यमका अनुगामी, अनुचर।

यमानुचर (सं० पु०) यमस्य अनुचरः। यमका अनुचर।

यमानुजा (सं० स्त्री०) यमराजकी छोटी बहन, यमुना।

यमान्तक (सं० पु०) यमस्य अन्तकः, मृत्युञ्जयत्वादेवास्य तथात्व। १ शिव। (शब्दरत्ना०) यमश्च अन्तकश्च इति विग्रहे वैवस्वतकालौ। २ वैवस्वत और काल।

यमारि (सं० पु०) यमस्य अरिः। विष्णु।

यमालय (सं० पु०) यमस्य आलयः। यमका घर, यमपुर कहते हैं, कि यह पृथ्वीसे ८६ हजार योजन अर्थात् १४८५००० माइल ऊपर है।

यमिक (सं० क्ली०) एक प्रकारका साम।

यमिन् (सं० त्रि०) यम, अस्त्यर्थे इनि। संयमी।

यमिष्ठ (सं० त्रि०) संयममें अतिशय पटु।

यमी (सं० स्त्री०) विवस्वत्‌की कन्या। संज्ञाके गर्भसे यम और यमी दोनों यमजरूपमें उत्पन्न हुए। इसका दूसरा नाम यमुना है। (मार्कण्डेयपुराण १०६।३-४) छायाके शापसे पदस्खलित यम धर्मराजत्वको प्राप्त हुए। इधर अपने दूसरे दूसरे भाइयोंके कर्मनिर्देशके साथ साथ यमी भी यमुनारूपमें बहने लगी।

"यवीयसी तु याऽप्यास द्विमी कन्यायशस्विनी॥
अभवत् सा सरित्श्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी।"

(हरिवंश ९।६५-६६)

ऋग्वेद-संहिताके १०।१ सूक्तमें यम और यमीके देवता और ऋषि बतलाया है; अतएव वे मन्त्रकर्त्ता हैं। यमी और यम यमज भाई बहन हैं। कथोपकथनमें यमी यमसे कहती है, 'विस्तीर्ण समुद्रके मध्यवर्त्ती इस निर्जन द्वीपमें आ कर मैं तुमसे सहवास करना चाहती हूं। क्योंकि गर्भावस्थासे ही तुम मेरा सहचर हो। विधाताने मनही मन सोच रखा है, कि हम दोनोंके संयोगसे उन्हें एक सुन्दर नप्ता (पौत्र) उत्पन्न होगा। तुम पुत्रजन्मदाता पतिकी तरह मेरे शरीरमें प्रवेश करो।" यमने "अप्यायोपा हम दोनोंकी माता हैं" यह कह कर उन्हें लौटा दिया अर्थात् इच्छा पूरी न की। इस पर यमीने भाईको फटकारते हुए फिर कहा, "मैं काम-वासनासे मूर्च्छित हो कर इस प्रकार बार बार निवेदन करती हूं फिर भी तुम नहीं सुनता। कमसे कम एक बार मेरे शरीरसे अपना शरीर मिला भी तो दो।" यमने उत्तर दिया; 'हे यमि! तुम किसी दूसरे पुरुषका आलिङ्गन करो। जिस प्रकार लता वृक्षमें लिपट जाती है। उसी प्रकार तुम किसी अन्य पुरुषमें लिपट जाओ। उसीका मन तुम चुरा लो। वही तुम्हारी प्यास बुझावेगा और उसीमें तुम्हारा मंगल है।"

(ऋक् १०।१०।१-१४)

ऊपरमें जिस घटनाका उल्लेख किया गया, वह सच मुच रूपकके सिवा और कुछ भी नहीं है। विवस्वान्‌के द्वारा अप्यायोषा (सरण्यु) के गर्भसे यम और यमीका जन्म हुआ। विवस्वान् शब्दका अर्थ है आकाश। सरण्यु या ऊषाके आकाशके साथ आकाशका विवाह, इसका अर्थ क्या? इसका अर्थ है, ऊषा आकाशको आलिङ्गन करती है। सरण्यु यमजोंको छोड़ चली गई अर्थात् ऊषाके अदृश्य होनेसे दिन हुआ। विवस्वान्‌ने दूसरी स्त्रीको पाणिग्रहण किया अर्थात् सायंकालमें आकाशको आलिङ्गन किया।

दिवा और रात्रिका वैदिक प्रथम ऋषियोंने विवस्वान् (आकाश) और सरण्यु (प्रभात)-की यमज सन्तान यम और यमी नाम रखा था। यम शब्द देखो।

वाजसनेय-संहितामें हम लोग यम और यमी शब्द-को प्रयोग उसी प्रकार एक भिन्न भावमें देखते हैं। वहां

यम शब्दसे 'अग्नि' और यमी शब्दसे 'पृथ्वी' का बोध होता है—"यमेनत्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधिरोऽ यैनन् ॥" (शुक्लयजु १२।६३)

'किञ्च यमेन अग्निना यम्या पृथिव्या च संविदाना ऐकमत्यं गता सति उत्तमे उत्कृष्टे नाके सर्वसुखोपेते दुःखमात्रहीने स्वर्गे एनं यजमानमधिरोऽय स्थापय।'

(वेददीप)

यमीने यमका आलिङ्गन करना चाहा, पर यमने इसे स्वीकार नहीं किया, ऐसा जो लिखा है, इससे स्पष्ट अनुमान होता है, कि दिन और रात आपसमें मिलनेको नहीं हैं, वे अलग हो रहेंगे —इस प्रकार अभिलापज्ञाप-नार्थं उपरोक्त एक रूपक कल्पित हुआ था। पीछे शत पथब्राह्मण (७।२१।१०) पञ्चविंश ब्राह्मण (११।१०।२३) और विभिन्न पुराणोंमें यम और यमीका उपाख्यान विशेषरूपसे रूपान्तरित हुआ है।

यमुना (सं० स्त्री०) यमयतीति यमि (अजि यमि शोङ्भ्यश्च। उण् ३।६१) इति उनन् टाप्। दुर्गा।

"यमस्य भगिनी जाता यमुना तेन सा मता ॥"

(देवीपु० ४५ अ०)

यच्छति विरमति गङ्गायामिति। २ नदीविशेष, यमुना नदी। पर्याय कालिन्दी, सूर्य्यतनया, शमनस्वसा, तपनतनुजा, कलिन्दकन्या, यमस्वसा, श्यामा, तापी, कलिन्दनन्दिनी, यमनी, यमी, कलिन्द, शैलजा, सूर्य्य-सुता। (जटाधर)

उत्तर-पश्चिम भारतमें प्रवाहित यह पुण्यतोया नदी गढ़वालराज्यके मध्य हिमालय शैलकी यमनोत्तरी शृङ्ग-से ढाई कोस उत्तर और पांचवांदर शृङ्गसे (२०७३१ फीट) चार कोस उत्तर पश्चिम (अक्षा० ३१°२' उ० और द्राघि० ७८° ३०' पू०) उत्पन्न हुई है। यमनोत्तरीको पार कर साढ़े उन्नीस कोस आने पर दक्षिण-पश्चिमसे बदियार और कमलादा और उससे तेरह कोस दक्षिण बदरी और असलौर नाम्नी चार शाखा नदियोंने मिल कर इस नदीके कलेवरको बढ़ा दिया है। निम्नोक्त सङ्गमके बाद साढ़े सात कोस पश्चिम इसके दक्षिणी किनारे तमशा नदी आ कर मिल गई है। इसके बाद (७७° ५३ पूर्व द्राघिमाय) यह हिमालयके देहरादून और कितार्दादून उपत्यकाको दो भागोंमें विभक्त कर दक्षिण-पश्चिमकी ओर ग्यारह कोस आ पश्चिमसे गिरि नदी-में मिल गई है।

इस तरह प्रायः अड़तालीस कोस पथरीला पथ तय कर शिवालिककी पहाड़ियोंके नीचे सहारनपुर जिलेके फैजा-बादको समतल भूमिमें पहुंचती है। इसके बाद दक्षिण-पश्चिममें चककी तरह पञ्जावके अंबाला और कर्नाल और युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर और सहारनपुर होती हुई साढ़े बत्तीस कोस आती आती यह बहुत कुछ चौड़ी हो गई है। यहां यह एक वेगवती नदीका आकार धारण कर लेती है। फैजाबादसे इससे पूर्व-पश्चिमकी ओर दो नहरें निकाली गई है, जिनसे खेतोंमें सिचाईके काम की सुविधा है। वहां लोग इन नहरोंको यमुनाकी नहरें कहा करते हैं।

राजघाटके समीप पूर्वकी ओरसे आ कर सङ्करा-नाम्नी एक छोटी नदी मिल गई है। विघौलीसे नदी-की गति क्रमशः दक्षिणको ओर चालीस कोस आ कर भारतकी राजधानी दिल्ली नगरीको जलमय करती दान-कौर होती हुई साढ़े तेरह कोस तक चली गई है। इसके कुछ ही उत्तर आने पर कठा और हिन्दन नामको दो नदियां मिल गई हैं।

दानकौरसे पञ्जाव और युक्तप्रदेशके जिलोंको परस्पर विच्छिन्न कर यमुना कोई पचास कोस तक चली आई है। आगरा और इटावा जिलेकी निम्नभूमिमें प्रवाहित होने तथा आगरेमें नहर निकल जानेके कारण यमुनाका कलेवर क्षीण हो गया है।

आगरेके पास करवा नदी और उतङ्गन नदी उससे मिल गई है। आगरा, फिरोजाबाद, और इटावा पार करनेके बाद, क्रमशः नदीकी गति दक्षिणसे दक्षिण-पूर्व-की ओर टेढ़ी हो प्रायः सत्तर कोस पथ तय कर हामीर-पुर पहुंचाती है। काल्पीके पास सेनगार नदी, इटावा और जालौनको सीमा पर सिन्धु तथा इटावासे बीस कोस दक्षिणकी ओर जा कर चम्बल नदी इस नदीमें गई है।

हमीरपुरसे इलाहाबादके गङ्गा-यमुना सङ्गम तक (अक्षा० २५° २५ उ० और देशा० ८१° ५५' पू०) यमुना नदी पूर्वकी ओर बांदा और फतेपुर जिलोंके बीच प्रवाहित होती है। यमुनाके इस भागमें हिन्दुओंकी प्राचीन नगरी प्रयाग तथा मुसलमानोंका गौरवस्थल इलाहाबादके सिवा और कोई समृद्धशाली नगर दिखाई नहीं देता। इलाहाबादके किलेके समीप ही गङ्गा और यमुना सरस्वती सङ्गम मौजूद है। सरस्वतीका सङ्गम दिखाई नहीं देता। लोगोंका कहना है, कि किलेके नीचेसे सरस्वतीका प्रवाह गङ्गा और यमुनाके सङ्गममें आ कर मिल गया। यहां गङ्गाके पीला वालुकामय जल तथा यमुनाके निर्मल श्यामकृष्ण जलने मिल कर अपूर्व शोभा धारण किया है। नदीवक्ष पर नावमें चढ़ कर जाने पर जलसङ्गमका पार्थक्य विशेषरूपसे परिलक्षित होता है। सङ्गमके निकट ही गङ्गाजी और यमुनाजीमें बंधे पुल दिखाई देते हैं। गङ्गाजीका पुल वी० एन० डबल्यु रैलवे कम्पनीने तथा यमुनाजीका पुल इष्ट-इण्डिया कम्पनीने बंधवाया है। इलाहाबादके सिवा यमुना-नदी पर दिल्ली, आगरा, ईटावा, कालपी, हमीरपुर, मथुरा, चिल्लतारा, आदि स्थानोंमें भी पुल बंधे हुए हैं।

तत्तत् शब्द देखो

उत्पत्ति-स्थानसे गङ्गासङ्गम तक यमुनाकी लम्बाई ४३० कोस है। यमनोत्तरीके १०८४६ फीट ऊंचेसे जल धारा धीरे धीरे पहाड़ी उपत्यकाओंको चीरती हुई १६ मील नीचे कौस्तनूर स्थानमें ५०३६ फीट नीचेको गिरती है। अतएव प्रत्येक मील पर ३१३ फीट प्रपात होनेसे इसका पार्वत्य स्रोतोवेग बहुत प्रबल हो उठा है। तमसा-सङ्गमके पास समुद्रपृष्ठसे १६८८ और आसन-सङ्गमके समीप १४७० तथा शिवालिककी पहाड़ियोंके नीचे समतलक्षेत्र पर १२७६ फीट नीचे उतरी है। इसी तरह क्षिप्रगतिसे गमन करनेके कारण यमुनाकी जलराशि इलाहाबादके समीप प्रति मुहूर्त्तमें कोई १३३३००० घन-फुटके हिसाबसे गिर रही है।

गङ्गाकी तरह यमुनाके किनारे बहुतेरे समृद्धशाली नगर न होने पर भी नीची और ऊंची भूमिको पार करता हुई प्रवाहित होने को वजह किनारेका दृश्य बहुत ही मनोहर है। भारतकी सौभाग्यस्पर्द्धी दिल्लीकी सौधमालायें तथा आगरेका राजमहल, मथुराकी जैन-हिन्दू-कीर्त्तियोंका नमूना और वर्त्तमान अट्टालिकायें इलाहाबादके पुल और किलेके सिवा जगह-जगह अपूर्व स्तूप मण्डित वनमालायें शस्यश्यामला वसुन्धराकी कमनीय शोभा नदीतटको सुशोभित कर रही है। ऐसे सुन्दर और मनोहर स्थानोंमें वृन्दावन ही यमुना-तटकी गरिमा प्रकट कर रहा है।

यहां ही यमुनाके काले जलमें वृन्दावनविहारी वनमालीने वराङ्गना गोपकुल-ललनाओंके साथ जल-विहार या जलकेलि की थी। यमुना उनकी वंशीके तान पर विमुग्ध रहती थी। यमुना किनारेके वृन्दावनकी अतुलनीय शोभाको जयदेव आदि रसज्ञ भावुक कवियोंने अपनी कविताओंमें अच्छा चित्र खींचा है।

जिन भगवान् कृष्णकी महिमासे वृन्दावनका माहात्म्य है, जिन कृष्णकी पादस्पर्शसे यमुना कृतार्थ होती थी, उन्हीं कृष्णभगवान्‌की लीलाभूमि वृन्दावनके पाद-विधौत-कारिणी यमुना नदीका माहात्म्य क्यों न अधिक होगा? इसमें कौन-सा आश्चर्य्य है? वृन्दावनके माहात्म्यके साथ यमुनाका माहात्म्य भी कवियोंने गाया है। केशीघाट, कालीयदमनघाट, चीरहरणघाट आदि तीर्थमें स्नान और तर्पण करनेसे अक्षयपुण्य लाभ होता है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें श्रीकृष्णके जन्मखण्डके १९वें अध्याय-में तथा भागवतके दशम स्कन्धके दशवें अध्यायमें कालीयदमनके सम्बन्धमें तथा श्रीकृष्णके यमुनागर्भमें डूबनेका उल्लेख है।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि यह यमुना सूर्य्य-कन्या और यमकी भगिनी है। यमुनाकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें वहां इस तरह लिखा है—

"ततः सा चपलां दृष्टिं देवी चक्रे भयाकुला।
विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः॥
यस्माद्विलोलितां दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना।
तस्माद्विलोला तनयां नदीं त्वं प्रसविष्यसि॥
ततस्तस्यान्तु संजज्ञे भर्त्तृशापेन तेन वै।
यमश्च यमुनाचैव प्रख्याता सुमहानदी॥"

(मार्क०पु० ७७।५-७)

हरिवंश पढ़नेसे मालूम होता है, कि सूर्य्यमण्डलके तीव्र तेजसे संज्ञा दग्धाङ्ग होनेसे उनकी सुन्दर कान्ति बिखर पड़ती है। इसके अनुसार यम और यमुना यमज माताके गर्भसे उत्पन्न हुए। इनका वर्ण काला था। (६ अ० ८।६) हरिवंशके उक्त अध्यायके अन्तमें यमीका यमुनारूप सरिद्वरत्व-प्राप्तिकी बात लिखी है।

यमी देखो।

दूसरी जगह लिखा है, कि हलधर बलदेवने लवण-जलगामिनी, महानदी यमुनाको अपने हलसे नगरकी ओर प्रवाहित किया था। (हरिवंश १२०।१६)

हल द्वारा यमुनाको इच्छापूर्वक लाना देख कर पाश्चात्य पण्डितोंने अनुमान किया कि शूरश्रेष्ठ बलदेव उस प्राचीन समयमें हल (अस्त्र)से यमुनासे नहर निकाला था। कलिन्दपर्वतसे निकलनेके कारण यमुनाका दूसरा एक नाम कालिन्दी भी है। कलिन्द शब्दका अर्थ सूर्य्य भी होता है। भगवान् श्रीकृष्णने यमुनालीला-माहात्म्य बतलाते हुए किसी प्राचीन कविने लिखा है, "कलिन्द-नन्दिनी तटे नन्दनन्द-ननदः।"

कूर्म्मपुराणके पूर्वभागमें ३५, ३६ और ३७वें अध्यायके प्रयाग-माहात्म्य वर्णनमें महामुनि मार्कण्डेयने युधिष्ठिरसे कहा था, कि गङ्गा-यमुना-सङ्गममें स्नान करनेसे ब्रह्मादि द्वारा रक्षित दिव्यलोक प्राप्त होता है। यहां काली, धौरी या पीली गाय जिसकी सींगें सोनेकी हों, खुर रुपेके हों और कण्ठाभूषणसे भूषित दूध देनेवाली हो—दान करनेसे मनुष्य उस गायके शरीरके प्रत्येक रोम पर एक एक सहस्र वर्ष रुद्रलोकमें पूजित होता है। गङ्गा-यमुनाके बीच बसी प्रयागपुरी पृथ्वीका जंघा कही जाती है। यहां अभिषेक करनेसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञका फल होता है। माघ महीनेमें गङ्गा-यमुनासङ्गम पर ६६ हजार तीर्थोंका समागम होता है। इस समय यहां स्नान करनेसे मनुष्य-शरीरके प्रति रोमकूपके हिसाबसे सहस्र सहस्र वर्ष स्वर्गलोकमें पूजित होता है। उपर्युक्त पुराणके ३८वें अध्यायमें लिखा है, कि तपनतनया निम्नगा यमुना गङ्गाके सङ्गम स्थानसे निकल कर पापनाशिनी रूपसे चार सौ कोस तक प्रवाहित हुई हैं। इस यमुना-जलमें स्नान और जल पीनेसे मनुष्य सर्व्व पापोंसे छुटकारा पाता है और वह अपने सात पुरुषोंको पुण्ययुक्त बनाता है। यमुनाके दक्षिण किनारे अग्नितीर्थ एवं पश्चिममें धर्मराजका नरक तीर्थ है। यहां कृष्णा चतुर्दशीको स्नान करनेसे महापापका मोचन होता है।

भागवतमें लिखा है,—जब वसुदेव नवजात शिशु श्रीकृष्णको कंसके जेलसे ले कर छिपे हुए रातको नन्दके घर जा रहे थे उस समय घोर वृष्टि हो रही थी, यमुना जोरोंसे प्रवाहित हो रही थी।

"ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्य्यन्त यथा तमो रवेः।
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन् फणैः॥
मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गम्भीरतोयौघजवोर्म्मिफेनिला।
भयानकावर्त्तशताकुला नदीमार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः॥"

(भाग० १०।४६ अ०)

जन्माष्टमी व्रत-कथामें सुना जाता है कि कृष्णको गोदमें ले कर उसी तूफान या वृष्टिमें यमुनाके भीषण तरङ्गोंको देख वसुदेव डर गये। रातके घोर अन्धकारमें शेषनागने पीछे पीछे फन फैला कर वृष्टि-जलका निवारण किया था। ऐसे समय जब वसुदेवजी कृष्णको ले कर यमुना पार करने लगे, तब यमुना कृष्णके चरण छूनेके लिये ऊपर उठने लगी। जब वसुदेवके कण्ठ तक जल आ गया और वसुदेव घबराने लगे, तब नवजातशिशु कृष्णने झटसे अपने पैर नीचे बढ़ा दिये। इसके बाद चरण स्पर्शसे कृतार्थ यमुनाका वेग घटा और वसुदेव कुशलसे यमुनाको पार कर नन्दके घर पहुंचे। पूर्वजन्ममें तपस्या कर यमुनाने भगवान्‌के चरणोंकी प्रार्थना की थी। श्रीकृष्ण रूपमें भगवान्‌ने उसकी प्रार्थना पूर्ण की। रामायणमें भी श्रीरामचन्द्रके वन जाते समय पुण्यतोया यमुना-तटके सिद्धाश्रमोंका पूरा-पूरा उल्लेख पाया जाता है।

यमुनाका जल काला क्यों हुआ, इसके सम्बन्धमें वामनपुराणमें लिखा है, कि दक्ष यज्ञ विनाशके बाद महादेव सती-विरहसे अत्यन्त दुःखी हो कर वनमें घूमते थे। ऐसे समय कुसुमायुध कन्दर्पने उनको अकेला पत्नी-

विरहसे दुःखी देख उन्मादन अस्त्रको चलाया। इस अस्त्र-के प्रभावसे महादेव अत्यन्त उन्मत्त हो सतीको वारम्वार स्मरण कर कानन या सरोवरमें घूमने लगे; किन्तु कुछ शांति लाभ न कर सके, इसके उपरान्त अत्यन्त दुःखित हो कर कालिन्दीके जलमें गिर पड़े। ऐसा होते ही कालिन्दी का जल जल उठा और काला हो गया! तबसे कालिन्दी का जल अञ्जनके समान काला हो गया है। और यह वसुन्धराका केश भी कहा गया है। यह नदी अत्यन्त पुण्यतीर्थ कहलाती है।

"यदा दक्षसुता ब्रह्मन सती याता यमक्षयम्।
विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोचनः॥
ततो वृषध्वजं दृष्ट्वा कन्दर्पं कुसुमायुधः।
अपत्नीकं तदास्त्रेण उन्मादेनाभ्यताड़यत्॥
ततो हरः शरेणाथ उन्मादेनाभिताड़ितः।
विचचार तदान्मत्तः काननानि सरांसि च॥
स्मरन् सतीं महादेवस्तथोन्मादेन ताड़ितः।
न शर्म्म लेभे देवर्षे वाणाविद्ध इव द्विपः॥
ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरिते मुने।
निमग्ने शङ्करे चापे दग्ध्वा कृष्णात्वमागता॥
तदा प्रभृति कालिन्द्या दृगञ्जननिभं जलम्।
आस्पदं पुण्यतीर्थानां केशपाशमिवानेः॥"

(वामनपु० ६ अ०)

ज्येष्ठमासकी शुक्ला द्वादशीको यमुनामें स्नान कर दान आदि धर्म कार्य तथा पिण्डदान श्राद्ध आदि पितृकार्य करनेसे सर्व प्रकारसे मङ्गल होता है।

"ज्येष्ठस्य शुक्लद्वादश्यां स्नात्वा वै यमुनाजले।
मथुरायां हरिं दृष्ट्वा प्राप्नोति परमां गतिम्॥
यमुनासलिले स्नातः पुरुषो मुनिसत्तम।
ज्येष्ठामुलामले पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत्॥
समभ्यर्च्याच्युतं सम्यक् मथुरायां समाहितः।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम्॥"

(विष्णु० ६,८ अ०)

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है, कि सुषु-म्नाख्या पराशक्ति वृन्दावनमें यमुनाके रूपमें अवस्थित है।

"इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम्।
तत्र ये पशवः साक्षात् वृक्षाः कीटा नराधमाः॥
ये वसन्ति ममाधिष्ठे मृता यान्ति ममान्तिकम्।
तत्र या गोपपत्नाश्च निवसन्ति ममालये॥
योगिन्यस्तास्त एवं हि मम देवाः परायणाः।
पञ्चयोजनमेवं हि वनं मे देहरूपकम्।
कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतरूपिणी॥"

(पद्मपु० पातालख० ७ अ०)

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि स्वायम्भुव मनुपुत्र प्रिय-व्रत-तनय ध्रुव यमुनातीरके पवित्र मधुवनमें आ कर तपस्या करने लगे। यहां शत्रुघ्नने मथुरा पुरी निर्माण किया था। (विष्णु० १।१२) मथुरा देखो।

बहुत पुराने कालमें भी इस नदीका माहात्म्य जन-साधारणमें फैला हुआ था। प्राचीन आर्य हिन्दू यमुना किनारे उपनिवेश स्थापित कर यागादि सम्पन्न करते थे। ऋग्वेदसंहितामें और ब्राह्मण आदिमें उसका यथेष्ट उल्लेख पाया जाता है। उक्त संहिताके ५।५२।१७ मन्त्रमें लिखा है,—

"सप्तसप्तजनशक्तिमान् मरुत्। एक एक आदमी मुझको एक सौके हिसावसे धन प्रदान कीजिये। मैं यमुना किनारे बैठ कर प्रसिद्ध गोधन प्राप्त करूं।"

मूलके "सप्त मे सप्त शाकिन एकं एकाशतादद्दुः।" से पुराणप्रसिद्ध इक्यावन मरुद्गणका उद्भव असम्भव कल्पना नहीं है। यमुना किनारेकी गायें—उस वैदिक युगमें भी प्रसिद्ध थी, अतएव यमुना किनारे भगवान्‌की (श्रीकृष्णकी) गोधन रक्षा और गोपालन नितान्त कष्टकी कल्पना नहीं कही जा सकती है। इन्द्रके सन्तोष-विधानके लिये यज्ञ न करनेसे इन्द्रने कृष्णके विरोधमें अर्थात् मुसभोर वर्षा कर जलप्रलय तथा कृष्णका गाय तथा गोपोंकी रक्षाके लिये गोवर्द्धन धारण करनेकी वात भी अलौकिक नहीं रही जा सकती।

पूर्वोक्त मन्त्रसे यह भी अनुमान होता है, कि गोधन-प्रिय आर्य्य हिन्दू यमुनातट पर आ कर वस गये थे। दूसरे ७।१८।१९ वें मन्त्रसे सुदास राजाके यज्ञके दान-स्तवमें लिखा है, कि 'इन्द्रने इस युद्धमें भेदका विनाश

किया था, यमुनाने उसको सन्तुष्ट किया था। तृत्सुगणने उसको सन्तुष्ट किया था। अज, शिग्रु, यक्षु, इन तीन नगरोंने इन्द्रके उद्देश्यसे अश्व-मस्तक उपहार दिया था।" और १०।७५।५ मन्त्रमें,—हे गङ्गा! हे यमुना! हे सरस्वति! हे शतद्रु! हे परुष्णि! मेरे इन स्तवोंमें तुम लोग बांट लो। हे असिक्नी संगत मरुद्वृधा नदी! हे वितस्ता और सुसोमासंगत आर्जीकिया नदी! तुमलोग सुनो।' इससे स्पष्ट ही यमुना किनारे आर्य्योंके उपनिवेशकी बात और यमुनाका माहात्म्य प्रगट होता है। सिवा इसके ऐतरेय-ब्राह्मण ८।२३, शतपथ-ब्राह्मण १३।५।११, पञ्चविंशब्रा० ९।४।११, शाङ्खायनश्रौ० १३।२९।२५' कात्यायनश्रौ० २४।६।१०, शांखायन० १०।१९।६, आश्वलायनश्रौ० २४।१०। आदि स्थानोंमें यमुनाका उल्लेख रहनेसे अनुमान होता है, कि आर्य्यगण यमुना किनारे रह कर अभीष्ट यज्ञादि सम्पन्न करते थे।

ऊपरमें कह आये हैं, कि यमुनाके पूर्व और पश्चिम ओर सिंचाईके लिये दो नहरें निकाली गईं। अम्वाल, कर्नाल, दिल्ली, रोहतक, और हिसार जिलोंमें यह नहरें पानी देती हैं, पहले हाथनी कुण्डमें बांध बांध कर यमुनाका जल बुढ़ी यमुना और पाताला घारसे लाया गया है। पाताला और शम्भुनदके सङ्गमके समीप दाऊदपुर ग्राममें बांध द्वारा यह मिली हुई जल-राशि पश्चिम नदीमें लाई गई।

इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि पठान-सम्राट् फिरोज शाह तुगलकने हिसार नगरमें जल लानेके लिये १४वीं शताब्दीमें यह नहरें खुदवाई थीं, किन्तु कालक्रमसे यह नहर भर गई। इससे जल आनेमें असुविधा होने लगी। सन् १५६८ ई०में सम्राट् अकबरने फिर इस नहरको साफ करवाया था। पीछे सन् १६२८ ई०में सम्राट् शाहजहान्के प्रसिद्ध कारीगरगण अलीवर्दी खांने बहुत द्रव्य खर्च कर और बड़ी कारीगरीके साथ रोहतक और दिल्लीकी नहरें खुदवाई थी।

मोगल शासनके अन्त और शिखशक्तिके अभ्युदयके समय नहरकी दशा दिनों दिन खराब होती गई। १८वीं सदीके मध्य भागमें यह नहरें बिलकुल खराब हो गई। सन् १८१७ ई०में अङ्गरेज सरकारने दिल्लीकी शाखा नहर खुदवानेका भार लिया। सन् १८२० में दिल्लीकी यह नहर तय्यार हो गई और जल आने लगा। सन् १८२३-२४में हिसारकी नहर फिरसे खुदवाई गई। इस तरह क्रमसे कोई ३३ मील नहर फिरसे खुदवाई गई, जिससे २५६ मीलमें जलकर सिचाईका काम होने लगा।

पूर्वकी नहर सन् १८२३ ई०से खुदवाई जाने लगी तथा सन् १८७० ई०में तय्यार हुई। महामति लार्ड डलहौसीके शासनकालमें दो एक नहरें और खुदवा देनेसे पश्चिमोत्तरके अधिवासियोंको विशेष सुविधा हो गई।

यमुना—इच्छामती नदीकी एक शाखा। नदिया जिले होती हुई वालियानीके निकट २४ परगनेमें आई है। यहांसे फिर दक्षिणपूर्वकी ओर वक्रगतिसे सुन्दरवनमें घुसकर रायमङ्गल नदीमें मिली है। कलकत्तेसे जो जो नहरें पूर्वकी ओर गई हैं, वह हासानाबादके समीप इस नदीमें आ कर गिरी हैं।

यमुना—आसाममें प्रवाहित एक नदी। यह नागा पहाड़के उत्तरसे निकल कर रेङ्गमा पहाड़ होती हुई नौगांव जिलेमें ब्रह्मपुत्रकी कांपली शाखामें मिली है। दियङ्क, स्वाति और पाथरादिशो नामक तीन नदी इसकी शाखा हैं।

यमुना—उत्तर बङ्गमें प्रवाहित एक नदी। यह शायद तिस्ता नदीकी प्राचीन शाखा होगी। दिनाजपुर जिलेसे निकल कर बगुड़ा सीमान्त होती हुई गङ्गाकी आत्रेयी शाखामें मिलती है। इस नदीके किनारे दिनाजपुर जिलेमें फुलवाड़ी और विरामपुर तथा बगुड़ा जिलेमें हिली नामक स्थान चावल तथा और कितने प्रकारके अनाजका वाणिज्य-केन्द्र समझा जाता है।

यमुना—विन्ध्य पहाड़के नीचे अवस्थित एक ग्राम। २ चम्पारण जिलेकी गण्डकी नदीके किनारे बसा हुआ एक ग्राम। (ब्रह्मखण्ड)

यमुनाचार्य—दाक्षिणात्यवासी एक आचार्य। ये वैष्णव धर्मके प्रवर्त्तक थे। इन्होंने चोलराजपण्डित कोलाहलकविको तर्कमें पराजित कर उन्हें वैष्णव धर्ममें

दीक्षित किया था। उसी समयसे चोलराज्यमें शैव धर्मके बदले वैष्णव धर्मकी प्रतिष्ठा हुई। इनके मतावलम्बी यमुनाचारी कहलाते हैं। कोई कोई इन्हें यामुनाचार्य भी कहते हैं। यमुनाचार्य देखो।

यमुनाजनक (सं० पु०) यमुनायाः जनकः। सूर्य।

यमुनातीर्थ—प्राचीन तीर्थका नाम।

यमुनाद्वीप (सं० पु०) जनपदभेद।

यमुनाप्रसव (सं० पु०) यमुनाका उत्पत्तिस्थान या संयम यह हिन्दुओंका एक प्रधान तीर्थ है।

यमुनाभिद् (सं० पु०) यमुना भिनत्तीति भिद्-क्विप्। कृष्णके भाई बलराम। इन्होंने अपने हलसे यमुनाके दो भाग किये थे इसीसे उनका यह नाम पड़ा है। हरिवंशके १०२,१०३ अध्यायमें इसका विशेष विवरण लिखा है।

यमुनाभ्रातृ (सं० पु०) यमुनाया भ्राता। यम।

यमुनोत्तरी—हिमालय पर्वतश्रेणीके अन्तर्गत एक शैलविभाग। यह अक्षा० ३०° ५९´ उ० तथा देशा० ७८° ३५´ पू० गढ़वाल सीमान्तमें अवस्थित है। यमुना नदी इसके दाहिनी ओरसे बह चली है। इस जगह यमुनावक्ष समुद्रपाठसे १०८६३ फीट है, लेकिन यमुनोत्तरी शैलशृङ्ग २५६६६ फीट ऊंचा है। पार्श्ववर्त्ती पांचवांदर नामक शैलशिखर (२०७५८ फीट) से कितने झरने निकले हैं। इस पांचवांदर शैलके बीच एक बड़ा ह्रद है। कहते हैं, कि रामके अनुचर हनुमानने लंका जलानेके बाद इसी ह्रदमें आ कर अपनी पूंछ बुझाई थी।

यमुनोत्तरी शैल हिन्दुओंका एक पवित्र तीर्थस्थान माना जाता है। यहां तीन धाराएं एक साथ बह चली हैं। पासहीमें वसुताता नामक एक गर्म झरना है। उसके पवित्र जलसे पितरोंको पिण्डदान देनेसे बड़ा पुण्य होता है। अलावा इसके वहां और भी कितने झरने दिखाई देते हैं।

यमुन्द (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। इसके वंशधर यामुन्दायनि नामसे प्रसिद्ध हैं। (पाणिनि ४।१४९)

यमुषदेव (सं० क्ली०) वस्त्रविशेष, एक प्रकारका कपड़ा।

यमेरका (सं० स्त्री०) यम ईर्यति प्रेरयति इरि बाहुलकात् उक्, टाप्। इन्तढका, घड़ियाल या बड़ी झांझ जो प्राचीन एक कालमें घड़ी पूरी होने पर बजाई जाती थी।

यमेश (सं० त्रि०) १ परमभक्त। (क्ली०) २ भरणी नक्षत्र।

यमेश्वर (सं० क्लो०) शिव।

यम्य (सं० त्रि०) १ मिथुनभूत, यमरूप। २ यामिनी।

ययाति (सं० पु०) नहुष राजाके एक पुत्रका नाम। पर्याय—नाहुष, नाहुष। महाभारतमें उनका उपाख्यान इस प्रकार लिखा है—राजा ययाति नहुषके पुत्र थे। नहुष देखो। एक दिन वे शिकार खेलने जंगल गये। वहां एक कुएंमें गिरि हुई देवयानीको इन्होंने देखा और बाहर निकाल लिया। पीछे एक दिन शुक्रकी कन्या देवयानी और शर्मिष्ठा दो हजार दासियोंके साथ जलविहार कर रही थी। इसी समय ययाति वहां पहुंच गये और जल मांगने लगे।

देवयानीने राजा ययातिको देख उनका परिचय पूछा। ययातिने कहा, मैं राजा और राजपुत्र हूं। ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर सभी वेदोंका अध्ययन कर चुका हूं। ययाति मेरा नाम है। शिकार करते करते थक गया हूं। देवयानी बोली, 'दो हजार कन्या और दासी शर्मिष्ठाके सहित मैं आपका आश्रय लेती हूं। आप मेरा स्वामी और सखा होना कबूल करें।' इस पर ययातिने कहा, 'तुम ब्राह्मण-कन्या और मैं क्षत्रिय। किस प्रकार विवाह हो सकता है।' देवयानीने उत्तर दिया, 'ब्राह्मणके साथ क्षत्रिय और क्षत्रियके साथ ब्राह्मणका संस्रव है, अतएव आप मुझसे विवाह कर सकते हैं। राजा बोले, 'तुमने जो कहा वह सत्य तो है, पर क्रुद्ध विषधर सर्प तथा तेज शस्त्रसे भी ब्राह्मण दुर्द्धर्ष है। तुम ब्राह्मण-कन्या हो इसलिये तुमसे विवाह करनेको मुझे साहस नहीं होता।'

अनन्तर देवयानीने अपनी एक दासीसे यह वृत्तान्त अपने पिता शुक्रको कहला भेजा। शुक्रके पहुंचने पर देवयानीने उनसे कहा, 'पिताजी! यह राजा नहुषके पुत्र हैं ययाति इनका नाम है। विवाहकालमें इन्होंने मेरा पाणिग्रहण किया था अर्थात् हाथ पकड़ कर कुएंसे बाहर निकाला था। अतएव आपसे प्रार्थना है, कि आप इन्हींके साथ मुझे सम्प्रदान करें।

शुक्राचार्यने ययातिसे कहा, 'राजन्! यह हमारी प्रियतमा कन्या आपको वर चुकी है, अभी आप इसका पाणिग्रहण करें और अपनी महिषी बनावें।' ययातिने उत्तर दिया, 'हे भार्गव! इस विषयमें वर्णसङ्करसे होनेवाले महान् अधर्म जिससे मुझे छू न सके, ऐसा ही आप मुझे वरदान दीजिये।' शुक्राचार्य बोले, 'मैं तुम्हें अधमसे विनिर्मुक्त करता हूं। इस विवाहमें तुम उदास क्यों हो, मेरे वरसे तुम्हारे सभी पाप दूर हो जायंगे। तुम देवयानीसे धर्मतः विवाह करो। यह वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा आपकी सेवा टहलमें हमेशा लगी रहेगी, किन्तु तुम कभी भी इसे अपने कमरेमें न बुलाना।'

अनन्तर ययातिने यथाविधान दो हजार दासियोंके साथ देवयानीका पाणिग्रहण किया और शर्मिष्ठाको ले कर अपने घर लौटे। कालक्रमसे देवयानीको एक पुत्र हुआ। पीछे शर्मिष्ठाके ऋतुकाल उपस्थित होने पर उसने राजा ययातिसे ऋतुरक्षाके लिये प्रार्थना की। इस पर राजा बोले, 'मैं जब देवयानीके विवाह करता था, तब शुक्राचार्य बोले थे, कि तुम शर्मिष्ठाको कभी भी अपने कमरेमें न बुलाना।" शर्मिष्ठाने कहा, 'राजन्! 'गमन न करूंगा' कह कर गम्या स्त्रीसे गमन करने, विवाहकालमें परिहास स्थानमें, प्राणविनाशकी सम्भावनामें तथा सर्वस्व अपहरणमें इन पांच जगह झूठ बोलनेसे दोष नहीं होता। अतएव मेरी प्रार्थनाकी रक्षा करनेमें आपको दोषी नहीं होना पड़ेगा।' राजाने शर्मिष्ठाकी नाना प्रकारकी युक्तियुक्त वाक्य सुन कर उसकी ऋतुरक्षा की। इसके फलसे शर्मिष्ठाके भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

देवयानी शर्मिष्ठाके पुत्र हुआ है, सुन कर जल भुनी और उसके पास आ कर बोली, 'शर्मिष्ठा! तुमने कामलुब्धा हो कर यह कैसा घोर पाप किया।' शर्मिष्ठाने कहा 'मेरे पास एक वेदपारग ऋषि आये थे। जब वे मुझे वर देने उद्यत हुए, तब मैंने धर्मानुसार उनसे ऋतुरक्षा करनेकी प्रार्थना की थी। मैं अन्याय कामचारिणी नहीं हूं अतएव यह मेरा पुत्र ऋषिके औरससे उत्पन्न हुआ है, मैं सत्य कहती हूं।' देवयानीने कहा, 'यदि यह सत्य है, तो इसमें कोई दोष नहीं, मैं प्रसन्न हूं।'

अनन्तर राजर्षि ययातिके औरससे देवयानीके इन्द्र और उपेन्द्र सदृश दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम यदु और तुर्वसु था। शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्रोंने जन्म लिया। एक दिन देवयानी ययातिके साथ निभृत उद्यानादिमें भ्रमण कर रही थी। इसी समय उसने देवतुल्य तीन कुमारोंको खेलते देख पूछा 'ये देवकुमार सदृश कुमार कौन हैं, किनके लड़के हैं। ये तीनों रूप और तेजमें तुम्हारे ही जैसे मालूम होते हैं।'

अनन्तर देवयानी उन तीनों कुमारोंके पास गई और उनके पिताका नाम पूछा। कुमारोंने कहा, "यही राजा ययाति हमारे पिता और शर्मिष्ठा माता है।"

अनन्तर देवयानी कुल वृत्तान्त जान गई और शर्मिष्ठासे जा कर कहने लगी, तुम मेरी दासी हो कर क्यों झूठ बोलती और ऐसा अप्रिय काम करती हो? शर्मिष्ठा बोली, 'मैंने अपने अपने परिनेताको जो ऋषि कहा था, वह मिथ्या नहीं है। मैंने न्याय और धर्मानुसार कार्य किया है। फिर मैं तुमसे डरूं क्यों? तुमने जिस समय इस राजाको अपना स्वामी बनाया, उसी समय मैं भी उन्हें वर चुकी हूं। क्योंकि सखीका स्वामी धर्मानुसार सखीका भी स्वामी होता है।'

देवयानीने शर्मिष्ठाका यह वचन सुन कर राजासे कहा, 'अब मैं यहां क्षण भर भी ठहर नहीं सकती, तुमने मेरे प्रति अप्रिय कार्य किया है।' इतना कह कर देवयानी अपने पिताके घर चली गई। राजा ययातिने भयभीत हो कर उसका पीछा किया।

देवयानी पिताके पास जा कर रोने लगी और बोली 'पिताजी! अधर्मने धर्मको जीत लिया है, नीचकी वृद्धि हुई है, शर्मिष्ठा मुझे मात कर गई। इस ययातिके औरससे शर्मिष्ठाके तीन पुत्र और मेरे केवल दो पुत्र हुए हैं। यह राजा कहलाता तो है धर्मज्ञ, पर इसमें जरा भी धर्म नहीं, यह बिलकुल अधर्मी है।'

इस पर शुक्राचार्यने राजाको कहा, 'तुमने धर्मज्ञ होते हुए भी अधर्मका आश्रय लिया, इस कारण मेरे शापसे तुम्हें बुढ़ापा बहुत जल्द आयेगा। ययातिने कहा, 'हे भगवन्! दानवेन्द्रसुता शर्मिष्ठाने मुझसे ऋतुरक्षाके

लिये प्रार्थना की थी, अतः धर्मसङ्गत जान कर ही मैंने ऐसा किया, कामवशवर्त्ती हो कर नहीं। किसी गम्या कामिनीके ऋतुरक्षाके लिये प्रार्थना करने पर जो व्यक्ति उसीकी ऋतुरक्षा नहीं करता, ब्रह्मवादी ब्राह्मण उसे भ्रूणहा कहते हैं।' इस पर शुक्राचार्य बोले, 'तुम मेरे अधीन हो, अतएव तुम्हें मुझसे पूछ लेना था, लेकिन ऐसा किया नहीं। धर्मविषयमें जो इस प्रकार मिथ्याचार करता है वह चोरीके दोषसे दोषित होता है।'

शुक्राचार्यके शाप देने पर ययाति अपनी यौवनावस्था का परित्याग कर वार्द्धक्यको प्राप्त हुए। अनन्तर उन्होंने बड़े कातर भावमें ऋषिसे कहा; 'मैं यौवनावस्थामें देवयानीसे परितृप्त नहीं हुआ। हे ब्राह्मण, यदि आपकी कृपा हो, तो ऐसा उपाय कर दीजिये जिससे बुढ़ापा मुझमें घुस न सके।' ऋषिने उत्तर दिया, 'राजन्! मेरा वचन मिथ्या होनेको नहीं। तुम जरूर वृद्ध होगे। पर हां, यदि तुम चाहो, तो किसी दूसरेको अपना बुढ़ापा दे सकते हो।' ययाति बोले, 'ब्राह्मण! मेरा जो पुत्र अपनी जवानी मुझे देगा, मैं उसीको राजा बनाऊंगा, और वह यशस्वी होगा।' शुक्राचार्यने ऐसा ही करनेकी अनुमति दी।

अनन्तर राजा ययाति अपने देशमें लौटे और बड़े लड़के यदुको बुला कर कहा, 'शुक्रके शापसे बुढ़ापेने मुझे आ घेरा है, परन्तु यौवन उपभोगसे मेरी तृप्ति नहीं हुई, इसलिये तुम मेरा बुढ़ापा और पाप लो और अपनी जवानी मुझे दो जिससे मैं कामविषयका उपभोग कर सकूं। हजार वर्ष पूरने पर तुम्हारी अवस्था लौटा दूंगा और अपनी वृद्धावस्थाके साथ पाप भोग करूंगा।' इस पर यदुने उत्तर दिया, 'राजन्! बुढ़ापेमें खाने पीनेमें अनेक दोष देखे जाते हैं, इसलिये बुढ़ापा ले कर अपना जवानी नहीं दे सकता। जिस बुढ़ापेमें लोगोंकी दाढ़ी मूंछ सफेद हो जाती, वे निरानन्द, शिथिल, वलीविशिष्ट, संकुचितगात्र, कुत्सित, दुर्बल और कृश होते, कोई कार्य करनेकी उनमें शक्ति न रह जाती, वैसी दोषयुक्त अवस्था मैं लेना नहीं चाहता, अपने किसी दूसरे प्रिय पुत्रको लेने कहिये।' ययाति पुत्रकी इस बात पर क्रुद्ध हो बोले, 'तुमने यौवनमदसे मेरी बात उठा दी, इस लिये तुम्हे शाप देता हूं, तुम्हारे वंशमें कोई भी राजा न होगा।

पीछे राजाने तुर्वसुको बुला कर अपना बुढ़ापा लेने कहा। तुर्वसुने भी यदुकी तरह अस्वीकार कर दिया। इस पर ययातिने शाप दिया कि, मेरे हृदयसे जन्म ले कर तुमने मेरी बात न सुनी, यह जो पाप हुआ, उससे तुम्हारी सभी प्रजा नाश होगी। जिनके आचार और धर्म नहीं, जो प्रतिलोमाचारी, मांसाशी, अन्त्यज और गुरुपत्नीमें आसक्त हैं, जो तिर्यक् योनिकी तरह आचरण करते तथा जो पापिष्ठ और म्लेच्छ हैं, तुम उन्हींके राजा होगे।"

अनन्तर राजाने द्रुह्युको बुला कर उससे यौवन मांगा। द्रुह्यु भी अपने दोनों भाईकी तरह इनकार कर गया। इस पर ययातिने शाप देते हुए कहा, 'तुम्हारा प्रिय अभिलाष कहीं भी सिद्ध नहीं होगा। जहां घोड़े, रथ, हाथी, राजाकी योग्य सवारी, गाय, गदहे, बकरे, पालकी आदि द्वारा गमनागमन नहीं हो सकता। जहां बेड़े आदि द्वारा पार करना होता है, जहां राजशब्द प्रसिद्ध नहीं, तुम उस देशमें वास करोगे।"

पीछे उन्होंने अनुके निकट अपना अभिप्राय प्रकट किया। अनुने इसे अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया, कि जो बूढ़ा होता उसका चमड़ा झुलस जाता है, वह असमयमें बच्चेकी तरह अशुचि शरीरसे भोजन करता है। वह यथासमय हुताशनमें आहुति नहीं दे सकता, इसलिये जवानी दे कर बुढ़ापा नहीं लेना चाहता हूं।" ययातिने कहा, "तुमने मुझसे उत्पन्न हो कर मेरी बातकी अवहेला कर दी, इस कारण तुमने जिस बुढ़ापेका दोष बखान किया, वह तुम्हें बहुत जल्द आ घेरेगा, तुम्हारी प्रजा यौवनकालमें ही विनष्ट होगी और तुम श्रौतस्मार्त्तसम्मत अग्निकार्यसे रहित होगे।"

अनन्तर राजाने पुरुसे कहा, "शुक्रके शापसे मैं बूढ़ा हो गया, पर यौवनकालसे मेरी तृप्ति न हुई। इसलिये तुम बुढ़ापा ले कर यदि अपनी जवानी दो, तो कुछ समय और विषय-भोग करूं। पीछे हजार वर्ष पूरे होने पर मैं तुम्हारी जवानी लौटा कर अपना पाप सहित बुढ़ापा ले लूंगा।"

पुरुने पिताकी बात सुन कर कहा, 'आप जो कुछ आज्ञा देंगे, उसका मैं सहर्ष पालन करूंगा। मैं आपका बुढ़ापा और पाप दोनों ग्रहण करूंगा।' पीछे राजा ययातिने शुक्रका स्मरण कर पुरुके शरीरमें अपना बुढ़ापा संक्रामित किया और उसकी जवानी आप ले ली।

ययातिने जवान हो कर विषयसुखमें हजार वर्ष बिताये। अनन्तर उन्होंने पुरुको बुला कर कहा, 'मैंने तुम्हारे यौवनसे अभिलाष और उत्साहानुसार हजार वर्ष विषयसुख भोगे, परन्तु जिस प्रकार आगमें घी देनेसे वह बुझती नहीं, वरन् प्रदीप्त हो उठती है, उसी प्रकार काम्य-वस्तुके उपभोग द्वारा कभी कामकी निवृत्ति नहीं होती, वरन् दिनों-दिन बढ़ती ही जाती है। अतः मालूम पड़ता है, कि पृथ्वी पर जितने धान, जौ, सोने और स्त्री आदि विषय-सुख हैं उनसे कभी किसीकी तृप्ति नहीं हो सकती, अतएव अब विषय सुख भोगना व्यर्थ है, उन्हें छोड़ देना ही उचित है। जिस तृष्णाको मूर्ख व्यक्ति छोड़ नहीं सकता, बुढ़ापा होने पर भी जिसका क्षय नहीं होता और जो प्राणविनाशक रोगस्वरूप है, उस तृष्णाका जब तक परित्याग न किया जाय, तब तक मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। मैं विषयासक्त था, उसमें मेरे हजार वर्ष बीत गये, फिर भी विषय-तृष्णा न बुझी, दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है, अभी मैं उसका परित्याग कर पर-ब्रह्ममें मन लगाऊँगा। यह कह कर ययातिने पुरुको यौवन लौटा दिया और वे स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके कठिन तपस्या करने लगे।

ययाति पुरुको राज्याभिषिक्त कर कठोर तपस्या करने जंगल चल दिये। उसी तपस्याके फलसे वे स्वर्गमें गये और वहां कुछ दिनों तक इन्होंने सुखसे वास किया।

स्वर्गमें रहते समय एक दिन इन्द्रने इनसे पूछा, 'जब तुमने सभी कर्म करके तपस्यामें मन लगाया, उस समय तुम्हारे समान तपस्वी और कौन था?' ययातिने कहा, 'देव, मानुष, गन्धर्व और महर्षि इनमेंसे कोई भी मेरे समान तपस्वी न था।' इस पर इन्द्र बोले, 'तुमने दूसरेका प्रभाव बिना जाने ही अपनेको बड़ा बताया और जो तुमसे श्रेष्ठ, समान और अधम हैं, सबोंका अपमान किया इस कारण तुम्हारे सभी पुण्य क्षय हो गये। अतः अब स्वर्गमें तुम्हारे रहनेका स्थान नहीं। आज तुम देव-लोकसे पतित हुआ।' ययातिने कहा, 'देवराज! देव, ऋषि, गन्धर्व और मनुष्यके प्रति अवमानना प्रयुक्त यदि मेरा स्वर्गभोग शेष हो गया, तो मुझ पर ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मैं देवलोकसे परिभ्रष्ट हो साधुमण्डलीमें वास करूं।' इन्द्रने इसे स्वीकार करते हुए कहा, "तुम्हारा अभिलाष पूर्ण होगा, परन्तु याद रखना फिर कभी भी श्रेष्ठ व्यक्तिके प्रति अवज्ञा प्रकट न करना।"

राजा ययातिने जब देवराजसेवित पुण्यलोकका परि-त्याग कर पतित हो रहे थे, उस समय राजर्षिप्रवर अष्टकने उन्हें देख कर कहा 'राजर्षे! आप कौन हैं और किसलिये स्वर्गसे च्युत हुए हैं?'

ययातिने संक्षेपमें अपना परिचय देते हुए कहा, 'मैंने सभी प्राणियोंका अपमान किया था, इस कारण मेरा पुण्य क्षय हो गया और मैं सुर सिद्ध और ऋषिलोकसे परिभ्रष्ट हो पतित हो रहा हूं। मैं तुम लोगोंसे वयो-ज्येष्ठ हूं, इस कारण तुम लोगोंका अभिवादन नहीं किया। क्योंकि, जो व्यक्ति जन्म द्वारा वृद्ध होता है, वह द्विजातियोंमें पूजा जाता है।' अष्टकने कहा, 'शास्त्रमें लिखा है, कि जो विद्या और तपोवृद्ध हैं, वे ही द्विजा-तियोंमें पूज्य हैं।' इस पर ययाति बोले, 'विद्या और तपस्यादि कर्मके अहङ्कारको पण्डितोंने नरकजनक पाप बताया है। उस अहङ्कारके उद्धत व्यक्ति ही वशवर्त्ती होते हैं, साधु लोग नहीं होते। पूर्वकालीन सज्जन ऐसे ही थे, पर मैं वैसा न हुआ, इसी कारण स्वर्गच्युत होता हूं। मेरे पुण्यरूप प्रचुर धन जमा था जिसे मैंने दर्पके कारण ही खो दिया, अभी लाख उपाय करने पर भी वह मुझे नहीं मिल सकता। जो मेरी ऐसी गति देख कर आत्महितसाधनमें निविष्ट होवें, वे ही विज्ञ और धीर हैं।"

पीछे अष्टकोंने ययातिसे अनेक प्रश्न किये जिनका उन्होंने ठीक ठीक उत्तर दे दिया। अनन्तर अष्टकोंने अपना अपना पुण्य दे कर उन्हें स्वर्ग जाने कहा। परन्तु ययातिने उनका पुण्य लेना बिलकुल स्वीकार न किया।

राजा शिविने भी ययातिसे कई प्रश्न किये और ठीक ठीक उत्तर पा कर अपना पुण्य उन्हें देनेको तैयार हो गये, किन्तु ययातिने अङ्गीकार न किया।

अनन्तर अष्टकने ययातिके ऐसे कार्य पर आश्चर्यान्वित हो उनसे पूछा, 'राजन्! सच सच कहें, आप कहांसे आये हैं, किनके लड़के हैं और आप स्वयं कौन हैं? आपने जैसा किया है, वैसा जगत्में कोई भी ब्राह्मण वा क्षत्रिय नहीं कर सकता।' उत्तरमें ययातिने कहा, 'मैं नहुषका लड़का और पुरुका पिता हूं, ययाति मेरा नाम है। मैं इस पृथिवी पर सार्वभौम राजा था। तुम मेरे परम आत्मीय हो इसलिये तुमसे कहता हूं, कि मैं तुम लोगोंका मातामह हूं। मैंने सारी पृथिवी जीत कर ब्राह्मणोंको वस्त्र दिये तथा पवित्र और सुरूप एक सौ घोड़े देवताके उद्देशसे उत्सर्ग किये थे। जो मैं एक बार कह देता था, वह निष्फल नहीं जाता था। मेरे ही सत्य द्वारा आकाशमण्डल और वसुन्धरा अवस्थित है तथा मर्त्यलोकमें अग्नि प्रज्वलित होती है। यही कारण है, कि साधु लोग सत्यकी ही पूजा करते हैं। जितने मुनि और देवगण हैं, वे सभी एक सत्यनिष्ठा द्वारा ही पूज्यतम होते हैं।

इसके बाद ययातिने अपने नातियोंसे मुक्तिलाभ कर कीर्ति द्वारा पृथिवीको व्याप्त करते हुए मित्रोंके सहित स्वर्ग गये। जो राजा ययातिका वृत्तान्त पढ़ता है उसकी सभी विपद् दूर हो जाती है।

(भारत १।७८-९३ अ०)

जगत्के आदि ग्रन्थ ऋग्वेदसंहितामें भी हम लोग राजा ययातिका उल्लेख पाते हैं।

'मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्
सदने पूर्ववच्छुचे।" (ऋक् १।३१।१७)

'ययातिवित् यथा ययातिर्नाम राजा गच्छति' (सायण)

यह ययाति राजा नहुषके पुत्र थे। "ययातेर्ये नहुषस्य बर्हिषि देवा आसते तेऽधिब्रुवन्तु नः।"

(ऋक् १०।६३।१)

'ये देवा नहुषस्य नहुषपुत्रस्य ययातेरेतन्नामकस्य राजर्षेर्बर्हिषि यज्ञ आसते।' (सायण)

देवगण इनके यज्ञमें हमेशा उपस्थित रहते थे।

ययातिकेशरी—उड़ीसाके एक राजा। उन्होंने उत्कलसे यवनोंको भगा कर केशरीवंशकी प्रतिष्ठाकी थी। श्रीजगन्नाथदेवको पुरीके मन्दिरमें लाना तथा भुवनेश्वरका विख्यात शिवमन्दिरका मूल घर बनाना, इनके जीवनका मुख्यकार्य था। याजपुरमें उनकी राजधानी थी। ११वीं सदीमें वे राज्य करते थे। जिस समय बौद्धधर्मकी प्रज्वलित आग हिन्दूधर्मको धांय धांय करके जला रही थी, उस समय मगधराज ययातिकेशरी उत्कलदेशमें गये और उन्होंने उत्कलमें पुनः हिन्दूधर्मकी प्रतिष्ठा की। वीर और धर्मप्रेमी ययातिकेशरीके प्रभावसे असंख्य बौद्धमन्दिरोंमें हिन्दू देवताओंकी मूर्त्तियां स्थापित की गई। सोमवंश देखो।

ययातिपतन (सं० क्ली०) महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम।

ययातिपुर—याजपुर देखो।

ययातीश्वर (सं० पु०) शिव।

ययावर (सं० पु०) १ नानास्थान-भ्रमणकारी, वह जो बहुत जगह घूमता हो। २ अनियताश्रम तापसभेद।

ययि (सं० त्रि०) या-कि द्वित्वश्च। गमनयुक्त, जानेयोग्य।

ययी (सं० पु०) यायते प्राप्यते भक्तै-रिति या (ययोःकित् ई च। उण् ३।१५६) इति ईद्वित्वञ्च। १ शिव, महादेव। २ अश्व, घोड़ा। ३ मार्ग, रास्ता।

ययु (सं० पु०) यातीति या (योई च। उण् १।२२) इति उ, द्वित्वञ्च, यजत्यनेनेति यज-उ पृषोदरादित्वात् यस्य यत्वमित्यमरटीकायां रघुनाथः। १ अश्वमेधीयाश्व, अश्वमेध यज्ञका घोड़ा। २ सामान्यघोटक, साधारण घोड़ा।

यर्हि (सं० अव्य) जब, यदि।

यलघीस (सं० पु०) राजा।

यलनाथ (सं० पु०) राजा।

यलमलय—मद्रासप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत एक नगर।

यला (सं० स्त्री०) पृथ्वी।

यलाहन्द (सं० पु०) राजा।

यलापत (सं० पु०) राजा।

यलिसिरुर—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यहांके ईश्वर-मन्दिरमें ११०६, १११७ और ११४४ तथा हनुमान्-मन्दिरमें १११५ ई०की उत्कीर्ण बहुत-सी शिलालिपियां देखी जाती हैं।

यल्लभट्ट—१ न्यायपारिजातके प्रणेता। २ शतश्लोकी, षड़शीति और यल्लभट्टीय नामक तीन ग्रन्थोंके प्रणेता।

यल्लभट्टसुत—आश्वलायनसूत्र-व्याख्याके रचयिता।

यल्लम—कल्पवल्ली नामको सूर्यसिद्धान्तकी टीका और संहितार्णव नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ये श्रीधराचार्यके पुत्र थे।

यल्लमा—दाक्षिणात्यमें प्रसिद्ध एक शक्तिमूर्त्ति।

यल्लयार्य—वेदपददर्पणके प्रणेता।

यल्लाजी—पैतृमेधिकविधानके रचयिता।

यल्लार्य—दैवज्ञविलासके प्रणेता।

यव (सं० पु०) युयते अम्भसा इति यु मिश्रणे अप्। स्वनामख्यात शूकधान्य, जौ। संस्कृत पर्याय—सितशूक, सितशूत, मेध्य, दिव्य, अक्षत, कंचुकी, धान्यराज, तीक्ष्णशूक, तुरगप्रिय, शक्तु, महेष्ट, पवित्रधान्य।

"गोभिर्यवः न चर्कृषत्॥" (ऋक् १।२३।१५)
'यथा यवमुद्दिश्य भूमिं प्रतिवत्सरं पुनः पुनः कर्षति तद्वत्।' (सायण)

जौ देखनेमें बहुत कुछ धान और गेहूंके जैसा होता है। किन्तु भीतरी बीजकोषज पदार्थ उक्त दोनों अनाजोंकी अपेक्षा बहुत कुछ विभिन्न है। बहुत पहलेसे ही इस यवका व्यवहार चला आता है। वैदिक आर्यऋषियोंने धान और गेहूंका व्यवहार जाननेके पहले यवशस्यके चूर्णका खाद्यद्रव्यरूपमें व्यवहार करना सीखा था। ऋक्संहिता १।२३।१५, १।६६।३, १।११७।२१ आदि मन्त्रोंमें यवका उल्लेख पाया जाता है। शेषोक्त मन्त्रमें लिखा है, "हे अश्विद्वय! तुम ने आर्य मनुष्यके लिये हल चलवा कर, जौ बुनवा कर और अन्नके लिये वृष्टि-वर्षण कर वज्र द्वारा दस्युका वध कर उसका बड़ा उपकार किया है।" इससे मालूम होता है, कि प्राचीन युगमें आर्यगण उपभोगके लिये जमीन जोत कर जौ उपजाते थे। तभीसे इस यवचूर्ण (सत्तू)-का खाद्यद्रव्यरूपमें व्यवहार चला आ रहा है।

भिन्न भिन्न देशोंमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित है। हिन्दी—यव, जौ, सुज; बङ्गला—यव, जौ जोओ; भोट—नाश; लासा—सुया; नेपाल—तोषा; युक्तप्रदेश—यउ, इन्द्रयव, युर्क; पञ्जाब—धानजात, नाई, जव, चक, जौ; अफगान—यावतुर्श, याव; दाक्षिणात्य—सातू; बम्बई—यव, सातू; महाराष्ट्र—यव, सातु, जव; गुर्जर—यौ, जव, युम्वा; तामिल—वर्लि-अरिसी, वार्ली-अरिसु; तेलगु—पाच्छायव, यव, धान्यमेदम्, यवक, यवल, वर्लि-बियम; कणाड़ी—यवेगाड़ी; ब्रह्म—मु-यौ; अरब—साधायिव; पारस्य—याव; तुर्कि—आर्पा।

पृथिवीमें सभी जगह अनाज उत्पन्न होता है। ऊंचे पर्वतशिखरसे लेकर समतलक्षेत्रादिमें यह अनाज बहुतसे उत्पन्न होते देखा जाता है। हिमालय पर्वतके ११से १५ हजार फुटकी ऊंचाई पर, यहां तक, कि शीतप्रधान लैपलैण्डके ६८° ३८' डिग्री उत्तापविशिष्ट स्थानमें, कास्पीय सागरके किनारे, अरबके सिनाई पर्वतके नीचे, पारसीपोलिस नगरके खंडहरोंमें, स्युफोरन और वकुर मध्यवर्त्ती चिरमान और अवहासियाके विजन मरुदेशमें, चीन, मिस्र स्वीजरलैण्ड आदि यूरोप और अमेरिकामें जौकी खेती होती है। Bretschneider-का उपाख्यान पढ़नेसे मालूम होता है, कि चीनसम्राट् सेनतुङ्गके शासनकालमें (२७०० ई० सनके पहले) चीनराज्यमें जौकी खेती होती थी। थियोफ्राष्टस (Theophrastus) तरह तरहके जौसे जानकार थे। ईसाधर्मग्रन्थ बाइबिलमें भी कई जगह जौका उल्लेख पाते हैं। राजा सलोमनके शासनकालमें (११५ ई० सनके पहले) जौ प्रधान भोजन समझा जाता था। प्राचीन मिस्र-कीर्त्तिस्तम्भोंमें भी H. hexastichum श्रेणीके यवका निदर्शन है। ई०-सनके ६ सदी पहले मुद्राङ्कित इटलीके दक्षिणस्थ मेटापाइण्ट नगरके पदकमें भी जौके छः गुच्छोंका चिह्न था। इन सबकी आलोचना कर पाश्चात्य उद्भिद्वेत्ता अनुमान करते हैं, कि प्राचीनतम युगमें जो जंगली जौ उपजाया जाता था वह H. henastichum वा H. dis-

tichum श्रेणीके अन्तर्गत है। वत्तमान समयमें H. Vulgare श्रेणीका जो जौ उत्पन्न होता है, वह उक्त दोनों श्रेणीसे बिलकुल स्वतन्त्र है। किस समय इस श्रेणीका वीज भारतवर्षमें लाया गया था उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस वीजको आर्योंने भारतवर्षके उत्तरसे यहां लाया होगा, यही कारण है, कि हमलोग इन्द्रको यवपककारी आदि प्रशंसावाक्यमें ऋग्वेदमें पूजाई देखते हैं। आर्यजातिकी आदि वस्तु होनेके कारण तभीसे हिन्दूके प्रत्येक क्रियाकर्ममें इसका व्यवहार चला आता है।

वर्त्तमान कालमें इस जौ गेहूंकी तरह पीस कर रोटी बनाते हैं। भूने हुए जौको पीस कर सत्तू तय्यार किया जाता है। विलायतसे टिनके डब्बेमें भर कर जो यवचूर्ण (Powdered Barley) यहां आता है, उसे जलमें सिद्ध कर रोगियोंको पथ्यरूपमें दिया जाता है। यूरोपकी प्रसिद्ध रोबिन्सन कम्पनीका "बारली पाउडर" सबसे उमदा है। इङ्गलैण्डके भैषज्यतत्त्वमें इस जौ की भूसीको अलग कर उसके भीतरी वीजसे एक प्रकारका दाना तय्यार करनेकी बात लिखी है। वह "पर्ल बार्ली" (*P*earl Barley वा *H*ordeum decortecatum) कहलाता है। इस पार्लवार्लीके बनानेके सम्बन्धमें Church साहबने ऐसा लिखा है,—

यूरोपीय खास कर इङ्गलैण्डके जौ को भिन्न प्रकारसे साफ कर भिन्न श्रेणीको बार्ली तय्यार की जाती है। जौको जलमें अच्छी तरह धोकर जांतेमें आहिस्ते आहिस्ते इस प्रकार पीसे, कि उसकी कुल भूसी निकल जाय, पर दाना एक भी न टूटे। इस प्रकार साफ किया हुआ जौ बाजारमें भिन्न भिन्न नामसे बिकता है। १०० पाउण्ड जौ को जांतेमें पीस कर १२॥ पाउण्ड भूसी आदि बाद देनेसे Blocked Barley बनती है। पीछे फिरसे ब्लोकु बार्लीको अच्छी तरह जलमें मल कर १४॥ पाउण्ड सूक्ष्म चूर्ण (Fine dust) बाहर कर लेनेसे जो दाना रह जाता है उसे *P*ot वा Scotch Barley कहते हैं। फिर स्कोच बार्लीको घिस कर २५। पाउण्ड बहुत बारीक चूर्ण 'Pear-ldust' अलग कर देनेसे पर्ल बार्ली तय्यार होती है।

पर्लबार्ली बनाते समय चूर्ण नष्ट हो जाता है। यद्यपि लोग उसे काममें नहीं लाते, पर उसमें यथेष्ट पुष्टिकर शक्ति रहती है। वैज्ञानिक चर्चने रासायनिक परीक्षा द्वारा उसका पार्थिव उपादान इस प्रकार स्थिर किया है—

	भूसी	बारीक चूर्ण	बहुत बारीक चुर्ण
जल	१४·२	१३ १	१३·३
वीजशस्य	७·०	१७ ६	२२ १
तेल	१·७	६·	३·४
मांड	४६·६	५० ५	६७ २

अच्छी तरह पर्यवेक्षण कर मि० चर्चने कहा है, कि इस अनाजमें यवक्षार (Nitrogen)-का अंश कुछ भी न रहनेके कारण उसका कार्यकारित्व बहुत कुछ हीन हो गया है। अतएव ऊपरकी तालिकामें जो परिमाण दिया गया है और तिहाई कम करके मानना होगा।

इन सब बार्लीको सिद्ध कर शिरवा या जूस बनाया जाता है, दुर्बल और अजीर्ण रोगीके लिये यह बहुत उमदा भोजन है। जौके आटेकी रोटी अथवा आटेको सिद्ध कर उसका जूस पिलानेके सिवा बहुतेरे उसमें मैदा और चनेके सत्तू अथवा वेसन मिला कर घी आदि के साथ बढ़िया रोटी तैयार करते हैं। प्याज लहसुन अथवा लालमिर्चके साथ निम्न श्रेणीके लोग इसे खाते हैं।

रासायनिक परीक्षासे जाना जाता है, कि भारतीय जौमें सैकड़े पीछे ६३ अंश मांड़ ७ अंश मज्जाका उपरिस्थ आवरण; ११·५ वीजका गूदा, १२·५ जल और बाकी तेल, अंश और क्षार है। इङ्गलैण्डके जौके गूदेका भाग भारतीय वीजसे बहुत कम होता है। सैकड़े पीछे ३ अंश तेल और २·४ धातव क्षार (Ash) रहता है। तैलांशमें ग्लिसिरिन्, पामिटिक और लुरिक एसिड पाया जाता है। सारांशमें २६ भाग साइलिक एसिड, २२·७ फोस्फरिक एसिड, २२ ७ पोटाश और ३ ७ चूर्ण विद्यमान है। १८६८ ई०में लिएटनरने परीक्षा द्वारा Cholesterin (चरबीके जैसा पदार्थ विशेष) और उनके

बाद डा० कुनेमनने उसमें चीनीका अस्तित्व स्थिर किया है।

जौका जूस प्रति दिन पीना बहुत स्वास्थ्यकर है। यह थोड़े ही समयमें पच जाता है। इसीसे यह रोगी-का प्रधान पथ्य बतलाया गया है। अजीर्ण रोगमें भूने हुए जौका सत्तू खानेसे बहुत लाभ पहुंचाता है। जौका काढ़ा विशेष स्निग्धकर है। पंजाब प्रदेशमें जौके पत्ते और डंठलको जला कर वह क्षार शरबतके साथ पीते हैं इससे एक प्रकारकी पैष्टी मद्य (Malt) बना कर उसे यूरोप और अमेरिकावासी चिकित्सकोंने स्नायविक दौर्बल्यग्रस्त और सपूय विस्फोटकके कारण दुर्बल व्यक्तियोंको सेवन करने कहा है। वह मद्य निम्न प्रकारसे बनाया जाता है।

२से ४ औंस अङ्कुरित और सूखे जौको प्रायः १सेर जलमें सिद्ध कर उसका काढ़ा छान ले। पीछे उसमें मादक वृक्षविशेष (Hops) की छाल वा जड़ मिला देनेसे उसमें फेन निकलेगा। इसीको पैष्टी मद्य कहे हैं, यह बहुत बलकारक है।

जौकी भूसी गाय, घोड़े आदिको खिलाई जाती है। कभी कभी उसका सत्तू भी दिया जाता है। घोड़ोंको खिलानेके लिये जौ नामक एक प्रकारकी निकृष्ट श्रेणीका यव व्यवहृत होता है।

ऊपरमें जिस पैष्टीमद्य (Malt liquor) का विषय लिखा गया, पंजाबवासी आज भी जौसे एक प्रकारका मद्य बनाते हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें यव-सुराका उल्लेख देखा जाता है। हिन्दूलोग इस यव मद्यके व्यव-हारसे विशेष अभ्यस्त थे। वैद्यकशास्त्रमें इस मद्यकी प्रस्तुत प्रणाली और प्रयोगविधि लिखी है।

मद्य शब्द देखो।

ऊपर कह आये हैं, कि हिन्दूके धर्मसंक्रान्त सभी क्रियाकलापोंमें यवका व्यवहार होता है। ज्येष्ठ मासमें मङ्गलचण्डीके व्रतके समय हिन्दूरमणियां जौ खाती हैं। लक्ष्मीपूजाके अर्घ्यके लिये जौकी विधि है। इसी प्रकार विवाह, अन्त्येष्टि, श्राद्ध आदि कार्योंमें तथा यागादिमें इसकी व्यवस्था देखी जाती है। वैशाखमासमें शुक्ला चतुर्थीको एक दूसरेके शरीर पर जौका चूर्ण फेंक-नेका नियम है। इस चतुर्थीको यवचतुर्थी कहते हैं। यह धानके जैसा लक्ष्मी देवीका एक निदर्शन है। इसी कारण प्राचीन मुद्रादिमें 'यवगुच्छ'-का चिह्न दिया जाता था।

राजनिर्घण्टके मतसे अशूकमुण्ड यव बलप्रद, वृष्य और मनुष्योंके वीर्य और बलको बढ़ानेवाला है। भावप्रकाशके मतसे इसका संस्कृत पर्याय—यव, सितशूक, निःशूक, अतियव, तोक्म और स्वल्प यव। इसका गुण—कषाय-मधुररस, शीतवीर्य, लेखनगुणयुक्त, मृदु, व्रणरोगमें तिलके समान उपकारी, रुक्ष, मेधाजनक, अग्निवर्द्धक, कटुविपाक, अनभिष्यन्दी, स्वरप्रसादक, बलकारक, गुरु, अत्यन्त वायु और मलवर्द्धक, वर्णप्रसादक, शरीरकी स्थिरता सम्पादक, पिच्छिल तथा कण्ठगतरोग, चर्मरोग, कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, कास, उरुस्तम्भ, रक्तदोष और पिपासानाशक। इस यवसे अतियव हीनगुणयुक्त तथा अतियवसे तोक्म भी गुणहीन होता है। दो वर्षसे ऊपर होने यव पुराना होता है। पुराना जौ गुणकारक नहीं है। नये जौमें ही ऊपर कहे गुण पाये जाते हैं। पुराना जौ नीरस और रुक्ष होता है।

धर्मशास्त्रसे मालूम होता है, कि हविष्य कार्यमें जौ बहुत पवित्र है। जौसे ही हविष्य-कार्य करना होता है। जौसे यदि हविष्य न किया जाय, तो धानसे भी किया जा सकता है।

"हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनुव्रीहयः स्मृताः।
माषकोद्रवगौरादि सर्वालाभेऽपि वर्जयेत्॥"

(कात्यायनसंहिता ६।१०)

स्मार्त्तके मतसे जिस समय नया जौ होता है, उस समय नये जौसे पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करना होता है। यह नित्यश्राद्ध है। जो यह श्राद्ध नहीं करता उसे पापभागी होना पड़ता है। (श्राद्धतत्त्व)

सधवा स्त्रीको श्राद्ध करनेके समय तिलके बदले यवका व्यवहार करना चाहिये। क्योंकि, शास्त्रमें लिखा है, कि जबतक स्वामी जीवित रहे, तब तक स्त्रीको श्राद्ध-कालमें तिल और कुश नहीं छूना चाहिये। अतः उसके

लिये तिलके बदले यव और कुशके बदले दूबका व्यवहार हो कर्त्तव्य है।

२ परिमाणविशेष, चार धान या ६ सरसोंकी तौलका एक मान।

"जालान्तरे गते भानौ यत्चानु दृश्यते रजः।
तैर्श्चतुर्भिर्भवेल्लिख्यालिख्या षड्भिश्च सर्षपः।
षट्सर्षपैर्यवस्त्वेको गुञ्जैका तु यवैस्त्रिभिः॥"

(शब्दचन्द्रिका)

कलिङ्गदेशमें कोई कोई ८ सरसोंका एक यव बतलाते है। ३ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ४ सामुद्रिकके अनुसार जौके आकारकी एक प्रकारकी रेखा जो उंगलीमें होती है और जो बहुत शुभ मानी जाती है। कहते हैं, कि यदि वह रेखा अंगूठेमें हो तो, उसकाफल और भी शुभ होता है। जिसके मध्यमा और अङ्गुष्ठ देशमें सुशोभन जौका चिह्न रहे, वह दूसरेका सञ्चित द्रव्य पाता है। वह अङ्गुष्ठस्थित जौ यदि चक्रयुक्त हो, तो पितामहादिका अर्जित धन उसे हाथ लगता है। इस रेखाका रामचन्द्र दाहिने पैरके अंगूठेमें होना माना जाता है। ५ पूर्णपक्ष। (शुक्लयजु० १४।३१) ६ वेग, तेजो। ७ वह वस्तु जो दोनों ओर उन्नतोदर हो।

यवक (सं० पु०) यवप्रकार यव (स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्। पा ५।४।३) इति कन्। यव, जौ।

यवकण्टक (सं० पु०) पर्पटक, खेतपापड़ा।

यवकलश (सं० पु०) इन्द्रयव, इन्द्रजौ।

यवकाञ्जिक (सं० क्ली०) यवसंहित काञ्जिक, जौका मांड़। यावल देखो।

यवक्य (सं० त्रि०) यवकानां भवनं क्षेत्रमिति यवक्य (यवयवक षष्टिकात् यत्। पा ५।२।३) इति यत्। यवभवनोचित क्षेत्र, वह खेत जहां जौकी फसल अच्छी लगती है।

यवकिन् (सं० पु०) यवक्रीतका नामान्तर। यवक्रीत देखो।

यवक्रीत (सं० त्रि०) १ यवक्रयकारी। २ यवक्रीत मुनि।

यवक्रीत (सं० पु०) १ जो जौके बदलेमें खरीदा गया हो। २ एक मुनिका नाम जो भरद्वाजके पुत्र थे।

यवक्षा (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक नदीका नाम।

यवक्षार (सं० पु०) यवजातः क्षारः शाकपार्थिववत् समासः। क्षारविशेष, जौके पौधोंको जलाकर निकाला हुआ खार। संस्कृत पर्याय—यवाग्रज, पाक्य, यवलास, यवशूक, सारक, रेचक, यवनालक, यावशूक, क्षार, तर्ष्य, तीक्ष्णरस, यवनालज, यवज, यवशूकज, यवाह्व, यवापत्य। इसका गुण—कटु, उष्ण, कफ, वात और उदरपीड़ानाशक, आमशूल, अश्मरुक और विषदोषनाशक। (राजव०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—लघु, स्निग्ध, अग्निदीपक, शूल, वात, आम, श्लेष्म, श्वास, गलरोग, पाण्डु, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, अनाह और हृद्रोगनाशक।

यवक्षारजन—वाष्पविशेष, भाप। (Nitrogen) वाष्प देखो।

यवक्षाराम्ल—एक प्रकारका अम्ल औषध जो सोरा द्वारा बनाया जाता है। अङ्गरेजीमें Nitric acid कहते हैं।

यवक्षेत्र (सं० क्ली०) जौके उपजानेका खेत।

यवक्षोद (सं० पु०) यवानां क्षोदः। यवचूर्ण, जौका आटा।

यवगण्ड (सं० पु०) यूनो गण्डः स्फोटकः पृषोदरादित्वात् यवदेशः। युवागण्ड, मुहांसा।

यवगोधूमसम्भव (सं० क्ली०) १ यवमिश्र काञ्जिक या माड़। २ जौ और गेहूंसे बना हुआ।

यवग्रीव (सं० त्रि०) जौकी तरह ग्रीवायुक्त।

यवचतुर्थी (सं० स्त्री०) वैशाख शुक्लाचतुर्थी। इस दिन पश्चिमके हिन्दू आपसमें जौका चूर्ण फेंकते हैं।

यवज (सं० पु०) १ यवक्षार। २ यवानी, अजवायन। ३ गोधूम क्षुप, गेहूंका पौधा।

यवजोद्भव (सं० क्ली०) यवजोद्भवोऽस्य। यवक्षीर।

यवतिक्ता (सं० स्त्री०) लताभेद, शंखिनी नामकी लता। संस्कृत पर्याय—महातिक्ता, दृढ़पादविसर्पिणी, नाकुली, नेत्रमीना, शङ्खिनी, पत्रतण्डुली, अक्षपीड़ा, सूक्ष्मपुष्पी, यशस्विनी, माहेश्वरी, तिक्तफला, यावी, तिक्ता। इसका गुण—तिक्ताम्ल, दीपन, रुचिकारक, कृमि, कुष्ठ, त्रिवर्ण और अम्लदोषनाशक। २ तण्डुलीय शाक, चौलाईका

साग। ३ शशतुण्डि, ककड़ी। ४ मारिष, मरसा नामक साग। (राजनि०)

यवतैल (सं० क्लो०) यवनिर्मित तैलं। यवचूर्णादि-युक्त पक्वतैल विशेष। वह तेल जो जौके चूरसे तैयार किया गया हो। ज्वर, दाह, वेग और शरीरके दर्दमें इस तैलकी मालिश करनेसे बड़ा फायदा पहुंचता है।

यवदोष (सं० पु०) जौके आकारकी एक रेखा जो रत्नोंमें पड़ जाती है और जिससे वह रत्न बहुत दूषित हो जाता है।

यवद्वीप (सं० पु०) यवनामा द्वीपः मध्यपदलोपिकर्मधारयः। उपद्वीपविशेष।

"यत्नवन्तो यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्।
सुवर्णरूपकद्वीपं सुवर्णाकरमण्डितम्॥"
(रामायण ४।४० सर्ग)

अंगरेजीमें यह Java नामसे प्रचलित है। यह भारत-महासागरके द्वीपोंमें एक है और बहुत प्रसिद्ध है। इङ्गलैण्डके ओलन्दाजोंका यह प्रधान वैदेशिक साम्राज्य है। यवद्वीप यद्यपि बड़ा नहीं है, तो भी यह अतीत कालकी प्राचीनकीर्त्तियोंके गौरवस्तम्भोंको अपने वक्ष पर धारण कर ऐतिहासिकोंको चमत्कृत कर रहा है। यहां हिन्दूराज्यकी गौरवसमाधि और बौद्धाविर्भावके पदचिह्न आज भी उज्ज्वल वर्णमें चित्रित हैं। भारत महासागरीय अन्यान्य द्वीपोंकी जनसंख्यासे यहांकी जनसंख्या कहीं अधिक है। यहांकी उपजने होलैण्डको ऐश्वर्यशालिनी बना दिया है।

यवद्वीप १०५° १०´ से ११४° ३४´ पू० तथा ५° ५२´ से ८° ४६´ दक्षिणके मध्य विस्तृत है। यह द्वीप पूर्व-पश्चिममें ६२२ मील लंबा और उत्तरदक्षिणमें १२१ मील चौड़ा है। यहांसे १॥ मील पूरबमें अवस्थित वालिद्वीपको पाश्चात्य भौगोलिकगण यवका ही अंश बतलाते हैं। इसीसे वालिका नाम क्षुद्रयव या छोटा जावा (Little Java) है। वालिद्वीप देखो।

यवद्वीप हालैण्डसे चौगुना बड़ा है। रकवा ५०३६० वर्गमील और जनसंख्या ३ करोड़से ऊपर है।
विशेष विवरण जावा शब्दमें देखो।

यवन (सं० पु०) यौति मिश्रीभवतातिपु (युयुरु वृण्भ्यो युच्। उण् २।७४) इति युच्। यवन नामक नगर-निवासी जातिविशेष। इस यवनदेशका विवरण मत्स्य-पुराणमें इस तरह लिखा है,—

"तान् देशान् प्लावयतिस्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः।
सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् वर्वरान् यवनान् खसान्।"
(मत्स्यपु० १२०-४३)

यवनदेशोद्भव होनेके कारण इस जातिका यवन नाम पड़ा। ये ययातिराजपुत्र तुर्वसुके वंशधर हैं।

"यदोन्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः।
द्रुह्योः सुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः॥"
(भारत १।८५।८४

सिवा इसके मार्कण्डेयपुराणके ५८।५२वें और मत्स्यपुराणके ३४वें अध्यायमें लिखा हुआ है, कि वे राजा ययातिके शापसे तुर्वसुके वंशधरगण सदाचारहीन हो कर यवनजातिमें मिल गये।

किन्तु महाभारतके ८४वें अध्यायके आरम्भमें ही राजा ययातिने तुर्वसुको यह कह कर शाप दिया है:—

'यस्त्वं हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तस्मात् प्रजा समुच्छेदं तुर्वसोतवयास्यसि॥
संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च।
पिशिताषु चान्त्योषु मूढ राजा भविष्यसि॥
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्य्यग्योनिगतेषु च।
पशुधर्मेषु पापेषु म्लेच्छेषु त्वं भविष्यसि॥"
(भारत १।८४।१३-१५)

उक्त प्रमाण द्वारा अनुमान होता है, कि म्लेच्छ और यवन दो भिन्न जातियां हैं। तुर्वसुवंशीयगण यवनदेशमें वसनेके कारण सम्भवतः यवन और अनुके वंशधर म्लेच्छ कहलाये।

महाभारत आदिपर्वके १७५वें अध्यायमें लिखा है, कि वशिष्ठ और विश्वामित्रमें विरोध उपस्थित होने पर जब विश्वामित्रके सैनिकोंने बलपूर्वक नन्दिनीको पकड़ लिया, तब वशिष्ठजीने यवनोंकी भी सृष्टि कर शत्रुसैन्य-में मुकाबलेमें भेजा था।

"असृजत् पह्लवान् पुच्छात् प्रस्रवाद्राविड़ाञ्छकान।

योनिदेशाच्च यवनान् शकृत् शवरान् वहूनः॥"*

रूपकांशको वाद दे कर यदि यवनजातिके उत्पत्ति-स्थान या वासभूमिको योनिदेश (यवनदेश) मान लिया जाय, तो सम्भवतः कोई आपत्ति नहीं हो सकती, दोनों ओरसे संगृहीत सेनायें जातिवाचक हैं, और किसी देशसे आई हुई थी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। ऋग्वेद संहितामें भी वशिष्ठ-विश्वामित्रके विरोधकी वात लिखो है सही, किन्तु यवनोंके साहाय्य लेनेकी वात कहीं भी देखनेमें नहीं आती। मालूम होता है, कि इस ग्रन्थकी रचना पीछे हुई होगी।

इस ब्राह्मण-क्षत्रिय प्रतिद्वन्द्विताकी घटनामें ब्रह्मर्षि वशिष्ठने हीनदेशोत्पन्न अर्थात् सिद्धगन्धर्वादि परिसेवित पुण्यमय भारतभूमिसे भिन्न सदाचारहीन यवनजातिका साहाय्य ग्रहण किया होगा। कारण, ऐतिहासिक प्रमाणसे हम कह सकते हैं, कि भारतके वाहरी देश वाह्लिकवासी यूनानीराजे (Bactrio Greeks) 'योनराज' शव्दसे सम्बोधित किये गये हैं। बौद्धसम्राट् अशोकको शिलालिपिमें भी यूनानीराजोंको 'योनराज' और यूनानी राज्यको योनदेश ही कहा गया है। यह योन शब्द सम्भवतः 'यउन' या 'यवन' शब्दका अपभ्रंश है। क्योंकि प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें वैदेशिक ग्रीक या यूनानियोंके हम योन नाम ही पाते हैं। विश्वामित्र-वशिष्ट-विरोध संग्राम-कथामें उल्लिखित (नाम) 'यवन' सम्भवतः योनि (योन) देशसे आये होंगे। आर्य्य हिन्दुओंसे हीनाचार म्लेच्छभावापन्न यवनोंके पार्थक्यनिर्द्देश करनेके लिये उनका वासस्थान योनि सदृश घृणित और हीनस्थान रूपसे ही कहा गया है।

यूनानी इतिहाससे जाना जाता है, कि हीरा (Hera) के मन्दिरमें (Jo) नाम्नी एक पुरोहितकी कन्या थी। जिउस् (Zeus) नामक एक युवकके साथ उनका प्रणय हुआ। कुछ दिनके वाद यही 'यो' गायका रूप धारण कर पृथ्वीके नाना देशोंमें घूमने लगी। सागरके किनारेके 'योनीय' देशमें वहुत दिनों तक उसने भ्रमण किया था। इसीसे उसका नाम उस स्थानके नामानुसार 'योन' हुआ।

यूनानी इतिहासको इस वातसे मालूम होता है, कि 'यो' के वंशधरगण, यूनानी और निकट देशके रहनेवाले विभिन्न जातियोंके संमिश्रणसे उत्पन्न हुए हैं। सिवा इसके हिरोदोतासके हीरा और जिउस और आर्गोस तथा हार्मिसको कथाओंसे पौराणिक तत्त्वोंका एक विशेष द्वार उन्मुक्त होता है। इसके द्वारा मालूम होता है, कि फिनिकोंके वणिक्दल यूनानी सुन्दरियोंके हर ले जाया करते थे। हिरोदोतसके ग्रन्थमें (1. 122 और 1. 125) 'यो' हरणकी वात लिखी है। फारसवालोंकी दन्तकथाओंके अनुसार वाणिज्यप्रिय फिनिकीय वणिकों द्वारा 'यो' कैदी रूपसे लाई गई। किन्तु फिनिकियोंकी कथाओंसे जाना जाता है, कि 'यो' अपनी इच्छासे प्रेम फांसमें फंस आई थी। पिता माताकी वदनामीके भयसे उसने इच्छापूर्वक फिनिकियोंके जहाज पर चढ़ लोक लज्जाको तिलाञ्जलि दे दी थी।

उपर्युक्त दो विभिन्न देशीय प्रवादोंके सत्यासत्यका विचार न कर, सामाजिक आदिमें आचार व्यवहार पर निर्भर करनेसे स्पष्ट अनुमान होता है, कि 'यो' के वंशधर एशिया-माइनरके पश्चिमी किनारेके रहनेवाले जलडाकुओंके सन्तान हैं। नाना जातियोंके संमिश्रणसे इस सङ्कर जातिकी उत्पत्ति हुई है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं, कि उनमें कभी कभी यूनानी रक्तस्रोत भी प्रवाहित हुआ था। यूनानके प्राचीन इतिहाससे मालूम होता है, कि डाकूवणिकमें भिन्न भिन्न समयोंमें यूनानियोंको पकड़ ले जाते थे। अतएव वैदेशिकोंके औरस, तथा यूनानी स्त्रियोंके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले सन्तान माताके नाम पर ही ग्रीक या यूनानी कहे जाने लगे। राजकन्या 'यो' रमणियोंमें प्रधान थी। सम्भवतः उसीके नामसे ही इन मिश्रित यूनानियोंका योनीय या यूनानी नाम हुआ होगा। कारण प्राचीन कालके हेलेन इन

---

* रामायणके वालकाण्डमें "योनिदेशाच्च यवनाः शकृद्देशाञ्छकाः स्मृताः" यह एक ही प्रसङ्गमें लिखा गया है। (वालकाण्ड ५५ सर्ग ३७ श्लोक)

यूनानी इतिहासमें भी यो (Io) के गौका रूप धारण कर और उससे योनियोंकी उत्पत्ति होनेकी वात देखी जाती है।

यूनानियोंको अपने वंशधर या स्वजातिकी शाखा नहीं मानते। अतएव यह कल्पना सम्पूर्ण रूपसे अमूलक मालूम होती है, कि सारी यूनानीय (Ionian) ग्रीकजातिने नाम रख लिया था।

महाकवि होमर भी 'यो' की बात जानते थे। उन्होंने हार्मिसको आर्गोसहन्ता लिखा है। होराके गुप्तचर अर्गोसने बड़ी सावधानीसे 'यो' की गति विधिका लक्ष्य इसलिये लिया था, कि गायरूपीयोंने स्त्रीरूप धारण कर जिउसके साथ कहीं मिल न जाये। इसी रुकावटके लिये उक्त गुप्तचरने ऐसा किया था। इसीलिये हार्मिसने उसका निधन साधन किया था। होमरको इस विवरणसे 'यो' का पौराणिक भ्रमण वृत्तान्त उल्लिखित रहने पर भी केवल एक जगह Jaoves नामक उल्लेखके सिवा उन्होंने योनीय या यूनानियोंका किसी तरहका यथार्थ वृत्तान्त नहीं लिखा है।

हिरोदोतस (1, 14) और पौसनियस् (V1 1234) का कहना है, कि आटिकाके प्रवासी ग्रीकजातिकी शाखाने योनीय नाम पाया था। बहुतेरे युथासके पुत्र योन (Jon) से योनीय या यूनानियोंकी उत्पत्ति मानते हैं। अध्यापक लासेनने लिखा है, कि यूनानियोंमें यह योन नाम होमरके पीछे और बहुत सम्भव है, कि ग्रीकशाखाने एशिया-माइनर और द्वीपों पर अधिकार करने पर प्राचीनतम ग्रीक जनतासे इन प्रवासियोंको पार्थक्य दिखलानेके लिये इस नामका निर्देश किया होगा। संस्कृत युवन, जन्द जवान और लैटिन Juvenis शब्द एकार्थबोधक है। अधिक सम्भव है, कि इस नव्य सम्प्रदायने युवा अर्थसे ही "योन" की उपाधि ग्रहण की होगी। हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें भी 'जवन' शब्द दिखाई देता है। इससे भी अनुमान होता है, कि यह जन्द 'जवान' से भी लिया गया होगा। पीछे अधिकतर संस्कृत ढांचेमें 'यवन' बना लिया गया होगा।

इस जातिकी उत्पत्ति या नामके सम्बन्धमें नाना सिद्धान्तोंकी मीमांसा होने पर भी यह स्पष्ट दिखाई देता है, कि यवनजाति बहुत पहलेसे ही जगत्‌में परिचित थी। ग्रीक Iaoves और हिब्रू Javan एक ही अर्थबोधक शब्द है। हिब्रू धर्मग्रन्थमें यह यवन शब्द कभी कभी Jehohanan आदि शब्दके परिवर्त्तनमें भी प्रयुक्त हुआ है। बाबिलनोंकी समुद्रसे प्रकटित देवी Oannesके साथ भी यवन शब्दका विशेष सादृश्य है।* खृष्टानधर्मग्रन्थ बाइबिलके प्राचीन विभागके स्थानविशेषमें यवन शब्द व्यक्तिविशेषके नाम, नगर, जाति, देश, साम्राज्य आदिके लिये भी व्यवहृत हुआ है। (Genesis x. 2, 4. Chronicles 1. 5, 7 ; Isaiah lxvi, 19 ; Ezekiel xx. 13) थे यवनगण वणिक् थे। Daniel viii, 21, x. 20, xi. 2 ; Zecharia x. 13. और Ezekeil xxvi 1. 13 आदि स्थानोंमें ग्रीक साम्राज्यके और फिनिकीय द्वारा यूनानी दास-दासियोंकी बिक्रीकी बात उल्लिखित रहने पर अनुमान होता है, कि यह यवन जाति इतिहासयुगसे भी पहले विद्यमान थी।

डाक्टर स्मिथने बाइबिलके इन वाक्योंको उद्धृत कर लिखा है, कि यह यवन यूनानी जातिको एकान्त प्रतिनिधि माने जा सकते है। हेलेनवंशसम्भूत इस योनीय शाखाके नामके साथ यवन शब्दका एक अवान्तर सम्बन्ध है। ७०८ ई०से पहले सर्गणके राज्यकालमें कोणदार अक्षरमें खोदी हुई लिपिमें साइप्रेस द्वीपके वर्णनकालमें यवन नामका उल्लेख है। यहांके आसिरीय पहले यूनानियोंके विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। इससे मालूम होता है, कि हिब्रुओंके सिवा उस समयका और जाति भी युनानियोंको यवन शब्दसे अभिहित करती थी। पीछे फिनिकियों द्वारा यह नाम पश्चिमएशियाखण्डमें प्रचारित हुआ होगा।†

उपर्युक्त कोणाकार लिपिमें (Cuneform Inscriptions of the time of Sargon B. C. 708) एक जगहमें इस तरह लिखा है,—"The seven kings of the Yaha tribes of the country of yavan (or

---

* Inman's Ancient Faiths in Ancient Names. 11. 400.

† Dictionary of the Bible, p. 935-936.

yunan ', who dwelt in an island in the midst of the Western sea, at the distance of seven days from the Coast, and the name of whose country had never been heard by my ancestor, the kings of Assyria and Chaldœa from the remotest times, etc."†

इन यवनान् देशवासी यूनानियोंकी बात जब असिरीय और काल्दीयवासियोंको मालूम न थी, तब मोजेसके समसामयिक हिब्रुओंका उस विषयमें सम्पूर्णरूपसे अभिज्ञ रहना असम्भव नहीं प्रतीत होता। फिर भी केवल यहां तक कहा जा सकता है, कि उनके पीछेके हिब्रु लेखकोंने एशियाके यूनानियोंको योनीय और यूरोपके युनानी सम्प्रदायको हेलेनीय कह कर उल्लेख किया होगा।

ऐतिहासिक युगमें हम ग्रीक या यूनान-साम्राज्यके एक भाग योन शब्दसे उल्लिखित देखते हैं। एस्काइलास (Æschylos) एतेसाने योनियोंके ध्वंसके निमित्त उनके पुत्रका गमन-प्रसङ्ग उठाया है। वास्तवमें योनदेश-प्रवासी यूनानियोंको फारसवाले यवन कहते थे। अतएव यवन शब्दसे पहले वैदेशिक और पीछे एशिया और युरोपीयोंके संसर्गसे उत्पन्न जातिका ही बोध होता है। एशिया माइनरके खण्डमें वैदेशिक युनानियोंने उपनिवेश स्थापित किया था और पीछे वहां उनके संमिश्रणसे जिस सङ्कर जातिकी उत्पत्ति हुई थी, फारसवाले उसीको योन या यवन कहते थे। पीछे वे श्लेषार्थमें उपनिवेशिक सङ्कर यवनोंके नामसे यथार्थ युनानियोंको पुकारनेमें कुण्ठित नहीं होते थे।

ऊपर पाश्चात्य पुराण, इतिहास और दन्तकथाओंके जो प्रमाण उद्धृत किये गये, उनसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि यवन और योन एक जातिके ही सन्तान हैं और उन्होंने ऐतिहासिक युगसे भी बहुत पहलेसे विद्यमान रह कर जगत्में प्रतिष्ठा लाभकी थी। पाश्चात्य 'योन' यवन शब्दसे अभिहित होने पर भी यथार्थमें क्या वे ही भारतवासी आर्य्य सन्तानों द्वारा यवन नामसे पुकारे गये थे? महाभारतकी नन्दिनीकी यवन-सृष्टिकी कथा और रामायणके बालकाण्डमें विश्वामित्र और वशिष्ठके विरोध कथामें शबला द्वारा यवनके साथ शकसैन्यकी सृष्टि कहानीका अनुसरण करने पर यूनानके पुराणमें उल्लिखित गायरूपीयोंके वंशधरोंकी बात याद आती है। रामायणमें लिखा है, कि शबलाके हुङ्कारसे शक और यवन-सैन्यकी सृष्टि हुई थी, वे पीले थे और पीताम्बर धारण किये हुए थे। वे कौशिक (विश्वामित्र) के अस्त्रसे व्याकुल हो उठे थे। (बालकाण्ड ५६ सर्ग) महाभारत भीष्मपर्वके ७वें अध्यायमें और शान्तिपर्वके ६५वें अध्यायमें यवन नगर और वहांके अधिवासियोंकी बात लिखी है। इस नगरमें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ आदि नाना जातियोंका वास था। कहीं कहीं लिखा है, कि शक, यवन, कम्बोज, द्राविड़, कुलिन्द, पुलिन्द, उशीनर, कोलिसर्प और महाशक, आदि जाति क्षत्रिय थे। पीछे ब्राह्मणके अभावसे वृषलत्व प्राप्त हुए।* कर्णपर्वमें कर्ण और शल्य संवादमें अङ्गराज कर्ण मद्रराजसे कहते हैं, कि यवन सर्वज्ञ तथा महापराक्रान्त।† शान्तिपर्वमें भीष्मदेवने 'युद्धप्रिय महावीर्य्यशालि-जातियोंका उल्लेख करते समय युधिष्ठिरसे यवनोंकी भी प्रशंसा की थी। पद्मपुराणमें लिखा है, कि सगर राजाके पिता वाहु हैं, यह यवन आदि म्लेच्छ जातियों द्वारा हृतराज्य हो कर वनमें चले गये। (पद्मपुराण स्वर्गखण्ड १५वां अध्याय) बेटा सगरने बड़े हो कर यवनोंको पराजित किया और गुरुकी आज्ञासे यवनोंका शिर मुण्डन करा कर सर्वधर्मोंका त्याग कराया था। (हरिवंश १४ अध्याय) सिवा इनके मन्वादि स्मृतिमें भी 'यवन' शब्दका प्रयोग हुआ है।

यह स्पष्ट कहा जा नहीं सकता, कि हिन्दुशास्त्र वर्णित ये यवन यथार्थमें यूनानी जाति है या नहीं।

† Rawlinson's Herodotus, I, p. 7.

* Muir's Sanskrit Text, 2nd, I, P, 482 और मनुसंहिता १०।४३-४५।

† "सर्वज्ञा यवनाः ०० शूराश्चैव विशेषतः" (महाभारत ४६ अ०)

व्याकरणकार पाणिनिने भी यवन शब्दका उल्लेख किया है। उन्होंने सम्भवतः आसुरीय या फारसवालोंको लक्ष्य कर ही लिखा होगा। हिब्रु जाति अपने पड़ोसी योनीयोंको Yavan शब्दसे पुकारा करती थी। यह किसीसे छिपा नहीं, कि काल पा कर यही यवन या योन (आइओनीय) जाति आसोरीय तथा फारस आदि देशोंमें जा कर बस गई हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलिने (पा ३।२।३ सूत्रके) भाष्यमें लिखा है, कि "परोक्षे च लोकविज्ञाते प्रयोक्तु दर्शनविषये लङ्वक्तव्याः अरुणद् यवनः साकेतम्। अरुणद् यवनो माध्यमिकान्।" इससे मालूम होता है, कि यवन यूनानियोंसे भिन्न जातिके थे। क्योंकि, यूनानी यवनोंके मध्य भारत पर आक्रमण करनेकी बात कहीं नहीं मिलती। अमरकोषमें यवनाश्व नामसे एक तरहके घोड़ेका वर्णन आया है। टीकाकारमें इसका 'जव' द्रुतगामी अर्थमें ही प्रयोग किया है। किन्तु एक ही स्थानमें शकदेशीय अश्व, कम्बोजदेशीय अश्व आदि प्रसिद्ध अश्व जातिका उल्लेख रहनेसे यवनाश्व भी सम्भवतः यवनदेशीय अश्वके अर्थमें प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। अरबी अश्व या घोड़े बहुत दिनोंसे जगत्-विख्यात थे। इस अरब देशसे भारतका वाणिज्य व्यवसाय भी बहुत दिनोंसे चला आता है। अतएव अरबदेशीय अश्व शब्द ही यवनाश्वक नामसे अरबी घोड़ेके अर्थमें प्रयुक्त हुआ होगा। बहुतेरे अरबके येमिन् देशको ही 'यवन' का अनुमान करते हैं*। पाणिनिके समय पञ्जाबके किसी किसी अंशमें यवनानी लिपि भी प्रचलित थी*। पाणिनि देखो।

*। दशकुमारचरितके तीसरे उच्छ्वासमें हमें दिखाई देता है, कि मिथिला-राजदरबारमें खनिति या खानिति नामक एक यवन जौहरी (हीरेके व्यवसायी) आया था। साधारणका विश्वास है, कि उस समय भारतमें यवन या यूनानी नाममात्रके भी न थे। मुसलमानोंके द्वारा भारतविजय करनेसे बहुत पहले 'अरबी व्यवसायी वाणिज्यके लिये भारतमें आया करते थे। सम्भवतः यहां भी अरबी वाणिज्यका ही उल्लेख किया गया होगा। (Lassen Indische Alterthumskunde, p. 730)

सम्राट् अशोकके समयमें यह लिपि सिन्धुके पश्चिम गान्धारदेशमें प्रचलित थी। सम्राट् अशोकने एक शिलालिपि इस भाषाकी भी खुदवाई थी,* अध्यापक लासेनका मत है, कि 'भारतके पश्चिम देशवासी वणिक्मात्रको भारतीय हिन्दु यवन ही कहा करते थे।'† पहले, अरब पीछे फिनीकीय और उसके पीछे बाह्लिक राज्यमें आये यूनानी भी यवन नामसे पुकारे गये थे।

पाणिनि-व्याकरणकी काशिकावृत्तिमें 'यवनाः शयाना भुञ्जते' इस तरह लिखे रहनेसे स्पष्ट ही अनुमान होता है, कि यवन सोते ही सोते खाते थे। इस पद्धतिविशेष द्वारा भी यवन एशियावासी युनानी ही मालूम होते हैं। पश्चिमीय पण्डित वेनफे रेणो, (Renaud) और वेबर आदि लोग यवन शब्दसे योनवासी यूनानी ही समझते हैं। जिस योनवासी यूनानियोंने भारतमें आ कर अपना विस्तार किया था, उनका संक्षिप्त इतिहास नीचे दिया जाता है।

इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि समृद्धिशाली प्राचीन यूनानियोंके विजयस्पर्द्धी हो अथवा वाणिज्य लालसासे एशिया और युरोपके नाना स्थानोंमें अपना प्रभाव विस्तार किया था। इसी तरह यूनानके रहनेवाले प्राचीनतम हेलेनों, दोरीय, योनीय, इटालिय, लास्गीय आदि विभिन्न शाखाओंमें विभक्त हो कर एशियाके स्थान-स्थानमें उपनिवेश स्थापित किया था।

* Indische Alterthumskunde, p. 729

* "पारसिकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
इन्द्रियाख्यानिव रिपुंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी॥
यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः॥"
(रघु ४।६०-६१)

यहां महाकवि कालिदास पारसी-स्त्रियोंको 'यवनी' शब्दसे अभिहित किया है। मालविकाग्निमित्रके "स सिन्धोर्दक्षिणे रोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनेन प्रार्थितः। ततः उभयोः सेनयोः महानासीत् संमर्दः।" इस उक्तिसे भी सिन्धुके दक्षिणतीरवासी कोई अश्वारोही जाति ही समझ पड़ती है।

उपयु क्त ग्रीक्-शाखाके मध्यमें दोरीय और योनीयों-के यत्नसे प्राचीन ग्रीक् जातिको समृद्धि तथा प्रभाव यथेष्ट वर्द्धित हुआ है। इन योनियोंने सिरियाके निम्न भूमिवासी कानानोंकी वाणिज्य-समृद्धिसे ईर्षान्वित हो कर अपनी उन्नतिका पथ उन्मुक्त किया था। यूनानी भाषामें फिनिकीय कानान शब्दसे पुकारे गये हैं। मिस्रदेशके प्राचीन स्मृतिस्तम्भोंसे मालूम होता है, कि कि केफा या फिनिकीय ईसासे पहले १६ वीं शताब्दीमें वाणिज्यके प्रभावसे विशेष समुन्नत हुए थे। इस समयसे पश्चिम समुद्रके साइप्रेस द्वीपमें फिनिकीय प्रभाव ओरोंसे फैला था। इसोसे हम यहां प्राचीन सेमितिक जातिके साथ इण्डो-युरोपियन औपनिवेषिक समाजका समावेश देखते हैं। इस तरह यूनान और फिनिकीय जातियोंनेआपसमे वाणिज्यसूत्रमे आवद्ध हो कारीय, सोल्यमि आदि सङ्कर यूनानियोंकी सृष्टि की थी। ईसाके पहले ९वीं शताब्दीमें मिस्रकी चित्रलिपि-को अनुकृत फिनिकीय वर्णमाला यूनानियोंके यहां जारी हुई थी।

पहले ही कह आये हैं, कि वाणिज्य-प्रतिद्वन्द्वी हेलेनों-ने अपनी जन्म-भूमि यूनानको छोड़ विभिन्न स्थानोंमें जा कर उपनिवेश स्थापित किया था। इस स्थानीय शाखाने भी उस प्राचीन समयमें वर्त्तमान एशिया माइ-नरके पश्चिम किनारे आ वहां अपना एक उपनिवेश स्थापित किया। इतिहासमें इसका पता नहीं लगता, कि किस समय और किस घटनाचक्रमें पड़ कर योनीय दल एशिया महादेशमें आया था। एशिया माइनरके जिस स्थानमें स्थानीय शाखाने आ कर वास किया था, उस स्थानमें भी पीछे उनके नामानुसार योन या यवन नाम हो गया। भारतीय पुराणोंमें यह योन या यवन नगर भारतवर्षकी पश्चिमी सीमा पर निर्दिष्ट किया गया है।*

हिन्दूशास्त्रमे लिखी इस यवन जातिकी वासभूमि या अधिकृत राज्य कहां था, उसका स्पष्ट कोई सीमा-निर्देश पुराणोंमें नहीं हुआ है। आलोचनाओंसे जहां तक जाना जा सकता है, कि वह भारतके उत्तर-पश्चिम प्रान्तसीमासे तथा सिन्धु नदीके दूसरे पारसे बहुत दूर पर अवस्थित था। रामायणमें लिखा है, कि यवन आदि देश हिमालयके समीप उत्तर-देशमें विद्यमान थे।* महाभारतके मतसे नकुल समग्र पञ्चनद या पञ्जाबको पार कर धीरे-धीरे अपनी शासक-शक्तिका विस्तार करते हुए समुद्र गर्भस्थ दारुण म्लेच्छों-को एवं पह लव, यवन, वर्वर, किरात, शक और पार्थिवों-को स्वदेश लाये थे।†

यह कहनेमें अत्युक्ति नहीं, कि एशियावासी ये यूनानी ही यरोपीय ग्रोस या यूनानकी उन्नतिके मुख्य कारण हैं। इन्होंने कभी कारीय नामसे, कभी हेलेजिस या कभी लयाद् नामसे परिचित हो युद्धविद्या तथा वाण-ज्यादि सब विषयोंमें यथेष्ट उन्नति की थी। पूर्वके समुद्र-विहारी जलडाकुओंकी तरह इन योनों या यवनोंने अपने नामसे ही समग्र ग्रोक जातिको परिचित कराया था। हिब्रु धर्मग्रन्थमें इसी कारण हम ग्रोक या यूनानियोंको यवनपुत्रके नामसे अभिहित देखते हैं। किन्तु यूरोपीय यूनानी उस प्राचीन युगमें अपने एशियाकी भ्रातृमण्डली-को 'योन' (यवन) शब्दसे ही अभिहित करते थे या नहीं इसका विशेष प्रमाण नहीं मिलता। फिर भी, यूनानी ग्रन्थोंमें लिखे Iasion, Iason, Iasian, Argo आदि नामोंके अनुसरण करनेसे स्पष्ट ही अनुमान होता है, कि एशिया-माइनरसे जो सभ्यताका स्रोत ग्रोकराज्य

* विष्णुपुराण २।३ अध्याय, तथा ब्रह्माण्डपुराण अनुषङ्ग पाद ४८।१६ श्लोक।

* रामायण किष्किन्ध्याकाण्ड ४३ सर्ग ४-१३ श्लोक।

† महाभारत सभापर्व ३२ अध्याय। दिग्विजय प्रकरणके इस अध्यायको पढ़नेसे यवनोंके भारतका पश्चिम प्रान्त और समुद्र किनारेके प्रदेशोंमें रहना साबित होता है। अतएव यवन कहनेसे अरब, फारस या योनराज्यवासी यूनानियोंको समझ लेनेसे कोई दोष दिखाई नहीं देता। यूनानी इसी यवन नगरके अधिवासी होनेके कारण यवन नामसे परिचित हुए हैं। आसीरीयराज सल्म-नेसरके राजत्वकाल (७२६-७१५ ईसाके पूर्व)-में खोर्साबादके राजमहलकी खुदी हुई शिलालिपिमें योनोंको Jaounin या यवन नामसे ही अभिहित किया गया है।

(See Rev. Archeologique for 1850: *Paris*)

या यूनानमें वह आया था, उसके साथ योन (Ionia) का सम्बन्ध था।*

इस योन (यवन) जातिकी उत्पत्तिका इतिहास गभीर स्मृति-सलिलमें निमग्न हो गया है। महाकवि होमर-लिखित इलियड्ग्रन्थ Iaones (*N*, ६८५) शब्दमें केवल एक बार यवन शब्द उल्लेख दिखाई देता है। द्रय-युद्धावसानके बाद यवनोंने आटिका, पिलोपनिसासके उत्तर और कोरन्थियन उपसागरके किनारे आ कर वास किया था। हिरोदोतस्‌का (viii, 44) कहना है, कि एथेन्सवासी पहले पलास्‌गी नामसे विख्यात थे। क्सुथास (Xuthus)के पुत्र और एथेन्स-सैन्य दलके अधिनायक योन (Ion)से ही एथेन्सवासी योनीय या यवनके नामसे पुकारे जाते थे। इस योनीय शाखाकी उत्पत्तिकी ऐतिहासिक भित्ति चाहे जैसी हो, किन्तु मूलमें एथेन्सवासी और योनीय (यवन) एक ही थे; इसमें कोई सन्देह नहीं।

योनियोंने मोरिया प्रायोद्वीपके पिलोपनिसस्-विभागका उत्तरी किनारा जीत लिया था। यहां उन्होंने अपना प्रभुत्व विस्तार किया। यह प्रान्त उस समय योन या 'इजिया-लिय योनीय नामसे विख्यात् हुआ था। इटलीके दक्षिण पिलोपनिसस्‌के मध्य भागमें जो समुद्र भाग फैल हुआ है। वह भी 'योनीय समुद्रके नामसे विख्यात था और तो क्या यूनानके पश्चिम किनारे जो द्वीपपुञ्ज मौजूद हैं, वह आज भी Ionian Islands या यवनद्वीपके नामसे प्रसिद्ध है।

ईसाके पूर्व ११०० ई०में दोरीयोंने जब पिलोपनिसस् पर चढ़ाई की थी, तब अकियाइयोंने (*Achaei*) वहांसे भाग उत्तर ओर जा कर योनीय पर अधिकार जमा लिया। उसी समयसे उस प्रदेशका नाम एकिया हुआ। पिलोपनिसस्‌वासी योन दूसरा उपाय न देख आटिकामें चले गये। यहां भी स्थानकी कमी देख वे समुद्रपार जा कर अपने भाग्यको आजमाने पर दृढ़प्रतिज्ञ हुए। इसके अनुसार उन्होंने भिन्न भिन्न दलमें विभक्त हो कर ईसासे पूर्व १०४४वें वर्षके निकट किसी समयमें एथेन्सके अन्तिम राजा कद्रुस (Codrus)के पुत्रोंके अधिनायकत्वमें परिचालित हो कर समुद्रयात्रा की। यही यूनानी इतिहासमें यवनोंकी देशान्तर-यात्रा (Great Ionian migration) लिखी है।

उस यात्रिदलके साथ आटिकावासी और पिलोपनिसस्‌से भाग कर यवन और यूनानके कई स्थानोंके छोटे छोटे दलोंने एक साथ ही यात्रा की थी। (Herod, 1, 146) यात्रियों जो नेलेउसके (Neleus) अधीन हो एसियाके किनारे अग्रसर हुए थे, उन्होंने हो कारियोंको वासभूमि मिलेतस पर अधिकार जमाया। एथेन्सवासी योनीयदल (Athenian Ionians) के भाग्यक्रमसे सम्भवतः मिलेतस अधिकृत हुआ था; क्योंकि हमें पीछेके फिनिकीय उपाख्यानसे मालूम होता है, कि यहां यवनप्रभाव ही विस्तृत था और दोनों जातियां यहां विशेष समृद्धिके साथ आपसमें मिल कर वाणिज्य किया करती थी।

उसी प्राचीन युगके प्रथाके अनुसार योनोंने मिलेतस्‌वासी पुरुषोंको हत्या कर वहांकी स्त्रियोंको पत्नी बना लिया था। यहांसे उन्होंने क्रमशः मियान्दर (Maeander) नदीके किनारेके मयूस (Myus) और प्रियेन (Priene) नगरोंमें उपनिवेश स्थापित किया था।

दूसरे एक दलने कद्रुसके अन्यतम पुत्र आन्द्रक्लुस (Androclus) के अधीन जा इफेसुस् (Ephesus) पर कब्जा कर कारीय और पलासगीको वहांसे भगा दिया। इसके बाद उसने लेविदस और कोलोफन नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। इस शेषोक्त स्थानमें केतानगण रहते थे। यवनोंके यहां उपनिवेश स्थापित करनेके बाद दोनों जातियां एकमें मिल गईं। यहांसे कुछ दूर उत्तर यूलियोंके तिउस (Teos) नगरमें और क्रिओस (Chios) द्वीपके दूसरे किनारे इरिथ्री (Erythrae)-के किनारे उनका एक और उपनिवेश स्थापित हुआ। इसके बाद कोलोफनसे और एक उपनिवेशिक दल एशिया-माइनरके उत्तरी किनारेके क्लाजोमणि (*Clazomanae*) नामक स्थानमें जा कर रहने लगा। इसके बहुत समय बाद आटिकासे दूसरा एक दल यवन

* Ency. Brit, 9th ed. Vol xi. p. 91

यूलियवासी क्यूमियों (Cumaean)-के अधिकृत हर्मुज (Hermus) नदीके उत्तर प्रदेशमें और फोकिस (Phocis)-से एक दल फोकिया (Phocæa) नामक स्थानमें जा कर अधिष्ठित हुआ।

उपर्युक्त नगरों तथा किओस और सामोस द्वीपके प्रधान नगरको मिला कर औपनिवेशिक यवनदलका एक दोदिकोपोलिस (Dodecapolis या द्वादश भौमिक राज्य) संगठित हुआ था। इसको इङ्गलिशमें "The Confederation of twelve cities of Ionia" कहते हैं। कोलोफोनसे निर्वाचित औपनिवेशकों द्वारा ईसाके पूर्व ७०० वर्षमें स्मरना नगर अधिकृत हुआ था। इसके बाद इस समितिके कर्त्तृत्वधीनमें उपकूल विभागके गिरि, मयोननेसस (Myonnesus), क्लेरस, (Claros आदि नगर स्थापित हुए।

इस शासक-समितिको (Confederation of the twelve cities) एकताका कारण यह है, कि यवन उस समय सभी एक ही तरहकी धर्मचर्या करते थे और एक ही उत्सवमें सभी लोग एकत्र हो कर आमोद-प्रमोद किया करते थे। राज्यकी किसी विशेष विपद्के सिवा इन विभिन्न नगरोंके मण्डलेश्वर (Deputies) एकत्र हो कर परामर्श नहीं करते थे। मिकले पर्वतके (Mount Mycaie) पाददेशमें पानिउनियम (Panionium) नामक स्थानमें अवस्थित पोसिडोन (Poseidon) मन्दिरमें एकत्र हो कर वे सामयिक परामर्श किया करते थे। यह स्थान देवताके उद्देश्यसे दे दिया गया था। इससे इस स्थान पर किसीका अधिकार न था।

इसी समय एशियाका योनराज्य (Ionia) उत्तर क्यूमिया उपसागरसे मिलतसके दक्षिणी वासिलिकस उपसागर तक और पश्चिम सागरोपकूलसे एशिया-माइनरके मध्यभागके सिपिलास और मोलास (Mounts Sipylus और Tmolus) पर्वत तक प्रायः ४० मील विस्तृत था। इस योन राज्यके उत्तर पार्गामस, क्यूमी आदि यूलिय नगरो, दक्षिण दोरीयोंका उपनिवेश, पश्चिम इजिय सागर और पूर्व फ्रिजिया आदि एशियाका राज्य था।

एशियाके योनराज्यवासी यवनोंने सामुद्रिक वाणिज्यमें समधिक उन्नतिलाभ किया था। युद्धविद्यामें भी वे बहुत निपुण थे। एक मिलेतस नगरीके अधीनमें प्रायः ७५ नगर और उपनिवेश थे। मिलेतसमें योनोंकी सौभाग्यलक्ष्मी इस तरह प्रसन्न थी, कि मातृभूमिवासी यूनानी उनके साथ प्रतिद्वन्द्वितामें पराङ्मुख हुए थे। यहांका ध्वंसावशिष्ट मन्दिर, प्रासाद और स्मृतिस्तम्भादिके नमूने देखनेसे उनके शिल्प-नैपुण्य और अन्य कार्य्योंका यथेष्ट परिचय मिलता है। यहां यथार्थमें यनानी साहित्यको समधिक लाभ हुआ था। कवि, दार्शनिक, ऐतिहासिक, चित्रकार और शिल्पी आदिसे योनराज्य भर उठा था। ऐतिहासिकप्रवर हिकेटस् और दार्शनिकश्रेष्ठ थेलिसने मिलेतस नगरीमें जन्मग्रहण किया था। त्यूसवासी अनक्रयूनने और दोरीय वंशोद्भूत विख्यात ऐतिहासिक हिरोदोतसने योनभाषाकी गौरवरक्षा की है।

उपर्युक्त बारह योन नगरोंने (या द्वादश भौमिक-राज्य) एशिया-माइनरके पश्चिम किनारे एकतासूत्रमें आबद्ध हो कर एक स्वतन्त्र जातिके रूपमें राज्यशासन किया था। वे उत्तरके यूलिय तथा दक्षिणके दोरियोंसे सम्पूर्णरूपसे पृथक् थे। प्राचीन यवनोंके उत्सव आज भी एकताके नमूने हैं। उन्होंने अपने देशमें रह कर व्यवसाय तथा शिल्पकार्यमें यथेष्ट लाभ किया था। फिर भी उन्होंने राजनीतिमें कभी चेष्टा नहीं की और तो क्या, उनका किसी वैदेशिक शक्तिसे राजनीतिक संघर्ष उपस्थित नहीं हुआ। इसका कारण यही है, कि उनके यहां राजनीतिक नेताओंका पूर्णतया अभाव था।

सर्डिस नगरमें लिदीय राजाओंकी राजधानी थी। ईसासे पूर्व ७१६वें वर्षमें जब मार्मनदी (Mermnadae) लिदीय राजवंशने आसिरीयाकी अधीनताके पाससे मुक्त होनेके लिये उद्योग आरम्भ किया। तबसे उदीयमान सूर्य्यकी नवीन प्रखर किरणकी तरह नव वीर्य्यबलसे बलवान् लिदीयोंसे धीरे धीरे पराभव स्वीकार कर यवनोंने अपनी स्वतन्त्रता खो दी। इसके बाद योनराजे करदराजके रूपमें लिदीय राजवंशके अधीन रहने

लगे थे; किन्तु यथार्थमें वे स्वाधीन भावसे अपने छोटे छोटे नगरोंका शासन-कार्य्य परिचालित करते थे। कुछ योनराजे विदेशियोंसे पराजित होने पर धन दे कर या खुशामद करके उन्हें सन्तुष्ट कर लिया करते थे।

इसी तरह कोई पचास वर्ष बीत गये। क्रिसस (Croesus) के राजत्वकालमें बारह यवनराजे सम्पूर्णरूपसे लिदीय राजवंशके अधीन हुए। ईसासे पूर्व ५५७वें वर्षमें क्रिसस दयावान् और न्यायपरायण राजा थे। उन्होंने निरपेक्षताका अवलम्बन कर यूनानियोंकी सुख-समृद्धिकी वृद्धिके लिये पूर्णरूपसे उद्योग करना आरम्भ किया। उन्होंने अपनी सदाशयताके वशवर्त्ती हो कर इन यूनानियोंके तीर्थ-क्षेत्रोंकी बहुत कुछ उन्नति की। ग्रीकोंके आचरित धर्ममें उनका अटूट विश्वास था। वे प्रसिद्ध यूनानी साहित्य-रथियोंको अपनी राजधानी सर्डिस नगरीमें ला कर विशेषरूपसे उनकी पूजा आदर सत्कार किया था। कर असूलीके सिवा उन्हों प्रजाके साथ कोई बुराई नहीं की। समग्र योनजाति क्रिससको अपना राजा मानती थी। ईसासे पूर्व ५४७वें वर्षमें कयरूस-परिचालित पारसके सैनिक दलने क्रिससको पराजित कर लिदिया पर अधिकार कर लिया और कयरूसके अन्यतम सेनापति हर्पागासने एशिया-माइनरके पश्चिमीय किनारों पर अधिकार कर विजय वैजयन्ती फहराई थी।

यह पारसी एकेश्वरवादी थे। उन्होंने यवनोंकी पौत्तलिकतासे आजिज आ कर बहुतेरे देवताओंके मन्दिरोंको मिट्टीमें मिला दिया था। इस तरह खण्ड अत्याचारके सिवा योनोंको अन्य किसी अधीनतापाशरूपी क्लेशोंका सामना करना न पड़ा। अन्तमें कम्बयसेस वंशधर दारयवूसके अभ्युदयके समय ईसासे पूर्व ५२०वें वर्षमें योनगण सम्पूर्णरूपसे पारसिकोंके अधीन हो गये। सम्राट् दरायुसने अपने विश्वासी नौकरोंमें बारह आदमियोंको बारह सामन्त राज्यों पर अभिषिक्त कर उन्हीं पर शासन-भार छोड़ दिया। राज्यप्राप्तिके बाद ये नौकर अपने कर्त्तव्य पथसे विच्युत हो विश्वासघातक बन गये। उच्छृङ्खल शासनसे सारे योनराज्यमें एक अत्याचारका प्रवाह बह निकला था। प्रायः सभी नगराधिप प्रजापीड़क हो उठे थे।

अत्याचारसे व्याकुल हो योनवासियोंने राज्यमें विप्लव मचा दिया। यह भी किसी राजनीतिक अवस्था परिवर्त्तनके लिये नहीं वरं दो शासकोंके स्वाधीनताके लिये उत्तेजित होने पर उन्होंने उनका साथ दे यह विप्लव उपस्थित किया था। ईसासे पूर्व ५१०वें वर्षमें हिष्टिइयासने पारसिक सैन्यके भगानेका रास्ता साफ रखनेके लिये दानियुब नदी परके पुल नष्ट करनेको यूनानी सरदारोंको उभाड़ा था। शकाभियानके समयमें इस महती उपकारिताके लिये दरायुस मिलेतसके यथेच्छाचारी राजा हिष्टिइयासको थ्रेसका सामन्तराज्य प्रदान किया। हिष्टिइयास अपनी सौभाग्यवृद्धिके साथ साथ अपनी उन्नति करनेमें तथा राजपाट स्थापित करनेमें प्रवृत्त हुए। पारस्यके राजाने उनकी यह दशा देख सूसामें उन्हें बुला कर कैद कर लिया। इसके बाद उसने अपने दामाद मिलेतसको वहांका शासक बना कर भेज दिया।

ईसाके पूर्व ५०२ वर्ष पहले अरिष्टगोरसने नक्ससके निर्वासित शासनकर्त्ताओंको पुनः प्रतिष्ठित करनेका वचन दे कर पश्चिम एशिया माइनरके क्षत्रप आर्टफार्णिससे २०० जङ्गी जहाज लिये। किंतु दुर्भाग्यवश वह अपने कार्य्यमें असफल हो गया। इस असफलताके कारण क्षत्रप आर्टफार्निसके भयसे उसने एक विद्रोहकी सृष्टि कर दी। इस समय हिष्टिइयास छिप कर इस विद्रोहको बढ़ानेके लिये उसे उत्तेजित करने लगा। उसकी आशा थी, कि विद्रोह दबानेके लिये वही भेजा जायगा।

अरिष्टगोरसने अपने कठोर शासनको उस समय जरा ढीला कर दिया और वह सारे मिलेतसवासियोंको आदरके साथ बुला कर पारसकी अधीनताकी बेड़ी तोड़नेका उपदेश देने लगा। अन्यान्य योन नगरोंने इसीका अनुसरण किया। इसके अनुसार उन्होंने मिल कर सभी अत्याचारी राजाओंको राज्यच्युत कर अपनेको स्वाधीन होनेकी घोषणा कर दी। इओलीय और डहोरीय उपनिवेशिकोंने भी दो वर्ष पीछे इस बलवेमें साथ दिया था। इसी समय साइप्रेसवालोंने भी साथ दिया। इसके बाद अरिष्टगोरसने इजियन समुद्रके दूसरे तीरवर्त्ती

युनानी राज्यसे साहाय्यकी प्रार्थना की। इसके अनुसार इरेट्रियावासियोंने ५ और एथेन्सवासियोंने २० जङ्गी जहाज भेजे थे। सम्मिलित यूनानी सेनाओंने एकाएक सर्डिस पर आक्रमण कर उस नगरको छारखार कर दिया। किन्तु देर न लगी, कि वहां वालोंने इन जङ्गी बेड़ों को वहांसे भगा दिया। एथेन्सके जहाज अपनेदेश लौट आये।

दरायुस् इस योनविद्रोहकी बात सुन कर क्रोधसे अधीर हो उठा। उसने समग्र पारसी सैन्य-वाहिनीको साथ ले योनराज्य पर आक्रमण कर दिया। मिलेतस् नगरी जल और स्थल पथसे आक्रान्त हो उठी। मिलेतस्के निकट लाडे द्वीपकी थोड़ी दूर समुद्रवक्ष पर विकट संग्राम उपस्थित हुआ। ईसासे ४६६ वर्ष पूर्व सेमिया और लेसवियोंने योनोंका साथ छोड़ दिया। इससे वे पराजित हो गये और एक वर्षके बाद ही पारसी फौजने मिलेतस पर दर्पके साथ कब्जा कर लिया। इसके बाद एशियाके किनारे यूनानी जहाजों पर और थ्रेसिय प्रायोद्वीपके भाग पर भी धीरे धीरे पारसिकोंका कब्जा हो गया।

इससे भी दरायुसकी प्रतिहिंसाग्नि बुझ न सकी। उन्होंने योनोंको सहायता देनेवाले और सर्डिस नगरीके ध्वंसकर्त्ता इरेट्रिया तथा एथेन्सकी फौजोंका गर्व चूर्ण करनेके लिये हेलेसपण्ट-प्रणालीको चीरती हुई अपनी फौजोंको थ्रेसराज्य होते हुए भेजा। मार्दोनियस पारसी सैन्यका अधिनायक बनाया गया। किन्तु आथोस पर्वतसे घूम कर आनेके समय तूफानमें पड़ पारसी जङ्गी जहाज डूब गये। किन्तु फिर भी मार्दोनियस ने बचे जहाजोंको ले कर ही एथेन्स पर आक्रमण कर दिया। फल जो होनेवाला था, वही हुआ अर्थात् मार्दोनियसको हार खा कर एशियामें लौटना पड़ा। इसके बाद यानी ईसाके पूर्व ४६०वें वर्षमें माराथनकी लड़ाई हुई और दश वर्ष बाद जरक्षेस्-परिचालित विपुलवाहिनी जल और स्थलसे एथेन्स पर आक्रमण करनेके लये अग्रसर हुईं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, जरक्षेस्की पैदल फौज योन राज्यको चीरती हुई गई थी।

उक्त वर्षके सालामीस युद्धमें पारसी सैन्य संपूर्णरूपसे विपर्य्यस्त हुआ। जङ्गी जहाजोंमें अधिकांश डूब गये और कुछ भाग निकले। जरक्षेस् भाग कर एशियामें लौट आये। उसके प्रधान सेनापति केवल ३ लाख फौजोंको ही ले कर जयकी आशासे वहां युद्ध करता रहा।

ईसासे पूर्व ४७६वें वर्षमें पारस्य-सेनापति एथेन्सको छारखार कर उस पर कब्जा कर लिया। पारसी उन पर अत्याचार करने लगे। उनके अत्याचारको सह न सकनेके कारण एथेन्सवासियोंने अपने देशको उद्धार करनेके लिये एक बार फिर शिर उठाया। लिउनिदसके नाबालिग पुत्रका अभिभावक पौसनियस ११०००० साहाय्यकारी सैन्यदल ले कर विशोसियाकी ओर दौड़ा और प्लाटियाके युद्धक्षेत्रमें मार्दोनियसको समूल विनष्ट किया। इस दिन मिलेतसके निकटस्थ मिकले नगरके किनारे यूनानी जलसेनाके साथ पारसी जङ्गी जहाजोंका सङ्घर्ष हुआ। इस युद्धमें यूनानी जीत गये। फलतः योनराज्य एक बार फिर सम्पूर्णरूपसे स्वाधीन हो गया। इसके बाद यानी ७७८ से ४०४ वर्ष ईसाके पहले तक यूनानमें एथेनियोंका प्रताप फैला हुआ था। इसी समय (ईसासे ४६०से ४३० पूर्व तक) एथेन्सका सौभाग्यकाल है। इतिहासमें "The age of Pericles" कहा गया है।

यूनानी इतिहासके प्रसिद्ध पिलोपनिस्के युद्धमें ४३१से ४०४ वर्ष ईसासे पूर्व तक विभिन्न समयोंमें और विभिन्न स्थानोंमें संघटित होने पर ४१२ से ४०४ ईसासे पूर्वतक जलीय युद्ध एशिया-माइनरमें होनेसे वह यवनोंकी लड़ाई विख्यात है।

ईसासे ४७६ वर्ष पूर्व मिकलके युद्धमें और ४६६ वर्ष ईसासे पूर्व साइमन विजयके बाद यूनानियोंने इजियसागर पर प्रभुत्व विस्तार कर पारसी सैन्यको भगा दिया। उसी समयसे एथेनियन इजियाके पूर्वी किनारेके देशों पर अधिकार किया। योननगरवासियोंने उस समय एथेन्सके राजाको ही अपना राजा कबूल किया। ईसासे पूर्व ४०४ वर्षमें पिलोपनिसकी लड़ाई शेष हो जाने पर लाकिदिमोनियोंका अभ्युदय हुआ। इस समय एशियाके किनारेके नगरों और शासनकर्त्ताओं

परिवर्त्तन हुआ। कोरिन्थीय रण-प्राङ्गणमें पारसी और स्पार्टानोंका छः वर्ष तक युद्ध होनेके बाद ईसासे पूर्व ३८७वें वर्षमें अन्तलिकिदस्की सन्धि हुई। इस सन्धि की शर्तोंके अनुसार साइप्रस द्वीप और एशियाके यूनानी नगर पारस्यराजके हाथ आये। पारस्यराजने इस समृद्धिशाली नगरोंकी विशेष क्षति नहींकी थी। क्योंकि आलेकसन्दर या सिकन्दरकी यात्राके समय इन सब स्थानोंमें विशेष सम्पत्ति मौजूद थी। किन्तु पारस्य विप्लवोंमें योनराज्यका जो ध्वंस हुआ था, उसकी पूर्त्ति फिर न हो सकी।

ईसासे ४०४से ३६२ पहले तक यूनानके अन्य स्थानोंमें स्पार्टान् और थेबिस्दलका प्रादुर्भाव दिखाई देता है। अन्तिम वर्षमें स्पार्टान थेबिस्-सेनापति एपि-मिनोन्दसके हाथ पराजित हुआ था सही; किंतु रणक्षेत्र-में सेनापतिकी मृत्यु होनेसे फिर युनानीराज्यमें विश्-ङ्खला फैल गई। जेनोफोनने लिखा है,कि पिलोपनि सस् युद्धके बादसे जो शासन-विशृङ्खला और युद्ध-विग्रह यूनानको रात दिन उत्पीड़ित कर रहा था। एपिमिनोन्दसकी मृत्युके बाद वह और भी सौ गुना बढ़ गया।

इसके ३ वर्ष बाद माकिदनपति फिलिप पितृसिंहा-सन पर बैठा। वीरवर फिलिप और उसके पुत्र दिग्वि-जयी सिकन्दरके वीर्य्यबलसे माकिदन-शक्तिका सम्यक् अभ्युत्थान हुआ। महावीर सिकन्दरके समयमें यूनान राज्यमें जो राजनीतिक सङ्कर्ष उपस्थित हुआ था, यूनानके इतिहास पढ़नेसे वह जाना जा सकता है।

सिकन्दर और ग्रीस देखो।

सिकन्दरके इस विजय-समयको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। ईसासे ३३४ वर्ष पहले ग्रानीकसके जीत लेने पर उसने समग्र एशिया-माइनर राज्यों पर कब्जा कर लिया था। इसके एक वर्ष बाद इसूस रणक्षेत्रमें विजय प्राप्त कर उसने सिरिया और मिस्रराज्यमें प्रवेश करनेका पथ साफ किया। इसके दो वर्ष बाद आर्बे-ला रणक्षेत्रमें जयी हो वह कुछ सरायके लिये यूफ्रेटस नदी तक समग्र पश्चिम एशियाका अधीश्वर बन गया था। योनराज मिलेतसने पहले उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की। पीछे उसने निर्बल हो कर आत्म-समर्पण किया था। प्रथम और द्वितीय युद्धमें जयलाभ कर सिकन्दर स्पर्द्धित नहीं हुआ। उसने यूनानके निर्वाचित सेनापति हो कर ही देशमें वीरत्वगौरव विस्तार कर सारे यूनानको पारस्यकी अधीनता पाशसे छुड़ाया। किंतु तीसरीबारके युद्धमें जयलाभ कर उसकी विजयवासनाने नया रूप धारण किया। वह उस समय हेलेन या माकिदनके आधिपत्यसे सन्तुष्ट न हो कर पारस्य साम्राज्यके अधीश्वरपदका अभिलाषी हुआ। पारस्य-सिंहासन पर बैठनेके बाद उसके दिलमें घमण्ड-का चिह्न लक्षित हुआ।

सिकन्दर देशों पर विजय प्राप्त करते हुए जितने ही एशियाके बीचमें अग्रसर होने लगा, उतने ही योनोंने पूर्वाञ्चलमें आ कर उपनिवेशोंका विस्तार किया। इस समय हेलेनके इतिहासमें एक नये युगका प्रारम्भ दिखाई देता है। इस समयसे हेलेनवासियों-की प्रकृति दो तरहसे गठित हुई। १ आदि यूनानी और एशियायी यूनानी या यवन। वे निःसन्देह हेलेनिक शाखा समुद्भुत हैं और रक्तमिश्रणसे एक जाति होने पर भी दोनों दलोंमें स्वभाव-जनित अनेक वैलक्षण दिखाई दिये थे। उनके राजा, भाषा और सभ्यतारुचि प्रायः ही एक थी, किन्तु क्रमशः उनके शरीरमें विशुद्ध हेलेनिक रक्तस्रोत प्रवाहित न हो सका। जितने ही वे मध्य एशियामें प्रवेश करते जाते थे, उतने ही वे उनकी विभिन्न जातियोंका सम्बन्ध होता जाता था। इस समय उनकी प्रकृति आधी यूनानी और आधी बर्बरकी तरह हो गई थी।

पूर्वोक्त लिदिय-राजवंशके अधीन योनराज्यमें यथेष्ट श्रीवृद्धि हुआ था। दीर्घकालव्यापी पारस्यके युद्धमें योन-राज्यकी जो क्षति हुई, माकिदन वंशके अभ्युदयसे उसका बहुत कुछ संस्कार हो गया था। रोमकोंके अधीन योनोंका वाणिज्य अक्षुण्ण तथा साहित्यचर्चा विशेषरूप-से आदृत थी, किन्तु उनके राजनीतिक जीवनप्रदीप निस्तेज तथा निर्वाणप्रायः हो आया था। उस समय उस विख्यात १२ नगर और राजधानी सामान्य प्रादेशिक नगरके रूपमें परिगणित हुई थी, उस विगत समृद्धिका

जो कुछ वाकी बचा था, तुर्क जातिके शासन (सन् १२वीं और १३ वीं शताब्दीके) कालमें समाप्त हो गया, उस समयसे एक मात्र स्मिर्णा नगरी ही एशिया-माइनरका वाणिज्यगौरव अक्षुण्ण रखती आ रही है।

इतिहासके प्रत्येक पाठक जानते हैं, कि माकिदनवीर सिकन्दरने अपनी दिग्विजयी वाहिनियोंको ले कर एक दिन मध्य एशियाके चीन सीमान्त तक जीत लिया था। पारस्यराज दरायुसने कोमन्सको जीतनेके लिये एक वार उसने अपनी विपुल सैन्यवाहिनियोंको ले पूर्व ओर की यात्रा की। उसने हेलेसपण्ट प्रणालीको पार कर ग्रानिकसके युद्धमें पारसिक सैन्यको हराया। इससे छुट्टी पा कर उसने सार्डिस, थिसिउस, मिलेतास, हेलिकर्णासस आदि नगरोंको जीत लिया। आर्वेला युद्धके अन्तमें (ईसा के ३३० वर्ष पहले) उसने क्रमसे वाविलन, सुसा, पार्सिपोलिस और समग्र पारस्यराज्य पर अधिकार कर लिया और वह पीछे अक्सस और हिन्दुकुश पर्वतके वीच वाह्लिक राज्यको जीत कावुलको पार कर सिन्धुके किनारे आ पहुंचा। इसके वाद पञ्जावको पार कर पुरुराजके साथ उसने युद्ध किया। महावीर सिकन्दर भारतसम्राट् (प्रियदर्शी) अशोकके समकालीन हुआ था।

(सिकन्दर प्रियदर्शी और वाह्लिक देखो)

सिकन्दरने अपने वाविलन राज्यका भार अपने प्रधान सेनापति इतिहासप्रसिद्ध सेल्युकसको सौंप दिया था। माकिदन वीरकी मृत्युके वाद मध्य एशियामें जिस योनराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई थी, सैल्युकसके नाम पर Seleucidae नामसे विख्यात हुआ। ईसासे पूर्व ३१२ वर्षमें सैल्युकसके वाविलन राजसिंहासन पर वैठनेके वादसे ईसासे ६५ वर्ष पहले तक पम्पिका सीरियके विजय तक यह योनवंश एशियामें अपना प्रभुत्व विस्तार करनेमें समर्थ हुआ था। ईसासे ३१२ वर्ष पूर्व सेल्युकसने भारतकी यात्रा की थी। उसने वाविलनको जीत कर वहांका राजपद प्राप्त किया था। ईसाके २८० वर्ष पहले उसकी मृत्यु हो गई।

सिकन्दरने वाह्लिक जा कर अपने पारस्य देशके श्वशुर अर्त्तावाजको उस प्रदेशका शासनकर्त्ता नियुक्त किया था। वृद्ध अर्त्तावाज वार्द्धक्य-वंश अधिक दिनों तक राज्य भोग कर नहीं सका। उसकी मृत्युके वाद निकोलिसके पुत्र अमिन्तस राजा हुआ। इस समयके राज्याधिकार पर पाश्चात्य ऐतिहासिकोंमें वहुत मतभेद दिखाई देता है। आरियान कहते हैं, कि अण्टिपिटर द्वारा साइप्रेस द्वीपके अन्तर्गत सोलिनिवासी ष्टासानोर वाह्लिक और सगदियानाका शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ था। दिओदोरस और डेक्सिपासने इस ष्टासानोरको आरिया और ड्राङ्गियानाका नरपति होना लिखा है। उनके मतसे इसका दूसरा नाम फिलिप है। आरियनके मतसे यह फिलिप पारस्यदेशका राजा था। जाष्टिन् और ओरोसियसने इस अमिन्तसको ही प्राचीन वक्त्रियानाका शासनकर्त्ता होना लिखा है।

जो हो, सिकन्दरके परलोकगमन करने पर प्राच्य योन-साम्राज्यके लिये सिकन्दरकी फौजोंमें जो घोर विरोध फैला था, उससे वाह्लिकराज अधिक दिन तक सिंहासन पर स्थिर न रह सका। इसका कुछ विशेष विवरण नहीं मिलता, कि ये राजे नाममात्रके राजा थे या यथार्थमें राज्यकार्य सम्पन्न करते थे।

सैल्युकस भारतमें आ कर चन्द्रगुप्तके मैत्री-पाशमें वंध गये थे। सुनते हैं, कि सैल्युकसने अपनी पुत्रीको अशोकके हाथ समर्पण कर आत्मीयता स्थापित की थी। शिलालिपिसे मालूम होता है, कि अशोक या चन्द्रगुप्तने आत्मीयता प्रकट करनेके लिये अपने साले अर्थात् सेल्युकसके पुत्र "यवनराज तुषास्पके"को सुराष्ट्रका शासनकर्त्ता वनाया था। इस तरह सैल्युकसने वैदेशिक नृपतिकी सहायतासे वाह्लिकराजको वशमें किया था। इसके वाद वह अन्यान्य योनप्रतिद्वन्द्वियों रणक्षेत्रमें पराजित कर वाविलन लौट गया। इस समय वह एशिया और वाह्लिकके एकमात्र राजा हुआ था। इसी समय वाह्लिकराज्यमें और वुखारेमें सैल्युकसका सिक्का फैला हुआ था।

सलौकीवंशीय तृतीय सम्राट् अन्तिओकके साथ तुरमयने समरसुयोगका लक्ष्य कर दूर देशवासी योन-शासकोंने राजभक्ति विसर्जित कर अपने अपने प्रदेशकी स्वाधीनताकी घोषणा कर दी। इस समय वाह्लिकके शासनकर्त्ता देवदत्तने ईसासे २६५ वर्ष पहले विद्रोही

वन कर अपनेको राजा होनेकी घोषणा कर दी। अन्ति-ओककी मृत्यु, युवराज सैल्युकस कल्यानिकके साथ तुरमय वरगातका युद्ध और अपने भ्राता अन्तिओक हीराक्षके गृह-विवाद आदि घटनाओंसे वलसंग्रह करनेके लिये देवदत्त-को अपूर्व सुअवसर मिल गया था। सैल्युकस इस विप्लवके समय शत्रुपक्षको वलवान् देख उसे दण्डविधान-के लिये आगे न वढ़ा, इसलिये राजा कबूल कर उसे अपने पक्षमें मिला लिया जिससे वर्त्तमान युद्धमें उससे कुछ सहायता प्राप्त हो। इसका कोई उल्लेख नहीं है, कि सैल्युकसकी ओरसे युद्ध करनेके लिये देवदत्त अर्स-केदके राजा तिदत्तके विरुद्ध पारद-रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुआ था या नहीं। जष्टिनका कहना है, कि सम्भवतः उसकी मृत्युके वाद तिदत्त द्वारा फिरसे पारद या पार्थिवराज्यका उद्धार हुआ था। सेल्युकस कल्याणिक ईसाके २४६ वर्ष पहले सिंहासन पर वैठा था। अतएव उसके अन्ततः ३ या ४ वर्ष पीछे देवदत्तको स्वाधीनता और युद्धमें साहाय्य देनेकी कल्पना की जा सकती है।

सैल्युकसकी पहली या दूसरी पारदकी यात्राके समय सम्भवतः देवदत्त (ईसासे २४०वर्ष पहले) वाह्लिक-सिंहासन पर वैठा होगा। सेल्युकसको सिरीया विद्रोह-दमनके लिये आगे वढ़ते देख तिदत्तने अपने राज्यका उद्धार किया। इस समय वाह्लिकराजके साथ पारद-राजका सद्भाव स्थापित हुआ। किन्तु उनकी यह मित्रता अधिक दिनों तक टिक न सकी। तिदत्त द्वारा वाह्लिकका कुछ भाग अधिकृत होने पर वाह्लिकवासियोंने अपने राजाको पदच्युत कर दिया। इस समय वाह्लिक राज्यमें अशान्ति मच गई; अन्तमें वैदेशिकोंने आ कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया।

ईसाके २२० वर्षसे १६० वर्ष पूर्व तक वाह्लिक राज्यमें योनराज युथिद्मासका राज्यकाल है। युथिद्-मास मग्र सियाका रहनेवाला था। सलौकीवंशीय ३रे अन्तिओकके साथ अरिसस नदीके किनारे युथिदमासका युद्ध हुआ। युद्धमें पराजित हो कर युथिदमासके आत्मसमर्पण करने पर अन्तिउकने उससे कितने ही हाथी ले उसको वाह्लिक सिंहासन पर वैठाया (ईसासे २०६ वर्ष पूर्व)। इसके वाद अन्तिओक परो-पनिसस (ककेसस) पार कर भारतकी ओर आने लगा। काबुलमें आ कर उसने उस देशके राजा सुभगसेनके साथ मित्रता स्थापित की। राजा सुभगसेन जलौक नामसे भी परिचित थे।

युथिद्मासके राजत्वकालमें उसका पुत्र देवमित्र योनसेना ले कर भारतको जीतनेके लिये चला। भारतके नाना स्थानोंसे मिले देवमित्रके चौकोन सिक्केसे उसकी भारतविजय प्रमाणित होती है! इस चौकोन सिक्केमें खरोष्ठी वर्णमालामें लिखा है,—'महरजस अपराजितम देवमित्रियुस" अर्थात् "महाराज अपराजितस्य देवमित्रस्य' सिवा इसके ष्ट्रावो, और जष्टिनके लिखे इतिहासको पढ़नेसे मालूम होता है, कि वाह्लिकस्थ यवन-राजाओं-के अभावसे भारतमें जो यवनराज्य स्थापित हुआ, वह अधिकांश मिलिन्द और देवमित्रके वोर्य्यवलसे अधिकृत हुआ था।

ईसासे १६० वर्ष पूर्व देवमित्रने सिंहासन लाभ किया था। पोलिवियासके वर्णनानुसार मालूम होता है, कि वह जवानीमें पितृवैरी अन्तिओककी सभामें संधि-प्रस्ताव ले कर गया था। उस समम उसकी सौम्य-मूर्त्ति देख कर योनराज अन्तिओक चकित हो उठे और उसको अपनी कन्या देनेकी इच्छा प्रकट की। यही यही जवान देवमित्रने पिताकी आज्ञासे परो-पनिसास (निषध), अराकोसिया (आर्क्षोद) और द्राङ्गियाना आदि देशोंको जीत लिया था। इसके वाद उसने दक्षिणकी ओर जा कर युक्रेटिस पर आक्रमण कर उसे घेर लिया। अन्तमें उसके हाथसे पराजित हो कर वह अपनी भारतीय राज्यको समर्पण करने पर वाध्य हुआ (ईसासे १७५ वर्ष पूर्व)। उसने सम्भवतः ईसासे १६५ वर्ष पूर्व तक राजत्व किया था। मिलिन्द और देवमित्र दोनों ही बौद्धधर्मानुरागी थे।

युक्रेटिस (ईसासे १६०-१६०वर्ष) पूर्व वाह्लिकराज्य-की दक्षिण ओर राजत्व करता था। यह देवमित्रका समसामयिक है। पीछे उक्तराज हो राज्यच्युत कर युक्रे-टिसने पहले वाह्लिक सिंहासन और पीछे परोपनिसीय (निषध) भारत पर अधिकार किया। थोड़ी-सी फौजों-को ले देवमित्रको पराजित करना अवश्य ही उसकी

वीरताका परिचायक है। उसने बहुत दिनों तक राजत्व किया था, किंतु अन्तमें उसका आरिया द्राङ्गियाना, आराकोसिया, मर्गियाना और वाह्लिक राज्यके कुछ अंश पर पारदके राजाका अधिकार हो गया था। युक्रेटिसने ईसासे १८१ वर्ष पूर्व राज्याधिकार पाया। दूसरे मतसे ईसासे १६५ वर्ष पूर्व ही उसके प्रथम वाह्लिक सिंहासन-लाभका कल्पना की जाती है।

हालमें जो यवन सिक्के मिले हैं, उनमें राजा युक्रेटिस १४७ सलोकी संवत्के अर्थात् ईसासे १६५ वर्ष पहलेके मोहराङ्कित सिक्का ही वाह्लिकराजके सिक्कोंमें ऐतिहासिकोंके लिये विशेष आदरकी चीज है। युक्रेटिसने वाह्लिक, सिस्तान, कावुल और पञ्जावके सिन्धु तट तक राज्य-विस्तार किया था।

पारदराज मिलदत्तके साथ युक्रेटिसको वाह्लिक-क्षत्रप राज्यके पश्चिमांशमें छोड़ देना होगा।

युक्रेटिसके और हेलिओक्लिसके राजत्वकालमें लसियास नामके एक योनराजका (१४७ वर्ष ईसासे पूर्व) उल्लेख पाया जाता है। इसने हेलिओक्लिस अथवा उनके वंशधरको पराजित कर सम्भवतः अनिकेतस् नाम धारण किया होगा। इसके सिक्केमें "महरजस अपतिहतस लसिकस" नाम मिलता है। इस राजाके वाद (१३५ वर्ष ईसासे पूर्व) अमिन्तस नामका एक योन राजा राज्य करता था। इसके सिक्केमें 'महरजस जयधरस अमितखस' नाम खुदा हुआ है।

वाह्लिकराज अमिन्तसके पहले अन्तिमख (१४० वर्ष ईसासे पूर्व) राजत्वका उल्लेख है। उसके सिक्केमें देवदत्त और यूथिदेमस नाम खुदा हुआ है। किसी किसी सिक्केमें जलीय-युद्धका चित्र अङ्कित है। प्रत्नतत्त्वविदोंका अनुमान है, कि उसने सम्भवतः सिन्धुतट पर अथवा दूसरी किसी वड़ी नदीके किनारे युद्धकर शत्रुपक्षको पराजित किया। उसके सिक्के पर "महरजस जयधरस अन्तिमखस" खुदा है।

अन्तिमखके समकाल ही ईसासे १३५ वर्ष पूर्व अगथोक्लिस नामक दूसरे एक यवन राजाका नाम आया है। पञ्जावके पश्चिम और कावुलके समीप पाया गया वाह्लिक सांचेमें ढले सिक्केसे प्रमाणित होता है, वह वाह्लिक और भारत-सीमान्त पर राजत्व करता था। उसका और उसके पीछले यवनराज पन्तलेनके (१२० वर्ष ईसासे पूर्व) भारतीय सिक्केमें केवल ब्राह्मलिपि ही दिखाई देती है। किन्तु अगथोक्लिसके कई तांवेके सिक्के खरोष्ट्रीवर्णमालामें खुदे हुए हैं। अगथोक्लिसके सिक्केमें एक ओर खरोष्ठी अक्षरमें 'हितजससे' और दूसरी ओर 'अकथूक्रेयस' नाम लिखा है। पन्तलेनके सिक्केमें एक ओर भारतीय नर्तकी या वेश्याका चित्र, दूसरी ओर राज नोपन्तलेनस नाम लिखा है। राजा पन्तलेनने बहुत थोड़े दिनों तक राज्य किया था। उससे ही यवनराज मिलिन्दने अगथोक्लिसका राज्य अधिकार किया था।

'अकथूक्रेया' नाम्नी एक यवनी रानीके चित्रके कई सिक्के मिलते हैं। इसका पता नहीं चलता, कि इस राजरानीने कब और कहां राजत्व किया था। इसके सिक्केमें भी खरोष्टी ही अक्षर खुदे हुए हैं। इस पर "महरजस मिदतस अकथूक्रेयस" नाम लिखा है। प्रत्नतत्त्वविदोंने ऐसा नाम देख कर उसे अपेक्षाकृत पिछले समयकी रानी बताते हैं। इसने भी बहुत कम दिनों तक ही राजत्व किया है। बहुतेरोंका तो यह मत है, कि अगथोक्लिसके साथ इस रानीका सम्बन्ध था।

अन्तिमखके बाद उसके सिंहासन पर पिलक्षीनस बैठे। उसने १३० वर्ष ईसाके पूर्वसे १२५ वर्ष ईसाके पूर्व तक राजत्व किया था। उसके बनाये सिक्केमें "महरजस अपतिहतस पिलखीनस" नाम लिखा हुआ है।

आरोकोसिया और पश्चिम-कावुलका कुछ हिस्सा ले कर यवनराज अन्तिअलकिदिसने एक छोटा नगर बसाया था। उसके सिक्केमें जुपितरके हाथ स्थापित जयलक्ष्मीके गलेमें हस्तीकी सूंड़से माला पहनाई गई है। यह देख कर अध्यापक लासेन आदि ऐतिहासिकोंने अनुमान किया है, कि यह चित्र उसके जय-अर्जनका स्मृतिचिह्न है। उसने सम्भवतः लिसियस या उसके वंशजोंको रणमें पराजित कर अपना राज्य फैलाया होगा। उसके सिक्केमें—"महरजस जयधरस अंतिअलिकितस" नाम खुदा हुआ है।

यवनराज मिलिन्द सम्भवतः ईसासे पूर्व १४४वें वर्ष

वाह्लिक-सिंहासन पर आसीन थे। अपने बाहुबलसे वाह्लिकराज्यको उसने पञ्जाब तक बढ़ा लिया था। यह हिपानिस शतद्रुनदी पार कर पूर्वकी ओर ईसामास* (यमुना) तट तक अग्रसर हुआ था। इस समय युद्धसे हो या कौशलसे उसने पट्टलन (पत्तन) पर अधिकार कर लिया था। पेरिप्लासके ग्रन्थकर्त्ताने लिखा है, कि उसके समयमें अर्थात् ई० सन्‌की पहली शताब्दीके अन्तमें गुजरात भड़ौंच नगरमें मिलिन्द और अपलोदत की सिक्का प्रचलित था। आरियान, प्लुतार्क, वेयार और लालेन आदि ऐतिहासिकोंने उसको भारत और वाह्लिक-पति लिखा है। इस समय शकजातिका अभ्युदय हुआ। इससे राजा मिलिन्द अपने राज्यविस्तारके लिये उत्तरकी ओर न बढ़ कर भारतकी ओर अग्रसर हुआ। प्लूतर्कने लिखा है, कि राजा मिलिन्द ऐसा प्रजावत्सल था, कि उसकी मृत्युके बाद उसके चिता-भस्मके लिये कोई आठ विभिन्न नगरोंमें युद्ध ठन गया। अन्तमें उन सबोंने उसकी चिताका भस्म ले अपने अपने नगरमें उनके स्मृति-स्तूप स्थापित किये। ईस्वीसन्‌की २री शताब्दीमें वाह्लिक और परोपनिसस नगरोंमें इस तरहके स्मृतिचिह्न विद्यमान थे। उसके सिक्केमें "महरजस, तद्रस मिनद्स" या "मिनन्द्स" नाम लिखा है।

ईसासे १२५-१२० वर्ष पहले तक अकिवियास नामके एक राजा यवन-नरपतिने मिलिन्दके सामन्तरूपसे राजकार्य्य चलाया था। इसका दूसरा नाम 'निकेफोरस' इस राजाके प्रचलित सिक्केमें 'महरजस धमिकस जयधरस अरवविरस' नाम खुदा है। ऐतिहासिक उसको आर्केलियास, आर्केरियस आदि नाम बताते हैं।

वाह्लिकराज हेलियक्लसने १६० वर्ष ईसाके पूर्वसे १२० वर्ष पहले तक राज्यशासन किया था। इसके बाद यवनराजशक्ति वाह्लिकसे परोपनिससके दक्षिण भूभागमें स्थानान्तरित हो गई। उसके पूर्ववर्त्ती योन-राजोंने वाह्लिकराज्य और भारतमें राजत्व किया था। उनके सिक्कोंमें यूनानके पौराणिक चित्र अङ्कित हैं और यह वाह्लिक सांचेमें ढाली गई है। भारतीय राज्यमें जो सिक्का प्रचलित था, उसमें दोनों लिपियोंका समावेश है। हेलियक्लस, अपलदत्तस, १ला और २रा अन्तिअलकिदस् एटिक और पारसी दोनों तरहके सिक्के जिस परिमाणसे ढाले गये थे, उनके वंशधरोंने उस परिमाणसे नहीं ढाला, वरं उन्होंने पारसी सिक्कोंके परिमाणका अनुसरण किया।

हेलियक्लसके बाद १२० से २० वर्ष ईसासे पहले तक शताब्दीके भीतर उस वंशके प्रायः २० यवनराजाओंने राज्य किया था। इन २० यवनोंके सिक्के मिले हैं। इसके बाद कुषणने आ कर भारत पर अधिकार किया। भारतवर्ष देखो। हेलियक्लसके बाद जिन यवनराजोंने अपना प्रभुत्व स्थापित किया था, उनमें हम मिलिन्दको प्रवल प्रतापके साथ राज्य करते देखते हैं। इसके बाद ईसासे ११० वर्ष पूर्व अपलदत्तस राजा हुआ। इसके सिक्केकी एक पीठ पर हाथी और दूसरी पीठ पर सांड़की मूर्त्ति अङ्कित है। यह देख कर अनुमान किया जाता है, कि यह पश्चिम-भारतमें राजत्व करता था। सोतार और फिलेपेतार उसकी दो उपाधियां थीं। वह सलोकीवंशीय राजा ६ठें अन्तिओकके समसामयिक थे। उसके सिक्के पर "महरजस तद्रस अपलदतस' नाम खुदा हुआ है।

इसके बाद ईसाके एक शताब्दी पूर्व दियोमिदस नामके एक और यवन राजाका उल्लेख पाया जाता है। इसके सिक्केमें भी एक ओर सांड़का चिह्न है और दूसरी ओर "महरजस तद्रस दयमेद्स" नाम अङ्कित है। यह सोतारकी उपाधिसे विभूषित हुआ था। इससे लोग इसे पिछला अपलदत्तस् कहते थे। इसके बाद हरमयस नामके एक यवनराजाने (ईसासे ८६ वर्ष पहले) राजत्व किया था। प्रत्नतत्त्वविदोंने इसको अन्तिम यवनराजा कह कर उल्लेख किया है। क्योंकि इसके बाद किसी प्रतापवान् यवनराजाका नाम पाया नहीं जाता। सम्भवतः जिस समय असंकिद द्वितीय मित्रदत्त आर्मेनिया, सिरिया और रोम आदि राज्यके साथ साथ रणविग्रह करनेमें उन्मत्त हुआ था, उस समय (ईसासे ६० वर्ष पूर्व) शक जाति अपनेको निरापद समझ

* पुराविद् कनिङ्गहाम Isamos नदीको फतेपुर और कानपुरके मध्यवर्त्ती ईशान नदीका ही अनुमान करते हैं।

परोपनिसास को पार कर काबुल, कन्दहार और गज़नीके समीप देशोंमें आ उपस्थित हुआ। ऐतिहासिकोंने इसी समयको हर्म्मयसके राज्यावसान कालकी कल्पना की है। हर्मयसके सिक्के में 'महरजस' तदरस धर्मयस या 'हरमयस' नाम अङ्कित दिखाई देता है। सिवा इसके 'महरजस अपतिहतस पिलसिनस' और 'थिउफिलस' नामक दो राजाओंके नामके सिक्के मिले हैं।

हर्मयसके बाद यवनवंशका बिलकुल ही लोप नहीं हो गया था, वरं क्रमशः शकराजाओंके हाथ जीते जा कर यवन सामन्तराजा रूपमें मनमार कर रहने लगे। अपनी पहली शक्तिको पुनः लौटानेमें समर्थ नहीं हो सके। क्यों कि इस समय खोज करनेवालोंके गहरी खोजसे जो ऐतिहासिक तत्त्व प्राप्त हुआ उससे स्पष्ट मालूम होता है, कि यवन हिन्दूप्रधान भारतमें आ कर क्रमशः हिन्दू भावापन्न हो उठे। आज भी उनके प्राचीन सिक्के उसका साक्ष्य प्रदान कर रहे हैं। सांची, भरहुत आदि स्तूपोंसे, ईसाकी पहली शताब्दिकी शिलालिपिमें 'धर्मयवन' नाम रहनेसे प्रत्नतत्वविद् समझते हैं, कि बहुतेरे यवन तो बौद्धधर्म्म ग्रहण कर भारतीय हो चुके थे। शकराजाओंने भी यवनोंके अनुकरणसे हो या भारतीय प्रजाके मनोरञ्जनके लिये हो, सिक्के ढालनेके विषयमें हिंदूपद्धतिका अनुसरण किया था। और तो क्या, ये अविचलित चित्तसे यवनराजाओंकी प्रतिकृति अङ्कित करती हुई सिक्के प्रचलित कर गये हैं। इससे यवन और शक राजाओंमें पार्थक्य दिखाई नहीं देता। इससे शकराजाओंकी सूची तय्यार करनेमें बड़ी कठिनता आ गई है।

मुद्रातत्त्व देखो।

ऊपर जिन यवन राजाओंके नाम और उनके शासन काल लिख गये, वे सर्वमतसे सन्देहरहित और युक्तिसाधित हैं, ऐसा किसी तरह नहीं कहा जा सकता। पूर्वतन प्रत्नतत्त्वविद् सिक्कोंके साहाय्यसे और वैदेशिक इतिहासोंको देख कर इस यवन जातिके राज्यविस्तारके संबंधमें जिस एक काल्पनिकसिद्धान्त पर पहुंचे थे, इस समय वह बात परिवर्तित हुई है। वर्त्तमान प्रत्नतत्त्वविदों और ऐतिहासिकोंके अनुसंधानके फलसे उत्तर भारतके यवन संस्रवका जो इतिहास प्रकट हुआ है, उसे आलोचना करने पर मालूम होता है, कि यवनराजाओंका प्रभाव अभी हीन था, तब तक भारतमें शकोंका प्रादुर्भाव हो गया। यद्यपि हेलियक्लसके वंशधरोंने ईसासे २० वर्ष पूर्व तक भारतका शासन किया था, तथापि ऐसा अनुमान नहीं होता, कि उन्होंने सम्पूर्ण रूपसे निर्विवाद शासन किया होगा। हेलियक्लयसके शासनकालसे यवनशक्तिका ह्रास होने लगा धर्मयसके शासनकाल मध्यका है। इस तरह धीरे धीरे गिरते गिरते ईसासे २० वर्ष पूर्वके वर्षमें इस यवनराजकी हतश्री हो गई।

ईसाकी पहली ही शताब्दी उत्तर-भारतके इतिहासमें ऐसा दिखाई नहीं देता, कि एकमात्र यवनराज वंशने ही राजत्व किया हो। क्योंकि, हम रौप्य और ताम्रमुद्राके प्रमाणसे जान सके हैं, कि उस समय शकवंश-सम्भूत दो राजवंश, देशीय हिन्दूराजे और शकप्रभावसे प्रभान्वित दूसरा एक राजा द्वारा पश्चिमोत्तर भारत शासित हो रहा था। उपरोक्त अन्तिम राजा यवन थे या शक? प्रत्नतत्त्वविदोंने मुद्रा देख कर इसका निपटारा करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की है। इन सब राजाओंके सिक्कोंमें यवनप्रभाव प्रचुर प्रमाणसे परिलक्षित हो रहा है। किन्तु इन पर खुदे राजाओंके नाम शक-सम्बन्ध बतला रहे हैं। इससे अनुमान होता है, कि यवनराजाओंने विजेता शकोंके अधीन हो राजाकी सन्तुष्टताके लिये शकभाव धारण किया होगा। यह भी हो सकता है, कि प्रबल शक उत्तर-भारतमें अपने प्रभावको धीरे धीरे कायम करनेके लिये पहले पश्चिम-भारतके पूर्व प्रचलित यवन भावका अनुसरण किया हो। फिर उन्होंने यह भी देखा होगा, कि ऐसा करनेसे शान्तिके साथ प्रजाचित्तरञ्जन होगा। जो हो, इस समय जो सिक्के मिले हैं, उनसे पता चलता है, कि उस समय यवन और शकोंका एक अभूतपूर्व संमिश्रण हो गया था।

यवन-राजाओंके अभ्युदयकालमें ही शक भारतमें आ गये थे। इसका चीन इतिहाससे हम प्रमाण पाते हैं। बहुत समय तक शक-यवन-संस्पर्शसे एक जातीय समन्वय सम्पादित हो गया था। इतिहासको आलोचना करने पर उसका विशेष विवरण मिल सकता है। चीनके

इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि वाह्लिक साम्राज्यके उत्तरांश अक्सियाना नामक नगरोंमें शक जातिके वंश रहते थे। यह शक बहुत दिनों तक अखमनि और माकिदनीय शक्तियोंसे युद्ध करनेमें लिप्त थे। ईसाके पूर्व १६५वें वर्षमें हौङ्ग-नु द्वारा भगाये जा कर युचियोंने सग्दियाना नामक स्थानों पर कब्जा करनेके बाद राज्यच्युत शकोंने वाह्लिक पर आक्रमण किया। इसी समयसे वाह्लिकके यवन-साम्राज्यके अधःपतन तक यवन-राजाओंको पारद और शकोंके साथ युद्ध करना पड़ा था। ईसाके पूर्व १२०वें वर्षमें युचियोंने वाह्लिक पर अधिकार किया। इसके प्रायः एक सौ वर्ष बाद पञ्च युचि शाखाके एकतम कुषणोंने विशेष प्रभावान्वित हो कर परोपनिसस पार कर काबुलके यवनशासनको समूल नष्ट कर समग्र उत्तर-भारतमें अपना राज्य-विस्तार किया था।

इस सुदीर्घकालव्यापी विप्लवमें पड़ कर बलहीन यवन आत्मगौरवको विसर्जित कर शक-संस्रवमें लिप्त थे और क्रमशः वे भारतीय आर्य जातिके साथ मिल जानेकी चेष्टा करते थे। सिक्कों पर आर्य-भाषाका रहना इसका प्रमाण है। यह यवनगण हिन्दुओंके संसर्गमें पड़ कर सम्भवतः सिक्कों पर (हिन्दूका पवित्र) त्रिशूल और सांढ़के चिह्न अङ्कित करते थे। क्रमशः जितने ही यवन निर्बल होते जाते थे, उतने उनके हृदयमें हिन्दूभाव जाग उठता था। शक-कुषणोंसे पराजित होनेके बाद हिन्दुस्थानमें निर्विरोध अधिवासियोंके सहवास कर जिस तरह हिन्दुओंमें परिगणित हुए थे उसी तरह यवनगण भी पहले शकसंस्रवमें लिप्त हो कर पीछे महान् हिन्दूवासभूमि आर्यावर्त्तके अधिवासी हो सनातन आर्यधर्मका पालन कर गये हैं।* बहुतेरे यवनोंने बौद्धप्रधान समयमें बौद्धधर्मका आश्रय लिया था।

मनुसंहितामें इस यवन जातिको डाकू कहा गया है।* बौधायन-स्मृतिमें गोमांसखादक और धर्माचारहीन और विरुद्ध बहुभाषी ही म्लेच्छ कहे गये हैं।† पीछे म्लेच्छ और यवन एकार्थवाची हो गये हैं। इससे प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है, कि "सर्वाचारविहीनस्य म्लेच्छ इत्यभिधीयते। स एव यवनदेशोद्भवो यवनः।" वृद्ध चाणक्यने यवनोंको सबसे नीच कहा है।¶ यह अछूत हैं। इनके साथ एक साथ उठने, बैठने और एक साथ भोजन करनेसे जाति नष्ट होती है।

यह यवन गर्हिताचार निबन्धन हिन्दूशास्त्रकारोंके लिये जितने ही निन्दित क्यों न हो; किन्तु ज्योतिःशास्त्रमें विशेष प्रभुत्व रखनेसे वे जनसमाजमें सुप्रसिद्ध थे। वृहत्संहितामें लिखा है, कि ये यवन म्लेच्छ होने पर भी ऋषियोंकी तरह पूजित हुए थे।×

वराहमिहिरने यवनाचार्य्य नामके एक ज्योतिषीका उल्लेख किया है। भट्टोत्पल वृहज्जातकके (७।६) श्लोककी टीकामें लिखा है, कि 'यवनेश्वर स्फूर्जिध्वज (सूचीध्वज)ने शक-कालके बाद दूसरे एक ज्योतिःशास्त्रकी रचना की थी।' डाक्टर कर्ण इसको Aphrodisius कह कर सन्देह करते हैं। वराहमिहिर इनके पूर्ववत यवनाचार्य्योंके मतसे उद्धृत कर गये हैं। सिवा इसके स्फूर्जि-

* कालिदासने शकुन्तला और विक्रमोर्वशी आदि नाटकोंमें 'किराती चामरधरी यवनी शस्त्रधारिणी' या 'वनपुष्पमालाधारिणी'-'यवनी' प्रतिहारिणीका उल्लेख रहनेसे स्पष्ट ही दोनोंका सम्बन्ध सूचित होता है।

* "पौण्ड्काश्चोड्रद्रविड़ाः काम्बोजा जवनाः शकाः।
पारदा पह्लवा श्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो वहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्य्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥"
(मनु १०।४४-४५)

† बौधायनस्मृतिमें लिखा है :—
"गोमांसखादको यश्च विरुद्धं बहु भाषते।
धर्म्माचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते॥"
(प्रायश्चित्ततत्त्वधृत बौधायन-वचन)

¶ "चण्डालानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात् परः॥"
(वृद्धचाणक्य ८।५)

× "म्लेच्छो हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्देवविद् द्विजः॥"
(वृहत्संहिता २।१५)

ध्वजकृत ग्रन्थमें 'यवन' उक्त प्रयोग रहनेसे अनुमान होता है, कि वराहके पूर्व और तो क्या—शकारम्भके पूर्व अनेक यवन जातक-ग्रन्थकार विद्यमान थे।

आज भी रमल, ताजिक आदि शब्दोंको देखते हुए यह कहना पड़ता है, कि हमारे देशमें यवन-सम्प्रदायका प्रणोदित ज्योतिःशास्त्र बहुत दिनोंसे चला आ रहा है। रमल फेंकनेकी अपेक्षा विदेशीय ताजिक गणना इस देशमें अधिक प्रचलित है। अरबोंमें ताजिक शब्दका अर्थ अरबी तथा तुर्क जातिके भिन्न किसी गैर जातिके लोग हैं। अतएव पारस्यवालोंको ताजिक कहनेमें कोई हर्ज नहीं है। और भी देखा जाता है, कि दामोदरके पुत्र वलिभद्र कृत हायनरत्नमें लिखा है,—"यवनाचार्य्यने पारसी भाषामें ज्योतिःशास्त्रके एकदेशरूप फलशास्त्र प्रणयन किया था। समरसिंह आदि ब्राह्मणोंने उसी ग्रन्थको संस्कृत भाषामें लिखा।" दुण्ढिराजतनय गणेशने (प्रायः १४८० शकमें) ताजिकभूषण-पद्धतिमें लिखा है,—

"गर्गाद्यैर्यवनैश्च रोमकमुखैः सत्यादिभिः कीर्त्तितम्। शास्त्रं ताजिकसंज्ञकं।" अब देख पड़ता है, कि केवल पारिभाषिक अरबी शब्दसे नहीं, वरं प्राचीन ग्रन्थ आदिके प्रमाणसे भी ताजिक ग्रन्थका यावनिकत्व प्रमाणित होता है। ताजिक शास्त्रमें गर्गका नाम देख दीक्षितका कहना है, कि ताजिक शाखाकी कोई कोई संज्ञा यवनसे प्राप्त हैं।

यूनानी यवनोंके भी बहुत पहलेसे ज्योतिर्वेत्ताओंका विशेष आदर और यथेष्ट प्रभाव था। इन सब महापुरुषोंका केवल नाम लिखा गया।:—

अरिष्टर्कास् (Aristarchus—ईसासे ४थी शताब्दी पहले)

इरातस्थिनिस् (Eratosthenis " ३री ")

तलेमी (तुरमय) (Ptolemy—ई० सनकी पहली शताब्दीमें) इसने मिजास्ति (Almagest) रचा था।

पौलस (Paulus Alexandrius) यवन फलित ज्योतिर्वेत्ता। यह ईसासे पूर्व तीसरी शताब्दीमें मौजूद थे। बहुतेरोंका अनुमान है, कि पौलिससिद्धान्त भी इसीका रचा हुआ है।

मड—(यवन) यूनानी ज्योतिषी। इसने जातककी रचना की है।

यूक्लिड-यवन—गणितवेत्ता। ईसासे ४ शताब्द पूर्व।

हिपार्कस (Hipparchus—यवन ज्योतिषी ईसासे ३री शताब्दी पूर्व।

२। पश्चिम-भारतमें समागत यूनानी यवनके सिवा भारतके पूर्वी किनारे भी हम यवनोंके आनेका उल्लेख पाते हैं। राजा ययातिकेशरीके राजत्वकालमें उड़ीसेमें यवन-विप्लव हुआ था। यह यवन कहांसे आये?

पहले ही हम कह आये हैं, कि यूनानी यवन बौद्ध-प्राधान्य समयमें हिन्दूके संग मिल कर हिन्दू भावापन्न हो गये थे। अतः तब फिर इन साम्प्रदायिक यवनोंका अस्तित्व तक न रह गया। ईसाके ७वीं शताब्दीमें अरबी यवन वणिक्-सम्प्रदाय पश्चिम भारतके किनारे देशोंमें वाणिज्य व्यवसायके लिये आया करते थे। वे सब मध्यभारत तक नाना स्थानोंमें वाणिज्य करनेके लिये फैल गये थे वे सामान्य वणिक्वेशमें ही भारतमें आते थे। भारतवासियोंसे प्रतिद्वन्द्विता कर उन सबोंने कभी शत्रुताचरण नहीं किया। महम्मद इब्न कासिमके डाहिरको पराजय कर पश्चिम भारत जीत लेने पर भी उसका अधिकार स्थायी न हो सका। गजनीके महमूदके आक्रमणके बादके सिवा भारतमें मुसलमान यवनोंका राज्याधिकार नहीं हुआ। फिर उस प्राचीन समयमें उड़ीसेमें जो यवन हिन्दुओं राजा द्वारा हराये जा कर भागे वे किस देशसे भारतवर्ष आये थे?

इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि भारतके पश्चिमी किनारेके देशोंमें जैसे अरबी वणिक् जहाजसे आ कर चीजोंको खरीदते बेचते थे वैसे ही भारतके पूर्वाञ्चलमें भी चीनी वणिक् 'जङ्क' नामक जहाज द्वारा आ कर व्यवसाय वाणिज्य किया करते थे। चीनके दक्षिण और ब्रह्मके उत्तर साल्विन नदी पर यूनान प्रदेश अवस्थित है। यह प्रदेश भारतके पूर्वोत्तर सीमान्त पर बसा है, इससे इस देशके अधिवासियोंने भारत आनेमें विशेष सुविधा थी। इस यूनानसे आविष्कृत शिलालिपिमें और अनामसे प्राप्त पत्थर पर भी इस देशके अधिवासी यवन नामसे लिखे गये हैं। कहनेका प्रयोजन नहीं, कि यह चीन प्रान्तवासी भी हिन्दुओंकी दृष्टिमें म्लेच्छ ही समझे जाते थे।

वर्त्तमान चीनसाम्राज्यके दक्षिण इस यूनान या यवन नामक प्रदेशकी उत्तरी सीमा पर जिचुएन, पूर्वमें क्युचाउ और कोयांसी। दक्षिणमें ब्रह्म और लाउ जातिकी वास-भूमि तथा पश्चिममें ब्रह्म और भूटान अवस्थित है। इसका वर्त्तमान क्षेत्रफल प्रायः १ लाख ८ हजार वर्गमील है। यूनानफू इसका प्रधान नगर है। मेइकन (मेकियं), सालविन (सालुएन), किनसाकियां और सोङ्ग-का नदी ही यहांकी प्रधान नदियां हैं। शेषोक्त नदी वहती हुई टोङ्ग-किं उपसागरमें मिल गई है। इसी नदीसे वाणिज्य-कार्य्य चलता था। यूनान ता-ली फू हो कर ब्रह्मके भामों नगर तक एक वड़ा पथ है। यूनानी-वणिक् इसी पथसे चीजें ले कर ब्रह्ममें आते और खरीद फरोख्त किया करते थे। यूनानसे काण्टन नगर तक एक प्राचीन वाणिज्य-पथ गया है। इसी पथसे व्यवसायी अपनी चीजें पहले काण्टन नगरमें, उसके वाद सम्भवतः जहाजसे समुद्रपथ द्वारा भारतमें ले आते थे।

यहां प्रचुर सोना और चांदी मिलती थी; सीसा, लोहा, तांवा, दस्ता और मूल्यवान् माणिक्य आदि पत्थरोंका भी अभाव नहीं। इन्हीं सव चोजोंका वहांके अधिवासी स्थल और जलपथसे व्यवसाय किया करते थे। चीन देखो।

डाकृर वुकाननने ८वीं और ६वीं शताब्दीमें तुङ्गभद्रा नदीके तीर पर एक यवन-राजवंशका उल्लेख किया है। जोनकन नामक स्थानके अधिवासी वहांकी लव्वईजाति 'यवन' नामसे परिचित है। जोनकन भारतके दक्षिण-पश्चिम प्रायःद्वीप भागमें अवस्थित है।

३ एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् यवनाचार्य।

"जातं दिनं दूषयते वशिष्ठश्चाष्टौ च गर्गो यवनो दशाहम्।
जन्माख्यमासं किल भागुरिश्च व्रते विवाहे क्षुरकर्णवेधे॥"
(तिथितत्त्व)

४ कालयवन नामक असुरभेद। इसका उत्पत्ति-विवरण विष्णुपुराणमें इस तरह लिखा है,—गोष्ठीमें सव यादवोंके सामने गार्ग्यको उसके सालेने नपुंसक कह कर उपहास किया था। इससे गार्ग्य वहुत क्रोधित हो दक्षिण समुद्रके किनारे यदुवंशियोंके भयकारी एक पुत्र-प्राप्तिके लिये महादेवके आश्रयमें उन्हींके प्रसन्नार्थ तपस्या करने लगे। वारह दिनमें भगवान् महादेवने प्रसन्न हो कर उसे वरदान दिया। पीछे निःसन्तान यवनेश्वर उसको आदरके साथ राजमहलमें ले गये। यवनेश्वरीके सहवाससे गार्ग्यके एक सन्तान उत्पन्न हुआ। इसका नाम कालयवन पड़ा। पीछे कालयवनके जवान होने पर यवनेश्वर उसी पर राज्यभार अर्पण कर आप अरण्य-वासी हुए। एक समय कालयवनने नारदसे यादवोंकी प्रशंसा सुनी। इससे उसने ईर्ष्यावश वहुसंख्यक म्लेच्छ फौजोंको एकत्र कर मथुरा आ यादवों पर चढ़ाई कर दी।

इसके वाद कृष्णने एक ओरसे कालयवनके आक्र-तथा दूसरी ओर जरासन्धके आक्रमणसे व्याकुल हो समुद्रके किनारे द्वारकापुरी नामकी एक नगरी वसाई। इसी पुरीमें मथुरावासी लोगोंको रख कर स्वयं मथुरामें रहने लगे।

पीछे कालयवनने मथुराको घेर लिया, तो कृष्ण मथुरासे निकल उसके सामने आये। श्रीकृष्णको देखते कालयवन उनका अनुगामी हो गया। श्रीकृष्णने भी मुचुकुन्द नामक राजा जहां शयन करता था, उसी गुहा-में प्रवेश किया। कालयवनने उस गुहामें प्रवेश कर कृष्ण जान कर सोये हुए मुचुकुन्द पर चरणप्रहार किया। मुचुकुन्दकी निद्रा भङ्ग हुई। क्रोधित हो मुचुकुन्दने उठके उसको देखा। उनकी क्रोधाग्निसे ही कालयवन भस्म हो गया। (विष्णुपुराण ५।२३ अ०)

२ सिह्लक, सिलारस। ३ गोधूम, गेहूं। ४ गर्जर, गजरा। ५ तुरुष्क, तुर्क जाति। ६ वेगाधिकाश्व, तेज घोड़ा। ७ वेग।

(त्रि०) यतीति पु (नन्दिग्रहीति। पा ३।१।१३४) इति ल्यु। ८ वेगविशिष्ट, वेगी। ६ यवनदेशीय अश्व, अरवी घोड़ा।

यवन—नक्षत्रचूड़ामणिके रचयिता।

यवनक (सं० पु०) १ गोधूम, गेहूं। यवन स्वार्थे कन्। २ यवन देखो।

यवनदेशज (सं० त्रि०) यवनदेशे जातः जन-ड। यवनदेशजात, यवनदेशमें जन्म लेनेवाला।

यवनद्विष्ट (सं० पु०) यवनैर्द्विष्टः हिन्दुप्रियत्वात् तथात्वं। गुग्गुल।

यवनद्वीप—भारतमहासागरके एक द्वीपका नाम, यमद्वीप या यवद्वीप। यवद्वीप देखो।

यवनपुर (सं० क्ली०) यवनोंकी राजधानी, अलेकसन्द्रिया नगरी।

यवनप्रिय (सं० क्ली०) यवनानां प्रियं। मरिच, मिर्च।

यवनभोजन (सं० पु०) मरिच, मिर्च।

यवनमुण्ड (सं० पु०) १ मुण्डित शिर यवन। २ यवनोंकी तरह मुड़ा मस्तक।

यवनाचार्य (सं० पु०) यवनो नाम आचार्यः। यवन जातिका एक ज्योतिषाचार्य। इन्होंने अष्टकवर्गविन्दुफल, ताजिकशास्त्र, मीनराजजातक, यवनसार, यवनहोरा, रमलामृत, लग्नचन्द्रिका, वृद्धयवनजातक और स्त्रीजातकको रचना की। इसका उल्लेख वराहमिहिर आदिने किया है। इनका दूसरा नाम यवनेश्वर भी था। विद्वानोंका अनुमान है, कि ये सम्भवतः टलेमी थे।

यवनानी (सं० स्त्री०) यवनानां लिपिः (यवनाल्लिप्यां। पा। ४।१।४९) इति वार्त्तिकोक्त्या ङीष्, आनुगागमश्च। १ यूनानकी लिपि। २ यूनानकी भाषा। (त्रि०) ३ यवन सम्बन्धी, यूनानका।

यवनारि (सं० पु०) यवनस्य कालयवनस्य अरिः शत्रुः। १ श्रीकृष्ण जिनकी कालयवनसे कई लड़ाइयां हुई थीं। २ यवन जातिके शत्रु।

यवनाल (सं० पु०) यवानां नाला इव नाला यस्य। १ धान्यविशेष, जुआर। पर्याय—योनाल, यूर्णाह्वय, देवधान्य, जोन्नाला, बीजपुष्पिका। २ जुआरका पौधा। ३ यवदण्ड, जौके डंठल जो सूखने पर चौपायोंको खिलाये जाते हैं।

यवनालज (सं० पु०) यवानां नालेभ्यो जायते इति जन-ड। यवक्षार, जवाखार।

यवनाश्व (सं० पु०) मिथिला देशके एक प्राचीन राजा। इनके पिताका नाम था बहुलाश्व।

यवनिका (सं० स्त्री०) युनात्यावृणोत्यनया, यु-ल्युट्। ङीप् स्वार्थे कन्, टाप्। १ यवनिका, कनात। २ नाटकका परदा। प्राचीनकालमें नाटकके परदे सम्भवतः यवन देशसे आये हुए कपड़ेसे बनते थे; इसीलिये इनको यवनिका कहते हैं।

यवनी (सं० स्त्री०) यूयते पच्यते भुक्तमनया यु-ल्युट्, ङीप्। १ यवानी नामक एक औषध। २ यवनकी या यवन जातिकी स्त्री। ३ यवनदेश जो उत्तरमें अवस्थित है। (जैनहरि० १३९।१।३)

यवनेष्ट (सं० क्ली०) यवनानामिष्टं। १ सीसक, सीसा। २ मरिच, मिर्च। ३ गृञ्जन, गाजर। (पु०) ४ लशुन, लहसुन। ५ निम्ब, नीम। ६ पलाण्डु, प्याज। ७ राजपलाण्डु, शलगम।

यवपटोल (सं० पु०) ज्वररोगमें प्रयोज्य कषायभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पटोलपत्र १ तोला और यवका दाना १ तोला, पाकार्थ जल ३२ तोला, शेष ८ तोला। इसके ठंढा होने पर मधु आधा तोला मिला कर सेवन करे। इसके सेवन करनेसे तीव्र पित्तज्वर, दाह और तृष्णा अति शीघ्र जाती रहती है। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधि०)

यवपल्ल (सं० पु०) यवपलाल, जौका रूखा डंठल।

यवपिष्ट (सं० क्ली०) १ यवचूर्ण, यवका आटा। ३ यवकी पिठाली।

यवप्रख्या (सं० स्त्री०) यव इति प्रख्या यस्याः। क्षुद्ररोगविशेष। इसका लक्षण—

"यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांसमिश्रिता।
पीड़का श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते॥"

(भावप्र० क्षुद्ररोगाधि०)

इस रोगमें वायु और कफका प्रकोपप्रयुक्त यवकी तरह बीचमें मोटा और बगलमें कृश अथच अतिशय कठिन और मांससंश्रित पीड़ा होती है।

इसकी चिकित्सा—इस रोगमें पहले स्वेद दे कर पीछे उसमें मैनसिल, देवदारु और कुट पीस कर लेप देनेसे अति शीघ्र जाता रहता है। इस पीड़काके पक जानेसे व्रणरोगकी तरह चिकित्सा करनी चाहिए।

(भावप्र० क्षुद्ररोगाधि०)

यवफल (सं० पु०) यववत् फलमस्य। १ वंश, बांस। २ जटामांसी, जटामासी। ३ कुटज। ४ पलाण्डु, प्याज। ५ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ७ प्लक्षवृक्ष, पाकड़का पेड़।

यवफला (सं० स्त्री०) यवफल देखो।

यवविन्दु (सं० पु०) वह हीरा जो यवविन्दु सहित यव-रेखा हो। कहते हैं, कि ऐसा हीरा पहननेसे देश छूट जाता है।

यवबुस (सं० पु०) यवका तुस, जौका भूसा।

यवमण्ड (सं० पु०) यवकृतः मण्ड। जौका मांड जो नये ज्वरके रोगीको पथ्यके रूपमें दिया जाता है। वैद्यक-के अनुसार यह लघु, ग्राहक और शूल तथा त्रिदोषको नाश करनेवाला है।

यवमत् (सं० त्रि०) यवः विद्यतेऽस्य मतुप् (मादुप-धायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः। पा ८।२।९) इति सूत्रेण मतो र्मस्य वकाराभावः। यवविशिष्ट, यवयुक्त।

यवमती (सं० स्त्री०) एक वर्णवृत्त। इसके विषम चरणोंमें रगण, जगण, जगण होते और सम चरणोंमें जगण, रगण और एक गुरु होता है।

यवमद्य (सं० क्ली०) यवकृतं मद्यं। जौका वनाया हुआ मद्य, जौकी शराब। गुण—गुरु और विष्टम्भी। (राजनि०)

यवमध्य (सं० क्ली०) यववत् मध्यं यस्य। १ एक प्रकारका चान्द्रायणव्रत।

"शिशुचान्द्रायणं प्रोक्तं यतिचान्द्रायणं तथा।
यवमध्यं तथा प्रोक्तं तथा पिपीलिकाकृति॥"
(प्रायश्चित्ततत्त्व)

इस चान्द्रायणमें पूर्णिमाके दिन सायं, प्रातः और मध्याह्न तीनों समय स्नान कर पन्द्रह कौर भोजन करना होता है। पीछे कृष्णा प्रतिपद्से एक एक कौर भोजन कम करना होगा। बादमें अमावस्याके दिन उपवास कर फिर शुक्लाप्रतिपद्से एक एक कौर भोजन बढ़ाना होगा। इस प्रकार फिर पूर्णिमाको पन्द्रह कौर भोजन करना होगा। ऐसे कृच्छ्रसाध्य चान्द्रायणको यवमध्य कहते हैं। (मनु० ११।२२७-१८)

(पु०) २ यज्ञभेद, पांच दिनोंमें समाप्त होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ। "यवमध्यः पञ्चरात्रो भवति" (शत-पथब्रा० १३।६।१।१)। (त्रि०) ३ यवाकारमध्य, जौका बीच। (सुश्रुत चि० १ अ०)

यवमध्यम (सं० क्ली०) यवमध्य, जौका बीच।

यवमन्थ (सं० पु०) जौका सत्तू।

यवमय (सं० त्रि०) यवस्य विकारोऽवयवो वा यव (असंज्ञायां तिलयवाभ्यां। पा ४।३।१४९) इति मयट्। यव-निर्मित, जौका बनाया हुआ।

यवमात्र (सं० त्रि०) यवसादृश, जौके जैसा।

यवयवागुका (सं० स्त्री०) यवनिष्पादिता यवागुका। यवकृता यवागू, जौका मांड।

यवयस (सं० क्ली०) प्लक्षद्वीपका एक वर्ष। (भाग० ५।२०।३)

यवयु (सं० त्रि०) यवेच्छु, जौका चाहनेवाला।

यवलक (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी। इसका मांस सुश्रुतके अनुसार मधुर, लघु, शीतल और कसैला होता है।

यवलास (सं० पु०) यवात् लासो यस्य। यवक्षार, जवाखार।

यववक्त्र (सं० त्रि०) जौकी सींककी तरह नोंकदार।

यववर्णाभ (सं० पु०) सविष मण्डूक जातीय कीट। सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका जहरीला कीड़ा।

यवविकृति (सं० स्त्री०) प्रमेह रोगमें हितकर जौकी बनी लिट्टी आदि।

यवशक्तु (सं० पु०) यवस्य शक्तु। जौका सत्तू। यह रूक्ष, लेखन, अग्निवर्द्धक, कफनाशक और वायुवर्द्धक माना गया है। (राजनि० ३ परि०)

यवशर्करा (सं० स्त्री०) सिद्धयवकृत शर्करा, जौका सत्तू।

यवशस्य (सं० क्ली०) यवधान्य, जौ।

यवशाक (सं० पु० क्ली०) शाकभेद, एक प्रकारका साग। यह वैद्यकके अनुसार मधुर, रूक्ष, विष्टम्भी, शीतवीर्य और मलभेदन माना जाता है। (चरक सू० २७ अ०)

यवशिरस् (सं० त्रि०) १ यवाग्र, जौकी सींक। २ यव-ग्रीव।

यवशूक (सं० पु०) यवानां शूकः कारणत्वेनास्त्यस्य अर्श आद्यच्। यवक्षार, यवाखार।

यवशूकज (सं० पु०) यवशूकात् जायते जन ड। यवक्षार, जवाखार।

यवश्राद्ध (सं० क्ली०) यवकृतं श्राद्धं। एक प्रकारका

श्राद्ध जो जौके आटेसे किया जाता है। स्मृतिमें इस श्राद्धका विषय इस प्रकार लिखा है,—वैशाख मासके शुक्लपक्षमें कुज, शनि और शुक्र भिन्न दूसरे दिनमें, नन्दा, रिक्ता और त्रयोदशी भिन्न तिथिमें, जन्मचन्द्रसे अष्टमचन्द्र भिन्न चन्द्रमें, जन्मतिथि, जन्मनक्षत्र तथा पञ्चम तारा भिन्न तारामें, पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़, मघा, भरणी, अश्लेषा और आर्द्रा भिन्न नक्षत्रमें यवश्राद्ध करना होगा। यदि कोई कार्य वैशाखमासमें न किया जा सकता हो, तो ज्येष्ठ शुक्लपक्ष या आषाढ़ मासके शुक्लपक्षमें यह श्राद्ध किया जा सकता है। किन्तु आषाढ़ मासके हरिशयनके बाद यह श्राद्ध करना निषिद्ध है। यह श्राद्ध विषुवसंक्रान्ति या अक्षयतृतीयाके दिन करना प्रशस्त है। इस दिन निषिद्ध नक्षत्रादि होने पर भी किया जा सकता है।

यह श्राद्ध जौके आटेसे किया जाता है। इसलिये इसे यवश्राद्ध कहते है।*

यवश्वेता (सं० स्त्री०) यवशर्करा, जौका सत्तू।

यवस (सं० क्ली०) यौतीति यु-(वहियुभ्यां णित्। उण् ३।११९) इत्यसच् संज्ञापूर्वकत्वात् न वृद्धिः। १ तृण घास। २ भूसा।

यवसप्रथम (सं० त्रि०) १ सुपक्क। २ मुख्यान्न, मांस।

यवसाद् (सं० त्रि०) यवसं अत्ति अद्-क्विप्। तृणभक्षक, घास खानेवाला।

यवसाह्व (सं० पु०) यमानीक्षुप, यमानीका पौधा।

यवसाह्वया (सं० स्त्री०) यमानी, अजवायन।

यवसुर (सं० क्ली०) यवजाता सुरा, जौकी शराब।

यवसौवीर (सं० क्ली०) यवकाञ्जिक, जौका मांड़।

यवागू (सं० स्त्री०) यूयते मिश्र्यते इति यु (सृयुवचिभ्योऽन्युजागूजक्नूचः। उण् ३।८१) इति आगूच्। जौ या चावलका वह मांड़ जो सड़ा कर खट्टा कर दिया गया हो। पर्याय—उष्णिका, श्राणा, विलेपी, तरला। (अमर)

सुश्रुतमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—आधे कुटे हुए चावल या जौके तण्डुलसे यवागू प्रस्तुत करनी होती है। इसके तीन भेद हैं, मण्ड, पेया और विलेपी। पूर्वोक्त तण्डुल जब १६ गुने जलमें पाक कर सिद्ध हो जाय, तब कपड़ेसे उसे छान ले, इसका नाम मण्ड है। ११ गुने जलमें पाक कर अच्छी तरह गलानेसे पेया बनती है और ६ गुने जलमें जिसका पाक किया जाता है, उसे विलेपी कहते हैं। पेया और विलेपी को छान कर फेंकना नहीं होता। पेयाका द्रवभाग अधिक और सिक्थभाग (सीठी) थोड़ा रहता है। फिर विलेपीमें द्रवभाग थोड़ा रख कर सिक्थभाग अधिक रखना होता है। (सुश्रुत)

छः भाग जलमें जब यवचूर्णादि अच्छी तरह सिद्ध हो जाय, तब उसे यवागू कहते हैं। इसका गुण—ग्राहक, तृष्णा और ज्वरनाशक तथा वस्तिशोधक। पित्तश्लेष्मज्वरमें यह दोपहरको और वातज्वरमें शामको हितकर है।

> "यवागूः षड्गुणे तोये सिद्धा स्यात् कृसरा घना।
> तण्डलैर्मुद्गमाषैश्च तिलैर्वा साधिता हि सा।
> यवागूर्ग्राहिणी बल्या तर्पणी वातनाशिनी॥"

(परिभाषाप्र० २ खण्ड)

चावल, मूंग, कलाय वा तिलके छः गुने जलमें सिद्ध होनेसे उसे यवागू और घना होनेसे उसे कृसरा कहते हैं। इसका गुण, ग्राहक, बलकर, तर्पण और वातनाशक माना गया है।

चक्रदत्तमें लिखा है—कि मदात्ययरोगमें, ग्रीष्मकालमें, पित्तकफकी अधिकतामें और रक्तपित्तरोगमें यवागू अनिष्टकारक है।

यवाग्र (सं० क्ली०) यवतुष, जौका भूसा।

यवाग्रज (सं० पु०) यवाग्रात् जायते इति जन-ड। १ यवक्षार, यवाखार। २ यमानी, अजवायन। (क्ली०) ३ काञ्जिक, मांड़।

---

* "अथ यवश्राद्धं। तत्र वैशाख शुक्लपक्षे कुजनिःशुक्रेतरवारे नन्दारिक्तात्रयोदशीतरतिथौ जन्मचन्द्राष्टचन्द्रे जन्मतिथिजन्मनक्षत्रत्रयपञ्चमताराव्येतरेषु पूर्वफल्गुनीपूर्वभाद्रपदपूर्वाषाढ़ामघाभरण्यश्लेषार्द्रेतरनक्षत्रेषु यवश्राद्धं कर्त्तव्यं। तच्छेषभोजनञ्च एतादृङ्‌निषिद्धायां विषुवसंक्रान्तौ अक्षयतृतीयाञ्च विशेषतः कर्त्तव्यं। वैशाखाकरणे ज्येष्ठशुक्लपक्षे आषाढ़शुक्लपक्षे च हरिशयनेतरत्र कर्त्तव्यं।" (कृत्यतत्त्व)

यवाग्रयण (सं० क्ली०) सर्वप्रथम निर्गत यवशीर्ष, जौका सींक।

यवाचित (सं० त्रि०) १ यवसम्भार, जौका संचय २ यवराशि; जौकी ढेर। ३ यवाकीर्ण, जौसा भरा हुआ।

यवाद (सं० त्रि०) यवं अत्ति अद्-क्विप्। यवभक्षक, जौ खानेवाला।

यवाद्यतैल—वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका तैलौषध।

यवान (सं० त्रि०) यवेन वेगेन अणिति जीवतीति अण्-अच्। १ वेगवान्, तेज। (क्ली०) २ यमानी, अजवायन।

यवानिका (सं० स्त्री०) यवानी देखो।

यवानी (सं० स्त्री०) दुष्टो यवः (यवाद्दोषे पा। ४।१।४९) इत्यस्यवार्त्तिकोक्त्या ङीष् अनुगागमश्च, पक्षे स्वार्थे कन्। ओषधिभेद, अजवायन। पर्याय—दीप्यक, दीप्य, यवसाह्व, यवाग्रज, दीपनी, उग्रगन्धा, वातादि, भूकन्दक, यवज, दीपनीय, शूलहन्त्री, यवानिका, उग्रा, तीव्रगन्धा। गुण—कटु, तिक्त और उष्ण, तथा वात, अर्श, श्लेष्म, शूल, आध्मान, कृमि और छर्दिनाशक। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे दूसरा नाम—उग्रगन्धा, ब्रह्मदर्भा, अजमोदिका, दीप्यका, दीप्या और यवसाह्वया, गुण—पाचक, रुचिकर, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, कटुतिक्तरस, लघु, अग्निदीपक, पित्तवर्द्धक, शुक्रघ्न तथा शूल, वायु, कफ, उदय, आनाह, गुल्म, प्लीहा, और कृमिनाशक।

अजमोदा देखो।

यवानीक (सं० पु०) यमानी, अजवायन।

यवानीशाक (सं० क्ली०) यमानीदल, अजवायनका साग।

यवान्न (सं० क्ली०) यवकृतमन्नम्। यवका अन्न, जौका भात।

यवापत्य (सं० क्ली०) यवस्य अपत्यं तज्जातत्वात् तथात्वं। यवक्षार, यवाखार।

यवाम्ल (सं० क्ली०) यवकाञ्जिक, जौकी कांजी। यह पाकमें कटु, वात और श्लेष्मनाशक, रक्तवर्द्धक, पित्तवर्द्धक, भेदक, पित्तके लिये पीड़ा और रक्तदोष-नाशक माना गया है।

यवाम्लज (सं० क्ली०) यवाम्लाभ्यां जायते इति जन-ड। यवान्न, जौकी कांजी।

यवाशिरस् (सं० क्ली०) यवनिर्मित द्रव्य, वह वस्तु जो जौकी बनी हो।

यवाष (सं० क्ली०) एक प्रकारका कीड़ा जो जौकी फसलको हानि पहुंचाता है।

यवाषिक (सं० त्रि०) यवाष नामक कीटसम्बन्धीय, यवादष्ट।

यवाषिन् (सं० त्रि०) यवाससंयुक्त।

यवास (सं० पु०) यौतीति यु (ऋतन्यञ्जीता। उण् ४।२) इत्यादिना आस। यासक्षुप। जवासा नामक कांटेदार क्षुप। भारतवर्षके गाङ्गेय उपत्यका और मध्यभारतमें कोङ्कणप्रदेशमें, हिमालयतट पर, दक्षिण अफ्रिकाके मरुदेशमें, मिस्र, अरब, एशियमाइनर, ग्रीस, बलुचिस्तान आदि नाना स्थानोंमें यह क्षुप उत्पन्न होते देखा जाता है। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है, जैसे—हिन्दी-यवासा, जवास, जनवासा, यवासा, यवानसा, कच्छ—जवाशा; बङ्गला—यवासा, दुलालभा, संस्कृत—दुरालभा, गिरिकर्णिक, यवास; पारस्य—सुतर-खार, उस्तर-खार, खार-इ-शुतर; अरब—आलहज्जु, हाज, आकुल, शौरकुल-जमाल; तेलगू—गिरिकर्मिक, तेल्ल, गिनियचेड्डु।

इसकी पत्तियां करौंदेकी पत्तियोंके समान होती हैं। यह नदियोंके किनारे बलुई भूमिमें आपे आप उगता है। बरसातके दिनोंमें इसकी पत्तियां गिर जाती हैं और कुआर तक यह विना पत्तियोंके नंगा रहता है। वर्षाके वीत जाने पर यह फलता फूलता है। वैद्यकमें इसको कड़ुआ, कसैला, हलका और कफ, रक्त, पित्त, खांसी, तृष्णा, तथा ज्वरनाशक और रक्तशोधक माना गया है। कहीं खसकी तरह इसकी टट्टियां भी लगाते हैं। फूल या डालकी पुलटिश देने अथवा डालका धुंआ लगानेसे अर्शरोग दूर होता है। इसके काढ़ेसे तिक्तमधु यवशर्करा बनती है। बालकोंके कासरोगमें यह बहुत लाभदायक है। इसकी पत्तीसे जो तेल निकाला

जाता है, उसे शरीरमें लगानेसे वातव्याधिमें बहुत लाभ पहुंचाता है।

इसकी डालसे दूधके समान गोंद निकलता है। मध्य एशियामें उसे 'तरञ्जवीन' और अङ्गरेजीमें *Manna* कहते हैं। उस गोंदके सुखने पर सागूदानेकी तरह गोल दाने दिखाई देते हैं। भारतमें उत्पन्न होनेवाले यवासमें यह मीठा निर्यास प्राय नहीं देखनेमें आता। खोरासन, कुर्दिस्तान, हामदान, पेशावर, पारस्य और बोखारा आदि स्थानोंसे इसकी आमदनी होती है। ग्रीष्मकालमें जब सभी तृणगुल्मादि सूख जाते, तब इसके पत्ते एकमात्र ऊंटोंके भोजन होते हैं। उत्तरभारतमें इसकी टहनियोंसे एक प्रकारकी शीतलपाटी बनाई जाती है।

२ खदिरभेद, एक प्रकार खैर।

यवासक (सं० पु०) यवास-स्वार्थे कन्। दुरालभा, जवासा नामक कांटेदार क्षुप।

यवासशर्करा (सं० स्त्री०) यवासेन तद्रसेन कृता शर्करा, शाकपार्थिववत् समासः। यवास-रसघटित शर्करा, वह शक्कर जो जवासाके रससे तैयार की गई हो। पर्याय—सुधामोदक, मोदक, तवराज, खण्डसर, खण्डज, खण्डमोदक। वैद्यकमें इसे अत्यन्त मधुर, पित्तश्रम और तृष्णानाशक माना है।

यवासा (सं० स्त्री०) यवास-टाप्। गुण्डासिनीतृण, जवासा नामक घास।

यवासिनी (सं० स्त्री०) यवास क्षुपपूर्णक्षेत्र वा देश, वह खेत या देश जो जवासा नामक क्षुपसे भरा हो।

यवाहर—दाक्षिणात्यके अहमदाबाद जिलान्तर्गत एक सामन्तराज्य। यहांके सामन्त-सरदार कोलिवंशके हैं।

यवाहार (सं० त्रि०) यवान्नजीवी, जौ खानेवाला।

यवाह्व (सं० पु०) यवमाह्वयति स्वकारणत्वादिति आ-ह्वे-क। १ यवक्षार, यवाखार। स्त्रियां टाप्। २ यवानी, अजवायन। ३ दुरालभा, जवासा नामक क्षुप।

यविक (सं० त्रि०) यवोऽस्यास्तीति (तुन्दादिभ्य इलच्। पा ५।२।११७) इति ठन्। यवयुक्त, यवविशिष्ट।

यविन—ब्रह्मके तेनासेरिम विभागके तौङ्ग-नगुवासी एक जाति। इस जातिके लोग पेगुयोमा पर्वतके ढालूदेशमें रहते हैं। ये कृषिजीवी हैं। रेशम उत्पन्न करना ही इनका प्रधान व्यवसाय है। ये सभी बौद्धधर्मावलम्बी हैं।

यविष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन युवा इति युवन् इष्ठन् यवादेशश्च। १ अतिशय युवा, बहुत बड़ा। (पु०) २ कनिष्ठ भ्राता, छोटा भाई।

"भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतानविबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह।"

(भागवत ३।१।५)

३ अग्नि। ४ ऋषिभेद, ऋग्वेदके एक मन्त्रके द्रष्टा ऋषिका नाम। इन्हें अग्नियविष्ठ भी कहते हैं।

यविष्ठवत् (सं० त्रि०) युवासदृश, बड़ेके समान।

"यविष्ठ्य वद् वृद्धतमोऽपि राजा।" (भट्टि)

यविष्ठ्य (सं० त्रि०) अतिशय युवा, बहुत बड़ा।

यवीनर (सं० पु०) १ पुराणानुसार अजमीढके एक पुत्रका नाम। २ भागवतके अनुसार द्विमीढ़के एक पुत्रका नाम। ३ भर्माश्वका पुत्र। ४ वाह्याश्व।

यवीयस् (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन युवा युवन् (द्विवचनविभज्योपपदे तरवीयसुनौ। पा ५।३।५७) इति ईयसुन्। १ अतिशय युवा, बहुत बड़ा। २ कनिष्ठ, सबसे छोटा। (मनु २।१२८)

यवीयुध (सं० त्रि०) रणप्रिय।

यवु—कावुलका छोटा घोड़ा।

यवोत्थ (सं० क्ली०) यवेभ्य उत्तिष्ठतीति उत्-स्था क। सौवीरक, जौकी कांजी।

यवोदर (सं० क्ली०) जौका मध्यभाग।

यवोद्भव (सं० पु०) यवक्षार, जवाखार।

यवोद्भूता (सं० स्त्री०) यवशर्करा, जौका मांड़।

यवोर्वरा (सं० स्त्री०) यवक्षेत्र, जौका खेत।

यव्य (सं० त्रि०) यवानां भवनं क्षेत्रं। यव (यवयवकषष्टिकाद् यत्। पा ५।२।३) इति यत्। १ यवादिभवनोचितक्षेत्र, वह खेत जहां जौकी फसल होती हो। पर्याय—यवक्य, षष्टिका, यवोचित, यवकोचित। २ यवहित, जौ चाहनेवाला। (पु०) ३ मास, महीना। (स्त्री०) ४ एक नदीका नाम।

यव्यावती (सं० स्त्री०) १ वैदिककालकी एक नदी। २ वैदिककालकी एक नगरी।

यश (सं० क्ली०) यशस् देखो।

यशःकर्ण (सं० पु०) गढ़ा देशके एक राजपुत्रका नाम।

यशःकर्णदेव—चेदिराज्यके एक राजा। कलचूरिवंशीय १४वें राजाके शिलाफलकसे मालूम होता है, कि उन्होंने आन्ध्रराजको हरा कर चम्पारण लूट लिया था। कन्नौज-पति गोविन्दचन्द्रने उनका राज्य जीता था। ११२२ ई०में वे मौजूद थे।

यशःकेतु (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (कथासरित्सा० ८०।४)

यशःपटह (सं० पु०) यशःसूचकः पटहः शाकपार्थिववत् समासः। ढक्का, ढाक।

यशःपाल (सं० पु०) १ कौशाम्बमण्डलका एक राजपुत्र। २ मोहराजपराजयके प्रणेता। ये राजा अजयदेवके मन्त्री थे। इनके पिता दानदेव भी प्रधान मन्त्री थे। ये मोढ़वंशीय थे।

यशद (सं० क्ली०) धातुविशेष, जस्ता। यह कालापन लिये सफेद या खाकी रंगका होता है। इसमें गंधकका अंश बहुत रहता है। इसका व्यवहार अनेक प्रकारके कार्यों में विशेषतः लोहेकी चादरों पर, उन्हें मोरचेसे बचानेके लिये कलई करने वैटरोंमें बिजली उत्पन्न करने तथा बरतन आदि बनानेमें होता है। भारतमें इसकी सुराहियाँ बनती हैं जिनमें रखनेसे पानी बहुत जल्दी और खूब ठंढा हो जाता है। इसे तांबेमें मिलानेसे पीतल बनता है। जर्मन सिलवर बनानेमें भी इसका उपयोग होता है। विशेष रासायनिक प्रक्रियासे इसका क्षार भी बनाया जाता है। उस क्षारको सफेदा कहते हैं। औषधों तथा रंगों आदिमें उसका व्यवहार होता है। पहले यह धातु भारतवर्ष और चीनमें ही मिलती थी, परन्तु आज कल वेलजियम तथा प्रूशियामें भी इसकी बहुतसी खानें हैं। यूरोपवालोंको इसका पता बहुत हालमें लगा है।

इस धातुका शोधन और मारण करके औषधादिमें प्रयोग करना होता है, बिना शोधा हुआ जस्ता विषके समान नुकसान करता है। इसके शोधन और मारण-का विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा हैः—

शोधन-विधि—जस्तेको आगकी गरमीसे गला कर तेल, मट्ठा, कांजी, गोमूत्र, कुलथी, कलायका काढ़ा और अकवनका दूध प्रत्येक द्रव्यमें यथाक्रम तीन तीन बार निःक्षेप करनेसे यह शोधित होता है।

मारणविधि—एक मट्टीके बरतनमें जस्ता गला कर उसके चौथाई भागके बराबर इमली और पीपलके पेड़की छालको चूर्ण कर उसमें डाल दे और लोहेके हत्थेसे चलावे। इस प्रकार दो पहर तक करते रहने-से जस्ता भस्म हो जाता है। पीछे उस भस्म-में उतनी ही हरताल डाल कर तथा अम्ल द्वारा मर्द्दन कर गजपुटमें पाक करना होगा। अनन्तर उसे फिर अम्ल द्वारा मर्द्दन कर उसके दशांश हरितालके साथ एक पहर तक पुट-पाक करे। इसी नियमसे जस्ते-का मारण करना होता है। शोधित जस्ता कषाय, तिक्त-रस, शीतवीर्य्य, चक्षुका अत्यन्तहितकारक तथा कफ, पित्त, मेह, पाण्डु और श्वासरोगनाशक है। (भावप्र०)

यशद आयुष्मत—बौद्ध-अर्हत्‌भेद। महाबोधिनिर्वाणके ११० वर्ष बाद ये कोशलराज्यमें अवस्थित थे।

यशदान—१ वम्बईप्रदेशके काठियावाड़ पोलिटिकल एजे-न्सीके गोहेलवाड़ विभागके अन्तर्गत एक देशीय सामन्त राज्य। भूपरिमाण ८८३ वर्गमील है। १८०७ ई०में वृटिश गवमेंटके साथ इस राजवंशकी मित्रता स्थापित हुई। बड़ौदाके गायकवाड़, जूनागढ़के नवाब और वृटिश सरकारको यहांके सामन्त १०६६० रु० कर देते हैं। सैन्यसंख्या ३४१ है।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २२° ५´ उ० तथा देशा० ७१° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। यह नगर बहुत पुराना है। पूर्वतन क्षत्रप-राज-वंशसम्भूत स्वामी चष्टनके नामानुसार इस नगरका यश-दान नाम हुआ है। जूनागढ़के घोरी वंशके शासन-कालमें यहां एक दुर्ग बनाया गया था। वह दुर्ग आज भी घोरपड़ कहलाता है। यहांके सरदारोंको गोद लेनेका अधिकार नहीं है। बड़े भाई अधिक मोहताप (वेतन) पा कर राज्याधिकारी होते हैं तथा दूसरे दूसरे भाई विषयके अंश भागी हुआ करते हैं।

यशपुर—छोटानागपुर जिलान्तर्गत एक सामन्तराज्य। भूपरिमाण १६६३ वर्गमील है। इसके उत्तर और पश्चिममें सरगुजा राज्य, दक्षिणमें गाङ्गपुर और उदयपुर तथा पूर्वमें लोहरडंगा जिला है।

यह छोटा राज्य पहाड़ी अधित्यका और उपत्यकासे परिपूर्ण है। पूर्वदिशाकी उपरघाटा अधित्यका क्रमशः पश्चिममें हेटघाट अधित्यका तक विस्तृत है और बिलकुल ढालू हो कर नीची भूमिमें मिल गई है। इस हेटघाटके दक्षिण यशपुरका शस्य और श्यामलतृणमण्डित समतलक्षेत्र है। उपरघाट अधित्यकासे उत्तरपश्चिम कुछ ऊंची खुरिया नामक अधित्यका है। इन दोनों अधित्यकाके मध्यवर्ती निम्न देश हो शोन नदीकी इव और कनहार शाखा बहती है। राणिझुला, कोहियार और भरमूरि भी यहांका सर्वोच्च शृङ्ग है।

१८१८ ई०में माधोजी भोंसले (अप्पा साहब) ने इस राज्यको सरगुजा समेत अङ्गरेजोंके हाथ सपुर्द किया। सरगुजाके अधीन होने पर भी इस राज्यके सरदारोंको किसी प्रकारका कर नहीं देना पड़ता। सरदार केवल वृटिश सरकारको वार्षिक ७७५ रु० कर दिया करते हैं।

यहां लोहा और सोना पाया जाता है। राजा जगदीशपुरमें रहते हैं।

यशपुर—छोटानागपुरके अन्तर्गत एक शैलमाला। यह अक्षा० २२°५१'४५" उ० तथा देशा० ८३° ३८' पू०के मध्य विस्तृत है। इस पर्वतका सर्वप्रधान शृङ्ग राणिझुला समुद्रपृष्ठसे ३५७२ फुट, भरमुरि ३३६० फुट, चिल्ली ३३० फुट, लिङ्गवी ३२६३ फुट, भुसमङ्गा ३२८५ फुट, तलोरा ३२५८ फुट, डुलुम ३२४८ फुट, गढ़ ३२२६ फुट और घासमा ३२२ फुट ऊंचा है। इससे भी और कितने छोटे छोटे गिरिशृङ्ग हैं। सभी शृङ्ग वनमालासे आच्छन्न है।

यशपुर—युक्तप्रदेशके तराई जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २९° १६' ४५" उ० तथा देशा० ७८° ५२' ३०" पू०के मध्य विस्तृत है।

यशपुर—युक्तप्रदेशके बन्दाजिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। इस ग्रामकी सीमा पर अवस्थित अभयपुर दुर्ग हुमायूं नामक एक डकैत सरदारसे बनाया गया है। उसने १८वीं सदीमें बहुत दलबल संग्रह कर अपनेको राजा घोषित किया था। केननदीकी नहर इसीके यत्न और खर्चासे निकाली गई थी। आज भी उसी नहरसे आसपासके गावोंमें जल जाता है।

यशव (अ० पु०) एक प्रकारका पत्थर। यह हरा-सा होता है। यह चीन और लंकामें बहुत होता है। इसकी नादली बनती है जिसे लोग छाती पर पहनते हैं। कलेजे, मेदे और दिमागको बीमारियोंको दूर करनेका इस पत्थरमें विलक्षण प्रभाव माना जाता है। यह भी कहा जाता है, कि जिसके पास यह पत्थर होता है उस पर बिजलीका कुछ प्रभाव नहीं होता। इसे 'संगेयशव' भी कहते हैं।

यशम (अ० पु०) यशव देखो।

यशरोता—काश्मीरराज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३२° २६' उ० तथा देशा० ७५° २७' पू०के मध्य विस्तृत है। पहले यह एक सामन्तराज्य था। राजा रणजित्सिंहने अंतिम राजाको राज्यच्युत करके सिंहासन अपनाया था।

यशवन्तराव—यशोवन्तराव देखो।

यशवन्तसिंह बघेले—तिरवा जिला कानपुरके रहनेवाले एक ग्रन्थकार। इनका जन्म सं० १८५५में हुआ था। ये संस्कृत, भाषा और पारसीके बड़े पण्डित थे। इन्होंने नायिकाभेदका शृङ्गारशिरोमणि नामक ग्रंथ, अलंकारका भाषाभूषण और अश्वचिकित्साका शालिहोत्र नामक तीन ग्रन्थ बनाये हैं। सम्वत् १८७१ में इनका स्वर्गवास हुआ।

यशश्चन्द्र (सं० पु०) राजिमतिप्रबोध नामक नाटकके प्रणेता। तीर्थङ्कर नेमीनाथ इस ग्रन्थके नायक थे।

यशश्चन्द्र—गढ़ादेशके एक अधिपति।

यशःशेष (सं० पु०) १ मरण, मृत्यु। (त्रि०) यश एव शेषोऽस्य। २ मृत, मरा हुआ।

यशःसागर—समासशोभा नामक व्याकरणके प्रणेता।

यशःस्वामिन्—एक प्राचीन कवि। ये ब्रह्मयशःस्वामिन् नामसे जनसाधारणमें परिचित थे।

यशस् (सं० क्ली०) अश्नुते व्याप्नोतीति अश (अशे-

देवने युट्च। उण् ४।१६०) इत्यसुन् युट्च। १ सुख्याति, अच्छा काम करनेसे होनेवाला नाम। पर्याय—कीर्त्ति, समज्ञा, समाख्या, कीर्त्तना, अभिख्यान, आज्ञा, समज्या। (शब्दरत्ना०)

किसीके मतसे दानादि पुण्यकर्म करनेसे जो ख्याति होती है उसीको यश कहते हैं। फिर कीर्त्ति एवं शूरता आदिसे जो ख्याति होती है उसीका नाम यश है। किसी-का कहना है, कि यश और ख्यातिमें प्रभेद है। वह यह है, कि जीवित व्यक्तिकी ख्यातिको यश तथा मृत व्यक्ति-की ख्यातिको कीर्त्ति कहते हैं। "दानादिप्रभवा कीर्त्तिः शौर्यादिप्रभाव यशः इति माधवी।"

कीर्त्ति और यशके बीच जो प्रभेद दिखाया गया वह युक्तिसंगत नहीं। किसीकी कीर्त्ति नष्ट नहीं करनी चाहिये। स्वकीर्त्ति या परकीर्त्तिनाशक व्यक्ति नरकगामी होता है। (ब्रह्मवैवर्त्त पु० प्रकृतिख० ४७ अ०) २ अन्न। "वयं स्यामयशसो जनेषु" (ऋक् ४।५२।११) ३ बड़ाई, प्रशंसा। (त्रि०) ४ यशस्वी, प्रतापवान्।

यशस्कवि—भाषानुशासनके प्रणेता।

यशसभट्ट—एक प्राचीन कवि।

यशस्कर (सं० त्रि०) यशस्करोति यश (कृञो हेतुताच्छी-ल्यानुलोम्येषु। पा ३।२।२०) इति ट। १ कीर्त्तिकारक, यश करनेवाला। (क्ली०) २ विष्णुक्षेत्रविशेष।

"विरंजं पुष्पवत्यायां वालस्वामीकरे विदुः।
यशस्करं विपाशायां माहिष्मत्यां हुताशनम्॥"
(नरसिंहपु० ६२ अ०)

(पु०) ३ वह ब्राह्मण जो शोभावतीपुरीमें उत्पन्न हुआ हो।

यशस्कर—अलङ्काररत्नाकरोदाहरण-सन्निबद्ध-देवीस्तोत्रके रचयिता। ये काश्मीरके निवासी थे।

यशस्करदेव—काश्मीरके एक राजा। ये जातिके ब्राह्मण थे।

यशस्करी (सं० स्त्री०) १ यशस्करी विद्या, वह विद्या जो यश बढ़ानेवाली हो। २ वृहज्जीवन्ती लता, बड़ी जीवंतीकी लता। ३ शंखिनी।

यशस्काम (सं० त्रि०) यशसि कामो यस्य। यशः-प्रार्थी, यशकी कामना करनेवाला।

यशस्कृत् (सं० त्रि०) यशस्कर, बड़ाई करनेवाला।

यशस्य (सं० त्रि०) यशसे हितं यशस्-यत्। १ यशके लिये हितकर, यशका उपकारक। स्त्रियां टाप्। २ जीवंती।

यशस्यु (सं० त्रि०) यशोलाभेच्छु, यश चाहनेवाला।

यशस्वत् (सं० त्रि०) यशोऽस्त्यस्य यशस्-मतुप् मस्य व। कीर्त्तिविशिष्ट, यशस्वी।

यशस्विन् (सं० त्रि०) यशोऽस्त्यस्येति यशस् (अस्मा-येति। पा ५।२।१२१) इति विनि। यशोविशिष्ट, कीर्त्तिमान्।

यशस्विन् कवि—साहित्यकौतूहल और सदुज्ज्वलपद्यकी टीकाके प्रणेता तथा गोपालके लड़के।

यशस्विनी (सं० स्त्री०) यशस्विन् स्त्रियां ङीप्। १ ख्यातिमती, कीर्त्तिमती। २ वनकार्पासी, वनकपास। ३ यवतिक्ता, शंखिनी नामकी लता। ४ महाज्योति-ष्मती। ५ सत्यव्रतकी पत्नी। (कथासरित्सा० ७३।२५७) ६ गंगा।

यशस्वी (सं० त्रि०) यशस्विन् देखो।

यशी (सं० त्रि०) यशस्वी, कीर्त्तिमान्।

यशुमति (हिं० स्त्री०) यशोदा देखो।

यशोगुप्त—मगधवासी एक बौद्ध-श्रमण। ये अपने गुरु ज्ञान यशदेवकी सहायतासे ५६४से ५७२ ई०तक छः बौद्ध-ग्रन्थ चीन भाषामें लिख गये हैं।

यशोगोपि (सं० पु०) कात्यायन-श्रौतसूत्रके एक भाष्य-कार। भाष्यकार अनन्तने इनका नामोल्लेख किया है।

यशोघ्न (सं० त्रि०) यशो हन्ति हन् क। यशोनाशक, कीर्त्तिको नष्ट करनेवाला।

यशोजी कङ्क—एक पहाड़ी महाराष्ट्र-सरदार तथा महाराष्ट्र-केशरी छत्रपति शिवाजीके एक विख्यात अनुचर। इन्हीं-के अमितपराक्रम, साहस और वीर्यबलसे शिवाजीने अनेक रणक्षेत्रोंमें जयप्राप्त किया था। ये शिवाजीके बायें हाथ थे, ऐसा कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं। इन्होंने कभी भी शिवाजीका साथ नहीं छोड़ा था। १६४६ ई०में इन्हींकी एकमात्र सहायतासे नीरानदीके किनारे-तोर्णा-दुर्ग दखल हुआ था। उस समयसे शिवाजीके भाग्याकाशमें गौरव-सूर्य शोभा पाने लगे।

शिवाजी देखो।

यशाद (सं० त्रि०) यशो ददातीति दा-क। १ यशोदाता, यश देनेवाला। २ पारद, पारा।

यशोदा (सं० स्त्री०) नन्दकी स्त्री जिन्होंने नन्दको पाला था। योगमायाने यशोदाके गर्भसे जन्मग्रहण किया। वसुदेव कृष्णको नन्दालयमें रख इस कन्याको ले गये थे। कृष्ण देखो।

महाभागवतपुराणके मतसे—शिवकी निन्दा सुन कर सतीने जब देहत्याग किया तब दक्ष और प्रसूति दोनों ही बड़े दुःखित हुए थे। भगवतीको फिरसे पानेके लिये दक्षने हिमाद्रिप्रस्थमें जा सौ वर्ष तक देवीकी आराधना की थी। उनकी स्त्री प्रसूतिने भी परमेश्वरीके निकट जा कर प्रार्थना की थी। उनकी आराधनासे संतुष्ट हो देवीने दर्शन दे कर कहा था, 'द्वापरके अन्तमें पृथिवी पर जा कर तुम्हारी कन्यारूपमें जन्म लूंगी, लेकिन कन्यारूपमें तुम्हारे घर रह नहीं सकती।' यह वर दे कर देवी अन्तर्हित हो गई। यथासमय दक्षने नन्दरूपमें और प्रसूतिने यशोदारूपमें जन्म ग्रहण किया।

(महाभागवतपु० ५०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्ण जन्मखण्डमें इस प्रकार लिखा है,—वसुओंके मध्य द्रोण नामक एक वसु श्रेष्ठ थे। धरा उनकी साध्वी सहधर्मिणी थी। एक समय धरा और द्रोणने कृष्णको पानेके लिये गन्धमादन पर्वत पर गौतमाश्रमके निकट सुप्रभा-तट पर हजार वर्ष तक कठोर तपस्या की। जब इतने पर भी कृष्णके दर्शन न हुए तब दोनों अग्निकुण्डमें कूद पड़नेके लिये तैयार हो गये। इसी समय दैववाणी हुई, 'हे वसुश्रेष्ठ! दूसरे जन्ममें तुम श्रीकृष्णके दर्शन पाओगे।' अनन्तर द्रोणने नन्दरूपमें और धराने यशोदारूपमें जन्मग्रहण किया।

(श्रीकृष्णजन्मख० ६ अ०)

२ दिलीपकी माता। (हरिवंश १८।६०) ३ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक जगण और दो गुरु-वर्ण होते हैं।

यशोदानन्द—एक भाषा-कवि। १८२८ संवत्‌में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने एक भाषाका ग्रन्थ बनाया है जिसका नाम 'वरवै नायिकाभेद' है। यह ग्रन्थ वरवै छन्दोंमें ही लिखा गया है।

यशोदामन् (२य)—एक पश्चिम क्षत्रप तथा २य सिंहके पुत्र। ३१८ ई०में ये विद्यमान थे।

यशोदेव (सं० पु०) १ बौद्धयतिभेद। २ रामचन्द्रके पुत्र।

यशोदेव—एक कवि। इन्होंने कच्छपघातवंशीय राजा महीपाल देवकी शिलालिपिकी रचना की।

यशोदेव—नेपालके एक राजा।

यशोदेवसूरि—पाक्षिकसूत्रवृत्तिके रचयिता, चन्द्रसूरिके शिष्य। इन्होंने अनहिलवाड़में रह कर ११८० सम्वत्‌में उक्त ग्रन्थ लिखा। ११७४ सम्वत्‌में उक्त नगरमें देवगुप्तके शिष्य यशोदेवने नवतत्त्वप्रकरणकी टीका लिखी। सम्भवतः ये दोनों यशोदेव एक व्यक्ति ही थे।

यशोदेवी (सं० स्त्री०) वैनतेयकी कन्या और बृहन्मनाकी पत्नी।

यशोदेवी—वङ्गालके सेनवंशीय राजा हेमन्तसेनकी महिषी।

यशोधन (सं० त्रि०) यश एवं धनं येषां। १ यश ही जिसका एकमात्र धन है। (पु०) २ एक राजाका नाम।

यशोधन—धनञ्जयविजयव्यायोगके प्रणेता।

यशोधर (सं० पु०) १ कर्म अथवा सावनमासका पांचवां दिन। २ उत्सर्पिणीके एक अर्हत्‌का नाम। (जैन) ३ रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न कृष्णके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ४ यशस्वी, कीर्त्तिमान्।

यशोधर—१ वात्स्यायन-कामसूत्रकी जयमङ्गला टीकाके प्रणेता। २ निबन्धचूड़ामणिके प्रणेता। ३ रसप्रकाश-सुधाकरके रचयिता।

यशोधर—एक राजाका नाम।

यशोधरभट्ट—प्रायश्चित्तविनिर्णयके रचयिता।

यशोधरमिश्र—एक विख्यात ज्योतिर्विद् तथा कंसारी मिश्रके पुत्र। इन्होंने दैवज्ञ-चिन्तामणि और फल-चन्द्रिका नामक दो ग्रन्थ लिखा। पाश्चात्य वैदिक देखो।

यशोधरा (सं० स्त्री०) १ बुद्धदेवकी पत्नी और राहुलकी माता। बुद्ध देखो। २ कर्म अथवा सावनमासकी चौथा रात।

यशोधरेय (सं० पु०) यशोधराका पुत्र, राहुल।

यशोधर्मन्—मालवके एक प्रबल पराक्रान्त शैव नृपति। मन्दसोर-शिलालेखमें इनका वर्णन मिलता है जो यों है,—

पूर्वमें लौहित्य या ब्रह्मपुत्रसे पश्चिम-समुद्र तक तथा उत्तरमें हिमालयसे दक्षिण महेन्द्राचल तक सभी आर्यावर्त्त इनके अधीन था। यहां तक, कि गुप्त और हूण राजे जिन सब प्रदेशोंको जीत न सके थे, इन्होंने उन सब प्रदेशोंको अपने हाथ कर लिया था। हूणाधिप मिहिरकुल भी उनकी अधीनता स्वीकार करनेमें बाध्य हुए थे। मन्दसोरकी दूसरी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि वे मालवसम्वत्‌में अर्थात् ५३२-३३ ई०में राज्य करते थे।

चीन-परिव्राजक यूएनचुवंगने मगधाधिप बालादित्य (नरसिंहगुप्त)-से मिहिरकुलकी पराजय घोषणा कर दी है। इससे पुराविद्‌गण समझते हैं, कि मगधाधिप बालादित्य और मालवपति यशोधर्मा दोनोंकी चेष्टासे मिहिरकुलका अधःपतन हुआ है। चीनयात्रीने उनके छः वर्ष पहले जिन मालवाधिप शिलादित्य (विक्रमादित्य)-का उल्लेख किया उन्हींका यथार्थ नाम यशोधर्मा था ऐसा बहुतोंका विश्वास है।

यशोधवल—चन्द्रावतीका एक परमार-सरदार।

यशोधा (सं० त्रि०) यशो दधातीति धा-क्विप्। कीर्त्तिधारी, यशस्वी।

यशोधामन् (सं० क्ली०) यशसः धाम। यशका आश्रय।

यशोधारा (सं० स्त्री०) सहिष्णुकी स्त्री और कामदेवकी माता।

यशोनन्दि (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम।

यशोबल—पद्मावतीके अहिपतिवंशी एक व्यक्ति।

यशोभगिन् (सं० त्रि०) यशस्वी, कीर्त्तिमान्।

यशोभगीन (सं० त्रि०) यशोभग (ख-च। पा ४।४।३२) इति ख। यशोभगविशिष्ट, यशस्वी।

यशोभाग्य (सं० त्रि०) यशोभगमत्वर्थे (वशो यश आदेर्भगाद्यल्। पा ४।४।१३१) इति वेदे यल्। यशोभागी, कीर्त्तिमान्।

यशोभट रमाङ्गद—एक पश्चिम क्षत्रप और दामसेनके पुत्र। ये १म यशोदामन नामसे प्रसिद्ध थे।

यशोभद्र (सं० पु०) १ एक वैयाकरण। जिनेन्द्रव्याकरणमें इनका उल्लेख है। २ एक जैन श्रुतकेवली।

यशोभीत—कलिङ्गके एक राजा। इनका प्रकृत नाम माधव था।

यशोभृत् (सं० त्रि०) यशो बिभर्त्ति भृ-क्विप्। यशस्वी, कीर्त्तिमान्।

यशोमती (सं० स्त्री०) १ यशोदा। (त्रि०) २ यशोमण्डिता, यशस्विनी।

यशोमती देवी—स्थाण्वीश्वरराज प्रभाकर-वर्द्धनकी पत्नी।

यशोमत्य (सं० पु०) मार्कण्डेयपुराणके अनुसार एक जातिका नाम।

यशोमाधव (सं० पु०) विष्णु।

यशोमित्र—एक प्रसिद्ध बौद्धाचार्य और बौद्ध दार्शनिक।

यशोरथ—बुद्धदेवके समसामयिक काशीके एक राजा। इनके पिता, पत्नी और बन्धुबान्धव सबोंने बौद्धधर्म ग्रहण किया था।

यशोराज—यशोरथ देखो।

यशोलेखा—राजकन्याभेद।

यशोवती—काश्मीरराज दामोदरकी स्त्री। दामोदर अपने पितृहन्ता श्रीकृष्णको मारनेके लिये कुरुक्षेत्रके पास युद्ध करने गये और उसी युद्धमें वे मारे गये। दामोदरके मारे जाने पर उनकी गर्भवती स्त्री यशोवती काश्मीरके राजसिंहासन पर आरूढ़ हुई। यशोवतीने काश्मीरका पालन बड़ी खूबीसे किया था। इन्हींके पुत्र द्वितीय गोनर्द थे।

यशोवती—वैशालीके सिंहसेनापतिकी पतोहू। नेपाली बौद्धोंके कल्पद्रुमावदानमें लिखा है, कि बुद्धशाक्य सिंहने वैशाली जा कर इन्हें धर्मोपदेश दिया था। यशोवतीने बुद्धके चरणोंमें मणिमाणिक्य अर्पण किया था जो चन्द्रातप रूपमें बुद्धके मस्तक पर शोभायमान था। बुद्धदेवने यशोवतीसे कहा था,—'तुम तीन कल्प बाद सम्यग्‌सम्बोधि लाभ कर रत्नमति बुद्ध नामसे परिचित होगी।'

यशोवन्दून—पञ्जाबके होसियारपुर जिलान्तर्गत एक उपत्यका। यह शिवालिक शैलमाला तथा हिमालय श्रेणीके बीच अवस्थित है। गांगेय अन्तर्वेदीकी देहरादून और नैनीराज्यकी खियार्दादून उपत्यकाके साथ यह मिली हुई है।

सावन नामकी पहाड़ी जलधारा इस उपत्यकाके

बीचोबीच हो कर वह चली है। इस उपत्यकाके बीच उना नगर समुद्रपीठसे १०४ फुट ऊंचा है। बहुत पहले यहां एक राजपूत सामन्तराज्य प्रतिष्ठित था। वहांके राजपूत लोग यशीवन्तवासी कह कर 'यशोवान' राजपूत नामसे स्वतन्त्र श्रेणीभुक्त हैं।

यशोवन्तनगर—युक्तप्रदेशके इटावा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ५२' ५०" उ० तथा देशा० ७८° ५६' ३०" पू०के मध्य विस्तृत है। १७१५ ई०में यशोवन्त राय नामक एक मैनपुरी कायस्थने यहां आ कर वास किया। वे ही इस नगरके स्थापनकर्त्ता माने जाते हैं, अतः उन्हींके नाम पर इस शहरका नामकरण हुआ। यह वाणिज्यप्रधान स्थान है, इस कारण बड़े बड़े धनी वणिक् और महाजन यहां आ कर बस गये हैं। उन्हीं लोगोंके यत्नसे यह शहर मन्दिरों, पुष्करिणियों तथा घाटोंसे सुशोभित है। १८५७ ई०की १६वीं मईको ३ नम्बरके देशी घुड़सवार-सेनादलने यहांके एक छोटे छोटे मन्दिरमें आश्रय ग्रहण किया था। विद्रोहियोंका दमन करनेमें अङ्गरेजीसेनाके साथ उनका एक युद्ध हुआ था।

शहरमें अनाज और मवेशी आदिके सिवा नील, घी और सूती कपड़ेका भी कारबार चलता है।

यशोवन्तराव—एक हिन्दू-कवि। फारसी भाषामें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। इनका बनाया हुआ 'दीवान' नामक ग्रन्थ मिलता है।

यशोवन्तराव (घोड़पड़े)—एक महाराष्ट्र-सरदार। ये १८०३ ई०में महाराष्ट्र-पक्षसे सन्धिविषयक प्रस्ताव ले कर अंगरेज-सेनापति जेनरल वेलेस्लीके शिविरमें गये थे। इन्हींके यत्नसे सिन्देराजके साथ अंगरेजोंका युद्ध बंद हुआ था। अंगरेजप्रतिनिधि एल्फिन्ष्टनके साथ इनकी मित्रता थी। ये अंगरेजोंको अपने प्रति प्रसन्न रखनेके लिये बाजीरावका गुप्त परामर्श उन्हें कह दिया करते थे। सच पूछिये, तो इन्हींकी विश्वासघातकतासे दाक्षिणात्यकी महाराष्ट्रशक्ति अंगरेजोंके हाथ लगी थी।

यशोवन्तराव (धवाड़े)—एक महाराष्ट्र-सेनापति। १७३१ ई०के गुजरात-युद्धमें इनके पिताके मारे जाने पर पेशवा बाजीरावने इन्हें सेनापति बनाया था। इस समय ये नाबालिग थे, इसलिये माता उमाबाई इनकी अभिभाविका हुई। बालक सेनापतिको अपना कार्य चलानेमें असमर्थ देख कर पेशवाने पिलाजी गायकवाड़को सेनाखासखेलकी उपाधि दे कर उस पद पर नियुक्त किया। पीछे १७५० ई० यशोवन्तने पेशवा बालाजीरावसे आधा गुजरात राज्य पाया था।

यशोवन्तराव (भट्टि) सिन्देराजका एक सेनापति। इसने १८१८ ई०में पिण्डारी सरदार चीतूको आश्रय दिया था। इसलिये राज-शत्रु जान कर मार्क्विस आव हेष्टिंसने इसे दण्ड देनेके लिये जेनरल ब्राउनको ससैन्य भेजा। उस सेनादलने २८वीं जनवरीको इसे पराजित कर जाबूर नगर तोपसे उड़ा दिया और उसका अधिकृत प्रदेश छीन लिया।

यशोवन्तराव (होलकर)—इन्दोरराज्यके होलकर-वंशीय महाराष्ट्रराज। इनके पिताका नाम तुकाजी राव होलकर था। १७९७ ई०में तुकाजी रावके मरने पर राजसिंहासन ले कर उनके चारों लड़के झगड़ने लगे। आखिर उनकी प्रधान रानीके गर्भसे उत्पन्न काशीराव सिंहासन पर बैठे। किन्तु छोटे मल्हार रावको सिंहासन पर बिठानेके लिये कामपत्नी-गर्भजात पुत्र यशोवन्तराव और विट्ठोजी बद्धपरिकर हुए। इस झगड़ेमें नाना फड़नवीशने मलहाररावका और सिन्देराज दौलतरावने दुर्वृत्त काशीरावका पक्ष लिया। दोनों पक्षके घमासान युद्धमें मलहारराव मारे गये। यशोवन्त राव नागपुरमें और विट्ठोजी कोल्हापुरमें जान ले कर भागे।

युद्धमें जयलाभ करके दौलतरावने मलहारके नाबालिग पुत्र खण्डरावको कड़े पहरेमें रखा और काशीरावने सिन्देराजका अनुग्रह पा कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। अतएव नानाफड़नवीशकी राजनैतिक शक्ति धूलमें मिल गई। इस समय सिन्देराजने महाराष्ट्रशक्तिमें ऊंचा स्थान अधिकार कर लिया था।

१८०० ई०में नाना-फड़नवीसकी मृत्यु हुई। इस समय यशोवन्तराव अपने दलको पुष्ट कर रहे थे। नागपुरसे भाग कर वे धार-राज्य आये। यहांके अधिपति

आनन्दरावने पेशवा और सिन्दे राजके भयसे उन्हें आश्रय तो नहीं दिया, पर उनको प्राण-रक्षाके लिये कुछ अश्वारोही सेना और कुछ रुपये दे कर विदा किया। यशोवन्तने इस मुट्ठी भर सेना ले कर नाना स्थानोंमें आक्रमण किया और लूटा, जिसमें इन्हें मोटी रकम हाथ लगी। इस समय अर्थलोलुप बहुतसे डकैत इनके दलमें मिल गये। सौभाग्य वशतः अमीर खाँ नामक एक पठान सरदार भी उनके दलमें मिल गया। इस पठान वीरकी वीरता और साहस देख कर यशोवन्तराव बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने समझ लिया, कि इसकी सहायतासे वे होलकर राज्यका उद्धार आसानीसे कर सकेंगे।

इसके बाद यशोवन्तने अपनेको फिर बन्दीभावमें रहना तथा खण्डेरावके प्रतिनिधि होना घोषित कर दिया केवल यही नहीं, वे होलकर-वंशके मान और गौरव तथा दौलतराव सिन्देकी अधीनतासे होलकरराज्यको उद्धार करनेके लिये राज्यके अनुगत सभी व्यक्तियोंको उत्तेजित करने लगे।

इस प्रकार अपने पक्षको मजबूत कर यशोवन्त नर्मदा नदी पार गये और सिन्देराजके अधिकृत ग्रामोंको लूट कर वहांकी प्रजासे कर उगाहने लगे। इस समय उन्होंने जो सिभेलियर डुँड्रेनेक द्वारा परिचालित काशीरावके सेनादलको परास्त कर दिया था, उससे उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। सेनापति डुँड्रेनेक दलबलके साथ आ कर इनसे मिल गये। इसके पास रकम काफी थी, सभी सेनाओंका वेतन समय पर चुका दिया करते थे। यह देख कर बहुतसे लोग इनकी सेनामें भर्त्ती होने लगे। इस प्रकार बलदर्पित हो यशोवन्तने सिन्देराजके अधिकृत मालवराज्यको तहस नहस कर दिया।

इस प्रकार वार वार यशोवन्तके उपद्रवसे तंग आ कर सिन्देराज उनका दमन करनेके लिये आगे बढ़े, पर यशोवन्तकी दुर्द्धर्ष लुण्ठन-प्रवृत्तिका कुछ भी ह्रास न कर सके। इस समय मालवराज्य यशोवन्तके वार वार पीड़नसे परेशान था।

इधर सिन्देराज बहुत-सी सेना ले कर उत्तरदेशमें आ रहे हैं, सुन कर यशोवन्त अपने दलबलके साथ उज्जयिनीके समीप डट गये। उज्जयिनी नगरको लूट करना यशोवन्तका उद्देश था; किन्तु सिन्देराजने बुर्हानपुरसे कर्नल जान हेसिंस और माइण्टायरके अधीन एक दल सेना भेजी जिससे उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ। अब यशोवन्तने कोई उपाय न देख दोनोंको भिन्न भिन्न स्थानमें आक्रमण करना ही अच्छा समझा। तदनुसार न्युरी नामक स्थानमें माइण्टायरको और उज्जयिनीके समीप हेसिंसको दलबलके साथ परास्त किया। पीछे उज्जयिनीको लूट कर इन्होंने सिन्देराजके घुड़सवार सेनादलको नर्मदाके किनारे हराया। इस युद्धमें सिंदे-पक्षमें सेनापति देवजी गोखले, लेफ्टनाण्ट रोबोथम और ३०० सेना मारी गई तथा होलकरके पक्षमें इससे तिगुनी क्षति हुई थी। पीछे सिन्दे-दलपति ब्राउनरिग भी हार खा कर भागे। यह घटना १८०१ ई०में घटी।

मालव और उज्जयिनीमें यशोवन्तका दौरात्म्य और नर्मदाके किनारे सिन्दे-सैन्यका पराभव सुन कर सिंदेराज बहुत मर्माहत हुए और इस अत्याचारीके हाथसे पेशवाको कण्टकशून्य करनेके लिये सूर्जरावसे सहायता मांगी। तदनुसार सूर्जरावको परिचालित १० हजार घुड़सवार सेना तथा कर्नल सादरलण्डकी सेनाने नर्मदा पार कर इन्दोर राजधानी पर चढ़ाई कर दी। युद्धमें यशोवन्त पराजित हुए सही, पर उनकी भाग्यलक्ष्मीने उन्हें छोड़ा नहीं। फिरसे लुण्ठनप्रिय सेनादलने आ कर जावूदमें उनका साथ दिया।

अनन्तर इन्होंने पेशवाके अधिकृत राज्योंको लूटनेके लिये फतेसिंहके अधीन एक सेनादल दाक्षिणात्यमें भेजा और आप राजपूताना जीतने अग्रसर हुए। इन्होंने सोचा था, कि सिन्देराज उनका पीछा करेंगे और दाक्षिणात्यकी उनकी चढ़ाई सिद्ध होगी। किन्तु जब इन्होंने देखा, कि सिन्देपति उत्तरकी ओर न बढ़े, तब इन्होंने उत्तरमें ही प्रचुर धन जमा लिया। इधर दक्षिणापथमें फतेसिंह और शाहअह्मद खाँ नामक यशोवन्तके दो सेनापति पेशवाके अधिकृत प्रदेशके प्रायः सभी ग्रामोंको लूटने लगे। इस प्रकार उन्होंने पेशवाकी राजधानी तक धावा बोल दिया था। राहमें बिलचूड़के जागीरदार नरसिंह खण्डेरावने डेढ़ हजार घुड़सवारसेना

ले कर उन दोनोंको रोका। दुर्द्धर्ष सेनापतियोंके हाथसे जागीरदारका एक भी योद्धा रणक्षेत्रसे लौटने न पाया। इधर अङ्गरेजराजके साथ महाराष्ट्रनेता पेशवाका संधि-प्रस्ताव चल रहा था। अतएव सिन्देपति और रघुजी भोंसलेको उसी ओर ध्यान देना पड़ा था। इस कारण पेशवाने होलकरके विरुद्ध युद्धघोषणा न की। लक्षादादाके मरने पर अम्बाजी इङ्गिलीके द्वारा बाइयोंके साथ कुल इन्तजाम ठीक करा कर उन्होंने सदाशिव भाऊ भास्करको यशोवन्तराव होलकरके विरुद्ध भेजा। यशोवन्तराव पहले तासीके दाहिने किनारे युद्ध करनेकी इच्छासे अग्रसर हुए। किन्तु कुछ समय बाद ही इन्होंने पूनाकी ससैन्य यात्रा कर दी। पेशवा इनके आनेकी खबर सुन कर डर गये और इन्हें रोकनेके लिये आगे बढ़े। किन्तु बचावका उपाय न देख वे मीठी मीठी बातोंसे इन्हें प्रसन्न करने लगे और यह भी बोले, कि जहां तक हो सकेगा आपका अभिलाष पूर्ण करनेकी मैं चेष्टा करूंगा। यशोवन्तने प्रसन्न हो कर कहला भेजा, *जब मैंने अपने मरे भाई* विट्ठोजीको फिर न पाया, तब मेरी प्रार्थना है, कि मेरे भतीजे खण्डेरावको मुक्तिदान तथा हमारे वंशके अधिकारभुक्त प्रदेशोंको लौटा दें। सदाशिव भाऊ भास्करने जब सुना, कि बाजीराव यशोवन्तके प्रस्तावको स्वीकार कर लेंगे, तब बड़ी तेजीसे वहां आये और खण्डेरावको जो उसके आनेके पहले कारामुक्त कर दिया गया था, फिरसे आशीरगढ़ दुर्गमें भेज दिया।

यशोवन्तराव अपनेको सदाशिव भाऊसे कमजोर देख कर युद्धमें प्रवृत्त न हुए। वे अहमदनगरको पार कर जेजुर आये और अपने सेनापति फतेसिंहसे मिले। इसके बाद इन्होंने राजवाड़ी गिरिसङ्कटको पार कर पूनाके निकटवर्ती स्थानमें छावनी डाली। इधर सदाशिव भाऊ भास्कर होलकर सैन्यका परित्याग कर जौलना और भीरको अतिक्रम कर बड़ी तेजीसे पूना आये और पेशवा-सैन्यके साथ मिल गये। अनन्तर अलीवेला घाटीको पार कर मिलित सेनादल ले कर सदाशिव युद्धके लिये उपस्थित हुए। पहले कुछ दिन तो सन्धिका प्रस्ताव चलता रहा, पर कोई फल न निकला। आखिर २५वीं अक्टूबरको दोनों दलमें विपुल संग्राम छिड़ गया। दोनों दलकी सैन्यसंख्या समान थी। यशोवन्तके अधीन १४ बटेलियन पदातिक दल, ५ हजार अनियमित सेना और ५ हजार घुड़सवार थे।

दोनों दलने रणक्षेत्रमें उतर कर तोपें दागीं। युद्धमें पराजयकी सम्भावना देख कर यशोवन्त असीम साहसके बल अपनी घुड़सवार सेना ले कर रणक्षेत्रमें कूद पड़े। क्षणभरमें सिन्देसेना हार खा कर भागी। रणजयी उन्मत्त सेनादलने नगरको लूटना चाहा। यशोवन्तने मना करने पर भी लुण्ठनप्रिय सेनादल लोभका परित्याग न सका। वे लोग जलप्रवाहकी तरह धीरे धीरे नगरकी ओर बढ़ने लगे। यशोवन्तने अपनी वाहिनीको इस दुष्कर्मसे रोकनेके लिये उनके विरुद्ध हथियार भी उठाया था।

पूनामें प्रवेश कर, दूसरे दिन सवेरे उन्होंने अङ्गरेज रेसिडेण्ट कर्नल क्लोजको बुला भेजा। पीछे पेशवा और सिन्देराजके साथ मेल कर लेनेकी बात छिड़ी। मि० क्लोज इसका फैसला करेंगे, यही स्थिर हुआ। आखिर यशोवन्तने नगर रक्षाका सुबन्दोबस्त करके पेशवाके अधीनस्थ व्यक्तियोंको मीठी मीठी बातोंसे प्रसन्न करने लगे। उन्होंने पेशवाको पूना आने और राज्यभार ग्रहण करनेके लिये विशेष अनुरोध किया था, पर सन्दिग्ध पेशवा प्राणके भयसे बसईकी ओर भाग गये।

इसके बाद होलकरने मध्यस्थताका बहाना दिखा पूनावासीको तंग करके उनसे रुपये मुड़ने लगे। यहां तक, कि पूनावासी प्रत्येक धनवान् व्यक्तिका यथासर्वस्व लूटा जाने लगा। बहुतोंने तो अत्याचारियोंकी यन्त्रणाको सह्य न कर प्राण दे दिये। यशोवन्तके सहयोगी अमृतराव इस कार्यकी विशेष पोषकता की थी। यशोवन्तरावने जनसाधारणके निकट अपनी निरपेक्षता दिखानेके लिये चिन्तपन्त और बैजनाथ पन्त नामक दो अत्याचारीको कैद किया।

ऐसी अवस्थामें पूनानगरमें रह कर जब दोनों पक्षमें कोई मेल मिलाप न हुआ, तब १८०२ ई०को २०वीं नवम्बरको उन्होंने स्वयं बसई यात्रा कर दी। कर्नल क्लोज पहले ही वहां पहुंच गये थे। १८०३ ई०में बसई-

सन्धिके बाद यशोवन्तराव मालवके अन्तर्गत पैतृकराज्य-में गये। इस समय यशोवन्त पेशवाकी गुप्त अभिसंधि-में शामिल हो कर कहीं अङ्गरेजके विरुद्ध खड़े न हो जावें, इस भयसे अङ्गरेज-गवर्मेण्ट होलकरके साथ मेल करनेको आगे बढ़ी। षड़यन्त्रकारी महाराष्ट्रदलने उनसे सहायता मांगते हुए, जब उन्हें दाक्षिणात्य बुलाया तब उन्होंने बड़े दुःखित हो कर अपनी असम्मति प्रकट की थी। किंतु इनके हृदयमें जो कोई थी उसे इन्होंने आगे चल कर कर्मक्षेत्रमें दिखला दिया था।

१८०३ ई०के महाराष्ट्रयुद्धके समय यशोवन्त मालव-में रहकर भारतका भाग्यचक्र और अंगरेजराजको सब देख रहे थे, किन्तु भारतवर्षकी ऐसी दुर्दिनके समय भी इन्होंने लुण्ठनवृत्ति छोड़ी नहीं। शत्रु मित्र दोनोंसे वे अन्यायपूर्वक अर्थ संग्रह करते थे। जब अंगरेजी जयवार्त्ता भारतवर्षके चारों ओर प्रतिध्वनित होने लगी, तब इन्होंने स्वकपोलकल्पित दुरभिसन्धिको कार्यमें परि-णत करनेकी आशासे धीरे धीरे भरतपुरराज, रोहिलो-गण, सिखसम्प्रदाय और राजपूत वीरोंसे सहायता मांग भेजी। वे चाहते थे, कि महाराष्ट्र और अंगरेज-युद्धमें जब एक पक्ष कमजोर हो जायगा, तब दूसरे पर चढ़ाई कर अपनी प्रधानता लाभ करनेमें सुविधा होगी। किन्तु इनका यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। इन्होंने सिन्दे-राजको दूतके हाथ कहला भेजा, कि अंगरेजोंके साथ जो सन्धि हुई है, उसे तोड़ कर फिरसे युद्धक्षेत्रमें कूद पड़े। किन्तु सिन्दे-राजने इस प्रस्तावको स्वीकार न किया; क्योंकि, एक बार रणक्षेत्रमें वे लाञ्छित हो चुके हैं, अब फिरसे चिरशत्रु यशोवन्तके जालमें वे फंसना न चाहते थे। उन्होंने अंगरेज-गवर्मेण्टके प्रति सहानुभूति दिख-लाने तथा उनका अनुग्रह पानेकी आशासे यशोवन्तकी कूटनीति उन्हें लिख भेजी। अंगरेजरेसिडेण्टको यह संवाद देनेके बाद भी महाराष्ट्रीय प्रधान प्रधान अमा-त्योंने सिन्देराजसे यशोवन्तके साथ मेल करने और अंगरेजोंके विरुद्ध खड़े होनेके लिये अनुरोध किया था। क्योंकि, उनका विश्वास था, कि यशोवन्तके अमिततेजसे महाराष्ट्रशक्ति पुनः सञ्जीवित हो सकती है। परन्तु सिन्देराजने किसी की भी बात पर कान नहीं दिया।

महाराष्ट्र-सेनादलको परास्त कर अंगरेजी सेना दाक्षिणात्यके नाना स्थानोंमें फैल गई। लेकिन उत्तर-भारतमें रह कर अंगरेजसेनापति लार्ड लेक होलकरकी बाट जोह रहे थे। उनके वचनों तथा विरोधी मनो-भावकी ओर लक्ष्य करके लार्ड लेकने अच्छी तरह समझ लिया था, कि यशोवन्त राव एक न एक दिन अंगरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण करेंगे ही। इस समय दोनोंमें बन्धुता-सूचक पत्रोंका अदलबदल किया गया। किन्तु तत्-कालीन भारतराजप्रतिनिधि जेनरल लेकको सूचना दी गई, जिससे "होलकर बहुत जल्द अंगरेजी सीमासे अपना सेना-दल हटा ले जायें। वे राजपूत अथवा अन्यान्य जातिके ऊपर अपना अधिकार रखनेके लिये जो सेना रखेंगे उसे अंगरेज-राज किसी हालत खोकारसे नहीं कर सकते तथा उनके और उनके भाई काशीरावमें जो विवाद चला आ रहा है, अंगरेज गवर्मेण्ट पेशवासे सलाह ले कर उसका निबटारा करेगी।' तदनुसार यशोवन्तराव अपनी सेनाको दूसरी जगह ले जानेके लिये तैयार हो गये तथा उन्होंने रामगढ़में सेनापति लेकके स्थापित शिविरमें वकील भेजे।

वकीलोंने अंगरेजी शिविरमें आ कर कहा कि, 'यशो-वन्त पूर्व प्रथानुसार चौथ उगाहेंगे। बुन्देलखण्ड तथा गङ्गा और यमुनाके मध्यवर्त्ती इटावा आदि बारह जिले उनके अधिकारमें ही रहेंगे। सिन्देराजके साथ अंग-रेजोंकी जो सन्धि हुई है, उस शर्त्तके अनुसार यशो-वन्तके भी साथ अंगरेजोंको एक नई सन्धि करनी पड़ेगी और उनका पैतृक हरियाना प्रदेश उन्हें लौटा देना होगा।"

होलकरका यह प्रस्ताव अंगरेजराजने स्वीकार नहीं किया। क्योंकि उन्होंने जो सब प्रदेश जीते हैं वे सभी इस समय दूसरेके हाथ हैं, अतः उनकी प्रार्थना स्वीकार न की गई। आखिर दोनों पक्षमें वाद-विवादके बाद यही तय हुआ, कि अंगरेजी सीमा छोड़ कर यदि होल-कर न चले जायगे, तो उनके साथ अंगरेजोंकी मित्रता न रहेगी।

दोनों पक्षकी सन्धिका प्रस्ताव ले कर प्रायः ६ सप्ताह बीत गये। इसी समय यशोवन्तरावने जनरल

वेलेस्लीको पत्र द्वारा सूचित किया, कि उन्होंने होलकर-वंशके पूर्वाधिकृत कुछ जिले अधिकार कर लिये। इसके साथ साथ उन्होंने सिन्देराजके अधिकृत अजमीर प्रदेशको भी लूटना आरम्भ कर दिया। धीरे धीरे इन्होंने अजमीर दुर्गमें भी घेरा डाला और दूसरा सेनादल जयपुर सीमा पर लूटपाट मचाने लगा।

इस समय होलकरकी अन्याय प्रार्थनाका प्रस्ताव भारतप्रतिनिधिके निकट पहुंचा। उन्होंने होलकरका भाव समझ कर निश्चेष्ट रहना अच्छा न समझा। होलकरका औद्धत्य रोकनेके लिये जनरल लेक और जनरल वेलेस्लीको कहला भेजा। तदनुसार वेलेस्ली दलबलके साथ मालवकी ओर रवाना हुए। सिन्देराजको भी कहा गया, कि वे अङ्गरेजोंके साथ मिल कर यशोवन्तकी शक्ति चूर करें।

१८वीं अप्रिलको जनरल लेक-परिचालित सेनादलने जयपुरकी यात्रा कर दी। अङ्गरेजी सेनाको समागत देख होलकर अपनी राज्यसीमासे भाग आये तथा चम्बल नदी पार कर गये।

इधर लेकके अधीनस्थ सेनापति डानने बड़ी तेजीसे जा कर तोङ्कबासपुर-दुर्ग पर चढ़ाई कर दी। वेलस्लीकी परिचालित ब्रिगेडियार जनरल मनसनने यशोवन्तका पीछा किया। सिन्देराजकी सेना यद्यपि इस समय बढ़ी चढ़ी थी, तो भी मनसन खुशालगढ़के निकट होलकरके हाथसे पराजित हो पीछे हटे।

इस प्रकार मनसनको पीछे हटा कर यशोवन्तराव ६० हजार घुड़सवार, १५ हजार; पदातिक और कमानवाही सेना तथा १६२ कमान ले कर असीम साहससे मथुराकी ओर अग्रसर हुए। मथुरामें महाराष्ट्र दलके पहुंचने पर अङ्गरेजी सेना जान ले कर भागी।

यहां आ कर महाराष्ट्रदलने पूर्ववत् अत्याचार और उत्पीड़न करना आरम्भ कर दिया। इसके बाद होलकर सेनाके दिल्ली आक्रमण करने पर लार्ड लेक राजधानीकी रक्षाके लिये दलबलके साथ चल पड़े। दिल्लीके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंमें दोनों पक्षमें कुछ दिन युद्ध चलता रहा। पीछे लेक-परिचालित सेनाके आगे बढ़ने पर होलकर भागे। भागते समय राहमें अङ्गरेजोंके जो सब देश मिले उन्हें यशोवंतने अस्त्र और अग्निसे तहस नहस कर डाला। इस प्रकार लूटपाट करते हुए महाराष्ट्रीय दल दीग-दुर्गके समीप पहुंचा। अङ्गरेज सेनापति भी उनके पीछे पीछे गये और एकाएक टूट पड़े। दीग-रणक्षेत्रमें पराजित और क्षतिग्रस्त हो यशोवन्त अश्वारोही सेनादलके साथ फरूखाबादकी ओर अग्रसर हुए। अतर्कित भावमें वहां पहुंच कर इन्होंने अस्त्रघातसे प्रायः ३ हजार विपक्षसेनाको यमपुर भेज दिया।

यहांसे लेक द्वारा खदेरे जाने पर इन्होंने फिरसे दीगको प्रस्थान किया। अङ्गरेजी सेनाके दीगमें घेरा डालने पर यशोवन्त ससैन्य भरतपुरकी ओर चल दिये। भरतपुरके राजासे मिल कर यशोवंत कहीं अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े न हो जायं, इस भयसे जनरल लेक १८०५ ई०के आरम्भमें ही भरतपुरमें घेरा डालनेके लिये रवाना हुए। होलकर और अमीर खाँने इस युद्धमें भरतपुर-राजको मदद पहुंचाई थी। भरतपुर देखो।

भरतपुर-युद्धके बाद सिन्देपति दौलतरावके साथ अङ्गरेजराजको अनबन हो गई। तदनुसार अन्यान्य महाराष्ट्र सरदारोंके उसकानेसे सिन्देपति दौलतरावने होलकरका पक्ष लिया। होलकर और सिन्देराज एकत्र मिल कर कोटासे अजमीर आये। लार्ड लेक यह संवाद पा कर भरतपुर छोड़ उनके पीछे पीछे चले।

इस समय मराठोंके साथ युद्ध करके वृथा बलक्षय करना अङ्गरेजोंने अच्छा न समझा। फिरसे शांति-स्थापन करनेके लिये मार्किस आव कार्नवालिस भारतवर्ष आये। उन्होंने सिन्देराजका अपराध क्षमा कर उन्हें तदधीन प्रदेश, गोहदके राणाको यमुना नदीके पार्श्ववर्त्ती और होलकरको तदधिकृत राज्य लौटा देना चाहा। किंतु ऐसा करनेके पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। कार्नवालिस देखो।

इस समय सिन्देराजकी कार्यावलीका राजनैतिक परिवर्त्तन देख कर यशोवन्त दलबलके साथ पंजाब गये। लोगोंका ख्याल था, कि वे सिख और अफगानोंको अपने दलमें लानेके अभिप्रायसे वहां गये हैं। लार्ड लेकने यह खबर पा कर स्वयं सेनादलके साथ उनका पीछा

किया। इधर उनके आदेशसे जनरल जोन्स और कर्नल वेलने दोनों ओरसे आ कर यशोवन्तको घेर लिया। सिखोंसे जब सहायता न मिली, तब वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये और उनकी अंगरेजशक्तिको प्रतिद्वन्द्विताकी आशा चूर हो गई। अब कोई उपाय न देख इन्होंने अंगरेजोंसे मेल करना चाहा। अंगरेज भी निरपेक्ष रह कर मध्यस्थरूपमें महाराष्ट्र-विप्लवकी मीमांसा कर देनेको राजी हुए।

सन्धिका प्रस्ताव ले कर यशोवन्तरावका एजेण्ट विपाशा नदीतीरस्थ लार्ड लेकके शिविरमें पहुंचे। १८०५ ई०की २४वीं दिसम्बरको दोनों पक्षमें सन्धि हो गई।

वसई, वड़ोदा और सलवाईकी सन्धिके बाद महाराष्ट्रशक्ति अंगरेजोंके मन्त्रणाचक्रजालमें एकदम आबद्ध हो गई। उन्हें फिर शिर उठानेका मौका न दिया गया। रघुजी भोंसले, सिंदे और होलकर अपनी अपनी संपत्तिका अधिकारी हो गये। किन्तु जिससे वे आपसमें लड़ाई झगड़ा न करने पावें इस ओर अंगरेज गवर्मेण्टने कड़ी निगाह रखी।

यशोवन्त राव होलकरने हिन्दुस्तानसे लौट कर अपने दाक्षिणात्यवासी घुड़सवार सेनादलमेंसे २० हजार सेनाको अपना घर जानेको कहा। पहलेका वेतन परिशोध न होनेके कारण वे सबके सब बागी हो गये। इस पर यशोवन्तने अपने भतीजे खण्डेरावको जामीनस्वरूप उनके हाथ सौंपा। उस उन्मत्त सेनादलने खण्डेरावको होलकरवंशका प्रकृत उत्तराधिकारी बतलाते हुए तमाम घोषित कर दिया। पदातिक सेनादलका भीषणभाव देख कर यशोवन्तने जयपुरराजको कुछ रुपये देनेको बाध्य किया और उसी रुपयेसे उन लोगोंका बाकी वेतन चुकाया। इस प्रकार विद्रोह शान्त हुआ। निर्दोष खण्डेरावको विद्रोही-दलका उत्तेजनाकारी समझ कर दुर्वृत्त यशोवन्तने छिपके उसका काम तमाम किया। इतने पर भी उनकी क्रोधवह्नि न बुझी। अपने भाई काशीरावकी गुप्त हत्या कर इन्होंने हृदयकी ज्वाला बुझाई।

इस प्रकार भाई और भतीजेकी हत्या कर यशोवंत-पापपङ्कमें निमज्जित हुए। दुश्चिन्ताके मारे उनका दिमाग खराब हो गया। धीरे धीरे उन्मादरोगने उन्हें घेर दबाया। उनका रोग बढ़ता देख १८०८ ई०में उन्हें शृङ्खलाबद्ध कर रखा गया। आखिर ३ वर्ष यंत्रणाभोगके बाद १८११ ई०की २०वीं अक्तूबरको इनकी मृत्यु हुई।

उनका चरित्र अनुशीलन करनेसे मालूम होता है, कि वे असाधारण शक्तिशाली वीर और साहसी पुरुष थे। सहिष्णुताके कारण उनके उद्यमपूर्ण जीवनमें कभी भी सामर्थ्यका अभाव न रहा। बहुतसे युद्धोंमें इन्होंने जयलाभ किया था, पराजयसे भी वे कभी क्षुब्ध नहीं हुए। महाराष्ट्र और फारसी-भाषामें वे सुपण्डित थे। उनके सरल अंतःकरण, सदय व्यवहार और सामरिक तीक्ष्ण बुद्धिने उन्हें तमाम समादृत बना दिया था।

यशोवन्तराव—महाराष्ट्रके एक परोपकारी साधु गृहस्थ। इनका दूसरा नाम था यशोवंत महादेव भोसेकर वा देव मामलेदार। १७३७ शकके भाद्रमास (१८१५ ई०)में पूना नगरमें मामाके घर इनका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम महादेव ढण्डो और माताका नाम हरिबाई था। शोलापुर जिलेके पण्ढरपुर तालुकके अंतर्गत भोसे ग्राममें महादेव रहते थे। बचपनसे ही यशोवंतका हृदय करुणारससे भर गया था। जब इनकी उमर सात वर्षकी हुई, तब प्रतिदिन वे स्नान करके पूजाके घरमें बैठते थे तथा उनके पिता और माता किस प्रकार पूजा करती हैं उसे ध्यान लगा कर देखते थे। भोजनके बाद जब ये अपने साथियोंके साथ खेलने बाहर निकलते तब शिलाके ऊपर फूल और जल चढ़ाते थे। अन्यान्य बालकोंको ले कर उस शिलाके सामने "विट्ठल विट्ठल" कह कर ताली बजाते और बड़े आनन्दसे नाचते थे। आठ वर्षकी उमरमें इन्होंने लिखना पढ़ना शुरू कर दिया। साथियोंको यह बहुत चाहते थे। जब कभी किसीको किसी चीजकी जरूरत पड़ती थी, तब ये यथासाध्य उसकी सहायता करते थे। पिताके पूछने पर यशोवंत कहा करते, कि वे लोग बहुत कष्ट पाते हैं, इसलिये बीच बीचमें उन्हें मदद पहुंचाया करता हूं। जब कोई साथी इन्हें गाली गलौज देता, तब ये बदला चुकानेके लिये उसे प्यार करते

थे। स्थिरभावसे सभी सह लेते थे, यहां तक, कि इस सम्बन्धमें माता पितासे भी कुछ नहीं कहते थे। उपनयन-संस्कारके वाद ब्राह्मणके आवश्यकीय नित्य कर्मों का नियमपूर्वक पालन तथा कुलदेवताको पूजा करना ही उनका प्रात्यहिक कार्य था।

इसके वाद यशोवंतके मामा इन्हें कोपरगञ्जमें लाये। कुछ दिन वाद पहले यहांके मामलेदार और पीछे कलकृरके अधीन दश रुपयेकी एक नौकरी मिली। दक्षताके साथ वे अपना कार्य करते थे, इस कारण वहुत जल्द इनकी पदोन्नति हुई। आखिर १८५१ ई०में ८० रु० मासिक पर चालीसगांव तालुकके मामलेदार नियुक्त हुए। धीरे धीरे नाना स्थानोंमें प्रतिष्ठा लाभ कर १८५७ ई०में १७५ रुपये वेतन पर नियुक्त हो एकएडल तालुक गये। इसी साल सिपाही-विद्रोह हुआ। राजपुरुषोंको इन्होंने विशेषरूपसे सहायता पहुंचाई थ, इस कारण गवर्मेण्टके वड़े खैरख्वाह हो गये।

एकएडल तालुकसे ये फिर आमड़न गये। यहां कई वर्षों तक इन्होंने सपरिवार वास किया था। इस समय इनकी धार्मिकता वढ़ रही थी। किसी व्यक्तिका कष्ट देखनेसे वह स्थिर रह नहीं सकते थे, जहां तक हो सकता था उसका दुःख दूर करते थे। इन सव कारणोंसे इनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। इनकी सहायता पानेकी आशासे दूर दूर देशके लोग इनके निकट आने लगे। इनकी स्त्री सुन्दरावाई भी नाना गुणोंसे विभूषित थीं। वे सचमुच उनकी सहधर्मिणीकी तरह काम करती थीं। अतिथि-सत्कारमें उनका विशेष यत्न था। यशोवंतकी दयाका परिचय पा कर दलके दल दीनदुःखी उनके घर पर आया करते थे। इतने लोगोंके भोजनका इन्तज़ाम करना उनके जैसे व्यक्तिके लिये सहज नहीं था, इसलिये इन्हें ऋणग्रस्त होना पड़ा था। इस समय सभी इन्हें देवताके समान पूजने लगे। इस समयसे लोग इन्हें 'देवमामलेदार' कह कर पुकारते थे।

सुख किसीके भाग्यमें चिरस्थायी नहीं होता। यशोवन्त राव दुष्ट लोगोंके चक्रान्तमें पड़ गये। कुछ लोगोंने इनके विरुद्ध गवर्मेण्टके निकट शिकायत पेश की, कि यशोवंत दिन भर लोगोंसे सम्भाषण और उनका पूजा ग्रहण करते हैं, अपने कार्यकी ओर विलकुल ध्यान नहीं देते। किस उद्देशसे वे सव मनुष्य इनके विरुद्ध हो गये थे, मालूम नहीं। जो कुछ हो, गवर्मेण्टने इन्हें नौकरीसे हटा दी। इस विषयमें इन्होंने गवर्मेण्टके पास कुछ भी लिखा पढ़ी न की। किन्तु कुछ दिन वाद कमिश्नरको मालूम हो गया, कि यशोवंत राव निर्दोष हैं, लोगोंने इनके नाम मिथ्या अभियोग लगाया है। अव उन्होंने इन महापुरुषके प्रति अनुग्रह प्रकट किया और इन्हें फिरसे पूर्वपद पर प्रतिष्ठित कर सहदा-तालुकमें भेज दिया। इसके वाद ही इनके माता-पिता एक एक कर स्वर्गको सिधारे। पिता और माताकी ,ये विशेष भक्ति करते थे। कार्यालय अथवा किसी दूसरी जगह जानेके पहले अथवा किसी विशेषकार्यमें प्रवृत्त होनेके समय ये उनके चरणोंकी वन्दना कर अनुमति ले लिया करते थे। अभी उन सजोव देवदेवीको खो कर वे वड़े दुःखित हुए। १८६६ ई०में इन्हें साटना तालुकमें जाना पड़ा। इनकी ख्याति चारों ओर इस प्रकार फैल गई, कि दूर दूर देशसे भी लोग इनके दर्शनार्थ आने लगे। जिस प्रकार एकादशीके उपलक्ष्ममें लोग पण्ढरपुरमें जमा होते हैं उसी प्रकार साटनामें भी यात्रियोंकी भीड़ लग जाया करती थी। वहुतेरे तो विना इनके दर्शनके भोजन तक भी नहीं करते थे। जिस रास्तेसे ये अपना कार्यालय जाते थे वह रास्ता साफ सुथरा रहता था। इसका कारण यह था, कि गृहस्थ लोग अपने अपने घरके सामने परिष्कार कर रखते थे तथा स्त्रियां यत्नपूर्वक अल्पना देती थीं। कार्यालयसे शामको लौटते समय एक अपूर्व दृश्य दिखाई देता था। गृहस्थ अपने अपने घरके सामने रोशनी वाल कर शोभा करते थे।

यशोवंतकी सुख्याति सुन कर सिन्दिया महाराजको इनके दर्शनकी इच्छा हुई। उन्होंने गवर्मेण्टको अनुमति ले कर यशोवंतके पास निमंत्रण पत्र भेजा। यशोवंत निमंत्रणको स्वीकार कर वम्बई नगर आये। सिन्दियाके महाराजने इनका अच्छी तरह स्वागत किया। अतिथि सत्कार-निवंधन यशोवंत ऋणी हो गये थे, यह पहले ही कहा जा चुका है। सिन्दियाके महाराजने जव उनका ऋण परिशोध करना चाहा, तव उन्होंने यह कह

कर वह दान लेना अस्वीकार कर दिया कि वे अङ्गरेजके कर्मचारी हैं।

इसके वाद यशोवन्तके साथ महाराजका नाना प्रकारका धर्मालाप हुआ। इनसे उच्चभायकी वातें सुन कर महाराजके आनन्दका पारावार न रहा। यशोवंतरावके सम्मानके लिये महाराजने वड़ी तैयारीकी थी, पांच दिन नगरवासियोंको निमंत्रण कर फल और मिष्टान्न खिलाया था तथा सवोंके आनन्द वर्द्धनके लिये गाने वजानेकी व्यवस्था भी की थी। महोत्सवके वाद महाराज यशोवंतरावको नासिक तक पहुंचा कर लौटे थे।

अव सभी साधु यशोवन्तका सम्मान करने लगे। और तो क्या, एक दिन वम्वईके गवर्नर महोदय Sir Wm obt Seymour Fitzerald ने इन्हें निमंत्रित कर अपने प्रासादमें वुलाया और उच्च आसन पर वैठा कर गलेमें माला पहनाई और इतर गुलाव छिड़का था। इस उपलक्षमें पूनाके वड़े वड़े लोग निमन्त्रित हुए थे।

कुछ दिन वाद कमिश्नर साहव साटना आये। लोगोंको जव मालूम हुआ कि यशोवंतराव जव उनसे मिलने जायंगे, तव वहां उनके दर्शनाभिलाषी असंख्य लोगोंकी भीड़ लग गई थी। लोगोंकी अपार भीड़ देख कर कमिश्नर साहव विस्मयान्वित हो गये और कलकृर साहवको इसका कारण पूछा। उत्तरमें कलकृर साहवने कहा, "यशोवंतरावको देखनेके लिये ये सव लोग आये हैं। इन्हें लोग देवताके समान पूजते हैं तथा सभी इनके दर्शनप्रार्थी हैं।" यह वात सुन कर कमिश्नर साहव वोले, कि इस अवस्थामें यशोवंतरावके द्वारा गवर्मेण्टका कार्य नहीं चल सकता है। अतएव इन्हें कार्यसे छुटकारा देना ही उचित है। यशोवंतरावको १८७३ ई०के मार्च माससे पेंनशन मिला।

अव फिर विषयचिन्ता इन्हें व्याकुल न कर सकी। भगवान्‌की आराधना तथा परोपकारमें इन्होंने अपना पवित्र जीवन उत्सर्ग कर दिया। परहितके लिये क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, सवोंकी ये शुश्रूषा करते थे। देवमन्दिरमें, धर्मशालामें तथा मसजिदमें जाना इनका दैनिक कार्य था। वहां जो सव व्याधिग्रस्त लोग रहते थे उनकी वे यत्नपूर्वक सेवा करते तथा औषध और पथ्यका इंतजाम कर देते थे।

एक दिन इन्दोरके महाराज होलकर तीर्थदर्शनार्थ जेजुरी आये। राहमें यशोवंतरावकी प्रशंसा सुन कर उनसे मिलनेके लिये मानमाड़ स्टेशनमें उतरे। वहां तीन दिन रह कर महाराज यशोवंतके साथ सदालापें करते रहे।

यशोवंतराव कुछ समय सङ्गमनेर नामक स्थानमें अपने भाईके यहां ठहरे थे। यहां दो नदियोंका सङ्गम है। ग्राम वहुतसे उद्यानोंसे सुशोभित है। यशोवंत वड़े आनन्दसे यहां रहने लगे। गवर्मेण्टसे इन्हें जो वृत्ति मिलती थी उससे उनका केवल सांसारिक खर्च चलता था। किंतु जो इतने दिनोंसे अन्नहीनको अन्न, वस्त्रहीनको वस्त्र और रोगोके औषध तथा पथ्य देते आये हैं, जिन्होंने अभ्यागतोंके सत्कार्यमें प्रचुर धन खर्च किया हैं। क्या कभी निश्चिन्त रह सकते थे? वर्त्तमान अवस्था में भो वे इन सव सत्कार्य्योंमें धन खर्च करनेसे वाज नहीं आये। आमदनी थोड़ी, पर खर्च वहुत, इससे वे ऋणी हो जायंगे। इस आशङ्कासे ग्रामवासियोंने ऐसी व्यवस्था कर दी, कि प्रत्येक धनी व्यक्ति उनके एक एक दिनका खर्च चलावें।

अन्तमें वे सङ्गमनेरसे साटना जा कर रहने लगे। १८७७ ई०में वहुत भारी अकाल पड़ा। लोगोंके कष्टकी सीमा न रही। अन्नाभावसे लोग हाहाकार करने लगे। कुछ तो करालकालके शिकार भी वन गये। इस समय यशोवंत वीरकी तरह कार्य्य करने लगे। किस प्रकार दीन व्यक्तियोंकी जीवनरक्षा होगी, इस चिन्ताने इन्हें वेचैन कर दिया। वे मुक्तहस्तसे अन्नदान करने लगे। इस कार्यमें उनकी सहधर्मिणी अन्नपूर्णाकी तरह लोगोंको अन्न परोसती थीं। अन्न जितना वितरण होने लगा, लोगोंको संख्या उतनी ही वढ़ने लगी। यह घटना देख कर यशोवंतराव अपने द्रव्यादिको वेचने लगे। उनकी स्त्रीने प्रकृत सहधर्मिणीकी तरह अपने अङ्गका भूषण उतार कर स्वामीको उसे वेच लाने दे दिया। किंतु इतने रुपयेसे हो ही क्या सकता था, कितना दिन चलता? कोई उपाय न देख वे घूम घूम कर लोगोंसे भीख मांगने लगे। उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। सवोंकी इनके प्रति

अटूट भक्ति थी। अतएव उनके पास काफी रुपये आने लगे। इस प्रकार एक वर्ष तक चला। दुर्भिक्ष भी शांत हुआ।

वहांसे यशोवंत मानमाड़ नामक स्थानमें आये। यहांके विट्ठलदेवके मन्दिरके अन्तर्गत एक धर्मशाला थी, वहीं वे सपरिवार रहने लगे। इस समय महाराज होलकरने इन्दोर नगर आनेके लिये इन्हें निमंत्रण किया। यशोवंत रावकी इच्छा थी, कि अपने जीवनका अवशिष्ट काल स्वाधीनभावमें वितावें। इस कारण महाराजके निमंत्रणका वे पालन न कर सके। किंतु महाराजकी उन्हें अपनी राजधानीमें लानेकी एकान्त इच्छा थी। १८८१ ई०में महाराज स्वयं आ कर इन्हें ले गये। इंदोरमें इनके रहनेके लिये एक बढ़िया मकान बनाया गया। तथा उनके सांसारिक और धर्मकार्यके व्ययके लिये मासिक-वृत्ति भी स्थिर कर दी गई। महाराज तथा उनके आत्मीयवर्ग प्रतिदिन यशोवंतके दर्शन कर जाते थे। नगर और अन्यान्य स्थानोंके लोग भी इन्हें देखने आते थे। प्रणामीमें जो कुछ मिलता था उसे वे दीनदुःखियों-के बीच बांट देते थे। दुर्भिक्षमें इन्हें जो ऋण हो गया था उसे इन्दोरकी राजमाताने चुका दिया।

इंदोरमें कुछ समय रह कर यशोवंतराव खण्डोबा नामक स्थानमें, पीछे वहांसे पूना होते हुए त्र्यम्बक गये। यहां वे एक दिन बुरी तरह घायल हुए। जिस घरमें बैठ कर विष्णुनाम जपते थे उस घरकी दीवार हठात् गिर पड़ी जिससे उन्हें गहरी चोट लगी। चिकित्सा आदि करनेसे कुछ आरोग्य तो हुए, पर उनका शरीर बेकाम हो गया। अभीसे यह अच्छी तरह बोल भी न सकते थे। उनकी स्मरणशक्ति भी जाती रही। अवशिष्ट जीवन इन्होंने नासिकमें विताना चाहा। यहां तीन वर्ष रहनेके बाद ये ज्वराक्रांत हुए। धीरे धीरे उनके शरीरकी अवस्था खराब हो चली। चिकित्साका अच्छा प्रबंध होने पर भी कोई फल नहीं दिखाई दिया। यशोवंतकी आसन्नमृत्यु देख कर आत्मीयगण उनके सामने विष्णुका सहस्रनाम पढ़ने लगे तथा हरिदास* द्वारा हरि-कीर्त्तन और शास्त्री द्वारा भगवद्गीता पाठ होने लगा। इस प्रकार हरिकथा और विष्णु नाम सुनते सुनते अग-हन महीनेकी कृष्ण एकादशीको (१७वीं दिसम्बर १८८७ ई०में) इन्होंने मानवलीला सम्वरण की।

यशोवंत रावके परलोकगमनका संवाद बिजलीकी तरह तमाम फैल गया। झुण्डके झुण्ड लोग आने लगे। बड़ी धूमधामसे इनकी अन्त्येष्टिक्रिया सम्पन्न हुई। इसके बाद परलोकगत महात्माका स्मरणचिह्न स्थापित हुआ।

इन महापुरुषके जीवनमें बहुत सी घटना घटी हैं। उनमेंसे दो एकका उल्लेख किया जाता है। एक दिन यशोवंतराव अपने कार्यालय जा रहे थे। उस समय करीब बारह बज रहा था, सूर्यकी किरण बहुत तेज थी। इसी समय एक फकीरने उनसे कहा, 'महाराज! पैर जल रहे हैं।" यह सुन कर राव साहबने अपने पैरसे जूता निकाल कर फकीरको दे दिया और आप खाली पैर चलने लगे। इस प्रकार प्रतिदिन कचहरीसे लौटते समय वे देवालय, मस-जिद और धर्मशालाको देखते हुए आते थे, तथा जिसे जो अभाव रहता था उसे पूरा कर देते थे। यहां तक, कि जब कभी किसीको मृत देखते थे, तब उस मृतदेह-का सत्कार करके ही घर लौटते थे। पशुओंका क्लेश देखनेसे भी वे दुःखित होते थे। एक दिन भ्रमण करते करते इन्होंने देखा, कि एक गधा पीड़ासे छटपटा रहा है, यह देख वह स्थिर न रह सके। उसके लिये एक घर बनवा दिया और सेवाशुश्रूषाकी व्यवस्था कर दी। अधिक क्या, वर्त्तमानकालमें ऐसे साधुगृहस्थ बहुत कम देखनेमें आते हैं। वे अपने आदर्श चरित्र गुणसे शत्रुमित्र सभीको विमुग्ध कर गये हैं।

यशोवन्तसिंह—मारवाड़ या जोधपुरके एक विख्यात और पराक्रान्त राजपूत-राजा। पिता गजसिंहके मरने पर ये पितृसिंहासन पर बैठे। उस समय शाहजहान् दिल्लीके सम्राट् थे। गजसिंह शाहजहान्के एक पराक्रान्त सेनापति समझे जाते थे। यशोवंत जब सिंहासन पर बैठे, तब शाहजहान्ने राजाकी उपाधि दे कर उनका सम्मान किया। कुछ दिन बाद ये सेनाध्यक्षके पद पर नियुक्त हुए। इस समय औरङ्गजेब बागी हो गया

* दाक्षिणात्यमें कथकको हरिदास कहते हैं।

था, इसलिये शाहजहांने यशोवन्तसिंहको गोण्डवाना नामक स्थानके युद्धमें भेजा। १६५८ ई०में शाहजहान्‌के पीड़ित होने पर उनका बड़ा लड़का दाराशिकोह राजप्रतिनिधिके पद पर नियुक्त हुआ। उसने यशोवंतसिंहकी वीरताका परिचय पा कर उन्हें पांच हजारी मनसबदार बनाया और राजप्रतिनिधिके पद पर नियुक्त कर मालव भेजा। इस समय दाक्षिणात्यका शासनकर्त्ता औरङ्गजेब पिताकी पीड़ितावस्था सुन कर बागी हो उठा। उसका दमन करनेके लिये आगरेसे एक बड़ा सैन्यदल भेजा गया। राजपूतानेके सभी राजे इस युद्धमें शामिल थे। राजा यशोवंत सिंहने उस सम्मिलित सैन्यदलके प्रधान सेनापतिके पद पर अधिष्ठित हो दाक्षिणात्यकी यात्रा कर दी। उज्जयिनीसे साढे सात कोस दक्षिण यशोवन्तने छावनी डाली। औरङ्गजेब भी अग्रसर हो कर युद्धमें प्रवृत्त हुआ। किंतु यशोवंतसिंहकी अनवधानतासे औरङ्गजेबने षड़यंत्र कर यशोवंतके अधीनस्थ सभी मुसलमान सैनाको अपने काबू कर लिया। अब यशोवंतके पास केवल तीस हजार राजपूत-सेना रह गई। फिर भी वे हताश न हुए और उसी मुट्ठी भर सेनाको ले कर युद्धक्षेत्रमें कूद पड़े। उन्होंने भाला हाथमें लिये अपनी माबुर नामकी घोड़ी पर सवार हो औरङ्गजेब पर आक्रमण कर दिया। इस बार दश हजार मुसलमान सेना धराशायी हुई। फरासी भ्रमणकारी वर्णियरने अपनी आंखोंसे यह घटना देखी थी। फेरिस्ताका कहना है, कि यशोवंतने वीरत दिखला कर विजय प्राप्त की थी। अन्यान्य लेखकोंने यशोवन्तकी हार बताई है। उक्त युद्धमें १५०० राजपूत सेना खेत रही। पराजित पतिको वापिस आये देख यशोवन्तकी स्त्रीने क्रोध और अभिमानसे नगरका द्वार बंद कर दिया था।

कुछ समयके बाद औरङ्गजेब वृद्धपितामाताको कैद कर दिल्लीके तख्त पर बैठा। जयपुर-राजके हाथ उसने यशोवंतको कहला भेजा, कि उसके सब अपराध माफ कर दिये गये। यशोवंत बादशाहका अनुग्रह देख दिल्ली आये, किंतु मन ही मन औरङ्गजेबके साथ बदला चुकानेका उपाय ढूंढने लगे। औरङ्गजेबने यशोवंतको अपने साथ ले सुजाके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। औरङ्गजेब आगे आगे जाता था। यशोवंतने बड़े कौशलसे उसकी रसद आदि लूट कर मारवाड़ भेज दी और दारासे मिलनेके लिये आगरेकी ओर प्रस्थान किया। किंतु दारा दाक्षिणात्यसे लौटने भी न पाया था, कि औरङ्गजेब राजधानीमें जा धमका। अतः यशोवंतको दलबलके साथ स्वदेश लौटना पड़ा। कुछ दिन बाद दारा मैरता नामक स्थानमें यशोवंतसे मिला। किंतु उस समय राजस्थानके सभी राजोंने औरङ्गजेबकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

औरङ्गजेबने जब देखा, कि यशोवंत जैसे वीरपुरुष दाराको सहायतामें है, तब उसके सिंहासनका पथ निरापद नहीं। इस कारण उसने यशोवंतका अपराध क्षमा कर कहा, "यदि आप दाराकी सहायता न करें, तो आपको गुजरातका शासनकर्त्ता बना दूं।"

यहां पर दाराका पक्ष छोड़ देनेसे ऐतिहासिकोंने यशोवंतके चरित्र पर दोष लगाया है। किंतु कोई कोई उसका समर्थन करते हुए कहते हैं, कि यशोवंतका उद्देश्य कुछ और था। अब यशोवंत औरङ्गजेबके आज्ञानुसार महाराष्ट्र-अधिनायक शिवाजीके विरुद्ध रवाना हुए। दिल्लीसे कुमार वाजिसने आ कर उनका साथ दिया। यशोवंतने छिपके शिवाजीकी सहायता कर साइस्ता खाँका प्राण लेनेका सङ्कल्प किया।

औरङ्गजेब यशोवंतकी चालबाजी देख कर उन्हें हैरान करनेके लिये कौशलजाल फैलाने लगा।

तदनुसार उसने यशोवंतको गुजरातका प्रतिनिधि बना कर वहां भेजा। किंतु गुजरात पहुंच कर यशोवंतने देखा, कि वहां एक दूसरे राजप्रतिनिधि पहलेसे ही हैं। यह देख कर वे बड़े दुःखित हुए और वहांसे फौरन मारवाड़ लौटे। औरङ्गजेबने जब देखा, कि यशोवंतके जीवित रहते उसका कल्याण नहीं, तब वह उनसे छुटकारा पानेके लिये तरह तरहका षड़यंत्र रचने लगा।

उसने पुनः यशोवन्तको दिल्ली बुलाया। निर्भीक यशोवंत उसी समय वहां पहुंच गये। औरङ्गजेबने काबुलके अफगान-विद्रोहका दमन करनेके लिये समस्त राठौर सेना और सपरिवारके साथ यशोवंतको

काबुल भेजा। यशोवन्तकी वीरता और चेष्टासे अफगानवासीने शान्तभाव धारण किया। औरङ्गजेबने समझा था, कि यशोवंत अफगानोंके हाथ मारे जायंगे, किन्तु उनकी सफलता देख कर वह दाँतों उंगली काटने लगा। इस समय सम्राट्ने यशोवन्तके वीरपुत्र पृथ्वीसिंहको दिल्ली बुलाया और विषपूर्ण परिच्छद पहना कर उसका प्राण ले लिया। इधर काबुलमें यशोवंतके द्वितीय और तृतीय पुत्र भी कराल कालके गालमें पतित हुए। यशोवंत पुत्रशोकसे विह्वल हो गये। इसी मौकेमें औरङ्गजेबने विष खिला कर उनका प्राण ले लिया। इस प्रकार १६८१ ई०को ४२ वर्षकी अवस्थामें अद्वितीय राजपूत वीर यशोवन्तसिंह इस लोकसे चल बसे। उनके जैसे वीर पुरुषने मारवाड़में फिर कभी जन्म नहीं लिया। उनकी मृत्युके बाद उनके परिवारवर्ग जब मारवाड़से लौट रहे थे उसी समय औरङ्गजेबने उन्हें दिल्लीमें कैद करनेकी कोशिश की। किंतु राठोर सैन्यकी वीरतासे वह उनका कुछ भी अनिष्ट न कर सका। यशोवंतके मृत्युकालमें उनकी एक स्त्री गर्भवती थी जिसमें अजितसिंहका जन्म हुआ। यशोवंतके और भी दो पत्नी और सात उपपत्नी थीं, जिन्होंने यशोवंतके चितानलमें कूद कर आत्मविसर्जन किया।

यशोवन्तसिंह (बुन्देला)—बुन्देला जातिका एक मुगल सेनापति, राजा इंद्रमणिका पुत्र, यह सम्राट् आलमगीरके शासनकालमें अपने वीर्यबलसे ऊंचा सम्मान पाया था। यह बुंदेलखण्डके एक अंशमें राज्य करता था। उसके आश्रयमें रह कर राजकवि हरिभास्करने 'यशोवंत-भास्कर' की रचना की थी। १६८७ ई०में उसकी मृत्यु हुई। पीछे सम्राट्ने उसके नाबालिग लड़के भगवंतसिंहको राजोपाधिके साथ उच्चों जमींदारी प्रदान की थी।

यशोवन्तसिंह—योधपुरके एक राजा। ये १८७३ ई०में पिता तखत्सिंहके मरने पर राजसिंहासन पर बैठे थे।

यशोवन्तसिंह—भरतपुरके एक महाराज, बलवंतसिंहके पुत्र। १८५३में जब इनकी उमर सिर्फ दो वर्षको थी, तब ये पितृसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए।

यशोवन्तसिंह (कुमार)—राजा बेणीबहादुरके पुत्र। यह एक सुकवि थे।

यशोवर—रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न कृष्णके एक पुत्रका नाम।

यशोवर्द्धन—प्रतिहारवंशीय एक राजपूत राजा।

यशोवर्द्धन—वरिकवंशीय एक राजा, विष्णुवर्द्धनके पिता।

यशोवर्द्धन द्विविर—एक प्राचीन कवि।

यशोवर्मदेव—कन्नोजके एक प्रसिद्ध हिंदू राजा। वे काश्मीरराज ललितादित्य मुक्तापीड़के समसामयिक थे। कविवर हर्षदेवके पुत्र वाक्पतिराज और भवभूति इन्हींके आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे।

कवि वाक्पतिने स्वरचित 'गौड़वध' काव्यमें समुज्ज्वल भाषामें यशोवर्माका चरित्र वर्णन किया है। राजा यशोवर्मकी गौड़विजययात्रा पढ़नेसे हम लोगोंको महाकवि कालिदासके रघुवंशमें अजराजकी दिग्विजययात्रा की याद आ जाती है। शारदीय शोभासंकुल प्रान्तरभूमिका अपूर्व सौन्दर्य देखते हुए वे शोन-नदीकी उपत्यका भूमिमें आये। यहांसे दलबलके साथ विन्ध्यपर्वत जा कर इन्होंने विन्ध्यवासिनी (काली) देवीकी पूजा और अर्चना की। इस प्रकार नाना स्थानोंमें घूमते हुए इन्होंने हेमन्त, शीत और वसंतकाल बिताया। ग्रीष्मकी प्रखर किरणोंसे इनकी सेना बहुत कष्ट झेलती हुई गौड़ राज्य पहुंची।

उनके आगमनसे भयभीत हो गौड़ीय सामन्त और सेनापतिवर्ग जान ले कर भागे। किंतु कापुरुषकी तरह रणमें पीठ दिखाना अच्छा न समझ कर वे लोग फिरसे कन्नोजाधिपतिके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए। गौड़ीय सेनाके रक्तसे रणक्षेत्र सराबोर हो गया था। गौड़राज भागे जा रहे थे, पर यशोवर्मने उन्हें पकड़ा और मार डाला।* इसके बाद कन्नोजाधिपति वङ्गेश्वरको पराभव और वशमें ला कर समुद्रोपकूलकी वनशोभा देखते हुए मलयपर्वतकी ओर चल दिये। वहां भी इन्होंने दाक्षिणात्यपति-

* इस ग्रन्थमें गौड़राजके नाम, धाम और उनकी निधनवार्त्ताका कोई विशेष कारण नहीं लिखा है।

को परास्त किया तथा पश्चिमघाट पर्वतके पश्चिमस्थ प्रत्येक देशवासीसे कर वसूल किया था।

इस प्रकार यशोवर्म धीरे धीरे नर्मदाके किनारे उपस्थित हुए। यहां राजा कार्त्तवीर्यकी पवित्र कीर्त्ति और नदीमाहात्म्यका स्मरण कर कुछ दिन ठहरे। पीछे रणक्लेश दूर करनेके लिये वहांसे समुद्रके किनारे वायुसेवन करने चले गये। अनन्तर इन्होंने दलवलके साथ मरुदेश (मारवाड़) और श्रीकण्ठ (थानेश्वर)-की ओर यात्रा कर दी। जनमेजयके 'सर्पसत्र'-की बात याद कर इन्होंने उस पवित्र क्षेत्रमें कुछ दिन विताया। इसके बाद कुरुक्षेत्रमें जलक्रीड़ा समाप्त कर भारतीय युद्धके प्रसिद्ध योद्धा कर्णका रणक्षेत्र देखने गये।

कुरु-पाण्डवोंके उस लीलाक्षेत्रसे राजा यशोवर्मा धीरे धीरे अयोध्या नगरीमें पहुंचे। यहां पर उन्होंने एक दिनमें एक सुरप्रासाद (मन्दिर) बनवाया था। इसके बाद वे मन्दरपर्वत-वासियोंको परास्त करनेकी इच्छासे वहां गये। मन्दरवासीके उनकी अधीनता स्वीकार कर लेने पर ये स्वेच्छाप्रणोदित हृदयसे यक्षेश्वरके विलासस्थल हिमालयदेशको चल दिये। इस प्रकार राजविजयकी वासना शेष कर राज्येश्वर यशोवर्मा स्वराज्य लौटे। राजभवनमें आनन्द-उत्सव मनाया गया। अधीनस्थ सामन्त और विजित राजे बड़ी उत्सुकतासे विदा किये गये। गौड़विजयके बाद ये जिन रूपमाधुर्यमयी मगध-राजकुलललनाओं[*] को बन्दीरूपमें लाये थे, उन्होंने क्रीतदासीकी तरह कनौज राजदरबारमें सबके सामने उनके राजश्रीमण्डित वदन पर चंवर डुलाया था।

कवि वाक्पतिने जैसी उज्ज्वल भाषामें और जैसे उत्साहसे अपना "गौड़वध" महाकाव्य आरम्भ किया है, अपने प्रतिपालक यशोवर्माकी विजयकाहिनी जिस भावमें गाई है, आश्चर्यका विषय है, कि वे गौड़वधकाहिनी लिख कर भी अपने महाकाव्यके नायकका वैसा परिचय न दे सके। अधिक सम्भव है, कि कनौजपति पर कोई ऐसी दुर्घटना घटी थी, जिसका वर्णन करना कविने अच्छा न समझा हो,—उस दुर्घटनाकी बात कवि वाक्पतिने प्रकट तो नहीं की, पर काश्मीरके ऐतिहासिक कवि कह्लणने अपनी राजतरङ्गिणीमें साफ साफ लिखा है,—

'पवनने जहां पर कन्याओंको कुब्ज बना दिया था, उस गाधिपुर (कान्यकुब्ज) में थोड़े ही समयके मध्य राजा ललितादित्य यशोवर्माकी सेनाको परास्त कर आदित्यके समान प्रतापमें उद्दीप्त हो गये थे। इस समय मतिमान् कान्यकुब्जपतिने जो उद्दीप्त ललितादित्यको उनकी अधीनता स्वीकार कर प्रसन्न किया था उससे ऐतिहासिकोंने तथा अन्यान्य नीतिज्ञोंने उनकी प्रशंसा की है। किंतु राजा यशोवर्माके जो सब सहायक थे, उन्होंने इस कार्यमें बड़ा अभिमान दिखलाया था। अभिमान दिखलायेंगे ही क्यों नहीं, वसन्तकालकी अपेक्षा चन्दनानिलकी ही प्रधानता कुछ अधिक है। यशोवर्मा और ललितादित्य दोनोंके संधिसम्बंधमें जो सब नियमपत्रादि हैं, वे यशोवर्माके सांधिविग्रहिक द्वारा लिखे गये हैं। "यशोवर्मा और ललितादित्यके बीच यह संधि हुई" यह बात संधिपत्रमें जो लिखी है उससे ललितादित्यके सांधिविग्रहिक मित्रशर्माने प्रभुका नाम पहले न देख कर प्रभुका अपमान समझा था। उत्कट युद्धविग्रह-विषयमें उद्धत सेनापतियोंने इस काममें ईर्षा प्रकट की थी। राजा मित्रशर्माके ऐसे उचित व्यवहार पर बड़े प्रसन्न हुए और उनका बहुत सम्मान किया। उन्होंने प्रसन्न हो कर मित्रशर्माको पहलेसे प्रसिद्ध अठारह कर्मस्थानसे उत्पन्न पाँच प्रधान कर्मस्थानके कर्त्तृत्वरूप पञ्चमहा शब्द द्वारा भूषित किया। उन पांच कर्मस्थानोंके नाम ये हैं—महाप्रतीहारपीड़ा, महासन्धिविग्रह, महाश्वशाला, महाभाण्डागार और महासाधनभाग। इन सब विषयोंमें शाहिमुख्य राजगण ही पहले अध्यक्ष होते थे। राजा यशोवर्मा हृतसर्वस्व हो सपरिवार वाक्पतिराज भवभूति आदि पण्डितोंके साथ ललितादित्यके गुणस्तुतिवादक थे अर्थात् उन्होंने ललितादित्यकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। (राजतर० ४।१३३-१४४)

काश्मीराधिप ललितादित्य द्वारा यशोवर्माकी पराजय तथा कनौजसभाका परित्याग कर काश्मीर-राज-

[*] गौड़राज्यको जीत कर आते समय राजा यशोवर्माने मगधदेश जीता था।

सभामें महाकवि भवभूति और राजकवि वाक्पतिका जाना इन दो कारणोंसे गौड़वधकाव्य एक तरहसे सम्पूर्ण न हो सका, यह दुर्घटना प्रकाश करना कवि वाक्पतिने अच्छा न समझा।

राजतरङ्गिणीसे मालूम होता है, कि कनौजाधिप यशोवर्माकी सभामें केवल वाक्पति ही नहीं, महाकवि भवभूति भी रहते थे। गौड़वधकाव्यसे यह भी जाना जाता है, कवि वाक्पतिके प्रतिपालक महाराज यशोवर्माका दूसरा नाम कमलायुध भी था। वप्पभट्टि-सूरिचरित, प्रबंधकोष, प्रभावकचरित, पट्टावली, तीर्थकल्प आदि जैनग्रंथ पढ़नेसे मालूम होता है, कि कनौजाधिप यशोवर्माके पुत्रका नाम आमराज था। इनके साथ गौड़ाधिप धर्म (धर्मपाल)का तर्कयुद्ध चलता था। उसका विवरण प्रभावकचरितमें इस प्रकार लिखा है,—

"पाटलीपुत्रमें शूरपाल (वप्पभट्टि)-का जन्म हुआ। ८०७ सम्वत् (७५१ ई०)-में उनकी दीक्षा हुई। इस समय कान्यकुब्जमें यशोवर्मा राज्य करते थे। उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के आमराज कान्यकुब्जके सिंहासन पर बैठे। उनके साथ गौड़ाधिप धर्मकी घोर शत्रुता थी। शूरपाल पहले आमराजके सभामें रहते थे, किंतु किसी कारणसे विरक्त हो वे लक्ष्मणावती नगर चले आये। इस समय कवि वाक्पति धर्मके प्रधान सभापण्डित समझे जाते थे। वाक्पतिकी सहायतासे शूरपाल गौड़राज-सभामें बड़े सम्मानके साथ राजगुरुके समीप रहने थे। कुछ दिन बाद आमराजने बड़े कौशलसे वप्पभट्टि शूरपालको अपनी सभामें बुलाया। गौड़राज धर्म इस पर बड़े दुःखित हुए। अनन्तर उन्होंने आमराजको कहला भेजा, "हम दोनोंमें बहुत दिनोंसे शत्रुता चली आती है। अब वृथा शस्त्रयुद्ध न करके, आइये, हमलोग शास्त्रयुद्धमें प्रवृत्त होवें। मेरे राज्यमें वर्द्धनकुञ्जर नामक एक बौद्ध-पण्डित आये हुए हैं। आपके कोई भी सभा पण्डित शास्त्र-संग्राममें प्रवृत्त हो सकते हैं। इस संग्राममें जिनकी हार होगी, वह विना आपत्तिके अपना राज्य छोड़ देंगे।' धर्मके आह्वान पर आमराजकी ओरसे शूरपाल आये और विचार-संग्राममें प्रवृत्त हुए। वर्द्धनकुञ्जर गुटिकासिद्ध थे। उसके प्रभावसे वे सभीको परास्त किया करते थे। उनका यह कौशल वाक्पतिके सिवा और किसीको न मालूम था। शूरपालने वाक्पतिकी शरण ली और पूर्व सौहार्द्दकी याद दिलाते हुए उन्हें सहायता करने कहा। वाक्पतिने अपने मित्रको वर्द्धनकुञ्जरका रहस्य चुपके कह दिया। तदनुसार तर्क आरम्भ होनेके समय वर्द्धनकुञ्जरके मुखमें गुटिका देनेके पहले ही वप्पभट्टिने बड़े कौशलसे उसे चुरा लिया। गुटिकाके नहीं रहनेसे वर्द्धनकुञ्जरकी हार हुई। पूर्व प्रतिज्ञानुसार धर्म अपना समूचा राज्य कनौजाधिपके हाथ सौंप देनेको बाध्य हुए। किंतु आमराजने वप्पभट्टिके आदेशसे धर्मराजको गौड़राज्य समर्पण किया तथा दोनों मित्रतापाशमें आबद्ध हुए। ८९० विक्रम-सम्वत् (८३४ ई०)-को मगधतीर्थमें आमराजकी मृत्यु हुई।"

खालिमपुरसे आविष्कृत गौड़ाधिप धर्मपालके ताम्र-शासनके १२वें श्लोकमें लिखा है, 'भोजमत्स्यादि राजाओंके आग्रह तथा पञ्चालवासियोंके हर्षसे उन्होंने कान्यकुब्जपतिको स्वराज्यमें अभिषिक्त किया था।'*

यह कान्यकुब्जपति कौन थे? धर्मपालके भ्रातृप्रपौत्र नारायणपाल (भागलपुरसे प्राप्त) के ताम्रशासनमें ऐसा लिखा है,—

जिन्होंने (धर्मपाल) इंद्रराज आदि शत्रुओंको जीत कान्यकुब्जकी राजश्री उपार्जन की थी और फिर जिन्होंने इंद्रराजके पिता चक्रायुधको वह (राजलक्ष्मी) लौटा दी, वही कान्यकुब्जपति हैं।'†

उक्त ताम्रशासनसे मालूम होता है, कि इंद्रराज अपने पिता चक्रायुधको पदच्युत करके कनौजके सिंहासन पर बैठे। फिर धर्मपालने इंद्रराजको परास्त कर चक्रायुधको उनका न्याय अधिकार प्रदान किया था। इस

* "हृष्यत्पञ्चालवृद्धोद्धृतकनकमयस्वाभिषेकोदकुम्भो।
दत्तः श्रीकान्यकुब्जः सललितचलित भ्रूलता लक्ष्म येन॥"
(धर्मपालका ताम्रशासन)

† "जित्वेन्द्रराजप्रभृतीनरातीनुपार्जिता येन महोदयश्रीः।
दत्त्वा पुनः सा बलिनाथ पित्रे चक्रायुधायानतिवामनाय॥"

पर पञ्चालके वृद्ध मनुष्य बड़े संतुष्ट हुए थे। इससे ज्ञात होता है, कि पञ्चाल तक चक्रायुधका अधिकार फैला हुआ था। पीछे उनके दुर्वृत्त पुत्र इन्द्रराजने पितृअधिकारको छीन कर उत्तरापथवासी अपने पिताकी अनुरक्त प्रजाओं पर भी अत्याचार किया था।

जिनसेन विरचित अरिष्टनेमि पुराणान्तर्गत जैन हरिवंश (६६वें सर्ग)-में लिखा है,—

७०५ शक (७८३ ई०)-में (विन्ध्याद्रिके) उत्तरदेशमें इन्द्रायुध और दक्षिणदेश (राष्ट्रकूटराज)-में कृष्णपुत्र श्रीवल्लभ राज्य करते थे।¶

उत्तरदेशाधिपति इंद्रायुध ही चक्रायुधके पुत्र तथा नारायणपालके ताम्रशासनमें "इंद्रराज" नामसे वर्णित हुए हैं। प्रभावकचरित, प्रबंधकोष आदि जैनग्रन्थोंसे यह भी मालूम होता है, कि आमराजके पुत्र इन्दुक (वा दन्दुक)-ने पाटलीपुत्रनगरमें विवाह किया। वे पितृद्वेषी और बड़े अधार्मिक थे। यहां तक, कि उनका छोटा लड़का भोज पिताके हाथसे रक्षा पानेके लिये ननिहाल भाग आया था। आखिर भोजने ही दन्दूकको यमपुरका मेहमान बनाया।

उक्त पितृद्वेषी इन्दुक ही जहां तहां इंद्रायुध वा इंद्रराज नामसे परिचित है। पहले कह आये हैं, कि अनेक जैनग्रंथोंके मतसे ही आमराज कान्यकुब्जके अधिपति तथा धर्मके समसामयिक और अंतमें मित्र थे। उनके अवाध्यपुत्र इंद्र वा इन्दुकने उन्हें गद्दीसे उतार कुछ दिन राज्य किया। पीछे धर्मपालके यत्नसे चक्रायुध पुनः राजसिंहासन पर बैठे। पहले कहा जा चुका है, कि आमराजके पिता यशोवर्माका एक नाम कमलायुध भी था। ताम्रशासन और जैनपुराणकी सहायतासे यह भी जाना जाता है, कि यशोवर्माके कमलायुध नामकी तरह आमराजका भी दूसरा नाम चक्रायुध तथा उनके लड़के इन्दुक वा दन्दुकका दूसरा नाम इंद्रायुध था। अर्थात् पुत्र, पिता और पितामह ये तीनों ही 'आयुध' संयुक्त नाम व्यवहृत करते थे।

महाकवि भवभूति राजा यशोवर्माकी सभामें रहते थे। उनके मालतीमाधव, वीरचरित और उत्तरचरित इन तीन काव्योंकी आलोचना करनेसे उस समयका समाजचित्र अच्छी तरह मालूम होता है। कुमारिल और शङ्कराचार्य बौद्धमतप्लावित भारतभूमिमें ब्रह्मण्यधर्म और वैदिक क्रियाकलापादि स्थापन करनेमें जैसे बद्धपरिकर हुए थे, कवि भवभूति अपने दृश्यकाव्यमें मानों उसी मतकी पोषकता कर गये हैं।

भवभूतिके वीरचरित और उत्तरचरितमें वैदिकमार्ग प्रवर्त्तनका यत्न स्पष्ट दिखाई देता है। बौद्ध और तान्त्रिकधर्मसे प्रतिनिवृत्त हो कर जनसाधारण जिससे वैदिक आचार व्यवहारका अनुसरण कर सकें, भवभूतिके तीनों ग्रन्थोंमें वही गूढ़ उद्देश्य देखनेमें आता है। सच पूछिये, तो कनौज राजसभासे ही उत्तर भारतमें वेदमार्गप्रवर्त्तनकी चेष्टा होती थी। महाराज यशोवर्मा दुष्टोंका दमन करने और फिरसे वैदिकधर्मसंस्थापनमें विशेष यत्नवान् थे। इसी कारण उन्हें गौड़वधकाव्यमें हरिका दूसरा अवतार कहा है। यथार्थमें वे हिन्दूसमाजके मध्य नया भाव जगा देते थे और कान्यकुब्जवासी सनातन वैदिकमार्गका अनुवर्त्तन करने अग्रसर हुए थे। महाराज आदिशूरने भी वैदिक क्रियाकलापकी प्रतिष्ठाके लिये कनौज-राजसभासे साग्निक ब्राह्मण बुलाये थे।

यशोवर्मा जब तक कान्यकुब्जमें अधिष्ठित रहे, तब तक वैदिकधर्मप्रचारमें लोगोंका आग्रह और उत्साह देखा गया था। इसी प्रकार आदिशूरके समयमें भी वैदिकधर्मप्रचारमें प्रकृत उद्यम और प्रकृत कार्यका अभाव न था। जिस प्रकार यशोवर्माके स्वर्गवास होनेके बाद उनके लड़के आमराजने वेदविरोधी जैनधर्मको अपनाया था, उसी प्रकार आदिशूरके बाद भी उनके वंशधरोंके राज्यशासनमें अक्षमताप्रयुक्त पाल-राज्यविस्तारके साथ साथ गौड़में तान्त्रिक बौद्धमार्ग प्रवर्त्तित हुआ था।

डा० भाण्डारकरके मतसे (वैदिकमार्ग-प्रवर्त्तक) राजा यशोवर्माका ७५३ ई०में स्वर्गवास हुआ।

यशोवर्मदेव--एक कवि। क्षेमेन्द्रकी औचित्यविचारचर्चामें इनका उल्लेख देखा जाता।

¶ "शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरान्।
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणां॥"

यशोवर्मन्—रामाभ्युदय नाटकके प्रणेता एक कवि। क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलकमें इनके श्लोक हैं।

यशोवर्मन्—चालुक्यवंशीय एक नरपति।

यशोवर्मन्—चन्द्रात्रेयवंशीय एक राजा, राजा हर्षदेवके पुत्र। खजुराहकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि उन्होंने गौड़, खस, कोशल, काश्मीर, मिथिला, मालव, चेदि, कुरु, गुर्जर आदि राज्यवासियोंको लड़ाईमें जीता था। चेदिराजको जीतनेके बाद उन्होंने कालञ्जर पहाड़ अपने कब्जेमें किया। ये वैकुण्ठनाथका मन्दिर बना गये हैं। यह देवमूर्त्ति उन्होंने कनोजराज देवपालसे ई० सन् ९४८में पाई थी। देवपालके पिता हेरम्बपाल-को यह मूर्त्ति कीर-राजशाहीसे मिली थी।

यशोवर्मन्—चन्द्रात्रेय-वंशीय दूसरे एक राजा। इनके पिताका नाम मदनवर्मा और पुत्रका नाम परमर्द्दिदेव था।

यशोवर्मन्—मालवके परमार वंशीय एक राजा और जयवर्माके पिता। ये चालुक्यराज जयसिंह सिद्धराजसे हारे थे।

यशोवर्मन्—मौखरी वंशीय एक राजा।

यशोवर्मपुर—कनोजराज यशोवर्मदेव द्वारा प्रतिष्ठित मगधराज्यके अन्तर्गत एक नगर।

यशोविग्रह—कनोजके राठोरवंशीय राजा तथा चन्द्रदेवके पितामह।

यशोविजय—ज्ञानविंदुप्रकरण नामक जैनग्रंथके रचयिता। ये सुतीर्थतिलक पण्डितके शिष्य पद्मविजयके भाई थे। 'महावीरस्तवन' नामक ग्रंथ इन्हींका लिखा है।

यशोसिंह—एक सिख सरदार। यह जातिका बढ़ई था। इसका पिता भगवान् गियाणी लाहोर जिलेके सरसङ्ग मौजेमें रह कर जातीय व्यवसाय करता था। यशोसिंहने अपने जातीय व्यवसायका परित्याग कर सैनिकवृत्ति अवलम्बन की। वह खोसलसिंह-प्रवर्त्तित सिख-मिस्लमें शामिल हो कर नोधसिंहके अधीन चोरी डकैती करने लगा। धीरे धीरे वह अपने वीर्य्यबल और असीम साहससे एक सिख-योद्धा गिना जाने लगा। इसने अपने प्रतिभाबलसे सिखसमाजमें ऐसी प्रतिपत्ति जमा ली थी, कि रामरौनी मिस्लके सिख लोग उसके यत्नसे पूर्व नामका परित्याग कर 'रामगढ़ीया' कहलाने लगे थे।

मल्लसिंह और तारासिंह नामक दो भाइयोंके साथ यशोसिंहने अदीना बेग खाँकी ओरसे अवदाली सर-दार अहमदशाहके विरुद्ध युद्ध किया था। अफगान सेनादलके भीषण आक्रमणसे जब अदीना खाँ भाग गया, तब यशोसिंहने कन्हिया सरदार जयसिंह और काङ्गड़ा-धिपति अमरसिंहके साथ मिल कर पठानके विरुद्ध युद्ध ठान दिया। इस युद्धमें सिख-गौरव बहुत दूर तक फैल गया था। अपमानित और लाञ्छित अदीनाबेगने इस सूत्रसे मुसलमानविद्वेषी सिख-सम्प्रदायका उच्छेद करने-के लिये सङ्कल्प किया।

१७५७ ई०में अवदालीके स्वराज्यमें लौटने पर अदीना खाँ महाराष्ट्रोंसे लाहोरका शासनकर्त्ता बनाया गया। उसने रोहिला-सरदार कुतबशाह और मीर आजीज बक्सीसे मिल कर बतालामें घेरा डाला और सिखोंको कष्ट देने प्रवृत्त हो गया। यशोसिंह आदिने रामरौनी-के मृद्दुर्गमें भाग कर आश्रय लिया। यहांसे भागनेके बाद वे लोग 'रामगड़ीया' नामसे प्रसिद्ध हुए।

१७५८ ई०में यशोसिंहने मिस्लका अधिनेतृत्व ग्रहण कर दीन नगर, बताला, कालानौर श्रीहरगोविन्दपुर आदि मुसलमान अधिकृत नगरोंको लूटा और अधिकार किया। दुरानी सरदार अहमदशाह यह संवाद पा कर बड़ा बगड़ा और सिखोंका दमन करने अग्रसर हुआ। गुल्लुघाड़ाकी लड़ाईमें सिखोंने ही शौर्य्यवीर्य दिख-लाया था।

नोधसिंहकी मृत्युके बाद यशोसिंह मिस्लका सर-दार हुआ। उसने नाना स्थानोंको लूट कर काफी रकम इकट्ठी की। लाहोरके शासनकर्त्ता खाजा ओवेद-ने जब गुजरानवालाका सिखदुर्ग आक्रमण किया, तब रामगढ़िया और कनहिया लोगोंने एकत्र हो कर उसे युद्धमें हराया। मुसलमान लोग रणक्षेत्रसे भाग चले।

इसके बाद यशोसिंहने बताला और कालानौर जीत कर अफगान-शासनकर्त्ता ख्वाजा ओवेदको मार भगाया तथा आस पासके सभी भूभागोंको अपने दखलमें कर लिया। अहमद शाहके सहयोगी घमन्द चाँद और पहाड़ी राज-

पूत सरदारोंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

यशोसिंहने ३० फुट ऊंची और २१ फुट चौड़ी मजबूत ईंटोंकी दीवारसे बताला नगरको घेरा था। इस समय रामगड़िया और कनहिया दलमें घमसान युद्ध चलता था। दोनों दलके हजार हजार सिख-योद्धा मारे गये थे। आखिर कनहिया सरदार जयसिंहसे हार खा कर यशोसिंह शतद्रु नदी पार कर भाग चला। यहां फिर चोरी-डकैतीसे प्रचुर धन जमा कर फुलकिया-सरदार अमरसिंहकी सहायतासे हिसार जिलेमें अधिष्ठित हुआ। यहांसे दिल्ली राजधानीकी प्राचीर सीमा तक इसने धावा बोल दिया। इसके बाद मीरटके नवाबसे इसने वार्षिक १० हजार रुपया वसूल किया। इस समय हिसारका शासनकर्त्ता दो ब्राह्मणकन्याको चुरा ले गया था, इससे यशोवंत उसे दण्ड देनेके लिये रवाना हुआ। पीछे हिसार नगर लूट कर दोनों कन्याओंको उनके पिताके पास पहुंचा दिया।

इसके कुछ समय बाद ही जयसिंहके साथ सुकरचकिया-सरदार महासिंहका विवाद खड़ा हुआ। यशोसिंहने पहले शत्रु जयसिंहका पक्ष लिया। इस युद्धमें जयसिंहके पुत्र गुरुवक्स मारा गया और कनहिया मिस्ल बुरी तरहसे परास्त हुई। युद्धमें जय पा कर इसने अपनी नष्ट सम्पत्तिका पुनरुद्धार किया। भाई मल्लसिंह और तारासिंहकी मृत्युके बाद यह विपाशातीरवर्त्ती खेला नगरमें आ कर रहने लगा। १७८६ ई०में यशोसिंहका देहान्त हुआ। पीछे उसके लड़के योधसिंहने पितृपदको सुशोभित किया था।

यशोहन् (सं० त्रि०) यशः हन्ति हन-क्विप्। यशोनाशक, कीर्त्तिको नाश करनेवाला।

यशोहर (सं० त्रि०) हरतीति हृ-अच्-हरः, यशसः हरः। यशोहरणकारी, कीर्त्तिनाशक।

यशोहर—खुलना जिलेके सातक्षीरा उपविभागके अंतर्गत एक प्राचीन नगर। यह यमुना और कदमतली नदीके सङ्गम-स्थल पर अवस्थित है। वङ्गके अन्तिम कायस्थवीर महाराज प्रतापादित्यने यहां यशोहरेश्वरी नामसे कालीमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी। तभीसे यह स्थान यशोहरेश्वरीपुर वा ईश्वरीपुर नामसे प्रसिद्ध है। प्रतापादित्यके प्रसङ्गमें इस नगरका यथायथ विवरण दिया गया है। राजाने जो सब गढ़प्रासाद, विचारगृह, कारागार, शासनोपयोगी मकान बनवाये थे, वे अभी खंडहरमें पड़े हैं। प्रतापादित्य देखो।

यशोहर—वङ्गालके छोटे लाटके शासनाधीन एक जिला। इसके उत्तर और पश्चिममें नदिया जिला, दक्षिणमें खुलना और पूर्वमें फरिदपुर जिला है। १८८१ ई०की मर्दुमशुमारीमें यहांका भूपरिमाण २२७६ वर्गमील था। उस समय यशोहर, नड़ाइल, मागुरा, खुलना, बागेरहाट और झिनाईदह नामक ६ उपविभाग ले कर यह जिला संगठित था। पीछे १८८४ ई०में यशोहरसे खुलना और बागेरहाट उपविभागको अलग कर खुलना नामसे एक स्वतंत्र जिला स्थापित हुआ। इधर नदिया जिलेसे वनग्रामका अलग कर यशोहरमें मिला लिया गया। १८८५ ई०के मई मासमें सर्भेयर जेनरलकी पैमाइशीके अनुसार उसका परिमाण २९२५ वर्गमील कायम हुआ। अभी यह अक्षा० २२° ४७' से २३° ४७' उ० तथा देशा० ८८° ४०' से ८९° ५०' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २९२५ वर्गमील है। यशोहर नगर ही इस जिलेका विचार-सदर है। स्थानीय लोग इसे कसवा कहते हैं। भैरव नदी इसकी बगल हो कर बहती है।

भागीरथी तथा गङ्गा और ब्रह्मपुत्रसङ्गमके डेल्टाका मध्यभाग ले कर ही यह जिला गठित है। यह विस्तीर्ण दलदल समतल भूभाग नदी और जलस्रोत द्वारा चारों ओरसे घिरा है। जमीनकी अवस्थाके अनुसार यह जिला दो भागोंमें विभक्त है। केशवपुरसे महम्मदपुर पर्यन्त नैर्ऋतसे ईशानकोनमें एक रेखा खींचनेसे उत्तर और पश्चिममें जो जमीन पड़ती है वह अपेक्षाकृत सूखी है। वह जमीन कभी भी बाढ़से नहीं डूबती उस रेखाके दक्षिण अर्थात् जिलेके पूर्व और दक्षिण सीमा तक जो भूभाग पड़ता है, वह प्रायः जलमय है। शीतकालको छोड़ कर और दूसरे समयमें इस जमीन हो कर पैदल जाना मुश्किल है। शीतकालको छोड़ कर और सभी ऋतुमें जल रहता है।

उक्त दो विभागको छोड़ कर यशोहरके दक्षिणपूर्वमें जो जलशून्य विभाग था वह सुन्दरवन कहलाता

था। अभी वह खुलना जिलेके अन्तर्भुक्त हो गया है।

वर्त्तमान यशोहर जिलेके उत्तरी भागमें विस्तीर्ण शस्यश्यामल क्षेत्र और सुविशाल खजूरके वन दिखाई देते हैं।

यहांकी नदियोंमें पूर्व सीमा पर मधुमती और उसकी नवगङ्गा, भैरव आदि शाखा तथा कुमार, कपोताक्ष, फटकी, हरिहर वा भद्रा आदि नदी प्रधान हैं। फिर माथाभङ्गा, चित्रा, अठरबांकी, गड़ुई, ह्रनु, वारासे, काली-गङ्गा, वेणी, वनकाना, कालिया, तालेश्वर, रूपसा, शिवसा, देलुती आदि नदी तथा बोसखाली, जयकाली, गाङ्गराइल, मजूदखाली, वोद्दाघाटा, नलुआ, गाङ्गनी-गाङ्ग, योगनिया, वारुईपाड़ा, मलौर, गोदरा, अफरा, घोड़ाखाली, पाल्टिया, यदुखाली, कुमारखाली, भवानी-पुरखाल, मासड़ाखाल, मुचीखाली आदि खालोंके बहने-से खेतीबारी तथा माल आदि ले जानेमें बड़ी सुविधा हो गई है। आज कल कुछ खाल और नदी ग्रीष्मकालमें बिल कुल सूख जाती हैं। लेकिन वर्षाऋतुमें वह फिर भर जाती और नावके जाने आने लायक हो जाती हैं। मधु-मती, भैरव आदि नदियोंमें ज्वार भाटा आया करता है, किंतु २०' अक्षांशसे अधिक जल नहीं उठता।

इन सब नदियोंके दोनों किनारे बड़े बड़े गाँव बसे हुए हैं। बहुतसे गाँवोंके चारों ओर यशोहर जिलेका प्रसिद्ध खजूर-वन दिखाई देता है। ऐसा घना खजूर-का वन वङ्गालमें और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। पहले लिखा जा चुका है, कि इस जिलेके उत्तरी भागकी नदियाँ वर्षाऋतुको छोड़ कर और सभी ऋतुओंमें सूख जाती हैं। मधुमती और नवगङ्गाके किनारे प्रतिवर्ष जो पंक जम जाता है, उसमें धान काफी उत्पन्न होता है।

वर्त्तमान कालमें यह जिला यशोर कहलाता है। लोगोंका कहना है, कि यहां बंगालीका यश हृत हुआ था, तदनुसार इस स्थानका यशोहर नाम पड़ा। प्रवाद है, कि वङ्गालके अन्तिम पठानराज दाऊद खाँको सभामें राजा विक्रमादित्य नामक एक सभासद थे। पठान-सरकारमें उनकी अच्छी खातिर थी। पठान शासनकर्त्ता दाऊद खाँ जब मुगल-सम्राट् अकबरशाहसे युद्धमें परास्त हुआ, उसके बाद राजा विक्रमादित्यने दिल्ली-सरकारमें एक दरबार बैठाया जिसमें इन्हें सुन्दरवनका अधिकार मिला। इसके बाद सुंदरवनमें आ कर उन्होंने अपना आधिपत्य फैलाया। अधिकृत प्रदेशके शासनकार्यको अप्रतिहत तथा अपनेको इस निर्जन वनप्रदेशमें निरापद रखनेके लिये राजा विक्रमादित्यने सेना रखी थी। उन्होंने प्राचीन गौड़ नगरीकी समृद्धि अपहरण कर उसीके माल मसालेसे तथा दाऊद खाँके धनरत्नको लूट कर यशोहर-पुरी बसाई। उनके लड़के प्रतापादित्यने स्वाधीनभावसे कई वर्ष तक यहांका शासन किया था। प्रतापादित्य उस समय वङ्गालके बारह भौमिकोंके अधिनेता हो कर वङ्गालमें एकाधिपत्य फैलाया। उनकी वह समृद्ध राजधानी २४ परगनेके बसीरहाट उपविभागकी धूमघाटमें थी। आज भी वहांके लोग उस स्थानको 'धूमघाट-यशोहर' कहते हैं। आज भी वहां प्रासाद, गढ़, मंदिर आदि वङ्गीय कायस्थकीर्त्ति वङ्गालका गौरव दिखलाती है। सुन्दर-वनके मध्य यशोरेश्वरीपुरमें भी उनकी दूसरी राजधानी थी। यशोहरनगर देखो।

प्रतापादित्यने सचमुच वर्त्तमान यशोहरविभागमें तमाम राज्य दिये था वा नहीं, उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पर हां, उन्होंने जो वर्त्तमान यशोहर जिलेके दक्षिणस्थ सुंदरवन विभागमें अपनी शासनशक्तिको अक्षुण्ण रखा था वह सर्ववादिसम्मत है। आज भी उनकी शक्तिके परिचालक दुर्ग आदिके खंडहर जंगलमें कई जगह मिलते हैं। प्रताप मुगल-सेनापति राजा मान-सिंहसे परास्त हुए। इसके बाद मुगल-सेनाने बंगालीका गौरव ध्वंस करनेके लिये वङ्गराजधानीकी श्रीहीन कर दिये था।

प्रतापकी जीवनीमें लिखा है, कि मुगल-युद्धके आरम्भ-में ही वङ्गालकी दुरवस्था समझ कर उन्होंने यशोर-वासियोंको दूसरा जगह चले जाने कहा था। वे लोग शायद उत्तर दिशाके शस्यश्यामल ऊंची भूमि पर जा कर बस गये। वे लोग अपनी पूर्व राजधानीको, चाहे यशोहरके नामानुसार हो चाहे मुगल द्वारा वङ्गालीका यश हृत होनेसे हो, मुसलमानी अमलमें यशोर वा यशो-हर कहा करते थे। अधिक सम्भव है, कि प्रतापादित्यके साथ वङ्गयुद्धावसानके बाद मुगल शासनकर्त्ताओंने

सुंदरवनका परित्याग कर इसी स्थानमें नया स्थान बसाया हो। प्रतापादित्य देखो।

इस जिलेके मध्य और भी कितने प्राचीन राजवंश देखे जाते हैं। उनमेंसे चांचड़ाका राजवंश ही बहुत कुछ प्रसिद्ध है। बहुतेरे इन्हें यशोरके राजा कहा करते हैं। मुगल-सेनापति खान्-इ आजमके एक विश्वस्त अनुचर भवेश्वर रायसे इस वंशकी उत्पत्ति है। भवेश्वर उक्त सेनापतिके अधीन सैनिकका काम करते थे। उनकी कार्यकारिता देख कर सेनापति खान-इ आजमने प्रतापके अधिकृत कुछ ग्रामोंको जीत कर उन्हें दे दिया।

१५८८ ई०में भवेश्वरकी मृत्यु होने पर उनके लड़के महाताव राम राय (१५८८-१६१० ई०) पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए। प्रतापादित्यके साथ जब मानसिंहका युद्ध होता था, उस समय महातावरायने मुगलोंका पक्ष लिया था। इस प्रत्युपकारसे मानसिंहने उन्हें अपनी पैतृक लब्ध सम्पत्तिका भोग करनेके लिये एक स्वतन्त्र दान-पत्र दिया था। १६१९-१६४९ ई० तक कन्दर्पराय-ने अपनी जमींदारीका अच्छी तरह शासन किया था। पीछे १७०५ ई० तक मनोहरराय पैतृक सम्पत्तिके अधिकारी रहे, उन्होंने थोड़े ही वर्षोंमें राज्यका कलेवर दूना बढ़ा दिया। इसी कारण बहुतेरे मनोहरको ही इस राजवंशके प्रकृत स्थापयिता मानते हैं। मनोहरके बाद १७०५-२९ ई० तक कृष्णराम और १७२९ ४५ तक शुकदेव राय उक्त सम्पत्तिके अधिकारी रहे। शुकदेवरायने सारी जयदादको बारह आने और चार आनेमें बांट दिया। बारह आनेका हिस्सा युसुफपुर और चार आनेका हिस्सा सैयदपुर कहलाया।

शुकदेवरायने यह चार आना हिस्सा अपने भाई श्यामसुंदरको दे दिया। श्यामसुंदरके मरने पर उस सम्पत्तिका कोई प्रकृत उत्तराधिकारी न रहनेके कारण बंगालके नवाबने उसे एक दूसरे जमींदारके साथ बंदोवस्त कर दिया। सुना जाता है, कि उस जमींदारने माननीय इष्ट-इण्डिया-कम्पनीको कलकत्तेके निकट थोड़ी जमीन दे दी थी। इस पर नवाबने क्रुद्ध हो कर उसकी सम्पत्ति छीन ली। लार्ड कार्नवालिसके चिरस्थाई बन्दोवस्तके समय मनु-जान नामकी एक मुसलमानी उक्त सम्पत्तिकी अधिकारिणी हुई। १८१४ ई०में उसका भाई हाजी महम्मद महसिन उस सम्पत्तिको हुगलीके इमामबाड़ाके खर्च वर्चके लिये दान कर गया।

उक्त चिरस्थायी बन्दोवस्तके समय युसुफपुर तालुकका अधिकारी राजा श्रीकान्तराय अपने कर्मदोषसे एक एक कर सभी परगना खो बैठा। आखिर उसे अंगरेज-गवर्मेण्टके निकट भिक्षाप्रार्थी होना पड़ा था। श्रीकान्तके बाद वाणीकान्त और उसका लड़का बरदाकान्त सम्पत्तिका अधिकारी हुआ। बरदाकान्तकी नाबालिगीमें १८१७ ई०को कोर्ट आव वार्डसकी देखरेखमें वह सम्पत्ति छोड़ दी गई। उस समयसे उक्त सम्पत्तिकी आय बहुत बढ़ गई। १८२३ ई०में गवर्मेण्टने साहस परगना अर्पण कर उत्तराधिकारियोंको 'राजा बहादुर'की उपाधि दी। सिपाही-विद्रोहके समय इस राजवंशने अंगरेजोंको काफी सहायता पहुंचाई थी, इस कारण राजोपाधि वंशपरम्परागत हो गई है। १८८० ई०में राजा बरदाकान्तकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के ज्ञानदाकान्त पैतृकसम्पत्ति और उपाधिके अधिकारी हुए। पीछे ऋणजालमें फंस जानेके कारण चाँचड़ाकी अधिकांश सम्पत्ति दूसरेके हाथ चली गई। विस्तृत विवरण चाँचड़ा शब्दमें देखो।

नलडङ्गाके राजोपाधिधारी प्रसिद्ध 'देवराय' वंशीय जमींदार बहुत पहलेसे यहां प्रसिद्ध हो गये हैं। वे लोग ढाका जिलेके भाग्यकुरा ग्रामवासी हलधर भट्टाचार्यके सन्तान हैं। हलधरसे पांच पीढ़ी नीचे विष्णुदास हाजरा गृहधर्मका परित्याग कर नलडङ्गाके निकटवर्त्ती हाजराहाटी ग्राममें आये और साधुसेवा करने लगे। वे योगबलसे किसी मुसलमान शासनकर्त्ताको भोजन दिया करते थे। नवाबने उन्हें पांच ग्राम दान दिये। उनके लड़के श्रीमंतरायने अपने वीर्यबलसे निकटवर्त्ती अफगान जमींदारोंको भगा कर समस्त महमूदशाही परगना अपने अधिकारमें कर लिया। उन्होंने अपनी वीरताके लिये 'रणवीर'की उपाधि पाई थी। उनके लड़के गोपीनाथ और पीछे गोपीनाथके लड़के चण्डीचरण देवराय राजा हुए। ४र्थ राजा

रामदेवरायको ब्राह्मण और मुसलमान फकीरके प्रति विशेष श्रद्धा थी। उनके वंशधर रघुदेव १७२७ ई०में मुर्शिदाबादके नवाबका आदेश पालन न करनेके कारण राजभ्रष्ट हुए। इसके तीन वर्ष बाद नवाव बहादुरने कृपा दरसा कर इन्हें फिर सम्पत्ति लौटा दी। १७७३ ई०में राजा देवरायकी मृत्यु होने पर वह सम्पत्ति तीन भागोंमे बंट गई। उनके औरसजात पुत्र महेन्द्र और रामशङ्कर, प्रत्येकको २का ५वां अंश तथा दत्तक गोविन्दको १का ५वां अंश मिला। महेन्द्र और तेयानीकी सम्पत्तिका अधिकांश नड़ालके प्रसिद्ध रायवंशीय जमींदारोंने खरीद लिया। दूसरे अंशका इन्दुभूषण देवरायके पोष्य-पुत्र राजा प्रथम-भूषणदेवराय भोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त और भी कितने जमींदार यहां वास करते हैं। उनमेंसे श्रीधरपुरके वसुवंश, नड़ालके राय (दत्त) वंश, तैलकूपीके मुंशीवंश और भाटपाड़ाके देवरायवंश उल्लेखनीय हैं।

१७८१ ई०में यह जिला अङ्गरेजोंके दखलमें आया। इस समय भारतवर्षके गवर्नर जेनरलने यशोर नगरके उपकण्ठस्थित मुरली नगरमें एक अदालत खोलनेका हुकुम दिया। इसके पहले १७६५ ई०में बङ्गालकी दीवानी पानेके साथ साथ यहांका राजस्व अङ्गरेजी कम्पनी ही उगाहती थी। मि० हेनकेल (Mr. Henakall) यहांके सर्व प्रथम जज और मजिष्ट्रेट नियुक्त हुए। उन्हींके नामानुसार हेनकलगञ्जका बाजार बसाया गया। उनके बाद १७८६ ई०में मि० बक आ कर यशोर नगरकी विचार-अदालत दूसरी जगह उठा ले गये। विख्यात अङ्गरेज औपन्यासिक थैकरेके पिता मि० आर थैकरे १८०५ ई०में यहां राजस्व-संग्राहकके पद पर नियुक्त हुये।

अङ्गरेजोंके अधीन आनेके बाद इस जिलेमें अनेक बार राजनैतिक परिवर्त्तन हुआ है। पहले यशोर और फरीदपुर जिला एक विचारकके द्वारा शासित होता था, उस समय इच्छामतीके पूर्वदिक्‌वर्त्ती २४ परगनेका भी कुछ अंश यशोरके अधीन था। अनेक परिवर्त्तनके बाद आखिर १८८२ ई०में बागेरहाट और खुलना उपविभाग ले कर जब स्वतन्त्र जिला गठित हुआ, तब इस जिलेका भूपरिमाण बहुत घट गया। पीछे नदियासे बनग्राम उपविभागको यशोरमें मिला देनेसे इसने वर्त्तमान आकार धारण किया है। अभी यशोरके जजको विचारार्थ फरीदपुर नहीं जाना पड़ता। भिन्न भिन्न जिलेमें भिन्न भिन्न विचारक निर्दिष्ट हुआ है।

खुलना, फरीदपुर और बागेरहाट देखो।

वर्त्तमान यशोहरके मागुरा उपविभागके अंतर्गत महम्मदपुर एक प्रसिद्ध स्थान है। यहां बङ्गाली वीर सीतारामका कीर्त्ति-निकेतन आज भी अतीत स्मृतिकी घोषणा करता है।

राजा सीताराम रायने मधुमती नदीके किनारे महम्मदपुर नगर बसाया। प्रवाद है, कि एक दिन वे घोड़े पर चढ़ कर महम्मदपुरके निकटवर्त्ती अपने श्यामनगर तालुकमें टहल रहे थे। इसी समय एक जगह कीचड़में घोड़ेका खुर धंस गया। राजाने आसपासके कृषकोंको खुर उठानेके लिये बुलाया। वे लोग आये और उस जगहकी जमीन खोदने लगे। खोदते समय शिवका त्रिशूल और लक्ष्मीनारायणकी मूर्त्ति पाई गई। राजा सीतारामरायने वहां मन्दिर तथा बहुतसे मकान बनवा दिये और पीछे अपनी राजधानी भी वहीं बसाई।

सीताराम राय देखो।

आज भी महम्मदपुरमें जो सब भग्नावशेष निदर्शन जङ्गलावृत हो पड़े हैं उनमें खाई और चहारदीवारीसे युक्त चतुष्कोण दुर्ग ही प्रधान है। वही महम्मद खां नामक मुसलमान फकीरके नामानुसार महम्मदपुर नामसे प्रसिद्ध है। पूरबमें नारायणपुर तथा पश्चिममें कनाईनगर और श्यामनगर नामक ग्रामके मध्य नगरकी भग्न अट्टालिकादि देखी जाती हैं। रामसागर, सुखसागर, सीताराम राजाके सेनापति मेनाहातीकी पद्मपुष्करिणी, सीतारामका वासभवन और उसकी बगलमें धनपुष्करिणी मौजूद है। शेषोक्त सरोवरमें राजा सीताराम अपना धनरत्न डुबा कर रखते थे। मि· वेष्टलैण्ड जब महम्मदपुर देखने आये थे, तब उन्होंने पुष्करिणीके चारों ओर ईंटोंकी दीवार भग्नावस्थामें देखी थी। उस पुष्करिणीके दक्षिण दशभुजाका मन्दिर और लक्ष्मीनारायणजीका

मन्दिर प्रतिष्ठित है। दशभुजा-मन्दिरमें १६२१ शकका उत्कीर्ण शिलाफलक दिखाई देता है।

दुर्गके पश्चिम कानाईनगर नामक छोटे ग्राममें १७०३ ई०का सीताराम राय द्वारा प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण-मन्दिर देखा जाता है। वेष्टलैण्ड साहब उसका शिल्पनैपुण्य देख कर बड़ी तारीफ कर गये हैं। देवमन्दिरकी बगलमें रामसागर और कृष्णसागर नामक दो बड़ी दिग्गी विद्यमान है।

१८३५ ई०में महम्मदपुरमें महामारी उपस्थित हुई। इस समय यशोरसे ढाका पर्यन्त रास्ता बनाया जा रहा था। प्रायः ७०० कुली जब रामसागर और हरेकृष्णपुर ग्रामके मध्य काम करते थे, उसी समय उन लोगोंके मध्य महामारीका प्रकोप देखा गया। थोड़े ही दिनोंके अन्दर महम्मदपुर थाना जनशून्य हो गया। साथ साथ प्राचीन समृद्धिका ह्रास भी होने लगा। अभी महम्मदपुर थानेमें लोगोंका वास रहने पर भी राजा सीताराम रायकी प्राचीन कीर्त्ति-रक्षाका कोई उपाय न किया गया।

एतद्भिन्न इस स्थानमें और भी कितने मन्दिर तथा अट्टालिकादिके निदर्शन पाये जाते हैं। वे सभी ध्वस्त और जङ्गलपूर्ण हैं। निविड़ जङ्गलके मध्य उस लुप्त गौरवका उद्धार करना सहज नहीं है। इस जिलेके उत्तर जिस प्रकार उत्तरराढ़ीय कायस्थ-कुलतिलक राजा सीतारामकी कीर्त्ति विद्यमान है उसी प्रकार सुन्दरवन-विभागमें वङ्गज कायस्थ-प्रधान महावीर प्रतापादित्यकी ईश्वरीपुरी (यशोर)-का ध्वस्त निदर्शन आज भी इधर उधर बिखरा हुआ देखा जाता है। वह अभी खुलना जिलेके अन्तर्भुक्त हो गया है।

इस जिलेमें ३ शहर और ४८६४ ग्राम लगते है। जनसंख्या १८ लाखसे ऊपर है। मुसलमानकी संख्या सबसे ज्यादा है, क्योंकि बहुत दिनों तक यह स्थान मुसलमान-शासनके अधीन रह चुका है।

इस जिलेके मध्य यशोरनगर, कोटचांदपुर, केशवपुर, नलडङ्गा, चौगाछा, मागुरा, झिनाईदह, चांदखाली, खाजुरा, विनोदपुर, नड़ाल, लक्ष्मीपाशा, वर्डान्दया, नपाड़ा आदि नगर और बड़े बड़े ग्राम स्थानीय वाणिज्य-केन्द्र हैं। नाना स्थानोंसे यहां पण्यद्रव्यादि बिकने आते हैं। वाणिज्य द्रव्योंमें खजूरका गुड़ और चीनी प्रधान है, नदी और खालको छोड़ पक्की सड़क से बैलगाड़ी द्वारा भी माल पहुंचाया जाता है। १८८४ ई०में यहां बी, सी रेलवेके खुल जानेसे कलकत्तेसे माल लानेकी बड़ी सुविधा हो गई है। कलकत्तेके सियालदहसे यशोनगर ७४ मील और खुलनासे ३५ मील दूर पड़ता है। धाईतलासे चाकदा (चक्रदह) तक २७ कोसको एक पक्की सड़क दौड़ गई है। वह सड़क यशोरनिवासी काली पोद्दार नामक एक धर्मात्मा व्यक्तिकी कीर्त्ति है। उन्होंने देशवासियोंको जिससे गङ्गास्नान करनेमें सुविधा हो, उसी लिये बहुत रुपये खर्च करके वह सड़क बनवाई थी। इच्छामती, कपोताक्ष, बेता, भैरव और धाईतला खालके ऊपर जो पुल हैं वह भी उन्हींकी कीर्त्ति है। उनके बनवानेमें भी बहुत रुपया खर्च हुआ था। उस सड़ककी मरम्मतके लिये वे कलकृर बहादुरके हाथ एक तालुक छोड़ गये हैं। उसीकी आयसे सड़क मरम्मत होती है। कलकत्तेसे गवर्मेण्टका रास्ता बनग्राममें इसके साथ मिल गया है।

गुड़, नील, चावल, मटर, कलाय आदि अनाज यहांका प्रधान वाणिज्यद्रव्य है। सुन्दरवनविभागसे काठ, मधु और शम्बूकादि बेचनेके लिये लाये जाते हैं। अभी नीलकी खेती उठ गई है।

वङ्गालका विख्यात साप्ताहिक पत्र 'अमृतबाजार-पत्रिका' पहले इसी जिलेसे निकलता था। अभी कलकत्तेमें स्थानान्तरित हो कर द्विसाप्ताहिक और दैनिक-रूपमें निकलता है।

प्रायः तीन सौ वर्ष पहले यशोर जिलेका कैसा आकार था वह हम लोग 'दिग्विजय प्रकाश'से बहुत कुछ जान सकते हैं। कविरामके 'दिग्विजय प्रकाश'में लिखा है—

'पश्चिम सीमामें कुशद्वीप, पूर्वमें भूषण और बाकलाकी सीमा मधुमतीनदी, उत्तरमें केशवपुर और दक्षिणमें सुन्दरवन, चारों सीमाके मध्यवर्त्ती २१ योजन परिमित स्थान यशोर कहलाता है। फिर इसके मध्य दक्षिण उत्तर और पूर्व क्रमसे तीन देश वा विभाग हैं। इन

तीनों विभागोंके नाम हैं चिङ्गोटी (वर्त्तमान चिङ्गुटिया परगना), पपगा और हागल। इस यशोरकी दोनों बगल हो कर भैरव नदी बहती थी। ऊर्द्धाम्नायतन्त्रमें उक्त भैरवनदीकी उत्पत्ति लिखी है। यहां महादेवके मस्तकसे सतीदेवीकी बाहु और पद गिरे थे, इसी कारण इसका यशोरेश्वरी नाम पड़ा है। अनरी नामक एक ब्राह्मणने जंगलमें देवीका प्रासाद बनवाया था जिसमें सौ द्वार लगे थे। पीछे गोकर्णकुलसम्भूत धेनुकर्ण नामक एक क्षत्रिय राजा यहां आये। उन्होंने जङ्गल कटवा कर यशोरेश्वरीके निकट पक्केका घर निर्माण किया। बल्लालसेनके पुत्र लक्ष्मणसेन यशोरका सेनहट्ट ग्राम बसा कर यशोरेश्वरीके समीप एक शिवमन्दिर बनवा गये हैं। धेनुकर्णके पुत्र कण्ठहार बङ्गभूषणने भूषण (वर्त्तमान भूषणा)को जीत कर यहां बहुत दिन तक राज्य किया था। कण्ठहारके वीर्य्यसे नीचयोनिज पुत्रगण जङ्गलबाधा और चालियावेष्ट ग्राममें रहते थे। चालियावेष्टक वैदिक ब्राह्मणवंशीय रायके अधीन था। एतद्भिन्न यशोरमें निरामय, पमसाग, दक्षिणडि, नरेन्द्र, छयघरिया, बनग्राम आदि समृद्धिशाली हैं। मुसलमानोंके उत्पातसे कितने ग्राम उजड़ गये, कितने लोग जातिच्युत और स्थानच्युत हुए, उसकी शुमार नहीं। भैरवनदीको छोड़ कर रूपसा, बलेश्वरी, वाड़ालनखा, वासागादि, कालनजीरा, गड़ा, मधुमती आदि सोते इस यशोहरमें बहते हैं।'

इसके बाद प्रायः दो सौ वर्ष पहले यशोरका रूप फैला था, इस सम्बंधमें भविष्य-ब्रह्मखण्डमें यों लिखा है,—

'जब सतीकी देहको शिर पर लिये सदाशिव देश देश घूमते थे, उस समय सतीकी बाहु और पैरका एक भाग यशोरमें गिरा। उसीके गिरनेसे इसका यशोर नाम पड़ा। बौद्ध और जैनप्रभावके भयसे कितने लोग यशोर आ कर बस गये थे। मुसलमानी अमलमें यशोरेशी महादेवी अंतर्हित हुईं। युगके प्रभावसे सुन्दरी ब्राह्मण-कन्या मुसलमानोंका भजन करने लगीं। इसी कारण यहांके अधिवासिगण भी म्लेच्छप्राय हैं। इच्छामती नदीके किनारे धूम्रघट्ट नामक स्थान मार्त्तण्डराय नामक एक युद्धप्रिय राजा रहते थे। वे स्पर्शमणिको पा कर नित्य उसकी पूजा करते थे। रामदास नामक एक व्यक्ति बड़े कौशलसे उस स्पर्शमणिको चुरा ले गया। मणिके नहीं मिलने पर मार्त्तण्डने प्राण दे दिया था।

'इस यशोरके मध्य ५०० ग्राम हैं जिनमें ६० प्रधान हैं। दो नगरी तो जनसाधारणका चित्त चुराती है। इच्छामतीके तीरवर्त्ती ईश्वरीपुरमें महेश्वरी विद्यमान है। यहां पर सतीका हाथ पांव गिरा था। इच्छामती और सूर्यजयाके सङ्गम पर कासारण्यके मध्य देवघट्ट है। यहां बहुतसे सिद्ध ब्राह्मण और वैष्णव रहते हैं। इच्छामतीके पार्श्वमें ही द्विजक्रियात्मक कुशद्वीप है। एतद्भिन्न पांसा, विषादपल्ली, लक्ष्मीप्रिय कुलाग्राम (वर्त्तमान लक्ष्मीकोल वा लक्ष्मीपाशा), नवावाद, जिनावाद, आवेदनपुर, जानावाद, पाञ्चाल, ब्रह्मड़ी, आसक्तिपुर, रूपवती (रूपसा) तीरवर्त्ती दश ग्राम, सारस, रिण्णिक, चित्रानदीके समीप महम्मद और सुधीपुर, आमखात, मुण्डमाला, मुखालिभ्रमर, राजवीथि, तारावीथि, असितग्राम, धूलीपुरी, ताम्रड़ी, परमानन्दकण्टक, कुलकास, दिलाकास, धन्यग्राम, विदूयग्राम, माहाड़, परशुग्राम, कातर, पातसाह, ताकि, वृन्दावनपुर, रामपुर, कामसागर, भल्लूक, नलद (नलदी), मन्दार, मामूद आदि नदीके किनारे अवस्थित हैं। धूम्रघट्टपतनमें प्रायः सौ वर्षसे ऊपर राज्य करनेके बाद कायस्थराजोंके साथ दिल्लीश्वरका विवाद खड़ा हुआ। उसीसे कायस्थ-राज्य चौपट लग गया।' (भ० ब्रह्मखण्ड ११ अ०)

यह जिला विद्यालयमें बहुत पिछड़ा हुआ है। जिले भरमें १ शिल्प कालेज, ८५ सिकेण्ड्री, १२२५ प्राइमरी और ३० स्पेशल स्कूल हैं। इनमेंसे नरालका विक्टोरिया कालेज, कालिया, मागुरा और यशोरके हाई स्कूल प्रधान हैं। स्कूलके अलावा २० अस्पताल हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° ४७´ से २३° २८´ उ० तथा देशा० ८८° ५९´ से ८९° २६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८८९ वर्गमील और जनसंख्या ६ लाखके करीब है। इसमें यशोर नामक १ शहर और १५०० ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान शहर। यह अक्षा० २३° १०´

उ० तथा देशा० ८१' १३ पू०के मध्य भैरवनदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर होगी। यहां बेङ्गाल सेण्ट्रल रेल कम्पनीका एक स्टेशन है। पुराण, नगवर, शङ्करपुर और चांचड़ा ग्राम म्युनिस्पलिटोके अधीन है। चांचड़ा-राजभवनके गढ़का निदर्शन आज भी देखनेमें आता है। प्रासादके समीप चोरमारा नामकी एक दिग्गी है। शहरमें डिष्ट्रिक्टजेल, गिरजा, अस्पताल, लाइब्रेरी और एक हाई स्कूल है।

यश्वन्त—वृत्तद्युमणिके प्रणेता।

यष्टव्य (सं० त्रि०) यज्-तव्य। यजनीय, यज्ञके योग्य।

यष्टि (सं० पु०) इज्यते इति यज् बाहुलकात् (वसेस्ति। उण् ४।१।७६) इति सूत्रस्य वृत्तौ ति। १ ध्वजदण्ड, पताकाका डंडा। २ भुजदण्ड, लाठी, छड़ी। (स्त्री०) ३ तन्तु, तांत। ४ भार्गी, भारंगी। ५ मधुका लता। ६ शाखा, टहनी। ७ गलेमें पहननेका एक प्रकारका मोतियोंका हार। ८ यष्टिमधु, मुलेठी। ९ बाहु, बांह।

यष्टिक (सं० पु०) यष्टिरिव कन्। १ जलकुक्कुट, तीतर पक्षी। २ दण्ड, डंडा। ३ भार्गी, भारंगी। ४ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ५ यष्टि देखो।

यष्टिका (सं० स्त्री०) यष्टि-स्वार्थे कन्-टाप्। १ यष्टि, गलेमें पहननेका हार। २ वापी, वावली। ३ यष्टिमधु, मुलेठी। ४ लगुड़, हाथमें रखनेकी छड़ी या लाठी। पर्याय—शक्ति, शक्ती, यष्टि, यष्टी, यष्टिका, दण्ड, काण्ड, पशुघ्न, दण्डक।

यष्टिकाभ्रमण (सं० क्ली०) सुश्रुतके अनुसार जलको ठंढा करनेका उपाय।

यष्टिग्रह (सं० पु०) यष्टिं गृह्णातीति यष्टिग्रह (शक्तिलाङ्गलाङ्कुशयष्टितोमरेति। पा ३।२।९) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अच्। यष्टिधारक, लाठी रखनेवाला।

यष्टिमत् (सं० त्रि०) यष्टिविशिष्ट, लाठी रखनेवाला।

यष्टिमधु (सं० क्ली०) यष्ट्यां मधुमाधुर्यमस्य। स्वनामख्यात मधुरमूलकाण्ठ, मुलेठी। पर्याय—यष्टिमधुका, यष्ट्याह्व, मधुक, यष्टि, क्लीतक।

इसे दाक्षिणात्यमें मीठी लकड़ी, गुजरातमें जेठी मध, महाराष्ट्रमें जेष्ठा मधु, तेलगुमें यष्टिमधुरम्, तामिलमें अतिमदुरम, कनाड़ी यष्टिमधुका, अतिमधुरा, सिंहलमें अतिमदुरम, वेलमी, फारसमें विखेमहक और ब्रह्ममें नोलथियु कहते हैं।

यह वर्षजीवी क्षुप है। पारस्य, अफगानिस्तान, तुर्कीस्थान, साइबेरिया, अर्मेनिया, एशिया-माइनर और दक्षिण यूरोपमें यह स्वभावतः उत्पन्न होता है। इटली, फ्रान्स, रुसिया, जर्मनी, स्पेन, इङ्गलैण्ड और चीनदेशमें इसकी खेती होती है। इसका मूल दो काममें आता है। मूलबहुशाखायुक्त, सुदीर्घ, कठिन फिर भी लचीला और १ इञ्च मोटा होता है।

इस यष्टिमधुके भी कितने भेद हैं जिनमें चरकोक्त स्थलज और जलज हैं। यष्टिमधुका मूल ही औषधमें व्यवहृत होता है। भारतवर्षमें यष्टिमधु उत्पन्न नहीं होने पर भी भारतीय चिकित्सक बहुत पहले हीसे इसका गुणागुण जानते थे। चरक और सुश्रुतमें भी यष्टिमधुका गुण वर्णित है। थेवफ्रष्टस, दियेस्कोरिदेश आदि चिकित्सकों तथा सिरम, ष्क्रिबोनियम आदि रोमकग्रन्थकारोंने भी इस मधुके मूलका उल्लेख किया है। 'मख-जन-एल आद-किया नामक आरव्य चिकित्साग्रन्थ-प्रणेताने इस मूलका विस्तृत विवरण लिखा है। उनके मतसे मिस्रका यष्टिमधु ही सर्वश्रेष्ठ है, उसके बाद इराक और तब सिरीय देश जाते हैं। छालको अलग कर मूल काममें लाया जाता है। उनके मतसे इसका गुण—उष्ण, शुष्क, पूयज, स्निग्धकारक, वेदना, तृष्णा और कफहर; मूत्रकारक, रजोनिःसारक और श्वासकास तथा कण्ठनलीगत उपद्रवमें यह बहुत उपकारक है। किसी किसी हकीमके मतसे मूलनिर्यास थोड़ी मात्रामें नेत्रमें प्रयोग करनेसे दृष्टिशक्ति बढती है। वर्त्तमान विलायतके भैषज्यसंग्रहमें यह खांसी, फेफड़े की श्लैष्मिक झिल्लीके प्रतिश्याय और मूत्रकृच्छ्र रोगके औषधरूपमें लिया गया है।

अफगानिस्तानसे पञ्जाबमें इस मधुककाष्ठकी यथेष्ट आमदनी होती है। छींट कपडेको सुगन्धित और मजबूत करनेके लिये यह काठ काममें आती है।

चरकके मतसे यष्टिमधु जलज और स्थलजके भेदसे दो प्रकारका है, यह पहले ही लिख आये हैं।

राजनिर्घण्टके मतसे स्थलजको यष्टिमधु और जलजातको अतिरसा कहते हैं। गुण—मधुर, कुछ तिक्त,

चक्षुका हितकर, शीतल, पित्तघ्न, शोष, तृष्णा और व्रण-नाशक। (राजनि०) सुश्रुतके मतसे यह शूलरोगमें विशेष उपकारक है। विरेचनके पक्षमें यह बहुत बढ़िया है। किसी किसीके मतसे यह स्निग्ध और शिथिलता-कारक है। भावप्रकाशमें इसका गुण—शीतल, गुरु, स्वादु, चक्षुष्य, बल और वर्णवर्द्धक, सुस्निग्ध, शुक्र-वर्द्धक, केशका हितकर, पित्त, वायु और रक्तदोषनाशक, व्रण, शोथ, विष, छर्दि, तृष्णा, ग्लानि और क्षयरोग-नाशक माना गया है।

यष्टिमधुका (सं० स्त्री०) यष्टि मधुवत् कायतीति कै-क टाप्। यष्टिमधु, मुलेठी।

यष्टियन्त्र (सं० क्ली०) यन्त्रभेद, वह धूपघड़ी जिसमें एक छड़ी सीधी खड़ी गाड़ दी जाती है और उसकी छायासे समयका ज्ञान होता है। यन्त्र देखो।

यष्टिलता (सं० स्त्री०) भ्रमरारिपुष्पवृक्ष, भ्रमरमारी नामक फूलका पेड़।

यष्टिवन—राजगृहके पूर्वमें स्थित एक वन। इस वनमें बुद्धदेव विहार करते थे, इसलिये यह स्थान बौद्धोंका एक पवित्र तीर्थस्थान माना जाता है। बौद्ध-सम्राट् अशोकने यहां एक स्तूप बनवाया था। चीनपरिव्राजक युएनचुवंगके वर्णनसे मालूम होता है, कि यहां जयसेन नामक एक लिय उपासक रहते थे। वे सब शास्त्रोंको जानते थे। ब्राह्मण, श्रमण आदि भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी उनसे शास्त्रालाप करने आते थे।

यष्टी (सं० स्त्री०) यष्टि 'कृदिकारादक्तिनः' इति ङीष्। १ यष्टिमधु, मुलेठी। २ गलेमें पहननेका एक प्रकारका हार, मोतियोंकी ऐसी माला जिसके बीच बीचमें मणि भी हो।

यष्टीकर्ण (सं० पु०) कानमें पहननेका एक प्रकारका भूषण, कुंडल।

यष्टीपुष्प (सं० पु०) यष्टीपुष्पमिव पुष्पं यस्य। पुत्रञ्जीव-वृक्ष, पुत्रजीवका पेड़।

यष्टीमधु (सं० क्ली०) यष्ट्यां मधुमाधुर्यमस्य। मिष्ट मूल-विशेष। जेठी मधु। पर्याय—मधुयष्टी, मधुवल्ली, मधुस्रवा, मधूक, मधु, यष्टीक। यष्टिमधु देखो।

यष्टृ (सं० पु०) यजते इति यज-तृच्। यागकर्त्ता, यजमान।

यष्ट्याह्व (सं० क्ली०) यष्टीत्याह्वा यस्य। यष्टिमधु, मुलेठी।

यस्क (सं० पु०) यसति मोक्षाय यस्-क्विप् संज्ञायां कन्। गोत्रप्रवर्त्तक एक मुनिका नाम।

यस्मात् (सं० अव्य०) १ जिससे। २ जिस कारण।

यस्य (सं० त्रि०) १ जो अध्यवसाय द्वारा किया गया हो। २ वध्य, वध करने योग्य।

यस्यत्व (सं० क्ली०) १ चेष्टा, उद्यम। २ वधयोग्यता। ३ मृत्यु, मरण।

यह (सं० पु०) १ जल। २ शक्ति।

यह (हिं० सर्व०) निकटकी वस्तुका निर्देश करनेवाला एक सर्वनाम। इसका प्रयोग वक्ता और श्रोताको छोड़ कर और सब मनुष्यों, जीवों तथा पदार्थों आदिके लिये होता है।

यहां (हिं० वि०) इस स्थानमें, इस जगह पर।

यहि (हिं० वि० सर्व०) १ 'यह' का वह रूप जो पुरानी हिन्दीमें उसे कोई विभक्ति लगनेके पहले प्राप्त होता है। २ 'ए' का विभक्तियुक्त रूप जिसका व्यवहार पीछे कर्म और सम्प्रदानमें ही प्रायः होने लगा, इसको।

यही (हिं० अव्य०) निश्चित रूपसे यह, यह ही।

यहु (सं० त्रि०) १ महत्, बड़ा। (पु०) २ पुत्र, लड़का।

यहूद (हिं० पु०) वह देश जहां हजरत ईसा पैदा हुए थे और जहांके निवासी यहूदी कहलाते हैं। यह देश एशियाकी पश्चिमी सीमा पर है।

यहूदी (यहूदा, यहूदी, यिउ)—पश्चिम एशियावासी एक प्राचीन जाति। हिब्रु इस जातिकी भाषा है। इससे यह हिब्रू जातिके नामसे भी परिचित है। ईसाके जन्मसे बहुत पहलेसे यह जाति स्वतंत्र धर्म मार्गका आश्रय ले कर वास करती है। बाइबल ग्रंथका प्राचीनांश (Old testament) हिब्रु भाषामें लिखा हुआ है। इस जातिकी प्राचीन समृद्धिका परिचय बाइबिलमें रहते हुए भी इसको कोई खास वास-भूमि नहीं है। पृथ्वीके नाना देशोंमें अपने उपनिवेश कायम कर रहती है।

यहूदी राज्यभ्रष्ट हो कर क्यों इधर उधर भटकते हैं,

इसके सम्बंधमें ईसाई पादरियोंकी एक दन्त कथा प्रचलित हैं—

यहूदी कहते हैं, कि ईश्वरका अवतार उन्हींकी जातिमें होगा। ईसा मसीह ईसाइयोंके लिये ईश्वरके पुत्र (The son of God) माने जाते हैं; किन्तु यहूदी उनको ईश्वरका भेजा हुआ पुरुष भी स्वीकार नहीं करते। मेथु द्वारा रचित "Historia major" नामक ग्रंथमें लिखा है, कि पाइलेटीराजके महलका द्वाररक्षक कार्त्तफिलास नामक एक यहूदी ही ईसा मसीहको सूली पर चढ़ानेके लिये ले गया था। इसीने ईसा मसीहको मारते मारते ले जा कर क्रूशों पर चढ़ाया। मारते समय वह कहता था, कि "चलो ईसा तुम शीघ्र शीघ्र चलो, क्यों तुम देरी कर रहे हो।" उसके इस तरह कहने तथा अन्याय युक्त प्रहारसे क्षुब्ध हो ईसाने जवाब दिया था— "मैं चल रहा हूं। क्रूशो पर चढ़ कर मैं चिरशांति प्राप्त करूंगा। किंतु तुम मेरे पुनः आने तक इसी तरह घूमते रहोगे।" ईसाके शापसे यहूदी आज भी एक जगह न रह स्थान-स्थानमें घूम रहे है। इसीसे ये "The wandering Jew" कहे जाते हैं। इनके राज्य नहीं—अपनी जननी-जन्मभूमिकी गर्व करनेके लिये एक विन्दु मात्र भी कहीं जमीन नहीं; फिर यह जाति बहुत पुरानी कही जाती है।

ये यहूदी वाइविल प्रसिद्ध इसरायलके वंशधर हैं। किंतु इसरैली और यहूदी एक हैं यह बात बहुतेरे लोग स्वीकार नहीं करते। अङ्गरेजी Jew शब्दसे यूदा (Judaeus or Judaean) वासी ज्ञान पड़ता है। यह 'युदा' ही यहूदा या यहूदी नामसे इस देशमें प्रसिद्ध हैं। यथार्थमें वाविलन नगरमें कैदीके रूपमें अवस्थित इसरेली जब छुट गये, तब पुनः लौटने पर यूदावासी जातिने ही उनके सरदारीका पद लिया था। इसलिये यह जाति 'यू' नामसे विख्यात हुई। सामारितानोंके इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि वे यूसुफ (Josheph)के और यहूदी येहुधिम या युदायेटिसके वंशधर हैं। मिस्र-देशमें वास करनेके समय यहूदियोंकी अवस्था खराब हो गई। मूसा इसरेलियोंको मिस्रसे निकाल कर सिनाई पर्वतके निकट ले आये और वहां ईसाके १३१० वर्ष पूर्व उनको देवविधि अर्थात् (The Law of Moses)-की शिक्षा दी। इसके बाद ये पेलेष्टाइनमें आ कर रहने लगे। इस समयसे ५० ई० तक ये महापराक्रमशाली विभिन्न राजाओं द्वारा विशेषरूपसे निगृहीत हुए थे। वाइबेलप्रोक्त विचारकोंके शासनके समय (Government of Judges) इनको छः बार कैदखाने जाना पड़ा था। पहले मेसोपोटामिया राज्यके अधीन आठ वर्ष तक, इसके बाद मोयारराज एगलोन फिलिष्टाइन और हाजारपति यविनने इनको यथाक्रमसे कैद कर लिया। इस समय देवोरा और वरक उनको छुड़ा कर ले गया। पांचवीं बार मिदियोनावासियोंने कैद किया। इस बार गिडियनने आ कर उन्हें छुड़ाया। अन्तमें ये अमोनाइट और फिलिष्टाइनसोंके हाथों कैद हुए थे।

ईसासे ७४० वर्ष पूर्व असीरीयराज टिग्लाथ पिलेसेरने यहूदियोंके कई नगरों पर अधिकार कर लिया। वे रुवेन्, गद मनसेवासी यहूदियोंको कैद कर ले गये। इसके २० वर्ष बाद असीरीयके राजाने इन कैदियोंको यूफ्रेटिस नदीके किनारे एक उपनिवेश बसानेके लिये भेज दिये। जो दश जातियां यहां भेजी गई, वे फिर न लौटी।

यूदी (यहूदी) पर आक्रमण कर मिस्रराज सिशकने ९६० वर्ष ईसासे पूर्वके समकालीन जेरुसलेमका ध्वंस किया था। इसके बाद वाविलनराजने बुकाड्नेजारने तीन बार इस नगरको अधिकार किया था। पहली बार जेहोयाईकिमके अधिकारके समय ईसासे ६०६ वर्ष पूर्व, दूसरी बार उसके पुत्र जेकोनियासके राज्यकालमें ईसासे ५९८ वर्ष पूर्व और तीसरी बार ५८७ वर्ष ईसासे पूर्व जेदेकियाके राजत्वके समय तीसरी बार नगर पर अधिकार कर वहांके रहनेवालोंको नेबुकाड्नेजार पुनः वाविलन नगरमें ले गये।

यहां वे प्रायः ७० वर्षों तक नजरबन्द थे। इसके बाद वे स्वदेश लौट कर एक स्वतन्त्र जातिके रूपमें जातीय बलसे बलवान् हो अभ्युत्थान करनेमें लगे। इस समय कितने ही यहूदी रोमराज्यके अधीन हुए। ईसाके परलोकगमनके प्रायः पचास वर्ष बाद सम्राट् भेस्पेशियानके पुत्र तितस्ने जेरुसलेम नगरीको सम्पूर्णरूपसे

ध्वंस किया था। इस समय यहूदी तितर बितर हो गये। तबसे फिर कभी उस नगरीका उद्धार न हो सका।

सन् ६३ ई०में रचित जोसेफके 'प्राचीन यहूदियोंके इतिहास' ग्रन्थके ११वें अध्यायमें लिखा है, कि एजरा-के साथ जब यहूदी बन्धनमुक्त हुए, तब वे दो दलोंमें विभक्त हो गये। अतएव रोमके अधिकारमें एशिया और यूरोपवासी दो तरहके यहूदियों तथा पूर्वोक्त १२ जातियोंको मिला कर यहूदी जाति बहुत बढ़ गई। ५वीं शताब्दीमें महात्मा जेरोम (St. Jerome)-ने लिखा है, कि इस समय भी यहूदियोंकी दश शाखायें पारदराज-के अधीन हैं। आज भी उनकी अधीनताकी बेडी नहीं कट सकी।

बाविलनके अवरोधके बाद इतिहासमें यह कुछ भी लिखा नहीं है, कि किस तरह युदाके गुरुवंशके सिवा दूसरी १० यहूदी शाखायें अन्यान्य जातियोंसे मिश्रित हो गई थी और किस तरह इस जातिकी अतीत स्मृति घोर अन्धकारमें विलुप्त हो गई।

पाश्चात्य या युरोपीय जगत्में जिन सब प्राचीन जातियोंका उल्लेख मिलता है, उनमें यहूदी ही सर्वापेक्षा प्राचीनतम और विशेष प्रसिद्ध हैं और इनका इतिहास कौतुहलपूर्ण तथा आलोचनाकी एक सामग्री है।

यद्यपि वे प्रायः १६वीं शताब्दी तक भूमण्डलके किसी स्थलमें जातीय शक्ति-रक्षा कर विराजित नहीं हैं, फिर भी सब देशोंके सब सम्प्रदायोंमें विमिश्र-भावसे वास कर रहे हैं, तथापि कहा जा सकता है, कि उस प्राचीन युगसे आज भी उन्होंने जनसमाजमें अपने जातीय स्वातन्त्र्य, धर्म और भाषाकी रक्षा कर अपनी जातिके विशेषत्वको कायम रखा है।

युरोप या अफ्रिकामें ऐसी कोई जाति नहीं, जो सृष्टि-के आरम्भसे अपनी उत्पत्ति, विस्तृति और प्रतिपत्ति-का इतिहास प्रकट कर सके। ये यहूदी आज भी जगत्-में स्वतंत्र भावसे विद्यमान रह कर अपनी उत्पत्तिकी धारावाहिक पर्य्याय रक्षा करते आ रहे हैं। ये अपनेको (Abraham) इब्राहिम इसाक (Isac) और याकूब (Jacub)के सन्तान कहते है। प्रमाणस्वरूप इनमें त्वक्-च्छेद-विधि या सुन्नत (Ordinance of Circumci-sion) प्रचलित दिखाई देती है।

"जगत्के रक्षक उनके ही वंशमें पैदा होंगे" इसी विश्वासके वशवर्त्ती हो कर पहलेसे ही इसरायलके वंशज अन्यान्य जातियोंसे पृथक्‌रूपमें वास कर रहे हैं। इसका आभास याकूब-इब्राहिम और इसाकको मिला था, कि ईश्वर जगत्में अवतार लेंगे। इसीसे उन्होंने जनसमाजमें प्रचार भी किया था, कि ईश्वर हमारे ही वंशमें अवतार ग्रहण करेंगे।

जगदीश्वरकी कृपासे याकूबके वंशधर मिस्र राज्यमें रहते रहे और वहां एक महासमृद्ध जातिके रूपमें उनकी गणना होने लगी। चार सौ वर्ष तक मिस्रमें रह चुकने पर वे मूसा द्वारा विमुक्त हो कर चालीस वर्षों तक उस नियन्ताके आज्ञानुसार वनमें घुमते रहे। इसके बाद वे जोसुयाके तत्त्वावधानमें कानान राज्यमें लाये गये। बाइबिलमें लिखा है, कि इब्राहिमके प्रत्यादेशसे ही इस-रलीने (Isralites) मिस्रसे मुक्ति तक प्रायः ४३० वर्ष बिताया। इस समय २१५ वर्षोंमें इसरायल वंशमें कुल प्रायः ७० या ७५ ही बच गये थे। उसके २१५ वर्षोंमें इस तरहकी वंशवृद्धि हुई, कि उनमें छः लाख योद्धा और आबालवृद्धवनिता सभी मिला कर २ लाख आदमी और हो गये।

जब इसरलीके वंशधर मिस्रमें रहते थे, तब फेरो-वंशके १२ राजाओंने राज्य किया था। इस वंशके नवें राजाने इनकी संख्या तथा वंशवृद्धिसे ईर्षान्वित हो कर उनके ह्रासका उपाय निकाला। उसने कई तरहसे उनके वंशोंका नाश करना चाहा, किन्तु कृतकार्य न हो सका। अन्तमें उसने हुक्म दिया, कि उनके बच्चे माताकी गोदसे छीन कर नीलनदमें डाल दिये जायें। इसका पता नहीं लगता, कि इस नृशंस कार्य्यने इसरालयोंको कितने वर्षों तक उत्पीड़ित किया था। फिर, यहां तक कहा जा सकता है, कि जब मिस्रराजकी कठोर आज्ञासे इस तरह-का कठोर अत्याचार प्रचलित था, तब इसरायलोंके मुक्तिदातारूपसे आमराम और याकूबके वंशमें मूसा (Moses) पैदा हुए। मिस्रदेशके स्मृतिस्तम्भों पर

हिब्रु जातिके प्रति होनेवाले इस अत्याचारका चित्र अङ्कित है।

मूसा नीलनदके उत्सवके दिन परित्यक्त हुए और मिस्र राजकन्या द्वारा राजमहलमें लाये गये। यहां राजसुखसे पालित होते रहे और इनको शिक्षाकी समुचित व्यवस्था हुई थी। उन्होंने फेरो और उसके अधीनस्थ लोगोंको ईश्वरके १० प्रत्यादेश वाक्योंको सुनाया, जिससे वे विह्वल हो उठे। अब इसरायलोंकी मुक्तिमें किसी तरहकी बाधा न रही। इसके बाद मूसाके कानान राज्यमें आने तथा सिनाई पर्वत पर भगवद्वाक्य खोदित लिपिप्राप्तिकी घटना हुई।

ईश्वरकी ईप्सित भूमिमें आ कर भी उन्होंने ईश्वरकी आराधना छोड़ दी। यहां अत्याचारी सल (Saul) इसरायलोंके राजा थे। दाउद (David) और सोलमनके राज्यकालमें इनकी सौभाग्यलक्ष्मी प्रसन्न थी। सोलमनकी मृत्युके बाद उसके पुत्रने रोहोबोयाम युदा और बेञ्जामिनके अधिवासियोंका कर्तृत्व ग्रहण किया और जेरोबोयम तथा अन्य १० जातियोंका कर्तृत्व ग्रहण कर एक स्वतन्त्र स्वाधीन राज्यकी स्थापना कर दी। पीछे इस डरसे कि उसकी प्रजा फिर युद्धमें लौट आवे, उसने अपने राज्यमें दन और बीरसेवा नामकी दो प्रतिमूर्त्तियोंकी स्थापना की। इस वंशमें आविजा (Abijah) ईश्वरके प्रति भक्ति दिखा पौत्तलिकताके विरोधी हुए। इसी समय जो सब इसरायल देवमूर्त्तियोंके सामने घुटने टेक कर पूजा नहीं करते थे; उनको सतर्क करनेके लिये देवदूत एलिजा और एलिशाने जन्म ग्रहण किया; किन्तु दुःखका विषय है, कि कोई भी उनको बातोंको नहीं सुना। होसियारके राज्यकालमें असीरीयराज सोलमनके इस राज्य पर आक्रमण कर समारिया राजधानी पर अधिकार जमा लिया और वहांके अधिवासियोंको पकड़ कर वह अपने देशमें ले गये।

इधर युदानगरमें इसरायलवंशने कुछ काल राज्यशासन किया था। इस वंशके किसी किसी राजाके अधिकारकालमें पौत्तलिकता आ गई। पौत्तलिकताको मनाही कर एकेश्वर-उपासनाके चलानेके लिये जेहोसाफत जोशिया और हेजेकिया आदि राजे अग्रसर हुए थे। इस समय पौत्तलिक धर्मका प्रभाव कुछ कम हुआ था; और सनातनधर्मको प्रतिष्ठा हुई थी। किन्तु थोड़े ही समयके बाद पौत्तलिकताने लोकसमाजमें अपना प्रसार कर लिया। पौत्तलिकताके सम्पूर्णरूपसे नष्ट कर देनेके लिये ईसाइया और जेरेमिया आविर्भूत हुए। इनके प्रादुर्भावके समय वाबिलनराज-नेबुकाडनेजार जेतेकियाके राजत्वकालमें युदा पर आक्रमण कर जेरुसलेम पर अधिकार किया। नेबुकाड्नेजार इसरायलवंशी राजा था। यह अपने दामाद और प्रजाको कैद कर स्वदेश लौट आया। यहां ७० वर्ष तक कैदीरूपमें रह कर वे जियनका स्मरण कर वह निरन्तर रोता फिरता था। एक दिनके लिये भी वे वृक्षशाखासे उतार कर वीणाका झङ्कार नहीं कर सके।

वाबिलनसे प्रत्यावृत हो कर यहूदियोंने जेरुसलेमके मन्दिरका पुनः संस्कार किया। इस समय सामारितानोंने इनके साथ विशेष शत्रुताचरण किया था। एजरा और नेहमियाके सुसमाचारसे हम जान सकते है, कि इस संघर्षके बाद इनका धर्म पुनरुज्जीवित हुआ, साधारण लोगोंमें धर्मपुस्तकोंका यथेष्ट प्रचार होने लगा और नाना स्थानोंमें उपासनागृह खोला गया। ओल्ड टेष्टामेण्टके अंतिम भविष्यवक्ता मलाचीकी विवरणीसे मालूम होता है, कि उस समय यहूदियोंका धर्म भ्रष्ट हो गया था और वे पतित हो गये थे। मलाचीके समयसे ईसाके जन्म तक वे शत्रुपक्षसे विशेषरूपसे निगृहीत हुए। मर्दिकाई (Mordecai) द्वारा इनकी मुक्ति दिलानेकी चेष्टा और मलाचीके अन्तर्हित होनेके ५० वर्ष पीछे दैवशक्तिका समावेश न होनेसे निश्चय ही यहूदी जातिका विलोप हो जाता। माकिदनवीर सिकन्दरके जेरुसलेम पर आक्रमण करने पर दूसरा उपाय न देख, वहांके पुरोहित जेहोराको स्मरण और उनमें आत्मसमर्पण कर श्वेत वस्त्र धारण कर सिकन्दर विपुलवाहिनियोंके सम्मुखीन हुए थे। वीरवर सिकन्दर श्वेतवस्त्रधारी पुरोहितको दैवशक्तिसे अभिभूत हो कर जेरुसलेम नगरीके अवरोधको कामना त्याग पुरोहितोंके साथ उस मन्दिरमें गये जहां सिकन्दरने ईश्वरकी पूजा की थी। यहांसे उसने पारस्यकी यात्रा कर दी।

सैल्युकसने वाबिलन और सिरीयाका राज्य पाया था। उसके वंशधर अन्तिओक एपिफेनिसने यहूदियों-का विद्वेषी बन उनके नगर जेरुसलेम पर अधिकार किया और वहांके अधिवासियोंकी निष्ठुरताके साथ हत्या की। इस समय उनकी रक्षाके लिये जगदीश्वरने युदास् माक्काबियसको भेजा। इन्हींके नाम पर युदिया नगरी प्रतिष्ठित हुई थी। अन्तिओककी चलाई पौत्तलिक-उपासना छोड़ कर सनातन ईश्वरोपासना प्रचारित हुई। इस समय यहूदी बड़े ही शक्तिशाली हो उठे थे। निकटके राजे उनसे मित्रता स्थापित करने पर बद्धपरिकर हुए थे। और तो क्या—जातीय महत्त्वमें समुन्नत रोमकजाति भी उनके साथ मित्रता-सूत्रमें बंध जानेके लिये यत्नवान् हो चुकी थी। इस स्वाधीनतावस्थामें धर्मगुरु ही (High priest) उनके कर्म और धर्मगुरु हुए थे। वे ही यथार्थमें यहूदियोंके जातीय शक्तिका परिचालक राजा थे। पूरी शताब्दी तक स्वाधीनतापूर्वक राज्यशासन कर रोमक-सेनापति पम्पी (Pompy) द्वारा जेरुसलेम नगरी अधिकृत हो गई तथा वहांके यहूदी रोमशक्तिके अधीन हो गये। ईसासे ६३ वर्ष पूर्वकी यह घटना है। इदुमीय जातीय हिरोद दि ग्रेट नामक एक वैदेशिकने रोमिकोंसे यूदियाका राज्य-शासन ग्रहण किया। यहूदियों पर अपनी राज-शक्ति अक्षुण्ण रखनेका इसे आदेश मिला था। इसीके राज्यकालमें महात्मा ईसाका जन्म हुआ। हिरोदकी अत्याचार-कहानी और बेथलहेमके अधिवासियोंका (Children of Bethlehem) हत्याकाण्ड चिरप्रसिद्ध है।

हिरोदकी मृत्युके बाद युदा रोमसाम्राज्यभुक्त और पेलेष्टाइन राज्य आर्किलाउस, अन्तिपास और फिलिप नामक उसके तीन पुत्रोंमें विभक्त हुआ था। आर्किलाउस युदिया, इदुमिया और समरियाका शासनकर्त्ता तथा अन्तिपास और फिलिप यथाक्रमसे गेलिली और त्रिकोनाइतका नायक हुआ। कई शासनकर्त्ताओंके बाद पंटियास पिलेटने (Pontius pilate) जेरुसलेम नगरमें आ कर एक महल बनवाया। इन्हीं रोमन शाही शासन-कर्त्ताओंकी अधीनतामें यहूदियोंकी दुर्गति हुई थी।

पिलेटके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर यहूदियोंने रोमराजके विरुद्ध अस्त्रग्रहण किया था। कालीगुलाने अपनी मूर्त्ति-प्रतिष्ठा कर जेरुसलेमका पवित्र मन्दिर अपवित्र कर डाला था, जिससे यहूदी प्रकाश्यरूपसे विद्रोहाचरण करनेमें प्रवृत्त हुए। गेसियल फ्लोरस इस विद्रोहके नेता हुए। अत्याचारी सम्राट् निरोके राज्यकालमें रोम और युदियामें जो युद्धाग्नि प्रज्ज्वलित हुई, वह तितस् द्वारा जेरुसलम नगरीके ध्वंस होनेके बाद सन् ७४ ई०में जा कर शान्त हुई। इस युद्धमें प्रायः ११ लाख यहूदी मारे गये और असंख्य बालवृद्धवनिता पकड़ कर दास दासी बना बेच दी गईं। ईसाके प्रति अत्याचारके प्रतिशोध-स्वरूप कई सूली पर चढ़ाये गये और कितने ही जीते ही हिंस्र जन्तुओंके मुखमें फेंके गये। आज भी प्रत्येक देश-वासी यहूदी आब-मासके (Month of Ab) नवें दिन अपने विभिन्न देशमें प्रस्थान और जेरुसलेम नगरीके ध्वंसकी बात याद रखनेके लिये एक शोकव्रत करते आये हैं।

रोमकों द्वारा सन् ७० ई०में जेरुसलेम नगरी ध्वंस हो जानेके बाद यहूदियोंने विभिन्न स्थानोंमें भाग कर अपनी जान बचाई। तबसे ४० वर्षों तक उनमें कोई उल्लेखनीय घटना न हुई। रोमकोंने जेरुसलेम नगरीके संस्कारमें बाधा देनेके लिये यहां सेना रख छोड़ी थी। यहूदी अपने नगरसे भाग कर भी अपने दलकी पुष्टि करते रहे। इसके बाद ये जेरुसलेम नगरीकी चहार-दीवारीके भीतर आ कर अपनी बस्ती कायम करने लगे।

नगरके ध्वंस होनेके प्रायः आधी शताब्दी बाद युदियावासी फिर विद्रोही हो उठे। इस समय बार्गो खाँ नामके एक आदमीने मेसाया रूपमें आविर्भूत हो विद्रोहि-दलका नेतृत्व ग्रहण किया और दैवज्ञ आकिवा उसके सहायकरूपसे उपस्थित हुआ था।

सम्राट् ट्रेजानके राज्यकालमें भूमध्य-सागरके किनारे-के अधिवासी सभी यहूदियोंने रोमकोंके विरुद्ध हथियार उठाया। सम्राट् उनको दण्ड देनेके लिये आगे बढ़ा, किंतु शीघ्र ही वह परलोकगामी हुआ। इसके बाद आड्रियानके राज्यकालमें जेरुसलममें रोमक उपनिवेश स्थापनके प्रस्ताव होने पर और इसरायल-सन्तानोंको

सुन्नत करनेकी विधिका अन्त करनेकी आज्ञा देने पर मिस्र, एशिया और पेलेष्टाइनके यहूदियोंने रोमके विरुद्ध अस्त्र उठाया। सन् १३४ ई०में युद्ध हुआ, किन्तु यहूदी हार गये। युदिया नगरी फिर विध्वंस कर दी गई और पांच लाख यहूदी तलवारसे उड़ा दिये गये। बाकी यहूदी गुलाम बनाये जानेके डरसे वहांसे भाग निकले और मिस्रमें जा कर रहने लगे। इस समय पेलेष्टाइन जनशून्य हो गया। जेरुसलेम नगरमें यहूदियोंका प्रवेश निषेध कर दिया गया। केवल जेन्टाइलों (जो यहूदी क्रियाकर्म छोड़ कर खृष्टान हो गये थे)-को रहनेका अधिकार मिला। इसके बाद वह नगरी इलिया (Aelia) नामसे मशहूर हो गई।

रोमकोंके अधिकार होने पर जेरुसलेममें यहूदी धर्मका फिर प्रचार न हो सका। यहूदियोंने ताइवेरियासमें अपने धर्मका केन्द्र स्थापित किया। जुलियानके (Julian the Apostate) राजत्वकालमें यहूदियोंने फिर जेरुसलेममें प्रवेश करनेका अधिकार पाया। जुलियानकी मृत्यु (सन् ४१० ई०में)के बाद यह स्थान ईसाइयोंके तीर्थस्थानके रूपमें परिगणित हुआ था। इसके दो शताब्द पीछे ईसाकी पवित्र कब्र मुसलमानोंके हाथ आई। इससे ईसाइयों और मुसलमानोंमें कई धर्मयुद्ध (Crusades) हुए थे।

सन् ६३६ ई०में खलीफा उमरने जेरुसलेमके मोविया पर्वत पर एक मसजिद बनवाई। पाश्चात्य सम्राट् सार्लिमेनने खलीफा हारुन अल-रसीदसे पवित्र कब्रमें जानेका अधिकार प्राप्त कर लिया। किन्तु पीछे मुसलमानोंने फिर उस नगरी पर अधिकार किया। इस समय जो धर्मयुद्ध हुए थे, उनमें नगरवासी यहूदी ही की महती क्षति हुई थी। सन् १५१६ ई०में प्रथम सलीमके राज्यकालमें यह नगरी औटोमन साम्राज्यके अन्तर्भुक्त हुई।

इस तरह नगर और मन्दिर दूसरेके हाथ चले जाने पर भी यहूदियोंने अपने जीवन या धर्मकर्मकी रक्षा की है। यह जेरुसलेमसे भगाये जानेके बाद इसरायल रबिनोंके गेलिलीके अन्तर्गत ताइवेरियास नगरमें एक महाधर्मसङ्घ आह्वान किया। इस स्थानसे पहले उनके 'मिशना' और पीछे 'तालमूद' नामक धर्मग्रन्थ प्रकाशित हुए। ये मूसाके कण्ठस्थ थे। सन् १९० ई०में पवित्रचेता रब्बी युदाने उस श्रुति परम्परागत धर्मदेशोंका सङ्कलन कराया। यह छः भागोंमें विभक्त और मिशना नामसे विख्यात हुआ। नाना टीका टिप्पनीको जोड़ देनेके बाद यही गेमारा नामसे विख्यात हुआ था। यह मिशना और गेमारा-विधि एकत्र होने पर 'तालमूद'-के नामसे परिचित हुई। इनमें तालमूद ही सर्वापेक्षा प्राचीन है। यह २रो शताब्दीके अन्तिम भागमें पेलेष्टाइनमें संगृहीत हुआ था। इसके बाद ७वीं शताब्दीमें बाबिलन और पारस्यवासी यहूदियोंके लिये जो तालमूद संगृहीत हुआ, उसका नाम 'बाबिलनका तालमूद' रखा गया।

इस तरह वर्त्तमान यहूदी सम्प्रदायमें जो धर्ममत प्रचलित है, वह कुछ अंशोंमें पारस्यवालोंके अनुरूप है। इस समय सद्दूसीय और कोराइस्गण तथा धर्मान्तरावलम्बी यहूदियोंको छोड़ दूसरे सभी तालमूदका अनुसरण करने लगे। उक्त ग्रन्थके सिवा वे विशेष भक्तिके साथ 'मसोरा' और 'काब्बाला' दोनों ग्रन्थोंके मतसे भी चलते हैं। इसमें बाइबिलके आदि भाग ओल्ड टेष्टमेण्टका विशद अर्थ वर्णित है।

जेरुसलेमसे इधर उधर हो जाने पर यहूदियोंका इतिहास दो भागोंमें विभक्त हुआ—अर्थात् जिन्होंने एशियाके विभिन्न स्थानोंमें जा कर उपनिवेश स्थापित किया, वे प्राच्य और जो युरोपखण्डमें जा बसे, वे प्रतीच्य नामसे विख्यात हुए। इन दोनोंके सिवा दिग्गामी शाखाका पूर्वापर इतिहास विभिन्न है। पहले हम प्राच्य शाखा या एशियाके यहूदियोंका विवरण लिपिबद्ध करते हैं।

प्राच्य यहूदी।

पहले ही यहूदियोंके असीरीय और पारदसम्बन्धी बात लिखी जा चुकी है। इतिहास पढ़नेसे और भी हम लोग जान सके हैं, कि हेजाजके अन्तर्गत खैबर जलपथमें यहूदियोंका एक सामन्तराज्य स्थापित हुआ था। वहां प्रायः ५० हजार यहूदी वास करते थे। ये जर्दननदीके दूसरे पारके रहनेवाले गद, रुबेन और मनासा जातिके वंशधर तथा वीर्यशाली कहे जाते हैं। आचार-व्यवहार

तथा प्रकृतिगत सादृश्यमें अरववासियोंसे उनका विशेष प्रभेद नहीं था। किन्तु अरवी इन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते थे।

सन् ६२८ ई०में महम्मदने खैवरको अधिकार कर लिया। इस समय समग्र पारस्य, वोखारा और अफगान प्रदेशमें यहूदी महाजन, कलाल अथवा सामान्य व्यवसायीके रूपमें विचरण करते थे। अफगान इन लोगोंको वन-इ-इसरायल और मुसलमानगण युदावासी होनेसे यहूदी नामसे प्रसिद्ध हुए। वम्बई प्रदेशमें ये देशी राजाओंके अधीन सेनाविभागमें अथवा सरकारी छोटी छोटी नौकरियों पर रखे गये थे। कोचीनराज्यके मध्यभागमें विशेषतः त्रिचुर, परुर, चेनाट्टा और मालो नगरमें वहुतेरे काले यहूदी रहते हैं। कोचीनाधिपतिने उनको जो ताम्रशासन लिख कर भूमिदान किया था, वह सन् ३८६ ई०में खोदा गया था। महाराजके मंडलचेरी प्रासादके निकट ही उनके सिनागग या भजनालयकी प्रतिष्ठा हुई।

फरेष्टरके लिखे विवरणसे मालूम होता है, कि कलियुगके ३४८१वें वर्ष (सन् ४२६ ई०)-में मालवके सम्राट् परवीयन मार अपने राजत्वकालके ३६वें वर्षमें इसूप रब्बियानको (Joseph Rabbi) प्रतिनिधित्व दान कर एक सनद प्रदान की थी। ये सव यहूदी क्रमशः देशीय (Black Jew) हो गये थे। जो सव श्वेताङ्ग यहूदी भारतवर्षमें हैं, उनके सम्बन्धमें जनसाधारणका विश्वास है, कि उनके वाद वे यहां आ कर वसे थे।

मिष्टर उल्फ (Wolff) जव कोचीन देखनेके लिये आये, तव उन्होंने देशी और विदेशी यहूदियोंको एकत्र हो कर पास्कालका उत्सव करते देखा था। गोरे यहूदी काले यहूदियोंके साथ विवाह आदि नहीं करते थे। दोनों ही एक ही धर्मका मत मानते थे और यहां उनकी संख्या भी कम न थी। काले यहूदी वोलते हैं, कि उन्होंने हमानका पतन हो जाने पर यहूदी धर्मकी दीक्षा ली थी और उनके वाद गोरे यहूदी भारतमें आ कर रहने लगे हैं। ये अपनेको गोरोंके गुलाम समझते हैं और तो क्या, त्वक्‌च्छेद या सुन्नतके लिये वे गोरे यहूदियोंको वार्षिक सलामी दिया करते हैं। ये गोरे यहूदियोंके साथ वैठ कर कभी भोजन नहीं करते और न उनके सामने एक आसन पर वैठ ही सकते हैं।

कुकेल केलू नायरका कहना है, कि यहांके ईसाइयों और यहूदियोंके गिरजोंमें तीन ताम्रपत्र रखे हुए हैं। उनमें सन् १८६ ई०के ताम्रशासन युसूफ वोरेनको अञ्चूवनम् और २३० ई०के ताम्रशासनमें इरानी कोर्टेनको मणिग्राम दिया गया। यह दोनों स्थान यहूदी और सीरीय ईसाइयोंके रहनेके लिये दिये गये थे। तीसरा ताम्रशासन ३१६ ई०में पेरुमलवंशके अन्तिम राजा द्वारा दिया गया। इससे अनुमान होता है, कि यहूदी और सीरीय ईसाई सन् १८६ ई०में पूर्व-भारतमें आ कर पेरुमल राजाके राजत्वकालमें यानी सन् ३१६ ई०के समकालीन मालवाके किनारे फैल गये। दुःखका विषय है, कि वे खाना पीना तथा वेशभूषामें भी खासा हिन्दू वन गये थे। कई जगह तो ये नीच वर्णके हिन्दुओंकी तरह कृषिवाणिज्य करनेमें लगे थे।

अफगान जातिकी दन्तकथाओंसे जान पड़ता है, कि वे पहले यहूदी थे। जेरुसलेम ध्वंस होनेके वाद नेवूकाड्‌लेजाने जिन सव यहूदियोंको जगह जगह स्थापित किया उनमें जो शाखा वामियानके समीप कोरनगरमें स्थापित हुई थी, उसी शाखासे वर्त्तमान अफगान जातिकी उत्पत्ति है। वे इस्लाम-अभ्युदयकी पहली सदीमें खलीदके शासनकाल तक अपने धर्ममें थे और एक प्रवादसे मालूम होता है, कि इसरायलोंके राजा सलके वंशधर अफगानसे ही उनकी उत्पत्ति हुई है। तुर्किस्तानके रहनेवाले यहूदियोंको जेनेसिस-कथित गोमयके पुत्र तोगार्मा (Togarmah)का वंशधर कहते हैं।

वोखारेमें प्रायः वीस हजार यहूदियोंका वास था। चङ्गेज खांके अभ्युदयके समय उसके अत्याचारसे उनके ग्रन्थ आदि नष्ट भ्रष्ट हो गये। मुसलमानोंके राज्य और मुगलोंके प्रादुर्भावके समय समरकन्द, वोखारा, वाह्लिक, अरव आदि देशवासी वहुतेरे यहूदी इस्लामधर्ममें दीक्षित हुए थे। महम्मद और मुसलमान देखो।

वन इ-इसरायल या वेने-इसरायल।

वहुत पहले कितने ही यहूदी दाक्षिणात्यके वम्बई-प्रदेशमें रहते थे। उनके वंशधर इस समय बेने इसरायल

या इसरायलके पुत्र कहलाते हैं। वे 'यहूदी' कहने पर अपना अपमान समझते हैं। पूना, कोलावा और ठाना जिलोंमें तथा जंजीरेमें वे रहते हैं।

यह ठीक कहा जा नहीं सकता, कि वे कब और किस तरह इस देशमें आ कर बस गये। कोई अदनसे, कोई पारस्यके उपसागरसे इस देशमें उनका आना स्वीकार करते हैं। यदि वे अदनसे हो आये हों, तो उनको मिस्रके कैदी 'यू'-के वंशधर कहा जा सकता है। सन् ५२१-४८५ ईसासे पूर्व दरायुसने उनको कैद कर अरबके हेजाजमें भेज दिया। ईसाके १ शताब्दी पहले दनके तुब्ब या हेमारिवंशीय एक राजाने यहूदा (Juda) धर्ममें दीक्षित हो कर दक्षिण अरबमें हिब्रु धर्ममतका प्रचार किया। इस समयसे यहां यहूदियोंका प्रसार अधिक हो गया। तितस् (सन् ७९-८१ ई०में) और हद्रियान (सन् ११७-१३८ ई०) द्वारा पेलेष्टाइनसे भगाये जाने पर तथा अरोलियन (सन् २७०-२७५ ई०) द्वारा जेनोवियाके पराजित होने पर दलके दल यहूदी आ कर दक्षिण अरबमें बसने लगे। सन् ५२५ ई० तक हिब्रु मतावलम्बी हेमारिराजे वहां बहुत प्रबल थे। इस वंशके धू-नवास नेजरानके ईसाइयोंके प्रति अत्यन्त अत्याचार करनेसे यूथिओपीयराज एलेस बयानने अरब पर आक्रमण किया और धूनवासको पराजित कर यहूदियोंको खूब सताया। सम्भवतः इसी समय अथवा महम्मदके अभ्युदयके समय उत्पीड़ित हो यहूदियोंने अदन छोड़ कर पश्चिम-भारतमें आ कर उपनिवेश स्थापित किया होगा।

सन् ७७० ई०में पाल (Paul) जिन यहूदियोंको पेलेष्टाइनसे उत्तर-मेसेपोटामियामें ले आये थे, वाविलनवासी यहूदी उन्हींके वंशधर हैं। तीसरी शताब्दीमें उनके दलपति राजकुमार (Prince of the Captivity)-के समयमें और सन् ४२७ ई०में उनके प्रधान धर्मपुस्तक 'तालमूद' संगृहीत करनेके समयमें भी उनका प्रभाव अक्षुण्ण था। ६ठीं शताब्दीमें रब्बीमोंके विद्रोही होने पर पारस्यके राजा कवाद (Cabade) अत्यन्त क्रुद्ध हो यहूदियोंका दमन करने लगे। इसी समय कितने ही यहूदी प्राण भयसे पारस्य उपसागरको पार कर भारतमें चले आये।

बेने-इसरायल भी कहते हैं, कि उनके पूर्वजोंने प्रायः चौदह सौ वर्ष पहले यहां आ कर वास किया था। उनकी आकृति-प्रकृति और भाषायें भी पारसियोंसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। उन लोगोंमें यह दन्तकथा प्रसिद्ध है, कि बम्बई आते समय बन्दरके दक्षिण प्रवेश-पथमें थलसे कुछ दूरी पर नौगांवके समीप जहाज फट गया। इस काण्डमें बहुतेरे यहूदी डूब गये। इसमें बड़ी कठिनतासे ७ पुरुष और सात स्त्रियां बच गईं। बेने-इसरायल उन्हीं चौदहोंके वंशधर हैं।

इस देशके वे आदि यहूदी वंशपरम्परा हिन्दू समाजमें रह कर हिन्दू नीति तथा रीतिका अनुसरण करने लगे। जब मुसलमानोंका भारत पर दबदबा हुआ तो यहूदियोंमें मुसलमानोंका आदब कायदा आ गया। अन्तमें प्रायः दो सौ वर्ष हुआ, कि एक यहूदी धर्मयाजक अरबसे इस देशमें आये। उसने यहां यहूदियोंको देख उनमें हिब्रु मतका प्रचार किया। इस समयसे बहुतेरे हिन्दुओंकी रीति नीतिको छोड़ यहूदियोंने 'तालमूद'के अनुसार अपनी रीति नीति कायम की। इसी समय बेने-इसरायलोंमें हिब्रु भाषाका प्रचार हुआ। उनके 'सिनागग' या भजनमन्दिर प्रतिष्ठित और तालमूद या धर्मग्रन्थ भी प्रचलित हुआ। सिनागगके कार्यनिर्वाहार्थ ६ आदमी मानकारी या कर्मचारी नियुक्त हुए। उनमें एक मुकादम या प्रधान, २रा चौघुल या उसका सहकारी, ३रा गवाई या कोषाध्यक्ष, ४था 'हाजान' या मन्त्रपाठकारी आचार्य, ५वां काजी या विचारक (जज) और ६ठा सम्माष या चौकीदार। इस समयसे धर्मग्रन्थानुसार सभी वार, व्रत, उपवास आदिका पालन करने लगे। अङ्गरेज-अभ्युदय कालमें उनके रणकौशलसे अङ्गरेज कम्पनीको बड़ा लाभ हुआ था।

वर्त्तमान समयमें दो श्रेणियां दिखाई देती हैं, १ली गोरे या श्वेताङ्ग, २री काले या कृष्णाङ्ग। दो श्रेणियोंमें खान पान या लेना देना प्रचलित नहीं है। गोरे अपनेको विशुद्ध हिब्रु कहते हैं। काले अपनेको यहांकी स्त्रियोंसे उत्पन्न बतलाते हैं। पहले ये अपनी पुत्र पुत्रियोंके नाम हिन्दू नामानुसार रखते थे। किन्तु थोड़े ही दिनोंसे ये अपने हिब्रु नाम हो रखने लगे हैं।

फिर भी मराठियोंकी तरह ये 'दिवेकर' 'नौगांवकर' थलकर' और 'जिरादकर' इत्यादि नामोंको छोड़ नहीं सके हैं।

गोरोंके आकार प्रकार उच्च श्रेणीके मराठियोंकी तरह है। साज सज्जा भी उन्हींके अनुरूप हैं। इनकी रमणियां भी बहुत सुन्दरी होती हैं, सभी घंघरापहरती हैंऔर हिन्दू रमणियोंकी तरह ये सभी जुड़ा या वेणी बांधती हैं। पुरुषों ने बहुत कुछ हिब्रु चालको अपना लिया है सही, किन्तु रमणियां यहांकी स्त्रियोचित चालढालको छोड़ न सकी हैं। विवाह, जातकर्म, त्वकच्छेद या सुन्नत, रजखलोत्सव और अन्त्येष्टि—ये ही इनके संस्कार हैं।

विवाह—विवाहके पहले ही वरकन्याका निर्वाचन हो जाता है। वरपक्षसे एक आत्मीय और आत्मीया कन्याके घर भेजी जाती हैं। पुरुष बाहर जा कर बैठता है और रमणी भीतर जा कर विवाहका प्रस्ताव करती है। कन्याके अभिभावक अपनी स्त्रीसे परामर्श कर उसे उचित उत्तर दिया करते हैं। दोनों ओर बात पक्की हो जाने पर विवाहका दिन धरा जाता है, नहीं तो वरपक्षको उलटे मुंह लौट आना पड़ता है। इस तरह दोनों पक्षमें बात पक्की हो जाने पर वरका पिता या अभिभावक 'मुकादम्' या ग्रामके प्रधानके पास जा कर विवाहका प्रस्ताव करता है और कन्याके पिताकी विवाह स्थिर करनेके लिये उससे अनुरोध करता है। कन्याके पिताके आने पर उस दिन सन्ध्याको प्रधानके घर दोनों पक्षके कुछ आत्मीय कुटुम्ब एकत्र होते हैं दोनों पक्षमें कोई आपत्ति न रहने पर विवाहका दिन स्थिर हो जाता है। ऐसा ही दिन सोच कर रख जायेगा, जिससे शनिवारकी सन्ध्या को या शुक्रवारके मध्याह्नमें ये शुभकार्यावली सम्पन्न हो जाये। उसी समय यह भी स्थिर होता है, कि कितने आदमियोंको विवाहमें भोजन कराना होगा और भजनालयको कितना रुपया दिया जायगा। अन्तमें वरका पिता कुछ पकवान और मद्य ला देता है। पहले मन्त्रपाठकारी आचार्य या 'हाजान' शरावका प्याला उठा कर मन्त्रपाठ कर पी डालता है। इसके बाद 'मुकारम' या प्रधान, वर और कन्याके पिता उसे पीते हैं इसके बाद अभ्यागत सभी थोड़ी बहुत शराब पीते हैं। अन्तमें सभी अपने अपने घर चले आते हैं। इसके बाद दो दिनसे आठ दिनोंमें 'साकरपुड़ा' या शर्करा भोजोत्सव होता है। इसी दिन प्रातःकाल आत्मीय स्त्री-पुरुष वरके घर आते हैं। वयोवृद्धोंके उपस्थित होने पर वरका पिता एक पात्रमें चीनी रख उसमें सोनेकी एक अंगुठी छिपा ऊपरसे एक शानदार रूमाल ओढ़ा कर उन लोगोंके सामने लाता है। वर नाना वेशभूषासे सुसज्जित हो कर घोड़े पर चढ़ कर आता है। इसके साथ दोनों बगल दो लड़के प्रदीप्त दो दीये लिये हुए हिब्रु मन्त्रपाठ करते आते हैं।

इस तरहके समारोह और कई तरहके बाजोंके साथ सभी कन्याके घर आते हैं। हाजान कन्याको सबके सामने सुसज्जित कर लाते और हिब्रु मन्त्रपाठ किया करते हैं। अन्तमें हाजानके आज्ञानुसार वर कन्याके और पीछे कन्या वरके मुंहमें चीनी या गुड़ डालते हैं। यह कार्य हो जाने पर कन्याको भीतर ले जाते हैं। इसके बाद सभी चीनीका शरबत, नारियल या मद्य मांसमिश्रित अन्न खानेको पाते हैं। कन्याके पिताके घरसे विदा हो कर वरके घर आ कर भी वे इसी तरह पेटपूजा करते हैं।

विवाहके दो दिन पहले वर-कन्या दोनों घर पांच 'करवली' पहुंचते हैं और एक एक टोकरी चावल ले कर निकटके एक कुएं पर उपस्थित होते हैं और जलसे उसे धो धो कर 'चावल' धोआका रश्म अदा करते हैं। इसके लिये वे पान, सुपारी, गुड़ और तम्बाकू पाते हैं। विवाहके १ दिन पहले हल्दी लगाई जाती है। इस दिन सवेरे वरके माता पिता अथवा अन्य कोई आत्मीय बाजेके साथ इस रश्मको पूरा करनेमें सम्मिलित होनेके लिये आत्मीय कुटुम्बको सूचित करनेके लिये जाते हैं। दोपहरको सभी आ कर एकत्र हो जाते हैं। इन लोगोंके आने पर एक चौकी पर वर आ कर बैठता है। सात सधवायें अथवा अनूढ़ा कुमारियां बड़े कौतुकके साथ वरके शरीरमें हल्दी लगाती हैं। हल्दी लग जाने पर वर अब घरसे बाहर नहीं निकलने पाता। उस समय वह खुदाईनूर या भगवानकी ज्योति कहा जाता है। दो बालक सदा उसके पास रहते हैं। वह कभी अकेला

नहीं रहता। हल्दीका रश्म अदा हो जाने पर कई नवयुवतियां उसके माथे पर चन्दन चढ़ाती और कागजका शेहरा बांधती हैं। उपस्थित सधवागण पान सुपारी ले कर विदा होती हैं। प्रायः सात बजे फिर वे आतीं और वरके लिये दूध औटती या उबालतीं तथा अन्न सिद्ध करती हैं। वरको चौकी पर बैठा कर हाथ पैरमें हेना लगा कपड़ेसे हाथ पैर बांध रखती हैं। पीछे कन्या घर जा कर वहां भी पूर्ववत् कन्याके हाथ पैरमें हेना लगा कर चली आती है। वरके घर चष्य-चोष्य-लेह्य पेय क्रमसे भोग होता है। भोजनके बाद वे अपने अपने घर चली जाती है। इसके दूसरे दिन 'निथ' या पितृभोज होता है। इसके उपलक्षमें विवाहमण्डपमें वरपक्षीयगण निमन्त्रित किये जाते हैं। इस मण्डपमें एक बड़ी लम्बी चौड़ी सफेद चद्दर बिछाई जाती है। उसके बीचमें एक पित्तल या फूलकी थालीमें जवका आटा, कुछ अन्न, नारियलका गुदा, चीनी, बकरेका यकृत्, गज्जा, सब्जी साग, थोड़ा गुड़, मक्खन, एक रोटी और एक प्याला शराब, सफेद कपड़ा दान कर रखा जाता है। मुकादमके अनुरोधसे हाजान प्राय १५ मिनट तक हिब्रु भाषामें स्तव पाठ कर उपस्थित मण्डलीको यह प्रसाद बांट देता है। इसके बाद महाभोज समाप्त होने पर कन्या पक्षवाले वर पक्षको आमन्त्रित करते है। यहां भी मारवाड़ियोंकी तरह सजनगोटका आनन्द किया जाता है। इसके बाद नाई वरका चूड़ाकरण संस्कार करता है। फिर वरपक्षसे 'वरी' आदि उपढौकन कन्याके घर भेजा जाता है। यह उपढ़ौकन कन्याके पिताके मनमुताबिक होना चाहिये। नहीं तो विवाद उपस्थित होनेकी आशङ्का उठ खड़ा होती है। ऐसा समय उपस्थित होने पर वरका पिता कन्याके पिताको नगद कुछ भेज कर उसे ठण्डा करता है। उपढ़ौकन स्वीकार कर लेने पर वर पक्षका कोई आत्मीय कन्याके पिताके मुंहमें चीनी गुड़ डाल देते हैं और इसके बाद सभी वहांसे चले आते हैं। कन्याको सुसज्जित करनेके लिये जिन जिन आभरणों और चीजोंकी जरूरत होती है, वह सभी चीजें उपढ़ौकनस्वरूप आती हैं। कन्या उन्हीं सब वस्तुओंको पहन ओढ़ कर विवाहके लिये तैयार होती हैं वह मूल्यवान् रेशमी पोशाकसे सुसज्जित होता है। शिरमें पगड़ी, कांधेमें दुपट्टा और कमरमें तलवार लटकती रहती है। पगड़ी पर शेहरा बांधा जाता है और कण्ठ, बाहु और उंगलीमें सोनेके गहने पहनाये जाते हैं। इसके बाद शिरसे पैर तक फूलकी मालासे विभूषित किया जाता है। फिर हाथमें नारियल ले बड़े समारोहके साथ भजनालयको जाता है। यात्राके समय आत्मीयगण मन्त्र पढ़ते हैं और वरको एक सुसज्जित घोड़े पर बैठा कर घोड़ेके सामने दाहने पैर पर एक मुरगीका अण्डा तोड़ते हैं या भूमिमें नारियलको हो पटकते हैं। भजनालयमें वरकन्याको ला कर 'गंठजुड़ाव' कर हाजान एक चौकी पर उन दोनोंको सम्मुख बैठा कर आमन्त्रित व्यक्तियोंकी अनुमतिसे विवाहका हिब्रु मन्त्र पढ़ता है। हाजानके निर्देशानुसार वर और अभ्यागतगण इस तरह मन्त्र पाठ करते हैं—

वर—(एक अंगुठी और द्राक्षा या अङ्गुरकका रस एक चांदीके प्यालेमें ले कर) 'गुरुजनोंके आज्ञासे मैं कार्य्यमें प्रवृत्त होऊं, हमलोगों पर जिनकी असीम दया है, उन्हीं प्रभुका गुणगान करूं।' अभ्यागत—'भगवान् मङ्गल करें।' वर—'इसरायल सन्तानोंकी शान्ति-वृद्धि हो।' अभ्यागत—'जेरुसलेमकी भी शान्ति हो।'

वर—'फिर पुण्यमन्दिर बने। एलिसा और मूसा फिर आयें और इसरायल सन्तानोंके हृदयमें सुखशान्तिका विधान करें। स्वस्ति हे प्रभु जगन्नाथ! जिन्होंने द्राक्षाफलकी सृष्टि की है, जिन्होंने अनूढ़ागमननिषेध किया है, जिन्होंने वाग्दानका शासन रखा है। उन्होंने हमें चन्द्रातपके नीचे पवित्र विवाहसूत्रमें बंध जानेकी आज्ञा दे रखी है। मूसा और इसरायलके धर्मानुसार इस उपस्थित साक्षी और गुरुजनोंके सामने यह प्याला और शराबके प्यालामें डाली हुई चांदीकी अंगुठीको और जो कुछ हमारे क्षमताधीन हैं, उसके लिये तुम सामुलकी कन्या रिवका थे और मैं दाउदपुत्र वेञ्जामिन हूं—मेरे साथ सम्बन्ध और परिणति हुई। जिन्होंने नरनारीको परिणयसूत्रमें बंध जानेकी आज्ञा दी है, उन प्रभुका स्तुतिगान करें।' (इसके बाद वर कन्याकी ओर देख कर

उसका नाम ले कर कहेगा) इस प्यालेके लिये तुम मेरे साथ सम्बन्धसूत्रमें आवद्ध और परिणित हुई हो। अतएव इसका यह प्याला पीओ। इस प्यालेकी अंगुठी और मेरे पास जो कुछ है, उसे दे कर उपस्थित साक्षी और हाजानके समक्ष मैंने मूसा और इसरायलके धर्मानुसार तुमसे विवाह किया।' यह कह वर आधी शरावको पी जाता है। फिर आधी शरावको उस नवपरिणीता वधूके मुंहमें डाल देता है। अंगुठी उससे निकाल कर कन्याके दाहने हाथके पहली उंगलीमें पहना कर कहता है—"मूसा और इसरायलके धर्मानुसार इस अंगुठी द्वारा मेरी तुम विवाहिता हुई। इसी तरह तीन वार कह कर हाथमें एक ग्लास मद्य दूसरे एक हाथमें काले पत्थर जड़े हुए एक चन्द्रहार ले कर वधूके गलेमें पहना देता है। कन्याके मुंहसे ग्लास छुआ कर उसे जमीन पर पटक देते हैं। इसके वाद हाजान 'केतुवा' या लिखित अङ्गीकारपत्र पढ़ते हैं। अङ्गीकारपत्रका भावार्थ इस तरह है,—

अमुक शुभदिन और शुभ मुहूर्त्तमें भगवान्का नाम ले कर अमुक स्थानमें अमुकका सुन्दर लड़का सुन्दरीकी शिरोभूषा अमुक कन्याको मूसा और इसरायलके धर्मानुसार विवाह करनेकी सम्मति जता कर प्रार्थना की थी। जैसे इसरायलसंतान सभी अन्नवस्त्र और धनसे अपनी स्त्रीका भरणपोषण किया करते हैं, मैं भी भगवान्की कृपासे अन्नवस्त्र और धन द्वारा तुमको प्यार करूंगा और तुम्हारा साथी वन जीवन अतिवाहित करूंगा। तुम्हारे कौमार्यधर्म मूल्यस्वरूप तुमको मैंने इतना रुपया दिया और तुम मेरी पत्नी हुई। मैं तुमको उपढौकनस्वरूप इतनी सम्पत्ति तुम्हें प्रदान करता हुं। इस अङ्गीकारको पालन करनेके लिये मैं और मेरे लड़के वाध्य हैं। मेरे धनसम्पत्तिसे तुम्हारा भरणपोषण होगा। इत्यादि इत्यादि। यह अङ्गीकारपत्र पढ़ कर सुनानेके वाद साक्षी उस पर अपने अपने हस्ताक्षर करते हैं। इस समय हाजान कहता है:—'भगवान्की आज्ञा' जो विवाह करेंगे, वह अपनी पत्नीको अच्छी चीजें खिला पिला कर सुन्दर वस्त्र पहना कर उसे सन्तुष्ट करेंगे। तव वर कहेगा, 'मैं भी सव प्रकारसे अङ्गीकारको पालन करूंगा। यह कह कर धर्मसाक्षी दे कर उसके नीचे अपना नाम सही करेगा। सवके अन्तमें हाजानका हस्ताक्षर होगा।

इसके वाद 'हाजान' वरको कर्त्तव्य पालन करनेके लिये तीन वार अङ्गीकार बद्ध कर भगवान्के स्तोत्र पाठ करनेके उपरान्त वरका मस्तक स्पर्श कर पहले उसको पीछे कन्याको आशीर्वाद देगा। वादाम, सुपारी और अन्यान्य द्रव्य हाजानको दक्षिणास्वरूप देते हैं। इसके वाद कन्याकी माता हाजानको सोनेकी एक अंगुठी देती है। पीछे वरकन्याका परस्पर 'गेंठजुड़ाव' कर वे बड़े समारोहसे घर लाये जाते हैं। इस समय भोजनोत्सव हुआ करता है। भोजनामोदके वाद कन्याकी सखियां वरकन्याको रात वीतानेके लिये एक स्वतन्त्रघर या 'कोहवर'में ले जाती हैं। तीसरे दिन ही पान चवानेका आमोद होता है। वर और कन्या समीप ही बैठ कर चावे हुए पानको लेते देते हैं। इस समय वुड्ढे-वुड्ढियां भी इस आमोदमें सहायता देती हैं। इसके वाद कई स्त्रियां कन्याकी माताका वाल गूंथने लगती हैं। इस समय भी खूब हंसी मजाक होता है। इस दिन पांच सधवायें वर कन्याको खड़ा कर मुट्ठी भराने का रकम अदा करती है। फिर वर सभीको शिर झुका कर नमस्कार करता है। इस पर उसे एक रूमाल मिलता है। इसके वाद वरकन्या सिनागग या भजनालयमें लाये जाते हैं। यहां 'सफर तोलाय' कुछ सलामी देनी पड़ती है। होजान वरकन्याके शिर पर हाथ दे कर आशीर्वाद देता है। ४थे दिन स्नान करनेके वाद परस्पर मुखमें जलका छींटा मारनेका आमोद करते हैं। उनका विश्वास है, कि ऐसा करनेसे उन पर कुग्रहकी कुदृष्टि न पड़ेगी। ५वें दिन वरान्वेषणका कौतुक होता है। वर किसी आत्मीयके यहां जाता है और वहां एक वालकको साड़ी और कुर्त्ती पहना कर दोनों नींदका वहाना कर सो रहते हैं। कन्या सखियोंके साथ अपने वरको ढूंढनेके लिये वाहर निकलती है। अन्तमें खोजते खोजते वरके पास जाती है और उसको जगाती तथा पकड़ कर हिलाने लगती है। किन्तु वर आंखें वन्द कर सोये रहता है। पीछे कन्या अपना गहना खोजने लगती है। गहना न मिलने पर उस स्त्रीवेशधारी वालकको खींचने लगती है। उसके पाससे गहना वाहर करती है और उसे चोर कह

कर पकड़नी है। इस पर वह लड़का बोल उठता है, कि "मैं चोर नहीं हूं। मैं इस आदमीकी रक्षिता या रखनी स्त्री हूं। इसने मुझे यह गहना दिया है। इसका मूल्य चुकाने पर मैं इसे दे सकती हूं।" कन्या रुपया देनेको स्वीकार करती है। इसी पर वह आमोद खतम हो जाता है। इसके बाद वहां भोजन आदि कर सभी चले आते हैं। घर पहुंचने पर कन्याकी बहन दरवाजे पर खड़ी रहती है और वरको पकड़ कर रोक लेती है। यह कहती है, कि तुम्हें यदि ईश्वर पुत्री देंगे, तो मेरे पुत्रके साथ ब्याह कर देना होगा। यह बात तुम स्वीकार करो, तो मैं छोड़ दूंगी। पहले वर राजी नहीं होता, पीछे स्वीकार करने पर वह उसे छोड़ देती है।

छठें दिन कन्याको जल लाना और बरा तैयार करना होता है। सधवायें वरका शेहरा उतारतीं और उसे जलमें बहा देती हैं। ७वें दिन कन्याकी माता वरके घरके सभी लोगोंको आमन्त्रित कर आती है। वर कन्या सभी वहां जा कर भोजन करते हैं। इस दिन वरको कन्याकी माता सोनेकी अंगुठी और रेशमी रूमाल उपहार देती है। उसके दूसरे दिन वरकन्याको ले कर घर आता है। आठवें दिन जो कुटुम्ब विवाहके दिन किसी कारणवश उपस्थित नहीं हुए हैं, उनके घर जा कर वर-कन्याको दर्शन देना होता है। इसके बाद एक महीनेके भीतर सुविधाके अनुसार वरकर्त्ता "सामजीवन" और कन्याकर्त्ता 'व्याहिजीवन' ये दो भोजोत्सव करते हैं। ये ही विवाहका अन्तिम उत्सव होता है।

बेन्-इसरायलोंके लिये पत्नी ही धर्मसंगत है। फिर पहली पत्नी वन्ध्या हो, या मृतवत्सा हो, या केवल कन्याप्रसविनी, चाहे पतिकी अप्रियकारिणी हो, या कन्याके पिता अपनी पुत्रीको पतिके घर भेजने आनाकानी करे या पत्नी पतिको त्याग कर चली जाय, तो पति दूसरा विवाह कर सकता है।

नववस्त्र-परिधान—यदि बालिकाका विवाह बारह वर्षसे पहले ही हो गया हो, तो जब बारहवां वर्ष उपस्थित हो, तो उसको नया शुभवस्त्र पहनानेकी प्रथा है। इस उत्सवमें भी वरकन्याको एक चौकी पर बैठा कर स्नान कर सधवायें कन्याके अञ्चलमें सुपारी, बादाम, खजुर और चावल देते हैं। मूलोंसे उसकी वेणी बांधती है। पांच सधवायें उसकी घूंघट काट कर दम्पतिके मुखमें चीनी दे दे कर नाना कौतुक किया करती हैं। पतिके चले जाने पर कन्याके साथ वे एक घण्टे भर बाजा बजा कर कई तरहके मराठी और हिन्दुस्तानी गाने गाती हैं। अतएव पान और सुपारी ले ले कर अपने अपने घर विदा लेती हैं। अवस्थाके अनुसार भोजकी व्यवस्था होती है। दो एक दिन पतिके घर रख कन्याको फिर उसके पिता अपने घर ले आते हैं।

रजस्वला-उत्सव—कन्याके पहली बार ऋतुमती होने पर उसकी माता 'बेहान'को खबर देती है। वरकी मां आ कर पुष्पोत्सवका आयोजन करती है। कन्याके मां बापकी अवस्था अच्छी न होनेसे यह उत्सव प्रायः ही वरके घर हुआ करता है। ऋतुके आठवें दिन वरकी मां कन्याकी मांके संग डफ ले कर अन्यान्य आत्मीयोंको निमन्त्रण देने जाती है। दोपहरको सभी आ कर सम्मिलित होती हैं। सभी मिल कर कन्याको गर्म जलसे स्नान कराती हैं। इसके बाद मूल्यवान् कपड़ा पहना कर पूर्व मुख हो कर कन्याको बैठाते हैं। इसी समय वर भी सुन्दर कपड़ा पहन कर पत्नीके सामने आ कर बैठ जाता है। इसके बाद पांच सधवायें उन्हें घेर लेती हैं और कोई कन्याको वेणी बांधने लगती है, कोई वेणीमें फूलोंका शृङ्गार करने लगती या कोई वरके गलेमें फूलकी माला पहनाने तथा वरके हाथमें इत्र देती हैं। एक सधवा वरकन्याके अञ्चलमें बादाम तथा सोपारी देती है। पांच सधवायें दोनों हाथोंमें चावल ले कर कन्याका मस्तक, स्कन्ध और घुटनेसे छुआती हैं। इसे हमारे यहां चुम्बनकी प्रथा कहते हैं। इस समय दम्पतिको घरका परस्पर नाम पुकारना पड़ता है। इसके बाद वहांसे चला जाता है। इसके बाद आमन्त्रित व्यक्तियोंको चीनी देनी पड़ती है। वे प्रायः दो घण्टे तक गाती बजाती हैं। पीछे प्रत्येक एक गुच्छा पान और सुपारी ले कर विदा हो जाती हैं। सोते समय वरकी मां वधूको वरके पास घरमें पहुंचा देती है।

साधभक्षण—स्त्रीके प्रथम बार गर्भवती होनेसे सात मासके बाद एक दिन शुभ दिनको मित्र और आत्मीय-

गण आमन्त्रित किये जाते हैं। दोपहरको गर्भिणीको स्नान करा कर वेणीवन्धन और वरण आदि शेष होने पर चीनी देनी पड़ती है। आमन्त्रित लोग समयोपयोगी गान गाते हैं। अन्तमें पान सुपारी ले कर विदा हो जाते हैं। साधभक्षणके बाद गर्भिणीको उसकी माताके यहां उसे भेज दिया जाता है। यहां भी गर्भवती अच्छा कपड़ा और अच्छा भोजन पाती हैं।

जातकर्म—प्रसवका समय उपस्थित होने पर गर्भ-घरमें ले जाना पड़ता है। दो एक बुढ़िया ही उसके समीप रहने पाती है। पुत्र होते ही थाली बजाई जाती है। ठण्ढा जलका शिशुकी देह पर छींटा मारा जाता है। प्रसूतिके स्नान तथा शय्याशयन तक शिशुको "कुला" या किसी चीज पर सोलाते हैं। दाई गर्म जलसे शिशुको स्नान कराती और उसका नाल काट देती है। इसके बाद दाई शिशुके नाक कान शिर आदिको मल-मल करके सीधा करती है। प्रसूतिकी सन्तान यदि जन्मते ही मर जाती है, तो शिशुके होते ही दाई उसका नाक छेद देती है। पुत्र हो, तो दाहना और कन्या हो, तो बांया नाक छेदनेकी प्रथा है। इसके बाद गर्म कपड़ा ओढ़ा कर प्रसूतीके दाहनी तरफ सोला देती है। फिर कुग्रह और कुदेवकी दृष्टिसे बचाने-के लिये तकियाके नीचे एक लोहेके चाकू रख दिया जाता है। कई चांदीके पात्रमें आदम् और हवाका नाम खुदा कर शिशुके गलेमें डाल दिया जाता है। पीछे शिशुके पिताको खबर दी जाती है। दाई नगद एक रुपया, आध सेर चावल और एक नारियल विदाई पाती है। शिशुके मुखके सामने एक दीया जला दिया जाता है।

प्रसूति कई खजूर, कुछ नारियलका गुदा और अल्प शराब पी कर धरित्रीके लिये उपवास करती है। तीन दिनों तक वह गुड़ रोटी खानेको पाती है। ४थे दिन उसको जूस और सामान्य भात खानेको दिया जाता है। चालीस दिनों तक गर्म जल ही पीया करती है। शिशुको माताके स्तन दो तीन दिन तक पिलाये नहीं जाते। पहले दिन शिशुको एक कपड़ेमें धनियाका क्वाथ और मधु लपेट कर उसे चूसनेके लिये दिया जाता है। दूसरे दिन बकरीका दूध और तीसरे दिनसे माताका दूध पाता है। चौथे दिन चरोवरी नामक भूतकी तुष्टिके लिये तिलोएडी और पांचवें दिन पांचवीं क्रिया होती है। पांचवें दिन शेत्र भरणी या प्रसूतिको धान दे कर आशीर्वाद और वरण तथा अति भरणी या चावल दे कर प्रसूतिकी गोद भरा जाता है। इस समय भी गाना बजाना तथा कई तरह कौतुक हुआ करते हैं। छठें दिन शिशुके पिता आत्मीय स्वजनको आमन्त्रित करता है। रातको ६ बजेके भीतर ही सभी आ जाते हैं, भोजनोपरान्त सभी ढोल पीट कर रात भर जागते हैं। बीच-बीचमें सुरापान भी होता जाता है। ७वें दिन प्रसूति उस घरको छोड़ कर शिशुको बाहर ले आती है। आत्मीय कुटुम्ब आ कर शिशुको आशीर्वाद देते हैं और मराठी भाषामें सभी कहते हैं—"हे चन्द्र, हे सूर्य्य! हमारा लड़का बाहर आया है, उसे देखो।" आठवें दिन लड़केको भजनालयमें ले जा कर सुन्नत करा देते हैं। भजनालय समीप न होनेसे शिशुके वासस्थानमें ही यह काम किया जाता है। भजनालयमें इस क्रियाके लिये सुन्नत करनेको जगह दो कुर्सियां रखी रहती हैं। एक पैगम्बर एलिजा और दूसरी सुन्नत करनेवालेके लिये। आत्मीय स्वजन आ कर सम्मिलित होने पर शिशुका मामा शिशुको गोदमें ले कर "सलाम वालेकम्" अर्थात् 'भगवान्के नामकी जय हो' बैठे हुए सभी लोगोंके सामने उपस्थित होता है। वे भी 'वालेकम् सलाम' कह कर जवाब देते हैं। जो बुड्ढा एलिजाकी कुर्सी पर बैठते हैं, उन्हींकी गोदमें शिशुको दिया जाता है। सुन्नत करनेवाला भी दूसरी कुर्सी पर बैठ कर इस कार्यका समाधान किया करता है। उस समय समागत व्यक्ति हिब्रु गान गाया करते हैं। शिशुके पिता एक कपड़ा ओढ़ कर भगवान्का नाम लेने लगते हैं। इस समय भजनालयके बाहर एक मुरगी जवह की जाती है। शिशुको ठण्ढा करने लिये तीन बार मुखमें कई बूंद शराब चुआई जाती और थोड़ा सा दूध दिया जाता है। इस कर्मके बाद शिशुका नामकरण संस्कार होता। हाजान हिब्रु मन्त्र पाठ कर शिशुके शिर पर हाथ रख नामकरण संस्कार करते हैं। इसके लिये वह कुछ दक्षिणा और एक मुर्गी पाता है। आमन्त्रित लोगोंको चीनी और नारियल

खानेको दिया जाता है। नामकरण रातको घरमें हुआ करता है। यह रात भी गानेबजानेमें ही व्यतीत होती है।

बारहवें दिन सबेरे स्नान करनेके बाद शिशुका झूलोत्सव होता है। कई आत्मीय 'वसिसआदोनिया' इस हिब्रू नामको उच्चारण कर शिशुको झूले पर सुला कर झुलाते, गाना गाते हैं। प्रथम पुत्र होने पर १३वें दिन शिशुका पिता भजनालयमें आ कर कहता या अनुष्ठानिक आचार्य्यको सम्बोधन कर कहता है, कि मैं अपने इस प्रथम पुत्रको ले कर उत्सर्ग करने आया हूं, ग्रहण करें। 'कोहेन' शिशुको गोदमें ले कर उसका मुंह देखते हैं और २॥≈ ले कर शिशुको आशीर्वाद दे मुक्तिदान देते हैं।

पुत्र होने पर ४० दिन और कन्या होने पर ८० दिन पर सूतिकाकी शुद्धि होती है। इस अवसर पर हाजान आता है। वह एक गुच्छा सबजी लेकर जलपात्रमें डुबाता है और मन्त्रपूत कर पिता, माता और शिशुके शरीरमें पवित्र जलका छींटा देते हैं। प्रसूति और शिशुको गर्म जलमें स्नान करा कर शुद्ध होते हैं। शुद्धिके बाद शिशुका शिर मुण्डन होता है। तीन या चार मासके होने पर शिशु माताके साथ अपने पिताके घर लाया जाता है। इस समय कुग्रहकी शान्तिके लिये कुछ अनुष्ठान किया जाता है। तीन मासके बाद शिशुका कर्णवेध संस्कार होता है। शिशुके टीका और चेचकके समय बिलकुल छिपे तौर पर शीतलादेवीका पूजन किया जाता है।

मृतानुष्ठान—पुरुषको मृत्यु होनेके कुछ देर पहले नाई आ कर उसका शिर मुण्डन कर जाता है। इसके बाद कोई आत्मीय उसके सारे बदनको कमा देता है। इसके बाद उसे स्नान करा, नया वस्त्र पहना, नई शय्या पर सुला देते हैं। जब तक ज्ञान रहता है, तब तक हाजान धर्मशास्त्र पढ़ कर सुनाता रहता है। मृत्युके समय मुमुर्षुके मुंहमें चीनीका रस और अंगूरका शरवत डाल देते हैं और उसके आत्मीयोंसे इस तरहका सान्त्वना-वाक्य कहते हैं; जिससे उन्हें उसके वियोगमें कष्ट न हो। प्राण निकलने पर शीघ्र ही पुत्र अपना पहना हुआ वस्त्र तथा मृतपुरुषकी स्त्री अपनी चूड़ी और विवाहके समयका कण्ठहार तोड़ देती है। सफेद कपड़ेसे मृतदेह ढांक दी जाती है। मृतपुरुषके दोनों वृद्धांगुष्ठ या अंगूठे बांध दिये जाते हैं। सभी उनके चारों ओर बैठ कर रोते चिल्लाते हैं। इसके बाद उसके अन्दाजसे एक कब्र खोदी जाती है, शवको कब्रके निकट ले आनेके पहले नारियलके जल और साबुनसे धोते हैं। इसके बाद हाजान आ कर शवके पास खड़ा होता है। उसकी आज्ञासे सात घड़े जल मृत देह पर ढाला जाता है। इसके बाद घड़े फोड़ दिये जाते हैं। इसके बाद शव स्थानान्तरित कर उसके भिंगे हुए कपड़ेको बदलवा देते हैं। फिर चटाईके ऊपर सफेद कपड़ा बिछा कर उस पर शवको सुला देते हैं। इस समय नया वस्त्र और इजार टोपी पहनाई जाती है। शिरके नीचे तकिया दे कर उसे सजा दिया जाता है। दाहिने हाथमें एक गुच्छा सब्जी और एक रुमाल धर दिया जाता है। इसके बाद उसके आत्मीयोंको अन्तिम मुख देखनेके लिये मृतकका केवल मुख खोल दिया जाता है और सारी देहमें कपड़ा लपेट दिया जाता है। इस समय हाजान आ कर उपस्थित होता है और कहता है, कि मृतकने कुछ तुम लोगोंसे अपराध किया हो, तो माफ करना। इस पर सभी कहते हैं, कि मैंने माफ किया। इसके बाद शवकी आंखों पर रुई लपेट कर आंखें रुमालसे बांध दी जाती हैं। अनन्तर चद्दर ओढ़ा कर शवको तोप दिया जाता है। इस समय भजनालयसे एक आदमी 'दोलारे' या कफन ले आते हैं। हाजान कोई पन्द्रह मिनट तक हिब्रू मन्त्र उच्चारण करते हैं। अनन्तर शवको बाहर निकाल कफन पर रखते हैं। तदनन्तर उसे फ्रेमसे दबा कर उस पर फूल और हरे पत्तियोंसे तोप देते हैं। इसके बाद पहले आचार्य फिर आत्मीयस्वजन उसे कन्धे पर उठा कर हिब्रू मन्त्र पाठ करते करते कब्रस्थानकी यात्रा करते हैं। बीच-बीचमें अपने कन्धे बदलते जाते हैं। कब्रस्थानके निकट आ कर सभी जरा ठहरते हैं। इस समय हाजान बड़े जोरसे हिब्रू मन्त्र पढ़ता है। पीछे शववाहक शवाधार ला कर कब्रके निकट रखते हैं। दो आदमी कब्रके भीतर जाते हैं और बाकी तीन आदमियोंमें एक आदमी

शव का शिर और एक आदमी पैर पकड़ते हैं। तीसरा व्यक्ति कमर पकड़ कर कपड़े लपेट देते और इस तरह उसे रखते हैं, जिससे उसका शिर पूर्वको ओर हो। शव को कब्रमें डाल देने पर उपस्थित सभी आदमी मृत-शरीरके शिरके नीचे एक एक मुट्ठो मट्टी रख देते हैं। इसी समय कोई मन्त्र पढ़ते हैं। तथा कोई मट्टी डालते ८ फिर उसकी ओर न देख जल्दी जल्दी घर आते हैं। इसके बाद कब्र खोदनेवाले उसे भर देते हैं। मृतके आत्मीय कब्रकी बगलमें जा पश्चिममें मुख कर मन्त्रपाठ करते रहते हैं। आते समय प्रत्येक घास उखाड़ कर पीछे फेंक कर चले आते हैं। कफिन ला कर भजनालयमें रख दिया जाता है। मृतपुरुषके घर आ कर सभी हाथ मुख धोते हैं, तम्बाकू या कुछ कुछ सुरापान कर अपने अपने घर चले जाते हैं। जहां मृत्यु होती है, वहां एक चटाई बिछा कर उसके पास एक जलता हुआ चिराग और एक पात्रमें शीतल जल रख देते हैं। वहां सात दिनों तक गृहस्थके निकट आत्मीय उस बिछाई हुई चटाई पर सोते, बैठते और भोजन करते हैं। इसका विशेष लक्ष्य रखा जाता है, कि चिराग बुझने न पाये।

ये सात दिन ही उनके लिये शोकका समय है। ये कई दिन उस घरके लोग कुर्सी पर नहीं बैठते, स्नान नहीं करते, कोई अच्छी खाद्यवस्तु नहीं खाते, मद्यपान नहीं करते और घरसे बाहर नहीं जा सकते। पुरुष शिरमें टोपी भी नहीं पहनते और किसीको सलाम नहीं करते। प्रति दिन सवेरे दश सच्चरित्र आदमी आ कर धर्मग्रन्थ पढ़ते हैं। इन सातों दिनोंमें तीसरे और छठें दिन हाजान आ कर मन्त्र पाठ करते हैं। सातवें दिन आत्मीय और कुटुम्बिनी नारियल हाथमें ले मृतककी स्त्रीको नारियलके तेल लगवा कर स्नान कराती और अपने स्नान कर सभी अपने अपने घर जाती हैं। इसके बाद हाजान दश आदमियोंके साथ वहां आते हैं। मृतके घरमें मरनेकी जगह ठंढे जलका जो पात्र रखा गया था, उसको ले कर हाजान और शोकाकुल आत्मीय-स्वजन कब्रके पास आते हैं। कब्र पर छः इञ्चका एक गढ्ढा खोदा जाता है। मृतके शिरकी ओर एक बड़ा पत्थर पैरके निकट एक छोटा पत्थर तथा बांई बगलमें पांच और दाहनी बगलमें छः पत्थर रखते हैं। गड्ढेमें मट्टी डाल दी जाती है। इसके बाद प्रधान शोकाकुल व्यक्ति उस ठण्डे जलको शिरसे आरम्भ कर चारों ओर जल गिरा देते हैं। जल गिराते गिराते जब जल पैरके निकट आ जाता है, तब उस पात्रको पटक कर तोड़ फोड़ डालते हैं। पीछे कुछ घास उखाड़-उखाड़ कर शिरहानेके पत्थरके पास रोप देते हैं। कितने ही नारियलका गुदा कब्र पर छोटते हैं। इसके बाद शोकसन्तप्त परिवारके लोग कब्रके पीछे खड़े हो कर मन्त्र पाठ करते, नारियलका गुदा मुंहमें देते, सबजीको सूंघते और धूमपान कर घर लौट आते हैं। यहां 'जारत्' पाठ होता है और सन्ध्याको आत्मीय कुटुम्ब बन्धुबान्धवोंको आमन्त्रित कर बुलाते और मांस तथा मिष्टान्नका भोज देते हैं।

इसके बाद शोकाकुल व्यक्ति सिनागगमें हाजानका शान्तिमन्त्र पाठ सुन आते हैं। मृतके लिये सिनागग १ या २॥सेर तेल भेज देना होता है। इसके बाद सभी आ कर बरामदेमें बैठते हैं। प्रधान शोकार्त व्यक्तिको छोड़ और सभीके पैसेसे शराब आती है। यहां मद्यपान हो जाने पर प्रधान शोकार्त व्यक्ति उन्हें .पना घर ले जाते और उन्हें शराब और तम्बाकू पिलाते हैं। प्रधान शोकार्त्त व्यक्तिको जाति कुटुम्बको एक महीने, पर और तीन महीने पर भोज देना होता है। षाण्मासिक और वार्षिकके समय भेड़ोंका मांस ला कर एक बड़ा भोजका आयोजन किया जाता है। उसमें 'जारत्' और 'जिखिर' मन्त्र पाठ होता तथा इसमें बहुतेरे व्यक्ति एकत्र होते हैं। इस दिन भजनालयमें शराबका दाम भेजना होता है। यदि भजनालय निकट नहीं होता, तो उसी दामकी शराब मंगा कर आत्मीय कुटुम्ब पी डालते हैं।

धर्म।—बेने-इसरायल एकेश्वरवादी हैं। उनके भजनालयमें हस्तलिखित हिब्रु बाइबिल (Old Testament) रहती है और यह भगवान्‌की आज्ञा है—यह सब किसीका विश्वास है *। स्वजातिमें ही वे धर्मका

* यह पोथी पुरानी हो जाने पर जलमें डाल दी जाती है। इस कारण मनुष्य मृत्युकी तरह शोक किया करते हैं।

प्रचार करते हैं। उनके हिब्रुधर्मका मूलमन्त्र यही है, कि "वे प्रभु हमारे ईश्वर हैं, वे ही हमारे एकमात्र प्रभु हैं।" उनके मुंहमें सदा यही मूलमन्त्र रहता है। इस मन्त्रको उच्चारण करते समय दाहिने हाथके अंगूठेसे दाहिनी आंख छूनी पड़ती है। ऐकेश्वरवादको छोड़ उनमें १३ विषय स्वीकार्य हैं। १, ईश्वर सृष्टिकर्त्ता और जगत्‌का शासक है। २, वे ही उनके एकमात्र ईश्वर हैं और रहेंगे। ३, वे निराकार, अव्यय और अक्षय हैं। ४, वे ही सब पदार्थोंके आदि और अन्त हैं। ५ वे ही उनके एकमात्र पूज्य हैं। ६, बाइबिलका पहला भाग ही (Old Testament) ही धर्मशास्त्र है। ७, मूसा ही सब भविष्यवक्ताओंमें श्रेष्ठ और उनके कानून ही शिरोधार्य्य है। ८, ईश्वरने मूसाको जो उपदेश दिया है, वे ही नियम उन लोगोंको मिला है। ९, ये नियम कभी बदले न जायंगे। १०, ईश्वर सभी मनुष्योंको ही जानते हैं और उनके कार्य्योंको समझते हैं। ११, ईश्वर न्यायवान्‌को पारितोषिक और अन्यायकारीको दण्ड दिया करते हैं। १२ अब भी मेसाया या भगवदवतार नहीं हुआ, समय आने पर होगा। १३, फिर कब्रसे उठ कर मुर्दे ईश्वरका गुणगान करेंगे।

बेने इसरायलोंमें दो तरहके वर्ष प्रचलित हैं। एक गार्हस्थ्य वर्ष और दूसरा धर्मवर्ष। गार्हस्थ्य या साधारण वर्ष 'तीसरी' आश्विनसे शुरू होता है। इसी 'तीसरी' मासकी १लीसे ही वे जगत्‌की सृष्टि मानते हैं। निशान (चैत्र) मास धर्मवर्ष आरम्भ होता है। इसरायलोंके 'छोड़ देनेके बादसे इस वर्षकी गणना चलती है। 'योम' या दिनका नाम—रिशोन (रवि), शनि (सोम), शलिषी (मङ्गल), रेविथि (बुध), हमिषी (बृहस्पति), शिशि (शुक्र) और शविथि-शब्बथा (शनिवार)। वे चान्द्र मास गिनते हैं। वर्षमें १२ मास होते हैं। २९ या ३० दिनका मास गिना जाता है। बारह मासोंके नाम इस तरह है :—तीसरी (आश्विन), देशवान (कार्त्तिक), किसलेव (अगहण), ब वेत (पौष), शेवाथ (माघ), आदार (फाल्गुन), निशान (चैत्र), इयार (वैशाख), सिवान (ज्येष्ठ), तम्मूज (आषाढ़), आव (श्रावण), और एलूल (भाद्र)। प्रति तीसरे वर्ष अधिमास या मलमास लगता है। इस मलमासका नाम बेआदर है।

उनके उपवास या पर्व दिन।

तीसरी मासकी पहली तारीख, १, रोषहोसाना या नव वर्षारम्भ, २ सोमगदल्य या नववर्षका उपवास, उकिप्पुर या क्षमाप्रार्थनाका दिन। ४, सुकोथ या पवित्रभोज। रोषहोजाना या नवरोज उत्सव ही सर्वप्रधान है। इसी उत्सवके प्रायः एक सप्ताह पूर्व प्रत्येकके घरमें चुणकाम करना होता है। अवस्थाके अनुसार सभी नयावस्त्र धारण करते हैं। इस समय सभी प्रसन्न दिखाई देते हैं। इस दिन सभी सुन्दर वस्त्र पहन कर सिनागग या भजनालयमें जाते हैं। उपासनाके अन्त होने पर उपस्थित सभी दो दलोंमें विभक्त हो जाते हैं। एक दल खड़ा हो अपराध-भञ्जन-स्तोत्र पाठ करता है। दूसरा दल खड़ा हो उसके उत्तरमें कहते हैं, कि हमने जैसे तुम लोगोंको क्षमा की, परमेश्वर भी वैसे ही तुमको क्षमा करें। इसी तरह एकके बाद दूसरा दल अपने-अपने वाक्योंकी अदलाबदली किया करते हैं। इसके बाद सभी आपसमें हाथ चूमते और अपने घर आकर स्त्रियोंका कर चूमन किया करते हैं। प्रत्येक घरमें उत्तम भोजकी व्यवस्था होती है। किस्लेव या मार्गशीर्ष २५ वें दिवस हनुकाका उत्सव होता है। इस दिन प्रतिघरमें और भजनालयमें दीपावली होती है। तेवेत या पौष मासकी १०वीं तारीखको उपवास, आदारमासकी १३वीं को उपवास और १४वीं महाभोजको (इस दिन भजनालयमें जा कर सभी 'मेगीला' या भाग्यकहानी सुनते हैं)। निसानमासके १४ से यात्रोत्सव आरम्भ, प्रथम दो दिन रोटी और शाकान्न, पिछले ६ दिनों तक केवल भात रोटी चलती है। पहले दिन भजनके समय सभी खूब शराब पीते हैं। इस मासकी ३०वीं तारीख 'जिंवग' या आमोदका दिन है। सिवान मासमें छठी तारीख ही मूसाका स्मरण दिन है। बेने-इसरायलका विश्वास है, कि इस दिन मूसा भगवान्‌के निकट धर्मशास्त्र लाभ किया था। तम्मूजमासके उपासनाका दिन है, १७वीं को इस दिन मूसाने प्रचलित विधिका परिवर्त्तन किया था, उसीके स्मरणके लिये उपवास किया जाता है। आव मासकी

९वीं तारीखको जेरुसलेमके पवित्र मन्दिर ध्वंसके स्मरणके लिये उपवास। इस दिन सभी लोग शोक चिह्न धारण करते हैं। भजनालयके भूमि पर बैठना और धर्मशास्त्रके ऊपर काला वस्त्र ओढ़ाना और सामान्य चना चबा कर ही रहते हैं। एलूल मासारम्भके ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठ कर सभी भजनालयमें जा कर भजन करते हैं।

बेने-इसरायल साधारणतः परिश्रमी, मितव्ययी, और सभीकी अवस्था अच्छी है, फिर भी वे कुछ कलहप्रिय और प्रतिहिंसाशील होते हैं।

सुन्नत हुए विना यह किसीको अपने समाजमें नहीं लेते। जब स्त्रीपुरुष एक बार समाजसे निकल जायंगे तब विना बेंत खाये पुनः न लिये जायेंगे। शीतल जलसे भरे एक बड़े वरतनमें अपराधीको बैठा कर ३९ बार बेंत मारा जाता है। हाज्ञानका आदमी ही बेंत मारा करता है। इस घटनाको इनकी भाषामें 'तोवात' कहा जाता है।

खाद्यके सम्बन्धमें यहूदियोंका विधिनिषेध दिखाई देता है। इनमें उत्सवके सिवा साधारण तरह भक्षण करनेके लिये प्राणिहत्या करना निषेध है। खुरयुक्त तथा रोमन्थनकारी पशुके सिवा अन्य पशुका मांस भक्षण करनेकी विधि नहीं। खरगोश और शूकर आदिका मांस निषेध है। जिस मछली पर छलका नहीं होता उसका मांस वे लोग नहीं खाते हैं। शिकारी पक्षी तथा सरीसृप आदिका मांस सर्वथा वर्जित है। पैगम्बर कोशियल और याकूबके विरोधके समय याकूबकी छाती फट गई थी। इसीका स्मरण कर यहूदी किसी पशुकी छातीका मांस भक्षण नहीं करते। (जेनेसिस १२।२५।१२) इटली और जर्मनीके किसी किसी स्थानमें यहूदी आज भी पीठके मांसमें छातीका मांस संयोजित रहनेसे उसे नहीं खाते। बहुतेरे इसे वाद दे कर खाते हैं। लेभिटिकासके १७वें परिच्छेदमें सरक्त मांसभक्षण भी निषेध है।

चीनदेशीय यहूदी टियायू किन-कियान नामसे परिचित हैं। ये भी उसपेशी वाद दे कर मांस भक्षण करते हैं। यहां एक लाखसे अधिक यहूदी रहते हैं। इनकी उपासनाके लिये यहां गिर्जा (Synagogue) प्रतिष्ठित हैं। वे यहांके अन्यान्य अधिवासियोंसे सम्पूर्णरूपसे पृथक् रहते हैं। चीन-विवरणीसे मालूम होता है, कि ८७७ ई०में एक अरबदेशीय यहूदी वणिक् यहां वाणिज्यके लिये आये थे। १२वीं शताब्दीमें तोलेदोवासी रब्बी वेंजामिनने पूर्वदेशमें आ कर चीन, तिब्बत और पारस्यराज्यमें इसरायलके वंशधरोंको देखा था।

फ्रान्स, स्पेन, पुर्त्तगाल, जर्म्मनी, रूस आदि यूरोपीय राज्यमें किस तरह यहूदियोंका प्रवेश हुआ था, उसका संक्षिप्त इतिहास नीचे देते हैं—

पाश्चात्य शाखा।

यूरोपीय यहूदियोंको पाश्चात्य शाखा नामसे पुकारते हैं। दुर्भाग्यक्रमसे यह पाश्चात्य शाखा बहुत दिनोंसे घृणित, निगृहीत और दण्डित हुई है। वेनेस-की मन्त्री-सभा (The Council of Vannes)-में सन् ४६५ ई०में यह स्थिर हुआ, कि कोई भी ईसाई यहूदियोंके साथ बैठ कर भोजन न कर सकेगा। इसके कुछ ही समय वाद विवाहसम्बन्ध भी निषिद्ध ठहराया गया। और तो क्या, सन् १२४६ ई०में बर्जियासकी मन्त्रि-सभामें यह भी निश्चय हुआ, कि यहूदी डाक्टरको भी कोई अपने घर न बुला सकेगा। फ्रान्समें प्रायः एक शताब्द काल तक 'यहूदी रक्षक' नामसे फ्रान्सीसी एक सम्भ्रान्त व्यक्ति चुने जाते थे। रक्षक चुने जा कर यह कभी कभी रक्षकका काम भी कर देते थे। दक्षिण फ्रान्समें बहुतेरे यहूदी व्यवसाय वाणिज्य किया करते थे, किन्तु समाजसे वहिष्कृत ही माने जाते थे। वेजियार्सके एक खृष्टान विशप प्रतिवर्ष एक निर्दिष्ट रविवारको (Palm-Sunday) ईसा मसीहका परिशोध लेनेके लिये जनताको उत्तेजित करता था। इस दिन कितने ही यहूदी मार डाले जाते या निकाल दिये जाते थे। सन् १२६० ई०में यह दारुण प्रथा उठा दी गई। इसके वदले यहूदी बहुत रुपये देने पर वाध्य किये गये। इसी तरह युरोपके सभी खृष्टान राज्योंमें यहूदियोंको कष्ट झेलना पड़ा था।

स्पेनदेशसे सन् १५६२ ई०में तथा पुर्त्तगालसे सन् १४९७ ई०में जो सब यहूदी निर्वासित किये गये थे, वे सेफर्दिम नामसे परिचित हैं। जगत्‌के किसी भी देशके

यहूदियोंके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं। वे अपनेको सर्वश्रेष्ठ हिब्रु मानते हैं। वे अभी उस दिन तक भी स्पेनिस और हिब्रु भाषासे काम लेते थे। स्पेनमें जब अरबका अधिकार था, सेफर्दिमोंके पूर्वजने बहुत अर्थ सञ्चय किया था। इस सुन्दर समयमें कर्दोभा, तोलेदो, बार्सेलोना और ग्राणाडामें बहुसंख्यक यहूदियोंने नाना वैज्ञानिक विषयोंमें उन्नतिका विस्तार किया था। सारे जगत्में उनको गतिविधि होनेको वजहसे बहुत भ्रमणवृत्तान्त संग्रह और बहु प्राप्य औषधियोंका प्रचलन कर भावी प्रजा-साधारणके लिये यथेष्ट मङ्गलसाधन कर गये हैं। और तो क्या, चिकित्सा-व्यवसाय एक तरहसे इजारा हो गया था। वर्त्तमान यहूदियोंके इतिहासमें वह समय उनके लिये सौभाग्यका समय गिना जाता है।

सन् ९४८ ई०में पूम्बोदिथाके चार इसराइल सन्तान परिवारके साथ जहाजसे कहीं जा रहे थे। स्पेनके कई मूर-डाकुओंने उस जहाज पर आक्रमण किया। उन चारोंमें-से रबी मूसा अपनी प्रिय पत्नीको समुद्रगर्भमें आश्रय लेते हुए देख सपुत्र डाकुओंके हाथ कैद हो कर्दोभा लाये गये। यहांके यहूदियोंने रुपया दे कर इन्हें छुड़ाया। एक दिन अपनी धर्मसभामें रबी मूसाकी बुद्धिका परिचय पा कर वे लोग चकित स्तम्भित हुए थे। पीछे सभीने इनका अपने भजनालय 'सिनागग'का प्रधान नियुक्त किया। थोड़े ही दिनमें ये अपनी जातिके परम रक्षकरूपमें विख्यात हुए। इनके असाधारण गुणोंको देख कर पेलियागके शक्तिशाली राजाने रबी मूसाके पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। इस तरह धनी और ज्ञानी मूसाने केवल अपने वंशधरोंकी ही नहीं; वरं स्पेनके सारे यहूदियोंको शक्तिवृद्धि की थी। ११वीं शताब्दीमें पारस्यके गेउनिमके यहूदी-सम्प्रदायके अवसन्न होने पर उसकी जगह विद्या और अर्थशालितामें स्पेनका रब्बानिम-धर्मसंघ ही प्रधान और यहूदियोंका धर्मकेन्द्र कहलाता था। उसीके प्रभावसे थोड़े ही दिनोंमें तोलिदो, सेभिल, सारागोसा और लिसवन नगरमें हिब्रु धर्म-विद्यालयोंकी प्रतिष्ठा हुई थी। और तो क्या, एकमात्र तोलेदोके धर्ममन्दिरमें बारह हजार छात्र हिब्रु धर्मकी शिक्षा पाते थे। इस समय हिब्रु-साहित्याचार्य काष्टिलकी प्राचीन राजधानीमें लाये गये थे। वहांके धर्मोपदेशकोंमें सन् १०२७ ई०में रब्बी समुयल हल्लेवीसे ही यहूदीधर्मका अभ्युदय माना जाता है। इसके बाद (१५वीं शताब्दी तक) नौ पीढ़ी तक वहांके सर्वश्रेष्ठ और विख्यात धर्मशास्त्रविदों द्वारा ही सिनागग अलंकृत हुआ करता था। सेफार्दिम या स्पेनके यहूदियोंमें केवल धर्मनिबन्धके रचयिताओंका आविर्भाव हुआ था, उनमें भी एकसे एक धुरन्धर पण्डित विद्वान् हुए। साहित्य और विज्ञानक्षेत्रमें उच्चस्थान लाभ करने पर भी वे अन्य धर्मी राजपुरुषोंके हाथ किस तरह लांछित और अपमानित होते थे, वह लिख कर प्रकट किया नहीं जा सकता। और तो क्या सन् १४९२ ई०में यहांके अन्तिम मुसलमान राज्यके नष्ट होनेके साथ ही राजघोषणा हुई थी, कि चार महीनेके भीतर सभी यहूदी यहांसे घर द्वार छोड़ कर भाग जायें। यहूदी बहुत रुपये देने पर तैयार थे, किन्तु किसीने उनकी बातों पर कर्णपात नहीं किया। अधिकांश यहूदी अफ्रिकाके किनारे निर्वासित किये गये। बहुतेरे इतने उत्पीड़ित हुए थे, कि वे अपने पूर्वजोंके धर्मपरित्याग करने पर वाध्य हुए। अनेकोंने तो पुर्त्तगालके राजाको बहुत रुपया नजराना दे कर प्रतिवर्ष प्रति व्यक्तिके लिये अत्यधिक कर दे अपने धर्मकर्मकी रक्षा की थी। उनके यत्नसे वहां हिब्रु साहित्य तथा विज्ञानका केन्द्र स्थापित हुआ था। उस समयके सर्वप्रधान धर्मनिबन्धकारको 'आबर बनेल' कहते हैं। सन् १४९७ ई०में वहांके सब यहूदियोंको पोर्त्तुगालसे 'देशनिकाला' या निर्वासित करनेके लिये पोर्त्तुगालराजकी आज्ञा प्रचारित हुई। इस समय यहूदियोंके कष्टकी सीमा न रही। उसी समयसे सेफार्दिम यहूदीगण जगत्के सभी देशोंमें फैल गये थे। इसी समय अमेरिकामें यहूदी-उपनिवेश स्थापित हुआ। १९वीं शताब्दीमें यूरोपके प्रोटेष्टण्ट प्रजातन्त्रने इन सबोंको विशेषरूपसे आश्रय दिया था। इस श्रेणीकी दूसरी शाखाके लोग अब भी अपने विशेषत्वकी रक्षा कर रहे हैं। सन् १५९४ ई०में आमष्टडम नगरमें यहूदियोंने प्रथम उपनिवेश कायम किया। क्रमशः वहां बहुत यहूदी बस गये। सन् १६१८ ई०में वहां

तीन भजनालय स्थापित हुए। सन् १६७५ ई०में स्पेन और पोर्त्तुगीज यहूदी एकत्र हुए। इन्होंने यहां एक सुन्दर और समुच्च भजनालय या गिर्जेकी स्थापना की थी। हालेण्डवासी यहूदियोंमें भी बहुतेरे ग्रन्थकारों और सुपण्डितोंका जन्म हुआ था। उनमें रव्वी मेनासे बेन-इसरायलका नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। इसने हिब्रु उपासना या अनुष्ठानके सम्बन्धमें ग्रंथ भी लिखा है। इसी समय उरियल-दा-कोष्टा नामक स्वाधीनचेता यहूदी पण्डितने प्रचार किया था, कि आदिधर्मपुस्तक (Old Testament) और रव्वीनोंकी प्रचारित प्रवादमाला कभी भी दैवशक्तिसम्पन्न या प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। वह मृतके पुनरुत्थान और पुनर्जन्मको नहीं मानता था। इसके लिये उसने दण्ड भोगते हुए ३०० फ्लोरिनका जुर्माना दिया था। इस पर भी उसने अपने मतका परिवर्त्तन नहीं किया। फल यह हुआ, कि वह समाजच्युत कर दिया गया। और तो क्या, उसने नाना अपमानोंको सहते हुए अपनी जीवनी लिख कर इहलीला संवरण की। सिवा इसके वेनीडिक् स्पिनोजा नामक एक व्यक्तिने जड़ और चैतन्यकी अनित्यता तथा एकमात्र ईश्वरका नित्यत्व स्वीकार कर एक बार अद्वैतवादका प्रचार किया। वह हिब्रु धर्ममतके विरुद्ध होनेसे क्रमशः उसके आत्मीयस्वजन भी उसके विरुद्ध हो गये। अन्तमें वह अमष्टर्डम भाग गया; किन्तु उसने अपना मत परिवर्त्तन नहीं किया।

अमष्टर्डमके बाद ही हेगके यहूदी बहुत कुछ समृद्धिशाली हो उठे। शहरकी अधिकांश सुन्दर अट्टालिकायें ही यहूदियोंकी हो चुकी थीं। यहांका गिर्जा एक दर्शनीय वस्तु थी। जर्मन और पोर्त्तुगीजोंके धर्मगुरु सदा ही यहांके गिर्जोंके परामर्शसे कार्य करते थे।

१८वीं शताब्दीमें सारे युरोपमें हिब्रु धर्मका अधःपतन हुआ। फ्रान्सके निकले धर्मविरोधी साहित्य और दर्शनोंने यहूदियों और जेसुइटोंका ध्यान आकर्षण किया था। दार्शनिक वोलता और उसके शिष्य-सम्प्रदायने यहूदियोंकी अपने-अपने ग्रन्थोंमें घोर निन्दा की है।

पिटर-दी-ग्रेटके राजत्वमें यहूदी रूसराज्यमें घुसे। किन्तु वे सन् १७४५ ई०में निर्वासित कर दिये गये; कारण—वे साइवेरियाके निर्वासित व्यक्तियोंके साथ लिखा-पढ़ी किया करते थे। फिर भी वे रूसके अधीनस्थ पोलण्ड और उकाइन प्रदेशमें ही वास करते थे। पोलंडके हिब्रु जगत्के अन्यान्य हिब्रुओंसे उत्तम कहे जाते थे। यहां हिब्रु-समाजसे 'सव्वथे' और १७४० ई०में 'जसिदिम' सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति हुई। सन् १७६० ई०में वहांसे ही तालमूदके विरुद्धवादी एक सम्प्रदायका अभ्युदय हुआ। जेकब फ्राङ्क (Jacob Frank) इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक थे। वे तालमूदकी प्रामाणिकता अस्वीकार कर जोहारके काव्वालमतके पक्षपाती हुए थे और उन्होंने खृष्टानोंकी तरह त्रित्व (Trinity) स्वीकार कर ली थी। इस पर सिनागगने 'खृष्टान' कह कर इस सम्प्रदायका अपमान किया था। इसी सङ्कटके समय वे आश्रय लाभकी आशासे तुर्कीराज्यमें भाग गये। किन्तु यहां भी जनसाधारण उनके विरुद्ध हो गया और उन्हें नाना तरहसे अपमानित करने लगा। खृष्टान-धर्मके प्रति फ्राङ्ककी कुछ आस्था थी। उन्होंने समझ लिया था, कि सभी धर्म और सभी सम्प्रदायके समीकरण करनेके लिये ही वे भगवान् द्वारा भेजे गये हैं। उनके शिष्य-सम्प्रदायके लोग आज भी पोलण्डमें वास करते हैं। वे इस समय रोमन कैथलिक समाजमें हैं। फिर भी उनमें अब भी प्राचीन युदा-धर्मका निदर्शन विद्यमान है और सिनागगके धर्ममें उनका दृढ़ विश्वास है। सन् १८३० ई०में पोलंडमें एकाएक विद्रोहानल प्रज्वलित हुआ था, उसमें इसी सम्प्रदायका विशेष हाथ था। इसी कारणसे वे फ्रान्स जा कर आत्मरक्षा करनेको बाध्य हुए थे।

सन् १७८९ ई०में वर्त्तमान हिब्रु समाजमें नये युगका प्रारम्भ हुआ। फ्रान्सीसी विप्लवसे सारा यूरोप विचलित हुआ था। इस समय यहूदी भी अपनी प्राचीन प्रथाको परित्याग कर खृष्टानोंके पड़ोसीरूपसे वास करनेमें यत्नवान् हुए थे। फ्रान्सके दारुण राजनीतिक सङ्घर्ष अवलोकन कर उन्होंने साम्य, मैत्री और स्वाधीनताकी रक्षामें जलद गम्भीरस्वरसे सभ्यसमाजसे आवेदन किया था। सन् १७९१ ई०में उनका आवेदन ग्राह्य हुआ। उन्होंने फ्रान्सके नागरिकोंका अधिकार लाभ किया। महाविक्रम-

शाली नेपोलियन बोनापार्टने भो यहूदियोंको प्रेमकी दृष्टिसे देखा था और फ्रान्सीसी विप्लवके समय उन्होंने जो अधिकार पाया था, उसका सम्पूर्णरूपसे अनुमोदन किया। फ्रान्सराज प्रथम नेपोलियनने यहूदियोंके हित-कामी बन कर सन् १८०६ ई०में एक महासभा बैठाई। इस सभामें फ्रान्सीसी सम्राट्ने नाना स्थानोंसे हिब्रुओंके प्रधानोंको बुला कर एक प्रश्न पूछा था। इसके उत्तरमें उन्होंने कहा था, कि उनके धर्मशास्त्रोंमें बहु पत्नी ग्रहण करनेकी प्रथा रहने भी पर सन् १०३० ई०के संघके मतानुसार वे एक पत्नीव्रतका पालन करनेको बाध्य हैं। स्त्री या पति त्याग एक समयमें ही निषिद्ध हुआ था। उनके धर्ममत भिन्न होने पर भी दूसरे सब देशी लोगोंको भी एक जातीय समझते हैं। उनके शास्त्रमें ऋण दे कर सूद लेना पाप है। केवल वाणिज्य-व्यवसायमें न्यायतः सूद लेना दोष नहीं। इस सभाका मत अनुमोदन करनेके लिये उन्होंने सन् १८०७ ई० में एक सभाका आयोजन किया। इस सभामें हालेण्डसे भी बहुतेरे धर्मगुरु उपस्थित हुए थे। इस सभामें सभीने पूर्व प्रस्तावका अनुमोदन किया ; किन्तु हालेण्ड और जर्मनीके यहूदियोंके मनमें न बैठा। जो हो, राजाका प्रश्रय पा कर यहां ही बहुतेरे सम्भ्रान्त यहूदी आ कर रहने लगे। थोड़े दिनोंमें ही यहां अस्सी हजार यहूदियों-का वस्ती हो गई थी। गत शताब्दीमें यहूदी वैदेशिक साम्यनीतिके गुणसे नाना स्थानोंमें तितर बितर हो गये। इसके साथ साथ रब्बी मतका प्रचार हुआ। दो एक स्थानोंमें 'कराइत' नामक एक छोटा सम्प्रदाय दिखाई देता है।

वर्त्तमान यहूदियोंमें आचार्य नहीं है; यज्ञीय वेदी नहीं उनके यज्ञ सभी विलुप्तप्राय हो गये हैं। उनका कहना है, कि मूसाकी विधिके अनुसार चल कर सरल चित्तसे अनुताप करनेसे हो प्रायश्चित्त होगा। उनका विश्वास है, कि वार्षिक अपराधभञ्जनके लिये जो अनुष्ठान होता है, उसके पिछले वर्षका पाप दूर हो जाता है। वे जीवात्माका देहान्तर ग्रहण स्वीकार करते हैं, सिवा इसके सभीका विश्वास है, कि पुण्यशील व्यक्ति सुन्दर लोकमें जाते और पापात्मा व्यक्ति कब्रमें सदा सड़ते रहते हैं

यहूयहू (सं० पु०) कबूतरकी एक जाति।

यह्व (सं० पु०) यजतीति यज-(शेवायह्वजिह्वाग्रीवाप्वामीवाः। उण् १।१५४) इति वन् प्रत्ययेन निपातितः। १ यज-मान। २ महत्, बड़ा।

यह्वत (सं० त्रि०) महत्, बड़ा

यांचना (हिं० स्त्री०) याचना देखो।

या (फा० अव्य०) १ विकल्पसूचक शब्द, अथवा। (सर्व० वि०) 'यह' का वह रूप जो उसे व्रजभाषामें कारक चिह्न लगानेके पहले प्राप्त होता है।

या (सं० स्त्री०) १ योनि। २ गति, चाल। ३ रथ, गाड़ी। ४ अवरोध, रोक। ५ ध्यान। ६ प्राप्ति, लाभ।

याक (हिं० पु०) हिमालय पर होनेवाला जंगली बैल जिसकी पूंछका चंवर बनता है।

याकलर—बीजापुरमें रहनेवाली एक नीच जाति। इनमें कोई खास कर श्रेणीविभाग तो नहीं है पर वेरमलार, जलारवरु, मलारवरु और पोतगुलियावरु आदि नामक कितने वंशोंका उल्लेख मिलता है। हनुमन्तदेव या मारुति तथा कोटेगिरिकी कांचिनवाई इनके प्रधान उपास्य हैं। कुलदेवताकी पूजामें ये लोग ब्राह्मण नियुक्त नहीं करते। नये वर्ष, दीवाली और नागपंचमीके दिन ये उपवास करते तथा कहीं कहीं थोड़ा गुड़ और रोटी खा कर रहते हैं।

तीर्थक्षेत्रके पुजारियोंके सिवा दूसरे सभी मद्य, गांजा, भांग आदि मादक द्रव्य तथा मांस खाते है। हिंदूके निदर्शनस्वरूप सभी चोटी रखते हैं। प्रति सोमवार और जेठी पूर्णिमामें ये कोई काम नहीं करते।

विवाह आदि काममें ब्राह्मण ही इनकी पुरोहिताई करते हैं। दूसरे दूसरे कामोंमें धर्मगुरु ही सब काम कराते हैं। इनमें बाल्य-विवाह, बहु विवाह और विधवा विवाह प्रचलित है।

जन्म होनेके तेरहवें दिन बालकका नामकरण और सातवें महीनेमें अन्नप्राशन होता है।

विवाहके निर्द्धारित शुभ दिनमें कन्याका घर गोवरसे लीपा पोता जाता है। तदनन्तर कन्यापक्षीय स्त्रियां कन्या को वरके घर लेजाती हैं वहां वर और कन्याको एक साथ हल्दी लगा कर स्नान कराया जाता है। इस प्रकार तीन दिन

तक एक चौकोन गड्ढा खोद कर उसीमें दोनों स्नान करते हैं। पीछे वर और कन्याके माथेमें फलका हार और नया वस्त्र पहना कर एक साथ दोनोंको विठाया जाता है। इसी समय ब्राह्मण पुरोहित आ कर वर-कन्याको हाथोंमें मन्त्र पढ़ कर सूता बांध जाते हैं। विवाह उपलक्षमें ये मिठाई भी वांटते हैं।

तदनन्तर वर और कन्याको वैल पर चढ़ा मारुति मन्दिरमें ले जाते और वहां नवदम्पतीकी मंगल कामनाकी पूजा देते हैं। देवालयसे लौटने पर कन्याके पिता और माता आ कर वरकी माताके हाथ कन्याको सौंप देती है।

ये मृतककी देह पहले एक खूंटेमें वांधते। पीछे उसे कपड़ा पहनाते हैं। कोई कोई शवको जलाते और कोई गाड़ भी देते हैं। विवाहित व्यक्तिके मृत्यु होनेसे पांचवें या ग्यारहवें दिनमें श्राद्ध होता है। इनका सामाजिक-वन्धन वड़ा दृढ़ है। समाजमें किसी प्रकारका वाद विवाद होनेसे मेलिगिरिके वालकम्न उनकी मीमांसा कर देते हैं। ये व्यक्ति इनके साधारण धर्मगुरु हैं।

याकुत्‌दावुली—एक मुसलमान साधु। दाक्षिणात्यके वीजापुर शहरके अर्क केल्लाके उत्तरपूर्वमें इनका समाधि-मन्दिर और मसजिद मौजूद है।

याकुव-विन-लेइस-सफ्फर—एक मुसलमान अमीर। इन्होंने अव्वास-वंशके विरुद्ध खड़े हो कर अपने नाम पर सफ्फारी वंशकी प्रतिष्ठा की। ये सामान्य एक कसेरेसे अपने अध्यवसाय द्वारा सिस्तानके अधिपति हो गये थे। इन्होंने २य ताहिरके पुत्र महम्मदको पराजित और वन्दी कर खुरासान और तावरिस्तान दखल किया। खलीफा मोतामिद ऐसे अत्याचारसे वड़े विगड़े और राजद्रोही जान इन्हें दण्ड देनेके लिये वागदादकी ओर वढ़े, किन्तु रास्ते हीमें ८७४ ई०में उनकी मृत्यु हो गई जिससे याकुवने छुटकारा पाया। याकुवके मरने पर उनका भाई अमरु-विन्-लेइस गद्दी पर वैठा।

याकुव खाँ—कन्दहारके शासनकर्त्ता शेरअली खाँके पुत्र। इन्होंने १८७६ ई०में गण्डमाक-शिविरमें आ कर अङ्गरेजोंके साथ सन्धि कर ली थी।

काबुल और कन्दहार देखो।

याकूत (अ० पु०) एक प्रकारका लाल रंगका वहुमूल्य पत्थर, लाल।

याकृत्क (सं० त्रि०) यकृत् (इसुसुक्तान्तात् कः। पा ७।३।५१) इति क, दीर्घश्च। यकृत्सम्वन्धीय।

याकृल्लोम (सं० त्रि०) यकृल्लोमजनपद सम्वन्धीय।

याग (सं० पु०) पूज्यते इति यज-घञ्। यज्ञ। श्रौतसूत्रमें यज्ञका नामोल्लेख इस प्रकार लिखा है,—

श्रौताग्निकृत्य हविर्यज्ञ सात है, यथा—अग्न्याधान या अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, पिण्डपितृयज्ञ, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढ़पशुवन्ध और सौत्रामणि। ये सात श्रुत्युक्त हैं।

स्मार्त्ताग्निकृत्य पाकयज्ञ भी सात है, यथा—औपासन, वैश्वदेव, स्थालीपाक, आग्रयण, सर्पवलि, ईशानवलि, अष्टकान्यष्टका। ये सात स्मृतिसम्मत हैं।

श्रौताग्नियाग भी सात है; यथा—सोमयाग, इसका नामान्तर अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोड़शी, वाजपेय, यह दो तरहका है—संस्था और क्रतु, अतिरात्र तथा अप्तोर्याम।

उत्तर याग अनेक प्रकारका है, यथा—महाव्रत, सर्वतोमुख, राजसूय, पौण्डरीक, अभिजित्, विश्वजित्, अश्वमेध, वृहस्पतिसव, आङ्गिरस, तथा अठारह हायन इत्यादि वहुत तरहका उत्तर याग है। (श्रौतसू०) ये सव याग वैदिक हैं। यज्ञ शब्द देखो।

यागकर्म्मण (सं० क्ली०) यागस्य कर्म। यज्ञकर्म, यज्ञका कार्य्य।

यागकाल (सं० पु०) यज्ञका उपयुक्त समय।

यागपुरी—वर्त्तमान याजपुरका दूसरा नाम।

(वृ० नील० २३)

यागमण्डप (सं० पु०) यज्ञमण्डप, यज्ञशाला।

यागसन्तान (सं० पु०) इन्द्रके पुत्र जयन्तका एक नाम।

यागसिद्ध (सं० त्रि०) यागेन सिद्धः। यज्ञ द्वारा सिद्धिप्राप्त।

यागसूत्र (सं० क्ली०) यागेन धृतं सूत्रं। यज्ञसूत्र, यज्ञोपवीत।

यागेश्वर—हिमालयके शिव।

याचक (सं० त्रि०) याचत इति याच-ण्वुल्। १ याच्ञा-

कर्त्ता, मांगनेवाला । २ भीखमंगा । पर्याय—वनीयक, याचनक, मार्गण, अर्थी, भिक्षुक, भिक्षाकर ।

(शब्दरत्ना०)

नीतिशास्त्रमें याचक बड़ा लघु समझा गया है। गरुड़पुराणमें लिखा है, कि जगत्पति विष्णुने जाचनेके लिये ही वामनरूप धारण किया था। सैकड़ों कष्ट भुगतना अच्छा है, पर मांगना अच्छा नहीं ।

(गरुडपु० नीतिसार ११५ अ०)

याचत् (सं० त्रि०) याचतीति याच-शतृ । याचक, मांगनेवाला ।

"मुखभंगः स्वरो दीनो गात्रस्वेदो महद्भयम् ।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचतः ॥"

(गरुडपु० ११५ अ०)

याचन (सं० क्ली०) याच-भावे ल्युट् । याच्ञा, प्रार्थना ।

याचनक (सं० त्रि०) याचन स्वार्थे कन् । १ याचक, भिक्षुक । २ विवाहके लिये कन्याकी प्रार्थना करनेवाला ।

याचना (सं० स्त्री०) याच्-स्वार्थे णिच, युच्-टाप् । याच्ञा, प्रार्थना ।

याचना (हिं० क्रि०) प्राप्त करनेके लिये विनती करना, मांगना ।

याचनीय (सं० त्रि०) याच-अनीयर् । प्रार्थनीय, मांगने योग्य ।

याचमान (सं० त्रि०) याचते इति याच्-शानच् । याचक, मांगनेवाला ।

याचित (सं० क्ली०) याच्-क्त । १ याचनवृत्ति, मांगनेकी क्रिया । पर्याय—मृत । यह मृततुल्य दुःखजनक है इसलिये इसका नाम मृत तथा अयाचितका नाम अमृत है। (त्रि०) २ प्रार्थित वस्तु, मांगी हुई चीज ।

याचितक (सं० क्लि०) याचितेन निर्वृत्तं याचित (अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ । पा ४।४।२१) इति कन् । याच्ञाप्राप्त, मांगी हुई वस्तु । जो वस्तु मांगी जाती है तथा काम शेष होने पर फिर लौटा दी जाती है उसीको याचितक कहते हैं ।

याचितव्य (सं० त्रि०) याच-तव्य । याच्ञाके योग्य, मांगने लायक ।

याचितृ (सं० त्रि०) याच-तृच् । याचक, मांगनेवाला ।

याचिन् (सं० त्रि०) याच्ञाकारी, भिक्षुक ।

याचिष्णु (सं० त्रि०) याचक, मांगनेवाला ।

याच्ञा (सं० स्त्री०) याच् (यजयाच्यतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् पा ३।३।९०) याचन, विनती करना । पर्याय—अभिशस्ति, याचना, अर्थना, भिक्षा, अर्दना, लालसा । वैदिक पर्याय—ईमहे, यामि, मन्महे, दद्धि, शग्धि, पूर्द्धि, मिमढ्ढि, मिमीहि, रिरिढ्ढि, रिरीहि, पीपरत्, यन्तार, यन्धि, इषुध्यति, मदेमहि, मनामहे, मायते ।

(वेदनि० ३ अ०)

याच्य (सं० त्रि०) याच-यत् । याचनीय, याचना करने योग्य ।

याज् (सं० पु०) यज्ञकारी, यज्ञ करानेवाला ।

(भाग० ६।२३।३३)

याज (सं० पु०) १ अन्न, अनाज । २ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

याजक (सं० पु०) यजतीति यज्-ण्वुल । १ याज्ञिक, यज्ञ करनेवाला । २ राजाका हाथी । ३ मत्तहस्ती, मस्त हाथी । ४ ऋत्विक् ।

जो यजन कार्य करते हैं, वे याजक कहलाते हैं। बहुत याजन और ग्रामयाजन करनेसे भारी दोष लगता है । जो ब्राह्मण बहुत यजन करते हैं वे अब्राह्मणमें गिने जाते हैं । जो ब्राह्मण सात शूद्रसे अधिक शूद्र याजन या यज्ञ कराते हैं उन्हें ग्रामयाजी कहते हैं और जो ग्रामयाजी हैं वे महापातकी हैं । इन्हें कुम्भीपाक नरक होता है । (ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिखं० २७ अ०)

याजन (सं० क्ली०) याज्यते इति यज्-णिच् ल्युट् । यागक्रियाकरण, यज्ञकी क्रिया ।

याजनीय (सं० त्रि०) यज-णिच् अनीयर् । याजनार्ह, यज्ञ करनेयोग्य ।

याजपुर—१ उड़ीसाके कटक जिलान्तर्गत एक उपविभाग । यह अक्षा० २०° ३६से २१° १०´ उ० तथा देशा० ८५° ४२´ से ८६° ३७´ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ११०५ वर्गमील और जनसंख्या ६ लाखके करीब है। याजपुर और धर्मशाला थाना इसके अन्तर्गत है।

२ उक्त उपविभागका एक प्राचीन नगर । यह अक्षा०

२०° ५१´ उ० तथा देशा० ८६°२० पू०के मध्य वैतरणीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १२ हजारसे ऊपर है। हिन्दूका पवित्र तीर्थ कह कर यह बहुत दिनोंसे पवित्र है। आज भी यहां महकूमेका विचार सदर रहनेके कारण पूर्वप्रसिद्धि विलुप्त नहीं हुई। वैतरणी-नदीके दाहिने किनारे अवस्थित रहनेसे नगरका सौन्दर्य भी दूना बढ़ गया है।

उड़ीसाके सोमवंशीय राजा महाशिवगुप्त ययातिने इस नगरमें उड़ीसाकी राजधानी बसाई थी। इस कारण 'ययातिनगर' नामसे भी प्राचीन शिलालिपि और ताम्र-शासनमें इसका उल्लेख देखा जाता है।

बहुतोंका अनुमान है, कि राजा ययाति जब हिन्दू-धर्म स्थापन करनेके लिये विहारसे दक्षिण आये तब उन्होंने यहां ययातिपुर नगर बसाया था, पीछे उसीके अपभ्रंशसे याजपुर हुआ होगा। किन्तु याग वा यज्ञसे यांजपुर नामका होना बहुत कुछ संभव है। किंवदन्ती है, कि वैतरणीके बाएं किनारे ब्रह्माने अश्वमेध यज्ञ किया था। तभीसे यह स्थान यज्ञपुर कहलाने लगा है, इसी कारण वाराणसीधामकी तरह दशाश्वमेधघाटकी भी अवतारणा हुई है। यज्ञकालमें होमाग्निसे दुर्गा विरजा मूर्त्तिमें आविर्भूत हुई थीं, इससे यह स्थान विरजाक्षेत्र कह कर प्रसिद्ध हुआ। भगवान् विष्णुने यहां अपनी गदा रखी थी, इस कारण वैष्णव समाजमें यह स्थान एक पुण्य तीर्थ और गदाक्षेत्र कह कर परिचित है। दूसरे पुराणमें लिखा है, कि गयासुरने जब विष्णुके चरणतलमें अपना शरीर फैलाया था, उस समय उसका मस्तक गयाक्षेत्रमें, नाभि याजपुरमें और दोनों पैर गोदावरीके अन्तर्गत पीठपुरमें चले गये थे। तभीसे यह स्थान नाभिगया और पीठपुर पादगया कहलाता है। अभी जिस प्रस्रवणके किनारे तीर्थयात्रिगण श्राद्धका पिण्डदान करते हैं, वही गयासुरकी नाभि कह कर प्रसिद्ध है। विरजातापनीमें इस प्रकार लिखा है,—

ब्रह्माके यज्ञकुण्डसे यज्ञवराह और विरजादेवी उत्पन्न हुई थीं। वैतरणीके किनारे वराहदेव अवस्थित हैं, किन्तु विरजा वहांसे करीब कोस भर दूर है। उनके सामने सौ धेनुके फासले पर स्वर्गद्वार है। जहां विरजादेवी विद्यमान हैं, उसके समीप गयासुरका नाभिकुण्ड तथा कुछ उत्तर ब्रह्माका शुभस्तम्भ है। देवी और देवस्थानके मध्य हंसरेखा, पद्मरेखा और चित्ररेखा नामक तीन स्रोत तथा गुप्तगङ्गा, मन्दाकिनी और वैतरणी नामक तीन तीर्थ विराजमान हैं। वैतरणी तट पर अष्टमातृकादेवी हैं, जहां मुक्तीश्वर महाशम्भु विराजित हैं, उनके पश्चिमभागमें अन्तर्वेदी है। इस अंतर्वेदीमें ब्रह्माके यज्ञके समय देवताओंकी सभा बैठी थी। वहांसे एक कोस पूरब उत्तरवाहिनी तीर्थमें सिद्ध-लिङ्ग अवस्थित हैं। अशोकाष्टमीमें यहां कुछ दिन तक यात्रा होती है। यह सिद्धलिङ्ग हरिहरमूर्त्ति है। कुरु-वंशीय प्रद्युम्नने इस तीर्थमें तपस्या की थी। विरजाके दक्षिण सोमतीर्थ है। यहां सोमेश्वर नामक प्रसिद्ध लिङ्ग विराजित है। उसके पूर्वभागमें त्रिकोण नामक प्रसिद्ध लिङ्ग तथा उससे और भी कुछ पूरबमें गोकर्णतीर्थ है। वराह और विरजाके मध्यभागमें अखण्डेश्वर अवस्थित हैं। वराहके पूर्वभागमें गुप्तगङ्गातीर्थमें गङ्गेश्वर हैं, उसी गङ्गेश्वरके समीप पातालगङ्गा और उसके उत्तर वारुणी तीर्थ है। विरजाके चारों ओर अष्टशंभु, द्वादशभैरव और द्वादश माधवमूर्त्ति स्थापित हैं। विरजाक्षेत्रका आयतन दो योजन विस्तृत और शकटकी आकृतिका है। उसके तीन कोनेमें बिल्वेश्वर, खिलाटेश्वर और वटेश्वरशंभु हैं। इस क्षेत्रके दूसरे स्थानमें अनन्तकोटिलिङ्ग विद्यमान हैं। जिसे अभी हरमुकुन्दपुर कहते हैं, वहां ब्रह्माका यज्ञस्थल था। इस तीर्थमें प्रायः १० हजार वेदपारग षट्कर्मनिरत विप्र वास करते हैं।

विरजातापनीमें याजपुरको शकटकी आकृतिका बत-लाया है। तीन कोनेमें जो तीन शिवमन्दिर हैं, वही एक तरह मानो सीमाबन्दी कर रहे हैं। जैसे, मंगुलीमें स्थानेश्वर, उत्तरवाहिनी तट पर सिद्धेश्वर और विरजा-देवीके मन्दिरके समीप अग्नीश्वर। मधुशुक्लाष्टमीमें सिद्धे-श्वरका मेला लगता है। नगरके भीतर आखण्डलेश्वरका मन्दिर है। कहते हैं, कि इन्द्र यहां तपस्या करके गौतम-शापजनित सहस्रयोनित्वसे मुक्त हुए थे। एक दूसरे मन्दिरमें हाटकेश्वर नामक प्रसिद्ध लिङ्ग विराजमान है।

विरजादेवीके मन्दिरसे आध मीलकी दूरी पर

मणिकर्णिका नामक घाट है, जहां महाविषुव-संक्रांतिमें यात्रा होती है।

यह स्थान पार्वतीका पवित्र विरजाक्षेत्र कह कर प्राचीन पुराणादिमें कीर्त्तित है। भुवनेश्वरका एकाम्रक्षेत्र शैवसंप्रदायके निकट जैसा पुण्यस्थान है तथा पुरुषोत्तमक्षेत्र जैसा वैष्णवोंके निकट मोक्षभूमि समझा जाता है, यह विरजाक्षेत्र भी वैसा ही परम पुण्यप्रद तीर्थ माना जाता है। शैव ब्राह्मण (पुरोहित) संप्रदायका यहां अधिष्ठान होनेके कारण स्थानीय माहात्म्य दूना बढ़ गया है। उनके कीर्त्तिस्वरूप आज भी यहां नाना शिवमन्दिर और प्रस्तरप्रतिमूर्त्ति देखी जाती है। अभी उनका अधिकांश प्रायः भग्नावस्थामें पड़ा है। मुसलमान आक्रमणकारियोंके बार बार आक्रमणसे वे सब तहस नहस तथा विलुप्त हो गये हैं।

पाठान लोग यहां अपना आधिपत्य फैला कर धीरे धीरे हिन्दूकीर्त्तिका लोप करने अग्रसर हुए। राजा ययातिदेव बड़े यत्न और अर्थव्यय करके जो समृद्धशाली महानगरी स्थापन कर गये थे,—शैव ब्राह्मणोंने देवदेवीकी प्रतिमूर्त्ति स्थापन कर जिस तीर्थकी शोभावृद्धि की थी, हिन्दूधर्मकी श्रीवृद्धि और मङ्गलाकांक्षी उदार-राजगण जिसकी रक्षामें हमेशा लगे रहते थे, दुर्वृत्त पठानोंके अत्याचारसे उनकी बुनियाद भी रहने न पाई। उस धर्मद्वेषी हैं मुसलमान-सम्प्रदायने हिन्दूकी लाखों देवप्रतिमाकी नाक, हाथ, पैर छेनोसे काट डाले थे। कितने देवमन्दिर तो मुसलमानोंके समाधिमन्दिरमें परिणत हुए थे। प्राचीन राजप्रासादने मुसल मान शासनकर्त्ताओंको अश्वशाला खोली गई थी। प्रधान प्रधान मन्दिरोंके माल मसालेसे मुसलमान उमरावोंके वासभवन बनाये गये थे।

उड़ीसाकी देवकी कीर्त्ति मुसलमानोंकी दृष्टि पर चढ़ गई थी। वे लोग इस हिन्दूतीर्थका लोप करनेकी इच्छासे बद्धपरिकर हो वहांकी कीर्त्तियोंको ध्वंस करनेके इच्छासे कई बार अग्रसर हुए थे। विख्यात हिन्दूविद्वेषी पठानसेनापति कालापहाड़का सहयोगी अफगानसेनापति अलीबखर अपनी वासभूमि मध्यएशियाका परित्याग कर भारतवर्ष आया। यहां वह इसलाम धर्मका प्रचार करनेकी इच्छासे हिन्दूकी बड़ी बड़ी देवमूर्त्तियोंको नष्ट करनेके लिये तय्यार हुआ। उसके बाद भी प्रायः तीन सदी तक मुसलमान-सम्प्रदाय हिन्दूकीर्त्तिका विलोप करता रहा था। असंख्य देवालय मसजिद बनाये गये थे। १६८१ ई०में नवाब आबू नाशिरने हिन्दू-मन्दिरके प्रस्तरादिको तोड़ फोड़ कर एक सुन्दर मसजिद बनवाई थी। बचा खुचा मन्दिर भी अंगरेजोंके पबलिक वर्कसके अज्ञ कर्मचारियों द्वारा मलियामेट कर दिया गया। उन्होंने याजपुरके राजप्रासाद और देवमन्दिरके बाकी प्रस्तरादि ट्रांकरोडके पुल बनानेमें लगे थे।

इस प्रकार वैदेशिकका कठोर अत्याचार रहते हुए भी उड़ीसाके हिन्दूराजवंशकी कीर्त्ति बिलकुल विलुप्त न हुई। उनकी शिल्पसमृद्धिके अत्युत्कृष्ट निदर्शन आज भी याजपुरमें जगह जगह देखी जाती है। वहांके जङ्गलमें जो एक सुगठित चण्डेश्वरस्तम्भ मस्तक उठाये खड़ा है, उसे देखनेसे मालूम होता है, कि उस समय मुसलमान-सेनादलका हिन्दूविद्वेषभाव शिथिल हो गया था। अफगानोंने उस स्तम्भको लोहेकी जंजोरमें बांध कर हाथोसे खिंचवानेकी चेष्टा की, किन्तु सौभाग्यक्रमसे वह टससे मस नहीं हुआ। १०वीं शताब्दीमें प्रतिष्ठित हिन्दूको यह गौरवकीर्त्ति १६वीं सदीके मुसलमान-विजेता द्वारा नष्ट भ्रष्ट नहीं हुई। उन्होंने केवल इसके ऊपर जो गरुड़-मूर्त्ति थी, उसे तोड़ डाली थी।

इस समय इसलाम धर्मावलम्बियोंका हिन्दूविद्वेष आपे आप घटता आ रहा था। याजपुरका सर्वप्रधान स्मृतिसमूह उनके कठोर हाथोंसे छुटकारा पा कर अचल अटलभावमें खड़ा रहा।

१८६६ ई०में भी जो तीन देवीकी मूर्त्तियाँ वैतरणीके किनारे स्थापित थीं, वे अभी महकूमेकी कचहरीके सामने ला कर रखी गई हैं।

वे सभी मुसलमानके अत्याचार तथा उनके स्पर्शदोषसे पतित हो कर नदीमें फेंक दी गई थीं। एक वाराही मूर्त्ति है जिसकी गोदमें एक बच्चा है, समूचे शरीरमें आभरण है और वह एक नीले पत्थर पर खोदित है। हाथमें कङ्कण हैं, गलेमें हार है, कानोंमें कर्णफूल है, पैरमें कड़ा है तथा बाएं हाथमें अंगूठी आदि सभी प्रकारके

भूषण हैं। दूसरो मूर्त्ति चामुण्डाकी है जो शव पर चढ़ी है और जिसके एक हाथमें नरकपालमें अमृत और दूसरेमें खड्ग शोभता है। नरमुण्ड उसके गलेमें लटक रहा है। तीनों मूर्त्तियोंकी ऊंचाई ८ फुट और मोटाई ४ फुट होगो। इन सब प्रतिमूर्त्तियोंका पत्थर गाढ़ा नीला और मजबूत है। इन्द्राणी हाथीकी पीठ पर बैठी हैं, उनके चार हाथ हैं तथा सब प्रकारके अलङ्कार हैं।

वाराही मूर्त्ति ८ फुट ऊंची है, पुत्रको गोदमें लिये महिष पर बैठी है। सर्वसंहारकारिणी सर्पाभरण-भूषिता चामुण्डा वा कालीकी कृशोदरीमूर्त्ति शवके ऊपर बैठी है, शिव पद्मके ऊपर सोये हैं। ऐसो कङ्काल-सार विलोलितचर्मा देवीकी मूर्त्ति भारतमें और कहीं भी देखनेमें नहीं आती। इसकी गढन देखनेसे मालूम होता है, कि उस समय इस देशके भास्कर शिल्पविद्या-के साथ साथ शारीरविद्यासे भी अच्छी तरह जान-कार थे।

इसके बाद यहां और भी एक मूर्त्ति लाई गई है। वह चौथी मूर्त्ति शान्तमाधवकी है। इसे तोड़ फोड़ कर तीन खण्ड किया गया था, पर केवल दो ही खण्ड आज तक मिले हैं। इस मूर्त्तिके दो पैर नहीं हैं। पहले यह याज-पुरसे १॥ मील पश्चिम पड़ी हुई थी। पीछे वहांसे उठा कर लाई गई। ये चारों मूर्त्ति देखने योग्य हैं।

सूखी नदीकी एक बगलमें एक प्रस्तरफलक है जिस पर इन्द्राणी, वाराही, वैष्णवी, कुमारी, यममातृका, काली और रुद्राणी इन सप्तमातृकाओंका चित्र खोदित है।

मन्दिरमें जो सब भास्करखोदित प्रस्तरफलक हैं, सभी तरह तरहके चित्रोंसे चित्रित हैं। उन्हें देखनेसे मालूम होता है, कि विभिन्न समयमें यहां विभिन्न धर्म-की प्रतिष्ठा हुई थी। वैतरणी तीरस्थ दशाश्वमेधघाटसे सीढ़ी द्वारा वराह-मन्दिर जाने पर वैदिकयुगके अश्वमेध-यज्ञका चित्र अङ्कित देखा जाता है।

ब्रह्माके यज्ञस्थलमें आये हुए देवताओंके मध्य गङ्गा-देवीकी भी मूर्त्ति खोदित है। स्थानीय लोगोंका विश्वास है, कि यज्ञके समय गङ्गामाताके शुभागमनसे गङ्गाका पवित्र जल भूगर्भमें सञ्चालित हो वैतरणीके जलमें मिल गया है। इस कारण वैतरणीमें स्नान करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं। इसके बाद शैवराजाओंके प्रादुर्भावसे यहां शाक्त और शैवकीर्त्तिकी प्रधानता सूचित हुई। शैवराजाओंके वैभवसे यह स्थान नाना अट्टालिकायें और देवमन्दिरोंसे सुशोभित हो गया था।

पीठमालाके मतसे,—दक्षयज्ञमें सतीने जब देहत्याग किया, तब देवादिदेव महादेव उस देहको कंधे पर लिये पृथिवी पर परिभ्रमण करने लगे। देवताओंने शिवजी-की वह अवस्था देख कर विष्णुकी शरण ली। विष्णुके सुदर्शनचक्रसे सतीकी देह ५२ खण्डोंमें विभक्त हो भारतवर्षके नाना स्थानों पर जा गिरी। वे सब स्थान देवीके पीठस्थान कहलाते हैं। श्रीक्षेत्रमें जहां सतीका अङ्ग गिरा था, वहां विमलादेवी और याजपुरमें विरजा-देवी विराजित हुईं। तभीसे देवीका यह पवित्र स्थान उनके विरजा नामानुसार ही विरजाक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध हुआ।

प्रायः १००२ शकाब्दमें सोमराजवंशका अधःपतन हुआ। पीछे इस शाक्तपुरमें वैष्णवोंकी तूती बोलने लगी। इस वैष्णव गङ्गवंशने कई सदी तक यहां शासन किया था। वैष्णव प्रधानताके समय यहां असंख्य विष्णुमूर्त्ति और विष्णुदास गरुड़की मूर्त्ति आदि खोदी गई थी। ऊपरमें गरुड़स्तम्भकी गरुड़मूर्त्तिका विषय लिखा जा चुका है। यहां तक, कि सप्तमातृका चित्रस्तवकके समीप जगन्नाथदेवका मन्दिर भी स्थापित हुआ था। कहनेका तात्पर्य यह, कि वैष्णवधर्मके सभी विषयोंका चित्र संग्रह करनेमें वैष्णवराजने कोई भी कसर उठा न रखी थी।

निकटवर्त्ती एक उपवनके मध्य सूर्योपासनाका भी निदर्शन देखनेमें आता है। यहां कितने सूर्योपासक पवित्र अग्निके रक्षाकार्यमें हमेशा लगे रहते हैं। मन्दिर के प्राङ्गणमें जगह जगह सात घोड़ों पर बैठे सूर्यदेवकी मूर्त्ति भी अङ्कित नजर आती है। कोणार्कका विख्यात सूर्यमन्दिर इस स्वतन्त्र उपासक-सम्प्रदायकी विगत कीर्त्तिका निदर्शन है। वह अभी भग्नावस्थामें पड़ा है।

कोणार्क देखो।

जिस समय सूर्योपासना उड़ीसामें प्रबल हो उठा, ठीक उसी समय गङ्गवंशीय राजाओंका अभ्युदय हुआ।

ये गङ्गवंशीय राजे धीरे धीरे वैष्णवधर्मका ही प्रचार करनेमें बद्धपरिकर हुए। गङ्गवंश देखो।

सूर्यवंशीय विख्यात राजा प्रतापरुद्रदेवके शासनकालमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने याजपुर पदार्पण किया। श्रीचैतन्यके आगमनसे यहां वैष्णवधर्मप्रचारकी जड़ और भी मजबूत हो गई। प्रतापरुद्रने श्रीचैतन्यदेवका शिष्यत्व स्वीकार किया था। ये ही याजपुरका विख्यात वराहमन्दिर स्थापन कर गये हैं।

प्रतापरुद्र और चैतन्य देखो।

वराहमन्दिर प्रतापरुद्रदेव द्वारा (१५०४-१५३२ ई०में) बनाया गया। मन्दिरको गठन उड़ीसा प्रदेशकी अन्यान्य मन्दिर-सी है। गर्भगृहमें वराहदेवकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। उसके सामने जगन्मोहन-मण्डप तथा उसके सम्मुख पत्थरका वना चबूतरा है। प्रवाद है, कि जो इस चबूतरे पर बैठ कर बराहदेवके सामने गोदान करता, वह गो-पुच्छ पकड़ कर यमद्वारस्थ तथा वैतरणी आसानीसे पार कर जाता है। इस काममें गोके मूल्यस्वरूप कमसे कम पांच रुपये भी देने पड़ते हैं। ब्राह्मणवरणके वस्त्रके लिये ॥) आना, गो-पूजाके वस्त्र और नैवेद्यके लिये १) रु०, गोदानकी दक्षिणाके लिये १) रु० और गोदानकी साक्षीकी दक्षिणाके लिये ।) आना देना आवश्यक है। वहांके पण्डा लोग ही ब्राह्मणत्वमें वरण होते हैं। पण्डाका काम है, वैतरणीकृत्य गोदान मूल्यादि लेना, दशाश्वमेधघाट पर स्नानदक्षिणा लेना और नाभिगयामें पिण्डदानकी दक्षिणा लेना। इस मन्दिरके प्राङ्गणमें जो छोटे छोटे मन्दिर हैं उनमें कान्तिदेवी, काशीविश्वनाथ, वैकुण्ठ आदि अनेक प्रकारकी देवमूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं। प्राङ्गणके एक किनारे एक वटवृक्ष है जो धर्मवट कहलाता है। उक्त मन्दिरसे वैतरणीमें आनेके लिये पत्थरकी सीढ़ी बनी है। वहां नवग्रहमूर्त्ति भी अङ्कित देखी जाती है। इस घाटके सामने वैतरणीमें चर पड़ गया है वर्षाऋतु छोड़ कर और कभी भी उसमें जल नहीं रहता। वैतरणीमें बहुत दूर जा कर स्नान करना पड़ता है।

वराहदेवके सामने वैतरणीके दूसरे किनारे एक प्रशस्त घरमें अष्टमातृकाकी मूर्त्ति विराजित है। अष्टमातृका-मन्दिरके पश्चाद्भागमें जगन्नाथदेवका मन्दिर है। मन्दिरका प्राङ्गण २५० फुट लंबा और १५० फुट चौड़ा होगा। प्राङ्गणके चारों ओर पत्थरकी दीवार खड़ी है। वराह और जगन्नाथदेवके मध्यवर्त्ती शुष्क वैतरणीगर्भमें शतभिषानक्षत्रयुक्त चैत्र कृष्णत्रयोदशीमें वारुणीयोग लगता है, उस उपलक्षमें यात्रा आरम्भ होती है। वह यात्रा अमावस्या तक रहती है। उस समय १०।१२ हजार यात्री इकट्ठे होते हैं। वैतरणी-स्नान तथा वराह-अष्टमातृका और जगन्नाथदेवके दर्शन तथा पूजा होती है। शनिवारको वारुणी होनेसे 'महावरुणी' योग होता है।

१६वीं सदीमें यहां हिन्दू-मुसलमानोंके बीच विवाद हो गया था। उस विवादके फलसे यहांकी प्राचीन कीर्त्तियां तहस नहस हो गईं। मुसलमानोंके अत्याचार और युद्धविग्रहसे उत्साहितप्राय होने पर भी यहांके ७ प्राचीन ब्राह्मणवंशके कुलग्रन्थसे मालूम होता है, कि उनके पूर्वपुरुषगण छठी सदीमें यहां आ कर बस गये। उस पुरोहितवंशने चन्द्रवंशीय प्रथमराजसे बहुत ब्रह्मोत्तर पाया था। उस सम्पत्तिका आज भी उनके वंशधरगण भोग करते हैं।

वारुणी-स्नानके उपलक्षमें यहां जो मेला लगता है उसमें हजारों यात्री समागम होते हैं। वैतरणी-स्नानके बाद यहां श्राद्ध करनेकी विधि है। श्राद्ध करनेवाले जिससे उनके पितृपुरुषगण वैतरणी पार कर स्वर्ग जायें उसी कामनासे गोदान करते हैं।

पूर्वोक्त प्रसङ्गानुसार बोधगयासे याजपुर तक गयासुरका शरीर फैला था, अतः बौद्धधर्मकी यदि वहां तक विस्तार माना जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। क्योंकि जब याजपुरके अति निकटवर्त्ती दन्तपुरमें बौद्धधर्मकी प्रधानता प्रतिष्ठित हुई थी, तब याजपुर तक उसकी विस्तृति न हुई होगी, यह कहां तक सम्भव है। बुद्धके प्रधान भक्त तपुषभल्लिक उत्कलवासी थे। आज भी बौद्ध-कीर्त्तिके कितने निदर्शन याजपुरमें विद्यमान है। बोधगयासे ले कर याजपुर तक बौद्धप्रभावका ह्रास हो कर जब धीरे धीरे हिन्दूधर्मकी प्रधानता स्थापित हुई, तब याजपुर भी हिन्दूकी निगाह पर बोधगयाकी तरह

एक हिन्दूतीर्थ हो गया। उस समयसे लगायत १६वीं सदी तक यह नगर उड़ीसाकी दूसरी राजधानीरूपमें गिना जाने लगा।

हिन्दुओंने बौद्धोंको भगा कर जिस प्रकार उनके पवित्र देवस्थानोंमें हिन्दूका देवमन्दिर स्थापित किया था। उधर मुसलमानोंने भी उसी प्रकार हिन्दूके मन्दिरादिमें मसजिद आदिको प्रतिष्ठा की। १५५८ ई०में इतिहास-प्रसिद्ध कालापहाड़ने याजपुर पर आक्रमण किया।

मुसलमान-सेनापति कालापहाड़ने राजा मुकुन्ददेव-को समरमें मार कर याजपुरकी हिन्दू देवदेवीको नष्ट करते समय उन स्तम्भोंको नष्ट करनेके लिये बहुत कोशिश की थी। किन्तु जब उसमें कामयाब न हो सका, तब उसके ऊपरकी गरुड़मूर्त्तिको ही नष्ट कर डाला। पुराविदोंने स्थिर किया है, कि १०वीं सदीमें सोम-वंशीय राजाओंने इसे विजयस्तम्भरूपमें स्थापित किया था। ऐसा बड़ा और भारी पत्थर किस प्रकार सैकड़ों मील दूरसे यहां लाया गया था, यह हमारी समझमें नहीं आता।

याजपुरसे २ कोस उत्तर-पूर्व गहर-तिकरी नामक स्थान है जहां हिन्दू-मुसलमानोंके बीच युद्ध हुआ था। इस युद्धमें उड़ीसावासीने केवल अपनी स्वाधीनता ही नहीं खो दी थी, वरन् उसके साथ साथ हिन्दूके हृदयरत्न देवमन्दिर और देवमूर्त्तियां अपहृत, ध्वस्त और चूर चूर भी हुई थी। पूर्वकथित स्तम्भोंको छोड़ कर याजपुरकी पूर्वसमृद्धि और पूर्वकीर्त्तिका और कोई चिह्न नहीं है।

वैतरणी तीरवर्त्ती दशाश्वमेधघाट वहांकी प्राची-नताका एक निदर्शन है। यहांसे नगरके दक्षिण जो रास्ता गया है, वही सीधे विरजादेवीके मन्दिरमें पहुंचा है। उस मन्दिरके प्राङ्गणमें नाभिगयाके निदर्शनस्वरूप एक कूप है।

दशाश्वमेधघाटसे ढाई मीलकी दूरी पर विरजादेवी-का मन्दिर है, उसके पश्चाद्भागमें १०० फुट लम्बी, ७० फुट चौड़ी चारों ओर पत्थरकी सीढ़ीसे सुशोभित एक पुरानी पुष्करिणी है। यह पुष्करिणी ब्रह्मकुण्ड वा विरजाकुण्ड नामसे प्रसिद्ध है। विरजादेवीका मन्दिर-प्राङ्गण लम्बाई और चौड़ाईमें ४०० सौ फुट है। मन्दिर सोमवंशीय राजाओंके समय बनाया गया है। भीतर-में अष्टभुजा अठारह उंगली ऊंची भीषण आकृतिकी विरजादेवी-मूर्त्ति विराजमान है। सम्मुखस्थ जगन्मोहन मण्डपमें एक होमकुण्ड है। उसके बाहरमें पत्थरके चबूतरेमें गड़ा हुआ एक यूपकाष्ठ है। उस यूपकाष्ठमें प्रति दिन पशुबलि होती है। याजपुरनिवासी ब्राह्मण पञ्चदेवो-पासक हैं। अतः पशुबलिमें उन्हें कोई बाधा नहीं है। महाष्टमीके दिन देवीकी यात्रा होती है। विरजादेवी-मन्दिरके उत्तरी भागमें ५ फुट व्यासका पक्के का एक कूप है। वही कूप नाभिगया कहलाता है। वहां पिता-माता आदिके उद्देशसे पिण्डदान कर उसे नाभिकुण्ड-में फेंकना होता है। विरजादेवीके मन्दिरके पास ही दानेदार पत्थरके चबूतरेके ऊपर एक क्लोराइट पत्थर-का ध्वजस्तम्भ दण्डायमान है। कोई कोई उसे ब्रह्माके अश्वमेधयज्ञका और कोई सोमराजवंशका कीर्त्तिस्तम्भ बतलाते हैं। वह स्तम्भ प्रायः ३७ फुट ऊंचा है। स्तम्भ-के ऊपर पहले एक गरुड़मूर्त्ति रहती थी।

याजपुरके अलीबुखारीका समाधिमन्दिर देखने लायक है। एक हिन्दूमन्दिरके नींव पर मुसलमानोंका यह समाधिस्तम्भ खड़ा किया गया है। इस स्थानकी गठन देखनेसे वह किसी मन्दिरका मुक्ति-मण्डप-सा प्रतीत होता है। किन्तु वह मन्दिर किस देवताके उद्देशसे बनाया गया था उसका कोई पता नहीं चलता।

आल-बुखारीके समाधिस्तम्भमें वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डाकी मूर्त्ति खोदित थी। ऐतिहासिक ष्टार्लिं उस प्रस्तरखण्डको वहांसे उठा लाये थे। मुसलमानों-ने उस पत्थरको तोड़ कर वैतरिणी जलमें फेंक दिया था। उस पत्थरके आधेमें अन्य पञ्च मातृकाकी प्रति-कृति खोदित थी, ऐसी बहुतोंकी धारणा है।

दशाश्वमेधघाटके दूसरे किनारे पुरीके जगन्नाथदेव-मन्दिरके अनुकरण पर एक छोटा मन्दिर अवस्थित है। एक सदी पहले किसी वस्त्रव्यवसायीने उसे बनवाया था। नगरसे १ मीलके अन्दर गौराङ्गदेवरी नामक गोविन्दजीका एक मन्दिर है।

याजपुरसे १ मीलकी दूरी पर चण्डेश्वर नामका एक

ग्राम है, जहां चण्डेश्वरस्तम्भ खड़ा है। वह चारों ओर अभी जङ्गलसे ढका है, यात्रिदल उस स्थानमें जाते हैं, इस कारण उसके बगल ही एक छोटी कुटी बना दी गई है। स्थानीय लोग उसे सभास्तम्भ कहते हैं। वह सभास्तम्भ ३६ फुट १० इञ्च लम्बा है।

इस स्तम्भके ऊपरका शिल्पकार्य बौद्धसम्राट् अशोक द्वारा प्रतिष्ठित लाटके जैसा है। सम्भवतः बौद्धयुगमें वह बनाया गया होगा। उसके ऊपर जो गरुड़मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई थी वह शायद परवर्त्तिकालमें वैष्णवराजवंशके द्वारा ही बनाई गई होगी। वह गरुड़मूर्त्ति अभी स्तम्भसे प्रायः १॥ मील दूर एक ठाकुरवाड़ीमें रखी हुई है। स्तम्भके मूलदेशमें छिद्र देख कर बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि पठानोंने रस्सी बांध कर खींचनेके लिये उस स्तम्भमें छेद किया था।

याजपुरसे १॥ माल एक मैदानमें पत्थरकी गड़ी हुई प्रतिमूर्त्ति पाई गई है। अभी वह तीन खण्डोंमें विभक्त हो गई है। चूड़ासे ले कर नाभि पर्यन्त ६ फुट १॥ इञ्च तथा उरुसन्धिसे पादसन्धि तक ७ फुट ११ इञ्च लम्बा है। स्थानीय लोग उसे शान्तमाधव (कृष्णकी एक मूर्त्ति) कहते हैं। किन्तु उस मूर्त्तिके बांये हाथमें पद्म और चूड़ा पर बुद्धका मूर्त्ति अङ्कित रहनेसे बहुतेरे उसे पद्मपाणि बोधिसत्त्वकी मूर्त्ति बतलाते हैं। अभी वह महकूमेकी कचहरीमें रखी हुई है।

याजपुर निकटस्थ नरपड़ा ग्राममें प्राचीन कीर्त्तिके निदर्शनस्वरूप एक समाधिस्तूप (Tumulus) रखा हुआ है। स्थानीय लोग उसे राजा ययातिदेवके प्रासादका अंशविशेष कहते हैं। यहांके तितुलामाल ग्रामका ११ गुम्बजवाला पुल बहुत पुराना है। उसकी गठन पुरीके आठारनाला-पुलकी जैसी है।

प्राचीन तीर्थप्रसङ्ग।

'याजपुर एक बहुत प्राचीन तीर्थ है। महाभारत पढ़नेसे मालूम होगा, कि पञ्चपाण्डव यहां तीर्थ करने आये थे। वनपर्व (११४ अ०)-में लिखा है—

'ये सब देश कलिङ्ग कहलाते हैं। इस प्रदेशमें वैतरणी नदी बहती है। यहीं पर धर्मने देवताओंके शरणागत हो यज्ञ किया था। पहाड़ोंसे सुशोभित सैकड़ों ऋषिसे युक्त और द्विजोंसे वेष्टित यह यज्ञभूमि वैतरणी नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। यह स्वर्गगामी व्यक्तिके लिये देवयान-पथस्वरूप है। पूर्वकालमें ऋषि और अन्यान्य महात्माओंने इस स्थान पर यज्ञ किया था। इसी स्थान पर रुद्रने देवयज्ञमें पशु ग्रहण किया और कहा था, कि यह भाग मेरा है। रुद्रदेवके पशुहरण करने पर देवताओंने उनसे कहा, 'आप परस्वद्रोह न करें, समस्त यज्ञीय भाग लेनेकी इच्छा न रखें।' पीछे उन्होंने कल्याणरूप वाक्यमें उनका स्तव और इष्टि द्वारा सन्तुष्ट कर सम्मान किया। इसके बाद वे पशुत्याग कर देवयान पर चढ़ चले गये। इस सम्बन्धमें रुद्रकी जो गाथा है उससे मालूम होता है, कि देवताओंने रुद्रके भयसे उन्हें सभी भागोंसे उत्कृष्ट सद्योजात भाग देनेके लिये सङ्कल्प किया।' जो मनुष्य इस स्थानमें इस गाथाका गान कर स्नान करते हैं उन्हें देवयान पथ दिखाई देता है। इसके बाद महाभाग पाण्डवोंने द्रौपदीके साथ वैतरणीमें अवतीर्ण हो पितृलोकका तर्पण किया।

(महाभारत वन० ११४ अ० ४-१३)

महाभारतके उक्त विवरणसे मालूम होता है, कि धर्मने यहां पर यज्ञ किया था, इसी कारण परवर्त्तीकालमें यह स्थान यज्ञपुर और उसीके अपभ्रंशसे याजपुर कहलाने लगा है।

ब्रह्मपुराणमें स्वयं ब्रह्माने कहा है, "विरजादेशमें ब्रह्माणी द्वारा प्रतिष्ठित विरजामाता वर्त्तमान है। उनके दर्शन करनेसे सात कुल पवित्र होते हैं। जो भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम और पूजन करते हैं, वे वंशसहित मेरे लोकमें आते हैं। इस विरजादेशमें उक्त देवीमूर्त्तिके अलावा और भी अनेक भक्तवत्सला सर्वपापनाशिनी वरदायिनी देवीमूर्त्ति तथा सर्वपापहरा वैतरणीनदी विराजित हैं। इस वैतरणीमें स्नान कर लोग सभी पापोंसे मुक्त होते हैं। फिर यहां स्वयं विष्णुके नाभिपद्म पर जो स्वयम्भूमूर्त्ति विराजित हैं उनके दर्शन कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। कापिल, गोग्रह, सोम, अलाबू, मृत्युञ्जय, क्रोड़तीर्थ, वासुक, सिद्धेश्वर और विरज, इन सब तीर्थोंमें जा कर यदि संयतेन्द्रिय हो विधिवत् स्नान और वहांके देवदर्शन, प्रणाम और

विधानानुसार पूजन किया जाय, तो वह सब पापोंसे विमुक्त हो दिव्यरथ पर आरोहण कर गन्धर्वोंके साथ नाच गान करते हुए ब्रह्मलोकको जाता है। इस विरज-क्षेत्रमें जो व्यक्ति पिण्डदान करता उसके पितर हमेशा तृप्त रहते हैं। इसलोकमें जिसका देहान्त होता है, वह निश्चय ही मोक्ष पाता है।'

(ब्रह्मपु० ४२ अ० १-१० श्लोक)

कपिलसंहितामें इस विरजाक्षेत्रका परिचय इस प्रकार दिया गया है—

'विप्रगण! विरजाख्य क्षेत्रमें विरजःप्रद विरजादेवीके दर्शन करनेसे रजोगुणका क्षालन होता है। इस क्षेत्रकी भक्तिमुक्तिप्रदायिनी विरजादेवी साधकोंके हितके लिये ही उत्कलमें प्रतिष्ठित हैं। दश हजार वर्ष काशीमें पूजा करनेसे जो फल होता है, इन विरजाके दर्शन करनेसे मानव वही फल पाते हैं। इस क्षेत्रमें मुक्तिदायक वराहरूपी भगवान् अवस्थित है। उनके दर्शन करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। यहां आखण्डल नामक जगद्गुरु पार्वतीश हैं जिनका दर्शन करनेसे यमदण्डका भय नहीं रहता। क्रोड़तीर्थ और आखण्डलके मध्य देवताओंका दुर्लभ स्थान है। यहां जब कीटादि पर्यन्त मुक्ति पाते हैं, तो मानवकी बात ही क्या? यहां मुक्तिदायक पापनाशन मुक्तेश्वरलिङ्ग विद्यमान है। इस लिङ्गके दर्शनमात्रसे पुराकालमें विप्रोंने मुक्तिलाभ किया था। विरजादेवीके ईशानकोणमें पितरोंके मुक्तिप्रद नाभिगया नामक पुण्यधाम है। यहां पिण्डदान करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं तथा वह पितरोंको नरकसे उद्धार कर उनके साथ विष्णुपदमें लीन होते हैं। यहां मुक्तिप्रदायिनी वैतरणीदेवी विद्यमान हैं जिन्हें गङ्गादेवी कहनेमें जरा भी अत्युक्ति नहीं। जो वैतरणीमें स्नान कर वराहरूपी हरिका दर्शन करता वह अपने करोड़पुरुषोंके साथ विष्णुपुरमें जाता है। यहां भवपाशविमोचन त्रिलोचन नामक शिवलिङ्ग है। उनका दर्शन करनेसे भी शिवत्व लाभ होता है। इस तीर्थमें कपिल नामक श्रेष्ठ तीर्थ है। यहां कृष्ण-चतुर्दशीमें स्नान करनेसे उनके प्रति शिवजी प्रसन्न होते हैं। इसके वाद मुनीन्द्रसेवित गोगृहतीर्थ है, यहां स्नान करनेसे गोलोकधामकी प्राप्ति होती है। चन्द्रप्रतिष्ठित सोमतीर्थ भी यहां विद्यमान है। यहां स्नान करनेसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है। इस विरजाक्षेत्रमें अल्पाम्बुतीर्थ है। यहांका थोड़ा भी पुण्यमेरुके समान है, इसमें संदेह नहीं। देवताओंसे वन्दित मृत्युञ्जयतीर्थ है। यहां मार्कण्डेय ऋषि स्नान कर अमर हो गये हैं। फिर यहां परम पवित्र क्रोड़तीर्थ है। यहां क्रोड़रूपी जगन्नाथ तीर्थरूपमें अवस्थान करते हैं। यहांके विष्णुपदप्रदायक श्रीवासुदेवतीर्थमें स्नान करनेसे भी दिव्यलोककी गति होती है। सिद्धोंने जिसका आश्रय कर सिद्धत्व लाभ किया है, वह सिद्धेश्वर नामक सिद्धिप्रद तीर्थ यहां अवस्थित है। इसके अलावा यहां और भी कितने तीर्थ तथा देवदेवियां हैं। चैत्र, वैशाख और आश्विन मासमें जो इस विरजाक्षेत्रका दर्शन करने आते हैं उनको निश्चय सिद्धि होती है।'

इतिहास।

महाभारत और पुराणादिमें याजपुरका क्षेत्रमाहात्म्य कहने पर भी इसका प्राचीन इतिहास नितान्त अस्पष्ट है। बुद्धजन्मके पहले यह स्थान किस वंशके अधिकारमें था, वह मालूम नहीं। उस समय याजपुर उत्तर-कलिङ्ग, उत्कलिङ्ग वा उत्कल कहलाता था तथा दन्तपुरमें उत्तर-कलिङ्गकी राजधानी थी। मौर्य चन्द्रगुप्तके समय यह स्थान मगध साम्राज्यभुक्त हुआ था। यहां मौर्यराजाओंके अधीन कोई सामन्त वा कोई राजपुत्र आ कर शासन-कार्य करते थे। खण्डगिरिस्थ हाथिगुम्फाकी १६५ मौर्याब्दमें उत्कीर्ण सुवृहद् शिलालिपिसे मालूम होता है, कि ईसा जन्मसे प्रायः दो सौ वर्ष पहले चेतवंशीय क्षेमराज और पीछे उनके लड़के वुधराज कलिङ्गका शासन करते थे। वुधराजके बाद उनके लड़के प्रवलपराक्रान्त खारवेल या भिखुराज हुए। जैनधर्मावलम्बी होने पर भी वे सभी सम्प्रदायका एक-सा सम्मान करते थे। अपने राज्याधिकारके २रे वर्षमें उन्होंने अन्ध्रराज शातकर्णि और कुसुम्ब क्षत्रियोंको परास्त किया था। ८वें वर्षमें वे राजगृहपतिके विरुद्ध खड़े हुए। राजगृहपति मथुरा भाग चले। १२वें वर्षमें गङ्गाके किनारे उपस्थित हो उन्होंने मगधपतिको पराजय कर अपनी

अधीनता स्वीकार कराई थी। और तो क्या, इस जैन-राजके समय कलिङ्ग उन्नतिको चरम सीमा तक पहुंच गया था तथा मगधसे शाकद्वीपी सौर ब्राह्मण उत्कलमें जा कर रहने लगे थे। समुद्रके किनारे उनके यत्नसे कोणार्क नामक मित्रमूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई। तभीसे यहां-के ब्राह्मण 'कोणार्क' शाखा कहलाने लगे। खण्डगिरि आदि नाना स्थानोंमें जैन और सौर प्रभावका निदर्शन दिखाई देता है।

४थी शताब्दीमें उत्कल मगधके गुप्तसम्राटोंके अधिकारभुक्त हुआ था; उनके अधीन सामन्तराजे उत्कलका शासन करते थे। इस समय तमाम वैष्णवों-की तूती बोलने लगी। महाभारतोक्त समुद्रगर्भसंलग्न महावेदीस्थ विराट्पुरुषरूपी (दारुब्रह्म) विष्णुमूर्त्तिका इसी समय उद्धार हुआ। ६ठी सदी तक यह स्थान गुप्तसाम्राज्यभुक्त रहा। इस समय बहुत-सी देवदेवी मूर्त्तियां भी प्रतिष्ठित हुई थीं। इस समय मध्य प्रदेशमें शवर लोग प्रबल हो उठे थे। ६ठीं सदीमें गुप्तसाम्राज्य जब विमुक्त हुआ, तब शवरोंने उत्कलके नाना स्थानों-को अधिकार कर लिया। पहले जो जाति फलमूल खा कर पर्वत और वनमें रहती थी, धीरे धीरे हिन्दू-संस्रवमें आ कर सभ्य हो उसने उत्कल और मध्यप्रदेश-के कितने स्थानों पर अधिकार जमा लिया था। जगन्नाथ देखो। शिरपुरसे आविष्कृत शिलालिपिमें उदयन और उनके लड़के इन्द्रबलको शवरवंशीय बतलाया गया है। इन्द्रबलके पुत्र नन्नदेव थे। नन्नदेवने चन्द्रगुप्त और महाशिवगुप्त (तीवरराज)-को गोद लिया था। ये दत्तक-पुत्र शायद उच्चजातिके थे। क्योंकि, परवर्त्ती शिलालिपि और ताम्रशासनमें इस वंशके राजगण 'पाण्डुवंशीय' वा 'सोमवंशीय' कह कर परिचित हैं। गुप्तसम्राटोंको इस वंशके सभी राजे अपने नामके साथ 'गुप्त' उपाधियुक्त एक स्वतन्त्र नामका व्यवहार करते थे। इस वंशके दो राजाओंकी 'केशरी' उपाधि थी जिससे मादलापञ्जी और उड़ीसाके इतिहासमें इस वंशके राजगण 'केशरी' नामसे वर्णित हुए हैं। किन्तु मादलापञ्जीके अनुसार उड़ीसाके इतिहासमें केशरीवंशकी जैसी वंशतालिका और राज्य-काल दिया गया है वह अधिकांश ही अनैतिहासिक और काल्पनिक है। सोमवंश शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

सोमवंशीय राजाओंकी शरभपुर (वर्त्तमान शंबलपुर) में राजधानी थी। इस वंशके 'महाभवगुप्त' उपाधि-धारी महाराजाधिराज त्रिकलिङ्गाधिपति जनमेजय देवने कटकमें आ कर राजधानी बसाई। जनमेजयके पुत्र 'महाशिवगुप्त' उपाधिधारी ययातिराज (१०वीं सदीमें) पहले विनीतपुरमें और पीछे अपने नामानुसार प्रतिष्ठित ययातिनगरमें राज्य करते थे। भुवनेश्वरका प्रसिद्ध लिङ्गराजके मन्दिरका मूलगृह इन्हींका बनाया हुआ है। उनके पुत्र 'महाभवगुप्त' उपाधिधारी भीमरथदेव भी इसी ययातिनगरमें राज्य करते थे। ताम्रशासनसे उसका पता चलता है। इस ययातिनगरमें बहुत दिनों तक उत्कल-राज्यकी राजधानी रही। इस ययातिनगरसे ही समस्त उत्कल प्राचीन मुसलमान इतिहासोंमें 'जजनगर' या 'जाजनगर' नामसे प्रसिद्ध है। वर्त्तमान याजपुरको ही बहुतोंने 'ययातिनगर' बतलाया है। याजपुर बहुत पहलेसे एक प्रधान हिन्दूतीर्थ समझे जाने पर भी ययातिराजके समयसे ही उत्कलकी राजधानी कह कर प्रसिद्ध हुआ। सोमवंशके अन्तिम राजा उद्योतकेशरी थे। इनके बाद गङ्गवंशीय चोड़गङ्गने उत्कलराज्य पर आक्रमण किया। चोड़गङ्गके पितृपुरुषगण गञ्जामके अन्तर्गत कलिङ्गनगरमें राज्य करते थे। गञ्जाम और गोदावरीके उत्तरवर्त्ती नाना स्थानोंसे चोड़गङ्गके पूर्वपुरुषोंकी बहुत-सी शिला लिपियाँ और ताम्रशासन आविष्कृत हुए हैं।*

गङ्गेश्वर चोड़गङ्ग ९९९ शक (१०७६-७७)-में राज्या-भिषिक्त हुए। उसके बाद ही उन्होंने उत्कलविजयकी चढ़ाई कर दी। उत्तरमें गङ्गासे ले कर दक्षिणमें गोदा-वरी तक विस्तीर्ण जनपद उनके अधिकारभुक्त हुआ था। चोड़गङ्गने मन्दार (आईन-इ-अकबरीका सरकार

---

* गाङ्गेय शब्दमें विस्तृत विवरण लिखा है। गाङ्गेय शब्द लिखे जानेके बाद गङ्गवंशीय राजाओंकी बहुत-सी शिलालिपियां और ताम्रशासन आविष्कृत हुए जिससे अभी गङ्गवंशियोंका इतिहास बहुत कुछ परिष्कार हो गया है। अतः आज तककी आविष्कृत शिलालिपि और ताम्रशासनकी सहायतासे जो इतिहास निर्णीत हुआ है, वही संक्षेपमें लिखा गया।

मन्दारन्†) पतिको गङ्गाके किनारे परास्त किया था। इस समय गौड़ाधिप विजयसेनके साथ उनकी मित्रता हो गई। पुरीका सुप्रसिद्ध जगन्नाथमन्दिर इन्हीं चोड़गङ्गकी कीर्त्ति हैं। इसके सिवा उन्होंने श्रीकूर्म, भुवनेश्वर और याजपुरके नाना देवमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा की थी। उनमें भुवनेश्वरके केदारगौरी मन्दिरके दरवाजे पर उत्कीर्ण शिलालिपि और याजपुरका 'गङ्गेश्वर' नामक देवमन्दिर आज भी उनके नामकी रक्षा करता है। इन्होंने ७० वर्ष तक प्रबल प्रतापसे राज्य किया था। केवल उड़ीसा ही नहीं, सारे भारतवर्षमें किसी राजाने इस प्रकार दीर्घकाल तक राज्य किया था वा नहीं, संदेह है। इन गङ्गेश्वर चोड़गङ्गके शासनकालमें बहुतसे कनोज-ब्राह्मण याजपुरमें आ कर बस गये। इसके पहले यहां सौरब्राह्मणोंका प्रभाव था। ब्रह्मपुराणमें जहां कोणादित्य-माहात्म्यप्रसङ्ग आया है वहां इस सौरब्राह्मणकी प्रशंसा देखी जाती है। चोड़गङ्गके अभ्युदय पर उत्कल महासमृद्धिशाली और विद्वज्जनमण्डलीपरिशोभित हो गया था। विख्यात ज्योतिर्विद् भास्वतीकार शतानन्दने उन्हींके समय पुरुषोत्तममें रह कर इस स्थानको केन्द्र बना अपना ज्योतिषिक फलाफल प्रकाश किया है। प्रसिद्ध आलङ्कारिक महिमभट्ट उनके लड़के उमावल्लभका नाम दे कर 'व्यक्तिविवेक' नामसे अलङ्कारग्रन्थ लिख गये हैं।

चोड़गङ्गका पुत्र कस्तूरिकामोदिनीके गर्भजात कामार्णव यद्यपि १०६४ शकमें अभिषिक्त हुए, पर यथार्थमें उन्होंने पिताके मरनेके बाद ही १०६१ शकमें राज्यलाभ किया। पिता चोड़गङ्गकी तरह इनकी भी 'अनन्तवर्मा मधुकामार्णव' उपाधि थी। इन्होंने निरापदसे राज्य किया था, ऐसा प्रतीत नहीं होता। मुखलिङ्गके १०७० शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें 'जटेश्वरदेव' नामक एक व्यक्तिका ३य वर्ष राज्याङ्क देखा जाता है। अधिक सम्भव है, कि चोड़गङ्गके एकदम बुढ़ापेमें उस नामसे उनके किसी आत्मीय वा पुत्रने दक्षिणकलिङ्गका कुछ दिनके लिये बलपूर्वक शासन किया हो। कामार्णवके साथ उनका विरोध होना भी असम्भव नहीं! मुखलिङ्गसे आविष्कृत कामार्णवकी उक्त शककी लिपिसे ऐसा मालूम होता है, कि जटेश्वरका अधिकार स्थायी न रहा। १०७८ शक (११५६) पर्यन्त राज्यभोग करके कामार्णव इस लोकसे चल बसे। पीछे उनके वैमात्रेय भाई राघवने १०९२ शक (११७० ई०) तक अर्थात् १५ वर्ष राज्य किया।

इसके बाद चोड़गङ्गके राजराज नामक एक दूसरे पुत्र जो रानी चन्द्रलेखासे उत्पन्न हुए थे, राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने ११११ शक तक राज्यभोग किया था। उन्होंने ही एकाम्रक्षेत्रके अन्तर्गत सुप्रसिद्ध मेघेश्वरमंदिरके प्रतिष्ठाता स्वप्नेश्वरदेवकी बहन सुरमाको व्याहा था। वृद्धावस्थामें वे अपने कनिष्ठ अनियङ्कभीमको राज्य सौंप गये। ११११ शकमें अनियङ्कभीम वा अनङ्गभीम सिंहासन पर बैठे। उनके ब्राह्मणमंत्रीका नाम गोविन्द था। इन्हीं अनियङ्कभीमके समय (६०१ हिजरीमें) जाजनगर (उत्कल)-के ऊपर मुसलमानोंका प्रथम दृष्टि पड़ी‡। किन्तु मुसलमान लोग कुछ कर न सके। अनियङ्कके राज्यकालमें १११५से ११२० शकके मध्य प्रसिद्ध मेघेश्वरमन्दिर बनाया गया। पीछे उनके लड़के बाघलदेवीके गर्भजात ३य राजराज वा राजेन्द्रने ११२०से ११४३ शक पर्यन्त राज्य किया। चालुक्यकुलसंभूता सङ्गुण वा मंकुणदेवीके साथ उनका विवाह हुआ था। उन्हींके गर्भसे प्रबल पराक्रान्त अनङ्गभीमदेव उत्पन्न हुए। ११४३ शकसे ले कर ११६० शक पर्यन्त इनका राज्यकाल माना जाता है। इनके शासनकालमें गौड़ाधिप गयासुद्दीन इवाजने जाजनगर पर आक्रमण किया तथा कर उगाहनेकी चेष्टा की।¶ अनङ्गभीमके ब्राह्मण-मन्त्रीने उस मुसलमान राजके साथ युद्धमें बड़ी वीरता दिखाई थी। महावीर चोड़गङ्ग जिस चेदिराज रत्नदेवसे परास्त

† आरामबागसे ८ मील पश्चिम प्राचीन गढ़ मन्दारन (वर्त्तमान भीतरगढ़) नामक स्थानमें उक्त सरकारका सदर था।

‡ Major Raverty's Tabakat-i-Nasiri, p. 573-4.

¶ Major Raverty's Tabakat-i-Nasiri, p. 587-8.

हुए थे, विष्णुने उसी चेदिवंशीय तुम्माण*के राजाको परास्त किया था।

अनङ्गभीमके बाद उनके लड़के नृसिंहदेव (१म सिंहासन पर बैठे। इनका राज्यकाल ११६०से ११८६ शक है। इन्होंने अपने बाहुबलसे राढ़ और वरेन्द्र तक जीता था। तुघ्रिल इ-तुघान खाँ इनके हाथसे कई बार परास्त हुए थे। गाङ्गेय देखो। गाङ्गेय शब्दमें अनङ्गभीमके समय युद्धघटनाकी बात लिखी है। किन्तु अभी नाना कारणोंसे जाना जाता है, कि नृसिंहदेवके शासनकालमें ही उक्त युद्धघटना घटी थी। यह महावीर कोणार्कका अपूर्व सूर्यमन्दिर बना कर चिरस्थायी कीर्त्ति छोड़ गये हैं। एकावलीके रचयिता प्रसिद्ध आलङ्कारिक विद्याधरने इस नृसिंहदेवकी सभाको उज्ज्वल किया था।

विद्याधर नृसिंहराजके प्रशस्तिस्वरूप अपने ग्रन्थमें ३१४ श्लोक लिपिबद्ध कर गये हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथके पिता कविवर चन्द्रशेखर भी इस समय विद्यमान थे। नृसिंहदेवके उनके बाद लड़के भानुदेव (२य) राजसिंहासन पर बैठे। ११८६से १२०० शक पर्यन्त उन्होंने शासन किया। कवि चन्द्रशेखर इनके मन्त्री थे। पुष्पमाला नामक संस्कृतकाव्य और भाषार्णव नामक प्राकृत ग्रन्थ चन्द्रशेखरके बनाये हैं। चन्द्रशेखरके रचित भानुदेवके प्रशस्तिसूचक श्लोक उनके लड़के विश्वनाथके साहित्य-दर्पणमें उद्धृत हुए हैं। भानुदेव श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको ताम्रशासन द्वारा उद्यान और भवनशोभित एक-सौ ग्राम दान कर गये हैं।

पीछे उनके लड़के चालुक्यकुलसम्भूता जाकल्लदेवीके गर्भजात नृसिंहदेवने राजसिंहासन सुशोभित किया। उनका राज्यकाल १२०१ से १२२७ शक माना जाता है। उनके मन्त्री दोसादित्यके पुत्र गरुड़नारायणके पुत्र थे। सुप्रसिद्ध द्वैतमतप्रवर्त्तक आनन्दतीर्थके शिष्य नरहरितीर्थ नृसिंहदेवके अधीन कलिङ्गके शासनकर्त्ता थे। इन्होंने ही श्रीकूर्मेश्वरमन्दिरके सामने 'योगानन्द नृसिंह' नामक एक मन्दिर बनवाया है। साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथने २य नृसिंहकी सभाको उज्ज्वल किया था।

२य नृसिंहके बाद उनके लड़के चोरादेवीके गर्भजात २य भानुदेव सिंहासन पर बैठे। इन्होंने १२२७ से १२५० ई० तक राज्य किया था। इन भानुदेवके साथ गयासुद्दीन् तुगलकका विपुल संग्राम छिड़ा था। जियाउद्दीन् बरणीके इतिहासमें लिखा है, कि गयासुद्दीनका लड़का उलुघ खाँ जाजनगरकी ओर रवाना हुआ। वहां ४० हाथी ले कर तिलङ्गकी ओर प्रस्थान किया। वे सब हाथी उसके पिताके निकट भेजे गये। इब्न बतूताके मतसे उलुघखाँको विजयके बाद याजनगर वङ्गराज्यभुक्त हुआ था। किंतु तारीख-इ-फिरोजशाहीकार जियाउद्दीन बरणी इसे स्वीकार नहीं करते।

पूर्वचालुक्य-वंशसम्भूत जगन्नाथदेव भानुदेवके अधीन सामन्त तथा नाना जनपदविजेता घरड़मजी राम-सेनापति भानुदेवके मन्त्री थे। इसके बाद लक्ष्मीदेवीके गर्भजात भानुके प्रियपुत्र ३य नृसिंहदेव राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनका शासनकाल १२४६ शक तक था। पीछे कमलादेवीके गर्भजात ३य नृसिंहदेवके पुत्र ३य भानुदेवने १२७४ ५से १३००-१ शक तक राज्य किया। इन्होंने कूर्मस्वामीके मन्दिरमें पौष शुक्ल प्रतिपदको आलोकहस्त वीर नृसिंहदेव और गङ्गाम्बिकाकी मूर्त्ति स्थापित की। इससे गङ्गाम्बिकाको ही कोई कोई भानुदेवकी माता मानते हैं।

१२५३ ई०में वङ्गाधिप हाजी इलयासने राजाकी मृत्युका संवाद पा कर हाथी छीन लानेके लिये जाजनगर पर चढ़ाई कर दी। इसके कुछ समय बाद ही विजयनगराधिप १म बुक्कके भतीजे सङ्गमने उत्कलाधिपतिको परास्त किया। तारीख-इ-फिरोजशाहीमें लिखा है, कि भानुदेवके शासनकालमें दिल्लीश्वर फिरोजशाह जाजनगर पर चढ़ आया। भानुदेव पहले तैलङ्ग भाग गये। आखिर उन्होंने कुछ हाथी भेज कर मेल कर लिया।

इसके बाद चालुक्यराजकन्या हीरादेवीके गर्भजात

---

* गाङ्गेय शब्दमें इस तुम्माणको तुघ्रिल-इ-तुघनखा कहा गया है। किन्तु उस समय तुघान खाँका अस्तित्व न रहने तथा चेदि-राजाओंकी शिलालिपिमें तुम्माण जनपदका भूरि भूरि उल्लेख देखे जानेसे यहां पर संशोधन कर लिया गया।

३य भानुदेवके प्रियपुत्र ४र्थ नरसिंहदेव सिंहासन पर बैठे। इनका राज्यकाल १३००-१ से १३४६ शक माना जाता है। ताम्रशासन और शिलालिपिके अनुसार ये ही गङ्गवंशीय अन्तिम राजा हैं। इन्होंके समय जौनपुराधिप शर्कीवंशीय ख्वाजा-इ-जहान्ने लक्ष्मणावती और जाजनगरको कर देना कबूल किया था। आईन इ अकवरीमें लिखा है, कि मालवाधिप हुसन उद्दीन् होसङ्ग (८२५ हिजरीमें) वणिक्वेशमें जाजनगर आ कर उत्कलपतिको कैद कर ले गया। आखिर गजपतिने बहुतसे हाथी दे कर छुटकारा पाया। इन चतुर्थ नरसिंहके बाद १३४६ से १३५३ शक पर्यन्त उत्कलराज्य एक तरह अराजक हो गया था। इस अराजकके समय नरसिंहके मंत्री भ्रमरवर कपिलेन्द्रदेव अपना शिर उठा रहा था। उनके भयसे बहुसंख्यक लोग उत्कलका परित्याग कर दूसरे देशमें जा कर बस गये। गोपीनाथपुरकी शिलालिपिसे मालूम होता है, कि उनके दोर्दण्डप्रतापसे कर्णाट, कुलवरग, मालव, गौड़ ऐसा कि दिल्लीश्वर पर्यन्त परास्त हुए थे। गोपीनाथपुर देखो। इस प्रकार शत्रुका दमन कर कपिलेन्द्र वा कपिलेश्वर भ्रमरवरराय १३५६ शक (१४३४ ई०)में गङ्ग-सिंहासन पर बैठे। उन्हींसे उत्कलमें सूर्यवंशीय राजाओंकी प्रतिष्ठा हुई।

भ्रमरवर कपिलेंद्रदेवने उत्तरमें गङ्गासे ले कर दक्षिणमें कृष्णा पर्यंत अपना आधिपत्य फैलाया था। उनका अधिकांश समय विजयनगरके हिन्दूराजवंश वाह्मनीराजाओंके साथ युद्धमें बीता था। उन्होंने याजपुर, भुवनेश्वर, जगन्नाथ और श्रीकूर्मकी देवसेवाके लिये अनेक ग्राम दान कर दिये थे। १४६१ ई०में कपिलेन्द्रका देहान्त हुआ। लक्ष्मण महापात्र और उनके लड़के नारायण तथा गोपीनाथ महापात्र कपिलेन्द्रके मंत्री थे। गोपीनाथपुरके सुप्रसिद्ध गोपीनाथजीका मन्दिर गोपीनाथ महापात्रकी कीर्त्ति है। अभी उस मंदिरका ध्वंसावशेषमात्र रह गया है। गोपीनाथपुर देखो।

कपिलेन्द्रदेवकी मृत्युके बाद उनके लड़कोंमें सिंहासन ले कर विवाद खड़ा हुआ। आखिर पुरुषोत्तमदेवने वाह्मनीराज २य महम्मदशाहकी सहायतासे पितृसिंहासन लाभ किया। इस प्रत्युपकारमें उन्होंने राजमहेंद्री और कोण्डपल्लीका दक्षिणांश वाह्मनीराजको दे दिया। उनका राज्यकाल १४६९-७०से १४९६-९७ ई० है। जगन्नाथ-मन्दिरके ऊपर जो चक्र है उसमें इन्हीं पुरुषोत्तम देवका नाम उत्कीर्ण है। वे जगन्नाथ और श्रीकूर्ममें बहुत-सी कीर्त्तियां छोड़ गये हैं। चैतन्यचरितामृतमें लिखा है, कि पुरुषोत्तमदेव विद्यानगरको जीत कर वहांके रत्नसिंहासनको उठा लाये और जगन्नाथदेवको उपहार दे दिया।

पुरुषोत्तमके बाद उनके लड़के प्रतापरुद्रदेवने १४९६-९७से १५३९-४० ई० तक राज्य किया। इनके शासनकालमें उत्तरमें गौड़ाधिप होसेनशाहने उत्कल जीतना चाहा और उधर दक्षिणमें विजयनगराधिप नरसिंह और गोलकुण्डाके स्थापयिता कुतुवशाहका अभ्युदय हुआ। विजयनगराधिप नरसने गजपतिको कई बार युद्धमें परास्त किया। गौड़के सुलतानका सेनापति इस्माइलगाजी (१५०९ ई०में) उत्कलराज्यको तहस नहस कर पुरी तक चढ़ आया और कितने देवमन्दिरोंको नष्ट कर डाला। किन्तु आखिर दक्षिणागत प्रतापरुद्रके प्रबल आक्रमणसे मुसलमान-सेनापतिको पीठ दिखानी पड़ी थी। राजा प्रतापरुद्रने गङ्गाके किनारे मुसलमानसेनापतिको परास्त किया। मुसलमानसेनापतिने गढ़मंदारणमें भाग कर जान बचाई। इस समय प्रतापरुद्रके एक प्रधान कर्मचारी गोविंदविद्याधरने शत्रुका पक्ष लिया, इस कारण गजपति घेरा उठा कर उत्कल लौट जानेको बाध्य हुए। प्रतापरुद्रके शासनकालमें महाप्रभु चैतन्यदेव (१५१० ई०में) उत्कल पधारे। चैतन्यमङ्गलके रचयिता जयानन्दने लिखा है, कि याजपुरमें चैतन्यदेवके पूर्वपुरुष रहते थे। राजा भ्रमरके भयसे श्रीहट्टमें वे भाग गये। चैतन्यदेव याजपुरमें आ कर कमललोचन नामक अपने एक ज्ञातिके घर ठहरे थे। उनके अभ्युदयसे उत्कलमें कृष्णप्रेमतरङ्ग उमड़ने लगी थी। रथयात्राके समय राजा प्रतापरुद्रने महाप्रभुके दर्शन किये। तभीसे वे महाप्रभुके अनुरक्त भक्त हो गये। उत्कल-राजके जितने प्रधान कर्मचारी थे, सभी चैतन्यके भक्त हो गये थे।

चैतन्यदेव देखो।

प्रतापरुद्रकी शेषावस्थामें अधिकांश समय उन्हें

दाक्षिणात्यमें रहना पड़ा था। विद्यानगरपति कृष्णरायने १५१४-१५ ई०में गजपतिराज्य पर आक्रमण किया और गोदावरीके दक्षिणस्थ सभी भूभागों पर अधिकार जमाया। प्रतापरुद्रके पुत्र वीरभद्र उस युद्धमें परास्त हुए और उनके चचा तिरुमल कैद किये गये। आखिर प्रतापरुद्रने विजयनगरके साथ मेल कर विजेता कृष्ण-रायके हाथ अपनी कन्या सौंप दी।

प्रतापरुद्रकी मृत्युके बाद कलुआदेव और कखा-रुआदेव नामक उनके दो पुत्रोंने १५४२ ई० तक राज्य किया। ये दोनों नाममात्रके राजा थे, राज चलानेमें उतनी क्षमता न थी। इस समय भोई (कायस्थ) जाति-के गोविन्दविद्याधर सर्वमय कर्त्ता थे। प्रतापरुद्रके समयसे वे एक प्रधान कर्मचारीका काम करते आ रहे थे। धीरे धीरे प्रतापरुद्रके पुत्रोंको एक एक कर यम-पुर भेज दुर्वृत्त गोविन्दविद्याधरने उत्कलराज्य पर अधि-कार जमाया। प्रायः १५४१ ई०में उनका अभिषेक हुआ। १५४५ ई०में उन्होंने गोलकुण्डाके मुसलमान राजाके साथ घमासान युद्ध किया था। उस समय उनका भांजा रघुभञ्ज छोटराय उत्कलमें विद्रोही हो गया था। बङ्गालके मुसलमान उसके पक्षमें थे। जो कुछ हो, गोविन्दविद्याधरने दक्षिणसे आ कर रघु-भञ्जको परास्त किया और दलबलके साथ उसे गङ्गाके दूसरे किनारे मार भगाया।

गोविन्दके बाद चक्रप्रताप उत्कलराज्यमें अभिषिक्त हुए। किसीके मतसे इन्होंने ८ और किसीके मतसे १२॥ वर्ष राज्य किया था। यह राजा अत्यन्त अत्या-चारी थे। चक्रप्रतापके बाद नरसिंहराय-जेना राजसिंहा-सन पर बैठे। इन्हें १ मास १६ दिनसे अधिक राज-सिंहासन पर बैठना नहीं पड़ा था। हरिचन्दनने बागी हो कर उनका काम तमाम किया। नरसिंहके भाई रघुनाथ-जेना राजा हुए सही, पर उनके भी भाग्यमें राज्यसुख बदा न था। मुकुन्द हरिचन्दनका विद्रोहानल दिन पर दिन धधकने लगा। प्रधान मन्त्री दनाईविद्याधर पराजित और बन्दी हुए। रघुभञ्ज छोटारायने मौका देख कर उत्कल पर चढ़ाई कर दी। वह भी मुकुन्दके साथ युद्धमें परास्त और बन्दी हुआ। आखिर मुकुन्द उत्कलपति रघुरामको मार कर सिंहासन पर बैठे। रघुरामने १ वर्ष ७ मास १४ दिन राज्य किया।

मुकुन्ददेव हरिचंदन ही उत्कलके अन्तिम स्वाधीन हिंदू राजा थे। वे तैलङ्ग जातिके थे। उन्होंने १५५६से १५६८ ई० तक शासन किया था। मुकुन्ददेवके शासन-कालमें सम्राट् अकबरने उनकी सभामें दूत भेजा था। पठान-सुलतान कराणीने उन्हें छेड़छाड़ की थी, इसी उद्देशसे उत्कल सभामें मुगल-दूतका आगमन हुआ। मुगलके साथ उत्कलपतिका मेल हो जानेकी खबर पा कर सुलतान कराणीने उत्कलराज्यको ध्वंस करनेके लिये कालापहाड़को भेजा। कालापहाड़ उत्कलको देव-देवियोंको तोड़ता, मन्दिरोंको ढाहता और ग्राम नगरोंको लूटता हुआ अग्रसर हुआ। मुकुन्ददेवका सेनापति काला-पहाड़के हाथ परास्त हुआ। इस समय दक्षिणांशमें फिर एक दूसरा सामन्त विद्रोह हुआ। मुकुन्द पहले गृहशत्रु-का विनाश करने निकले। घमसान युद्धके बाद विद्रोही-के हाथसे उत्कलके अन्तिम स्वाधीन राजा यमपुरको सिधारे। इधर कालापहाड़ भी आ धमका। विद्रोही सामन्त मुसलमानोंको रोकनेमें निहत हुए। रघुभञ्ज छोटाराय कैदमें था। उसने बड़ी होशियारीसे छुटकारा पा कर सिंहासन दखल करनेकी कोशिश की। किंतु उसके विशेष परिचित मुसलमानोंने उसे चैन नहीं दिया। आखीर मुसलमानोंके हाथसे वह मारा गया। इस प्रकार १५६८ ई०में उड़ीसाकी हिन्दू-स्वाधीनता जाती रही। पुरी देखो।

याजमान (सं० क्लो०) यज्ञमें यजमानका किया हुआ काम।

याजमानिक (सं० त्रि०) यजमानसम्बन्धीय, यजमानका।

याजयितृ (सं० त्रि०) यज्ञपरिचालनकारी, यज्ञ कराने-वाला या पुरोहित।

याजाज्—आगरानिवासी एक मुसलमान कवि। इन्होंने बहुत सी अच्छी कविताओंको लिख कर याजाज्की उपाधि पाई थी। इनका पूरा नाम था शेख मुहम्मद सैयद। ये १६६१ ई०में सम्राट् आलमगीरके समयमें जीवित थे। मुलतानके नवाब नाजिम् मकरब खाँके द्वारा प्रतिपालित हो ये कविता लिख कर प्रतिष्ठित हुए

थे। कवि सरूपसकृत कलामत् उस-सुआरा ग्रन्थमें इस कविकी जीवनी दी गई है।

याजि (सं० स्त्री०) यज-(वसिवपियजिराजिव्रजीति। उण् ४।१२४) इति इञ्। यष्टा, यज्ञ करनेवाला।

याजिका (सं० स्त्री०) १ यज्ञ। २ वह उपहार जो पूजाके समय दिया गया हो।

याजिन् (सं० त्रि०) यज-णिनि। यज्ञकारी, यज्ञ करनेवाला।

याजुक (सं० त्रि०) पुनः पुनः यज्ञकारी, वार वार यज्ञ करनेवाला।

याजुर्वैदिक (सं० त्रि०) यजुर्वेद सम्बन्धीय।

याजुष (सं० त्रि०) यजुष इदमिति यजुष-अण्। १ यजुर्वेद सम्बन्धी। २ यजुर्वेदाभिज्ञ यज्ञपरिदर्शक।

याजुषी अनुष्टुप् (सं० पु०) एक वैदिक छन्द जिसमें सब मिला कर आठ वर्ण होते हैं।

याजुषी उष्णिक् (सं० पु०) एक वैदिक छन्द। इसमें सात वर्ण होते हैं।

याजुषी गायत्री (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द जिसमें छः वर्ण होते हैं।

याजुषी जगती (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द। इसमें बारह वर्ण होते हैं।

याजुषीत्रिष्टुप् (सं० पु०) एक वैदिक छन्द। इसमें ग्यारह वर्ण होते हैं।

याजुषीपंक्ति (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द जिसमें दश वर्ण होते हैं।

याजुषीवृहती (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द जिसमें नौ वर्ण होते हैं।

याजुष्मत (सं० त्रि०) एक प्रकारकी ईंट जिससे यज्ञवेदी बनाई जाती है।

याज्य (सं० त्रि०) १ यज्ञ कराने योग्य। २ जो यज्ञमें दिया या चढ़ाया जानेवाला हो। ३ जो यज्ञ करानेसे प्राप्त हो, दक्षिणा।

याज्ञ (सं० त्रि०) यज्ञसम्बन्धीय, यज्ञका।

याज्ञतुर (सं० पु०) १ ऋषभके गोत्रमें उत्पन्न एक पुरुष। २ एक प्रकारका साम।

याज्ञदत्तक (सं० त्रि०) यज्ञदत्तसम्बन्धीय, यज्ञदत्तका।

याज्ञदत्ति (सं० पु०) यज्ञदत्तका गोत्रापत्य, कुवेर।

याज्ञदेव (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रंथकार।

याज्ञपत (सं० त्रि०) यज्ञपतिका भाव।

याज्ञवल्क (सं० त्रि०) याज्ञवल्क्य-संकलित।

याज्ञवल्कीय (सं० पु०) याज्ञवल्क्य-सम्बन्धीय, याज्ञवल्क्यका।

याज्ञवल्क्य (सं० पु०) वल्कयतीति वल्क-अच् यज्ञस्य वल्को वक्ता, तस्य गोत्रापत्यं (यज्ञवल्कगर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।२।१०४) इति यञ्। १ धर्मशास्त्र-प्रयोजक एक प्रसिद्ध ऋषि। वे वैशम्पायनके शिष्य थे। कहते हैं, कि एक वार वैशम्पायनने किसी कारणसे अप्रसन्न हो कर इनसे कहा, कि "तुम मेरे शिष्य होनेके योग्य नहीं हो; अतः जो कुछ तुमने मुझसे पढ़ा है वह लौटा दो।" इस पर याज्ञवल्क्यने अपनी सारी पढ़ी हुई विद्या उगल दी जिसे वैशम्पायनके दूसरे शिष्योंने तीतर बन कर चुग लिया। इसीलिये उनकी शाखाओंका नाम तैत्तिरीय हुआ। याज्ञवल्क्यने अपने गुरुका स्थान छोड़ कर सूर्यकी उपासना की और सूर्यके वरसे वे शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयीसंहिताके आचार्य हुए। इनका दूसरा नाम वाजसनेय भी था। २ एक ऋषि जो राजा जनकके दरबारमें रहते थे और जो योगीश्वर याज्ञवल्क्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। मैत्रेयी और गार्गी इन्हींकी पत्नियां थीं। ३ योगीश्वर याज्ञवल्क्यके वंशधर एक स्मृतिकार। मनुस्मृतिके उपरान्त इन्हींकी स्मृतिका महत्त्व है और उसका दायभाग आज तक कानून माना जाता है। ४ उपनिषद्भेद, एक उपनिषद्का नाम।

याज्ञवल्क्यसंहिता—इस संहिताके प्रवर्त्तक योगीश्वर याज्ञवल्क्य हैं। उन्होंने सामश्रवा आदि मुनियोंसे वर्णाश्रमधर्म, व्यवहारशास्त्र तथा प्रायश्चित्त आदिका उपदेश दिया है। राजर्षि जनककी राजसभामें भी एक याज्ञवल्क्यका परिचय पाया जाता है। याज्ञवल्क्य-संहिताकार तथा जनकके सभासद दोनों याज्ञवल्क्य एक हैं या दो हैं इस विषयमें मतभेद है। कोई कहते हैं, कि जनकके सभासद याज्ञवल्क्य ही इस धर्मसंहिताके प्रवर्त्तक हैं। किसीका कहना है—उनके वंशधर दूसरे याज्ञवल्क्यने इस संहिताको बनाया था। परन्तु इस संहिताके

प्रारम्भके दो श्लोकोंसे विदित होता है, कि इस संहिता-के कर्त्ता मिथिलाके रहनेवाले योगीश्वर याज्ञवल्क्य थे। अतएव जनकराज-सभाके याज्ञवल्क्य ही इस संहिताके कर्त्ता माने जा सकते हैं। इस संहितामें राजधर्म, व्यवहार विधि, दायभाग आदि विषयोंमें जो तत्त्व लिखे गये हैं उनको देखनेसे यह बात स्पष्ट ही मालूम होती है, कि यह संहिता किसी आदर्श राजाके शासन समयमें बनायी गई होगी, इस संहितामें तीन अध्याय हैं और एक हजार बारह श्लोक हैं। पहले अध्यायमें गर्भाधान, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध और वर्णसङ्करकी उत्पत्ति लिखी है और भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण, शुद्धिप्रकरण तथा अनेक प्रकार-की पूजाका विधान भी वर्णित है। द्वितीय अध्यायमें व्यवहारशास्त्रका विषय अर्थात् ऋण लेना, ऋण देना, प्रतिभू (जामिन) प्रकरण, साक्षिप्रकरण, लेख्यप्रकरण, दिव्यप्रकरण, दायभागप्रकरण, दण्डपारुष्यप्रकरण, साहस प्रकरण, सम्भूयसमुत्थानप्रकरण. स्त्रीसंग्रहप्रकरण आदि अनेक विषय लिखे हैं। तीसरे अध्यायमें अशौच-प्रकरण, आपद्धर्मप्रकरण, यतिप्रकरण, अध्यात्मप्रकरण, प्रायश्चित्तप्रकरण आदि बातोंका उल्लेख किया गया है। याज्ञवल्क्यसंहिताका दायभागप्रकरण आज भी कानूनके रूपमें माना जाता है। दायभागके वचनों-को ले कर विज्ञानेश्वर भट्टारकने "मिताक्षरा" और जीमूतवाहनने "दायभाग" नामक ग्रन्थ संकलन किया है। आज भी भारतवर्षमें पितृपितामह आदि स्वजन-परित्यक्त धन मिताक्षरा और दायभागके अनुसार ही बांटा जाता है। इधर मिताक्षरा प्रचलित है और बङ्ग-देशमें दायभागका आदर है। मनुसंहितामें उच्चवर्ण-को निम्न वर्णकी कन्यासे विवाह करनेकी आज्ञा है, परन्तु याज्ञवल्क्यने उसे निषेध किया है।

याज्ञसेनी (सं० स्त्री०) यज्ञसेनस्य स्त्र्यपत्यं, यज्ञसेन-अण्-ङीष्। द्रौपदी। द्रौपदी देखो।

याज्ञायनि (सं० पु०) यज्ञका गोत्रापत्य।

याज्ञिक (सं० पु०) यज्ञमर्हति यज्ञायहितो वा यज्ञ-ढक्। १ दर्भभेद, कुश। यज्ञं यज्ञविद्यामधीते वेद वा ढक्। २ याजक, वह जो मांगता हो। ३ यज्ञकर्त्ता, यज्ञ करने या करानेवाला। ४ गुजराती आदि ब्राह्मणोंकी एक जाति। ५ रक्त खदिर, लाल खैर। ६ पलाश। ७ अश्वत्थ, पीपल। (राजनि०)

याज्ञिकदेव (सं० पु०) एक विख्यात भाष्यकार। ये महादेव (प्रजापति)-के पुत्र, गंगाधरके पौत्र और कद्रदेवके प्रपौत्र थे। इनके बड़े भाईका नाम लक्ष्मी-धर और पुत्रका नाम महर्षि और उदयन था। इनके बनाये दृष्टकापूरणभाष्य, कात्यायन श्रौतसूत्रभाष्य, कात्यायन-श्रौतसूत्रपद्धति (याज्ञिकवल्लभा या श्रौत-स्मारणकर्मपद्धति), कात्यायनकृत वाजसनेयिसंहितानु-क्रमणिका टीका, स्नानविधिपद्धति और स्मृतिसार आदि ग्रंथ मिलते हैं। ये देवयाज्ञिक, श्रीदेव और देव नामसे परिचित थे।

याज्ञिकानन्त (सं० पु०) व्यवहारदर्पण और शुद्धिदर्पण नामक ग्रन्थके प्रणेता। इनका पूरा नाम अनन्तदेव याज्ञिक था।

याज्ञिकनाथ—जातकचंद्रिका और ताजिकचन्द्रिका नामक ज्योतिर्ग्रंथके रचयिता।

याज्ञिक्य (सं० क्ली०) याज्ञिकानां धर्म्मः आम्नायो वा (छन्दोगौक्थिकयाज्ञिकबह्वृचनटाञ्ञ्यः। पा ४।३।१२९) इति ञ्य। याज्ञिकका धर्म्म, यज्ञ।

याज्ञिय (सं० त्रि०) १ यज्ञसम्बन्धीय, यज्ञका। २ यज्ञका उपयोगी। (पु०) ३ यज्ञवेत्ता, वह जो यज्ञोंसे जान-कार हो।

याज्ञीय—यज्ञीय शब्दका प्रामादिक पाठ।

याज्य (सं० क्ली०) इज्यते इति यज-ण्यत्। (यजयाच-रुचप्रवचर्चश्च। पा ७।३।६६) इति कु निषेधः। १ यागलब्ध धनादि, वह धन जो यज्ञमें प्राप्त हुए हों। (त्रि०) २ यजनीय, यज्ञ करनेयोग्य।

"अन्नादेभ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्विषात्॥"
(मनु ८।३१७)

३ शिष्य, शासनार्ह। ४ याजनयोग्य। ५ यज्ञस्थान, यज्ञशाला। ६ देवता, प्रतिमा।

याज्या (सं० स्त्री०) यजन्त्यनया यज् ण्यत्-टाप्। १ ऋक्। २ गङ्गा।

याज्यता (सं० स्त्री०) याजास्य भावः धर्मो वा तल्-टाप्। याजाका भाव या धर्म, याजात्व।

याज्यवत् (सं० त्रि०) याजा वा पवित्र मन्त्रयुक्त।

याज्वन (सं० पु०) यज्वनका पुत्र।

यात् (सं० अव्य०) आख्यात प्रत्ययविशेष।

यात (सं० क्ली०) या-क्त। १ निषादियोंका पादकर्म। (त्रि०) २ गत, अतीत।

"येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यते॥"
(मनु ४।१७८)

३ लब्ध, पाया हुआ। ४ ज्ञात, जाना हुआ। ५ गमन, जाना। ६ प्रापण, प्राप्ति। ७ ज्ञान।

यातन (सं० क्ली०) १ प्रतिशोध, बदला। २ पारितोषिक, इनाम।

यातना (सं० स्त्री०) यत-णिच् (ण्यासश्रन्थो युच्। पा ३।३।१०७) इति युच्-टाप्। १ गाढ़ वेदना, बहुत अधिक कष्ट। पर्याय—गाढ़वेदना, कारणा, तीव्रवेदना, अतिव्यथा। २ नरकरुजा, दंडकी वह पीड़ा जो यमलोकमें भोगनी पड़ती है।

यातनार्थीय (सं० त्रि०) यातनाग्रहणशाली, कष्ट भोगनेवाला।

यातयज्जन (सं० त्रि०) अपने अपने व्यापारमें नियोजित लोकसमूह।

यातयाम (सं० त्रि०) यातो गतो याम उपभोगकालो वीर्य वा यस्य। १ जीर्ण, पुराना। २ परिभुक्त, जिसका भोग किया जा चुका हो। ३ उज्झित। ४ प्राप्तशैत्यावस्था। ५ गतरस। ६ ह्रासप्राप्त। ७ उच्छिष्ट। ८ परित्यक्त। ९ शीर्ण, खंड खंड। १० पुनः पुनः प्रयुज्यमान।

यातव्य (सं० त्रि०) या-तव्य। अभिगन्तव्य, आक्रमणीय।

यातस्रुच (सं० क्ली०) सामभेद।

याता (सं० स्त्री०) यातृ देखो।

यातानप्रस्थ (सं० क्ली०) जनपदभेद।

यातानुयात (सं० क्ली०) आदौ यातः पश्चात् अनुयातः शकपार्थिवादित्वात् समासः। गमनागमन, यातायात।

यातायात (सं० क्ली०) गमनागमन, आना जाना।

याति (सं० स्त्री०) या-यङ्लुगन्तात् क्तिन्। (पा ३।३।९८) पुनः पुनः गमनशील, बार बार जाना।

यातिक (सं० पु०) यातं गमनं प्राशस्त्येनास्त्यस्येति यात-ठन्। पान्थ, पथिक।

यातु (सं० त्रि०) यातीति या (कमिमनीति। उण् १।७३) इति कु। १ गन्ता, आनेवाला। २ रास्ता चलनेवाला, पथिक। (पु०) ३ राक्षस। ४ काल। ५ वायु, हवा ६ अस्त्र। (स्त्री०) ७ यातना, कष्ट। ८ हिंसा। (अव्य०) ९ कभी।

यातुघ्न (सं० पु०) यातु हन्तीति हन् (अमनुष्यकर्त्तृके च। पा ३।२।५३) इति ठक्। गुग्गुलु, गुग्गुल।

यातुचातन (सं० त्रि०) राक्षसविनाशनकारी, राक्षसको मार भगानेवाला।

यातुजम्भन (सं० त्रि०) राक्षसध्वंसकारी, राक्षसको मारनेवाला।

यातुजू (सं० पु०) यातुधान, राक्षस।

यातुधान (सं० पु०) यातूनि रक्षांसि दधाति पुष्णातीति धा बहुलमन्यत्रापि युच्, स्वजातिपोषकत्वात् तथात्वं। राक्षस।

यातुमत् (सं० त्रि०) यातु अस्त्यर्थे मतुप्। १ हिंसायुक्त, हिंसाविशिष्ट। २ यातनादायक आयुधविशिष्ट या राक्षसयुक्त।

यातुमावत् (सं० त्रि०) यातुधान, राक्षस।

यातुविद् (सं० स्त्री०) १ ऐन्द्रजालिक विद्याभिज्ञ, जादूगर। २ राक्षसीय व्यापारज्ञ।

यातुहन् (सं० त्रि०) इन्द्रजाल विच्छिन्नकारी।

यातृ (सं० स्त्री०) यततेऽन्योन्यभेदायेति यत् (नृप्। उण् २।९८) इति ऋण्। १ पतिके भाईकी स्त्री, जेठानी वा देवरानी। (त्रि०) या तृच्। २ गमनकर्त्ता, जानेवाला। ३ रथ चलानेवाला, सारथी। ४ हन्ता, मार डालनेवाला।

यातृक (सं० पु०) यातैवेति यातृ स्वार्थे कन्। पान्थ, पथिक।

यातोपयात (सं० क्ली०) १ गमनागमन, आना जाना। २ कथावार्त्ता, बातचीत।

यान्तिक (सं० पु०) बौद्धोंका एक सम्प्रदाय।

यात्य (सं० त्रि०) यत कर्मणि ण्यत्। यतनीय, कोशिश करने लायक।

यात्रा (सं० स्त्री०) या (हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन्। उण् ४।१६७) इति ष्ट्रन्-टाप्। १ विजयको इच्छासे कहीं जाना, चढ़ाई। पर्याय—व्रज्या, अभिनिर्याण, प्रस्थान, गमन, गम, प्रस्थिति, यान, प्रापण। २ प्रमाण, प्रस्थान। ३ दर्शनार्थ देवस्थानोंको जाना, तीर्थाटन। ४ उत्सव। ५ व्यवहार। ६ एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जानेकी क्रिया। सफर। कहीं जानेमें ज्योतिषोक्त शुभदिन देख कर यात्रा करनी होती है। क्योंकि, शुभ दिनमें और शुभ क्षणमें यात्रा नहीं करनेसे पद पद विघ्नकी सम्भावना है। ज्योतिषमें यात्रिक दिनका विषय इस प्रकार लिखा है—भाद्र, पौष और चैत्र मास दूरकी यात्रा नहीं करनी चाहिये। इन तीन मासोंको छोड़ कर और सभी मासोंमें यात्रा कर सकते हैं।

इस देशमें ऐसा भी देखा जाता है, कि यदि कोई इन तीन महीनोंमें कहीं जाय, तो वह फिर उसी मासमें लौट आता है।

पहले यात्राप्रकरणमें दिक्शूल देखना होता है। क्योंकि एक एक दिक्का अधिपति एक एक ग्रह है। उसे अधिपति ग्रहकी ओर यात्रा करनेसे अशुभ होता है।

रवि और शुक्रवारको पश्चिममें दिक्शूल है, इसलिये इन दो वारोंमें पश्चिमकी यात्रा नहीं करनी चाहिये। इसी प्रकार उत्तरको ओर बुध और मङ्गलवारमें, दक्षिण ओर वृहस्पतिवारमें तथा किसी किसीके मतसे बुधवार भी निषिद्ध बताया गया है। उत्तरकी ओर बुध और मङ्गलवारमें तथा पूर्वको ओर सोम और शनिवारमें नहीं जाना चाहिये। यदि कोई इस दिक्शूलका लङ्घन कर यात्रा करे, तो वह इन्द्रके समान भी क्यों न हो, उसका कार्य सिद्ध नहीं होगा।

पूर्व दिशा जानेमें रवि और शुक्रवार, दक्षिणमें मङ्गलवार, पश्चिममें सोम और शनिवार तथा उत्तरमें वृहस्पति प्रशस्त है अर्थात् इन सब वारोंमें यात्रा करनेसे शुभ होता है।

इस प्रकार वार स्थिर कर पीछे तिथि, नक्षत्र, योग, करण और लग्न स्थिर करना होता है। द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, पञ्चमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी इन सब तिथियोंमें यात्रा करनेसे शुभ होता है। इसके सिवा तिथिका यदि किसी वारके साथ योग रहे, तो सिद्धि आदि योग होता है। ये सब योग यात्रिक हैं, निषिद्ध तिथि रहते हुए भी यात्रा शुभ है।

यात्रामें उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन प्रकारके नक्षत्र हैं। अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, मूला, पुनर्वसु, पुष्या, हस्ता और ज्येष्ठा ये सब नक्षत्र यात्रामें उत्तम हैं। इसीसे इन्हें यात्रिक उत्तम नक्षत्र कहते हैं। रोहिणी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, पूर्वफल्गुनी, चित्रा, स्वाती, शतभिषा, श्रवणा और धनिष्ठा ये सब मध्यम हैं, इसीसे इनका नाम मध्यम नक्षत्र है। उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी, विशाखा, मघा, आर्द्रा, भरणी, कृत्तिका और अश्लेषा ये सब नक्षत्र अधम हैं; इस कारण इन सब नक्षत्रोंमें कदापि यात्रा नहीं करनी चाहिये।

नक्षत्रशूल—स्वाती और ज्येष्ठा नक्षत्रमें पूर्वदिक्शूल है, इस कारण पूर्वकी ओर इन दो नक्षत्रोंमें यात्रा न करे। इसी प्रकार पूर्वभाद्रपद और अश्विनीमें दक्षिणकी ओर, पुष्या और रोहिणीमें पश्चिमकी ओर, तथा उत्तरफल्गुनी और हस्तामें उत्तरकी ओर जाना निषिद्ध है।

गर, वणिज और विष्टि ये तीन करण यात्रामें निषिद्ध बताये गये हैं। किसी किसीका मत है, कि यदि गर करणमें यात्रा की जाय, तो कोई दोष नहीं। सिंह, वृष, कुम्भ, कन्या और मिथुन लग्न यात्रामें प्रशस्त है। इसके सिवा और सभी लग्नोंमें यात्रा निषिद्ध बताई गई है।

यात्रामें योगिनीका अच्छी तरह विचार करना होता है। योगिनीको सम्मुख वा दक्षिण करके कभी भी यात्रा न करे। जिस ओर जाना होता है, उसके बाएं अथवा पीठ पर योगिनी रहनेसे शुभ होता है। निम्न प्रकारसे योगिनी स्थिर करनी होती है। प्रतिपद् और नवमी तिथिमें पूर्वको ओर योगिनी रहती है, इसी प्रकार तृतीया और एकादशीको नैऋ तकोणमें, षष्ठी और चतुर्दशीको पश्चिम दिशामें, सप्तमी और पूर्णिमाको वायुकोणमें

द्वितीया और दशमीको उत्तर दिशामें, अष्टमी और अमावस्याको ईशानकोणमें योगिनी रहती है। जिस ओर यात्रा करनी होगी, उसके किसी दिशामें योगिनी अवस्थित है यह पहले स्थिर कर ले, पीछे उसे वाम और पृष्ठदेशमें रख कर यात्रा करे।

दिनको यात्रा करनेसे वारवेला और रातको यात्रा करनेसे कालरात्रि देख कर यात्रा करनी होती है। इस वारवेला वा कालरात्रिमें यात्रा करनेसे अशुभ होता है। वारवेला और कालरात्रि इस प्रकार स्थिर करना होगा। दिनमानको आठ भाग करनेसे उसे यामार्द्ध कहते हैं। रविवारमें चतुर्थ और पञ्चम यामार्द्ध, सोमवारमें सप्तम और द्वितीय यामार्द्ध, मङ्गलवारमें षष्ठ और द्वितीय, बुधवारमें पञ्चम और तृतीय, वृहस्पतिवारमें सप्तम और अष्टम, शुक्रवारमें तृतीय और चतुर्थ यामार्द्ध, शनिवारमें प्रथम, शेष और षष्ठ यामार्द्ध वारवेला है। इस वारवेलाके समय कभी भी यात्रा न करे।

कालरात्रि—रविवारमें षष्ठ यामार्द्ध, सोमवारमें चतुर्थ, मङ्गलवारमें द्वितीय, बुधवारमें सप्तम, वृहस्पतिवारमें पञ्चम, शुक्रवारमें तृतीय, शनिवारमें आदि और अन्त यामार्द्ध कालरात्रि है। इस कालरात्रिमें भी यात्रा करना मना है।

'यात्रायां मरणं काले' इस वचनके अनुसार वारवेला वा कालरात्रिमें यात्रा करनेसे मृत्यु होती है। इसको छोड़ कर सिद्धियोग, अमृतयोग, नक्षत्रामृतयोग और त्र्यमृतयोग होनेसे यात्रामें शुभ होता है। इन सब योगोंका विषय ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है।

सिद्धियोग—शुक्रवारमें प्रतिपद्, एकादशी वा षष्ठी तिथि होने, बुधवारमें द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी, शनिवारमें चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी, मङ्गलवारमें त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तथा वृहस्पतिवारमें पञ्चमी, दशमी, अमावस्या वा पूर्णिमा तिथि होनेसे सिद्धियोग होता है। इस सिद्धियोगमें यात्रा करनेसे कार्यकी सिद्धि होती है। इसीसे इस योगकामका नाम सिद्धियोग हुआ है।

अमृतयोग—रवि और सोमवारमें पञ्चमी, दशमी, अमावस्या और पूर्णिमा, मङ्गलवारमें द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी; वृहस्पतिवारमें त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया; शुक्रवारमें चतुर्थी, नवमी और दशमी, बुध और शनिवारमें प्रतिपद्, एकादशी और षष्ठी तिथि होनेसे अमृतयोग होता है। यात्रामें यह योग अमृतके समान काम करता है, इसीसे इसका नाम अमृतयोग पड़ा है। वारके साथ तिथिका योगविशेष जिस प्रकार शुभाशुभजनक होता है, उसी प्रकार नक्षत्रके साथ भी वारविशेषके योगमें शुभाशुभ होता है।

नक्षत्रामृतयोग—रविवारमें यदि उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, हस्ता, मूला और रेवती; सोमवारमें श्रवणा, धनिष्ठा, रोहिणी, हस्ता, मूला और रेवती; सोमवारमें श्रवणा, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, हस्ता और अश्विनी; मङ्गलवारमें पुष्या, अश्लेषा, कृत्तिका, स्वाती, उत्तरभाद्रपद और रेवती; बुधवारमें कृत्तिका, रोहिणी, शतभिषा और अनुराधा; वृहस्पतिवारमें स्वाती, पुनर्वसु, पुष्या और अनुराधा; शुक्रवारमें पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, अश्विनी, श्रवणा और अनुराधा; तथा शनिवारमें स्वाती और रोहिणी नक्षत्र होनेसे नक्षत्रामृतयोग होता है। यह योग यात्राके लिये वहुत शुभ है। इस योगमें यदि सारा दिन विष्टि व्यतीपातादि दोष रहे, तो जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे अन्धकार दूर होता है, उसी प्रकार वह दोष नष्ट होता है।*

---

* "शुक्रे नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया।
गुरौ पूर्णा च संयुक्ता सिद्धियोगः प्रकीर्त्तितः॥
चन्द्रार्कयोर्भवेत् पूर्णा कुजे भद्रा जया गुरौ।
बुधमन्दौ च नन्दायां शुक्रे रिक्ताऽमृता तिथिः॥
ध्रुवगुरुकरमूलापौष्णभान्यर्कवारे
हरियुगविधियुग्मे फल्गुनी भाद्रयुग्मे।
दिवसकरतुरङ्गौ शर्वरीनाथवारे
गुरुयुगनलवातोपान्त्यपौष्णानि भौमे॥
दहनविधिशताख्यामैत्रभं सौम्यवारे
मरुददितिभपुष्या मैत्रभं जीववारे।
भगयुगजयुगश्वो विष्णुमैत्रे सिताहे
श्वसनकमलयोनी सौरिवारेऽमृतानि॥
यदि विष्टिर्व्यतीपातौ दिनं वाप्य शुभं भवेत्।
हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेणा तमो यथा॥"

वार, तिथि और नक्षत्रयोगमें त्र्यमृतयोग हुआ करता है। रवि और मङ्गलवारमें प्रतिपद्, एकादशी और षष्ठी तथा स्वाती, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, अश्लेषा, मूला और कृत्तिका नक्षत्र; शुक्र और सोमवारमें, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथि तथा पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद् और उत्तरभाद्रपद् नक्षत्र; बुधवारमें त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथि तथा मृगशिरा, श्रवणा, पुष्या, ज्येष्ठा, भरणी, अभिजित् और अश्विनी, बृहस्पतिवारमें चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथि, उत्तराषाढ़ा, विशाखा, अनुराधा, मघा, पुनर्वसु और पूर्वाषाढ़ा; शनिवारमें पञ्चमी, दशमी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथि तथा रोहिणी, हस्ता और धनिष्ठा नक्षत्र होनेसे त्र्यमृतयोग होता है। इस योगमें यात्रा करनेसे अति शीघ्र अभिलाष पूर्ण होता है। वार, तिथि और नक्षत्र इन तीनोंके योगमें जो यात्रा की जाती है, वह अमृतवत् है। इसीसे इसका नाम त्र्यमृतयोग हुआ है।

एक एक मासकी एक एक तिथिविशेष निन्दित है। उस तिथिमें यात्रा नहीं करनी चाहिये। उन सब तिथियोंको मासदग्धा कहते हैं।

वैशाखमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी, आषाढ़की शुक्लाष्टमी, भाद्रकी शुक्लादशमी, कार्त्तिककी शुक्लाद्वादशी, पौषकी शुक्लाद्वितीया, फाल्गुनकी शुक्ला चतुर्थी, श्रावणकी कृष्णाषष्ठी, आश्विनकी कृष्णाष्टमी, अग्रहायणकी कृष्णादशमी, माघकी कृष्णाद्वादशी, चैत्रकी कृष्णाद्वितीया, ज्यैष्ठकी कृष्णाचतुर्थी, इन सब तिथियोंमें कदापि यात्रा न करे, करनेसे इन्द्र तुल्य व्यक्ति भी मृत्युको प्राप्त होता है।

यात्रामें केवल तिथिका फल इस प्रकार कहा गया है। कृष्णा प्रतिपदमें यात्रा करनेसे कार्यसिद्धि, शुक्ला प्रतिपद्में अशुभ, द्वितीयामें यात्रा शुभ, तृतीयामें विजय, चतुर्थीमें वध, बन्धन और क्लेश, पञ्चमीमें अभीष्टलाभ, षष्ठीमें व्याधि, सप्तमीमें अर्थलाभ, अष्टमीमें अस्त्रपीड़ा, नवमीमें भूमिलाभ, एकादशीमें अरोगिता, द्वादशीमें अशुभ, त्रयोदशीमें सर्वार्थसिद्धि, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमामें यात्रा करनेसे अशुभ है।

यमद्वितीया अर्थात् भाईदूजको यात्रा नहीं करनी चाहिये, करनेसे मृत्यु होती है। यात्राकालमें शुभ होनेके लिये दधिमङ्गलादि मङ्गलद्रव्यका कीर्त्तन, श्रवण, दर्शन और स्पर्शनसे क्रमशः अधिक फल होता है; अर्थात् कीर्त्तनसे श्रवणमें अधिक फल, श्रवणसे दर्शनमें अधिक और दर्शनसे स्पर्शमें और अधिक फल होगा।

दधि, घृत, दूर्वा, आतपतण्डुल, पूर्णकुम्भ, सिद्ध अन्न, श्वेतसर्षप, चन्दन, दर्पण, शङ्ख, मांस, मत्स्य, मृत्तिका, गोरोचना, गोमय, गोधूलि, देवमूर्त्ति, वीणा, फल, भद्रासन, पुष्प, अञ्जन, अलङ्कार, अस्त्र, ताम्बूल, यान, आसन, शराव, ध्वज, छत्र, व्यजन, वस्त्र, पद्म, भृङ्गार, प्रज्वलित अग्नि, हस्ती, छाग, कुशा, चामर, रत्न, सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, रङ्ग, मेष, औषध, मद्य और नूतन पल्लव ये सब द्रव्य यात्राकालमें दक्षिणकी ओर देखनेसे शुभ होता है।

यात्राकालमें नृत्यगीत और वेदध्वनि बहुत शुभ है। यात्राकालमें यदि कोई व्यक्ति खाली घड़ा ले कर यदि पथिकके साथ जाय और घड़ेको भर कर लौटे, तो पथिक भी कृतकार्य हो निर्विघ्न घर लौटता है।

अङ्गार, भस्म, काष्ठ, रक्त, कर्दम, कपास, तुष, अस्थि, विष्ठा, मलिन व्यक्ति, लौह, आवर्जनाराशि, कृष्णधान्य, प्रस्तर, केश, सर्प, तैल, गुड़, चर्म, वसा, शून्यभाण्ड, लवण, तृण, तक्र, श्रृङ्खल, वृष्टि और वायु ये सब यात्राकालमें शुभ नहीं हैं। यात्राकालमें ये सब द्रव्य देखनेसे अशुभ होता है। यदि यात्रा करके सवारी पर चढ़ते समय पैर फिसल जाय अथवा घरसे बाहर होते समय दरवाजे पर चोट लगे, तो उसे यात्रामें विघ्न होगा, ऐसा जानना चाहिये।

मार्जारयुद्ध, मार्जारशब्द, कुटुम्बका परस्पर विवाद, यह सब यात्राकालमें देखने वा सुननेसे उस यात्रामें मनःकष्ट होता है। ऐसी अवस्थामें जाना उचित नहीं। यात्राकालमें यदि रोदनका शब्द न सुन कर केवल शवकी दर्शन हो जाय, तो कार्यकी सिद्धि होती है। किन्तु गृहप्रवेशकालमें शव दर्शन होनेसे मृत्यु अथवा कठिन रोग होता है। यात्राकालमें कुल्ली करते समय यदि कुछ भी जल हठात् गलेमें उतर जाय अर्थात् पेटमें चला जाय, तो अभीष्टकार्यकी सिद्धि होती है।

गमनकालमें यदि सुन्दर, शुक्लवस्त्र और शुक्लमाला-

धारी तथा मधुरभाषी पुरुष अथवा स्त्रीसे भेंट हो जाय, तो कार्य सिद्ध होता है। यात्राकालमें हर्षयुक्त ब्राह्मण, वेश्या, कुमारी, बंधु, सुकेश मनुष्य, अश्वारूढ़ वा वृषारूढ इन सबका दर्शन करनेसे भी शुभ होता है। छत्रधारी, शुक्लवस्त्रपरिधारी, पुष्प और चन्दनादि द्वारा चर्चिताङ्ग, भोजनकार्यमें नियुक्त और पाठनिरत ब्राह्मण यात्राकालमें इन्हें देखनेसे सर्वार्थसिद्ध होता है। गमनकालमें पुरुष अथवा स्त्री हाथमें फल लिये सामने मिले, तो अभिलषित कार्य अति शीघ्र सिद्ध होगा।

हतगर्भ, अपमानित, अङ्गहीन, नग्न, अन्त्यज, तैलप्रलिप्त, रजस्वला स्त्री, गर्भवती, रोदनकारिणी, मलिनवेशधारी, उन्मत्त, विधवा, दीन, पंगु, मुक्तकेश, उग्रस्थित, गर्दभस्थ, महिषस्थ, संन्यासी और क्लीव यात्राकालमें ये सब देखनेसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती और उसे क्लेश होता है।

जिसके गमनकालमें पीछे या सामने खड़े कोई आदमी यदि 'जावो' ऐसा कहे, तो उसे सब प्रकारके मङ्गल और सन्तोषलाभ होता है। यात्राकालमें लाभ, जय, मंगल और अमंगल इत्यादि सूचक वाक्य द्वारा उन सब फलोंका शुभाशुभ स्थिर करना होगा।

यात्राके समय अग्रभागमें रोदनध्वनि सुनाई देनेसे उपद्रव, अग्निकोणमें भय, नैर्ऋतकोणमें सुनाई देनेसे युद्धमें पराजय और वायुकोणमें समृद्धिलाभ तथा पृष्ठदेशमें सुननेसे सन्तानकी हानि होती है। किन्तु यात्राकालमें क्रन्दनध्वनिनिवृत्ति सुननेसे लाभ तथा सम्मुख भागमें रोदन सुननेसे एवं शत्रुका क्रन्दन सुननेसे भी कार्यकी सिद्धि होती है। *यात्राकालमें गाय और शब्दहीन* शृगाल देखनेसे उसी समय कोई न कोई अमंगल होगा। बाईं ओर शृगालको जाते देखनेसे यात्रामें शुभ तथा रात्रिकालमें यदि बहुतसे शृगाल इकट्ठे हो कर बाईं ओर शब्द करें, तो भी शुभ होता है। यात्राकालमें बाईं ओर भ्रमरको देखनेसे भी शुभ होता है। गमनकालमें यदि अनुन्नत मस्तक सर्प अथवा वामभागमें खञ्जनखी दिखाई दे तो शुभ होगा। किन्तु आधे रास्तेमें यदि उन्नतमस्तक सर्प दिखाई दे, तो कभी भी आगे नहीं बढ़ना चाहिये। यहां तक राज्यलाभकी सम्भावना रहने पर भी लौट आना चाहिये। (शाकुनदीपिका)

समयप्रदीपमें लिखा है, कि यात्राकालमें निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर गमन करे, इससे कार्यकी सिद्धि होगी।

"धेनुर्वत्सप्रयुक्ता वृषगजतुरगा दक्षिणावर्त्तवह्नि-
दिव्यस्त्री पूर्णकुम्भा द्विजनृपगणिकाः पुष्पमालापताका।
सद्योमांसं घृतं वा दधिमधुरजतं काञ्चनं शुक्लधान्यं
दृष्ट्वा श्रुत्वा पठित्वा फलमिह लभते मानवो गन्तुकामः॥"
(समयप्रदीप)

सवत्साधेनु, वृष, गज, तुरग, दक्षिणावर्त्तवह्नि, दिव्यस्त्री, पूर्णकुम्भ, द्विज, नृप, वेश्या, पुष्पमाल्य, पताका, सद्योमांस, घृत, दधि, मधु, रजत, काञ्चन और शुक्लधान्य ये सब वस्तु देख कर वा इनका नाम सुन कर या साथ ले कर यात्रा करनेसे मनोरथ सिद्ध होता है।

यात्राकालमें यदि सामने रजक और पीछे नापित तथा आगे तेलका डब्बा दिखाई दे, तो यात्रा न करे। यदि बकरा जमीन पर लेटता हो, गाय डकरती हो, मनुष्य छींकता हो अथवा सामने क्लीव दिखाई दे, तो यात्रा रोक देनी चाहिये।

मृग, सर्प, वानर, विड़ाल, कुक्कुर, शूकर, पक्षी, नकुल और मूषिक यात्राकालमें दाहिनी ओर दिखाई देनेसे शुभ होता है।

कपास, औषध, तैल, पङ्क, अङ्गार, भुजङ्गम, मुक्तकेशव्यक्ति, रक्तमाल्य और नग्नादि ये सब देख कर यात्रा करनेसे अशुभ होता है।

यात्राकालमें राहुके भ्रमणके प्रति लक्ष्य करना भी उचित है। निम्नोक्त प्रकारसे राहुका भ्रमण स्थिर किया जाता है। दिनमानके आठवें भागका नाम यामार्द्ध है। वामावर्त्तमें अश्वगतिक्रमसे राहु प्रति याममें भ्रमण करता है। रविवारको आद्ययाममें पश्चिम, सोमवारको आद्ययाममें अग्निकोणमें, इसी प्रकार मङ्गलवारको वायुकोणमें, बुधवारको उत्तरमें, बृहस्पतिवारको दक्षिणमें, शुक्रवारको नैर्ऋतमें और शनिवारको ईशानकोणमें रहता है। यात्राके समय सम्मुखस्थित राहु स्थिर करके उसका परित्याग कर यात्रा करे। सम्मुखस्थ राहुमें यात्रा करनेसे बहुत अमंगल होता है।

जहां विशुद्ध दिन न मिले और जल्दी जाना हो वहां

शिवज्ञानके अनुसार यात्रा करनेसे शुभ होता है। यात्रामें शिवज्ञान यथा—

"माहेन्द्रे विजयो नित्यं अमृते कार्य शोभनम्।
वक्रे कार्यविलम्बः स्याच्छून्ये च मरणं ध्रुवम्॥
वैशाखादिश्रावणान्तं एकभावेन संवहेत्।
अमृतादि दिवारात्रौ चतुर्मासं यथा क्रमम्॥
याममानं दिवामाने ज्ञेयं सर्वत्र मासके।
तत् प्रमाणेन ज्ञातव्यं दण्डमानं विचक्षणैः।
रात्रिमानप्रमाणेन ज्ञेयो दण्डप्रमाणकः॥
न वारतिथिनक्षत्रं न योगकरणं तथा।
शिवज्ञानं समासाद्य सर्वं मुनिर्विचारयेत्॥" (ज्योतिःसारस०)

माहेन्द्र, अमृत, वक्र और शून्य यह चार योग प्रतिदिन चौबीसों घंटे रहते हैं। उनमेंसे माहेन्द्रयोगमें यात्रा करनेसे विजय, अमृतयोगमें कार्यसिद्धि, वक्रयोगमें कार्यनाश और शून्ययोगमें यात्रा करनेसे मृत्यु होती है।

देव-देवीकी यात्रा।

मास मासमें भगवान् विष्णुके उद्देशसे जो उत्सव किया जाता है, उसे भी यात्रा कहते हैं। वारह मासमें भगवान् विष्णुकी वारह प्रकारकी यात्रा कही गई है। जैसे,—वैशाखमासमें चन्दनोयात्रा, ज्येष्ठमें स्नापनी (स्नानयात्रा), आषाढ़में रथयात्रा, श्रावणमें शयनी, भाद्रमें दक्षिणपार्श्वीया, आश्विनमें वामपार्श्विका, कार्त्तिकमें उत्थानी, अग्रहायणमें छादनी, पौषमें पुष्याभिषेक, माघमें शाल्योदनी, फाल्गुनमें दोलयात्रा और चैत्रमासमें मदनभञ्जिका यात्रा। विष्णुको प्रीतिकामना करके इन सब यात्राविधिका अनुष्ठान करनेसे मुक्तिलाभ होता है।

वामकेश्वरतन्त्रमें देवी भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये वारह महीनेमें सोलह प्रकारकी यात्राका विषय लिखा है। जैसे,—वैशाखमासमें मञ्चयात्रा और चन्दनागुरुयात्रा, ज्यैष्ठमासमें महास्नानयात्रा, आषाढ़में दश दिन तक रथयात्रा, श्रावणमें वस्त्रभूषण और चामरादि द्वारा जलयात्रा, भाद्रमें तीन दिन तक झूलनयात्रा, आश्विनमें महापूजा, कार्त्तिकमें दोलयात्रा, अग्रहायणमें नवान्न, पौषमें वस्त्र, अलङ्कार और भूषणादि द्वारा अङ्गरागयात्रा, माघमें रटन्ती चतुर्दशी, फाल्गुनमें दोलकेलि और चैत्रमें दूतीयात्रा, रासयात्रा, वासन्ती और नलियात्रा। ये सब यात्रा करनेसे मुक्तिलाभ होता है।

यात्रा—बहुत प्राचीनकालसे भारतवर्षके नाना स्थानोंमें ही प्रकाश्य रङ्गभूमिमें वेषभूषासे भूषित और नाना साजोंसे सुसज्जित नरनारियोंके साथ गाजेबाजेसे कृष्ण-प्रसङ्ग या रासलीला करनेकी प्रथा चली आती है। पुराण आदि धर्मग्रन्थोंमें वर्णित भगवान्के अवतारकी लीला और चरित्रकी व्याख्या करना ही इस अभिनयका उद्देश्य है। धर्मप्राण हिन्दू उस देवचरित्रकी अलौकिक घटनाओंका स्मरण रखनेके लिये एक एक उत्सवका अनुष्ठान किया करते हैं। गीतवाद्यके साथ लीलोत्सव प्रसङ्गमें जो अभिनय होता है उसे वङ्गालमें यात्रा कहते हैं।

दश अवतारोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला ही सबकी अपेक्षा बहुत आदरकी चीज है। इसी लिये हिन्दूमात्र ही कृष्णलीलाकी घटनाको हृदयमें धारण करनेके लिये लीलामय भगवान्की लीलाके एक अंशका प्रदर्शन कर एक उत्सव करते आते हैं। सुतरां वङ्गालमें यात्रा कहनेसे उत्सवकालीन अभिनयका बोध होता है।

श्रीकृष्णके रासचक्रकी घटना रास-यात्राके नामसे भी प्रसिद्ध है। दोलयात्रा, रथयात्रा, गोष्ठयात्रा आदि देवलीलाकी घटनाओंको स्मरण करनेके लिये कितने ही लोग स्वतःप्रणोदित हो एक जगह एकत्र हो कर साधारणके सामने उन घटनाओंको दिखानेके लिये एक धारावाहिक चरित्र चित्र उपस्थित करते हैं। यह घटना ही उत्सव या यात्राके नामसे पुकारी जाती है। देवचरित्रका जो अंश अति गभीर पूजा आडम्बर और भक्तिके साथ आनन्दतरङ्गमें पड़ कर समाजमें प्रकटित होता है, वही 'यात्रा'-के नामसे प्रसिद्ध है।

इस देवचरित्रके व्याख्यान या अभिनयरूपी घटनाओंसे किस तरह सङ्गीताभिनयके आकारको यात्रा उत्पत्ति हुई थी, उसके ठीक ठीक तत्त्वकी खोज करना बहुत कठिन है। फिर केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि प्राचीन यात्राप्रथाका अनुकरण कर ही वर्त्तमान कृष्णयात्रा, रासलीला, रामयात्रा या रामलीला आदि लीलायें गठित हुई होंगी, क्योंकि जगन्नाथदेवकी या पुरीकी रथयात्रा और बौद्धोंकी बुद्ध-यात्रा आदि यात्राओंका

देखनेसे मालूम होता है, कि दो विभिन्न दूर देशीय लोगोंने किस तरह इस घटनाका अनुकरण किया था। होलिकोत्सवमें कृष्णको एक मञ्च पर बैठा कर जैसे युक्तप्रांतीय लोग माथेमें अबीर लगा कर गाते बजाते और घूमते हैं। उड़ीसेमें भी जगन्नाथदेवको ले कर इसी तरहसे घूमनेकी रीति है। देवताकी यह यात्रा ही यथार्थमें यात्रा है। कृष्णको नायक बना सभी अपनेको उनका सखा समझ उनकी लीलाके अंशका भागी होनेके लिये उत्सवमें योगदान करते हैं। इसी घटनाको यात्रा (Going in procession) कहते हैं। क्रमशः इस देवलीलामें जाना और योगदान करनेकी घटना इतनी सोमावद्ध हो गई थी, कि लोग साधारणको यह लीला दिखलानेकी अभिलाषा न कर एक ही स्थानमें बैठ कर लीला करने लगे। प्राचीन महोत्सवकी विषयीभूत प्रकरणावलीने धीरे धीरे सङ्कीर्ण हो कर वर्त्तमान लीला या यात्रा (अर्थात् एक जगह बैठ कर नृत्यगीतादि द्वारा देवलीला अभिनय) का रूप धारण किया है। इसका प्रकृष्ट उदाहरण भवभूतिके उत्तर-रामचरितादि नाटकमें दिखाई देता है। भवभूतिने लिखा है, कि कालप्रियनाथके उत्सवमें उत्तररामचरित, मालतीमाधव आदि नाटक अभिनीत हुये थे। इस पवित्र उत्सव या लीलामें किस तरह भांड़का नाच और रङ्गतमाशा आ कर घुस पड़ा था, उसका प्रकृष्ट निदर्शन हम नेपालकी देवलोला प्रकरणोपलक्षमें देखते हैं। इस समय नेपालमें मत्स्येन्द्रनाथ, भैरव आदिकी यात्राओंमें जो अभिनय दिखाया जाता था, उसकी आलोचना करनेसे बंगालकी यात्रारूपी संगीताभिनयका पूर्वादर्श कुछ मालूम हो जाता है।

नेपालकी नेवार जातिमें अब भी यात्राभिधेय जो सब उत्सव प्रचलित हैं, उनमें भैरवयात्रा, गाइयात्रा, बांढ़ायात्रा (नेपालमें बौद्धगुरुओंको बांढा कहते हैं)। इन्द्रयात्रा, बड़े और छोटे मत्स्येन्द्रनाथकी यात्रा और नेतादेवीकी यात्रा ही प्रधान है।

वहांकी भैरवयात्रामें पहले भैरव और भैरवीमूर्त्ति पृथक् पृथक् रूपमें स्थापित कर नगरका परिभ्रमण कराया जाता है। यह उत्सव रथयात्रासे मिलता जुलता है। इसके बाद दरबारकेसामनेके भैरव-मन्दिरमें एक लकड़ी खड़ी कर लिङ्गयात्रा होती है। भैंसे आदिकी बलि दे कर पूजा की जाती है। भैरवीके उद्देश्यसे नेतादेवीको यात्रा और देवी यात्राके नामसे जो दो उत्सव वैशाखी शुक्लाचतुर्दशीको होते हैं, उनमें स्वयं नेपालनरेश और कई सरदार उपस्थित होते हैं। इस उत्सवमें रातको जो अभिनय होता है, वह बङ्गालमें होनेवाली यात्राके समान ही है।

रातको वहां बारह नचनिये छोकड़ोंको नकावपोश डाल कर धार्मिक साजोंसे सुसज्जित करते हैं। इसी तरह दूसरे चार आदमी भैरव, भैरवी या काली, वाराही और कुमारीका साज पहन कर मन्दिरके सामने आ कर अभिनय करते हैं। ये सभी बहुमूल्य साजोंसे सज्जित और अलङ्कारोंसे अलंकृत हो कर यहां आते हैं। रात्रिको ही ये नाचते गाते हैं और सवेरा होते ही यह अभिनय भङ्ग हो जाता है।

नयाकोटकी देवीयात्रा अति प्रसिद्ध है। इस समय त्रिशूलाके तीरके देवीघाट पर भैरवीदेवीकी मूर्त्ति स्थापित करते हैं। पांच दिनों तक दिनमें पूजा और रातको नृत्यगीत सम्पन्न होता है। इस समय दो धर्मीको भैरव और भैरवी बना कर रङ्गभूमिमें लाते हैं। साधारण हिन्दू और बौद्धगण उनको देवता समझ कर पूजा और भक्ति करते हैं। पूजाके समय जो भैंसेकी बलि दो जाती है, उसका ताजा रक्त वे पीते हैं।

सिवा इसके यहां रथयात्राके नामसे जो उत्सव प्रचलित है, वह बहुत दिनोंका पुराना नहीं है। सन् १७४०-५० ई०के बीच राजा जयप्रकाशमल्लके आदेशसे यह यात्रा या उत्सव प्रचलित हुआ। प्रवाद है, कि सप्तनवर्षीय कोई बांढ़ा कुमारीने अपनेको 'कुमारी' कह कर परिचित करनेकी चेष्टा की। राजाने इस बालिकाको राज्यसे निकाल दिया। इस दिन रातको रानी वायुरोगसे बकने लगीं। उनके मुंहसे निर्वासित बालिकाके देवीत्वकी बात सुन राजाने उस बालिकाको सैन्य भेज कुमारी समझ कर अपने राज्यमें बुला लिया। उसी समयसे उस कन्याकी घटनाका स्मरण रखनेके लिये एक रथयात्राका उत्सव होने लगा। इस उत्सवके लिये एक जागीर दी गई है। इसी जागीरकी आयसे प्रतिवर्षइस

उत्सवका खर्च चलता है। यह कुमारी नेपालमें 'अष्टमातृका'के रूपमें पूजी जाती है।

इस समय यह रथयात्रा उत्सव यथार्थमें यात्रामें रूपान्तरित हुआ है। राजाने अन्यान्य देवीप्रतिमाके द्वारपाल या भैरवको तरह इस कन्याके भी द्वारपाल-स्वरूप दो बांढ़ा बालकको सजा कर 'गणेश और महाकाल' निकाला था। उसी समयसे यह उत्सव उसी भांतिसे मनाया जाता है। इस समय बांढ़ावंशके दो बालक और एक बालिका हर तीसरे वर्ष इस उत्सवके लिये चुने जाते हैं। इनका भरणपोषण उसी जागीरकी आयसे होता है, जो राजाने दे रखा है। बालकोंको डेढ़ हजारके हिसाबसे और बालिकाको तीन हजारके हिसाबसे वार्षिक मिलता है। किंतु उत्सवका खर्च भी इन लोगोंको इसी रकमसे ही देनी पड़ती है। इस तरह ये तीन या चार वर्षोंके बाद नये-नये चुने जाते हैं। उस समय पुराने तीनों बालक बालिका अपने समाजमें मिल जाते हैं और नये निर्वाचित तीन बालक बालिका निर्दिष्टकाल तक दरबारके सामनेके देवताके मकानमें आवद्ध रहते हैं। यह उत्सव पश्चिम प्रान्तीय रामलीलासे बहुत कुछ मिलता जुलता है। उसमें भी ऐसे ही राम, लक्ष्मण और सीताके लिये तीन बालिका और बालकोंका प्रयोजन होता है।

प्राचीन देवलीला-यात्राकी छायासे किस तरह वर्त्तमान यात्रा गठित हुई थी, उसका कुछ आभास नेपालकी यात्रापद्धतिके अनुसरण करनेसे मिलता है। नेपालका यात्राभिनय अति प्राचीन प्रथाका ही नमूना है, वह पुराविद्मात्र ही स्वीकार करते हैं। इसी तरह पिछले समय उत्तर-पश्चिमप्रदेशमें श्रीकृष्णका लीलाभिनय कई अंशोंमें विकृत होता आ रहा था, वर्त्तमान समयमें जो बालक कृष्णलीलाका अभिनय करते हैं उनको रासधारी कहते हैं। बङ्गालमें जिस तरहसे अभिनय करनेवाले नेपथ्यसे रङ्गभूमिमें आते और अपने कर्त्तव्यको पूरा कर चले जाते हैं, युक्तप्रदेशमें ये ऐसा नहीं करते। उनमें कोई नन्द, कोई यशोदा, कोई कृष्ण, कोई श्रीमती राधाका रूप बना कर एक ही समय आते और अपने अपने कर्त्तव्योंका पालन करते रहते हैं। रासधारी रामके सिवा अन्यान्य कृष्णलीलाओंको भी करते रहते हैं।

श्रीचैतन्यदेवके समयमें जो सब यात्रा या देवलीलाओंका अभिनय होता था, वे कुछ अंशोंमें उसीके अनुरूप हैं, इसमें सन्देह नहीं। वैष्णव अधिकारियोंकी रासयात्रा, कृष्णयात्रा, चण्डीलीला (यात्रा) आदि इस प्राचीन यात्राके आदर्श पर गठित होने पर भी इसमें यथेष्ट विशेषत्व और विभिन्नता दिखाई देती थी। आज कल इन देवलीलाओंके जिस तरह चरित्राभिनय होते हैं, वे एक सम्पूर्ण नये सांचेमें ढाले मालूम होते हैं। कितने दिनोंसे और किसके द्वारा यह नवयात्रापद्धति प्रचलित हुई है, उसका जानना सहज बात नहीं।

चैतन्य महाप्रभुके बाद इस समय तक वैष्णव अधिकारियों द्वारा कृष्णलीला सम्बन्धीय जो अभिनय कार्य होता था, वह कालीय-दमनके नामसे बङ्गालमे प्रसिद्ध था। कालीय झीलमें कालीयनागको श्रीकृष्णने नाथा था, उसी घटनाके आधार पर पहले एक यात्रा अभिनीत हुई होगी, उसीका नाम 'कालीयदमन' हुआ होगा। इसी समयसे कृष्णलीला-सम्बन्धीय यात्राने ही कालीयदमनकी ख्याति प्राप्त कर ली है।

ऐसी कोई बात नहीं, कि केवल कृष्णलीला ही बङ्गालमें यात्राका प्रधान विषय बन गई थी। बङ्गाली राम आदि अवतारोंको लीला और चरित्रका अभिनय भी करते आते हैं।

प्राचीन यात्रा।

दक्षिणके महिसुर और त्रिवांकुड़ राज्यमें बहुत वर्ष पहलेसे यात्राका प्रथा प्रचलित है। नमूसुत्तिरो (नमूपुत्रीय ब्राह्मणोंमें सामाजिक धर्मनाट्याभिनय करनेके लिये अट्ठारह संघ या सम्प्रदाय हैं। यह अभिनय 'यात्राकली' और 'कथाकली' नामसे दो तरहका है।

यात्राकली उत्सवके दिन सन्ध्या समय इसी श्रेणीके ब्राह्मण एकत्र हो कर भगवतीके लिये पवित्र दीप जलानेके बाद वे किसी दालान या बड़े कमरेमें गणपति और शिवकी स्तुति गान करते हैं। इसीके साथ भूत पिशाचोंका नाच और भगवतीका गान भी होता

है। इसके बाद 'यात्राकली'-के नम्बुत्तिरि नामक ब्राह्मण तरह तरहका कौतुक किया करते हैं।

मलबारके रहनेवाले नम्बुत्तियोंके अत्यन्त प्रिय कथाकलिका अभिनय प्रायः ३०० वर्ष पहले कोत्तरकर-वंशीय एक राजाने चलाया था। राम-नाट्यका अभिनय ही इनका प्रधान कार्य है। रातको ८।१० घंटे तक यह अभिनय होता है। एक एक आदमी राम, सीता, नारद मुनि, सूर्पनखा, भांड़ या विदुषक, क्षत्रिय, असुर, राक्षस, वानर, पक्षी, किरात, राक्षसी और क्षत्रिय-रमणोकी भूमिका किया करते हैं। उनकी वेशभूषा और हावभाव देखनेसे वे किस अंशका अभिनय करते हैं, यह स्पष्ट ही समझमें आता है। रङ्गस्थलमें आ कर वे अपने अपने अंश-की आवृत्ति कर जाते हैं। संगीतके लिये 'भागवतर' नाम का एक अलग आदमी रहता है। जहां गानेका काम पड़ता है, वहां यही व्यक्ति गाता है। कहीं कहीं जनताका ध्यान आकृष्ट करने तथा उसके मनोरञ्जनके लिये पुतलीके नाचकी तरह रंगभूमिमें निर्वाक् अभिनय (Dumb Show) भी होता है। इस तरहकी यात्राका अभिनय अनेकांशमें आज कलके थियेटरोंकी तरह ही कहा जा सकता है। सिवा इसके 'यात्राकली'-की तरह यहां 'ईश्वामस्तुकली' नामक एक और यात्रागानकी प्रथा दिखाई देती है। इसमें एक एक आदमी रंगभूमिमें आ कर अपने पार्ट किया करते हैं।

अयोध्यापति भगवान् रामचन्द्रकी तरह अथवा भगवान् श्रीकृष्णकी तरह अलौकिक क्षमताशाली राजा और महापुरुष प्रधानतः नाटकके नायक हुआ करते हैं। अतएव रामलीला या कृष्णलीला, गीत, नाट्य दिखाना ही यात्राका प्रधान विषय हो गया था। कान्यकुब्ज या कनौजके राजा हर्षवर्द्धन और शाकम्भरीके चाहमान-वंशीय राजा विग्रहपाल जिस तरह सबके सामने अपने अपने पार्टोंका अभिनय कर साधारणकी तृप्ति किया करते थे, ऐसे ही उत्तर पश्चिमप्रदेशके कोई संभ्रान्त-वंशमें और तो क्या मणिपुर-राजवंशमें भी अपने अपने परिवारमें अभिनेता और अभिनेत्री निर्वाचन कर कृष्णलीलाकी रासयात्राका अभिनय करनेकी चिरपद्धति प्रचलित है।

हिन्दू-राजाओंके समयसे भारतवर्षमें सर्वत्र यात्रा या लीलाओंका समादर होता है। बङ्गालमें भी रास-यात्राकी सृष्टि कुछ कम दिनकी नहीं। कुछ लोग सम-झते हैं, कि रामलीला या यात्राके बहुत दिन बाद कृष्ण-लीला या यात्राकी श्रीचैतन्यदेवके समयसे सृष्टि हुई है। सदलबल श्रीचैतन्य महाप्रभु कृष्णलीलाका अभिनय करते थे। उनका राधाभाव देख कर आपामर साधा-रण विमोहित हो जाते थे। जनताके सामने जब उनका वह प्रेममय अभिनय होता था, उस लोगोंको विश्वास हो जाता था, कि उनकी भाषा बंगला है। इसी समय-से वङ्गभाषाकी उन्नति तथा बङ्गभाषामें प्रकृत नाटक-रचनाका समय आरम्भ हुआ।

लोचनदासके श्रीचैतन्यमङ्गलमें लिखा है, कि चैतन्य-देवने गोपिकारूप धारण कर श्रीचन्द्रशेखराचार्यके घर नाच किया था। यहां श्रीवासने नारदके आवेशसे प्रभुके चरणमें प्रणाम कर अपनेको दास कह कर परिचय दिया था। गदाधर, श्रीनिवास, हरिदास, अद्वैताचार्य आदि इस अभिनयमें योगदान किया था। लोचनदासने वैष्णव-के उस समयके भाव और वेशभूषा आदिको भी वैसी ही उल्लेख किया है।

कृष्णदास कविराज नामक एक बंगालीके रचे श्रीचैतन्यचरितामृतमें लिखा है—एक दिन श्रीवासके गृहमें महाप्रभुने आवेशमें विभोर हो वंशीको प्रार्थना की। श्रीवासने कहा, कि गोपियोंने वंशी हर ले गई हैं। इसी सम्बन्धमें श्रीवासाचार्य महाप्रभुकी वृन्दावन-लीला, वनविहार, रासोत्सव आदि कृष्णलीला गान सुनाने पर बाध्य हुए थे। यह सुन कर महाप्रभु निमाई-एक दिन रासलीला की थी।

इसी रासलीला या यात्रा तथा नौकाविहार यात्राका अनुकरण कर वर्त्तमान यात्राकी सृष्टि हुई है।

युक्तप्रदेश तथा विहारमें जिस तरह रामलीला होती है, पहले रासलीला भी वैसे ही होती थी अर्थात् एक अङ्कका अभिनय एक ही जगह पूर्ण कर दूसरी जगह दूसरे अङ्कको पूरा किया जाता था। दर्शकमण्डली भी यात्राकारियोंके पीछे पीछे उनका अनुकरण करती था।

इस तरहकी प्राचीन प्रथाके अनुसार अब भी रासलीला होती है ; रासमञ्च, यमुनाविहार, कालीयदमन, मानभङ्ग आदि दिखलानेके लिये विभिन्न स्थानका निरूपण किया जाता है। इसी नियमके अनुसार सन् १८३१ ई०में कलकत्तेमें नवीनचन्द्र वसुके घर विद्यासुन्दर नाटकका अभिनय हुआ था। उस समय मालिनका घर, राज-प्रासाद, सुन्दरका सुरङ्ग, विद्याका मन्दिर आदि स्थान स्वतन्त्ररूपसे बने थे। बहुतेरे उसे बंगलाका रङ्गमञ्चीय आदि अभिनय (First Theatrical performance) कहा करते हैं। किन्तु यह सब तरहसे प्राचीन रासयाता-के अनुसार ही अभिनीत हुआ था।

यद्यपि हम चैतन्यके समसामयिक या तदभिनीत किसी नाटकका नमूना नहीं पाते हैं, तथापि हम कह सकते हैं, कि श्रीचैतन्यके प्राणोन्मादकर कृष्णलीला-गीतिका अभिनय सन्दर्शन कर या उसके विवरणसे अवगत हो कर तत्परवर्त्ती वैष्णवग्रन्थकार नाटककी रचना करने लगे। उनमें वैष्णवकवि लोचनदासके (१५२३-१५८६) जगन्नाथवल्लभ, यदुनन्दनदासके (१६०७ ई०) रूप गोस्वामीकृत विदग्धमाधवका बङ्गा-नुवाद (राधाकृष्ण-लीलाकदम्ब) और प्रेमदासके सन् १७१२ ई०में लौकिक भाषामें अनुदित चैतन्यचन्द्रोदय-कौमुदी उल्लेखयोग्य है। ये सब ग्रन्थ मूलग्रन्थके पया-रादि छन्दोंका अनुवादमात है।

यह अभिनयके लिये कितना उपयोगी हुआ था, कहा जा नहीं सकता।

१८वीं शताब्दीसे बङ्गालमें याताका आदर बढ़ने लगा। इस समय विष्णुपुर, वर्द्धमान, वीरभूमि, यशो-हर (जसोर) और नवद्वीप या नदिया जिलोंमें एक दो याताकारियोंका आविर्भाव हुआ था। इन्होंने नाटकके एक एक अंशको ले कर छोटे छोटे नाटकोंकी रचना की थी। इनका वक्तृतांश पद्यमें लिखा जाता था। फिर भी ये बहुत छोटे छोटे पद्य होते थे। ऐसे नाटकोंके अधिक भाग पद्यसे परिपूर्ण होते थे। यथार्थमें इन्हें नाटक न कह नाटकको छाया कह सकते हैं। उस समय महासमारोहसे ये सब अद्भुत नाटक किसी धनी व्यक्तिके घर किये जाते थे।

हमें जितने प्राचीन याताके अधिकारियोंके नाम मिले हैं, वे सब प्रायः वैष्णव थे। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि उस समय उनका कृष्णप्रेमलीलाका गान करना अभिप्रेत हो गया था। कुछ वैष्णव अधिकारी कृष्णलीलाका भावात्मक 'निमाई-संन्यास' गा कर भी सबको विमोहित करते थे। प्रारम्भमें ही हमने कहा है, कि श्रीकृष्णयाताका नाम कालीयदमन था। हां, यह स्वीकार्य्य है, कि इस याताके शुद्ध नामोंके अर्थकी सीमाबद्ध न थी। मानभङ्ग, नौकाविहार, कंसवध, प्रभास आदि श्रीकृष्णकी सब तरहकी लीला ही इस 'कालीयदमन' याताके नामसे अभिनीत होते थे। प्रत्येक याताभिनयके सबसे पहले 'गौरचन्द्रिका' पाठ होता था। वैष्णवअधिकारी अपने इष्टदेव गौराङ्गचन्द्रके माहात्म्य गानेके लिये ही पहले गौरचन्द्रिका गाते थे। इससे यह अनुमान किया जा सकता है, कि महाप्रभु श्रीगौराङ्गचन्द्रके परलोकगमन करनेके बाद लीलाओंका वर्त्तमान रूप हुआ है।

पहलेके याता-दलमें रामलीला (याता) के समय उस स्थानके एक कोनेमें 'अशोकवनमें सीताको बैठा कर रामका अभिनय' अथवा कृष्णलीलाके 'मानभङ्ग' में माननीय राधाको एक स्थानमें बैठा कर रङ्गभूमिमें ही कृष्णवृन्दा-संवाद होता था या एक बगलमें ही यह संवाद पूर्ण होता था। ऐसे स्थलमें सीता और राधाके बैठनेके स्थानमें फूल और लता-पत्ता दे कर एक स्वतन्त्र मञ्च बनाया जाता था। किसी किसी याताके आसरे पर ही स्वतन्त्र भावसे दुर्गापूजा परिचालित हुई थी।

आधुनिक याता।

पहले नाट्यमन्दिरमें ही याता अभिनीत होती थी। इस समय घरके आंगनमें नाट्यमन्दिर, चण्डीमण्डपमें अथवा बगीचोंमें घेर कर मध्यस्थलमें मेज पर याता होती है। ये स्थान उस समयके Amphitheater-के अनुरूप ही दिखाई देते हैं। विशेषता यही है, कि इसमें दृश्य पट आदिकी अवतारणा नहीं की जाती।

रङ्गालय शब्दमें विशेष विवरण देखो।

पहलेके कीर्त्तन, कवि और पांचाली गानका ढंग, रंग और गीतभावने वर्त्तमान यातामें प्रवेश किया है।

पहलेके यात्रा-सम्प्रदायके गीतोंमें जिन सब सुरोंकी संयोजना होती थी, वह सम्पूर्णरूपसे कविगानके ही टूटा हुआ सुर रहता था। कविका सखी संवादगान बहुत कुछ अंग्रेजी 'अपेरा'की तरह है। फिर, उसमें भिन्न-भिन्न व्यक्तिका गान भिन्न-भिन्न अभिनेतृ द्वारा गीत न गाया जा कर बहुत लोग एक साथ गीत गाया करते हैं। साथ ही उत्कृष्ट ढोलढाकके बाजेसे कान बहरा बन जाता है। किन्तु इस समयकी यात्रामें कविका टूटा सुर-रहने पर भी ढोल मंजीरेका वैसा घोर आड म्बर नहीं दिखाई देता। यात्राका ढोलक अलग है केवल युद्धके समय ढोलककी भीषण आवाज होती थी।

श्रीकृष्णकी यात्रामें प्राचीन और प्रधान अधिकारियोंमें परमानन्द अधिकारीका नाम सबसे प्रसिद्ध है। वीरभूममें इनका वास था। इनके समकालीन किसी और अधिकारीका नाम नहीं मिलता। ये १८वीं शताब्दीमें बङ्गालमें विद्यमान थे। इसके बाद श्रीदामसुबल अधिकारका नाम मिलता है। ये भी कृष्णलीलाविषय यात्रामें बहुत नाम कमा गये हैं। इन कविके समसामयिक लोचन अधिकारीने 'अक्रूरसंवाद' और 'निमाई संन्यास' गा गा कर श्रोताओंको विमोहित किया था। कहा गया है, कि इन्होंने कलकत्तेके विख्यात वनमाली सरकार और महाराज नवकृष्ण बहादुरके घरमें गा कर बहुत धन पारितोषिक पाया था। इस समय जिरेट ग्रामके अधिवासी बदन अधिकारीके यात्रादलने प्रतिष्ठालाभ की थी। कलकत्तेके दूसरे पार गङ्गाके किनारे शालिखाग्राममें ये रहते थे। सुप्रसिद्ध गायक परमानन्दसे इन्होंने गीत सीखा था और कुछ दिनों तक उनके दलके बालकोंमें नौकर थे। कुछ लोग कहते हैं, कि ये श्रीदाम सुबलके दलमें नौकर थे। बदन भावविभोर और कृष्णके प्रेमरसके स्वादी थे। देवलीलाके गाने गाते गाते इनके दोनों नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। सुप्रसिद्ध कृष्णलीला-यात्रादलके गायक गोविन्द अधिकारी इनके दलके एक गायक थे।

सिवा इनके कांटोयावासी पीताम्बर अधिकारी और विक्रमपुरनिवासी कालाचान्द पाल श्रीकृष्णयात्राकी अवनतिके समय अपने रचे हुए गानका स्वर बड़ी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। पताइहाट या पाइताहाटके प्रेमचांद अधिकारी महीरावणवधकी यात्रा करते थे और इस कार्यमें आप अपने समयके अद्वितीय कहे जाते थे। थरकाटा प्रेमचांद नामसे और एक सुप्रसिद्ध यात्रा गायकका नाम मिलाता है। ये दोनों आदमी ही भिन्न व्यक्ति हैं; लोगोंकी ऐसी ही धारणा है। बांकुड़ाके अन्तर्गत रामजीवनपुर-निवासी आनन्द अधिकारी और जयचन्द्र अधिकारी यात्रागमन गा कर लब्धप्रतिष्ठ हुए थे। इन सब लब्ध नाम यात्रादलके सिवा उस समय और भी अनेक सुदल गठित हुए थे। उनके नाम लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं। फरासडाङ्गाके गुरुप्रसाद वल्लभ अति उज्ज्वल दण्डीयात्रा गान करते थे। इनकी मृत्युके बाद इनके पुत्र व्रजवल्लभ अधिकारीने इस दलको रखा था, किन्तु ये विशेष ख्यातिलाभ नहीं कर सके। इस समय इनके समकालीन पश्चिम वर्द्धमानके रहनेवाले लाउसेन बड़ाल, 'मनसाका भासान' गाना गाते थे। बड़ाल अधिकारी हरिश्चन्द्रकी अपेक्षा मनसाकी यात्रामें ही विशेषरूपसे लब्धप्रतिष्ठित हुए थे। कृष्णयात्रामें भी अधिकारी ही दूतीका साज साजते थे।

इस समय यात्रा या लीलाकारियों तथा नाटक खेलनेवालोंकी जैसी पोशाक हुई है, वैसी पोशाक पहलेके लीलाकारियोंकी न थी। उस समय जब जटाकी नकल करनी होती थी, तब पटुएकी रस्सीसे ही काम चलता था। मुनि गोसाईं आदिकी दाढ़ी और मूंछ भी पटुएसे ही बनती थी। स्त्रियोंके केशकी नकल इस पटुएसे ही की जाती थी। कृष्णलीला अभिनयके समय वक्तृताके अंशमें सुर रहता था। कितने ही हास्योद्दीपक चित्र सामने उपस्थित रहने पर भी उस समय केवल एक गानेके जोरसे ही जनताका चित्ताकर्षित होता था, धर्मरस, काव्यरस, सङ्गीतरस और नाट्यरसका अनुभव करा कर अभिनयकार्य सम्पादन करनेसे यथार्थ ही दर्शक और श्रोताओंका मन आकृष्ट हुआ करता है। यात्राके सङ्गीत और बाजा आदि कार्य प्रकृतरूप ताल, लय और तान मानके साथ सम्पन्न होने पर वास्तव ही श्रोताओंका चित्त आकर्षित हुआ करता था।

वङ्गालके आदि 'कालायदमन' लीलामें दान, मान, माथुर, अक्रूरसंवाद, उद्दवसंवाद, सुवलसंवाद आदि पार्ट अभिनीत होते थे। इसमें खोल, करताल और बेहला तथा कई सामान्य साज ही उनके उपकरण रहते थे। साजोंमें कृष्णको पोशाक और चूड़ा तथा यशोमती, वृन्दासखी और गोपवालकोंके पहनने लायक एक रंगीन कपड़े का घेरदार बनाया जाता था। उसमें पेशवाजकी तरह किनारे पर जरीका काम किया जाता था। उस समयकी कृष्णयात्रामें गौरचन्द्री पाठके वाद कृष्णका नाच और उसके वाद मुनि गोंसाईंका आगमन होता था।

पश्चिम-वङ्गालकी तरह पूर्व-बङ्गालमें भी कृष्णयात्राका अभिनयक्षेत्र हो गया था। किन्तु पूर्व-वङ्गालके यात्रावाले कवियोंके विवरण संगृहीत न होनेसे उनके नाम यहां सन्निवेशित किये न जा सके। पिछले समयमें जिन्होंने यात्रा सम्प्रदायका नेतृत्व किया था, उनका नाम है:—कृष्णकमलगोस्वामी। यथार्थमें कृष्णकमल पूर्व-वङ्गालके अधिवासी नहीं थे। कार्यवश ढाके जा कर अपने गुणोंसे उन्होंने वहां अपनी ख्याति कर ली थी। सन् १८१० ई०में कृष्णकमलका जन्म हुआ था। सात वर्षको अवस्थामें पिताके साथ वृन्दावन जा कर उन्होंने व्याकरणकी शिक्षा पाई। वहां छः वर्ष तक रहे, फिर अपनी जन्मभूमि भाजनघाट जो नदिया जिलेमें है आ कर नवद्वीपके संस्कृत टोलमें पढ़ने लगे। सन् १८३० ई०के लगभग उन्होंने 'निमाईसंन्यास' नामक यात्राकी पुस्तक बनाई और उसके अभिनयसे नदियाके अधिवासियोंको विमोहित किया। राजा राममोहनरायके द्वारा सम्पादित संवादकौमुदी पढ़नेसे मालूम होता है, कि इनका प्रायः १० वर्ष पहले सन् १८२१ ई०में कलकत्तेमें 'कलिराजाकी यात्रा' नामक नाटक अभिनीत हो चुका था।

इसके वाद सुकवि कृष्णकमलने ढाके जा कर 'स्वप्नविलास', 'राइउन्मादिनी', 'विचित्रविलास', 'भरतमिलन', 'सुबलसंवाद', 'नन्दविदाय' आदि गीताभिनय प्रकाशित कर वहांकी जनताका चित्तापहरण किया था।

कृष्णकमल गोस्वामी जिस समय पूर्ववङ्गको अपने अभिनयोंसे लोगोंको विमोहित कर रहे थे, ठीक उसी समकालीन कलकत्ते महानगरीमें वदन अधिकारी, गोविन्दअधिकारी आदि मनुष्योंने यात्राका व्यवसाय चलाया था। वदन वृद्ध होने पर भी अपने हाथमें बेहला ले कृष्णप्रेमके गानोंको गा कर दर्शकोंका चित्त आकर्षित किया था। गोविन्दके गानोंने वङ्गालमें एक विमोहिनी शक्तिका विस्तार कर दिया था।

कालीयदमन-यात्राके समयमें ही कलकत्ते और इसके उत्तर और दक्षिण उपकण्ठद्वय शौखियान विद्यासुन्दरके गानका प्रादुर्भाव दिखाई देता है। सन् १८२२ ई०में वराहनगरके रामजय मुखोपाध्यायके पुत्र ठाकुरदास मुखोपाध्यायने विद्यासुन्दरके दलको प्रतिष्ठा की थी। ठाकुरदास वाबूके इस दलगठनके प्रायः २० वर्ष पहले कलकत्ता-वहुबाजारके रहनेवाले धनी और सम्भ्रान्त वंशादि भद्रमण्डली द्वारा शौखके विद्यासुन्दरको यात्रा अभिनीत हुई। यह दल वराहनगरकी तरह प्रतिष्ठालाभ कर न सका।

जब वङ्गालमें शौखिया और पेशेदार यात्राकारियोंका विशेष प्रादुर्भाव हुआ, तब चन्दननगर या फरासडङ्गा ही इसका केन्द्र बन गया था। सुना जाता है, कि चन्दननगर या चुंचुड़ानिवासी एक सङ्गीतज्ञ व्यक्ति इस समय नृत्यगीतादिकी आलोचनामें नियुक्त हो कर खेमटा ढङ्गका नाच उद्भावन किया था। मदन मास्टर आदि गुणी लोगोंने भी चन्दननगरके सङ्गीतालोचनाकी सहयोगिता कर यात्राका गाना, सुर, लय, तान आदि विषयोंमें वहुत उत्कर्षसाधन किया था। इसके वाद पानीहाटीनिवासी मोहन मुखोपाध्याय नृत्य-शिक्षा कर कलकत्तेकी नाचवाली महलमें शिक्षा देते थे। खेमटा नाचमें मोहनवाबू अद्वितीय थे। सुरका लय, विपर्ययके साथ नये ढङ्गका 'खेमटानृत्य'में मोहनबाबूने विशेष कृतित्व दिखाया था। इसके वाद केशीने इस नाचका अभ्यास कर गोपाल उड़ियाकी विद्यासुन्दर-यात्रामें यह नाच दिखलाया। केशी गोपालदलमें मालिनका पार्ट करता था। केशीकी तरह नृत्यगानमें पटु उस दलमें कोई मालिनका पार्ट करनेवाला नहीं था।

किसी किसी आदमीके मुंहसे सुना जाता है, कि सुप्रसिद्ध विद्यासुन्दरका नाटक गानेवाला गोपालदास

उड़िया कलकत्तानिवासी वीरनृसिंह मल्लिकका नौकर था। उक्त वीरनृसिंह महोशयने बहुत धन खर्च कर इस दलका संगठन किया था। सिंगुड़निवासी भैरवचन्द्र हालदारने इस अंशके गाने आदिकी रचना की थी। बाबूको अपने मकान (इस समयका Spence Hotel) बेंच देनेसे एक लाखसे अधिक रुपया मिला। इसी धनसे यात्राका खर्च चलता था। केवल तीन आसर गाने हुए थे।

तदनन्तर टीकाके सुप्रसिद्ध जमींदार मुन्सी वैकुण्ठनाथराय चौधरी महाशयके अनुग्रहसे वहां एक सखका दल कायम हुआ। टाकी दलके समय हवड़ा जिलेके अन्तर्गत कोणाके जमींदार दीननाथ चौधरी द्वारा प्रतिष्ठित एक शौकीनोदलका नाम बहुत फैल गया। उस दलका अभिनीत' हरिश्चन्द्रका पाला' कवि ठाकुरदास द्वारा रचा गया है। जब तक वह दल रहा, तब तक हरिचन्द्रका ही पाला किया करता था।

दुगो घड़ेल (दुर्गाचरण घड़ियाल) की यात्राका दल नीलकमलके कुछ बाद ही प्रसिद्ध हुआ। यह दत्त वंशीय कायस्थ-सन्तान थे। नलदमयन्ती, कलङ्कभञ्जन और श्रीमन्तका मशान नामक तीन पाला ही यह गा गये हैं। दुर्गाचरणके दलमें वयोवृद्ध दोयारके बदले सुमधुरकण्ठ बालक दोयारकी प्रसिद्धि देखी जाती है। दो दो करके चारों ओर अब आठ लड़के खड़े होते और गान शुरू करते थे, तब श्रोताके आनन्दकी सीमा न रहती थी।

दुगो घड़ेलेकी मृत्युके बाद लोकनाथदास उर्फ लोकाधोपा (यह चासाधोपा जातिका और कलकत्तेके बेणेपुकुरका रहनेवाला था)-ने अपना जीवनयात्रामें ही व्यतीत किया। ४०।४२ वर्ष यात्रा गा कर वे लाखपति हो गये हैं। लोकनाथके गीतकी ऐसी प्रसिद्धि थी, कि ५।६ कोस दूरसे लोग उनका गीत सुनने आते थे।

नीलकमल सिंहका गाना ठीक यात्राके जैसा होता था। उस समय वेशभूषाकी उतनी परिपाटी न थी। राजाका परिच्छद कमरबंद, ढोला पाजामा, चपकन, कमरबंद वा कमरपेटी और सिरकी पगड़ी, होता था। कभी कभी सिर पर सफेद कपड़ेकी पगड़ी बांध कर भी राजा रङ्गभूमिमें उतरते थे। राजपुत्र भी ढीला पाजामा, चपकन और सिर पर जड़ीकी टोपी पहन कर बाहर निकलते थे। चोली वा ढकाई साड़ी रानी अथवा राजकन्याओंकी पोशाक थी। ये सब कपड़े या अलङ्कारादि प्रायः यात्रा करानेवालोंसे ही ले लिया करते थे, यात्राभङ्गके बाद लौटा देते थे। इस समय जिन सब दलोंकी यात्रा हुई थी, वे प्रायः अपने अपने अध्यक्ष अथवा पृष्ठपोषक अथवा गृहस्थसे बहुमूल्य सोनेका अलङ्कार, मोतीकी माला और परिच्छदादि ले कर यात्रा करते थे।

पूर्वपद्धतिके अनुसार जो सब कालियदमन यात्रा उस समय प्रचलित थी उसमें नर्त्तक द्वारा जैसा नृत्य होता था, वह वर्त्तमान बंगालकी नृत्यप्रणालीसे बिलकुल स्वतन्त्र था।

पुरानी पद्धतिको छोड़ कर नई पद्धतिका अनुसरण करनेसे ही यात्रा-सम्प्रदायमें एक संस्कार-युग (age of reformation)के प्रवर्त्तनका सूत्रपात हुआ है, ऐसा कह सकते हैं। इस संस्कारमें सुर, नाच, गान, भाषा, भाव और वेशभूषादिका बिलकुल परिवर्त्तन हो गया तथा वाद्य संगीतमें भी बहुत कुछ हेरफेर किया गया। कहनेका तात्पर्य यह है, कि इस समय देशी लोगोंकी रुचिके अनुसार सभी ओर सभ्यताकी कृपादृष्टि पड़ गई थी। पूर्वकालकी भाषा और भावके परिवर्त्तनसे अभिनेताओंकी बातचीत बहुत कुछ परिमार्जित और परिशोधित तो हुई थी, परन्तु आदिरसघटित अश्लीलतासूचक संगीत रचनाका प्रभाव बिलकुल न रुका। वरन् वह दिनों दिन बढ़ता ही गया। कैलास वारुईकी स्वभावसंगीत रचना उसका प्रकृष्ट प्रमाण है।

यात्राके इस नैतिक-संस्कार-युगमें संस्कारके प्रवर्त्तक रूपमें मदन मास्टरके यात्रादलका अभ्युदय हुआ। मदनबाबू पहले हुगली कालेजमें शिक्षकका काम करते थे। पीछे कर्मसूत्रके कुचक्रमें पड़ कर उन्होंने शौकीनी यात्रादलका संगठन किया। उन्होंने बड़ी पारदर्शिता और सुकौशलसे इस दलको चलाया। जब इस दलका खर्चवर्च वे जुटा न सके, तब उन्होंने उसे पेशादारी दल बना लिया। वे मास्टरी करते थे। इस कारण उन्हें मदन मास्टर नामसे ही पुकारते थे। और भी विशेषता यह थी, कि वे ही यात्रा-दलके अधिकारी थे, अतएव उनके

अभिनय कार्यमें शिक्षकता और दक्षता देख कर लोगों-ने उनके मास्टरी किताबके बचा रखा था। यात्रावाले तथा अन्यान्य मनुष्य उनकी बड़ी खातिर करते थे। इस कारण मदन मास्टरके दलका तमाम आदर था। गाने और बजानेकी परिपाटी भी इनकी निराली थी।

परमानन्दसे मदनमास्टरके पूर्ववर्त्ती यात्रावाले जिस जिसका गाना होता था, उसके उसके मुखसे गवा लेते थे। यात्राकी सुरतरंगको अव्याहत रखनेके लिये दोयारकी व्यवस्था थी। बालकोंका मधुरगान दर्शकों-के चित्तको चुरा लेता था।

मदनमास्टरके पहले यात्रामें पेला लेनेकी रीति थी। भद्र सन्तानके पक्षमें इस प्रकार पेला लेना घृणाका विषय तथा असमर्थ दर्शकके पक्षमें लज्जाका विषय समझ कर उन्होंने इस प्रथाको उठा दिया।

मदनमास्टरके बाद महेश चक्रवर्त्ती और तारक-नाथ चट्टोपाध्यायने दक्ष-यज्ञ पाला आरम्भ किया। उनके गानमें भक्तिप्रवणता ही दिखाई देती थी। मास्टरकी पत्नीकी अनुकरण पर नवद्वीपके विख्यात यात्रादलके अधिकारी नीलमणि कुण्डकी पत्नीने भी यात्रादल संगठन किया। वह दल आज भी 'वहुकुण्डकी' यात्रा नामसे कलकत्तेमें प्रसिद्ध है।

मदनमास्टरके बहुत पीछे रामचाँद मुखोपाध्यायकी शौकीनो यात्राका उल्लेख पाया जाता है। उनकी "नन्दविदाय" शौकीनो यात्रा उस समय प्रचलित थी। वे *'संगीतमनोरञ्जन' नामसे एक संगीत ग्रन्थ भी लिख* गये हैं। कलकत्तेके जोड़ासांकोमें उनका घर था। वे विख्यात धनी छातुबाबू (आशुतोषदेव)-के दीवान थे।

वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत भातशाला ग्राममें मोती-लाल रायका आदि वास था। पीछे वे नवद्वीपमें आ कर बस गये। वे एक देशविख्यात यात्राकार थे। उन-के बनाये हुए भरतागमन, निमाईसंन्यास, सीताहरण, विजयवसन्त, द्रौपदीका वस्त्रहरण, रामवनवास और व्रजलीला पालाके गान बहुत प्रशंसनीय हैं।

इसके बाद हमलोग उलुबेड़ियाके निकटवर्त्ती फूले-श्वरनिवासी आशुतोष चक्रवर्त्तीके यात्रादलकी प्रसिद्धि देखते हैं। उनका 'लक्ष्मणवर्ज्जन' पाला कवि ठाकुर-दासका रचा है। यह पाला गा कर वे बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं।

आशुबाबूके समसामयिक बोको मुसलमान यात्रा-दलका उल्लेख पाते हैं। बोको और साधु दोनों ही सहोदर तथा मुसलमान जातिके थे। इस समय ये लोग एक प्रसिद्ध यात्रादलके अधिकारी थे। कवि ठाकुरदासने इस दलके लिये 'लवकुशका पाला' तथा भगवान् गांगुलीने 'रावणवध' की रचना की। इस समय बाघबाजारके निवासी भट्ट दास अधिकारीका 'अक्रूर आगमन' और 'रावणवध' पालाका अच्छा नाम था। इस दलको लोग 'फोड़ो-दल' कहा करते थे। फोड़ोके जैसा नृत्यविशारद उस समयके किसी भी *यात्रा* दलमें न था।

वर्द्धमान जिलान्तर्गत धवनीग्राममें भगवद्भक्त नील-कण्ठ मुखोपाध्याय रहते थे। वे यात्रादलकी स्थापना कर विशेष प्रतिष्ठालाभ कर गये हैं। उनके रचित पद 'कंठके पद' कह कर प्रसिद्ध हैं। वर्द्धमान और वीरभूम जिलेमें उसका विशेष प्रचार है।

इसके बाद सुप्रसिद्ध 'बालक-सङ्गीत' यात्राके अधि-कारी रसिकलाल चक्रवर्त्तीका अभ्युदय हुआ। यशोहर जिलेके कालीगञ्ज थानाके अधीन रायग्राममें रसिकका घर था। १२६४ सालके चैत्रमासमें जब उनकी माता-का देहान्त हुआ, तब वे सांसारिक विषयों पर लात मार कुछ बालकोंको साथ ले बाहर निकले और स्वरचित हरिगुणगीतका गान करना आरम्भ कर दिया। वही पीछे बालक-संगीताभिधेय यात्रामें परिणत हो गया। उस समय बंगाल भरमें इस बालकसङ्गीतका आदर और सम्मान बढ़ गया था।

यात्रावालोंमें बोचे पगला नाम बहुत प्रशंसनीय है। *यात्राके अधिकारियोंमें* इसी व्यक्तिने सबसे पहले ऐति-हासिक नाटक खेला। वह ग्रन्थ विख्यात हिन्दूद्वेषी मुसलमान-सेनापति कालापहाड़का चरित्र ले कर सङ्क-लित हुआ था।

इस समय कलकत्तेके दो प्रसिद्ध शौकिनी यात्रा-दलके अधिकारियोंका नाम उल्लेखनीय है। बाग-

बाजारके तिनकौड़ी मुखोपाध्यायके 'अभिमन्युवध' पालाने सङ्गीत और वक्तृतामें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

दूसरा दल राजा राममोहन रायके पौत्र और जज रमाप्रसाद रायके पुत्र हरिमोहन राय द्वारा स्थापित हुआ। हरिमोहन बाबू कभी शौकिनी और कभी पेशादारी व्यवसायरूपमें यात्रा कर गये हैं।

बङ्गालके सुप्रसिद्ध अमृतबाजार-पत्रिकाके संपादक भगवद्भक्त शिशिरकुमार घोष महाशयने कृष्णप्रेमप्रणोदित हो १९वीं सदीके आखिरमें ये अपने आत्मीय स्वजनोंको ले कर एक कृष्णयात्राका अनुष्ठान किया। वह सम्पूर्ण प्राचीन प्रथासे अभिनीत हुआ था। ऐसा बड़ा भक्तियुक्त संगीत और फिर कभी सुननेमें नहीं आया।

रामलीला देखो।

यात्राकार (सं० पु०) यात्रो-कृ-अण्। १ यात्राके शुभाशुभका निर्णय करनेवाले मुनिगण। २ यात्राकारक, यात्रो करनेवाला।

यात्रामहोत्सव (सं० पु०) यात्रा तत्र महोत्सवः। यात्रोत्सव, यात्रा जैसा महोत्सव।

यात्रावाल (हिं० पु०) वह ब्राह्मण या पंडा जो तीर्थाटन करनेवालोंको देव-दर्शन कराता हो।

यात्रिक (सं० त्रि०) १ यात्रासम्बन्धी, यात्राका। २ जो बहुत दिनोंसे चला आता हो, रीतिके अनुसार। ३ प्राणयात्राके उपयुक्त, वह जो जीवन धारण करनेके लिये उपयुक्त हो। (पु०) ४ यात्राका प्रयोजन, कहीं जानेका अभिप्राय या उद्देश्य। ५ यात्री, पथिक। ६ यात्राकी सामग्री, सफरका सामान।

यात्रिन् (सं० त्रि०) यात्री देखो।

यात्री (सं० त्रि०) १ यात्रा करनेवाला, एक स्थानसे दूसरे स्थानको जानेवाला। २ देव-दर्शन या तीर्थाटनके लिये जानेवाला।

यात्रोत्सव (सं० पु०) यात्राके समान उत्सव।

यात्सत्र (सं० क्ली०) बहुत दिन तक यज्ञ, सारस्वत याग।

याथाकथाच (सं० अव्य०) घटनाक्रमसे उपस्थित।

याथाकामी (सं० स्त्री०) इच्छानुसार काम करनेवाला।

याथाकाम्य (सं० क्ली०) कामनानुरूप, इच्छाके मुताबिक।

याथातथ्य (सं० पु०) यथातथ्य होनेका भाव, यथार्थता।

याथात्म्य (सं० क्ली०) आत्मस्वरूपता।

याथार्थिक (सं० त्रि०) यथार्थ।

याथार्थ्य (सं० क्ली०) यथार्थ होनेका भाव, यथार्थता।

याथासंस्तरिक (सं० त्रि०) आस्तरणान्वित, बिछौनेसे युक्त।

याद (फा० स्त्री०) १ स्मरण-शक्ति, स्मृति। २ स्मरण करनेकी क्रिया। (पु०) ३ मछली, मगर आदि जलजन्तु।

यादईश (सं० पु०) यादसामीशः ६-तत्। १ समुद्र। २ वरुण।

यादःपति (सं० पु०) यादसां पतिः ६-तत्। १ समुद्र। २ वरुण।

यादगार (फा० स्त्री०) वह पदार्थ जो किसीके स्मृतिके रूपमें हो, स्मारक।

याददाश्त (फा० स्त्री०) १ स्मरणशक्ति, स्मृति। २ किसी घटनाके स्मरणार्थ लिखा हुआ लेख।

यादव (सं० पु०) यदोरपत्यं यदु-अण्। १ श्रीकृष्ण। २ यदुके वंशज। यदु देखो। (त्रि०) ३ यदुसम्बन्धी यदुका।

यादवक (सं० पु०) यदुवंशोद्भव, यदुके वंशज।

यादवगिरि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम। यादवगिरिमाहात्म्यमें यहांके देवलिङ्ग तथा तीर्थोंका विवरण दिया हुआ है।

यादवराजवंश—दाक्षिणात्यके एक पराक्रान्त हिन्दूराजवंश। देवगिरिमें राजधानी रहनेसे यह वंश 'देवगिरिका यादव' नामसे भी प्रसिद्ध है। फिर इस राजवंशकी भी दो धारा देखी जाती है। पुराविदोंने एकको प्राचीन और दूसरेको परवर्त्ती वंश कह कर उल्लेख किया है।

प्राचीन धारा।

हेमाद्रिके चतुर्वर्गचिन्तामणिके अन्तर्गत व्रतखण्ड और इस वंशके राजाओंके कितने ताम्रशासन तथा शिलालिपिसे जो परिचय मिला है; वह संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

हेमाद्रिके व्रतखण्डमें पौराणिक यादववंशका पुत्र-पौत्रादि क्रमसे इस प्रकार परिचय है—

१म चन्द्र (क्षीरोदसमुद्रसे उत्पन्न), उनके लड़के २ बुध, ३ पुरूरवा, ४ नहुष, ५ ययाति, ६ यदु, ७ क्रोष्टा, ८ वृजिनीवान्, ९ स्वाहित; १० नृशंकु, ११ चित्ररथ, १२ शशविन्दु, १३ पृथुश्रवा, १४ वीर, १५ सुयज्ञ, १६ उशना, १७ सितेयु, १८ मरुत्त, १९ कम्बलवर्हि, २० रुक्मकवच; २१ पराजित्, २२ मेध, २३ विदर्भ, २४ क्रथ, २५ कुम्भि, २६ वृष्णि, २७ निवृत्ति, २८ दशार्ह, २९ व्योमा, ३० देवरात, ३१ विकृति, ३२ भीमरथ, ३३ नवरथ, ३४ दशरथ, ३५ शकुनि, ३६ करम्भि, ३७ देवराज, ३८ देवक्षेत्र, ३९ मधु, ४० कुरुवल, ४१ पुरुहोत्र, ४२ आयु, ४३ सात्वत, ४४ अन्धक, ४५ भजमान, ४६ विदूरथ, ४७ प्रतिक्षत्र, ४८ भोज, ४९ हृदिक, ५० देवमीढ़ूष, ५१ वसुदेव, ५२ मुरारि श्रीकृष्ण, ५३ प्रद्युम्न, ५४ अनिरुद्ध, ५५ वज्र, ५६ प्रतिवाहु, उनके पुत्र ५७ सुवाहु। सुवाहुने सम्राट् हो कर अपने चारों पुत्रोंके वीच राज्य वांट दिया था। उनमेंसे मध्यम पुत्र दृढ़प्रहार दक्षिणदिशाके राजा हुए थे। यादववंश पहले मथुराका शासन करते थे। कृष्णसे ही वे लोग द्वारवतीके अधीश्वर हुए थे। आखिर सुवाहुके पुत्र दृढ़प्रहारसे ही उन्होंने दाक्षिणात्यका राज्य पाया।

हेमाद्रिने पुराणोक्त सुप्राचीन यादववंशके साथ परवर्त्ती यादवराजाओंका सम्बन्ध ठीक करनेके लिये जो वंशतालिका दी उसमेंसे सभीको ऐतिहासिक नहीं मान सकते। प्रभासक्षेत्रमें यदुवंशध्वंसके वाद एकमात्र वज्र वच गये थे सही, किन्तु वज्रके पौत्र सुवाहु और दृढ़प्रहार एक समयके व्यक्ति थे, ऐसा प्रतीत नहीं होता। यादवराजाओंके दिये हुए ताम्रशासनकी आलोचना करनेसे ८वीं सदीमें दृढ़प्रहारका अभ्युदय स्वीकार करना पड़ता है। किन्तु वज्र उनके कितने हजार पहले हो गये हैं। इस प्रकार वज्र अथवा सुवाहु तथा दृढ़प्रहारके मध्य सौ-पीढ़ीसे अधिक वीत गई थी, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण हम दृढ़प्रहारके पूर्ववर्त्ती विवरणको पौराणिक मानते हैं। दृढ़प्रहारसे ही इस वंशमें ऐतिहासिकयुग आरम्भ हुआ है।

हेमाद्रिके मतसे दृढ़प्रहारने श्रीनगरमें राजधानी वसाई। किन्तु ताम्रशासनमें उनकी राजधानीका नाम चन्द्रादित्यपुर लिखा है। नासिक जिलेके वर्त्तमान 'चान्दोर' ग्रामको वहुतेरे वही चन्द्रादित्यपुर मानते हैं। दृढ़प्रहारके वाद उनके लड़के सेउणचन्द्र राजसिंहासन पर वैठे। वे जिस देशमें राज्य करते थे वह उन्हींके नामानुसार 'सेउणदेश' नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह देश दण्डकारण्यके अन्तर्गत नासिकसे देवगिरि तक विस्तृत था। इसीका उत्तरांश ले कर मुसलमानी अमलमें खान्देश संगठित हुआ।

सेउणचन्द्रके वाद उनके लड़के धाड़ियप्प वा धाड़ियश राजा हुए। वह एक महायोद्धा थे। उनके पुत्रका नाम भिल्लम था। जो महासमृद्धिशाली राजा थे। भिल्लमके पुत्र श्रीराज दूसरा नाम राजुगी और राजुगीके वाद वादुगी वा वद्दिग हुए। यह राष्ट्रकूटपति कृष्णराजके सहचर थे। धोरप्प नामक राजाकी कन्या वोद्दियव्वाके साथ उनका विवाह हुआ था। यथासमय उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम धाड़ियस रखा गया। धाड़ियसके वाद वादुगीके दूसरे लड़के भिल्लम राजसिंहासन पर वैठे। उन्होंने झञ्झकी कन्या लक्ष्मी वा लच्छियव्वाको व्याहा था। वहुतेरे झञ्झको थानाके शिलाहारराज मानते हैं। लक्ष्मीदेवीकी माता भी राष्ट्रकूटराजकी कन्या थीं।

९२२ शकमें उत्कीर्ण इस भिल्लमराजका ताम्रशासन पाया गया है। इस ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने मुञ्जराजकी शक्तिको चूर कर डाला तथा रणरङ्गभीम (तैलप) राजाकी शक्तिको दृढ़ कर दिया। अर्थात् मुञ्जके साथ युद्धकालमें इन्होंने तैलपको सहायता की थी। ताम्रशासनकी इस उक्तिसे जाना जाता है, कि यादववंशने पूर्वाधीश्वरकी अधीनताका त्याग कर नये अधीश्वरका पक्ष लिया था।

भिल्लमके पुत्र वेसुगिने चालुक्यान्वय माण्डलिक गोगीकी कन्या नायमदेवीका पाणिग्रहण किया। व्रतखण्डके मतसे इन्होंने वड़ी वीरतासे अर्जुनसदृश हो भीष्मसदृश वीरकी हत्या की थी। उनके पुत्र भिल्लम (३य)-का चालुक्य सम्राट् जयसिंहकी कन्या हम्माके साथ विवाह हुआ। उन्होंने अपने साले सम्राट् आहवमल्लसे विजयपताका ले कर अनेक युद्ध किये थे। उनकी मृत्युके वाद उनका राज्य दूसरेके हाथ लगा। पीछे यादववंशीय सेउणने शत्रुके कवलसे यादवराज्यका उद्धार किया।

उनके ६६१ शकमें उत्कीर्ण ताम्रशासनमें लिखा है, कि उन्होंने चालुक्यराज परमर्द्दिदेव (२य विक्रमादित्य)-को शत्रुसंघर्षसे बचा कर कल्याणके सिंहासन पर बिठाया था।

सेउणचन्द्रके वाद परममदेव और पीछे उनके भाई सिंहराज (यादव सिंघण)-ने राज्य किया। सिंघणने लक्ष्मीपुरसे 'कर्पूरतिलक' नामक हाथी ला कर चालुक्यराज परमर्द्दिदेवका प्रियकार्य किया था। पीछे उनके पुत्र मल्लुगी राजा हुए। वे पर्णखेट नामक शत्रुपुरीको जीत कर उत्कलपतिके सभी हाथियोंको भगा लाये। उनके मरने पर उनके लड़के अमरगाङ्गेय राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। अमरगाङ्गेयके वाद यथाक्रम गोविन्दराज, मल्लुगिपुत्र अमर मल्लुगि और कालियावल्लभने राज्य किया। वल्लालके पुत्र वैसे शक्तिशाली न थे। इस कारण राजलक्ष्मी वल्लालके चचा महावीर भिल्लम (४र्थ)-के हाथ लगी। ताम्रशासनमें लिखा है, कि भिल्लमने अपने दो बड़े भाइयों तथा उनके पुत्रोंके राज्य करनेके वाद राज्य किया था। इससे मालूम होता है, कि वे अधिक उमरमें सिंहासन पर वैठे थे। उनका शासनकाल ११०६ शकसे १११३ शक तक माना जाता है। उन्हींके प्रताप और बुद्धिबलसे चालुक्य-साम्राज्य यादवराजवंशके अधिकारभुक्त हुआ था।

पूर्व नासिकके समीप अञ्जनेरि नामक एक ग्राम है। वहांके मन्दिरसे एक भिल्लमकी शिलालिपि आविष्कृत हुई है। वह शिलालिपि पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि १०६३ शकमें यादववंशीय सेउणदेव नामक एक राजाने जैन-मन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी। इन्होंने 'महासामन्त' कह कर अपना परिचय दिया है। पूर्वोक्त यादववंशसे यह वंश भिन्न है।

नीचे प्राचीन यादवराजवंशकी वंशावली उद्धृत हुई—

परवर्त्ती यादववंश।
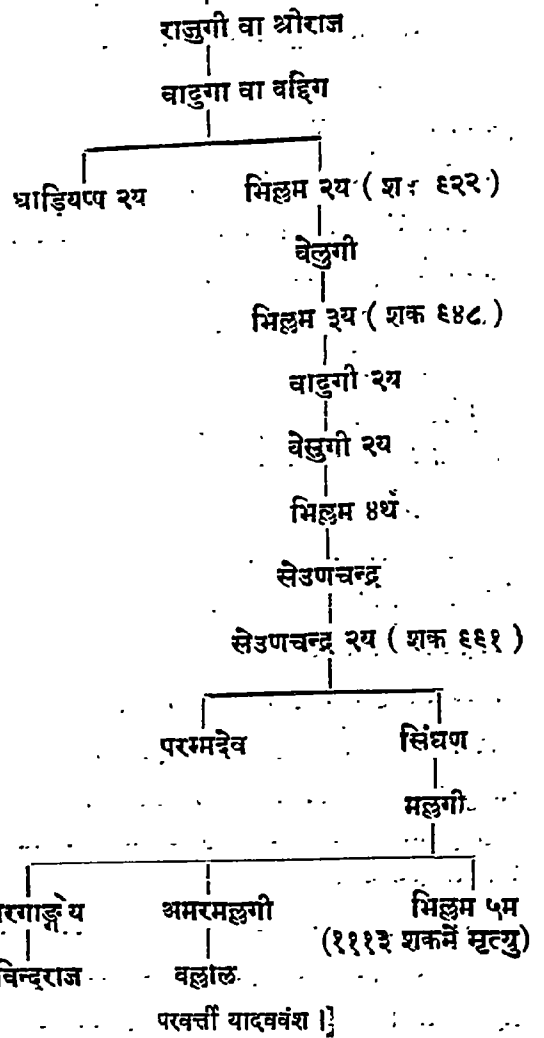
महिसुरके अन्तर्गत हलेविडमें होयसल यादव रहते थे। त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्यके समय वे लोग बहुत कुछ प्रवल हो उठे। यहां तक, कि इस वंशके विष्णुवर्द्धन राज्यलोलुप हो कृष्णवेण्वाके किनारे चालुक्य-सम्राट्के सामने हुए थे। इतने पर भी चालुक्यराजकी शक्ति चूर नहीं हुई। उस समय भी समस्त दाक्षिणात्य चालुक्यराजके नामसे कांपता था, सभी सामन्तवर्ग चालुक्यराजके अनुगत थे। इस कारण यादववीरकी उच्च आकांक्षा पूरी न हुई। कुछ दिन वाद कालचक्रने पलटा खाया। चालुक्यवंशका वह प्रभाव, वह शक्ति ह्रास हो चली। उनके सामन्त कलचूरियोंने मस्तक उठाया। फिर लिंगायत-सम्प्रदायके अभ्युदयसे उनकी राजशक्ति भग्न हो गई। लिङ्गायत देखो। इस समय यादव विट्ठा

वर्द्धनके पौत्र वीरवल्लाल होयसल सिंहासन पर बैठा। उन्होंने अन्तिम चालुक्याधिप ४र्थ सोमेश्वरके सेनापतिको परास्त किया तथा उनके करतलगत विज्जणके सामन्त राज्यको छीन लिया। इधर उत्तरके यादववंशने भी यह मौका हाथसे जाने नहीं दिया। मल्लूगि विज्जणके साथ युद्धमें लिप्त हुए। दादा नामधारी उनके सेनापतिने रणक्षेत्रमें कलचूरिराजके सामने उतर यादवराजका मुख उज्ज्वल किया था। जाह्लणकी सूक्तिमुक्तावलिमें लिखा है, कि मल्लूगिके चार पुत्र था, महीधर, जह्ल, साम्ब और गङ्गाधर। उनमेंसे महीधर पितृसिंहासन पर बैठे। इन्होंने विज्जण-राजकी सेनाको विध्वस्त किया था।

मल्लूगिके वीरपुत्र भिल्लमके ही प्रतापसे सारा चालुक्य-साम्राज्य यादवोंके अधिकारभुक्त हुआ था। उन्होंने कुन्तलराजाको परास्त कर श्रीवर्द्धननगर जीता, रणक्षेत्रमें प्रत्यन्तकराजको विध्वस्त किया, मङ्गलवेष्टकके अधिपति विह्लणकी हत्या की तथा होसल (सम्भवतः वीर वल्लालके पिता होयसल यादव नरसिंह) राजाको यमपुर भेज कर कल्याणराज्य अपनाया था। इन सब महा-युद्धोंमें महीधरके भाई जह्ल उनका सेनापति और दाहिना हाथ था।

उन्होंने गुर्जरसैन्यके मध्य मतवाला हाथी चला कर मल्लको डरा दिया तथा मुञ्ज और अन्नको यमपुर भेज दिया था। इस प्रकार भिल्लम कृष्णके उत्तरवर्त्ती विस्तीर्ण जनपदको अधिकार कर देवगिरि नगर बसाया और ११०६ शकमें सिंहासनको सुशोभित किया। अभी से देवगिरिमें यादववंशकी राजधानी हुई।

भिल्लम दक्षिणांशमें अपना राज्य फैलानेके लिये अग्रसर हुए। किन्तु होयसल यादववंशीय वल्लाल उस समय दक्षिणके अधिपति थे। दोनोंमें घमासान लड़ाई छिड़ी, दोनों ही साम्राज्यलाभके अभिलाषी थे, अतएव वह घमसान युद्ध सहजमें बंद हुआ। आखिर धारवाड़ जिलेके लोक्किगुण्डि (वर्त्तमान लक्कुण्डि) नामक स्थानमें जो भीषण संग्राम छिड़ा उसमें भिल्लमका दाहिना हाथ जैत्रसिंह मारा गया तथा वीरवल्लाल कुन्तलका अधिपति बन बैठा। १११४ शकमें यह घटना घटी। इस प्रकार उत्तर-यादववंशके हृदयसे कुछ दिनके लिये कुन्तल जीतनेकी आशा जाती रही।

१११३ शकमें भिल्लमके पुत्र जैत्रपाल वा जैतुगि पितृसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उन्होंने अपने पिताके साथ कितने युद्धोंमें अपनी वीरताका परिचय दिया था, तथा तैलङ्गाधिपति (काकतेय) रुद्रका मेध ले कर नरमेधयज्ञ सम्पन्न किया था। पैठनके ताम्रशासनमें भी लिखा है, कि जैतुगिने त्रिकलिङ्गाधिपतिको युद्धमें मारा, गणपतिको कारामुक्त कर सिंहासन पर बैठाया और आन्ध्रोंको स्वामिसुखसे वञ्चित किया। यह गणपति और कोई भी नहीं थे, काकतेय रुद्रके भतीजे थे। शायद बचाने ही इन्हें कैद किया था। विख्यात ज्योतिर्विद् भास्कराचार्यके पुत्र वेदादि सर्वशास्त्रवित् लक्ष्मीधरने जैतुगिकी सभाको उज्ज्वल किया था। यादवपतिने उन्हें पण्डितराजपद पर अभिषिक्त किया।

जैत्रपालके पुत्र सिंघण थे। उनके शासनकालमें यादवराज्यकी सीमा बहुत दूर तक फैल गई थी। उनका अभिषेकाब्द ११३२ शक माना जाता है। जाह्लणकी सूक्तिमुक्तावलिमें लिखा है, कि जाह्लणके भाई सुविख्यात गङ्गाधरके पुत्र जनार्दनके निकट सिंघणने गजशिक्षा पाई था। उसीके प्रभावसे वे मालवपति अर्जुनका ध्वंस करनेमें समर्थ हुए थे। हेमाद्रिने लिखा है, कि उन्होंने जज्जलराजको परास्त कर उनके हाथियोंको अपनाया, कक्कूलराजको सिंहासनसे उतारा, अर्जुनको मारा और भोजको कैद किया था। फिर उन्होंने अवहेलामें रम्भागिरिके वीरकेशरी लक्ष्मीधरको हराया, अश्वसादीके कौशलसे धारापति पर आक्रमण किया और वल्लालके सभी राज्यों पर अधिकार जमाया था।

हेमाद्रिवर्णित जज्जल्ल पूर्व-चेदिवंशीय विख्यात जज्जलदेव थे। छत्तीसगढ़प्रदेश उनके अधिकारमें था। कक्कूल पश्चिम चेदिराजवंशीय सुविख्यात कोक्कलदेव थे। त्रिपुर वा तेवारमें उनकी राजधानी थी।

इसके अतिरिक्त सिंहणने महासमरमें मथुरा और काशीपतिको परास्त किया था। उनके एक बालकसेनापतिके निकट हम्मीरने अपनी पराजय स्वीकार की थी। गद्दकसे आविष्कृत ११३५ शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे यह साबित होता है, कि इसके पहले ही वीर

बल्लाल अपने अधिकारका दक्षिणांश खो बैठे थे। पन्‌हालके भोज नामक प्रसिद्ध शिलाहारपति जब सिंघणसे परास्त हुए, तब कोल्हापुर तक यादवोंके अधिकारमें आ गया था। उक्त जिलेके खेद्रापुर ग्राममें जो कोप्पेश्वर-मन्दिर है उसमें ११३६ शकको उत्कीर्ण सिङ्घणराजकी शिलालिपि देखी जाती है। उन्होंने कई बार गुजरात पर आक्रमण किया था। वहां आम्बेम ग्राममें उत्कीर्ण एक शिलालिपिसे जान जाता है, कि यादव-सेनापति ब्राह्मणप्रवर खोलेश्वरने गुर्ज्जरपतिका दर्प चूर्ण कर मालव और आभीर-राजवंशको ध्वंस कर डाला था। और तो क्या, उन्होंने अपने मालिक सिंघणकी सभी आशा पूरी की थी। खोलेश्वरके बाद उसका लड़का सेनापति हुआ। उसने भी नर्मदाके किनारे गुर्ज्जर-सेनाका मुकाबला किया था। बहुतसे गुर्जर उसके हाथसे मारे जाने पर भी आखिर वह शत्रुके हाथसे यमपुरका मेहमान बना। कीर्त्तिकौमुदीके रचयिता सोमेश्वरने लिखा है, कि चौलुक्यराज लवणप्रसाद और उसके लड़के वीरधवलके शासनकालमें यादवपति सिंघणने गुर्जर पर आक्रमण किया। उनके भयसे प्रजा सशङ्कित और व्याकुल हो भागनेकी तैयारी कर रही थी। सैकड़ों ग्राम छारखार हो गये थे। इस समय मारवाड़के चार राजोंने लवणप्रसाद और वीरधवलके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। उनके अधीन गोधरा और लाटके सामन्तगण रणक्षेत्रमें उनका पक्ष छोड़ कर मारवाड़के पक्षमें मिल गये थे। अतएव लवणप्रसादको यादवसैन्यके विरुद्ध न जा कर मारवाड़के राजाओंका दमन करनेके लिये जाना पड़ा था। अब यादवसेना आगे न बढ़ कर फिर लौटी। कीर्त्तिकौमुदीके इस वर्णनसे भी सिंघण कर्त्तृक गुजरात-आक्रमणका हाल जाना जाता है। शायद गुर्ज्जरपतिने यादवराजकी अधीनता स्वीकार कर ली होगी, नहीं, तो कब सम्भव है, कि आक्रमणकारी सहजमें लौट आता। "लेखपञ्चाशिका" नामक एक संस्कृत ग्रन्थ गुजरातसे पाया गया है। उसमें सिंहण और लवणप्रसादकी सन्धिका हाल इस प्रकार लिखा है—

"संवत् १२८८ वर्षे वैशाख-सुदि १५ सोमेऽद्येह श्रीमद्विजयकटके महाराजाधिराज श्रीमत्सिंहणदेवस्य महामण्डलेश्वरराणक श्रीलावण्यप्रसादस्य च। साम्राज्य-कुलश्री श्रीमत्सिंहणदेवने महामण्डलेश्वर राणश्री-लावण्यप्रसादेन पूर्वरूढ्यात्मीयदेशेषु रहणीयं। केनापि कस्यापि भूमीना क्रमणीया।"

अर्थात्—१२८८ संवत् (१२३१ ई०) वैशाखकी १५वीं सुदि (शुक्लपक्षमें) आज इस सोमवारको जयस्कन्धवारमें महाराजाधिराज श्रीमत्सिंहणदेव और महामण्डलेश्वर राणक श्रीलावण्यप्रसादको सन्धि हुई। साम्राज्यभोगी श्रीमत्सिंहणदेव और महामण्डलेश्वर श्रीलावण्यप्रसाद कर्त्तृक अपने अपने राज्यकी पूर्वसीमाके अनुसार रहा, कोई भी किसीको भूमि पर आक्रमण नहीं कर सकता।

लवणप्रसाद देखो।

सेनापति खोलेश्वरने उत्तरमें जिस प्रकार अपने प्रभुके शत्रुके साथ समरानल प्रज्वलित किया था, दक्षिणमें उनके प्रतिनिधि वीचन वा वीचने उसी प्रकार विपक्ष समुद्रको मथ डाला था। वीचन मल्लके छोटे भाई थे। उन्होंने दक्षिणमहाराष्ट्रके रट्टसामन्तोंको, कोङ्कणके कदम्बोंको, प्राचीन गुप्तवंशसम्भूत दक्षिणके गुप्तराजाओंको तथा पाण्ड्य, होयशल, दक्षिणप्रदेशके सामन्तोंको परास्त कर कावेरीके किनारे जयस्तम्भ गाड़ दिया था। ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि ११६० शक (१२३८के पहले)-में उक्त घटना घटी थी।

यथार्थमें यही समय यादव-इतिहासका समुज्ज्वल काल है। यादवसाम्राज्य बहु विस्तीर्ण और प्रभूत समृद्धिशाली हो गया था। यादवपति सिंहणने 'महाराजाधिराज' और 'पृथ्वीवल्लभ'-की उपाधि पाई थी। कृष्ण द्वारकामें राज्य करते थे। इसका कारण उस वंशके सिंहण और उनके वंशधरगण "द्वारवतीपुराधीश्वर" उपाधिसे भी भूषित थे। उनके और उनके परवर्त्ती दो यादवराजके समय कश्मीर कायस्थ सोढ़ल 'श्रीकरणाधिप' वा लेख्य विभागके अध्यक्ष (Chief secretary) थे। उनके बाद प्रसिद्ध पण्डित हेमाद्रि उस पद पर नियुक्त हुए। श्रीकरण सोढ़लके पुत्र शाङ्गर्धर एक विख्यात सङ्गीतशास्त्रविद् थे। उन्होंने 'सङ्गीतरत्नाकर' की रचना की। सम्राट् सिङ्घण इसके टीकाकार थे

भास्कराचार्यके पौत्र और लक्ष्मीधरके पुत्र चाङ्गदेव तथा भास्कराचार्यके भाई श्रीपतिके पौत्र अनन्तदेव राजज्योतिर्विद् थे। चाङ्गदेवने खान्देश-जिलेके पाटना नामक स्थानमें अपने पितामहरचित सिद्धान्त-शिरोमणिका पाठ करनेके लिये एक मठ खोला था। उस पाटनाके निकटवर्त्ती एक ग्राममें अनन्तदेवने ११४४ शकाब्दकी १ली चैत्रको एक भवानी मन्दिरकी प्रतिष्ठा की।

सिङ्घणके पुत्र जैतुजगी वा जैत्रपाल थे। उनके सम्बन्धमें हेमाद्रिने लिखा है, कि वे सभी कलाओंके आलय और विद्वेषी राजाओंके कालस्वरूप थे। इनके भाग्यमें साम्राज्यभोग बदा न था, ऐसा मालूम होता है। उन्होंने केवल पिताको 'युवराज' पद पाया था। क्योंकि, सिङ्घणने ११६६ शक पर्यन्त राज्य किया। उनके पौत्र कृष्णका ११७६ शकके प्रवादीसंवत्सरमें उत्कीर्ण ताम्रशासन पाया जाता है। उसमें उनका राज्याङ्क है, इस हिसाबसे सिंहणके बाद ही जैत्रपालके पुत्र कृष्ण ११६६ शकमें अभिषिक्त हुए थे, ऐसा मालूम होता है।

कृष्णका प्रकृत नाम कन्हार, कनहर वा कन्धार था। वे मालव, गुजरात और कोङ्कणके राजाओंके आतङ्कस्वरूप, तैलङ्गराज प्रतिष्ठापक और चोलाधिपति भी थे। हेमाद्रिके वर्णनसे ज्ञात होता है, कि उन्होंने गुर्जरपति वीसलकी विपुल वाहिनीको मार भगाया था। जनार्दनके पुत्र लक्ष्मीदेव उनके विज्ञ मन्त्री थे। उन्हींके अस्त्रबलसे वे शत्रु विजयी हुए थे। नाना यज्ञका अनुष्ठान करके भी उन्होंने विलुप्त वैदिक मार्ग प्रवर्त्तनकी चेष्टा की थी। बेलगामूसे आविष्कृत ११७१ शकके ताम्रशासनमें लिखा है, कि सिंहणके प्रतिनिधि बोचनके बड़े भाई मल्ल कृष्णके अधीन कुहुण्डीप्रदेशके शासनकर्त्ता थे। उन्होंने कृष्णराजकी सलाहसे बत्तीस विभिन्न गोत्रीय ब्राह्मणोंको बागेवाड़ी ग्राममें शासन दान किया था, इन सब ब्राह्मणोंमें पटवर्द्धन, वैसारू, घलिदास, घलिस, पाठक, चित्तवाड़ी आदि उपाधि देखी जाती हैं। लक्ष्मीदेवके पुत्र जह्लन अपने छोटे भाईके साथ कृष्णराजको हमेशा शलाह दिया करते थे। इसके सिवा वे निषादसमूहके अधिनायक भी थे। वे "सूक्तिमुक्तावलि" नामक एक संस्कृत कवितासंग्रह सङ्कलन कर गये हैं। शारीरकभाष्यके ऊपर वाचस्पति मिश्रका भामती नामक जो टीका है अमलानन्दने 'वेदान्तकल्पतरु' नामसे उसकी टीका लिखी है। यह अमलानन्द कृष्णराजके ही एक सभापण्डित थे।

११८२ शक (१२६० ई०)-में कृष्णके बाद उनके भाई महादेवने राज्यलाभ किया। उन्होंने तैलङ्ग, गुर्जर, कोङ्कण, कर्णाट और लाटराजका दर्प चूर्ण किया था। हेमाद्रिने लिखा है, कि महादेव स्त्री, बालक और शरणागत पर कभी भी अस्त्र नहीं छोड़ते थे। इस कारण अन्ध्रोंने एक रमणीको और मालवोंने एक बालकको सिंहासन पर बैठाया था। उन्होंने तैलङ्गाधिपके हाथियों और पञ्चसङ्गीतयन्त्रको छीन लिया था तथा रुद्रमाको स्त्री कह कर छोड़ दिया था। हम लोग देखते हैं, कि यादवपति जैतुगिके बाहुबलसे जिस काकतीय गणपतिने मुक्तिलाभ किया था, विद्यानाथके प्रतापरुद्रीय नाटकमें वह गणपति अपना राज्य कन्याको दे रहा है। कन्या होने पर उन्होंने अपनेको 'राजा' कह कर घोषित कर दिया था, उन्होंने अपने दौहित्रको उत्तराधिकारी बनाया था। वह गणपति-कन्या 'रुद्रमा' के सिवा और कोई भी नहीं है। महादेवने बहुसंख्यक निषादों ले कर कोङ्कणपति सोमेश्वर पर हमला कर दिया। स्थलयुद्धमें परास्त हो कर कोङ्कणपति नावसे भाग गये थे। किन्तु महादेवरूपी बड़वानलसे वे आत्मरक्षा करनेमें समर्थ न हुए उनकी पराजयसे कोङ्कणराज्य भी यादव साम्राज्यभुक्त हो गया था। पण्ढरपुरस्थ ११९२ शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें महादेवकी "प्रौढ़प्रताप-चक्रवर्त्ती" उपाधि देखी जाती है। उस शिलालिपिमें काश्यपगोत्रीय केशव नामक एक ब्राह्मण कर्त्तृक अप्तोर्याम यज्ञानुष्ठानका उल्लेख है।

महादेवके पुत्र आमण थे। किन्तु हम लोग महादेवके बाद कृष्णके पुत्र प्रकृत उत्तराधिकारी रामचन्द्रको ११९३ शक (१२७१ ई०) में अभिषिक्त होते देखते हैं। ठानासे आविष्कृत उक्त रामराजके ताम्रशासनसे मालूम होता है, कि उन्होंने मालव और तैलङ्गाधिपके साथ समरानल प्रज्वलित किया था। यही तैलङ्गाधिप प्रतापरुद्र हैं। उनके समरकी बात "प्रतापरुद्रीय" नाटकमें लिखी देखी जाती है। महिसुरसे भी रामचन्द्रको

शिलालिपि आविष्कृत हुई है। उससे देखा जाता है, कि महिसुरके बहुत दक्षिण तक रामचन्द्रका अधिकार विस्तृत था। प्रसिद्ध धर्मशास्त्रवित् चतुर्वर्गचिन्तामणिके रचयिता हेमाद्रि पहले महादेवके करणविभागके अधिपति (Chief-Secretary) और पीछे प्रधान मन्त्री हुए थे। उन्होंने स्वरचित चतुर्वर्गचिन्तामणिके अन्तर्गत व्रतखण्डमें 'राजप्रशस्ति' अभिधेय दो अध्यायमें यादवराजवंशका संक्षिप्त इतिहास लिखा है।

वे स्वयं पण्डित थे और पण्डितोंके आश्रयस्वरूप थे। वे धार्मिक, पुण्यचरित्र और महावीर थे। उनकी चतुर्वर्गचिन्तामणि सभी धर्मों और पुराणशास्त्रोंका सारसंग्रह है। यह एक बड़ा ग्रन्थ है, आकारमें महाभारतके साथ इसकी तुलना की जा सकती है।

"आयुर्वेदरसायन" नामक वाभटकी टीका और वोपदेव-रचित "मुक्ताफल" नामक वैष्णवग्रंथ हेमाद्रिके बनाये हुए हैं, ऐसा बहुतोंका अनुमान है। मुग्धबोधके रचयिता पण्डितवर वोपदेवने हेमाद्रिको प्रसन्न करनेके लिये ही श्रीमद्भागवतका सारसंग्रह कर 'हरिलीला'-की रचना की। महाराष्ट्रमें हेमाड़पन्त नामसे हेमाद्रिका नाम प्रसिद्ध है। समस्त महाराष्ट्रमें विद्यमान एक विशेष आकार प्रकारका मन्दिर इन्हीं हेमाड़पन्तकी कीर्त्ति है। वे जब यादवराजके लेखनाधिप थे, उस समय लेखन कार्यकी सुविधाके लिये उन्होंने सिंहलसे 'मोड़ी' नामक एक प्रकारकी लिपि ला कर उसका प्रचार किया।

हेमाद्रि देखो।

प्रसिद्ध मराठी साधु ज्ञानेश्वर यादवपति रामचन्द्रके समयमें ही प्रादुर्भूत हुए थे। ज्ञानेश्वर देखो। उनकी मराठी भगवद्गीता १२१२ शकमें सम्पूर्ण हुई। रामचन्द्र ही यथार्थमें दाक्षिणात्यके अन्तिम स्वाधीन हिन्दूराजा थे। उनसे एक सदी पहले मुसलमानोंने आर्यावर्त्तमें अपना आधिपत्य फैलाया था। वे दाक्षिणात्य जीतनेके लिये बिलकुल निश्चेष्ट थे, ऐसा हो नहीं सकता। १२१६ शक (१२९४ ई०)-में कराड़के शासनकर्त्ताका भतीजा अलाउद्दीन खिलजी आठ हजार सेना ले कर इलिचपुर पर चढ़ आया। उस समय रामचन्द्र राजधानीमें नहीं थे। इस प्रकार अतर्कित आक्रमणसे हिन्दू लोग किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। राजा रामचन्द्र यह संवाद पा कर बड़ी तेजीसे चार हजार सेना ले कर शत्रुकी गति रोकनेके लिये चल दिये। किन्तु सुविधा न देख कर उन्होंने दुर्गमें आश्रय लिया। इधर अलाउद्दीनने यह प्रचार कर दिया, कि दिल्लीश्वर बहुत-सी सेना ले कर पीछे आ रहे हैं। रामचन्द्र इस संवाद पर डर गये और संधिका प्रस्ताव करके उन्होंने एक दूत भेजा। अलाउद्दीनने कई मन सोना मांगा। इस समय रामचन्द्रके पुत्र शङ्कर बहुत-सी सेना ले कर उपस्थित हुए। विपुल हिन्दूसेनासे मुसलमान-सेना बिलकुल हार जाती, पर उन्होंने देखा कि दिल्लीसे बहुत सेना आती होगी, तब वे सबके सब निरुत्साह हो गये। इस आशङ्काका फल यह हुआ कि, हिन्दूसेना बुरी तरहसे परास्त हुई।

रामचन्द्रके मित्र सभी हिन्दूराजे अपनी अपनी सेना भेज कर उन्हें मदद पहुंचाने पर तैयार थे। परन्तु रामचन्द्रने डरके मारे बहुत जल्द अलाउद्दीनके निकट संधिका प्रस्ताव लिख भेजा। अलाउद्दीनने ६०० मुक्ता, २ मन जवाहरात, १००० मन चांदी, ४००० खण्ड रेशमी वस्त्र तथा और भी कितनी मूल्यवान् वस्तुयें मांग भेजी। जो कुछ हो, रामचन्द्रने एलिचपुर तथा उसके अधीन देश छोड़ दिये। अलाउद्दीनने मुंहमांगा रत्न पा कर देवगिरिका परित्याग किया।

कुछ वर्ष बाद अलाउद्दीनने अपने चचाका काम तमाम कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठा। यादवराजके कर भेजनेकी बात थी, पर उन्होंने आज तक नहीं भेजा। उनका दमन करनेके लिये अलाउद्दीनने मालिक काफूरके अधीन तीस हजार सेना भेजी। मालिक काफुर १२२८ शक (१३०७ ई०)-में देवगिरि आ धमका। हिन्दू-मुसलमानमें घमासान युद्ध छिड़ा। रामचन्द्र पराजित और बन्दीभावमें दिल्ली लाये गये। यहां वे छः मास रहे, पीछे सम्मानपूर्वक छोड़ दिये गये। तभीसे रामचन्द्र दिल्लीदरबारमें कर भेजने और मुसलमानराजके साथ सद्भाव रख कर चलने लगे। १२३१ शक (१३०९ ई०)-में मालिक काफुर तैलङ्गाधिपको शासन करनेके लिये भेजा गया। देवगिरिमें वह कई दिन ठहरा। रामचंद्रने उसका अच्छी तरह स्वागत किया था

रामचन्द्रकी मृत्युके बाद उनके लड़के शङ्कर राजा हुए। उन्होंने दिल्ली-दरबारमें कर भेजना बंद कर दिया। १२३४ शक (१३१२ ई०)-में मालिक काफुर फिरसे चढ़ आया। इस बार भी हिन्दू-मुसलमानोंमें युद्ध हुआ। शङ्कर शत्रुके हाथ मारे गये, उसके साथ साथ यादव-राज्य तहस नहस और अच्छी तरह लूटा गया। काफुरने देवगिरिमें ही अड्डा जमाया।

मालिक काफुरके ऊपर दिल्लीश्वरका विशेष अनुग्रह देख अलाउद्दीनके सभी अमीर उमराव जलने लगे। कहीं वे लोग बागी न हो जांय, इस भयसे मालिक काफुरको फौरन दिल्ली जाना पड़ा। जो कुछ हो, इस समय अलाउद्दीनका देहान्त हो गया। उसका लड़का मुवारक उत्तराधिकारी बना। जिस समय दिल्लीमें यह सब घटना घटी उस समय मौका देख कर रामचन्द्रके जमाई हरपालने अस्त्रधारण किया। वे मुसलमान शासनकर्त्ताओंको भगा कर कुछ दिनके लिये यादवसिंहासन पर बैठे। १२४० शक (१३१८ ई०)-में दिल्लीश्वर मुवारक विद्रोह-दमन करनेके लिये दलबलके साथ दाक्षिणात्यमें चढ़ आया। हरपाल बन्दी हुआ और बड़ी बुरी तरहसे मारा गया। इस प्रकार दाक्षिणात्यके हिन्दू-स्वाधीनता सूर्य डूब गये।

नीचे देवगिरिके यादववंशकी तालिका दी जाती है:—

मल्लूगि
|
भिल्लम (शक ११०६-१११३)
|
जैत्रपाल वा जैतुगि (शक १११-११३२)
|
सिंघण (शक ११३२-११६६)
|
जैत्रपाल
|
कृष्ण (शक ११६६-११८२) — महादेव (शक ११८२-११३२)
|
रामचंद्र (शक ११९३-१२३१) — आमण
|
शङ्कर (शक १२३१-१२३४)
|
हरपाल (१२४० शकमें निहत)
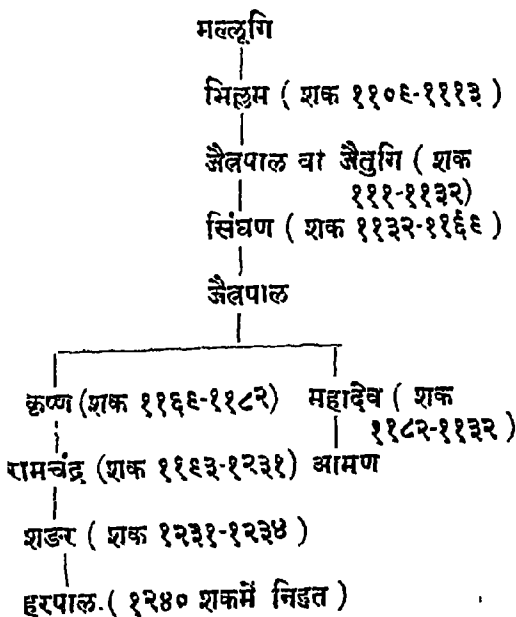
यादववंशी—राजपूतजातिकी एक शाखा। ये लोग ययातिके पुत्र यदुसे अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। इन यादवोंने एक समय अपने बाहुबलसे भारतवर्षमें विशेष वीरताका परिचय दिया था। चम्बल नदीके पश्चिम करौली-राज्यमें तथा उसके पूर्वतीरस्थ ग्वालियरके अन्तर्गत सबलगढ़ नामक स्थानमें अभी यदुवंश हिन्दूराजपूतोंका वास देखा जाता है। मुसलमानी अमलमें राजपूतानेके पूर्वांशवासी अधिकांश यादव इसलामधर्ममें दीक्षित हुए। वे लोग अभी खानजादा और मेव कहलाते हैं। ऐतिहासिक प्रमाणसे धर्मपाल नामक एक यदुवंशी राजाका नाम पाया जाता है। वे प्रायः ८०० ई०में विद्यमान थे। उन्हींसे करौली राजवंशमें 'पाल'-की उपाधि प्रचलित हुई। राजा धर्मपाल यादवपति श्रीकृष्णसे ७७ पीढ़ी नीचे थे। ये लोग श्रीकृष्णको ही आदिपुरुष मानते हैं।

बयाना नगरमें इस वंशके राजाओंकी राजधानी थी। ११९६ ई०में महम्मद घोरी और कुतुबउद्दीन आइबक द्वारा तहानगढ़ अधिकृत होने पर राजवंशधरगण बयाना छोड़ करौलीमें भाग आये तथा वहांसे यमुना पार कर सबलगढ़ चले गये। पीछे उन्होंने फिरसे करौलीमें आ कर राजपाट बसाया था।

इटावा जिलेके आवा-राजवंश तथा वहांके अन्यान्य यादवगण किस वंशके हैं, सो मालूम नहीं। बुलन्दशहरके छोकरजादागण दासीकन्याके वंशोद्भूत हैं। इस स्थानके निम्न श्रेणीके यादव बागड़ी कहलाते हैं। आग्रावासी वीरेश्वर यादवगण बयानाराज तिन्दपालसे अपने वंशबीजकी कल्पना करते हैं। उनका कहना है, कि सेना बन कर जब वे लोग चित्तोरमें घेरा डाल युद्ध करते थे, तब मुगल-सम्राट् अकबरशाहने उन्हें सम्मान-सूचक वीरेश्वरकी उपाधि दी थी। आग में यशावंद् नामक एक और यादवशाखाका वास देखा जाता है। ये लोग जयशलमीर और जयपुरसे यहां आ कर बस गये हैं। मथुरामें यादवोंके मध्य विधवा-विवाह प्रचलित देखा जाता है। इस कारण उनका सामाजिक-सम्मान घट गया है।

बांदा और भरतपुरके बागड़ी तथा नारायादवगण

नाइनके गर्भसे तथा आहर, सिनसिनवाल और कुछ जाटवंश या दोनोंके संस्रवसे उत्पन्न हुए हैं।

वर्त्तमान सामाजिक अवस्थानुसार यादोन और यादोनवंशियोंमें कुछ प्रभेद देखा जाता है। यादोनवंशी-का राजपूतोंके साथ आदान प्रदान चलता है, पर यादोन अपनेमें ही विवाहादि करते हैं।

यादवव्यास—रामकृष्ण पण्डितके शिष्य और नृसिंहके पुत्र। इन्होंने न्यायसिद्धान्तमञ्जरीसार और अनुमान-मञ्जरीसार, शिवतत्त्वाववोध तथा सिद्धान्तसंग्रह वहुत-से ग्रन्थ वनाये। न्यायसिद्धान्तमञ्जरीसारमें इन्होंने शौड़ल उपाध्यायका नामोल्लेख किया है। ये यादव पण्डित नामसे भी जनसाधारणमें परिचित थे।

यादवपुर—१ वङ्गालके चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक पुराना गांव। २ यशोर और चौवोस परगनेके अन्तर्गत एक एक गांव।

यादवप्रकाश—वैजयन्ती नामक अभिधान तथा विष्णु-स्मृतिकी विस्तृत टीकाके रचयिता। ये यादव नामसे जनसाधारणमें परिचित थे।

यादवप्रकाश—यतिधर्मसमुच्चयके रचयिता। प्रपण्णामृतके मतसे संन्यासधर्म ग्रहण करनेके वाद इनका रामानुजने गोविन्ददास नाम रखा।

यादवप्रकाशस्वामी—एक विख्यात कवि।

यादवसूरि—ताजिककौस्तुभ और ताजिकयोगसुधानिधि नामक दो ग्रंथके रचयिता।

यादवाचार्य—कांचीवासी एक दण्डी संन्यासी। ये रामा-नुजके गुरु थे। इनका दूसरा नाम यादवप्रकाश था।

यादवी (सं० स्त्री०) १ यदुकुलकी स्त्री। २ दुर्गा।

यादवेन्द्र—दक्षिणाकालीपूजापद्धतिके रचयिता।

यादवेन्द्र (सं० पु०) यादवानामिन्द्रः। श्रीकृष्ण।

यादवेन्द्रपुरी—पद्यावलीधृत एक कवि।

यादवेन्द्रभट्ट—स्मृतिसारके प्रणेता। ये यादव विद्याभूषण नामसे भी परिचित थे।

यादवेन्द्र सरस्वती—शङ्करमतावलम्वी १३वें गुरु।

यादस् (सं० क्ली०) यान्ति वेगेनेति या असुन् वाहुल-काद्गागमश्च। १ जल, पानी। २ जलजन्तु, जलमें रहने-वाला प्राणी।

यादु (सं० पु०) १ जल, पानी। २ कोई तरल पदार्थ।

यादुविद्या (सं० स्त्री०) १ भोजवाजी। २ भौतिकविद्या। भौतिकविद्या देखो।

यादुर (सं० त्रि०) वहु रेतोयुक्त, वीर्यवान्।

यादृक्ष (सं० त्रि०) य इव दृश्यते यमिव पश्यति वा दृश् (दृशेः क्सश्च वक्तव्यः। पा ३।२।६०) इति वार्त्तिकोक्त्यो कस्, (आसर्वनाम्नः। पा ६।३।९१) इत्यत्र 'दृक्षे चेति वक्तव्यः' इत्यात्वं। जैसा, सादृश।

यादृश् (सं० त्रि०) य इव दृश्यते दृश् (त्यदादिषु दृशोऽना-लोचनेकञ्च। पा ३।२।६०) इति चकारात् क्विन्, 'आसर्व-नाम्नः' इत्याकारादेशः। जैसा, जिस प्रकारका।

यादृश (सं० त्रि०) य इव दृश्यते इति दृश (त्यदादि-षुदृश इति। पा ३।२।६०) इति कञ् आकारादेशः। जिस प्रकारका, जैसा।

यादृशी (सं० वि० स्त्री०) जैसी, जिस प्रकारकी।

यादगार महम्मद (मिर्जा)—अमीर तैमूरके प्रपौत्र मीर्जा महम्मदके पुत्र। ये १४३४ ई०में अपने पितामह मीर्जा वाइसनगढ़के मरने पर खुरासानके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। जव सुलतान हुसेन वैनाड़ा हिरटने दखल किया तव यादगरने उनके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। कई लड़ाईयोंके वाद १४७० ई०में एक दिन नैशयुद्धमें ये मारे गये। कविता वनानेमें ये वड़े मशहूर थे।

यादगर नाशिर (मीर्जा)—वावर शाहके भाई। सम्राट् हुमायू जव १५४६ ई०में दलवलके साथ पारससे लौटे उस समय यादगरने सेनादलको राजद्रोहिताचरणमें प्रवृत्त होनेके लिये प्ररोचित किया। सम्राट्के खुल्लतात होने पर भी विचारमें उनको प्राण दण्ड हुआ था।

यादुवाड़—वम्वईप्रदेशके वेलगाम् जिलान्तर्गत एक नगर। यह गोकाकसे २५ मील पूर्वमें अवस्थित है। वहुत प्राचीनकालसे इस स्थानकी समृद्धिका परिचय पाया जाता है। १६६५ ई०में इटली-वासी भ्रमणकारी जनेली कवेरी इस स्थानको देखने आये थे। १७४६ ई०में सव-नूरके नवाव माजिद खाँ महाराष्ट्र-दलसे हार कर इस स्थानको छोड़ देनेके लिये वाध्य हुए। १७६४ ई०में पेशवाने सामरिकसरञ्जम अर्थात् सेनादलके खर्चवर्चके

लिये यह स्थान मिराजके पटवर्द्धनके हाथ सौंप दिया। १८४६ ई०में निःसन्तान परशुराम भाऊके मृत्युके बाद यह स्थान अङ्गरेज गवर्मेण्टके हाथ लगा। यहां कपास और रेशमी कपड़े बुननेका विस्तृत कारबार है।

यान्दबू (यन्दबू)—उत्तरब्रह्मके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१° ३८' उ० तथा देशा० ९५° ४' पू०के इरावती नदीके दाहिने किनारे अवस्थित हैं। यहां १८२६ ई०में अङ्गरेज और ब्रह्मराजके साथ सन्धि हुई। इस सन्धिके अनुसार ब्रह्मराजने अंगरेजराजको तेनासेरिम प्रदेश प्रदान किया तथा आसाम, कछाड़, जयन्ती और मणिपुर आदि भारतका अधिकार छोड़ दिया। १८३० ई०में राजवंशधरके अभावसे कछाड़राज्य, १८३५ ई०में नरबलिके अपराधमें जयन्तीराज्य तथा अङ्गरेज प्रतिनिधिकी हत्या करनेके अपराधमें १८९१ ई०को मणिपुर अङ्गरेजोंके शासनाधीन हुआ।

याद्राध्य (सं० त्रि०) यातां राध्यं। जानेवाले व्यक्तियोंका आराधनीय।

याद्व (सं० त्रि०) १ यदुवंशोद्भव, यदुवंशी। २ यदुसम्बन्धी। ३ मनुष्योंमें प्रसिद्ध।

यान (सं० क्ली०) या-ल्युट् अर्द्धर्चादित्वात् पुलिङ्गमपि। १ राजाओंकी सन्धि आदि छः गुणोंमेंसे एक गुण। हाथी, घोड़े, रथ और दोलादि जिस पर चढ़ कर जाया जाता है उसीको यान कहते हैं। यह यान द्विपद और चतुष्पदादि भेदसे बहुत प्रकारका है।

"मानुषैः पक्षिभिर्वापि तथान्यैर्द्विपदैरपि।
यानं स्याद्द्विपदं नाम तस्य भेदो ह्यनेकधा।
सामान्यञ्च विशेषश्च तस्य भेदो द्विधा भवेत्॥"
(युक्तिकल्पतरु)

मनुष्य, पक्षी या अन्य किसी द्विपद जन्तु द्वारा जो गमन किया जाता है उसको द्विपदयान कहते हैं। यह द्विपद यान बहुत प्रकारका है। उनमें सामान्य और विशेष इन्हीं दो भागोंमें विभक्त हैं। २ गति। (त्रि०) ३ फलप्राप्तिहेतु।

यानक (सं० क्ली०) यान-स्वार्थे कन्। यान देखो।

यानकर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-अच् करः यानस्य करः। याननिर्माणकारक, रथ आदि बनानेवाला।

यानपात्र (सं० क्ली०) यानसाधनं पात्रम् शाकपार्थिववत् समासः। निष्पद यानविशेष, जहाज। पर्याय—वहित्रक, वोहित्थ, वहन, पोत, समुद्रयान।

यानपात्रिका (सं० स्त्री०) छोटा जहाज।

यानभङ्ग (सं० पु०) यानस्य भङ्गः। यानका भङ्ग, जहाज नष्ट होना।

यानमुख (सं० क्ली०) यानस्य मुखं, पुरोभागः। रथादिका पुरोभाग, धुर।

यानवाह (सं० पु०) यानं वहति वह-अण्। यानवाहक, वह जो रथ आदि चलाता हो।

यानशाला (सं० स्त्री०) यानस्य शाला ६-तत्। यानगृह, वह घर जिसमें रथ आदि रखा जाता है।

यानी (अ० अव्य०) तात्पर्य यह कि, अर्थात्।

याने (अ० अव्य०) यानी देखो।

यान्त्रिक (सं० त्रि०) १ आयुर्वेदीय यन्त्रसम्बन्धीय। २ यन्त्र परिशोभित शर्करादि।

यापक (सं० त्रि०) यापयतीति यापि ण्वुल्। प्रापक, प्राप्त होनेवाला।

यापन (सं० क्ली०) या-णिच् ल्युट्। १ वर्त्तन, चलाना। २ कालक्षेपण, समय बिताना। ३ निरसन, निरपना। ४ अपसारण, छोड़ना। ५ मिटाना। (त्रि०) यापयतीति या-णिच् ल्युट्। ६ प्रापक, प्राप्त होनेवाला।

"अयातयामास्तस्यासन् यामाः स्वान्तरयापनाः।"
(भाग० ३।२२।३३)

यापना (सं० स्त्री०) १ चलाना, हांकना। २ कालक्षेप, दिन काटना। ३ व्यवहार, वर्त्ताव। ४ वह धन जो किसीको जीविका निर्वाहके लिये दिया जाय।

यापनीय (सं० त्रि०) या णिच् अनीयर्। १ प्रापणीय, पाने योग्य। २ यापन करनेके योग्य, याप्य।

याप्ता (सं० स्त्री०) जटा।

याप्य (सं० त्रि०) यापि-यत्। १ निन्दनीय, निन्दा करनेके योग्य। २ यापनीय, यापन करनेके योग्य। ३ गोपनीय, छिपानेके योग्य। ४ रक्षणीय, रक्षा करनेके योग्य। (पु०) ५ वह रोग जो असाध्य न हो, पर चिकित्सासे प्राणघातक न होने पावे। साध्य, याप्य और असाध्यके भेद-

से सभी व्याधि तीन भागोंमें विभक्त हैं। उनमेंसे साध्य व्याधिके फिर दो भेद हैं, सुखसाध्य और कष्टसाध्य।

जो रोग चिकित्सा द्वारा स्थगित रहे तथा विधिके अनुसार चिकित्सा नहीं करनेसे प्राण-नाश करे उसे याप्यरोग कहते हैं। यत्नके साथ गाढ़ा हुआ खंभा जिस प्रकार गिरते हुए घरकी रक्षा करता है, उसी प्रकार उपयुक्त औषधादि द्वारा चिकित्सा करनेसे याप्यरोगी भी आरोग्य हो जाता है। विना चिकित्साके मनुष्यका साध्यरोग याप्य और याप्यरोग असाध्य हो जाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी रोगको याप्य समझ कर उसकी उपेक्षा न करे, वरन् विधिके अनुसार उसकी चिकित्सा करे, यही वैद्यकशास्त्रका उपदेश है।

"याप्याः केचित् प्रकृत्यैव केचिद् याप्या उपेक्षया॥"

कोई कोई रोग स्वभावतः ही याप्य हैं और कोई कोई उपेक्षा द्वारा याप्य होता है अर्थात् अच्छी तरह चिकित्सा नहीं करनेसे याप्य होता है।

याप्ययान (सं० क्ली०) याप्यं अधमं यानं। शिविका, पालकी।

याबू (फा० पु०) वह घोड़ा जो डील डौलमें बहुत बड़ा न हो, टट्टू।

याभ (सं० पु०) यभ्यते इति यभ-घञ्। मैथुन, जृम्भण।

याभवत् (सं० त्रि०) याभ-मतुप् मस्य व। मैथुनविशिष्ट, रतियुक्त।

याम (सं० पु०) याति यायते वा या (अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षि क्षुभा या वापदि यक्षिणीभ्यो मन्। उण् १।१४०) इति मन्, यम् घञ् वा। १ तीन घंटेका समय, प्रहर। २ संयम। ३ गमन, जाना। ४ गमनसाधन, यानादि। ५ एक प्रकारके देवगण। इनका जन्म मार्कण्डेयपुराणके अनुसार स्वयम्भुव मनुके समय यज्ञ और दक्षिणासे हुआ था। ये संख्यामें बारह हैं। ६ काल, समय। (त्रि०) ६ यमसम्बन्धीय।

याम (हिं० स्त्री०) रात।

यामक (सं० पु०) पुनर्वसु नक्षत्र।

यामकिनी (सं० स्त्री०) १ कुलस्त्री, कुलवधू। २ पुत्रवधू, लड़केकी स्त्री। ३ भगिनी, बहन।

यामकोश (सं० त्रि०) मार्गप्रतिबन्धक राक्षस, पथरोधक राक्षस।

यामघोष (सं० पु०) यामे प्रतियामे घोषः रवोऽस्य। कुक्कुट, मुर्गा।

यामघोषा (सं० स्त्री०) यामे यामे घोषोऽस्याः, यामान् प्रहरान् घोषति शब्दायते इति वा घुष्-अच् टाप्। यन्त्रविशेष, वह घण्टा जो बीच बीचमें समयकी सूचना देनेके लिये बजता हो, घटिकायन्त्र। पर्याय—नाली, घटी, यामनाली, यमेरुका, दण्डढक्का।

यामतूर्य (सं० क्ली०) यामज्ञापकं तूर्यं मध्यपदलोपि कर्मधा०। यामज्ञापकतूर्यध्वनि, वह तुरहीकी ध्वनि जो समय जताती है।

यामदुन्दुभि (सं० पु०) वाद्ययन्त्रविशेष, नगारा।

यामदूत (सं० पु०) वंश या कुलभेद।

यामन् (सं० क्ली०) गमन, गति।

यामन (सं० त्रि०) गति, गमन।

यामनाली (सं० स्त्री०) यामस्य नालीव। यामघोषा, समय बतानेवाली घड़ी।

यामनेमि (सं० पु०) इन्द्र।

यामयम (सं० पु०) उस समयके खेलका नियम।

यामरथ (सं० क्ली०) यमव्रत।

यामल (सं० क्ली०) १ युगल, वे दो लड़के जो एक साथ उत्पन्न हुए हों। २ एक प्रकारका तन्त्रग्रन्थ। इसमें सृष्टि, ज्योतिषाख्यान, नित्यकर्मकथन, क्रमसूत्र, वर्णभेद, जातिभेद, युगधर्म और संख्या ये आठ विषय हैं। (वाराहीतन्त्र०) यह यामल छः प्रकारका है, यथा—आदियामल, ब्रह्मयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल, गणेशयामल और आदित्ययामल।

यामलायन (सं० पु०) यमल (चतुर्ष्वर्थेषु पक्षादिभ्यः फक्। पा ४।२।८०) इति फक्। यमलके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

यामवती (सं० स्त्री०) यामः प्रहरः प्रस्त्यस्यामिति याम-मतुप् मस्य च व, ङीप्। रात्रि, निशा।

यामवृत्ति (सं० स्त्री०) प्रहरी।

यामश्रुत (सं० त्रि०) जो जल्दी सुना गया हो।

यामहू (सं० त्रि०) १ जानेके लिये जिससे कहा जाय। २ जिसे नियत समय पर बुलाया गया हो।

यामहूति (सं० स्त्री०) यज्ञ। यज्ञमें देवगण बुलाये जाते हैं इसलिये यामहूति शब्दसे यज्ञ समझा जाता है।

यामातृ (सं० पु०) जामाता पृषोदरादित्वात् जस्य यः। जामाता, कन्याका पति, जमाई। जामाता विष्णुतुल्य है। इसलिये उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए। जब तक नाती न जन्म लेवे, तब तक जमाईके यहां खाना मना है।

यामातृक (सं० पु०) जामाता, जमाई।

यामार्द्ध (सं० क्ली०) यामस्य अर्द्धं। यामका अर्द्ध, पहरका आधा। दिवा और रात्रिमान जितने दण्डका होता है उसे ८से भाग देनेसे उसके एक एक भागका नाम यामार्द्ध है। इन सब यामार्द्धोंका एक एक अधिपति है। उन सब अधिपतियोंका विषय ज्योतिषमें लिखा है। जात बालककी कोष्ठी बनाते समय यामार्द्ध-अधिपति द्वारा पताकी गणना करनी होती है।

दिनमानको ८से भाग देनेसे उसके एक भागका नाम यामार्द्ध है। जिस वारमें जन्म होगा, वह ग्रह प्रथम यामार्द्धका और उसके बाद छः छःके बाद द्वितीयादि यामार्द्धका अधिपति होगा। इसी प्रकार रात्रिमानको ८ से भाग देनेसे जो होगा, वह रात्रिका यामार्द्ध है। रात्रि-कालमें जिस वारमें जन्म होगा, वह ग्रह प्रथम यामार्द्धपति पीछे पांच पांचके बाद जो ग्रह होगा उसीको परवर्त्ती-यामार्द्धका अधिपति जानना होगा। जैसे, रविवारमें प्रथम यामार्द्धपति रवि, द्वितीय यामार्द्धपति शुक्र, तृतीय यामार्द्ध पति बुध और चतुर्थ यामार्द्धपति चन्द्र, इसी प्रकार और सब स्थिर करना होगा।

रात्रिकालमें रविवारको प्रथम यामार्द्धपति रवि, द्वितीय यामार्द्धपति वृहस्पति, तृतीय चन्द्र, चतुर्थ शुक्र इत्यादि क्रमसे स्थिर करना होगा। राहु और केतुको मान कर गणना नहीं करनी चाहिये।

यामायन (सं० पु०) १ वेदमन्त्रद्रष्टा। कई ऋषियोंके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। २ ऊद्ध्वर्वकृशन, कुमार, दमन, देवश्रवस्, मथित, शङ्ख और सङ्कुसुक आदिके गोत्रापत्य।

यामि (सं० स्त्री०) याति कुलात् कुलान्तरमिति या बाहुल-कात् मि। १ स्वसा, बहिन। २ कुलस्त्री, कुल-वधू। ३ यामिनी, रात। ४ अग्निपुराणके अनुसार धर्मकी एक पत्नीका नाम। इससे नागवीथी नामक कन्या उत्पन्न हुई थी। ५ पुत्री, कन्या। ६ पुत्रवधू, पतोहू। ७ दक्षिण दिशा।

यामिक (सं० त्रि०) यामे नियुक्तः याम-ठक्। प्रहरिक, जो पहर पहरमें नियुक्त होता है उसको यामिक या चौकी-दार कहते हैं।

यामिकभट (सं० पु०) यामिकश्चासौ भटश्चेति। प्रह-रिक, चौकीदार।

यामिका (सं० स्त्री०) रजनी, रात।

यामित्र (सं० क्ली०) लग्नसे सप्तम राशि।

यामित्रवेध (सं० पु०) यामित्रे सप्तमस्थाने वेधः। ज्योतिष-का एक योग। इसमें विवाह आदि शुभ कर्म दूषित होते हैं। कर्मका जो काल हो उसके नक्षत्रकी राशिसे सातवीं राशि पर यदि सूर्य शनि वा मङ्गल हो तब यामित्रवेध होता है। विवाहादि कार्य्यमें दिन देखनेके समय यामित्रवेध हुआ है वा नहीं, यह देख लेना आवश्यक है। यदि यामित्रवेध हो, तो उस दिन विवाहादि संस्कार नहीं करना चाहिये। यामित्रवेध इस प्रकार स्थिर करना होता है—

पापग्रहसे यदि सातवें स्थानमें चन्द्र रहे अथवा वह चन्द्र यदि पापयुक्त हो, तो यामित्रवेध होता है। यह यामित्रवेध सभी शुभ कार्य्यमें वर्जनीय है। क्योंकि इसमें यात्रा करनेसे विपद्, गृहप्रवेशमें पुत्रनाश, क्षौर-कार्य्यमें रोग, विवाहमें विधवा, व्रतमें मरण इत्यादि अशुभ होते हैं।

चन्द्रमासे सातवीं राशिमें यदि रवि, मङ्गल और शनि रहे, तो भी यामित्रवेध होता है। जिस दिन विवा-हादि शुभकार्य्यका दिन देखना होगा, पहले चन्द्रमा किस राशिमें है उसे स्थिर करे। पीछे उस चन्द्रमाके सातवें स्थानमें कोई पापग्रह है वा नहीं तथा चन्द्रमा भी तो कोई पापक्रान्त नहीं है, यह देखे। यदि है, तो समझना चाहिये, कि यामित्रवेध हुआ है। (ज्योतिस्तत्त्व)

यामित्रवेधमें शुभकर्म निषिद्ध है। यदि यामित्रवेधमें शुभकर्म करना निहायत जरूरी हो, तो इसका प्रतिप्रसव देख कर शुभकर्म करनेमें कोई दोष नहीं। प्रतिप्रसवमें

नहीं रहनेसे इसका परित्याग करना ही उचित है।
प्रतिप्रसव इस प्रकार स्थिर करना होता है—

"मूलत्रिकोणनिजमन्दिरगोऽथ पूर्णो
मित्रर्क्षसौम्यग्रहगोऽयतदीक्षितो वा।
यामित्रवेधविहितासपहृत्य दोषान्
दोषाकरः सुखमनेकविधं विधत्ते॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

चन्द्र यदि मूलत्रिकोणमें अर्थात् वृषराशिमें हों अथवा निजगृहमें कर्कटमें रहे अथवा चन्द्र पूर्ण हों, अथवा मित्र वा शुभग्रहके गृहमें अवस्थित वा उससे देखे जाते हों, तो यामित्रवेधजनित दोष नहीं होता, वरन् शुभ होता है।

यामिन् (सं० त्रि०) गति।

यामिनी (सं० स्त्री०) यामाः सन्त्यस्यां याम-इनि ङीप्। १ रात्रि, रात। २ हरिद्रा, हलदी। ३ कश्यपकी एक स्त्री-का नाम। ४ प्रह्लादकी दूसरी लड़की। (कथासरित्सा० ४६।२२)

यामिनीचर (सं० त्रि०) यामिन्यां चरतीति चर-ट। १ निशाचर, राक्षस। (पु०) २ गुग्गुलु, गुग्गुल। ३ पेचक, उल्लू पक्षी।

यामिनीपति (सं० पु०) यामिन्याः पतिः। १ चन्द्र, चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

यामी (सं० स्त्री०) यमस्येयं यमो देवतास्या इति वा यम-अण् ङीप्। १ दक्षिणदिक्, दक्षिण दिशा। २ कुलस्त्री, कुलवधू। ३ धर्मकी पत्नी। (विष्णुपु० १।१५।१०५)

यामीर (सं० पु०) चन्द्र, चन्द्रमा।

यामीरा (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

यामुन (सं० क्ली०) यमुनायां भवं यमुना-अण्, यमुनाया इदमित्यण् वा। १ स्रोतोऽञ्जन, सुरमा। (पु०) २ वृहत्-संहिताके अनुसार एक जनपदका नाम। यह जनपद कृत्तिका, रोहिणी और मृगशीर्षके अधिकारमें माना जाता है। ३ एक पर्वतका नाम। (रामायण ४।४०।२१) ४ महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम। ५ एक वैष्णव आचार्यका नाम, यामुन मुनि। ये दक्षिणके रंग-क्षेत्रके रहनेवाले थे और रामानुजाचार्यके पूर्व हुए थे। ये संस्कृतके अच्छे विद्वान् थे। इनके रचे हुए आगम-प्रामाण्य, सिद्धित्रय, भगवद्गीताकी टीका, भगवद्गीता-संग्रह और आत्ममन्दिरस्तोत्र आदि ग्रन्थ अब तक मिलते हैं। कुछ लोग इन्हें रामानुजाचार्यका गुरु बतलाते हैं। (त्रि०) ६ यमुनासम्बन्धी, यमुनाका। ७ यमुनाके किनारे बसनेवाला।

यामुनेष्टक (सं० क्ली०) यामुनमिष्टं-एकम्। सीसक, सीसा।

यामुन्दायनि (सं० पु०) यमुन्दस्य गोत्रापत्यं यमुन्द (तिकादिभ्यः फिञ्। पा ४।१।१५४) इति फिञ्। यामुन्द ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न अपत्य।

यामुन्दायनिक (सं० पु०) यमुन्दस्य गोत्रापत्यं युवा (केशछ च। पा ४।२।१४।३) इति ठक्। यमुन्दका युवा गोत्रापत्य।

यामेय (सं० पु०) यामिः स्वसृकुलस्त्रियोरित्यनुशासनात् यामेरपत्यमित्यर्थे ठक्। १ भागिनेय, बहनका लड़का। २ धर्मकी पत्नी यामीके पुत्रका नाम। (भागवत० ६।६।६)

यामोत्तर (सं० क्ली०) सामभेद।

याम्य (सं० पु०) यामो निवासोऽस्य, यामो-यत्। १ अगस्त्यमुनि। २ चन्दन वृक्ष। ३ यमदूत। ४ शिव। ५ विष्णु। (त्रि०) ६ यमसम्बन्धीय, यमका। ७ दक्षि-णाय, दक्षिणका।

याम्यज्वर (सं० पु०) प्रवृद्धहीन मध्यवातादि जनित सन्निपात ज्वरभेद। भावप्रकाशके मतसे इसका लक्षण—हीन वायु, पित्ताधिक्य तथा मध्य कफ द्वारा जो सन्नि-पात ज्वर उत्पन्न होता है वह वायु, पित्त और कफके लिये सभी रोगोंका बलावल और दोषका आधिक्य तथा न्यूनताके अनुसार होता है। इसका तात्पर्य यह है, कि इस रोगमें वायु बहुत थोड़ी रहती है इसलिये वेदना और कम्प आदि वायुजात सभी लक्षण थोड़े परिमाणमें प्रकाश होते हैं। दाह, उष्णता और पिपासा आदि होना पित्तका काम है इसलिये पित्ताधिक्य रहनेसे ये सब लक्षण अधिक होते हैं। गुरुत्व, अग्निमान्द्य और प्रसेकादि कफसे होता है। अतएव ये सब लक्षण मध्यमरूपसे होते हैं। इस ज्वरके होनेसे हृदयमें दाह, यकृत्, प्लीहा, अन्त्र और फुस-फुस पक जाता, अत्यन्त मूर्च्छा, मलद्वारसे पूय और रक्त निकलता, सभी दाँत शीर्ण तथा अन्तमें मृत्यु तक हो जाती है। ज्वर देखो।

याम्यतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, यमसम्बन्धी तीर्थ।

याम्यदिगुद्भवा (सं० स्त्री०) तमालपत्नी।

याम्यद्रुम (सं० पु०) शाल्मलि वृक्ष, सेमलका पेड़।

याम्या (सं० स्त्री०) यमस्येयं यमो देवतास्या इति वा (यमाच्चेति वक्तव्यं। पा ४।१।८५) इति वार्त्तिकोक्त्या ण्य टाप्। १ दक्षिण दिक्, दक्षिण दिशा। २ भरणी नक्षत्र। (त्रि०) ३ यमसम्बन्धी, यमका।

याम्यायन (सं० क्ली०) याम्यानामयनं याम्यं अयनमिति वा दक्षिणायन।

याम्योत्तरदिगंश (सं० पु०) लम्बांश, दिगंश।

याम्योत्तररेखा (सं० स्त्री०) यह कल्पित रेखा जो किसी स्थानसे आरम्भ हो कर सुमेरु और कुमेरुसे होती हुई भूगोलके चारों ओर मानी गई हो। पहले भारतीय ज्योतिषी यह रेखा उज्जयिनी या लंकासे गई हुई मानते थे, पर अब लोग युरोप और अमेरिका आदिके भिन्न भिन्न नगरोंसे गई हुई मानते हैं। आजकल बहुधा इस रेखाका केन्द्र इङ्गलैण्डका ग्रीनिच नगर माना जाता है।

याम्योद्भूत (सं० पु०) याम्यायामुद्भूतः। श्वेतालवृक्ष।

यायजूक (सं० पु०) पुनः पुनर्यजति यज् यङ् (यजजपदशां यङः। पा ३।२।१६६) इति ऊक, पुनः पुनः यागकर्त्ता, वह जो वारम्वार यज्ञ करता हो इसे इज्याशील भी कहते हैं।

यायावर (सं० पु०) पुनः पुनरतिशयेन वा याति देशादेशान्तरं गच्छतीति या-यङ् (यश्च यङः। पा ३।२।१७६) इति वरच्। १ अश्वमेधीयाश्व, अश्वमेधका घोड़ा। २ जरत्कारु मुनि। ३ मुनियोंके एक गणका नाम। जरत्कारुजी इसी गणमें थे। ४ एक स्थान पर न रहनेवाला साधु, सदा इधर उधर घूमता रहनेवाला संन्यासी। ५ वह ब्राह्मण जिसके यहां गार्हपत्य अग्नि वरावर रहती हो, साग्निक ब्राह्मण। ६ यांञ्चा, याचना।

यायिन् (सं० त्रि०) या-णिनि युकागमश्च। गमनशील, जानेवाला।

यार (फा० पु०) १ मित्र, दोस्त। २ उपपति, किसी स्त्रीसे अनुचित सम्बन्ध रखनेवाला पुरुष।

यारकंद (हिं० पु०) एक प्रकारका बेल-बूटा जो कालीनमें बनाया जाता है।

यार महम्मद—सिन्धुप्रदेशके कल्होरावंशीय बलुची-राजवंशके प्रतिष्ठाता। इन्होंने पहले राजा लक्ष्मी और इल्तास खाँ ब्राहुयरकी सहायतासे शिवके शासनकर्त्ता मीर्जा बख्तयार खाँको १७०१ ई०में पराजित कर शिकारपुर अधिकार कर वहां राजपाट स्थापन किया। दिल्ली सम्राट्ने उन्हें देराजात दानके साथ साथ 'खुदा यार खाँ'-की भी राजोपाधि दी थी। इसके बाद इन्होंने परमारोंको सामतानीसे भगा कर धीरे धीरे एक सामन्तराज्य विस्तार किया। पीछे इन्होंने १७११ ई०में रख्तवारके भाई मालिक अली वक्सको हरा कर कन्दियारो और लर्कानो दखल किया। मीर्जा यार महम्मदको अत्याचार-काहिनी और अपने सौभाग्यविपर्ययकी कथा इन्होंने शाहजादा मईज् उद्दीनको (पीछे जहान्दर शाहको) कह सुनाई। मईज् उद्दीन् उस समय मुलतानमें थे। जब उन्होंने यह संवाद सुन पाया, तो तुरत वे सिन्धुप्रदेशमें आ उपस्थित हुए। मीर्जाने सम्राट्-पुत्रसे प्रार्थना की जिससे वे राज्यमें सैन्यचालना न करें। शाहजादाने उनकी एक भी न सुनी, वे आगे बढ़े। यह देख उन्होंने ससैन्य सामनेवाली मुगलसेना पर धावा बोल दिया। लड़ाईमें मीर्जा निहत हुए; किन्तु शाहजादा यार महम्मदको विना सजा दिये ही भक्करकी ओर चल चले। राजाको कृपा देख यार खाँने उल्लासित हो सक्कर अपने कब्जेमें किया। १७१६ ई०में उनको कलहोरामें मृत्यु हुई।

यार लतीफ खाँ—बङ्गालके नवाब सिराजुद्दौलाके एक सेनापति। इन्होंने ही बङ्गालका राजसिंहासन पानेके लिये अङ्गरेज-कर्मचारी मि० वोयाट्सनके साथ नवाब सिराजुद्दौलाको राज्यच्युत करनेका षड्यन्त्र किया था। इनके बाद सेनापति मीरजाफर खाँने यह आवेदन अङ्गरेज-सभामें भेजा था।

याराना (फा० पु०) १ यार होनेका भाव, मित्रता। २ स्त्री और पुरुषका अनुचित सम्बन्ध या प्रेम। (वि०) ३ मित्रका-सा, मित्रताका।

यारी (फा० स्त्री०) १ मैत्री, मित्रता। २ स्त्री और पुरुषका अनुचित प्रेम या सम्बन्ध।

यारी—पांच यार या बंधु-बांधव मिल कर उपदेश या तत्त्वज्ञानमूलक सङ्गीतालापको 'यारी' कहते हैं। अथवा धर्मतत्त्व 'जारी' वा घोषणा करनेका नाम भी 'जारी' है। यह बङ्गदेशका एक ग्राम्य सङ्गीतामोद है। उत्तरबङ्गमें इस गानका प्रचार नहीं देखा जाता। यशोर, खुलना, पावना, फरीदपुर और नदिया जिलेमें कहीं कहीं मेला वा वारोयारी उपलक्षमें यह जारीगान होते देखा जाता है। निम्न श्रेणीके हिन्दू-मुसलमान द्वारा ही यह गान होता है। कबसे इस ग्राम्य सङ्गीतका प्रचार है, मालूम नहीं। प्रवाद है, कि दिल्लीश्वर सिकन्दर लोदीके पुत्र गाजी संसारकी असारता जान कर फकीर हो गया था। कृष्णगञ्ज रेलवे स्टेशनके निकटवर्त्ती एक छोटे गांवका रहनेवाला एक फकीर 'हज' करके मक्कासे लौट रहा था। दिल्लीके समीप पुलिया नामक स्थानमें रात हो गई और वह ठहर गया। उसके पास ही एक मुसलमान-मकबरा था। फकीरने स्वप्नमें देखा, कि कोई उसे गाजीकी महिमा गानेका उपदेश दे रहा है। सवेरे वह वहांसे रवाना हुआ और गाजीका गीत प्रचार करनेमें लग गया। कोई कोई कहते हैं, कि उस फकीरका नाम वाजित फकीर था।

उस गीतसे मालूम होता है, कि आसरफ फकीर ही गाजी-गीतके प्रवर्त्तक हैं। उस गाजी-गीतका एक समय निम्न वङ्गकी निम्न श्रेणीमें विशेष आदर था। बहुतोंका अनुमान है, कि यही गाजी गीत परिवर्त्तित हो कर भिन्न ढंगमें, भिन्न सुरमें, भिन्न आदर्श पर यारी वा जारी कहलाने लगा था। दोनों ही गीतोंका उद्देश्य भगवान्‌के नाममाहात्म्यका प्रचार और निम्न श्रेणीके हिन्दू-मुसलमानोंके बीच विशुद्ध आमोदके साथ सद्भाव-स्थापन है।

गाजी-गीतका जब बहुल प्रचार था, उससे दो सौ वर्ष पहले जारी-गीतकी सृष्टि हुई, यह बात किसी किसी उस्तादके मुखसे सुनी जाती है। सचमुच कृष्णनगरके राजभवनके आमोद-प्रमोदकी तालिकामें सौ वर्षसे भी पहले वहां इस जारी-गीतका आदर था।

वर्त्तमानकालमें अधिकांश समय एक छोटा चँदोवा डाल कर उसकी नीचे यारी गीत गाया जाता है। पहले जारीवाला खंजरीके साथ घूम घूम कर झूमर गाता है। जारीके दलमें दो एक बालक, मधुर गान करनेवाले दो एक गायक, दो वादक और 'वयाति'- या मूलगायक रहता है। इस दलके लोगोंकी वेशभूषामें उतनी परिपाटी नहीं है। पर हां, दो एक जगह वर्त्तमान रुचिके अनुसार किसीके शिर पर ताज, छींट वा साटनका कोट और किसीके शिर पर पंख दी हुई टोपी देखी जाती है। साधारण गीतमें जिस प्रकार आभोग, अन्तरा, चितेन आदि रीति है, इस जारी-गीतमें भी उसी प्रकार धूआ, आवेज, केरता, मुखरा, वाहिर चितेन आदि अंश रहते हैं। प्रत्येक गीतके पहले या अन्तमें एक वा दो धूआ रहता है।

पहले कह आये हैं, कि मूलगायकका नाम वयाति है। जारि-गीतका रचयिता यही वयाति है। पारसी 'वयात्' शब्दका अर्थ है श्लोक, अध्याय वा काव्यांश। जो वयात् बनाता है उसको वयाति कहते हैं। और तो क्या, जारी-गीतके आदि वयातिगण निरक्षर होते। कृषककुलमें उनका जन्म होता, वे कभी भी लिखना पढ़ना नहीं सीखते, फिर भी स्वभावतः वे वयातकी ऐसी रचना करते हैं, कि उसे देख कर चमत्कृत और स्तम्भित होना पड़ता है। ये लोग बातकी बातमें गान रच कर सबोंको प्रसन्न कर सकते थे। मालूम होता है, कि उन्होंने मानो ईश्वरदत्त कवित्वशक्ति ले कर श्रमजीवी-कृषककुलमें शान्तिप्रदान करनेके लिये दीन कृषकोंके घर जन्म लिया है। यहां तक कि, ऐसे निरक्षर वयातिकी गीतरचना सुन कर कितने पण्डित भी विमुग्ध हो गये हैं। ऐसी अनन्य साधारणशक्ति रहते हुए भी उन्होंने कभी उच्च हिन्दू वा मुसलमान-समाजमें उपयुक्त आदर पाया है वा नहीं, सन्देह है। यही कारण है, कि ऐसे सैकड़ों स्वभाव कविकी अपूर्व गीतिकविता उद्धार करनेका कोई उपाय नहीं। यहां तक, कि बहुतोंका नाम तक भी विलुप्त हो गया है। केवल दो एक नाम हम लोग पाते हैं, वह भी बड़ी मुश्किलसे।

वर्त्तमानकालमें जो सब 'वयाति' वा जारीवालोंका

नाम सुना जाता है उनमें पगला-कानाई श्रेष्ठ है। यशोर जिलेमें उसकी वासभूमि थी। उसके पिताका नाम कुड़ल शेख और छोटे भाईका नाम उजल था। बचपनसे ही कानाई कोई विषय ले कर रात दिन चिन्ता करता था। इसी कारण उसका पिता उसे 'पगला-कानाई' कह कर पुकारता था। उसे रूप, शिक्षा वा वंशगौरव कुछ भी न था। बहुत दरिद्र कृषककुलमें जन्म हुआ था। खेती-बारी ही उसकी पैतृक उपजीविका थी। यौवनके प्रारम्भमें कानाई मागुराके निकटवर्त्ती बांसकोटाका चक्रवर्त्तीके बेड़बाड़ी ग्रामकी नीलकोठीमें २) रु० महीना पर खलासीका काम करता था। जब वह बड़े मैदानमें नीलकी देखभाल करता था, उस समय प्रकृतिदेवी उसे अपनी गोदमें मानो पुत्रकी तरह ले कर अपूर्व शक्ति प्रदान करती थी। शस्यश्यामला प्रकृतिके लीलाक्षेत्रमें खड़ा रह कर कानाई अपने रचित गीतका गान करता था। इसी समयसे वह गीतकी रचना करने लगा। थोड़े ही दिनोंके बाद कानाई नौकरीको लात मार घर चला आया। पहले तो वह अपने साथियोंको स्वरचित गान सुनाया करता था। पीछे उसकी यह अपूर्व गीतरचना-शक्तिकी बात चारों ओर फैल गई। दूर दूरसे लोग कानाईका गान सुनने आने लगे। कुछ दिन बाद एक प्रधान जारी-गायकने कानाईको अपने दलमें नियुक्त किया। उसके दलमें कुछ दिन रह कर कानाईने अपने भाई उजलको ले कर एक नया दल खड़ा किया। उजलको वह प्राणके समान चाहता था। इसी कारण उसके गीतमें उजलका भी नाम देखा जाता है। किन्तु उजल उसे उतना प्यार नहीं करता। उजल आडम्बर-प्रिय था, किन्तु कानाई सीधी चालसे चलता था। पगला कानाईके जारी-गीत बहुतसे हैं, पर स्थानाभावसे उनका उल्लेख न किया गया। सरस्वती-वन्दना, गणेश-वन्दना, भगवती-वन्दना, अल्लाकी वन्दना आदि मङ्गलाचरण गीतके बाद जारीका माला आरम्भ होता है। जारीमें नाना विषयक पाला रहने पर भी हनीफा और जयनालका पाला ही प्रधानतः गाया जाता है। इस पालेकी कहानी इस प्रकार है :—

हजरत महम्मद मुस्तफाके जमाई हजरत अलीने दो शादी की। इन दोनों बीबोका नाम था बीबी फतिमा और बीबी हनुफा। फतिमाके गर्भसे इमाम हसन और होसेन तथा बीबी हनुफाके गर्भसे महम्मद हनिफाका जन्म हुआ। दमास्कके दुर्दन्त राजा आजिदके कोपमें पड़ कर जब इमाम हसन और हुसेन मारे गये तब हसनके पुत्र जयनाल आबेदिनने सारी घटना अपने चाचा हनीफाके पास लिख भेजी। उस समय हनीफा बानोयाजी नामक देशमें राज्य करता था। शोचनीय परिणाम जान कर हनीफा दलबलके साथ मदिनाकी ओर रवाना हुआ। मदिनामें आ कर उसने आजिदको एक पत्र लिखा। जबाबमें आजिदने युद्धके लिये ललकारा बस फिर क्या था दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। दुर्मति आजिद पराजित और निहत हुआ। इसके बाद सबोंने जयनालको बुला कर पितृपद पर अभिषिक्त किया और इमामरूपमें उसकी पूजा की। पगला कानाई जब यह पाला गाता था, तब सभी आत्मविस्तृत हो वह शोकावह धर्मकाहिनी सुनते थे। और तो क्या, रङ्गमञ्च पर मानो करुण रसकी धारा बहती थी।

आज भी यशोर, खुलना, और फरीदपुर जिलेमें जो जारी प्रचलित है, वह उसी पगला कानाईके आदर्श पर रचा गया है। यहां तक, कि हमेशा धर्ममूलक गान करते करते कानाईका हृदय धर्मप्राणतामें तन्मय हो गया था। वह निरक्षर था, कभी भी कोई शास्त्र नहीं पढ़ा, फिर भी महोच्च आध्यात्मिक भाव इस प्रकार प्रकाशित करता था, कि कोई भी उसे मूर्ख नहीं कह सकता था। भक्तके सरल प्राणमें अनेक समय जो उच्च तत्त्व स्वभावतः ही प्रकाशित होता है, वह साधु व्यक्ति ही जानते हैं। पगला कानाईने सर्वदा तत्त्वज्ञान गाते गाते हृदयको ऐसा दृढ़ कर लिया था; कि वह मृत्युसे कभी भी नहीं डरता।

पगला कानाईके जैसे और भी कितने निरक्षर कवि कृषिपल्ली दीनदरिद्रोंके घरमें आविर्भूत हो इस प्रकार अपूर्व कृतित्व दिखा गये हैं। किन्तु दुःखका विषय है, कि बङ्गसाहित्यमें उन्हें स्थान नहीं दिया गया। एक समय बङ्गालका प्रत्येक ग्राम इसी प्रकार स्वभावकविके गानसे धन्य होता तथा विशुद्ध आमोदका अनुभव करता

था; किन्तु वह विमलसुख धीरे धीरे बङ्गालसे जाता रहा।

पगला कानाईके जैसे अनेक गुणी जारी गायक, कविवाला और यात्रावाला एक समय विद्यमान थे। उनकी ख्याति बङ्गालके दूर दूर ग्राममें भी फैल गई थी। उनमेंसे मेहरचाँद, जाहेर, पगला ताहेर, आर्जान, मुल्ला, अमानत उल्ला, सोना खाँ, तरिव उल्ला, कुर्मानमुल्ला, रोसन खाँ, नियामुद्दी मुन्शी और सुलतान मुल्ला ये सब यारी गान गा कर अच्छा नाम कमा गये हैं। इसके सिवा पगला कानाईके गुरु यशोर जिलेके केशवपुरके निकटवर्त्ती रसूलपुरवासी नयान फकीर, आतस वानु, इच्छुल, सनातन वयाति, कामचाँद वयाति आदि प्राचीन यारी गायक तथा वर्त्तमान कालके इदुविश्वास; हाकिमचांद, कमल विश्वास, लाछिम विश्वास, अजगर शेख, विनोद वयाति आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

यार्कायण (सं० पु०) यर्क ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुषका अपत्य।

याल (फा० स्त्री०) घोड़ेकी गर्दनके ऊपरके लंबे वाल, अयाल।

याव (सं० पु०) यौति यूयते वा, यु,अच् अप् वा ततः प्रज्ञाद्यण्। १ अलक्त, महावर। २ लाख। ३ जौका सत्तू। (त्रि०)४ यवसे वनाया हुआ, जौका। ५ यवसम्बन्धी, यवका।

यावक (सं० पु०) यव एव यावः स इवेति स्वार्थे कन्। यद्वा याव एव, याव (यावादिभ्यः कन्। पा ५।४।२६) इति स्वार्थे कन्। १ कुलमास, वोरो धान। २ कुलत्थ, कुलथी। ३ यवागू, जौको कांजी। ४ माष, उड़द। ५ जौ। ६ जौका सत्तू। ७ वह वस्तु जो जौसे वनाई गई हो। ८ साठी धान। ९ लाख। १० अलक, महावर। ११ मापाका पत्ता। कश्मीरमें इसे तुलसी कहते हैं।

यावक्रीतिक (सं० पु०) वह जो यवक्रीतका हाल जानता हो।

यावच्छक्य (सं० अव्य०) यथाशक्ति, सामर्थ्यानुसार।

यावच्छस् (सं० अव्य०) यावत् वारार्थे शस्। वारंवार, हमेशा।

यावच्छस्त्र (सं० अव्य०) यहां तक शस्त्र जाय।

यावच्छेप (सं० अव्य०) जो वचा वचाया है।

यावच्छ्रेष्ठ (सं० त्रि०) अति उत्कृष्ट, वहुत वढ़िया।

यावच्छ्लोक (सं० अव्य०) श्लोकको संख्याके अनुसार।

यावज्जन्म (सं० अव्य०) आजीवन, जव तक जिन्दगी है, तव तक।

यावज्जीवम् (सं० अव्य०) यावत् जीवतीति जीव (यावति विन्दजीवोः। पा ३।४।३०) इति णमुल्। यावदायुः, जीवन पर्यन्त।

यावज्जीविक (सं० त्रि०) आजीवन, जिन्दगी भर।

यावत् (सं० अव्य०) यद्-डावतु। १ साकल्य, सव कुल। २ अवधि, मर्यादा। ३ मान, प्रमाण। ४ अवधारणा, तायदाद। ५ प्रशंसा, वड़ाई। ६ सीमा। ७ अधिकार। ८ सम्भ्रम। ९ परिमाण। १० पक्षान्तर।

यत्परिमाणस्य इत्यर्थे यत् (यत्तदेभ्यः परिमाणे वतुप्। पा ५।२।३९) इति वतुप् (आसर्वनाम्नः। पा ६।३।९१) इत्यात्वं। (त्रि०) ११ यत्परिमित, जहां तक। १२ जव तक।

यावतिथ (सं० त्रि०) यावतां पूरणः, यावत् (तस्य पूरणो डट्। पा ५।२।४८) इति डट्। (वतोरिथुक्। पा ५।२।५३) इति इथुगागमश्च। यावत्परिमाण, जहां तक।

यावतीय (सं० त्रि०) समुदाय, कुल।

यावत्कपाल (सं० अव्य०) पात्रके मुताविक।

यावत्काम (सं० अव्य०) जैसी इच्छा, इच्छाके मुताविक।

यावत्कृत्वस् (सं० अव्य०) जितनी वार इच्छा उतनी वार।

यावत्सरम् (सं० अव्य०) यथाशक्ति, शक्तिके मुताविक।

यावत्तत्मूत (सं० अव्य०) जितना चरवीसे सिझाया गया हो उतना।

यावत्सत्त्व (सं० अव्य०) यथावल, जितनी शक्ति।

यावत्प्रमाण (सं० अव्य०) १ जितना वडा। २ जहां तक।

यावत्सवन्धु (सं० अव्य०) १ जहां तक सम्बन्ध हो।

यावत्स्व (सं० अव्य०) जितना धन।

यावदङ्गीन (सं० त्रि०) जिस तरह दलकी मजवूती हो।

यावदन्त (सं० अव्य०) शेष तक।

यावदभीक्ष्न (सं० अव्य०) मुहूर्त्तके लिये।

यावदमत्र (सं० अव्य०) यावन्ति अमत्राणि सन्ति तावत्। जितना पात्र हो।

यावदर्थ (सं० त्रि०) आवश्यकतानुसार, जरूरतके मुताबिक।

यावदह (सं० अव्य०) जैसा दिन।

यावदाभूतसंप्लव (सं० अव्य०) प्रलयकाल तक।

यावदायुस् (सं० अव्य०) आजीवन, जब तक जिन्दगी है तब तक।

यावदित्थम् (सं० अव्य०) जितनी आवश्यकता हो उतनी।

यावदीप्सित (सं० अव्य०) जितनी इच्छा हो।

यावदुक्त (सं० त्रि०) कहे मुताबिक, जैसा कहा गया हो ठीक वैसा।

यावदुत्तम (सं० अव्य०) शेष सीमा तक।

यावद्गम (सं० अव्य०) जितना शीघ्र जानेका सम्भव हो उतना।

यावद्बल (सं० अव्य०) जितनी शक्ति, शक्तिके मुताबिक।

यावद्भाषित (सं० त्रि०) जितना कहा गया है, कहे मुताबिक।

यावद्राज्य (सं० अव्य०) समस्त राज्य।

यावद्वेद (सं० अव्य०) जितना लाभ हुआ है या जहां तक जाना गया है।

यावद्व्याप्ति (सं० अव्य०) शेष तक।

यावन (सं० पु०) यवने यवनदेशे भवः यवन-अण्। १ शिह्लाख्य, शिलारस। (त्रि०) २ यवनसम्बन्धी, यवनका।

यावनक (सं० पु०) रक्त एरण्ड, लाल अंडी।

यावनकल्क (सं० पु०) शिलारस।

यावनाल (सं० पु०) यवनाल इवेति यवनाल-स्वार्थे अण्। स्वनामख्यात शिम्बीधान्य, जुआर। पर्याय—यवनाल, शिखरी, वृत्ततण्डुल, दीर्घनाल, दीर्घशर, क्षेत्रेक्षु, इक्षुपत्रक। गुण—बलकर, त्रिदोषनाशक, रुचिकर, अर्श, यक्ष्मा, गुल्म और व्रणनाशक। (राजनि०)

यावनालनिभ (सं० पु०) यावनाल, जुआर।

यावनाल-रसजगुड़ (सं० पु०) यावनालस्य रसजातः गुड़ः। जुआरका गुड़। इसका गुण क्षार, कटु, सुमधुर, रुचिकर, शीतल, पित्तघ्न, तृष्णानाशक तथा पशुओंको दुर्बल करनेवाला माना गया है। (वैद्यकनि०)

यावनालशर (सं० पु०) यावनाल इव शरः। शरभेद। पर्याय—नदीज, दृढ़त्वक्, वारिसम्भव, यावनालनिभ, खरपत्र। इसका मूल गुण—ईषन्मधुर; रुचिकर, शीतल, पित्त, तृष्णा तथा पशुओंका बलनाशक। (राजनि०)

यावनाली (सं० स्त्री०) यवनालस्य विकारः यवनाल-अण्, ततो ङीप्। मक्कैसे बनाई हुई चीनी, ज्वारकी शक्कर। पर्याय—हिमोत्पन्ना, हिमानी, हिमशर्करा, क्षुद्र, शर्करिका, क्षुद्रा, गड़भा, जलबिन्दुजा। इसका गुण—उष्ण, तिक्त, अतिपिच्छिल, वातनाशक, सारक, रुचिकर, दाह और पिपासावर्द्धक माना गया है। (राजनि०)

यावनी (सं० स्त्री०) यावन-ङीप्। १ करङ्कशालि नामकी ईख, रसाल। (राजनि०) (त्रि०) २ यवन सम्बन्धी।

यावन्मात्र (सं० त्रि०) १ मात्रानुरूप, मात्राके मुताबिक। २ थोड़ा छोटा।

यावयद्द्वेषस् (सं० त्रि०) निशाचर, राक्षस।

यावर (फा० वि०) सहायक, मददगार।

यावरी (सं० स्त्री०) यावरका भाव या धर्म्म, मित्रता।

यावल—बम्बई प्रेसिडेन्सी खान्देश जिलाके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° १०′ ४५″ उ० तथा देशा० ७५° ४५′ पू०के मध्य अवस्थित है। यह नगर पहले सिन्द राजाके अधिकारमें था। वे १७८८ ई०में निम्बलकर सेनानायकको दान दिया। १८११ ई०में निम्बलकरके वंशधरोंने इसे अङ्गरेजोंको दिया। १८१७ ई०में अङ्गरेजोंने पुनः उसे सिन्देराजको अर्पण किया। किन्तु १८४१ ई०में पुनः उसके हाथसे छीन लिया। निम्बलकर-वंशके अधिकारकालमें इस जगह एक समय देशी कागज और नीलका विस्तृत कारबार था : इस समय वहां कुछ भी नहीं है।

यावशूक (सं० पु०) यवशूक एव स्वार्थे अण्, यद्वा यावयवस्य शूकः कारणत्वेनास्त्यस्येति अर्श आद्यच्। यवक्षार, जवाखार।

यावस (सं० पु०) यूयते इति यु-(वहियुभ्यां णित्। उण् ३।११६) इति असच्, तस्य णित्वञ्च; यद्वा यवसानां समूहः (तस्य समूहः। पा ४।२।३७) इति अण्। यवससमूह; घास, डंठल आदिका पूला।

यावास (सं० त्रि०) यवासस्य विकारः अवयवो वा (पलाशादिभ्यो वा। पा ४।३।१४१) इति अण्। यवाससे बनाया हुआ मद्य, जवासेकी शराब।

यावि (सं० स्त्री०) यावी देखो।

याविक (सं० पु०) यवनाल, मक्का नामक अन्न।

यावी (सं० स्त्री०) १ शङ्खिनी। २ यवतिक्ता नामकी लता।

याव्य (सं० त्रि०) यूयते इति (आसुयुवपिरपिलपित्रपिच-मश्च। पा ३।१।१२६) इति ण्यत्। १ मिश्रणीय, मिलानेके योग्य। (पु०) २ यवक्षार, जवाखार।

याशु (सं० क्ली०) सम्भोग।

याशोधरेय (सं० पु०) यशोधराया अपत्यं पुमान्, यशोधरा वा यशोधर-ढक्। शाक्यमुनिका पुत्र राहुल। (हेम)

याशोभद्र (सं० पु०) कर्ममासका चौथा दिन।

याष्टीक (सं० पु०) यष्टिः प्रहरणमस्य यष्टि (शक्तियष्ट्याः ईकक्। पा ४।४।५९) इति ईकक्। यष्टिधारी योद्धा, लाठी बांधनेवाला योद्धा, लठबंध।

यास (सं० पु०) यस-घञ्। दुरालभा, लाल धमासा। गुण—मधुर, तिक्त, शीतल, पित्तदाहहर, बलकर, तृष्णा, कफ और छर्दिघ्न। (राजनि०)

यासशर्करा (सं० स्त्री०) यवासशर्करा, जवासेकी शक्कर।

यासा (सं० स्त्री०) मदनशालाका पक्षी, कोयल।

यास्क (सं० पु०) यस्कस्य गोत्रापत्यं यस्क (शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२) इति अण्। १ यस्क ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। २ वैदिक निरुक्तके रचयिता एक प्रसिद्ध ऋषिका नाम।

महामुनि यास्क निरुक्तके कर्त्ता हैं। इनका बनाया निरुक्त इस समय भी प्रचलित है। इस समय इन्हींका बनाया निरुक्त ही वेदोंके अर्थ करनेका विद्वानोंके लिये प्रधान साधन है। पाश्चात्य पण्डितोंका अनुमान है, कि खृष्ट जन्मके पूर्व पांचवीं शताब्दीमें महामुनि यास्क विद्यमान थे। निरुक्तके देखनेसे पता चलता है कि महामुनि यास्कके पहले भी अनेक निरुक्तकार हो चुके थे। उनमें शाकपूणि, उर्णनाभ, स्थूलोष्ठिवी आदि कतिपय निरुक्तकारोंका उल्लेख महामुनि यास्कने किया है

यास्कायनि (सं० पु०) यास्कके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

यास्कायनीय (सं० पु०) यास्कायनिका शिष्यसम्प्रदाय।

यास्कीय (सं० पु०) यास्कका मतावलम्बी, यास्कका शिष्यसम्प्रदाय।

यियक्षु (सं० त्रि०) यष्टुमिच्छुः, यज-सन्, सनन्तात् उ। यज्ञ करनेमें इच्छुक, यज्ञाभिलाषी।

यियविषु (सं० त्रि०) यु-सन्-उ। मिश्रित करनेमें इच्छुक।

यियासु (सं० त्रि०) यातुमिच्छुः, या-सन्, सनन्तात् उ। गमनेच्छु, जानेकी इच्छा करनेवाला।

यीशुखृष्ट—ईसा देखो।

युक् (सं० अव्य०) युज क्विप् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। निन्दा, शिकायत।

युक्त (सं० त्रि०) युज्यते स्म इति युज्-क्त। १ न्याय्य, उचित, ठीक। २ मिलित, सम्मिलित। ३ एक साथ किया हुआ, जुड़ा हुआ। ४ नियुक्त, मुकर्रर। ५ आसक्त। ६ संयुक्त, सहित। ७ सम्पन्न, पूर्ण। ८ अवशिष्ट, बाकी। ९ व्यापृत, फैला हुआ।

(पु०) युज्यते स्म योगेनेति क्त। १० अभ्यस्तयोग, वह योगी जिसने योगका अभ्यास कर लिया हो।

युक्त और युञ्जानके भेदसे योगी दो प्रकारका है। जिन सब योगियोंने योगाभ्यास द्वारा चित्तको वशीभूत कर लिया है तथा समाधि द्वारा सभी प्रकारकी सिद्धियां प्राप्त की हैं, उन्हें युक्त कहते हैं। जो युक्त योगी हैं उन्हें विना चिन्ताके सभी विषय प्रत्यक्ष होते हैं। यह युक्त योगी भूत, भविष्य और वर्त्तमान सभी विषयको प्रत्यक्षवत् देखते हैं; उन्हें किसी विषयकी चिन्ता नहीं करनी होती। युञ्जान योगी चिन्ता अर्थात् समाधिका अवलम्बन कर सभी विषय जानते हैं।

गीतामें भी इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—

"ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥"

(गीता ६।८)

जो ज्ञान और विज्ञान द्वारा परितृप्त, जितेन्द्रिय और कूटस्थ अर्थात् निर्विकार हैं, तथा जिनके निकट मट्टी, पत्थर और सोना सभी समान हैं, तथा जो योगारूढ़ हैं

अर्थात् अष्टाङ्ग योगादिका अनुष्ठान करते हैं, वही युक्त हैं।

११ रैवत मनुके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ७।२८)

१२ हस्तचतुष्टय, चार हाथका मान।

युक्तकारिन् (सं० त्रि०) युक्तं उचितं करोतीति कृ-णिनि। उपयुक्त कार्यकारी, ठीक काम करनेवाला।

युक्तकृत् (सं० त्रि०) युक्तं करोतीति कृ-क्विप् तुक् च। उपयुक्त कार्यकारी, ठीक काम करनेवाला।

युक्तग्रावन् (सं० त्रि०) उद्धृत प्रस्तर, निकाला हुआ पत्थर।

युक्तत्व (सं० क्लो०) युक्तस्य भावः, 'त्वतलौ भावे' इति त्व। उपयुक्तता, युक्त होनेका भाव या धर्म।

युक्तदण्ड (सं० त्रि०) उपयुक्त दण्ड, मुनासिव सजा।

युक्तमनस् (सं० त्रि०) युक्तं मनो यस्य। योगी, जिसका मन योगयुक्त हुआ है।

युक्तरथ (सं० पु०) एक औषध-योग जिसका प्रयोग वस्तिकरणमें होता है। भावप्रकाशमें रेंड़की जड़के क्वाथ, मधु, तेल, सेंधा नमक, वच और पिप्पलीके योगको युक्तरथ कहा है।

युक्तरसा (सं० स्त्री०) युक्तः रसोऽस्याः। १ गन्धरास्ना, गंधनाकुली। २ रास्ना, रासन।

युक्तरूप (सं० त्रि०) उपयुक्त, ठीक।

युक्तश्रेयसी (सं० स्त्री०) गन्धरास्ना, नाकुली कन्द।

युक्तसेन (सं० त्रि०) युक्ता सेना यस्य। जिसकी सेना युद्धमें जानेके योग्य हो।

युक्ता (सं० स्त्री०) युक्त-टाप्। १ एलापर्णी। २ एक वृक्षका नाम जिसमें दो नगण और एक मगण होता है।

युक्तायस् (सं० क्लो०) लौहास्त्रभेद, प्राचीनकालके एक अस्त्रका नाम जो लोहेका होता था।

युक्तार्थ (सं० त्रि०) १ उपयुक्तार्थ। २ ज्ञानी।

युक्ताश्व (सं० त्रि०) अश्वसहित।

युक्ति (सं० स्त्री०) युज्यते इति युज्-क्तिन्। १ न्याय, नीति। २ मिलन, योग। ३ रीति, प्रथा। ४ उचित, विचार, ठीक तर्क। ५ अनुमान, अंदाजी। ६ कारण, हेतु। ७ नाट्यालङ्कारविशेष। इसका लक्षण—"युक्तिरर्थावधारणं।" (साहित्यद० ५।५०१)

जहां अर्थयुक्त वाक्यका निश्चय होता है उसको युक्ति कहते हैं। नाटकमें यह युक्ति दिखाना आवश्यक है—

"यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-
र्भयमिति युक्तिमितोऽन्यतः प्रयातु।
अथमरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वं॥" (साहित्यद०)

यदि युद्धक्षेत्रसे भाग कर मृत्युके हाथसे बच सको तो यह भागना उचित; किन्तु जीवकी मृत्यु जब अवश्यम्भावी है तब वृथा क्यों यश मलिन करते हो।

"सम्प्रधारणमर्थानां युक्तिः।" (साहित्यद० ६।३४३)

अर्थोका सम्प्रधारण अर्थात् निश्चयका नाम युक्ति है। ८ उपाय, ढंग। ९ भोग। १० कौशल, चातुरी। ११ तर्क, ऊहा। १२ केशवके अनुसार उक्तिका एक भेद जिसे स्वभावोक्ति भी कहते हैं।

युक्तिकर (सं० त्रि०) युक्तियुक्त, जो तर्कके अनुसार ठीक हो।

युक्तिज्ञ (सं० त्रि०) युक्तिं जानाति ज्ञा-क। युक्तिकुशल, ठीक तर्क करनेवाला।

युक्तिमत् (सं० त्रि०) युक्तिः विद्यतेऽस्य, युक्ति-मतुप्। १ युक्तिविशिष्ट। २ युक्तियुक्त।

युक्तियुक्त (सं० त्रि०) युक्त्या युक्तः। युक्तिविशिष्ट, उपयुक्त तर्कके अनुकूल।

युक्तिशास्त्र (सं० क्लो०) युक्तिप्रधानं शास्त्रं मध्यपदलोपि कर्मधा०। युक्तिप्रधान शास्त्र, प्रमाणशास्त्र।

युग (सं० क्लो०) युज्यते इति युज-घञ्, कुत्वं न गुणः। 'युजेर्घञन्तस्य निपातनादगुणत्वं विशिष्टविषये च निपातनमिदमिष्यते, कालविशेषे रथाद्युपकरणे च युगशब्दस्य प्रयोगोऽन्यत्र योग एव भवति' (काशिका ३।३।११०) १ युग्म, जोड़ा। २ जुआ, जुआठा। ३ ऋद्धि और वृद्धि नामक दो ओषधियां। ४ पुरुष, पीढ़ी। ५ पासेके खेलकी वे दो गोटियां जो किसी प्रकार एक घरमें साथ बैठती हैं। ६ पांच वर्षका वह काल जिसमें वृहस्पति एक राशिमें स्थित रहता है। ७ समय, काल। ८ हस्तचतुष्क, चार हाथका मान। ९ पुराणानुसार कालका एक दीर्घ परिमाण, ये संख्यामें चार माने गये हैं;

जिनके नाम ये हैं—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग।

जब पापकी वृद्धि और धर्मका ह्रास होता है, तब भगवान् स्वयं अवतीर्ण हो कर धर्म संस्थापन करते हैं। इस विषयमें सभी शास्त्रोंका एक मत है।

ऋग्वेद (१।१५८।६)-मे दीर्घतमाका 'दशम युगमें' जराग्रस्त होना लिखा है। इस 'युग' शब्दके अर्थ सम्बन्धमें पण्डितोंका एक मत नहीं है। कोई कोई 'युग'का अर्थ ५ वर्ष बतलाते हैं। 'वेदाङ्ग ज्योतिष'में युगसंज्ञाको पञ्चवर्ष परिमित कालबोधक शब्द कहा है। पिटार्सवर्गमें प्रकाशित अभिधानके मतसे ऋग्वेदमें व्यवहृत 'युग' शब्दका अर्थ कालवाचक नहीं है,—वह वंश वा पुरुषवाचक है, ग्रासमान साहबने यह मत समर्थन किया है। इन लोगोंके मतसे 'दशमयुग' का अर्थ है दशम पुरुष वा वा दश पीढ़ी।

'युग' शब्द ऋग्वेदके समय भी कालवाचक थी, इसमें संदेह नहीं। अधिक नहीं तो इस शब्दका एक अर्थ कालवाचक था, यह मानना ही पड़ेगा। पिटार्सवर्गके अभिधानमें भी अथर्व्ववेद (८।२।२१)-में उल्लिखित युग शब्दका कालवाचक अर्थ निर्दिष्ट हुआ है। केवल ऋग्वेदके ही प्रयोगमे युग 'वंश वा पुरुषानुक्रमिक' अर्थमे व्यवहृत हुआ है—उक्त अभिधानका यह सिद्धान्त है ऋग्वेदमे 'मानुषा युगा' वा 'मनुष्या युगानि' शब्द जहां जहां व्यवहृत हुआ है, पिटर्सवर्गके अभिधानने वहां इसका अर्थ किया है, 'मनुष्यवंश'। इस अर्थका सभी पाश्चात्य पण्डित समर्थन करते हैं। किंतु सायण और महीधरने इस स्थानमें भी युगका अर्थ काल बताया है। उनके मतसे मनुष्यका अर्थ है मनुष्यसम्बन्धीयकाल। फिर कहीं कहीं (१।१२४।२, १।१४४।४,) सायण 'युग'का अर्थ "द्वन्द्व" वा "युगल" बतानेसे भी बाज नहीं आये हैं। इस हिसाबसे मनुष्ययुगका अर्थ "मनुष्यद्वय" वा "मनुष्यसङ्घ" होता है। सायण कृत उस भाष्यसे ही सम्भवतः पाश्चात्य पण्डितोंने अपना अर्थ निकाला है। युग शब्दका धात्वर्थ निम्न प्रकारसे ग्रहण किया जा सकता है,—१ रात्रि और दिन—यह युग्म है। २, मास युग्म—ऋतु, ३, दो पक्ष वा सूर्य और चन्द्रका योग अर्थात् एक मास। कलियुगके आरम्भमें सूर्य और ग्रहणका योग होना कल्पित है, इसीसे इस कालका युग नाम रखा गया है। अतएव 'युग'-का अर्थ 'योग' 'द्वन्द्व' अथवा 'एकपुरुष' इनमें कोई एक लिया जा सकता है। पाश्चात्य पण्डित ऋग्वेदमे व्यवहृत 'युग' शब्दका अर्थ कालवाचक नहीं मानते। क्योंकि ऐसा करनेसे सत्य त्रेता आदि युगकल्पनाका आभास ऋग्वेदमें था, यह मानना पड़ेगा। इस प्रकारकी युगकल्पना परवर्त्ती समयकी है, उसे उन्होंने साबित कर दिखाया है।

ऋग्वेदमें 'युगे युगे' शब्द कमसे कम छः बार आया है, (३।२६।३, ६।१५।८, १०।६४।१२ इत्यादि)। प्रत्येक जगह सायणने इसका अर्थ कालवाचक लगाया है। ऋग्वेदके ३।३३।८, १०।१०।१० और ७०।७२।१ इन सब स्थानोंमें 'उत्तर-युगानि' और 'उत्तरयुगे' ये दो प्रयोग मिलते हैं जिनका अर्थ है 'परवर्त्तीकाल' परवर्त्तीकालके सिवा और कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव पाश्चात्य पण्डितोंका सिद्धान्त स्थिर नहीं रहता है। १०।७२।२ और १०।७२।३ इन दो स्थानोंमे हम लोग पुनः 'देवानां पूर्व्ये युगे' और 'देवानां प्रथमे युगे' ये दो प्रयोग देखते हैं। 'देवानां' शब्द बहुवचनान्त और युग शब्द एकवचनान्त है। यहां केवल युग शब्दका 'पुरुष' अर्थ नहीं मान सकते। विशेषतः सभी जगहका अर्थ अच्छी तरह लगानेसे देखा जाता है, कि सृष्टि तथा देवताओंके जन्मकी कथा ही उस जगह प्रतिपाद्य है। अतएव उक्त स्थानोंमें युग शब्दका कालवाचक अर्थ छोड़ कर और कुछ भी नहीं हो सकता। अब 'देवानां युगम्' इसका अर्थ यदि 'देवताओंका काल' समझा जाय, तो 'मनुष्ययुगानि' वा मनुष्ययुगका अर्थ मनुष्य-सम्बन्धीय काल कहनेमें कुछ भी आपत्ति नहीं। फिर ऋग्वेदमे कहीं कहीं 'मानुषयुग' शब्दका व्यवहार है—यहां पर युग शब्दका अर्थ 'पुरुष' हो ही नहीं सकता। दृष्टान्त स्थलमें ऋग्वेदके ५।५२।४ ऋक्का "मानुषे युगे" शब्द पुरुषबोधक नहीं है, इसे सब कोई स्वीकार कर सकते। इस ऋक्के सम्बन्ध में मोक्षमूलरने जो युग शब्दका 'पुरुष वा वंश' अर्थ लगाया है. सो भारी भूल की है। ग्रिफिथ साहब

उनकी भूल दिखलाते हुए 'युग' शब्दका अर्थ कालवाचक ही लगाया है। १०।१४०।६ ऋक्‌में भी "मानुषयुगे" शब्द कालवाचकके सिवा और कुछ भी नहीं हो सकता।

अभी "मानुषयुग" यदि कालवाचक किया जाय, तो एक युगका परिमाण कितना है, यह जान लेना आवश्यक है। अथर्ववेदके (८।२।२१) एक स्तोत्रमें इस भावकी प्रार्थना है—"हम लोग तुम्हारे १०००००० वर्ष, २।३ अथवा ४ युग परिमित जीवनकी कामना करते हैं।" यहां युग शब्दका अर्थ कमसे कम दश हजार वर्ष मानना होगा। किन्तु ऋग्वेदमें युग शब्दका अर्थ अति अल्प-कालव्यञ्जक था, उसके अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। महामति बालगङ्गाधरतिलकने स्वकृत "The Arctic Home in the Vedas" नामक पुस्तकमें ऋग्वेदके १।११३।८, १।१२३।२, ८।७६।६, १०।३५।४, ऋक् उद्धृत कर यह प्रतिपन्न किया है, कि ऋग्वेदके व्यवहृत युग शब्दका अर्थ एक वर्षसे भी कम समय था। कहीं कहीं "युग" शब्दसे एक मासका आधा अर्थात् पंद्रह दिन समझा जाता था। धीरे धीरे यह शब्द दीर्घकालवाचक हो गया है।

पुराणवक्ता सौतिसे जब ऋषियोंने स्वायम्भुव मन्वन्तरीय चार युगोंका हाल पूछा, तब उन्होंने युग, युगभेद, युगधर्म, युगसन्धि, युगांश और युगसन्धान, युगसम्बन्धीय ये छः प्रकारके विवरण ब्रह्माण्डपुराणमें कहे हैं।

युगनिरूपण।

ब्रह्माण्डपुराणके अनुषङ्गपाद ६१वें अध्यायमें लिखा है,—निमेष, काष्ठा, कला और मुहूर्त्त आदि समयवाचक शब्दोंके मध्य एक लघु अक्षर उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उसका नाम निमेष है। पन्द्रह निमेषकी एक काष्ठा, तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कलाका एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्तोका एक अहोरात्र होता है। मानवीय अहोरात्रके बनानेवाले सूर्य हैं। इनमेंसे दिवा कर्मचेष्टाके लिये और रात्रि निद्राके लिये कल्पित है। मानवीय परिमाणमें एक मासका पितरोंका एक अहोरात्र होता है। उनमेंसे कृष्णपक्ष उनका दिवा और शुक्लपक्ष उनकी रात्रि है। मानुषमानके तीस मासका पितरोंका एक मास और उनके ३६० मासका पितरोंका एक वर्ष होता है। मानुषमानके सौ वर्षका उनका तीन वर्ष चार मास होता है। लौकिकमानके जो अब्द निर्दिष्ट हैं, शास्त्रमें उसे दिव्यअहोरात्र कहा है। इस दिव्य रात्रिदिनका विभाग इस प्रकार है,—उत्तरायण दिवा और दक्षिणायन रात्रि।

मानवीय तीस वर्षका एक मास और एक सौ वर्षका दिव्य तीन मास दश दिन होता हैं। दैव वत्सरादि गणनाका नियम इसी प्रकार जानना होगा।

मानवीय तीन सौ साठ वर्षका दिव्य एक वर्ष और तीन हजार तीस वर्षका सप्तर्षियोंका एक वर्ष होता है।

मानवीय नौ हजार नब्बे वर्षका क्रौञ्च एक वर्ष और छत्तीस हजार वर्षका दिव्य एक सौ वर्ष होता है।

मनुष्यमानका नियुक्त साठ हजार वर्षका दिव्य एक हजार वर्ष होता है। दिव्य प्रमाण द्वारा इसी प्रकार युगकी संख्या निरूपित हुई है। युगसंख्याकी कल्पना सभी जगह दिव्य प्रमाणसे स्थिर होती है।

भिन्न भिन्न युग और युगसमष्टिका मान।

ब्रह्माण्डपुराणके मतसे इस भारतवर्षमें चार युग निरूपित हुए हैं, पहला कृत वा सत्य, दूसरा त्रेता, तीसरा द्वापर और चौथा कलि। इन चार युगोंमेंसे सत्ययुगका परिमाण चार हजार वर्ष है। इसकी संध्या और सन्ध्यांश दोनों ही चार सौ वर्षके होते हैं। त्रेतायुगका परिमाण तीन हजार वर्ष, सन्ध्या तीन सौ और सन्ध्यांश तीन सौ वर्ष है। द्वापरयुगका परिमाण दो हजार तथा संध्या दो सौ और सन्ध्यांश दो सौ वर्ष है। कलियुगका परिमाण दो हजार वर्ष तथा संध्या और संध्यांश दो सौ वर्ष है। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, इन चारों युगोंका कुल दिव्य परिमाण बारह हजार वर्ष है।

मनुष्यमानमें सत्ययुगका परिमाण १४४०००० वर्ष है। अन्यान्य युगोंका भी मानुषमान उसी अनुपातसे स्थिर करना होगा। मनुष्यमानके चार युगोंका कुल परिमाण ४३२०००० वर्ष है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि पन्द्रह निमेषकी एक काष्ठा, तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कलाकी एक

घटिका, दो घटिकाका एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्तका एक अहोरात, तीस अहोरात्रका एक मास, छः मासका एक अयन और दो अयनका एक वर्ष होता है। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि और उत्तरायण दिन है। अतएव मनुष्यमानका एक वर्ष देवताओंकी एक दिनरात होती है। इस प्रकार देवमानके बारह हजार वर्षका सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि यह चार युग होता है। इसलिये तीन हजार वर्षका एक एक युग होता है। प्रति युगके पूर्व सन्ध्याका परिमाण यथाक्रम चार, तीन, दो और एक सौ वर्ष तथा संध्यांश भी उतना ही है। इस प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इसके चार हजार युगका ब्रह्माका एक दिन होता है। (विष्णुपु० १।३ अ०)

इन चार युगोंमेंसे सृष्टिके आरम्भमें सत्ययुग, उसके बाद त्रेता और द्वापर तथा अन्तमें कलियुग होता है। प्रथम सत्ययुगमें ब्रह्मा सब भूतोंकी और अन्तिम कलियुगमें समस्त सृष्टिका उपसंहार कहते हैं। सत्ययुगमें धर्म चतुष्पद, त्रेतामें त्रिपाद, द्वापरमें द्विपाद और कलिमें पादमात्र रहेगा।

मैत्रेयने पराशरसे जब कलियुगके माहात्म्यका विषय पूछा, तब उन्होंने इस प्रकार कहा था,—

कलियुगमें मनुष्योंका वर्ण और आश्रमधर्म विलुप्त होगा। इस युगमें जिसके मनमें जो आयेगा, उसीको वह शास्त्र कहेगा तथा अपने अपने अभिप्रायानुसार सभी सभी देवताओंकी उपासना करेंगे तथा सभी सभी आश्रमोंमें अक्षुण्णभावसे घुसेंगे। मनुष्यगण धर्मके विषयमें कुछ भी खर्च न करके गृहनिर्माण तथा भोगसुखमें अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट करेंगे। स्त्रियां अनेक प्रकारके सौन्दर्य पर मोहित हो स्वेच्छाचारिणी होंगी। जीवका ध्यान अपने स्वार्थकी ओर अधिक रहेगा। स्वार्थमें नुकसान पहुंचा कर वे मित्रकी भी प्रार्थनाको न सुनेंगे। शूद्रगण 'ब्राह्मणों और हममें कोई फर्क नहीं हैं' ऐसा समझ कर स्पर्द्धित होंगे। सभी मनुष्य दुर्भिक्ष, राजकर और व्याधि द्वारा नितान्त पीड़ित रहेंगे, वैदिक क्रियाकलापका होगा तथा वे पाषण्ड और अल्पायु होंगे। इस युगमें आठ, नौ और दश वर्षके लड़कोंके सहवाससे पांच, छः वा सात वर्षकी कन्या सन्तान प्रसव करेगी। इस समय १२ वर्षमें वृद्ध और २० वर्षमें मृत्युमुखमें पतित होगा। इस युगमें जीवकी प्रज्ञा थोड़ी, इन्द्रियप्रवृत्ति अति कुत्सित और अन्तःकरण बहुत अपवित्र होगा। ससुर और सास तथा साला यही तीन पूज्य होंगे तथा उन्हींके अनुगत हो कर वह पितामाताका अनादर करेगा। जिसकी स्त्री सुन्दर है, वह सुहृद् होगा। वृष्टिके नहीं होनेसे हमेशा दुर्भिक्ष पड़ेगा। जो कुछ दोषशब्दवाच्य तथा साधुविगर्हित है वही इस युगमें धर्म होगा। किन्तु कलियुगमें ये सब दोष रहने पर भी एक बड़ा गुण यह होगा, कि सत्यकालमें कठोर तपस्या द्वारा जो पुण्य अर्जित होता था, कलियुगमें बहुत थोड़े परिश्रमसे ही मनुष्य वह पुण्य अर्जन कर सकेगा।

(विष्णु० ६-१-२ अ०)

देवीभागवतमें लिखा है, कि कलियुगके प्रभावसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने अपने आचार, संध्यावन्दन और यज्ञसूत्रका पालन न करेंगे। चारों वर्ण अपने शास्त्रका परित्याग कर म्लेच्छशास्त्र पढ़ेंगे और म्लेच्छाचारी बनेंगे। ब्राह्मणादि तीनों वर्ण शूद्रके दास होंगे। तथा वे पाचक, पत्रवाहक आदि निकृष्ट कर्म करेंगे। पृथिवी शस्यहीना, वृक्ष फलहीन, स्त्री पुत्रहीन और गाय दुग्धशून्य होगी। दम्पतिके बीच प्रीति न रहेगी। गृहस्थ सत्यहीन, राजा प्रतापशून्य, प्रजा करभारपीड़ित; नद, नदी, दीर्घिकादि जलशून्य, चारों वर्ण धर्म और पुण्यहीन होंगे। पुरुष, स्त्री और बालक कुत्सितचरित्रके और कुत्सिताकारसम्पन्न होंगे तथा वे हमेशा लोगोंके मुखसे कुवार्त्ता और कुत्सित शब्दादि सुनेंगे। कोई कोई ग्राम और नगर जनशून्य होगा। कलिके प्रभावसे यही सब अनिष्ट होंगे।

देवभक्तगण नास्तिक, पुरवासिगण हिंसक, दयाहीन और नरघातक होंगे। पुरुष और स्त्री सभी व्याधियुक्त और खर्वाकृतिके होंगे। मानव १६ वर्षमें जरायुक्त होगा और २० वर्षमें प्राणत्याग करेगा। स्त्रियां ८ वर्षमें ही ऋतुमती और १६ वर्षमें वृद्धा तथा अधिकांश स्त्रियां वन्ध्या होंगी। चारों वर्ण कन्यादि विक्रय करेंगे। मनुष्य प्रायः माता, पत्नी, पुत्रवधू, भगिनी और कन्या इन्हीं के व्यभिचारलब्ध धनसे जीविका निर्वाह करेगा। हरिनाम-

को बेच कर लोग धन जमा करेगा। कन्या, पुत्रवधू, भगिन, आदिके साथ अगम्यागमन करेगा। केवल मातृयोनि छोड़ कर सभी स्त्रियोंके साथ वह विहार करेगा तथा पतिपत्नीका निर्णय नहीं रहेगा। वेश्या, रजस्वला, वृद्धा और कुट्टिनी स्त्री ब्राह्मणोंकी रन्धनशालामें पाचिका होंगी। आहारादिका निर्णय और योनिविचार कुछ भी न रहेगा। सभी मनुष्य स्त्रीके वशीभूत होंगे तथा प्रत्येक घरमें स्त्रियां वेश्यावृत्तिका अवलम्बन करेंगी। गृहिणी ही घरकी ईश्वरी होगी। स्त्री कन्यादिको छोड़ कर और किसीके साथ सम्बन्ध न रहेगा। सहपाठियोंके साथ बोलचाल भी न होगी। परिचय मात्र ही लोगोंकी बन्धुता होगा, दूसरे किसी भी उपकारादिका संस्रव आपसमें न रहेगा। विना स्त्रीकी अनुमतिके पुरुष कोई भी कार्य न कर सकेगा। इस युगके प्रभावसे जब जनसमाजमें किसी प्रकारका विभेद न रहनेके कारण सभी मनुष्य म्लेच्छ हो जायँगे, तब भगवान् विष्णु कल्कि अवतार धारण कर इनका ध्वंस करके पुनः सत्ययुग प्रवर्त्तित करेंगे।

यह सत्ययुग प्रवर्त्तित होनेसे धर्म पूर्णभावमें विराजमान रहेंगे। जगत्‌में ब्राह्मण तपस्वी और धार्मिक हो कर वेदाङ्ग आदि अच्छी तरह जानेंगे। प्रत्येक घरमें स्त्रियां पतिव्रता और धर्मिष्ठा होंगी। विप्रभक्त क्षत्रियगण राजा होंगे तथा वे अत्यन्त प्रतापशाली, धार्मिक और सर्वदा पुण्यकार्यमें रत रहेंगे। वैश्य और शूद्र अपने अपने धर्मका पालन करेंगे। सभी अपने अपने धर्ममें नियुक्त रहेंगे तथा सबोंकी बुद्धि अति निर्मल होगी। अधर्मका लेशमात्र भी न रहेगा। धर्म त्रेतामें त्रिपाद होगा, इसलिये लोग बहुत थोड़ा अधर्म करेंगे। द्वापरमें धर्म द्विपाद होगा, इसलिये वहांके लोगोंका पापपुण्य मिला रहेगा।

इस प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुगका ३६० युग बीत जाने पर देवताओंका एक युग होता है।
(देवीभागवत ९८ अ०)

बृहत्पराशरसंहितामें चारों युगका धर्म इस प्रकार निरूपित हुआ है,—सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान ही एकमात्र परमधर्म है।

"तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुत्तमम्।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥"
(बृहत्पराशर १ अ०)

चार युगोंका विषय संहितानिर्णयविषयमें इस प्रकार लिखा है,—

"कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतम स्मृतः।
द्वापरे शङ्खलिखितौ कलौ पराशरः स्मृतः॥"
(पराशरस० १अ०)

सत्ययुगमें मनुसंहिता धर्मशास्त्र, त्रेतामें गौतमसंहिता, द्वापरमें शङ्ख और लिखित संहिता तथा कलियुगमें पराशरसंहिता ही धर्मशास्त्र है।

सत्ययुगमें पतित व्यक्तिके साथ बातचीत करनेसे, त्रेतामें पतितका स्पर्श करनेसे, द्वापरमें पतितका अन्न खानेसे तथा कलियुगमें कर्म द्वारा ही पतित होना पड़ता है। सत्ययुगमें जिसे दान करना होगा, उसके पास जा कर त्रेतामें बुला कर, द्वापरमें प्रार्थना करने पर और कलिकालमें सेवा करने पर दान किया जाता है। इन सब दानोंमें जो दान किसीके यहां जा कर किया जाता है, वह उत्तम, आहूत दान मध्यम, याच्यमान दान अधम और सेवादान निष्फल है। सत्ययुगमें जीवका प्राण अस्थिगत, त्रेतामें मांसगत, द्वापरमें रुधिरगत और कलिकालमें अन्नगत कहा गया है। सत्ययुगमें शाप तत्क्षणात् फलवान्, त्रेतामें दश दिनमें, द्वापरमें एक महीनेमें और कलिमें एक वर्षमें शाप फलवान् होता है। कलियुगमें धर्म सत्य और आयु ये सब चतुर्थांश कहे गये हैं। प्रतियुगमें ही वर्त्तमान ब्राह्मण पूज्य और माननीय है। (बृहत्पराशरस० १अ०)

मनुमें लिखा है, कि सत्ययुगमें चार सौ वर्ष परमायु, त्रेतामें तीन सौ, द्वापरमें दो सौ और कलिमें सौ वर्ष परमायु है। सत्ययुगमें सभी मनुष्य अरोगी तथा सभी विषय सिद्धिलाभ करते हैं। त्रेतादि युगमें इन सबको पादपाद हीन जानना होगा। श्रुतिमें 'पुरुष शतायुः' ऐसा लिखा है, किन्तु सत्ययुगमें चार सौ और त्रेतामें तीन सौ वर्ष परमायु होगा। ऐसा होनेसे श्रुतिवाक्यके साथ विरोध होता है। परन्तु सौ शब्दका अर्थ है कलि पर अर्थात् कलियुगमें जीवकी परमायु सौ वर्ष

होगी, पर बहुत्वपर ऐसी व्याख्या करनेसे फिर कोई विरोध नहीं करता।

"अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।
कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥" (मनु० १।८३)

'शतायुर्वैपुरुष इत्यादि श्रुतौ तु शतशब्दो बहुत्वपरः कलिपरो वा' (कुल्लूक)

यह जो आयुष्काल निर्दिष्ट हुआ है, सुकृति वा दुष्कृतिके कारण इसका भी ह्रास और वृद्धि होती है। पुण्यकर्मसे आयुकी वृद्धि और पापकर्मसे आयुका ह्रास होता है।

"तपःपरं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥" (मनु० १।८६)

सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान ही एकमात्र परम धर्म है।

"ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमध्वरः।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥" (कूर्मपु० २८ अ०)

सत्ययुगमें ध्यानयज्ञ, त्रेतामें ज्ञानयज्ञ, द्वापरमें कर्मयज्ञ और कलियुगमें एकमात्र दानयज्ञ ही प्रधान धर्म है। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि भगवान् विष्णुने जगत्की रक्षा करनेके लिये चार युगोंमें इस प्रकार व्यवस्था कर दी है। वे सत्ययुगमें सर्वभूतहितार्थ महर्षि कपिलादिरूप अवलम्बन कर सभी प्राणीको उत्कृष्ट सत्यज्ञान प्रदान करते हैं। त्रेतायुगमें चक्रवर्त्ती स्वरूप दुष्टोंका निग्रह करके जगत्की रक्षा करते हैं। द्वापरमें वेदव्यास रूप धारण कर एक वेदको चार भागोंमें, पीछे सौ शाखाओंमें और फिर उसे अनेक अंशोंमें विभक्त कर देते हैं। कलियुगके शेषमें कल्किरूप ग्रहण कर दुर्वृत्तोंको सत्पथ पर लाते हैं। (विष्णुपु० ३।२ अ०)

बृहत्संहितामें युगका विषय इस प्रकार लिखा है,—प्रभवादि साठ सम्वत्सरोंका १२ युग होता है। ६० वर्षका १२ युग होनेसे प्रति पांच वर्ष करके एक एक युग हुआ करता है। इन बारह युगोंके बारह अधिपति हैं। जिनके नाम ये हैं,—विष्णु, सुरेज्य, वलभिद्, अग्नि, त्वष्टा, उत्तर प्रोष्ठपद, पितृगण, विश्व, सोम, शक्रानिल, अश्वि और भग। इन युगाधिपतियोंके नामानुसार सभी युगोंका नाम होता है। जैसे, नारायणयुग, वृहस्पतियुग, इन्द्रयुग इत्यादि।

पांच पांच वर्षका एक एक युग होता है, यह पहले ही लिख आये हैं। इस युगके अन्तर्वर्त्ती पांच पांच वर्षको फिर पांच पांच करके संज्ञा है, जैसे—१ संवत्सर, २ परिवत्सर, ३ इदावत्सर, ४ अनुवत्सर, ५ इद्वत्सर; अधिपति, जैसे—अग्नि, सूर्य, चन्द्र, प्रजापति और महादेव।

पहले जिन १२ युगोंकी बात लिखी जा चुकी है, उनमें प्रथम चार युग है, जिनके अधिपति हैं विष्णु, इन्द्र, प्रजापति और अनल। यही चार युग सबसे श्रेष्ठ है। तत्परवर्त्ती चार युग मध्यम तथा अन्तके चार युग सबसे निकृष्ट हैं। प्रथम विष्णुयुग है। वृहस्पति जिस समय धनिष्ठा नक्षत्रका प्रथमांश प्राप्त कर माघ मासमें उदय होते हैं, उसी समय प्रभा नामक वर्ष आरम्भ होता है। यह वर्ष प्राणियोंका हितकारक है। द्वितीय वर्षका नाम विभव, तृतीय शुक्ल, चतुर्थ प्रमोद और पञ्चम वर्षका नाम प्रजापति है। ये वर्ष उत्तरोत्तर शुभप्रद हैं। ये सब वर्ष राजगण पृथिवी पर इस प्रकार शासन करते हैं, कि पृथिवी शस्यशालिनी और मनुष्य भयशून्य तथा शत्रुताविहीन होते हैं।

द्वितीय युग अर्थात् वृहस्पति युगमें जो पांचवर्ष हैं उनके नाम हैं अङ्गिरा, श्रीमुख, भाव, युवा और धाता। इनमेंसे प्रथम तीन वर्ष बाकीसे अच्छे हैं। शेष दो समभावापन्न हैं। अङ्गिरा आदि तीन वर्षोंमें देवगण सुवृष्टि करते है तथा मनुष्य निरातङ्क और निर्भय होते हैं। शेष दो वर्षोंमें सुवृष्टि तो होती है, पर रोग और युद्ध हुआ करता है।

वृहस्पतिके विचरणसे ऐन्द्र नामक जो तृतीय युग प्रवृत्त होता है, उसके प्रथम वर्षका नाम ईश्वर है, द्वितीय बहुधान्य, तृतीय प्रमाथी, चतुर्थ विक्रम और पञ्चम वृष है। इनमेंसे प्रथम और द्वितीय वर्ष शुभप्रद है। यहां तक कि वह प्रजाओंके सम्बन्धमें सत्ययुगका काम करता है। प्रमाथी वर्ष अत्यन्त पापदायक है। विक्रम और वृष

नामक वर्ष सुभिक्षप्रद होने पर भी इस वर्षमें रोग और भयादि होते हैं।

चतुर्थ हताश नामक युगके प्रथम वर्षका नाम चित्रभानु है। यह वर्ष उत्कृष्ट फल देनेवाला है। द्वितीय वर्षका नाम सुभानु है, यह मध्यम फलविशिष्ट है। तृतीय वर्षका नाम तारण है। इसमें वृष्टि बहुत होती है। चतुर्थ वर्षका नाम पार्थिव है। इस वर्षमें पृथिवी शस्यशालिनी होती है। पञ्चम वर्षका नाम व्यय है। इस वर्षमें प्राणिगण कामोद्दीप्त और उत्सवाकुल हो कर शोभा पाते हैं।

त्वाष्ट्र नामक पञ्चम युगके प्रथम वर्षका नाम सर्वजित्, द्वितीयका सर्वधारी, तृतीयका विरोधी, चतुर्थका विकृत और पञ्चम वर्षका नाम खर है। इन पांचोंमें द्वितीय वर्ष मङ्गलकारक तथा बाकी चार भयका कारण है।

प्रोष्ठपद नामक छठे युगके प्रथम वर्षका नाम नन्दन, द्वितीयका विजय, तृतीयका जय, चतुर्थका मन्मथ और पञ्चम वर्षका नाम दुर्मुख है। इन पांच युगोंमेंसे प्रथम तीन उत्कृष्ट, मन्मथ वर्ष समकाली और पञ्चम अत्यन्त हेय है।

सप्तम पितृयुगके प्रथम वर्षका नाम हेमलम्ब, द्वितीयका विलम्बी, तृतीयका विकारी, चतुर्थका शर्वरी और पञ्चम वर्षका नाम प्लव है। इसके प्रथम वर्षमें ईतिभय और झंझाविशिष्ट वारिवर्षण, द्वितीय वर्षमें शस्यवृष्टि अल्प, तृतीय वर्षमें अतिशय उद्वेग और अत्यन्त उत्पात, चतुर्थ वर्षमें दुर्भिक्ष और भय तथा पञ्चम वर्षमें सुवृष्टि और शुभ होता है।

अष्टम वैश्वयुगके प्रथम वर्षका नाम शोभकृत्, द्वितीय शुभकृत्, तृतीव क्रोधी, चतुर्थ विश्वावसु और पञ्चम पराभव है। इसका प्रथम और द्वितीय वर्ष प्रजाओंका प्रीतिकारक, तृतीव बहुदोषप्रद तथा बाकी दो वर्ष समफली हैं। किन्तु पराभव वर्षमें अग्नि, शस्त्र, रोग, पीड़ा तथा ब्राह्मण और गौको भय होता है।

नवम सौम्ययुगके प्रथम वर्षका नाम प्लवङ्ग, द्वितीय कीलक, तृतीय सौम्य, चतुर्थ साधारण और पञ्चम वर्षका नाम रोधकृत् है। इनमेंसे कीलक और सौम्य वर्ष अत्यन्त शुभप्रद है। प्लवङ्ग वर्षमें प्रजाओंको बहुत क्लेश होता। साधारण वर्षमें सामान्य वृष्टि होती तथा ईतिका भय होता है। रोधकृत् वर्षमें सुवृष्टि और पृथिवी शस्यशालिनी होती है।

दशम शक्राग्नि दैवतयुगके प्रथम वर्षका नाम परिधारी, २य प्रमादी, ३य आनन्द, चतुर्थ राक्षस और ५म वर्षका नाम अनल है। इनमेंसे परिधारी नामक वर्षमें मध्यदेश नाश, राजाकी हानि, सामान्य वृष्टि और अग्निभय होता है। प्रमादी वर्षमें मनुष्य आलसी तथा नाना प्रकारके विप्लव होते हैं। आनन्दवर्ष आनन्ददायक तथा राक्षस और अनलवर्ष क्षयजनक होता है।

एकादश अश्वि नामक युगके प्रथम वर्षका नाम पिङ्गल, २य कालयुक्त, ३य सिद्धार्थ, ४र्थ और ५म वर्षका नाम दुर्मति है। इनमेंसे प्रथम वर्षमें अत्यन्त वृष्टि, चोरका भय, श्वास और कास होता है। कालयुक्त वर्ष अत्यन्त दोषकारी, सिद्धार्थ वर्ष शुभफलप्रद, रौद्रवर्ष अशुभफलप्रद और दुर्मति वर्ष मध्यफली होता है।

द्वादश भगाधिदैवत युगके प्रथम वर्षका नाम दुन्दुभि, २य उद्गारी, ३य रक्ताक्ष, ४र्थ क्रोध और ५म वर्षका नाम क्षय है। इनमेंसे प्रथम वर्ष शुभफलप्रद, द्वितीय वर्षमें राजाका क्षय और असमान वृष्टि, तृतीय वर्षमें दंष्ट्रिजन्य भय और रोग, चतुर्थ वर्षमें युद्धादि द्वारा राज्यनाश, पञ्चम क्षय नामक वर्षमें क्षय होता है। यह वर्ष ब्राह्मणोंका भीतिप्रद और कृषीवलका वर्द्धनकारी है। इस वर्षमें परधन अपहारी वैश्य और शूद्रकी वृद्धि होती है। (बृहत्संहिता ८ अ०)

युगकीलक (सं० पु०) युगस्य कीलकः। युगकाष्ठका कीलक, वह लकड़ी या खूंटा जो बम और जुएके मिले छेदोंमें डाला जाता है।

युगक्षय (सं० पु०) युगस्य क्षयः। युगका क्षय; युगका नाश।

युगच्छद (सं० पु०) वृक्षविशेष।

युगन्धर (सं० पु०) युगं धारयतीति धारि (संज्ञायां भृततृजिधारिसहितपिदमः। पा ३।२।४६) इति खच् ततो मुम्। १ कूवर, हरस। २ गाड़ीका बम। ३

एक पर्वतका नाम। ४ हरिवंशके अनुसार तूणिके पुत्र और सात्यकिके पौत्रका नाम।

युगप (सं० पु०) गन्धर्व।

युगपत्र (सं० पु०) युगं पत्रमस्य। १ कोविदार, कचनार। २ युग्मपर्ण वृक्षमात्र, वह वृक्ष जिसमें दो दो पत्तियां आमने सामने निकलती हैं। ३ पहाड़ी आवनूस।

युगपत्रिका (सं० स्त्री०) युगं पत्रमस्याः, कप-टाप्, अकारस्येत्वं। शिशपावृक्ष, शीशमका पेड़।

युगपद् (सं० अव्य०) युगमिव पद्यते पद्-क्विप्। एककालीन, एक ही समयमें।

युगपार्श्वग (सं० पु०) युगस्य पार्श्वं गच्छतीति गम-ड। अभ्यासार्थं लाङ्गलपार्श्ववद्ध गो।

युगवाहु (सं० त्रि०) जिसके हाथ वहुत लम्बे हों, दीर्घवाहु।

युगमात्र (सं० क्ली०) युगं मात्रा यस्य। युगपरिमाण, चार हाथ परिमाण।

युगल (सं० क्ली०) युज्यते परस्परं संगच्छत इति युज् 'वृषादिभ्यः कलच्' न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वं। युग्म, जोड़ा।

युगल—भाषाके एक कवि। इनका जन्म संवत् १७५५में हुआ था। इनके वनाये हुए पद अति अनूठे और ललित हैं।

युगलक (सं० क्ली०) युग्मक, वह कुलक या गद्य जिसमें दो श्लोकों वा पद्योंका एक साथ मिल कर अन्वय हो।

युगलकिशोरभट्ट—महाराज कैथलके रहनेवाले और भाषाके कवि। इनका जन्म सं० १७६५ में हुआ था। ये महम्मदशाह वादशाहके वड़े मुसाहिवोंमें थे। सम्वत् १८०३में इन्होंने अलंकारका ग्रन्थ वनाया था। इसमें ६६ अलंकारोंके लक्षण तथा उनके उदाहरण वतलाये गये हैं।

युगराज—एक भाषा-कवि। इनकी कविता वहुत ही सरस तथा मनोहर होती है।

युगलप्रसाद चौवे—भाषाके एक कवि। इन्होंने दोहावली नामक सरस और सुन्दर पुस्तक वनाई है।

युगलमन्त्र (सं० पु०) युगलाख्या मन्त्रः शाकपार्थिववत् समासः। लक्ष्मीनारायणमन्त्र।

(पाद्मोत्तरखं० २५ अ०)

युगलाख्य (सं० पु०) युगलमिव आख्या यस्य। १ ववूरवृक्ष, ववूलका पेड़। (त्रि०) २ युग्मनायक, युग्मनामका।

युगांशक (सं० पु०) युगस्य अंशकः क्षुद्रांश इति। १ वत्सर, वर्ष। (त्रि०) २ युगका विभाजक।

युगाक्षिगन्धा (सं० स्त्री०) वृद्धदारकलता, विधारा।

युगादि (सं० पु०) १ सृष्टिका प्रारम्भ। (त्रि०) २ युगके आरम्भका, पुराना।

युगादिकृत् (सं० पु०) शिव।

युगादिजिन (सं० पु०) युगके पहले जिस जिनने जन्मग्रहण किया हैं, ऋषभ।

युगादिजिन श्री—ऋषभदेवका एक नाम।

युगादीश (सं० पु०) ऋषभदेव।

युगाद्या (सं० स्त्री०) युगस्य आद्या आदिभूता। युगारम्भतिथि, जिस तिथिमें प्रथम युगारम्भ हुआ था, उसीको युगाद्या कहते हैं।

वैशाखमासकी शुक्ला तृतीयामें सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ था, अतएव वह तिथि युगाद्या है। इसी प्रकार कार्त्तिकमासकी शुक्ला नवमीमें त्रेतायुग, भाद्रमासकी कृष्णा त्रयोदशीमें द्वापरयुग और पौषमासकी पूर्णिमा तिथिमें कलियुग प्रवर्त्तित हुआ। इस लिये ये सव युगप्रवर्त्तिका तिथि युगाद्या है। इस तिथिको तिथिकृत्य विषयमें तिथियुग्मता नहीं है। जिस दिन इस तिथिमें रवि उदय होंगे, वही दिन तिथिकृत्य होगा। यह तिथि अनन्त पुण्यजनक है। इसमें स्नान, दान और श्राद्धादिका अनुष्ठान करनेसे अनन्तफल प्राप्त होता है। पापादिका अनुष्ठान भी इस तिथिमें फलदायक है।

युगाध्यक्ष (सं० पु०) युगस्य अध्यक्षः। १ प्रजापति, युगाधिपति। २ शिव।

युगान्त (सं० पु०) युगानामन्तो यत्र, युगानामन्तो वा। १ प्रलय। प्रलयमें युगका ध्वंस होता है इसलिये उसे युगान्त कहते हैं। २ युगशेष, युगका अन्तिम समय।

युगान्तक (सं० पु०) युगान्त एव स्वार्थे कन्। १ प्रलयकाल। २ प्रलय।

युगान्तर (सं० क्ली०) अन्यद् युगं युगान्तरं। १ दूसरा युग। २ दूसरा समय, और जमाना।

युगिन् (सं० त्रि०) दो।

युगेश (सं० पु०) युगस्य ईशः। वृहस्पतिके साठ वर्ष-के राशिचक्रमें गतिके अनुसार पांच पांच वर्षके युगोंके अधिपति। यह चक्र उस समयसे प्रारम्भ होता है जब वृहस्पति माघ माससे धनिष्ठा नक्षत्रके प्रथमांशमें उदय होता है। वृहस्पतिके साठ वर्षके कालमें पांच वर्षके वारह युग होते हैं जिनके अधिपति विष्णु, सुरेज्य, वल-भित्, अग्नि, त्वष्टा, उत्तर प्रोष्ठपद, पितृगण, विश्व, सोम, शक्रानिल, अश्वि और भग हैं। प्रत्येक युगके पांच वर्षों-के युग क्रमशः संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनु-वत्सर और इद्वत्सर कहलाते हैं।

युगोरस्य (सं० पु०) सेनाके सन्निवेशका एक भेद।

युग्म (सं० क्ली०) युज्यते-इति युज् (युजिरुचितिजांकुश्च। उण् १।१४५) इति मक्। १ द्वय, जोड़ा। पर्याय—द्वन्द्व, युगल, युग। २ मिलन। दो दो तिथियोंके मिलन-को तिथियुग्म कहते हैं। तिथिके व्यवस्था-विषयमें पहले युग्मादर देख तिथिकी व्यवस्था करनी होगी। किस तिथिके साथ किस तिथिका युग्मत्व है, इसका विषय तिथितत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—

द्वितीया तिथिके साथ तृतीयाका इसी प्रकार चतुर्थी-के साथ पञ्चमीका, षष्ठीके साथ सप्तमीका, अष्टमीके साथ नवमीका, एकादशीके साथ द्वादशीका, चतुर्दशीके साथ पूर्णिमाका तथा प्रतिपद्के साथ अमावस्याका जो मिलन है उसीको युग्म कहते हैं। इस तरह तिथियुग्म स्थिर कर पीछे उसके कार्य आदि विषय निर्णय करने होते हैं।

३ मिथुनराशि। ४ अन्योन्याश्रित दो वस्तुएं या वातें, द्वन्द्व। ५ कुलका एक भेद जिसे युगलक भी कहते हैं।

युग्मक (सं० त्रि०) युगलक, जोड़ा।

युग्मकण्टक (सं० स्त्री०) वदरीवृक्ष, वेरका पेड़।

युग्मज (सं० पु०) युग्मं जायते जन-ड। युग्मजाति, एक साथ उत्पन्न दो वच्चे।

युग्मत् (सं० त्रि०) समान, वरावर।

युग्मधर्मन् (सं० त्रि०) १ मिलनशील, जो स्वभावतः मिलता हो। २ मैथुनधर्म।

युग्मन् (सं० त्रि०) युग्म, जोड़ा।

युग्मपत्र (सं० पु०) युग्मं पत्रमस्य। १ रक्तकांचनवृक्ष, लाल कचनारका पेड़। २ भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका पेड़। ३ सप्तपर्णवृक्ष, छतिवनका पेड़। (क्ली०) ४ युगलपर्ण, वह पेड़ जिसकी शाखामें दो दो पत्ते एक साथ होते हों।

युग्मपत्रिका (सं० स्त्री०) युग्मं पत्रमस्याः (शेषाद्विभाषा। पा ५।४।१५४) इति कप्, टापि अत-इत्वं। शिंशपावृक्ष, शीशमका पेड़।

युग्मपर्ण (सं० पु०) युग्मं पर्णमस्य। १ कोविदारवृक्ष, कचनारका पेड़। २ सप्तपर्णवृक्ष, छतिवनका पेड़। ३ युगलपत्र, वह पेड़ जिसकी शाखामें दो दो पत्ते एक साथ होते हों।

युग्मपर्णा (सं० स्त्री०) वृश्चिकाली, विच्छू नामकी लता।

युग्मफला (सं० स्त्री०) युग्मं फलमस्याः। १ इन्द्रचिर्भिटी। २ वृश्चिकाली लता, विच्छू नामकी लता। ३ गंधिका। (रत्नमाला)

युग्मफलिनी (सं० स्त्री०) दुग्धिका, दुधिया।

युग्मफलोत्तम (सं० पु०) एक प्रकारका फल।

युग्मविपुला (सं० स्त्री०) छन्दोभेद।

युग्माञ्जन (सं० क्ली०) युग्मं अञ्जनं कर्मधा०। स्रोतोञ्जन और सौवीराञ्जन इन दोनोंका समूह।

युग्मादर (सं० पु०) युग्मस्य आदरः। तिथियोग द्वारा तिथिखण्डका आदर।

तिथिकी व्यवस्था करनेमें युग्मादर द्वारा ही तिथिकी व्यवस्था स्थिर की जाती है। जिस तरह द्वितीया तिथिके साथ तृतीया तिथिका युग्मत्व है, किन्तु प्रतिपद्के साथ द्वितीयाका युग्मत्व नहीं। इसलिये प्रतिपद्युक्ता द्वितीया आदरके योग्य नहीं है, लेकिन द्वितीयाके साथ तृतीया आदरणीया है। इसी प्रकार जिस तिथिके साथ जिस तिथिकी युग्मता है वही ग्रहण करनेके योग्य है। इस लिये उसे 'युग्मादर' कहते हैं। युग्म देखो।

युग्मादरण (सं० क्ली०) युग्मस्य आदरणं। युग्मतिथिकी पूजा या आदर करना।

युग्मिन् (सं० त्रि०) युग्मसम्बन्धीय।

युग्य (सं० क्ली०) युगाय हितं युग (उगवादिभ्यो यत्।

पा ५।१।२) इति यत्, युग महतीति वा 'दण्डादित्वात् यत्, यद्वा युज्यत इति युज् (युग्यञ्च पत्रे। पा ३।१।१२१) इति क्यवन्तो निपातितः। १ वाहन, वह गाड़ी जिसमें दो घोड़े या बैल जोते जाते हों। (पु०) युगं वहतीति युग (तद्वहति रथयुगप्रासङ्गं। पा ४।४।७६) इति यत्। २ युगवाही पशु, वे दो पशु जो एक साथ गाड़ीमें जोते जाते हों। (त्रि०) ३ जो जोता जानेके योग्य हो। ४ जो जोता जानेवाला हो।

युग्यवाह (सं० पु०) १ अश्वचालक, गाड़ीवान्। २ जोड़ी हांकनेवाला।

युङ्गिन् (सं० पु०) एक वर्णसंकर जाति, गंगापुत्रकी कन्या और वेशधारीके औरससे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० ब्रह्मख०)

युज् (सं० त्रि०) युज-योगे क्विन्। १ योगकर्त्ता, मिलानेवाला। २ युग्म, जोड़ा। ३ सम। (पु०) ४ दो अश्विनीकुमार।

युज्य (सं० त्रि०) १ संयुक्त, मिला हुआ। २ मिलाने योग्य। ३ (पु०) संयोग, मिलाप। ४ एक प्रकारका साम।

युञ्जक (सं० त्रि०) युक्त, कार्यनिरत।

युञ्जन्द (सं० क्ली०) एक स्थानका नाम।

युञ्जवत् (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। इसका दूसरा नाम मुञ्जवान् भी है।

युञ्जातक (सं० पु०) एक वृक्षका नाम। इसका गुण—बलकर, शीतल, गुरु, स्निग्ध, तर्पण, बृंहण, वातपित्तनाशक, स्वादु और वृष्य। (चरकसू० २७ अ०)

युञ्जान (सं० पु०) युज-शानच्। १ सारथी। २ विप्र। ३ योगिविशेष। भाषापरिच्छेदमें लिखा है, कि युक्त और युञ्जान भेदसे योगी दो प्रकारका है। ऐसा योगी समाधि लगा कर सब बातें जान लेता है।

युञ्जानक (सं० त्रि०) युञ्जान नामक योगी।

युञ्जान देखो।

युत् (सं० क्ली०) युत्-क्विप्। निन्दा, शिकायत।

युत (सं० पु०) यु-क्त। १ चार हाथकी एक नाप। (त्रि०) २ युक्त, सहित। ३ मिलित, जो अलग न हो ४ हाथीसे कुचलवाना।

युतक (सं० क्ली०) युत-क। १ संशय, संदेह। २ युग, जोड़ा। ३ अंचल, दामन। ४ प्राचीनकालका एक प्रकारका वस्त्र जो पहननेके काममें आता था। ५ शूर्पाग्र, सूपके दोनों ओरके किनारे जो ऊपर उठे हुए होते हैं और पीछेके उठे हुए भागसे जोड़ कर बांधे रहते हैं। ६ मैत्रीकरण। ७ संश्रय। ८ यौतुक।

युतद्वेषस् (सं० त्रि०) पृथक्भूतशत्रुक।

(ऋक् १।५३।३)

युतवेध (सं० पु०) एक योगका नाम। यह योग उस समय होता है जब चन्द्रमा पापग्रहसे सातवें स्थानमें होता है या पापग्रहके साथ होता है। ऐसे योगके समय विवाहादि शुभ कर्मोंका फलितज्योतिषमें निषेध है।

यामित्र शब्द देखो।

युति (सं० स्त्री०) युक्ति। योगमिलन।

युत्कार (सं० त्रि०) युद्धकारी, लड़ाई करनेवाला।

युद्ध (सं० क्ली०) युध्यते इति युध भावे क्त। योधन, लड़ाई। पर्याय—आयोधन, जन्य, प्रधन, प्रविदारण, मृध, आस्कन्दन, संख्य, समीक, साम्परायिक, समर, अनीक, रण, कलह, विग्रह, संप्रहार, अभिसम्पात, कलि, संस्फोट, संयुग, अभ्यामर्द, समाघात, संग्राम, अभ्यागम, आहव, समुदाय, संयत्, समिति, आजि, समित्, युध, संराव, आनाह, सम्परायक, विदार, दारण, संवित्, सम्पराय, तीक्ष्ण, अम्बरीष, वलज, आनर्त्त, अभिमर, समुदय। (जटाधर)

वैदिक पर्याय—रण, विवाक्, विखाद, नदनु, भरआक्रन्द, आहव, आजि, पृतनाज्य, अभीक, समीक, ममसत्य, नेमधिता, सङ्क, समिति, समन, मीड्वाह, पृतना, स्पृध, मृध, पृत्सु, समत्सु, समर्य, समरण, समोह, समिथ, सङ्ख, सङ्ग, संयुग, सङ्गथ, सङ्गम, वृत्रतूर्य, वृक्ष, आणि, शूरसाति, समनीक, खल, खज, पौंस्य, महाधन, वाज, अज्म, सद्म, संयत्, संवत। (वै०नि० २।१७)

कविकल्पलतामें लिखा है, कि युद्धमें निम्नोक्त विषयका वर्णन करना होता है। जैसे—चर्म, वर्म, बल, चर, धूलि, तूर्यस्वन, सिंहनाद, शवमण्डल, रक्तनदी, छिन्नछत्र, रथ, चामर, हस्ती, अश्व, केतु, विदीर्णकुम्भक-

हस्तिकुम्भमुक्ता, व्यूहरचनावस्थितसेना और सुरपुष्पवृष्टि। (कविकल्पलता)

"अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
नतत्फलमवाप्नोति संग्रामे यदवाप्नुयात् ॥
इति यज्ञविदः प्राहुर्यज्ञकर्मविशारदाः।
तस्मात्तत्ते प्रवक्ष्यामि यत्फलं शस्त्रजीविनाम् ॥"
(अग्निपु० युद्धपु०)

प्रचुर दक्षिणायुक्त अग्निष्टोमादि यज्ञ करनेसे जो फल नहीं मिलता, एकमात्र न्यायानुसार युद्ध करनेसे वह फल मिलता है। दूसरेकी सेनाको भेद कर यदि युद्धमें मृत्यु हो जाय; तो अर्थ, धर्म, और यश लाभ होता है और अन्तमें उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। केवल यही नहीं, उसे चार अश्वमेध यज्ञका फल भी प्राप्त होता है।

"धर्मलाभोऽर्थलाभश्च यशोलाभस्तथैव च।
यः शूरो वध्यते युद्धे विमृदन् परवाहिनीम् ॥
विष्णोः स्थानमवाप्नोति एवं युध्यन् रणाजिरे।
अश्वमेधानवाप्नोति चतुरस्तेन कर्मणा ॥"
(अग्निपु० युद्धप्र०)

युक्तिकल्पतरुमें लिखा है, कि समतल स्थानमें रथयुद्ध, विषमक्षेत्रमें हस्तियुद्ध, मरुभूमिमें अश्वयुद्ध, दुर्गमस्थानमें पत्तियुद्ध, जलमें नौकायुद्ध तथा विपत्तिकालमें सभी प्रकारका युद्ध करना चाहिये। युद्धकालमें सेनापतिको चाहिये, कि वह अपनी सेनाको सूचीमुख करके रखे। क्योंकि इससे थोड़ी सेना भारी सेनाके साथ युद्ध कर सकेगी।

"रथयुद्धं समे देशे विषमे हस्तिसङ्गरः।
अत्यये सर्वयुद्धं स्यान्नौकायुद्धं जलप्लुते।
संहत्य योधयेदन्यान् कामं विस्तारयेद्बहून् ॥
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पं हि बहुभिः सह ॥"
(युक्तिकल्पतरु)

राजाओंका द्वन्द्व ही एकमात्र प्रधान बल है। यदि वे बलहीन हों, पर युद्धविद्या जानते हों तो वही बलिष्ठ है। एक धनुर्द्धारी योद्धा दीवार पर चढ़ कर सैकड़ों योद्धाओंके साथ युद्ध कर सकता है। दुर्ग दश लाख योद्धाओंका मुकाबला कर सकता है, इसलिये दुर्ग सबसे श्रेष्ठ है।

"राज्ञो बलं नहि बलं द्वन्द्वमेव बलं बलम्।
अप्यल्पबलवान् राजा स्थिरोद्वन्द्वबलाद् भवेत् ॥
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्द्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्मात् दुर्गं विशिष्यते ॥"
(युक्तिकल्पतरु)

दुर्ग कृत्रिम और अकृत्रिमके भेदसे दो प्रकारका है। नद्यादि तट पर जो दुर्ग अवस्थित है वह अकृत्रिम है। शत्रु ऐसे दुर्ग पर चढ़ाई नहीं कर सकता। जो दुर्ग चहारदीवारी, खाई और अरण्यके भीतर निर्मित हैं वह कृत्रिम है। ऐसे दुर्ग पर शत्रु चढ़ाई भी सकता है और नहीं भी कर सकता है।

"अकृत्रिमं कृत्रिमञ्च तत्पुन द्विविधं भवेत्।
यद्वसुचितं द्वन्द्वं गिरिनद्यादि संश्रियम् ॥
अकृत्रिममिदं ज्ञेयं दुर्लङ्घ्यमरिभूभुजाम्।
प्राकारपरिख्यारण्यसंश्रयं यद्भवेदिह।
कृत्रिमं नाम विज्ञेयं लङ्घ्यालङ्घ्यन्तु वैरिणाम् ॥"
(युक्तिकल्पतरु)

महाभारतके राजधर्मानुसार-पर्वाध्यायमें लिखा है,—सत्य, जीवित, निरपेक्षता, शिष्टाचार और कौशल द्वारा ही युद्धधर्म प्रतिपालित होता है। सबोंको सरल और वक्र दोनों प्रकारकी बुद्धि रखनी चाहिये। वक्रबुद्धिसे लोगोंका अनिष्ट न करके आई हुई विवाहसे अपनी रक्षा करे। शत्रु राजाओंमें फूट पैदा करके उनका सर्वनाश करनेकी चेष्टा करता है। किन्तु राजा यदि वक्रबुद्धि-सम्पन्न हो, तो वह कभी भी अपना मतलब नहीं निकाल सकता।

युद्धार्थी राजाओंको उचित है, कि वे गज, चर्म, वृष, अजगरकी अस्थि और कण्टक, चामर, तेज अस्त्र, पीत लोहितवर्ण, नाना वर्णोंमें रञ्जित ध्वज और पताका, ऋष्टि, तोमर, निशित खड्ग, परशु, फलक, चर्म और कृतनिश्चय योद्धाओंको संग्रह कर रखें। चैत वा अगहनके महीनेमें युद्धके लिये सैन्यसंग्रह करना ही उचित है। जयार्थी राजा सेनाओंको उत्तम पथसे ले जायं। सत्कुलसम्भूत महाबलिष्ठ पराक्रान्त वीरोंको ही

सेनाको अगुआ बनाना चाहिये। अपना दुर्ग यदि एक द्वारयुक्त और सलिलसम्पन्न हो, तो शत्रुको उस पर चढ़ाई करनेका साहस नहीं होगा। शून्यप्रदेशकी अपेक्षा वनकी निकटस्थ भूमि सैन्य संस्थापनका उपयुक्त स्थान है।

सप्तर्षिगणको पश्चाद्भागमें रख कर यदि स्थिर चित्तसे युद्ध किया जाय, तो दुर्जय शत्रुको भी पराजय किया जा सकता है। युद्धजयमें शुक्रकी अपेक्षा सूर्य और सूर्यकी अपेक्षा वायुकी अनुकूलता श्रेष्ठ मानी गई है।

संग्रामनिपुण वीर जल कीचड़से रहित कंकर पत्थरसे शून्य प्रदेश घुड़सवारोंके जलहीन काशयुक्त प्रदेश रथियोंके छोटे छोटे पौधोंसे युक्त प्रदेश गजारोहियोंके तथा पर्वत, उपवन और वेणुवेत्रसमाकुल बहुदुर्ग समन्वित प्रदेश पदातिकोंके संग्रामोपयोगी बतलाते हैं। सेनाओंमें पदातिकी संख्या अधिक होनेसे वह सुदृढ़ समझा जाता है। निर्मल दिनमें काफी फौज ले कर युद्ध करना उचित है। वर्षाकालमें यदि युद्ध करनेकी इच्छा हो, तो सेनाओंमें हस्ती और पदाति सेनाकी संख्या अधिक रखना आवश्यक है। जो व्यक्ति देशकालका विचार कर इन सब नियमोंके अनुसार सुचारुरूपसे सैन्यसंयोजन करके उत्कृष्ट तिथिनक्षत्रमें युद्धयात्रा करता है उसकी हमेशा जीत होती है। युद्धकालमें प्रसुप्त, तृषित, परिश्रान्त, प्रचलित, खाने पीनेमें आसक्त, निहत, बुरी तरह घायल, निवारित, विश्वस्त, कार्यान्तरव्यापृत, तापित, वहिर्गत, तृणादिका आहरणकर्त्ता, शिविरमें पलायमान और राजा वा अमात्यकी परिचर्यामें निरत अध्यक्षों पर आघात करना उचित नहीं।

राजाको उचित है, कि वे युद्ध शुरू होनेके पहले प्रधानानुसार एक एक कर सभी योद्धाओंको बुलावे और उनसे कहें कि, 'अभी जयलाभार्थ संग्रामस्थलमें जाओ और शपथ करो, कि वहां कोई भी एक दूसरेसे जुदा न होवें। हमलोगोंमें जो कायर हैं अथवा जो निष्ठुर कार्यका अनुष्ठान कर आत्मपक्षीय प्रधान व्यक्तिका वध करें, उन्हें अभी उचित है, कि वे युद्धमें सम्मिलित न होवें। यदि वे सम्मिलित होवें, तो उन्हें उचित है, कि वे समराङ्गणमें जा कर आत्मीयका विनाश न करें और न युद्ध छोड़ कर भाग जावें। जो वीरपुरुष हैं, वे आत्मपक्षीय सेनाओंकी रक्षा कर अन्तमें विपक्षियोंका विनाश करते हैं। रणमें भाग जानेसे अर्थनाश, मृत्यु और भारी अपयश होता है। अतएव हम लोगोंको उचित है, कि निरपेक्षभावमें युद्धस्थल जा कर चाहे जयलाभ कर चाहे विपक्षियोंके हाथ प्राण परित्याग कर सद्गति लाभ करें।'

राजा वा सेनापति इस प्रकार सेनाओंको उत्साह प्रदान कर युद्धमें प्रवृत्त होवें। युद्धकालमें खड्गचर्मधारी पदाति सेनाओंको आगे, शकटारोही सेनाओंको पीछे और बीचमें अन्यान्य वीरोंको सन्निवेशित करना कर्त्तव्य है। इस समय जो आगे रहेंगे, उन्हें शत्रुविनाशके लिये पदातिकोंकी रक्षा करनी होगी। मनस्विगण सबसे पहले यदि युद्धमें प्रवृत्त होवें तो अन्यान्य सैन्योंको पीछे पीछे जा कर उनकी रक्षा करनी चाहिये। भीरोंको उत्साह देनेके लिये उनके समीप रहना वीरोंका कर्त्तव्य है। सेनापति समरप्रवृत्त अल्पसंख्यक सेनाओंको चारों ओर फैला कर युद्ध करे। अधिक सेनाके साथ अल्पसैन्यका युद्ध उपस्थित होने पर सूचीमुखव्यूह बनाना आवश्यक है। घोर संग्रामके समय सेनापति योद्धाओंको उत्साह देनेके लिये कहें, 'शत्रु-पक्षके लोग भाग रहे हैं और हम लोगोंका मित्र-दल पहुंच गया। तुमलोग निर्भीक हो कर उन पर टूट पड़ो।' सेनाओंको उत्साह देनेके लिये शङ्ख, वेणु, शृङ्ग, भेरी, मृदङ्ग और पनव आदि वाद्यध्वनिके साथ सिंहनाद करना चाहिये। युद्धस्थलमें कुल और देशाचार-प्रचलित शस्त्र और वाहनका व्यवहार करना उचित है। वीर पुरुषोंको चाहिये, कि इसी नियमके अनुसार युद्धमें प्रवृत्त होवें।

वर्मधारी न हो कर क्षत्रियके साथ युद्धमें प्रवृत्त होना और एकल हो कर अनेक क्षत्रियोंके साथ युद्ध करना राजाको उचित नहीं है। प्रतिद्वन्द्वी वर्म पहन कर यदि युद्धस्थलमें आवे तो राजाको भी वर्म पहनना होगा और यदि वह सेनाओंके साथ आवे, तो राजाको भी सेनाकी सहायता ले कर उसके साथ युद्ध करना होगा। शत्रु यदि कपटताका आश्रय कर युद्ध करे, तो

राजाको भी कपट युद्ध करना चाहिये। अश्वारोही हो कर कभी भी रथीकी ओर कदम न बढ़ावे। रथ पर चढ़ कर रथीकी ओर जाना उचित है। विपन्न, भीत वा पराजित व्यक्तिके प्रति कभी भी हथियार न उठावे। विषलिप्त वा कुटिल वाण ले कर युद्ध करना नितान्त अनुचित है। दुर्बल, अपत्यहीन, शस्त्ररहित, विपन्न, छिन्न कार्मुक और हतवाहन क्षत्रियोंका बध करना असंगत है।

स्वायम्भुव मनुने धर्मयुद्ध करना ही श्रेय बतलाया है। साधुओंको सर्वदा धर्मका आश्रय लेना कर्त्तव्य है। धर्म विनष्ट करना उचित नहीं। जो शठताका आवरण कर अधर्मयुद्धमें जय लाभ करते हैं, वे मानो अपने ही पैरमें कुल्हाड़ी मारते हैं। अधर्मयुद्धमें जयलाभ करनेकी अपेक्षा धर्मयुद्धमें प्राणत्याग करना ही श्रेय है। क्षत्रियों-का युद्ध परमधर्म है। इसीसे युद्धको यज्ञ कहा गया है। क्षत्रियगण कवचधारण कर सैन्यसागरमें अवतीर्ण होनेसे ही युद्धयज्ञके अधिकारी होते हैं। कुञ्जरगण इस युद्धयज्ञके ऋत्विक्, अश्वगण अध्वर्यु, अराति (शत्रु)-का मांस हवि, शोणित आज्य तथा शृगाल, गृध्र और काकगण उसके सदस्य हैं। वे सदस्यगण उस यज्ञका आज्यशेष पात्र और हवि भक्षण करते हैं। शोणित प्रास, तोमर, खड्ग, शक्ति और परशु ये यज्ञके स्रुक् हैं तथा शत्रुशरीरभेदी निशित सायक उसके स्रुव है। शाणित खड्ग उसका स्फिक्; पाश, शक्ति, ऋष्टि और परशुका आघात उसकी धनसम्पत्ति है। वीरोंके परस्पर आक्रमण और प्रहारसे जो रुधिर धारा बहती है, वही उस यज्ञकी सर्वकामप्रद पूर्णाहुति है। सेनाओंके मध्य 'मारकाट' आदि जो सब शब्द सुनाई देते हैं, वह सामगान है। शत्रु-पक्षका सेनामुख उसकी आज्य स्थाली तथा हस्ती, अश्व और चर्मधारी मनुष्य भी श्येनचिह्न वह्नि हैं। सहस्र सेनाके मारे जाने पर जो कबन्ध उठता है वह उस यज्ञका अष्टकोणविशिष्ट यूप है। दुन्दुभि उसकी उद्गाथा है। जो महावोर भया-वह घोर शोणित नदो प्रवाहित कर सकते हैं; वे ही युद्ध यज्ञके अवभृत स्नानके उपयुक्त पात्र है। जो निर्भीक हो कर न्यायानुसार युद्ध करते हैं, उन्हें सद्गति प्राप्त होती है। जो योद्धा रणमें पीठ दिखा कर शत्रुके शरसे मारा जाता वह निःसन्देह नरक जाता है।

(भारत शान्तिप० ९४ १०२ अ०)

मनुसंहिता, नीतिमयूख, कामन्दकीय नीतिसार, वृद्ध शार्ङ्गधर, नीतिप्रकाशिका और शुक्रनीति आदि ग्रन्थोंमें युद्धका धर्माधर्म विषय विस्तारपूर्वक लिखा है, यहां पर संक्षेपमें दिया जाता है।

"न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीवं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशमासीनं न तवास्मीति वादिनम्॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्म मनुस्मरन्॥"

(नीतिमयूखधृत मनुवचन)

युद्धक्षेत्रमें रथ परसे उतरे हैं, उन्हें मारना उचित नहीं। क्लीव, अञ्जलिवद्ध, मुक्तकेश तथा जो 'मैंने आप-की शरण ली' ऐसा कहते हैं उन्हें भी मारना उचित नहीं। निद्रित, युद्धयोग्य, परिच्छदविहीन, नग्न और निरस्त्र व्यक्ति पर भी आघात न करे। जो युद्ध नहीं करते, केवल युद्ध देखते हैं तथा जो दूसरेके साथ युद्ध कर रहे हैं, जो विह्वल और पलायनपरायण हैं, उन्हें भी हनन करना मना है। इसके सिवा वृद्ध, बालक, स्त्री, स्त्रीवेशधारी, ब्राह्मण; आयुध-व्यसनप्राप्त अर्थात् जिसके पास एक भी अस्त्र न रह गया है; उनकी भी हत्या नहीं करनी चाहिये। कूट आयुध, विषलिप्त अस्त्र और विविध यन्त्रास्त्र द्वारा युद्ध करना उचित नहीं।

"न कूटैरायुधैर्हन्यात् युध्यमानो रणे रिपून्।
दिग्धैरत्युल्वणैरस्त्रैर्यन्त्रैश्चैव पृथक्विधैः॥"

(नीतिप्रकाशिका)

धर्मयुद्धमें कूट अस्त्रादिका व्यवहार बिलकुल निषिद्ध है। वर्त्तमानकालमें तोप आदि द्वारा जो युद्ध होता है, वह कूटास्त्रमें गिना जाता है। अतएव तोप आदिसे युद्ध करना धर्मविगर्हित है।

धर्मयुद्धके विषयमें मनुने कहा है, कि प्रजापालन-कारी राजा यदि समान, मध्यम और उत्तम व्यक्तिसे युद्धमें बुलाये जांय, तो उन्हें युद्धसे लौट नहीं जाना चाहिये। राजगण एक दूसरेका बध करनेकी इच्छासे

समधिक शक्तिका अवलम्बन कर युद्ध करें। इस युद्धमें जो पराङ्मुख नहीं होते, वे स्वर्ग जाते हैं।

"समोत्तमाधमै राजा त्वाहुतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्त्तेत संग्रामात् क्षत्रधर्ममनुस्मरन्॥
आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः॥" (मनु)

राजा अपनी सेनाओंको अच्छी तरह शिक्षित करें। विधिपूर्वक अस्त्रादिकी जो शिक्षा दी जाती है उसे श्रम-विधि कहते हैं। जब तक अस्त्र-शिक्षा समाप्त न हो, तब तक श्रमविधिका अनुष्ठान करना आवश्यक है। श्रम-क्रिया सुसिद्ध नहीं होनेसे और अभ्यस्तास्त्र पीछे कहीं भूल न जायँ, इसलिये वर्षमें दो मास करके शिक्षितास्त्र परिचालन करना उचित है। आश्विन और कार्त्तिक यही दो मास उसके लिये अच्छे बताये गये हैं, दूसरे दूसरे मास नहीं।

"एवं श्रमविधिं कुर्यात् यावत सिद्धिः प्रजायते।
श्रमे सिद्धे च वर्षासु नैव ग्राह्यं धनुः करे॥
पूर्वाभ्यासस्य शस्त्राणामविस्मरणहेतवे।
मासद्वयं श्रमं कुर्यात् प्रतिवर्षं शरद्दतौ॥" (शार्ङ्गधर)

सभी सेनापत्ति, सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू, अनीकिनी और अक्षौहिणी आदिमें विभक्त हैं। इनकी संख्यादिका विषय नीतिप्रकाशिकामें इस प्रकार लिखा है—

पत्ति—१ रथ, १ हाथी, ५ पदाति, ३ अश्वारोही इन-समुदायको पत्ति कहते हैं।

सेनामुख—३० रथी, ३० गजारोही, ३००००० पदाति और ३००० अश्वारोही, एकत्र मिले रहनेसे उसे सेनामुख कहते हैं।

गुल्म—६ रथी, ६० गजारोही, ६००० अश्वारोही और ६००००० पदाति सैन्य रहनेसे गुल्म होता है।

गण—२७ रथी, २७० हाथी, २७००० घोड़े और २७००००० पदाति इनकी समष्टिका नाम गण है।

वाहिनी—८१ रथ, ८१० हाथी, ८१००० घोड़े और ८१००००० पदाति, ये सब जब एक साथ रहते है, तब उसे वाहिनी कहते हैं।

पृतना—२४३ रथ, २४३० हाथी, २४३००० घोड़े और २४३००००० पदातिका नाम पृतना है।

चमू—७२६ रथ, ७२६० हाथी, ७२६००० घोड़े और ७२६००००० सैन्य रहनेसे उसे चमू कहते हैं।

अनीकिनी—२१८७ रथ, २१८७० हाथी, २१८७००० घोड़े और इक्कीस करोड़ सतासी लाख पदाति रहनेसे उसे अनीकिनी कहते हैं।

अक्षौहिणी—उक्त अनीकिनीसे दश गुणा अधिक सैन्य रहनेसे उसे अक्षौहिणी कहते हैं।

शार्ङ्गधरकृत धनुर्वेदसंग्रहमें अक्षौहिणीका परिमाण इस प्रकार बताया है—इस अक्षौहिणी सेनामें २१८००० रथ, ७० सामन्तराज, ७० हाथी, १०६३५० पदाति और ६५६१० घोड़े रहेंगे।

राजा इन सब सेनाओंके मध्य भिन्न भिन्न प्रकारको पताकादि स्थापन करे। क्योंकि इससे वे अपना वा शत्रुका पक्ष स्थिर कर सकेंगे। यह जो सैन्यका उल्लेख किया गया, राजा उनके ऊपर एक सेनापति नियुक्त करें। यह सेनापति सत्कुलोद्भव, जितेन्द्रिय, नाना विद्या और युद्धकार्यमें पारदर्शी तथा सुनिपुण, सुन्दराकृति, इङ्गितयोद्धा, सैन्यनीतिमें अभिज्ञ, दुर्द्धर्ष, युद्धक्षेत्रमें सेनाओंको सान्त्वना करनेमें समर्थ, इत्यादि गुणोंसे युक्त होवे।

जो सभी सेनाके ऊपर आधिपत्य करता उसे सेना-पति कहते हैं। सेनापतिके अलावा अक्षौहिणीपति, पत्तिपति, सेनामुखनेता, गुल्मनायक, गणनायक, अनी-किनीपति, चमूपति आदि भी रहेंगे। ये सब अधिपति अपने अपने अधीनस्थ सेनाको परिचालना करेंगे. किन्तु इन सबोंको प्रधान सेनापतिके अधीन रहना होगा। राजा सेनापतिके जैसे उपयुक्त व्यक्तिको पत्ति, गुल्म आदिका अधिपति बनायेंगे। जो सेनाओंको अच्छी तरह शिक्षा दे सकते हैं, वैसे ही व्यक्ति सातों प्रकारके सेनापतिके लायक हैं। कार्यविशेषमें दो दो वा तीन तीन सेनाके ऊपर एक वा एकसे भी अधिक अधिपति नियुक्त करना कर्त्तव्य है।

जो जिस सेना पर आधिपत्य करेंगे, उसी सेनाके ऊपर उनकी स्वाधीनता रहेगी। किन्तु कोई बड़े होने-से अर्थात् उससे यदि कोई प्रधान सेनापति रहे, उसे भी उस प्रधान सेनापतिके अधीन रहना होगा।

पत्ति आदि आठ अङ्गपात अपने अपने ज्येष्ठके अनुगत रहेंगे। ज्येष्ठानुसारी रह कर वे अपनी अपनी सेनाओंकी देखभाल करेंगे। जो सर्वसेनापति हैं वे सबोंको अनुगामी करके अच्छे नियमोंसे अनुशासन और परिचालनादि करेंगे। पत्ति आदि प्रत्येक सैन्य-विभागमें फिर तीन तीन अधिपति नियुक्त करेंगे। यह अधिपति उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन भागोंमें विभक्त है। ये सभी अपने अपने प्रधानके अधीन रहेंगे।

सेनापतिगण अपनी अपनी सेनाके मध्य विभाग-क्रमसे प्रति दिन एक एक करके सङ्केतका प्रचार करेंगे। सेनापति अपनी अपनी सेनाको एक जगह न रखें, प्रति दिन उन्हें परिवर्त्तन कर कार्यमें नियुक्त करें। क्योंकि सेनाओंके एक जगह और अपरिवर्त्तित रहनेसे शङ्काका कारण हो जाता है।

सेनापति युद्धके समय सेनाओंको व्यूहाकारमें रच कर युद्ध करें। व्यूहका विषय इस प्रकार कहा गया है। नीतिमयूखकारने छः प्रकारके व्यूहोंका उल्लेख किया है, यद्यपि गरुड़पुराण आदिमें अनेक प्रकारके व्यूहका उल्लेख है, तौ भी उनके मतसे इन्हीं छः प्रकारमें सभी व्यूह आये हैं।

"यद्यप्यन्ये च गरुड़ादयो व्यूहभेदेनोक्तास्तथाप्येतेषामन्तर्भावात् षोढ़ैव व्यूहभेदा ज्ञेयाः। व्यूहस्तु मकरश्येनसूचीशकटवज्रसर्वतोभद्रभेदात् षोढ़ा॥" (नीतिम०)

छः प्रकारके व्यूह ये हैं, १ मकर, २ श्येन, ३ सूची, ४ शकट, ५ वज्र और ६ सर्वतोभद्र। कहां पर कैसा व्यूह बनाना चाहिये, उसका विषय महाभारतमें इस प्रकार लिखा है। जहां पर सामनेमें भय रहे, वहां मकरव्यूह, अथवा श्येन वा सूचीव्यूह करना होता है। पश्चाद्भागमें भय रहनेसे शकटव्यूह, दोनों पार्श्वमें भय रहनेसे वज्रव्यूह तथा जहां सभी ओर भयकी सम्भावना हो, वहां सर्वतोभद्रव्यूह बनाना होगा। अग्निपुराणमें दश प्रकारके व्यूहको प्रधान बताया है। इसके अलावा युद्धकालमें प्राणीके अङ्गका सादृश्य ले कर तथा भिन्न भिन्न द्रव्यका गठन प्रकार देख कर तरह तरह व्यूह रचे जाते हैं।

'गरुड़ो मकरव्यूहश्चक्रः श्येनस्तथैव च।
अर्द्धचन्द्रश्च वज्रश्च शकटव्यूह एव च॥
मण्डलः सर्वतोभद्रः सूचीव्यूहस्तथैव च।
व्यूहाः प्राण्यङ्गरूपाश्च द्रव्यरूपाश्चनैकधा॥"
(अग्निपु० रणदीक्षाप्रकरणाध्या०)

दश प्रकारके व्यूह ये हैं:— गरुड़, मकर, चक्र, श्येन, अर्द्धचन्द्र, वज्र, शकट, मण्डल, सर्वतोभद्र और सूची। सेनापति युद्धस्थानका अवलम्बन कर शत्रुके बिना जाने अपनी सैन्यकी रचना करे। नीतिसार और नीतिमयूख ग्रन्थमें लिखा है, कि सेनापति व्यूहकी रचना करके सबसे आगे आप खड़े रहें। अन्यान्य वीरपुरुष उसे वेष्टन कर युद्ध करें। किन्तु इन सब सेनाको पहले सेनापतिकी रक्षा करनी होगी। स्त्री, अर्थ, राजा, खाद्य द्रव्य और उसके रक्षक, इन सबको व्यूहके मध्यस्थलमें रखना होगा।

गजारोही, अश्वारोही, रथारोही और पदाति यही चार प्रकारकी सेना व्यूहमें रहेगी। उन्हें निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार सजाना होगा। जितने प्रकारके व्यूह हैं, सभीमें एक साधारण नियमानुसार हाथी घोड़े रखने होंगे।

पहले व्यूहकी रचना कर उसके दोनों पार्श्वमें अश्वारोही, अश्वारोहीके पार्श्वमें रथारोही रथके पार्श्वमें हस्त्यारोही और हस्तिके पार्श्वमें पदाति सैन्य रहेगी।

नीतिमयूखकारके मतसे प्रत्येक व्यूहमें दो दो करके सेनापतिका रहना उचित है। क्योंकि एक सम्मुख भागकी और दूसरा पश्चाद्भागकी रक्षा करेगा। युद्धकुशल सेनापति चतुरङ्गबलको अग्रगामी करके आप युद्धोपकरणयुक्त सेनाओंके पश्चाद्भागमें खड़े रहें और दुःखित, पलायमान तथा भङ्गोद्यत सेनाओंको आश्वास प्रदान करें।

अग्निपुराणके रणदीक्षा अध्यायमें लिखा है, कि राजा एक ही वारमें सभी सेनाओंको व्यूहमें न रखें। सभी सेनाओंको पांच भागोंमें विभाग करना होगा। इनमेंसे दो भाग पक्षमें और दो अनुपक्षमें तथा एक भाग छिप कर रहेगा। विवेचनानुसार एक या दो भाग द्वारा युद्ध करें। बाकी तीन भागोंको इनकी रक्षामें नियुक्त

रखें। राजा युद्धक्षेत्रमें उसी हालतमें रह सकते हैं, जब वे सेनापति हों। यदि सेनापति न हों, तो उन्हें एक कोस दूर रहना तथा सुदृढ़ रक्षिवर्गसे परिवृत्त हो सेनाओंको उत्साह देना चाहिये। युद्धकालमें यदि प्रधान सेनापति भाग जायँ, तो किसीको युद्धक्षेत्रमें ठहरना उचित नहीं। सभीको आत्मरक्षार्थ भाग जाना चाहिये।

व्यूहके मध्य सैन्यसंचालनका नियम इस प्रकार लिखा है;—सेनापति योद्धाओंको एक साथ न करें और न उन्हें अकेला ही रखें। सेनाओंको इस प्रकार सजावे जिससे अस्त्र चलानेमें कोई रुकावट न हो, और अस्त्र अस्त्रसे टकर न खाये। जब शत्रुसैन्य वा व्यूह भेद करनेकी इच्छा होगी, तब इकट्ठे और स्रोतकी तरह हो कर भेद करना होगा। तथा शत्रुसैन्य जब आक्रमण करनेकी चेष्टा करेगी, उस समय एकत्र हो कर रक्षा करनी होगी।

ऐसे नियमसे व्यूह बनाना चाहिये, कि इच्छा करते ही उस व्यूहको उसी समय तोड़ फोड़ कर फिर छोटे छोटे अनेक व्यूह बनाये जा सकें। हस्तिसैन्यके चार पादरक्षक रथके लिये चार अश्वसैन्य तथा चार चर्मधारी और इनकी रक्षाके लिये चार धनुर्धारी नियुक्त करना आवश्यक है।

रणमुखमें चर्मी अर्थात् ढालधारी सेना रखनी होगी। इनके पश्चाद्भागमें धनुर्धारी, धनुर्धारीके पृष्ठदेशमें अश्वारोही, अश्वारोहीके पृष्ठमें रथारोही और रथारोहीके पश्चाद्भागमें हस्तिसैन्य रहेगी।

इन सब सेनाओंको बड़ी होशियारीसे अपने अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिये। जो शूर, उत्साही और निर्भीक हैं उन्हींको सम्मुखभागमें रखना उचित है। अनेक भीरुके एकत्र होनेसे व्यूह टूट जाता है, इसलिये उन्हें कभी भी सामने न रखे। युद्धस्थलमें यदि कोई व्यक्ति हत वा आहत हो जाय, तो उसे फौरन वहांसे हटा देना होगा। चर्मधारी योद्धाका काम है शत्रुसैन्यको भेद करना; अपनी सेनाको बचाना तथा एक साथ मिली हुई सेनाको अलग अलग करना। धनुर्धारी योद्धा शत्रुओंको विमुख तथा जिससे वे आगे न बढ़ सकें, वैसा ही उपाय करें। रथी शत्रुओंको हमेशा भय दिखाते रहें। गजके द्वारा संहतका भेद, तथा प्राचीर, तोरण और अट्टालिकादि भेद करेंगे। असमतल भूमिमें पदाति सैन्य द्वारा, समतल भूमिमें रथिसैन्य द्वारा और जलकीचड़से युक्त स्थानमें गजसैन्य द्वारा युद्ध करना कर्त्तव्य है।

पूर्वोक्तरूपसे व्यूहरचना करके सूर्यदेवको पश्चाद्भागमें रख कर युद्धारम्भ करना होता है। इस समय ग्रहगण तथा वायुके अनुकूल होनेसे युद्धमें प्रायः जय हुआ करती है। युद्धके समय प्रधान प्रधान सैनिकोंके नाम और गोत्रका उल्लेख कर उन्हें उत्साहित और उत्तेजित करना आवश्यक है। (अग्निपु० रणदीक्षाप्र०)

युद्धक्षेत्रमें व्यूहस्थ सेना और सेनापतियोंको किस प्रकार सञ्चरण वा किस प्रकार युद्ध करना चाहिये, शुक्रनीतिमें उसका विषय यों लिखा है—सेनाओंके समवेत होनेसे व्यूहरचनाके लिये वाद्य वा सङ्केतध्वनि करनी होती है। वह ध्वनि सुन कर सेनाको पूर्व शिक्षानुसार व्यूहाकारमें हो जाना चाहिये। यह वाद्य वा सङ्केत ध्वनि सुन कर कोई यह पता न लगा सके, कि किसी प्रकारका व्यूह रचा गया है। यह रहस्य केवल अपनी ही सेनाको मालूम रहेगा।

राजा वा सेनापति अनेक प्रकारकी व्यूहरचना करेंगे। जहां जैसी जरूरत देखें, वहां हाथी, घोड़े और पदाति सेनाओंका वैसा ही व्यूह बनावे। राजा वा राजप्रतिनिधिको उचित है, कि वह व्यूहसङ्केत जोरसे सुनावें। व्यूहके वाम वा दक्षिणभागमें तथा कभी कभी मध्यस्थलमें रह कर ऐसे जोरसे साङ्केतिक शब्द करें जिससे व्यूहस्थ सभी सैनिक सुन जांय।

सैनिक यह सङ्केतध्वनि सुन कर शिक्षाके समय उन्होंने जैसा उपदेश पाया था, तदनुसार कार्य करें। सम्मीलन, प्रसरण, प्रभ्रमण, आकुञ्चन, यान, प्रयाण, अपयान, पर्यायक्रमसे साम्मुख्य, समुत्थान, लुण्ठन, अष्टदलाकारमें अवस्थान वा चक्राकारमें वेष्टन, सूचीतुल्य, शकटाकार, अर्द्धचन्द्राकार, पृथक्भवन, थोड़े थोड़े पर्यायक्रमसे पंक्तिप्रवेश भिन्न प्रकारमें अस्त्रशस्त्रादिका धारण, संधान, लक्ष्यभेद, अस्त्रक्षेप, शस्त्रनिपात, शीघ्रसन्धान, शीघ्र अस्त्रादि ग्रहण, शीघ्र आत्मरक्षा, अथवा

अपनेको छिपा रखना, पराई सेना वा प्रहरोंका प्रतिघात करना, दो दो तीन तीन वा चार चार एक साथ हो कर पंक्तिक्रममें जाना, पीछे हटना, सामने या पीछेकी ओर भागना अथवा शत्रुको ओर दौड़ना, इत्यादि अनेक प्रकारके कार्य पूर्वशिक्षाके अनुसार हो करेंगे, कभी भी इसका अन्यथाचरण न करें।

व्यूहस्थित सैनिक अभ्यर्थताके लिये पहले कुछ आगे दौड़ कर बादमें कुछ पीछे हटे और अस्त्रत्याग करे। अस्त्र फेंक कर सैनिक वहां खड़ा न रहे, वरन् पीछे हट जाय। शत्रुको जब बैठा देखें, उसी समय उसके नजदीक जा कर अस्त्र छोड़े।

शुक्रनीतिमें व्यूहरचनाका विषय इस प्रकार लिखा है—राजा वा सेनापति जैसा सङ्केत करेंगे, सैनिक तदनुसार चाहे एक एक, दो दो या चार चार करके शिक्षानुरूप आगे बढ़े। बालू जिस प्रकार आकाशमें पंक्तिक्रमसे भ्रमण करता यानि उड़ता है, युद्धस्थान और सैन्यबलकी विवेचना कर उसी प्रकार क्रौञ्चव्यूह करना होगा। बगुला जिस प्रकार दल बांध कर उड़ता है, उसी प्रकार यह कई दलोंमें सजाया जाता है, इसीसे इस व्यूहको क्रौञ्चव्यूह कहते हैं।

श्येनव्यूह—पंक्तिक्रमसे इसको ग्रीवादेश सूक्ष्म, पुच्छदेश मध्यम, दोनों पक्ष स्थूल करना आवश्यक है। श्येनव्यूहका पक्ष विस्तृत गला और पुच्छ मध्यम तथा मुख श्येनपक्षीकी तरह होता है।

मकरव्यूह—चतुष्पदाकार, वक्षदेश स्थूल और दीर्घ तथा ओंठ द्विगुण होते हैं। सूचीव्यूहका मुख सूक्ष्म, दीर्घ और समदण्डाकार तथा रन्ध्रयुक्त होता है।

चक्रव्यूहका मार्ग अर्थात् प्रवेशयोग्य पथ एक है। वह ८ कुन्तलाकृति पंक्ति द्वारा घिरा रहता है।

सर्वतोभद्रके चारों ओर ८ परिधि रहती है। इसमें प्रवेशद्वार नहीं रहता। यह वलयाकृति ८ पंक्ति द्वारा निर्मित और गोल है। सभी ओर इसका मुंह रहता है। शकटव्यूह शकटाकार और व्यालव्यूह सर्पाकार होता है। इस प्रकार अन्यान्य व्यूह भी अन्यान्य जन्तुओंके आकारविशिष्ट होते है।

शत्रुसैन्य कम है या ज्यादा तथा रणभूमि सम है वा असम; यह स्थिर कर एक वा एकसे अधिक व्यूहरचना करनी होगी। युद्धक्षेत्रकी अवस्था देख सुन कर सेनापति मिश्रव्यूहकी रचना कर सकता है।

राजाओंके अनेक शत्रु होते हैं तथा दूसरे दूसरे राजाओंके साथ उनका हमेशा युद्ध हुआ करता है। इसलिये उन्हें एक एक दुर्गम्य स्थान प्रस्तुत रखना आवश्यक है। यही सब दुर्गम्य दुर्भेद्य स्थान दुर्ग कहलाते हैं। यह राजाओंकी एक प्रधान सम्पद् है। राजा दुर्गमें रह कर बड़ी सेनाके साथ युद्ध कर सकते हैं। दुर्गका विवरण दुर्ग शब्दमें देखो।

युद्धकालमें राजा वा सेनापति बार बार उत्साहवर्द्धक वाक्य द्वारा योद्धाओंको उत्तेजित करते रहें। वीरगण उस वाक्यसे उत्तेजित हो हथेली पर प्राण रख कर युद्ध करें।

रणमें जयलाभ होनेसे राजा योद्धाओंको पारितोषिक दें, इसका विषय यों लिखा है,—रणक्षेत्रमें योद्धा यदि सेनापतिके आज्ञानुसार कार्य करे, तो राजा उसका आदर सबके सामने उसकी प्रशंसा तथा पारितोषिक प्रदान करें। जो शूर शत्रुराजाका वध करता है, राजा प्रसन्न हो कर नियुत खर्व (सुवर्णमुद्रा) प्रदान करे। युवराज वा प्रधान सेनापतिका वध करनेसे उसका आधा, अक्षौहिणी-पतिका वध करनेसे उसका आधा, मन्त्री वा प्रधान अमात्यका वध करनेसे उसका भी आधा पुरस्कार देना उचित है। अनीकिनी, चमू, पृतना, वाहिनी, गण, गुल्म, सेनामुख और पत्ति इन सब अधिपतियोंका वध कर सकनेसे अर्द्धक्रमसे पारितोषिक देना चाहिये।

जितनी बार रणयात्रा होगी, प्रत्येक यात्रामें राजा सेना और नौकरको भोजन और वस्त्र अपने कोषसे देवें। किन्तु जब रणादि नहीं होंगे, तब उन्हें केवल वेतन मिलेगा।

दूसरेके राज्यको जीत कर जो सब माल हाथ लगेगा राजा उसका आधा स्वयं ले और आधा सैनिकोंको बांट दें।

किसी सैनिकके रणक्षेत्रमें प्राण त्याग करनेसे राजा उसके परिवारको मासिकवृत्ति दें। किसीके घायल

होनेसे उसकी अच्छी तरह चिकित्सा करावें। यदि कोई सैनिक रणमें आहत हो कर अकर्मण्य हो जाय तो भी उसकी जीविकाके लिये कुछ देना उचित है।

"युद्धे स्वार्थे मृता ये च शत्रुभिस्तत्सुवन्धुषु।
सेवया जीविता ये च देयं तेषां हि जीवनम्॥"
(नीतिप्रका०)

युद्धक्षेत्रमें साधारणतः धनुष, इषु, भिन्दिपाल, शक्ति द्रुघण, तोमर, नलिका, लगुड़, पाश, चक्र, दन्तकण्टक, भुसुण्डी, परशु, गोशीर्ष, असि, कुन्त, लचिल, स्तूण, प्रास, पिणाक, गदा मुद्गर, सीर, मूषल, पट्टिश, परिघ, मयूखी, शतघ्नी, दण्ड, दण्डचक्र, ऐन्द्रचक्र, शूल, ब्रह्मशिर, मोदकी, वरुणपाश, वायुअस्त्र, क्रौञ्चास्त्र, हयशिर, विद्या, अविद्या, गन्धर्व, नन्दन, वर्षण, शोषण, प्रस्वापन, प्रशमन, सन्तापन, विलापन, नागास्त्र, गारुड़ास्त्र, नाराच और जृम्भण आदि सैकड़ों अस्त्र व्यवहृत होते थे।

महाभारतादिमें देखा जाता है, कि युद्धारम्भके पहले परस्पर धर्मनियमका प्रचार किया जाता था। दोनों पक्ष प्रतिज्ञासूत्रमें इस प्रकार आवद्ध होते थे, हम लोग अधर्म वा अन्यायपूर्वक युद्ध न करेंगे, आरम्भ किया हुआ युद्ध जब शेष हो जाय, तब फिरसे आपसमें प्रीति संस्थापित होगी। दिनमें युद्ध करके रात्रिमें सब कोई फिर आपसमें मिलेंगे और शत्रुताभाव दूर करेंगे। तुल्ययोग अतिक्रम, अन्यायाचरण और कोई किसीको प्रतारणा न करेगा। वाक्युद्धके समय वाक्युद्ध और अस्त्रयुद्धके समय अस्त्रयुद्ध ही होगा। पलायित वा व्यूहच्युत व्यक्ति पर कोई प्रहार नहीं कर सकता। रथी रथीके साथ, गजारोही गजारोहीके साथ, अश्वारोही अश्वारोहीके साथ, पदाति पदातिके साथ योग्यता, उत्साह, बल और अभिलाषानुसार युद्ध करेगा, इसमें कोई प्रतिकूल वा प्रतिबंधक नहीं हो सकता। पहले सतर्क करके पीछे प्रहार करे। विश्वस्त और जयविह्वल व्यक्तिको प्रहार न करे, निरस्त्र और धर्मरहित व्यक्ति पर भी प्रहार करना अनुचित है। सारथि, भारवाही, शास्त्रनेता, दास और वाद्यकर आदिका वध करना निषिद्ध है।

पहले जिन सब अस्त्रोंके नाम लिखे जा चुके हैं, उनके अलावा देवास्त्र अर्थात् मन्त्रात्मक अनेक प्रकारके अस्त्रोंका भी उल्लेख देखनेमें आता है। वैशम्पायनप्रोक्त धनुर्वेदमें लिखा है, कि कलिकालमें वे सब अस्त्र विकृत हो गये हैं। उसका कारण यह है, कि कालके परिवर्त्तनसे मनुष्यके देह, शक्ति और बुद्धिका परिवर्त्तन हुआ करता है। देह, शक्ति और बुद्धिके विकारवशतः लोहेकी गोली, सीसेकी गोली, लोहेके बने मन्त्र तथा अन्यान्य प्राणिसंहारक यन्त्रों द्वारा कलिकालके मनुष्य कूटयुद्ध करते हैं। ये सब कूटयुद्ध धर्मविरुद्ध हैं तथा इसमें कुछ भी पौरुषता नहीं है।

"एतानि विकृतिं यान्ति युगपर्यायतो नृप।
देहदार्ढ्यानुसारेण तथा बुद्धयनुसारतः॥
मन्त्राणि लौहसीसानां गुलिकाक्षेपनानि च।
तथा चोपलयन्त्रानि कृत्रिमाण्यपराण्यपि।
कूटयुद्धसहायानि भविष्यन्ति कलौ युगे॥"
(वैशम्पायनप्रोक्त धनुर्वेद)

इतिहासकी आलोचना करनेसे प्राचीन रणप्रथाके अनेक तत्त्व मालूम होते हैं। पुराकालका शुम्भनिशुम्भ और रामरावणका रण, कुरु-पाण्डवका भारतयुद्ध, पुराण, रामायण और महाभारतादिमें वर्णित है। भारतका वह विख्यात और सर्वजन-परिचित महायुद्ध जिस समय छिड़ा था, उस समय प्राचीन समृद्ध आसीरीया, वाबिलोनिया आदि राज्योंमें ईसाजन्मसे प्रायः ३ हजार वर्ष पहले रथ पर चढ़ कर युद्ध करनेकी प्रथा जारी थी। अभी निनिभे, खोर्शाबाद, निमरुद आदि स्थानोंकी प्राचीन ध्वस्त कीर्त्तियोंके मध्य प्रस्तरफलक पर अङ्कित जो सब रणचित्र प्रतिफलित हैं, उन्हें देखनेसे मालूम होता है, कि आसीरीय और वाबिलोनीय प्राचीन मनुष्य धनुर्वाण हाथमें लिये रथ पर चढ़ कर युद्ध करते थे। अपेक्षाकृत आधुनिक कालमें यूरोपमें भी तीरधनुष ले कर युद्ध करनेके अनेकों प्रमाण पाये जाते है। प्राचीन भारतमें भी कमान बन्दूक आदि आग्नेय अस्त्र ले कर युद्ध करनेकी रीति थी। यूरोपमें भी पहले काराविन (Carabine) नामक बन्दूकका व्यवहार था। उसके बाद बन्दूक और कमानकी विशेष उन्नति हो गई है।

ईसाजन्मके पहलेसे रोमक, वर्बर, हूंण और कार्थेजियोंके युद्धमें अक्षय ख्यातिका इतिहास लिपिबद्ध है। कार्थेजोय हानिबल एक अद्वितीय वीर थे। ग्रीककवि होमरके ग्रन्थमें युलिसिस आदि महावीरोंका उल्लेख देखनेमें आता है। जरक्षेश और दरायुस आदि पारस्यराज माकिदनपति अलेकसन्दरकी युद्धकहानी जगत्‌में अतुलनीय है। मुगलपति चेङ्गिज खांके देशविध्वंसी पराक्रमकी बात किसीसे छिपी नहीं है।

१८वीं सदीमें जब भारतवर्षमें अंगरेज, फरासी, मुसलमान आदि छोटी छोटी लड़ाइयोंमें लिप्त रह कर अपनी अपनी गोटी जमानेमें तुले हुए थे, उसी समय यूरोपके विख्यात वीर नेपोलियन (वोनापार्ट)-का प्रादुर्भाव हुआ। नेपोलियन युद्धविद्याके अनेक संस्कार कर गये हैं। उन सब युद्धोंमें कमान, बन्दूक, तलवार और बर्छे आदिका व्यवहार होता था। १९वीं सदीके ट्रांसभाल युद्धमें 'लड्टम' नामक विख्यात कमान तैयार हुई। इसके पहले जर्मनीके प्रसिद्ध धातुविद् सामुएल मैक्सिम 'Maximgun' नामक मशहूर कमानकी सृष्टि की थी। इस कमानकी सहायतासे घंटेमें २ या ३ सौ गोले दागे जाते थे। अंगरेजराजने टीरा तथा तिब्बतकी चढ़ाईमें इस 'मैक्सिम गन'को धीरे धीरे काममें लाया था।

१९०४ ई०के रूस जापान युद्धमें वैज्ञानिक अस्त्र शस्त्रादिका व्यवहार होता था, ऐसा भयावह युद्ध संसारमें और कहीं नहीं हुआ है। नेपोलियनका अष्ट्रालिटज समर और अंगरेज नौसेनापति नेलसनका ट्राफलगार रण वर्त्तमान इतिहासमें उल्लेखनीय घटना है। भारतमें गजनीपति महमूद, महम्मद-घोरी, बाबरशाह, नादिरशाह आदिके आक्रमणकालमें कितनी बार लड़ाइयाँ हुई थीं पर उनमें दोनों पक्षका बलाबल समान न था। उस समय भारतीय राजाओंमें भी राज्यको ले कर बेशुमार रणक्रीड़ा हो गई हैं। उन सब रणोंमेंसे अंगरेज़ी जमानेमें भारतीयके स्वाधीनताप्रयास उपलक्षमें महाराष्ट्रसमर और सिपाहीविद्रोह भी सामान्य रणकौशलका परिचायक नहीं था। वैज्ञानिक युद्ध देखो।

३ ग्रहोंके परस्पर मिलनको युद्ध कहते हैं। इसमें विशेषता यह है, कि इन मङ्गलादि पञ्चग्रहोंको परस्पर मिलन युद्ध नामसे, चन्द्रमाके साथ मिलन समागम नामसे और सूर्यके साथ मिलन अस्त नामसे प्रसिद्ध है। बृहत्संहितामें इस ग्रहयुद्धका विषय इस प्रकार लिखा है।

"वियति चरतां ग्रहाणामुपर्य्युपर्य्यात्ममार्गसंस्थानां।
अतिदूराद्दृग्विषये समतामिव सम्प्रयातानाम्॥
आसन्न क्रमयोगाद्भेदोल्लेखांशुमर्द्दनासव्यैः।
युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तं॥"

(बृहत्सं० १७।२-३)

उपर्युपरि भावमें आत्ममार्गसंस्थित ग्रहोंके बहुत दूरसे दर्शनविषयमें जो समता है, उसे ग्रहयुद्ध कहते हैं। पराशरादि मुनियोंने इस ग्रहयुद्धको भेद, उल्लेख, अंशुमर्द्दन और अपसव्य इन चार भागोंमें विभक्त किया है।

ग्रहोंके भेदमें युद्ध होनेसे अनावृष्टि, सुहृद् और कुलीनोंका मतभेद होता है। उल्लेखमें शास्त्रभय, मंत्रिविरोध और दुर्भिक्ष, अंशुमर्दनमें राजाओंके युद्ध और रोग तथा अपसव्यमें राजाओंके समर उपस्थित होता है;

सूर्य मध्याह्नमें आक्रन्द, पूर्वाह्नमें पौर और अपराह्नमें यामी है। (आक्रन्द, पौर और यामी यह ग्रहोंकी एक प्रकारकी गति है।) बुध, गुरु और शनि ये सर्वदा पौर हैं, चन्द्रमा नित्य आक्रन्द है, केतु, कुज, राहु और शुक्र ये यायी हैं अर्थात् ग्रहगण इसी प्रकार गतिविशिष्ट हैं।

जो ग्रह दक्षिणदिक्स्थ रूक्ष, कम्पित और अप्राप्त हो सम्यक्‌रूपसे निवृत अर्थात् वक्री छोटे छोटे अन्य ग्रहोंसे आच्छादित, निष्प्रभ और विवर्ण दिखाई देते हैं वे पराजित होते हैं। इसका विपरीत लक्षण दिखाई देनेसे ग्रह जयी कहलाता है। किन्तु विपुलमण्डल स्निग्ध और द्युतिमान् हो कर दक्षिणदिग्वर्त्ती होनेसे भी उसे जयी कहते हैं। ये सब लक्षण केवल शुक्रके पक्षमें जानने होंगे। क्योंकि शुक्रको छोड़ कर और कोई भी ग्रह जयी हो कर दक्षिणदिक्‌वर्त्ती नहीं होता। फिर यह भी जानना उचित

है, कि शुक्र चाहे दक्षिणमें रहे चाहे उत्तरमें प्रायः युद्धमें जयी होता है।

"उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशो जयी।"

(सूर्यसि०)

ग्रहयुद्धकालमें दो ग्रह यदि रश्मियुक्त, विपुलमण्डल और स्निग्ध हों, तो उसे अन्योन्यप्रीति कहते हैं। ऐसा होनेसे पृथिवी पर राजाओंके युद्धकालमें समता होती है।

ग्रहोंके इस प्रकार नक्षत्रादिके साथ भी समर हुआ करता है। ग्रह और नक्षत्रगण जिन सब देशों और द्रव्यादिके अधिपति शास्त्रोंमें कहे गये हैं, जो जो ग्रह वा नक्षत्र जब पराजित होते हैं, तब उन सब द्रव्यों वा उन सब देशोंका अनिष्ट हुआ करता है। जो ग्रह जयी होते हैं, उसके अधीन द्रव्य और देशका शुभ होता है।

(वृहत्सं० १७ अ०)

युद्धक (सं० क्ली०) युद्धमेव स्वार्थे-क। युद्ध, संग्राम।

युद्धकारिन् (सं० त्रि०) युद्धं करोति-कृ-णिनि। युद्ध-कर्त्ता, लड़ाई करनेवाला।

युद्धकीर्त्ति (सं० पु०) शंकराचार्यके एक शिष्यका नाम।

युद्धपुरी (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम।

युद्धप्राप्त (सं० पु०) वह पुरुष जो संग्राममें पकड़ा गया हो। यह दासके वारह भेदोंमेंसे एक है और ध्वजाहृत भी कहलाता है।

युद्धभू (सं० स्त्री०) युद्धस्य भूः वा युद्धोपयुक्ता-भूः। युद्धकी भूमि, वह जगह जो लड़ाईके उपयुक्त हो।

युद्धमय (सं० त्रि०) युद्ध-स्वरूपे मयट्। १ युद्धस्वरूप। २ रण-सम्बन्धी। ३ रणप्रिय।

युद्धमुष्टि (सं० पु०) उग्रसेनके एक पुत्रका नाम।

युद्धमेदिनी (सं० स्त्री०) युद्धोपयुक्ता मेदिनी, रणभूमि। (रामायण ६।१६।१६)

युद्धरङ्ग (सं० पु०) युद्धे रङ्गो रागो यस्य। १ कार्त्तिकेय, स्कन्द। २ युद्धस्थल, लड़ाईका मैदान।

युद्धवत् (सं० त्रि०) युद्धं विद्यतेऽस्य युद्ध (वलादिभ्यो-मतुवन्यतरस्यां। पा ५।२।१३६) इति मतुप् मस्य व। रण-विशिष्ट, योद्धा।

युद्धवस्तु (सं० क्ली०) युद्धार्थं वस्तु। युद्धोपकरण, युद्धकी वस्तु।

युद्धविद्या (सं० त्रि०) युद्धस्य विद्या। लड़ाईकी विद्या।

युद्धवीर (सं० पु०) युद्धे वीरः। रणनिपुण, रण-कुशल।

युद्धशालिन् (सं० त्रि०) युद्ध-शाल-णिनि। १ योधपुरुष, योद्धा। २ साहसी।

युद्धसार (सं० पु०) युद्धस्य सारः। घोटक, घोड़ा।

युद्धस्थल (सं० क्ली०) युद्धस्य स्थलं। युद्धभूमि, लड़ाई-का मैदान।

युद्धाचार्य (सं० पु०) युद्धस्य आचार्य। रणशिक्षादाता, वह जो दूसरोंको युद्ध-विद्याकी शिक्षा देता हो। ब्राह्मण युद्धाचार्य होनेसे निन्दित समझे जाते हैं।

युद्धाजि (सं० पु०) अंगिराके गोत्रमें उत्पन्न एक ऋषिका नाम।

युद्धाध्वन (सं० पु०) युद्धस्य अध्वा। १ लड़ाईमें जाना। २ युद्धपथ, लड़ाईका रास्ता।

युद्धावसान (सं० क्ली०) युद्धस्य अवसानं। युद्धका शेष।

युद्धिन् (सं० त्रि०) युद्धमस्यास्तीति (वलादिभ्यो मतु-वन्यतरस्यां। पा ५।२।१३६) इति पक्षे इनि। युद्ध-विशिष्ट, योद्धा।

युद्धोन्मत्त (सं० त्रि०) युद्धे उन्मत्तः। १ युद्धमें लीन, लड़ाका। २ जो युद्धके लिये उतावला हो रहा हो। (पु०) ३ रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम। इसका दूसरा नाम महोदर था। यह रावणका भाई था और इसे नील नामक वानरने मारा था।

युद्धोपकरण (सं० क्ली०) युद्धस्य उपकरणं। युद्ध-का उपकरण, अस्त्रशस्त्रादि जिससे युद्ध किया जाय।

युद्धभू (सं० स्त्री०) रणभूमि, लड़ाईका मैदान।

युध (सं० स्त्री०) योधनमिति युध्-क्विप्। युद्ध, संग्राम।

युधांश्रौष्टि (सं० पु०) एक ऋषि। (ऐतरेयब्रा० ८।२१)

युधाजि (सं० पु०) अंगिराका वंशधर।

युधाजित् (सं० पु०) १ केकयराजके पुत्रका नाम। यह भरतका मामा था। २ क्रोष्टु नामक राजाके पुत्रका-

नाम। ३ कृष्णके एक पुत्रका नाम। ४ उज्जयिनीराजभेद।

युधान (सं० पु०) युध्यतेऽसौ युध (युभि बुभि दृशः किच। उण् २।६०) इति आनच्, स च कित्। १ क्षत्रिय। २ रिपु, शत्रु।

युधामन्यु (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राजाका नाम जो महाभारत युद्धमें पाण्डवोंकी ओरसे लड़ा था। इनका ठीक नाम क्या था इसका पता नहीं है। ये युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंके प्रति क्रोधातुर हो कर युद्ध करते थे, इस कारण युधामन्यु नामसे इनकी प्रसिद्धि हो गई थी। इनके दूसरे भाईका नाम उत्तमौजा था। ये दोनों भाई बड़े वीर और साहसी थे।

युधासुर (सं० पु०) नन्द राजाका एक नाम।

युधिक (सं० त्रि०) युध-ष्णिक्। योद्धा, लड़ाई करनेवाला।

युधिङ्गम (सं० पु०) युद्धमें जाना।

युधिष्ठिर (सं० पु०) युधि संग्रामे स्थिरः (गवियुधिभ्यां स्थिरः। पा ८।३।९५) इति षत्वं। (हलदन्तात् सप्तम्यां संज्ञायां। पा ६।३।९) इति अलुक् चन्द्रवंशी सुप्रसिद्ध राजा पाण्डुके ज्येष्ठ पुत्र। पर्याय—अजातशत्रु, शल्यादि, धर्मपुत्र, अजमीढ़। (हेम)

पाण्डवोंमें ये सबसे बड़े थे। महाभारतमें लिखा है कि दुर्वासाप्रदत्त मन्त्रका यथाविधान जप करके कुन्तीने धर्मराजके औरससे युधिष्ठिरको उत्पन्न किया था। कार्त्तिक मासकी पूर्णातिथि अर्थात् शुक्लापञ्चमी चन्द्रयुक्त ज्येष्ठा नक्षत्रमें, अभिजित् नामक अष्टम मुहूर्त्तमें दो पहरके समय इनका जन्म हुआ था। महाराज पाण्डुकी ज्येष्ठ महारानी कुन्तीके गर्भसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा दूसरी स्त्री माद्रीके गर्भसे सहदेव और नकुल उत्पन्न हुए। अनन्तर मैथुनधर्मके अनुगामी हो राजा पाण्डु हतचेतन हो गये। पाण्डु देखो।

युधिष्ठिरके जन्मके समय देववाणी हुई थी, कि यह पाण्डुका प्रथम पुत्र धार्मिकोंमें सर्वश्रेष्ठ, विक्रमी, सत्यवादी, पृथ्वीका चक्रवर्त्ती, त्रिलोकविश्रुत, यशस्वी, तेजस्वी और व्रतपरायण तथा युधिष्ठिर नामका होगा।" अनन्तर मुनिके शापसे राजा पाण्डुकी मृत्यु हुई। पिताकी मृत्यु होने पर पांचो पाण्डुपुत्र हस्तिनापुर आये और भीष्म पितामहकी देख रेखमें रह कर धृतराष्ट्र-पुत्रोंके साथ लालित पालित और शिक्षित होने लगे। वे पाचों भाई बचपनसे ही कृत्रिम युद्धादि क्रिया करते थे। पितामह भीष्मदेवने पौत्रोंको विशिष्टरूप विद्या और विनयशिक्षाके लिये बाणप्रयोगनिपुण, अस्त्रविद्याविशारद, वीर्यशाली द्रोणाचार्यको नियुक्त किया। महाभाग द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको धनुर्वेद सिखाया। थोड़े ही दिनोंमें पाण्डव और कौरवगण अस्त्रविद्याविशारद हो गये। युधिष्ठिर महासारथी हुए। बर्छा चलानेमें वे बड़े सिद्धहस्त थे। परन्तु शासन आदि कार्योंमें उनकी जैसी अभिज्ञता थी, वैसी युद्धविद्यामें नहीं। महाभारतके आदिपर्व १३४वें अध्यायमें श्येननिग्रह प्रसङ्गमें अर्जुनको छोड़ कर पाण्डव कौरवोंकी तीक्ष्ण दृष्टि, लक्ष्य ज्ञान और युद्धशास्त्रमें अभिज्ञताका यथेष्ट परिचय दिया गया है। द्रोणाचार्य देखो।

शिक्षा समाप्त होने पर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको युवराज बनाया। पिताके इस व्यवहारसे असन्तुष्ट हो कर दुर्योधन पाण्डवोंका सौभाग्य नष्ट करनेको चेष्टा करने लगा। दुःशासन कर्ण और शकुनिके साथ सलाह कर उसने कुन्तीके साथ पाण्डवोंको वारणावत नगरमें भस्म करा देनेका प्रयत्न किया था। वहां पहले हीसे एक लाहका घर बनाया गया था। परन्तु इसका समाचार पा कर पाण्डव सजग हो गये और विदुरकी सलाहसे नाव पर चढ़ वहांसे भागे। एक निषादी जो अपने पांच पुत्रोंके साथ उस रातको वहीं ठहरी थी, जल कर खाक हो गई।

इसके बाद पाण्डवोंको मरा जान कर दुर्योधनादि फूले न समाये और बड़े चैनसे दिन बिताने लगे। उधर पाण्डव माता कुन्तीके साथ एक सघन बनमें गये। वहां रहते समय भीमने हिड़िम्ब नामक राक्षसको मार कर उसकी बहन हिड़िम्बाको ब्याहा था। हिड़िम्बाके गर्भसे घटोत्कच नामक एक बड़ा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ था।

द्रुपदसुता द्रौपदीके स्वयम्बरमें पांचों भाई दरिद्र ब्राह्मणका वेष बना कर द्रुपदराज्यमें उपस्थित हुए। अर्जुनने लक्ष्यभेद करके द्रौपदीको पाया और माताकी

आज्ञाके अनुसार पांचों भाइयोंने द्रौपदीको व्याह लिया। एक भाई दो दिन द्रौपदीसे घरमें रहते थे। परन्तु अज्ञातवास या वनवासके समय द्रौपदीके घरमे कोई नहीं रहे।

धृतराष्ट्र आदि कौरवोंने सुना कि पाण्डवोंका विवाह द्रौपदीके साथ हुआ है। उस समय विदुरने धृतराष्ट्रसे कहा, 'पाण्डव बड़े प्रतापी हैं, श्रीकृष्ण उनके मन्त्री हैं और उस पर भी इस समय पाञ्चालराज द्रुपदके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है। यदि इस समय उनको राज्य नहीं दिया जायगा, तो निःसन्देह युद्ध होगा और शीघ्र ही कौरववंशका नाश हो जायगा। द्रोण और भीष्मने भी विदुरकी बातोंका समर्थन किया था। यद्यपि कर्ण और दुर्योधनने विदुरकी बातों पर आपत्ति की, तथापि परिणामदर्शी धृतराष्ट्रने उन लोगोंकी बातों पर ध्यान दे कर विदुरकी सलाह मान ली। धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुर रत्न, धन, सम्पत्ति ले कर द्रुपद और पाण्डवोंके निकट गये और कुशल प्रश्न पूछ कर उन्होंने रत्न, धन आदि उपहारमें दिये। विदुरने द्रुपदसे कहा, 'धृतराष्ट्र और कौरव इस विवाह-संवादको सुन कर बड़े प्रसन्न हुए हैं। कौरव पाण्डवोंको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हुए हैं। उनकी इच्छा है, कि पाण्डव हस्तिनापुर आवें। द्रुपदकी आज्ञा तथा श्रीकृष्णके परामर्शसे द्रौपदी और कुन्तीको साथ ले कर पाण्डवगण श्रीकृष्ण और विदुरके साथ हस्तिनापुरमें उपस्थित हुए। वहां पहुंच कर पाण्डवोंने पितामह भीष्म धृतराष्ट्र आदि बड़ोंको नमस्कार किया। धृतराष्ट्रने पाण्डवोंसे कहा, 'तुम लोग आधा राज्य ले कर खाण्डवप्रस्थमें जा करके रहो। ऐसा होनेसे दुर्योधनके साथ पुनः तुम लोगोंका विवाद होनेकी सम्भावना न रहेगी। धृतराष्ट्रकी आज्ञा सिर पर रख कर पाण्डव खाण्डवप्रस्थको चल दिये। वहां जा कर पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थ नामक एक सुन्दर नगर बसाया।

एक दिन नारद मुनि इन्द्रप्रस्थ आये और उन्होंने सुन्द, उपसुन्दकी कथा सुना कर द्रौपदीके लिये भाइयोंमें परस्पर विरोधी न हो इसलिये एक नियम बना लेनेके लिये उपदेश दिया।

नारदके सामने ही पाण्डवोंने प्रतिज्ञा की, कि पांचों भाइयोंमेंसे एक जब द्रौपदीके पास रहेगा, तब दूसरा कोई वहां नहीं जा सकेगा। जो कोई इस नियमका भङ्ग करेगा उसे ब्रह्मचारी रह कर बारह वर्ष तक वनमें रहना पड़ेगा। अकस्मात् एक दिन वहां दुर्घटना हो गई। युधिष्ठिरके घरमें अस्त्रशस्त्र रखे रहते थे। अर्जुन शस्त्र लेनेके लिये युधिष्ठिरके घरमें सहसा चले गये। वहां द्रौपदीके साथ युधिष्ठिर बैठे थे। नियमभङ्ग करनेके कारण अर्जुनको बारह वर्षके लिये वन जाना पड़ा। युधिष्ठिर अर्जुनको वनमें नहीं जाने देना चाहते थे। उन्होंने कहा, पिताके न रहने पर बड़ा भाई छोटे भाईके लिये पिताके तुल्य है। ऐसी स्थितिमें अर्जुनका गृहप्रवेश किसी प्रकार निन्दित नहीं समझा जा सकता। परन्तु अर्जुन विनीत भावसे युधिष्ठिरकी आज्ञा पालनमें अपनी असमर्थता बतला कर पाप दूर करनेके लिये जंगल चल दिये।

युधिष्ठिर राजसिंहासन पर बैठ कर प्रजाका पालन करने लगे। उनकी तरह कोई भी न्यायपरता और सुविचारसे राज्यशासन नहीं कर सकते। धर्मके बलसे प्रजा भी धार्मिक हो गई थी तथा वसुन्धरा धनधान्यसे पूर्ण हुई थी। आसपासके राजाओंने जब देखा, कि इनसे शत्रुता करना अच्छा नहीं, तब उन्होंने इनसे मित्रता स्थापन की। धन ऐश्वर्यसे पाण्डु राजकोष भर गया था।

वनसे अर्जुनके लौट आने पर युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञका आयोजन किया था। इस यज्ञके करनेके पहले दिग्विजय करनेकी आवश्यकता होती थी। दिग्विजयके समय मगधराज जरासंधने पाण्डवोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की। अतएव वह कृष्णकी चतुरतासे भीमके हाथों मारे गये। राजसूय देखो।

राजसूययज्ञमें युधिष्ठिरका ऐश्वर्य और दबदबा देख कर दुर्योधनको बड़ी ईर्षा हुई। वह किस प्रकार पाण्डवोंका नाश करेगा, इसके लिये वह शकुनि और कर्णके साथ विचार करने लगा। अन्तमें जुएमें युधिष्ठिरको हरा कर उनको अपमान करना, यही निश्चित हुआ। धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले कर दुर्योधनने जुआ खेलनेके लिये

युधिष्ठरको बुलाया। विदुरने युधिष्ठिरको जुआ खेलनेसे मना किया था; परन्तु युधिष्ठिरने उनकी बातों पर कान नहीं दिया। युधिष्ठिर और शकुनिका जुआ खेलना निश्चित हुआ। इस प्रकार दुर्योधनकी ओरसे शकुनि जुआ खेलने लगा। युधिष्ठिर बाजी हार कर शकुनिके दास हुए। बाजीमें युधिष्ठिर द्रौपदीको भी हार गये थे, अतः वह भी शकुनिकी दासी हुई। केश पकड़ कर दुःशासन द्रौपदीको राजसभामें खींच लाया। द्रौपदीके अपमानसे धृतराष्ट्रके अन्तःपुरमें खलबली मच गयी। धृतराष्ट्रके कानों तक इसकी खबर पहुंच गई। द्रौपदी सभामें लाई जा कर अपमानितकी गई। दुर्योधनने द्रौपदीको लक्ष्य कर अपने अङ्कका कपड़ा हटाया और सङ्केतसे बैठनेके लिये कहा। भीमसे यह नहीं सहा गया; वे उठना चाहते ही थे, परन्तु युधिष्ठिरके कहनेसे शान्त हो कर बैठ गये।

वृद्ध महाराज धृतराष्ट्रने द्रौपदीको अपने समीप बुला कर बहुत समझाया बुझाया। द्रौपदीके स्वामी तथा वह स्वयं महाराजकी आज्ञासे दासत्वसे मुक्त हुई। महाराज पाण्डवोंके सामने अपने पुत्रोंके दुर्व्यवहारके लिये दुःखित हुए और उन्होंने इन सब बातोंको भूल जानेके लिये पाण्डवोंसे अनुरोध किया। पाण्डव भी द्रौपदीके साथ इन्द्रप्रस्थ चले गये।

इसके बाद दुर्योधन पाण्डवोंकी शक्ति, उनकी भावी उन्नति और उससे कौरवोंकी भावी विपत्तिकी बातें समझा कर धृतराष्ट्रको युधिष्ठिरके विरुद्ध उभाड़ने लगा। अबकी बार युधिष्ठिरके राज्य छीननेकी भी वह चेष्टा करेगा, यह भी उसने धृतराष्ट्रको समझाया। धृतराष्ट्र उसकी बातोंमें आ गया। पुनः जुआ खेलनेके लिये युधिष्ठिर आमन्त्रित किये गये। इस बार युधिष्ठिर राज्य, धन, रत्न आदि सभी हार गये। अन्तकी बाजीमें हार कर पाण्डव स्त्रीके साथ बारह वर्ष वनमें रहनेके लिये और एक वर्ष अज्ञातवासके लिये बाध्य हुए।

पांचो पाण्डव दरिद्रके वेशमें हस्तिनापुरसे चले। वनवासके समय दुर्योधनके बहनोई जयद्रथने द्रौपदीको हर लिया था, परन्तु भीमने उसे मार्गमें जा कर पकड़ा और युद्धमें परास्त कर अत्यन्त अपमानित किया। अज्ञात वासका समय पाण्डवोंने मत्स्यराजके राजा विराटके यहां गुप्तरूपसे रह कर बिताया था। विराटके यहां युधिष्ठिर अक्षक्रीड़ानिपुण ब्राह्मणके वेशमें, भीम रसोइयाके रूपमें, अर्जुन नपुंसकके रूपमें, नकुल अश्वचिकित्सकके रूपमें, सहदेव ग्वालाके रूपमें और द्रौपदी सैरिन्ध्रीके रूपमें रहती थी। सैरिन्ध्रीरूपिणी द्रौपदी विराटके साले तथा उसके प्रधान सेनापति कीचकसे अपमानित हुई थी। अतएव भीमने कीचकको नाट्यशालामें मार डाला। कीचकके मारे जानेकी खबर पाते ही दुर्योधनने विराटके गोगृह पर आक्रमण करनेके लिये त्रिगर्त्तराज सुशर्माको दलबलके साथ भेजा। सुशर्मा विराटके दक्षिण गोगृह पर चढ़ाई करके गौओंको ले जा रहा है, गोपाध्यक्षसे यह सम्वाद पा कर विराटने स्वयं सुशर्मा पर आक्रमण कर दिया। सुशर्माने विराटको हरा कर अपने रथ पर बैठा लिया और अपने नगरकी ओर चला। यह देख कर युधिष्ठिरने भीमको विराटके उद्धारके लिये भेजा। भीमने विराटको छुड़ा कर सुशर्माको कैद कर लिया। इस उपकारके बदले राजा विराट युधिष्ठिर और भीमको मत्स्यराज्य देना चाहते थे। परन्तु युधिष्ठिरने नहीं लिया इधर दुर्योधन, कर्ण, भीष्म आदि वीरोंके साथ विराटके उत्तर गोगृह पर चढ़ाई करके ६० हजार गौ ले जा रहा था। यह संवाद पा कर विराटने अपने पुत्र उत्तरको कौरवसेनाका मुकाबला करनेके लिये भेजा। परन्तु विराटका सारथि सुशर्माके साथ युद्धमें मारा गया था अतएव सैरिन्ध्री और विराटकन्या उत्तराके कहनेसे उत्तरने वृहन्नलारूपी अर्जुनको अपना सारथी बनाया। कौरवसेनाको देखते ही उत्तरका हृदय कांप उठा, उस समय अपना परिचय दे कर अर्जुन स्वयं रथी हुए और उत्तरको सारथि बना कर उन्होंने कौरवसेनामें रथ ले चलनेकी आज्ञा दी। अर्जुनने कुरुवीरोंको हरा कर विराटकी गौओंका उद्धार किया। दुर्योधन आदि सभीने अर्जुनको पहचान लिया। अब प्रश्न यह उठा, कि अर्जुनके अज्ञातवासकी अवधि पूरी हुई है या नहीं। परंतु भीष्मने हिसाब लगा कर बता दिया कि अज्ञातवासकी अवधि

पूरे हुए पांच महीने छः दिन हो गये। अर्जुनके कहनेसे उत्तरने तमाम घोषित कर दिया, कि हम हीने युद्धमें जयलाभ किया है। इसके बाद पाण्डवोंके साथ विराट-का परिचय हुआ। राजा विराटकी कन्या उत्तरा अर्जुनपुत्र अभिमन्युको व्याही गई। इस प्रकार पाञ्चालराजके समान राजा विराट भी पाण्डवोंके एक बड़े सहायक हो गये।

अज्ञातवास पूरा होने पर युधिष्ठिरने कृष्णको बुलाया और राज्य लौटा देनेके लिये दुर्योधनके निकट दूत रूपमे भेजा। जब कोई फल न निकला, तब भ्रातृगण और कृष्णाकी प्ररोचनासे वे युद्धके लिये तैयार हुए, किन्तु युद्ध करनेकी युधिष्ठिरको बिलकुल इच्छा न थी।

युधिष्ठिरके पहले हस्तिनापुर राज्य और पीछे सिर्फ पांच ग्राम मांगने पर दाम्भिक दुर्योधनने साफ कह दिया था, "विना युद्धके सूईके नोकके बराबर भी भूमि मैं नहीं दूंगा।" बस फिर क्या था, दोनों ओरसे रणभेरी बजने लगी, कुरुक्षेत्रमें महायुद्धका आरम्भ हो गया। इस समय पाण्डवको ओरसे धृष्टद्युम्न, सात्यकि, विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, काशीराज, पुरुजित्, कुन्तीभोज, शैव्य, युधामन्यु, उत्तमौजा आदि तथा कौरवकी ओरसे भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, कृप, विकर्ण, भूरिश्रवा, जयद्रथ, भगदत्त, शल्य, शाल्व आदि प्रसिद्ध योद्धे रणक्षेत्रमें उतरे थे। इस समय अर्जुनको प्रवुद्ध करनेके लिये भगवान् कृष्णने जो उपदेश दिया था, वही भगवद्गीता नामसे प्रसिद्ध है। अर्जुन, कृष्ण और गीता देखो।

भारत-महासमरमें शल्यराजको परास्त करनेके सिवा युधिष्ठिरने वारताका और कोई काम नहीं किया। भीम और अर्जुनने ही भारतयुद्धमें विशेष प्रतिष्ठालाभ की थी। कृष्णके परामर्शानुसार युधिष्ठिरने जो 'अश्वत्थामा हत इति गज' यह वाक्य कह कर द्रोणाचार्यका प्राण लिया था, वह उनकी कापुरुषता थी। इस पापके लिये उन्हें नरक भी जाना पड़ा था।

कर्णके साथ युद्धमें परास्त हो कर अपमान तथा विपक्षकी लाञ्छनासे मर्माहत हो युधिष्ठिरने गाण्डीवधन्वा अर्जुनका तिरस्कार किया था। क्योंकि वे रणमें ज्येष्ठ और मध्यमको कुछ सहायता नहीं पहुंचाते थे। अर्जुन पूर्वप्रतिज्ञानुसार गाण्डीव-निन्दाकारी बड़े भाईका वध करने तैयार हो गये थे। पीछे श्रीकृष्णने बीचमें पड़ कर अर्जुनको इस दुष्कर्मसे रोका था।

महाभारत देखो।

भारत-महासमरके बाद युधिष्ठिर शोकसे विह्वल हो गये। कर्णके लिये उन्हें भारी दुःख था। अनन्तर उन्होंने धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा दूसरे दूसरे शोकसंतप्त परिवारवर्गको सान्त्वना दी। वृद्ध धृतराष्ट्रको अच्छी तरह सेवा करते हुए उन्होंने कुछ समय राज्यशासन किया। इसके बाद उन्होंने ससागरा पृथिवी पर पाण्डवीय प्रतापको अक्षुण्ण रखनेके लिये अश्वमेध यज्ञका आयोजन किया था। महाभारत के आश्वमेधिक पर्वमें इस यज्ञका विवरण दिया गया है।

इसके बाद धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीदेवी गृहधर्मका परित्याग कर जंगल चली गई। इससे भी युधिष्ठिरादि पांचो भाई शोकसे संतप्त हो गये। दो वर्ष बाद महर्षि नारद धर्मराज युधिष्ठिरके पास आये और उन्होंने यज्ञालयमे धृतराष्ट्रादिके प्राणत्यागका वृत्तान्त कह दिया। इसके लिये शोकाभिभूत पांचो भाइयोंने गङ्गाके किनारे तर्पण और ब्राह्मणोंको धन दान किया था।

मुसल प्रभावसे वृष्णि और अन्धकवंशका क्षय तथा महात्मा वासुदेवका स्वर्गगमनवृत्तान्त जान कर युधिष्ठिरने परीक्षितको राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया और आप चारों भाइयों तथा द्रौपदीके साथ ले हिमालय प्रदेशमें चल दिये। कर्मके फलसे भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी ये पांचो हिमालय पर मनुष्य-शरीरका परित्याग कर स्वर्गको सिधारे। इसके बाद युधिष्ठिर देवराज इन्द्रके आदेशानुसार सशरीर स्वर्गको चले गये थे।

देविका नामक पत्नीके गर्भसे युधिष्ठिरके यौधेय नामका एक पुत्र था। विष्णुपुराणमें उनके पुत्रका नाम देवक और स्त्रीका नाम यौधेयी कहा है। ब्रह्मपुराण २१२ अ०, श्रीमद्भागवत १स्क० ६, १४,१५ अ०, १० स्क० ७४, ७५ अ०, देवीभागवत २ स्क० ७ अ०, मार्कण्डेयपु० ५ अ०,

स्कन्दके नागरखण्ड हाटकेश्वरमाहात्म्य १४५, २१५, २१६ अध्यायमें युधिष्ठिरका प्रसङ्ग लिखा है।

प्राचीन राजवंशकी तालिका तथा किसी किसी शिलालिपिमें युधिष्ठिरादिका उल्लेख देखनेमें आता है। राजतरङ्गिणीके मतसे कलिके ६५३ वर्ष बीतने पर कुरु-पाण्डव अवतीर्ण हुए थे। चालुक्यराज पुलिकेशिकी शिलालिपिमें अभी जो कल्पाब्द चलता है, वही भारत-युद्धाब्द है। युधिष्ठिराब्दका विवरण संवत् शब्दमें देखो।

युधिष्ठिर—काश्मीरके एक राजा। इनके पिताका नाम नरेन्द्रादित्य था। पिताकी मृत्युके बाद युधिष्ठिर काश्मीरके सिंहासन पर बैठे। कुछ दिनों तक तो इन्होंने पूर्व प्रचलित रीतिके अनुसार राज्यशासन किया परन्तु पीछेसे ये ऐश्वर्यके मदसे मत्त हो कर मनमाने काम करने लगे। उनकी सभी बातोंमें विपरीत भाव पाई जाने लगी। बुद्धिमानोंका आदर करना वे भूल गये। अनुचरोंकी सेवा समझनेकी बुद्धि उनकी जाती रही। सभासद् पण्डितोंने जब अपने समान मूर्खोंको भी सम्मानित होते देखा, तब राजसभा छोड़ कर चले गये। मौका पा कर राजसभामें धूर्त्त घुस गये और राजाको उलटा सीधा समझ कर अपना मतलब निकालने लगे। राजाके इन व्यवहारोंसे अनुजीवीगण अप्रसन्न हो गये। थोड़े ही दिनोंमें राज्यमें उच्छृङ्खलता देख कर मन्त्रिगण राजासे विरोधाचरण करने लगे। मन्त्रियोंने मिल कर राजाको पदच्युत करनेके लिये षड़यन्त्र रचा। आसपासके राजा भी राज्यलोभसे मन्त्रियोंके षड़यन्त्रमें शामिल हुए। इन सब बातोंको जान कर राजा युधिष्ठिर बहुत ही डर गये। पीछे उन्होंने शान्तिस्थापनके लिये बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वे सफल न हो सके। इस समय यदि मन्त्री चाहते तो अवश्य ही शान्ति स्थापित हो जाती, पर मन्त्रियोंको इस बातका बड़ा भय था, कि युधिष्ठिरके अधिकाराारूढ़ रह जानेसे हम लोगों पर बुरी हालत बीतेगी, क्योंकि हम लोगोंके षड़यन्त्रकी बात उन्हें मालूम हो गई है। अनन्तर सेनासंग्रह करके मन्त्रियोंने राजभवन को घेर लिया और राजासे कहला भेजा कि आप शीघ्र ही राज्य छोड़ मर यहांसे चले जायं, तभी कल्याण है। राजाने शीघ्र ही राज्य छोड़ कर प्रस्थान किया। काश्मीर छोड़ कर वे पहाड़ी मार्गसे चले। मार्गमें उनको बड़े बड़े कष्ट भोगने पड़े। रानियोंके कष्ट देख कर पक्षी भी रोने लगे। अनन्तर युधिष्ठिरने अपने पूर्व मित्र एक राजाका आश्रय लिया। युधिष्ठिरने ३४ वर्ष तक राज्य किया था।

युधिष्ठिरराज (सं० पु०) १ युधिष्ठिर। २ कंकपक्षी।

युधीय (सं० त्रि०) योद्धा।

युधेन्य (सं० पु०) योधनार्ह, युद्धके योग्य।

युध्म (सं० पु०) युध्यते वा युध्यते येन इति युध (इषि युधि धीन्धिदसिश्याधुसुभ्यो मक्। उण् १।१४४) इति मक्। १ संग्राम, युद्ध। २ धनुष। ३ वाण। ४ योद्धा। ५ अस्त्र शस्त्र। ६ शरभ।

युध्य (सं० त्रि०) जिसके साथ युद्ध किया जा सके।

युध्यामधि (सं० पु०) युध्यामधि नामक सपत्न।

युध्वन् (सं० त्रि०) युद्धकारी, योद्धा।

युनिवर्सिटी (अं० स्त्री०) यूनिवर्सिटी देखो।

युयु (सं० पु०) अश्व, घोड़ा।

युयुक्खुर (सं० पु०) युर्निन्दितः युक् योजनाऽस्य, तादृशः खुरो यस्य। एक प्रकारका छोटा बाघ।

युयुक्षमान (सं० त्रि०) १ मिलन या संयोग चाहनेवाला। २ ईश्वरमें लीन होनेकी कामना रखनेवाला।

युयुजानसप्ति (सं० त्रि०) युज्यमान घोड़ा।

युयुत्सा (सं० स्त्री०) योद्धुमिच्छा युध-सन्, आप्। १ युद्ध करनेकी इच्छा, लड़नेकी इच्छा। २ शत्रुता, विरोध।

युयुत्सु (सं० त्रि०) योद्धुमिच्छु युध-सन् सनन्तादुः। १ लड़नेकी इच्छा रखनेवाला, जो लड़ना चाहता हो। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।

युयुधन् (सं० पु०) मिथिलाराजभेद। (भागवत ९।१३।२५)।

युयुधान (सं० पु०) युध्यतेऽसौ युध (युधि युधिभ्यां सन्वच्च। उण् २।९१) इति आनच्, कित्कार्यं सन्वत्-कार्यञ्च। १ सात्यकीका एक नाम जो कुरुक्षेत्रके युद्धमें पाण्डवोंकी ओरसे लड़े थे। २ इन्द्र। ३ क्षत्रिय। (त्रि०) ४ योद्धा।

युयुधि (सं० त्रि०) योद्धा, शत्रुओंसे लड़ाई करनेवाला।
युरेशियन (अ० पु०) यूरेशियन देखो।
युरोप (अ० पु०) यूरोप देखो।
युरोपियन (अ० वि०) यूरोपियन देखो।
युवक (सं० पु०) युवन्-कन्। युवा। सोलह वर्षसे ले कर पैंतीस वर्ष तककी अवस्थावाला मनुष्य, जवान।

"आषोड़शाद्भवेद्बालः पञ्चत्रिंशत् युवा नरः।"
(हारीत १।५ अ०)

युवखलति (सं० त्रि०) युवा खलति (युवा खलतिपलित-वलिनजरतीभिः। पा २।१।६७) इति समासः। इन्द्रलुप्त-रोगविशिष्ट युवक।
युवगण्ड (सं० पु०) यूनां गण्ड आश्रयत्वेनास्त्यस्य, युवगण्ड अर्श आद्यच्। १ मुहाँसा।

"युवगण्डो यवगण्ड स्यात् वयस्कोठाह्वये द्वयम्।"
(शब्दरत्ना०)

यूनां गण्डः। २ युवकोंका गण्डस्थल।
युवजरती (सं० स्त्री०) युवतिर्जरति (युवाखलतिपलित-वलिनजरतीभिः। पा २।१।६७) इति समासः। युवती होने पर जरातुरा, अथच जरती।
युवजानी (सं० पु०) युवती जाया यस्येति (जायया निङ्। पा ५।४।१३४) इति निङ्। युवतीपति। जिसकी पत्नी युवती हो उसको युवजानि कहते है।
युवति (सं० स्त्री०) युवन् (यूनस्ति। पा ४।१।७७) इति ति। प्राप्तयौवना, जवान स्त्री।
युवती (सं० स्त्री०) यु शतृ-ङीष्। १ प्राप्तयौवना, जवान स्त्री। पर्याय—युवती, यूनी, तरुणी, तलुनी, दिक्करी, धनिका, मध्यमा, दृष्टरजाः, मध्यमिका, ईश्वरी, वर्या, वयस्था। (राजनि०)

स्त्रियां सोलह वर्षसे ले कर बत्तीस वर्ष तक युवती कहलाती हैं। इस युवतीके साथ प्रसंग करनेसे बल-क्षय होता है।

"बाला तु प्राणदा प्रोक्ता युवती प्राणहारिणी।
प्रौढ़ा करोति वृद्धत्वं वृद्धा मरणमादिशेत्॥"
(राजव०)

राजवल्लभके मतसे योग्या स्त्री मात्र ही युवती हैं। अमरटीकामें भरतने लिखा है, भागुरीके मतानुसार स्त्री-साधारणको युवती कहते हैं। वात्स्यायनके मतसे प्राक्-यौवना रमणी ही युवती है। २ प्रियंगु। ३ स्वर्णयूथिका, सोनजुही। ४ हरिद्रा, हलदी।
युवतीष्टा (सं० स्त्री०) युवतीनामिष्टा। स्वर्णयूथिका, सोनजुही। (राजनि०)
युवद्रिक् (सं० त्रि०) तुम दोनोंके प्रति अभिलक्षित।
युवधित (सं० त्रि०) तुम दोनोंका उपयोगी।
युवन् (सं० त्रि०) यौतीति यु (कनिन् यु वृषितक्षि राजिध-न्विद्यु प्रतिदिवः। उण् १।१५६) इति कनिन्। १ तरुण। (पु०) २ यौवनावस्थाविशिष्ट। किसी किसीके मतसे सोलह वर्षसे ले कर तीस वर्ष तक और किसीके मतसे सोलह वर्षसे सत्तर वर्ष तक युवा कहलाता है।

"आषोड़शाद्भवेद्बालस्तरुणस्तत उच्यते।
वृद्धः स्यात् सप्ततेरूर्द्ध्वं वर्षीयान् नवतेः परम्॥"
(भरतधृत स्मृति)

हारीतके मतानुसार सोलह वर्षसे पैंतीस वर्ष तक युवा कहलाता है।

"आषोड़शाद्भवेद्बालः पञ्चत्रिंशत् युवा नरः।"
(हारीत १।५ अ०)

पर्याय—वयस्थ, वयःस्थ, तलुन, गर्भरूप, वेष्टक।
(जटाधर)

युवनाश्व (सं० पु०) १ सूर्यवंशीय एक राजा। प्रसेनजित्-के औरस गौरीके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। प्रसिद्ध मान्धाता इन्हींका पुत्र था। २ रामायणके अनुसार धुन्धुमारके एक पुत्रका नाम।
युवनाश्वज (सं० पु०) युवनाश्वात् जातः जन-ड। मान्धातृराज।
युवन्यु (सं० त्रि०) यौवनविशिष्ट, जवान।
युवपलित (सं० त्रि०) युवा पलितः। जवानीमें ही जिसके बाल पक गये हों।
युवमारिन् (सं० त्रि०) युवावस्थामें ही जिसकी मृत्यु हो गई हो।
युवयु (सं० त्रि०) युवा कामयमान, जवान होनेकी इच्छा करनेवाला।
युवराई (हिं० स्त्री०) १ युवराजका पद। २ युवराज देखो।

युवराज (सं० पु०) १ भावी बुद्धविशेष। पर्याय—मैत्रेय, अजित। युवा चासौ राजा पुनां वा राजा, टच् समासान्तः। २ राजाका वह राजकुमार जो उसके राज्यका उत्तराधिकारी हो, राजाका वह सबसे बड़ा लड़का जिसे आगे चल कर राज्य मिलनेवाला हो।

युवराजत्व (सं० क्ली०) युवराजस्य भावः त्व। युवराजका भाव या धर्म, यौवराज्य।

युवरोजी (हिं० स्त्री०) युवराजका पद, यौवराज्य।

युवराज्य (सं० क्ली०) युवराजका पद।

युववलिन (सं० त्रि०) युवा वलिनः। यौवनावस्थामें बलवान्।

युवश (सं० त्रि०) युवा, जवान।

युवा (सं० स्त्री०) १ युवन् देखो। २ अग्निका वाणभेद।

युवाकु (सं० त्रि०) तुम दोनोंके अधिकृत।

युवादत्त (सं० त्रि०) तुम दोनोंको जो दिया गया हो।

युवानपिड़का (सं० स्त्री०) मुहाँसा।

युवानीत (सं० त्रि०) तुम दोनोंसे लाया हुआ।

युवाम (सं० क्ली०) नगरभेद।

युवायु (सं० त्रि०) तुम दोनोंकी इच्छा करनेवाला।

युवायुज (सं० त्रि०) तुम दोनोंके लिये युज्यमान अश्वादि।

युवावत् (सं० त्रि०) तुम दोनोंके लिये।

युष्ग्राम (सं० पु०) एक प्राचीन नगरका नाम। (राजतर० ३।८)

युष्मद् (सं० सर्व० त्रि०) योषति सजतीति युष (युष्यसिभ्यां मदिक्। उण् १।१३८) इति मदिक्। तुम, मध्यम पुरुष।

युष्मदीय (सं० त्रि०) युष्मद्-ईय। तुमलोगोंका सम्बन्धीय तुम लोगोंका।

युष्मद्विध (सं० त्रि०) युष्माकं विधाइव विधा यस्य। तुमलोगोंके समान।

युष्मादत्त (सं० त्रि०) तुम लोगोंसे दिया हुआ।

युष्मादृश् (सं० त्रि०) तुम लोगोंके समान।

युष्मादृश (सं० त्रि०) तुम लोगोंके समान।

युष्मानीत (सं० त्रि०) तुम लोगों द्वारा परिचालित।

युष्मावत् (सं० त्रि०) तुम्हारे समान।

युष्मेषित (सं० त्रि०) तुम लोगों द्वारा प्रेरित।

युष्मोत (सं० त्रि०) तुम लोगोंका प्रिय या अनुगत।

यू (सं० स्त्री०) १ वृष, साँड़। २ पकी हुई दालका पानी, जूस।

यूक (सं० पु०) यौतीति यू (अजियुधूनीभ्योदीर्घश्च। उण् ३।४७) इति कन्, दीर्घश्च। मत्कुन, जूँ नामक कीड़े जो बाल या कपड़ोंमें पड़ जाते हैं, ढील।

यूकदेवी (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

यूका (सं० स्त्री०) यूक-स्त्रियां टाप्। १ मत्कुन, जूँ नामक कीड़ा जो सिरके बालोंमें होता है। पर्याय—केशकीट, स्वेदज, षट्पद, पाली, बालकृमि। २ कृमि विशेष। बाह्य और आभ्यन्तर भेदसे कृमि दो तरहका होता है। बाह्यमल अर्थात् घर्म, कफ, रक्त और विष्ठासे यह उत्पन्न होता है। यह कृमि बीस तरहका है। यूकाख्य कृमि शारीरिक स्वेदजात है। इसकी आकृति और वर्ण तिलकी तरह होता है। ये सब छोटे कीड़े बाल और कपड़ेमें रहते हैं। इनमें भेद केवल इतना हो है, कि जिनके बहुत पैर होते हैं उन्हें यूक या ढील तथा जो छोटे होते हैं उन्हें लिक्ष्य या चीलर कहते हैं। यूकाख्य (ढील) बालमें और लिक्ष्य (चीलर) कपड़े में रहते है। इन कीड़ोंसे क्रमशः पिड़का, कण्डु और स्फोटकादि उत्पन्न होते हैं।

धतूरे या पानके रसके साथ पारा लगानेसे ढील अतिशीघ्र नष्ट हो जाते हैं। धतूरे पत्तेका रस या चूर्ण द्वारा तेल पका कर रगड़नेसे यूक मर जाते हैं।

(भावप्र० कृमिरोगाधि०)

"नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः।
तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः॥
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्ष्याश्च नामतः।
द्विधा ते कोठपिड़काः कण्डूगण्डान् प्रकुर्वते॥"

(माधव निदान क्रिम्यधि०)

हारीतके चिकित्सित स्थानमें लिखा है—कृमि बाह्य और आभ्यन्तर भेदसे दो प्रकारका है। इनमें बाह्यकृमि यूका और आभ्यन्तर कृमि किञ्चुलुक कहलाता है। यह यूका या ढील फिर अतिविकटा, चर्माभा, चर्मयूकिका, वन्दुकी, वर्त्तुला, मूलसम्भवा और मत्कुणो भेदसे सात

प्रकारका है। ये सभी रक्त, बहुत छोटे और काले होते हैं तथा सिरके बालोंमें रहते हैं।

चिकित्सा—विडंग और गंधोत्पल चूर्ण मिला गोमूत्र सिद्ध कडुआ तेल पका कर सिरमें देनेसे ढील जल्द मर जाते हैं। बालमें गोमूत्रके साथ अतिबलाका प्रलेप देनेसे भी यह विनष्ट होता है। (कामरत्न०) ३ एक प्रकारका परिमाण जो एक यवका अर्ध भाग और एक लिक्षाका अठगुना होता है। ४ कृष्णोडुम्बर, काला-गूलर। ५ यमानी, अजवायन।

यूकाण्ड (सं० पु०) लिक्षा, चीलर।

यूकारी (सं० स्त्री०) लाङ्गलिका, कलियारी नामका जहरीला पौधा।

यूकावास (सं० पु०) शाखोट वृक्ष, सिहोरका पेड़।

यूगन्धर (सं० पु०) पंजाबके एक प्राचीन नगरका नाम। इसका वर्णन महाभारतमें आया है। आजकल इसे धुरन्धर कहते हैं।

यूत (सं० पु०) मिश्रण, मिलावट।

यूति (सं० स्त्री०) यु (ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च। पा ३।३।९७) इति क्तिन् निपातनाद्दीर्घत्वञ्च। मिश्रण, मिलानेकी क्रिया।

यूथ (सं० क्ली०) यु-मिश्रण (तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः। उण् २।१२) इति थक् प्रत्ययेन निपातितं। १ एक ही जाति या वर्गके अनेक जीवोंका समूह, झुण्ड। २ दल, सेना।

यूथक (सं० त्रि०) यूथ-कन्। समूहयुक्त।

यूथग (सं० पु०) चाक्षुप मन्वन्तरके एक प्रकारके देवता।

यूथनाथ (सं० पु०) यूथस्य नाथ। १ यूथपति, सरदार। २ सेनापति, सेनाध्यक्ष।

यूथप (सं० पु०) यूथं पातीति पा-क। १ सरदार। २ सेनापति। ३ जंगली हाथियोंका सरदार।

यूथपति (सं० पु०) यूथस्य पतिः। यूथप, सेनानायक।

यूथपरिभ्रष्ट (सं० पु०) यूथात् परिभ्रष्टश्चलितः। १ वह हाथी जो झुण्डसे भाग गया हो। (त्रि०) २ यूथ-भ्रष्टमात्र, दलच्युत।

यूथपशु (सं० पु०) सम्पूर्ण राजकरका दशवां हिस्सा।

यूथपाल (सं० पु०) यूथं पालयतीति अण्। यूथप, सेनापति।

यूथभ्रष्ट (सं० पु०) यूथाद्भ्रष्टश्चलितः। १ यूथपरिभ्रष्ट, वह हाथी जो झुण्डसे भाग गया हो। (त्रि०) यूथभ्रष्ट-मात्र, दलच्युत।

यूथमुख्य (सं० पु०) सेनापति।

यूथर (सं० त्रि०) यूथ-चतुर्थ अर्थेषु (अश्मादिभ्यो रः। पा ४।२।८०) इति र। १ जिस देशमें सेना हो। २ यूथसे निवृत्त। ३ सेनाका निवासस्थान। ४ सेना-का पतन।

यूथशस् (सं० अव्य०) यूथ वारार्थे शस्। यूथसमूह।

यूथहत (सं० त्रि०) यूथात् हतः परिभ्रष्टः। यूथभ्रष्ट, दलच्युत।

यूथाग्रणी (सं० पु०) अग्रं नीयते नी-क्विप्, यूथस्य अग्रणीः। दलपति, सेनाध्यक्ष।

यूथिका (सं० स्त्री०) यूथं पुष्पवृन्दमस्या अस्तीति यूथ-ठन्-टाप्। १ पाठा, पाढ़। (राजनि०) २ अम्लानक। ३ पुष्पविशेष, जूही नामका फूल। पीला होनेसे इसे हेमपुष्पिका कहते हैं। संस्कृत पर्याय—गणिका, अम्बष्ठा, मागधी, यूथी, प्रहसन्ती, शिखण्डिनी, वासन्ती, बालपुष्पिका, बहुगन्धा, भृङ्गानन्दा। इसका गुण—स्वादु, शीतल, शर्करारोग, पित्त, दाह, तृष्णा तथा नाना प्रकार त्वक्-दोषनाशक। सभी प्रकारकी यूथिका रस और वीर्य-तुल्य हैं; किन्तु स्वर्णयूथिका सबोंसे देखनेमें सुन्दर और गन्ध-युक्त होती है। भावप्रकाशके मतसे यूथिका और स्वर्ण-यूथिका शीतवीर्य, तिक्त, मधुर, कषाय और कटुरस, कटुविपाक, लघु, हृदयग्राही, पित्तनाशक, कफ और वायुवर्द्धक तथा व्रण, रक्तदोष, मुखरोग दन्तरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग और विषनाशक माना गया है।

(भावप्रकाश)

यूथिकापत्र (सं० पु०) तालीशपत्र।

यूथी (सं० स्त्री०) यूथ-अर्श आद्यच्, ततो ङीप्। यूथिका, जूही।

यूथीन (सं० पु०) यूथं पातीति यूथ-ख। यूथप, सेनापति।

यूथ्य (सं० त्रि०) यूथे भवः यूथ (दिगादिभ्यो यत्। पा ४।३।५४) इति यत्। यूथभव।

यून (सं० क्ली०) १ बन्धनी। २ रज्जु, डोरी।

यूनक (सं० पु०) जरीकी खली।

यूनाइटेड (अ० वि०) मिला हुआ, संयुक्त।

यूनान—एशियाके सबसे अधिक पास पड़नेवाला यूरोपका प्रदेश। यह प्राचीनकालमें अपनी सभ्यता, शिल्पकला, साहित्य, दर्शन इत्यादिके लिये जगत्‌में प्रसिद्ध था। आयोनिया द्वीप इसी देशके अन्तर्गत था जिसके निवासियोंका आना जाना एशियाके शाम, पारस आदि देशोंमें बहुत था। इसीसे सारे देशको ही यूनान कहने लगे। भारतीयोंका यवन शब्द यूनान देशवासियोंका ही सूचक है। सिकन्दर इसी देशका बादशाह था।

यूनानी (हिं० वि०) १ यूनान देश सम्बन्धी, यूनानका। (स्त्री०) २ यूनानदेशकी भाषा। ३ यूनान देशका निवासी। ४ यूनानदेशकी चिकित्सा-प्रणाली, हकीमी। पारस्यके प्राचीन बादशाह अपने यहां यूनानके चिकित्सक रखते थे जिससे वहांकी चिकित्सा-प्रणालीका प्रचार एशियाके पश्चिमी भागमें हुआ। इस प्रणालीमें क्रमशः देशी चिकित्सा भी मिलती गई। आजकल जिसे यूनानी चिकित्सा कहते हैं वह मिली जुली है। खलीफा लोगोंके समयमें भारतवर्षसे भी अनेक वैद्य बगदाद गये थे जिससे बहुतसे भारतीय प्रयोग भी वहांकी चिकित्सा-औषधमें शामिल हुए।

यूनी (सं० स्त्री०) १ योग। २ मिश्रण, मिलावट।

यूनिवर्सिटी (अ० स्त्री०) वह संस्था जो लोगोंको सब प्रकारकी उच्च कोटिकी शिक्षाएं देती, उनकी परीक्षाएं लेती और उन्हें उपाधियां प्रदान करती हैं। ऐसी संस्था या तो राजकीय हुआ करती है अथवा राज्यकी आज्ञासे स्थापित होती है; और उसकी परीक्षाओं तथा उपाधियों आदिका सब जगह सामानरूपसे मान होता है, विश्वविद्यालय।

यूनी (सं० स्त्री०) युवन् ङीष् (*श्वयुवमघोनामतद्धिते।* पा ६।४।१३३) इति वस्य उत्वं। युवती।

यूप (सं० पु० क्ली०) यौति मिश्र-यतीति यूयते युज्यतेऽस्मिन्निति वा (कुयुभ्या च। उण् ३।२७) इति प, दीर्घत्वञ्च। १ यज्ञमें वह खम्भा जिसमें बलिका पशु बांधा जाता है। यह यूप चार हाथ लम्बा गूलरके पेड़का बनाना चाहिए। इसे गोल, मोटा और सुन्दर बनाना उचित है। इसके सिरे पर एक सांड़ अंकित करे।

कलिकालमें विल्व और बकुल वृक्षका यूप प्रशस्त है—

"विल्वस्य वकुलस्यैव कलौ यूपः प्रशस्यते।"

(सामवेदि-वृषोत्सर्गतत्त्व)

२ जयस्तम्भ, वह स्तम्भ जो किसी विजय अथवा कीर्त्ति आदिकी स्मृतिमें बनाया गया हो।

यूपक (सं० पु०) प्लक्षवृक्ष, पाकर नामका पेड़।

यूपकटक (सं० पु०) यूपस्य कटक इव। लोहे या लकड़ीका कड़ा या छल्ला जो यूपके सिरे पर अथवा नीचे होता था।

यूपकर्ण (सं० पु०) यूपस्य कर्ण इव। यूपैकदेश, यूपका वह भाग जो घृतसे अभिषिक्त किया जाता था।

यूपकेतु (सं० पु०) भूरिश्रवाका एक नाम।

यूपदारु (सं० क्ली०) यूपनिर्माणार्थ बेल या गूलरकी लकड़ी।

यूपद्रु (सं० पु०) यूपाय द्रुः। खदिर वृक्ष, खैरका पेड़।

यूपद्रुम (सं० पु०) यूपाय द्रुमः। खदिर वृक्ष, लाल खैरका पेड़।

यूपध्वज (सं० पु०) यज्ञ।

यूपलक्ष्य (सं० पु०) यूपो लक्ष्य उपवेशनार्थमस्य। पक्षी।

यूपवत् (सं० त्रि०) यूप-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। यूपविशिष्ट, स्तम्भयुक्त।

यूपवाह (सं० त्रि०) यूपवहनकारी, यज्ञीय यूप ढोनेवाला।

यूपव्रस्क (सं० त्रि०) यूपार्ह वृक्षछेदनकारी, यज्ञीय यूपके लिये पेड़ काटनेवाला।

यूपा (हिं० पु०) जूआ।

यूपाक्ष (सं० पु०) रावणकी सेनाका एक मुख्य नायक जिसको हनुमानने प्रमदा वन उजाड़नेके समय मारा था।

यूपाग्र (सं० क्ली०) यूपस्याग्रं। यूपका अग्रभाग या सिरा।

यूपातुति (सं० स्त्री०) वह कृत्य जो यज्ञमें यूप गाड़नेके समय किया जाता है।

यूप्य (सं० त्रि०) यूपमर्हति यूप (छन्दसि च । पा ५।१।६७) इति यत्। पलाशवृक्ष, पलासका पेड़।

यूयुवि (सं० त्रि०) सबोंको अलग करनेवाला।

यूरप (अ० पु०) यूरोप देखो।

यूराल (अ० पु०) १ बहुत बड़ा पहाड़ जो एशिया और यूरोपके बीचमें है। २ इस पर्वतसे निकलनेवाली एक नदीका नाम।

यूरेशियन (अ० पु०) वह जिसके माता पितामेंसे कोई एक यूरोपका और दूसरा एशियाका विशेषतः भारतवर्षका निवासी हो।

यूरोप—एक महादेश, यह प्राचीन महाद्वीपके उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। इसके उत्तरमें उत्तरमहासागर, पूर्वमें उरल पर्वत, उरल नदी, कास्पियनसागर, दक्षिणमें कोकेशस पर्वत, कृष्णसागर, भूमध्यसागर और पश्चिममें अटलाण्टिक महासागर है। भूपरिमाण ३८ लाख वर्गमील होगा। सेण्टभिनसेण्ट अन्तरीपसे कारा-नदीके मुहाना तक लम्बाई ३४०० मील और लापलैण्डके अन्तर्गत नर्डकिन अन्तरीपसे मटापन अन्तरीप तक चौड़ाई २४०० मील है। इसमें कुल मिला कर २१ देश लगते हैं, जैसे—

उत्तरमें—रूसिया, डेन्मार्क, हालण्ड (नेदरलैण्ड), बेलजियम, उत्तर-पश्चिममें—ग्रेटब्रुटेन (इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड और वेल्स) आयरलैण्ड, नौरवे और स्वीडन (स्कान्दिनेभिया)।

मध्यमें—फ्रान्स, स्वीजलैण्ड, जर्मनी, अष्ट्रिया-हङ्गेरी।

दक्षिणमें पुर्त्तगाल, स्पेन, इटली, ग्रीस, तुरुष्क, बुलगेरिया, सार्भिया, रुमाणिया और मन्तेनिग्रो।

समुद्रतीरसंलग्न देशभागमें कुछ छोटे छोटे सागर और उपसागर देखे जाते हैं। इन सबके नाम और स्थानसन्निवेश नीचे दिये गये हैं।

उत्तरमें—श्वेतसागर रूसियाके उत्तर; वल्टिकसागर रूसिया, स्वीडन और प्रसियाके मध्यमें, इस सागरके उत्तरांशमें पोथनिया उपसागर तथा पूर्वांशमें फिनलैण्ड और रीगा उपसागर है।

दक्षिणमें—भूमध्यसागर यूरोप और अफ्रिकाके मध्य आद्रियातिक सागर इटली, अष्ट्रिया और तुरुष्कके मध्य; आर्किपिलेगो वा इजियन सागर ग्रीस और एसियाटिक तुरुष्कके मध्य। कृष्णसागर रूसियाके दक्षिण, आजव-सागर कृष्णसागरके उत्तर।

पश्चिममें—उत्तरसागर वा जर्मनमहासागर, इस सागरके एक ओर ग्रेटब्रिटेन और दूसरी ओर बेलजियम, हालण्ड, रूसिया, डेन्मार्क, नौरवे, काटेगाट डेन्मार्क और स्वीडनके मध्य; विस्केउपसागर फ्रान्सके पश्चिम।

यूरोपके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर-सीमामें तथा मध्यस्थित सागरोंमें बहुतसे द्वीप हैं। ये सभी द्वीप प्रायः यूरोपीय राजाओंके दखलमें हैं। नीचे उनके नाम दिये जाते हैं,—

उत्तर-महासागरमें—फ्रान्स, जोसेफलैण्ड, नवजेम्बला, स्पिट्सबर्गेन और लोफोद्वीपपुञ्ज।

अटलाण्टिक महासागरमें—आइसलैण्ड, फारोद्वीपपुञ्ज, शेटलैण्ड और अर्कनी, हेब्राइडिस, ग्रेटब्रिटेन और आयर्लैण्ड, मान, आजोर्स और एङ्गलसी।

वाल्टिकसागरमें—जीलैण्ड, फ्युनेन, रिडगेन, वरणहम, लालण्ड, युसेल, डागो, ओलण्ड, गेटलैण्ड और आलण्ड द्वीपपुञ्ज।

भूमध्यसागरमें—वेलियारिक द्वीपपुञ्ज (मैजर्का, मिनर्का, इभोका, (करमेन्तारा) कर्सिका, सार्डिनिया, सिसिली, एलबा, लिपारीन् द्वीपपुञ्ज, माल्टा, योनिया, द्वीपपुञ्ज (करफू), पैक्सो, सेण्टमयरा, इथाका, सिफालोनिया, जान्ति और सेरिगो। ग्रीकके पश्चिम उपकूलमें क्रेट (काण्डिया)।

इजियनसागरमें—निग्रोपेण्ट, साइक्लाडिज। प्रायोद्वीपके मध्य उत्तरपश्चिममें—स्कान्दिनेभिया (नौरवे और स्वीडन) और जाटलैण्ड (डेन्मार्कका उत्तरांश) तथा दक्षिणमें—आइबिरियन उपद्वीप (पुर्त्तगाल और स्पेन), इटली, मोरियाग्रीसके दक्षिण, क्रिमिया (रूसियाके दक्षिण)।

यहां केवल दो योजक हैं। करिन्थ नामक योजक मोरियाको उत्तर ग्रीसके साथ और परिकप क्रिमियाको रूसियाके साथ योग करता है।

अन्तरीप—नार्डकिन और उत्तर अन्तरीप (नर्थ केप) नौरवेके उत्तर, नेज नौरवेके दक्षिण।

मातापन. ग्रीसके दक्षिण, स्पार्टिवेन्तो इटलीके दक्षिण। पासारो सिसिलीके दक्षिण।

यूरोपा और टेरिफा स्पेनके दक्षिण; ट्राफलगार स्पेनके दक्षिण-पश्चिम; सेण्ट भिनसेण्ट पुर्त्तगालके दक्षिण-पश्चिम; रोका पुर्त्तगालके पश्चिम, अर्टिगाल और फिनिष्टर स्पेनके उत्तर पश्चिम; लाहोग फ्रान्सके उत्तर-पश्चिम, केशक्लियर आयर्लैंण्डके दक्षिण, लिजार्ड पायेण्ट और लाण्डसएण्ड इङ्गलैण्डके दक्षिण-पश्चिम।

प्रणाली—साउण्ड, जिलैण्ड और स्वीडनके मध्य; ग्रेट बेल्ट जिलण्ड और फ्युनेनके मध्य। लिटल बेल्ट फ्युनेन और डेन्मार्कके मध्य। इंगिलस प्रणाली (चैनल) इङ्गलैण्ड और फ्रान्सके मध्य; डोवर, इङ्गलिश प्रणालीके साथ उत्तर-सागरको योग करती है; सेण्ट जार्ज प्रणाली (चेनल) वेल्स और आयरलैण्डके मध्य; जिब्राल्टर भूमध्यसागरको अटलाण्टिक महासागरसे योग करती है; वेनीफासियो, कर्सिका और सार्डिनिया द्वीपके मध्य, मेसीना, इटली और सिसिली द्वीपके मध्य; दार्दनेलिज इजियन और मर्मरा सागरके मध्य, कुस्तुनतुनिया वा वासफोरस प्रणाली मर्मरासागर और कृष्णसागरके मध्य; येनिकाले आजव और कृष्णसागरके मध्य।

पर्वत और पर्वतमालाके नाम।

उरल पर्वत यूरोप और एशियाके मध्य; कायोलेन, नौरवे और स्विडेनके मध्य; डोभरेफिल्ड नौरवे देशमें; ग्राम्पियन स्काटलैण्डके मध्य; चिभियट इङ्गलैण्ड और स्काटलेण्डके मध्य; पिरेनिज (पिरेनिज पर्वत पश्चिममें फिनिष्टर अन्तरीप तक कान्ताब्रियन नामसे फैला हुआ है) फ्रान्स और स्पेनके मध्य; कष्टाइल, सिरामोरेना, और सियानिभेडा स्पेनदेशमें; आपिनाइन इटलीदेशमें आल्पस् श्रेणी इटलीके उत्तर और फ्रान्स, स्वीजलैंण्ड जर्मनी और अष्ट्रियाके मध्य विस्तृत; यूरोपके मध्य यह सबसे ऊँचा पर्वत है। सबसे ऊंची चोटी माण्ट ब्लङ्क १५८०० फुट ऊंची है। जुरा फ्रान्स और स्वीजलैंण्डके मध्य। कार्पेथियन पर्वत अष्ट्रियाके उत्तरपूर्वमें; बल्कान वा हेमस और पिन्दाज तुरुष्कमें।

आग्नेयपर्वत—हेकला आइसलैण्ड द्वीपमें; एतना सिसली द्वीपमें; ष्ट्रम्बली (लिपारी द्वीप पुञ्जमें एक द्वीपमें); भिसुभियस इटली देशमें (नेप्लसके पास)

ह्रदसमूह—ओनेगा, लाडोगा, सैमा और पैइपुस रूषियामें; वेनर, वेटर, मेलर और हियेमलर स्वीडनमें; जेनेवा-नुशाटेल, कनस्तान्स वा बोडेन-सो, जुरिक और लुसरण स्विजलैंण्डमें; माद्जोरे कमो, गर्दा उत्तर इटली में; वालाटन वा प्लाटेन-सी हङ्गेरीमें; न्यु साइडालर सी अष्ट्रियामें, विनडरमिरि और डरवेण्ट-वाटर वा केजइक इङ्गलैण्डमें; लोमण्ड और केटरिन स्काटलैण्डमें।

ह्रदको छोड़ कर यूरोपमें और भी अनेक नद नदी प्रवाहित हैं जिनमें दानियुब प्रधान हैं। जिस जिस देशमें जो जो नदी बहती हैं वे ये सब है,—

रूसियामें,—पेशारा, उरल पर्वतसे निकल कर उत्तर महासागरमें गिरती है; उत्तरडुइना श्वेतसागरमें, उनेगा उनेगा-उपसागरमें; निभो लाडोगा ह्रदसे निकल कर फिनलैण्ड उपसागरमें; दक्षिण डुइना रीगा उपसागरमें; निष्टर कार्थोपियन पर्वत और निपर मध्य-रूसियासे निकल कर कृष्णसागरमें; डन आजव सागरमें; भोलगा (यूरोपके मध्य बड़ी नदी) भलडाई पर्वत और उरल उरलपर्वतसे निकल कर कास्पियन सागरमें गिरती है।

स्कान्डिनेभियमें,—लोमन (नौरवेमें) डोभरेफिल्ड पर्वतसे निकल कर काटिगाट उपसागरमें गिरती है।

इङ्गलैण्डमें,—हम्बर और टेम्स नदी उत्तरसागरमें तथा सेभरन वृष्टलप्रणालीमें गिरती है।

स्काटलैण्डमें,—टे ग्रापियन पर्वतसे निकल कर उत्तरसागरमें; आयर्लैंण्डमें,—श्यानेन अटलाण्टिक महासागरमें गिरी हैं।

फ्रान्समें,—सिन इङ्गलिस प्रणालीमें और लायर विस्के उपसागरमें, गारोन पिरिनिज पर्वतसे निकल कर विस्के उपसागरमें तथा रोण स्वीजलैंण्डके आल्पस्पर्वतसे निकल कर लियं उपसागरमें गिरती है।

स्पेन और पुर्त्तगालमें,—डुरो, टेगस और गोआदियाना अटलाण्टिक महासागरमें; गोआदेल-कुवर और इब्रो स्पेनमें प्रवाहित हो कर १ली अटलाण्टिक महासागरमें और २री भूमध्यसागरमें गिरती है।

जर्मनीदेशमें,—राइन आल्पस् पर्वतसे निकल कर स्वीजर्लैण्ड, अष्ट्रिया होती हुई उत्तरसागरमें ; ओडर जर्मनी होती हुई वाल्टिकसागरमें ; भिष्टुला कार्पेथियन पर्वतसे निकल कर पोलैण्ड और प्रूसिया होती हुई वाल्टिक सागरमें ; दानियुव आल्पस् पर्वतसे निकल कर जर्मनी और अष्ट्रियाके मध्य वहती है तथा सर्भिया और बुलगेरियाके उत्तर-प्रान्त होती हुई कृष्ण सागरमें गिरती है।

इटलीदेशमें,—पो आल्पस पर्वतसे निकल कर आद्रियातिक-सागर और टाइवर आपिनाइन पर्वतसे निकल कर भूमध्यसागरमें गिरती है।

यूरोपीय राज्य और नगरादिका संक्षिप्त परिचय।

वृटिश द्वीपपुञ्ज यूरोपके पश्चिममें है, इसे ग्रेटब्रिटेन और आयर्लैण्ड कहते हैं। पहले वृटिश द्वीप कुछ स्वाधीन राज्योंमें विभक्त था जिनमें इङ्गलैण्ड, वेल्स, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्ड प्रधान हैं। यूरोपमें ग्रेटब्रिटेन ही बड़ा द्वीप है। यह तीन भागोंमें विभक्त है, इङ्गलैण्ड और वेल्स (दक्षिणमें) तथा स्काटलैण्ड (उत्तरमें) अभी ये सब राज्य एक राजाके शासनाधीन हैं। इङ्गलैण्ड ४०, वेल्स १२ और स्काटलैण्ड ३३ काउण्टी (सायर)-में विभक्त है।

इङ्गलैण्ड—राजधानी लण्डन (टेम्स नदीके किनारे, पृथिवीके मध्य समृद्धिशाली नगर और सर्वप्रधान वाणिज्यस्थान); लीभरपुल (मार्स नदीके मुहाने पर; वाणिज्य और जनसंख्यामें २य नगर); वृष्टल (यहां कांच पीतल और साबनका काम होता है); हाल (वन्दर); न्युकासल (कोयलेके लिये मशहूर); डोभर (वन्दर) साउदाम्टन (डाकका वाष्पीय अर्णवयानका प्रधान अड्डा); मैञ्चेष्टर (कपड़े के लिये प्रसिद्ध); आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज (विश्वविद्यालयके लिये प्रसिद्ध); काण्टरवरी (यहां सुन्दर भजनालय है); विण्डसर (टेम्स नदीके किनारे, यहां राजप्रासाद है)। लण्डन, लिवरपुल, साण्डरलैण्ड, पोर्टसमाउथ और प्लाइमाउथ, ये सब जहाज बनानेके स्थान हैं; ग्रिनवीच् मानमन्दिरके लिये प्रसिद्ध।

इङ्गलैण्डके अधिवासियोंको अंगरेज कहते हैं। ये लोग बलवान्, साहसी, तेजस्वी, परिश्रमी, बुद्धिमान्, स्वाधीनताप्रिय और रणनिपुण होते हैं। इन लोगोंकी भाषाको अंगरेजी भाषा कहते हैं। इङ्गलैण्डमें पार्लियामेण्ट नामक प्रजाओंकी प्रतिनिधि-सभा है। इस सभाके आज्ञानुसार शासनकार्य चलता है। स्काटलैण्डके अधिवासियोंको स्काच और आयर्लैण्डके अधिवासियोंको आइरिस कहते हैं। इङ्गलैण्डके ५म जार्ज एक प्रतिनिधि हैं और इस देशका शासनकर्त्ता हैं, इन्हें लार्ड लेफ्टनाण्ट कहते हैं। वृटिश साम्राज्यमें सूर्य कभी भी अस्त नहीं होते; क्योंकि पृथिवीके सभी भागोंमें इनका अधिकार है।

वेल्स—कार्डिफ और सोयानसि (दक्षिणवेलसका बन्दर), माण्टगोमरी।

स्काटलैण्ड—एडिनवरा (इस नगरका दृश्य बड़ा सुन्दर है, यहां एक विश्वविद्यालय है) ग्लासगो (बड़ा नगर वाणिज्यके लिये विख्यात); ग्रीनक, डण्डी, वालमोरल (यहां इङ्गलैण्डेश्वरका ग्रीष्मनिकेतन है)।

आयरलैण्ड—डवलिन (विश्वविद्यालयके लिये प्रसिद्ध) वेलफाष्ट (उत्तर-पूर्वमें), कार्क (दक्षिणमें), लण्डनडरी (उत्तरमें) वाटरफोर्ड (दक्षिणमें, बन्दर)।

वृटिश साम्राज्यका अधिकार और उपनिवेश।

यूरोपमें—जिब्राल्टर, मालता और गाजो।

एशियामें—भारतवर्ष और ब्रह्मदेश, सिंहलद्वीप, ष्ट्रेट सेट्लमेण्ट, होङ्कङ्, साइप्रस, मलय उपद्वीप और अरबके मध्यस्थित आश्रित राज्य।

अफ्रिकामें—केप-कोलोनी, नेटाल, वासुतोलैण्ड, गाम्विया, सिराल्युन, गोल्डकोष्ट, लागोस, मोरिशस, सरोर, हेलेना, आसेनसनद्वीप, वृटिश दक्षिण और पूर्व अफ्रिका, निगारराज्य, मिस्रोयसूदन और आश्रित राज्य तथा नवाधिकृत ट्रान्सभल और ओरेञ्ज-फ्रि-ष्टेट इत्यादि।

अमेरिकामें—कनाडाराज्य, न्युफाउण्डलैण्ड, लाब्रादर, वर्मादस, वृटिश हन्डुरश, वृटिश गायना, फाकलैण्डद्वीप और पश्चिम भारतीय द्वीपपुञ्जोंके जामेका प्रभृति।

ओसेनियामें—अष्ट्रेलिया, तासमानिया, न्युजिलैण्ड, न्यूगिनि, फीजीद्वीपपुञ्ज और वोरनियोका कुछ अंश।

फ्रान्स—पेरिस (सिननदीके किनारे); लियँ (रोन

नदीके किनारे, रेशमी कारवारके लिये प्रसिद्ध) ; मार्सेलस (भूमध्यसागरके किनारे, प्रधान बन्दर); वर्दो (गैरोन नदीके किनारे, यहांसे ब्राण्डीमद्य, तेल और नाना प्रकारके फलोंकी रफ्तनी होती है) ; नांतस (लायर-नदीके किनारे वाणिज्यस्थान) ; हेवर (सिन नदीके मुहाने पर); काले (डोभर प्रणाली पर, यह नगर बहुत दिनों तक अङ्गरेजोंके दखलमें था) ।

फ्रान्सके अधिवासियोंको फरासी कहते हैं । ये लोग शिष्टाचारी, प्रफुल्लचित्त, सरल और युद्धप्रिय होते हैं । कृषिकर्म सामान्य लोगोंका प्रधान अवलम्बन है । शिल्पकर्ममें इङ्गलैण्डके वाद ही इसकी गिनती होती है। ये लोग शिल्पकार्यमें बड़े दक्ष होते हैं । मदिरा यहांका मूल्यवान् वाणिज्य द्रव्य है । यहांसे रेशम, पशम, चर्म और ब्राण्डीको रफ्तनी होती है । इस देशमें साधारणतन्त्र-शासनप्रणाली प्रचलित है ।

फ्रान्सका विदेशीय अधिकार ।

फ्रान्सके अधिकारमें कर्सिका द्वीप—प्रधान नगर आइयाचो है ।

एशियामें—चन्दननगर, पुंदिचेरी और माही (भारतवर्षमें), निम्नकोचिन, टङ्किन, फरासी-श्याम, आनम और कम्वोडिया (आश्रितराज्य), अफ्रिकामें आलजीरिया, ट्युनिस, सेनिगल, फरासी सूदन, फरासी गिनि, फरासी कङ्गो । इत्यादि ।

दक्षिण अमेरिकामें—फरासी गायना । ओसेनियामें—न्यु-कालिडोनिया, सोसाइटी दीपपुञ्ज इत्यादि ।

मोनाको—(भूमध्यसागरके किनारे छोटाराज्य, एक गवर्नर जेनरलके शासनाधीन । नगर—मोनाको, कण्डामाइन, मतकरेलो ।

वेलजियम—ब्रुसेलस (सेन नदीके किनारे, कार्पेट और जरीके कामके लिये प्रसिद्ध), अन्तोयार्प (वाणिज्य प्रधान नगर); गेण्ट (यहां विश्वविद्यालय है); लियेज (लोहेके कारवारके लिये प्रसिद्ध); आष्टेण्ड (बन्दर, उत्तरी महासागरके किनारे) ।

वेलजियमके अधिवासियोंको वेलजीआन कहते हैं। ये लोग कृषिकर्ममें पारदर्शी हैं। स्वाधीन कङ्गोराज्यमें इन्होंने उपनिवेश वसाया है ।

हालण्ड (नेदरलैण्ड—अमष्टार्डम (अमष्टले नदीके मुहाने पर), हेग (उपकूल पर), लेडेन (राइन नदीके किनारे), रटर्डाम (बन्दर) ।

यहांके अधिवासियोंको ओलन्दाज कहते हैं। ये परिश्रमी होते और समुद्रके किनारे एक वड़ा वांध खड़ा कर देशको रक्षा करते हैं। यह देश उर्वरा है।

ओलन्दाजोंका विदेशीय अधिकार ।

एशियामें—यवद्वीप, वोर्नियो, सुमात्रा, वाङ्का और आम्बयना, सिलिविसका कुछ अंश, न्यु गीनी, मलकस इत्यादि (भारत महासागरीय द्वीपपुञ्ज) ।

उत्तर और दक्षिण अमेरिकामें—कुराका और अरुवा आदि द्वीप तथा डच गायेना वा सुरिनम् ।

जर्मन-राज्य—मध्य यूरोपका २६ राज्य ले कर यह साम्राज्य संगठित है । इसमेंसे प्रूसिया, बभेरिया, ओर्टेम्बुग और शकसेनी प्रधान हैं ।

१९१४ ई०के महासमरके वाद जर्मनीका प्रजातन्त्र लोप तथा साधारणतन्त्र प्रचलित हुआ । वार्लिन नगर उसकी प्रधान नगरी है ।

प्रूसिया—वार्लिन (विश्वविद्यालयके लिये प्रसिद्ध); पोष्टडम (वार्लिनके पश्चिम; यहां वहुतसे राजप्रासाद हैं), फ्राङ्कफोर्ट (सेन नदीके किनारे); डानजिग् (भिष्टुला नदीके मुहाने परका बन्दर) ; ष्टेटान (पाडर नदीके मुहाने पर) ; मेमेल (उत्तरपूर्व सीमा परका वन्दर); कलोन (राइन नदीके किनारे, ओडिकोलन नामक गन्धद्रव्यके लिये प्रसिद्ध), एक्सलाशापेल वा आकेन (पश्चिम सीमा पर—उष्ण प्रस्रवणके लिये विख्यात) ।

बभेरिया—प्रधान नगर म्युनिक (यहां तरह तरहके चित्र और भास्करकार्य हैं) ; नुरेनवर्ग (मध्यभागमें) ।

जर्मनीका विदेशीय अधिकार ।

विगत महायुद्धमें जर्मनजातिका पराजयके साथ साथ वैदेशिक अधिकार भी विलुप्त हुआ ।

स्वीजर्लैण्ड—वार्ण (आर नदीके किनारे, यहां एक विश्वविद्यालय है) ; जेनेभा (रोण नदीके किनारे, घड़ीके

लिये विख्यात), ज़ुरिक (ज़ुरिक ह्रदके किनारे); नुशाटेल (नुशाटेल ह्रदके किनारे) । यहांके अधिवासियों को सुइस कहते हैं। यहां बहादुरी काष्ठ, घड़ी, पनीर आदिका विस्तृत कारबार है।

अस्ट्रो हुङ्गेरी—(Austro-Hungary)

अस्त्रिया—भियेना (दानियुब नदीके किनारे, प्रधान वाणिज्य स्थान); प्रेग (बोहिमियाका प्रधान नगर ; त्रियस्ते (आद्रियातिकसागरके किनारे) ; क्राको (भिष्टुला नदीके किनारे)।

हुङ्गेरी—बुदा वा ओफेन और पेस्त (दानियुब नदीके दोनों किनारे)।

१८७८ ई०में बोसनिया और हारजेगोविना (तुरुष्कके प्रदेश) अस्त्रियाके शासनमें आ गये हैं;

बसोनिया—सिराजिभो । हारजेगोविना-मुष्टर ।

रूसिया—सेण्टपिटर्स (पेट्रोग्राड राजधानी, नीभानदीके किनारे); आर्केञ्जल (उत्तर-डुइना नदीके मुहानेके पास); वार्सा (भिष्टुला नदीके किनारे, पहले पोलैण्डकी राजधानी थी) ; रीगा (रीगा उपसागरमें, रफतनी द्रव्यकी आढ़त) ; हेलसिंफोर्स (फिनलैण्डका प्रधान नगर); मस्को (मध्य भागमें, रूसियाकी प्राचीन राजधानी) ; निजनी-नवगरद (भलगा नदीके किनारे) ; ओडेसा और खारशन (कृष्णसागर तीरस्थ बन्दर) ; शिवास्तोपल (क्रिमियामें दुर्ग के लिये विख्यात) ; अष्ट्राकान (भोलगा नदीके मुहानेके पास, मछलीके व्यवसायके लिये प्रसिद्ध)।

अभी यह देश सोभिएट शासनमें पोलैण्ड और फिनलैण्डके साथ ६८ गवर्मेण्टमें विभक्त है। यह देश बहुत लम्बा चौड़ा है, इसी कारण स्थानभेदमें यहां शीत और ग्रीष्मादि ऋतुका तारतम्य होता है। उत्तर-महासागरके निकटवर्त्ती भूमि तुषारसे हमेशा ढकी रहती है। यूरोपके दूसरे दूसरे राज्योंकी अपेक्षा यहांकी जनसंख्या अधिक है तथा अधिवासी अपेक्षाकृत असभ्य है। रूसियाके सम्राट्को "ज़ार" (सीज़र शब्दका अपभ्रंश) कहते हैं । अब रूसदेशमें साधारणतन्त्र प्रचलित है। रूसियाका मध्य भाग और दक्षिण-पश्चिम भाग उर्व्वरा है। १८७८ ई०में वार्लिन नगरकी सन्धिके अनुसार वासाराविया प्रदेश रूसियाके अधिकारमें आया है। प्रधान नगर किशिनेफ है।

स्कान्दिनेभिया—नौरवे और स्वीडनका मिला हुआ नाम। यह राज्य पर्व्वत और ह्रदसे भरा है।

नौरवे—क्रिष्टियाना (दक्षिण-पूर्वमें यहां विश्वविद्यालय है ; वार्जेन और ट्रञ्जेम (पश्चिममें) ये दो वन्दर हैं।

नौरवे पहाड़ी देश है। १८१४ ई०में यह स्वीडनके साथ मिला दिया गया और यही राजधानी कायम की गई। किन्तु इन दोनों देशकी शासनप्रणाली भिन्न भिन्न है। नौरवेके अधिवासियोंको नरविजियन कहते हैं। ये लोग परिश्रमी और साहसी हैं।

स्वीडेन—ष्टाकहालम (मेला ह्रदके समीप, समुद्र-वन्दर) ; गोथेनवर्ग (दक्षिण-पश्चिममें वाणिज्यस्थान) ; कार्ल्सक्रोना (दक्षिण-पूर्वमें, स्वीडनके जङ्गी जहाजका प्रधान अड्डा); उपशाला (यहां विश्वविद्यालय है)।

स्वीडेनके अधिवासी 'स्वीडिस' कहलाते हैं। ये लोग सुशिक्षित और परिश्रमी होते हैं। लापलैण्ड (बोथनिया उपसागरके उत्तर) का कुछ अंश नौरवे-स्वीडन और कुछ अंश रूसियाके दखलमें है।

डेन्मार्क—(स्काटलैण्डके साथ)—कोपेन-हेगेन (जिलैण्डके पूर्व) ; एलशिनर। यहांके अधिवासियोंको दिनेमार कहते हैं।

आइसलैण्ड (प्रधान नगर रिकियाभिक) ; ग्रीनलैण्ड और पश्चिम भारतीय द्वीपपुञ्जके सेण्ट-टमास इत्यादि द्वीप डेन्मार्कके अधिकारमें हैं।

स्पेन—मादरिद, वार्सिलोना (उत्तर-पूर्व उपकूलमें) ; सलामनका (यहां विश्वविद्यालय है) ; सेविल (गोआदेलकुइवार नदीके किनारे) ; करुणा (अटलाण्टिक महासागरका वन्दर) ; जिब्राल्टर (दक्षिणमें अङ्गरेजाधिकृत)।

यहांके अधिवासियोंको स्पानियर्ड कहते है। भूमध्यसागरके माजर्का, मिनर्का, इभिका आदि द्वीप स्पेनके अधिकारमें हैं।

विदेशीय अधिकार।

प्रशान्त-महासागरमें—कारोलाइन, सुलु इत्यादि। अफ्रिकामें—केनारी-द्वीपपुञ्ज, फर्णान्दोपो, आनावन, सानजुआन इत्यादि। अमेरिकामें पर्त्तोरिका।

पिरेनिज पर्वतका आन्दोरा नामक छोटा प्रदेश स्पेन-

देशस्थ आर्गेलनगरके प्रधान धर्मयाजक और फ्रान्सके अधिकारमें है। यहां साधारण तन्त्र प्रचलित है।

पुर्त्तगाल—लिसवन (टेगस नदीके किनारे) ; अपर्त्तों (डाइरो नदीके मुहानेके समीप, पोर्ट नामक सुराके लिये विख्यात)।

पुर्त्तगाल ६ प्रदेशोंमें विभक्त है। यहांके अधिवासियों को पुर्त्तगीज कहते हैं। यहांकी जमीन उर्वरा तो है, पर कृषिकार्य्यकी वैसी उन्नति नहीं देखी जाती।

विदेशीय अधिकार—एशियामें गोआ, दमन, डिउ (भारतवर्षमें) ; ताइमुर (भारत-महासागरमें) ; माकौ (चीन-देशमें)। अफ्रिकामें—पुर्त्तगीज पूर्व और पश्चिम अफ्रिका, केप भार्द द्वीपपुञ्ज इत्यादि।

१७४५ ई०के भूमिकम्पसे लिसवनके ६०००० आदमी मरे थे।

इटली—रोम (टाइवर नदीके किनारे, यहांका सेण्ट-पीटर गीर्जा बड़ा ही सुन्दर है) ; नेपल्स (पश्चिम उपकूलमें, इटलीके मध्य बड़ा नगर) ; मिलान (जेलाण्ड) उत्तर-पूर्व उपकूलका प्रधान बन्दर ; भिनिस (आद्रियातिक सागरके उत्तर) ; फ्लोरेन्स, ब्रिन्दिसी (आद्रियातिक-सागरके किनारे अवस्थित)। यूरोपसे एशिया आने जानेके समय यहां डाक-ष्टीमर ठहरता है। यहांसे कैले पर्य्यन्त रेलपथ दौड़ गया है।

सम्प्रति सान्सेरिनो प्रदेशको छोड़ कर समस्त इटली (सार्डिनिया और सिसिली द्वीपके साथ) एक राजाके शासनाधीन हैं और इटलीका राज्य समझा जाता है। यहांके अधिवासियोंको इटालियन कहते हैं।

विदेशीय अधिकार—अफ्रिकामें इरीत्रिया (लोहितसागरके किनारे), सोमालिलैण्ड और गाला प्रभृति।

सिसिली-द्वीप—पालारमो।

सार्डिनिया—कागलियारो।

माल्टा—भोलिता (अङ्गरेजोंके भूमध्यसागरस्थ जङ्गी जहाजका प्रधान अड्डा)।

गाजो, कमिनो (सिसिलीके दक्षिण) अङ्गरेजोंके अधिकारमें है।

ग्रीस—आथेन्स (इजिना-उपसागरके उत्तर) ; पायस (करिन्थ-उपसागरमें प्रवेशपथके निकट, बन्दर) ; स्पार्टा (दक्षिणमें)।

अधिवासियोंको ग्रीक कहते हैं। ये लोग नाविकके कार्यमें बड़े पटु हैं।

यु रोपीय तुरुष्क—कुस्तुनतुनिया वा स्ताम्बुल (बासफोरस प्रणाली पर); गालीपोली (दार्दानेलिज प्रणालीके समीप) ; आद्रियानोपल ; थालोनिका।

इसलामधर्म ही यहांका साधारणधर्म है। वर्त्तमान समयमें यहां साधारणतन्त्र प्रचलित है।

काण्डिया (क्रीत)—काण्डिया।

करद राज्य—वुलगेरिया और पूर्व रुमानिया—सोफिया ; फिलिपोली (पूर्व रूमानियाका प्रधान नगर)।

पूर्व-रुमानिया बुलगेरियाके साथ मिल कर दक्षिण-बुलगेरिया कहलाता है।

सामसद्वीप (एशिया माइनरके पश्चिम)।

निम्नलिखित राज्य रूसतुरुष्कके युद्धके बाद १८७८ ई०में वार्लिन नगरकी सन्धिके अनुसार स्वाधीन राज्य समझे जाते हैं।

रूमानिया—बुखारेष्ट, जासे (मल्डेभियाका प्रधान नगर)। सर्बिया—बेलग्रेड। मोण्टेनिग्रो—सतिने।

मलडेभिया, वालासिया और दोब्रूजा प्रदेश ले कर रुमानिया राज्य बना है।

प्रकृति और अधिवासी।

यूरोप परिमाणमें एशियाके चौथाईसे भी कम है। भौगोलिक विवरणके अनुसार यह एशिया महादेशके उत्तर-पश्चिममें सम्बद्ध है। यूरोपका सारा देश भाग कर्कटक्रान्तिके उत्तरमें अवस्थित है, इसीसे यहां गरमी कम पड़ती है। फिर उत्तरका अधिकांश स्थान सुमेरु-केन्द्र (Arctic Zone)-के मध्यगत अर्थात् ५७ अक्षरेखाके उत्तरवर्त्ती देशोंमें रहनेसे ठण्ढ बहुत पड़ती है, जिससे धान गेहूं कुछ भी नहीं उपजता। इसी कारण उस देशमें दिन प्रतिदिन जनसंख्या घटती आ रही है। पर्वतमय स्काटलैण्डके उत्तर, नौरवे और स्वीडेनमें तथा रुसियाके उत्तरी भागमें बहुत बर्फ पड़ती है

जिससे कोई भी अनाज उपजने नहीं पाता। इसलिये देशके दक्षिण जिस भागमें गेहूं उपजता है, उसी भागमें आबादी देखी जाती है। यूरोपके पश्चिमकी अपेक्षा पूर्व दिशामें ही ज्यादा ठंढ पड़ती है। एक अक्षरेखा पर अवस्थित एडिनवरा नगरीकी अपेक्षा मस्को नगरमें अधिक शीतका प्रकोप देखा जाता है।

यूरोप और एशियाकी प्राकृतिक गठन ले कर यदि तुलना की जाय, तो दोनों महादेशको करीव करीव एक ही कह सकते हैं। यूरोपके दक्षिण स्पेन, इटली और तुरुष्क राज्य जिस प्रकार प्रायोपद्वीपाकारमें खड़ा है, एशियाके दक्षिण भी उसी प्रकार अरव, भारत और गङ्गा वहिर्भूत उपद्वीप (Trans-Gangetic Peninsula) विद्यमान हैं। स्पेनके उत्तरसे पिरिनिज, आलपस और कार्पेथियन पर्वतश्रेणी जिस प्रकार समसूत्रमें पूर्वपश्चिम-की ओर विस्तृत है, मध्यएशियाकी ऊँची भूमि पर भी उसी प्रकार एक समरेखामें गिरिश्रेणी विस्तृत देखी जाती है। उत्तर-यूरोप इङ्गलैण्डके पूर्वसे यूरल पर्वत तक जैसे समतलक्षेत्र पर विराजित है, एशियाका साइविरिया राज्य भी वैसी ही सुदीर्घ समतल प्रान्तसे घिरा हुआ है।

स्पेन, इटली और तुरुष्क-राज्य, ये तीनों देश यूरोपके मध्य ग्रीष्मप्रधान हैं। इस कारण यहां कुछ कुछ धान भी उपजता है। फ्रान्स, वेलजियम, प्रूसिया और पोलैण्डके समतलक्षेत्रमें काफी गेहूं उपजता है। वाल्टिक-से ले कर कृष्णसागर तक विस्तृत पोलण्ड और मध्य-रूसियाका विस्तीर्ण प्रान्तर भिसचूला, वाडर, निपर और निष्टर नदी द्वारा जलप्लावित हुआ करता है जिससे यह स्थान बहुत उर्वरा हो गया है। यह भाग यूरोपका शस्यभाण्डार कहलाता है। यहांसे इङ्गलैण्ड आदि यूरोपीय शस्यहीन देशोंमें गेहूंकी यथेष्ट रपतनी होती है।

ग्रीष्माभावके कारण यहां जंगली जीव जन्तु तथा वृक्षलतादिका बिलकुल अभाव है। रूसियाके उत्तर तथा अष्ट्रियाके पार्वतीय जंगलमें खूंखार भेड़िये (Wolf)-को छोड़ कर और कोई जन्तु नहीं मिलता। यहां तक कि चीता, विड़ाल आदि भी दिखाई नहीं देते। सेक्सपीयरके ग्रन्थमें जिस "bearded pard" नामक जीवका उल्लेख है वह स्पेनदेशीय Pardine lynx समझा जाता। यूरोप यद्यपि सभ्यताके ऊंचे सोपान पर चढ़ा हुआ है, तो भी यहां जंगली जन्तुओंकी संख्या दिन पर दिन घटती जा रही है। क्योंकि, भूतत्त्वकी आलोचनासे हमें मालूम होता है, कि प्राचीनकालमें यूरोपमें हाथी, गैंडे, बाघ, बैल और हरिण आदि जन्तु बहुतायतसे मिलते थे। शिकारप्रिय यूरोपवासीके हाथसे अथवा वर्फ पड़नेसे शायद उस जीवसङ्घका क्षय हो गया है। समस्त यूरोप महादेशका अनुसंधान करनेसे सौसे अधिक विभिन्न जातिके वृक्ष देखनेमें नहीं आते।

प्रकृति द्वारा इस प्रकार दीनभावमें रक्षित होने पर भी यूरोपवासी जागतिक उन्नतिकी ऊंची चोटी पर चढ़ गये हैं। क्या विज्ञान, क्या शिल्प, क्या साहित्य, क्या सामरिक कौशल, सभी विषयोंमें यूरोपीयगण अन्यान्य देशवासीकी अपेक्षा उन्नतिकी उच्च सीमा पर पहुंच गये हैं।

यूरोपवासी अपनेको प्राचीन आर्यवंशसंभूत बत-लाते हैं। धीरे धीरे केल्टिक-इटाली वा रोमक हेले-नीय ट्युटन, लेहिश और श्लाभनीयोंने पारस्य वा मध्य-एशियासे यूरोपमें आ कर उपनिवेश बसाया। स्काटलैण्ड आयरलैण्ड, वेलस, कार्नवाल, पश्चिम-फ्रान्स और स्पेन-में केल्टिकोंका वास देखा जाता है। इटली, फ्रांस, स्पेन, पुर्त्तगाल, उलासिया और मलडाभिया नामक स्थानमें रोमकगण तथा ग्रीस और ग्रीसीयद्वीपोंमें हेलेनोंका वास है। अंगरेज, ओलंदाज, जर्मन और स्कादिनेवीयगण ट्युटन शाखा कह कर परिचित हैं। ट्युटनोंको प्राचीन मिसो-गेथिक (Moeso-gethic) भाषाके साथ सामञ्जस्य करके अध्यापक वपने (Comparative grammar) लिखा है, कि बङ्गलाकी अपेक्षा यह भाषा अधिक-तर संस्कृतकी अनुगामी है। तुरुष्क, हङ्गेरी, वोहेमिया और पोलैण्ड प्रान्तर भागमें शेष औपनिवेशिक आर्योंके वंशधर वास करते हैं। एतद्भिन्न यूरोपके नाना स्थानोंमें प्रायः तीन लाख "जिपसी" (Gipsy)-का वास है। उनकी भाषा और आकृति प्रकृति प्रायः हिन्दू-सी है। भारतीय डोमोंके साथ ये बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

समागत आर्यौंको छोड़ कर पिरिनिज और लैपलैण्ड भूभागमें कुछ प्राचीन अनार्य जाति रहती है। मोङ्गलीय वा तुर्कगण तुरुष्कमें, तातारगण पूर्व और दक्षिण रूसियामें तथा मगयारगण हुङ्गेरीमें आ कर बस गये थे। तुर्कोंको छोड़ कर वर्त्तमान यूरोपके सभी अधिवासी प्रायः ईसा-धर्मावलम्बी हैं। इन ईसाइयोंके मध्य फिर साम्प्रदायिक प्रभेद है। ग्रीकसमाज (Greek-church) के नेता रूस-प्रेसिडेण्ट, रोमन-कैथलिक समाजके नेता रोमके पोप हैं। प्रोटेष्टाण्ट समाजके कोई विशिष्ट नहीं हैं। धर्मके अनुसार लाटिन वा रोमकगण रोमन-कैथलिक, ट्युटनगण प्रोटेष्टाण्ट और रूस-साम्राज्यवासी ग्रीकचर्चके अधीन हैं। ग्रीक और क्रीतवासियोंके मध्य भी रोमन-कैथलिक अधिक है।

यहांकी जनसंख्या ३००० लाख है। इनमेंसे इटालीय, फरासी, स्पेनीय और पुर्त्तगीजोंकी भाषा बहुत कुछ लाटिन मिश्रित है। जर्मन, फलेमिस, ओलन्दाज, स्वीडिस, दिनेमार और अङ्गरेजोंकी भाषामें ट्युटनोंकी भाषाका प्रभाव देखा जाता है। पोलैण्ड, रूसिया, बोहेमिया और यूरोपीय तुरुष्कमें स्क्लामैनिक भाषाकी छाया देखी जाती है। वेल्स, स्काटलैण्ड, आयर्लैण्ड, उत्तरपश्चिम फ्रान्स और लापलैण्डमें केल्टिक भाषाका व्यवहार है। वर्त्तमान ग्रीक और अन्यान्य कई एक भाषा अभी यूरोपमें प्रचलित है। प्राचीन ग्रीक भाषाके साथ वर्त्तमान ग्रीक भाषाका बहुत प्रभेद देखा जाता है।

वर्त्तमान कालमें यूरोप महादेश नियमतन्त्र, प्रजातन्त्र और साधारणतन्त्र नामक शासनप्रणालीसे परिचालित होता है। राजकीय विभागका लक्ष्य करनेसे जाना जाता है, कि यूरोप-महादेश रूसिया, अष्ट्रिया, हङ्गेरी, जर्मन और तुरुष्क नामक चार साम्राज्योंमें विभक्त है। प्रूसिया, वभेरिया, बुटेम्वर्ग और साक्सेनी राज्य, बदेन, मेक्लेनवर्ग, स्केरिन, हेसी, ओल्डेनवर्ग, सेक्सवीमार, मेक्लेनवर्ग और व्रान्सवीक, स्क्समेनिञ्जन, एनहाल्ट, सेक्सकोवर्ग-गोथा और सेक्स-अल्टोवर्ग नामक डच तथा वलवेक, लिपे, स्कार्जवर्ग, रुडोलष्टड, स्कार्जवर्ग-सोण्डरशुजेन, स्कोडम्बर्ग-लिपे और रयुस क्रीज नामक सामन्तराज्य (Principality) तथा एलससलोरेन प्रदेश और हम्बर्ग लुबेक, ब्रेमेन आदि फ्रि-टाउन ले कर जर्मन साम्राज्य संगठित की है।

तुरुष्क साम्राज्य तुरुष्क, सर्भिया, मण्टिनिग्रो और रुमानिया ले कर बना है। इसके सिवा बेलजियम, डेन्मार्क, ग्रेटब्रिटेन और आयर्लैण्ड, ग्रीस, होलैण्ड, इटली, स्पेन, पुर्त्तगाल, स्वीडेन और नारवे तथा जर्मनी-के अन्तर्भुक्त चार राज्य ले कर कुल १३ राज्य हैं। आंदोरे, फ्रान्स, सानमारिणो और स्वीजर्लैण्ड नामक चार राज्य साधारणतन्त्र माने जाते हैं।

पौराणिक और ऐतिहासिक।

पौराणिक ग्रीक काव्य पढ़नेमें मालूम होता है, कि जुपिटरने यहां यूरोपा (Europa)-को ला कर रखा था, इसीसे यह स्थान यूरोप कहलाता है। बोकार्ट (Bochart)-ने फिनिकीय urappa शब्दसे यूरोप-शब्दकी व्युत्पत्ति स्थिर की है। फिनिकीय urappa और ग्रीक lenks prosopos शब्द एक पर्यायवाचक है जिसका अर्थ श्वेत वा सुन्दरवर्ण है। शायद यूरोपवासी-का श्वेत शरीर देख कर ही इस महादेशका नाम यूरोप-रखा गया होगा। मूसोंगेबेलिन (M. gebelin) फिनिकीय 'Wrab' शब्दसे नामोत्पत्ति करते हैं। उनके मतसे फिनि-किया अर्थात् एशियाके पश्चिम अवस्थित होनेके कारण इस स्थानका नाम यूरोप हुआ है। Wrab शब्दका अर्थ है पश्चिम। क्योंकि फिनिकीय वणिक् बहुत पहले-से वाणिज्यप्रधान भूमध्यसागरके यूरोपीय उपकूलमें आ कर बस गये थे। वे लोग पश्चिम आये थे, इसीसे इस स्थानका नाम Wrab यानी पश्चिम रखा होगा।

यूरोपीय पुराविद् एकवाक्यसे स्वीकार करते हैं, कि यूरोपके अधिवासी एशियासे यहां आये हुए हैं। जिस समय एशिया महादेशमें बड़ा और महासमृद्धिशाली साम्राज्य विद्यमान रह कर जातीय उन्नति कर रहा था, उस समय यूरोप बर्बरतामें निमज्जित था। यूरोपीय राज्योंमें सबसे पहले ग्रीकराज्य बर्बरता-से उठा और थोड़े ही समयमें उच्चशिक्षा और सभ्यता-की चरम सीमा पर पहुंच गया। ग्रीक लोगोंने जातीय उन्नतिके साथ साथ दक्षिण-इटली तथा गल और स्पेन-राज्यके समुद्रके किनारे जा कर उपनिवेश बसाया। इसी

समयसे रोम नगरकी समृद्धिका परिचय पाया जाता है। ईसाजन्मसे ८ शताब्दी पहले रोमराज्यकी प्रतिष्ठा हुई थी।

अभ्युत्थित रोमके वीरचेता अधिवासियोंके बाहुबलसे धीरे धीरे समग्र इटली और आखिर यूरोपमें एक साम्राज्य स्थापित हुआ।

रोम-साम्राज्यका अधःपतन होने पर यूरोपमें वर्बर-जाति (Barbarians)की प्रतिपत्ति विस्तृत हुई। वर्बरोंने एशियाके नाना स्थानोंसे दलके दलमें आ कर यूरोपको लूटा और वहांके अधिवासी पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। वर्बरजातिके समागमके बाद कई सदी तक यूरोप महादेशमें भयावह अराजकतास्रोत वहता रहा था। पीछे भिसिगथने (Visigoth)-ने स्पेन-राज्यमें, फ्राङ्कोंने (Franks) गलराज्यमें, लम्बर्डोंने (Lombard) इटलीमें, साक्सनोंने (Saxon) उत्तर-जर्मनीमें, अभेरोने (The Avari) दक्षिण जर्मनीमें और आखिर एङ्गलोसेक्सनोंने व्रिटेनराज्यमें स्वतन्त्र भावसे राजपाट बसाया। पहले यूरोपमें ग्रीकसाम्राज्य ही कुस्तुनतुनियामें विगत रोमराज्यका परिचायक था।

प्रायः ८०० सदीमें विख्यात योद्धा और दण्ड-विधाता सार्लिमैन (Charlemayne)-ने पश्चिम यूरोपका अधिकांश स्थान जीत कर एक विस्तीर्ण साम्राज्य बसाया था। उन वीरवरके वंशधरोंकी कमजोरीके कारण शासनशृङ्खलामें शिथिलता पड़ गई। पीछे गृहविवादके कारण वह साम्राज्य चौपट लग गया जिससे फ्रान्स, जर्मनी, इटली, लोरेन, प्रोभेन्स, वर्गण्डी आदि छोटे छोटे राज्योंकी उत्पत्ति हुई। १०वीं शताब्दीमें उत्तर यूरोपका महासमृद्धिसम्पन्न रूसिया, स्वीडेन, नारवे, देनमार्क आदि राज्य बलिष्ठ हो कर यूरोपीय दूसरी दूसरी शक्तिका मुकाबला करने लगा। ८वीं सदीमें मूरगण स्पेनीय प्रायोद्वीप पर आक्रमण कर राज्य-शासन करने लगे। उनके समृद्ध राज्यशासनका परिचय यथास्थान दिया गया है। कर्डोभाकी मूरकीर्त्ति जगत्‌में अतुलनीय है। लियों, कष्टाइल, आर्गो और पुर्त्तगालके खृष्टान राजाओंके अभ्युदयसे उन्होंने स्पेन-साम्राज्यका परित्याग कर १४५३ ई०में कुस्तुनतुनिया पर आक्रमण कर दिया और उसे जीत कर वहीं राजपाट बसाया। इसी समयसे यूरोपके समृद्धिशाली अपरापर राज्योंके प्रतिष्ठा-कालकी कल्पना की जाती है।

मूर देखो।

१६वीं सदीमें युनाइटेड नेदरलैण्ड प्रदेशोंने स्पेनीय-शासनशृङ्खलाको उच्छेद कर स्वाधीन-मुकुट धारण किया तथा १८वीं सदीमें प्रुसिया भी स्वतन्त्र हो गया। ९११ ई०में संगठित जर्मन-साम्राज्य १८०४ ई०में सम्यक्‌रूपसे विच्छिन्न हो गया। ९९२ ई०में पोलैण्ड एक स्वतन्त्र राज्यरूपमें गिना जाने लगा था। किन्तु १८३२ ई०के रूस-राजादेशानुसार यह रूस-साम्राज्यभुक्त हुआ। प्रुसिया और अष्ट्रिया पहले ही कुछ प्रदेशको जीत कर स्वतन्त्र हो गया था।

१७८९ ई०के फरासी-विप्लवसे यूरोपमें जो खूनखरावी हुई थी, उससे यूरोपके अनेक ऐतिहासिक परिवर्त्तन हुए थे। फरासी-सम्राट् १म नेपोलियनने इस समय यूरोपमें सभी जगह विजय वैजयन्ती उड़ाई थी। फरासी-साम्राज्यके अधःपतनके बाद पूर्वतन राज्य-शासनको प्रथा बहुत कुछ बदल गई थी। १८२७ ई०में ग्रीकगण तुरुष्क साम्राज्यका अधोनता-पाश तोड़ कर स्वाधीनभावमें राज्यशासन करने प्रवृत्त हुए। १८३१ ई०में नेदरलैण्ड, हालैण्ड और वेलजियम नामक दो स्वतन्त्र राज्योंमें विभक्त हो गया। ३य नेपोलियनके साथ जब इटलीराजका मेल हो गया, तब अष्ट्रिया-सम्राट् लम्बर्डि-राज्य फरासी-सम्राट्‌के हाथ समर्पण किया। नेपोलियनने पीछे उसे सार्डिनिया राज्यमें मिला लिया था। १८६१ ई०में रूमानियाका सामन्तराज्य संगठित हुआ। १८७१ ई०में अष्ट्रियाको छोड़ कर जर्मन-सामन्तने सभी राज्य मिला कर एक साम्राज्यकी प्रतिष्ठा की। १८७४ ई०में वार्लिन नगरके सन्धि-पत्रके अनुसार तुरुष्क सुलतानका कुछ अधिकृत प्रदेश स्वाधीन राज्यरूपमें गिना जाने लगा था।

१९१४ ई०के महायुद्धके फलसे यूरोपकी राष्ट्रीय अवस्थामें बहुत हेरफेर हो गया है। युद्धके समय जर्मनी, अष्ट्रिया, तुरुष्क और बुलगेरिया ये चार यूरोपीय राज्य एक पक्षमें तथा दूसरे पक्षमें युक्तराज्य (The United

kingdom), फ्रान्स, रूशिया, सर्बिया (Serbia), इटली आदि राज्य थे। युद्धके फलसे रूशिया, जर्मनी और अष्ट्रिया ये तीन राज्य चौपट लग गये तथा उनके स्थान पर कितने साधारणतन्त्र-राष्ट्र खड़े हो गये। इनमेंसे पोलैण्ड तथा चेको-स्लभेकिया (Czecho-slovakia)-का अस्तित्व युद्धके पहले न था। फ्रान्स और रूशियाके राजतन्त्रका उच्छेद हो कर साधारणतन्त्र स्थापित हुआ है। जर्मन साधारणतन्त्रराष्ट्र पहलेकी तरह मिल कर शासन कार्य चलाते हैं। वार्लिन आज भी जर्मन-साधारणतन्त्र-युक्तराष्ट्र (German Republican Confederation)-की राजधानी है। बहुतसे छोटे बड़े राज्य ले कर जर्मन-साम्राज्य संगठित हुआ था। प्रुशियाके राजा (The Kaiser) सम्राट्की उपाधि धारण कर सभी भूभागोंका शासन करते थे। युद्धमें पराजित हो कर १६१८ ई०के नवम्बर मासमें वे हालैण्ड भाग गये हैं। जर्मनीके अन्यान्य राजे भी सिंहासनच्युत हुए हैं। ११३४२४० वर्गमील उपनिवेश जर्मनीके हाथसे निकल गये हैं तथा उसे महती क्षति उठानी पड़ी है। १८७० ई०के युद्ध (Franco-Prussian war)-में प्राप्त Alsace Lorraine प्रदेश फ्रान्सको लौटा दिया गया।

उक्त युद्धके पहले अष्ट्रिया और हङ्गेरी एक सम्राट्के अधीन था, अभी वे दोनों नष्टप्राय राज्य दो पृथक् साधारणतन्त्रराष्ट्रमें परिणत हुए हैं। युद्धके पहले अष्ट्रियाका आयतन १३४६०० वर्गमील था; अभी ४०००० वर्गमील हो गया है अर्थात् पोर्टुगालके आयतनसे कुछ बड़ा है। युद्धके पहले हङ्गेरीका आयतन १२५४०० वर्गमील था, अभी उसका आधा रह गया है। पहले यूरोपमें तुरुष्कका राज्य बहुत थोड़ा था; १८७८ और १६१३ ई०के मध्य तुरुष्क अपने विशाल साम्राज्यका अधिकांश खो बैठा था। युद्धके बाद यूरोपीय तुरुष्कका कोई कोई अंश भी ग्रीसके अधिकारभुक्त हो गया है। अभी तुरुष्कने ग्रीसको युद्धमें परास्त कर पूर्व-थ्रेस और एड्रियानोपल शहर पुनः दखल कर लिया है।

युद्धके पहले युक्तराज्य, रूशिया, जर्मनी, अष्ट्रिया, फ्रान्स और इटली ये छः राज्य "यूरोपकी छः महाशक्ति" (The Six Great Powers of Europe) कहलाते थे; अभी उसके बदलेमें युक्तराज्य, अमेरिकाका युक्तराष्ट्र (The United states of America), फ्रान्स, इटली और जापान "पृथिवीकी पांच महाशक्ति" (The five Great World Powers) कहलाते हैं।

युद्धके बाद पृथिवीका अधिकांश राष्ट्र सङ्घबद्ध हुआ है। इस सङ्घका नाम है जाति-सङ्घ (League of Nations)। सङ्घके उद्देश्य चार हैं:—(१) भविष्यमें जिससे पृथिवी पर अधर्म युद्ध होने न पावे, उसका उपाय अवलम्बन करना; (२) जहां तक सम्भव हो सके, पृथिवीके सभी राष्ट्रोंकी सेना और नौविभागका खर्च घटाना; (३) पृथिवीके राष्ट्रोंको अपना अन्तर्जातिक दायित्व पालन करनेके लिये बाध्य करना; (४) पृथिवीकी अनुन्नत जातियोंके सुशासन और उन्नतिलाभका प्रयत्न करना। सङ्घका प्रधान केन्द्र (head-quaters) स्वीजलैंण्डका जेनेभा नगर है। अमेरिकाके युक्तराष्ट्रके भूतपूर्व *President* Dr. Woodrow Wilson-के विशेष उद्योगसे यह सङ्घ प्रतिष्ठित हुआ है। इन्हींके परामर्शानुसार युक्तराष्ट्र, युक्तराज्य इत्यादि मित्रशक्तिके पक्ष लेनेके कारण महासमर शीघ्र शेष हुआ था। दुःखका विषय है, कि युक्तराष्ट्रका गवर्मेण्ट इस सङ्घमें शामिल न हुई। युक्तराज्य और अन्यान्य मित्रशक्ति, जापान, भारतवर्ष इत्यादि पहले ही सङ्घमें मिले हुए हैं। अष्ट्रिया, बुलगेरिया इत्यादिको १६२० ई०के दिसम्बर मासमें मिला लिया गया है।

यूरोपियन (अं० वि०) १ यूरोपका, यूरोप-सम्बन्धी। (पु०) २ यूरोप महादेशके किसी देशका निवासी।

यूरोपीय (अं० वि०) यूरोप सम्बन्धी, यूरोपका।

यूष (सं० पु० क्ली०) यूष-क। मुद्गादि क्वाथरस, मूंग आदिका जूस।

"वैदलान् वितुषान् भृष्टान् चतुर्भागाम्बुसाधितान्।
निष्पीड्य तोयमेतेषां संस्कृतं यूष उच्यते॥"
(पर्यायमु०)

दालको भून कर उसकी भूसी अलग कर दे। पीछे उसे चार भाग जलमें सिद्ध कर लवणादि मिलावे। अनन्तर उसे अच्छी तरह छान ले, इसीका नाम यूष है। यह यूष कई प्रकारका होता है।

इस यूषका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—मूंगका जूस कफनाशक और अग्निकर है। यह बहुत उमदा पथ्य है। मूंगका जूस अनार और दाखके साथ बनानेसे उसे रागषाड़व कहते हैं। लवण मिला हुआ मसूर, मूंग और कुलथीका जूस रुचिकर, लघुपाक और दोषका अवरोधी होता है। यह कफ और पित्तका अविरोधी, वातव्याधिके लिये उपकारी तथा वायुरोगीके लिये सुपथ्य, रुचिकर, अग्निकर, मुखप्रिय और लघुपाक होता है।

पटोल और नीमका जूस कफघ्न, मेदशोधक, पित्तनाशक, अग्निकर, मुखप्रिय तथा कृमि, कुष्ठ और ज्वरनाशक माना गया है। मूलकका जूस श्वास, कास, प्रतिश्याय, प्रसेक, अरुचि और ज्वरनाशक तथा कफ, मेद और गलरोगमें विशेष उपकारी है। कुलथीका जूस वायुनाशक, श्वास, पीनस, कास, अर्श, गुल्म और उदावर्त्त रोगमें हितकर होता हैं। अनार और आंवलेसे जो जूस तैयार किया जाता है वह मुखप्रिय, दोषका संशमनकारी और लघुपाक होता है। मूंग और आंवलेका जूस बलकर, पित्तजनक, मूर्च्छा और मेदोनाशक, पित्त और वायुदमनकारी, संग्राही तथा कफ और पित्तका हितकर है। जौ, बेर और कुलथीका जूस कण्ठशोधनकर और वायुनाशक माना गया है। सभी प्रकारके मूंगादि और शमीधान्यका यूष उक्त गुणसम्पन्न बृंहण और बलवर्द्धक होता है।

यूषमात्र ही हृद्य तथा वायु और कफका हितकर है। जिस जूसमें तैल, नमक, घी और झाल नहीं रहता उसे अकृत यूष और जिसमें रहता है उसे कृतयूष कहते है। दही, कांजी और फलाम्लरसके साथ जो यूष बनाया जाता है वह लघु और हितकर है। संस्कृतकी अपेक्षा असंस्कृत यूष लघु और हितकारी है। दही, दहीके पानी और अम्ल द्वारा तैयार किये गये रसको काम्बलिक यूष कहते हैं।

मांसका जूस तृप्तिकर; श्वास, कास और क्षयरोगनाशक, वातघ्न, तृप्तिकारक, संघातकर तथा शुक्र, ओजः और बलवर्द्धक होता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४५ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है,—शमीधान्य (मूंग मसूर आदि)-को अठारह गुने जलमें सिद्ध करे। जब कुछ गाढ़ा हो जाय, तब उसे उतार कर छान ले, इसीका नाम यूष है। यह रुचिकारक होता है। यूष बनानेका दूसरा उपाय —मूंग, मसूर आदिको दाल एक पल, सोंठ आधा तोला और पीपल आध तोला, इन्हें एकत्र चार सेर जलमें पाक करे। जब चतुर्थांश बच जाय, तब उसे नीचे उतार ले। यह यूष बलकारक, लघुपाक, रुचिकारक, कण्ठशोधक तथा कफनाशक होता है।

मूंगजूसविधि—दो पल और मूंग चार सेर इसे जलमें सिद्ध करे। जब एक सेर बच जाय, तब उसे नीचे उतार कर हाथसे मथे, ऐसा करनेसे दाल और जल एकदम मिल जायगा। अब उसे छान कर एक पल अनारका रस ऊपरसे डाल दे। पीछे उसमें सैन्धव, सोंठ और धनिया, इनका मिला हुआ चूर्ण चार तोला तथा जीरा और पीपल एक तोला मिलाना होगा। यह मुद्गयूष अति उत्कृष्ट, अग्निदीप्तिकारक, शीतवीर्य, लघु, व्रण, दाह, कफ, पित्त, ज्वर और रक्तदोषनाशक है। मिलित मूंग और आंवलेका जूस भेदक, शीतवीर्य, पित्त, वायु, पिपासा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम और मदरोगनाशक माना गया है।

मसूरका जूस धारक, पुष्टिकारक, मधुररस और प्रमेहरोगनाशक है। (भावप्र०) ज्वरादि रोगमें इस प्रकार तैयार किये हुए यूषका पथ्य देना चाहिये।

हारीतके प्रथम स्थानके नवम अध्यायमें इस यूषकी विधि और गुणका विषय लिखा है। सारकौमुदीके मतसे रन्धनद्रव्यको ही यूष कहते हैं। "रन्धनद्रवो यूषः" (सारकौ०)

(पु०) यूषतीति यूष-क। २ ब्रह्मदारुवृक्ष।

(शब्दरत्ना०)

यूसुफ—आकाएद यूसुफ नामक देवतत्त्वसम्बन्धीय एक अरबी ग्रन्थके रचयिता। अहमदनगरमें इनका वासस्थान था।

यूसुफ अमीरी (मौलाना)—एक मुसलमान कवि। ये शाहरूक मिर्जाके आश्रयमें प्रतिपालित हो उनके पुत्र वाइसनघर मीर्जाकी गुणवर्णना कर एक काव्य बना गये हैं।

यूसुफ अबुल हाजी—स्पेन देशके अन्तर्गत ग्रानाडाराज्यके मुर राजा। ये १३३३ ई०में राजसिंहासन पर बैठे थे। इनके द्वारा अलहम्ब्राके विख्यात कारुकार्यसे पूर्ण प्रासादका निर्माणकार्य समाप्त हुआ। १३४८ ई०में इन्होंने वहांके दुर्गका विचार नामक प्रवेश-द्वार निर्माण कराया था, जिसका शिल्पनैपुण्य देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। १३५४ ई०में अलहाम्ब्राकी मसजिदमें गुप्त शत्रुसे मारे गये।

यूसुफ अली खां—रामपुरके एक नवाव। १८५७ ई०के गदरमें इन्होंने अंगरेजोंको खासी मदद पहुंचाई थी जिसके पुरस्कारस्वरूप लार्ड कैनिंगने इन्हें वार्षिक लाख रुपये आमदनीकी एक भूसम्पत्ति और महारानी भारतेश्वरी विक्टोरियाने 'स्टार आव इंडिया'-की उपाधि दी थी।

यूसुफ आदिल शाह—बीजापुरके आदिलशाही वंशके प्रतिष्ठाता। इनका आदि नाम यूसुफ आदिल था। ये दाक्षिणात्यके वाह्मनी-राजवंशधर सुलतान २य महम्मद शाहके एक सभासद थे। उक्त सुलतानके मरने पर सुलतान २य महमूद राजा हुए। जब यूसुफ आदिलने देखा, कि उनकी मन्त्रिमण्डली उन्हें ध्वंस करनेके लिये षड़यन्त्र कर रही तब वे अह्मदाबाद छोड़ कर अपनी राजधानी बीजापुर चले गये। पहले हीसे वे बीजापुरके शासनकर्त्ता थे।

यूसुफ जब अह्मदनगर छोड़ कर आ रहे थे उस समय बाह्मणीराजके वैदेशिक सेनापति और प्रधान प्रधान कर्मचारियोंने उनका अनुगमन किया था। इस तरह अपने दलके साथ लौटकर उन्होंने वहां एक स्वतन्त्र राज्य स्थापन करना चाहा। उन्होंने आस पासके सभी स्थानोंको युद्धमें जीत कर अपने राज्यकी सीमा बढ़ाई।

इस प्रकार जब वे अर्थबल और सैन्यबलसे राजशक्तिसम्पन्न हो गये; तब उन्होंने १४८९ ई०में मालिक अह्मद बहरीके अनुमोदनसे शाहकी उपाधि ग्रहण कर अपनेको राजा कह कर घोषणा कर दिया। दोर्दण्ड प्रतापसे २१ वर्ष राज्य कर १५१० ई०में बीजापुर नगरमें उनका देहान्त हुआ।

सबोंकी धारण है, कि ये यूसुफ अनाटोलियावासी २य मुरादके पुत्र थे। राजरक्षी सेनादलमें नियुक्त करनेके लिये एक वणिकसे खरीद कर वे अह्मदाबाद लाये गये थे। आदिलशाही वंश देखो।

यूसुफ खाँ (मीर्जा)—एक मुगल सेनापति। वे अकबर शाहके अधीन ढाई हजारी मनसवदार थे। पीछे उक्त सम्राट्के राजत्वके ३० वर्षमें काश्मीरके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। दाक्षिणात्यमें अबुल फजलके अधीन उन्होंने बड़ी वीरता दिखाई थी। १०१० हिजरीमें उनकी मृत्यु हुई। ये सैयदवंशीय और मसदवासी थे।

यूसुफ खाँ—सिन्धुप्रदेशमें एक मुसलमान शासनकर्त्ता। वे सम्राट् शाहजहान्के समय विद्यमान थे। उनका बनाया ठट्टका इदगा शिल्पनैपुण्यका परिचय देता है। उसके शिलाफलकसे मालूम होता है, कि १६३३ ई०में उसका गठन-कार्य्य समाप्त हुआ था।

यूसुफजै—उत्तर-पश्चिम-भारत सीमान्तवासी अफगान जाति। ये लोग स्वाधीन हैं। कुछ अङ्गरेजीराज्यमें और कुछ अङ्गरेजी सीमाके बाहर रहते हैं। हजारनो और महावन पर्वत श्रेणीके उत्तर स्वाधीन स्वात और बुनेर जिलेमें तथा उक्त दोनों पर्वतके दक्षिण स्वात और सिन्धु नदीके मध्यवर्त्ती समतल भूभागमें इनका वास है। ये लोग जिस विस्तीर्ण भूभागको अधिकार किये हुए हैं उसके उत्तर चित्रल और यसीन, पश्चिम बजावर और स्वातनदी, दक्षिण काबुल नदी और पूर्वमें सिन्धुनद है।

हजारनो और महावन पर्वतके दक्षिण जो सब यूसुफजै रहते हैं वे अङ्गरेजराजके शासनाधीन हैं। वहां प्राचीन पुष्कलावती प्रदेश विद्यमान था, ऐसी प्रत्नतत्त्वविदोंकी धारण है। युसुफजै जातिकी सारी वासभूमि प्राचीन गान्धार राज्यके अन्तर्भुक्त देखी जाती है।

यूसुफजैने गजनी और कन्धारके मध्यवर्त्ती अपना प्राचीन वासभूमिका परित्याग कर काबुलमें बसनेकी चेष्टा की। इसी उद्देश्यसे इन्होंने मिर्जा उलघबेग काबुलीके शासनकालमें कई बार काबुल पर आक्रमण कर दिया था। किन्तु कृतकार्य्य न होनेसे वे उसको छोड़ कर स्वात और बजावर प्रदेश चले आये। उस समय वहां सुलतानी वंशके राजे राज्य करते थे। सुलतानीगण

अपनेको अलेकसन्दरके वंशधर बतलाते थे। शायद वे लोग यवन-राजवंशकी कोई शाखा होंगे।

इन्होंने पहले स्वात और बजावर, पीछे काबुल और सिन्धुनदके मध्यवर्त्ती प्रदेशको जीता था। अभी लौंदे सिन्धु वा काबुल नदीके पूर्ववर्त्ती सभी भूभागों पर इनका अधिकार है। सम्राट् बाबर शाहके समय यद्यपि इनके आये थोड़े ही दिन हुआ था, तोभी उसी थोड़े समयके अन्दर इन्होंने अपने वीर्यबलसे एक विस्तीर्ण उपनिवेश बसा लिया था। १८५२ ई०में सानी-रानीजै शाखाके यूसुफजैगण अङ्गरेजी सीमाको लांघ कर उपद्रव मचाने लगे। इस समय सर कोलिन काम्बेल एक दल सेना ले कर उन लोगोंके विरुद्ध रवाना हुए। रानीजैने अपनी हार कबूल की और फिर वे कभी भी अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े न हुए। रानीजै अङ्गरेजी अधिकारके बाहर सानी और स्वात प्रवाहित जिलेमें वास करते हैं।

यूसुफजै प्रान्तरमें जो विस्तीर्ण ध्वंसावशेष पड़े हैं उनमेंसे अधिकांश आज भी उखाड़ा नहीं गया है। वहां एक समय बौद्धविहारादि विद्यमान थे। सावलधर, शादरी बहलोल और जमालगुढ़ीकी विविध प्राचीन कीर्त्ति और प्रस्तर-प्रतिमूर्त्तिसे जान पड़ता है, कि यहां प्राचीन कालमें भारतीय भास्करोंने यवनराजाओंके अधीन रह कर ये सब बौद्धमूर्त्ति बनाई थीं। आज भी स्वात, बजावर, बुनेर, नवाग्राम, खड़की पाजा आदि स्थानोंमें अतीत कीर्त्तिकी असंख्य निमज्जित स्मृति फैली हुई हैं। इन सब कीर्त्तियोंको देखनेसे प्राचीन समृद्धिका पूरा परिचय पाया जाता है। दुर्भाग्यको विषय है, कि इस्लाम धर्मका अभ्युदय होनेसे वे सब तहस नहस हो गये। गजनीपति महमूदके हाथसे ही इसका अन्तिम ध्वंस हुआ था।

युसुफजै अपनेको ही प्रकृत अफगान और बनि-इस्रायलके वंशधर बतलाते हैं। इनके नामका अर्थ यूसुफ (Joseph)-का वंशधर वा यूसुफजात हैं तथा इनके देशके कितने स्थानवाचक और जातिवाचक नाम बाइबिल ग्रन्थके नामानुसार ही कल्पित देखे जाते हैं।

ये लोग प्रतिहिंसा-प्रिय, परश्रीकातर, अर्थलोलुप, दुर्द्धर्ष, स्वाधीनताभिलाषी और रणकुशल होते हैं। बंधुके प्रति विश्वास और आश्रितके प्रति दया इनका एक महत् गुण है। केवल खाटक आदि अन्यान्य अफगान जातियों हीके साथ नहीं, वरन् १८४६ ई०के विजयी सिख जातिके विरुद्ध युद्ध करके इन्होंने अपने युद्धकौशल और दुर्द्धर्षताका यथेष्ट परिचय दिया था।

यूसुफ महम्मद खाँ—सम्राट् अकबर शाहका वैमात्र भाई और पांच हजारी मनसबदार। ९७३ हि०में अधिक शराब पी लेनेसे उसकी मृत्यु हुई थी।

यूसुफ महम्मद खाँ—तारीख महम्मद-शाही नामक इतिवृत्तके प्रणेता। इन्होंने दिल्लीश्वर महम्मदशाहके राजत्वकालकी घटनाका वर्णन इस ग्रन्थमें लिखा है।

यूसुफ बिन् महम्मद—कायदात् उल् अखबर नामक हकीमी ग्रन्थके रचयिता।

यूसुफ शाह पूरबी—बंगालके एक पाठान शासनकर्त्ता और बर्बाक शाहके पुत्र। १४७४ ई०में पिताके मरने पर ये राजगद्दी पर बैठे। १४८२ ई०में उनकी मृत्यु हुई।

यूसुफ शेख—मुलतानके प्रथम मुसलमान राजा। महम्मद घोरीके आक्रमणसे ले कर १४४० ई० तक मुलतान दिल्ली-सरकारके शासनाधीन रहा। यूसुफ इस समय मुलतानके शासनकर्त्ता थे। सामरिक राष्ट्रविप्लवमें उन्होंने भी दूसरे दूसरे शासनकर्त्ताओंकी तरह स्वाधीनता पानेके लिये अपनेको मुलतानका राजा कह कर घोषित किया। मुलतान तथा उच्चवासी मनुष्योंने यूसुफके ज्ञान, विद्या और महानुभवता देख उन्हें अपना राजा मान लिया। यूसुफ कोरेशजातीय अरब थे।

सिंहासन पर बैठनेके दो वर्ष बीतते न बीतते यूसुफ अपने लंगाजातीय ससुर राय सेहरा द्वारा पकड़े गये और बन्दी हो कर दिल्ली भेज दिये गये। उसके बाद राय सेहरा जामाताके स्थान पर कुतबउद्दीन महमूद लंगा नामसे राजसिंहासन पर बैठे थे। आईन-इ-अकबरी नामक मुसलमान इतिहासमें यूसुफके सात वर्ष राजत्वकी कहानी लिखी है।

यूसुफ शेख—गुजरातवासी एक मुसलमान-ग्रन्थकार। इन्होंने तज् किरात् उल् आत्किरा नामक ग्रन्थ लिखा।

ये (सं० सर्व०) १ यह देखो। २ यहका बहुवचन, यह सब।

येजद्—खुरासानके अन्तर्गत एक विभाग और उसका प्रधान नगर। यहांके अधिवासी बहुत पहलेसे भारतमें आ कर रेशमका वाणिज्य करते हैं। यह नगर पारस्य-के मरुदेशके बीच 'ओयेसिस' कहलाता है। यहांके अधिवासी प्रधानतः मुसलमान, सूर्योपासक और यहूदी हैं।

येज्देगर्द ३य—पारस्यके अन्तिम राजा। ये खलीफा ओमरके पुत्र अबदुल्ला द्वारा पराजित हुए थे। उनके सेनापति रुस्तमने ६३६ ई०में कदेशियाका युद्धमें अरबी सेनाको खदेड़ा था। अन्तमें रुस्तमके मरने पर अरबियोंने शत्रुनियोंका छल और युद्धमें जयी हो कर असिरीयराज्य और टेसिफोन दखल कर लिया। यलुना और नहबन्द लड़ाईमें हार खा येजदेगर्द ६४१ ई०में भाग गये। इस समय पारसिक राजशक्ति क्षीण हो गई। नहबन्द-नगर मिदियकी राजधानी हकवतान नगर पर स्थापित हुई।

उद्धत अरबगण रुस्तमके भाई इसफान्दियरकी सहायतासे पारस्यराजका पीछा कर अक्षु नदीतीर तक चले गये। राजा चीन सम्राट् और खाकन तुर्कोंकी सहायता पा कई वर्षों तक लड़ता रहा। अन्तमें तुर्क लोग उन्हें छोड़ चले गये। ६५२ ई०में अरबियोंके भयसे पलायमान राजा एक कुटीमें कठोरतासे मारे गये। उस समय खलीफा ओमान आठ वर्ष तक राज्य करते रहे।

येजिद् १म—ओम्मय-वंशीय द्वितीय राजा। उन्होंने अली-के पुत्र हुसेनको कर्बाला-रणक्षेत्रमें मारा था। इसलिये पारसिक लोग उसकी बड़ी निन्दा करते थे। उनके अधिकारमें मुसलमानोंने समग्र खुरासान और ख्वारज़म-प्रदेशमें आधिपत्य विस्तार किया था। ये एक सुवक्ता और कवि थे। हाफिज समय समय पर उनकी कविता उद्धृत कर गये हैं। ये ६८० ई०में राजसिंहासन पर बैठे और तीन ही वर्ष बाद ६८३ ई०में परलोक सिधारे।

येजिद् २य और ३य—ओम्मयवंशके नवें और दशवें खलीफा।

येजिदि—यूफ्रेटिस नदीके किनारे रहनेवाली एक मुसलमान जाति।

येदुर—कृष्णानदीतीरवर्त्ती एक प्राचीन नगर। यहांका वीरभद्र मन्दिर बहुत पुराना है। १८३० ई०में मन्दिरकी मरम्मतके समय उसकी गठनमें बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ है। महाशिवरात्रि त्योहारके दिन यहां एक मास तक एक मेला लगता है। १७५४ ई०में पेशवा बालाजी बाजीरावने यहा दलबलके साथ आ कर छावनी डाली थी। १७९० ई०में परशुराम भाउ-परिचालित कप्तान लिटलके अधीनस्थ अंगरेजी सेना टीपू सुलतान पर चढ़ाई करनेके लिये इसी स्थान हो कर गई थी।

येदेतोर—१ महिसुर राज्यके अन्तर्गत एक तालुक। भूपरिमाण १६८ वर्गमील है।

२ उक्त उपविभागके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२° २८′ २०″ उ० तथा देशा० ७५° २५′ २०″ पू०के मध्य कावेरी नदीके किनारे अवस्थित है। यहांका अर्केश्वर मन्दिर देखने योग्य है।

येद्दुर—महिसुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह कावेरी नदीके किनारे अवस्थित है। यहां नदीतट पर एक सुन्दर मन्दिर है।

येनूर—मद्रासप्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १३° १′ ३०″ उ० तथा देशा० ७५° ११′ ५″ पू०के बीच पड़ता है। यहां ३८ फुट ऊंची एक जैनकी प्रतिमूर्त्ति है।

येन्न—सातारा जिलेके अन्तर्गत एक नदीप्रपात।

येफद्रे—बम्बईप्रदेशके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक नगर। पार्श्ववर्त्ती पर्वतमें महाकालीके उद्देश्यसे बनी दो गुफा है।

येमेन—अरबदेशके दक्षिण-पश्चिम कोणमें अवस्थित एक प्रदेश। इसके पश्चिम लोहितसागर और दक्षिणमें भारत-महासागर है। भूपरिमाण ७० हजार वर्गमील है।

इस स्थानका उत्तरी अंश पहाड़ी है तथा दक्षिण समतल भूमि तेहामा कहलाता है। दक्षिणविभाग मरुस्थान होने पर भी समुद्रके किनारे बहुतसे वाणिज्य-प्रधान नगर हैं। उन नगरोंमेंसे तरसेन, लोहार, बैत-एल-फकी, मोचा, जेबिद, आजिया, नेजरान, हामदान और सान आदि नगर उल्लेखनीय हैं। इनमेंसे कुछ तो उपकूलवर्त्ती प्रवालद्वीपमें और कुछ एक एक उपविभाग-के सदररूपमें गिने जाते हैं।

इस विभागके पश्चिम कोणमें अंगरेजाधिकृत आदेन नगरी विद्यमान है। बहु प्राचीनकालसे भारतके साथ मिस्र और यूरोपका वाणिज्य इसी नगर हो कर परिचालित होता था। १ली सदीमें रोमकोंने भारतीय वाणिज्य अपने हाथ लेनेकी कामनासे इस नगरको तहस नहस कर डाला। ११वीं सदीमें आदेन फिरसे समृद्धशाली हो उठा। यूरोपीय वणिकोंने जब उत्तमाशा अन्तरीप घूम कर भारतवर्षमें आनेका रास्ता निकाला, तब इस स्थानकी समृद्धि जाती रही। पीछे तुर्कोंने इस नगरमें अधिकार जमाया। १८७९ ई०में अङ्गरेजोंने जब इस स्थानको जीता, उस समय यहांकी जनसंख्या हजारके करीब थी। किन्तु १८४२ ई०में नाना जातिके वणिकोंके आनेसे इसकी जनसंख्या २० गुनी बढ़ गई। आदेन देखो।

येमुनुर—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। कुलवर्गाके मुसलमान-साधु राजा बाघेश्वरके उद्देशसे यहां प्रतिवर्ष चैत महीनेमें एक मेला लगता है। जिसमें प्रायः एक लाखसे अधिक मनुष्य जुटते हैं। प्रवाद है, कि बीजापुरके आदिल-शाहीवंशके अधःपतन (१४८९-१६८७)-के बाद १६९० ई०में बीजापुरमें खाजाबन्द नवाज और कुलवर्गामें शाहमीर अवदुल कादरी नामक दो प्रसिद्ध मुसलमान साधुओंका आविर्भाव हुआ। कादिरी बाघ पर चढ़ कर घूमते थे इसलिये जनतामें वे 'राजा बाघेश्वर' नामसे पूजित हुए।

येरद—बम्बईप्रदेशके सातारा जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह पाटनसे डेढ़ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक येदोबा नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। चैत पूर्णिमामें यहां एक मेला लगता है।

येरकलवड्डु—दक्षिणमें रहनेवाली एक आदिम जाति। नेल्लूर आदि स्थानोंमें इनका वास है। गोमांस छोड़ दूसरे जीवजन्तुका मांस खानेमें ये जरा भी नही सकुचते। फिलहाल बहुतोंने वैष्णव और ब्राह्मण्यधर्म ग्रहण कर लिया है। इस जातिके लोग शवदाह करते हैं।

नेल्लूरवासी सभ्य येकल डाली बुनते और पक्षी, सूअर, गदहा और कुत्ता आदि पालते हैं। दस्युवृत्ति और कन्या हरण कर उसे वेश्यावृत्तिमें स्थापित करना इनका अन्यतम पेशा है।

ये छोटे कदके, काले और मजबूत होते हैं। इनकी नाक छोटी और आटवें तथा कपाल चिपटा होता है। ये कौपीनके सिवा और कुछ नहीं पहनते। विवाहमें इनका बहुत कम खर्च होता है।

येरकुद—मद्रासप्रदेशके सालेम जिलेके अन्तर्गत एक पार्वत्य उपनिवेश। यह अक्षा० ११° ५१´ ३८´´ उ० तथा देशा० ७८° १३´ ५´´ पू०के मध्य शेभरय पर्वतके दक्षिण भागमें अवस्थित है। यह स्थान समुद्रपीठसे ४८२८ फुट ऊंचा है। यहांका जलवायु प्रीतिप्रद है।

येरावर—दाक्षिणात्यके कुर्गराज्यके अन्तर्गत कोड़गेके सरदारोंके अधीन आदिम एक जाति। इस जातिका मनुष्य पहले क्रीतदासकी तरह बेचा जाता था और कभी कभी धन ले कर अपने मालिकके पास आत्मसमर्पण करता था। १८३३ ई०में जब कुर्ग अङ्गरेजोंके अधीन हुआ तब कमिश्नर यूल साहबने नियम कर दिया, कि इसे कोई नहीं बेच सकता है।

ये मझोले कदके, बलिष्ठ और काले होते हैं और भूतकी पूजा करते हैं। इनका विश्वास है, कि मलबार-उपकूलमें इनका आदिम वास था। इनकी भाषा बहुत कुछ मलयालमोंकी भाषासे मिलती जुलती है।

येलगिरि—मद्रास प्रदेशके सालेम जिलान्तर्गत एक पार्वत्य अधित्यका प्रदेश। यह समुद्रपीठसे ३५०० फुट ऊंचा है। इसका सबसे ऊंचा स्थान ४४३७ फुट है।

येलान्दुर—१ महिसुर राज्यके अन्तर्गत एक तालुक। १८०७ ई०में दीवान पूर्णाइयाको अंगरेज-राजने यह भू-सम्पत्ति दी। भू-परिमाण ७३॥ वर्गमील है।

२ महिसुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १२° ४´ उ० तथा देशा० ७७° ५´ पू०के मध्य होन्नुहोले नदीके किनारे अवस्थित है। विजयनगर-राजवंशके अधिकार-कालमें यह स्थान एक सामन्त-राज्यरूपमें परिगणित था। यहांके गौरेश्वर मन्दिरमें १५६८ ई०की शिलालिपि खोदित है।

येलुसविरा—दक्षिण-भारतके कुर्ग-राज्यके अन्तर्गत एक उपविभाग। भू-परिमाण ६१ वर्गमील है। १७वीं शताब्दीमें राजा दोड्ड वीरप्पने महिसुर-राजसे यह प्रदेश

छीन लिया। यहां काफी धान आदिकी खेती होती है। स्थानीय मलस्वी-पर्वत ४४८८ फुट ऊंचा है।

येल्लम्म—बम्बई प्रदेशके बेलगांव जिलान्तर्गत एक गण्ड-शैल। यहां सरस्वती नदीके गर्भमें बेलगांव दुर्गके समीप एक प्राचीन जैन-मन्दिर है। यहां १४३६ शकमें उत्कीर्ण एक शिलाफलक मिलता है। १५०८-१५२६ ई०के बीच श्रीकृष्णने यहां महामायाका मन्दिर बनवाया। पास हीमें गणपतिका मन्दिर विराजित है। हर साल अगहन और चैतकी पूर्णिमामें यहां देवीके उद्देशसे दो मेले लगते हैं।

येल्लमल्ल—मद्रास प्रदेशके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह कर्नूल और कड़ापा जिले तक विस्तृत है। यह अक्षा० १४° ३१′ से ले कर १४° ५७′ ४०″ उ० तथा देशा० ७८° १०′ से ले कर ७८° ३२′ ३०″ पू०के बीच अवस्थित है। समग्र पर्वत जंगलोंसे घिरा है। उन जंगलोंमें कॅंच-वार और कोवारा नामकी पहाड़ी असभ्य जाति रहती है।

येल्लापुर—१ बम्बई प्रदेशके उत्तर-कनाड़ा जिलान्तर्गत एक उपविभाग।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० १५° ५८′ उ० तथा देशा ६४° ४५′ पू०के बीच पड़ता है।

येल्लूरगढ़—बम्बई प्रदेशसे साढ़े तीन कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन दुर्ग। अभी यह टूटे फूटे खंडहरोंमें पड़ा है। यह गिरिदुर्ग समुद्रपृष्ठसे प्रायः ३३६५ फुट ऊंचा है।

येवाष (सं० पु०) यवाष, जवासा नामक कांटेदार क्षुप।

येष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय गमनकारी, खूब जानेवाला।

यों (हिं० अव्य०) इस तरह पर, इस प्रकारसे।

योंही (हिं० अव्य०) १ इसी प्रकारसे, ऐसे ही। २ विना काम, व्यर्थ ही। ३ विना विशेष प्रयोजन या उद्देश्यके, केवल मनकी प्रवृत्तिसे।

योक्तृ (सं० त्रि०) युज-तृण्। योगकर्त्ता।

योक्त्र (सं० क्ली०) युज्यतेऽनेनेति युज (दाम्नीसशयुयुजस्तुतु-देति। पा ३।२।१८२) इति ष्ट्रन्। हलबन्धनरज्जू, जोतो। पर्याय—आबन्ध, योत्र।

योक्त्रक (सं० क्ली०) योक्त्र, जोती।

योग (सं० पु०) युज समाधौ भावादौ यथायथं घञ्। १ संयोग, मेल। २ उपाय, तरकीब। ३ वर्मपरिधान, कवच पहनना। ४ ध्यान। ५ सङ्गति। ६ युक्ति। ७ प्रेम। ८ छल, धोखा। ९ औषध, दवा। १० धन, दौलत। ११ नैयायिक। १२ लाभ, फायदा। १३ वह जो किसी-के साथ विश्वासघात करे, दगाबाज। १४ कोई शुभ काल, अच्छा समय या अवसर। १५ चर, दूत। १६ छकड़ा, बैलगाड़ी। १७ नाम। १८ कौशल, चतुराई। १९ नाव आदि सवारी। २० परिणाम, नतीजा। २१ नियम, कायदा। २२ उपयुक्तता। २३ साम, दाम, दण्ड और भेद ये चारों उपाय। २४ वह उपाय जिसके द्वारा किसीको अपने वशमें किया जाय, वशीकरण। २५ सूत्र। २६ सम्बन्ध। २७ सद्भाव। २८ धन और सम्पत्ति प्राप्त करना तथा बढ़ाना। २९ मेलमिलाप। ३० तप और ध्यान, वैराग्य। ३१ गणितमें दो या अधिक राशियों-का जोड़। ३२ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १२, ८के विश्रामसे २० मात्राएं और अन्तमें भगण होता है। ३३ सुभीता, जुगाड़। ३४ वह उपाय जिसके द्वारा जीवात्मा जा कर परमात्मामें मिल जाता है, मुक्ति या मोक्षका उपाय।

"संयोगं योगमित्याहुर्जीवात्म परमात्मनोः।"

३५ सभी शब्दोंका अवयवार्थ सम्बन्ध। ३६ कर्म-विषयमें कौशल। 'योगः कर्मसु कौशलं' एकमात्र कर्म ही बंधनका कारण है, कर्मवशसे ही जीव सुख-दुःख-भोगादि नाना प्रकारके बन्धनको प्राप्त होते हैं। किन्तु जो कर्म संसारका बन्धनहेतु नहीं होता फिर भी वह मोक्षका कारण होता है, वैसा ही कर्मयोग है। 'योगः कर्मसु कौशलं' कर्ममें जो कुशलता है अर्थात् जिस कर्मसे संसार-बन्धन नहीं होता, वही योग है।

३७ फलित ज्योतिषमें कुछ विशिष्ट काल या अवसर जो सूर्य और चन्द्रमाके कुछ विशिष्ट स्थानोंमें आनेके कारण होते हैं और जिनकी संख्या २७ है। इसके नाम इस प्रकार हैं,—१ विष्कम्भ, २ प्रीति, ३ आयुष्मान्, ४ सौभाग्य, ५ शोभन, ६ अतिगण्ड, ७ सुकर्मा, ८ धृति, ९ शूल, १० गण्ड, ११ वृद्धि, १२ ध्रुव, १३ व्याघात, १४

हर्षण, १५ वज्र, १६ असृक्, १७ व्यातीपात, १८ वरीयान्, १६ परिघ, २० शिव, २१ सिद्ध, २२ साध्य, २३ शुभ, २४ शुक्र, २५ ब्रह्म, २६ इन्द्र, २७ वैधृति। ज्योतिषमे इन सब योगोंके शुभाशुभका विषय इस प्रकार लिखा है,—

"परिघस्य त्यजेदर्द्धं शुभकर्म ततः परम्।
त्यजादौ पञ्च विष्कुम्भे सप्तशूले च नाड़िका॥
गण्डव्याघातयोः षट् च नव हर्षणवज्रयोः।
वैधृतिव्यतिपातौ च समस्तौ परिवर्जयेत्।
शेषा यथार्थनामानो योगाः कार्येषु शोभनाः॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

इनमेंसे कुछ योग ऐसे हैं जो शुभ कार्योंके वर्जित हैं और कुछ ऐसे हैं जिनमे शुभकार्य करनेका विधान है। वर्जित योग ये सब हैं,—परिघयोगका प्रथमार्द्ध, विष्कम्भयोगका आदि ५ दण्ड, शूलयोगका प्रथम ६ दण्ड, गण्ड और व्याघातयोगमें ६ दण्ड, हर्ष और वज्रयोगका ६ दण्ड तथा वैधृति और समस्त व्यतीपातयोग।

३८ फलितज्योतिषके अनुसार कुछ विशिष्ट तिथियों, वारों और नक्षत्रों आदिका एक साथ या किसी निश्चित नियमके अनुसार पड़ना। जैसे,—अमृतयोग, सिद्धियोग, अर्द्धोदययोग इत्यादि। ३६ दर्शनकार पतञ्जलिके अनुसार चित्तकी वृत्तियोंको चञ्चल होनेसे रोकना, मनको इधर उधर भटकने न देना, केवल एक ही वस्तुमे स्थिर रखना। ४० छः दर्शनोंमेंसे एक जिसमे चित्तको एकाग्र करके ईश्वरमें लीन करनेका विधान है।

योग-दर्शनकार पतञ्जलिने योगका विषय इस प्रकार लिखा है,—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' चित्तकी वृत्तिके निरोधका नाम योग है। यह चित्तवृत्ति निरोधरूप योग दो प्रकारका है, राजयोग और हठयोग। पतञ्जलिने पातञ्जलदर्शनमे राजयोग और तन्त्रशास्त्रादिमें हठयोगका वर्णन किया है। इन दोनों योगका विषय पीछे लिखा जायगा।

भागवत (११.२०।६-८) मे जीवके कल्याणप्रद तीन प्रकारके योग कहे हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इन तीन प्रकारके योगोंका अवलम्बन करनेसे जीव सहजमें संसारबन्धनसे मुक्त हो सकता है। अधिकारिनियमसे इस योगका अवलम्बन करना उचित है। जो कर्मनिर्विण्ण अर्थात् कर्मफलमें अनासक्त हैं, वे ज्ञानयोगके, जो कर्मासक्त वा कामी हैं. जिनकी कामनाबुद्धि तिरोहित नहीं हुई है, वे कर्मयोग और जो निर्विण्ण वा नातिसक्त नहीं हैं तथा भगवत्कथा सुननेकी जिन्हें रुचि है, वे ही भक्तियोगके अधिकारी हैं।

भगवान्ने गीतामें निष्काम योगका उपदेश दिया है, इसीसे गीताको 'योगशास्त्र' कहते हैं। इसी कारण हम लोग गीताके २रे अध्यायमें सांख्ययोग, ३रेमें कर्मयोग, ४थेमें ज्ञानकर्मयोग, ५वेंमें कर्मसंन्यासयोग, ६ठेमें ध्यानयोग, ८वेंमें तारकब्रह्मयोग, ६वेंमें राजगुह्ययोग, १०वेंमें विभूतियोग, ११वें विश्वरूपदर्शनयोग, १२वेंमें भक्तियोग, १३वेंमें क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग, १४वेंमें गुणत्रययोग, १५वेंमें पुरुषोत्तमयोग और १८वें अध्यायमें संन्यासयोगका विवरण देखते हैं। इनमेंसे सांख्ययोग ही साधारणतः "योग" कहलाता है।

महर्षि पतञ्जलिने योगसूत्रमें सांख्ययोगका हो परिचय दिया है। पातञ्जलदर्शनका एक नाम सांख्यप्रवचन भी है। उसका कारण यह है, कि पतञ्जलिने सांख्यदर्शनके प्रवर्त्तक महर्षि कपिलके दार्शनिक सिद्धान्तोंको ग्रहण और समर्थन किया है। पचीस तत्त्व अर्थात् पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, एकादश इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत ये पचीस सांख्यदर्शनके प्रतिपाद्य विषय हैं। पातञ्जलदर्शनमें भी यही २५ तत्त्व अवलम्बित हुए हैं। विशेषता इतनी ही है, कि सांख्याचार्य कपिल ईश्वरकी अङ्गीकार नहीं करते, परन्तु पतञ्जलि पचीस तत्त्वके अलावा एक और तत्त्व स्वीकार करते हैं, वही तत्त्व ईश्वर है। पातञ्जलके व्यासभाष्यके मतसे यह ईश्वर प्रकृति और पुरुषसे स्वतन्त्र हैं,—वे पुरुषविशेष हैं। इसी कारण निरीश्वर सांख्यदर्शनसे पातञ्जलदर्शनको अलग करनेके लिये इसे 'सेश्वरसांख्य' कहते हैं। और तो क्या, पातञ्जलदर्शनसे ईश्वरतत्त्व और चित्तवृत्तिनिरोधका उपायप्रसङ्ग उठा लेनेसे सांख्यदर्शनसे पातञ्जलको पृथक् करनेका और कोई विशेषत्व नहीं रह जाता।

सांख्यदर्शन देखो।

पातञ्जलदर्शन चार पादोंमें विभक्त है। इन चार पादोंके नाम हैं समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद

और कैवल्यपाद। पहले पादमें योगके उद्देश और लक्षण, योगके उपाय और प्रकारभेद; दूसरे पादमें क्रियायोग, क्लेश, कर्मविपाक अर्थात् कर्मफल और कर्मफलके दुःखत्व, हेय, हेयहेतु, ज्ञान और ज्ञानोपाय; तीसरेमें योगके अन्तरङ्ग, अङ्ग, परिणाम, योगसिद्धिसे अणिमादि ऐश्वर्यप्राप्ति और चौथे पादमें कैवल्यमुक्तिका विषय निर्दिष्ट है। (योगवार्तिकमें वाचस्पतिमिश्र)

इन चार पादोंमें कुल १६ सूत्र हैं। ईश्वरतत्त्वनिरूपण ही योगशास्त्रका प्रधान उद्देश्य है। वह ईश्वरतत्त्व क्या है? महर्षि पतञ्जलिने ऐसा कहा है,—

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।"
(योगसू० १।२४)

अर्थात् क्लेश, कर्म, विपाक और आशयका सम्पर्क-शून्य पुरुषविशेष ही ईश्वर है।

"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजं।" (योगसू० १।२६)

अर्थात् उनमें ज्ञानका चरम उत्कर्ष है। वे सर्वज्ञ हैं।

"स एव पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।" (१।२६)

वे (ब्रह्मादि) पूर्व आचार्योंके भी गुरु हैं; क्योंकि वे कालके अतीत हैं।

क्लेश पांच प्रकार है,—अविद्या (मिथ्याज्ञान), अस्मिता (विभिन्न वस्तुमें अभेद प्रतीति), राग, द्वेष और अभिनिवेश (मरणभय)। कर्म सुकृत और दुष्कृत (पाप और पुण्य) है; विपाक अर्थात् कर्मफल है। कर्मका फल तीन प्रकारका है, जन्म, आयु और भोग। आशय अर्थात् विपाकके अनुरूप-संस्कार है। साधारण पुरुष इन सबका संस्रव रोक नहीं सकता। मुक्त पुरुषमें क्लेशादिका कोई सम्पर्क नहीं रहता; किन्तु मुक्तिके पहले वे भी क्लेशादिके अधीन थे। किन्तु पुरुषविशेष ईश्वरमें कभी भी क्लेशादिका संस्पर्श न था। कारण, वे नित्यमुक्त हैं। पुरुष (जीव) जैसे अनेक हैं, पुरुषविशेष (ईश्वर) वैसे अनेक नहीं हैं। वे एक और अद्वितीय हैं। ईश्वर कालके द्वारा अविच्छन्न नहीं हैं। भूत, भविष्य और वर्त्तमान, तीनों ही कालके वे परे हैं। ब्रह्मा, मनु, सप्तर्षि आदिने कल्पमन्वन्तरके प्रारम्भमें जिस शास्त्रादिका उपदेश वा प्रचार किया, उन्होंने वह शास्त्रज्ञान कहांसे पाया? ईश्वरसे। इसी कारण उन्हें पूर्व गुरुओंके भी गुरु कहा है।

छोटे जलाशयकी अपेक्षा नदीका परिमाण बड़ा है, फिर नदीकी अपेक्षा समुद्रका परिमाण बड़ा है। इस प्रकार ज्ञानकी भी कमीवेशी है। जिनमें ज्ञानकी मात्रा चरमसीमा पर पहुंच गई है, जो सर्वज्ञ हैं, वे ही ईश्वर हैं।

इसी कारण पातञ्जलदर्शनके मतसे तत्त्व २५ नहीं २६ हैं। किन्तु उन सब तत्त्वोंकी आलोचना इस दर्शनका मुख्य विषय नहीं है। वाचस्पतिमिश्रने कहा है, कि प्रधानादिका प्रतिपादन योगशास्त्रका मुख्य विषय नहीं, किन्तु योगके स्वरूप, साधन, गौण फल विभूति और उसका परम फल कैवल्यका निरूपण ही योगशास्त्रका प्रतिपाद्य है। अतएव योग ही पातञ्जलदर्शनका मुख्य विषय है; इसीसे इसका दूसरा नाम योगदर्शन है।

योगशास्त्रके चार पर्व हैं,—हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय। अन्यान्य दर्शनकी तरह पातञ्जलदर्शनके भी मतसे—

"सर्वं दुःखमेव विवेकिनः हेयं दुःखमनागतम्।"
(योगसू० २।१५-१६)

संसार दुःखमय है; अतएव हेय है।

इस हेय संसारका निदान वा हेतु क्या है? प्रकृति पुरुषका संयोग है।

"द्रष्टृ-दृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।" (योगसू० २।१७)

किन्तु इस संसारका अत्यन्त उच्छेद सम्भवपर है, इस हेयकी निवृत्ति हो सकती है; इसका नाम हान है।

इस हानका उपाय क्या? प्रकृति पुरुषका निश्चल भेदज्ञान।

"विवेकख्यातिः अविप्लवा हानोपायः।"
(योगसू० २।१६)

इस सम्बन्धमें व्यासने कहा है, जिस प्रकार चिकित्साशास्त्र रोग, निदान, आरोग्य और भैषज्य, इन चार भागोंमें विभक्त है, उसी प्रकार योगशास्त्र भी ४ व्यूहोंमें विभक्त है; जैसे, संसार, संसारका हेतु, मुक्ति और मुक्तिका उपाय। दुःखबहुल संसार हेय, प्रकृति पुरुषका संयोग संसार हेतु, संयोगकी अत्यन्तनिवृत्ति हान और हानका उपाय सम्यग्दर्शन है। (२।१५ सूत्रका व्यासभाष्य)

यह जो प्रकृति पुरुषका निश्चल भेदज्ञान है, वह पातञ्जलके मतसे मोक्षलाभका अद्वितीय पन्था है। उस ज्ञानको अर्जन करनेका उपाय क्या? सांख्योंका कहना है, कि उनके आविष्कृत पचीस तत्त्व जान सकनेसे ही वह सम्यग्ज्ञान लाभ किया जाता है। उसी कारण योगशास्त्रकी अवतारणा की हुई है। क्योंकि पतञ्जलि के मतसे प्रकृति-पुरुष निश्चल भेदज्ञान लाभका एकमात्र उपाय योग है। यह योग क्या है?

योगका लक्षण—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"

(योगसूत्र १।२)

योगके लक्षणमें सर्व शब्द प्रवेश है अर्थात् सभी चित्त-वृत्तिका निरोध योग है, यदि ऐसा कहा जाय, तो संप्रज्ञात समाधिमें योगका लक्षण नहीं जाता, अतएव अव्याप्तिदोष होता है। क्योंकि संप्रज्ञात अवस्थामें चित्त के ध्येय आकारमें सात्त्विक वृत्ति रहती है, सभी वृत्ति निरोध नहीं होती। पहले ही कह आये हैं, कि संप्रज्ञात अवस्थामें कुछ न कुछ रह ही जाता है, कुछ निरोध नहीं होता, इस लिये किस प्रकार संप्रज्ञात योग हो सकता है? (व्यासभाष्य)

योगके लक्षणमें चित्तकी सभी वृत्तियोंके निरोधको योग कहते हैं, ऐसा लक्षण यदि न दिया जाय, तो व्युत्थान (क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त) अवस्थामें योग हो सकता है। क्योंकि, उसमें किसी न किसी वृत्तिका निरोध होता ही है। कारण, चित्तवृत्तिका स्वभाव ऐसा है, कि एकके आविर्भावकालमें दूसरेका तिरोभाव होता है। अब देखा जाता है, कि सर्वशब्द-प्रवेश वा अप्रवेश अर्थात् चित्तका वृत्ति-निरोध वा चित्तका सर्ववृत्ति निरोध, ये दोनों ही लक्षण देखे जाते हैं। सर्वशब्दका प्रवेश करनेसे लक्ष्य (संप्रज्ञातसमाधि)-में लक्षण नहीं होता तथा सर्वशब्दप्रवेश नहीं करनेसे अलक्ष्य (क्षिप्त्यादि अवस्था)-में लक्षण जाता है जिससे अतिव्याप्तिदोष देखा जाता है।

भाष्यकारने इसकी मीमांसा इस प्रकारकी है, "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थान" इस सूत्रके साथ एक वाक्यता करके, 'द्रष्टुः स्वरूपावस्थितिहेतुश्चित्तवृत्तिनिरोधे योगः' अर्थात् जो चित्तवृत्ति-निरोध द्रष्टा (आत्मा)-के स्वरूपमें अवस्थानका कारण होता है उसे योग कहते हैं। जिस उपायका अवलम्बन करनेसे पुरुष द्रष्टृस्वरूपमें अवस्थान कर सके, वही उपाय योग है।

क्षिप्तादि अवस्थामें चित्तनिरोध वैसा नहीं है, उसमें आत्माके स्वरूपमें अवस्थान नहीं होता। सम्प्रज्ञात अवस्थामें सात्त्विकवृत्ति रहती है इसीसे आत्माके स्वरूपमें अवस्थान नहीं होने पर भी असम्प्रज्ञात अवस्थामें होता है। सम्प्रज्ञातसे ही असम्प्रज्ञातकी उत्पत्ति होती है। अतएव सम्प्रज्ञात समाधि आत्माके स्वरूपावस्थाका हेतु है।

भाष्यकारके मतसे योगका अर्थ समाधि है वा चित्तवृत्तिनिरोध है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्रके भेदसे चित्तकी वृत्ति पांच प्रकारकी है। इसको चित्तभूमि कहते हैं। क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त चित्त भूमिमें योग नहीं हो सकता, केवल एकाग्र और निरुद्धावस्थामें ही होता है। (योगभाष्य १।१)

सत्त्व, रजः और तमः ये तीनों गुण चित्तके उपादान हैं, अतएव उसके सभी धर्म चित्तमें निहित हैं। जिस समय रजोभागकी अधिकताके कारण चित्त चालित हो कर ताड़ितप्रवाहकी तरह दूसरे विषयमें दौड़ता है उसे क्षिप्त कहते हैं। इस अवस्थामें चित्त जरा भी स्थिर नहीं रह सकता, हमेशा चञ्चल रहता है। अतः चित्तकी ऐसी अवस्थामें कदापि योग नहीं हो सकता। चित्तकी क्षिप्तावस्था रहते योगावलम्बन विड़म्बनामात्र है। आलस्य, तन्द्रा और मोह आदि वृत्तिको मूढ़ कहते हैं। इस अवस्थामें भी योग नहीं होता। हमेशा चञ्चल रह कर कभी स्थिर भाव अवलम्बन करनेको विक्षिप्त भूमि कहते हैं। इस अवस्थामें यद्यपि चित्त कभी कभी स्थिर रहता भी है, तो भी इसमें योग नहीं हो सकता। क्यों वह विक्षेपका उपसर्जन अर्थात् विक्षेप द्वारा सर्वतोभावमें परिव्याप्त है। विक्षिप्त चित्तमें यद्यपि कभी कभी सात्त्विकभाव आविर्भूत हो कर चित्तकी स्थिरता होती है, तथापि यह विक्षेप द्वारा बिलकुल परिहित है।

एक विषयमें ज्ञानधाराका नाम एकाग्र है। संसार मात्र शेष रह कर सभी वृत्तियोंके विरोधको निरुद्धभूमि

कहते हैं। एकाग्र और निरुद्ध इन्हीं दो चित्तभूमिमें योग हो सकता है। चित्त जब क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्ता वस्थाको पार कर एकाग्र अवस्थामें पहुंचता है, तभी योगावलम्बन उचित है।

चित्तके एकाग्र और निरुद्धभूमिमें सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात यही दो प्रकारके योग हुआ करते हैं। इनमेंसे एकाग्रमें 'मधुमती', 'मधुप्रतिका' और 'विशोका' ये तीन अवस्था तथा निरुद्ध भूमिमें केवल संस्कारशेष अवस्था हुआ करती है।

'संप्रज्ञायते ध्येयस्वरूपमत्र' अर्थात् जिस अवस्थामें ध्येय का यथार्थरूप प्रत्यक्ष होता है उसे सम्प्रज्ञात कहते हैं। साधक जब योगावलम्बन करके योगकी सिद्धिसे अभीष्ट देवताको प्राप्त कर सके, तब उसे सम्प्रज्ञातयोग कहते हैं। यह सम्प्रज्ञातयोग अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पांच प्रकारके क्लेशोंको क्षीण करता है, इसलिये धर्माधर्मरूप कर्मबन्धन शिथिल हो जाता है। उक्त पांच प्रकारके क्लेशोंके आश्रयमें रह कर ही धर्माधर्मरूप कर्म फलप्रदान करता है। विषयभेदमें यह संप्रज्ञातयोग वितर्कानुगत आदि चार भागोंमें विभक्त है। विराट् पुरुष चतुर्भुज आदि स्थूल मूर्त्ति विषयमें वृत्तिधाराको वितर्कानुगत, स्थूलके कारण सूक्ष्म विषयमें समाधि करनेको सविचार, इन्द्रिय विषयमें समाधिको सानन्द, अस्मिता अर्थात् ग्रहीतृ (आत्मा) विषय-समाधिको अस्मितानुगत कहते हैं।

'वितर्कः चित्तस्य आलम्बने स्थूलः आभोगः, सूक्ष्मः विचारः आनन्दः ह्लादः, एकात्मिका सम्विद् अस्मिता, तत्र प्रथमः चतुष्टयानुगतः समाधिः सवितर्कः। द्वितीयः वितर्क विकलः सविचारः तृतीयः विचारविकलः सानन्दः चतुर्थः तद्विकलः अस्मितामात्र इति सर्वे एते सालम्बनाः समाधयः।' (भाष्य)

किसी भी एक स्थूल वस्तुका अवलम्बन कर केवल उसके आकारमें चित्तकी वृत्तिधाराको सवितर्क समाधि कहते हैं। उस वस्तुका सूक्ष्मभाव अवलम्बन कर उसी आकारमें चित्तवृत्तिधाराका नाम सविचारसमाधि। (यहां पर स्थूल शब्दसे परिदृश्यमान इन्द्रियगोचर पदार्थ मात्र ही समझा जायगा तथा उसका कारणभूत सूक्ष्म पञ्चतन्मात्र आदि सूक्ष्म शब्दवाच्य है), आनन्द शब्दमें आह्लाद, स्थूल-इन्द्रिय (चक्षुः प्रभृति) विषयमें चित्तवृत्ति-धाराका नाम सानन्द समाधि तथा अहङ्कारतत्त्व विषयमें चित्तवृत्तिधाराका नाम अस्मिता समाधि है। इसमें विशेषता यह है, कि अहङ्कारतत्त्वके साथ अभिन्न हो समाधिमें आत्मतत्त्व भी रहता है।

इन चार प्रकारके संप्रज्ञातयोगोंमेंसे पहले (सवितर्क)के मध्य उक्त चारों प्रकारकी समाधि सन्निविष्ट रहती है। दूसरे (सविचार)में वितर्क नहीं रहता, बाकी तीन रहता है। तीसरे (सानन्द)-में वितर्क और विचार नहीं रहता, अन्य दो रहता है। चौथे (अस्मिता)में वितर्क, विचार और आनन्द ये तीन नहीं रहते, केवल अस्मिता रहता है। यह चतुर्विध संप्रज्ञातयोग सालम्बन है अर्थात् इसमें कोई न कोई अवलम्बन रहता ही है।

उल्लिखित चार प्रकारके संप्रज्ञातयोगको दूसरे तरहसे तीन प्रकारके कह सकते हैं, जैसे—ग्राह्यविषयक, ग्रहणविषयक और गृहीतविषयक। इन तीन गुणोंके तामस भागसे पञ्चभूत और सात्त्विक भागसे इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं। ग्राह्यविषय स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे दो प्रकारका है। स्थूलपञ्चमहाभूत-विषयमें समाधिका नाम सवितर्क और सूक्ष्मपञ्चभूतविषयमें समाधिका नाम सविचार है। ग्रहण विषय भी स्थूल सूक्ष्मके भेदसे दो है।

पूजा संध्या आदि जो कुछ की जाती है, उसे संप्रज्ञातयोग कह सकते हैं।

जिस अवस्थामें एक भी वृत्तिका उदय नहीं होता, केवल संस्कारमात्र अवशिष्ट रहता है उसे असंप्रज्ञातयोग कहते हैं। संप्रज्ञातयोग सिद्ध होने हीसे असंप्रज्ञातयोग होता है।

"विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वकः संस्कारशेषोऽन्यः।"
(योगसू० १।१८)

चित्तकी सभी वृत्तियोंके तिरोहित होनेसे संस्कारमात्र रह जाता है, ऐसे निरोधको असंप्रज्ञातयोग कहते हैं। असंप्रज्ञातयोगका कारण परवैराग्य है। इसमें

चिन्तनीय कोई भी वस्तु नहीं रहती, केवल संस्कार-मात्र अवशिष्ट रहता है।

किसी भी विषयका अवलम्बन किये विना चित्त अवस्थान कर सके, यह हो नहीं सकता। चित्तभूमिमें प्रतिक्षण हजारों विषय आ कर उपस्थित होते हैं, ऐसी अवस्थामें सभी विषयोंसे चित्तवृत्तिको बिलकुल रोक देना किस प्रकार सम्भव हो सकता है? इस पर थोड़ा गौर कर सोचनेसे मालूम होगा, कि संप्रज्ञातयोगमें यदि चित्त हजारों विषयका परित्याग कर सिर्फ एक विषयका अवलम्बन कर रह सके, तो फिर कुछ उन्नति लाभ करनेमें बिलकुल निरवलम्ब रहना पड़ेगा इसमें आश्चर्य ही क्या!

असंप्रज्ञात योग ही योगकी चरमभूमि है। असम्प्रज्ञात योगके सिद्ध होनेसे निर्वाण मुक्तिलाभ होता है। जिस किसी प्रकार चित्तकी वृत्ति हो कर उसके प्रसवमें प्रतिविम्बित होनेको ही बन्धन कहते हैं।

चित्त वृत्तिके पुरुषमें पतित नहीं होनेसे ही मुक्ति होती है। चित्तके होनेसे ही पुरुषमें पतित होता है, किन्तु संप्रज्ञातसमाधिमें चित्तकी कोई भी वृत्ति नहीं रहती, योग द्वारा सभी वृत्ति निरुद्ध होती हैं। यही योगका चरम लक्ष्य है।

"क्षिणोति च क्लेशान्" इस सूत्रभाष्यके अभिप्रायानुसार 'क्लेशकर्मादिपरिपन्थी चित्तवृत्तिनिरोधो योगः" अर्थात् चित्त-वृत्तिका निरोध क्लेशकर्मादिका विनाशक होता है, इसी-से उसको योग कहते हैं। जिस उपायका अवलम्बन करनेसे क्लेश, कर्म, विपाक और आशयसे अतीत हो सके; वही योग है।

चित्त प्रख्या-प्रवृत्ति और स्थितिरूपको यथाक्रम सत्त्व, रज और तमः स्वभाव कहा है। चित्त त्रिगुणात्मक नहीं होनेसे उनमें प्रख्यादि धर्मको सम्भावना नहीं रहती, कारणका गुण ही कार्यमें संक्रामित होता है। प्रख्या शब्दसे प्रसादलाघव, प्रीति आदि सभी सात्त्विक धर्म, प्रवृत्तिशब्दसे परिताप, शोक आदि सभी राजसधर्म और स्थिति शब्दसे गौरव आवरण आदि सभी तामस धर्म जानने होंगे। चित्त तीनों गुणोंका कार्य होनेके कारण उल्लिखित सभी धर्म उसमें हैं।

क्षिप्तादि पांच चित्तभूमिकी बात कही गई जिसमें रजोगुणके सम्पूर्ण आविर्भावका नाम क्षिप्त अवस्था है। इसमें उन्मत्तकी तरह चित्त जागतिक विषय-व्यापारमें सर्वदा व्यापृत रहता है, क्षणकाल भी परमार्थ पथ पर स्थिररूपसे नहीं रह सकता। मूढ़ अवस्था इससे भी निकृष्ट है, उस समय तमोगुणका बिलकुल आविर्भाव होनेके कारण चित्त मोहजालमें सम्पूर्ण आच्छन्न हो भले बुरेका विचार नहीं कर सकता। उस समय मनुष्य और पशु आदिमें भेद नहीं रहता, ऐसा कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी। विक्षिप्त अवस्था पूर्वोक्त क्षिप्त अवस्थासे कुछ उत्कृष्ट है।

चित्तको जय करनेमें पहले उसके विषय अर्थात् योगके आलम्बन स्थूल पदार्थको ही ग्रहण करना कर्त्तव्य है। पीछे सङ्कोच करनेकी जितनी शक्ति लगा सके, उतने ही सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम विषयमें अवगाहन कर पीछे यहां तक कि विषयका परित्याग करके भी चित्त स्थिर रह सकता है। चित्तको जय कर सकनेसे फिर योगकी आवश्यकता नहीं रहती।

एकाग्रावस्थामें सात्त्विक वृत्तिका उदय (चित्त और पुरुषका भेदस्फुरण) होता है। उस समय रजोगुणका अंश अल्प मात्रामें सत्त्वकी सहायता करता है। एकाग्र अवस्था और निरुद्ध अवस्था ही योगभूमि है। इनमेंसे एकाग्रावस्थामें सम्प्रज्ञात योग और निरुद्ध अवस्थामें असम्प्रज्ञात योग होता है।

'पुंप्रकृतयार्वियोगोऽपि योग इत्यभिधीयते।' (योगवार्त्तिक)

जिस उपाय द्वारा पुरुषप्रकृतिसे वियुक्त होता है, वही योग है। इसका तात्पर्य यह, कि सृष्टिके आदिमें प्रत्येक पुरुषका एक एक सूक्ष्म शरीर उपाधिरूपमें सृष्ट होता है। वह प्रलय तक रहता है। जैसे स्फटिककी उपाधि जवाकुसुम, मुखकी उपाधि दर्पण, सूर्य और चन्द्रमाकी उपाधि जलाशय है, वैसे ही इस लिङ्गशरीर वा सूक्ष्मशरीर पुरुषकी उपाधि है। जिस प्रकार जवा-कुसुमरूप उपाधिका धर्म रक्तिमागुणसन्निहित स्वच्छ स्फटिक पर प्रतिविम्बित होता है, उसी प्रकार दोनों

देहरूप उपाधिका धर्म स्थूलता, कृशता, सुख-दुःखज्ञान आदि पुरुषमें आरोपित होता है। इसीसे सुखी, दुःखी आदि रूपमें पुरुष आबद्ध होते हैं। जवाकुसुमको फेंक देनेसे स्फटिकमें फिर उसकी रक्तिमा रहने नहीं पाती, स्फटिक अपने स्वच्छधवलभावमें दिखाई देता है। उसी प्रकार उक्त दोनों शरीरसे पुरुषका सम्बन्ध नाश कर सकनेसे पुरुषमें कोई संसार-बंधन न रह जाता, वह अपने स्वच्छ-निर्मलरूपमें अवस्थान करके मुक्त हो सकता है। केवल चित्त पुरुषका विषय नहीं है, विषयाकारमें परिणामरूप वृत्तियुक्त चित्त ही पुरुषका विषय है अर्थात् वृत्तिविशिष्ट चित्तकी ही छाया पुरुष पर पड़ती है। 'कभी भी वृत्ति न होओ' चित्तको इस प्रकार कर सकनेसे ही पुरुषकी मुक्ति होती है। यही उपाय असम्प्रज्ञात योग है।

योगमें चित्तकी सभी वृत्तियोंको निरोध करना होगा, वे सब वृत्तियाँ क्या है, पहले यही जानना आवश्यक है। वृत्तिको विना जाने उसे निरोध नहीं किया जा सकता। चित्तकी वृत्ति असंख्य है, उसका विषय हजारों जन्ममे नहीं जाना जा सकता। इस कारण पतञ्जलिने चित्तकी वृत्तिको पांच भागोंमें विभक्त किया है। एक एक करके सभी वृत्तियां तो मालूम नहीं हो सकती, पर पांच प्रकारमे श्रेणीवद्ध करनेसे वह सहजमें मालूम हो सकती है। उन पांच वृत्तिके नाम ये हैं, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

इन्द्रियरूप प्रणाली द्वारा वाह्यवस्तुके साथ चित्तका उपराग (सम्बन्ध) होनेसे उस वाह्यविषयमें सामान्य और विशेषस्वरूप अर्थका विशेष निश्चय जिसमे प्रधान रहता है, ऐसी चित्तवृत्तिको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। 'इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य वाह्यवस्तूपरागात् तद्विषया सामान्य-विशेषात्मनोऽर्थस्य:विशेषावधारणप्रधानावृत्तिः प्रत्यक्ष प्रमाण" (व्यासभाष्य) अर्थात् इन्द्रियोंके वाह्यविषयमे आसक्त होनेसे उसी वस्तुमें चित्तका अनुराग उत्पन्न होता है। पीछे सामान्य वस्तु अवस्थित होनेसे उस उस विषयका विशेष रूप अर्थबोध होता है। इसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस मतसे प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम यही तीन प्रमाण हैं। प्रमाण देखो।

एक वस्तुको अन्य रूपमें जाननेका नाम विपर्यय वा भ्रमज्ञान है; जैसे रज्जुमें सर्पज्ञान, शुक्तिमें रजतज्ञान आदि। पहले शुक्ति रजत आदि भ्रमज्ञान होता है, पीछे यह रजत नहीं है, शुक्ति है, सर्प नहीं है, रज्जु है, इस प्रकार यथार्थ ज्ञान हो जानेसे पूर्वज्ञान तिरोहित होता है।

'यह वह है कि नहीं" इत्यादि संशयज्ञान भी विपर्यय-के अन्तर्गत है। विपर्यय और संशयमें भेद यही है, कि विपर्ययस्थलमे विचार करके पदार्थका अन्यथाभाव प्रतीत होता है, ज्ञानकालमें वह नहीं होता। संशयस्थलके ज्ञानकालमें ही पदार्थकी अस्थिरता प्रतीत होती है अर्थात् संशयस्थलमें सभी पदार्थ 'यह यही रूप' है ऐसा निश्चय नहीं होता। उत्तरकालमें ज्ञान होनेसे 'वह वह रूप नहीं है' ऐसा बाधित होता है।

विषय नहीं रहने पर भी (नरशृङ्ग प्रभृति) शब्द ग्रहण करनेसे सबोंको एक प्रकारका ज्ञान होता है, जिसे विकल्पवृत्ति कहते हैं। शब्दमें एक ऐसा अनिर्वचनीय प्रभाव है, कि अर्थ चाहे रहे चाहे न रहे, उच्चारित होनेसे ही एक अर्थ वतलो देता है। मीमांसकने कहा है, "अत्यन्तमपि असत्यर्थे शब्दो ज्ञानं करोति हि" अर्थात् पदार्थ असत् होने पर भी शब्दज्ञान उत्पन्न करता है, नरशृङ्ग, आकाशकुसुम आदि पदार्थ नहीं है, फिर वे सब शब्द सुननेसे एक अर्थ समझा जाता है, इसीको विकल्पवृत्ति कहते हैं। सत्यस्थलमें शब्द, अर्थ और ज्ञान ये तीनों वर्त्तमान रहते हैं। विकल्पस्थलमें अर्थ नहीं रहता, केवल शब्द और ज्ञान रहता है। विकल्प वृत्ति द्वारा कहीं तो अभेदमें भेद और कहीं भेदमें अभेद प्रतीत होता है।

"अभावप्रत्ययालम्बना वृत्ति निद्रा।" (योगसूत्र १।११)

अर्थात् जिस वृत्तिका अभाव प्रत्यय ही आलम्बन है, वही निद्रा है। अतएव निद्रा एक प्रत्यय वा अनुभव-विशेष है। क्योंकि, जाग्रत् अवस्थामें उसका स्मरण होता है। मैं सुखसे सो रहा था, मेरा मन निर्मल हो कर स्वच्छवृत्ति उत्पन्न कर रहा है, यह सात्त्विक स्मरण है। मैं दुःखसे सो रहा था, मेरा मन अकर्मण्य हो कर अस्थिरभावमें भ्रमण कर रहा है, यह राजसिक स्मरण

है। मैं अतिशय मूढ़भावमें निद्रित था, मेरा शरीर भारी मालूम पड़ता है, चित्त थक गया जिसे सुस्ती आ गई है, चित्त बिलकुल है ही नहीं', ऐसा जान पड़ता है, यह तामसिक स्मरण है। निद्राकालके तमोविषयमें चित्त वृत्ति नहीं होनेसे प्रबुद्ध व्यक्तिको उक्त प्रकारका स्मरण नहीं हो सकता, जिसमें आश्रित वृत्तिविषयमें स्मृति भी नहीं हो सकती थी। अतएव यह स्वीकार करना पड़ेगा कि निद्राकालमें तमोविषयमें चित्तकी वृत्ति हुई थी, अतः निद्रा एक प्रत्ययविशेष अर्थात् अनुभव है।

अनुभूत विषयका जो असम्प्रमोष (अचौर्य) है उसे स्मृति कहते हैं। चित्त, प्रमाण, विपर्यय आदि द्वारा अधिगत पदार्थसे अतिरिक्त पदार्थका विषय नहीं करता, ऐसी चित्तवृत्तिका नाम स्मृति है। संस्कारको द्वार बना कर अनुभव ही स्मृतिका जनक होता है।

यह स्मृति दो प्रकारकी है,—भावितस्मर्त्तव्य और अभावितस्मर्त्तव्य है। जिसका स्मर्त्तव्य (स्मरणका विषय) भावित अर्थात् कल्पित है उसे भावितस्मर्त्तव्य और जिसके स्मरणका विषय पहलेकी तरह कल्पित नहीं उसे अभावितस्मर्त्तव्य कहते हैं।

उक्त पांचो वृत्तियां फिर दो भागोंमें विभक्त है— क्लिष्ट और अक्लिष्ट। अविद्यादि क्लेश जिसका कारण है, जिससे संसारबन्धन होता है, वही क्लिष्टवृत्ति है। अक्लिष्टवृत्ति इसके विपरीत है, इसमें संसारबन्धन धीरे धीरे क्षीण होता।

अविद्यादि क्लेश जिन सब वृत्तियोंका कारण है, जिससे सुख दुःख हुआ करता है, जो कर्मानुसार फल देनेमें क्षेत्रस्वरूप है उसे क्लिष्ट वा सांसारिक चित्तवृत्ति कहते हैं। ख्याति अर्थात् चित्त और पुरुषका भेदज्ञान जिसका विषय है, जो सत्त्व, रज और तमोरूप तीनों गुणोंका अविकार है वा कार्यारम्भका विरोधी है, उसे अक्लिष्टवृत्ति कहते हैं। अक्लिष्टवृत्तिका विषय ख्याति अर्थात् चित्त और पुरुषका विवेकज्ञान है, ऐसा होनेसे फिर चित्तका कार्य नहीं रह पाता।

विवेकख्याति पर्यन्त ही प्रकृतिका चेष्टा है, उस समय चित्त आत्माकी तरह निर्गुण भावमें कुछ देर ठहर कर आखिर विनष्ट हो जाता है।

सचराचर क्लिष्टवृत्ति किस प्रकार उत्पन्न होगी? और किस प्रकार विवेकख्यातिस्वरूप कार्य करनेमें समर्थ हो होगी? इस आशङ्काको दूर करनेके लिये भाष्यकारने कहा है, कि क्लिष्टप्रवाह पतित होने पर भी अक्लिष्टवृत्तिको अक्लिष्टता नष्ट नहीं होती, जो जहां है, वह वहीं रहता है, अक्लिष्टवृत्ति क्लिष्टकी अन्तःपाती होने पर क्लिष्ट नहीं होती। क्लिष्टके छिद्रमें अक्लिष्टवृत्ति हो सकती।

क्लिष्टवृत्तिको प्रवृत्ति और अक्लिष्टवृत्तिको निवृत्तिमार्ग कहा जा सकता है। विषयलोलुप घोर संसारीके चित्तमें भी वैराग्य देखा जाता है, श्मशानक्षेत्रमें बहुतेरे ऐसा अनुभव करते हैं, यह क्लिष्टका छिद्र है, इस छिद्रमें अक्लिष्ट वृत्ति हो सकती है।

फिर उग्रतपा ऋषियोंका भी योगभ्रंश सुना जाता है, यह अक्लिष्टका छिद्र है, इस छिद्रमें क्लिष्टवृत्ति प्रबल वेगमें उत्पन्न होती है। क्लिष्ट और अक्लिष्ट इन दोनों पक्षके बीच संसारक्षेत्रमें घमसान युद्ध चलता है। दोनोंका ही विचरणस्थल चित्तभूमि है।

पहले अक्लिष्टवृत्तिको आश्रय कर क्लिष्टवृत्तिका निरोध करना होगा। पीछे वैराग्य द्वारा अक्लिष्टवृत्तिको भी निरोध कर सकनेसे असम्प्रज्ञातयोग होता। संस्कार ही संस्कारका नाशक होता है। अक्लिष्ट संस्कार द्वारा क्लिष्ट संस्कार नष्ट होता है।

उक्त पांच प्रकारके अलावा और कोई चित्तवृत्ति नहीं है। इन चित्तवृत्तियोंका निरोध करना होगा। क्योंकि, चित्तके साथ पुरुषका संयोग होनेसे चित्तकी सभी वृत्तियां पुरुषमें उपचरित होती हैं। पुरुष स्वच्छ और केवल निर्गुण है। जिस प्रकार स्वच्छ स्फटिकके समीप लाल जवाकुसुम लानेसे स्फटिक लाल और नीला अपराजिता लानेसे स्फटिक भी नीला हो जाता है, परन्तु सच पूछिये तो स्फटिकके कोई भी वर्ण नहीं, उपाधिका वर्ण उसमें प्रतिफलित होता है, उसी प्रकार केवल निर्मल पुरुषमें सुखदुःख मोह आदि चित्तवृत्तिके प्रतिबिम्बित होनेसे पुरुष उनके साथ स्वारूप्य लाभ कर अपनेको सुखी दुःखी समझता है। यथार्थमें पुरुषके सुख दुःख कुछ भी नहीं है। यह केवल वृत्तिका उपरागमात्र है।

ये सभी वृत्तियां सुख, दुःख और मोहात्मक हैं। इन सब वृत्तियोंका निरोध कर सकनेसे जो सब क्लिष्टवृत्ति उत्तरोत्तर विषयासक्तिको बढ़ाती है, पहले उसीका

निरोध करना होगा। अक्लिष्टवृत्ति अर्थात् निवृत्तिमार्गमें पहले धर्मवृत्तियोंका निरोध नहीं करना पड़ेगा। पहले निवृत्तिमार्गका अवलम्बन कर प्रवृत्तिमार्गमें बाधा देनी होगी। यह अक्लिष्टवृत्ति दृढ़ होनेसे अन्तमें उसका परित्याग कर देनेसे नुकसान नहीं होता।

योगके द्वारा चित्तवृत्ति निरुद्ध होनेसे पुरुष पर वृत्तिकी छाया नहीं पड़ती। उस समय पुरुष अपने स्वरूपमें अवस्थान करता है।

इस चित्तवृत्तिनिरोधकी प्रणाली क्या है? पतञ्जलिने भिन्न भिन्न आठ प्रकारकी प्रणालीका उल्लेख किया है। इनमेंसे जिस किसीका अनुसरण करनेसे चित्तवृत्तिका निरोध किया जा सकता है।

१म। "अभ्यासवैराग्याभ्याम् तन्निरोधः।" (योगसू० १।१२)

अभ्यास और वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तिका निरोध हो सकता है।

२। "ईश्वर प्रणिधानाद् वा।" (योगसू० १।२३)

अथवा, ईश्वरके प्रणिधानसे चित्तवृत्तिका निरोध होता है। इस सम्बन्धमें भाष्यकारने ऐसा कहा है—क्या इसी अभ्यास वैराग्यसे समाधि अति शीघ्र लाभ होती है या और कोई उपाय है? इसके उत्तरमें यही कहना है, कि विशेष भक्तिपूर्वक आराधित होनेसे ईश्वर प्रसन्न हो कर 'इसका अभीष्ट सिद्ध होवे' इस प्रकार अनुग्रह करते हैं। एक प्रकार सङ्कल्प द्वारा योगीका समाधिलाभ सुलभ हो जाता है। (१।२३ व्यासभाष्य)

३। "प्रच्छर्द्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।" (योगसू० १।३४)

अथवा, प्राणके निःसरण और विधारण द्वारा भी चित्तवृत्तिका निरोध हो सकता है, अर्थात् प्राणायाम भी समाधिलाभका एक दूसरा उपाय है।

४। "विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी" (१।३५)

अथवा, इन्द्रियविशेषमें धारणा द्वारा गन्धादि विषयका साक्षात्कार होनेसे भी चित्त स्थिर होता है। अर्थात् नासाग्र, जिह्वामूल आदिमें धारणा करनेसे योगी अलौकिक गन्ध रूप रस स्पर्श शब्द आदिका अनुभव करते हैं। इससे उनका चित्त निविष्ट हो जाता है। अतएव चित्त स्थैर्यका यह भी एक उपाय है।

५। "विशोका वा ज्योतिष्मती।" (१।३६)

अथवा, हृत्पद्ममें धारणा करनेसे जिस शोकरहित ज्योतिका प्रकाश होता है उसके द्वारा भी चित्तकी स्थिरता हो सकती है। ज्योतिका साक्षात्कार भी चित्त-स्थैर्यका एक उपाय है।

६। "वीतराग-विषयं वा चित्तम्।" (१।३७)

अथवा, जो वीतराग (विषयविरक्त) हैं, उनके विषयमें ध्यान करनेसे भी चित्त स्थिर होता है; अर्थात् निष्काम महात्माका ध्यान भी चित्तस्थैर्यका एक उपाय है।

७। "स्वप्ननिद्राज्ञानावलम्बनं वा।" (१।३८)

अथवा, स्वप्नज्ञान या निद्राज्ञानका अवलम्बन करनेसे भी चित्तस्थिर होता है। अर्थात् स्वप्नमें मूर्त्ति-विशेष या सात्त्विक वृत्तिका आश्रय करके भी चित्तस्थैर्य लाभ किया जा सकता है।

८। "यथाभिमतध्यानात् वा।" (१।३९)

अपने इच्छानुसार जिस किसी विषयका ध्यान करनेसे भी चित्त स्थिर होता है। अर्थात् अभिमतध्यान भी चित्तस्थैर्यका एक उपाय है।

साधनावस्थामें योगाभ्यासके फलसे योगीकी बहुत-सी अलौकिक शक्तियोंका संचार होता है, इन्हें विभूति या सिद्धि कहते हैं। पातञ्जलदर्शनके तृतीय पादमें इन सब सिद्धियोंका सविस्तार उल्लेख है। ये सब प्रकृत योगसाधनाके पक्षमें नहीं, पर अन्तराय है।

"ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः"—(३।३२)

अर्थात् समाधिरहितके पक्षमें ये सब विभूति समझी जाती हैं किन्तु समाधियुक्त योगीके पक्षमें यह उपसर्ग-मात्र हैं, यह उपसर्ग क्या है?

जिससे चित्तका विक्षेप होता है अर्थात् एकाग्रता विनष्ट होती है, उसे अन्तराय कहते हैं। व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्त्व ये ९ अन्तराय हैं।

धातु, वायु, पित्त और कफके वैषम्यके लिये व्याधि, चित्तकी कार्याकारिता शक्तिका अभाव ही स्त्यान; यह वस्तु इस प्रकार है वा नहीं, इस प्रकारका ज्ञान संशय; समाधिके उपायका अनुष्ठान प्रमाद; तमोगुणकी अधिकतासे चित्तके और कफादिकी अधिकतासे शरीरके गुरुता प्रयुक्त प्रयत्नके अभावका नाम आलस्य, सर्वदा विषयसंयोगरूप तृष्णाविशेषका नाम अविरति; एक वस्तुको दूसरी वस्तु जाननेका नाम भ्रान्तिदर्शन और

मधुमति आदि समाधिभूमिके लाभ नहीं होनेका नाम अलब्धभूमिकत्व है।

शरीरके सुस्थ नहीं रहनेसे कोई भी कार्य नहीं होता, इस कारण सूत्रकारने पहले व्याधिको ही विघ्न बताया है। संशय और विपर्यय ये दोनों ही चित्तकी वृत्तिविशेष है, अतएव योगव्यासिक विरोधी है। क्योंकि युगपद् चित्तकी वृत्ति नहीं होती, 'ज्ञानद्वयस्यायौगपद्यात्।' व्याधि आदि चित्तवृत्ति नहीं होनेसे भी यह योगके विरुद्ध विक्षेप वृत्ति उत्पादन करके योगका प्रतिपक्ष होता है।

अन्वय और व्यतिरेक द्वारा ही कर्मकारणभाव गृहीत होता है। अतएव अन्तराय रहनेसे चित्तका विक्षेप होता है और नहीं रहनेसे नहीं होता। इसलिये व्याधि आदि अन्तरायको चित्तका विक्षेपक जानना चाहिये।

सभी विषयोंमें जब तक परिपक्व न हो जाता, तब तक बड़ी सावधानी रखनी होती। ध्येय जब तक साक्षात्कार न होता, तब तक पद पदमें योगभ्रंश हो सकता है। अतएव योगका अनुष्ठान बहुत सोच विचार कर करना होता है।

चित्तके विक्षिप्त होनेसे दुःख, दौर्मनस्य, शरीरकंपन, श्वास और प्रश्वास होता है।

ये सब विक्षेप रोकनेके लिये ईश्वर अथवा किसी अन्य विषयमें चित्तको निवेश करना होगा। योगानुष्ठान करनेमें चित्तको हमेशा प्रसन्न रखना होता है। चित्तके अप्रसन्न रहनेसे कोई भी कार्य नहीं होता, योगकी बात तो दूर रहे, अतएव जिसके चित्त प्रसन्न हो, पहले योगीको वही करना उचित है। चित्तको प्रसन्न करनेका उपाय क्या?

सुखीके प्रति प्रेम, दुःखीके प्रति दया, धार्मिकके प्रति हर्ष और पापियोंके प्रति उदासीनता दिखलानेसे चित्त प्रसन्न होता है। भाष्यकारने इसका तात्पर्य यों बतलाया है,—चित्तशुद्धिका कारणस्वरूप और फल हो क्या है? इसके उत्तरमें कहा गया है, कि जगत्के सभी सुखी लोगोंके प्रति मित्रता करे। ऐसा करनेसे चित्तमें जो ईर्षानल है वह दूर हो जायगा। जिस प्रकार अपना दुःख दूर करनेके लिये हमेशा प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार दूसरे प्राणीका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इससे परोपकाररूप चित्तमल विनष्ट होता है, धार्मिक मनुष्यको देख कर सन्तुष्ट होवें; इससे दोषारोप अर्थात् असूया निवृत्ति होती है, अधार्मिक लोगोंके प्रति उदासीन रहे, अर्थात् उनका साथ बिलकुल छोड़ दे, इससे क्रोधरूप चित्तमल विनष्ट होता है। इस प्रकार पुनः पुनः अनुशीलन करनेसे चित्तमें शुक्लधर्म अर्थात् राजसतामसवृत्ति दूर हो कर सात्त्विक वृत्तिका उदय होता है। तब चित्त प्रसन्न हो कर सुस्थिर होता है, पहलेकी तरह तड़िद्वेगमें विषयकी ओर नहीं दौड़ता।

(योगसू० १।३३)

योगका अङ्ग।

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।" (योगसू० २।२९)

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगके अङ्ग हैं। बिना साधनके सिद्धि नहीं होती, इसीलिये योगाङ्गानुष्ठान उचित है। योगाङ्गके अनुष्ठानसे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पांच प्रकारके विपर्यय (मिथ्या) ज्ञानका क्षय होता है। विपर्ययज्ञानका क्षय होनेसे सम्यक्ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती है। योगाङ्गानुष्ठानके तारतम्यानुसार अशुद्धिका भी तिरोधान होता। तथा अशुद्धिके विनाश होनेसे तदनुसार ज्ञानकी भी दीप्ति बढ़ती है। पीछे उस वृद्धिसे विवेकख्याति होती है।

उक्त आठ अङ्गोंके मध्य यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये सब बहिरङ्ग तथा धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन अन्तरङ्ग हैं।

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः" (योगसू० २।३०)
अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचोंको यम कहते हैं।

किसी भी तरह कभी किसी प्राणीका प्राणवियोग हो, ऐसी चेष्टा नहीं करनेको अहिंसा कहते हैं। परवर्त्ती सत्यादि यम और शौचादि नियम सभी अहिंसामूलक है अर्थात् अहिंसाकी रक्षा न करके सत्यादिका अनुष्ठान करना निष्फल है।

इस अहिंसा वृत्तिकी स्वच्छताके लिये सत्यादिका अनुष्ठान करना होता है, नहीं करनेसे असत्य आदि दोषोंसे अहिंसा मलिन हो जाती है। यथार्थ वाक् और मनको सत्य कहते हैं। अर्थात् जिस प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमिति और शब्दके लिये वाक्य और मनका ज्ञान हुआ है, उसी प्रकार श्रोताके जिससे ज्ञान उत्पन्न हो, ऐसा कहनेसे सत्य कहा जाता है।

प्रतिग्रह छोड कर दूसरेके द्रव्य लेनेको स्तेय (चौर्य) कहते हैं। उसके अभावका नाम अस्तेय हैं। केवल चूरीका वर्जन ही नहीं, दूसरेके द्रव्य पर अपनी इच्छा भी नहीं दौड़ानी चाहिये। अष्टाङ्ग मैथुन-निवृत्तिका नाम ब्रह्मचर्य हैं। विषयके साथ उपभोग वस्तुका उपार्जन, रक्षा, क्षय, सङ्ग और हिंसा दोषका अनुभव कर उससे विरत रहनेका नाम अपरिग्रह है। विषय-वैराग्यका दूसरा नाम अपरिग्रह भी है। "शौच सन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः।" (योगसू० २।३२) शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पांच प्रकारके नियम हैं। मृत्तिका और जलादिकी मार्जना और मेध्य पवित्र वस्तु खानेका नाम वाह्य शौच; चित्तके मल (ईर्षासूयादि) दूर करनेका नाम अन्तःशौच; क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वसहिष्णुताका नाम तपस्या; उपनिषद्, गीता आदि मोक्षशास्त्र पढ़नेसे अथवा ओङ्कार जपनेका नाम स्वाध्याय और परमगुरु परमेश्वर-मे समस्त कर्म अर्पण करनेका नाम ईश्वरप्रणिधान है। इन्हें नियम कहते हैं। विशेष विवरण नियम शब्दमे देखो।

यम और नियम ये दो जब सिद्ध हो जायं, तब तीसरा योग करना चाहिये। तीसरा योगाङ्ग आसन है।

"स्थिरसुखमासनं।" (योगसू० २।४६)

स्थिरभावमे अधिक देर तक विना कष्टसे मालूम किये रहनेको आसन कहते हैं। यही आसन योगका अङ्ग है। योगभाष्य पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिक, दण्डासन, सोपाश्रय, पर्यङ्क, क्रौञ्चनिसूदन, हस्तिनिसूदन, उष्ट्रनिसूदन, समसंस्थान, स्थिरसुख और यथासुख आदि आसनका उल्लेख है। लेट जानेसे नींद आती है, अन्य भावमें रहनेसे शरीर धारणमे ही व्यस्त रहना पड़ता है तथा अधिक देर तक नहीं रहा जाता, इसके लिये आसनका उपदेश है, कि जिस भावमें देर तक रहनेसे भी किसी प्रकारका कष्ट न हो, वही स्थिरसुख आसन है। स्थिरसुख आसनमें कुछ भी नियम नहीं है। विना गुरुके उपदेशके आसन-शिक्षा नहीं होती, इसमे विपरीत फल होता है तथा अति उत्कट व्याधि-ग्रस्त होना पड़ता है। आसन सीखनेके समय बहुत कष्ट मालूम होता है। एक बार अच्छी तरह अभ्यस्त हो जानेसे फिर कष्ट नहीं होता। जब तक विना क्लेश-के आसन पर न बैठ सके, तब तक अभ्यास करना होगा। यह आसन दो प्रकारका है। वस्त्र, अजिन और कुश आदि बाह्य आसनका नाम पद्म और स्वस्तिकादि शरीर आसन है। योगप्रदीपमें योगसाधन आसन-का विस्तृत विवरण लिखा है।

आसनसिद्धिके वाद प्राणायाम करना होता है। श्वासप्रश्वासके गतिविच्छेद अर्थात् प्राणवायुके संयम को प्राणायाम कहते है। रेचक, पूरक और कुम्भक यही तीन प्रकारके प्राणायाम हैं। वाहरकी वायुको भीतर करनेका नाम श्वास और भीतरकी वायुको वाहर करने-का नाम प्रश्वास है। इन दोनों प्रकारकी क्रियाका निरोध प्राणायाम है। प्राणायाम देखो।

यम, नियम और आसन जयके वाद प्रत्याहार योग-का अनुष्ठान करना होता है। प्रत्याहार—"स्वविषया-सम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः" (योगसू० २।५४) चित्त शब्दादि विषयसे जब निवृत्त होता, तब इन्द्रियां भी निश्चल हो कर चित्तका अनु-करण करती है। इसीको प्रत्याहार कहते है। इन्द्रियोंका अपना अपना विषय शब्दादिके साथ नहीं मिलनेसे चित्तके स्वरूपको मानो अनुकरण होता है। इंद्रियनिरोधका नाम ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार देखो।

यमादि पांच वहिरङ्ग-साधनके वाद अन्तरङ्ग-साधन आवश्यक है।

दूसरे विषयसे हटा कर नाभिचक्र आदि अन्तर्विषय तथा देवमूर्त्ति आदि वहिर्विषयमें चित्तको स्थिर करनेका नाम धारणा है। नाभिस्थान, हृदपद्म, मस्तकज्योतिः, नासिकाके अग्रभाग, जिह्वाके अग्रभाग आदि आध्या-त्मिक देशमें अथवा देवमूर्त्ति आदि वाह्योद्देशमे चित्त को स्थिर कर सकनेसे ही धारणा होती है।

धारणा सिद्ध होनेके वाद ध्यान करना उचित है। दूसरे विषयसे हटा कर पूर्वोक्त जिस विषयमें चित्त स्थिर किया जाता है, उस विषयाकारमें वार वार चित्त-वृत्तिके परिणत होनेका ध्यान कहते हैं अर्थात् पूर्वोक्त जिस किसी भी विषयमें चित्तकी धारणा हुई है उस विषयमें वार वार सदृशरूपमें वृत्ति होना ही ध्यान है। विना ध्येय आलंवनके अन्य विषयमें किसी प्रकारकी चित्तवृत्ति न होगी, किन्तु ध्येयाकारमें चित्तवृत्तिका सदृश प्रवाह होगा। ऐसा होनेसे ध्यान सिद्ध हुआ है, ऐसा जानना चाहिये। ध्यानके वाद समाधि होती है। यही योगका चरमफल है। समाधि होनेसे फिर योगानुष्ठानकी आवश्यकता नहीं रहती।

ध्यान परिपक्व हो कर जव ध्येयाकारमें भासमान होता है, चित्तवृत्ति रहते हुए भी नहीं रहनेके समान मालूम पड़ता है, उस अवस्थाका नाम समाधि है।

जिस प्रकार जवाकुसुमके समीप परिशुद्ध स्फटिकका अपना शुक्लगुण भासमान नहीं होता, उसी प्रकार विषयाकारमें सर्वथा लीन हो कर चित्तवृत्ति पृथक् भावमें अनुभूत नहीं होती, यही अवस्था समाधि है।

यह समाधि दो प्रकारकी है, सवीज और निर्वीज। सवीज समाधिमें चित्तका आलम्वन रहता है; उस अवस्थामें चित्तकी सूक्ष्म सात्त्विक वृत्ति तिरोहित नहीं होती। इसीसे सवीज समाधिका एक दूसरा नाम सम्प्रज्ञात-समाधि भी है। निर्वीज समाधिमें चित्तकी सभी वृत्तियां तिरोहित होती है, केवल संस्कारमात्र रह जाता है। इसीसे इस समाधिको असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

व्यासभाष्यमें समाधिका ऐसा लक्षण किया गया है,—

"ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात् तदा समाधिरित्युच्यते।"

उस समय ध्येय वस्तु अच्छी तरह प्रज्ञात होती है। क्योंकि, उस समय ध्येयविषयक वृत्ति भी निरुद्ध होती है, इस कारण कुछ भी प्रज्ञान नहीं होती। उक्त दोनों प्रकारके योगोंका साधारण नाम समाधियोग है।

सम्प्रज्ञातसमाधि चार प्रकारकी है—सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार; इन्हें सवीज कहते हैं।

उसके भी निरोधसे जव सभी निरुद्ध होते हैं, तव निर्वीज समाधि होती है। यह निर्वीज समाधि ही पातञ्जलका अनुमोदितयोग है।

यह निर्वीज समाधि या योग आयत्त होनेसे पुरुषके स्वरूपमें अवस्थान होता है। तव पुरुषको शुद्ध मुक्त कहते हैं। इसीका नाम कैवल्यसिद्धि है। यही पातञ्जलदर्शनका चरमलक्ष्य है।

ज्ञान उत्पन्न होनेसे अदर्शन (अविद्या) की निवृत्ति होती है; अदर्शनकी निवृत्ति होनेसे पञ्चक्लेशकी निवृत्ति होती है; क्लेशकी निवृत्ति होनेसे कर्म परिपक्व हो कर फिर फल उत्पन्न नहीं कर सकता। इस अवस्थामें प्रयोजनके चरितार्थ होनेसे प्रकृति फिर पुरुषकी दृश्य नहीं होती। पुरुष उस समय केवल (स्वतन्त्र) होते हैं तथा निर्मल ज्योतिःस्वरूपमें अवस्थान करते हैं।

उस समाधियोगकी अवस्थामें अविद्यादि समस्त क्लेश और कर्मरूप आवरणसे चित्त-सत्त्व मुक्त होनेसे उसका प्रसार होता है। उस समय उसकी ज्योतिं सभी स्थानोंमें फैल जाती है। उस अवस्थामें योगीसे कोई भी विषय छिपा नहीं रहता। जिस योगसिद्धके ऐसा तत्त्वज्ञान हो गया है, उनके लिये प्रकृति फिर परिणत हो कर भोग या अपवर्ग उत्पन्न नहीं करती। यही कैवल्य तथा पातञ्जलदर्शनोक्त मुक्ति है; इस अवस्थामें चितिशक्ति (पुरुष)-की स्वरूपमें प्रतिष्ठा होती है।

ये सव योगाङ्ग सिद्ध होनेसे नाना प्रकारके संतोष और क्षमता, अणिमादि ऐश्वर्यलाभ तथा अन्तमें कैवल्य-मुक्ति प्राप्त होती है। उसी समय योगका चरमफल हुआ है, ऐसा स्थिर करना होगा।

गीता और पातञ्जल।

पहले ही कहा जा चुका है, कि गीता भी एक योग-शास्त्र है। अव देखना चाहिये, कि गीता और पातञ्जलमें किसी प्रकारकी पृथकता है कि नहीं? गीताने योग-प्रणालीका अनुमोदन किया है। गीताके मतसे—

"तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्म्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन ॥"

(गीता ६।४६)

योगी तपस्वीसे श्रेष्ठ है, ज्ञानीसे श्रेष्ठ है और कर्मीसे भी श्रेष्ठ है, अतएव हे अर्जुन ! तुम योगी वनो।

गीताने पातञ्जल-प्रदर्शित अष्टाङ्ग योगका साधारणतः अनुमोदन किया है,—

"योगी युञ्जति सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥"

(गीता० ६।१०)

योगीको निर्जन स्थानमें रह कर आशा और परिग्रहका परित्याग करते हुए संयत चित्तसे सर्वदा आत्माका योगसाधन करना चाहिये।

वे पवित्रदेशमें न उतने ऊँचे और न उतने नीचे स्थानमें, कुश, अजिन और वस्त्र बिछा कर अपना स्थिर आसन संस्थापन करे। वहां वे मनको एकाग्र कर तथा चित्त और इन्द्रियको क्रियाको संयत कर आत्मशुद्धिके लिये आसन पर बैठ योगका अभ्यास करे।

शरीर, मस्तक और ग्रीवाको सीधा तान कर तथा दृष्टिको सभी दिशाओंसे खींच कर नासिकाके अग्रभाग पर रखते हुए स्थिरभावसे बैठे।

"प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥" (६।१४)

योगी प्रशान्त, निर्भय, ब्रह्मचारि-व्रतधारी और संयतचित्त हो भगवान्में चित्त लगावे।

संकल्पज सभी कामनाओंका परित्याग कर मन द्वारा इंद्रियोंको सभी विषयोंसे खींच करके योगाभ्यास करे। धारणा द्वारा बुद्धिको वशीभूत करके धीरे धीरे उपरत होवे। मनको आत्मामें स्थापित कर कुछ भी चिन्ता न करे। चञ्चल अस्थिर मन जहां तहां दौड़ेगा, वहांसे उसको खींच कर आत्मामें निविष्ट करे।

(गीता० ६।४-६)

जो मोक्षपरायण मुनि वाह्यविषयका संस्पर्श परित्याग कर दोनों भ्रूके बीच चक्षुको संस्थापित करके तथा नासिकाके अभ्यन्तर प्राण और अपनेको समीकृत कर इन्द्रिय, मन और बुद्धिको संयत करते है, वे ही जीवन्मुक्त हैं।'

"पवित्र स्थानमें आसन संस्थापन करें" यह आसनका उपदेश है। 'नासिकाके अभ्यन्तर प्राण और अपनेको समीकृत करे', यह प्राणायामका उपदेश है। 'वाह्य विषयका संस्पर्श परित्याग करे' यह प्रत्याहारका उपदेश है। 'ब्रह्मचारि व्रतग्रहण, परिग्रह परित्याग' इत्यादि यमका उपदेश है। 'इन्द्रियको वशीकरण, चञ्चल मनका संयम, आशाका परित्याग' इत्यादि नियमका उपदेश है। 'नासिकाग्र पर दृष्टिधारण, मनको आत्मामें संस्थापन' इत्यादि धारणका उपदेश है। 'भगवान्में चित्तस्थापन, मनका एकाग्रतासाधन' इत्यादि ध्यानका उपदेश है। 'कुछ भी चिन्ता न करे, मनको आत्मामें स्थापित रखे', इत्यादि समाधिका उपदेश है।

पातञ्जलके मतसे योगकी चरम अवस्थामें पुरुष स्वरूपावस्थान करता है। पुरुष चित्तस्वरूप है, इस मतसे वे आनन्दघन नहीं है, अतएव पातञ्जलोक्त मुक्ति सुख-दुःखके अतीत कैवल्य अवस्था है। इसमें दुःखकी निवृत्ति तो होती है पर अनन्त सुख नहीं मिलता। गीतामें भगवान्ने योगके फलको अत्यन्त सुख बताया है।

जिस अवस्थामें बुद्धिग्राह्य अतीन्द्रिय निरतिशय सुखको उपलब्धि होती है, जिस अवस्थामें रहनेसे तत्त्वसे विच्युति नहीं होती, जिस अवस्थामें उपस्थित होनेसे गुरुतर दुःख भी विचलित नहीं कर सकता, दुःखकी स्पर्शशून्य इसी अवस्थाका नाम योग है। निर्वेदशून्य चित्तमें उस योगका निश्चयके साथ अभ्यास करे। अतएव गीताके मतसे योगकी अवस्थामें निरतिशय सुखलाभ होता है। योगसिद्ध होनेसे वह सुख और भी घनीभूत हो कर ब्रह्मानन्दमें परिणत हो जाता है।

प्रशान्तचित्त, रजोविहीन, निष्पाप, ब्रह्मभूत योगी उत्तम सुखका अनुभव करते हैं। निष्पाप योगी इस प्रकार आत्माको योगयुक्त करके आसानीसे ब्रह्म-संस्पर्शरूप अत्यन्त सुखको प्राप्त होते हैं।

जिसका चित्त वाह्यविषयमें अनासक्त है, वे आत्मामें जो सुख है वही सुख अनुभव करते हैं तथा ब्रह्ममें समाधि करके अक्षय सुख पाते हैं।

पातञ्जलके मतसे जीव और ईश्वर भिन्न है, योगकी

जो चरम अवस्था निर्वीज समाधि है, उससे केवल आत्म-साक्षात्कार होता है; ईश्वरप्राप्ति होती है वा नहीं, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। किन्तु गीताके मतसे योग द्वारा भगवान्‌का सङ्ग वा साक्षात्लाभ होता है।

संयतचित्त योगी इस प्रकार आत्माको समाहित करके भगवान्‌में स्थितिरूप मोक्षप्रधान शान्ति लाभ करते हैं।

सब पर समान दृष्टि रखनेवाले योगी सभी भूतोंमें आत्माको और सभी भूतोंको आत्मामें अवलोकन करते हैं। समस्त भूतोंमें जो आत्मा विराजित है, वे परमात्मा के सिवा और कौन हो सकते? पातञ्जलदर्शन-प्रसङ्गमें पहले लिखा जा चुका है, कि प्रकृति-पुरुषका जो वियोग वा विवेक (पार्थक्यज्ञान) है, उसीको योग कहते हैं।

किन्तु पुराणादि शास्त्र-ग्रन्थोंमें योग शब्दका संयोग अर्थ ही अनुमोदित हुआ है। याज्ञवल्क्यने कहा है, कि जीवात्मा और परमात्माका जो संयोग है, उसीका नाम योग है। वह संयोग, प्रयत्न वा उद्योगके विना सिद्ध होता है।

"आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते॥"

(विष्णुपु० ६।७।३१)

अर्थात् आत्माका यत्नसापेक्ष जो असाधारण मनोवृत्ति है, उसके भगवान्‌मे संयोगको ही योग कहते हैं।

गीतामें भगवान्‌ने योगका जैसा परिचय दिया है, उससे मालूम होता है, कि यही मत गीताका अनुमोदित है। कारण, गीताने योगीको मन संयम करके चित्त ईश्वरमें लगानेका उपदेश दिया है।

फिर गीतामें यह भी लिखा है, कि योगके फलसे जो निर्वाण-परमा शान्ति लाभ की जाती है, वह मुझमें (भगवान्‌में) रहनेका फल है।

पहले लिखा जा चुका है, कि योगसिद्धिके लिये पतञ्जलिने जिन उपायोंका उपदेश दिया है, "ईश्वर प्रणिधान" उनमेंसे एक है। यही उपाय जो अद्वितीय उपाय है, पतञ्जलि उसे स्वीकार नहीं करते। योगी चित्तवृत्ति निरोधके लिये जिस प्रकार अन्यान्य उपायका अनुसरण कर सकते हैं, उसी प्रकार इच्छा होनेसे ईश्वर-प्रणिधान कर सकते हैं।

विक्षिप्त चित्तको एकाग्र करनेके लिये पतञ्जलिने साधकको 'क्रियायोग'-का अनुष्ठान करनेका उपदेश दिया है। क्रियायोग आयत्त होनेसे समाधिका अनुकूल होता है।

"तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः।"

(योगसू० २।१)

तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधानका नाम क्रियायोग है। समाहित चित्तवाले व्यक्ति समाधियोग-के अधिकारी हैं। विक्षिप्त चित्तवाले व्यक्ति समाधि-योगके अधिकारी नहीं है, किन्तु क्रियायोगके अधिकारी हैं। प्रथमाधिकारी पहले क्रियायोगका अनुष्ठान करे, उससे आगे चल कर उसके सभी क्लेश दूर होंगे तथा समाधियोगका अधिकार उत्पन्न होगा।

तपस्याविहीन व्यक्तिका योग सिद्ध नहीं होता। आदि रहित चिरकाल प्रवाहमान धर्माधर्म, कर्म और अविद्या आदि क्लेश संस्कार द्वारा चित्रीकृत होता है। अतएव चित्तमें रजः और तमोगुणका उद्रेक विना तपस्याके अपनीत नहीं होता। इसलिये चित्तप्रसादन तपस्या इस प्रकार करनी होगी, कि धातुवैषम्य न होने पावे। सुस्थ व्यक्तिका ही तपश्चर्या सम्भव है। प्रणव आदि पवित्र मन्त्रके जप अथवा उपनिषद् आदि मोक्षप्रतिपादक शास्त्रके अध्ययनको स्वाध्याय कहते हैं। परम गुरु ईश्वरमें सभी क्रियाओंके अर्पण वा क्रियाके फलत्यागका नाम ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वरप्रणिधान शब्दसे ऐसा समझा जायगा।

"कामतोऽकामतो वापि यत् करोषि शुभाशुभं।
तत्सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत् प्रयुक्तः करोम्यहम्॥"

इच्छा वा अनिच्छासे मैंने अच्छा बुरा जो कुछ किया है उसे आपको अर्पण किया। मैं जो कुछ करता हूं, वह आपसे ही प्रेरित हो कर करता हूं। यही क्रियाका अर्पण वा ईश्वरप्रणिधान है। प्रणवरूप और प्रणवार्थभावनाका भी दूसरा नाम ईश्वरप्रणिधान है। चित्तकी एकाग्रता और स्थैर्यसम्पादनके अनेक उपाय कहे गये हैं उनमेंसे ईश्वरप्रणिधान उत्कृष्ट और सुलभ उपाय है।

पतञ्जलिके मतसे ईश्वरप्रणिधान अष्टाङ्गयोगके बहिरङ्ग पांच प्रकारके नियमोंमेंसे एक है। अतएव पातञ्जलदर्शनमें ईश्वरका स्थान गौण है। क्योंकि, ईश्वरप्रणिधान योगसिद्धिके नाना उपायोंमेंसे एक उपाय है।

"शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।"

(योगसूत्र २।३२)

ईश्वरप्रणिधानका उपदेश दे कर पतञ्जलि योगीको भगवान्‌का ध्यान करने नहीं कहते, उनमें कर्मसंन्यास करने कहते हैं। यही गीतोक्त कर्मयोग है। भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है,—

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" (गीता २।४७)

कर्ममें ही तुम्हारा अधिकार है, फलमें नहीं।

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥" (गीता ९।२७)

जो कुछ करो, जो खाओ, जो मांग कर लावो, जो हो, वह सभी मुझमें अर्पण करो।

पातञ्जलोक्त ईश्वरप्रणिधान इसी ढंगका है। ध्यानयोग इससे स्वतन्त्र है। पतञ्जलिके मतसे किसी भी विषयमें चित्तका एकतानप्रवाह ही ध्यान है। भगवान् ही ध्येय (ध्यानके विषय) हैं, उन्हींका ध्यान करना होगा ऐसी कोई बात नहीं।

पतञ्जलिके मतसे यदि योगी ईश्वरप्रणिधान करे अर्थात् भक्तिपूर्वक ईश्वरमें समस्त कर्मसंन्यास करे, तो ईश्वर प्रसन्न हो कर प्रकृति-पुरुषका विवेक-ज्ञान उनके लिये सुलभ कर देते हैं। उसके फलसे योगीकी आत्मा भगवान्‌में संयुक्त नहीं होती, केवल विवेकज्ञान निश्चल हो जाता है। ईश्वरप्रणिधानके फलसे व्याधि आदि विघ्न होते हैं तथा आत्मसाक्षात्कार लाभ होता है। ईश्वर साक्षात्कार नहीं होते।

सर्वदर्शनसंग्रहकार पातञ्जलदर्शनके परिचयस्थलमें ईश्वरप्रणिधान शब्दका अर्थ इस प्रकार किया गया है—"ईश्वर-प्रणिधानं नामाभिहितानामनभिहितानाञ्च सर्वासां क्रियाणां परमेश्वरे परमगुरौ फलानपेक्षया समर्पणम्।" किन्तु ईश्वरप्रणिधानाद्‌ वा" इस सूत्रके वार्त्तिकमें विज्ञान भिक्षुने ऐसा लिखा है,—"प्रणिधानमत्र न द्वितीयपादवक्ष्यमाणं, किन्तु असम्प्रज्ञातकारिणीभूतसमाधिर्भावनाविशेष एव। तज्जपस्तदर्थभावनम् इत्यागामिसूत्रेणैव आत्मप्रणिधानस्य अत्र लक्षणीयत्वात्। ब्रह्मात्मना चिन्तनरूपतया प्रेमलक्षणभक्तिरूपाद्वक्ष्यमाणात् प्रणिधानाद्वावर्जितोऽभिमुखीकृत ईश्वरस्त्वध्यायिनमभिध्यानमात्रेण अस्य समाधिमोक्षौ आसन्नतमौ भवेतामितीच्छामात्रेण रोगाशक्त्यादिभिरुपायानुष्ठानमान्द्योऽप्यनुगृह्णाति आनुकूल्यं भजते अतस्तस्मादभिध्यानादपि प्रणिधाननिष्पत्त्यादिद्वारा योगिनामासन्नतमौ समाधिमोक्षौ भवतः"—(१।२३ सूत्रका योगवार्त्तिक)। अतएव विज्ञानभिक्षुके मतसे इस सूत्रमें ईश्वरप्रणिधानका अर्थ कर्मार्पण नहीं—ईश्वरमें चित्तार्पण वा भावनाविशेष है भक्तिसहकृत ब्रह्मचिन्तन है।

किन्तु गीताके मतसे ईश्वरमें चित्तसंयोग ही योग है। ईश्वरको छोड़ देनेसे योग होना बिलकुल असम्भव है। इसीसे गीतामें जहां योगका प्रसङ्ग है वहीं ईश्वरका उल्लेख देखनेमें आता है।

इसी कारण भगवान्‌ने कहा है,—

"योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥"

(गीता ६।४७)

वे ही श्रेष्ठयोगी हैं जो श्रद्धावान् हो मुझमें (भगवान्‌में) चित्त संयुक्त कर मेरा भजन करते हैं।

"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते॥"

(गीता ६।३०-३१)

जो मुझको (ईश्वरको) सभीमें तथा सभीको मुझमें देखते हैं, मैं कभी भी उससे अदृश्य नहीं होता और न वह मुझसे ही अदृश्य होता।

जो योगी एकत्वका अवलम्बन कर सर्वभूतस्थ हमको भजते हैं, वह चाहे किसी भावमें क्यों न रहे, मुझमें ही अवस्थित करता है।

गीताने और भी कहा है, कि योगी यदि देहत्यागकालमें ओङ्काररूप ब्रह्ममन्त्र उच्चारण कर भगवान्‌का स्मरण करते हुए देहत्याग करें, तभी वह परमगतिको प्राप्त होते हैं।

हठयोग देखो।

योगकक्षा (सं० स्त्री०) योगपट्ट।

योगकन्या (सं० स्त्री०) यशोदाके गर्भसे उत्पन्न कन्या। वसुदेव इसे ले आ कर देवकीके पास रख आये थे। और कंसने इसे मार डाला था। कंस देखो।

योगकण्टक (सं० पु०) राजा ब्रह्मदत्तके मन्त्री।

योगकरण्डिका (सं० स्त्री०) एक बौद्ध-परिव्राजिका।

योगकुण्डलिनी (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्‌का नाम।

योगक्षेम (सं० क्ली०) योगश्च क्षेमश्च तयोः समाहारः। १ जो वस्तु अपने पास न हो उसे प्राप्त करना और जो मिल चुकी हो उसकी रक्षा करना भिन्न भिन्न आचार्योंने इस शब्दसे भिन्न भिन्न अभिप्राय लिये हैं, जैसे—गीता-भाष्यमें शंकराचार्यने योग शब्दसे अप्राप्तकी प्राप्ति तथा क्षेम अर्थसे उसकी रक्षा ऐसा अर्थ किया है। श्रीधर-स्वामीने योग शब्दसे धनादि लाभ तथा क्षेम शब्दसे उसकी रक्षा या मोक्ष अर्थ लगाया है। भट्टिटीकामें भरतने इसका अर्थ इस प्रकार किया है,—अलब्ध फल-पुष्पादिका साधन योग तथा लब्ध शरीरादिका पालन क्षेम। २ जीवननिर्वाह, गुजारा। ३ कुशल-मंगल, खैरियत। ४ लाभ, मुनाफा। ५ राष्ट्रकी सुव्यवस्था, मुल्कका अच्छा इन्तजाम। ६ ऐसी वस्तु जिसका उत्तराधिकारियोंमें विभाग न हो। दूसरेके धन या जायदादकी रक्षा।

योगगति (सं० स्त्री०) १ अन्वित्व। २ योग द्वारा गमन। ३ योगकी गति। ४ आदिम अवस्था।

योगन्धर (सं० पु०) १ प्राचीनकालका एक मन्त्र जो अस्त्र-शस्त्र आदिके शोधनके लिये पढ़ा जाता था। २ पित्तल, पीतल।

योगचक्षुस् (सं० पु०) योग एव चक्षुर्यस्य। ब्राह्मण।

योगचन्द्रमुनि—योगसारके प्रणेता।

योगचर (सं० पु०) योगेषु चरतीति चर (चरेष्टः। पा ३।२।१६) इति ट। हनुमान्।

योगचर्या (सं० स्त्री०) योगानुष्ठान।

योगचूर्ण (सं० क्ली०) मन्त्रपूत चूर्णकविशेष।

योगज (सं० पु०) योगेभ्यो जायते जन-ड। १ योगसाधन-की वह अवस्था जिसमें योगीके अलौकिक वस्तुओंको प्रत्यक्ष कर दिखलानेकी शक्ति आ जाती है। नैयायिकों-

ने अलौकिक सन्निकर्षको तीन भागोंमें विभक्त किया है, सामान्य लक्षण, ज्ञानलक्षण और योगज। इस योगज अलौकिक सन्निकर्षके फिर युक्त और युञ्जान दो भेद है। यह अवस्था योग द्वारा प्राप्त होती है इसलिये इसका नाम योगज हुआ है। जो योग अवलम्बन कर सिद्धि पा सकते हैं उन्हें अलौकिक क्षमता उत्पन्न होती है। इसी क्षमताके तारतम्यानुसार युक्त और युञ्जान यह दो भाग हुआ है। जो सब योगी चिन्ता नहीं करने पर भी अतीत, अनागत और वर्तमान विषय हस्तस्थित आमलकको तरह जान सकते हैं वे युक्त तथा जो चिन्ता कर अर्थात् समाधि या ध्यानस्थ हो वह जान सकते हैं उन्हें युञ्जान कहते हैं। हमेशा योगके साथ मिले रहनेके कारण या योगसे मिल सकते हैं इसलिये युञ्जान नाम पड़ा है। (भाषापरिच्छेद ६५-६६)

२ अगुरु, अगर लकड़ी।

योगजफल (सं० पु०) वह अंक या फल जो दो अंकोंको जोड़नेसे प्राप्त हो, जोड़।

योगतत्त्व (सं० क्ली०) योगस्य तत्त्वं। १ योगका तत्त्व, योगका वृत्तान्त। २ एक उपनिषद्‌का नाम जो प्राचीन दश उपनिषदोंमें नहीं है।

योगतल्प (सं० पु०) योगनिद्रा।

योगतस् (सं० अव्य०) एकत्र, एक साथ, येन्गानुसार।

योगतारका (सं० स्त्री०) योगतारा, योगनक्षत्र।

योगतारा (सं० स्त्री०) १ किसी नक्षत्रमेंका प्रधान तारा। २ एक दूसरेसे मिले हुए तारे।

योगतीर्थ—योगिनीतन्त्रके अनुसार एक तीर्थका नाम।

योगत्व (सं० क्ली०) योगका भाव या अवस्था।

योगदर्शन (सं० पु०) महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र। योग देखो।

योगदा—आसामके अन्तर्गत एक नदीका नाम।

योगदान (सं० क्ली०) योगेन दानं। १ योग द्वारा दान, कपट दान। २ योगकी दीक्षा। ३ किसी काममें साथ देना, हाथ बंटाना।

योगदाला—रघुनाथपुरके निकटवर्त्ती पञ्चकूट शैलके अन्त-र्गत एक पर्वत।

योगदिन (सं० क्ली०) अब्दपिण्डको ८३३से पूरा कर

३५३०० योग कर २००००से भाग करने पर जो लब्ध होगा उसे नक्षत्रदिन और योगदिन कहते हैं।

योगदेव (सं० पु०) एक जैन-ग्रन्थकारका नाम।

योगधर्मिन् (सं० त्रि०) योगधर्म अस्यास्तीति इनि। योगावलम्बी, योगी।

योगधारणा (सं० क्लो०) योगाभिनिवेश।

योगधारा—ब्रह्मपुत्रके एक सहायक नदीका नाम। (हिमवत्ख० ३३।३३)

योगनन्द (सं० पु०) मगधके राजा नौ नन्दोंमेंसे एक नन्दका नाम। नन्द देखो।

योगनाड़ी (सं० स्त्री०) अष्टाङ्ग योगसाधनके समय नाड़ी-की एक अवस्था।

योगनाथ (सं० पु०) शिव।

योगनाविक (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

योगनिद्रा (सं० स्त्री०) योगश्चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणः समाधिस्तद्रूपा निद्रा। १ युग अवसानमें विष्णुकी निद्रा, वही निद्रारूपा दुर्गा। (मार्कण्डेयपु० ८१।४९) २ वीरों-की निद्रा। ३ योगरूप निद्रा। चित्तवृत्तिनिरोधका नाम योग है। चित्तकी वृत्ति निरुद्ध होनेसे तब और वाह्य-ज्ञान नहीं रहने पाता इसलिये यही अवस्था निद्रा नामसे अभिहित हुई है। ४ प्रलयकालमें ब्रह्मा या परमेश्वरकी सर्वजीव संसारेच्छाके कारण योग।

योगनिद्रालु (सं० पु०) विष्णु। भगवान् विष्णु प्रलय-कालमें योगनिद्रामें मग्न रहते हैं इस कारण वे योग-निद्रालु कहलाते हैं।

योगनिलय (सं० पु०) शिव, महादेव।

योगन्धर (सं० पु०) १ अस्त्र-शस्त्र आदि साफ करनेका एक मन्त्र। २ शतानीकके एक मन्त्रीका नाम। ३ पीतल-का एक नाम।

योगपट्ट (सं० क्लो०) योगस्य पट्टं वसनविशेषः योगार्थं पट्टमिति वा। १ वसनविशेष, प्राचीनकालका एक पह-नावा जो पीठ परसे जा कर कमरमें बांधा जाता था और जिससे घुटनों तकका अंग ढका रहता था। शास्त्रोंका विधान है, कि जिसके बड़े भाई और पिता जीवित हों उसे ऐसा वस्त्र नहीं पहनना चाहिए। २ योगपदक, पूजाआदिमें धार्य उत्तरीय-विशेष।

योगपति (सं० पु०) योगस्य पतिः। १ विष्णु। २ शिव, महादेव।

योगपत्नी (सं० स्त्री०) पोवरी, योगमाता।

योगपथ (सं० पु०) योगस्य पन्थाः ६-तत्, समासान्ता-दन्तलोपः। योगका पथ, योगमार्ग।

योगपद (सं० क्लो०) योगावस्था।

योगपदक (सं० क्लो०) योगस्य पदकं। पूजन आदिके समय पहननेका चार अंगुल चौड़ा। एक प्रकारका उत्त-रीय वस्त्र। यह बाघके चमड़े, हिरनके चमड़े अथवा सूतका बना हुआ होता था और यज्ञसूत्रकी तरह पहना जाता था। (वीरमित्रोदयधृत सिद्धान्तशेखर)

योगपातञ्जल (सं० पु०) पातंजलिका शिष्य-सम्प्रदाय। ये सब योगधर्मके आचार्य थे इस कारण ये इस नामसे परिचित हैं।

योगपाद (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार वह कृत्य जिससे अभिमतकी प्राप्ति हो।

योगपारङ्ग (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ योगाभ्यस्त, पूर्ण योगी।

योगपीठ (सं० क्लो०) योगस्य योगार्थं वा पीठमासनं। देवताओंका योगासन। (कालिकापु० ६ अ०)

योगप्राप्त (सं० त्रि०) योग द्वारा लब्ध, योगसे पाया हुआ।

योगफल (सं० पु०) दो या अधिक संख्याओंको जोड़नेसे प्राप्त संख्या।

योगबल (सं० पु०) वह शक्ति जो योगको साधनासे प्राप्त हो, तपोबल।

योगभावना (सं० स्त्री०) योगस्य भावना। १ योगविष-यक भावना, योगकी चिन्ता। २ बीजगणितके अनुसार अङ्कप्रकरणभेद।

योगभवपुर—एक नगरका नाम।

योगभ्रष्ट (सं० त्रि०) योगमार्गका विच्युत, जिसकी योग-की साधना चित्त-विक्षेप आदिके कारण पूरी न हुई हो।

योगमय (सं० त्रि०) स्वरूपार्थे मयट्। १ योगस्वरूप, योगके समान। (पु०) २ विष्णु।

योगमयज्ञान (सं० क्लो०) वह ज्ञान या बुद्धि जो योगबल-से मिली हुई हो।

योगमहिमन् (सं० पु०) योगस्य महिमा । योगकी समता, योगका प्रभाव ।

योगमातृ (सं० स्त्री०) १ दुर्गा । २ पीवरी ।

योगमाया (सं० स्त्री०) योग एव माया । १ भगवती, विष्णुमाया । (भागवत १०।३ अ०) २ वह कन्या जो यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई थी और जिसे कंसने मार डाला था । कहते हैं, कि यह स्वयं भगवती थी ।

योगमाली—सह्याद्रि-वर्णित एक राजा । (सह्या० २७।५१)

योगमूर्त्तिधर (सं० पु०) १ शिव, महादेव । २ पितृगण-भेद ।

योगयात्रा (सं० स्त्री०) फलित ज्योतिषके अनुसार वह योग जो यात्राके लिये उपयुक्त हो ।

योगयुक्त (सं० त्रि०) योगेन युक्तः । योगी, योगसे युक्त ।

योगयोगिन् (सं० त्रि०) योगनिमज्जित, वह योगी जो योगासन पर बैठा हो ।

योगरङ्ग (सं० पु०) योगेन रङ्गो रागो यस्य । नारङ्ग, नारंगी ।

योगरत्न (सं० क्ली०) वह रत्न जो जादूगरीसे तैयार किया गया हो ।

योगरत्नाकर (सं० पु०) चिकित्सा ग्रन्थविशेष ।

योगरथ (सं० पु०) योग एव रथः वा योगस्य रथः । योगप्राप्ति साधन, वह साधन जिससे योगकी प्राप्ति हो ।

योगरहस्य (सं० क्ली०) योगस्य रहस्यं । योगका रहस्य या गुह्य विषय ।

योगराज (सं० पु०) १ मंखके समसामयिक एक न्यायाचार्य । २ तिस्कन्धभूषण और योगरत्नावली नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता । ३ स्तुतिकुसुमाञ्जलि ग्रन्थमें रत्नकण्ठ द्वारा उल्लिखित एक कवि ।

योगराजगुग्गुलु (सं० पु०) योगराजाख्यः गुग्गुलुः । उरुस्तम्भ और वातरक्तरोगाधिकारमें कही हुई एक औषध । इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—

चीता, पीपलमूल, अजवायन, काला जीरा, विड़ङ्ग, जीरा, देवदारु, चई, इलायची, सैन्धव, कुड़, रास्ना, गोखरू, धनिया, हर्र, वहेड़ा, आँवला, मूथा, सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, दारुचीनी, वेणाकी जड़, यवक्षार, तालीशपत्र और तेजपत्र, इन सबको बराबर बराबर ले कर अच्छी तरहसे कूट-पीस कर चूर्ण बनाना चाहिए ; फिर उसमें समान तौलसे गुग्गुल मिलाना चाहिए । इसके बाद उसे घीसे अच्छी तरह घोंट कर स्निग्ध पात्रमें रख देना चाहिए । इस औषधका उपयुक्त मात्रामें सेवन करके फिर यथेच्छ आहार करना चाहिये । इस औषधके सेवन करते समय भोजनका कोई नियम पालन नहीं करना पड़ता । इससे मन्दाग्नि, आमवात, कृमि, दुष्टव्रण, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, अर्श, सन्धि और मज्जागत वातरोग नष्ट हो जाता है तथा अग्नि-दीप्ति, तेज और बलकी वृद्धि होती है । (भावप्र० आमवात०)

इसके सिवा वातव्याधि-रोगाधिकारमें महायोगराजगुग्गुलुका भी उल्लेख पाया जाता है । उसके बनानेकी विधि इस प्रकार है—

महायोगराजगुग्गुलु—सोंठ, पिप्पलीमूल, चई, गोलमिच, चीता, भुनी हुई हींग, अजवायन, सरसों, जीरा, काला जीरा, रेणुका, इन्द्रयव, आकनादि, विड़ङ्ग, गजपिप्पली, कुटकी, आतइच, वच, सूचीमुखी, तेजपत्र, देवदारु, पिप्पली, कुड़, रास्ना, मुस्तक, सैन्धव, इलायची, गोखरू, हर्र, धनिया, वहेड़ा, आँवला, दारुचीनी, वेणाकी जड़ और यवक्षार इन सबको समान भागसे मिला कर चूर्ण बना लो; फिर सबके बराबर गुग्गुल मिला कर घीसे घोंट लेना चाहिए । तैयार हो जाने पर घीके भाँड़में रख दो । पहले आधा तोला सेवन करना चाहिए ; फिर धीरे धीरे मात्रा बढ़ाते हुए दो तोला तक कर देना चाहिए । यह परम रसायन है । इसके सेवन करनेसे स्त्रीप्रसङ्ग, आहार और पान यथेच्छरूपसे किया जा सकता है । इसके लिये कोई बन्धन नहीं है ।

इस औषधके सेवनसे अर्श, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, उदर, आनाह, मन्दाग्नि, श्वास, कास, अरुचि, मेह, नाभिशूल, कृमि, क्षय, सर्वप्रकार वातरोग, कुष्ठ, दुष्टव्रण, शुक्रदोष और रजोदोष आदि शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । यह अनुपानके अनुसार भिन्न-भिन्न रोगोंमें शीघ्र फलप्रद होता है । इस औषधको रास्नादि क्वाथमें मिला कर सेवन करनेसे सर्वप्रकार वातरोग, काकोल्यादि गणके

क्वाथके साथ सेवन करनेसे पित्तज रोग, आरग्वधादि-गणके क्वाथके साथ सेवन करनेसे कफजरोग, दारुहरिद्राके क्वाथके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे पाण्डु, मधुके साथ सेवन करनेसे मेदोवृद्धि, नीमके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, गुलञ्चके क्वाथके साथ सेवन करनेसे वातरक्त, शुष्क मूलाके क्वाथके साथ सेवन करनेसे शोथ, पारुलके क्वाथके साथ सेवन करनेसे मूषिकविष, त्रिफलाके क्वाथके साथ सेवन करनेसे दारुण नेत्र-वेदना और पुनर्णवाके क्वाथके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकार उदररोग शीघ्र ही प्रशमित होता है। (भावप्र० वातव्याधि०)

योगराजोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषदका नाम।

योगरूढ़ (सं० पु०) योगार्थ प्रतिपादको रूढ़ः। योगार्थ प्रतिपादनके बाद रूढार्थबोधक शब्द अर्थात् प्रकृति प्रत्ययके योगसे उत्पन्न शब्दोंका परस्पर (प्रकृति और प्रत्ययका) अर्थ सङ्गत रखते हुए जिन पदार्थोंकी उपलब्धि होती है, उनकी सम्पूर्ण वस्तुओंको न समझ कर उनमेंसे यदि कोई सिर्फ एक टीका बोध करावे, तो उसे योगरूढ़ शब्द कहते हैं। शब्द तीन प्रकारके होते हैं—योगरूढ़, रूढ़ और यौगिक। अलङ्कारकौस्तुभमें लिखा है,—शब्द तीन प्रकारोंमें विभक्त हैं। पङ्कज आदि शब्द योगरूढ़ शब्दके अन्तर्गत हैं। पङ्क-जनि-ड प्रत्ययमें पङ्करूप जनि कर्त्ताके अभिधायक किसी एक योग द्वारा पदार्थकी ही उपलब्धि होती है। किन्तु कुमुदादि अर्थकी उपलब्धि नहीं होगी। योगार्थ प्रतीति होनेके बाद जो रूढ़ि अर्थ समझमें आता है, उसीका नाम योगरूप है। इस प्रकार ईश्वरेच्छा-सङ्केत होनेके कारण सहसा पद्मका ही स्मरण हो आता है।

"स्वान्तर्निविष्टशब्दार्थस्वार्थयोर्बोधकृन्मिथः।
योगरूढं न यत्रैकं विनान्यस्यास्ति शाब्दधीः॥"

'यन्नाम स्वावयववृत्तिलभ्यार्थेन समं स्वार्थस्यान्वयबोधकृत् तन्नाम योगरूढं यथा पङ्कजकृष्णसर्पाधर्म्मादि। तद्धि स्वान्तर्निविष्टानां पङ्कादिशब्दानां वृत्तिलभ्येन पङ्कजनिकर्त्रादिना समं स्ववाच्यस्य पद्मादेरन्वयानुभावकं पङ्कजमित्यादितः पङ्कजनि कर्त्तृ पद्ममित्यनुभवस्य सर्व्वसिद्धत्वात्। इयांस्तु विशेषो यद्रुढ़मपि मण्डपरथकारादिपदं योगार्थविनाकृतस्य रूढ़ार्थस्यैव रूढ़ार्थविनाकृतस्यापि योगार्थस्य बोधकं मण्डपे शेते इत्यादौ योगार्थस्य मण्डपानकर्त्रादेरिव मण्डपं भोजयेत् इत्यादौ समुदितार्थस्य गृहादेरयोग्यत्वेन अन्वयाबोधात्। योगरूढ़न्तु पङ्कजादिपदमवयववृत्त्या रूढ्यर्थमेव समुदायशक्त्या चावश्यलभ्यार्थमेवानुभावयति नत्वन्यं व्युत्पत्तिवैचित्र्यात् तथैव साकाङ्क्षत्वात्। अतएव पङ्कजं कुमुदमित्यत्र पङ्कजनिकर्त्तृत्वेन भूमौ पङ्कजमुत्पन्नमित्यादौ च पद्मत्वेन पङ्कजपदस्य लक्षणयैव कुमुदस्थलपद्मयोर्बोधः।'

(वार्त्तिक)

वार्त्तिकके मतसे—अपनी अवयववृत्ति (प्रकृति प्रत्यय द्वारा) लभ्य अर्थके साथ जो अपने (रूढ़) अर्थका अन्वय समझा देती है, उसीका नाम योगरूढ़ है। जैसे—पङ्कज, कृष्णसर्प, अधर्म आदि।

इसका मर्म इस प्रकार है—जैसे, पङ्कज शब्दके अन्तर्निविष्ट पङ्क (कर्दम) जनि (उत्पत्ति) ड (कर्त्तृवाच्यमें) इनमेंसे प्रत्येकका अर्थ सङ्गत रखते हुए अर्थ प्रकट करता हो तो पङ्कजात वस्तु मात्रकी उपलब्धि होगी, किन्तु इस स्थानमें ऐसा न हो कर पङ्कज शब्दकी अपनी शक्ति द्वारा पङ्कजात एक पद्मका ही बोध होता है। अन्य रूढ़ शब्दोंके साथ इसकी विशेषता यह है, कि रूढ़ (मण्डपरथकारादि) शब्द योगार्थ (प्रकृति प्रत्ययार्थ)-बोधक किसी पदार्थको न समझा कर केवल अपनी शक्ति द्वारा जो अर्थ प्रकट करता है, उसीकी उपलब्धि होती है। जैसे—मण्डप शब्दसे मण्ड पीनेवालेका बोध न हो कर शब्दके शक्ति-बलसे गृहका ही बोध होता है; किन्तु योगरूढ़ शब्द प्रकृति प्रत्ययके अर्थको छोड़ कर रूढ़ार्थ प्रकट करता है, पृथक् कोई वस्तुका बोध नहीं कराता। हां, यदि किसी स्थल पर "पङ्कज कुमुद" और जिस भूमिमें उत्पन्न पङ्कज ऐसा प्रयोग हो, तो उस स्थानमें लक्षणाशक्तिसे पङ्कज शब्द यथाक्रमसे कुमुद और स्थलपद्मका बोध भी हो सकता है।

योगरोचना (सं० स्त्री०) ऐन्द्रजालिक प्रलेपविशेष, जादूगरोंके एक प्रकारका लेप कहते हैं, कि शरीरमें यह लेप लगा लेनेसे आदमी अदृश्य हो जाता है।

योगवत् (सं० त्रि०) योग-अस्त्यर्थे-मतुप्-मस्य व। योगयुक्त, योगी।

योगवर्त्तिका (सं० स्त्री०) भेजविद्याविषयक आलोकभेद। (Magic lantern)

योगवह (सं० त्रि०) मिलावटसे तैयार किया हुआ।

योगवाणी (सं० पु०) हिमालयके एक तीर्थका नाम।

योगवाशिष्ठ (सं० पु०) आध्यात्मिक तत्त्वसम्बन्धीय एक ग्रन्थ। देवर्षि वशिष्ठने रामचन्द्रको वेदान्ततत्त्व और आत्माके चिरशान्तिविषयक योगका उपदेश किया था। वही इस ग्रन्थमें लिखा है। इसे लोग वाल्मीकि रामायणका उत्तरकाण्ड मानते हैं और वशिष्ठ रामायण भी कहते हैं। इसमें वैराग्य, मुमुक्षु व्यवहार, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण ये छः प्रकरण हैं। इसकी भाषा और भावतत्त्व साधारणके लिये कठिन है। अन्वयारण्य, आत्मसुख, आनन्दबोधेन्द्रसरस्वती, गंगाधरेन्द्रसरस्वती, माधवसरस्वती, सदानन्द आदि इसकी टीका कर गये हैं।

योगवाह (सं० पु०) योगस्य वाहः योगं वहयतीति वह-णिच्-अण्। अनुस्वार विसर्ग।

योगवाहिन् (सं० त्रि०) योगं वहति वह-णिनि। योग द्वारा वहनशील।

योगवाही (सं० स्त्री०) १ भिन्न गुणोंकी दो या कई ओषधियोंको एकमें मिलाने योग्य करनेवाली ओषधि या द्रव्य, योगका मध्यम। २ क्षीरविशेष, सज्जीखार। ३ पारद, पारा।

योगविक्रय (सं० पु०) धोखे या बेईमानीके साथ विक्री, घालमेलका सौदा।

योगविद् (सं० त्रि०) योगं वेत्ति विद्-क्विप्। १ योगज्ञ, योगशास्त्रका ज्ञाता। (पु०) २ महादेव। ३ बाजीगर। ४ ओषधियोंको मिला कर औषध बनानेवाला (Compounder of medicines)।

योगविभाग (सं० पु०) एक मिली वस्तुका दो भाग।

योगवृत्ति (सं० स्त्री०) चित्तकी वह शुभ वृत्ति जो योगके द्वारा प्राप्त होती है।

योगशक्ति (सं० स्त्री०) योगके द्वारा प्राप्त होनेवाली शक्ति, तपोबल।

योगशब्द (सं० पु०) वह यौगिक शब्द जो योगरूढ़ि न हो बल्कि धातुके अर्थ (सामान्य अर्थ)-का बोधक हो।

योगशरीरिन् (सं० त्रि०) १ योगार्थ शरीरधारी। २ योगी।

योगशायिन् (सं० त्रि०) आधा सोया हुआ और आधा धर्मकी चिन्ता या योगमें मग्न।

योगशास्त्र (सं० क्ली०) योगप्रतिपादकं शास्त्रं। वह शास्त्र जिसमें योग अर्थात् चित्तवृत्तिको रोकनेके उपाय बतलाये गये हैं, पातञ्जलादि शास्त्र। यह छः दर्शनोंमेंसे एक दर्शन है। संस्कृत भाषामें बहुत-से योगविषयक ग्रन्थ प्रचलित हैं। नीचे अकारादिक्रमसे वे सब ग्रन्थ और ग्रन्थकारोंके नाम दिये गये हैं;—योगशास्त्रकी उत्पत्तिका संक्षिप्त इतिहास पातञ्जल शब्दमें देखो।

ग्रन्थ	ग्रन्थकार
अजपागायत्रीपुरश्चरणपद्धति	शङ्कराचार्य।
अद्भुतयोग	
अध्यात्मयोग	
अमनस्क	सुन्दरदेव
अमनस्ककल्प	
अमनस्कयोग	अल्लम प्रभुदेव
(स्वात्माराम द्वारा हठप्रदीपिकामें उद्धृत)	
अष्टाङ्गहृदयसंहिता	
अष्टाङ्गयोग	शङ्कराचार्य
आचारपद्धति	वासुदेवेन्द्र
आसनाध्याय	
ईश्वर-वामदेव-संवाद	काकचण्डीश्वर (स्वात्मारामा द्वारा उद्धृत)
कपिलगीता	कपिल
केदारकल्प	
कुम्भकपद्धति	सुन्दरदेव
क्रियायोग	(१) विट्ठल आचार्य (२) वेङ्कट योगिन्
खेचरीविद्या (महाकाल योगशास्त्रोक्त)	आदिनाथ
गोरक्षशतक या ज्ञानशतक	गोरक्षनाथ (मीननाथशिष्य)
गोरक्षशतकटिप्पण	मथुरानाथ शुक्ल
गोरक्षशतकटीका	शङ्कर

ग्रन्थ	ग्रन्थकार
गोरक्षसंहिता	गोरक्षनाथ
घेरण्डसंहिता	
चतुरशीत्यासन	गोरक्ष
छायापुरुषाववोधन	
जपगायत्रीयोगशास्त्र (अष्टाङ्गयोगशास्त्रोक्त)	
ज्ञानामृत	गोरक्षनाथ
ज्ञानामृतटिप्पण	सदानन्द
ज्ञानप्रदीप या योगसारसंग्रह	
तत्त्वपञ्चशीर्षयोगचिन्ता	
तत्त्वविन्दु	रामचन्द्र परमहंस
तत्त्वशारदी	वाचस्पति मिश्र
तत्त्वार्णव	
तत्त्वार्णवटीका	रामानन्द तीर्थ
तत्त्वाववोध	"
तिलक	
(योगसूत्रभाष्यटीका)	वाचस्पति मिश्र
दशाङ्गयोग	
दृष्टान्तर	
देहस्थ-स्वरोदय	वागवोध (क्षेमराज और स्वात्माराम उद्धृत)
नाड़ीज्ञानदीपिका	
न्यायरत्नाकर या	
नवयोगकल्लोल	क्षेमानन्द दीक्षित
पवनविजय	शिव
पातञ्जल या पातञ्जलसूत्र	योगसूत्र देखो।
पातञ्जलरहस्य	श्रीधरानन्द पति
	प्रभुदेव (हठप्रदीपिकाधृत)
	विलेशय "
ब्रह्मसिद्धान्तपद्धति	
भगवतीगीता	भवदेवमिश्र (१६४६ ई०) (पातञ्जलीयाभिनवभाष्य, योगदर्पणटीका, योगविन्दुकी टीका, योगसंग्रह, योगसूत्र-वृत्तिटिप्पण आदिके रचयिता)
	भवानीसहाय (योगचिन्तामणि टिप्पण-कार)
	भालुकी (हठप्रदीपिकाधृत)
	भुवन (शक्तिरत्नाकरधृत)
	मत्स्येन्द्र
	मस्थानभैरव (हठप्रदीपिकाधृत)
	महादेव (योगसूत्रटीका और हठप्रदीपिकाटीका
महेशसंहिता	महेश
	मानानन्द (शक्तिरत्नाकरधृत)
	मीन वा मीननाथ (गोरक्षनाथके गुरू)
	मूलदेव (शक्तिरत्नाकरधृत)
मुद्राप्रकाश	कृपाराम
याज्ञवल्क्यगीता (योगी याज्ञवल्क्य और गीता)	
योगकल्पद्रुम	कुलमणि शुक्ल
योगकल्पलता	मथुरानाथ शुक्ल
योगग्रन्थ	१ दत्तात्रेय, २ वेङ्कटाचार्य
योगग्रन्थटीका	गुणाकर मिश्र
योगचन्द्रटीका	रामानन्द तीर्थ
योगचन्द्रिका	१ गोवर्द्धन योगीन्द्र और नारायणतीर्थ
योगचन्द्रिका या योगसूत्रटीका	अनन्त
योगचर्या	
योगचिन्तामणि	१ गोरक्ष मिश्र २ बालशास्त्रिन् गोर्दे ३ शिवानन्द सरस्वती, ४ गदाधर मिश्र।
योगचिन्तामणिटीका	भवानी सहाय
योगचूड़ामणि	
योगचूड़ामणि-उपनिषद्	आनन्द सिद्ध
योगज्ञान	
योगतत्त्व	

ग्रन्थ	ग्रन्थकार
योगतत्त्वप्रकाश	
योगतत्त्वबोध या योगतत्त्वोपनिषद्	
योगतरङ्ग	१ रमाशङ्कर, २ विश्वेश्वर दत्त, (देवतीर्थ स्वाम)
योगतारावली	१ शङ्कराचार्य, २ शुक।
योगदर्पण (हेमाद्रि द्वारा उद्धृत)	(कृष्णनाथ और भवदेव द्वारा उसकी टीका)
योगदीपिका (सुन्दरदेव द्वारा उद्धृत)	
योगन्यास	
योगपद्धति	धरणीधर
योगप्रकाश	
योगप्रकाशटीका	कृष्णनाथ
योगप्रदीप	देवीसिंहदेव
योगप्रदीपिका	
योगप्रवेशविधि	
योगविन्दुटिप्पण	भवदेव
योगवीज (सुन्दरदेव द्वारा उद्धृत)	
योगभास्कर (सुन्दरदेव द्वारा उद्धृत)	कवीन्द्राचार्य
योगमञ्जरी	
योगमणिप्रदीपिका	
योगमणिप्रभा या योगसूत्रवृत्ति	रामानन्द सरस्वती
योगमहिमा	गोरक्षनाथ
योग या योगियाज्ञवल्क्य	
योगरत्नसमुच्चय	
योगरत्नाकर	वीरेश्वरानन्द
योगरसायन (शिवभाषित)	
योगरहस्य (सुन्दरदेव द्वारा उद्धृत)	
योगवर्णन	मथुरानाथ शुक्ल
योग-वाचस्पत्य (व्यासकृत योग-सूत्रभाष्यटीका)	वाचस्पतिमिश्र
योगवार्त्तिक	विज्ञानभिक्षु
योगवाशिष्ट	वशिष्ठप्रोक्त

ग्रन्थ	ग्रन्थकार
योगविन्दुटिप्पण	भवदेव
योगविवरण	वशिष्ठ
योगविवेक	१ हरिशङ्कर, २ वृन्दावन शुक्ल
योगविवेकटिप्पण	रामानन्द तीर्थ
योगविषय	मार्कण्डेय
योगवीज	शिव
योगवृत्ति	भोजराज
योगवृत्तिसंग्रह	उदयङ्कर
योगशतक	
योगशतकव्याख्यानम्	सनातन गोस्वामी
योगशास्त्र	१ दत्तात्रेय, २ पतञ्जलि, ३ वशिष्ठ
योगशिक्षा	हरिहर
योगसंग्रह	भवदेवभट्ट, श्रीकृष्ण शुक्ल
योगसंग्रहटीका	पूर्णानन्द
योगसाधन	
योगसार (मल्लिनाथ और सुन्दरदेव द्वारा उद्धृत)	
योगसारसंग्रह	कृष्णशुक्ल
"	विज्ञानभिक्षु
योगसारसमुच्चय	हरिसेवक
योगसारावलि	
योगसिद्धान्तचन्द्रिका	
योगसिद्धान्तपद्धति	गोरक्षनाथ
योगसिद्धिप्रक्रिया (पद्मनाभ द्वारा उद्धृत)	
योगसुधाकर	
योगसूत्र (योगानुशासनसूत्र या सांख्यप्रवचन या पातञ्जल)	

टीका यथा—१ अनन्तकृत योगसूत्रार्थचन्द्रिका या पद-चन्द्रिका, २ आनन्द शिष्यकृत योगसुधाकर, ३ उदयङ्कर-कृत योगवृत्तिसंग्रह, ४ उमापति त्रिपाठीकृत, ५ क्षेमा-

नन्द दीक्षितकृत नवयोगकल्लोलि और ६ विज्ञान-भिक्षु शिष्य भावगणेशकृत, ७ ज्ञानानन्दकृत वह टीका, ८ नारायणभिक्षु-रचित योगसूत्रार्थद्योतनिका या योग-सिद्धान्तचन्द्रिका, ९ नारायणतीर्थ या नारायणेन्द्र सरस्वतीकृत वह टीका, १० भवदेवकृत पातञ्जलीयाभिनव-भाष्य, ११ भवदेवकृत योगसूत्रवृत्तिटिप्पण, १२ भोजदेव-कृत राजमार्त्तण्ड, १३ महादेवकृत, १४ रामानन्दकृत योगमणिप्रभा, १५ रामानन्दतीर्थ सरस्वतीकृत, १६ वृन्दावन शुक्ल, १७ शङ्कर और १८ सदाशिवकृत वह टीका, १९ रामानुजकृत योगसूत्रभाष्य, २० व्यासकृत योगसूत्रभाष्य, २१ नागेशकृत पातञ्जलसूत्रवृत्तिभाष्य-व्याख्या; २२ वाचस्पतिमिश्रकृत तिलक या पातञ्जलसूत्र-भाष्यव्याख्या; २३ राघवानन्द यतिकृत पातञ्जलरहस्य, २४ श्रीजयानन्दयतिकृत, २५ विज्ञानभिक्षुकृत पातञ्जल-भाष्यवार्त्तिक या योगवार्त्तिक।

ग्रन्थ	ग्रन्थकार
योगसूत्रटिप्पण	वृन्दावन शुक्ल
योगसूत्रवृत्ति	१ भिक्षानन्द या क्षेमानन्द और २ नारायणतीर्थ, ३ सदाशिव
योगहृदय (सुन्दरदेव द्वारा उद्धृत)	
योगाक्षरनिघण्टु	
योगाख्यान	याज्ञवल्क्य
योगाचार (मल्लिनाथ द्वारा कुमारसम्भव-टीकामें उद्धृत)	
योगानुसाशन	आधारेश्वर
योगाभ्यासक्रम	
योगाभ्यासप्रकरण	
योगावलि	रामानन्द तीर्थ
योगासनलक्षण	
योगेशार्णव	
योगोपदेश	पराशर रन्तिदेव
(शक्तिरत्नाकरोद्धृत—योगाचार्य)	
राजमार्त्तण्ड (योगसूत्र-वृत्ति)	भोजदेव रणरंगमल्ल
राजयोग	रामचन्द्र परमहंस
राजयोगविधि	
राजयोगोत्सव	ईश्वर
लघुचन्द्रिका	नारायण भट्ट
लययोग	
वर्णप्रबोध	दत्तात्रेय
वशिष्ठसार	तीर्थशिव
विरुपाक्ष (हठदीपिकाधृत)	
विवेकमार्त्तण्ड	गोरक्षनाथ
विवेकमार्त्तण्ड (सुलतान घियास-उद्दीनकी सभामें)	रामेश्वर भट्ट
शब्दानुविद्धसमाधिपञ्चक	
शारदानन्द (हठप्रदीपिकाधृत)	
शिवयोग	
शिवयोगदीपिका	
शिवरामगीता	
शिवसंहिता	शिवप्रोक्त
शिवसंहिताटीका	सदानन्द
षट्चक्रक्रम या षट्चक्रनिरूपण या षट्चक्रभेद	पूर्णानन्द
षट्चक्रभेदटीका	रमानाथ सिद्धान्त
षट्चक्रसज्जनरञ्जिन	रामवल्लभ
षट्चक्रदीपिका	ब्रह्मानन्द
षट्चक्रदीपिकावर्त्ति	पूर्णानन्द
षट्चक्रध्यानपद्धति	ब्रह्मचैतन्य यति
षट्चक्रनिलय	
षट्चक्रभेदटिप्पणी	शङ्कर
षट्चक्रविवृतिटीका	विश्वनाथ रामदेव
षट्चक्रस्वरूप	
षट्चक्रादिसंग्रह	मथुरानाथ शुक्ल
षट्चक्रोपनिषद्दीपिका	
षोड़शमुद्रालक्षण	शुक्ल योगी
सदाचारप्रकरण	शङ्कराचार्य
समरसारस्वरोदय	राम
सप्तभूमिकाविचार	

ग्रन्थ	ग्रन्थकार
समाधिप्रकरण	
सांख्यप्रवचन या पातञ्जल-योगसूत्र	
सांख्ययोगदीपिका	
सारगीता	
सिद्धखण्ड	रामचन्द्र सिद्ध
सिद्धपाद (हठप्रदीपिकाधृत)	
सिद्धबुद्ध (हठदीपिकाधृत)	
सिद्धसिद्धान्त	निमानन्द सिद्ध
सिद्धान्तपद्धति	गोरक्षनाथ
सुरानन्द (हठप्रदीपिकाधृत)	
स्पर्शयोगशास्त्र (सुन्दरदेवधृत)	
स्वात्माराम या आत्माराम योगीन्द्र (हठदीपिकाकार)	
स्वरोदय	व्यास
हठतत्त्वकौमुदी	सुन्दरदेव
हठप्रदीपिका या हठदीपिका	१ स्वात्माराम, २ चिंतामणि
हठप्रदीपिकाज्योत्स्नाटीका	१ ब्रह्मानन्द २ उमापति, ३ रामानन्दतीर्थ, ४ व्रजभूषण और ५ महादेव
हठयोग	१ आदिनाथ और २ गोरक्षनाथ
हठयोगविवेक	वामदेव
हठयोगसंग्रह	मथुरानाथ शुक्ल
हठयोगाधिराज	शिव
हठयोगाधिराजटीका	रामानन्द तीर्थ
हठयोगाधिराजसंग्रह	रामानन्द तीर्थ
हठरत्नावली (सुन्दरदेवधृत)	
हठसंकेतचन्द्रिका	१ शंकरदास और (विश्वनाथके लड़के) २ सुन्दरदेव
हरिहरयोग	

योगशिक्षा (सं० स्त्री०) योगस्य शिक्षा। १ योगाभ्यास। २ एक उपनिषद्का नाम। इसे योगशिखा भी कहते हैं।

योगस् (सं० क्ली०) युज् (अन्य्यञ्जियुजिभ्रुजिभ्यः कुश्च। उण् ४।२१५) इति असुन्, कवर्गश्चान्तादेशः। १ समाधि। २ काल।

योगसमाधि (सं० पु०) योगेन समाधिः, वह समाधि जो योगसे हो। योग जब सिद्ध हो जाता है तब सम्प्रज्ञात और पीछे असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है।

योगसत्य (सं० पु०) किसीका वह नाम जो उसे किसी प्रकारके योगके कारण प्राप्त हो।

योगसार (सं० पु०) योगस्यौषधप्रयोगस्य सारः। सर्वरोगहरणोपाय, वह उपाय या साधन जिससे मनुष्य सदाके लिये रोगसे मुक्त हो जाय। वैद्यकमें ऋतुचर्याके अन्तर्गत ऐसे उपायोंका वर्णन है। भिन्न भिन्न ऋतुओंमें भिन्न भिन्न निषिद्ध पदार्थोंका त्याग और संयम आदि इसके अन्तर्गत है।

योगसिद्ध (सं० पु०) योगेन सिद्धः। वह जिसने योगकी सिद्धि प्राप्त कर ली हो, योगी।

योगसिद्धा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार वाचस्पतिकी एक बहनका नाम।

योगसिद्धिप्रक्रिया (सं० स्त्री०) योगस्य सिद्धेः प्रक्रिया। योगसिद्धिका उपाय, वह प्रक्रिया जिसके अवलम्बन करनेसे योगसिद्धि होती है।

योगसिद्धिमत् (सं० त्रि०) योगसिद्धि-विंद्यतेऽस्य मतुप्। योगसिद्धियुक्त, वह जिसने योग द्वारा विविध सिद्धि प्राप्त की है।

योगसूत्र (सं० क्ली०) योगप्रतिपादकं सूत्रं। महर्षि पतञ्जलिके बनाये हुए योगसम्बन्धी सूत्रोंका संग्रह। पतञ्जलिने इन सब सूत्रोंमें योग विधिके नियम आदि बतलाये हैं इसलिये उसे योगसूत्र कहते हैं। योगशास्त्र देखो।

योगसेवा (सं० स्त्री०) योगसाधन, योगचर्या।

योगस्थ (सं० त्रि०) जो योगावलम्बन करते हैं।

योगा (सं० स्त्री०) सीताकी एक सखीका नाम।

योगाकर्षण (सं० क्ली०) योग और आकर्षण। यह आकर्षण शक्ति जिसके कारण परमाणु मिले रहते हैं और अलग नहीं होते।

योगागम (सं० पु०) योगशास्त्र।

योगाग्निमय (सं० त्रि०) योगरूप वह्नि या शक्तिसमन्वित योग द्वारा सिद्ध।

योगाङ्ग (सं० क्ली०) योगस्य अङ्गं। पतञ्जलिके अनुसार योगके आठ अंग। ये इस प्रकार हैं,—यम, नियम,

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। विशेष विवरण योग शब्दमें देखो।

योगाचार (सं० पु०) १ योगका आचरण। २ बौद्धोंका एक सम्प्रदाय। सर्वदर्शनसंग्रहमें चार श्रेणोके बौद्धोंका उल्लेख देखनेमें आता है। यथा,—माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। योगाचारके मतसे बाह्यवस्तु कुछ नहीं है केवल क्षणिक विज्ञानरूप आत्मा ही सत्य है। यह क्षणिक विज्ञान फिर दो प्रकारका है प्रकृतिविज्ञान और आलयविज्ञान। जाग्रत और सुषुप्ति अवस्थामें जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसका नाम प्रकृतिविज्ञान और सुषुप्ति अवस्थामें जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसका नाम आलय-विज्ञान है। सिर्फ आत्माको ही अवलम्बन कर यह ज्ञान रहता है। (सर्वदर्शनस०) २ बौद्ध पण्डित विशेष।

योगाचार्य (सं० पु०) १ योगोपदेष्टा। २ इन्द्रजाल-शिक्षक।

योगाञ्जन (सं० क्ली०) १ आंखोंका एक प्रकारका अंजन या प्रलेप जिसके लगानेसे आंखोंका रोग दूर होता है। वह अंजन जिसके लगानेसे पृथ्वीके अन्दरकी छिपी हुई वस्तुएं भी दिखाई पड़ें, सिद्धाञ्जन।

योगात्मन् (सं० त्रि०) योगः आत्मा स्वरूपः यस्य। योगी।

योगाधमन (सं० क्ली०) योगेन आधमनं। छल द्वारा बन्धक।

"योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहं।
यत्र वाप्युपधिं पश्येत् तत्सर्वं विनिवर्त्तयेत्॥" (मनु०)

योगानन्द (सं० पु०) योगे आनन्दो यस्य। योगा-वलम्बनमें जिसे आनन्द हो।

योगानन्द—१ सांख्यकारिका व्याख्या और सांख्यसूत्र विवरणके प्रणेता। २ क्रीड़ावलीकाव्यके रचयिता। इसके पिताके नाम कालिदास था।

योगानुयोग (सं० क्ली०) योग और अनुयोग।

योगानुशासन (सं० क्ली०) अनुशिष्यतेऽनेन अनुशासनं योगस्य अनुशासनं। योगशास्त्र।

योगान्त (सं० पु०) मंगल ग्रहकी कक्षाके सातवें भाग-का एक अंश।

योगान्तर (सं० क्ली०) भिन्न भिन्न वस्तुका संयोग।

योगान्तराय (सं० क्ली०) योगमें विघ्न डालनेवाली आलस्य आदि दस बातें. लिङ्गपुराणके ६वें अध्यायमें यह विस्तारपूर्वक लिखा है।

योगान्ता (सं० पु०) मूला, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रोंसे होती हुई बुधकी गति जो आठ दिन तक रहती है।

योगापत्ति (सं० पु०) वह संस्कार जो प्रचलित प्रथाओं अथवा आचार व्यवहार आदिके कारण उत्पन्न हो। (आश्व० श्रौ० ११।११)

योगाभ्यास (सं० पु०) योगशास्त्रके अनुसार योगके आठ अंगोंका अनुष्ठान, योगका साधन।

योगाभ्यासी (सं० पु०) योगकी साधना करनेवाला, योगी।

योगाम्बर (सं० पु०) बौद्धोंके एक देवताका नाम।

योगारङ्ग (सं० पु०) योगेन ऋतुयोगेन आरङ्गः। नारङ्ग, नारंगी।

योगाराधन (सं० पु०) योगका अभ्यास करना, योग-साधन।

योगारूढ़ (सं० त्रि०) योगं विषयनिवृत्तियमादिकं वा आरूढ़ः। इन्द्रिय-भोग्य शब्दादि और उसके साधन कर्म-अनासक्त। (गीता० ६।३-४)

जो मुनि योगारूढ़ होना चाहते हैं, योग-साधनके लिये कर्म ही उनका कारण स्वरूप है और जो योगारूढ़ हुए हैं, उनके लिये कर्मसंन्यास ही परम साधन है। अन्तःकरणकी शुद्धि-जनित तीव्र वैराग्यका नाम योग है। जो ऐसे योगमें आरूढ़ होना चाहते हैं, वे आरु-रुक्षु कहलाते हैं। वेद-विहित कर्मका अनुष्ठान करनेसे चित्तशुद्धि होने पर योगारूढ़ हुआ जाता है। योगारूढ़ हो कर ज्ञाननिष्ठामें परिपक्व होने पर उसे फिर कर्म नहीं करना पड़ता; किन्तु जिनके वैराग्यका उदय नहीं होता, उन्हें यावज्जीवन ही कर्मानुष्ठान करना पड़ता है।

जब मानव शब्दादिके विषयमें अनासक्त, कर्मानुष्ठान-से सम्पूर्ण विनिवृत्त और सर्व प्रकार संकल्पों-से वर्जित होते हैं, तभी उन्हें योगारूढ़ कहा जाता है। जब मानवके साधन गुणसे जगत् मिथ्याज्ञान होनेका मनोवेग इन्द्रियविषयोंकी ओर

धावित होता है, तब नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध किसी भी प्रकार कर्ममें चित्तवृत्ति प्रवृत्त नहीं होती; अर्थात् अपने किसी भी प्रयोजनकी सिद्धिकी आवश्यकता नहीं रहती, और अमुक कार्य करना होगा, अमुक कार्य करनेसे अमुक फल होगा, मनोवृत्तिकी अन्तर्मुखतावशतः अन्तःकरणमें ऐसे सङ्कल्पोंकी तरङ्ग नहीं उठती। ऐसे पुरुष ही योगारूढ़ हैं।

मनोवृत्तिको रोकनेकी सामर्थ्य ही योगीका प्रधान लक्षण है। महर्षि पतञ्जलिने योगसूत्रमें पहले ही कह दिया है, कि "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" मनकी समस्त वृत्तियोंके निरोधका नाम ही योग है। चित्तकी वृत्ति पांच प्रकार हैं:—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन्द्रियादि द्वारा उपलब्धि करके मनके अनुभवविशेषका नाम प्रमाण है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेशादि वृत्तियोंके भेदसे मिथ्याज्ञानका होना विपर्यय है। शब्द सुन कर विशेष अर्थवाद-शून्य चिन्ता विशेषका नाम विकल्प है; जैसे—बन्ध्यापुत्र, आकाशकुसुम इत्यादि शब्द सुन कर तत्तावत्के प्रकृतार्थके अभावमें कोई यथार्थ अनुमति न होनेसे एक अलीक चिन्तामात्र उदित होती है, उस प्रकारकी चित्त-वृत्तिका नाम विकल्प है। प्रमाण, विपर्यय और स्मृति ये वृत्तियां तमोगुणके गंभीर आवेशसे स्फुरित नहीं होती। ऐसी चित्तवृत्तिका नाम निद्रा है। पूर्वानुभूत संस्कारसे जिस ज्ञानका उदय होता है, उसे स्मृति कहते हैं। ऐसी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियोंको जो निरोध करनेमें समर्थ हैं, वे ही योगारूढ़ है। योग शब्द देखो।

योगासन (सं० क्ली०) योगस्यासनं, योगसाधनमासनमिति वा। ब्रह्मासन, ध्यानासन, पद्मासन आदि।

(भट्टिटीका ७।७७ जयम०)

जिस आसन पर बैठ कर योगाभ्यास किया जाता है, उसे योगासन कहते हैं। आसनके विना योगाभ्यास नहीं हो सकता, इसलिये योगावलम्बीके लिये आसन सबसे अधिक प्रयोजनीय है।

इस आसनके विषयमें घेरण्डसंहितामें इस प्रकार लिखा है—

जीव-जन्तुओंकी संख्याके समान आसनकी संख्या भी अनन्त हैं, उनमें महादेवने चौरासी लाख आसनोंका उल्लेख किया है। उन आसनोंमें चौरासी प्रकारके आसन ही प्रधान हैं और उनमेंसे मर्त्यलोकके लिए ३२ प्रकारके आसन ही शुभदायक है। मर्त्यलोकमें वे इन ३२ प्रकारके आसनों पर बैठ कर योगाभ्यास करना ही विधेय है।

बत्तीस प्रकारके आसन—१ सिद्ध, २ पद्म, ३ भद्र, ४ मुक्त, ५ वज्र, ६ स्वस्तिक, ७ सिंह, ८ गोमुख, ९ वीर, १० धनुः, ११ मृत, १२ गुप्त, १३ मत्स्य, १४ मत्स्येन्द्र, १५ गोरक्ष, १६ पश्चिमोत्तान, १७ उत्कट, १८ संकट, १९ मयूर, २०, कुक्कुट, २१ कूर्म, २२ उत्तानकूर्मक, २३ उत्तानमण्डूक, २४ वृक्ष, २५ मण्डूक, २६ गरुड़, २७ वृष, २८ शलभ, २९ मकर, ३० उष्ट्र, ३१ भुजङ्ग, ३२ योग (योगासन) ये बत्तीस प्रकारके आसन सिद्धिप्रद हैं।

"आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितं पुरा॥
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोड़शोनं शतं कृतम्।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम्॥
सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रञ्च स्वस्तिकम्।
सिंहञ्च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च॥
मृतं गुप्तं तथा मात्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं सङ्कटं तथा॥
मयूरं कुक्कुटं कूर्म्मं तथा चोत्तानकूर्म्मकम्।
उत्तानमण्डूकं वृक्षं मण्डूकं गरुड़ं वृषं॥
शलभं मकरं उष्ट्रं भुजङ्गञ्च योगासनम्।
द्वात्रिंशदासनानि मर्त्यलोके च सिद्धिदम्॥"

(घेरण्डसंहिता)

इन सब आसनोंके लक्षण घेरण्डसंहितामें इस प्रकार कहे गये हैं;—

१ सिद्धासन—जितेन्द्रिय और योगी व्यक्ति एक गुल्फ द्वारा योनिस्थान (गुह्यदेशमें ऊद्र्ध्वभागसे ले कर कोषमूलके निम्नभाग तक स्थानको योनि कहते हैं)-को पीड़ित करके तथा दूसरे गुल्फको उपस्थके ऊपर रख कर हृदयके ऊपर चिबुक रक्खे, फिर स्थिर और अवक्र-शरीर हो कर अस्थिर दृष्टिसे दोनों भ्रूओंके मध्यभागको देखे, इस प्रकारके आसनको सिद्धासन कहते है। इस सिद्धासनके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति होती है।

प्रकारान्तर—योगज्ञ साधकको चाहिए कि यत्नपूर्वक एक पादमूल द्वारा योनिदेशको पीड़ित करके दूसरा पादमूल लिङ्गके ऊपर स्थापित करे और ऊद्ध्वदृष्टि द्वारा दोनों भ्रूओंके मध्यभागको निरीक्षण करे। इसे भी सिद्धासन कहते हैं। यह आसन निर्जन स्थानमें निरुद्विग्न, स्थिरचित्त, अवक्रशरीर और इन्द्रियोंको संयत करके अनुष्ठित किया जाता है। इस सिद्धासनके अभ्यास द्वारा शीघ्र योगसिद्धि हुआ करती है। प्राणायाम परायण योगीके लिए यह आसन नित्य सेवनीय है। इस आसनसे साधक अनायास ही परम गति प्राप्त कर सकता है। सिद्धासन सब आसनोंमें श्रेष्ठ है।

२ पद्मासन—पद्मासन दो प्रकारका है, बद्धपद्मासन और मुक्त पद्मासन। वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण चरण और दक्षिण ऊरुके ऊपर वाम चरण स्थापित करके दोनों हाथोंसे पृष्ठभागसे दोनों पदोंकी वृद्धांगुलियोंको दृढ़रूपसे धारण कर, और वक्षस्थल पर चिबुक रख कर नासाका अग्रभाग अवलोकन करता रहे। इस तरह अवस्थान करनेको बद्धपद्मासन कहते हैं। इस आसनके अभ्याससे समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं और जठराग्निकी वृद्धि होती है। केवल वाम ऊरु पर दक्षिण चरण और दक्षिण ऊरु पर वाम चरण रख कर उस पर दोनों हाथोंको विन्यास करनेसे मुक्तपद्मासन होता है।

अन्य प्रकार—वाम ऊरु पर दक्षिणपाद और वाम हस्त तथा दक्षिण ऊरु पर वामपद और दक्षिण हस्त चित करके रखो, और नासाके अग्रभाग पर दृष्टि रख कर दन्तमूलमें जिह्वा रखे तथा चिबुक और वक्षःस्थल ऊंचा कर क्रमशः वायु यथाशक्ति आकर्षण करके उदरमें पूरण और धारण करे और पीछे यथासाध्य अविरोधमें रेचन करना होगा। यह आसन सर्वव्याधिनाशक है। केवल बुद्धिमान् योगी हो इस आसनका अभ्यास करनेमें समर्थ हैं। इसके अनुष्ठानमें उसी समय प्राणवायु समानरूपसे नाड़ी चलती है। इसलिये प्राणायामके समय वायुकी गति सरल हो जाती है। जो योगी पद्मासनस्थ हो यथाविधानसे प्राण और अपानवायुका पूरण रेचन आदि करते हैं वे समस्त बन्धनसे विमुक्त हो जाते हैं।

३ भद्रासन—अण्डकोषके नीचे दोनों गुल्फोंको दूसरे भागमें रख दोनों पैरोंकी वृद्ध अंगुली दोनों हाथोंसे पीठ हो कर ले जाय और उसे पकड़ कर जालन्धरबन्ध कर नासाका अग्रभाग देखे। इसको भद्रासन कहते हैं। इसके करनेसे समस्त व्याधि विनष्ट होती है।

४ मुक्तासन—गुदा पर बायां पैर और उसके ऊपर दाहिना पैर रखें तथा मस्तक और ग्रीवा समान करके अवक्र शरीरमें और ठीक सीधा हो कर बैठे। इसका नाम मुक्तासन है। यह आसन सर्वसिद्धिप्रद है।

५ वज्रासन—दोनों जंघा वज्राकृति कर दोनों पांव गुदाके दोनों पार्श्वों पर संस्थापित करे। इसे वज्रासन कहते हैं।

६ स्वस्तिकासन—दोनों जानु और ऊरुके बीच दोनों पैर रख त्रिकोणाकृति आसन बांध करके सीधा हो कर बैठे, इसे स्वस्तिकासन कहते हैं। इस आसनका अभ्यास करनेसे किसी तरहकी व्याधि आक्रमण नहीं कर सकती तथा सब दुःख दूर होता और शरीर सुस्थ होता है। इस आसनका दूसरा नाम सुखासन है।

७ सिंहासन—दोनों गुल्फ अण्डकोषके नीचे परस्पर उलटा कर पीछेकी ओर ऊद्ध्वभागमें बहिष्कृत करे तथा दोनों जानु भूमि पर रख इस दो जानुके ऊपर मुंह उठा कर स्थापनपूर्वक जालन्धरबन्ध अवलम्बन कर नासाका अगला भाग देखे। इसका नाम सिंहासन है। इस आसनका अभ्यास करनेसे सभी रोग जाता रहता है।

८ गोमुखासन—दोनों पांव पृथ्वी पर रखपीठके दोनों पार्श्वोंमें निवेशित कर स्थिर शरीरमें गोमुखकी तरह ऊद्ध्वकी ओर मुंह करके बैठे। इसका नाम गोमुखासन है।

९ वीरासन—एक पैर एक रान पर और दूसरा पैर पीछेकी ओर रखना होगा। इसे वीरासन कहते हैं।

१० धनुरासन—भूमि पर दोनों पांव दण्डकी तरह समान कर फैलावे और दोनों हाथसे पोठ हो कर यह दोनों पैर पकड़ कर समस्त शरीरको धनुषकी तरह टेढ़ा करना होगा। इस तरह धनुरासन होता है।

११ मृत वा शवासन—शवकी तरह चित हो कर सोनेसे शवासन होता है। इस आसन द्वारा श्रम दूर और

चित्तका विश्राम होता है। इसलिये इसका नाम मृतासन है।

१२ गुप्तासन—दोनों रानोंके बीच दोनों पैर छिपा रखे तथा दोनों पैरोंके ऊपर गुदा रखे। इसका नाम गुप्तासन है।

१३ मत्स्यासन—मुक्त पद्मासन करके दो कर्पूर (कणुई) द्वारा मस्तक उठा कर चित हो सोवे। इसको मत्स्यासन कहते हैं।

१४ गोरक्षासन—दोनों रानों और ऊरुके बीच दोनों पैर उत्तान अर्थात् चित कर अप्रकाशितरूपसे संस्थापन पूर्वक दोनों हाथ चित कर दोनों गुल्फ आच्छादित करे तथा कंठ सिकुड़ा कर नासाका अग्रभाग अवलोकन करे। इस प्रकार यह आसन होता है।

१५ मत्स्येन्द्रासन—उदरको पीठकी भांति सीधा कर रहे तथा वायां पांव नवा कर दाहिनी जांघके ऊपर रख कर उसके ऊपर दाहिनी कणुई और दाहिने हाथका मुखविन्यास कर दोनों भौंहोंका मध्यभाग देखे। इसको मत्स्येन्द्रासन कहते हैं।

१६ पश्चिमोत्तानासन—भूमि पर दोनों पैर दण्डवत् बराबर कर फैलावे और दोनों हाथों द्वारा यत्नपूर्वक इन दोनों पैरोंको पकड़ कर दोनों रानोंके बीच मस्तक रखना होगा। इस प्रकार पश्चिमोत्तानासन होता है।

उग्रासन—दोनों पैरोंको असंलग्नरूपसे फैला कर दोनों हाथोंसे मजबूतीसे पकड़े और दोनों जंघोंके ऊपर मस्तक रखे। इसका नाम उग्रासन है। कोई कोई इसको भी पश्चिमोत्तानासन कहते हैं। इस आसनके साधनमें योगाभ्यास करनेसे शीघ्र योग सिद्ध होता है।

१७ उत्कटासन—दोनों पैरोंको वृद्ध अंगुलीसे भूमि छू कर दो गुल्फ छूनेके सिवा शून्यमें रख इन दो गुल्फोंके ऊपर गुदा रखे। इसको उत्कटासन कहते हैं।

१८ सङ्कटासन—वायां पैर और वाईं जांघ भूमि पर रख कर वायां पैर दाहिने पैरसे वेष्टनपूर्वक दोनों जांघोंमें दोनों हाथ रखे। इसका नाम सङ्कटासन है।

१९ मयूरासन—दोनों करतलसे पृथ्वी अवलम्बन कर दोनों कूर्परोंके ऊपर नाभिका दोनों पार्श्वभाग स्थापन कर मुक्तपद्मासनकी तरह दोनों पद ऊर्द्ध्वमें उत्तोलित कर शून्यमें दण्डकी भांति समान भावमें खड़ा होगा। इसको मयूरासन कहते हैं।

२० कुक्कुटासन—किसी मंचके ऊपर मुक्तपद्मासन कर दोनों जांघों और ऊरुओंके बीच दोनों हाथ रख कर दो कूर्पर द्वारा बैठे। इसका नाम कुक्कुटासन है।

२१ कूर्मासन—अण्डकोषके नीचे दो गुल्फ परस्पर विपरीतक्रमसे रख कर ग्रीवा, मस्तक और शरीर सीधा कर बैठे। इसको कूर्मासन कहते हैं।

२२ उत्तानकूर्मासन—कुक्कुटासन हो कर दोनों हाथों द्वारा कंधा पकड़ कूर्मकी तरह उत्तान होनेको उत्तानकूर्मासन कहते हैं।

२३ मण्डूकासन—दोनों पैर पीठ पर पकड़ इन दो चरणोंको वृद्धांगुलियां परस्पर संस्पृष्ट करे और दोनों रानोंको सामने रखे। इसको मण्डूकासन कहते हैं।

२४ उत्तानमण्डूकासन—मण्डूकासन पर बैठ करके दोनों कूर्परों द्वारा मस्तक पकड़े और मेढ़ककी तरह उत्तान हो कर अविस्थत रहनेको उत्तान-मण्डूकासन कहते हैं।

२५ वृक्षासन—वाईं जांघ पर दाहिना पांव रखे और पृथ्वी पर वृक्षको तरह सीधा खड़ा रहे। इसका नाम वृक्षासन है।

२६ गरुड़ासन—दोनों जंघा और ऊरु द्वारा भूमि पीड़ित और दोनों जानु द्वारा स्थिरशरीर होगा। पीछे दोनों जांघोंके ऊपर दोनों हाथ रखे। इसको गरुड़ासन कहते हैं।

२७ वृषासन—दाहिने गुल्फके ऊपर पायूमूल अर्थात् गुदा संस्थापन करके उसके वायें भागमें वायां पांव उल्टा कर रख भूमि स्पर्श करे। इसका नाम वृषासन है।

२८ शलभासन—औंधे मुख सो दोनों हाथ छाती पर रखे और दोनों करतलों द्वारा भूमि अवलम्बन करे और दोनों चरण शून्यमें अर्द्धहस्तप्रमाण ऊर्द्ध्वमें रखे। इसको शलभासन कहते हैं।

२९ मकरासन—औंधे मुख सो कर भूमि पर छाती रख कर हाथ फैलावे और दोनों हाथोंसे मस्तक पकड़े।

इसको मकरासन कहते हैं। इस आसनको अभ्यास करनेमें देहकी अग्निवृद्धि होती है।

३० उष्ट्रासन—अधोमुख शयन कर दोनों पद उलटा करके पीठ पर आनयनपूर्वक दोनों हाथोंसे पकड़े तथा उदर और मुख आकुञ्चित करे। इसीका नाम उष्ट्रासन है।

३१ भुजङ्गासन—पैरकी अंगुष्ठ अंगुली अवधि नाभि पर्यन्त समस्त अधोभाग भूमि पर विन्यस्त कर दोनों हथेलियोंसे भूमि छूवे और सांपकी तरह ऊद्‌र्ध्वमें मस्तक उठावे। इसका नाम भुजङ्गासन है। इस आसनका अभ्यास करनेसे देहकी अग्नि बढ़ती तथा सब प्रकारका रोग विदूरित होता और कुण्डलिनी शक्ति जागरित होती है।

३२ योगासन—दोनों पांव चित करके ठेहुनेके ऊपर रख दोनों हाथ चित कर इस आसन पर रखे तथा पूरक द्वारा वायु आकर्षण कर कुम्भक द्वारा नासाका अग्रभाग देखे। इसका नाम योगासन है। यह योगासन योगसाधनके लिये बड़ा प्रशस्त है। (घेरण्डसंहिता)

यह जो योगसाधन आसनका विषय लिखा गया वह सभी आसन ही गुरुगम्य। उपयुक्त सद्‌गुरुके उपदेशानुसार सभी आसन अभ्यास करना उचित है। नहीं तो पद पदमें विघ्न होनेकी सम्भावना है।

योग शब्द देखो।

योगित (सं० त्रि०) १ योगयुक्त, योगी। २ मन्त्रमुग्ध, जिस पर इन्द्रजाल या मन्त्र यादिका प्रयोग किया गया हो। ३ जो इन्द्रजाल या मन्त्र आदिकी सहायतासे अपने अधीन कर लिया गया हो अथवा पागल बना दिया गया हो।

योगिता (सं० स्त्री०) १ योगीका भाव या धर्म। योगिन् देखो। २ अन्य विषयके साथ संयोगसूत्रमें आवद्ध या सम्बन्धयुक्त।

योगित्व (सं० पु०) १ योगीका भाव या धर्म। २ योगीभावापन्नत्व।

योगिदण्ड (सं० पु०) योगिनां दण्डः अवलम्बनयष्टिः। वेत, बेंत।

योगिन् (सं० त्रि०) योगोऽस्त्यस्य योग-इनि यद्वा युज समाधौ युजिर योगे वा (संपृचानुरुधेति। पा ३।२।१४२) इति घिनुण्। १ योगयुक्त, योगावलम्बी।

"स्वर्णे लोष्ट्रे गृहेऽरण्ये सुस्निग्धचन्दने तथा।
समता भावना यस्य स योगी परिकीर्त्तितः॥"

(ब्रह्मवै० गणपति० ३५ अ०)

स्वर्ण वा लोष्ट्र, गृह वा अरण्य अथवा सुस्निग्धचन्दनमें जिसकी समान भावना हो अर्थात् जो भले-बुरे और सुख-दुःख आदि सबको समान समझते हैं उन्हींको योगी कहते हैं। गीतामें कहा है,—

"आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्ज्जुन।
सुखं वा यदि दुःखं वा स योगी परमो मतः॥"

(गीता ७ अ०)

हे अर्जुन! जो अपने समान सबोंको देखते हैं एवं जिनके सुख या दुःख दोनों ही समान हैं वही योगी हैं। और भी जो योगावलम्बन करते हैं उन्हींको योगी कहते हैं। विशेष विवरण योग शब्दमें देखो।

२ शिव, महादेव। ३ योगसिद्ध व्यक्ति, वह व्यक्ति जिसने योगाभ्यास करके सिद्धि प्राप्त कर ली हो। स्वयं भगवान्‌ने योगिसम्बन्धमें गीतामें कहा है, कि तपस्वीकी अपेक्षा, यहां तक, कि सभी कर्मियोंकी अपेक्षा योगी श्रेष्ठ हैं। योगी देखो।

योगदर्शनमें अवस्थाके भेदसे योगी चार प्रकारके कहे गये हैं,—(१) प्रथमकल्पिक जिन्होंने अभी केवल योगाभ्यासका आरम्भ किया हो और जिनका ज्ञान अभी तक दृढ़ न हुआ हो; (२) मधुभूमिक—जो भूतों और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहते हों; (३) प्रज्ञाज्योति—जिन्होंने इन्द्रियोंको भली भांति अपने वशमें कर लिया हो और (४) अतिक्रान्तभावनीय—जिन्होंने सब सिद्धियां प्राप्त कर ली हों और जिनका केवल चित्तलय बाकी रह गई हो।

योगके आरम्भसे ले कर कैवल्य पर्यन्त चार अवस्थाओंकी प्रथमावस्थामें अर्थात् प्रथमकल्पिक योगीके लिये देवगणके साक्षात्कारकी सम्भावना नहीं है। तृतीय और चतुर्थ अवस्थामें योगिगण देवगणकी अपेक्षा उन्नत हैं। सुतरां देवगण उनको प्रलोभन दिखा नहीं सकते सिर्फ द्वितीय अवस्था ही

प्रलोभनकाल है। इस अवस्थामें मन स्थिर नहीं रहता, केवल सिद्धिका अंकुर दिखाई पड़ता है। इस समय इन्द्रादि देवगण योगीकी चित्तशुद्धि जान कर स्वर्गादि-स्थानकी विविध उपभोग्य विषय द्वारा उनको प्रलोभन दिखाते हैं। पीछे योगसिद्धिके प्रभावसे योगिगण देवताओंकी अधिकारच्युति घटाते हैं, इस भयसे देवगण उनके पास आ कर कहते हैं, —'आप इस जगह अवस्थित और विहार करें। यह भोग कमनीय है। यह कन्या चित्तहारिणी है। यह औषध जन्ममृत्युका विनाशक है। यह रथ गगनचारी है। यह कल्पवृक्ष आपका सब मनोरथ पूरण करेगा इत्यादि नाना प्रकारके प्रलोभनसे मुग्ध करनेकी चेष्टामें रहते हैं।"*

योगी यदि इस पर लुभा जाते हैं, तो योगभ्रष्ट हो कर अन्तमें निरयगामी हो जाते हैं। जब तक असंप्रज्ञात समाधि लाभ नहीं हो, तब तक योगीको चाहिये, कि वे योगपथ परित्याग न करें। जितनी ही विभीषिका या सम्पद्‌लाभ क्यों न हो, किसी हालतसे भौंह न चढ़ा कर धीरे धीरे गुरुके उपदेशानुसार योग करते रहें, किसी कारणवश योगत्याग न करें।

वर्त्तमानकालमें योगिगण शैवसम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हो गये हैं। आधुनिक कणफट आदि योगि-सम्प्रदायकी उत्पत्ति बहुत प्राचीन न होने पर भी प्राचीनतम कालसे भारतवर्षमें योगियोंका प्रभाव विस्तृत हुआ था। दत्तात्रेय, नारद, यहां तक कि देवादिदेव महादेव भी परमयोगी कह कर उक्त हुए हैं।

हठप्रदीपिका, दत्तात्रेयसंहिता, गोरक्षसंहिता आदि ग्रन्थोंमें योगिसम्प्रदायका अनुष्ठेय आसन-प्राणायामादि योगाङ्ग समुदायकी यथायथ प्रणाली निबद्ध हुई है। सहजानन्द चिन्तामणि स्वात्माराम योगीन्द्रकी हठप्रदीपिकामें योगियोंके चार उपदेश दिये गये हैं। प्रथम उपदेशमें प्रधान प्रधान हठयोगियोंके नाम; योगसाधनके अनुकूल और प्रतिकूल क्रियासमूहका विवरण; यम, नियम, आसन, प्राणायामादि योगाङ्ग; योगाधिकारके लक्षण और योगियोंका भोजन नियम; द्वितीयमें धौति, वस्ती आदि षट्कर्म और कई प्रकारके कुम्भकके लक्षण; तृतीयमें दश प्रकारका मुद्रासाधन-विवरण तथा चतुर्थ-उपदेशमें समाधिका विषय और नानारूप सिद्धावस्थाका वृत्तान्त लिपिबद्ध है।

अत्रि और अनुसूयाके पुत्र दत्तात्रेय ऋषि भगवान्‌के षष्ठ अवतार और परमयोगी कह कर वर्णित हुए हैं। उन्होंने योगधर्म प्रकाश करके भगवद्‌भक्त प्रह्लाद आदि साधकोंको उपदेश दिया था। (भागवत १।३)

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि वे इच्छापूर्वक लोकसंसर्ग परित्याग कर बहुत दिनों तक सरोवरमें निमग्न थे। उनकी प्रतिपादित संहितामें मन्त्रयोगका निकृष्टत्व सूचित हुआ है तथा लययोगके सूचनाप्रसङ्गमें नासाग्रभागमें दृष्टि, भूतलमें शयन, मृत्युञ्जयध्यान आदिका अङ्ग और प्रणालीक्रमसे अष्टाङ्ग हठयोगका सविस्तार विवरण वर्णित हुआ है। महर्षि दत्तात्रेयके मतसे,—

"यमश्च नियमश्चैव आसनञ्च ततः परम्।
प्राणायामश्चतुर्थः स्यात् प्रत्याहारश्च पञ्चमः॥
षष्ठी तु धारणा प्रोक्ता ध्यानं सप्तममुच्यते।
समाधिरष्टमः प्रोक्तः सर्वपुण्यफलप्रदः॥"

गोरक्षसंहिताकार गुरु गोरक्षनाथ अपने ग्रन्थमें हठप्रदीपिका और दत्तात्रेयसंहिताकी योगप्रकरण-पद्धतिका अनुसरण करने पर भी यम और नियमके अलावा षड़्‌योगाङ्गका निर्देश कर गये हैं। इसके अलावा उस ग्रन्थमें षट्‌चक्र साधनका विशेष विवरण उल्लिखित है।

अहिंसा आदि दस प्रकारके यमनियम* का पालन करनेके सिवा योगियोंका भोजन विषयमें और

* "तत्र मधुमतीं भूमिं साक्षात्कुर्वतो ब्राह्मणस्य स्थानिनो देवाः सत्त्वशुद्धिमनुपश्यन्तः स्थानैरुपनिमन्त्रयन्ते, भो इहास्यतां, इहरम्यतां कमनीयोऽयं भोगः, कमनीयेयं कन्या, रसायनमिदं जरामृत्युं बाधते, वैहायसमिदं यानं, अमी कल्पद्रुमाः, पुण्या मन्दाकिनी, सिद्धा महर्षयः, उत्तमा अनुकूला अप्सरसः, दिव्ये श्रोत्रचक्षुषी, वज्रोपमः कायः स्वगुणैः सर्वमिदमुपार्जितमायुष्मता, प्रतिपद्यतामिदमक्षयमजरममरस्थानं देवानां प्रियमिति"

(योगभाष्य ३।५१)

*" अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं कृपार्जवम्।
क्षमाधृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश॥

भी नाना प्रकारके कठोर नियमोंका पालन करना होता है। केवल परिमिताहार ही योगियोंके लिये प्रशस्त नहीं है। अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, उष्णद्रव्य, हरीतशाक, बदरीफल, तैल, तिल, सर्षप, मत्स्य, मद्य, बकरेका मांस, दधि, तक्र, कुलत्थ कलाय, वराहमांस, पिन्याक, हिंगु और लशुन आदि द्रव्य योगियोंके अभक्ष्य हैं। गेहूं, शालिधान्य, जौ, यष्टिकधान्यरूप सुद्राख्यन्न, क्षीर, अखण्ड नवनीत, चीनी, मधु, शुंठी, कपोलफल, पंचशाक, मूंग आदि और उत्तम जल आदि सामग्री संयमियोंकी सुपथ्य कही गई है।

विन्दुधारण करनेसे योगियोंकी योगाङ्गसिद्धि हो जाती है। अतएव विन्दुक्षयजनित आयुका नाश और बलकी हानि प्रतिविधानके लिये योगियोंको सब प्रकारसे स्त्रीसंसर्ग परित्याग करना उचित है। इसके अलावा और भी विधान है, कि हठयोगी लोग उपद्रवशून्य निर्जन स्थानमें अवस्थित रह कर योगमठमें प्रवेश कर योगाभ्यास करें। किस जगह कैसा मठ बनाना होता है। हठप्रदीपिकामें उसका विवरण यों लिखा है,—

"स्वल्पद्वारमरन्ध्रगर्त्तपिटकं नात्युच्चनीचायतम्।
सम्यग् गोमयसान्द्रलिप्तममलं निःशेषबाधोज्झितम्॥
बाह्ये मण्डपकूपवेदिरचितं प्राकारसंवेष्टितम्।
प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः॥"
(हठप्रदीपिका)

अर्थात् योगमठ क्षुद्रद्वारविशिष्ट, रन्ध्रहीन, गर्त्तयुक्त, न उच्च वा न निम्न, गोमय द्वारा सम्यगरूपसे लिप्त, परिष्कृत और योगका विघ्नदायक द्रव्यपरिशून्य होना चाहिये। उसके बाहर मण्डप कूप और वेदिरचित होगा तथा समग्र स्थान प्राचीर परिवेष्टित होगा। आलस्य छोड़ कर प्रतिदिन सम्मार्जनीके द्वारा मठ परिष्कृत तथा धूप, धूना, गुगुल और अन्यान्य सुगन्धि द्वारा मठ सुवासित रखना योगियोंका एकान्त कर्त्तव्य है। वे इस प्रकार सुवासित घरमें बैठ योगाभ्यासमें निरत रहेंगे। योगासन पर बैठनेका जो सब कौशल है योगी उसे आसन कहते हैं। कुल मिला कर प्रायः ८४ प्रकारके आसनका उल्लेख देखा जाता है। संहिताके मतसे योगसाधनके लिये जो सब आसन विहित हुए हैं उसमेंसे पद्मासन सर्वश्रेष्ठ है; किन्तु हठप्रदीपिकामें सिद्धासनकी ही प्रधानता कीर्त्तित देखी जाती है।

गोरक्षसंहितामें पद्मासनका अनुष्ठान-विषय इस प्रकार लिखा है,—

"वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा-
प्यन्योरूपरि तस्य बन्धनविधौ धृत्वा कराभ्यां दृढम्।
अंगुष्ठं हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकये-
देतद्व्याधिविनाशकारि यमिनिः पद्मासनं प्रोच्यते॥"
(गोरक्षसंहिता)

इस प्रकार आसनबद्ध हो कर प्राणायाम करना होता है अर्थात् नासिका द्वारा शरीरके बीच वायु पूरण और धारण करके पीछे रेचन और पूरण अभ्यास करे। प्रथम अभ्यासके समय जल और दूध पीना ही प्रशस्त है; किन्तु उत्तमरूपसे अभ्यस्त होनेके बाद और इस नियमका पालन करना नहीं होता।

शरीरके मध्य वायुको स्तम्भन अर्थात् निश्वास अवरोध करनेको कुम्भक कहते हैं। कुम्भकके समय इन्द्रिय सबकी अपनी अपनी वृत्तिसे निरोधका नाम प्रत्याहार है। शीत्कार, भ्रमरी आदि नाना प्रकारके कुम्भकोंका उल्लेख देखा जाता है। हठप्रदीपिकाके रचयिताने लिखा है, कि योगी लोग अभ्यासके बलसे रेचन और पूरण न करने पर भी कुम्भकसाधन करनेमें समर्थ होते हैं। क्रमागत अभ्यासके बलसे विशिष्ट शक्तिसम्पन्न हो कर वे पद्मासन पर बैठ क्रमशः भूमि परित्यागपूर्वक शून्यमें अवस्थान कर सकते हैं। इस समय उनकी विचित्र शक्ति लाभ होती है। थोड़ा या बहुत भोजन करनेसे भी वे पीड़ित नहीं होते। प्राणायाम सिद्ध होने पर शरीरकी लघुता और दीप्ति तथा जठराग्निकी वृद्धि और देहकी कृशता समुपस्थित होती है।

यदि इस तरह शरीर शुद्ध न हो कर श्लेष्मादि घटित पीड़ा होती है, तो योगी धौति, नेती आदि बहुत कार्य बाह्य

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम्।
सिद्धान्तश्रवणञ्चैव ह्रीमतिश्च जपो हुतम्।
दशैते नियमाः प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः।"
(हठप्रदीपिका १ उप०)

करते हैं। हठप्रदीपिकामें लिखा है, कि १५ हाथ लंबा और ४ अंगुली चौड़ा एक खण्ड जलसिक्त वस्त्र गुरूपदिष्ट पथ द्वारा क्रमशः ग्रास कर पीछे उसे निगल जावे। इसको वस्तिकर्म या धौतीकर्म कहते हैं।

इससे कास, श्वास, प्लीहा, कुष्ठ, कफरोग आदि बीस तरहकी व्याधि शान्त होती है। इस प्रकार नासारन्ध्रमें सूता दिलवा कर मुख द्वारा निर्गत करणका नाम नेती-कर्म है। दोनों नेत्र स्थिर कर जब तक आंसू न चले तब तक किसी सूक्ष्म लक्ष्यके प्रति दृष्टि रखनेका नाम त्राटककर्म है। शरीरके भीतर जलपूरण, वायुपूरण तथा दोनोंका बहिर्निगमन आदि शोधक व्यापार अनुष्ठानका भी आदेश है। इन सब कर्मोंके अनुष्ठानके सिवा योगी लोग कई प्रकारका अंगभंगी अभ्यास करते हैं। यह मुद्रा कहलाता है। कपालविवरके भीतर जिह्वाको विपरीतभावमें प्रविष्ट और बद्ध कर भौंहोंके बीच दृष्टि संन्यस्त करनेका नाम खेचरीमुद्रा है। यह योग-साधनकालमें वायुरोधका बड़ा ही उपयोगी है।

मुद्रा देखो।

कभी कभी योगी लोग दोनों पैर ऊद्ध्र्वकी ओर तथा मस्तक अधोभागमें रख कर व्यायामकुशलीकी तरह अवस्थान करते हैं। इस प्रकार अंगभंगीका थोड़े समय-से बहुत समय तक अभ्यास करना होता है। इस तरह अनुष्ठान करनेसे केशकी शुक्लता और मांसकुञ्चनादिरूप सभी वार्द्धक्यचिह्न छः महीनेके भीतर अपहृत हो जाते हैं। प्रतिदिन एक प्रहर तक अभ्यास करनेसे मृत्युञ्जयी होता है।

षट्चक्रभेद योगियोंका एक प्रधान साधन तथा हंस मन्त्रजप अत्यन्त महत् व्यापार है। निश्वास प्रश्वासके समय 'हं' शब्दसे वायु बाहर निकलती तथा 'स' से शरीरमें पुनः प्रवेश करती है। दिन और रातमें जीव २१६०० बार यह मन्त्र जपते हैं। यह अजपा नाम गायत्री योगियोंकी प्रधान मोक्षदायिका है।

शरीरके भीतर स्थानविशेषमें वायुधारणका नाम धारणा है। पृथ्वी, आम्भसी, आग्नेयी, वायवी और नभोधारणाके भेदसे यह पांच प्रकार है। पायुदेशके ऊद्ध्र्वमें तथा नासिके अधोभागमें पांच दण्ड तक वायु-धारणका नाम पृथिवी-धारणा है। नाभिस्थलमें रक्षित होनेसे आम्भसी, नाभिके ऊद्ध्र्वमण्डलमें आग्नेयी, हृदयमें वायवी तथा भौंहोंके मध्यसे ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त मस्तकके सभी स्थानोंमें वायुधारणको नभोधारणा कहते हैं। योगियोंका विश्वास है, कि पृथ्वीकी धारणा करनेसे पृथ्वी पर मृत्यु नहीं होती। आम्भसीकी धारणा करनेसे जलमें मृत्यु नहीं होती, आग्नेयीकी धारणा करनेसे अग्निमें शरीर दग्ध नहीं होता, वायवीकी धारणा करनेसे किसी तरहका भय नहीं रहता तथा नभोधारणा करनेसे मृत्यु होती ही नहीं है। इस कारण गोरक्षनाथने वायुस्थिर रखनेके लिये योगियोंको पुनः पुनः सावधान होनेके लिये आदेश दिया है।

योगशास्त्रमें सगुण अर्थात् साकार देवताका तथा निर्गुण अर्थात् निराकार ब्रह्मका ध्यान करनेकी विधि है। योगिगण सगुण उपासना द्वारा अणिमादि ऐश्वर्य लाभ करते तथा निर्गुण ध्यान द्वारा समाधियुक्त हो कर इच्छानुरूप शक्ति प्राप्त करते हैं। इनका विश्वास है, कि समाधि सिद्ध होनेके बाद मानव इच्छानुसार देहत्याग या देहकी रक्षा कर सुखका सम्भोग करते हैं। दत्तात्रेय-संहितामें लिखा है,—

"सर्वलोकेषु विचरेदणिमादिगुणान्वितः।
कदाचित् स्वेच्छया देवो भूत्वा स्वर्गेऽपि सञ्चरेत्॥
मनुष्यो वापि यक्षो वा स्वेच्छयापि क्षणाद्भवेत्।
सिंहव्याघ्रगजो वापि स्वादिच्छातोऽन्यजन्मतः॥"

अर्थात् साधक योगी यद्यपि देहत्याग करनेकी वाञ्छा करते है, तो वे अवलीलाक्रमसे परब्रह्ममें लीन हो सकते हैं। नहीं तो अणिमादि ऐश्वर्यबलसे देवादि विभिन्न मर्त्यरूप धारण कर सर्वलोकमें अशेषविध सुखसम्भोग कर विचरण करनेमें समर्थ होते हैं।

योगशब्दमें योगीका कर्त्तव्याकर्त्तव्य अवधारित होनेसे तथा यमनियमादि अष्टाङ्ग, मुद्रा, षट्चक्रभेद आदि आनुष्ठिक कार्यविवरण यथास्थानमें विवृत रहनेसे यहां विशदरूप लिखा नहीं गया।

वर्त्तमान समयमें हम लोग कई योगी पुरुषोंके योग-बलकी कथा अंगरेज-राजपुरुषोंके मुखसे भी सुनते हैं। मद्रास-वासी शिशाल नामक एक दक्षिणदेशीय योगी

कुम्भक द्वारा शून्यमें उठ कर जप करते थे*। पञ्जाव-केशरी राजा रणजित्सिंहके दरबारमें जेनरल भेञ्चुरा और कप्तान ओयेडरके समक्षमें हरिदास साधुको योग-समाधि और दश महीने तक भूगर्भके बीच रहनेकी कथा सब कोई जानते हैं।† कुछ समय पहले अर्थात् १७५४ शकमें कलकत्तासे दक्षिण खिदिरपुरके भूकैलास नामक स्थानमें एक योगिपुरुष लिवाये गये थे। भूकैलासराज सत्यचरण घोषाल उस समय जीवित थे। डा० ग्रेहम उनके नासारन्ध्रमें एमोनिया डाल कर भी योगभंग नहीं कर सके। योगभङ्ग होनेके बाद इस योगीने दुलानचाव कह कर अपना परिचय दिया। वे अधिक नहीं बोलते थे। १७५५ शकमें उदरभङ्ग रोगसे उनकी जीवन-लीला शेष हुइ।

आजकलके योगियोंके बीच नाना साम्प्रदायिक विभाग देखा जाता है। उनमेंसे कणफट्योगी, औघड़ योगी, मच्छेन्द्री, शारङ्गीहार डुरोहार, भर्त्तृहरि, काणिपा और अघोरपंथी आदि साम्प्रदायिकोंके नाम उल्लेखनीय हैं। स्त्रियोंके योगधर्म ग्रहण करनेसे वे योगिनी या नाथिनी कहलाती है। ये गेरुवा वस्त्र, त्रिशूलादि शिवचिह्न और कानमें मुद्रा भी व्यवहार करते हैं। वहुतेरे अलंकार भी पहनते हैं। स्त्री-पुत्रादि ले कर गृहस्थयोगी 'संयोगी' कहलाते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारतमें योगिसम्प्रदायी वहुत लोगोंका वास है। उनमेंसे औघड़ और गोरखपंथीकी ही संख्या ज्यादे है। योगिश्रेष्ठ गोरक्षनाथ ही इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। उनके बारह शिष्योंसे ही पश्चिमाञ्चलीय योगी सम्प्रदायकी वृद्धि और पुष्टि हुई है। भिन्न भिन्न साम्प्रदायिकोंके मुखसे इन बारहों मनुष्योंके भिन्न भिन्न नाम मिलते हैं।

१ सत्यनाथ, धर्मनाथ, कायनाथ, आदिनाथ, मत्स्य-नाथ, अभयपन्थीनाथ, कालेप (कणिपा), ध्वजपन्थी, हृण्डीविरङ्ग, रामजी, लक्ष्मणजी, दरियानाथ।

२ आईपन्थी, रामजी, भर्त्तृहरि, सत्नामी, काणि-बाकि (जालन्धरनाथके शिष्य), कपिलमुनि, लक्ष्मण, नटेश्वर, रतननाथ, सन्तोषनाथ, ध्वजपन्थी (हनुमान्के शिष्य), मीननाथ।

३ शान्तनाथ, रामनाथ, अभङ्गनाथ, भरङ्गनाथ, धर-नाथ, गङ्गाईनाथ, ध्वजनाथ, जालन्धरनाथ, दर्पनाथ, कनकनाथ, नीमनाथ और नागनाथ।

काबुल और पेशावर जिलेमें जो सब योगी देखे जाते हैं, उनका आचार-व्यवहार अहिन्दूजनोचित है। बौद्ध-*प्रधान प्राचीन जनपदमें हिंसाद्वेषपूर्ण* इस प्रकार योगि-सम्प्रदायका अभ्युत्थान देख कर वैदेशिक जातितत्त्व विद्गण अनुमान करते हैं, कि सम्भवतः ये भोटदेशीय होंगे।

अन्यान्य योगियोंके बीच भर्त्तृहरि और नन्दिया योगियोंको हिन्दू कहा जा सकता है तथा भङ्गीगण प्रायः ही मुसलमान हैं। भङ्गीगण दाढ़ी रखते, गुदड़ी पह-नते, माथेमें पगड़ी बांधते और कंधेमें झोरी ले कर फिरते हैं। भर्त्तृहरि योगी *शारंगी* बजा कर घूमते हैं। गलेमें रुद्राक्षमाला और हाथमें वैरागी-घडी ले कर चलते हैं। ये सामुद्रिकविद्या और भौतिकविद्या द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते हैं।

नन्दिया योगी इस तरह गेरुवा वस्त्र और माला आदि पहनते हैं सही पर वे शारंगी बजा कर गान नहीं करते। वे प्रायः ही पांच पदयुक्त अथवा कोई विकृत गो-पालन कर देवस्थान या मेला आदिमें अर्थ उपार्जन करते हैं। महादेवका अनुचर नन्दी कह कर *अपना परिचय* दे इस श्रेणीके योगी लोग नन्दिया नामसे साधारणमें विख्यात हैं। ये भिक्षाके लिये घूमते फिरते हैं। बालकगण दीक्षा लेनेके समय मुण्डन करते और गुरुसे गुदड़ी लेते हैं।

भर्त्तृहरि योगी भर्त्तृहरि, राजा गोपीचांद और महादेवका गान करते फिरते हैं। भङ्गी और नन्दी योगी कभी भी गान नहीं करते। जो गीत गाते हैं वे *सिर्फ महादेवकी ही महिमा* संकीर्त्तन करते हैं। पश्चि-*माञ्चलके योगी* जाहिर पीर, हीरा और रञ्जाकी प्रेम-गीति तथा अमरसिंह राठोरकी वीरकाहिनी गाते हैं।

---

* Saturday Magazine, Vol. 1. p, 28.

† W. G. Osborne's Court and Camp of Runjit Sinngh, p, 124.

इनमेंसे कोई कोई दर्जीका काम भी करते और कोई रेशम कातते हैं।

मार्कोपोलेने छुगी (Chugi) शब्दमें योगियोंका उल्लेख किया है। उनके मतसे ये ब्राह्मण (A braiman) और धमसम्प्रदाय हैं। देवोपासक स्वतन्त्र ये प्रायः ही १५०से ले कर २०० वर्ष तक जीवित रहते हैं।*

योगनिद्रा (सं० स्त्री०) थोड़ी-सी नींद, झपकी।

योगिनी (सं० स्त्री०) योग-इनि, योगिन्, ङीप्। योगयुक्ता नारी, योगाभ्यासिनी।

"ते उमे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युमे द्विज।"

(मार्कण्डेयपु० ५२।११)

२ रणपिशाचिनी। ३ एक लोकका नाम। ४ आषाढ़ कृष्णा एकादशी। ५ देवी, योगमाया। ६ कालीकी एक सहचरीका नाम। ७ तिथिविशेषमें दिग्विशेषावस्थित योगिनी। ८ तत्काल योगिनी। ९ आवरण देवता। यह योगिनी असंख्य हैं जिनमेंसे चौंसठ मुख्य हैं। दुर्गापूजाके समय इन सब योगिनियोंकी पूजा करनी होती है। प्रधाना चौंसठ योगिनियोंके नाम इस प्रकार देखे जाते हैं,—

१ नारायणी, २ गौरी, ३ शाकम्भरी, ४ भीमा, ५ रक्तदन्तिका, ६ भ्रामरी, ७ पार्वती, ८ दुर्गा, ९ कात्यायनी, १० महादेवी, ११ चण्डघण्टा, १२ महाविद्या, १३ महातपा, १४ सावित्री, १५ ब्रह्मवादिनी, १६ भद्रकाली, १७ विशालाक्षी, १८ रुद्राणी, १९ कृष्णपिङ्गला, २० अग्निज्वाला, २१ रौद्रमुखी, २२ कालरात्रि, २३ तपस्विनी, २४ मेघस्वना, २५ सहस्राक्षी, २६ विष्णुमाया, २७ जलोदरी, २८ महोदरी, २९ मुक्तकेशी, ३० घोररूपा, ३१ महाबला, ३२ श्रुति, ३३ स्मृति, ३४ धृति, ३५ तुष्टि, ३६ पुष्टि, ३७ मेधा, ३८ विद्या, ३९ लक्ष्मी, ४० सरस्वती, ४१ अपर्णा, ४२ अम्बिका, ४३ योगिनी, ४४ डाकिनी, ४५ शाकिनी, ४६ हारिणी, ४७ हाकिनी, ४८ लाकिनी, ४९ त्रिदशेश्वरी, ५० महाषष्ठी, ५१ सर्वमङ्गला, ५२ लज्जा, ५३ कौशिकी, ५४ ब्रह्माणी, ५५ माहेश्वरी, ५६ कौमारी, ५७ वैष्णवी, ५८ ऐन्द्री, ५९ नारसिंही, ६० वाराही, ६१ चामुण्डा, ६२ शिवदूती, ६३ विष्णुप्रिया, ६४ मातृका। ये चौंसठ योगिनी हैं। (बृहन्नन्दिकेश्वर-पुराणोक्त दुर्गापूजाप०)

कालिकापुराणमें चौंसठ योगनियोंका नाम अन्यरूप लिखे हैं,—ब्रह्माणी, चण्डिका, रौद्री, इन्द्राणी, कौमारी, वैष्णवी, दुर्गा, नारसिंही, कालिका, चामुण्डा, शिवदूती, वाराही, कौशिकी, माहेश्वरी, शाङ्करी, जयन्ती, सर्वमङ्गला, काली, कपालिनी, मेधा, शिवा, शाकम्भरी, भीमा, शान्ता, भ्रामरी, रुद्राणी, अम्बिका, क्षमा, धात्री स्वाहा, स्वधा, अपर्णा, महोदरी, घोररूपा, महाकाली, भद्रकाली, भयङ्करी, क्षेमङ्करी, उग्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डी, महामोहा, प्रियङ्करी, बलविकारिणी, बलप्रमथिनी, मनोन्मथिनी सर्वभूतदायिनी, उमा, तारा, महानिद्रा, विजया, जया, शैलपुत्री, चण्डघण्टा, स्कन्दमाता, कालरात्रि, चण्डिका, कुष्माण्डी, कात्यायनी और महागौरी।

(कालिकापु० ५२, ५३ अ०)

इन सब योगिनियोंकी भी पूजा करनी होती है। तिथिविशेषसे योगिनी एक एक ओर रहती हैं। इसका विषय इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है—

प्रतिपद् और नवमी तिथिमें योगिनी पूर्व ओर रहती है। उसका नाम ब्रह्माणी है। द्वितीया और दशमी तिथिमें उत्तरमें रहनेवाली योगनीका नाम माहेश्वरी है। तृतीया और एकादशीमें उत्तरमें, उसका नाम कौमारी; चतुर्थी और द्वादशीमें नैऋ तकोणमें, उसका नाम नारायणी; पञ्चमी और त्रयोदशीमें दक्षिणमें, नाम वाराही; षष्ठी और चतुर्दशीमें पश्चिममें, नाम इन्द्राणी; सप्तमी और पूर्णिमाको वायुकोणमें, नाम चामुण्डा; अष्टमी और अमावस्यामें ईशानकोणमें रहती है और उनका नाम महालक्ष्मी है। योगिनी सम्मुख कर यात्रा नहीं करनी चाहिये।

योगिनी प्रतिपद् और नवमीमें पूर्वमें, तृतीया और एकादशीमें अग्निकोणमें, पञ्चमी और त्रयोदशीमें दक्षिणमें, चतुर्थी और द्वादशीमें नैऋ त कोणमें, षष्ठी और चतुर्दशीमें पश्चिममें, सप्तमी और पूर्णिमामें वायुकोणमें, द्वितीया और दशमीमें उत्तरमें, अष्टमी और अमावस्यामें ईशानमें अवस्थान करती हैं। यात्रादि शुभकार्यमें योगिनीका

* Marco Polo's Travels, Vol. II, p. 130.

शेष ६ दण्ड परिवर्ज्जनीय है। दक्षिण और सम्मुखस्थ योगिनीमें यात्रा करनेसे वधबन्धनादि होता हैं तथा वाम और पृष्ठस्थ योगिनीमें गमन करनेसे सर्व्वार्थसिद्धि होती है।

किसी शुभकार्यमें गमन करनेसे योगिनीका शुभाशुभ देख कर यात्रा करना अवश्य कर्त्तव्य है।

भूतडामरमें योगिनी-साधनकी विधि है। यथाविधि योगिनीसाधन करनेसे अनेक प्रकारका ऐश्वर्य लाभ होता है। यह योगिनीसाधन सर्वार्थ सिद्धिप्रद है और अति गोपनीय तथा देवताओंके भी दुर्लभ है। यक्षाधिपति यह योगिनी साधन कर धनाधिप हुए हैं।

निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार योगिनीसाधन करना होता है। प्रातःकाल उठ कर प्रातःकृत्यादि समाप्त करके 'ह्रौं' इस मन्त्रसे आचमन करे। पीछे 'ओं सहस्रारं हुं फट्' इस मन्त्रसे दिग्बन्धन कर मूल मन्त्रसे प्राणायाम करना होगा। तदनन्तर 'ह्रौं' इस मन्त्रसे षड़ङ्गन्यास कर अष्टदल पद्म लिखे, इस पद्मके बीच योगिनीको प्राणप्रतिष्ठा करके पीठपूजापूर्वक देवीका ध्यान करे। ध्यान यथा—

"पूर्णचन्द्रनिभां देवीं विचित्राम्बरधारिणीं।
पीनोत्तुङ्गकुचां वामां सर्वज्ञानभयप्रदाम्॥"

उपरोक्त मन्त्रसे ध्यान कर मूल मन्त्रमें पाद्यादि द्वारा पूजा करनी होगी। यथाविधान पूजा करके 'ओं ह्रीं धा आगच्छ सुरसुन्दरी स्वाहा' यह मूलमन्त्र सहस्र वार जप करना होगा। प्रतिदिन ही सायं, सन्ध्या और मध्याह्न कालमें पूर्वोक्त रूपसे ध्यान कर जप करना होता है। इस तरह एक मास तक जप कर मासके अन्त दिनमें वृहती पूजा और वलि देनी होती है। उसके बाद एकाग्र चित्तसे देवीका जप करना होगा।

बादमें देवो साधकको दृढ़ भक्ति जान निशीथ समयमें उसके पास आ कर उपस्थित होंगी। तब साधक देवीको उपस्थित देख पाद्यादि दान करके पुष्पाञ्जलिहस्तसे अपना अभिलाष प्रकट करे। साधक देवीका माता, भगिनी या भार्याभावमें सम्बोधन करे। देवीको मातृसम्बोधन करने पर देवी वित्त, उत्तम द्रव्य, राजत्व तथा साधक जो प्राथना करे वहीं प्रदान कर उसका पुत्रवत् पालन करती हैं। भगिनी सम्बोधन करनेसे अनेक प्रकारके द्रव्य और दिव्यवस्त्र प्रदान कर दिव्यकन्या ला देती हैं। साधक इसी साधनाके वलसे भूत-भविष्यत् कह सकता है तथा जो प्राथना करता है देवी वही प्रतिदिन प्रदान करती रहती हैं।

यदि देवी साधककी भार्या हों तो साधक सर्वराजप्रधान तथा स्वर्गमें या पातालमें सभी जगह गमन कर सकता है। इस साधनसे देवी जो सब द्रव्य प्रदान करती हैं वह अवर्णनीय है। साधक इस तरह साधना कर कभी भी दूसरी स्त्रीसे सम्भोग न करे सिर्फ देवीके साथ ही रमण करे।

यह योगिनीसाधन पहले ब्रह्माने ठीक किया था। यह साधन करने पर नदीके किनारे जा कर स्नान और सन्ध्यादि सम्पन्न करे। पीछे पूर्ववत् सब काम कर चन्दन द्वारा मण्डल देखना होगा। इस मण्डलके बीच अपना मन्त्र लिख कर आवाहन करके मनोहराका ध्यान करे। ध्यान यथा,—

"कुरङ्गनेत्रां शरदिन्दुवक्त्रां विम्बाधरां चन्दनगन्धलिप्तां।
चीनांशुकां पीनकुचां मनोज्ञां श्यामां सदाकामदुघां विचित्रां॥"

इस प्रकार ध्यान कर यथाविधानसे देवीकी पूजा करनी होगी। पूजाके वाद 'ओं ह्रीं मनोहरे स्वाहा' यह मूलमन्त्र दश हजार वार जप करना होगा।

इस तरह एक मास तक जप करके मासके शेष दिन में निशीथ समय तक जप करना होगा। इस प्रकार जप करते रहनेसे मनोहरा देवी साधकको नितान्त अनुरक्त समझ उसे वर देनेके लिये उसके समीप उपस्थित होती हैं। उस समय साधक भक्तिपूर्वक पाद्यादि द्वारा उनकी अर्चना तथा 'ह्रीं' इस मन्त्रसे प्राणायाम और षड़ङ्गन्यास कर मांसवलि दे पूजा करे। तब मनोहरा साधक पर प्रसन्न हो कर उसको प्रार्थित वर प्रदान करतीं तथा प्रतिदिन सौ सुवर्ण दान करती है। प्रत्येक दिन साधक इन सब सुवर्णोंको खर्च कर डाले, नहीं तो देवी फिर उसे नहीं देंगी। इस साधनामें अन्य स्त्री-सहवास छोड़ देना होता है। इस साधनाके वलसे साधककी गति सर्वत्र अव्याहत रहती है।

अन्य तरहका योगिनी-साधन—

साधकको चाहिये, कि वह वटवृक्षके नीचे जा कर प्रातःकृत्यादि करके देवीका ध्यान करे। ध्यान यथा,—

"प्रचण्डवदनां गौरीं पक्वबिम्बधरां प्रियाम्।
रक्ताम्बरधरां वामा सर्वकामप्रदां शुभां ॥"

इस प्रकार ध्यान कर 'ह्रीं' इस मन्त्रसे प्राणायाम और षडङ्गन्यास कर मांसोपहारसे देवीकी पूजा करे। "ओं ह्रीं हूं रक्षकर्माणि आगच्छ स्वाहा" देवीका इस मूलमन्त्रसे प्रतिदिन दश हजार जप करना होगा। प्रतिदिन इसे उच्छिष्ट रक्त द्वारा अर्घ्य देना उचित है। ऐसा करनेसे देवी उसे अनुरक्त समझ उसके निकट उपस्थित होती हैं। पीछे साधकके अर्चना करनेसे देवी सपरिवार उसकी भार्या बन जाती है। इसके सिद्ध होने पर अपनी पत्नी छोड़ देना होता है।

कामेश्वरी योगिनी-साधन,—

इससे साधक पूर्ववत् सब काम कर भोजपत्रमें गोरोचना द्वारा देवीकी प्रतिमूर्त्ति अंकित कर यथाविधानसे देवीकी पूजा करे।

देवीका ध्यान—

"कामेश्वरीं शशाङ्कास्या चलत्खञ्जनलोचना।
सदा लोलगतिं कान्ता कुसुमास्त्रशिलीमुखीं ॥"

इस तरह ध्यान कर पूजा तथा 'ओं ह्रीं आगच्छ कामेश्वरि स्वाहा' यह मूलमन्त्र शय्या पर बैठ कर एक सहस्र जप करना होगा। प्रतिदिन ही इस प्रकार सहस्र जप करना होता है। इस तरह एक मास तक जपकर मासके शेष दिन घृत और मधु द्वारा दीया जला कर पूर्वोक्त रूपसे देवीकी पूजा करके जप करता रहे। देवी निशीथ कालमें साधकके समीप उपस्थित हो उसे अभिलषित वर देती हैं। देवी उसकी पतिकी भांति सेवा और विविध द्रव्य प्रदान करती हैं। इस प्रकार सारी रात उसके निकट रह कर भोरमें चली जाती हैं।

रतिसुन्दरी-योगिनीसाधन—

साधक पूर्वोक्त रूपसे प्रातःकृत्यादि कर भोजपत्र पर देवीकी प्रतिमूर्त्ति अङ्कित करके उसका ध्यान करे।

ध्यान यथा—

"सुवर्णवर्णा गौराङ्गी सर्वालङ्कारभूषितां।
नूपुराङ्गदहाराढ्यां रम्याञ्च पुष्करेक्षणाम् ॥"

इस तरह ध्यान कर 'ओं ह्रीं आगच्छ रतिसुन्दरि स्वाहा' इस मूलमन्त्रसे पूजा कर सहस्र बार मन्त्र जपना होता है। इस पूजामें जाती पुष्प बड़ा प्रशस्त है। बादमें प्रतिदिन इस प्रकार एक हजार करके यह मन्त्र जपना होता' है। एक मास इस प्रकार जप करके शेष दिनमें देवीकी पूजा कर जप करे। उस समय सुन्दरी साधकको दृढ़प्रतिज्ञ जान निशीथ समयमें उसके समीप आगमन करती हैं। साधकको चाहिये, कि वह उस समय उनकी अर्चना करे। इससे देवी सन्तुष्ट हो कर प्रीतिप्रद भोजनादि द्वारा साधकको सन्तुष्ट करतीं और सवेरे साधककी आज्ञानुसार चली जाती हैं। साधक निर्जन स्थानमें या प्रान्तरमें इस प्रकार सिद्ध हो कर अपनी भार्याको छोड़ वहां जाय। इसके विरुद्ध चलनेसे साधक विनष्ट हो जाता है।

पद्मिनी योगिनीसाधन—

साधकको अपने घरमें या शिवके समीप पूर्वकी भांति सब काम कर रक्तचन्दन द्वारा "ओं ह्रीं आगच्छ पद्मिनी स्वाहा' यह मूलमन्त्र भोजपत्र पर लिखना होगा। बादमें उसका ध्यान कर यथाविधानसे पूजा करे।

ध्यान यथा—

"पद्माननां श्यामवर्णां पीनोत्तुङ्गपयोधरां।
कोमलाङ्गीं स्मेरमुखीं रक्तोत्पलदलेक्षणां ॥"

इस ध्यानसे पूजा कर एक सहस्र मूल मन्त्र जपे। इस तरह हर रोज कर मासान्त पूर्णिमा तिथिमें यथाविधानसे पूजा करके भक्तिके साथ मन्त्र जपे। पीछे निशीथ समयमें साधकके निकट जा कर उसकी भार्या होती हैं तथा उसे भूषणादि द्वारा सन्तुष्ट करती हैं। पद्मिनी इस तरह हर रोज उसके प्रति पतिवत् व्यवहार कर उसे स्वर्ग ले जाती हैं। साधक अपनी भार्या छोड़ कर केवल पद्मिनीको ही भजना करे।

नटिनी योगिनीसाधन—

विश्वामित्रने यह योगिनी साधन किया था। साधक अशोक-वृक्षके पास जा कर मूलमन्त्रसे विधि-

पूर्वक सब काम करे। बादमें इस विद्याका ध्यान करना होगा। ध्यान यथा—

"त्रैलोक्यमोहिनीं गौरीं विचित्राम्बरधारिणीं।
विचित्रालङ्कृतां रम्यां नर्त्तकीवेशधारिणीम् ॥"

इस तरह ध्यान कर मूलमन्त्रसे पूजा करनी होगी। 'ओं ह्रीं नटिनि स्वाहा' देवीका यह मूलमन्त्र प्रतिदिन हजार बार जप करना होता है। इस भांति एक मास तक पूजा और जप कर शेष दिनमें बड़ी पूजा करना आवश्यक है। इस प्रकार जपका पूजा करते रहने पर आधो रातको देवी साधकको पहले थोड़ा भय दिखाती हैं। इससे साधक भीत न हो कर विधिमत जप करता रहे। पीछे देवी उसके पास आ कर उसे वरग्रहण करनेका हुक्म देती हैं। साधक देवीके इस वचनको सुन कर उन्हें माता भगिनी या भार्या कह कर सम्बोधन करे। साधक देवाका जिस तरह सम्बोधन करेगा, देवी भी उसी तरह काम कर साधकको सन्तुष्ट करती हैं। मातृसम्बोधन करनेसे देवी उसे पुत्रवत् पालन करतीं तथा प्रतिदिन सौ सुवर्ण और अनेक प्रकारके अभिलषित द्रव्य प्रदान करती हैं। भगिनी सम्बोधन करने पर देवकन्या, नागकन्या, या राजकन्या ला देती हैं। इससे साधक भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान सभी विषय जान सकता है। भार्या सम्बोधन करनेसे विपुल धन और सब अभिलाष पूरण करती हैं।

मैथुनप्रिया योगिनीसाधन—

भोजपत्र पर कुंकुम द्वारा देवीकी प्रतिमूर्त्ति अंकित कर अष्टदलपद्म अंकित करे। उसके बाद न्यासादि करके इस प्रतिमूर्त्तिकी प्राणप्रतिष्ठा कर ध्यान करे।

ध्यान यथा—

"शुद्धस्फटिकसङ्काशां नानारत्नविभूषितां।
मञ्जरिहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डिताम् ॥"

इस प्रकार ध्यान तथा प्रतिदिन एक सहस्र करके मूल मन्त्र जप करना होगा। मूलमन्त्र "ओं ह्रीं गजानुरागिनि मैथुनप्रिये स्वाहा" यह साधना कृष्णा प्रतिपदसे शुरू करनी होती है। इससे प्रतिदिन तीन सन्ध्यामें पूजा करनी चाहिये। पीछे पूर्णिमा तिथिमें गन्धादि द्वारा यथाविधानसे पूजा करे। इस तरह पूजा कर समूचा दिन और रात मूलमन्त्र जप करना होगा। देवी भोरमें साधकके पास जातीं और अभिलषित वर देतीं हैं। देव, दानव, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष या राक्षसकन्या ये सब साधकको चर्व्यचोष्यादि नाना प्रकार द्रव्य ला देती हैं। देवी साधकको प्रतिदिन सौ सुवर्ण दान करती हैं। देवी इस प्रकार वर दे कर अपने घर चली जाती हैं। इस सिद्धिके बलसे साधक चिरजीवी, निरोग, सर्वज्ञ, सुन्दर तथा सबोंके अधिपति होता है। (भूतडामर)

जो सब व्यक्ति सिद्ध हुए हैं उनके उपदेशसे यह सब साधन करने होते हैं। कारण गुरुके उपदेशके सिवा कोई कार्य ही सिद्ध नहीं होता। साधकके खुद यह सब काम करनेसे वह सिद्ध नहीं होता।

बृहद्भूतडामरमें इसके अलावा चौंसठ योगिनीसाधनका विषय उल्लिखित है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका विषय वर्णित नहीं हुआ। चौंसठ योगिनी सात करोड़ योगिनियोंके मध्य मुख्य है।

इन सब योगिनियोंका यथाविधान चक्रधारण कर साधना करनी होती है। इस चक्रधारणके सिवा सिद्ध नहीं होता।

"इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगिनीचक्रमुत्तमम्।
येन विना न सिध्यन्ति कलौ भूतेन्द्रनायिका ॥"

(बृहद्भूतडा०)

योगिनीतन्त्रमें भी इसके साधन आदिका विषय वर्णित है।

योगिनीचक्र (सं० क्ली०) १ तान्त्रिकोंका वह चक्र जिससे वे योगिनियोंका साधन करते हैं। (प्रभासख०) २ ज्योतिषीका वह चक्र जिससे वह इस बातका पता लगाता है, कि योगिनी किस दिशामें है।

योगिनीपुर (सं० क्ली०) विशालके अन्तर्गत एक नगर। यन्त्रराजके मतसे २८।३६ अक्षांशमें यह अवस्थित है।

योगिपत्नी (सं० स्त्री०) योगीकी स्त्री।

योगिपुर—गयाके अन्तर्गत फल्गु नदीके तट पर अवस्थित एक नगर। (भ० ब्रह्मख० ३६।४)

योगिभट्ट—पञ्चांगतत्त्व नामक ज्योतिःशास्त्रके प्रणेता।

योगिमातृ (सं० स्त्री०) योगीकी माता।

योगिया (हिं० पु०) १ संपूर्ण जातिका एक राग। जिसमें

गांधारके अतिरिक्त सब कोमल स्वर लगते हैं। इसके गानेका समय प्रातःकाल १ दंडसे ५ दंड तक है। यह करुण रसका राग है। कुछ लोग इसे भैरवरागकी रागिणी भी मानते हैं। २ योगिन् देखो।

योगिराज (सं० पु०) योगियोंमें श्रेष्ठ, बहुत बड़ा योगी।

योगिवीर (सं० त्रि०) महासिद्ध, सिद्ध योगी।

योगी (सं० पु०) योगिन् देखो।

योगी—बङ्गालमें रहनेवाली हिन्दूजातिकी एक श्रेणी। कुछ समय पहले सूती कपड़ा बुनना ही इनका प्रधान व्यवसाय था। आज भी हीनावस्थापन्न बहुतेरे उक्त वृत्ति द्वारा अपनी जीविका चला रहे हैं। अङ्गरेजी शिक्षाके प्रभावसे समधिक समुन्नत हो कर अभी बहुतोंने सूत बनाना छोड़ कर विभिन्न व्यवसाय अवलम्बन किया है। शिक्षाके तारतम्यानुसार अथवा अवस्थाके भेदसे बहुतोंने ही अङ्गरेज गवर्नमेंटके अधीनमें सबजजसे किरानी तथा खेतीका काम तक ले लिया है।

प्राचीनतम पुराण और स्मृति आदि शास्त्रोंमें इस जातिका उत्पत्तिविषयक कोई उल्लेख न रहने पर भी वर्त्तमान शिक्षित योगिसम्प्रदाय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके ८वें और ९वें अध्यायमें वर्णित रुद्र और रुद्रके पुत्रोंका उत्पत्ति-प्रसङ्ग ले कर तथा वृद्धशातातप और आगमसंहितोक्त ईश्वरोद्भूत योगपरायण ग्यारह रुद्रसे महायोगी और विन्दुनाथादिका जन्म स्वीकार कर नाथवंशीय योगियोंसे ही बंगालके योगियोंकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं। इन सब ग्रन्थोंमें लिखित विवरणोंका स्थूल मर्म नीचे उद्धृत हुआ—

ईश्वरकी क्रोधाग्निमें उनके कपालसे महान्, महात्मा, मतिमान्, भीषण, भयङ्कर, ऋतुध्वज, ऊर्द्ध्वकेश, रुचि, शुचि, पिङ्गलाक्ष, और कालाग्नि नामके ग्यारह रुद्र आविर्भूत हुए। इन योगपरायण रुद्रोंकी कला, कलावती, काष्ठा, कालिका, कलहप्रिया, कन्दली, भीषणा, रास्ना, प्रम्लोचा, भूषणा और शुकी नामकी ग्यारह पत्नियां थीं। रुद्र और उनकी पत्नियोंसे बहुसंख्यक पुत्र उत्पन्न हुए। ये सब योगधर्मपरायण और शिवपार्षद थे। इनमेंसे महायोगी और कलासे विन्दुनाथका जन्म हुआ। यही विन्दुनाथ नाथवंशीय योगियोंके आदिपुरुष हैं। कश्यपदुहिता कृष्णाके साथ विन्दुनाथका विवाह हुआ था। उनके पुत्र रुद्रकुलप्रकाशक आदिनाथसे यथाक्रम मीननाथ, गोरक्षनाथ, छायानाथ, सत्यनाथ आदि महात्मा आविर्भूत हुए थे।

विन्दुनाथ गृहस्थाश्रमी होने पर भी योगधर्मपरायण थे। इस कारण उनके वंशधरगण त्रिदण्डी और योगपट्टधारण, भस्मानुलेपन, ललाटमें अर्द्धचन्द्र धारण और रक्तवस्त्र पहन कर नाथ गुरुके उपदेशानुसारसे परमगुरुकी चिन्ता करते हैं। आगमसंहितामें एक जगह लिखा है "विन्दुनाथो मम कायस्तस्मात् योगी निरञ्जनः।" एवं "अनादिगोत्रश्च योगी उत्पत्तिः रुद्रकुलकैः तत्रैव, शिवगोत्रस्य काश्यपगोत्रे विवाहितम्।" इससे रुद्रकुलसम्भूत योगीकी पवित्रता तथा शिवगोत्रीयके साथ काश्यपगोत्रियोंका विवाहसम्बन्धस्थापन स्वीकृत होता है।

योगीसम्प्रदाय चन्द्रादित्य परमागम नामक एक आगमसंहिताका वचन दुहाई दे कर कहता है, कि सूर्यवंशीय सुधन्यराजकन्या सूर्यवतीने महादेवको पतिरूपमें पा कर उनके औरससे पुत्रोत्पादनकी आशासे कठोर तपस्या की थी। एक दिन प्यास लगने पर वह नर्मदाके किनारे जल पीने गई। जिस पद्मपत्रको फाड़ उन्होंने जल पीया था, तपस्यासे तृप्त महादेवने उनकी कामना पूरी करनेसे पहले ही उस पत्रमें वीर्य डाल रखा था। जलके साथ वीर्य पीनेसे सूर्यवती गर्भवती हो गईं। यथासमय एक सुपुत्र उत्पन्न हुआ और उस पुत्रका नाम योगनाथ रखा गया। स्वयं महादेवने गुरु और आचार्यरूपमें उपनयन आदि संस्कार कर उसे योग और आगमनिगमादि विविध शास्त्रोंकी शिक्षा दी। योगनाथ (विन्दुनाथ)ने तपस्यामें सिद्धिलाभ कर महादेवके आदेशानुसार गृहस्थाश्रम अवलम्बन किया और कश्यपकन्या सुरतिसे विवाह किया। योगनाथ और सुरतिसे आदिनाथ, मीननाथ, सत्यनाथ, सचेतननाथ, कपिलनाथ और नानकनाथ नामक छः पुत्र गृहवासी तथा गिरि, पुरी, भारती, शैल, नाग, सरस्वती, रामानन्द, श्यामानन्द, सुकुमार और अच्युत नाम दश पुत्र गृहस्थाश्रम

छोड़ कर दिग् दिगन्तरमें भ्रमण करते हैं। ये सब योगनाथके पुत्र थे इस लिये ये 'योगी' आख्यासे प्रसिद्ध हुए। इनमेंसे कोई त्रिशूल, कोई डमरू, कोई कमण्डलु, कोई तो रक्तचेली और कोई तो नागयज्ञोपवीत धारण करते थे। ये सभी योगशास्त्र, आगम, वेद और पुराणादिमें पारदर्शी थे। उन योगीपुत्रोंमेंसे किसी किसीने पीछे गृहस्थाश्रम अवलम्बन किया। वे विप्रकी तरह आगम आदि शास्त्रोंमें सुपण्डित थे तथा सर्वदा वेदकार्यमें रत रहते थे। इन पुत्रोंमेंसे महादेवप्रिय सदानन्द योगी पूर्वगृह परित्याग कर श्रीपुरमें जा कर रहने लगे। ये लोग पट्ट धारण करते थे।

दशाशौच योगी लोग अपनी अपनी उत्पत्तिके बारेमें वृद्ध शातातपीय नामक ग्रन्थकी दुहाई देते हैं। उससे पता चलता है, कि वाराणसीधामके समीप ब्राह्मण और वैश्य-कन्याएं सूत कातती थी। अवधूत नामक नाथ योगीके शिष्यसम्प्रदायके औरससे उक्त ब्राह्मण-कन्याओंके गर्भसे बहुसंख्यक पुत्र और कन्याएं उत्पन्न हुईं। ब्रह्माके आदेशसे नारद ऋषिने काशीधाममें आ कर अवधूतोंसे उक्त सन्तानसन्ततिओंका जातिनिर्णय प्रश्न पूछा। अन्तमें स्थिर हुआ, कि अवधूत और ब्राह्मण-कन्याकी सन्तान शिवगोत्रीय तथा वैश्यकन्याओंके गर्भसे उत्पन्न सन्तान नाथ नामक स्वतन्त्र श्रेणीबद्ध होगी। प्रथमोक्त सन्तान ब्राह्मणोंकी तरह दश दिन अशौच मानेगी तथा शेषोक्त वैश्यकी भांति अशौच ग्रहण करेंगी। इन दोनों श्रेणीको ही वेदमें अधिकार रहेगा। विवाहके समय वे मातृगणकी पूजा और पितृपुरुषोंका नान्दीश्राद्ध करेंगे। वे पवित्र योगपट्ट और यज्ञसूत्र धारण करेंगे। अवधूतने और भी कहा है, मुखाग्निदानके बाद शवदेहकी समाधि कर सकेंगे।

पूर्व-बङ्गालमें दशाशौच योगिगण अपनेको ब्राह्मणीके गर्भका मानते हैं और दश दिन तक अशौच मानने पर भी वे कभी भी ब्राह्मणोंकी तरह जनेऊ नहीं पहनते।

मास्य (मासाशौच) शाखाके योगी वृहत्योगिनीतन्त्रके वचनप्रमाणमे महादेवसे आठ सिद्धोंकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं। ये सिद्धगण ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर योग करते हैं। योगबलसे शक्तिसम्पन्न हो कर वे देवादिदेवका अप्रियभाजन हो गये हैं। शिव मायाबलसे आठ योगिनीकी सृष्टि कर सिद्धगणके प्रलोभनार्थ भेजते हैं। रमणीके कमनीयरूपमे मुग्ध हो कर सिद्धगण योगमार्गसे स्खलित होते हैं। उनके सहवाससे योगिनियोंके गर्भसे जो सन्तानसन्तति उत्पन्न होती है वह मास्ययोगीकी आदिपुरुष है।

एक और उपाख्यानसे जाना जाता है, कि काशीवासी एक अवधूत सन्न्यासीके दो पुत्र थे। उनकी ब्राह्मणपत्नीके गर्भसे उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्रसे दशाशौच योगी तथा वैश्यपत्नीगर्भजात कनिष्ठ पुत्रसे मास्योंकी उत्पत्ति हुई। सम्भवतः इन दो स्वतन्त्र थोकोंकी मृताशौच-पद्धतिका पार्थक्य निरीक्षण कर इस प्रकार एक किंवदन्ती रची गई है।

इस देशमें प्रचलित किंवदन्ती और योगीजातीय सामाजिक संस्थानकी आलोचना कर डा० बुकानन अनुमान करते हैं, कि जिस वंशमें राजा गोपीचन्द्र (गोविन्दचन्द्र) ने जन्म ग्रहण किया था उस वंशीके बङ्गेश्वरोंके राजत्वकालमें यह योगिसम्प्रदाय सम्भवतः उनके पुरोहित थे। ये पालवंशीय बौद्ध राजाओंके साथ पश्चिम भारतवर्षसे बङ्गदेशमें आ कर रहते हैं। योगी लोग पालवंशीय राजाओंको पाल उपाधिधारी नाथ राजा कह कर उल्लेख करते हैं। सम्भवतः उसी बौद्ध-प्रादुर्भावके समय बङ्गालमें योगिगुरुओंका प्राधान्य प्रतिष्ठित हुआ था। रङ्गपुरके योगी राजा माणिकचन्द्र और गोपीचन्द्रका गीत गाते हैं।

पौराणिक प्रसङ्ग और उपाख्यानमूलक किंवदन्ती छोड़ देने पर, वर्त्तमान ऐतिहासिककी आलोचनासे हम लोग जान सकते हैं, कि पूर्वतन सिद्धयोगी नाथवंशीयसे बङ्गालके योगी समुद्भुत होने पर भी किसी विशेष कारणसे अथवा राजविद्वेषवशसे इस धर्माश्रमाचारी जातिविशेषका अधःपतन हुआ था।

बौद्धप्रभावके समयमें भी योगि-सम्प्रदायकी प्रधानता विलुप्त नहीं हुई। बौद्धमतानुसार मत्स्येन्द्रनाथादि बौद्ध तथा हिन्दूमतानुसार वे शैव नामसे ही प्रसिद्ध हैं।

जो कुछ हो, बङ्गालमें पालवंशीय बौद्ध राजाओंके समय योगियोंकी प्रतिपत्ति विस्तृत होने पर भी उन्होंने

बौद्ध-राजाओंका था। राजा गोपीचन्द्र, माणिकचन्द्र आदि राजाओंके प्रसङ्गमें योगि-गुरुसे ही दीक्षाप्राप्तिका प्रमाण पाया जाता है। बौद्धप्रधानताके समय शायद बङ्गवासी योगियोंकी आचारहीनताका सूत्रपात हुआ अथवा बौद्धप्रधानताका ह्रास और हिन्दूधर्मका पुनरभ्युदय होनेसे बौद्धविद्वेषी हिन्दुओं द्वारा ब्रह्मण्यधर्मकी प्रतिष्ठाके लिये ब्राह्मण-पुरोहितका सम्मान बढ़ा तथा नाथगुरुओंका सम्भ्रम विनष्ट हुआ। इस सम्बन्धमें गोपालभट्ट विरचित 'वल्लालचरितम्' नामक आधुनिक ग्रन्थमें एक राजविरोधकी कथा इस प्रकार लिखी है ;—

"सेनवंशीय राजा वल्लालसेनने जिस समय वल्लभानन्दप्रमुख सुवर्ण-वणिक् जातिकी अस्पृश्यता प्रतिपादन की, उस समय वङ्गीय ब्राह्मण और योगियोंके मध्य विवाद खड़ा हो गया। एक दिन शिवचतुर्दशीकी रातको राजपुरोहित वलदेवभट्ट राजाकी काम्यपूजा देनेके लिये जटेश्वर महादेवके मन्दिरमें गये। मन्दिरके योगियोंने राजपूजोपहारसे लुब्ध हो वलदेवसे वे सब उपभोग्य द्रव्य लेनेकी कोशिश की। इसी सूत्रसे दोनोंमें अनवन हो गई। पीछे पुरोहितके मुखसे लोभकी बात सुन कर राजा वल्लालने तमाम ढिंढोरा पिटवा दिया कि "आजसे जो योगीके साथ एक आसन पर बैठेंगे, उनके दानादि ग्रहण, यजन-याजनादि करेंगे अथवा केवल सहायता ही पहुंचायेंगे, वे भी पतित होंगे, अतएव इनका योगपट्ट और यज्ञसूत्रादि धारण व्यर्थ होगा।' इसके बाद उन्होंने योगियोंकी वृत्ति (शिवोत्तर) आदि छीन ली" इत्यादि। यह आदेश प्रचारित होनेके बाद वङ्गवासी योगियोंमेंसे कुछ वङ्गाल छोड़ कर भाग गया और कुछ योगपट्टादि तथा जातीय धर्मवृत्तिका परित्याग कर छिपके तरह तरहका व्यवसाय करने लगा। राजाके आदेशसे हिन्दूसमाजमें हीन समझे जानेके बाद अधिकांश योगी कपड़ा बुनने लगे।

(वल्लालचरितउ०ख० ११-३२१ श्लो०)

इसी समयसे तपःप्रभव नाथवंशीय योगी जो पहले पालराजवंशके समय वङ्गालमें विशेष प्रतिष्ठाभाजन थे तथा समाजमें योगि-गुरु कह कर जिनका आदर होता था, अन्नके अभावसे नाना वृत्तिका अवलम्बन कर नीच समझे जाने लगे।

राजा वल्लालसेनके समयसे वङ्गालका योगि-सम्प्रदाय समाजमें हीन समझा जाने लगा, फिर भी वे लोग ब्राह्मणपण्डितोंके टोलमें बे-रोकटोक पढ़ने जाया करते थे। किन्तु इस पर भी वे लोग सामाजिक अवस्थामें कोई विशेष परिवर्त्तन न कर सके। अंगरेजी अमलमें अंगरेजी शिक्षागुणसे इन्होंने बहुत कुछ उन्नति की है।

पूर्व-वङ्गमें योगिजातिमात्र ही नोआखाली जिलेके दलालबाजारके राजवंशका बड़ा आदर करती है तथा उन्हींको स्वजातिका मुखपात्र समझती है। १८वीं सदीके मध्यभागमें योगिवंशीय व्रजवल्लभराय मेघना नदीतीरवर्त्ती अंगरेज वणिकोंके दलाल तथा उनके छोटे भाई राधावल्लभराय वहांके याचनदार थे। व्रजवल्लभके पुत्रने वाफता कपड़ेका कारबार चला कर १७६५ ई०में कम्पनी बहादुरसे 'राजा'की उपाधि तथा निष्कर (लाखराज) भूसम्पत्ति पाई। आज भी उनके वंशधर उस सम्पत्तिका भोग करते हैं।

आजसे पचास वर्ष हुए, प्रेसिडेन्सी विभागके अन्तर्गत सभी जिलोंके योगियोंने यज्ञोपवीत धारण कर लिया। इस सूत्रसे ब्राह्मणोंके साथ उनका विवाद खड़ा हुआ। यहां तक कि, फौजदारी अदालतमें भी कई बार यह मामला चला।

वर्त्तमान योगियोंके मध्य प्रधानतः नाथ, देवनाथ, अधिकारी, विश्वास, दलाल, गोस्वामी, याचन्दर, महन्त, मजुमदार, नाथजी, पण्डित, राय, सरकार, चौधरी, भौमिक, शर्मा, देवशर्मा, भट्टाचार्य, महात्मा, मण्डल, मल्लिक, वक्सी, चक्रवर्त्ती, स्थानपति आदि उपाधि प्रचलित देखी जाती है। अलावा इनके मध्य श्रेणी और थाक भी हैं। राढ़ी, वारेन्द्र, वैदिक, वङ्गज, सेलेन्द, बोलघरे आदि नामोंसे इनके मध्य विभिन्न थाक संगठित हुआ है। अवलम्बित व्यवसायी गृही योगियोंके मध्य हलुआ, कम्बले, मणिहारी, रङ्गरेज, गृहस्थ (इनके मध्य फिर धलाई, मण्डल, झानवार, भगनभाजन और पावन नामक चार विभाग है); धर्माश्रमाचारियोंके मध्य ब्राह्मण, संन्यासी (कनफट), दण्डी, धर्मघरे, भाट,

कणिपा, डूरीहार, अघोरपन्थी, भर्तृहरि और शाङ्गहर नामक कुछ श्रेणीविभाग हैं। किसी किसी जिलेमें कुलीन; मध्यस्थ और बङ्गाल नामक तीन स्वतन्त्र सामाजिक मर्यादागत श्रेणीविभाग देखे जाते हैं। किसी किसी प्रान्तमें रघु, माधव, निमाई और यागमल ये चार कुलीन समझे जाते है। इनके मध्य काश्यप, शिव, आदिनाथ, आलऋषि (आलम्यान?), अनादि, वटुक, वीरभैरव, गोरक्ष, मत्स्येन्द्र, मीन और सत्य गोत्र प्रचलित है। ये लोग योगी, यूगी, वा नाथ कहलाते हैं।

वर्त्तमान समयमें कोई यूगी और युङ्गीको एक जातिके मानते हैं। उनके मतानुसार यूगी और युङ्गी एक पर्यायवाचक हैं। अवस्थाके तारतम्यानुसार तथा जातीय निकृष्ट व्यवसायके कारण युङ्गीगण यूगी हो कर भी समाजमें नीच हो गये हैं। किन्तु हम इसे स्वीकार नहीं करते। यूगी वा योगी दोनों एक हैं, किन्तु युङ्गीगण एक निकृष्ट वर्णसङ्कर जातिमात्र है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें युङ्गी जातिकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—

"गङ्गापुत्रस्य कन्यायां वीर्य्येण वेशधारिणः।
बभूव वेशधारी च पुत्रो युङ्गी प्रकीर्त्तितः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

अर्थात् वेशधारीके औरससे गङ्गापुत्रकी कन्याके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ वही युङ्गी कहलाया। ये युङ्गीगण अत्यन्त नीच जातिके हैं। इनके मध्य विधवा विवाह चलता है, कितने तो हल चलाते, पालकी ढोते और चूनेका काम करते हैं।

बंगालके विभिन्न जिलावासी योगियोंके मध्य आचार व्यवहारादिमें अनेक पृथकता देखी जाती है। दक्षिण विक्रमपुर, त्रिपुरा और नोआखाली जिलेमें प्रधानतः मास्य (मासाशौच) श्रेणीका तथा उत्तर विक्रमपुर, प्रेसिडेन्सी और बर्द्धमान विभागमें दशाशौच योगियोंका वास है। ये लोग आपसमें आदान प्रदान करते और एक दूसरेके साथ खाते पीते हैं।

जबसे ये लोग कपड़ा बिनना छोड़ कर खेती बारी करने लगे हैं, तबसे समाजमें नीच समझे जाते हैं। इसी प्रकार त्रिपुराके चूना जलानेवाले, मुर्शिदाबादके खेतीबारी करनेवाले योगी, सूत रंगानेवाले रंगरेज योगी, कम्बल बनानेवाले कम्बुलेयोगी और गलेका अलङ्कार तथा खिलौना बनानेवाले मणिहारी योगी समाजमें नीचे गिने जाते हैं।

बङ्गालके पश्चिम सीमान्तवासी धर्मघरे योगी धर्मराज, शीतलादेवी और मनसादेवीकी पूजा करते हैं तथा कभी कभी देवीमूर्त्तिको हाथमें लिये दरवाजे दरवाजे गीत गाते हुए भीख मांगते हैं, इसी कारण अन्यान्य योगियोंके मध्य तांबेकी अंगूठी वा कंकन पहननेके सिवा और किसी प्रकारका संस्कार नहीं था; किन्तु अभी बहुतेरे उच्च शिक्षा पा कर पूर्वतन योगियोंको प्रथाके अनुसार सामवेदीय संस्कारतन्त्रके पक्षपाती हो भवदेवभट्ट विरचित सामवेदीय संस्कारपद्धतिका अनुसरण करते हैं। ये लोग होलमें जा कर पढ़ सकते पर ब्राह्मणोंके साथ एक आसन पर नहीं बैठ सकते।

इन लोगोंके मध्य एकमात्र अनादि वा शिवगोत्र तथा शिव, शम्भु, सरोज, भूधर, शङ्कर और आप्नुवत् आदि प्रवर हैं। सगोत्रमें जो विवाह होता है, सो ये लोग कहते हैं, कि इस समय वर शिवगोत्रीय हो रहता है, केवल कन्या काश्यपगोत्रकी हो जाती है। सभी जगह यह नियम लागू नहीं है। कहीं कहीं अन्यान्य गोत्रोंके साथ आदान प्रदान होता है। मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, वीरभैरव आदि गोत्र तथा कुलीन, मध्यल्य और बङ्गाल अथवा ब्राह्मण-योगी, दण्डी योगी आदि जो सब श्रेणीविभाग देखे जाते हैं, उनके मध्य गोत्र वा वंशमर्यादानुसार विवाह करनेकी पद्धति प्रचलित है। उच्च श्रेणीके योगी जब नीच घरमें विवाह करते तब वे हीन समझे जाते हैं।

योगी लोग सामवेदीय पद्धतिका अनुसरण कर विवाहादि करते हैं। विवाहके समय उसीका कोई आत्मीय पुरोहिताई करता है। किन्तु नोआखाली, त्रिपुरा और चट्टग्राम जिलेमें स्वतन्त्र ब्राह्मण पुरोहित हैं। दूसरी जगह इनके स्वतन्त्र पुरोहित नहीं होते। ये लोग जरूरत पड़ने पर द्वितीय विवाह कर सकते हैं; पर विधवा विवाह नहीं करते।

विवाहादि संस्कार और देवपूजादि सभी धर्मकर्म इन्हीं

पुरोहितोंसे होता है। विक्रमपुर प्रान्तमें इन पुरोहितोंके ऊपर एक एक अधिकारी हैं। वे सभी कार्मोंमें पुरोहितोंके ऊपर कर्त्तृत्व करते हैं। यहां तक कि, ब्राह्मण योगी और संन्यासी योगियोंको भी वे धर्मगुरुरूपमे मन्त्रदान करते हैं। दुःखका विषय है, कि उक्त दोनों श्रेणीकी योगी किसी हालतसे अधिकारीके निकट अपनी अधीनता स्वीकार नहीं करते, क्योंकि अधिकारी एक निर्वाचित व्यक्तिमात्र है। पहले इस अधिकारीका कार्य वंशपरम्परानुगत था, पीछे उपयुक्त वंशधरके अभावमें आज कल निर्वाचनप्रथा जारी हो गई है। अधिकारियोंके भी स्वतन्त्र पुरोहित रहते हैं।

त्रिपुरा और नोआखालीके योगीब्राह्मण यज्ञोपवीत पहनते हैं। ढाका जिलावासी बहुतसे योगियोंके आज भी उपवीत नहीं हैं। कलकत्ता और उसके आसपास स्थानोंमें उपवीती और निरुपवीती दोनों प्रकारके योगी देखे जाते हैं। १२८४-८५ बङ्गाब्दमें बङ्गालके योगियोंने यज्ञोपवीत पहनना आरम्भ किया। यह ले कर ब्राह्मणोंके साथ इनका मुकदमा चला। पीछे आन्दूल, हरिपुर आदि स्थानोंमें सभा करके यही निश्चय हुआ, कि कलकत्ता और उसके आसपासके योगी उपनयन ग्रहण कर सकते हैं।

योगियोंके मध्य शिवरात्रि ही प्रधान पर्व है। किन्तु जन्माष्टमी आदि प्रधान प्रधान पूजापर्वका भी ये लोग पालन करते हैं। इसके सिवा ग्राम्यदेवता सिद्धेश्वरीकी पूजा भी ये लोग बड़ी धूमधामसे करते हैं। वृन्दावन, मथुरा, गोकुल, काशी, गया, सीताकुण्ड, चट्टग्राम, नेपाल आदि तीर्थ स्थानोंमें ये लोग जाते आते हैं। यज्ञडुमर, तुलसी, वट, पीपल और तमालवृक्ष पर इनकी विशेष भक्ति है।

मैमनसिंहके योगियोंके मध्य जो स्वश्रेणीगत ब्राह्मण हैं वे "ब्रह्मशर्मा" कहलाते हैं। जनसाधारण उन्हें 'महात्मा' कह कर पुकारते हैं। ये ब्राह्मण अपनेको श्रोत्रिय ब्राह्मणके औरससे योगी कन्याके गर्भजात बतलाते हैं।

अधिकांश योगी शिवके उपासक हैं। कृष्णकी उपासना करनेवाले वैष्णव योगियोंकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। कोई कोई शक्तिकी भी उपासना करता है।

नित्यानन्द और अद्वैतवंशीय गोसांई योगियोंको वैष्णवधर्ममें दीक्षा देते हैं। योगी ब्राह्मणोंमेंसे कितने अङ्गरेजी नहीं पढ़ते। जो संस्कृत लिखते पढ़ते हैं, वे पाठकका कार्य करते हैं। इनमेंसे कुछ योगी सुन्दरवनके कपिलमुनि-तीर्थके महन्त हैं। फाल्गुनमासके वारुणी उत्सवके समय ये लोग जगह जगह पर पुरोहिताई किया करते हैं।

शवदेहकी समाधिके समय प्रायः सभी योगी एक-ही प्रथाका अनुसरण करते हैं। सात कलसी जलसे शवदेहको स्नान करा कर नया वस्त्र पहनाते हैं। वैष्णव होनेसे गलेमें तुलसीमाला और हाथमें जपमाला तथा शैव होनेसे रुद्राक्षमाला दी जाती है। कहीं कहीं उसके बायें कंधे पर कौड़ीसे भरी हुई थैली रख कर योगीकी समाधिकी तरह बना कर ८ फुट गहरी जमीनमें गाड़ देते हैं। मिट्टीमें गाड़नेके पहले शवके मुंहमें आग दी जाती है। समाधिकार्य शेष होनेके बाद मृतके निकट उसके आत्मीय तिल, मधु, तुलसी, कदली, चीनी, घृत आदिको पक्व अन्नमें मिला कर पिण्ड बनाते और प्रेतके उद्देशसे दान करते हैं। स्त्रियोंकी भी समाधिप्रथा पुरुष-सी है। आज कलके योगी शवको जलाते हैं। वे लोग दूसरे दूसरे हिन्दूकी तरह शवको नहवा कर पिण्डदान करते हैं। उस पिण्डका तण्डुल अग्नि द्वारा पाक किया जाता है। पिण्डदानके बाद यथारीति मुखाग्नि दे कर शवदाह करते हैं। दशवें दिनमें क्षौर-कर्म करके दश पिण्ड देते हैं। ग्यारवें दिन श्राद्धक्रिया सम्पन्न होती है।

योगिन् शब्दमें अपरापर विवरण देखो।

उत्तर पश्चिम भारतके नाना स्थानोंमें कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक बहर विभागमें, नेपाल राज्यमें तथा उड़ीसा देशमें नाना श्रेणीके योगियोंका वास है। उनका आचार-व्यवहार बङ्गवासी योगियोंसे कहीं अच्छा है।

योगीन्द्र (सं० पु०) योगिनामिन्द्रः। योगीश्वर, बहुत बड़ा योगी।

योगीकुण्ड—हिमालयके एक तीर्थका नाम।

योगीनाथ (सं० पु०) महादेव, शंकर।

योगीश (सं० पु०) योगिनामीशः। १ योगीश्वर। २ बहुत बड़ा योगी। ३ याज्ञवल्क्यका एक नाम। इन्हें योगी याज्ञवल्क्य भी कहते हैं। ४ ललिताक्रमदीपिकाके रचयिता।

योगीश्वर (सं० पु०) योगिनामीश्वरः। १ योगियोंमें श्रेष्ठ। २ याज्ञवल्क्यमुनि। ३ दानवाक्यसमुच्चयके प्रणेता। ४ महादेव।

योगीश्वरी (सं० स्त्री०) योगिनामीश्वरी। दुर्गा।

योगेन्द्र (सं० पु०) योगियोंमें श्रेष्ठ, महायोगी।

योगेन्द्ररस—रसौषधविशेष। इसके बनानेका तरीका—विशुद्ध रससिंदुर एक तोला तथा सोना, कांती लोहा, अभ्रक, मोती और वंग प्रत्येक आध तोला; इन सब द्रव्योंको घृतकुमारीके रसमें भिगो कर तीन दिन तक धानकी ढेरमें रख छोड़े। पीछे २ रत्तीकी गोली बना त्रिफलाके पानी अथवा चीनीके साथ अवस्थानुसार सेवन करावे। यह योगवाहिरस वातपित्तसे उत्पन्न सब प्रकारके रोगोंमें उपयोगी है। इससे प्रमेह, बहुमूत्र, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर आदि गुदामय, उन्माद, मूर्च्छा, यक्ष्मा, पक्षाघात आदि सदाके लिये जाता रहता है। दुर्बल रोगीको रातमें गायका दूध खाना चाहिये।

योगेश (सं० पु०) योगस्य ईशः। १ बहुत बड़ा योगी। २ याज्ञवल्क्य मुनि। (हेम)

योगेश्वर (सं० पु०) योगीनामीश्वरः। १ श्रीकृष्ण। (भाग० ११ अ०) २ शिव। ३ देवहोत्रके एक पुत्रका नाम। ४ बहुत बड़ा योगी, योगीश्वर। पुराणोंमें नौ बहुत बड़े योगी अथवा योगेश्वर माने गये हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं,—कवि (शुक्राचार्य), हरि (नारायण ऋषि), अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल (दुर्मिल), चमस और करभाजन। ५ एक तीर्थका नाम।

योगेश्वर—१ एक कवि। २ खेचरचन्द्रिका और योगेश्वरपद्धतिके रचयिता। ३ ब्रह्मबोधिनीके प्रणेता।

योगेश्वर—हिमालयके एक शिव।

योगेश्वरचक्र (सं० क्ली०) चक्रभेद। (प्राणतोषिणी)

योगेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

योगेश्वरत्व (सं० क्ली०) योगेश्वरस्य भावः त्व। योगेश्वरका भाव या धर्म, योगैश्वर्य।

योगेश्वरी (सं० स्त्री०) योगिनामीश्वरी। १ दुर्गा। २ वन्ध्याकर्कोटकी, बांझ ककोड़ा। ३ नागदमनी, नागदौना। ४ शक्तिमूर्त्तिभेद। (सह्याद्रिख० ३३।१२७)

योगेष्ट (सं० क्ली०) योगे सन्धिच्छिद्रादिपूरणे इष्ट। सीसक, सीसा।

योगैश्वर्य (सं० क्ली०) योगस्य ऐश्वर्य। योगका ऐश्वर्य। योग सिद्ध होने पर जो ऐश्वर्य प्राप्त होता है उसका नाम योगैश्वर, अणिमादि ऐश्वर्य है।

योगोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

योग्य (सं० त्रि०) योज्यते इति युज्-णिच्-ण्यत्, वा योगाय प्रभवति योग (योगाद्यच। पा ५।१।१०३) इति यत्। १ प्रवीण, चालाक, होशियार। २ योगार्ह, किसी काममें लगाये जानेके उपयुक्त। ३ शील, गुण, शक्ति, विद्या आदिसे युक्त, श्रेष्ठ। ४ युक्ति भिड़ानेवाला, उपाय लगानेवाला। ५ उचित, मुनासिब। ६ जोतने लायक। ७ जोड़ने लायक। ८ दर्शनीय, सुन्दर। ९ आदरणीय, माननीय। (पु०) १० पुष्या नक्षत्र। ११ ऋद्धि नामक आषधि। १२ वृद्धि नामक ओषधि। १३ रथ, गाड़ी। १४ चन्दन।

योग्यता (सं० स्त्री०) योगस्य भावः योग्य-तल् टाप्। १ क्षमता, लायकी। २ सामर्थ्य। ३ बड़ाई। ४ बुद्धिमानी, लियाकत। ५ अनुकूलता, मुनासिबत। ६ गुण। ७ इज्जत। ८ औकात। ९ स्वाभाविक चुनाव। १० उपयुक्तता। ११ शाब्दबोधकारणविशेष। योग्यता रहने पर शाब्दबोध होता है; योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति-युक्त पद वाक्य कहलाता है। जहां पदार्थके परस्पर सम्बन्धमें किसी तरहका झंझट नहीं रहता वहां योग्यता होती है। 'वह्निना सिञ्चति' आगसे सेक करता है यहां पदार्थका परस्पर संबंध नहीं होता इसलिये यह वाक्य योग्यताके अभावसे ठीक वाक्य न हुआ।

(साहित्यदर्पण ११६)

नैयायिकोंके मतसे किसी पदार्थमें उसी पदार्थकी वत्ताका नाम योग्यता है अर्थात् एक पदार्थके साथ दूसरे पदार्थका जो सम्बन्ध है वही योग्यता कहलाता है। पुराने नैयायिक योग्यताको शाब्दबोधका कारण बतलाते हैं, पर नये नैयायिक इसको नहीं मानते।

योग्यत्व (सं० क्ली०) योगस्य भावः त्व। १ योगका भाव या धर्म, योग्यता। २ लायक या काबिल होनेका भाव, प्रवीणता।

योग्या (सं० स्त्री०) योग्य-टाप्। १ कोई काम करनेका अभ्यास, मश्क। २ सुश्रुतके अनुसार शस्त्र-क्रिया या चीर-फाड़ करनेका अभ्यास।

सुश्रुतमें लिखा है, कि शस्त्रक्रियादि या चीर-फाड़मे पारदर्शिता पानेके लिये जो उपाय किया जाता है उसको योग्या कहते हैं। जो काम किया जायगा उसमें उपयुक्त होनेका नाम ही योग्या है। ३ अर्कयोषित्। ४ युवती, जवान स्त्री।

योग्यानुपलब्धि (सं० स्त्री०) योग्यस्य अनुपलब्धिः। अभाव-स्थानसाधनविशेष।

योजक (सं० त्रि०) योजयतीति युज्-णिच्-ण्वुल्। १ संयोगकारक, मिलानेवाला। (पु० स्त्री०) २ पृथ्वीका वह पतला भाग जो दो बड़े विभागोंको मिलाता हो, भू-डमरूमध्य।

योजन (सं० क्ली०) युज्यते मनो यस्मिन्निति युज् ल्युट्। १ परमात्मा। २ योग। ३ एकत्रकरण, एकमें मिलानेकी क्रिया या भाव। ४ चतुःक्रोशी, चार कोस या १६ हजार हाथका एक योजन। लीलावतीके मतानुसार ३२ हजार हाथका एक योजन होता है।

"यवोदरैरंगुलमष्टसंख्यैर्हस्तोऽङ्गुलैः षड्गुणितैश्चतुर्भिः।
हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीह दण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषां॥
स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन तथा कराणां दशकेन वंशः॥"
(लीलावती)

जैनियोंके मतसे एक योजन १० हजार कोसका होता है।

योजनगन्धा (सं० स्त्री०) योजनं गन्धोऽस्याः योजनात् गन्धोऽस्या इति वा। १ कस्तूरी। २ सीता। ३ व्यासकी माता और शान्तनुकी भार्या सत्यवतीका एक नाम। (देवीभाग० २।१।१६) मत्स्यगन्धा देखो।

योजनगन्धिका (सं० स्त्री०) योजनगन्धा स्वार्थे क, टाप् इत्वञ्च। योजनगन्धा।

योजनपर्णी (सं० स्त्री०) योजनाय सन्धिस्थानादेर्मेलनार्थं पर्णं यस्याः। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

योजनवल्लिका (सं० स्त्री०) योजनवल्ली, स्वार्थे कन्-टाप्। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

योजनवल्ली (सं० स्त्री०) योजनगामिनी अतिदीर्घा वल्ली यस्याः। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

योजना (सं० स्त्री०) युज-णिच्-अण्-टाप्। १ योगकारणा, किसी काममें लगानेकी क्रिया या भाव। २ जोड़, मिलान। ३ प्रयोग, इस्तेमाल। ४ स्थिति, स्थिरता। ५ घटना। ६ बनावट, रचना। ७ व्यवस्था, आयोजन।

योजनीय (सं० त्रि०) युज अनीयर्। १ योजनयोग्य, जो मिलाने अथवा योजना करनेकेके लायक हो। २ जिसे मिलाना या जोड़ना हो।

योजन्य (सं० त्रि०) १ योजनीय, योजन-सम्बन्धी। २ योजन व्यवधान।

योजयितव्य (सं० त्रि०) युज-णिच्-तव्य। योजनके उपयुक्त।

योजित (सं० त्रि०) युज-णिच्-क्त। १ जिसकी योजना की गई हो। २ मेलित, मिलाया हुआ। ३ नियमित, नियमसे बद्ध किया हुआ। ४ रचित, रचा हुआ, बनाया हुआ।

योजितृ (सं० त्रि०) युज णिच्-तृच्। योजक, मिलानेवाला।

योज्य (सं० त्रि०) १ संयोगयोग्य, जोड़नेके लायक। २ व्यवहार करनेके योग्य। (पु०) ३ वे संख्याएं जो जोड़ी जाती हैं, जोड़ी जानेवाली संख्याएं।

योटक (सं० पु०) योटन, मेलन। विवाहके समय वर और कन्याकी कोष्ठी देख कर विवाहमें शुभाशुभ स्थिर करनेका नाम योटक है। विवाहके पहले वर और कन्याकी जन्मराशि, जन्म-नक्षत्र और राशि-अधिपति ग्रहोंसे जो शुभाशुभ विचार किया जाता है उसीको योटक कहते हैं।

यह योटक आठ भागोंमें विभक्त है, यथा—वर्णकूट, वश्यकूट, ताराकूट, योनिकूट, ग्रहमैत्रीकूट, गणमैत्रीकूट, राशिकूट और त्रिनाड़ीकूट। (मुहूर्त्तचिन्ता०)

वर और कन्यामें वर्णकी एकता वा मित्रता होनेसे एक गुणफल, उसके साथ वश्यतायोगमें द्विगुण फल, ताराशुद्धियोगमें त्रिगुण फल, इस तरह आठों प्रकारमें

शुभ होनेसे दम्पतीका पूर्ण शुभफल होता है। दोषके संबंधमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

वर्णकूट—पहले मेषादि बारह राशिका वर्ण स्थिर करना होगा। पीछे वरकी राशिकी अपेक्षा यदि कन्या श्रेष्ठ वर्णा हो, तो उस कन्याका कभी भी विवाह नहीं करना चाहिये, करनेसे स्वामीका अशुभ होता है। शूद्रवर्णकी अपेक्षा वैश्य, वैश्यकी अपेक्षा क्षत्रिय और क्षत्रियकी अपेक्षा ब्राह्मण वर्ण श्रेष्ठ है। (दीपिका)

वश्यकूट—यदि वरकी राशि मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ और धनु इनमेंसे किसी एकका पूर्वार्द्ध हो तथा मेष, वृष, कर्कट, बिछा, मकर, मीन और धनु इनमेंसे जिस किसीका शेषार्द्ध कन्याकी राशि हो, तो वह कन्या वरकी वशीभूत होती है और यदि वरकी सिंहराशि तथा कन्याकी मेष, वृष, मिथुन, कन्या, तुला, धनु, कुम्भ और मकरकी पूर्वार्द्ध इसकी अन्य राशि हो, तो वह कन्या उक्त वरकी वशीभूत होती है। किन्तु कन्याकी राशि कर्कट, बिछा, मीन और मकरकी शेषार्द्ध इसकी अन्य राशि होनेसे वह कन्या सिंहराशि वरको वशीभूता नहीं होती। मिथुन, तुला और कुम्भ इनमेंसे कोई एक यदि कन्याकी राशि तथा मेष, वृष, कर्कटमेंसे कोई एक वरकी राशि हो, तो वह पति पत्नीको वशीभूत नहीं कर सकता, बल्कि स्वयं ही पत्नीके वशीभूत हो जाता है। कन्याकी सिंहराशि होनेसे वह कन्या पतिको वशीभूत करती है।

वश्यावश्य इस प्रकार स्थिर करना होता है,—सिंहराशिको छोड़ कर चतुष्पादराशिकी वशीभूत जलजराशि द्विपादराशिकी भक्ष्य तथा सरीसृप और कीटसंज्ञक राशि द्विपाद राशिकी वशीभूत होती है।

विवाहमें वरकी राशिके साथ कन्याकी वश्यताका विचार करना होता है। वरकी राशि कन्याकी राशिकी वश्य होनेसे वह पुरुष स्त्रीपरायण तथा कन्याकी राशि वरकी राशिकी वश्य होनेसे वह कन्या पतिकी सम्पूण वश्या और पतिपरायणा होती है। कन्याकी राशि वरकी राशिकी वशीभूत नहीं होनेसे उस विवाहमें नाना प्रकारके अशुभ और कलहादि होते हैं।

ताराकूट—वरके जन्मनक्षत्रसे कन्याका जन्मनक्षत्र यदि गणनामें १, २, ४, ६, ८, वा ९ इनमेंसे कोई एक हो तो वरका ताराशुद्ध होता है। ९से अधिक होने पर ९ घटा करके उक्त नियमसे ताराशुद्धि देखनी होती है। वर और कन्या इन दोनोंकी ताराशुद्धि देखना आवश्यक है। वरके नक्षत्रसे कन्याका नक्षत्र और कन्याके नक्षत्रसे वरका नक्षत्र तृतीय, पञ्चम और सप्तम, इनमेंसे कोई एक होनेसे दोनों हीके तारे अशुद्ध होते हैं। वर और कन्या दोनोंके ही तारे शुद्ध हों, ऐसा कम देखनेमें आता है। इस कारण केवल वरका ताराशुद्ध देख कर विवाह दिया जा सकता है।

योनिकूट—शतभिषा और अश्विनी नक्षत्रकी घोटकयोनि, स्वाति और हस्ताकी महिषयोनि, पूर्वभाद्रपद और धनिष्ठाकी सिंहयोनि, भरणी और रेवतीकी हस्तियोनि, कृत्तिका और पुष्याकी मेषयोनि, पूर्वाषाढ़ा और श्रवणाकी वानरयोनि, अभिजित् और उत्तराषाढ़ाकी नकुलयोनि, रोहिणी और मृगशिराकी सर्पयोनि, ज्येष्ठा और अनुराधाकी हरिणयोनि, आर्द्रा और मूलाकी कुक्कुरयोनि, उत्तरफल्गुनी और उत्तरभाद्रपदकी गोयोनि, चित्रा और विशाखाकी व्याघ्रयोनि, अश्लेषा और पुनर्वसुकी विड़ालयोनि तथा मघा और पूर्वफल्गुनीकी इन्दुरयोनि है।

गो और व्याघ्रयोनि, हस्ती और सिंहयोनि, अश्व और महिषयोनि, कुक्कुर और हरिण, नकुल और सप वानर और मेष, विड़ाल और इन्दुर परस्पर विरुद्ध हैं।

यदि वर और कन्याकी एक योनि हो, तो उस विवाहमें शुभ होता है। भिन्न योनि होनेसे मध्यम तथा वैरयोनि होनेसे अशुभ फल जानना होगा। इस पर गर्गमुनि कहते ं, कि प्रीतियोनिके अभावमें अर्थात् वैरयोनिमें कभी भी विवाह न करे, करनेसे मृत्युकी सम्भावना है, किन्तु यदि कन्याकी राशि वरकी वश्य हो, तो वैरयोनिमें विवाह करनेसे दोष नहीं होता।

ग्रहमैत्रकूट—ग्रहोंके स्वाभाविक जो शत्रु मित्र आदि निर्दिष्ट हैं, तदनुसार उसका निरूपण करके देखना होगा, कि वर और कन्याके राश्यधिप ग्रहका यदि परस्पर मित्रता रहे, तो उस विवाहमें दम्पतीका मंगल, सम

होनेसे मध्यम प्रीति और वैरता होनेसे परस्पर शत्रुता तथा कलहादि होते हैं। वर और कन्याके राशि-अधिपतिमें मित्रता होनेसे जिस प्रकार शुभ होता है, दोनों एक होने पर भी उसी प्रकार फल हुआ करता है। इसका प्रतिप्रसव वृहन्नारदसंहितामें इस प्रकार लिखा है—वर और कन्याकी राशि यदि परस्पर तृतीय और एकादश, चतुर्थ और दशम तथा समसप्तक हो, तो राशि-अधिपतिमें शत्रुता रहने पर भी विवाहमें शुभ होता है।

गणकूट—वर और कन्याके जन्मनक्षत्रसे गणकूटका विचार करना होता है। जन्मनक्षत्रानुसार वर और कन्याका गणनिरूपण करके यदि दोनोंका ही एक गण हो, तो दम्पतीका शुभ, देवगण और नरगणमें मध्यम शुभ, देवगण और राक्षसगणमें शत्रुता तथा नरगण और राक्षस गणमें दोनोंमेंसे एककी मृत्यु होती है। ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है, कि यदि वरके नरगण तथा कन्याके राक्षसगण हो, तो भी वरकी मृत्यु वा निर्धनता होती है।

इस गणमेलकका प्रतिप्रसव भी देखनेमें आता है। इस पर गर्गमुनि कहते है, कि यदि वरके राक्षसगण तथा कन्याके नरगण हो कर सद्भकूट अर्थात् राजयोटक मेलक हो तथा परस्परके राश्यधिपतिमें मित्रता, राशिवश्य और मित्रयोनि हो, तो उस विवाहमें कोई दोष न हो कर शुभ होता है। वशिष्ठ मुनिके मतसे यदि कन्याके राक्षसगण तथा वरके नरगण हो, और पूर्वोक्त राजयोटक मेलक रहे, तो उस विवाहमें दोष नहीं होता।

भकूट—वर और कन्याकी यदि एक राशि हो अथवा परस्पर समसप्तम, चतुर्थदशम वा तृतीय एकादश हो, तो राजयोटक मेलक होता है। यह राजयोटक मेलक सर्वश्रेष्ठ है; वर और कन्याका योटक मेलक हो कर यदि उसके साथ ग्रहगण, वर्ण और ताराशुद्धि हो, तो दम्पतीके नाना प्रकारके सुख ऐश्वर्यादि होते हैं।

राजमार्त्तण्डमे लिखा है, कि वर और कन्याका राजयोटक मेलक हो कर यदि दोनोंके राशि-अधिपतिमें शत्रुता रहे वा वरके नक्षत्रसे कन्याकी नक्षत्रगणनामें विपद्, प्रत्यरि वा वधतारा हो वा दोनोंके बीच एकके राक्षसगण और दूसरेके नरगण, नाड़ीनक्षत्रमें वेध अथवा कन्या वर्णश्रेष्ठा हो, तो इस राजयोटकके शुभशक्तिप्रभावसे वे सब दोष नष्ट हो जाते हैं

विषमसप्तम—वर और कन्याका यदि परस्पर मेष और तुला, मिथुन और धनु तथा सिंह और कुम्भ इत्यादि रूप विषम और सप्तम राशि हो, तो उसे विषमसप्तम कहते हैं। इसमें कभी भी विवाह नहीं करना चाहिये, करनेसे अशुभ तथा मृत्यु तक भी हो जाती है।

षड़ष्टकादिदोष—वर और कन्याकी राशि यदि परस्पर षष्ठ और अष्टम हो, तो उस विवाहमें कन्याकी मृत्यु होती है, द्विद्वादश होनेसे धनका नाश तथा नवपञ्चक होनेसे सन्तानकी हानि होती है।

मित्रषड्ष्टक—षड़ष्टक निन्दनीय होने पर भी मित्रषड़ष्टक विशेष दोषावह नहीं है, किन्तु अरिषड़ष्टकमें कभी भी विवाह न करे। वर और कन्याकी राशि यदि मकर और मिथुन, कन्या और कुम्भ, सिंह और मीन, वृष और तुला, विछा और मेष तथा कर्कट और धनु हो, तो उक्त दो दो राशिके अधिपतिकी परस्पर मित्रताके कारण मित्रषड़ष्टक हुआ करता है। मित्रके स्थानमें भी यदि कन्याकी राशिसे वरकी राशि अष्टम हो, तो कभी भी विवाह न दे। मित्रषड़ष्टकके स्थानमें ताराशुद्धिका विशेष प्रयोजन है। वरके नक्षत्रसे गणनामें कन्याका नक्षत्र यदि विपद्, प्रत्यरि वा वध इनमेसे कोई एक हो, तो विवाह नहीं करना चाहिये; किन्तु यदि जन्मतारा सम्पद्, क्षेम, साधक, मित्र वा परममित्र हो, तो विवाह करनेमें दोष नहीं।

अरिषड्ष्टक—वर और कन्याकी राशि यदि मकर और सिंह, कन्या और मेष, मीन और तुला, कर्कट और कुम्भ, वृष और धनु तथा विछा और मिथुन हो, तो इन सब राश्यधिपतिके साथ परस्पर शत्रुता रहनेका अरिषड़ष्टक होता है। अरिषड़ष्टकमें विवाह होनेसे दम्पतीमें हमेशा कलह हुआ करता है।

षड़ष्टक और नवपञ्चमादिमें इसी प्रकार प्रतिप्रसव देखा जाता है। वरकी राशिसे कन्याकी राशि पञ्चम होनेसे वह कन्या मृतवत्सा किन्तु नवम होनेसे पुत्रवती और पतिवल्लभा होती है। वरकी राशिसे कन्याकी राशि-द्वितीय होनेसे कन्या धनहीना तथा द्वादश होनेसे धन-

वती होती है। वर और कन्याके राश्यधिप दोनों ग्रहोंमे यदि मित्रता रहे, वा दोनोंके राश्यधिप ग्रह एक हो तथा वरके नक्षत्रसे कन्याकी नक्षत्रगणनामें ताराशुद्ध हो और कन्याकी राशि वरकी राशिके अधीन हो, तो षड्‌ष्टक, नवपञ्चम और द्विद्वादशयोगमे भी विवाह हो सकता है। इसमें दम्पतीका शुभ होता है।

यदि वर और कन्याका एक नक्षत्र हो कर यदि एक राशि हो, तो उस विवाहमें कन्या धनवती और पुत्रवती होती है। फिर यदि वर और कन्याका एक नक्षत्र हो कर राशि भिन्न हो, तो भी दम्पतीका शुभ होता है और यदि वर और कन्याका भिन्न नक्षत्र हो कर एक राशि हो, तो उसमे विवाह होने पर भी विशेष शुभ होता है। (राजमार्त्तण्ड)

नाड़ीकूट—सर्पाकार त्रिनाड़ी चक्रमें अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंको निम्नलिखित नियमोंसे विन्यास करके वेधके अनुसार शुभाशुभ विचार करना होता है। अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, ज्येष्ठा, मूला, शतभिषा और पूर्वभाद्रपद ये ९ आद्यनाड़ी वा क्रोड़नाड़ी नक्षत्र हैं। भरणी, मृगशिरा, पुष्या, पूर्वफल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा, उत्तरभाद्रपद ये ९ मध्यनाड़ी नक्षत्र हैं। कृत्तिका, रोहिणी अश्लेषा, मघा, स्वाति, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा और रेवती ये ९ पृष्ठ-नाड़ी नक्षत्र हैं। वर और कन्या दोनोंके जन्मनक्षत्र यदि एक नाड़ीस्थ हों, तो नाड़ीवेध हुआ करता है। इस नाड़ीवधमें विवाह वर्जनीय है।

नाड़ीवेधका फल—वर और कन्या दोनोंके जन्मनक्षत्र आद्य नाड़ीस्थ होनेसे वरकी, पृष्ठनाड़ीस्थ कन्याकी और मध्यनाड़ीस्थ होनेसे दोनोंकी मृत्यु होती है। अतएव नाड़ीवेधमें कभी विवाह न करे। किन्तु यदि वर और कन्याकी एक राशि वा राजयोटकादि शुभ मेलक हो, तो नाड़ीवेधमें विवाह हो सकता है। इस पर श्रीपति कहते हैं, कि वर और कन्याकी यदि मित्रता रहे अथवा दोनोंके राश्यधिप एक हों तथा वरकी ताराशुद्धि और वश्यराशि हो, तो नाड़ीवेधमें विवाह दिया जा सकता है। (श्रीपतिस०)

इसी नियमसे योटक मिलन करके विवाह देना होता है।

योतु (सं० पु०) यूयते ज्ञायते अनेनेति यु बाहुलकात् तु। परिमाण।

योत्र (सं० क्ली०) यूयतेऽनेनेति यु (दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदंशनत्र करणे। पा ३।२।१८) इति ष्ट्रन्, जोत। वह बंधन जो जुएको बैलोंकी गरदनमें जोड़ता है, जोत।

योद्धृ (सं० पु०) युध्यतीति युध-तृच्। युद्धकर्त्ता, लड़ाई करनेवाला। पर्याय—भट, योध।

योद्धव्य (सं० क्ली०) युध तव्य। युद्धाई, जिससे युद्ध करना हो।

योद्धा (सं० पु०) योद्धृ देखो।

योध (सं० पु०) युध्यतीति युध-अच्। योद्धा, सिपाही।

योधक (सं० पु०) युध्यतीति युध ण्वुल्। योद्धा, सिपाही।

योधन (सं० क्ली०) युध्यतेऽनेन करणे ल्युट्। १ युद्धकी सामग्री। २ युद्ध, रण, लड़ाई।

योधनपुरतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

योधनीपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

योधपुर—राजपूतानेके अन्तर्गत एक देशीय सामन्तराज्य। मारवाड़ देखो।

योधपुर—योधपुर वा मारवाड़ सामन्तराज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २६° १७' उ० तथा देशा० ७३° ४' पू०के मध्य विस्तृत है। १४५९ ई०में योधरावने इसे बसाया। तभी-राठोरवंशीय राजे यहींसे राजकार्य चलाते है। पूर्व-पश्चिममें विस्तृत गण्डशैलमालाके दक्षिण ढालूदेशके ऊपर यह नगर अवस्थित है। इसके पार्श्वदेशमें ८०० फुट ऊंचे एक स्वतन्त्र पर्वतशिखर पर योधपुरका पहाड़ी दुर्ग है। इसके मध्यस्थलमे महाराजका प्रासाद विद्यमान है। दुर्गसे सैकड़ों फुट नीचे यह नगर अवस्थित है। नगर राजप्रासाद देवमन्दिर आदिसे सुसज्जित हैं। वर्त्तमान योधपुर नगरसे तीन मील उत्तर मारवाड़के परिहार-राजवंशकी प्राचीन राजधानी मन्दोर नगरका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। मन्दोरमें आज भी प्राचीन वंशके अनेक स्मृति-निदर्शन इधर उधर पड़े हैं। मन्दोर देखो।

योधपुर राजवंशका संक्षिप्त इतिहास और प्राचीन कीर्त्तिका उल्लेख मारवाड़ शब्दमें किया जा चुका है। मारवाड़ देखो।

योधराव—योधपुराधिपति राजा रणमल्लके पुत्र। ये कन्नौजाधिपति राठौर-कुलतिलक जयचन्द्रके पुत्र शिवाजीके वंशधर थे। १४५९ ई०में (किसी किसीके मतसे १४३२ ई०) में ये योधपुर नगरकी प्रतिष्ठा कर मन्दोरसे वहां राजपाट उठा लाये। नगर स्थापन करनेके प्रायः ३० वर्ष तक राज्य कर इनका स्वर्गवास हुआ। इनके चौदहवें पुत्रोंने पिताके जीते होमें अपने अपने भुजबलसे मरुराज्य विस्तार किया था।

योधसंराव (सं० पु०) योधानां संरावः। सिपाहियोंका युद्धमें जानेके लिये एक दूसरेको बुलाना।

योधसिंह—पञ्जावके एक शिख सरदार।

योधा (सं० पु०) योद्धृ देखो।

योधागार (सं० पु०) योधस्य आगारः। योधोंका आगार, सिपाहियोंके रहनेका घर।

योधावाई—जोधपुरके राजा मालदेवकी पुत्री और उदयसिंहकी वहिन। उदयसिंहने अकवरका प्रसाद पानेके लिये अपनी वहन योधावाईका व्याह अकवरसे किया था। यह व्याह १५६९ ई०में हुआ था। इन्हींके गर्भसे सलीमका जन्म हुआ। यह अकवरको हिन्दुओंके साथ अच्छा व्यवहार करनेके लिये उपदेश दिया करती थीं। जोधावाई देखो।

योधावाई—जोधपुरराज उदयसिंहकी पुत्री और राजा मालदेवकी पौत्री। उदयसिंहने अकवरका प्रसाद पानेके लिये फिरसे अपनी पुत्री योधावाईका व्याह १५८५ ई० में मिर्जा सलीम (जहांगीर)-से किया था। इस कन्याका नाम जगत्गोंसायिनी और वालमती था। जोधपुरराजकन्या होनेके कारण मुगल-सरकारमें ये भी अपनी फूफीकी तरह योधावाई नामसे प्रसिद्ध हुई। इनके गर्भसे सम्राट् शाहजहान्का जन्म हुआ (१५९२ ई०में)। १६१९ ई०में आगरा नगरमें इनकी मृत्यु हुई और अपनी इच्छासे निर्मित सोहागपुरके प्रासादपार्श्वस्थ समाधिमन्दिरमें इन्हें दफनाया गया था। आज भी वहां उस राजप्रासाद और समाधिमन्दिरका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

योधावाई—मुगल-सम्राट् जहांगीरकी राजपूतपत्नी। ये वीकानेरराज रायसिंहकी कन्या थी और वेगममहलमें योधावाई नामसे परिचित थीं।

योधिन् (सं० त्रि०) युध-इन्। युद्धकारी, लड़ाई करनेवाला।

योधिवन (सं० पु०) एक प्राचीन जङ्गलका नाम।

योधिया—वम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके नवनगर राज्यके अन्तर्गत एक नगर और प्रधान वन्दर। यह अक्षा० २२° ४०' उ० तथा देशा० ७०° २६' ३०" पू०के मध्य कच्छोपसागरके दक्षिण-पूर्व किनारे अवस्थित है। पहले यहां मत्स्यजीवीका वासस्थान एक बड़ा ग्राम था। अभी यहां सूती और पशमीनेका जोरों वाणिज्य चलता है। यहां एक दुर्ग, राजप्रासाद, दरवारगृह और विचार अदालत हैं जो समुद्रके किनारेसे थोड़ी ही दूर पड़ते हैं। परधारी, वलम्वा, हरियाना और वनस्थली नामक चार उपविभाग ले कर योधियमहल-राजस्व-विभाग संगठित हुआ है।

योधीयस (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन योधः योध-ईयसुन्। योद्धृतम, वड़ा भारी योद्धा।

योधेय (सं० पु०) युध-भावे-घञ्, योधं युद्धं करोतीति ख। योद्धा, सिपाही।

योध्य (सं० त्रि०) युध-ण्यत्। योधनीय, युद्ध करनेके योग्य।

योनल (सं० पु०) यवस्य नल इव नलः काण्डोऽस्य, पृषोदरादित्वात् साधुः। शस्यविशेष, मक्का या जोन्हरी। पर्याय—यवनाल, जूर्णाह्वय, देवधान्य, जेण्डोला, वीजपुष्पिका। (हेम)

योनि (सं० पु० स्त्री०) यौति संयोजयतीति यु (वहि श्रिश्रु युद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित्। उण् ४।५१) इति नि। १ आकर, खान। (मेदिनी) २ उत्पादक कारण, वह जिससे कोई वस्तु उत्पन्न हो। ३ जल, पानी। ४ कुशद्वीपस्थित नदीविशेष, कुशद्वीपकी एक नदीका नाम। (मार्क०पु० १२१।७१) ५ तन्त्रसारविशेष, योनियन्त्र। ६ प्राणियोंका उत्पत्तिस्थान। पुराणानुसार इनकी संख्या चौरासी लाख है। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुजके भेदसे यह चार प्रकारका है। इनमेंसे २१ लाख अण्डज, २१ लाख स्वेदज, २१ लाख उद्भिज्ज और २१ लाख जरायुज हैं। जीव इन चौरासी लाख योनिमें अपने कर्मफलानुसार परिभ्रमण करते हैं। इनमेंसे

मनुष्ययोनि श्रेष्ठ और दुर्लभ है। क्योंकि, जीवके मानवयोनि प्राप्त होनेसे वह मुक्तिके लिये यत्न कर सकता है तथा साधनवलसे मुक्त हो सकता है।

(गरुड़पु० २ अ०)

निवन्धधृत वृहद्विष्णुपुराणमें चौरासी लाख योनिका इस प्रकार उल्लेख है—जलयोनि ६ लाख, स्थावरयोनि २० लाख, कृमियोनि ११ लाख, पक्षियोनि १० लाख, पशुयोनि ३० लाख, मनुष्ययोनि ४ लाख, इन चौरासी लाख योनियोंमें परिभ्रमण कर जीव पीछे ब्राह्मणयोनिको प्राप्त होता है अर्थात् ब्राह्मण हो कर जन्म लेता।

कर्मविपाकके मतसे स्थावरयोनि ३० लाख, जलयोनि ६ लाख, कृमियोनि १० लाख, पक्षियोनि ११ लाख, पशुयोनि २० लाख और मानवयोनि ४ लाख है। जीव इन सब योनियोंमें भ्रमण कर द्विजत्व लाभ करता है।

प्राणियोंके साधारणतः चार प्रकारको योनि अर्थात् उत्पत्तिस्थान हैं, जैसे—जरायु, अण्ड, स्वेद और उद्भिद्। इन चार प्रकारके योनिसे ही वे सब भेद हुए हैं, जानना होगा। जीव वार वार नाना योमिमें भ्रमण कर अनेक प्रकारका क्लेश पाता है। विना मनुष्ययोनिके जीव श्रवण मननादि नहीं कर सकता, इसीसे मानवयोनि श्रेष्ठ है।

पुराणादि धर्मशास्त्रमें लिखा है, कि पापकर्मानुष्ठान द्वारा ही कुयोनिकी प्राप्ति होती है। विष्णुपुराणके मतसे पापी लोग नरकभोगके वाद यथाक्रम स्थावर, कृमि, जलज, भूचरपक्षी, पशु और नरयोनि पानेके वाद धार्मिक मनुष्य और तव मुमुक्षु हो कर जन्म लेता है।

(विष्णुपु० २।६ अ०)

कुयोनिप्राप्तिका कारण पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें इस प्रकार लिखा है, जो व्यक्ति होमानुष्ठान, विष्णुपूजा, आत्मविद्यालाभ तथा सुतीर्थगमन नहीं करता, वह कुयोनिको प्राप्त होता है। जो आर्त्तको सुवर्ण, वस्त्र, ताम्बूल, रत्न, अन्न, फल, जल आदि दान नहीं करता, जो ब्रह्मस्व और स्त्रीधनको छल वा वलसे हरण करता है; जो धूर्त्त, परवञ्चक, नास्तिक, चौर, वकधार्मिक, मिथ्यावादी, वालक, वृद्ध और आतुरके प्रति निर्दय, सत्यवर्जित, अग्नि और विषदाता, मिथ्यासाक्ष्यप्रदानकारी; अगम्यागामी, ग्रामयाजी, व्याधवृत्तिपरायण, वर्णाश्रमधर्मरहित, सर्वदा मादकद्रव्यपानरत और देवद्वेषी है; जो पिता, माता, स्वसा, अपत्य और धर्मपत्नीको त्याग कर देता है; तथा जो धर्मदूषक इत्यादि पाप करता है, वह कुयोनिको प्राप्त होता है। (पद्मपु० उत्तरख० १८ अ०)

शास्त्रमें जिसे पापकार्य वताया है, उसके करनेवालोंकी निन्दित योनिमें गति होती है।

जो सर्वदा पुण्यानुष्ठान करते हैं, कायमनोवाक्यसे कभी भी पापानुष्ठान नहीं करते तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासनादि करते हैं उन्हें प्रतियोनिमें भ्रमण नहीं करना होता।

७ स्त्रियोंकी जननेन्द्रिय, भग। पर्याय—वराङ्ग, उपस्थ, स्मरमन्दिर, रतिगृह, जन्मवर्त्म, अधर, अवाच्यदेश, प्रकृति, अपथ, स्मरकूपक, अप्रदेश, पुष्पी, संसारमार्गक, संसारमार्ग, गुह्य, स्मरागार, स्मरध्वज, रत्यङ्ग, रतिकूहर, कलत्र, अघ, रतिमन्दिर, स्मरगृह, कन्दर्पकूप, कन्दर्पसम्बाध; कन्दर्पसन्धि, स्त्रीचिह्न। (जटाधर)

योनिकी आकृति शङ्खनाभिकी आकृति जैसी तीन आवर्त्तविशिष्ट होती है, इसीसे इसका नाम त्र्यावर्त्त भी है। इस त्र्यावर्त्तयोनिके तृतीय आवर्त्तमें गर्भाशय अवस्थित है।

सामुद्रिकमें इसके शुभाशुभका विषय इस प्रकार लिखा है,—कच्छपकी पीठ सी विस्तृत और हाथीके कंधे-सी उन्नत योनि ही मङ्गलदायक है। योनिका वाम भाग उन्नत होनेसे कन्या और दक्षिण भाग उन्नत होनेसे पुत्र जन्म लेता है। जो योनि दृढ़, चौड़ी, बड़ी और ऊंची होती, जिसके ऊपरी भाग पर मूसेके शरीरके जैसे थोड़े रोएं होते हैं तथा जिसका मध्यभाग अप्रकाशित होता, जो गठन और वर्णमें कमलदल-सी होती, जिसका विचला भाग पतला और सुन्दर होता तथा जो आकृतिमें पीपलके पत्तेकी तरह त्रिकोण होती वही योनि सुप्रशस्त और मङ्गलदायक है। जो योनि हरिणके खुरकी तरह अल्पायत, चूल्हेके भीतरी भागकी तरह गहरी और रोओंसे ढकी होती तथा जिसका मध्यभाग प्रकाशित और अनावृत होता वह योनि निन्दित और अमङ्गलप्रद है। योनिरोग शब्द देखो।

योनिकन्द (सं० पु०) योनौ कन्द इव। योनिका एक रोग। इसमें उसके अन्दर एक प्रकारकी गांठ हो जाती है और उसमेंसे रक्त या पीप निकलता है।

योनिगुण (सं० पु०) गर्भका गुण।

योनिग्रन्थ (सं० पु०) छन्दोशास्त्र।

योनिच्छेद ((सं० क्ली०) मिस्र, सोमाली आदि अफ्रिकावासी बालिकाओंकी वस्ति और जरायुपथको परिष्कार रख कर अवशिष्ट दोनों योनिकपाटमें सूई भेदना। अफ्रिकावासी अपनी अपनी कन्याओंके भगाकुरको छेद कर उक्त दोनों मार्ग छोड़ समस्त योनिकपाटके दोनों पार्श्वको छिल देते और सूईसे जोड़ देते हैं। उनका विश्वास है, कि इस प्रकार योनिका संकीर्ण कर देनेसे गुप्तप्रणयमें आसक्त हो कन्या सङ्गम सुखका भोग नहीं कर सकती। आठ वर्ष तककी कन्याओंकी सतीत्व रक्षाके लिये ऐसी व्यवस्था की गई हैं। किन्तु सोमाली युवतियोंका साधारणतः १५।१६ वर्षमें विवाह होता है जिससे वे विवाहके पहले भी कुकर्म कर सकती हैं। यहां तक कि कन्याका पिता भावी जमाईसे भी कभी कभी रात भरके लिये १२ डालर ले कर दोनों को सहवास सुखसे रात बिताने देते हैं। ऐसे सहवाससे यदि गर्भका लक्षण दिखाई हो तो विशेष कलङ्ककी बात है। इस समय दोनोंको दाम्पत्यसूत्रमें आवद्ध करनेके सिवा कौलिक मर्यादारक्षाका दूसरा उपाय नहीं है। इसी कारण बालिकावस्थाकी संवद्ध योनि विवाहके बाद स्वयं वर अथवा किसी नीच जातिकी स्त्री हथियारसे खोल देती है। इस समय जब कन्याको वरके साथ एक घरमें बंद रखा जाता है, तब बाहरमें दूसरे दूसरे लोग बाजा बजाते हैं जिससे बाहरका कोई भी आदमी योनि फाड़नेसे होनेवाला कन्याका चीत्कार न सुन सके।

योनिज (सं० त्रि०) योनेर्जायते इति जन-ड। योनिनिःसृत शरीरादि, जिसकी उत्पत्ति योनिसे हुई हो, जरायुज और अण्डज प्राणिसमूह।

"सा च त्रिधा भवेद्देह इन्द्रियं विषयस्तथा।
योनिजादिर्भवेद्देह इन्द्रियं घ्राणलक्षणम्॥"
(भाषापरिच्छेद)

योनिसे जीव आदिकी उत्पत्ति होती है इसलिये जीव आदिकी योनिज कहते हैं। ऐसे जीव दो प्रकारके होते हैं—जरायुज और अण्डज। जो जीव गर्भमें पूरा शरीर धारण करके योनिके बाहर निकलते हैं वे जरायुज और जो अण्डेसे उत्पन्न होते हैं वे अण्डज कहलाते है।

योनित्व (सं० क्ली०) योनेर्भावः त्व। कारणत्व, योनिका भाव या धर्म।

योनिदेवता (सं० स्त्री०) योनिर्देवता यस्य। पूर्वफल्गुनी नक्षत्र।

योनिदेश (सं० पु०) १ जरायुकुसुम। २ योनिस्थान, भग।

योनिदोष (सं० पु०) १ उपदंश रोग, गरमी। २ स्त्रीरोग।

योनिद्वार (सं० क्ली०) योनेर्द्वारं। १ भगद्वार। २ गयाधामके एक तीर्थका नाम। इस तीर्थमें स्नान करनेसे बड़ा पुण्य होता है।

योनिन् (सं० त्रि०) योनिविशिष्ट, भगयुक्त।

योनिनासा (सं० स्त्री०) योनिके दोनों कवाटोंके अन्दर नासिकाकृति स्थान, कोंट।

योनिपूजा (सं० स्त्री०) योनियन्त्र लिख कर तान्त्रिक मतसे देवताकी आराधना। (पुरश्चरणोल्लास? तोषिणी)

योनिफूल (हिं० पु०) योनिके अन्दरकी वह गांठ जिसके ऊपर एक छेद होता है। इसी छेदमेंसे हो कर वीर्य गर्भाशयमें प्रवेश करता है।

योनिभ्रंश (सं० पु०) योनेभ्रंशः। योनिका एक रोग जिसमें गर्भाशय अपने स्थानसे कुछ हट जाता है।

योनिमत् (सं० त्रि०) गर्भ सम्बन्धीय या मातृसम्बन्धीय।

योनिमुक्त (सं० त्रि०) मोक्षप्राप्त, जो बार बार जन्म लेनेसे मुक्त हो गया हो।

योनिमुद्रा (सं० स्त्री०) योन्याकृति मुद्रा हस्तभङ्गी। मुद्राविशेष। देवतादिकी पूजामें मुद्रा-प्रदर्शन करना होता है।

कालिकापुराणमें योनिमुद्राका नियम इस प्रकार लिखा है,—दोनों हाथकी उंगलियोंको संयोजित कर दोनों हाथकी कनिष्ठाको वज्रतुल्य बद्ध और संयुक्त करे,

पीछे वाएं हाथको अनामिकाके मूलमें उसका अग्रभाग लगा दे तथा दाहिने हाथको मध्यमाके मूलमें वाएंका अग्रभाग जोड़ दे। इस प्रकार जोड़नेके बाद उंगलियों-को आवर्त्तित करनेसे मध्यमें जो योनिका आकार वन जाता है; उसीका नाम योनिमुद्रा है। यह योनि-मुद्रा भगवती दुर्गादेवीका अत्यन्त प्रीतिकर है।

दूसरा तरीका—उंगलियोंको चित करके दोनों अंगूठेको दोनों कनिष्ठाके मूलमें निक्षेप करें। पीछे दोनों हाथको परस्पर संयुक्त करनेसे जो मुद्रा बनती है उसका नाम योनिमुद्रा है। यह मुद्रा सभी देवताओंको प्रीति-दायिनी है। (कालिकापु० ६६ अ०)

तन्त्रसारमें भी इस मुद्राकी प्रणाली लिखी है।

(मुद्रा शब्द देखो।

योनियन्त्र (सं० पु०) कामाक्षा, गया आदि कुछ विशिष्ट तीर्थ स्थानोंमें बना हुआ एक प्रकारका बहुत ही संकीर्ण मार्ग। इसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि जो इस मार्ग-से हो कर निकल जाता है उसका मोक्ष हो जाता है।

योनिरञ्जन (सं० पु०) योनिदोषभेद।

योनिरोग (सं० पु०) योनेः रोगः। उदावर्त्तादि स्त्री-रोग। वैद्यकग्रन्थमें इस रोगके निदान और चिकि-त्सादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—

अनियमित आहार खाने और विहार करनेसे वातादि दुष्ट हो कर शुक्र और शोणितको दूषित कर देता है। उस दूषित शुक्र-शोणितसे अथवा दैववशतः योनिमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

योनिरोगका नाम—वायु दूषित हो कर उदावर्त्ता, वन्ध्या, विप्लुता, परिप्लुता और वातला ये पांच प्रकार-के योनिरोग उत्पन्न होते हैं। पित्तदोषसे लोहितक्षरा, प्रस्रंसिनी, वामिनी, पुत्रघ्नी और पित्तला ये पांच प्रकार; कफदोषसे अत्यानन्दा, कर्णिनी, आनन्दचरण अतिचरण और श्लेष्मला ये पांच प्रकार तथा त्रिदोष दुष्ट होनेसे षण्डो, अण्डिनी, महती, सूचीवक्त्रा और त्रिदोषिणी नामक योनिरोग उपस्थित होते है। इस प्रकार योनिरोग कुल मिला कर बीस प्रकारका है।

जिस योनिरोगमें बहुत कष्टसे फेनयुक्त आर्त्तव निकलता है उसका नाम उदावर्त्ता है। आर्त्तवके नष्ट होनेसे उसे वंध्या, योनिमें सर्वदा वेदना होनेसे उसे विप्लुता; योनि कर्कश, स्तब्ध तथा शूल और सूई चुभने-सी वेदनायुक्त होनेसे उसे वातला कहते हैं। पूर्वोक्त चारों प्रकारके योनिरोगमें वात वेदना होती है; किन्तु वातलारोगमें यह अधिक परिमाणमें दिखाई देता है। योनिसे यदि जलन दे कर रक्तस्राव हो, तो उसे लोहितक्षरा कहते है। प्रस्रंसिनी योनिरोगमें योनि अपने स्थानसे नीचेकी ओर लम्बित और वायुजन्य उपद्रवयुक्त होती है। इस रोगमें संतान प्रसवके समय बहुत तकलीफ होती हैं। पुत्रघ्नी योनिरोगमें कभी कभी गर्भसंचार होता है, किन्तु वायुके प्रकोपसे रक्त-क्षय होनेके कारण वह गर्भ नष्ट हो जाता है। इन चार पित्तज योनिरोगमें अतिशय दाह, पाक, ज्वर आदि पित्तजन्य सभी उपद्रव होते हैं।

अत्यानन्दा नामक योनिरोगमें अतिरिक्त मैथुन करने-से तृप्ति नहों होती। योनिके मध्य कफ और रक्त द्वारा मांसकन्दकी तरह ग्रन्थविशेष उत्पन्न होनेसे उसको कर्णिनीरोग कहते हैं। मैथुनकालमें पुरुषके रेतःपात होनेके पहले ही स्त्रीका रेतःपात हो जाता है जिससे स्त्रोके वीजग्रहणमें असमर्थ होने वा अतिरिक्त मैथुनके लिये स्त्रीकी वीजग्रहणशक्ति नष्ट होनेसे अतिचरण नामक योनिरोग उत्पन्न होता है। श्लेष्मला योनि-रोगमें योनि पिच्छिल, कण्डूयुक्त और शीतल मालूम होती है।

आर्त्तवशून्य अल्पस्तन स्त्रोके मैथुनकालमें खरस्पर्श मालूम होनेसे उसके षण्डो नामक योनिरोग कहते हैं। अल्पवयस्का और सूक्ष्मद्वारविशिष्टा रमणीके स्थूललिङ्ग पुरुषके साथ सहवास करनेसे उसकी योनि अण्डकोष-की तरह लटकने लगती है। इसको अण्डिनी योनिरोग कहते हैं। योनिके अतिशय छिद्रयुक्ता होनेसे विवृता तथा सूक्ष्म छिद्रविशिष्टा होनेसे सूचीवक्त्रा रोग कहते हैं। षण्डी आदि चार योनिरोग त्रिदोषसे उत्पन्न होते हैं। अतएव इन चार योनिरोगोंमें त्रिदोषके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। ये चार योनिरोग असाध्य हैं। सिवा इसके अन्यान्य योनिरोग साध्य हैं अर्थात् चिकित्सा करनेसे आरोग्य होते हैं।

योनिकन्दके लक्षण—दिवानिद्रा, अतिरिक्त क्रोध, अधिक व्यायाम, अतिशय मैथुन तथा किसी भी कारण से योनिदेश घायल हो जाय, तो वातादि तीनों दोष कुपित हो कर योनिमें पीप-रक्तकी तरह वर्णविशिष्ट और मन्दार फलकी तरह आकृतियुक्त एक प्रकारका मांसकन्द उत्पन्न होता है। इसे योनिकन्द कहते हैं। वायुकी अधिकता रहनेसे यह कन्द रूक्ष, विवर्ण और फटा फटा दागयुक्त हो जाता है। पित्तकी अधिकता होनेसे कन्द लाल हो जाता और उसमें जलन देतो है, साथ साथ ज्वर भी आता है। श्लेष्माकी अधिकतामें वह नीला और कण्डुयुक्त होता है तथा त्रिदोषकी अधिकतामें उक्त सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

योनिरोगकी चिकित्सा।

जिस स्त्रीका आर्त्तव नष्ट हो गया है, वह प्रतिदिन मछली, कांजी, तिल, उड़द, मट्ठा और दहीका सेवन करे। तितलौकीका बीया, दन्ती, पिप्पली, गुड़, मैनफल, सुराबीज और यवक्षार, इनका बराबर बराबर भाग ले कर थूहरके दूधमें पीसे, पीछे उसकी बत्ती बना कर योनिमें देनेसे आर्त्तव निकलने लगता है। लता-फटकी पत्ता, खर्जिकाक्षार, वच और शाल इन्हें ठंढे दूधसे पीस कर पिलानेसे तीन दिनके अन्दर निश्चय रज निकलने लगेगा।

बन्ध्याचिकित्सा—सफेद और लाल विजबंद, मुलेठी, कर्कटशृङ्गी और नागकेशर इन्हें मधु, दूध और घीके साथ पीनेसे बंध्यानारीके गर्भ होता है। असगंधके काढ़े के साथ दूधको पका कर दूध रहते उसे उतार ले, *ऋतुस्नानके वाद प्रतिदिन सवेरे उस काढे को घीके साथ* पीये, तो बंध्यारोग विनष्ट होता है। पुष्यानक्षत्रमें लक्ष्मणामूलको उखाड़ कर ऋतुस्नानके वाद घृतकुमारीके रससे पीस कर दूधके साथ पीनेसे *निश्चय गर्भ* रहेगा। पोतझिण्टोका मूल, धाइफल, वटका अंकुर और नीलोत्पल इन्हें दूधके साथ तथा गजपीपल, जीरा, श्वेतपुष्पा और शरपुङ्खा इन्हें समान भागमें पीस कर जलके साथ पीनेसे गर्भ जरूर रहता है। एक पलाशपत्रको दूधमें पीस कर पान करनेसे वीर्यवान् पुत्र जन्म लेता है। शूकशिम्बीका मूल, कपित्थमज्जा और लिङ्गिनी बीज इनके चूरको दूधके साथ तथा पुत्रञ्जीव वृक्षका मूल, विष्णुक्रान्ता और लिङ्गिनो इन्हें एक साथ पीस कर आठ दिन पान करनेसे गर्भ होता है।

योनिरोगमें पहले स्नेहादि प्रयोग, उदरवस्ति, अभ्यङ्ग, परिषेक, प्रलेप और पिचुधारण कर्त्तव्य है।

तगरपादुका, कण्टकारी, कुट, सैन्धव और देवदारु इनके चूरसे तिलतेलको पका कर उसमें रुई भिगोवे। बाद उस रुईको योनिमें रखनेसे विप्लुता योनिकी वेदना जाती रहती है।

वातला, कर्कशा, स्तब्धा और अल्पस्पर्शा योनिमें भी इसी प्रकार पिचुधारण कर्त्तव्य है। संवृतायोनिरोगाक्रान्त स्त्रीको निर्वात गृहमें रख कर योनिमे कुम्भीस्वेद प्रदान तथा पूर्वोक्त तैल द्वारा पिचुका प्रयोग करे।

पित्तला योनिरोगमें परिषेक, अभ्यङ्ग और पिचु तथा पित्तघ्न शीतलक्रिया और स्नेहार्थ घृतका प्रयोग करना होता है। प्रस्रंसिनी योनिरोगमें घृतम्रक्षण और क्षीर द्वारा स्वेदका प्रयोग करके वेशवार द्वारा आच्छादित कर बन्धन करना होगा (सोंठ मिर्च, पीपल, धनिया, मंगरैला, अनार और पिपरामूल इनके मेलको वेशवार कहते हैं।) योनिदाहकालमें चीनो मिला हुआ आँवलेके रस वा सूर्यावर्त्त वृक्षके मूलको चावलके धोए जलके साथ पान करे। योनिसे यदि पीप निकलती हो, तो सैन्धव और गोमूत्रके साथ पीसे हुए नीमके पत्तोंसे योनि भर दे। योनि पिच्छिल और दुर्गन्धयुक्त होनेसे वच, अडूस, परवल, प्रियंगु और निम्बचूर्ण अथवा श्योनाकादिका काढ़ा करके उससे योनिको भर दे।

पीपल, मरिच, उड़द, सोयाँ, कुट और सैन्धव इनसे प्रदेशिनी अंगुलिके समान लम्बी और मोटी वत्ती बना कर योनिमें प्रयोग करनेसे योनिका श्लेष्मविकार नष्ट होता है। कर्णिनी योनिरोगमें निम्बपत्रादि शोधनद्रव्यकी बनी हुई वत्ती देनी होती है। गुलञ्च, त्रिफला और दन्तीका काढ़ा बना कर धारापातमें प्रक्षालन करनेसे योनिगत कण्डू जाता रहता है। खैरकी लकड़ी, हर्रे, जायफल, नीम और सुपारी इनके चूरको मूंगके जूसके साथ मिला कर कपड़े से छान ले, पीछे उस जूसको

योनिमें डालनेसे योनि सङ्कीर्ण हो जाती है, और उससे जलस्राव नहीं होता। शूकशिम्बीके मूलका काढ़ा बना कर प्रक्षालन करनेसे योनि सङ्कीर्ण हो जाती है।

जीरा, मंगरेला, पीपल, करेला, तुलसी, वच, अड़ूस, सैन्धव, यवक्षार और यमानी इनके चूरको घीमें थोड़ा भुन कर चीनीके साथ मोदक बनावे। अग्निके बलानुसार उपयुक्त मात्रामें उसका सेवन करनेसे योनिरोग नष्ट होता है, चूहेके मांसके काढ़ेके साथ तिलतैलको पका कर उसमें रूई भिगो कर योनिमें धारण करनेसे योनि-रोग निश्चय ही विनष्ट होता है।

घी ४ सेर, चूरके लिये त्रिफला, नीलझिण्टी, पीत-झिण्टी, गुलञ्च, पुनर्नवा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, रास्ना मेद और शतमूली कुल मिला कर एक सेर, दूध १६ सेर, यथाविधान इन सब द्रव्यों द्वारा घृत पाक करके अग्नि बलानुसार उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे योनिरोग बहुत जल्द दूर होता है।

जीववत्सा और एकवर्णा गायके दूधका घी चार सेर, चूरके लिये मंजीठ, मुलेठी, कुट, त्रिफला, चीनी, विजबंद, मेद, महामेद, क्षीरकंकोली, कंकोली, असगंध-का मूल, यमानी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, प्रियंगु, कटकी, नीलोत्पल, कुमुद, द्राक्षा, श्वेत और रक्तचन्दन तथा लक्ष्मणामूल, प्रत्येक वस्तु आध छटांक, शतमूलीका रस १६ सेर, और दूध १६ सेर। इस घृतको यथाविधान वन-गोंइठेकी आगमें पका कर पान करनेसे शरीर पुष्ट होता है। इससे सभी प्रकारके रजोदोष और योनिदोष आदि विनष्ट होते हैं।

योनिकन्दकी चिकित्सा—गेरुमिट्टी, आम्रबीज, विड़ङ्ग, हरिद्रा, रसाञ्जन और कटफल इनके चूरको मधुके साथ योनिमें भर देनेसे तथा त्रिफलाके काढ़ेमें इन सब चूर्ण और मधुको मिला कर प्रक्षालन करनेसे योनिकन्द नष्ट होता है।

(भावप्रकाश योनिरोगाधिकार)

सुश्रुतमें इसकी चिकित्साका विषय इस प्रकार लिखा है,—वातप्रधान योनिरोगमें वायुनाशक घृतादि-का सेवन करावे; गुलञ्च, त्रिफला और दन्ती इनके काढ़ेसे योनिसेक करना होगा। तगरपादुका, वार्त्ताकु, कुट, सैन्धव और देवदारु इनके चूरके साथ यथाविधि तैलपाक करे, पीछे उस तेलमें रूई भिगो कर योनिमें रखे। पित्तप्रधान योनिरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा तथा घृताक्त पिचुको योनिमें प्रवेश कराना आवश्यक है। श्लेष्मप्रधान योनिरोगमें रूक्ष और उष्णवीर्य औषधका प्रयोग करे। पीपल, मिर्च, उड़द, सोयां, कुट और सैन्धव इन्हें पीस कर तर्जनी उंगलीके समान वत्ती बना योनिमें धारण करे। कर्णिका नामक योनिरोगमें कुट, पीपल, अकवनका पत्ता और सैन्धव इन्हें बकरीके मूत-में पीस कर वत्ती बनावे। पीछे उस वत्तीको योनिमें प्रवेश करनेसे रोग अवश्य आरोग्य होगा। सोयां और बेरकी पत्तीको पीस कर तिल तैलके साथ मिला प्रलेप देनेसे विदीर्ण योनि प्रशमित होती है। करेलेके मूलको पीस कर प्रलेप देनेसे अन्तःप्रविष्ट योनि बहिर्गत होती है। प्रस्रंसिनी नामक योनिरोगमें चूहेकी चर्बी लगाने-से वह पुनः अपने स्थान पर चली आती है। योनिकी शिथिलता चूर करनेके लिये वच, नीलोत्पल, कुट, मिर्च, असगंध और हल्दी इन्हें एक साथ मिला कर प्रलेप दे तथा कस्तूरी, जायफल और कपूर अथवा मदन फल और कपूरको मधुके साथ मिला कर योनिमें भर दे। योनिकी दुर्गन्ध बंद करनेके लिये आम, जामुन, कैथ, खट्टा नीबू और बेल इनके कच्चे पत्ते, मुलेठी, और मालतीफूल, इनका चूर्णके साथ यथाविधि घृतपाक करके वह घृताक्त रुई योनिमें धारण करे। बन्ध्यारोग दूर करनेके लिये असगंधके काढ़ेमें दूधको पका कर उसमें घृतका प्रलेप दे। पीछे ऋतुस्नानके बाद उसे सेवन करे। पीतझिण्टीकी मूल, धवफूल, वटका अंकुर और नीलोत्पल, इन्हें दूधके साथ पीस कर सेवन करने-से अथवा श्वेत विजबंद, चीनी, मुलेठी, रक्त विजबंद, वटका अंकुर और नागकेशर इन्हें मधुमें पीस कर दूध और घीके साथ सेवन करनेसे बन्ध्यारोग दूर होता है। कन्दरोग नष्ट करनेके लिये त्रिफलाके काढ़ेमें मधु डाल कर उससे योनि साफ करे। गेरूमिट्टी, आम्रकेशी, विड़ङ्ग, हरिद्रा, रसाञ्जन और कटफल इनके चूर्णको मधुके साथ मिला कर कन्दमें प्रलेप दे। चूहेके मांस-

को टुकड़े टुकड़े करके तिलतैलमें पाक करे। मांस जब अच्छी तरह सिद्ध हो जाय तब उसे नीचे उतार ले। पीछे उस तेलमें कपड़े भिगो कर योनिमें धारण करनेसे कन्दरोग नष्ट होता है। फलघृत, फलकल्याणघृत और कुमारकल्पद्रूमघृत आदि इस रोगमें बहुत उपकारी है।

इस रोगका पथ्यापथ्य—दिनमें पुराना चावल, मूग, मसूर और चनेकी दाल, कच्चाकेला, करेला, डूमर, परवल और पुरानी कोहड़े की तरकारी तथा सह्य देने पर बकरे मांस तथा छोटी मछलीका थोड़ा जूस भी दे सकते हैं। रातको भूखके अनुसार रोटी आदि खानेको देना आवश्यक है। तीन या चार दिनके अन्तर पर स्नान कराना हितकर है। ज्वरादि उपसर्ग रहनेसे स्नान न करे तथा हलका भोजन खानेको दे।

गुरुपाक और कफजनक द्रव्य, मत्स्य, मिष्टद्रव्य, लाल मिर्च, अधिक लवण, दुग्धसेवन, अग्निसन्ताप, रौद्रसेवन, ठंढ लगाना, मद्यपान, ऊंचे स्थान पर चढ़ना और वहांसे उतरना, मैथुन, मलमूत्रादिका वेगधारण, सङ्गीत और उच्चशब्दोच्चारण इस रोगमें विशेष निषिद्ध है रज बंद हो जानेसे स्निग्ध क्रिया आवश्यक है। उड़द, तिल, दधि, कांजी, मछली और मांस भोजन इस अवस्थामें बहुत उपकारी है। (सुश्रुत)

योनिलिङ्ग (सं० क्ली०) रोगभेद।

योनिवेश (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक देशका प्राचीन नाम, जिसमें क्षत्रियोंका निवास था।

योनिशूल (सं० क्ली०) योनिरोगविशेष, योनिका एक रोग जिसमें बहुत पीड़ा होती है।

योनिशूलघ्नी (सं० स्त्री०) योनिशूलं हन्ति हन्-क्विप् स्त्रियां ङीप्। शतपुष्पा।

योनिसंवरण (सं० क्ली०) गर्भवती स्त्रियोंका एक प्रकारका रोग। इसमें योनिका मार्ग सिकुड़ जाता है, गर्भाशयका द्वार रुक जाता है, गर्भाशयका द्वार रुक जाता और गर्भका मुंह बंद हो जानेसे सांस रुक कर बच्चा मर जाता है। इस रोगमें गर्भिणीके भी मर जानेकी आशंका रहती है।

योनिसङ्कर (सं० पु०) योन्या सङ्करः। वर्णसंकर, वह जिसके पिता और माता दोनों भिन्न भिन्न जातियोंके हों।

योनिसङ्कोचन (सं० पु०) १ योनिको फैलाने और सिकोड़नेकी क्रिया। २ योनिके मुखको सिकोड़ने वा तंग करनेकी औषध। यह क्रिया अथवा इसका प्रयोग प्रायः संभोग सुखके लिये किया जाता है।

योनिसम्वृत्ति (सं० स्त्री०) योनिका एक रोग जिसमें उसका मार्ग सिकुड़ जाता है।

योनिसम्भव (सं० पु०) योन्याः सम्भवति योनि सम्-भू-अप्। वह जो योनिसे उत्पन्न हुआ हो, योनिज।

योन्यर्शस् (सं० क्ली०) योनिजातमर्शः। योनिका एक रोग जिसमें उसके अन्दर गांठ-सी हो जाती है।

योनिरोग और कन्द देखो।

योपन (सं० क्ली०) १ चिह्नलोपकरण, चिह्न मिटाना। २ पीड़न, पीड़ा। ३ उत्यक्तकरण, अत्याचारसे पकड़ना।

योम (अ० पु०) १ दिन, रोज। २ तिथि, तारीख।

योमा—पूर्वसीमान्तवर्त्ती एक पर्वतमाला। यह कछाड़के पूर्वसे आराकानके बीच हो कर नेग्रिसवन्दर तक प्रायः ५० मील विस्तृत है लेकिन अक्षा० २२° ३७´ उ० तथा देशा० ९३° ११´ पू० नील पर्वतसे विच्छिन्न हो करके दक्षिणकी ओर ७०० मील आ कर पेगु तक चली गई है। यह समुद्रपीठसे चार हजारसे ले कर पांच हजार तक ऊंची है। नेग्रिस अन्तरीपके निकटवर्त्ती पहाड़की चोटी पर एक सुन्दर पागोदा (मन्दिर) है।

योरोप (सं० पु०) यूरोप देखो।

योरोपियन (अ० पु०) यूरोपियन देखो।

योषणा (सं० स्त्री०) असती स्त्री, वह स्त्री जो सती और पतिव्रता न हो।

योषन् (सं० स्त्री०) गतभर्तृका स्त्री, विधवा स्त्री।

योषा (सं० स्त्री०) यौति मिश्री-भवति यु मिश्रणे बाहुलकात् स (उण् ३।६२) स्त्रियां टाप्। नारी, स्त्री।

योषित् (सं० स्त्री०) योषति पुमांसं, युष्यते पुंभिरिति वा युष् इति (हसरुहियुषिभ्य इति। उण् १।९९) नारी, स्त्री।

योषिता (सं० स्त्री०) योषित्-टाप्। स्त्री, औरत।

योषित्प्रिया (सं० स्त्री०) योषितां प्रिया। हरिद्रा, हलदी।

योषिन्मय (सं० त्रि०) योषित् स्वरूपे मयट्। योषित्स्वरूप, स्त्रीस्वरूप।

योस (सं० पु०) रोग या भयको हटाना या दूर करना।
यौ—आराकानके पूर्वमें रहनेवाली एक पहाड़ी जाति। पगानके पश्चिमस्थ ख्येन्द्वन नदीतटसे लेकर आराकान पर्वतमाला पर्यन्त स्थानोंमें इस जातिका वास है। इनकी भाषा बहुत कुछ ब्रह्मदेशकी भाषासे मिलती जुलती है।
यौकरीय (सं० त्रि०) यूकर (कृश्वादिभ्यश्छण्। पा ४।२।८०) इति चतुर्षु अर्थेषु छण्। १ यूकरसे निवृत्त। २ शूकरका अदूरभव। ३ यूकरदेशका रहनेवाला। ४ यूकर देशयुक्त।
यौक्तस्रुच (सं० क्ली०) सामभेद।
यौक्ताश्व (सं० क्ली०) सामभेद।
यौक्तिक (सं० पु०) युक्तिं करोतीति युक्त-घञ्। १ नर्म-सचिव, विनोद या क्रीड़ाका साथी। (त्रि०) २ युक्ति-युक्त, जो युक्तिके अनुसार ठीक हो।
यौग (सं० पु०) योगदर्शन-मतावलम्बी, वह जो योग-दर्शनके मतके अनुसार चलता हो।
यौगक (सं० त्रि०) योगस्यायमिति योग अण्, स्वार्थे कन्। योगसम्बन्धी, योगका।
यौगन्धर (सं० पु०) युगन्धर (विभाषा कुरुयुगन्धराभ्यां। पा ४।२।१३०) वुञ्। युगन्धरवंशीय।
यौगन्धरक (सं० पु०) यौगन्धर देखो।
यौगन्धरायण (सं० पु०) युगन्धरस्य गोत्रापत्यं, युग-न्धर (नड़ादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) इति फक्। १ वह जो युगन्धरके गोत्रमें उत्पन्न हुआ हो। २ राजा उदयनके एक मन्त्रीका नाम।
यौगन्धरायणीय (सं० त्रि०) यौगन्धरायण-सम्बन्धी।
यौगन्धरि (सं० पु०) युगन्धर (साल्वावयवेति। पा ४।१।१७३) इति अपत्यार्थे इञ्। १ युगन्धरके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। २ युगन्धरोंके राजा।
यौगपद (सं० क्ली०) युगपद भावमें, समकालीन।
यौगपद्य (सं० क्ली०) युगपद्भाव, समकालीन।
यौगवरत्र (सं० क्ली०) युगवरत्राणां समूहः (खण्डिकादि-भ्यश्च। पा ४।२।४५) इति समूहार्थे अञ्। युगवरत्रसमूह।
यौगिक (सं० त्रि०) योगाय प्रभवतीति योग (योगाद् यच्च। पा। ५।१।१०२) इति ठञ्। प्रकृति प्रत्ययादि निष्पन्न अर्थ-वाचक शब्द, योग अर्थात् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न अर्थवाचक शब्दको यौगिक कहते हैं। यह यौगिक तीन प्रकारका है—योगरूढ़, रूढ़ और यौगिक। (अलङ्कारकौ० २ किरण) आदितेयादि शब्द यौगिक है। 'अदितेरपत्यं पुमान्' अदिति शब्दके उत्तर ढक प्रत्यय करके यह शब्द बना है यहां पर प्रकृति अदिति और प्रत्य अपत्यार्थमें ढका है, योगजका अर्थ अदितिका अपत्य यानी पुत्र होता है। यहां पर केवल योगार्थ मालूम होनेसे यह शब्द यौगिक हुआ है।

जहां पर योगलभ्यार्थ मात्रका बोधक होता है अर्थात् प्रकृतिके साथ प्रत्यय योग करके जहां योगलभ्य अर्थका बोध होता है, उसीको यौगिक कहते हैं। यह तीन प्रकारका है, समास, कृत् और तद्धितान्त। समासान्त दो पदको मिला कर जहां योगार्थ लाभ होता है उसे समासयौगिक; जहां प्रकृतिके साथ कृत् प्रत्यय करके योगार्थ बोध होता है वहां कृद्यौगिक और तद्धित प्रत्यय द्वारा इस प्रकार अर्थबोध होनेसे उसे तद्धित-यौगिक कहते हैं।

नैयायिकोंके मतसे अर्थबोधक शक्तिविशिष्ट होनेसे उसे पद कहते हैं। यह चार प्रकारका है—यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ और यौगिकरूढ़।

जहां अवयवार्थ बोध होता है, वहां उसे यौगिक कहते हैं, जैसे, पाचकादि। जो अवयवशक्ति निरपेक्ष हो कर सभी शक्तिमात्र द्वारा बोध होता है, वह रूढ़ है, जैसे—गोघटादि जहां अवयवशक्तिविषयक सभी शक्ति विद्य-मान रह कर अर्थका बोध हो वहां योगरूढ़ होता है जैसे, पङ्कजादि। जहां अवयवार्थ और रूढ्यर्थ ये दोनों ही स्वतन्त्रभावमें मालूम हों, वहां यौगिकरूढ़ होता है, जैसे, उद्भिदादि। (भाषापरि० सिद्धान्तमुक्ता० ८०)

२ अगुरु, अगर।
यौजनशतिक (सं० त्रि०) योजन-शतं गच्छतीति योजन-शत (क्रोश-शतयोजनशतयोरुपसंख्यानं। पा ५।१।७४) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या ठञ्। योजनशत-गमनकर्त्ता, सात योजन जानेवाला।
यौजनिक (सं० त्रि०) योजनं गच्छतीति योजन (योजनं गच्छति। पा ५।१।७४) इति ठञ्। एक योजन गमन-कर्त्ता, एक योजन तक जानेवाला।

यौतक (सं० क्ली०) युतकयोरिदं युतक-अण् युतकमेवेति स्वार्थे अण् वा। यौतुक, दहेज।
यौतकि (सं० पु०) युतकके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। (पा ४।१।९०)
यौनव (सं० क्ली०) परिमाण।
यौतुक (सं० क्ली०) युतकं योनि-सम्बन्धः तत्र भवमिति ष्ण, युतयोर्वधूवरयोरिदमिति वा। विवाहकालमें दम्पतीका लब्ध धन, दहेज। अन्न-प्राशनादि संस्कारकालमें जो धन मिलता है उसे भी यौतुक कहते हैं। परिणयके समय वा पुत्रकन्याके संस्कारादि कार्यमें जो धन प्राप्त होता है वही यौतुक है। इसमें स्त्रीका अधिकार है, इसीसे इसको स्त्रीधन कहते हैं। स्त्रीधन यौतुक और अयौतुकके भेदसे दो प्रकारका है। इस यौतुक धनकी पहले अदत्ता कन्या अधिकारिणी है. पीछे वाग्दत्ता और वाग्दत्ताके बाद दत्ता कन्या। इन दत्ता कन्याओंमें पुत्रवती वा सम्भावितपुत्रा दोनोंका ही समान अधिकार है। पुत्रवती वा सम्भावितपुत्रा दोमेंसे कोई नहीं रहने पर वन्ध्या वा विधवाका समान अधिकार जानना होगा। इसके बाद पुत्र, दौहित्र, पौत्र, प्रपौत्र, सपत्नीपुत्र, सपत्नीपौत्र और सपत्नीप्रपौत्र इनका यथाक्रम अधिकार होता है। अयौतुक स्त्रीधनमें कन्या अधिकारिणी नहीं होगी, पुत्र अधिकारी होगा।

"मातुस्तु यौतुकं यत् स्यात् कुमारीभाग एव सः।
दौहित्री एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनं॥"

(मनु० ९।१३१)

माताका यौतुकलब्धधन कुमारीको और अपुत्रका धन दौहित्रको मिलना चाहिये।

दायभाग शब्द देखो।

यौथिक (सं० त्रि०) यूथसंघाती। "मामेव मातापितरौ भ्रातृन्नानीन् यौथिकान्" (भाग० ५।८।६) 'यौथिकान् यूथसंघातिनः। (स्वामी)
यौथ्य (सं० त्रि०) यूथ (संकाशादिभ्यो ण्यः। पा ४।२।८०) इति चतुर्षु अर्थेषु ण्यः। १ यूथसे निवृत्त। २ यूथविशिष्ट, झुण्ड बांध कर रहनेवाला। ३ यूथका अदूरभव।
यौध (सं० त्रि०) युद्धप्रिय, योद्धा।
यौधाजय (सं० क्ली०) सामभेद।
यौधिक (सं० त्रि०) युद्धप्रकरणभेद।
यौधिष्ठिर (सं० त्रि०) युधिष्ठिरस्य इदमिति युधिष्ठिर-अण्। १ युधिष्ठिर-सम्बन्धी। (पु०) २ युधिष्ठिरका अपत्य।
यौधिष्ठिरी (सं० स्त्री०) वासुदेवकी पत्नीविशेष।
यौधेय (सं० पु०) योधमर्हतीति योध ढञ् यद्वा (पार्श्वादि यौधेयादिभ्यामणञौ। पा ५।३।११७) इति स्वार्थे अञ्। १ योद्धा। २. युधिष्ठिरका पुत्र। यह शैब्यराजका दौहित्र था। राजा युधिष्ठिरने शैव्यदेविका नामकी कन्याको स्वयम्वरमें पाया था। इसी कन्याके गर्भसे यौधेयका जन्म हुआ। (भारत० १।९५।३६) ३ नृगराजपुत्र। (हरिवंश ३१।२५)
यौधेय—युक्तप्रदेशवासी युद्धप्रिय जातिविशेष। मार्कण्डेयपुराणके ५८वें अध्यायके ४६वें श्लोकमें तथा विभिन्न शिलालिपिमें इस जातिका उल्लेख देखनेमें आता है। पाणिनिमें इस वीर्यशाली जातिका उल्लेख देख कर प्रत्नतत्त्वविद् लोग अनुमान करते हैं, कि पञ्जावके शतद्रु तीरवासी इस जातिने अलेकसन्दरको भारत-चढ़ाईके बहुत पहले योद्धृसमाजमें विशेष प्रतिष्ठा लाभ की थी। यौधेयराजाओंकी प्रचलित मुद्रा दिल्ली, लुधियाना, ध्वस्तप्राय बेहात नगर और पूर्वसीमामें यमुना तीर तक विस्तृत स्थानोंमें पाई गई है। इससे मालूम होता है, कि एक समय उन लोगोंका राज्य विस्तृत था। सुराष्ट्रके क्षत्रप रुद्रदामाकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि वे लोग दक्षिणकी ओर भी बढ़े थे। राजा रुद्रदामाने ७२ संवत्में उनके विरुद्ध हथियार उठाया था।

गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्तकी शिलालिपिमें मालव और आर्जुनायनके बाद तथा मद्र और आभीरोंके पहले यौधेयोंका स्थान निर्णीत रहनेके कारण बहुतेरे उन्हें वर्त्तमान योहिय जातिके बतलाते हैं। वराहमिहिरने हेमताल, गान्धार आदि देशोंके समीप इस देशका उल्लेख किया है।

ये यौधेयगण युधिष्ठिरतनय यौधेयके वंशधर हैं। शैब्यवंशीय राजा गोवसनकी कन्या देविका इनकी माता थीं। पुराणादिमें देविका यौधेयी, पौराणी आदि नामोंसे

प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मपुराण और हरिवंशमें उशीनरके पुत्र नृगको ही यौधेयोंका आदिपुरुष बताया है। राजा नृग शिविके छोटे भाई थे।

वर्त्तमानकालमें यौधेयोंकी जो मुद्रा पाई गई है उनमेंसे छोटी १ली सदीमें और उनसे बड़ी ३री सदीमें ढाली गई है। बड़ी मुद्रामें "जय यौधेयगणस्य" लिपि अङ्कित है। यौधेयराज ब्रह्मणदेवको रौप्यमुद्राके विषयकी आलोचना करनेसे उन्हें स्पष्ट ब्रह्मण्यधर्मसेवी कह सकते हैं।

यौधेयक (सं० पु०) यौधेय जाति।

यौन (सं० क्ली०) योनेरिदं योनि-अण्। १ योनिसम्बन्धाधीन पाप। इस पापसे हमेशा पतित होना पड़ता है।

"संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
याजनाध्यापनाद् यौनात् सद्यो हि शयनाशनात् ॥"
(बौधायन)

इसका प्रायश्चित्त द्वादशवार्षिक व्रत है। २ उत्पत्तिकारण। (त्रि०) ३ योनिसंम्बन्धो, योनिका। (पु०) ४ उत्तरापथकी एक प्राचीन जातिका नाम। इसका उल्लेख महाभारतमें है। कदाचित् ये लोग यवन जातिके थे।

"उत्तरापथजन्मानः कीर्त्तयिष्यामि तानपि।
यौनकाम्बोजगान्धाराः किराता वर्व्वरैः सह ॥"
(भारत १।२०७।४३)

यौप (सं० त्रि०) यूपकाष्ठ सम्बन्धी।

यौप्य (सं० त्रि०) यूप (संकाशादिभ्यो ण्यः। पा ४।२।८०) इति ण्य। यूपके निकट।

यौयुधानि (सं० पु०) युयुधानके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

यौवत (सं० क्ली०) युवतीनां समूहः युवति (युवतीभिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।३८) इति अण् पुंवद्भावश्च। १ युवतिसमूह, स्त्रियोंका दल। २ लास्य नृत्यका दूसरा भेद, वह नृत्य जिसमें बहुत-सी नटियां मिल कर नाचती हों। ३ परिमाण।

यौवतेय (सं० पु०) युवतीका पुत्र।

यौवन (सं० क्ली०) युवन् (हायनान्तयुवादिभ्योऽण्। पा ५।१।१३०) इति अण्। १ युवा होनेका भाव, जवानी। पर्याय—तारुण्य, वयस्। २ अवस्थाका वह मध्य भाग जो वाल्यावस्थाके उपरान्त आरम्भ होता है और जिसकी समाप्ति पर वृद्धावस्था आती है। इस अवस्थाके अच्छी तरह आ चुकने पर प्रायः शारीरिक बाढ़ रुक जाती है और शरीर बलवान् तथा हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। साधारणतः यह अवस्था १६ वर्षसे ले कर ६० वर्ष तक मानी जाती है।

"आषोड़शाद्भवेद्बालस्तरुणस्तत उच्यते।
वृद्धः स्यात् सप्ततेरूर्द्ध्वं वर्षीयान् नवतेः परम् ॥" (स्मृति)

नवयौवन लक्षण—

"दरोद्भिन्नस्तनं किञ्चित् चलाक्षं मेदुरस्मितं।
मनागभिस्फुरद्भावं नव्यं यौवनमुच्यते ॥" (उज्ज्वलनीलमणि)

३ जोबन देखो। ४ युवतियोंका दल।

यौवनक (सं० क्ली०) यौवन, जवानी।

यौवनकण्टक (सं० पु० क्ली०) यौवने कण्टकमिव दुःखदत्वात्। युवगण्ड, मुँहासा।

यौवनपिड़का (सं० स्त्री०) यौवने पिड़का। मुंहासा जो युवावस्थामें होता है।

यौवनप्राप्त (सं० पु० क्ली०) यौवनका शेष समय।

यौवनमत्त (सं० त्रि०) यौवनगर्वित, जवानीका घमंड करनेवाला।

यौवनमत्ता (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द। यह चार चरणका होता है और प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर होते हैं। उसके १, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १५, १६, वर्ण लघु और चार वर्ण गुरु होते हैं।

यौवनलक्षण (सं० क्ली०) यौवनस्य लक्षणं चिह्नं। १ लावण्य, नमक। २ तारुण्यचिह्न, जवानी। ३ स्तन, स्त्रियोंकी छाती।

यौवनवत् (सं० त्रि०) यौवनं विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। यौवनविशिष्ट, जवान।

यौवनाधिरूढ़ा (सं० त्रि०) युवती, जवान।

यौवनाश्व (सं० पु०) युवनाश्वस्यापत्यमिति युवनाश्वअण्। मान्धाता राजाका एक नाम। मान्धाता देखो।

"यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्त्यवनीप्रभुः।
सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥" (भाग० ९।६ अ०)

यौवनाश्वक (सं० पु०) यौवनाश्व स्वार्थे कन्। मान्धातृराज।

यौवनाश्वि (सं० पु०) युवनाश्व वंशज होनेका कारण

राजा मान्धाताके पुत्र अर्थमें यह शब्द कहा जाता है।

यौवनिक (सं० त्रि०) यौवनसम्बन्धी, यौवनका।

यौवनिन् (सं० त्रि०) यौवनविशिष्ट, जवान।

यौवनोद्भेद (सं० पु०) यौवनस्य उद्भेदः। १ यौवनोद्गम, पहली जवानी। २ कामदेव।

यौवराजिक (सं० त्रि०) युवराज (काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ। पा ४।२।११६) इति ठञ्। युवराज सम्बन्धी, युवराजका।

यौवराज्य (सं० क्ली०) युवराज होनेका भाव। २ युवराजका पद।

यौवराज्याभिषेक (सं० पु०) वह अभिषेक और उसके सम्बन्धका कृत्य तथा उत्सव आदि जो किसीके युवराज बनाये जानेका समय हो, युवराजके अभिषेककृत्य।

यौवत्विण्य (सं० क्ली०) स्त्रीत्व, औरत होनेका भाव।

यौष्माक (सं० त्रि०) युष्मद् अण्। (तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ। पा ४।३।२) इति प्रकृतेर्युष्मकादेशः। युष्मत् सम्बन्धी, तुम्हारा।

यौष्माकीन (सं० त्रि०) युष्मद् (युष्मादस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च। पा ४।३।१) इति खञ्। (तस्मिन्नणि चेति। पा ४।३।२) इति युष्माकादेशः। युष्मत्सम्बन्धी, तुम्हारा।

अष्टादश भाग सम्पूर्ण